## हिन्दौ

# विःवनीष



( चतुर्देश भाग )

पुराण— ११श लिङ्गपुराण।

पुर्व मागर्गे-- १ सूत और नैमिषका संवाद, २ सूतका संक्षेपमें लिङ्गपुराणप्रतिपाद्य वर्णन, ३ प्राकृत सर्ग, ब्रह्माएड-का उत्पत्तिकथन, ४ युगादि परिमाणकथन, ५ ब्रह्मकृता-विद्यादि ब्रह्माएडसर्गकथन, ६ वहिषित्-रुद्रश्चतसृष्टिकथन, शिवके अनुप्रहसे निवृत्तिकथन, ८ योगमार्ग द्वारा शिवाराधनाविधि, अद्यङ्ग-साधनकम कथन, ६ योगियोंका विद्य, उपसर्गविधिकथन, अष्टविध ऐश्वर्यसंभकथन, १० महेशप्रसाद्पात कथन, लिङ्गपूजादिकथन, ११ श्वेतलोहित-कल्पव्रसङ्घमें सद्यजात और तन्छिष्यसम्भवकथन, १२ रक्तकलप्रसङ्ग्रमें वामदेव और तच्छित्र्यसमाववर्णन, १३ पीतवासकल्पप्रसङ्गमें तत्पुरुष गायतीसम्भववर्णन, १४ असितकल्पप्रसङ्गमें अघोरोज्जवकथन, १५ अघोरमन्त्र-विधिकथन, १६ विश्वरूपकल्पप्रसङ्गमें ईशानसम्भव, पञ्च-्रध्रह्मात्मकस्तोत्न, गायतीका विचित्र महिमा-वर्णनः, १७ स्चआदद्भुत महिमवर्णन, ब्रह्मा और विष्णुके विवाद-मञ्जनार्थं लिङ्गोत्पत्ति, १८ विष्णुकृत शिवस्तीत, उसका फल्भ्रुतिकथन, १६ ब्रह्मा विष्णुसे वर पा कर आहादित महेश्वरका मोहनाशवर्णन, २० पान्नकल्पप्रसङ्गमें विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माको उत्पत्ति और रुद्रदशन, २१ ब्रह्मा

और विष्णुकृत शिवस्तव. २२ ब्रह्मा और विष्णुकी महे-श्वरसे वरप्राप्ति, सर्पेष्ट्रसम्भव, २३ श्वेतकल्पर्असङ्गमें ब्रह्माके प्रश्नानुरोधसे शिवको सद्यआद्यु त्पत्ति और गायती-महिमकथन, २४ ब्रह्मांके निकट शिवका योगाचार्यावतार, विमिन्न द्वापरमें उनका शिष्य विमिन्न व्यास और भविष्य व्यासादिका कथन, २५ ऋषिगणकर्त क जिज्ञासित हो कर स्तको संक्षेपमें स्नानविधि और क्रमकथन, २६ सन्ध्या और पञ्चयज्ञादि विधकथन, २७ लिङ्गाचनविधिकथन, २८ मानसशिवपूजादिकथन, २६ देवदारुवनवासी ऋषियोंके चरितवर्णनप्रसङ्गमें सुदर्शन उपाल्यान, ३० शङ्करकी आराधनासे श्वेतकी मृत्युप्राससे मुक्ति, ३१ ब्रह्माके कथितविधानमें तापसी ऋषियोंका शिवका साक्षात्, ३२ ऋषिगणकर्तृक शिवका स्तवं, ३३ शिव-कतृ क स्तव और शैवमाहात्म्यवणन, ३४ ऋषियोंके प्रश्ना-नुसार शिवकथित भस्मस्नानादि-निरूपण ३५ क्ष्प-ताड़ित द्वीचिकर्षं क शिवके प्रसादसे वज्रास्थि पा कर क्षपका मुख्डताड़न, ३६ क्षुपकतृ क विष्णुका स्तव, देव-गणके साथ विष्णु और दधीचिका परामव, ३७ं सेनत्-कुमारसे जिज्ञासित हो कर नन्दिको उत्पत्तिविवरणकथा, ३८ विधाताके समीप विष्णु और शिवका माहात्म्य-

वर्णन, सृष्टिप्रकरण, ३६ युगघमं, पुराणक्रमादि कथन, ४० कलिंघमं, सत्ययुगका आरम्म, कल्पमन्यन्तरादि कीर्त्तंन, ४१ ब्रह्माका देवीपुत्रत्वकथन, तिमृत्ति का परस्पर उत्पा-व्कटवकथन, तपःप्रीत महादेवके अनुब्रहसे ४२ शिलादका पुतलाम, ४३ नन्दीका मनुत्याकारलाभ और महादेवका महाप्रसाद प्राप्तिकथन, ४४ नन्दीका शिवकृत-गाणपत्याभिनेक और विवाह, ४५ ऋषियोंके समीप स्तका शिवरूपसमष्टिवण न, अधस्तलादि कथन, ४६ प्रियवत-पुतका पृथिवी-द्वीप-सागरकथन, पृथिवीका आधिपत्यकीत्तर्भन, ४७ जम्बृद्धीपके अन्तर्गत नववर्षकथन, अनी घ्रवंशवण न, ४८ सुमेरमान और सूर्यप्रकादि कथन, ४६ जस्त्रद्वीपमान, वर्णपर्व तादि कथन, ५० मितान्तशिख-रादिको शकादिका पुण्यायतनकीत्त न, ५१ शिवके प्रधान चतुःस्थानका कोत्त<sup>र</sup>न, ५२ गङ्गोद्भवादि कथन, ५३ प्रक्ष-द्वीपादिकथन, ऊर्ध्वेलोक और नरकादिकीर्त्तन, ५४ सूर्य-का गतिनिरूपण, भ्रुवादिकथन, ५५ शिवरूपी सूर्यका चैतादि मासकपसे द्वादशभेदकथन, ५६ सोमरथादिवर्णन, ५७ बुधादि रथप्रहमएडपमानादि कीत्त न, ५८ सूर्य प्रमृति प्रहोंके आधिपत्य पर शिवका अभिषे चन, ५६ तिविध विह और सूर्यरिमसहस्तृ-कार्यादि कथन, ६० ग्रहप्रकृत्यादि कथन, ६१ गृहादि स्थानाभिमानिदेवकथन, ६२ धुव-चरित, ६३ दृश्रदेव-वशिष्ठादि सर्गकथन, ६४ वशिष्ठका पुत-शोक, पराशरकी उत्पत्ति, राक्षसगणदाहन, ६५ चन्द्रसूर्य-वंशवण नप्रसङ्गीं तिएडकोक शिवका सहस्रनामकी न, ६६ तिधन्वादि सूर्यवंशीय ययाति पर्यन्त चन्द्रवंशीय राजगणवर्ण न, ६७ ययातिचरित, ६८ सात्वत और यहु-ं वंशकीत्तंन, ६६ कृष्णावतारकथा, ७० शिवकृत आदि ्र सर्गकथन, ७१ तिपुरवृत्तान्त, उसके नाशमें देवतायोंका यत, ७२ तिपुरनाशके लिये ईश्वरका अभिप्राय, ७३ देव-्ताओंके प्रति ब्रह्माका लिङ्गाचनिविधिकथन, ७४ लिङ्गमेद और लिङ्गसंस्थापनफलकथन, ७५ निगु ण शिवका ग्रोगागम्यत्वकथन, ७६ विविध शिवमूर्त्ति प्रतिप्राका फलकथन, ७७ शिवालय-निर्माणफल, शिवसेतमानादि-कथन, ७८ वस्त्रपूत जल द्वारा कार्यकरणका उपदेश, अहिंसाभक्तिफलकथन, ७६ उन्छिप्रादि गणकृत शिव-पूजा, दीपदान प्रसृतिका फलकथन, ८० शिवदेवगण-

संवाद, देवताओंका पशुत्वमोचन, ८१ पाशुपतव्रतकथन, ८२ व्यपोहनस्तवकथन, ८३ विविधशिववतकथन, ८४ उमामहेश्वरव्रतकथन, ८५ पञ्चाक्षरविधिकथन, ८६ सर्व-दुःखनिवारक-शिवकथित ध्यानादि कथन, ८७ शिवके अनुग्रह्से सनत्कुमार प्रभृतिकी मायासे मुक्ति, ८८ अणि-माद्याष्ट्रसिद्धि, त्रिगुण-संसारादि कथन, ८६ योगिसदाचार, द्रध्यशुद्धि, स्त्रीधर्म निरूपण, ६० शिवीक्त यतिप्रायश्चित्त-विधि, ६१ मृत्युचिह, प्रणवमाहात्म्य और शिवोपासनादि कथन, ६२ वाराणसीमाहात्म्यकथन, ६३ अन्धंकासुरनिव्रह, वलराम-गाणपत्यप्राप्ति, ६४ वराहकर्नुक हिरण्याक्षवध और उद्धार, ६५ नृसिहका हिरण्यकशिपुवध, ६६ नृसिह-वीरमद्रसं वाद, नृसिंहपराजय, १७ जलन्यरवधादि कथन, ६८ शिवका सहस्रनाम सुन कर निज नेलकमलप्रदानपूर्वक पूजा द्वारा विष्णुका सुदर्शनचकलाभ, ६६ देवीका शिव-वामाङ्गत्व और दक्ष-हिमालयसम्भवत्व-ऋथनप्रसङ्ग, १०० दक्षयज्ञघ्वंस, १०१ पार्वतीकी तपस्या, मदनभस्म, १०२ देवीका शङ्करप्रसाद्लाभ, १०३ शिवविवाह और पुतरुत्पा दन, १०४ गणेशको सृष्टिके लिये सव देवताओंका शिव-स्तव, १०५ गणेशकी उत्पत्ति, १०६ शिवके नृत्यारम्भ-प्रसङ्गमें कालीका उद्भव, १०७ मक्त उपमन्युके प्रति शिव-का प्रसाद,१०८ उपमन्युके निकट श्रीकृष्णका शैवदीक्षा-त्रहण ।

वणिभागमं — १ मार्कण्डेयाम्बरीषसंवादमं कौशिकवृत्तान्तकथन, २ विष्णुमाहात्म्यकीत्तं न, ३ नारदका गीतवाद्यलाम, ४ विष्णुमक्तलक्षण और उसका माहात्म्यवर्णन,
५ अम्बरीषचरित, ६ अलक्ष्मी समुत्पत्यादिकथन, ७
अलक्ष्मीनिराकरण, लक्ष्मीप्राप्तिका उपायकथन, ८ धीन्युमूकचरित, ६ पशुनिरूपण, पाशकथन, शिवको पशुपतिनामनिरुक्ति, १० शिवके सामने सर्वसृष्टिकथन, ११ शिवका
विभूतिकथन, लिङ्गपूजामाहात्म्य, १२ अष्टमूर्त्तिकथन,
१३ अल्प्रमूर्त्तिकी पृथक् पृथक् संज्ञा, स्त्री-पुतकथन, १८
शिवका पञ्चब्रह्मरूपवर्णन, १५ शिवके रूपनिरूपण
अधियोंका मत, १६ शिवका नानाविध नामरूपकीर्त्तन,
१७ सगुणरुद्रविष्रहमें विश्वका उत्पत्तिकथन, १८ ब्रह्मादिकृत शिवका स्तव, १६ मण्डलमें शिवपूजाविधि, २०
मण्डलपूजा-अधिकारियोंका शिवदीक्षाविधिकथन, २१

शिवपूजानियमादि कथन, २२ सौरस्नानादि निरूपण, २३ मानसशिवपूजा, २४ शिवपूजाकी विशेष उक्ति, २५ शिव-कथित अग्निकार्यकथन, २६ अघोरपूजाकथन, २७ जया-भिनेककथन, २८ तुलादानकथन, २६ हिरण्यगर्भविधि, ३० तिलपर्वत-दानविधि, ३१ स्वल्पतिलपर्वत-दानविधि, ३२ स्वर्णमेदिनी-दानविधि, ३३ कञ्पपादप-दानविधि, ३४ गणेशदानविधि, ३५ हेमधेनुदानविधि, ३६ लक्ष्मीदान-विधि, ३७ तिलघेनुदानविधि, ३८ गोसहस्प्रदानविधि, ३६ हिरण्याभ्वदानविधि, ४० कन्यादानकथन, ४१ हिरण्य-वृपदानविधि, ४२ गजदानविधि, ४३ अन्टलोकपालदान-विधि, ४४ श्रेष्ठदानकथन, ४५ जीवश्राद्धकथन, ४६ त्रधियोंका प्रतिष्ठाचिषयक प्रश्न, ४७ लिङ्गस्थापन, ४८ सूर्यादि देवतास्थापनविधि, ४६ अग्रोरेशप्रतिष्ठाकथन, ५० श्रृह्णकारकथन, ५१ वज्रवाहनिका विद्याकथन, ५२ तिहिनियोगप्रकार, ५३ मृत्युञ्जयविधिकथन, ५४ लियम्बक-मन्त्र द्वारा शिवपूजाकथन, ५५ योगकथन, लिङ्गपुराण-पाड, श्रवण और श्रवणफलकथन ।

अव प्रश्न यह है, कि उक्त लिङ्गको प्रकृत-पुराणके मध्य गिन सकते हैं वा नहीं ? मत्स्यपुराणके मतसे—

"यतानिछिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः। धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकत्य च ॥ कल्पान्तं छैङ्गमित्युक्तंपुराणं ब्रह्मणा स्वयम्। तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति॥"

( ५३।३७ )

जिस प्रन्थमें देव महेश्वरने अग्निलिङ्गमध्यस्थ हो कर अग्निकल्पान्तमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षार्थंकथा प्रकाशित की थी, पकादशसहसूयुक्त वही पुराण ब्रह्मा-कर्व के लिङ्ग नामसे चर्णित हुआ है।

फिर नारदपुराणमें छैङ्गपुराणकी अनुक्रमणिका इस प्रकार मिलती है—

"श्णु पुत प्रवक्ष्यामि पुराणं लिङ्गसंश्वितम् । पठतां श्रण्वताञ्चेव भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ यच् लिङ्गाभिधं तिष्ठम् विह्वलिङ्गे हरोऽभ्यधात् । मद्यं धर्मादिसिध्यन्तं अग्निकलपकथाश्रुयम् ॥ तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् । पुराणंलिङ्गमुदितं वह्न्याख्यान विचितितम् ॥

तदेकादशसाहस् हरमाहातम्यस्वकम्। परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगतये॥ पुराणोपक्रमे प्रश्नसृष्टि संक्षेपतः पुरा। योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम्॥ लिङ्गोन्द्रवस्तदर्चा च कीर्तिता हि ततःपरम्। सनतुकुमारशैलादिसंवादश्चाथ पावनः॥ ततो दधीचिचरितं युग्धर्मनिरूपणम्। ततो भुवनकोपाख्यो सूर्यसोमान्वयस्ततः॥ ततश्त्र विस्तरात् सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा। लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ॥ शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम्। प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णेनम्॥ अन्धकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः। नृसिंहचरितं पश्चाज्ञलन्धरवधस्ततः ॥ शैवं सहस्नामाथ दक्षयज्ञविनाशनम्। कामस्य दहनं पश्चात् गिरिजायाः करप्रहः॥ ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च । उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः॥ विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीपकथा ततः। सनत्कुमारनन्दीशसंवादश्च पुनमु ने ॥ शिवमाहातम्यसं युक्तस्नानयागादिकं ततः। सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा॥ वहुघोकानि श्राद्धप्रकरणन्ततः । प्रतिष्टा तत्र गदिता ततोऽघोरस्य कीन्त नम्॥ व्रजेश्वरी महाविद्या गायतीमहिमा त्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च॥ पतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्य कथितो मया। व्यासेन हि निवदस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः॥"

(हे पुत! सुनो, अव लिङ्गपुराण कहता हूं। भग-वान् हरने विह्निल्ङ्गमध्यस्थ रह कर मुक्ससे धर्मादि सिद्धि-के निमित्त जो अग्निकल्पकथाश्रय लिङ्गपुराण कहा था, व्यासदेवने उसीको दो भागोंमें विभक्त किया है। यह लिङ्गपुराण अग्निके आख्यानसे चितित हुआ है। यह हरमाहात्म्यस्चक पकादश सहस्र श्लोकोंमें परिपूर्ण है और तीनों जगत्में सव पुराणोंका सारस्वरूप है। इसमें प्रथमतः पुराणोपकम प्रश्न और संक्षेपमें सृष्टि-चर्णन है। इसके पूर्वभागमें योगाख्यान, कल्पाख्यान, लिङ्गोल्पित्त और उसको अर्चना, सनत्कुमार और शैलादिका पवित्र संवाद, द्घीचि-चरित, युगधर्म-निरूपण, भुवनकोषा-ख्यान, सूर्य और सोमवंश, विस्तृतरूपमें सृष्टि, तिपुरा- ख्यान, लिङ्गप्रतिष्ठा, पशुपाशिवमोक्षण, समुद्यशिववत, सदाचारनिरूपण, सर्वविध्वप्रायश्चित्त और अरिष्ठ, काशी तथा श्रीशैलवर्णन, अन्धकाख्यान, वाराहचरित, नृसिंह-चरित, जलन्धरवध, शिवसहस्रनाम, दक्षयक्वविनाश, मद्नमोहन, गिरिजाका पाणिग्रहण, विनायकाख्यान, शिवका नृत्याख्यान और उपमन्युकथा, आदिका वर्णन है।

हे मुने ! इसके उत्तरभागमें ये सव विषय वर्णित हैं—विण्णुमाहात्म्य, अम्बरीषकथा, स्नत्कुमार और नन्दीश-संवाद, शिवमाहात्म्यसंयुक्त स्नानयागादि, सूर्य-पूजाविधि, मुक्तिदायिनी शिवपूजा, वहु प्रकार दान, श्राद्ध-प्रकरण, प्रतिष्ठा, अधोरकी तंन, वज्र श्वरी महाविद्या और गायतीकी महिमा, त्यम्बकमाहात्म्य और पुराण-श्रवणमाहात्म्य ।)

फिर शैवपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है —
"लिङ्गस्य चरितोक्तत्वात् पुराणं लिङ्गमुच्यते।"
लिङ्गका चरित वर्णित रहनेके कारण लिङ्गपुराण नाम
पड़ा है। विभिन्न पुराणोंसे लिङ्गपुराणके जो लक्षण उद्गृत
हुए हैं, प्रचलित लिङ्गपुराणमें उनका अभाव नहीं है।

प्रचलित लिङ्गपुराणमें ही लिखा है,—

"ईशानकरपवृतान्तमधिकृत्य महात्मना । ब्रह्मणा करिपतं पूर्वं पुराणं लेङ्गमुत्तमम्॥" (२।१)

ईशानकल्पवृत्तान्तप्रसङ्घी पूर्वकालमें महात्मा ब्रह्माकर्त्व जो पुराण कल्पित हुआ था, उसका नाम लेङ्ग है।
किन्तु पहले ही कहा जा खुका है, कि मात्स्य और नारदीयके मतसे अन्विकल्पप्रसङ्घी लेङ्गपुराण और ईशानकल्पप्रसङ्घी अन्विपुराण वर्णित हुआ है। (मत्स्यपु० ५३ अ०)
इस हिसावसे ईशानकल्पाश्रयी लेङ्ग और अन्विकल्पाश्रयी
लेङ्ग एक है वा नहीं? अधिक सम्मव है, कि वौद्धप्रभावके
खर्व और ब्रह्मण्य प्रभावके अम्युद्यके साथ जव पुराणोंका
पुनः संस्कार होता था, उसी समय आग्वेयपुराणोक
ईशानकल्पकी कथाओंका लेङ्गपुराणमें समावेश हुआ और
अग्विकल्पकी प्रसङ्घकी, सम्मवतः आग्वेयपुराणके विषयीभूत
सम्भक्तर पौराणिकोंने लेङ्गके मध्य अग्विकल्पकी कथाका
स्पष्ट उहाँ ख नहीं किया। किन्तु लिङ्गपुराणकी प्रतिपाद्य
और सभी कथापं, यहां तक कि अग्विमय लिङ्गको कथा
भी विवृत हुई हैं। जो कुछ हो, इस लेङ्गके मध्य आदि

लिङ्गपुराणको अधिकांश कथाएं हैं। परन्तु परवतींकालमें कहर शैवोंके हाथमें पड़ जानेसे वीच वीचमें शिवकी और विष्णुकी निन्दाकी कथा भी निवेशित हुई हैं। आदिपुराण किसीविशेष सम्प्रदायकी वस्तु होने पर भी उसमें सम्प्रदाय वा देवताविशेषकी निन्दाकी कथा थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। सम्प्रदायकी है बाह्न बीसे पुराणके मध्य ऐसी विद्व पस्चक खोकावली बहुत पीछे प्रविष्ट हुई है। इस हिसावसे सामान्य प्रक्षित फ्लोकोंको जलग कर देनेसे इस लिङ्गपुराणको एक अति प्राचीन पुराण मान सकते हैं।

अहणाचलमाहात्स्य, गौरीकल्यान, पञ्चाक्षरमाहात्स्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्षमाहात्स्य सीर सरस्वतीस्तीत इत्यादि नामधेय छुछ छोटे छोटे प्रन्थ लिङ्गपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। प्रतिद्भन्न वाशिष्ठ-लैङ्ग-नामधेय एक उपपुराण भी मिलता है। हलायुधके ब्राह्मण-सर्वस्वमें वृह्हिङ्गपुराणसे वचन उद्धृत हुए हैं, पर सभी वह पुराण देखनेमें नहीं आता।

## ५२श वराइपुराख ।

१ मङ्गलाचरण, सूतकृत प्रस्तावना, पृथिवीका प्रश्न, पृथिबीकृत परमेश्वरस्तुति, २ स्तोक्ति, वराहकर्षं क पुराण-लक्षण कथनपूर्वक सृष्टिकथा, आदिसर्ग, पृथिवीका प्रश्न, वराहकत् क विस्तृत क्रपसे आदिसग वर्णन, वराह-कर्<sup>°</sup>क रुद्र, सनत्कुमार और मरीचि प्रशृतिकी उत्पत्तिकथा, प्रियव्रतकथा और प्रियव्रत-नारदस वाद, ३ नारदकर्वक ब्रह्मपारकथन, ४ वराहकर्त्वक दशा-वतारकथनपूर्वक नारायणका रूपवर्णन, अश्वशिराका उपाख्यान, ५ अभ्बशिरा और कपिलका संवाद, रैभ्यउपा-ख्यान, यज्ञतनुस्तोत, ६ पुण्डरीकाक्ष-पारस्तोत भौर धर्म च्याघ उपाख्यान, ७ रैभ्य तथा सनत्कुमारसंवाद, रैभ्य-कर्तुं क पितृदर्शन, रैभ्यकृत गदाधरस्तींत, ८ धर्मं व्याध-का उपाख्यान, धर्म व्याधकृत पुरुषोत्तमाख्यस्तोत, ६ सादिकृत युगवृत्तान्त, १० विराटरूप दंशन और सुप्रतीक डपाख्यान, ११ गीरमुख डपाख्यान, १२ दुर्जयकृत नारायण-का स्तोत, १३ गौरमुख-मार्कण्डेयस वाद, श्राद्धकाल, पितृगीता, १४ श्राद्धभोजनयोह्न व्यक्तियोंके नाम, श्राद्धमें

वजनीयगणके नाम, श्राद्धानुष्ठान-पद्धति, गौरमुख-का पूव जन्मवृत्तान्त, गौरमुखकृत नारायणका स्तोत, १६ दुजयकृत खग जय, १७ प्रजागणका चरित, १८ अग्निकी उत्पत्तिकथा, १६ तिथिमाहात्म्यकथा, २० अभ्विनीकुमार-की जन्मकथा, द्वितीयाकृत्य, २१ गौरी-प्रादुर्भावकथा, दक्षयज्ञकथा, रुद्रसगं, २२ दक्षयज्ञविनाश, रुद्रस्तोत, रुद्र-प्रसाद, पाव तीजन्मकथा, हरपाव तीका विवाह, तृतीया-इत्य, २३ गणेशजन्मकथा, गणेशके प्रति महादेवका शाप, गणेशका स्तोत, चतुर्थीकृत्य, २४ नागोत्पत्तिकथा, पञ्चमीकृत्य, २५ कात्ति केयकी उत्पत्तिकथा, देवगणकृत महादेवका स्तोत, २६ पष्टीमाहातम्य, आदित्योत्पत्तिकथा, सप्तमीकृत्य, २७ अन्धकासुरवधकथा, मातृगणोत्पत्ति-कथन, अष्टमीऋत्य, २८ कात्यायनीको उत्पत्तिकथा, वेबा-सुरवृत्तान्त, महेश्वरकृत कात्यायनीका स्तोत, नवमीकृत्य, २६ दिगुत्पत्तिकथा, दशमीकृत्य, ३० कुनेरोत्पत्तिकथा, एकादशीछत्य, ३१ नारायणस्त मनुरूपग्रहण, द्वादशीसत्य, ३२ धर्मोत्पत्तिकथा, तयोदशीहृत्य, ३३ रुद्रकी उत्पत्ति-कथा, देवगणद्वत रहस्तोत, रहपशुपतिकथा, चतुर्दशी-कार्य, ३४ पितृसम्भवकथा, अमावस्या-कार्य, ३५ चन्द्रके प्रति दक्षका शाप, पौर्ण मासीस्टल्य, ३६ मणिजनृपति-गणका वृत्तान्त, प्रजापालकृत गोविन्द्का स्तोत, विष्णु-का आराधनाप्रकार, ३७ आरुणिकवृत्तान्त, ३८ सत्यतपी-नाम घ्याधका वृत्तान्त, ३६ पृथिवीकृत व्रतीपाख्यान, ४० पौपशुक्क दशमीवतकथा, ४१ माघशुक्कद्वादशोवतकथा, ४२ फाल्गुनशुक्क एकादशीवतकथा, ४३ चैत्रशुक्कद्वादशी-वतकथा, ४४ वैशाखशुक्कद्वादशीकृत्य जामदग्न्यवतकथा, ४५ ज्येष्टमासीय रामद्वादशोवतकथा, ४६ आबाढ़मासीय रुष्णद्वादशीवतकथा, ४७ श्रावणमासीय वुद्धद्वादशीवत कथा, ४८ भाद्रमासीय कल्किद्वादशीव्रतकथा, ४६ आश्विनमासीय पद्मनाभद्वादशीव्रतकथा, ५० कात्तिक-द्वादशीवतकथा, ५१ अगस्त्यगीतारम्म, उत्तम भत्तु<sup>९</sup>लाम-शुभ्रव्रतकथा, वत्सप्रीनृपद्यत नारायणका वतकथा, स्तोत, ५६ धन्यव्रतकथा, ५७ कान्तिव्रतकथा, ५६ विघ्न-हरवतकथा, ६० शान्तिव्रतकथा, ६१ काम्व्रतकथा, ६२ आरोग्यवतकथा, ६३ पुत्रप्राप्तिवतकथा, ६४ शीयवतकथा, ६५ साव भौमवतकथा, ६६ नारद और विण्णुसंवाद, ६७ अहोरात चन्द्रसूर्यादिको रहस्यकथा, ६८ युगमेदसे धम मेदकथा, गम्यागम्यानिरूपणकथा, अगम्यागमनके लिये प्रायश्चित्तविधि, ६६ अगस्त्यशरीरवृत्तान्त, ७० अगस्त्यका अवदान, ७२ तिदेवामेदप्रसङ्गमें रुद्रोपदेश, गौतम, मारीच और शाण्डिल्य प्रभृतिका संवाद, काल-भेद्से ब्रह्मादि तीन देवताओंका प्राधान्यनिरूपण, ७३ रुद्रकर्नु क नारायणका माहात्म्यकीर्त्त न, रुद्रकर्नु क नारा-यणका स्तोत, ७४ भूमिप्रमाणादिकथन, जम्बूद्वीपप्रमा-णादिकथा, ७५-७६ अमरावनीवर्णं न, सुरोचनी-प्रमुख स्थानवर्ण न, ७७ मेरुमूलवर्ण न, ७८ चैत्ररथादि शेलचतु-ष्ट्यको वर्ण<sup>र</sup>ना, ७६ पर्व<sup>र</sup>तान्त पर देवताओंका अवकाश-वर्णं न, निपधाचलपश्चिमवर्त्ती पर्वतादिकी वर्णं ना, शाकद्वीपवर्ण ना, कुशद्दीपवर्ण ना, भारतवर्ष वर्ण ना, कौञ्चद्वीपवर्ण ना, शाल्मल प्रभृति द्वोपकी वर्ण ना, ब्रह्मादि तीन देवताओंका परापरत्वविवेक, अन्धकासुरकथा, ६१ वैष्णवींकी उत्पत्तिकथा, ब्रह्मकृत शक्तिका स्तोत्न, ६२ वैज्ञाचीचरित, ६३ वैज्ञाची प्रहणके छिये महिषासुरके निज मन्त्रियोंकी अभिमन्त्रणा, वैष्णवी ग्रहणके लिये महिषा-सुरका मेरुपर्वतकी ओर प्रस्थानवर्णन, वैष्णवी और महिपासुरके समक्ष दूतका संवाद, ६४ महिषासुरवध-वृत्तान्त, देवगणकृत वैण्णवीस्तोत, ६५ रौद्रीचरित, रुख दैत्यका उपाख्यान, ६६ रुख्दैत्यवध, खद्रकृत कालराहि-स्तोत, चामुएडाभेदकथन, ६७ रुद्रका कपालित्व, रुद्रस्त-कापालिकवतका अनुष्ठान, रुद्रका कपालमोचन, कपालवत का फलवर्णन, ६८ सत्यतपाकी सिद्धि, ६६ चैतासुरकथा, पञ्चपातकनाशका उपायकथ्न, विशेष प्रकारसे विष्णु-पूजाका वर्णन, वराहपुराण श्रवणका फल, तिलधेनुदान-का फल, १०० जलघेनुदानका फल, १०१ रसधेनुदान-का फल, १०२ गुड्धेनुदानका फल, १०३ शर्कराधेनुदान-फल, १०४ मधुधेनुदानफल, १०५ क्षीरधेनुदानफल, १०६ द्धिघेनुदानफल, १०७ नवनीतघेनुदानफल, १०८ लवण-धेनुदानफल, १०६ कार्पासघेनुदानका फल, ११० धान्य-धेतुदानका फल, १११ कपिलाधेतुदानका फल, ११२ उभय-मुखीधेनुदानका फल, वराहपुराणका प्रचारक्रम, पुराण-समष्टिकी नामसंख्या, ११३ पृथिवी और सनत्कुमारका संवाद, ११८ पृथिवीके प्रति नारायणका प्रसाद, ११५-

११८ नारायण और पृथिवीका संवाद, ११६ विष्णुका आराघनाप्रकारवर्णन, सुखदुःखमेदकथा, वाईस प्रकारके अपराधको कथा, भकत्वह्रपकथा, अपराधभञ्जन-प्राय-श्चित्त, प्रापण-निर्वाण-विधान, १२० त्रिसन्ध्यविष्णु-पासनाविधि, १२१ पुनर्जन्यवारणकर्म विधि, १२२ सना-तनधम स्वरूपकथन, गर्भोत्पत्तिवारणकम विधि, तियेग्-योनिपतनवारणकम विधि, कोङ्कामुखक्षेतप्रशंसा, १२३-१२४ गन्ध्रपुष्पविशेषमें दानमाहारुम्य, ऋतूपकरणदानका फल, १२५ मायास्त्रहपकथन, १२६ कुब्जाम्रकमाहातस्य, १२७ ंसारमोक्षकर्रकथन, १२८-१२६ क्षत्रियगणकी दीश्राविधि, वैश्यगणको दीक्षाविधि, शूद्रगणको दीक्षा-विधि, दीक्षितगणकी कत्त व्यविधि, दीक्षितगणकी किण्णु-पूजाविधि, १३०-१३६ अपराधश्रायश्चित्तविधि, दन्तकाष्ट-भक्षणके लिये प्रायश्चित्तविधि, मृतस्पर्शके कारण प्राय-श्चित्तविधि, विद्यात्यागके लिये प्रायश्चित्तविधि, दुष्कर्म करनेके कारण प्रायश्चित्त, जालपादाद्य भक्षणके कारण प्रायश्चित्तविधि, १३७ प्रायश्चित्तकर्मका स्तुत, १३८ सीकरक्षेत्रका माहातम्यवर्णन, गृध्र और शृगालीका इति-हास, वैवस्वततीर्थंका माहात्म्यवर्णन, खश्चरीद उपाख्यान, कम<sup>े</sup>फलकथन, गोमयलेपनादिफलकथन, चाएडाल-ब्रह्मराक्षस-संवाद, १४० कोकामुखका श्रे प्रत्य-वद्रिकाश्रमका माहातम्य, १४२ १४१ रजस्बलाकर्त्तं व्य गुहाकर्म का आख्यान,१४३ मथुराक्षेत-माहात्म्यवर्णं न, १४४ शास्त्रप्रामका माहात्म्यवर्णं न, १४५ शालङ्कायनक उपाख्यान, १४६ रुरुका उपा-ख्यान और रुरुक्षेतका माहातम्यवण<sup>६</sup>न, १४७ इपीकेश-माह्यात्म्यवण न, गोनिप्कमणमाहात्म्यवर्णन, १४८ स्तुत-स्वामीतीर्थंका माहात्म्यवर्णन, १४६ द्वारवतीमाहात्स्य-बर्ण न, १५० सानन्दूरमाहात्म्यवर्ण न, १५२ छोहार्गछ-माहात्म्यवण न, पञ्चसरःक्षेत्रमाहात्म्यवण न, १५३-१५४ मथुरामर्डलमाहात्म्यवर्ण<sup>°</sup>न, १५५ मथुरामर्डलमें अक र-तीर्थका माहात्म्यवर्णन, १५६ मधुरामएडलमें वत्सकीड्न-तीर्थका माहात्म्यवण न, १५७ मथुरामएडलमें मलयार्जुन-तीर्धमाहात्म्यवर्णं न, १५८ मधुरापरिक्रमण-फल, १५६ विश्रान्तितीर्यंका माहात्म्य्फल, १६० देववन-प्रभाववर्णन, १६२ चक्रतीर्थका माहात्म्यवण न, १६३ वैकुराठादितीर्थ- ं

माहात्स्य, कपिलचरित, १६४ गोवद्ध नमाहात्स्यवण न, १६५ मथुरामण्डलमें कूपमाहात्म्यवर्ण न, १६६ असि-कुएडमाहात्म्यवर्णं न, १६७ विश्वान्तिक्षेत्र, १६८ क्षेत्रपाल-गण, १६६ अर्ड चन्द्रक्षेत्र, १७० मथुरामएडळमें गोकर्ण-माहात्स्यवण<sup>९</sup>न, शुकेश्वरमाहात्स्यवण<sup>९</sup>न, महानसप्रेत-संवाद, १७१ सरस्रती-यमुनासङ्गमपर विष्णुपूजाकी फलकथा, क्रम्मगङ्गाका माहात्म्यवर्णं न, पाञ्चाल ब्राह्मणीं-का इतिहासवर्णं न, शाम्बका उपाख्यान, १७८ रामतीर्थंमें द्वादशीवतमाहात्म्पफल, १७६ प्रायश्चित्तनिक्रपणविधि, १८० सेतिहास ध्रुवतीर्थंका माहात्म्यवर्णं न, १८१ काछ-प्रतिमास्थापनविधि, १८२ शैलप्रतिमास्थापनविधि, १८३ मृण्मयप्रतिमास्थापनविधि, १८४ तात्रप्रतिमास्थापनविधि, १८५ कांस्यप्रतिमास्थापनविधि, १८७-१६० रजतप्रतिमा-स्थापनित्रधि, श्राद्धका उत्पत्तित्रण न, अशौचनिरूपणित्रधिः मेश्रातीथिपितृसंवाद, पिएडसङ्कल्पप्रकार, १६१ मधुपर्कीनरू-पनविधि, मधुपर्कदानप्रकारकथन, १६३-१६६ यमालयादि-खरूपकथन, नाचिकेतका यमालयसे प्रत्यागमनवृत्तान्त, १६७ यमनगरका प्रमाणादिकथन, १६८ यमकी सभावण ना, १६६ पापियोंकी गतिवर्णना, २०० नरकवर्णना, २०१ यमदूर्तोकी खरूपवण ना, २०२ चित्रगुप्तकी प्रभाववर्णना, २०३ चित्रगुप्तकर्तृक प्रायश्चित्तनिर्देश, २०४ चित्रगुप्त-कर्तु क दूतप्रे रणवृत्तान्त, यम और चित्रगुप्तका संवाद, २०५-२०६ चित्रगुप्तकर् क शुभाशुभ कर्म का फलनिर्देश, २०७ नारदसन्दिए-पुरुषविलोभनगुण, २०८ पतिव्रतो-पाल्यान, २०६ यमनारतसंवाद, २१० भास्करकर्षक-धम उपदेश, २११-२१२ प्रे बोधिनीमाहात्म्यकथन, २१३ गोकणे श्वरमाहात्म्यवण न, २१४ नन्दिकेश्वर-वरप्रदान, २१५ जलेभ्बरका माहातम्य, २१६ श्रङ्कोभ्बरका माहात्म्य-वर्ण न, २१७ फलश्रु तिवर्ण न, २१८ विषयानुक्रमणी ।

उत्परमें जिस चराहपुराणकी स्वी दी गई है, अभी वही प्रचलित और मुद्रित देखी जाती है। यह गौड़सम्मत चराह है। अलावा इसके दाक्षिणात्यमें एक और वराह पाया जाता है। एक विषयक होने पर भी गौड़ीय रामायण और दाक्षिणात्य रामायणमें जिस प्रकार वहुपाठान्तर और अध्यायान्तर देखा जाता है उक्त हो बराहमें भी उसी प्रकार वहुपाठान्तर देखे जाते हैं।

एकविषयकवण नामें अनेक जगह ऐसे भिन्नक्षपके श्लोक मिलते हैं, कि जिन्हें देखनेसे मालम होता है, कि वे भिन्न श्लोके प्रन्थ हैं और भिन्न हाथके लिखे हुए हैं। वार्लिन- के राजपुस्तकालयकी तालिकामें भी इस पुस्तकका नाम आया है। दोनों ही पुस्तकमें अध्यायसंख्या और पाठका मेल नहीं होने पर भी एक ही विषयकी आलो- चना है।

अब यह प्रश्न होता है, कि उपरोक्त विवरणमूलक वराहकों आदि-वराह-पुराणके मध्य गण्य कर सकते हैं वा नहीं ? पुराणका संस्कार होनेके वाद नारदपुराणमें वराहकों अनुक्रमणिका इस प्रकार दो गई है—

"शृणु वत्स प्रवश्यामि वराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद्धिः शुमाहातम्यसूचकम् ॥ मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत् इतं पुरा। निववन्ध पुराणेऽस्मि इचतुर्विंशसहस् के ॥ व्यासी हि विदुषां श्रेष्ठं साक्षात्रारायणी भुवि। ततादी शुभसं वादः स्मृतो भूमिवराहयोः॥ अधादिकतवृत्तान्ते रैभ्यस्य चरितं ततः। दुजेयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः॥ महातपस आख्यानं गीय्यु त्यत्तिस्ततः परम्। विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरिप ॥ गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य चृपस्य च । आख्यानं सत्यतपसो वताख्यानसमन्त्रितम्॥ अगस्त्यङ्गिरा तत् पश्चात्रुद्रगीता प्रकीर्त्तिता। महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यञ्च तिशक्तिजम्॥ पर्वाध्यायस्ततः श्वे तोपाख्यानं गोप्रदानिकम् । इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम् ॥ भगवद्धमें के पश्चात् वततीर्थकथानकम्। द्वार्तिशद्पराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम्॥ तीर्थानाञ्चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्। मधुरायां विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः॥ वण नं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः । विपाकः कर्मणाञ्चीव विष्णुवतनिरूपणम्॥ गोकण स्य च माहातम्यं कीर्त्तितं पापनाशनम्। इत्येप पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य निरूपितः॥ उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः। संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात् पृथक्॥ अशेषधर्माश्चाख्याताः पौकरं पुण्यपर्व च। इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तः पापविनाशनम्॥" ( हे वत्स ! सुनो, वराहपुराण कहता हूं । यह पुराण हो भागोंमें विभक्त है और सबदा विष्णुमाहात्म्यस्चक है। मानवकल्पका जो कुछ प्रसङ्ग पहले मुक्तसे वर्णित हुए हैं. साक्षात् नारायणस्वरूप विद्याप्रवर व्यासने उन्हें इस चौवीस हजार श्लोकपूर्ण पुराणमें प्रथित किये हैं। इसके आरम्भमें ही भूमि और वराहका शुभस वाद. आदि वृत्तान्तमें रैभ्यचरित, श्राद्धकर्प, महातपाका आख्यान. गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सेनानी (कार्त्तिकेय) आदित्य, गणसमुदाय, देवी. घनद और वृवका आख्यान, सत्यतपाका व्रत, अगस्त्यगीता, रुद्रगीता, महिपासुर-ध्व समाहात्म्य, पर्वाध्याय. श्वेतोपाख्यान इत्यादि वृत्तान्त और पीछे भगवद्धम में वततीर्थंकथा. द्वातिशत् अपराधका शारीरिक प्रायश्चित्तसमुदाय, तीर्थका पृथक् पृथक् माहात्म्य, मथुरामें चिशेषरूपसे श्राद्धादिकी विधि, ऋषि-पुत्रप्रसङ्गमें यमलोकवण न, कम विपाक, विष्णुव्रतनिरू-पण और गोकण माहात्म्य, ये सव वृत्तान्त इसके पूव-भागमें निरूपित हुए हैं।

उत्तरभागमें पुलस्त्य और कुरुराजके संवादमें विस्तृतरूपसे सर्व तीर्थका पृथक् पृथक् माहात्म्य, अशेष धर्माख्यान और पौक्तर नामक पुण्यपव<sup>े</sup> वर्णित हैं।)

मत्स्यपुराणके मतसे—

"महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च । विष्णुनाभिहितं क्षौण्ये तद्वाराहमिहोच्यते ॥ मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः । चतुर्विं शत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥".

जिस प्रनथके मानवकल्प-प्रसङ्गमें विष्णुकतृ क पृथिवी-के सामने महावराहका माहात्म्य विवृत हुआ है, वही २४००० श्लोकयुक्त पुराण 'वाराह' नामसे प्रसिद्ध है।

नारदीयके लक्षणोंके साथ प्रचलित वाराहका बहुत कुछ सादृश्य रहने पर भी मानवकल्पप्रसङ्गमें महावराह-माहात्म्य वर्णित नहीं हैं, अथवा अभी जिस प्रकार वाराहमें बहुस ख्यक व्रतादिका उल्लेख हैं, प्राचीन वराह-में अथवा नारदीयपुराणके सङ्कलनकालमें जो वराह प्रचलित था, उसमें वे सव विषय थे वा नहीं, सन्दे ह है। आज कलका वराह भविष्योत्तरके जैसा नाना पुराणों-से सङ्कलित हैं, यह वराहपुराण पढ़नेसे ही मालूम होता है, यथा—मथुरामाहात्म्यमें— "शाम्बप्रख्याततीर्थे तु तत्ने वान्तरधोयत् । शाम्बस्तु सह सूर्येण रथस्थेन दिवानिशम् ॥" (५०) रवि पत्रच्छ धर्मातमा पुराणं सूर्यभापितम् । भविष्यपुराणमिति ख्यातं इत्वा पुनर्नवम् ॥" ( वराह० १७९ अ० )

इस पुराणमें बुद्ध हादशीका प्रसङ्ग है। इससे भी वीध होता है, कि बुद्ध देव हिन्दुसमाजमें अवतार के बाद वराह ने वर्त्त मान-रूप धारण किया है। यह वराह पुराण एशिया-टिक सोसाइ टीसे मुद्रित हुआ है। इसकी श्लोकसंख्या प्रायः १०५०० है। किन्तु नारद पुराणकी वराहा मुक्तमणि-का पढ़नेसे यह मुद्रित वराह भी असम्पूर्ण के जैसा प्रतीत होता है। इसके अनुसार केवल पूर्व भाग मुद्रित हुआ है। उत्तरभागके पुलस्त्य-कुरुराज-संवाद में सभी तीथोंका विस्तृतभावसे पृथक् पृथक् माहात्म्य, नानाविध धर्मा-ख्यान और पौष्करपर्व इत्यादि मुद्रित पुराणमें नहीं हैं।

सुप्रसिद्ध हेमादिने १३वीं शतान्द्रीमें चतुवर्गचिन्ता-मणिके मध्य वराहोक्त बुद्धहादशीका उल्लेख और १२वीं शतान्द्रीमें गौड़ाधिप व्हालसेनने दानसागरमें इस चराहसे खोक उद्धृत किये हैं। इस हिसाबसे भी इस चराहको १०वीं वा ११वीं शतान्द्रीका प्रन्थ खीकार करने-में कोई उत्पत्ति नहीं रहती।

न्नातुर्मास्यमाहातस्य, त्रास्यकमाहातस्य, भगवद्गीता-माहातस्य, मृत्तिकाशौन्यविधान, विमानमाहातस्य, वेङ्कट-गिरिमाहात्स्य, व्यतिपातमाहात्स्य और श्रीमुण्णमाहात्स्य ये सव छोटे छोटे प्रनथ वराहपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं।

## ५३श स्कन्द-पुराण।

अभी स्कन्दपुराण नामका कोई एक स्वतन्त प्रन्थ नहीं मिलता। नाना संहिता, नाना खएड और वहुसंख्यक माहात्म्य जो प्रचलित हैं वे इसी स्कन्दपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। यही सब संहिता, खएड और माहात्म्य ले कर यह प्रचलित स्कन्दपुराण शेप हुआ है। किन्तु उन सब खएडादिमेंसे कीन खएड पहले और कीन खएड पोछे होगा तथा कीन माहात्म्य किस खएड वा संहिताके अन्तर्गत है, यह सहजमें स्थिर नहीं किया जा सकता। स्रुतरां स्कन्दपुराणकी विषयानुकर्मणिका देनेके पहले उन सब खरडादिका पारस्पर्य-निणय करना आवश्यक है। स्कन्दपुराणीय श्रङ्करसंहिताके हालास्यमाहात्म्यमें लिखा है—

> "स्कान्दमधापि वक्ष्यामि पुराणं श्रुतिसारजम ॥६२ पड् विधं संहिताभेदैः पञ्चाशत्खण्डमण्डितम्। आद्या सनत् कुमारोका द्वितीया स्तसंहिता॥ ६३ रुतीया शाङ्करी प्रोक्ता चतुर्था वैष्णवी तथा। पञ्चमी संहिता बाह्यो षष्टी सा सीरसंहिता॥"

चेदके सारसे सङ्गिलित स्वन्दपुराण ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी आदि संहिताका नाम सनत्कुमार, द्वितीयका स्तसंहिता, तृतीयका शङ्कर-संहिता, चतुर्थका चैळावसंहिता, पञ्चमका ब्रह्मसंहिता और पप्रसंहिताका नाम सौरसंहिता है।

स्तसं हितामें भी उक्त छः सं हिताओंका , उल्लेख है तथा प्रत्येक सं हिताकी प्रन्थसं ख्या भी इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है,—

अन्थतश्चैव पर्सिशत् सहस्रे णोपलक्षिता। आद्या तु संहिता विष्रा! द्वितीया षट सहस्रिका॥ वृतीया अन्थतस्त्रिशत्सहस्रे णोपलक्षिता। वृतीया संहिता पञ्चसहस्रे णामिनिर्मिता॥ ततोऽन्या विसहस्रे ण अन्थेनैव विनिर्मिता। अन्या सहस्रतः सृष्टा अन्थतः पिएडतोत्तमाः॥"

(११२२१४)
सनत्कुमार-संहिताको प्रन्थसंख्या ३६०००
स्त्तसंहिता " ६०००
शङ्करसंहिता " ३००००
वैण्णवसंहिता " ५०००
ग्राह्मसंहिता " ३०००
ग्राह्मसंहिता " ३०००

स्कन्दपुराणीय प्रचलित प्रभासखण्डके मतसे— "पुरा कैलासशिखरे ब्रह्मादीनाञ्च सिन्नधी। स्कान्दं पुराणं कथितं पार्वत्ययं पिणाकिना। पार्वत्या पण्मुखस्यायं तेन नन्दीगणाय वै। नन्दिनातिकुमाराय तेन व्यासाय धीमते॥ व्यासेन तु समाख्यातं भवद्भ्योऽहं प्रकीति थै॥

(१ म०

उसके वादके अध्यायमें लिखा है--

"स्कान्दन्तु सप्तधा भिन्नं वेद्व्यासेन घोमता।

एकाशीतिसहस्नाणि शतं चैकं च संख्या॥

तस्यादिमो विभागन्तु स्कन्दमाहात्म्यसं युतः।

माहेश्वरसमाख्यातो द्वितीयो वैश्ववस्य च॥

तृतीयो ब्रह्मणः प्रोक्तः सृष्टिसं क्षेपसूचकः।

काशीमाहात्न्यसं युकश्वतुर्थः परिपञ्चते।

रेवायां पञ्चमो भाग उज्जयिन्याः प्रकीत्ति तः॥

पष्टः कल्पार्चं नं विश्वं तापोमाहात्म्यस्चकः।

सप्तमोऽथ विभागोऽयं स्मृतः प्रभासिको द्विजाः।

सर्वे द्वादश साहस्रं विभागाः साधिकाः स्मृताः॥"

(प्रभासख०)

पुराकालमें कैलासशिखर पर ब्रह्मादिके समक्ष पिणाकीने पार्वतीको स्कन्दपुराण कहा था। पोछे पार्वती-ने पड़ानन कार्त्ति केयको, कार्त्ति क्षेयने नन्दीको, नन्दीने अतिकुमारको, अतिकुमारने व्यासको और व्यासदेवने मुक्ते (स्तको) सुनाया।

यह स्कन्दपुराण वेदच्याससे सात भागोंमें विभक्त किया गया है। इसमें कुछ ८११०० खोक हैं। इसके आदि भागका नाम स्कन्दमाहात्म्यसंयुत 'माहेश्वर' खएड, द्वितीयका 'वै म्मव' खएड, तृतीयका संक्षेपमें सृष्टि-वण नास्चक 'ब्रह्म' खएड, चतुर्थका काशोमाहात्म्य युक्त 'काशो' खएड, पञ्चमका उज्जयिनीका कथायुक्त 'रेवा' खएड, षष्ट कल्पपूजा, विश्वकथा और तापोमाहात्म्य स्चक 'तापो' खएड और सप्तम भागका नाम प्रभासकथायुक्त 'प्रभास' खएड है। इन सव खएडोंमें वारह हजारसे अधिक विभाग निर्विष्ट हैं।

फिर नारद्युराणको स्कन्दोपक्रमणिकासे पश्चिय मिलता है, वह इस प्रकार है—

नारद्पुराणकी स्कन्दोपक्रमणिकासे पुनः इस प्रकार परिचय मिलता है,—

"श्रुणु वक्ष्ये मरीचे च पुराणं स्कन्द्रसं ज्ञितम्।
यिस्मन् प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः॥
पुराणे शतकोटौतु यच्छे वं विणितं मया।
लक्षितस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्त्तितः॥
स्कन्दाह्मयस्तत् लण्डाः सन्तेत्र परिकल्पिताः।
पकाशीतिसहस्रन्तु स्कान्यं सर्वाधस्रन्तम्॥
यः श्रुणोति परेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
(१म) यत्न माहेश्वरा धर्मा पण्मुखेन प्रकाशिताः॥

कल्पे तत्युरुषे वृत्ताः सव सिद्धिविधायकाः। तस्य माहेश्वरश्चाद्यः खण्डः पापप्रणाशनः॥ किञ्चिन्त्यूनार्कसाहस्रो वहुपुण्यो वृहत्कथः। सुचरित्रशतैयुं कः स्कन्दमाहातस्यसूचकः॥ यत केदारमाहात्म्ये पुराणोपकृमः पुरा। द्श्रयज्ञकथापश्चाच्छिवलिङ्गाचँने फलम् ॥ समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः । पाव त्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्॥ कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गवः। ततः पाशुपताख्यानं चण्ड्याख्यानसमाचितम् ॥ दूतप्रवर्त्तनाख्यानं नारदेन समागमः। ततः कुमारमाहात्म्वे पञ्चतीर्थकथानकम्॥ धर्मेवर्म-नृपाख्यानं नदीसागरकीर्त्तितम् । इन्रयुम्नकथा पर्वानाड़ीजंघकथाविता॥ प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च । महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः॥ ततस्तारकयुद्धंच नानाख्यान-समाहितम्। वश्रस्य तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिप वणम् ॥ द्वीपाख्यानं ततः पुण्यं ऊध्वलोकव्यवस्थितिः। ब्रह्माण्डस्थितिमानंच वकेरेशकथानकम्॥ महाकालसमुद्भू तिः कथा चास्य महाद्भुता। वा सुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम्॥ नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्त्तितम् । पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्या प्रसाधनम्॥ तीर्थयातासमाप्तिश्च कीमारमिद्मन्द्रुतम् । अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ॥ गौरीतपःसमाख्यानं ततस्तीथेनिरूपणम् । महिपासुरजाख्यानं वध्रश्चास्य महाद्भुतः ॥ शोणाचले शिवास्थानं नित्यदा परिकीर्त्तितम्। इत्वेप कथितः स्कान्दे खण्डे माहेश्वरोऽङ्गुतः॥ (२य) द्वितीयो वैज्जवो खण्डस्तस्याख्यानानि मे ऋणु । प्रथमं भूमिवाराहं समाख्यानं प्रकीर्त्तितम्॥ यत रोचककुधूस्य माहात्स्यं पापनाशनम् । कमळायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः॥ कुछाछाख्यानकं यत सुवणमुखरीकथा। नानाख्यानसमायुक्ता भ्रद्धाजकथाङ्ग्रुता ॥ मतंगाञ्जनसं वादः कीर्त्तितः पापनाशनः। पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कछे ततः॥ मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीपस्य भूपतेः।

इन्द्रघु सस्य चास्यानं विद्यापतिकथा शुभा॥ जैमिनेः समुपास्यानं नारदस्यापि वाडवः।

नीलकण्ठसमाख्यानं नारसिंहोपवण नम्॥

अश्वसेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तया 📗

रथयाताविधिः पश्चाज्ञपस्नानविधिस्तथा॥ दक्षिणामूर्त्तं याख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः। रथरस्राविधानश्च शयनोत्सवकीत्त नम् ॥ श्वेतीपाच्यानमं बोक्तं वह्न्युत्सव-निरूपणम्। दोलोत्सवो भगवतो वतं साम्वत्सराभिष्रम्। पूजा च कामिमिर्विणोरुद्दालकनियोगकः। मोक्षसाधनमन्त्रोकः नानायोगनिरूपणम् ॥ दशावतारकथनं स्नानादि-परिकीर्त्तितम्। ततो वदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम्॥ अ न्यादितीथमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवत् । कारण भगवद्वासे तीर्थं कापालमोन्त्रनम्॥ पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापने तथा। ततः कार्तिकमाहातम्ये माहातम्यं मदनालसम्॥ धूब्रकोणसमाख्यानं दिनहत्यानि कार्तिके । पञ्चभीष्मवताख्यानं कीत्तिदं भक्तिमुक्तिद्व्॥ तद्वतस्य च माहातम्ये विधानं स्नानजं तथा। पुण्डादिकीत्तं नं चात्र मालाधारणपुण्यकम्॥ पञ्चामृतस्नान्युण्यं घण्टानादादिजं फलम्। नानापुष्पार्चनफलं तुलसीदलजं फलम्॥ नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीत्त नम्। अखण्डेकाद्शी पुण्या तथा जागरणस्य च ॥ मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकोत्तिनम्। ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम्॥ मथुरातीथेमाहातम्यं पृथगुक्तं ततः परम्। वनानां द्वादशानाञ्च माहात्म्यं कीर्त्तितं ततः॥ श्रीमद्भागवतस्याल माहात्म्यं कीर्त्तितं परम्। वज्रशाण्डित्यसं वादः अन्तर्सीराप्रकाशकः ॥ ततो साघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् । नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्याये निरूपितम्॥ ततो वैशाखमाहातम्ये शय्यादानादिजं फलम्। ज्ञळदानादिविषयः कामाख्यानमतः परम् ॥ श्रु तदेवस्य चरितं व्याघोषाख्यानमद्भुतम् । तथाक्षयतृतीयादेविशेषात् पुण्यकीतं नम्।। 'ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रव्रह्माहृते।र्थं के। त्रदणपापविमोक्षाख्ये तथा धारसहस्त्रकम् ॥ खर्गद्वार' चन्द्रहरिधर्महर्युप वर्णनम् । स्वंर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदा सरय्युतिः॥ सीताकुण्डं गुप्तहरिः सरयूघघराह्यः। गोप्रचारञ्च दुःघोदं गुरुकुण्डादि पंचकम्॥ घोषाकादीनि तीर्धानि त्रयोदश ततः पर्म्। गयाकूपस्य माहातम्यं सर्वाङ्गविनिवत्तं कप् ॥ माण्डच्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदन्तरम् । अजितादिमानसादि तीर्थानि गदितानि च ॥

इत्येप वैण्णवः खण्डो द्वितीयः परिकीर्त्तितः॥ (३य) अतःपरं इह्मखण्डं मरीचे शृणु पुण्यदम् । यत वै सेतुमाहातम्थे फलं स्नानेक्षणोद्भवम्॥ गालवस्य तपश्चया राक्षसाख्यानकं नतः। चकतीर्थादिमाहातम्यं देवीतपनसंयुत्म् ॥ वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकी संनम्। मङ्गलादिकमाहातम्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम्॥ हन्मत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थमवं फलम् । रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ॥ रांखादितीर्धमिहिमा तथा साध्यासृतादिकः। भ्र**सु**फोट्यादिमाहात्स्यं क्षीरकुएडादिजं तथा ॥ गायत्र।दिकतोथांनां माहात्स्यं चाल कीत्ति तम्॥ रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशतम् । यातात्रिधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाप्॥ धर्मारण्यस्य माहात्म्यं नतः परमुदीरितम्। स्थानुः स्कन्दाय भगवान् यत तत्त्वमुपादिशत्॥ भ्रमोरण्यमुसंभूतिस्तत्वुण्यपरिक्षीर्त्तं नम् । क्रमेंसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम्॥ अप्सरातीर्थं मुख्यानां माहातम्यं यत्र कीत्तिं तम्। वर्णनामाभ्रमानांच धर्मतत्त्वनिरूपणम् ॥ देवस्थानविभागश्च वक्तळाकेंकथा शुभा। छता नन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतंगिनी ॥ पुण्यदालाः समाल्याता यत्न देव्यः समास्थिताः। इन्द्रेश्यरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम् ॥ लोहासुरसमाख्यानं गंगाकूपनिरूपणम् । श्रीरामचरितं चैव सत्यमन्दिरवणेनम्॥ जीर्णोद्धारस्य कथनं शासनप्रतिपादनम् । जातिमेदप्रकथनं स्पृतिश्रमनिरूपणम्। ततस्तु वैष्णवा धमाः नानाख्यानैच्दीरिताः। चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सवधमनिरूपणम्। दानप्रशंसा तत्पश्चाद्गृतस्य महिमा ततः। तपसञ्चैव पूजाया सन्छिद्रकथनं ततः ॥ प्रकृतोनां भिदाख्यानां शालश्रामनिरूपणम्। तारकस्य वधोपायस्त्राक्षाचीमहिमा तथा ॥ विष्णोः शापश्च वृक्षत्यं पार्वेत्यानुनयस्ततः। हरस्य ताएडवं नृत्यं रामनामनिरूपणम्॥ हरस्य लिंगपूजनं कथायै जवनस्य च । पावतीजनमचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः॥ प्रणवैश्वयकथनं तारकाचरितं पुनः । द्धयद्यसमाप्तिश्च द्वादशाक्षरक्षपणम् ॥ ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशार्भनः। श्रवणादिकपुण्यश्च कीत्ति वं शर्मदं नृणाम् ॥ ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः।

पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकण महिमा ततः॥ शिवरात श्च महिमा प्रदोपवतकी त नम्। सोमवारवतं चापि सीमन्तिन्याः कथानकम्॥ भद्रायुत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम्। शिवधमेसमुद्देशो भद्रायुद्धाहवणेनम् ॥ भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्त्तं नम्। शवराष्यानकञ्चे च उमामाहेश्यरव्रतम्॥ रदाक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम्। श्रवणादिकपुण्यं च ब्रह्मखर्डोऽयमोरितः॥ ः (४र्थ) अतः परं चतुर्थां च काशोखएडमनुत्तमम् । विन्ध्यनारद्योर्थेल संवादः परिकोर्त्तितः॥ सत्यलोकप्रभावश्वागस्त्यावासे सुरागमः । प्रतिव्रताचरितं च तीर्थचर्याप्रशंसनम्॥ ततश्व सञ्जुर्घाख्या संयमिन्यानिरूप्णम्। ब्रह्मस्य च तथेन्द्रोग्न्योलोंकाप्तिः शिवशर्म णः॥ अग्नेः समुद्भवश्चेव क्रव्याद्धरुणसम्भवः। गन्धवत्यलकाषुयोरीश्वर्याश्च समुद्भवः॥ चन्द्रोडुवुधलोकानां कुजेज्याकमुवां क्रमात्। सप्तर्पीणां ध्रुवस्थापि तपोलोकस्य वर्णनं ॥ भ्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम्। स्कन्दागस्त्यसमालापो मणिकणींसमुद्भवः॥ प्रभावश्वापि गङ्गाया गंगानामसहस्रकम्। वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविभवस्ततः॥ द्र्पाणिज्ञानवाष्योरुद्भवः समनन्तरम्। ततः कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम्॥ ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रोलक्षणानि च । कृत्याकृत्यविनिर्देशो हाविमुक्ते शवणंनम्। गृहस्थयोगिनो धर्माः कालज्ञानं ततः परम्। दिवोदासकथा पुण्या काशीवण नमेव च॥ योगिचर्या च लोलाकॉस्तरशास्वाकंजा कथा। द्रुपदार्भस्य तार्क्याख्याखणार्भस्योदयास्ततः॥ दशाश्वमेधतीर्थाख्यो मन्दराच गमागमः। पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रे पणन्ततः॥ मायागणपतेर्वाय भुत्रि प्रादुर्भवस्ततः। विष्णुमाया प्रयञ्चोऽय विवोदासविमोक्षणम् ॥ ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्जिन्दुमाधवसम्भवः। ततो वैक्षवतीर्घाख्या शूलिनः कोशिकागमः॥ जैगोपच्पेन संवादो ज्येष्टेशाख्या महेशे तु। क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः॥ . शैलेशरक श्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः। देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः॥ दुर्गाया विजयश्वाथ औकारेशस्य वर्णनम्। पुनरोङ्कारमाहात्म्य तिलोचनसमुद्भवः॥

केदाराख्या च धर्मे शकथा विश्वभुजोद्भवा । वीरेश्वरसमाख्यानं गंगामाहात्म्यकीत्त नम् ॥ विश्वकर्मे शमहिमा दश्चयक्षोद्भवस्तथा । सतोशस्यामृतेशादेभुं जस्तम्भः पराशरे ॥ श्रेवतीर्थकदम्यश्च मुक्तिमण्डपसंकथा । विश्वेशविभवश्चाथ ततो यावापरिकमः ॥

(५म) अतः परं त्ववन्त्याख्यं श्रुणु खण्डञ्च पञ्चकम् । महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीप च्छिदा ततः॥ प्रायश्चित्तविधिश्वाःनेरंत्पत्तिश्च खुरागमः। देवदीक्षा शिवस्तीतं नानापातकनाशनम्॥ कपालमोचनाच्यानं महाकालवनंस्थितिः। र्तार्थं कलकलेशास्य संबंपापप्रणाशनम्॥ कुएडनप्सरसं इञ्च सर्गे रुद्रस्य पुण्यदम्। कुटुम्बेणञ्च विरूप-कर्कटेश्वरतीर्थकम् ॥ दुर्ग हार् चतुःसिन्युतीर्थं शङ्करवापिका। सकरार्भगन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम्॥ दशाभ्वरेधिकानंशतीर्थञ्च हरिसिद्धिद्म्। पिशाचकादियाला च हतुमत्कयनेश्वरौ॥ महाकालेशयाला च वल्मीकेश्वरतीर्थकम्। शुक्ते शभेशोपाच्यानं कुशस्थल्याः प्रदक्षिणम् ॥ अक रमन्दाकिन्यङ्कपाद्चन्द्राक्षेत्रेभवुम् । करभेशकुवकुटेश-छड्डुकेशादितीर्थकम्॥ मार्कएडे शं यज्ञवापी सोमेशं नर्कान्तकम्। केदारेश्वररामेश-सौभाग्येशनराकेकम् ॥ केशार्कं शक्तिभेदंच खर्णाक्षरमुखानि च । ओंकारेशादितीर्थानि अन्धकस्तुतिकोत्तं नम्॥ कालारण्ये लिङ्गसंख्या खर्णश्रङ्गाभिधानकम्। पद्मावतीकुमुद्धत्यमरावतीति नामकम्॥ विशालाप्रतिकल्पाभिधाने च ज्वरशान्तिकम्। शिप्रास्तानादिकफरुं नागोन्धीता (१) शिव्रस्तुतिः॥ हिरण्यासवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुएडकम्। नीलगङ्गापु कराख्यं विनध्यावासनतीर्थंकम् ॥ पुरुषोत्तमाधिनासं तत्तीर्थञ्चाधनाशनम्। गोमतीवामने कुण्डे विष्णोनीमसहस्रकम्॥ वीरेश्वरसरः कालमैरवस्य च तीर्थंके। महिमा नागपञ्चम्यां नृसिहस्य जयन्तिका ॥ कुटुम्बे श्वरयाता च देवसाधककीर्त्तं नम्। ककराजाख्यतीर्थञ्च विद्वेशादिसुरोहणध्॥ रुद्रकुएडप्रभृतियु वहुतीर्थनिस्पणम् । याबाधतीर्थंजा पुष्या रेवामाहातम्यसुच्यते॥ धर्मपुतस्य वैरा ये मार्कग्ड येन सङ्गमः। प्राग्ल्यानुसवाख्यानं अमृतापरिकोत्तं नन् ॥ कल्पे कल्पे पृथक्नाम नर्मदायाः प्रकीत्तितम्।

स्तवमार्षं नामदञ्ज कालरातिकथा ततः॥ महादेवस्तुतिः पश्चात् पृथकत्मकथाद्ध ता । विशल्याख्यानकं पश्चाजालेश्वरकथा तथा ॥ गौरीव्रतसमाख्यानं तिपुरज्वालनं ततः। देहपातविघानञ्च कावेरीसङ्गमस्ततः॥ दारुतीर्थं ब्रह्मावर्तं यत्ने श्वरकथानकम्। अग्नितोर्थं रवितीर्थं मेघनादं श्रीदारुकन्॥ देवतोर्थं नमदेशं कषिलाक्षं करअकर्। कुएडलेगं पि यलाएं विमलेशञ्च शूलभित्॥ शचीहरणमाख्यातमन्धकस्य वधस्ततः। शूलोमेदोद्भवो यत दारधर्माः पृथिवधाः॥ साल्यानं दोर्घतपस ऋष्यशृङ्गस्था ततः। चित्रसेनकथापुण्या काशिराजस्य मोक्षणम्॥ ततो देवशिलाख्यानं शवरोचरिताचितम्। ब्याधास्यानं ततः पुण्यं पुण्करिण्यर्कतीर्थकम्॥ आदित्येश्वरतीर्थञ्च शकतीर्थं करोटिकम्। कुमारेशमगस्त्येशं च्यवनेशञ्च मातृजम्॥ लोकेशं धनदेशश्च मंगलेशंच कामजम् । नागेशंचापि गोपारं गौतमं गङ्खसूड्जम्॥ नारदेशं नन्दिकेशं वहणेश्वरतीर्थकम्। द्धिस्कऱ्दादितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्ततः॥ रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं विङ्गलेश्वरम्। ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम् ॥ चएडार्भयमतीर्थञ्च कह्नोड़ीशंच नान्दिकम्। नारायणञ्च कोटिशं च्यासतीर्थं प्रमासिकम्॥ नागेशं शङ्कर्षणकं मन्मयेश्वरतीर्थकम्। एरएडीसङ्गमं पुण्यं सुवर्णाशिलतीयकम्॥ करंजं कामहं तीर्थं भाग्डीरं रोहिणीभवम्। चक्रतीर्थं घौतपापं स्कान्दमाङ्गीरसाह्यम्॥ कोटितीर्थमयोन्याख्यमं गाराख्यं तिलोचनम्। इन्द्रेशं कभ्युकेशंच सोमेशं कोहलेशकम्॥ नाम दं चाकमाग्ने यं भागवश्वरसत्तमम्। ब्राह्म देवञ्च भागेशमादिवारोहण रवे(१)॥ रामेशमथ सिद्धे शमाहत्यं कड्क्टेश्वरम्। शाक सौमंच नान्देशं तापेशं विवमणीभवम्॥ योजनेशं वराहेशं झदशीशिवतोर्थंके । सिद्धेशं मङ्गलेशंच लिगवाराहतीथकम्॥ कुएडे शं श्वेतवाराहं भागवेशं रवीश्वरम्। शुक्कादोनि च तीर्थानि हुंकारस्वामितीर्थकम्॥ सङ्गमेशं नारकेशं मोक्षं साप्त्रं गोपकम्। नागं शाम्यच सिद्धे शं मार्कण्डाक रतीर्धके॥ कामोदशूलारोपाख्ये माएडव्यं गोपकेश्वरम्। कपिलेशं पिङ्गलेशं भूतेशं गांगगीतमे ॥

अश्वमेशं भृगुकच्छं केदारेशंच पापनुत् । कनखळेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम्॥ चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यश्च हंसकम्।ः मूलस्थानश्च शूलेशमाग्ने यं चित्रदैवकम् ॥ शिखोशं कोटितीथं च दशकन्यं सुवणं कम्। ऋणमोक्षं भारभूतिरतास्ते पुंचमुण्डितम्॥ आमलेशं कपालेशं श्रङ्को रएडीभवं ततः। कोटीतीर्थं लोटनेशं फलस्तुतिरतः परम्॥ कृपिजङ्गलमाहातम्ये रोहिताश्वकथा ततः । भ्रुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोऽस्य च ॥ वधो धुन्ध्रोस्ततः पत्रचात् ततिश्चतवहोन्तवः। महिमास्य ततश्चएडीशप्रभावी रतीश्वरः॥ केदारेशं लक्षतोर्थं ततो विण्णुपदीभवम्। मुखारं च्यवनान्त्राख्यं ब्रह्मणुश्च सरस्ततः ॥ चकाल्यं छिलताल्यानं तीय अ वहुगोमखम्। रुद्रावस् अ मार्करडं तीर्थं पापप्रणाशनम्॥ रावणेशं शुद्धपटं लवान्धुप्रे ततीर्थं कम्। जिह्नोदतीय सम्भूतिः शिबोद्धे दं फलश्रुतिः॥ एय खर्खो ह्यवन्त्याख्यः श्रुण्वतां पापनाशनः।

(६ष्ठ) अतःपरं नागराख्यः खएडः पष्टोऽसिघीयते ॥ लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यानः हरिश्वन्द्रकथा शुमा। विश्वामितस्य माहात्म्यं तिशंकुस्वर्गतिस्तथा॥ हाटकेश्वरमाहातम्ये बतासुरवधस्तथा। नागविलं शङ्खतीर्थं मचलेश्वरवर्णं नम् ॥ चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम्। गयशीपं वालशाख्यं वालमण्डं मृगाह्यम्। विज्णुपादं च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः। सिद्धे श्वरं नागसरः सप्तर्वेयं हागस्त्यकम्॥ भू णगत्तं नलेशंच भोषा द्वैरमकंकम्। शामि प्र' शोभनाथ च दौग मानत केश्वरम् ॥ जमद्ग्निवघाख्यानं नैःक्ष्तियकथानकम्। रामहदं नागपरं जड़िलङ्गंच यज्ञमूः॥ मुण्डीरादितिकाक असतीपरिणयस्तथा। वालिखिट्यं च योगेशं वालिखिट्यं च गारुड्म्॥ लदमीशापः साप्तविंशः सोमप्रसादमेव च । अभ्वावृद्धं पादुकाख्यं आग्ने यं ब्रह्मकुएडकम् ॥ गोमुख्यं लोहयए याख्यमजापालेश्वरी तथा। शानीश्चरं राजवापी रामेशो लहमणेश्वरः॥ कुरीशाख्यं ठवेशाख्यं छिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम् । अध्विष्टिसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिज्ञातकम्॥ ततोऽम्यारेवती चाल भहिकातीर्थं सम्मवम् । क्षेम करी च केदारं शुक्कतीर्थं मुखारकम्॥ संत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पला कथा।

अंद्रेश्वरं याज्ञवत्क्यं गीयँ गणेशमेव च ॥ ततो वास्तुपदाख्यानं अजागहकथानकम्। मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणपत्यत्वयं ततः॥ जावालिचरितं चैव वारकेशकथा ततः । कालेश्ययं न्धकाख्यानं कुएडमाप्सरसं तथा ॥ पुर्वादित्यं रोहिताश्वं नगरोत्पत्तिकीतं नम्। भार्गवं चरितं चैव वैश्वामितं ततः परम् ॥ सारखतं पैथलाइं कं सारीशञ्च पैशिडकप्। ब्रह्मणी यज्ञचरितं सावित्रग्रस्थानसं युतन् ॥ रैवतं भतु यज्ञाख्यं मुख्यतीर्थेनिरोक्षणम्। कौरवं हारकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्यन् ॥ पौकरं नैमिपं धार्ममरण्यतितयस्पृतम्। वाराणसोद्धारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीतयम्॥ वृन्दावनं खाएडवाख्यमद्वौकाख्यं वनदयम् । कल्पः शालस्तथा नन्दो श्रामतयमनुत्तमम्॥ असिशुक्का पितृसं इं तीर्थंत्रयमुदाहतम्। अर्द्भूदो रैवतश्वैव पर्वतत्वयमुत्तमम् ॥ नदीनां तितयं गङ्गा नमेदा च सरखती। साद्धं कोटिलयफलमेंकैकं चैयु कोर्त्तितम्॥ कृषिका शङ्खतोर्थञ्चामरकं वालमएडनम्। हाटकेशक्षेत्रफलप्रद्' प्रोक्त' चतुष्ट्यम्॥ शाम्त्रादित्यः श्राद्धकत्यः वौधिष्ठरमथान्यकम् । जलशायि-चतुर्मास्यमशून्यशयनवतम् ॥ मङ्कुणेशः शिवरातिस्तुलापुरुपदानकम् । पृथ्वीदानं वाणकेशं कपालमोचनेश्वरम्॥ पापिएड साप्तर्हेंगं युगमानादिकी चूंनम्। निम्बेश-शाक्तम्मर्थाख्या रुद्दैकादशकीत् नम् ॥ दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीत्तं नम् । इत्येष नागरः खण्डः प्रभासाख्योऽधुनोच्यते ॥ (७म) सोमेशी यत विश्वेशोऽर्कस्थलः पुण्यदो महत्। सिद्धे ध्वरादिकाख्यानं पृथगत प्रकीर्त्तितम्॥ अग्नितीर्थं कपदींगं केदारेगं गतिप्रदम्। भीमभैरवचएडीग्रा-भास्कराङ्गारकेश्वराः॥ बुधेज्यभृगुसौरन्दु-शिखीशा हरविप्रहाः। सिद्धे श्वराद्याः पञ्चान्ये रुद्रास्ततः व्यवस्थिताः॥ वरारोहा हाजापाला मङ्गला ललिते हरी। **लक्ष्मीशो बाङ्बेग्रश्चावींशः कामेश्वरस्तथा**॥ गीरीशवरुणेशाख्यमुयोशञ्च गणेश्वरम् । कुपारेशञ्च शाकल्यं नकुलोतङ्कगौतमम्॥ दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्याह्यं तथा। भूतेशादीनि लिङ्गानि आदिनारायणाह्वयम्॥ ततश्चकश्चराख्यानं शाम्वादित्यकथानकम् । - कथा कएटकशोधिन्या महिपंत्र्यास्ततः परम् ॥

कपालीभ्वरकोटीश-वालब्रह्माह्सत्कथा । नरकेशसम्बर्चे श-निधीश्वरकथा ततः॥ वलमद्रेश्वरस्थार्थे (?) गङ्गाया गणपस्य च । जाम्बबत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ॥ शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः । दुर्वासाकंयदुस्थानहिरण्यसंगमोत्कथा॥ नगराकस्य कृष्णस्य सङ्क्ष्यं णसमुद्रयोः। कुमार्या क्षेत्रपालस्य ब्रह्मे शस्यं कथा पृथक् ॥ पिङ्गला सङ्गमेशस्य शङ्कराकॅघटेशयोः । ऋषितीर्थसा नन्दाकैतितकूपस्य कीत्ते नम् ॥ शशोपानस्य पर्णार्कन्यं कुमत्योः कथाद्युता । वराहस्वामिवृत्तान्तं छायाळिङ्गाख्यगुरूपयोः॥ कथा कनकनन्दायाः कुन्तीगङ्ग शयोस्तथा । चमसोद्भे द्विदुरितलोकेशकथा ततः॥ मंक्षेशले पुरेशपएडतीर्थकथा तथा। सूर्यप्राचीत्रीक्षद्वयोष्टमानाथकथा तथा॥ भूद्धारश्रूलस्थलयोष्ट्यवनार्केशयोस्तथा । अजापालेशवालाकँकुवेरस्थलंजा कथा॥ ऋषितीया कथा पुण्या संगालेश्वरकीत्तं नम्। नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम्॥ तप्तकुण्डस्य माहीतम्यं मूळचण्डीशवंणेनम्। चतुर्वेक्तगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोः कथा॥ गोपालखामिवकुलखामीनोमेंरुती कथा । क्षेमार्काञ्चतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः॥ कालमेघस्य रुक्तिमण्या उवेशीश्वरभद्रयोः। शङ्कावर्त्तं मोक्षतीर्थगोप्पदाच्युतंसघनाम् ॥ मालेश्वरस्य ह्रंकारकृपचएडीशयोः कथा। आशापुरस्तविघ्नेशकलाकुएडकथाद्भुता ॥ कपिलेशसा च कथा जरद्रवशिवसा च । नलककोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा॥ नारदेशमन्त्रभूतीदुर्गाकूटगणेशजाः । सुपर्गेलाख्य भैरव्योभेहतीर्थभवा कथा ॥ कीत्तनं कर्दमालसा गुप्तसोमेश्वरसां च। वहुस्वर्णेश-श्टङ्गेश-कोटीश्वरकथा ततः॥ मार्कण्डेश्वर-कोटीश-दामोद्रगृहोत्कथा । खणरेखा ब्रह्मकुएड कुन्तीमीमेश्वरी तथा॥ मृगीकुरडञ्च सर्वेख क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम्। दुर्गः विद्वेश-गङ्गे श-रैवतानां कथाद्भुता ॥ ततोऽब्दे शुभ्रकथा अचेलेश्वरकोर्त्तिनम्। नागतीर्थंसा च कथा वंशिष्ठाश्रमवर्णनम्॥ भद्रकणस्य माहात्म्य तिनैतस्य ततः प्रम्। केदारसा च माहातम्यं तीर्थागमनकीर्त्तनम् ॥ :: कोटीस्वररूपतीर्थेहषीकेशकथा ततः । 🔭 🚓

सिद्धे शशुक्रे श्वरयोमणिकणीशकीत्त नम् ॥ पंगुतीययमतीथवाराहीतीथ-वणनप्र। ,चन्द्रप्रभासिपएडोदश्रीमाता शुक्कृतीय जम् ॥ कात्यायन्याश्च माहात्स्यं ततः पिएडारकसा च । ततः कनखलस्याथ चक्रमानुपतीर्थयोः॥ कपिलाग्नितीर्थंकथा तथा रक्तानुवंधजा। गणेश-पाटेश्वरयोर्याताया मुद्गलस्य च ॥ चएडीस्थानं नागभवशिरः कुएडमहेशजा । कामेश्वरसार मार्कएडे योत्पत्तेश्च कथा ततः ॥ उदालकेश-सिद्धे श-गतर तीर्थकथा पृथक् । श्रीदेवमतोत्पत्तिश्च व्यासगीतमतीर्थयोः ॥ कुलसन्तारमाहातम्यं रामकोट्याह्वतीर्थयोः। चन्द्रोद्गे देशानलिङ्गत्रह्मस्थानोद्भवोहनम् ॥ तिपुष्करं रुद्रहदं गुहेश्वरकथा शुभा । अविमुक्तसाः माहात्म्यमुमामाहेश्वरसाः च ॥ महौजसः प्रभावस्य जम्बूतीर्थस्य वर्णनम्। गङ्गाधरमित्रकयोः कथा चाथ फुलस्तुतिः॥ द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम्। जागराद्याख्यवतञ्च वतमेकादशीभवम्। महाद्वादशिकाख्यानं प्रहादिषसमागमः। दुर्वोसस उपाख्यानं यात्रोपक्रमकीत्रं नम् ॥ गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्रां स्नानादिजं फलम्। चक्रतीथंसार माहात्म्यं गोमृत्युद्धिसंगमः॥ सनकादिहदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः । गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः॥ गोपीश्वरं समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्त्तं नम्। पञ्चनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमाचितम्॥ शिवलिङ्गमहातीर्थं कृष्णपूजादिकीत्रं नम् । तिविक्रमस्य मूत्तर्राख्या दुर्वासः कृष्णसत्कथा ॥ कुशदैत्यवघोऽर्चाख्या विशेपाचेनजं फुलम्। गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीत्तं नम्॥ कृष्णमन्द्रसंप्रेक्षं द्वारवत्याभिषेचनम्। तत तीर्थंवासकथा द्वारकापुण्यकीत्त नम् ॥ इत्येप सप्तम' प्रोक्त' खण्ड' प्राभासिको द्विजः । स्कान्दे सर्वोत्तरकथा शिवमाहात्म्यवर्णंने॥"

(हे मरोचे! सुनो, अब स्कन्द नामक पुराण कहता हूं। इसके प्रतिपदमें साक्षात् महादेव वर्त्त मान हें। मैंने शतकोटि पुराणोंमें जो शैव वर्ण न किया है, उन लक्षित अधीका सार ध्यासने कीर्त्त न किया है। यह स्कन्द नामक पुराण सात खल्डोंमें विमक है। इसमें इकासी हजार श्लोक हैं जो सभी पापनाशक हैं। जो ध्यकि इस-का श्रवण वा पाठ करते हैं, वे साक्षात् शिवकपमें अब- स्थान करते हैं। इसमें पण्मुख कतृ क तत्पुरुपकल्पमें सर्व सिद्धिविधायक माहेश्वर धर्म प्रकाशित हुए हैं।

( १म माहेरवरखंडमें)—वृहत्कथायुक्त माहेश्वरखण्ड ही इस पुराणका आदि और सर्व पापनाशक है। यह माहेश्वरखएड पुण्यजनक है और इसमें वारह हजारसे कुछ कम श्लोक हैं। यह खएड स्कन्दमाहातम्बस्वक है। इसके केदारमाहात्म्यमें पहले पुराणोपक्रम है, पीछे दक्ष-यज्ञकथा, शिवछिङ्गार्चनमें फ़ल, समुद्रमथनास्यान, देवेन्द्रचरित, पाव तीका उपाख्यान और विवाह, कुमारो-त्पत्ति, तारकयुद्ध, पशुपतिका आख्यान, चएडीका आख्यान, दूतप्रवर्त्तं नाख्यान, नारदका समागम, कुमार-माहात्म्यमें पञ्चतीर्थं कथा धर्मं वर्मं नृपाख्यान, मही-सागरकोत्त<sup>े</sup>न, इन्द्र**धुम्नकथा, नाड़ी**जङ्गकथा, महीप्रादु-भ व, दमनककथा, महीसागर-संयोग, कुमारेशकथा, तारकयुद्ध, तारकवध, पञ्चलिङ्गनिवेशन, द्वीपाख्यान, ब्रह्मार्ग्डस्थितिमान, वर्करेशकथा, वासुदेव-माहात्स्य, कोरितीर्थ, नानातीर्थसमाख्यान, पाएडवोंकी कथा, महाविद्याप्रसाधन, ् तोथ यातासमाप्ति, माहात्म्य, सनकब्रह्मसंवाद, गौरीतपोवृत्तान्त और उन सव तीर्थोंका निरूपण, महिषासुरजपाख्यान और वध तथा शोणाचलमें शिवावस्थान वर्णित हुए है।

(२य वैकावखं डमें)—इसके प्रथममें मूमिवराहसमाख्यान, रोचकञ्जभका माहात्म्य, कमलाकी कथा और श्रोनिवासिस्थिति, पीछे कुलाल-आख्यान, सुवण मुखरीकथा, नानाख्यानयुक्त भरद्वाजकथा, मतङ्गञ्जनसंवाद, पुरुषोत्तममाहात्म्य, मार्क एड य और अम्बरीष प्रभृतिका समाख्यान, इन्द्रद्यु झाख्यान, विद्यापतिकथा, जैमिनीका उपाख्यान, नारहोपाख्यान, नारिसह-उपवर्ण न, अश्वमेधकथा, ब्रह्मलोकगित, रथयाताविधि, जन्मस्थानविधि, दिश्चणामृत्तिका उपाख्यान, गुएडचा-आख्यान, रथरहा-विधान, वह युत्सविनरूपण, भगवानका दोलोत्सव, सम्बत्सर नामक वत, कामि नयोंकी विष्णुपूजा, उद्दालक नियोग, मोक्साधन, नानायोगनिरूपण, दशावतारकथन, स्थानादिकार्यन, पापनाशन वदरिकामाहात्म्य, अम्मिन्धानित तीर्थ माहात्म्य, वैनतेय-शिलामव, मगवद्वासका प्रभृति तीर्थ माहात्म्य, वैनतेय-शिलामव, मगवद्वासका कारण, कपालमोचनतीर्थ, पञ्चधारा नामक तीर्थ, मेर्क कारण, कपालमोचनतीर्थ, पञ्चधारा नामक तीर्थ, मेर्क

संस्थापन, मदनालसमाहातम्य, ध्र प्रकोश समाख्यान, कार्त्तिकमासीय दिनकृत्य, पञ्चमी म-व्रताख्यान और व्रत-माहात्म्यमें स्नानविधि, पुण्ड्रादिकीत्तंन, मालाधारण, पुण्यपञ्चामृतस्नानपुण्य, घरटानाद आदिका फल, नाना-पुष्प और तुलसीदलार्चन फल, नैवेद्यमाहात्म्य, हरि-वासरकीत्त न, अखण्डैकादशीपुण्य, जागरणपुण्य, मत्स्यो-त्सवविधान, नाममाहात्म्यकीत्त न, ध्यानादि पुण्यकथा, मथुरामाहात्म्य, मथुरातीर्थमाहात्म्य, द्वादश वनमाहात्म्य, .श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, वज्रशा**ण्डिल्यमाहात्म्य,** स्नानदान और जपजन्य फल, जलदानादि विपय, कामाख्यान, श्रुत-देवचरित, ध्याघोपाख्यान, अक्षयातृतीयादिकी कथा और ्विशेषपुण्यकीर्त्तेन, चन्द्रहरि और धर्म हरि-वर्णन; खर्ण-वृष्टिका उपाख्यान, तिलोदा सरयूसङ्ग पर स्रीताकुएड, गुप्तहरि, गोप्रचार, दुग्घोद, गुरुकुएडादि पञ्चक, घोषा-र्कादि तयोदशतीर्थ, सर्वपापनाशक गयाकूपमाहात्म्य, माएडव्याश्रमप्रमुख तीथ और मासादितीय इस सवका ्वण न है।

(३४ वहासंडमें ) हे मरीचे ! पुण्यप्रद ब्रह्मखएड हुनो । इसके सेतुमाहात्म्यमें स्नान और दश न करनेका फल, गालवका तपश्चर्य, रासक्षाख्यान, चक्रतीर्थादि-माहातम्य, चेतालतीर्थं महिमा, मङ्गलादिमाहातम्य, ब्रह्म-कुएडादिवर्ण न, हनूमत्कुएडमहिमा, अगस्त्यतीर्थ फल, रामतीर्थादिकथन, लक्ष्मीतीर्थं निरूपण, शङ्कादितीर्थ<sup>ः</sup> महिमा, धनुष्कोट्यादिमाहात्म्य, श्लीरकुएडादिकी महिमा, गायत् यादि तीथ माहात्म्य, तत्त्वज्ञानोपदेश, विधान, धर्मारण्यमाहात्म्य, धर्मारण्यसमुद्भव, सिद्धिसमाख्यान, ऋषिव शनिरूपण, अप्सरातीर्थं का माहातम्य, वर्ण और आश्रमका धर्म निरूपण, देवस्थान-विभाग, वकुलाक<sup>°</sup>कथा, इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्य, कादिनिरूपण, छोहासुरका आख्यान, गङ्गाकूपनिरूपण, श्रीरामचरित, सत्यमन्दिरवण न, जीर्णोद्धारकथन, शासन प्रतिपादन, जातिमेद्कथन, स्मृतिधर्म निरूपण, वैक्षाच-धर्म कथन, चातुर्मासा, सर्व धर्म निरूपण, दानप्रशंसा, · वतमहिमा, तपस्या और पूजाका सच्छिद्रकथन, प्रकृतिका भिवाख्यान, शालग्रामनिरूपण, तारकवधोपायं, स्राक्षरा-च नक्रहिमा, विच्णुका वृक्षत्वशाप और पाव तीका अनु-

नय, हरका ताएडवनृत्य, रामनामनिरूपण, जवनकथाके निमित्त हरका छिङ्गपतन, पावतीका जन्म, तारकाचरित, दक्षयज्ञसमाप्ति, द्वादशाक्षरनिरूपण, जन्मयोग समाख्यान और श्रवणादि पुण्य आदि विषय वर्णित हैं।

वधारंडके वतर भार में शिवमहिमा, पञ्चाक्षरमहिमा, गोकर्णमाहात्म्य, शिवराविमहिमा, प्रदोपवत कीत्त न, समाचारवत, सीमन्तिनीकथा, भद्रायुत्पत्तिकथन, सदा-चारनिरूपण, शिववर्मसमुद्देश, भद्रायुका विवाहवर्णन भद्रायुमहिमा, भस्ममाहात्म्यकीर्त्त न, शवराख्यान, उमान्माहेश्वरवत, रुद्राक्षमाहात्म्य, रुद्राध्याय और श्रवणादिक पुण्य आदि कीत्ति हुए हैं।

अव अनुत्तम चतुर्थं काशीखरखका विषय कहा जाता है। इसमें पहले विनध्य और नारदका संवाद, सत्य-लोकप्रभाव, अगस्त्यावासमें सुरागमन, पतिव्रताचरित और तीर्थंचय प्रशंसा, पीछे सप्तपुरी, संयमिनीनिरूपण, शिवशमकी स्य, चन्द्र और अग्निलोकप्राप्ति, अग्निकी उत्पत्ति, वरुणोत्पति, गन्धवती, अलकापुरी और ईश्वरी-के समुर्त्पत्तिकमसे चन्द्र, बुध, कुज, वृहस्पति और सूर्य-लोक तथा सप्तर्पि भूव और तपोलोकका वर्णन, पवित ध्रुवलोक कथा, सत्यलोकवर्ण**न, स्<del>क</del>न्द्** और अग-स्त्यका आलापन, मणिकणिसमुद्भव, गङ्गाका प्रभाव, गङ्गाका सहस्रनाम, वाराणसीप्रशंसा, भैरवाविभ्व, ब्रह्मचारी द्र्डपाणि और ्ज्ञानावापीका उद्भव. आख्यान, सदाचारनिरूपण आख्यान. कलावतीका इत्याहत्यनिर्देश, अविमुक्तश्वे रङ्ग्ना स्त्रीलक्षण, गृहस्थ और योगियोंका धर्मकालकान, दिवोदास कथा, काशीवण न, योगीचय, लोलाक और खल्वाक, को कथा, द्रुपदाक, तार्क्याल्य, अरुणाक का उदय-द्शाश्वमेधतीय स्यान, मन्दरसे यातायात, पिशाच मोचना-ख्यान, गणेशप्रेरण, मायाग्रणपतिका पृथिवी पर<sup>्</sup>प्रादु-र्भाव विष्णुमायात्रपञ्च, दिवीदासविमोक्षण, पञ्चनदो-त्पत्ति, विन्दुमाधवसम्भव, वैव्यवतीर्थीख्यान, श्रङ्कि और कौशिकागम, ज्येष्टेश, जैगीपव्यके साथ संवाद, क्षेता-ख्यान, कुन्दकेश और व्याघ्रेश्वरोत्पत्ति, शैलेश, रह्ने श और कृत्तिवासका संवाद, देवताओंका अधिष्टान, हुर्गा-सुरका पराक्रम, दुर्गाकी विजय और कारेश वण न

मोंकारमाहातम्य, तिलोचनसमुद्भव, केदाराख्यान, धर्मेश कथा, विल्वभुजकथा, वीरेश्वरसमाख्यान, गङ्गामाहातम्य-कोत्त न, सत्येश और अमृतेशादि, पाराशरका भुजस्तम्म क्षेत्रतीर्थसमूह, मुक्तिमण्डपकथा, विश्वेशविभव और याता ये सव विषय निरूपित हुए हैं।

अनन्तर अवन्तो नामक पञ्चम खएडम ये सव ावपय वर्णित हैं,—महाकालास्यान, ब्रह्मशोप च्छेद, प्रायश्चित्त विधि, अविकी उत्पत्ति, सुरागमन, देवीदीक्षा, शिवस्तीत कपालमोचनाख्यान, महाकालवनस्थिति, कलकलेशतीर्थं, अप्सरा नामक कुएड, मर्कटेश्वरतीर्थ, खर्गद्वार, चतुः-सकरार्कगन्धवतोतीर्थं, शङ्करवापिका, सिन्धुतीर्थ, दशाश्वमेधतीर्थं, पिशाचकादि याता, महाकालेशैयाता, वल्मीकेश्वरतीर्थ, शुकेश और नक्षते शका उपाल्यान, कुशस्थलीप्रदक्षिण, अक्र्रमन्दाकिनो, अक्षपाद, चन्द्र और सूर्यका वैभन, करभेश, कुक् देश, और लड्डुकेश प्रभृति तीर्थ, मार्कएड येश, यज्ञवापी, सोमेश, नरका-न्तक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशार्क, स्रीर शक्तिमेद प्रभृति तीर्थ, अन्धकस्तुतिकीर्त्त न, शिप्रा-स्नानादि फल, शिवस्तुति, हिरण्याक्षत्रधाख्यान, सुन्दर-कुएड, अधनाशन, पुरुपोत्तमतीर्थ, विण्णुका सहस्रनाम-वीरेश्वर, सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमी महिमा, नृसिंह, जयन्तिका, मुकुटेश्वरयाता, देवसाधनकीत्त<sup>९</sup>न, प्रभृतिमें वहुतीर्थनिरूपण, कर्कराजतीय, कद्रकुएड रेवामाहात्म्य, धर्मपुण्यका मार्कण्डेयके साथ मिलन, पूर्वेलयानुभवाख्यान, अमृतकीत्त न, कल्प कल्पमें नर्मदा के तामका पृथकत्व, ऋषि और नम दाका स्तव, काल-रात्रिकथा; महादेवस्तुति, पृथक् कल्पकला, विशल्या-ख्यान, त्रिपुरदहन, देहपातविधान, कावेरासङ्गम, दारु-तीर्थं, अग्नितीर्थं, रवितीर्थं, नर्भदेश प्रभृति, शचीहरण, अन्धकासुरवध, शूलमेदोद्भव, भिन्न भिन्न दानधम, दीघ तपाका आख्यान, ऋष्यग्रङ्गकथा, चैतसेनकथा, मोक्षण, व्विश्लाख्यान, काशिराजका चरित, व्याधाख्यान, पुःकरिण्यक्षंतीर्थं, आदित्येश्वर-तीर्थ, शकुतीर्थ, करोटिक, कुमारेश, अगस्त्येश, च्यव-नेश, मातृज, लोकेश, धनदेश, मङ्गलेश, कामज, नार-देश, नन्दिकेश और वक्षणेश्वर प्रभृति तीर्थ, दिघल्कन्दा-

दितीथ , रामेश्वरादितीथ , सोमेश, पिङ्ग्छेश्वर, ऋण-मोक्ष, कपिलेश, पूतिकेश, जलेशय और चएडाक तीथ, कहोड़ीश, नन्दिक, नारायण, कोटीश और व्यासतीर्थ, व्यासतीर्थं, प्रभासिक, नागेश, सङ्कर्षं णक, और मन्म-थेश्वरतोर्थ, परएडीसङ्गम, सुवर्णशिला, करञ्ज और कामदतीर्थ, भाएडीरतीर्थं, चक्रतीर्थं, स्कान्द, आङ्गिरस, अङ्गाराख्य, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्बुकेश, सोमेश, कोह-लेश, नार्मंद, देवभागेश, आदिवाराह, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कङ्कटेश्वर, शाक, सौम, नान्देश, तापेश, रुविमणोमव, योजनेश, वराहेश, सिद्धेश, मङ्गलेश और लिङ्गवाराह प्रभृति तीर्थ, कुएडेश, श्वेतवराह, भागविश, रवीश्वर और शुक्क प्रभृति तीर्थं, हुङ्कारस्वामितीर्थं, सङ्ग-मेश, नारकेश, मोक्ष, साप<sup>°</sup>, गोप, नाग, शाम्ब, सिद्धेश, मार्क एड और अकूर प्रभृति तीर्थं, कामोद, ग्रूछारोप, माएडव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिङ्गलेश, भूतेश, गाङ्ग-गौतम, अश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, कनखलेश, जालेश, शालग्राम, चाराह, चन्द्रप्रमा, श्रोपत्यास्य, हंस्क, मूल-स्थान, शूलेश, चित्रदैवक, शिल्पीश, कोटितीर्थ, दश-कन्य, सुवर्णक, ऋणमोक्ष प्रभृति तीर्थ, कृमिजङ्गरू-माहात्म्य, रोहिताश्वकथा, धुन्धुमार-समाख्यान, धुन्धु-मार-चधोपाख्यान. चितवहोन्द्रव, चएडीशप्रमाव एवं केदारेश, लक्षतीर्थं, विण्णुपदीतीर्थं, च्यवन-अन्धाख्य, ब्रह्मसरोवर, चकाख्य, ललिताख्यान, वहुगोमय, ख्दा-वर्त्त, मार्क एडे य, रावणेश, शुद्धपट, देवान्धु, प्रेततीर्थ, जिह्नोद, तीर्थोन्द्रव और शिवोन्द्रव प्रभृति तीर्थ ये सब विषय श्रवण करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

(६'ठ नार गर्ल डमें) इसमें लिङ्गोत्पत्ति, इरिश्चन्द्रकथा विश्वामिलमाहात्म्य, लिशंकुकी स्वर्ण गति, हाटकेश्वर-माहात्म्य, वृतासुरवध, नागविल, शंखतीर्थ, अचलेश्वर-वर्ण न, चमत्कारपुराख्यान, गयशीर्प, वालशाख्य, वालमण्ड, मृगाह्वय, विष्णुपाद्र, गुगरूप, सिद्धे श्वर, नागस्यर, सप्तापेय, अगस्त्यकथा, भ्र.णगत, नलेश, शामिष्ठ, शोभनाथ, और जमदिनवधोपाख्यान, निःश्लिवयकथा, रामहद, नागपुर, जड़लिङ्ग, मुण्डीरादि लिकाक, सतीपरिणय, वालखिल्य, योगेश, गावड़ लक्ष्मी-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आम्नेय, ब्रह्म-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आम्नेय, ब्रह्म-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आम्नेय, ब्रह्म-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आम्नेय, ब्रह्म-

कुएड, गोमुख्य, लोहयष्ट्राख्य, अजापालेश्वरी, शानैश्वर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश, कुशेश और लवेशलिङ्ग, रेवती प्रभृति तीर्थ, सत्यसन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पलाकथा, अदेश्वर, याम्रवत्क्य, गीर्य, गणेश और वास्तुसमाख्यान, अज्ञागहकथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान और गाणपत्यतय, वाजिलचरित, मकरेशकया, कालेश्वरी, अन्धकाल्यान, अप्सराकुएड, पुःयादित्य, रोहिताश्व और नगरोत्पत्ति-कोर्स न, भागेव और विश्वामित्रचरित, सारस्वत, पैप्पळाद, कंसारीश, पैरिडक और ब्रह्माको यज्ञकथा, साविती उवाल्यान, रैवत, भर्तृ यज्ञ, मुख्यतीर्थनिरूपण, कौरव, हारकेश और प्रभासक्षेत्र, पीक्तर, नैमिष और धर्मारण्य, वाराणसी, द्वारका और अवन्त्यास्य, पुतीवय, वृन्दावन, खाएडव और अद्वे काख्यवनतय, कल्पशाल और नन्दास्य प्रामतय, असि, शुक्का और पितृसंज्ञ तोर्थंतय, श्री. अबु<sup>६</sup>द ओर रैवत नामक पर्वतत्वय, गङ्गा, नर्मदा और सरस्वती नामक नदीतय, कृपिका, शङ्कृतीर्थ, अमरक और वाल-मण्डनतीर्थ, शाम्बादित्य, श्राद्धकल्प, यौधिष्टिरसंवाद, अन्धक, जलशायी, चातुर्मास्य, अशून्यशयनवत, मङ्कणेश, शिवराति, तुलापुरुषदान, पृथ्वीदान, वालकेश, कपाल-मोचनेश्वर, पापपिएड, साप्तलिङ्ग और युगमानादि-कीर्स न, शाकम्भर्याख्यान, एकादशखद्रकीत्त न, दान-माहात्म्यकथन और द्वादशादित्यकोत्त न ये सव वर्णित हुए हैं ।

(अप प्रभावस्व स्वरंगे)—इसमें सोमेश, विश्वे श, अर्क-स्थल, सिद्धे श्वरादिका आख्यान, अग्नितीर्थ, कपहीँश, केदारेशतीर्थ, भीम, भैरव, चक्तीश, भास्कर और अङ्गार-केश्वर प्रभृति हरविश्रह, वहां सिद्धे श्वरादि दूसरे और भी पञ्च बद्धका अवस्थान, वरारोहा, अजपाला, मङ्गला और लिलेतेश्वरी, लक्ष्मीश, वाड्वेश, अर्घ्येश, कामेश्वर, ग़ीरीश, वरुणेश, गणेश्वर, कुमारेश, साकल्य, शक्तन, उतङ्क, गौतम, दैत्यच्नेश और चक्रतीर्थ, भूतेशादिलिङ्ग, आदि-नारायण, चक्रश्वराख्यानं, शाम्बादित्यकथा, कण्टक-शोधिनीकथा, महिष्ट्नीकी कथा, कपालीश्वर, कोटिश और वालब्रह्म नामक कथा, नरकेश, सम्बर्चेश और निश्रीश्वरकथा, वलमद्रेश्वरकथा, गङ्गा, गणपित, जाम्बवती नामक नदी और पाण्डुक्स्पकी कथा, प्रतमेध, लक्षमेध

और कोटिमेधकथा, दुर्घासादिकी कथा, नगराक , कृष्ण, सङ्कर्षण, समुद्र, कुमारी, मोक्षपाल और ब्रह्मे शकी कथा, पिङ्गला, सङ्गमेश, शङ्करार्क, घटेश, ऋषितीय और नन्दार्क, तितकूपकी त्रंन, शाशोपान, पर्णाक और न्यंकु-मतीकी कथा, वाराहस्वामि वृतान्त, छायालिङ्गास्य और गुल्फकथा, कनकनन्दी, कुन्ती और गङ्गे शकथा, चमसी-द्भे द, विदुर और तिलोकेशकथा, मङ्कणेश, तिपुरेश और षण्डतीर्थं कथा, सूर्य, प्राची, त्रीक्षण और उमानाथकथा, भृङ्गार, शूलस्थल, च्यवन और अर्केशकी कथा, अजा-पालेश, वालाक और कुवेरस्थलकथा, पवित्र ऋषितीया-कथा, सङ्गमेश्वरकोत्तरंन, नारदादित्यकथन, नारायण-निरूपण, तप्तकुएडमाहातम्य, मूलचएडोशवर्णन, चतुर-र्वेक्द्रगणाध्यक्ष और कलम्बेश्वरकथा, गोपालखामी और वकुलसामी, मरुतीकथा, क्षेमार्क, विघ्नेश और जल-स्वामोकथा, कालमेघ, रुक्मिणी, उर्वशोश्वर, भद्र, शङ्क्षा-वर्त्त, मोक्षतीर्थ, गोज्यद, अच्चुतगृह, मालेश्वर, हुङ्कार और कूपचएडोशकथा, कापिछेशकथा, जरद्रवशिवकथा, नळ, कर्क टेश्वर और हाटकेश्वर, जरद्रवेश प्रभृतिकी कथा, सुपर्णे श, भैरवी और भहतीर्थकथा, कद्भाल और गुप्त-सोमेश्वरका कीर्त्त न, वहुखर्णे श, श्रङ्गे श और कोटीश्वर-कथा, मार्क ण्डेश, कोटीश, दामीदरकथा, स्वर्णरेखा, ब्रह्म-कुण्ड, कुन्तीश, भीमेश, मृगीकुण्ड, सर्वेखक्षेत, छता-विल्वेश, गङ्गेश-रैवतादिकी कथा, खम्रकथा, अचलेश्वर-कीत्त न, नागतीर्थं कथा, वशिष्ठाश्रमघर्णन, कर्णमाहात्म्य, विनेत्रमाहात्म्य, केदारमाहातम्य, तीर्थं गमन्-कीर्त्तंन, कोटीश्वर, रूपतीथ, इपिकेशकथा, सिद्धेश, शुक्रेश और मणिकर्णीश कीर्त्तंन, पंगुतीय, यमतीर्थ और वाराहीतीथ वर्ण न, चन्द्रप्रभा, सपिएडोद, स्त्रीमाहातम्य और शुक्क-तीथ माहात्म्य, कात्यायंनीमाहात्म्य, पिएडारक, कनस्रल-चक्र, मनुत्र्य और कपिलाग्नितीय कथा, चएडीस्थानादिक कथा, कामेश्वर और माकण्डेयोत्पत्तिकथा, उद्दालकेश और सिद्धे शतीर्थ कथा, श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतोध की कथा, कुलसम्भाका माहात्म्य, चन्द्रो-द्भे दादिकथा, काशीक्षेत्र, उमा और महेश्वरका माहात्स्य, महौजाका प्रभाव, जम्बूतीथ वण<sup>९</sup>न, गङ्गाधर और मिश्रक-.को कथा, द्वारकामाहात्स्य, चन्द्रशम कथा, जागराद्याख्य-

वत, एकादशोवत, महाद्वादशोका आख्यान, प्रह्वादिषसमा-गम, दुर्वासाका उपाख्यान, यालोपक्रमकी चँन, गोमतीका उत्पत्तिकी चंन, चक्रतीथ माहात्म्य, गोमतीका समुद्र-सङ्गम, सनकादि हदाख्यान, नृपतीथ कथा, गोपचारकथा, गोपियोंका द्वारका गमन, गोपोश्वरसमागम, ब्रह्मतीर्थादि-की चंन, पञ्चनद्यागमाख्यान, शिवलिङ्ग महातीथ और कृष्णपूजादिकी चंन, ब्रिविक्रममूर्त्ताख्यान, दुर्वासा और कृष्णपूजादिकी चंन, ब्रिविक्रममूर्त्ताख्यान, दुर्वासा और कृष्णकथा, कुशदैत्यवध, विशेपार्चनमें फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थगमनकी चंन, कृष्णमन्दिरसंप्रकृष्ण, द्वारवत्यमिष चन, वहां तीर्थवासकथा और द्वारका पुण्यकी चंन।

उत्परमें जो सब पुराण उद्घृत हुए हैं उनसे स्कन्द-पुराणको प्रधानतः संहिता और खएड इन्हों दो प्रधान भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। इनमेंसे संहिता ६ और खएड ७ हैं। संहिता और खएडमेंसे भी फिर कोई कोई नाना भागोंमें विभक्त है। स्कन्दपुराण ८१००० हजार स्ठोकोंमें प्रथित होने पर भी उन सब संहिताओं और खएडोंको एकत करने पर लाखसे अधिक स्ठोक हो आते हैं।

संहिताओं में अनेक शैंवदाशिनिक मत और शैव-सम्प्रदायके आचार-व्यवहार और अनुष्ठानादिके परिचय हैं। उक्त छः संहिताओं के मध्य सनत्कुमार, सूत, शङ्कर और सौरसंहिताके वहुत कुछ अंश पाये गये हैं। विष्णु और ब्रह्मसंहिता टीकाके साथ उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें विरल प्रचार है, किन्तु इस देशमें पाया नहीं जाता।

जिन सव संहिताओंका पता लगा नीचे उनकी विषयानुकम्णिका दो जाती है:—

## १म धनतकुमार-संहिता।

१ विश्वेश्वरगणानुवर्णन, २ काश्यपवर्णन, ३ मोक्षों-पायनिरूपण, ४ विश्वेश्वरिक्ष्मिविर्मावकथन, ५ पाप-हरणोपायवर्णन, ६ भवानीवर्णन, ७ याहावर्णन और प्रशंसा, ८ देवताओंका अविमुक्तक्षेत प्रवेशवर्णन, ६ तीथवली-परिवृत भागीरथीप्रवेशवर्णन, १० शिवनृत्य-क्यां, ११ हिरण्यप्रशंसा, १२ प्रभाकरका काशीप्रवेश, १३ पाशुपतव्रतोपदेश, १४ प्रभाकरका काशीवासप्रदान, १५ गरुड़े इवर यातावणन, १६ किल्याकुळ व्यासका वाराणसीप्रवेशकथन, १७ व्यासंभिक्षाटनवर्णनं, १८ व्यासक्षेतकथा, १६ अदाभ्येश्वरमाहात्म्यवर्णन, २० काशीश्रमीनकपण, २१ व्यासचरितवर्णन ।

#### २१ सूतसंहित।।

१म शिवमाहात्म्यसं स्ट्रॉम—१ प्रन्थावतार, २ पाशुपत-त्रत, ३ नन्दीयवरिवण्णुसंवादमें ईश्वरप्रतिपादन, ४ ईश्वर-पूजाविधान और तत्पूजाफलकथन, ५ शक्तिपूजाविधि; ६ शिवभक्तपूजा, ७ मुक्तिसाधन, ८ कालपरिमाण, तद-नवच्छिन्नखरूप-कथन, ६ पृथिवीका उद्धरण, १० ब्रह्मा-कर्तृक सृष्टिकथन, ११ हिरण्यगर्भादिविशेष सृष्टि, १२ जातिनिर्णय, १३ तीर्थमाहात्स्य।

२१ इनगोग खं हमें—१ इनगोग सम्प्रदाय-परम्परा,
२ आत्मसृष्टि, ३ ब्रह्मचर्याश्रमिषि, ४ गृहाश्रमिषि, ५
वानप्रस्थाश्रमितिध, ७ प्रायश्चित्तकथा, ८ दानधर्मफल,
६ पापकर्मफल, १० पिएडोत्पत्ति, ११ नाडीचन्द्र, १२
नाडीशुद्धि, १३ अप्राङ्गयोगमें यमविधि, १८ नियमिषि,
१५ आसनविधान, १६ प्राणायामविधि, १७ प्रत्याहारविधान, १८ धारणाविधि, १६ ध्यानविधि, २० समाधि।

३य शुक्तिलं हमें—१ मुक्ति, मुक्तिउपाय, मोचक और
मुक्तिप्रद चतुर्विधप्रश्न; २ मुक्तिमेदकथन, ३ मुक्तिउपायकथन, ४ मोचनकथन, ५ मोचनप्रदकथन, ६ शानोत्पन्तिकथन, ७ गुरुप्रसादन और शुश्रूषणमहिमा, ८ व्याव्रपुरमें
देवताओंका उपदेश, ६ ईश्वरका मृत्यदर्शन। '

शर्थ यहावैभवखएडमें अधोमागमें —१ वेदार्थप्रश्न. २ परापरवेदार्थविचार, ३ कम्यहावेभव, ४ वाचिकयहा, ५ प्रणविचार, ६ गायलीप्रपञ्च, ७ आत्ममन्त, ८ पड्झर-विचार, ६ ध्यानयहा, १० हानयहा, ११-१५ हानयहाविशे-पादि, १६ हानोत्पिनकारण, १७ वेराग्यविचार, १८ अनित्यवस्तुविचार, १६ नित्यवस्तुविचार, २० विशिष्ट-धर्मविचार, २१ मुक्तिसाधनविचार, २२ मार्गप्रामाण्य, २३ शङ्करप्रसाद, २४ २५ प्रसादवैभव, २६ शिवभिक्ति-विचार, २७ परपदस्तरुपविचार, २८ शिवलिङ्गंसरूप-कथन, २६ शिवस्थानविचार, ३० भस्धारणवैभव, ३१ शिवमीतिकर ब्रह्में क्यविज्ञान, ३२ भक्त्रभावकारण, ३३ परतत्वनामविचार, ३४ महादेवप्रसादकारण, ३५ सम्य-

दाय-परम्पराविचार, ३६ सद्योमुक्तिकर क्षेत्रमहिमा, ३७ मुक्तिउपायविचार, ३८ मुक्तिसाधनविचार, ३६ वेदादिका अविरोध, ४० सव सिद्धिकर कर्मविचार, ४१ पातक-विचार, ४२ प्रायश्चित्तविचार, ४३ पापशुद्धिउपाय, ४४ द्रव्यशुद्धिउपाय, ४५ असक्ष्यनिवृत्ति, ४६ मृत्युस्चक, ४७ अत्रशिष्ट पापसक्षपकथन।

वगरिगामं—१ ब्रह्मगीता, २ वेदार्थ विचार, ३ साक्षित्वरूपकथन, ४ साक्ष्यस्तित्वकथन, ५ आदेशकथन, ६ उदरोपासन, ७ वस्तुसक्तप विचार, ८ तत्त्ववेदविधि, ६ आनन्दसक्तप कथन, १० आत्माका ब्रह्मतत्त्वप्रतिपादन, ११ ब्रह्माके सर्वशरीरमें स्थितिकथा, १२ शिवका अहं-प्रत्ययाश्रयत्व, १३ स्त्रगीता, १८ आत्माकर्तृ क सृष्टि, १५ सामान्यसृष्टि, १६ विशेषसृष्टि, १७ आत्मस्करूपकथन, १८ सर्वशास्त्राथ संग्रह, १६ रहस्यविचार, २० सर्व-वेदान्तसंग्रह।

## ३य शंकर सहिता।

यह शङ्करसंहिता फिर नाना खएडोंमें विभक्त है जिनमेंसे शिवरहस्यखएड ही प्रधान है। इस शिवरहस्य-खएडमें लिखा है—

"तत या संहिताप्रोक्ता शाङ्करी वेदसम्मिता । विश्तत्सहस्रे प्रन्थानां विस्तरेण सुविस्तृता॥ (६०) आदौ शिवरहस्त्राख्यं खण्डमद्य वदामि वः। तत योदशसाहस्रेः सप्तकाण्डेरलंकृतम्॥ (६१) पूर्वः सम्भवकाण्डाख्यो द्वितीयस्त्वासुरः स्पृतः। माहेन्द्रस्तु तृतीयो हि युद्धकाण्डस्ततः स्पृतः॥ (६२) पञ्चमो देवकाण्डाख्यो दक्षकाण्डस्ततः परम्। सप्तमस्तु मुनिश्रे हो उपदेश इति स्पृतः॥" (६३)

इस स्कन्दपुराणमें वंद्रसिमत शङ्करसंहिता ३०००० प्रन्थोंमें सिवस्तर वर्णित हुई है। इसके प्रथम खण्डका नाम है शिवरहस्मा। इसकी क्षोकसंख्या १३००० हें और यह सात काण्डोंमें विभक्त है। यथा—सम्मवकाण्ड, आसुरकाण्ड, माहेन्द्रकाण्ड, युद्धकाण्ड, देवकाण्ड, दक्ष-काण्ड और उपदेशकाण्ड।

१म मम्भवकां इमे—१ सूतशीनकसंवाद, शिवके बादेशसे विष्णुका व्यासक्षपमें अवतार और अधादश-पुराणसङ्कलन, जिस जिस पुराणमें ब्रह्मादि देवताओं के

अन्यतमका माहातम्। दिया गया है, उस उस पुराणका नामकीत्त न, २ स्कन्द्युराणान्तगत षट्संहिताका नामकथन, ३ दाक्षायणीका शिवनिन्दा सुन कर निज देहत्राग और मायामयी हिमालयकन्याके रूपमें आविर्भाव, ४ शूरपद्म प्रशृति असुरोंके उपद्रवसे पीड़ित इन्द्रादि देवताओंकी ब्रह्माके समीप गमनकथा, ५ ब्रह्माके निकट शूरपद्म, सिंहवक्त और तारकासुर प्रभृतिका पराक्रम और इन्द्रादिका क्लेशविज्ञापन, ६ इन्द्रादि देवताओंके साध ब्रह्माका वैकुण्ड गमन और विष्णुके निकट असुरोंका उप द्रवकथन, ७ ब्रह्मादिके साथ नारायणका कैठास-गमन और शिवके निकट असुरकर्तुक देवपराभव-वर्णन, ८ कार्त्तिकको उत्पादन कर असुरका संहार करूंगा, इत्रादि वाक्योंसे विष्णु आदिको आश्वासन दे शिवका समाधि-अवलम्बन, ८-१० शिवकी समाधि भङ्ग करनेके लिये देवताके आदेशसे मदनका कैलासगमन ओर समाधि भङ्गका उपायचिन्तन, ११ शिवका समाधिभङ्ग और मदनभस्म, मदनके पुनर्जीवनके लिये रतिकी प्रार्थना, पार्वतीको छलनेके लिये वृद्धवाह्मणके रूपमें शिवका हिमालय-गमन, १३-१४ वृद्धब्राह्मणक्रपी शिवको पार्वतीके समीप शिवनिन्दा, उसे सुन कर पार्वतीका क्रोध और उन्हें सन्तुव्द करके शिवका कैलास आगमन, १५ महा-देवका सप्तर्षि सरण और पार्वतीका विवाह करनेके छिये उन्हें हिमालयके निकट प्रेरण, १६ सप्तर्षि-हिमालय-संवाद, १७ सपत्नी हिमालयकी गौरीदानमें सम्मति, सप्तर्षिका शिवके निकट आगमन, १८-२२ हरपाव तोंक विवाहाङ्ग कर्मका अनुष्ठान और इरपार्वतोका मिलन, २३ पार्वतीके साथ शिवका कैलासगमन, २४-२६ गणेश-का उत्प त-विवरण, २७ वीरवाहु, वीस्केशरी, वीरमहेन्ट्र, वोरचन्द्र, वीरमात्तं एड, वीरान्तक और बोर नामक शिवपुर्तोका जन्मवृत्तान्त, २८ शरवनमें कार्त्तिकेयका जन्म और उन्हें कैलास लाना, २६ क्रीड़ाच्छलमें कार्त्तिकेयका विक्रमवणेन, ३० इन्द्रादि देवताओंका कार्त्तिकेयके साथ युद्ध और इन्द्रादिका पराभव, ३१ <u>बृ</u>हस्पतिकी प्रार्थ नासे कार्त्तिकेयकर्षं क देवताओंका पुनर्जीवन और आत्माका विश्वात्मक रूपप्रदर्शन, ३२ कार्त्तिकेयका देव-सेना-पतित्व पर अभिणेक, नारदानुष्टित यहमें प्राप्तः पश्वङ्ग-

सम्भूत एक छाग द्वारा विलोकव्याकुलीकरण और उस छागको कार्त्तिकेयके वाहनत्व पर वरण, ३३ कार्त्तिकेय-कर्वक ब्रह्माका कारागाररोधकथन, ३४ शिवकर्वक ब्रह्माका कारारोधमोचन, ३५ ३६ कार्त्तिकेयका रूप, वीय और विभृतिकथन, ३७ शूरपद्म प्रभृति असुरोंका विनाश करनेके लिये कार्त्तिकेय और वीरवाहु आदिकी युद्धयाता, ३८-३६ तारकासुरके साथ वोरवाहु आदिका युद्धवर्णन, ४० चीरवाहुको पराजय, ४१-४३ कार्त्तिकेय और तारका-सुरका युद्धवर्णन, ४४ क्रीञ्च और तारकासुरका वधकथन, ४५ क्रीञ्चतारकासुरवधके दिन ब्रह्माविष्णु प्रभृति देव-ताओंके साथ कार्त्तिकेयका हिमालय-पर्वत पर अव-स्थितिकथन, ४६ तारकासुरकी पत्नियोंका विलाप, तारका सुरके पुत असुरेन्द्रके पिताकी अन्त्येष्टिकिया समाप्त करके पितृव्य शूर्पदाके निकट आगमन और कार्त्तिकेयके हाथसे पितृवधवृत्तान्तकथन, ४७ कार्त्तिकेयका वल-विक्रमादि जाननेके लिये उनके निकट शूरपद्मासुरकर्षं क गुप्तचरप्रेरण, ४८-५० कार्त्तिकेयादि देवताओंका वारा-णसी-तीर्थादिगमनवृत्तान्त् ।

वस्तादिका उत्पत्तिकथन, २ शूरपद्म-सिहासा-तारक-गज-वस्तादिका उत्पत्तिकथन, २ शूरपद्म, सिहवम्त और तार-कासुरका तपसाकथन, ३ महादेवके निकट उनकी वर-प्राप्ति, ४-७ शूरपद्मादि असुरकत के देवताओंकी पराजय, ८ इन्द्रादिकत के शूरपद्मका राज्याभिणेकवर्णन, ६ शूर-पद्मादिका विवाह और वंशविस्तारकथन, १० शूरपद्मका दौरात्म्यवर्णन, ११ विन्ध्यपर्वतका पतन और वातापि-वध, १२ शूरपद्मके भयसे श्रीकोषानगरमें शची समेत इन्द्रका पढ़ायन और देवताओंका उनके समीप आगमन, १३ गएडकोकी उत्पत्ति, महाकालकत के शूरपद्मभगिनी-का हस्तच्छे द, १४ शूरपद्मके समीप अजवष्टतकर के अपना हस्तच्छे देविवरण, १५ इन्द्रपुत्न जयन्त्यादि देव-ताओं तथा शूरपद्मसुत भानुकोषाख्यान, असुरादिका गुद्ध वृत्तान्त ।

३<sup>य</sup> बी काडमें -१७ शूरपद्मासुरके वलवीर्यादि देखनेके लिये वीरवाहुका प्रत्यागमन, वीरवाहुके मुखसे शूरपद्मका वलवीर्य सुन कर युद्धके लिये कार्त्तिकेयका लङ्कागमन ।

४ वृद्धकांडमैं—१-३५ कार्त्तिकेय वीरवाहु आदिके. साथ शूरपद्म मानुकीपादिका सविस्तार युद्धवृत्तान्त, शूरपद्मभानुकीपादिका निधनकीर्त्तंन।

५म देवकांडमें—१-७ कार्त्तिकेयका विवाहवर्णन, मुचुकुन्द नृपतिके चरिताख्यान प्रसङ्गमें कार्त्तिकेयका माहात्म्य कीर्त्त न ।

दक्ष खंधमें---१-४ ब्रह्मादक्ष संवादमें शम्भुका जगत-कारणत्वकथन, शिवका सर्वव्यापित्वादिनिरूपण, जगत्-का ब्रह्मात्मकत्यकथन, शिवका पतित्व और ब्रह्मादि यावतीय जीवोंका पशुत्वकथन, शिवाराधनाके लिये दक्षका मानसरोवरादिगमनवृत्तान्त, शिवका वर पाः कर दक्षका पुरोनिर्माणविवरण, दक्षपुर्तोकी स्रष्टुत्वप्राप्तिकी इच्छासे मानससरोवरमें तपस्त्रादि, सारद्समागममें विवेकोद्यके हेतु उनका मोक्षाभिलापादिविवरण, यह वार्त्ता सुन कर दक्षकी पुनर्वार शतपुतसृष्टिं, मोक्षकी कामनासे शतपुतकी नारदीपदेशसे तपश्चारण, दक्षका. क्रोध और तयोविशति कन्यासृष्टि, वशिष्टाति प्रमुख ऋपि-गणको कन्यासम्प्रदान, पुनर्वार सप्तविशति कन्यासृष्टि और चन्द्रको सम्प्रदान, कृत्तिकाके प्रति निरन्तर अनु-रक्तिके कारण दक्षकर्ष क चन्द्रको अभिशाप और चन्द्रके क्षयरोगकी प्राप्तिकथा, चन्द्रका शिवाराधनादिवृत्तान्त, ५-६ हरपाव तीसंवादमें जगत्कारणाविकथा, शिवके उपदेशसे देवीका कन्यारूपमें पद्मवनमें अवस्थान, दक्ष-कर्तृंक कन्यात्वमें उनका ब्रहण, पशुपतिको पतिरूपमें पानेकी आशासे गौरीचे ्दक्षगृहमें रह कर तपश्चर्या, वृद्धब्राह्मणके वेशमें शिवका तपोरता गौरीके समीप \_ आगमन, शिवदुर्गका विवाहोत्सववर्णन, अन्धकरिपुरके अकस्मात् अन्तर्धान पर देवीकी पुनर्वार तपस्त्रा, शिव-समागमवर्णन, दुहितृज्ञामातृ देखनेकी अभिलाषासे दक्षका कैलासगिरि आगमन, शिवनिन्दादिवृत्तान्त, ब्रह्मा-कर्तृ क यज्ञानुष्टानविवरण, नन्दीके साथ दक्षका विवाह-वर्णन, १०-१४ द्स्यज्ञ, यज्ञसभामें शिवभक्तोंके नहीं आनेकी दसकी चेष्टा, दस्रदधीचिसंवाद, उसके प्रसङ्गमें शिवका परब्रह्मत्वकीत्तन, रुद्रनामवितरण, दक्षकतृक शिवचरित पर दोषारोएण, महादेवके दिगम्बरत्वका कारणनिर्देश, तपस्तिगणको मोहनेके लिये मोहिनीवेशमें

श्रीधरका और योगीवेशमें महेश्वरका दारुकवन-प्रवेश, ब्राप्नचर्मादि और परशुमृगादि भगवद्भूषणधारणका कारणनिर्देश, १५-२० विधाताका वर पा कर गजासुर-कर्तृक देवताओंका दुरवस्थावर्णन, विरूपाक्षकर्तृक ग्जनिपात और तचर्म-धारणादि वृत्तान्त, दराहरूपमें विष्णुकर्तृक हिरण्याक्षनाश और दन्ताघातसे चराचर-विनाश, ब्रह्मादिको प्राथ नासे महादेवकत् क तहन्तो-त्पादन और खकरमें घारण विवरण, समुदमन्थनकालमें शिवकत् क मन्दराघातसे चञ्चलकूर्मका पृष्ठास्थिप्रहणादि-विवरण, विषाग्निइ ध विष्णुका कृष्णत्व कथन, शिव-कर् क विषपान, देवगणकृत नीलकएठस्तोत, शिवकी भिक्षावृत्तिका कारण-निर्देश, पद्मनाम और ब्रह्माका जगत्-कतृत्व हे कर परस्परमें विवाद और शिवके समीप आविर्सावादि, कालभैरवीटपत्ति, तत्कतृ क ब्रह्माका शिर-रछेदन, विष्णु प्रभृतिका रुधिरप्रहणवृत्तान्त, २१-२५ वृषद्भपधारी हरिका हरवाहनत्वप्राप्तिकारण, शिवका कपालमसाधारणादि विवरण, हररोपानलसे जालन्धरकी उत्पत्तिकथा, तदुपद्भुत केशवादि देवताओंकी प्रार्थ नासे महादेवकर्षं क जालन्धरवध-वृत्तान्तकथन, कामिनी बन्दाके प्रति कामयमान विष्णुकत् क जालन्यर-के मृत शरीरमें प्रवेश और वृन्दाके साथ सम्मोगादि, ब्रह्मवाक्यसे वृन्द्ग्वीजसे श्मशानीपरभूमिमें उत्पन्न तुलसोका आधिक्यविवरण, पार्व तीके करतलजात-स्रोदसलिलसे गङ्गाका उत्पत्तिवृत्तान्त, २६-३४ शुका-चार्योपदिष् मृतसेनके आदेशसे मागधाष्ययोगिवरको मोहनार्थं विभूति नाम्नी असुरकामिनीका मेरुप्रवेशमें गमन, करिणोद्धपघारिणी विभूतिके साथ करिह्नपघारी मागधका विहार, गजमुखदैत्यका उत्पत्तिकथन, पार्वती-परमेश्वरकी अक्षकीडामें विष्णुका साक्षिक्षपमें अवस्थान-कंथन, पार्वतीके शापसे विष्णुकी अजगररूपवाति और वरद्वीपमें अवस्थान, गणेशके साथ गजमुखमित मृतसेन-का युद्ध, गणेशवाणिवद्ध गजमुखका मूपिकरूपप्रहण-विवरण, गणेशकर क उसे वाहनत्वमें ग्रहण और तदा-रोहणादिकीर्र्ज न, शुकाचार्य-मृतसेन प्रभृतिका पक्षिरूपमें पळायन, गणेशको देख कर अजगररूपी हरिकी खरूपटय-प्राप्ति, ३५-४० शिवसाहात्म्यश्रवण पर दक्षके सुसति उत्पन्न होते न देख द्घोचिका प्रस्थान, नारद्के मुखसे पितृगृह्में यज्ञानुष्टानका संवाद सुन शिवके आदेशसे दाक्षायणीका पितृभवन-गमन, दक्षके मुखसे शिव-नित्दा सुन कर विमान पर चढ़ देवीका फिरसे कैलास-गमन और शिवके समीप तद्वृत्तान्तकथन, शिव और शिवाके कोधसे भद्रकाली और वीरभद्रका आविर्भाव-प्रस्ताव, शिवको आज्ञासे डाकिनी, शाकिनी, हाकिनी-प्रभृतिके साथ वीरभद्रादिका दक्षालय-गमन, दक्षका शिरश्छेद, वीरभद्रकृत ब्रह्मा और इन्द्रादिकी दुरवस्था, विष्णुके साथ उनका समरसम्भव, विष्णुकृत तत्स्तोत, देवताओंकी जीवनप्राप्ति, दक्षका पुनरुज्ञीवन, दक्षके समीप ब्रह्माकर्ष्ट क शिवमाहात्स्यकीर्चन, पृथिवीस्थाप-नादिकथन, भूगोलकथन।

७ उग्देशलंडमें—१-२ कैलासवणन, ३-५ असुरादि-का ह्रे पोत्पत्ति-कारणनिर्देश, ६-७ अजमुखका आसुर-देहोत्पत्ति हेतु और पूर्व जन्मकर्म कथन, ६-१२ मस-माहात्म्यकीर्त्त न, १३-१६ छद्राक्षमाहात्म्यकीर्त्त न, २०-२६ शिवनाममाहात्म्यकथन, २७ सोमवारव्यविधि और तन्माहात्म्यकोत्त न, २८ आर्द्राव्यविधि, २६-३० उमामाहे-श्वरव्यविधि, ३१ केट्राप्वयविधि, ३२ कल्याणव्यविधि, ३३ शूलव्यविधि, ३४ केट्राप्वयविधि, ३२ कल्याणव्यविधि, ३३ शूलव्यविधि, ३४ केट्राप्वयविधि, ३५ शुक्रवारव्यत-विधि, ३६ विश्वे श्वरव्यवविधि, ३७ छत्तिकादिव्यतमाहात्म्य कथन, ३८ माधमासके प्रथम दिवसमें और चैताश्विन-मासके भरणीनक्षतमें शिवव्यवविधान, ३६-४७ शिवमकके लक्षणादि, ४८ शिवपुराणश्रवणफल, ४६-५७ शिवद्रोह-फलकीर्त्त न, ५८-६० शिवनिन्दादिफलकीर्त्त न, ६१-८१ शिवपूजामाहात्म्यकथन, ८२ शिवयोगकथन, ८३-८४

## ६ सौर संहिता।

१ स्तके साथ ऋषियोंके संवादमें अष्टादशपुराण-कीर्त्त न, उपपुराणकथन, व्यासकृत शिवाराधन-विवरण कथन, तत्कर्त् क वेदविभाग कथन, ऋग्वेदको इक्कीस शाखाओंका विवरण, यज्ञवेंदकी सौ शाखाओंका विव-रण, सामवेदकी हजार शाखाओंका विवरण, विभाग-पूर्व क औमिनिप्रसृतिको वेददान-विवरण कथन, मुनियों-के निकट कृष्णद्वैपायनके परब्रह्मका रूपवर्णन, उनका शिव-शम्भु-महादेवादि नामकथन, धमका चोदनालक्ष-णत्वकथन, चोद्ना-प्रामाण्यनिरूपण, पुराणलक्षणकथन, स्य का उपासनाविवरणकथन, २-५ याज्ञवल्क्यकृत उसे सूर्यका तत्वज्ञानोपदेश कथन, अमेदवादकथन, जगत्सृष्टि कथन, हिरण्यगर्भका उपाधिमेदसे सप्तपाताल-का स्वरूपकथन, स्वर्गका संस्थानादिकथन, वर्षादि स्थान-निर्देशपूर्व<sup>°</sup>क जम्बृहीप संस्थानादिकथन, प्रसद्दीपका निरूपण, आवह-प्रवहादि सप्त वायु, नेभिनिरूपण, नक्षत-मण्डल, सप्तर्षिमण्डल, घ्रुवमण्डल और सुरत्यादि कथन, सूर्य-चन्द्र-मण्डल आदिका मण्डलविस्तारादि परिमाण-कयन, सदाशिवलोकसंस्थानकथनपूर्वक विस्तृतरूपमें सदाशिवरूपवर्णन, जगत्कारण-निरुपण प्रसङ्गमें माया-वाद-निरूपण, वेदान्तप्रशंसा, ब्रह्मकारणतावादका अभ्य-हिंतत्त्व कथन, आर्हत, वौद्ध, पाञ्चरात्न, विनायक आदि तन्त्रोंका निन्दाकीत्त न, ६-१० सस्प्र तिपुण्ड्रादि धारण-माहात्म्यकथन, शापक्षयोपायकथन, अधिमुक्तमाहात्म्य-कयन, विश्वे श्वरमहिमा, वाराणसीवर्णन, गङ्गादि नाना-तीर्थमाहात्स्यकथन, अध्यारोपादि स्वरूपनिरूपण, अज्ञान-लक्षणादिकथन, आत्मखरूपादिकथन, परमात्मा और जीवात्माका उपाधिमेदनिरूपण, विश्वानमाहात्म्य कथन, उसका उपाय कीत्त<sup>े</sup>न, उसका खरूप-कथन, ज्ञान-कारण-निरूपण, ११-१६ सत्त्व-रज्ञ-तमोगुणादिका प्रकृतिनिरू-पण, जीवस्वरूपविचेचना, निर्गु ण आत्माका चन्घहेतुनिरू-पण, देह इन्द्रिय मन प्राण विज्ञान और शून्यादिका आत्म-मोक्षखरूपनिरूपण, कत्ववाद-कथन, मोक्षोपायकथन, श्रुतिकल्पनायोग्य विषय-निरूपण, याझवल्मयकर्तृ क सूर्य-स्तोतकीत्त न।

प्रभासखण्ड और नारदपुराणमें जिस प्रकार सप्त खण्डोंका एक दूसरेके वाद विवरण किया है, उसी प्रकार यहां भी सप्तखण्डोंकी सूची दी जाती है।

## १म श्रम्बिकाखगढ ।

१ कार्त्तिकेयका जन्म, २ अनुक्तमणिका, ३ नैतिषा-रण्यका उत्पत्तिविवरण, ४ ब्रह्मका प्राजापत्याभिषेक, ५ रुद्रका जन्म, ६ ब्रह्मका शिरश्छेद, ७ कपालसंस्थापन, ८ देवगणकर्तृक रुद्धदशनवृत्तान्त, ६ सुवर्णाक्षोत्पत्ति-वणन, १० दक्षशापकथा, ११ उमातपस्यावर्णन, १२ प्राह-

कतृक वालमोक्षण, १३ उमाका विवाह, १४ उमाविवाह-स्तव, १५ वशिष्टवरप्रदान, १६ शक्ति नामक वशिष्टपुती-त्पत्तिकथा, १७ कल्मायपादशापविवरण, १८ राक्षससह-निरूपण, १६ विश्वामितकर्तुं क विशयुके प्रति वैर-निव-त्तं न, २० नन्दीका तपस्याप्रवेश, २१ नन्दीकर्तं क महादेव-की स्तुति, २२ जप्येश्वरक्षेत्रमाहात्म्यकथन, २३ नन्दोश्वर-के अभिषे कार्थ महादेवका इन्द्रादि, देवताहान, २४ नन्दी-श्वराभिषेक स्तुति-कथन, २५ नन्दीश्वर-विवाहकथन, २६ मेनकाकथित पतिनिन्दाश्रवण पर दुःखिता पार्वंतीका शिवके समीप आगमनवृत्तान्त, २७ शिवको गो-हरिण्यादि दानफल, २८ शिवपूजाविधि, २६ कुवेरपञ्चचूड़ावरप्रदान, ३० वाराणसीमाहात्म्य, ३१ दधीचमाहात्म्य, ३२ दक्षयङ विनाशवर्णन, ३३ वृषोत्पत्ति-वर्णन, ३४ उपमन्युवर-प्रदान, ३५ सुकेशवरप्रदान, ३६ षितृप्रक्ष, ३७ नरकसंख्या-कीर्त्तन, नरकमीतिवर्णन, ३८ शास्मलीनामक नरक-वर्णन, ३६ कालस्त्रक नरककथन, ४० कुम्मीपाकनरक-वर्णेन, ४१ असिपत्रवनाख्य नरकवण न, ४२ वैतरणी-नरक-वर्ण न, ४३ अमोघनरकवर्ण न, ४४ पद्माख्यनरक-वर्णेन, ४५ महापद्माख्यनरकवर्णन, ४६ महारीरवनरक चर्णन, ४७ तमोनाम नरकवर्णन, ४८ तमस्तमोनाम नरकवर्णन, ४६ यमगोताकथन, ५० संसारपरिवर्त्तन-कथन, ५१ सुकेशमाहातम्य, ५२ काष्टकूटकथा, ५३ दुर्गा-तपःचणन, ५४ ब्रह्मप्रयाण वृत्तान्त, ५५ व्रह्मागमनवृत्तान्त, ५६ दुर्गावरप्रदान, ५७ सप्तथ्याघोपाख्यान, ५८ ब्रह्मदत्त राजाका उपाख्यान, ५६ कोशिकीसम्मव-वृत्तान्त, ६० कौशिकीका विन्ध्यगिरिगमनवृत्तान्त, ६१ दैत्यीद्योगवर्णन ६२ सुन्दरदैत्यवधवर्णन, ६३ असुर्रावजय-वर्णन, ६४ असुरोद्यगवर्णन, ६५-६६ देवो कौशिकोके साथ असुरोंका युद्धवृत्तान्त, ६७ कौशिकीका अभिषेचन, ६८ कौशिकी-देहसम्भवा देवियोंका देश और नगरादिमें अवस्थान वृत्तान्त, ६६ पाव तीके साध हरका मन्दरगमन, ७०-७१ नर्रसिहकर् क हिरण्यकशिषुवधवृत्तान्त, ७२ स्कन्दोत्पत्ति-वर्णन, ७३ अन्ध्रकोत्पत्ति-विवरण, ७४ अन्ध्रकवरप्रदान, ७५ हिरण्यासका स्वपुरप्रवेशवृत्तान्त, ७६ हिरण्याक्षका सभाप्रवेशवृत्तान्त, ७७ असुरयोगवर्णन, ७८-१०६ देवा-सुरयुद्धवर्णन, १०७ वराहोत्सव-वर्णन, १०८ वराह-

प्रयाणवृत्तान्त, १०६ महादेवका सुमेरगमन, ११० दान-फलनिरूपण, १११ उमासावित्रीसंवादमें कृच्छ्रादि-व्रत-फलकथन, ११२ स्त्रीधमेनिरूपण, ११३ असृताक्षेपवर्णन, ११४ अमृतमन्थनप्रसङ्गमें नीलकएडोपाख्यान, ११५ विष्णुकर्त्व अमृतापहरण और देवासुरयुद्ध, ११६-११७ वामनप्राद्धर्भाव, ११८ शुक्तवासवस वाद, वामनप्रादुर्भावमें तीर्थयातावर्णन, १२२ सैंहिकेयवध वर्णन, १२३ हरिश्चन्द्रनिर्देश, १२४ महादेवके समीप परशुरामकी वरप्राप्ति, १२५ वसुधाप्रतिष्ठावर्णन, १२६-१२८ गङ्गावतरणवृत्तान्त, १२६-१४८ अन्धकादि असुर-पराजय कीस न, १४६-१५१ पार्वतीकर्तृक अशोकतरु-का पुतत्व-परिश्रहण, १५२ शूलीकर् क धर्मपद्धतिव्याख्या, १५३ विपहेतु महादेवके कराउमें नीटत्व-कथन, १५४ पार्वतीकर्तृक भस्मरजसादिका विलेपत्वप्रश्न और महा-वेवका तदुत्तरदान, १५५ जगत्प्रभुके श्मशानवासित्व सम्बन्धमें पार्वतीका प्रश्न और शिवोत्तर, १५६ सुगन्ध ःजलादि द्वारा शिवस्नानका फल, १५७-१५६ पुण्यायतन फल, १६० भैरवोत्सवकथा, १६१ विनायकोत्पत्ति, १६२ स्कन्दोर्त्पान, १६३ स्कन्द-दर्शनार्थ देवगणका आगमन, १६४ स्कन्द-विनाशार्थ इन्द्रकर्तृक मातृगणका प्रेरण, १६५ स्कन्दके साथ इन्द्रयुद्धवृत्तान्त, १६६-१६७ स्कन्दका देवसेनापतित्व कथन, १६८-१६६ स्कन्दाभिणेकवर्णन, १७०-१७३ तारकासुरवधविवरण, १७४ स्कन्दके प्रति इन्द्रवाक्य, १७५ महिषासुरवध, १७६ महेश्वर-नामकथन, १७७ महेश्वरस्तुति, १७८ शंकुकर्णकर्तृक यमदूत-गणका प्रत्याख्यान, १७६ कालञ्जरायतनवृत्तान्त, १८२ देवायतनोद्देश, १८३ भद्रेश्वराख्यान, १८४ देवदारुवनमें महादेवस्थानमाहात्म्य, १८५ आवतन-वर्णेन, १८६ मयवर-दान, १८७ त्रिपुरवर्णन, १८८-१६५ त्रिपुरवधवृत्तान्त, १६६ कौञ्चवध, १६७ कौञ्चसञ्जीयन, १६८-१६६ प्रहादयुद्ध, २०० प्रहादविजय, २०१ हिमवत्सम्मापण, २०२ गिरिवाक्य, २०३-२०४ गिरिपक्षच्छे दवृत्तान्त, २०५ मेघोत्पत्ति, २०६ पक्षच्छेदनश्रवणफल, २०७-२०८ नारायणके साथ प्रह्वाद्-का युद्धोद्योग, २०६ अनुहाद्वध, २१० नारायण-कर्त् क चकरुष्टि, २११ प्रहादामरसङ्गम, २१२ परमदैवतवचन, -२१३ देवदानवयुद्ध, २१४ प्रहादका तपश्चरण, २१५ ।

अहुरप्रचाणोत्पातविवरण, २१६ प्रह्वाद्-नारायण-युद्धमें इन्द्रागमन ।

## १ माहेश्वरखएड ।

केदारखएडमें—१ लोमश-शौनकादि संवाद, ५-३ दक्षका शिवरहित यज्ञानुष्ठान, सतीदेहत्याग और वीर-भद्रकर्ष्ट्र दक्षयङ्ग विनाश, ४-५ वीरभद्रके साथ इन्द्रो-पेन्द्रादि देवताओंका युद्धवर्णन, दक्षकी छागमुराडप्राप्ति, शिवपूजा और शिवालय-निर्माणफल, त्रिपुण्डू और विभूतिमाहात्स्य, इन्द्रसेन राजाका उपाख्यान, अवन्तीपुर-वासी नन्दि नामक वैश्यका उपाख्यान और नन्द तथा किरातका शिवलोग-गमन, ६-७ ऋषिके शापसे शिवकी पएडत्वप्राप्ति और लिङ्गयतन, तत्स्वरूपकथन तथा अर्चन-माहात्म्य कीर्त्तन, पाशुपतधमकीर्त्तन और कालीराज-दुहिता सुन्दरीके साथ उदालक ऋषिका सपर्याकरण, ८ रत्नमुक्ताताष्रमयादि लिङ्गपूजाकथन, गोकर्ण पर्वत पर रावणको लिङ्गपूजा, नन्दिके साथ रावणका विरोध और शापप्राप्ति, देवतार्थोका वानर रूपमें जन्मग्रहण, रामावतार-कथन, ६-११ वलिकत्रंक शुक्रेश्वर्य हरण, समुद्रमन्थ्न, काळकूटोत्पत्ति, तद्दद्वारा ब्रह्माएड-भस्म, गणेशकी उत्पत्ति और पूजार्विाध, समुद्रमन्थनमें चन्द्रादिका उद्भव और नानारत्नोत्पत्ति, स्रक्ष्मी और अमृतोत्पत्ति, विष्णुका मोहिनोरूपधारण, १२ देवासुरयुद्ध, १४ वलिमुस सर्व-दैत्यापस्थापन, दैत्यका जयलाभ, राहुके भयसे चन्द्रका ांशवके समीप गमन, विष्णुकतृ क कालनेमिवध, इन्द्र वृहस्पतिका विरोध, इन्ड्रकतुँक विश्वकर्मस्रुत विश्वक्रप-का मस्तकछेद, विश्वस्तपके मुखसे कपिञ्जलकी उत्पत्ति, १५ नहुप और ययातिराजका उपाख्यान, १६ वृतासुरका जन्म, दर्घाचिका उपाख्यान, पिप्पलादकी उत्पत्ति, १७ वृतासुरवध, १८ विलकतु क अमरावतीरोध और इन्द्रादि देवताओंका मयूरादिक्तपमें पलायन, वामनावदार-कथन, विलका यज्ञ, १६ वामनकपी विष्णुकी छलना, त्रिपाद्-भूमिभिक्षा और विलका पाताल-गमन, १० गिरिजोत्पत्ति, २१ गिरिजाकी शिवशुश्रुपा और मद्नदाहनादि उपाख्यान, २२ पाव<sup>ँ</sup>तोतपःफलकथन, २३-२५ शिवविद्या**न**प्रणॅन और चरडीकी आविर्भावकथा, २६ गम्धमादन पर्भंत पर शिवदुर्गाका विहार, अग्निका हंसरूपमें वहां गमन, नारद

वाष्यसे वालखिल्पका जन्म, २७ कार्तिकेयकी जन्मकथा, और सेनापितत्वमें वरण, कार्त्तिकेयका तारकासुरयुद्ध वृत्तान्त, २६ तारकासुरसंग्राम, ३० तारकासुरवध और कार्त्तिकेयका माहात्म्य कथन, ३१ यमकर्तृ क शिवको ब्रान्योगस्वरूप जिज्ञासा और अध्यात्मनिरूपण, ३२ ध्वे तराजोपाख्यान, ३३ शिवरातिव्रतमाहात्म्य और पुक्कस वृत्तान्त-कथन, ३४ तिथ्यादिनिरूपण, शिवपार्वतीको स्व तकोड़ा, पराजित शिवका कोपीनग्रहणरहस्य, पीछे केलासत्याग और वनगमन, ३५ पार्वतीका शवरीक्रपमें शिवके समीप गमन।

कुम रिकाइंडमें--- उप्रथ्नवा-मुनिगण-संवादमें दक्षिणा-र्णव-तोरवर्त्ती कुमारेग, स्तम्मे श, चर्करेश्वर, महाकाल भीर सिद्धेण आदि पञ्च शिवतीर्थंमाहात्म्य और स्नानादि फलकथन, सीमद्रमासादि तीर्थमाहात्म्यवर्णन, धनञ्जयकृत तोर्थम्मणयसङ्घें स्नानकाल जलसे ग्राहका उत्तोलन, दोनोंका युद्ध और ब्राह-विस्हूरण, कल्याणी नारीका आविर्माव, जलचारिणी कामिनीका पूर्वशाप और अप्सरा जन्मादि ऋथन, हंसतीर्थं और काकादि तीर्थंपसङ्ग, अप्सरा की शापमुक्ति और खगंछोकमें गमन, २ अ सरावक्ष पर अर्ड्ड नका नारहके समीप गमन, द्वादश वार्षिकी महा-याता-कथा, फाल्गुन तीर्थयात्रामाहात्म्य-कथा, सरस्वती-के किनारे कात्यायन मुनीके प्रश्न पर सारखत मुनि-कर्तृ क सारखतधर्मकथाशसङ्गमें वृषभवाहन महादेव-पूजा-का श्रे प्रत्वकथन, दानमाहात्म्यकीत्तंन, काशीपति प्रत-द<sup>९</sup>नकी दाननिष्ठा, ब्राह्मणको दान करनेसे रुट्रलोकगति, ३-४ पार्थकर्नुक वहु देश-नगरादि पर्यंटन और कल्प-स्मरावरा रेवातीका समागम, नदुत्तरतीरवर्त्ती मृगमुनिका आश्रम-समाख्यान, मृगाश्रममें भृगुसमागम, शृगुकर् क विप्रयोज्ञ स्थान कथन, शृगु-नारदसंवाद, महीनदीतटवत्तीं और महोसागरसङ्गनमाहात्म्यकथा, तीर्धसमाख्यान देवशर्मा और सुभद्रमुनीसंवाद, ५ सविस्तरमें महोसागर-सङ्ग्रमाहात्म्य कथन, दानमाहात्म्य कथनप्रसङ्गमें द्वौपा-कदान, चतुर्द्धा वैदिकदान, गृहादिदान, अत्र और हय-वाहनादि-दानफलकोत्तेन, अर्जुन-नारदसंवादमें ब्राह्मण स्थानप्रतिष्ठाकथन, संसारवर्णन, कलापप्राममाहातम्य-कीर्त्त न, ब्राह्मणप्रशंसा, ओंकारवर्णन, खायम्भुव खारो- चिषादि चतुर्देश मनु, आदित्य और रुद्रादि कथन, शुक्र-शोणितसङ्गमसे जीवीत्पत्ति कारण और गर्मावस्थादि निर्देश, लोभनिन्द्रा, त्राह्मणका ओहियत्वकथन, मासादिकमसे भास्करपूज्य पुण्यदिन नर्णय, ६ नारद-शातातप-संवाद्में स्तम्मतीर्थ-प्रशंसा, कलापश्रामकथा, कोलम्बाक्र्प, दानप्रसङ्ग, पि र और मातृमाहातम्य, ७ मही-सागरमाहातम्यवसङ्गमें इन्द्रयुद्ध-राजास्यान, ८ इन्द्रयुद्ध-नाडोजङ्कसंवाद, ६ उत्कक्ती निशाचरत्व प्राप्तिकथा, १० शिवका दमनकोत्सव और शिवका दोलयाताकथन, अग्निवेश्याकन्याका आख्वान, ११ इन्द्रस् म और देवदूत-संवाद, १२ इन्द्रगु झ-कूर्मसंवादमें शारिडल्य-विप्राख्यान, शिवपूजा-माहातम्यकथन, दशयोजन विस्तृत कूमींत्पत्ति कथा, १३ इन्द्रगुम्न और लोमश-संवादमें वैष्णवी माया कथन, शरोरक्षयकथन, लीमशका शूद्ररूप पूर्वजन्ताख्यान और शिवपूजाके प्रभावसे उनका जातिस्मरत्वकथन, शिवभक्तिप्रशंसा, १८ वक-गृध-कच्छप-उलक् और इन्द्र-युक्का लोमशके निकट शिवदीक्षाविधानमें लिङ्गपूजा क्यन, सम्वर्त-मार्कण्डेय-संवाद, मालवदेशमें महीनदीकी उत्पत्ति और उसमें सव तीर्थीका प्रादुर्भावकथन, मही-सागरसङ्गम पर शिवपूजामाहातम्य, कपिल वालुकादिः अनेक लिङ्गनामकथन, १५ कुमारेश्वरमाहात्म्यप्रसङ्गमें काश्यपीयसर्गं, मारुतीत्पत्ति, वज्राङ्गोत्पत्ति, १६-१८ वराङ्गी और वज्राङ्गसंवाद, तारकाख्यान, तारकासुरके साथ इन्द्रादिका संग्राम, १६ देवताओंका विष्णुके निकट आगमन और साहाय्यवार्थना, २० इन्द्रकर् क जम्भासुर-वध, तारकके युद्धमें देवताओंकी पराजय, देवताओंकी रक्षाके लिये विष्णुका मर्केटरूप धारण और दैत्यपुरमें गमन, २१ देवताओंका मकटक्षप धारण कर ब्रह्मलोक-ब्रह्मस्तव. पार्वतोगर्भमें गमन और देवगणकतृक कुमारोत्पत्तिप्रसङ्ग, २२ तारकप्रमावव गन, २३ हरगौरी-की विरहलीला, २४ हरपावतीका विहार, वीरनामक पुलजन्म, २५ दैत्यराजका पार्वतीरूपमें शिवके निकट आगमन, शिवका कोघ, 'शिला हो जा' इस प्रकार माता-के प्रति गणेशका अभिशाप, कौशिकीका सिंहवाहिनीरूप-प्रसङ्ग, विश्वामितकर् के शियके अन्टोत्तरशतनाम, कुमा-रोत्पत्ति, २६ कार्त्तिकेषका देवसेनापतित्व पर अभिषेक,

महोसागर-स्नानफल और कार्त्तिकेयके पाप दोंका व गन, २७ हैत्यसेनापति और तारकासुरके साथ कार्तिकेयका युद्ध, तारकवध, २८ लिङ्गनामनिक्कि, लिङ्गस्थापनफल, कपालेश और छिद्रमाहात्म्य, २६ कुमारेश्वरमाहात्म्य, ३० स्तम्भेश्वरमाहातम्य. ३१ पञ्चलिङ्गोपारूपान, ३२ शतश्रङ्ग नृपातमजा कुभारे के चरितप्रसङ्गमें समद्यीपादि वर्णन, ३३ सूर्यमण्डलादि व्योमलोककथन ३४ समपातालवर्णन, ३५ शतशृङ्गराजकन्या, कुमारीन्त्ररित. भारतखएडका कुलाचल और नदनग्रादिका विवरण, ३६ वर्षेरेश्वर-माहातम्य, ३७ महाकालप्रादुर्भाव, ३८ अष्टादश पुराणनाम. वराहकल्पमें धर्मशास्त्रकार ज्यासगणके नाम. विक्रपादित्य श्राह्क. बुद्ध प्रभृतिका आविभविकालनिर्णय, युगव्यवस्था, ३६ करन्यम-महाकालसंवादमें पापकार्यनिर्णय, लिङ्गपूजा और पूजामन्त्रादि कथन, महाकालमाहात्म्य, ४० मृत्युकथन वासुदेवमन्त्र, वासुदेवमाहात्म्य, ४१ आदित्यमाहात्म्य, ४२ दिव्यवर्णंन, ४३ कपिलेभ्बरप्रतिष्टा, स्मम्भतीर्थमें कार्त्तिकेयकर्तृक कुमारेशलिङ्गस्थापन कथा, ४४ वहून्क-कुएड और नन्दभग्नदित्यमाहातन्य, ४५ देव्युपाख्यान. ४६ सोमनाथोत्पत्ति, ४७ महोनगरस्थ जयादित्यादि तीर्थ-कथन, ४८ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, परलोकादिनिर्णय, ४६ कर्म-फलनिर्णय, कमउक्तत जयादित्य-स्त्रोत, ५० वर्वरीका-ख्यान, ५१ प्राग्डयोनियप्रसङ्गमें घटोस्कचके साथ भग-इत्त-कन्या विवाह, वर्ष रोक-नाम-निरुक्ति, ५२ घटोत्कन्य और उनके पुलकी द्वारका याला, श्रोकृत्मकतुंक वर्णधर्म और महाविद्यासाधन, ५३ क्षेत्रनाथमाहात्स्यप्रसङ्गमें कालिकाचरित, ५४ घटीत्कचके पुत वर्वरीकाल्यानमें अपराजितस्तोल, अङ्गसिद्धिकथन, ५५ भीमेश्वरमाहात्म्य, ५६ पद्माक्षास्तोल, देवीका नन्दगोपकन्यारूपमें आविर्माव प्रसङ्ग, देवीकर्तृक निज भावी अवतारकथन, कोलेश्वरी-वत्सेश्वरी और गयलाड़ामाहात्म्य, ५६ गुप्तक्षेत्रमाहातम्य, ५८ कपिलमाहातम्य ।

नारदपुराणके मतसे महेश्वरखण्डका शेवांग अरुणा-चलमाहात्म्य है, पर अभी वह माहात्म्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

२ वैष्णवखर्ड । नारद्वणित वैष्णवस्रएड स्वतन्त्र नहीं मिलता। Vol. XIV. 7 नारदीय विवरणके अनुसार भूमिखएड, उत्कलखंड, वद-रिकामाहात्म्य, कार्त्तिकमाहात्म्य, मथुरामाहात्म्य, माध-माहात्म्य, वैशाखमाहात्म्य, अयोध्यामाहात्म्य और गया-क्पमाहात्म्य वैष्णवखंडमें विवृत हुए हैं। ये सव उप-खंड स्वतन्त्र मिलते हें। उत्कलखंड छोड़ कर और कोई भो उपखंड वैष्णवखंडके अन्तर्गत नहीं है। यहां तक कि वद्रिकामाहात्म्य और कार्त्तिकमाहात्म्य स्कन्द्रपुराणीय सनत्कुमारसंहिताके अन्तर्गत हैं, यह प्रत्येक प्रन्थमें निर्दिष्ट हुआ है। इसी कारण केवल उत्कलखंडकी अध्यायकमानुसार सूची दो जाती है।

उत्कलखंडमें—१ अैमिनिप्रभृति मुनिगणसंवादमें जगन्नाथप्रसङ्गः, त्रह्मा-विष्णुसंवाद, सागरके उत्तर और महानदोके दक्षिण भगवत्क्षेत्रनिर्णय, २ नीलमाधवा-ख्यान, यमकर्रुं क नीलमाधवस्तव, ३ मार्कण्डेयआख्यान, ४ यमें वर-नीलकएठ-कामाख्या-विमला-नृसिंह-अर्ध्याक और अष्टलिङ्गमाहातय, इन्द्रद्युस्रआख्यान, इन्द्रद्युस्नका नीलाचलमाहात्म्यश्रवण और त्राह्मणप्रेरण, ५ त्राह्मण-क्षतियका नीलाचलदर्शन, पुर्डरीककर्तृक पुरुपोत्तम-स्तोत, अम्बरीपकर्नुक स्तव, भगवान्का विभृतिवर्णन, ६ उत्करुप्रशंसा, ७ इन्द्रसुम्नका आख्यान आरम्भ, इन्द्र-द्युम्नका नीलगिरिका माहात्म्यश्रवण, तत्कर्तः नीलाचल-पर निज पुरोहितप्रेरण, विश्वावसु शवर और पुरोहित-संवाद, ८ शवरकर् क रोहिण्यादि तीर्थप्रदर्शन, पुरोहित-का अवन्तिपुरमें इन्द्रद्युम्नके निकट आगमन, ६ पुरोहितके मुखसे इन्द्रगुप्तका नीलमाधव-वर्णन, इन्द्रगुप्तकर्तुं क नोलमाधवादिका स्तव, विद्यापति कर्तृक नोलमाधवका ह्रपवर्णन, १० विद्यापतिकर्नुं क क्षेत्र और देवताका मान-कथन. इन्द्रद्यु झ-नारदसंवाद, नारदकर्तुक विष्णुभक्ति-कथन, ११ नारदके साथ इन्द्रयुद्धका नीलाचलयाता-प्रसङ्गः इन्द्रद्युष्टका नीलाचल पर आगमन और उत्कलाधिपतिके साथ सम्भाषण, १२ नारद्कर्°क पकाम्रकाननमाहात्म्यकथन, १३ इन्द्रयुम्न और नारदका पकाम्रवनमें आगमन, विन्दुतीर्थमें स्नान और लिङ्गादि-दर्शन, १४ कपोतेशस्थली और विल्वेशमाहात्म्य, १५ विद्यापतिके मुखसे नीलमाधवका अन्तर्द्धान सुन कर इन्द्रचु म्नका मोह, नारदका आश्वास, श्वेतद्वीपसे नारद-

का मूर्ति आनयनप्रसङ्ग, १६ इन्द्रयु मञ्जत पुरुषोत्तप्रस्तव, १७ राजाभिप्रायसे विश्वकमं कर्तृ क नरसिंहप्रासाद्-निर्माण, इन्द्रचु मनकर्व क नर्रासहस्तव और नर्रासहक्षेत-माहात्स्य, १८ इन्द्रद्युम्नका अभ्वमेघ, सहस्र अभ्वमेघके बाद ध्यानमें इन्द्रसु झके पुरुषोत्तमादि मूर्त्तिदशन और तत्कत्र क स्तोत, १६ समुद्रके किनारे महावृक्ष देख कर राजाके प्रति सेवकका निवेदन, नारदकर्षं क श्वेतद्वीपस्थ विष्णुके रोमसे वृक्षीत्पत्ति कथन, इन्द्रद्युसका चतुर्भु ज-रूप वृक्षदर्शन और महोत्सवपूर्वक वेदी पर छा कर स्थापन, वृद्धब्राह्मण वेशमें विष्णुका मूर्त्ति निर्माणार्थं आग-मन, जगन्नाथ, वलराम, सुभद्रा और सुद्र्शका मूर्त्तिवर्णन, २० इन्द्रयुम्नकृत स्तव, नारदके उपदेशसे इन्द्रयम्नकी वासुदेव, वलमद्र और सुभद्राको पूजा, २१ नारदकतृ क तारक ब्रह्मको अपौरुणेय मूर्ति और श्रुतिप्रमाणताकथन, इन्द्रद्यु म्नकर्तृक जगन्नाथका प्रासादनिर्माण और प्रासाद-की प्रतिष्ठा करनेके लिये ब्रह्मलोकमें गमनोद्योग, २२ इन्द्रघु स्नका ब्रह्मलोकगमन, २३ नारदके साथ इन्द्रघु स्न-का ब्रह्मदर्शन और दारुब्रह्मकी प्रतिष्ठा करनेके लिये राजा-का निवेदन, देवगणकर्तुं क ब्रह्माके निकट नीलमाधवके द्रारुब्रह्मरूटवकी कारणजिज्ञासा, २४ देवगण और इन्द्र-द्युम्नसंवाद, २५ रथत्रयनिर्माण, विभिन्न रथलक्षण और रथप्रतिष्ठाविधि, २६ गाल नामक राजा और तत्कतृंक माधवका प्रस्तरमय प्रासाद-निर्माणकथन, गाल और इन्द्रद्युम्नका सम्भाष, २७ वासुदेवादिकी रथयाता और मूर्त्तित्वयका स्तव, भरद्वाजकर्तृक प्रासादमें देवप्रतिष्ठा, २८ ब्रह्मकर क नृसिहम्तोत, ब्रह्मकर क नृसिह-प्रशंसा, २६ दारुब्रह्मकर् क नीलाचलक्षेत्रमें अवस्थानकाल और गुरिडचादि महायाला-कथन, ३० भगवान्की ज्येष्ठ-स्नान-विधि, ३१ नरसिंह-स्नानविधि, स्नानयात्नाफल, ३२ दक्षिणामूर्त विधि, ३३ विभिन्न रथप्रतिष्ठाविधि, ३४ अध्व मेधसरोमाहात्म्य, महावैदीमाहात्म्य, ३५ रथरक्षाविधि, ३६ शयनोत्सव, दक्षिणायनविधि, श्वेतराजोपाख्यान, ३७ भगवान्का निर्माल्यमाहातम्य, ३८ युगधर्म, ३६ याता-न्तर फल निण य, ४० प्रावरणोत्सव, उत्तरायणोत्सव, ४१ वैकाव अग्निसंस्कारविधि, ४२ दोलारोहणविधि, ४३ साम्बद्सरव्रतकथन, ४४ द्मनभिक्षका, अक्षययाता, द्सा-

ख्यान, दक्षकृत जगन्नाथस्तव, ४५ भगवान्को भृति और महाभृतिका उपायनिर्णय, ४६ क्षेत्रमाहात्म्य, ४७ मोक्ष-खरूपनिर्णय, ४८ मुक्तिद्वारमाहात्म्य, ४६ दुर्वासाका क्षेत्र-गमन, ५६ दुर्वासाका विस्तय, ५६ नाम और स्नान-माहात्म्य, ५२ महामाघोस्नानविधि, ५३ महामाघोस्नान-माहात्म्य, ५४ कन्तु नामक मुनिकी कथा, महादेवोक्त अद्धोदय और महादानमाहात्म्य, ५५ स्कन्द्महादेवसंवाद-में दशावतारमाहात्म्य, इन्द्रादिकी अवतार कथा।

#### ३ ब्रह्मखराङ ।

२व धर्मारण्यमाहात्म्यमें---१ धर्मारण्यकथनविषयक स्तनारदादि प्रसङ्ग, धर्मारण्यकथाप्रसङ्गप्राद्धाटन, २ धर्मा-रण्यवर्णेन, तन्माहात्म्य और नामार्थकथन, ३ धर्मारण्य-में धमराजकी तपश्चर्या, धमाराजतपोभीत हह्यादि देव-कृत महादेवस्तुति, धर्मराजके तपमें वाधा डालनेके लिये इन्द्रकर्नु क अप्सराप्रेरण, नाना भूपणींसे भूपिता वर्ड नी अप्सराका हाथमें वीणा लिये धर्म राजके समीप गमन, स्त्रीमाहात्म्यवर्णनादि, ४ वर्ड नी अप्सरायम-संवाद, धर्मराजका पुनस्तपः, महादेवसे धर्मराजकी वरप्राप्ति, धर्म कत महादेवस्तुति, धमारण्यमाहात्म्यादि, ५ धर्मा-रण्य निवासिजनकर्त्तव्य, धर्मवापीमें श्राद्धकी कत्त-व्यता, युगधर्मकथनादि, ७ ब्रह्माकी उत्पत्ति, तत्कृत सृष्टि, ८ विष्णुके साथ देवतासंवाद, आह्रेय-विशिष्ट कौशकादिका गोत्र और प्रवरादिकी उक्ति, ६ विश्वावसु-गन्धर्वकन्याओंका धर्मारण्यस्थ वणिकोंके साथ विवाह, १० लोलजिह्नास्य राक्षसका धर्मारण्यमें उपद्रव, विष्णुरुत तच्छान्ति, वहांके सत्यमन्दिरमें धर्मेश्वर-स्थापनवृत्तान्त, ११ सत्यमन्दिरकी रक्षाके लिये दक्षिण द्वार पर गणेण-स्थापन, १२ सत्यमन्दिरके पश्चिम बकुळाईस्थापन और रविकुरुडोटपत्ति, १३ हयग्रीवदैवका हयमुखको रमणीयता सम्पादनार्थं धर्मारण्यमें तपश्चरण, हयमुखोत्पत्ति कथन. १४ हयग्रीवीपाख्यान, १५ राक्षसादिका भय दूर करनेके लिये सानन्दादेवीस्थापन, १६ श्रीमातृदेवीमाहात्न्यकथन, १७ कर्णाटक नामक दैत्योपाख्यान, १८ इन्द्रेश्वर, जयन्ते -श्वरमहिमादि वर्णन, १६ ध्रमीरण्यस्थ शिवतीर्थं, ध्रग-क्षेत्रतीर्थादि वर्णन, २० भट्टारिका-छताम्बिकादि कुल-देवियोंका गोलप्रवरकथन, २१ धर्मारण्यदिग्देवतास्थापन, देश देवासुरगुद्ध, देवपराजय, धर्मारण्यस्थ ब्राह्मणादिका पलायन, धर्मारण्यमें लोहासुरादि दैत्योंका प्रवेशकथन, २३ रामचित्ववर्णन, २४ रामकी नीर्थ याता, उन सव तीर्थोंमें स्नानादि करनेका फलकथन, २५ धर्मारण्यस्थ देवमन्दि-रादि जोणोंद्धारकरणार्थ रामके प्रति देवीका आदेश, २६ ताम्रपत्न पर धर्मशासनपत्नलिखनादि, २७ धर्मारण्यमें रामकर्तृक दानयश्चादि करण, २८ कलिधर्मकथन, रामदत्त ब्रह्मसहरणोद्धत कुमारपालराजके साथ विप्रसम्मापण, सेतुवन्धमें विप्रका गमन, वहां हनुमान्का समागम, हनुमान्के साथ द्विज्ञका कथोपकथन, २६ ब्राह्मणवृत्तिके उद्धारार्थ हनुमान्का उपाय, ३० ब्राह्मणवृत्तिको उद्धारार्थ हनुमान्का अवाय, ३० ब्राह्मणवृत्तिको स्वयः वृत्तिभोगो ब्राह्मणोंका परस्पर विरोधोत्पत्तिकथ-नादि, ३२, उन द्विजोंको अतीतवृतान्त-कथन, एतद्यवन्थ-प्रवणादिककथन।

३ग नहाोतरहांडमें--१ स्त और ऋषिगण-संवाद्में शिवमाहातस्यकीत्तं न, शिवपञ्चाक्षरमन्त्र, रिरंसकी सह-धर्मिणी कलावतीके प्रार्थनाकारी दनोहमादक यादवके उपाख्यानप्रसङ्गर्मे शैवमन्त्रमाहात्म्य कथन, शान्तचतुर्दशी-के शिवार्चनमाहातम्य-कथनप्रसङ्गमें इक्ष्वाकुकुलज मिल समेत राजाका उपाख्यान, नरमांसदानहेतु वशिष्टका कोप. उनके शापके प्रभावसे राजाकी राक्षसयोनित्वप्राप्ति, खस्थानगमनकथन, राजाका कल्मापपाद्त्वप्राप्तिकथन, तत्कृत मुनिकिशोरमक्षणादि वृत्तान्त, ३-४ गोकर्णमाहात्म्य-कीत्तंन, गोकर्णसे प्रत्यावर्त्तनकालमें महर्पि शीनककतुंक कुप्ररोगिणी काञ्चनचएडाली दर्शन और तद्विवरणकथन, शिवपूजामाहात्म्य, विमर्पण राजाका उपाख्यान और उनकी स्त्रीके सामने पूर्वजन्ममें निजका सारमेयत्व विवरणकथन तथा राज्ञीका भी पूर्वजनमर्मे कपी-तीत्ववृतान्तकीर्त्तन, ५-६ उज्जयिनीदेशस्थ महाकाळ-शिवलिङ्गका माहात्म्य, उज्जयिनीनाथ चन्द्रसेन नृपतिके राज्यमें मणिलुब्धप्रतिकृत राजाओंका युद्धार्थ आगमन-वृत्तान्त, शिवभक्त पञ्चवर्षाय गोपाल वालकका विवरण, प्रदोपकालमें गिरिशार्चनमाहात्म्य, विदर्भाधिपति सत्यरथ-का उपाख्यान, समरसंरम्भमें पुत्रप्रसवान्तर सत्यरथपत्नी विद्वताका जलपानाथं जलावतरण और ब्राहोदरमें प्रवे-शादि-वर्णन, ७-८ शाग्डिल्योक्त शिवपूजाविधि, शिवको

तुळसीपत्रदानकी अनावश्यकता, शिवस्तोत्रकीत्तेन, द्विज-नन्दन और राजनन्दनका निधानकलसप्राप्तिकथन, ग्रुधवे-कुमारीके साथ धर्मगुप्त नामक राजकुमारका विवाहानिक्यन, उपोप्य सोमवारमें शिवपूजाफलश्रुति. चित्रवमेंदुहिता-के साथ नलपौत चित्राङ्गद्का विवाहवर्णन, सोमवारवत-माहातम्य, नौकारोहण पर चन्द्राङ्गदेवका नौकाविहार, राजा-का जलनिगमन और नागराजके साध साक्षात्कार, ६-११ विद्भवासी सामविद् और वेद्वित् नामक ब्राह्मणकुमार-इयकी धनलाभार्थ दम्पतिवेशमें निपधराजपत्नीके समीप उपस्थिति और एकका स्त्रोत्वप्राप्तिविवरण, सीमन्तिनीका प्रस्तावकीत्तेन, पिङ्गळानाम्नी वेश्यामें अनुरक्त नन्दन नामक द्विजतनयका उपाख्यान, भद्रायु उपाख्यान, चन्द्राङ्गको कन्यारूपमें पिड्नस्टाका जन्मग्रहणवृतान्त, १२-१६ शिवचिन्तन-प्रकारकथन, शिवकवचकीर्त्तन, ऋपभ-कत्र क भद्रायुको शङ्कादि दान, भद्रायुक्ते साथ मगधीका युद्ध, कीत्तिमालिनीके साथ उनका विवाह, भट्टायुका जन्मवृत्तान्त, उनका माहात्म्यकीत्त नं, वामदेवसुनिका कौञ्चारण्यप्रवेशवृत्तान्त, वामदेव-ब्रह्मराक्षससंवादमें भस्स-माहात्म्यकीर्त्त न, सनत्कुमारके सामने शिवका विपुण्छ-धारणविधिकथन और तीन रेखाओंमेंसे प्रत्येकका नारद-दत्ताकथन, १७-१६ अभ्यहितत्वकथन, सिंहकेतु-कर्नुक वनके मध्य जीर्णदेवालयदर्शन और उसके अभ्यन्तर-प्रविष्ट गृहीत शिवलिङ्ग, शवरराजसंवाद्में शिवपूजाविधि-कथन, उमामाहेश्वरव्रतविधान, सर्पदर्शनसे मृतमर्जुका देवरथ-दुहिता शवरदाके साथ अन्यमुनिसंवादादि कथन, पार्वतीकर्तक उसे वरदान, २०-२२ रुट्राक्षमाहातम्य, अङ्ग-विशेषमें रुद्राक्षधारणमाहातम्य, एकवम्तादि रुद्राक्षमेद-कथन, काश्मीरस्थ सुधर्मतारक नामक राजा सत्यकुमार-उपाख्यान, शिववत वैश्यका उपाख्यान, रुट्टाध्यायमाहाट्य काश्मीर-नृपतिका उपाख्यान, शिवमाहात्य्यप्रधान पुराण-श्रवणमाहात्म्य, पुराणक्षकी प्रशंसा, पुराणकी निन्दाकरने-से दोपकथन, पुराणदानमाहात्म्यकथन, विदुर नामक ब्राह्मण वेश्यापतिका<sup>ं</sup> उपाख्यान, तुम्बुरुपिशाचका संवाद. ब्रह्माएडखएडमाहातम्यकथन, पुराणश्रवणफलानुवर्णन ।

४ काशी-खग्ड । प्दोर्दमें—१ विन्ध्यवर्णन, त्रिन्ध्यनारदसंवाद सीर विन्ध्यवद्ध न, २ सूयगतिरोध और देवगणका सत्यलोक-में गमन, ३ अगस्त्यके आश्रममें देवताओंका आगमन और आश्रमवर्णन, ४ पतिवताख्यान, ५ काशीसे अगस्त्य-का प्रस्थान, ६ तीर्थप्रशंसा, ७ शिवशर्मा नामक ब्राह्मण-का उत्पत्ति कथन, और सप्तपुरीवर्णन, ८ यमलोक-वर्णन, ६ अन्सरा और सूर्यछोक्य र्गन, १० इन्द्र और ्र अग्निलोकवर्णन, ११ वैश्वानरका उत्पत्तिकथन, १२ निर्म्धति और वरुणलोकवर्णन, १३ वायु और अलका-पुरोवर्णन, १४ चन्द्रलोकवर्णन, १५ नक्षत्र और वुध-लोकवर्णन, १६ शुक्रलोकवर्णन, १७ मङ्गल, गुरु और शनिलोकवर्णन, १८ सप्तर्पिलोकवर्णन, १६ घुवोपदेश-कथन, २० घ्रुवोपाल्यान और घ्रुवका भगवद्ग न, २१ भ्रुवस्तुति, २२ काणीप्रशंसा, २३ चतुर्भु जाभिवेककथन, २४ ग्रिवशर्माको निर्वाणवाप्ति, २५ स्कन्द और अगस्त्य-का दर्श न, २६ मणिकर्णिकाख्यानकथन, २७ गङ्गामहिमा वण न और दशहरास्तोल, २८ गङ्गामहिमा, २६ गङ्गाका सहस्रनाम, ३० वाराणसीमहिमा, ३१ कालभैरवप्रादुर्भाव, ३२ द्राउपाणिप्रादुर्भाव, ३३ ज्ञानवापीवर्णन, ३४ ज्ञान-वापीप्रशंसा, ३५ सदाचारकथन, ३६ सदाचारनिरूपण, ३७ स्त्री-रुक्षणवर्ण न, ३८ सदाचारप्रसङ्गमें विवाहादि-कथन, ३६ अविमुक्तेश्वर धर्म वण और गृहस्थधर्मकथन, ४०-४१ योगकथन, ४२ मृत्युलक्षण कथन, ४३ दिवोदास नृपतिका प्रतापवर्णं न, ४४ योगिनीप्रयाण, ४५ काशोमें चतुःपरियोगिनीका आगमन, ४६ लोलार्क-वर्णन, ४७ उत्तरार्कवर्णन, ४८ शाम्त्रादित्यमाहात्माकथन, ४६ द्रौप-दादित्य और मयूखादित्यवर्णन, ५० गरुड़े श्वर और खखोटकादित्यवर्णन ।

पराद्धमें पर अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य और समादित्यवर्णन, ५२ दशाश्व- मेधवर्णन, ५३ वाराणसीवणन और काशीमें गणप्र पण, ५८ पिशाचमोचनमाहात्म्यकोत्तंन, ५५ काशिवणन और गणेशप्र पण, ५६ गणेशमायाकथन, ५७ दुखि-विना- यक-प्रादुर्माव, ५८ विष्णुमाया और दिवोदास नृपितका किर्वाणप्राप्तिकथन, ५६ पञ्चनदोत्पत्तिकथन, ६० विन्दु- माधवप्रादुर्मावकथन, ६१ विन्दुमाधवाविर्माव और माधवप्रादुर्मावकथन, ६१ विन्दुमाधवाविर्माव और माध- वाग्निविन्दुसंवाद तथा वैष्णवतीथ माहात्म्यकथन, ६२

मन्दरपर्वतसे विश्वेश्वरका काशोमें आगमन और वृपभ-भ्वजमाहात्म्यकथन, ६३ जैगीषव्यसंवाद और ज्येष्ठेशा-ख्यानकथन, ६४ वाराणसोक्षेत्र-रहसाकथन, ६५ पराशरे-श्वरादि लिङ्ग और कन्दुकेश तथा व्याघ्रेश्वरलिङ्गकथन, ६६ शिलेश्वरलिङ्गकथन, ६७ रत्नेश्वरलिङ्गकथन. ६८ कृत्तिवाससमुद्भव, ६६ अष्टपिष्ट आयतनसमागमकथन, ७० वाराणसीमें देवताओंका अधिष्ठान, ७१ दुर्ग नामक असुरका पराकम, ७२ दुर्गविजयकथन, ७३ ओङ्कारेश्वर-महिमाचण<sup>६</sup>न, ७४ ओङ्कारेश्वरिसङ्गमाहात्म्य कथन, ७५ तिलोचनमाहात्म्य कथन, ७६ तिलोचनप्रादुर्भाव कथन, ७९ केदारेश्वरमाहात्म्य कथन, ७८ धर्मेश्वरमहिमा कथन, ७६ धर्मेश्वरकथाप्रसङ्गमें पक्षिगणकी कथा, ८० मनोरथ-तृतीयावनाख्यान, ८१ दुद्भका धर्मेश्वर आगमन और धर्मेश्वरलिङ्गं कथन, ८२ वं रेश्वराविभावमें अमित्रजित्-पराक्रमकथन, ८३ वीरेश्वराविभृविकथन, ८४ वीरेश्वर-महिमाकथन, ८५ दुर्वासा वर-प्रदानकथन, ८६ विश्व-कर्मेश्वर-प्रादुर्भाव कथन, ८७ दक्ष्यज्ञप्रादुर्मावकथन, ८८ सतीदेहिचसर्जनकथन, ८६ दक्षेश्वरप्रादुर्भाव कथन, ६० पार्व नीश्वरवण न, ६१ गङ्गे श्वरमहिमा, ६२ नर्म-देश्वराख्यान, ६३ सतीश्वराविर्मावकथन, ६४ अपृते-शादिलिङ्गश्रादुभाव कथन, ६५ व्यासदेवका भुजस्तम्भ-कथन, ६६ व्यासदेवका शापविमोक्षण, ६७ क्षेत्रतीर्थं-वर्ण न, ६८ विश्वेश्वरका मुक्तिमण्डपमें गमन, ६६ विश्वे-श्वरिलङ्ग-महिमाल्यान, १०० अनुक्रमणिकाल्यान और पञ्चतीर्थादि यात्राकथन ।

## प्रदेवाखग्ड।

१ कथारम्म, आदिकल्प ३५ अवतारवर्णन, ६ नर्म दामाहात्स्य कथन, ७ अश्वेतीर्थ, ८ विषुरो, ६ मर्क टोतीर्थ, १०-११ मतङ्ग (स्रुपि) व्याख्यान, १२ गङ्गा- जलतीर्थ, १३ मत्स्येश्वरतीर्थ, १४ शुक्कतापी, १५ कात्त- वीर्योपाख्यान, १६-१७ नागेश्वरतीर्थ, १८ जनकयब, १६ सप्तसारस्वत-तीर्थ कथा, २० ब्रह्महत्यापरिच्छेद, २१ सुक्जा, २२ विद्याच्रकोत्पत्ति, २३ हरिकेशकथन, २४ रेवाकुब्जासङ्गम, २५ माहेश्वरतीर्थ, २६ गर्द भेश्वरतीर्थ, २७ करमर्दे श्वरतीर्थ, २८ मान्धाताका उपाख्यान, २६ अमरेश्वरतीर्थ, ३० चतुःसङ्गम, ३१ पञ्चलिङ्गतीथ ३२

जावाली ब्राह्मणका सस्त्रीक ध्वर्गरोहण, ३३ पातालेध्वर, ३४ इन्द्रयु म्नयत्रमें नीलगङ्गावतार, ३५ वैदुर्य्यपर्वत, ३६ कपिलावतार, ३७ कल्पान्तदर्शन, ३८ चक्रस्वामियर्णन, ३६ विमलेश्वरतीर्थ, ४० स्तयागवर्णन, ४१ कावेरी-माहातम्य, ४२ चएडवेगामाहातम्य, ४३ एरएडोसङ्गम, ४४ दुर्वासाचरित. ४५ शल्योविशल्यानर्दा, ४६ भृगुपतन, ४७ बोङ्कारमहिमाकथन, ४८ पश्च म्हात्मकस्तव, ४६ वाराह-वर्गरोहण, ५० कपिलासङ्गममें घुन्घुमारोपाख्यान, ५१ मुचुकुन्द कुबलयाभ्व प्रभृतिका खर्गारीहण, ५२ नरक-वर्गन, ५३ नरकलक्षम, ५४ यमकर् क कर्मगतिवर्णना, ५५ गीदानमहिमा, ५६ मतङ्गाश्रनतीर्थ, ५९ नर्भज्ञा-माहात्म्य, ५८ शिवलोकवर्णन, ५६ शिवमहिमाकीर्त्तन, ६० वानरहेमदेह, ६१ रन्तिदेव-राजोपाख्यान, ६२ मातृ-स्तुति, ६३ कुब्जकानथ, ६४ विष्णुकोर्त्तन, ६५ नर्मदा-माहात्मा, ६६ अशोकविका, ६७ वागोध्वरपुर, ६८ वाराह-महिमा, ६६ शम्भुस्तुति, ७० ययातिशुक्कतीर्थ, ७१ होपे श्वरतोर्थ, ७२ विष्णुस्तुति, ७३ मेत्रनाद्छिङ्ग, ७४ दारु-तीर्थ, ७५ देवतीर्थ, ७६ दारुवचनश्रसङ्गर्मे नर्मदेश्वर-माहात्म्यकोर्त्तन, ७७ करञ्जेश्वरतीर्थ, ७८ कुएडलेश्वर-तीर्थ, ७६ पिप्पलेश्वरतोर्थ, ८० गुज्ञावतीर्थ, ८१ पञ्च-क्रिङ्गमहिमा, ८२ मृकएडाश्रम, ८३ हरि**णेश्वर, वाणेश्वर**, लुब्बकेश्वर, धनुरीश्वर और रामेश्वर पञ्चलिङ्ग-महिमा-कथन, ८४ अन्धकवध, ८५ अन्धकवध बरप्रदान, ८६ शूल-भेदोत्पत्ति, ८७ शूछभेदमहिमा. ८८ दोर्घतपाऋपिचरित-वर्णन, ८६ चित्रसेनमाहात्म्य, नन्दिगणकथा, ६० शवर-सर्गारोहण, ६१ भानुमतीका स्वर्गारोहण, ६२ अर्कतीर्थ, ६३ आदित्येष्ट्वरतोर्ध, ६४ अगस्त्यतीर्थ, ६५ भसाक्ष-वध, ६६ मणिनागतोर्थ, ६७ गोपालेश्वरतीर्थ, ६८ शृङ्ख-चूड़ातीर्थ, ६६ पराशरेश्वरतीर्थ, १०० नन्दातीर्थ, १०१ हुनूमदीख़र, १०२ उरसङ्गममें सोमनाथतीर्थं वर्णन, १०३ कपिलेश्वरतीर्थ, १०४ चकतीर्थ, १०५ चन्द्रा-दित्येश्वरतीर्थं, १०६ यमहासतीर्थं, १०७ व्यासतीर्थं, १०८ प्रभासतोर्थः, १०६ मार्कः ण्डेयेश्वरलिङ्गः, ११० मन्म-थेश्बरतीर्थ, १११ परएडतीर्थ, ११२ चक्रतीर्थ, ११३ रेवा-चरित्त-कथा।

## ्र भवन्तीखर्ड। इंश्वरीश्वर-संवादमें श्राद्धदानयोग्य पुण्यनदी वन-

प्रमृति निरूपणप्रसङ्गमें अशीतिसंख्यक लिङ्गमाहातस्य-कीर्त्तन, २ अवन्तीदेशस्य महाकालवन-वर्णन, ३ अगस्त्येश्वरपाहात्म्यादि वर्णन, असुररिप्रकृत देवतार्ओं-का मुखमालिन्य देख कर सन्तप्तहृदय अगस्त्यक रूक खतेजसे दानवकुङमक्षीकरण, अगस्त्वेश्वर-लिङ्ग-प्रतिष्ठा-विवरण. ४ गुद्धे श्वरिङ्गमाहात्माकोर्त्तन, मकरमहर्षि-का वृत्तान्त, ५ दुण्डेश्वरिलङ्गमाहात्म्य, गणनायक-दुण्डे-श्वरवृत्तान्त, ६ डमधकेश्वरलिङ्गमाहात्मा, रुष्युतकर्तृक सुरपुरसे निर्वासित वासवादि देवताशीका खेद और महाकालवनमें उनका पलायन, ७ अनादि कर्पेश्वरलिङ्ग-माहात्म , पद्मनाम और पद्मवोनिका विवाद और परस्पर-का ऊर्द्ध और अधोलोक-प्रयाणादि कथन, ८ खर्ग द्वारे-श्वरमाहात्मकोत्तेन, विद्वमुखनिहित सुवर्णका उद्भवादि कथन, तल्लामार्थ सुरासुरादिका परस्पर प्रहार और निधनादि, ६ विद्यपेश्वरिक्षङ्गमाहात्मः, देवर्षिके साथ देवेन्द्रका महाकालवनमें गमन, १० कपालेश्वरमाहात्मा, महाकालवनमें कापालिक वेशमें प्रविष्ट कपाल,के प्रति विप्रगणका लोग्नादि निक्षेप, ११ खर्ग द्वारेश्वर लिङ्ग-माहात्म कीर्त्तन, १२ विण्णुकर्तृक सुदर्शन द्वारा ताड़ित वोरभद्रका मृत्युवृत्तान्त सुन कर हाथमें शूल लिये शूल-पाणिका दक्ष्यक्रमें प्रवेश, १३ उपेन्द्रादिका अन्तर्ज्ञान, महेशकर्रुक खगंद्वारनिरोध, १४ ककेंटिश्वरलिङ्गमाहात्मा, मातृके शापसे भीत शेपगणींकी तपस्या, कर्कीटकका महाकाळचनमें प्रवेश, १५ सिद्धे श्वरलिङ्गमाहातमा, महाकालमें प्रवेशपूर्वक सिद्धगणका तपश्वरण, १६ लोक-पालेश्वरिलङ्गमाहात्मा, दानवकुलाकुलित लोकपालगण-का विष्णुके उपदेशसे महाकालवनमें गमन, १७ कामेश्वर-छिङ्गकोर्त्त न, १८ ब्रह्मशरीरसे कामका उत्पत्तिकथन, कामके प्रति ब्रह्मका शापदानादि, १८ कुटुम्बेश्वरलिङ्ग-माहात्मा, भगवान् नीलकराठकत्<sup>९</sup>क समुद्रोत्थित काल-कूटपान और महाकालवन-प्रवाहित शिप्राजलमें तत्प्रक्षे-पादि विवरण, १६ इन्द्रद्युम्नेश्वर-लिङ्गमाहात्माकथन, इन्द्रद्युम्नकी हिमालय पार्व पर तपस्यादि, २० ईशाने-श्वरिलङ्गमाहातम्य, कुकुण्डदानवकर्िक ताड़ित देवताओं-का नारदके उपदेशसे महाकालवनमें प्रवेशः .२१ अप्सरे-श्वरिक्ष्यमाहारम्यकोर्त्तन, वासवकर्षक रम्माके प्रति

अभिशाप, नारदोपदेशसे अभिशप्ता रम्भाका महाकाल-प्रवेश, २२ कलकलेश्वर लिङ्गमाहातस्य-कीर्त्त न, गिरिजायाके साथ गिरिशका कलहवृत्तान्त, ५३ चण्डेभ्बरिटङ्गमाहात्म्य, नारदके साथ ताओंका महाकालउद्देशसे गमन और राहमें नाग-चएडाख्य गणनायकके साथ संवाद्कथन, २४ प्रति-हारोपलिङ्गभाहातम्य, इंसद्सपधारी जातवेदाकर् क द्वार-पाल नन्दीको बञ्चन और रममान शिवाशिवके समीप उपस्थापन, विरुपाक्षकर्िक नन्दिशापदान, १५ कुक्रुटेश्बर लिङ्गमाहात्म्यकथन, रात्नमें कुक् ट्ररूपधारो कौंणिकाख्य-राजोपाख्यान, २६ कर्क<sup>टे</sup>श्वरमाहात्म्य, धर्मसृत्तिनामक राजाके समीप विशिष्टकर्तृक गजाका पूर्वजनम और शूद्रत्वजातिकीर्त्तान, २७ मेघनादेश्वर लिङ्गमाहात्म्य, मदान्ध नामक असुरकर्िक उपद्रुत दृहिणगणकी भगवद्र्यानार्थ श्वेतद्वीपगमनादि कथा, २८ महालयेश्वर-लिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, २६ मुक्तीश्वर-लिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, मुक्ति नामक ब्राह्मणके साथ उसे वधीचतव्याधसंवाद, ३० सोमेश्वरलिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, दक्षकन्याको परित्याग करके रोहिणीके प्रति चन्द्रकी अनुरक्ति पर दक्षका शाप-दान, ३१ नरकेश्वरमाहात्म्यकीर्त्तन, पुराकल्पीय कलियुग-में जीवगणके नरकयन्त्रणावर्णनप्रसङ्गमें निमि नामक नृपतीके साथ यमकिङ्करका संवादकथन, ३२ जटेश्वरलिङ्ग-माहात्म्यकीर्त्तन, रथन्तरकल्पीय चीरधन्वा नामक नरपति-का उपाच्यान, ३३ परशुरामेश्वरिलङ्गमाहात्म्य, परशुराम-कर्तृक अश्वमेध-यज्ञानुष्टान और नारदसंवाद, ३४ च्वने-**श्वरमाहात्म्यकथन, वितस्ताके किनारे तप**ण्चर्याञ्चत और वल्मीकभावप्राप्त च्यवन तथा शर्यानिकामिनीयोंका वृत्तान्त, ३५ पण्डेश्वरिङ्गमाहातम्य, भद्राश्व-अगस्त्यसंवाद, ३६ पत्तनेश्वरलिङ्गमाहातम्य, देवदेवदेवर्षिसंवाद, ३७ आनन्दे श्वरिलङ्गमाहात्म्य, रथन्तरकल्पीय अनमितके पुत आनन्**र**-ं राजका उपाख्यान, ३८ कडून्टेश्वरलिङ्गमाहात्स्य, प्रेत-राजको जीतनेके अभिप्रायसे दरिद्र द्विजशिशुको तपस्या, े ३६ इन्द्रेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, पुत्रनिपात सुन कर शतकतुका ं क्रोध और जटा तोड़ कर अग्तिमें निश्चेप, उसके प्रभावसे घृत्तुका उद्भवकथन, ४० मार्कण्डेपेश्वरलिङ्गमाहातम्य, पुत लामार्थं मृकण्डकी तपस्यादि, ४१ शिवेश्वरलिङ्गमाहात्म्य,

ब्राह्मकल्पीय रिपुञ्जय राजाका उपाख्यान, ४३ कुसुमेश्वर-लिङ्गमाहात्म्य, गणेशका कुसुमकीड़ादि कथन, ४३ अक्रूरे-१वरिलङ्गमाहात्म्य, भृङ्गिरीटके समीप अर्चना न जान कर पार्वतीका क्रोध, ४४ कुण्डेश्यरलिङ्गमोहात्म्य-कथन, पुत्रवीरको महाकालवनमे तपोरत छुन कर दर्शनार्थ पार्वतीपरमेश्वरका वहां गमन और गणा-ध्यक्ष कुण्डके साथ संवाद, ४५ लुम्पेश्वरलिङ्ग-माहात्म्यकीर्त्तन, म्लेच्छराज लूम्पकर्नृक वलात्कारपूर्विक होमधेनुग्रहण, मङ्गे %रमाहात्म्यकथन, गङ्गाके प्रति समुद्र-का शापदान, ४७ अङ्गारकेश्वरमाहात्म्य, शिवके शरीरसे अङ्गारकको उत्पत्तिकथा, अङ्गारकका मङ्गलादि नामप्राप्ति कथन, ४८ उत्तरेश्वर्रास्टङ्गभाहातम्य, इन्द्रको आज्ञासे मेचादिका वर्षणकाल कथन, ४६ नूपुरेश्वरमाहात्म्य, नूपुरकी नपस्मा, ५० अभयेश्वरमाहात्म्य, कमलजके अशु-विन्दुसे हेरम्बकालकाख्य दानवकी उत्पत्ति, ५१ पृथु-केश्वरलिङ्गमाहात्म्य, वेणके शरीरसे पृथुको उत्पत्ति, तत्-कृत घरादोहण, ५२ स्थावरेश्वरमाहात्म्यकीर्त्तन, छायाके गर्भसे शनिकी उत्पत्तिकथा, शनिके भयसे देवताओंका महादेवके समीप गमन, ५३ शूलेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, जम्मा-सुरकर्तृक वासवादिकी पराजय, गौरीकी प्रार्थनासे गिरीशके समीप अन्धककी दूत-प्रेरणादि कथा, ५8 ओंकारेश्वर-लिङ्गमाहातम्य, ओंकार नाम र्कापलाकतिका उपाल्यान. ५५ विश्वेश्वरस्टिङ्गमाहात्म्य. ५६ फण्टकेश्वर-लिङ्गमाहात्म्य, सूर्यं वंशीय सत्यविक्रम राजाका महाकाल इनमें गमन, वहां हुङ्कार द्वारा अलोकिक सृष्टिसंसर्थ मित्रचर नामक हाह्यणका उपाख्यान, ५७ सिंहेश्वरिटङ्ग-माहात्म्य, पशुपतिको पतिक्रपमें पानेको आशासे पार्व ती-की तपस्त्रा, पार्व तीके समीप ब्रह्माकृत शिवनिन्दा और पाव<sup>°</sup>तीके कोपसे सिंहादिको उत्पत्ति, ५८ रेवन्तेश्वर-लिङ्गमाहात्म्य, वड्वारूपधारिणो संज्ञाके गर्भसे अश्विनी-कुमारद्वय और रेवन्तका जन्मग्रहणवृत्तान्त, ५६ घण्टेश्वर-माहात्म्य, वण्टाख्यगणके विधातृ द्वारदेशमें सम्बत्सर अव-स्थानकथन ६० प्रयागेश्वरमाहातम्य, नारङ्कतृ क प्रिय-वतके समीप श्वेतद्वीपस्थ सरोवरोदरस्थ कश्चित् कामिनीका वृत्तान्त, ६१ सिद्धे श्वरिलङ्गमाहात्म्य, अश्व-शिर नामक नरपतिके साथ जैगोपष्य कपिलादिका संवाद,

६२ मातङ्गे व्यरलिङ्ग्याहातम्य, गर्शभोकर्त्तृक मातङ्ग नामक किसी द्विजपुतका पुत्रजन्म वृत्तान्तकथन, ६३ प्राग्**ज्योतिषपुराधिपतिकी** सीभाग्ने भ्यरिलङ्गभाहात्म्य, कन्या दुर्भागा अनङ्गमञ्जरीका खामिसीभाग्यप्राप्ति विवरण, ६४ रूपेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, पश्चकल्पमें पद्म नामक राजाका मृगयार्थं वनप्रवेश और कण्बदुहिताके साथ परिणयादि कथन, ६५ घतु सहस्र रवर लिङ्गमाहातम्य, वनके मध्य कुजमा दानवका गृहविवर देख कर शङ्कितहृद्य विदूरध राजाके साथ ब्राह्मणका संवाद, ६६ पशुपालेश्वरिलङ्गमाहा-तम्य, पशुपाल नामक राजाका दशुकानृ क आक्रमणवृत्तान्त, ६७ ब्रह्मे श्वरलिङ्गमाहात्न्य, पुलोम दैत्यकतु क क्षोरसागर-शायी पद्मनाभ-नाभिपद्म पर स्थित पद्मोद्भव पर आक्रमण और तपस्याके लिये महाकालवनमें गमन, ६८ जल्पेश्वर-लिङ्गमाहात्म्य, जल्पराजकुमार, खुवाहु, श्रतुमद्<sup>९</sup>, जय, विजय और विकान्तादिका विवरण, ६६ केट्रारेश्वरछिङ्ग-माहात्म्य, ब्रह्मपुरःसर शीतज्ञर्जरित निर्जरगणका पुरारि-के समीप गमन, ७० पिशाचेश्वरमाहात्स्य, जन्मान्तरमें नास्तिकताके कारण पिशाचत्वप्राप्ति, लोमश नामक किसी शूद्रका शाकटायनके साथ संवादकथनादि, ७१ सङ्गमेश्वरमाहात्य, कलिङ्ग विषयमें सुवाहु नामक किसी नरपति कर्तृक महिषीके सामने निज पूर्व जन्म-वृत्तान्त-कीर्त्तन, ७२ दुई पे स्वरिहङ्गमाहात्म्य, नेपालदेशवासी दुर्द्ध नामक राजाका मृगयार्थ चनप्रवेश और उन्हें ं भर्त्रुहर जान कर किसी द्विजकन्याका उपन्थानादि विवरण, ७३ प्रयागेश्वरिस्माहातम्य, शसुक्षय नामक हस्तिनापुरराज-कर्तृक वनके मध्य मनुव्य-रूप-धारिणी गङ्गाका पाणिप्रहण, ७३ चन्द्रादित्येश्वरसिङ्गमाहात्म्य, शन्वरासुरकर् क कतुभुक देवताओंका रणभूमिमें निर्याण, राहुभयार्द्दित सूर्यचन्द्रका विष्णुके सगोप गमन-विवरण, करभेश्वरलिङ्गबाहातम्य, मृगवार्थ गहनमध्यगत अयोध्याधिपति वीरकेतुकत्<sup>°</sup>क शरनिक्षेप द्वारा करभ-रूपी ऋपमदेववध-वृत्तान्त, ७६ राजस्थलेश्वरलिङ्ग-माहातम्य, ब्रह्माकी आज्ञासे अवन्तीदेशमें नायकत्वप्राप्ति, रिपुअयके पृथिवी-पालन समयमें पृथिवी पर बहुग-भावादि कथन, ७७ वड्वेश्वर छिङ्गभाहातम्य, नरवाहनो-धानमें विहार करते हुए मणिमद्रसुत वड्ळका उपाख्यान,

७८ अरुणेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, अरुणके प्रति विनताका शापदान, ७६ पुष्पदन्तेश्वरलिङ्गमाहातम्य, निमि नामक ब्राह्मणकी पुत्रलामार्थ तपस्था, शिवपार्पद पुष्प**दन्तकी** अधोगति, ८० अविमुक्तेश्दरिङ्गमाहात्म्य, शाकल-नगराधिप चित्रसेनका उपाख्यान, ८१ हनुमन्तेश्वरिस्टिङ्ग-माहात्स्य, रावणवधान्तर राजपद पर प्रतिष्टित रामचन्द्र-को सभामें समागत अगस्त्यादि महर्षिगणकर्तृ क अञ्जना-नन्दनकी प्रशंसा, वाल्यकालमें रविधारणार्थ हनुमान्-का कृतोद्यम और इन्ड्रकुलिशपात पर भ्रियमाण सनुमान्-का वरलामादि, ८२ खप्नेश्वरतिङ्गमाहातम्य, इक्ष्वाकुवंशोय कल्मापपाद राजाके प्रति 'राक्षस हो जा' इस प्रकार वशिष्ठका शापदान, ८३ पिङ्गलेश्वरमाहात्म्य, पिङ्गलेश्वर-का उपाख्यान, ८४ विल्वेश्वरमाहात्म्य, कृपिलविल्ववृ<del>क्ष</del> संवाद, ८५ कायावरोहणेश्वरिसङ्गमाहात्म्य, चन्द्रके प्रति दक्षका 'कायाहीन हो जा' ऐसा शाप, ८६ पिएडरेश्यर-लिङ्गमाहात्म्य, इक्ष्वाकुकुलतिलक अधोध्यापति परीक्षित् कर्तृक मृगयार्थ गहनवनमें प्रवेश और स्तराभिभूत किसी अपूर्व सुन्दरी कामिनीके साथ रमण-विहार करने-के वाद रमणीका अन्तर्द्धानादि-प्रसङ्ग ।

## ६ तापीखरह।

१ गोकर्णमुनिगणसंचादमें तापीके उभय तीरवत्तीं महालिङ्गकी कथा, तपतीके २१ नाम्कीर्चन, २ रामे श्वरक्षेत्रमाहात्म्य ३ शरभङ्गतीर्थ और गोलनदीमहिमा. ४ सनन्दतीर्थ, ५ उच्चैःश्रवेश्वरक्षेत्र, ६ स्थानेश्वरलिङ्ग, ७ प्रकाशकक्षेत्र, ८ गौतमेश्वर, ६ गौतमेश्वर और अक्ष-मालातीर्थ, १० करङ्कपावनतीर्थ, ११ खञ्जनमुनिका आश्रमवर्णन, १२ ब्रह्मे श्वरस्टिङ्ग, १३ मीमेश्वरस्टिङ्ग, १४ शिवतोर्थ, १५ चकतीर्थ, काश्यपीसरित् और अझरे-श्वरतीर्थ, १६ शाम्वादित्यतीर्थ, १७ गङ्गेश्वरतीर्थ, १८ अर्जु नेश्वरतीर्थ, १६ वासचेश्वर, २० महिणेश्वर, २१ - धारेश्वर, २२ अम्बिकेश्वर, २३ आमई केश्वर, २४ रामे-श्वरक्षेत, २५ कपिलेभ्वर, २६ वधिरेश्वर, २७ व्यावेश्वर, २८ विरहानदी, २६ पिङ्गळप्रस्थमें वैद्यनाथतीर्थ और भ्रम्बन्तरीतीर्थ, ३० रामेश्वरतीर्थ ३१ गीतमेश्वरतीर्थ ३२ गिलतेश्वर और नारदेश्वरतीर्थ, ३३ सोमेश्वरतीर्थ. ३४ रत्नेश्वरतीर्थ, ३५ उल्केश्वरतीर्थ, ३६ वरुणेश्वरतीर्थ,

३७ शङ्कृतीर्थं, ३८ कश्यपेश्वर, ३६ शाम्वार्कं तीर्थं ४० मोक्षेश्वरतीर्थं, ४१ मैरवी मुवनेश्वरीक्षेत, ४२ कपालेश्वरतीर्थं, ४१ मेरवी मुवनेश्वरीक्षेत, ४२ कपालेश्वरतीर्थं, ४४ कोटीश्वर और एकवीरातीर्थं, ४५ भवमोचनलिङ्गमाहात्म्य, ४६ हरिहरक्षेत्र, ४७ अम्बरीपेश्वर, ४८ अभ्वतीर्थं, ४६ भरतेश्वर, ५० गुप्तेश्वर, वारीताप्यक्षेत्र, ५२ कुरुक्षेत्र, ५३ अट्व्येश्वर, ५४ सिद्धेश्वर, ५५ शोतलेश्वर, ५६ नागेश्वर, ५७ जरत्कारेश्वर, प्रताललेख्वर, ५६ नागेश्वर, ५७ जरत्कारेश्वर, पातालिक्ष्व और तापीसागरसङ्गम इत्यादि माहात्म्य।

## द्रष्ठ नागरखरङ।

प्रचलित नागरखण्ड ३ परिच्छेदींमें विमक्त है --१म विश्वकर्माणाख्यान, २य विश्वकर्मयंशाख्यान श्रीर ३य हाटकेश्वरमाहात्म्य।

१म निश्वकर्मोपाह्यानमें—१ शिवपणमुखसंवादमें देवीप्रणयकथा, २ विश्वकर्मप्रपञ्च छि, ३ जगदुत्पत्तिप्रकरण, ४ ब्राह्मण्यगायहानिणय, ५ उपनयनसंस्कार, ६ 
उपनयनविधि, ७ सकल्प्रतसम्मव, ८ विश्वकर्मतनयोत्पत्ति, ६ जगदुत्पत्तिनिणय, १० ज्योतिपष्रहनश्रहराशिनिर्णय, ११ हन्मतप्रभव, १२ विश्वकर्माणाल्यान।

२। अश्वकमेव श्वणीतमें—श्वायतोमहिमानुवर्णेन, २ विश्वकमेकुळाचार, ३-४ विश्वकमैकुळाचारविधि, ५ विश्वकमे व शानुवर्णन, ६ पण्मतस्थापन ।

इय हाउकेश्व(प्राहातम्यमं — १ लिङ्गोत्पत्ति, २ त्रिशंकुका खपाख्यान, ३ हरिश्चन्द्रका राज्यत्याग, ४ विश्वामित्रमोह, ५ विश्वामित्रमोव, ६ विश्वामित्रका वरलाम, ७ तिशंकु का खर्गलाम, ८ हाउकेश्वरमाहात्म्य आरम्म, ६ नागविलका खर्गलाम, ८ हाउकेश्वरमाहात्म्य आरम्म, ६ नागविल पूर्तिविवरण, १० आनत्तीधिपवमत्कारसंवाद, ११ शङ्ख- तीर्थोत्पत्तिकथा, १२ चमत्कारपुरोत्पत्ति, १३ अवलेश्वरमाहात्म्य, १६ चमत्कारपुर-प्रदक्षिणमाहात्म्य, १६ चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १७ गयाशिर प्रतमोक्ष, १८, चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १७ गयाशिर प्रतमोक्ष, १८, चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, १८ चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, १८ चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, १८ चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, १८ चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, १६ चमत्कारपुर क्षिणमाहात्म्य, ११ चमत्कारपत्ति, २० वालमण्डनमाहात्म्य, ११ चमत्वीर्थमाहात्म्य, २४ गोक्षणं तीर्थात्पत्ति, २५ युगस्करप् गङ्गमाहात्म्य, २४ गोक्षणं तीर्थात्पत्ति, २५ युगस्करप् वस्थन, २६ तीर्थ समाश्चय-नामकोत्तेन, २७ पड्झरमन्त्व अपैर सिद्ध श्वरमाहात्म्य, २८ श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्य, २६

नागह्रदमाहात्मत्रकथन, ३० सप्तर्पिगणका आश्रममाहात्मा-कथन, ३१ अगस्त्याश्रममाहात्माकीर्त्तन, ३२ देवदानव-युद्धविवरण, ३३ अगस्त्यदेवीसंबादमें समुद्रशोपण और सगरमगीरथादिका जन्मप्रसङ्ग, ३४ अगस्त्यनिर्दित चित्रे-व्वरीपीठमाहात्मा, ३५ दुःशोलप्रासादोत्पत्ति, ३६ धुन्यु-मारेश्वरमाहात्मा, ३७ यथातोश्वरमाहात्मा, ३८ चित्र-शिलामाहातमा ३६ जलशायीकी उत्पत्ति, ४० जैत-तृतीयामें उस जलके स्नानसे स्त्रीपुरुषगणका दिव्यरूपप्राप्ति-विवरण, ४१ मेनकातापससंवादमें पाशुपतवतमाहात्मा-कीर्त्तन, ४२ विश्वामित्रमाहात्मा और तीथीत्पत्ति, ४३ तियुक्तरमाहात्मा, ४४ सरस्वतीतीर्थं माहात्मा, ४५ महा-कालमाहात्मा, ४६ उमामाहेश्वर-संवाद, ४७ चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्मामें कलशेश्वराख्यान, कलशशापदान-कथन, ४८-४६ कलशेश्वरमाहात्माकीर्त्तन, ५० च्ह्रकोष-माहात्मा, ५१ भ्रणगत्तीमाहात्मा, ५२ नलकृत वर्ममुखा-स्तुति, ५३ नलेश्वरमाहात्मा, ५८ साम्वादितामाहात्मा, ५५ गाङ्गे योपाख्यान, ५६ शिवगङ्गामाहात्मा, ५७ विदुरा-गमनोत्पत्ति, ५८ नगरादितामाहात्मा, ५६ कर्मवृद्धिसे मानवादिका जन्म और कर्मश्रयसे जीवादिका निर्वाण-प्राप्तिकथन, ६० शर्मिष्ठातीर्थं माहात्मा, ६१ सीमनाथी-त्पत्ति, ६२ दुर्गामाहात्मा, ६३ आनर्त्त केश्वर और शूद्र-केश्वरमाहात्मा, ६४ जमद्ग्निवधाख्यान, ६५ सहस्रा-र्जु नवघ, ६६ परशुरामोपाख्यानमें समुद्रके समीप स्थान-प्राथ ना, ६७ रामह्रदोत्पत्ति, ६८ तारकासुरको उत्पत्ति, देवदानवयुद्ध, कार्त्तिकेरोद्धवप्रसङ्ग, ६६ शक्तिमाहात्मा, ७० तिस्रतर्पण और दानमाहात्मा, ७१ आनर्त्त विषयमें ह्राटकेश्वरक्षेत्रोद्भवकथन, क्षेत्रस्थ प्रासाद्पद्धतिकथन, ७२ यादवलिङ्गप्रतिष्ठा, ७३ यज्ञभूमिमाहात्म्य, ७४ हरा-श्रयचेदिकामाहात्मा, ७५ रुद्रशिर जागेश्वरमाहात्मा, ७६ वालिखिल्याश्रमकथन, ७७ सुपर्णाख्यमाहातम्यमं गरुड्-तारद्का विण्णुदर्श नसंवाद, ७८ सुपर्णास्थोत्पत्ति, ७६ सुपर्णाख्यमाहात्मा, ८० श्रोक्तव्याचरिताख्यान और हाट-केश्वरमाहात्मा, ८१ महालक्ष्मीमाहात्मा, ८२ सप्तर्विशति-का माहात्मा, ८३ सोमप्रासादमाहात्मा समाप्ति, ८४ आम्रवृद्धामाहारमामें कालादि यवनका अभ्युत्थान और द्वगणकर्षक हननं, ८५ श्रीमाताका पादुकामाहात्माः,

प्रथम और द्वितीय खण्ड समाप्ति, ८६ वसीर्द्धारामाहात्मा, ८७ अम्तितोयोत्पत्ति, ८८ ब्रह्मकुएडमाहात्मा, ८६ गोमुख-माहात्मा, ६० मोहयष्टिमाहात्मा, ६१ अजपाळीश्वरी-माहात्मामें शङ्करका व्याद्यरूपत्वकथन, ६२ द्शरथशनै-श्चरसंवाद, ६३ राजवापीमाहात्मामें रामेश्वर लक्षणेश्वर और सीतादेवीमूर्त्ति-प्रतिष्ठाकथन, ६४ रामकतृ क दुर्वासा-का अध्य दान और चातुर्मास्यवृत्तान्तमें दुर्वासाका पारणकथन, ६५ कुशको राज्यदानपूर्वक रामका किष्किन्ध्यागमन और सुग्रीवादि वानरके साथ सम्भा-षण, ६६ रामका पुष्पकारोहण पर लङ्कागमन और विभी-पण-संवाद, रामकर्िक सेतुप्रान्तमं रामेश्वरलिङ्ग-प्रतिष्ठा, ६७ रामचरितप्रसङ्गर्मे लक्ष्मणेश्वरमाहात्म्य, ६८ आनर्त-माहात्मार्मे विष्णुकूपिका प्रशंसा, ६६ कुशलवचरित-प्रसङ्गमें कुरोश्वर और लवेश्वरलिङ्गमाहात्मा, १०० राक्षस लिङ्गच्छेदन, १०१ लुप्ततीर्थकथा, १०२ चित्रशर्माका लिङ्ग<del>स्</del>थापन, १०३ अष्टपप्रितीथ<sup>°</sup>नाम, १०४ 'अप्र-**छिङ्गनाम और तन्माहात्मा्रकथन**, पष्टितीर्थ स्थ १०५ दमयन्तीका उपाख्यान, १०६ दपयन्ती-चरितमें उपरोत्पत्ति, १०७ आनर्साधिपका पुरनिर्माण, ६४ गोतज ब्राह्मणसंस्थापन, पुरमें महाव्याधिका प्रकीप, राष्ट्रध्वंस होनेका उपक्रम, ब्राह्मणगणकर्त्तुक शान्तिकार्य, विजात नामक ब्राह्मणकत्तृंक द्रव्यदूपणकी कथा, अग्निकुएड-माहातम्य, यज्ञकुण्डस्पशेंसे विज्ञातके शरीरमें विस्फोटक-उत्पत्ति, १०८ बिजानका वनगमन और महेश्वरप्रसाद-लाम, मौद्रत्यगोत देवराजपुत काथकी नागपञ्चमीमें नाग-हत्या, कुद्ध नागगणका चमत्कारपुरमें आगमन, ब्राह्मण का चमत्कारपुरत्याग, चमत्कारपुरवासी एक ब्राह्मणका वनमें विजातके साथ साक्षात् और नागके हाथसे चमत्-कारपुरका दुर्देशावणन, शिवके निकट विजातका नागहर-मन्त्रलाभ, त्रिजातका चमत्कारपुरमें आगमन, नागहरमन्त्र-के प्रभावसे सर्पोंकी निर्विपता, चमत्कारपुरका 'नगर' नाम, वहांके ब्राह्मणोंको 'नागर' संज्ञा, १०६ नागरब्राह्मणों-का गोत्तनिर्णय, ११० अम्वारेवतीमाहात्म्य, १११ भद्विका-तीर्योत्पत्ति, ११२ क्षेमङ्करी और रैवतेश्वरोत्पत्ति, ११३ देवीसैन्यपराजय, महिपासुरप्रभाव, ११४ कात्यायनीकी उत्पत्ति, ११५ महिषासुर-पराजयमें कात्यायनीमाहात्म्य,

११६ केदारोत्पत्ति, ११७ शुक्कतीर्थमाहात्म्य, ११८ वाब्मीकिनामनिरुक्ति, मुखारतीर्थोत्पत्ति, ११६ कर्णोत्पला तीर्थप्रसङ्गमें सत्यसन्धकथा, १२० सत्यसन्धेश्वरमाहात्म्य, १२१ कर्णोत्पळातीर्थमाहात्म्य, १२२ हाटकेश्वरोत्पत्ति, १२३ याज्ञवल्कग्राश्रममाहात्म्य, १२४ पश्चपिष्डिका गौरीकी अत्पत्तिकथा, १२५ पञ्चपिरिडका गौरीमाहात्म्य, ईशानी-त्पत्ति, १२६ वास्तुपदोत्पत्ति, १२७ अजागृहोत्पत्ति, १२८ खण्डशिल<del>ा सौभाज्ञकू</del>पिकोत्पत्ति, १२६ वर्द्धभानपुरीय पतिव्रतावरलाम, १३० दोर्घिकामाहात्मा, ३१ धर्मराजेश्व-रोत्पत्ति, १३२ धर्मराजेश्वरमाहात्म्य, १३३ धर्मराजसुतो-द्भवकथा, १३४ आनर्त्ताधिप वसुसेनचरितप्रसङ्गमें मिप्रान-देश्वरमाहात्मा, १३५ गणपतित्रयमाहात्मा, १३६ जावालि-आख्यानमें जावालिक्षोभ, १३७ जावालि-फलवतीआख्या-नमें चिताङ्गदेश्वरमाहातमा, १३८ अमरकेश्वरमाहातमा, १३६ अमरकुएडमाहात्मा, १४० व्यास-शुक-संवाद, १४१ वटेश्वरमाहात्म्य, १४२ अन्ध्रकाख्यान, १४३ अन्ध्रकाख्यान-में केलीश्वरमाहात्म्य, १४४ अन्धकाख्यानमें भैरवमाहात्म्य; १४५ युधिष्ठिराजुँ न-संवादमें चक्रपाणिमाहात्मा, १४६ अप्सरसकुएडोत्पत्ति, १४७ आनन्देश्वरमाहात्मा, १४८ पुष्पादितग्रोत्पत्ति, १४६ पुष्पादितग्रमाहात्मा, १५० पुष्पचर-लामकथन, १५१ मणिभद्रोपाख्यान, १५२ पुष्पविभवप्राप्ति, १५३ पुष्पागमन, १५४ पुष्पादित्रमाहात्मर, १५५ पुरस्च-रण-सप्तमीवत, १५६ वाह्यनागर संज्ञक व्राह्मणोत्पत्ति, १५७ नगरादिता, नगरेश्वर और शाकम्भरीकी उत्पत्ति, १५८ अश्वतीर्थोत्पत्ति, १५६ परशुरामोत्पत्ति, १६० विश्वामित्रराज्य-परित्राग, १६१ धारोत्पत्ति, १६२ धारा-माहात्माः, १६३ नागर-ब्राह्मणका कुलदेवता वर्णन, १६४ सरखतीका अभिशाप, १६५ सरखतग्रोपाख्यान, १६६ १६७ याज्ञवल्भयेश्वरोत्पत्ति, १६८ पिप्पलादीत्पत्ति, कंसारीश्वरोत्पत्ति, १६६ पञ्चपिण्डिकोत्पत्ति, १७० पञ्च-पिरिडका-गौरोकी उत्पत्ति, १७१ पुष्करोत्पत्ति और यज्ञ-समारम्म, १७२ ब्रह्मयन्नारम्म, १७३ नागरब्राह्मणींका गर्त्ततीर्थं में प्रेरणं, गायली-विवाह और गायलीतीर्थों-त्पत्ति, १७४ प्रथम यज्ञदिनमें रूपतीर्थोत्पत्ति, १७५ नागतीर्थोत्पत्ति, १७६ दूसरे दिनमें पिङ्गलाख्यान, १७६ तीसरे दिन अतिथितीथोंत्पत्ति, १७७ अतिथिमाहात्म्य,

१७८ राक्षस्त्रशाद्धकथन, १७६ मातृगणागमन, १८० उदुम्चरीकी उत्पत्ति, १८१ ब्रह्मयज्ञावभृथ-यक्ष्मीतीर्थों-त्पत्ति, १८२ सावित्नीमाहात्मा, १८३ गायतीवरप्रदान, १८४ ब्रह्मज्ञान-सूचना, १८५ आनत्त राजकन्या रत्नवती-की कथा, १८६ रत्नवतीआख्यानमें नृहद्वलराजसंवाद, १८७ परावसु नामक नागर-ब्राह्मणसंचाद, भर्नु<sup>:</sup>यज्ञ, १८८ रत्नवतीके साथ विवाह करनेकी आशासे दशार्णाधिपति-का आगमन, रत्नवतीकी विवाह करनेमें अनिच्छा और तपस्याकी इच्छा, शूद्राब्राह्मणीमाहातम्य, १८६ कुरुक्षेत्र, हाटकेश्वर, प्रभास, पुक्तर, नैमिष, धर्मारण्य, वाराणसी, द्वारका और अवन्ती आदि क्षेत्रान्तर्गत पुण्यतीर्थं निरूपण, विशेष दिनमें तीर्थं स्तानफल, कुशका शासनवर्णन, भर्तुः यज्ञप्रसङ्ग्रमें विश्वामित-कथित कुम्मकयज्ञाख्यान, १६० अन्यज प्रभायवर्णन, भत्<sup>र</sup>यज्ञमर्यादाकथन, १६१ शुद्धनागर और देशान्तरगत-नागरकी शुद्धि और नागरप्रश्न-निर्णय, श्राद्धकथन, विश्वामितका भानु यज्ञप्रसंगमें नागर ब्राह्मणोंका अथव्वेवेद्निर्णय, १६३ नागरविशुद्धिकथन, १६४ नागरत्राह्मणका प्रेत-श्राद्वादि कथन, १६५ शक-विग्णुसंवाद्में प्रेतकृत्य, १६६ वालमण्डनमाहात्स्य, १६७ इन्द्रमहोत्सव, १६८ गीतमेश्वर-माहात्म्य, १६६ नागरखेद और शङ्कादित्योत्पत्ति, २०० श्रङ्खतीर्थं माहात्म्य, २०१ रत्नादित्यमाहात्म्य, २०२ विश्वा-मिलके प्रभावसे शाम्त्रादित्यप्रभाव, २०३ गणपतिपूजा-माहात्मा, २०४ श्राद्धकल्प, २०५ श्राद्धीत्सव, २०६ श्राद्ध-कालनिर्णय, २०७ नागरशाखा और श्राद्धमें भोज्यनिर्णय, २०८ काम्पश्राद्धनिणय, २०६ गजच्छायामाहात्मा, २१० श्राद्धकल्पपरीक्षा, २११ श्राद्धकल्पमें चतुर्दशीशस्त्रहत-निण<sup>९</sup>य, २१२ द्वाद्ग्विध पुत्न, श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी पुत्रनिर्णय, २१३ पितृपरितोपार्थ मन्त्रकथन, े <sub>२१४</sub> पकोहिए और संपिण्डोकरणविधि, २१५ भीषा-युधिष्ठिरसंवादमें नरकगतिकथन, २१६ भीष्मयुधिष्ठिर-संवादमें नरकवारण कार्य, २१७ जलशायिमाहात्म्य, २१८ मृङ्गरीटकी उत्पत्ति, २१६ अन्धकपुत वृकका इन्द्र-राज्यलाम, २२० वृकासुरप्रभाव, अशून्यशयनव्रतप्रसङ्गमें जलशायोकी उत्पत्ति, २२१ चातुर्मास्य व्रतनियम, २२२ अग्रुत्यशयनवंतकथा, २२३ हाटकेश्वरान्तर्गत मङ्कणक

शुद्धं श्वरादि मुख्यतीर्थं कथन, २२४ शिवराविमाहातमा, २२५ तुलापुरुषदानमाहातमा, २२६ पृथ्वीदानमाहातमा, २२७ वाताप्येश्वर और कपालमोचनेश्वरोत्पत्ति, २२८ इन्द्रयु साख्यानमें सप्तलिङ्गोत्पत्तिविवरण, २२६ युग-स्वरूपकथन, २३० दुशीलोपाख्यानमें मासकमसे देवदर्शन फल, २३१ एकादशरु होत्पत्ति और तन्माहात्म्य, २३२ द्वादशाके तथा रत्नादित्योत्पत्तिकथा, २३३ हाटकेश्वर-माहात्मा समाप्ति, पुराणश्रवण-फल ।

#### ७ प्रभासखाइ ।

१ लोमहर्पण—मुनिगणसंवाद, ऑकार-प्रशंसा, पुराण और उप-पुराणका संख्यानिर्णय, प्रतेत्रक पुराणका रुक्षण और दानविधिकथन, सात्विक राजसादि पुराणनिर्णय, स्कन्द्पुराणका खण्डनिर्णेय, २ स्तर्पिसंवादमें कैलास-वर्णन, देवीकृतशिवस्तव, शिवका निज खरूपकथन, ३ शिव-पार्वतीसंवादमें तीर्थसंख्या, तीर्थयाता और तीर्थमाहात्मा-वर्णन, प्रभासक्षेत्रप्रशंसां, ४ प्रमासक्षेत्रको सीमा, परि-माण और संक्षेपमें तन्मध्यगत प्रधान प्रधान तीर्थ, मैरव और विनायकादि कथन, ५ सोमेश्वर-वर्णन, ६ सोमेश्वर-माहात्म्य, ७ प्रभासका पीठस्थाननिर्णय, शिवकथित प्रधान प्रयान तीर्थ स्थाननिर्णय, रहविभाग, ८ जम्बूहीप और तदन्तर्गत वर्ष विवरण, क्रूर्मलक्षण, प्रभासनाम निरू-क्तिकथन, विशिष्टादि ऋषि-कथित ईश्वरस्तव, अर्कस्थल-माहात्म्य, राजभट्टारकोत्पत्तिकथन, ६ परमेश्वरोत्पत्ति, १० पवित्र नामकरण और अर्कस्थल उत्पत्ति, ११ सिद्धे -व्रवरोत्पत्ति, १२ पापनाशनोत्पत्ति, १३ पाताळ-विवर और सुनन्दादि मातुगणीत्पसि, १४ अर्कस्थलमाहातमासमाप्ति, १५ विष्णुका अवतार-कथन, १६ वन्द्रोत्पत्तिकथन, १७ सोमेश्वरोत्पत्तिकथन, १८ सोमनाथमाहात्मा, १६ सोमे-श्वरप्रतिष्ठाकथन, २० सोमेश्वरमहिमावर्णन, २१ सोमे-श्वरव्रत, २२ गन्धर्वेश्वरमाहात्मा और यात्राविधान, २३ सागरके प्रति अभिशापवर्णन, २४ सोमेश्वरयाता और तीथं स्थानकथन, २५ वड्यानलोत्पत्ति, २६ वड्वानल-चर्णन, २७ वड्वानलप्रभाव, २८ सरखस्यवतार और सरखतीनदीमहिमा, २६ सरखती-सागरसङ्गम पर अनि-तीथ माहात्मा, ३० प्राची सरखतीमाहात्मा, ३१ कङ्कण-माहात्मा, ३२ कपहींशमाहात्मा, ३३ केदारेश्वरमाहात्मा,

३४ भीमेश्वरमाहात्मा, ३५ मेरवेश्वर, ३६ चएडीश, ३७ भास्करेश्वर,३८ अनरकेश्वर, ३६ ब्रुश्रेश्वर, ४० वृहस्पतीश्वर, ४१ शुक्रेश्वर, ४२ शनैश्चर, ४३ राह्रीश्चर, ४४ केश्वीश्वर, ४५ सिद्धे श्वर, ४६ कपिलेश्वर, ४७ विमलेश्वर आदि पञ्च-लिङ्गमाहात्मा, ४८ वरारोहमाहात्मा, ४६ अजपालेश्वरी-माहात्मा, ५० रुद्रशक्तिवयसंकेत, ५१ मङ्गलामाहात्मा, ५२ ललितामाहात्म्य, ५३ चतुर्देवीमाहात्म्य, ५४ लक्ष्मीश्वर, ५५ वाड्वेश्वरं, ५६ अटेश्वरं और ५७ कामेश्वरमाहातम्य, ५८ गौरीतपोवनमाहात्मा, ५६ गौरीश्वर, ६० वरुणेश्वर, ६१ डोभ्बर, ६२ जलवासगणेश्वर, ६३ कुमारेश्वर, ६४ साकल्येश्वर, ६५ कल्कलेश्वर, ६६ नकुलेश्वर, ६७ उतंके-श्वर, ६८ वैश्वानरेश्वर, ६६ गीतमेश्वर, ७० दैत्यघ्नेश्वर-माहात्मा, ७१ चकतीर्थ, ७२ योगेशादि-लिङ्गमाहात्मा, ७३ षादिनारायण, ७४ सन्निहत्या, ७५ पाएडवेश्वर, और ७६ एकादशरुद्रमाहात्मा, भूतेश्वर, ७७ नोलरुद्र, ७८ कपालेश्वर, ७६ वृषमेश्वर, ८० लाम्बकेश्वर, ८१ अधोरेश्वर, ८२ भैरवेश्वर, ८३ मृत्युञ्जयेश्वर, कामेश्वर, ८४ योगेश्वर, ८५ चन्द्रेश्वर, ८६ एकादशरुद्रमाहात्मार-समाप्ति, ८७ चक्रधरमाहात्माप्रसङ्गमें पौंडूक वासुदेवा-ख्यान, ८८ शाम्वादित्यकथा, ८६ शाम्वादित्यप्रभावसे शाम्बकी रोगमुक्ति, ६० कएटकशोधिनी और महिषद्मी-माहात्मा, ६१ कपालोश्वर, ६२ कोटीश्वर, ६३ वालब्रह्म-माहात्मा, ६४ ब्राह्मणप्रशंसा, ६५ ब्रह्ममाहात्मा, ६६ प्रत्यु-षेश्वर, ६७ अनिलेश्वर, ६८ प्रभासेश्वर, ६६ रामेश्वर, १०० लक्ष्मणेश्वर, १०१ जानकीश्वर, १०२ वामनखामी, १०३ पुष्करेश्वर, १०४ कुएडे श्वरी गौरी, १०५ गौर्यादित्य, १०६ वलातिवलदैत्यम्री और गोपीश्वर, १०७ जामद-गन्पेश्वर, १०८ चिलाङ्गदेश्वर, १०६ रावणेश्वर, ११० सौमाग्येश्वर, १११ पौलामोश्वरी, ११२ शारिडल्येश्वर, ११३ सागरादित्य, ११४ उप्रसेनेश्वर, ११५ पाशुपतेश्वर, -११६ भुवेश्वर, ११७ महालक्ष्मी, ११८ महाकाली, ११६ पुकरावर्त्तनदी, १२० दु:खान्तगीरी, १२१ लोमेश्वर, १२२ कङ्कालमेरवक्षेत्रपाल, १२३ चितादित्रा, १२४ चित्रपथा-नदी, १२५ चित्रेश्वर, १२६ कनिष्ठपुष्कर, १२७ व्रहाकुएड, १२८ रूपकुराडल, १२६ भैरवेश्वर, १३० सावितीश्वर, १३१ नारदेश्वर, १३२ हिरण्येश्वरभेरवमाहात्मा, त्रहाकुण्ड-

माहात्मासमाप्ति, १३३ गायतीश्वर, १३४ रत्नेश्वर, १३५ सत्यभामेश्वर, १३६ अनङ्गेश्वर, १३७ रत्नकुएड, १३८ रेवन्त, १३६ अनन्तेश्वरमाहात्मा, १४० अप्रकुलेश्वर. १४१ नासत्येश्वर १४२ सावित्रोमाहात्मा आरम्म, १४३ साविलीका प्रभासमें आगमन, १४४ साविलीमाहात्मार-समाप्ति, १४५ भूतमाठ्का, १४६ शालकटङ्करा, १४७ वैवस्रतेश्वर, १४८ मातृगणवल, १४६ दशर्थेश्वर, १५० भारतेश्वरं, १५१ कुशकेश्वरादि लिङ्गचतुप्रयं, १५२ कुन्ती-श्वर, अर्कस्थल, सिद्धे श्वर, नकुलीश, भार्गवेश्वर, माएड-वेभ्वर, पुःपदन्तेभ्वर, क्षेत्रपाल, वस्तुनन्दा मातृगणमुख-विवरण, त्रिसङ्गम, मङ्गीश्वर, देवमाता गौरी, नागस्थान, प्रभासेभ्वर, १५३ ठट्टेश्वर, मोश्लस्वामी अजीगर्त्तेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, अनरेश्वर, वृद्धप्रभास, १५४ जलप्रमास, १५५ दक्षयन्नविध्वंस, १५६ कामकुराठ, कालमैरव, रामे-श्वर, १५७ मङ्कोश्वर, १५८ सरस्वतीसङ्गम, १५६ श्राद्ध-कल्प, १६० सरस्रतीसागरसङ्गम पर श्राद्वविधि, १६१ ब्राह्मधर्ममें पात्नापातविभेद, १६२ श्राद्धकल्पसमाप्ति, १६३ मार्कएडे येश्वर, पुलहेश्वर, कत्वीश्वर, कश्यपेश्वर, कौशिकेश्वर, कुमारेश्वर, गौतमेश्वर, देवराजेश्वर, मानवे-श्वर, मार्कंग्डयेश्वरमाहात्मासमाप्ति, १६४ वृपघ्वजेश्वर, ऋणमोचन, पुरुषोत्तम, १६५ सम्वर्तेश्वर, १६६ वलभट्टे-श्वर, गङ्गा, गङ्गागणपति, १६७ जाम्ववती, पाएडवकूप, १६८ दशाश्वमेधिक, मेघादि लिङ्गतय, १६६ थादवस्थलो-त्पत्ति, वज्रे श्वरमाहात्मा, १७० हिरण्यानदी, नगरार्क, १७१ वलभद्र, रूप्ण, शेष, १७२ कुमारी, १७३ ब्रह्म भ्वर, पिङ्गानदी, दिव्यसुखेश्वर, ब्रह्मेश्वर, सङ्गमेश्वर, गंगेश्वर, शङ्करादित्य, शङ्करनाथ, घण्टेश्वर, ऋषितीर्थः, १७४ नन्दा-दिता, त्रितकूप, शाशोपान, कर्णादिता, सिद्धेश्वर, न्यंकुमती, वाराह, कनकनन्दा, गङ्गेश्वर, चमसोद्धे द, प्राचीसरस्तती, न्यङ्कीश्वर, १७५ जालेश्वर, लिङ्गतय, पड्-तीर्थ, तिनेतेश्वर, १७६ देविका, उमापति, भूधर, मूलस्थान और देवीमाहात्मासम्पूर्णं, १७७ यवनादित्यमाहात्मामें सूर्याष्टोत्तरशतस्तोत्न, १७८ च्यवनेश्वरमाहात्मामें च्यवना-ख्यान,, १७६ च्यवनशर्यातिसंवाद, १८० शर्यातिका यज्ञ, १८१ च्यवनकर्षुं क च्यवनेश्वरप्रतिष्ठा, सुकन्यामर-माहात्म्य, च्यवनेश्वरमाहात्मासमाप्ति, १८२ न्यंकुमती-

माहात्मा आरम्म, अगस्त्यात्नेय, गङ्गे श्वर, वालाक, वाला-दित्र और कुबेरोत्पत्ति, १८३ भद्रकाली, कौवेर और न्यंकुमतीमाहम्त्मासम्पूर्णः, १८४ तिपुष्कर, चन्द्रोदक और ऋषितोयामाहात्न्य सम्पूर्ण, १८५ गुप्तप्रयागं, सङ्गालेश्वर, सिद्धे श्वर, १८६ गन्धर्वेश्वर, उरगेश्वर और गङ्गा, सङ्गा-लेश्वरमाहात्मासम्पूर्ण, १८७ नारदादिता, साम्यादिता, तप्तोदककुएड, मूलचएडीश, चतुमु ख, विनायक, कलं-केश्वर, गोपालस्वामी, वकुलस्वामी, ऋषितीर्थ, क्षेमा-दित्य, कराटकशोधिनी, ब्रह्मे श्वर, १८८ स्थालकेश्वर, दुर्गादित्य, गणनाम, उन्नतस्थान, तलस्वामी, रुक्मिणी, तप्तोदकस्वामी, मधुमतीमें पिएडे श्वर और भद्रा, १८६ नलसामी, १६० गोष्पतितीर्थ, न्यंकुमती, नारायणगृह, १६१ देविका, जालेश्वर, हुङ्कारक्रूप, १६२ आशापुर, विझराज, १६३ कपिलघारा और कपिलेश्वरमाहातमा, कपिलावष्टीमाहातमा, अंशुमती, जलन्धरेश्वर, १६४ नले-खर, कर्कोटकाक<sup>°</sup>, अगस्तप्राश्रम, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, दुर्गा, क्रूटगणपति, १६५ भल्लातीर्थ, गुप्ते श्वर, सुपर्णे-श्वर, श्रङ्कोश्वर, श्रङ्कारेश्वर, प्रकीर्णस्थानलिङ्क, १६६ दामी-दर, वस्त्रापथक्षेत्र, गङ्गेश्वर, भव, १६७ वस्त्रापथक्षेत्र-माहात्म्य, १६८ अन्ध्रकासुरवध, दक्षयश्रविध्वंस, १६६ खणरेखा, २०० रैवत, २०१ सोमेश्वरोत्पत्ति, २०२ सर-खतीतीर्थं यात्रा, २०३ शिवरातिमहिमा, २०४ वस्त्रापथ-क्षेतमाहात्मामें विलिनियह, वस्त्रापथ-क्षेतमाहात्मासमाप्ति, २०५ प्रभासक्षेत-याताप्रशंसा और प्रभासखरड-समाप्ति।

प्रचित स्कन्दपुराणीय समलएडसे अध्यायके अनु सार जो विषयानुक्रमणिका दी गई, तदनुसार नारदीय-पुराणवर्णित ब्रह्मखएड और वैष्णवखएडका प्रथमांश छोड़ कर स्कन्दपुराणके प्रायः सभी अंश मिलते हैं। नारद-पुराणमें स्कन्दपुराणके जो रूप चितित हुआ है, प्रचलित स्कन्दके उपरोक्त सात खएडोंमें उसका अभाव नहीं है। इस हिसावसे यह कहा जा सकता है, कि नारदपुराणकी पुराणानुक्रमणिका जिस समय सङ्कलित हुई थी, उस समय सप्तखएडयुक्त स्कन्दपुराण प्रचलित था, इसमें सन्देह नहीं। अध्यापक विलसन् साहव इस प्रकार खएडात्मक स्कन्दपुराणकी महापुराणके मध्य गण्य करनेमें सन्देह करते हैं। उनके मतसे काशीखएडकी अनेक कथाएं महमाद गजनीके भारताक्रमणकी पूर्व वर्त्तों होने पर भी इसमें तत्परवर्त्तीं कथाएं भी हैं। वे समकते हैं, कि जब उत्कलखर जगनाथदेवके प्रसिद्ध मन्दिर वनाये जाने के वाद रचा गया है, तव इसे १२वीं शताब्दीके परवर्त्तीं कालका प्रन्थ माननेमें कोई उज्जर नहीं। किन्तु नारदीय उक्तिके अनुसार उक्त दोनों ही प्रन्थको हम लोग ११वीं शताब्दीको पूर्व वन्तीं प्रन्थ अनायाससे मान सकते हैं। स्कन्दपुराणीय काशीखर्डको एक ६३० शकको हस्तिलिपि विश्वकोष-कार्यालयमें रिव्नत हैं। उसके साथ प्रचलित काशीखर्डका किसी विषयमें मेल नहीं है। सुतरां जब १००८ ई०का प्रन्थ मिलता है, तव काशीखर्डका रचनाकाल उसके भी वहुत पहलेका स्वीकार किया जा सकता है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और वेनडल साहव नेपालके राजपुस्तकालयमें ७वीं शताव्दीका हाथ-का लिखा एक स्कन्दपुराण-प्रन्थ देख आये हैं। आज तक जितने पौराणिक प्रन्थ आविष्कृत हुए हैं, उनमेंसे नेपालका उक्त प्रन्थ ही सर्व प्राचीन हैं। जो प्रचलित पुराणोंको नितान्त आधुनिक समक्तते हैं, उनकी शङ्का दूर करनेके लिये हम लोगोंके संगृहीत अभ्विकाखरडके द्वितीय अध्यायसे इसकी अनुक्रमणिका उद्घृत की जाती है।

अव प्रश्न होता है, कि ऊपरमें जी सब स्कन्दपुराणके परिचय दिये गये हैं, उन्हें स्कन्दपुराण मान सकते हैं, वा नहीं ? धर्म सुंबरचनाकालमें स्कन्दपुराण प्रचलित था या नहीं, उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु मत्स्यपुराणसे स्कन्दपुराणका जो परिचय मिलता है, वह इस प्रकार है—

"यत माहेश्वरान् घर्मानधिकृत्य च पण्मुखः। कल्पे तत्पुरुणे वृत्तं चरितैकपवृंहितम्॥ स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीतिनिगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्तेग्यु गद्यते॥"

जिस पुराणमें बड़ानन (स्कन्द)ने तत्पुरुप-कर्प-प्रसङ्ग-में नाना चरित और उपाख्यान तथा माहेश्वर-निर्दिष्ट धर्म प्रकाशित किये हैं, वही मर्तालोकमें ८११०० क्षीकयुक्त स्कन्दपुराण नामसे प्रसिद्ध हुआ हैं। मत्स्यपुराणके उक्त वचन पर दृष्टिपात करनेसे पूर्वं वर्णित षट्संहिता और सप्तखएडात्मक स्कन्द्पुराणको मात्स्योक स्कन्द नहीं मान सकते, पर उपरोक्त केदार-खएडमें नन्दिपुराण संवाद और—

"धर्मा नानाविधाः प्रोक्ता नन्दिनं प्रति वे तदा । कुमारेण महाभागाः शिवशास्त्रविशारदाः॥"

उक्त श्लोकका पाठ करनेसे प्रचलित स्कच्पुरागर्मे भी जो आदि कितने रुक्षण हैं, यह स्पष्ट जाना जाता है। इस प्रकार स्कन्दपुराणमें अनेक विशुद्ध विषय रहने पर भो, यहाँ तक कि इसके किसी किसी खरडका सङ्कलन-काल सातत्रीं शताब्दीके पूर्ववतीं होने पर भी वतँमान बर्डात्मक विराट्-रूपधारी स्कन्दपुराणको आदि त्रयो-दश पुराण माननेमें सन्देह उपस्थित होता है। यह सन्देह करनेके यथेए कारण है। यदि उक्त संहिता और खरड 'स्कन्द्युराणकें अन्तर्गत हो, तो एक ही विषयक, एक ही उपाख्यान विभिन्न संहिताओं वा विभिन्न खएडोंमे वर्णित क्यों हुआ ? एक कुमारोत्पत्तिको कथा हो अस्विका-**खर्ड, केदारखर्ड, कुमारिकाखर्**ड और ब्रह्मखर्**ड** आदि-में वर्णित देखी जाती है। इस प्रकार और भी कितने विपर्योका उल्लेख किया जा सकता है। यदि स्कच्पुराण पक पुराण होता तो एक ही विषयकी एकसे अधिक बार अवतारणा क्यों हुई ? अधिक सम्मव है, कि आदि स्कन्द-पुराणमें इस प्रकार एक विषयका अनेक वार उल्लेख नहीं था। सम्भवतः तन्पुरुपकल्पप्रसङ्गमें माहेश्वर धर्म और स्कन्दका चरित ही विस्तृत भागमें वर्णित था। पोछे <sup>.</sup>हम लोगोंने शिवपुराणके उत्तरखर्**डमें** स्कन्द्पुराणका परिचय इस प्रकार पाया है-

"यत स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः। तत्र स्कान्दं समाख्यातं"

अर्थात् जिस पुराणमें स्वयं स्कन्द (कार्त्तिकेय) श्रोता और साक्षात् महेश्वर वक्ता हैं वही पुराण स्कान्द कह-लाता है। शैव-निर्दिए लक्षण भी आजकलके स्कन्दपुराण-में नहों है, केवल प्रसङ्ग मात है। इस हिसावसे हम लोग समक सकते हैं, कि उस आदि स्कन्दपुराणका माल-मसाला ले कर विभिन्न सम्प्रदायके पुराणवाचक अर्थात् श्यासगणने वर्त्तमान आकारमें स्कन्दपुराणका प्रचार किया है। माहेश्वर, वेष्णव, अभ्वका इत्यादि खएडोंमें तथा शाङ्करी, वैष्णवी, गौरी, ब्राह्मी, इत्यादि नामधेय संहिताओंमें साम्प्रदायिक प्रभाव भलकता है। इस प्रकार नाना सम्प्रदायके हाथसे स्कन्दपुराण विभक्त और परिवर्दित होने पर भी आदि स्कन्दपुराण शैवशास्त्र कह कर हो गण्य था। इस कारण शैवतर संहिताओं और खएडोंमें शिवकी कोई भी कथा छूटने नहीं पायी है। जो कुछ हो नेपालके राजदरवारसे आविष्ठत स्कन्दपुराणके अभ्वकाखण्डसे जाना जाता है, कि इस परिवर्द्धित और वर्षमान कालमें प्रचलित स्कन्दपुराणको हम लोग जैसा आधुनिक प्रन्थ समक्तते हैं, यथार्थमें वह वैसा आधुनिक नहीं है। प्रायः डेढ़ हजार वर्ष होता है, कि स्कन्दपुराणने वर्षमान कप धारण किया है।

उपरोक्त संहिता और खएड छोड़ कर और भी कितने माहात्म्य तथा खएड स्कन्दपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। यथा —

सहादिखएड, अवु दाचलखएड, कनकाद्रिखएड. काश्मीरखण्ड, कोशलखण्ड, गणेशखण्ड, उत्तरखण्ड, पुष्करखण्ड, वद्रिकाखण्ड, भीमखण्ड, भूखण्ड, भैरव-खएड, मलयाचलखएड, मानसखएड, कालिकाखएड **.**श्री-मालखएड, पर्वतखएड, सेतुखएड, हालास्यखएड, हिमचत्-खएड, महाकालखएड, अगस्त्यसंहिता, ईशानसंहिता, उमा-संहिता, सदाशिवसंहिता, प्रहादसंहिता इत्यादि । अदुःख नवमीकथा, अधिमासमाहातम्य, अभिलापाष्टक, अस्विका-माहातम्य, अयोध्यामाहात्म्य, अरुन्धतोव्रतकथा, अर्द्घोद्य-वत, अर्वु द, आदिकैलाश, आलम्पुरी, आवाढ़, एका-दशी, इन्द्रावतारक्षेत्र, पाशुपातक्षेत्र, उत्कल, ओङ्कारे-भ्वर, कद्मववन, कनकाद्रि, कमलालय, कात्यायनी, कान्तेश्वर, कालेश्वर, कुमारक्षेत्र, कुरूकापुरी, कृष्णनाम, कैवल्यरत, केशरक्षेत्र, कोटीश्वरीवृत, गणेश, गरलपुर, कृष्णनाम, गोकर्ण, गो, चन्द्रपाल, परमेश्वरी, चातुर्मास्य, चिद्म्बर, जगन्नाथ, जयन्ती, तञ्जापुरी, विष्णु-स्थली, तपसतीर्थ, तल्पगिरि, तिरुनलवाड़ी, तुङ्गभद्रा, तुङ्गशैल, तुलजा, तिशिरगिरि, तिशूलपुरी, नन्दीक्षेतादि, नन्दीश्वर, पञ्चपार्व ती, पराशरक्षेत्र, पाण्डुरङ्ग, पुराणश्रवण, पावकाचल, पेरलस्थल, प्रवोधिनी, प्रयाणपुरी, वकुला-

रण्य, वदरिकावन, विल्ववन, भागवत, भीमेश्वर भैरव, मथुरा, मन्दाकिनो, घराचल, मल्लारी, महालक्ष्मी, माया-क्षेत्र, मार्ग शीर्ष, मौनी, युद्धपुरी, रामशिला, रामायण, रुद्रकोटो, रुद्रगया, लिङ्ग, वस्तीर्थ, वरलक्ष्मी, वाञ्छेश्वर, वानरवीर, वानवासी, विनायक, विरजा, वृद्धगिरि, वेद-पादिशव, वैशाख, विस्वारण्य, शम्मलयाम, शम्भुगिरि, शम्भुमहादेवक्षेत्र, शालग्राम, शीतला, शुद्धपुरी, श्रङ्गवेरपुर, शूलटङ्के भ्वर, श्रीमाल, श्रीमुण्णि, श्रीस्थल, सिंहाचल, सिद्धिवनायक, सुब्रह्मण्यक्षेत्र, सुरभिक्षेत्र, हेमेश्वर और ह्रदालयमाहात्म्य इत्यादि वहुसंख्यक माहातम्य, एतद्भिन्न दाक्षिणात्यके प्राचीन मन्दिरोंमें जो सव स्थलपुराण पाये जाते हैं, उनका अधिकांश हो स्कच्पुराणके अन्त-गत हैं। जो कुछ हो, इस विस्तीण स्कन्द्पुराणीय विभिन्न माहात्म्यसे हम छोगोंने भारतके प्राचीनकालके भूवृत्तान्तका यथेष्ट परिचय पाया है। इसी कारण वे सव भीगोलिकोंको आदरको सामप्री हैं।

### १४ वामनपुराख।

१ पुलस्त्यनारद-संवादमें वामनपुसङ्ग, हरपावती-संवाद, २ दक्षयज्ञ, ३ शङ्करका तीर्थमण, ४ शङ्करकी कपालीप्रयुक्त दक्षका शिवरहित यज्ञ, मन्दरपर्यंत पर सती-का देहत्याग, शङ्करका क्रोध और उनके शरोरसे प्रमथगण-की उत्पत्ति, ५ दक्षालयमें युद्ध, राशिचक्रकी खप्टि, ६ नर और नारायणका उपाख्यान, सतीके विरहानलमें शङ्करका भ्रमण, देवगणका स्तव, ७ नारायणकी योगभङ्ग करनेकी चेष्टा, च्यवनमुनिका पातालगमन, नरनारायणके साथ प्रहादका युद्ध, ८ नरनारायणका पराजयस्वीकार, प्रहाद-का वरदान, ६ अन्धकका राज्याभिषेक, १० देवताओंके साथ अन्धकका संग्राम, ११ सुकेशीनिशाचरका उपा-ख्यान, १२ नरकवर्णन, कौन कार्य करनेसे कौन नरक होता है उसका निर्णय, पुष्करद्वीपवर्णन, १३ जम्बृद्वीप-वर्णन, पर्व तवर्णन, नदीवर्णन, १४ सुकेशीका धर्मोप-देश, १५ सात्विककार्यं, १६ वाराणसीकी उत्पत्ति, १७ कात्यायनी और विष्णुका उत्पत्तिकाल, रक्तवीजका जन्म-वृत्तान्त, महिपासुरके युद्धमें देवताओंकी पराजय, १८ देवदानवकी देहसे भगवतीकी उत्पत्ति, १६ विन्ध्याचलमें देवीका अधिष्ठान, २० कात्यायनीके साथ महिषासुरका

युद्ध, २१ शुम्म और निशुम्म-विनाशके लिये देवीका पुनर्वारजन्म, पृथ्दकका वृत्तान्त, शम्बरके साथ तपती-का परिणाय, २२ कुरुराजका उपाख्यान, २३ पाव तीकी तपस्या, २४ पार्व तीके आश्रममें छद्मवेश-शङ्करका विवाद, शङ्करका महामैधुनभंग, २६ गणेशका जन्म-युत्तान्त, शुम्म-निशुम्भका सैन्यसंप्रह, देवीके निकट दूत-प्रेरण, धूम्रलोचन-वध, चएडमुएडका युद्ध और विनाश, २७ रक्तवीजका युद्ध और विनाश, शुम्मका युद्ध और विनाश, देवताओंका स्तव, २८ कार्त्तिकेयका जन्म और सेनापतित्वमें वरण, २६ कार्त्तिकेयके साथ दानवका युद्ध, तारकासुरनिधन, क्रौश्चमेद और महिपासुरविनाश, ३० अन्त्रकासुरका भ्रमण और गौरीके रूपलावण्य पर मु धता, ३१ मुरदानवका उपाख्यान, पुन्नामनरकनिर्णय, ३२ सिन्न नरक और पापनिर्णय, पुत्रनिर्णय, केशवका द्वादशपत्नाख्य योग, ३३ मुरदानवनिधन, शङ्करका योग, अङ्कनका नृत्य और खर्ग गमन, ३४ भाग वका सृतसञ्जी-वनी-विद्यादान, अन्ध्रकासुरके साथ शङ्करका विवाद, ३५ दएडक राजाका उपाख्यान, ३६ नीलकएठका स्तव, ३७ अन्ध्रकासुरके साथ शङ्करका युद्ध, ३८-४२ अन्ध्रका-सुर-निधन और भृङ्गीत्वप्रदान, ४३ मरुत्की उत्पत्ति, ४४ वलिका राज्यप्रहण, ४५ देवताओंके साथ संप्राम, देव-ताओंकी पराजय, प्रहादके साथ विलकी मन्त्रणा, ४६ देवताओंकी मन्सणा, पुरन्दरकी तपस्या, अदितिकी तपस्या, ४७ प्रहाद्के साथ विलका कथोपकथन, प्रहाद-का कोध और अभिसम्पात, ४८ प्रहादका तीर्थंगमन, धुन्युका उपाल्यान, धुन्युका अश्वमेघ-यह, देवताओंका निकट विपाद-भूमिपुार्थना, वामनरूपमें धुन्धुके धुन्घुनिधन, वलिका अश्वमेधयज्ञ, ४६ देवगणका स्तव, वामनका जन्म और जातकर्मादि, ५० स्थानविशेष-में भगवान्का रूपधारण, ५१ विटिके यहमें वामनका गमन, कोषकारका उपारूयान, ५२ वलिके निकट तिपाद-भूमिप्रार्थंना, वामनका विषाद-भूमिदान, विराट्-मूर्ति दर्शन, चलिका वर्णन, वाणके साथ कथोपकथन, ५३ चलिका पातालमें गमन, ब्रह्माका स्तव, ५४ पातालपुरीमें सुदर्शनचक्रका प्रवेश, सुदर्शनचक्रका स्तव, बलिके प्रति प्रहाद्का धर्मोपदेश, ब्राह्मणके प्रति सक्ति, ५५ द्वादशमासमें विष्णुपूज्ञाका नियम, वृद्धकी प्रशंसा। जपरमें प्रचलित वामनपुराणकी सूची दी गई है। अव देखना चाहिये, कि अपरापर पुराणोंमें वामनपुराणका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है। नारदपुराणके मतसे—

"श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम्। विविक्रमचरिताद्यं दशसाहस्रसंख्यकम्॥ कूर्मकल्पसमाल्यानं वर्गतयकथानकम्। भागद्वयसमायुक्तं वष्तुश्रोतृशुभावहम् ॥ पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्णच्छिदा ततः। कपालमोचनाख्यानं दक्षयञ्च विहिंसनम्॥ हरस्य कालरूपाच्या कामस्य दहनं ततः। प्रहादनारायणयोगु इ' देवासुराह्वयम्॥ सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो सुवनकोपकम्। ततः काम्यवताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः॥ तपतीचरितं पश्चात् कुरुक्षेतस्य वर्णनम्। सरमाहात्म्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्त्तनम् ॥ तपस्तस्या विवाहश्च गौर्यु पाख्यानकं ततः। ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः॥ ततोऽन्धकवधाख्यानं साध्योपाख्यानकं ततः। जावालिचरितं पश्चाद्रजायाः कथाद्भुता॥ अन्धकेश्वरयं गुर्द गणत्वं चान्धकस्य च। मरुतां जन्मकथनं वलेश्च चरितं ततः॥ ततस्तु लक्ष्म्याञ्चरितं तैविकममतः परम्। प्रहादतीर्थयात्रायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः॥ ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः। नक्षतपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः॥ विविकमचरिवान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवीत्तमः। महादवलिसंवादे सुतले हरिशंसनम्॥ इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः। भ्रणु तस्योत्तरं भागं वृहद्वामनसंज्ञकम्॥ माहेश्वरी भागवती सौरी गणेश्वरी तथा। चतस्रः संहिताश्चात पृथक् साहस्रसंख्यया॥ माहेश्वर्यान्तु कृष्णस्य तन्नकानां च कीर्त्तनम्। भागवत्यां जगन्मातुरवतारकथाद्भुता ॥ सौर्य सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः। गणेश्वर्या गणेशस्य चरितं च महेशितुः॥ इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रितम्। पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने॥ ततो नारदतः प्राप्तं ध्यासेन सुमहात्मना । व्यासात्तु लञ्चमान् वत्स तच्छिप्यो रोमहर्षणः॥ स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च । **पर्व परम्परा प्राप्त पुराणं वामनं शुभम् ॥**"

(हे बत्स! सुनो, वामन नामक पुराण कहता हूं। यह पुराण विविक्रम-चरितसम्बिलत और दश सहस्र शोक युक्त है। इसके दो भाग हैं और इसमें कूर्म कल्पका समाख्यान तथा वर्ग वयकथा निक्षित हुई है। इसका अवण करनेसे वक्ता और श्रोता दोनोंका मङ्गल होता है।

इसके आरम्भमें पुराणप्रश, बह्मणीर च्छेद और कपालमोचनाख्यान, पीछे दक्षयक्षश्च स, हरकी काल-रूपाख्या, मदनदहन, प्रहाद और नारायणका युद्ध, सुकेशी और अर्कसमाख्यान, भुवनकोष, कामत्रताख्यान, श्रीदुर्गाचित, तपतीचरित, कुरुक्षेत्रवर्णन, सरोमाहातम्य, पार्व ती-जन्मकीर्त्तन, सतोकी तपस्या और विवाद, गौरीका उपाख्यान, कौशकी-उपाख्यान, कुमारचरित, अन्यक-त्रधाख्यान, ग्राध्योपाख्यान, जावालिचरित, अन्यक और ईश्वरका युद्ध, अन्यककी गणत्वप्राप्ति, देवताओं-की जन्मकथा, विल्चरित, लक्ष्मोचरित, विविक्रमचरित, प्रहादकी तोर्थयात्राक्षे उपलक्ष्में उनकी कथा, धुन्युचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्रपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, विविक्रमचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्रपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, विविक्रमचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्रपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, विविक्रमचरितान्तमें ब्रह्मप्रोक्त उत्तम स्तव और प्रहाद तथा विल्संवादमें सुतलमें हरिकी वास, ये सव पूर्वभागमें विणित हैं।

इसके वृहद्वामन नामक उत्तरभागमें माहेश्वरी, भग-वती, सौरी और गणेश्वरी नामक चार संहिताएं हैं। उन चारोंमेंसे प्रत्येक संहितामें हजार श्लोक हैं। प्रथम-संहिता माहेश्वरीमें कृष्ण और कृष्णभक्तोंका कीत्तन, द्वितीय भागवतीमें जगन्माताकी अवतारकथा, सौरीमें पापनाशन सूर्यमाहात्म्य और चतुर्थ संहिता गणेश्वरीमें गणेशका चरित निवद्ध हुआ है। यह वामनपुराण पहले पुलस्त्यने नारदसे कहा था। पीछे नारदसे महात्मा व्यासमुनिने प्राप्त किया। हे चत्स! व्याससे उनके शिष्य रोमहर्णणने इसे पाया था और उन्होंने ही नैमिन्यारण्य-वासी ऋषियोंसे इसे सुनाया था।)

मत्स्यपुराणके मतसे—

"तिविकमस्य माहात्म्यमिष्ठकृत्य चतुर्मु सः।

तिवर्गमस्यधात्तच वामनं परिकीर्त्तितम्॥

पुराणं दशसाहस्रं ख्यातं कल्पानुगं शिवम्॥

जिस पुराणमं चतुर्मु स ब्रह्माने तिविकम (वामनका)

माहातम्यका अवलम्बन कर तिवर्गका विषय कीर्त्तन किया है और पीछे शिवकल्प वर्णित हुआ है, वही दश-साहस्रश्लोकात्मक वामनपुराण है।

ऊपरमें चामनपुराणके जो लक्षण उद्घृत हुए हैं, केवल नारदोक्तिके साथ प्रचलित वामनपुराणका मेल देखा जाता है। किन्तु उत्तर भाग अभी नहीं मिलता है।

फिर मत्स्यपुराणोक तिविक्तमचरित रहने पर भी ब्रह्माकर्नु क वर्ष मान वामनपुराण वर्णित नहीं हुआ है। इस हिसावसे प्रचित्रत वामनको आदि वामन माननेमें सन्देह उपस्थित होता है। आदिवामनकी अनेक कथाएँ इन वामनमें हैं इसमें सन्देह नहीं। पर इतना तो अवश्य है, कि नारदपुराणकी पुराणोपक्रमणिका रचित होनेके पहले वामनपुराणने वर्षमान आकार धारण किया था।

करकचतुर्थींकथा, कायज्वलीवतकथा, गङ्गामानसिक-स्नान, गङ्गामाहातम्य, दिधवामनस्तोत्न, वराहमाहातम्य और वेङ्कटगिरिमाहातम्य इत्यादि कितने छोटे छोटे प्रन्थ वामनपुराणके अन्तर्गत प्रचलित हैं।

### १५ कूमंपुराणं।

पूर्वमागर्मे-- १ सूत और नैमिणेय-संवादमें इन्द्रयुम्न-कथाप्रसङ्ग, कूर्मपुराणकथन, २ वर्णाश्रमकथन, ३ आश्रम-क्रमकथन, ४ प्राकृतसर्ग, ५ कालकथन, ६ भूमएडल-उद्भव, ७ तमोमय सर्गादि कथन, ८ मिथुनसर्ग कथन, ६ पद्मोद्भवप्रादुर्माव, १० रुद्रसर्ग, ११ देव्यवतार, १२ देव-ताओंका सहस्रनाम स्तव, हिमवत्के प्रति देवताओंका उपदेश, १३ भृग्वादि सर्ग<sup>°</sup>कथन, १४ खायम्भुव मनुसर्ग<sup>°</sup>-कथन, १५ दक्षयज्ञध्वंस, १६ दाक्षायणीवंशकोर्त्तन, हिरण्यकशिपुत्रध और अन्धक-पराजय, १७ वामनावतार-ळीळा, १८ वळिपुत्रादि कथाप्रसङ्गमें वाणपुरदाहविवरण, १६ ऋषिवंशकीर्त्तन, २० सूर्य वंशकीर्त्तन-प्रसंगमें क्रियन्वा पर्यन्त राजगण कीर्त्तन, २१ इस्वाकुवंश-वर्णनसमाप्ति, २२ पुरुरवाका चंशवर्णन, २३ जयधुजवंश-कथन, २४ क्रोब्टुवंशकथन, राम और कृष्णावतार-वर्णन, २५ श्रीकृष्णको तपश्चर्य, २६ श्रीकृष्णका रुद्रदर्शन, कृष्ण-मार्कण्डेय-संवाद्में लिङ्गमाहातम्यकथन, २७ वंशानु-कीर्त्तनसमाप्ति, २८ व्यासार्ज्यं न-संवादमें सत्यवेताद्वापर-

युगकथन, २६ कलियुगखरूपकथन, ३० वाराणसी-माहात्म्यमें जैमिनि और व्याससंवाद, ३१ लिङ्गादि-माहात्म्यकथन, ३२ व्यासका कपर्दीश्वरादि लिङ्गदर्शन, ३३ मध्यमेध्वरमाहात्म्य, ३४ जैमिनिप्रमुख शिष्यपरिवृत व्यासका प्रयाग-विश्वरूपादि तीर्थं पर्यंटन, ३५ प्रयाग-माहातम्यकथन, ३६ प्रयागमरणमाहात्म्य, ३७ माघमासमें प्रयागमें फलाधिक्य इत्रादिः कथन, ३८ यमुनामाहात्म्य, ३६ भुवनकोवसंस्थानमें सप्तद्वीपकथन, ४० तैलोक्यमान-कथन, ज्योतिःसिक्नियेश, ४१ द्वादश आदित्य और उनका अधिकारकालकथन, ४२ सूर्य का प्रह्योनि और सप्त रश्मिकथन, ४३ महर्लोकादि कीर्त्तन, ४४ भूलोकनिर्णयमें द्वीप, सागर और पव<sup>६</sup>तादिका कथन, ४५ मेरुउपस्थित ब्रह्मपुरीका कथन, ४६ केतुमाछवर्षादि भूमिखरूपकथन, ४७ हेमकूटवणन, ४८ प्रश्नद्वीपादि कथन, ४६ पुष्करद्वीपादि-कथन, ५० मन्वन्तर-कीर्त्तन, ५१ व्यासकीर्त्तन, ५२ महा-देव अवतार-कथन ।

वपरिभागमें-१ ईश्वरीगीतामें ऋषियोंका प्रश्न और वक्तव्य ज्ञानप्रशंसा, ३ अव्यक्तादि ज्ञानयोग, ४ देवदेव-माहात्म्यज्ञानयोग, ५ देवदेवका ताएडवकालीन स्वरूप-दर्शन, ६ ईश्वरकी निज रूप उक्ति, ७ ईश्वरका प्रधान-स्वरूपत्व-कीर्त्तन, ८ गुद्यतम ज्ञानकथन, ६ ईश्वरज्ञानकथन, १० लिङ्गब्रह्मज्ञानयोग, ११ अष्टाङ्गयोगकथन, १२ ब्रह्म-चारिधर्म, १३ गमनादि कर्मयोगकथन, १४ अध्ययनादि-प्रकारकथन, १५ स्नातकधर्मकथन, १६ आचाराधाय, १७ भस्यासक्यनिर्णय, १८ नित्यिकयाविधि, १६ भोज-नादि विधि. २० श्राह्यकल्पारमा, श्राह्मीय द्रव्यनिर्णय, २१ श्राद्धकल्पमें ब्राह्मणविचार, २२ श्राद्धकल्पसमाप्ति, २३ अशौचप्रकरण, २४ अग्निहोलादि विघि, २५ वृत्तिकथन, २६ दानधर्मकथन, २७ वानपृष्धधर्मकथन, २८ यतिधर्मकथन, २६ यतिभिक्षादि प्रकारकथन, ३० प्रायश्चित्तकथन, ३१ कपालमोचनमाहात्म्य, ३२ सुरापानादि प्रायश्चित्तकथन, ३३ मनुष्यस्त्रीगृहहरणादिका प्रायश्चित्त, ३४ विविध-चित्र-माहात्म्यकथन, ३५ रुद्रकोट्यादि-तीर्थं कथन, ३६ महालयादितीर्थं कथन, ३७ महेश्वरकी देवदारुवनलीला, ३८ नर्मदामाहातम्य, ३६ नार्मद्भद्रेश्वरादितीर्थ-कथन, ४० भृगुतीर्थं कथन, ४१ नैमिय-जाप्येश्वरमाहात्म्य, ४२ तिंध माहारम्यसमाप्ति, ४३ प्रलयकथन, ४४ प्राकृतप्रल-यादिकयन, कूर्मपुराणका पर्द्संवादकथन ।

अंद देखना चाहिये, कि अपरापर पुराणोंमें कूर्भ-पुराणके छक्षण किस प्रकार निर्दिष्ट हुए हें ? नारद्युराण-के मतसे--

"श्रुणु वत्स मरीचेऽच पुराणं कूर्मसंज्ञितम्।

**छक्ष्मीकल्पानुचरितं यत कुर्मवपुर्हरिः॥** धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यंच पृथक् पृथक् । इन्द्रयु सप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो द्यान्तिकं॥ तत्सप्तदशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम्। यंत्र ब्राह्मां पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने ॥ नानाकथा प्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः। तंत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपकमः पुरा ॥ लक्ष्मीप्रद्यु म्नसंवादः कूर्मर्षिगणसंकथा । वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्त्तनम्॥ कालसंख्यासमासेन लयान्ते स्तवनं विभोः। ततः संक्षेपतः सर्गः शांकरं चरितं तथा॥ सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम्॥ भृगुवं शसमाख्यानं ततः खायम्भुवस्य च । देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयश्चाहतिस्ततः॥ द्ससृष्टिकथा पश्चात् कश्यपान्वयकीर्त्तनम्। आतेयवं शकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम्॥ मार्करडकृष्णसंवादो व्यासपारडवसंकथा। युगधर्मानुकथनं व्यासजैमिनिकी कथा॥ वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम्। त्रैलोक्यवर्णनं चैव वेदशाखानिरूपणम् ॥ उत्तरेऽस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः। व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रवीधिनी ॥ नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यं च पृथक् ततः। नानाधर्मप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता॥ अतः परं भगवती संहितार्थनिरूपणे। कथिता यत वर्णानां पृथक्वृत्तिरुदाहर्ता॥ (तदुत्तरभागीय भगवत्याख्या द्वितीयसंहितायाः पश्चपादेषु) पादेऽस्या प्रथमप्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः। सदाचारात्मिका वत्स भोगसौंख्यविवर्द्ध नी ॥ द्वितीये क्षतियाणान्तु वृत्तिः सम्यक् प्रकीर्त्तिता । यया त्वाश्चितया पापं विध्येह वजेहि्वम् ॥ तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा। यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम् ॥ चतुर्येऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहता। यदा सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयोविवद्धं नः॥ पश्चमेऽस्य ततः पादे वृत्तिः संकरजोदिता । Vol. XIV, 11

यया चिरतमाप्नोति भाविनीमुत्तमां जनिम्॥
इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने।
तृतीयात्नोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी॥
षोढ़ा पर्कर्मसिद्धि सा बोधयन्ती च कामिनां।
चतुर्थी वैकावी नाम मोसदा परिकीत्तिता ॥
चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षात् ब्रह्मखरूपिणी।
ताः क्रमात् पर्चतुर्थीं साहस्राः परिकीर्तिताः॥

(हे बत्स ! सुनो, लक्ष्मीकल्पानुचरित कूर्म नामक पुराण कहता हूं । इस पुराणमें हिर कूर्मक्रपमें वर्णित तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंका माहातम्य पृथक् पृथक् क्रपमें कीर्त्तित हुआ है । यह पुराण इन्द्रद्यु झप्रसङ्गमें ऋषियोंसे कथित और सत्तरह हजार श्लोकोंमें परिपूर्ण है ।

(पूर्वभागमें) इसमें पहले पुराणीपक्रम, पीछे लक्ष्मी और प्रद्युन्न-संवाद, क्र्म और ऋषियोंका संवाद, वर्णाश्रमाचारकथा, जगदुत्पत्तिकीर्त्तन, संक्षेपमें काल-संख्या, लयान्तमें भगवान्का स्तव, संक्षेपमें सृष्टि, शङ्कर-चित, पार्वतीका सहस्रनाम, योगनिकपण, भृगुवंश-समाख्यान, खयम्भु और देवादिकी उत्पत्ति, दक्षयक्षयृ स, दक्षसृष्टिकथा, कश्यपवंशकीर्त्तन, आत्रेयवंशकथन, कृष्ण-चित, मार्क एड और कृष्णसंवाद, व्यास और पाएडव-संवाद, युगधर्मानुकथन, न्यास और जैमिनीको कथा, वाराणसी और प्रयागमाहातस्य, तैलोक्यवर्णन और वेद-शाखा-निक्षपण।

(उत्तरभागमें) इसमें पहले ईश्वरीगीता, ज्यासगीता, नानाविधर्तार्थमाहात्म्य, नानाधर्मकथा और ब्राह्मी-संहिता तथा पीछे भागवती-संहितार्थ-निरूपण और वर्णसमुदायकी पृथक् वृत्ति निरूपित हुई है। (उत्तरमागकी मागवत्याख्या द्वितीय संहितामें) इसके प्रथमपादमें ब्राह्मणोंकी व्यवस्थिति, द्वितीयपादमें क्षित्यों-का सम्यक्तपसे वृत्तिनिरूपण, तृतीयपादमें वैश्यजाति-का वृत्तिकथन, चतुर्थपादमें शूद्रोंका वृत्तिकर्यन, चतुर्थपादमें शूद्रोंका वृत्तिकर्यन और पञ्चमपादमें सङ्करोंकी वृत्ति कल्पित हुई है। इसकी तृतीय सौरीसंहिता नरगणकी कामप्रदा और चतुर्थों वैष्णवी-संहिता मोश्रदायिका है।

मत्स्यपुराणके मतसे---

"यत धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। माहातम्बं कथयामास कूर्मकृषी जनाई नः॥ इन्द्रसु सप्रसंगेन ऋषिः शतु सन्निधौ । सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुपङ्गिकम्॥"

जिस पुराणमें कूर्मक्ष्पी जनादेनने रसातल पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका माहात्म्य इन्द्रच स्नप्रसङ्गमें इन्द्रके समीप ऋषियोंसे कहा था तथा जिसमें लक्ष्मी-कल्पका विषय वर्णित हुआ है, वही सत्तरह हजार श्लोक-युक्त कूर्म पुराण है।

नारद और मात्स्यमें कूम के जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, प्रचलित कूम पुराणमें उनका अर्द्ध के है। फिर मूल खोक ले कर भी गांलमाल है। आजकलके कीर्ममें ६००० मात्र खोक पाये जाते हैं। इस पुराणके उपक्रममें ही लिखा है—

"हदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्म मुत्तमम्।
चतुर्था संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥
बाह्यी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीतिताः।
चतन्नः संहिता पुण्याः घम कामार्थ मोश्नदाः॥
इयं तु संहिता बाह्यी चतुर्वेदेश्च समिता।
भवन्ति षटसहस्राणि श्लोकानामात्र संख्यया॥
यत धर्मार्थकामानां मोश्रस्य च मुनीश्र्वराः।
माहात्म्यमिखलं ब्रह्म बायते परमेश्वरः॥" (११३५)
उक्तं श्लोकके अनुसार प्रचलित कूम पुराण ब्राह्मी,
भागवती, सौरी और वैष्णवी इन्हीं चार संहिताओंमें

पूर्वोक्त लक्षणानुसार कूमपुराणमें आदिपुराणके अनेक सामान भी हैं। पर हां इसमें डामर, यामल, तन्त्र आदिकी अनेक कथाएं पीछे संयोजित होने तथा अनेक मूल विषय नहीं रहनेके कारण इसने छोटा आकार धारण किया है इसमें सन्देह नहीं।

#### १६ मस्यपुराण

१ मनु-विष्णुसंवाद २ ब्रह्माएडदछन ६ ब्रह्ममुखो-त्यत्तिवृतान्त, ४ आदिसृष्टिविवरण, ५ देवादिसृष्टिविवरण, ६ कश्यपान्वयिवरण, ७ मदनद्वादशीवतोपाल्यान, ८ आधिपत्याभिषेचन, ६ मन्यन्तरानुकोर्त्तन, १० वैण्यचरित, ११ सोमसूर्यवंशवणनवृतान्त, १२ सूयवंशानुकोर्त्तन, १३ पितृवंशवण नमें अग्रोत्तरशतगौरीनामकोर्त्तन, १४-१५ पितृवंशवर्णन, १६ श्राद्धकल्प, १७ साधारणअभ्युदय-

कोर्त्तन, १८ सपिएडोकरणकल्प, १६ श्राद्धकल्पमें फलावुं-गमनकथन, २० श्राद्धमाहातम्य प्रसङ्गमं पिपोलिकावहास-वृत्तान्त, २१ श्राद्धकल्पमें पितृमाहात्म्यकथन २२ श्राद्ध-कल्पसमाप्ति, २३ सोमवंशाल्यानमें सोमोपचारवर्णन, २४ ययातिचरित-कथनारमा, २५ कचका सञ्जोवनीविद्या-लाम, २६ कच और देवयानीका परस्पर शापप्रहान, २७ शर्मिष्ठा और देवयानीका कलह, २८ शुक्र और देवयानी-संवाद, २६ शर्मिष्ठाका देवयानीका दासीत्वकरण, ३० देवयानीका विवाह, ३१ ययाति और शर्मिष्ठासङ्गम, ३२ ययातिके प्रति शुक्तका शाप, ३३ पुरुका पितृजरा प्रहणमें अङ्गीकार, ३४ पुरुका राज्याभिषेक ३५ ययातिका स्वर्गा-रोहण, ३६ इन्द्र और ययातिका संवाद, ३७ पुण्यक्षय हेतु खर्गसे पतित ययातिके प्रति अप्रकोंकी उक्ति, ३८ अप्रक और ययातिका स्ंवाद, ३६ ययातिका उपदेश, ४० ययाति-का आश्रमधर्मकयन, ४१ परपुण्यसे ययातिका खर्गा-रोहणमें अङ्गीकार ४२ ययातिका उद्घार, ४३ यदुवंश-कीर्त्तन, ४४ कार्त्तवीर्यादिकी कथा, ४५ वृष्णिवंशका कथा-रम्म, ४६ वृष्णिवंशकी वर्णन, ४७ असुरशाप ४८ तुर्वसु-प्रशृति वंशवर्णन, ४६ पुरुवं शवर्णन, ५० पौरवं शवर्णन, ५१ अग्निवं शवर्णन ५२ योगमाहात्म्य, ५३ पुराणानुक्रम-कथन, ५४ दानधर्मेमें नक्षत्नपुरुवन्नत, ५५ आदित्यृशयननत, ५६ कृष्णाष्टमीवत, ५७ रोहिणीचन्द्रशयनवत, ५८ तड़ाग-विधि, ५६ वृक्षोद्भवविधि, ६० सौमाग्यगयनवत, ६१ अगस्त्यकी उत्पत्ति और पूजाविधिकथन, ६२ अनन्त-तृर्तायावत, ६३ रसकल्याणिनीव्रत, ६४ आर्द्रानन्दकरी त्रतीयात्रत, ६५ अक्षयतृतीयात्रत, ६६ सारखतवत,६७ चन्द्रसूर्यप्रहणस्नानविधि, ६८ सप्तमीवत, ६६ मैमीदादशी-व्रत, ७० अनङ्गदानव्रत, ७१ अग्रून्यणयनव्रत, ७२ अङ्गरकः वत, ७३ गुरु और शुक्रपूजाविधि, ७४ कल्याणसतमी-व्रत, ७५ विशोकसप्तमीव्रत, ७६ फ उसप्तमीवत, ७७ शर्क रावत, ७८ कमल और सप्तमोवत, ७६ मन्दर-सप्तमीव्रत, ८० शुभसप्तमीव्रत, ८१ विशोकद्वादशीव्रत, ८२ विशोकहादशीवतमें गुड्धेनुविधान, ८३ दान-माहात्स्य, ८४ लवणाचलकीर्त्तन, ८५ गुड़पवतकीर्त्तन, ८६ सुचर्णाचलकीर्त्तन, ८७ तिलाचलकीर्त्तन, ८८ कार्पास-शैलकीर्त्तन, ८६ घृताचलकीर्त्तन, ६० रहाचलकीर्त्तन, ६१

रोव्याचलकोर्त्तन, ६२ पर्वत प्रदानमाहातम्य, ६३ नवप्रहका होम और शान्तिविधान, ६४ ग्रहउपाच्यान, ६५ शिवचतु-र्दशीव्रत, ६६ सर्वफलत्यागमाहात्म्य, ६७ आदित्यवारकल्प ६८ संक्रान्ति उद्यापनविधि, ६६ विष्णुव्रत, १०० विभूति-द्वाद्शीव्रत, १०१ षष्टीव्रतमाहात्म्य, १०२ स्नानफल और विधिकथन, १०३ प्रयागमाहात्म्यकथन, १०४ प्रयागनिरूपण प्रयागस्प्ररणादि फलकथन, १०५ प्रयागमरणादि फलकथन, १०६ प्रयागमें कर्मभेद्से फलभेद्कथन, १०७ प्रयागमाहा-त्म्यमें वित्रिध धर्मकथन, १०८ प्रयागमें अनशनादि फल-क्यंन, १०६ प्रयागका तोर्थराजत्वकथन, ११० प्रयागमें सवतीर्थं का अधिष्ठान रूथन, १११ प्रयागमाहात्म्यश्रवण-का फल, ११२ वासुदेवकर्तृक प्रयागकी प्रशंसा, ११३ द्वोपादिवर्णन, ११४ भारत निषक्तिसंस्थान-निर्देश, ११५ पुरूरवाके पूर्व जन्म विवरणमें तपोवनगमनकथन, ११६ ऐरावतीवर्णन, ११७ हिमालयवर्णन, ११८ आश्रमवर्णन, ११६ आयतनवर्णन अतिप्रतिष्ठित वासुदेव-मूर्त्तिकथन, १२० पुरूरवाका तपश्चर्याकथन, १२१ जम्बूद्धोपवर्णन, १२२ शाकद्वीपादि वर्णन, १२३ षष्ट-सप्तमद्वीपवर्णना, १२४ खगील-कथनमें सूर्य और चन्द्रमएडलविस्तारादि कथन, १२५ घ्रुवकार्य सौर्यं चन्द्रमसचारादि कथन, १२६ सूर्यं-का गतिकथन, १२७ बुधभीमादिका रथविवरण और भुवप्रशंसा, १२८ सूर्य मण्डलग्रहस्थान और ग्रहसन्नि-वैशादि कथन, १२६ त्रिपुरका उपाख्यान और त्रिपुरकी ज्त्पत्ति, १३० तिपुरदुर्ग प्राकारादि विभागकथन, १३१ तिपुरप्रावस्य, मयदुःस्वप्नविवरण, १३२ देवगणञ्चत शिव-का स्तव, १३३ अद्भ त रथनिर्माण, १३४ नारदका लिपुरमें गमन, १३५ देवासुरयुद्ध, १३६ प्रमथगणकर्तृक हिपुर-वासी दानवगणका मद्न, १३७ तिपुराक्रमण, १३८ तारकाक्षवध, १३६ दानवमयसंवाद, राविसमागम, १४० बिपुरदाह, १४१ ऐलसोमसमागम, श्रान्द्रभुक् पितृगण-कीर्त्तन, १४२ मन्वन्तराज्ञुकल्प, १४३ यद्यप्रवर्त्तन, ऋषिदेवगणसंवादमें वासुदेवका पक्षपात, उसके प्रति ऋषिगणका अभिशाप, १४४ द्वापर-किल्युगकीत्तंन, १४५ युगभेदसे आयुरादिकथन, धर्म कीर्त्तन, १४६ संक्षेप-में तारकवधकथन,,१४७ तारककी उत्पत्ति, १४८ तारक-वरलाम, १४६ देवदानवसमरोद्योग, १५० महासंग्राममें

कालनेमिकी पराजय, १५१ ग्रसनदैत्यवध, १५२ मधनादि-संग्राम, १५३ तारकजयलाभ, १५४ देवताओंकी मन्हणा, पाव तीकी तपस्या, मदनसस्म, शिवका विवाह, १५५ गौरीत्वलाभके लिये कालिका पाव तीका तपस्याके लिये गमन, १५६ आड़िवध, १५७ वीरकशाप, १५२ कार्त्तिकेय-की उत्पत्ति, १५६ देवताओंका रणोद्योग, १६० तारक-वध, १६१ हिरण्यकशियुवधप्रसङ्गमें नरसिंह-प्रादुर्भाव, १६२ नरसिंहके प्रति दैतांका विक्रमप्रकाश, १६३ हिरण्य-कशिपु-चध, १६४ पाद्मकल्पकथन-प्रसङ्ग. १६५ युगपरि-माणादि की तंन, १६६ संहारकम , १६७ माक ण्डेय और विष्णुका संवाद, १६८ नाभिपञ्चउत्पादन, १६६ ब्रह्मसृष्टि, १७० मघुकैरमवघ, १७१ ब्राह्मणोंको सृष्टि, १७२ विवि-धात्मकत्वकथन, १७३ दानवींके युद्धका उद्योग, १७४ देवताओंका समरायोजन, १७५ पर्व विवरण, १७६ देव-दानवयुद्ध, १७७ कालनेमिका पराक्रम, १७८ कालनेमि-वध, १७६ अन्धकवध, १८० काशीमाहातम्यमें द्राडपाणि-वरप्रदान, १८१ हरपाव<sup>६</sup>तीके संवर्दमें अविमुक्तमाहातम्य-कथन, १८२ कार्त्तिकेयकर्तृक अविमुक्तमाहात्म्यकथन, १८३ अविमुक्तक्षेतविषयमें पाव<sup>६</sup>तीके प्रश्नानुसार महादेव-का उत्तरदान, १८४ अविमुक्तक्षेत्रमें मरणका फलकथन, १८५ वाराणसीके प्रति वेद्व्यासका शापप्रदानका उद्योग, १८६ नम<sup>्</sup>दाका माहात्म्य और वहां स्नानका फलकथन, १८७ व णितिपुर-मर्निका उद्योग, १८८ तिपुरमर्निन, १८६ कावेरीसङ्गममाहात्म्यकथन, १६० मन्त्रेश्वरादि तीर्थ फलकथन, १६१ शूलमेदतीर्थादि कथन, १६२ भाग<sup>ः</sup>-वेशादि कथा, १६३ अनरकादि तीर्थप्रस्ताव, १६४ अंकुशे-श्वरदर्श<sup>°</sup>नफळादि कथन, १६५ भृगुवंशप्रवरक<del>ीर्</del>स न, १६६ अङ्गिरोवंशकीत्त<sup>र</sup>न, १६७ अतिवंशविवरण, १६८ विश्वा-मित्रवंशविवरण, १६६ कश्यपवंशवण न, २०० वशिष्ट-वंशानुकीर्त्तन, २०१ पराशरवंशानुकीर्त्तन, २०२ अगस्त्य-वंशकीर्त्त न, २०३ धर्म वंशानुकीर्त्त न, २०४ पितृगाथा-कीर्त्त न, २०५ धेनुदान, २०६ कृष्णाजिनप्रदान, २०७ वृषळक्षणकीत्त<sup>र</sup>नं, २०८ साविती उपाख्यानमें साविती--का वनप्रवेश, २०६ वनदर्शन, २१० यम और साविती-संवाद, २११ यमके समीप सावितीका द्वितीय वरलाभ, **२१२ सावित्रीका तृतीय वर**स्त्राभ, २१३ स<mark>स्यवानका</mark>

जीवनलाम, २१४ सावितीकी उपाख्यानसमाप्ति, २१५ राजनीतिप्रमाण, सहायसम्पत्तिकथन, २१६ अनुजीवि-वर्त्त न, २१७ सञ्जयपुकरण, २१८ अगदाध्याय, २१६ राज-रक्षा, २२० राजाओंकी त्रिविध हिताहित कथा, २२१ दैवपुरुषकारवण न, २२२ सामनिर्देश, २२३ भेदकथन, २२४ दानपृशंसा, २२५ दराडपृशंसा, २२६ राजाके लोक-पालसाम्यका कारणनिर्देश, २२७ दराडपूणयन, २२८ अद्भुतशान्ति, २२६ उपसर्गप्रकारादिकथन, २३० अद्भूत-शान्तिविषयमें देवप्रतिमा-वैलक्षण्यकीर्त्तन, २३१ अग्नि-वैकृत्य, २३२ चृक्षोत्पातकथन, २३३ वृष्टिवैकृत्य, २३४ जला शयविकृति, २३५ स्त्रीप्रसववैकृत्य, २२६ उपस्करवैकृत्य, २३७ मृगपक्षिवैकृत्य, २३८ उत्पातप्रशमन, २३६ प्रहयज्ञविधान, २४० याताकालविधान, २४१ शुभाशुमनिमित्त भूताङ्ग-स्पन्दनकथन, २४२ स्वप्नाध्याय, २४३ मङ्गलाध्याय, २४४ वामनप्रादुर्भाव, २४५ वामनोत्पत्ति, २४६ वळिच्छलना, २४७ वराहावतारकथारम्म, २४८ पृथिवीकृत विष्णुका स्तव, २४६ देवताओंके अमरत्वकथनप्रस्तावमें अमृत-मन्थनकथारम्म, २५० कालकूटकी उत्पत्ति, २५१ अमृत-मन्थन, २५२ वास्तुभूतोद्भव, २५३ एकाशीतिपद वास्तु-निर्णय, २५४ गृहमाननिर्णय, २५५ वेघपरिवर्जन, २५६ शल्यादिकथन और दिग्निणैय, २५७ दार्वाहरणकथा, वास्तुविद्याकथनसमाप्ति, २५८ देवार्चनानुकीर्त्तनमें प्रमाण कथन्, २५६ प्रतिमालक्षण, २६० अद्व<sup>र</sup>नारीश्वरादि प्रतिमा-स्वरूपकथन, २६१ प्रभाकरादि प्रतिमाकथन, २६२ पीठिकाकथन, २६३ लिङ्गंलक्षणकथन, २६४ कुएडादि-प्रमाणकथन, २६५, अधिवासनविधि, २६६ प्रतिप्राप्रयोग, २६७ देवतास्नानविधि, २६८ वास्तुदोषापशमन, २६६ प्रासादनिर्देश, २७० मएडपलक्षणादि कथन, २७१ मगधर्मे इक्ष्वाकुवंशीय भविष्यत् राजाओंका कीर्त्तन, २७२ पुल-कादि वंशीयका राजत्वकथन, २७३ अन्त्र, यवन और म्लेच्छगणका राजत्वकीत्तन, युगक्षयकथन, २७४ तुला-पुरुपदान, २९५ हिरण्यगर्भप्रदानविधि, ब्रह्माण्डदान-विधि, २७६ कल्पपादपप्रदानविधि, २७७ गोसहस्रदान-विधि, २७८ हिरण्यकामधेनुविधि, २७६ हिरण्याश्वदान-विधि, २८०-२८१ हिरण्याश्वकी प्रदानविधि, २८१ हिरण्य-हस्तिरथप्रदानविधि, २८३ पञ्चलाङ्गलकप्रदानविधि, २८४

हेमपृथिवीदानविधि, २८५ विश्वचकप्रदानविधि, २८६ हेमकल्पलतादानविधि, २८७ सप्तसागरप्रदानविधि, २८८ रत्नधेनुप्रदानविधि, २८६ महाभृतघटदानविधि, २६० कल्पकीर्त्तन, २६१ मत्स्यपुराणोक्त तीर्थं और फलश्रुति। नारदपुराणमें मत्स्यकी अनुक्रमणिका इस प्रकार देखी जाती है—

> "अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम । यतोकं सत्यकल्पानां वत्तं संक्षित्य भूतले॥ ध्यासेन वेदविदुषा नर्रासहोपवणनम् । उपक्रम्य तदुद्धिः चतुर्भशसद्दस्तमम् ॥ मनुमत्स्यसुसंबादो त्रह्माएडवर्णनन्ततः । ब्रह्मदेवासुरीत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च॥ मद्नद्वादशीत्तद्वत्लोकपालाभिपूजनम् । मन्वन्तरसमुद्देशो वैण्यराज्याभिवर्णनम् ॥ सूर्यवैवस्त्रतोत्पत्तिवु धसंगमनं तथा । पि रवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च ॥ पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च। कीर्त्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा॥ कार्त्तवीर्यस्य चरितं सृष्टं वंशानुकीर्त्तनम्। भृगुशापस्तया विष्णोर्दशधा जन्म च क्षिती ॥ कीर्त्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनः पराः । कियायोगस्ततः पश्चात् पुराणं परिकार्तितम् ॥ व्रतं नक्षत्नपुरुपं मार्त्तग्रहणयनं तथा। कृष्णाप्रमीवतं तहसोहिणीचन्द्रसंबितम् ॥ तड़ागविधिमाहातम्यं पाद्पोत्सर्ग एवं च। सीभा यशयनं तद्दंदगस्त्यवतमेथ च॥ तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीव्रतम्। तथैवानन्दकार्याश्च व्रतं सारस्वतं पुनः॥ उपरागाभिपेकश्च सप्तमीश्यनं तथा। भीमाख्या द्वादशी तद्ददनंगशयनं तथा॥ अशून्यशयनं तद्दन् तथैवांगारकवतम् । सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशीवतम् ॥ मेरुप्रदानं दश्धा प्रहशान्तिस्तथैव च । प्रहस्तरूप कथनं तथा शिवचतुर्<sup>र</sup>शी ॥ तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारवतं तथा। संक्रान्तिसपनं तद्वद्विभृतिद्वादशीवतम् ॥ षष्टिवतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः। प्रयागस्य तु माहात्त्र्यं द्वीपलींकानुवर्णनम् ॥ तथान्तरीक्षचारश्य भ्रुवमाहातम्यमेव च । भवनानि सुरेन्द्राणां तिषुरोद्योतनं तथा॥ पितृप्रचरमाहात्म्यं मन्वन्तरचिनिर्णयः। चतुर्यु गस्य सम्मूतिर्यु गधम निरूपणम् ॥

व्रजांगस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च। तारकासुरमाहातम्यं ब्रह्मदेवानुकोर्त्तनम्॥ पावतीसम्भवस्तद्रत् तथा शिवतपोवनम् । अनंगदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च । गौरीतपोवनं तद्ववत् शिवेनाथ प्रसादनं । पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाह मंगलम् ॥न कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा । नारकस्य वधो बोरो नरसिंहोपवर्णेनम् ॥ पश्चीद्भवविसगस्तु तथैवान्धक्रघातनम्। वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तरथैत च ॥ प्रवराजुक्रमस्तद्वत् पितृगाथाजुकीर्त्तनम् । तथोमयमुखोदानं दानं कृष्णाजिनस्य च॥ ततः साविव्युपाख्यानं राजधर्मास्तयौव च । विविधोत्पातकथनं प्रह्शान्तिस्तथैव च ॥ याहानिमित्तकथनं स्वप्नमंगलकोत्तनम् । वामनस्य तु माहात्म्यं वाराहस्य ततः परम्॥ समुद्रमथनं तद्वत्कालक्रूराभिशातनम्। देवासुरविमर्द्श्च वास्तुविद्यास्तथैव च ॥ प्रतिमालक्षणं तह्रह् वतास्थागनं तथा। प्रसाद्रस्य तहन्त्र खपानां च स्थ्याम् ॥ भवि यराज्ञामुद्देशो महादानानुकोर्त्तनम्। कश्पानुकी तनं तद्वत् पुराणोऽस्मिन् प्रकीर्त्तितम्॥"

(हे द्विजसत्तम! अव मत्स्यपुराण कहता हू, ध्यान दे कर सुनो । इस पुराणमें वेदवित् व्यासमुनिने नरसिंह-वर्णनोपक्रमसे चीदह हजार श्लोक द्वारा संश्लेपमें सत्य-करपके सभी वृत्तान्त कीत्तन किये हैं। इसमें पहले मनु भीर मत्स्यका संवाद, पोछे ब्रह्माएडवर्णन, ब्रह्मा और देवासुरकी उत्पत्ति, मास्तकी उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोक-पालपूजा, मन्वन्तरनिर्देश, चैष्यराज्यदर्शन, सूर्यवैवस्ततो-त्पत्ति, बुधसङ्गम, पितृचंशानुकथन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमोद्भव, सोमवंशकीर्त्तन, ययातिचरित और वंशानुकीर्त्तन, भृगुशाप, विष्णुका दशावतार, पुरुवंश-कीर्त्तन, हुनाशनवंश, क्रियायोग, पुराणकीर्त्तन, नक्षत-पुरुषत्रत, मार्कएडशयन, कृष्णाष्टमी-त्रत, रोहिणोचन्द्र-वत, तड़ागविधिमाहातम्य, पादपोत्सर्गः, सौभाग्यशयन, भगस्त्यवत, अनन्त गृतीयावत, रसकल्याणीवत, आनन्द-कारीवत, सारखतवत, उपरागाभिगेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशोवत्र, अनङ्गशयनवत्, अशून्यशयनवत्, अङ्ग-रकवत, सप्तमीसप्तकवत, विशोकद्वादशीवत, मेरपदान,

प्रह्मान्ति, प्रहस्ररूपकथन, शिवचतुदशी, सूर्यवारवत, संक्रान्तिकान, विभूतिहादशीवत, पष्टीवतमाहात्म्य, स्नान-विधिक्रम, प्रयागमाहात्स्य, द्वीपलोकानुवर्णन, अन्तरीक्ष-चार, घ्रु वमाहातम्य, सुरेन्द्रोंका भवन, त्रिपुरप्रभाव, पितृ-प्रवरमाहातम्य, मन्बन्तरनिर्णय, चतुर्वगंकी उत्पत्ति, ब्रह्मदेवानुकी तन, तारकोत्पत्ति, तारकासुरमाहात्म्य, शिवतपोवन, अनङ्गदाहन, पाव<sup>र</sup>तीस्तव, कुमारोत्पत्ति, ऋषिसं वाद, विवाहमं गल, नरसिंहवर्णेन, पद्मोभव. कुमारविजय, तारकवध, विसर्ग. वाराणसीमाहातम्य, अन्धकवध, पितृकथानुकीत्तंन, माहात्म्य, प्रवरानुक्रम. मुखीदान, कृष्णाजिनदान, साविती-उपाख्यान, राजधम, विविध उत्पातकथन, ग्रहशान्ति, यातानिमित्तकथन, खप्नमङ्गळकीर्तन, वामन और वराहमाहात्म्य, समुद्र-कालकूराभिशातन, देवासुरसङ्घर्गण, वास्तु-मन्थन, प्तिमालक्षण, देवतास्थापन, पुासाद्लक्षण, मएडपलक्षण, भविष्य-राजाओंका कथन, महादानकीर्र्तन । यही सव विषय इस पुराणमें फीत्तित हुए हैं।

मत्स्यपुराणमें भी लिखा है—
"श्रुतीनां यस कल्पादी प्रवृत्यर्थं जनाईनं ।
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहस्य चणनम् ॥
अधिकृत्याववीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनिव्रताः ।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राण्यथ विश्रतिः ॥"
जिस पुराणमें कल्पके आदिमें जनाई नने मत्स्यरूपधारण कर श्रुत्यर्थं और नरसिंहवर्णनप्रसङ्गमें समकल्पका विषय वर्णन किया है, वही घोस हजार श्रोकयुक्त
मत्स्यपुराण है।

नारद और माल्स्यमें जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, प्रचलित मत्स्यपुराणमें उनका अभाव नहीं है। परन्तु प्रचलित मत्स्यकी श्लोकसंख्या १४।१५ हजार मात हैं और आदिमत्स्यको २००००। इस हिसावसे आदिमत्स्यको अनेक विषय छोड़ दिये गये हैं, ऐसा मालूम होता है। उधर आदि-मत्स्यके अनेक श्लोक परित्यक्त होने पर भी इघर भविष्यराजवंशप्रसङ्गम्लक अनेक श्लोक पृक्षिप्त हुए हैं। पहले लिखा जा चुका है, कि इसी मत्स्यके मतानुसार अधिसीमकृष्णके समय यह पुराण सङ्कलित हुवा

था। भविष्यराजवंशमें ६डीं शताब्दोंके राजाओंको कथा रहतेके कारण वह ६डीं शताब्दोंके पर उत्तींकालका रचा हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। सार्त्तरमुन-दनके वृषो-त्सर्गत्तत्वमें, "स्वल्पमत्स्यपुराण" से स्रोक उज्जन हुए हैं।

#### १७ गहड़पुरास ।

प्तक (डमें -१ स्तनैमिकोयसंवादमें स्तको गरह-पुराणकथवप्रतिज्ञा, २ गरुड्युरागोत्पत्तिकथा, ३ गरुड्-पुराग-त्रर्यनके निमित्त स्नकर्नुक गीनकका अवधान-सम्पाइन, ४ रु स्थोर विग्णुसंबादमें सृष्टिकथन, ५ प्रजापतिसर्ग, ६ दक्षको प्राचेतसरूपमें उत्पत्ति, कश्यप-कृत सृष्टि, ७ सूर्वादिका पूजाकयन, ८ विज्युपूजाकथन, ६ दोक्षाविधि, १० लक्ष्मीपूजा, ११ न ४० यूहार्चना, १२ पूजाकमकयन, १३ वि णुपञ्जरकथन, १४ संक्षेपमें योग-उपदेश, १५ विष्णुका सहस्रनामकथन, १६ विणुका ध्यानकथन और सूर्यका पूजाकथन, १७ दूसरे प्रकारसे स्यंकी पूजा, १८ मृत्यु अयकी पूजा, १६ गाहड़ विद्या, २० शिव-कथित सर्वमन्त्रं, २१ पञ्चवन्त्रपूजा, २२ शिवपूजा-कथन, २३ दूसरे प्रकारसे शिवपूजाकथन, २४ गण-पत्यादिको पूजा, २५ पादुकापूजा, २६ करन्यासादि कथन, २७ विपहरण, गोपालपूजाकथन, २६ श्रोधरादि पूजा-का मन्त्रकथन, ३० सविस्तार श्रोधरप्जाकथन, ३१ दूसरे प्रकारसे विष्णुपूजाकथन, ३२ पञ्चतत्वाचर्चन, ३३ सुदर्शन-पूजादि, ३४ हयप्रीवपूजा, ३५ हयप्रीवपूजाविधि, ३६ गायुलोन्यासादि कथनं, ३७ गायलोमाहातम्य, ३८ दुर्गादि-ुपूजुनविधि, ३६ अन्य प्रकारसे सूर्यपूजाकथन, ४० महेश्वर-पूजा, ४१ नानाविद्याकथन, ४२ शिव-पविवारोहण, ४४ म्मूर्ट्यम्र्तिध्यान, ४५ शालग्रामलक्षणकथन, ४६ वास्तु-्रिन्णॅय, ४७ प्रासादलक्षण, ४८ देवप्रतिप्राकथन, ४६ योग-धर्मादि कथन, ५० आहिकनिणय, ५१ दानधर्मकथन, ५२ प्रायश्चित्तविधि, ५३ अप्रनिधिकथन, ५४ प्रियवतवंश वण नमें सप्तद्वीपादि कथन, ५५ संस्थापनकथन, भारत-वर्ष विवरण, ५६ प्लक्षद्वीपके राजपुर्तीका नामकी तेन, ५७ सप्तपाताल-नरककोर्तन, सूर्यादि पुमाण 46 और संस्थानकीर्त्तन, ५६ ज्योतिःसारकीत्तनारम्म, नक्षताधिप-योगिन्यादिकीर्त्तन, ६० दशादि विचार, ६१ चन्द्रसूर्यादि कथन, ६२ लग्नमानकथन, चरस्थिरादि मेदसे कार्यविशेषका कर्त्तव्यतानिर्णय, ६३ संक्षेपमें पुरुषका शुभाराुभस्चक लक्षणकथन, ६४ संक्षेपमें नारियोंका शुभा-शुभस्चक लक्षणकथन, ६५ सामुद्रिक लक्षणकीर्त्तन, ६६ शालप्रामशिलामेद्कथन, तोथंकथन, प्रमवादि पष्टिवपं-कोर्त्तन, ६७ पत्रनविजयादि, ६८ रत्नपरीक्षामें रत्नोत्पत्ति-कथन और रत्नपरीक्षाकथन, ६६ मुक्ताफलपरीक्षा, ७० पद्मरागपरोक्षा, ७१ मरकतपरोक्षा, ७२ इन्द्रनीटपरीक्षा, ७३ वैदुर्वपरोक्षा, ७४ पु यराग-परोक्षा, ७५ क र्रेतेनपरोक्षा, ७६ भो मरत्नपरोक्षा, ७९ पुलकपरोक्षा ७८ रुधिराख्यरत्न-परोक्षा, ७६ स्मटिकपरोक्षा, ८० विद्वमपरोक्षा, ८१ संक्षेप-में वहुतीर्थंका माहात्म्यकथन, ८२ गयाका माहात्म्य और गयातीर्थं की उत्पत्तिकथा, ८३ गयाके स्थानमेद और कार्य मेरसे फलमेर्दकथन, ८४ फल्गुनदीमें स्नान और रुद्रपद्में पिएडदानका फलकोर्त्तन तथा विशाल नृपतिका इतिहास, ८५ प्रे तिश्रलादिमें विण्डदानका फल, ८६ प्रेत-शिलामें श्राद्धकर्त्ताका फलकथन, ८७ चतुर्देश मनु, मनु-पुत्र, तदन्तरीय सप्तर्षि और देवताओंका कथन, ८८ मार्कण्डेय-क्रौण्डुकिसंवाद्में रुच्युपाख्यान, ८६ रुचिद्धत पितृस्तव, पितृगणसे रुचिको वरप्राप्ति, ६० रुचिपरिणय और रौच्यमनुका उत्पत्तिवर्णन, ६१ हरिध्यान, ६२ अन्य प्रकारसे हरिका ध्यानवर्णन, ६३ याज्ञवलम्य-कथित धर्मोपदेशादि कथन, ६४ उपनयनकोर्त्तन, ६५ गृहधर्मनिर्णय, ६६ सङ्कोर्णजाति, पञ्चमहायज्ञ, सन्ध्या और उपासनादिका कीर्त्तन, गृह्धिर्भ ओर वर्णधर्मादिका कथन, ६७ द्रव्यशुद्धि कथन, ६८ दानधमं, ६६ श्राद्धविधि, १०० विनायकशान्ति, १०१ प्रहशान्ति, १०२ वानप्रस्थाश्रमविवरण, १०३ यति-भ्रमं, १०४ पापचिह्रकथन, १०५ प्रायश्चित्तविधि, १०६ अज्ञीचादि निर्णेय, १०७ पाराशरघर्मशास्त्र, १०८ नीतिसार, १०६ नीतिसारमें घनरक्षणादिका उपदेश, ११० नीतिसार-में भ्रुवपरित्यागनिपेधादिका वर्णन, १११ नीतिसारमें राजलक्षण, ११२ नीतिसारमें भृत्यलक्षणनिर्णय, ११३ नोतिसारमें ग्रुणविश्वयोगादिका की तैन, ११४ नीतिसारमें मिलामिलविभाग, ११५ नीतिसारमें कुभार्यादि परित्याग-का उपदेश, ११६ व्रतकथनथारम्म, १न७ अनङ्गत्रयोदशी-वत, ११८ अखण्डद्वादशीवत, ११६ अगस्त्यार्घ्यं वत,

१२० रम्भातृतीयावत, १२१ चातुर्मास्यवृत, १२२ मास-उपवासत्रत, १२३ भीन्मपञ्चकादि वतविधि, १२४ शिव-राविवत, १२५ एकादशीमाहात्म्य. १२६ विष्णुपूजन, १२७ भीमैकादणीकी तंन, १२८ वतनियम, १२६ प्रति-पदादि वतकथन, १३० पष्टी सप्तमी व्रतकथन, रोहिण्याप्टमीवत, १३२ बुधाएमोवत, महानवमीव्रत. १३५ अशोकाप्रमीवत, १३४ महानवमीवतप्रसङ्गमें कौशिकमन्त्रकथन. १३६ वोर-नवमोत्रत, १३७ दनननबमीवत, १३८ दिग द्शमीवत, १३६ एकादश्रोवत, १४० श्रवणद्वादशीवत, १४१ मदन-त्रयोदशीवत, १४२ सूर्य व शकथन, १४४ चन्द्रव शकथन-प्रसङ्गमें पुरुव शकीर्त्तन, १४५ जनमेजयव शकथन, १४६ विष्णुको अवतारकथा, पतित्रताका माहात्म्य, १४७ रामायणकथन, १४८ हरिचंशकथन, १४६ भारतकथन, १५० आयुर्वे दकथनमें सर्व रोगनिदान, १५१ ज्वरनिदान, १५२ रक्तपित्तनिदान, १५३ कामनिदान, १५४ श्वासनिदान १५५ हिकारोगनिदान, १५६ यक्ष्मनिदान, १५७ अरोचक्रनिदान, १५८ हद्रोगादि-निदान, १५६ मदात्ययादिनिदान, १६० अशोनिदान, १६१ अतीसारनिदान, १६२ मूलाघातनिदान, १६३ प्रमेहनिदान, १६४ विद्रिघिनिदान, १६५ उदरनिदान, १६६ पाण्डुशोधनिदान, १६७ क्रुप्ररोगनिदान, १६८-१६६ क्रिमिनिदान, १७० वातव्याधिनिदान, १७१ वातरक्तनिदान, १७२ सूत्रस्थान, १७३ अनुपानादिकथन, १७४ ज्वरादि-चिकित्साकथन, १७५ नाड़ीव्रणादि चिकित्साकथन, १७६ स्रोरोगादि चिकित्साकथन, १७७ द्रव्यनि गेंय, १७८ घृत-तैलादि कथन, १७६ नानायोगादि कथन, १८० नाना रोग-का औपधकधन, १८१ नेलयोगादिका औपधकथन, १८२ वशीकरण, १८३ दन्तश्वेतीकरण, १८४ स्त्रोवशीकरण और मशकवारणादि कथन, १८५ नेत्रशूलादिका औपध-कथन, १८६ रतिशक्ति वढ़ानेका उपायकथन, १८७ प्रहणादिका औषधकथन १८८ कटिशूलादिका औषध-कथन, १८६ गणेशपूजा, १६० प्रमेहादिका औपधकधन, १६१ मेधावृद्धिका औपघकथन, १६२ आघानस्रुत-रक्त और १६३ दन्तव्यधा-प्रशमनका औपधकथन, १६४ गएडमालादिका औषधकथन, १६५ सपँका भौपधकधन १६६ योनिव्यधादिका 'औषधकथन,

१६७ पशुचिकित्सा, १६८ पाण्डुरोगादिका औषघ-कथन, १६६ बुद्धि निर्मल करनेका अीवधकधन, २०० विल्णुकवचकथन. २०१ विल्णुविद्या २०२ विल्णु-धर्माच्य विद्या. २०३ गारुङ्विद्या. २०४ तिपुराकल्प, २०५ प्रथ्रगणना. २०६ बायुजय, २०७ अध्विचकित्सा, २०८ औषधका नाम निर्देश, २०६ व्याकरणनियम, २१० उदाहरणसमृह, २११ छन्द्रोशास्त्र आरम्म, २१२ मातावृत्त-कथन, २१३ समवृत्तकथन, २१४ अर्ड समवृत्तकथन. २१५ विषमवृत्तकथन, २१६ प्रस्तरादि निर्देश, २१७ धर्म उपदेश, २१८ स्नानविधि, २१६ तर्पगविधि, २२० त्रश्वदेवविधि, २२१ सन्ध्याविधि, २२२ श्राद्धिक्षि, २२३ नित्यश्राद्ध-विधि, २२४ सपिएडीकरण, २२५ धर्मसारकथन, २२६ शूद्रका उच्छिप्र भोजन करनेके कारण पायश्चित्तकंथन. २२७ युगधर्मकथन, २२८ नैमित्तिक प्रलयकथन, २२६ संसारकथन पृस्तावमें पापपरिणामकथन, २३० अप्टांग-योगकथन, २३१ विष्णुभक्तिकथन, २३२ नारायण-नम-स्कार, २३३ नारायणाराधना, २३४ नारायणध्यान, २३५ विष्णुका माहातम्य, २३६ नृसिहस्तव, २३७ ज्ञानामृत-कथन, २३८ मार्कण्डेयकथित नारायणका स्तव, २३६ ब्रह्म-कथित विष्णुका स्तव, २४० ब्रह्मज्ञानकथन, २४६ आत्म-ज्ञानकथन, २४२ गीतासार, २४३ अ**ष्टाङ्गयोगका** पुयोजन-कथन।

वसाखण्डमें (प्रेतक्त में)—१ वैकुएठसे नारायणके पृति गरुड़का विविध पृथ्न, २ गरुड़के पृति भगवान्का और्द्ध देहिक विधिकथन, ३ नरकका रूपवर्णन, ४ गर्भा-वस्थाकीर्त्तन, ५ दशदानादि कथन और पर्ण-नर-दाह-विधि, ६ अशौच कालिक्ष्पण, ७ वृपोत्सर्गकथन, ८ पञ्चपृतिका उपाख्यान, ६ और्द्ध देहिक कर्माधिकारि-कीर्त्तन, १० वम्रुवाहन और पृत्तसंवाद, नाना रूपमें श्राइको तृप्तिजनकविधि, १२ मनुष्यजनमलाभका कारणादि कथन, १३ मनुष्यतत्त्वकथा, १४ पृतत्वनाशक कर्मकथन, १५ आतुर और म्रियमाणींका दानवर्णन, १६ यमलोकका पथनिर्णय, १७ यमपुर जानेकी अवस्था, १८ यममार्ग से निष्कृतिका उपाय, १६ चित्रगुमपुरमें जानेकी कथा, २० पृत्रगणका वासस्थाननिर्णय, २१ पृतलक्षण और पृतत्वमुक्तिका उपाय, २२ दूसरे पृकारसे पञ्चप्रेतका

उपाच्यान, २३ प्रेतगणका रूपनिरूपण, २४ मनुत्यगणका आयुनिरूपण, वालकका पिएडमानादि कथन, २५ शैश-वादि विभेद, आकौमारींका विशेष कत्तेष्य उपदेश, २६ सपिएडोकरणविधि, २७ वभ्रुवाहन और प्रेतसंवाद, २८ विशेष ज्ञानके लिथे नारायणके पृति गरुड़का पृथ, २६ अद्भिदे देहिककृत्यकथन आरम्म, ३० दानविधि, ३१ दान-माहातम्य, ३२ जीवको उत्पत्तिकथा, ३३ यमलीक विस्तारादिका कथन, ३४ युगभेदसे धर्म-कार्यं व्यवस्था, दाहकोंके सगोतके कर्त्तव्यमें उपदेश, अशौचादि निरूपण ३५ सपिएडीकरणको विशेषविधि और अविधि कथन, ३६ अनाहारसे मरणका फलकथन, ३७ उदकुम्भदानादि कथन, ३८ अपमृतगणकी गति और उनके उद्धारका उपाय, ३६ कार्त्तिषयादिमें वृपोत्सर्गं विधान, ४० पूर्वकृतकर्मका फत्तु<sup>°</sup>-अनुवन्धित्वकथन, विशेष दान पुकारकथन, ४१ जलाग्निवन्धनद्रप्रादि गणका पुग्यश्चित्तकथन, ४२ आत्म-घातियोंका श्राद्धनिपेघ कथन, ४३ वार्षिक श्राद्धकथन, ४४ पापमेदसे चिहमेद जनमभेद आदि कथन, ४५ मृतके लिये, अनुताप, उनकी मुक्तिका उपाय और गरुड्युराणपाठका फलकथन ।

अव देखना चाहिये, कि उक्त गरुड़पुराणको हम लोग आदि गरुड़ मान सकते है वा नहीं? अध्यापक विलसन साहव इस गरुड़को पुराणोंमें गिनती नहीं करते।

मत्स्यपुराणके मतसे-

"यदा च गारु इं कल्पे विश्वाएडाहरु हो द्रवम् । अधिकृत्याववोहि ग्णुर्गारु तिहि हो च्यते ॥ तद्यादण चैकं च सहस्र।णीह प्रत्यते ।" विश्णुने गारु इकल्पमें गरु इवे उद्भवप्रसङ्गमें विश्वा-पद्धसे आरम्भ लेकर जिस पुराणका वर्णन किया है, उस-का नाम गारु है। इसमें १८००० स्रोक हैं।

नारद्युराणके मतसे-

"मरीचे शृणु वल्ल्स्य पुराणं गारुडं शुभम्।
गरुडायाववीत् पृष्ठो भगवान् गरुडासनः ॥
एकोनविशसाहस्रं तार्स्यकरणकथाचितम्।
पुराणीपक्रमो यत सगसंक्षेपतस्ततः ॥
स्यादिप्जनविश्रिदीक्षा विभिन्तः परम्।
श्रादिप्जा ततः पश्चाक्षवन्यूहाचैनं द्विज ॥

पूजाविधानंच तथा वैष्णवं पंजरं ततः। योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्रकीर्त्तनम् ॥ ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजामृत्युं जयार्चनम् । मालामन्ताः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम् ॥ गोपालपूजा वैलोक्यमोहनश्रोधरार्चनम्। विज्यवर्चा पंचतत्त्वार्चा चकार्चा देवपूजनम् ॥ न्यासादिसन्ध्रोपास्तिश्च दुर्गार्चाथ सुरार्चनम्। पूजा माहेश्वरी चातः पविवारोहणार्चनम् ॥ म्सिध्यानं वास्तुमानं पासादानाश्च लक्षणम्। पृतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजाविधानतः ॥ योगोऽष्टांगो दानधर्मः पायश्चित्तं निधिक्रिया। द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिपम्॥ सामुद्रिकं खरशानं नवरत्नपरीक्षणम्। माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्भ्यमुत्तमम्॥ ततो मन्वन्तराख्यान पृथक् पृथक् विभागशः। पिताख्यानं वर्णधर्मा द्रष्टशुद्धिसमर्पणम् ॥ श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रह्यक्षस्तथ्यश्रमाः। मननाख्या प्रेताशीचं नीतिसारी व्रतोक्तयः॥ सूर्यवंशः सीमवंशोऽवतारकथनं हरेः। रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकं ततः॥ आयुर्वेदे निदानं प्राक् चिकित्सादृव्यजा गुणाः। रोगम् कवचं विष्णोर्गारुड् ते पुरो मनुः॥ प्रश्नचूड़ामणिश्चान्ते ह्यायुर्वेदकीर्त्तनम्। औपिंचनामकथनं तती व्याकरणोहनम्॥ छन्दःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः ( तर्पणं वैश्यदेयं च सन्ध्यापार्वणकर्म च॥ नित्य श्राद्धं सपिएडाख्यं धर्मसारोऽघनिष्कृतिः। प्रतिसंक्रम उकोऽस्माद्युगधर्माः कृतेः फलम्॥ योगशास्त्रं विष्णुभक्तिनमस्कृतिफलं हरेः। माहातम्यं वैष्णवं चाथ नारसिंहस्त्वोत्तमम्॥ ज्ञानामृतं गुह्याएकं स्त्रोतं विष्णवर्चनाह्यम्। वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं व्रह्मज्ञानं तथात्मकम्॥ गीतासारफलोत्कीत्तिः पूर्वखएडोहयमीरितः। अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्यः पुरोदितः॥ यत तार्झेण संपृष्टो भगवानाह वाड्वः। धर्मप्रकटनं पूर्वयोनीनां गतिकारणम् ॥ दानाधिकं फलं चापि प्रोक्तमन्त्रीद्ध देहिकम्। यमलोकस्य मागस्य वर्णनंच ततः परम्॥ षोड्श्रश्राद्धफलकं वृत्ताणाचात वर्णितम्। निकृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम्। प्रे तपीड़ाविनिदे शः प्रे तिचिह्निरूपणम्। प्रेतानां चरितास्थानं कारणं प्रेततां प्रति॥ म्रोतकृत्याविचारश्च सपिएडकरणोक्तयः।

प्रतत्वमीक्षणाख्यानं द्रानानि च विमुक्तये ॥ आवश्यकोत्तमं दानं प्रतसौख्यकरं हितम् । शारीरकविनिद्रेशो यमछोकस्य वर्णनम् ॥ प्रतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृ विनिर्णयः । मृत्योः पूर्विक्रयाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ॥"

(हे मरीचे ! सुनो, शुभ गारुडपुराण कहता हूं । गरुड़से पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्णने यह पुराण गरुड़से कहा था। यह उन्नीस हजार श्लोकोंमें पूर्ण और ताक्ष्यकरणीय कथा समन्वित है।

(पूर्वेखएड) इसमें पहले सर्ग संक्षेपमें पुराणोपक्रम-का वर्णन है और पोछे सूर्यादि पूजाविधि, दीक्षाविधि, श्रीप्रभृतिपूजा, नवन्यूहादि अर्चना, पूजाविधान, वैणाव-पञ्जर, योगार्घाय, विन्णुका सहस्र-नामकीर्त्तन, विष्णु-ध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युञ्जयपूजा, मालामन्त्र, शिवार्चन, गणपूजां, गोपालपूजां, श्रीधराचेन, विन्णुपूजा, पञ्चतत्त्वा-र्चन, चकार्चन, देवपूजा, न्यासादि, सन्ध्रगौपासन, दुर्गा-र्चन, सुराचन, मांहेश्वरीपूजा, पवितारोहणार्चन, भूर्ति-ध्यान, वास्तुमान, प्रासादंरुक्षण, सवदेवप्रतिष्टा, अष्टाङ्ग-योग, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेशनरकाख्यान, सूर्यन्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, खरज्ञान, नवरत्नपरीक्षा, तीर्थसमु-दायका माहात्म्य, उत्तमगयामहात्म्य, पृथक् पृथक् रूपमें मन्यन्तराख्यान, पिताख्यान, समस्त वर्णधर्म, द्रव्यशुद्धि, श्राद्ध, विनायकार्चना, ग्रंहयज्ञ, समस्त आश्रम, प्रेता-शीच, नीतिसार, सूर्यवंश, सोमवंश, हरिअवतारकथा, रामायण, हरिचंश, भारताख्यान, आयुर्वेदमें निदान, चिकित्सा, द्रव्यगुण, विज्युकवच, गारुइं और तेषुरमन्त्र, प्रश्नचूड़ामणि, इयायुर्वेदकीर्तन, औषधीनामकीत्तंन, व्याकरण और छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, वैश्व-देवतर्पण, सन्ध्रापार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिएडास्य-्रश्राद्ध, धर्मसार, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरिनमस्कार-फल, वैव्यवमाहात्म्य, नारसिंहस्तव, स्नानामृत, गुह्या-ष्टकस्तोत, वेदान्तसांख्यसिद्धान्त ब्रह्मज्ञान और गीता-सारफलकी चैन।

अनन्तर इसके उत्तरखण्डमें प्रतेकस्य वर्णित हुआ है। इसमें ताक्ष्येसे पूछे जाने पर भगवान्ने धर्मप्रकटन, पर्वयोनिका गतिकारण, दाना्धिकफल और औद देहिक-कियाएं वणन की हैं। अलावा इसके इस पुराणमें यम- लोक पथका वर्णन, पोड्श श्राद्धका फल, यममाग-निष्कृति, धर्मराजका वैभव, प्रेतपीड़ानिद्रेश, प्रेतचिह-निरूपण, प्रेतगणका चरिताख्यान, प्रेतत्वका प्रतिकारुण, प्रतकत्वविचार, सपिएडकरणोक्ति, प्रतत्वमोक्षणकथन, मुक्तिनिमित्त दान, प्रतसौल्यकर आवश्यकीय दान, शारी-रकनिर्देश, यमलोकवर्णन, प्रतत्वउद्धार, कर्मकर्तक-विनिर्णय, मृत्युका पूर्विकियाकथन, कर्मनिरूपण, पोड्शक-श्राद्ध, स्तकसंख्यान, नारायणविक्रिक्या, वृपोत्सग -माहातमा, निषिद्धपरित्याग, अपमृत्युक्रिया उक्ति, मनुष्य-गणका कमेविपाक, कृत्याकृत्यविचार, विष्णुध्यान, सग -गतिसंवन्धमें, विहिताख्यान, खग सुखनिक्रपण, भूलोक-वर्णन, सप्तलोकवणन, पञ्चोद्घुं लोककथन, ब्रह्माएडस्थिति-कीर्त्तन, ब्रह्माएडका वहु चरित, ब्रह्मजीवनिरूपण, आत्य-न्तिक लयकथन और फलस्तुतिनिक्रपण, ये सव कीर्तित हुए हैं। यह गारुड़ नामक पुराण भक्ति और मुक्ति-प्रदान करता है।)

मात्स्य थौर नारदीयपुराणके स्रक्षणानुसार इस गरुड़को हम लोग निःसन्देह सुलपुराणके जैसा ब्रहण कर सकते हैं। प्रचलित गरुडुपुराणके २य अध्यायेमें गरुड़की उत्पत्ति और गरुड़की नाम निरुक्ति तथा अय अध्यायमें भगवान् विष्णुकतृ क रहके समीप अएडसे जगत्सृष्टिप्रसङ्गमें पुराणाख्यानका पाठ करनेसे इस गरुड़को आदिगरुड़ माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो नारद्पुराणमें जो अनुक्रमंणिका दी गई हैं. उनके प्रायः सभी विषय पुचलित गरुड्पुराणमें मिलते हैं हैं। जो कुछ गोलमाल है, वह केवल स्लोक ले करे। आदिगरुडकी स्रोकसंख्या १८००० है, किन्तु प्रचलित गरुड्युराणमें इससे सात हजार कम होते हैं। भविष्य-राजवंशांख्यानका पूर्वा श पढ़नेसे झांत होता है, कि यह पुराण जनमेजयंके समयमें पहले पहले सङ्कृतित हुआ था। (१४४।४१) अनन्तर अविष्यराजव शे वर्णनंकी जगह राजा शूद्रक तक नाम रहने (१४८।८) एवं चिप्णु मत्स्य आर्दिकी तरह अन्ध्रगुप्त-प्रभृति राजाओंका उल्लेख नहीं रहनेके कारण प्रचलित गर्वड़ प्रचलित विष्णुमेल्स्य आदि पुराणींकी अपेक्षा समधिक प्राचीन प्रतीत होता है। शूद्रकके समय हिन्दू और वौद्धगण आपसमें हिलमिल

कर रहते थे। उनके समयमें रचित मृच्छकि नाटकसे उस समयके वौद्ध और हिन्दू-समाजकी अवस्था वहुत कुछ जानी जाती है। उस समय वौद्धप्रभाव और बुद्धकी उपासना तमाम प्रचलित थी। इस गरुड्युराणमें भी बुद्धदेव २१वें अवतार माने गये हैं तथा बुद्धके पिता और वंशधरोंके नाम देखे जाते हैं।

गरह्युराणमें नाना विषयका प्रसङ्ग देख कर अध्या-पक विलसन इसे आधुनिक रचना मान गये हैं, किन्तु इससे आधुनिकत्व प्रमाणित नहीं होता। जो जो विषय गरुड़पुराणमें विवृत हुए हैं, गरुड़को अपेक्षा अनेक प्राचीन प्रन्थोंमें उनका परिचय मिलता है। जो कुछ हो, इसमें आदि गरुड़पुराणके सभी अंश नहीं रहने तथा वर्त्तमानरूप धारणकालमें स्थान विशेषमें प्रक्षित अंश संयोजित होने पर भी इसे १लो या ररो शताब्दीका सङ्क लित वन्थ मान सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

त्निवेणीस्तोत, पञ्चपवं माहातम्य, विष्णुधर्मोत्तर, वेङ्करिनिरमाहातम्य, श्रीरङ्गमाहात्म्य, सुन्दरपुरमाहात्म्य आदि कुछ प्रन्थ गरुड्युराणके अन्तर्गत प्रचलित हैं। किन्तु ये सव आधुनिक ग्रन्थके जैसे प्रतीत होते हें।

#### १८ ब्रह्मार्ड५्रागा।

८कियापादमें —१ अनुक्रमणिका, २ द्वादशवार्षिक-यज्ञनिरूपण, ३ सृष्टियर्गन, ४ प्रतिसन्धियर्गन, ५ वर्त्त-मानकल्पविवरण, ६ देवासुरोत्पत्तिकथन, ७ योगधर्म, ८ योगोपवर्ग, ह योगैश्चर्य, १० पाशुपतयोग, ११ शौचा-चारत्रक्षण, १२ परमाश्रमप्राप्तिकथन, १३ यतिप्रायश्चित्त, १४ अरिप्रलक्षण, १५ औंकारप्राप्तिलक्षण, १६ कल्पनिरू-पण, १७ करुपसंख्या १८ युगभेदमें माहेश्वरावतार, १६ ब्रह्मोत्पत्ति, २० कुमारोत्पत्ति, २१ विष्णुकर्नुक शिवस्तव, २२ खरोत्पत्ति, २३ हृद्रोत्पत्ति, २४ लोकपालचालिखल्य और सप्तर्पिकी उत्पत्ति, २५ अग्निवं शवर्णन, २६ दक्ष-कन्या और दक्षणापवर्णन, २७ दक्षकर्तृक शिवस्तव, २८ ड्वरकथन, २६ देवव शवर्णन, ३० प्रणवनिर्णय, ३१ युगनिर्णय, ३२ भरतव शवण न, ३३ जम्बृहीपवर्ण न, ३४ दिग विभागस्थ सरिन्शैलादि, ३५ जम्बूद्वीपका वर्षकथन, ३६ वर्षपर्व तकथन, ३७ उस दक्षिणदिक्स्य द्रोणीकथन, ३८ पर्व ताचासवण न, ३६ देवकूटादि पर्व तवण न, ४०

कैलासवर्ण न, ४१ निपधपर्व तादि कथन, ४२ सीम और नदीकथन, ४३ भट्टाश्दवणीन, ४४ केतुमालवर्णन, ४५ चन्द्रहीपवर्ण न, ४६ भारतवर्ष वर्ण न, ४७ किंपुरुपादि वर्ष वर्ण न, ४८ कैलासवर्ण न, ४६ गङ्गावतरण, ५० वर्ष -पर्व तस्थ नदीवर्ण न, ५१ भारतवर्षीय अन्तर्हींपकथन, ५२ ग्रुक्षद्वीपवर्ण न, ५३ जात्मलद्वीपवर्ण न, ५४ कुणद्वीप-वर्ण न, ५५ कौञ्चद्वीपवर्ण न, ५६ शाकद्वीपवर्ण न, ५७ पुष्करद्वीपवर्ण न, ५८ वर्ष और द्वीपादिनिर्णय, ५६ अधः और ऊदुधू भागनिर्णय, ६० चन्द्रसूर्यादि ज्योतिःनिर्णय, ६१ ज्योतिग्कविवरण, ६२ प्रहनक्षत्ननिर्णय, ६३ नीलकरह-स्तव, ६४ लिङ्गोत्पत्तिकथन, ६५ पित्वर्णन, ६६ पर्व-निण य, ६७ युगनिरूपण, ६८ यश्चवर्ण न, ६६ द्वापरयुग-विधि, ७० कलियुगवर्ण न, ७१ देवासुरादिका शरीरपरि-माण, ७२ धर्माधर्मकथन, ७३ मन्त्रकृत् ऋपिवंश, ७४ चेदविमागादि, ७५ शाकल्यवृत्तान्त, ७६ संहिताकार ऋषियं शवर्ण न, ७९ मन्वन्तरकथन, ७८ पृथुवं शातु-कीर्त्तन, ७६ सायम्भुवादि सर्गकथन, ८० वैवस्वतसर्ग-कथन ।

मध्यभागमें उपोद्धातपाद्में—१ पूजापतिवंशातुः कीर्त्तन, २-५ काश्यर्पाय पूजासर्ग, ६ ऋषिवंशानुकीर्तन, ७ श्राद्धपृक्रिया आरम्भ, ८-१३ श्राद्धकल्प, १४ श्राद्धकल्पमें ब्राह्मणपरीक्षा, १५ श्राद्धकर्यमें दानफल, १६ तिथि-चिशेपमें श्राद्धफल, १७ नस्र**क्षविशेषमें श्राद्धफल,**१८ भिन्न-कालिक तृप्तिसाधन, र व्यविशेषमें गयाश्राद्यादि फलकीत्तन, १६ वरुणवं शवर्णन, २० इस्वाकुत्रं शकथन, २१ मिथिला-वंशकथन, २२ राजयुद्ध, २३-३३ मार्ग वचरित, ३४ कार्त्ते-बीर्यचरित, ३५ ज्यामघचरित, ३६ वृष्णिवंशानुकीर्त्तन, ३७ समस्चरित, भाग वकथा, ३८ देवासुरकथा, ३६ कृष्णावि-र्भावकथन, ४० इलस्तव, ४१ भविष्यकथा, ४२ वैवस्वतमनु-वंश, ४३ वैवस्वमनुवंश, गन्धवैम्रून्हं नालक्ष ७ ४४ गीता-रुङ्कार, ४५ वैवस्वतमनुव शवर्णन, ४६ सोमजन्मविवरण, ४७ चन्द्र व शकोर्त्तन, (ययातिचरित), ४८ विष्णुव शवर्णन, ४६-५० विष्णुमाहात्म्यकीर्त्तेन, ५१ भविष्यराजवंश, उत्तर भागके उपसंहारपादमें ५२ वैवस्वत मन्वन्तराख्यान, ५३ सप्तम मन्वादि चतुर्दशमनु पर्यन्त विवरण, ५४ भविष्य-मनुर्भोका वर्ण<sup>°</sup>न, ५५ कालमान, ५६ चतुर्<sup>°</sup>शलोकवर्णं न,

५७ नरकवणन, ५८ मनोमय पुराख्यान, ५६ प्राकृतिक लय-वणन, ६० शिवपुरादि वणन, ६१ गुणानुसारसे जन्तुओं-की गति, ६२ अन्वयध्यतिरेकानुसारसे पूलयादि पुनसृष्टि वर्णन ।

अध्यापक विलसन, राजा राजेन्द्रलाल मिल, भाएडार-कर पृष्टित पुरातत्त्वविद् पिएडतोंके मूल ब्रह्माएडपुराण-को अस्तित्व सम्बन्धमें सन्देह कर गये हैं।

अब देखना चाहिये, कि उद्धृत विषययुक्त पुराणको हम लोग ब्रह्माएड कह सकते हैं वा नहीं? इस सम्बन्धमें अपरापर पुराणोंमें ब्रह्माएड-महापुराणका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है? मत्सपुराणके मतसे—

"ब्रह्मा ब्रह्माएडमाहात्म्यमधिकृत्याववीत्पुनः।
तच द्वादशसाहस्रं ब्रह्माएडं द्विशताधिकम्॥५४॥
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्न विस्तरः।
तद्बद्धाएडपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहतम्॥५५॥"

व्रह्माएडका माहातम्य अवलम्बन करके ब्रह्माने जो पुराण कहा था, वही १२२०० स्त्रोक समन्वित ब्रह्माएड है। जिस पुराणमें ब्रह्माने भविष्य कल्पवृत्तान्त विस्तृत रूपसे विवृत किया है, वही ब्रह्माएडपुराण है।

शिव-उपपुराणके उत्तरखएडमें इस पूकार लिखा है—
"ब्रह्माएडचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माएड परिकोर्त्तितम्।"
ब्रह्माएडका चरित अर्थात् ब्रह्माएडका भूगोल-विवरण
इसमें वर्णित हुआ है, इस कारण इसे ब्रह्माएडपुराण
कहते हैं।

शिवमहापुराणकी वायुसंहिताके ११वें अध्यायमें लिखा है—

"ब्रह्माएड' चातिपुण्योऽयं पुराणानामनुकमः।" यह ब्रह्माएडपुराण अति पुण्यपूद और समस्त पुराणों को अनुकमणिका स्वरूप है। नारदपुराणमें ब्रह्माएडपुराण को अनुक्रमणिका इस पुकार दी गई है—

"श्णु बत्स प्रवक्ष्यामी ब्रह्माएडाख्यं पुरातनम् ।
यच द्वादशसाहस्रं भाविक व्यक्षयायुतम् ॥
पृक्रियाख्योऽनुपङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः । .
चतुथः उपसंहारः पादाश्चत्वार पव हि ॥
पूर्विपादद्वयं पूर्वो भागेऽत्र समुदाहतः ।
तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्धस्तृत्तरो मतः॥
(तत्र पूर्वंभागे पृक्षियापादे)
आदौ कृतसमुद्दं शो नैमिषाख्यानकं ततः ।
हिरण्यगमोंत्पसिश्व लोककृष्यनमेव च ॥

एप वै पृथमः पादो द्वितीय श्रेणु मानद् ॥ ( पूर्वभागे अनुषंगपादे ) कल्पमन्त्रन्तराख्यानं स्रोक्षज्ञानं ततः परम् । मानसीस्ष्टिकथन रह्पूसववर्णनम्॥ महाद्वविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततःपरम् । अप्नोनां विषयश्चाथ काळसद्भाववणेनम् ॥ पूर्ववताचयोद्देशः पृ.श्वव्यायामविस्तरः। वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम्॥ जम्वादिसप्तद्वीपाख्या ततोऽश्रोलोकवर्णेनम्। ऊद्धं लोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम्॥ आदित्यन्यूहकथनं देवप्रहानुकोत्त्वन्य् ॥ नोल तंडाह्ययाख्यानं महादेवस्य वैभवम् ॥ अञ्चावस्यानुकथनं युगतत्त्वनिद्धपणम् । यजपुवत्तनं चाथ युगयोरएडयोः कृतिः॥ युगपूजालक्षणञ्च ऋषिपूवरवर्णनम्। वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायम्भुवनिरूपणम् ॥ शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिवीदोहनस्ततः। चाक्षपेऽचतने सर्गौ द्वितीयोऽङ्घि, पुरोदले ॥ अथोपोद्द्यातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्त्तनम्। पुाजापत्याचयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः॥ ततो जयाभिव्याहारौ मरुदुत्पत्तिकीत्तनम् । काश्यपेयानुकथनमृपिवंशनिरूपणम् ॥ पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ।<sup>,</sup> वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम्॥ मनुपुताचयश्चातो गान्धर्चस्य निरूपणम् । इक्ष्वाकुवं शकथनं वं शोऽले : सुमहात्मनः ॥ अमावसोराचयश्च रजेश्चरितमद्भुतम्। ययातिचरितञ्चाथ यदुवं शनिरूपणम् ॥ कार्त्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम् । वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याय् सम्भवः॥ भागवस्याथ चरितं तथा कार्त्तवधाश्रयम्। समरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः॥ देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाववर्णने। इलस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीत्तितः॥ विष्णुमाहात्म्यकथनं विखर्शनिद्धपणम्। भविष्यराजचरितं सम्प्राप्तेऽथ कलौ युगे ॥ एवमुद्घातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे द्ले॥ चतुथमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे। वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ॥ पुर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते । भविष्याणां मनूनाञ्च चरितं हि ततः परम्॥ फल्पपूळयनिर्देशः ततः कालमान<sup>\*</sup> ततः परम्। लोकाश्चतुद्श ततः कथिता मानलक्षेणः ॥

वणनं नरकानाञ्च विकर्माचरणैस्ततः। मनोमयपुराख्यानं लयपुाऋतिकस्ततः॥ शैवस्यायं पुरस्यापि वर्णनञ्च ततः परम्। तिविश्राद् गुणसम्बन्धाज्ञन्तूनां कीर्त्तिता गतिः॥ अनिर्दे श्यापृतक्र्यास्य ब्रह्मणः परमात्मनः। अन्वयव्यतिरैकाभ्याँ वर्णनं हि ततः परम्॥ इत्येव उपसंहारः पादोव्रतः स चोत्तरः । चतुंष्पादं पुराणं ते त्रह्माण्डं समुदोहनम्॥ अष्टादशमनीपस्यं सारात्सारतरं द्विज। तदेव वरुषगदितमदाष्टादश्घा पृथक् । पाराशर्येण मुनिना सर्वे पाप्तपि मानद ॥ वस्तुद्रप्राथ तेनेत्र मुनीनां भावितात्मनाम् । मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेम्यः प्रचकाशिरे ॥ मनवोधर्मशीलास्ते दीनानुप्रहकारिणः यथा वेद् 'पुराणन्तु वशिष्ठाय पुरोदितम् ॥ तेन गक्ति, सुतायोक जातुकर्णाय तेन च। व्यासलब्धा ततश्चैतत् पुभञ्जनमुखोद्दगतम् ॥ पुमाणीकृतलोकेऽस्मिन् पावर्त्तयद्वतमम्।"

हे बत्स ! सुनी, अब ब्रह्माएड नामक पुराण कहता हूं। यह झादश सहस्र श्लोक और भाविकत्यकी कथा झारा परिपूर्ण है। प्रक्रिया, अनुपङ्ग, उपोद्धात और उप-संहार नामक इस पुराणके चार पाद हैं। उक चार पार्लेके आदि हो पाद द्वारा पूर्वभाग, मध्यमभाग और चतुर्थपाद द्वारा उत्तरभाग कित्यत हुआ है।

(शम प्रक्रियापाद) इसमें पहले इतसमुद्देश और पीछे नैमियास्यान, हिरण्यगर्भोत्पत्ति और लोककथनकी वर्णना है।

(श्य अनुष्तुपाद) इसमें कर्यमन्वन्तराख्यान, लोकज्ञान, मानसी खिएकथन, रुद्रप्रसववर्णन, महादेवविभूति,
अधिस्त्रा, अग्निगणका विषय, कालसङ्गाववर्णन, प्रियव्याचारनिर्देश, पृथिवीका दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्णवर्णन, जम्बादि सप्तद्दीपवर्णन, अधोलोकवर्णन, ऊर्द्रलोकक्रियन, प्रहचार, आदित्यन्यूहकथन, देवप्रहानुकीर्तन,
लोकक्राल्यान, महादेवका वैभव, अमावस्याकथन,
युगतत्त्वनिरूपण, यज्ञप्रवर्त्तन, शेषयुगका कार्य, युगप्रज्ञा
लक्षण, ऋषिप्रवरवर्णन, देवताओंका व्यसनाख्यान, स्वायम्मुव निरूपण, शेष मन्वन्तराख्यान और पृथिवीदोहन
य सव कीर्तित हुए हैं।

(मध्यम उपोद्धातपाद) इसमें निम्नलिखित विषय

वर्णित हैं—सप्तर्षिकीर्त्तन, प्रजापितसमूह और उनसे देवादिकी उत्पत्ति, जयामिध्याहार, मरुदुत्पत्तिकीर्त्तन, काश्यपेयानुकथन, ऋषिव शनिकपण, पितृकस्पानुकथन, श्राद्धकल्प, वैवस्ततोत्पत्ति, वैवस्ततसृष्टि, मनुपुत्तसमृह, गान्धिनिकपण, इक्ष्वानुव श-कथन, श्रात्व शक्यम, रिजका चरित, ययातिचरित, यदुव शनिकपण, कार्त्तवीर्यचरित, जामद्गन्यचरित, यृष्णिव शानुकथन, सगरसम्भव, भाग्वचरित, समरचरित, भाग्वकथा, देवासुरसंग्रामकथा, ऋणाविर्माववर्णन, स्परस्तव, विष्णुमाहात्य्य, विर्वा शनिकपण और कलियुग उपस्थित होने पर मित्रय-राजचरित।

(उत्तरमाग उपसंहारपाद) इसमें पहले संक्षिममें वैवस्वतान्तराख्यान, पीछे भवित्य मनुश्रीका चित्त, कर्य-प्रलयनिर्देश, कल्पमान, चौदह लोकोंका कथन, नरकोंका वर्णन, मनोमय पूराख्यान, प्राञ्चितक लय, शैवपुरका वर्णन, तिविधगुणसम्पर्कमें पूर्णियोंका गितकीर्त्तन और अनि-देश तथा अप्तक्ये परमात्मा ब्रह्माके अन्वयव्यतिरेकका वर्णन है। यह उपसंहार नामक उत्तरभाग सम्पन्न हुआ यह अष्टादश और सारसे भी सारतर पुराणके जैसा प्रसिद्ध है।

हे द्विज! वह पुराण चार लाख स्लोकहरामें भी पढ़ा जाता है। पराशरात्मज व्यासने उसीको अष्टादश प्रकारमें विभक्त करके प्रकाशित किया है। हे मानद! वस्तुद्रश उस व्यास मुनिने मुक्तसे सभी पुराण सुन कर उन्हें जनसाधारणमें प्रकाशित किया है। मैंने इस पुराणकी पहले पहल विशिष्टसे कहा था। पीछे उन्होंने शिक्षक स्तुत और जातुकण को सुनाया। अनन्तर व्यासने इस लोकमें इस प्रमञ्जनमुखोद्यारित इस ब्रह्माग्डपुराणका प्रचार किया है।

उद्धृत वचनसे ब्रह्माण्डपुराणके लक्षणाहि और वर्णित विवरणादिके विषय एक तरहसे जाने गये। विश्वकोष-कार्यालयसे प्रकाशित ब्रह्माण्डपुराणको एक-माल अनुक्रमणिका पढ़नेसे ही जनसाधारणका सन्देह दूर हो संकता है। इस अनुक्रमणिकाके मध्य ही ब्रह्माण्ड-पुराणके वर्ण नीय विषयोंको एक प्रकारकी सूची दी गई है। इस अनुक्रमणिकाके साथ नारदीयपुराणोक ब्रह्माण्ड- पुराणाल्यांनकी विलक्षल एकता देखी जाती है। अलावा इसके मत्स्यपुराणके मतके साथ भी कोई पूमेद नहीं है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माएडपुराण पुरा कालमें ब्रह्मासे कथित हुआ था। हम लोगोंके आलोच्य-ब्रह्माएंडपुराणके १म अध्यायमें साफ साफ लिखा है—

"पुराणं सम्पृवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसन्मितम्।" मत्स्यके मतसे - जिसमें भविष्यकल्प-वृत्तान्त वर्णित ब्रह्मार्डपुराण है। हम लोगोंके वंही ब्रह्माएड-पुराणके सोलहवें सत्त-ंइस अठारहवे' अञ्चायमें वत्तान्त विस्तारित रूपमें वर्णित हुआ है, ऐसा विस्कृत-कल्प-विवरण और किसी पुराणमें नहीं है। पुराणके मतमें ब्रह्माएडका चरित वर्णित होनेके कारण इसं पुराणका नांमें ब्रह्माएड पड़ा है। यथार्थमें इस इह्याएडपुराणके ३३से ५८ अध्यायमें ब्रह्माएडके नाना रथानोंमें भूगालविवरण जैसा दिया गया है, वैसा और किसी पुराणमें नहीं है। अतः इस ब्रह्माएडपुराणके अस्तित्व, मीलिकत्व और महापुराणत्व-सम्वन्धमें और कोई गोलमाल वा सन्देह रहने नहीं पाता। पर हां, वात यह है, कि अध्यापक विलसन, राजा राजेन्द्रलाल प्रभृति विचक्षण परिडतगण ब्रह्माएडपुराणके अस्तित्वसम्बन्धमें जो सन्देह करते हैं, सो क्यों ? किसी किसी ब्रह्माएड-पुराणके प्रन्थमें प्रति अध्यायकी पुष्पिकामें "वायुप्रोक्ते-संहितायां" ऐसा लिखा है। केवल ऐसी पुल्काके ऊपर निर्भर करके कोई कोई महात्मा ब्रह्माएडपुराणको वागु-पुराण क्तला कर और अन्तमें ब्रह्माएडपुराणको भूल कर इस मूल महापुराणके अस्तित्व पर सन्देह कर यथार्थमें उनका यह मतिस्रम कहना चाहिये। नारदीयपुराणमें साफ साफ लिखा है-

"ब्यासोळच्या तश्चैतत् प्रभञ्जनमुखोद्गतम्। प्रमाणीकृत्यळोकेऽस्मिन् प्रावर्त्तयद्गुत्तमम्॥"

ृहस वचन द्वारा ब्रह्माएडपुराण जव वायुप्रोक्त होता है तब हस्तिलिखत ब्रन्थमें जो "वायुप्रोक्त संहितायां" ऐसी पुष्पिका गृहीत हुई है, वह भ्रमपूर्ण नहीं है। वरन् जो 'वायुप्रोक्त' नाम पढ़ कर ही उसे वायुपुराण कह कर मानते हैं, उनकी भारी भूल हैं, ऐसा केहनां होगा। राजा

राजेन्ड्रलाल मिलने पशियारिक सोसाइटीसे एक वायु-पुराण प्रकाशित किया है, उसमें भी इसी प्रकार महासम लक्षित होता हैं।

राजा अपने प्रकाशित वायुपुराणके मुखवन्धमें लिख गये हैं, कि उन्होंने छः हस्तिलिखित प्रन्थ मिला कर वायुपुराण प्रकाशित किया है। इन छः प्रन्थोंमें भारत-गवर्मेण्ट हारा संगृहीत ६७५ प्रन्थ ही उनका आदर्श है। अपर प्रन्थ प्रायः असम्पूर्ण और भ्रमपूर्ण होनेके कारण पाठ मिलानेके लिये बीच बीचमें आलोचित हुआ है। अब हम उनका वही आदशे प्रन्थ ले कर दो एक बात कहेंगे। उस प्रन्थमें जो विवरण लिखा है उसका पाठ करनेसे यह सहजमें प्रतीत होता है, कि वह वायुपुराण नहीं है, हम लोगोंका आलोच्य ब्रह्माण्डपुराण है।

नारदीयपुराणके बचन द्वारा जाना गया है, कि व्रह्मारहपुराण चार पादोंमें विभक्त है। प्रक्रियापाद, अतु-पङ्गपाद, उपोद्धातपाद और उपसंहारपाद। इसमें वारह हजार स्त्रोक हैं। अतरव राजेन्द्रलालके आद्र्श व्रन्थ वर्णित—

"एवं द्वाद्शसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः। चतुष्पादं पुराणन्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा॥" इत्यादि स्ठोकमें ब्रह्माएडपुराणका ही परिचय मिछता है। एनद्भिश्न एशियाटिक सोसाइटीसे प्रका-शित वायुपुराणके पूर्वभागमें चतुर्थं अध्यायोक्त—

"सर्गश्च प्रिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ १० कर्षेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः। पुराणं सम्प्रवस्थामि मारुतं चेदसम्मितम् ॥ ११ प्रित्रया पृथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः। उपोद्धातोऽनुपङ्गश्च उपसंहार पव च। धर्मा यशस्यमाशुष्यं सर्वपापपृणाशनम्॥"

इन सव स्ठोकों द्वारा चतुष्पाद समन्त्रित ब्रह्माएड-पुराणका ही आभास मिलता है। उक्त वचनके मधा "मारुतं वेदसम्मितं" ऐसा पाठ रहनेके कारण उसे वायु-पुराण कह कर सचमुच जनसाधारणकी धारण हो सकती है। किंतु उसे असङ्गत पाठ समक्त कर छोड़ देंना ही उचित है। कारण, हम लोगोंके संग्रहोत चारे ब्रह्माएड-

Vol XIV, 14

पुराणोंके पृत्वीन प्रन्थमें "ब्रह्माएड' वेद्सम्मितम्" ऐस ब्रह्माएडपुराण-परिचायक पृक्षत पाठ देखा जाता है। विशेवतः राजेन्द्रलालके आदर्श प्रन्थको समाप्ति पुण्यिका-में—"६ति महापुराणे वायुश्रोवते द्वादशसाहस्त्रां सेहिनायां ब्रह्मांडाख्यं समाप्तम्॥" इस पृकार ब्रह्माएडपुराणका समाप्तिकापक पाठ देखनेमें आता है। यह आदर्श प्रन्थ १६८८ सम्यत्में अर्थात् पृत्यः तीन सी वर्ण पहले नागरा-क्षरमें लिखा गया है। इसके शेष पृष्ठमें पुराणको क्रोक-संख्या मी निरूपित हुई है। यथा—

	T.T	97000 77
उपसंहारपादमें "		… १२००
उपोद्धातपादमें ,,	•••	२४००
अनुबङ्गपादमें "	•••	३६००
प्रक्रियापाद्में स्त्रोकसंस्या		8600

कुल---१२००० स्होक

प्रायः अधिकांश पुराणके मतसे ब्रह्माएडपुराणकी क्लोकसंख्या १२००० है। अतप्य राजा राजेन्द्रलाल जो वारह हजार क्लोकात्मज ब्रह्माएडपुराणको वायुपुराण वतला गये हैं, सो उनकी भूल है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि श्वेतकलप्रसङ्गमें वायुने इस पुराणका वर्ण न किया था, किन्तु सोसाइटी-के मुद्रित वायुपुराणके आरम्ममें श्वेतकल्पका प्रसङ्ग विलक्कल नहीं है।

इसके पहले हो उपक्रममें कहा जा चुका है, कि जो व्रह्माएडपुराण ५वों शतान्दीमें यवहोप लाया गया था, आज भी वही ब्रह्माएडपुराण वालिद्वीपमें कविभाषामें अनुवादित पाया जाता है। प्रचलित ब्रह्माएडपुराणके साथ मिन्यराजवंशवर्णनाप्रसङ्ग छोड़ कर और सभी अंशोंमें वालिद्वीपीय ब्रह्माएडका साहश्य है। यह पुराण ब्रह्मत पञ्चलक्षणान्वित है। इसमें भविष्याख्यान छोड़ कर उस आदि ब्रह्माएडपुराणका प्राचीनक्षप देखा जाता है। अष्टादशपुराणमें इसकी गिनती होने पर भी इसे प्रचलित सभी पुराणींकी अपेक्षा प्राचीनतम मान सकते हैं।

स्कन्दपुराणकी तरह वहुसंख्यक माहातम्य इस ब्रहमाएडपुराणके अन्तर्गत प्रचलित देखे जाते हैं, यथा— अम्तीभ्वर, अञ्जनादि, अनन्तश्यन, अज्ज<sup>°</sup>नपुर, अष्टनेब्र-

स्थान, आदिपुर, आन दनिलय, ऋषिपञ्चमो, कडोरगिरि, कालहरूती, कामाझीविलास, कार्त्तिक, कावेरी, कुम्मकोण, क्षीरसागर, गोदावरी, गोपुरी, गोसुक्ति, चम्पकारण्य, बानमण्डप, तञ्जापुरो, तारकब्रह्ममन्त्र, तुङ्गभदा, तुलसी, दक्षिणामृत्ति, देवदाख्वन, नन्दिगिरि, नाचिकेत, नरसिंह, पश्चिमरङ्ग, पापविनाश, पारिज्ञाताचल, पिनाकिनो, पुन्ना-गवन, पुराणदान, पुराणश्रवण, पुरुषोत्तम, प्रतिष्ठान, वदरिकाश्रम, बुद्धिपुर, ब्रह्मपुरी, मन्दारवन, मयूरस्थल, महापुर, महारि, मायापुरी, रामायण, रुक्षपूजा, रुक्तांपुर, वङ्कक्षेत्र, विरजाक्षेत्र, वेङ्कटिगरि, वेङ्कटेश, वेदगर्भापुरी, वेदारण्य, शिवकाञ्चा, शिवगङ्गा, श्रागीष्ठो, श्रीनिवास, श्रोमुख्य, श्रोरङ्ग, सुगन्धवन, सुन्द्रपुर, सुन्द्रारण्य,हस्ति गिरि, हेरम्बकानन इत्यादि माहात्म्य, गणेशकवच तुलसीकवच, बेड्ड्रेटेशकवच, हनुमत्कवच रत्यादि कवच, दत्तात्रेय-स्तोत, नदीस्तोत, पश्चिमरङ्गनाथस्तोत, चन्दि-स्तोत, ब्रह्मपरागस्तोत, युगलिकशोरस्तोत, ललिता-सहस्रनामस्तोत, वेङ्कदेशसहस्रनाम, सरस्रतोस्तोत, सिद्ध-ळक्मोस्तोत, सीतास्तोत, पर्ताद्भन्न उत्तरखएड, क्षेत्रखएड, तुङ्गभद्राखएड, पद्मक्षेत्र, देवाङ्गचरित्र, छलितीपाख्यान, वारिजाक्षचरित, विष्णुपञ्जर आर अध्यातमरामायण।

इनमेंसे अधिकांश आधुनिक कालका रचा हुआ है। इन्हें ब्रह्माएडपुराणके अन्तर्गत हुन मान कर ब्रह्माएड उपपुराणके अन्तर्गत माननेसे सव गोल नाल मिट जाता है।

१८ पुराणको तरह अन्यान्य मुनि-रचित १८ उपपुराण भा प्रचलित हैं। उपपुराण देखो। वहुतोंका
विश्वास है, कि वे सव उपपुराण उतने प्राचीन ग्रन्थ नहीं
है। परन्तु उपपुराण अतिप्राचीनकालमें संगृहात हुआ
था, इसमें सन्देह नहीं। ११वीं शताव्हींके शेपमागमें
पङ्गुकशिष्यने अपनी वेदार्थदीपिकामें नृसिह उपपुराणसे
सहोक उद्धृत किये हैं और उसके पहले सुप्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अलवेकणी नन्दा, आदित्य, सोम, साम्ब
और नरसिह इत्यादि उपपुराणोंका उल्लेख कर गये हैं।
पूर्वोक्त १८ महापुराणके अतिरिक्त उपपुराण और अतिपुराण ले कर हम लोग और भी अनेक पुराणनामधेय
ग्रन्थोंका सन्धान पाते हैं, यथा—

१ सनत्कुमार, २ नर्रसिंह, ३ वृहन्नारदीय, ४ शिव वा शिवधर्म, ५ दुर्वासस्, ६ कापिल, ७ मानव, ८ औशनस्, ६ वाहण, १० कालिका, ११ साम्य, १२ निद्केश्वर वा नन्दा, १३ सौर, १४ पराशर, १५ आदित्य, १६ ब्रह्माएड, १७ माहेश्वर, १८ भागवत. १६ वाशिष्ट, २० कौर्म, २१ भागव, २२ आदि, २३ मुद्रल, २४ कल्कि, २५ देवीपुराण, २६ महाभागवत, २७ वृहद्दर्म, २८ परानन्द, २६ पशुपति-पुराण।

अष्टादश प्राचीन महापुराणोंसे भारतीय हिन्दूसमाज-की रीति, नीति, आचार, ध्यवहार, धर्ममत और निश्वास तथा अनेक पुरा कहानियां जानी जा सकती हैं। पुराण-को हम लोग प्राचीन मौलिक ग्रन्थके जैसा स्वीकार कर सकते हैं वा नहीं, पुराण श्रुतिमूलक है वा अवैदिक, पुराणका प्रष्टत उद्देश्य क्या है ? इस सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध कुमारिलम्ह सविशेष आलोचना कर गये हैं।

( कुमारिल भट देखी )

## जैन-पुरागा।

हिन्दू के जैसा जैन और वीद्य भी पुराण हैं। ये सव पुराण हिन्दू पुराणके ही आदर्श पर रचे गये हैं। हिन्दू पुराणमें जिसप्रकार हिन्दू देवदे वियों की आख्यायिका और माहातम्य तथा पालनीय धमें और अनुष्टाना दिका प्रसङ्ग है, जैन पुराणों में उसी प्रकार तो थें दूरादि महापुरुपों की आख्यायिका, जैनों के धर्म और व्यवस्थादिका उहु ख है। रामचन्द्र, श्रीकृष्ण प्रभृतिका लीलाख्यान जैन लोग किस भावमें देखते हैं तथा उन्होंने किस प्रकार भावमें वे सव अवतारलीला ग्रहण की है, जैनपुराणों में उसका यथेष्ट परिचय मिलता है।

जेनोंके २४ तीर्थं दूर हैं। इन चीवीसोंके आख्यायिका
प्रसङ्गमें दिगम्बर जैनोंके मध्य २४ महापुराण रचे गये
हैं। जिनसेनाचार्य-रचित आदिपुराणमें लिखा है—
"तिषष्ट्यवयवः सोऽयं पुराणस्कन्ध इत्यते।
अवान्तराधिकाराणामपर्यन्तोऽत विस्तरः॥१२६॥
तीर्थंकर्जु पुराणेखु शेषानामपि संग्रहात्।
चतुर्विशतिरेवात पुराणानीति केचन ॥ १२७॥
पुराणं वृषमस्याद्यं द्वितीयमजितेशिनः।
दतीयं सम्मवस्येष्टं चतुर्थमिनन्दिनः॥ १२८॥
पञ्चमं सुमतेः श्रोक्तं षष्टं पद्मप्रमस्य च।

सप्तमं स्यात् सुपार्श्वस्य चन्द्राभासीऽष्टमं स्मृतम् ॥
नवमं पुण्यद्ग्तस्य दशमं शीतलेशिनः ।
श्रे यसं च परं तस्माद्द्वादशं वासुपूज्यगम् ॥१३०॥
लयोदशञ्च विमले ततोऽनन्तजितः परम् ।
जिने पञ्चदशं धर्मे शान्तेः पोड़शमीशितुः ॥१३१॥
कुन्थो सप्तदशं ज्ञे यमरस्याष्टादशं मतम् ।
महलरेकीनविंशं स्याद्विशञ्च मुनिसुन्नते ॥१३२॥
एकविंशं नमेभंतुं नेमेद्वांविंश मद्दतः ।
पार्श्वेशस्य लयोविशं चतुर्विशञ्च सम्मतेः ॥१३३॥
पुराणान्येवमेतानि चतुर्विशञ्च सम्मतेः ॥१३३॥
महापुराणमेतेषां समृहः परिभाज्यते ॥ १३४॥
(आदिपुराण २ पवं )

तीर्थंड्सरोंके नामानुवायी पुराणके मध्य शेप शलाका पुरुपोंका भी वर्णन आ जाता है, इसिलिये कोई कोई चौवीस पुराण मानते हैं। ऋपभदेवके चरितशापक पुराण ही आदिपुराण हैं, २य अजितनाथका पुराण, ३य सम्मवनाथका पुराण, ४र्थ अभिनन्दका पुराण, ५म सुमितनाथका पुराण, ६ष्ट पद्मप्रभका पुराण, ७म सुपार्श्व-का पुराण, ८म चन्द्रप्रभका पुराण, ६म पुष्पदन्तका पुराण, १०म शीतलनाथका पुराण, ११श श्रेयांसका पुराण, १२श वासुपूज्यका पुराण, १३श विमलनाथका पुराण, १४श अनन्तजित्का पुराण, १५-श धर्मनाथका पुराण, १६-श शान्तिनाथका पुराण, १७-श कुन्थुनाथका पुराण, १८-श अरनाथका पुराण, १६-श मल्लिनाथका पुराण, २०-श मुनिसुत्रतका पुराण, २१-श नमिनाथका पुराण, २२-श पार्श्वनाथका पुराण और २३-श सन्मति ( महावीर भगवान् )का पुराण । २४ जैनअहतींके ये २४ पुराण हैं। यहो पुराण जैनमहायुराण कहळाते हैं। जैन**पु**राण संभण ।

हिन्दू लोग जिस प्रकार पुराणके पञ्चलक्षण स्वीकार करते हैं जैन लोग उसी प्रकार स्वीकार नहीं करते। आदिपुराणमें लिखा है—

"तीर्थेशमापि चक्रेशां हिलनामई चिक्रिणाम् । विषिट्छक्षणं वक्ष्ये पुराणं तद्विदामपि॥ पुरातनं पुराणं स्यात्तन्महन्महदाश्रयात् । महिन्निरुपदिएत्वान्महाश्रेयोऽनुशासनात्॥ कविं पुराणमाश्रित्य प्रस्तत्वात् पुराणता। महत्वं स्वमहिम्नैव तस्येत्यान्यैर्निरुच्यते॥ महापुरुषसम्बन्धिमहाभ्युद्यशासनम् । महापुराणमाम्नातमत पतन्महिष्भिः॥" (११२०-२३)

२४ तीर्थं दूर, १२ चकवर्ती, ६ वलदेव, ६ नारायण । अर्द्ध चकवर्ती ) और ६ पृतिनारायण इस पृकार तिरे-सह शलाका पुरुषींके चरितसे गुक्त पुराणकोंमें जिनसेना-चार्य कहता हूं । पुरातनको हः पुराण कहते हैं । यह पुराण फिर महदाश्रय, महत्का उपदेश और महामङ्गलके अनुशासन वशतः महापुराण नामसे पृसिद्ध है । कोई कोई कहते हैं, कि पुराण कविका आश्रय करके जो विस्तृत हुआ है, वही पुराण और जो स्वीय महिमा तथा महापुरुष-सम्यन्धि महदभ्युका अनुशासनयुक्त है, वह महर्षिगणकर्तुक महापुराण कहलाता है ।

अहणमणिरचित अजितनाथ-पुराणमें भी लिखा है—
"पुरातनैनरैक्ता तिषष्टिपुरुषाश्रिताः।" (१।८२)
प्रत्येक जैनपुराणमें प्रधानतः ६ अधिकार देखे जाते
हैं—१ लोकसंस्थान, २ राजवंशोत्पत्ति, ३ जिनेन्द्रका
पश्चकत्याण, ४ गमनागमन, ५ दिग्विजय और साम्राज्य,
इतत्परिनिर्वाण।

रिविषेणके मतसे सात अधिकार लेकर पश्चपुराण है, १ स्थिति, २ वंशसमुत्पत्ति, ३ प्रस्थान, ४ संयुग, ५ लव-णांकुशोत्पत्ति, ६ भवोक्ति अर्थात् जिनकृत तत्त्वोपदेश अगर, ७ परिनिवृति । अनेक मनोहर अवान्तर कथाओंके साथ पुराणके थे ही सात अधिकार कीर्त्तित हुए हैं।

हिन्दुओंने जिस प्रकार ब्रह्म वा नारायणसे, आदि पुराणकी उत्पत्ति मानी है, जैन छोगभी उसी प्रकार अपने तीर्थेंड्रुरसे इस पुराणकी उत्पत्ति मानते हैं।

रविषेण-विरचित पश्चपुराणमें लिखा है—पहले महा-वीरने अपने प्रिय गणधर इन्द्रभूतिसे यह पुराण कहा था। पीछे इन्द्रभूतिसे सुधर्मने, सुधर्मसे जम्बूस्वामीने, जम्बू-स्वामीसे प्रभवने, प्रभवसे शिष्यक्रमानुसार कीर्तिने और कीर्तिसे अनुत्तरवाग्मीने यह पुराण प्राप्त किया।

अनुत्तरवायमिके निकट रविषेणने जो प्र'थ पाया था, उसीकी सहायतासे उन्होंने पद्मपुराणकी रचना की, फिर इस पद्मपुराणके शेपमें रचनाकाल इस प्रकार पाया जाता है—

, "द्विशताम्यधिकेन समासहस्रो समतीतेद्ध चतुर्थवर्णयुक्ते । जिनभास्करवद्ध मानसिद्धे चरितं पक्षमुनेस्टिं निवन्धं॥"

जिनस्यं चर्डं मानके निर्वाणकालसे एक हजार दो सौ चार वर्षं वीत जाने पर (अर्थात् वीरगत १२०४ सं० ६७८ ई०में) पद्ममुनीका यह चरित निवद्ध हुआ।

जिनसेनके आदिपुराणमें मी लिखा है-

'जगद्गुरुने पहले पहल उत्सर्पिणीकालका पुरुपा-श्रयी अतिगसीर पुराण प्रकाशित किया था, पीछे उन्होंने अवसर्विणीकालका आश्रय लेकर पुराणकथा प्रस्तुत कर-के सबसे पहले उसकी पीठिका प्रस्तुत की । पुराकल्पमें गोत्यति जो इतिवत्त कह गये हैं, वृषसेन नामक गणघरने अर्थके-साथ उनका अध्ययन किया। पीछे उस कृती गण-धरश्रे प्रने अर्थ समेत खयम्भुका वाक्य अवधारण करके जगत्की भलाईके लिये उसे पुराणके रूपमें प्रथित किया। घोरे घोरे अवशिष्ट तीर्थेङ्कर और ऋदिसम्पन्न गणघरगण भी सर्वज्ञ वाक्यानुसार वही पुराण प्रकाशित करने लगे । अनन्तर युगान्त काल.उपस्थित होने पर एक समय अखिलार्थदर्शी सिद्धार्थ नन्दन भगवान् महावीर विपुला-चल पर पधारे । इस अवसरमें मगधराज श्रेणिक वहां जा पहुंचे और विनय प्रभावसे उन अन्तिम तीर्थ नायकसे पुराणका अर्थ पूछा । गणाधिपति गौतमने श्रेणिकके प्रति महाबीरकी अनुप्रह जान कर सभी पुराण कह दिये। महर्षि गौतमके वाद परवर्ती गणश्रर सुधर्माने जम्बूखामीको अवंण किया, पीछे गुरुपरम्पराक्रमसे आगत पुराण अमी हम छोग यथाशक्ति प्रकाशित करते हैं, शेंव तीर्थ ह्नुरने इसका मूल तन्त्र प्रणयन किया, पीछे सान्निध्यक्रमाश्रयसे गौतमने श्रेणिकके प्रश्नानुसार इसे कहा था, इत्यादि अनु-सन्धान करके यह प्रवन्ध निवद हुआं है ।

इस प्रकार अपरापर जैन-पौराणिकोंने पुराणीकी प्राची-नता संस्थापनके लिये महाबोरको हो पुराणप्रकाशक मान लिया है। प्राचीनत्य-स्थापनकी चेष्टाको हिन्दू-पुराणका अनुकरणफल समकता चाहिये। पर हाँ, इतना तो अवश्य कह सकते हैं, कि हिन्दुसमाजके जैसा जैन-समाजमें भो अति प्राचीत कालसे पुराणाख्यान प्रचलित था। रविषेण, जिनसेन, गुणसद, अरुणमणि प्रशृति जैन-पौराणिकोंकी उक्तिसे इसका प्रमाण मिलता है।

दितीय जिनसेनने ७०५ शकमें (७८३ ई०में) हरिव श (अरिष्टनेमिपुराण)को रचना की । प्रथम जिनसेनके आदि-पुराणमें २४ पुराणींका उल्लेख हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। तत्पूर्ववर्ती रविषेणने ६७८ ई०में पद्मपुराण रचा, इसमें भी पूर्वतन पुराणका आसास है। इस हिसावसे ६डीं शताब्दीमें दिगम्बरोंके मध्य पुराण प्रच-लित था, इसमें सन्देह नहीं।

#### जैनपुराण-श्रवणफल ।

सभी हिन्दु पुराणोंमें जिस प्रकार पुराणश्रवण सर्वाभिष्टफलप्रद माना गया है, जैनपुराणमें भी उसी प्रकार इसका फल लिखा है। यथा आदिपुराणमें—

"पुराणसृषिभिः प्रोक्तं प्रमाणं सुक्तिमञ्जसा । ततः श्रद्धे यमध्ये यं ध्ये यं श्रेयोधिनामिदं ॥ इद् पुण्यमिद् पूतमिद् माङ्गल्यमुत्तमम्। इदमायुष्यमग्राञ्च यशस्य स्वर्गमेव च॥ इदमच्चेयतां शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्च पृच्छताम् । पठतां क्षेत्रमारोग्यं श्रुण्वतां कर्मनिर्जरा ॥ इतोदुःखप्ननिर्णाशः सुखप्रस्फीतिरैव च। इतोभीष्टफलम्यकिर्निमित्तमभिपश्यताम् ॥" ( शश्ह५-८ )

जिनसेनाचार्य-वर्णित २४ महापुराण छोड़ कर और भी अनेक पुराणोंके नाम सुने जाते हैं, यथा पुण्य-चन्द्रोदयपुराण, हरिवंश, पाएडवपुराण इत्यादि । इनमैं-से महापुराण और पुराणके मध्य जो जो पुराण पाया गया है, पर्व वा सर्गानुसार उनमेंसे कई एक अनुक्रम-णिका उद्भुत की जाती है।

#### भादिपुराग् ।%

१म वर्षमें नृषभादि जिनस्तुति, महापुराणादि निरुक्ति, सिद्धसेनादि पूर्वं तन जैनकवियोंकी प्शस्ति, आक्षेपण्यादि कथालक्षण, ऋषभके पृति भरतंका पृथ्न, उसके उत्तरमें आदितीर्थंडूनकी पुराणवर्णना, पीछे महा-वीरसे आचार्य-परम्परामें पुराणपातिकथन, २ मगधा-घिप श्रेणिक और गौतमसंवादमें पुराणाख्यानपुसङ्ग, धर्म-पृशंसा, क्षेत्रकालतीर्थादि पांच पृकारका पुराणकथन,

Vol. XIV. 15

गणधरकृत अविजिनस्तोत, अनुयोगादि चार पुकारकी श्रुतस्कन्धवर्णना, अनुयोगादिका ग्रन्थसंख्यानिरूपण, तिषष्ट्यवयकथन, चौदीस जिनपुराणनामकथन, गौतम-खामीका कालनिर्णय, जिनसेनके मादिपुराणपुसङ्ग-में उपोद्धातवर्णन, ३ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक कालनिर्णय, मानवकी आयु और देहपरिमाण, जैनमता-नुसारसे क्षेमङ्करादि मन्वन्तरनिर्णय, मरुद्दे वकी जन्मकथा, युगादि निर्णय, पुराणपीठिका वर्णन, ४ आदिनाथ ऋषभ-चरितप्रसङ्गीं जम्बूद्दीप और तदन्तर्गत कुलंपव तादि वणन, ५ सचिवोंकी धर्मनीति, संसारकी अनित्यता और जीवाजीवादि तत्त्वकथन, जात्यन्तरकथन, शून्यवाद-निराकरण, अरविन्दराजाख्यान, शतवल नामक राजकथा, **छिताङ्गुका भाष्यान, ६ छिताङ्गुपुत बङ्गुञ्जय और** उनके बन्धु कुमुदानन्दकी कथा, ललिताङ्गका स्वर्ग-च्युतिप्रसङ्ग, चक्रधराख्याम, ७ श्रीमती वज्रजङ्घसमागम, ८ जिनधम-प्रभाववर्णनमें श्रीमती-वज्रजङ्ग-पालदानानु-६ श्रीमती और वज्रजङ्घकी आर्यस्म्यक्त्वी-टपत्ति, १० अच्युतेन्द्रका पेश्वर्गं वर्णन, ११ वज्रनाभिका सर्वार्थसिद्धिलाभ, १२ आदि जिनके स्वर्गावतरणप्रसङ्घी व्याजस्तुति, प्रहेलिका, कालापक, क्रियागुप्त, स्पष्टान्धक, निरोष्ट्य, विन्दुमान्, विन्दुच्युत्, शन्द्रप्रहेलिकादि कथन्, १३ नाभिके औरस और मेरुदेवीके गर्भसे नवम मास गर्भवासके वाद चैतमास कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको ब्रह्ममहायोगमें आदिजिन ऋषभदेवका जन्म और जन्मो-त्सवकथन, इन्द्रादि देवगण और इन्द्राणीप्रभृति देवीगण-कत् क जन्माभिषेकवर्णन, १४ आदिजिनका जातकर्मीं-त्सवचर्णन, १५ कुमारकाल, यशस्त्रतीके साथ विवाह और उनके पुत्र भरतका जन्मकथावर्णन, १६ वृषमसेना-के गर्भंसे ६६ पुत्रोत्पत्ति और उनके नाम तथा पुतादि-सह आदिजिनका साम्राज्यभोगवर्णन, १७ आदिजिनका संसारके प्रति वीतराग और उनका परिनिकामण, १८ धरणेन्द्र और विजयका अर्द्ध पथरामन, १६ नमि और विनमि नामक राजपुत्नोंका राज्यप्रतिष्ठावर्णन, २० आदि-जिनका कैवल्योत्पत्तिकथन, २१ ध्यानतत्वानुवर्णन, २२ आदिजिनका समयसर और विनिवेशवणेन, २३ आदिजिनका विभूतिवर्णन, २४ आदिजिनका धर्मदेशना-

<sup>\*</sup> स्य आदिपुराणके १से ४२ पर्व तककी रचना जिनसेना-बार्यने और ४३से ४७ पर्वकी गुणमद्राचार्यने की है।

कथन, २५ उनका तीर्थविहारवर्णन, २६ भरतराजका दिग्विजयोद्योगवर्णन, २७ भरतराजकी विजययाता, २८ पूर्वसागरद्वारादि-विजयवर्णन, २६ पाची दिग्वर्ची जनपद-समूह और दक्षिणार्णव पर्यन्त दक्षिण-दिश्वर्सी जनपद समूहका विजयवर्णन, ३० पश्चिमार्णव पर्यंनत पश्चिम-दिन्वत्ती जनपदसमूहका विजयवर्णन, ३१ म्लेच्छराज-विजयप्रसङ्गमें गुहाद्वार उद्घाटन, ३२ भरतका उत्तरदिग्वि-जयवर्णन, ३३ भरतका कैलासगिरिगमन, ३४ भरतराजके अनुजोंकां दीक्षावर्णन, ३५ कुमार वाहुवलिका रणोधीग, ३६ कुमार भुजवलिका विजयवर्णन, ३७ भरतेभ्वराम्युदय-कथन, ३८ द्विजोत्पत्तिवर्णन प्रसङ्घमं गर्भाधान, प्रीति, सुद्रोति, धृति, मोद, द्रियोद्धव, नामकर्प, वहिर्यान, निपद्या, अन्नप्रासन, ब्युप्टि, केशवाप, लिपिसंख्यानसं प्रह, उपनीति, वतचर्या, वतावतार, विवाह, वर्णैलाभ, कुलचर्या, गृहोिशिता, प्रशान्ति, गृहत्याग, आग्रदीक्षा, जिनरूपता, मौनाधायनवृत्ति, तीर्धं इतकी भावना, गुरुस्थानगमन, गणापप्रहण, स्वगुरुस्थानप्राप्ति, निःसङ्गत्वात्मभावना. धोगनिर्वाणसाधन, इन्द्रोपपाद, इन्द्राभिपेक, विधिदान-द्धुःबोद्य, इन्द्रत्याग, इन्द्रावतार, हिरण्योत्क्रप्टजन्मता, मन्दरेन्द्राभिपेक, गुरुपूजा, यौवराज्य, खराज्य, चकलाम. दिग्विजय, साम्राज्य, चकामिपेक, परिनिकान्ति, योग-सम्प्रदः, आह् त्य, चिहार, योगत्याग, अप्रनिव् ति, इत्यादि गर्साधानसे निर्वाण पर्य न्त ५३ प्रकारका गर्मान्यय-क्रिया-वर्णन, ३६ द्विजातियोंके दीक्षाप्रसङ्गमें वृत्तलाम, पूजा-राध्य, पुण्ययज्ञ, हृहचर्या, उपयोगिता, उपनीति, ब्रह्मचर्या, वतावतार, विवाह, कुलचर्या, गृहीशिता, प्रशान्तता, गृह-त्याग, दीक्षाय, जिनरूपता, दोक्षान्वय, पारिवाज्य, सुरे-न्द्रता, साम्राज्य, आहेत्य और परिनिर्वाण पर्यंन्त अग्रचत्वारिंग पुकार दीक्षान्वयवर्णेन, ४८ क्रियावर्णन-प्रसङ्गमें आधानादि-सप्तक्रिया चलिका, और मन्त्रसमूहव <sup>ग्री</sup>न, ४१ भरतराजका खप्तदर्श न और तत्फलोपवर्णन, ४२ भरतराजर्विका पृजापालनस्थिति-पृतिपादन, ४३ हस्निनापुरपति जयराज-पुताख्यानपृसङ्गमे सुलोचनाका खयम्बर, मालारोपण और कल्याणवर्णन, 88 जयविजयका पुभाववर्णन, ४५ सुलोचनाका सु**ख**-सीभाग्यवर्णन, ४६ जय और सुलोचनाका जन्मान्तर-

वर्णन, ४७ श्रीपाळचरित, यशःपाळ वसुपाळादिका पूसङ्ग, शादिनाथके गणधर, पूर्व घर, केवलागमी, विकि यिं, ब्राह्मी, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाशोंका संख्यानिर्णय, आदिनाथ और भरतादिका विभिन्न जन्म-कथन, भरतका स्वर्ग गमन, उपसंहार।

आदिपुराणके रचियता जिनसेनने अपने अन्यके
प्रारम्भमें नयकेशरो, सिद्धसेन, वादिचूड़ामणि, समन्तभा, श्रोदत्त, यशोभाई, चन्होदयका प्रभाचन्द्र, मुनीश्वर
शिवकोदि, जदाचार्य (सिहनन्दी), कथालङ्कारकार
काणभिश्व (देवमुनि), किवतीर्थ छत अकलङ्क, जिनसेनके
गुरु भारतक वोरसेन और वागर्थ संग्रहकार जयसेनगुरुकी प्रशंसाकी है। जैन कन्द देशो। दिगम्बरोंकी
पष्टावलीसे जो गुरु परम्परा उद्दृत हुई हैं, इस आदि
पुराणमें उसका मतमेद देखा जाता है, ऐतिहासिकोंके
काममें श्रा सकता है। यह समक्त कर उसे नीचे उद्ध त

"अहं सुघमां जम्ब्वाख्यो निखिलश्रुतघारिणः। क्रमात् कैवल्यमुत्पाद्य निर्वास्यामस्ततो वर्यं।। तयाणामसमदादीनां कालः केवलिनामिह। हापप्रिवर्णपिएडः स्याद्भगवन्निवृ<sup>द</sup>त्तेः परम् ॥ ततो यथाकमं विन्णुनन्दिमितोऽपराजितः। गोवद्धं नो भद्रवाहुरित्याचार्या महाधिपः॥ चतुर्गमहाविद्यास्थानानां पारगा इमे । पुराणं द्योतयित्र्यन्ति कात्र्हर्नेन शरदः शतम् ॥ विशाखाप्रौष्ठिलाचार्यौ क्षतियो जयसाह्नयः। नामसेनर्च सिद्धार्थी धृतिपेणस्तर्थेव च ॥ विजयो वुद्धिमान् गङ्गदेवो धर्मादिशव्दतः। सेनश्च दशपूर्वाणां घारकाः स्युर्णधाक्रमं ॥ त्राशीतं शतमन्दानामेतेयां कालसंप्रहं। तदा च कृत्स्नमेवेदं पुराणं विस्तरिग्यते ॥ ततो नक्षतनामा च जयपालो महातपाः। पाण्डुश्व भ्रुवसेनश्च कंसाचार्थं इति कपात्॥ एकाद्शांगविद्यानां पारगाः स्युर्मु नीव्दराः। विशक्तिगतसन्दानामेतेषां कालमिष्यते ॥ तदा पुराणमेतत् पादोनं प्रथयिव्यते। जाभावती भूयों जायेताक्राकनिष्टतं॥ सुभद्दस्य यशोमद्रो भद्रवाहुर्महायशाः। लोहार्यक्वेत्यमी होयाः प्रथमांगावित्रपारगाः॥ समानां शतमेषां स्यात् कालोणदश्मियुंतः। तुर्यो भागः पुराणस्य तदास्य प्रतनिष्यते ॥

ततः क्रमात् प्रह्रोयेदं पुराणं खल्पमातया । धीप्रमादादिद्रोषेण विरलैद्धारित्रिग्यते ॥ ज्ञानविज्ञानसम्पश्चगुरुपर्वान्वयादिदं । प्रमाणं यच यावच यदा यत प्रकाशते ॥ तदापीद्मनुस्मतुं प्रमयित्यन्ति धीधनाः । जिनसेनाप्रगाः पूज्याः कवीनां परमेश्वराः ॥" ( सादिपु० २ पर्व )

उक्त कुछ स्रोकोंसे गुरुओंका कालनिर्णय इस प्रकार हो सकता है—

गौतम ( इन्द्रभूति ) सुधर्म जम्बूखामी	चीरगत १	२ वर्ष
विष्णु नन्दिमित अपराजित गोवर्द्धं न चन्द्रवाहु १म विशाख प्रौष्टिलाचार्य क्षत्रिय जयस नागसेन सिद्धार्थं धृतिसेन विजय वुद्धिमान	चतुर्दशपूर्वी पद्दस्थकाल १०० वर्ण दशपूर्वी पट्टस्थकाल १८३ वर्ष	अर्थात् वीरगत १६२ वर्ग पर्यन्त । वीरगत वीरगत ३५१ वर्ग पर्यन्त ।
धर्मसेन नक्षत जयपाल पाण्डु ध्रुवसेन कंसाचार्य सुभद्र यशोभद्र भद्रवाहु स्य लोहार्य	पकादशाङ्गी पहस्थकाछ २२० वर्ष पथमाङ्गी पहस्थकाछ ११८ वर्ष	वीरगत ५७१ वर्ष पर्यन्त वीरगत ६८६ वर्ष पर्यन्त ।

अभी किसी किसी पिएडतका कहना है, कि शङ्करा-चार्य ८वीं शतान्त्रीके शेपभागमें विद्यमान थे। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि शङ्कर-जन्मके पहले ही जिनसेन शङ्कराचार्य को जानते थे। शङ्कराचार्यने शारीरक-भाष्यके स्य अध्यायके १म पादमें अद्वितीय ब्रह्मके जगत्सृष्टि-सम्बन्धमें जो विचार किया है, जिनसेन इस आदिपुराणमें (चतुर्थ अध्यायमें) उसका खएडन इस प्रकार करते आपे हैं—

"स्रप्रस्य जगतः कश्चिद्स्तीत्येको जगुर्जंडाः॥ तद् णैयनिरासार्थं सृष्टिबादः परीक्ष्यते ॥१॥ स्त्रप्टा सर्गवहिभूतः कस्थः खजति तज्जगत्। निराधारश्च कूटस्थः सृष्टैतत्क निवेशयेत् ॥२॥ नेको विश्वात्मकस्यास्य जगतो घटने पट्टः। वितनोश्च न तन्वादि मुत्तंमुत्पत्तुमईति ॥३॥ कथं च स खजेल्लोकं विनान्यैः करणादिभिः। तानि सुद्धा स्जेल्लोकमिति चेदनवस्थितिः ॥॥। तेपां स्वभावसिद्धत्वे लोकेऽप्येतत्प्रसञ्यते। किञ्च निर्मातृबद्धिश्वं स्वतःसिद्धिमवाप्तुयात् ॥५॥ स्जेद्दिनापि सामग्राः स्वतन्तः प्रभुरिच्छया। इतीच्छामात्रमेवैतत्कः श्रद्दध्यादयुक्तिकम् ॥६॥ इतार्थस्य विनिर्मित्सा कथमेवास्य युज्यते। अकृतार्थोऽपि न सृद्ं विश्वमीय्टे कुलालवत् ॥॥॥ अमूर्तो निष्मयो व्यापी कथमेप जगत्स्रजेत्। न सिस्क्शापि तस्वास्ति विक्रियारहितात्मनः ॥८॥ तथाप्यस्य जगत्सर्गे फलं किमिति मृग्यताम् । निष्ठितार्थस्य धर्मादिपुरुपार्थेव्वनर्धिनः ॥६॥ स्रभावतो विनैवार्थान्स्जतोऽनथ् सङ्गतिः। क्रीड़े यं कापि चेदस्य दुरन्ता मोहसन्ततिः ॥१०॥ कर्मापेक्षः शरीरादिः देहिनां घटयेदादि । नन्वेवमीश्वरी न स्थात्पारतन्त्रग्रत्कुविन्दवत् ॥११॥ निमित्तमालमिष्टश्चेत्कार्ये कर्मादिहेतुके। सिद्धोपस्थाय्यसौ हन्त पोव्यते किमकारणम् ॥१२॥ वत्सलः प्राणिनामेकः सृजक्षनु जिन्नृक्षया । नजु सौल्यमयीं सृष्टि विद्ध्यादजुपप्छुताम् ॥१३॥ सृष्टिप्रयासवैयर्थं सर्जने जगतः सतः। नात्यन्तमसतः सर्गोऽयुक्तो ब्योमारविन्दवत्॥१॥

नोदासीनः सुजेन्मुकः संसारी सीव्यनीश्वरः। सृष्टिवादावतारोऽयं ततश्च न कुतश्च न ॥११॥ महानधर्मयोगोऽस्य सृद्य संहरति प्रजाः। दुष्टनिष्रह्वुद्धा चेद्वरं दैत्याद्यसर्जे नम् ॥१६॥ वुद्धिमत्ततसानिध्ये तन्वाचु त्पत्तुमर्हति । विशिष्टसंनिवेशादिमतोतेर्नगरादियत् ॥१७॥ इत्यसाधनमेवैतदीश्वरास्तित्वसाधने । विशिष्टसंनिवेशादेरन्यथाप्युपपत्तितः ॥१८॥ चेतनाधिष्टितं देहं कर्मनिर्मातृचेष्टितम्। तन्त्रस् तुखदुःखादिवैखरूपाय कल्पते ॥१६॥ निर्माणकर्मनिर्मातृकौशलापादितोद्यम्। अङ्गोपाङ्गादिवैचिवप्रमङ्गिनां सङ्गगिरामहे ॥२०॥ तदेनत्कंभैवैचित्राद्भवन्नानात्मकं जगत्। विम्वकर्माणमात्मानं साधयेत्कर्मसारियम् ॥२१॥ विधिः सरा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम्। **ई**श्वरक्ष्वेति पर्यायाः विज्ञेषाः कर्मवेश्रसः ॥२२॥ स्रन्यरमन्तरेणापि व्योमादीनां च सङ्गरात्। खृष्टिवादो स निप्रज्ञः शि॰डेदु<sup>°</sup>म<sup>°</sup>तदुम<sup>°</sup>दी ॥२३॥ भावार्थ —अनेक चुद्धिहीन पुरुष कहते हैं कि, इस जगत्का रचनेवाला कोई एक (ईश्वर) अवश्य है। इसिलिये उनके इस असत्पक्षके मिटानेके लिये सृष्टिवाद-की परीक्षा वा जांच लस्ते हैं।

जो सृष्टिका रचनेवाला है, यह इस सृष्टिसे वहिर्मूतजुट़ा होना चाहिये। तव कहो, कि वह किस स्थान
पर श्रेटकर इस जगत्को वनाता है? (जिस स्थान पर
वैटकर वह वनाता है, वह क्या जगत्से वाहिर है? यदि
हे तो इस सृष्टिके सिवाय एक दूसरो सृष्टि ठहरा और
फिर उसके वनाते समय भी उससे पृथ्क स्थानकी
कल्पनाका प्रसंग आया) यदि कहोगे कि, उसके लिये
जुदा स्थानकी जरूरत नहीं है, वह निराधार है और
कूटम्थ है, तो हम पूछते हैं, कि वह सृष्टिको वनाकर
रखता कहां है? (और जहां रखता है, वह आकाश
अथवा और जो कुछ आधार है, उसका रचनेवाला
कीन है?)

एक अकेला ईश्वर इस विश्वात्मक अर्थात् अनेकात्मक अनन्त पदार्थीके समूहरूप जगत्को नहीं बना सकता

है। इसके सिवा ईश्वर शरीररहित निराकार है, इस-लिये उससे शरीरादि साकार मूर्तिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि साकारसे हो साकारकी उत्पत्ति हो सकती है, निराकारसे नहीं।

और यह भी तो कहो कि वह विन दूसरे उपकरणोंके छोकको कैसे वनाता है क्योंकि प्रत्येक पदार्थके वनानेमें कुछ न कुछ उपकरण सामग्रीकी जरूरत होती है । यदि ऐसा कहा जाय, कि उन उपकरणोंको पहले वनाकर फिर छोकको वनाता है तो फिर यह प्रश्न होता है, कि उन उपकरणोंको काहेसे वनाता है ? यदि दूसरे उपकरणोंसे वनाता है, तो उन्हें काहेसे वनाता है ? इस प्रकार अन-वस्था दोप आता है ।

यदि अपर वतलाये हुए अनवस्थादोपका निवारण करनेके लिये लोकके वनानेके उपकरणोंको स्वतःसिद्ध वतलाओगे अर्थात् यह कहोगे कि, उन्हें किसीने नहीं वनाया है, आप ही आप वन गये हैं तो फिर जगत्को हो स्वतःसिद्ध कहनेमें क्या हानि है ? उपकरणोंके समान उसे हो स्वतःसिद्ध क्यों नहीं कहते हो ? इसके सिवाय सृष्टिका वनानेवाला जो ईश्वर है, उसे भो तो तुम स्वतःसिद्ध मानते हो, अर्थात् यह कहते हो, कि उसको किसी ने नहीं वनाया है वह स्वयंभू है । तो इससे ईश्वरके समान विश्व भो स्वतःसिद्ध है, ऐसा स्वीकार करना एड़ेगा । जव ईश्वर स्वतःसिद्ध हो सकता है तव सृष्टि स्वतःसिद्ध क्यों नहीं हो सकती ?

यदि ईश्वर उपकरण सामग्रीके विना ही एवतंत्र हो कर केवल इच्छासे संसारका सजन करता है, ऐसा कहोंगे तो इस तुम्हारे इच्छामाल यूक्तिशन्य काल्पनिक कथन पर कीन अद्धा करेगा ? अर्थात् केवल यही कह देनेसे कि ईश्वरमालसे जगत्को बनाता है, काम नहीं चलेगा। इसके लिये कुछ युक्ति चाहिये।

अव यह कहो कि तुम्हारा सृष्टिकर्ता ईश्वर इतार्थ है अथवा अक्टतार्थ है ? यदि इतार्थ है अर्थात् उसे इन्छ करना वाकी नहीं रहा-वारों पुरुषार्थोका साधन कर चुका है, तो उसका कर्तापना कैसे वनेगा ? वह सृष्टि क्यों वनावेगा ? और यदि अक्टताथ है, अपूर्ण है, उसे कुछ करना वाकी है, तो कुम्मकारके समान वह भी सृष्टि

को नहीं वना सकेगा क्योंकि कुम्हार भी तो अकृतार्थ है, इसिलिये जैसे उसने सृष्टिकी रचना नहीं हो सकती है उसी प्रकारसे अकृतार्थ ईश्वरसे भी नहीं हो सकती है ?

यदि ईश्वर अमूर्त, निश्किय और सर्घथ्यापक है, ऐसा
तुम मानते हो, तो वह इस जगत्को कैसे वना सकता
है ? क्योंकि जो अमूर्त है, उससे मूर्तिक संसारकी रचना
नहीं हो सकतो है, जो कियारहित है वह सृष्टिरचनाहर
किया नहीं कर सकता है, और जो सबमें व्यापक है, बह
जुता हुए विना-अध्यापक हुए विना सृष्टि नहीं वना
सकता है।

इसके सिवा ईश्वरको तुम विकाररहित भी कहते हो, और खृष्टि वनानेकी इच्छा होना एक प्रकारका विकार हैं विभावपरणती है, तो वतलाओ उस निर्विकार पर-मात्माके जगत् वनानेकी विकारचेष्टा होना कैसे सम्भव हो सकता है?

और यदि थोड़ी देरके लिये सम्भव भी मान लिया जाय, तो इसका विचार करना चाहिये कि, जो निष्टि-तार्थ है-सिद्धसङ्करप है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोझ पुरुपार्थ के साधनका जिसे कुछ प्रयोज नहीं है उस ईश्वरको सृष्टिके उत्पन्न करनेमें फल कीन-सा है? अभि-प्राय यह कि जिसे कुछ करना शेय नहीं है-हतकृत्य है, वह किस लिये सृष्टि वनावेगा ?

यदि यह कहोंगे कि विना किसी प्रयोजनके स्वभावसे हो सृष्टिको रचना करता है, तो अनर्थ होता है। धर्योकि बुद्धिमान् पुरुष किसी प्रयोजनके विना किसी भी कामके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। यदि कहोंगे कि, यह उसकी एक क्रीड़ा है-खेल है, तो ईश्वरमें अज्ञान-परम्परा सिद्ध होती है। धर्योकि अज्ञानी जीव ही अपना समय खेलमें व्यतीत करते हैं।

यदि ख्रिष्टिकर्ता जीवोंके किये हुए पूर्व कर्मोंके अनु-सार उनके शरीरादि वनाता है, तो कर्मोंको परतंत्रताके कारण वह ईश्वर नहीं हो सकता है जैसे कि जुलाहा। अभिश्राय यह कि, जो स्वतंत्र है समर्थ है उसीके लिये 'ईश्वर' संज्ञा ठीक हो सकती है, परतंत्रके लिये नहीं हो सकती। जुलाहा यद्यपि कपड़े वनाता है, परन्तु परतंत्र है और असमर्थ है इसलिये उसे ईश्वर नहीं कह सकते हैं।

Vol. XIV. 16

यदि यह संसार कर्मादि हेनुक है अर्थात् प्रत्येक जीय अपने अपने कर्मांके अनुसार उत्पन्न होता है-ईश्वर उसमें केवल निमित्तमाल है. तो फिर कर्मोंके अनुसार उत्पन्न होनेवाले संसारका करनेवाला विना कारण कर्मोंमें ईश्वर क्यों ठहराया जाता है? यह वड़े केंद्रकी वात है। अभि-प्राय यह है कि जब संसारका सुख्यकर्त्ता प्रधान कारण कर्म हैं. तब फिर निमित्तमाल ईश्वरको सृष्टिके कर्त्तापनका श्रेय स्त्र्य ही क्यों दिया जाता है?।

यदि ईंश्वर द्यालु है, इसिलिये प्राणियों पर अनुप्रह करनेकी इच्छासे सृष्टि वनाता है, तो उसे सारी सृष्टिको सुस्रमयो वनानी चाहिने थी--कुछ सुस्रो और कुछ दुवी नहीं वनानी थी।

यदि यह जगत् सत् है अर्थात् द्रव्यद्वष्टिसे अविनाशी है-सदासे हैं और सदा काल तक रहेगा, तो इसके वनानेका परिश्रम व्यर्थ है और यदि मर्चधा असत् है-असत्से सन् होता है अर्थान पहले नहीं था: पीछे उत्पन्न किया जाता है, तो यह आकाशके कमलपुष्पके समान अयुक्त है-वन नहीं सकता है। अभिप्राय यह है कि, सत् पदार्थकी वास्तवमें उत्पत्ति नहीं होती है. उसकी केवल कोई पदार्थ (अवस्था विशेष) उत्पन्न होतो है। जैसे सुनार सन् रूप सोनेको उत्पन्न नहीं करता है किंतु सोनेको कुएडल, बलय आदि किसी पर्यायको उत्पन्न करता है। इसलिये ईश्वर यदि सत् स्वरूव जगन्को उत्पन्न करना है तो उसका यह प्रयास निष्फल है, क्योंकि सत्तारूपसे तो जगत् पहले था ही-उसने बनाया ही क्या ? और जो पदार्थ असत् है, जिसकी सत्ता हो नहीं है जैसे कि आकाशका पुप अथवा गधेका सींग, तो उसका उत्पन्न ऋरना ही असम्भव हैं-पहले एप्टि सर्वथा ही नहीं थी तो ईश्वर उसको उत्पन्न भी नहीं कर सकता है।

यदि ईश्वर मुक्त है—कर्मजालसे रहित है. तो उदासीन अर्थात् सर्व प्रकारकी प्रवृतियोंसे रहित होना चाहिये और ऐसी अवस्थामें वह छि वनानेकी प्रवृत्ति ही नहीं करेगा और यदि संसारी है—कर्ममें लिप्त है. तो वह ईश्वर अर्थात् समर्थ नहीं हो सकता है असमर्थ होगा। क्योंकि संसारी पुरुष छि निर्माणक्तप महान् कार्यको

नहीं कर सकते हैं, जैसे कि हम तुम। अतः तुम्हारा यह एपि रचनाके बाद किसो भी तरहसे सिद्ध नहीं हो सकता है।

और आगे यदि ईश्वर छिन्नो रचकर फिर उसका संहार करता है, तो यह उसके लिये महान् पापका कार्य है। क्योंकि "विपवृक्षोऽपि संवर्धा खयं छेतुमसाम्प्रतम्" सज्जन पुरुष अपने हाथसे लगाये हुप विपवृक्षों भी स्वयं नहीं उखाड़ सकते हैं। यदि कहो कि, दैत्यादि हुएोंका नाश करनेके लिये वह ऐसा करता है, तो इससे अच्छा यही है कि, वह पहलेहीसे सोचकर दैत्यादि हुए-जीवोंको उत्पन्न नहीं करे। "प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरा-दृश्योंने वर्ग" शरीरमें लगा हुई कीचड़को धोनेकी अपेक्षा तो यहां अच्छा है कि स्वशं हो न करे। यह कहांकी वुद्धिमत्ता है, कि पहले राक्षसोंको वनाना और फिर उनके संहारके लिए यह करना।

यदि यह कहोंगे कि त्रिलक्षण प्रकारकी रचनादि होने-के कारण शरीरादि (सृष्टि)को उत्पत्ति किसी पक वुद्धिमान् कर्ताके होनेसे ही हो सकती है। जै से विल-क्षण रचनावाले नागरादिकोंकी रचना चतुर कारीगरके ही होनेसे हो सकती है, तो यह युक्ति भी सृष्टिकर्त्ता ईश्वरका अस्तित्व साधन करनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि वुद्धिमान् कर्त्ताके विना दूसरी तरहसे भी विलक्षण विलक्षण रचनायें हो सकती हैं।

यह चेतनासे युक्त शरीर कर्मक्रपी कर्साका बनाया हुआ है। और इसमें जो शरीर इन्द्रियां और सुख दु:खादि हैं, वे सब इसकी विलक्षण प्रकारकी रचनायें हैं। अभि-प्राय यह कि वुद्धिमान् कर्ताके विना केवल जड़खरूप कर्मोंके द्वारा भी विलक्षण रचना हो सकती है। इससे तुम्हारा यह हेतु ठीक नहीं है कि सृष्टि एक विलक्षण प्रकारकी रचना है, इसलिये उसका कर्ता कोई विचलण वा बुद्धिमान् पुरुष होना चाहिये।

प्राणियों के अंगों में तथा उपांगों में जो विचित्रता होती है, यह निर्माणकर्म (नामकर्मका एक मेद) रूपी कर्त्ता की रचना कौशलसे होती है; ईश्वरकी कारीगरीसे नहीं होती है, ऐसा हम कहते हैं।

अतप्व यह जगत् कर्मीकी विचित्रतासे नानात्मक

अर्थात् अनेक प्रकारका होता हुआ अपने विश्वकर्मारूप कर्मसारथीको साधता है अर्थात् यह सिद्ध करता है कि जगत्का कर्ता कर्म है कोई पुरुप विशेष नहीं है।

विधि, सन्द्रा, विधाता, दैव, पुराह्यत, कर्म और ईश्वर ये सव कर्म कपी ब्रह्माके हो पर्यायवाची नाम हैं।

आकाशादि पदार्थं किसी वनानेवाले विना मी सिद्ध हैं—अर्थात् उन्हें किसीने वनाया नहीं हैं—खतःसिद्ध हैं । इसमें मिथ्यामतके मदसे उन्मत्त हुए सृष्टिवादीका शिष्टपुरुषों ( सज्जनों )को निश्रह करना चाहिये।

उपर्युक्त कथनसे फलितार्थ यह निकला कि यह सृष्टि अनादि निधन है अर्थात् न कोई इसको वनाने-वाला और न संहार ही करनेवाला है।

#### अांजतनाथपुराख ।

१म पवेमें मङ्गलाचरणमें चौवीस जिनस्तव, गौतम-सुधर्मादि और गुणभद्रादि पूर्ववर्त्ती पुराणकारींकी वन्दना, संवेगिनी और निवेंददायिनी धर्मकथा, वर्द्धमानसे गुरु-परम्परामें पुराणप्राप्तिकथा, विपुलाचलमें महाबीर और श्रेणिकसंवाद, अजितनाथपुराणानुक्रमणिकाकथन, २ श्रेणिक-इन्द्रभृतिसंवादमें पुरागीपक्रम, ३ विलोकरचना-विधान, ४ फुलकर् गणका जन्म और यभिधान, ५ ऋषम-की उत्पत्ति, सुमेरु पर ऋगमका अभिग़ेक, विविध उप-देश, लोकदुःखनाश, श्रमणधर्माश्रय, केवलोत्पत्ति, ६ आदि जिनका ऐश्वर्य, नर और अभराधियगणके ऊपर अध्यक्षता, सद्धर्मामृतवर्षण, कैलासमें ऋषमनाथका निर्वाणगमन, भरतका निर्वाण, ७ राजगणका कीर्तन, भृतिविकमनामक राजेन्द्रका तपोवनगमन, स्रविकमका वैराग्य, मोक्षसाधनका कारण, गुणसेनका माहातम्य, विजयादि राजाओंकी दीक्षा और दोक्षायन्त्रनिरूपण, विजयका महाक्षोम, उनका अयोध्यागमन, ६ पुरुद्वका चरित, १० पुरुदेवका माहातम्य, ११ सिंहधूजका माहात्म्य, १२ सुकेतुचरित, जितरातुराजका राज्यलाभवर्णन, १३ उनका चंशाधिकार, १४ अजितजनोटपत्तिप्रसङ्ग, १५ जिन-गर्मावतार, १६ अजितनाथका जन्मामिनेक, १७ उनकी चेष्टा, १८ वाल्यकालमें उनका अपराजयकथन, तड़िद्रे ग-तिरस्कार, अजितनाथका पराक्रमवर्णन, १६ जितशतुका

वैराय, अजित्नाथका राज्यामिनेक, २० सगरका जन्म, २१ अजितनाथका निष्क्रमण, २२ सगरका हरण, प्रेम-श्रीका प्रेमवन्धन, २३ सगरको जिनवन्दना, २४ सगरका विवाह, २५ सगरका मतियर्द्धिनीलाभ, २६ सगरका श्री-मालालामकथन, २७ महादेवका दीक्षावर्णन, २८ सगरका अम्युद्य, २६ अजितनाथका केवलकानलाम, ३० सगर-का स्त्रीरत्नलाम, ३१ सगरकी दिग्विजय, ३२ अशेध्या गमन, ३३ सगरसाम्राज्य, ३८ भगीरथका जन्म, ३५ समबश्रुतिव्याख्यान, ३६ जिनका विहारवर्णन और सगर-का जिनवन्दन, ३७ तत्त्वीपदेश, ३८ सद्धमं।पदेशकथन, देवियोंका भवान्तरसम्बन्ध, ४० अजितनाथका निर्वाणवर्णन, ४१ सगरका निर्वेद, सगरका निकामण, ४२ सगरका केन्नल्हानरूप साम्राज्यलाम, ४३ चैत्या-छय, संयतचैत्य, सिद्धप्रतिमादर्शन और सगरका निर्वाण-कथन, ४४ भगोरथका निर्वाण, जहुकी उत्पत्ति और माहातम्य, ४५ सम्भवजिनमाहातम्य, ५६ अन्य जिनगणका प्रसङ्ग, ४७ गुरुपरम्पराक्रथन ।

#### पद्मपुराण।

१ जिनस्तुति, कुशाप्रगिरिशेखर पर महावीरका अव-स्थान, इन्द्रभृतिके निकट श्रेणिकका प्रश्न, पद्मपुराणका मनुक्रमणिकाकथन, २ विलोकसंस्थान, ३ कुलकारिगण-को उत्पत्ति, संसारका दुःख देख कर भयवर्णन, ४ आदि-जिनऋषमकी उत्पत्ति, नगाधिपमें ऋषमका अभिगेक, विविध उपदेश, लोकका आर्त्तिनाश, श्रमणधर्मप्रहुण, केवल-मानोत्पत्ति, विष्टपातिग ऐश्वर्या, सर्वदेव और राजगणका आगमन, निर्वाणसुखसङ्गम, वाहुवल और भरतका निर्वाणवर्णन, द्विजातिगणकी उत्पत्ति, कुतीर्थकगणका प्रादुर्भाव, इक्ष्वाकुप्रभृति राजाओंका व शकीत्तेन, विद्या-धरका उद्भव, विद्यु हं ध्टुका जन्म, जयण्यका उपसर्ग और केवलज्ञानसम्पद्वर्णन, नागराजका संक्षोभ, विद्याहरण-तर्जन, अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुद्कन्यासुखवर्णन, विद्याधरकुमारका शरण और प्रतिसंश्रय, राक्षसराज-का रक्षोद्दीपलाम, सगरकी उत्पत्ति, सगरका दुःख, सगरकी दीक्षा और निर्वाणवर्णन, ५ नतिकान्त महा-राक्षसगणका वंशकीर्त्तन, ६ प्रधान प्रधान वानरींका व शविस्तार, ७ तड़ित्केशका चरित, उद्धिका चरित,

अमरचरित, किप्किन्धार्मे अन्धखगोत्पत्ति, श्रीमाला-लेचरका आगमन, विजयसिंहवघ, अशनिवेगजका क्रोध, अन्धकका शत्रुलाभ, पुरका विनिवेश, मधुपर्वतशेखर पर किष्किन्धपुरस्थापन, सुकेशनन्दनादिका छङ्काप्राप्ति-निरू-पण, निर्घातवध्रहेतु सुमालिका सम्पदवर्णन, विजयार्द्ध के दक्षिणइन्द्रका जन्मकथन, सर्वविद्यालाभ, सुमालिकी पञ्चत्व प्राप्ति, वैश्रवणका जन्म, पुष्पान्तक-समावेश, केकयराजके साथ सुमालिके पुतका योग, चारु खप्नदर्शन, दशाननका जन्म और विद्यालाम, अनावृत्तका संक्षोभ, सुमालिका समागम, ८ रावणका मन्दीदरीलाम, कन्याओंकी परीक्षा, भाजुकर्णकी चेष्टा, वैश्रवणपुतका क्रोध, यक्षराक्षस-का युद्ध, कुवेरकी तपस्या, दशाननका लङ्कागमन, पृथ्न-चैत्यदशैन, हरिषेणका माहातम्य, ब्रिजगन्द्र पण नामक करीन्द्रदर्शन, यमस्थानच्युति, अर्करज्ञःकिष्किन्ध-सङ्गम, चोरकतृ क कैकसेयीका खरालङ्काका संश्रय, चन्द्रोद्य-वियोग पर अनुराधाका महादुःख, विरोधितपुरधृंस, ६ सुत्रीव-श्रीरामसमागम, वालिकी प्रवज्या, अष्टापद-पर्वतका क्षीम, वालि-निर्वाण, १० सुग्रीवका सुतारालाम, साहस-गामीका सन्ताप, रात्रणका विजयाद्ध पर्वत पर गमन, अनरण्यसहस्रांश्का वैराग्य, ११ मरुत्तयक्षनाश, १२ मधुका पूवजनमाख्यान, उपरम्भाका अभिलाष, महेन्द्रका विद्या-लाभ और राज्यलक्ष्मीक्षय, इन्द्रपराभव, १३ इन्द्रनिर्वाण, १४ दशाननका मेरुगमन, पुनः प्रत्यावत्तेन, अनन्तवीय का प्रश्न, दशाननका नियमकरण, १५ हजुमान्की उत्पत्ति, १६ अद्यापदपर्वत पर महेन्द्रके साथ प्रहादका अभिलाब, वायुका कोप, उसके प्रसादसे अञ्जनासुन्दरीका विवाह, दिगम्बर कर्तृ क हनूमान्का पूर्वजन्मकथन, १७ पवनाञ्जना-सम्भोग, भूतारवीप्रविष्ट वायुका इभदर्शन, विद्याधर्-समायोग, अञ्जनाका वर्शनोत्सव, १८ हनुमान्का जन्म, दारुणद्शामें वायुका पुत्रसाहाय्यमें स्वीकार, १६ रावण-का साम्राज्य, २० जैनडत्सेघ, तीर्यङ्करादिका जन्मानु-कीर्त्तन, २१ वज्रवाहु और कीर्त्तिधरका माहात्म्य, २२ कोशलमाहात्म्यविवरण, २३ विभीषणव्यञ्जन, २४ दशरथ-कां जन्म, केकयको चरदान, २५ पद्म (राम), लक्ष्मण, शबुघ्न और भरतका जन्मविवरण, २६ सीताकी उत्पत्ति, २७ 🙀 च्छपराजयवर्णन, २८ लक्ष्मणका रत्नलाभ, प्रभाचक-

हरण, तन्माताका शीक, नारदाङ्किता सीताको देख कर उनकी माताका मोह, सीता-खयम्बरवृतान्त, महाधनुकी उत्पत्ति, सर्वभूतशरण्यका दशरथको दीक्षाप्रदान, २६ दशरथका वैराग्य, ३० भामग्डलसमागम, ३१ दशरथकी प्रवज्या, ३२ दशरथका वानप्रस्थाश्रय, सीतादर्शन, केकयी-के वरसे भरतका राज्यलाभ, ३३ वैदेही, पद्म और सौमितिका दक्षिणकी ओर गमन, वज्रकणें(पाख्यान, वज्र-कर्णकी चेष्टा, कल्याणपत्नीलाभ, रुद्रभूतिका वशीकरण, ३४ वाळिखिल्य-विमोचन, ३५ अरुणग्राममें रामपुर-स्थापन, ३६ कपिलोपाख्यान, ३७ अतिचीर्याख्यान, ३८ अतिवीर्य पुत्र पद्मचरित, वनमालाका सङ्गम, जितपद्मा-लाम, ३६ देशभूपण कुलभूपणका चरित, ४० रामगिरिका आख्यान, वंशपवंत पर रामचैत्यादिका ४१ जटायुका उपाख्यान, ४२ दण्डकारण्यनिवास, पातदानफल, ४३ महानाग-स्थारोह, ४३ सम्बूकवि नाश, ४४ कैकयीका वृत्तान्त, खरदूपणवध, सीता-हरण, रामका विलाप, ४५ सीतावियोगदाह, ४६ विरोधक आगमन, रत्नजटिका छेद, ४७ सुप्रोवसमागम, साहसगतिका निधन, ४८ आकाशमें सीतासंवाद, ४६ हनुमत्प्रस्थान, ५० महेन्द्रदुहिता समागम, ५१ गन्धर्व-कन्यालाभ, ५२ हनुमान्का लङ्कासुन्दरीकन्यालाभ, ५३ ह्नुमान्का प्रत्यागमन, ५४ पद्मका लङ्कागमन, ५६ दोनींका वलपरिमाण, ५७ रावणनिग<sup>°</sup>मन, ५८ हस्तप्रदानकी कथा, ५६ हस्तप्रदान और नलनीलका पूर्वजन्मकथन, ६० हरि और पद्मका विद्या-लाभ, ६१ सुप्रीवभामएडलसमा-श्वास, इन्द्रजित् और कुम्भकर्णका सुरपन्नगवन्धन ६२ लक्षमणका शक्तिशेल, ६३ रामका विलाप, ६४ विशल्पका पूर्वजन्म, ६५ विशस्यका समागम, ६६ रावणदूतागम, ६७ रावणका जिनशान्तिगृहमें प्रवेश, ६८ जिनस्तुति, ६६ फाल्गुनाहिकनिह्रपण, ७० देवताओंको लङ्काभवनमें प्राति-हार्यकल्पना, ७१ वहुरूपविद्या, ७२युद्धनिर्णय, ७३ युद्धो-द्योग, ७५ चकोत्पत्ति, ७६ लक्ष्मणकर्तृक कैकसेयवध, रावणवध, उसकी नारियों और विभीषणका विलाप, ७७ प्रीतिङ्करोपाख्यान, ७८ केवलिका आगमन, इन्द्रजितादिकी दीक्षा और निष्क्रमण, ७६ सीतासमागम, ८० मयो-पाल्यान, ८१ नारदकी सम्प्राप्ति, अयोध्यामें प्रवेश, राम-

लक्ष्मण-समागम, ८२ त्रिभुवनालङ्कार-संक्षीम, ८३ गजकी पूर्वजन्मकथा, ८४ तिभुवनालङ्कार-समाधि, ८५ भरतका पूर्वजन्मानुचरित, ८६ भरतकी प्रवज्या, ८७ भरतका निर्वाण, ८८ श्रीचक्रथरका साम्राज्य, लक्ष्ण्यालिङ्गितवक्ष-का मनोरमालाभ, ८६ मधुसुन्दरवध, छवणदैत्यकी मृत्यु, ६० मथुरामें उपसर्ग, ६१ शतुद्रजन्मानुकीर्त्तन, ६२ रम्मा-लाम, ६३ रामलक्ष्मणकी विभूति, ६४ जिनेन्द्रपूजा, ६५ रामकी चिन्ता, ६७ सीतानिर्वासन, ६८ सीतासमा-श्वासन, ६६ रामका शोक, सप्तर्पिका आगमन, वज्रजङ्घ-का परिताण, १०० छवणांकुशका जन्म, १०१ छवणां-क्जशकी दिग्विजय, १०२ पिता ( पद्म )-के साथ महायुद्ध, १०३ लचणांकुशका ऐश्वय लाम, कैवल्यसम्प्राप्ति, १०४ छङ्काभूषणका अमरागमन, वैदेहीका पातिहाय°, १०५ रामका धर्मश्रवण, १०६ रामका पूर्वजन्माख्यान, इतान्त-वक्तका स्तव, खयम्यरमें परिश्लोम, १०७ कृतान्तवक्तकी पूनज्या, १०८ लवणांकुशका पूर्व जन्मकथन, १०६ मधु-पाख्यान, ११० कुमारगणका श्रमणधर्म और निष्क्रमण-कथन, १११ भामग्रङ्कका परलोक, ११२ हनुमान्का निर्वेद, ११३ हनुमान्का निर्वाण, इन्द्रपुरसंवाद, रामपुत-की तपस्या, ११४ पद्मका दारुण-शोकवर्णन, ११५ लक्ष्मण-वियोग और विभीषणका संसारस्थिति-वर्णन, ११६ लक्ष्मणका संस्कार और कल्याणमिलका देवागम, ११७ वलदेवका निष्क्रमण, ११८ दानपूसङ्ग, ११६ पद्म ( राम )-की कैवल्योत्पत्ति, १२० बलदेव (राम)का सिद्धिगमन ( निर्वाण ) ( श्लोकसंख्या १८८२३ । )

# शान्तिनाथपुराण।

१ जिनवन्दना, सुधर्मादि गुरुगणका नमस्कार और पूर्ववन्तीं किवयोंको पृशस्ति, प्रन्थारम्भमें वक्तश्रोतृलक्षण, जीवाजीवादि सप्ततन्त्रकथन, २ शान्तिनाधोत्पत्ति-प्रसङ्गमें विजयाद्ध पर्वतके मानादि, तिन्नकटवर्त्तीं नगरसंख्या और नगरमानकथन, शान्तिनाथका जन्म, अभिषेक और खर्य - प्रभा सहिववाहवर्णन, ३ अमिततेजका राज्य, प्रजापतिका जलन, जटीकी मुक्ति, श्रीविजयका विश्वविनाशवर्ण न, ४ अमिततेजका धर्मप्रक्षकरण, ५ श्रीपेणराजकी उत्पत्ति और चरितकथन, ६ विचुलदेव और वलदेवका आख्यान, ७ अनन्तवीय का दुःस और अच्युतेन्द्रका सुन्नवर्णन, ८

अंतन्तवीर्यंका सन्यंक्तंवलांम, वज्रायुंघ और वक्रवित्तित्व-प्राप्ति, ६ उनका इन्द्रभउपक्रयकवर्णन, १० मेघरथ नृपति-की उत्पत्ति और चरितवर्णन, ११ मेघरथकी वैराग्यो-त्पत्ति और दीक्षाप्रहण, १२ शान्तिनाथका गर्भावतार-वर्णन, १३ शान्तिनाथका जन्म और देवताओंका आग-मनवर्णन, १४ शान्तिनाथका जन्माभिषेक और राज्य-लक्ष्मीवर्णन, १५ शान्तिनाथका निष्क्रमण और ज्ञान-कल्याणक द्यवर्णन, १६ शान्तिनाथका समवसरण, धर्मोपदेश और निर्वाणवर्णन। (क्रोकसंख्या ४३७५।) श्रारिष्ट्रनेमिपुराण (हरिवंश)।

१ मङ्गलाचरण, ध्रुषसेम-छोहाचार्य प्रमृति पूर्वा-चार कथन, २ विदेहान्तर्ग त कुएडपुराधिपति सिद्धार्थ श्रीसमुद्रका पुतरूपर्मे जिनका कथन, इन्द्रादि देवगणकर्ट क जिनाभिषेक वर्ण न, जिनका वर्द्ध मान नामकरण, तीस वर्ष में उनको वैराग्योत्पत्ति, वनगमनपूर्वक द्वादश वर्ष-व्यापी तपस्या, घातिसंघातिकमैविनाश, केवलज्ञानप्राप्ति, षद्षष्टि दिवस मौनावलम्बन पर विहरण, राजगृह-गमन, वहां रससिंहासनोपविष्ट जिनेन्द्रके समीप चन्द्र-लोकस्थित देवगण, नागकुमारगण और किन्नरगन्धर्वादि-का समागम, तीर्थार्थं प्रकाशके लिये जिनेन्द्रके समीप गौतमका अनुरोध, वद्ध मानकर्तृक जिनधर्मार्थप्रकाश, तत्-प्रसङ्गर्मे संस्थान, समवाय, आचाराङ्ग, सूतकृत, प्रज्ञप्ति-हृद्य, ज्ञातधर्मेकथा, श्रावकाध्ययन, अन्तकृत्द्शा, अनुत्तर-दशा, प्रश्रमाकरण, विपाकस्तार्थं और दृष्टिवादार्थंकथन, भनन्तर सर्वोका जिनधम्मग्रहणपुरःसर ख ख स्थानमें प्रस्थान, मगधमें जिनगृहावली निर्माणादि कथन, धर्म-तीर्थं प्रवर्त्तन, ३ काशि-काञ्चि-द्रविड्-महाराष्ट्रगान्धारादि-समी देशोंमें जैनधर्मप्रचार, जिनमुखोद्गत मागधीभाषामें उपदेश सुन कर जनताका शान्तिलाभवर्णन, जिनके धर्म-शासनप्रसङ्गमें सिद्धासिद्ध भेदसे दो प्रकारका जीव, पञ्जविध ज्ञानावरण, नवविध दर्शनावरण, अद्यविशति-विध मोहनीय, चतुर्विध आयु, चत्वारिशत् नाम, द्विविध गोत और पञ्चविध अन्तराय कर्मकथन, कर्मविधुंशमें जीवका सिद्धत्वकयन, सिद्धगणका सम्यक्रूपसे परमा-नन्त-केवल्झान और केवलदर्शनादिकप अप्रविधगुणकथन् मीहोद्य और नाशोपशमस्य अवस्थालययुक्त लिविध

असिद्धनिरूपण, मिध्यादृष्टि, आसादन, सम्यङ्मिध्यां द्रुष्टि, संयतासंयताश्रय, संयत-उपशान्तकपाय, सम्यक ट्रप्टिक्षीणकपायादि रूप असिद्धका गुणस्थाननिरूपण, भव्याभव्यमेद्से जीवींका सुखदुःख-प्राप्तिकारणकथन, है विध्यकथन, कुदूष्टि-माया-लोभ प्रभृतिका फलकथन, मधुमांसादि वर्जनमें सुमानुष्यप्राप्ति, कुकर्मद्वारा कुमानुष्य-प्राप्ति, इन्द्रियनिप्रहफल, कन्द्रपरञ्जित कन्द्रपनामक देव-ताओंकी अभियोगिता और क्रिप्टत्वादिकथन, सम्यक्-दर्शनका दुर्छ भत्वकथन, उसके अभावमें संसारसागर निमञ्जनं, पूर्वीक् सम्यक्तव-परमानन्तादिका कारणकथन, संझेपमें सनत्कुमार-महेन्द्र-शुक्त-महाशुकादि कल्पचिविरण, दिवश्च्युतिगणका गतिकथंन, पूवजन्माभ्यस्त शुभषोड्श-कारणोंसे जिनशासनानुष्ठान द्वारा निर्वाणप्राप्तिकथन. जितशबुनामक श्रेणिकराजके निकट गौतमका हरिचंश कीत्तंन, ४ अलोकाकाश शन्दनिचिक्त, वहां जीव और पुद्रलका अवस्थानाभावकथन, वहां धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायादिका गतिस्थानाभाव, आलोकाकाशमध्य लोकका स्थितिकथन, ५ लोकशन्दनिष्कि, लोकका वैतासन-मृद्युक्तासुरीसदृश अक्तितिकथन, वहां चतुद्श रज्जुविभागादि कथन. लोकका घनवातादि तिविध वायु-गणका परिमाणादिकथन, ६ अधीलीकसंस्थान, नरकादि-का वृत्तान्त, तिर्याक्लोकवर्णन प्रसङ्गमें द्वीप-सागरदेशादि-निरूपण, उनका सं स्थान भीर परिमाणादि कथन, ऊद्ध-लोकवर्णन, नक्षतलोक भौर तदितर ज्योतिकादिका धरा-तलसे दूरत्वादि निरूपण, सिद्धलोककथन, ७ वर्णगुन्धा-विहीन कालखरूपकथन, मुख्य गौणमेदसे द्विविधकाल-निरूपण, समयवृत्तिकमसे कालका तिविधत्वनिरूपण, निश्वास-उच्छ्वास-प्राण-तोक-छवादिका छक्षण, परमाणु-लक्षण, परमाणु पढंशत्वकथन, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श द्वारा पूरण और गलन हेतु परमाणुका पुद्रलास्या कथन, सुभद्र-बुटी-रेणु-वालाप्र-यूका-यव-अंगुल्यादिका मानलक्षण, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीका लक्षण, अनुलोमकामसे अवसर्पिणीका सुखमादि षट् कालस्वनिरूपण यथा-सुलमा सुलमा सुलमा, दुलमा सुलमा सुलमा, इसके विलोममें उत्सर्पिणीनिकपण, अवसर्पिणीके प्रथमविकाल-भारतभूमिका कल्पवृक्षभूपितभोगभूमित्वादि कथन,

तद्नन्तर दुःखमा-अतीतमें परवर्ती दोनों कालमें गङ्गा और सिन्धुनदीके मध्य तथा दक्षिण भारतमें कुलकरीके उत्पत्तिकथन-प्रसङ्गमें पहले श्रुतिनामक कुलकरका राज्य-शासनादि वर्णन, उसके पुत्र सन्मति नामक कुलकरका विवरण, पीछे यथाक्रमसे क्षेमङ्कर, क्षेमन्घर, सीमन्धर, यथार्थं, विपुछवाहन, चक्षुप्यत्, यशसी, अभिचन्द्र, महः-देव, प्रसेनजितादि चतुर्वश कुलकरोंका उत्पत्त्यादि कथन, ८ आदिजिन ऋपमके जन्मादि कथनप्रसङ्गमें दक्षिण नाभि-राज, उनको पह्नी मरुदेशकी फथा, मरुदेवके गर्भसे ऋपम-देवका जन्म, इन्द्र-शची प्रसृति देवदेवी कर्नृक मरुदेवीकी सेवा, भगवान् जिनदेव वृषह्रपमें उनके उदरमें मुखप्रवेश कर रहे हैं मरुदेवीका इस प्रकार सुखखप्रदर्शन, जिनदेव-का जन्म, तीर्थङ्करदर्शनार्थ सुरासुरोंका आगमन, साकेत-नामनिक्ति, शचीका जिनस्तिकागारमें प्रवेश और तत्-कर्तृक जिनदेवको सुमेरुशिखर पर आनयन, इन्द्रादि सुरासुरकर् क जिनदेवका जन्माभिषेक, इन्द्रकर् क वज्र-सूचि द्वारा जिनका कर्णवेध-सम्पादन और उनके कर्णको रत्नकुण्डलद्वारा अलंकतकरण, जिनका 'ऋषम' ऐसा नामकरण, पौलोमीकर्तृक जिनदेवको फिरसे अयोध्या-नगरीमें आनयन और उनके पिताका आनन्दवद्ध न, ६ जिनदेवका वाल्यकीड़ा, यीवनमें नन्दा थीर सुनन्दा ना क दोनों कन्याका पाणिप्रहण, नन्दाके गर्भसे भरतपुत और ब्राह्मी नामको कन्याका जन्मविवरण, पीछे सुनन्दा-क़े गर्भसे महावल नामक पुत्र और लोकसुन्दरी नाम्नी क्रन्याका जन्म, नन्दाके गर्भसे कमशः वृपभसेनादि ६८ पुर्तिका जन्मकथन, अनन्तर आदिनाथकर क प्रजागणकी दुरवस्था पर द्यार्ट्ड हो क्षतत्राण, वाणिज्य और णित्यादि सम्बन्धकारसे क्षतिय, वेश्य और शूर्रूप तिविधवर्ण-विभाग करण, नीलाञ्जण नाझी इन्द्रनर्तकीका नृत्य देख ऋवमको वैराग्योत्पत्ति और इन्ट्रादि वाह्य शिविकामें आरोहण कर सिद्धार्थ वनमें गमन, प्रयागक्षेत्रमें गमन-पूर्वक केशमुरहत, जिनदेवका ध्यानावलम्बन, दैववाणी-मुनकर समाधिस्य क्षतियोंका भगवद्भिप्राय जान नम्नी-का कुश्-चीवर-वल्कङघारणवृतान्तकथन, षण्मास अन-्रशनपूर्वक नग्न जिनदेयका पृथिवीपारस्रमण, एकदा सीम-प्रम नामक राजाके घर जिनदेवका गमन और राजाकर्तुक

इक्षुरसं पूर्ण कलसदान प्रसङ्गमें दानतीर्थं ड्रुरोत्पत्ति, प्रति-प्रह, स्थानदान, पार्पक्षान्छन, पूजन, प्रणति, मनःशुद्धि, वाक्यशुद्धि, कायशुद्धि और एपणाशुद्धि इत्यादि नवविध दानकथन, पूर्वताल पुराधिपति वृपभसेनके शकट नामक महोद्यानमें न्यप्रोधतक्षके नीचे जिनदेवका ध्यानयोग आश्रयपूर्वक कैवल्यज्ञानप्राप्तिकथन, वह वृत्तान्त सुन कर भरतादिका वहां आगमन और जिनका आईतेश्वर्य न्शंन, प्रवज्याग्रहण कथन, १० जिनदेवका धर्मदेशना दया सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अभोहतादि पञ्च स्क्ष्म यतिधर्म तथा गृहस्थधर्म निरूपण, उक्त विधर्मानुष्टानसे मोक्षोद्भव-कथन, श्रुतज्ञानसे वे सव धर्म छक्षणोत्पत्तिकथा, हाद-शाङ्गनिरूपण, पर्यय-अक्षर-पद-संधात-प्रतिपत्ति-अनुयोग प्राभृत-यस्तु-पूर्ववाद् इत्यादि क्रमसे श्रुतज्ञा्नविकल्पनिह-पण, वर्णपदादिका अवान्तरभेदप्रपञ्च, पर्यायाङ्गमें दृष्टि-चाद-प्रदर्शन, कियादृष्टिचाद, नियति स्रभाव-काल, दैव और पौरुपादि द्वारा ख-पर नित्यानित्यभेदमें प्रत्येक जीवाजीवादि नव पहार्थ का विश्वतिप्रकार मेदकथन, इस प्रकार कुल १८० प्रकारका भेदकथन, तिरसट प्रकारका कियावादद्वीयिनिकपण, विनयद्वीयवादका ३२ भेट, यथा— जनक-जननी-देवनृपति-ज्ञानि-वाल-वृद्ध और में मन-वचन-काय और दामरूप चतुर्विध विनयकार्य, तथा परिकर्म, स्ट, अनुयोग, पूर्वगत, चूलिका प्रभृति परिकर्मादि भेदकथन पूर्वक चन्द्रसूर्य-जम्बूद्दीप-द्दीप-सागरादिके संस्थापनादिका निरूपण, अक्षरपदादि-निरू-पण, श्रोतृगणका श्रावकश्चर्य दोक्षाकथन, ११ जिनपुत भरतके दिन्विजयवर्णनप्रसङ्गमें गङ्गासागरप्रदेश, दाक्षि-णात्य, सिन्धुदेश, हिमालय, वृपभिगिर, म्लेच्छ्देशविज-यादि कथन, भ्लेच्छराजादि-कर्क भरतको कन्यादान, भरतके आदेशसे उनके भ्रातृगणका ख ख राज्य त्यागपूर्वक जिनदेवका शरण-प्रहण और प्रवास्थाकथन, भरतका ऐध्व-र्यादि वर्णन, भरतमिल जय नामक हस्तिनापुरपतिका अपनी भार्याके साथ जिन्द्यम् श्रवणपूर्वेक प्रवज्याशहण, वृषभसेन-इंद्रथ-कुम्म-शृह्ममदन-देवशम नणघर-धनदेव-नन्दन प्रभृति ८४ गणिगणका नामक्यन, इनके मध्र वृपमका ही अपर नाम आदि जिनदेव, कैलासगिरि गमन पूर्वक गणिगणवेण्टित हो ऋषमका सिद्ध स्थान गर्मन

देवगणका गन्ध्रयु यथूपादि द्वारा जिनपूजा कथन, १२ भरतकर् क निज पुत आदित्ययशाको राजपद पर अभि-पेक, भरतका जैनद्दोक्षाप्रहण, सपुत्र यश्रभुतिको राजपद्दपर अर्मिषेक पूर्वक आदित्ययशाका निकामण और निर्वाण-वर्णन, वल-सुवल-अतिवल-महावल-अमृतवल प्रभृति चतुदश लक्ष संख्यक आदित्य वंशीय गणका राज्यत्याग और निर्शागवाप्तिकथन, जिनकुनार वाहुवलके सीरससे सोमयशाको उत्पत्ति और उससे सोमवं शप्रवर्तन, सोम-यशोंके पुत्र महाबल, महाबलके पुत्र खुवल, खुवलके पुत्र भुजवल इत्यादि पञ्चशत कोटिलक्ष सोमव शीय गणका निर्वाण, उप्रादि कौरवोंका निर्वाण और नामके वंशीय खेवरनायं रज्ञबन्त्र रज्जरथ प्रभृतिका निर्वाणप्राप्तिकीर्त्तन, १३ सगर नामक चकघरका पष्टिसहस्र पुतजन्मकथन, दम्भपूर्व क उनका पृथिवी खनन और उससे कुपित नाग-राजकर्न क उन्हें भस्त्रीकरण, यह सुन कर सगरको जैन-दीक्षा और मोक्षपृति, सगरके अपर पुत सम्भवनाथ और सम्मवके पुत्र अभिनन्दन, इसी पूकार उनके पुत्र सुमतिनाथ, पःग्रुभ, सुपार्थ्व, चन्द्रपृभ, पुष्पदन्त और शीतल जिनेन्द्र इत्यादि इक्ष्वाकु व शवर्णन, १४ वत्सदेशमें कौशाम्बीराज सुमुखको कथा, सुमुखका वसन्तकालमें हस्तियान पर कालिन्दीपुलिनमें गमन, वसन्तोत्सवमें एक सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी दर्शन, इसके लिये सुमुखराजका विरह, यह वृत्तान्त सुन कर मन्त्रिगणकर्तृक वनमाला नाम्नी उस कंन्याको आनयन, वनमालांके साथ राजाका समागम, उसके गर्भसे हरिका जन्म, हरिके पुत्र मोदागिरि, मोदा-गिरिके पुत हेमगिरि और हेमगिरिके पुत सुनय इत्यादि हरिव शवर्णन, १५ हरिव शोय सुमित-राजाख्यान, राज-महिषी पद्मावतीका शुभस्तप्रदर्शन, उसके गर्भसे माघशुक्रा द्वादशो श्रवणानस्रतमें जिनका जन्मवृत्तान्त, पुरन्दरादि देवगणकर्तुं क हिमालय अधित्यका पर जिनका जन्मा-भिषेक, कुशात्रपुरमें जननीको गोदपर जिनेन्द्रका मुनि-सुवतं ऐसा नामकरण, सुव्रतका पाणिग्रहण, जलधरको देख कर विनश्वर शरीरवायुके सम्बन्धमें उपदेश, सुवत-का राज्याभिषेक और. उनके पिताकी समाधि, सुत्रतका निर्वेद, छः दिन उपवासपूर्वक उनका मिक्षार्थं वहिर्गमन, राजगृहनिवासी वृषभद्त्तका भिक्षादान, तदुपलक्षमें पुष्प-

वृष्ट्यादि शुभकल्याणवर्णन, निजपुत दक्षको राज्यप्रदान पूर्वक सुव्रतका निकामण और निर्वाणकथन, दक्षके औरस और उनकी पत्नी इलाके गर्भसे ऐलेय नामक पुत और मनोहरी नाझी कन्याका जन्म, एकदा दक्ष प्रजापतिके नवयौवना कन्याका रूप देख कर बिक्षिप्त इदय होनेसे इलाका तत्पति कोध और इलाका पुलके साथ दुर्गम प्रदेशमें गमन, ऐलेय कर्व क नर्मदाके किनारे माहिपाती नामक नगरी निर्माण और तत्पुत कुनिमको राज्यदान-पूर्वेक ऐछेयका तपस्याके छिये बनगमन, कुनिमकर्तृक वरदाके किनारे कुरिडन नामक नगर स्थापन और पुलोम पुतको राज्य दे कर वानग्रस्थत्रहण, पुलोमके पुत्र चरम-पौलोमकर्तृक रेवाके किनारे इन्द्रपुर और वनके लड़के महीदत्तकर्तक कुलपुरस्थापन, अनन्तर पुतादि क्रमसे मत्स्य, अशोधन, साल, सूर्य और देवदत्तादिका वृत्तान्त, दैवदत्त्रपुत विधिलानाथका विदेहाधिपत्य और उनके लड़के हरिपेण, शङ्ख और अभिचन्द्रादिका विवरण, अभि-चन्द्रके पुत्र वसु, उनके पुत्र वृहद्वसु महावसु आदि दश-वसुका विवरण, वेदवित् क्षीरकदम्बके पुत्र पर्वत और शिष्य वसु तथा नारद, वसुराजको समामें पर्वत और नारदका शास्त्रार्थप्रकाश, नारदके कर्मकाएडीय वेदसाग-की निन्दा और कर्ममार्गसमर्थनमें पर्वतको पराजय, वसु-राजका पर्वतके प्रति पक्षपात, इस कारण उनका अधः-पतन-कथन, १८ मधुराधिप यदुकी उत्पत्तिकथा, उससे सूर और सुवीरका जन्म, सूरसे अन्धकवृष्ण्यादि और सुवीरसे भोजकादिका उद्भव, अन्धकवृत्र्णिकी समुद्र-विजय और वसुदेवादि दशरुत तथा कुन्ती और मन्द्रा नामक दोनों कन्याकी जन्मकथा, भोजकवृष्णिसे उप्रसेन, महासेनप्रभृति पुतका जन्म, सुवसुके वंशमें जरासन्धका उद्भव और उनके पुत्र कालयवनादिकी जन्मकथा, सुप्र-तिष्ठ नामक मुनीश्वरकर्त्युक राजग्रहागत वृष्णिगणके सामने निमभापित धर्मदेशना, यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और निम्<sup>र</sup>च्छां साधुओंके ये पांच महा-व्रत, कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तिविधगुप्ति, सर्वानिष्टप्रत्याख्यानरूप समिति, हिंसादि निवृत्तिरूप अणुव्रत, दिग्देश अनर्थदर्डादि निवृत्तिहरूप गुणव्रत, अतिथि पूजादि रूपवत, मांस-मद्य-मधु-च त-चेश्यादि त्यागरूप

नियम ये सव व्रतगृहियोंके अभ्युदयका साधक, अनन्तर अनेक प्रकारके जीवोंका कर्मवशसे कुयोनिप्राप्ति,पृथिवीसिक लादिमें जीवविभागसंख्या और एकेन्ड्रियसे पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जोवगणका शरीरायुःप्रप्राणादि कथन, अन्धकवृष्णि-का पूर्वजन्म, समुद्रविजयके हाथमें राज्य और वसुदेवकी समर्पणपूर्वक अन्धकवृत्मिके सुप्रतिष्ठका शिष्यत्व खोकार, मधुरामें उप्रसेनको समिषिक करके भोजकवृष्णिका निर्प्रन्थ व्रतप्रहण, एकदा समुद्रविजयके आदेशसे वसु-देवका रमणीय उद्यानमें अवस्थान और एक कुन्जाकर्तुक उनका अधिक्षेप, राजाके प्रति उनकी वीतश्रदा और रमशानमें गमन, अग्निप्रवेशप्र दर्शनपूर्वक छमवेशमें विजयखेर नामक पुरमें गमन, वहां गन्धर्व-विद्याप्रवीण सुप्रीव नामक क्षत्रियको सोमा और विजयसेना नाम्नी कत्याका पाणिप्रहण, विजयसेनाके गर्भसे अकरका जन्म-द्रानपूर्वक उनका चन-गमन, अनन्तर दो विद्याघर कुमारों-के यत्नसे कुञ्जरावर्त्त नामक विद्याधरपुरमें गमन, वहां श्यामा नाम्नी विद्याधर कुमारीका पाणिश्रहण, अङ्गारक नामक किसी विद्याघर श्रृतकत्त क उन्हें भाळिङ्गनपूर्वक-आकाशमार्ग में हरण और चम्पानगरीमें यक्षकुमारीको थानयन, चारुदत्तके साथ उनकी मिलता, चारुदत्तके निकट गन्धर्वविद्या प्रकाश और गन्धर्वसेना नाम्नी राज-कुमारीका पाणिपीइन, २०-२१ उज्जयिनोनाथ श्रीधर्म-राजके वलि, वृहस्पति, नमुन्ति और प्रहाद नामक मन्ति-चतु रयका पूसङ्ग, मन्त्रिचतुष्टयके साथ अकम्पनादि जैतमुनिदर्शनार्थं राजाका वहिरुद्यानमें आगमन्, उनके संसर्ग से राजाका निर्वेद, पद्म नामक पुत्रके हाथ राज्य-भार अर्पणपूर्वक उनका विष्णुकुमारके निकट जैनदीक्षा-. ग्रहण, पद्मकतृ क विल नामक विपृको सप्ताह-राज्यपूदान, विलक्ते निकट विन्णुकुमारका आगमन और विपादभूमि-पार्थना, वलिकचृ क पादतय-भूमिदान, विष्णुकुमारका महाकाय धारणपूर्वक एक पादमें ज्योतिश्चक, द्वितीय पादमें मनुष्यलोक और तृतीय पादमें अवकाश अधिकार, देवगणकर्चृ क प्रसादन और विष्णुकुमारका महाकाय-संवरण, उनके आदेशसे देवगणकर्त्तृक विलका वन्धन और देशसे निर्वासन, चारुव्तका चरित्र और गणिका कलिङ्गसेनादुद्दिता वसन्तसेनाका विवरण, २२-२४

फाल्गुनोत्सवमें गन्धव सेनाके साथ वसुदेवका पार्श्व-नाथ पृतिमापूजनार्थं उस मन्दिरमें गमन, वहां नीछोत्पल-दलञ्चामा एक कन्या देख कर वसुदेवका मनोविकार, यह देख कर गन्धर्व सेनाकी ईर्षा और उन्हें जिनेन्द्रके निकट ला कर स्तील द्वारा भगवान्का प्रसादन, पीछे खगृहमें ला कर पियाके पादतलमें पतित हो कर उन्हें सान्त्वना, त्रसुदेवके निकट एक वृद्धा विद्याघरीका आग-मन और तत्कन् क उप्रभोजादि अनेक क्षतिय राजाओं-की जिनमक्ति और तपस्यादि वर्णन, मनु-मानव कौशिक-गैरिक-गान्धार-भूमितुएड-आदित्य-योमचर-मातङ्गप्रशृति विद्याचार्यं, गौरीप्रकृषि रोहिणो, अङ्गारिणी महागौरी महारवेता माथूरो कालमुखो आदि विद्या, दैत्य-पश्चग-मातङ्गादि भेद्से अष्ट त्रिद्याधर और उनका विद्यानाम-कथन, 'विनमिकुलतिलक विद्याघरपति मातङ्गको गोतजा हुं, नाम मेरा हिरण्यवती हैं' इस प्रकार वृद्धा विद्याधरीका परिचयदान और मदङ्कलालिताको प्रीतिके लिप भागमन-कारणकथन, वसुदेवको पानेके लिये उस विरहिणी विद्या-धरीका अवस्थावर्णन, एकदा निशाकालमें एक वेनाल-कन्याकर् क वसुदेवहरण, श्रीमन्त नामक विद्याघराधि-ष्टित गिरिवरमें आनयन, वहां वसुदेवकर्त्रक नीलयशाका पाणिप्रहण और उसका जन्मविवरण-श्रवण, नीलकएड नामक विद्याधरकर्त्तुक नीलयशा हरण, वसुदेवका दीन-वेशमें देशभ्रमण, सोमश्रो नामक कन्याके साथ वसुदेवके विवाहप्रसङ्गमें सगरपुरोहितरून सामुद्रिक शास्त्रागम और नरका शुमाशुभ छक्षण-निरूपण, अनन्तर वसुदेवका तिल-वस्तुपुरमें गमन और वहां राश्वसवधान्तर पश्चशत-कन्याका पाणिप्रहण, पीछे वसुदेवका वेदसाम नामक पुरमें गमन और कपिलश्रुति नामक राजाकी हत्या करके उसको कन्या कपिलाका पाणिप्रहण, उसके गर्भसे कपिल नामक पुत्रजन्म, अनन्तर वसुदेवका शालिगुहापुरी-जयपुर-भद्रिलपुर-इलावद्ध नपुरमें जा कर वहांकी राजकुमारियों-का पाणिप्रहण, २५-२८ इलावर्ड नपुरराज दधिमुलके साथ वसुदेवके संवादप्रसङ्गुमें कौरववंशीय कार्तवीर्यंका कामधेनुके लियं जमदिनवध, पीछे परशुरामके हाथसे कार्त्तवीय का निपातन, परशुरामक तृ क सप्तवार पृथिवी-निःश्रितिय-करण, गर्भवतीका कात्तवीर्याजु नमहिषीका

जामद्रश्यके भयसे कौशिकमुनिके आश्रममें पछायन, वहां सुमीम नामक पुतजन्म, सुभीमकर् क चक्रसे जाम-दान्यका शिरश्छेदनपूर्वक तिसप्तवार पृथिवीको अब्राह्मण-करण, मदनवेगाके साथ वसुदेवका विवाह, उसके गर्भसे अनावृष्टि नामक पुत्रजनमं, मदनवेगाका रूप धारण कर सूर्पनखाका वसुदेवको हरणपूर्वक अन्तरीक्षमें गमन, भद्राकी सहायतासे उनका परिवाण, कन्यापुरमें गमन-पूर्व क वेगवती नाझी विद्याधर-कुमारीका पाणित्रहण, तत्प्रसङ्गमें निमवं शजात विद् युद् ं प्रका वृत्तान्त, विदेह-नगरवासी सञ्जयन्त नामक मुनिचरित, श्रावस्तीपुरराज एणीपुत्रकी कत्या प्रियं गुसुन्दरीके साथ विवाह करनेकी इच्छासे वसुदेवका अपने वाह्योद्यानमें जा कर अवस्थान, । वहां विप्रमुखसे मृगध्यज-महिबीके उपाख्यानप्रसङ्गी नास्तिक और एकान्तवाको अलकापुर-राजमन्त्री हरि-श्मश्रुका विवरणश्रवण, २६-३२ श्रावस्ती नगरमें काम-देवगृह नामक जैनमन्दिरके नामकरणप्रसङ्गमें कामदत्त-श्रेष्टीकर्नु क स्थापित रतिकाम-प्रतिमावृत्तान्त. कामदत्त-के पुत कामदेव और उनको कत्या वन्धुमतो, प्रतिदिन, कामदेव-गृहमें जा कर वसुदेवकी रतिकामकी पूजा ओर सन्तुष्ट कामदेवकर्ज् क वसुदेवको वन्धुमती सम्प्रदान, यह वृत्तान्त सुन कर. एणीपुत राजकन्याको वसुदेवके पृति अनुरक्ति, पीछे उसके साथ वसुदेवका विवाहवर्णन, अनन्तर म्लेच्छराजकन्या जराका पाणिग्रहण और जरा-कुमार नामक पुत्नोत्पादन, अरिष्टपुर-राजकन्या रोहिणोका स्वयम्बर, स्वयम्बरसभामें समुद्दविजय-जरासन्धादि अनेक राजांओंका आगमन, वसुदेवकी भ्रात्वेशमें यहां उपस्थिति, उनके गलेमें रोहिणीका चरमाल्यदान, इस पर समुद-विजयादि राजाओंके साथ वसुरैवका तुमुळयुद्ध, वसु-देवका जयलाभ, वसुदेवका परिचय पा कर समुद्रविजय-कर्नुं क भ्राताको आलिङ्गन, रोहिणीके गर्भसे रामका जन्म, राम और भार्याके साथ वसुदेवका साकेतनगरमें आगमन-महोत्सववर्णन, थ**र्जुर्विद्याविशार**द ३३-३४ सिशिष्य कंसादिके साथ वसुदैवका जरासन्ध्रजयार्थ राज-गृहमें गमन, 'जो जीवित कुम्भीरको पकड़ कर ला सकेगा, उसीको कन्या दूंगा'इस पूकार सिंहपुरराज सिंहरथकी घोषणा सुन कर चसुदेवका कंसके पृति चीरपताका-Vol XIV. 18

धारणका आदेश, गुरुके आदेशसे कंसकर्त्त क सिंहरध-वन्धन और जरासन्ध्युरमें निक्षेप, कंसका जन्मवृत्तान्त, कोशाम्बीवासिनी एक मद्यकारिणीकी यमुनाप्रवाहमें मञ्जुषाके मध्य कंस्रामि, अपत्यनिविशेषमें प्रतिपालन, जरासन्यका वह मञ्जुवा-आनयन और मञ्जुवासंत्रन-लिपि पड़ कर कंसको उप्रसेन और पशावतीके पुतके हैसा अवधारण, जरासन्धकतृ क कंसको खकन्या जीव-द्यगापूरान, कंसका मधुरामें आगमन और अपने पिता उप्रसेनको कारागारमें निक्षेप करके राज्यप्रहण, पीछे वसुदेवको हा कर गुरुदक्षिणासक्स्प देवको नाझी अपनी भगिनीको समर्पण । 'वसुद्देवपुतके हाथ पतिपुतकी मृत्यु होगी। इत्यादि कंसके पृति जरासन्धकुमारीकी उत्ति, यह सुन कर वसुदेवके निकट पृतारणापूर्वक प्रसृतिके समय देवकीको अपने घरमें रखनेकी प्रार्थ ना, इस पर वसुदेवका समातिदान, देवकी. वसुदेव और कंसके अध्रजका अतिमुक्त नामक मुनिके आश्रममें जा कर ख ख अवस्था-निवेदन, वहां उपसेनादिका जन्मादि कथन, देवकीका आश्वास, देवकीके गर्भजात नृपदत्त-देवपाल-अनीकदत्त शतुधादि छः पुत्नींका कंसके हाथसे अकाल-मृत्युकथन, देवकीने सप्तम गर्भमें शङ्ख-पद्म-गदासिधारीका जन्म, तत्कर्क कंसादिका विनाश और पृथिवीभीग, जिनेन्द्र अरिप्रनेमिके चरित प्रसङ्गर्मे महोपवासविधि, सर्वतीमद्र नामक तपोविधि, विलोकसार नामक तपो-विधि, वस्त्रमध्यतपोविधि, मृदङ्गमध्य, मुरजमधा, एका-वली, द्विकावली, मुक्तावली, रहावली, कनकावली और सिंहनिकोड़ित-तपोविधि, मेरुपंक्ति, विमानपंक्षि, शातक्रम्म, सप्तसप्तम, अष्टाष्टम, नवनवम, दशद्शम इत्यादि हार्विश पर्यन्त तपोविधि-कथन, अनन्तर एक कल्याणसे पञ्च-विंशति कल्याणादि नामधेय भावना, भाद्रशुक्का सप्तमीमें परिनिर्वाण, भाद्रकृष्णपष्टीमें सूर्य प्रम, तयोदशीमें चन्द्रप्रम और कुमारसम्भव, सुकुमार, सर्वार्थं सिद्धि प्रमृति विधि, तदनुष्टानसे तीथ ड्रूर प्रकृतिलाभ, श्रानादि पर्कपाय निवृतिसे विनय सम्पन्नता, शीलवतरक्षारूप अनितचार-कथा, जनम-जरा-मरणामय-मानस शारीर-दुःखसे संसार भयक्ष सम्बेगकथन, इत्यादि प्रकारसे ज्ञानयोग, त्याग, मार्गतुगा वेश, समाधि, वैयावृत्य, बन्धन, अपृतिकमण,

कायोत्सर्गः, मार्गःपुमावन, पुवचन और वत्सळतादि-लक्षण-कथन । ३५-३७ देवकीका यमज पुत्रजन्म, यमजके स्थानमें दो मृतपुत्र रख कर उन दोनोंको छे देवताओंका अलकागमन, कंसकतृ<sup>९</sup>क उन दो मृत पुतोंको शिलातल-पर निक्षेप, इस पुकार कंसकतु क देवकीका षट्पुतनाश, देवकीका शुभ स्वप्नदर्शनपूर्व क गर्भधारण, भाद्रशुक्त-द्वादशी तिथिको शङ्खनकादि चिह्नित अधीक्षजका जन्म-पिताकर्तक वृषमरूपघारी नगरदेवके निकट वछदेवको पृदर्शन, भगवत्पृभावसे यमुनाकी श्लीणपुवा-हता और नदी पार करके चसुदेवका नन्दालयमें गमन, तत्कन्या प्रहण, उसके स्थानमें श्रीकृष्णकी स्थापनपूर्वक त्वरित पहले मथुरा आगमन, कंसका देवकीके स्तिका-गारमें गमन और उस कन्याको ग्रहण कर उसका नासिकाछेदनपूर्वक ताड्न, देवकीके नन्दालयमें गमन-पूर्वक श्रीकृष्णदर्शन, वलदेव और कृष्णका मधुरागमन-पूर्वक केशी, गज, चानूर, मुष्टिक प्यतिका विनाश और कंश वश्रपूर्वक उपसेनको राज्यदान, रजतादिराज सुकेतु-की कन्या रेवती और सत्यभामाके साथ रामकृष्णका विवाह, दुहितृशोकसे सन्तप्त हो जरासन्धका रामकृष्ण-निधनार्थं कालयवन नामक पुत्रको पूरण, अतुलमाला नामक पर्वत पर रामकृष्णके हाथसे कालयवनवध, जरा-सन्ध कर्तृक तद् भ्राता अवराजित पूरण, रामकृष्ण-के निकट अपराजितकी पराजय, ३८-४० कुवेरपती शिवाका सुन्त्रप्रदर्शन, उसके गर्भसे अरिष्टमिम नामक जिनेन्द्रका जन्म, इन्द्रादि देवगणकर्तृ क उनका अभिषेक, सुमेर्चाशिखर पर हा कर उनका नामकरण, महेन्द्रकृत जिनस्तोत, भ्रात्वध सुन कर कुद्ध हो चतुरङ्गवलके साथ जरासन्धका मथुरागमन, वृष्णिभोजादिका मथुरात्याग-पूर्वक पलायन, जरासन्धका तद्जुसरण, याद्वगणका विन्ध्रागिरि पर आगमन और वहां जरासन्ध्रकर्तृक युद्धाह्वान, दैवक्रमसे वहां भरताद्व<sup>°</sup>वासीकर्रंक वहु चितासजा, यह देख कर 'यादवगण दग्ध हो रहे हैं' जरासन्धको इस प्रकार कल्पना, यादवशिक्षित एक वृद्धा-कतृ क 'जरासन्धके भयसे याद्वगण चितामें दग्ध हो रहे हैं' इस प्रकार उकि, यह सुन कर हष्टचित्त जरासन्ध-पूत्थागमन और याद्वींका शान्ति-का राजगृहमें

४१-४४ द्वारका-निर्माण, श्रीकृष्णका अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह, नैतिकुमारका सम्वर्द्धन, नारदका द्वारका-आगमन और उसका जन्मविवरण, भैं दौर्<sup>°</sup>पुर-निवासी सुमित नामक तापसका पुत हं, देवता-के अनुग्रहसे में अष्टमवर्णमें सरहस्य जिनागम अध्ययन करके आकाशगामिनी विद्या और संयमासंयम लाम किया हैं' इस प्रकार नारदका परिचयदान, नारदके उप-देशसे श्रोक्रणकर्त्युं क रुनिमणीहरण, रुक्तिमणीमुखच्यु । ताम्बूलको श्रीकृष्णके कपड़े में यंघा हुआ देख सत्यमामा-की ईर्षा, पीछे रुक्मिणीको देवता जान उसके पद पर कुसुमाञ्जलिपदान और खसीमाग्य प्रार्थना, रुक्मिणीके पुतजन्म, धृमकेतु नामक असुरकत्<sup>९</sup>क पुत्रहरण और खदिरवनके मध्य शिलातल पर स्थापन, पीछे मेघकूरराज फाऊसः वरमहिषी कनकमालाक तृ क वह शिशुप्रहण और पुत्रनिशिधेपमें प्रतिपालन, पुत्रका संवाद जाननेके लिये श्रोक्रणका नारदको प्रेरण, विदेहवासी सीमन्त्रर नामक जिनेन्द्रके निकट नारदका गमन, उनके मुखसे मधुकैटम-का प्रयुद्धशाम्बद्धपर्मे जन्मान्तरप्राप्तिविवरण-श्रवण, सीम-न्धरके आदेशसे नारदका मेग्रक्सट जा कर प्रधुम्न-दर्शन, सत्यभामाके पुत्र भानुका जन्म, नारदके उपदेशसे श्री-क्रणकत्तुं क जम्मूपुरांधिपति जाम्यवकी कन्या जाम्मूवती-का हरण और भ्राता विष्वक सेनाके साथ उनका द्वारका-में प्रत्यागमन, श्रीकृष्णका सिंहलराजकत्या लक्ष्मणाके साथ विवाह् श्रीरूणका सौराष्ट्र-गमन और नमुचिकी हत्या करके उसका भगिनी सुसीमाका पाणिप्रहण, इस प्रकार श्रीकृष्णके साथ गौरी, पद्मावती और गान्धारी आदिका विवाह एवं हलधरके साथ रेवती, वन्धुवती, सीता और राजिवनेतादिका परिणय-कथन, ४५-४६ युधिष्ठिरादिके जन्मकथनपूराङ्गमें कुरुवंशकोर्त्तन, आदि-जिनऋषभके समकालीन हस्तिनापुराश्चिप श्रेय और सोम-पुभका वृत्तान्त, सोमपुभपौत कुरुसे फुरुवंशपूवर्तन, अन-न्तर कमान्वय तद्दवंशीय कुरुचन्द्र, धृतिकर, धृतिमिल, धृतिदृष्टि, भ्रमरघोष, हरिघोष, सूर्यव्रोष, पृथुविजय, जय-राज, सनत्कुमार, सुकुमार, नारायण, नरहरि, शान्ति-चन्द्र, सुदर्शन, सुचारु, चारु, पद्ममाल, वासुकी, वस्,, वासव, रन्द्रवोर्घ, विचितवीर्घ, चित्रस्य, पारसर, शान्तनु,

धृतकर्मा आदिका नामकथन, धृतपुत् धृतराजको अम्बा, अम्बालिका और अम्बिकाके पृति आसक्ति, उससे धृत-राष्ट्र, पाण्डु और विदुरका जन्त, सुगोधन, युधिष्टिर और अभ्वत्थामादिका जन्मादि कथन, निर्वासित-गृहदाहमुक्त पाएडवगणका वेशपरिवर्तनपूर्वक कौणिकपुरी, श्लेप्मा-तक और वसुन्धरापुरादि-गमन, युधिष्टिरका वसन्त-सुन्द्रीसमागम, पोछे उनका तथा उनके भ्रा गणका तिश्रङ्गपुर-गमन-पूर्वक प्रभा, सुपुभा और पद्मादि राज-कुमारियोंका पाणिप्रहण, हिडिस्वादिका संवार, पार्थगण-का द्रुपद्राज्यमें गमनपूर्वक द्रौपदीलाभ, चूतमें पराजित पाएडवींका वनवास, उन लोगींका रामगिरि-गमन और वहां रामलक्ष्मण-पृतिष्टित जैनालयादि दर्शन, पीछे विराट-नगरमें वास और उनका वेशपरिवर्त्तनादि वृत्तान्त, द्रीपदीलुब्ध कीचकका भीमसे परिवाण, अनन्तर कीचक-का तपश्चर्या निर्वाणलाम, द्रौपदी और कीचक-का पूर्वजनमबुत्तान्त, १७-५२ पृश्वनचरितकीर्तन, उनका विविध अलङ्कार कु ग्रम गाग और कु ग्रमणयनादि लाम, सम्बरनिष्रह, तद्गृहस्थिता दुवं धनकन्या कनक लताका वृत्तान्त, प्रयुच्नका कनकलता-लाभपूर्वक नारदो-पदेशसे द्वारका आगमनकालमें रामकृष्णके साथ युद्ध, नारद्के मुखसे प्रयुद्धका परिचय और उनका द्वारकापुरी-प्रवेश महोत्सवादि वर्णन, साम्बका जन्मकथन, अक्-रादि श्रीकृष्णपुतके नामादि, प्राधान्यानुसार यदुकुल-कुमारोंमेंसे प्रत्येकका नाम और उनका साद्ध तिकोटि संख्याकथन, यशोदागर्भजाता कंसनिपीड़िता दुर्गाका पूर्वजन्मादि विवरण, जिन-सेवासे दुर्गाकी निर्वाणप्राप्ति, रुणाने साथ युद्ध करनेकें लिये ससैन्य जरासन्धका द्वारकागमन, यादव और मागधपक्षीय प्रत्येक वीरका नाम और महासमर-वर्णन, रूप्णकर्त्तृक जरासन्य वध-वर्णन, जरासन्धके नाशके लिये द्रोण, दुर्योधन, दुःशा-सनादिका निवेदन और विदुरके समीप जिनदीश्राप्रहण, कर्णका सुदर्शनोद्यानमें कर्णकुएडळ परित्यागपूर्वक दम-नयाके निकट जिनदीक्षाग्रहण और उस. स्थानका कर्ण-**खुवर्ण नाम पड्नेका कारण कथन। ५३-५**४ जरासन्ध और यादवोंका आनन्दस्थान तथा आनन्द्पुर नामक जिन .मन्दिर स्थापन वर्णन, श्रीकृष्णकी दक्षिण देशादि विजय.

तत्कर्तृक यदुर्वशीय सहदेवको राजगृह, उप्रसेनस् तकी मथुरा, पाएडवोंको हस्त्विनापुर और रुम्प्रनामको कोश्ल-पुर प्रदान, नारदके उपदेशसे धातकीखण्ड भारतान्तर्गत . अमरकङ्कपुरराज पद्मनाभकर्नु क द्रौपदीहरण, यह वृत्तान्त सुन कर पाएडवोंका रामरूम्मादि यदुवलके साथ दिव्य-रथकी सहायतासे लवणसमुद पार हो अमरकङ्कुपुरमें गमन और द्रौपदीको उद्धार, पुनः सागर पार कर समुद्र-के किनारे मलयाचलको शोभासे हतचित्त हो वहां मथुरा नामक पुरी निर्माणपूर्वक अवस्थानादि वर्णन । ५५-५६ वाणदुहिता उपाके साथ प्रग्रुम्नतनय अनिरुद्धका विवा-हादि वर्गन, श्रीकृष्णका रुक्मिण्यादिके साथ रैवतक विहार, नेमिजिनकी वैराग्योत्पत्ति, इन्द्रादि देवगणकर्जु क नेमिका अमिषेक, रामकृष्णका निषेधमें भी नेमिनाथकी तपस्याके लिये गिरिराजमें गमन, जिनके ध्यानानुष्ठान प्रसङ्गमें ध्यानखरूप कथन, आर्त्त और रौट्रमेद्से द्विविध ध्यान कथन, तथा वाद्य और आन्तर भेदसे द्विविध ध्यान, पीछे चतुर्विघ आन्तरध्यानलक्षण, अनुपादेयदुःखका साधन, हिंसा, संरक्षा, स्तेय और मृषानन्द भेदसे चातु-विंध रौद्रधान, तथा भावशुद्धि साधन द्वारा योगाभ्यास रूपधर्मधान, वह फिर बाह्य और आधारिमक मेटसे द्विविध, फिर अपार-विचयादि भेदसे दशविध, किस प्रकार संसारहेतु प्रवृत्तिका परित्याग किया जाता है, उसकी चिन्ता ही १म अपार-विचय, पुण्यप्रवृत्तिसमृहके आत्मसात्करणार्थं सङ्कल्प उद्भवका नाम 'उपाय विचय' जीवगणके अनादि निधनत्वका उपयोग खलक्षणादि-चिन्तन हो 'जीवविचय' स्याद्वीदपृक्तियाका अवलम्बन करके तर्कानुसारी पुरुपका सन्मार्गाश्रय ही 'हेतुविचय' इसी पुकार अजीवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, भावविचय, संस्थानविचय और आध्रशितमक विचया-दिका खरूपकथन, शुक्त और परमशुक्तमेदसे द्विविध शुक्कधान, परमशुक्कधान-पृभावसे योगीका हान, दर्शन, सम्यक्त्व, वीर्य और चारित पूर्वक स्वकर्म क्षय हारा अनन्तसं खावह मोक्षप्राप्ति कथन, नैमिनाथकी ५६ अही-रात तपस्या करके शुक्कधशनादि द्वारा घातिकर्म दहन कर जैनकैवल्यपृाप्ति कथन । ५७ जिनोंके समवस्थान भूमिनिरूपणपुसङ्गमें सामान्यभूमि, उद्यान, सरोवर औंट

गृहादिकथन, वरदत्त नामक गणधरके पृति जिनदेवका उपदेश, एकात्मखरूपकथनसे एकरूपा वाणी, द्विविधकथन-से द्विरूपा, इसो पुकार नवरूपा वाणीकी वर्णना, जगत्-का भावामाव, निर्विकल्प, अरेतु और अनादिका क्षित्यादि कार्य परम्परासे कर्नृत्व द्वारा सहेतुत्वसिद्धि कथन, अनादित्व, अगरिणामित्व, बात्मपरलोकत्व, धर्माधर्मका अस्तित्व, आत्माका कर्तृत्व भोकगृत्वादि कथन, आत्मा-का अस्तिनास्ति पद पुकार, अविद्याके पुमावसे आत्माका संसारवन्य और विद्याके पुमावसे आत्माको विमुक्ति, सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित इस तिविध विद्योत्पत्ति द्वारा मोक्षहेतुत्वनिरूपण, जोव अजीव आश्रव वन्ध सम्बर निर्जर और मोश्रह्म सततत्त्व, ज्ञानेच्छा-द्वेष-सुख-दुःखादि आत्मिलिङ्गत्त्रकथन, 'पृथिव्यादि भूतगणके संस्थान विशेषसे हो इस जोव तथा पिष्टिकिण्वादिसे मदशक्तिवत् चैतन्यकी उत्पत्ति हुई हैं, शरोरके चैतन्य व्यभिचारित्व से नहीं, इस पुकार चार्वाकमतखर्डन, 'आत्मा केवल संवित्मात नहीं है, क्षणेकात्मामें संवित्से प्रत्यमिश्चान-व्यवहार विलुप्त होता है। इत्यादि रूपसे श्रणिकविशान-चारखएडन, यही आत्मा अणुमात भी नहीं है अथवा अंगुप्रमात भो नहीं है, सभी स्थानों पर जिस प्रकार चक्ष-की दृष्टि नहीं जाती, उसी प्रकार आतमा भी सर्वोका विभु नहीं हो सकती, देहमाल-परिमाण ही यह आत्मा है, वोधात्मक जीव, अवोधात्मक अजीव, अजीवका आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्रल और काल यह पञ्चविध अस्तिकाय-कथन, संसारी और मुक्तभेद्से द्विविध जीव, समनस्क और अमनस्क भेद्से द्विविध संसारी, शिक्षािकयालाप-प्रहणरूपसंज्ञा जिसमें हैं, वही समनस्क है, जिसमें इसका अभाव है, वही अमनस्क है, यह जीवं नयादि उपाय द्वारा प्रतिपत्तियोग्य है ; अनेकात्मद्रव्यमें नियत एकात्मसंप्रहका नाम नहीं है, द्रव्यार्थिक और पर्यवार्थिक-भेद्से द्विविघ नयकथन, वह फिर नैगम, संप्रह, व्यवहार, ऋजुस्त, शब्द और समभिकड़ मेदसे षड़ विध, अणु और स्कन्द भेदसे द्विविध पुहल, काय, वाक् और मनका कर्म-योगरूप आस्त्रव, वह फिर संक्रपाय और अक्रवायमेदसे द्वितिघ, कुगति प्राप्तिहेतु कषायसंज्ञा, पुनः शुप्त और अशुभभेदसे द्विविध आस्त्रवकथन, साम्परायिकी, कायिकी,

अध्यात्मिकी, प्रत्यायिकीं और नैसर्गिकी भेदसे पञ्चविध क्रियानुप्रवेश, इनमेंसे प्रत्येक पञ्चमेदसे पञ्चविशति प्रकार-का कियालक्षण, इस प्रकार सामान्यभावमें कर्मास्रवका भेद्प्रदर्शनपूर्वेक प्रत्येकका विशेष कार्यनिरूपण, अनन्तर पूर्वोक्त अहिंसा, सुनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिव्रह-रूप महाणुव्रतकथन, संसारकारणसे आत्मगीपनका नाम गुप्ति, कायिक, वाचिक और मानसिक मेदसे त्रिविध गुप्ति, सागार और अनागार भेदसे द्विविध वतीकथन, गृहस्थका कर्त्तव्यतानियम, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्-चारित्ररूप रत्नतयप्राप्ति उपाय-कथन, ज्ञानावरण, दर्शना-बरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोल और अन्तराय भेदसे अष्टविध कवायनिमित्तक प्रकृतिनिरूपण, इसके अवान्तरभेदादि, गतिभेद और मिथ्यादर्शनादि भेद्रकथन, तसं स्थावर नामभेदसे द्विविध अमनस्क जीव, चतुर्विध द्वीन्द्रियादि कथन, सातप, उद्योत, उच्छ्वास, शरीरसुभग, दुभग, सुस्वर, दुःस्वरादि भेट्से शुभाशुभ सून्मादिलक्षण, विपाकजा और अविपाकजा द्विविधा निर्जराकथन, निरोध-रूप और भावद्रव्यभेद्से सम्बर्कथन, प्राणिपोड़ापरि-हार द्वारा सम्यगवनरूप समिति, ईर्प्या, भाषा, एपणा, आदान और उत्स<sup>र्ग</sup>भेदसे पञ्चघा समिति, समिति और गुप्तिका सम्वरकारणता-कथन, कर्मवन्धनके अभावमें दुःख-निवृत्तिरूप अपवर्गकथन, मोध्रकारणजीवादि सप्ततस्य सुन कर यादवगण और उनकी कामिनियोंका अणुवत प्रहणपूर्वक निजगृह गमनविवरण। ५६-६६ नेमिनाथका विहार निर्माण पुरःसर सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, कुव्जाद्गल, पाञ्चाल, मागध, अङ्ग और बङ्गादिदेशमें भ्रमण और जैन-धर्मप्रचारकथन, कृष्णके ज्येष्टं भ्रातृगणका नेमिनाधका शिण्यत्वप्रहण, नेमिनाथकर्तृक सत्यभामा रुक्मिणी आदिका पूर्वजनमकीर्त्तन, कृष्ण और नेमिनाध संवादमें चक्रधर, अद्ध चक्रधर, वृपम, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रम, सुपार्श्व, नेमि आदि अर्हेत्गणका नाम, पार्श्व और महा-वीर आदि भविण्य तीर्थंकरगणके नामादि और संक्षेपमें सभी तीर्थंकरका चरित-कीर्त्तन, पूर्वधर, शिक्षक, अवधि, केवली, वादी, वैकियद्भि और विषुलायुत भेदसे सप्तविध-जिनकथन, इनके. मध्य ४०५० पूर्वधरकथन, महावीरके समय पालकराजका भावी जन्मकथन, द्वीपायन मुनिके

शापसे यदुवंशध्वंसकथा, रामकृष्ण ध्यतीत सभी यादव और पुरवासिगणका अग्विदाहमें विनाश, 'जराकुमारके हाथसे कृष्णका निधन होगा', यह वार्ता सुन कर कृष्णभाता जराकुमारका द्वारका परित्यागपूर्वक दक्षिणप्रदेशमें गमन, यादवगणके विनाश पर शोकसे सन्तस रामकृष्णका दक्षिणमधुराकी ओर गमन, राहमें वनके मध्य वृक्षके तले सोये हुए कृष्णका जराकुमार-निक्षिप्त शरसे चरण वधन और कृष्णका देहत्याग, वलदेवका विलाप, जराकुमारके मुखसे कृष्णका निधनवार्ता सुन कर पाएडवगणका वलदेवके समीप आगमन और कृष्णका औद देहिक किया सम्पादन, वलदेवकी तपस्था, पाएडवगणकी प्रवत्या, उनका निर्वाण और नेमिनाथका निर्वाणकी त्त्रंन। (क्षोकसंख्या ६३४४)

इस पुराणमें दिगम्बरीके मत और विश्वासके सम्बन्ध-में अनेक कथाएं वर्णित रहनेके कारण तथा हिन्दूओं के पौराणिक विषयादिने जैनोंके निकट उसी प्राचीनकालसे जैसा विकृतभाव घारण किया है, उसका यथेष्ट प्रसङ्ग रहनेके कारण इस पुराणसे अपर जैनपुराणकी अपेक्षा विस्तृत सूची दी गई है।

इस अरिष्टनेमियुराणके शेषमें जिनसेनने प्रन्थरचना-काल और ऐतिहासिक कथाकी जो अवतारण की है वह इस प्रकार है—

> जयत्वजय्या जिनधर्मसन्ततिः प्रजास्पिह क्षेम सुभिक्षमस्ततः। सुखाय भूयात् प्रतिवर्षवर्षणेः

सुजातशस्या वसुधासुधारिणाम् ॥
शाके वव्दतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेवृश्वत्ताम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवह्नमे दक्षिणाम् ।
पूर्वा श्रीमद्वन्तिभूशृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां
सौर्याणामिषमण्डले जययुते वीरे वराहेऽवति ॥
कल्याणेः परिवर्द्ध मान-विपुल श्रीवर्द्ध माने पुरे
श्रीपार्श्वालयनहराजवसतौ पर्याप्तशेषःपुरा ।
पश्वाहौस्तिटिकाप्रजापजनितपाज्यार्च्चनावर्घ्यने
शान्तेः कान्तिगृहे जिनेश्वरचितो वंशे हिरीणामयं ॥
व्युत्स्वृष्टापरसङ्घसन्तित्वृहत्पुकाटसङ्घान्वये
प्राप्तः श्रीजिनसेनस्रिकविना लाभाय वोधोः पुनः ।
दृष्टोऽयं हिरवंशपुण्यचरितः श्रीपार्श्वतः सर्वतो
ध्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थेयान् पृथिव्यां चिरं॥"

( अरिष्टनेमि ६६ सग )

Vol. XIV. 19

## मुनिसुत्रतपुराण ।

१ दुर्जन-निन्दा, सज्जनस्तुति, कविका सामध्ये और असामध्य कथन, वक्ताका लक्षण, श्रुतिका लक्षण, शास्त्र-माहात्म्य, २ मगधविषयमें राजगृहनगरमें श्रेणिक नामक जैन नरपतिकी कथा, उनकी चेलिनी नामक महिपीके गर्भसे रूपविद्यासम्पन्न सप्त पुतका जन्म, वैमारगिरि-शिखर पर समागत महावीरके दर्शनार्थ वहां श्रेणिक राजका गमन और उन्हें प्रणामपूचक पुराणश्रवणार्थ प्रार्थना, ३ जम्बृद्धीप, भारतवर्ष, चम्पानगरी और तन्नगरा-धिप हरिवर्माका वृत्तान्त, ४ धर्मिछ नगराधिपति भानुका वृत्तान्त, उनका नागपुरमें गमनपूर्वक नागकामिनीदशन और वहां उनका युद्धादि वर्णन, कैलासगिरिरामनाथ योगीन्द्रका विवरण, तत्कतृ क विदेहाधिपति महासेनका रम्यकदेश-राजपुत तिविक्रमको उसकी वृत्तान्तवर्णेन, कन्याका सम्प्रदानादि कथन, ५ चम्पानगरीराज हरिवर्मा-का नागकन्याके साथ समागम, अनन्तवीय नामक जिन योगीन्द्रके निकट हरिवर्माका उपदेशलाभ । ६ ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रम धर्मवर्णन, योगीन्द्रदे मुखसे धर्मोपदेश सुन कर राजाका निर्वेद और निजयुक्ते राज्यदानपूर्वक तपश्चरण, ७ हरिवर्माका धरानप्रकार कथन, उनका खर्ग लाभ और वैभववर्णन, ८ आर्यावर्त्तके अन्तर्गत शोभाघार मगघका विवरण, हरिवंशराजका वृत्तान्त और उनके घरमें नम-स्थलसे रत्नराशि-पतनवृत्तान्त। ६ जिनदेवका हरिवंश पुतरूपमें जन्म, उनका मुनिसुवत यह नामकरण, उनके अभिषेककालमें इन्द्रादि देवगण कर्ुक स्तुतिगान, उनकी वाल्यलीला और राज्यप्राप्ति, तालपुरराजका उनके वाहन गजरूपमें जन्म आर गाईस्थ्य धर्म कथन । ११ मुनिसुवत-की दीक्षा, केवलोत्पत्ति और आहत्यकथन, मथुराधिपति मह्रराजका विवरण । १२ महिलगराधिपतिका चृत्तान्त, मिहने प्रति मुनिसुव्रतके उपदेशप्रसङ्ग्में संक्षेपसे जैनधर्म तात्पर्यं, अर्हत्पूजाके मन्लादि और चतुराश्रम धर्मकीर्त्तन। १३ मुनिसुत्रतका निर्वाण, मथुरापति यशोधरका अनन्त-नाथ नामक चतुद्देश जिनके निकट दीक्षाप्रहण, हरिषेण-का चक्रवित्व और सर्वार्थ सिद्धिप्राप्तिकीत्तन, १५ काल-परिमाण संख्यादि, कुलकरगणका विवरण, उनके वंशमें ऋषमदेवका जन्म और उनके पुत भरतादिके वृत्तान्तकम-

से सगरादिका व'श वर्णन, सुयोधन-राजकन्याके स्वय-म्बरमें सगरका गमनवृत्तान्त । १६ श्रुत नामक मुनिका उपाख्यान, वसुराजका उपाख्यान, नारद और एर्वत नामक तपस्रोका समिन् पुष्पाहरणार्थं रमणीय वनमें प्रवेश, वहां सात रमणियोंके साथ विहार और एक मगूर-दर्शन-विवरण, सगराजुष्टित पशुयोगसे पर्वं त मुनिका आर्त्तिप्रहण, हिंसाका दोषावहत्व और अहिंसाका परम-धर्मत्वकथन । १७ वाराणसीमें दिलीपका राजटब, रघुके उत्पत्तिकथन प्रसङ्गम् रघुवंश और रामलक्ष्मणादिका उत्पत्तिकथन, अयोधामें राजा दशरथका राजधानी स्थापन और नागपुराधिपति नरदेवका विवरण। १८ मेचकुटाधिपति सहस्रश्रीव नृपतिका विवरण, तद्भातु-ष्पुत सितकएठमे निकट युद्धमें पराजित सहस्रप्रीवका निर्वाण, सितकएठका छङ्कामें राजधानीकरण, उनके शत-फर्छ, पञ्चाशत्कर्छ, पुलस्त्यादि पुत्रपीतादिका वृत्तान्त । १६ मेघश्रीके गर्भजात पुलस्त्यपुलका रावण नामकरण, वालिसुग्रीवादिका जन्म, वालिके निकट रावणकी सात वार पराजय, कर्डमें हारधारणद्वारा रावणकी दशकरहत्व प्राप्ति, रावणकृत नन्दीश्वरवतानुष्टान, मन्दोद्रो, मनो-वेगा, मन्त्रघोषा और मञ्जुघोषा प्रभृति रावण-महिषियाँ-का विवरण, मन्दीदरीके गर्भसे सीताका जन्मवृत्तान्त, भूमिखननकालमें जनककी मञ्जुवास्थित कत्याप्राप्ति, राम-के साथ सोताका परिणय, दशरथकी आज्ञासे रामका अभिषेक, रामका सीता और छक्ष्मणके साथ चाराणसी गमनपूर्वक तदुराज्यशासन, रावणको समामें नारदका आगमनवृत्तान्त, २० वाराणसीस्थ चितकूरोद्यानमें स्त्रियों-के साथ रामलक्ष्मणका वसन्तोत्सव, नारदके कहनेसे सूर्प-नला और मारीचकी सहायतासे रावणका सीताहरण, सीताहरणवृत्तान्त सुन कर जनक, भरत और शतुवका रामके समीप भागमन, इस समय अञ्जनानन्दन और सुग्रीवका स्वयं रामके समीप गमन, अञ्जनापुतका हनू-मान् नाम पड़नेका कारण, सीतादर्शनार्थं हनूमान्का भ्रमरक्रपमें लङ्काप्रवेश, मन्दोद्रीकृत सीताका आश्वास-वर्णन, २२ रावणका हनूमानके साथ संवाद, विमीपण-का रामपक्षपातित्व, एक गजके लिये छन्मणके साथ चालिका मृत्युपुर-गमन, चानरसेनाके साथ

लङ्कामें प्रविष्ट रामका रावणवधादि वृत्तान्त, रामलक्तणकी दिग्विजय और पुनः अयोध्यामें गमन, दृगरधवृत रामका राज्यामिपेक, कार्त्तिक शुक्क द्वियोयामें जिनपृज्ञाविधि, रामको जिनप्रनिद्दमें पूजा, सीताके गमसे अष्टु पुलका जन्म, उनमेंसे लबको यीवराज्यमें अभिषेक, लक्ष्मणके वियोगसे रामका आदि जिनके निकट जा कर केवल दीक्षाप्रहण, अन्यान्य तिथियोंमें जिनपूजाविधि और रामका शिवप्राप्तिकथन।

इस पुराणके रचयिता कृष्णदासने ग्रन्थरचनाकाल और अपना जो परिचय दिया है, वह इस प्रकार है —

"इन्द्रष्टपट्चन्द्रमितेऽथ वर्प ( १६८१ ) श्रीकार्त्तिकाख्ये घवले च पक्षे

जीवे तयोदश्यपराह्यामे कृष्णेन सौख्यायविनिर्मितोऽयम् ॥ कोहपत्तनिवासमहेभ्यो हर्ण एव वनिजामिव हर्णः । तत्सुतः कविविधिः कमनीयो भाति मङ्गळसहोद्र-

श्रीकस्पवलीनगरं गरिष्ठे श्रोवहाचारोभ्वर पव कृष्णः । कर्रहावसम्पूर्जितपूरमसः प्रवर्द्धमानो हितमात्तान ॥ पञ्जविशतिसंयुक्तं सहस्रवयमुत्तमम् । स्रोकसंस्त्रोति निर्दिण कृष्णेन कविवेधसा ॥"

(संवत्) १६८१ वर्णमें कार्त्तिकमास शुक्कपक्ष तयो दशी तिथि अपराहकालमें कृष्णकत् के यह पुराण रवा गया । लोहपत्तनिवासी हर्ण, उनके पुत्र कवि मङ्गुल और कि मङ्गलके सहोदर यही क्रन्यवली-नगरवासी श्रोब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास थे। इस समय पुरम्ह राज्य करते थे। इस पुराणकी स्लोकसंख्या ३०२५ है।

म्हिनाथपुरागः। (सकलकीर्ति-रचित)

१ जिनस्तुति, विदेहके अन्तर्गत कच्छकावती नामक पुरोवर्णन, वहांके वैश्वयण नामक राजाको कथा, धर्माप-देश, रत्नतयवर्णन, २ वैश्वय राजका दीक्षावर्णन, ३ इन्द्र-भवनवर्णन, ४ चैत्रमास शुक्क प्रतिपद अध्वनी नस्त्रतमें मिल्लिनाथका गर्माचतार, जनमाभिषेक, कल्याणवर्णन, ५ मिल्लिनाथको चेराग्योत्पत्ति, ६ उनका निष्क्रमण और कैचल्योत्पत्ति, ७ मिल्लिनाथका धर्मापदेश और निर्वाण-वर्णन ।

विमलनाथपुराण । ( क्रव्यदास-विरचित ) १ जिनस्तुति और सज्जनस्तुतिप्रसङ्गर्मे जम्बूढ़ीपादि

मगधराजश्रेणिकका लोकस स्थान, राज गृहपुरवणनं, विवरण, चन्द्रपुराधिपति सीमशर्माके निकट श्रेणिकका पंतप्रेरण, श्रेणिकपत्नीका विलाप, श्रेणिकका निर्वेद और उनका परिवज्याश्रय, महावीरके निकट श्रेणिकका गमन और पुराणप्रश्न, २ विमलनाथपुराणजिज्ञासा, धातकी-खर्डवर्णन, पद्मसेनराजका विभृतिवर्णन, ३ कपिलायुरा-धिप कतवर्मा और उनकी महिनी जयश्यामाके गर्भसे ज्यैष्टमास कृष्णाद्शमीको जिनेन्द्रका आविर्मात्रवर्णन और इन्द्रादि देवगणकत्तु क उनका अभिषेक तथा विमल-नाथ यह नामकरण, ४ विमलनाथकी दीक्षा, मधु, खबम्मू और वलभद्रकी समृद्धि, ५ विमलनाथका निकारण, मेर्हमन्द्र पर आगमन और तत्कृत ब्रह्मज्ञान-तत्त्वीपदेश, ६ वैजयन्त और संजयन्तकी दीशा, संजयन्तकी शिव-प्राप्ति, बादित्राभदेवसमागम, ७ श्रीधरदेवकी उत्पत्ति और त्रिभृतिवर्णन, दे रामदत्त, रह्ममाला, अच्युत, पूर्ण-चन्द्र, रत्नायुषं, सिहासन और वज्रायुष्टका सर्वार्थसिद्धि-गमन, ६ मैरुमन्दरकी दोक्षा और विमलनाथका निर्वाण । विमलनायके संयमी और श्रावकश्रावकादिका संख्या-निरूपंग, प्रनथकार कृष्णदासका गुरुपरम्पराकीर्तन।

पुराणके शेवमें पुराणकारका पेसा परिचय मिळता है—

विख्याते जंगतीते हैं तिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान्।
काष्टासङ्घुनामिन प्रभुमती विद्यागणे स्रिरार् ॥
सारङ्गाणित्रपारगो विद्युपशाः श्रीरामसेनो जिनं।
ध्यानाणीविततिप्रयूत्यजितो भातुस्तमीराशिषु॥
तत्कमेण गणमूघरभातुः सोमकोत्तिरिव शीतमयूखैः।
संवभूव जनताशिषिभुसनागनायद्यिताकृततेजाः॥
तत्पदे विजयसेनमदन्तो वोधिताऽषिलजनः कमनीयः।
कोत्तिकान्तिकमळाजळराशिः संवभूव विजयी कुमतीनां

तत्पद्दे सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशः कोचिदेव-स्तत्पादाम्मोजपण्ड्यात् सकलशशिमुखो वादिनागेन्द्र सिंहः।

सं जन्ने प्रान्तसेनोद्य इति वचसां विस्तरे संप्रवीणः । तत्यद्वाजां िरुक्तिसुवनमहिमा तन्युखप्रान्तकीर्त्तः ॥ राजते रजनिनाथयशाः कौ तत्पद्दोद्यनपाहिमदीप्तिः । तकनाटककुलागमद्क्षो रक्तभूपणमहाकविराजः ॥१७८॥ श्रीमल्लोहाकरेऽभूत् परमपुरवरे हर्गनामा वरीयान् । तत्प्रवी साधुशीला गुणगणसङ्गं वीरिकाल्येव साधी॥ पुतः श्रीकृष्णदासी रतिप इव तयी ब्रह्मचारीश्वरस्य सत्कीत्तीं राजते वे वृष्भजिनपदाम्भीजपद्पातु समानः॥ १७६॥

गूजरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवल्यिमध एप सादरात्। वर्द्ध मानयशसा मया पुरोः पङ्कजाहित कुचेतसा ध्रुवम्॥ खितसङ्कितशतान्त्रितोधिको वेदपर्प्रमितकाव्यराजिभिः। पिरेडतैमैतिविकारवर्जितेः संलिखाप्य पठनाय दीयताम्॥ देविपर्चन्द्रमितेऽथ वर्षे पश्चे सिते मासि नमस्य लेमे। पकादशो शुक्रमृगर्भयोगे ध्रोव्यान्विते निर्मित एव एव॥" (१० सर्ग)

उक्त ऋोकसे इस प्रकार परिचय मिलता है—काष्टा-सङ्घमें श्रोरामसेन, उनके शिष्य सोमकीति, सोमकीतिके शिय विजयसेन, विजयसेनके पृष्टिशिष्य कीतिदेव, कीरि-देवके शिष्य वादिनागेन्द्रसिंह, नागेन्द्रके शिष्य प्रान्त-सेन, प्रान्तसेनके शिष्य महाकविराज रत्नमूषण लोहा-कर, लोहाकरके पुत्र हर्ग, हर्गकी पत्नी चीरिका, चीरिकाके पुत्र ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदास और उनके किनष्ट मङ्गल थे। गुज्जैरदेशके कल्पवलीत्राममें पुराणकारका वास था। १६७२ ब्रङ्कमें यह पुराण रचा गया।

## उत्तरपुराण।

जिनसेन आदिपुराणको अञ्चरा ही छोड़ कर कराल कालके गालमें पतित हुए। उनकी प्रियशिष्यने आदि-पुराणके ४५से ४७ समें शेप करके जिनचरित समाप्त करनेके अभिवायसे इस उत्तरपुराणकी रचना की। इस उत्तरपुराणके शेवमें गुणभद्रशिष्य लोकसेनने जिस प्रशस्ति-की वर्णना की है, वह दाक्षिणात्य है। ऐतिहासिकोंकी आदरकी वस्तु अनेक ऐतिहासिक तत्त्व इस प्रशस्तिके मध्य बर्णित रहनेके कारण पहले यही प्रशस्ति उद्दधृत की जाती है। उत्तरपुराणके ७९वें पव में लिखा है, कि महायुख्य रत्नसमूहके आ कर मूलसङ्घक्य समुद्रमें सेन-वंशकी उत्पत्ति हुई। उस सेनवंशमें वादिमदहस्तिसमूह-के विवासनकारी महावीरके सेनाग्रणीस्वरूप वीरसेन मद्दारक्रने जन्मग्रहण किया । ज्ञान और चारित उन्में मृत्तिमान या और शिष्योंके प्रति वे अनुप्रह्परायण थे। राजन्य उन्हें प्रणाम करनेके समय जब अपना मुखाब्ज नीचे करते थे, तव उनके नखचन्द्रकिरणसे नक्श्री लाभ करके विकाश पाया था । मिक्षवृन्द पृतिपदमें दुर्वोध्य

'सिद्धिभूपद्धति' नामक प्रन्थकी उनकी रचित टीका पढ़ कर अवलीलाक्रमसे अर्थप्रहण करते थे। वीरसेनके वाद जिनसेन पट्टस्थ हुए थे। राजा अमोघवर्णने इनके पद पर लुपिठत हो अपनेको पवित्र समका था। जिनसेन नाना विद्यापारदर्शीं, वादियोंके युक्तिनिराश करनेमें सुदक्ष, सिद्धान्तसमूहके पृष्ठत तस्वज्ञ, आख्यानवर्णनपटु, प्रन्थसमूहकी समस्याभेदसे सुनिपुण और महाकवि थे। उनके दशरथ नामक एक समधर्मी परिडत थे। उनकी अति पाञ्चल व्याख्यासे सभी शास्त्रार्थ मुकुरमें मूर्त्तिकी तरह पृतिचिम्वित होते थे। वह व्याख्या वालकगण भी सहजमें समभ सकते थे। विश्वविख्यात गुणभद्र इन दोनोंके शिष्य थे। उन्होंने 'सत्य क्या है' यह अच्छी तरह समभा था और जिन सव ग्रन्थोंमें सत्य निहित है, वे उसकी भी व्याख्या कर सकते थे। उनकी बुद्धिवृत्ति सिद्धान्तसमूहके अन्तर्निहित छोटे छोटे विपयोंकी भी उत्कृष्टकृपसे अध्यापना करके भलीमांति परिपक्ष हुई थी। वे नपोनिरत थे और उनके वाक्यसे मनुष्यहृदयका महा-न्त्रकार दूर होता था। सिद्धान्तके टीकाकार वहुमान्य जिनसेनने पुरुको जोवनी (ऋषभचरित)-को रचना की। इस ग्रन्थमें सभी पृकारके छन्द और अलङ्कारका दृष्टान्त है तथा इसमें परोक्षभावसे समस्त शास्त्रीय तत्त्वींका उल्लेख है। इस काव्यने अपरापर समस्त कार्व्योको लज़ित किया था और यह उच्चिशिक्षित पिएडतमएडलोका भी विशेष शिक्षापुद है। जिनसेन जिस ग्रन्थको सम्पूर्ण कर न सके थे, गुणभद्रने उसे सम्पूर्ण कर डाला था। किन्तु दोर्धकाल अतिवाहित हो जानेक कारण उनके प्रन्थमें छोटे छोटे विवरण नहीं दिये जा सके। इस क्रारण रचना वहुत कुछ संक्षित हो गई है। इस पुराणके पाठकोंकी आत्माकी वन्धनावस्था क्या है ? किस कारण यह वन्धन उत्पन्न होता है, इसका परिणाम क्या है, ं पुण्य और पापकी व्याख्या तथा आत्मा वन्धनमुक्त हो कर किस पूकार निर्वाण लाभं कर सकती है ? इत्यादि शिक्षाएं पुाप्त होती हैं। इससे पाठकका धर्मविश्वास सुदृढ़ होगा और किस पुकार आस्रव (कर्मपुवाह) शेष किया जा सकता है तथा निर्जर किस प्रकार होता है, इसे वे अच्छी तरह जान सकेंगे। इस कारण मुमुक्षुगण इस

पुराणका सवदा पाठ अथवा श्रवण करे, उस विषयकी चिन्ता करे, इस पुराणकी यलपूर्वक पूजा करे और प्रति-लिपि प्रस्तुत करे। गुणसद्दके प्रधान शिष्य लोकसेनने अपने विपुल प्रभाववशतः इस पुस्तकके सम्बन्धमें गुरु-का आदेश प्रतिपालन किया था। उनके द्वारा उन्न-श्रेणीस्थ व्यक्तियोंके मध्य इस पुस्तकका बहुत प्रचार हुआ था। समस्त शास्त्रोंके सारखरूप यह पुराण धर्मवित् श्रेष्ठ व्यक्तिगण द्वारा ८२० शक पिङ्गलसम्बत्सर ५ आश्विन (शुक्कपक्ष) गृहस्पतिवारको पूजित हुआ। इस समय विश्वविख्यातकोर्त्ति सर्वशृतुपराजयकारो अकालवर्ष-तृपति सारी पृथिवीके ऊपर राज्य करते थे। उनके रणहस्ती गङ्गावारि पान करके भी तृप्त न हो कर मलयवायुसञ्चालित सूर्यकरास्पृश्य निविड् चन्दन-वनमें प्रवेश करते थे। छदमी दूसरेके आवाससे अनुप्त हो उनके हृदममें सुखसे वास करती'थीं। उनके अधीन लोकादित्य, दूसरा नाम चेल्लपताक, वनवासप्रदेशके अन्तर्गत वङ्कापुरका शासन करतेथे। उनके नामा-नुसार उस स्थानका चेहकोतनके पुत्र और चेहध्वजके कनिष्ट थे तथा पद्मलयवंशमें उत्पन्न हुए थे। जैनधर्म-प्रचारमें उनकी यथेष्ट चेष्टा थी।

उक्त प्रशस्तिवर्णित अमोचवर्ण और अकालवर्णने दाक्षिणात्याधिपति प्रसिद्ध राष्ट्रकूट-राजवंशमें जनमग्रहण किया था। अमोधवर्णके ७९५ और ७८७ शकमें उत्कोर्ण ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि ७३५ शकमें वे सिहा-सन पर अधिकढ़ हुए। इधर ७०५ शकके रिवर्त जिन-सेनके हरिवंशमें लिखा है, कि वल्लभराज (हितीय गोविन्द ) उनकी पूजा फरते थे। इस हिसावसे जिनसेन हरिव शरचित होनेके वाद ३० वर्ण और जीवित रहे। अमोघपुत अकालवर्ष इस उत्तरपुराणके अनुसार ८२० शंकमें राज्य करते थे। उनका ८२४ शक्में उत्कीर्ण ताम्रशासन भी पाया गया है। सुतरां उत्तरपुराणकी प्रशस्ति प्रकृत इतिहासमूलकके जैसा पुमाणित होती है। हरिव शरचनाकाल ७०५ शक और आलोच्य उत्तरपुराणके रचनाकाल ८२० शकके मध्य, राष्ट्रकूटवं*श-*में कृष्णराजपुत बहुम, अमोधवर्ण भीर अकालवर्ष स्न तीन राजाओंका परिचय तथा जिनसेन, गुणभद्र मीर लोकसेन इन तीन जैन-कविका परिचय मिलता है। अमोघवर्ण और अकालवर्णके समयका खोदित शिला-लेखसे भी वनवासीके सामन्त चेलकेतनव शीय वङ्केय-रस और शङ्करगण्डका नाम पाया जाता है।

इस उत्तरपुराणमें २य तीर्थंङ्कर अजितनाथसे छे कर २४श तीर्थंङ्कर महावीरपर्यन्त २३ तीर्थंङ्करोंका छीछा-ख्यान संक्षित भावसे विणत है। एक एक तीर्थंङ्करको छे कर इस पुराणके मध्य एक एक पुराण कि एत हुआ है अर्थात् इस पुराणमें २३ पुराणोंका संप्रह है। किन्तु इसकी पर्वसंख्या जिनसेनके आदिपुराणकी पर्वसंख्या के वादंसे आरम्भ है। आदिपुराण ४७ पर्वांमें सम्पूर्ण है। ४८वें पर्वसे यह उत्तरपुराणसंप्रह आरम्भ हुआ है। पतदनुसार इस पुराणसंप्रहको अनुक्रमणिका नीचे दी जाती है—

२य अजितन यपुराणमें — ४८वें पर्व में साकेतनगरा-धिप इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत जितशतुके औरस और उनकी पत्नी विजयसेनाके गर्भसे जिनेन्द्रका आविर्भाव, ज्येष्ठ पूर्णिमाके रोहिणीनक्षत्रमें २य जिन का गर्भप्वेश, माघमासकी शुक्कादशमीको उनका जन्म, इन्द्रादि देव-गणकर्तृक उनका जन्माभिषेक, अजितनाथ यह नामकरण, ७२ लाख वर्ष उनका आयुमान, ४५० घनु शरीरमान, देहवर्ण सुवर्ण, माघमास रोहिणोनश्रतको शुक्का नवमीको सहेतुकवनमें सप्तर्गदृमके निकट साद्धीपद्योपवास पूर्वक संयम, शुक्क-एकादशीके शेपमें आत्मज्ञान, उनके सिहसेनादि ६० गणघर, ३७५० संख्यक पूर्वघर, २१६०० शिक्षक, ६४०० विद्यानी, २०००० केवळज्ञानी, २०४०० विकियर्द्धि, १२४५० मनःपर्ययदशीं, २००० अनुत्तरवादी, १०००० 'तपोधन, ३२००० प्राक्कुब्जादि आर्थिका, ३०००० श्रावक और ५०००० श्राविकाका संख्याकथन, पूर्वविदेहके अन्तर्गत वत्सकावन्तीके राजा जयसेन और उनके पुत्र रतिषेणकी कथा, सगर और उनके साठ हजार पुत्रोंकी कथा।

३य धम्मवनाथपुराणमं—४६वे पर्वमे पूर्व विदेहकच्छ विषयके अन्तर्गत क्षेमपुरमें विमलवाहनराज और उनके पुत्र विमलकीर्त्ति, विमलकीर्त्तिको राज्यदानपूर्वक विमल-वाहनका जिनशिष्यत्व और निर्वाणकथन, श्रावस्ति- राज काश्यपगीत दृढ्राज और उनकी महिपी सुपेणा फाल्गुनकी शुक्काप्रमोको सुपेणके शुभस्त्रामें गिरीन्द्र-शिखराकार वारणदर्शन, और सुपेणके गर्भसे नवम मास-में मृगशिरा नक्षत्र पूर्णिमाके दिन सम्भवनाथका जन्म और जन्माभिषेकादि चरितकथन, उनका आयुमान ६ लाख वर्ष, शरीरमान ४०० धनु, देह सुवर्ण वर्ण, उनकी चारुपेणादि गणधरसंख्या १७५, पूर्वधर २१५०, शिक्षक १२३००, अत्रधिदर्शी ६६००, के वल्हानी १५०००, वैक्रियद्धि १६८००, मनःगर्ययी १२१५०, अनुत्तरवादी १२०००, निर्मन्य २०००००, धर्मार्थ्यी द्रश्प, अनुत्तरवादी १२०००, निर्मन्य २०००० और आविकाकी संख्या ५०००। चैतमासकी शुह्रपष्टीको सम्भवनाथका निर्वाणवर्णन ।

४थं अभिनन्दनपुराण्में—'५०वें पर्वं में पूर्वं विदेहमें मङ्गलावती नगरमें महावलका राजत्व और मोक्षवर्णन, अभिनन्दनके जन्मसे निर्वाण पर्यन्त वर्णन, उनका गणघर १०३, पूर्वं घर १२५००, शिक्षक २३००५०, विज्ञानी १८००, केवलज्ञानी १६०००, विक्रिगर्डि १६०००, मनःपर्यय ११६५०, अनुत्तरवादी ११०००, यनि ३००००० मेरुपेणा प्रभृति आर्यिका, ३३०६०० उपासक, ३००००० और आविका ५०००००।

पम द्वमिताधपुः। पर्ने— ५१वें पर्वभी पुकलावतीके अन्तर्गत पुण्डरीकिणीपुरके राजा रितिपेणका वैभव और मोक्षादि वणन, साकतराज मेघरथ और उनकी पत्नी मङ्गलाके पुलक्षपमें श्रावणमास शुक्कद्वितीया मघा नश्चलको सुमितनाथका गर्भप्रवेश और वैद्यमासके शुक्कप्रश्न चिद्यानश्चको सुमितनाथको जन्मसे चैद्यमासको शुक्कप्रश्न चिद्यानश्चको सुमितनाथको जन्मसे चैद्यमास मघानश्चव शुक्क पकादशीको उनका मोक्ष पर्यन्त वर्णन, उनका आयुमान ४००००० वर्ष, शरोरमान ३०० घनु, गणधरसंख्या ११६३, पूर्वधर २४००, शिक्षक २५४३५०, अवधिक्वानी ११०००, आत्मक्वानो १३०००, वैक्षियक १८४००, मनः-पर्यथी १०४००, अनुत्तरवादी १०४५०, संन्यासी ३२०००, अनन्तादि आर्यिका ३३००००, श्रावक ३००००० और

६ष्ठ व्दमप्रमपुराणमें—५२वें पर्व में विदेहके दक्षिण सुसीमानगरमें अपराजित नामक राजाका राजत्व और मोक्षवर्णन, कौशाम्बी नगरमें दक्ष्वाकुवंशीय धरण नामक राजा और उनकी महियो देवी सुसोमासे पश्चमका जन्म, माघकृष्ण-पछोको उनका गर्भप्रवेश और कार्त्तिक मासकी कृष्ण-लयोदशोको उनके जन्मसे छेकर फाल्गुनमास चिला नक्षत्र कृष्णा चतुर्थीको निर्वाण पर्यन्त । उनकी गणधर-संख्या ११०, पूर्व घर २३००, शिक्षक २६०००, अवधिकानी १०००००, केवलज्ञानी १२०००, विकियदि १६८००, मनःपर्यय १३०००, अनुतरवादो ६६००, यतीश्वर ३३००००, रालिषेणादि आर्थिका ४२००००, श्रीर श्राविका ५०००००।

अम सगरवेस्वामिपुराणमें—५३वें पर्व में सुकच्छ विषयमें क्षेनपुराधिय निन्द्षेणका वैराग्य और मोक्षत्रणंन,
वाराणसीराज सुप्रतिष्ठ और उनको महिपो पृथिवीपेणा
से सुपार्श्व स्वामीका जन्म, भारमास विशासा नक्षत
शुक्कपष्टीको उनका गर्भश्रवेश, ज्येष्ठ शुक्कद्वादशीमें जन्मसे
ले कर फाल्गुन कृष्ण-सम्मा अनुराधा नक्षतमें निर्वाण
पर्यन्त, उनकी गणधरसंख्या ६५, पूर्व घर २३०, शिक्षक
२४४६२०, अवधिज्ञानी ६०००, केवलज्ञानो ११०००,
वैकियक १५३३०, मनःपर्य य ६१५०, अनुत्तरवादो ८६००,
यतीश्वर ३०००००, मीनाप्रभृति आर्थिका ३३०००, आवक
३००००० और श्राविका ५०००००।

टम चन्द्रअभवुराणमें—५८वें पव में विदेहकेप श्वमहिश्यत दुर्गवनान्तर्गत श्रीपुर नामक स्थानमें श्रोषणका
राजत्व, श्रोकान्ता नाझी उनकी महिषीकी कथा, राजाका
वैराग्य और मोश्र। इक्ष्वाकुवंशीय चन्द्रपुराधिप महासेन
और उनकी महिषी छक्ष्मणासे चन्द्रप्रमका जन्म, चैत
कृष्णपञ्चमोको उनका गर्भप्रवेश, पौष कृष्णपकाद्शीको
जन्मामिषेकसे फाल्गुनमासकी शुक्कसप्तमी ज्येष्टानक्षतको
निर्वाण, गणधरसंख्या ६३, प्रव धर २००, शिक्षक
२००४००, अवधिक्षानी ८०००, केवछक्षानी १००००,
विक्रियद्वि १४०००, चतुर्कानी ८०००, वादीश ७६००,
साधु २५००००, वहणादिअर्थिका ३८००००।

ेम् पुरवस्तपुराणमें प्रवे पर्वमें पुष्कलावतीके भन्तर्गत पुरुडरीकिजीपुरमें महापद्म नामक राजाकी जिन भक्ति और मोक्षादि वर्णन, काकुन्दिनगराधिपति दश्वाकु वंशीय सुत्रीवराज और उनकी पत्नी जयरामासे पुष्प-दन्तका आविर्भाव । फाल्गुन कृष्णनवमी मूलानक्षतमें उनका गमप्रवेश, मार्गशोर्ण शुक्कपक्ष चैत्रयोगमें जन्मा-भिषेकाद्दिसे भाद्रमास शुक्काप्रमीमें निर्वाण पर्यन्त । विदर्मादि सप्तद्धिसंख्या ८८, श्रुतकेवली १५००, शिक्षक १५५५००, तिज्ञानी ८४००, केवलज्ञानी ७०००, विकि-यद्धि १३०००, मनःपर्याय ७५००, अनुत्तरवादी ६६००, पिणिडतर्द्धि २०००००, घोषादिश्रायिका ३८००००, श्रावक २०००००, श्राविका ५०००००।

१० शीतलना धपुराणमें — ५६वें पर्वमें सुसोमानगराश्विप पश्रगुन्मका प्रभाव, वैराग्य और मोक्षवर्णन, मद्रपुरराज द्वल्य और उनकी महिपी सुनन्दासे शीतलका
आविर्माव। चैतमास पूर्वावाला और कृष्णाएमीको गभप्रवेश, माधमास शुक्कद्वादशीको जन्मामिपेकसे आश्विन
शुक्काएमी पूर्वावाला नस्रतको समेदशिखर पर निर्वाणप्राप्तिपर्यन्तवर्णन। उनकी अनगारादि गणधरसंख्या ८१,
पूर्वधर १८००, शिक्षक ५६२००, बिह्मानो ७२००, पञ्चमह्यानो ७०००, वैकियद्वि १२०००, मनःपर्णय ७२००, चादी
५७००, यति १०००००, घरणादि आर्थिका ३८००००,
प्रावक २०००००, श्राविका ४०००००।

रश्य श्रेयां बनायपुराणमें प्रश्ने पर्वमें क्षेमपुरराज निल्नप्रमाका प्रभाव, वैराग्य और मोक्षवर्णन, इक्ष्वाकु-वंशीय सिंहपुराधिप विष्णुराज और उनकी पत्नो नन्दासे श्रेयां सका जन्म, ज्येष्ठमास कृष्णपद्धी श्रवणानक्षतमें उनका गर्भप्रवेश, फाल्गुनमास कृष्ण-पकादशीमें उनके जन्माभिषेकसे श्रावणमासकी पूर्णिमा तिथि और धनिष्ठानक्षतमें निर्वाणप्राप्ति पर्यन्त वर्गन। उनकी गणश्रर-संख्या ७९, पूर्वधर १३००, शिक्षक ४८२००, तृतीयंक्षानी ६०००, पञ्चमञ्चानी ६५००, विकियिद्धे ११०००, मनःपर्यय ६०००, श्रावका १२०००, श्रावक २००००, श्राविका १२०००, श्रावका २००००, श्राविका १००००। राजगृहपित विश्वभृति विश्वनन्दि और उनकी पत्नी लक्ष्मणाको कथा, विषयपुरराज पोदन सौर उनकी पत्नी स्गवती, जयवतीपुरमें विशासनन्दी और अलका-पुरमें मयूरग्रीवके पुत्न ह्यग्रीवका प्रसङ्ग।

१२श बासुयूज्यपुराणमें ५८वें पर्वमें रह्मपुरमें पद्मो-त्तरराजप्रसङ्गमें उनका निर्वाणवर्णन, दक्ष्याकुर्वंशीय वम्पनगराधिय वासुपूज्य और उनकी पंत्री जयावतीसे वास्यूर्यका जन्म, आयाढ़ं कृष्णचतुर्दशीमें उनका गर्भे-प्रवेश, फात्मुन कृष्णचतुर्दशीमें उनके जन्मामिषेकसे भाद्रमास शुक्रचतुर्दशी विशाखानक्षत्नमें उनका निर्वाण-कथन, उनकी गणधरसंख्या ६६, पूर्वधर १२००, शिक्षक १६२०० अवधिकानो ५४००, श्रुतकेवली ६००, विकि-यद्धि १००००, चतुर्कानी ६०००, अनुत्तरवादी ४२००, यति ७२०००, सेना प्रभृति आर्थिका १०६०००, श्रावक २०००० और श्राविका ४०००००। मलयदेशके विन्ध्य-पुरमें विन्ध्यशक्ति नामक राजकथा, महापुरराज वायुरथ, इन्द्रकल्पमें द्वारावतीपुरमें ब्रह्म नामक उनका अवतार और मोक्षवर्णन।

१३श विवलनायपुराणमें — ५६वें पवं में रम्यकावती-राज पक्षसेनका प्रभाव, काम्पिल्यपुरमें पुरुवंशीय कृत-वर्मासे विमलनाथका जन्म, ज्यैष्टमास कृष्णदशमी उत्तर-भादपद नस्तमें उनका गर्भप्रवेश, माघ शुक्कचतुर्दशीकी उनके जन्माभिषेकसे आपादमासकी कृष्णाप्टमीमें निर्वाण और उनका श्रावकश्रावकादि संख्या निरूपण, विभल-नाथकी तीथमें राम, केशव, धर्म और स्वयम्मूका जन्मादि आस्थान।

१४श अनम्तनायपुराणमें —६०वें पर्व में अरिष्टपुराधि-पति पद्मरथका विवरण, इक्ष्वाकुयंशीय साकीतनगरा-धिप सिहसेन और उनकी पत्नी जयश्यामासे अनन्त-नाथका जन्माख्यान, कार्त्तिकयास कृष्णप्रतिपदमें उनका गर्भप्रवेश, ज्येष्टमास कृष्णद्वादशीमें उनको जन्मामिषेकसे चैतमास अमावस्थाको रेवती नक्षत्वमें उनका मोक्षपर्यन्त, उनको गणधरपूर्व धरादिका संख्यावर्णन, पोदनाधिपति वसुसेन, सुप्रम, पुरुषोत्तम और मधुसुद्दनका प्रसङ्ग ।

१५ धर्मनः धपुराणमें ह्रेचे पर्वमें सुसीमानगराधिप दशरथका निर्वाणाख्यान, कुरुवं शीय रत्नपुराधिप भानुराज और उनकी पत्नी सुपूमासे धर्मनाथका जन्मा-ख्यान, वैशाखमास शुक्कत्रयोदशी तिथि रेवतीनक्षतमें उनका गर्भपृवेश, माधमास शुक्कत्रयोदशीमें उनके जन्मा-मिषेकसे निर्वाणपर्यन्त वर्णन, उनके गणधरादिकी संख्या और सनत्कुमारादिका विवरण।

१६ श न्तिनाथपु ।णम् — ६२वे पर्वमे तिलकान्तपुर-राज् चन्द्राम और उनकी पत्नी सुभद्राका आख्यान,

शान्तिनाथके गर्भपृवेशसे दीक्षापर्यन्त वर्णनपृसङ्गमें अनन्तवीर्य और अपराजितका अभ्युद्यवर्णन, ६३ वल-देवकी कन्या विजयाका स्वयम्बरवर्णन, शान्तिनाथका वैराग्य और निर्वाणवर्णन।

१७ कुम्धुनायपुर.णमें —६४वे' पर्वमें सुसीमापुरा-धिय सिहरथका आख्यान, कुन्युचकधरके गर्भपृवेशसे मोक्षपर्यन्तवर्णन।

१८ अरन। यपुराणमें —६५ वें पवमें क्षेमपुरराज धन-पतिका आख्यान, अरनाथके गर्भप्वेशसे मोक्षपर्यन्त वर्णनप्सङ्गमें सुभीम चकवत्तीं, नन्दिणेण, वनदेव और पुराडरीक नामक अर्ड चकवत्तीं और निशुम्म नामक प्रतिशत्तुका विवरण।

१६ महिनायपुराणमें दृद्वे पर्वमें वीतशोकपुरराज वैश्रवणका आख्यान, मिलनाथके चरितपृसङ्गमें पद्मचक-धर, नन्दिमिल, देवदत्त और वासुदेव-चलीन्ड्रका पूसङ्ग।

२० मुनिष्ठत्रतपुराणमें—६७वे पर्चमें राजगृहपुराधिप सुमित्रराज और उनको पत्नी सोमासे सुव्रतका जन्म और उनका चरिताख्यान, स्वस्तिकावतीपुराधिप विश्व-वसु और उनके अध्यापक क्षीरकदम्बका आख्यान, नारद और पर्वतकी कथा, सुमार्गपृवर्त्तन।

२१ नम्मनाधपुराणमें ह्रदेवें पर्नामें नागपुराधिप नरदेव-राजचरित, रावणाख्यान, सीताकी जन्मकथा, नमिनाथ-का चरितकीर्त्तन, हरिपेण-चक्तवर्त्ती, रामदेव, छन्मीधर, केशवादिका आख्यान, ६६ जयसेन चक्रवर्त्तीका आख्यान।

२२ तेसिनाधयुः।णमें ७०वे पर्नमें नेसिचरितपूसङ्गमें समुद्रविजय और कृष्णचरितवर्णन, ७१ नमिनाथका निर्वाणवर्णन । ७२ पद्मनाभ, वलदेव, कृष्ण, जरासन्ध आदिका परमायुसंख्याकथन ।

२३ र्श्वनाथपुराणमें --- ७३वे पर्वामें पार्श्व नाथका पूर्व-जन्म, अम्युद्य और निर्वाणाख्यान ।

२४ महानीरपुराणमें —७४ पर्गमें महावीरचरितपृसङ्ग-में मगधाधिप श्रेणिकराज और जयकुमाराख्यान, ७५ चन्दना नाम्नी आर्यिका और जीवन्धका आख्यान, ७६ महावीरका निर्वाण, ७९ जिनसेन और गुणभद्रादिका पृशस्तिवर्णन,। (श्लोकसंख्या पृायः १००००)

आदि और उत्तरपुराणमें पृत्येक तीर्थंडूनके पहले

जिन सव राजचकर्त्रात्तियोंका आख्यान वर्णित हैं, पुराण-कारियों के मतसे तोर्थं द्वरगण पूर्ववर्ती जन्ममें उन्हीं सव राजाओंके रूपमें आविर्मूत हुए थे। जैसे, आदिपुराणमें लिखा है, वृपभदेव पहले महावल चन्नवत्तीं रूपमें आवि-भूत हुए, उन्होंने जैनधर्ममें दोक्षित हो कर पीछे ललि-ताङ्गदेव नामसे जन्तव्रहग किया। वेही फिर अन्य जन्ममें उत्पलपुराधिय वज्रवाहुके पुत्र वज्रजङ्घ नामसे उत्पन्न हुए थे। इस जन्ममें उन्होंने जैनभिक्षुको खाद्य-दान करके आर्टा नामक जैनान्त्रार्टीक्रपमें जन्म लिया। पीछे उन्होंने खयम्पूम नामसे द्वितीय खर्गमें पुत्यावर्त्तन किया, अनन्तर सुवेदी नामसे गणीनगर-राजव शर्मे जन्म-ब्रह्ण किया। पोछे वे पोडण्क्यांमें अच्युतेन्द्र रूपमें पुकाणित हुए थे। उन्होंने फिर पुएडरीकिणी-नगराधिव वज्रसेनके पुत्र वज्रनाभ नामसे जन्म लिया । इस जन्ममें वे विशुद्धचारिव लाम करके मोक्षधामके निकट पोड़ग्-स्वर्गमें समुदित हुए। इसके परजन्ममें ही वृषमतीर्थ-नाम धारण कर पृथिवी पर अवतीर्ण हुए । इस जन्ममें उन्होंने अपने पुत्र भरतको नाटक, दूसरे पुत्र वाहुविक्षको काव्य, अपनी लड्की ब्राह्मीको व्याकरण और दूसरी लडकी सुन्दरीको गणितशास्त्रमें शिक्षा दी थी।

आदिषुराणमें जिस प्कार पहले तीर्थंङ्करका जन्म-विवृत हुआ है, उक्त पुराणमें भी उसी प्कार २३ तीर्थ-ङ्करोंका पूर्वजन्माख्यान पाया जाता है। इस उत्तरपुराणमें श्रीकृष्ण विखएडाधिपति और तीर्थंङ्कर नेमिनाथके शिष्य माने गये हैं।

आदि और उत्तरपुराणमें तिरसट महापुरुपोंका चरित वर्णित है। यथा—२४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासु-देव, ६ शुक्कवल और ६ विष्णुद्विष् । इन ६३ महा-पुरुषोंका चरित रहनेके कारण उक्त दोनों प्रन्थ तिषष्ट्य-वयवीपुराण नामसे पुसिद्ध हैं।

ेनद्राणका उपस्हार।

रविषेणका पद्म (राम )-पुराण, जिनसेनका अरिष्ट-नेमिपुराण (हरिव श ) और आदिपुराण तथा गुणमड़का उत्तरपुराण प्रधानतः इन्हीं चार पुराणोंका पाठ करनेसे ही दिगम्बर जैनियोंका पौराणिक तस्त्व जाना जा सकता है। उक्त चार महापुराणकी सहायतासे ही परवर्षों जैन कवियोंने नाना पुराणोंकी रचना की है। सकलकीर्ति, अरुणमणि, जिनदास, श्रीमूषण और ब्रह्मचारी कृष्णदास सब किसीने एक खरसे अपने अपने पुराणमें यह वात खीकार की है। जैन लोगोंका कहना है, कि सकलकीर्ति और उनके णिष्य जिनदासने चीवोस जिनोंके चरित-मूलक पुराणोंकी रचना की थी। किन्तु हम लोगोंने सकलकीर्ति-रचित चकश्ररपुराण, मल्लिनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण और पार्श्वनाथचरित तथा जिनदास-रचित पद्मपुराण और हरिवंश देखे हैं। जिनदासने अपने हरिवंशके ३६वें सांगों लिखा है—

"श्रीनेमिनाथस्य चरित्तमेतदनेन नीत्वा रविषेणसूरैः।
समुद्ध्रृतं खान्यसुखप्रवोधहेतोश्चिरं नन्दतु भूमिपीठे॥"
इस प्रकार उन्होंने रविषेणके ग्रन्थसे अपने हरिवंशकी रचनाकथा प्रकाशित की है। इससे जाना जाता है,
कि रविपेणने हरिवंशकी भी रचना की थी। उपरीक्त
पुराण छोड़ं कर केशवसेनकृष्णजिष्णु कर्णामृतपुराण
और श्रीभूषणसूरि (१६वीं शताव्दीमें)ने पारडवपुराणकी रचना की। पारडवपुराणमें अपूर्व पारडवचरित
वर्णित है,—महाभारतके आख्यानके साथ अनेक विषयोंमें इसका सादृश्य है।

वे सव पुराण सं स्कृत भाषामें रचे गये हैं। एतद्व-व्यतीत प्रभाचन्द्रस्चित महापुराणिटण्यनी नामक एक प्राचीन सं स्कृत प्रम्थ पाया जाता है। प्राकृतभाषामें रचित महापुराण-विशेषके व्याख्याखरूप यह टिप्पनी प्रम्थ रचा गया है। जिनसेनके आदिपुराणमें उनके गुरुपरम्पराक्रमसे प्रभाचन्द्रने उद्ध तन सप्तमपुरुषका स्थान दखल किया है। यदि इन्हीं प्रभाचन्द्रने महा-पुराणकी टिप्पनी लिखी हो, तो उनके पहले रचित मूल-प्रस्थ पाचवीं वा छठी शताब्दीका पूर्व तन होता है।

दाक्षिणात्यके जैनसमाजमें पाचीन कणाड़ीमाषामें रचित अनेक पुराण पाये जाते हैं। उन सब कणाड़ी पुराणोंके मध्य दक्षिण-मथुराराज रणमल्लके मन्दी चामुएडराय-चिरचित चामुएडरायपुराण, कमलमव-चिरचित शान्तिनाथपुराण, द्वारसमुद्रराज वल्लालरायके समसामयिक गुणवर्म-विरचित पुष्पदन्तपुराण, वीरसीम-

सूरी प्रणीत चतुर्विशतिषुराण और मुङ्गरासरचित हरिः वंग उल्लेख योग्य है।

## बोद्धपुराग ।

वर्त्तमान नेपाली वीद्धसमाजमें भी स्वतन्त वीद्धपुराण प्रचलित है । किन्तु वीद्धप्रन्थमें पुराणका
उक्लेखं नहीं है । आजकलंके नेपाली वीद्धगण ६
पुराण स्वीकार करते हैं जो 'नवधर्म' नामसे प्रसिद्ध
है। आख्यान, इतिहास, वीद्धानुष्ठेय वतादि और प्रधान
प्रधान तथागतकी जीवनी इस पुराणमें वर्णित है।
नवधर्म यथा—

श्म प्रज्ञापारमिता (श्लोकसंख्या ८००, न्यायशास्त्रके मध्य गण्य करना उचित है।)

२य गएडच्यूह—( श्लोकसंस्या १२००, इसमें सुधन-कुमारका चरित, ६४ गुरुसे उनके वोधिक्रानकी कथा धर्णित है।)

३य समाधिराज ( ऋोकसं ख्या ३०००, इसमें जप द्वारा समाधिकी विधि व्यवस्था हैं।)

धर्य लङ्कावतार—( स्होकंसं ख्या ३०००, इसमें रावण-का मलयगिरि गमन और वहां शाक्यसिंहके निकट वुद्धचरित सुन कर वोधिशान-लामकी कथा वर्णित है।)

५म तथागतगुह्यक ।

६ष्ठ सद्धभेषुएडरीक—( इसमें चैत्य वा बुद्धमएडल-निर्माण पद्धति और तत्पूजा-फल वर्णित है।)

७म ललितविस्तर—( स्ठोकस' ज्या ७०००, यह बुद्ध-पुराण नामसे भी प्रसिद्ध है। इसमें शाक्यसिंहका चरित विस्तृत भावमें कीर्तित हुआ है।)

८म सुवर्णप्रमा—(इसमें सरखती, लक्ष्मी और पृथिवी-का आस्थान और उनकी शाक्यबुद्धपूजा वर्णित है।)

ध्म दशभूमीश्वर (ऋोकसंख्या २०००, इसमें दश भूमिका वृतान्त विस्तृतभावसे वर्णित है।)

उक्त नवधमें व्यतीत नेपाली वीद्धोंके मध्य खयम्मूपुराण (वृहत् और मध्यम ) पाया जाता है। इसमें
नेपालके प्रसिद्ध खयम्मूक्षित और वहांके खयम्भू चैत्यका
माहात्म्य विस्तृत भावसे वर्णित है। यह पुराण १६वीं
शतान्त्रीमें रवा गया है। इस पुराणके शेषांशसे मालूम
होता है, कि शैवसे ही आधुनिक वीद्धोंका प्रभाव मन्न
होता है, कि शैवसे ही आधुनिक वीद्धोंका प्रभाव मन्न

हुआ है,—शैवसम्प्रदायने ही बीदधर्मकी प्राप्त कर डाला है। इस वृहत् सयम्भूपुराणमें लिका है—

यदा भविष्ये काले च अतं नेपालमण्डले । शैवधमां प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षश्च भविष्यति ॥ यथा यथा शैवधमें प्रवर्ततेऽत मण्डले । तथा तथा च अत्यथे दुःखपोडा भविष्यति ॥ वौद्धलोकगणा येऽपि शैवधमें करिष्यति । ते सर्वे क्तपापाच नरकश्च गमिष्यति ॥ शैवलोका जना येऽपि बौद्धधमें प्रवर्तते ।

तस्य पुण्यप्रसादाश्व सुकावतीं गमिष्यति ॥ (८ म०)
पुराण—एक तीर्थिक । अवदानशतकमें लिला है, कि
उनके साथ एक दूसरे बौद्धका विवाद हुना । महाराज
प्रसेनजित्ने दोनोंका विवाद खएडन करनेके लिये एक
सभा की और दोनोंको ही अपने अपने आराध्य देवका
पूजा करनेका हुकुम दिया । पूजाके समय पुराणके इष्टदेवने पुष्य प्रहण नहीं किया यह देख उनके उपासकोंने
उपेक्षा करके उनका आश्रय छोड़ दिया था।

## २ तुलामानविशेष ।

पुराण—उड़ीसाकी करवराज्यवासी एक आदिम जाति। मयूरअञ्ज सामन्तराज्यमें ही शनकी संख्या सबसे अधिक है। खरिवाओं के साथ शनका अनेक साह्यस्य है। इन लोगोंका कहना है, कि पश्लीके डिक्ससे उनकी उत्पत्ति है। डिक्स्कुसुमसे अञ्चराजगणकी, लाला-सेपुराणगणकी और खोलासे खरियाजातिकी उत्पत्ति हुई है। शनका आचार व्यवहार बहुत कुछ खरिया और जियाङ्ग जातिसे मिलता जुलता है।

खरिया और ब्रुयांग शब्द देखी।

२ चहुग्रामकी पावंत्यप्रदेशवासी जाति विशेष। जब से वे पावंत्य किपुरा (साधीन किपुरराज्यमें) आ कर वस गये हैं, तभीसे इनका तिपारा वा टिपरा नाम पड़ा है। कर्णफुली नदीके उत्तरो किनारे किपुराके अधिकृत पावंत्यप्रदेशमें ही इनका बास है। सभी पावंत्य जाति-की तरह इनका प्रधान व्यक्ति ही अपराधाविकी निष्पत्ति करता है। वे लोग चक्कल स्वभावक होते और अधिक दिन तक एक जगह रहना पसन्द नहीं करते हैं।

मृत्युके बाद वे स्रोग शववेड नदी वा नारनेके

के समीप बुला कर सम्राट्के प्रश्नका यथायथ उत्तर हैनेको कहा। पुराणगिरिने कहा, कि अभी भारतके शासनकर्ता है एस साहव (Governor of Hindustan) है। इस प्रकार नाना कथावार्त्ताके वाद वे सम्राट्से एक पत्न ले कर हे एसको देनेके लिये राजी हुए। चीन-राजधानीमें ही लामाकी मृत्यु हुई, पीछे पुराणगिरी अन्यान्य शिष्योंके साथ उनकी पूतदेहको वक समें रख कर भोडराज्यकी ओर रवाना हुए। पिकिन-से दिगुकी नगर आनेमें उन्हें ७ मास ८ दिन लगे थे।

जव वे भोट राजधानीमें रहते थे, उस समय वहांके राजधुक्षोंने राज्यसंकान्त कुछ प्रयोजनीय कागज पत्र ले कर भारतके तत्कालीन गवर्नर-जेनरल हेन्ट्रिस वहादुर-को देनेके लिये उनसे अनुरोध किया। वे उन सव विशेष प्रयोजनीय कागजोंको ले कर वारवेल और इलियट साहव-के निकट रख आये। इन सव राजकीय कार्योंसे राज्यका विशेष मङ्गल होगा यह, वे जानते थे और इसी कारण अपने अलीकिक क्षमता-वलसे यह सव क्षद्रतर कार्य सम्पादन करनेसे वे कुण्टित नहीं होते थे। अलावा इसके एक समय काशीराज चेत्सिंह 'और वहांके रेसिडेएट प्रहम साहवने किसी कार्योपलक्षमें इन्हें बुलवा मेजा था, कुछ दिनोंके वाद गवर्नर-जेनरलने इन्हें आशापुर नामक एक प्राम जागीरमें दिया था तथा वे उसका निक्तर भोग दखल करने आते थे।

उनकी बुद्धि, अध्यवसाय, वीय<sup>६</sup> और साहसकी और ध्यान देनेसे वे एक महा पुरुष थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। सैकड़ों पव<sup>६</sup>त, नद, नदी, नगर अतिक्रम कर तथा नाना प्रकारके असभ्य और वचर जातिके मध्य हो कर पैदल भ्रमण करना साधारण साहस वा उत्साहका काम नहीं है।

पुराणपुरुष (सं०पु०) पुराणेवे दादिभिक्तपस्ततः पुरुष' मध्यपदलोपि-कमधारयः वा पुराणः पुरुषः। विष्णु। पुराणप्रोक्त (सं० वि०) पुराणे प्रोक्तं। पुराणोक्त, जो पुराणमें कहा गया हो।

पुराणवित् ( सं ० ति० ) पुराणं वेत्तिविद-कि़प् । पुराण-वेत्ता, पुराण जाननेवाला ।

पुराणविद्या ( सं ॰ स्त्रो॰ ) पुराणस्य पुराणशास्त्रस्य विद्या, पुराणशास्त्रको विद्या ।

की भूमि।

पुराणान्त (सं॰ पु॰) पुराणान् पुरातनात् । अन्तयति अन्त-णिच्-अण्। १ यम । पुराणस्य अन्तः अवसानः २ पुराणका शेष । 🌷 पुराणाधिष्ठान—काश्मीर राज्यकी ग्राचीन राजधानी । तक्र-इ-सुलिमान नामक स्थानसे १ कोस दक्षिण-पूर्वर्मे पाण्ड्रेन थान् नामक जो नगर है, यही उनकी प्राचीन कीर्त्तियों-का परिचय देता है। जब यह नगर ध्वं सप्राय हो गया, तव ६ठीं शताब्दीके प्रारम्भमें राजा प्रवरसेनने वसँग्रान श्रोनगरमें राजधानी वसाई । चीनपरित्राजक यूपमञ्जवङ्ग जब भारतवर्ष आये तव उन्होंने ६३१ ई०में इस प्राचीन नगरके समीप एक विख्यात वौद्ध स्तूप देखा था। इस स्तूपके मध्य शामय बुद्धके दन्त प्रोधित थे। किन्तु लौट्रते समय ६४३ ई०में पञ्चावमें आ कर उक्त परिवाजकने वह पवित दांत नहीं देखा था । कन्नौजराज हर्ष वद्ध नने दलवलके साथ काश्मीर सीमान्तमें आ कर-जब काश्मीऱ-पित दुर्लभराजसे बुद्धदन्त मांगा तव उन्होंने आहादपूर्वक दन्त छौटा कर हिन्दूत्वकी गौरव रक्षा की थी। पुरातत्त्व ( सं ० पु० ) प्राचीन काल सम्बन्धी विद्या, प्रत्न-शास्त्र। पुरातन (सं०पुरु) १ विष्णु । (लि०) २ प्राचीन, पुरातन गुड़ ( सं ० पु० ) प्राचीन गुड़, पुराना गुड़ । गुण-पित्त और वातनाशंक, तिदोषक्त, 'रुचिकर, हुस, विष्ठा और मूत्रशोधक, -अन्निकर, पाण्डु और प्रमेह- " नाशक, स्निग्ध, सादुकर, लघु, श्रमन्न और पथ्य 🍞 🗀 पुरातनघृत (सं॰ क्ली॰) पुराना घी, एक घड़ें में दश वर्ष घी रखनेसे वह पुराना होता है। घी जितना ही पुराना होगा, उसमें उतना ही अधिक गुण होगा। इसका गुण-अपस्मार, मूर्च्छादि, शिरःशूल भौर मुखरोगादि नाशक, किसी किसीका कहना है, कि बी एक वर्ष में पुराना होता है। पुरातन-धान्य ( सं॰ क्ली॰ ) पुरातनं धान्यं । संवत्सरा-द्युपित धान्य, पुराना धान । एक वर्ष के पुराने धानमें गुरुता आदि दोप नहीं रहते। पुरातल (सं क्हीं ) तलातल, सात बातालक नोचे-

पुराधिव ( सं • पु॰ ) पुरस्य अधियः । पुराध्यक्ष, नगरा-धिव ।

पुराध्यक्ष (सं॰ पु॰) पुरस्य पुराधिकतो वा अध्यक्षः। नगराधिकत, पुरका अधिपति।

युक्तिकल्पत्वमें राजाओंके अन्तःपुराध्यक्षका लक्षण इस प्रकार लिखा है, न्यृद्ध, कुलोद्धत, कार्यकुशल, विशुद्ध स्वभाव और विनीत ये सब गुणसम्पन्न व्यक्ति राजाके अन्तःपुरके अध्यक्ष हो सकते हैं।

> "वृद्धः कुलोद्धतः शक्तः पितृपैतामहः शुचिः। राष्ट्रामन्तःपुराध्यश्लो विनीतश्च तथेव्यते॥"

पुराना (हिं वि ) १ जो बहुत दिनोंसे चला आता हो, जो नयान हो। २ जो बहुत पहले रहा हो, पर अव न हो, पाचीन । ३ कालका, समयका । ४ जिसका चलन अव न हो। ५ जिसने वहुत जमाना देखा हो, जिसका अनुभव बहुत दिनोंका हो। ६ जो वहुत दिनोंका होनेके कारण अच्छी दशामें न हो। (कि॰ सं॰) ७ पूरा करना, भराना। ८ पालन कराना, अनुकूल बात कराना। "ह इस पुकार बांटना कि सबको मिल जाय, बंटाना, पूरा डालना। १० फिसी घाव, गइदे या खाली जगहको किसी वस्तुसे छेक देना। ११ अनुसरण करना। पुरायोनि (सं॰ पु॰) पुरा पाचीना योनिरस्य। महादेव। पुरारा—मध्यप्रदेशके भाएडार जिलेका एक सामन्तराज्य । यह बाधनहीको किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३१ ·वर्गमील है। यहांको सरदार गाँव जातिको हैं। पार्श्व-वर्त्ती विस्तृत शालवन व्याव्रसंकुल है। पुरारा श्राम ही इसका सदर है।

युराराति ( सं॰ पु॰ ) पुरस्य अरातिः । तिपुरभेद्क, शिव, पुरारि ।

पुरादि (सं॰ पु॰) पुरस्य अरिः। शिव, महादेव। पुराद्धे विस्तर (सं॰ पु॰) पुराद्धे पूर्वाद्धे विस्तरी विस्तृति-रस्पेति।

पुरावती (सं ० स्नी०) नवीभेर्।

पुरावसु (सं ॰ पु॰) पुरा पूर्व काले उत्पत्तेः पूर्गित्यर्थः

वसुः। भीषा। है पुरावित् (सं• ति•)पुरा पुरावृत्तं वेत्ति विद्-िकष्। पुरावृत्ताभित्र, पुराणवेता। पुरावृत्त (सं० क्ली०) पुरा पुराणं वृत्तं चरितं यतः । पूव-वृत्तान्तिवन्थन, पुराना वृत्तान्त, पुराना हाल, इतिहास । पुरासाह् (सं० पु०) पुराणि शतुपुराणि सहते अभि-भवति सह-ण्वि पूर्वपददोर्धः । शतुपुराभिमावक, इन्द्र । पुरासिनो (सं० स्त्रो०) पुरं नगरमस्यति त्यज्ञतीति अस-णिनि-छोप्। सहदेवीलता, सहदेइया नामकी बूटी । पुराख्रहन् (सं० पु०) पुरस्य तिपुरस्य असुहत् शतुः । शिव ।

पुरि (सं ० स्त्रो०) पुर्वते इति पृन्द (इ ए म्ह पृ इग्रीते । वण् ४।१४२) स च किन्। १ पुरो । २ नदी । ३ शरीर । (पु०) पुर्वते यश आदिभिरिति । ४ राजा । ५ संन्यासीविशेष । मुख्डमालातन्त्रमें इनक लक्षण इस प्रकार लिखा है—

> "देवतायाः सदा ध्यानं श्रोगुरोः पूजनं तथा। अन्तर्यागेषु यो निष्ठः स वीरः पुरिरेव च॥" ( मुख्डमाळातन्त्र २ प०)

जो वीर सर्वदा देवताके ध्यानमें निरत, गुरुपूजारत और अन्तर्यागावलम्बी हैं, वे पुरि कहलाते हैं।

६ दशनाभी संन्यासियोंके मध्य एक प्रकारका संन्यासिभेद। शङ्कराचार्यके प्रधानतः प्रभूपाद, इस्ता-मलक, मएडन और तोटक ये चार शिष्य थे। इनमेंसे फिर तोटकके तीन शिष्य थे, सरखती, भारती और पुरि।

"ज्ञानतत्त्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः।
परज्ञहारतो नित्यं पुरिनामा स उश्वते॥"
( प्राणतोषिणी अवधूतप्र॰ )

जो श्वानतत्त्वमें सम्पूर्ण हैं अर्थात् जिन्होंने ज्ञानलाम किया है तथा जो पूर्णतत्त्वपद पर अवस्थित और सतत परव्रह्ममें अनुरक्त हैं, वे ही पुरि कहलाते हैं।

इनका अन्यान्य विवरण दशनामी शक्त देखी । इसी पुरिनामसे इस साम्प्रदायिक संन्यासियोंकी उत्पत्ति हुई है । कीन कीन गुण रहनेसे पुरि उपाधि प्राप्त होती है, प्राणतोषिणीमें यह विषय इस प्रकार लिखा गया है,—

शङ्करखामीके प्रतिष्ठित चार मठोंमेंसे शङ्कागिरिकें मठमें पुरिश्चेणिस्थ संन्यासी देखनेमें आते हैं। जो इस पुरि श्चेणीमें प्रवेश करके उन मतमें दीक्षित होते हैं वे हो पुरि कहलाते हैं। विख्यात पुराणपुरो इसी श्रेणी-के अन्तगत थे। पुराणगिरि देही।

पुरि श्रेणीको मध्य कुछ छोगीने वैश्यवधर्म ब्रहण किया है। यशोहर जिलेके अन्तर्गत स्थानविशेषमें इस सम्प्रदायके कुछ व्यक्ति योगीवैध्यव नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने किसी समय काशीधामके ईश्वरेन्द्रपुरिके निकट उपस्थित हो कर कहा था, 'मैंने एक मन्त्र प्राप्त किया है सुनिये।' पुरि वह मन्त्र सुनते हो प्रेमाभिभूत हो गये और वैष्णवधर्म ग्रहण कर्रके उन्होंने अपनी भातमाको चरितार्थ किया । उनके गुरु माधवेन्द्रपुरि भी शिष्यके समीप उक्त मन्त्रका आखाद पा कर वैकाव धर्ममें दीक्षित हुए। क्रमशः दशनामी संन्यासि-सञ्दाय-मेंसे बहुतेरे वैष्णव-सम्पदाय सन्निविष्ट हुए । ये लोग उदा-सीन अथच दारपरिश्रह करते हैं, इसीसे योगी और गिरि-वैज्यव दोनों ही कहलाते हैं। उत्कलमें कई जगह योगी और गिरि नामक दो पुकारक वैज्ञाव देखे जाते हैं। यह गृहस्थ योगीवैष्णव भिक्षा द्वारा और गिरिवैणव कृपि-कार्य तथा शिष्य-सेवकादिका दान ग्रहण करके अपना गुजारा चलाते हैं। अन्यान्य वैकावींकी तरह इनके स्ततन्त मठ और मंहन्त हैं। महन्तकों निकट वे मन्त्रोप-देशं प्रहण करते हैं। २ नदीविशेष।

पुरिस्ता ( हिं० पुर्व ) यु सा देखों ।

पुरिया (हिं स्त्रीं) वह नदी जिस पर जुलांहे वानेको बुननेके पहले फैलाते हैं।

पुरिश (सं० पुर्व) पुरि देहे शेते शी-अ। पुरुव। पुरो ( सं॰ स्त्रो॰ ) पुरो वा ङीष् । नगरी, शहर ।

> "नृपावासः पुरी प्रीक्ता विशांपुरमपीव्यते॥" (श्रीघरखामीधृत भृगुवे०)

राजा जहाँ वास करते हैं, वह म्थान पुरी कह-:लाता है।

रांजाको शतुओंके आक्रमणसे वचानेके लिये पुरीको अति सुदृढ़ करना चाहिये । महाभारतके वनपव में सुद्रह पुरीवर्णनकी जगह लिखा हैं, कि शिशुपालवंधके वाद राजा शाल्वने द्वारकापुरी पर आक्रमण किया। उस समय वह पुरी नीतिशास्त्रविधानानुसार सभी प्रकारसे

सुसद्धित थी । वह नगर तोरण, पताका, योधगण, तदाश्रयस्थानं, शबुपहारक यन्त्रविशेष (कमान वन्दूक प्रभृति ), सुरङ्गुरूप गुप्तपथनिर्माता, खनक, छोहमुखशंकु-युक्त रथ्या, खाद्यस्यप्रित अट्टालक्युक्त पुरद्वार, चक-प्रहणी, विपक्षप्रक्षित उटका और अज्ञत निवारक आयुध-विशेष, मृत्तिका और चर्मनिर्मित समस्त पात, भेरी, पणव और आनव आदि वाद्ययन्त्र, तोमर, अंकुश, शतव्नी, लाङ्गल, भूशुएडी, वर्त्तु लीकृत पाषाणसमूह, पर-१२४, लीहमय चर्म, आग्नेय अस्त्रसम्ह, गुलिकोपक्षेपक-यन्त और विविध अस्त्रशस्त्रोंसे परिपूर्ण था। प्रधान प्रधान वीरगण इस पुरोकी रक्षा करते थे।

यदि पुरीको संरक्षित करना हो, तो उसे उक्त द्रव्य द्वारा पूर्ण कर रखे। (भारत वनपः १५ सः ) पुर देखी। पुरो—विहार और उड़ीसाका एक उत्तरीय जिला । यह अक्षा॰ रहें २८ से २० २६ उ० तथा देशा० ८४ ५६ से ८६ २५ पूर्व मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण २४६६ वर्ग मोल है। इसके उत्तर और उत्तरपूर्व में कटक जिलां, दक्षिणपुर्वं और दक्षिणमें बङ्गोपसागर, पश्चिममें गञ्जामका मन्द्राज जिला और उत्तर-पश्चिममें नयागढ़, रणंपुर और खन्द्रपड़ा सामन्तराज्य है। पुरी नगर ही जिलाका सदर और विभागीय राजकर्मचारियोंका आवासस्थान है।

स्वभावतः पुरी जिला तीन भागोंमें विभक्त है, यथा-द्यानदीके दक्षिणकुलसे दाण्डिमाल और खोरदाकी पावेत्यभूमि तकका स्थान पश्चिमांशवर्ती, यहांसे महा-नदीकी अववाहिका मध्यभाग और बिल्काह्रद तथा समुद्रपर्यन्त तकका स्थान पूर्वभाग। मध्य और पूर्व प्रदेशकी जमीन कह ममय और समुद्रतीरसे मध्यदेशवर्ती पाव तीय उपत्यका समिष्ठिक उर्वरा है। महानदीको मुहाने और छोटो छोटी बहुत-सी स्रोतस्विनी यहां वहने-के कारण खेतीवारीकी विशेष सुविधा है। को आखाई नदीकी प्राचीन और कुशभद्रा शास्त्रा कुशभद्रा नामसे वक्रोपसागरमें गिरता है तथा मार्ग वी, नूना और दया नामकी तीन शासाएं, भाग वी और द्या नामक चिल्का-हदमें आ मिली हैं। पूर्वाशकी अपेक्षा मध्यमांशकी जन-संख्या अधिक है। देवी नदीके मुहानास्थित पूर्व सीमा-

Vol. XIV 22

वर्त्ती स्थान जंगलसे परिपूण है। वर्पाकालमें जलपूर्णा नदीमें नाव द्वारा पण्यद्रव्य पहुंचाया जाता है। इस सप्तय भार्गची, दया और नूना नहोकी अवस्था भीपणतरा हो जाती है। भीषण वादसे तीरवत्तीं भूमि इव जाती है जिससे शस्यादिकी विशेष क्षति होती है। वीन दुःखी प्रजाको इस प्रकार क्षतिप्रस्त होते देख १८६६ ई०मे' करोव चार सौ मील लम्बा एक सुदीर्घ वांध दिया गया है। उक्त वर्ष की बाढ़से जरू स्नावित हो प्रायः छः लाख खपयेका अनाज नष्ट हुआ था। अलावा इसके प्रायः तीस हजार नीघा उर्थरा जमीन वाढ़के भयसे जोती नहीं गई थो । पूर्विदिक्स्ध बङ्गोपसागरका चर-स्थान बालुका-मय वलयक्त्वमें जिलेको घेरे द्वुव है । कहीं वह वालुका रेखा दो मील प्रशस्त और कहीं हस्तमात्र विस्तृत है। वाणिज्य विस्तारके लिये यहां कोई उपयुक्त बन्दर नहीं है। पुरी वन्द्रमें एक मात्र आध्विनने ले कर माध तक देशीय नावें आ जा सकतीं। चिक्ताहद छोड़ कर यहां सर नामक एक और दो कीस लम्बा हुद है। उसी हुदके जलसे भाग बोकी वृद्धि और पुष्टि होती है, इसकी अपेक्षा चिल्का हद १० गुणा बड़ा है। इस समुद्रांशकी पश्चिमी-सीमा पर पर्वतमाला और पूर्वकी और बालुकास्त्प द्रायमान है। यहां चरके पड़ जानेसे जी पारिकुद्दीप-की उत्पत्ति हुई है, अभी वही उस बालुकास्तूपके साथ मिल जानेके कारण समुदसे यह हद विलक्कल पृथ म् हो गया है। यहांकी द्रूपयावली नित्य नवीन और नयन-मन तृप्तिकर है। वर्षाऋतुमें पर्वत हो कर जलधारा हदमें आ गिरी है, वर्षांकी सर्वेत्रासी बादसे वहांकी प्रजा तथा खेतो-बारोको अवस्था प्रायः शोचनीय हो जाती है। शीत-के प्रारम्भमें अर्थात् अप्रहायण और पीषमासमें यहांका जल सारा रहता है। पूर्व समयमें यहां लवण प्रस्तुत होता था। विस्ता देशो।

पुरी जिलेके वनविभागमें शाल, शोशम, कोविदार, करहल, आम्र, पियासाल और कुर्मा प्रश्नित मृत्यवान वृक्ष रहनेके कारण वहां चकीर काष्ट्रका उतना अभाव नहीं देखा जाता। वनजात मधु, मोम, दसर, नाना जातीय औषघ, वांश आदिसे देशवासियोंका विशेष उपकार होता है। शिकार, भ्रमण, प्राचीन लुप्तकीत्तियों-

का सन्दर्शन, देवालय और तीर्थादिके परिवर्शन प्रशृति कीत्इलोद्दीपक आरामप्रद विहार यहां अप्रतुल नहीं है। श्रीक्षेत्रके जगन्नाधदेशका मन्दिर, सुवनेश्वर-मन्दिर, कोणारक, खएडगिरि और नीलाचल स्थान देखने योग्य हैं। ì

पुरी जिलेका कोई पृथक् इतिहास नहीं है। पहले कटकनगरमें उड़ीसाविभागकी राजधानी थी। मुसलमान और महाराष्ट्र राजाओं के समयमें यहां जो सब लड़ा-इयां हुईं, वे कटकके निकरवर्त्ती स्थानोंमें ही हुईं थीं। इस कारण उड़ीसाके इतिहासके साथ इनका ऐति-हासिक तत्त्वसमूह निवद हुआ है। इस जिलेके अंगरेजी शासनमें आनेके वाद यहां दो राष्ट्रविप्लवके निद्शैन पाये जाते हैं। १८०४ ईं०में खुर्वाके महाराजने अङ्गरेजींके विश्व अल्लधारण किया था। पीछे १८१७-१८ ईं०में पुरीके कृपिजीवियोंमें से अनेक पाइक सेनाकी विद्रोह्चिकीमें जल मरे थे।

मरहठोंके बार बार आक्रमणसे विपर्यस्त हो खुर्दा-राज अपनी सम्पत्तिका अधिकांश को बैठे। एकमात खुर्दाके किलेमें ही उनकी साधीनता रह गई थी। (१८०३ ई०में) जब पुरीप्रदेश अङ्गरेजोंके हाथ आया, तव खुर्दापतिने अङ्गरेजींके साथ मिलता कर ली अङ्गरेज कमि-श्ररके परामर्शसे खुर्दाराज मरहठोंको उनकी नप्रसम्पत्ति-का अधिकार देनेको सहमत हुए । किन्तु जब अंगरेजी-सेनाने पुरीका परित्याग करके मन्त्राजकी ओर प्रस्थान किया, तब राजाकी मति पलट गई। उन्होंने अपने राज्य-उद्धारका अच्छा मौका जान कर १८०४ ई०में मुगल-वन्दीके अन्तर्गत भारगांव प्रामका राजस वस्रुल करनेके लिये आदमी मेजा। अङ्गरेज-गवर्मेण्टके आदेशको उन्होंने जो अवहेला की इसके लिये कमिश्चरने उनकी बड़ी निन्दाकी। इस पर भी उन्हें' होश त हुआ और वे पुरीके जगन्नाधदेवके मन्दिर-संकान्त कार्यावलीमें हस्तक्षेप करके जनसाधारणके अप्रिय हो उठे। कमिश्रर बहादुरने उन्हें सुगलवन्दीका राजस्व वसूल करनेसे निषेध किया था। अनन्तर अक्-वर मासमें पाइकगण विद्रोही हो पिप्पली प्रामक निकट-वसीं स्थानोंमें भीषण अत्याचार करने छगे। इस पर

करक गञ्जामसे वंगरेजी सेना मेजी गई। विद्रोही दल-ने पिपलीका परित्याग कर खुर्दा दुर्भमें आश्रय लिया। कुछ दिन लगातार गोलावर्गणके वाद दुर्भ अङ्गरेजों के हाथ लगा। राजा दुर्भ छोड़ कर भाग चले, किन्तु आत्मसमर्पण करने पर भी उन्हें सम्पत्ति वापस न मिली। वंगरेज गवमेंग्टके अधीन वह सम्पत्ति 'खास-महल' नामसे कहलाने लगी है। १८०७ ई०में राजाको मुक्ति दे कर पुरीधाममें रहनेका हुकुम मिला।

१८१७ ई०में पाइकगण पुनः विद्रोही हो उठे। इस वार खुर्दाराजसेनापति जगवन्धु उनके अधिनायक हो राजाकी तरह नेतृत्व करने छगे। ये पहले प्रविश्वत हो कर अपनी सम्पत्ति खो बैठे थे। इसीका परिशोध , लेनेके लिये वे दलवलके साथ इधर उधर भ्रमण करने . छगे । विद्रोही दछने समय पा कर वाणपुरके थाना और गवर्में एटआफिसको लूटा तथा खुर्दाके राजकीय-प्रासादादिको जला डाला । विद्रोह-दमनके लिये अंग-. रैजी सेनाने कटकसे खुर्दा और पिपलीकी ओर कूच किया। दोनों दलमें घमसान लड़ाई छिड़ो। आखिर अंग-रेजींने ही विजयपताका फहराई। शीवही सुशासन - प्रतिष्ठित हुआ। किन्तु वन्दिराजके ऊपर अंगरेजींका जो सन्देह था वह दूर न हुआ। राजाने कोई दूसरा उपाय न देख भाग जानेका विचार किया। अंगरेज-कौशलसे वे पुरी नगरमें ही पकड़े गये और फोटेविलि-यम दुर्गमें वन्दी भावमें प्रेरित हुए। इसी साल फोर्ट-विलियममें उनकी मृत्यु हुई। पीछे अंगरेजीशासनसे खुर्दाकी विशेष श्रीवृद्धि हुई । पुरीराज १८७८ ई०में हत्यापराधमें अभियुक्त हुए और आजीवन उन्होंने भंगरेजोंके अधीन दासत्व शङ्खलसे आवद हो अपना समयं विताया। उनकी मृत्युके वाद उनके पुत ही अभी जगन्नाथमन्दिरकी देखरेख करते हैं। मन्दिरमें सवसे खुर्दाराजका हो भोग चढाया जाता है, पीछे और दूसरे . दूसरे लोगोंका । श्रीक्षेत्रके जगन्नाथ देवके मन्दिर इस पुरी जिलामें रहनेके कारण यह स्थान जनसाधारणमें विशेष मशहूर हो गया है। जगनाय देखी।

अन्यान्य विषयोंमें पुरीवासिगण विशेष कार्यकुशल नहीं होने पर मी लवण प्रस्तुत करनेमें वहें सुद्ध थे। अभी कपड़ा बुनना, सोने और चांदीका वारीक काम करना तथा महीका वरतन वनाना ही यहांका प्रधान अवसाय हो गया है। १८७६ ई०में कलकत्ते और मद्राज-में पण्यद्रव्य ले जा कर वैचनेके लिये एक नियम लिपिवड हुआ। चिक्कातोरवर्त्ती रम्भानगर हो उसका केन्द्रस्थान उहराया गया। कलकत्तेसे प्राएडट्राङ्करोड, करकसे पुरी पर्यन्त याती जानेके पथ और वहांसे गक्षाम हो कर मन्द्राजट्राङ्करोड मन्द्राज नगर तक विस्तृत रहनेके कारण वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है।

जिलेकी जनसंख्या १०१५२६८ हैं, जिनमेसे सैकड़े पीछें ६८ हिन्दू और शेवमें मुसलमान तथा ईसाई हैं। अधिवासियोंके मध्य हिन्दूगण पूर्व प्रधानुसार ब्राह्मण, क्षितिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार भागोंमें विभक्त हैं। सभी लोग प्राचीन पद्धतिक अनुसार अपना अपना जातीय व्यवसाय करते हैं। इस जिलेमें १ शहर और ३१० ग्राम लगते हैं।

प्रायः १०वीं शताब्दी तक यहां वौद्धधर्म खन वदा चढा था। सन्यासियोंका गुहावास, पार्वतीय आवास बाटिका और शिलालिपि ही उसका निदर्शन है। खएड-गिरि नामक पर्वत ही वौद्ध-कीर्त्तिशेवका प्रधान स्थान था। सर्पगुहा, हस्ती और व्याव्रगुहा तथा राणीपुर नामक द्वितल वौद्धसङ्घासम आदि अनेक वौद्धकोर्त्तियां पाई गई हैं। वे सव कीर्त्तियां तीन विशिष्ट युगोंमें निर्मित हुई थीं, १म युग-वन्य पशुक्ते वासस्थानकी तरह छोटी छोटो गुहा-वौद्धसिक्षक योगियोंका प्रार्थनामन्दिर ; २य युग-इस समय परस्परका सम्मीलन स्थान और सुन्दर मन्दिरादि बनाये गये ; ३य शुग-सुन्दर वाटिका और मन्दिरादिका निर्माणकाल। राणीपुरका प्रासाद इसका निदर्शन है। उक्त सङ्घ-मन्दिरमें स्थापयिताकी चितित लीला खोदित है। सूर्यपूजाक निदर्शन स्थान कोणाक -का ध्यंसावशिष्ट मन्दिर आज भी उड़ीसाके उपकुलमें विद्यमान है।

अधिवासिगण समावतः ही दिद् हैं। वैश्रभूषा सामान्य तथा दारिद्रव्यक्षक हैं। विद्याशिक्षाके लिये यहां महात्मा सर जार्ज कैम्बबेलके उत्साहसे प्रायः २ हजार विद्यालय प्रतिष्ठित हुए हैं। अलावा इसके संस्कृत सोखनेके लिये और मो कितने विद्यालय हैं। साधुसमागमके स्थान पवित्व श्रीक्षेत्रधाममें मी विभिन्न राष्ट्रसादि साम्प्रदायिक संन्यासियोंके मठ देखनेमें आते हैं। वे सब मठ शास्त्रादि आलोचना और साधुप्रसङ्गमके पक्तमात पुण्यमय स्थान हैं तथा एक एक महन्त एक एक मठके अधिकारी हैं।

२ पुरी जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० १६ २८ से २० २३ उ० और देशा० ८५ ८ से ८६ २५ पू०के मध्य अवस्थित है। भूगरिमाण १५२८ वर्गमील और जनसंख्या सात लाखके करीन है। इसमें पुरी नामका एक शहर और १८८६ श्राम लगते हैं। जगन्नाथदेवका श्रधान मन्दिर पुरी शहरमें अवस्थित है।

३ पुरीका प्रधान नगर वा जगन्नाथक्षेत । यह अक्षा० १६ ४८ उ० और देणा० ८५ ४६ पू० समुद्रके किनारे अवस्थित है । जनसंख्या पचास हजारके करीव है ।

पुरी नगर उतना छोटा नहीं है। पवित क्षेत्रकी सीमा ले कर इसका आयतन ६५०० वीघा है। यातियीं-के रहतेके लिये यहां अनेक मकान हैं। समुद्रतीरवत्तीं वालुकामय स्तूपके मध्य हो कर नगरका जल अच्छी तरह नहीं निकलने तथा रास्ताओंके सङ्कीर्ण होनेके कारण यहांका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। इसीसे कभी कभी ज्वरादि उत्कृष्ट पीड़ाका प्रादुर्माव देखा जाता है। विशेषतः रथयाता, रासयाता, दोळयाता, स्नानयाता और हिन्दोलयाता आदि पर्वोमें यहाकी जन-संख्या इतनी बढ़ जाती है, कि परस्परके शारीरिक उत्ताप और मुत्रपुरीपादिके त्यागसे यहांका जलवायु विलक्तल विगड़जाता है। साथ साथ प्लेग भी आ पहुंचता है। जग-न्नाथ-दर्शनाभिलापी कितने तीर्थयाती अकाल ही समुद-गभेमें निक्षिप्त होते हैं, उसका निरूपण करना कठिन है। इस अकालमृत्युका निवारण करनेके लिये वद्यपरिकर य गरेजकमँचारियोंने तोन उपाय अवलम्बंन किये हैं-

१म—नियमित संख्याके अतिरिक्त छोगोंको न आने देना, २य—राहमें कोई विषदापद न आन पड़े, उसके ऊपर छक्ष्य रखना, ३य—जिससे नगरमें कोई देशव्यापक पीड़ा अथवा प्लेग आने न पावे, इस विषयमें विशेष सतक रहना। विस्चिका रोगका प्रादुर्भाव होनेसे

पहले यातोका आना रोक दिया जाता है। दूसरे साद्या-भावके कारण भी यातियोंको भारी कप्र होता है। जहाज और वर्त्तमान रेळपथ होनेके वहुत पहलेसे ही यहां तीर्थ-यात्निगण पैदल आया करते थे। प्रायः चावल, चिउड़ा और नदो तड़ागादिके दुष्ट जलका सेवन करनेसे वे रोगा-कान्त हो राहमें तरह तरहके कप्र भोगते थे और राहमें ही वहुतींकी जीवनलीला शेष हो जाती थी। इस प्रकार विपद्से तीर्थयातियोंको परिताण करनेके अभिप्रायसे राहमें अनेक अस्पताल राजाकी तरफसे खुल गये हैं। श्रीशेत-समीपवर्ती, स्थानीमें रोगियोंका तदाकक करनेके लिये चिकित्साविभागसे एक इल चौकीदार ( Medical patrol ) नियुक्त हुआ है। गवमें एकी ऐसी बेपा रहने पर भी मृत्युसंस्था कुछ भी कम नहीं हुई है। कारण भक्त तीर्थयात्रिगण जव तक मुसुर्व अवस्थामें नहीं पहुंच जाते, तव तक वे अस्पताल जाना पसन्द करते ही नहीं।

पेतिहासिक तत्त्वींकी आछोचनासे मालूम होता है, कि बुद्धदेवके परवत्ती समयसे छे कर वर्त्तमान काछ तक यहां धर्मप्राणताकी पराकाष्ट्रा छित्तत हुई है। संक्षेपमें केवछ इतना ही कहा जा सकना है, कि यहां ईसा-जन्मके पहले वीद्धधर्म विराजित था। पीछे ग्रैव और कमणाः रामानुजादि वैद्याचमतावल्लिक्योंकी उत्ते-जनासे पुरीक्षेत्र वैद्यावींकी एकप्राणता और एकछतता एकमात श्रोक्षेत्रमें हो विद्यमान है। वाजारमें भोग खरीदते समय जातीयताका कुछ भी विचार नहीं है। एकप्राण और एकजातिकी तरह चएडालसे छे कर ब्राह्मण तक सभो एक पादमें भोजन कर सकते हैं और प्रकाल जगवाथकी उपासना ही यहांका मुख्य धर्म है।

कितने वर्षांसे हिन्दू जातिका महातीर्थक्षेत जगन्नाथ-धाम जनसमाजमें परिचित है तथा वर्तमान श्रीमित्र कव वनाया गया है, उसका निरूपण करना कठिन है। मालूम नहीं, ऐसे वालुकामय हतादृत स्थान पर हिन्दू-जगत्के श्रेष्ठतीर्थका अवस्थान क्यों हुआ।

युक्तप्रदेशके सभी पवित तीर्थं मुसलमान-आक्रमणसे विध्वस्त और अपवित हो गये हैं। वालुकामय समुद्री- पक्छ पर स्थान पा कर जगन्नाथदेवका मन्दिर आज भी मस्तक उठाये हुप है। जब उड़ीसाके अफगान मुसलमानोंने इस प्रदेश पर आक्रमण किया, उस समय भी जगन्नाथ देवके पंडा लोगोंका पूर्ण प्रभाव था। श्रीक्षेतकी देवमूर्तिके ऊपर पंडा पुरोहितोका पूर्णसत्त्व नहीं है। ये केवल ब्राह्मणोंके ही नहीं, वरन् सारे भारत-वासियोंके पूजनीय देवता हैं। उच श्रेणीके ब्राह्मणसे ले कर नीच शवर जातिका भी आधिपत्य देखा जाता है।

भारतीय इतिहासके प्रभाती ऊषामें यहां निर्वाणपिपासामें प्रबुद्ध वौद्धोंने आश्रयलाम किया था। कई
शताब्दी तक शाक्यबुद्धका खर्णद्रण्ड इस पुरिधाममें
प्रोथित रहनेके कारण उतने समय तक यह नगर वौद्धोंका
जेवसलेम समका जाता था। समुद्रके उच्छ्वसित ऊर्मिमालाके घोर गभीर कलकल नादसे आत्मविस्मृत और
इंग्वरप्रकृतिके ओङ्कारके अनुपासके शाब्दिक हिल्लोलमें
तन्मय हो कितने साधु संन्यासा इस तीर्थसङ्गम पर आ
कर समुद्रतीरवत्तीं खर्गद्वार नामक पवितक्षेत्रमें संसारसे
उदासीन हो कालके अनन्तकोड़में आश्रय लेते हैं, वह
देखनेसे चमत्कत होना पड़ता है। जिन्हें ईश्वरमें भक्ति
और वैराग्य हुआ है, वे जो जीवन भरमें एक वार जगनाथदशँन नहीं किये हैं, ऐसे मनुष्य भारतमें बहुत
कम है।

श्थी शताब्दीके प्रारम्भसे ही जगन्नाथदेवका प्रकृत इतिहास मिलता है। ३१८ ई०में रक्तवाहुने पुरी-आक-मणकी कथा इतिहासमें लिखी है। इस समय जब पुरोहितगण देवमूर्त्ति ले कर नगरसे भाग चले, तब दस्युदल जनशून्य नगर पर अधिकार कर वैठे। प्रायः डेढ़ सौ वर्ण तक वह विग्रह पश्चिमदिक्वर्त्ती जगङ्गलमें छिपा रहा। पीछे किसी धर्मपरायण राजाने विदेशियोंको मार भगा कर देवमूर्त्तिकी पुनः प्रतिष्ठा की थी। तीन वार यह देवमूर्त्ति चिल्काहदमें निक्षिप्त हुईं। समुद्रपथसे जलदस्यु द्वारा आक्रमण अथवा दुई में अफगान अथ्वारोहियोंके करालकवलसे प्रतिमूर्त्तिकी रक्षा करना ही तई शवासी प्राणसे भी वह कर मूल्यवान समकते थे। पंडा लोग शलुक हाथसे पवित्र देवमूर्त्तिकी रक्षा करनेको अभिप्रायसे कभी उन्हें जलक मध्य और कभी जमीनक अन्दर छिपा कर रक्षते थे।

जगन्नाथके ऐसे विश्वव्यापी और चिरन्तनस्याति लाभका कारण यह है, कि वे आपामर साधारणके देवता हैं। दीनदरिद्रसे ले कर धनधान्यवान् व्यक्तिपर्यन्त सभी समान भावसे यहां आचरित होते हैं। ब्राह्मण पंडासे ले कर पाषएड कृपक पर्यान्त समनाधिकारमें विजगत्के अधिपति नारायणके सामने खडे हो सकते हैं। पर्तान्न-वन्धन पुरुषोत्तमक्षेतमें जातिविचार कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण शूद्रके हाथका और शूद्र भी किसी दूसरी जातिके हाथका महाप्रसाद खाते हैं। परमेश्वरकी निगाहमें मनुष्य और कीट समान है। इस जगन्नाथक्षेत्रमें आवहमानकाल उसका निदर्शन विजगत्पतिके समोप विद्यमान है। हिन्द्रशास्त्रमें यह जगन्नाथ-मृत्ति वैक्रण्ठ-पति विष्णुका रूपान्तरमात है। पीछे पएडा लोगोंने तिमूर्त्ति वा तिथाशक्तिका अवान्तर आश्रय प्रहण कर समय मुर्त्तिको जगन्नाथ, भाता वलराम और भगिनी समद्रा इन कल्पित नामों स्से अभिहित के किया है। एत-

क वृन्दावनचन्त्र श्रीकृष्ण नारायणके पूर्णावतारके जेसा किति किति हैं। बलगम उनके भाई ये और प्रमन्ना बद्दन थीं। विवाहस्थलमें कृष्णपश्चा अर्जुनकर्तृक सुप्रदा-हरण जैसा भीति प्रद है, यहां भी सुभन्नाका विवाहन्यापार वैसा ही कल्पनाश्चित हैं। श्रीकेत्रमें सुभन्ना समुद्रके मयसे कर कर अपने दोनों भाइयोंकी शरणापत्र हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-त्राय-मन्दिरके बाहर खेंब होनेसे समुद्रका गर्जन सुना जाता है, किन्तु सिहहार पार करनेसे ही वह गर्जन फिर सुनाई नहीं देता। प्रवाद है, कि जब समुद्र सुमन्नाप्रार्थी हो कर आये, तब कन्नोलकी हुं कारसे सम्मति हो इत्यामनिनी सुमद्रा भग गई। भाईके आधासन देने पर वे उन्होंके समीप रह गई। श्रीकृष्ण (जगनाय) ने भनिनोका भय दूर करनेके लिये समुद्रको आगे बहनेके रोक दिया। तभीसे समुद्र दूरमें ही दण्डाय-मान हैं। सनका गर्जन फिर कभी भी सुमदाके कर्णस्पर्शी नहीं हुआ।

ां जगनाधरें बकी मूर्तिकी तरह वौद्धशासमें भी इस प्रकार चित्रांकित एक यन्त्रसक्तिका उन्हेंसा है। राजा राजेन्द्र-बाल, कर्निहम सादि प्रस्ततस्पविदोंने दोनोंका साहस्य स्थ्य सरके जगनाथको पूर्वतन बौद्धकीर्तिका क्यान्तर स्थिर किया है। विद्य यह युक्ति स्मीनीन नहीं है। जगनाय देशो। द्भिन्न भारतको संभी देवदेवियोंको मूर्त्त पुरीमन्दिरकी चारों ओर पृतिष्ठित है। इस कारण भारतवासी विभिन्न साम्पृदायिक व्यक्तिगण यहाँ आ कर खच्छन्दतासे अपने अपने अभीष्टदेवकी पूजा कर आत्माको चरितार्थ करनेमें समर्थ होते हैं। देवमन्दिरमें पुराणादिसे नाना चित्न पृस्तरखण्ड पर पृतिफलित हुए हैं।

जगनाथदेवकी प्रतिमृत्ति इस प्रकार क्यों गठित हुई, इस सम्बन्धमें दो एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है,-पुरा-कालमें इन्द्रयुम्न राजाने इसी देवमूर्त्तिकी स्थापनाकी कामनासे ब्रह्माकी तपस्या की । ब्रह्मांके वरसे विश्वकर्माने आ कर समुद्रसैकतमें इस मन्दिरका निर्माण किया। पीछे उन्होंने राजासे कहा, 'मैंने जगन्नाथकी प्रतिमृत्तिं गढना आरम्भ कर दिया है, जब तक मूर्त्तिगठन शेप न हो जाय. तव तक कोई भी यह मन्दिर-द्वार खोल कर उसमें प्रवेश न करे, करनेसे काममें वाघा पहुंचेगी।' वहुत दिन वीत जाने पर राजा वड़े ही ध्यप्र हो उठे। उनका धेर्य विलक्कल जाता रहा । उन्होंने मन्दिर-द्वार खोला, .मूर्त्तिको वर्त्तमान आकृति तक गढ़ा हुआ पाया । तभीसे विश्वकमनिर्मित वही मूर्त्ति जनसमाजमें जगनायदेवकी प्रतिमूर्त्ति समभ कर पूजी जाती है। फिर किसी किसी-का कहना है, कि यहांके आदिमवासी शवरगण निविड अरण्यमें नीलवर्णके एक पत्थरकी पूजा करते थें। वह जाप्रत देवता अनार्य जातिकी पूजा और उत्सर्गीकृत उपहारादिसे परितुष्ट न हो कर आयोंके पवित और शुद्ध-भावसे प्रदत्त भोगादि प्रहण करनेको इच्छुक हुए। प्राचीन आर्थ वंशीय जब कभी किसी राजाने इस प्रदेशमें पदापण किया तव उन्होंके यत्नसे उस प्रस्थरखएडको काट छांट कर नूतनभावसे प्रतिमूर्त्ति गठित हुई। आज भी उड़ीसाके प्रत्येक घरमें दोनों प्रकारकी पूजा प्रचलित हैं। आर्य जातिकी देवदेवीक़े मन्द्रिके पार्श्वही प्राचीन अनार्योंकी मूर्तिहीन प्रस्तरमय प्राम्यदेवताओंकी मी खतन्त पद्धतिके अनुसार पूजाविधि निवद्ध है।

उत्त प्रकारसे कोई युक्तप्रदेशवासी विष्णुपूजक किसी आय वंशीय राजाके पुरीधाममें आगमन और अवस्थान-की कल्पना करते हैं। क्रमशः उन्होंने आदिम अधि-वासियोंको अधीनतापाशके वद्ध करनेकी आशासे इनकी मनस्तुष्टिके लिथे आर्य और अनार्य प्रथाके क्रियाकला पादिको मिश्रित कर रखा है। पुराणमें लिखा है, कि विष्णु एक माल राजा और वीरपुरुषोंके देवता हैं। उक्त विधानसे यहांकी जगन्नाथ मूर्त्ति भी सबसे पहले ब्राह्मण द्वारा पूजित न हो कर राजा-द्वारा पूजित होती है और राजाके आदेशसे पूजाविधि प्रवर्त्तित हुआ करती है।

इस सुदूर जाङ्गलभूमिमै पहले पहल वैष्णवधर्मका प्रचार हुआ, सो नहीं। सम्मतः सबसे पहले यहां अनायी-की प्रस्तरपूजाकी ही प्रधानता थी। क्रमणः आर्यंगण स्वधर्म प्रचारके उद्देशसे यहां आये। पीछे ईसा जन्मके पहलेसे ले कर ४थी शताब्दी तक यहां बौद्धयति और आर्ह्द्रगणके कलकराउसे उड़ीसाका कन्द्रसमूह प्रति-ध्वनित हुआ था। इस समय उसके साथ साथ शैव और वैश्वावींका अम्युद्य हुआ। शैवप्रभावका चूड़ान्त द्रुष्टान्त भुवनेश्वरमन्दिरमें हो, प्रतिभात हुआ है। ५वीं शताब्दीसे हो यहां वैष्णव धमैकी गोटी जमने लगी। १२वीं शताब्दीकी पुरीधाममें जो जगकाथवेव उडिसापतिके चिरसहाय और सम्पत्ति थे, रामानुजको ओजस्विनी वक्तृता और तेज-स्विनी प्रतिभासे समस्त दाक्षिणात्यवासीने उक्त देव-मुर्त्तिको पुज्य देवता समभ लिया था। ११५० ई०में उक्त महापुरुवने नगर नगर घूम कर विष्णुमें एकत्व, आदि-के कारण का आरोप करके वैच्याव धम का प्वार किया। जब नारायण समस्त ब्रह्माएडके अधिपति हैं, तब सभी मनुर्ध्योका उनके ऊपर समान अधिकार है। रामानुजके शिष्योंसे ही वैष्णवोंको जातीय एकताका सूत्रपात हुआ / वे जव एक ईश्वरकी सृष्ट-सन्तान हैं, तव उनके साध एकत भोजन और शयन करना अवेध नहीं है।

११०७ ई०में राजा चोड़गङ्गदेव उड़ीसाके सिहासन पर अधिकृ थे। गङ्गगनदीसे छे कर गोवावरी तट तक उनका आधिपत्य फैळा हुआ था। उनके दंशके अनङ्ग-भीम १० सेतु और १५२ स्नानसीपानका निर्माण, कूप तड़ागादिका खनन, पान्थशाळा आदि साधारण आश्रय-स्थान इत्यादि कीर्त्तियां छोड़ कर गये हैं। वर्तमान जगन्नाथका मन्दिर चीड़गङ्गकी अळीकिक कीर्त्ति है।

१३वीं और १४वीं शताब्दीको मारतमें नवयुग उप-स्थित हुआ। वैष्णव-चूड़ामणि रामानन्द और कवीरकी विमोहिनी वक्तृतासे विमुन्ध हो भारतवासियोंने वैष्णव-धर्म प्रहण किया और इस प्रकार अपनेको पुण्यवान् समका। कवीरके वाद महाप्रभु श्रीचैतन्यने जगत्-वासियोंको भुला कर वैष्णवधर्मका प्रचार किया। उक्त महापुरुपके मतसे जगदीश्वरके निकट जाति वा कुलका विचार नहीं है। जो कायमनसे उनकी सेवामें रत रहते हैं, वे कमां भी विमुख नहीं होते। चैतन्यके प्रभावसे पुरीवासी वेश्यवधर्ममें दीक्षित हुए। वहांके प्रधान प्रधान पिएडतींने महाप्रभुके तर्कसे पराभृत हो उनका शिष्यत्व प्रहण किया। श्रोक्षेत्र ही चैतन्यकी जीवलीला हुई। उनकी मृत्युके वाद वेश्यवोंने उन्हें नारायणका अंश जान कर जगन्नाथ-मन्दिरके पार्श्वमें उनको भी मूर्ति-प्रतिष्ठा की है। समय उत्कलप्रदेशमें आज भी प्रायः ८ सी चैतन्यमूर्ति विराजित हैं।

महाप्रभुकी जीवदशामें ही (१५२० ई०में) उत्तर-भारतमें वल्लभखामीने वैध्यव मतका प्रचार किया। उनका मत उक्त महापुरुषोंके मतसे खतन्त्र था। रामानुन, रामा-नन्द, कवीर, वैतन्य और बल्लनस्वामी आदि शब्द देखी।

इस प्रकार धीरे धीरे धार्मिकोंके अम्युद्य और पुण्यक्षेत जगन्नाथतीर्थमें समागमके लिये अनेक मठों-की प्रतिष्ठा हुई है। जगन्नाथदेवकी वार्षिक आय प्रायः ७ लाख रुपयेकी है। एतिङ्क्ति यातियोंके प्रदत्त अल-ङ्कारादि भी कम दामके नहीं होते। प्रवाद है, कि प्रसिद्ध कोहिन्र जो एक समय खएडाकारमें महाराणी भारतेथ्यरी विकृरियांके मुकुटमें और अभी पञ्चमजाजंके मुकुटमें शोभा देता है, वही पञ्जावकेशरी रणजित् सिंह जगन्नाथदेवको दान कर गये थे । जगन्नाथक्षेतमें वैष्णवधर्मका पूण प्रभाव विद्यमान रहने पर भी विमला देवीके मन्दिरमें शक्तिउपासनाके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं।

जगन्नाथको सेवकमण्डलीके मध्य प्रायः ३६ थाक और ६७ श्रेणी हैं। खुर्दाराज सर्वोमें श्रेष्ठ है। पंडा लोगोंमेंसे कुछ देवमूर्त्तिको आभरणादिसे भूषित करते, कोई पुजाके आयोजनमें लगे रहते, कोई परिच्छादिकों रक्षा करते और कोई रन्धनादि काम करते हैं। एतद्भिन्न सेवानुरत भृत्यगण, नर्त्तकोगण, वाद्यकरगण, मालाकारगण और नाना कारिकर देवसेवामें समय विताते हैं। श्रीमन्दिरके एक एक स्थानमें प्राचीन सभी प्रन्थ रक्षित हैं। यहां वहुतसे विज्ञ ध्यक्ति सर्वदा शास्त्रानुशीलनमें समय ध्रतीत करते हैं।

देवमन्दिर चार भागोंमें विभक्त है, १म भोगमन्दिर, २य नाट्यमन्दिर, ३य दर्शनमन्दिर वा जगमोहन और ४थ पीठभूमि वा पवित्व गर्भगृह। यहां जगन्नाथ, वलराम और सुमद्राकी मूर्ति स्थापित है। सिहद्वारके वहिर्देशमें एक अति पाचीन स्तम्म है जहां वहुतसे दर्शक आ कर इकट्टे होते हैं। पुरी उपकूलसे १० कोस उत्तर जहां स्यंउपासकोंके पवित्व मन्दिरादिका ध्वंसावरोप पड़ा है, उक्त स्तम्म उसी कोणार्कसे लाया गया है। कितने समय पहले यहां स्यंपासना प्रचलित थी, उसके पृक्तत समयका निरूपण करना कठिन है।

मन्दिरका विस्तुत विवरण अध्याय शब्दमें देखी ।

जगन्नाथदेवकी रथयाता ही यहांका प्रधान उत्सव है। यह उत्सव आषाढ़ी शुक्का द्वितीयासे आरम्म हो कर आठ दिन तक रहता है। जगन्नाथ देवका रथ ४५ फुट ऊंचा, ३५ फुट चतुरक्ष और ७ फुट व्यासके १६ चक्र हैं। सुमद्रा और वलरामका रथ उससे कुछ छोटा है। उत्सवके दिन मूर्चिको तीन रथों पर विठा कर महासमारोहसे उद्यानवाटिकामें ले जाते हैं। उद्यान-वाटिकासे ले कर श्रीमन्दिर तक रथयाताके उपयोगी केवल एकही पुशस्त पथ है और सभी पथ संकीर्ण हैं। श्री-मन्दिरसे उद्यानवाटिका आध कोससे भी कुछ कम दूरी पर है। इस पथ हो कर रथ लाते समय बालू चक्र वैठ जाता है (४२०० सी वहांके गृहस्थ और तीर्थयातिगण

<sup>#</sup> प्रवाद है, कि यह मिण जगनाथकी ही थी। हिन्दु वमेंद्वेणी प्रसिद्ध कालापहाडने बगनाथ देवके अंगसे वह मिण विच्छित्त करके तनके दातमय देहको जला कर चिक्कादिमें फेंक दिया था। पण्डा लोगोंने देवमूर्तिकी पुन: प्रतिष्ठा की है। अंभी प्रतिवर्ष स्नानयात्राके समय जगनाथदेवके शरीरमें रंग दिया जाता है। रणजित्ने मुसलमानसाहुसे कोहिन्द्र ले कर पुन: जगनाथदेवको दे दिया था। इस प्रवादके मूलमें कुछ भी सल नहीं है।

मिलकर रथ बींचते हैं, तो भी आध कोसका रास्ता तै करनेमें कई दिन लग जाते हैं। सूर्यके निदारण उत्तापसे तथा दश वीस हजार जनताके मध्य प्राणपणसे रथ खींचनेसे सदीं गर्मीके मारे किसी किसीकी मृत्यु भी हो जाती है। जब रथ उद्यान पहुंचता है, तब सर्वो-के आनन्दका पारावार नहीं रहता। महोल्लाससे याति-गण उस उत्तम बालुकाके ऊपर लेट जाते हैं। बहुत देर वाद वे उठते और स्नानको जाते हैं। पहले कभी कभी उन्मत्तको तरह नाच करते करते कोई कोई याती रथचक्रके तले गिर कर प्राण गंवाते थे, किन्तु अभी ऐसी अपघात मृत्यु नहीं होती। लोगोंकी भीड़से कितने मनुष्य चक्रके नीचे पंड़ कर प्राण खो वैठते हैं। फिर कोई कोई ( जो कठिन रोगसे प्रसित हैं ) स्र च्छासे चक्कमे तले पड़ कर इस यन्त्रणाको लायव करते हैं। रथ्रसे दव कर मरनेसे देवमूर्त्तिको छूनेमें अपविवता नहीं समभी जाती। किन्तु मन्दिर-खामीके मध्य यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो सभी अपवित्र होते हैं। यथाविधि स्नान आदि द्वारा देवमूर्त्ति शुद्ध हो जाती है, दूसरे दूसरे स्थान जलसे घो दिये जाते हैं।

जगन्नाथ सभी भारतवासियोंके देवता हैं। यहां-सभी देवमृत्तियोंका प्यवेक्षण करनेसे ऐसा अनुमान किया जाता है, कि एक समय यहां भारतवासी सभी जातीय धर्मसम्प्रदायने आश्रय पाया था। किन्तु कह नहीं सकते, कि किस कारण वर्त्तमान समयमें पंडा छोग सूंड़ी, चमार, च'डाल, मेहतर आदि नीच जातिको, यवन, म्लेच्छ आदि विधर्भी सम्प्रद्रायको तथा कसाई और पशुपांसभोजी आदि जातियोंको मन्दिरके भीतर घुसने नहीं देते। जूता पहन कर अथवा हाथमें चमड़े का वैग लिये मन्दिर-में प्रवेश करना निषेध् है। रात दिन मुएडके मुएड याती पुरीनगरमें आते हैं। याबियोंमें विशेष कर स्त्रीकी संख्या ही अधिक देखी जाती है। पतिसन वड़ी वड़ी मूं छ दाढ़ी जटावाले उलङ्ग संन्यासी जगन्नाथ-दर्शनको . आते हैं। पूर्व समयमें जब रेळगाड़ी नहीं चळी थी, तव याती पैदल ही यहां आया करते थे। सुन्दर वालुकामय प्रान्तर हो कर इतने लोगोंका गर्मनागमन ठीक समर-वाहिनी सेनादलकी तरह दिलाई देता है। आगत

यातियोंको पकड़ लानेके लिये पंडा लोगोंके अधीन प्रायः ३ हजार आदमी प्राम प्राममें घुमते हैं ।

जब याती सिहद्वारमें प्रवेश करते हैं, तब एक आदमी माड़ छे कर उन्हें धोरे धोरे मारता है। विश्वास है, कि ऐसा करनेसे उनका पूर्वसिश्चित पाप जाता रहता है। प्रति दिन प्रायः ५ हजार याती एक साथ सान करते देखे जाते हैं। रथयाताके समय स्वर्गद्वारके निकट प्रायः ४०००० याती एक वारमें स्नान करनेको अवतीर्ण होते हें। पुरी-धाममें प्रति वर्ष कितने मनुत्य आते हैं, उसका निरुपण करना कठिन है। रथयाता उत्सवमें प्रायः ६० हजार छोगोंके छिये प्रसाद प्रस्तुन होता है और अन्यान्य उत्सवोंमें प्रायः ७० हजार यातियोंके छिये रसोई वनती है। मिसनारारियोंके छिखित यृत्तान्तसे जाना जाता है, कि किसी किसी साछ रथयाताके समय प्रायः डेढ़ छाख मनुष्य यहां इकट्ठे होते हैं।

यातियोंके पुरो अनिसे ही पंडा छोग नये चूव्हें जला कर उन्हें रसोई वनानेसे मना कर देते हैं। कारण जिस पवित नगरमें जगन्नाथदेव प्रसाद देते हैं, वहां उस प्रसादंका प्ररित्याग कर खपाक-अन्नग्रहण महापाप है। इस कारण धर्मपरायण भारतवासियोंके लिये प्रसाद खानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। पर्यु<sup>°</sup>पित प्रसाद खानेसे तथा अखास्थ्य स्थान पर सोने वेडनेसे तीर्थयाबी-गण विस्चिका रोगसे प्रसित हो जाते हैं। घरमें करोखे नहीं रहनेसे परिष्ठत हवा घुसने नहीं पाती । इस कारण रोगी दुर्गन्धयुक्त वायुसे मारात्मक हो जाते हैं। १३११ फुट लम्बे घरमें महाजनताके समय ७०१८० थादमो रालियापन करते हैं । रथवाता देख कर जब लाखें मनुष्य खदेशको छौडते हें, तब प्रायः सभी नदियां वाढ़के जलसे भर आती हैं। उस समय किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उस वेगवती स्रोतस्त्रतीको पार कर नाव द्वारा भी दूसरे किनारे जा सके। एक तो पथश्रमके हुँ श, दूसरे खुले मैदानमें धूप पानीके तले वास, उसके ऊपर गुड़ चिवँ ड़ा आदि खानेसे शरोर इतना क्लिए हो जाता है, कि मनुष्य अकालकी करालकालके शिकार वन जाते हैं। कितने वाढ़में डूव मस्ते हैं और कितने ज्वरके विकारसे प्राण खो वैठते हैं।

१८७० और १६०० ई०के रथयाता उपलक्षमें यहां महामारी वहुत जोर शोरसे फैळ गई थी। शवराशि देख कर अधिकांश यात्री रथ आनेके पहिले ही श्रंक्षित छोड़ कर प्राणभयसे भाग चले थे। महाभारीका प्रकोप इतना वढ़ा कि वृटिशगवर्मेंग्टके विशेष चेष्टा करने पर भी सैकड़ोंकी जान गई थी। अभी यहां अच्छा वन्दोवस्त हो गया है। यासीका दल थोड़ा थोड़ा करके आता और जाता है और रोगी ऐसे यत्नसे अस्प-तालमें रखे जाते हैं, कि गवमें एटको किसी प्रकार दोपी नहीं कह सकते। हिन्दुतीर्थमें विधर्मी राजाका हस्थक्षेप करनेका अधिकार नहीं है। राज्येश्वर अनाद्वत यालियोंका आगमन रोक नहीं सकते । क्योंकि ऐसा करनेसे हिन्दुका धर्महानि हो सकतो है। पुरीधाम भारतवासियोंका एक महापुरण्यतीर्थ और वैश्णवधर्मकी पुरुत मिद्शेनमूमि है। पुरीतत् (सं ॰ पु॰ क्ली॰) पुरीं शरीरं तनोतीति तन-किप्, ( गमः क्वौ । पा ६।४।४० ) इत्यत्न 'गमादीनामिति वक्तव्य' इति वार्त्तिकोक्त्या अनुनासिकलोपः तुगागमश्च ततो (नहिवृत्तिवृषि वनधिरुचि अहितानेषु क्यो । पा ६।६।११६) पूर्वपदस्य दीर्घः । अन्त्र, आंत ।

पुरीदास ( सं ० पु० ) परमानन्दपुरी देखो । पुरीमोह ( सं ० पु० ) पुरीं शरीरं मोह-यतीति मुह- णिच् (कर्म्थण्यण । पा ३।२।१ ) धुस्तूर, धतूरा ।

पुरोष (सं० ह्यो०) पिपर्त्ति शरीरमिति पूर्वषन् सच कित् (श्रपृभ्यांकिच । उण् ४।२७) १ विष्ठा, मल, गू।

जो सब वस्तु खाई जाती हैं, उनका सारांश रस और रक्तादि रूपमें परिणत एवं असार अंशका स्थूलभाग विश्वारूपमें तथा जलीयांश मूलाकारमें परिणत होता है। जिस प्कार प्रतिदिन आहार करना होता है, उसी प्कार प्रिपोत्सर्ग विधेय है। यह पुरीप असारांश द्वारा उत्पन्न होता है, इसीसे इसका नाम मल पड़ा है। शास्त्रमें भोजनादिका जैसा विधान है, पुरीषत्यागका विषय भी वैसा ही देखनेमें आता है। अति संक्षेपमें शास्त्रोक्त पुरीषोत्सर्गका विषय लिखा जाता है। आहिकतत्त्वमें लिखा है, कि गृही अरुणोदयकालमें उठ कर दन्तधावनके वाद पुरीषत्याग करे। स्थादयके पहले चार दण्डकालको ही अरुणोदयकाल कहते हैं। मूल वा पुरीपका वेग

उपस्थित होने पर कमी भी उसे रोके न रखे। किन्तु इन्द्रियवेगको जहां तक हो सके अवश्य रोके। मल और मूलका वेग रोकनेसे नाना प्रकारको पीड़ा उपस्थित होती है। जब मूल और पुरीष त्याग करने बैठे, उस समय पैरके तले एक तृण रख है, मस्तकको बस्त्रसे ढँक ले और तब मौनी हो कर छीवन वा उच्छ्वासरहित हो पुरीष वा मूल त्याग करे।

"उत्थाय पश्चिमे रातेस्तत आचम्य चोदकं। अन्तर्घाय तृणेभूं मि शिरःप्रावृत्य वाससा॥ वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनो्च्झृासवर्जितः। कुर्यान्मृतपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥"

( आह्रिकतत्त्व )

घरसे निकल कर नैऋ तकोणमें शरनिक्षेप करनेसे वह जितनो दूर जा सके, उतना स्थान छोड़ कर, मूल और पुरीपत्याग करे। मल और मूलत्याग दिनके समय उत्तर ओर रातके समय दक्षिण ओर विधेय है। पुरीषत्यागके समय द्विजको उपवीत कण्डलम्बित वा दक्षिणकामें रखना चाहिये। जूता पहन कर मूल वा पुरीषत्याग करना मना है। "न च सोपानत्को मूत्रपुरीषे कुर्यात" (अ हिकतन्त्र) मूल वा पुरीषोत्सर्गके समय जलपाल स्पर्शन करे, करनेसे वह जल मूलके जैसा समका जाता है। स्पर्भ, जल, द्विज और गो इनके अभिमुखी हो कर मलमूल त्याग करनेसे आयुःक्षय होता है।

"प्रत्यादित्य' प्रतिज्ञल' प्रतिगाञ्च प्रतिद्विजं।
मेहन्ति ये च पथिबु ते भवन्ति गतायुवः॥"
( आह्विकतत्त्व )

पथ, भसा, गोव्रज, हलसे जोता हुआ स्थान, पर्वत, जीर्णदेवायतन, वल्मीक, ससत्त्व गर्त्त, जिस गर्तमं जीव रहता हो, नदीतीर और पर्वतमस्तक इन सव स्थानों पर मलमूब-त्याग नहीं करना चाहिये। अतिगुप्त भावमें मूब और पुरीपत्याग विधेय हैं। (अ हिक्तस्व)

पद्मपुराण-उत्तरखग्हके ६४वें अध्याथमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। यहां उसका सारांश अति संद्धेपमें दिया जाता है— ब्राह्ममुह्द्वमें उठ कर हस्त और मुख प्रक्षालन करे। पीछे एक सौ धनुःपरिमित स्थान (शर निक्षेप करनेसे वह जितनी दूर जा गिरे, तत्परिमित स्थान ) अथवा ग्रामके वाहर पुरीषत्याग करें। नैऋ तकोणमें पूर्वोक्त परिमित स्थान वाद दें कर खनित द्वारा तिमुष्टि आयत और १२ अंगुल गमीर गर्च वनावे। पीछे मस्तकको वस्रसे ढँक ले और उपवीतको दक्षिण कर्णमें संलग्न कर पुरीप त्याग करें। पुरीष-त्यागके समय मौनी होना उचित है और उस समय सूर्य, चन्द्र, त्राह्मण, गुरु, देवतामूर्चि, स्त्री और गुरुजन आदिका कभी भी अवलोकन न करे। पूर्वाहमें पिश्चममुख, अगराहमें पूर्वमुख, मध्याहमें उत्तरमुख और राति-कालमें दक्षिणमुखी हो पुरीप त्याग करना चाहिये।

"पूर्वाह्रे तु द्विज्ञः क्यांत् पश्चिमाभिमुखोऽथवा। अपराह्रे पूर्वमुखो मूलगूथिवसर्जनम्॥ मध्याह्रे प्रयतः कूर्यात् यतवागुत्तरामुखः। दक्षिणाभिमुखो राह्यौ द्विजो मैहं प्रयत्नतः॥" (पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

निशा वा अन्त्रकारमें कोई भी दिशा क्यों न हो, मूल और पुरीप त्याग किया जा सकता है।

देवायतन, वृक्षमूल, जल, नद, नदी, कूप, मार्ग, वापी, गोष्ठ, भस्म, चिताग्नि, रमशान, उपर, द्विजालय, जलसमीप, आकाश, पुण्डू, शाद्वल, समुद, तीर्थ, यज्ञवृक्ष्म्स्ल, वैश्णवालय, फालकृष्टभूमि, शस्यक्षेत्र, पुष्पोद्यान, पर्वतमख्तक, गोत्रत, नदीतीर, यज्ञभूमि, पिवतीकृत स्थल-प्रभृति, इन सव स्थानों पर कभी भी मूत वा पुरीप त्याग न करे। मूत और पुरीप त्याग करके जलशौच कर ले। पीछे पवित स्थानसे मृत्तिका ले कर उससे शौच और वादमें पुनः जलशौच विधेप है। इस प्रकार शौच करनेसे पुरीषकी गन्ध विलक्षल जाती रहती है।

"प्रथमेऽन्त्रिर्नरः शौचं कुर्यान्मृद्धिरतः परं । पुनर्जेक्षेः पुरीषस्य यथा गन्यक्षयो भवेत् ॥" ( पद्मपु० उत्तरख० )

मृत्तिकाशीचमें मलद्वारमें तीन, पांच वा सात वार, शिश्नदेशमें एक वार और वाएं हाथमें ७ वार मृत्तिका देनी होती हैं। (५६१९० इतरहा०) २ उदक, जल, पानी। ३ पुरीषतुल्य मृत्तिका, विष्ठाके समान मही। पुरीषकृमि (सं०पु०) विष्ठाजात कृमि, गूसे पैदा होने-वाला कीड़ा। पुरीषण ( सं० पु० ) पुर्या देहात् ३६यते त्यज्यते इति पुरी-इप-कर्मणि रुयुट् । पुरीष, विद्या ।

पुरीषम (सं० पु०) पुरीषं मिमीते मान्क। माप, उरद। पुरीषवत् (सं० ति०) पुरीष-मतुप्, मस्य व। पुरीप-विशिष्ठः

पुरीषवाहन (सं० ति०) १ पांशुक्षप मृद्वाहक। २ यवस-वाहक गर्डभ।

पुरीषाधान ( सं॰ क्षी॰ ) पुरीषमाधीयतेऽत, आ-धा-आधारे ल्युट्। देहस्थ पुरीपाशयस्थान, देहमे वह स्थान जहां पुरीष रहता है।

पुरीपिन् (सं॰ ति॰) पृणाति प्रीणातीति वा पुरीपमुद्दं ततः मत्वर्थे इनि । जलयुक्त ।

पुरीष्य ( सं० ति० ) पुरीषाय हितं यत् । पुरीपहित, पशु-हिन ।

पुरीग्यवाहन ( सं ० ति ० ) पुरीगं यहति वह-ज्युट् ( कन्य-पुरीवपुरीचेषु ज्युट् । पा ३।२।६५ ) पुरीग्यवाहक, पुरीच्य-वाहनकारी ।

पुरु (सं० पु०) पिपर्ति पूर्यंते वेति पू (पृमिदिव्यधिगृधि-धृषिद्विभ्यः। उण् ११२४) इति कु, ततः (उवेष्ट्यपृर्वसः। पा जोशा१०२) इति उत्वं, (उरण् रपरः। पा १११/५१) इति रपरत्वं। १ देवलोकः। २ दैत्यः। ३ नदीमेदः। ४ राजविशोपः। ५ चाक्षुषमनुके पुत्रभेदः। ६ पर्वतमेदः। इस पर्वत पर पुद्धरवाका जन्म हुआ था और भूगुने तपस्या की थी।

> "पर्वतस्व पुरुर्नाम यह जातः पुरूरवाः । भृगुर्यह तपस्तेपे महर्षिगण-सेविते ॥"

(भारत ३।६०।२२)

७ शरीर । ८ पराग । ६ तृपभेद, यथातिके कनिष्ठ पुत । महाभारतमें इनका विवरण इस प्रकार है,—

नहुषके लड़के ययातिकी दो स्त्रिया थीं, देवयानी और शिमेष्ठा । देवयानोंके गर्भसे यदु और तुर्वस्रु तथा शिमेष्ठाके गर्भसे द्रह्म, अनु और पुरु हुए। शुक्राचार्यके शापसे जव ययाति जराशस्त हुए, तव उन्होंने सव पुत्रों -को बुला कर कहा, 'हे पुत्रगण! में काममोगसे तृप्त नहीं हुआ हूं, अतएव सहस्र वर्ण तक तुममेंसे कोई एक मेरा बुढ़ापा लो और अपनी ज़वानी मुक्ते दो, जिससे में पुनः जवान ही कर अभिनव-शरीर द्वारा कामभीग कर सक् ।' इस पर यदु प्रमृति कोई भी बुढ़ापा छे कर अपनी जवानी देने पर सम्मत न हुआ। अनन्तर छोटे छड़के पुरुने पितासे कहा, 'हे राजन्! मैं अपनी जवानी खुशीसे देता हूं, आप इसे छे कर सहस्र वर्ग तक कामभीग कीजिये।'

पुरसे यौवन प्राप्त कर ययातिने सहस्त वर्ण तक काममोग किया, पर इतने पर मी उन्हें लिप्त न हुई। अन्तमें उन्हों ने पुनः पुरुको बुला कर अपना बुढ़ापा उनमें से ले लिया और उनका यौवन लौटा दिया। पीछे उन्हें राज्याभिषिक कर कहा, 'पुत! तुम ही मेरी उपयुक्त सन्तान हो, तुम हीसे में पुत्तवान हुआ हूं, इस कारण आजसे यह वंश तुम्हारे नाम पर अर्थात् पौरव नामसे प्रसिद्ध होगा।' पिताका आज्ञापालन करनेके कारण पुरु सबसे छोटा होने पर भी और उयेष्ठ भाइयोंके रहते भी राज्यके अधिकारी हुए थे। पीछे पौष्टि नाझी स्त्रीसे इनके तीन पुत्र हुए, प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व। इन्होंसे चन्द्रवंशीय क्षतियोंकी उत्पत्ति है।

( भारत ७५।८३ अ० )

आर्यजातिके सर्वप्राचीन ऋग्वेद प्रन्थमें इनका परि-चय मिलता है। पतिस्निन्न हरिवंश, श्रोमद्भागवत, ब्रह्माएडपुराण और विष्णुपुराणादिमें इनका परिचय जैसा लिखा है, वह नीचे देते हैं—

ये महातमा नहुवके पौत और महाराज ययातिके पुत
थे। महाराज ययातिने सारी पृथ्वी जीत कर उशनाकी लड़की देवयानीसे, पीछे वृपपर्वा नामक असुरकी
कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया। देवयानीके गर्भसे यदु
और तुर्वस तथा शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रह्म, अनु और पुरु
उत्पन्न हुए। ऋग्वेद (१११०८।८)-में भी इन पांच
नामोंका उद्घे सही। सायणाचार्यके भाष्यसे जाना
जाता है, कि इन्द्र उनके सहाय थे। पुरुके वड़े भारी
विजयी, पराक्रमी, उदारचेता तथा वंशके एक उज्ज्वल
एत होनेकी चर्चा भी ऋग्वेदमें है।

"त्वद्भिया विश आयन्नसिक्षी रसमनाजहतीमींजनानि । वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यद्ग्ने द्रयन्नदीदेः॥" अर्थात् हें वैश्वानर ! जव तुम पुरुके समीप देवीय-मान हो कर पुरियोंका. विध्वंस करके प्रज्वित हुए, तव तुम्हारे भयसे असिक्की प्रजागण भोजन छोड़ छोड़ कर आई। इससे अनुमान किया जाता है, कि पुरुकों बोरत्वप्रभासे चमत्छत कृष्णवर्ण अनार्यगण उनके शरणाप्त हुए थे। एक स्थान पर और भी लिखा है,— "प्र पौग्कुरिन त्रवदस्युमानः क्षेत्रवाता वृत्रह्रत्येषु पूरुम ।" (ऋक् ७१६१३) अर्थात् हे वर्णक इन्द्र! तुम युद्धमें भूमिलाभके लिये पुरुकुत्सके पुत तसदस्यु और पुरुकों रक्षा करों। इसका समर्थन एक और मन्त्र इस प्रकार करता है— "भिनत्पुरों नवितिमन्त्रों पूरवे दिवोदासाय महि दाशुवे नृतों" (ऋक् ११३०।७) अर्थात् हे (नृत्यशील) इन्द्र! तुमने पुरु और दिवोदास राजाके लिये नन्त्रों पुरोंका नाश किया है।

शुकाचार्यके शापसे जब महाराज ययाति जरामस्त हुए तब उन्होंने सब पुत्रोंको एक एक कर बुला कर अपना बुढ़ापा देना चाहा। पर पुरुको छोड़ और कोई बुढ़ापा छे कर अपनी जवानी देने पर सम्मत न हुआ। पीछे महाप्राज्ञ ययातिने अभिलिषत सम्मोगके वाद पुरुको योवन प्रत्यर्पण कर राज्यमें अभिषेक किया। इसके वाद 'तुम हो मेरे एकमात यंशधर हो और तुम्हारे हो नाम पर यह वंश भविष्यमें पौरववंश कहलायगा' इत्यादि आशीर्वाक्य उच्चारण कर वे तपश्चर्या और वनवासमें कृतसंकल्प हो ब्राह्मणों तथा तापसोंके साथ राजपुरसे निकल पड़े। (महामारत १।८४।२८ २४) महामारत आदिपर्व ८७ वें अध्यायमें लिखा है, कि महाराज पुरुने पितासे गङ्गा और यमुनाके निकटवत्तीं भूमागका अधीश्वरत्व पाया था। महाभारत और हिरवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि महाराज पुरुके

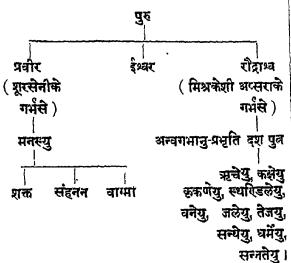
"गंगायमुनयोर्भध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्त । मध्ये पृथिग्यास्तं राजा ञ्रातराद्वन्याधिपास्तव ॥"

( महा० शटण५ )

इससे माछम होता है, कि यदुतुर्वश्वादि म्लेच्छयवनावप्राप्त अत्रोंने भारतके वहिभीगमें राज्यसम्पादनका भोग किया था।

क स्वर्गमें देवराज इन्ह्रने ययातिसे पूछा था, 'श्रम्य-माण पुरुने जो तुमसे बुढापा लिया, सो तुम किस प्रकार उसे राज्यभाग दिया था, सच सच कहो । इस पर ययातिने कहा—

दो स्त्रों थों, पौधी और कौशल्या। महाभारतमें पुरुराज की पौष्टी नामक स्त्रीसे जो सन्तान सन्तति उत्पन्न हुई, उनकी वंशतालिको इस प्रकार है।



ऋचेयु ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो अनाधृष्टि नामसे प्रसिद्ध हुए। उनकी पत्नी तक्षकनिदनी ज्वलनाके गर्भसे परम धार्मिक राजा मतिनारने जनमग्रहण किया। मतिनारके तंसु, महान्, अतिरथ और दृष्ट्र नामके चार पुत्र हुए। तत्सुके पुत्र ऐलिन और राजा ऐलिनके रयन्तरोके गर्भसे दुश्मन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु नामक पांच पुत उत्पन्न हुए । अराजा दुष्पन्तके शकु-न्तलाके गर्भसे भरत नामक एक प्रथितयशा पुत्रने जन्म ब्रहण किया । उन्हींके नामानुसार इस देशका भारतवर्ष नाम पड़ा है। भरतके तीन पत्नी थी जिनसे नी पुत उत्पन्न हुए, किन्तु वे सव पुत अनुरूप नहीं होनेके कारण राजा उनके पृति असन्तुष्ट रहा करते थे। इसके वाद रानियोंने रोवपरतन्त्र हो अपने पुत्रोंको मरवा डाला, राजा वितथने पुत्रोत्पत्तिके लिये महामुनि भरद्राजकी

ं # इरिवंशके मतसे---प्रतिरथके पुत्र राजा कण्य और कर्यन के पुत्र मेचातिथि थे । इन्हीं मेघातिथिसे क्रवंद राजान ने बाह्यणस्य प्राप्त किया | इनके इलिनी नामकी एक करणा भी जिसका विवाह तंपुके साथ हुआ था। तंपुके पुत्र राजि सुरोध थे । सुरोधकी पत्नी उपदानशके गर्भेंडे दु<sup>६२३त</sup>. सुःमन्त, प्रवीर और अन्घ नाम रु चार पुत्र उत्पन्न हुए। ( हरिवंश )

यत्र तताहर्ग पुत्रजन्म ।" ( महाभारत ११९४।२१ खोकको टीकाम नीठकण्ड )

बुला कर भूमन्यु नामक एक पुत्र पृप्त किया। भरतपुतने भूमन्युको यौवराज्यमें अभिषिक किया । भूमन्युके औरस और पुष्करिणीके गर्भसे सुहोत, सुहोता, सुहवि, सुयज्ञ, ऋचीक और दिविरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ सहोतने ऐस्वाकीके गर्भसे अजमीद, सुमीद और पुरुमीढ़ नामक तीन पुत पाप्त किये। अजमीढ़के तीन महिपियोंसे छः पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे धूमिनीके गर्भसे ऋक्ष, नीलीके गर्भसे दुप्पन्त और परमेष्ठी तथा कशिनोके गर्भसे जहु (ये गङ्गाको पी गयेथे), वजन और क्रपिण थे। इन्हीं दुष्मन्त और परमेष्टीके वंशसे पाञ्चालगण उत्पन्न हुए। जहु के वंशमें कुशिक राजाओंने और ऋक्षसे राजवंशकर सम्बरणने जनमग्रहण किया, सम्बरणके अत्याचारसे सारा राज्य तहस नहस हो गया । पाञ्चाल राजाञीने चतुरङ्ग दलमें आ कर उन्हें परास्त किया । राजा सम्बरण अपने अमात्य और सुहर्ने-के साथ सिन्धु नामक महानद्के किनारेसे हे कर पर्वंत तक विरुतृत आरण्यभूमि पर वास करने छगे। एक दिन भगवान् वशिष्ट उनके आश्रममें पधारे। भारतगणने उन-की विशेष सम्बद्ध ना की। विशिष्ठदेवने उनके भाचरणसे पुसन्न हो कर पौरव सम्बरणको निज पुमावसे साम्राज्य वर अभिषिक किया । पृथिवीपुात हो कर सम्बरणने भूरिदक्षिणाविशिष्ट वहु यक्षका अनुष्ठान किया। इसके वाद सम्बरणने सौरी तपतीसे कुरु नामक एक पुत्र उत्पादन किया। कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत उन्हींके नामानुसार पृतिष्ठित हुआ। उनकी वाहिनी नामकी पत्नीसे अभ्ववत्, अभिन्यन्, चैत्ररथ, मुनि और जन्मेजयने जन्मग्रहण किया । अभ्ववत् (अविक्षित्)से परिक्षित्, शवलाध्व, थादिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भङ्गकार और

# इरिवंशमें लिखा है, कि राजा भातने पुत्रोतिक की कामनाथे भरद्वाज द्वारा यज्ञानुहान और धर्मकंक्रमण हराया, किंतु पहले सभी कियाएँ वितय अर्थात् निक्कल हुई थीं, इत्र कारण महासुनिने भरत-पुत्रका वितय नाम रखा। महाभारत टीकामें नीलक्याउने वितथ शब्दका कुछ दूधरा ही अर्थ लगाया है, यथा धित्रतयंविगतस्त्रयाभानो जनकसाहर्य जितारि नामक आठ पुत उत्पन्न हुए । परीक्षित्से कक्ष-सेन, उप्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुघेण और भीमसेन तथा जनमेजयसे धृतराष्ट्र, पाण्डु, वाह्निक, निपध, जाम्बू-नद, कुएडोदर, पदाति और बसातिगणका उद्भव हुआ । पीछे धृतरद्भुसे कुण्डिन, हस्ती, वितर्क, न्नाथ, कुण्डिन, वहिःश्रवा, इन्द्राम और भूमन्यु तथा पृतीप, धर्म नेत और सुनेत नामक उनके तीन पौत उत्पन्न हुए । पृतीपसे देवापि, शान्तनु और वाह्नीक नामक तीन पुत्नीन जन्म-ग्रहण किया । महारथ शान्तनु भूमण्डल अधिपति हुए थे।

पुरुकी कौशल्या नाम्नी भार्यासे जनमेजय, जनमेजयकी पत्नी अनन्ताके गर्भसे पाचिन्त्रान्, पाचिन्त्रान्के औरस और असिक्षीके गर्भसे संयाति, संयातिके पुत अहंयाति, अहंगातिके पुत सार्वभौम, सार्वभौमके पुत्र जयत्सेन, जयत्सेनके पुत अवाचीन, अवाचीनके पुत अरिह, अरिह-के पुत महाभौम, महाभौमके पुत अयुतनायी, अयुतनायी-के पुत अक्रीध, अक्रीधके पुत देवातिथि, देवातिथिके पुत अरिह, अरिहके पुत ऋक्ष, ऋक्षके औरस और तक्षकदुहिता ज्वालाके गर्भसे मतिनार, मतिनारके पुत्र तंसु, तंसुके पुत पेलिन, पेलिनके पुत दुध्मन्त, दुध्मन्तके पुत विश्वा-मिलकी दुहिता शकुन्तलागर्भजात भरत, अस्तके पुत काशिराजदुहिता सुनन्दागर्भजात भूमन्यु और भूमन्युके पुत सुहोत थे। सुहोतने इक्ष्वाकुकन्या सुवर्णासे विवाह किया। सुवर्णाके गर्भसे महाराज हस्ती उत्पन्न हुए। इन्होंने ही अपने नाम पर हस्तिनापुर नगर वसाया था 🕆 हस्तोके पुत विकुएठन और विकुएठनके पुत अजमीढ़ थे। अज़ शिदके कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा नाझी पत्नीसे चौनीस सौ पुत उत्पन्न हुए जिनमेंसे महाराज सम्बरण वंशप्रतिष्ठाता थे। तपतीके गर्भ और सम्बरणके -औरससे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके पुत विदुरथ, विदुरथ-के पुत अनश्वा, अनश्वाके पुत परीक्षित्, परीक्षित्के पुत भीमसेन, भीमसेनके पुत प्रतिश्रवा, प्रतिश्रवाके पुत प्रतीप और प्रतीपके देवापि, शान्तनु तथा वाहीक नामक तीन

Vol. XIV. 25

पुत्र हुए 🖟 । महाराज शान्तनुने गङ्गासे विवाह किया । गङ्गाके गमसे देवव्रत (भीष्म ) उत्पन्न हुए। शान्तमुने सत्यवता ( गन्धकाली) नाझी और एक कन्याका पाणि-ब्रहण किया । कुमारीमें इसी सत्यवतीसे पराशर द्वारा द्वैपायन उत्पन्न हुए थे। पीछे शान्तनुके औरससे विचित्रवीर्य और चिताङ्गद् नामक दो पुर्तोका जन्म हुआ। विचितवीर्य राजा हुए। उन्होंने अभिनका और अम्वालिका नाम्नी दो काशिराजदुहिताका पाणिप्रहण किया । निःसन्तानावस्थामें उनकी मृत्यु हुई । सत्यवती-ने दुष्मन्तवंशका उच्छेद होते देख चिन्तान्वित मनसे द्वे पायनका स्मरण किया। ऋषिके उपस्थित होने पर सत्यवतीने कहा, 'वत्स! तुम्हारे भाईक विना कोई सन्तान छोड़े खर्ग को सिधार गये हैं, अतएव तुम उनके क्षेतमें एक पुत उत्पादन करके वंशकी रक्षा करो।' द्वैपायनने अवनत मस्तकसे मातृवादयका पालन किया। अनन्तर यथाकालमें उन्होंने धृतराद्ग, पाण्डु और बिदुर नामक तीन पुत उत्पादन किये। द्वैपायनके वरसे धृतराष्ट्रके गान्धारोगर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन प्रधान थे। पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे युधिष्ठिर. भीम और अर्जु न तथा माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। पांडु-के पुत पाण्डव नामसे और धार्त्तराष्ट्राण कौरव नामसे प्रसिद्ध हुए, द्रौपदीके गर्भसे युधिष्ठरके प्रतिविन्ध्य, भीमके सुतसोम, अर्जु नके श्रुतकीर्त्ति, नकुलके शतानीक और सहदेवके श्रृतकर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। युधिष्ठिर-शैवराजकन्या देवकीके गर्भसे यौधेय नामक एक और पुत हुआ । इसी प्रकार काशिराज-टुहिता वलन्धरासे भीमके सर्वग नामक पुत और हिड़िम्वा राक्षसीसे घटोत्कच, नकुलके चेदिराजकन्या करेणुमतीसे निरमित,

इरिवंश और महाभारतमें प्रकटित पूर्व वंशावली-के साथ इसका बहुत कुछ मेल है, उसके बाद गोलमाल है।

गं यहां फिर मेल देखा जाता है।

<sup>\*</sup> भागवतके मतने वितथके पुत्त मन्यु और मन्युक्त पांच पुत्र बृहरतेत्र, जय, महावीर्थ, नर और गर्भ हुए। बृहर स्वत्रके पुत्र हस्तीने ही हस्तिनापुर वसाया। - नेके तीन पुत्र हुए, अजमीह, द्विमीड और पुरुमीह।

<sup>(</sup> भागवत श्राद्रार्भ् )

<sup>ा</sup> अञ्चेनके नागकन्या उद्धपीछे एक पुत्र और चित्रां। गदाछे बम्नूबाइनका जन्म हुआ था।

मद्रदृहिता विजयाके गर्भसे सहदेवके मुहोत नामक पुत उत्पन्न हुए। पाण्डवकुलमें एक पुतके जन्म लेने पर भी कुर-पाण्डवयुद्धमें सभी निहत हुए। एकमात खुभद्रागर्भजात अर्जु नके लड़के अभिमन्युसे वंशरक्षा हुई है। विराट्राजदुहिता उत्तराके गर्भसे उनके लः गासका पक पुत भूमिण्ड हुआ। भगवान वासुदेवने इस अकालजात शिशुको सञ्जीवित कर दिया। कुल परिश्लीण होने पर जन्म होनेके कारण वालकका परिश्लित् नाम रखा गया। परिश्लित्के औरस और माद्रवतीके गर्भसे जनमेजयकी उत्पत्ति हुई। जनमेजयके शतानीक और शंकुकर्ण नामक दो पुत तथा शतानीकको अध्यमेधदत्त नामक एक पुत्त हुए। (महाभारत आदिपर्व ६४ और ६५ अध्यायमें वंशका वर्णन कीत्तित हुआ है।)

महाभारत, हरिवंश, विश्णुपुराण और श्रीमद्भागवत-से पुरुवंशीय राजाओं के जो नाम पाये जाते हैं, उनमें-एक दूसरे साथ कुछ कुछ पृथक्ता देखी; जाती है। भागवतादिके अवलम्बन पर चन्द्रवंश शब्दमें जो तालिका दी गई है तथा वर्त्तमान प्रवन्थमें जो महाभारतीय वंशा-ख्यान उद्धृत किया गया है, उन सक्का सामश्रस्य करके सम्यक् आलोचना करनेसे जाना जा सकता है, कि इस चन्द्रवंशीय पुरुराजवंशसे एक और महातपा ब्राह्मण वा ब्रह्मिया और दूसरी और तेजवीर्थसम्पन्न श्वित्यजाति उत्पन्न हुई थी। पहले हरिवंश (२६ अ०) से उद्धृत किया जा चुका है, कि सुहोलके पुत्र काशिक और गृत्स-मद्धे। किन्तु विष्णुपुराण पढ़नेसे मात्रुम होता है, कि श्वतवृद्धके पुत्र सुहोतसे ही गृत्समद्की उत्पत्ति हुई है। वंशपरम्परामें कैसा ही गोलमाल क्यों न रहे, मूल घटना सवींकी प्रायः एक सी है।

गृत्समद् एक ऋग्वे दके मन्तद्रप्ट्रा ऋषि थे। भाष्य-कार सायणने उक्त महाश्रन्थके द्वितीय मण्डलकी अनु-क्रमणिकामें उसका परिचय दिया है। इसके वाद (हरि-वंश ३२ अ०) राजा दिवोदासके प्रसङ्गकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि काशसे छठीं पीढीमें राजा दिवोदासने जनमग्रहण किया। ऋग्वेदमें इनके जलवीर्य और पुण्यवताका विशेष परिचय पाया जाता है।

(दियोदास देखी।

दिवोदासके पुत्र राजा मित्रयु अविधे कहलाते थे। उनके पुतका नाम मेलायण था, जिनके वंशधरगण मेवेय नामसे प्रसिद्ध थे। महात्मा कांगसे २०वीं पीदीमें मार्गमृनि की उत्पत्ति हुई । महामारतीक महाराज मतिनाका पुत अतिरथ भागवत और विष्णुपुराणमें अवितरथ नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके व शमें महामुनि कण्य हुए। कण्यमे ही मेधानिधिको उत्पत्ति है। मेधानिधिके महिमागुणसे ही उनके वंशधर प्रस्कण्य आदि ब्राह्मण वर्णमें विभक्त हुए तथा एक एक विशिष्ट धेणीके कहलाने लगे । दूसरे महाराज अजमीढ़ थे। महाभारतमें इन्हें ऐक्षका गर्भ जात पुत बतलाया है, किन्तु हरियंश, विष्णुपुराण और भागवनपुराणमें कुछ और तरहसे छिखा है। अजगीड़से वियमेधादि दिजोंकी उत्पत्ति हुई है। भागवतके मतसे अजमीढ़के पुत्र बृहदिवुके व शमें पारके औरससे बहादत्त उत्पन्त हुए। ये छोग क्षतिय कह कर परिचित थे। ब्रह्मदत्तके पुत विव्वकसेनमे योगशासको रचना की। अजमीढ़से ७वीं पीढ़ीमें मुद्रल नामक जिन महापुरएने जन्म लिया, उन्होंसे मीहत्यगीवीय ब्राह्मणेंका आविर्भाव हुआ है। तंसुसे ६ठों पीड़ोमें गगंकी उत्पत्ति हुई। भागवतपुराण, विष्णुपुराण और हरिव शमें कुछ कुछ वंशविषयंय लक्षित होने पर भी गर्गसे श्रवियकुलमें शिनिका उद्भव और गार्ग तथा शैन्य ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति मानी गई हैं। गर्ग भ्राता महावीर्यसे दुरितक्षय (उरुस्य:-का उन्हव हुआ। उनके तय्यार्शण, कवि और पुकरा चिण नामक तीन पुत हुए। अविययंगक जन्म लेने पर भी इन तीनीने ब्राह्मणत्य प्राप्त किया था। इस प्रकार पुरु वंशोद्भव अतेक राजकुमारीने अपने अपने तपःप्रमाय-से ब्रह्मत्व या ब्राह्मणत्य छाम किया था । मुनिश्रेष्ट विश्वामित भी इसी व गर्क थे। विश्वाभित्र देखी।

विष्णुपुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि ३१वीं पोढ़ी-में तथा राजा जनमेजयसे २६वीं पीढ़ोमें क्षेमक नामक एक महापुरुपने जन्म ग्रहण किया। इन्हीं महात्मासे त्राह्मण और श्रोतियव शके प्रतिष्ठाता पुरुव गका गीरव निरोहित हुआ।

पुरु—पंजावके एक हिन्दू राजा। ईसासे ६२७ वर्ग पहले जब ब्रीकदिग्विजयी आलेकसन्दर भारतवर्ग पर चढ़ाई करनेको आये, उस समय महाराज पुरुने वितस्ता नदीके किनारे दलवलके साथ उन्हें रोका था। वे पौरवयंशीय और चन्द्रवं शोज्जव राजा थे, ऐसा जन साधारणका विध्वास है। उनका राज्य कहां तक फैला हुआ था इस विपयमें आज तक कोई प्रकृष्ट विवरण नहीं मिला है। हस्तिनापुरमें उनकी राजधानी थी और वितस्ता तथा असिकी (चन्द्रभागा) दोनों नदियोंका मध्यवतीं समग्र भूभाग उन्होंके अधिकारमें रहा। किन्तु उत्तरी सीमामें वन्यमूमि छोड़ कर और अधिक स्थान उनके दखलमें न था।

पार्वत्यभूमि पर Glancanicae or Glaussae नामक जाति रहती थी। महामित अलेकसन्दरने उन्हें परास्त करके ३७ नगरों पर अपना अधिकार जमा लिया और खदेश लोटते समय वे उन्हें पुरुराजके शासनाधीन छोड़ गये। उस राज्यके पूर्व असिक्री और ऐरावती नदी पर्वन्त विस्तीर्ण भूमि पर एक दूसरे पुरु नामक राजा राज्य करते थे। उन दोनोंमें लड़ाई हुआ करती थी। दक्षिण पूर्वभागमें काठी (Cathaei) और अन्यान्य साधीन सामन्तराजगण राज्य करते थे।

माकिद्नाधिप आलेकसन्दर जब उन्हें दमन करनेके लिये अवसर हुए, तव हिन्दूवीरने उन्हें खासी सहायता पहुंचाई थी। दक्षिणमें मूलतानवासी मालवा वा मह (Malli)का आधिपत्य था। महाराज पुरु परमात्मीय अभिसारपति (Abissaras)के साथ मिल कर नलींकि दमनमें अवसर हुए, किन्तु अकृतकार्य हो वापिस आये। उन राज्यके पश्चिम वितस्तानदीके दूसरे किनारे तक्षिणलाराज्य था। यह तक्षिणलापति उनके साधीनतालोपी और परमणल थें।।

जव माकिदनपति आलेकसन्दर भारतवर्ष आये, उस समय पुरु राजाके चतुष्पार्श्ववत्तीं राजन्यवर्ग परस्पर विरोधी थे । भारतके अदृष्टसे गृहविच्छे द ही सच-नाशक मूल है। आलेकसन्दर कन्धारको अतिक्रम कर सिन्धुनदी पार हुए। तक्षशिलापतिने सुयोग समक कर अ। लेकसन्द्रको हस्तगत किया । छिद्रान्वेपी गृहशतु-के सुचतुर कौशलसे ताड़ित ग्रीकसेना क्षित्व की तेंको परास्त करनेमं समर्थ हुई थी । ग्रीक इतिहासमं दुवराज-का नाम ज्वलन्त अक्षरमें लिखा हुआ है । किन्तु नृशंस विश्वासवातक, खदेशत्रोही और हीनचेता तक्षशिलापित जनसाधारणके निकट घृणादृष्टिसे उपेक्षित होते हैं।

तक्षशिलाधिपति ग्रीकसेनाके साथ किस स्थान पर मिले अथवा माकिद्नसेनाने पुरुके आक्रमणकी प्रतीक्षा करके कहां पर छावनी डाछी थी इस विषयमें पुत्नतत्त्व-विदोंका भिन्न भिन्न मत है।(१) किन्तु पूर्वतन वड़े छाट हार्डिज और डा॰ कनिहम आदिकी अनुसन्धित्सु गवे-पणा द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि वितस्ता नदीके किनारे जलालपुर नामक स्थानमें आलेकसन्दरकी सेनाका अड्डा था। श्रीकवीरका आगमनपत ले कर वाग्वितएडा करनेके वदलेमें तत्प्रतिष्ठित चुकेफल और निकिय नगर-के अवस्थान और ध्वंसावशेषसे सं घटित इतिहासाबली-की सम्यक् पर्यालोचना कर देखनेसे दोनोंका सामञ्जस्य और संस्थान वहुत कुछ अनुमान द्वारा सिद्ध हो सकता है (२) । आलेकसन्दरने ५० हजार सेनाः लेकर (इनमेंसे तक्षशिलापतिकी ५ हजार थी ) वितस्ता नदी-के किनारे जलालपुरके निकट छावनी डाली थी। वर्षा-ऋतुमें नदीमें वाढ़ आ जानेसे वे वितस्ता नदी पार न कर सके, केवल सेन्यदलको साथ ले इधर उधर पार करतेकी चेष्टा करने लगे। दूसरे किनारे मङ्ग और महबत्-

<sup>ः</sup> पद्छे इस स्थानका नाम भाव वा महिल्यान थः, पर अभी मृततान बहुलाता है।

पं तथकित उत्तर पार्वेनीय Abissares राज्य है।

<sup>(</sup>१) Elphinstone's Kabul I. 109; and Burmes, Bokhara, ii. 49. Beng. As. Soc Jour. 1856 p. 473 जेनरल कोर्टने लिखा है कि, वर्त्तमान क्षेत्रम नगरमं उनकी राजधानी थी। खिलिपत्तन नामक स्थानमें वितस्ता पार कर अन्होंने पहिकोटीमें लडाई ठान थी। Beng. As. Soc Jour. 1848, p. 619. जेनरल एउट लिख गये हैं, कि क्षेत्रममें भीक जेनाकी और नारदाबादमें पुरुषेनाकी छावनी थी।

<sup>( 2 )</sup> Arch. Sur. Rep. II p. 179-81.

क किसी किसीका कहना है, कि आलेकपन्दरके साथ है काल इप् हनार पदाति और १५ हनार अशारोही थे। अलाबा इसके हस्त्याहड संदयसंख्या भी कम न थी।

पुरके निकट टहर कर पुरु दलवलके साथ उनकी सैन्य-चालनाका निरीक्षण करते थे। पुरुराजके अधीन प्रायः ३० हजार पदाति, ४ हजार अध्वारीही, २०० हस्ती और ३०० रथारोही योद्धा वर्त्तमान थे।

किस स्थान पर दोनों दळमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ, प्लुटार्कप्राप्त आलेकसन्दरके खहस्तलिखित पतानुसार उसका जो कुछ विवरण मालुम हुआ, वह नीचे लिखते हैं—

'इस प्रकार उपर्यु परि अनुसन्धान करके भी जव उन्हें नदी पार करनेका सुविधाजनक पथ न मिला, तव वे क्रमशः निराश होने लगे। इसी वीचमें एक दिन रात-को घोर धनघटासे आकाश आच्छादित हो गया। आलेकसन्दर स्योग समक कर प्रकृष्ट सेनाको साथ ले प्रवल प्रमञ्जन और प्रावृद्धाराके सम्मुख हुए। एकमाल विद्युद्दाम ही उनके पथका सहाय था। निशान्धकारमें आवरित श्रीकसेना छिप करके पाव त्यदेश होते हुए ( दारापुर पार कर दिलावरके समीप ) वितस्ता पार कर गये। यहां हिन्दू प्रहरियोंने ग्रीकोंको नदी पार करनेकी चेष्टा देख पुरुराजको खबर दी। पुरुराज उसी समय अभ्वारोही सेनाके साथ नदीके किनारे पहुंच गये। किन्तु वे करते क्या, आलेकसन्दर प्रायः छः हजार सेना-के साथ वहां डटे हुए थे। अतः उन्होंने आलेकसन्दरकी गति रोकनेके लिये पुत्रोंको भेजा। वर्षाका समय था, भूमि कर्वममय हो गई थी, रथचक्रके जमीनमें धंस जानेसे वे युद्धमें विलकुल अशक्त हो गये। अध्वारोही सेता साथ ले पुरुके पुत्र शोरगुल करते हुए शंतुओं पर टूट पड़ें । घोरतर युद्धके वाद राजपुत और सिकेन्दरप्रिय प्रसिद्ध ग्रीकयोद्धा चुकेफलस् (Bukephalus) दोनों ही मारे गये । पुरुराज पुसका संवाद सुन कर प्रतिहिंसार्थ द्छवलके साथ आगे वढ़ें। सिखगुद्धके विख्यात चिलियनवाला-युद्धक्षेत्रमें (वर्त्तमान मोङ्ग और पिम पर्वं तमालाके मध्यवत्तीं विस्तृत समतल क्षेत्रमें ) पुर-राज और आलेकसन्दरका भीषण समर आरम्म हुआ। युद्धमें पुरुराजको हार हुई। क्रेटिरस और अन्यान्य ग्रीक-सेनापतिगण नदोके दूसरे किनारेसे क्षतियसैन्यका परा-भव देख वहुत जल्दीसे नदी पार कर गये और भागते

हुए भारतीय सेनाका पीछा कियाः । इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि श्रीकशिविर और युद्धक्षेत्र पायः आपने सामने था । ७

शतुके शरसे विक्षित हस्तिसेना इधर उधर आगने छगो। पुरुराज मी सैन्यद्छका छत्रभङ्ग देख पाण छे कर भागे। किन्तु राहमें वे अनुसरणकारी सेनाद्छसे पकड़े गये और वन्दी क्रपमें आलेकसन्दरके सामने छाये गये।

श प्रवाद है, कि बन्दिसावमें आ कर भी पुरुशानने हिकेन्द्रकी अधीनता स्वीकार न की। उन्होंने सहपेसे उत्तर दिया था, 'देव-दुर्विवाकसे यसिप में तुमसे परास्त हो गया हूं, तो भी सभी मेरे बाहुबळका लाघन नहीं हुआ है! स्नाप पीर हैं, वीर धभेकी रक्षा कीजिये! में आपको राजोचित मल्युद्धमें साह्वान करता हूं! चीर सालेकसम्बद्धने उनके साह्यप्रस्तान पर अपनी सम्मित प्रकट की। दोनोंमें मल्युद्ध आरम्म दुआ। इस बार मानिदनपतिने पुरुगानके बाहुबळसे अपना परामव स्वीकार किया और वे उनके मुजबळका विशेष प्रशंसावाद करने लगे। उत्तर पुरुशानने वनकी हिन्दूधमेंचित सम्मानके साथ सम्बद्धना की थी।

शीक ऐतिहासिक ब्याची, प्छार्क, आरियन, दिगोदीरस, कार्टियस और जाष्टिन, आदिके वर्णनानुसार जाना जाता है, कि विताता नवीके परिवमी किनारे समाय आठेकसन्दर अपना चितर रख नदी पार हुए थे। यहां विख्यात सेनापति चुकेफलसकी कनके जपर वे 'चुकेफल' नगर की प्रतिष्ठा कर गये। दिगोदीरस आदिने साफ साफ लिखा है, कि निकिया नगरके परिवस और नदीके परिवमी किनारे 'चुकेफल' नगर वतायां गया। निकिया नगरकी टक्काल (Mint) से जी सव सुन्ना प्रचलित हुई है, वह वक्तमान मींगराज्यमें पाई गई है। उस देशके लीग अति प्राचीन सुन्नाओंको 'मींगशाही' सुन्ना कहते हैं। इन्छ सुन्नाएँ ऐसी भी हैं जिनमें 'निक' एटर रहनेके कारण वे निकियाका रूपान्तर समझी जाती है। मोगक राजके नामानुसार इसका मोल नाम पड़ा है। तक्षसिलांसे जो जिलांछिप प्राप्त हुई है, उसमें महाराज मोगका नाम देखा जाता है।

<sup>#</sup> Anabasis, Vol. V. p. 18.

णं इससे यह सिद्धान्त हुआ, कि जलालपुर और मोंगरान आमने सामने रहनेके कारण प्रीक और हिन्दूनेनाके केन्द्र-स्थलस्वमें परिगणित हुआ था।

राजाकी वदान्यता, विनय और वलबीर्य से तुप्त हो उन्हें वन्धनपाशसी मुक्त कर दिया । पीछे वे दोनों वन्धुता-स्वमें आवद हुए। अनन्तर राजा पुरुने सिकन्दरका सहायतासे पूर्वकथित (Glaussae) मल और काटो जाति-को परास्त कर अपने साशनाधीन कर लिया । उदारचेता ग्रीकवीर सिकन्दर पुरुराजके पञ्जावका सिंहासन दे कर अपने राज्यको छौट गये। जानेके पहले उन्होंने अपने पसिद्ध अध्वारोही सेनिक वुकेफलसके स्मरणार्थ और विजय घोषनार्थं निकिया नगर बसाया। सिकन्दर वापिस तो हुए पर ग्रीकसेनाका रक्षणा-वेक्षण-भार वे एक शासन-कर्त्ताके ऊपर छोड़ गये। ईसासे ३२३ वर्ष पहले जव आलेकसन्दरकी मृत्यु हुई, तव शासनकर्त्ता युदिमी (Endemos)ने अपनेको पञ्जाव प्रदेशके एकेश्वराधिपति वनानेकी कामनासे सेनापति युमेनिककी सहायता द्वारा पुरुराजको मार डाला। जव महाराज पुरु पड्यन्तकारी दलसे निष्ठुरतापूर्व क मारे गये, उस समय मौर्य राज चन्द्रगुप्त वर्त्तमान थे। पुरुके निधन पर युदिमोको विशेष वाधाविवका सामना करना पड़ा । अच्छा मौका देख कर हिन्दूवीरोंने चन्द्रगुप्तके अधीन ग्रीकों पर चढ़ाई कर दी। अन्तमें उन्हें विशेषरूपसे निर्जित और ताड़ित करके चन्द्रगुप्त ही पञ्जावके राजा हुए।

पुरक्तत्स (सं॰ पु॰) मान्धाताके एक पुतका नाम। मान्धाताके दो पुत थे, पुतकुन्स और मुचुकुन्द । इनकी पत्नी ऋषिके शापसे नदी हो गई थी। (हरिव'श १२ अ)

राजा शशिवन्तुकी छड़की इन्द्रमतीके गर्भसे पुरुकुत्स-का जनम हुआ था। ये नर्मदा नदीके आस पासके प्रदेशों पर राज्य करते थे। पुराणमें छिखा है, नागोंने अपनी वहन नर्मदाका पुरुकुत्सके साथ विवाह कर दिया। नागों और नर्मदाके कहनेसे पुरुकुत्सने रसातल जा कर मौनेय गन्थवांका संहार किया था। आयजातिके सर्व प्राचीन प्रन्य ऋग्व देमें छिखा है, कि दस्युनगरका ध्वंस करनेमें इन्द्रने राजा पुरुकुत्सको सहायता पहुंचाई थी। नर्मदाके गर्मसे इन्हें तसदस्यु नामक एक पुत उत्पन्न हुआ। दक्ष आदि प्रहिष योंने इन्हें विष्णुपुराण सुनाया था।

्ह ह् ११६३१७, ११११२११७) पुरुकुत्सव (सं ० पु०) इन्द्रके एक शत्रुका नाम। Vol. XIV. 26 पुरक्तत्सानी (सं ० खोठ- स्कृत्सस्य पत्नी वाहुलकात् आनङ्-डीष् ; पुरक्तत्समानयति अन-णिच्-अण्, गौरा-दित्वात् डीप् वा । पुरक्तत्सकी पत्नी ।

पुरुकृत् (सं० ति०) पुरु-क्न-किप् तुक् च । १ प्रभूत-कर्त्ता। २ कर्मकर्त्ता।

पुरुकृत्वन् ( सं ० ति० ) वहुकर्मसृत्, इन्द्र ।

पुरुश्न ( सं॰ त्नि॰ ) पुरवः श्रघोऽन्नान्यस्य छान्दसः अन्त्य लोपः । वह्नन्नसामी, प्रचुर अन्नका अधिपति ।

पुरुखा (हिं पु ) यु खा देखी।

पुरुगूर्त्त (सं० ति० ) वहुद्वारा उद्यमित, वहुतोंसे प्रयत्न किया हुआ।

पुरुचेतन (सं० ति०) वहुशाता, अनेक विषयोंका जानने बाळा।

पुरुज (सं० पु०) पुरुजन-छ। १ भरतवंशीय सुशान्तिके

एक पुतका नाम । २ पुरुराजाके एक पुतका नाम । पुरुजयपाल-पृथ्वीराजके प्रतिद्वन्द्वी कन्नोजाधिपतिके पौता। ये स्य जयपाल नामसे प्रसिद्ध हैं। पञ्जाव-की राजधानी लाहोर और कन्नोजमें ये राज्य करते थे। सिन्धुके अधिपति चाँद्रायके साथ इनकी भारी दुश्मनी थी। इनके पुत्र भोमपालको कन्या नहीं देना ही विवाद-का कारण था। घीरतर युद्धके वाद पुरु जयपाल भोजचाँदका आश्रय हेनेको वाध्य हुए । ४१० हिजरी-में सुलतान महमृद कालक्षरराज नन्दकी आक्रमण करने-के लिये भारतवर्ष आये । इधर पुरु भी नन्दका सहायता देनेके लिये अप्रसर हुए। पर यमुना नदीके किनारे दोनों में मुठमेड़ हुई और पुरु पराजित हो कर नौ दो ग्यारह हो गर्भ । किन्तु ऐतिहासिक अल वेहनिने लिखा है, कि ४१२ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई। यदि यह सत्य हो, तो काल अर-युद्धमें ही उनको मृत्यु हुई थी, इसमें सन्देह नहीं ।

पुरुजात (सं० ति०) वहुप्रादुर्भाव।

पुरुजाति (सं पु॰ ) पुरुज, राजा सुशान्तिके एक पुतका नाम।

पुरुजित् (सं॰ पु॰) १ कुन्तिभोजके पुत्र । ये अर्जुनके मामा थे । २ शशविन्दवंशीय रुचकपुत्रभेद । ३ विष्णु । ४ एक क्षतिय राजा । ये महादेवके भक्त थे और कृपा-मुनिके कुलमें उत्पत्न हुए थे ।

पुरुणीथ ( सं० पु० ) अनेक लोगों के नेता । पुरुत्मन् (सं० पु०) पुरुरातमा यस्य पृषीदरादित्वात् साधुः । प्रचुरात्मक, वहु आत्मा । पुरुदंशक (सं॰ पु॰) पुरु बहुलं यथास्यात्तथा दशतीति दम्श-ण्बुल्। हंस। पुरुदंशस् ( सं॰ पु॰ ) पुरुं दैत्यविशेषं दशति हिनस्तीति दन्ण असुन्। इन्द्र। (ति०) पुरुणि दंशासि यस्य। २ वहुकर्मयुक्त । पुरुदत्न (सं० पु०) दा-क्त, दत्त्नं धनं, पुरु-दत्तमस्य । वहु-धन इन्द्र । पुरुदस्म (सं० ति०) पुरु-दसति वाहुं मन् । १ वहुनाशक । २ वहुकर्मक, वहुकर्मयुक्त । ( पु० ) ३ विष्णु । पुरुदिन ( सं० क्ली० ) वहुदिन, अनेक दिन । पुरुद्रव्स ( सं॰ हि॰ ) प्रभूत जलयुक्त । पुरुद्रह् (सं० त्रि०) १ वहुतींके द्रोहकारक । (पु०.) २ पुरुहूत, इन्द्र । पुरुद्वत् ( सं० पु० ) वेदभींसे उत्पन्न क्रोब्टुवंशीय मधुसुत नृपभेद् । पुरुधा (सं॰ अव्य॰) पुरु वह्वर्थत्वेन संख्याशव्यत्वात्-प्रकारे धाच्। वहु प्रकार, अनेक तरहका। पुरुपन्था ( सं॰ पु॰ ) राजभेद । पुरुपुत्र (सं० ति०) वहु औषधि वनस्पतिरूप पुत्रयुक्त । पुरुपेशा ( सं० स्त्री ० ) वहुरूपा औषघि । पुरुपेशस् ( सं० ति० ) वहुरूप । पुरुप्रजात् ( सं० ति० ) वहु प्रादुर्भाव । पुरुप्रशस्त (सं० ति०) वहुधा स्तुत, अनेक प्रकारसे स्तुत । पुरुप्रिय (सं० ति० ) वहुतोंका शीत्या । पुरुष्रे प ( सं० ति० ) प्रे रक, भेजनेवाला । पुरुप्रे पा ( सं० स्त्री० ) वहुविध, अनेक प्रकार । पुरुभुज (सं० ति० ) पुरु-भुज-किप्। प्रभूतभोजी, वहुत खानेवाला । पुरुमू ( सं० पु० ) वहु-यञ्चभवन । पुरुभूत ( सं॰ पु॰) पुरुद्धत गृषोदरादित्वात् साधुः । पुरु-हुत, इन्द्र। पुरुभोजस् (सं॰ पु॰ ) पुरुन् भुंक्तेभुज असून । १ मेघ, वाद्ल। २ मेष, भेड़ा। (ति०)३ पृचुरभोजक, वहुत

**खानेवा**ला ।

पुरुमन्तु (सं० ति०) वहुविषयज्ञाता, जो अनेक विषयोंसे जानकार हो।
पुरुमन्द्र (सं० ति०) वहुतसे छोगोंका अप्रियमाजन।
पुरुमह्र (सं० ति०) आङ्किरसगोत व्यक्तिभेद।
पुरुमाय (सं० ति०) वृत्तहननादि वहुकर्मा इन्द्र।
पुरुमित (सं० पु०) १ महारथ नृपभेद। २ धृतराष्ट्रका पुत्रभेद। ३ राजविशेष।
पुरुमीह (सं० पु०) सुहोतके औरस और ऐश्चाकीके गर्भसे उत्पन्न अजमीहके अनुज कौरय-नृपभेद।
पुरुमेध (सं० पु०) वहुविध यज्ञ, अनेक प्रकारके याग।
पुरुर्श (सं० पु०) रथो रहतेः पुरुः रथो रहणं यस्य।
प्रतिदिन भुक्तिभेदानुसार वहुरहण आदित्य।
पुरुरवस् (सं० पु०) सोमचंशीय नृपभेद।

पुरुरावन् (सं० ति०) वहुविरुद्ध फलदाता ।
पुरुरुव् (सं० ति०) प्रभूतदीप्ति, चमकीला ।
पुरुरुप (सं० ति०) पुरु वहुद्धपं यस्य । वहुद्धपयुक्त,
अनेक द्धप धारण करनेवाला ।
पुरुलिया—विहार और उड़ीसाके मानभूम जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० २२ ४३ से २३ ४४ उ० और
देशा० ८५ ४६ से ८६ ५४ पू०के मध्य अवस्थित है ।
भूपरिमाण ३३४४ वर्गमील और जनसंख्या १०२४२४२
है । इसमें ३ शहर और ४२७३ ग्राम लगते हैं । क्षालदा
शहरमें लाहका कारवार है और रघुनाथपुरमें लाह तथा
उत्कृष्ट रेशमी वस्त प्रस्तुत होते हें जो वाणिज्यके लिये
मिन्न मिन्न देशोंमें भेजे जाते हैं । १८३० ई०में गङ्गानारायण नामक किसी व्यक्तिने वराभूमके पार्वत्य अधिवासियोंका दलपति हो कर अङ्गरेजके विरुद्ध युद्ध किया
था । मानभूम देखो ।

२ उक्त जिलेका एक ग्राहर । यह अक्षा० २३ २० उ० और देशा० ८६ २२ पू० ; वङ्गाल नागपुर रेलवेकी सीनी-आसनसोल शाखा पर अवस्थित है। जनसंख्या १७२६१ है। यहां १८७६ ई०में एक म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। नगरका राजस्व कुल मिला कर २७०००) ६० है। यहां एक कारागार है जिसमें २७६ कैदी रखे जाते हैं।

पुरुवत्मेन् (सं० ति०) वहुपथयुक्तः ।
पुरुवार (सं० ति०) वहुकत्तृ क वरणीय । '
पुरुवीर (सं० ति०) वहुक्तम् वीर ।
पुरुवेपस् (सं० ति०) वहुक्तमां, प्रभूत कर्मसम्पन्न ।
पुरुवेपस् (सं० ति०) वहुक्तमां ।
पुरुवाक (सं० ति०) वहुक्तमां ।
पुरुवाक (सं० ति०) पुरुः चन्द्र आह्वाद्कत्वात् दीतिरस्य पृषोदरादित्वात् साधुः । वहुदीप्तिक, पृभूतदीप्तियुक्त ।
पुरुष (सं० पु०) पुरित अग्रे गच्छतीति पुर-कुषण्

पुरुष (सं०पु०) पुरित अग्रे गच्छतीति पुर-कुषण् (पुरः क्वथण्। टण् धा१४) पिपित्तं पूरयित वलं यः पुर्श्वेशेते य इति वा, पुरि देहे शेते शी-ड पृवोदरादित्वात् साघुः। १ पूमान, मनुष्य, आदमी।

> "द्विधा कृत्वातमनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् । अद्धेन नारो तस्यां स विराजमस्त्रजत् पूमुः॥" ( मतु १।३२ )

विधाताने अपनी देहका दो भाग करके आधे भागमें पुरुवकी और आधेमें स्त्रोकी सृष्टि की थी।

पर्याय—पुरुष, ना, नर, पञ्चजन, पुमान, अर्थाश्रय, अधिकारो, कर्माह, जन, अर्थवान, मनुष्य, मानव, मर्च्य, मानुष, मनु, रसिकराज, धनकामधामा, मदनशायकाङ्क, मन्मश्रायकलक्ष्य। (कविकर्वकता)

वंदिक पर्याय —मनुष्य, नर, धव, जन्तु, विश, क्षिति, कृष्णि, चर्षणि, नहुष, हरि, मर्या, मर्च, ब्रात, तुर्वश, दुद्धु, आयु, यदु, अनु, पूरु, जगत्, तस्युप, पञ्चजन, विवस्त्रन्त, पृतना । (वेदान्वण्ड २ अ )

रितमझरीमें लिखा है—पुरुष चार जातिका है,—शश, मृग, वृष और अश्व । इनका लक्षण—वाक्य अति सुकीमल, सुशोल, कोमलाङ्ग, उत्तम केशयुक्त, सकलगुणाकर और सत्यवादो ये सब लक्षण पुरुप शश हैं। सर्वदा मधुर वाक्य वोलनेवाला, दीर्घनेतयुक्त, अत्यन्त भीरु, चपलमित, सुदेह और शीघ्रगामी ये सव लक्षणाकान्त पुरुप मृग हें, वहुगुण और अनेक वन्धुगुक्त, शीघ्रकाम, नताङ्ग, सुन्दर देह और सत्यवादी ये सब लक्षणगुक्त पुरुष वृप हें, जिनका उदर और कोटिदेश कृश है, जिनके कण्ड और अधरोष्ठ उप्र तथा दशन, नासिका और श्रोत-

दीर्घ हैं, उन्हें अभ्वजातीय पुरुष समफना चाहिये। रसमक्षरीमें पुरुषोंके पृति जातिकथनस्थलमें ऐसा लिखा है,—

> "पाते त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह । शास्त्रे वोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पश्चलक्षणः ॥" ( पाचीन )

जो सत्पातको दान देते हैं, गुणके अनुरागी हैं, परिजनके साथ भोगी हैं तथा जो शास्त्रज्ञ हैं और युद्ध-स्थलमें वीरत्व दिखलाते हैं, वे ही पश्चविध लक्षणाकान्त पुरुपपद्वाच्य हैं। सामुद्रिक मतमें पुरुपके शुभाशुभ लक्षणका विषय इस प्कार है,—

"कीदूशः पुरुषो वन्द्योऽवन्द्यो वा कीदूशो भवेत्॥" (सामुद्रिक)

कैसे लक्षणके पुरुष श्रेष्ठ वा निन्दनीय होते हैं, श्रीकृष्णने जव यह विषय महादेवसे पूछा, तव उन्होंने कहा था,—जिस पुरुषके पांच अङ्ग दीर्घ, चार अङ्ग हस्व और पांच अङ्ग सूद्म तथा जिसके छः अङ्ग उन्नत, सात अङ्ग रक्तवर्ण, तीन अङ्ग गभीर और अपर तीन अङ्ग विशाल होते, वहीं महापुरुष हैं अर्थात् ये सव लक्षण जिनमें हैं, वे पुरुष श्रेष्ठ माने जाते हैं। दोनों वाहु और नयन दोनों कुक्षि, नासापुट और दोनों स्तनका मध्यस्थल ये पांचों अङ्ग दीर्घ होनेसे प्रशस्त है। श्रीवा, दोनों कान, पृष्टदेश और दोनों जांघ ये चारों अङ्ग हस्व होनेसे प्रशंसनीय है। अंगुळिपर्व, दन्त, केश, नख और चर्म ये पांच अङ्ग सुक्ष्म होनेसे मङ्गळपद है। नासिका, नेत्न, छळाट, द्न्त, मस्तक और हृदय ये छः अङ्ग उन्नत, पाणितल, पादतल, नयन-प्रान्त, नख, तालु, अथर, जिह्वा इन सात अङ्गोंका रक्तवर्ण होना शुभकर है। खर, वुद्धि और नाभि गम्भीर तथा वक्षः-स्थल, मस्तक और ललाट ये तीन स्थान विस्तीणं होनेसे शुभ होता है।

जिस पुरुषके नयनका प्रान्तभाग रक्तवर्ण है, लक्ष्मी उसे कभी भी छोड़ कर नहीं जाती। जिसका शरीर तप्त काञ्चनकी तरह गौरवर्ण है, वह कभी भी निर्धन नहीं होता। जिसके नयन क्षिण्ध हैं, वे सौभाग्यशाली और जिनके करतल क्षिण्ध हैं, वे ऐर्थ्वर्यशाली होते हैं। काम नहीं करने पर भी जिनके दोनों हाथ कठिन होते, पथभ्रमण करने पर भी जिनके दोनों चरण कोमल रहते तथा जिनके पाणितल सर्वदा रक्तवर्ण दिखाई देते वैसे मनुष्य अवश्व राज्यलाभ करते हैं। जिसका लिङ्ग दोर्घ होता वह दरिद्र, स्यूल लिङ्ग होनेसे निर्धन, रूश होनेसे सौभाःयशाली और हस्त होनेसे राजा होता है। (माधुदिक)

(रेखा द्वारा स्त्री वा पुरुपका शुभाशुभ छक्षण जाना जाता है, इसका विचरण सामुद्रिक ज़ब्दमे छिखा है।)

वृहत्संहितामें पुरुषका लक्षण इस प्रकार लिखा है— द्धितिपुण दैवज्ञ पुरुपके उन्मान, मान, गति, संहति, सार, चर्ण, स्ने ह, खर, प्रकृति, सत्त्व आदि देख कर भूत, भवि-ध्यत् और वर्त्तमान इन तोनों कालका फल कह सकते हैं। जिसके दोनों चरण सर्वदा धर्माक नहीं रहते, जिसका तलदेश अत्यन्त छुकोमल, वर्ण गौर, समस्त अंगुलि परस्पर सुसं।श्रप्, समस्त नखर (नाखून) सुन्दर अथच ताम्रवणं, पाणिव्हेश मनोहर होता, जो सबेदा ईषदुःण, आंगराल, सु।नगूढ़ गुल्फविशिष्ट तथा कूमेपृष्ठका तरह समुन्नत है, वहा पुरुष राजा होता है। जिसके दोनों वरणके नख ग्रूपको तरह रुझ और पाण्डु-वर्ण तथा जिसके दोनों पद चक्र, शिराल, शुक्तप्राय और अत्यन्त विरल अंगुलिविशिष्ट होते, वह व्यक्ति दरिद्र होता है। बहुत दूर नहीं जाने पर भो जिसके दोनों पांच विश्म और कषाथ सहूश कृष्णवर्ण हो जाते, उसका वंश कभो नहीं चलता। पदतल दण्य महोको तरह होनेसे ब्रह्मघाता और पीतवर्ण होनेसे अगय्यारत होता है। जिसकी जांच अत्यन्त विरल, अथच भूदम सूद्म रोमोसे आच्छादित रहतो हैं, जिसका ऊरुदेश सुन्दर और हस्ति-शुख्डका तरह तथा जानुदेश स्यूल अथच परस्पर समान होता है, वह व्यक्ति राजत्वलास करता है। कुक्रुर वा श्युगालको तरह जङ्घाविशिष्ट होनेसे वह निर्धन होता है। राजाओंके प्रति लोमकूपमें एक एक लोम और परिडत तथा श्रोतियके प्रति लोमकूपमें दो दो करके लोम होते हैं। जिनके लोमक्ष्पमें तीन वा तीनसे भो अधिक लोम होते वे निःख होते हैं। मस्तकके केश सम्बन्धमें भी ऐसा ही नियम है। जानुदेश मांसहीन होनेसे विदेश-में मृत्यु, अल्पमांसयुक्त होनेसे सौभाग्यशाली, विकट

मांसल होनेसे दुख्य और निज्ञमांसविशिष्ट होर्निसे स्रीजित होता है। जानुदेशमें समान मांस ग्हनेसे राजत्वलाम और चृहत् होनेसे दीर्घायु लाम होता है। पुरुपाङ्ग क्षद्र होनेने घनवान् और सन्तानशून्य तथा स्भृत होनेसे धनहीन होता है। छिङ्ग वामभागमें भुका गहनेसे पुत और धनवर्जित, दक्षिणभागमें मुका रहनेसं पुतवान्, नीचेकी ओर भुका रहनेसे दरिद्र, जिराल होनेसे अला-तनपयुक्त और लिङ्गकी प्रनिध स्यूल होनेसे वह व्यक्ति अत्यन्त सुखी होता है, जिसका कीप अत्यन्त निगृह है, वह व्यक्ति राजा, दोर्घ वा तुम्नकोपत्रिशिष्ट पुरुष वित्तर्होन तथा जिसका शिश्च ऋज्ञ, वृत्त और अव्यशिराल है वह धनवान् होता है। जिसके केवल एकमात मुक (अएडकोप) रहता है, उसकी जलमें मृत्यु होती और अस मान मुक्तिविशिष्ट व्यक्ति स्त्रीचञ्चल होता है। जिनकी प्रसाव-धारासे शब्द होता हो, वे सुखी और जिनसे गब्द नहीं होता है वे निःख होते हैं। दो, तीन वा चार घारामें पेशाव निकल कर आवर्त्तके साथ दक्षिण भागमें तरिङ्गत होनेसे नरपति और विक्षित भावमें मूतपात होनेसे धन हीन होता है। मूल केवल एक धारामें निकल कर तरङ्गयुक्त होनेसे उत्छए सन्तान होती है। गिश्रमणि क्तिन्ध, उन्नत अथवा समभागमें रहनेसे धन, रत्न और वनिताभोगी होता है। यदि शिक्षमणिका मध्यमाग निम्न हो, तो उसे कत्या होती और वह अनहीन होता है। चस्तिदेशका शीर्णभाग परिशुष्क होनेसे धनहीन और दुर्भाग्यशाली होता है। शुक्रको पुष्पानिय होनसे राजा, मधुगन्धि होनेसे प्रभूत धन, मत्स्यगन्धि होनसे अनेक सन्तान, क्षारमन्त्रि होनेसे दरिद्र और मदिरामांन्य होनेसे यात्रिक होता है। जिसके नितम्बका पिछला भाग स्थूल होता, वे दरिद्र, किन्तु मांसल होनेसे सुखा होता है। इसका अर्द्ध भाग सुन्दर होतेसे वलचान और मण्डूकको तरह होनेसे राजा होता है। कथ्दिश सिहसदृश होनेसे नरपति, वानर वा करिशावक की तरह होनेसे धनहीन, जउरदृशके समान होनेसे भोगी, घटतुल्य होनेसे नियंन, पार्थ्वरंश विकल नहीं होतेसे धनवान, तिल्ल वा वक्ष होतेसे भोगहोन, उन्तत-कक्ष व्यक्ति नरपति, विषमुकक्ष होनेसे कुटिछ, उदर सर्पा-

प्रति होनेसे दरिद्र और वहुमोजी, गोलाकार, उन्नत और विस्तीर्ण नाभिविशिष्ट होनेसे सुखी ; सत्प, अदृश्य और निम्नतासि होनेसे क्वेशमोगी होता है। नाभिका मध्य-भाग तरङ्गयुक्त वा विषम होनेसे शूलरोगी और निःख, नामीदेश वामभागमें आवर्त्तयुक्त होनेसे शठ तथा वक्षिण ओर आवर्त होनेसे मेघावी होता है। नामि पार्श्व की ओर आयत होनेसे चिरायु, ऊपरमें आयत होनेसे प्रभु, उत्र एक विलिचिहित होनेसे शस्त्राघातसे मृत्यु, दिवलि विशिष्ट होनेसे स्त्रीमोगी, तिवलियुक्त होनेसे औदिरिक तथा चार विल रहनेसे अनेक सन्तित होती है। राजाओं-के उदरमें विल नहीं रहती। जिसके उदरमें विल नतोन्नत है, वह पापिष्ठ और अगम्बगामी, उदरविक सरस्भावमें विद्यमान रहनेसे सुखी तथा परदार-विद्वेषी होता है। जिनको पार्श्वदेश मांसल, मृदु और दक्षिणावर्त रोमद्वारा आच्छन्त रहता है, वे राजा और इसका विपरीत होनेसे दुःसी होते हैं। कुचात्र भाग अनुन्नत होनेसे सुभग, विषम वा दीर्घ होनेसे निर्धन; पीन, दम्धवर्ण वा निमन होनेसे सुखी होते हैं।

वक्षःस्थल उन्नत, पृथु और मांसल होनेसे नरपति, इसका विपरीत वा शिराल एवं गर्दभकी तरह रोमावलि विशिष्ट होनेसे दुःखी, ऊरःस्थल समान होनेसे अर्थवान्, वश्रःस्थल अविशाल होनेसे निर्धन होता है। श्रीवादेश चिपिटककी तरह आकारविशिष्ट, शुष्क वा शिराल होनेके निर्धन, महिषशीव व्यक्ति वलवान, कम्बुकी तरह होनेसे राजा और प्रलम्ब होनेसे बहुमक्षक होता है। जिनका पृष्ट देश अभग्न और अरोमश होता है, वे धनवान् और तद्भिन्न व्यक्तिगण निर्धन होते हैं। अंसस्थल मांसहीन, रोमाच्छादित, भग्नप्राय और क्षद्र होनेसे निर्धन, विपुल, सुगोल और सुरिलंप होनेसे सुखी होते हैं। दोनों वाहु ब्रिरद्-शुल्डाकारवृत्त, आजानुल्रम्वित, परस्पर समान और पीन होनेसे राजा, रोमश और हस्त होनेसे दुःखी, इस्तांगुलि दीघ होनेसे दीर्घायु, करतल वानरकरके सदृश होनेसे धनवान् तथा व्याघ्रके सदृश होनेसे पापिष्ठ होता है। हाथका मणिवद यदि निगृढ़, दृढ़ और सुश्लिष्ट सन्धिविशिष्ट हो, तो राजा ; करतल निम्न होनेसे पितृ-धनसे वश्चित, करतलका कोई स्थान संयत वा निम्न

होनेसे धनवान, नतोन्नत होनेस अतिशय निःख तथा लाक्षाके सद्वण रक्तवर्ण होनेसे नरपति; पीतवर्ण होनेसे अगम्यागामी और रूक्म होनेसे निर्धन होता है। कुनख वा विवर्णनख होनेसे तार्किक, अंगुष्ठमें यवरेखा रहनेसे धनवान् और अंगुष्ठ मूलमें यव रहनेसे पुतवान् होता है। करतलकी समस्त रेखाएं स्निग्ध और निम्न होनेसे धनवान्, इसका विपरीत होनेसे दरिद्र, अंगुलिके विरल होनेसे निःख और घनांगुलि रहनेसे घनवान् होता है। तीन रेखा मणिवन्धसे निकल फरतलव्यापी होनेसे पृथिवीपति, इस्ततल पर मत्स्यचिह रहनेसे याहिक, वज्रचिह्न रहनेसे धनी, मत्स्यपुच्छ रहनेसे विद्वान् ; शङ्क, छत, शिविका, हस्ती, अभ्व और पदचिह्न रहनेसे नरपति, कलस, मृणाल, पताका और अंकुशचिह्नसे धनी; चक, असि, परशु, तोमर, शक्ति, धनु वा कुएडाकार रेखा रहने-से चमूपति, मकर, ध्वज, प्रकोष्ठ और आगार तुल्य रेखा रहनेसे धनी; अंगुष्ट मूलमें बेदीकी तरह रेखा रहनेसे अग्निहोती, वापी और देवगृहसद्रश चिह्न रहनेसे धार्मिकः अंगुष्ठमूलमें जितनो स्थूल रेखाएं होंगी उतने पुत और जितनी सूक्ष्म रेखाएं होंगी उतनी कन्या होती हैं। मणि-वन्योरिथत रेखा प्रदेशिनी अर्थात् तर्जनीमूलमें संलग्न होनेसे शतायु और उससे कम होनेसे उसी अनुपाता-नुसार आयुः स्थिर होगी। करतल पर अनेक रेखाएं रहनेसे निःखः चिबुक अत्यन्त कृश अथच दीर्घ होनेसे निःखः मांसल होनेसे धनीः अधर अवक् अथच ब्रिस्ट-फलतुल्य होनेसे राजा और सुक्म होनेसे दरिद्र; ओण्डदेश विवर्ण और सुक्त होनेसे निर्धन; दशनपंक्ति धनी, स्निग्ध और सम होनेसे गुभ होता है । जिह्वा और तालु रक्तवर्ण, दीर्घ, सूच्म और कृष्णवण होनेसे दरिद्र । मुख सुन्दर, असंवृत, विमल, चिक्कण और सम होनेसे नरपित ; इसका विपरीत होनेसे क्छेशभोगी होता. है । जिसका मुख वहुत वड़ा होता, वह दुःखी और जिसका मुख स्त्रीकी तरह होता, उसे सन्तान नहीं होती है। जिसका मुख गोल होता, वह अति शठ ; मुख दीर्घ होनेसे धनहोन ; चतुःकोणाकृति मुखमएडलयुक्त होनेसे धूर्च और जिसका मुख निम्न होता, वह सन्तानरहित होता है। अति हस्वमुख-

विशिष्ट व्यक्ति रूपण और सर्वाङ्गसुन्दरमुखविशिष्ट व्यक्ति भोगी होता है। भ्रमश्रु अस्फुटिताय, स्निग्ध, कोमल और नत होनेसे शुभ, तथा रक्तवण, कठोर और अल्प होनेसे तस्कर होता है। कर्णद्वय निर्मास ्र होनेसे अशुभ ; इस्तकर्णविशिष्ट व्यक्ति रूपण और शंकु-कर्ण व्यक्ति नरपति ; कर्ण छोमश होनेसे दीर्घायु, विपुछ होनेसे धनवान ; शिराल होनेसे करू और लम्ब अथच मांसल होनेसे सुखी तथा गएडस्थल अनिम्न होनेसे भोगी होता है। गएडमें अत्यन्त मांस रहनेसे मन्त्रणा-दाता ; नासिका शुकपक्षीकी तरह होनेसे सुली ; शुक्क होनेसे चिरजीवी ; छिन्त होनेसे अगम्यागामी ; दीर्घ होनेसे सीभाग्यशाली और वक्र होनेसे चीर होता है। नयन कमलदलके सदूश होनेमे धनी ; उसका प्रान्तमाग रक्तवर्ण होनेसे शुभ ; मधुकी तरह पिङ्गलवर्ण होनेसे धनवान् ; मार्जारके सदृश होनेशे पापिष्ठ ; हरिणलोचन और वर्त्तुं छ-छोचन होनेसे सुभग ; वक्रहोचन होनेसे तस्कर, केकरनेत होनेसे कर; हस्तीवत् होनेसे राजा और गभीर होनेसे ऐश्वर्यशाली होता है। भ्रूयुगल अत्यन्त उन्नत होनेसे अल्पायु, किन्तु विस्तृत उन्नत होनेसे अत्यन्त सुखी ; परस्पर असमान होनेसे दरिद्र ; वालेन्दुवत् वक्र अथच निम्न होनेसे घनी और खिएडत होने से दरिद्र होता है। शङ्ख अर्थात् ललाटकी अस्थि उन्नत अथच विपुल होनेसे शुभ ; निम्न होनेसे सन्तान और धनहीन ; नतोन्नत होनेसे दरिद्र तथा अद्व<sup>र</sup>चन्द्राकार होनेसे प्रशस्त धन्युक्त होता है। शुक्ति अर्थात् कपाल-का अस्थिखएड वृहत् होनेसे विद्वान् ; शिराल होनेसे अधार्मिक ; उन्नत शिरायुक्त अधवा खस्तिकको तरह होनेसे धनी होता है। निम्नललाटविशिष्ट मानव दुःखी और क्रूरकर्मनिस्त । अत्युन्नत होनेसे राजा और सङ्कीर्ण होनेसे कृपण होता है। ललाटके ऊपर तीन आयत रेखा रहनेसे शतायु ; चार रेखा होनेसे शतायु और राजा ; घटी, रेखा रहनेसे ६५ वर्षकी परमायु और छछाटको समस्त रेखापँ छोटी छोटी रेखा द्वारा छिन्न होनेसे अगन्यागामी और ६० वर्ग परमायु होती है। ललाटको समस्त रेखाएं मुफे थ संलग्न रहनेसे ३० वर्ष परमायु और उनके वाम-

भागमें वक्र होनेसे २० वर्ध तथा अत्यन्त छोटो छोटो सामान्य रेखाएं ललाटभाग पर रहनेशे अल्पायु होती है। जिसका मस्तक विलक्कल गोलाकार है, वह धनी और छत्नाकार-शिरोदेशयुक्त व्यक्ति राजा होता है। जिसके शिरोभागकी करोटि (खोपड़ी) वृहत् होती, वह अत्यायु होता है। मस्तक घटाकार होनेसे चिन्ता-शील, दो भागोंमें विभक्त होनेशे पापात्मा और निर्धन होता है। जिस व्यक्तिके केश, क्रिग्ध, कृष्णवर्ण, आकु-श्चित और भिन्नाव तथा वे केश यदि कोमल और अन-धिक हों, तो वह सुखी और जिसके केश वहुमूछ, विषम, कपिलवर्ण, स्थूल, स्फुटिताव्र, कर्जेश, क्षुद्र, अत्यन्त वक्र और घन होते वह व्यक्ति दिख होता है। रुझ, मांसहीन और शिराल कोई भी स्थान क्यों न हो, वह अशुभस्चक है। इसका विपरीत होनेसे शुभ होता है। पुरुष और स्त्री तुलित होने पर यदि अर्द्ध भार हो, तो सुखी और यदि न्यून हो, तो दुःखी होता है। भारा-धिक व्यक्ति वलवान् होता है। पुरुष वा नारोकी जव २५ वर्षको उमर अथवा जीवनका चतुर्थ भाग उपस्थित हो जावे, तभी मान ( तौल )-का उपयुक्त समय समभाना चाहिये। पुरुषादिके देहाभ्यन्तरीण किसी तेजोमय पदार्थकी कान्ति ही एकमात शुभाशुभ फल प्रकट करती है अर्थात् उसीसे शुम और अशुमका निर्णय किया जाता है। दन्त, त्यक्, नख, रोम और केश इनकी किल्ध छाया (कान्ति ) यदि सद्गन्धशालिनी हो, तो उसे भौमोछाया कहते हैं। इससे तुष्टि, अर्थलाम, अभ्युद्य भौर प्रतिदिन धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि होती है। जो छाया अर्थात् लावण्य कृष्ण अथच निर्मल, हरिद्वर्ण और नयन-सुखकर है, उससे सौभाग्य, मृदुता और सुखवृद्धि होती है। इस छायाको जलीया छाया कहते हैं। यह जननीकी तरह हितकारों है। शरीरकी जो छाया अतिप्रचएड और अपृथ्य होतो, जिसका वर्ण पद्म, सुवण अथवा अग्निकी तरह होता, उसे आग्नेयी छाया कहते हैं। यह छाया तेज, विक्रम और प्रतापको वढ़ाती है। देहस्थित जो छाया मिलन, पुरुष और कृष्णवर्ण तथा ष्टुर्गन्यविशिष्ट होती, वह छाया वायवी छाया है। इससे प्राणियोंका वघ, वस्थन, व्याधि, अनर्थ और अर्थनाश

आदि नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। फिर जो छाया स्फटिककी तरह निर्मेल होती, वही आकाशी छाया है। यह छाया अति शुभकारी मानी गई है। राजाओंका सर हस्ती, वृष, रथसन, भेरी, मृदङ्ग, सिंह वा मेघकी तरह होता है। गईभकी तरह विशीर्ण अथवा पुरुपखर मानव निर्धन और असुखी होता है। मेद, मज्जा, त्वक्, बस्थि, शुक्र, शुविर और मांस ये सात मस्ति प्राणियींकी सार है। तालु, ओष्ट, अधर, जिह्ना, नेहाप्रान्त, वायु, करतल और पदतल ये सव रक्तवर्ण और रक्तयुक्त होनेसे अनेक प्रकारका सुख होता है। त्वक् मस्ण होनेसे धनी, कोमल होनेसे सुभग; पतला होनेसे विचक्षण होता है। अस्थि स्थूल होनेसे वलवान् और पण्डित, शुक्र, गुरु और परिमाणमें अधिक होनेसे सुमग और विद्वान् होता है। वाक्य, जिह्ना, दन्त, नेल और नख ये पाँच स्थान स्निन्ध होनेसे घन, पुत्र और सीमाग्य तथा रूझ होनेसे निर्धन होता है। वर्ण, स्निग्ध और कान्तियुक्त होनेसे राज्य-लाम, मध्यमद्भप होनेसे पुतवान् और धनी तथा रूक्ष होनेसे निर्धन होता है। विशुद्ध वर्ण शुभ और सङ्कीर्णवर्ण अशुभप्रद्े है । जिनके मुख गो, वृष, शादू ल, सिंह वा गरुड़के सदृश होते, वे पृथिवीपति, वानर, महिव, वराह वा छागलकी तरह होनेनेसे पुत और धनहीन तथा गदर्भ और हिस्तशावककी तरह होनेसे निःख और असुखी होते हैं।

परिमानानुसार पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। इनमेंसे जो अपनी इस्तांगुलिसे १०८ अंगुलि उत्ता है, वह उत्तम, ६६ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष अधम माना जाता है। मृत्तिका, जल, तेज, वायु, आकाश, देवता, नर, राक्षस, पिशाच और तियंक्योनि इन्हें स्वभावतः ही पुरुषके लक्षण उत्पक्ष होते हैं। चे सव लक्षण नीचे लिखे जाते हैं। सुन्दर पुष्पकी तरह गन्ध्युक्त, सम्मोगनिषुण, सुन्दर निश्वासयुक्त तरह गन्ध्युक्त, सम्मोगनिषुण, सुन्दर निश्वासयुक्त और स्थिर होना ही महीस्थमाव है, जलस्वमावके पुरुष अन्यन्त जलपानानुरक, स्लोलोलुप और रसमोगी; अग्निप्रहतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, तीक्ष्ण, भयङ्कर, क्षुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, वृद्ध हुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, वृद्ध हुधानुरुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, वृद्ध हुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लला वृद्ध हुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लला वृद्ध हुधानुरुति पुरुष हुशा और कोधी;

आकाशप्रकृति पुरुष निषुण, विवृतमुख, शब्दश और छिदिताङ्गविशिए; देवप्रकृति पुरुष त्यागशील, मृदु, कोषन और स्नेह्युक्त; नरप्रकृति पुरुष गीत और भूषणप्रिय तथा निरन्तर संविभागनिषुण, राक्षसप्रकृति पुरुष अन्यन्त कोषी, खल और पापात्मा; पिशाचप्रकृति पुरुष चपल, मलिन, वहुपलापवादो और व्यक्तदेह होता है। पुरुषकी शाद्रल, हंस, मदमन्त, मतङ्गज, महावृषम वा मयूरकी तरह गित होना शुभ है। जो विना शब्द किये धीरे गमन करते हैं, वे धनवान और जो दुतगामी वा वहुगामी हैं, वे दिद्द होते हैं। (वृह्वहिता ६८ अ०)

इन सव लक्षणों से भविष्यमें पुरुष कैसा होगा, यह जाना जाता है। निमित्तक पण्डितगण इन सव लक्षणों से शुभाशुमका निर्णय करते हैं। यह साधारण पुरुषका लक्षण वतलाया गया। वृहत्संहितामें पञ्च महापुरुषके लक्षण लिखे हैं, जिनका सार यहां पर संक्षेपमें दिया जाता है।

पञ्च महापुरुषलक्षण-वलवान् ताराग्रह अर्थात् मङ्गलादि पञ्च ग्रह जव स्वक्षेत्र वा उचगृह अथवा केन्द्रमें रहते, तव महायुख्यगण जन्म लेते हैं। वलवान् वृहस्पति-के समय जन्मग्रहण करनेसे हंस, शनित्रहके समय शश, मङ्गल ग्रहमें रुचक, वुधग्रहमें भद्र और शुक्रग्रहमें जन्म छेनेसे मालव्य पुरुष जन्मग्रहण करते हैं। सूर्य वलवान् होनेसे तत्क्षणजात व्यक्तिकी शरीरगढन उत्तम और वलवान् चन्द्रके समयजात व्यक्तिकी मानसिक प्रकृतिका महत्त्व होता है। महापुरुषों के मध्य जिसके चन्द्र और स्यें जैसे विभिन्न राशिगत होंगे, उसके लक्षण भी वैसे ही होंगे। समस्त राशियों के जिस प्रकार धातु महा-भूत, प्रकृति, द्युति, वर्ण, सत्त्व और इत्प सूय चन्द्र द्वारा उपसुक्त हो'ने, उसके लक्षण भी उसी प्रकार स्थिर करने होंगे। वह वलहीन सूर्य अथवा चन्द्रकर्तृक उपयुक्त होनेसे तत्क्षणजात पुरुषगण सङ्कीर्ण पुरुष कहलाते हैं। किसी व्यक्तिके जनमकालमें मङ्गलग्रह वलवान् रहनेसे पराक्रम, बुधप्रह रहनेसे गुरुता, वृहस्पति रहनेसे खर, शुक्र रहनेसे स्नेह और शनि रहनेसे वर्ण जानना होता है। इनके गुणदोषके तारतम्यानुसार उक्त सभी साधुत्व लाम करते हैं। सङ्कोर्ण पुरुषगण श्रेष्ठ नहीं होते।

हंस, शश, रुचक, भद्र और मालव्य इन पंच प्रकारके पुरुपोंका विशेप विशेष लक्षण अभिहित हुआ है, विस्तार हों जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया । (वृहत्-संहिताके ६६वें अध्यायमें विशेष विवरण लिखा है।)

२ सांख्योक्त प्राणियों का आत्मास्वक्षप । सांख्य-के मतसे पुरुष चेतन स्वक्षप है, किन्तु सुखदुखादि शून्य हैं । ये अपरिणामी अर्थात विकारशून्य हैं और अकर्ता हैं अर्थात् कोई कार्य ही नहीं करते । यही पुरुष ही प्राणियों की आत्मा हैं, सुतरां जितने प्राणी हैं, सवों को पुरुष कह सकते हैं। प्रकृति और पुरुष परस्परसापेक्ष हैं। जिस प्रकार लोहा सुम्वकके समीपस्थ होनेसे सुम्वकको ओर गमन करता है, उसी प्रकार प्रकृति उस पुरुष-सन्तिधानप्रयुक्त विश्वरचनामें प्रवृत्त होती है। प्रकृतिके स्वयं जड़ होने पर भी वह पुरुषके सहयोगसे संसार-व्यापार सम्पादन करनेमें समर्थ है।

३ विन्णु । सांहप्र और प्रकृति देखां । "दवं पुराणं पुरुषो विष्णुचेंदेषु पठ्यते । अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा ॥" ( हरिवं ० १२ )

४ शिव । ५ जीव । ६ दुर्गा ।

"महानिति च योगेषु प्रधानश्चैव कथ्यते ।

तिगुणाव्यतिरिक्ता सा पुरुपश्चेति चोच्यते ॥"

( देवीपुराण १५ अ० )

अध्वस्थानकभेद, घोड़ेकी एक स्थिति । इसमें वह अपने दोनों अगछे पैरोंको उठा कर पिछले पैरोंके वल खड़ा होता है। जमना, सीखपांव।

पुरुवराशि—प्रेव, मिथुन, सिंह, तुला, धनुः और कुम्म ।

पुरुपग्रह—भौम, अक, जीव । पुरुपनश्रह—हस्ता, मूला, श्रवणा, पुनवसु, मृगशिरा और पुत्रा ।

८ चेतनाथातु । ६ सूर्य । १० पुन्नागवृक्ष, सुलताना-चम्पा । ११ पारद, पारा । १२ गुग्गुलु, गुग्गुल । १३ तिलक । १४ मनुष्यका शारीर वा आतमा । १५ पूर्वज । १६ पित, स्वामी । १७ व्याकरणमें सर्वनाम और तदनुसारिणी क्रियाके क्योंका वह भेद जिससे यह निश्चय होता है, कि सर्वनाम वा कियापदवाचक (कहनेवाले) के लिये प्रयुक्त हुआ है अथवा संवोध्य (जिससे कहा जाय) के लिये अथवा किसी दूसरेके लिये। जैसे 'में' उत्तम पुरुष हुआ, 'चह' प्रथम पुरुष और 'तुम' मध्यम पुरुष।

पुरुपक (सं० पु० क्ली०) पुरुप पत्रेति पुरुप साथै कर्। घोटककी ऊर्द स्थिति, बोड़ेका जमना, सीखपांब, अलफ। २ बोड़ेका स्थानकमेद।

पुरुपकार (सं० पु०) पुरुपस्य कारः करणम्। पुरुपकी कृति, पौरुप, उद्योग। दैव और पुरुपकार ये दोनोंके मिळनेसे फळ होता है। दैवसे पुरुपकारकी प्राधान्य शास्त्रमें निर्दिष्ट हुई है।

जिस प्रकार एक चकसे रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार विना पुरुपकारके दैव प्रसन्न नहीं होते। दैव शुभ होने पर सामान्य पुरुपकार द्वारा ही मानवगण शुभफल प्राप्त करते हैं।

"यथा ह्ये केन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्। तथा पुरुपकारेण विना दैवं न सिध्यति॥" ( नीतिशास्त्र )

मत्स्यपुराणमें पुरुपकारका विषय इस प्रकार छिखा है—एक दिन मनुने मत्स्यसे पूछा था, कि देव और पुरुपकारमें श्रेष्ठ कौन है? इसके उत्तरमें मत्स्यदेवने जो उत्तर दिया था, वह इस प्रकार है —

'देहान्तरमें अजित खीय जो कर्म है उसे देव कहते हैं अर्थात् पूर्वजनममें जिस कर्मका अनुष्टान किया जाता है, यह देव नामसे प्रसिद्ध है। यह देव पुरुपकारसे श्रेष्ट है। मङ्गळाचार व्यक्तिके देव प्रतिकृत होने पर भी वह पुरुपकार द्वारा विनष्ट होता है।

जो पूर्वजनममें सात्विक कर्मका अनुष्ठान करते, वे विना पुरुपकारके भी फललाम करते हैं। जो राज-सिक कर्म करते हैं। जो राज-सिक कर्म करते हैं, वे पुरुपकार भिन्न फललाम नहीं कर सकते। तामस कार्यकारियोंके लिये अति कटोर पुरुपकार कार आवश्यक है। अति यससे पुरुपकार करने पर अशुभ देव निराकृत हो शुभफल देते हैं। इसी कारण देवसे पुरुपकारको श्रेष्ठ वतलाया है। देव, पुरुपकार और काल ये तोनों मिल कर फल देते हैं। इनमेंसे अलग अलग हो कर कोई भी फल नहीं दे सकता।

\$ 4£

जिस प्रकार रूपि वृष्टिके समायोगसे कालमें फलपस् होतो है, उसी प्रकार देव और पुरुषकार उपयुक्त कालमें निश्चय ही फलप्रद होता है। पुरुषकार करके यदि फल न मिले तो उसके प्रति वीतश्रद्ध होना उचित नहीं। उपग्रुक काल आने पर उसका फल आपसे आप होगा। प्रत्येक मनुष्यको अति यलपूर्वेक पुरुषकारके प्रति यल करना उचित है। पुरुषकार जैसा किया जायगा, फल भी वैसा ही मिलेगा। केवल देवके आसरे रहना उचित नहीं। पुरुवकारके प्रति यस करना ही सर्वतोभावसे विधेय है। (मरस्यपुराण दैवपुरा हारक नाम १६५ ४०) पुरुवकुञ्जर (सं० पु०) पुरुपेयु कुञ्जरः श्रेष्टः वा पुरुवः कुञ्जर इव उप मितसमासः । पुरुषश्रेष्ठ, पुरुष-न्याद्र। पुद्भव, ऋषम और कुझर आदि पुरुषके श्रेष्ठार्थवाचक हैं। पुरुवकेशरी (सं । पु ) पुरुवः केशरी इव । १ पुरुवश्रेष्ठ । २ न्रसिंहरूपी विष्णु । पुरुपक्षेत्र ( सं॰ क्ली॰ ) ज्योतिषोक्त वह क्षेत्र जहां पुरुषका जन्म निर्दिष्ट हुआ है। पुरुषगति ( सं॰ स्त्री॰ ) एक प्रकारका साम । पुरुषगन्धि (सं० द्वि० ) पुरुषका आद्राण । पुरुषप्रह ( सं॰ पु॰ ) ज्योतिषके अनुसार मङ्गल, सूर्ये और वृहस्पति । पुरुषप्र (सं० ति० ) पुरुष हन्ति हन-रच्। पुरुष-हनन-साघन आयुध, पुरुवकी हत्या करनेवाला हथियार । पुरुषच्छन्दस् (सं० स्त्री०) पुरुष इव द्विपादत्वात् छन्दो यस्याः। द्विपदाख्य छन्दोभेद। इस छन्दमें दो चरण रहते हैं, इसोसे इसका पुरुषच्छन्दस् नाम पड़ा है। पुरुषता ( सं० स्त्री० ) पुरुषस्य भावः तल-टाप्। पुरुषत्व, पुरुषका भाव, पुरुपका धर्म । पुरुपतेजस् ( सं॰ ति॰ ) पुरुपत्वविशिष्ट । पुरुषता (सं॰ अव्य॰) पुरुषको, पुरुष विषयमें । द्वितीया और सप्तमीके अर्थमें ही 'ता' प्रत्यय होता है। पुरुषत्व (सं॰ ह्वी॰) पुरुष भावे त्व । १ पुरुषका धर्म, पुरुषका भाव। २ पुंसव। पुरुषत्वत् ( सं० अध्य० ) पुरुपवत्ता । पुरुषदध्न (सं० ति०) पुरुष परिमाणार्थं दश्चट् प्रत्यय।

बुरुषद्निका (सं० त्रि०) पुरुषस्य दन्त इव आकृतियस्याः, कप्, कापि अत इत्वं। मेदा नामको ओषधि। पुरुषद्वयस् ( सं० ति० ) पुरुष परिमाण । पुश्वाद न रे ो । पुरुषद्वेषिन् (सं० ति०) पुरुषं द्वेषि द्विप्-निन् । पुरुष-द्वेपशील । पुरुवधर्म (सं॰ पु॰) पुरुवस्य धर्म ६-तत् । पुरुवमात धम । पुरुवनक्षत्र ( सं॰ पु॰ ) ज्योतिष-शास्त्रानुसार हस्ता, मूला, श्रवणा, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुऱ्या नक्षत्र । पुरुवनाग ( सं॰ पु॰ ) पुरुवी नाग इव । पुरुवश्रेष्ठ । पुरुषनाय (सं० पु०) पुरुषान् नयति अण् उपपदसमासः। १ नरपाल । २ सेनापति । पुरुपन्ति ( सं पु॰ ) ऋषिविशेष । पुरुषपुङ्गव ( सं० पु० ) पुरुषः पुङ्गव इव । पुरुषश्चेष्ट, पुरुष-प्रधान । पुरुषपुराजरीक (सं० पु०) पुरुषेषु पुराजरीकः, श्रेष्ठः, वा पुरुषः पुएडरीको व्यात्र इव । १ पुरुषव्यात्र, पुरुषश्रेष्ट । २ जैनियोंके मतानुसार नव वासुदेवोमेंसे सप्तम वासुदेव। पुरुषपुर-प्राचीन गान्धार राज्यको राजधानी। चीन-परिवाजक यूवनचुवङ्ग इस नगरका पो-छु-ष-छो नामसे उल्लेख कर गये हैं। किती-अनुवादित वसुवन्घुकी जीवनी पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने भारतके उत्तरस्य पुरुषपुर नगरमें जनमग्रहण किया, इस समय यहां असङ्क वोधिसत्व भी वर्त्तमान थे। इसका वर्त्तमान नाम पेशा-वर है। गन्शर और पेतागर देखी। पुरुषमात ( सं० ति० ) पुरुष-परिमाणार्थं मात्रस् प्रत्ययः । पुरुष परिमाण। पुरुपमानिन् ( सं० बि० ) पुरुष मननकारी । पुरुपमुख (सं० ति०) पुरुषवत् मुखविशिष्ट, पुरुषके जैसा मु ह्वाला । पुरुपमृग ( सं॰ पु॰ ) पुंमृग, नरहरिन। पुरुषमेध (सं॰ पु॰) वैदिक कालमें अनुष्टित यागमेद। अश्वमेध और गोमेध आदि यज्ञोंमें जिस प्रकार तत्तत् पशु विलकी व्यवस्था है, यह नरमेधात्मक यञ्च उसी प्रकार नरविल द्वारा सम्पन्न होता था । इस यज्ञके करनेका अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षतियको था। यह यह

चैत्रमास शुक्का दशमीसे प्रारम्भ होता था और चालीस

Vol. XIV. 28

पुरुषपरिमाण।

दिनोंमें समाप्त होता था। इस वीचमें २३ दीक्षा १२ उपसत् और ५ सूत्या होती थीं। इस प्रकार यह ४० दिनोंमें समाप्त होता था। यज्ञके समाप्त हो जाने पर यज्ञकर्त्ता वानप्रस्थाश्रम प्रहण करता था।

वाजसनेय-संहिताके ३०वें अध्यायमें-५-२२ किएडका-में लिखा है, कि ब्राह्मणादि पशुको अग्निष्टादि एकादश यूपोंमें बन्धन करें। इनमेंसे अग्निष्टयूपमें ४८, द्वितीय-यूपमें ३७ और अवशिष्ट ६ यूपोंमेंसे प्रत्येकमें ११ पशुका वन्धन सम्पन्न करना होगा। नीचे तत्त्त् देवता और ब्राह्मणादि पशुओंके नाम दिशे गये हैं।

१म अग्निष्ठ- यूपर्गे१ -

आनन्ददेव—स्त्रीसख,१२ त्रह्या --- त्राह्मण प्रमुद्देव--कुमारीपुत क्षत्र--क्षतिय, मेधादेवी—रधकार, मरुद्गण--वैश्य, धेर्यदेव—तक्षा, तमो --तस्कर, श्रम वा तपोदेव—कीलाल,१३ नारक--वीरहा,२ मायादेवी-कर्मार पापदेवता-क्रीव, रूप---मणिकार, तपो--श्रूड आक्रयादेवता—अयोग,३ शुभ--वप,१४ शरव्यादेवी--इषुकार,१५ काम---पुं श्चॡ,४ हेतिदेवी—धनुष्कार, अतिक् ए--मागध,५ कर्मे—ज्याकार नृत्त-स्त, ६ दिष्ट—रज्जु—सर्ज,१६ गोत--शैलूष,७ मृत्यु---मृगयु,१७ धर्म—सभाचर,८ अन्तक--भ्वनी,१८ नरिष्ठादेवी—भीमल,६ नदीगण—पौजिष्ठ,१६ नर्भदेव--रेम,१० हसदेव-—कारि,११

(१) अग्निक समीपवर्ती प्रथमयूर, (२) दस्यु. (३) खानसे छौद्र उत्तोलक, (४) व्यभिचारिणी, (५) क्षत्रिया गर्म और वैश्यके औरससे जरपन्न, (६) नाहाणीके गर्भ और क्षत्रियके औरससे जरपन्न, (७) नर, (८) भाट, ६) भीम-मूर्ति, (१०) वाचाल, (११) सर्वदा कार्यकरणशील, (१२ हत्रेण, (१३) कुलाल (क्रम्भकार), (१४) जो वीज वपन करते हैं, (१५) व णनिर्माणकारी, (१६) रज्जु निर्माणकारी, (१७) ज्याच, (१८) कुक्कस (सामधी) वा ज़ालिया,

ऋक्षिका—नेषाद,२० सन्धिदेवता—जार,२८
पुरुषव्याघ्र—दुर्भद,२१ गेह—उपपित,
गन्धर्वाप्सरादियोंका—वात्य,२२ आर्त्तिदेवी—परिविदान,३०
सपदेवताओंका—अप्रतिपत,२३ आराद्धिदेवी—परिविदान,३०
सपदेवताओंका—अप्रतिपत,२३ आराद्धिदेवी—पदिधिपुपित३१
अयोदेवताओंका—कितव,२४ निष्कृतिदेवी—पेशस्कारी,३२
ईयतादेवीका—अफितव,२५ सञ्ज्ञानदेवता—स्मरकारी,३३
पिशाचगणका—विदलकारी,२६ प्रकामोधदेव—उपसद,३४
यातुधानोंका—कएटकीकारी,२७

द्वितीय यू ।' ---

वर्णदेवता अनुरुध,३५ अधर्म--विधर पवित्र--मिवक, वल---उपदा,३६ प्रज्ञान---नक्षतदशं, ४० उत्सादगण--वकाङ्ग,३७ अशिक्षादेवी---प्रश्नी, ४१ प्रमुदेवता— स्वाङ्ग ३८ उपशिक्षादेवी-अभिप्रश्नो।४२ द्वारदेवी—स्नाम ३६ त्तीय यू ।में -स्वप्र--अन्घ मर्यादादेवी-प्रश्नविवाक, ४३ इरादेवी-कीनाश, कीलालदेव—सुराकार, अर्मियोंका—हस्तिप, ४४ भद्र-गृहप, जव---अश्वप, श्रेयोदेव--वित्तध,४५ पुष्टिदेवी--गोपाल, अध्यक्षदेव—अनुक्षत्ता ।४६ बोर्यदेवी—अविपाल, तेजः---अजपाल,

(२०) चएडाळ, (२१) पाल्फीबाइक, (२२) उपनयन, संस्कारहीन द्विजाति, (२३) अञ्यवस्थिति, (२६) व्यक्तिहरू (ज्ञाही), (२५) ज्ञाहियों का अञ्चाहारी, (२६) वंशक्ती, (२५) पळासपत्रावि कराटक द्वारा विद्व करके विक्रयोपजीवी, (२५) जिसके साथ सर्वेदा बा दो चार बार सम्बन्ध हुआ है, (२९) जिसके किनष्ठका विवाह हुआ है, स्वयं अविवाहित हैं, (२९) ज्येष्ठका विवाह नहीं हुआ, पर स्वयं विवाहित हैं, (३१) ज्येष्ठकराविवाह नहीं हुआ, पर स्वयं विवाहित हैं, (३१) ज्येष्ठकराविवाह नहीं हुआ, पर स्वयं विवाहित हैं, (३१) ज्येष्ठकराविक अविवाहित रहते जिस किनिष्ठका विवाह हुआ है, उनका स्वामी, (३२) वेशरचना ही जिसकी वप्यजीविका है, (३३) कामोद्दी त्व ही जिसका व्यवसाय हार्य करता है, (३६) जोरावनप्रदाता, (३०) कुव्न, (२८) वावन, (३६) अद-निश्च चन्नुनळलावी, (४०) अयोतिविद, (४१) शक्विविहासक, (४२) शक्विजिहासके उत्तरदाता, (४३) गणनाप्रभावने प्रश्वका उत्तरदाता, (४३) गणनाप्रभावने प्रश्वका

## चतुर्थ घूँ गर्ने —

भादेवी—द्रावाहार,४७ सवलोक—उपसेका,५२
प्रभादेवी—अग्न्येघ, ४८ अवऋतिदेवी—उपमन्धिता,५३
व्रध्तविष्टप—अभिषेका,४६ मेघादेवी—वासपल्युली,५४
वर्षिष्ठनाक—परिवेशनकर्त्ता, प्रकामदेव—रजयिती,५५
देवलोक—पेशिता,५० ऋतिदेवी—स्तेनहृद्य ।५६
ममुख्यलोक—प्रकरिता, ५१

## १व्यम यू १में --

वैरहत्य—पिशुन,५७ अरिष्टिदेवी—अश्वसाद,६१ विविक्तिदेवी—श्वता,५८ स्वर्ग लोक—भागदुघ,६२ ओपदंष्ट्र—अनुश्रता,५६ वर्षिप्टनाक—पिवेष्टा६३ वल—अनुचर, मन्यु—अयस्ताप,६४ भूमादेवी—परिस्कन्द,६० कोध—निसर, ६५ प्रियदेव—प्रियवादी

## षष्ठ यूरमें---

योग—योका, ६६ निऋं तिदेवी—कोशकारी,७२ शोक—अतिसत्तां,६७ यम—अस्,,७३ क्षेम—विमोक्ता, ६८ यम—यमस्,,७४ उल्कूलनिक्ल—तिहि,६६ अथर्वेदेवगण—अवतोका,७५ वपु—मानस्कृत,७० वत्सर—पर्यायिणी,७६ शोल—आञ्जनोकारी,७१

(४७) लकदहारा, (४८) प्त्दा चलानेका दास था दासी, (४१) वाचक, (५०) छविखोदक (Engraver), (५१) भारकर, (५२) स्तान करानेका नौकर, (५३) गात्रमर्दनादि करनेका नौकर, (५३) गात्रमर्दनादि करनेका नौकर, (५८) रजक, (४५) रेरेज, (५६) नापित, (५७) पर निदक, (५८) सार्थि, (५८) सार्थिका सहचारी, (६०) काडूबरदार, (६१) घास काटनेवाला, (६२) गोरीग्या, (६३) गोस्त्य, (६४) लौदतप्तकारी, (६५) गोस्त्य, (६४) लौदतप्तकारी, (६५) त्रालीह्पीटनकारी, (६६) योगी, (६०) अनुगामी, (६८) विश्वदारकारी, (६९) विद्वान, (७०) मानी, (७१) चक्षाक्रमनव्यवस्था, (७२) करवालादिका कोश्वानिभीणकार क, (७३) स्तवस्था, (७१) यमजव्यत्र असवकारिणी (७५) अपुना, (७६) एक पुत्रके बाद एक कन्या अथवा दो पुत्रके बाद दो कन्या, ऐसे नियमसे प्रसदकारिणी,

# सप्तम युवरें---

परिवत्सर—अविज्ञाता,७७ साध्यगण—चमझ,८३

इव् वत्सर—अतित्वरी,७८ सरोगण—धेवर,८८

इब्रत्सर—अतिष्कद्वरी,७६ उपस्थावरादेवी—दाश,८५
वत्सर—विजर्जरा,८० वेशन्तादेवी—वेन्द,८६
संवत्सर—पिलक्षी,८१ नङ्गलादेवियोंका—ग्रीं कल८७

ऋभुदेव—अजिनसन्ध,८२

#### अष्टम यूगों.---

पार—मार्गर,८८ सानुदेवी—जम्मक,६३
अवार—कैवर्त्त, पर्वत—किम्पुरुप,६४
तीर्थ—आन्द,८६ वीभत्सादेवी—पौल्कस,६५
विषम—मैनाल,६० वर्ण—हिरण्यकार,
स्वनगण—पर्णक,६१ तुलादेवी—चाणिज,
गुहादेवी—किरात,६२

## नवन युवमें--

पश्चादोय—ग्लावी,६६ संशर—प्रच्छिद,१०१ विश्वभूत—सिध्मल,६७ अक्षराज—कितव—,१०२ भूतिदेवी—जागरण,६८ कृत—आदिनबद्श,१०३ अभूतिदेवी—स्वपन,६६ त्रेता—कल्पी,१०४ आर्त्तिदेवी—जनवादी,१०० द्वापर—अधिकल्पी,१०५ वृद्धिदेवी—अप्रगल्भ,

(००) वन्ध्या, (७०) कुळटा, (७०) पूर्णयुवती, (८०) कियिलगात्रा, (८१) एक हेशा, (८२) जिसका शरीर अस्ति-वर्मसार हो, (८३) चमार (८४) घीवर, (८५) नौकावाही चीवर, (८६) मेहतर, (८०) महस्यजीवी, (६८) मृग्धातक, (८९) बन्वनिकगोप्जीवी, (६०) मृद्धारा, (९१-६५) वनचर, (६६) मेहरोगी, (६०) शृष्ठीरोगी, (६८) जिसे अच्छी तरह नींद न आती हो, (६६) निरन्तर शृष्याशायी, (१००) व्पष्ट-वादी, (१०१) व्यवसायी चूलक, बनावटी, (१०२) धूर्त, (१०३) कारमदोवदर्शी, (१०४) कल्पना वारी, (१०५) अतिरिक्तकल्पना कारी,

दशप यूपमें

श्रांस्कृत्य—समास्थाणु, प्रतिश्रुत्कादेवी—अर्त्तन,१०८ मृत्यु—गोव्यच्छ,१०६ घोष—भप,१०६ अन्तक—गोघात, अन्त—बहुवादी, क्षपादेवी—जो गोवधकारी

भिक्षायृत्तिका अग्रलम्बन करता है, दुःकृत—सरकाचार्य, अनन्त—मूक, पान्मा—सैलग,१०७ शन्द—आडुम्बराधात,

एकादश यूदरे---

महोदेव —वीणावाद नर्भदेव —पु श्चलू,११४ क्रोश —त्णवध्म,११० इसदेव —कारि,११५ अवरस्पर —शङ्क्षध्म,१११ धादोदेव —शावस्य,११६ वनदेव: —वनप,११२ महोदेव —शामणी,११७ अरण्यदेव —दावप,११३ गणक और अभिकोशक,११८

नृत्तदेवता—वीणावाद, द्युदेव—खलति,१२६ पाणिच्न,१२६ और तूणच्न,१२० सूर्य—हर्य्यक्ष आनन्द—तलव,१२१ नक्षत्वगण—किर्मिगर,१२७ अनि—पीवा,१२२ चन्द्रमा—किलास,१२८ पृथिवीदेवी—पोठसपी,१२३ अहर्देव—शुक्कपिङ्गाक्ष, वायु—चाएडाल,१२४ रातिदेवी—कृष्णपिङ्गाक्ष, अन्तरीक्षदेव—वंशनत्ती,१२५

इसके वाद प्रजापित देवताके जुएखक्रपमें (परस्पर विरुद्धक्प) अतिदीर्घ, अतिहख, अतिस्थृल, अतिरुश, अतिशुक्त, अतिरुज्ण, अतिकुज्व और अतिलोमग्र ये अए-

(१०६) गोवाडनकारी, ११०७) ठव, (१०८) आतम-द:खर्यनोप्जीयी, (१०६) द्यावारी, १११०) व शीवादकोप-जीवी, (१११) ग्रांखवादकोगजीवी, (११२) वनस्कार्थ पटह-वाद ोपजीवी, (११३) दावानिन वा ग्रहानिन निर्वापणार्थ दका-वादक, (११८) भड़्जा, (११५) जो ताली देता है। (११६) जो ग्रावास देता है, (११७) मान्यप्यपदर्श ६, (११८) वहद्व शी-वादक, (१२१) हस्तवालवादक, (१२२) स्युक्काय, (१२३) वंग्र, (१२४) अस्याकारी, (१२५) वाजीकर, (१२६) गंजा, (१२७) बहुरोगी, (१२८) घवळरोगी।

विध पशुवन्धन करे। ये सभी अंशूह और अब्राह्मण हैं। भागध, पुंच्छों, कितव और ह्रीव इन चार अशूद्र और अब्राह्मण पशुकों भी प्रजापित देवताके छिये द्वितीय यूप-में वन्धन करना होगा। ( वाजसने संहि । ३०।५-२२)

एकमात यद्धवेदमें हो पुरुषमेघ यागका प्रसङ्ग है, सो नहीं । शतपथत्राह्मणके "यद्स्मिन् मेध्यान्-पुरुपानाल-भते तस्माद्धेव पुरुपमेधः" (१३।६।२।१) वचन और पड्विंगत्राह्मण ४।३, कात्या यन-श्रीतस्त २१।१।१, शांख्यायन-श्रीतसूत १६।१०।१ રરારાશ્ર, अथर्ववेद १०।२।२८ आदि स्थानीमें यज्ञमें पुरुषविका उद्छेख है। अव प्रश्न होता है, कि क्या सचमुच वैदिक समयमें नरविल होती थी ? इस समस्याकी मीमांसा करना वड़ा ही कठिन है। हिन्दुस्थानवासी रामकृणा-मूर्तिपूजक विन्णु-उपासकगण काली आदि शकिकी उपासनामें छागादिकी विल दिया करते हैं। विल शब्द-का प्रकृत अर्थ है देवताके समीप पूजीपहार दान। किन्तु 'वल' धातुका वध करना अर्थग्रहण करनेसे 'देवोद्देशसे विधिपूर्वक पशुघातन' ऐसा एक मिन्न अर्थ हृद्यङ्गम होता है। यथार्थमें उक्त भिन्न मिन्न देवताके सामने वैदिकयुगमें भिन्न भिन्न पुरुपकी विल होती थी वा नहीं। इसके उत्तरका यथायथ कोई मी प्रमाण नही मिलता । कोई कोई पण्डित इसे पुरुपके अर्थमें नारा-यण-ग्रहण विष्णुमहिमात्मक-यज्ञ, ऐसी व्याख्या करते हैं। चे इसे रूपक बतला कर उपेक्षा करते हैं, कमी भी नरविल-समन्वित मनुष्यप्राणघाती निरूप्टतर यज्ञविशेष-का नाम है, ऐसा हृदयमें स्थान नहीं देते। सामान्य विवेचना कर देखनेसे मात्र्म होता है, कि मनुष्य मनुष्य-का प्राणहन्ता है, विशेपतः माबी इष्टकामनासे निरपराध जीवनका अकारण-उत्सर्ग उन विश्वविख्यात वेदमन्त-द्रधा महर्षियोंके लिये कमी भी सम्मव पर नहीं हो सकता । जिस वेदमें जलदेवकी प्रीतिके लिये शुनःशेष-के उत्सर्ग और अकारण निधनकी आशङ्कासे रौहहृद्य ब्रह्मर्थि विश्वामितका भी अन्तःकरण द्यासे पिघल जाता था, ऐसा प्रसङ्ग वर्णित है, उस पुण्यमय वैदिकप्रवाहमें ऐसी अयुक्तिसङ्गत घटना हो, यह कभी भी मनुष्यहृद्यके विभ्वासमूलमें स्थान पानेके योग्य नहीं।

मन्तद्रष्टा वैदिक ऋषियोंने इन मन्तों का दर्शनलाम किस कारण प्रकट किया है, मालूम नहीं। थोड़ा लक्ष्य करनेसे ही जाना जाता है, कि यजुर्वेदी-उत्सर्गार्थ उनके छिखित देवता और प्रायः अनुरूप है। उक्त प्रन्थवर्णित चरित्रयुक्त जीवींके प्रायश्चित्तार्थं और तत्तत् आकृतिगत मनुष्यजीवनके परम पदलामार्थं अनुरूप देवताकी अधिष्ठान कल्पनामात है। आलोचना करनेसे ज्ञात होता है, कि 'धर्म' कमी भी तोषामोदी भिध्यावादी चाटुकारको पसन्द नहीं करता और ज्ञान कभो भी कामादिकी उदीपन-शिक्षा नहीं देता। इस प्रकार यथार्थमें धर्मके समीप पापका निधन और म्रानके समीप रिपुका वर्जन एकान्त अभिन्ने त है। रिपुके परवश होनेसे आत्माभिमान सहचर हो कर ज्ञानलाभके पध पर कल्टकलकप हो जाता है। इस कारण ज्ञान-िषपासु व्यक्तिके लिये रियु-पुरुपकी वलि वतलाई गई है। तद्वुद्धप धर्माचारी कव कुपथगामी हो कर मिथ्या-वादी हो जांयगे, साधुप्राण ऋषियोंका यह कभी भी अभिन्नेत नहीं है। यही कारण है, कि वे निरपेक्षसावमें विशेष विशेष देवताके सामने विशेष विशेष जीवकी उत्सर्ग-कथा लिख गये हैं अर्थात् जिस जिस देवताका जो जो अप्रिय है अथवा जिन सद चरितानुष्ठानसे जो जो देवता रुष्ट होते हैं, वैदिक ऋषियोंने उन सव देवताओंको प्रसन्न रखनेके लिये मानवको उसी उसी चरित्र-गुण-का उत्सर्ग करनेको आदेश दिया है। अर्थात् हे मानव! तुम धर्मके सामने अपने पापकी विल दो, मोक्षपद पाओंगे । तुम पापकी विंछ दो, ऐसा कहनेसे यह नहीं समभा जाता कि तुम ही खयं धर्मके समीप उत्सगीं-कत हो।

किन्तु साधुयुगको कथा विद्यतयुगमें आ कर अधिक-तर विद्यत हो गई है। आचारम्रष्ट तान्तिकोंने मन्त-प्रमाव भूल कर जब लौकिक आचारमें ध्यान दिया, तभी वे वैदिकमाहारम्य भूल कर मौतिक-आचारमें लित हुए। वेदमें पुरुषमेध-यहको व्यवस्था है, यह देख कर वे अमीष्ट-लामकी आशासे उन्मत्त हो गये। वैदिक कियाकलाप-के जपर लक्ष्यन रख कर उन्होंने पापपथका प्रश्रय लिया। कमझा: पुण्यमव मोक्षप्रद्श्रष्ट हो कर ये पापके अशान्ति-

निकेतनमें अप्रसर हुए, यथार्थ हो कालप्रमाव और वुद्धिविपर्ययसे ऐसा कपान्तर हो गया था। वैदिकयुगमें
धर्म ही एकमाल मोक्षोपाय समन्ता जाता था, इस कारण
तद्धमंप्रतिग्रा हो तत्कालीन ऋषियोंको मानसिक उत्कधर्ताका फल है। वैदिक आचारम्रष्ट कर्मकाएडमें लिस
तान्तिकगण मोक्षलामके लिये मोहजड़ित कियाकाएड
पर लक्ष्य रख कर देवीके सामने नरविल देनेमें कातर
नहीं होते। इसके बाद शक्ति उपासक कापालिकोंका
अभ्युदय हुआ। यह नृशंस धर्मवीरगण तान्तिकाचारके
अनुग्रानसे मुक्ति पा कर सुरासेवन और अकारण सेकड़ों
नरहत्या करते थे। वे नर नारी पकड़ कर जङ्गल ले जाते
थे। वहां यहारमके वाद स्रीके सतीत्वनाश और पुरुपके
जीवनदानसे यहानुः ठानका समाधान ही इस सम्प्रदायप्रवित्त धर्ममतकी मूल भित्ति समन्त्रो जाती थी।

ऋक् और यद्धःसंहितामें पुरुषमधकी परिपोषक जो सब घटनाएँ मन्तके मध्य सिन्नविशित हुई हैं, वे केवल सूक्ष्म सूत्रका आभासमात है। संहिताके मध्य जो अस्पष्ट और अस्पुट हैं, वैदिक ब्राह्मणादिमें वही पुङ्खानु- पुङ्क्षपमें विवृत हुई है। संहितामें जो सनातन आये जाति- के अनुष्ठेय कर्त्तच्य कर्मक्रपमें लिपिवद्ध हुआ था, ब्राह्मण- युगमें उस पूर्वतन क्रियाकलापका कुछ अंश परित्यक्त है। कुछ परिमार्जित है और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने नूतन याग- यक्तसे परिपुष्ट हो कर कलेवरको परिवद्धित किया है। संहिता-परिवर्त्तित धर्म आदिभाविभिश्रित है, पर ब्राह्मण- निर्दिष्ट धर्मपथ ही हिन्दूधर्मप्रतिष्ठाका यथार्थ सोपान हैं।

पेतरेय ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है, कि देवगण यहमें
पुरुषविल देते थे, किन्तु वह गल्प पढ़नेसे पेतरेय ब्राह्मणके समय हिन्दूसमाजमें पुरुषमेश प्रचलित था, पेसा विश्वास नहीं होता। देवगण मनुष्यकी हत्या करके उसके
श्रारीरसे उत्सर्ग वपा ब्रह्मण करते थे। उत्सर्गाथ उक्त
अंश ले कर ही वे उस मनुष्यको विदाई देते थे। पेतरेयब्राह्मणके उक्त वचनसे यह साफ साफ प्रतीत होता है,
कि समय प्राणिवध्यक्ष प्रचलित नहीं था। किन्तु उक्त
ब्राह्मणके स्थान विशेषमें यक्षमें हत जीवकी वपा उत्सर्ग
करनेका मन्त्र रहनेके कारण तथा उत्सर्गार्थ जीवादिके
निर्वासन, हरण और पुरोहितगणके मध्य प्रस्परके

विभाजन आदिका पाठं करनेसे मनमें एक नवीन सन्देह-छायाका उदय हो जाता है। इस ब्राह्मणयुगमें अश्वमेध, गोमैध वा छागमेध यह अनुष्ठित नहीं होता था, वह निःसन्देह नहीं कहा जा सकता।

तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें भी पुरुषमेधयहकी कथा लिखी है। उक्त प्र'थ आपस्तम्बने कहा है, कि यह वह पश्चदिन व्यापी है, ब्राह्मण और राजन्य (क्षतिय) छोड़ कर और किसीको भी वह यह करनेका अधिकार नहीं है। यज्ञाधिकारी अनेक फलोंके अधिकारी होते हैं। पञ्चशार-**दीय यहकी तरह इसकी दिनसंख्या विहित हुई है** और अनिष्टोममें जिस प्रकार ११ विलयोंका विधान है, इसमें मी उसी प्रकार मध्य दिनमें 'देवसवितस्तत् सवितुर्वि-इदानि देवसवित' इत्यादि मन्त्रोधारणपूर्वक सावितीको तीन वार आहुति दे कर यूपजुष्ट वध्यजीवकी उपाकृत करना होता है। "ब्राह्मणे ब्राह्मणाम् आलभेत" इत्यादि मन्त्रींसे बाईस बार मनुष्यको उपाछत करके यूपमें वांध वेना पड़ता है। इस समय ब्रह्मा (पुरोहित ) 'सहस्र-शोर्व पुरुष, इत्बादि मन्त्रपाठपूर्वक परम पुरुष-नारायण-का ः बुतिपाठ करना होता है।' साबणाचार्यने आपस्तम्ब-का मत उद्भृत करके तत्तत् यूपजुष्ट पशु और देवदेवीकी अर्थान्तर ध्याख्यानमें जैसा मत प्रकाशित किया है, उससे स्पष्ट जाना जाता है, कि ब्राह्मणसे छे कर कुमारी पर्यन्त मनुष्यक्षपद्मारी प्रत्येक पशु ही पुरुषमेधयक्षमें मध्यन्दिन-को अन्यान्य पशुओंके साथ वधयोग्य हैं। उनके मतसे यह पुरुषमेध सोमयागसद्भश है।

आपस्तम्ब अथवा सायण कोई भी पुरुषविक्रको कपक नहीं वतलाते। आपस्तम्बने जो एक 'उपाक्षत' शब्द-का प्रयोग किया है, वह अपरिस्फुट है। उक्त उपाक्षत शब्दके ऊपर निर्भर करके किसी प्रकार प्रकृत अर्थ प्रहण नहीं किया जा सकता।

बन्नमें बिल देनेके पहले उस पशुको स्नानादि कराने-के बाद यथा नियमसे उत्सग<sup>े</sup> करके अमीष्ट देवताके उद्देशसे बिल देनी होती हैं। यूपजुष्ट पशुको पवित करने-का नाम ही उपाकृत है। महर्षि जैमिनि और शवरस्वामी-ने पशुबलि देनेकी जो जो क्रिया करनी होती है, उसीको उपाकरण बतलाया है। आपस्तम्बके वस्त्रमसे, आभास ध्यतीत कोई स्पष्टतर उत्तर तो नहीं मिलता, पर तत्पर-वत्तीं शतपथब्राह्मणमें यश्चमें विलद्दानार्थ नरपशुके उपा-करणादिका प्रद्यत विवरण दिया गया है, जिसका तात्पर्थ इस प्रकार है,—

पक दिन पुरुषक्षपी नारायणने इच्छा की, कि मैं सब भूतोमें अवस्थान करूं गा। उसी समय उन्होंने यह पञ्चरात साध्य पुरुषमेधयन्न देखा और आहरण कर लिया। वहीं ले कर उन्होंने यज्ञानुष्ठान किया, जिससे वे सर्वभूतस्थ और सृष्टिभूत हुए। इस यज्ञमें २३ दीक्षा, १२ उपसद, ५ सुत्या, कुल ४० गात निर्दिष्ट हुए हैं। इन चालिसींके मध्य चत्वारिशदक्षरा विराद् विराद्पुरुषक्पमें अवस्थित है। इस विराद्से यञ्चपुरुष उत्पन्न हुआ है।

चार दशत् चार लोक प्राप्तिका उपाय है, प्रथम दशत्से यह लोक (पृथिवी), द्वितीय दशत्से अन्तरिक्ष, तृतीय दशत् से आकाश और चतुर्थ दशत्से समस्त दिशाएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार यहकारो दशत्से चार लोक प्राप्त होती हैं। इस प्रकार यहकारो दशत्से चार लोक प्राप्त होते हैं। सुतरां यह पुरुषमेघ हो चार लोक प्राप्ति और सर्वावरोधका उपायस्कष्प है। इस यहमें दीक्षित होनेमें अनि और सीम-के उद्देशसे ११ पशु और उनके लिये फिर ११ यूपोंकी आवश्यकता है। एकादश अक्षरमें तिल्डुम् है, तिल्डुम् ही चन्न और वीर्यस्वकप है। निल्डुम्के वन्न और वीर्यप्रमावसे सभी पाप जाते रहते हैं। सुत्यामें ११ पशुकी आवश्यकता है, क्योंकि इस यहमें ११ पशु निर्दिष्ट हुए हैं। इसके द्वारा पुरुषमेधमें समस्त लाभ और समस्त जय की जा सकती है। इस पञ्चाहसाध्य पुरुषमेधमें पञ्चविध अधिदेवत और समस्त अध्यादम पाये जाते हैं।

इस पञ्चाहके मध्य प्रथम दिन अनिष्टोम, द्वितीय दिन उक्थ्य, तृतीय दिन अतिरात, चतुर्थ दिन उक्थ्य और पञ्चमदिन अग्निष्टोम होना आवश्यक है। इस पञ्चरातमें यवमध्य होता है। अतिरात ही आतमा है, कारण दो उक्थ्य के मध्य अवस्थित है। अतिरात मध्याहमें होनेके कारण यही यवमध्य है। इस पुरुषमेधमें प्रथमाह यह लोक है, इस लोकमें वसन्त ही प्रधान है। इसके ऊर्ड अन्तरिक्ष द्वितीयाह है, वहां श्रीष्मसृतु है। तृतीयाह ही अन्तरिक्ष लोक है, वहां वर्षा और शरत थे दो सृतु हैं। अन्तरिक्षके उपर दिव चतुर्थाह है, जिसकी सृतु हेमन्त है। इसके ऊपर चौ पञ्चमाह है, जहां शीतऋतु है। अध्यातमभावमें भी इसी प्रकार पञ्चाह पञ्चऋतुका अधिष्ठान है। यह पुरुषमेधयह करनेसे वे सब छाभ और अवरोध किये जाते हैं।

शतपथत्राह्मणके १३।६।२ अध्यायमें, पुरुषमेध नाम क्यों पड़ा, इसका विषय यों लिखा है,—

बह लोक समुदाय ही पुर है। इस पुरीमें वे शयन करते हैं, इस कारण उनका नाम पुरुष पड़ा। अन्तका नाम ही मेघ है, मेघ ही पुरुषका आहार है, इसीसे यह पुरुपमेध हैं। इस यशमें मेध्य पुरुषगण आल-मित भर्यात् हिंसित होते हैं, इससे इसका पुरुषमेध नाम पड़ा है। मध्यम दिनमें ही उन्हें विल चढ़ाई जाती है। यह मध्यम दिन ही अन्तरिक्ष हैं। अन्तरिक्ष ही सभी भूतोंका भावास है। वह मध्यम दिन ही उदर है, उदर ही अन्त-धारण करता है। विराट्के दश अक्षर हैं इसीसे दश दश करके विल दी जाती है। लिन्द्रमके अक्षर एकाद्श हैं, इस कारण एकादश दश अर्थात् एक सी दशकी भी विल दी जा सकती है। जगती अष्टाचत्वारिशत् अक्षरा ४८ पशु विल देनेकी व्यवस्था है। गायली अद्यक्षरा है, इस कारण उत्तम भाउपशुहिसा होती है। वे सब हिसित पशु ब्रह्मप्रजा-पतिके हैं। ब्रह्मप्रजापति सविताको प्रसन्न करनेके लिये सावित्रीमन्त्र उचारणपूर्वक तीन आहुति करते हैं। उसी सविताने प्रसन्न हो कर पुरुषींको प्रसव किया है, इसी-से वे प्रसूतगण ( विखबरूप ) हिसित होते हैं, इत्यादि ।

शतपथत्राह्मणका विवरण पढ़नेसे क्या यह प्रतीत नहीं होता, कि पूर्वकालमें किसी प्रकारकी नरविल प्रधा प्रचलित थी, जिसके अनुकल्पकी कथा शतपथत्राह्मणमें विणित हुई है ? मानव-समाजकी शैशवावस्थामें जो सव भाचार व्यवहार प्रचलित रहते हैं, यौवन कालमें वे नाना कारणोंसे परिवर्त्तित होते देखे जाते हैं। वेदस्रिष्टिके पहिले आर्य समाजकी जब शैशवावस्था थी, उस समय वे स स्व परिजन अथवा स स उपास्य देवताकी परितृष्टिके लिये नरविल देते थे, यह असम्भव नहीं है। ऐतरेय-ब्राह्मणमें शुन शैपका उपास्थान पढ़नेसे, एक समय यहोपलक्षमें नरविल-की प्रथा प्रचलित थी, उसका स्पष्ट आभास मिलता है। पहले हरिश्वन्द्रके एक भी सन्तान न थी। पीछे उन्होंने

वरुणकी भाराधना करके उनके वरसे रोहित नामक प्क पुल प्राप्त किया। पुल होनेके पहले यह बात उहरी थी जो पुत्र जन्म लेगा, उसे वरुणको उत्सर्ग करना होगा। पुत्र होने पर वरुण आये और हरिश्वन्द्रसे पुतके छिपे प्रार्थना की । किन्तु हरिश्चन्द्र इस बार वरुणकी प्रार्थना पूरो न कर सके। रोहित प्राणभयसे जङ्गल भाग गये। अजीगर्च नामक एक द्रिद् ब्राह्मणके साथ उनकी भेंट हुई। एक तो ब्राह्मण दरिंद थे, दूसरे उनके पुत भी अनेक थे जिनका पालन पोषण वे अच्छी तरह न कर सकते थे। इस कारण नितान्त अनिच्छा रहते हुए भी उन्होंने अपने मध्यम पुलको राजाके हाथ बेच ढाला । अब रोहितके वदलेमें उस ब्राह्मणकुमारको ही वरुणके निकट उत्सर्ग करनेकी व्यवस्था हुई। विश्वामित इस यहने पुरोहित वने । उत्सर्पके समय उस ब्राह्मण-कुमार शुनः-शेपकी कातरोक्ति सुन कर विश्वामितका भी इदय द्या-से पिघल गया । सम्भवतः उस ब्राह्मण-कुमारका प्राणवध करना विश्वामिलने उपयुक्त नहीं समभा। वरुणदेवकी सन्तुष्ट करके उन्होंने उस ब्राह्मण-कुमारके प्राण बचा दिये, यहां तककी वह ब्राह्मण-कुमार विश्वामित्रके ज्येष्टपुत कह कर गृहीत हुआ। उक्त उपाख्यानसे ऐसा बोध होता है, कि अधुनातनकालमें जिस प्रकार गङ्गासागरमें पुत-दान अथवा देवी चामुएडाके निकट नरविछ प्रचिछत थी, अतिपूर्वकालमें वैदिक सभ्यताका जब उतना विस्तार न था, तब उसी प्रकार वलिप्रधाका प्रचार रहा। वैदिक सभ्यताके विस्तारके साथ साथ जब इस कार्यको लोग हेय समभने लगे, तव उसके विकल्पमें पशु-विलक्ष प्रचार हुआ। कलिकालमें पुरुषमेधको निषिद्ध वतलाया है ।

पुरुपरक्षस् ( सं० पु० ) पुरुपाकार राक्षसभेद ।

पुरुषराज (सं॰ पु॰) पुरुषस्य राजा दन् समासान्तः। पुरुषश्रेष्ठ।

पुरुषराशि ( सं॰ स्त्री॰ ) ज्योतिष शासानुसार मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्मराशि ।

पुरुषक्प ( सं० क्ली० ) पुरुषाकार ।

पुरुषरूपक ( सं० ति० ) नराकृतिविशिष्ट।

पुरुवरेषण (सं० ति० ) पुरुवस्य रेषणः। पुरुवहिंसकः, पुरुवकी हत्या करनेवाला।

पुरुषरेपिन् (सं॰ ति॰) पुरुषहिंसाशील, पुरुपकी हिंसा ' करनेवाला ।

पुरुषवध ( सं० पु० ) नरहत्या।

पुरुषवत् (सं० ति०) पुरुष-मतुष्, मस्य व। नरवत्, मनुष्य-के जैसा।

पुरुषवाच् (सं॰ स्त्री॰) पुरुषस्येव वाक् यस्याः। पुरुष-वदुवाषययुक्त शारि, नरके जैसा वोलनेवाली मादा तोता। ंपुरुषवार ( सं॰ पु॰ ) ज्योतिष शास्त्रानुसार रवि, मङ्गल, वृहस्पति और शनिवार।

पुंचपवाह (सं० पु०) पुरुषमादिपुरुपं वहति वह-अण्। १ विष्णुका वाहन गरुड़। २ पुरुषेण नरेण उहाते वह-कर्मणि घङ् । २ नरवाहन, कुवेर । पुरुषस्य वाहः वाहनं । ३ पुरुषका वाहन।

पुरुपवाहन् (सं० अव्य०) पुरुष-वह णमुल् । पुरुषकर्मक ़ वहन । णमुल् प्रत्यय होनेसे यथाविधि अनुप्रयोग होता है। यथा 'पुरुपवाहं वहति पुरुषं वहतीत्यर्थः'।

, पुरुषविध ( सं॰ ति॰ ) पुरुस्येव विधा यस्य । पुरुषप्रकार । पुरुवर्षेभ (सं० पु०) पुरुव ऋषभ इव उपमितसमासः। ় पुरुपश्चेष्ठ ।

🗸 पुरुपव्यात्र (सं० पु०) पुरुपो व्यात्र इव । पुरुषश्रेष्ठ । , पुरुषयाधि (सं० स्त्री०) उपदंश ।

...पुरुववत ( सं० क्ली० ).साममेद ।

ः पुरुपशांदूर्छ (सं॰ पु॰) पुरुषः शादूर्छ इव उपमित-समासः। पुरुंपश्रेष्ठ।

पुरुवशिरस् ( सं० क्ली० ) नरमस्तक ।

ं- पुरुवशीर्षं ( संं७ क्ली० ) पुरुषका मस्तक ।

पुरुपशीपँक (सं० ह्री०) नरमस्तकयुक्त चौर-ध्यवहृत यन्त्रभेद ।

पुरुषसिंह (सं पुरु ) पुरुषः सिंह स्य पुरुषेषु सिंहः श्रे हो वा । १ पुरुपश्रेष्ठ । २ जिनविशेष । इसका पर्याय शैवि है।

पुरुवसूक्त (सं० क्वी०) परमपुरुषप्रतिपादकं स्क । स्कानेव । इस स्कना पाठ कर अभिषेकादि अनेक कार्य ं; करते होते हैं ), ऋग्वेदमें १०|६०|१-१६ तक यह पुरुष-स्का लिखा है। पुरुषस्क वधा 🚃 👑

१ । "सहस्रशोर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमि विश्वती वृत्वात्यतिष्ठदशांगुलम् ॥ २। पुरुष एवेदं सर्व यद्भृतं यत्र भव्यं । उतासृतत्वस्येशानो यव्श्रे नातिरोहित ॥

३। पतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि तिपावस्यामृतं दिवि॥

४ । तिपाद्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहा भवत् पुनः। ततो विष्वङ्यकामत् साशनानशने अभि॥

५। तस्माइ विराइजायत विराजो अग्नि पृक्षः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चादुभूमिमथो पुरः॥

६। यत्पुरुपेण हविपा देवा यद्ममतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्यः शरद्वविः॥

७। तं यत्रं वर्हिपि प्रीक्षन् पुरुषं जातमप्रतेः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋपयश्च ये ॥

८। तस्माद्यमात् सर्वेहुतः सम्भृतं पृपदात्यम्। पशुन्तांश्चके वायव्यानारण्यान् प्राम्याश्च ये॥

६। तस्माद्यकात् सर्वेहुतः ऋषः समानि जिहरे। छन्दांसि जिन्नरे तस्मादुयज्जस्तस्मादजायत॥

१०। तस्माद्यवा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जिन्दै तस्मात्तस्माजाता अजावयः॥

११। यतपुरुषं व्यव्धः कतिश्रा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य की वाह का ऊरू पादा उच्येते।

१२ । त्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्वाह् राजन्यः इतः । ऊद्ध तदस्य यहै श्यः पद्दभ्यां शूद्रो अजायत॥

१३ । चन्द्रमा मनसो जातश्वक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्वानिश्व प्राणाद्वायुरजायत ॥

१४। नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीष्णीं ही समवर्तत। पद्भां भूमिर्दिशः श्रोतात्तथा छोका अकल्पयन ॥

१५। सप्तास्यासन् परिधयितः सप्त समिधः इताः। देवा यद्यज्ञः तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुं।

१६। यहाँ न यञ्च मजयन्त देवास्तानि धर्माणि प्रधमान्यासन् ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत पूर्वे साध्या सन्तिद्वाः॥ (ऋक् १०)६०१-१६)

पुरुवस्तकोपनिवत् ( सं॰ स्ती॰ ) उपनिपद्गे द । पुरुषांशक (सं० पु०) पुरुषस्य मंशः स्वार्थे कत्। १ पुरुषांशभेद, पुरुषका अंश। २ तत्प्रतिपादक प्रन्य। पुरुषादु (सं० पु०) पुरुषं अत्ति अद्-किप् । नरमक्षक राक्षस, मनुष्य खानेवाला राक्षस । (ति॰ ) २ शबुजनभक्षक । पुरुषाद (सं० पु० स्त्री०) पुरुषमत्ति अद-अण् उपपद समासः। १ राक्षस। २ मत्स्यदेशभेद। पुरुषाद्क ( सं० त्रि० ) १ नरभक्षक राक्षस । २ जनपदभेद ्जीर तज्ञन-पत्रवासी छोग्।

पुरुषादृत्व (सं० क्ली॰) पुरुषादृस्य भावः त्व । राक्षसका भाव वा धर्म ।

. पुरुषाद्य (सं॰ पु॰) पुरुषाणां जिनपुरुषाणामाद्यः प्रथमः । आदिनाथ नामक जिनविशेष । पुरुषेषु जीवे आद्यः प्रथमः, पुरुषाणां आद्यो वा । २ विष्णु । पुरुषः नराः : आद्यो यस्य । ३ राक्षसः ।

पुरुषाधम (सं॰ पु॰) पुरुषेषु अधमः अतिनिऋषः। निकृष्ट नर, अधम मनुष्य।

पुरुषानुकम (सं॰ पु॰) पुरखोंकी चली आती हुई परम्परा। पुरुषान्तर (सं॰ पु॰) अन्यः पुरुषः। अपर पुरुष, दूसरा आदमी।

पुरुषान्तरात्मन् ( सं॰ पु॰ ) जीवात्मा ।

पुरुषायण (सं० ति०) पुरुष आतमा अयनं प्रतिष्ठा यस्य, ततः 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' इति णत्वं । आत्मप्रतिष्ठ - प्राणादि, प्राणादि आत्मामें प्रतिष्ठित हैं, इसीसे यह नाम पड़ा है।

पुरुषायुष (सं० क्वी०) पुरुषस्य आयुः अच्समासान्तः ( ग ५।४।७७) पुरुषका आयुःकाल । सौ वर्षंका काल, जो मनुष्यकी पूर्णायुका काल माना गया है।

पुरुवारथ (हिं पु॰) पुरुवार्थ देखो ।

पुरुषार्थ ( सं ० पु० ) पुरुषस्य अर्थः । पुरुपका प्रयोजन । वह चार प्रकारका है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

🦯 "धंर्मार्थे काममोक्षास्च पुरुषार्था उदाहताः।"

( अग्निपुराण )

भर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चार पुरुषार्थ हैं। इन चार्गेमेंसे मोक्ष ही सर्वप्रधान है। सांख्यके मतसे तिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिरुप मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है—

"अथ तिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तः पुरुषार्थः॥" ( सांख्यस्त १।१ )

प्रकृति पुरुषार्थके लिये अर्थात् पुरुषको दुःखोंसे निवृत्त करनेके लिये निरन्तर यत्न करती है, पर पुरुषके धर्मको अपना धर्म स्मम्भ अपने स्वरूपको मूल जाता है। जब तक पुरुपको सद्भपका ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक प्रकृति साथ नहीं छोड़ती। किसी न किसो दिन प्रकृति पुरुषका प्रयोजन सिद्ध करेगी हो। धर्म, अर्थ और काम

यह तिविध-पुरुवार्थ निरुष्ट वा मन्द पुरुवार्थ है। २ पुरुवकार, पौरुष, उद्यम, पराक्रम । ३ पुंस्स्व, शक्ति, सामर्थ्य, वल ।

पुरुषार्थी ( सं॰ ति॰ ) १ पुरुषार्थं करनेवाला । २ उद्योगी । ३ परिश्रमी । ४ सामर्थ्यवान, वली ।

पुरुषाशिन् (सं॰ पु॰ ) पुरुषमश्चाति अश-णिनि । नर-भक्षक राक्षस, मनुन्य खानेवाला राक्षस ।

पुरुषास्थिमालिन् ( सं॰ पु॰ ) पुरुषाणामस्थीनि तेषां माला अस्त्यस्येति पुरुषास्थिमाला नीह्यादित्वात् इनि । शिन, महादेव ।

पुरुषेत्र (सं॰ पु॰) पुरुषेषु इन्द्रः श्रेष्ठः। पुरुषश्रेष्ठ। पुरुषेषित (सं॰ ति॰) पुरुषकर्त्मृक प्रौरित।

पुरुषेश्वर—एक प्राचीन क्षतिय राजा। ये सैरवोदेवताके भक्त और भोमर्ष मुनिकुळ-जात थे। (महादि ३४।१६) पुरुषोत्तम (सं॰ पु॰) पुरुषेषु उत्तमः। १ विष्णु। २ जिनराज-विशेष। इसका पर्याय सोमभू है। ३ पुरुष- श्रेष्ठ। ४ धर्मशास्त्राचुसार वह निष्पाप, पुरुष जो शत्रु मित्र आदिसे सबदा उदासीन रहे।

५ उत्कलखण्डका एक देश, पुरो। यह पीठ स्थानों-मैंसे एक है। यहांकी शक्ति भगवती विमला हैं।

नीलाचलका दूसरा नाम पुरुषोत्तम है। यह ओडू-देशमें रिषकुल्या और वैतरणी नामक दो नदियोंके बीच अवस्थित है। यहां खयं पुरुषोत्तम नारायण वास करते हैं, इसीसे इसका पुरुषोत्तम नाम पड़ा है। ६ मलमासका महीना, अधिक मास।

पुरुषोत्तम - कर्णाट-राजवंशके एक राजा। ये इतिहास-प्रसिद्ध वैष्णव श्रीरूप गोस्वामीके पितामह मुकुन्दके बड़े भाई थे।

पुरुषोत्तम पुरीनगरके अन्तर्गत श्रीक्षेत्रतोर्थ । यहांके जगन्नाथदेव भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। यहांके किस किस तीर्थमें कीन कीन किया करनी होती है, अष्टा-विश्रति तत्त्वमें उसका प्रकृष्ट विवरण दिया गया है।

जगन्नाथ देखो । पुरुषोत्तम—इस नामके अनेक संस्कृत प्रन्थकारः और पण्डित हो गये हैं। १ छन्दोमअरीके रचयिता गङ्गादासके पुत्र । २ राधाविनोदके प्रणेता रामजन्दके पितामह

Vol. XIV. 30

और जनादैनके पिता। ३ फुएडकौमुदीके रचिता विश्वनाथदेवके पिता। ४ विश्वप्रकाशपद्धतिकार विश्व-नाधदेवके पिता। ५ अङङ्कारशास्त्रप्रणेता कविचन्द्र। साहित्यद्पेणमें इनका नाम आया है। ६ आविर्भाव, तिरोभाव, वादार्थ, प्रहस्तवाद, विम्वप्रतिविम्ववाद, सवृत्तिवाद आदि प्रन्थकार। ७ उत्सवप्रतानके रच-यिता। ८ गायतीकारिकाभाष्य वा गायत्राद्यर्थप्रकाश-कारिका-विवरण नामक प्रन्थकर्ता । ६ तत्त्वदीपप्रकाशा-वरणभङ्गके रचयिता। १० निरोधलक्षणटीकाके प्रणेता। ११ नृत्सिहतापनीयोपनिषत्–टीकाके रचयिता। १२ पिएडतकर भिन्दिपालप्रणयणकर्ता । १३ प्रस्थानरता-करके रचनाकार। १४ भगवद्भक्तिरतावलीके प्रणेता। १५ भागवतनिवन्धयोजना और भागवतपुराणखद्धप-विषयक शङ्कानिराश नामक दो प्रन्थोंके प्रणेता। १६ मुक्तिचिन्तामणि और तद्दीकाके रचियता। १७ वेदान्त-मालासङ्कलनकर्ता । १८ शङ्खचकथारणवादके प्रणयन-कर्ता। १६ संन्यासनिर्णयके सङ्गळियता। २० सुभा-पित-मुक्तावली-प्रणेता । २१ एक प्रसिद्ध पण्डित, पीता-म्यरके पुत्र और वल्लभाचार्यके शिष्य। इन्होंने खरचित अवतार-वादावली प्रन्थमें विद्वलेश्वरका उल्लेख किया है। एतद्भिन्न द्रव्यशुद्धि और दीपिका, नवरत्नटिप्पनी, पतावलम्बनरीका, बहुभाएकविवृतिप्रकाश, विद्यन्मएडन-टीका, सुवर्णसूत, सिद्धान्तरहस्यविवरण, सिद्धान्त-वाङ्माला और सेवाफलस्तोत्तटीका नामक और कई प्रन्थ इन्हींके वनाये हुए हैं। २२ एक विख्यात वैदा-न्तिक परिडत । इनकी उपाधि आश्रम है। ये छान्दो-ग्योपनियत्भाप्यके प्रणेता नित्यानन्दाश्रमके गुरु थे। २३ अध्यात्मकारिकायलीके रचयिता। २४ मकरन्द्टीकाके प्रणेता । २५ मुक्तिचिन्तामणिके सङ्कलयिता । ये गज-पति श्रीपुरुपोत्तमदेव नामसे प्रसिद्ध थे। २६ सम्ब त्सर-निर्णंयप्रतानके रचयिता। २७ अग्निष्टोमऋतुकः लिप्ति नामक प्रन्थकार। २८ माधवके पुत्र, चकदत्तके पौत और श्रीकण्ठदत्तके प्रपौत । इन्होंने द्रव्यगुण नामक एक वैद्यकप्रन्थकी रचना की है।

एक वधकलप्याः । विद्युषणके प्रणेता । २ वेदान्त-पुरुषोत्तमञ्जाचार्य-१ वादिभूषणके प्रणेता । २ वेदान्त-रत्नमञ्जुषाके रचविता । ३ निम्मार्कसम्प्रदायभुक एक

साधु। ये विश्वाचार्यके शिष्य और विलासाचायके
गुरु थे। ४ भक्त्युद्भवके प्रणेता। एक पण्डित, आप
वेदान्तरत्नमञ्जुपा दशक्षीकटीका नामक एक प्रन्थ का
गये हैं।

पुरुपोत्तमकवि चुन्देलखएडवासी एक कवि । पे १६५० ई०में विद्यमान थे। ये विशेष धर्मपरायण थे। इस कारण जनता गुरुकी तरह इनका आदर करती थी। पुरुपोत्तमक्षेत उत्कलके अन्तर्गत जगन्नाथ-देवाधिष्ठित श्रीक्षेत्रभूमि ही पुरुपोत्तमतीथं वा क्षेत्र कहलातो है।

जगन्नाय शब्दों विस्तृत विवन्ण देखी

पुरुपोत्तम-गजपति नारायणदेव—पर्लाकिमेवद्दोके एक हिन्दू राजा।

पुरुपोत्तम गजपित श्रीवीरप्रकाश—दाक्षिणात्यके कोएड-विड्रू राज्यके अधीश्वर । इन्होंने १४६१से १४६६ हैं० तक राज्य किया । १४११ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इन्होंने कोएडविड्रु-वासियोंको राज-करसे विमुक्त कर दिया था ।

पुरुपोत्तम विपाठी—एक किंव, सोमादित्यके पुत ।
पुरुपोत्तमदास—वैराग्यचिन्द्रकाके रचियता ।
पुरुपोत्तमदोक्षित—रेवतीहलाएड नाटकके रचियता ।
पुरुपोत्तमदेव—१ एक किंव । पद्यावलीमें इनका उल्लेख
है । २ गोपालार्चनिविधिके प्रणेता । ३ विख्यात
वैयाकरण और आभिधानिक । अपने वनाये हुए हाराचली प्रन्थमें उन्होंने लिखा है, कि जनमेजय और धृष्टिसिंह उनके समसामयिक थे । उप्माभेद, एकाझरकोप,
कारकचक्र, जकारभेद, झापकसमुख्य, द्विकपकोप, द्वार्थकोम, परिभाषार्थमञ्जरी-विवरण, परिभाषावृत्ति, भाषावृत्ति, वर्णदंशना, शब्दभेदमकाशकोप, सकारभेद आदि
प्रन्थ उन्होंके रचित हैं । ४ तीरभुक्तिके अधोध्वर ।
इनके पिताका नाम भैरव और माताका जाबामहादेवी
था । द्वैतनिर्णयके प्रणेता प्रसिद्ध वाचस्पित मिश्र

इनके आश्रित थे । पुरुषोत्तम देव — उड़ीसाके एक राजा । ये . लोग बंशपर-म्परासे जगक्षाथदेवके मन्दिरमें भाड़ दिवा करते थे, इस कारण काञ्चीपतिने इन्हें अपनी कन्या देना न चाहा । इस अपमानका बदला लेनेके लिये राजाने काञ्ची पर आंक्रमण किया और वहांके अधिपतिको परास्त कर बलपूर्वक उनकी कन्याको अपनी स्त्री वना लिया।

वु स्वोत्तम परिडत-गोतप्रवरमञ्जरी और महाप्रवरमञ्जरी नामक प्रन्थोंके रचयिता।

पुरुषोत्तमपत्तन—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक नगर। यह वेजवाड़ासे १२ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

पुरुषोत्तमपाएडा--दाक्षिणात्यके पाएडावंशीय एक नरपति ।

पुरुषोत्तम पौराणिक—ब्रह्मत्वपद्धतिके प्रणेता । इनके पिताका नाम वालमभट्ट था।

पुरुषोत्तमपुर—मन्द्राजप्रदेशके गञ्जाम जिलेका एक नगर।
यह अक्षा॰ १६ ३० से १६ ५२ उ० तथा देशा॰ ८४
४३ से ८५ २ पूर्वके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण
२६४ वर्गमील और जनसंख्या १०२३६६ है। इसके
पूर्वमें कल्लीकोट राज्य तथा पश्चिममें गूमसुर तालुक
है। यहांका तौगोड़का स्तम्म ही देखने लायक है।
उस स्तम्ममें सम्नाट् अशोकके अनुशासन खोदे हुए हैं।
इलाहावाद, धौली अथवा कटकके स्तम्मकी जैसी आकृति
है, इसकी गठन भी वैसी ही है। स्तम्मके चारों ओर
महीकी ऊची दीवार देखी जाती हैं। यहांके लोग इस
प्राकारमण्डित स्थानको लाक्षादुर्ग कहा करते हैं। प्रवाद
है कि यह दुर्ग अमेद्य था और इसका ऊपरी भाग लाह
की तरह चिकना था। इस कारण शत्रु वड़ी मुश्किलसे
इसमें प्रवेश कर सकते थे।

२ उक्त जिलेकी वंशधारा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित एक गएडप्राम । यहां दन्तधरपुरकोट नामका जो महीका दुर्ग है उसे लोग करवाधिपति राजा दन्तवक्र निर्मित बतलाते हैं । दुर्ग के भीतर अनेक शिवलिङ्ग और प्रस्तर खोदित एक श्रीमूर्त्ति है । स्थानवासियोंका कहना है, कि यही मूर्त्ति दुर्ग की अधिकाली देवीकी प्रतिमूर्ति है । इसके अलावा यहां अनेक प्राचीन खणेमुदा भी पाई गई हैं।

पुरुषोत्तमप्रसाद उपाधि आचार्य, श्रीनिवासके शिष्य। अञ्चातमसुधातरङ्गिणी और श्रुत्यन्तस्रुरद्भम् नामक दो ग्रन्थ इन्होंके वनाये हुए हैं। २ निम्बाक के शिष्य, मुकुन्द-महिम्नस्तवके प्रणेता ।

पुरुषोत्तमभट्ट—देवराजार्यके पुत्त, प्रयोग-पारिजातके प्रणेता । पुरुषोत्तम विद्यावागीश-भट्टाचार्य—एक संस्कृतम् पिएडत । इन्होंने १७७२ ई॰में कोचविहारपित महनर-' नारायण देवके आदेशसे प्रयोगरत्नमाला नामक एक स्थाकरणकी रचना की ।

पुरुषोत्तमभद्दातमः साहित्वदीपिकाके रचिवता ।
पुरुषोत्तम मनुसुधीन्द्र किवतावतारके प्रणेता ।
पुरुषोत्तममास (सं० पु०) मलमास, अधिक मास ।
पुरुषोत्तममिश्र—१ उपाधि किवरत्न, रामचन्द्रोद्यके
प्रणेता । ये सङ्गीत-नारायणके प्रणेता नारायणदेवके गुरु थे ।
२ उपाधि दोक्षित । मुखवोधदीपिकाके सङ्कलियता ।
पुरुषोत्तम सरस्रती—श्रोपादके शिष्य और श्रीधर-सरस्रती
तथा मधुसूदनके छात थे । इन्होंने सिद्धान्ततत्त्वविन्दूसन्दीपन नामक श्रन्थको रचना की ।

पुरुषोत्तमानन्दतीर्थ-शिवरामानन्दके शिष्य । इन्होंने विदान्तन्यायरत्नावली-ब्रह्माद्वैतामृत प्रकाशिका नामक ब्रह्मसूबको एक टीका रची है।

पुरुषोत्तमानन्द यति—एक विख्यात पण्डित । ये सिद्धान्त-तत्त्वविन्दूटीकाके प्रणेता पूर्णानन्द सरस्वतीके गुरु और अहै तानन्द यतिके शिष्य थे ।

पुरुष्टुत (सं॰ ति॰ ) वहु प्रदेशमें स्तुत, जिसकी प्रशंसा अनेक प्रदेशोंमें की गई हो।

पुरुष्य (सं॰ ति॰ ) पुरुषाय हितं यत् । पुरुषहित । पुरुष्पृह (सं॰ ति॰ ) वहुकर्त्तुक स्पृहणीय ।

पुरुह ( सं॰ त्रि॰ ) पुरुं प्रचुरं हन्ति गच्छतीति पुरु-हन-ड । प्रचुर, बहुत, काफी ।

पुरुहु (सं॰ ति॰) पुरु' प्रचुरं हन्ति गच्छतीति हन-गतौ बाहुलकात् डु । प्रचुर, बहुत ।

पुरुद्धत (सं० पु०) पुरु प्रचुरं द्वतमाद्वानं यञ्जेषु यस्य वा पुरु यथा स्यात् तया द्वयते यज्वभिरिति अथवा पुरुणि वद्वनि द्वतानि नामानि यस्य । १ इन्द्र । २ इन्द्रयव । (ति०) ३ प्रचुर नामविशिष्ट ।

पुरुद्वता (सं॰ स्त्री॰) भगवतीकी एक मूर्त्ति। पुष्कर नामक पीडस्थानमें यह मूर्त्ति विराजित हैं। "विश्वे विश्वेश्वरी प्राहुः पुरुद्धताश्चं पुष्करे।" ( देवीभाग० ७।३०।५६ )

पुरुद्वति (सं॰ स्त्री॰) १ दाक्षायणी । (पु॰) पुरवो हृतयो नामान्यनस्य । २ विष्णु ।

पुरुहोत ( सं० पु० ) अंशुनृपपुतमेद ।

पुरु--पुरु देखो।

पुरुची (सं० ति०) गमनयुक्त।

पुरुद्धह् ( सं० पु० ) पुरुत् पौरवनृपान् उद्वहित उद्द-बह्-अच् । १ पौरववंशीय नृपश्रेष्ठ । २ द्वादश मन्वन्तरीय रुद्रसाविण मजुके एक पुतका नाम ।

पुरति स्व (सं॰ पु॰) पुरु प्रचुरं यथा स्यात् तथा रौति वा पुरौ पर्वते रौतीति पुरु-रु (पुरूरवाः। उण् ४।२३१) इति असि प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। सोमवंशीय वुध-के पुत और चन्द्रमाके पौत। पर्याय—वीध, ऐल, उर्वशी-रमण।

वेदसंहितामें पुरुष्वाको सूर्य और जयाके साथ व्रह्माएडके मध्यवत्ती स्थानमें अवस्थित वतलाया है। श्राप्वेदके मतसे ये इलाके पुत्र और धार्मिक राजाके जैसे गण्य थे। फिर महाभारतके मतानुसार इला इनके पिता और माता दोनों ही थीं। इन्होंने माता इलासे ही प्रतिष्ठा-लाभ किया।

हरिवंशमें लिखा है, कि चन्द्रमाने वृहस्पति-पत्नी ताराको हर लिया था। उस समय ताराके गर्भसे चन्द्र-को एक पुत हुआ जिसका नाम बुध रखा गया। बुधका विवाह राजपुत्नी इंटाके साथ हुआ। इटाके गर्भसे बुध-को पुकरवा नामक एक पुत उत्पन्न हुआ। पुकरवा अति विद्वान और नानाविश्व सव्युण-विभूषित थे। उर्वशीने ब्रह्मशापसे मर्त्यलोकमें जन्म लिया। एक दिन वह अप्सरा राजा पुकरवाके निकट पहुंची और बोली 'यदि आप मेरी चार बातोंका पालन करें, तो में आपको बर सकता हूं। में उर्वशी नामकी एक अप्सरा हूं, ब्राह्मणके शापसे मर्त्यलोकमें उत्पन्न हुई हूं। मेरी चार बात यह है, कि में आपको कभी नंगा न देखं, अकामा रहूं तो आप संयोग न करें, मेरे पर्लगके पास दो मेढ़े हमेशा बंधे रहें और आप एक सन्ध्या केवल घी पी कर रहें। जब तक आप उक्त जार बातोंका प्रतिपालन करेंग, तभी

तक में आपके पास रह गी। इसका उल्लाबन करनेसे ही में उसी समय आपको छोड़ खस्थानको चछी जाऊंगी। राजाने इन वार्तोको मान कर विवाह किया और ६१ वर्ष तक सुखपूर्वक रहे। एक दिन गन्धर्व उर्वशीके शाप-मीचनके लिये दोनों मेढ़े छोड़ा कर ले चले। राजा नंगें उनकी ओर दौड़े। राजाको नर्गावस्थामें देखनेसे ही उर्वशीका शाप छुट गया और वह खर्गकी चली गईं। इस समय गन्धवानि भी मेढ़े छोड़ दिये। राजा उर्वशीर्क वियोगसे नितान्त अधीर हो इधर उधर घूमने छगे। एक वार कुरुक्षेत्रके अन्तर्गंत प्लक्ष तीर्थमें हेमवती पुकारिणी-के किनारे उन्हें उर्वशी पुनः दिखाई पड़ी। राजा देख कर वहुत विलाप करने लगे। इस पर उर्वशीने कहा, 'मुभे आपसे गर्भ है, एक वर्ष वाद अनेक पुत उत्पन्न होंगे जिन्हें ले कर आपके निकट आऊंगी और केवल एक रात रहूंगी।' राजा कुछ सुस्थ हो कर संस्थानको चले गये। पीछे खर्ग में उर्वशीके गर्भसे आयु, अमावसु विश्वायु, श्रुतायु, द्रदायु, वनायु और शतायु ये सात पुत हुए। उर्वशी इन पुर्तोको ले कर राजाके पास गई और वहां केवल एक रात ठहरी । गन्धर्वीने राजाको अग्निपूर्ण एक स्थाली दी । राजाने उस अग्नि द्वारा अनेक यज्ञ किये। इन सब यज्ञोंके फलसे उन्होंने गन्धर्वीका सालोक्य प्राप्त किया था। प्रयाग नगरीमें उनकी राजधानी थी। जाहवीके किनारे प्रतिष्ठित होनेके कारण इसका नाम प्रतिष्ठानपुर पड़ा। ( इरिव'ण २५-२६ अ० । ) अग्निपुराण और मत्स्यपुराण आदिमें पुरुरवाका विवरण आया है।

ऋग्वेदमें भी पुरूरवा राजाकी सुरुतिका छेख देखनेमें आता है।

२ विश्वदेव । ३ पार्व णश्राद्धमें देवतामेद । पुरुवसु ( सं॰ पु॰ ) पुरु प्रसुरं वसु धनं वस्य वेदे दीर्घः । वहुधन, अच्छी सम्पत्ति ।

पुरेथा ( हिं० पु॰ ) हलकी मूठ, परिहथा। पुरैन ( हिं० स्त्री॰ ) पुरहन देखी।

पुरोग (सं० ति०) पुरोऽप्रे गच्छतीर्ति पुरस्-गम-ड । अप्रगामी ।

पुरोगत (सं० ति० ) पुरस्-गम-क । जो पहले गया हो । पुरोगति (सं० पु० ) पुरोऽप्रे गतिर्गमनं यस्य । १ कुम्कुर, कुत्ता । (ति० ) २ अप्रग, व्यप्रगामी । पुरोगन्तु (सं० ति० ) पुरस्-गम-तृच् । पुरोगामी, अप्र-गामी ।

पुरोगम ( सं० ति० ) पुरोऽप्रे गच्छतीति गम-अच्। अप्र-

पुरोगव ( सं॰ बि॰ ) पुरोगन्ता, अग्रयामी ।

पुरोगा ( सं॰ पु॰ ) पुरोगामी, अव्रगामी । 🖯

पुरोगामिन् (सं० ति०) पुरोऽप्रे गच्छतीति गम-णिनि। अन्नगामी । पर्याय-पुरोग, अन्ने सर, प्रेष्ठ, अन्नतःसर, पुरःसर, पुरोगम, नासीर, प्रवसर ।

पुरोगुरु (सं॰ बि॰ ) अग्रभागमें गुरु, जिसका अगला हिस्सा भारी हो ।

पुरोग्नि (सं॰ पु॰ ) पुरोऽप्रे अङ्गति अङ्ग-नि निपातनात् साधुः। अप्रगम, अप्रगामी, प्रधान।

पुरोचन (सं० पु०) दुर्योधनके एक मिलका नाम । दुर्यो-धनने जतुगृहमें पाएडवॉको जलानेके लिये इसे नियो-जित किया था। वारणावत-नग़रमें जतुगृह वनाया गया और पाएडवगण कुन्तोके सांध उसी नगरमें आये। पुरोचन इन लोगोंको भस करनेके समयकी प्रतीक्षा कर रहा था ; किन्तु पाएडवॉने यह गुप्त भेद जान लिया । भीमसेन जतुगृहसे निकल कर पुरोचनके घरमें आग लगा कर माता और भाइयों समेत चलें गये थे। इधर पुरोचनने अग्नि-दग्ध हो प्राण-विसर्जन किये।

( मास्त आदिवर्ष १४५ अ० ) जतुगृह देखो । पुरोजन्मन् (सं० बि०) पुरोऽय्रे जन्म यस्य । १ अव्रज भ्राता, वड़ा भाई। स्त्रियां वाहुलकात् टाव्। २ अप्रज-भगिनी, वड़ी बहन ।

पुराजव (सं० ति०) पुरोऽप्रतो जवी वेगी यस्य। १ अप्रवेगयुक्त, जिसके अप्रभागमें वेग हो, आगे वढ़ने-वाला। २ रक्षी, रक्षा करनेवाला। (पु०)३ पुष्कर-द्वीपके सात खएडोंमेंसे एक खएड।

पुरोज्योतिस् ( सं॰ ति॰ ) अत्रगाभी ज्योतिर्विशिष्ट । पुरोटि ( सं० पु० ) पुरोऽटतीति अट-इन् । १ पतमङ्कार,

पत्तीका शब्द । २ पुरसंस्कार ।

पुरीखाश (सं • पु • ) पुर-आदी दाश्यते दीयते इति पुरस्-दान्ध-दाने-किप् निपातनात् दस्य छ । १ हविः । पुरोऽत्रे दास्यते दीयते दाशा घम दस्य छ। २ इविभेद, यशीय-

द्रव्य, वह वस्तु जो यज्ञमें होम की जाय। ३ यवचूण-निर्मित रोटिकाविशेष, जीके आटेकी वनी रोटी। 8 पिष्टकचमसी, आटेकी चौंसी। ५ हुतशेष, वह हिव वा पुरोडाश जो यज्ञसे वच रहे। ६ यशमें शरीरावयव यज्ञका अङ्ग । यव आदिको आटेकी वनो हुई टिकिया जो कपालमें पकाई जाती थी। यह आकारमें लम्बाई लिये गोल और वीचमें कुछ मोटी होती थी। यज्ञोंमें इसमेंसे टुकड़ा काट कर देवताओंके लिये मन्त पढ़ कर आहुति दी जाती थी। ७ पिष्टकभेद, एक प्रकारका पीठा। ८ पुरोडाशसह चरितमन्त, वे मन्त जिनका पाठ पुरोडाश वनाते समय किया जाता है। ६ सोमरस ।

पुरोडाशिक (सं । ति ।) पुरोडाशः पिष्टपिएडः, तत्सह-चरिती प्रन्थो लक्षणया पुरोडाशः तस्य व्याख्यानं तत भवो वा छन् ( गौरो-इ।शात् छन्। वा ४।३।७० ) तत्-व्याख्यानग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें पुरोडाशसम्बन्धी व्याख्या हो।

पुरोडाशिन् ( सं॰ ति॰ ) यज्ञीय-पुरोडाश सम्बन्धीय । पुरोडाशीय ( सं॰ ति॰ ) पुरोडाशाय हितं छ । पुरोडाश-हित, यवतण्डुलादि ।

पुरोडाश्य (सं० ति० ) पुरोडाशाय हितमिति पुरोडाश्-यत्। पुरोडाशहित, हिवयोंग्य, हिवके लायक।

पुरोद्भव (सं० ति०) पुरे उद्भवति उद्द-भू-अच्। नगर-भव, नगरमें उत्पन्न ।

पुरोद्भवा (सं० स्त्री०) पुरे उद्भवो यस्याः। महामेदा। पुरोद्यान (सं॰ क्ली॰) पुरे यदुद्यानं। नगरका वगीचा।

पुरोध (सं० पु०) पुरोहित।

पुरोधस् (सं॰ पु॰ ) पुरोऽत्रे दधाति मङ्गलमिति पुरस् धा असि (पुरिष व । उण् ४।२३० ) सच डित् । पुरो-हित। पुरेहित देखो।

पुरोधा (सं॰ स्त्री•) पुरस् धा सम्पदादित्वात् भावे-किप्। पौरोहित्य, पुरोहिताई।

पुरोधातु (सं ॰ पु॰) पुरस्-धा-तृण्। पुरोहितनियोग-कारी, वह जो पौरोहित्य प्रदान करता हो।

पुरीधानीय (सं ० पु०) परोहित।

Vol XIV. 31

पुरोधिका (सं'० स्त्री०) अग्रपत्नी, प्रियतमा-भार्या, प्यारी स्त्री।

पुरोऽनुवाक्या (सं० स्त्री०) १ वह ऋचा जिसे पढ़ कर पुरोनुवाक्या नामकी आहुति दी जाती है। २ यज्ञोंकी तीन प्रकारकी आहुतियोंमें एक।

पुरोभक्तका (सं० वि०) प्रातराश, जो पहले खाया जाय।
पुरोभाग (सं० पु०) पुरस्-भज्-घन्। १ अप्रभाग,
ंअगला हिस्सा। (वि०) २ अप्रभागयुक्त, अप्रभाग-चाला।

पुरोमागिन् (सं ० ति०) पुरः पूर्वमेव भजते इति
पुरस्-भज-णिनि । १ दोषमातदशीं, छिद्रान्वेषी, गुणींकी
छोड़ कर केवल दोपींकी और ध्यान देनेवाला । (ति०)
२ अश्रांशी, अग्रमागयुक्त, अग्रमागवाला ।

पुरोभू ( सं॰ त्रि॰ ) पुरस्-भू-किए । जो युद्धमें पहले शतु-को प्राप्त हो ।

पुरोमास्त ( सं॰ पु॰ ) पूर्वोमास्तः । पूर्वशन्दादसि, पुर, आदेशः । पूर्वदिग्भव यायु, पूर्व ओरको हवा । पुरोयावन् ( सं॰ ति॰ ) पुरोगत, पहले गया हुआ ।

पुरोयुध् (सं ० ति०) पुरस् युध-किप्। संग्राममें अप्र-योद्धा, जो लड़ाईमें सक्से आगे रहे।

पुरोरंथ (सं ० ति०) पुरोऽम्रे स्थो यस्य । अप्रतोरध, आगेवाला स्थ ।

पुरोरवस ( सं ॰ पु॰ ) वुह्नरवस् पृथोदरादित्वात् साधुः । वुह्नरवस् देखो ।

पुरोक्च् (सं॰ ति॰) पुरोऽप्रे रोचते रुच्-किप्। १ अप्रे-रोचमान। २ ऋग्भेद।

पुरोवर्त्तिन् (सं ॰ ति॰) पुरोग्ने वर्त्तते वृत-णिनि । सम्मुख-वर्त्तीं, सामने रहनेवाला ।

पुरोवस्र ( सं॰ पु॰ ) पुरवस्र ।

पुरोबात (सं ॰ पु॰) पूर्ववर्ती वातः। पूर्ववर्ती वायु, पूरवकी हवा।

पुरावृत्त (सं ० ति०) अप्रवत्ती ।

पुरोहन् (सं ० ति०) पुरस् हन्-िक्षप्। पुरहन्ता, पुरहनन-

कारी। पुरोहविस् (सं ॰ पु॰) अन्नदेय हविः, पहले देने लायक पुरोडाश। पुरोहित (सं १ पु०.) पुरो द्वंष्टाद्वष्टफलेयु कर्मपु घोयते आरोप्यते यः, वा पुर आदावेव हितं मङ्गलं यस्मात्। २ शान्त्यादि कर्त्तां, ऋत्विक, श्राद्धयज्ञादि कारियता, वह प्रधान याजक जो राजा या और किसी यजमानके यहां अगुआ वन कर यज्ञादि श्रौतकर्म, गृहकर्मं और संस्कार यथा शान्ति आदिका अनुष्ठान करे कराय। पर्याय— पुरोधाः, धमेकर्मादिकारक। कविकल्पलतामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

> "पुरोहितो हितो वेदस्मृतिज्ञः सत्यवाक् शुन्तिः। ब्रह्मण्यो विमलाचारः प्रतिकर्त्तापदामृद्धः॥"

हितकारक, वेद और स्मृतिशास्त्रमें अभिन्न, सत्य-वादी, शुचि, ब्राह्मणका आचारसम्पन्न, निर्मेल आचार-युक्त, ऋज और आपदके प्रतिकारकारी, ये सव गुणयुक्त ब्राह्मण पुरोहितके उपयुक्त हैं।

चाणक्यने पुरोहितका लक्षण इस प्रकार लिखा है— "वेदवेदाङ्गतस्वज्ञो जपहोमपरायणः।

आशीर्वादवचोयुक्त एष राजपुरोहितः ॥" ( चाणम्य ) जो वेद और वेदाङ्गके तत्त्वाभिज्ञ तथा जपहोमादि परायण हैं, सर्वदा आशीर्वाद-वचनयुक्त हैं, वे राजपुरोहित अर्थात् पुरोहितश्रेष्ठ हैं ।

पुरोहितके निम्नलिखित दोव निन्दनीय हैं,—

"काणं व्यङ्गमपुतं वानभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।

न हस्यं व्याधितं वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ॥"

(कालिकापु॰)

काण, ध्यङ्ग, अङ्गहीन, अपुत्न, अनिमञ्ज, अजितेन्द्रिय, हस्य और पीड़ित इन सव गुणयुक्त ध्यक्तियोंको राजा पुरोहिन न बनावें। शुक्क यज्ञवेंदमें लिखा है। यज्ञादि कार्यमें जो प्रधान हैं, उन्हें पुरोहित कहते हैं। पुरोहितको चाहिये कि वे सुग्रह्मलासे यज्ञादि कार्य करें। 'शब्दे जाग्रयाम पुरोहिता: स्वाहा"। (ज्ञवल यज्ञ ११२३) 'पुरोहिता: यागाज्ञष्ठाना दौपुरोगापिन: प्रधना;' (वेदशेप) अम्निपुराणमें लिखा है—पुरोहित साम, सक् और यज्ञः इन तीनोंमें तथा दण्डनोतिमें कुशल होवें।

"तयोञ्च दण्डनीत्याञ्च कुशलः स्यात् पुरोहितः।" ( अनिपु• )

पुरोहित सर्वदा वेद-विहित शान्ति और प्रीहिक

काय करें। महाभारतके भीष्मपर्वमें लिखा है, कि राजा धर्मार्थ पर्यालोचना करके अतिशोध एक वहुदशीं पुरोहित नियुक्त करें। राजाओंके पुरोहित यदि धर्म-परायण और मन्त्रनिपुण तथा राजा धार्मिक होनें, तो प्रजाका सब तरहसे मङ्गल होता है। राजा और पुरो-हित दोनों ही देवता और पितरोंको परितृप्त तथा प्रजा-को परिवृद्धित करते हैं। राजाओंके पुरोहित यदि उप-युक्त न रहे, तो प्रतिपदमें कप्र पाते हैं।

वैदिककालमें पुरोहित राज्यके विश्वासी और धार्मिक गिने जाते थे। किन्तु मनुके समय देवपूजक ब्राह्मण दूसरे उच ब्राह्मणकी अपेक्षा कुछ हीनपदस्थ हो गये। ऐसा होने पर पुरोहितका प्रभाव घटा नहीं। राजा जानते थे, कि उनके हाथसे देवगण पूजा प्रहण न करेंगे। इस कारण वाध्य हो कर उन्हें गृहपुरोहित नियुक्त करना पड़ा था। यह पौरोहित्य ले कर ही विश्वामित और विशिष्ठमें विवाद चला। विश्व भिन्न और विशिष्ठ दे को।

पूर्वकालमें पुरोहितको हैं। यागयज्ञादि सभी वैदिक कार्य करने होते थे, किन्तु आज कल पुरोहितको वैसे कठिन कार्य करने नहीं पड़ते । नित्य पूजा और पार्वणादिमें आद तथा देवप्रतिमाकी पूजा करनेका भार पुरोहितके ऊपर सौंपा गया है। किन्तु प्रहयज्ञ करनेके लिये तथा आचार्य और वैदिक यागादि करनेके लिये विभिन्न होता नियुक्त होते हैं। आजकल हम लोगोंके देशमें कई जगह नापित और पुरोहित ही विवाहका सम्बन्ध स्थिर करते हैं।

पूर्वकालके वही एक पुरोहित अभी तीन भागोंमें हो गये हैं।--

१, पुरोहित—ये लोग यजमान वना कर पूजा करते हैं। विशेष विशेष कर्मोमें यजमानको मन्त्रकी आवृत्ति कराते हैं, उनके लिये शान्ति खस्त्ययन किया करते हैं। - २, पुजारी—ये देवल ब्राह्मणके जैसा विख्यात हैं। किसी निर्दिष्ट देवालयमें ये लोग प्रतिष्ठित देवताकी पूजा किया करते हैं।

३, गुष-देवतास्थानीय-ये कानमें मत्त्व देते हैं। इसीसे अपर ब्राह्मणोंकी अपेक्षा इनका दरजा ऊपर है। इन तीन श्रेणीके पुरोधायोंमें जिनके केवल ब्राह्मण शिष्य हैं, हिन्दूसमाजमें उन्होंका सबसे बढ़ कर आद्र है। जो ब्राह्मण और क्षतिय दोनों वर्णका पौरो-हित्य करते हैं, वे भी सम्मानित हैं। पर हाँ याजकता-के कारण पूर्व ब्राह्मणकी अपेक्षा कुछ हीन है। जो ब्राह्मण सत्शूद्रका पौरोहित्य करते, वे शूद्रयाजी ब्राह्मण कहलाते हैं। उच्च श्रेणीके ब्राह्मणसे ये बहुत निरुष्ट समके जाते हैं। किन्तु जो ब्राह्मण नीच शूर्वोंकी याजकता करते, वे वर्णब्राह्मण हैं। पूर्वींक तीन श्रेणीके ब्राह्मण वर्ण ब्राह्मणके हाथका जल नहीं ब्रह्मण करते। ये लोग पतित समके जाते हैं।

जैनदेवालयमें भी ब्राह्मण पुरोहित देखे जाते हैं। वालिद्धोपमें हिन्दुओं के मध्य पुरोहितका महासम्मान है। वहां राजाधिराजसे ले कर दीनदरीद्र सभी पुरोहितको देवतुल्य मानते हैं।

(ति॰) २ अप्रधारित, जो पहले पकड़ा गया हो।
पुरोहिताई (हिं॰ स्त्री॰) पुरोहितका काम।
पुरोहितानी (हिं॰ स्त्री॰) पुरोहितकी स्त्री।
पुरोहिति (सं॰ स्त्री॰) पुरोहितकी स्त्री।
पुरोहितिका (सं॰ स्त्री॰) पुरोहितस्य पत्नी ङीष् पुरोहिती ततः स्वार्थे क अनुकम्पायां कन वा। १ अनुकम्पित पुरोहितपत्नी। शिवादिभ्यो अपत्ये अण् पौराहितिक। २ पुरोहितका अपत्य, पुरोहितकी सन्तान।
पुर्जल (हिं॰ पु॰) एक यन्त्र जिस पर कलावस्त्र लपेटा जाता है।

पुर्जा (हिं पु ) पुर न हे हो।
पुर्त्त गाल पुर प्राप्त महादेशके अन्तर्गतं एक राज्य। यह
अटलाएटक महासागरके किनारे अवस्थित है। इसके
अत्तरमें स्पेन देशके अन्तर्भु क गालेसिया प्रदेश, पूर्वमें
स्पेन-सीमान्तवन्तीं लीवन, इसटर, महुरा और सेभिसप्रदेश, तथा दक्षिण और पश्चिममें अटलाएटक महासागर है। इसका भूपरिमाण प्रायः ३४२५४ वगमील
और जनसंख्या पन्नास लाखसे ऊपर है।

स्पेन और पुत्तैगाल दो स्वतन्त राज्य गिने जाने पर भी यथार्थमें इन दोनों के मध्य स्वभावरक्षित कोई विभाग नहीं है। इस राज्यमें प्रवाहित मिनहो, दुरो, टेगस्, गोआदियाना आदि नदियां स्पेनदेशसे निकल कर अस- लाण्टिक सागरमें गिरी हैं तथा मण्डेगो, जिजिरे और रुदो नामक तीन निद्यां पुत्तिगाल राज्यके मध्य उत्पन्न और प्रवाहित हैं।

पुर्त्तगालको उपकूल-भूमिको लम्बाई प्रायः ५०० मील हैं जिनमेंसे पश्चिम कुछ ४०० मील और दक्षिण १०० मील है। दक्षिण-पश्चिमकुल पर सेग्ट-भिन्सेग्ट और पूर्वदक्षिण पर सेएटमेरिया अन्तरीप वर्त्तमान है। पश्चिम-कूलस्थ स्थानकी भूमि पर्वताकीर्ण और पूर्वभागमें सम-तलक्षेत्र विद्यमान है। सेएट-भिन्सेएटसे सिराडि-मिन्निक नामक पर्वतश्रेणीकी शाखा क्रमशः उत्तरकी ओर सेतुवल हुद तक चली गई है और फिर वहां वह समक्षेत्रमें परि-णत हुई है। उपक्ल भूमिके इस प्रकार पर्वतवेष्टित रहनेके कारण यह दृढ़, उच्च और शतुकर्तृक दुर्में य-सी मालूम पड़ती है। इस हदके उत्तर-पश्चिम भागमें सदा-डिएराविडा नामक अन्तरीप दिखाई देता है। इसकी शेप सीमा पर एम्पिचेल नामक एक और अन्तरीप है। इसके वाद टेगस नदीके मुहाने तकका भूभाग प्रायः सम-तल है। परन्तु उक्त नदीके दूसरे किनारे लिसवन नगर-के उत्तर और पश्चिममें सिख्डोमाफ्रा, टोरिस, मेड़िस आदि गिरिश्रेणी इतस्ततः विक्षित हैं। इन सव पर्वतीं-को रोप सोमा पुर्तगाळके सर्वपश्चिम सीमान्त पर कारो-दि- रोका नामक गिरिश्ङ्कमें था मिली है। टेगस नदी और समुद्रतीरके मध्यवर्ती पर्वतीके वीच वीचमें उपत्यका भूमि विराजमान देखी जाती है। उत्तराभिमुखी पर्वतराजको अन्तःसीमा पर पेनिक नामक प्रायोद्घोप है। यहांसे हे कर मएडेगो नदीमुख तकका स्थान ऊंचा और नीचा है। मण्डेगोनदीके उत्तरसे हे कर मण्डेगो अन्तरीप तक सिरा-डि अलकोवा नामक पर्वत शोभा देता है। यहांसे डुरो नामक नदीतीर पर्यम्तकी भूमि वालुकामय, समतल और जलादिसे परिपूर्ण है। इसके वाद मिनहो नदी तककी भूमि ऊंची और पर्वतमय है। इन सव कारणों से पुर्तगालको उपकूल-भूमि इतनी विपद जनक है, कि एक छोटी योट छे कर इसके बन्दरादिमें वहुत मुक्तिलसे प्रवेश किया जा सकता है। शीतकालमें ज्ञव दक्षिणवायु फहती है, तब समुद्रका किनारा अपेक्षा-कृत भयावह देखा जाता है। इस समय वन्द्रमें प्रवेश-

कारी नौकायातीके प्राण सर्वदा संशयापश्च रहते हैं।
सच पृछिये, तो पुर्तगाल राज्यमें समतलक्षेत बहुत
कम है। उत्तर प्रदेशों में पिरिनिज-पर्वतश्रेणीकी शाखा
प्रशाखा फैलो हुई हैं और दक्षिणकी ओर विस्तृत पर्वतश्रेणी स्पेनराज्यके सिरा-मोरेना (Sierra morena)
नामक पर्वतकी शाखामात है। समग्र पुरागालराज्यमें
केवल दो वड़े वड़े समतलक्षेत देखे जाते हैं, पहला
आलमटेजो प्रदेशमें और वूसरा आलेमटेजो तथा रहरमनुराप्रदेशके मध्य अवस्थित है। बेरराप्रदेशमें भी
पक और छोटी समतल भूमि है जो भौगानदिक मुहानेसे ले कर देशाभ्यन्तर तक विस्तृत है। अनेक पर्वत
रहनेके कारण यहां उपत्यकाकी संख्या भी अनेक है।
जिस स्थान हो कर मण्डेगो नदी वहती, वही उपत्यका
सवसे वृहत, सुरम्य और शस्यश्यामल है।

साधारण जलवायु उष्ण होने पर भी मध्यस्येनकी तरह यहां कभी भी जलाभाव वा उष्णाधिक्य लिंदत नहीं होता। समुद्रतीर पर्वतमालासे परिवेधित रहने-के कारण कभी कभी जलवायुक प्रभावका वैलक्षण्य ही जाया करता है। उत्तरांशवत्तीं पार्वतीय जिलों में शितके समय अधिक शीत और तुयारपात होता है, किन्तु दक्षिणमें शीत क्षणस्थायी है और तुयारपात विलक्षल होता ही नहीं। गर्मीके समय यहां इतनी गर्मी पड़ती है, कि शीतप्रधान देशवासियों को यहांका रहना कष्टकर माल्म पड़ता है। अप्रिलसे ले कर अक वर मास तक राज्यके पश्चिम काफी वृष्टि होती है। यहांकी उच्चभूमि स्वास्थ्यकर है, किन्तु निम्त अथवा लक्षणाता स्थान उतना स्वास्थ्यद नहीं है।

यहांकी जमीन उर्वरा तो खूब है पर छोग खेतीकी ओर उतना ध्यान नहीं देते । गेहं, जी, चना, पाट, पटसन ऊंची जमीनमें और पंकी जमीनमें धानकी अच्छी फसल लगती है। कमलानीवृ, नीवृ, इमर और वदाम मध्य तथा दक्षिणप्रदेशमें उत्पन्न होता है। अंगुरकी खेती ही पुर्तगोजको प्रधान उपजीविका और परिअम-जात दृष्य है। दुरो नदीके उत्तर अंगुरका जो लम्बा चीड़ा गोला है, वहांसे अंगुरके निर्याससे एक प्रकारका उत्कृष्ट मद्य प्रस्तुत होता है। आपरटो (Oparto) नगरसे

इस मद्यकी विभिन्न देशों में रक्षकी होती है। इस सुरस और स्वास्थ्यकर मद्यकी वहांके लोग 'पोर्ट' कहते हैं। यहां जैत्न फलकी खेती तो होती है, पर उसका तेल इतना उमदा नहीं होता। स्थल पर नाना प्रकारके जीव जन्तु और जलमें तरह तरहकी मछलियां देखी जाती हैं। खनिज पदार्थों में श्लेट, मार्चल पत्थर, लोहा और कोयला पाया जाता है। समुद्रतीरवर्त्ती लवणाक्त दलदलको सुक्षा कर प्रचुर लवण तैयार करते हैं।

उत्तरांश और पार्वतीय जिलेके लोग उद्यमशील और कर्मठ होते हैं। किन्तु निम्नांशके अधिवासिवृन्द अपेक्षालत आलसी, भानमनोरथ हैं तथा वेशभूषामें अपिकार रहते हैं। शिक्षित व्यक्तियोंका व्यवहार नम्र और शिष्टाचारसम्पन्न हैं। विदेशियोंका थे लोग खूव आदर करते हैं। मद्यमस्तुत और मद्यविक्रय इनका प्रधान व्यवसाय है। स्वदेशजात नाना प्रकारके द्रथ्य और दक्षिणप्रदेशस्थ काग (Cork) का वाणिन्य इन्हीं द्वारा परिचालित होता है। कोई कोई पश्मीने और रेशमीवल, स्तीकपड़े, सूक्ष्म लिनेन और जहरतादिका कार्य तथा व्यवसाय करते हैं। लौह, काष्ट्र और मिक्कानिर्मित नाना प्रकारके शिल्पकार्य भी देखे जाते हैं।

पुरीगालकी मावा और िवाशिक्षा।

पूर्वकालमें पुर्त्तगालवासिगण विशेष विद्यानुरागी नहीं थे। किन्तु उनकी जातीय भाषाकी उन्नित और जातीयताका गौरव खदेशीय इतिहासमें साफ अक्षरोंमें बोषित बुआ है। अरवजाति (Moors)से खदेश उद्धार और जातीय खाधीनताकी परिपुष्टि एक माल 'द्र वादुर' आक्याधारी पुर्त्तगीज कवियोंकी वीरत्वसूचक भाषामें लिखित काव्यादिसे हुई थी। जातीय एकताको पुर्तगीज इद्यने अधिकार किया, साथ साथ प्रकृति सती शान्तिमयी मूर्त्ति धारण करके पुर्त्तगालवक्षमें विराज करने लगी। एकताबद्ध पुर्तगीजजाति काव्यमोद विसर्जन करने शास्त्रवलसे जातीय गौरव वृद्धि करनेके लिये अपसर हुए। इस युगमें जैसी भाषामें पुर्तगीजगण पद्य लिखते थे, वह यूरोप जगत्में 'वीरभाषा' वा कि menc language कहलाती थी। वीरभाषाके वाद ही पुर्तगाल-

में वीरयुगकी उत्पत्ति हुई। इस समय भारको-डि-गामा (va-co-de-gama) और आफन्सो-डि-आलबुक (Affonso-de-Albuquerque) आदि सदेशहितेपी वीरचेता पुरुषींने जन्म हे कर जातीय गौरवकी रक्षा की थी। इनके वाहु और बुद्धिवलसे पुर्तगीजींकी राज्यवृद्धि-की वलवती पिपासा बहुत कुछ शान्त हो गई थी। १६वीं शताब्दोको इनके समसामयिक कालमें (१४६५-१५५८ ई॰में ) कामिन्स ( Camaens ) और मिरान्दा ( Franci-co sade Miranda ) नामक दो पंडितोंने भाषाकी पौराणिकता वर्जन कर उसमें श्रीक, इटाली, स्पेन आदि देशोंकी विज्ञभाषा (Classical School) के अनुकरण पर पुर्त्तगीज भाषाकी गठन की । पूर्वतन भाषा विशेषरूप-से परिमार्जित और नूतन वर्णमें रिज्जत हो कर अपेक्षाकृत उउज्वल और सुललित हो उठी। कामिन्सका जातीय-सङ्गीत (National enics) पुर्त्तगीजके हृद्यमें सुधा-भाराकी वर्षा कर देता था। इसी समय जब पुर्तगालमें स्पेन-आधिपत्यका विस्तार हुआ, तव पुर्तगीज-जीवन विलक्कल निरुद्यम हो गया। वर्त्तमानकालमें भिन्न देशीय भिन्न भिन्न प्रन्थके निरन्तर अनुकरण पर उस देशके भाव-को खदेशीय प्रनथमें सिन्निवेश करनेके कारण पुर्त्तगीज साहित्यसे नृतन युग (New native School)-की सृष्टि हुई और इसीकी सहायता से क्या पद्य क्या ऐति-हासिक गवेपणा, सभी और भाषाकी प्रभूत पुष्टि देखी जाती है।

१८४४ ई०में जब पुर्त्तगालने शिक्षाकी उन्नत्तिके लिये नृतन आईन लिपिवद किया, उस समय पुर्त्तगालमें शिक्षित लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। इस आईनमें लिखा था, कि प्रामसे एक मीलके अन्दर जहां विद्यालय रहेगा, वहां ७से १५ वर्षके बालक और बालिकाको पढ़नेके लिये जाना पड़ेगा। जो माता पिता इस आईनका उल्लङ्घन करके अपनी सन्तानको पढ़ने न मेजेंगे, उन्हें राजाकी ओरसे दण्ड मिलेगा। ऐसा दृढ़ आईन जारी रहने पर भी देखा गया कि १८६२ ई०में सारे पुर्चगालमें सैकड़े पीछे ८२ मनुष्य लिखना वा पढ़ना नहीं जानते थे। पीछे घीरे घीरे पुर्चगालमें विद्याका खूब प्रचार हुआ १८७६ ई०में बहां प्रायः ३५१० विद्यालय और १६८१३१ विद्याशींकी संख्या पाई गई।

·· साहित्य छोड़ कर अन्यान्य विषयोंमें शिक्षा देनेके लिये। १७ जिलोंमें विधोन्नत्तिविधायिनी सभाए (Lycess) संगठित हुई। जब कोई व्यक्ति किसी विभिन्न विषयका अध्ययन करनेकी इच्छा प्रकट करते थे, तब इस सभाकी अनुमति ले कर वे कोहम्बाके विश्वविद्यालयमें अथवा किसी विशेष शिव्यविद्यालयादिमें (The special solvool ) शिवप कृषि आदि सीख सकते थे। उक्त विशेष विद्यालयका शिक्षाकार्य सुयोग्य परिडतमर्एडली द्वारा सुचारुरूपसे निर्वाहित होता था। इस श्रेणीके विद्यालयके मध्य अपरों और लिसवन नगरका Polytechnic school, Polytechnic Academy, the medical school and Industrial Institutes और िस्तवन नगरका The Institute general of Agriculture, The Royal and marine observatories, the Academy of fine Arts बही सब प्रधान हैं। राजानुप्रह से रक्षित और राजव्ययसे परिचालित लिस-वन्, प्सोरा, भिलारिपल, ब्रागा और अपर्टोका साधारण पुस्तकागार विशेष मूल्यवान् हैं। टोरे-डेल-टोम्बो नामक स्थानका महाफेजखाना (Archives) यहां उल्लेख बोग्य है। टोम्बर पुस्तकागारमें प्राचीन प्राचीन कागज प्रजादि (Becords ) व्यतीत, पुरातन हस्तिलिखित पुस्तकोंकी आलोचनाके लिपे और राजकीय क्रूटनीतिका सम्यक् विचारके लिये एक और विद्यामन्दिर सभी स्थापित हुआ है।

पुर्ततालका शाणिव्य ।

वाणिज्यादिके विस्तारके लिये १८८४ ई॰में यहाँ १२८५ मील रेल-पथ, ५० मील द्रामपथ, और २६०० मील टेलिग्राफ-तार नाना स्थानोंमें संयोजित हुआ है। उक्त रेलपथकी सहायतासे लिसवन, भालेन्सिया-डि-अल्काण्द्रा, तालाग्रा, मादिद, अपटों, दुया, नाइन, ग्रागा, फेरो, अलगार्भ (Algarves), पलवास, वेडेजस, सेनिल, केडिज, मलागा, वेहरा, फिगुइराडाफोज, फर्मोजा, केलोरिको, गोवार्डा, आदि स्थानोंमें आने जानेका अच्छा प्रवन्ध कर दिया गया है। लिसवन नगरसे ले कर समुद्रगर्भ होते हुप सुदूर अमेरिका उपनिवेशमें राहओं- सुद्रामं होते हुप सुदूर अमेरिका उपनिवेशमें राहओं-

साधारणंतः इङ्ग्लैएड और तद्धिहत राज्यसमूह, यूनाइटेड च्टेट, फान्स और स्पेन राज्यके साथ पुर्तगीज-वाणिज्य-व्यापार करते हैं । जीवित जन्तु, जिन्तुजात इच्यादि, मत्स्य, रेशम, पशम, केश, र्ह, पटसन, चकोर-काष्ट्र, गेहूं, जो, मैदा आदि नाना प्रकारकी शाकस्वजी उपनिवेशजात नाना इच्य, धातु और अन्यान्य खनिज-पदार्थ, मद्य, कांच और तरह तरहके मद्दोके वरतन, कागज, कलम इत्यादि तथा खदेशवासीके परिश्रमसे उत्पन्न नाना जातीय इच्योंकी यहांसे रक्षनी और आम-दनी होती है।

## पुर्तगालकी शासन्त्रणाली ।

पुर्त्तगाल-राज्यमें एक वंशानुक्रमिक राजा रहने पर भी राज्यमें पूर्ण क्षमता विस्तार करनेका अधिकार उन्हें नहीं है। १८२६, १८५२ और १८७८ ई०में प्रदत्त राज-सनद (Charter) के अनुसार खयं राजा केवल दो सभा (chambers) के मतानुसार कार्य और राज्य-शासनादिके परिचालन और राज्यसंक्रान्त नियमादि (Laws, के संगठन करनेमें वाध्य हैं। शासनसम्प-कींय किसी कार्यकी उन्नति अथवा किसीको मन्त्री चा 'पियर' (Peer) के पद पर अधिष्ठत करनेमें मन्त्रि-सभा (Council of State) से सलाह लेनी पड़ती है।

राजाके निर्वाचनके लिपे सुविक पण्डितमण्डली, प्रन्थकार और विशिष्ट धनीव्यक्ति द्वारा यहांकी 'हाउस-आव पियर' नामक सभा गठित है। इस सभामें कुल १५० सभ्य हैं। अलावा इसके 'हाउस-आव डेपुटीज' नामक एक और सभा है। नगरवासी २५ वपके युवकको ही सभ्यनिर्वाचनकी क्षमता है। पतद्वतीत विश्वविद्यालयके उपाधिधारी, पुरोहित, राजकर्मचारी और विद्यालयके शिक्षकमालको ही उक्त निर्वाचनमें भोट देनेका अधिकार है। राजा अपने खर्च वर्षके लिपे राजस्वस्व से १४४००० पौएड सुद्रा पाते हैं।

पहलेकी अपेक्षा अभी पुर्तगालकी सैन्यसंख्या अधिक है। १८८४ ई०के नूतन आदेशानुसार प्रत्येक सेना-को ५२ वर्ष तक काम करना होता है। पदातिक, अश्वा-रोही और कामानवाही सेना छोड़ कर नीवलकी वृद्धि-के लिये ३० कलवाले जहान और १४ वायुगामी पाल- के जहाज हैं। सभी जहाज आवश्यकतानुसार कामान-सिजात है। पुर्त्तगीजराजके पास स्थलपथमें युद्धार्थ-रिक्षत सेना प्रायः १ लाख २० हजार और नौयुद्ध-परि चालनके लिये २८३ सेनापित और ३२३५ नाविक हैं।

पुर्त्तगालराज महामति जोहन ( John the great ) के पुत नाविक चूड़ामणि हेनरिक ( Dom Henric the Navigator )-ने विशेष उद्यमसे नौपथमें गमन और हेशहेशान्तर वाणिज्य स्थापनके लिये आत्मजीवन उत्सर्ग कर दिया। इन महापुरुषने पूर्वकी और भारतवर्ष आनेकी आशासे जीवनके शेष दिन तक (१३६४-१३६० ई॰में ) जलपथको पर्यालोचना और ज्योतिष्कमण्डलके अवस्थितिनिरूपणकी शिक्षा की थी। उन्हींकी चेष्टाके फलसे उत्तमाशा अन्तरीपको वेष्टन कर भारत आगमन-का पथ सभ्यजगत्में प्रकाशित हुआ। यह पथ आवि-ष्कृत हो जानेसे सभ्य यूरोपखएडमें भारतने वाणिज्यकी आशा मुकुलित हुई थी। उनके इस उपकारके लिये समप्र यूरोपवासी एक समय पुर्तगोज जातिके ऊपर विशेश कृतज्ञ थे। १४४४ ई०की ४थी मईको पुर्रागीजींने पोपसे पूर्व-आविष्कृत और भविष्यमें जो आविष्कृत होगा उन सव देशींके अधिकार और शासनकार्य-निर्वाहके लिये एक अनुज्ञापत पाया। इसके वाद कलम्बस कर्त्त अमेरिका आविष्कृत होनेके ठीक षाद ही १४६३ ई०में पुर्तगीज अधिकारका अक्षण रखनेके लिये पोपने एक और शासन लिख दिया। उक्त शासनके वलसे १४६७ ई०की ८वीं जुलाईको भास्की-डि-गामा नामक एक पुर्त्तगीज राजा मानुपलके आदेशसे सुसजित जहाजादिको साथ छे भारत जयके उद्देशसे वाहर निकले। १५०० शताब्दीमें केव्रल दूसरा दल ले कर देशजयको आकांक्षा पूर्ण करनेके छिये समुद्रपथमें अप्रसर हुए। चलते समय उन्हें हुकुम मिला था. कि देशभ्रमणके साथ साथ धर्मविषय पर वक्तृता दे कर भिन्न देशीय व्यक्तियोंकी खधममें दीक्षा देवें। जिनामा उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर १४६७ ई०की २२वीं नवम्बरको आफ्रिकाके पूर्व उपकूछमें पहुंचे और दूसरे ्वर्ष २२वीं मईको भारतके कालिकट नगरमें पथारे। -उभर अद्वेष्ट दोषसे केंब्रल प्रतिकृल तुफानमें पद्व कर दक्षिण-अमेरिकाके ब्रेजिल राज्यके उपकुल चले गये और पीछे वहांसे पुनः लौट कर कालिकट पहुंचे। १५वीं शताब्दीके शेष भागसे पुर्तगीजोंने अफ्रिकाके पूर्व और पश्चिम उपकुलवर्त्ती स्थानोंको और उत्तमाशा अन्तरीप-से ले कर पशियाके दक्षिण भागमें जापान पर्यन्त समुद्रके निकटवर्त्ती स्थानोंको तथा भारतीय-द्वोपपुञ्जके अधिकांशको अधिकार कर लिया। १५००से १६१० ई०के मध्य उन्होंने पूर्वसमुद्रस्थित स्थानोंके ऊपर प्रभुता फैला कर वहांका वाणिज्य द्वथिया लिया। दक्षिण-अमेरिकाका विस्तीर्ण राजत्व छोड़ देने पर भी उन्होंने भिन्न समयमें भारत-महासागरस्थ जिन सव स्थानों पर अधिकार जमाया था, संक्षेपमें उसका परिचय नीचे देते हैं—

आफ्रिका-राज्यके पूव और पश्चिम उपक्रूटमें— मेलिन्द, कुतलोचा, सोफाला, मोजाग्विक, मोग्वाशा (१६१५ ई॰में अधिकारच्युत हुआ), पङ्गोला, ओसा-मेडिस्, प्रिन्सेप द्वीप, सेएडजेमसेस् द्वीप, पसुडा, सेनि-गाम्बिया, विसाव, केपभाई-द्वीपपुडा, आजोर्स और मिदरा आदि स्थान।

अरवमें—आदेन और मस्कट (१६४८ ई॰में अरवोंने पुर्त्तगोजोंको मस्कटसे मार भगाया )

पारस्यमें-वसोरा और अर्मज नगर।

भारतवर्षमें—सिन्धुनदके तीरवत्तों देवल वा देउल और टहः मलवार उपक्लमें डिउ, दमन, पसेरम, दन्न, सेएटगेनिसः आगासियम, चावुल वा चेउल, देवल, वेसीन ( Bassien ), शालसेट वा गाढ़ापुरो, महिम, वर्म्बई, दन्ना ( थाना ), करञ्ज, गोआ, हनोर, वासिलर, मङ्गलूर, कालिकट, कङ्गनूर, कोचिन, कुइलन, करमण्डल-उपक्लमें नागपत्तन, माइलापुर, सेएट थोम, मछलीपत्तन वन्दर आदि स्थान और वङ्गोपसागरतीरवर्ती वङ्गालके कुछ स्थान, आराकान और चट्टप्राम जिलेमें पुर्सगीजोंने अपना आधिपत्य फैलाया था।

पुर्शगीज शब्दमें विस्तृत विवस्ण देखी। सिंहलद्वीपमें मन्नार, पैएट-डि-गल, कलम्बी, जाफना-पत्तन और मलकाद्वीपपुञ्ज आदि स्थानोंने अधीनता स्रोकार की थी। सलावा इसके पेगू, मर्सवान, जडु- सिलोन आदि स्थानोंमें इन्होंने वाणिज्यके लिये कोठी खोली थी। चीनसाम्राज्यके अन्तर्भुक्त मेकाव और फर्मोजा नामक द्वीप भी एक समय पुर्नगीजोंके अधिकारमें था। अभी पुर्नगालवासीका वैसा वीरत्व परिचय नहीं पाया जाता। उनका पूर्वका-सा उद्यम और वाणिज्यतृष्णा जाती रही। अभी वे विलक्कल निरुद्यमी और उत्साहहीन हो गये हैं।

वत्तमान कालमें पुर्त्तगीजगण आफ्रिकाके पूर्व उपक्रूल-वर्त्ती डेलगेडो अन्तरीप तकके स्थानका भोग कर रहे हैं। भारतमें गोआ, दमन और डिउ तथा सुदूरतीर-समुद्रमें एकमात मेकाव पुर्त्तगीजोंके अधीन है। १५५७ ई०में उन्होंने मेकाव पर अधिकार किया और १८४८ ई०-में वे वहांके अधिपतिको वार्षिक ५०० सी तएल (Tael) मुद्रा खजाना देनेको चाध्य हुए। ऊपरमें लिखा जा चुका है, कि नाविकश्रेष्ठ हेनरिकका पदानुसरण करके ही पुर्त्तगीजोंने भारतवर्षमें प्रवेश किया था । पुर्त्तगालराज पिद्रो-डि-कोविलहन २य जोहनके आदेशसे वाणिज्यप्रसार-पूर्वसमुद्रमें आफन्सो-डि-पायमा वृद्धिकी आशासे खदेशसे १४८७ ई०में वाहर निकले। दोनों जव नेपलस, रोडस, आलेकसन्द्रिया, कायरोसे थर पर्यन्त आये, तव यहां छोहितसागरके किनारे उन्होंने सुना कि आदेनसे कालिकट नगरमें वाणिज्य जोरोंसे चल रहा है। तद्नुसार वे आदेनकी ओर अग्रसर हुए और वहां-से पायमा आविसिनिया देशमें तथा कोविलहन अरव-देशीय अर्णवपीत पर चढ़ कर कन्ननूर उतरे। यहांसे कालिकट और गोआनगर परिदशन करके वे पुनः आफ्रिकाको चल दिये। पुर्त्तगीज ब्रजातिमें भारत आग-मनके लिये कोविलहन साहव ही सर्वप्रथम थे। इसके वाद १६वीं शताब्दीमें पुर्त्तगीजोंने वङ्गालके कुछ स्थानी सातगाँव (सप्तग्राम) और पर अधिकार जमाया था। चटुगांव (चटुग्राम) नामक दो बङ्गालके प्राचीन बन्दरींका पुत्तेगीज Porto Piquen and Porto Grande (the Little Haven and the great Haven ) नाम रखा था । पुर्तगीजोंके भारत और वङ्गालमें आगमन और नाना स्थानोंमें वस्युवृत्ति तथा भीपण अत्याचारकी कथा 'पुर्तगोज' शब्दमें विशेषरूपसे विवृत हुई है। पुर्तगीज देखी ।

# पुरीगालका इतिहास ।

समय् पुर्त्तगालका प्राचीन इतिहास नहीं है। इसका प्राचीन इतिहास स्पेनदेशके साथ मिला हुआ है। हिरी-दोतसने स्पेन और पुर्तगाल इन दी देशोंको एकत 'आइ-विरिया' नामसे और रामक लोग 'हिम्पानिया' नामसे उल्लेख किया है। स्पेन शहर रें विस्तुनत विवरण देखी। १०६४ ई०में वर्गाएडीके काउएट हेनरीने यह प्रदेश (Terra Portucalensis or the country of Porto cale) उपहारसहूप पाया था। तभोसे पुत्तैगालदेशवासी पुर्त्तगीजोंका प्राचीन इतिहास चलता है। आइविरिया-वासी पुर्त्तगालमें फिनिकीय जातिका उपनिवेश या। इस प्रायोद्वीपके पूर्वतन अधिवासिगण आइविरीव और केल्ट-जातीय थे। जिस समय भूमध्यसागरके उपकृछवर्ती देश कार्थिजिनियोंके उपद्रवसे तंग तंग थे, उसी समय कार्शिजिनीय-सर्वार हमिलकरने इस राज्य पर आक्रमण कर अधिकार जमाया। अनन्तर रोमक जातिने इस प्रदेशको जीत कर अपनी शासनक्षमता फैलाई थी। रोमकके अधिकारमें इस राज्यका कुछ अंश लुसितानिया नामसे प्रसिद्ध था।

पीछे भाग्डाल, प्लान और भिसिगथ जातिने क्रमशः पुर्त्तगालको आक्रमण किया और लूटा। सबसे पीछे ८वीं शताब्दीमें अरववासी मुसलमानेंति इस राज्य पर अधिकार जमाया। १५वीं शताब्दीमें गार्सिया-डिमोने जिस नामक किसी सुविज्ञ परिडतने पुर्तगालको रोम-साम्राज्यके अन्तर्गत 'लुसितानिया' नामक स्थान वत-लाया । पोछे वार्णाडॉ-दि-ब्रिटोने प्राचीत प्रन्थादिकीं पुत्तगालको लुसितानिया मान कर सहायतासे भिरायथास्को पुर्त्तगीजके जैसा स्थिर किया। पुर्तगालको माननेमें वहुतेरे राज्य 'छुसितानिया' विदु राजी नहीं हैं । कामिन्सप्रमुख पुर्त्तगीज कविगण पुर्त्तगालको वड़ी खुशीसे लुसिवानिया कहते थे। उनका रचित "Os Lusiadas" नामक वृहत् काव्य ही इसका जाज्वल्य प्रमाण है।

प्रायः दो सदी तक पुर्त्तगीजॉने ओमयदके खलीफाओं की अधीनता खीकार की थी। सुवित्र मुसलमान खली-फाओंके समयमें लिसवन, लमेगी, भिसेव और अपर्टी आदि नगरों में रोमक-खायत्वशासन-के प्रथानुसार राजकार्य परिचालित होता था। १०वीं शताब्दीके शेषमें जब
ओमियदके खलीफाओंका वलवीय घट गया, तब खृष्ट्यमावलम्बी मिसिगथवंशीय राजगण अन्दुरिया पर्वतश्रेणीसे
अवतीर्ण हो कर उपर्यु परि पुर्चगाल पर आक्रमण करने
लगे। आखिरकार ६६७ ई०में गालिसियाराज २य
वार्मु डोने अपर्टी राजधानी पर आक्रमण कर मुसलमानी
अधिकारसे ले कर वर्तमान पएटर-इ-डुरो तकके स्थानको
अपने अधिकारमें कर लिया। ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें
ओमियद खलीफाओंका प्रभाव विध्वस्त होनेके वाद
मुसलमान अमीरोंने खाधीनता-ध्वजा फहरा कर प्रधान
प्रधान नगरों पर अपना दखल जमाया। १०५५ ई०में
लियनाधिपति फार्दिनन्द-दी-प्रेटने वेहरा पर आक्रमण
किया।

परवर्त्ती १०५७ और १०६४ ई०में उन्होंने यथाक्रम लमेगो, तिसेष्ठ और कोइम्ब्रा आदि स्थान अपने अधि-कारमें कर लिये। १०६५ ई०में फार्दिनन्दके वड् लड्के गासियाने अपर्टीके काउएट और सेवनन्दो नामा अरव-वंशीय कोइम्य को काउएटको अपनी खाधीनता स्वीकार कराई। फार्दिनन्दके दूसरे छड़के ६ठे अल्फन्सोने १०७३ ई॰में पितृसम्पत्ति सुरक्षित करके मुसलमानोंका दमन किया। अन्तमें मुसलमान लोग धर्ममद्से उन्मत्त हुए। अल्मोरा-वंशीय मुसलमानराज युसुफ-इविन-तेसुफिनने १०८६ ई०में जलाकामें खुष्टानराजको परास्त कर मुसल-मानी अधिकार फैलाया। उद्धत मुसलमानी शक्तिका हास करनेके लिये जब ६ठे अलफन्सीने समस्त खुष्टानीं-से सहायताके लिये प्रार्थना की, तव काउएट रेमएड और वर्गाएडीके अधिपति काउएट हेनरी वीरद्र्पसे अप्रसर हुए। उक्त दोनों वीर पुरुषकी अध्यक्षतामें आल्फन्सोने वेडोजसके 'मोताछी!-को परास्त कर लिसवन और सान्तरिम नगर जीत तो लिया, पर वे उपभोग कर न सके। आलफेराके खलीफा युसुफके सेनापति शेरने पुनः उक्त दोनों नगरों पर अपना दखल जमा लिया। आल-फन्सोने किंकत्तंच्यविमृद्ध हो गालिसिया सीमान्तकी रक्षा करनेके लिये १०६४ ई०में नया वन्दोवस्त किया । तद्नुसार अहींने अपर्टी और कोइम्प्राके अधीनस्थ सामन्तकोंको एकत कर तत्प्रदेश वार्गारिडपित हेनरीके साथ अपनी अवैधकन्या थिरोसाका विवाह कर दिया और काउराट रेमराडको अपनी उत्तराधिकारी कन्या इउरेका और गालिसिया प्रदेशका शासन भार सौंपा, उक हेनरी उस समय एक प्रसिद्ध योद्धा गिने जाते थे। इन्होंने कु जेड युद्धके अधिनायक हो विशेष क्षमता दिखलाई थी। वर्गराडीके ड्यूक रावर्ट इनके पितामह और उनके तृतीय पुत हेनरी इनके पिता थे।

हेनरीको धारणा थी, कि ६ठे आलफन्सोकी मृत्युके वाद वे ही श्र्वसुरके राज्याधिकारी होंगे। ११०६ ई०में आलफन्सो अपनी कन्या यूरेकाको सिंहासन दान कर परलोकको सिधार गये। हेनरीने अपना अभीष्ट सिद्ध न हुआ देख लियन पर आक्रमण कर दिया। दोनों पक्षमें घनघोर लडाई छिड गई। उधर मुसलमान सरंदार शेर अलमोरा वंशकी प्रतिष्ठाके लिये विशेष चेष्टा करने लगे। १११२ ई॰में एसटर्गी नगरमें जब हेनरीकी मृत्यु हुई, तब थिरेसाने नावालिंग पुत आफन्सो-हेनरीके प्रतिनिधि रूप-में राज्यशासनका भार ब्रहण किया। यह रमणी रूप-यौवनसम्पन्ना, विद्यावती और वहु गुणवती थीं। उन्होंने पुत आफन्सोके अधिकृत राज्यको खाधीन करनेमें खुव दिमाग लगाया था। राज्यके मध्य शान्तिस्थापन करनेमें प्रयास पाने पर भी उनके राजत्वसे सर्वदा गुद्ध विग्रह हुआ करता था। १११६ ई०में उन्होंने विशप-आव-सेएट-यागो कर्व क प्रणोदित हो कर पुर्त्तगालकी उत्तरी सीमा टप और ओरेन्ज नामक स्थान पर आक्रमण किया। १११७ ई॰में मुसलमानीने कोइम्या नगरमें उन्हें घेर लिया। अनन्तर उनकी वहन यूरेकाने उन्हें ११२१ ई०में कैद किया। विशपं गेलमाइरिव और मरिसियो विर्डिन्य ( Archbishop of Braga ) की मध्यस्थतामें दोनोंका मेल हुआ। इसके वाद ही दोनों वहन अपने अपने प्रणयी ले कर आमीद-प्रमीदमें समय विताने लगीं। अतः यूरेका-के पुत अम आलफन्सो और हेनरी दोनों ही अपनी अपनी माताके विरुद्ध खड़े हुए। ११२७ ई॰में ७म आलफान्सो-वलपूर्वक आक्रमण करके थिरेसाको उनकी अवनति स्वीकार करानेकी कोशिश की। पुत हेनरीक माताके आचरण पर वहुत नाराज हुए। ११२८ ई०में सानमामिछ-

के युद्धमें हेनरिककी जीत हुई। थिरोसा पुलके हाथ वन्दिनी हुई। पीछे हेनरीकने माताको पुनः कारागारसे मुक्त कर दिया।

१७ वर्षकी अवस्थामें आफन्सोने राज्यभार ग्रहण किया । प्रायः ६० वर्षे तक युद्ध करके उन्होंने राज्यलक्षी-को पराधीनतापाशसे मुक्त किया और पुतके छिये एक साधीन क्षुद्र राज्य स्थापित कर दिया। उन्होंने मुसल-मानोंको परास्त कर अपनी खाधीनताके लिये गेलिसिया सीमान्त पर ७म आलफन्सोके विरुद्ध चार वार युद्ध किया। पीछे चे वलडिमेजके द्वन्द्युद्धमें काष्टिलवासी वीरींका पराक्रम खर्वे कर तत्कालीन खृष्टान-जगत्में एक महाबीर समके जाने छगे । इसके वाद वे राजाकी उपाधि धारण कर पुर्त गालका राज्यशासन करने लगे । ११३५ ई०में आफन्सोने कोइम्या राजधानीकी रक्षाके छिये लिरिया नगरमें एक दुर्ग वनवाया और नाइट-टेम्पलर तथा नाइट-हसपिटेलियारोंको मुसलमानों पर आक्रमण करनेके लिये नियुक्त किया। ११३६ ई०में जब ७म आल-फन्सो दूसरी वार युद्धकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय हेनरिकने कसर-हविन-आवी-दानिशके अधिकृत प्रदेश पर आक्रप्रण कर दिया। बेजके दक्षिणवत्तीं नगरमें उन्होंने मिलित मुसलमानी सेनादलका सामना किया। मुसल-मान-अधिनायक अमीरकी उमार-चरिक नगरके निकट पूरी हार हुई। इस युद्धमें केवल मुसलमानोंकी ही हार हुई सो नहीं, साथ साथ उनके भ्रातृसम्पर्कीय ७म आल-फेन्सकी अद्भुएलदमी उन्हें छोड़ कर चली गईं। ११४३ ई०में कार्डिनल गायडि-भिकोदके यत्नसे जामोरा नगरमें दोनों भाइयोंके वीच सन्धि स्थापित हुई। आफन्सी हेनरिक पुत्त गालके सर्वमय राजा हुए और उन्होंने पोप-की अधीनता कर ली। इसके वाद पुत्त गालके अदूष्टमें मुसलमानोंके साथ वार वार युद्ध छोड़ कर और कोई भी घटना न घटी ।

११४४ ई०में आयूजकरियाने टेम्पलके वीरोंको सीरी नगरमें परास्त किया। ११४७ ई०के मार्च मासमें उन्होंने सान्तरिम और लिसवन नगर पर दखल जमाया। उसी सालकी २४वीं अक्तूबरको हेनरीकने क्रुजेडयाती विभिन्न देशीय वीरोंकी सहायतासे लिसवन नगरका

पुनस्द्वार किया। इसके वाद उन्होंने सिएटां, पटमेळा और अट्माडा पर अधिकार कर ११५८ ई०में अटकाशेर-डो- साल नामक महानगरीको जीता। ११६१ ई०में वे अट्मोहेदवंशीय खलीफाके अधीनस्थ मुसलमानी सेनासे परास्त हुए। मुसलमानोंने आपसमें विवाद करके पृथक्-कपसे अधिकृत स्थानको वांट लिया। भिन्न मिन्न स्थानोंका आधिपत्य प्रहण करने पर भी वे सबके सब दुर्वल हो पड़े।

उद्धतप्रकृतिके आफन्सी-हेनरीक वद्यपि परास्त हो गपे, तो भी उनकी अन्तर्निहित उच आशा लहलहाती ही थी। उन्होंने वैदाजस पर चढ़ाई करनेका सङ्कल्प कर किया। उनके जमाई फर्दिनन्द उनके विरुद्ध खड़े हुए। ११६६ ई०में उन्होंने वैदाजसमें घेरा डाला। इस युद्धमें वे विशेष रूपसे आहत और चन्दी हुए । ११६७ ई०में यदि वे स्पेत सम्पर्कीय गालिसिया आक्रमणरूप युद्धव्यापारमें लिप्त न रहते, तो उन्हें ऐसी कठिनाश्यां भोलनी न पड़तीं। प्राजा आफन्सोने अपनी मुक्तिके लिये गालिसियाके युद्धकार्थसे अलग रहनेकी प्रतिज्ञा की । अव फार्दिनन्दने उन पर और अधिक दवाव न डाला । वृद्ध राजाने मुक्ति तो पाई, पर उनका वह क्षत आरोग्य न हुआ। ११६६ ई०में मुसलमानीं-का गृहविवाद शान्त होने पर अलमोहदवंशीय फलीफा युसुफ-आवू-याकुव अफ्रिकासे सागर पार कर वहु सेनाके साथ स्पेन राज्य पहुंचे और अलेमटेजो प्रदेशमें पुर्त्त गीज लब्ध स्थान अपने अधिकारमें कर लिये । पीछे ११७१ <sup>हे०-</sup> में मुसलमानराजने जब सन्तरिम पर आक्रमण कर न सके, तव उन्होंने हेनरिकके साथ सन्धि कर ही। ११७२ ई०में आफन्सो हेनरिकने अपने पुत्र खम साङ्कोको अपने साथ सिहासन पर विठा राजा वतला कर घोषणा कर दी । पुतने भी उपयुक्त पिताके पुतकी तरह युद्ध विद्र-हादिमें लिप्त रह कर पिताका गौरव वढ़ाया था। प्रायः १२ वर्ष तक अलमदेजी प्रदेश एक विस्तृत युद्धसेतमें परिणत हुआ था। ११८४ ई०में युसुफ्ते पुनः नई सेना ले कर सन्तरिममें घेरा डाला । यहां दोनों दलमें घमसान छड़ाई छिड़ गई। ४थी जुलाईको साङ्कोने आन्नमण-कारियोंको विशेषरूपसे विध्वस्त और मर्वित कर डाला। युद्धमें युसुफको गहरी चोट लगी। क्रुजेडबोद्धा राजा भाफन्सो हेनरिक अपने राज्यावसानके समय इस विख्यात युद्धविजयसे राज्यमें शान्तिस्थापन करके ११८५ ई॰में परलोक सिधारे।

पिताकी मृत्युके वाद पुत १म डम साङ्को राजपद पर अधिष्ठित हुए। इन्होंने पिताकी तरह युद्धविद्यामें विशेष परिचय नहीं दिखलाने पर भी राज्य परिचालनके लिये शासनविधिका परिवर्त्तन, नियमादि संगठन और नगरादि निर्माणके कारण जनसाधारणसे 'पोभोयाडर' वा नगरप्रतिष्ठापककी उपाधि पाई । ११८६ ई०में इन्होंने मलगार्भ प्रदेश और उसकी राजधानी सिलमेस नगरको दखल किया। किन्तु ११६२ ई०में युसुफ-आवू याञ्जवने पुनः अलगार्ड, अलेमदेजो और अलकाशेट-डी-साल आदि स्थान जीत लिये। अलमोहेद खलीफाओंके अधीन मुसलमानींको वीर्यवान् और दुद्ध<sup>°</sup>र्ष समऋ कर पुत्तगीज-राज साङ्कोने सन्धि कर ली। इसके वाद प्रायः युद्धविप्र-हादिका परित्याग कर इन्होंने नगरादिकी वृद्धि और बाणिज्यकी उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान दिया। पहले लिखा जा चुकों है, कि पुर्तगाल नगरमें प्राचीन रोमक प्रथानुसार खायत्वशासन प्रचलित था। मुसलमानीने इस प्रथाको उपकारिता समक्त कर उन्हींका पदानुसरण किया। किन्तु साङ्कोके इस प्रथाका अनुकरण करने पर भी, उन्होंने नीति और विवेचना पूर्ण आईन द्वारा राज्यको सुशासित किया। पीछे वे इङ्गलैएड, फ्रान्स तथा उत्तर यूरोपवासी क्रूजेड-योद्धाओंको पुत्त'-गालमें उपनिवेश स्थापन करा कर जनसंख्या वढ़ाने लगे। राज्यस्य गण्यमान्य व्यक्तियों और समर-विभागके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंके वीच जिलेकी पहिसूमि वांट दी गई। उनका आदेश था, जिस किसी उपायसे हो वे सव जमीन जरूर आवाद करनी होगी। इसके वाद धर्म-याचकोंका अधिकार हे कर पीप ३य इनोसेएउके साथ इनका विवाह हुआ। पोपकी उपेक्षा करके इन्होंने याजकोंको युद्धक्षेत्रमें उपस्थित रहनेका हुकुम दिया। धर्मयाजकोंके ऊपर ऐसा कठोर आदेश पोपको वज्राधात सा मालूम हुआ। उन्होंने राजाके पास कई वार दूत भी भेजा, पर कोई फल न हुआ। अन्तमें उन्होंने पोपके 'पवित आसन' की दुहाई दे कर अपनी अवनति सौर

वार्षिक देय करके लिये राजाके पास आवेदनपत लिख मेजा। सुविश्व राजमन्त्री जुलियो (Chancellor Juliao )-ने उनकी प्रार्थना पर कान न दे कर कहला भेजा कि "राजाकी अनुमति ले कर आप धर्म-मन्दिरके अधिकृत स्थानको छे कर नया वन्दोवस्त कर सकते हैं।" अपटोंके विशप मार्टिन्हो रिडजेस इस विवाद व्यापारमें लिप्त रहनेके कारण राजाके आदेशसे अवरुद्ध हुए। पीछे रोमनगर भाग कर उन्होंने पोपके आश्रयमें आत्मजीवनको रक्षा की। १२१० ई०में बुढ़ापाके कारण राजा साङ्की दुर्वेल हो पड़ें। वृदावस्थामें उन्होंने धर्मयाजक, पोप अथवा विश्वपींके साथ कीई विवाद करना न चाहा। पोपकी सभी वातें स्वीकार कर ली गई। अपनी सन्तान-को यथोपयुक्त भूसम्पत्ति दे कर उन्होंने आलकोवाशा-मठ-में अवशिष्ट जीवन वितानेकी इच्छासे संसाराश्रमका परित्याग किया । १२११ ई०को उसी मटमें उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के स्य आफन्सो सिंहासन पर वैठे।

मन्त्री जूलियोंके कहनेसे २य आफन्सोंने राज्यान्त-र्गत विशय, फिडालगो ( Fidalgoes ) और रिकस् होमेन (Ricos homens) आदिको बुला कर एक महासभा ( Cortes ) की । पुर्तगीज इतिहासमें यही प्रथम विचार सभा है। पिताने जो प्रतिशा की थी उसकी रक्षा करने पर भी इन्होंने (जूलयो प्रवर्त्तित नूतन आईनके असु-सार युद्धविष्रहादिमें लिस नहीं रहनेके कारण) अव धर्म-याजकोंको जमीनका उपसत्व भोग करने न दिया। राजा २य आकन्सो योद्धा तो नहीं थे, पर उनकी अर्थिपगसा वलवती थी। उन्होंने अपने भाई और वहनोंकी पितृ-सम्पत्तिका हिस्सा नहीं दिया, वरन् भाइयोंको राज्यसे निकाल भगाया। अन्तमें लिउनराज ६म आलफन्सी उनके विरुद्ध खड़े हुए। तव उन्होंने अपनी वहनींकी कुमारी रख कर विषयभोग करनेकी सम्मति दी। राजा खयं उदारनैतिक और रणनिपुण तो नहीं थे, पर उनके अधीनस्थ मन्त्रो, याजक और सामरिक कर्मचारियोंने दक्षतापूर्वक मुसलमानोंके विरुद्ध युद्ध करके अपने वीर-त्वका परिचय दिया था। १२१२ ई०को अपना अपना अध्यक्ष हे कर पुर्त्तगीज पदातिगण नमस्-िं तोलासा-

में लड़े थे। अनन्तर उन्होंने मुसलमानोंके चंगुलसे पुनः अलेम्टेजो जीत कर १२१७ई०में अलकाशके डो साल पर अधिकार जमाया और आएडालुसियामें 'वाली' मुसल-मानोंको परास्त किया।

जुलिओंके पदानुसारी मन्ती गोनशाली-मेण्डिसके परामर्शानुसार राजाने ब्रागाके आर्कविशप पस्तेवाव सोआरिजकी अधिकृत भूम्यादि छीन ली । इस कारण पोप ३य हनोरियसने राजाको धमशालासे निकाल दिया और जब तक वे ब्रागाको क्षति पूरी न करेंगे तथा नृतन चान्सेलरको राजकर्मसे अलग न कर देंगे, तब तक उनके राज्यमें निषेधविधि (Interdict of chechurch) प्रचारित रहेगी। राजाने पोपकी वात पर कुल भी ध्यान न दिया। इस प्रकार धमकार्यसे निषद हो राजा १२२३ई०में इस लोकसे चल वसे।

इनकी मृत्युके वाद द्वितीय साङ्को तेरह वर्षकी अव-स्थामें राजसिंहासन पर अधिहृद् हुए। वालक राजा-के राजत्वमें अकसर जैसा राष्ट्रविष्ठव हुआ करता है, इस समय भी विशप और महामान्य व्यक्तियोंमें वैसा ही ं विरोध उपस्थित हुआ था। गोनासाली मेरिडस, पिद्री पसिस् (Lord Steward )-प्रमुख राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्तियों ने राजसिंहांसनको अटल रखनेके लिये पोपसे इससे राज्यके मध्य ब्रागाके आर्क-ं सन्धि कर छी। ं विश्वपक्ती धाक जम गई। उन्हों ने नये लार्ड च्टुआई . एब्रिल पेरिस और लियनराज ६म आलफन्सोके कहनेसे - १२२६ ई०में एलवसको अवरोध और फतह किया। धीरे ् धोरे वालकराजाकी सुख्याति चारों ओर फैल गई। उन्होंने दूंसरे वर्ष पूर्वतन कमचारो भिनसेएटको प्रधान मन्ती ( chancellor ) पिद्रो पनिसको प्रधान कोषाध्यक्ष (Lord Steward) और मार्टिन एनिसको राजपताका-वाहक कार्यमें पुनः नियुक्त करना चाहा। राजक्षमताकी · ऐसी वृद्धि पर विशप और धर्मयाजकोंके वीच असन्तोष-्रका छक्षण दिखाई पड़ने छगा । वे राजाको राज्यच्युत ं करनेकी कामनासे भीतर ही भीतर पड़यन्त करने छगे। ़ उग्रर राजा पोपकी शान्तिके लिये खृष्ट्यमँरक्षार्थ विधर्मी ु, मुसळमानोंके साथ युद्धयापारमें लग गये। विशपोंको ्धमग्राण राजाके विरोधी देख पोपने १२२८ ई०में एवि-

भिला-वासी एक दूतको उनके पास भेजा। उक्त व्यक्तिने यहां भा कर पुर्चगीज विश्वपींको यथेष्ट लाञ्छना और तिर-स्कार किया। पीछे उन्होंने प्रधान विचारपित भिन्सेएको गोआडीका विश्वप बनाना चाहा। १२३७ ई०में २य डम साङ्कोंके साथ धर्मयाजकोंका फिरसे कलह पैदा हुआ। इस पर पोप ध्म प्रेगिरने पुर्चगालराज्यमें निपेधाहाको प्रवर्चन किया। पीछे साङ्कोंने पोपको अवनित स्वीकार कर छुटकारा पाया।

१२३६ ई०में उन्होंने फिरसे मुसलमानों पर अलगाड प्रदेशमें धावा कर दिया। पीछे कमशः मार्टीला, भाव-मिएट, १२४०में केसेली और १२४४ ई०में टामिरा हाथ लगा । १२४०से १२४४ई०के मध्य पुत्तगालराज डोना मेनसिया लोपेज नाम्नी किसीकाष्टिलियन विधवा-रमणी-के अवैधप्रणयमें आसक्त हुए। उनके इस कदर्य व्यव-हारपर सभी पुर्व गालवासी उनके प्रति वीतश्रद्ध हो गये। १२४५ ई०में उन्होंने राजग्राता आफेन्सोको आदर पूर्वंक बुला कर अपना परिचालक वनाना चाहा, स्वयं पोपने भी साङ्कोकी राज्यच्युतिकें छिये आदेशपत भेजा। पीपके आदेशसे जोहन प्रस ( Archbishop of Braga ) दाइवारसियो (Bishop of Coimbra) साफभेडोरिस (Bishop of Oporto) और पिद्री फ्रान्सकी राजधानी पारि नगरमें आफन्सोके निकट गये । आफन्सोको पूर्वसस्मति प्रगट करने पर वे १२४६ ई०-में इन्हें लिसवन नगर लाये और राज्यरक्षक ( I)elender of the kingdom) कह कर घोषणा कर दी। इस समय प्रायः २ वर्षं तक राष्ट्रविष्ठवके वाद १२४८ ई॰में इस मास्कोको मृत्यु हुई।

सिहासन पर अधिष्ठित हो कर आफन्सोने अलगार्भ पर दखल जमाया। पुर्च गाल-राज्यसीमाकी ऐसी वृद्धि देख काष्टिल और लिवनाधिपति १०म आलफेन्सो जल मरे। दोनोंमें युद्ध भी हुआ, आखिर राजा ३४ आफ-स्सोने आलफन्सोकी अवैध-कन्या डोना विपद्रिससे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की, तब दोनोंका विवाद निवटा। इसके वाद उन्होंने पुर्च गालराज्य पर आँख गड़ाई। पारीनगरकी प्रतिश्रुति रहते हुए भी वे विश्वपोंकी क्षमता घटानेकी कोशिश्रा करने लगे। अपना उद्देश्य सिद्ध

करनेके लिये राजाने १२५४ ई० कोलिरिया नगरमें एक महासभा की। समवेत नगरवासी भद्रलोक और उच्च श्रेणीके याजकींकी सहायतासे उन्होंने प्रथमस्त्री (Matilda countess of Boulogne )-के रहते ही फिरसे आफन्सो दिवाइजकी कन्यासे विवाह करनेके लिये पीपका निषेधविधिका उहाङ्घन कर दिया। अन्तर्मे पुत्त गालके विशय और आर्कविश्योंने जब उनकी ओरसे पीप ४थ उर्वानसे प्रार्थना की, तव १२६२ ई०में उक्त द्वितीयविवाह युक्तिसिद्ध है, यह जनसाधारणको मालूम हो गया, और उनके वड़े लड़के डम-डिनिज राज्याधिकारी होंगे, यह भी उक्त याजकसभासे स्थिर हुआ । १२६३ ई०की १०वीं आलफन्सोने उन्हें अलगार्भ प्रदेशका पूर्ण शासन-भार प्रदान किया। १२७० ई०में राजपुत डिनिज विद्रोही हो कर पिताके विरुद्ध खडे हुए। इस प्रकार प्रायः दो वर्षं तक राष्ट्रविष्ठव चलते रहनेके वाद १२७६ ई॰में वृद्ध राजाकी मृत्यु हुई।

इतने दिनों तक पुर्त्त गाल राजाओंने युद्ध और राज्य वृद्धिकी ओर ध्यान दिया था। राज्याधिकार और विधिवद्ध राजनियमादि द्वारा चालित पुर्तागाल राज्य , अभी एक खाघीन राज्य रूपमें गिना जाने लगा । अभी ्सभ्य जगत्में 'सभ्यता'का विकाश आरम्भ हुआ । एशिया जय और विभिन्न देशान्वेषणमें निकल कर उन सव देशींका अधिकार पुर्त्तगालके भाग्यमें नहीं बदा। पुर्त्त-गोजोंने सभ्यता-अभ्यासमें विशेष ध्यान दिया । जिससे वे अपरापर सुस्मय यूरोपवासियोंके साथ मिल कर समकक्षता दिखा सकें, इसके लिये वे विशेष चेपा करने लगे। एक मात राजा डम डिनिज छोड कर और कोई भी ऐसे भारी काममें लिस न थे। उक्त महात्माके-ही उद्योगसे पुर्त गालराज्यमें कई एक हितकर कार्य हुए थे। राज़ा स्वयं एक कवि, सुरसिक और विद्या-्रजन-प्रियःथे। चे न्यायपरता और सुनियमके वडे पक्ष-पाती थे, न्यायविचारमें राज्यकार्यंकी पर्यालोचना भी अच्छी तरह करते थे। अपने राज्यमें सुविचारप्रतिष्ठा-. के लिये उन्होंने सु-आईनका प्रचार और विचार-अद्ग-लतका स्थापन किया। कृषिकार्यंकी उन्नतिके लिये उन्होंने कृषिविद्यालय खोला और पितृ-मातृहीन कृपक

वालकीं के लिये एक वासमबन वनवा दिया। कृषिविद्याकी उन्नतिके लिये उन्होंने जिस प्रकार लिरियामे
पाइन-वन (Pineforest)-को शहरमें परिणत किया,
उसी प्रकार वे वाणिज्यकी उन्नतिके लिये इङ्गलैण्डके
साथ सन्धिस्थापन करके विख्यात हुए। इसके वाद
राज्यरक्षामें ध्यान देते हुए उन्होंने एक नौसैनादलकी
गठन की थी। जेनोआवासी इ-मान्यूएल पेसान्हा उनके
प्रथम नौसेनापति (Admiral) नियुक्त हुए। सामरिक विभागके उन्नतिविषयमें वे जिस प्रकार चेष्टित थे,
पुनः पुनः युद्धविश्रहसे क्लान्त पुर्तं गाल राज्यमें शान्तिस्थापन करनेमें उन्हें उसी प्रकार वल रखना पड़ा था।
इन सव परिश्रमशील कार्योंके लिये उन्हें Re Lavrador or Danis the lahom की उपाधि मिली थी।

सिहासनप्राप्तिके कुछ वाद ही डिनिजको सिहासन-का अधिकार ले कर भाई आफन्सोके साथ राष्ट्रविश्लवमें ( Civil wars ) लिप्त रहना पड़ा था। पर शीघ ही दोनों भाईका मनोमालिन्य जाता रहा। इसके बाद डिनिजने आरागणराज ३य पिट्रोकी कन्या इसाबेळासे विवाह किया। यह रमणी अपनी सच्चरितता और सदुगुणके लिये १६वीं शताब्दीमें "आदर्शरमणी" कह कर गण्य हुई थीं। उनके शासनकालमें ४थै साङ्केंके-साथ काप्टिलके अधिपति ४र्थ फार्दिनन्दका युद्ध हुआ। पुत्त गालका सिंहासन ले कर युद्ध छिड़ा था । १२६७ ई॰के सन्धिपतानुसार दोनोंमें शान्ति स्थापित हुई। उक्त पत्नके शर्तानुसार ४र्थ फार्दिनन्दने डिनिज-फन्या कनशन्सका और पुत्तंगालराजपदके उत्तराधिकारी आफन्सोने फार्दिनन्दकी बहन विपद्भिसका पाणिप्रहण किया । आपसमें ऐसा आदान-प्रदान हो जानेसे सभी युद्धवित्रह शान्त हुआ। पूर्वोक्त सम्बन्ध रहते हुए भी पुर्त गालराज इङ्गलैएडके १म एडवर्डके साथ कुटुम्बिता-स्थापनमें पराङ्मुख नहीं हुए। पुत्त गाल और इङ्गलैण्ड-की वाणिज्य-अन्नतिके लिये उन्होंने १२६४ ई०में एडवई-के साथ वाणिज्यसम्पर्केमें सन्धि कर ही। इङ्गलैएडपति २य एडवर्डके साथ भी उनका सङ्गाव था । '१३११ ई०-में पोप ५म क्वें मेण्टने नाइट-चेम्पलरों<del>चे</del> प्रति द्वेप करके ,उनकी क्षमता घटा दी और राजा डम डिनिज ( Order

of Christ) नाम दे कर एक दल नूतन योद्धृ-सम्प्रदायका प्रवत्त न किया। पीछे उन्हें टेम्पलरों की भुक्तभूमि दान करके ने पोपके अनुप्रहपाल हुए। १३२३ ई०को पिता-पुलमें मुठमेंड हुई। स्वयं रानी इसावेला (St. Isabel) ने दोनों दलके बीच अध्वचालना करके पितापुतका विवाद मिटा दिया। १३२५ ई०में राजाकी मृत्यु पर्यन्त दोनों-में शान्ति वनी रही।

४र्थं आफन्सो राजपद पानेके वाद ही पिताके मतानु-सरण करके कार्य करने छगे। १३२८ ई०में अपनी कन्या द्वीना मेरियाको काष्टिलपति ११वें आलफन्सोके हाथ सौंप कर आत्मीयता स्थापन की। किन्तु जब पुर्त्त गाल-को मालूम हुआ कि काष्टिलपति उनकी कन्याके साथ वुरी तरह पेश आते हैं, तव वे उनके निग्छर व्यवहार पर कृद्ध हो युद्ध करनेको अप्रसर हुए । सेण्ट-इसावेलाकी मध्य-स्थतासे १३४० ई०को दोनोंमें शान्ति स्थापित हुई। आफन्सके पुत डमपिद्रोने,पेनाफिप्ल डू.ककी कन्या कनष्ट न्स मानुपलसे विवाह किया। ४र्थ आफन्सो मरकोराज भावू हामेमके विरुद्ध ११वें आलफरसोकी सहायता करने-में प्रतिश्रुत हुए। मिलित खृष्टीय सेनाने सालाडो नदीके किनारे मुसलमानोंको परास्त कर्ंविजयघोषणा की। इस युद्धमें पुर्त्त गालराजने विशेष दक्षता दिखा कर 'दीर'की जपाधि पाई। १३४७ ई०में आरागणराज ४र्थ पिद्रोके साथ अपनी कन्याका व्याह दे कर पुर्त्तगालराजने अपनी वलपुष्टि की । राजा ४र्थ आफन्सोने डोना-इनिस-डि-कच्ट्रोकी विषम इत्यामें लिप्त रह कर अपने शेष जीवनको कलङ्कित कर दिया था।

राजा १म इम-पिट्रोने सिंहासन पर बैठ कर पहले १३५७ ई०में डोनाइनिसके निहन्ताको कठोर दण्डाझा दी। पिछे उसके कृतपापका प्रायश्चित्त कराया और इनिसके प्रति प्रगाद अनुरागवशतः मृतदेहको कन्नसे उठा कर बड़ी धूमधामसे उसके मस्तक पर राजमुकुट सुशोमित किया। अन्तमें उनकी मृत्यु पर महाशोक प्रकट कर शोकसन्तम हृदयसे उस मृतदेहको आलकोवाशा मठमें राजा और रानीको कन्नके बगल गाड दिया।

जिस सूक्ष्म और प्रतिजिघासापूर्ण न्यायपथातुवत्ती हो कर उन्होंने राजकार्यका पर्यवेक्षण किया था, पुत्त गोज

राज्यके इतिहासमें वह ज्वलन्त अक्षरोंमें प्रकाशित है। उन्होंने क्या धर्मयाजक, क्या सम्म्रान्त व्यक्ति सर्वोक्ती समान भावमें कठिन द्एडान्ना दे जनसाधारणसे Pedro the Severe की आख्या पाई थी। वे अपने पितामहकी तरह इङ्गलैएडकी वन्धुता पसन्द करते थे। इङ्गलैएडराज ३य एडवडके साथ उनका ऐसा सद्भाव था, कि १३५२ ई०में एडवर्डने अपनी प्रजाकी सूचना दे दी, कि वे पुत्तगालके विरुद्ध कोई क्षतिजनक कार्य करने इसके वाद १३५३ ई०में आफन्सो न पावें। मार्टिनस अलहोंको अध्यक्षतामें लएडन और समुद्रतोर-वसीं पुर्त्तगालवासी वणिकोंके वीच एक सिन्ध हुई। उक्त सन्धिके अनुसार दोनों जातिके वाणिज्य और पण्य द्रष्य पर दोनोंका विश्वास सम्पूर्णसपसे कायम रहा। पिद्रोके राजत्वकालमें वाणिज्योन्नतिका यही द्वितीय स्तर है।

महाराणी कनप्टान्सके गर्भजात पिद्रो-पुत फार्दिनन्त् १३६७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। इनके शासनकाल-में पुत्त गालमें राजतन्त्रका (Absolute monarchy) लक्षणादि दिखाई पड़े थे। राजा अपना कार्य मूल कर, प्रजाका सुल भूल कर एकमात अपने ऐहिक सुत्कके अन्वेषणमें व्यस्त रहते थे। अलगार्भ युद्धावसानके वाद, जब पुत्त गालमें शान्ति विराजती थी, तब पुत्त गालवासी कृषि और वाणिज्यकी उन्नतिसे अपनेको धनमदमें गर्वित और विद्याचर्चामें सीभाग्यसम्पन्न समक्त अपनी अवस्था-का अनुधावन करनेमें समर्थ हुए थे। राजाकी वर्च मान लम्पट प्रजाके हृदयमें असन्तीषके एकमात कारणका

प्रादिनन्दके दुवंछ और छघुचेता होने पर भी राज्यवृद्धिकी आशा उनके इदयमें बछवती थी। वे आरागणराजकल्या ल्युनोरासे विवाह करनेमें प्रतिश्रुत हो
१३६६ ई०में काष्टिलराज पिदो (The cruel) की मृत्युके वाद काष्टिल सिहासनके प्राधी हुए। कारण, उनकी
पितामही विपद्रिस काष्टिल-राजकल्या थी। बहुतोंके
उनका पक्ष लेने पर भी काष्टिलचासी सम्म्रान्तवंशीय
वहुतोंने पुन्त गांजको सिहासन देनेमें अनिच्छा प्रकृष्ट की।
उन्होंने पिद्रोकेस वैधपुत देशमारेवासी हेनरी (Henry ii)-

की काष्टिल-सिंहासन पर विडाया । इसी सुबसे होनों पक्षमें युद्ध छिड़ा। पीछे पोप ११वें प्रेगरोकी मध्यस्थतामें फार्दिनन्दने काष्टिलकी आशा छोड़ दी और २य हेनरीकी कन्या ल्युनोराको व्याहना चाहा । पीपके मध्यस्य होने पर भी यह सन्धि कार्यमें परिणत नहीं हुई। फार्दिनन्दने फिरसे द्रास-अस्-मोण्टेवासी किसी भद्र मनुष्यकी विधवा कन्या डोना-ल्युनोरा-तेलिजके प्रणय और इत पर मोहित हो उसीसे विवाह कर लिया। काष्टिलराज २य हेनरी अपनेको अपमानित समभ इसका वद्छा चुकानेके छिपे तैयार हो गये और दल वलके साथ था कर लिसवन नगरकी घेर लिया। फार्दिनन्दने कोई उपाय न देख गएट ( Gaunt ) के राजा जानके साथ सन्धि कर ली। राजा जानका पिद्रो-मू पलकी कन्या कनद्यान्ससे विवाह हुआ था, इस कारण वे काष्टिलराजसिंहासनके प्रार्थी हुए थे। उनके साथ हेनरीकी पहलेसे शतुता होनेका यही कारण था। पीछे १३७४ ई०में काष्टिलराजके साथ फार्दिनन्दकी सन्धि स्थापित हुई।

महारानी ल्युनोरा पुत्त गालराज फार्दिनन्द पर अधि-कार कर वैटी । राजा रानीके हाथको कठपुतली हो गये। रानी राज्यको सर्वमयी कर्ती हुई। धीरे धीरे रानी-के अत्याचारसे राज्यस्थ सभी ध्यक्ति उत्त्यक्त हो पड़े। इङ्ग-लैण्डेश्वर ३य एडवर्डके साथ पुर्चागालराज जिस मितता-स्त्रमें आवद्ध थे, रानीने उस स्त्रको काट डाला। इन सब अन्याय अत्याचारोंका प्रजागण सहन कर न सकी और क्रमशः उनके प्रति विरक्ति प्रकाश करने लगी। जोन फार्णान्दिज पिएडयारो नामक जो ध्यक्ति अङ्गरेज-राजसभामें पूर्वकथित सन्धिपत्र ले कर गाया था, रानी उसके रूप पर मोहित हो गईं। अब वह अपनेका सम्हाल न सकी, प्रणयसमुद्रमें कृत पड़ीं। एएडियारोको औरलप्रदेशका काउल्ड बनानेके लिये रानी राजाको वहुत तंग करने लगी।

काष्टिलकी सिंहासन-वासना अव भी फार्दिनन्दके इदयमन्दिरसे दूर नहीं हुई थी। १४८० ई०में २य हेनरी-की मृत्युके वाद उन्होंने हेनरीके उत्तराधिकारी १म जानके विरुद्ध युद्ध करनेकी कामनासे पुनः इक्स्टैएडसे सहायता मांगी । इङ्गलैएडराज २यं रिचार्डने उनकी सहा-यता करनेके लिये आरल-आव केम्ब्रजको दलवलके साथ मेजा। राजपुत पखवडने (१३७६ ई०में सिरियाकी महा-सभाके अनुसार) फार्दिनन्दकी एकमात कन्या और पुर्तं गाल-सिंहासनकी उत्तराधिकारिणी विएद्रिससे विवाह करना चाहा। १३८३ ई०में पुत्तभालराजने अपनी प्रतिक्षा तोड़ दी और रानीके इच्छानुवर्त्ती हो अङ्गरेजोंको पुत्त गालसे मार भगाया। इस पर अङ्ग-रेजोंने पुर्त्त गालको तहस नहस करके काष्टिलपति १म जानके साथ मितता कर छी। इस सन्धिसुतसे राजा जान पूर्त गीज-राजकन्या डोना-विपद्रिसके साथ विवाह करनेको सहमत हुए शर्त यह ठहरी, कि जब तक विपद्भिसके वड़े लड़के वयःप्राप्त नहीं होंगे, तब तक महा-रानी ल्युनोरा राजप्रतिनिधिरूपमें राजकार्यकी पर्या-लोचना करेंगी। इसके छः मास वाद २२वीं अक्तूबर-को फार्दिनन्दकी मृत्यु होने पर डोना ल्युनोराने राज्य-भार प्रहण किया।

च्युनोरा राजेश्वरी तो हुई, पर अधिक दिन राज्यका सुसभोग न कर सकीं। उनका अद्रुष्टाकाश पुत्त-गीजोंकी जातीयताकी गभीर घनच्छायासे छा गया। घृणाके ज्वलन्तविषसे जर्जरित हो सभी असचरिता रानीके राज्यशासन पर भीषण कटाक्षपात करने छगे। काष्टिल-राज्यके साथ विवाहसूत्रमें पुत्तीगालका राजछत एक साथ करना भी उसका अन्यतम कारण था। पिटी-सिभियरके अवैधपुत सम जान (Grand master of the Knights of St. Bennett of Aviz) ने रानीके घुणित चरित पर तथा राज्यमें स्वाधीनता स्थापनमें नितान्त इच्छुक हो ६ठीं दिसम्बरको लिसवननगरमें विद्रोहिदल-का नेतृत्व ग्रहण किया और राजप्रासादमें महारानी ल्युनोराके प्रणयपात परिडयारोकी हत्या की। रानी प्राणके भयसे विना किसीको कहे सुने सान्तरिम नगरमें भाग गई । वहांसे उन्होंने काष्टिलपति १म जानकी अपनी सहायताके लिये बुला मेजा। इधर इस जान सवके सामने अपनेको पुत्त गालके परिवाता ( Defender of Portugal) बतला कर विधोषित हुए। जीन दास रिप्रस ( Joao das Regras )-के चान्सेलर-पद

पर और आलमेरिस पेरेरा (Alveres Pereira)-के कानप्रवल-पद पर प्रतिष्ठित होनेसे राज्यभ्रष्ट रानी और काष्टिलराज जान युद्धके लिये तैयार हो गये। इस पर उम जानने भी इङ्गलैएडसे सहायता मांगी। अंगरेज-राजके सहायता देनेमें प्रतिश्रुत होने पर उन्होंने पुर्च-गाल राजधानीको सुरक्षित कर रखा।

यथासमय १३८४ ई०में काष्टिलराज जानने ससैन्य पुर्त्त गाल आ कर किसवन नगरमें घेरा डाला । पर युद्धमें हार खा कर वे खदेशको लौटे। देश लौटनेक पहले उन्होंने सुना, कि डोना ल्युनोरा विषप्रयोगसे उनके प्राण लेनेको तैयार हैं। राजाने उन्हें पकड़ कर टोर्ड सिला-क मठमें अवरुद्ध रखा। यहां १३८६ ई०में पुत्त गाल-रानीकी प्राणवायु उड़ गई।

केवल एक युद्धसे दोनों जातिका विरोध दूर नहीं हुआ। दोनों देशकी आम्यन्तरिक अवस्था देख मविष्यमें द्वितीय युद्धकी सूचना हो रही थी। पुत्त गीजोंने अपनी खाधीनता खो जानेके मयसे प्राणपणसे युद्ध करके जातीय गौरवकी रक्षा की थी, ओटलरो और द्राङ्कोसोंके युद्धमें कानन्देवल आलमेरिस-पेरेराने विशेष बीरता दिखा कर काष्टिलिय सेनाको परास्त किया। इसी कारण वे "The Holy Constable" नामसे प्रसिद्ध हुए। १३८५ ई०को कोइम्ब्राकी महासमामें पुत्त गालकों सिहासन पर विठानेके लिये राजनिर्वाचनका प्रस्ताव उठा। चानसेलरके कथनानुसार सर्वोने उम जानको पुत्त गालका राजा पसन्द किया।

राजा जान ताज पहन कर सवीं के परामर्शानुसार ५०० तीरन्दाज अङ्गरेजी सेना और राज्यस्थ वीरहृद्य व्यक्तियोंको साथ छे अगस्त मासमें आछजुवोराटाके रणक्षितमें कृद पड़े और काष्टिलराजकी प्रभूता सेनाको यमपुर मेज दिया। इसके वाद पुनः अक्तूबर मासमें 'होली-कान्स्टेंबल'-के हाथसे वलमार्जे नामक स्थानमें काष्टिलराज परास्त हुए। उपर्यु परि इस प्रकार विपर्यस्त हो काष्टिलराज वलक्षय होने लगा। अन्तमें दूसरे वर्ष जव गएटके शासनकर्ता जानने दो हजार वर्छाधारो और तीन हजार बीरन्दाज छे कर काष्टिस पर आक्रमण किया, तब

काष्टिलपतिने वचायका दूसरा उपाय न देख सन्धिकी प्रार्थना की थी।

इङ्गलैएडके साथ सन्धि और मितताकी उपकारिता समक्त कर पुत्तं गालराजने पुनः १३८६ ई०में दो राज्योंमें वाणिज्य और राजनैतिक कार्यमें मिलता-स्थापनके लिये पक सन्धिपत लिख दिया। उक्त पत Treaty of Windsor नामसे प्रसिद्ध है। राजा डम जानने गएटके शासनकर्ता जानकी द्वितीय पत्नी-गर्भजात कन्या फिलिपा (Philippa of Lancaster)से विवाह किया। इससे दोनोंमें धनि-ष्टता और भी वढ़ गई। इस समय काष्टिलराजुके साथ पुर्त्त गालराजकी सन्धि स्थापित हुई। किन्तु वीच वीचमें उक्त पत्न प्रवर्त्तित होता जाता था। आखिर १४११ ई॰में दोनोंके वीच पूर्णशान्ति स्थापित हुई। इस सन्धिका रङ्ग-लैएडके ४थ, ५म, ६५ हेनरी और २य रिचार्ड आदिने आनन्द हृदयसे प्रतिपालन किया था। १३६८ ई०में जव ज्येष्ठ राजपुत डम-डिनिजने पिताके विरुद्ध अस्त्र धारण किया, तव २य रिचार्डने राजा जानको सहायताके लिये कुछ सेना मेजी थी। 8र्थ हेनरीने उन्हें Knight of the Gartr-की उपाधि दी । १४१५ ई०में अपने तीनों पुर्वोकी उरोजनासे प्रबुद्ध हो राजा आफ्रिका जीतनेकी कामनासे मरकोवासी मूरों पर आक्रमण करनेको अव्रसर हुए। राजपुत डम दुआत्ते, डम पिद्रो और डम हेनरिक-ने वीरनाम पानेकी इच्छासे मूरोंको किउटा नगरमें परा-जित किया । इस युद्धमें अंगरेजराज ५म हेनरीने उनकी विशेष सहायता की थी, किउटाके अधिकारसे पुर्तंगालका अद्भुष्कवाट उन्मुक्त हुआ। पुर्त्त गालराज्यके वहिर्देशम यही पुर्चंगीजोंका प्रथम अधिकार था। युद्धके वाद तीनों व्यक्ति अपने अपने अभीष्ट पथकी और चल दिये। ज्ये प्र डम एडवाडै राज्यशासनमें पिताकी सहायता करनेके लिये रह गये। मध्यम पिद्रो ( Duke of Coi $m _{D^{1}ra}$  ) यूरीपके नानास्थानीमें भ्रमण कर. अपनेको सुविज्ञ परिडत और योद्धृवीर वतला कर प्रसिद्ध हुए थे। तृतीय डम हेनरिकने एकमाल समुद्रयाला और चिभिन्न देशोंके आविष्कारकी उन्नतिके लिये आत्मजीवन उत्सर्ग किया था। उन्होंने अलगाभैका शासन कर्तृ त्व, ड्यूक आव .सेउमि और master of the order of Christ-की उपाधि प्रहण कर सेक्रिसं नगरमें वास-भवन वनाया था । १९३३ ई०में जानके मरने पर उनके छड़के एडवर्ड राजसिंहासन पर अधिकढ़ हुए। पिताकी तरह अनेक सदगुणींसे भूपित होने पर भी वे राज्यसंकान्त कुछ गुरुतर कार्यमें हस्तक्षेप कर आत्मजीवन कलुषित कर गये। सिहासन प्राप्त करने-के वाद ही उन्होंने एभोरा नगरमें एक महासभा करके यह स्थिर किया, कि पितृदत्त उनकी जो सव भूसम्पत्ति राज्यके सम्प्रान्त मनुष्य भोग कर रहे हैं, उसका सत्त्व वे प्रतादिक्रमसे भोग कर सकेंगे, पुतके अभाव-में वह सव सम्पत्ति राजाको होगी । सम्ब्रान्त भद्र-वंशीय वहुतोंके पुत सन्तान नहीं रहने पर वे अपनी अपनी मान रक्षाके लिये सारी सम्पत्ति छोड़ काष्टिलको भाग गये। एडवर्डने समका, कि उनका अभीए सहजमें ही सिद्ध हो गया । राज्यके अधिकांश सम्प्रान्त व्यक्तियों-के भिन्न भिन्न देश चले जानेसे अवशिष्ट व्यक्तियोंकी क्षमताका ह्रास हो गया । एडवर्डने पिताकी राजनीतिको वशवर्ती हो आरागण-राजकन्याका पाणिप्रहण किया। इङ्गलैएडराजने विएडसरके सन्धिसूतवलसे (Knight of the Garter)की उपाधि दी। उन्होंने अपने छोटे भाई डम हेनरिकको समुद्रके किनारे नाना स्थानोंमें जानेके लिये उत्साहित किया। १४३६ ई०में टाञ्जियरकी युद्धयातासे ही पुत्त<sup>र</sup>गालको भविष्यत् देशाविष्कार आदि क्षणकालके लिये निर्वापित हुई थी। उनके सर्वकिनष्ट भ्राता डम फार्दिनन्द, पिद्रो, हेनिरक और पोप आदिके मना करने पर भी उन्होंने टाञ्जियर पर आक्रमण करनेके लिये एक दल नौसेना भेजो । शतुके हाथसे पडवार्डकी सेना विच्छिन्न हो गई। टाञ्जियरवासियो'ने उनके छोटे भाई फादिनन्दको कैद कर लिया और वाकी सभी सेना छोड दिया। राजा भाईके जीवनसे निराश हो -विशेष मर्मंपीड़ित हुए। मस्तिष्ककी विकृतिसे दग्ध हो वे १४३८ ई०में परलोक सिधार गये। डम फार्दिनन्द-ने भी फेज नगरमें वन्दी रह कर तरह तरहका अत्या-चार सहा और पीछे अपने द्यादाक्षिण्य और दृढ़ताके िलये "The constant Prince"नाम प्रहण कर १४४३ ई॰में जीवन विसर्जन किया ।

एडवर्डकी मृत्युके वाद उनके अल्पवयस्क एक पुत् ५म आफन्सो सिंहासन पर यैठे । वालकराजके प्रतिनि-धित्व ले कर राजमाता डोना व्युनोरा और चचा डम-पिद्रो (Duke of Coimbra )में विवाद खड़ा हुआ। लिसवन नगरवासीने पिद्रोका पक्ष ले कर उन्हींको रिजेएट वा प्रधान अभिभावक वनाना चाहा। १४४७ ई॰में राज्यके मध्य डम पिट्रोकी क्षमता उच सीमा पर पहुंच गई । इस समय एडवर्डपुत ५म आफन्सोके वयः प्राप्त होने पर उनके चचा पिद्रोने अपनी कन्या ल्युनोराको उन्हें व्याह दिया। वहनसे विवाह करने पर भी उनका मन शान्त नहीं हुआ । चचाके एकाधि-पत्य पर वे कमशःईर्षान्वित होने छगे । ड्यूक आव व्रगञ्जा उनके मनमें चचाकी विद्वेषानिको उद्दीपित कर रहे थे। अतः उनका अन्तःकरण क्रमशः विषमय होता जा रहा था। उन्हों ने अपने चचाको राज्यसे वहिष्कृत करनेका सङ्करूप किया। अन्तमें उन्होंने ड्यूक आव ब्रागञ्जा-के परामर्शानुसार राजकीय सेनाको साथसे १८४६ इ॰में आलफारोविरा नगरके समीप अपने चचाकी सेनाका सामना किया। युद्धमें डम पिद्धी मारे गये। इसके वाद ५म आफन्सो देश विजयकी कामनासे अफिकामें जा १४५८ ई०में अलकाशके सेगुअर और १४७१ ई०में आरजिला और टाञ्जियर राज्यको दखल कर लिया। अफ़िकाके युद्धमें उन्होंने विशेष वीरत्व और युद्ध-विद्याका परिचय दिया था, इस पर सवों ने उन्हें "The African" उपाधिसे भूपित किया। इधर वे जिस प्रकार अफ्रिकाके युद्धमें लिप्त थे, उसी प्रकार उनके चचा डम हेनरिक (The navigator)-के उत्साहसे प्रणोदित पुर्त्त गीजगण समुद्रपथसे देशा-विष्कारमें व्यापृत रह कर नाना स्थानों में जाने लगे। १४६६ ई०में हेनरिककी मृत्यु होने पर भी राजाने अपने चचाके देशान्वेषणरूप महाकार्यसे जनसाधारणको विशेष उत्साहित किया था। राजा ५म आफन्सोके अन्तर्निहित काष्टिल-विजयवासना दिनों दिन उद्दीप्त होती जा रही थो। इस उद्देश्यको साधन करनेको आशासे वे काष्टिलपति ४र्थ हेनरीकी वालिका कन्या जोहनको व्याह कर राजसिंहासनप्राधीं हुए। **उधर का**ष्टिल वासियों-

ने आरामगराज फार्दिन-दको वाळिकापत्नी इसाबेळाका पक्ष ले कर उन्हें सिहासन पर विद्याना चाहा । इस प्रकार दोनों में विरोध खड़ा हुआ। दोनों ही शस्त्रादि कर एक दूसरेके सम्मुखीन हुए। १४७६ युद्धयमें पुत्तं गीजगण विशेषकपसे ई०प्रें परास्त हुए थे। राजाने फान्स जा कर ११व खुईसे साहाय्य प्रार्थना की, पर कोई फल नहीं निकला। अव कोई उपाय न देख राजा १४७८ ई०में अलकरदारा सन्धिपत पर अपना हम्ताक्षर करनेकी बाध्य हुए और उसीके अनुसार नव-परिणीता भार्या जोहन को मडमें चिरनिर्वासित करनेको वाध्य हुई। इस प्रकार मनःकष्टसे उनकी चित्तचञ्चलता और भी वढने लगी। प्रायः अदुर्घोन्मादावस्थामें एक वर्ष विता कर राजा १४८१ ई०में परलोकको सिधार गये जिससे सभी प्रकार-ज्वाला शान्त हुई।

राजा २य जानने पुत्त<sup>र</sup>गाल सिंहासन पर वैठ कर काष्टिल और इङ्गलैएडके साथ वाणिज्यसूलमें सन्धि-स्थापन किया। पीछे वे प्रजाको सब भांतिसे सन्तए कर राज हार्यकी पर्यालोचना करने लगे । उस समयके इङ्गलैएडराज ७म हेनरी और फान्सके अधिपति ११वें लुईके अनुकरण पर राज्यशासन करके उन्होंने अपने राजत्वको उज्ज्वल कर दिया था। टोरोके युद्धमें वीरता दिख़ा कर वे एक विख्यात सैनिकपुरुव गिने जाने छगे। राज्यके सम्म्रान्त व्यक्तियोंकी अधिकारस्थ भूमि आदिका विचार राजविचारक (Corregidors) द्वारा निपान होने-के लिये एभोरामें महासभा की गई। उनके पिताके राजत्व कालमें व्रगञ्जाके ड्यूक फार्दिनन्दने खाधीनता प्राप्त करना चाहा था, इस कारण उनका दमन इन्हें पकान्त आवश्यक जान पड़ा । उक्त महासभाके अधिवेशनका मुख्य उद्देश्य था फार्दिनन्द-प्रमुख सम्म्रान्त भद्र व्यक्तियोंका क्षमता हास । अतः उन लोगोंमें घीरे घीरे विद्वेष भाव प्रकाश होने लगा। व्रगञ्जाको ङ्यूक पर आक्रमण करना उनका मूल मन्त्र हुआ उन्होंने इयुकको राज-द्रोहिताके अपराध पर दण्डित और भावद करके एमोरा नगरमें विचारके वहाने भेज दिया और वहीं १४८३ ई०में वे परलोकको सिधार गये। फार्दि-नन्द् (Duke of Viseu) जो राजाके निकट आत्मीय थे

सम्ब्रान्त भव्न्छोगोंके नेतृपद पर अधिष्ठित हुए। आंत्मीय होनेके कारण राजा उन पर भी विश्वास नहीं करते थे। ११वें खुईको राजनीतिके अनुवर्त्तां हो उन्होंने १८८४ ई॰ में अपने हाथसे सेतुवल नगरमें उनका प्राण संहार किया। ईस पर भी उनकी शोणितिपिपासा निर्वापित नहीं हुई। उन्होंने राजपदको निष्कण्टक करनेके लिये और भी असी भव्र लोगों (Nobles) का रक्तदर्शन किया। इन सब सहंशोन्द्रव भद्र व्यक्तियोंको अपने नेतोंसे ओट करनेमें राजाने विशेष कप्ट पाया था। अब वे निर्वेवाद शतु-परिश्रून्य हो राज्यशासन करने लगे। प्रजा उन्हें 'The Perfect king' नामसे पुकारने लगी।

यद्यपि उन्होंने अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये ऐसा नृशंस आचरण किया था, तो मी पुर्त्तगीजीको कभी भी आळससे दिन विताने नहीं दिया। डम हेनरीको शिक्षित नाविक सम्प्रदायने वड़े यत्नसे अपने अधीन समुद्रपथ होकर देश देश भ्रमण कराया था। गोल्ड कोष्ट ( Gold C ast ) में वाणिज्य फैलानेके लिये उन्होंने १४८४ ई॰में पलमीना ( Lamina or Elmina ) नगरमे एक दुर्ग वनाया । १४८६ ई०में वार्थछोमिड डियस उत्तमाशा अन्त-रीपका परिम्रमण कर अलगीआ उपसागरमें पहुंचे। १४८७ ई०में राजा प्रेप्टरने जानके अन्वेपण और भारत-वर्ष पहुंचनेके लिये एक दल सिजत नौसेना मेजी। उसी साल उन्होंने विशेष तत्त्वानुसन्धानसे पिद्रो-डि-एभोरा और गञ्जालो एनिसको टिम्बको प्रदेशमें तथा उत्तर महा-सागर हो कर काथे ( Cathay )में जानेका पथ निरूपण करनेकी इच्छासे माटिम् छोपंजको नामा-जिमला द्वीप भेजा। यही उत्तर-पूर्व ( North East Passage ) पथके निरूपणका प्रथम उद्यम है। ऐसी विचक्षणता रहते हुए भी राजाने १४६३ ई०में कलम्बसके म्रमण और अमेरिका दर्शनद्भप्रयापारकी अलीक विवेचनासे उसको कार्यसे अव्याहति दे कर विपम भ्रमात्मक कार्य किया था। अपने राजत्वके शेष काल तक वे भास्की-डि-्गामाके भारत-आक्रमणके लिये रणतरी सज्जा आदि विस्तृत व्यापारींमें लिप्त थे । उन्हींके राजत्यकालमें पुत्त गाल और स्पेन राज्यके मध्य अनाविष्कृत-देशींकी विभाग-व्यवस्था करके पीपने एक आदेशपत प्रदान किया। १४६० ई०में जेष्ठ पुत आफन्सोकी मृत्यु हो जाने से राजाको अपना जीवन

वोभ सा मालूम पड्ने लगा। स्पेनराज फार्दिनन्दकी कन्या इसावेळाके साथ अपने पुतका विवाह दे कर वे जिस भविष्यत् आशा पर उत्फुहित हुए थे, अभी पुतके निधन पर वह आशा निराशाके अगाध जलमें इव गई। मर्माहत हो राजाने १४६५ ई०में अपनी जीवनलीला शेप की। इसके बाद डम माजुपल "The Fortunate" पुर्त्तगाल-के सिहासन पर वैठे। जिस फार्दिनन्दकी (Duke of Viseu) २य ज्ञानने निष्ठुरभावसे हत्या की थी, ये उन्हीं-के अन्यतम भाई थे। भास्को-डि-गामा, आफन्सो डि-आलवुकार्क, फ्रान्सेस्को अलमिदा आदि प्रधान प्रधान नाविक और योद्धाओंने नाना स्थानोंमें पर्यटन कर पुत्त -गाल-राजलक्मीको अतुल पेश्वर्यंसे भूषित कर दिया था। इस विषयमें राजाके खयं उद्योगी नहीं होने पर मी काष्टिलसिंहासन-अधिकारकी वासना उनके हृदयमें आप ही आप जग उठी। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उन्होंने आफन्सोकी विधवा पत्नी फार्दिनन्द-पुती इसावेळासे विवाह करना चाहा। नवपरिणीता पत्नीको खुश करनेके लिये वे पुत्त गालसे यहृदियों ( Jews )-को को मार भगानेमें तैयार हो गये। यहूदियोंने पुत्त गालमें रह कर कभी भी कोई अपकार नहीं किया, उनका ध्यान हमेशा राज्यके मङ्गळकी ओर रहता था। आफन्सो-हेनरिककी असीम ऋपासे वे इतने दिनों तक पुत्त गाल-में निरापदसे रहते आये थे, इस कारण वत्त मान राजाकी भी उन्हें निकाल भगानेकी जरा भी इच्छा न थी, पर वे करते क्या, प्रियतमाने उन्हें अपने हाथका खिलीना वना लिया था। १८६७ ई०में शुम विवाह सम्पन्न हुआ। विवाहके वाद उन्होंने स्पेन-राजिंसहासनके उत्तराधिकारी होने की चेष्टा की। पर छौटती सालमें राजकन्या इसावेछाकी टोलेडी नगरमें अकरमात् मृत्यु हो जानेसे राजाकी भविष्यत् राज्य-आशा सदाके लिये विलुप्त हो गई। इस पर निक्त्साह न हो, उन्होंने फिरसे अपनी साली नेरियासे विवाह कर लिया। इस विवाहसे भी उनकी आशा पूरी न हुई। उनकी बड़ी सालीके पुत ५म चार्लस स्पेनके सिंहासनाधिकारी हुए। राजा जव अपने राज्यमें विवाह व्यापारमें लिप्त थे, उस समय भास्को-डि-गामा, केवल

( इन्होंने १५०० ई०में ब्रेजिलका आविष्कार किया ), आलवुकार्क, अलमिदा, दुआर्ची पाचेकी आदि प्रधान प्रधान पुर्त्तगीज नाविकगण भारतक्षेतमें पुर्त्तगीजकी गौरवरक्षा करते रहे। १५०१ ई०में जोहन-डि-नोभाने पसेन्सन ( Ascension ) द्वीपका और आमेरिगो मेस्पुची ( Amerigo vespucei )ने अमेरिकाके राइओ-प्लाटा और पारा-गुई राज्यका आविष्कार किया। १५०६ ई०में ड्यूगो लोपेज दि-सिकुइराने मलका पर और १५१० ई॰में आलवुकार्कने गोआ पर अधिकार किया था। १५१२ ई०में फान्सिस्को सेनाने मलका द्वीपपुत्रका आविष्कार और १५१५ ई०में लोपेज सोआरिसने सिंहलके कलम्बो नगर-में एक दुर्गका निर्माण किया। १५१७ ई० में फार्णान्दो-पेरिज एन्द्रादा चीन साम्राज्यके काएटन नगरको जीत कर १५२१ ई०में पेकिननगरको खाना हुए । १५२० ई०में मगेलान ( Magalhao )ने जिस प्रणालीसे सुविधाजनक गमनपथका आविष्कार किया, वह आज भी (Straits of Magellan ) उन्होंके नामकी घोषणा करती है।

१५२१ ई०को ३य जानने मानुपलके सिहासन पर अधिकार तों किया, पर २य जान द्वारा देशस्थ मद्रलोगोंकी
क्षमता हास हो जानेसे सभी लोग अपनी तथा देशकी मलाई
मूल कर राजाके विरुद्ध पड्यन्त रचने लगे। १७८६ ई०में
घोर फरासी राष्ट्रविष्ठवके समय फरासी मद्र लोगोंकी
मानसिक अवस्थाने जैसा पलटा खायाथा अभी पुर्त्तगालके भाग्यमें भी वैसा ही पलटा खानेको था। भारतीय
वाणिज्यधनसे राजकोप पर्याप्तकपसे पूर्ण रहनेके कारण
राजाने पुर्त्तगालसे राजकर लेना विलक्कल बंद कर दिया।
इसमें प्रजाकी विशेष सुविधा होने पर भी वे राज्यशासनकी यथेच्छाचारिता (Absolutism of the governको यथेच्छाचारिता (Absolutism of the governको यथेच्छाचारिता (Absolutism वर भागने लगी।
वार वारके युद्धसे आलेमटेजो और आलगाम प्रदेशकी भी
जनसंख्या घट गई थी।

१५वीं शतान्दीमें सुमहान् देशाविष्कारसे पुर्त्तगालकी जनसंख्या और भी घटने लगी। केवल युवकोंने ही मान्य और धनार्ज्ज नकी आशासे सैनिक वा नाविक हो समुद्रपथसे विभिन्न देशोंमें जा कर आत्मजीवन उत्सग किया था। कितने पुर्त्तगोजोंने भी स्त्रीपुतपरिवारको साध ले ब्रे जिल और मदिरामें उपनिवेश वसा लिया था। जो कुछ पुत्त<sup>९</sup>गीज खदेशमें वच रहे, वे भी अपनी अपनी जमीन तथा घरको छोड़ कर वाणिज्यमें घनवान् होनेकी आशासे लिसवन नगर जा कर रहने लगे। पुत्त गीजों-को इस प्रकार विभिन्न देशोंमें जानेसे राजा, राज्यस्थ भद्र व्यक्ति अथवा सामरिक-कर्मचारियोंमेंसे किसीने भी नहीं रोका। अब वे डम हेनरिक द्वारा लाये गये अफ्रिकावासी क्रीतदासींसे अपनी अपनी जमीन आवाद कराने लगे। रोमराज्यके अग्रःपतन पर इटालीकी जैसी दशा हुई थी, अभी पुत्तीगालके भाग्यमें भी वही हुई। वैदेशिक और ओपनियेशिक कोठियोंमें कर्म-चारियोंके उत्कोचप्रहण और अत्याचारसे पुत्त गीजोंकी अद्रुप्छत्त्मी भागनेकी तैयारी कर रही थीं। इससे भी वढ़ कर यह, कि १५३६ ई०में "iloly office"की सहा-यतासे राजा जेसुइट् और द्र्डविधायक (Inquisition) सम्प्रदायी ईसाइयोंकी पुर्त गाल ला कर जनसाधारणके अप्रिय हो उठे। रोमके प्रधान प्रधान धर्मयाजकींके उनका पक्ष छेने पर भी पुर्त्त गाळवासी यहूदी खृष्टान (Neo-Christion) उनके विरुद्ध खड़े ही गयेथे। 'द्एडदातृ'-सम्प्रदायने पुत्तंगालका कुछ भी उपकार नहीं किया था, वरं विशेष अपकार किया था। ख़ुष्टान देखी।

रे६वीं शताब्दीमें सारे यूरोपखर्डमें विद्योन्नितिकी जैसी पराकाष्टा प्रदर्शित हुई थी, पुत्त गालके अद्रष्टमें अव वैसी होने न पायी। राजाके अनुप्रहसे दर्राडविधायक खृष्टानदलने प्रतिष्टालाम किया। राजा अपनी अवनित्की पथरक्षा न कर सके। १५५४ ई भें उनके एकलौते पुलको मृत्यु हो जानेसे वे वड़े मर्मपीड़ित हुए। १५५७ ई भें वे इस लोकका परित्याग कर अपने पौल सिवाधियनके लिये सिहासन छोड़ परलोकको सिधारे। इन्होंके राजत्वकालमें आल्यूकार्ककी डिउनगर जय, सेएर फान्सिस जेभियरका धर्मप्रचार और नानो दा-कन्हाकी भारतशासनस्थाति पुत्त गीज इतिहासकी प्रधान घटना है।

तीन वर्षके वालक डम सिवाप्टियन पुत्त गाल सिहा-सन पर वैहे। दारुण गोलयोगके समय वालकके राजत्वमें जैसा विषमय फल घटा करता है, उनके भी राजत्वमें वैसा ही घटा। राजाके इच्छानुसार रानी

कार्डिनल हेनरी राजाके प्रतिनिधि और रक्षक हुए। वालकराजके शिक्षक और राजमन्त्री छुई तथा मार्टिमगन सामरा नामक दोनों भाई यथार्थमें सभी कर्मोंकी अध्य-क्षता करने लगे। १५६८ ई०में सवालिंग हो कर उन्होंने राजकार्य अपने हाथमें लिया। पहले हो पहल वे अफ्रिका पर आक्रमण करनेकी कामनासे १५७४ ई॰में किउटा और टाञ्जियारस्नामक स्थान देखनेको गये। उसके सीमाग्यसे १५७६ ई०में मौली अहाद इन्न अवदृष्टाने २य फिलिएसे सहायता नहीं पा कर सिवाष्टियनकी शरण ली। उनका पक्ष छे कर राजाने मरक्कोंके सुलतान अवदुल मालिकके साथ लड़नेका विचार किया। लड़ाईके खर्चके लिये उन्होंने अपने राज्यमें यहूदी-खृष्टानसे अतिरिक्त कर वस्ल किया और कुछ रुपये कर्ज ले कर वे लड़ाईका सामान प्रस्तुत करने छगे। १५७८ ई०में कुछ सेना साथ ले वे अफ़िकाके उपकुलमें जा धमके और मौली अह्मद्की सेनाके साथ मिल गये। अल्कशर-अल्कवीर नामक स्थानमें दोनों सेनाकी मुठभेड़ हुई। पुत्त गीज-राज युद्धमें परास्त हुए। सन्धिकी वात छिड़ी। मुसळ-मानी-सेना शान्तिके लिये अपेक्षा करने लगी। इसी वीचमें सिवाप्टियन असीम साहससे अभ्वारोही मूर-सेना पर टूट पड़े। इस घोर युद्धमें सिवाप्टियन, मौली अवदुल मालिक और अन्यान्य पुत्त गीज-सेनापित यम-पुरके मेहमान वने। इस दारुण संवादके पुर्ताण पहुंचने पर राजम्राता कार्डिनेल हेनरीने पुर्त्तगालका सिंहासन सुशोभित किया। १म हेनरी राजा तो हुए, पर सिहासनका अधिकार हे कर मानुपलके वंशघरींमें तकरार पैदा हुआ। हेनरीने लिसवनकी महासभा पर इसका विचार-भार सौंप दिया। कोइम्ब्राके विश्वविद्या-लयसे यही निश्चित हुआ, कि कैथरिन डाचेस आव व्रगक्षा ही राजपदके अधिकारी हैं। किन्तु स्पेनरांज द्वितीय फिलीप रिश्वत देकर सर्वोंको वशीभूत करने लगे। खृष्टोभाव-दा-मौरा और एएटोनियो पिनहेरो ( Bishop of Lerria )-ने उनका पक्ष छे कर आजिस्विनी वक्तृता-प्रभावसे पुर्त गाल-वासियों को अर्थ और भूम्यादि देना कवूल करते हुए वशमें कर लिया। १५८० ई०की ३१वीं जनवरीको हेनरीकी मृत्यु होने पर सवो ने २य फिलिए-को राजा बनाया ।

सिहासन पर वैठ कर फिलीपने युद्ध वन्द करना चाहा। इसके लिये उन्हों ने व्रगञ्जाके ड्रयकको व्रेजिल-राज्य और राजाकी उपाधि देना अङ्गीकार किया । अछावा इसके उन्हीं ने अन्दुरिया-राजपुत्रोंके साथ अपनी कन्याका विवाह दे कर ब्रगञ्जाधिपतिको हस्तगत किया। सिंहा-सनके प्रतिद्वनिद्वयों को तो उन्हों ने किसी प्रकार शान्त किया, पर इधर राजा लुईके अवैधपुत एएटोनियो ( Prior of Crato )-ने उल्लाससे उन्मत्त हो सान्तरिम तगरमें अपनेको राजा वतला कर घोषणा कर दी और अपने नामसे सिक्का भी चला दिया। पुत्त गीजोंके अर्थ-प्राचुर्य रहने पर भी वे दण्डविधायक सम्प्रदायके अत्या-चारसे निस्तेज हो पडे थे। वह अत्याचार आज भी पूर्त गालवासी भूल नहीं सके हैं। इस कारण उन्होंने स्पेनराज फिलीपके विरुद्ध अख्रधारण करना नहीं चाहा। वे ५म चार्ल्सके पुत्र फिलीपके प्रतिश्रुत दानादिकी वात पर निर्भर करके अपनी अपनी स्वाथसिद्धिकी आशा पर अरल थे। पुर्त्तगीजगण पर्टोनियोकी वात पर ताच्छित्य-भाव दिखाने छगे। इयुक-आव आलभाने एक दल स्पेनसैन्यको छे कर पुर्त्तगालमें प्रवेश किया। अल्कएटा-के युद्धमें पएटोनियो पराजित हूप और फिलीपने अपनेको राजा वतला कर घोषणा कर दी।

फिलीपने राज्याधिकार प्रहण करके पुर्त गाल-शासनके लिये अच्छा प्रवन्ध कर दिया। १५८१ ई०की थोमरकी महासभामें उन्होंने पुर्तगालके शासन-खातन्त्रा, प्रजावर्गकी खाधीनता और अधिकार-रक्षा करनेकी प्रतिश्चा करते हुए एक वक्तृता इस प्रकार दी,—'सभी समय महासभाका अधियेशन आवश्यक है। यदि किसी विशेष कार्यका विचार आ पड़े, तो पुर्त गीज-महासभा उसकी निष्पत्ति करेगी। राज्यके समस्त कर्मचारीका पद पुर्त गीजके सिवा और अन्य जातिके लोग नहीं पावेंगे। पुर्त गालके सभी कार्मोकी देख रेख करनेके लिये राजाके साथ एक मन्तिसभा रहेगी।' इन्होंके शासनकालमें ४ व्यक्तियोंने मृत राजा डल-सिवाष्टियनका नाम प्रहण कर पुर्त्त गाल-सिहासन अपनानेकी कोशिश की। वे एक एकके एकड़े गथे और राजदण्डसे दिख्डत हो यमपुर सिधारे।

जो ६० वर्ष (१५८०-१६४० ई० ) पुत्त गाल स्पेन-राज्यके अधीन था, पुत्त गाल इतिहासमें वह the Sixty years captivity नामसे प्रसिद्ध है। ६० वर्ष वन्दि-भावमें रह कर पुर्त गालको कितनी मुसीवर्ते फेलनी -पड़ी थी, उसकी इयत्ता नहीं । अङ्गरेजराजने १५६५ ई०में पुर्च गीजोंसे फेरोनगर छीन लिया और उसे लूटा। पीछे ओलन्दाज, अङ्गरेज और फरासीने उपर्यु परि पुत्त गीज उपनिवेश और उनको अधिकृत स्थानों पर आक्रमण करके वाणिज्याधिकार हथिया लिया। राजा फिलीपके उद्योगसे सुविख्यात रणतरी (The Spanish Armada) पुत्त-गाल उपकूलमें सिज्जित हो इङ्गलैएड पर आक्रमण करनेके लिये अप्रसर हुई। किन्तु दैवक्रमसे एक भारी तूफान भाया जिससे वह लौहवर्मावृत रणतरी समुद्रगर्भेमें कहां विलीन हुई, किसीको मालूम नहीं। फिलीपके राज्य-शासनसे ही पुत्त गालकी अवनितका द्वितीय सोपान आरम्भ हुआ।

स्पेनशासनसे उत्त्यक्त हो पुत्त गीज लोग १६३४ ई०-को लिसवन नगरमें पहले असन्तोपके लक्षण दिखाने लगे। पीछे १६३७ ई०में एभोरा नगरमें विद्रोहिदलने राज-सैन्यको परास्त कर कुछ दिनके लिये राजकार्यकी परिचालना की थी। आखिर जब स्पेनराज फरासी और कैटलण विद्रोहमें उलके हुए थे, तब पुत्र गीजोंको यह समय विशेष सुविधाजनक मालूम पड़ा । पिद्रो-डि-मेडो-नशा फरटाडो, पएटोनियो और लुई-डि-अलमासा आदि राज्योंके प्रधान प्रधान व्यक्तियोंके पड्यन्त्रसे एक राज-द्रोहिदल संगठित हुआ। १६४० ई०की १ली दिसम्बरको राजप्रासाद पर आक्रमण करके उन्होंने राजसेनाको परास्त किया। सर्वेने सलाह करके व्रगञ्जाके ड्यू कको राजपद् ग्रहण करनेके लिये लिख भेजा। १३वीं दिसम्बरको उन्हें लिसवन नगरमें बुला कर राजपद पर प्रतिष्ठित किया गया। इसके वाद समस्त पुर्च गालवासियोंने उद्धत हो स्पेनवासियोंको राज्यसे मार भगाया । दूसरे वर्ष १६वीं जनवरीको लिसवनको महासभाके आदेशसे राजा ४थ जान पुर्र्तगालके राजा और उनके पुत थियोडोसस उत्तराधिकारी हुए।

पुर्र गीजोंने स्पेनके विरुद्धचारी हो राज्य तो द्खल

कर लिया, पर खाधीनताकी रक्षा करनेमें अवनेकी असमर्थे समक्त उन्होंने सहायताके लिये रङ्गलेएड, हालेएड और फ्रान्समें आदमी भेजा। पहले पुत्त गालकी सीभाग्यलक्षी पुत्त गाल-अद्धृप्राकाशमें उज्ज्वलक्षपसे स्नेहधारा वरसती थी, पर पुत्त गीज उपनिवेशोंमें ओलन्दाजगण जो अपना आधिपत्य फैलानेके लिये युद्ध-विग्रहमें लिस थे उससे पुत्त-गालकी विशेष कए भुगतना पड़ा था। राजा ४थे जानके शासनसे परितुष्ट न हो कर उन्होंने मेजेरिन (Mazarin) के ड्यू कको पुत्त गालका शासनमार सौंपा और अपनेको पुनः फ्रान्सके अधीन रखना चाहा। इस समय फरासी और स्पेनयाडोंके साथ धमसान युद्ध चल रहा था। १६५६ ई०में राजा ४थे जानको मृत्यु हुई। उस समय भी स्पेन-फरासी युद्धका अवसान नहीं हुआ था।

राज्यके उत्तराधिकारी डम धियोडोसस ( Prince of Brazil) पिताके पहले ही मर चुके थे, इस कारण राजा-के द्वितीय पुत ६ठे आफन्सो तेरह वर्षकी अवस्थामें राज-सिहासन पर अधिष्ठित हुए। राजमाताने राजकार्यका प्रतिनिधित्व अपने हाथमें छिया। यह रमणी खामीकी अपेक्षा बुद्धिमती और तेजिखनी थी। स्पेनराजके विरुद्ध युद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने मार्सल स्कोमवग ( Marshal Schomberg ) सैनिक शिक्षाका भार सौंपा। १६५६ ई०में डम-एएटोनियो लुई-दि-मेनेजिसने एलवस नगरमें उन-लुई-दि-हारोको परास्त किया। युद-में जय होने पर भी पुत्त गालके लिये विशेष सुविधा न हुई। फरासियोंने मेजेरिनकी प्ररोचनासे पुर्रागालको सहायता देना नामंजूर किया । अव इङ्गलैएड-राज सुयोग पा कर धीरे धोरे अप्रसर हुए। द्वितोय चार्ल्सने पुर्त्त गीज-गजकन्या कैथरिन आव व्रगङ्गासे विवाह करना चाहा। वे जानते थे, कि इस विवाहमें पुर्त गीज-राज-माता प्रचुर औपनिवेशिक-सम्पत्ति दहेजमें देंगी। १६६१ ई०में विवाह स्थिर हो ंगया। सेएडविच के अर्छ ( Ear] of Sandwich) वधू छैनेके लिये १६६२ ई०में लिस-वन नगर आये। यौतुकमें इङ्गलेएडराजको टिझयर, वम्बई। और गल (Galle) नामक स्थान मिले तथा मोलन्दाज और पुर्त्तगीजोंका विवाद मिटानेके लिपे इङ्गुलैएडराज सेनासे सहायता क्र्नेमें सहमत हुए।

अंगरेजी सेनाके पहुंचनेके पहले ही स्पेनके साथ विवाद छिड़ गया । उसी साल राजपुतको सवा-छिग घोषणा करके राजमाताने संसाराश्रमका परि-त्याग किया और मठमें जा कर वे अवशिष्ट जीवन विताने छगीं । यहां उनके परामर्शानुसार काष्ट्रेल मेलहोरके काउवट सुजान्द भास्कोन्सालो राजफार्यकी परिचालना करने लगे। अङ्गरेजी-सेनाके पहुंचने पर राजमाताको आंबासे काष्ट्रेल मेलहरने काफी सेना इकड्डी की और उसके सेनापति हुए स्कोमवर्ग। इस विपुछवाहिनोको छै कर स्कोमवर्गने जो सव युदुध किये तथा राजा स्वयं उपस्थित रह कर जिन सव युदुधों में जयी हुए थे, उससे उनका 'विजयी' (Alfonso the victorious ) नाम रखा गया । १६६३ मिलाङ्गोरके काउल्ड-की सहायतासे स्कोमवर्गने पहले अप्नियाराज डन जानको परास्त किया, पीछे पभोरा नामक स्थान जीता। १६६४ ई०में कुरदाद-रोड्रिजो नगरमें पिद्रो जाक्वे-दि मग-लहें ( Pedro Jaques de Magalhaes )-ने असुना (Ossuna)-के डूयकको परास्त किया। १६६५ ई०में मेरायलभाके मार्किस मोण्डेने क्लैरोर (Montes Claros) युद्धमें और खृष्टेभाव दा-पेरेराने मिला-मिकोशरके युदुधमें स्पेती-सेनाके ऊपर जयपताका फहराई। इस प्रकार क्रमशः विध्वस्त हो कर स्पेनराज हतवल हो पड़े । दोनोंके वीच क्षणस्थायी एक सन्धि हुई, पर वह उतनी फलदायक न निकली । काप्टेल मेलहरने अपनी तथा पुर्त्त गालको क्षमता बढ़ानेके लिये पुर्त्त गालराजके साथ फरासीराजकन्या एलिजाबेथ (Marie Francoise Eli-abeth Mademoiselle d' Aumale)-का १६६६ ई॰में विवाह कर दिया। यह रमणी फरासीराज ४थें हेनरीकी पीती और साभय-निमूके ड्यूककी कन्या थी। फान्सके अधिपति १४वे छुईने इस विवाहका अनुमोदन किया । विवाहमें विपरीत फल घटा । काप्टिल-मेलहरने अपने पांवमें अपनेसे ही कुडारी मारी । नववधूने स्वामीको पसन्द नहीं किया । वे राजभ्राता दम पिद्रोके प्रेममें फंस गई। प्रायः चौरह मास कलह और घृणित स्वामिसहवासमें समय विता कर उन्हों ने विवाहवन्धन-विन्छेदके लिये लिसवनके श्रेष्ठ-धर्ममन्दिरमें आवेदन किया। इधर डम पिद्रोने अपने भाईको राजप्रासादमें वन्द करके १६६८ ई०के जनवरी मासमें शासनभार अपने हाथ लिया। १३वीं फरवरीको उन्हों ने स्पेनराजको क्युटा राज्य देकर सन्धि की। २४वीं मार्चको पोपकी सम्मतिसे रानीका खामित्याग खीकृत हुआ। २री अपिलको रिजेव्ट डमपिद्रोके साथ उनका विवाह हो जानेसे काप्टल-मेलहर फान्सको भाग गये। दुर्माग्यकमसे ६ठे आफन्सो वन्दी हो कर टार्सिरा और पीछे सिण्द्रामें निर्वासित हुए। यहीं पर १६८३ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उसी साल रानीकी भी मृत्यु हुई थी।

आज तक पिद्रो राजाभिभावक हो राजकार्यकी पर्या-लोचना करते आ रहे थे। १६८३ ई०में आफन्सोकी मृत्युके वाद वे पिद्रो नामसे पुत्त गालके राजा हुए। १६८७ ई०में उन्हों ने मितके अनुरोधसे पुनः मेरिया सोफियाके साथ विवाह करना चाहा। स्पेनराज श्य चार्ल्सको मृत्युके वाद स्पेनका सिहासन छे कर विवाद वैदा हुआ। इस समय उन्होंने फरासीराज १४वें लुईके पौत ५म फिलिपको सिंहासन देनेका विचार किया तथा १७०१ ई०में फरासी-नौसेनादळको टेग्सनदी-के मुहाने आ कर रहनेका हुकुम दिया। इङ्गलैएडकी Whig मन्तिसमा पुत्त गालके पक्षपातित्व पर विरक्त हुई। जान मेथुअन (Right Hon, John Methuen) नामक कोई व्यक्ति राजकीय और वाणिज्य-सम्पर्कीय कार्यनिष्पत्तिके लिये सन्धिके उद्देश्यसे भेजा गया। १७०३ ई०में राजाने उक्त सन्धिपत पर ( Methuen Treaty ) हस्ताक्षर किया । स्पेनराजसिंहासन छै कर जो युद्ध हुआ, इतिहासमें वह Wars of the Spanish Succession नामसे प्रसिद्ध है। १७०४ ई॰में पुत्त-गीज और अङ्गरेजी सेनाने मिल कर सालमाटेरा और भालेन्सो पर अधिकार किया। दूसरे वर्ष राजा डम पिद्रो अपनी वहन कैथरिन पर (Queen Downger of England ) राजप्रतिनिधित्व अपेण कर आप मृत्यु-शय्या पर शायित हुए। इधर अङ्गुरेजी सेनापति लार्ड गालवे और पुर्च गीज सेनाध्यक्ष जोया-दा-सुजा तथा मार्किस दास मिनसने मिलं कर क्रमशः अल्काएटारा, कोरिया, द्राक्जिलो, छाकेन्सिया, क्युदाङरिंद्रजा और आभिला जीता तथा कुछ कालके लिये मादिद नगर पर अधिकार किया। राजा रोगशल्या पर शायित रहनेके कारण ये सब विषय कुछ भी जान न सके। बलके क्षयसे वे दिनों दिन अवसन्न होने लगे। १७०६ ई०को अल्काल्यरा नगरमें उन्होंने मृत्युसे आलिङ्गन किया। सुनियमसे राज्यशासन करके उन्होंने मितव्ययिताका अभ्यास कर लिया था। १६६७ ई०में उन्होंने महासमा (Cortes)-का अधिवेशन वन्द कर दिया। १८२८ ई०के पहले और इस सभाका अधिवेशन होने नहीं पाया।

डम पिद्रोकी मृत्युके वाद उनके पुत ५म जानने कैथ-रिनसे राज्यभार ग्रहण किया। पितृवन्धु ड्युक-आव-काडामलके परामर्शानुसार वे स्पेनराज ५म फिलीप पर आक्रमण करनेके लिये उद्योगी हुए। इस समय काडा-भलके कहनेसे राजा जान अर्शयसम्राट् १म ल्युवोल्डकी कन्या आर्क-डचेस् मरियानासे विवाह किया। पुत्त-गालराजने अपनी दलपुष्टि तो की, पर इससे कोई विशेष फल नहीं देखा गया। १७०६ ई०में पुत्त गीजगण कैया ( Caia ) और १७११ ई॰में राव-डि-जेनिरो नगरमें अच्छी तरह स्पेनसेना द्वारा परास्त हुए। अनन्तर उद्गे क्रसन्धि (Treaty of Utrecht)-के दो वर्ष वाद अर्थात् १७१५ ई॰को माद्रिद नगरमें दोनों राज्यके वीच सन्धि स्थापित हुई। १७१७ ई॰में पोपकी अनुमतिसे राजाने तुर्कियोंके विरुद्ध युद्धयाला की। विधर्मी तुर्कसेना मारापन अन्तरीपके पास ही पुर्त गीजोंसे परास्त हुए। पूर्वोक्त सन्धिके अनुसार फिलीपके पुत इम फार्दिनन्दने पुत्ती-गालराजकन्या मेरिया वर्वरासे और डम जोसेफने स्पेन-राजकन्या मरियानासे विवाह किया। राजाने पोपको प्रचुर अर्थ दिया था, इसीसे पोपने लिसवनके आर्क-विशापकी पेद्रयार्क -पद प्रदान किया। राजा भी उसके साथ साथ 'फिडेलीसिमस' ( Fidelissimus of the most faithful )-की उपाधिसे भूषित हुए !

१७५० ई०में पिताकी सृत्यु होने पर डमजोसेफ पितृसिहासनके अधिकारी हुए। १८वीं शताब्दीमें प्रधान राजुनैतिक सविष्यो-दा-कमलहो (Duke of Pombal) उनके राज्यशासन कार्यमें व्यापृत थे। राजकार्यमें विशेष पारदर्शिता दिखा कर राजमन्तीने राजाका मन चुरा लिया। १७५५ ई०की १ली नवम्बरको भयानक भूमि-कम्पमें विशेष दक्षताके साथ उन्होंने प्रजाका अभाव दूर किया था। इसीसे वे राज्यके सर्वमय कर्त्ता और सर्वों-के श्रद्धापात हो उठे। १६५६ ई०में टाभोरा षड्यन्त्वसे व्यतिव्यस्त हो कर उन्होंने जेसुइट सम्प्रदायको दमन करनेका सङ्कृत्य किया। १७६६ ई०में राजाकी पुनः हत्या करनेकी चेष्टा की गई। अन्तमें उन्होंने १७७३ ई०में उक्त सम्प्रदायका रोमकी सन्धिके अनुसार समूल दूमन किया।

१७६२ ई०में जब स्पेनराज सप्तवर्षध्यापी युद्धवित्रहमें (Seven years' war) लिप्त थे। उस समय मार्किस-सिरिया नामक किसी स्पेन-सेनापतिने पुर्त्तगाछ पर आक्रमण करके व्रगञ्जा और अलमिदाको फतह किया। पुर्त्तगाल-राजमन्त्री पोम्वलने इङ्गलैएडकी सहायतासे स्पेनियाडोंको भेलिन्सिया-अत्काएटारा और भिला-भेल्हा नामक स्थानमें परास्त किया। १७६३ ई०की १३वीं फरवरीको दोनों दलमें शान्ति स्थापित हुई। राजा जोसेफके राजत्वके शेपकालमें दक्षिण-अमेरिकाके सेका-.मेग्द्रोका अधिकार ले कर पुनः स्पेनराजके साथ विवाद खड़ा हुआ। यह गोलमाल मिटने भी नहीं पाया था, कि १७९९ ई०में उनका प्राणिवयोग हुआ। उनके केवल ४ कन्या थीं जिनमेंसे वड़ी डोनामेरिया फ्रान्सिस्का राज-.भ्राता डम पिद्रोको ब्याही गई थीं। अव वही ३य पिद्रो राजा कह कर घोषित हुए। किन्तु राजा और रानी दोनोंके दुर्वछताका परिचय देनेसे विधवा रानोके हाथ राज्यशासन-भार सौंपा गया । उन्होंने पोम्बालको राज्यसे निकाल भगाया।

जव पुर्त्तगालकी आस्यन्तरिक अवस्था इस प्रकार थी, फरासी-राज्यमें उस समय (१७९६ ई०में) राष्ट्र-विद्धव उपस्थित था। सभी रानीके शासनके विरोधी हो गये। इधर रानीके खामी और ज्येष्ठ पुत डम जोसेफ कराल कालके गालमें पितत हुए। रानीका दिमाग विलक्ष्तल खराव हो गया। अतः जनसाधारणके अनुरोधसे उमजान १७६६ ई०में राज्यके प्रकृत अभिभावक हुए। जो सब पुर्त्तगीज फरासियोंको मतानुसरण करके उत्तेजित

हो गये थे अथवा पुर्त्तगीज राज्यमें जो सव फरासी-चिद्रोहिताक उत्तेजक समन्ते जाते थे, वे सभी निर्जित और ताड़ित हुए।

जनसाधारणके आग्रहसे जान फारविश स्केलटरकी अधिनायकतामें ५००० पुर्वगीज सेना पूर्व पिरिनिजकी और 8 नौसेनावाही जहाज मार्किस नीजाके अधीन अंग-रेजोंसे मिलनेके लिये भूमध्यसागरमें भेजे गये। स्केल-टरके फरासी सेनाके साथ विस्तर युद्ध करने पर भी १७६५ ई०में उन्होंने देखा, कि गोड्य (Godoy, Prince of the Prace) की अध्यक्षतामें स्पेनगवर्मेण्टने पुर्चगालराजकी मिलता भूल कर वानेल नगरमें फरासी-विद्यवकारियोंके साथ मिलता कर ली है।

१७६६ ई०में सन हल्डेफन्सोकी सन्धि होनेके वाद स्पेनराजने अङ्गरेजों के विरुद्ध मुद्धको घोषणा कर दी। स्पेन-सेनाके पुत्त<sup>र</sup>गीज सीमान्त पर उपस्थित होनेसे पुत्तं गीजो ने अंगरेजराजसे सहायता मांगी। चार्ल्स प्टुवार्ड ससैन्य वहां पहुंच गये। आखिरकार स्पेन-राजकी मध्यस्थतामें फरासीके साथ सन्धिका प्रस्ताव चलने लगा, पर सन्धिन हुई । १८०० ई०में महा-वीर नेपोलियनके आदेशसे उनके माई लुसीन वोनापार्ट (Lucien Bonaparte) मादिद नगरमें आये और उन्हों-ने पुत्त गालराजको अंगरेजों से मितता तोड़ देनेके लिये सूचित किया तथा जिससे फरासी वणिक् छोड़ कर अङ्ग-रेज आदि अन्यान्य जातियां पुत्तं गीज वन्दरमें वाणिज्य न कर सके, यह भी कहला भेजा । पुर्त्तगीज मन्त्रियोंने उन-की वात पर कान नहीं दिया। अतः छेकलार्क (Leclero) के अधीन फरासी सेना स्पेनदेशमें घुसी । ओलिमेआ केम्पमेयर, आरोश्चेस और पलोर-दा-रोजा नामक स्थान विना खून खरावीके स्पेनियडॉके हाथ लगे । आखिर स्थानमें वैडाजसमें दोनों दलके वीच सन्धि हुई। उस सन्धिकेअनुसार पुत्तं गीजॉने स्पेनराजको स्रलिभेजा प्रदेश और पारी नगरकी सन्घिके अनुसार फरासीराजको आमेजन तकका अधिकार छोड़ दिया था।

वैडाजसकी सन्धिसे नेपोलियनका जी नहीं भरा।

मन ही मन वे- पुत्त गालराज्यके ध्वंसका उपाय सीचने

लगे। पुर्त्त गालको युद्धभंगें उत्ते जित करनेके अभिप्रायसे-

उन्होंने लेनिस (Lannes) नामक एक फरासी सेना-पितको लिसवन नगर मेजा। लेनिस सभी कार्य प्रभु-के आदेशसे किया करते थे। इङ्गलैएडके पक्षपाती मन्तिदलको उन्होंने विदा कर दिया। पुत्त गालराजको इङ्गलैएडके विरुद्ध उत्ते जित करनेके लिये नेपोलियन-ने १८०४ ई०में जूनो (Junot)-को मेजा। यूरोपके नाना स्थानों में युद्ध होनेके कारण उन्हों ने पुत्त गाल-राजसे उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य कराना नहीं चाहा। केवल उन्हें निरपेक्ष रहने दिया। १८०७ ई०में नेपोलियन अष्ट्रिया, प्रूसिया और रूपिया जीत कर पुत्त गाल ध्वंसका उपाय सोचने लगे।

जूनोने फरासी और स्पेनवाहिनो साथ छे पुर्त गाल पर आक्रमण कर दिया। एक दल स्पेन सेनाने मिन्हों और अलेमटेजोंको दखल किया। यह संवाद राज-प्रासादमें शीघ्र हो पहुंचा। राजा किंकर्स व्यविमूढ़ हो ध्यर उधर ताकने लगे। अङ्गरेज-सेनाध्यक्ष सर सिडनी स्मिथने उन्हें सलाह दी, कि अभी राजप्रतिनिधि और रानीको ब्रे जिसमें जाना ही अच्छा है और वे खयं विपद्य-समुद्रमें पुर्त गालको रक्षा करेंगे। १म मेरिया और उम जान तत्त्वावधान-सभाके हाथ पुर्त गाल सींप कर अङ्गरेजी जहाजसे अमेरिका भाग गये। अङ्गरेजी नौसेनाके देग्स नदीके मुहाने पहुंचते न पहुंचते परिश्रान्त फरासी सेनाने आ कर लिसवन पर अधिकार जमाया।

पुर्त गाल पर गोटी जमा कर जूनोने देखा, कि यहां के सभी लोग फरासी-मतके पक्षपाती हैं। खाधीनता-प्रयासी मान्यगण्य व्यक्तिगण सभी उनके दलमें मिल गये। मार्किस अलोणीन ससैन्य आ कर उनकी अधीनता खोकार की। रिजेन्सी-सभा (Council of Regecy)-ने प्रजाका मनोभाव समम्म कर उनके विरुद्ध होना नहीं चाहा। जूनोने पुर्त गोजों से राज्यशासनभार प्रहण कर राजकीय पर कब्जा किया और पुर्त गालराज्यको अपने सेनापितयों-के वीच बांट दिया। १ली फरवरीको उन्हों ने प्रगञ्जा राजवंशका राज्य शेय हो गया ऐसा कह कर तमाम घोषणा कर दी। उधर व्रगञ्जाराजसिंहासन पानेकी आशासे उन्होंने पुर्तगीजोंको सान्त्यना वेनेकी चेष्टा की। नेपोलियनने युद्धके व्ययस्वह्म पुर्त्त गीजों से 8 करोड़

फ़ाङ्क सिक्के मांगे। जूनोके वहुंत कहने सुननेसे २ करोड़ सिक्के से ही रिहाई मिल गई। जूनोने पुत्त गाल-का राजपद्प्रार्थी हो कर सम्राट्को सूचित किया । इधर पुर्त्तगालमें फरासी और स्पेनी सेनापतियों-के वीच विवाद उपस्थित हुआ । जूनो लिसवनका परित्याग कर भाग चले । राजकाय अपटोंके विशप-प्रमुख प्रतिनिधि-सभाके हाथ सौंपा गया। उक्त याजक-प्रवरने अङ्गरेजोंकी सहायता मांग भेजी । इतने दिनों तक सेनापतियोंके शासनसे सभी पुत्त गालवासी तंग तंग आ गये थे । सर्वोने फरासियोंको मार भगानेका दूढ़ सङ्ख्य किया। सौभाग्यवश इङ्गलैएडराजने विशपकी वात पर कान दिया । सर आर्थर वेलेस्ली थोड़ी-सी सेना ले कर पुत्त गालमें आ धमके । मण्डेगो नदी पार कर वे दलवलके साथ लिसवनकी ओर खाना हुए । १८०८ ई॰की १७वीं अगस्तको उन्ही ने रेलिशा-नगरमें लाबोदे (Laborde)-को और २१वींको भीमपटा नगरमें जुनोको दलवल समेत परास्त किया। फरासियों-होने पर सिण्द्रानगरके अधिवेशन के पराजित (Convention of Cintra)-में यह स्थिर हुआ, कि जूनो अपने अधिकृत दुर्गादिको पुत्त गीजके हाथ सौंप कर पुत्त<sup>९</sup>गालसे चले जांय।

इस प्रकार विना आयासके फरासोशासनसे उत्त्यक हो पुत्तीजोंने पुनः राजरक्षणी-सभा ( Regencey )-की प्रतिष्ठा की और राज्यके सामरिक विभागकी उन्नतिके लिये उमिङ्गो एएटोनियोंने डिसुजा कोटिनहे नामक व्यक्तिको इङ्गलैएड मेजा और वहांकी मन्त्रिसभासे एक उपयुक्त सेनापतिको शिक्षक-रूपमें भेज देनेका अनुरोध किया । तदनुसार मान-नीय जे सि भिलोयर और मेजर जेनरल वेरेसफोर्ड लिसवनमें उपस्थित हुए । पुत्त गीजसेना इस प्रकार शिक्षित और अङ्गरेजपरिचालित होने पर भी फरासियों-से हमेशा भय साया करती थी। करुणाके युद्धमें सर जान मूरके पराभव और माशल सल्टकी अपर्टी-विजयसे पुर्तगीजगण विचलित हो गये। आखिर वेलेस्लीकी अध्य-क्षतामें पुत्त गोजसेनाने सल्टको अपरोंसे मार भगाया । इसके वाद मेसिनाके युद्धमें पुत्त गोजोंने सचसुच चीर-

जीवनका परिचय दिया थां। दक्षिण फ्रान्सके सभी
युद्धोंमें विशेषतः सेलामाङ्का और नेभिलेके युद्ध्यमें वे
फरासीके विरुद्ध अल्लाधारण कर अपनी लुम-साधीनताका पुनरुद्धार करनेमें समर्थ हुए थे। यूरोपलएडमें
यही पेनिनसुलाका युद्ध नामसे मशहूर है।

युद्धावसानके वाद ही अर्थात् १८१६ ई०में. उन्माद व्रस्ता रानीः १म मेरियाकी मृत्यु होने पर राजप्रतिनिधि छठें जान नामसे पुर्त्त गालके सिहासन पर वैठे । रानी जीआकुइना ( Carlota Joaquina ) उच्चाभिलापसे प्रणोदित हो राजाके विरुद्ध पड्यन्त करने लगी । इसके पहले प्रतिनिधिके कार्यसे सभी असन्तुष्ट हो गये थे । अङ्गरेज सेनापति सर चार्ल्स च्टुवार्ड और मार्सल वेरेस्फोर्डने पुत्त<sup>9</sup>गालका शासन-भार अपने हाथमें लिया । दारुण विपद्के समय क्या युद्धिक्षेत्रमें क्या राजसभा वहांकी प्रजा अङ्गरेजका शासन सहा तो करती थी, पर शान्तिके कोमल कोड़ पर वैदेशिकका प्रभुत्व उन्हें अच्छा नहीं लगता था। पुर्त-गालकी साधीनताके लिये सभी पुत्त गीज वह्रधपरिकर हुए । १८२० ई०मे वेरेस्फोर्डके पुर्त्तगालमें रहनेसे उनका:मनोरथ पूरा हुआ । पुर्त्त गीजोंने अङ्गरेज कर्म-चारियोंको राज्यसे निकाल दिया और १८२२ ई०में: एक नई प्रतिनिधि-समा तथा एक नई साधारण सभा; (New Constitution) संगठित की । सभाकी आज्ञासे पयुडल प्रथा ( Feudalism ) उठा दी गई और एक नई व्यवस्था की गई । इस समय इङ्ग्लैण्डेश्वरने राजा जानसे राज्यमें लीट आनेका अनुरोध किया। राजा ज्ञान अपने छड़के पिद्रोको ब्रोजिल सिहासन पर विठा आप पुत्त गालको ओर अप्रसर हुए । राजा जानके पुत्रके परामर्शानुसार नृतनः सभाके पक्षपाती होने: पर भी रानी और उनके लड़के उम मिगुएल उनके विरुद्ध काय करने छगे। अतः वे छिसवन् नगरसे निकाछः ्दिये:ग्येग, उधर वे भी निश्चिन्त हो कर नहीं वैठे। राजाके विपक्षमें पुनः पड्यन्तः करके उन्होंने राजवधु मार्किस , साव - लीले ( Marquis of Loule )-की हत्या कर झली और राजमन्त्री पलमेला तथा इत्ये राज्य प्रासादके मध्य अवसदः किये गयेः। वैदे-

शिक मन्त्रियोंके विशेष उद्योग और सहायतासे राजा-ने पुनर्मु कि पाई । पळमेळा पुनः मन्त्रिपद पर अधिष्ठित हुए । इसके वाद राजा, रानी और पुत्र मिगुपळको साथ छे ब्रे जिळको चळ दिये। वहीं १८२६ ई॰में उनकी मृत्यु हुई । वे अपनी सम्पत्ति वाळिकाकन्या मेरिया इसा बेळाको दे गये।

ब्रे जिलाधिपति ४थं डम पिद्रो पुत्ते गालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उन्होंने अङ्गरेजमन्त्री सर चाल्से प्टुवार्डको सनदपत लिख कर पुत्त<sup>°</sup>गाल मेजा,—"यदि ग्लोरिया अपने भाई डम मिगुपलसे विवाह करे और मिगुपल नृतन समा- (New constitution)की कार्यावलीका अनुमोदन करे, तो मेरिया सिहासन पा सकती हैं।" यह वात मन्त्रिसभाको स्चित कर उन्होंने अपनी कन्या डोना मेरिया-दा-ग्होरियाको पुर्त<sup>भ</sup>गाळ सिहासनकी उत्तराधिकारिणी ठहराया। सनद् पा कर महासभा वड़ी प्रसन्न हुई और पलमेला भी प्रधान मन्त्रि-पद् पर नियुक्त हुए। १८२७ ई०में राजाने मूर्फतावशतः मिगुपलको राजप्रतिनिधि पद पर अभिपिक्त किया। उद्याः भिलापी मिगुपलने प्रजासे सहायता पानेकी आशासे उत्फुल्लःहो अपनेको एकेथ्वर राजा वतला कर तमाम घोपणा कर दी। पलमेला, सालदान्हा, भिलाफ़ोर, सम्पियो आदि दळवळ समेत निर्वासित हुए ।; इङ्गर्रेण्ड जा कर वे अपना दुखड़ा रोये। डयूक आव वेलिटन और टोरी मन्तिसभाने मिगुएलके कार्यका अनुमोदन करके उनकी वात.पर जरा भी ध्यान न दिया। अतः भग्नमनोरथ हो पलमेला, काउएट:भिलाक्नोर और जोसे एएटोनियो गारेरोः प्रतिनिधि हो कर वालिका रानीकी ओरसे टर्सिरा ( Azores ) द्वीपका शासन करने;छगे ।

१८३१ ई०में उम पिद्रो व्रजिलके राजसिंहासनको अपने, वालकपुतके हाथ सौंप कर आप लएड़न नगरमें अपनी कन्यासे मिलने चले गये। वहांसे वे अपने भाई मिगुपलकाः दमनः करनेके लिये उद्योग करते लगे। आखिर पजासमें आकर उन्होंने समवेत सैनिकमएड़लीको अध्यक्षतामें काइएट मिलाफोरको नियुक्त किया और कसान सटौरियस नौ-सेनापित हुये। १८३२ ई०के जुलाई मासमें इम. पिद्रो दलक्रलके साथा अपटों नगरमें आ

धमके। दोनों पक्षमें घमासान लड़ाई छिड़ी। अक्तूवर-मासमें सटोंरियसने जलपंथमें मिगुएलको विशेषरूपसे परास्त कर वदला चुकाया। १८८३ ई०में मेजर जैनरल जीहन कालों सालदानहाने फरासी सेनापित वोर्मी (Bourmont)-परिचालित मिगुपलसेनाको अपर्टी नगरमें परास्त किया। काउएट भिलाक्लोरने अपटोंसे अलगार्भ प्रदेशमें जा कर तोलज जोदोको पराजित किया और वहांसे ससीन्य अप्रसार हो कर छिसवन पर अधि-कार जमाया । उधर कप्तान चार्ल्सने नेपियर परिचालित वाहिनी सेएँट भिनसेएट अन्तरीपके अदूरवर्त्ती जलपथर्मे मिगुपलसेनाको हराया । उसी साल रानी मेरिया लिसवन आई। पिता पिद्री उनके प्रतिनिधि रूपमें राज्य-शासन करने लगे। इङ्गलैएड और फान्सकी रातीने श्य मेरियाका पक्ष छिया। इस समय मिछित स्पेन और पुर्च-गीज सेनाकी सहायतासे, विभिन्न सेनापतियोंकी कार्य-कुशलतासे टोरिस, नोभास, अलमान्टर, वेदरा, द्रास-अस-मोण्टे, आसिसिरा ( Asseiceira ), अलेमदेजो और पभोरामएटके युद्धमें मिगुएल दलवल समेत परास्त हुए । अन्तमें डम मिगुएछने आत्मसमर्पण किया । शर्त यह उहरी कि वे और उनके वंशधरगण पुत्त गाल राज्यमें फिर कभी भी प्रवेश नहीं कर सकते।

१८३४ ई०में रानी २य मेरिया सर्यानी हुई। उम पिद्रो पेसे दुःसह युद्धव्यापारमें लिप्त रहनेके कारण क्रमशः क्लान्त हो पड़े। अतः आराम और अवकाश लेने-की कामनासे वे लिसवनके निकटवर्ती के लुज (Queluz) प्राममें जा कर रहने लगे। यहां छः दिन रहनेके वाद परिश्रम और वलक्षयजनित दुर्वलतासे उनकी मृत्यु हुई।

पिताको मृत्युके वाद रानी २य मेरिया पन्द्रह वर्षको उमरमें पुर्च गालसिहासन पर बैठी। पलमेलोके शासनसे प्रायः सभी विरक्त हो गये थे जिससे एक विशिष्ट दलकी सिंध हो गई थी। वोनों दलको मनमुदावसे राज्यमें महाविश्वद्धला उपस्थित हुई। बीच बीचमें दो एक लड़ाई भी छिड़ गई। १८४७ ई०में प्राणाडा महासभा (Convontion of Granada) की सन्धिके अनुसार दोनोंमें शास्ति स्थापित हुई। किन्तु उसके साथ साथ मिगुए-

लाइट' (Miguelites) दस्युदलने पुनः पुत्त गालमें अत्याचार करना आरम्भ कर दिया।

१८३५ ई०में रानी मेरियाने अगप्रस चार्ल्स यूजिन नेपोलियन (Duke of Lenchtenberg) से विवाह किया। दो ही मासके भीतर यूजिनकी मृत्यु हो जानेसे रानीने पुनः प्रिन्स फार्विनन्द (of Saxe Coburg-Getha, The first king of the Belgians) से विवाह किया।

१८५३ ई०की १५ मीं नवम्बरको मेरिया परलोकको सिधारीं। पीछे उनके वड़े लड़के ५म डमकी नवा-लिगी तक उनके पिता (King consort) २य डम फार्दिनन्द पुतके अभिमावक हो कर रहे।

१८५५ ई०में पिद्रोने सवालिग हो कर राज्यशासनका मार अपने हाथ लिया। १८५७ ई०में उन्होंने होहेनजीलारण-राजपुती प्रिफानोसे विवाह किया। दासकयविकयकी प्रथाको रोकनेका संकल्प करके फरासीगण अफ्रिकाके उपक्लकी तलाश करने लगे। मोजाम्विकवासी पुत्र गीजोंने फरासी-रणपीतको रोक रखा।
फरासी-सम्राट् ३य नेपोलियनने आद्दमिरल लामो
( Lavaud )-के अधीन एक दल नौ सेना मेज कर
क्षतिपूर्त्तिके लिये रुपये वस्ल कर लिये। १८६०-६१ ई०में
यहां विस्विका और पीतज्वरका भारी प्रकोप था।
१८६१ ई०के नवम्बर मासमें राजा, उनके भाई इम फार्ट्नन्द और इम जानकी विस्विका रोगसे मृत्यु हुई।
इनके शासनकालमें जोहन वैप्तिस्ता, एक्टोनियों केलिसियानो और लुई रेवेलको सहायतासे साहित्य, इतिहास और विद्याशिक्षाकी विशेष उन्नति हुई थी।

डम जुईने राजा हो कर इतालीराज मिक्र मानुएल-की कन्या पायाका पाणिप्रहण किया। पलमेली आदि प्रधान प्रधान राजनैतिक और वीरपुंखगण एक एक कर कराल कालके शिकार बनते गये। इनके परवसी इयूक आव लीले आगुइयार, मार्किस आमिला, प्रहोनियी मानुपल आदि व्यक्तियोंने राज्यशासनका नेतृत्व प्रहण किया और युद्धविग्रह भूल कर राजनीतिक कार्यमें मन दिया। १८७० ई०में राजाने राजकार्यसे अवसर देनेके लिये बृद्ध सालदानहाकी दूतक्रपमें लएडननगर मेकां। बहां राजकायंमें व्यापृत रह कर १८७६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। १८७८ ई०में हाउसआव पियर्सकी पुनर्गठन हुई थी। इनके राजत्वकालमें सेपीपिराटे रवाटो आइमेन्स और वृटो कपेली आदि भ्रमणकारियोंने मध्य अफ्रिकाके स्थानोंका गूढ़तत्त्व आविष्कार करके अफ्रिकाराज्यके श्रीवृद्धिका पथ उद्घाटन किया। रिजिनरेडर (Kegenerdor) दलके नायक फोएटे पेरिरा डि मेली १८७१-७९, १८७८-८२ और १८८३ ई०में महामन्तिपद पर अधिष्ठित थे। उन्हींके यहारे रेलपथ तथा नाना विषयींकी उन्नति हुई थी।

१८४८ ई०में हार्कु इलेनी प्रणीत पुर्तगालका इतिहास पहले पहल मुद्रित हुआ था। १८८० ई०में प्राचीन कवि कामिनके उद्देशसे एक जातीय महोत्सव आरम्म हुआ।

लुईकी मृत्युके वाद इम कार्लस (Domearlos)
१८८६ ई०की १६वीं अक्टूबरको राजसिंहासन पर अधिधित हुए। १८६४ ई०में उनका जन्म हुआ था।
१८६३ ई०में उन्होंने फरासीरमणी पमिलीका पाणित्रहण
किया। पुर्तगालके उत्तराधिकारी और राजवंशधर लुई
(Prince Royal Laiz Friippe Duke of Braganza)
ने १८८७ ई०की २१वीं मार्चको जनमग्रहण किया था।

इस समय पूर्व और मध्य अफ्रिकामें उपनिवेश ले कर इङ्गुलैएड और पुर्त्तगालके साथ मनमुराव रहा। पीछे १८६१ ई०के मई मासमें दोनोंके वीच सन्धि स्थापित हुईं। वूअर-युद्धके आरम्भमें पुत्तैगालने किसीका पक्ष नहीं लिया था। १८६२ ई०में राजस्व विषय ले कर पुर्त-गालमें विवाद खड़ा हुआ। वैदेशिक ऋणके कारण इङ्गळेएड और जर्मनीके साथ पुर्तगालका विवाद होने पर था, पर हिञ्जेरिविरोकी चेष्टासे वह आग धधकने न पाई। इस समय देशकी शोचनीय अर्थनीतिक अवस्था ले कर कई जगह विद्रोह होता देखा गया। इनमेंसे १६०३ ई०के जनवरी मासका फण्डेओका विद्रोह विशेष उद्छेखयोग्य है। १६०३ ई॰की २३वीं अप्रिलको एक व्ल अभ्वारोही और गोलन्दाजींने मिल कर साधारण तन्तकी घोषणा की । किन्तु यह विद्रोहानल बढ़ने नहीं पाया, शीघ्र ही शान्त किया गया। पार्लियामेख्टको १६०६ ई० सितम्बर मासके अधिवेशनमें साधारणतन्त्रके

पक्षपाती प्रतिनिधियोंने राजा उम-कालींको कुछ राजस्व विषयक अपराध पर अभियुक्त किया। तत्कालीन प्रधान मन्त्री जोसी फान्फो ( Jono Tranco )-ने विशेष तत्प-रताके साथ लुप्तवाय राजशक्तिकी रक्षा करनेकी कोशिश की, पर उनका उद्देश्य फलीभूत न हुआ। मन्तिसभाने राजा और मन्त्रीको पड्यन्तको अपराध पर अभियुक्त किया। १६०८ ई०की १ली फरवरीको राजा उम काली और क्राउनियं सकी हत्या की गई। इसके वाद प्रिन्स मैनुएल ( Prince Manuel or Emanoel ir ) राज-सिंहासन पर वैठे। १६१० ई०में पुनः साधारणतन्त्र घोषित हुआ । राजा अपना परिवार हे कर इङ्ग्हिएड भाग गर्धे। डा॰ त्रागा ( Dr Theophile Braga) इस साधारण तन्त्रके प्रधान सभापति हुए । इस समय पुर्त्तगालमें कैथलिक चर्चकी क्षमता वहुत कुछ घटा दी गई। १६११ ई०के अगस्त मासमें साधारणतन्त्रका पुनर्संगठन हुआ । डा॰ मैतुपल डि आरियाना (])r. Manuel-de Arriaga) इस नृतन शासनतन्तके सभा-पति वने और इसके प्रधान मन्त्री हुए डा॰ सेनोर चैगस ( Dr Sehnor Chagas )। इनके मन्त्रित्व-कालमें राजपक्षीय दलने कप्तान कुसिरो (Capt H. M. P. Couceiro )-क अधीन १६११ और १६१२ ई०में विद्रोही हो राजधानी पर आक्रमण किया और वहुतसे नगरों पर अधिकार जमाया। किन्तु उनका वहुत जन्द दमन किया गया। उनमेंसे कुछ पकड़े गये और अति फठोर दण्डाक्वासे दण्डित हुए।

सैनोर चेगसके वाद डा॰ मासकनसेली (Dr. Augusto de Vasconcello) प्रधान मन्त्रीके पद पर सुगीमित हुए। इनके समयमें कोई विशेष घटना न घटी।
पीछे १६१२ ई०के दिसम्बर मासमें डा॰ आफन्सो कोष्टा
(Dr. Afonso Costa) उस पर प्रतिष्ठित हुए। राजकार्य सुचावक्रपसे करनेकी और इनका विशेष ध्यान था
अनन्तर १६१८ ई०के फरवरी मासमें डा॰ मैकोडा
(Dr. B. Machado) ने मन्ति-पद सुगोमित किया।
महायुद्धका स्त्रपात इन्होंके समय हुआ। पुर्वगालने
इस युद्धमें अङ्गरेजोंका पक्ष लिया था। मैकोडाके
वाद कोनटिहो (Sehnor Countiho) और उफिर

उनके वाद १६१५ ई०के जनवरी मासमें जेनरल कैप्टो (Gen Pimenta de Castro) प्रधान मन्त्री हुए। इस समय साधारणतन्त्र-वादी विद्रोही हो उठे। उन्होंने कैश्नोको पकड़ा और मार डाला। अनन्तर सेनर चैगस ( Sehnor Chagas )ने फिरसे मन्त्रिपद प्रहण किया। पर कुछ समय वाद ही वे इस पदसे हट गये , पीछे डा॰ कैशे (Dr Jose de Castro ) उस पद पर नियुक्त हुए ! १६१५ ई०को मई मासमें प्रीसिडेएट अरियागाने पदत्याग किया। अब डा॰ ब्रैगो ( Dr. Brago ) सभापति हुए। इनके समयमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई। पीछे डा॰ मैकोडा ( Dr Barnardino Machado ) ने समा-पतिका पद ग्रहण किया। १६१७ ई०के दिसम्बर मासमें पुर्त्तगालमें फिरसे विद्रोहानल धधक उठा। विद्री-हियोंने जयलाम करके सभापति मैकोडा और प्रधान मन्त्री कैसटाको पकड़ा और मार डाला। अव शासन-तन्त्रका पुनर्गेटन हुआ। मेजर पायस (Maj. S. Paes) सभापति और प्रधान मन्त्री हुए। इस समयसे खतन्त्र प्रधान मन्त्रिपद विलुप्त हो गया । अपर मन्त्रियोंने प्टेर सेकेटरी (Sceretary of State)-की आख्या पाई। १६१८ ई०के दिसम्बर मासमें उक्त विष्ठवका प्रथम वार्षिक स्मृतिउत्सव वडी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। इसके कुछ समय वाद ही मेजर पायस विद्रोहियोंके शिकार वने। अनन्तर एडमिरल कैट्टो ( Admil. J. C. Castro) सभापतिके पद पर और सेनर वार्वोन (Sehnor Barban) खतन्त प्रधान मन्ति-पद पर अधिकृ हुए। इनके समयमें प्रजातन्त्रवादियोंने फिर-से विद्रोह खडा कर दिया। पर शीव्र ही उनका अच्छी तरह दमन किया गया और १६१६ ई०के जनवरी मासमें. अपोर्टेमें राजतन्त्रकी घोषणा हुई। कप्तान कुसिरो (Capt, H. M. P. Conceiro) राजकार्यकी परिचालना-में नियुक्त हुए। किन्तु कुछ समय वाद ही प्रजातन्त्र फिरसे प्रतिष्ठित हुआ । लिसवनमें विद्रोहिगण 'सोभि-यट' शासनका दावा करने छगे । उस विद्रोहने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया था, कि प्रे सिडेण्टको दमन-मूलक नीतिके पुनः प्रवर्त्तनकी आवश्यकता हुई थी।

पुर्रागीज देखा।

पुर्त्तगाली (हि॰ पु॰) १ पुर्त्तगालवासी, पुर्त्तगालका रहनेवाला।

यूरोपकी नई जातियोंमें हिन्दुस्तानमें सबसे पहले पुर्त्तगाली लोग ही आए। पुर्त्तगाली व्यापारियोंके द्वारा अकवरके समयसे ही यूरोपीय शब्द यहांकी भाषामें मिलने लगे। यथा, गिरजा, पादरी, तम्बाक्, आलू आदिका प्रचार तभीसे होने लगा। २ पुर्तगाल सम्बन्धो।

पुर्तगीज—पुर्तगालके खृष्टान अधिवासी। पुर्गगाल देखी। जव भारतमें अंगरेज, फरासी और ओलन्दाजोंका नाम निशान न था, उसके पहले पुर्तगीजोंने भारतके उपकूलमें व्यवसायके उद्देश्यसे आ कर असाधारण राजशिकका परिचय दिया था। सैकड़ों पुर्तगीज भारतीय रमणियों-का पाणिग्रहण करके संसारी हुए थे—उन्होंने ही सवसे पहले पाश्चात्य-सभ्यताको भारतवर्षमें अनुप्राणित करके कितने भारतवासियोंकी मित पलट दी थी। उनका प्रभाव दाक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलमें आज भी देखा जाता है। पुर्तगीजोंका कठोर उत्पीड़न, मोहन प्रलोभन, विश्वासघातकता और प्रवल प्रताप आज भी भारतवासीमूले नहीं है। उनके साथ भारतवासीका कैसा सम्बन्ध था, पहले वही वतला देना उचित है।

पुर्त गीजजातिकी उन्नतिका मूळ पुर्त गीज-राजकुमार उम हेनरिक था। उन्होंके यस और अर्थानुकृत्यसे पुर्त गीजगण नाना देशोंका आविष्कार, वाणिज्यविस्तार और अनेक राज्याधिकार करनेमें समर्थ हुए थे। रोमक साम्राज्यध्वंसके वाद यूरोपीय वाणिज्य वहुत कुछ परहस्तगत हुआ। इस समय अरवजातिने ही भारतके साथ यूरोपीय वाणिज्यका कुळ अधिकार पाया था। पालेस्तिक महाधमें युद्धके वाद स्पे नदेशमें मुसलमानींके हाथ भारतीय अपूर्वविळासी द्रव्योंका परिचय पा कर यूरोपीय राजगण विमुग्ध हो गये और मणिरत्नाकर तथा विळासमएडार भारतका प्रकृत सन्धान पानेके लिये वहुत व्याकुळ हुए थे। इसका फळ यह हुआ, कि पुर्त्त गीज राजकुमार डम हेनरिकने भारताविष्कारकी ओर ध्यान दिया। १४१८-२० इंग्में उन्होंने सबसे पहळे पोटोंसएटो और मिदरा द्वीपका आविष्कार किया

इसके वाद वे प्रति वर्ष अफ्रिका-उपकूलमें छोटे छोटे जहाज भेजने लगे। उस समय पोप खृष्टान-जगत्के सर्व-मय कर्ता थे। यूरोपीय सभी राजगण उनके निकट शिर भुकाते थे। इस कारण कुमार हेनरिकने उनसे प्रार्थना की, 'आप जिन जिन देशों का आविष्कार और अधिकार करें, वे पुर्त गालराजके हो अधिकारमें रहे, यहीं मेरा अनुरोध है। कारण, आपके आविष्ट खृष्टान-धर्म प्रचार द्वारा आविष्कृत जनपदवासीका अज्ञान अन्ध-कार दूर करना हो मेरे उद्देश्य हैं।' पोप और उनके सदस्योंने हेनरिककी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हेनरिकके भाई और पुर्त गालराज्यके अभिभावक डम पिट्रोने भी उन्हें यह क्षमतापत दिया, कि इस समुद्र अभियानमें पुर्त गालराजको जो कुछ लाभ होगा, उसका पञ्चमांश हेनरिक पार्वेगे और सिवा उनके कोई भी ऐसे अभियान-में अप्रसर न हो सके गे।

हेनरिकने किस प्रकार अनेक राज्योंका आविष्कार किया, यह भी कह देना उचित है। जिस देशका प्रथम सन्धान होता था, उस देशके कुछ स्त्रीपुरुषोंको लिसवन नगरमें पकड़ लाते थे। उनके साथ कोई भी वन्दीके जैसा व्यवहार नहीं करता था। वरं पुर्त्त गालको खाघीन प्रजासे वढ कर उनका आदर होता था। उन्हें भरण-पोपणके लिपे यथेष्ट भूसम्पत्ति मिलती थी। विदेशी होने पर भी सुन्दरी पुर्त्त गोज-रमणियोंके साथ उनका विवाह होता था। कोई कोई सम्प्रान्त विधवा महिला ऐसी वन्दिनी रमणीको पोप्यकन्यारूपमें ग्रहण करती थी । मृत्युकालमें उसीको सारी सम्पत्ति दी जाती थी। ऐसे आदर और यल पर विदेशी मोहित हो जाते थे, कमी भी जन्मभूमिपरित्यागका कप्ट अनुभव नहीं करते थे। वरं वे भी यथासाध्य अपनी अपनी जन्मभूमि और अपने अपने ज्ञात स्थानका सन्धान कह देनेमें कुरिटत नहीं होते थे। इस प्रकार उन लोगोंसे सन्धान पा कर ही इम हेनरिकने नाना अज्ञात प्रदेशोंका आविष्कार किया था। यद्यपि हेनरिक लाखों चेष्टा करके भी भारत-का आविष्कार न कर सके, तो भो वे वीज रोप गये थे जिसके फलंसे परवर्त्तीकालमें पुत्त<sup>र</sup>गीजगण भारत-आवि कारमें समर्थ हुए थे, इसमें सन्दे ह नहीं ।

सिहांसन पर अधिन्तित होनेके कुछ समय वाद हो डम जोआंने जिस देशमें गरम मसाछे उत्पन्न होते थे तथा प्रे प्ररजन वास करते थे, उन्हीं उन्हीं देशोंको दृढ निकालनेके लिये उपयुक्त लोगोंको भेजा था। राजाके आदेशसे जीओं पेरेस्-दा-कोविछ नामक भारव्यभाषावित् एक पुत्त गीज भी इस कायमें नियुक्त हुए । १४८७ ई०की ७वीं मईको उक्त देशोंका आविष्कार करनेके छिपे याता कर दी। वे पहले वार्शिलोना, पीछे नेपल्स और रोडस होते हुए आलेकसन्द्रिया पहुंचे। यहां कुछ दिन तक कम्पज्वर भुगत कर उन्होंने कुछ तार खरीदे और वणिक्छपमें कायरोनगरमें प्रवेश किया । यहां आदेन-याती कुछ अरव आ कर उनसे मिले। पांछे पुर्र गीज-गण सिनाई पर्वतके पाद देशमें आये। यहां उन्हें वणिकोंसे कालिकट शहरके विस्तीर्ण वाणिज्यका पता लगा। इस वार वे सुआकिम होते हुए आदेन जा कर पृथक् पृथक् हो गये। काविलहावने भारतवर्षकी ओर और पैवाने हथियोपियाको ओर याता की।

कोविल हांच एक अरवी जहाज पर चढ़ कर पहले मलवार उपकूलवर्ची कज़नूर पहुंचे। वहां कुछ दिन ठहर कर वे कालिकट आये। वहां अदरक और गोल मीर्चकी अच्छी फसल होती देख वे चमत्कृत हो गये। उन्होंने यह भी सुना, कि यहां दारचीनो और छवङ्गकी खासी आमदनी है। जिसके लिये पुत्त गीजराज इतने दिनी तक अनुसन्धान ले रहे थे उस स्थानका सन्धान पा कर कोविलहांच ऐसे प्रसन्त हुए मानों उन्हें खारी हाथ लगा है। वहांसे वे गोआनगरको चल दिये।

पीछे वे हरमुज द्वीपका परिदर्शन कर अफ्रिकाके उपकूछ वावेल-मन्द्व प्रणालीके ठीक वाहर जैला नामक स्थानमें और वहांसे कुछ अरव विणकोंके साथ सोफाला वन्दरमें आये। यहां उन्होंने सुना, कि पास ही ६०० मील लम्बा एक द्वीप है जिसे काफ्रि लोग 'वन्द्रद्वीप' कहते हैं। (असो मदागास्कर नामसे प्रसिद्ध है)

कोविल-हांचने भारतीय वाणिज्यका कुल हाल जान पुर्तगालराजके पास इसकी खबर दो। इसके वाद उन्होंने नाना स्थान परिदर्शन किये थे, किन्तु अपने अदृष्ट क्रमसे वे फिर जन्मभूमिको लीट न सके,। एक हवसी- रमंणीके प्रेम पर मुन्य हो उन्होंने ३३ वर्ष तक आवि-सीनियामें समय विताया और यहीं उनफो मृत्यु हुई।

कोविछ-हांव जिस समय गरमः मसालेका देश आविष्कार कर निकले, उस. समय सुविख्यात कलम्बस पुत्तगालराजकी आज्ञासे भारताविष्कारके लिये रवाना हुए। उन्होंने भारतका सन्धान न पा कर सुवृहत् अमे-रिका महाद्योपका आविष्कार करके कीर्त्ति और यश खूव कमा लिया था।

उधर वार्थलोमेओ-दि-दियाजने (१४८६ ई॰ अगस्तके शेषमें) उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good-hope)का आविष्कार किया। इसके पहले और कोई भी यूरोपीय यहां नहीं आये हुए थे। यहां आनेमें दियाजको भारी
कष्ट-भुगतना पड़ा था, इसीसे पहले इस अन्तरीपका
नाम पड़ा 'कटिका अन्तरीप' (Cabo Formentosa),
पीछे जब वे पुत्तैगाल पहुंचे और पुत्तैगालराज २य
जीआंवको कुल हाल कहा, तब उन्होंने भारताविष्कारको
अनेक दिनोंकी आशा सफल होगी, ऐसा समक्ष कर
इसका नाम रखा 'उत्तमाशा'।

१४६५ ई०में मानुपल पुर्त्तगालके सिहासन पर वैठे। कुछ समय वाद ही उन्होंने राजकुमार हेनरिकके मतका अनुसरण किया। देश देशान्तरींके आविष्कार और वाणिज्यको उन्नति की और उनका ध्यान आकर्षित हुआ। २य जोआंवके समयके कुछ कागज पर्तोसे उन्हें मालूम हुआ, कि यूरोपके वाणिज्यकेन्द्र भिनिसके धन और वाणिज्यकी जो कुछ हुई है, वह भारतीय द्रव्यजातसे ही-। फिर क्या था, इसकी खबर लगते ही पुत्त गीजराजने अतिशीघ तीन बड़े बड़े समुद्रपोत बनवाये और अपने हिसाव-रक्षक एस्तेवांच-दा-गामाके पुत्र भास्को-डि-गामा-को सर्वोका अध्यक्ष वना कर भेजा। भास्को-डि-गामाने सांव-गब्रिपल नामक जहाज पर चढ़ कर याता की । उनके साथ दो और वड़े वड़े जहाज और दी सी से अपर साहसी मनुज्य थे। १४६८ ई०के मार्च मासमें वे मोजा-म्यिक नगर पहुंचे । यहां वम्बईसे आये हुए दवाने नामक पक अरवी दलालके साथ उनकी मुलाकात हुई। उस दलालसे भास्को-डि-गामाको वहुत कुछ पता लग गया। उसीके यससे उन्होंने मोजाम्बिकके शेखके पड्यन्तसे रक्षा पाई थी।

मोजाम्बिकसेः कुड्लोया होते हुए भास्को डि-गामा मोस्यासा आये । यहांके अधिपति भी भास्को-डि-गामाका जहाज नष्ट करनेकी कोशिशमें थे, पर पुर्च गीजोंके कौशलसे वे कुछ भी न कर सके। डि-गामा उपकूल होते दुव अप्रिल मासमें मेलिन्द शहर पहुंचे। मेलिन्दके राजाने डि:गामासे मुलाकात कर उनकी यथेष्ट अभ्यर्थना की थी । डिनगमाने भी पुर्च गालराज प्रदत्त सुवर्ण-खचित तलवार, खर्णसूबवेष्टित लाल साटनका वर्म तथा और भी सोनेकी कई चीजें दे कर मेलिन्दराजके सम्मान-की रक्षा की । दवाने ने डि-गामाको खम्भात् (काम्बे) जानेकी सलाह दी थी, पर मेलिन्द्पतिने उन्हें कहा, 'आप.जिस उहे श्यसे भारतवर्षे जा रहे हैं, वह कालिकट जानेसे ही सिद्ध हो सकता है।' अनुकूल वायुकी आशा-से डि-गामा वहां तीन मास तक उहरे। याताकालमें मेलिन्द्पतिने डि-गामाको पथ दिखलानेके लिये दो विचक्षण मांभी लगा दिये। जिनमेंसे एक मालिमुखाँ नामक गुज़रातवासी था। २० दिन ग्राहाके वाद समुद्र-वक्षसे.कन्ननूरका पहाड़ उनके दृष्टिगोचर हुआ। कालि-करसे ३ कोसको दूरी पर डि-गामाने लड्गर डाला।

इस समय कालिकट सर्वप्रधान वाणिज्यस्थान समभा जाता था। प्रायः ६०० वर्षोसे अरबी:वणिक्गण यहां वाणिज्य कर रहे थे। मिस्न, तुरक्क आदि नाना स्थानोंके सैकड़ों वाणिज्य-पोत इस कालिकट वन्दरमें लंगर डाले रहते थे। मिस्नके वणिक्गण मक्कासे नाना द्रव्य ला कर उसके वदलेमें यहांसे गोलमिन, और भैषज्य द्रव्य ले जाते थे। पोछे उन सब द्रव्योंकी पुनः यूरोपके नाना स्थानोंमें रफ्तनी होती थी। इस वाणिज्य-व्यापारसे अरबगण महाधनी हो गये थे।

डि-गामाने कालिकटमें था कर यह घोषणा कर दी, कि उनके साथ बहुतसे जहाज थे, वे सब कहां चले गये, मालूम नहीं। उन्हीं सब जहाजोंकी तलाशमें वे इस देशमें आये हुए हैं। उन्होंने अपने आदिमियोंसे कह दिया, कि यदि कोई किसी प्रकारका द्रष्ट्य बेचने आबे, तो उसे मुंह-मांगा दाम दे देना। मछली, पक्षी, फल आदि ले कर कितनी नावें उनके जहाजके समीप आई। पुत्र गीजोंने जितना जिसने मांगा, उतना दाम दे कर मत्स्यादि खरीद

लिये। विक तागण इस प्रकार आशातिरिक मूल्य पा कर नगर लीट गये और 'पुत्त गीजोंकी द्याकी कथा तमाम घोषणा कर दी। घोरे घीरे यह वात सामरी-राजके कानमें पड़ी। उन्होंने एक सम्म्रान्त नायवको पुत्त गीजोंका अभिप्राय जाननेके लिये भेजा। डि-गामा-की ओरसे द्वानने आ कर राजाके समीप जहाज अन्वे-पणकी कथा और गरममसाले तथा भैषज्य-द्रव्यादिका वाणिज्यप्रसङ्ग उपस्थित किया। सामरोराजने द्वान-को अनेक पक्षी और फलमूलादि उपहारमें दे कर विदा किया और डि-गामाके इच्छानुसार गोलमिर्च तथा भैषज्यादि खरीदनेका वचन दे दिया।

जव अरवीय विणकोंको इसकी खबर लगो, तव वे वड़े ही विचलित हुए। जिससे पुर्त गीज लोग भारत- के उपक्लमें किसी प्रकारका वाणिज्य न कर सके, इस- के लिये वे राजाके प्रधान दीवान तथा प्रधान गुमस्ता- के साथ मन्त्रणा करने लगे। विणकोंने राजपुरुपोंको समक्षा कर कहा, कि पुर्त गीज लोग दूर देशसे केवल वाणिज्यके अभिप्रायसे यहां नहीं आये हैं, देशकी अवस्था जान कर इस देशकी अधिकार वा लूट करनेके इच्छासे ही आये हुए हैं। इस समय राजाको विशेष सतर्क होना उचित है। इन सव विणकोंको यथेए उत्कोचः दे कर राजपुरुपोंको अपने हाथ कर लिया।

राजपुरुषोंकी प्ररोचनासे राजाका मन पलट गया।
जव दवान राजाके समीप संवाद देने गये, तव राजाने
कोई उत्तर न दे उन्हें लीटा दिया। इधर अरवगण
डि-गामाके ध्वंसके लिये पड़यन्त करने लगे। इस
समय अलजीपरेज नामक सेमिल-निवासी एक व्यक्ति
कालिकटमें रहता था। वह मुसलमानी धर्म प्रहण
करके अरवींका विशेष प्रीतिभाजन था। इसी व्यक्तिने
स्वदेशवासी डि-गामाकी रक्षा की थी। इससे डि-गामाको यदि भीतरी खवर न लग जाती तो देश लीट नहीं
सकते थे। अनेक चेष्टाके वाद डि-गामाने वाणिज्यद्रव्य खरीदनेका अधिकार तो पाया, पर उनके व्यवसायमें विपरीत फल घटा। वे निर्दिष्ट मूल्यकी अपेक्षा
अतिरिक्त मूल्य दे कर खरीद करने लगे। इस पर राजपुरुषोंने राजाको कवर दी, पुर्विगीज लोग वाणिज्यकी

आशासे यहां नहीं आये हुए हैं, यदि ऐसा होता, तो वे अन्याय मूल्य दे कर चीज नहीं खरीदते। निश्चय ही दालमें कुछ काला है।' राजाने राजपुरुपोंकी वात पर विश्वास न कर डि-गामा राजसभामें आनेका बुलावा मेजा। पहले डि-गामा राजसभामें उपस्थित होनेको राजी न हुए। पीछे जब कालिकटराजकी ओरसे तीन उच्चपदस्थ नायवोंने जा कर राजाका अभिष्राय जताया, तव वे आनेको राजी हुए।

डि-गामा उत्कृष्ट वेशभूपा और महा आइम्बरसे कालिकटकी सभामें पहुंचे । उन्होंने मेलिन्दके अधि-पतिको जैसा नजराना दिया था, सामरीराजको भी वैसा हो नाना प्रकारका मूल्यवान् द्रव्य भेंट दे कर सन्तुप्ट किया । दूसरे दिन कालिकटराजने भी काफी सामग्री मेज कर वास्को-डि-गामाके सम्मान-की रक्षा की। अरबीय वणिकोंने पहलेसे ही कोतवाल-को रिशवत देकर वशीभूत कर रखाथा। दूसरे दिन कोतवालने डि-गामाको राजाके समीप ले जानेके वहानेसे एक दूरस्थ ग्राममें छे जा कर कैद कर लिया। केवल राजाके भयसे वह डि-गामाका प्राणसंहार कर न सका। कोतवालने डि-गामासे कहा, 'यदि आप अपने जहाजका कुल माल कोटीमें उतार दे' तो आपको किसी विपदकी आशङ्का नहीं है।' डि-गामाने अपने सहकारी सेतुवलको जहाजमें भेज कर अपने भाईको संवाद दिया, कि जहाज परसे कुछ माळ यहां भेज दो। नाव पर लद् कर माल आने लगा, तो भी वि-गामाने खुटकारा न पाया। उनके भाईने कहला मेजा, कि यदि वे अति शीघ छोड़ न दिये जांयगे, तो वन्दरमें जितने जहाज और नाव हैं, सर्वोको वे विध्वंस कर डालेंगे। यह खबर पाते ही कोतवालने राजाको सूचित कर दिया । राजाने उसी समय डि-गामाकी प्राणद्र्डका हुकुम दे दिया। किन्तु ब्राह्मण-मन्त्री और कोषाध्यक्षके अनुरोधसे यह दारुण आदेश रुक गया। जहाज परसे निकोला कोपल्हो दो नायकोंके साथ आ कर राजासे कहा, कि यदि आप डि-गामाको छोड़ न देंगे, तो पुर्तगाल-राज इस विश्वास-घातकताका प्रतिशोध लेनेके लिये अवश्य हथियार उठायँगे। राजाने ब्राह्मणमन्तियोंके परामशैसे उसी समय डिनामा- को छोड़ देनेका हुकुम दे विया और कहा, "दुष्ट व्यक्तिको सलाहसे ऐसा अन्याय कार्य हुआ, इस कारण वे वड़े ही दुःखी हैं।" छुटकारा पा कर भास्को-डि-गामाने वहुत जल्द कालिकटका परित्याग किया। जाते समय ये यह स्वित करते गये, कि किसी न किसी दिन वे दुवु त मुरों (अरवों) को ध्वंस करने अवश्य आयंगे।

कश्चन्रके निकट जब उनका जहाज पहुंचा, तब वहां-के राजाने उनका यथेष्ट आद्र सत्कार किया और अपने जहाज पर जितना द्रष्य छद सकता था, उससे भी अधिक गोछिमिर्च और दारचीनी भेज दी। कश्चन्रराजने सोनेके पत्तर पर पत छिल कर पुत्त गाछराजसे मित्रता कर छी। कश्चन्रराजकी आतिथेयता पर डि-गामा विमुग्ध हो गये थे। १४६८ ई०की ५२वीं नवम्बरको उन्होंने कश्च-न्रूर छोड़ा। गोआके स्वेदारने जब सुना, कि पुत्तंगीज-जहाज आया है, तब उन्होंने अपने पोताध्यक्षको दछ-बछके साथ उसे पकड़ छानेको भेज दिया। पुत्तंगीजों-के हाथसे उसे यथेष्ट कष्ट भुगतना पडा था।

प्रत्यागमनकालमें नाना स्थानींका दर्शन कर १४६६ ई॰की १८वीं सितस्वरको डि-गामा दलवलके साथ लिस-वन नगर पहुंचे । पुर्त गालराजने महासमादरसे उन्हें प्रहण किया और तरह तरहके उपढ़ौकन दे कर उच्च सम्मानसे भूषित किया।

दूसरे वर्ष डि-गामाके अनुरोधसे पेद्रो-अल्वरेज-के वल कालिकटमें वाणिज्य स्थापन करनेके लिये भेजे गये। इस वारकी यातामें के व्रलके साथ युद्धोपयोगी १३ वड़े वड़े जहाज, प्रभूत युद्धोपकरण, राजयोग्य अनेक उपहारद्रव्य, उस समयके प्रधान और विख्यात नाविक-गण तथा १२०० मनुष्य थे। उनके दलस्य प्रधान-व्यक्तियोंमेंसे वार्थल-मिख-दि-दियाज, हि-गामाके सह-यातों निकोला कोएलहों और दो-भाषी गाम्पार थे।

१५०० ई०की ध्वीं मार्चको केव्रलका जहाज निकला। इस यात्रामें उन्होंने व्रेजिल आदि कई एक नूतन स्थानीं-का आविष्कार किया। भारत-उपक्लमें उपस्थित होनेके समय काम्बे देशस्थ 'गोगो' नामक बन्दर पर सबसे पहले उनको नजर पड़ी। बहांसे उपकृत होते हुए केव्रल अञ्ज ब्रीप (Angedive)में आपे। यहां पर मांकी मल्लाहोंने कुछ काल तक विश्राम किया। ३०वीं अगस्तको (लिसवन छोड़नेके प्रायः ६ मास बाद) वे कालिकटमें उतरे। यथा-समय उन्होंने सामरीराजको निकट उपयुक्त व्यक्ति भेज कर वाणिज्य स्थापनको लिये उनकी सहायता और अनु-मित मांगी। सामरीराजको सम्मत होने पर दोनों औरसे एक सन्धिपत्र लिखा गया। पुत्त गीजों ने महासमारोहसे बीच कालीकटमें एक कोठी निर्माण की। कप्तान आय-रस-कोरियर और ७० यूरोपीयको हाथ उस कोठीका रक्षा-मार सौंपा गया। कप्तानको जीवनको प्रतिभूखक्प सम्मान्त वणिक वंशीय दो वणिक पुत्र कप्तानको जहाज पर जा कर रहे।

पुर्त्त गीजोंने कोठी तो खोली, पर अनेक चेष्टा करने पर भी पहले उन्हें माल न मिला। जितने अरवी वर्णिक थे, सव कोई मिल कर जिससे पुत्त गीज किसी प्रकारका वाणिज्य द्रव्य न पा सके, प्राणपणसे उसकी कोशिश करने लगे । केन्नलने सामरीराजको इसको खबर दी। पर क्या करना उचित है. उसे सामरोराज स्थिर न कर सके। अनन्तर केंब्रालने १६ दिसम्बरको माल लदे हुए अरवी जहाज पर आक्रमण किया और इसे छूट लिया। इस पर नगरके सभी अरव उत्तेजित हुए और कुठियालके मकान पर आक्रमण कर उसे तहसं नहस कर डाला । इस प्रकार दोंनों दलमें विषम विवादका स्तपात हुआ। पुत्त<sup>९</sup>गीजोंने जहां जितने जहाज देखे, सवों को लूटा और ध्वंस कर डाला। अरवीने भी मोका पा कर जलपथमें पुर्त्त गीजों पर चढ़ाई कर दी और इस प्रकार प्रतिशोध छै कर प्रतिहिंसावृत्तिका चरितार्थं किया। इस विवादमैं भिनिसीयगणने अरवींका पक्ष लिया था।

के ब्रल कोचिनको भाग गये । कोचिनराजने (Trimumpura) के ब्रलको अपने यहां आश्रय दिया । कोचिनराज सामरीराजकी तरह सहायसम्पत्तिशाली नहीं होने पर भी उनकी उदारता, नम्रता, सहद्यता और सत्यप्रियता पर पुसंगीजगण विमुष्य हो गयें थे।

कोचिनमें रहते समय कन्नन् और कोलम्ब-राज-ने के ब्रलके निकट दूत भेजा था और सूचित किया था, कि कोचिनराज उन्हें जिस दरमें गोलमिर्च और अदरक

Vol. XIV. 89

देंगे, उससे कम दरमें हम वे सव द्रध्य देनेकी प्रस्तुत हैं।

\_:

१५०१ ई०की १०वीं जनवरीकी केंब्रल कीचिन छोड़ रहे थे, कि उसी समय कीचिनराजने उन्हें खबर दी, कि सामरीराजने उन पर चढ़ाई करनेके लिये १५०० आदमियों के साथ एक बेड़ा जहाज भेजा है। उनके आक्रमण करनेके पहले ही के ब्रलने बड़ी तेजीसे उनका पीछा किया, पर समुद्रमें तूफान भा जानेसे युद्ध न हुआ। के ब्रल १५वीं जनवरीकी कन्तमृर पहुंचे। यहांके राजाने पुर्त्त गालराजके लिये प्रचुर उपहार मेज कर पुर्त्त गीजों के साथ मित्रता कर ली और उन्हें अपने राज्यमें खाधीन भावसे वाणिज्य करनेका अधिकार दे दिया । यहां केवल एक दिन रह कर केंद्रलने खदेशकी याता कर दी। १५०१ **ई॰क २१वीं जुलाईको केव्रल लिसवननगर पहुंचे**। वे अपने साथ जहाज पर लाद कर दारचीनी, अदरक, गोलमिर्च, लचङ्ग, जायफल, जयिती, मृगनामि, कस्त्री, शिलाजनु, कु'द्रु, चीनके वरतन, तेजपात, मस्ति ( Mastic ), धूप, धूना, गन्धरस, श्वेत और रक्तचन्दन, कपूर, मुसवर, तृणमणि ( Amber ), लाक्षा, मिस्रको रक्षित शव ( Munnmy ), अफीम और नाना प्रकारको भैषज्य द्रव्य लाये थे।

क ब्रलको लिसवन पहुंचनेको पहले पुर्ता गालराजने वहुत दिन तक उनके प्रेरित जहाजीका कोई संवाद न पा १५०१ ई०की १०वीं अप्रिलको जोआँव-दा-नोमा नामक गालिसीबको अपने जहाजों के अत्वेषणमें भेजा था। क्री प्रलक्ते कोचिन छोड़नेके वाद; दा-नोभा कन्ननूर होते हुए राहमें कालिकटके कुछ जहाजों को इवा कीचिन पहुंचे । यहां आनेसे माऌ्रम हुआ, कि राजा पुर्त गीजों पर बड़े विगड़े हैं। कारण, केंग्रल राजाको विना कहे हुए अथच उनके आदमीको लेकर चलेगये हैं। के ब्रलने जिन सब लोगोंको कोचिनमें रख छोड़ा था मुसलमानोंके हाथसे उनमेंसे किसीकी भी रक्षाकी सम्मावना न थी । पर राजाने नितान्त द्यापरवश हो उन्हें नायकसेन्यके रक्षिस्वरूप नियुक्त किया है। अब दा-नोभा वहां कुछ काल भी ठहर न सके और कन्तन्र् ले लिये रवाना हो गये। यहां मुसलमानीने आपसमें मेल कर लिया और किसीने भी उनसे माल न

खरीदा । दा-नीमाके पास नंकद रुपये अधिक न रहते-के कारण वे भी इच्छानुसार माल न ले सके। इस समय उदारहृद्य कोचिनराजने प्रायः डेढ़ इजार मन गोलिमिर्च, ५०० मन दारचीनी, ६५ मन अदरक और कुछ गांठ कपड़े का अपनी जामिनी पर दिलवा कर दा-नोमाके मानसम्भ्रमकी रक्षा की। दा-नोमा जो सव यूरोपीय द्रव्यजात अपने साथ लाये थे, उन्हें कन्नन्र्में एक गुमास्तेके जिम्मे कर खदेशको चल दिये। उन्होंने कालिकटके एक जहाजको लूट कर वहुमूल्य मणिमाणि-क्यादि पाये थे।

पुर्त्तगालराजने समभा, कि जब तक अरवींका वाणिज्य-द्रश्य ध्वंस नहीं किया जायगा, तव तक पुर्त्त गीजगण कभी भी भारतलपकूलमें मर्यादाकी रक्षा न कर सकेंगे। इस कारण उन्होंने २० जहाज प्रस्तुत किये। भारकी-डि-गामाके अधीन १५ और उनके आत्मीय पस्तेवांव-डि-गामाके अधीन ५ जहाज थे। इस वार दूसरी वारकी अपेक्षा जहाजमें यथेष्ट युद्धसामग्री और ८०० महायोद्धा थे। कोचिन और कन्नमूरके राजदूत भी उनके साथ लीटे। इस वार भारकी-डि-गामाने यह स्थिर कर लिया कि भारत उपकूलमें सभी समयके लिये देहा उप-स्थित रहेगा और भारतसागरमें लुटमें जो माल हाथ लगेगा, उसीसे उन सव जहाजोंका खर्च चलेगा। १५०२ ई०की २५वीं मार्चको जहाज पुत्त गालराजको सनद ले रवाना हुआ।

मोजाग्विक, मेलिन्द आदि बन्दर होते हुए भास्की-डि-गामाने कन्ननूर आ कर लंगर डाला। राहमें उन्होंने सामरीराजके गुमाश्ता खोजा कासिमके भाईका माल लदा हुआ एक जहाज दखल किया।

कन्ननूरराजके साथ में ट करके डिगामाने पुर्व गालराजप्रदत्त उपहार उन्हें प्रदान किया । राजाने भी पुर्व गाल-राजकी महियोके लिये हीरामुका दी थी।

कन्तनूर, कोचिन और कोलम्ब छोड़ कर और किसी भी स्थानके वणिक न आ सके, इसके लिपे विनामा उपकूलके नाना स्थानोंमें जहाज भेज कर युद्धका आवी-जन करने लगे। अनन्तर कालिकरमें आ कर उन्होंने देखा, कि बन्दरमें एक भी मुसलमानी जहाज नहीं है, पुत्त गीजोंके भयसे सभी भाग गये हैं। इस वार पुत्त -गीजने भी दाहण अत्याचार आरम्भ कर दिया। राजाने वि-गामाके साथ सन्धिस्थापन करनेके लिये ब्राह्मण

और कुछ कर्मचारी भेजे । पुत्तं गीजोंने सर्वोंके नाक कान काट डाले और पांच वांघ कर खूव अत्याचार किया।



भास्को-डि-गामा।

ब्राह्मणका निम्नह सुन कर सामरीराज आग वव्लें नितान्त कुद्ध हो राजाक साथ पुर्त गीजध्वंसका हो गये। मुसलमान लोग भी पुत्त गीजके अत्याचार पर आयोजन करने लगे। इधर जिस प्रकार सामरीराजके

साथ विरोध गुरुतर हो उठा था, उधर उसी प्रकार कोचिनके राजा और कोलम्बको रानी ये दोनों आशानु- स्पन्गरम मसाले दे कर यथा साध्य डि-गामाका सन्तोष विधान कर रहे थे। डि-गामाने बाणिज्यकी सुविधाके लिये सब जगह एक निर्दिष्ट दर और परिमाण स्थिर कर दिया था।

वाणिज्यस्तसे जितना ही अर्थागम होने लगा, जतना हो पुर्त गीजोंका अधिकार भी बढ़ने लगा। मुसल-मानोंने ६ सी वर्ष तक वाणिज्य किया था, पर वे उतना अत्याचार करनेको कभी साहसी न हुए थे, अब पुर्त गीजोंने उससे कहीं वढ़ कर अत्याचार करना आरम्म कर दिया। पुर्त गीजोंके साथ अब कोई भी इच्छा करके व्यवसाय करना नहीं चाहता। पर बहुतेरे प्राणके भयसे सानसम्प्रम-नाशके भयसे तथा उत्पीड़नके भयसे व्यवसाय चलानेको वाच्य हुए। इस समय अनेक प्रधान प्रधान मुसलमान विणक भारत उपकुल छोड़ कर चले जानेको वाच्य हुए थे। कमशः पुर्त गीजोंने प्रवाल, ताँवेका पत्तर, सिन्दूर, कम्बल, पीतलके वरतन, रंगीन कपड़े, छुरी, लाल प्रगड़ी, द्र्पण और रंगीन रेशम का व्यवसाय भी खास कर लेनेका आयोजन किया।

सामरीकने पुर्तागीज जहाजकी अवस्था जानतेके लिये एक ब्राह्मणको दूतके रूपमें सन्धि प्रस्तावके वहाने डि-गामाके निकट भेजा । किन्तु डि-गामाने राजाका अभिप्राय समक्तकर ब्राह्मणदूतको यथेष्ट लाञ्छना की थी। अपने कुत्तेसे ब्राह्मणका सर्वाङ्ग क्षत विक्षत कर डाला और अन्तमें नाक कान काट कर विदा कर दिया । ऐसा दूतनिग्रह सभ्यसमाजमें कभी भी किसीने नहीं देखा होगा।

सामरीराजके समुद्रपोताध्यक्ष खोजा कासिमने वहुतसे युद्ध जहाज हे कर पुर्तगीजों पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगीज लोग जलयुद्धमें सिद्धहरूत थे। विशेषतः उनके पास अच्छी अच्छी कमान और गोला गोली रहने के कारण उनका प्रभाव मुसलमान लोग सहा कर न सके। धीरे धीरे मुसलमान सभी रणपोत विध्वस्त हुए। इस समय खोजाके लीपुत्रपरिवार और अनेक सम्प्रान्त मुसलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखक मुमलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखक मिलेखक मिलेखक मिलेखक स्वापन स्वा

माणिक्यखित एक महम्मद्की प्रतिमा भी हाथ छगी थी। सदारके वीरत्व पर प्रसन्न हो हि-गामाने उसे सर्व-प्रधान पोताध्यक्ष बनाया तथा जलमें वा स्थलमें उसीके हच्छानुसार कार्य करनेका पूर्ण अधिकार दिया। इसका फल यह हुआ, कि सदारने जलपथमें एक प्रकारकी दस्युवृत्ति आरम्भ कर दी। भारतवासी मुसलमानोंकी मकायाला चंद ही गई।

श्वि-गामाने इस प्रकार भारत-उपक्लमें पुर्तंगीज-शक्तिकी जड़ मजबूत करके १५०२ ई०की २८वीं दिस-म्वरको खदेशयाता की।

कोचिनराजने पुत्त गीजकी यथासाध्य सहायता की थी। इस कारण सामरीराजने कोचिनराज्यको तहस नहस कर बालनेके लिये वहुत-सी सेना भेजी। इस समय पुर्त गीज अधिनायक सोदार भी घटनाकमसे कीचिन पहुंच गये थे। यहाँका पुत्त गीज कोठीवाल फर्णान्दिज कोरियाने भी कोचिनराजको सहायता पहुंचानेके लिये सोदारसे अनुरोध किया। किन्तु उन्होंने अपनी सार्थ-सिद्धिके लिये इस बोर उतना ध्यान नहीं दिया। जिस राजाने अपनी विपदको तुच्छ जान कर पुत्र गोजोंको यथासाध्य उपकार किया था, अभी उसी राजाको विण्य-में डाल कर खार्थपर सदार वहाँसे चल दिये। किन्तु उनकी खार्थपरताका फल बहुत ही जल्द मिल गया। वे जब काम्बे-उपक्लके निकट कुछ मुसलमानी जहाजींकी लूट और दग्ध कर कुड़िया-मुड़िया द्वीपमें पहुंचे, तब वहां वे अकस्मात् प्रवल तूफानसे अपने भाई समेत जल-मन्त हो गये। अव पुत्त गीज कप्तानगण किसी दृसरेको अध्यक्ष वना कर कोचिनराजको सहायता देनेके छिपे अप्रसर हुए। पर कन्तनूरमें वे अधिक समय तक उहर गपे। इधर कोचिन पहलेसे ही सतर्व थे। इस समय कोचिनराजको बहुतसी सेना अर्थके छोमसे अपने प्रमुका परित्याग कर कोचिनराजके यहां रहते लगी। सामरी-राजने उन्हें तथा निर्वाचित नायर-सेना ( कुछ ५०००० ) ले कर कोचिनराज्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें कोचिनराजपुत युवराज नारायणने प्राणविसर्जन किया। पीछे कोचिनराज स्वयं रणस्थलमें उपस्थित हुए । पर उनकी सभी चेष्टाएं निष्फल गईं। उन्होंने धोड़ी सी सेना और अपने आश्रित पुर्वंगीजीको लेकर वैपिम द्वीपमें आश्रय लिया। उस समय तक भी कन्तनूरमें जो पुर्तागीज सेना टहरी थी उनकी नींद नहीं टूटी। इघर सामरीराजने कोचिनराजको कहला भेजा, 'यदि आप अपने आश्रित पुर्तगोजों को मेरे पास मेज दें, तो मैं किसी प्रकार आपको कष्ट न दुंगा।' किन्तु आश्रितवत्सल कोचिनराज यद्यपि भारी विपदमें पड़े हुए थे तो भी वे सामरीराजके कथानुसार कार्य कर न सके। उन्होंने कहला भेजा, कि प्राण जाने पर भी मैं विश्वासद्यातकता न कर सकूंगा।

जिस समय भारतवर्षमें पुत्त गीजोंको छे कर इस प्रकार गोलमाल चल रहा था। उसी समय पुत्त गाल- राजने भी मुसलमानोंका सामुद्रवाणिज्य ध्वंस करनेके लिये तीन पोताध्यक्षके अधीन पुनः तीन वारमें ६ जहाज भेजे। प्रथम दलमें आफन्सो-दा-आलबुकार्क, द्वितीय दलमें उनके सम्पर्कीय भ्राता फ्रान्सिस्को-दा-आलंबुकार्क और तृतीय दलमें आएटनिओ-दा सालदानहा अधिनायक हुए। ये तीनों वेड्रे यथाकम १५०३ ई०को ६ठी अमेल और १४वीं अमेलको लिसवनसे छुटे थे।

कन्नन्रमं आ कर आल्युकार्कने कोचिनराजकी विपद्ववार्ता सुनी। अब वे यहां और अधिक काल तक उहर न सके, २री सितम्बरको वैपिम द्वीपमें आकर कोचिनराजसे मिले।

कोचिनको रक्षाके लिये सामरीराज जो सव सेना लोड़ गये थे, पुर्चगीजोंकी रणतरी देखनेके साथ ही वे सबके सव नौ दो ग्यारह हो गये। कोचिनराज निर्विचाद-से अपनी राजधानी पहुंचे। फ्रान्सिस्को-दा-आलबुकार्कने कोचिनराजकी विश्वस्तता और सरलताके लिये कृतज्ञता प्रकाशपूर्वक उन्हें १०००० डुकाट मुद्रा नजराना दे कर उनके सम्मानको रक्षा को। केवल इतना हो नहीं, कोचिनके अधीन जिन सब सामन्तराजींने अवाध्यताका परिचय दिया था अथवा सामरीराजका पक्षावलम्बन किया था, फ्रान्सिस्कोने उनमेंसे सर्वोका दमन किया।

्रश्वीं सितम्बरको कोचिन नगरमें पुर्तगोजोंके सर्व प्रथम दुर्गकी नींव डालो गई। इस समय आफन्सो-दा-आलवुकार्क स्वयं कोचिनमें रह कर दुर्गका निर्माण करा रहे थे। जब दुर्ग विलक्कल तैयार हो गया, तब पुर्तगाल-

राजके नामानुसार उसका 'मानुपल' नाम रखा गया।

अव पुर्तगोज लोग उद्याशासे उन्मत्त हो भीमपरा-क्रमसे कालिकटके निकटवत्तीं नानां स्थानीं पर आक्रमण करने छगे । हजारीं निरीह प्रजाने पुर्त्तगीजोंके उत्पीड़न और निव्रहसे प्राण गंवाये । सामरीराजने अपनी प्रिय-प्रजाके धन-प्राणको रक्षाके लिये चारो ओर वहुसंख्यक नायरसेना मेजी, किन्तु पुत्तीगीजींके कूटयुद्ध और गुप्त अन्यस्त्रके प्रभावसे अधिकांश सेना इनके सामने उहर न सकी । सभ्य जगत्में जिसे न्याययुद्ध कहते हैं, पुर्त्तगीज लोग उस युद्धनीतिका अवलम्बन नहीं करते थे। वे लोग अकस्मात् जहां जा पहुंचते थे, वहां सामने जिसे पाते, उसीको मार डालते अथवा यथासर्वस्त लूट कर घर द्वार जला देते थे। राजसेनाके वहां पहुंचने से ही वे दुम दवा कर भाग जाते थे। जब वे थोड़ी-सो सेना देखते, तव उनकी गोलागोलीके सामने किसीका आनेका साहस नहीं होता था। इस प्रकार पूर्तगीजीने वाणिज्य व्यवसायमें आ कर केवल मुसलमान विणकोंको ही नहीं, उपकुलवासी सभी भारतीय प्रजाको व्यतिव्यस्त कर डाला ।

सामरीराजने कोलम्बकी शासनकहीं और रानी-को कहला मेजा, कि पुर्तगीज लोग जिससे उनके अधि-कारके मध्य एक भी कोठो खोल न सके, इस पर विशेष ध्यान रहे। किन्तु यहां मुसलमान अथवा कोई विदेशी विषक्के उपस्थित नहीं रहनेसे पुर्तगीजोंने रानीको मोठी मीठी वातोंसे प्रसन्न कर अपना मतलव निकाल लिया। यहां एक गिर्जा पहलेका ही वना हुआ था। अभी एक बहुत बड़ी वाणिज्यकी कोठी खोली गई। देशीय लोगोंकी काथलिक ईसा-मतकी शिक्षा देनेके अभिप्रायसे पुर्तगीज-पादरी रहरिगोने यहां अड़ा जमाया।

फ्रान्सिस्को दा-आलघुकाक ने जनवरी मासमें कालिक आ कर सामरीराजके साथ एक सन्धि की। किन्तु पुर्त-गीजोंने जब कालिकटका माल लवा हुआ एक जहाज लूट लिया, तब सामरीराजने सन्धि तोड़ दी और जल तथा स्थल-पथमें पुर्तगीजोंसे शबुता करनेके लिये चारो और घोषणा कर दी।

इधर भाईको आनेमें विलम्ब देख , २०वीं , जनवरी

Vol. X1V 40

(१५०४ ई०)को आफन्सो-दा-आलबुकाक ने खंदेशकी याता कर दी। वहां उन्होंने पुर्त्तगालराजसे यथेष्ट पारि-तोषिक और उच्चसम्मान प्राप्त किया। किन्तु फ्रान्सिस्को-दा-आलबुकाक ने भारत उपकूलको लूट कर काफी धन जमा कर लिया था सही, पर वे दुर्भाग्यक मसे खदेश लीट न सके। ५वीं फरवरीको जब वे अपने तीन जहाजों पर माल लाद कर खदेश जा रहे थे, तब राहमें दलवलके साथ वे समुद्रगर्भशायी हुए।

आलबुकार्क के प्रस्थानके वाद ही सामरीराजने मल-वारके अपरापर राजाओं और सामन्तोंके साथ मिल कर कोचिनसे पूर्चगीजोंको मार भगानेका आयोजन किया । प्रायः ५०००० पदाति, २८० रणतरी और ४००० नौयोद्धा कोचिनकी ओर भेजे गये। कोचिनराज यह संवाद पा कर विचलित हुए । पुत्तेंगीज-अध्यक्ष कोचिनराजको राजधानीका रक्षाभार सौंप कर आप शतुकी गति रोकनेके लिये आगे वढ़े। कोचिनराज्यमें प्रवेश करनेके जो सव पथ और घाट थे, पाचेकोने उन सव स्थानों पर पहरा विद्या दिया । सामरीराजके दछवछने चारो ओरसे कोचिनराज्य पर आक्रमण कर दिया। किन्तु सौभाग्य-शाली कोचिनराज और पुर्तगीजोंकी चेष्टासे शतुगण वाल वांका कर न सके। कम्वलम् नामक स्थानमें पुर्त-गीज लोग नितान्त विपद्यमस्त हो पड़े थे । यहां शबुके आक्रमणसे पुत्त गीज जंगी-जहाज विध्वस्त और छिद्र-युक्त हो गये। वादमें पाचेकोने छिपके आ कर वहुत परिश्रमके वाद पुत्त गीजींकी रक्षा की। अनन्तर पाचेको-को खबर मिली, कि कोचिनवासी समी पुर्स गीज शबुके शिकार वन गये हैं और कन्ननूर तथा कोलम्बमें उन पर विपद्का पहाड़ टूट पड़ा है । अव पाचेको स्थिर रह न सके, उसी समय कीलम्बकी चल दिये। यहां उन्होंने देखा, कि केवल एक पुत्त गोज मारा गया है। पुर्त्त गीज-के सभी जहाज खाली थे। किन्तु अरवी जहाजीं पर गरम मसाला लदा हुआ था। पोचेकीने उन सव जहाजी को दखल कर उनके सभी माल असवाव अपने जहाज पर रख लिये । पीछे वे पुत्त गीजींकी रक्षाका सुप्रवन्य करके उपकूलके नाना स्थानोंमें विदेशीय जहाज लूटने-को चल दिये।

ठीक इसी समय पुर्त गालराजने लोपो-सोयारेज-दि-अलगवारिया नामक एक और पोताध्यक्षको भेजा। उनके अधीन १३ वड़े वड़े जहाज और १२०० नीयोदा थे। अञ्जद्वीपके निकट उनके साथ सालदानहा और राइलोरेन्सकी मुलाकात हुई। वहीं उन्होंने पाचेकोके पराक्रम और सामरीराजकी पराजयकी कथा सुनी। उन्हों ने सालदानहा और छोरेन्सोको अपने साथ छे लिया। अव तीनोने मिल कर कालिकट वन्दर पर चढुाई कर दी। उस समय सामरीराज अपनी राजधानीमें नहीं थे, राजपुरुषगण भी शत्नुके आक्रमणसे नगरभा-का कोई पुवन्ध न कर सके । पुर्चगीज लोग जहाज परसे दो दिन तक लगातार गोला-वृष्टि करते रहे जिस-से नगरकी अनेक वड़ी वड़ी अद्वालिकाए धूलिसात हुई, अधिकांश विध्वस्त हुआ और प्रायः ३०० व्यक्तियोंके प्राण गये। यहांके पुर्त्तं गीज पोताध्यक्षगण १४वीं सितम्बर-को कोचिनके लिये रवाना हुए। वहा पहुंच कर उन्हों-ने कोचिनराजसे सुना, कि सामरीराजके नवीया दिए नामक एक प्रधान सेनानायकने उनका विशेष अनिष्ट किया है, अभी वे कोरङ्कन्र्से उहर कर कोचिन आक-मणके लिये वल सञ्चय कर रहे हैं। सीयारेजने कोरङ्ग-नूर जा कर नवीया दरिम पर हमला कर दिया । इस युद्धमें दोनों पक्षको विशेष क्षति हुई । अन्तमें दरिम रणस्थलसे माग चले। अब पुत्त<sup>9</sup>गीजींने नगर लूट कर यहूदी और मुसलमानों की मसजिद तथा हिन्दूदेवालय-को तोड़ फोड़ कर अपनी पैशाचिक वृत्तिको चरितार्थ किया। उनके शाणितकृपाणसे सैकड़ी निःसहायके प्राण गये।

मुसलमान विणक्तींका प्रवल प्रताप पुर्तगीजोंके हाथसे क्रमशः खर्व होने लगा। जिस जिस वन्द्रमें मुसलमानोंने वाणिज्य द्वारा प्रभूत अर्थ और प्रभाव उपार्जन किया था, भारत-महासागर और अरवसमुद्रके तीरवर्त्ती प्रायः उन्हीं सव वन्द्रों पर पुर्तगीजोंने अपना अपना प्रताप जमा लिया। भीषण अत्याचार, पाशिक उत्पीड़न, घोरतर कामानगर्ज्जन और क्रूटनीतिवलसे पुर्तगीज लोग भारत-महासागरमें एक प्रकारसे एका-चिपत्य करने लगे। समुद्रवाणिज्यमें घोरे घीरे उन्होंने प्रधानता लाभ कर ली।

इस समय पुर्तगालराजने चारों और दृष्टि रखनेके लिये तथा पुर्तगीजोंकी सार्थरक्षाके लिये एक शासनकर्ता (Governor) को भारतवर्ष मेजा। पहले तिस्तौंव दा-कानहा इस उच पद पर सुशोभित हुए थे। किन्तु यहां उनका खास्थ्य ठीक न रहा, इस कारण डम-फ्रान्सिस्को दा-अलमिदा प्रथम गवर्नर वन कर आये।

## वुर्शगीजोंका प्रथम शासन ।

१५०५ ई० अगस्त मासके शेषमागमें अलिमदा (Almeida) ने पहले पहल अञ्चद्दीपमें पदार्पण किया। यहां एक दुर्ग वनाया गया। एक पुर्त्तगीज-सेनानायक और ८० योद्धा दुर्गरक्षामें नियुक्त रहे। वहांसे अलिमदा हनोवर (Onor) को चल दिये। उन्होंने यहांके शहर और अनेक जहाजोंको जला डाला। यहांके नगराध्यक्ष तिमोजाने उनका आनुगत्य स्वीकार किया था।

पुर्तगालराजने अनेक हीरामुकाखित सोनेका एक मुकुट कोचिनराजके लिये भेज दिया था। गवर्नर अल-मिदा वड़ी धूमधामसे उस राजमुकुटको अपण करनेके लिये कोचिन आये। किन्तु उस समय कोचिनराजने सिंहासन छोड़ दिया था, इस कारण उनके उत्तराधि-कारी नाम्बदानके शिर पर वह मुकुट पहनाया गया। इसी कोचिन नगरमें अलमिदाका प्रधान आवासनिर्मित हुआ और वही स्थान भारतीय-पुर्तगोजोंका सर्वप्रथम शासनकेन्द्र गिना जाने लगा।

पुर्त गीजोंका प्रभाव क्रमशः वढ़ते देख सामरीराजने मिस्नाधिप सुलतानकी सहायता की और दोनोंने मिल कर बहुसंख्यक नौवल संप्रह किया। किन्तु उत्कोच-प्राही मुसलमान-चरके मुखसे यह संवाद पा कर पुर्त्त-गीजोंने पहले कायरोसे आये हुए नौवलको विपर्यस्त कर डाला। किन्तु उसके वाद ही मुसलमानी नौसेनाने जा कर पुर्त्त गीजोंको मार भगाया और अञ्जद्वीप पर अधिकार जमाया।

अनन्तर पुर्त्त गीज पोताध्यक्ष उम लोरेन्सोने पहले चेउल और पीछे दभोल पर आक्रमण किया। शेषोक्त स्थानमें आग लगा कर वे कोचिन लौट गये।

इस समय पुत्त गीज नीदस्युगणके हाथसे मलवार-का एक प्रवान वणिकपुत्त मारा गया था। इस निरए- राध धनीपुलके प्राणनांश पर कन्ननूरराज वड़े दुःखी हुए और वे सन्धि तोड़ कर पुत्त<sup>भ</sup>गीजोंके कट्टर दुश्मन वन गये। सामरीराजने भी २१ कमान भेज कर उन्हें उत्ते -जित किया। कन्ननूरपतिने प्रायः ४० हजार नायरसेना एकत कर जल और स्थल पथमें भीमवेगसे पुर्त्त<sup>भ</sup>गीज पर आक्रमण कर दिया। इस समय छोरेन्सो दि-ब्रिटोने असीम साहससे अनवरत गोलावर्षण कर शतुओंको स्तम्मित कर दिया था। किन्तु उस विपुलवाहिनीका प्रवल आक्रमण वे कव तक सहा कर सकते! एक एक पुर्त्त गीज-योद्धा वहुसंख्यक शत्रुओंका विनाश कर देह-त्याग करने लगे। अव दि-ब्रिटोको जयलाभको आशा न रही। इसी समय उनके सीभाग्यवशतः पुत्तीगालसे तृस्तांव-दा-कानहा ११ जहाज और ३०० सी नौयोद्धाके साथ कन्ननूर पहुंचे। इस नववलके आक्रमणसे नायर-सेना छतभङ्ग हो रणस्थलसे भाग चली। कन्ननूरराज सन्धि करनेको वाध्य हुए। पुत्तीजीने भी अपनी सुविधा समभः कोई आपत्ति न की।

पुत्त गीज-गवर्नरने आ कर तृस्तांव-दा-कानहाकी भूरि भूरि प्रशंसा की । अब दा-कानहा पोणानी नामक स्थानमें सामरीराजके अधीन कुछ मुसलमानी वाणिज्य-पोतोंको ध्वंस कर तथा प्रचुर वाणिज्य द्रथ्य लूट कर देश लौटे। (६डी दिसम्बर १५०७ ई०)

इसके वाद सुलतानके प्रेरित और मीर होसेन-परि-चालित नौयोद्ध गणके साथ पुर्रागीजोंका घोरतर जलयुद्ध लिड़ा। इस युद्धमें मुसलमानोंके हाथसे पुर्रागीज गवर्नर अलमिदाका पुत मारा गया। आखिरकार मुसल-मानोंकी ही पूरी हार हुई थी।

जिस समय तृस्तांव-दा-कानहाने लिसवनका परि-त्याग किया, उसी समय आफन्सो-दा-आलवुकार्क भी ६ जहाजके अधिपति हो कर भेजे गये। यालाकालमें पुत्त गालराज उम मानुपलने उन्हें कह दिया था, कि अलमिदा तीन वर्ष तक गवर्नर रहेंगे, पीछे वे ही राजप्रतिनिधि और गवर्नर होंगे। इस उद्याशयको हदयमें रख कर आलवुकार्कने पहले पहल भारतसागरमें प्रवेश किया, पीछे हरसुज (अमंज) द्वीप पर अधिकार करके वहां एक स्थायी दुर्ग निर्माण किया। उनके सहगामी इन्छ

पोताध्यक्षने अमंधिपतिके निकट उत्कीच पा कर अथवा दुग निर्माण अनावश्यक समक्त कर उनके साथ विवाद किया, यहां तक कि वे आलबुकाक को परित्याग कर पुत्तगीज-गवर्नर अलमिदाके पास आये और उनके प्रधान अध्यक्ष आलबुकाक पर कई एक अभियोग लगाये।

उद्धत कप्तानोंकी वात पर विश्वास कर अलिमदाने हरमुजके अधिपति सेफउद्दीन और वहां के शासनकर्ता खोजा आतरको एक पत्न लिखा जिसका मर्म यों था, "आलबुकाक ने विना पुर्त्त गालराजकी आज्ञाके आपके विरुद्ध अन्याय कार्य किया है, इसके लिये उन्हें उपयुक्त दएड मिलेगा।" खोजा आतरने वह पत्न आलबुकाक को दिखलाया जिसे देख कर आलबुकाक ने भी समक्ष लिया था, कि भारतवर्ष पहुंचनेसे उन्हें किस प्रकार अभ्यर्थना-लाभ करना चाहिये।

यथा समय आलबुकार्क अपने अपूर्व अध्यवसायके गुणसे हरमुजमें पुर्त गोज आधिपत्य जमा कर तथा हरमुजाधिपतिकों कर देनेमें वाध्य कर भारतवर्ष पहुंचे। उस
समय अलिमदा पुलहत्याका प्रतिशोध लेनेके लिये दीउ पर
आक्रमण करनेका आयोजन कर रहे थे। आलबुकार्क ने
आ कर ही अलिमदाको राजाका आदेश कह सुनाया और
उनके हाथ शासन क्षमता दे कर उत्हें खदेश जानेका
अनुरोध किया।

अलिमदाने हठात् अपना उच्च पद छोड़ना न चाहा, वरं उन दुष्ट कप्तानोंकी वात पर विश्वास कर उन्होंने आलवुकाक के विकद्ध पुत्त गालराजके निकट अभियोग लिखा। आलवुकाक ने भी उसीके साथ साथ उसका व्यायथ उत्तर भेजा।

इस गोलमालके समयमें भी अलमिदाने अञ्जहीप होते हुए दमोल और महीम पर आक्रमण किया और भारतवर्षमें उनका आयुष्काल शेष हो चला, ऐसा समफ आशातिरिक धनरत संग्रह कर लिया। इसी समय जेउलके अधिपति निजाम उलमुक्कने पुर्तगालराजकी अधीनता खीकार की।

१५०६ ई०की ८वीं मार्चको वड़ी धूमधामसे अलिमदा कोचिन पहुंचे और जिससे आलबुकाक किसी प्रकार

शासन-क्षमता न पा सके, इसके लिये उन दुए कप्तानीके साथ गड़यन्त करने लगे।

इधर दो गवर्नरमें विवाद होते देख कोचिनराजने भी मालका मेजना बंद कर दिया। यह संवाद पा कर अल-मिदाने आलयुकाक को कुछ काल तक शान्त रहनेके लिये अनुरोध किया। कीचिनराज आलबुकाक का पक्षा-वलम्बन करके अलमिदाके व्यवहारकी कथा स्चित करनेके लिये पुर्त्त गालमें दूत भेजनेको प्रस्तुत हुए। इतने पर भी अलमिदाने अपना शासन-कतृ त्व न छोडा। अलावा इसके जिससे आलबुकार्क के वन्धुविच्छेद और सुहदू मेद हो जाय, उनका मानसम्प्रम जाता रहे, कोचिनराजके साथ कुछ भी आलाप न करने पाने, इसके लिये अलमिदाने चारो और चर लगा कर व्यवस्था भी की थी। आखिर जब उन्होंने देखा, कि आलबुकाक किसी हालतसे उनकी वश्यता स्वीकार करनेको नहीं है, तब उस उच्चपदस्थ राजपुरुषके नाम पर यह कह कर अभियोग लगाया, कि वे पुत्तीगीज गवर्नर और उनके अधीनस्थ समस्त पुत्त गीजोंके उच्छेदसाघनके लिये सामरीराजने साथ पड़यन्त कर रहे हैं। इस मिथ्या अभियोगके वलसे कन्ननूर दुर्गमें आलबुकाक<sup>े</sup> वन्दी हुए। उनके वासगृहादि अलमिदाके आदेशसे तहस नहस कर डाले गये। किन्तु आळबुकार्कको अधिक दिन तक कष्ट भोगना न पड़ा। १५०६ ई०की २६वीं अक्तूवरको उनके भतोजे मार्लंळ उम फ़ार्णान्दो कोटिनहो पुत्त गाळ-राजका आदेशपत ले कन्नन्र आये। यहां आ कर आल-बुकार्क की वन्दी देख वे वड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उसी समय उन्होंने आलबुकाक को मुक्त कर देनेका हुकुम दिया।

अलिमदाने देखा, कि अब उनकी चालाकी नहीं चलती इस कारण, उन्होंने १५वीं नवम्बरको शासनका भार आलबुकाक पर अपण कर म्रानमुख और भग्नहृदय-से खदेशकी याता की। जिन्होंने उनके साथ रह कर आलबुकाक के विरुद्ध अल्लाधारण किया था, वे भी उनके साथ जहाज पर चलें। सालदाना उपसागरके किनारे निरोह अधिवासियोंके प्रति अत्याचार करनेके कारण अलिमदा अधिवासियोंके प्रस्तराघातसे पश्चत्वको प्राप्त अलिमदा अधिवासियोंके प्रस्तराघातसे पश्चत्वको प्राप्त हुए। प्रथम पुत्त गोज गवनरका यही परिणाम हुआ।

#### भारवुकार्कका शासन ।

अव आलबुकार्क सर्वप्रधान पोताध्यक्ष (Captain General) और भारतके शासनकर्त्ता हुए। उन्होंने सामरीराजका पराक्रम नष्ट करनेके लिये कमर कसी। कोचिनपितने भी सामरीराजकी गतिविधि लक्ष्य करनेके लिये दो ब्राह्मणको चर क्रपमें उनके यहां मेजा। चरने आ कर संवाद दिया, कि अभी राजधानीमें न तो राजा हैं और न अधिकांश सेना ही है, यदि कालिकट पर आकमण करना हो, तो यही अच्छा मौका है।

दिसम्बर मासके शेषमें २००० पुत्त गीज २० युद्ध-जहाज और वहुसंख्यक तरी ले कर कालिकटको अग्रसर हुए। आलवुकार्क और उनके मतीजे प्रधान अधिनायक हो साथ साथ चले।

१५१० ई०की ४थी जनवरीकी कालिकट पहुंचनेके साथ ही पुत्र गीजोंने मुसलमान न्यूहकी भेद डाला। भाळवुकार्क ने उस दिन अपनी सेनाको विश्राम करनेका हुकुम दिया, पर उनके भतीजेकी यह अच्छा न लगा। उन्होंने उसो समय सैन्यपरिचालना करके राजभवन पर आक्रमण किया और उसे भस्मसात् कर डाला। पहले तो किसीने वाधा न दी, पर राजभवन पर आक्रमण हुआ है, यह संवाद जब विजलोकी तरह तमाम फैल गया तव टिड्डी सरीखी नायरसेना आकर पुर्त्त गीजों पर टूट पड़ी। आलवुकाक अप्रगामी सैन्यकी और उनके भतीजे मार्सल पार्श्वसैन्यकी चालना करते थे। नायरोने पहले पार्श्वरिक्षयों पर ही धावा वील दिया। पुत्तें गीज लोग इस आक्रमणको सहान कर सके। खयं मार्सल और उनके सहकारी तथा और अनेक प्रधान प्रधान योद्धाओंने प्राण विसर्जन किये। आलबुकार्कको दो सख्त चोट लगी थी, उन्हें कन्धे पर उठा कर पुर्त्त गीजगण नी दो ग्यारह हो गये। उस समय डम अएटोनिओ और रावल नामक दो पुत्त<sup>र</sup>गोज कप्तान दलवलके साथ यदि वहाँ न पहुंच गये होते, तो सम्भव था, कि एक भी पुत्त गीज जान ले कर लौटने नहीं पाता ।

आलबुकाकंका घाव जब अच्छा हो गया, तव वे इसका बदला लेनेके लिये पुनः विपुल आयोजन करने लगे। सहायता पानेको आशासे उन्होंने विजयनगरा- धिप (नर्सिहराज )के निकट दूत भेजा । वे भी कुछ लामको आशासे स्थलपथमें पुत्तगीजोंको सहायता पहुं-चानेमें राजी हुए।

अव आलबुकार्क अञ्चद्धीप आये। यहां उन्होंने तिमोजाके मुखसे खुना कि, 'कमी तुर्कोंकी गोआमें अच्छी धाक जम गई है। इन्होंने ही अलमिदाके पुलको मार डाला था। कायरोंके सुलतान इनकी सहामताके लिये कुछ सेना मेज रहे हैं। हिमयोंमें अच्छे अच्छे कारीगर हैं जो गोआमें रह कर पुर्त्तगीजोंके जैसे उत्सृष्ट जहाज प्रस्तुत कर रहे हैं। गोआके स्वादारकी मृत्यु हो गई है। गोआ पर आक्रमण करनेका यही अच्छा मौका है।'

तिमोजाने मुखसे गोआको अवस्था सुन कर आल-वुकार्क २८वीं फरवरीको गोआ पहुंचे। उनके भतीजे डम अव्योनिओने पिल्लम दुर्ग पर आक्रमण कर दिया और यहांके अख्रशस्त्रादि स्टूट कर दुगमें आग लगा दी। पीछे आप जहाज पर चले आये। दूसरे दिन नागरिक-प्रजाने दो सम्मान्त व्यक्तियोंको भेज कर पुत्त गालराजका आनुगत्य स्वीकार किया।

8थी मार्चको आलबुकार्कने सम्पूर्णक्रपसे गोआ पर अधिकार कर लिया। यहांके दुर्गमें यथेष्ठ युद्धसज्जा, कमान, गोला, गोली, वाणिज्यद्वव्योंसे लदे हुए ४० जहाज, अश्वशालामें १६० उत्हृष्ट अरवी घोड़े और तुक तथा कमियोंकी रमणियां एवं शिशुपुतादि थे। ये समी पुर्त्त गोज-शासनकर्त्तां हाथ लगे। पीछे उन्होंने वांदा और गोन्दालदुर्गसे तुकांको मगा कर वह दुग अपने वश-वर्त्तां प्राचीन हिन्दूराजवंशको प्रदान किया।

तिमोजाने समका था, कि जब गोआ पर पुत्त गीजा-का अधिकार ही जायगा, तब वे उपयुक्त कर छे कर मुक्ते ही वह देश दे देंगे। कारण, इस सम्बन्धमें दूसरे दूसरे कतानों की भी सम्मित थी, पर ऐसा नहीं हुआ। आळबुकार्फने गोआकी अवस्था देख कर यहीं पर पुत्त-गीज भारतका प्रधान शासनकेन्द्र बनाना चाहा। तिमोजा पुत्त गीजसे यथेष्ट सम्पत्ति और उच्च सम्मान पा कर भी एस न हुए। जब आळबुकार्कको माळूम हुआ, कि तिमोजा असन्तुष्ट हो गये हैं, तब उन्होंने उन्हें पुत्त-गीजसभामें बुळा कर नंगी तळवार, प्रधान मएडकेम्बर

Vol. XIV. 41

( Aquazil )की उपाधि और गोआकी समस्त भूमि ( करनिश्चित करके ) प्रदान की ।

मुसलमान स्वाने गोआमें आनेके साथ हो दूना कर वढ़ा दिया था। अव हिन्दूपजाने कर घटानेके लिये आलबुका कैसे निवेदन किया। हिन्दूराजाओं के समय जिस दरसे कर लिया जाता था, वही दर कायम रही। यह संवाद पाते हो हिंदूपजागण दलके दल आ कर गोआमें वास करने लगी।

गोआ-प्रदेशका शासन और कर वस्त्र करनेके लिये पुर्त्तगीज शासनकर्त्ताके अधीन एक एक जिलेमें एक एक देशीय थानेदार नियुक्त हुए। प्रजा और विणकी की सुविधाके लिये टकसाल आदि खोली गईं। सीने, चाँदी और ताँबेका क्रुजादी, दिनार, विन्तेम तथा एस्पारो प्रचलित हुआ।

इस समय आलबुकार्कने सुना, कि आदिलशाह उन पर आक्रमण करनेका विशेष आयोजन कर रहे हैं। उन्हें गोन्दालके मएडलिकसे खबर मिली, कि शङ्के श्वरके राजा वालोजी, सूवाके सेनापति कोशलखाँ और करपत्तनराज मालिक रव्यान ये तीनों मिल कर आदिलशाहके साथ पड़यन्त कर रहे हैं और वहुत जल्द गोआ पर आक्रमण कर दें गे। इधर आदिलशाहने अपने दलको पुष्टि करने-के लिये नरसिंहराजसे सहायता मांगी। नरसिंहराज मुसलमानों से विद्वेष रखते थें। उन्हों ने कहला मेजा, कि करीव ४० वर्ष हुए, मुसलमानोंने अन्यायपूर्वक उनके अधिकृत गोआ-प्रदेश दखल कर लिया है, इस कारण वे मुसलमानको सहायता न दे कर पुर्त्त गीर्जीको ही सहायता देना अच्छा समभते हैं। गारसोपाके राजा वीरचोलने पुत्त<sup>र</sup>गीजोंका साथ दिया, आलबुकार्कने गोआप्रवेशके सभी पथ घाट विशेषरूपसे सुरक्षित कर रखे।

रही मईको आदिलशाहने दो दूत पुर्त गीज समामें भेजे । उनमेंसे एक पुर्त गीज था । यह व्यक्ति पुर्त - गालसे अपमानित हो कर भारतमें आया और आदिलशाहके यहां नौकरी करने लगा । दूतोंने आ कर आलबुकाकेंसे कहा, कि आदिलशाह अपना अधिकृत गोआप्रदेश चाहते हैं और उसके वव्लेमें वे कोई दूसरा बन्दर उन्हें देनेको राजी हैं । आलबुकाक-ने आदिलशाहके प्रस्तावको नामंजूर किया । दोनों दूत वापिस गये ।

१७वीं मईको गमीर रातिमें मुसलमानीने चार दलीमें विभक्त हो अगासिम नामक पथ होते हुए गोआमें
प्रवेश करनेकी चेष्टा की। पहला दल जो पुत्तगीजोंकी आँखमें घूल डाल कर अपना मतलव निकालना
चाहता था, स्वयं विनष्ट हुआ। परन्तु दूसरे दलने
नौकाद्वारा वड़ी तेजीसे अगासिममें प्रचेश कर तिमोजाके
रिक्षयोंको परास्त किया और पुत्त गीजनामक दुआर्च-दासुसाको मार डाला। वहां और जितने पुर्त गीज थे,
सवोंने गोआ जा कर जान वचाई।

इघर प्रवेशपथ पा कर आदिलशाह काफी सेनाके साथ गोआमें जा धमके । आलवुकार्कको वाध्य हो कर दलवल समेत दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा। किन्तु यहां भी वे निरापदसे रह न सके, तुरंत जहाज पर चढ़ कर भाग चले। आदिलशाहकी सेना पुर्त गीजके जहाज पर लगातार गोलावर्षण करने लगी। इधर जहाजकी रसद भी घट गई। एक तो मुसलमानोंके गोलेसे पुर्त गीजोंका लक्षमंग हो गया था, दूसरे रसद घट जानेसे आलवुकार्क और भी भारी विपद्में पड़ गये। २१वीं जुलाईको उन्होंने वहुत मिक्कलसे जहाज छोड़ा, पर जाते समय मुसलमानोंके गोलोंसे वहु संख्यक मनुष्य और कुछ जहाज विनष्ट हुए थे।

२६वीं सितम्बरको आलबुकार्क कोचिन पहुंचे। इसके पहले पुत्त गालसे और भी अनेक युद्धजहाज और नीसेना पहुंच गई थी। अब आलबुकार्कने सभी जहाजके प्रधान प्रधान योद्धाओंको ले कर एक मन्त्रणासभा की। आलबुकार्कने पुत्तैगीजोंको समका कर कहा, यदि हम लोग गोआको जीत न सकेंगे, तो समकता चाहिये. कि पुत्त गाल का नाम भारतसे शीघ ही बिलुत हो जायगा। इसुनते हैं, कि आदिलशाह, खम्मात् और कालिकटके राजा बहुत

<sup>#</sup> तुजादोका परिमाण—१ | विनार—एक क्रियेसे
कुछ दम । विस्तेम प्रायः अभैर एस्पारो प्रायः । इन
सव मुद्राओकी एक पीठ पर खुष्टीय करा और दूधरी पीढ पर
पुर्तगालराज दम माइएलका नाम अंकित रहता था।

जल्द एकत होंगे। इस समय यदि तुरस्कके सुलतान भी सेना भेज कर उन्हें सहायता पहुंचानेको राजी हो जांय, तो सम्भव नहीं, हम लोगोंकी जीत होगी, आशा पर पानी फिर जायगा। कोई कोई पोताध्यक्ष इस समय युद्ध करनेको राजी न हुए, किन्तु आलबुकार्कने कहा, 'हममेंसे जो इस समय युद्ध करना नहीं चाहते, वे पीछे रहें और जो पुर्त्तगीजराजके मानसम्भ्रमकी रक्षाके लिये प्रस्तुत हैं, वे मेरे साथ आगे वहें।'

पुसगीजके कुछ जङ्गी जहाज कन्नन्यमें आ कर मिछे। आछवुकार्क २३ जहाज और प्रायः २००० पुर्त्तगीजसेना छे कर आगे वढ़े कि। उनके हनोवर पहुंचने पर तिमोजी और गार्सोपाके राजाने उन्हें आ कर स्वित किया, 'आदिछशाहके अधीन प्रायः ४ हजार तुर्की, कमी और सोरासानी सेना तथा कुछ वालघाटी तीरन्दाज गोआकी रक्षा कर रहे हैं।' गोआके समीप पहुंच कर आछवु-कार्क ने अपनी सेनाकी तीन दलोंमें विभक्त किया। २५वीं नवम्बरको तीन ओरसे तीनो दलने गोआको घर लिया। तुर्कोंने पहले पुर्त्त गीजों को बाधा दी थी, पर आछवुकाक ने स्वयं युद्धस्थानमें उतर कर अपनी सेनाको

# यहांसे १५१० ई०की १७वीं सक्तूबरकी आलबुकार्कने पुर्तगालरान डममातुएलको एक पत्र इस प्रकार लिखा था, "गोभा पर अविकार करना पुरोगालराजका प्रधान करीन्य है। इस पर अधिकार हो जानेसे हम छोग एक समय बहुजमें समस्त दक्षिण-भारतका शासन कर सके गे। लोगो'का प्रधान, अवलम्बन हैं युद्धजहा**व ।** वह जहाज गोआ-में ही प्रस्तुत होता है, दूसरी जगह और कहीं भी नहीं। परीगोलसे कारीगर लाकर यहां जहाज बनाना सहल नहीं ह, विशेषतः देखा जाता है, कि यूरोपीय कारीगर इस देशके उल्ण जलवायुके गुणसे श्रीध्र ही अक्रमेण्य हो जाते हैं, खनमें कुछ भी मनुस्थत्व नहीं रहता। किन्तु गांआके देशीय शिगर सर्वदा सममावमें और ठीक यूरोपीयके जैसा काम किया करते हैं। यह स्थान यदि पुरालमानोंके अधिकारमें रहेगा, तो असंख्य जहाज बना कर हम लोंगी का पराक्रम खर्व करेगा । समुद्रवाणिकामें हम छोगी की प्रधानता है, बह प्रवानता वाती रहेगी। अतः जिस हवायसे हो सके, गोंना पर अधिकार करना पुर्तानीओंका एकमान कर्तव्य है।

उत्साहित किया और तुकव्यहको घेर डाला। पुत्त-गीजो'ने उन्मत्तकी तरह अपने प्राणको हथेली पर रख तुर्कोंसेनाका पीछा किया। दोनों दलमें भीषण द्रन्द्युद्ध होने लगा। पीछे अश्वारोही तुर्कीसेनाके आक्रमणसे पुत्त गीज लोग छत्रमङ्ग हो पड़े। अनेक प्रधान सेना-पतियों के प्राण गये। इस समय आलबुकार्क स्वयं नंगी तलवार हाथमें लिये उस रुधिर-समुद्रमें कृद पड़े। उनकी देखा देखी वहु संख्यक पुत्ती गीजने आ कर भीम-वेगसे तुक -अध्वारोहियों को मार गिराया और उनके अभ्व पर सवार हो वहुत जोरसे गरजते हुए मुसलमानों -को मदैन करने लगे। कुछ मुसलमान-सेनानायक शतुके हाथसे मारे गये । सेनापतिकी मृत्यु पर मुसलमान लोग डर गये और रणस्थलसे भाग चले। आलवुकार्क-ने गोआ पर अधिकार जमाया। अव उन्हों ने घोषणा कर दी, 'जी जितना लूट सकेगा, वह उसीका होगा। आलवुकाक ने १०० वडी वडी कमान, तरह तरहके युद्धास्त्र, २०० घोड़े और प्रचुर युद्धोपकरण पाये थे। . छुएठनशील पुत्त गीज-सेनाकी ताइनासे कितने मुसल-मानोंके प्राण गये, कितनी मुसलमान-रमणियां पुर्त-गीजके करायत्त हुईं, उसका टीक प्रमाण मिलता। हिन्दू ब्राह्मण और कृषकोंको जिससे किसी प्रकारका अनिष्ट होने न पावे इसके लिये आलवुकार्कने सर्वोको सावधान कर दिया था।

आलबुकाकंके यत्नसे गोक्षामें पुर्त्त गीज राजधानी वसा दो गई। जिन सव पुर्त्त गीजोंने यहांका अधिवासी होना चाहा, उनके साथ विन्दिनी मुसलमान-रमणियोंका विवाह हुआ। रमणीके लोभसे वहुतेरे पुर्त्त गीज योदा यहां विवाह करके भारतवासी हो गये और उनकी चालवाजीमें पड़ कर अनेक हिन्दुओं तथा मुसलमानोंने पोपके आदिष्ट खृष्टान धर्मको ग्रहण किया।

पुत्तं गीजराजने केवल उच्च स्वभावके प्रधान प्रधान सैनिकोंको ही भारतीय महिलाके साथ विवाह करनेका अधिकार दिया था। किन्तु आलबुकार्क ने सभी पुर्त-गीजोंका आग्रह समभ कर किसीका भी आवेदन अग्राह्म नहीं किया। पर हां, इतना कह दिया, कि वे किसी नीच जातिको कन्यासे विवाह न करें, उच्च जाति और

सम्वान्त व्यक्तिकी कन्या पानेसे ही विवाह कर सकते हैं। आलबुकार्क ने खयं मी एक उच्चवंशीय महिलाका पाणिमहण किया था। उस समयके पुत्त गीज विवरणसे
जाना जाता है, कि प्रायः दो हजारसे ऊपर पुत्त गीज
देशीय महिलाओंका पाणिमहण कर और जीविकानिर्वाहके लिये उपयोगी जमीन जमा पा कर भारतवासी हुए
थे। उन सब महिलाओंने यद्यपि ईसा-धर्म महण कर
लिया था, तो भी उन्होंने सामाजिक आचार-व्यवहार, रीति
नीति, जाति और विश्वासका परित्याग नहीं किया।
बरन उनके प्रभावसे पुत्त गीज जातिने भारतीय आचार
व्यवहार और रीति-नीतिका अनुकरण करना सीख

मुसलमानोंके उत्पोड़नके भयसे अनेक सम्म्रान्त हिन्दू तिकीवर द्वीपमें जा कर वस गये थे। जब उन्होंने सुना, कि गोआमें पुत्त गीजका अधिकार हो गया, तव वे आलबुकाक की अनुमति ले कर दलके दल यहां आ कर रहने लगा।

इस समय हनोवर (Onor) के राजाने गोआमें दूत मेज कर पुत्त गोजोंके साथ मिलता स्थापनका प्रस्ताव किया। किन्तु आलबुकाक ने उनसे सन्धि न करके प्रस्त राज्याधिकारी और उनके भाई मलहाररावके साथ सन्धि कर ली। मलहारराव कनिष्ठकी दुरभिसन्धिसे अपना राज्य खो बैठे थे। अभी गोआमें आ कर उन्होंने पुत्त गीज गवर्नरसे महासम्मान प्राप्त किया। पीछे वार्षिक २००००) ह० कर देना कबूल करने पर सारा गोआ उन्हें इजारेंमें मिला।

गोआ नगरीको उपयुक्त रूपसे सुरक्षित करके आलबुकाक समृद्धिशाली मलका द्वीप जीतनेको अप्रसर
हुए। उस समय मुसलमान और गुजराती वणिक्गण
मलका, सुमाला और यवद्वीपमें वाणिज्य-व्यापारमें लिस
थे तथा इसमें उन्होंने लाभ भी खूब उठाया था। अव
पुक्त गीजोंने उन सब स्थानोंमें अपनी गोटी जमाना
नितान्त आवश्यक समना।

मलका याता कालमें आलवुकाक सिंहल होते हुए गग्ने। राहमें सुमाताके पसुम्माराज और यवद्वीपराजने उसका आनुगत्य स्वीकार किया। मलक्काराजने कुछ

पुर्त गीजोंको केंद्र कर रखा था। उन्हें खुटकारा देनेके लिपेआलयुकार्क ने राजाको कहला भेजा। किन्तु मुसल-मान और गुजराती विणकोंकी उन्हें जनासे मलकाराजने पुर्त गीज अधिनायककी वात पर कान न दिया। इस पर आलयुकार्क ने मलका पर चढ़ाई कर दी। मुसलमान सेनाने असीम साहससे युद्ध तो किया, पर पुर्त गीजोंको हरा न सके। पुर्त गीजके गोलोंसे मुसलमान लोग छत-भङ्ग हो 'पड़ें। अब पुर्त गीजोंने जहाजसे उत्तर कर तीव्र वेगसे राजधानी पर धावा वोल दिया। मलका-राज अपने पुत्र और जामाता समेत भाग गये।

इस समय चतुर मलयसेनाने अग्निपोतसे आ कर पुर्त गीज जहाजोंको नष्ट करनेको चेष्टा की। किन्तु पुर्त गीजोंकी सतक तासे वे विशेष हानि पहुंचा न सके। उस समय वहुतसे चीनपोत श्यामदेश जा रहे थे। उन सव पोतोंके अध्यक्षोंके साथ पुर्त गीजोंका सद्भाव हुआ था। श्यामराजके साथ मित्रता करनेके लिये आलवु-काक ने चीनपोताध्यक्षोंके साथ हुआर्त फार्णान्दिजको श्यामराज्य भेज दिया।

मलका जब अधिकारमें आया, तव आलवुकार्क ने नगर लूटनेका हुकुम दे दिया, केवल नयनशेठी नामक एक हिन्दूका एक भी द्रव्य स्पर्श करनेसे निपेध कर दिया। अन्तमें वे इसी नयनशेठीको शासनकर्ता और आत् मुत्राजको मुसलमानोंका सर्दार वना गये शामलकाहीपमें आलवुकार्क ने पुत्त गीज धक जमाई। मुसलमानोंकी मसजिद तोड़ फोड़ कर उन्होंके मालमसालेसे दुर्ग वनाये और प्राचीन मुद्राके वदलेमें पुर्व गीज मुद्रा चलाई। भारत लौटते समय उन्होंने सुना, कि आत् मुद्राज अलाउदीन आदि मुसलमान सर्दार्ग के साथ पुत्तेगीजोंको विकद पड़यन्त कर रहे हैं। अतः उन्होंने उसी समय उत्तमराजको केद कर लिया।

आलबुकाकने पुर्त्त गालराजके पास मलकाविजयका संवाद भेज दिया। पुर्त्तगालराजने यह खुश सवरी पोप-को सुनाई। पोपने इस संवाद पर रोममें वड़ी धूमधामसे उत्सव किया था।

<sup>%</sup> पुर्सिगीतप्रक्षयमें नयगरोठी Nina chatu और आत्युव राज Utemutaraja नामसे वर्णित हुए हैं ।

श्रालयुकाक के गोसा परित्यागके वाद ही आदिल-शाहके सेनापित पुल्लाद खाँने गोआ पर आक्रमण करके मलहाररावको वहांसे मार भगाया। मलहारराव और तिमोजाने विजयनगर भग कर नरसिंहराजके यहां आश्रय लिया। पीछे अपने भाईका मृत्यु-संवाद सुन कर वे विजयनगराश्रिपको सहायतासे पुनः हनोवरके राजा हुए।

पुलाद काँ वाने स्तिरिम नामक स्थान पर छावनी डाल कर गोआ दुर्ग पर अधिकार करनेकी चेष्टा कर रहे थे। इसी समय आदिलशाहने रसुल काँ नामक एक दूसरे सेनपितको गोआ जीतनेके लिये मेजा। इन दोनों सेना-पितओंमें पटती नहीं थी। रसुलकाँ उन पर विरक्त हो कर उन्हें दमन करनेके लिये पुर्त्त गीजोंके साथ मिल गये।

पुलाद्कां पराजित हुए और भाग जानेकी वाध्य हुए। इधर रसुलखांने वानेस्तरिम पर अधिकार कर गीआ नगरो देखनेका अभिप्राय प्रकट किया। पुर्त्तगीजों-को अव अपनी भूल मालूम पड़ी-और वे सतर्क हो गये। उस समय नगरमें केवल ४०० पुर्त्तगीज थे। ये लोग प्राणपणसे नगरकी रक्षा करने लगे। जयकी कोई सम्भावना नहीं है, ऐसा समक्ष पुर्त्तगीजमेंसे वहुतोंने रसुलखाँका पक्ष लिया।

पुत्त गोजोंके ऐसे विपत्तिकालमें आलबुकार्क भारत उपकुलमें पहुंचे (१५१२ ई०की जनवरी)। कोचिन, कन्ननूर, भाट्कल आदि स्थानोंमें वाणिज्यका सुवन्दोवस्त करके वे अक्तूवर मासमें गोआकी रक्षाके लिपे अप्रसर हुए।

जो पुत्त गीजोंके विरुद्ध खड़े हुए थे अथवा जो विपक्षताचरणकी चेष्टा कर रहे थे, अभो आलवुकार्कका आगमन-संवाद सुत कर उनमें कितने भीत, विचलित और निरस्त हुए। कई एक युद्धोंके बाद रसुलखाँने भी अपनो हार मानी।

इसके वाद खम्भातके अधिपति और आदिलशाहने दूत मेज कर सन्धिका प्रस्ताव किया। उस समय गासिया-दा-सुसा दभोलमें घेरा डाले हुए थे। सन्धिका प्रस्ताव सुन कर आलबुकार्कने उन्हें दभोल पर आक्रमण करनेसे मना कर दिया। इधर नरसिंहराज और बेङ्गीपुराधिपके साथ उन्होंने मित्रता की। पुत्तेगीज-अधिकारके मध्य जो सब अरबी घोड़े आयंगे, उन्हें किसी दूसरेको न दे कर विजयनगर भेज देंगे, इस शर्त पर उन्होंने नरसिंहराजसे भाटकलमें कोडो खोलनेका आदेश लिया।

भारतमें जब आलबुकाकंके यक्क पुर्तगीजोंका सीमाग्योद्य हो रहा था, उस समय उनके कुछ विपक्ष-गण पुर्तगालराजको समका रहे थे—'गोआ नितान्त अस्वास्थ्यकर स्थान है, उस स्थानरक्षाके लिये व्यथंमें लोकक्षय और प्रचुर अर्थव्यय हो रहा है।' पुर्तगालराजने भी उनकी वात पर विश्वास कर आलबुकार्कको लिख मेजा, 'गोआ जैसा अस्वास्थ्यकर स्थान है, कि उसे छोड़ देना ही उचित है।' आलबुकार्कने भी इसका यथायथ उत्तर दे कर पुर्तगालराजके इस मिथ्या संदेहको दूर किया। पुर्तगालराजके आदेशसे आलबुकार्क (१५१३ ई०की ८वीं फरवरी) १८०० पुर्तगीज, ८३० मलवारी और कर्णाटी नौयोद्धाको साथ ले अरवके प्रधान वन्दर आदेन पर चढ़ाई करनेके लिये अप्रसर हुए।

२६वीं मार्चको पुर्त गीजसेनाने तीन ओरसे आदेनको घेर लिया। आदेनके शासनकर्त्ता मीर मिर्जाने पहले मीठी मीठी वार्तोंसे तथा उपढौकन भेज कर सन्धिका प्रस्ताव किया, लेकिन उससे कोई फल न देख वे भी ्दलवलके साथ पुत्त<sup>र</sup>गीजका आक्रमण व्यर्थ करनेके लिये अप्रसर हुए। दोनों पक्षमें गोलावृष्टि होने लगी। पुर्त-गीजके गोलोंसे नगरकी यथेष्ट क्षति हुई, किन्तु इस बार पुत्तं गीज लोग आदेन जीत न सुके। वहांसे आलवु-कार्कने ससैन्य अरवसमुद्रमें प्रवेश किया। इस समय उनके दो उद्देश्य थे, १ला-कायरोकी जमीनकी उर्वरता नष्ट करनेके लिये पहाड़ काट कर नीलनदका स्रोत परि-वर्त्तंन और २रा-जेरुसलेमके जुष्टमन्दिरकां उद्घार करनेके लिये अनेक अध्वारोही सेना ले कर अकस्मात् मदिना पर आक्रमणपूर्वक महस्मद्की मूर्चि छाना। किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हुई। अरवसमुद्रवत्ती कुछ वन्द्रोंका सन्धान, कुछ अरवीपीतोंका दहन और और लुएउन छोड़ कर इस यातामें कोई विशेष स्थायी कार्यं न हुआ।

अगस्त मासमें आछवुकार्क दीउ द्वीपकी छीट आये।
यहांके मुसलमान शासनकर्त्ताने उनका अच्छा सत्कार
किया। चेउल आ कर आछबुकार्कने सुना, कि कुछ
मुसलमानी जहाज माल ले कर कालिकटसे मक्का जा
रहे हैं। फिर क्या था, आलवुकार्कने कुछ योद्धाको भेज
कर वे सब जहाज छीन लिये।

अनन्तर आलवुकाकेने कालिकटमें दुर्ग वनानेका दूढ़ सङ्करण किया । इस समय जिससे पुत्त गीजोंके साथ सामरीराजकी सन्धि स्थापित होने न पावे, कन्ननूर और कोचिनके राजा भीतर ही भीतर उसकी चेष्टा कर रहे थे। सामरीराजने किसी हालतसे पुर्चगीजींको कालिकट वन्दरके हृदय पर दुर्ग वनानेकी अनुमति न दी। सामरीराजके भाईने छिपके पुत्त गीजोंके साथ मिलता कर ली थी। अब भी आलबुकार्कने उन्हें कहला भेजा कि, 'आपको ही कालिकडके राजा वनावेंगे। सामरी-राजकी विषप्रयोग द्वारा हत्या करना ही आपका कर्च व्य है।' राजभाताने आलवुकाक के इस घृणित प्रस्तावको स्वीकार कर लिया । थोडे ही दिनोंके वाद विपपानसे सामरीराज कराल कालके गालमें फंसे। उनके साथ कालिकटमें हिन्दू और मुसलमानकी प्रधानता थी, वह भी जाती रही। भातृहन्ताने अव सिंहासन पर बैठ कर पुर्च गीजोंको अपने यहां बुलाया। धूर्त पुर्स गीजोंकी वहत दिनोंकी आशा पूरी हुई। मुसलमान लोग अत्या-चारके भयसे कालिकट छोड़ कर भाग गये। आलवु-काक<sup>8</sup> दलवल समेत भ्रातृघाती सामरीराजकी सभामें पहुंचे। सामरीने पुर्त्त गीजोंके इच्छानुसार ही दुर्ग वनानेका हुकुम दे दिया। समुद्रके किनारे और वन्त्रके मध्यस्थल पर दुर्भेच दुर्ग वनाया निया। उपयुक्त पुर्त-गीज सेनापति दुर्गरक्षामें नियुक्त हुए। सामरीराजने सुवर्णाक्षरसे सन्धिपत पर हस्ताक्षर कर दिया और पुर्त गालराजसे उनका मित्रताज्ञापकपत्र लानेके लिये एक राजदूत पुर्त्तंगाल भेजा। पुर्त्तंगालराजने उस दूतकी सम्मानरक्षा की और वे अपने हाथसे पत्र लिख कर सामरीराजके साथ मिलतास्त्वमें आबद्ध हुए। दोनोंमें यह शर्त उहरी, कि सम्पद् विपद्भें एक दूसरेकी सहायता करेंगे।

१५१३ ई०की २४वीं दिसम्बरको पुर्त्तगीजींके साथ सामरीराजकी जो सन्धि हुई, उसमें इस प्रकार लिखा था—

"प्रवाल, रेशमोबस्त्र, पारद, सिन्दूर, तांवे, केसर, सीसे, फिटकरी और पुर्तगालसे भागत दूसरे दूसरे वाणिज्यद्रव्योंकी पूर्ववत् वन्दर और पुत्त गीजोंकी कोठीमें विकी हो सकेगी। सामरीराज भी अपने राज्यमें जितने प्रकारके गरम मसाले और भेषजद्रष्य उत्पन्न होते हैं, सर्वोक्ती रक्षनीके लिये पुत्त गीजोंको अर्पण करेंगे। पुत्त-गीज भी जो सब द्रव्य खरीदेंगे, राजाकी उसका महसूल देंगे। सामरीराजके अधिकारके मध्य हरमुज, खम्मीत, सुमाला, सिहल आदि स्थानींसे जो सव मुसलमानी जहाज आवेंगे, उनसे उपयुक्त महस्रूल लेना होगा। कन्ननूर और कोचिन छोड कर और तिस किसी स्थान-का जहाज काल्किटमें 'पासपोर्ट' लेने आवेगा, पुर्तागीज उन्हें 'पासपोर्ट' दें गे। देशीय और अथवा कोई पुर्त-गीज यदि आपसमें छड़ाई फगड़ा करे, तो सामरी-राज देशीय व्यक्तिका विचार और पुर्त गीजदुर्गाध्यक्ष पुत्त गीजका विचार कर उपयुक्त दण्डविधान करेंगे। सामरीराजकी जो आय होगी, उसका आधा राजा और आधा पुर्संगालराज पावेंगे। सामरीराजके प्रयोजन होने पर पुत्त गालराज सैन्य द्वारा उनको सहायता करेंगे, उघर सामरीराज भी सैन्य द्वारा पहुंचानेको वाध्य हैं। पुर्त्त गीजगण गोलमिर्च अथवा जो कोई द्रव्य खरीदेंगे, उसका उचित मूल्य देनेको वाध्य होंगे और राजा उसका महसूल नगदमें वसूल करे'गे।"

उक्त सिन्धकी खबर कीचिनराजको लग गई। पुर्तं-गीजगण उन्हें वार बार आशा देते आ रहे थे, कि मौका पा कर वे सब मिल कर उन्होंको भारतके प्रधान राजा बनावेंगे। किन्तु अभी कालिकटको जो सिन्ध हुई, उसमें पुर्तंगीज-शासनकत्तांने कीचिनराजको घूणाक्षरमें भी अपना अभिप्राय जानने न दिया। कोचिनराजने नितान्त दुःखी हो पुर्तंगालराजको इन सब विषयोंकी खबर दी। किन्तु पुर्त्तंगालराजने उनके पत पर जरा भी ध्यान न दिया। जिन पुर्त्तंगीजोंके लिये पूर्वतन कोचिनराजने अपने प्राण तक विसर्जन कर दिये थे, जिन्हें आंश्रय दे कर कोचिनराज देशीय दूसरे दूसरे

राजाओं के शतु वन गये हैं, 'उस पुत्त' गोज जातिकी खार्थपरता देख कर उदारचरित को चिनराज वड़े विस्मित और मर्माहत हुए। आल बुका के प्रत्येक पत्नमें पुत्त गालराजको सूचित करते गये कि, "उनके विपक्षमें राजाके समीप जो कोई किसी प्रकारकी चर्चा करेगा, उसे राज्यका घोर शतु समक्षना राजाका प्रधान कर्त्त है।"

कन्नमूरमें रहते समय आल्युकाकको खबर लगी, कि तुरुक, मिस्न, अरव आदि स्थानोंके अधिपतियोंने पुत्तं गीजोंका दमन करनेके लिये विशेष आयोजन किया है और वे भारतीय राजाओंको भी उत्ते जित करनेके लिये दूत द्वारा प्रसुर अर्थ मेज रहे हैं।

पुर्त्त गीजोंके आदेन-वन्दर आक्रमण करनेके वाद मल-वार उपकूलमें उत्कृष्ट अफीमकी आमदनी वंद हो गई। १५१३ ई०की १ली दिसम्बरको आलबुकार्कने इस अफीम-की आवश्यकताके सम्बन्धमें पुर्त्त गालराजको एक पत इस प्रकार लिखा,—

"में आपको सामान्यद्रव्यकी वात नहीं लिखता। यदि आप मेरी वात पर विश्वास करें, तो आजोर्सके पोस्तेको हैं हीको तमाम पुर्त्तगालमें खेती कराना कर्त्तव्य है। कारण, पहले यहां जिस मूल्य पर अकीम मिलती थी, अभी आठ गुना दाम देने पर भी वह नहीं मिलती। यदि प्रतिवर्ष एक जहाज अफीम वहांसे भेज सकें, तो खर्च वाद दे कर यथेए लाभ हो सकता है और अधीन भारतवासियोंकी भी जीवनरक्षा हो सकती है। अफीम-का सेवन नहीं करनेसे भारतवासी नहीं वचेंगे।"

१५१४ ई०की जनवरीमें आलबुकार्कने गोआ आ कर देखा कि, पेगु, श्याम आदि नाना दूर देशोंसे राजदूत आ कर उनकी अपेक्षा करते हैं। पुर्त्त गालराजके साथ मिलता करने और मलका आदि स्थानों पर वाणिज्यस्थापनके उद्देश्यसे वे लोग आते हैं। पुर्त्त गालराजको जो उपढ़ौकन देनेके लिये वे अपने साथ नाना उपहार लाये थे। आलबुकार्कने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया।

इसके वाद दीउ नामक द्वीपमें दुर्ग वनानेकी कामना-से वे उद्योग करने लगे। वहांके अधिपितको सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति छेनेके किये उन्होंने पेरो-काइ-मदो और गणपति नामक एक गुजराती भाषाश्च हिन्दूको दूत वना कर भेजा । सम्मात्के अधिपतिने इस विषयमें यथेष्ट सहायता की थी । लाख चेष्टा करने पर भी पुत्त गीज लोग दीउ द्वीपमें दुर्ग न वना सके। पीछे नरसिंहराज और आदिलशाहने आलवुकाक<sup>°</sup>के पास दूत भेजा। आलवुकाक ने पहले भारकलमें कोटो खोलनेके लिये नरसिंहकी जैसी खुशामद की थी, अभी वह भाव उन्होंने नहीं दिखाया। अभी उन्होंने कहा, 'उपयुक्त अर्थ पानेसे वे नरसिंहराजके निकट पुत्त गीजसेना और घोडे भेज सकते हैं। पर हां, इतना कह सकते हैं, कि वे नर्रासहराजसे कभी भी शबुता नहीं करेंगे।' पीछे उन्होंने आदिलशाहके दूतसे कहा, 'आदिलशाहने जो सव पुत्त गीज रखे हैं, उन्हें यदि वे गोआ भेज दें, तो सन्धिके प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है।' आदिलशाहने वहतसे पुर्व गीजों को गोआ भेज दिया। इन लोगों ने आदिलशाहका पक्ष अवलम्बन किया था. इस कारण आलबुकाक ने इन्हें दुर्गमें कैद कर रखा।

हरमुजके पूर्वतन अधिपतिको मृत्यु हो जानेसे वहां एक दूसरे शासनकर्ता नियुक्त हुए थे। ये नाममातके शासन कर्ता रहे, न्रउहीन नामक एक अमीर ही सर्वे-सर्वा थे। पुत्रे गीजोंके साथ उनका सन्द्राव नहीं था। पुत्त गालपोताध्यक्ष पेरो-दा-आलबुकाक ने उनकी कट नीतिसे वड़े कौशळसे पुत्त गीज सार्थरक्षा की थी। धीरे धीरे हरमुज द्वीपमें नूरउद्दीन और उनके भाई ही प्रवल हरमुज-अधिपति उनके हाथके खिलौने थे। हो उठे। दोनों अमीरकी असाधारण क्षमतासे वहुतसे छोग वागी हो गये। इसी मौकेमें पुर्त्त गोजगण हरमुजको जीत कर पुर्त्त गालराजकी विजयपताका फहरानेकी कोशिश-में थे, पर सभी चेष्टाएं निष्फल गई। वे जहाज लूट कर अर्थ संग्रह करके आफन्सो-दा-आलबुकाकंके निकट उपस्थित हुए। अपने भतीजेसे आद्योपान्त कुछ वृत्तान्त सुन कर वे उसी समय हरमुजकी ओर खाना -हुए (१<sup>.,</sup>१५ ई०को २१वीं फरवरी) । इसी समय आिंव्शाहका दूत सन्धिका प्रस्ताव छे कर वहां उप-स्थित हुआ, पर इस सम्बन्धमें अभी कोई बातचीत न छिडी ।

मस्कट शहरमें आ कर आलबुकार्कने सुना, कि हर-मुजमें घोरतर विद्रोह उपस्थित है। नूरउद्दीनके भतीजे हामिद्ने दुर्ग और प्रासाद पर अधिकार कर लिया है और उनके हाथसे हरमुजके अधिपति तथा नूरउद्दीन सपरि-वार वन्दी हुए हैं । आछबुकाक वड़ी तेजीसे हरमुज आये और यहां तोपध्वनि करके उन्होंने अपना आगमन-संवाद स्चित किया। हामिदने भयभीत हो अधिपति और नूरउद्दीनको मुक्त कर दिया । पीछे उन्होंने उपहार द्रव्यके साथ सन्धिका प्रस्ताव ले कर एक दूत भेजा। पुर्त्त गीज-प्रतिनिधिने दूतका खूव सत्कार किया और जाते समय कह दिया, 'यदि पुत्तीगालराजकी विजय-पताका राजप्रासादके शिखर पर गाड़ दी, ती पुर्त गाल सन्त्रि कर सकते हैं।' आखिर हुआ मी यही, निर्वोध हामिदने पुर्त्तगालराजकी पताकाको प्रासादकी चूड़ा पर सुशोभित किया । समस्त पुत्तं गीजोंने एकवारगी तोपध्विन करके राजपताकाकी सम्मान-रक्षा की। हर-मुजके अधिवासियोंने समका, कि हरमुजशहर पुर्र गीजों-के हाथ लग गया। आखिर हुआ भी वही। १५१५ ई०की १ली अप्रिलको आलवुकार्कने दलवलके साथ जहाज परसे उतर कर राजप्रासाद तथा दुर्ग पर अधि-कार किया और हामिदको मार डाला । पीछे समी अमीर उमरावके सामने उन्होंने हरमुजने उंस वन्दी नर-पतिको राजा कह कर घोषणा कर दी। इसके वाद सेख इस्माइलके यहांसे दूत आया । आलवुकाकने भी यह संवाद दे कर एक दूतको इस्माइलको सभामें मेजा, कि वे कायरोके सुलतानको परास्त कर आपको सहायता कर सर्वेगे।

हरमुजद्वीप पुर्त्त गीजों से सम्पूर्ण करायत्त हुआ।
नाममालके राजा रहे। पुर्त्त गीज दुर्गाध्यक्षकी सम्मितिके विना राजाको कोई कार्य करनेका अधिकार न रहा।
इस प्रकार हरमुजमें पुर्त्त गालको गोटी जम गई। अव
आलवुकार्क आदेन वन्दर जीतनेका आयोजन करने लगे।
उस समय पशियामें कालिकट, हरमुज और आदेन ये
तीनों ही सर्वप्रधान वाणिज्यक्षेत गिने जाते थे। पहले
दोका वाणिज्य पुत्त गीजों के अधिकारमें आ गया, केवल
तीसरा आनेको वाकी है। उन्हों ने सीचा यह तीसरा

केन्द्रस्थल यदि उनके हाथ लग जाय, तो पुत्त गीज जाति पशियामें वाणिज्य-जगत्की सर्वमयकर्त्ता होगी और पुत्त गालराज भी समस्त सभ्य जगत्में ऊ वा स्थान पार्वेगे । इसं बार आछवुकार्क पहलेसे भी ज्यादा आयोजन करने लगे । उन्हों ने फनसेको नामक अपने गुमाश्तेको प्रचुर अर्थ दे कर अनेक युद्धोपकरण संप्रह करनेके लिये भेजा। चेमा और नाना स्थानों के मुसल-मान -राजाओं के निकट दूत मेज कर भय मैती दिखलाते हुए वहुतों को वशमें कर लिया। किन्तु इस वार चारों ओर सुविधा रहने पर भी विधाता वादी हो गये, आलवुकार्क असुस्थ हो पड़े। दिनों दिन उनकी वोमारी बढ़ने लगी । २०वीं जनवरीको उन्होंने अपने आत्मीय और प्रधान प्रधान पोताध्यक्षके सामने अपने भतीजेको हरमुजका दुर्गांध्यक्ष वनाया । दुर्गं रक्षाके लिये उपयुक्त उपदेश दिया और हरमुजके पूवतन राजा सैफ उद्दीनके नावालिंग दोनों पुत्नोंको उनके तत्त्वावधानमें रखा। वे जानते थे, कि पेसा नहीं करनेसे वत्तमान हरमुजा-धिप सुविधा पानेसे ही उन दोनों राजपुत्नों को मार **डालेगा । ८वीं नवम्बरको उन्हों ने हरमुजसे** अन्तिम विदाई ली। भारतकी ओर उनका जहाज अप्रसर हुआ।

मस्तरके निकट कलहार नामक स्थानमें जब उनका जहाज आया तब नाविकोंने एक मुसलमानी रणपोत पर आक्रमण कर दिया। इस रणपोतमें आलबुकाकं के नामसे एक पल था। पल पढ़ कर आलबुकार्कने समका, कि पुर्वा गालराजने शहकी प्रतारणामें भूल कर उनके स्थान पर लोपो सोयारेसको भारतका शासनकर्चा और सर्वप्रधान पोताध्यक्ष बना कर मेजा है। पुर्वा गीज वीर पल पढ़ कर मर्माहत हो वोले, "मैंने राजाके निकर जनताके निकर बदनामी उठायी। क्या हो अच्छा होता, यदि इसके पदले मेरो मृत्यु हो जाती।"

उक्त मुसलमान-रणपोतमें हरसुजपितके नाम पक और पत था जिसमें लिका था, "यदि अव तक आलबु-कार्कने हुर्ग पर अधिकार न किया हो, तो किसी हालत-से कुछ दिन और उसे वचाये रखें। कारण, एक और दूसरे शासनकर्ता जा रहे हैं, वे आप लोगोंकी इच्छा पूर्ण करेंगे। पुर्तागालराजसे यद्यपि आलबुकाक हतमान हो गये थे तो भी उन्होंने पुर्त्त गीजजातिसे भूल कर भी शबुता करना न चाहा। उन्होंने उसी समय पबको जला डाला और मुसलमानोंको हरमुज जाने दिया। अव आलयुकार्कने केवल प्रधान कर्मचारीको अपने पास रख कर इच्छापब ( Will ) प्रस्तुत किया जिसका प्रथम इस प्रकार था—

'गोआमें मेरे यत्नसे जो गिर्जा बनाया गया है उसी-में मेरी समाधि वने और मेरी एक खएड अस्थि पुर्ज-गालमें मेजी जाय।'

पीछे वीच समुद्रमें वैट उन्होंने मृत्युका दिन निकट जान कर ६ठीं दिसम्बरको एक पत्न पुर्त्तगोलराजके पास इस प्रकार लिख भेजा—

'महानुभव! यह पत अपने हाथसे लिख न सका, लिखनेकी अव मुक्तमें सामर्थ्य रह न गई। मृत्यु वहुत करीव है। मेरे यहां पर केवल एक पुत्र है, मुक्ते जो कुछ है, उसीको सौंप जाता हूं। आपके श्रीपदमें भारत-का सर्वप्रधान स्थान अपण किया है। मैंने जो कुछ किया है, उसे आप भूलेंगे नहीं। मेरे लिये मेरे पुत पर स्थाल रखेंगे।'

१५वीं दिसम्बर शनिवारकी रातको उनका जहाज वहुत धीरे धीरे उन्होंके प्रीतिप्रद गोआवन्दरमें उपस्थित हुआ। उनका मुमुर्वकाल उपस्थित जान कर गोआके सवप्रधान धर्माध्यक्ष ( 'icar general ) उनके शान्तिविधानके लिये जहाजसे वहां पहुंचे। उन महावीरने जीवनके शेवकालमें अपने रणवेशको उतार खृष्टान साधुके परिच्छेदसे निज देहको भूषित करनेका हुकुम दिया। धर्मालाप करते करते रिववार ब्राह्मसुद्ध में पुत्त गाल-राज्यके एक महायुरुवने इस लोकका परित्याग किया। गोआके पुत्त गीज गिजीमें वड़ी धूमधामसे उनको समाधि हुई। पुत्त गालराजने कहला मेजा, कि "जब तक आल-वुकाकको अस्थि भारतमें रहेगी, तब तक पुत्त गीजजातिको भारतमें कोई विपद्व नहीं है। अतः उनकी अस्थि पुत्त गाल भूल कर भी न मेजी जाय।'

Vol. XIV. 43

आलबुकार्फने अलेकसन्दरकी जीवनी पढ़ों थी। उनकी जीवनी भी उसी माकिदन महाबीरके आदर्श पर परिचालित हुआ था। उनके मृत्युकालमें चारों ओर पूर्णशान्ति विराजमान थी। भारत-उपक्लके साथ मलका, सुमाबा, सिंहल आदिका वाणिज्य निरापद्से बलता था।

१५१५ ई०की ८वीं सितम्बरको छोपो सोमारेसने
गोआ आ कर शासनमार प्रहण किया । शासनमार
प्रहण करते ही वे प्वतन दुर्गाध्यक्ष और कप्तानोंके स्थान
पर नये नये आदमीको मसी करना शुरू कर दिया और
सभी काय मनमाना करने छगे । उनके आचार-व्यवहार पर सभी मंतुष्य विरक्त हो गये । कोचिन आ कर वे
अन्यान्य कार्य करने छगे, इस पर कोचिनराज भी बहुत
विगड़े । एक पुर्वगीज पेतिहासिकने छिखा है, "अभी
भद्र छोगोंका व्यवहार विछक्तछ उछट गया । उन्होंने
वाणिज्य-व्यवसाय छोड़ दिया और अपने मानसम्भ्रमकी
रक्षाके छिये धनरत्वको अपेक्षा अस्त्रशस्त्रको हो अधिक
पसन्द किया । अभी जहाजके कप्तान ही प्रधान विणक्
हो गये । सुतरां मान अपमानमें, यश अपयशमें और
आदेश उपहासमें परिणत हुआ।"

सच पूछिये तो इस समय धर्मका ढोंग करके पुर्तं -गीज याजकोंने तथा वाणिज्यके नाम पर जहाजके कप्तानों-ने यहां तक कि पुर्त्वं गीज सैनिकसे छे कर मांकोमछाह पयन्त सर्वोंने घोर अत्याचार करना आरम्म कर दिया। पहले पुर्त्वं गीजोंने आ कर अपने अपने खाथसाधनके लिये जैसा व्यवहार किया था, आज कलके अविचार और उत्पीड़नकी तुलनामें वह कुछ भी नहीं है।

अरबसमुद्रमें सुलतामका प्रभाव सर्व करके पुर्त-गोजोंकी प्रधानता स्थापित करनेके लिये पुत्त गालराजने लोपो सोआरेसको भेजा था। अभी राजप्रतिनिधि ( ट्वीं फरवरी १५१६ ई० ) राजाका आवेश पालन करनेके लिये २७ जहाज, १२०० पुत्त गोज

<sup>\*</sup> इस पुत्रने एक सम्त्रान्त भारतमहिलाके गर्भसे अन्म-प्रदण किया था।

क्ष किन्तु इवके पनास वर्ष बाद (१५६६ रे०की १८वाँ मर्डको) आलबुकाकेकी शन्तिम इच्छा पूरी करनेके लिये इनकी शस्मि लिसबन नगरमें काई गई और बनी धूमभामसे किसी निर्देष्ठ स्थानमें रखी गई थी।

और ८०० मळवारी-सैन्य तथा ८०० मळवारी नाविक ले कर दौड़ पड़ें। इस समय आदेन आसानीसे पुत्त गोजोंके अधिकारमें आ जाता, पर राजप्रतिनिधिकी वेवक्फोसे ऐसा न हो सका। आदेन पहुंच कर पुर्त-गीजोंने तोपध्वनि की जिससे वहांके शासनकत्तांने विना किसी छेड़ छाड़के दुर्गद्वार खोल दिया और पुर्त्त गाल-राजकी अधीनता स्वीकार कर ली । उनकी मीटी मीटी वातोंसे संतुष्ट हो लोपोने और कुछ भी न किया, वरन् उनसे संवाद पा कर वे सुलतानके जहाजको ध्वंस करने-के लिये अरवसमुद्रकी ओर चल दिये। किन्तु लाख वेपा करने पर भी वे खुलतानका वाल वांका कर न सके। नाना स्थानोंमें उनका वल-क्षय होता गया। आखिर रसद घट जानेसे वहुर्नोंकी जान भी गई। सुविधा न देख वे वहांसे छीटे, किन्तु छीटते समय आदेनमें प्रवेश कर न सके। इस वार आदेशकर्त्ता विशेषरूपसे डटे हुए थे। पुर्त्त गीजोंके पक्षमं सुविधा न होगी, ऐसा समभ लोपोने भग्नमनोरथ हो आदेनका परित्याग किया। १५१६ ई०के सितम्बर मासमें वे गोआ पहुंचे, किन्तु यहां अधिक काल दहर न सके, तुरत कोचिनके लिये खाना हो गये। २५वीं सितम्बरको कोलम्बकी रानी और उनके अधीन सामन्त राजाओंके साथ छोपोंने सन्धि कर छी। इस पर रानीने सेण्ड-टामस-गिर्जाका पुनः निर्माण कर दिया और ५००० मन गोलिमर्च देनेकों राजी हुई'।

पुर्त गोज प्रतिनिधि जिस समय अरवसमुद्रमें थे, उसी समय आदिछशाहने गोआ जितनेके लिये अंकुश खाँको भेजा था। लोपो उसी समय गोआ आये और उपक्लवर्त्ती सभी स्थानी पर दखल करनेके लिये गोआके सौन्याध्यक्ष गोटेरी-डि-अनरोकी हुकुम दिया। पुर्त्तगोज-सेनापितने पएडा पर चढ़ाई कर दी, पर इतकार्य न हो वे अन्तमें २०० सेनाको लो कर लीटनेको वाध्य हुए। इसके वाद आदिछशाह बहुत-सी सेना भेज कर कई मास तक गोआमें घेरा डाले रहे जिससे गोआवासियोंको यथेष्ट दुईशा हुई। पुत्त गोज लोगकी भी रसद घट जानेसे चिन्तित थे, कि इसी समय कोलम्ब और चीनसे पुत्त-गीज रणतरीने था कर गोआको रक्षा की।

इसके वाद मलका, पद्धमा आदि द्वीपोमें भी छोटी

मोटी छड़ाई हुई थी। किन्तु पुरर्तगीज जातिके अदृष्टि-क्रमसे कोई स्रति न हुई।

पसुम्माकी ओर जाते समय (फरवरी १५१६ ई०) कप्तान टम पेरेस प्रतिकृष्ट त्फानमें पड़ कर बङ्गालमें जाने लगे। पुत्त गीज आज तक कभी बङ्गाल नहीं आये हुए थे, यही उनका पहला आगमन था। किन्तु यहां वे विशेष उपद्रच कर न सके, लूट पाट हारा कुछ रसद संग्रह कर मलकाको चल दिये। अन्तमें चीनदेश जा कर उनका प्राणान्त हुआ।

लोपो सोयारसकी शिकायत पहले ही पुर्त गालराज-के पास पहुंच चुकी थी । राजाने उन पर सन्देह करके फर्णच-दा-आलका-केवाको उनका हिसाव किताव देखनेके लिये भेजा। किन्तु प्रतिनिधिके साथ उन्हें मुलाकात न हुई। अभी पुर्त गीजोंके दो पक्ष हो गये, जिससे शासन-कार्यमें अनेक विश्वद्धुला होने लगी। दोनों ही पक्ष प्रजा-का लेहु पीनेको उतार थे। अन्तमें आलकाकेवा अप-मानित और विरक्त हो खदेशको चल दिये।

कप्तान जोन-दा-सिल-वेराने मालद्वीपके राजाको प्रसन्न कर वहां एक कोठो खालनेको उनसे अनुमति ले ली। इसके वाद सम्मान्के वहुमूल्यवान् द्रध्यपूर्ण दो पोतको हथिया कर वाणिज्य करनेकी आशासे वे वङ्गाल आये। उनके जहाज पर एक वङ्गालो युवक थे जिसने काक्वे-पोत-को लृटते देखा था। उसके मुखसे जहाज लूटनेका संवाद पा कर बङ्गालियोंने सिलवरोको जलदस्यु समक्ष लिया। अतः कोई भी उन्हें माल देनेको राजी-न हुए। चीनदेशसे जोन कोयलही आ कर यहां पर सिलवरोसे मिले। आरा-कनके राजाने अपने यहां बुलाया, किन्तु वहां भी वाणिज्यकी कोई सुविधा न हुई। अतः वे कोलम्बोको वापिस आये। यहां फिर एक पत्थरका दुग वनाया

इसके बाद श्याम, पेगू, बंदम आदि राज्योंके साथ सिन्ध फरके छोपो वाणिज्य चलाने लगे। सभी स्थानों-में पुर्च गीजोंकी वड़ी वड़ी कोठी खोली गई। लोपो सोआरेसके भाग्यमें शुभ दिन आ ही रहा था, कि इसी बीचमें पुर्च गालराजने उनके आवरणसे असन्तुष्ट हो लोपेज-दा-सेकु-इराको भारतका शासनकर्त्ता और सर्वप्रधान पोताध्यक्ष वना कर भेजा। २०वीं सित-म्बर (१५१८ ई०)-को कोचिन जा कर इन्होंने लोपोसे शासनभार प्रहण किया। लोपो हताशहृद्यसे देशको लीटे।

#### लोपेस दा-सेक्ट्राका शासन।

पुर्तगीज गवर्नर सेकुइराके प्रथम शासनकालमें दुर्ग वनानेकी कोशिश होती थी। भारतवर्षमें अच्छी कमान वा गोला गोलो नहीं मिलनेके कारण, जिससे भारतमें उत्कृष्ट अग्न्यस्त्रादि प्रस्तुत हो, पुर्तगीजोंके यत्नसे उसका भी आयोजन होने लगा। इसी समय ब्रह्मदेशके मर्त्त वान शहरमें पुत्त गीजोंकी एक वड़ी वाणिज्यकोठी खोली गई। अब यहांसे पूर्व भारत और ब्रह्मदेशके नाना द्रन्योंकी यूरोपमें रफ्तनी होने लगी।

मालद्वीप आदि स्थानोंमें भी कोटा वनानेके वहाने हे उन्होंने दुर्ग वना डाला। पुत्त गोजोंको नृशंस डंकैत समभ कर अधिवासियोंने उन्हें किसी प्रकारकी वाधा न दी।

१५२० ई०की १३वीं फरवरीको राजप्रतिनिधि दिओगो-छोपेस आदेन और अरव समुद्र जीतनेको अप्र-सर हुए। किन्तु विशेष क्षतिप्रस्त हो उन्हें हरमुजकी ओर भाग जाना पड़ा।

जिस समय दिओगो-लोपेस आदेनकी ओर रवाना हुए, उसी समय आदिलशाहके साथ विजयनगराधिप कृष्णराजका युद्ध चल रहा था। कृष्णराज अनेक सैन्य ले कर तीन मास तक "रायचूड़"में घेरा डाले रहे। कृष्णीवाम- फिगुइरा नामक एक पुत्त गीज दुर्गाध्यक्षने ससैन्य आ कर कृष्णराजका पक्ष अवलम्बन किया और उन्होंकी सहायतासे कृष्णराजने रायचूड़ पर दखल जमाया। इसी सुयोगमें गोआके पुत्तगीज-सेनापित चौकी-दार राइ-दि-मेलोने २५० अभ्वारोही और ८०० कर्णाटी ले कर गोआके निकटस्थ मुसलमानाधिकृत अनेक स्थानों-को दखल कर लिया।

१५२१ ई०की ६वीं फरवरीको सेकुइराने २००० पुत्त गीज और ८०० मळवारी तथा कणाड़ी-सेन्य छे कर दीउ पर धावा वोळ दिया, किन्तु इस वार भी उनकी वैद्या व्यर्थ नहीं।

मृत आलवुकाकके भतीजे जाज-दि-आलबुकाक वण्टं होते हुए मलाकस (गरम मसालेका) द्वीपमें पुत्त-गीज दुर्ग वनानेके लिये मेजे गये । यहां उन्होंने देखा कि स्पेनियार्डने पहले ही आ कर यहांके राजासे सन्धि कर ली है। अनेक चेष्टा करनेके वाद गुजराती वणिकों-की सहायतासे पुत्तेगीजों ने तार्णेतद्वीपमें एक दुर्ग वनाने-का आदेश पाया। यहां पुत्तेगीज और स्पेनियार्डोंके स्वाथ ले कर पुत्त गालराज और स्पेनराजके वीच घिरोध उपस्थित हुआ था।

इसी समय कोचिनराजने वदला चुकानेके लिये ५०००० नायर सैन्य ले कर सामरीराज पर आक्रमण कर दिया। पुर्त्त गीज लोग सामरीराजके साथ सन्धिस्तमें आवद्ध रहने पर भी भीतर ही भीतर पुर्त्त गीजसेना भेज कर कोचिनराजकी सहायता करने लगे। इस वार सामरीराज भारी विपद्में पड़ गये, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु ब्राह्मणोंने उनका पक्ष लिया और पुर्त्त गीजों को आश्रय दिया है, ऐसा कह कर वे खदेशवासियों को शाप देने लगे। उनके शापके भगसे किसी भी नायर सेनाने सामरीराजके विरुद्ध अख्यारण करना न चाहा। कोचिनराज भग्नहदयसे अपने राज्यमें लीट जानेको वाध्य हुए।

सेकुइराका शासनकाल शेव हुआ । देशीय सभी विणक् उनके शासनसे विरक्त हो गये थे । पुत्त गीज-शासनकर्ताकी अनुमति ले कर वे अपने जहाजों को दूर देश तो भेज सकते थे, पर पुत्त गीज प्रधान मोका पानेसे ही उनका माल लूट लेते थे। इस कारण कन्त-नूर आदि नाना स्थानोंसे पुत्त गालराजके निकट अभियोग पहुंचने लगे । पुत्त गालराजने सेकुइराके उपर असन्तुष्ट हो कर डम-दुआर्चे -दि-मेनिजेसको शासनभार लेनेके लिये भेजा।

## डम-इथार्से-डि-मेनिजेस।

१५२२ ई॰को २२वीं जनवरीको मेनिजसने शासन-भार ब्रहण किया । इस समय हरमुजद्वीपमें भारी गोल-माल चल रहा था । पुत्त गीज कर्मचारियों के दुर्व्यव-हारसे द्वीपके सभी मुसलमानोंने मिल कर पुत्त गीजों पर आक्रमण किया थां। डम दुआतें ने पहले कई दल सेना मेजो, पीछे खुरसे जा कर हरमुजमें अच्छी तरह अपना आधिपत्य जमाया। इस वार हरमुजके सभी मुसलमान अधिवासी निरस्न कर दिये गये। अद वहां-के मुसलमान राजाके कुछ शरीररक्षककी छोड़ कर और किसीको भी अस्त्रधारणका अधिकार न रहा।

ठीक इसी समय आदिलशाहने गोआके निकटवर्ती अपने पूर्वाधिकृत स्थानींका पुर्त्तगीजींको परास्त कर पुनरुद्धार किया।

इस समय चट्ट्यामके निकटवर्ती वङ्गोपसागरमें पुर्त्तभीज दस्युगण भारी उत्पात मचा रहे थे। अनेक अपराधी और नीच श्रेणीके पुर्त्तभीज पुर्त्तभीजशासनका परित्याग कर दूर देश भाग आये थे। वे सब दुर्वृ च छोटे छोटे दछोंमें विभक्त हो समुद्रके मध्य दस्युवृत्ति द्वारा जीविका चलाते थे।

भारतके पश्चिमी समुद्रमें पुत्त गीजशासनकर्ताके आदमी रहनेके कारण उन्हें दस्युपृत्तिकी सुविधा नहीं मिलती थो। इस कारण वङ्गोपसागरमें उन्होंने अपना अड्डा जमाना पसन्द किया था।

इस समय सुमाताद्वीपमें आचिन और पेदिएके राजामें वमसान युद्ध चल रहा था। पसुमा भाग कर पेहिएके राजाने पुर्त गीज दुर्गाध्यक्षका आश्रय लिया। आचिन-राजको जब मालूम हुआ, कि दुर्गाध्यक्षने पेदिरराजकी सहायता की है, तव उन्होंने कट पसुमा पर आक्रमण कर दिया। दुर्गाध्यक्ष डम आण्ड्रीने सहायता मांगनेके लिये एक दूत चहुप्राम भेजा। चहुप्रामसे सहायताके लिये कुछ जहाज भेजे गये। किन्तु राहमें पुर्व गीज जलदस्युगणने उन्हें लूट लिया। पीछे जहाजके सभी योद्धा उनके दलमें मिल गये। इस प्रकार पुर्व गीज दस्युको संख्या धीरे धीरे बढ़ती गई।

इसके पहले पुर्त गोजीने वोणिओद्वीप जीतनेकी चेष्टा की थी, पर कीई फल न हुआ था। इसी कारण जार्ज-दा-आलवुकार्क संसैन्य वहां मेजे गये थे। उन्होंने १५२८ ई॰की १ली जनवरीको पुर्त गालराजको जो एक पत्र लिखा था उससे जाना जाता है, कि उस समय बोणिओ 'कपूरदीप' नामसे प्रसिद्ध था। यहां कपूर प्रसुर परिमाणमें उत्पन्न होता था। वङ्गदेश, पुलिकट,

विजयनगर और मलवार उपकूलमें उस कप्रकी रहनी होती थी। वीर्णिओद्वीप मुसलमानराजके अधीन रहने पर भी जिस अंशमें कप्र उपजता था अर्थात् कप्रद्वीप उस समय हिन्द्राजके अधीन था। के वे वीर्णिओराजसे कारने और बङ्गदेशजात कपड़े ले कर उसके बदलेमें कप्र देते थे।

डम दुआर्त्तं के समयका और कोई विशेष उद्घे खयोग्य विवरण नहीं मिलता । उनके शासनकालमें कोई अच्छा काम नहीं हुआ । वे तो खयं अर्थसञ्चय करनेके लिये आये थे, सुतरां उनसे सुविचारकी आशा दुराशामात थी । उन्होंने प्रचुर अर्थ सञ्चय करके अपना पेट भर लिया था । उन्होंका पदानुसरण करके ही अनेक पुर्वं-गीजोंने दस्युवृत्ति आरम्भ कर दो थी। इसी कारण उन्होंने 'पुर्वंगाल-कलङ्क' ऐसा नाम पाया था।

द्वम भारको छिन्गामाका शासन।

पुर्त गालने समभा, कि नीचवंशके हाथसे शासन-कार्य अच्छो तरह नहीं चल सकता। इसीलिये इस वार उन्होंने डम-भास्को-डिगामा (Conde-de-vidigueira) को अपने प्रतिनिधिकपर्मे भारत भेजा।(१) उनके साथ उनके दो पुल डम एस्तेवन-डि-गामा(२) और डमपालो डि-गामा, एतिज्ञन्न पुर्त गालराजके निकट सम्पर्कीय अनेक सम्मान्त व्यक्ति (कुल ३००० मतुम्ब) आये थे।

१५२४ ई०की २३वीं सितम्बरको भास्को हिनामा तीसरो वार गोआमें उपस्थित हुए। उनके आगमन पर सभी पुत्त गोज फूले न समाये। इसके पहले पुत्त गीज हुर्गाध्यक्षने अन्याय और अत्याचारपूर्वक अर्धप्रहण करके समस्त गोआवासियों को विरक्त कर दिया था। अभी भास्को हिनगामाने सबसे पहले उन्हींको पदच्युत कर

<sup>#</sup> मुसलमान लोग इस राजाको 'काफेरराज' कहते थे, इसीसे किसी किसी पुरीगीज प्रत्यमें ये 'काफेर' नामसे मश-हर हैं।

<sup>(</sup>१) पूर्वतन पुरीगीजशासनकर्ती अपनेको Viceroy वा राज श्रीतिनिध बतला कर जनसाधारणमें परिचित तो ये, पर किसीने राजारे यह उपाधि नशे पाई थी। केवल डम-भारको॰ डि-गामाको ही सबसे पहले यह उपाधि मिली।

<sup>(</sup>२) वे वृत्तेगालरानके समुद्रयोताध्यक्षोंके वरदार वे ।

डम-हेनरिकको उस पद पर अधिष्ठित किया। केवल दुर्गाध्यक्षको पद्च्युत करके वे शान्त न हुए, पुत्तीगीज शासनाधीन सभी स्थानों के दुए कर्मचारियां की अलग कर विश्वासी और विज्ञ व्यक्तिको नियुक्त करने लगे। दुए सेना दुर्गसे गुप्तभावमें अख्रशस्त्र हे किसी दूसरे स्थानमें जा अर्थोपार्जनके लिये अत्याचार करती थी। इस कारण भास्कोने घोषणा कर दी, कि जिसके पास जो अल्ल है, दुर्गमें रख जाय, नहीं तो कठिन दएड भोग करना होगा, तथा दुर्गाधिपकी अनुमति लिये विना कोई भी अल्लका व्यवहार नहीं कर सकता । उन्होंने सुना, कि पुत्त गीजमेंसे कोई कोई गुप्तभावमें जहाज छे कर समुद्रपथसे विदेशीयके साथ वाणिज्य कर रहा है। इस पर वे बहुत विगड़े और इस वातकी घोषणा कर दी, कि "विना उनकी अनुमतिके कोई भी पुत्त<sup>र</sup>गीज कोई जहाज नहीं चला सकता : यदि जहाज चलाना हो, तो उस स्थानके पुत्त गीज कोठीवालसे उनका खाझरित अनु-मतिपत ले कर चलावे। जो कोई इस आदेशका उल्ल-ङ्गन कर समुद्रयावा करेगा, उसका जहाज मय मालके जन्त कर लिया जायगा।" इस प्रकार इन्होंने गुप्त व्यव-सायको वंद कर दिया।

अलावा इसके उन्होंने समुद्र और जलपथमें पुत्तं-गीज कमंचारियोंके कार्य पर लक्ष्य रखनेके लिये गुप्तचर नियुक्त किया। पीछे आप कुछ अनुचर साथ ले कन्न-नूर, कोचिन आदि स्थान देखने आये। उन सव स्थानोंमें भास्को-डि-गामाका वड़ी धूम धामसे खागत हुआ था।

इतने दिनों तक पूर्वशासनकर्ता उम-दुआर्से हरमुज-ब्रोपमें लूटपाट करते थे। नवम्बर मासमें वे नव राज-प्रतिनिधिकों कार्य समका देनेके लिये कोचिन आये। भास्को-डि-गामाने यहां उन्हें उतरने न दिया, उसी समय 'कप्टेलो' नामक जहाजसे वन्दीभावमें पुर्त्तगाल जानेको फरमाया।

पहले डम-दुआर्ते इस अपमानको सहा करनेमें प्रस्तुत न थे। पीछे अपने जहाजसे जानेको प्रस्तुत हुए। इस पर भास्कोने अत्यन्त कृद्ध हो उन्हें शासन करनेके लिये गोलागोलीके साथ रणपोत केजा।

इधर नाना कार्योमें व्यस्त रहनेके कारण मानसिक

परिश्रमसे भास्को-डि-गामां पीड़ित हो पड़े। इसी अवसरमें डम दुआत्तें ने अपने पदस्यागपत पर हस्ताक्षर नहीं किया। वरं उन्होंने कहला भेजा, कि वे दुर्गके मध्य जा अपना कार्य समका बुक्ता कर खाक्षर करनेको प्रस्तुत हैं। डम-भास्कोने उन्हें जमीन पर पैर रखनेसे निपेध किया। इस पर डम-दुआर्त्ते विना राजप्रतिनिधि आदेशके अपना जहाज ले कर चल दिये।

अलगार्भ उपकूलमें ज्योंही वे जहाज परसे उतरे त्योंही पुर्त्त गाल-राजपुरुषके वन्दी हुए ।

इघर भास्को-डि गामाका आयुक्ताल वीतने चला। जिस भारताविस्कारके लिये उन्होंने अतुल यश उपार्जन किया था, उसी भारतमें (कोचिनके सेस्ट अस्टोनियो नामक खृष्टीय मठमें) वड़ी धूमधामसे उनकी अन्तेष्टि क्रिया की गई। उनकी मृत्युके वाद उम इनरिकके शासनमार ग्रहण करनेकी वात थी, पर उस समय वे गोआमें न थे, इस कारण लोपो-वाज दा साम्पयोने तव तकके लिये शासनभार ग्रहण किया। उम हेनरिकके आने पर वे ही भारतके शासनकर्ता हुए। लोपोवाज दलवल ले कर अरव समुद्रकी ओर रवाना हुए। भास्को-डिगामाके पुत्र एस्तेवन डि-गामाने अव यहां जरा भी रहना पसन्द न किया और शीव्र ही लिसवनकी याता कर दी।

इसके कुछ समय वाद नायरोंने कालिकरके पुत्त गीज दुर्ग पर धावा कर दिया। इसका प्रतिशोध लेनेके लिये डम हेनरिक सामरीराजके अधीन पोनानी नगर जीतनेको अप्रसर हुए, दोनो पक्षमें जल और स्थलमें गहरी मुठमेड़ हो गई। आखिर नायरसेनाको ही रणमें पीठ दिखानी पड़ी। पुत्त गीजोंने नगरको अच्छी तरह लूट करके जला डाला। इसके वाद पुत्त गीजोंके साथ कालिकरमें पक भी युद्ध न हुआ, दुर्गरक्षा सुविधाजनक नहीं है, ऐसा समम पुत्त गीज लोग अपने दुर्गको ध्वंस कर वहांके कुल सामान उठा ले गये।

अनन्तर उम हेनरिकने दीउ पर अपना अधिकार जमानेके लिये यथेए आयोजन किया था, किन्तु राहमें वर्षु रको चढ़ाईमें वे परास्त हुए। अतः उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। इसके बाद वे रोगप्रस्त हो पड़े और १५२६ ई०की २१वीं फरवरीको कन्नन्र नगरमें उनकी प्राणवायु उड़ गई। उन्होंने १३ मास तक राज्य किया था।

छोपो याज-इ-साम्पयो ।

डम हेनरिककी मृत्युके वाद पेरो-मस्करेन-हसके शासनकर्ता होनेकी वात थी, पर इस समय वे मलका द्वोपमें सैन्यपरिचालन कर रहे थे। उन्हें संवाद दे कर यहां बुलानेमें अधिक समय लगता, इस कारण लोपो वाज-दा-साम्पयो शासनकर्त्ता हुए। उम हेनरिकने फ्रान्सिस्को-दा-साको शासनभार देनेकी वात कही थी, पर दासाके भाग्यमें वदा नहीं था, कोई भी उनके आदेशपत-को वाहर न कर सका।

लोपो-वाजके गोधा जाने पर फ्रान्सिस्को-दा-साने उन्हें शासनकर्त्ता नहीं माना। अन्तमें मन्तिसमाने लोपो-वाजको ही शासनकर्त्ता स्वीकार किया। यह उच्च पद पानेके साथ ही लोपोने मलका द्वीपमें पेरो-मस्करेन-इसका इसकी संवाद भेज दिया। पीछे हरमुज, चेउल आदि स्थानोंमें जा कर पुत्त गोज-कर्मचारियोंका भगड़ा निवदानेके लिये उन्होंने अरवसमुद्रकी याता की।

इधर मस्करेनहस मलकामें उम हेनरिकका मृत्यु-संवाद पा कर आप गवर्नर (शासनकर्ता) वन गये और इच्छानुसार लोग भतीं करने लगे।

इस समय मलकाद्वीपमें भारी गोलमाल चल रहा था। पुर्त गीजोंमें ही दो दल हो गये थे, एक दल तिदोर-राजके साथ सिन्ध करनेको और दूसरा उसके विपक्षमें युद्ध करनेको प्रस्तुत था। सिन्धके वाद भो जिस समय द्वीपवासी सम्भ्रान्त व्यक्तिगण राजाकी अन्त्येष्टिकियामें व्यस्त थे, उसी समय एक दल पुर्त-गीजने जा कर उन पर आक्रमण कर दिया। पुर्त गीजों-की ऐसी विश्वासघातकता पर निकटवर्ती सभी द्वीप-वासी पुर्त्तगीजों पर वड़े असन्तुष्ट हुए। इधर स्पानियाडाँने आ कर द्वीपवासियोंके साथ मेल कर लिया और पुर्ता-गीजोंको मार भगाया।

१५२७ ई॰के फरवरी महीनेमें मस्करेनहस शासन-भार प्रहण करनेके लिये कोचिनमें उतरे। कोचिनके कप्तान और कोशाध्यक्ष आफन्सो मिक्सियाने उन्हें उसी समथ यहांसे निकल जानेकी कहा । उनके तीक्ष्णालं से मस्करेनइसके कुछ अनुचर भी घायल हुए । मस्करेन-इस वड़े विस्मित और दुःखित हो गोआमें आ कर ठहरे । यहां प्रधान शासनकर्त्ता समफ कर लोग उनकी अग्यर्थना तो क्या करते, वे उसी समय वन्दी हो कर कन्ननूर्युगं भेज दिये गये । लोपो-वाजके इस अन्याय कार्य पर अधिकांश पुर्तागीज उनके प्रतिकृत्त हो हुए । कन्नन्रके दुर्गाधिपतिने मस्करेनहसको कारागारसे मुक्त कर दिया । चैउलके गर्वनर कृष्टोवाम-दा-सुजा और भारतसमुद्रके पोताध्यक्ष आएटोनिया दा-मिरन्दा मस्करेनहसका पक्ष लिया । पुर्तागीजोंके दोनों पक्षमें मनमुदाव हो जानेसे शासनकाय वंद रहा । अन्तमें सालिसीके ऊपर जव इसका भार दिया गया, तव उन्होंने लोपो-वाजको ही प्रकृत शासनकर्त्ता ठहराया । मस्करेनहस उसी समय लिसवनको चल दिये ।

अव छोपो-वाज नाना स्थानींको जीतने और नाना स्थानोमें दुर्ग वनानेका आयोजन करने छगे। मार्टिन आफन्सो नामक उनका एक पोताध्यक्ष प्रतिकुछ हवासे नागमछयमें जा छगे। यहां वे एक वड़े जहाज पर चढ़ कर वङ्गाछको चाकुरिया नामक एक प्राममें पहुंचे। यहां वे सबके सब बङ्गाधिपके कीतदास हो गये।

इसके बाद लोपोने मलवार-क्लबर्त्ती पुरकाड़ पर आक्रमण करके वहांके सभी अधिवासियोंको वड़ी वेरहमी-से मार डाला और पीछे रानीको भी कैंद कर लिया ।

इस समय चेउलके शासनकर्ता निजाम उल्मुक्क साथ काम्बेराजका युद्ध छिड़ा। काम्बेराजको पुर्त गीज की ओरसे खासी मदद मिलने पर भी निजाम उल्मुक्क ही जीत हुई। इस युद्धमें पुर्त गोजोंकी भी विशेष क्षति हुई थी। बहुत चेष्टा करनेके बाद पुर्त गीजों ने चेउल पर अधिकार तो किया, पर उनकी आशा दीउ द्वीप जीतनेकी जो थी, सो पूरी न हुई।

लोपो-वाजका दिन शेष हो चला । पुत्तैगालराज-नाना दा-कन्हाको जनको जगह पर भेजा । १५२६ ई०के अकत्वर महीनेमें नाना-दा कनहा कोचिनमें आ-कर राजप्रतिनिधि और शासनकर्ता हुए। पीछे कन्न-श्रू आ कर उन्होंने लोपोवाजको वन्दी कर पुत्तभाल भेज दिया । वन्दी होनेके समय लोपो-वाजने कहा था, 'नाना-दा-कन्हाको कह देना, कि उन्होंने मुक्ते जिस प्रकार वन्दी किया है, उसी प्रकार एक दूसरे शासनकर्ता-के हाथ वे भी वन्दी होंगे।' इस पर नानाने कहला भेजा, 'लोपो-वाज वन्दी होनेके योग्य हैं, भें नहीं।'

होपोने पुत्त गोज-राजकोपसे इच्छानुसार अर्थ प्रहण किया था, इस कारण उनको अन्तमें यही दुदेशा हुई। उन्होंके समय गोआमें राजस्वका खासा वन्दो-वस्त हुआ था।

तीस प्राप्त छे कर गीआ प्रदेश गठित था, इस कारण लोग इसे 'तीसवाड़ी' वा तीसीवारी कहते थे। प्रति प्राप्तका राजस्य वस्त्रल करनेके लिये एक एक 'प्राप्तकार' वा 'प्राप्तकर' नियुक्त हुआ था। इन ग्राप्तकारोंको सील भरमें एक वार करके पुर्त्तगोज थानेदारके निकट उपस्थित होना पड़ता था। थानेदार प्रतिग्राप्तमें जिस हिसावसे कर निर्देश कर देते थे, ग्राप्तकर लोग उसी हिसावसे ग्राप्त-वासीसे वस्त्रल करते थे। गामकर ही विलक्तल कर वस्त्रल करनेका दायी था। यदि वह वस्त्रल न कर सकता, तो उसका यथासर्वस्त्र वेच लिया जाता था।

नानी-दा-कन्हाका प्रधान उद्देश्य था-दोउद्वीप पर अधि-कार करना । किन्तु वे शोघ आयोजन करान सके । १५३० ई॰में उनको चेप्रासे मङ्ग्लरके निकट छातिम, सुरतवन्दर, अगसी नगर और सियालवेट-द्वोप आदि स्थान आकान्त हुए, पुत्त गोर्जोसे जलाये और तृटे गये थे । १५६१ ई०-में उनके हुकुमसे अनेक पुत्र गीज सेना दीउकी दखल करने गई थी । इस समय पुत्त गोज नौ-योद्धाओं ने महुवा द्वीप और घोगोबन्दर, वलेभ्बर, तारापुर, महिन्, केलबा, अगासी और सूरत आदि ( गुजरात और महा-राष्ट्रके अन्तर्वत्तीं व अनेक स्थान सूटे तथा अग्निकाएड द्वारा उत्सन्न करनेकी चेष्टा की । पीछे पुर्रा गीजोंने चेउलके राजासे अनुमित ले कर वहां एक दुर्मेंग्र दुग और कुछ गिर्जा वनवाये । इस समय पुत्त गोजों ने पुनः पत्तन, मङ्गलूर आदि कई स्थान लूटे और जला डाले। इसके वाद १२ युद्धजहाज छे कर पुत्ते गीज दमन-दुर्ग-को अवंस करनेके लिये गये थे, पर जव उन्होंने देखा, कि

कोई वश नहीं चलता, तव वसाईसे ले कर तारापुर तक सभी नगरों में उन्होंने आग लगा कर लोमहर्षण काण्ड किया था। पीछे ठाना, वन्दर, मिहम और वम्बई आदि स्थानों ने पुत्ते गालराजकी अधीनता स्वीकार की और बाध्य हो कर उन्हें कर देना पड़ा।

थानेदार और दुर्गाध्यक्षगण अपने इच्छानुसार काम काज करते थे। इस कारण वीच वीचमें राजकोपका अप-ध्यय, राजस्वका हास, नाना अत्याचार और राजपुरूषोंका उदर पूरण होता था। अभो नाना-दा-कन्हाने यह नियम चलाया, कि दुर्गाध्यक्ष विना पुत्त गीजराज-प्रतिनिधिकी आज्ञाके कोई भी कार्य अपने मनसे नहीं कर सकता।

इसके वाद मुगलोंने काम्ये पर अधिकार करनेकी चेष्टा की। काम्येपति डर कर पुत्तीगोर्जोका आश्रय लेनेको वाध्य हुए। पुत्तीगोर्जोने भो सुविधा पा कर काम्येमें अड्डा जमाया।

१५३४ ई०की २१वीं सितम्बरको पोताध्यक्ष मार्टिम् आफन्सो और नाना-दा-कन्हाके प्रधान परिचायक सिमन-फेरिराके यत्तसे दीउ-अधिपतिने पुर्त्त गीजोंसे सन्धि कर ली । पुर्त्तगीजोंको दीउ-हीपमें दुर्ग वनानेका हुकुम मिला; इस प्रकार उनकी वहुत दिनोंकी आशा आज सफल हुई। इस समय ड्य गोवोटेन्हों नामक एक पुर्त्त गीजने जैसा साहस दिखलाया था वह उल्लेखयोग्य है। इसी समय ११ हाथ लम्बी एक डोंगी ले कर वोटेलहोने दीउसे पूर्त -गालकी याता की। फरासियोंको भारतका पथ दिखलाने गया था, इस कारण वे पुत्त गालराजसे अपमानित हुए थे। अभी राजाकी प्रसन्नता पानेकी आशासे वे किसीकी विना कुछ कहे सुने शुभ संवाद देने चले। याताकालमें उनके साथ कुछ मांकीमलाह भी थे, पर समुद्रमें वे सबके सव विनष्ट हुए। अकेले उस छोटी डोंगीको खे कर बोटेलहो लिसवन नगरमं पहुं चे। पुर्त्त गालराजने उनके असीम साहसकी भूरि भूरि प्रशंसा की, पर उनका भाग्य चमकने नहीं पाया।

१५३६ ई॰में नाना-दा-कान्हाने स्वयं जा कर वसाई नगरमें एक दुग वनवाया।

इधर पुर्त्त गोजोंने भारतके पश्चिमउपक्रूलमें प्रायः समी प्रधान नगरोंमें पुर्तागालराजकी विजयपताका फह राई। पर इतने पर भी पुर्तागालराजकी आशानुकप अर्थ हाथ नहीं लगता था। भारत-महासागरीय द्वीपपुअमें वाणिज्य ती जीरों चलता था, पर पुर्रागीज-कसान और पुर्रागीज राजकर्मचारी ही उसके फलभागी होते थे। अभी नाना-दा-कन्हा उसके प्रतिविधानमें अप्रसर हुए। किन्तु उनका उद्देश्य ऊंचा होने पर भी वे अर्थका लोभ रोक न सके।

१५३७ ई०में काम्बेराजको मृत्यु होने पर दिछीके मुगलसमाद्के साले मीर महभ्मद् जमानने ५००० अभ्वा-रोहियों के साथ आ कर काम्बे पर दखल जमाया। पीछे वे अर्थ द्वारा पुर्रागीज शासनकर्ताको वशीभूत करके गुजरातके राजा वने। किन्तु काम्बेराजके भतीजे अह्मदने शीव ही काफो सेना संग्रह कर नवनगर राज-धानी पर चढ़ाई कर दी। महममद पक्षके बहुतोंने रिश्वत पा कर अह्मदका पक्षालम्बन किया था। फलतः मीर-महम्मद पराजित हो बङ्गदेश भाग जानेको चाध्य हुए। इस समय पुर्त्तगालराज भी बङ्गालमें वाणिज्य और पुर्ता-राजकी धाक जमानेकी फिकमें थे। इसके पहले ही कहा जा चुका है, कि मार्टिम् आफन्सो और कुछ पुर्ता गीज वङ्गालमें बन्दी हुए थे। उन्हों ने बङ्गाधिपकी ओर-से पटानों के साथ गुद्ध किया था। अन्तमें खोजा खवा-दिमको चेष्टासे वे मुक्त हुए। इसी खोजा खवादिमने पुर्त्तगालराज-प्रतिनिधिको कहला भेजा था, 'यदि मुक्ते हरमुजद्वोप भेजने सकें, तो मैं चट्टमाम वन्दरमें पुर्रागाल-राजके लिये दुर्ग वनानेकी अनुमति ले सकता हूं।

नाना-दा-कन्हाने खोजाके प्रस्तावको आह्वादपूर्वक ग्रहण किया और मार्टीम् आफन्सोके अधोन ५ जहाज ३०० योद्धायों के साथ मेजा। मार्टिम् चहुप्राप्तराजको देनेके लिये अनेक उपहार अपने साथ लाये थे। किन्तु उपहार लेनेको बात तो दूर रहे, चहुप्राप्तपितने आफन्सो और उनके १३ साथियों को कैद कर लिया। पुर्त्तगीज राजप्रतिनिधिने यह संवाद पाते हो अएटोनियो-डिस्लिमा-मेनेजिसके अधीन ३५० नी-सेना और ६ जहाज भेजे। खोजा खवादिमको सहायतासे अएटोनियोने भी विन्त्योंको छोड़ देनेके लिये पुर्त्तगोज गवर्नरका पत और देय उपहार भेज दिया। किन्तु राजासे उत्तर आनेमें

विलम्ब देख पुर्त्तगीजगण चहुमाम और उपकृलवर्ती अत्यान्य मार्गोको दृष्ध करने लगे। यह संचाद पा कर राजाने बन्दियोंके प्रति और भी कठोर व्यवहार करनेका आदेश दिया। इसके कुछ समय वाद सेरखाँने विद्रोही हो कर पुर्त्तगीजोंकी सहायतासे बङ्गाभिएको परास्त किया। इसीसे राजाने पुत्तगीज कैदिबोंको छोड़ दिया। इसी समयसे बङ्गमें पुर्त्तगीजोंका उत्पातं शुक्क हुआ।

इसके वाद पुर्त्त गीजोंने भारत महासागरमें भी और बहुतसे छोटे छोटे होपींका आविष्कार कर वहां खृपानधर्म-का प्रचार और स्थापन किया। १५३८ ई०की २८वीं सित-म्बरको तुषक्कके सुलतानने मिश्रके शासनकर्त्ता सलिमान पाशाको दीउ जीतने और वहांसे पुर्तगीजींको मार भगाने-के लिये मेजा था। यहां पुर्त्तगीज अध्यक्ष फ्रान्सिको पाचेकोके साथ सिळमानका घमासान युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें दोनों पक्षके अनेक लोग मारे गये। कमी, तुर्की और पुर्त्तगीजोंने इस गुद्धमें असाधारण वीरता दिखलाई थो । आखिर मुसलमानको गोलींसे छत्रभङ्ग हो पुत्तगीज अध्यक्ष आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए थे । केवल सिलवेरा नामक पुत्तंगीज वीरके अदम्य उत्साहसे सिलमान दुर्ग विजय न कर सके। इधर नाना-दा-कन्हा सिलमान पर आक्रमण करनेके लिये यथेष्ट सेना संप्रह कर रहे थे, किन्तु डम गासिया-दा-नोरन्हाके उनकी जगह पर राजप्रतिनिधि हो कर अनिसे उनका उद्यम वर्षे गया। सिलिमानने प्रायः ३ मास तक दीउमें घेरा डाला था ; पीछे खोजा जाफरके कुपरामर्शंसे उन्होंने घेरा उठा लिया और खदेशको याता कर दी।

द्वम गासियाके साथ काष्ट्रिल-निवासी जोवा-दा-आलबुकाके पुर्त्तगोज-भारतके प्रथम विश्रप वन कर आये। उत्तमाशा अन्तरीपसे ले कर भारत पर्यन्त सभी स्थानवासी ईसाइयोंके ये ही गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें स्थानवासी ईसाइयोंके ये ही गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें स्थानवासी ईसाइयोंके ये हो गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें स्थानवासी ईसाइयोंके ये हो गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें स्थानवासी इसाइयोंके ये हो गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें स्थानवासी प्रधान कर्य था। अभी विश्रपके आयमनसे धर्मकी तृती तमाम बोलने लगी।

गासिया कार्यभार प्रहण करनेके बाद ही दीउकी
रक्षाका वन्दोबस्त करने छगे। उन्होंने दीउ-दुगकी रक्षाके

ित्ये प्रभूत युद्धोपकरण और अनेक युद्धजहाज मेज दिये। किसी किसीका कहना है, कि पुर्त्तगीजींका युद्धायोजन देख कर ही सिलिमान खदेश वापिस जाने-को वाध्य हुए थे।

डम-गार्सिया सिलमानका प्रस्थान-संवाद पा कर निश्चिन्त हो वैठे। पीछे वे नाना स्थानोंमें घूमते हुए १ली जनवरी (१५३६ ई०)-को महासमारोहसे दीउद्वीप-में उतरे। इस बार सर्वोने दुर्गसंस्कारमें विशेष ध्यान दिया। पुर्नेगीज पेतिहासिकोंने लिखा है, कि अति शीघ दीउदुगको सुरक्षित करनेके लिये शासनकर्तासे ले कर सम्धान्त पुर्नेगीज और अपरापर कारीगर तक सर्वोन ने मिल कर संस्कारकार्यमें योगदान किया था।

पीछे तत्कालीन गुजरातके मुसलमान-सेनापित जाफरके साथ पुर्त्तगीजोंकी सिन्ध स्थापित हुई। शर्त वह ठहरी, कि दीउसे जो राजस्व वसूल होगा उसका आधा पुर्त्तगीजपित और आधा सुलतान मह्मूद शाह पांथगे।

इसके कुछ समय बाद एक भारी त्फान उपस्थित हुआ, जिससे अनेक मुसलमान और पुर्तगीज जहाज जलमम हो गये थे। स्वयं पुर्तगीज-गवर्नरने वहुत मुश्किलसे एक नदीमें प्रवेश कर जहाज समेत अपनी प्राणरक्षा की थी।

१५३६ ई०में राई लोरेन्सो-दा-टोवर वसाई नगरके अधिवासियोंके प्रति घोर अत्याचार करते थे। इस पर खोजा जाफरने दल-वलके साथ वहां आ कर लोरेन्स पर आक्रमण कर दिया। किन्तु चेउलके दुर्गाध्यक्षने उसी समय सहायता मेज कर लोरेन्सोकी सहायता की थी।

काम्बे-उपकूलमें तमाम पुत्त गीजोंकी तृती वोल रही हैं, यह जान कर देशीय सभी राजगण डर गये। निजाम-उल-मुल्क और आदिलशाहने सन्धि कर ली। सामरी-राजने चीन-कोतवालको पुत्तेंगीज-दुर्गाध्यक्ष माजु-पल-दा-विटोके साथ सन्धिका प्रस्ताव करके भेज दिया।

१५४० ई०के जनवरी मासमें सन्धि स्थापित हुई। इसमें पुर्त्त गीजोंको ब्रिशेष सुविधा हुई थी। सन्धिके अनुसार ३० वष तक सामरीराजके अधीन राज्यमें किसी नाव पर पांच डांडसे अधिक डांड नहीं रह सकते थे। पुत्त -गोज दुर्गाध्यक्षकी नाव छोड़ कर और किसीकी भी नाव समुद्रमें नहीं जा सकती थी। मलवार-उपकूलमें जितना गोलमिर्च और अद्रक उत्पन्न होता था उसे पुर्त्त गीज कम दाममें खरीद लेते थे। पुत्त गीज राजपुरुषोंकी चेष्टासे भाटकल और अञ्जद्दीपके समीप वहुतसे पुत्त गीज जल-दस्यु पकड़े गये।

नानो-दा-कन्हा और अधिक दिन भारतसुबंका भोग न कर सके। केवल १६ मास शासनकार्य करके वे १५४० ई०की ३री अप्रिलको मृत्युमुखमें पतित हुए। इस वार मार्टिम आफन्सो-दा सुजाने गवर्नर होनेकी चेष्टा की, पर इस समय वे पुर्त गालमें थे। अतः सवो ने भास्को-डि-गामाके पुत डम-पस्तेवो-डि-गामाको ही शासनकर्ता वनाना पसन्द किंवा।

#### दम-प्रतेवो-छि-गामा ।

डम एस्तेवो अति उश्वप्रकृतिके मनुष्य थे। उन्हों ने मलका द्वीपमें प्रभूत सम्पत्ति उपार्जन की थी। किन्तु शासनकर्तृत्व ग्रहण करते ही उन्हों ने शोषणा कर दी, कि वह सम्पत्ति उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, वह राजसम्पत्ति हैं। उन्हों ने अपने रुपयेसे देशीय खृष्टान ग्रुपकों की शिक्षाके लिये एक विद्यालय खोला।

अभी उनके भाई उम-खृष्टों को स्विन आदि स्थानों में रणपोतकी देखरेख करने के लिये भेजे गये। को स्विनके
निकटवर्ती चाइमलके राजा उनसे परास्त हुए। दूसरे
दूसरे शासनकर्ताके जैसे पस्तेवो-डि-गामाने भी कार्यभार प्रहण करते ही अरवसमुद्रमें रणपोत चलाया था।
उनके समयमें मलका और सुमाताके निकटवर्ती अनेक
स्थान पुत्त गीजों के अधिकारमें आये। उन्हों ने अनेक
तुकीं जहाज लूटे थे। यहां तक, कि तुरुष्कके सुलतानके साथ पुत्त गालराजकी सन्धि होनेकी वात भी छिड़
गई थी। किस प्रकार सन्धिपत प्रस्तुत होगा, पुत्त गालराजसे उसका आदेश आया था। किन्तु उनके कमचारियों के दौरात्म्यसे तुर्कगण विरक्त हो गये। इस
कारण सन्धि स्थापित नहीं हुई।

यथासमय मार्टिम आफन्सो-दा-सुजा (१५४२ ई०में)

Vol XIV. 45

गवर्नर बन कर आये। जो कोई गवर्नर वन कर आते थे, वह अपने ही पूर्ववर्ती गवर्नरका दोष निकालनेकी कोशिशमें रहते थे। क्यों कि उनका विश्वास था, क गवर्नर होनेसे ही दुराचारी होते हैं, वे चारों ओरफे लोमको ह्या नहीं सकते, वे अपनी पदोचित मर्यादाको भूल कर अन्याय कार्यं करनेमें जरा भी नहीं संकुचते। मार्टिमके मनमें भी यही धारणा थी। यहां तक कि उन्हों ने गोआ आनेके समय इ्यूगी-सोवारेस नामक एक जलदस्युको कैद किया। इस व्यक्तिको प्राणदण्ड-का आदेश भी मिल खुका था, पर वे किसी तरह भग कर भारतसमुदर्मे वस्युवृत्ति द्वारा अपना गुजारा चळाने लगा। उम पस्तेबोके जी सब दोष थे, सी उसे मालूम था। उसने सोचा, कि नये गवर्नरको यदि इसकी इत्तला दे दें, तो सम्भव हैं, कि वे मुऋ पर प्रसन्न होंगे। इसी आशासे वह मार्टिमके समीप गया और पस्तेवोके विरुद्ध जो कुछ कहना था, कह सुनाया । इस प्रकार उस धूत्त ने गवर्नरके हाथसे रक्षा पाई। इस दुवृ त्तकी वात पर भूल कर मार्टिम गोआमें पदार्पण करते ही उम-पस्तेवोके साथ बुरा व्यवहार करने छगे। उच्च हृदय-वाले पस्तेवो इस पर बड़े विरक्त हुए और उसी समय गवर्नरका पद परित्याग कर मार्टिमसे विना मुलाकात किये ही अति दीनभावसे पुर्तिगालको चल दिपे। पुस्तैगालराज और राज्यके प्रधान व्यक्तिने अति आदर और सम्मानके साथ उनकी अभ्यर्थना की। सबोंने समभा था, कि एस्तेवी महाधनी हो कर देश छीटे हैं, पर पीछे उन्हें मालूम हो गया, कि पस्तेवनके पास तो कुछ उपाजित धन था, उसका अधिकांश उन्होंने व्रीत दुखियों की बांट दिया है। अभी वे सामान्य गृहस्थ-मात हैं।

मार्टिन आफश्सो-दा-सुबाका भागमन ।

मार्टिम आफन्सोने शासन-भार प्रहण करनेके बाव ही भारतके बन्दरमें जितने जहाज थे, सबों की अच्छी तरह संज्ञानेका आदेश किया और पुर्तगीज-सैनिकों का वेतन घटा दिया। इस पर सबके सब असन्तुष्ट हो गये। बहुतों ने सैनिक-चृत्तिका परित्यागं कर वाणिज्य अवसाय करना आरम्भ कर दिया। गवर्नरने सैनिकोंका

अभिप्राय जान कर उन्हें दमन करनेके उद्देश्यसे एक हुकुम निकाला कि, "मलकाके शुक्कगृहमें वैदेशिक विश्वों के निकट जिस दरसे महस्ल लिया जाता है, उसकी दर घटा दो जाय और पुर्तगीज विश्वोंसे चौगुना ज्यादा महस्ल वस्ल किया जाय।" विदेशीय विश्वोंको विश्वेष सुविधा हो जानेसे राजकोषमें भी शुक्कसे काफी आम-दनी आने लगी। किन्तु पुर्तगीज-विश्वोंसे उस प्रकार कर नहीं लिया जाने लगा। वे नाना प्रकारके कूट उपाय-से शुक्कके दायसे रक्षा पाने लगे। मार्टिम पुत्तगीजोंकी यह दुरिमसन्धि जान कर नितान्त मर्मपीड़ित हुए थे।

इस समय गोभाफे निकटवर्त्ती स्थानके शासनकर्ता आसद खाँने आदिलशाहको राजच्युत करके अपने भाई मालू आदिलशाहको सिहासन पर वैठानेकी चेष्टा की, पीछे वे पुर्त्त गीजोंकी सहायता करनेके लिये पुर्त गाल-राजको कोङ्कण प्रदेश छोड़ देनेको राजी हुए। इस उप-कारमें पुर्त्त गीज गवर्नरने मालू आदिलका पक्ष अवलम्बन किया।

इस समय आदिलशाइने भी कहला मेजा, कि यदि
पुत्त गीज उनका पक्ष अवलम्बन करें और माल्को एकइवा दें, तो वे उन्हें सालसेटी और वारह देश प्रदान करेंगे।
पुत्त गीजोंको कुपरामर्शसे गवर्नरने आदिलशाइके प्रस्तावको खीकार कर लिया। सिन्धपत लिखा पढ़ा गया।
आदिलशाइने उक्त दोनों स्थान और गवर्नरको प्रभूत
धनरत (प्रायः १० करोड़ मुद्रा) प्रदान तो किया, पर
पुत्त गीजशासनकर्ताने प्रचुर धन ले कर भी सिन्धके
अनुसार कार्य नहीं कियो। उन्होंने सबके सामने माल्को गोभा बुलवा मंगाया। इस पर आदिलशाइने सभी
कपये लौटा देने के लिये गवर्नरको एक पत्न लिखा।

गवर्नर मार्टिम इस प्रकार दो पक्ष छेनेवाले व्यक्ति
नहीं थे। उन्होंने जिनके परामर्शसे यह दुएकर्म किया
था, उन्हें वे हमेशा गाली दिया करते थे। इधर वे अपने
महत्त्व और सत्तताकी रक्षाके लिये विव्रत हो पड़े।
आकिर उन्होंने पुत्त गालराजको एक पत्त लिखा, मुक्तसे
अब शासनकार्य नहीं चल सकता, यदि शोघ हो कोई
दूसरा गवर्नर नहीं मेजा जायगा, तो मैं किसी आदमीको
शासनकार्य सौंप कर चला जाऊंगा।

## द्धम-त्रोहन हि-काच्य्रोका शासन ।

१५४५ ई०की १ली सितम्बरको उम जोहन-डि-काष्ट्रो पुर्त गालसे शासनभार ले कर गोआ पहुंचे। मार्टिम आफन्सो स्वदेशको चल दिये मानो उन्हें निष्कृति मिल गई। उम-जोहन गवर्नर होनेके वाद ही चारों मोर नये नये पोताध्यक्ष, दुर्गाध्यक्ष और राजकर्मचारी भेजने लगे।

इस समय काम्बेके अधिपति सुलतान मह्मूद अन्यान्य मुसलमान राजाओंके साथ मिल कर दीउसे पुर्त्त-गीज प्रभावका लोप करनेके लिये अनेक सैन्य सामन्तोंके साथ अप्रसर हुए। उनके सेनापति काजी जाफरने भीम विक्रमसे पुर्त्त गीज दुर्ग पर आक्रमण किया। दोनीं पक्षके सैकडों योद्धा निहत हुए, साथ साथ सेनापति जाफर भी मारे गये। अनन्तर ह्मो खाँ, जाफर खाँ आदि सेना-नायकोंने वहुसंख्यक कमान और योद्धा ले कर प्राणपणसे ट मास तक दीउमें घेरा जाला। ऐसी दुर्घटना और कभी नहीं हुई थी, पुत्त गीज लोग विशेष क्षतिप्रस्त और विपद्गस्त हुए थे। इस समय दुर्गस्थ पुत्तीजनस्म-णियों तकने भी शतुद्मनार्थ अस्त्र धारण किया था। चारों ओरसे पुरर्तगीज जंगी जहाज पहुंच तो गया, पर कुछ न कर सका। इस महायुद्धमें कितने पुरर्तगीजोंके प्राण गये थे, उसकी शुमार नहीं। पुर्त्तगीज ऐतिहा-सिकोंने लजावश उसे प्रकाशित नहीं किया। उन्होंने मुक्त कएउसे श्रुपक्षीय असंख्य लोग मारे गये यही घोषणा की है। उस युद्धमें पुर्त्तगीज गवर्नरके पुत्र भी शत्रुके शिकार बने थे। मुसलमानोंकी सम्पूर्ण जयकी सम्मावना थी, अन्तमें पुर्त्तगीजों ने आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख यथेष्ट उत्कोच और भविष्यत् आशा दे कर बहुसंख्यक मुसलमान सेनानायककी हत्या की थी। उसका फल बह हुआ, कि मुसलमानी सेना पराजय खीकार कर रणस्थलसे भाग जानेको वाध्य हुई ।

दीउका उद्धार और मुसलमान-पराजयका संवाद पा कर गोआमें महोत्सव हुआ । पुत्तगालकी रानीने इस युद्धजयका संवाद पा कर कहा था, "डि-काब्द्रोने खृष्टानकी तरह पराजय किया है और अखृष्टानकी तरह वे विजयी हुए हैं।"

इभरका फगड़ा मिटने भी न पाया था, कि उधर युद्धकी तैयारी होने लगी। अली आदिलशाह जब मालू आदिलशाहको अपने पंदेमें फंसा न सके, तब वे पुर्च-गीजों पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। पुर्त्त-गीज गवर्नरने, इस समय युद्ध करना सुविधाजनक नहीं है पेसा समभ, सन्धि कर ही। इस सन्धिके अनुसार पुर्त्तगीज मालू-आदिलशाहको सपरिवार कैदमें रखनेके लिये वाध्य हुए और उन्हें सालसेटी तथा वारह देश मिले। इस समय सेनाको देनेके लिये तथा दीउ दुर्गके संस्कार-के लिये गवर्नरको २०००० पागोडा ( Fagoda ) कज छेनेकी जरूरत हुई । उस समय पुर्त्तगीज-राजकोष विलकुल खालो था। गवर्नरका यह प्रस्ताव सुन कर गोआवासिनी पुर्त्तगीजभामिनी देशीय महिलाओंने अपना अपना अलङ्कार दे कर रुपये संत्रह किये थे। जिस समय गवर्नर दोउसे गोआ छौटे, उस समय पुरमहि-लामोंने मरोखेसे गुलावजल भौर पुष्पवृष्टि करके उनकी सम्बद्ध ना की थी।

इसके वाद अली आदिलशाह समक सके, कि वे पुत्त -गीजोंसे प्रतारित हुए हैं। पीछे उन्होंने फिरसे पुर्तगीजों पर आक्रमण करके सालसेटी और वारह देशोंका उद्धार किया। इस भयसे गवनरने १५४७ ई०की १६वीं सितम्बर-को विजयनगरके राजासे सन्धि कर ली। इस सन्धिमें यह स्थिर हुआ, कि गोआमें जो सब घोड़े विकने आयेंगे, उन्हें किसी दूसरेको न दे कर विजयनगर भेज दिये जायंगे। इसी महीनेमें अम जार्ज नामक पुत्त गीज कप्तानने भरीचको जीता।

लिसवनराजसे सनद ले कर १५४८ ई०की २१वीं मई-को एक जहाज भारतमें आ कर लगा। उस राजसनद-के अनुसार बि-काष्ट्रो राजप्रतिनिधि हुए। इस प्रकार उन्हें तीन वथ और शासनका अधिकार मिला, केवल यही नहीं, बहुत रुपयेकी वृत्ति भी निर्द्धारित हुई। इम जोहनने जिस समय यह शुभसंवाद पाया, उस समय वे मृत्युशय्या पर सोये हुए थे। १५४८ ई०की ६ठी जूनको (४८ वर्षकी अवस्थामें) गोआ नगरमें उनकी प्राणवायु

डम जोहन प्रकृत राजभक्त और राज्यके हितैयी थे।

वे दूसरे अर्थलंभी पुत्त गीजों की तरह अपना मतलव साधनेवाले नहीं थे। यहां तक कि उन्होंने किसी राजकीय पत्नमें द्र्षपूचक लिखा, था, "उन्होंने अपनो खार्थ-रक्षा वा धनवृद्धिके लिये राजा अथवा प्रजासे एक कौड़ी भी नहीं ली।" वे दूसरे दूसरे पुत्त गीज शासनकर्ताओं-की तरह अहङ्कारी नहीं थे। वे गुणका उपगुक्त सम्मान करते थे, उनके वाद गार्सिया-डि-सा गवर्नर वन कर भारतवर्ष पधारे।

# गासिया-डि-सं।

शासनभार पाते ही गासियाने जनसाधारणके सन्तोषजनक कायकी ओर ध्यान दिया। इठीं अगस्तको खुष्टान डोमिनिक सम्प्रदायकें छः धर्मगुरुओं (Dominican fither) ने पहले पहल गोआ आ कर मठस्थापन किया।

१७वीं सितम्बरको गासिया भारकलकी रानीके साथ सिन्ध की। शत यह उहरी, कि रानी अपने अधिकारके मध्य किसी जलदस्युको आश्रय नहीं दे सकती। जलदस्युगण पुर्ति गीजराजकी जो क्षति करते हैं और करेंगे रानी उसका क्षतिपूरण करनेको वाध्य हैं।

गासियाके शासनकालमें प्रसिद्ध खृष्टान साधु जीभयरने मलका आदि द्वीपोमें खृष्टानधर्मका प्रचार करके वहुतसे लोगों को खृष्टानधर्ममें दीक्षित किया। इस समय पेगू और श्यामराजमें श्वेतहस्ती ले कर तुमुल संग्राम लिड़ा। वहांके पुर्त्त गीजगण पेगूराजकी तरफसे लड़े थे।

१५४६ ई०के जुलाई मासमें गासियाका शासनकाल शेप हुआ, चे केवल १३ मास तक गवर्नर थे। जार्बनेब्रान।

वसाईके पूर्वतन दुर्गाध्यक्ष जार्ज केन्नल इस वार गंग्रवीर वन कर आये। १५४६ ई०की १२वीं अगस्तको उन्होंने गोआ आ कर शासनभार ग्रहण किया।

इसके कुछ समय वाद ही सामरीराज और पिमेन्ताके राजाने मिल कर लाखसे अधिक सेनाके साथ कोचिन-राज पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें पिमेन्ताके राजा मारे गये। इसका वदला लेनेके लिये नायरों ने प्राणको हथेली पर रख बड़ी तेजीसे कोचिनसैन्य और पुर्त-

गीजों पर धावा मारा, युद्धमें वहु संख्यक वीर यमराजके मेहमान बने । यह भीषण संवाद जब गोआ पहुंचा तद जार्ज केन्नळ १०० जंगी जहाज और ४००० योद्धा ले कर यहां जा धमके । उनकी कोधानिसे तिरुकुळम, कुळित और पोनानी नगर भस्मसात हो गया। पीछे कोचिन जा कर गवर्नरने तुमुल संश्राम छेड़ दिया। हजारों नायरसेना वीरगतिको प्राप्त हुई।

मलवारके अनेक सामन्त इस युद्धमें परास्त हो आत्मसमपंण करनेको प्रस्तुत थे, पर ठीक इसी समय इम-आफन्सो-डि-नोरोन्हा नये प्रतिनिधि हो कर उपस्थित हुए। केव्रल जिस दिन (१५५० ई०की २५वीं नवम्बर) शत्नुध्वंसका आयोजन कर रहे थे, उसी दिन उन्हें दल-वलके साथ लौट आनेको कहा गया। इस प्रकार दैवकम-से सामन्तराजाओंने ताण पाया।

इस समय चारों ओर शोणितपात, अनर्थ अत्याचार और पुत्त गीज शासनकर्ताओंकी हिंसा द्वेष देख कर खृष्टानसाधु जेमियर वड़े दुःखित हुए और उन्होंने पुर्त-गालराजसे शान्तिस्थापनका अनुरोध किया। पर उनकी बात कौन सुननेवाला था।

डम अ:फन्सो-डि-नोरोनहम्

१५५० ई०के नवस्वर मासमें उम आफन्सोने नये राजप्रतिनिधि हो कर कोचिनमें पदार्पण किया। पहले गवर्नर ही सचमय कत्तां थे, उन्हें दूसरेके आदेशकी अपेक्षा करके कोई कार्य करना नहीं पढ़ता था। किन्तु इन नये राजप्रतिनिधिके साथ नयी मन्त्रिसमा संगठित हुई और उसी सभाका परामर्श ले कर वे शासनकार्य चलानेको वाध्य हुए।

इम आफन्सो गवनर होते हो चारों और तथे तथे सेनापित और दुर्गाध्यक्ष मेजने लगे। वसोराने शासन-कर्ताने तुर्कोंके अत्याचारसे विरक्त हो पुर्व गीजोंसे सहायता मांगी। इस पर पुर्व गीज गवर्नरने कुछ जंगी जहाज मेजे थे।

१५२१ ई०में उनके आश्रयमें सेएट जेभियर खृष्टानधर्म-का प्रचार करनेके लिये सिहलद्वीप गये।

कोचिन और पिमेन्ताराजमें मनमुदाव वल रहा था। डम आफन्सो दलबलके साथ वहां जा धमके और उन्हीं- ने कोचिनराजका पक्ष छेकर पिमेन्ताराजको परास्त किया।

# इम पेरे न्दा-मश्करेनहस्।

१५५४ ई०के सितम्बर मासमें डम-पेरी-दा-मस्करेन्-हस् राजप्रतिनिधि और शासनकर्ता हो कर आये। उनकी सहायतासे मालू आदिल्लशाहने अपनेको वीजापुर-के राजा बतला कर तमाम घोषित कर दिया। इसके बाद हो नये राजप्रतिनिधि केवल दश मास तक कर्तृत्व करके १५५५ ई०की १६वीं जूनको मृत्युमुखमें पतित हुए। उनके स्थान पर बसाईके सेनापित और थानेदार फ्रान्सिस्को वरोटा गवर्नर हुए। उनके समयमें पुर्त्तगोजों-ने कोङ्कणका राजस्व लेनेका अधिकार पाया था। मालू आदिलशाहने वहुसंख्यक सेना ले कर उन पर घावा वोल दिया। इस समय पुर्त्तगीजोंको सहायता करना उचित था। वीजापुरमें पुर्त्तगीज सेनाध्यक्ष डम-पएटोनियो-डि-नोरेन्हा रहते थे। युद्धके कुळ पहले ही पुर्त्तगीज गवर्नरने उन्हें यहांसे हट जानेके लिये इक्तम दिया।

कुछ दिन वाद सिन्धुप्रदेशके अमीरने किसी अत्या-चारी राजाका दमन करनेके लिये पुर्त्त गीजोंसे सहायता मांगी। पुर्त्त गीज गवनरने अर्थके लोमसे ७०० योद्धाके साथ पेद्रोवारेटो रोलिमको सिन्धुप्रदेश मेज दिया। पुर्त्त -गोज सेनापति वहां जा कर सिन्धुराजका यथासर्वस लूट लाये। इतना घनरत पुर्त्त गीजोंको पशियाके मध्य और कहीं भी हाथ नहीं लगा था।

इसके वाद चेउल आदि नाना स्थानोंको लूटने तथा सैकड़ों श्रामोर्में अग्निप्रदानपूर्वक ध्वंससाधन करनेके सिवा और कोई काम नहीं हुआ।

वारेटोका भी शासनकाल वीत चला । इस वार पुत्त गालके सम्प्रान्त वंशीय व्रागञ्जा-ड्यू कके भाई डम कनएन्टिनो-डि-व्रागञ्जा १५५८ ई०के सितम्बर मासमें राजप्रतिनिधि हो कर गोआ उपस्थित द्वप ।

इम कनष्टानिष्टनी-द्वि-त्रागठ माका शासन ।

डम-कनप्राण्टिनोने कार्यभार प्रहण करनेके वाद ही डम-पायेदा-नोरोनहाको कन्नन्रका दुर्गाध्यक्ष वना कर मेजा। उनके दुर्व्यवहार और अत्याचारसे पुर्त्त गोर्जाके मित्र कन्नन्रराज भी नितान्त विरक्त हुए और पुर्त्त गोर्जो- को नगरमें घुसनेसे निषेध कर दिया। इस पर पुर्त गीज उनके साथ छड़ाई करनेको तुल गये। इस समय पुर्त -गीज-राजमितिनिधि दमन पर अधिकार किया, किन्तु कन्ननूरमें पुर्त गीज लोग कई एक युद्धोंमें परास्त हुए। अभी कन्ननूरके अधिराजकी उत्त जनासे मलवारके सभी राजोंने पुर्त गीजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। अन्तमें चारों ओरसे वहुसंख्यक युद्धजहाजके पहुंच जाने-से मलवारियोंकी पराजय और पुर्तगीजोंकी प्रतिपत्तिकी रक्षा हुई थी।

१५६० ई०में सबसे पहले गोआमें एक आर्चविशप आये। उनके साथ यहृदियोंका दमन और खुप्रान अना-चारियोंका शासन करनेके लिये एक (Inquisitor) दएडविधाता उपस्थित हुए। इनके आगमन पर गोआके कट्टर खुष्टान छोड़ कर सभी सम्प्रदायके कपालमें आग लगी। उनके अत्याचारकी कथा पीछे लिखी जायगी।

इसी साल पुर्त्तगीज लोग सिंहलका जाफनापत्तन जीत कर सिंहलराजके प्रधान उपास्य बुद्धदेवके दाँत लूट लाये। इस पवित्र दाँतके वास्ते ब्रह्मदेशके राजा पुर्त-गोज राजनिधिको प्रायः तीस लाख मुद्रा देने पर प्रस्तुत थे। पर राजप्रतिनिधि और उनके मन्त्रिवर्ग इससे और भी कुछ अधिक चाहते थे। आखिरकार सभी धर्मयाजकोंके परामशैसे उस पवित्र दाँतको जाँतेमें पीस कर भस्म कर दिया गया।

१५६१ ई०में पुर्त्त गीजोंके साथ स्रत शहरमें चेङ्गिस लाँका घोर संग्राम हुआ। इसमें चेङ्गिस लाँ २००० सेनाके साथ परास्त हुए थे।

डम कन्छानिटनोके काय पर मुध्य हो पुर्त्त गालराज-ने उन्हें आजीवन राजप्रतिनिधि रखनेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उन्होंने अपनी खुशीसे उच्चपदका परित्याग किया।, उनके स्थान पर डम फ्रान्सिस्को कुटिनहा १६६१ ई०के सितम्बर मासमें राजप्रतिनिधि हो कर आये।

# बम-मान्सिस्को कुटिन्हो ।

कुटिन्हो आते ही देशमें केवल वाणिज्यकी रक्षनी और जिससे राजाकी आय वढ़े, इसके लिये कोशिश करने लगे। उनके समयमें कन्ननूरका विवाद शान्त नहीं हुआ था, उस समय कभी कभी लड़ाई हो जाया करती थी।
१५६४ ई०की १६वीं फरवरीकी अकस्मात् उनकी
मृत्यु हुई। उनके वाद मलकाके दुर्गाध्यक्ष जोहन-डिमेन्दोशा भारतके गवनर हुए। उस समय कन्ननूरके
विवादने कुछ भीषण रूप धारण किया था। इस समय

एक सम्प्रान्त व्यक्ति पुत्तगीज सेनापितके हाथसे मारे गये। उनकी विभवा रमणी अधीरा हो गई और उसके आत्त नादसे कन्नन्र शहरमें शोक छा गया। इस पर सहृदय व्यक्तिमातने ही उत्ते जित हो कर पुत्त गीजों पर हमला किया था। यही मलवार-युद्धका सुत्रपात है।

जोहन-डि-मेन्दोशा केवल ६ मास तक गवर्नर थे। पोछे डम-अएटोनियो-डि-नोरन्हा पुत्तं गालसे राजप्रति-निधि हो कर आये।

इम अण्टोनियो-डि-नेरोन्हा।

नये राजप्रतिनिधिने आते ही कन्नन्रस्थ पुर्संगीजीं-की रक्षाके लिये अनेक युद्ध-जहाज भेजे। आठ मास युद्धके वाद कन्नन्रराजकी हार हुई।

१५६८ ई०में फ्रान्सिस्कन याजकोंकी चेष्टासे साल-सेटी द्वीपके वहुसंख्यक लोग ईसाई हो गये थे। इसा समय कुछ धर्मज्ञ हिन्दुओंने उसके प्रतिविधानकी चेष्टा की थी। इस पर कुद्ध हो पुर्च गीजोंने यहांके सभी देवालय तहस-नहस कर उाले। सालसेटीके पहाड़ पर जो अपूच सुरङ्गपथ है, वहुतोंका विश्वास है, कि यह काम्बे शहर तक चला गया है। इस सुरङ्गको पार होनेके किये पादरी अएटोनियो देपोटोंने कुछ साथियों-को ले कर याला की थी। किन्तु ७ दिनमें ७०।७५ कोस जानेके वाद रसद घट गई जिससे वे लौट आनेको वाध्य हुए। प्राचीन पुर्च गीज ऐतिहासिकगण इस अपूर्व सुरङ्गके विषयमें अनेक कथाएं लिख गये हैं।

डम अल्टोनियोने ४ वर्ष शासनकार्य करके लिसवन-की याता की। राहमें १५६६ ई०की २री फरवरीकों चे कराल कालके गालमें फँसे। यह एक सिंदिचेचक ब्यक्ति थे। जब कोई उनके पास दलील सही करानेके लिये जाता था, तब वे कहा करते थे "जिस हाथसे ऐसा विषय खाक्षर किया जायगा, उस हाथको दो खएड कर देना उचित है।" डम्-छर्ज-डि आट इड ( Dom-Luiz-de Atayde )

१५६८ ई॰के अक्तूबर मासमें डम लुइज (Condede-Atougiua) राजप्रतिनिधि हो कर आये।

१५६६ ई०के नवम्यरमें उनके साथ हनवरके राजा और गार्शोपाकी रानीका युद्ध छिड़ा। पुत्त गीजोंका अन्यान्य अत्याचार ही इस युद्धका कारण था। पुत्तं गीजोंके क्रोधानलसे हनवरसे लेकर गार्शोपा पर्यन्त सभी प्राप्त भस्मीभूत हुए। धीरे धीरे पुत्तं गीजोंका आचरण भारतवासीके लिये असहा हो गया।

निजाम-उल्ल-मुल्कने चेउल, वसांई और दमन जयका, आदिलसाहने गोआ, हनवर और वार्शें जो जयका और सामरीराजने कन्ननूर, मङ्गलूर, कोचिन और कालियम् आक्रमणका भार लिया।

पुत्त गीजराज-प्रतिनिधिने चरके मुखसे यह संवाद पाया। वे पहले गोआकी रक्षाका वन्दोवस्त करने लगे। आदिलशाहने वहुत जल्द लाखसे अधिक सेना लेकर चारों ओरसे गोआको घेर लिया। इस समय इम लुइजके असाधारण उत्साह और कार्यकुशलतासे वह असंख्य मुसलमानवाहिनी गोभा नगरमें प्रवेश कर न सकी । आविलशाह अधिक काल तक गोआमें घेरा डाले रहे। उस समय डम लुइज यथेष्ट उत्कोच दे कर गुप्त-चर द्वारा आदिलशाहके शिविरका संवाद लेने लगे। यहां तक, कि आदिलशाह अपनी वेगमके साथ जो कुछ मन्त्रणा करते थे, उसकी भी खबर लुइजको मिल जाया करती थी। इस प्रकार यदि वे सतर्क न रहते और शिविरका संवाद नहीं पाते, तो सम्भव नहीं, कि वे एक भी पुर्त्तगोजकी रक्षा कर सकते और गोआनगरीको शतुक्ते चंगुलसे वचा सकते थे। जो कुछ हो, मुसल-मानोंके गोलोंकी वौछारसे गोआनगरी तहस नहस हो गई, प्रधान प्रधान अद्टालिकाएं धीरे घीरे भूतलशायी हुईं, सैकड़ों पुर्त्तगीज सेनाने असाधारण वीरत्व दिखा कर भूमिचुम्बन किया। पुर्त्तगीजोंके अनवरत गोछा वर्षणसे हजारों मुसलमानी सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रहीं। गोआमें जब ऐसा व्यापार चल रहा था, उसी समय निजाम-उल्-मुल्कने भी प्रायः दो लाख सेना लेकर पहले चेउल पर आक्रमण कर दिया। यहां पुर्तगीज लोग

मुंसलमानोंका आंक्रमण सहा कर नं सके। इस समय पूर्तगोज-वीरींने जैसा साहस और वीरत्व दिखलाया था, वह अति प्रशंसनीय हैं। इस समय गोआ चारीं ओरसे अवरुद्ध होने पर भी उम लुइजने चेउलकी रक्षा-के लिये कुछ जंगी, जहाज और बहुसंख्यक साहसी पुर्त-गीज योद्धा भेजे। सुतरां जल और स्थल दोनों पथमें ही मुसलमानोंको युद्ध करना पड़ा। पुर्त्तगीजोंके गोला-वर्षणसे कितने मुसलमान चेउलके रणस्थलमें धराशायी हुए, उसकी शुमार नहीं। पुर्त्तगीज भी मुद्दी भर सेना है कर उस असंख्य सेन्यसागरमें कब तक सन्तरण कर सकते । अनेक पुर्तगीज-सेनापति और गण्यमान्य व्यक्ति हत वा आहत हुए। पुर्त्तगीजींकी विवाहित देशीय रमणियोंने पतिकी रक्षाके लिये जैसे साहस और उत्साहका परिचय दिया था, वह नितान्त श्लाघाका विषय है, इसमें सन्देह नहीं। वहुतोंने तो योद्याओं के वेशमें नंगी तलवार हाथमें लिये आत्मरक्षा की थी और वहुतोंने पतिकी अनुगामिनी हो क्षिप्र-वन्दूक चला कर मुसलमानोंको निपातित किया था, पीछे आप वीरगति को प्राप्त हुई थीं। पुर्त्तगीजोंकी सहायसम्पत्ति खोई जाने पर भी पुर्तगीज योद्धा अपने मानसम्प्रम और प्रति-पत्तिकी रक्षा जिस बीरतासे कर रहे हैं उसे देख निजाम उलमुल्क तक भी विमुग्ध हो गये थे । उन्होंने अपनी आंखोंसे स्वपक्षीय सैंकड़ों वीरकी निपातित होते देख जयकी आशा छोड़ दो। इस प्रकार यदि कुछ दिन और युद्ध चलता, तो सम्भव था, कि पुर्रागीज दुगै छोड़ देने-को वाध्य होते। समस्त चेउल मिजाम-उलमुल्कके अधीन होता, पर उन्होंने अपनी बेगमकी उत्तें जनासे सन्धि कर ली। दैवकमसे पुत्त गोजोंको वाण मिला।

जिस कारणसे निजाम-उद्य-मुक्तने सन्धि की, आदिलशाह भी उसी कारणसे सन्धि करनेकी वाध्य हुए। प्रायः एक वर्ष अवरोध, प्रभूत शबुक्षय, यथेष्ट अर्थेव्यय और अपना वलक्षय करके भी जब उन्होंने देखा, कि पुत्त गोजोंने किसी हालतसे उनकी वश्यता खीकार नहीं की, सुखतुर और समरनिपुण-पुत्त गीजराज-प्रतिनिधिकी चेष्टासे उनकी सभी अभिसन्धि व्यर्थ निकली, तब उन्होंने अवरोध उहा लिया। इस प्रकार भगवान-

की कृपासे पुर्त्त गीजों ने गोआ नगरीकी रक्षा कर अपने भाग्यको सराहा। पीछे १५७१ ई०की १७वीं दिसम्बर-को पुर्त्त गीजों के साथ आदिलशाहकी सन्धि स्थापित हुई।

सामरीराजके इस समय जलपथमें आक्रमण करने-की बात थी, पर वे कुछ विलम्ब कर गये। यदि वे विलम्ब नहीं करते और पुत्त गीजों को जलपथमें सहा-यता नहीं मिलती, तो उनकी क्या दशा होती, कह नहीं सकते। सामरीराजका अभिन्नाय कुछ और था। उन्होंने यह नहीं समका था, कि आदिलशाह इतनी जल्दी निरस्त हो जांयगे। इधर पुत्तगीजोंके साथ उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके मेजा। उम-लुइजने उनका अभिन्नाय अच्छी तरह समका था। वे उस महाविपद्द-कालमें भी सन्धि करनेको राजी न हुए।

सामरीराजने १५७० ई०के फरवरी महीनेमें अपने सामुद्रिक सेनापितके अधीन अनेक जंगी-जहाज मेजे। मलवारी-योद्धाओंने महाउत्साहसे पुर्त्तगीज जहाजों पर आक्रमण कर दिया। इस समय मङ्गलूरको रानीने वहांका पुर्त्तगीजदुर्ग दखल करनेके लिये सामरीराजके सेनापितके निकट संवाद मेजा। गहरी रातमें, सारा मङ्गलूर जब निस्तब्ध था, उसी समय मलवारियोंने मङ्गलूर जब निस्तब्ध था, उसी समय मलवारियोंने मङ्गलूरके पुर्त्तगीजदुर्ग पर छापा मारनेका आयोजन किया। किन्तु इसमें वे कृतकार्य न हुए। तीन महापराक्रमशाली राजाका मेल होने पर भी पुर्त्तगीजोंकी हार नहीं हुई। पुर्रागीजराजप्रतिनिधिके अद्भुत साहस और युद्धकीशलसे सभी भारतवासी विस्मित हुए। सारे यूरोपने इसके लिये पुर्त्तगीज-प्रतिनिधि इम लुइज़की प्रशंसा की थी।

उम लुइज उश्वाभिलानी वा अर्थिपशाच नहीं थे। अधिकांश गवनर खदेश लौटते समय प्रचुर धनरज्ञ-संप्रहको चेष्टामें रहते थे, पर उम लुइजका उस ओर जरा भी ध्यान नहीं था। उन्होंने जब खदेशयाजा की, तब वे गङ्गा, सिन्धु, ताइग्रीस और यूफ्रेटिस नदीका जल अति यज्ञसे देश ले गये थे और उसीको अमृत्य सामग्री समक कर देशके लोगोंको दिखाते थे।

पशिया और अफ्रिकाके अनेक स्थान पुत्त गालराजके

अधीन हो जानेसे शासनके सुवन्दोवस्तके लिये इस बार सभी स्थान तीन मागोंमें विभक्त किया गया। १ला— सिंहलसे गाउँपुई अन्तरीय पर्यन्त पुर्तगीज राजप्रतिनिधि और भारतीय शासनकर्ताके अधीन, २रा—गाउँपुई और करिएट अन्तरीयके मध्यवत्ती समस्त स्थान मनमी-तापाके शासनकर्ताके अधीन और २रा पेगू और चीनके मध्यवत्ती समस्त स्थान मलक्काके शासनकर्ताके अधीन हुआ।

## इम आहोतियो-डि-नं।रन्हः।

१५७१ ई०को ६वों सितम्बरको उम अल्टोनियो राज-प्रतिनिधि हो कर आये। उस समय भी आदिलशाहका सम्पूर्ण घेरा उठा नहीं था। सुतरां आलिशाहके सस्तैन्य चले जाने पर डम अल्टोनियोंने विजय-गौरव प्राप्त किया।

सामरीराजने उस समय भी कोलियम दुर्ग में घेरा ढाला था, पर गोआसे सहायता जानेमें विलम्य हो जानेसे पुत्र्तगीजलीग दुर्गकी रक्षा न कर सके। इस दुर्गमें अनेक पुत्तगीज रमणियां थीं। मानसम्ब्रम जानेके भयसे वे सक-के सब आत्त नाद करने लगीं। अपर प्रधान सेनाओंकी इच्छा नहीं रहने पर भी रमणियोंकी कातरतासे मुग्ध हो दुर्गाध्यक्ष दम-दीगो-डि-मेनेजिस सामरीराजकी दुर्ग छोड़ अपने दलवलके साथ एक जहाजसे कोचिन भाग गये।

नव राजप्रतिनिधि अति द्रिद् थे, इसोसे उन्हें अथीं-पार्जनकी विशेष चेष्टा थी । इस कारण, उनके साथ मलकाके शासनकर्त्ता चारेटोका विरोध उपस्थित हुआ। अल्टोनियींने वोरेटोके हाथसे वलपूर्वक शासन क्षमता छीन ली। इस पर बारेटोने विरक्त हो पुर्त्वगालराजके निकट अभियोग लगाया। फलतः बारेटोका कपाल खुल गया।

### अराटोनियो-मोनिज-४.रेटो ।

वारेटो पुर्त गालराजकी आझासे शासनकर्ता हुए।
मलका द्वीपसे आ कर उन्होंने १४७३ ई०की ध्वीं सितअ्चरको गोआमें शासनमार ब्रह्ण किया। इसके कुछ
मास वाद ही, सामरीराजको हुग छोड़ देनेके अपराध पर
इम काष्ट्रीको प्राणदण्डकी आज्ञा हुई।

१५७३ ई०में मलवारके पुत्तेगीज नौसेनाध्यक्ष गेपाड़, परापङ्गलम्, कापकोटी, नौलगिरि आदि अमेक स्थानीको आक्रमण, लुएउन और अग्निप्रदान करने लगे। इससे उपक्रूलवर्त्ती प्रजाके कएका पारावार नहीं था। इसी समय पुत्तगीज शासनकर्ता भारत महासागरस्य द्वीपपुञ्जका गोलयोग ले कर ही ध्यस्त थे। उसी कार्यमें उनका शासनकाल शेष हुआ।

१५७६ ई०को लिसचनसे राइ-लोरेन्सो डि-रावोरा राजप्रतिनिधि हो कर आ रहे थे, किन्तु मोजाग्विकमें जहाजके लगते ही कराल कालके गालमें पतित हुए। अव कार्यकी प्रधानताके अनुसार डम-डिगी-डि-मेनेजिस गवर्नर हुए।

#### हम-हिगो-हि-मेनेजिस।

इन्होंने शासनमार पाते ही चारों ओर जंगी जहाज मेजना शुरू कर दिया। इस समय दमोलके धानेदारने विश्वासघातकतापूर्वक कुछ पुत्तीगोज राजपुरुपोंको अपने यहां निमन्त्रण किया और सर्वोंको घातकके हाथसे मरवा डाला।

#### डम•छ्रान-डि-भाटाइड।

इस समय डम-छुहज पुनः राजप्रतिनिधि वन कर गोथा थाये। उन्होंने भी दमोछको हुर्घटनाका संवाद पा कर थानेदार मालिक तुघानका सिर काट छानेके लिये अनेक युद्धजहाज मेजे। पर उन्हें थानेदारका सामना करनेका साहस नहीं हुआ। थानेदार ६००० सेना छे कर उपक्लकी रक्षा कर रहे थे, इसी समय दो विख्यात मळवारी जलदस्यु उनके साथ मिल गये। पहले दोनों दस्युके कीशलसे कुछ पुर्त गोज जहाज विपर्यस्त हो गया था, पर पीछे वहु संख्यक पुर्त्तगीज युद्ध-जहाजने आ कर थाने-दारके पक्षीय सभी जहाजोंको ध्वंस किया और आरो-हियोको अति घृणित भावसे मार डाला।

१५८१ ई०में लिसवनसे संवाद आया, कि स्पेनराज २य फिलिप पुत्त गालके राजा हुए हैं। अतः अभी सभी पुर्त्तगीज़ोंने उन्हें अपना अधीध्वर माना।

डम फ्रान्सिस्को मस्कारेन इसने नृतन राजप्रतिनिधि हो कर १६वीं सितम्बरको कार्यभार प्रहण किया। डम फ्रान्सिको मस्करेन इसक (Count of Santa cruz)

इस समय जलदस्युका उत्पात और भी बढ़ गया था। उनके उत्पातसे उपकृतवासियोंकी बात तो कू रहें, कोई भी सम्प्रान्त पुर्त्त गीज निरापद्से समुद्र हो कर नहीं जा सकते थे। इम फान्सिस्कोने इनका सम्पूणक्ष्य-से दमन करनेकी चेष्टा की। उस समय कालिकट राजा-के अधीन कोलत्तुर नामक स्थानमें अनेक जलदस्युका अड्डा था। फान्सिस्को फार्णान्दिजने १८ युद्ध-जहाज ले कर कोलत्तूर पर आक्रमण और दस्युगणको समूल ध्वंस किया। पीछे पुत्त गीजगण कालिकट और कन्नमूर-के मध्यवर्ती सभी स्थानोंमें भारी उत्पात मचाने लगे। महाराष्ट्रगण जिस प्रकार चौध वस्ल करते थे, पुर्त्त गीज-लोग भी उसी प्रकार नगर प्रामको जला कर तथा सैकड़ों व्यक्तिका प्राणनाश कर वलपूर्वक कर वस्ल करने लगे।

ं दमन नगरमें इस समय पुत्त<sup>°</sup>गीजोंके मध्य एक सङ्घर्षं उपस्थित हुआ। वहांके दुर्गाध्यक्ष माटिम-आफन्सी डि-मेळोने अपने अधीनस्थ एक पुत्त गीज सेनाको कैद किया। इस पर शेप सभी सेनाने उसे जित हो डि-मेलो-के कार्य पर छात मारी । यहाँ तक कि, उस समय यदि सरकोटा द्वीपके रामराज विरुद्धाचरण नहीं करते, तो निश्चय था, कि वे सव योद्धा दलपतिका प्राणनाश कर मुगलोंके साथ मिल जाते। रामराज पुत्त गीजोंके मित थे। मुसलमानींके दमन अवरोध करने पर उन्होंने समस्त पुत्तंभीज रमणियोंको अपने राज्यमें आश्रय *दिया* ; पर उनके वहुमूल्य अळङ्कारके ऊपर रामराज लुभा गये। लौटते समय्रोपुत्तं गीज रमणियोंको वे सव अरुङ्कार नहीं मिले। इसीसे पुत्त गीजोंने क्रुद्ध हो सरकोटा द्वीप पर आक्रमण कर दिया। इस समय एक दूसरेको मदद पहुंचाना जरूरी था, इस कारण पुत्त गोजयोद्धा-गण भी औद्धत्यपरित्यागपूर्वक शतुनाशके आपसमें मिल गये। इस प्रकार वह गोलमाल १क गया। किन्तु इसके बाद १५८२ ई०में दमनके पुर्त्तगीजींने एक बार और गोलमाल उपस्थित किया । पुर्त्तगीजपोताध्यक्ष फार्णाव-डि-मिरन्दाने स्रतसे छोटते समय एक वड़े जहाजको .इसल किया। उसके लूटका माल ले कर सेनामें विरोध उपस्थित हुआ। फार्णावने पहले वह अंश किसीको भी नहीं दिया। इस पर सेनाने विद्रोही हो कर दमन पर चढ़ाई कर दी। इस अतर्कित आक्रमणसे नगरवासी . भारी विषष्टुमें पहें। उन अवाध्य सेनाओंने सैकड़ों Vol XIV. 47

नगरवासीका प्राणसंहार किया, उनका यथासवस लूटा और पुत्तंगीज जयपताका उखाड़ कर उसकी जगह एक कृष्णपताका फहरा दी। इस समय मिरन्दा यदि जमीन पर पांच रखते, तो निश्चय ही यमराजके मेहमान वनते। अन्तमें रक्षाका कोई उपाय न देख वे सेनाके वीच लूटका माल वांट देनेको राजी हुए। इस प्रकार धधकती हुई आग ठंढी हुई।

कणाड़ा-उपक़्लमें चार्शिलोका वन्दर था । वहुत वाणिज्यके स्थान लिये मशहूर था । यहां अनेक सम्वान्त मुसलमान-वणिक् रहते । फ़ान्सिस्को-डि-मेलो-साम्पयो नामक यहां एक दुर्गाध्यक्ष थे । उन्होंने केवल अर्थशोषण और आमीद प्रमोदमें मन दिया था । एक दिन मुसलमानी पर्चमें मौका पा कर मुसळमान कोग उन पर टूट पड़ें। पुत्त-गोजअध्यक्ष चरके मुखसे संवाद पा कर पहलेसे प्रस्तुत थे। विद्रोहके पहले ही उन्होंने विद्रोही नायकको मार डाळा । इस पर मुसलमानींने निकटवत्तीं वुलुवराजके यहां आश्रय प्रहण किया। तुलुव राजाने मुसलमानों की ५००० वीरों से मदद् की । अव उन्हों ने वाशिलो पर आक्रप्रण किया और आग लगा कर नगरके प्रधान प्रधान स्थानको जला डाला । पुत्तंगीज प्रतिनिधिने वहुसंख्यक सेना मेज कर उन्हें अच्छो तरह परास्त किया । इस वार पुत्त गीजों के भीषण अत्याचारजे कणाड़ा उपकूछ प्रायः जनसून्य हो गया था ।

१५८३ ई०को जेसुइट ईसाइयो ने पुर्त गीज-प्रतिनिधि-के आश्रममें सालसेटी द्वीपमें खृष्टानधर्मका प्रचार करना चाहा। इस बार मो धर्मप्रचार ले कर द्वीपवासियों के साथ विवाद हुआ। अनेक स्वधर्म अनुरागी इस बारके विवादमें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। जेसुट लोगों ने बहु संख्यक मन्दिरको धृलिसात् करके वहां अनेक गिर्जा निर्माण किये।

माल् आदिलशाह पुत्रपरिवार सहित गोआमें वन्हीं थे। यहीं पर पुत्तिगीजों के दुर्व्यवहारसे उन्हों ने प्राण-त्याग किया। उनके पुत्र काफू खाँ इतने दिनों तक गोआमें पुर्शगीजों के तत्त्वावधानमें थे। इप्राहिम आदिलशाहके अत्याचारसे विरक्त हो वीजापुरकी प्रजाने

काफू खाँ को राजा वनानेकी चेष्टा की । इस समय जादिलशाहके एक सेनापित लड़वा खाँ पुर्तागीज अध्यक्ष डीगो-लोपेज-वयामको रिश्वतसें वशीभूत करके काफू-को छुड़ा लाये। काफू खाँने समका था, कि वे ही राजा होंगें, पर विश्वासघातक लड़वा खाँने आदिलशाहको प्रसन्न करनेके लिये निरोह काफू खाँके दोनों नेत निकाल लिये। पुर्तागीज-राजप्रतिनिधिने यह दारुण संवाद पा कर उत्कोचग्राही सेनाध्यक्षकी घोर निन्दा की थी।

इस समय कोचिनराजने पुर्तगीजोंकी क्टनीतिसे वशीभूत हो राज्यका समस्त शुक्क वस्ल करनेका भार पुर्तगीजोंके हाथ सौंपा । इस पर कोचिनकी सभी प्रजा विद्रोही हो कर जी-जानसे स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अप्रसर हुई । इस युद्धमें वहुसंख्यक पुर्तगीजोंकी जान गई थी। कोचिनराज भी भारी विपद्धमें पड़ गये थे। आखिरमें गोआसे अनेक पुर्तगीज सेनाने आ कर विद्रोहको शान्त किया। इस समय शङ्खें इके नायकको भी पुर्त्तगीजोंके हाथसे यथेष्ठ कष्ट भुगतना पड़ा था।

# डम दुआर्से-डि-मेनेजिस् ।

१५८४ ई०में उम दुआत्तें राजप्रतिनिधि हो कर आये।
वे पहले कोचिनकी प्रजाको शान्त करने लग गये।
उन्हों ने कुछ सम्भ्रान्त नगरवासियों को शुल्क वस्लको
देखरेख करनेका भार दिया। पीछे कोचिन आ कर
उन्हों ने प्रजाकी इच्छा पूरी को।

देगोआ छोट कर दस्युदलपित शहू इके नायकका दमन करनेको अग्रसर हुए। इस समय आदिलशाहने स्थलपथमें नायकका शासन करनेके लिये पएडाके स्वेदार रोस्ती खाँके अधीन ४०००० सेना मेजी। इधर उनकी सुविधाके लिये पुर्रागीजों ने जलपथमें नायक पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओरके आक्रमणसे नायक पराजित हुए, अधिकांश दस्युपित गोलेके आधातसे परलीक सिधारे। अन्तमें नायकने अनुनय विनय करके दोनों पक्षके साथ सन्धि कर ली।

इम दुआरतेंके शासनकर्ता होने पर भी उनके चाचा राइगनसालभेस-डि-कमराई सर्वेसर्वा थे । इस समब प्रायुः सभी कार्ण उन्हींके आदेशानुसार चलते थे।

उन्हों ने सामरीराजके अधिकारमुक्त पोनानी नामक स्थानमें एक दुर्ग वना । चाहा और इसके लिये सामरी-राजको उपयुक्त स्थान दिखा देनेके लिये कहला मेजा। सामरीराज टालमटोल करने लगे । उन्हों ने पुर्तगीज-दूतसे कह दिया, कि उनके ब्राह्मण अभी शुभ दिन नहीं पाते, इसलिये उनका जाना एक गया है । धूर्ग पुर्त-गीज-सेनापतिने ब्राह्मणकी मुद्दी गरम कर शीब ही शुभ दिन निकलवाया। अब सामरीराज आ कर दुर्गोपयोगी स्थान दिखा देनेको चाध्य हुए । दुर्ग वनाया गया। अव पुर्तगोजोंको चारों और लूटपाट करनेमें सुविधा हुई।

१५८६ ई०में डम हिरोम कुटिन्हो गोभामें सर्वोच अदालत खोलनेके लिये राजाके आदेशसे वहां पहुंचे।

इस समय अङ्गरेजराजकी ओरसे सर फ्रान्सिस दे के जलपथके आविष्कारमें नियुक्त हुए । भारतसे एक पुर्रागीज जहाज आजोर्सके निकट उन्हें हाथ लगा। १५७० ई०के पहले अङ्गरेज और अपर विदेशीय यूरोपियोंका विश्वास था, कि पुर्तागीजके जैसा नौयोद्धा और युद्धजहाज और किसी जातिके नहीं है। किन्तु दे के साहवने अभी वह जहाज लूट कर देखा, कि पुर्रागीज लोग न तो वैसे नौयोद्धा हैं और न जहाज ही बनाने जानते हैं। उस जहाजमें उन्हे प्रायः १० लाख करपेकी सामग्री हाथ लगी थी। यह देख कर अङ्गरेजोंकी भारत-वर्ष पर पहले पहल आंख गड़ी। ओलन्दाजोंने जहाज लूट जानेका संवाद पहले ही पाया था। अभी वे भारतमें व्याणिज्य करनेके लिये वद्धपरिकर हुए। उसके साथ साथ पुत्त गीजोंका भी भाग्य चमका।

डम दुआर्त्त मेनेजिसके समय मलका द्वीप और सिंहलमें पुर्त्त गीजोंको यथेष्ट कष्ट भुगतना पड़ा था। इस समय उन सब द्वीपोंके राजा पुर्त्त गीज-ध्वंसका आयोजन कर रहे थे। अनेक युद्धोंके वाद विशेष क्षतिप्रस्त हो पुर्त्त गीज प्रतिनिधि सम्प्रमकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। इस समय कोचिनराजने हर तरहसे सहायता पहुंचा कर सिंहलके पुर्त्त गीजोंकी रक्षा की थी।

१५८७ ई० तक भारतीय वाणिज्य पुर्तगालराज एका-श्रिकारमें रहा, पर इसी साल एक हिल सम्म्रान्त पुर्त- गोजको भी वाणिज्य करनेका अधिकार दिया गया।
इस दलका नाम था (Companha Portugueza das
Indias Orientas) अर्थात् पूचभारतीय पुर्रागोज-समिति।
परन्तु यह समिति अधिक दिन तक स्यायी न रही। जब
ये वाणिज्य करने गये, तब सभी गोआवासी इनके विरुद्ध
खड़े हुए। राजप्रतिनिधि भी भीतर ही भीतर इनके
सार्थनाशकी कोशिशमें थे। अतः थोड़े हो दिनोंके
अन्दर इस समितिका अस्तित्व लोप हो गया।

१५८८ ई॰ के मई मासमें डम वुआर्चे सिहल-जयका संवाद पानेके वाद ही कराल कालके गालमें फंसे। इनके शासनकालमें सभी भारतीय द्वीपपुजको पुत्र्वेगाल-के शासनमें लानेकी चेष्टा की गई, इसीसे, भारतीय वाणिज्यमें जो कुछ लाभ हुआ था, खर्च हो गया।

डम हुआरोंके वाद मानुपल-डि-सुसा कुटिन्होने गोंआमें शासनभार श्रहण किया। उनके शासनकालमें भारतसमुद्रमें अनेक वाधाविष्न होने पर भी पुर्शगीजोंके साथ भारतवासियोंका कोई संघर्ष नहीं हुआ।

मथियस-डि-आलवुकार्क।

१५६० ई॰में मथियसने राजप्रतिनिधि हो कर लिस-वनसे याता की। १५६१ ई॰के मई मासमें उन्होंने गोआ पहुंच कर शासन-भार प्रहण किया। पहले अनु-कूल ऋतु आये विना कोई भी पुत्त गालसे जहाज नहीं छोड़ता था, पर मथियस ही सबसे पहले असमयमें जहाज चला कर निर्दिष्ट समयमें भारतवर्ष पहुंचे। सिहलके राजाओंने ईसाइयों के विरुद्ध अक्षधारण किया था। शासनभार प्रहण करते ही मथियसने अनेक नौवल मेज कर उसका प्रतिविधान किया।

१५६१ ई०में पुर्रागीज जेसुटोंको प्रसन्न करनेके लिये सामरीराजने अपने राज्यमें ईसाइयोंको गिर्जा बनानेका हुकुम दिवा।

१५६२ ई०में पुर्त्तगीजों के अत्याचार पर सन्धि तोड़ कर मुसलमानोंने चेउल पर आक्रमण कर दिया। इनका सेनापित पहले पुर्त्तगीजों के अधीन काम करता था और उनका रणकौशल अच्छी तरह जानता था। अतः उसके कथनाजुसार जब मुसलमानों ने पुर्रागीकों पर चढ़ाई कर हो, तब वे विशेष क्षति और भारी विषदुमें पड़ गये। जो चेउल नगरकी रक्षामें तैनात थे, उनमेंसे अधिकांश मुसलमानों के शाणित कृपाणाद्यातसे वीरगतिको प्राप्त हुए। आखिर वसाई, गोक्षा आदि नाना स्थानों से संख्यक पुर्रागीज योद्धाने आ कर मुसलमानों को परास्त किया। पराजित हो कर मुसलमान सेनापित फरीद खाँ और उनकी कन्या काथिलक धर्ममें दीक्षित हुई। अब किस्तान हो कर फरीद खाँ पुर्रागालको चल दिये।

१५६५ ई०में जोहन-डि सालदाना गोजाके आर्क-विशप वन कर आये। उन्हों ने राजप्रतिनिधिके साथ मिल कर खुट्टीय-धर्म-प्रचारमें विशेष ध्यान विया । पुर्त्त-गीज धर्मप्रचारको ने भी नाना-स्थानो में धर्मप्रचार करने और लोगों को भुलानेके अभिप्रायसे छोटे छोटे दुर्ग वनवाये। उनमेंसे सीलरका दुर्ग ही प्रभान है। लुप्रीय-धर्मचारकगण सुविधा पा कर बहुतों की छल वलसे भुला कर किस्तान वनाने लगे। इस पर अतेक हिन्दु और मुसलमानों ने महाविरक हो कुछ पाद्रीकों मार डाला। फिर क्या था, पुर्रागीज योदाओं ने याजको के साथ मिल कर नगर-प्राम जला डाला और निरोह लोगों के प्रति जैसा अत्याचार किया वह वणना-तीत है। पोपका हुकुम था, कि दएडविधातृगण केवल सधर्म दोहा ईसाइयों और यहृदियों को दएड देंगे, पर गोआके आकविशपके अधीन दण्डविभाताओं ( Inquisitors ) ने हिन्दू और मुसलमानी पर भी धर्मके नामसे उत्पीडन करना आरम्भ कर दिया। किसी किसी का कहना है, कि धर्मके नामसे यह अनर्थकारी उत्पोडन और अत्याचार ही भारतीय पुर्त्तगीजोंके अधःपतनका अन्यतम कारण था।

१५६७ ई०के मई मासमें उम फ्रान्सिस्को-जि-गामा (Condede-vidigueira) राजप्रतिनिधि हो कर आये। वे कुछ अधिक अहङ्कारी थे, किसीकी परवाह नहीं करते थे, इस कारण वे सभीके अप्रिय हो गये। वे अपने अक-र्मण्य आत्मीयगणको उच्च पद पर नियुक्त कर निन्त्नीय हुए थे।

इसके पहले ही ओलन्दाज लोग भारतमें वाणिज्य करनेकी चेष्टा कर रहे थे। उनकी ओरसे भारतकी अवस्था और भारतीय विषयोंका पता लगानेके लिये लिनसोटेन भेजे गये। लिनसोटेन गोआके आकैविशय-के दलमें मिल कर उन्होंके जहाज पर भारत आये। विणकोंके लिये किसी देशके सम्बन्धमें जो जो जानना आवश्यक था, लिनसोटेन सभी जान गये थे। १५६२ ई०में वे खर्रशको लीटे और १५६६ ई०में अपने भ्रमण और भारतका चाणिज्य-विषय ले कर उन्होंने एक प्रन्थ प्रकाशित किया। उस प्रन्थसे ओलन्दाजगण समस्त शातव्य विषय जान कर भारत-उपकूलमें उपस्थित हुए। ओलन्दाजोंकी वाणिज्य चेष्टा देख कर इस समय स्पेन-राज फिलिपने भी ओलन्दाजोंकी विषय सम्पत्ति छीन लेने और उन्हें देशसे मार भगानेका आवेश दिया।

अंगरेजींने भी इस समय रानी पिलजावेधका आदेश ले कर खदेशीय द्रध्यके वदलेमें विदेशीय मालयलकी आमदनो करनेकी चेष्टा की।

१६०१ ई०में अङ्गरेज कप्तान लाङ्के पर भारत महा-सागरमें उपस्थित हुए और आचिनमें उन्होंने वाणिज्य-कोंडो खोलनेका पहले पहल आदेश पाया। आचिनराज-को उत्साहसे अङ्गरेज और ओलन्दाज लोग पुर्त्त मोजका वाणिज्य-प्रमाव नप्ट करनेके लिये वद्धपरिकर हुए। पुर्त्त गीजोंके नाना उत्पीड़न और धर्मके भाणकारी दण्ड-विधाताओं (Inquisitors)के अति जधन्य निप्रहसे जनता पुर्त्त गीजों ऊपर मर्मान्तिक विरक्त हो गई थी। अभी देशीय विणकोंने स्वतः प्रवृत्त हो कर अङ्गरेज और ओलन्दाजका पक्ष लिया। वाणिज्यको सुविधा समक्त कर ही विलायतसे अनेक वाणिज्य-जहाज भारतको ओर आने लगे।

इस समय एक और दस्युदलपित पुर्त गीजोंका महा-शिखु हो उठा। इस जलदस्युका नाम था लाँ अली। पहले सामरीराजने इसे उत्साह दिया। क्रमणः उसने अपने वाहुवलसे सामरीराजके अधीन मलवारके अनेक स्थानों पर देखल जमाया और अपनेको 'भारतीय-समुद्रका अभिपित' और 'मुसलमान-धर्मका पुनरुद्धारकारी' वतला कर भोषणा कर दी। अभी सामरीराज दस्युका मन्द अभिपाय समक कर पुर्त गीजोंके साथ मिल गये और लाँ अलीके निपातनकी चेष्टा करने लगे। दो प्रवल-शक्तिके एकत हो कर अनेक वार युद्ध करने पर भी मुसलमान-दस्युका बाल वांका न हो सका। १५६६ ई०-में उस दस्युपतिने 'पुत्त गीजध्वंस' उपाधि प्रहण की। महाविक्रमसे ्युद्ध करके उसने पुर्त्त गीजोंको अपने अधि-कारसे मार भगाया । पुर्त्तगीज लोग व्यतिव्यस्त हो पड़े, उन्होंने फिरसे सामरीराजके साथ मिल कर चारों औरसे खाँ अली पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। इस वार खाँ अली पक्षके अनेक योद्धा मारे गये। खाँ अली क्रमशः निस्तेज हो पड़ा। अभी दस्युपतिने सामरी-राजके निकट अनेक उपहार मेज कर उनके तथा अपने दलकी रक्षाके लिये विशेष अनुनय किया। सामरीराज-ने दस्युपतिकी वात पर कान नहीं दिया। नायरसेना ले कर वे भो खाँ अलीके दुर्गध्वंसमें प्रवृत्त हो गये। अव वचावका कोई उपाय न देख र्खी अलीके आत्मसमर्पण करने पर सामरीराजने उसे अभयदान दिया। किन्तु पुत्त गीज उसे वन्दी करके गोआ लाये। यहां दस्युपति राजद्रोह, दस्युवृत्ति और खृष्टानद्रोहिताके अपराध पर द्ळवळ समेत मारे गये । पीछे उसका हुगै भी धूलि-सात् कर दिया गया।

१६०० ई०में आयरस-दा-सालदान्हा फ्रान्स्स्कोके स्थान पर राजप्रतिनिधि अमिषिक हुए । पहलेसे ही सब कोई फ्रान्स्स्कोके ऊपर विरक्त थे। अमी नये राजप्रतिनिधिके आने पर उनके उत्साहसे पुर्वगीज-राजपुरुषगण फ्रान्स्स्को-डा-गामाके साथ अन्याय व्यव-हार तथा विशेषकपसे उन्हें अपमानित करने लगे। उनके सामने सबोंने भास्को-डि-गामाकी प्रतिमूर्ति जला डाली। उनके अवैध-आचरण पर कुद्ध हो वे लोग अन्तमें उनके प्राणनाशका षड्यन्त रचने लगे। अब वे यहां अधिक काल ठहर न सके, अनुकूलवायुमें जहाज चला कर छः महीनेके अन्दर पुर्तगाल पहुंचे। फलतः अत्यन्त कप्र पा कर वे आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। फ्रान्स्स्को के शासनकालमें और उनके बाद भी बङ्गालके समुद्र-कुलवर्ती स्थानमें पुर्तगीजोंने भीषण उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया था।

भायरस-दि-सास्ट्रेन्हा ।

सालदानहाके शासनकालमें पुत्त गीजीने आराकानमें प्रतिष्ठालाम किया था । सालमाडोर-रिवोरा-डि-सुजा

(Salvador Ribeiro de sousa) नामक एक पुनैगीज सैनिकने रोसङ्ग (आराकन )-राजके अधीन कार्य करना खीकार किया। धीरे धीरे उसने आराकनी सेनाकी अध्यक्षता प्राप्त कर ली थी । पीछे लिसवनवासी फिलिए डि-ब्रिटो-इ-निकोटी नामक एक और व्यक्तिने जवं डि-सुजाका साथ दिया, तव उनके प्रभावसे धीरे धीरे वहुत पुर्तगीज आ कर आराकानमें आश्रय ब्रहण किया । आराकनराजने उनकी सहायतासे पेग्-का सिहासन पाया था, इस कारण उन्होंने पुत्त गीजोंकी (रंगून जिलेके मध्यवर्ती) सिरियम वा धमलिए नामक वन्दर प्रदान किया । पोछे निकोटोकी उत्तेजनासे आरा-कनराजने नदीके मुहाने पर एक शुटकगृह (Customhouse ) वनवाया । वनद्ला नामक एक व्यक्तिको उसका कार्य सौंपा गया। वे पुर्त्तगीजोंकी दुरभिसन्धि जानते थे, इस कारण उन्होंने वेलचुअर नामक एक खृष्टान-याजक (Dominican friar) छोड़ कर और सभी पुर्तगोजोंका प्रवेश निषध कर दिया। इस पर सभी पुर्च गीज उत्ते-जित हो उठे। नेकोटीने अपरापर पुत्तं गोज सेनानायक-की सहायतासे एक दिन हडात् वनदला पर आक्रमण कर शुक्तगृहको अधिकार कर लिया। पीछे दिघानका वौद्ध मन्दिर लूट कर उन्होंने प्रचुर अर्थ पाया और उसीसे अपने दलकी पृष्टि की। आराकनराज पहले इस कार्यके लिये निकोटी पर वड़े विगड़े थे, पर निकोटी राजाको अनेक भावी आशासे प्रलब्ध कर उनके और भी प्रियपात हो उठे। आराकनराजने निकोटीके इच्छात्रसार उक्त शुक्तगृहको दुर्गसे सुरक्षित रखनेका आदेश किया।

यहां जब दुर्गको नीवं डाली गई, तब निकोटी पुर्त-गीज राजप्रतिनिधिका अनुग्रह पानेकी आशासे सालमा-बोरके ऊपर दुग रक्षांका कुल भार दे गांआके राजप्रति-निधिको वह दुर्ग देनेको आये। राहमें निकोटीने कुछ राजाओंसे मुलाकात की और उन्हें यह आशा दी, कि यदि वे पुर्त्त गीज राजप्रतिनिधिका साथ दें, तो वे अना-यास ही वङ्ग अथवा पेगू पर अधिकार कर सकेंगे। उसके मुखसे ऐसा मनोमुन्धकर वाक्य सुन कर अनेक राजाओंने उसके साथ गोंआमें दूत भेजा था।

निकोटिरनके आराकन-परित्यागके वाद ही आराकन-Vol. XIV. 48 राज पुर्तं गीजोंकी दुरिमसिन्धि समक न सके । उन्होंने उसी समय पुर्तं गीजोंको अपने राज्यसे निकल जानेका दुकुम दे दिया और पुर्तं गीज सेनाका दमन करनेके लिये वनदलाके अधीव ६००० सेना मेजी। प्रोमके राजाने भी सेना मेज कर आराकनराजकी सहायता की थी। किन्तु सालमाडारने ससैन्य दुर्गंके भीतरसे ऐसा अविरल गोलावर्पण किया था, कि किसीको उनके निकट जानेका साहस नहीं दुआ। पुर्त्तं गीजोंने रातको अतर्कित भावसे आक्रमण करके आराकनी सेनाको परास्त किया। इस समयसे उन दुर्द्धं भीर पिशाचकप पुर्त्तं गीजोंने आराकनासीके ऊपर दारण अत्याचार आरम्भ कर दिया। क्रमशः जलपथकी याला और भी अनर्थकर तथा विपज्जनक हो गई। वनदलाके वार वार आक्रमण करने पर भी पुर्त्तं गीजोंको कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। सैकड़ों आराकनी पोत पुर्त्तं गीजोंके हाथसे विध्वस्त हुए।

१६०२ ई०में सालभाडोर रिवेरोने ससैन्य कामलङ्का पर धावा मारा, जिससे जल भीर स्थलपथमें कामलङ्का-की विशेष क्षति हुई। कामलङ्काराज महासिंह उस युद्ध-में गारे गये। उनकी मृत्युके वाद पेगूके अधिवासिगण पुर्द्ध गीज लोगों से डर गये और उनकी विशेष मिक करने लगे। इस समय वहांके प्रायः २००० मनुष्यों ने रिवेरों के अधीन काम करना स्त्रोकारा था। अभी रिवेरों कामलङ्काके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। रहिंगो-आलवरेस-डि-सेकुइरा अब सिरियामके अधिपति हुए।

इधर निकोटी गोआ जा कर पुत्त गीज राजप्रतिनिधिन के प्रोतिभाजन हुए। यहां तक कि पुत्त गीज प्रतिनिधिने यबद्रीपीय रमणीके गभजात अपनी एक भ्रातुष्पुतीके साथ निकोटीका विवाह कर दिया और उन्हें 'सिरि-यामके हुर्गाध्यक्ष और पेग्रजयके प्रधान सेनापित'को उपाधि दी।

निकोटी सिरियामको छौट दुर्ग-संस्कार, गिर्जा-स्थापन और आराकनराजको भनेक उपहार भेजने छगे। इसके बाद उन्होंने यह आदेश निकाला कि, इस ओर जो कोई वाणिज्य-जहाज भावेगा, उसे इसी शुक्कगृह हो कर जाना पड़ेगा। इससे पुर्व गोर्जोको यथेष्ट आमदनी होने लगी। अब आराकनराज उस शुक्कगृह पर दखल

करनेकी चेष्ठा करने लगे । उनका अभिप्राय समक्त कर पुर्च गीज लोग आराकनी-पोत लूटने लगे । पेगूराज-पुर्वोने आराकनी सेनाके साथ मिलकर पुर्च गीजोंके साथ घोर संप्राम किया था, किन्तु पुर्च गीजोंके कूट्युद्धसे वे वार वार पराजित हुए थे। आराकनराज और प्रोमराजके परास्त होने पर ब्रह्मके और किसी भी राजाको पुर्च गालोंके विरुद्ध अप्रसर होनेका साहस नहीं हुआ। अव पुर्च गीजगण निश्चन्त हो प्रचुर अर्थ सञ्चय करने लगे। सालमाडोर रिवेरोने निकोटीके हाथ शासन-भार सौंप कर खदेशको याता को। इस समयसे आराफन और पेगूके मध्यस्थित समुद्रोपकूलवर्ची स्थान और बङ्गोप-सागरस्थित अनेक छोटे छोटे होप 'फिरंगीका मुक्क' वा 'फिरंगी'का देश कहलाने लगे थे।

१६०५ ई०में मार्टिम-आफन्सो-डि-काट्टो राजप्रतिनिधि हो कर आगे। इस समय ओलन्दाजगण क्रमशः प्रवल होते जा रहे थे, उन्होंने पुर्त गीजोंके हाथसे भारत-महा-सागरीय अनेक द्वोपींका चाणिज्याधिकार छीन लिया। इस कारण दोनोंमें यमसान लडाई छिडी।

आफन्सोको मृत्युके वाद उनके स्थान पर गोआके आर्कविशप डम आलेक्लो-डि-मेनेजिस १६०७ ई०में पुर्त्त-गोज-भारतके शासनकर्ता हुए । १६०६ ई०में उनकी जगह पर डम-जोहन पेरिरा-फ्रोजस (Conde-de Peyra) पुर्त्त गालसे राजप्रतिनिधि हो कर आये ।

इसके पहले निकोटीने आराकनराजके एक पुतको कैंद कर रखा था। उनकी मुक्तिके लिये आराकनराज वहुत कोशिश करने लगे। निकोटीने इस सम्बन्धमें गोआके राजप्रतिनिधिका अभिप्राय जानना चाहा। प्रतिनिधिने बिना कुछ लिये ही आराकन राजकुमारको छोड़ देनेका हुकुम दिया। किन्तु निकोटीको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने राजकुमारकी मुक्तिके लिये पांच लाख रुपये मांगे। इस पर आराकनराज नितान्त असन्तुष्ट हुए और तौंगुराजके साथ मिल कर निकोटी पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें आराकनराजको हार हुई। इसका प्रतिशोध छेनेके लिये आराकनराजने बहु संस्थक काथलिक किस्तानोंको एकड़ कर कैंद किया और उन्हें वथेष्ट कष्ट दिया। अन्तमें वार वारके आक्रमणसे

बलहीन हो पुर्त्त भीज लोग सिरियाम हुग समपण करने-को वाध्य हुए । जंयइपैसे गर्वित भाराकनी जहाज भी इस समय लीट रहा था । छल बल कीशलसे पुर्त्त गीजीने भी अन्तमें आराकनी रणपोतींको विध्वस्त कर जयलाम किया ।

निकोटोके विजय-संवादसे समस्त ब्रह्मदेशके नृपतिगण उनके साथ मिलतापाशमें आवद्ध होनेके लिये
उत्सुक हुए यहां तक, कि मर्च वानके राजाने निकोटीके
पुत्रको अपनी कन्यासे विवाह कर सम्बन्ध स्थिर किया।
इस मर्चवान-राजकी सहायतासे निकोटीने प्रोमराजको
परास्त और कैंद्र किया। उस समय प्रोमराज पुर्च गाल
राजके अधीनता-पाशमें आवद्ध थे, किन्तु निकोटीने
धर्मके ऊपर अटल न रह कर अपनी दस्युवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये प्रोमराजका प्रचुर अन्तरत्न अपहरण
कर लिया।

१६०५ ई०को बङ्गालमें एक और पुर्च गीजका उत्पात आरम्भ हुआ। जिसका नाम था सिवाष्ट्रिओ-गञ्जालिस-तिवाओ । लिसवनके निकट एक नगण्य प्राप्तमें बहात कुलशील एक निम्न व्यक्तिके घरमें गञ्जालिसका जन्म इका था। किसी प्रकार बङ्गाल देश आ कर उसने सैनिक-वृत्तिका अवलम्बन किया था, किन्तु इसमें विशेष सुविधा न देख सैनिकवृत्ति छोड़ दी और खवणका धवसाय आरम्भ कर दिया। पहुछे ही वह एक छीटी बोट पर लवण लाद कर आराकन आया, किन्तु उस समय आरा-कनराज पुरत गीजों पर वहुत क्रुद्ध थे, इस कारण गञ्जा-लिसने वह कष्टसे प्राणरक्षा की थी। इस वार उसने भी अनेक दुष्ट छोगों और कुछ जहाजोंको छे कर आराकन-उपकूलमें दस्युवृत्ति आरम्म कर दी। यहांसे वे लुस्का माल ले जा कर वाटिकालिया वन्दरमें बेचते थे। इन दस्युगणके उत्पातसे चहुप्राम, आराकन और बङ्गालके उपकूलवासी सभी मनुष्य व्यतिव्यस्त हो गरे । शण-द्वीपके राजा फते खाँने उनका व्यन करनेके लिये रणपोत-में अनेक सेना के उन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उन दुवु सोंके निकट शणंद्वीपराज परास्त और बन्दी हुए। उनकी अनेक सेना पुत्त गीज दस्युके शिकार बन गई। फते लाँको परास्त करके द्रयु लोगोंने गञ्जालिसको अपना दलपति बनाया ।

#### सिबाध्टियी गुङजालिस ।

बङ्गालके नाना स्थानों में जो सब पुर्श गोज रहते थे अभी उन्हों ने आ कर गञ्जालिसका साथ दिया। अभी गञ्जालिस शणद्वीप पर अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। वाटीकालियाके राजाने भी आधा राजस्व पाने-की आशासे पुर्त्तगीजोंके साथ कुछ जंगी-जहाज और दी सी अश्वारोही भेज दिये।

१६०६ ई७के मार्चमासमें गञ्जालिसने ४० जहाज और प्रायः ४०० पुर्त्तगीज-सेनाको ले कर शणद्वीप पर चढ़ाई कर दी। फते खाँके भाईने हजारसे ऊपर मुसलमानी सेना ले उन्हें रोका। घोरतर युद्ध करके पुर्त्तगीज लोग श्रान्त हो पड़े, पर तिस पर भी द्वीप हाथ न लगा। घीरे घीरे उनकी रसद घटने लगी। इस समय स्पेनीय जहाजके कप्तान गैरु-पर-डि-पीनाने उन लोगोंके शतुरीधसे रातको ५० योद्धाओंके साथ द्वीपमें उतर कर भयङ्कर अग्निकाएड किया। उनका गभीर गर्जन और अग्निवर्यण सन कर मुसलमानोंने समका, कि शतुकी फिर अनेक सेना पहुंच गई है, अतः उन्हें लड़ाई करनेका साहस नहीं हुआ। अव गञ्जालिसने फीरन दलवलके साथ जा कर दुर्ग पर अधिकार जमाया।

शणद्वीप जीत कर गञ्जालिसने पहले सभी पुत्त -गीजोंको थोढ़ी थोड़ी जमीन दी थी, पर पीछे छीन ली। किन्तु वाटिकालियाके राजाको राजसका आधा देनेकी बात तो दूर रहे, कुछ भी न दिया गया उल्टे वह उनके विरुद्ध युद्ध ठाननेको तैयार हो गया।

गञ्जालिस धीरे धीरे धनी हो चला। १००० पुत्तेगीज, २००० देशी पदाति, २०० अश्वारोही, ८० जहाज और अनेक गीला गोली उसे हाथ लगे। अभी उसीके प्रमावसे वाटिकालियाराजके अधीन लवासपुर और पाटिलाङक्षा नामक दोनों द्वीप पुत्तेगीजके अधिकार- भुक्त हुए। शणद्वीपमें नाना स्थानोंसे वाणिज्यपीत आते थे, गञ्जालिस उन सव पोतोंसे शुक्त वस्तूल करता था। इस प्रकार वह शीध ही सहाब सम्पत्तिमें निकटवर्ती राजाओंका मुकावला करने लगा।

इस समय आराकनराज्के साथ अपने भाईमें हाथी लेकर विवाद उस्थित हुआ। इस पर राजाने अरने भाईको राज्यसे निकाल भगाया। राजप्राता अनापयमने परिवार और धनरत्नादिके साथ गक्षालिस का आश्रय लिया। गक्षालिसने अच्छा मौका देख कर उनकी वहनसे विवाह किया और गुप्त भावसे विष खिला कर उनकी सारी धनसम्पत्ति ले ली। इस पर अनापयमकी विधवा-पत्नीने आराकतराजके निकट गक्षालिस पर अभियोग लगाया। धूर्च गक्षालिसने उनका मुंह वंद करनेके लिये अपने भाई अल्डोनिओ तिवाओंके साथ उनका विवाह कर देनेकी चेष्टा की; पर विधवारमणी उसके नीच प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुई। इधर आराकतराजने आ कर गक्षालिस पर धावा वोल दिया। अन्तमें गक्षालिस सिथ करनेको वाध्य हुआ और हतभागिनी विधवाने आराकतराजका आश्रय लिया।

पुर्त गोजोंके ऐसे उपद्रवसे उत्त्यक्त हो मुगल लोग इस समय मुलुआराज्य पर आक्रमण करनेका आयोजन कर रहे थे। गञ्जालिसने आराकनराजके साथ मिल कर मुगलोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। शर्त यह ठहरी, कि मुगलोंको हटा सकने पर आधा मुलुआराज्य गञ्जालिस पावेगा। इसके प्रतिभूखक्षप गञ्जालिसने अपने भतीजे और शणद्वीपवासी कुछ पुर्त गोजोंको आराकनके निकट रख छोड़ा था।

आराकनराज मुगलोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। किन्तु गञ्जालिसने अपने कथनानुसार सहायता नहीं की। आराकनराज्य अकेले युद्ध करके परास्त हुए और अन्त-में भग कर उन्होंने चट्टग्रामदुर्गमें आश्रय लिया। पीछे गञ्जालिस मुगलोंके साथ युद्धका बहाना करके आराकनी पोताध्यक्षोंके साथ मिल गया। एक दिन उसने सभी पोताध्यक्षोंको अपने जहाज पर निमन्त्रण कर मार डाला और उनके अधीनस्थ आराकनीपोत और जहाज लूट लिये। इतने पर भी दुर्वृत्त शान्त नही हुआ। तल-चार और अग्निप्रयोगसे वह निरीह उपकूल-चासियोंका अतर्कित भावसे संहार करने लगे। इसके वाद गञ्जालिस आराकन पहुंच कर लोमहर्षण-काण्ड करनेमें प्रवृत्त हुआ। सुरम्य आराकननगर उसके दौरात्म्यसे हतथ्री हो पढ़ा, नाना विदेशीय जहाज दुरात्माके हाथ लगे। यहां तक कि, आराकनराजका खणे और गजदन्त-क्वित एक बहा

जहाज दुरातमाने नष्ट कर डाला। इस विश्वासघातकता और पैशाचिक अत्याचारसे अराकनराजने निवान्त कुद हो गञ्जालिसके भतीजेके हृदयमें शलाका विद्ध कर, जिस-से गञ्जालिसकी इस पर निगह पड़े, इस अभिप्रायसे उस-को उच्चस्थानमें लटका दिया। पर यह देख कर भी उस नरपिशाचका पाषाण-हृदय नहीं पसीजा। भतीजेके उद्धारकी कोई चेष्टा न कर वह दुवृं स शणहीपको चला गया।

इधर दस्युपति सिवाष्ट्रिओ गञ्जालिस शणद्वीपका एक खाश्रीन राजा हो गया। उसने गोशाके पुर्च गीज-राजप्रतिनिधिको सूचित किया, कि वह पुत्त गालराजके अधीन रहेगा, प्रतिवर्ष पुत्त गालराजको कर खरूप एक जहाज चावल मेजा करेगा। पुत्तीगीज गवर्नमेएदसे भी उसने सहायता मांगी। राजप्रतिनिधि उसे सहायता देनेको राजी हुए। तदनुसार उसने डम-फ्रान्सिस्की-डि-मेनेजिसके अधीन १४ छोटी बोट भेजी थीं। डम-फ्रान्सिस्कोने आराकन-उपकूलमें पहुंचते ही वहांके राजा पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। किन्तु डीक उसी समय कुछ ओलन्दाज युद्ध-जहाज ले कर पहुंच गये। अतः उन्हें आराकन पर आक्रमण करनेका मौका नहीं मिला। इधर उन दोनोंने आराकनी जहाज पर चढ़ाई कर दी । युद्धके आरम्भ होते न होते ओलन्दाजीने आ कर आराकनियोंका साथ दिया। युद्धमें उन-फ्रान्सिस्को मारे गये और गञ्जालिस भो अपना जहाज ले कर शण-द्वीपमें भाग आया । पुत्तं गीज गवर्मे एटकी सेना गञ्जा-लिस पर विरक्त हो गोआ वापस आई। इसके वाद ही आराकनराजने काफो सेना छे कर शणद्वीपको दखल कर लिया। गञ्जालिसने विपद्यस्त हो चद्दमाम भाग कर जान वचाई।

दूसरे वय पुत्त गीजोंने श्यामराजके निकट मर्तवानमें दुर्ग वनाने और विना शुक्कके वाणिज्य करनेका अधिकार पाया। इस पर ब्रह्मराजने डर कर पुत्त गीजोंके साध सन्धि कर ली और आराकनराजके विरुद्ध पुर्त्तगीजोंको सहायता पहुंचानेमें सहमत हुए।

१६१७ ई॰में सम जोहन कुटिनहों (Conderie-Bedondo) लिसबनसे राजंप्रतिनिधि हो कर. आये। इस समय वेङ्कटनायकने मलवार-उपकूलमें पुत्त गोजोंके विकद्ध युद्ध घोषण कर दी। पहले वेङ्कटनायक ही विशेष क्षतित्रस्त हुए थे, पर पीछे उन्होंने १६१८ ई॰ में १२००० कनाड़ी-सेना ले कर पुत्त गोजोंको परास्त किया। इस युद्धमें वहुसंख्यक पुर्त्तगीज निहत और वन्दी हुए थे। लुइस-डि-व्रिटो और डम-फ्रान्सिस्को-डि-मिरन्दा नामक दो पुर्त गीज सेनाध्यक्ष युद्धमें प्राण गैवाये थे।

१६२३ ई०में रामनादके सेतुपतिने पुर्त्व गीजींके विरुद्ध अस्त्रधारण किया, किन्तु इस युद्धमें वे ही क्षति- अस्त हुए। इस समय तओरराजने पुर्त्व गीजींके अत्या- वारसे सिहिलयोंकी मुक्त करनेके लिये क्षेम-नायकके अधीन १२००० हजार खेना भेजी थी। कई एक युद्धोंमें जीत होने पर भी अन्तमें पराजित हो तओरको वड़गसेना देशको लीट गई।

१६२२ ई०में फार्डिनन-डि-आलवुकार्कका शासन-काल शेष हो चला। वे वहुत कप्टसे भारतीय पुर्च गीजों-की ख्याति प्रतिपत्तिकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु इस समय हरमुजद्वीपमें अङ्गरेजोंका वाणिज्य-प्रभाव वहुत चढ बढ गया था।

उसी सालके सितम्बर मासमें उम फ्रान्सिस्को-डिगामा (Conde-de- Vidigueira) पुनः राजप्रतिनिधि हो
कर आये। यहां उन्होंने देखा, कि पुर्त गीज गवर्मेग्टकी
अधिकांश आय पर खुष्टान-पादरी और याजकगण अधिकार कर वैठे हैं। एक गोआमें उन्होंने देखा, कि अपर
पुत्त गीज अधिवासीकी संख्यासे पादरी लोगोंकी संख्या
दूनों है। इधर पुत्त गीज प्रभावकी रक्षाके लिये जितना
खर्च नहीं होता था, उधर उतनाही अकर्मण्य याजकोंको
परितृतिके लिये ज्यादा खर्च होता था।

१६२३ ई०के जनवरी मासमें अङ्गरेजों और ओल-न्दाजोंने जहाजसे आ कर गोआको घेर लिया। इस समय गोआमें ऐसा जहाज नहीं था जो शत्रुकी गति रोक सकता। जो कुछ हो, पुर्च गोजोंके सौभाग्यक्रमसे शत्रु-गण आप ही लीट गये, नहीं तो गोआके भाग्यमें क्या होता, कह नहीं सकते।

क्रमशः अङ्गरेज, ओलन्दाज और फरासीगणने भारत-

तीय वाणिज्यमें प्रधानता लाभ की। पुत्त गालराजने भवना खार्थ नए होते देख अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके उच्छेदके लिपे हर उपायका अवलम्यन करनेके लिये आदेश दिया।

जिस नीवलसे पुर्तगीजों ने एक समय पशियामें प्रधानता लाभ की थी, पुर्तगोजों के शतुगण अभी उसी नीवलसे वलवान् हो उठे। राज्यकी आमदनी विलक्कल घट गई। यहां तक कि अनेक प्रधान वन्दरोंमें राजपुरुष-गण रिश्वत ले कर विना शुक्क मालकी रफ्तनी करने लगे। धूर्त राजस-संप्राहकगण राजसरकारमें उचित रीतिसे राजस-वस्त्रलका हिसाव नहीं देते थे। ये सव कर्मचारी पुनः पुरुपानुकमसे कार्य करने लगे थे। अतः राजाके इष्टानिष्टकी ओर ध्यान न दे कर सभी अपना मतलव निकालनेमें मस्त थे। विशेषतः जो यूरोपियनों-के विवद्ध युद्ध करके प्राण गैवाते थे, पुर्वगीज-गवर्मेण्ट विना देखे सुने उनके पुत्रों को वह पद प्रदान करती थी। यहां तक कि पुतादिके अभावमें भी उनकी विधवा-पत्नी पितका पद पाती थीं।

ं अनेक पुरा<sup>र</sup>गीज भारतीय कामिनियोंका पाणिव्रहण करके भारतवासी हो गये थे। उनकी खदेश जानेकी उतनी इच्छा नहीं होती थी, सुतरां वे यहां धनसम्पत्ति बढ़ानेकी चेष्टा करते थे। विशेषतः भास्को-डि-गामाके कठोर आदेशानुसार कोई भी ध्यक्ति देशसे आते समय अपनी स्त्री साथ नहीं ला सकता था। इस प्रकार स्वामी अथवा प्रणयीके साथ स्वदेश त्याग कर आने पर वह स्त्री गुरुतर दण्डमीग करती थी। इससे पुत्र गाल-की और भी सित होने लगी। पुर्त गीजगण विवाह करके जो भारत और सन्निकटवत्तीं द्वीपादिमें वस गये थे, उससे पुत्तीगाल क्रमशः जनशून्य हो गया था। अतः पूर्वाः देशको रह कर पुनः एक नया नियम लिपिवद्ध हुआं। पुर्च-गोजोंकी मतिगति पलटानेके लिये तथा भारतीय-रमणीकी प्रणयासकि पुर्तागीज हृदयसे स्थानान्तरित करनेके अभि-प्रायसे प्रतिबय पुर्च गालसे भारतादि नाना स्थानींमें अनेकानेक अनाथा वालिका मेजी जाती थीं। इनके भरणपोषण और रक्षणावेक्षणका भार पुत्त गीज-गवर्मेण्ट-के ऊपर सींपा गया था। वे सव वालिकाए बड़ी होने पर पुर्त गीजके साथ व्याही जाती थीं। विवाहके समय

उन्हें पुत्त गीज-गवर्मेण्डसे यथेष्ट यौतुक मिलता था। कहीं कहीं यौतुकके वदलेमें उपयुक्त कमें विया जाता था। किन्तु वालिकाके वह कमें करनेमें अक्षय होने पर उनके पितगण पुतादि कमसे वह कार्य करते थे। इस प्रकार विचाहके यौतुकस्वरूप एक व्यक्ति एक बार कोरङ्गमूरका शासनकर्ता तक भी हो गया था। अन्तमें विचाहकी आशासे कमेंप्रार्थींको संख्या इतनी वढ़ गई, कि पद्म्यान और भी असुविधाजनक प्रतीत होने लगा। इस पर पुर्चागीज-गवर्मेण्डने उस कार्यको पुरुषानुक्रमिक न करके तीन वर्षके लिये निर्देश कर दिया। उक्त कारणसे शासन विश्वङ्कल और प्रसुर अर्थ अपव्यय हुआ था।

इस समय पुत्त गोज-गवर्मेण्टके ओलन्दाजके विरुद्ध आक्रमणोपयोगी युद्ध-जहाज, सैन्य अथवा वैसा अर्थ नहीं था। जव किसी विशेष कार्यके लिये चंदा वसूल होता था, तव उससे किसी न किसी व्यक्तिविशेषकी उदर पूर्ति होती थी अथवा वह सञ्चित रुपया अपव्यय हो जाया करता था। पुत्त गीज-याजक (clergy)-के मनोमत और अपरापर धर्मकर्म निर्वाहके लिये पहले सैकड़े पीछे एक रुपया करके कर वसूल होता था, किन्तु १६२१ ई०में स्थिर हुआ, कि पुत्त गालके राजकार्यमें जो प्राण-विसर्ज न करेंगे, उनके स्त्री-पुत्रको ही वे रुपये दिये जांयगे। इसके वाद शोलन्दाजींकी गति रोकनेके लिये युद्ध-जहाज वनाने-में किसी किसी वन्दरसे सैकड़े पीछे २) रुपयेके हिसाब-से महसूल वसूल होने लगा। ऐसा करने पर भी पुर्च-गीज-गवर्में एटं अर्थसंस्थान करनेमें समर्थं नहीं हुई। कारण, खुप्टान-पाद्रियों और वैरागियों मेंसे अधिकांश इस अर्थसे अपना पेट भरते थे और प्रधान प्रधान राज-पुरुपगण तहवील तोड़ कर अपव्यय करने लग गये थे।

धर्मध्वजी पुर्तगीज वैरागियों के आतिशय्य पर विरक्त हो पुर्तगालराजने वहुतों की वृत्ति यंद कर दी, यहां तक कि उन्हों ने गिर्जा और मठ निर्माण विलक्कल निषेध कर दिया।

इसके पहले पुर्त्तगीज लोग वङ्गालमें कोठी खोल कर वाणिज्य-व्यवसाय चला रहे थे। वङ्गालके अनेक दस्यु-ने आ कर इन लोगोंका साथ दिया। दस्युगणके साथ पहले पुर्त्तगोजगण भी दस्युता करने निकलते थे, श्रीरे भीरे दोनोंके वीच गाढ़ी मित्रता हो गई, किन्तु पुत्र गीज-राजप्रतिनिधिने पुत्त गीजोंको सतर्भ कर दिया था जिससे उन्होंने पूर्वदस्युतावृत्ति छोड़ कर पहले हुगली#में वाणिज्यकोठी और पोछे वङ्गाधिपको अनुमति ले वहां एक दुर्ग वनाया। गोआसे यहां एक दुर्गाध्यक्ष नियुक्त होते थे।

शाहजहान्ने १६२१ ई०में जब बङ्गाल पर आक्रमण किया था, उस समय माइकल-रड्रिगो हुगलीके शासन-कर्त्ता थे। शाहजहान्ने वर्द्धमान फतह किया है, यह सुन कर हुगलीके पुर्त्तगीज लोग डर गये थे। माइकल रङ्खिगोने शाहजहांके शिविरमें जा कर राजसमानार्थ उनके सामने नजराना दाखिल किया। माइकलके पास उस समय अनेक यूरोपीय सेना और अनेक कामनादि युद्धसज्जा थी । इसीसे शाहजहान्ने उन्हें अपने दलमें लानेकी चेप्टा की। उन्होंने कहा था, कि यदि पुर्तगीज यूरोंपीय सेना और कमान अस्त्र दे कर उनकी सहायता करेंगे, तो उन्हें यथेष्ट पुरक्तार मिलेगा। किन्तु पुत्त -गीज-शासनकर्त्ता उस प्रकृतके लोग नहीं थे, शाहजहान्का पक्ष छेनेसे उनके खार्थकी हानी हो सकती है, यह समम कर वे किसी प्रकारकी सहायता देनेमें राजी नहीं हुए। इस पर शाहजहान पुत्त गीजों पर वड़े विगड़े, पर इस समय वे कर ही क्या सकते थे, रिंडुगोके पास काफी सेना थी। अतः उन्होंने पुत्तं गोजोंके साथ विवाद नहीं करके वुप रहना ही अच्छा समभा।

शाहजहांके मुंहमें ताली भर कर पुत्त गीज लोग और भी दुद्ध र्व हो उठे। उनके उत्पातसे निम्नवङ्गाल अस्थिर हो गया। भागीरथी हो कर जो सव जहाज वा नार्वे जाती थीं, प्रत्येकसे पुत्त गीज लोग महसूल यस्**ल कर**ने लगे। इस समय लोगोंको छोटे छोटे लड़कींके पकड़े जानेका भय था। पुर्त्तगीज लोग छोटे छोटे बच्चोंको एकड़ विभिन्न देशोंमें ले जा कर वेचते थे। अलावा इसके उनमेंसे कुछ पूर्य-वङ्गालमें जा मगदोंके साध मिल कर स्थल और जलमें वड़ा ही उत्पात करते थे। उनके उत्पात-से कितने शहर, कितने प्राम उत्सन्न हो गये तथा कितने विणकींका सर्वनाश हुआ, उसकी शुमार नहीं।

कासिम खाँने जो वङ्गालके स्वेदार थे, दिल्लीश्वर शाहजहान्को पुत्त गीजोंके व्यवहारकी खवर दी। सम्राट् तो पहलेसे ही माइकल रिंडुगोकी अवाध्यता पर चिंढे थे, अव उन्हों ने 'प्रतिमापूजक फिरंगियों'-को राज्यसे मार भगानेका हुकुम दिया।

१६३३ ई०में पुत्त गोज लोग नाना स्थानी में भए-मानित और कृतपापका प्रतिफल भीग करने लगे। एक एक कर बहुतसे स्थान उनके हाथसे निकल गये। इसी साल दिल्लीभ्वरके आदेशसे असंख्य मुगलसैन्यने जलगथ और स्थलपथसे आ कर चारों ओरसे हुगलीको पेर लिया । पुर्त्तगीजगण असीम साहससे अपने मानसम्प्रम और दुर्गरक्षामें प्रवृत्त हुए । २१वीं जूनसे हे कर २६वीं सितम्बर तक ( ३ मास ८ दिन) शतुके भीषण आक्रमण-से दुर्गरक्षा करते हुए वे अन्तमें आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए थे। मुगलोंके गोलोंसे अनेक पुत्तंगीज उड़ गये। जो कुछ वच रहे, उन्होंने रक्षाका कोई उपाय न देख स्त्रीकन्याकी सम्प्रमरक्षाके लिये बाह्नद्खानेमें आग लगा दी जिससे मुहूत भरमें वहुसंख्यक नरनारी कालके अनन्तस्त्रोतमें विलीन हो गईं । इघर मुगलेंने पुर्तगीजें-के प्रायः ३०० पीत नष्ट कर डाले। केवल दो जहाज श्रुको पंजेसे बच कर गीआमें यह दारुण-संवाद देनेको चले । उस समय अनेक पुत्त गीज स्त्री, पुरुष और बालक वन्दी हो कर आगरामें सम्राट्के समीप लागे गवे थे। पुत्त गीज रमणियां मुसलमानी भन्तःपुरमें परिचारिका हो कर रहने लगीं। वालकोंको त्वक्चीद करके मुसलमान वनाया गया। धर्मध्त्रजियोंने वहु लाञ्छनाके बाद मुक्ति पाई ।

हुगळीके वाणिज्यकेन्द्रसे पुत्तं गीजींको खासी आम-दनी होती थी, अब वह उस प्रवान स्थानके हाथसे निकल जाने पर पुत्त गीज लोग हताश हो पद । उन्होंने अब कोई उपाय न देख विजयनगरके राजासे सन्धि कर ली। विजयनगरपतिकी सद्दायतासे ओलन्दाजीकी निकाल भगानेकी बेष्टा उसके साथ उद्दीस हो उठी। इघर उनके दूसरे प्रतिद्वन्द्वी फरासी लोग भारत-उपकूलमें जा धमके। इस समय मुगल लोग वाक्षिणात्यमें आधिपत्व

फैलानेकी जो चेष्टा कर रहे थे, उससे पुरागीज लोग

<sup>#</sup> पुर्तगीज लोग हुमलीकी 'गोलीन' कहते ने ।

और भी डर गये । ने जानते थे, कि दाक्षिणात्यमें मुगल-आधिपत्य हो जानेसे उन्हें भारतवर्षमें रहना मुक्किल हो जायगा।

इस समय गोआके आकविशपने पुत्त गालराजको खबर दी—"भारतसमुद्रमें पुत्तींगीजोंके अनेक शतु हैं सही, पर पुत्त<sup>१</sup>गालराजकी प्रजा ही उनके प्रधान शतु-हैं।" उस समय जेस्रइटगणके उत्पातसे केवल भारत-बासी ही नहीं ; बुर्चगीज गवर्मेण्ट तक भी विवत ही गई थी । पुत्त गालराज प्रतिवर्ष हजारों पुत्त गीज-योद्धा जहाजसे भेजते थे, किन्तु भारतमें पदार्पण करते ही वे युद्धवृत्ति छोड़ देते थे, कपट-वैराग्य प्रहणपूर्वक जेसु-इटोंके दलसे निकल कर अथींपार्जनकी चेष्टा करते थे। हजारमें तीन सी योद्धा भी पुर्त्त गीज-गवर्में एटकी सेवामें नियुक्त रहते नहीं देखे जाते थे। सुतरां ऐसे खार्थ लोलुप व्यक्ति ले कर पुंस गोज-गवर्में एट कव तक अपनी प्रभुताकी रक्षा कर सकती थी ! इस कारण पुर्त्तगालराज-ने बहु हुकुम निकाला, कि जो विदेशी राजकीय काम करना चाहते हैं, वे ही नियुक्त किये जांयगे और पुर्त<sup>्</sup> गीज-सेनाके समान उन्हें वेतन दिया जायगा ।

# पेदो-दा-सिल्भा ।

१६३५ ई०में पेद्रो-दा-सिक्सा राजप्रतिनिधि हो कर आये। इनके समयमें पुर्त्तगाल-राज्यकी अवस्था शोच-नीय होती जा रही थी। सिंहलपित राजसिंहने पुर्त्त-गीजोंको परास्त किया। इस समय पुर्त्त गीज-गवर्मेण्ड-को बड़ा ही अर्थ कष्ट उपस्थित हुआ था। राजप्रति-निधि रुपयेके लिये राजकीय सभी उद्ययन वेचने लगे।

१६३७ ई०की ५वीं अकटूबरको राजप्रतिनिधिन पुर्चागलराजको खबर दी, कि अङ्गरेजोंके साथ शतुताकी कमशः वृद्धि हीती जा रही है। अंगरेज लोग वेड्कटाप्पानायक और किसी किसी राजाको पुर्द्व गोजों के विरुद्ध उत्तेजित कर रहे हैं। उन्हों ने वाविया नामक एक दस्युक्ते साथ मिल कर भारकलमें एक कोठी खोली है। जो कुछ हो पुर्द्व गालराज और इङ्गलैएडराजकी मध्यस्थतासे दोनों देशवासिबोंकी शतुता वहुत कुछ घट गई। अंगरेज लोग जिससे पुर्द्वगीजोंके साथ किसी प्रकार विष्कृद न हो, ऐसे भाषमें वाणिज्य चलाने लगे।

१६३८ ई०के नवम्बरसे छे कर १६३६ ई०के फरवरी मास तक ओलन्दाजोंने गोआमें घेरा डाला था। सिंहल-में १६३६ ई०की २४वीं जूनको पेद्रो-दा-सिल्माकी मृत्यु हुई। गोआके आर्कविशप फ्रान्सिस्को गवर्नर हुए। उनके समयमें मदुराके नायकके साथ पुर्त्वगाल-गवर्में एट-की सन्धि स्थापित हुई।

अक्त वर मासमें अएटोनियो-टेलिस-डि-मेनेजिसने गोआका राजप्रतिनिधित्व प्रहुण किया। किन्तु उन्होंने राजकार्यमें अच्छी तरह हाथ भी डालने नहीं पाया था, कि जोहन-दा-सिल्मा-तेलो-डि-मेनेजिस (Conde-de Aviera ) पुत्त गालसे राजप्रतिनिधि निर्वाचित हो कर भारतवर्ष आये। अन्होंने यहां आ कर देखा, कि सिहल पुत्त गीजोंके हाथसे करीव करीव निकल गया है, मलका-की अवस्था अति शोचनीय है. भारतीय अन्यान्य स्थान अब पुरत गीजोंके हाथसे जाना चाहता है, एक भी दुर्ग सुरक्षित नहीं है, राजकोषमें अर्थ नहीं है। इन सब कारणोंसे वे विशेष चिन्तित हो पड़े। इतने दिनों तक पुत्त गाल रूपेनराजके अ,धिकारमें था, अव फिर पुत्तैं-गाल खाधीन हो गया है। पुरत गालराजने चारों ओर शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे १६४१ और १६४२ ई०-में ओलन्दाज और अंगरेजोंसे सन्धि कर ली। अंगरेजने सन्धिकी रक्षा तो की, पर भारतीय ओलन्दाजींने, जो सन्धिके विषयसे जानकार नहीं थे. भाटकल, विनक-मली, नेगाम्बो, गाली आदि स्थानों पर चढ़ाई कर दी।

१६४४ ई०में डम फिलिप मस्करेनहस राजप्रति-निधि हो कर आये। इस समय ओलन्दाजोंने गोआमें कुछ वाणिज्यका अधिकार पा लिया था। किन्तु पुत्ते-गोज गवमें एटने अंगरेज और ओलन्दाजोंको दारचीनी खरीदनेसे मना कर दिया। कुछ दिन तक केवल दार-चीनीका व्यवसाय पुत्ते गीजोंके एकाधिकारमें रहा।

१६४८ ई०में ओलन्दाजोंने सिन्ध तोड़ दी। इस समय तुतकुड़ीके नायकने पत्तन नामक स्थानसे ओल-न्दाजोंको मार भगाया, इस कारण ओलन्दाज सेनापितने आ कर तुतकुड़ी पर आक्रमण कर दिया और पुर्त्त गीजोंके सभी अख्यशस्त्र छोन लिये। इस समय पुर्रागीज वैरागी-गण विशेष लाञ्छित-हुए थे। क्रमशः चारों ओर पुर्रागीजोंके साथ ओलन्दाजोंका विवाद चलने लगा । विस्तार-के भयसे उन सव वातोंका यहां उल्लेख नहीं किया गया । ऐसे सुअवसरमें अरवोंने भी पुर्त्त गीजों पर पारस्य और अरव समुद्रमें चढ़ाई कर दी। मस्कट, हरमुज आदि नाना स्थानोंमें समरानल प्रज्वलित हुआ था।

पहले भारतके पश्चिम-उपक्लमें कोई भी जहाज
पुर्त्तगीज गवर्मेण्टसे पास लिये विना नहीं आ जा सकता
था, अभी (१६५१ ई०में) गोलकुण्डा, वीजापुर, मङ्गलूर
आदिके अधिवासिगण विना पासके जहाज चलाने लगे।
१६५२ ई०में वेदनूरके सरदार शिवणा नायकने समस्त
कनाड़ा-प्रदेश पर अधिकार जमाया। इसके साथ
साथ पुर्त्तगीज लोग अपने अधिकृत अनेक स्थान लो
वैठे और अनेक पुर्त्तगीज योद्धाओंने प्राण विसर्जन किये।

इस समय पुर्तगीजोंमें भी अन्तर्विवाद चल रहा था। उच्च प्रकृति मस्करेन-हसका शासन स्वार्थप्रिय नीच प्रकृति- के अधिकांश पुर्तगीजोंको अच्छा नहीं लगा। १६५३ ई० के २२वीं अकटूबरको डम ब्राज-डि-कान्द्रोने षड्यिन्त्रयोंकी सहायतासे मस्करेनहसको पदच्युत करके शासनभार ब्रह्ण किया। एक तो पहलेसे ही पुर्तगीज-अधिकारमें अशान्तिका राज्य चला आ रहा था। दूसरे डम ब्राजके शासनसे आभ्यन्तरिक गोलमाल और भी बढ़ने लगा। पुर्तगीजों के मध्य सभी जगह अशान्तिके लक्षण दिखाई देने लगे।

इस समय पुर्त गीज पादियों ने भी अच्छा मौका देख कर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। प्रसिद्ध भ्रमणकारी टावर्नियरने इस समय गोआमें आ कर जैसा अखप्रानोंका निग्रह देख पाया था, उनकी भ्रमणकाहिनी-से उन सब अमानुपिक अत्याचारका पाठ करनेसे शरीर-के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। खृष्टान वनानेके लिये अथवा जो सब खृष्टाान-धर्मका अमान्य करते थे, ऐसे बहुसंख्यक लोगों को नाना प्रकारके दएड दिये जाते थे।

१६५४ ई०में आदिलगाहने वारह देशों और गोआ पर आक्रमण करके पुत्त गीजों को व्यतिव्यस्त कर डाला। आदिलगाह यदि चाहते, तो इस वार गोआसे सभी पुत्त गीजों को भगा सकते थे, पर वे इस ओर ध्यान न दे केवल पुत्तंगीजराज्यको लूट कर चल दिये। १६५५ ई०की २३वीं अगस्तको डम-रडरिगो-सर्वो हा-सिल्लविरा ( Conde-de-Sarzedvo ) राजप्रतिनिधि हो-कर आये, यहाँ आते ही उन्हों ने पहले डम-ब्राजको दल-वल समेत पदच्युत किया।

डम रडिरगोके शासनकालमें सिंहलद्वीपमें ओल-न्दाजों और पुर्त्त गीजों के वीच महासमर छिड़ गया था। आखिर १६५६ ई०की १२वीं मईको पुर्त्त गीज लोग ओलन्दाजों से अच्छी तरह हार खा कर लौटे। यह अशुभ संवाद पहुंचनेके पहले ही डम-रड्रिगो परलोक सिधार गये थे।

इधर ओलन्दाजोंने कलम्बीकी जीतसे उद्दीत हो मन्नार-के उपसागरवर्त्ती कुछ छोटे छोटे द्वीप, तुतकुड़ी, नाग-पत्तन आदि नाना वन्दरोंको अपने दखलमें किया और वहांसे पुर्त्त गीजोंको मार भगाया।

१६६० ई०में गोआके आर्कविशयकी मृत्यु हुई। उन-का पदाधिकारी कीन होया ? यह ले कर खृष्टीय-याजकों-के वीच मनमुदाव हो गई। धीरे धीरे इस विवादस्त्वसे दोनों दलमें युद्धका आयोजन होने लगा। आखिर दोनों दल गोला गोली ले कर विवादकी निष्पत्ति करनेमें अप-सर हुए। राजपुक्पोंने वड़ी मुश्किलसे शान्तिस्थापन किया था।

१६६१ ई०में पुर्त्तगीजोंको भगा कर और बहुसंख्यक नायरसेनाको पराजित कर ओलन्दाजोंने कोलम्ब पर अपनी ग़ोटी जमाई। दूसरे वर्ष कोरङ्गनूर और कोचिन भी ओलन्दाजोंके हाथ लगा। इस समय पुर्त्तगीजोंका प्रवल प्रताप कमशः नष्ट होता जा रहा था।

१६६३ ई०में अण्टोनियो-डि-मेलो-ई-काष्ट्रो राजप्रित-निधि हुए। भारतमें आ कर उन्होंने पुत्त गीजोंके नष्ट-गौरवके उद्धारके लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी, पर बुक्ती हुई आग फिर नहीं सुलगी। ओल्लन्दाजोंने पुर्त-गीजोंके यत्तरक्षित कन्ननूर-दुर्गको भो हथिया लिया।

१६६१ ई०में इङ्गलैएडराज २य चार्ल्सके साथ पुर्त-गालराजसहोदरा इनफएटाका विवाह हुआ। इस समय पुर्त्तगालराजने भगिनीपतिको वम्बई-द्वीप और वम्बई-वन्दर यौतुक खरूप प्रदान किये। तद्गुसार-इङ्गलैएडपतिने वम्बई द्वीपमें सर-अब्राहम सिपमानको भेज दिया, किन्दु भारतके पुर्तगीजराजप्रतिनिधिन उक्त स्थान सहजमें अङ्ग-रेजींको देना नहीं चाहा। अनेक लिखा पढ़ीके वाद हताशहृदयसे १६६५ ई०की १८वीं फरवरीको पुर्त-गीज-प्रतिनिधि अङ्गरेजोंको वम्बई द्वीप छोड़ देनेके लिये वाध्य हुए। वम्बई छोड़ देनेके समय यह वात ठहरी, कि 'अङ्गरेज पुत्त गीजोंके साथ मिलका-सा व्यवहार करेंगे, यहांके किसी भी पुत्तेगीजको कप्ट नहीं देंगे, परस्पर-की विपद आपद पर एक दूसरेकी सहायता करेंगे।' थोड़े ही दिनोंके वाद अङ्गरेज लोग यहांके पुर्त्तगीज वणिकोंसे महसूल होने लगे। इस पर पुत्त गीज-गवर्मेंस्टने भी अङ्गरेजींसे महसूल लेना नहीं छोड़ा। अलावा इस-के बर्म्याईके निकटवर्त्ती अनेक स्थान जो अङ्गरेजराजको यौतुकमें नही मिले थे, अङ्गरेज लोग उन्हें भी बलपूर्वक अपनाने लगे। इत्यादि नाना कारणींसे अङ्गरेजींके साथ पुर्त्त गीजो का विवाद उपस्थित हुआ। इस समय अङ्गरेज लोग पुत्त गीजोंको नष्ट करनेके अभिप्रायसे गुप्त-भावमें मस्कटके अरवों को गोला और बाह्द देने लगे। वहुत-सी अङ्गरेजी सेना उनके साथ मिल कर पुर्चागीजों से छड़ने छगी।

भारतके पश्चिम-उपक्रूछमें जिस समय उक्त गोल-माल चल रहा था, भारतके पूर्वेउपकूलमें भी उस समय पुर्त्त गीजोंके साथ मुगलों का संघर्ष उपस्थित हुआ था। गोआ, कोचिन, मलका आदि नाना स्थानोंके जितने अपराधी, जुआचोर तथा जितने अधम पुत्त गीज रसाङ्ग ( आराकन ) उपकुलमें आ कर वस गये थे, वे धर्मद्रोही, वहुविवाहकारी, नरघाती आदि भीवण प्रकृतिके लोग समभे जाते थे। आराकनराजने मुगलो के हाथसे सीमान्तप्रदेशकी रक्षा करनेके लिये उन सव वदमाशी को नियुक्त किया था और सुखखच्छन्दके लिये उन्हें काफी वे लोग जल और स्थलमें दस्यु-जमीन भी दी थी वृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करते थे। कभी कभी बङ्गाल-में घुस कर वे नगर और गांवको लुटते तथा वहांके अधिवासियों को कैद कर लाते थे। उनके अत्याचारसे पूर्ववङ्ग और निम्नवङ्ग तवाह हो गया था। इनके साथ भाराकनी वा मग लोग भी आ कर लूट पाट करते थे। र्स्सी कारण निम्नवङ्गके संनेक स्थान मगी के उत्पातसे जनशून्य हो गये हैं, और मग-कर्तृ क जनशून्य कह कर आज भी प्रसिद्ध हैं। मगराज ही उन सव दुवृं त पुत्तं-गीजो के आश्रयदाता थे, इस कारण मुगलके स्वेदार सायेस्ता खाँने मगराजको दमन करनेका आयोजन किया। किन्तु वे जानते थे, कि मगराज़का दमन करनेमें पुर्त-गीजों की सहायता आवश्यक है। इस कारण उन्हों ने चट्टप्रामवासी पुत्त गीज दस्यु लोगों को कहला भेज़ा, कि स्वेदार शीघ ही चट्टग्राम पर चढ़ाई करनेको हैं, अभी वे उन्हें अपने कार्यमें नियुक्त करना चाहते हैं। जो उनका साथ देंगे, उनके रहनेका वे वङ्गालमें अच्छा प्रवन्ध्र कर देंगे ; किन्तु जो उन्हें सहायता नहीं देंगे, उन्हें विशेष कप्ट भुगतना पड़िगा। पुर्त्त गीजोंने भी समना, निक प्रवल मुग्ल-सेनाको वे कव तक सामना कर सकेंगे, अभी स्वेदारको सहायता देना ही उनके हकमें अच्छा होगा। अतः पुर्त्त गीजोंने आ कर सायेस्ता साँका साथ दिया। उनकी सहायतासे मुगल सेनापति आराकनियोंको परास्त कर शणद्वीप पर अधिकार कर वैठे। मग छोंग नितान्त भीत हो चट्टप्रामको भाग गये । सायेस्ता खाँने पुर्त्तगीजों को रहनेके लिये ढाकाके निकटवर्त्ती स्थान दिये। वे सब स्थान अभी 'फिरङ्गी-वाज़ार' नामसे मशहूर हैं।

शिवाजीका जब सतारा चमका, उस समय मुगल लोग जैसा विचलित हो गये थे, अभी पुत्त गीज भी वैसा ही डर गये। १६७० ई०को दमन नगरमें सबसे पहले मरहठों और पुत्त गीजोंके वीच नौयुद्ध छिड़ा। मरहठोंने कितने पुत्त गीज जहाजोंको दखल कर लिया। इसका मितशोध लेनेके लिये पुत्त गीज लोग भी शिवाजीके १२ जहाज लूट कर वसाई नामक स्थानमें भाग गये। इस पर शिवाजीने पुत्त गीजोंको भारतवर्षसे मार भगानेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था।

१६७२ ई०में मुगलोंसे कोङ्कण जीते जानेके वाद शिवाजीने पुर्त्त गीजोंसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिये सेना मेजी। पुर्त्त गीज लोग कर देनेके लिये वाध्य हुए।

पुत्त गीज गवमें ण्टकी अवस्था दिनों दिन शोचनीय होती जा रही थी, पुर्त्तगीज लोग, किस प्रकार लुप्त गौरव का उद्धार कर सकेंगे, इसके लिये भारी विन्तामें थे हैं. किन्तु राजकोषमें उतना धन नहीं था और न उतना लोक-वंछ हो था। साथ साथ कितने विलासी अर्थपिशाच पुत्त गीज गवमें एटको घेरे हुए थे, ऐसी अवस्थामें क्या हो सकता था! किन्तु जिस प्रकार बुक्तता हुआ दीप एक बार रोशनी दे कर फिर सदाके लिये बुक जाता है, पुत्तै-गालके भाग्यमें भी उसी प्रकारका दिन आया। १६७८ ई०-की १२वीं दिसम्बरको कनाड़ाके राजाके साथ पुर्त्तगीजों-की सन्धि स्थापित हुई। अब राजाके अर्थानुकुल्यसे पुर्ता-गीजोंने मङ्गलूरमें एक कोठी खोली और मिराज, चन्दोल, भारकल तथा कल्याणमें काथलिक गिर्जा वनानेका अधि-कार पाया। अनन्तर १६८२ ई०में पुत्त गीजो ने द्वीप पर अपना आधिपत्य फैलाया। इसके वाद ही शिवाजीके पुत शम्भुजीने खेउल पर आक्रमण किया । महाराष्ट्रींका अत्याचार प्रसिद्ध होने पर भी इस समय पुत्त गीजोंन सैकड़ों ब्रह्महत्या और मन्दिर ध्वंस करके जैसा पैशाचिक काएड किया था, सभ्यजातिक इतिहासमें उसकी उपमा नहीं । चेउल-आक्रमणसे सुविधा न देख शम्भुजीने वसाई और दमनके मध्यवर्ती सभी स्थानों को आक्रमण और ध्वंस कर डाले। इस समय पुर्शगीज-राजप्रतिनिधि-ने सन्धिका प्रस्ताव किया, पर शम्भुजीने पांच करोड़ पगोड़ा मांगे ।

१७१२ ई०में कनाड़ाके राजाने सन्धि तोड़ दो। इस पर भास्को फर्णान्दिजने जा कर वाशिलोर, कल्याणपुर, मङ्गलूर, कोमता, गोकर्ण और मिराज पर घावा बोल दिया था।

१७१७ई०में ५०० महाराष्ट्र अध्वारोही शास्त्रेटी जा कर पुर्तागीजोंका यथासर्वस सूट लाये। इसके दूसरे वर्ष दुस्युपति अंप्रियाके साथ अअद्वीपके निकट विवाद खड़ा हुआ। इस समय आसिरगढ़ और रामनगरके राजा दमन पर चढ़ाई करके अनेक गो और सुषकोंको कैद कर से गये।

पुत्तं गीज-मरहठोंका विवाद कमशः गुरुतर हो उठा। कदलके सरदेशाईने पुत्तं गीजोंके बहुतसे वाणिज्यपोत लूटे और अपने कडोमें किये। पर्डाका दुर्ग भो उनके हाथ लगा। अन्तमें पर्डाके राजाने पुत्तं गीजोंसे मिल कर हुगंका उदार किया।

१७२६ई०में पेशवाने कर्णाटक पर छापा मारा । इनके साथ पुत्त<sup>प</sup>रीजोंसे कई एक छोटी छोटी छड़ाइयां भी हुईं।

१७३० ई०में मरहठा-सेनाने बसाई पर अधिकार किया । वसाई-युद्धमें वहुसंख्यक पुत्तें गीज निहत और वन्दी हुए थे। इसके वाद ही महाराष्ट्र-सेनापतिने शालसेटी पर चढ़ाई कर दी। किन्तु इस बार अंगरेज और पुत्तेगीज मिल कर लड़ते थे, इस कारण महाराष्ट्रीं-का कुछ वश न चला और वे हार खा कर भागे।

१७३१ ई०को ३री जुलाईको वसाई नगरमें एक सन्धिपत लिखा गया। इस सन्धिके अनुसार महाराष्ट्रपतिने पुर्त्त गीजों के जो स्थान दखल किये थे, उन्हें वे छोड़ देनेको वाध्य हुए। किन्तु सन्धिमें जो सब गर्तें लिखी थीं, उनके अनुसार एक भी कार्य नहीं हुआ। ररी अक्तूवरको पुर्त्त गीजोंने पनियाला प्राममें महाराष्ट्रीं को परास्त किया। १७३२ ई०की १७वीं जनवरीको दोनें पक्षके प्रतिनिधि सन्धिका प्रस्ताव ले कर वम्बई नगर पहुंचे।

१७३४ ई०, ८ मईको पुत्तंगीज-सेनापित उम लुइज नोटेलही दस्युनायक अ'ग्रियाको गित रोकनेके लिये वहुतसे
युद्ध-जहाजके साथ वसाँई नगर आये। इसी वीचमें
शम्भुजी-अ'ग्रिया चेउल-दुर्ग पर अधिकार कर वैठे।
पुत्तंगीज-सेनापितने कोलावाके शासनकर्ताकी सलाहसे
शम्भोजी पर आक्रमण कर दिया। किन्तु शम्भोजीके
पराक्रमसे पुत्तंगीज-सेनापितको रणक्षेतमें पीठ दिखानी
पड़ी। अन्तमें वम्बईके अङ्गरेज-गवर्नरने अ'ग्रिया और
पुत्तंगीजका विवाद निवटा दिया।

कोलावाके शासनकत्तांने पुर्तागीओं को आशा दी थी, कि यदि वे अंग्रिया' पर चढ़ाई कर दें, तो उन्हें वे कुछ स्थान देंगे। किन्तु कोलावाके शासनकत्तांने अपनी वात पूरी न की। इस पर पुर्तागीओंने १७३७ ई०में शस्मोजी अंग्रियाके साथ मिल कर उनके भाई मन्नाजीके विकल्प कोलावा पर आक्रमण कर दिया। पेशवांने यह संवाद पा कर मन्नाजीकी सहायतामें कुछ सेना भेजी और पुर्तागीजों को परास्त किया तथा मन्नाजीको आश्रव दिया। इसी साल महाराध्रींने शालसेटी और

दाना-दुग पर अधिकार कर लिया था। इस संवादसे गोआवासी पुर्रागीजगण उन्मत्तप्राय हो गये थे। उन्हों ने उसी समय बहुत-सी सेना मेज कर बसाई नगरमें महा-राष्ट्रों पर हमला कर दिया। यहां महाराष्ट्रगण पुर्रा-गीजों की गति तो रोक न सके, पर उसी समय उत्साह-पूर्वक उन्हों ने शालसेटी, मनोरा, सेवाला, सवाज और कई एक पुर्रागीज-दुर्ग अधिकार कर लिये।

इसके वाद पेशवाने वसाँई दखल करनेके लिये प्रभूत सेना भेजी। इस समय पुर्त्तगीज लोगोंने महिम, लिपुर, असारिम, काल्मी, सरिदान, दन्न, वन्दर आदि स्थानोंके दुगै छोड़ दिये, केवल वसाँई, दमन, चेउल और दीउ-दुगैकी रक्षामें जी-जानसे लग गये।

१७३८ ई०के नवस्यर मासमें चिमनाजीने वसाँई पर इसल जमाया। उनके अधीन शङ्करजीने कतरावार, अम्बरगांव, नागल, दनु और अन्तमें मिहम पर अधिकार किया। पुर्त्तगीज लोग अवनत मस्तकसे महाराष्ट्रोंके हाथ महिमदुर्ग अर्पण कर स्त्री-पुतके साथ वसाँईनगर चले आये।

महिम-अधिकारके बाद ही महाराष्ट्र-सेनापतिने कालमी, सरिदान, तिपुर, असारिम आदि पुर्तागीज-दुर्गोंको दखल किया। इसके वाद ३००० अध्वारोही और ६००० महाराष्ट्र-सेनाने आ कर मर्मागीआको घेर लिया। गोआवासीके मानसम्प्रमकी रक्षाके लिये पुर्तागीज-राजयितिधिने सिन्ध कर ली। १७३६ ई०की २री मईको सिन्ध स्थापित हुई। शर्व यह उहरी, कि शाल-सेटी और बारह देशोंका जो कुछ राजस्व वस्ल होगा, उसके सैकड़े पीछे ४० भाग वाजीराव पावेंगे। पुर्तागीज गवमेंएट बाजीरावको ७ लाल रुपये देनेको वाध्य हुए। इमनप्रदेश और उसके दुर्गोंके वदलेमें बाजीरावको वसाई मिला।

इसके वाद दस्युपित अंग्रियाके उत्पातसे पुर्तागीज लोग तंग तंग था गये थे। अभी पुर्तागीज-गवर्मेंग्टके पास उतना धन नहीं, कि उसका सामना करती। अतः पुर्तागीज-गवर्नर वाजीरावको चेउल जिला दे कर पुनः सन्धि-स्वमें आवद हुए। अभी केवल गोआ, दमन, दीउ यही तीन स्थान पुर्तागीजोंके अधिकारमें रह गये। आज कल भी इन्हीं तीन स्थानीं पर पुर्त्तगीजींका आधि-पत्य चल रहा है और पुर्त्तगालसे गवर्नर-जेनरल आ कर इन तीन स्थानींका आज भी शासन करते हैं।' गोशा और पुर्शगारु देखो।

इस समयसे परवर्ती जितने पुर्रागीज-शासनकर्ता हुए, उनके नाम और शासनकाळ इस प्रकार हैं—

७८। उम पिद्रो मस्करेनहस (Viceroy) १७३२-४१। ७६। उम जुईज डि मेनेजिस (Viceroy) १७४१-४२। ८०। उम फ्रान्सिस्को डि-भास्कोनसेला, उम जुईज केटानो डि अलमिडा (Covernor) १७४२-४३।

८१। डम लीरेन्सो-डि-नोपोन्हा, डम लुईज केटानो-डि-अलमिडा (Governor) १७४३-४४।

८२। इम पिद्रो मिगुपल डि भलमिडा-इ-पुर्त्तगाल ( Viceroy ) **१७**८३-५०।

८३। फ्रान्सिस्को-डि-आसिस् (Viceroy) १७५०-५४। ८४। डम लुईज मस्केनहस (Viceroy) १७५४ ५६।

८५। उम अल्टोनियो तामिरा दा-निमा-व्रम-दा सिल्भिरा, जोहन-डि मेस्किटोमटोसंदिकसिरा, फिल्फि डि-भल्लदेरिस सौटो मेयर (ommissionor) १७५६।

८६। मानुपल-डि-सालदान्हा-डि-आलधुकार्क (Victory) १७५६-६५।

८७। इम अण्टोनियो ताभिरा-दा-निभा व्रम-दा-सिल्भिरा, जोइन बापिष्टा भाज पेरिरा, इम जोइनजोसे डि-मेलो (Commissionor) १७६५-६८।

८८। इम जोहन् जोसे-डि-मेलो (Governor) १७६८-७४।

८६। फिलीप-बि-महादारिस सीटोमेयर (Governer)

१९९४। ६०। डम जोसे पिद्रो दा समार (Governor and Captain-General) १९९४-७६।

६१। फ्रोडिंको गिलहारमी-दि-सुजा (Governor and Captain General) १७७६-८६। ६२।फ्रान्सिस्को-दा-कान्हा-ई-मेनेजिस (Governor

and Captain General) (3042-881

६३। फ्रान्सिको अण्डोनियो-दा-मिगा केब्रल Governor and Captain-General) १७६४-१८०७।

६४ वर्णार्डी जोसे-डि-लोरेना (Viceroy and Captain-General ) १८०७-१६। डम ड्यूगो-डि-सुजा ( Viceroy and Captain-General ) १८१६-१८२१। ६६ । मानुपल गडिन्हो दा मिरा, जोआकिम् मानु-पल कोरिया दा-सिल्भा-ई-गामा, मानुपल जोसे गोमिस् लौरिरो, गोनशालो-डि-मगलहे टिकसिरा मानुपल दुशार्ते लियाव ( Commissionor ) १८२१-२२। ६७। डम मानुएल-दा-कमरा (Captain-General) १८२२-१८२४। डम मानुपल-दा-कमरा ( Viceroy and Captain-General) १८२४-२५। ६८। डम-मानुपल-दि एस गलडिनो, कारिडडो जोसे मौराव गार्सेजपाथा, अल्टोनियो रिविरो-डि-कार्भाव्हा (Commis-ionor) १८२५-२७। ६६। उम मानुपल-डि पुत्तंगाल-ई-काश्नी ( Governor) १८२७-३०। **डम मानुपल-िं-पुर्त्तगाल-ई-काश्नो** ( Viceroy ) १८३०-३५। वर्णांडो पेरिज-दा सिल्भा ( Prefect ) 12341 इसके वाद (१८३५से १८३७ ई०के मध्य) वहुत प्रादेशिक सभाप' (Provincial Committee) संग-ठित हुई । १०१। सिमाच इनफाण्टे-डि-लासार्ड (Governor-General ) १८३७-३८ । १०२। इम अस्टोनियो फेलिसियानो-डि-मास्टो-अण्टोनियो-भिएरा-दा-फन्सेका, जोसे रिटा, जोसे कान्सिओ फ्रियर-डि-लिमा, डिमङ्गो जोसे मरियानो लुईज ( Council of the Government ) १८३८-३६। १०३। जोसे अण्टोनियो भिएरा-दा-फन्-सेका (Intérim Governor-General) १०४। मानुपलजोसे मेरिडस (Governor-Gene-१८३६-४०। ral) **ं १०५। जोसे अल्टोनियो मिएरा-दा-फनसेका, जोसे** फान्सियो फियर-डि-लिमा, अख्टोनियो जोहन डि-आधा-

इदें, डिमिङ्गो जोसे मरियानो छुईज, जोसे दा-कोष्टा काम्पेस केटानो डि-सुजा भास्कोनसेलो (Council of the Government ) **१८80** | १०६। जोसे जोक्षाकिम् लोपेज डि-लिमा ( Governor-General) १८४०-४२। १०७। अएटोनियो रमल्हो डि सा, अएटोनियो जोसे-डि-मेलो सौटो मेयर तेलिज, अएटोनियो-जोहन-डि-अथा-इदे, जोसे दा-कोष्टा काम्पोस, केटानो-डि-सुजा-ई-भास्कोन्सेलो (Council of the Government) <sup>9</sup>.८8२ । १०८ । फ्रान्सिस्को जोमिवर-दा-सिलमा-पेरिरा ( Governor-General ) 9682-831 १०६। जोसाकिम्-मौराव गार्सेज पल्हा (Gove nor-General) १८४३-४४। ११०। जोसे फेरिरा पेष्टानो (Governor-General) १८४४-५१ | १११। जोसे जोआकिम् जानुवरियो लापा (Governor-General) १८५१-५५। ११२ । डम जोआकिम्-डि-सएटारिटा बोटेलही, लुईज दा-कोष्टा कम्पोस, फ्रान्सिस्को जेभियर पेरिज वर्णाडों हेकटर दा-सिल्भिरा-ई-लोरेना, भिकृर एनाएा-सियो मुराव गार्सेजा पछहा (Council of the Goverment) १८५५। ११३। अएटोनियो सिजर-डि-भास्कोन्सेलो कोरिया (Governor-General) १८५५-६४। ११8। जोसे फेरिरा पेष्टानो (Governor-General) १८६४ ७० । ११५। जानुवरियो कोरिया डि-अलमिडा ( Gover-१८७०-७१ । nor-General) ११६ । जोआकिम् जोसे-डिमाकेडी-ई कोट्रो (Governor-General) १८७१-७५ | ११७ । जोहन ताबारिज-डि-अलमिडा ('Governor-१८७५-७७ । General) े११८। डम आयास-डि-अरुपलस-ई-भास्कोन्सेलो, जोहन केटानो-दा-सिलमा काम्पोस, फ्रान्सिस्को जेभियर सीवारिस-दा-भिगा, एडवडीं अगष्टी पिख्टी बालसेमाव

(Council of the Government) १८७९। ११६। अल्ट्रोनियो सार्जियो-डि-सुजा (Governor-General) १८७९-७८।

१२०। डम अयासँ-डि-अहप्लास ई-भास्कोन्सेलो, जोहन केटानो सिलमा कम्पोस, फ्रान्सिस्को जैभियर सोवारिस दा-भिगा-अल्टोनियो सर्जियो डि-सुजा, पीले पहुवाडों अगन्दो पिल्ट-वलसेमाव (Council of the Government) १८७८।

१२१। केटानी अलेकसन्दर-डि-अलमिडा प-आल-बुकार्क (Governer-General) १८७८-८१।

१२२ । काल्स यूजिमियो कोरिया-दा-सिल्भा (Governor-General) १८८१-८५।

१२३। फ्रान्सिस्को जोआकिम् फेरिरा-डि-अमरल ( Governor-General ) १८८५-८६।

१२४ । अगष्टो सिजर कार्डासो डि-कार्माव्हो (Governor-General) १८८६-८६।

१२५ । भास्को गीडिस-डि-कार्माव्हो-ई-मेनेजिस (Governor-General) १८८६-६१।

१२६। फ्रान्सिस्को मरिया-दा-कान्हा (Governor-General) १८६१-६२।

१२७ । फ्रान्सिस्को दिकसिरा-दा-सिल्मा ( Governor-General ) १८६२-६३।

१२८। राफेल जाकोम लोपेज-डि-अन्द्रादे (Governor-General) १८६३।

वर्तमान (१६२६ ई०) गवर्नर-जनरलका नाम है अलवारों-डि-कान्द्रो मोरिस (Capitas tenente Medica)। ये गोआके सदर पंजिममें रहते हैं।

पुर्तं गीजराज्य ध्वंस होनेके और भी अनेक कारण थे, यथा—विलासिता अमितव्ययिता, परश्रीकातरता और व्यसनासिक । जिस समय भारतीय पुर्तं गीजोंको चारों ओरसे विपद्दने घेर लिया था, उस समय पुर्तं गीज राजपुरुषगण नशेमें चूर और वेश्या ले कर उन्मत्त थे। उस समयके किसी किसी ऐतिहासिकने लिखा है, 'पुर्तं गीज सभामें यथेच्छाचारिता और विलासिताका प्रवल कोत वहता था। यहां भी प्रत्येक राजपुरुष दी चार देशीय वाईजी (नर्तंकी)को ले कर आमोद प्रमोदमें मस्त रहते थे, राज्यकी और भूल कर ध्यान

नहीं देते थे। जब विना युद्धके काम नहीं चल सकता था, तब वे लम्पट राजपुरुषगण सस्तैन्य रणक्षेत्रमें उपस्थित हो कर अधस्तन कर्मचारियोंको युद्धमें नियुक्त करते थे और आप अपने अपने शिविरमें मद्य और वेश्या ले कर आनन्द सागरमें गोते लगाते थे। इस प्रकार युद्धका परिणाम जैसा होना चाहिये था, वैसा होता था।' गोअ शब्द में ५१६ पृष्ठमें इसका विवरण देखा। पुर्य (सं० कि०) पुरमध्य वा दुर्गमें स्थित। पुर्य (सं० क्ली०) देहके प्रधान आठ अंश। पुर्याद्व वृहकीलतन्त्रोक्त पीठस्थानमेद। पुर्मा (हि० पु०) पुरमा देखी।

पुल (सं॰ पु॰) पोलति उच्छितो भवतीति पुल-क । १ पुलक, रोमाञ्च। २ शिवानुचर भेद, शिवका एक अनु-चर। (ति॰) ३ विपुल, वहुतसा।

पुल (फा॰ पु॰) सेतु, किसी जलाशय, नदी, गड्ढें या खाईके आर पार जानेका रास्ता जो नाव पाट कर या खम्मों पर पटरियां आदि विछा कर वनाया जाय।

पुलक (सं० पु०) पुल-खार्थे कन्।१ रोमाञ्च, प्रेम, हर्ष आदिके उद्घेगसे रोमकूपींका प्रकुल्ल होना । पर्याय— रोमोद्भव, त्वक्कम्प, त्वगंकुर । २ तुच्छ धान्य, एक प्रकारका मोटा अन्त । ३ प्रस्तरमणिमेद, एक प्रकारका रत्न (Garnet)।

गरइपुराणमें लिखा है— मुजङ्गाणने दानवपतिकी उपयुक्त पूजा करके उनके नखोंको पुण्यजनक पर्वत, नदी और अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों पर स्थापित किया था। इसी कारण उन सब स्थानोंमें पुलकमणि उत्पन्न होती है। दशाण, बोगदाद, मेकल और कालगाद्रि आदि स्थानोंमें रुष्ण, मधुपिङ्गल, मृणालकप, गन्धर्यलताका वर्ण, अग्निवण और कदली वर्णकी सर्वापेक्षा उत्कृष्ट पुलकमणि पाई जाती है। शङ्क, पद्म, भृङ्ग और अर्जवर्णाभ विचिताङ्ग पुलक मङ्गलजनक और उत्तम है। यह पुलक वृद्धिप्रद माना गया है। काक, कुक्कुर, गर्दभ, श्र्याल, वृक्त और गृध्यके रक्तमांसलिस मुखके जैसा विकटकप पुलक सृत्युकारक है। इसलिये ज्ञानी व्यक्तिको चाहिये, कि उसका विल-कुल परित्याग कर दें, भूल कर कभी भी पास न रखें। इस पुलकमणिके नामके विषयमें मतभेद देवा जाता है।

Vol. XIV, 51

कोई इसे गोरी, कोई पिटोनिया, सोदएडा आदि कहते हैं। इसका अङ्गरेजी नाम Garnet है। यह मणि एक प्रकारका वानेदार पत्थर है । नदीके मध्य यह मणि पत्थरों रोड़ों र्थिथवा वालिमय नदीगभैमें पाई जाती है। कडिनतामें यह ६'५से ७'५ और इसका आपेक्षिक गुरुत्व ३'५से ४'३ है। इस मणि द्वारा रूफटिक काटा जा सकता है। फिर इन्द्रनील वा माणिकसे भी इसे काट सकते हैं। कांचका तरह इसमें चमकदमक है। घिसनेसे घन-ताड़ित उत्पन्न होता हैं और चुंबकके निकट रखनेसे गति होती है। साइलेक्स (Silex), आलुमिना (Alumina) और अन्प परिमाणमें अक्साइड आव आयरन (Oxide of iron) इस मणिका उपादान है। वर्णमें अथवा आयतनमें इस मणिके जितने भेद हैं, उतने भेद और किसी पत्थरके नहीं देखे जाते । श्वेत, पीत, हरित, रक्त, कृष्ण और पांशु आदि नाना वर्णीका पुलक सव जगह मिलता है। यूरोपोय जहूरियोंने पुलक मणिको प्रधानतः निम्न-लिखित श्रेणियोंमें विभक्त किया है, १म Almandine वा मूल्यवान् पुलक, २ सिरीय वा प्राच्यजगत्का पुलक, ३ Pyrope वा बोहिमीय पुलक, 8 Fssonite वा बदामी पुलक। नारवे, स्वेडन, खोजलैंग्ड, स्पेन, ग्रीणलैग्ड, युनाइटे इस्टेट, मेक्सिको, ब्राजिल, अप्नेलिया आदि स्थानोंमें प्रथम श्रेणीका पुलक पाया जाता है। यह मणि देखनेमें लालवर्ण लिये नीला होता है। भारतके चेर-देशमें यह मणि यथेष्ट मिलती थी, इस कारण यह 'सिरीय' नामसे पाश्चात्य जगत्में प्रसिद्ध है । ब्रह्म और सिहलमें भी यह मणि मिलती है। ३य श्रेणी उज्ज्वल अथच घोर सिन्दूर वर्णकी होती है, इसीसे यूरोपमें इसे सिदुरिया पुलक भी ( Vermilion Garnet ) कहते हैं। वोहिमिया और जर्मनीके नाना स्थानीमें यह मणि पाई जाती है। ४र्थं श्रेणी रक्तपीतमिश्रित अर्थात् बदामी रंगकी होती है और सिहलमें प्रधानतः मिलती हैं।

उक्त चार श्रेणीके अलावा साइवेरियासे एक आर प्रकारकी मणि आती है जिसका रंग विलकुल सफेद सब्ज है। प्तद्भित्र खनिजतत्त्वविदोंने और भी ६।७ प्रकारके पुलक निकाले हैं। किन्तु उनका जहरियोंके निकट उतना आदर नहीं है। भारतवासी और रोमकगण वहुत पहलेसे ही इस मणिके विषयसे अवगत थे। थिउके एस और फ़िनिने Carbunculus नामसे इस मणिका उल्लेख किया है। फ़िनिके मतसे यह मणि स्त्री और पुरुष यही दी श्रेणियों-में विभक्त है। पुरुषश्रेणी पद्मराग और स्त्रीश्रेणी पुलक समभी जाती है।

पक समय मूल्यवान् होनेके कारण इस पुलकका यथेष्ट आदर था। यह पत्थर नरम होता है, इसलिये इस पर अच्छी नकाशी काढ़ी जाती है। यूरोपके प्रधान प्रधान राजवंश-घरोंमें इसी प्रकारके पुलक पर सके दिस प्लेटी आविकी मूर्ति खोदित है। अभी इस पत्थरकी यथेष्ट आमदनी हो जानेके कारण पहलेके जैसा इसका नहीं है। अभी जिम्हाकार बृहत् पुलकमणि २००१ हलेंमें विकती है। अनेक व्यवसायी इस पुलककी पीठ पर काला रंग लगा कर और पश्चादुभागको बंद कर इसे पद्मराग वतलाकर लोगों को उगते हैं। मध्ययुगमें भी यूरोपमें पुलकका यथेष्ट आदर था। पद्मरागकी तरह यह भी श्रारिके पक्षमें विशेष उपकारी समका जाता था।

अभी सभ्यजगत्में जितने पुलक हैं उनमेंसे मार्की दि-दि (Marqui sode Dree) के तोशाखानेके दो पुलक सक्से बड़े हैं। इनमें से एक अठकोनी है जो आ इश्च लम्बा और ६३ इश्च चौड़ा है। इसका मूल्य प्रायः ३५५० फ्राङ्क होगा। दूसरा पुलक १०६ इश्च लम्बा और ६४ इश्च चौड़ा है। इसका मूल्य हजार फ्राङ्कसे कम नहीं होगा।

8 देहचिहर्भेच कीटमेद, शरीरमें पड़नेवाला एक कीड़ा। ५ मणिदोषभेद, रत्नोंका एक दोष। ६ गजान-पिएड, हाथीका रातिव। ७ हरिताल, हरताल। ८ गहुक, एक प्रकारका मद्यपाल। ६ सर्वपभेद, एक प्रकारकी राई। १० गन्धवभेद, एक गन्धवंका नाम। ११ सर्पप, सरसों। १२ कंकुछ, एक प्रकारका गेहा। १३ कन्दविशेष, एक प्रकारका कन्द। १४ लोमहर्पण, पुलकाविल।

पुलकता (हिं० किं०) पुलकित होना, प्रेम, हर्प आदिसे प्रकुल होना, गङ्गाइ होना।

पुलकाई (हि॰ स्त्री॰) पुलकित होनेका भाव, गहगह होना। पुलकाङ्ग (सं० ति०) १ रोमाञ्च अङ्गविशिष्ट, पुलकित अङ्गवाला । (पु०) २ वरुणके पाशास्त्रमेद, वरुणके एक पाशास्त्रका नाम ।

पुलकालय ( सं॰ पु॰ ) कुवेरका एक नाम । पुलकालि ( सं॰ स्त्री॰ ) पुलकावलि, हपैसे प्रफुल्ल रोम । पुलकावलि ( सं॰ स्त्री॰ ) हपैसे प्रफुल्ल रोम ।

पुळकित (सं॰ ति॰) पुळक-इतच्। १ रोमाञ्चित, प्रेम या हर्षके वेगसे जिसके रोषं उभर आप हों। २ हर्षयुक्त, गहुगदु।

पुलकिन् ( सं॰ ति॰ ) पुलकमस्त्यर्थे इनि । १ रोमाञ्चयुक्त, प्रोम या हर्षसे गद्गद् होनेवाला । (पु॰) २ धाराकदम्ब । ३ कदम्य ।

पुलकीकृत ( सं० ति० ) पुलक-चित्र । हर्षसे रोमाञ्चित, प्रोमसे गहुगदु ।

पुलकोद्गम (सं० पु०) हर्ष, खुशी।

पुलगांच—मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलान्तर्गत एक रेलचे स्टेशन। यह अक्षा० २० 88 उ० और देशा० ७६ २१ पू०के मध्य वर्द्धानदीके समीप एक सुन्दर जलप्रपातके किनारे अवस्थित है। पहले यहां मनुष्योंका वास नहीं था, लेकिन स्टेशन होनेके साथ ही साथ यह स्थान प्राममें परिणत हो गया। देवली और हिङ्गनधारकी प्रसिद्ध रहंको हाट जानेका रास्ता यहीं आ कर मिला है। हिंदू लोग इसको तीर्थस्थान मानते हैं। यहां एक देवालय भी है।

पुलर (हिं० स्त्री०) पत्नर देखी।

पुलटिस (हिं० स्त्री०) अलसी, रेंड़ी आदिका मोटा लेप जिसे फोड़ें, घाव आदिको पकाने या बहानेके लिप उस पर चढ़ाते हैं।

पुलपुल ( हि० वि० ) पुलपुला देखी।

पुळपुळा (हिं॰ वि॰) जो छूनेमें कड़ा न हो, जिसके भीतरका भाग ठोस न हो, जो भीतर इतना ढीळा और मुळायम हो कि दवानेसे धंस जाय।

पुलपुलाना (हिं० कि॰) १ किसी मुलायम चीजको दवाना। २ मु हमें ले कर दवाना, विना चवाप खाना, चूसना।

पुलपुलाहर (हि॰ स्त्रो॰ ) मुलायमियत, पुलपुला होनेका भाव । पुलमायि अन्ध्रभृत्य वंशीय दाक्षिणात्यके एक प्रवल पराकान्त राजा। भिन्न भिन्न प्रत्थोंमें इनका भिन्न भिन्न नाम देखा जाता है, यथा ब्रह्माएडपुराणमें पुलमायी वा पुलमावि, गात्स्यमें पुलोमावि, विच्छुपुराणमें पहुमान, भागवतमें अटमान, नासिककी शिलालिपिमें पुडूमायि, पुलुमायि वा पटुमावि इत्यादि।

प्रसिद्ध ग्रीक-भौगोलिक रलेमीने लिखा है, कि उनके समयमें दक्षिणापथ दो प्रधान राज्योंमें विभक्त था—इसके उत्तरांशमें Sero Polemios (प्राकृत 'सिरिपुलुमाचि') राज्य करते थे। पैठनमें उनकी राजधानी थी और दक्षिणांशमें Baleocuros नामक एक राजा Hippocura नामक स्थानमें राज्य करते थे। रलेमि-वर्णित उक्त दो राजा शिलालिपि और प्राचीन मुद्रामें 'पुलुमाचि' और 'विलिवायकुर' नामसे वर्णित हुए हैं।

टलेमि १६३ ई०में कराल कालके गालमें पतित हुए और किसीके मतानुसार उन्होंने १५१ ई०में प्रत्थकी रचना की। इस हिसावसे टलेमिका प्रन्थ रचित होनेके पहले टलेमि प्रादुर्भूत हुए थे, इसमें सन्देह नहीं।

नासिकगुहासे जो शिलालिपि पुल्रुमायिके १६वें वर्षमें आविष्कृत हुई है, उससे जाना जाता है, कि पुड़-मायिकी माताका नाम वासिष्ठी और पिताका नाम गीतमीपुत्र सातकिण था। तेरह वर्ष राज्य करनेके वाद गीतमीपुत्रने असिक, अश्मक, मधुक, सुराष्ट्र, कुकुर, अप-रान्त, अनूप, विदर्भ, अकर और अवन्तीके ऊपर आधि-पत्य फेलाया था। इन्होंने शक, यवन और पहवोंको ध्यंस करके क्षतियगौरवकी रक्षा की थी। पे दिजनरकुटुम्वविवद्ध न' और खगारातवंशके मूलोत्पादनकारी थे। इन्होंसे सातवाहन-वंशका यश पुनः प्रतिष्ठित हुआ था।

डाकृर भाएडारकके मतसे पुड़ुमायिने पैठनमें १३०से १५८ ई० तक तथा दूसरे प्रस्ततत्त्वविदके मतसे १३५से १४५ ई० तक राज्य किया। इनके वाद इनके किनष्ठ भ्राता शिवश्री सिंहासन पर वैठे। शिवश्रीकी मुद्रामें भी ये 'वासिष्ठीपुत्र' नामसे ही आख्यात हुए हैं।

पुलस्त (हिं • पु॰ ) पुलस्य देखी।

पुलस्ति (सं॰ पु॰) पुल महत्त्वे किप्, पुलं महत्त्वं असते

गच्छिति अस्-ित । सप्तिषेके अन्यतम, पुलस्त्य मुनि ।
पुलस्त्य (सं० पु० ) १ सप्तियोंमेंसे यक ऋषि जिनकी
गिनती प्रजापतियोंमें भी होती है । ये ब्रह्माके मानस
पुलोंमेंसे थे । एक विष्णुपुराणके मतानुसार ब्रह्माके कहे
हुए आदि पुराणका मनुष्योंके वीच इन्हींने प्रचार किया
था । इन्होंने ब्रह्मासे विष्णुपुराण प्राप्त कर पराशरको
दिया था । यही पुलस्त्य विश्रवाके पिता और कुवेर
तथा रावणके पितामह थे और इन्होंसे राक्षसवंश विस्तृत
हुआ है ।

पुलस्त्यका रचित एक धर्मशास्त्र भी मिलता है। क्रमलाकरके शूद्रधर्मतत्त्वमें पुलस्त्यस्मृतिके वचन् उद्गृत हुए हैं।

२ शिवका एक नाम।

पुलह (सं० पु०) १ एक ऋषि जो ब्रह्माके मानसपुतीं और प्रजापितयोंमें थे। ये सप्तिषियोंमें हैं। भागवतके मतसे इनको स्त्रीका नाम गति था। इनके कर्मश्रेष्ठ, वरीमान और सिहण्णु ये तीन पुत्र थे। मतान्तरसे पुलहकी स्त्रीका नाम क्षमा तथा पुत्रका नाम कर्दम, अवैरी-वत् और सिहण्णु था। २ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्व। ३ शिवका नामान्तर, महादेवका एक नाम।

पुलाक (सं॰ पु॰) पोलित उच्छितो भवति पुल-भाक निपातनात् (वलकादय्थ) । १ तुच्छधान्य, एक क्रद्म, अंकरा । २ संक्षेप, अल्पता । ३ भक्तसिक्थ, भातका मांड़, पीच । ४ क्षिप्रता, जब्दी । ५ उवाला हुआ चावल, भात । ६ मांसोदन, पुलाव ।

पुलाककारिन् (सं० ति०) क्षिप्तकारी, जल्दवाजी करने-वाला।

पुरुाकिन् (सं० पु०) पुरुाक-इनि । यृक्ष । पुरुाणिका (सं० स्त्री०) त्वक्की कठिनता, चमड़ेका कड़ापन ।

पुलायित—शब्दकरपट्टम और वाचस्पत्यमें पलायित शब्द-की जगह पुलायित शब्द गृहीत हुआ है जिसका अर्थ है—अश्वगति, विकान्ति ।

पुलालिका (सं॰ स्नी॰) नासप्रदंश विपोपद्रवमेद । पुलाव (हिं॰ पु॰) मांसीदन, एक व्यंजन या खाना जो मांस और चावलको एक साथ पकानेसे वनता है। पुलिदा (हिं० पु०) छपेटे हुए कपड़े, कागज आदिका छोटा मुद्दा, पूला, बंडल, गड्डी।

पुलिकट (पलिकट) — मन्द्राज-प्रदेशके चेङ्गलपत जिलालगीत एक प्रसिद्ध नगर । इसका प्रकृत नाम परवेकींड़
है । यह अक्षा० १३ रे १५ उ० और देशा० ८० १६ पू॰के
मध्य, पुलिकट हदके किनारे समुद्रके पास मन्द्राज
शहरसे २३ मील उत्तरमें अवस्थित है । ओलन्दाजोंने
भारतवर्ष आकर सबसे पहले इसी नगरमें कोडी कोली
थी । १६०६ ई०में उन्होंने यहां एक दुर्ग वनवाया और
१६१६ ई०में अङ्गरेजोंके साथ मिल कर मिर्चका व्यवसाय
आरम्भ किया । परवर्त्तीं कालमें करमण्डल उपकृत्में
यह स्थान ओलन्दाजोंका प्रधान अड्डा थ । १७८१ ई०में
अङ्गरेजोंने इस पर अपना दखल जमाया और १७८५ ई०में
फिर ओलन्दाजोंको लौटा दिया । वाद १८२५ ई०में
सिन्धके अनुसार ओलन्दाजोंने सदाके लिये उक्त स्थान
अङ्गरेजोंको दे दिया । यहां ३०० वर्षका प्राचीन सुन्दर
शिल्पयुक्त समाधिग्रह अव भी वर्त्तमान है।

पुलिकेशि (१म)—चालुक्यचंशीय एक पराकान्त राजा। इन्होंने छडीं शताब्दीमें पल्लबराजधानी वातापिपुरी (वदामी) जीत कर चालुक्यराज्य प्रतिष्ठित किया। चालुक्यशाब्दमें विस्तृत विवरण देखी।

पुलिकेशि (२य)—चालुक्यवंशीय एक सर्वप्रधान राजा। चालुक्यराज मङ्गलीशकी मृत्युके वाद २य पुलिकेशि और विष्णुवर्द्ध नके मध्य राज्य वांटा गया। २य पुलिकेशि पितृराजधानी वदामीमें ही अधिष्ठित हुए और विष्णु-चर्द्ध नने पूर्वा शमें वेङ्गिदेश जा कर अपनी राजधानी वसाई।

पूर्वतन चालुक्य राजाओं के मध्य यही पुलिकेशि वलवीयमें भारत-विख्यात हुए थे। ६१० ई०के प्राक् कालमें वे सिहासन पर वेठे। अभिषेकके वाद ही उनकी विजयस्पृहा बलवती हो उठी। थोड़े ही दिनों के मध्य समस्त महाराष्ट्र और दक्षिणापथका अधिकांश इन्हें हाथ लगा। इन्हों के समयमें सम्राट् हर्षवर्द्ध न उत्तर-भारतमें राज्य करते थे। हिमालयसे लेकर गङ्गासागर और गुर्जर पर्यन्त उनका आधिपत्य विस्तृत होने पर भी पुलिकेशि ही के प्रभावसे वे विश्वणापथको जीत न सके थे। हर्षदेवने अपने अधीनस्थ राजन्यवर्ग और प्रधान प्रधान सामन्तोंको ले कर भीमवेगसे पुलिकेशि पर आक्रमण किया था। किन्तु पुलिकेशिके असामान्य वीरत्व और तद्मुवर्त्ती महाराष्ट्र वीरोंके रणकीशलसे हर्षदेवको युद्धमें पीठ दिखानी पड़ी थी।

इन्होंने हर्षदेवको परास्त करके महाराजाधिराज 'परमेश्वर'-की उपाधि पाई थी। चोनपरिवाजककी वर्णमालासे जाना जाता है, कि पुलिकेशि जातिके क्षतिय थे। उनके राज्यका परिमाण प्रायः १२०० मील था। उनकी संभी प्रजा शिष्ट, शान्त, परिश्रमी, नम्रप्रकृति और वीर गिनी जाती थी।

पुलिकेशिके पराक्षमकी कथा केवल भारतमें ही सीमावद्ध न थी, दूर दूर देशोंमें भी उनकी यशोराशि फैली हुई थी। एक अरव ऐतिहासिकने लिखा है, कि पारस्याध्य रथ खसक्रने अपने राज्यके ३६वें वर्षमें (६२५-६ ई०में) पुलिकेशिकी सभामें दूत द्वारा उपढीकन भेजा था। इस प्रकार दोनोंमें गाढ़ी मिलता हो गई थी। पुलिकेशिकी सभामें पारस्यदौत्यका चिल्ल आज भी अजएटाकी विश्वविख्यात गुहामें सुचितित है।

६३४ ई०को ऐहोलके शिलाफलकमें उत्कीणे पुलि-केशिकी प्रशस्तिमें लिखा है, 'राष्ट्रकूटराज आप्पायिक गोविन्च, वनवासीके कदम्बराजगण, गङ्ग और अनूपगण, कोशल और कलिङ्गगण, काञ्चिके पल्लबगण, चोल, केरल और पाण्ड्यगण पुलिकेशिके निकट पराजित हुए थे तथा महाराष्ट्रके अन्तर्गत ३ प्रदेश और ६६ हजार प्राम उनके अधिकारमुक्त थे। हर्षको परास्त करके उन्होंने 'प्रमिश्वर' की उपाधि पाई थी।

चीन-ऐतिहासिक म-तुआन-छिन् विस्तृतभावमें हुँ और पुछिकेशिका युद्धाख्यान वर्णन कर गये हैं। उनके मतसे ६१८से ६२७ ई०के मध्य यह महासमर छिड़ा था। पुछिकेशि स्वयं क्षित्रय और हिन्दू होने पर भी उनके आश्रयमें जैनधर्म खूव चढ़ा वढ़ा था। परिव्राजक यूपनचुवंग पुछिकेशिको राजधानोमें खेताम्बर जैनियोंका प्रभाव देख गये हैं। ऐहोछके मेगुति-मन्दिरमें जो पुछि-केशिको सुविस्तृत शिछाछिपि है, वह भी रविकीर्त्त नामक एक जैनकी विरचित है। रविकीर्ति अपनेको

कालिदास और भारविके समान कवि वतला गये हैं। वह स्रोक इस प्रकार है—

"येनायोजितवेश्मस्थिरमर्थंविधौ विवेकिना जिनवेश्म । स विजयतां रविकोत्तिः कविताश्चितकालिदासभारवि-कोर्तिः ॥"

इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि पुलिकेशिके समयमें भी भारतयुद्धसे एक अध्दक्षी गणना होती थी। यथा—

"तिंशत्सु तिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्तान्दशतयुक्तेषु गतेप्वन्देषु पश्चसु च॥
पञ्चाशतसु कलौ काले-षद्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥"

अर्थात्—कुरुक्षेत्रके महासमरसे इस किलकालके ३७३५ वर्ष हो जाने पर शकराजका ५५६ अब्द बीत चुका था, अर्थात् भारतयुद्धगताब्द ३७३५ = शकगताब्द ५५६। यह राजा सत्याश्रम-पुलिकेशि-वल्लभ नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके आदित्यवर्मा, चन्द्रादित्य और १म विक्रमा-दित्य नामक तीन पुत्र तथा अभ्वेरा नामक एक कन्या थी। वाल मान वीन पुत्र तथा अभ्वेरा नामक एक कन्या थी।

पुलिकेशि—१०वीं शताब्दीके चापवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम अहुक था।

पुलिन (सं० पु० क्की०) पुल महत्त्वे इनन् स च कित् (तलिपुलिभ्याञ्च। उण् ३१४३) १ चर, भरतके मतानु-सार पानीके मीतरसे हालकी निकली हुई जमीन। २ क्षणतोययुक्त द्वीप, नदीके वीच पड़ी हुई जमीन या रेत। ३ तट, किनारा। ४ यक्षविशेष, एक यक्षका नाम।

पुलिनद्वीपशोभित (सं॰ ति॰ ) पुलिन तथा द्वीपादि द्वारा विभूषित या शोभायमान ।

पुलिनवती (सं० स्त्री०) १ नदीभेद, एक नदीका नाम । २ तटशीला ।

पुलिन्द—भारतको एक आदिम असम्यजाति । ऋग्वेदके ऐतरेय बाह्यणमें लिखा है, विश्वामितके जिन सब पुतोंने श्रुनःसेफको ज्येष्ठ नहीं माना था वे विश्वामितके शापसे पतित हो गये थे । उन्हीं पतित विश्वामितके पुतोंसे पुलिन्द शवर आदि असम्य जातियोंको उत्पत्ति हुई है। वामनपुराणमें इन पुलिन्दोंकी उंत्पत्तिके विषयमें एक अन्द्रुत उपाख्यान इस प्रकार है—

'दानवींने तें छोष्यका अधिकार किया । इन्द्र हत-राज्य हो देवताओंके साथ ब्रह्मलोक आये। यहां इन्ड्रने कश्यपादि ऋषियोंके साथ ब्रह्माको प्रणाम कर कहा, 'पितामह ! विलने हमारा राज्य छीन लिया है, सी क्या करना चाहिये।' ब्रह्माने जवाव दिया, 'इन्द्र ! तुम कर्म-फलका भोग करते हो।' उसी समय कश्यपने भी कहा, 'देवेन्द्र ! तुम भ्रुणहत्याके पापसे लिप्त हो गगे हो, तुमने वज द्वारा दितिका उदर भेद डाला है। कश्यपकी कथा सुन कर इन्द्रने ब्रह्मासे पूछा, 'पितामह ! मेरे लिये कौन प्रायश्चित्त होना चाहिये ?' इस पर ब्रह्मा, कश्यप और विशाप्रने एक स्वरसे कहा, 'तुम शङ्ख्यकगदापग्रधारी माधवकी शरण लो, वे ही श्रेयोविधान करेंगे।' अनन्तर इन्द्र उसी समय महीतल पर कालञ्जरके उत्तर, हिमादिके दक्षिण, कुशस्थलके पूच और वसुपुरके पश्चिम अमूर्त्त गदाधरके स्थानको चल दिये। यहां देवराज इन्द्रने एक वर्षे तक गदाधरकी तपस्या की । माधवने प्रसन्न हो कर उन्हें दर्शन दिये और कहा, 'देवेन्द्र ! अब तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो चुके, तुम बहुत ही जब्द राज्यलाभ करोगे।' इसके वाद इन्द्र सुरनदीमें स्नान करके पवित हुए। उनके भीवणकर्मा सहचरीने कहा, 'अव हम लोगोंको क्या करना होगा, कृपया आदेश दीजिये।' इन्द्रने उत्तर दिया, 'तम लोगोंने मेरा पाप ले कर जन्मग्रहण किया है, इस कारण तुम लोग हिमादि और कालअरके मध्यवत्तीं प्रदेशोंमें जा कर पुलिन्द नामसे वास करो।' इतना कह कर पुरन्दर पापमुक हो चल दिये।

रामायण, महाभारतादि सभी प्राचीन प्रन्थोंमें इस पुलिन्द जाति और उनके निवासभूत जनपर्दोका उल्लेख देखनेमें आता है। (भारत) २।३२।१५,६।६।३६।४० रामायण-४।४०।२१ त्रक्षाण्डपु • मत्कपु • ११३।४८,१२०,४५, मार्कण्डेय पु • ५७।४७, वामनपु • १३।४८, लिंगपु • ५२।२८, स्तर्वदिता २६।११, श्रीहर्षचरित १।१४, तापीखाउ ६।२४, दिन्विनय)

पुलिन्द जातिकी उत्पत्तिके सम्वन्धमें वामनपुराणमें जो स्थान निर्णीत हुआ है, उसे अपरापर प्राचीन संस्कृत प्रन्थों में कुलिन्द वा कुनिन्द जातिका स्थान वतलाया है। क्रिनिन्द दखो। पुलिन्द लोग गुजरात और महाराष्ट्रवासी पूर्वतन असम्य दल्युजातिके जैसे प्रतीत होते हैंं, दस्य देखी। समापर्वमें लिखा है, कि सहदेवने नाचीन और अर्डु कराजाओंको परास्त कर वाताधिपकी वशवर्त्ती किया। पीछे वे पुलिन्दों को जीत कर दक्षिण-की ओर अप्रसर हुए। (समापुर ३१ अ०)

अर्जु कको कोई कोई वर्त्त मान आवृपहाड़ और वाता-धिपको वातापिपुरी ( वर्त्त मान वदामो ) के अधिपति मानते हैं। इस हिसावसे मालूम होता है, कि गुजरात-के पूर्वा शसे छे कर वर्त्तमान वदामीके निकटवर्त्ती स्थान तक असम्य पुलिन्द जातिका वास था। महाभारतके भीष्मपर्वमें 'सिन्धुपुलिन्दकाः' ऐसा लिखा है। इससे वे सिन्धुप्रदेशके दक्षिणांशस्थ रणवासी भी समके जाते हैं।

अशोकके शाहवाजगड़ी-अनुशासनमें पुलिन्दजातिका जो उल्लेख है और कथासरित्सागरमें भी कहीं कहीं पुलिन्दजातिका जो वर्णन है, उससे यह जाति आज कल-को भील जातिकी एक शाखा-सी समभी जाती है।

प्रसतस्त्रवित् किन्द्रम् साहव भिल्लक और शवर इन दो जातियो को पुलिन्दका एक पर्यायवाची वतला गवे-हों। (Cunningham's, Arch, Survey Reports, Vol, p. 189)

ग्रीक भौगोलिक टलेमिने इस जातिको Paulindai Agriophagoi और ग्लिनिने Molindai नामसे उल्लेख किया है। एक समय समस्त भारतवर्षमें इस जातिका वास था। कोई कोई समकते हैं, कि 'पोद' शब्द इस पुलिन्द शब्दका अपमंश है।

पुलिन्द्क-१ पुलिन्द्जाति और उनके निवासभूत जनपद विशेष। २ पुलिन्दोंके एक राजा। कथासिरत्सागर-में पे ही पुलिन्द, भिल्ल और शवर इन तीन जातियोंके अधिपति बतलाये गये हैं। ३ आद्र कके एक पुलका नाम।

पुलिन्द्वन स्कन्द्पुराणीय तापीखराड वर्णित एक पवित्र स्थान । वर्च मान ताप्ती नदीके किनारे यह वन बसा हुआ था। महादेव पुलिन्दवेष्टित हो कर इस वनमें वास करते थे। पुंलिन्दसेन—कलिङ्गके एक विख्यात वीर । ये माधव-वर्माके पूर्वपुरुष थे । माधववर्माके ताष्रशासनमें "कलिङ्गोंके मध्य प्रथितयशा" इस प्रकार वर्णित हुए हैं । पुलिन्दा—एक छोटी नदी जो तासी नदीसे जा मिली हैं। महाभारतमें इसका उल्लेख आया है। यहांके हिन्दुओं का विश्वास है, कि पुलिन्दासङ्गममें स्नान करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है।

पुलिसत् (सं॰ पु॰) नृपसेद, एक राजाका नाम।
पुलिसिद्द-दाक्षिणात्यमें कर्णूल जिलान्तर्गत एक प्राचीन
प्राम। यह निन्द्यालसे दो कोस उत्तर पड़ता है। यहां
विजयनगरके अच्युतरायके शासनकाल (१४५५ शकमें)में नागलिङ्गे श्वरका मन्दिर निर्मित हुआ है।

पुलियानगुड़ी —मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवेलि जिलेके नारा-यण-कोविल तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० है १० ड० और देशा० ७६ २६ प्०में, पुराने मदुरा-रास्तेके किनारे श्रीवैकुण्ठेश्वरके समीप वसा हुआ है। यहां प्रायः ढाई हजार मनुष्योंका वास है। नगरमें एक वहुत पुराना विष्णुमन्दिर है जिसमें ताम्रशासन और स्थलपुराण भी मिलते हैं।

पुलियार-दक्षिणापथकी एक पार्चत्यजाति । मदुरा जिलेके पालनी नामक पहाड़ पर वहुतसे मनुष्यका वास देखनेमें आता है। इन लोगोंको अवस्था अत्यन्त घृण्य और शोचनीय है। यहां तक कि कीरवर नामक असम्यंजातिके यहां ये छोग दासत्व करते हैं। ऐसी निकृष्ट अवस्था होने पर भी आश्चर्यका विषय यह, कि ये लोग कीरवर आदि नीचजातिको देव-पूजक और चिकित्सकका काम करते हैं। कारण, सिर्फ ये लोग ही नाना प्रकारके वृक्ष, लता, पौधे आदि पहचानते तथा वन्यदेवताकी तृप्तिके लिये मन्तोचारण करते हैं। कोरवरोंमें से कोई एक पीडित होने पर तुरत पुलियारके पास खवर दी जाती हैं। पुलि-यार आ कर शाक वा मूलका औषधके रूपमें प्रयोग करते और कभी कभी भन्तीचारण कर रोगीकी भला चंगा कर देते हैं। ये लोग शान्त, शिष्ट, नम्रप्रकृतिके तथा अत्यन्त मृगयाप्रिय होते और अक्सर विप तथा सुतीक्ष्ण तीर प्रयोगसे वाघको भी मार डालते हैं। ये भूतप्रतके उपासक और सर्वर्भुक् हैं। कोई भी एकसे

अधिक विवाह नहीं कर सकता। रागी नामक शस्यको सड़ा कर जो मद्य प्रस्तुत होता हैं, वही इन सव जातियों-का प्रियंतम पानीय है।

पुलिरिक ( सं॰ पु॰ ) सर्पं, साँप ।

पुलिवलम् मन्द्राजके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक ग्राम।
यह वालजापेतसे १२ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां
चोलराज प्रतिष्ठित एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिरका
ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। दोनों मन्दिरमें बहुत
पुरानी शिलालिपि उत्कीणें हैं।

पुलिवेन्दला—१ मन्द्राज प्रदेशके कड्प्पा जिलेके अधीन एक तालुक वा महकूमा। इसका असल नाम पुलि-मएडलम् अर्थात् व्याद्रावास है। यह अक्षा० १४ १० से १४ 88 उ० और देशा० ७९ ५९ से ७८ २८ पूर्क मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७०१ वर्गमील और जनसंख्या १०३३६६ है। इसका पश्चिमांश उपेजाऊ है जहां काफी रुई उपजती है। पूर्वाशमें पापन्नी नदी प्रवाहित है, इसीलिये जलका अभाव नहीं होता । इसके मध्यवत्तीं स्थानमें अवसर चने और कपासकी खेती होती है। इसके अलावा चावल, नील और सरसों भी उपजर्ता है। १८०० ई०के पहले यह स्थान पोलिगरींके अधिकारमें था। आजकल भी उनके वनाए हुए परिखाविशिष्ट प्राचीन दुर्गादिका भग्नावशेष और उन सव दुर्गांके मध्य गीले फेंकनेके जो छिद्र रहते थे वे भी देखनेमें आते हैं। १८८३ ई०में इस तालुकमेंसे फीजदारी अदालत और १० थाने स्थापित हुए। यहांका राजस्व कुछ १८२५२०) रु० है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह कड़ापासे ३६ मील पश्चिममें वसा है। यहां कम्पनीका वागान और डाकघर है। इस नगरसे डेढ़ मील पश्चिम रङ्गनाथ-खामीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है। प्रवाद है, कि रङ्गनाथकी खयम्भूमूर्त्ति पूर्वतन युगमें प्रादुर्भूत हुई थी। यहांके स्थलपुराणमें रङ्गनाथखामीका माहात्म्य विस्तृत रूपसे वर्णित है। मन्दिरके समीप ही पोलिगार-दुर्गका भगावशेष देखनेमें आता है।

पुलिश—एक प्राचीन ज्योतिर्प्र न्थके रचयिता। वराहमिहिर-ने जिस पञ्चसिद्धान्तका उद्खेख किया है, उनमेंसे पुलिश-रचित 'पौलिशसिद्धान्त' एक है। अल-वेरुणीने इन्हें ं।छस्-अठ्-यूनानि' अर्थात् ग्रीक पछस् नामसे उब्लेख किया है। उनके मतसे पुलिश सैन्द्रा अर्थात् आलेक-सिन्द्रियावासी थे। जर्मन-अध्यापक वेबर (Weber)-ने अल्वेरुणोका वर्णन देख कर स्थिर किया है, कि Paulus Alexandrinus ग्रीक भागामें रचित Eisagoge) नामक प्रन्थ संस्कृत भागामें पौलिश-सिद्धान्त नामसे वर्णित हुआ है।

अभी मूल पौलिश-सिद्धान्त सम्पूर्ण नहीं मिलता। अल्बेरुणी ब्रह्मसिद्धान्त और पौलिशसिद्धान्त देख कर हिन्दूज्योतिषके सम्बन्धमें यथेए आलोचना कर गये हैं। भट्टोत्पल और वलभद्र पौलिशसिद्धान्तसे वचन उद्धृत कर गये हैं। ब्रह्मगुप्तने पुलिशका नामोल्लेख किया है और वराहमिहिरकी पश्चसिद्धान्तिकामें पौलिश-सिद्धान्तका विषय आलोचित हुआ है।

राजा राजेन्द्रपाल आदि प्रवतत्त्वविदींने पुलिशको इजिप्टवासी बतलाया है। किन्तु अलवेरुणीकी आलो-चना और पञ्चसिद्धान्तिका पढ्नेसे पुलिशको हम लोग त्रीकज्योतिर्विद् नहीं मान सकते । ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, भट्टोत्पल और वलभद्र आदि ज्योतिर्विदोंके पौलिश-सिद्धान्तको कथा लिखने पर भी कोई भी पुलिशको 'यवन' खीकार नहीं करते। अल्येरुणीने किस प्रमाणसे पुलिशको त्रीक और आलेकसन्द्रियावासी वतलाया है, यह भी मालम नहीं। डाक्रर वेवर साहवकी भी उक्ति समीचीन-सी प्रतीत नहीं होती । Paulus Alexandrinus-के प्रन्थमें पौलिशसिद्धान्तके प्रतिपाद्य मूलविषय नहीं हैं। Bisagoge-से वेवरने जो सब विवरण उद्धृत करके उन्हें पौलिशसिद्धान्तके साथ मिलानेकी कीशिश की है, वे भी सुयुक्तिपूर्ण नहीं हैं। किसी जातक प्रन्थमें क्षेत और क्षेताघिपतिके परिचयप्रसङ्गमें वे सव कथाएं आलोचित हुई हैं। Eiságoge एक जातकप्रन्थ है, किन्तु पुलिशका सिद्धान्त एक शुद्ध ज्योतिष है।

पूर्वोक ज्योतिर्विदोंके उद्धृत वा आलोचित पुलिश-सिद्धान्तका विषय पढ़नेसे यह सहजमें स्वीकार किया जा सकता है, कि पुलिश एक प्रधान ज्योतिर्विद्ध थे, उन्होंने प्रीकज्योतिषका भाव अपने प्रन्थमें नहीं रखा है। उन्होंने जिस मतका प्रचार किया है, वह भारतीय अथवा पार-सिक जैसा प्रतीत नहीं होता। सचराचर पुलिशसिद्धान्तसे आर्या और अंतुष्टुममें लिखित श्रोक देखे जाते हैं। उन श्रोकोंको देख कर कोई कोई समफते हैं, कि पुलिशने दो सिद्धान्त लिखे थे, पर उनके मूलमें कुछ भो सत्य नहीं है। एक सिद्धान्तमें दो प्रकारके श्रोक रह सकते हैं, वराहमिहिरका प्रन्थ पढ़नेसे यह सन्देह दूर हो जायगा। किसी किसी प्रन्थमें 'पौलिश'-को जगह 'पौलस्त्य' नाम उद्धृत हुआ है, जो लिपिप्रमाद समका जाता है। पर हां, यह भी जान लेना आवश्यक है, कि पौलस्त्यरचित स्वतन्त्र ज्योतिर्प्रन्थ भी प्रचलित है। जो कुछ हो, प्राचीन ज्योतिशालोंकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि ब्रह्मगुप्त, वराह-मिहिर आदि ज्योतिर्विदेंकि पूर्वतनकालमें भारतवर्षमें एक आर्यभट्ट और दूसरे पुलिश इन्हीं दोका ज्योतिर्मत प्रधानतः प्रचलित था।

पुलिस (अं० स्त्री०) १ प्रजाको जान और मालकी हिफा-जतके लिये मुकर्रर सिपाहियों और अफसरोंका दल, ग्राम, नगर आदिकी शान्तिरक्षाके लिये नियुक्त कर्म-चारियों तथा सिपाहियोंका वर्ग । २ अपराधोंको रोकने और अपराधियोंका पता लगा कर उन्हें पकड़नेके लिये नियुक्त सिपाही या अफसर।

पुलिसमैन (अं॰ पु॰) कांस्टेवल, पुलिसका सिपाही या प्यादा।

पुलिहोरा (हि॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षवान ।
पुली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पक्षी जो काले और
भूरे रंगका होता है। यह पक्षावसे ले कर वङ्गाल तक
सारे उत्तर-भारतमें पाया जाता है।

पुलुकाम (सं॰ ति॰) पुरु कामयते कामि-अण् उपपदस॰, ततो रस्य लः। बहुकामनायुक्त, नाना प्रकारको कामना रखनेवाला।

पुलेवैठ (हि॰ पु॰) हाथीवानोंकी वोली। इसमें हाथी पीछे-के दोनों पैर भुका देता है।

पुलोमन् (सं॰ पु॰) १ दैत्यभेद, इन्द्रका श्वशुर। इन्द्रने युद्धमें पुलोम-दैत्यको मार कर उसकी कन्या शचीसे व्याह किया था। २ राक्षसभेद, एक राक्षस। ३ अन्ध-वंशका एक राजा।

पुलोमजा (सं॰ स्नी॰ ) पुलोम्नो दैत्यात् जायते जनः उ, स्त्रियां टाप् । इन्द्राणी, शची, पुलोमकी कन्या । पुँळोमजित् ( सं॰ पु॰ ) पुळोमानं जयतीति जि-किप् तुगा-गमश्च । इन्द्र ।

पुलोमद्विष् ( सं॰ पु॰ ) पुलोन्नः दैत्यविशेषस्य द्विट् शतुः । इन्द्र ।

पुलोमभिद् (सं॰ पु॰) पुलोमानं मिनत्तीति मिद्-िकप्। इन्द्र।

पुलोमही ( सं० स्त्री० ) अहिफेन, अफीम ।

पुळोमा (सं० स्त्री०) १ भृगुकी पत्नी, च्यवन ऋषिकी माता। ये वैश्वानर देत्यकी कन्या थीं। २ वचा, वच।

पुलोमारि (सं॰ पु॰ ) पुलोम्नः अरिः । इन्द्र । पुलोमार्चिस् (सं॰ पु॰ ) राजपुतमेद ।

पुल्कस (सं॰ पु॰ स्त्री॰) एक संकर जाति । इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुप और क्षत्रिया स्त्रीसे कही जाती है। शतपथत्राह्मण (१४।७।१।२२) और वृहदारण्यक उप-निपद्व (४।३।२२)में इस जातिका उल्लेख देखनेमें

ानपडु ( ४१३/२२ )म<sup>्</sup> इस जगतका .आता है ।

पुल्य (सं॰ ति॰) पुल चतुरर्थ्या बलादित्वात् यः (ग ४।२।८०) पुलनिवृत्तादि, पुलक्योग्य, रोमाञ्च होने लायक।

पुहु (सं० ति०) फुहु-पृयोदरादित्वात् साधुः। विकसित, खिला हुमा।

पुलक ( सं० क्की० ) आश्चर्य ।

पुल्ला (हि॰ पु॰) नाकमें पहननेका एक गहना।

पुर्ली (हिं॰ स्त्री॰) घोड़े के सुमके ऊपरका हिस्सा।

पुल्यघ (सं० पु०) पुरु वहु अत्ति अद्-अच्, पृयोदरादित्वात् रस्य छः । वहुभक्षक मृगभेद ।

पुवा ( हिं॰ पु॰ ) पूना या माडपूना देखो ।

पुचार (हिं पु ) पयाल देखी।

पुरत (फा॰ स्त्री॰) १ वंशपरम्परामें कोई एक स्थान, पिता पितामह प्रपितामह आदि अथवा पुत्र, पौत्र प्रपी-तादिका पूर्वापर स्थान, पीढ़ी। २ पृष्ठ, पीठ, पीछा।

पुस्तक (फा॰ स्त्री॰) दोळची, घोड़े गदहे आदिका पीछेके दोनों पैरों से लात मारना।

पुरतनामा (फा॰ पु॰) वंशावली, पीढ़ीनामा, कुरसी-नामा, वह कागज जिस पर पूर्वापर कमसे किसी कुलमें 'उत्पन्न लोगों के नाम लिखे हों।

Vol. XIV. 58

पुरतवानी ( फा॰ स्त्री॰ ) वह आड़ी लकड़ी जो किवाड़के पीछे पल्लेकी मजबूतीके लिये लगी रहती हैं।

पुरता (हिं पु ) १ पानीकी रोकके लिए या मजवतीके लिए किसी दीवारसे लगा कर कुछ अपर तक जमाया हुआ मिट्टी, इंट, पत्थर आदिका हेर या ढालुवां टीला । २ पानीकी रोकके लिए कुछ दूर तक उठाया हुआ टीला, वांध, अचा मेंड़ । ३ कितावकी जिल्दके पीछेका चमड़ा । ४ पीने चार माताओं का एक ताल जिसमें तीन आधात और एक खाली रहता है।

पुरतायंदी (फा॰ स्त्री॰) १ पुरता उठानेकी किया या भाव, पुरतेकी यंघाई। २ पुरतेका काम।

पुक्ती (फा॰ स्त्री॰) १ आश्रय, सहारा, थामा, टेक । २ पृष्ठरक्षा, सहायता, मदद । ३ पक्ष, तरफदारी । ४ वड़ा तिकया, जिस पर पीठ टिका कर वैठते हैं, पीठ टेकनेका तिकया, गाव-सर्वित्या।

पुश्तेन ( हिं॰ स्त्री॰ ) वंशपरम्परा, पुरुषपरम्परा, पीढ़ी दर पीढ़ी।

पुरतेनी (हिं॰ वि॰) १ जो कई पुरतों तक चला चले, वेटे पोते परपोते आदि तक लगातार चला चलनेवाला। २ जो कई पुरतोंसे चला आता हो, कई पीढ़ियोंसे चला आता हुआ, दादा परदादाके समयका पुराना।

पुषा (सं॰ स्त्री॰) पुष्णातीति पुष-पुष्टी क, ततप्राप् । १ छाङ्गळीवृक्ष, कलिहारीका पीधा, कलियारा । २ पांपण करना, पालना ।

पुषित (सं॰ स्त्री॰) पुष्यते स्मेति पुष-क, भ्वादिगणीय-त्वात् इट्।१ पुष्ट, पोषण किया हुआ। २ प्रतिपालित, पाला पोसा हुआ। ३ वर्षित, बढ़ा हुआ।

पुष्क (सं० क्ली०) पुष वाहु० भावे क, किस्र । पुष्टि, पोषण । पुष्कर (सं० क्ली०) पुष्णातोति पुष-पुष्टी (पुषः किन् । उण् ४१८) इति करन्, स च कित् । १ हस्तिशुण्डाम्, हार्थाकी सं इका अगला भाग । २ वाद्यभाण्डमुख, ढोल, म्हदङ्ग आदिका मुह जिस पर चमड़ा मढ़ा जाता है । ३ व्योम, आकाश । ४ असिफल, तलवारका म्यान । ५ इप्रभेद, क्र १६ पद्म, कमल । ७ तीर्थमेद, एक तीर्थका नाम । ८ रोगमेद, एक प्रकारका रोग । ६ कान्त । १ द्वीपमेद, पुराणमें कहे गये सात द्वीपोंमेंसे एक ।

देवीमागवतके अनुसार यह द्वीप दिधसमुद्रके आगे हैं और इसका विस्तार शाकद्वीपसे दूना है। इस द्वीपमें अयुत पत्नयुक्त पुष्कर शोमा पाता है। इसके पत्ते जैसे विशद हैं, वैसे प्रदीप अग्निशिखाकी तरह प्रतिमासम्पन्नभी हैं। सर्वेलोकगुरु वासुदेवने लोकसृष्टिकी कामनासे ब्रह्माके आसन-स्वरूप उस पुष्करकी कल्पना की है। इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक पर्वत दो खएडोंमें विभक्त हो कर अर्वाचीन और पराचीन नामक दो वर्षोंकी सीमा निर्द्धा-रण करता है। इसकी ऊंचाई और चौड़ाई दश हजार योजन है। प्रियत्रतके पुत्न वीतिहोत इस द्वीपके अधिपति हैं।

११ नागमेद । १२ सारसपक्षी । १३ पक राजा जो नलके छोटे भाई थे । इन्होंने कलिदेवकी सहायताले नलको जूपमें हरा कर निषधदेशका राज्य ले लिया था। पीछे नलने कलि-परित्यक हो कर जूपमें ही फिर पुष्कर-को पराजय किया और राज्यको जीता।

(भारत वनप॰) नल देखो।

१४ वरणपुत पुष्करद्वीपस्थ राजा। १५ असुरमेद।
१६ विण्णु। १७ पुष्करद्वीपस्थ पर्वतमेद। १८ पुष्करद्वीपके राजमेद। १६ पद्मकन्द। २० सपं, सांप। २१
खड़ गक्षोष, तलवारका म्यान। २२ युद्ध, लड़ाई।
२३ जल, पानी। २४ जलाशय, ताल, पोखरा। २५
करछीका कटोरा। २६ वाण, तीर। २७ पिंजड़ा।
२८ तृत्यकला। २६ मद, नशा। ३० सूर्य। ३१ एक
प्रकारका ढोल। ३२ एक दिग्गजः। ३३ शिवका एक
नाम। ३४ कृष्णके एक पुत्रका नाम। ३५ बुद्धका एक

३७ योगविशेष, करवार भद्रातिथि, भग्नपादनक्षत-घटित अशुभजनक योगविशेष, त्रिपुष्करयोग। मृत्यु-कालीन कर्रवारादि होनेसे यह योग होता है। पुनर्वसु, उत्तराषादा, रुत्तिका, उत्तरफल्युनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा नक्षत तथा रिव, मङ्गल और शनिवार तथा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि इन सवका एकत योग होनेसे उस दिन मृत लाकिने पुनकरकोष होता है।

इस दीवमें जन्म लेनेसे जारज-याग और मरनेसे पुष्कर-नीव हुआ करता है। यह दोष पानेसे ही शानित करना कर्त्तथ्य है। यदि इस दोषकी शान्ति न की जाय, तो उसके प्रथम मास वा प्रथम वर्षमें कुटुम्बको पीड़ा होती है। यदि देवता उसकी रक्षा भी क्यों न करें, तो भी उसका पुतनाश अवश्यम्मावी है। अतर्पव पुष्करशान्तिके लिये अयुतहोम अवश्य कर्त्त व्य है। यदि यह न कर सकें, तो सुवर्ण दान करना चाहिये। यह दान वा होम सृत व्यक्तिके अशौचकालमें ही किया जाता है। अशौचके कारण विलम्ब करना उचित नहीं। क्योंकि शुद्धिकारिकामें भी लिखा है,—

"मुख्यकाले त्विदं सर्वं स्तकं परिकीर्त्तितम्। आपद्गगतस्य सर्वस्य स्तकेऽपि न स्तकम्॥" ( शुद्धिकारिका)

यह शान्ति शमशानमें करनी होती है। ग्रहविप्रगण ही इस विषयकी शान्ति करते हैं। शब्दकल्पद्भमोक वराह-संहितामें इस दोषशान्तिका विषय इस प्रकार लिखा है।

जिस दिन इस दोषशान्तिके लिये दान वा होमादि करने होंगे, उस दिन पहले सङ्कल्प करना कर्च व्य है। संकल्प यथा—

"श्री विष्णुरोम् तत्त्वद्य अनुके मावि अमुके पक्षे अमुक तियो अमुक गोन्नः श्रोअमुक देवशमी अमुक गोनस प्रेतस्य अमुक देवशर्मणः त्रिपुक्तर-योदकाजीतमरणजन्यदोव प्रशामनः कामः इद'क्षाञ्चनं श्रीविष्णुदेवतं यथा प्रम्मवगोन्ननाम्ने नाहणाः यादं ददे" इस प्रकार संकल्प करके दान करे। पूजा और होम करते समय 'प्लाहोमकर्मणा करिष्ये' ऐसा संकल्प करके पूजा और होम करे। तिल, धान और जीको स्त वा श्रीरमें मिला कर होम करना होता है। इस शान्तिमें वह और विल देनी होती है। वैकङ्क अध्वत्य और उड म्बर इनके समिध् द्वारा अष्टोत्तर शतहोम करना होता है। पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा सर्वतोमद्रमण्डल प्रस्तुत करके उसमें यम, धर्म और चित्रगुतकी स्थापना करे। पीछे इनकी पूजा और होम विधेय है। तिथि, वार और नक्षतकी पूजा तथा होम करना होता है।

शान्तिके विधानानुसार यदि शान्ति न की जाय, तो जो प्रेत-व्यक्तिका श्राद्धाधिकारी है, उसके पुष्कर जन्य अरिष्ट अर्थात् चतुष्पाददोष होता है । साल पूरने पर अथवा सोलह वा छः महीनेके भीतर उसका पुत्र यमपुर- का मेहमान वन जाता है। अथवा उसीकी मृत्यु होती है वा भ्रातृवियोग होता है। धीरे धीरे उसकी सभी वस्तु विनष्ट हो जाती हैं। यहां तक कि, उसका वास्तु- वृक्ष तक भी जीवित नहीं रहता। इस कारण सबसे पहले इसकी शान्ति अवश्य कर्त्तव्य है। विस्तार हो जानेके भयसे इसका विस्तृत विवरण यहां नहीं लिखा गया।

३८ ब्रह्मकृत तीर्थविशेष । इस तीर्थका नामान्तर इपतीर्थ और मुखदर्शन है । पद्मपुराणमें छिखा है— इस तीर्थमें ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और किनष्ठ पुष्कर नामक तोन हद हैं । इस तीर्थका परिमाण सौ योजन माना गया है ।

ज्योतिस्तत्त्वमें छिखा है, योगविशेषमें गङ्गादि नदीके भी पुष्करत्व होता है। स्यँके मकरराशिमें अर्थात् माघ मासमें रहनेसे तथा उस समय यदि बृहस्पति मकरराशिमें रहे और रिववारमें पूर्णिमा तिथि पड़े, तो गङ्गा पुष्करके समान पवित्र तीर्थ होती है। स्यँ यदि सिहराशिमें अर्थात् भाद्रमासमें हो तथा बृहस्पति यदि उस समय सिहरूथ हो तो गङ्गाका उत्तरभागस्थ प्रयागतीर्थ पुष्कर सदृश होता है। बृहस्पतिवारमें पूर्णिमा होनेसे गोदावरी, मेषमें स्यँके बृहस्पतिके साथ पकत रहनेसे तथा सोमवारमें शुक्काएमी होनेसे काचेरी, कर्केटराशिमें स्यँके स्थित होनेसे बृहस्पति वा सोमवारमें अमावस्या वा पूर्णिमा होनेसे तथा कृष्णा ये सव नदियां पुष्करके समान होती हैं। इसमें स्नान-दानादि करनेसे कोटि-सूर्य-प्रहणमें स्नानवानादि करनेके समान फल होता है।

"मकरस्थो यदा भाजुस्तदा देवगुरुर्यदि।
पूर्णिमायां भाजुवारे गङ्गा पुष्कर ईरितः॥
गङ्गोत्तर्थ्यां प्रयागे च कोटिस्व्यंप्रहेः समः।
सिहसंस्थे दिनकरे तथा जीवेन संयुते॥
पूर्णिमायां गुरोवारे गोदावर्यास्तु पुष्करः।
तत्र स्नानञ्च दानञ्च सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥
मेषसंस्थे दिवानाथे देवानाञ्च पुरोहिते।
सोमवारे सिताप्रस्यां कावेरी पुष्करो मतः॥

कर्कटस्थे दिवानाथे तथा जीवेन्द्रवासरे। अमायां पूर्णिमायां वा कृष्णा पुष्कर उच्यते॥" (स्कन्दपु० पुष्करखण्डमें श्रीशैलमा०)

३६ मेघनायकियशेष। जिस वर्ष पुष्करमेघ मेघाधि-पति होता है उस वर्ष जलका अभाव होता, पृथिबी शस्यहीना होती और लोग तरह तरहके कष्ट भुगते हैं।

> "पुष्करे दुष्करं वारि शस्यहीना वसुन्धरा । विश्रहोपहता लोकाः पुष्करे जलदाधिये ॥" (ज्योतिस्तस्व)

इस पुष्करमेयका आनयन-प्रकार इस प्रकार लिखा है—शाक वर्षमें तीन जोड़ कर उसे चारसे माग दे। भागशेष जो वच रहेगा, उसीके अङ्कानुसार यह स्थिर करना होगा, अर्थात् भागशेषके एक रहनेसे आवत्तं, दो रहनेसे सम्बर्त और तीन रहनेसे पुष्करमेघ स्थिर करना होगा।

> "तियुते शाकवर्षे तु चतुर्मिः शोषिते कमात्। आवर्त्तं विद्धि सम्वर्त्तं पुष्करं द्रोणमम्बुदम्॥" ( ज्योतिस्तस्व )

४० विष्णु भगवान्का एक रूप। विष्णुकी नाभिसे जो कमल उत्पन्न हुआ था, वह उन्होंका एक अङ्ग था। इस-की कथा हरिवंशमें बड़े विस्तारके साथ आई है। पृथ्वी परके पर्वत आदि नाना भाग इस पदाके अङ्ग कहे गये हैं। पुष्कर प्राइमीन देखी।

पुष्कर—भारतवर्षका एक प्रधान तीर्थं और नगर। राज पूतानेके अजमीर-मारवाड़के अन्तर्गत अक्षा० २६ दे० और देशा० ७४ दे६ पू०के मध्य अवस्थित है। भारतवर्षके मध्य यहीं पर प्रकृत ब्रह्ममन्दिर देखा जाता है। प्रवाद है, कि ब्रह्मा जब यहां यश करते थे, उसी समय इस मन्दिर-का निर्माण हुआ था। पद्म और नारदादि नाना पुराणोंमें इस पुण्यक्षेतका माहात्म्य वर्णित है।

पद्मपुराणके सृष्टिक्षएडमें लिखा है —

"पद्महस्तोऽपि भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः।
भूमदेशे पुण्यराशी यहं कर्तुं व्यवस्थितः॥
अवरोहं पर्वतानां वसे वातीव शोमने।
कमलं तस्य हस्तानु पतितं धरणीतले॥
तस्य शब्दो महानेष पेन यूयं प्रकम्पिताः।
तदासी सुरवृन्देन पुष्पमोदाभिनन्दितः॥

अनुगृह्याथ भगवान् वनं तत् समृगाएडजं । जगतोऽनुश्रहार्थाय वासं तलान्वरोचयत्॥ पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रे वृषभमेव च। जनितं तद्भगवता छोकानां हितकारिणा॥"

## व्रह्मोवाच ।

युष्मद्धितार्थमेतद्धि भयं विनिहतं मया। देवतानाञ्च रक्षार्थं श्रूयतामल कारणम्॥ असुरो वज्रनाभोऽयं वालजीवापहारकः। अवस्थितस्त्वष्टभ्या रसातलतलाश्रयम्॥ युक्पदागमनं ज्ञात्वा उपस्थान्निहतायुधान्। इन्तुकामो दुराचारः सेन्द्रानिप दिवौकसः॥ घातं कमलपातेन मया तस्य विनिर्मितं। स राज्येश्वर्यदर्पिष्ठस्तेनासौ निह्तो मया॥ लोकेऽस्मिन् समये भक्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः। मैव ते दुगतिं यान्तुं लभन्तां सुगति पुनः ॥ देवानां दानवानाञ्च मनुष्योरगरक्षसां। भूतप्रामस्य सर्वस्य समोऽस्मि तिदिवीकसः॥ युक्मद्धितार्थं पापोऽसौ मया मन्त्रेण घातितः। प्राप्तः पुण्यक्रतां लोकान् कमलस्यास्य दर्शनात्॥ यनमया पद्ममुक्तं स्तु तेनैवं पुष्करं भुवि। ख्यातं भविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदं महत्॥ पृथिव्यां सर्वजन्तूनां पुण्यदं परिपठ्यते ।" ( १५ अ० )

एक समय लोकपितामह भगवान ब्रह्मा हाथमें पद्म लिये पुण्यभूमिप्रदेशमें यहा करनेकी इच्छासे एक अति रमणीय पार्वत्य वनमें घुसे। उनके हाथसे वह पद्म पृथिवी पर गिर पड़ा। उसके गिरनेसे ऐसा शब्द हुआ; कि सभी देवता कांप उठे। अनन्तर ब्रह्माने सुरवृन्द-कर् क पुष्पामोदादि द्वारा अभिनन्दित हो अनुप्रहपूर्वक उसी मृगशावक संकुल वनमें रहना पसन्द किया। इसीसे इस स्थानका भगवान लोकहितैथी ब्रह्माने क्षेत्रश्रेष्ठ पुष्करतीर्थ नाम रखा।

ब्रह्माने कहा, मैंने तुम छोगों (देवगण) की भलाई और रक्षाके लिये भयको दूर कर दिया है। वालकोंका प्राणहत्ता वजनाभ नामक असुर रसातलमें रहता था। तुम लोग यहां आये हुए हो, यह उसे मालूम हो गया, सो उस दुएने इन्द्र आदि देवताओंको मार डालनेका विचार किया था। अतपव मैंने कमलपत्रसे उस राज्ये इवर्य दिपित असुरको मार डाला है। इस जगत्में वेद-

पारग ब्राह्मणोंकी दुर्गति दूर होवे और वे उत्तम गतिकों प्राप्त होवें। हे देवगण! में देव, दानव, मनुष्य, उरग, राक्षस और समस्तः भूतब्रामके समान हूं, मेंने तुम लोगोंको भलाईके लिये. हो इस पापिष्ठ असुरका मन्तद्धारा विनाश-साधन किया है। यह कमल देव कर वह असुर भी पुण्यवानोंके लोकको प्राप्त हुआ है। मेंने पद्म निक्षेप किया है, इस कारण भविष्यमें यह स्थान अति पवित्न पुण्यप्रद और महातीर्थ पुष्कर नामसे प्रसिद्ध होगा तथा पृथिवीके सभी प्राणी यहां आ कर अशेष पुण्य लाभ कर सकेंगे।

पुष्करमाहात्म्यमें इस तीर्थकी चतुःसीमा इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है —

> "स पवमुक्त्वा भगवान् ब्रह्मा तैरमरैः सह। क्षेत्रं निवेशयामास यथावत् कथयामि ते॥ उत्तरे चन्द्रनद्यास्तु प्राची यावत् सरस्तती। पूर्वन्तु तद्वनात् कृत्स्नं यावत् कर्षं सुपुष्करम्॥ वेदी होषा कृता यञ्जे ब्रह्मणा लोककारिणा॥"

उन्हीं भगवान् ब्रह्माने अमरगणके सिहत इस प्रकार यथायथ क्षेत्र स्थापन किया है। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरखती नदी पर्यन्त जो सव वन है उस वनके पूर्व भागको हो लोकस्त्रष्टा ब्रह्माने यहके निमित्त इस पुष्कर वेदीक्रपमें निर्माण किया था।

पद्मपुराणके सृष्टिखएडमें (१४-२६ अ०) और नारद-पुराणके उपरिभागमें (७१ अध्यायमें) सविस्तार पुष्करक्षेत्र और पुष्करतीर्थका माहात्म्य तथा वहांकी चन्द्रा, नन्दा और प्राची नदी, यज्ञपर्वत, विष्णुपद प्रभृति, पतिद्वत्र ब्रह्मा, सावित्री, वदरो आदि देवमाहात्म्य वर्णित हैं।

यह पुष्करतीर्थं अति प्राचीन है। महाभारतमें भी इस तीर्थका उल्लेख आया है। साञ्चिसे आविष्कृत वीद्ध-शिलालिपिसे जाना गया है, कि ईसा-जनमके तीन सी वष पहले भी यह स्थान तीर्थमें गिना जाता था।

वर्त्तमान पुष्कर शहरमें ब्रह्मा, साविती, वद्री नारा-यण, वराह और शिवआत्मातेश्वरका मन्द्रि विद्यमान है। ये सभी मन्द्रि आधुनिक हैं। औरङ्गजेवके प्रभावसे यहाँके:सभी प्राचीन मन्द्रि विध्यस्त हुए हैं। यहांका पुष्करहद देखने लायक है। इस हदके किनारे स्नान करनेके लिये अनेक तीर्थ हैं और राजपूताना-राज-वंशधरोंके विश्रामार्थ प्रासादमाला भी शोभा देती है। इस शहरकी सीमाके भीतर सब प्रकारकी पशुहत्या निपिद है। कार्त्तिक मासमें जब यहां मेला लगता है, तब लाखसे ऊपर मनुष्य समागम होते हैं। इस समय घोड़े, ऊंट, वैल तथा नाना प्रकारके द्रखोंकी विकी होती है। यहांकी लोकसंख्या चार हजारसे अधिक नहीं होगी जिनमेंसे अधिकांश पोकर्ण ब्राह्मण हैं।

२ एक पुराणका नाम । कमलाकरके निर्णयसिन्धुमें यह पुराण उद्धृत हुआ है ।
पुष्कर—१ भगवकामस्मरणस्तुतिके प्रणेता । २ एक चेरराज । ३ 'रसरतन'-के प्रणेता एक हिन्दी कवि ।
पुष्करक (सं० क्ली०) पुष्करमूल ।
पुष्करकर्णिका (सं० स्त्री०) पुष्करं पद्मं कर्णयति सादृश्येन
प्राप्नोतीति कर्ण-ण्युल्, टापि अत इत्यं । स्थलपद्मिनी ।
पुष्करचूड़ (सं० पु०) लोकालोक पर्वतोपरिस्थत दिग्गजमेद ।

पुष्करजटा ( सं० स्त्री० ) पुष्करमूल । पुष्करणा (पोकरणा)--एक श्रेणीके ब्राह्मण। ये पञ्च द्राविड़ोंके अन्तर्गत गुर्जर ब्राह्मणोंकी एक शाखा है। इनका आचार, विचार, खान, पान भी द्राविड्-सम्प्रदाय हीके अनुकूल सदासे चला आता है। अतः ये न तो लशुन, पलाण्डु, गृञ्जन आदि अभस्यका भक्षण करते और न हुका, वीड़ी आदि अपेयका पान हो करते हैं । इनंकी पुरोहिताई--गुरु यजमान वृत्ति, पवांर, भाटी आदि वंशजेंकि राजा-महाराजाओंकी तथा राठौड़ोंके राजगुर सेवड़ (दम्माणी) पुरोहितों, रतनू चारणों, माटिये-महाजनों, माहेश्वरीं वैश्यों आदिकी वहुत प्राचीन कालसे चली आती है। ऐसेही जैसलमेंर, जोधपुर, वीकानेर, किसनगढ़ (कृष्णगढ़) जयपुर, एमनगर, ईडर आदि राजों महाराजोंके यहां, कुलाचार्य, पुरो-हित, गुरु, राजदानाध्यक्ष, राजविद्यागुरु, राजंज्योतिषी, राजवैद्य, राज्यरक्षक, राज्यवौहरे, राज्यखामीभक्त, राज्यसन्मानित-जागीरदार आदि एवं राज्य मुसाहिव, मुत्सद्दी आदिके उच्च पदों पर भी सदासे रहते आये हैं और पूर्ण विश्वास-पात होनेके कारण सच्चे खामीभक्त समभे जाते हैं।

इनके पूचज वहुत प्राचीन कालमें सैन्धवारण्य (सिन्धुदेश)में रहते थे। किसी कार्यविशेषके निमित्त वहुतसे ब्राह्मण श्रीमाल नगरमें (जो इस समय भीनभाल कहलाता है) एकत हुए। उनमें सैन्धवारण्यके ब्राह्मण भी थे। वहां पर अन्य ब्राह्मणोंके साथ मतभेद होनेके कारण सैन्धवाण्यवासी ब्राह्मण वहांसे चले गये। उनमें से कितने तो पीछे सैन्धवारण्यमें और कितने मार-वाड़में जा कर वस गये। यह घटना विक्रम संवत् २००-से २०० वर्ष पूर्वको मानी जाती हैं।

मारवाड़में आनेवालोंके साथ सवका प्रधान पुरुष भी चला आया था, जिसका नाम "पुष्कर ऋषि था।" उसने जोधपुर और जैसलमेरके मध्यवर्ती वनमें एक नगर वसाया, जो उक्त ऋषि होके नामसे "पुष्करण" प्रसिद्ध हो गया। आगे चल कर भाषा-भाषियों द्वारा यह "पोकरण" कहलाने लगा। उसी नामसे यह अद्यावधि प्रसिद्ध है।

उक्त नगर वसनेके वहुत समय पीछे "मैरवा" नामक एक दुए राक्षसके कएसे दुःखी हो सव लोग जहां तहां भाग गए, जिससे वह नगर वहुत समय तक उजाड़-सा पड़ा रहा। फिर विक्रम सम्वत् १६०० के लगभग सुप्रसिद्ध सिद्धपुरुष-त्ंवर राजपूत-वीर "रामदेवजी पोर" अपने पिता अजयसीजीके साथ इस देशमें आये। उस समय यहां राठौड़में मालदेवजीका राज्य था। उनसे आज्ञा ले कर उन्होंने इस नगरको पूर्ववत् उसी "पोकरण" नामसे पोछे आवाद कर दिया। उपरोक्त वृतान्त मुंह-णोत नैणसीने भी अपनी ख्यातके दूसरे भाग—मारवाइ-के जुगराफिया-में विस्तारपूर्वक लिखा है।

इसी प्रकार निद्या शान्तिपुरके संस्कृत कालेजके प्रधान आचार्य श्रीयुत् पिएडत योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, प्रगः ए० डी० एलने अपनी पुस्तक "हिन्दूजाति और मत"-के पृष्ट ६६में इस प्रकार लिखा है—

"The Pokarnas are very numerous not only in every part of Rajputana, but in Guzrat and Sindh also. They derive their designation from this town of Pokaran which lies midway between Jodhpur and Jeysulmere. The priests of Pushkar are called Pushkar Sevakas or the worshippers of Lake. The Pokarana Brahmanas have no connections whatever with the holy lake called Pushkar near Ajmer."

अर्थात्—पोकरणे ब्राह्मणींकी संख्या अधिक है। वे केवल राजपूतानेमें ही नहीं, गुजरात और सिन्धमें भी अधिक संख्यामें रहते हैं। उनका यह नाम भी जोधपुर और जैसलमेरके बीचके पोकरन नामसे पड़ा है। पुष्करके ब्राह्मणींका नाम पुष्कर-सेवक (पूजक) है। इन पोकरणे ब्राह्मणींका सम्बन्ध अजमेर समीपस्थ पुष्करक्षेत्र-से विलकुल नहीं है।

अन्यान्य प्रन्थोंमें भी पुष्करणे ब्राह्मणोंका जो परिचय दिया गया है, वह इस प्रकार है—

श्रीयुत् पाएडोवा गोपालजीने अपनी जाति-विषयक पुस्तकके पृष्ठ १००में और रेवरेएड शेरिङ्ग साहव, पम० प० पल० पल० वो-ने अपनी पुस्तक "हिन्दूकास्टस्"-के प्रथम भागके पृष्ठ ६६में, तथा भारतवर्षीय मनुष्यगणनाकी पचीसवीं जिल्द 'राजपूताना सक्तेलकी रिपोर्ट"-के पृष्ठ १४६ व १६४में पुष्करणे ब्राह्मणोंको पंचद्राविड़ोंमें गुर्जर-ब्राह्मणोंका पक भेद माना है।

ब्राह्मणनिर्णय पुस्तकके पृष्ठ ३७७से ३८४ तकमें पुष्क-रण्य ब्राह्मणोंके वृत्तान्तमें लिखा है, कि पुष्करणे ब्राह्मण खान पानसे पवित्र होते हैं।

रिपोर्ट मदु मशुमारी राज्य मारवाड़ तथा तवारीख जैसलमेर आदिने पुष्करणे ब्राह्मणोंके सद्गुणोंकी भूरि भूरि प्रशंसा को है।

सिकन्दरने जिस समय सिन्ध पर आक्रमण किया था, उस समय आलोर वा आरोड़के राजाके पुरोहित पुष्करणे (पीकरणे) ब्राह्मणोंके पूर्वंज थे जो सिन्धि-ब्राह्मण कहलाते थे।

प्राचीन इतिहास लेखक सुप्रसिद्ध मुंहणोत नैणसीने जिन्हें मुतानैणसी भी कहते हैं, वि० सं० १७०५से १७२५ तक कठिन परिश्रम करके एक वृहत् इतिहासका संग्रह किया था। वह इतिहास आजसे २९५ वप पहलेकी मारवाड़ी भाषामें रचित है और "मुंहणोतनैणसीकी ख्यात"-के नामसे प्रसिद्ध है। इस दुर्लभ प्रन्थको काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने हिन्दी भाषामें प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्हीं नैणसीने मारवाड़का सवसंप्रह (गजेटियर-जुगराफिया) भी वहुत विस्तारसे लिखा था जो नैणसीकी ख्यातका दूसरा भाग समका जाता है, उसमें इस "पोकरण" नामके प्रारम्भमें पुष्करणे ब्राह्मणोंके पूर्वजोंने श्रीमाल नगरसे आ कर पुष्करणके वसाने, कालान्तरमें "भैरवा" राक्षसके भयसे प्रान्य होने, फिर पीछेसे रामदेवजी पीर द्वारा आवाद होने अदिका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा है।

इन ब्राह्मणोंका नाम "पुल्करणा वा पोकरणा" है और अजमेर समीपवत्ती है उस तीर्थक्षेत्रका भी नाम "पुष्कर वा पोकर" इन दोनों नामोंके कुछ साद्रश्यके भ्रममें पड कर "टाडराजस्थान"-में इन ब्राह्मणोंका सम्बन्ध उस तीथ-क्षेत्र पुष्करसे हैं, ऐसा जो लिखा है सो वड़ी भारो भूल की है। वह भूल प्रन्थकत्तांको ततुसम्बन्धी इतिहास नहीं मिलनेके कारण हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है । ऐसी और-सी भूलें उनसे हो गई हैं जिन्हें इतिहासक्षेंने समय समय पर जता कर उनका संशोधन भी कर दिया है। इस प्रकार पुष्करणों-सम्बन्धी उक्त भूळ "वुष्करणे ब्राह्मणींको प्राचीनता और टाडराजस्थानकी भूल" नामक पुस्तकर्मे पं॰ मीठालालजी व्यासने सप्रमाण दिखला दी है। यथार्थमें इन ब्राह्मणों-का सम्बन्ध उक्त तीर्थक्षेत्र पुष्करसे कुछ भी नहीं है, परन्तु जोधपुर राज्यान्तर्गत "पोकरण" नामक नगरसे अवश्य है। ( जैसे पालीसे पालीवालींका, साचोरसे साचोरोंका और श्रीमालसे श्रीमालियोंका है ) उस पोक-रणमें इन पुष्करणे ब्राह्मणोंके ५००से भी अधिक घर इस

समय भी विद्यमान हैं। पोइण देखो। पुष्करनाड़ी (सं० स्त्री०) पुष्करं पद्मं नाड़यति सीन्द्र्येण भ्रंशयतीति नाड़-अच, ततो गौरादित्वात् डीप्। स्मलपृष्मिनी देखो।

पुष्करनाभ (सं॰ पु॰) पुष्करं पद्मं नामौ यस्य ततो अच समासान्तः। पद्मनाभ, विष्णु भगवान्। पुष्करपर्ण (सं इही ) १ पद्मपत्न, कमलका पत्ता। २ इष्टकभेद, एक प्रकारको ईंट जो यहकी वेदी बनानेके काममें आती थी।

पुष्करपणिका (सं॰ स्नो॰) पुष्करपणीं, स्थलपिझनी।
पुष्करप्रादुर्भाव (सं॰ पु॰) पुष्कराकारः प्रादुर्भावः।
भगवान्की पद्मरूपमें उत्पत्ति। हरिवंशमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। अति संक्षिप्तभावमें वह नीचे दिया जाता है।

भगवान् विष्णुने जव इस जगत्की सृष्टि की, तव पहले पञ्चमहाभूत, पीछे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसके वाद भगवान्ने अपने नामिदेशसे एक सहस्रदल हिरण्मय पद्म उत्पादन किया। उस पर्में रेणु तो कुछ भी न थी, पर उसकी सदुगन्धसे चारों दिशाएं आमोदित होती थीं और उसकी प्रभा शरत्कालीन भास्करकी तरह समुज्ज्वल थी। सर्वेतत्त्वज्ञ महर्षियोंने उक्त पद्मको नारायणसम्भूत वतलाया है। यही भगवान्का आद्य महापुष्करसम्भव है। इस पद्मके चारों ओर जो सव केशर हैं वही पृथिवीस्थ-असंख्य धातुपर्वंत हैं । उसके जो पत्न ऊर्ध्वगामी है, वे अति दुर्गम शैलव्यास म्लेच्छ देश हैं ; निम्नस्थ पद्मपत्नके अधोभाग विभागकमसे कुछ अंश दैत्योंके और कुछ उरगोंके वासार्थं कल्पित हुए हैं। इसका नाम पाताल है। इस पातालके निम्नदेशमें केवल उदकमय स्थान है। यहीं पर महापातिकगण अव-स्थान करते हैं। इस पद्मके चारों ओर जो जलराशि विद्यमान है, उसका नाम एकाणव है।

सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्ते इख प्रकारके पद्मकी
सृष्टि की थी, इसीलिए महर्षियोंने यहस्थलमें पद्मविधिका
उक्लेख किया है। विशेष विश्रण हरिव श २०२ अ० देखो।
पुष्करप्रिय (सं० पु०) १ मधुमिक्षका। २ सोम।
पुष्करप्राह्मण—ब्राह्मणमेद। पुष्करण और पोक्षण देखी।
पुष्करमूल (सं० क्ली०) पुष्करस्य मूलमिव मूलमस्य
पुष्करजातं मूलं वा। १ पुष्करदेशप्रसिद्ध औषधविशेष,
पातालपिशनी। हिन्दी भाषामें इसे पिहोकर-मूली
कहते हैं। यह काश्मीरदेशके सरोवरोंमें उत्पन्न
होता है। पर्याय—मूल, पुष्कर, पद्मपत्नक, पुष्करिणी,

वीर, पौकर, पुष्कराह्वय, काश्मीर, ब्रह्मतीर्थ, श्वासारि, मूलपुष्कर, पुष्करज्ञटा, पुष्करिशका। गुण-कट्ट, उल्ण, कफ, वात, ज्वर, श्वास, अरुचि, काश, शोध और पाण्डु-नाशक। भावप्रकाशके मतसे यह पार्श्वशूलनाशक माना गया है। जल द्वारा शोधन करके इसका ओषधमें व्यवहार किया जाता है,—

"भागीं पुष्करमूलंच राखां विख्वं यमानिकां ।
नागरं दशमूलंच पिप्पलीं चाप्छु साधयेत्॥"
(वैद्यक चकपाणिस० ज्वराधिका० भाग्याधिका०)
यह औषधि आजकल नहीं मिलती; वैद्य लोग इसके
स्थान पर कुष्ठ या कुरका व्यवहार करते हैं। २ पद्ममूल।
पुष्करमूलक (सं० क्की०) पुष्करस्य कुष्ठस्य मूलं ततः
संज्ञायां कन्। १ कुष्ठवृक्षका मूल, कुरकी जड़। २ पद्ममूल।

पुष्करवीज (सं० क्ली० ) पुष्करस्य वीजम् । पुष्करमूल । पुष्करव्याव्र (सं० पु॰ ) गृघ, गीघ ।

पुष्करशान्ति (सं० स्त्री०) अशुभजनक पुष्करयोग होनेसे उसकी शान्ति । पुष्कर देखो ।

पुष्करशायिका ( सं० स्त्री० ) प्लवजातीय जलविहङ्गम-भेद, एक प्रकारका जलचर पक्षी । यह पक्षी सङ्घातचारी होता अर्थात् दलवद्ध हो कर विचरण करता है ।

पुष्करशिका (सं० स्त्री०) पुष्करस्य शिका जेटव । पुष्कर-मूल ।

पुष्करसद् ( सं० ति० ) पुष्करे सीदति सद्-िकप् । १ जो कमछ पर वास करते हों । (पु०) २ गोतप्रव-र्त्तक ऋषिविशेष, गोतप्रवर्त्तक एक ऋषि ।

पुष्करसागर ( सं० पु० ) पुष्करमूल ।

पुष्करसाद (सं॰ पु॰ ) पुष्करं पद्मं सीदिति सद-अण् । कमलमक्ष पक्षिविशेष, कमल खानेवाली एक प्रकारकी चिड़िया ।

पुष्करसादि (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम । पुष्करसारिन (सं० पु०) मुनिभेद, एक मुनिका नाम । पुष्करसारी (सं० स्त्री०) लिपिभेद, ललितविस्तरमें गिनाई हुई लिपियोमेंसे एक ।

पुष्करस्थपति (सं० पु०) महादेव, शिव । पुष्करस्रज् (सं० पु०) पुष्करस्य पद्मस्य स्नक् ययोरिति । १ अभ्विनीकुमार तुल्य, अभ्विनाकुमारके समान । पुष्कराक्ष ( सं॰ पु॰ ) पुष्करवदक्षिणी यस्य ( अक्ष्णोऽदश-नीत् । पा ५।४।७६ ) इति अच् । १ विष्णु । "पुष्कराक्ष! निमम्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे । बाहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता ।"

(तिथितत्व)

२ श्रीकृष्ण । ३ सुचन्द्रके एक पुतका नाम । ४ काम्बोजके एक हिन्दू राजा । (ति०) ५ पद्मतुल्य नेतः जिसकी आंखें कमलके समान हीं ।

पुष्कराख्य (सं॰ पु॰) पुष्करस्य पद्मस्य आख्या इति आख्या यस्य। १ पुष्कराह्मय, कुष्ठीषघ, कुट नामक ओषधि।२ पद्मतुल्य नामक सारस।

पुष्कराङ्क्षिज (सं० क्वी०) पुष्कराङ्किरिव जायते जर-ड। पुष्करमूळ, कुछौषध।

पुक्तरादि (सं०पु०) इनि-प्रत्यय-निमित्तक शब्दगणभेद । गण यथा—पुक्तर, पद्म, उत्पल, तमाल, कुमुद, नड़, कपित्थ, विष, मृणाल, कर्दम, शालूक, विगर्ह, करीष, शिरिष, यबास, प्रवाह, हिराय, कैरव, कल्लाल, तट, तरङ्ग, पङ्कज, सरोज, राजीव, नालीक, सरोवह, पुरक, अरविन्द, अम्मोज, अब्ज, कमल और पयस ।

पुष्करादिचूर्ण (संश्क्षीं) चूर्णीषधमेद । इसकी प्रस्तुत प्रणाली यों है—पुष्कर (कुट), अतीस, दुरालमा, कर्कट-श्रङ्की और पीपल इन सब चीजोंका बराबर भाग ले कर चूर्ण करें। बाद उस चूर्णका बहुत थोड़े परिमाणमें मधुके साथ सेवन करनेसे बचोंका पञ्चविध कास रोग जाता रहता है।

पुष्काराद्य ( सं॰ क्की॰ ) पुष्करमूल । पुष्कराद्या ( सं७स्त्री॰ ) स्थलपद्दमिनी । पुष्कावणि ( सं॰ पु॰ ) पुरुवंशीय दुरितक्षय राजाके तृतीय पुत्र ।

पुष्करावती (सं क्षी ) पुष्कराणि सन्त्यत, मतुप्, मस्य व, दीर्घश्च । १ नदीमेद, एक नदीका नाम । २ एक नगरका नाम । पुष्कलावती देखी । ३ दाक्षायणीकी एक मूर्ति ।

पुष्करावर्त्तक (सं॰ पु॰) पुष्करं जलमावर्त्तयति, श्रा-वृत-णिच्-अण् तत उपपदसमासः । मेघाधिपतिभेद, मेध-नायकविशेष, मेघोंके एक विशेष अधिपति । पुष्कराह्व (सं० पु०) पुष्करस्य आह्वा इति आह्वा यस्य । १ सारस पक्षी । पुष्करं आह्वा यस्य । २ पुष्करमूल । पुष्कराह्वय (सं० क्षी०) पुष्करं आह्वयो यस्य । पुष्करमूल । पुष्करिका (सं० क्षी०) पुष्करं तदाकारोऽस्त्यस्य ठनः, टाप् । शूकरोष निमित्त रोगभेदः, पीडका विशेषः, एक रोग जिसमें लिङ्गके अप्रमाग पर फुंसिया हो जाया करती है। पित्त और रक्तके दूषित होनेसे थे सव फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं। इसकी चिकित्सा—इस रोगमें शीतल क्रिया विशेष हितकर है। उस स्थान पर जहां पुष्करिका हुई हो, जलीक (जोंक) द्वारा रक्तमोक्षण करा कर धृत सेचन करनेसे यह रोग जाता रहता है।

( सुश्रुत चिकि० २१ अ॰)

भावप्रकाशके मतसे इसका रुक्षण—शिश्च देशमें प्रकर्णणकाकी तरह जो छोटी छोटी पीड़का अर्थात् मुंसियाँ होती हैं उसे पुष्करिका कहते हैं। यह रोग पित्त तथा रक्तसम्भूत है।

पुष्करिणी (सं० छो०) पुष्करवत् आकृतिरस्त्यस्या इति पुष्कर इनि, ततो छोप्। १ स्थलपिश्वनी। २ पुष्करम्ल । पुष्करं शुण्डादण्डस्तदस्त्यस्या इति इनि। ३ हस्तिनो। 8 सरोजिनी। पुष्कराणि पश्चानि सन्त्यन्त्रेति इनि। ५ जलाशय, शतधनुःपिरिमित समचतुरस्र जलाधार, पोखरा। पर्याय—खात, जलकूपी, पौष्करिणी। कूप, वापी, पुष्करिणी और तड़ागके मेदसे जलाशय चार प्रकारका है। किसी किसीके मतसे इसके भी आठ मेद हैं, यथा—कूप, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, द्रोण, तड़ाग, सरसी और सागर। यह जलाशय खननसाध्य है अर्थात् खोद कर तैयार करना होता है। जो जलाशय उत्तर और दिश्वणमें सौ धनु अर्थात् चार सौ हाथ लम्बा हो, उसे पुष्करिणी कहते हैं। यह पुष्करिणी जिस समय प्रस्तुत करनी होती है, उसके पहले वास्तुयाग करना कर्तव्य है।

पुष्करिणी सननके पहले यदि वास्तुयाग न भी किया जाय, तो कोई हर्ज नहीं, पर पुष्करिणी-प्रतिष्ठाके समय वास्तुयाग अवश्य कर्तथ्य है। आरम्भ वा प्रतिष्ठाके समय वास्तुयाग करना ही होगा, नहीं करनेसे पापभागी हाना पड़ेगा और वह पुष्करिणी शुभदायिनी नहीं होगी। पुष्करिणीका आरम्म वा प्रतिष्ठा ज्योर्तिषोक्त शुभदिनमें करनी होती है, अशुभ दिनमें कदापि नहीं।

ज्योतिषमें इसके दिनका विषय इस प्रकार लिखा है, विशुद्धकालमें अर्थात् जब वृहस्पति और शुकके वाल्यास्तादि-जनित अकाल न हो, ऐसे कालमें तथा दक्षिणायनमें पुष्या, अनुराधा, हस्ता, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, धनिष्ठा, शतिमेषा, रोहिणी, पूर्वापाढ़ा, मधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा, श्रवणा, पूर्वभाद्रपद, अश्विनी और रेवतीनक्षत्वमें प्रवं शुक्रपक्षकी प्रतिपद, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी, त्योदशी और पूर्णमा तिथिमें, सोम, वृहस्पति और शुक्रवारमें, शुभयोग और शुभकरणमें, दशयोगभङ्ग आदि नहीं होने पर तथा कमक्त्रीकी चन्द्र और ताराशुद्धिमें पुष्करिणीका आरम्भ वा प्रतिष्ठा करे। प्रतिष्ठाकालीन यदि विशुद्ध दिन न पाया जाय, तो संकान्तिमें प्रतिष्ठा की जा सकती है।

पुष्करिणी आदि जलाशयकी प्रतिष्ठा करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होता है। जो जलदानके लिये पुष्करिणी खुदवा देते हैं, उन पर विष्णु भगवान वड़े प्रसन्न होते हैं। अन्तमें उन्हें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो पुष्क-रिणी खुदवानेके लिये भूमिदान करते हैं, वे वरुणलोक-को जाते हैं।

"संक्षेपातु प्रवक्ष्यामि जलदानफलं श्रणु । पुष्करिण्यादिदानेन विष्णुः प्रीणाति विश्वधृक्॥" जलाशयकरणार्थं भूमिदान-फलमाह चित्रगुप्तः— "जलाशयाथ यो दद्यात् वारुणं लोकमुत्तमम् । भूमिरिति शेपः।" (जलाशयोटसर्गतस्व)

जो पुष्करिणी प्रतिष्ठित नहीं है उसके जलसे पूजा वा तर्पणादि, दैव वा पैत्रा कोई भी काम नहीं करना चाहिये। इस कारण पुष्करिणी खनन करनेके वाद ही सबसे पहले उसकी प्रतिष्ठा विधेय है।

> "यचासर्वाय नोत्स्ष्टं यचाभोज्य निपानजं । तद्वज्जै सिळ्ळं तात ! सदैव पितृकर्मणिः॥" (शाह्वकतत्त्व)

माघ, फाल्गुन, चैंत, वैशास, ज्येष्ठ और आपाढ़मास-में पुष्करिणीको प्रतिष्ठा की जा सकती है। पुष्करिणी यदि सर्वभूतोइ शसे प्रतिष्ठित हो, तो उसके जलमें सर्वो-का स्वत्व रहता है। प्रतिष्ठित पुष्करिणीमें प्रतिष्ठाता किसीको भी स्नानादि करनेसे रोक नहीं सकते। उस पुष्करिणीका जल नद्यादि जलके समान सभी अपने अपने काममें ला सकते हैं।

मिताक्षरामें लिखा है—"अतपव जलाशयोत्सर्गमुप्-क्रम्य मत्स्यपुराणेऽपि 'प्राप्तोति तद्यागवलेन भूयः' इति यागत्वेनाभिहितं, ततश्च तज्जलं खखत्वदूरीकरणेन नद्या-दिवत् साधारणीऋतं । अतपव—

'सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलं। रमन्तु सवभूतानि स्नानपानावगाहनैः॥ इति मन्त्रिजिनोपादानं विना कस्यापि स्वत्वमिति।" इत्यादि।

जहां लोगोंको जलका किए होता है, वहां जो पुक-रिणी खुद्वाते हैं, उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यदि कोई पुरातन पुक्तरिणीमेंके पंकको फेंकवा दे अथवा घाट वंघवा दे, तो उसे भी अशेष पुण्य होता है। ऐसे व्यक्ति कभी भी जल-कए नहीं पाते, वे सभी प्रकारकी तृष्णासे विमुक्त होते हैं। पुक्तरिणी और वापी आदि खनन करके जब उसकी प्रतिष्ठा की जाती है, तब उसके प्रत्येक जलविन्दुसे शतवर्णविच्छन्न स्वर्गलाम होता है।

इस कारण हिन्दूमात्रको ही पुष्करिणी आदि खनन करके उसकी प्रतिष्ठा करना अवश्य कर्त्तव्य है।

( जलाशायोरसर्गतस्य )

जलाशयादिका विषय और उसकी व्यवस्था जला-शयोत्सर्गतत्त्व और ज्योतिस्तत्त्वमें विशेषक्षपसे लिखा है। अति संक्षिप्त भावमें उसका मर्मार्थ यहां पर प्रद्-र्शित हुआ।

पुष्करिन् (सं॰ पु॰) पुष्करं शुण्डाश्रमस्त्यसः। इनि । गज्ञ, हाथी ।

पुष्करी (हिं पुरु) पुष्करिन् देखी।

पुकरह (संक्ष्मीक) पुकरमूल।

पुष्कर्ण-मारवाड और सिन्धुप्रदेशवासी ब्राह्मणभेद।

पुष्करणा देखो ।

पुष्कल (सं० क्ली०) पुष्पति पुष्टिं गच्छत्यनैनेति पुष-कलन् (बलंश्व। उण् ४१५) स.च.कित्। १ त्रामचतुष्टयात्मक मिक्सा,

V.ol. XIV 55

चार प्रामकी भिक्षा। २ अन्तमानभेद, अनाज नापनेका एक प्राचीन मान जो ६४ मुट्टियोंके वरावर होता था। (पु०) ३ असुरभेद, एक असुर। ४ रामानुज भरतके एक पुत, रामके भाई भरतके हो पुतोंमेंसे एक। ५ वरुणके एक पुत ।६ एक बुद्धका नाम। ७ एक प्रकारका ढोल। ८ एक प्रकारकी वीणा। ६ शिव, महादेव। (ति०) पुकरं महत्त्वं लातीति ला-क, वा पुक्कं पुष्टिमहीत, वा तद स्त्यस्पेति (विष्मादिम्यस्व। पा ३।१।४८ इति लब्) १० श्रेष्ठ। ११ पच्चर, अधिक, वहुत। १२ परिपूर्ण, भरापूरा। १३ उपस्थित। १४ पविता।

पुष्कलक (सं० पु० ) १ गन्धमृग, कस्तूरीमृग । २ क्षपणक । ३ कील ।

पुष्कलावत (सं० पु०) उत्तरस्थ देशमेद । पृष्कावती देखी । पुष्कलावती—गान्धार-राज्यकी प्राचीन राजधानी । विष्णु पुराणके मतसे रामके भ्रातुष्पुत ( भरतके पुत्र ) पुष्कल ने यह नगर वसाया और उसीके नामानुसार इस स्थान-का नाम पुष्कलावती पड़ा ।

जिस समय अङ्गेकसन्दर (सिकन्दर)-ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उस समय तक भी इस स्थानकी गिनती गान्धारप्रदेशके एक प्रधान नगरमें थी। अलेक-सन्दरके सहगामी ऐतिहसिक परियनने Pecukelae (पेकुकेले) और रलेमीने I roklais आदि नामोंसे इसका उल्लेख किया है। अवरापर ग्रीक ग्रन्थोंमें Peukelao tis वा Peucolaitis नामसे यह स्थान वर्णित हुआ है। दोनिसियस-पिरिगेतिस अधिवासिवुन्दको यहांके Peukalei नामसे उल्लेख कर गए हैं। एरियनका लिखना है, कि यह नगरी वहुत वड़ी थी और सिन्धुनदी-से थोड़ी दूर पर थी। यहां बहुतसे मनुष्योंका वास था और हस्ती ( Astae ) एक सामन्तराजकी राजधानी-थी। वे अपने दुर्गंकी रक्षा करनेमें ३० दिन अवरोधके वाद् अलेकसन्दरके सेनाध्यक्ष हेफिप्टियन द्वारा मारे गए। अलेकसन्दरने उनके लड़के सञ्जय (Sangaeus ) की पितृराज्य पर अभिषिक किया।

क्षीं शतान्तीमें जब चीनपरिवाजक यूपनचुवङ्ग इस नगरमें आप थे, उस सम्य भी यहां बहुत महत्य रहते थे। नगराम्यन्त्रस्थ द्वारके साथ पक सुङ्ङ्ग छगा हुआ था। चीनपरिवाजकने यहां हिन्दू-देवमन्दिर और अशोकराज- निर्मित वौद्धस्तूप देखे थे। उनकी वर्णनासे जाना जाता है, कि यहां अनेक महापुर्व आविर्मूत हुए थे। उनमेंसे उक्त स्थानमें रह कर आचार्य वंसुमित्रने 'अभि-धर्मप्रकरणपादशास्त्र' और धर्मतातने 'सम्यक्ताभिधर्म-शास्त्र' प्रणयन किये। पेशावरसे १८ मील उत्तर स्वात और कायुल नदीके सङ्गम पर हस्तनगर नामक जो प्राचीन ग्राम वसा है, पुरावित् कर्निहमने उसीको प्राचीन पुष्कलावतो वतलाया है।

पुष्कलेव (सं० पु०) काश्मीरका एक नगर। इसी नगरमें जयापीड़के साथ कान्यकुन्जाधिपतिका वहुत दिनीं तक संग्राम हुआ था।

पुष्ट (सं० ति०) पुष-क । १ इतपोपण, पोंषण किया हुआ, पाला हुआ। पर्याय—प्रतिपालित, पुषित, पत। २ वलवर्द्ध क, मोटाताजा करनेवाला। ३ वलिष्ठ, मोटा ताजा, तैयार। ४ दृढ़, पक्का, मजवृत। (क्की०) भावे का। ५ पुष्टि, पोषण। (पु०) ६ विष्णु।

पुर्प्ड (हिं० स्त्रो०) वलवीर्यवर्द्धक औषध, पुष्ट करनेवाली आषध, ताकतकी[दवा ।

पुष्टता (सं॰ स्त्री॰) १ द्रढ़ता, पोढ़ापन । २ मजबूती, मीटा ताजापन ।

पुष्टताड़ित--( Positive Electricity ) ताड़ितकी वियो जनशक्ति ।

पुछपति (सं॰ पु॰) पुछोनां पितः। गुणपूर्णं मनुष्यके खामी। पुछावत् (सं॰ ति॰) पुष्टं पोपणं कार्यत्वेनास्त्यस्य मतुप् मस्य व, वेदे दीर्घः। पोषणकर्त्तां, पालनेवाला।

पुष्टि (सं० स्त्री०) पुष भावे किन् । १ पोषण । २ वृद्धि, सन्तितकी वढती । ३ पोड्श मातृकाके अन्तर्गत गणदेवता विशेष, सोल्ड मातृकाओंमेंसे एक । वृद्धिश्राद्धके अन्तर्गत षष्ठी-मार्कण्डेय पूजादिमें गौरी और पुष्टि-प्रभृति गणदेवताकी पूजा करनी होती है । ये दक्षकन्याओंकी अन्यतमा थीं । ४ खद्दाविशेष, मंगला विजया आदि आठ प्रकारकी चारणाइयोंमेंसे एक ।

"मङ्गला विजया पुष्टिः क्षमा तुःष्टिः सुखासनं । प्रचएडा सर्वेतोभद्रा बहानामार्थमं विदुः॥" ५ तन्तोक चन्द्रकलाका नामान्तर । "अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टि रितर्भु तिः । शशिनी चन्द्रिका कान्तिज्यित्सा श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥ पूर्णा पूर्णामृता काम-दायिन्यः शशिनः कलाः॥" ( रुद्यामल )

६ धमकी पितयोंमेंसे एक। ७ योगिनीमेद, एक योगिनो । ८ अश्वगन्था, असगंध । ६ विलिष्ठता, मोटाताज्ञापन । १० वातका समर्थन, पक्कापन । ११ दूढ़ता, मजबूती । १२ वृद्धि नामक ओषि । पुष्टिक (सं० पु०) एक कविका नाम । पुष्टिकर (सं० वि०) पुष्टि-छ-ट । १ पुष्टिकारक, पुष्ट करने-वाला, ताकत देनेवाला । २ स्यूलतासम्पादक, वल-वीर्णवर्द्धक ।

पुष्टिकरी (सं० पु०) गङ्गा।

पुष्टिकर्मन् (सं० ह्हो०) पुष्ट्यर्थं कर्म। पुष्टि निमित्तक कार्य, पुष्टिके लिप काम।

पुष्टिका (सं० स्त्री०) पुष्टाै कं जलं यस्याः। जलशुक्ति, जलकी सीप, सुतही, सोपी।

पुष्टिकान्त (सं॰ पु॰) पुष्टेः कान्तः । गणाधिप, गणेश । पुष्टिकाम (सं॰ ति॰) पुष्टाभिलापी, जो पुष्टिकी इच्छा रखते हों ।

पुष्टिकारक ( सं० ति० ) वल्रचीर्थकारक, पुष्टि करनेवाला । पुष्टिगु ( सं० पु० ) ऋग्वेदके एक ऋषि । ये ८।५१ ऋक्-के ऋषि थे ।

पुष्टिद (सं॰ ति) पुष्टिं इदाति दा-क। पोषणकारक, पुष्टि देनेवाला।

पुष्टिव्यवस्त (सं० पु०) आगके जलेको आगसे ही सेंक कर या किसी प्रकारका गरम गरम छेप करके अच्छा करनेकी युक्ति।

पुष्टिदा (सं० स्त्री०) १ अश्वगन्धा, असगंघ। २ वृद्धि नामकी ओषिघ। ३ पुष्टिदाती, पुष्टिदेनेवाली।

पुष्टिदावन् (सं० ति०) पुष्टिदायक, पुष्ट करनेवाला । पुष्टिपति (सं० पु०) १ अग्निमेद, अग्निका एक भेद । २ सरस्वती ।

पुष्टिमत् (सं० ति० ) पुष्टि-मतुष् । पोपकृत्, पुष्टियुक्त । पुष्टमति (सं० पु० ) अग्निमेद, अग्निका एक मेद् । इस अग्निके तुष्ट होने पर यह पुष्टि प्रदान करती है । पुष्टिमार्ग (सं॰ पु॰) वल्लभसम्प्रदाय, वल्लभाचायके मतानुकूल वैष्णव भक्तिमार्ग । पुष्टिम्मर (सं॰ ति॰) पुष्टिघारक, वल्लवीर्यकारक । पुष्टिवर्द्ध न (सं॰ ति॰) पुष्टिवर्द्ध नकारो, ताकत बढ़ाने-बौला ।

पुवृतू—अफगानिस्तानकी अनेक जातियां, जिस एक भाषामें वोलचाल करती हैं, साधारण वही भाषा पुष्तू या अफ-गानी कहलाती हैं। पुष्तू भाषाके अभिधान-लेखक कप्तान ब्लाभाटींका कहना है, कि काबुल, कन्धार, शरावक और पिविनमें जो रहते हैं, वे वर-पुन्तुन वा अफगान और जो भारतके निकट रोह जिलेमें रहते हैं, वे लर-पुखतुन वा छोटे अफगान कहलाते हैं। अफगानिस्तानमें राजकीय सभी कर्मोंमें पारसीभाषाका व्यवहार होने पर भी यहांके लोग साधारणतः इसी पुष्तू भाषाको काममें लाते हैं। अफगानीमें पुष्तुन और पुखतुन, यही दो भाग देखे जाते हैं। पुष्तुन लोग पुष्तू भाषाका और पुखतुन पुक्तू भापाका व्यवहार करते हैं। पुष्तू प्रतीच्य-भाषा है। यह पारसी भाषाके साथ वद्भुत कुछ मिलती जुलती है। कन्धारके दक्षिण पिषिण उपत्यकासे ले कर उत्तर काफ़िस्तान-पर्यन्त पुप्तू भाषा और पश्चिममें हेळ-मन्द नदीके किनारेंसे छे कर पूर्वमें सिन्धुनदीके तीरवर्ती अटक-पर्यन्त पुक्तू भाषा प्रचलित है। ११वीं शताब्दीमें महमूद गजनीके भारताक्रमणके वादसे अनेक अफगान अपनी जन्मसूमि छोड़ कर भारतमें था कर वस गये। इनमेंसे वहुतेरे जातीय भाषांके साथ भारतीय-भाषाका व्यवहार करते हैं। िकन्तु ऐसे अनेक परिवार देखे गये हैं। जो बहुकाल भारतवासी होने पर भी अविकृत भावमें शुद्ध पुष्त्-भाषाका व्यवहार करते हैं। बुन्देलखएडके किसी किसी अंशमें और रामपुरके नवावके राज्यमें पेसे परिवारोंकी संख्या थोड़ी नहीं है। रामटीं साहवके मत-से सेमितिक और इराणीय भाषाके साथ पुष्तु-भाषाका सौसादृश्य रहने पर भी यह संस्कृतादि आर्यभाषासे विलक्कल पृथक् है। अफगानिस्तानमें सभी जगह पारसी-भाषा देखी जाती है। सभी उच्च परिवार उसी भाषामें बोलचाल करते हैं और उसी मापामें लिखते पढ़ते भी हैं। प्रजा भी उस पारसी भाषाके जानकार हैं, पर वे

जातीय भाषा पुष्त्का व्यवहार करना ही पसन्द करती हैं। इस भाषामें लिखे हुए उनके एक दो प्रन्थ भी हैं जो केवल उपाल्यानांदिसे परिपूर्ण हैं, उच्चतत्त्वम्लक एक भी प्रन्थ नहीं है। ज्योतिष, चिकित्सातत्त्व, इति-हास आदि सीखनेकी इच्छा होनेसे उन्हें पारसीको सहायता लेनी पड़तो है।

पुष्प (सं० क्षी०)पुष्यति विकसति यः, पुष्प विकाशे अच् । तरुठतादिका प्रसव, फूळ । संस्कृत पर्याय—प्रस्न, कुसुम, सुमनस्, स्न, प्रसय, सुमन । देवपूजाके लिये पुष्प-चयन हिन्दूमातका ही कर्च ध्य है । किस किस देवताके कौन कौन पुष्प प्रिय हें और फिस देवताकी किस पुष्पसे अर्चना नहीं करनी चाहिये, उसका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है ।

पुष्प शब्दकी नाम-निरुक्तिमें ऐसा लिखा है,—
"पुण्यंसंवद्ध नाचापि पापौघपरिहारतः ।
पुष्कलार्थंप्रदानाच पुष्पमित्यभिघीयते॥"
(कुलार्णंच)

यह पापींको दूर करता और पुण्यको वढ़ाता है तथा पुष्कलार्थ है, अर्थात् श्रेष्टार्थ प्रदान करता है, इससे इसका पुष्प नाम पड़ा है। स्नान करके पुष्प तोड़ना मना है। "स्नानं कृत्वा तु ये केचित् पुष्पं चिन्वन्ति मानवाः। देवतास्तन्न गुह्नन्ति भस्मीभवति काष्ठवत्॥"

( आह्रिकतत्त्व )

स्नान करके यदि कोई पुष्प तोड़े, तो देवता उसे ग्रहण नहीं करते। इस स्नानका मतलव प्रातःस्नान नहीं, मध्याहस्नान है। प्रातःस्नान करके पुष्प तोड़ सकते हैं, इसमें दोय नहीं। क्योंकि वचनान्तरमें मध्याहस्नान हो परकाल निषद्ध हुआ है। सूर्योद्यके पहले जो अतिल स्नान है, वही प्रातःस्नान है। सूर्योद्यके वाद सतेल वा अतेल दोनों हो स्नानको मध्याह कहते हैं। पूर्योक्त वचनका तात्पर्य यह है, कि मध्याहस्नान अर्थात् सूर्योद्यके वाद स्नान करके पुष्प न तोड़े।

"स्नात्वा मध्याहसंमये न छिन्यात् कुसुम नरः। तत्पुष्पैरच्चेने देवी! रौरवे परिपच्यते॥" (स्पृति) मध्याहकालमें पुष्प तोड़ कर यदि उस पुष्पसे देव-पूजा की जाय, तो रौरव नरक होता है। प्रातःकां को प्रातःकृत्यादि समाप्तं करके पहले शुचि हो ले, तब पुष्पं तोड़े। देवपूजा करनेवाले यदि सर्थ पुष्प तोड़ें, तो विशेष फल है। दूसरोंसे तोड़े हुए पुष्पसे भी पूजा की जा सकती है।

देवपूजामें वर्जनीय पुष्प-कृमिसिमास पुष्प, विशीर्ण, भग्न, उद्गत, सकेश, मूचिकाधृत, याचित, परकीय, पट्यु पित, अन्त्यस्पृष्ट और पदस्पृष्ट इन सव पुष्पोंसे हैव-पूजा नहीं करनी चाहिये। ऐसी पुष्पों द्वारा देवपूजा करनेसे देवता प्रसन्त नहीं होते।

"पुष्पञ्च छिमसिम्भिन्नं विशोणं भन्नमुद्धतं । सक्तेशं मूपिकावूतं यत्नेन परिवर्ज्जवेत्॥ याचितं परकोयञ्च तथा पर्ध्यु पितञ्च तत्। अन्त्यस्पृष्टं पदास्पृष्टं यत्नेन परिवर्ज्ञयेत्॥"

(कालिकापु०)

देवताके पुरोभागमें पुष्प झरा पूजा करनी होती है। "निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणं।"

( पकादशीतस्व )

जा सव पुंरुष खयं पतित होते हैं अर्थात् आपसे आप जमीन पर गिर पड़ते हैं, वैसे पुष्पोंसे देवपूजा न करे। "खयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहितानि च।"

( एकादशीतत्त्व )

देवताविशेषमें वर्जितपुष्प—कुन्दपुष्प द्वारा शिवकी, उन्मत्तक पुष्प द्वारा विष्णुकी, अर्क और मन्दार द्वारा स्रो देवताकी तथा तगरपुष्प द्वारा सूर्यकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

"शिवे विवज्जयेत् कुन्दमुन्मत्तञ्च हरी तथा। देवीनामर्कमन्दारी सूर्यस्य तगरन्तथा॥"

( एकादशीतत्त्वमें शातातप )

पुष्प खरीद कर पूजा न करें। परन्तु यदि धर्मार्जित धन द्वारा पुष्प खरीद कर पूजा की जाय, तो उससे देव-गण प्रीत होते हैं।

शेफालिका और कहार ये दोनों पुण्य शरंत्कालकी
पूजामें अति प्रशस्त हैं। शरत् भिन्न अन्य ऋतुमें उस
पुष्प द्वारा पूजा करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है। रक्तकृष्ण और उम्र गन्धिपुष्प तथा करवीर और बन्धुजीव
पुष्प द्वारा पूजा नहीं करनी चाहिये।

"शैफालिका तु कहारं शरत्काले प्रशस्यते । अन्यत न स्पृशद्धे वि ! प्रायश्चित्तन्तु पूजनात् ॥"
( मत्स्यस्क १४ )

जो पुष्पवृक्ष दूसरेका रोपा हुआ है, उससे अनुमित लिये विना पुष्प तोड़ कर यदि देवपूजा की जाय, तो वह पूजा निष्फल होती है।

"परारोपितवृक्षेम्यः पुष्पमानीय योऽरुर्चयेत् । अनुज्ञांप्य च तस्यैव निष्फलं तस्य पूजनं ॥"

यह नियम ब्राह्मणके लिये नहीं वतलाया गया है, पर ब्राह्मण भिन्न अन्य वर्णके लिये। ब्राह्मण दूसरेके वगीचे-से बिना मालिकको अनुमतिके पुष्प तोड़ कर उससे दैव-पूजा कर सकते हैं, इसमें कुछ भी दोष नहीं। क्योंकि मनु आदि संहितामें लिखा है, देगर्थक उम चयन अत्वेय' इसीसे उस पुष्पका ब्राह्मण अपने जैसा व्यवहार कर सकते हैं। यदि ब्राह्मणेतर वर्ण बिना मालिकको अनुमतिके पुष्प तोड़े, तो राजा उसे शिरच्छेदन द्एड दे सकते हैं।

देवताके उपरिस्थित पुष्प, मस्तकोपरि धृत पुष्प, अधोवस्त्रधृत और अन्तर्जलप्रक्षालित पुष्प हुछ पुष्प है अर्थात् ऐसे पुष्पसे देवपूजा निषिद्ध है।

पुष्प हाथमें ले कर किसीको भी अभिवादन करना नहीं चाहिये और जिसके हाथमें पुष्प रहेगा, उसे भी अभिवादन करना निषिद्ध है।

याचित पुष्प और कयकीत पुष्प द्वारा देवपूजा निष्फल है। परन्तु वीरचत् कय वर्थात् मुंहमांगा दाम दे कर जो पुष्प खरीदा जा सकता है उससे पूजा की जा सकतो है। ब्राह्मणको उचित हैं, कि वे अपनेसे फूल तोड़ कर पूजा करें। यदि वे शूद्रके लाये हुए फूलसे पूजा करें, तो उन्हें पतित होना पड़ता है। यह नियम ब्राह्मण-के निज घरके लिये है। यदि ब्राह्मण किसी शूद्रके घर पूजा करने जांय, तो शूद्राहृत पुष्प द्वारा पूजा करनेमें कोई दोप नहीं होगा।

देवगण पुष्प द्वारा जैसा प्रसन्न होते हैं, और किसी भी द्रव्यसे वैसा प्रसन्न नहीं होते।

"न रत्नैर्न सुवर्णेन न वित्तेन च भूरिणा। तथा प्रसादमायाति यथा पुष्यैर्जनाह नः॥" (स्पृति) पर्युषित पुष्पसे पूजा नहीं करनी चाहिये, यह पहले १०। ১। ४ 56 ही कहा जा चुका है। कौन पुष्प कितनी देरके वाद पर्युपित होता है, उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

श्वेत और रक्तवर्ण पद्म, कुमुद और उत्पल ये सब पुष्प पांच दिनोंके वाद पर्युपित होते हैं।

"पश्चानि सितरकानि कुमुदान्युत्पलानि च । एषां पर्यपिता शङ्का कार्या पश्चदिनोत्तरं ॥"

( पकादशीतत्त्व भविपापु॰ )

काल विशेषमें निम्नलिखित पुष्प पर्युपित होते हैं। जातीपुष्प एक प्रहर, मिलका अद्धेपहर, मुनिपुष्प तीन-प्रहर और करवीर पुष्प एक दिनके वाद पर्युषित होता है।

"प्रहरं तिष्ठते जाती प्रहराद्ध न्तु मिह्नका। वियामं मुनियुष्पञ्च करवीरमहर्निशः॥" (स्मृति)

तुलसी, अगस्त्य और विस्व ये पर्युषित नहीं होते। माध्य, तमाल, आमलकी दल, कहार, तुलसी, पद्म, मुनियुष्प और सव पुष्प कलिकात्मक अर्थात् प्रस्फुटन-योग्य हैं, वे पर्युषित नहीं होते।

"तुलस्यगस्त्यविख्वानां न च पर्युषितात्मता।" योगिनीतन्त्रमें—

"विख्वपत्रञ्च माध्यञ्च तमालामलकीद्छं।
कहारं तुलसीक्ष्वेव पद्मश्च मुनिवुष्यकं॥
पतत् पर्युषितं न स्यात् यचान्यत् कलिकात्मकं।
कलिकात्मकं प्रस्फुटनयोग्यं॥" ( पकादशीतत्त्व )
राधवमहके मतसे पुष्पविशेषके कालिक् पर्युषितत्त्वका विषय इस प्रकार लिला है। विख्व, अपामार्ग,
जाती, तुलसी, शमी, शतावरी, केतकी, भृङ्ग, दूर्वा, मन्दार,
अम्मोज, नागकेशर, दर्भ, अगस्त्य, तिल, तगर, ब्रह्म,
कहार, मही, चम्पक, करवीर, पाटला, दमनक और
महवक ये सव पुष्प दिनोत्तर पर्युषित हैं।

"विख्वापामार्गजाती तुळसिशमिशताकेतकीसृङ्गदूर्वा, मन्दाम्मोजाहिद्भा सुनितिलतगरब्रह्मकहारमञ्जी। चम्पाश्वारातिकुम्मीद्मनमरुवका विख्वतोऽहानि शस्ता, ख्रिशत्त्रे अकार्यरीशोनिधि-निधि-वसु-भू-भू-यमा भूय एवम्॥" देवविशेषमें कौन कौन पुष्प प्रिय है, उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

केशवपूजनमें प्रशस्त पुष्प—मालती, मल्लिका, यूथिका, अतिमुक्तकं, पाटला, करेबीर, जया, सेवित, कुटजेक, अगुरु, कर्णिकार, कुरुएडक, चम्पक, तगर, कुन्द, मिल्लका, अशोक, तिलक और चम्पक ये सव पुष्प विष्णु पूजामें प्रशस्त हैं। केतकीपत्रपुष्प, भृङ्गारकपुष्प, रक्त, नील और सितोत्पल पुष्प इन सव पुष्पोंसे विष्णु पूजा विशेष प्रशस्त हैं। (अग्निपु॰)

वामनपुराणमें लिखा है—जातां, शताह्मा, कुन्द, वहुपुट, वाण, पङ्कुज, अशोक, करवीर, यृथिका, पारिमद्र, पाटला, वकुल, गिरिशालिनी, तिलक, पीतक, तगर इन सब पुल्पों-से विष्णु पूजा प्रशस्त है। पतिद्वन्न सुगन्धित जो कोई पुल्प हो उससे विष्णु पूजा की जा सकती है। केवल केतकीपुल्प विष्णु पूजामें निषिद्ध है। जिन सब पुल्पोंसे विष्णु पूजा की जा सकती है, उन सब पुष्पवृक्षोंके पह्नव भी विष्णु पूजामें प्रशस्त हैं। (वामनपु० ६१ अ०)

विष्णुकी पुष्पविशेष द्वादा पूजा करनेसे निम्नलिखित फल प्राप्त होते हैं। तीर्थोंमें जिस प्रकार गङ्गा और
वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, पुष्पोंमें मालती भी उसी प्रकार है।
इस मालतीकी मालासे यदि विष्णुपूजा की जाय, तो
वह जन्म, दुःख, जरारोग और कर्मवन्धनसे मुक्त होता है।
कार्त्तिक मासमें जो मालतोकी मालासे विष्णु-मन्दिर
सजाते और पूजा करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं।
मिक्तपूर्वक जातिपुष्प और माल्य द्वारा पूजा करनेसे
कल्पकोटि सहस्र वर्ष विष्णु गृहमें वास और विष्णु के
समान पराक्रमी होता है।

खर्णकेतको पुष्प द्वारा यदि विष्णुकी पूजा की जाय, तो सौ कोटि वर्ष तक विष्णु उस पर प्रसन्न रहते हैं।

केतकोद्भव पुष्प द्वारा विष्णु पूजा करनेसे देवताओं के साथ विष्णु लोकमें वास, कार्तिक मासमें मिल्लका- कुसुम द्वारा विष्णु पूजा करनेसे विजन्मार्जित पापनाश, पाटलायुष्प द्वारा पूजा करनेसे परमस्थान प्राप्ति, अगस्त्य पुष्प द्वारा पूजा करनेसे परमस्थान प्राप्ति, अगस्त्य पुष्प द्वारा पूजा करनेसे नरफनाश, मुनियुष्प द्वारा कार्तिक मासमें पूजा करनेसे वाजिमेध यक्षका फल, सितासित करवीरपुष्प द्वारा पूजा करनेसे शतवर्ष स्वर्ग, वकुल और अशोकपुष्प द्वारा पूजा करनेसे यावधन्द्रदिवाकर स्वर्ग- लाभ होता है, इत्यादि । पद्मपुराण उत्तरखण्डके १३१ अध्यायमें इस विषयका विस्तृत विवरण लिखा है।

नारदीय सप्तम सहस्रमें लिखा है,—मालती, वकुल,

अशोक, सेफालिका, नवमालिका, अम्लान, तगर, अङ्कोठ, मिल्लिका, मधुपिएडिका, यूथिका, अधापद, कुन्द, कदम्ब, मधु, पिप्पल, चम्पक, पाटल, अतिमुक्तक, केतक, कुरुवक, विस्व, कहर, करक, वक और लवङ्ग थे पचास पुष्प विष्णु के लहमीतुल्य प्रिय हैं।

विष्णुप्जनमे निषिद्ध पुषा—जिन सव पुष्पींकी गन्ध अतिशय उग्र हो और जिन सव पुष्पींमें गन्ध नहीं हो, ऐसे पुष्प, कएटकयुक्त पुष्प, रक्त पुष्प, चैत्यवृक्षोद्धव पुष्प, श्मशानजात पुष्प और अकालज पुष्प, कूटज, शालमली-पुष्प, शिरोप पुष्प, अनुक्त रक्त कुसुम अर्थात् जिन सव रक्त पुष्पींका विषय शास्त्रमें नहीं लिखा गया है, वैसे रक्त पुष्प, इन सव पुष्पींसे विष्णुपूजा नहीं करनी चाहिये।

विष्णुविषयमें जिन सव पुष्पोंको कथा लिखी गई, पुष्प देवतामातको पूजामें वे सव पुष्प प्रशस्त हैं। धूर्त-पुष्पसे विष्णुको, तगरपुष्पसे सूर्यकी, नागकेशरपुष्पसे शिवकी और लकुच-पुष्पसे स्त्री-देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

योगिनीतन्त्रके सप्तम पटलमें पुष्याध्यायका विषय इस प्रकार लिखा है,---

"श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः। ऋतुकालोऋवैः पुष्पैमंहिकाजातिकुंकुमैः॥" इत्यादि। (योगिनीतन्त्र ७ प०)

ऋतुपुष्प अर्थात् जिस ऋतुमें जो पुष्प होता है, वह पुष्प, मिल्लका, जाति, सित, रक्त और नीलपदा, किशुक, तगर, जवा, कनकचम्पक, वक्तल, मन्दार, कुन्दपुष्प, कुरु-एडक, वन्युकप्रभृति पुष्प द्वारा केशवाचन करे।

देवीपूजामें प्रशस्त पुष्प।—वकुल, मन्दार, कुन्द, कुरु-एडक, करवीर, अर्कपुष्प, शाल्मली, अपराजिता, दमन, सिन्धुवार, मरवक, मालती, मिल्लका, जाती, यूथिका, माधवीलता, पाटला, जवा, तर्कारिका, कुन्जक, तगर, कर्णिकार, चम्पक, आम्रातक, वाण, वर्चरा, अशोक, लोभ और तिलक आदि पुष्पोंसे देवीपूजा ही प्रशस्त है। (बराहपु॰)

तन्त्रोक्त देवीत्रिय पुष्प ।—करवीर और जवाष्पुप सर्य काली सक्तप है। इस करवीर और जवापुष्प द्वारा काली और तारा आदि महाविद्याकी पूजा करनेसे साधक सव प्रकारके पापोंसे रहित हो शिवतुल्य हो जाता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

"शुक्कं कृष्णं तथा पीतं हरितं लोहितं तथा।
करवीरं महेशानि! जवापुष्पं तथैव च॥
स्वयं काली महामाया स्वयं त्रिपुरसुन्दरी।
अनादरं न कर्त्तव्यं कृत्वा च नरकं वजेत्॥
ये साधका जगन्मातरर्ज्वयन्ति शिवप्रियां।
प्रतेश्च कुसुमैश्चिएड! स शिवी नात संशयः॥"
(पुरश्चरणरसोल्लास १०म पटल)

जवा, द्रोण, कृष्ण, मालूर और करवीर इन सब पुष्पींको श्वेतचन्दन-संयुक्त और रक्तचन्दन-विलेपित कर-के जो भक्तिपूर्वक जगद्धावी और दुर्गा आदिको पूजा करते हैं, उनका सभी अभीष्ट सिद्ध होता और वे स्वयं विश्वेश्वरके समान होते हैं।

नाना प्रकारका उत्पात उपस्थित होने पर एक कर-वीरपुष्प और दो हजार पद्म द्वारा कालो और तारा आदि देवियोंकी पूजा करनेसे सब प्रकारका उत्पात जाता रहता है और पीछे सीभाग्यका उदय होता है। वक, जाति, नीलोत्पल, पद्म, क्ट्रजट, कृष्णापराजिता, मालूर-पत, द्रोण और केतकीपुष्प आदि द्वारा स्नी-देवताओंको पूजा विशेष प्रशस्त है। प्रायः सभी तन्त्रोंने इन सब पुष्पोंकी विशेष प्रशंसा लिखी है।

योगिनीतन्त्र ७म पटल, पुरश्चरणरसोक्लास १०म पटल, वृहन्नीलतन्त्र २य पटल आदिमें इन सव पुष्पोंके विशेष विवरण और प्रशंसादिका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया।

२ स्त्रीरजः, स्त्रियोंके ऋतुकालको पुष्पोद्गम कहते हैं। स्त्रियोंके पुष्पोद्गमके वाद ये युवती और जब तक पुष्पो द्गम नहीं होता, तब तक कन्या कहलाती हैं।

> "वुष्पकाले शुचिस्तसादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत्।" ( सुश्रुत )

पुतकामीको चाहिये, कि स्त्रीके पुण्पकालमें श्रुचि ही कर मैथुनकर्म करे।

यह पुष्प दो प्रकारका है—शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध पुष्प या विशुद्ध शोणित फल्ठित है अर्थात् गर्मधारणमें समर्थ होता है। अशुभ पुष्प फल्ठित नहीं होता। सुश्रुतके मतसे जिस ऋतुशोणितका वर्ण शशक-शोणितकी तरह या लाक्षारसको तरह होता और जिससे वस्त्र नहीं रंगता, ऐसा ऋतुशोणित विशुद्ध माना गया है। तिदीप और शोणित ये चार पृथक् रूपमें वा इनमें-से दो अथवा सभो मिल कर ऋतुशोणित दूपित होनेसे सन्तान नहीं होती। (सुश्रुत शारीरस्थान २ अ०)

चरक और सुश्रुतके शारीरस्थानमें शुक्र और शोणितका विशेष विवरण लिखा है। रसरकाकरमें लिखा है—
जिसका पुष्प (ऋनुशोणित) वात-हत हो, उसके फल
(सन्तान) नहीं होता। इसमें योनि और किंदमें
वेदना होती है तथा अधिक परिमाणमें रक्तसाव होता
है। जिसका पुष्प पित्तहत हो, उसके भी सन्तान नहीं
होती, परन्तु उष्ण जम्बूफल सदृश शोणित निकलता है
और किंद तथा उद्दर्भ वड़ी वेदना होती है। जिसका
पुष्प श्लेष्महत हो, उसके भी सन्तान नहीं होती। इसमें
अधिक परिमाणमें पिच्लिल घना शोणितस्थाव होता
और योनि तथा नाभिदेशमें वड़ी पीड़ा होती है। इसका
विशेष विवरण रजस्न, आर्तव, ऋतु, ऋत्मती और रजस्वला
शब्दमें देलो।

तान्तिक लोग पुष्पिता (ऋतुमती) स्त्री द्वारा नाना प्रकारके तन्त्रोक्त क्रिया-कलापका अनुष्टान करते हैं।

३ चक्षुरोगविशेष, फूला, फूली ।
हारीतके चिकित्सित-स्थानमें लिखा है—
"पूर्वाहारविहारेस्तु नेते पुष्पञ्च जायते ।
प्रथमं सुखसाध्यं स्थात् द्वितीयं कप्टसाध्यकं ॥
तृतीयं शस्त्रसाध्यन्तु चतुर्थं दुःखसाध्यकम्॥" इत्यादि ।
(हारीतचिकि० ४४ अ०)

असमयमें आहार और विहार तथा नेतरोगमें जो सब वस्तु खाना मना है, वही सब वस्तु खानेसे चक्षमें पुष्परोग होता है। प्रथम सुखसाध्य, द्वितीय कए-साध्य, तृतीय शस्त्रसाध्य और चतुर्थ असाध्य है।

इसकी चिकित्सा—शङ्ख-पुष्प, छोध्र, शङ्खनाभि और मनःशिला इन सव द्रष्टोंको एकत कर यदि वायुके विगड़नेसे पुष्परोग हुआ हो, तो कांजी द्वारा, पित्तके विगड़नेसे हुआ हो, तो पयः द्वारा और यदि श्लेष्माके विगड़नेसे हुआ हो, तो मूल द्वारा पीसे, पीछे उसे छाथामें सुखने दे। वादमें काजल वना कर चक्षुमें देनेसे वह पुष्प रोग जाता रहता है। 'हारीतचिकि , ४४ अ० )

दूसरा तरीका हरीतकी, वच, कुट, पीपर, मिर्च, विभीतक-मजा, शङ्क्षनाभि और मनःशिला इन सव द्रव्योंको समान भागोंमें वांट कर वकरीके दूधसे पीसे, वादमें वत्ती वना कर पुष्परोगमें प्रयोग करनेसे द्विवार्षिक पुष्परोग एक महीनेमें आरोग्य हो जाता है। इसका नाम चन्द्रोदयवित्त है और यह द्विष्टिप्रसादनी माना गया है।

8 घोटकलक्षणियशेष, घोड़ोंका एक लक्षण, चित्ती।
 अश्ववैद्यकमें लिखा है—

"आगन्तुवस्तुरङ्गस्य ये भवन्त्यन्यवर्णगाः। विन्दवः पुष्पसंज्ञास्तु ते हिताहितसंज्ञकाः॥"

जिस वर्णका घोड़ा हो उससे भिन्न रंगकी चित्तीकी पुष्प कहते हैं। यह पुष्प-चिह्न हित और अहितके भेदसे दो प्रकारका है। किस किस स्थानमें यह चिह्न रहनेसे हित अर्थात् शुभ और किस स्थानमें रहनेसे अशुभ होता है, इसका विषय नीचे दिया जाता है—

अपान, ललाट, भूमध्य, मूर्द्धा, निगाल और केशान्त इन सब स्थानोंमें यदि पुष्पचिह्न हो, तो शुभ ; स्कन्ध, बक्षःस्थल, कक्ष, मुक्क और हनुमें हो, तो खामीका हित ; नाभि, केश, कएठ और दन्तमें पुष्पचिह्न हो, तो खामीकी सर्वाथिसिद्धि होती है।

अहितचिह—अधरोष्ठ, कग्ठस्थल, प्रोध, उत्तरीष्ठ, नासिका, गण्डद्वय, शङ्खद्वय, भ्रूद्वय, श्रीवा, स्क्रदेश, स्थ्र्रक, स्फिच्प्रदेश, पायु और क्रोड़ इन सव स्थानोंमें अभ्वका पुष्पचिह्न निन्दित है।

घोड़े के जिन सव हित-पुष्पचिहोंका विषय कहा गया है, वे सव पुष्प-चिह्नयुक्त घोड़े रहें, तो मालिकका नाना-विध कल्यान होता है। अहित-चिह्नयुक्त घोड़े के रहने-से मालिक पद पदमें कप्र पाता है। इस कारण ऐसे घोड़े को भूल कर भी अपने यहां न रखें। काला और पीला पुष्पचिह्नको सभी जगह निन्दनीय माना गया है।

५ विकाश, ६ कुबैरका रथ, पुष्परथ । ७ पुष्पाञ्चन, एक प्रकारका सुरमा । २ रसाञ्चन, रसीत । ६ पुष्करमूल । १० लवङ्ग । ११ मांस ।

पुष्पक (सं० क्वी०) पुष्पभिव पुष्पैर्वा कायति प्रकाशते कै-क, पुष्प-संज्ञायां कन् वा। १ रीतिपुष्प। पुष्पमिव प्रतिकृतिः (इवेप्रतिकृतौ। पा ५।३।६६) इति कन्। २ कुबेर-चिमान, कुबेरका चिमान ( Air-ship )। कुबेरके रथका नाम पुष्पक-रथ था । रावणने कुवेरको हरा कर यह विमान छीन लिया था और वहुत दिनों तक यह उसीके पास रहा । रावणके वधके उपरान्त रामने इसे फिर कुवेरको दे दिया । यह विमान आकाशमार्गसे चलता था। ३ नैतरोग, आँखका एक रोग, फूला, फली। ४ रत्नकङ्कण, जड़ाऊ कंगन । ५ रसाञ्चन, रसौत । ६ लोहे या पीतलकी मैल। पुष्पःस्वार्थे-कन्।७ पुष्प, फूल। (पु॰) ८ निर्विप सर्पजातिमेद, विना विषका साँप। गळगोळी, शूकपत, अजगर, दिव्यक, वर्षहिक, पुष्पशकळी और पुष्पक प्रभृति निर्विष जातिके सर्प हैं। ६ पर्वतमेद, एक पर्वतका नाम। १० प्रसादका मण्डपभेद, प्रासाद वनानेमें एक प्रकारका मंडप। विश्वकर्मप्रकाशमें इसका विपय इस प्रकार लिखा है,—प्रासाद प्रस्तुत करनेमें तद-नुरूप मएडप भी प्रस्तुत करना चाहिए। यह मएडप नाना प्रकारका होता हैं; उसमेंसे पुष्पक, पुष्पमद्र, सुवृत, मृत नन्दन, कौशल्य प्रभृति मएडप शुभजनक है। पुष्पक-मएडप चौंसठ खंभींका होना चाहिये।

अपराजिताप्रभामें लिखा है, कि जिस स्तम्भका चतुःकोण आठ भागमें विभक्त हो, उसे पुष्पक कहते हैं।

११ इन्द्रका प्रिय शुक्रपिक्षमेद । यमको देखते ही यह पक्षी उड़ जाता था, इसलिए देवताओंने उसकी प्राण रक्षाके लिये यमसे अनुरोध किया। किन्तु कालको हाथमें वह पक्षी पतित हुआ और देवताओंके अनुरोध करने पर भी मृत्युने उसे धर दवाया। १२ हीराकसोस। १३ मिट्टीको अंगीठी। १४ पीतल।

पुष्पकरएडक ( सं० क्की॰) पुष्पाधार करएड इव कायतीति कै-क, वहुतरमनोरमपुष्पाधारकत्वावस्य तथात्वं। उज्ज-यिनीका एक पुराना उद्यान या बगीचा जो महाकालके मन्दिरके पास था।

पुष्पकरिएडनी (सं स्त्री) पुष्पकरएडकं शिवोद्यान-मस्त्यस्य। इति इनि, स्त्रियां ङीप्। उज्जयिनी। पुष्पकर्णे (सं वित्र) पुष्पं कर्णे यस्म। वह जिसके कानमें पुष्प हो। पुष्पकार (सं॰ ति॰ ) पुष्पस्त-स्वयिता, गोंभिछ । पुष्पकाल (सं॰ पु॰ ) पुष्पस्य कालः । १ स्त्रियोंका ऋतु-समय । पुष्पप्रधानः कालः । २ कुसुमप्रधान यसन्तकाल ।

पुष्पकासीस (सं० क्की०) पुष्पित्य कासीसं। पीतवणी कासोस, हीराकसीस। पर्याय—कंसक, नेलीपध, वत्सक, मलीमस, हस, विपद्ग, नीलमृत्तिका। गुण—तिक, शीत और नेलरोगनाशक। इसके लगानेसे पामा और कुष्टादि नाना प्रकारका त्वक्दीप विनष्ट होता है। भावप्रकाशमें इसका विपय इस प्रकार लिखा है,—पीतवर्ण कासीसको पुष्पकासीस कहते हैं। इसका गुण—अम्ल, तिक, कषाय-रस, उष्णवीर्य, केशका हितकर, वायु, कफ, नेलकएडू, विष, मूलकृच्छु, अश्मरी और श्वितरोगनाशक है।

पुष्पकीट (सं॰ पु॰) पुष्पप्रियः कीटः। २ भ्रमर, भौरा। २ क्रसुम-क्रमिमाल, फूलका कीड़ा।

पुष्पन्चच्छ्र (सं॰ पु॰) एक वत जिसमें केवल फूलोंका काथ पी कर महीना भर रहना पड़ता है।

पुष्पकेतन (सं० पु०) पुष्पं केतनं ध्वजो यस्य। कामदेव।

पुष्पकेतु (सं० क्ली०) पुष्पनिर्मितः केतुरिव । १ कुसु-माञ्जन, पुष्पाञ्जन। (पु०) २ कामदेव।

पुष्पगण (सं o पु o) पुष्पाणां गणः । पुष्पवर्गं, पूळांका समूह । अर्कप्रकाश-चिकित्साश्रन्थमें इसका विषय इस प्रकार छिखा है,—चार प्रकारका स्थळपद्म, सेवती, गुळदावती, नेपाळी, गुळात्र, गुळावास, दिखनी, जाती, यूथी, राजवळ्ळी, तीन प्रकारकी छोटी यूथो, चञ्पक, नागचम्पक, वकुळ, कदम्त्र, कुन्द, शिवमळ्ळी, दो प्रकारका कुब्ज, दो प्रकारको केतकी, किङ्किरात, किणकार, दो प्रकारका अशोक, वाणपुष्प, चार प्रकारका कुब्एडक, तिळक, मुचुकुन्द, चार प्रकारका वन्यूक, चार प्रकारकी जवा, दो प्रकारको वसुन्धरी, अगस्ति, द्यन, मारु, पपरी, वहुविणका, दो प्रकारका पाटळ और सूर्य्यमुखी इन सव फळोंका समूह पुष्पगण कहळाता है।

पुष्पगिरिडका ( सं॰ स्त्री॰ ) नर वा नारीका विरुद्ध अभि-प्राय वा चेष्टा । पुष्पगन्धा ( सं॰ स्त्री॰ ) शुक्क यृथिका, सफेद जूही । पुष्पगवेधुका ( सं॰ स्त्री॰ ) नागवला ।

पुष्पिगिरि—१ कुर्गराज्यकी उत्तरपश्चिम सीमाके पश्चिम घाटकी एक शाला। इसका दूसरा नाम सुब्रह्मण्यशैल है। यह दक्षिण कनाड़ा और महिसुरके इसन जिला-न्तर्गत अक्षा० १२' ४ उ० और देशा० ७५' ४४ पू०के मध्य, समुद्रसे ५६२६ फुट ऊ'चे पर अवस्थित है। यद्यपि यह गिरि दुरारोह है, तो भी यहाँके सुब्रह्मण्यदेव-के माहात्म्यप्रयुक्त वहुत-से मनुष्य आते हैं। पौष मास-में यहां मेला लगता है जिसमें वहुत याती इकट्ठे होते हैं।

२ मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तगँत कड़ापा शहरक्षे ८ मील उत्तर और पेत्रे इ नदीके उत्तरकूल पर अव-स्थित एक शैल । यहां वैद्यनाथस्वामी आदिके कई एक प्राचीन विष्णुमन्दिर है और उनमें खोदित शिला-लिपि भी देखी जाती है।

३ चीनपरिवाजक यूपनचुअङ्ग-वर्णित उद्भराज्यकी दक्षिण-पश्चिम सीमा पर अवस्थित एक गिरि और उसके ऊपर एक सङ्घाराम। चीनपरिवाजकने लिखा है, कि उपवासके दिन इस सङ्घारामके एक प्रस्तरमय स्तूपसे अपूर्व ज्योति निकलती और अनेक आश्चर्य घटना देखने-में आती थीं।

पुष्पग्रह (सं० ह्वी०) पुष्पनिर्मितं गृहं । फूलका घर । पुष्पत्रन्थन (सं० ह्वी०) पुष्पस्य व्रन्थनं । फूल गूंथना, माला गूंथना ।

पुष्पघातक (सं॰ पु॰) हन्तीति हन-ण्डुल्, घातकः, पुष्पाणां पुष्पवृक्षाणां घातकः नाशकः। फूलका नाशक।

पुष्पचाप (सं॰ पु॰) पुष्पमेव, पुष्पमयो वा चापो यस्य । १ कामदेव । पुष्पाणां चापः । २ फूलधनुः, फूलका धनुष । पुष्पचामर (सं॰ पु॰) पुष्पं चामरं इव यस्य । १ दमन-वृक्ष, दौना । २ केतक, केवड़ा ।

पुत्पन (सं० क्ली०) पुष्पाजायते जन-इ। १ पुष्परस, फूलका रस। २ पुष्पजातमात, फूलसे उत्पन्न वस्तु। यथा,—गुलावजल प्रभृति। स्त्रियां टाप्। ३ पुष्प-शर्करा, फूलका गुड़।

पुष्पजाति (सं० स्त्री०) मलयपर्वतसे निफली हुई एक नदी। पुष्पजासव (सं० पु०) पद्मादि दशिवध पुष्पजात आसव, बह अर्क वा मद्य जो दश प्रकारके फलोंसे बनाया जाता है। पद्म, उत्पल, निलन, कुमुद, सौगन्धिक, पुरुडरीक, शतपब, मधूक, प्रियंगु और धातकी इन दश प्रकारके पुष्प द्वारा यह भासव प्रस्तुत होता है।

पुष्पद (सं० पु०) पुष्पं ददातीति दा-क। १ वृक्ष, पेड़, गाछ। (ति०) २ पुष्पदात्मात, फूळ देनेवाला। पुष्पदंपू (सं० पु०) पुष्पमिव दंधूी यसा। नागमेद, एक नाग। पुष्पदन्त (सं० पु०) पुष्पमिव शुक्की दन्ती यस्य। १ वायुकीणस्थ दिग्गज, वायुकीणका दिग्गज। २ विद्याधर- विशेष, एक विद्याधर। ३ वर्च मान अवसर्पिणीके नवम जैनमेद। ४ नागमेद, एक नाग़का नाम। ५ पावैतीप्रदस्त कार्त्तिकेयका अनुचरविशेष, पावैतीका दिया हुआ कार्त्तिकेयका एक अनुचर। ६ विष्णु के एक अनुचरका नाम। ७ शिवका अनुचरमेद, शिवका अनुचर एक गन्धवै जिसका रचा हुआ महिम्नस्तीत कहा जाता है।

कथासरित्सागरमें लिखा है, कि पुष्पदन्त नामक शिवके एक अनुचर था। इसने छिए कर शिवपार्वतीका कथोपकथन सुना। इस पर महादेवजीने कृद्ध हो कर इसे शाप दिया। उसी शापसे पुष्पदन्त मर्त्यलोकमें कात्या-यन चरुचि नामसे कौशाम्बी नगरमें ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ। इसके जन्मके बाद ही आकाशवाणी हुई, कि यह बालक श्रुतिघर और वर्षपिख्डतसे विद्यालाम करेगा।

ग्रन्थवराज पुष्पदन्त किसी समय शिवका निर्माल्य लांघ गया था इससे शिवने शाप द्वारा इसका आकाश-गमन रोक दिया था। पीछे महिम्नस्तोल बना कर पाठ करनेसे फिर खेचरत्व प्राप्त हो गया। महिम्नस्तव शिव-पूजामें पढ़ा जाता है। पार्चतोकी सङ्गिनी जया इसी पुष्पदन्तकी पत्नी थी। ८ शबुख्यगिरिका नामान्तर । ६ खन्यस्य, बान्द और सूरज। (क्ली०) १० नगरद्वारभेद, एक प्रकारका नगर-द्वार।

पुन्यद्दन्तक (सं पु ) गन्धर्विविशेष, एक गन्धर्व ।

ये महिम्नस्तवके प्रणेता थे । पुष्पदन्ततीर्थं ( सं० क्ली० ) शम्मल प्रामके अन्तर्गत तोर्थ-

भेव् ।

पुष्पदन्तिमिड् (सं० पु०) शिव, महादेव । पुष्पदर्शन (सं० क्षी०) रजीदर्शन । पुष्पदामन् (सं० क्षी०) पुष्प-निर्मितं दाम । १ पुष्पनिर्मित माल्य, फूलको वनी माला । २ छन्दोभेद, इस छन्दके प्रति-पादमें १६ अक्षर रहते हैं । लक्षण—

"मूता भ्वाश्वान्तं मतनसररगैः कोर्त्तितं पुष्पदाम।" ( वृत्तरज्ञाकरटीका )

पुष्पद्रव (सं० पु०) पुष्पाणा द्रवः । १ पुष्परस्त, फूलका रसः । पर्याय--पुष्पसार, पुष्पस्वेद, पुष्पज्ञ, पुष्पनिर्यासक, पुष्पाम्युजः । गुष्प--कषाय, गौल्यत्व, दाह, भ्रम, बार्ति, विमे, मोह, मुखामय, तृष्णा, पित्त, कफदोप और अधि-नाशकः । गुलावजल आदिको पुष्पद्रच कहते हैं । २ मधु । पुष्पद्रुम (सं० पु०) पुष्पवृक्ष, फूलका गाछः । पुष्पद्रु मृक्कसुमितमुक्कट (सं० पु०) गन्धवराजमेदः ।

पुष्पद्गुमुक्कसुमितमुकुट ( सं॰ पु॰ ) गन्धर्वराजमेद । पुष्पध ( सं॰ पु॰ ) बात्यिघप्रजात जातिमेद, बात्य ब्राह्मण-से उत्पन्न पक जाति । मनुमें इस जातिके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"बात्यासु जायते विप्रात् पापात्मा सुर्जकएरकः । आवन्त्ययादधानी च पुष्पधः शैख पव च ॥" (मनु १०।२१)

वात्य व्राह्मणकी सवर्णा पत्नीसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसे पुष्पध कहते हैं।

पुष्पधनुस् ( सं॰ पु॰ ) पुष्पं धनुर्यस्य, विकल्पे न भनङ् । १ कामदेव । २ पुष्पका धनुष ।

पुष्पधन्त्वन् (सं० पु०) पुष्पं धनुर्यस्य, (बहुपहन । पा ५१८१३२) इति अनङ् आदेशः । १ कामदेव । २ औपधिवशेष, एक रसीषध । प्रस्तुत प्रणाली— रसिसन्द्रर, सीसा, लोहा, अमुक और वङ्ग इन सन दृष्योंको एक साथ मिला कर धत्र्रा, भांग, जेटी मधु, सेमरामूल और पानके रसकी भावना दे कर इसे प्रस्तुत करना चाहिए । इसका भी, मधु, चीनी और दूधके साथ सेवन करनेसे रितशिक बढ़ती है। (भैषज्यत्ता० ध्वजनेगाधि०)

पुष्पघर (सं० पु०) महादेव । पुष्पधारण (सं० पु०) पुष्पं धारयति धारिन्यु । बिष्णु । पुष्पध्यज (सं० पु०) पुष्पं ध्वजी यस्य । पुष्पकेतन, कामदेव । पुष्पनिश्च (सं॰ पु॰) पुष्पं निश्चति चुम्वतीति पुष्प-निश्च-अण् (कर्मयण। पा ३२।१) भ्रमर, भौरा।

पुष्पिर्यास (सं• पु॰) पुष्पस्य निर्यासः । पुष्परस्, मक-रम्झ, फूलका रस । इसका गुण—शीतल, कषाय, स्थील्य-कारक, दाह, भ्रम, पीड़ा, यिम, मोह, वक्त्तपीड़ा, तृष्णा, कफ, पित्त और श्रविनाशक है।

पुष्पनेत्न ( सं० क्ली० ) पुष्पनिर्मितं नैत्नं । पुष्पनिर्मित वस्ति-शलाकावययभेद्, यस्तिकी पिचकारीकी सलाई ।

पुष्पन्धय (सं॰ पु॰) पुष्पं धयतीति धेट-पाने खश (अहिंदिवदत्रन्तस्यसम्। पा ६१३१६७) इति मुम्। १ भ्रमर, भौरा। (ति॰) २ पुष्परसपानकत्ती, फूलका रस पीने-वाला।

पुष्पपत्न ( सं॰ क्ली॰ ) पुष्पस्य पत्नं । पुष्पदल, फलकी-पत्ती ।

पुष्पपत्निन् (सं॰ पु॰ ) पुष्पं तन्मयं पत्नी वाणी यस्य। कुसुमशर, कामदेव।

पुष्पपथ (सं॰ पु॰) पुष्पस्य स्त्रीरज्ञसः पन्थाः सरणिः। स्त्रियोंके रजके निकलनेका मार्ग, योनि, भग।

पुष्पपाण्डु (सं॰ पु॰) मण्डलि-सर्पभेद, एक प्रकारका साँप।

पुष्पपिएड ( सं० पु० ) अशोकवृक्ष, अशोकका पेड़ ।

पुष्पपुट (सं० पु०) १ पुष्पका आवरण, फलकी पंख-ड़ियोंका आधार जो कटोरीके आकारका होता है। २ तद्वत् हस्तस्थापन, उक्त आकारका हाथका चंगुल।

पुष्पपुर (सं॰ क्वी॰) पुष्पवत् पाटिलपुष्पयुक्तं तद्वत् शोभा-जनकं वा पुरं। १ पाटिलपुद्धनगर, वर्त्तमान पाटिलपुद्ध (पटना)-का एक नाम। २ काशीके निकटवर्त्ती एक प्राचीन प्राम।

पुष्पप्रचय ( सं॰ पु॰ ) पुष्प-प्र-चि-अच् । चौर्यद्वारा कुसुम-इरण, फल चुराना ।

पुष्पप्रचाय (सं० पु०) पुष्प-प्र-चि 'हस्तादाने चेरस्तेये' इति धज्, हस्तादान इत्येनेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य गम्यते । हस्त द्वारा कुसुमचयन, हाथसे फल तोड्ना ।

पुष्पप्रचायिका (सं॰ स्त्री॰) पर्याचेण पुष्पाणां चयेनं, प्र-चि-ण्डुल्, तदन्तस्य स्त्रीत्वं, क्रीड़ात्वात् नित्यस्यः, भाद्युदात्तता च।परिपाटीपूर्वक क्रसुम-चयन, नियमपूर्वक प्रस्त तोड्ना। पुष्पफल (सं॰ पु॰) पुष्पयुक्तं फलं यस्य । १ कुप्पाएड, कुम्हड़ा । २ कपित्य, क्षेथ । (क्ली॰) ३ अर्जु नवृक्ष । पुष्पफलशाक (सं॰ पु॰) पुष्पशाक और फलशाक मात, अलाव आदिका साग । इसका गुण—पित्तनाशक, वायु-वर्द्धक, स्वादु, मूल और पुरीयवर्द्धक है।

पुष्पफलद्र्म ( सं॰ पु॰ ) फलफलसे शोमित वृक्ष । पुष्पफला ( सं॰ स्त्री॰ ) कुष्माएडलता ।

पुष्पविल्ल ( सं॰ पु॰ ) पुष्पोपहार, फूलकी बलि या भेंट । पुष्पभद्र ( सं॰ पु॰ ) मएडपमेद, वास्तुशिल्पमें एक प्रकार-का मएडप जिसमें ६२ खंभे हों ।

पुष्पभद्रक (सं० क्ली०) देवोद्यानविशेष, देवताओंका एक उपवन ।

पुष्पभद्रा (सं॰ स्त्री॰) १ एकाम्रकाननके निकट प्रवाहित नदीभेद । २ मळयगिरिके पश्चिमकी एक नदी।

पुष्पमव ( सं॰ पु॰ ) मकरन्द, मधु।

पुष्पभूति (पुष्यभूति)—१ सम्राट् हपवद्धैनके पूर्वपुरुष जो शैव थे। २ काम्योज या काबुलके एक हिन्दू राजा। ये ईसाकी सातवीं शताब्दीमें राज्य करते थे।

पुष्पभूषित (सं० ति०) पुष्पेण भूषितः। १ कुसुमार्छ-कृत, फूलसे सुशोभित। २ वणिक्नायक रूपक-प्रक-रणभेद। प्रकरण शब्द देखो।

पुष्पमञ्जरिका (सं० स्त्री०) इन्दीवरस्ता, नीस्नपिन्ननी । पुष्पमञ्जरी (सं० स्त्री०) १ घृतकरञ्ज, घीकरंज । २ पुष्प-मञ्जरी, फूलकी मंजरी ।

पुष्पमण्डन (सं० क्ली०) फूलका अलङ्कार । मणि और सुवर्णादि निर्मित भूषणका जैसा आकार प्रकार होता है, कुसुमका भी वैसा ही आकार प्रकार देखा जाता है। किरीट, वालपथ्या, कर्णपूर, ललाटिका, प्रै वेयक, अङ्गद, काञ्ची, कटका, मणिवन्धिनी, हंसक और कञ्चुकी इत्यादि नाना प्रकारके पुष्पमण्डन हैं। कपगोस्वामि-रचित वृहद्गणोहे श-दीपिकामें इनकी रचनाप्रणाली सविस्तार लिखी है।

पुष्पमय (सं० ति०) पुष्प सक्तपार्थे मयट्। पुष्पसक्तप, फूलमय।

पुःषमाल (से स्त्री॰) पुष्पाणां माला । फूलकी माला । पुष्पमास (सं॰ पु॰) पुष्पाणां मासः, पुष्पप्रवानो मास्रो वा। वसन्त ऋतुके दो महीने। इस समय नाना प्रकारके फूल होते हैं, इस लिये वसन्तकालको पुष्पमास कहते हैं।

पुरुषित (पुष्यमित )—एक पराकान्त हिन्दू राजा। ये श्री शताब्दीमें मगधदेशमें राज्य करते थे। पुराणके मतसे—ये शुङ्गवंशके प्रथम राजा थे, मौर्यवंशके वाद सिहासन पर अभिषिक्त हुए। वहुतींका कहना है, कि महाभाष्यकर पतञ्जिल इनके समयमें विद्यमान थे। ये यागयइप्रिय हिन्दू-राजा थे। जिनसेनके हरिवंशके मतसे इस पुष्पमितवंशने ३० वर्ष तक राज्य किया—

"तिशत्तु पुष्पमिताणां षष्टिवैस्थग्निमित्रयोः।" (६०)८५) यतङ्बिह्न देखो ।

दिव्यावदानके अन्तर्गत अशोकावदानमें लिखा है,— मीर्याधिप अशोकके स्वर्गवासी होने पर उनके अमात्योंने सम्पदि (सम्प्रति)-को राजसिंहासन पर विद्राया । सम्पदिके पुत्र वृहस्पति, वृहस्पतिके पुत्र वृष-सेन, वृषसेनके पुत्र पुष्पधर्मा और पुष्पधर्माके पुत्र पुष्य-मिल थे। पुषामिलने राजा हो कर अमात्योंसे कहा, 'देसा कौन-सा उपाय है, जिससे मेरा नाम चिरस्थायी हो संकता है ?' उन्होंने जवाव दिया, 'राजा अशोक ॅ८४००० धर्मराजिकाकी प्रतिष्ठा कर कीर्त्ति स्थापन कर गये हैं। आप भी वही कीजिये।' इस पर पुष्यमित-ने कहा, 'अलावा इसके क्या और कोई उपाय है ?' ब्राह्मण पुरोहितोंने उत्तर दिया, कि इसके विपरीत कार्य द्वारा भी आपका नाम चिरस्थायी हो सकता है। ब्राह्मणीं-की सलाहसे पुषामित समस्त भगवच्छासन, स्तूप और भिक्ष-परिगृहीत सङ्घारामको ध्वंस करने लगे। इस प्रकार मिक्षकोंको विनाश करते हुए वे शाकलमें उपस्थित हुए। यहां आ कर उन्होंने यह ढिढोरा पिटवा दिया, कि जो श्रमणके शिर काट लावेगा, उसे दो सौ दीनार इनाम मिलेगा। इस प्रकार वे वृद्ध और अईत्-प्रभृति-का भी विनाश करने छगे। उनके इस अत्याचारसे सभी घवड़ा गये। अन्तमें दंघुानिवासी एक यक्षने पुषा-मितको छलपूर्वक एक पर्वत पर हे जा कर मार डाला। पुषामितको साथ साथ मौर्यवंशका भी विराग बुक्त गया। २ एक राजवंश । गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तने इस वंश-

्रको प्रशस्त किया था।

पुग्पमृत्यु ( सं॰ पु॰ ) देवनलवृक्ष, पक प्रकारका नरकट, वड़ा नरसल।

पुष्परक्त (सं॰ पु॰) पुष्पे पुष्पावच्छेदे रक्तं रक्तवणै यस्य, वा पुष्पं रक्तं यस्य । सूर्यमणिवृक्ष, सूर्यमणि नामके फूळका पौधा ।

पुष्परजस् ( सं॰ क्वी॰ ) पुष्पाणां रजः । पुष्परेणु, पूलकी भूल, पराग ।

पुष्परथ ( सं० पु० ) पुष्पनिर्मितो रथः । फूलका रथ । पुष्परस ( सं० पु० ) पुष्पाणां रसः । फूलका मधु । पुष्परसाह्वय ( सं० क्षी० ) पुष्परस इत्याह्वय आख्या यस्य ।

पुष्परसोद्भव (सं० क्ली०) मधु।

मधु ।

पुष्पराग (सं० पु०) पुष्पस्येय रागो वर्णो यस्य। मणि विशेष, पुखराज। पर्याय—मञ्ज्ञमणि, वाचस्पतिवल्लम, पीत, पीतस्फटिक, पीतरक, पीताश्म, गुरुरल, पीतमणि, पुष्पराज। गरुड़पुराणके ७५वें अध्यायमें इस मणिके वर्णे, गुण, परीक्षा और मूल्यादिका विचरण सविस्तार लिखा है। उक्त पुराणमें एक जगह लिखा है, कि असुरी-का चमड़ा हिमालय पर्वत पर गिरा था उसीसे महागुण-सम्पन्न पुष्परागको उत्पत्ति हुई है। कुछ पीला वा पाण्डुवर्ण कान्तिविशिष्ट निर्मल पत्थर विशेष ही पुष्पराग नामसे प्रसिद्ध है। यह पत्थर यदि ललाई लिये पीला हो, तो उसे कुरुएटक और यदि सफेदी तथा ललाई लिये पीला हो, तो उसे कुरुएटक और यदि सफेदी तथा ललाई लिये पीला हो, तो उसे कुरुएटक और यदि सफेदी तथा ललाई

विशेष विवाग पुषराज शध्ये देखो। पुष्पराज (सं० पु०) पुष्पमिव राजते राज-टच्। पुष्पराग, पुष्पराज।

पुष्पराजप्रसारिणी तेल (सं० क्ली०) तैलीपधमेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली यों है,—तिलतेल 58 सेर, काथार्थ गन्धमेदाल १०० पल, जल ६8 सेर, शेप १६ सेर, गाय और भेंसका दूध १६ सेर, पद्म और शतमूलीका रस प्रत्येक 58 सेर; कल्कार्थ सौंफ, पोपल, इलायची, कुट, करहकारी, सोंठ, यष्टिमधु, देवदार, शालपणीं, पुनर्णवा, मंजिष्ठा, तेजपल, रास्ना, वच, वमानि, गन्धतृण, जटामांसी, निसिन्धा, वेड ला, चितामूल, गोहर, मृणाल और शतमूली प्रत्येक २ तोला इन सर्गोको पक साथ मिला कर

यथानियमसे तैंल प्रस्तुत करना चाहिये। इस तेलके लगानेसे भग्न, सञ्ज, पंगु, शिरोरोग, हनुप्रह और सव प्रकारकी वातज व्याधि वहुत जल्द जाती रहती है।

( भैष्डयरत्ना० वातव्याधिरश्राचि )

वुत्परेणु (सं॰ पु॰) वुत्पाणां रेणुः ६-तत् । कुसुमरजः, पराग, फूलकी धूल ।

पुष्परोचन (सं॰ पु॰) पुष्पं रोचने वास्त्र पुष्पेषु रोचनः ्रुचिप्रदो वा । नागकेशर ।

पुष्पछाव ( सं॰ पु॰ ) पुःग्रं छुनाति अवचिनोति मालाद्यर्थं-मिति, पुष्प-ॡ-अण् । मालाकार, माली, फूल चुननेवाला । पुष्पलावन ( सं॰ पु॰ ) उत्तर दिशाका एक देश ।

पुष्पलाविन् (सं० ति०) पुष्प-ॡ-णिनि । मालाकार, माला वनानेवाला ।

पुष्पलावी ( सं॰ स्री॰ ) पुष्पलाव स्त्रियां ङीप् । मालाकार-पत्नी, मालिन, फूल चुननेवाली ।

पुष्पलिक्ष (सं॰ पु॰ ) पुष्पं लिक्षति चुम्वति लिक्ष-अग्। भ्रमर, भौरा।

पुन्पस्तिपि ( सं॰ स्त्री॰ ) पुन्पमयी लिपिः। लिपिमेद, एक पुरानी लिपि या लिखावट।

पुष्पलिड् (सं॰ पु॰) पुष्पं लेड़ीति, लिड्-िक्कप्। भ्रमर, भौरा।

पुष्पवदुक ( सं० पु० ) नायकमेद ।

पुष्पवत् (सं वि ) पुष्पमस्त्यस्या इति पुष्प-मतुप्, मस्य व । १ पुष्पविशिष्ट, पुष्पयुक्त, फूलवाला । (पुः) २ रिव और शशो, सूर्य और चन्द्रमा । 'रिव और शशी इस अर्थमें प्रथमाके द्विचनान्तमें अर्थात् "पुष्पवन्ती" ऐसा हो रुप होता है, पृषोदरादिहेतुक यह शब्द अदन्त भी अर्थात् 'पुष्पवन्त' ऐसा भी रूप होता है । गदाधरके शक्तिवादमें ऐसा ही अर्थ निर्णीत हुआ है ।

पुष्पवती ( सं॰ स्त्री॰ ) पुष्पवत्-ङीष् । १ तीर्थंविशेष, एक तीर्थं । २ रजस्वला, ऋतुमती स्त्री, रजोवती । ( त्रि॰ ) ३ फूलवाली, फूली हुई ।

पुष्पवन (सं क्षीं ) पुष्पाणां वनं। फलका जङ्गल। पुष्पवर्ग (सं । पु॰) पूष्पाणां वर्गः ६-तत्। सुश्रुतोक्त-विशेष फूल, पुष्पसमूह यथा—

कोविदार (रक्तकाञ्चन); शण और शाल्मलीपुष्प

पाकमें मधुर और रक्तपित्तनाशकः, वृष (वासक और अगस्त्य (वक) पुष्प तिक्त, परिपाकमें कटु और क्षय-कासनाशक; मधुशित्र (रक्त शोभाञ्जन) और शरीर परिपाकमें कटु, वातनाशक और मलमूतका सञ्चयकर ; अगरूत्यपुष्प अत्यन्त शीतल वा अत्युष्ण नहीं और रात्न,न्ध ध्यक्तिके लिए विशेष उपकारी; रक्तवृक्ष, निम्व, मुष्कक, अर्भ और आसन इन सव वृक्षोंके फूल फफ और पित्त-हारी तथा कूटज कुप्टरोगनाशक ; पद्मपुष्प कुछ कुछ तिक मधुर, शीतल, एवं पित्त और कफनाशक ; कुमुद्रपुष्प, मधुर, पिच्छिल, क्षिग्ध, आनन्दकर और शीतल ; कुवलय और उत्पल कुमुदकी अपेक्षा कुछ भिन्न गुणविशिष्ट ; सिन्धुवार पुष्प हितकर और पित्तनाशक; मालती और महिकापुष्प तिक और पित्तनाशक; वकुलपुष्प सुगन्धि, विशद तथा हयः, पाटलपुष्प भी पूर्वोक्त गुणयुक्तः; नागकेशर और कुकु मपुष्प श्लेष्मा, पित्त तथा वियनाशकः; चम्पकपुष्प रक्तपित्तनाशक, शीतल, अंथच उप्ण तथा कफनाशकः किशुक तथा पीतिकएटीपुष्प कफ और पित्त-नाशक होते हैं। जिन जिन वृक्षोंके जो जो गुण कहे गए हैं, तद्वृक्षजात पुष्पके वे ही सब गुण होंगे।

पुष्पवर्ष ( सं॰ पु॰ ) वर्षपर्वतविशेष, एक वर्ष-पर्वतका नाम, सात वर्ष पर्वतोंमेंसे एक ।

पुज्पवर्षिणी (सं० स्त्री०) निर्गु एडी।

पुष्पवल्लभ (सं॰ पु॰ ) मल्लिकापुष्पवृक्ष ।

पुष्पवाटिका ( सं० स्त्री० ) फुलवारी, फूलोंका वगीचा । पुष्पवाटी ( सं० स्त्री० ) पुष्पाणां वाटी । पुष्पोद्यान, फूलों-का वगीचा ।

पुष्पवाण ( सं० पु० ) पुष्पं वाणो यस्य । १ कामदेव । २ कुशद्वीपस्थ राजभेद, कुशद्वीपके एक राजा । ३ दैत्यभेद, एक दैत्य । ४ कालिदास-प्रणीत पुष्पवाणविलास नामक प्रन्थवर्णित नायकभेद । ५ फूलींका वाण ।

पुष्पवाहन (सं॰ पु॰) पुष्पं पुष्करं वाहनमिव यसा। पुष्करराज।

पुष्पवाहिनी (सं॰ स्त्री॰) नदीभेद, एक नदीका नाम।
पुष्पवृक्ष (सं॰ पु॰) पुष्पाणां वृक्षः। फूलका गाछ।
पुष्पवृष्टि (सं॰ स्त्री॰) पुष्पाणां वृष्टिः। पुष्पवषण, फूली-की वर्षा, ऊपरसे फूल गिरना या गिराना। मङ्गल-उत्सक्

या प्रसन्नता सूचित करनेके लिये फूल गिराए जाते थे। पुष्पवेगी (सं० स्त्री०) फूलकी चोटी।

पुष्पशकटी ( सं॰ स्त्री॰ ) आकाशवाणी ।

पुष्पशकलिन् ( सं० पु० ) निर्विप जातीय सर्पविशेप, एक प्रकारका विपहीन साँप।

पुष्पशय्या ( सं॰ स्त्री॰ पुष्पनिर्मिता शय्या । पुष्प द्वारा प्रस्तुत शय्या, फलोंका विछायन ।

पुष्पशर (सं० पु०) कामदेव।

पुष्पशरासन ( सं० पु० ) कामदेव।

पुपरार्करा (संग्रही) पुषोस्नूता शर्करा। फूलकी चोनी । इसका गुण—स्वादु, हदा, शीतल, गुरु, पित्त और । पुष्पहीना ( सं० स्त्री० ) रजःशून्या स्त्री, वह स्त्री जिसे रजो-कफनाशक है।

पुरपशाफ (सं॰ पु॰) ऐसे फूल जिनकी भाजी वनाई जाती है। यथा—कचनाल, सहजन, खैर, रासना, सेमल, अगस्त और नीम।

पुष्पशून्य (सं श्रिः ) १ पुष्परहित, विना फूलका । ( पु॰ ) २ उद्घम्बर, गूलर ।

पुष्पश्रोगर्भ ( सं॰ पु॰ ) बोधिसत्वभेद ।

पुष्पश्रेणी (सं० स्त्री०)मूसाकानी।

पुष्पसमय ( सं॰ पु॰ ) पुष्पसत्र समयः । वसन्तकाल । पुष्पसाधारण (सं॰ पु॰) वसन्तकाल ।

पुष्पसायक (सं० पु०) पुष्पाणि सायका यसः। कन्द्रपं, कामदेव ।

पुष्पसार (सं॰ पु॰) पुष्पसा सारः। १ पुष्पद्रव, फलका रस, गुलाबका जल इत आदि अथवा मधु। (ति॰)२ पुष्पश्रेष्ठ ।

पुष्पसारा ( सं॰ स्त्री॰ ) तुलसी ।

पुष्पसूत्र (सं॰ क्वी॰) सामवेदीय स्त्रभेद, सामवेदका सूत्रप्रनथ जो गोभिलरचित कहा जाता है। दाक्षिणात्यमें ंयह प्रनथ फुछसूत और चररुचिप्रणीत कह कर प्रचलित है । अजातशतु और दामोदरने इसकी टीका लिखी है । पुग्पसेन—धर्मशर्माभ्युद्य नामक काव्यके रचयिता। पुष्पसौरभा (सं० स्रो० ) पुष्पे सोरभं यसाः तीवृगन्ध-

बस्वादेव तथात्वं । कलिहारीका पीधा, करियारी ।

पुग्पस्नाम (सं० क्ली०) पुष्पस्नान देखी ।

पुष्पस्ते द (सं० पु॰) पुष्पाणां स्त्रेदः। पुष्पद्रव, फलका रस ।

पुष्पहास (सं॰ पु॰) पुष्पाणां हास इव प्रपञ्चक्रपेण प्रकार्गा यस्त्र । १ विष्णु । २ कुमुम-विकाश, फलॉका खिलना ।

पुष्पहासा ( सं॰ स्त्री॰ ) पुष्पं हास इव यस्त्राः। रजसला स्रो∤

पुग्पहोन (संव पु॰) पुष्पेण हीनः। १ कुसुमरहित हुम, विना फूलका वृक्ष । २ उदुम्यरवृक्ष, गूलरका पेड़ । (ति०) ३ विना फलका।

दर्शन न हो, बन्ध्या, बांभर ।

पुष्पा (सं० स्त्री०) पुष्पं अभिधेयत्वेनास्त्यस्मा इति अच्, टाप् । १ कर्णपुरी, वर्त्तमान भागलपुर । पर्याय-चम्पा, मालिनी । २ बृहच्छतपुष्पा, सौंफ ।

पुष्पाकर (सं पु ) वसन्त ऋतु । इस समय नाना प्रकारके फूल खिलते हैं, अतः इसे क्रुसुमाकर कहते हैं। २ एक प्रसिद्ध मीमांसक।

पुष्पाकरदेव ( सं० पु० ) एक संस्कृत कवि ।

पुष्पागम ( सं० पु० ) पुष्पाण्यागच्छन्त्यत आगम आधारे अप् । वसन्तऋतु ।

पुष्पाङ्क ( सं० पु० ) माधवी ।

पुष्पाजीव (सं पु ) पुष्पैराजीवति जीविकां निर्वाहय-तीति, आ-जीव-अच्। मालाकार, माली।

पुष्पाजीविन् ( सं० पु० ) पुष्पैराजीवतीति आ-जीब-णिनि । मालाकार, माली ।

पुष्पाञ्जन (सं॰ क्लो॰ ) पुष्पस्य नेतरोगविशेषस्य अञ्जनं । अञ्जनभेद, एक प्रकारका अञ्जन जो पीतलके हरे क सावके साथ कुछ ओपधियोंको पीस कर वनाया जाता है। पर्याय-पुष्पकेतु, कौसुम्म, कुसुमाञ्चन, रोतिक, रीतिपुष्प, पौष्पक। गुण—शीत, पित्त, हिका, प्रदाह, विषदीष, कास और सब प्रकारके नेत्ररोगींका नाशक।

पुष्पाञ्जलि (सं॰ पु॰) पुष्पाणामञ्जलिः। कुसुमाञ्जलि, प्रस्नाञ्जलि, फलोंसे भरी अंजली या अंजली भर फूल जो किसी देधता या पूज्य-पुरुपको चढ़ाये जांय।

पुष्पाणगढ़ (सं॰ पु॰) राजतरङ्गिणीमें वर्णित एक प्राम । इस ग्राममें सोमपालका भाश्रम था।

पुष्पानन (सं॰ पु॰) पुष्पमित्र विकसितमाननमस्मात्। मद्यभेद, पक्र प्रकारकी शराव।

पुष्पाभिकीर्णं ( सं॰ पु॰ ) दवींकर सर्पविशेष ।

पुष्पाम्बुज (सं॰ क्वी॰ ) पुष्पस्य अम्बुनो जायते जन-**उ ।** मकरन्द ।

पुष्पाम्मस् ( सं॰ पु॰ ) तीर्थभेद, एक तीर्थ ।

पुष्पायुध (सं॰ पु॰) पुष्पमायुधमस्त्र । कुसुमायुध, कामदेव।

पुष्पार्क (सं० पु० ह्वी०) सेवती प्रभृति पुष्पोत्थ अर्ह, सेवती आदि फूलोंका अर्क। अर्कप्रकाशचिकित्सामें इस प्रकार लिखा है, कि सेवन्ती, शतपत्नी, वासन्ती, गुलदावती, आमला, यूथिका, चम्पा, वकुल और कदम्ब इन सवोंको केतकीपत द्वारा आच्छादन कर अर्क प्रस्तुत करना चाहिये। इसका मिर्चके साथ सेवन करनेसे पुष्पत्व बढ़ता है।

पुष्पार्णं ( सं॰ पु॰ ) एक राजा । इनके दोषा और प्रभा नामकी दो पत्नी थीं ।

पुष्पावचायिन् (सं० पु०) पुष्पमवचिनोति मार्छार्यं अव-चि-णिनि । मालाकार, माली ।

पुष्पावती (सं० स्त्री०) मध्यप्रदेशान्तगंत विलहरिका प्राचीन नामं।

पुष्पासव (सं० ह्वी० ) पुष्पस्य आसवं। १ मधु। २ फर्लोसे वना हुआ मद्य।

पुष्पासार (सं॰ पु॰) पुष्पवृष्टि ।

पुष्पास्त्र ( सं० पु॰ ) पुष्पमस्त्रं यस्य । कुसुमायुध, काम-देव ।

पुष्पाह्म (सं॰ स्नी॰) पुष्पैराङ्कयते स्पर्द्ध ते आ-ह्वे-क, तत-ष्टाप्। शतपुष्पा, सौंफ।

पुष्पिका (सं० स्त्री०) पुष्पति विकसतीवेति पुष्प-पञ्चल्, दापि अत इत्वं। १ दन्तमल, दाँतकी मेल । २ लिङ्ग-मल, लिङ्गकी मेल । ३ प्रन्थाध्याय-समाप्तिमें तत्प्रति-पाद्यकथन प्रन्थांशभेद, अध्यायके अन्तमें वह वाक्य जिसमें कहे हुए प्रसङ्गकी समाप्ति सूचित की जाती है। यह वाक्य "इति श्री" करके प्रायः आरम्भ होता है। यथा, "इति श्री माकँएडे यपुराणे सार्वणिके" इत्यादि। पुष्पिणी (सं० स्त्री०) १ धातकीवृक्ष, धवका पेड़। २ तुलक, रुई। ३ सर्णकेतकी।

पुष्पित (सं० ति०) पुष्प-क्त, पुष्पं जातमस्येति पुष्प-तारकादित्वादितच् वा । १ जातपुष्प, कुसुमित, फूला हुआ। (पु०)२ कुशद्वीपके अन्तर्गत पर्वतमेद, कुश-द्वीपका एक पर्वत । ३ एक बुद्धका नाम।

पुष्पिता ( सं ० स्त्री० ) रजसला स्त्री ।

पुष्पिताया (सं० स्त्री०) पुष्पितं विकसितमिव अयं यस्याः। छन्दोविशेष, एक अद्धे समवृत्तः। इस छन्दके प्रथम और तृतोय चरणमें १२ तथा द्वितीय और चतुर्थं चरणमें १३ अक्षर होते हैं। इनमेंसे प्रथम और तृतीय चरणमें ७वां, ६वां, ११वां तथा १२वां अक्षर गुरु और शेष वर्णं लघु हैं। द्वितोय और चतुर्थं चरणमें ५वां, ८वां, १०वां, १२वां तथा १३वां वर्णं गुरु और शेष लघु हैं।

पुष्पिन् (सं॰ पु॰) पुष्पमत्वर्थे इनि । कुसुमयुक्त वृक्ष, फला हुसा पेह ।

पुष्पेषु (सं० पु०) पुष्पं इष्टर्यस्य । कामदेव ।

पुष्पोत्कटा (सं० स्त्री०) राक्षसीभेद, सुमाली राक्षसकी केतुमती भार्यासे उत्पन्न चार कन्याओंमेंसे एक जी रावण और कुम्मकर्णकी माता थी।

पुष्पोत्सव (सं ॰ पु॰) षुष्पकाले स्त्रीणां प्रधम-ऋतु-समये यः उत्सवः । १ स्त्रियोंके प्रथम रज्ञोदर्शनमें एक प्रकार-का उत्सव । स्त्रियोंके प्रथम रज्ञोदर्शनमें नाना प्रकारके उत्सवादि होते हैं । २ कुसुमकीड़ा, फूलका खेल । पुष्पोदका (सं ॰ स्त्री॰) पातालस्थिता नदीभेद, पाताल-को एक नदी ।

पुष्पोद्भव ( सं॰ पु॰ ) दशकुमारचरितोक्त नायकमेद । पुष्पोद्यान ( सं॰ पु॰ ) पुष्पवाटिका, फुलवारी ।

पुष्प ( सं० पु० ) पुषान्त्यस्मिश्नर्था इति पुष-क्यप् (पुष्पिक्दौ नक्षत्रे । पा १।१।११६ ) १ अभ्विनी आदि करके सताईस नक्षत्रके अन्तर्गत ८वां नक्षत्र । नक्षत्रकी आकृति वाणकी-सी है । पर्याय-सिध्य, तिष्म और पुष्प । इस नक्षत्रमें प्रायः सभी शुभ कर्म किये ज़ा सकते हैं। विशेषतः मायाकर्ममें यह नक्षत अति प्रशस्त है।

इस नक्षतमें जो जन्म छेता है, वह श्रेष्ठमतिसम्पन, इती, कुछप्रधान, धनधान्ययुक्त, प्राञ्च, अतिशय वीर, देवद्विजमक और सब विद्यामें निपुण होता है।

(कोडीकला)

कोष्टीप्रदीपके मतसे—इस नक्षतमें जन्म लेनेवाला, पितृमातृभक्त, खधमपरायण, अभिनयकुशल, सम्मान और सुवर्ण तथा वाहनादिसम्पन्न होता है। पृष्यानक्षतमें जिसका जन्म होता, उसकी राशि कर्कट होती है। शतपद-चक्रानुसार नामकरण करनेमें पृष्यानक्षतके प्रधमादि चार पदमें "हु, हे, हो, इं" ये चार अक्षरादि नाम होंगे। इस नक्षतमें जो जनमम्रहण करता, वह देवता होता है।

यह नक्षत्र मेष-जातीय है। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे चन्द्रकी दशा होती है। (ज्योतिष्वस्व) इस नक्षत्रके अधिपति वृहस्पति हैं। इस नक्षत्रमें गङ्गास्त्रान करनेसे कोटि कुलका उद्धार होता है।

"संक्रान्तिषु व्यतीपाते प्रहणे चन्द्रस्ययोः।
पुषेत्र स्नात्वा तु जाह्वव्यां कुलकोटिः समुद्धरेत्॥"
( ब्रह्मपु॰ )

२ सूर्यवंशीय एक राजा। ( ष्ठ १८१३२) पुष-भावे क्यप्। ३ पुष्टि, पोषण । ४ फल या सार वस्तु। ५ पूसका महीना।

पुष्पगुप्त— मीर्थराज चन्द्रगुप्तके शाले एक वैश्य । रुद्रदामा-की गिरनरलिपिमें लिखा है, कि इस पर्वतके पाद्देशमें पुषागुप्तने एक सुन्दर हुद्र वनवाया था। मीर्थ अशोक-के यवनशासनकर्त्ता तुषास्यने प्रणाली द्वारा उसे अले-कृत किया था।

पुष्पधर्मन् (सं० पु०) एक राजा।

पुष्यनेता (सं० स्त्री०) पुष्यः तन्नामकं नक्षतं नेता प्रथमा-बिधशेषपर्यन्तसमापको यस्त्राः, अच्समासान्तः । वह रात्रि जिसमें बराबर पुष्य नक्षत्र रहे।

पुष्यमित मीर्योंके पीछे मगधमें शुङ्गवंशका राज्य प्रति-ष्टित करनेवाला एक प्रतापी राजा। अध्यमित्र देखी। पुष्यस्थ (सं ॰ पु॰) पुष्प इव रथः, पुष्ये याकोत्सवादी रथी

वा। क्रोड़ारथ, घूमने फिरने या उत्सव आदिमें निक-छनेका रथ, यह रथ युद्धके कामका नहीं होता। पुष्यलक (सं० पु०) पुषां पुष्टिं छकति लाकयति वा-अव्। १ गन्धमृग, कस्त्रीमृग। २ क्षपणक, चंवर लिए रहने-वाला जैन साधु। ३ कील, खुंटा।

पुष्यस्नान (सं० हो०) पुष्ये पुष्यनक्षतकाले स्नानं । पुष्पा भिषेक, पुष्यानक्षत्नमं स्नान । पूसके महीनेमं जब चन्द्रमा पुष्यानक्षत्नमं जाते हैं, तब यह योग उपस्थित होता है। उस दिन राजाको विश्लशान्तिके लिये यह स्नान करना चाहिये । इसका विषय कालिकापुराण और वृहत्-संहितादिमं विशेषक्रपसे लिखा है, पर यहां उसका सार दिया जाता है—

पूसके महीनेमें चन्द्रमाके पुष्रानक्षतमें जानेसे राजा सौभाग्य और कल्याणकर तथा दुर्भिक्ष और मरकादि क्कें शनाशक पुपास्नान करें। विधिमद्रादि और दुए-करण तथा व्यतीपात, वैधृति, वज्र, शूळ और हर्पणादि-योगमें यदि पुष्मा नक्षत्र और तृतीया तिथि तथा रवि, शनि अथवा मङ्गळवार युक्त हो, तो उस दिनका पुपा-स्नान दोषनाशक है । यदि राज्यमें प्रहविपाकसे अति-वृष्टि वा अनावृष्टि आदि उपद्रव हो जाये, तो राजा पौप-मास भिन्न दूसरे समय भी पुष्यानक्षतमें स्नान कर सकते हैं। स्वयं ब्रह्माने इन्द्र और अन्यान्य देवताओंकी शान्तिके लिये वृहस्पतिको इस शान्तिका उपदेश दिया था। राजा को चाहिये, कि चे पुष्पस्नानके लिये अति शुचि और पवित्त स्थान चुन लें। जिस स्थानमें तुप, केश, अस्थि, वल्मीक, कीट और कृमि आदि अपवित वस्तु न हों; काक, पेचक, कुक्, र, कडू, काकोल, गृथ, वक आदि पक्षी जिस स्थानमें विचरण न करते हों तथा इंसकारएडवादि शान्त जलचर जहां विचरण करते हों, वही स्थात पुष्यस्नानके लिये प्रशस्त है। स्थानका निर्णम कर मथाविधान उसका संस्कार कर्त्तवा है। पीछे राजा पुरोहितों और अमात्योंके साथ नाना प्रकारके वाद्यादि करते हुए उस स्थान पर जांय । उस स्थान पर पुरोहित उत्तरमुखी हो कर सुगन्ध चन्दन, कर्पूरादि सुवासित जल और गोरीचनादि द्वारा 'गन्ध द्वारेति' मन्त्रसें इस स्थानका अधिवास करें। पीछे गणेशादि पश्चदेवता, केशव, इन्द्र, ब्रह्मा, और सपार्वती पशुपित तथा अन्यान्य गणदेवता आदिका पूजन करे। वादमें पायस तथा तरह तरहके सुमिष्ट फल नैवेच चढ़ा कर निम्नलिखित मन्त्रसे दूर्वा और अक्षतादि द्वारा भूतों-का अपसारण करना होता है। मन्त्र—

"अपसपैन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः।

भूतानामविरोधेन स्नानमेतत् करोम्यहम्॥"

तदन्तर राजा देवताओंका आह्वान करते हुए पुपास्नान करे और तव निम्न लिखित मन्त्रसे उनका पूजन
विधेय है। मन्त्र—

"आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत पूजाभिलापिणः। दिशोऽभिपालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः॥" अर्थात् जो सव देवता मेरी पूजा ग्रहण करनेको इच्छुक हें, वे दिक्पाल देवगण आ कर अपना अपना भाग ग्रहण करें।

इसके वाद पुरोहित पुष्पाञ्जलि देकर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करें। मन्त्र—

"अद्य तिष्ठन्तु विद्युधाः स्नानमासाद्य मामकं। श्वः पूजां प्राप्य यातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे॥"

'हे देवगण! आज आप लोग इस स्थान पर अवस्थान करें। दूसरे दिन पूजा ग्रहण करके राजाको वर देते हुए चले जांथ।' राजा इत्यादि प्रकारसे पुपाक्षानादि कार्य समाप्त करके पुरोहितके साथ वहीं पर शयन करें। रातको जो खग्न होगा, उसीसे इस पुपाक्षानका शुभाशुभ स्थिर करना होता है। राजाको उस दिन यदि दुःखग्न दिखाई दे, तो फिरसे उन्हें पुषाक्षान करके चतुर्गुण होम और विविध दान करना चाहिये।

राजा खप्तमें यदि अपनेको गो, अश्व, हस्ती और प्रासाद पर आरोहण करते हुए देखें, तो राज्यसम्पद्ववृद्धि तथा मङ्गळ लाम होता है। यदि दिध, देवता, सुवण, सर्प, वीणा, दूर्वा, अक्षत, फल, पुष्पच्छद, विलेपन, चन्द्र-मण्डल, शङ्क्ष, छल, पद्म और मिल देखें, तो अपना लाम और शत्रुका क्षय होता है। शहणदर्शन, निगड़ (जंजीर) द्वारा पाद-वन्धन, मांस-मोजन, पर्वतम्रमण, नाभिदेशमें वृक्षोत्पत्ति, मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे रोदन, अगम्यागमन, कूप, पङ्क और गर्त्तमें अवतरण, पर्वत वा नदी-अवतरण, शतुच्छेदन, खपुतमरण, रुधिर वा मद्यपान, पायसमोजन

और मनुषारोहण प्रभृति खप्नमें देखनेसे राजाका कल्याण, सुख और शतुक्षय होता है।

अग्रुप्त स्वप्त—राजा खप्तमें यदि अपनेको गद्हे, ऊँट, मैंस आदि पर चढ़े हुए देखें, तो उनका राज्यनाश होता है। नृत्य, गीत, हास्य, अशुभ विषयका पाठ, रक्तवस्त-परिधान, रक्तमाल्यविभूषण, रक्त और कृष्णवर्णा स्त्री-कामना, इन्हें खप्तमें देखनेसे राजाको मृत्यु तथा कूपमें प्रवेश, दक्षिणकी ओर गमन, पङ्कमें निमज्जन और स्नान इस प्रकार देखनेसे भार्या और पुतका नाश होता है। खप्त द्वारा इसी प्रकार शुभाशुभका विचार करना होगा।

पुषाक्षानके लिये मण्डण प्रस्तुत करना होगा। इस मण्डणके ऊपर राजा वैठ कर माङ्गलिक और निम्नलिखित द्रव्ययुक्त जलपूर्ण कलससे स्नान करें। मण्डणकी लम्बाई वीस हाथ और चौड़ाई सोलह हाथ होनी चाहिये। मण्डणमें पूर्व दिन मातृकापूजा, वसुधारा और आभ्यु-द्यिक-श्राद्ध करना होता है। चन्द्रन, अगुरु आदि द्वारा सम्मार्जित मण्डलस्थल पर 'हों शम्भवे नमः' तथा 'अस्ताय हूँ फर' ये दोनों मन्त्र लिख देने होंगे। पीछे मण्डलविद्द पण्डित कमलस्त्र वा कौंधेय-स्त्रसे चार हाथका खस्तिकाख्य मण्डल और उस मण्डलके मध्य एक हाथका अष्टदलपद्म आदि निर्माण करके यथाविधि आठ कलस और मण्डल मध्यस्थित पद्मके ऊपर पञ्च-मुख घटकी स्थापना करें।

नवरत, सर्ववीज पुष्प और फल, हीरक, मौकिक, नागकेशर, डुम्बर, वीजपूरक, आम्रातक, जम्बीर, आम्र, दाड़िम, यव, शालि, नीवार, गोधूम, श्वेतसर्वप, कुंकुम, अगुर, कर्पर, मदलोचन, चन्दन, मदन, लोचन, मांसी, इलायची, कुछ, पत्रचएड, पण, वच, आमलकी, मंजिष्ठा, आठ प्रकारका मङ्गलद्रव्य, दूर्वा, मोहनिका, भद्रा, शतमूली, पूर्णकोप, सित और पीतगुञ्जा आदि द्रव्य संग्रह करके कलशमें रख दें। पीछे यथाविधि पूजा और होमादि हो जाने पर स्नानपट्ट और शय्यापट्ट प्रस्तुत करें। छब्बीस हाथ गोलाकार चतुष्कोण स्नानपट्ट और आठ हाथ लम्बा तथा चार हाथ चौड़ा शय्यापट्ट होना चाहिये। पीछे स्नानपट्टमें वैठ जानेके वाद मएडलविद्द पिछतको चाहिये, कि वे राजाको शास्त्रविहित घट-जल द्वारा

निम्नलिखित मन्त्रसे ब्राह्मणके साथ स्नान करावें। मन्त्र यथा--

" सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु पे च सिद्धाः पुरातनाः। ब्रह्मा विष्णु रच रद्रश्च साध्यारच समरुद्रणाः॥ आदित्या वसवो रुद्रा आश्विनेयौ भिषग्वरौ। अदितिर्देवमाता च स्वाहा छक्ष्मीः सरस्रती॥ कीर्त्तिर्रुक्ष्मीर्थितः श्रोश्च सिनीयाली कुहस्तथा। दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ देवपत्न्यक्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च । सर्वास्त्वामभिपिञ्चन्तु सर्वे वाष्त्ररसां गणाः॥" इत्यादि

विस्तार हो जानेके भयसे सभी मन्त नहीं लिखे गये पीछे पुरोहित राजाको शान्तिवारि द्वारा अभिषेक करे। राजाके स्नानके वाद अमात्य आदि राजाके अन्तरंगींको भी पुरोहित अवशिष्ट जल द्वारा अभिषेक करे।

यह राजाओंकी प्रधान शान्ति है। इस शान्तिसे उनके सभी विघ्न नए होते हैं और अन्तमें उन्हें सर्गकी प्राप्ति होती है।

राजाको चाहिये, कि इसी प्रणालीसे अभिषिक्त हो कर राज्यभार ब्रहण करें। (कालिकापु॰ ८६ अ॰)

वृहत्संहितामें पुपास्नानका विषय इस प्रकार लिखा है, —राजाके ऊपर ही प्रजाका शुभाशुभ निर्भर करता है। इसलिये राजाको चाहिये, कि प्रजा और राज्यकी भलाईके लिये यह पुपास्नान अवश्य करें। खयम्मु ब्रह्माने इन्द्रके लिये वृहस्पतिको इस शान्तिका उपदेश दिया था। इससे वढ़ कर पवित्न और विपत्शान्तिकर दूसरा कोई उपाय नहीं है।

**इलेब्मातक, अस, कएटकी, कट्ट-तिक्त और गन्ध**-विहोन वृक्ष जहां न हीं तथा ऐचक, शकुनि आदि अनिष्ट-कर पश्ली जहां विचरण न करते हों तथा तरुण तरु, गुल्म, बल्लो और लता जहां परिपूर्ण हों उसी मनोरम स्थानमें पुष्पस्नान करना चाहिये । देवमन्दिर, तीर्थ, उद्यान वा रमणीय प्रदेशमें पुष्पस्नान विशेष हितकर माना गया है। राजाको स्थानका निर्णय कर पुरोहितों और असात्योंके साथ वहां जाना चाहिये। पीछे पुरोहित यथा-विधान मण्डपादि प्रम्तुत करके पूजादि करें। नैवेद्यादि द्वारा पितरों और देवताओंका यथाविधि पूजन करके तव

राजा पुषास्नान करें। जिस कलशके जलसे राजा स्नान करनेवाले हीं उसमें अनेक प्रकारके रत्न और मङ्गल द्रव्य पहलेसे डाल कर रखे।

चन्द्रपुष्यानक्षतमें तथा शुभमुद्धर्त्त आने पर पश्चिम ओरकी वेदी पर वृष, वाघ, और सिंहका चमड़ा विछा कर उस पर सोने, चौदी, तांबे या गूलरको छकड़ोका पाटा रखा जाय। उसी पर राजा स्नान करें।

प्रति पुप्रानक्षतमें सुख, यश और अर्थवृद्धिकर यही शान्ति कर्त्रव्य है। पौषमासकी पूर्णिमा पुष्रायुक्त नहीं होनेसे यदि इस समय पुष्रास्तान किया जाय, तो आधा फल होता है। राज्यमें उत्पात वा कोई अन्य उपसर्गे घटनेसे राहु और केतु देखनेसे अधवा प्रहविपाकमें पुषा-स्नान ही एकमात विधेय और सर्वशान्तिकर है । पृथ्वी पर ऐसा उपद्रव नहीं जो इससे शान्त न हो। इसीसे राज्याधिरोहणप्राधीं और पुतजन्माकांक्षी राजाओंके अभिषेककी यही विधि विशेष प्रशस्त है। जो इस विधानसे हाथी और घोड़े को स्नान कराते हैं, उनके सभी पाप जाते रहते और अन्तमें उन्हें श्रेष्ठसिद्धि प्राप्त होती है। (बृहदसंहिता ४८अ०) देवीपुराण आदिमें भी इस पुष्यस्नानका विशेष विवरण छिखा है।

पुष्पा (सं० स्त्री०) पुष्णाति कार्याणीति पुष् क्यप्, यत् वा तत्रहाप्, निपातनात् साधुः। पुष्पानक्षत, अध्विनी भरणी आदि २७ नक्षलोंमेंसे आठवां नक्षता

पुष्यानुगचूर्णं (सं० वल्लो०) चूर्णोषधमेद् । प्रस्तुतप्रणाली— जामुन और आमकी गुउलीका गूदा, पाषाणभेदी, रसाञ्जन, मोचरस, वराकान्ता, पद्माकेशर, कुंकुम, असीत, मुता, बेलसोंठ, लोघ, गेरूआमट्टी, कटफल, मिर्च, सॉंड, द्राक्षा, रक्तचन्दन, सोनापाठा, इन्द्रयव, अनन्तमृरू, घर्वई-का फल, यप्टिमधु और अर्जु नकी छाल इन सर्वोका वरा-वर वरावर भाग चूर्णं कर मिलावे । इसकी माता रोगी-के अवस्थानुसार एक माशेसे चार माशा तक है। इसका अनुपान—मधु और चावलका पानी है। इससे अर्रो, अतीसार, योनिदोष तथा प्रदररोग जाता रहता है। पुष्यानक्षतमें यह भौषध प्रस्तुत करनी होती है, इसलिये इसका नाम 'पुष्पानुगचूर्णं' हुआ है।

( भैवव्यस्ता॰ स्रीरोगाधिका॰ )

प्रन्थान्तरमें 'पुष्यानगचूर्यं' इस प्रकार पाठ भी देखनेमें आता है ।

पुष्पाभिषेक (सं॰ पु॰) पुष्पस्नान देखी।
पुष्पार्क (सं॰ पु॰) १ ज्योतियमें एक योग जो कर्ककी
संक्रान्तिमें सूर्यके पुष्पा नक्षतमें होने पर होता है। यह
प्रायः श्रावणमें दश दिनके लग भग रहता है। २ रविवारके दिन पड़ा हुआ पुष्पा नक्षता।

पुस (हिं॰ पु॰) प्यारसे विल्लोको पुकारनेका शन्द । पुसाना (हिं॰ कि॰) १ उचित जान पड़ना, शोभा देना, अच्छा लगना । २ पूरा पड़ना, वन पड़ना, पटना । पुस्त (सं॰ क्ली॰) पुस्त्यते इति पुस्त वन्धादरादी धन् । १ लिप्यादि शिल्पकर्म, कारीगरी ।

गीली मिट्टी, उकड़ी, कपड़े, चमड़े, लोहे या रत्तों आदिसे गढ़, काट या छील छाल कर जी वस्तु वनाई जाती है, उसे पुस्त कहते हैं।

पुस्त्यते वध्यते ब्रध्यते इत्यर्थः, आद्रियते वा इति पुस्त-घण्। २ पुस्तक, कितान।

पुस्तक (सं॰ क्ली॰) पुस्त-खार्थे-कन् । पुस्त, पुस्तक, ग्रन्थ, किताव। हिन्दीमें यह शब्द स्त्रीलिङ्ग माना गया है। पुस्तकके परिमाण और लेखनादिका विषय योगि-नीतन्त्रमें इस प्रकार लिखा हैं—

"मानं बक्ष्ये पुस्तकस्य श्रृणु देवि समासतः।
मानेनापि फलं विन्यादमाने श्रीहेता भवेत्॥
हस्तमानं मुष्टिमानमावाहु द्वादशांगुलं।
दशांगुलं तथाष्टौ च ततो होनं न कारयेत्॥"

पुस्तकका परिमाण हाथ भर, मुद्दी भर, वारह उंगली, दश उंगली अथवा आठ उंगली होना चाहिये। इससे कम होनेसे काम नहीं चलेगा। यधोक परिमाणकी पुस्तक गुणकर होती है। परिमाण विपरीत होनेसे श्रीभ्रष्ट होना पड़ता है।

"भूजें वा तेजपते वा ताले वा ताड़िपतके। अगुक्तणापि देवेशि पुस्तकं कारपेत् प्रिये॥ सम्भवे खर्णपते च ताम्रपते च शङ्करि!। अन्यवृक्षत्वचि देवि तथा केतिकपतके॥ मार्जेएडपते रोप्ये वा वटपते वरानने।

अन्यपते वसुद्रले लिखित्वा यः समभ्यसेत्॥ स दुर्गतिमवाप्नोति धनहानिर्भवेद्द धुवं॥" ( योगिनीतन्त्र )

पुस्तक लिखनेका पत्त—भोजपत्त, तेजपत्त और ताड़-के पत्ते पर पुस्तक लिखी जाती है। सम्भव रहने पर सुवर्णपत, ताम्रपत्त, केतकीपत्त, मार्तप्रदाय, रोप्यपत्त वा वटपत्त पर पुस्तक लिखी जा सकती है। पतिक्रव जो अन्य पत पर पुस्तक लिख कर अभ्यास करते हैं, वे पीछे दुर्गतिको याप्त होते हैं।

पुस्तकमें वेद नहीं लिखना चाहिये। यदि कोई पुस्तकमें लिख कर वेद पाठ करे, तो उसे ब्रह्महत्यका पाप होता है तथा घरमें रखनेसे भी उसका अनिष्ठ होता है।

"वेदस्य लिखनं कृत्वा यः पठेतु ब्रह्माहा भवेत्। पुस्तकं वा गृहे स्थाप्यं वज्रपाती भवेदु ध्रुवं॥" ( योगिनीतन्त्र ३ भा० ७ प० )

युगभेदसे पुस्तकके अक्षरमें भिन्न भिन्न देवता वास करते हैं। सत्ययुगमें शम्भु, द्वापरमें प्रजापित, बेतामें सूर्य और किलकालमें लिपिके अक्षरमें स्वयं हिर वास करते हैं। इन सब अक्षरोंमें जो सब देवता रहते हैं, पुस्तकके आरम्भ वा समाप्ति कालमें उन सब देवताओंकी पूजा करनी होती है।

वेतन प्रहण करके पुस्तक लिखना मना है। यदि कोई पेसा करे, तो उस पुस्तकके अक्षरके संख्यानुसार वह नरकमें वास करता है।

भूमि पर पुस्तक लिखनी वा रखनी नहीं चाहिये। जो ऐसा करते हैं, वे जन्म जन्मान्तर मूर्ख होते हैं।

पद्मपुराणके उत्तरखएडमें लिखा है, धर्मशास्त्र और पुराण-शास्त्र लिख कर यदि ब्राह्मणको दान किया जाय, तो दाता देवत्वको प्राप्त होता है। वेदिवधा और आतम-विद्यादि शास्त्र कार्त्तिक मासमें ब्राह्मणको दान करनेसे अशेष पुण्य होता है। (१इ९ उत्तरख० ११७ अ०)

गरुड़पुराणके २१५वें अध्यायमें लिखा है, कि वेदाध यक्षशास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणादि पुस्तक जो रुपये दे कर दूसरेसे लिखा करके बाह्मणको दान करते हैं, वे अनेक प्रकारके सुक्ष भोग कर अन्तमें सर्गको जाते हैं। भागवतादि वैश्ववयन्थ दान करनेसे विष्णु पदमें मक्ति और अन्तमें खर्गलाम होता है।

हेंमाद्रिके दानखएडमें पुस्तकदानका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

पुस्तकमुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रसारोक्त मुद्रामेद् । वाएं हाथकी मुद्री अपनी ओर करनेसे ही यह मुद्रा होती है। पुस्तकर्मन् (सं० ति०) पुस्तं प्रन्थलेखनं कर्माऽस्य। लेख्यादि कर्मकर्त्ता, लिखने आदिका काम करनेवाला। पुस्तकशिम्बिका (सं० ति०) पुस्तकके आकारका; पोधी-के कपका।

पुस्तकागार ( सं॰ पु॰ ) पुस्तकस्य आगारः । पुस्तकालय, वह भवन या घर जिसमें पुस्तकोंका संग्रह हो ।

पुस्तकालय ( सं॰ क्ली॰ ) १ पुस्तकागार, वह भवन जिसमें श्रम तथा विज्ञानादि सम्वन्धीय अनेक पुस्तकींका संब्रह हो। जिस घरमें पुस्तकें नियमित इपसे तालिकायुक्त और सुश्रेणीवद हो कर अलमारीमें अच्छी तरह सजी रहती हैं, उसीको पुस्तकालय कहते हैं। अङ्गरेजीमें जिस नियमसे लाइब्रेरियां सजी रहती हैं, ठीक उसी नियमसे हम लोगोंके देशके वर्तमान पुस्तकालय भी सजे रहते हैं, किन्तु, वहुत प्राचीनकालमें जव हाथकी लिखी हुई पुस्तक (Manuscript)-के सिवा छपो पुस्तकका नामनिशान तक भी न था। उस अनन्त-क्रोड्रावच्छिन्त पुण्यमय वैदिकयुगमें भी लेखनीनिवद वैदिकमन्त्रादि संरक्षणका कुछ आभास पाया जाता है। वत्तंमान शैळीसे छपी वा हाथकी लिखी पुस्तकका संग्रह शिक्षित और सुसभ्य जगत्में जातीय उन्नतिका एकमात ं आद्रशं स्थल है। आज कल पुस्तक वेचनेवाले भी ं साइनवोर्डमें 'पुस्तककी दूकान' ( Book-shop ) स्रजा-वशतः ऐसा न लिख कर 'पुस्तकालय' (Library) हो लिख दिया करते हैं । किन्तु ऐसा नामकरण ठीक नहीं है। पुस्तकालयसे जव चाहें, तव पढ़नेके लिये एक एक ग्रन्थ अपने घर छा सकते हैं। उसे छोटा देने पर पुनः अपने इच्छानुसार दूसरा ग्रन्थ छानेमें कोई श्रापित नहीं रहती।

साधारणतः पुस्तकालय दो प्रकारका है, सकीय

( Private ) पुस्तकांलय और साधारण त्रा पर्वलिक ( Public ) पुस्तकालय । जिस पुस्तकालयमें अपनी मानसिक वृत्तियोंकी स्फूर्ति सम्पादनार्थ और विद्या चर्चाकी उन्नतिके लिये किसी ज्ञानवान व्यक्तिने तरह तरहकी पुस्तकोंका संग्रह कर उन्हें सेल्फ, अलमारी आदिमें सजा रखा है, उसे खकीय ( Private ) पुस्तका-लय और जो जन साधारणके चंदेसे अथवा दातव्य अर्थ-से तथा देशवासियोंके ऐकान्तिक उद्यमसे संगठित हुआ है, उसे साधारण वा पविक्रक ( Public ) पुस्तकालय कहते हैं। उन सब पुस्तकालयसे पुस्तक लेनेमें अध्यक्ष अथवा अधिकारीको अनुमति छेनी पड़ती है। कहीं कहीं पुस्तकालयके कलेवरकी वृद्धि और उसका बर्च चलानेके लिये प्रत्येक सम्य ( Member ) से कुछ कुछ मासिक, तैमासिक वा वार्षिक चंदा लिया जाता है। राजाकी ओरसे सब पुस्तकालय स्थापित और परिपो-पित होते हैं। उनमें जनसाधारणका चंदा नहीं लिया जाता । ऐसे सब पुस्तकाकय विद्वन्मएडलीके उपकारार्थ खोले जाते हैं। वहाँसे प्रन्थ लेनेमें परिचालक-समितिका अनुमति लेनी पड़ती है।

भारतमें आदि पुस्तकालयेकी कथा।

पुस्तकका आदर भारतवर्षमें वहुत दिनोंसे चला आ रहा है। ब्राह्मण पिएडत धर्मप्रन्थ और दर्शनादिका; राजा इतिहास, काव्य और धर्मशास्त्रादिका तथा दीन दरिद्र देशभाषामें रिचत उपदेशमूलक नाना कविता-प्रन्थका आदर करते हैं। यह प्रधा भारतवर्षमें आजसे नहीं वहुत पहलेसे चली आ रही है।

समस्त सम्य जातियोंके आदि इतिहासकी आलो-चना करनेसे जाना जाता है, कि उनके पुरोहित वा आचार्यगण ही आदि प्रत्थोंके प्रणेता और संप्रहक्तां थे। वे ही वड़ी सावधानीसे पुस्तकोंकी रक्षा करते थे। इस मारतवर्षमें भी वही देखनेमें आता है। यहांके आर्थ अप्रियाण ही धर्मशास्त्रादिका प्रणयन करते और वड़े यहासे उन्हें रखते थे।

भारतीय नाना प्राचीन प्रन्थोंमें लिखा है, एक एक मुनिके दश दश हजार तक शिष्य रहते थे। वे उन शिष्योंको खिलाते, कर्पड़ा देते और एदाते थे। एहले जव लिपित्रधाका आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय कोई वैदिक ऋषि एक स्तुतिगान वा मन्त्र कह दिया करते थे जो थोड़े ही समयके अन्दर हजारों शिषाके हृद्रयङ्गम हो जाता था। इसो प्रकार वह वंशपरम्परासे बलता आता था।

इसके वाद चिह्न वा चित्राङ्कण द्वारा सुप्रसिद्ध घटना-वली लिपिवद्ध करनेका उपाय अवलम्बित हुआ। वीस हजार वर्षकी प्राचीन सुमेरीय चित्रलिपिका निद्-शन भारतवर्षके सिन्धु विमागान्तर्गत महेञ्जोदेरो और हरप्पो नामक स्थानमें तथा हकवतान (Echatana) नगरमें मद्रोंके और सूसा नगरमें पारसिकोंके सुप्राचीन संप्रहागारमें देखनेमें आता है। शिल्प विद्या और विज्ञान-चर्चा विस्तारके साथ साथ लिपिकाय भी धीरे धीरे फैलने लगा।

धर्मसूबके समयसे लिपिकरकी उत्पत्ति हुई। पाणिनिके व्याकरणसे जाना जाता है, कि उनके पहलेसे हो लिपिपद्धति वा किसो प्रन्थको पत्नमें लिखनेकी प्रथा भचलित थी। पाणिनिके पहले भी पटल, काएड, पत्न, सूत्र और प्रन्थ इत्यादि शब्द प्रचलित थे। जिससे कोई अनुमान करते हैं, कि उसके पहलेसे ही वृक्षके छिलकेमें अथवा काएड वा पत्नमें छिपिकार्य सम्पादित होता था। इसी कारण प्रन्थविशेषके अंशका नाम पटल, पत्न, काएड इत्यादि विभाग किएत हुआ है। फिरसे वे सब विभिन्न परल वा काएड एक साथ गांध कर रखे जाते थे, इसीसे मूल पुस्तकका 'प्रनथ' नाम पड़ा है। निरुक्तमें "अर्थतो-भन्यतथ" इत्यादि प्रमाण द्वारा मूल पुस्तकके अस्तित्त्व-की कल्पना की जाती है। परन्तु पूर्वकालीन प्रन्थ कहने-से आज कलके जैसा 'पुस्तक'-का ज्ञान नहीं होता था। ऐसी पुस्तककी सृष्टि अधिक दिनकी नहीं है। यवन-प्रभावके वादसे हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। कागन शब्द देखी।

पहले तालपत, ताड़ितपत, भूजपत, वल्कल आदिमें लिखनेकी रीति थीं जो आज भी 'पोथी' नामसे प्रसिद्ध है। वे सब पोथी जहां रखी जाती थीं, उसे 'प्रन्थकुटी' (Library) कहते थे। प्रत्येक धर्माध्यक्ष, प्रत्येक राजा, प्रत्येक धर्माधिकरणके यहां अथवा वहुजनाकीणी देवमन्दिर वा मठमें इस प्रकारकी 'प्रन्थकुटी' रहती है। पाणिनिका अनुसरण करनेसे इतना अंवश्य कह सकतें हैं, कि तीन हजार वर्षसे भी पहले 'ग्रन्थ'-एक्षाकार्य आरम्म हुआ। सचमुच उस समय किसी विद्यार्थीके लिये पीथी देख कर पाठका अभ्यास करना विलक्कल निषिद्ध था। साधारणकी सुविधाके लिये लिपिकरगण ग्रन्थिवशेषकी नकल करते थे।

पूर्वकालमें वेदको लिपिवद करनेका नियम नहीं था, किन्तु जब वेदके बहुतसे मन्त्र लुप्त होने पर थे तथा कौन मन्त्र किस ऋषिने प्रकाशित किया था, इसके निणयमें गड़वड़ी थी, उस समय कृष्णहें पायन वेदव्यासने भिन्न भिन्न वेदमन्त्रोंको संग्रह कर वेद-विभाग किया था। इस वेदविभागके बाद ही सम्भवतः वेदको लिपिवद्ध करनेकी चेप्ता हुई थी। शायद इसी समय विभिन्न वेदका उचारण स्थिर करनेके लिये विभिन्न प्रातिशाख्य रवा गया। महाभारतके समय जो वेद और शास्त्र लिपिवद्ध होते थे, उसका प्रमाण तो मिलता है, पर लिपिवद्ध वेदका प्रचार वहुत कम देखा जाता है। यथा—

"विशिष्ठ उवाच । यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम् । प्रविभवधा चैतन्तिगृह्णाति तथा भवान् ॥ ११ धार्यते हि त्वया प्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः । न च प्रन्थार्थतत्त्वक्षो यथावत्त्वं नरेश्वर ॥ १२ यो हि वेदे च शास्त्रे च प्रन्थधारणतत्परः । न च प्रन्थार्थतत्त्वक्षस्तस्य तद्धारणं वृथा ॥ १३ भारं स वहते तस्य प्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः । यस्तु प्रन्थार्थतत्त्वक्षो नास्य प्रन्थागमी वृथा ॥ १४ प्रन्थस्यार्थस्य पृष्टः संस्ताद्वशो विष्तुमर्हति ।"

(शान्तिप० ३०५.झ०)

विशष्टिन कहा, महाराज (जनक)! तुमने वेद और शास्त्रको जो कथा कही, वह उसी प्रकार तो है, पर तुमने उसका यथार्थ तात्पर्य नहीं समभा। तुमने वेद और स्मृति आदिका अभ्यास किया है, पर उससे तुम्हें कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। जो प्रनथका अभ्यास करनेमें तत्पर हैं, पर प्रनथका यथार्थ तात्पर्य प्रहण नहीं कर सकते, उत लोगोंका वैसा अभ्यास करना पशुश्रममाल है। वे केवल प्रनथका भारवहन करते हैं। किन्तु जो प्रनथका यथार्थ तस्त्र समक्षते हों और प्रश्नक करनेसे अनु-

रूप प्रत्युत्तर दे सकते हों, उन्होंका परिश्रम सार्थक है। यहां वेदादि शास्त्रके भारवहनकी कथासे वेदादिशास्त्र-के प्रनथका हो वोध होता है।

वैदिक प्रन्थ छोड़ कर और सभी प्रन्थोंका यथेष्ठ प्रचार था। किन्तु वेद वा धर्मशास्त्रादि अथवा जिस जिस प्रन्थमें वेदका प्रसङ्ग हैं वे सव प्रन्थ लिखे जाने पर भी किसो शूद्रको दिखाये नहीं जाते थे अथवा जिससे कीई भी शूद्र उन्हें देख न सके, ऐसे हिसावसे वे रखे जाते थे। नाना विधर्मियों वा सम्प्रदायोंके प्रभावसे भारतवर्षसे यह प्रथा उठ तो गई पर यवद्वीपके ब्राह्मण लोग प्राण जाने पर भी शूद्रके सामने कोई मन्त्र उचारण नहीं करते। यहां तक कि उनके प्रिय ब्रह्माएडपुराण तक भी किसी शूद्रको नहीं दिखाते। वहां शूद्रोंको महाभारत, रामायण और काव्यादि देखनेका अधिकार है।

पाणिनिके पहले ग्रन्थ लिपिवद्ध होनेकी प्रथा प्रच-लित रहने तथा अनेक ग्रन्थ रचे जाने पर भी पूर्वकालमें निर्दिष्ट ग्रन्थकुटी वा ग्रन्थागारका प्रमाण नहीं मिलता।

वौद्ध और जैनधर्मके प्रभावके साथ जब बहुतसे लोग अपने अपने पूर्वपुरुषके धर्ममतको परिवर्त्तन करके नूतन मत ग्रहण करते थे, जब वे और उनके वंशघरगण अपने पूर्वपुरुषोंकी नित्यउच्चारित प्रन्थावली भी भूलते थे, उसी समयसे त्रन्थको लिपिवद्ध करनेका प्रयोजन पड़ा था और उसके साथ साथ प्रन्थकुटी खोलने की आवश्यकता भी जनसाधारणने हृद्यङ्गम कर ली थी। उस धर्म-संघष-के समय सभी अपने अपने मतका प्रचार करने और भिन्न मतके छिद्रान्वेषणमें कमर कसे हुए थे। अतः एक दूसरे-का मत जाननेके लिये उन सब धर्ममूलक वा सम्प्रदायिक प्रत्थोंके संप्रहमें यत्नवान हुए थे। इसी कारण अनेक न्नन्थ लिपिवद्ध और प्रचारित होनेकी सुविधा हुई थी। यही कारण है, कि हम लोग प्राचीन वौद्धप्रन्थमें 'प्रन्थ संग्रह' करना पुण्यजनक कार्य है, ऐसा उल्लेख देखते हैं। इसीलिये वौद्धस ङ्वाराममें और जैनमटमें सभी सम्प्रदायों-के हजारों प्रन्थ संगृहीत और रक्षित होते थे।

जेत और गैंड शब्द देली।

**अयां शताब्दीमें चीमपरिधाजक यूपनचुवडूने** नालन्दा

विहारमें हजारों प्रन्थ देखे थे। लीटते समय वे भारत-वर्षसे २२ घोड़ों पर लाद कर महायान मतावलियोंके १२४ स्त्र और ५२० खण्डोंमें विभक्त दूसरे दूसरे प्रन्थ ले गये थे। उसके पहले और पीले भी अनेक भारतीय पिएडत इस देशके अनेक प्रन्थ ले गये हैं। आज भी चीन और जापानके अनेक पुरातन महोंमें उसका अस्तिस्व पाया जाता है।

धर्मशास्त्र, पुराण और काष्यादिकी तरह पूर्वतन भारतीय राजगण प्राचीन ताम्रशासन और प्रशस्तियोंका संग्रह किया करते थे। इस प्रकारके ताम्रशासनादि प्रस्तरपेटिकावद्ध और श्रन्थकुटीके मध्य रक्षे जाते थे। यह प्राचीन प्रथा मध्ययुगमें भी जारी थी। उत्कल्से स्य नर्रासहदेवका जो ३ प्रस्थ ताम्रशासन तथा कुछ वष हुए, वाराणसीके निकट जो एक समय १५ प्रस्थ ताम्र-शासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें भी उस प्राचीन रीतिका बहुत कुछ निद्शैन पाया जाता है।

[ गांगेय शब्द और Epigraphia Indica, Vol, II.

### आसिरीय-राज्य ।

प्राचीन राजधानी निनिधि-नगर उत्सात स्त्पर्मेसे जो सब कोणाकार अक्षर-मण्डित सृत्फळक (Claytablets) आविष्कृत हुए हैं, उन्हें पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे सब महिमान्वित असुरवणिपाळ (Sardana palus of the Greek) राजाके पुस्तकाळयके भूषणस्वरूप थे।(१) इससे और भी पहने वाविलोनीय जातिका अस्युद्य हुआ था। काळदीय (Chaldeans) गणकी मानसिक उन्नतिसे ज्योतिःशास्त्रका विकाश आरम्भ हुआ। कोई विशेष निदर्शन नहीं रहने पर भी

<sup>(</sup>१) Menant सहनने अपनी Bibliotheque du Pulais de Niuive नामक पुस्तकमें लिए। है, कि प्राय: १० हजार पंथ और राजकीय पत्रादि जो सत्तककर्में खर्ने हुए थे, उस्त पुस्तकाल्यमें कोना पाते थे। अभी उन सब पत्रकों में से कुछ British Museum नामक पुस्तकामारमें रक्षित है और कमसे कहा २० हजार फलक निनिमेके ध्व सानशेषके मध्य इनर उधर पर्टे हुए हैं।

प्रन्थादि प्रमाणमें उसका बहुत कुछ भाभास पाया जाता है। न विदन प्रन्द देखी।

इजिप्त ।

पूर्वतन इजिप्तराज्यमें पुस्तकालय था वा नहीं, इस विषयमें हमें कोई प्रकृत प्रमाण नहीं मिलता। जो चित्रा-क्षर ( Bieroglyphic writings ) आज भी नाना स्थानोंमें विद्यमान है, वह ईसा जन्मके दो हजार वर्ष पहले किसी शताब्दीमें किष्पत हुआ होगा। इसके वाद बृक्षत्वक्-निर्मित (Pap) rus) कागजका उद्भावना-काल माना जाता है।

ईसा-जन्मके पहले १६वीं शताब्दीमें राजा प्रिम्नोफिस (Amenophis I of the 18th dynasty, के राजत्व कालका एक प्रन्थ उसी प्रकारके कागज़में पाया गया है। यह कागज़ भोजपतके जैसा परिष्कृत देखनेमें लगता था। इसके भी पहले कागज़की प्रथम सृष्टि स्चित हुई थी। तभीसे कागज़में लिखित प्रन्थादिके रचनाकालको कल्पना को जा सकती है। प्राचीन भारतकी तरह इजिसके धममन्दिरमें भी प्रन्थादि एवे जाते थे। 'थाथ' (Thoth) नामक पवित पुस्तकमें(२) वे लोग धम और विज्ञान सम्बन्धीय व्यापार लिपिवद करके रखते थे। केवल मन्दिरादिमें ही उक्त प्रन्थ एवे जाते थे, सी नहीं, सृत राजाओंके समाधिमन्दिरमें भी पुस्तक संगृहीत होती थी।

ईसा जन्मके पहले १४वीं शताब्दीमें राजा ओसि-मारिडयस (ing symandyas, identified with Ramses I) द्वारा स्थापित ऐसे एक पुस्तकालयका उल्लेख हैं।(३) औसि मरिडयसके दो प्रन्थरक्षकींके भी प्रीस

ग्रीस राज्यमें भी पिसिश्नाटस् ( Pissistratus ), पोलिक टिस् ( Polycrates of Samos ), युक्तिड (Fuclid the Athenian), निकोक्रेटिस (Nicocrates of Cyprus), युरिपाइडिस् और अरिष्टटल आदिकी पुस्तकसंग्रहवार्ता हम लोगोंको अच्छी तरह मालूम है। पिसिश्राटस्ने सबसे पहले एक पुस्तकालय कोला। पोछे अलेस-गेलियस् ( Aules-Gellius ) और प्लेटो ( Plazo )ने कुछ पुस्तकोंका संब्रह किया । जेनो-फनने भी युथिडेमस (Euythydemus) नामक किसी व्यक्तिके पुस्तकागारका उद्लेख किया है। आरिएटळ अपनी पुस्तकालय प्रियशिष्य थियोफाएस् (Theo-Phrastus )-को और फिर थियोफाएस् भी उसे निलि-यसको दान कर गये। पार्गमस-राजाओं ( Kings of t'ergamus )-की प्रन्थलोलुपतासे अपनी पुस्तकावलि-को वचानेके लिये निलियस् सेप्सिस् (Scepsis)-को भाग गये। पीछे वह दूसरेके हाथ छगा।(४) शिलालिपि पढ़नेसे और भी कई एक पुस्तकालयोंका हम लोगोंको

समाधिमन्दिरमें उन सव पुस्तकोंका संग्रह था। लेप-सियसने उसका भी उल्लेख किया है। अलावा इसके मेफ्सिके मन्दिरमें एक और पुस्तकागारको कथा युएा-थियस (Eustathius) लिख गये हैं। उपर्युपरि पार-सिक आक्रमणसे इजितीय साहित्यमें वहुत धका लगा। कुछ ग्रन्थ लय प्राप्त हुए, कुछ विजेतासे पारस्य-राजधानी-में लाये गये जो पीछे ग्रीकराजके हाथ लगे। फलतः इजिप्तका पूर्वतन गौरव वैदेशिकके हाथमें पड़ कर क्रमशः च्रियमाण और निष्यम हो गया।

<sup>(</sup>२) पहले 'याक' प्रस्य ४२ खराडों से विभक्त था। कमणा उन सूत्रों की टीका और टिप्पनीसे कुछ खण्ड और बढ गये। बीक्वालियोंने जब इिलसाइयको जीता, उस समय 'याक' साहित्यमें ३६५२५ प्रस्थ छिसे जा चुके थे। Lepsins, Chronologie der Egypter, p. 12

<sup>(</sup>३) येविस (Thebes) के निकटनर्ती Ramesseum नामक विख्यात प्रासाद-मन्दिर्में वे सब पुस्तके रखी गई थीं। विकालिपिमें उसका नाम 'आत्माका खीवधालय' लिखा है। (Ancient Egypt J. III sq.)

<sup>(</sup>अ) ऐतिहासिक प्रावीका कहना है, कि उक्त पुस्तकाक्यको टियसवासी एपेलिकन (Apellicon of Teos) नामक किसी व्यक्तिने खरीद कर आयेग्समें रखा। रोमराज सिका (Sulla)-के ग्रीक्जयके बाद वह रोम राज्यवानीमें स्वया गया। (Strabo, XIII, pp 608-9) किन्तु आये नियम् (Athenaeus I. 4)-ने लिखा है, कि टकेमी फिला-डेक्फस् (Ptolemy Philadelphus)-ने निलिक्स उसका स्वस्त खरीद लिया।

पता लगता है। किन्तु उन पाठागारोंमें जो सब पुस्तक थे, वे फिस भाषाके और कितने थे, सो ठीक ठीक मालूम नहीं। ट्रावीकी वात पर यदि विश्वास किया जाय, तो पहले आरिष्टरलको ही पुस्तकालय-प्रतिष्ठाता मान सकते हैं। उन्होंंके प्रसादसे ईजिप्त राजाओंने पुस्तक-संग्रहका स्वादं चला था। अलेक-सन्द्रियाका विश्व-विख्यात पुस्तकालय जगत्में सुप्राचीन समका जाता है। ऊँचे दिमागवाले रलेमीवंशीय राजाओंके सुशासन और विद्योननतिसे राज्यमें अनेक दार्शनिक और वैद्यानिकका अम्युद्य हुआ। टलेमी सीतर (Sotor)-ने पुस्तक संग्रहमें वतो हो कर जिस कार्यका आरम्भ किया, उनके वंशधर फिलाडेल्फस्ने नाना देशोंसे प्रन्थादि संप्रह कर उनका उद्यम सुसम्पन्न किया था। वे उन पुस्तकोंको अच्छी प्रणालीसे श्रेणीवद करके अपने मकानमें विभिन्न पुस्तकालय स्थापित कर गये। ये लोग विभिन्न भाषाको पुस्तकको नकळ करनेके छिये आदमी रखते थे । उनके पुत युरगेटिस् ( Ptolemy Euergetes )-ने वेदेशिकोंसे वहुतों प्रन्थ छे कर पुस्तकालयका श्री सम्पादन अलेकसन्द्रिया-महानगरीमें दो पुस्तकालय स्थापित थे। वड़े पुस्तकालयको जादूघर ( Museum ) और विश्वविद्यालयसे संयुक्त करके ब्रुकियम् ( Bruchium quarter ) विभागमें और दूसरा सिरापियम् ( Serapeum ) विभागमें रखा गया। उन दोनों पुस्त-कालयमें कितने प्रन्थ थे, उसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अलेकसन्द्रियाके पुस्तकालयमें जेनोडोटस् ( Zeno dotus), कालिमाकस् (Callimachus) पराटोस्थे-निस् (Eratosthenes), आपोलोनियस् (Apollonius) और अरिष्टोफेनिस् ( Aristophanes ) ब्रादि विख्यात प्रन्थरक्षकोंके नाम देखे जाते हैं। कालिमाकस्ने अपनी ग्रन्थरक्षताके समय जिस सुवृहत् पुस्तक्ष-तालिका (Catalogue )-का प्रणयन किया, उसमें दोनों पुस्तकालयकी प्रनथसंख्या लिपिवद हुई है।(५) जब सीजरने अलेक-

सिन्द्रयाके उपक्रूलस्थ जंगी जहाजोंमें आग लगा कर उन्हें खाक कर डाला, तव युक्तियमका विख्यात विद्यालय मय पुस्तकोंके नए हो गया था।(६) दूसरे साल आण्टनी महो-दयने उक्त क्षतिपूरणार्थ पार्गामसके अधिकृत पुस्तकालय क्षियोपेद्राको दान करके अलेकसिन्द्रयाका विद्यागीरव अक्षुण्ण रखा। २७३ ई॰में आरेलियन (Aurelian) कर्नु क युक्तियम-ध्वंसके साथ साथ एक पुस्तकालयका अस्तित्व भी लोप हो गया। ३८६ वा ३६१ ई॰में थियो-डोसियसके अनुशासन (Edict of Theodosius)-में लिखा है, कि ईसाइयोंने सिरापियमके पुस्तकागारको ध्वंस किया और लूटा था। पीछे ३४० ई॰में क्षियो-पेद्रा-प्रतिष्ठित वह विख्यात पुस्तकालय सारासेनियों (Saracens)-के आक्रमणसे विलुप्त हो गया। जो कुछ वच रहा था, उसने भी ओमा-खलीफाकी सेनाके उपद्रवस्थे कालकी गोदमें आध्रय लिया।

# वार्गामस् ।

साहित्यचर्चाकी उन्नतिके छिथे पार्गामस-राजाओंने टलेमीवंशीय राजाओंको पराङ्मुख किया था। टलेमी राजाओंको (Papyrus) कागजकी रपतनी वंद कर देने पर भी अहली (Pttali)के पुस्तकालयने जगत्में प्रधानता लाम की थी। जब वह पुस्तकालयने जगत्में प्रधानता लाम की थी। जब वह पुस्तकालार इजिप्टमें उठा कर लाया गया, उस समय उसमें प्रायः दो लाख प्रन्थ थे। स्वीडस (Suidas)-के वर्णनसे हम लोगको पता चलता है, कि ईसा-जन्मके २२१ वर्ष पहले महात्मा अन्तियोक (Antiochus the Great)-ने कालसिसवासी विख्यात वैयाकरण गुफोरियन (Euphorion of chalci-)-को अपने पुस्तकागारके प्रन्थरक्षकों नियुक्त किया था।

#### रोन ।

जातीय उन्नित और खाधीनताकी वृद्धिके साध साथ हम लोग सुसम्य रोमचासियोंकी साहित्यचर्याका कोई जेम्बर (Tzei, ने स्वलिजित टिप्पनीमें कालिमाक्य और इराटस्थेनिएके वचनसे सिरावियममें ४२००० और विक्यमें ४१००० ग्रन्थोंका निरेश किया है।

(६) Parthey आदि ऐतिहासिकराण इस बातका मीलि-कर्द स्वीकार नहीं करते !

<sup>(</sup>५) किंतु अलास-नेलियस्ने ७०००० और सेनेश (Seneca)-ने ४०००० ग्रन्थोंश उल्लेख किया है। Ritschi, Die Alexandrinischen Bibliothenken, 6.22

प्राचीन इतिहास नहीं पाते । वे लोग स्वभावतः ही कर्म-शील और रणकुशल थे । प्रवल रणिपासाके दुई म-स्रोतसे अर्थेलालसा और देश-जयकी आकाङ्क्षाने वृद्धि पाई थी, किन्तु विद्योन्नतिकी ओर उनका जरा भी लक्ष न था। १६७ ई॰में एमिलियस पलास (Emilius Paulus) माकिद्गेनियासे पार्सियस ( Perseus ) युद्धजयके चिह्न-सक्य वहुतसी पुस्तकं संग्रह कर लाये। यही रोमराज्यके प्रथम पुस्तकालयकी सृष्टि है। १४६ ई० सन्के पहले जव सिपियो (Scipio) कार्थेजको जय कर वहांके पुस्तकालयसे केवलमात मागोकी लिखी कृपिविपयक पुस्तकें अपने देशमें लाये और अपरापर प्रनथ अफ्रिकाके छोटे छोटे राजाओंको दान कर दिये, अ उसके वाद अपिल-कन-दि ताइयन ( Apellicon the Teian )-को परास्त कर ८६ ई०सन्के पहले सिला पथेन्ससेखदेशमें पुस्तका लय उडा लाये। लुकुलस् (Lucullus)ने ६७ ई०सन्के पहले पूर्वदेशको फतह कर स्वदेशके साहित्य-भाएडारमें वहुमूल्य प्रन्थादि अर्पण किये। सिसिरो और आदिकस्ने अनेक प्रन्थ संप्रह किये थे। टिरानियन (Tyrannion)-ने अपने पुस्तकागारमें तीस हजार प्रन्थींका संप्रह किया था।

सिसिरोने खयं टरेन्सस् भारोके पुस्तकालयका उल्लेख किया है। सिरिनस् सामोनिकस् (Serenus Sammonious)-ने ६२ हजार ग्रन्थ संग्रह किये। सीजर रोमराजधानीमें एक साधारण पुस्तकागार खोल गये हैं। यहां ग्रन्थरक्षक रूपमें रह कर ही भारोकी ग्रन्थरणा बलवती हुई थी। ग्रिनिने आविड पोलियो (Asinius Pollio)-को ही साधारण पुस्तकालयका आदि स्ष्टिकर्त्ता माना है। आवेण्टाइन (Mount Aventine) पर्वतके पद्गियम् लिवरटाटिस् (Atrium Libertatis) नामक स्थानमें वह पुस्तकालय स्थापित हुआ। इसके वाद सम्राट् अगष्टस्ते ३३ ई०सन्के पहले ओष्टे वियन और पैलटाइन नामक दो साधारण पुस्तकागार खोले। किन्तु दुर्देवक्रमसे दोनों ही यथाक्रम टाइटस् और कोनोडिवस्-राजके राजत्वकालमें जला दिये गये। सनन्तर टाइविरिवस्, भेस्पेसियन, भौमिटियन, हाज्रियन

आदि राजाओंने एक एक पुस्तकालय खोल कर देशका गौरव बढ़ाया।८

द्राजन फोराममें उलिपयस् द्राजनस ( Ulpius Trajanu॰)-ने जनसाधारणकी भलाईके लिये अपने नाम पर एक वड़ा (Imperial Library) पुस्तकालय खोला । पीछे वह डाइयोक्किसियन्के स्नानागार (Baths of Diocletian) में स्थानान्तरित हुआ। ४थी शताव्दीको रोमराजधानीमें प्रायः २८ साधारण-पुस्तकागार स्थापित हुए थे । केवल रोमनगरमें पुस्तकालय स्थापित कर नगरवासी और राजन्यवर्ग धन्य हुए थे, सो नहीं, तिवर ( Tibur ), कोसम ( Comum ), मिलान ( Milan ), आथेन्स ( Athens ), स्मिर्णा, पाद्रो ( Patrae ) और हासू-लेनियम् (Herculaneum) आदि स्थानोमें भी पुस्तका-गार स्थापन करके वे महायशस्त्री हुए हैं। उन सव प्रन्थागारोमें प्राचीर-संलग्न काठकी तख्ती पर हस्तिखिलत प्रन्थ और कोष्टीके जैसे कागजमें लिखित प्रन्थादि 🔊 छोड कर ख्यातनामा मनुष्यका चित्रपट, पत्थर और मट्टीकी मूर्त्ति ( Statue ) आदि सजी रहती थीं । पुस्तकालयकी वृद्धिके साथ हम लोग C. Hymenaeus, C. Julius Vestimus आदि कुछ महापिएडतोंको प्रन्थरक्षकतः कार्यमें नियुक्त देखते हैं। शिलालिपिमें उनका अक्षय नाम खुदा हुआ है।

## क्ष्वस्तान्तिनीपळ ।

सम्राट् कनस्तान्ताइनने वमफ्रास उपक्लमें राजधानी वसा कर पुस्तक संग्रहकी ओर विशेष ध्यान दिया। वे एकमाल खुष्टान धर्मसाहित्यके वड़े प्रेमी थे, इसीसे उन्होंने ६६०० प्रन्थ संग्रह किये थे। केवल यही सब प्रन्थ संग्रह करनेका दूसरा यह भी कारण था, कि डाइ-ओक्रिशियनने खुष्टधर्मसंकान्त अधिकांश पुस्तक नष्ट कर डार्ला थी। परवसी राजाओंके उद्यमसे पुस्तकालयकी वहुत कुछ तरकी हुई थी। ज्लियन और थियोडोसियस्के

<sup>(</sup>a) Phay, II N. Xviii 5. Vol. XIV. 61

<sup>(</sup>प) किसी विसी हा कहना है कि ६ठीं शतान्धीर्न पोप ग गरी-दि-ग्रेटके आदेशमें वह पुस्तकागार व्यंपप्राप्त हुआ ; किंतु गई निवान्त अमूलक है। (Ency Britt, Vol XIV, p. 511.)

विशेष उद्योगसे प्रायः एक लाख प्रनथ संग्रहीत हुए। जिल्यनकी सहायतासे निसिविस नगरमें भी एक पुस्त-कालय खोला गया था। १७९० ई०में सम्राट् जेनी (Emperor Zeno)के राजत्वकालमें कनस्तान्तिनीपल-का पुस्तकालय अग्निद्ग्ध होने पर भी जनसाधारणके आग्रहसे उसकी पुनः स्थापना हुई।

जव खृष्टभमें प्रसारके साथ साथ खृष्टान साहित्यका आदर वढ़ने छगा, तव सभी धर्मप्रन्थोंका रक्षा भार एकमाल गिर्जाधरके अधीन रहा । ३री शताब्दीमें जब जेरुसलेम नगरका भजनमन्दिर स्थापित हुआ, तव धर्मप्रन्थसम्बिलत एक पुस्तकालय उसके साथ जोड़ दिया गया, ईसा-धर्मप्रचारके अभिप्रायसे धीरे धीरे प्रत्येक गिर्जाधरमें वा प्राम्प्रश्जना-मन्दिरमें खृष्टधर्मप्रन्थके संप्रहक्ती व्यवस्था प्रवर्तित हुई थी । सिजारिया नगरमें पिर्फलस् (Pamphilus) और युसिवियस् (Eusebius) इस श्रेणीका एक विख्वात पुस्तकागार स्थापित कर गये और हिपी (Hippo) कि गिर्जामें सेएट अगष्टा-इनने अपना पुस्तकालय प्रदान किया।

उक्त राजधानीके वाइजाणित्यम् (Byzantium)
में उठ आनेसे साहित्यभण्डार उच्छृङ्खला हो गया।
वण्डाल, गथ आदि असभ्य जातियोंके उपर्युपरि आक्रमण
इरलीराज्य भी नष्ट प्राय हो गया। इस समय इरलीवासियोंके प्राण जोखिममें थे, इस कारण पूर्वतन विद्याजुराग और पुस्तकालयको रक्षा उनके हृदयसे विलक्कल
दूर हो गई थो। रोमक और प्रीक लोगोंके परस्पर प्रन्थसंप्रहमें विरक्त और खृदधर्मके पूर्ण प्राहुर्भावसे पिष्चमखण्डमें (Western Empire) घोर विष्लव उपस्थित
हुआ और प्राचीन युगका इतिहास इसी समयसे लुप्तप्राय होने लगा।

## मध्ययुग ।

पाश्चात्य-जगत्में साहित्यचर्चाका अवसाद होने पर-भी सुदूर फारसीराज्य (Gaul)-में पुस्तकालय-प्रतिष्ठा-का उद्यम घटा नहीं था। पाव्लियस् कन्सेरिट्यस्, टोना निसयस् फेरिओलस और थिओडोरिक राजमन्त्री कासि-योडोरस् के पुस्तकालयका उल्लेख मिलता है। अधी शतान्दीमें गथ जातिने भी उल्फिलससे सृष्ट्यमंका ममं

जान कर पुस्तकालय खोलनेकी और विशेष ध्यान दिया। कासिओडोरस् द्वारा स्थापित कालार्वियाके पुस्तकालय-में प्रन्थादिकी लिपि करनेके लिये खृष्टान संन्यासीगण नियुक्त होतेथे।

इस समयसे विद्याशिक्षा धीरे धीरे धर्ममन्दिरके अन्तर्भु क होती गई । विभिन्न दार्शनिक-सम्प्रदायके छोप होनेके कारण नाना स्थानींमें मठ स्थापित होने छगा। अतः उस समय धर्म और ईश्वरतस्य जाननेकी थोड़ी वहुत विद्याकी आछोचना होती थी।

यूरोपमहादेशसे ६ डीं और अवीं शताब्दोमें आयर छैएडमें विद्यानुराग विस्तृत हुआ और प्रन्थसंप्रहकी प्रथा भी
प्रचारित होती देखी गई। ७ डीं शताब्दोमें टाससवासी
थिओडर (Theodore of Tarsus रोमननगरीसे
कण्टर्बरी नगरमें अनेक पुस्तक छाये। इसके वाद आर्कविश्वप एगवर्ट अछकुइन, शार्छिमेन (Charlemagne),
छूपस शार्माटस्, सार्छिमेनके पुत छुई, गार्वर्ट और
पोप सिल्मेप्टर २य आदि महातमा द्वारा प्रतिष्ठित अनेक
पुस्तकाछयका उल्लेख देखनेमें आता है। चार्ल्स वि
विश्वक वाद अधी वा ५वीं शताब्दीमें एकमात मठमें ही
पुस्तकें संग्रह की जाती थीं। वेनिमिष्टाइन, अगिष्टिनयन
और डोमिनिकन आदि विशिष्ट सस्प्रदायोंने पुस्तकाछय
संगठनमें विशेष उदारता दिखाई थी। सेएट वेनिडिकके यत्नसे नवाधिष्ठित प्रत्येक मठमें धर्मसम्बन्धीय पुस्तक
संग्रहमें विशेष औदार्य देखा गया था।

पलूरी (Fleury), मेल्क (Melia), सेएट गाल (St. Gall), सेएट भीर (St. Maur), सेएट जेनिमाईमी (St. Genevieve), सेएट भिन्टर और सर रिचाई विटिटन-निर्मित श्रें फायर-सम्प्रदायका पुस्तकालय उल्लेख-योग्य है।

अलावा इसमे इटलिस्थ मोग्ट फेसिनो (Monte Cassino) का पुस्तकालय ६ठो शताव्दोसे नाना प्रकारका कप्ट फेलता हुआ आज भी विद्यमान हैं। १०वीं शताब्दोमें मुरातोरीने जो वोवियो (Bobbio) पुस्तकालयकी तालिका प्रकाशित की, वह अन्तमें मीलनके प्रश्लीसियन पुस्तकालयमें मिला दी गई।(६) पोम्पोसिया

<sup>(8)</sup> Autiq. Ital, Med, EVIII 817-24

पुस्तकागारको ११वीं शताब्दीकी एक तालिका पाई गई है। (१०)

फरासीराज्यमें पलूरी (Fleury), क्लूनी (Cluny), सेएट रिकार (St Requier) और कार्वी (Corbie) आदि स्थानीय मठोंमें अनेक पुस्तकोंका संग्रह था । पर-वर्ती समयमें १७६३ ई०को पलूरीकी पुस्तकावली ओर्लिन (Orleans) पुस्तकालयमें मिला दी गई। कवींका प्रत्य संग्रह भी इसी प्रकार १६३८ ई०को सेएट जर्मन देस-प्रे (St. Germain-aes Pres) नामक मठमें और १७६४ ई०को पारी नगरके जातीय-पुस्तकालय और पीछे आमेन (Amiens) पुस्तकागारमें मिल गया।

जमैन-देशस्थ फुल्हा (Fulda), कमें (Corvey), रिच्त् (Reichenau) और स्पनिहम (Sponheim) आदि मटा-गार ही प्रधान हैं। शार्लिमेन राजाके यत्तसे फुल्हा प्रतिष्ठित हुआ। एवट द्यामियसके अध्यक्षताकालमें यहां चार सी साधुसंन्यांसी प्रन्थादि नकलमें नियुक्त थे। वेसर नदीके किनारें जो कमें-पुस्तकालय था, वह १८११ ई०में मार्वर्ग विश्व-विद्यालयमें मिला दिया गया। रिचनी पुस्तकागार तीस वर्षव्यापी युद्ध (Thirty years' War) में भस्मीभूत हुआ। १५वीं शताब्दीमें जान द्रिधिम (John Tretherm) के उद्यमसे स्पनहाइमकी प्रन्थ-संख्याकी वृद्धि हुई। ८१६ ई०में प्रतिष्ठित सेएट गाल पुस्तकालय आज भी वर्त्तमान है।

इङ्गलैग्ड-राज्यों भी कग्टर्बरी, यक, वारमाउथ, ह्निट्वी, ग्लघोनवारि, कपलैग्ड, पिटरवरो और द्वाहम आदि स्थानों में इस प्रकारके पुस्तकालय थे। थियोडो और अगधाइन द्वारा प्रतिष्ठित कग्टर्बरी (Christ church) पुस्तकानगरका उल्लेख किया जा चुका है। ८६७ ई०में डेन्स (Danes) के आक्रमणसे वीरमाउथका प्रन्थागार नष्ठ हो गया था। क्रयलैंग्ड १०६१ ई०में जला दिया गया। ह्विटवी (१२वीं शताब्दी की), पीटरवी (१४वीं शताब्दी की) ग्लाधोनवारी और उरहमकी पुस्तकतालिका देखनेमें भाती है। एतिज्ञ साधुक्षक्षं पुस्तकतालिका देखनेमें

स्वरुप और भी अनेक पुस्तकतालिका आविष्कृत हुई हैं।(११)

अरवज्ञातिके अम्युद्य पर साहित्यरूपी आकाशमें मेघमाला दिखाई देने लगी। रणिपासु और राज्य-लोलुप विधर्मी अरवियोंने कभी भी ज्ञानोन्नतिका पृष्ट-पोषण नहीं किया, वरन् चिजातीय आक्रोश और युद्ध-विष्ठवसे सैंकड़ों वैदेशिक-श्रन्थ जला कर खाक कर दिये गये । राज्य-जयकी लालसा जन प्रशमित हुई तन खलीफा-राजाओंने ज्ञानोन्नति और विज्ञानचर्चाकी ओर विशेष ध्यान दिया । उनके राजत्वकालमें पारससे ले कर पश्चिम स्पेनराज्य तक और उत्तरी-अफ्रिकामें जगह जगह साहित्य और विज्ञानचर्चाके लिये विश्वविद्यालय और पुस्तकालय प्रतिष्ठित हुए थे। जव यूरोपकी पूर्वतन सभ्यता एक तरहसे विलुप्त हो गई थी, उस समय पूर्वमें वागदाद और पश्चिममें कडोंमा नगरने ही मुसलमानी अमलमें विद्याचर्चाका ऊ'चा स्थान पाया था। कायरी ( Cairo ) और तिपली ( Tripoli )-में भी पुस्तकालय थे। फतीमासम्प्रदायके (Fatimites in Africa) राजकीय पुस्तकालयमें प्रायः लाखसे अधिक प्रन्थों (Mss)-का संग्रह था। ओमियदों (Omayyds)-के संरक्षित स्पेन पुस्तकालयमें ६ लाख अन्ध थे, ऐसा सुना जाता है। अएडलुसिया ( Andalusia )में प्रायः ७० पुस्तकालय थे । अरववासी और तद्व शीय स्पेनदेशीय मूरंगण ईसाइयोंकी तरह अपने अंपने मतावलम्बी धर्म-प्रनथकी रक्षामें यत्नवान थे । धर्मपुस्तकके सिवा वे दूसरे दूसरे प्रन्थसंप्रह नहीं करते थे। इस कारण ६७८ ई॰में अलमनसोर ( Almanzor ) राजाने कडोंभा-के सुवहत् पुस्तकालयको तहस नंहस कर डाला।

<sup>(</sup>१0) DiariumItaliouns, chap, XXII

<sup>(</sup>११) Dr. Achery. Martene, Durand, Pez, आदि महोदय द्वारा चंग्रतीत पुस्तकालय स्थित और Naum ann, Petzholdt, The Rev. Joseph Hunter और Mr. Edwards आदिश प्रदाशित तालिका ही उसका प्रकाण है। इस्ति के स्थानिक स्थान

अंरवेंकी विद्योग्नित पर ईर्पान्वित हों वैजयन्ती-वासी ( Byzantine Empire ) ब्रोक लोगोंने भी साहित्यचर्चामें नवजीवन लाभ किया । दार्शनिक ल्यु ( Leo the Philosopher ) और कनस्तातिन पर्फिरो जेनिटस ( Constantine Porphyro genitus )-के उद्यासे कनस्तान्तिनोपलका पुस्तकालय पुनः उन्नत दशा को प्राप्त हुआ । पथस् और इजियनके मठागारमें नाना प्रन्थोंकी वह परिश्रमसे नकल की गई थी। १४५३ ई०में कनस्तान्तिनोपलका अधःपनन होने पर प्रोवियस् ( Stobaeus ), फोटियस् ( Photius ), और स्वीडस् ( Suidas ) आदि ग्रन्थकारोंके सङ्कलित सुप्राचीन ग्रन्थ इटली आदि पश्चिमवर्त्ता राज्योंमें फैल गये।

### नव्ययुग

१४वीं शतान्दीमें यरोपखएडमें साहित्यालोचनका पुनर्जन्मकाल (Renaiss ance Period) उपस्थित हुआ। १३७३ ई०में ५म चार्ल्सने ६१० अन्थ ले कर एक चिर-स्थायी पुस्तकागारका सूत्रपात किया। अर्छ आव वारविक १३१५ ई०में अपने पुस्तकालयको वोर्डेस्ली ( Bordesley Abbey )-में दान कर गये । इसके वाद -रिचार्ड अङ्गारमेल (Richard' Aungervyle of Bury, Edward ill's chancellor and ambassador )-ने आक्सफोर्डका उर्हम कालेज और पुस्तकालय खोला। १४३३ ई॰में:कसिमो डि मेडेसी (Cosimocde Medici) ने भिनिस नगरमें और पीछे फ्लोरेन्स ( Florence ) में मेडिसियन पुस्तकालय बोला था । १४३६ ई०में निकोलो निकोटी (Niccolo Niccoli)-ने इटलीमें सवसे पहले साधारण पुस्तकालयकी प्रतिष्ठा की। फेंड्-रिक (Duke of Urbino)के पुस्तकागारकी कथा उनके प्रथम प्र थरक्षक भेस्पोसियानो ( Vespasiano )-के वर्णनसे जानी जाती है।

पूर्वसाम्राज्य (Eastern Empire)-की राजधानी कनस्तान्तिनोपलके अभ्रःपतनके भयसे इंटलीकें राजाओं- के यत्नसे ग्रीक पिडतगण आल्पस् पर्यतके अपर पार- स्थित राज्योंमें जा कर रहने लगे। हाङ्गेरीराज मेथियस् किंवस (Mathias Corvinus)-के यत्नसे ५० हजार प्रन्थ संगृहीत हुए। किन्तु दुर्माग्यवशतः १५२७ ई०में

तुर्कोंके हाथंसे बुदा नगरंके पतन पर उक्त प्रन्थागारं समूल उन्मूलित हुआ था। आज भी उनका प्रन्थनिचय यरोपके किसी किसी पुस्तकालयकी शीभा बढ़ाता है।

वर्त्त मान युगके पुस्तकाळयका उल्लेख करनेम १७५३ ई०को अ'गरेज राज द्वारा स्थापित वृटिश म्युजियम ( British Museum )-को ही सबके पहले स्थान दिया जा सकता है। प्रन्थाधिक्यमें फरासीराजधानी पारी-नगरके विव्छिओथेक नेशनल (Bibliotheque Nationale)ने जगतमें ऊंचा स्थान तो पाया था, पर म्युजियम-की तरह सुप्रणालीवन्द पुस्तकालय और कहीं भी देखनेमें नहीं आता । अभी इस पुस्तकागारमें १५५०००० मुद्रित और ५०००० हस्तिलिखित प्रन्थ हैं । १८३७ ई०में सर एएटो-नियो पानिजी (Sir Antonio Panizzi)-के तत्त्वाव-धानसे तथा इङ्गलैण्डेश्वर (George II, III and IV) और तह शवासी महायुख्योंके उद्यमसे इसकी प्रन्थसंस्था वहुत वढ़ गई । भिन्नदेशोय ब्रन्थोंके मध्य यहां १२ हजार हिन्न, २७ हजार चीन, १३ हजार संस्कृत, और पाली आदि विभिन्न भाषामें (Oriental languages) मुद्रित पुस्तक ५ हजार हैं। १८७६ ई॰में संस्केत और पाली प्रनथकी तालिका प्रकाशित हुई। अभी लएडन महानगरीमें ६२ प्रधान और साधारण पुस्तकालय देखे जाते हैं 🖟 लएडन छोड़ कर प्रेट ब्रिटेन और आयर्लेएड राज्यके प्रधान प्रधान नगरमें प्रायः २८६ साधारण पुस्तकागार हैं। इनमें से पवार्डिन यु निवर्सिटी (६० हजार), वार्मिहम-फ्रि (१ लाख), केम्विज—द्रिनिटि कालेज ( ६२ हजार ) और केम्ब्रिज युनिवर्सिटी (२ लाख ६ हुजार ), डब्लिन—नेशनल (८५ हुजार ) और द्रिनेट कालेज ( १ लाख ६४ हजार ), एडिनवरा—एडमीकेट ( २ लाख ६८ हजार ) और ग्रुनिवर्सिटी (१ लाख ४२ हजार); ग्लासगो युनिवर्सिटी (१ लांख २५ हजार), लीडस-लीडस (८५ हजार ) और लीडस साधारण-ग्रन्थालय (१ लाख १० हजार), लएडन-लएडन (६० हजार ), पेटेएट आफिस (८० हजार) और युनिवसींटी (१ लाख), मेञ्चेष्टर-फ्री पवलिक (८५ हजार), आक्स-फोर्ड-चोडलियन ( ४ लाख ३० हजार ), सेएट-पड्रुज युनिवसिदी (६० हजार) आदि प्रन्थालयोंकी न्यूना-धिक पुस्तक संख्या वी गई।

फरासीराज्यमें जगत्का सवप्रधान पुस्तकागार अव-स्धित है। पारीनगरके विन्छियोथिक नेशनछ नामक पुस्तकालयमें २२६०००० पुस्तक और प्रायः ६२ हजार हस्तिलिखित ब्रन्थ १८८० ई०के पहेले विद्यमान थे। पर-वर्त्तीकालमें इसमें और भी कितने प्रन्थ मिळा दिये गये। पुस्तक भिन्न यहां प्रायः १ लाख ४४ हजार मुदापदक आंदि और २२ लाख खोदित चित्र (Engravings) विद्यमान हैं। फरासीके राजन्यवर्ग और ख्यातनामा विद्वजनके ऐकान्तिक यत्नसे इस जातिके पुस्तकागारकी पेसी उन्नति हुई थी। अनुसन्धित्सु लेखकोंने शालि-मेन और चार्ल्स दि-वोव्डके संगृहोत प्रन्थींमें इस पुस्त-कालयका उल्लेख पाया है। वहुत गोलमालके बाद राजा जान ( King John, the Black-Prince's Captive )-के राजत्वकालमें विन्लिओधेक डु-राय ( Bibliotheque du Roi) नामसे इस विद्यामन्दिरकी प्रकृत ऐतिहासिक भित्ति स्थापित हुई। विख्यात फरासी विप्रव (The French Revolution )-के बाद जातीय एकतावद्ध फरासियोंने इस प्रन्थालयकी उन्नति की और ध्यान दिया । इस कारण राष्ट्रविष्ठव जातीय विद्यामन्दिर-का उत्कर्ष साधक हुआ था, इसमें सन्दें ह नहीं। इसी समयसे इसका "Bibeiotheque Nationale" नाम पड़ा था(१२) । प्रजातन्त्रके पृष्ठपोषक और रणकेशरी नेपोलि-यनके अभ्यत्थान पर तथा उनकी बदान्यतासे इस पुस्तकालयको विशेष श्रीवृद्धि देखी गई थी। उन्हींने अपने वाहुवलसे वर्लिन, हनीमर फ्लोरेन्स, भेनिस, रोम, हेग आदि प्रधान प्रधान नगरींसे पुस्तकालय उठा कर इसमें जोड़ दिया। केवल फरासी राजधानी ही पेसे विद्यानुशीलनका आदर्शस्थल थी, सो नहीं, प्रत्येक फरासी-प्रदेशमें (Provinces) ऐसी विद्योन्नतिका निदर्शन पाया जाता है। जातीय-पुस्तकागार छोड़ कर पारी नगरमें और भी १४ साधारण पुस्तकालय हैं जिनमें

Vol. XIV. 62

से B. de l'Arsenal (२ लाख ६ हजार-), B. de l'Institut (१ लाख), Mazarine (१२ लाख), B. Sainte, Genevieve (१ लाख २३ हजार) और B. de l'University (१ लाख २६ हजार) तथा दूसरें इसरेंमें अपेक्षाइत अल्पसंख्यक प्रन्थ हैं। सारे फरासी-राज्यमें जो ७० विख्यात पुस्तकागार हैं, उनमें और भी १० लाख से ऊपर प्रन्थोंका संग्रह है।

जर्मन-साम्राज्यमें भी पुस्तकालयका अभाव नहीं है। १८७५ ई॰में एक वार्लिन नगरमें ही ७२ पुस्तकालयोंकी रजिस्द्री की गई थी। १६६१ ई०में जर्मनराज फोडरिक-विलियम द्वारा प्रतिष्ठित राजकीय पुस्तकालय ही ( K nigliche Bibliathck ) सबसे वड़ा है। इसमें ७ लाख ५० हजार हाथकी लिखी पुस्तकें मौजूदं हैं। जर्मन राज्य-में विद्योन्नतिका जैसा पूर्णप्रभाव है, उससे यदि वहां लाखीं पुस्तकालयका होना सावित हो, तो आश्चर्यं ही पया! संस्कृत शास्त्रप्रनथादिकी आलोचनामें जर्मनदेशने संसारमें ऊँचा स्थान पाया है। विद्योनमादसे उद्धासित जर्मनोंने नगर नगरमें लक्षाधिकप्रन्थयुक्त पुस्तकालय खोल कर जनसाधारणमें अच्छा नामक माया है और वे अपने देशका 'शर्मण्य' देश नाम रखनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। अगसवर्ग (१ छाख ५१ हजार), वार्लिन युनिवर्सिटी (२ लाख १ हजार), वन (२ लाख ५१ हजार). ब्रेमेन (१ लाख), बेस्लू-युनिवर्सिटी (३ लाख ५४ हजार), और विब्छियोधिक (२ लाख २ हजार), कार्लभ्रु (१) लाख ३६ हजार ), कासेल (१ लाख ६७ हजार ), डार्म-ष्टम ( ५ लाख ३ हजार ), डेसडेन (३ लाख ५७ हजार ), आर्छाञ्जेन (१ लाख ४६ हजार), फाङ्क्फोर्ट (१ लाख ५० हजार ), फ्राइवर्ग ( २ लाख ७१ हजार ), गिसेन ( १ लास ६२ हजार ), गीथा (२ लाख ५१ हजार ), गटि-ञ्जन (४ लाख ५ इजार), ग्रीफस्वाल्ड (१ लाक २१ हजार ), हे्लि (२ लाख २० हजार ), हम्वार्ग (३ लाख ५६ हजार, हनोभर १ लाख ७४ हजार), हेडेलवर्ग (३ लाल ५ हजार ), जेना (१ लाल ८० हजार ), कापल (१ लाख ८२ हजार), कोनिग्सवर्ग (१ लाख ८४ हजार ), लिपसिक ्विब्लिओथिक (१ लाख २ हजार ); और युनिवसिटी (५ लास ४ हजार ), खुबेक (१००२५०),

<sup>(</sup>१२) इस सुबृहत पुस्तकालयकी पुस्तकत लिका नहीं हैं। पहले जो छापी गई थी, उसके पथाद्वागर्में नृतन ग्रन्थ की नालिका संथोजित कर रखी गई हैं। १८०० और १८५४ ई॰में गहांकी संस्कृत और पाली ग्रन्थकी तालिका सुदित और प्रकाशित हुई।

मेहिज्जेन (१ लाख २ हजार), मेख (१ लाख ५२ हजार ), मार्चग , (१ लाख ४० हजार) मेनिजन ( १ लाख ६० हजार ), म्युनिचविब्छिओधिक ( १ लाख २६ हजार), और यूनिवर्सिटी (३ लाख २५ हजार ), मुनएर (१ लाख २८ हजार), ओल्डेन्बर्ग (१ लाख), रस्टक (१ लाख ४१ हजार), स्टसवर्ग (५ लाख १३ हजार ) स्टाट्गार्ट ( ४ लाख २६ हजार ), ध्टुविञ्जेन (२ लाख ३८ हजार), वाइमर (१ लाख ८२ हजार), वाइसबेडेन ( लाखसे ऊपर ), उलफेन्बुटल (३ लाख १० हजार ), ऊर्जवर्ग (३ लाख २ हजार ), और अष्ट्रिया हङ्गरो तथा सीजर्लेंख्ड मिला कर लाखसे ऊपर, प्रन्थ-युक्त और भी अनेक पुस्तकालय देखे जाते हैं। इनमेंसे बुदापेस्त महानगरीमें जो पुस्तकालय प्रतिष्ठित हैं उसमें <sub>8</sub> लाख पुस्तक और ६३ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं। किन्तु आज चालिस वर्षोंसे उन सव प्रन्था-लय्में और भी कितनो नई प्रकाशित पुस्तकें तथा प्रन्थ संगृहोत हुए हैं उसका ठीक ठीक पता नहीं चलता ।

ससराजधानी सेएटपिटर्सवर्ग नगरमें जगत्का श्रेष्ठ
तृतीय पुस्तकागार अवस्थित है। यहांकी इम्पिरियलपविक लाइब्रेरीमें १० लाख मुद्रित और २६ हजार हस्तलिखित पुस्तक, २० हजार मानश्वित, ७५ हजार फोटोचित
४२ हजार ओटोय्राफ और प्राया ५ हजार सनद संगृहीत
हैं। अलावा इसके डर्पाट (१ लाख ४४ हजार), हेलसिफर (१ लाख ४० हजार), काइफ (१ लाख १०
हजार), मोस्कोगालिट्जिन म्युजियम (३ लाख ५ हजार),
और युनिवर्सिटी (१ लाख ५० हजार), सेएटिएटर्सवर्गसाईन्स एकाडमी (१ लाख ५० हजार) और युनिवर्सिटी
(१ लाख ३६ हजार) आदि पुस्तकालयोंकी प्रन्थसंख्या
आजसे २० वर्ष पहलेकी तालिका देख कर लिखी गई है।
अभी और भी कितनी वृद्धि हुई होगी मालूम नहीं।

फरासी (७१), जर्मन (६७), आध्रृया-हङ्गरी (५६), स्त्रीजलैंग्ड (१८), इटाली (७४), हालैग्ड (६), डेन्मार्क (४), आइसलैग्ड (२), नारवे (३), स्त्रीडेन (३), स्पेन (१६), पुर्तगाल (६), ग्रीस (२), स्रिया (१३), आदि यूरोपीय राज्यमें; इजिस (१), आध्रृतिया (५), चृटिश्यायना (१), क्रनाडा (४),

जामेका (१), मुरिसस् (१), न्युजीलैएड (२), दिक्षण अफिका (४) और तासमानिया आदि अंगरेजी उपनिवेशमें (२), समेरिकाके युक्तराज्यमें (८३), तथा दिक्षण अमेरिकाके आर्जेएटाइन रिपिन्डिक (३), ब्रेजिल (१), चीली (१), मेक्सिको (५), निकादरगीआ (१), पेक (१), वारगुई (१), और भेनिज्जपला (१)। उपरोक्त राज्योंके साधारण पुस्तकालयकी जो संख्या निर्दिष्ट हुई, कालप्रभावसे उनका यथेए परिवर्त्तन हो गया है तथा और भी कितने नये पुस्तकागार प्रतिष्ठित हुए हैं जिनका प्रकृत तत्त्व मालूम नहीं रहनेके कारण पूर्वीलिंग वेशस्थित पुस्तकालयोंके नाम और पुस्तक तालिका नहीं दी गई।

वर्त्तमानकालमें उक्त देशोंके सर्वप्रधान पुस्तकालयकी ग्रन्थसंख्या इस प्रकार है— ..

Manager and a second control of the second	•	
देश	नगर	संख्या
<b>खीजलैं</b> ण्ड	वासेळ	१ लाख ३४ हजार
इटाली	फ्रोरेन्स	४ , ७५ हजार -
हालेण्ड	दि-हेग	ર "8 "
डेन्माक	कोपेनहेगेन	eq 55 E 5
आइस् <b>लै</b> ण्ड	रेक्जविक्	£0 "
नारवे	खृष्टियाना	ર "ફુંુ "
स्वीडेन	ष्ट्रकहलम्	২ "ঙে "
स्पेन	माडिड्	8 26 2
पुर्त्तगाल	लिसवन	ર " १૦ "
जेत्याः ग्रीस	आर्थेन्स	8 " edg "
इजि <b>प्त</b>	कायोरा	80 ,,
अप्ट्रे लिया अप्ट्रे लिया	मेलवोण	8 - 11 88 s
गायना	जार्जेटाउन	
कनाडा	अद्येषा	१ लाज
मारिसस	लुश्वन्दर	१० हजार
न्युजिलेण्ड	ओयेलि ट	१० हजार
केपकलोनी .	केपटाउन	३६ हजार
तासमानिया	होवार्रदा	उन ६ हजार
गुनाइटेड <b>प्टे</b> ट	बोएन	४ छाख
3.114	वार्षिहर	् ४ लाख २७ हजार
आर्जेस्टाइन रिप	<b>ब्युनी</b> स्	रिज ४० इजार
414. 2		1

व्रेजिल राइयोजेनिरी १ लाख २१ हजार चीछी सेप्टियागो ६५ हजार मेक्सिको मेक्सिको १ लाख पेरु िसमा ३५ हजार निकारगोआ मेनागोआ १५ हजार उरुगुई मिर्धिमडो १७ हजार **मेनिजिउला** २६ हजार काराकाश

पहले हो लिखा जा चुका है, कि वाविलोनोय राज्यमें विद्याको अच्छो आलोचना होती थी, किन्तु प्रप्राणाभाव- से उसका कोई विवरण नहीं दिया गया। सम्प्रति उक्त राज्यके निष्पुरनगरमें जगत्का सर्वश्रेष्ठ और खुप्राचीन पुस्तकालय आविष्कृत हुआ है जिसमें डेढ़ लाखसे ऊपर फलक पाये गये हैं। इनमेंसे जिन सत्तरह हजार फलकों का पाठोद्धार हुआ है, उन्हें पढ़नेसे मालूम होता है, कि फलकोंमें इतिहास, शब्दविद्या, साहित्य, पुराण, व्याकरण अभिधान, विज्ञान और गणितशास्त्र लिखे हुए हैं। उनमेंसमी ईसा जनमके २२८० वर्ष पहलेके लिखे हुए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है। सम्भवतः उन सवका उद्धार हो जानेसे प्राचीन हिन्दूगौरवका निद्र्शन पाया जायगा।

भारत, चीन और जापान राज्यमें जगह जगह पुस्त-काल्य प्रतिष्ठित हैं। चीन-साम्राज्यमें ईसा जन्मके वहुत वर्ष पहले पुस्तकादि लिखनेकी प्रथा प्रचलित थी।

#### भारत।

पहले ही कहा गया है, कि भारतवासी सभी दिनोंसे पुस्तकका आदर करते आये हैं। पुस्तकको यदि उनका उपास्य-देवता कहें, तो अत्युक्ति नहीं। आज भी भारतके नाना स्थानोंमें किसी किसो प्रत्थकी नित्य पूजा हुआ करती है। माधके महीनेमें सरखती-पूजाके दिन गृहस्थ-मात हो अपने संगृहीत प्रन्थोंकी देवी सरखतीक्पमें पूजा किया करते हैं।

पहलेसे ही भारतीय मठ वा धर्ममन्दिरमें नाना प्रन्थ संगृहीत और रक्षित होते थे । नालन्दाकी प्रन्थकुटीको कथा ऊपरमें लिखी जा चुकी है। नालन्दाके निकटवत्तीं ओदन्तपुरी नामक स्थानमें (वत्तमान विहारमें) पाल-राजाओंके समय हजारों वौद्धप्रन्थ संगृहीत थे। मिनहुज- को तवकात-इ-नासिरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि
महश्मद-इ-वखितयारने जब बिहार पर आक्रमण किया,
उस समय भी यहां वौद्धोंका विश्वविद्यालय और वहुसंख्यक श्रमणोंका वास था। उस विश्वविद्यालयमें
हजारों प्रन्थ देख कर मुसलमान लोग चमत्कृत हुए थे।
उन्होंने सभी प्रन्थोंका मर्म जाननेके लिये किसी पिएडतको बुला भेजा, पर उसके पहले ही मुसलमानोंके कराल
हपाणसे समी श्रमणगण यमपुर भेज दिये गये थे।

मुसलमानी आक्रमणसे विहारका वह अमूल्य वौद्ध-यन्थालय बिलुस हो गया था। मुसलमानोंके कराल याससे जो वच गये थे उनमेंसे कोई कोई प्राणतुल्य धर्म-यन्थ ले कर नेपालको भाग गये। आज मो नेपालसे वे सव प्राचोन यन्थ वाहर होते हो।

केवल महत्मद-इ-विद्यारके आक्रमणसे ही नहीं, दूसरे दूसरे मुसलमानोंके उपयुंपरि आक्रमणसे कितने अमृत्य अन्थालय विध्वस्त हुए हैं, उसको इयत्ता नहों। तारीख-इ-फिरिस्ता पढ़नेसे मालूम होता है, कि फिरोज-तुगलकने जब नगरकोट पर आक्रमण किया, उस समय ज्वालामुखोंके मन्दिरमें एक उत्कृष्ट अन्थकुटो थी। उस कुटीमें फिरोजने १३०० हिन्दूअन्थ पाये थे जिनमेंसे उन्होंने दर्शन, ज्योतिय और जातक-सम्बन्धीय किसी किसी अन्थका पारसीमें अनुवाद कराया था।

तुजुक् इ-वावरी नामक मुसलमानी इतिहासमें लिखा है, कि सम्राट् वावर गाजी खाँकी प्रन्थकुटीमें वहुसंख्यक धर्मतत्त्व-सम्बन्धीय प्रन्थ देख कर विमोहित हुए थे।

आईन-इ-अकवरीमें लिखा है, कि अकवर वादशाहके भी एक वृहत् पुस्तकालय था। वह पुस्तकालय सात खएडोंमें विभक्त था जो फिर गद्य, पद्य, हिन्दी, पारसी, श्रीक, काश्मीरो, अरवी इत्यादि पृथक् खएडोंमें सज्जित रहते थे।

अकवरने जिस प्रकार विभिन्न भाषाके प्रत्थोंका पारसी-में अनुवाद करा कर प्रत्थालयकी शोभा वढ़ाई थी, टीपू सुलतान भी उसी प्रकार नाना देशोंसे अमूल्य पारसी प्रत्योंका संग्रह कर अपने पुस्तकालयमें रख गये। उनके अग्रःपतनके वाद वे सब अमूल्य प्रत्थ वृटिशंगवर्मेण्टके हाथ लगे हैं। उनमेंसे अनेक प्रन्थ आज भी कलकत्ते-की पशियाटिक सोसाइटीमें देखे जाते हैं। आधुनिक कालमं हिन्दू राजाओं के मध्य जो संस्कृत पुस्तकोंका संग्रह कर चिरस्मरणीय हुए हैं, उनमें से तओरराज शरमोजी और नेपाल-राजका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। सुना जाता है, कि १७वीं शताब्दीसे तओरराजने प्रन्थसं ग्रहमें वड़ी चेप्रा की थी। शरमोजी-के समय उनके पुस्तकाल्यमें २५ हजारसे अधिक हस्त-लिखित प्रन्थ मीजूद थे। आज भी तओरराज़के पुस्तकाल्यमें अठारह हजारसे ऊपर हस्तलिखित संस्कृत प्रन्थ विद्यमान हैं। वे सब प्रन्थ देवनागरी, नन्दिनागरी, कणाड़ी, तैलङ्गी, उड़िया आदि ताना अक्षरोंमें लिखे हुए हैं। इस प्रकारके बहुसं एपक ग्रन्थ भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं हैं।

नेपाल ।—नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें प्रायः ८ हजार हस्तिलिखित प्रन्थ संगृहीत हैं तथा आज भी संग्रहकार्य चल रहा है। इस पुस्तकालयमें ५वीं और ६ठीं शताव्हीं के लिखे हुए हस्तिलिए विद्यमान हैं। ऐसे सुप्राचीन तथा संस्कृत वौद्ध-प्रन्थ और कहीं भी देखनेमें नहीं आते।\*

काश्मीर ।—काश्मीरके पुस्तकालयमें भी नाना भाषा-में लिखित प्रायः दश हजारसे ऊपर ग्रन्थ हैं जिनमेंसे कुछ दुष्प्राप्य संस्कृत ग्रन्थ भी हैं। ऐसे मूल्यवान् ग्रन्थ और कहीं भी नहीं मिलते।(१)

राजप्ताना ।—राजप्तानेके सामन्तराजाओंके घरमें भी बहुस ख्यक प्रन्थोंका संप्रह है। इनमेंसे जयपुर, मेचार, अळवार, वीकानेर, जसलमोर, कोटा, वृंदो और इन्दोरका पुस्तकालय उज्लेखयोग्य है।

युक्तप्रदेश । युक्तप्रदेशके मध्य काशीधाप्रमें हो सबसे अधिक संस्कृत प्रन्योंका संप्रह देखा जाता है। काशीधामका गवर्मेण्ड संस्कृत कालेज, काशीराजका पुस्तकालय और कवि हरिश्चन्द्रका पुस्तकालय उल्लेख-वोग्य है।

वम्बईप्रदेशी—चम्बई प्रदेशमें अहमदावाद, पारत. काम्बे, सूरत, पूना, नासिक, कोव्हापुर, भरोच आदि नाना स्थानोंमें हस्तिलिखित प्रन्थोंको प्रन्यकुरी है। उन सव पुस्तकालयके मध्य अहमदावाद, पाटन और काम्बे शहरमें बहुतसे ज़ैन-पुस्तकालय देखे जाते हैं। जैनयतियी-ने तीर्थभ्रमणकालमें जहां जहां विश्राम किया था, उसे जैन लोग उपाश्रय कहते हैं। ऐसे उपाश्रयमें जैन-धर्म-प्रन्थ वड़े यहासे रखे हुए हैं। गुजरातको पाचीन राज-धानी पाटन-शहरमें इस प्रकारके ११ और अहमदावादमें ६ उपाश्रय हैं। पाटनके पोफलियानोपाड़ोके उपाश्रममें तीन हजारसे उपर और हेमचन्द्रभएडारमें प्रायः चार हजार सुप्राचीन हस्तिलिपि हैं। इन दो उपाश्रयसे १६वीं शतान्दीमें लिखित तालपत्नकी पुस्तक वाहर हुई है। हेम-चन्ड्रभएडारमें सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रकी लिखी पुस्तक देखनेमें आती है।(३) पूनाके विश्राम-आवास संस्कृत-पाठशालामें पेशवाओं द्वारा संगृहीत अनेक प्रन्थ देखे जाते हैं।

मन्दार। —कालिकटमें यहांका सामरी-राजपुस्त-कालय उक्लेखयोभ्य है। यहां संस्कृत और दाक्षिणात्य-की नाना भाषामें लिखित वहुत-सी हस्तिलिपियां पाई जाती हैं।

े हिंदुर। — महिसुरराज द्वारा प्रतिष्ठित सरस्ती-भएडारमें प्रायः ५ इजारसे ऊपर इस्तिलिखित प्रन्थ संगृहीत हुए हैं। महिसुरके अन्तर्गत श्रङ्गे रिके श्रङ्का-चार्य-सामीमठमें भी हजारों संस्कृत पोथियां हैं।

तक्कोर ।—तञ्जोर-राजपुस्तकालयकी कथा पहले ही लिखी जा चुकी है। प्रतिद्वित्व तञ्जोर-जिलेमें गङ्गाधरपुर, गोविन्दपुर, कुम्मघोणम्, महारपुर, वेदारण्य, नागपहन

<sup>\*</sup> अभी नेपालसे ६ठीं और ज्यों शतान्सीये जिल्लित संस्कृत तान्त्रिक यन्ध कंगाल-गवभेष्यने संप्रह किये हैं। Vide M. M. Haraprasad Sashiri's Catalogus of Darbar Library, Nepal.

<sup>(2)</sup> Dr. Buhler's Reports. 1877; Dr. Stein's Cataligue of Sauskrit Mas 2224 1

<sup>(</sup>२) युक्तप्रदेशमें गवर्भेष्टिके आवेश्वये विवहत देवीप्रवादने जो संस्कृत ग्रंथोंकी तालिका प्रकाशित की है, उसमें इस अञ्चलको बहुसंक्षक छोटे छोटे पुस्तकानगीका सन्धान पाया जाता है।

<sup>(3)</sup> Dr. Bubler, Dr. Peterson, Dr. Bhandarkar आदि द्वारा अकारित संस्कृत पुस्तक दिवनणी तस्कृत !

आदि नाना स्थानींमें छोटी छोटी प्रन्थ कुटियां देखी जातों हैं। इनमेंसे पुदुकोटका राजपुस्तकालय उल्लेख-योग्य हैं।

त्रिवांक्रइ ।—तिवांक्रइ-महाराजके पुस्तकालयमें भी कई हजार हस्तलिपियां देखी जाती हैं । उपरोक्त स्थान छोड़ कर काम्यनीका मन्दिर, मदुरा जिलेका शिवगङ्गा और रामनाथमर, विशाखपत्तन जिलेमें विजयनगराधिपका पुस्तकालय और वोविलीका राजपुस्तकालय, दक्षिण-आर्करका चिद्म्यर, कोयम्यरत्रका कुमारलिङ्ग और राजपुस्तकालय उल्लेखयोग्य है। (8)

वंगाल बदेश । — कलकत्तेकी पशियादिक सोसाइटी और वहां रक्षित बङ्गाल-गवर्में एटका संस्कृत पुस्तकालय, कलकत्तेका संस्कृत कालेज, राजाराधाकान्तदेवका पुस्तकालय, महाराज यतीन्द्रमोहनटाकुरका पुस्तकालय उल्लेखयोग्य है। पशियादिक-सोसाइटी और तत्संलिप्त बङ्गाल-गवर्मेएटको संगृहीत संस्कृत हस्तलिपि प्रायः ८ हजारसे अधिक हैं और पारसी प्रन्यकी संख्या भी प्रायः ८ हजार होगी। संस्कृत कालेजमें प्रायः ४ हजार हस्तलिपि हैं।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें प्रन्थोंका संप्रह रहने पर भी प्रधान प्रधान दो एक राजपुस्तकालय छोड़ कर और किसी भी पुस्तकालयकी तालिका नहीं मिलती। इसीसे आजुमानिक प्रन्थ-संख्या नहीं लिखी गई।

वङ्गाळके नाना स्थानोंमें अङ्गरेज-आगमनके वहुत पहलेके वहुसंख्यक वङ्गमाषामें लिखित ग्रन्थ देखे जाते हैं। एक मात विश्वकोष-कार्यालयमें ही हजारसे अपर बङ्गमाषामें लिखित पुस्तकोंका संग्रह है।

वर्तमान मुद्रित ग्रन्थके पुस्तकालयमें वड़ोदाके गायकथाड़का पुस्तकालय और कलकत्तेकी इम्पीरियल लाइनेरी सबसे वड़ी हैं। इन दो स्थानोंमें सभी प्रकारके जितने ग्रन्थ हैं, उनकी संस्था ५० हजारसे ऊपर हो सकती हैं, कम नहीं।

Vol. XIV. 63

कलकत्तेका इम्पिरियल लाइब्रेरी, वम्बर्रकी स्याल (Royal) एशियाटिक-सीसाइटी, प्रसिडेन्सी कालेज, संस्कृत कालेज, ढाकेका नार्धब्रुक हाल, कोचविहारका राजपुस्तकालय, लिपुरा महाराजकी स्थापित लाइब्रेरी, जयपुरका राजपुस्तकालय, काशीकी कालेज लाइब्रेरी और पूनाके डेक्कान कालेजकी लाइब्रेरी ही उल्लेखयोग्य है। उन सव पुस्तकालयमें हजारों मुद्रित प्रन्थ हैं।

## पुरतकरक्षाकी व्यवस्था ।

साधारण पुस्तकागार कैसा होनेसे सर्वोका सुविधा-जनक हो सकता है, इस विपयमें परिचालक समितिका लक्ष्य रखना उचित है। प्रत्येक पुस्तकालयमें पाठागार ( Reading rooms ), अन्यगृह ( Book-rooms ), कर्मगृह (Work-room ) और दफ्तरखाना (Office) आदिका रहना आवश्यक है। पाठगृहका आयतन अपेक्षाकृत वडा होना चाहिये। जिससे अनेक आदमी पक साथ पढ़ सकें, इसके लिये मेज ( Table ) और कुसीं (Chair) घरको सज्जित रखना उचित है। खदेश और मिन्नदेशीय खनामधन्य पुरुषके चित्र (Paintings), प्रतिकृति (Bust of statue) आदि द्वारा घरकी शोभा वढ़ानी चाहिये । कारण, उन्हें देख कर कोमल हृदय मानवमालको ही "महाजनगत पन्था"को आकांक्षा उत्पन्न हो सकती है। सभी घरोंको कुछ गरम रखना जरूरी है। मेज अथवा वाहरकी ठंढसे पुस्तकालयकी विशेष क्षति होनेकी सभावना है। उंढ लगनेसे से क्ष्म, अल-मारी, बुककेश, आदिमें घुन (White-ants) छग सकता है। वाहरकी ठंढ़से पुस्तकादिमें एक प्रकारका कीडा उत्पन्न होता है जो पुस्तकको काट कर विलक्कल वरवाद कर देता है। इन सब क्षयकारी कीटींके काटनेसे पुस्तक-को बचानेके लिये घरमें ताप देना आवश्यक है। द्यीम, सनलाइरंगेस (Sunlight System) वा वेनहेम (Ben-( ham light ) प्रकाश द्वारा घरकी वायु उत्तप्त रखनी चाहिये। वर्त्तमान वैद्युतिक प्रकाश भी पुस्तककी रक्षा-में विशेष उपकारी है। एतन्त्रिन्न प्रत्येक प्रन्थमें नोमके पत्ते, नेपथालिन वा तार्पिन दे कर रखनेसे कुछ समय तकके लिये कोटदंशनसे उस की रक्षाकी जा सकती है। काष्ट्रनिर्मित अलमारी, सेल्फ, बुककेश आदिके वद्लेमें

<sup>(8)</sup> दासिणात्यके नाना स्थानों में डोटे बंदे संस्कृत पुस्त-कालक हैं। Dr. Oppert's Catalogue of the Sanskrit Mss in Southern India नीर Dr. Hultzch's Reports of the Sanskrit Mss, दशस्य।

कर्छद्दार छोहे (Galvanized iron) आदि धातु वा श्लेट-निर्मित सेल्फ ही पुस्तकरक्षाका विशेष उपकारी माना गया है।(१) कारण, उसमें घुन लगनेकी सम्मावना नहीं रहती। रैंक (Back) अथवा सेल्फमें पुस्तककी सजा कर रखनेसे भी सर्वदा सतर्क रहना उचित है नाकि धूल पड़ कर वह नप्ट न हो जाय। अलमारी, दराज अथवा ग्लासकेशमें भी प्रन्थादिको सजा कर रख सकते हैं, पर वहुतेरे इसे पसन्द नहीं करते। कांचमें आवद्ध रहनेसे सम्भव है, कि गरमोके मारे कागज खराव हो सकता है और काठ अथवा किसी प्रकारके अखच्छ आच्छादनसे उसका सम्मुख द्वार आवद्ध रहनेके कारण पुस्तक-निर्वाचनमें जनसाधारणको असुविधा होती है।

यदि किसी पाठकको कोई एक ग्रन्थ देखना हो, तो पहले उस पुस्तकके श्रेणीगत नम्बर और प्रन्थकारका नाम् वतला कर प्रन्थरक्षकमे वह पुस्तक मांगे। प्रन्थरक्षक भी पुस्तकतालिका देख कर साङ्के तिक चिह्नानुमार पहले सेर्टफिनवांचन करे। पीछे नियमानुकमसे सिज्जित ग्रन्थ वाहर निकाल कर प्रार्थींके हाथमें दे दे। किन्तु वह प्रन्थ पुस्तकालयमें सन्निवेशित है वा नहीं, उसे जाननेका पहले कोई सहज उपाय नहीं था । इसमें पाठक और पुस्तक-रक्षक दोनोंका ही वहुत समय नष्ट हो जाया करता था। पीछे 'इण्डिकेटर' (Indicator)-प्रथाका उद्भावन हो , जानेसे पुस्तक-निर्वाचनमें वड़ी सुविधा हो गई है। मि० मार्गेल (वर्मि हमइरिडकेटर), मि॰ इलियट, मि॰ राइट और मि॰ कटग्रीभ-प्रवर्त्तित प्रथाका अवलम्बन करनेसे सभी आदमी यह काम कर सकते हैं। प्रन्थरक्षकोंको सुविधाके लिये मि॰ पार ( Mr. G. Parr )-प्रवर्तित, कार्डलेजर ( Card-ledger ) प्रशस्त है।

इसके बाद पुस्तककी चंधाई है। जितनी ही उत्कृष्ट वंधाई होगी, ब्रन्थ भी उतने ही दिन तक स्थायी होगा। अच्छी बंधाई करनेमें यह निश्चय है, खर्च अधिक पड़ेगा, पर अभीका अधिक व्यय भविष्यमें थोडा दिखाई पड़ेगा । कारण, उसे दूसरी वार बंघानेकी जरूरत नहीं होगी । मोरोक्को ( Morocco ) चमड से पुस्तक बंधाना सर्वाङ्गसुन्दर और दीर्घस्थायी होता है। जलवायुका उत्ताप और गैसका प्रकाश मोरोक्को चमड़े की विशेष क्षति नहीं कर सकता । भेलम (Vllum) परिष्कृत बछड्रेका चमड़ा सबसे दूढ् और दीर्घकाल स्थायी है । किन्तु सव प्रकारके कामोंमें वह उतना उपयोगी नहीं है। पर्यायक्रमसे कफ, इसिया,वेसिल, रोयन, वुकरम, सूती कपड़े, लिनोलियम, क्रोटोन और कागजादि द्वारा पुस्तक वंधाई जा सकतो है। किन्तु उन-का स्थायित्वकाल भी उसी प्रकार पर्यायानुयायी जानना चाहिये। रंगका विचार करके देखनेसे नील और सन्ज, लाल, काला, ओलीम और ब्राउन वर्ण ही प्रशस्त है । एक पुस्तकके सभी खएड ( volumes ) एक वर्णके होने चाहिये, ऐसा होनेसे उसकी पहचान सहजमें आ जाती है। दुष्प्राप्य और वहुमूल्य ग्रन्थोंकी वंधाईके सम्बन्धमें विशेष दृष्टि रखना कर्त्तव्य है । साधारण पुस्तकको 'हाफ वाउएड' करानेसे काम चल सकता है । परन्तु जो ग्रन्थ दुष्प्राप्य और वहुमूस्य है उसे न्वम**ड़े द्वा**रा फुल-वाउण्ड करना आवश्यक हैं।

जिल्ददार पुस्तकोंको विभिन्न भागोंमें श्रेणीवज् करके सजाना उचित है। यथा—साहित्य, काव्य, गीतिकाव्य, (Melo-dram), नाटक (Dinna, Tiagedy, comedy), नवन्यास और उपन्यास, Novels) इतिहास (History, जीवतत्त्व (Zoology), पक्षीतत्त्व (Ornithology), मानवतत्त्व, भृतत्त्व (Zoology), बङ्गविद्या, वीजन्त्व, अस्थितत्त्व (Osteology), अङ्कविद्या, वीजन्यणात, रेखागणित, ज्यामिति, परिमिति, खास्थ्यरक्षा, आयुर्वेद और भैषज्य (Medicine), विज्ञान (Science and Arts), प्राणितत्त्व (Natural History) ईश्वरतत्त्व (Theology), धर्मशास्त्र वा स्मृति (Jurisprudence), आईन (Law), स्थापत्यविद्या

<sup>(</sup>१) डा॰ आकलेग्रह-उद्गवित गड क्रिक, आइ॰न बुक केश, मि॰ भागीका बुककेश और तोंकस (Tonks's का बुककेश उल्लेखयोग्य है। उत्तकालय और तरंगाधीन दव्योंका विस्तृत विवरण Mr. Edward, Memoirs of Libraries (1856), Dr. Petzoldts-इत Katachismus der Bibliothe-Kenlehre और Library Journal नाम प्रथ देखने योग्य है।

और भारकर्ष ( Archoeology and Art of sculpture and paintin ) दशैनशास्त्र ( Philosophy ), भूगोल ( Geography ', जीवनी Biography ), शब्दविद्या ( Philology ), वाणिज्य ( Comm ree ), समाज-नीति (Sociology) क्रियविद्या (Agriculture) और अयक अङ्क द्वारा लिखनविद्या ( Palaeoygraphy) आदि विभिन्न विषयक प्रन्थोंको भिन्न भिन्न सेल्फ्रमें सन्निवेश करना आवश्यक है। पुस्तक सजाने-की चार प्रणाली हैं:--(१) आकृति-समान आकृतकी पुस्तकोंको सेल्फके एक खानेमें रखनेसे सुन्दर दिखाई देता है, (२) प्रन्थकारका नाम-अकारादि क्रमसे प्रन्थकर्त्ताका नाम लिपिवद्ध करके उनकी वनाई पुस्तकोंको १-२ नम्बरक्रमसे सजाना, (३) विषय-अर्थात् भूगोल, इति-हास, ज्यामिति, पदार्थविद्या (Natural philosophy, रसायन ( Chemistry ) आदिकी वैषयिक पृथक्ता देख कर सेल्फ्रमें संख्याक्रमसे उनका संस्थान और (8) प्राप्ति-खीकारके वाद ही निरूपित नम्बर वैठा कर उसे सेल्फ्रों रखना अथवा उपरोक्त दो प्रकारकी प्रथाके अनुसार उन्हें सजाना। पहले विषयका सङ्क्रोत और पीछे तद्विभागीय चिह्न बैठा कर नम्बर देनेसे पुस्तक-निर्वाचन-में वड़ी सुविधा हो सकती है। जैसे, ज्यामितिको अङ्क-विद्या ( Mathematics )का तृतीय स्थान देना होगा अर्थात पहले अङ्गणित ( Arithmatics ), बीजगणित (Algebra) और पीछे ज्यामिति, यह स्वाभाविक विज्ञान (Natural Science) का एक अंग है। इस प्रकार ज्यामितिको पहले विजानका अंशभूत करके उसे अङ्क-विद्याका तृतीय स्थान दे, पीछे १, २, ३ नं० ऋमसे उसे सजावे। इस सम्बन्धमें ड्युपे (Melvil Deway) साहवका मत जनसाधारणके प्रहणीय है। पारी नगर-का 'विब्लिओधिक नैशनल' नामक पुस्तकालयका इति-हास ( Histoire de Frauce ) और भैपज्य सम्बन्धीय ( Medicine ) प्रन्थावलीका सुसमावेश ( Classification ) जगत्का एक आदर्शस्थल है।

पुस्तकोंके अपने अपने शासागत अङ्कुमं निवद्ध हों: जानेसे उसकी एक तालिका अवस्य वनानी चाहिये। कारच, वह तासिका देख कर प्रमध्यक्षक और पाठक दोनीं को हो पुस्तक-निर्वाचन और ब्रहणमें सुविधा होगी। जिस पुस्तकालयमें तालिका नहीं हैं, वहां पुस्तक निकालनेमें वडी दिकत होती है। ऐसे पुस्तकालयको यदि पुस्तकोका देर कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। पुस्तकालयकी प्रतिष्ठा हो जव जनसाधारणके उपकारके लिये हैं. तब ऐसा कार्य ही क्यों किया जाय जिससे लोगोंको असुविधा हो। तालिकासे पहले पुस्तकके नाम, प्रन्थकार और किस विपयका प्रन्थ है, यह जाना जाता है। हम लोगोंके देशमें जहां साधारण पाट्य-पुस्तकागार है, वहां जैसी तालिका प्रचलित है, उसमें काव्य नाटकादि मेदसे प्रन्थविभाग करके अकारादि क्रमसे प्रनथ और प्रनथकत्त्रांके नाम निर्द्धारित हुए हैं। किन्तु जहां अनेक पुस्तक हैं, वहां यह सङ्कीर्ण प्रथा काम नहीं देती । जहां लाखसे ऊपर पुस्तक हैं, वैसे ही स्थानमें प्रन्थकर्त्ताओंके नाम-निर्वाचनमें अकारादि क्रमसे प्रन्थादि-की तालिका सिन्निवेश करनी होती है, ऐसा होनेसे कोई गोलमाल होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इन सव कार्योंकी देख-रेख करनेके लिये एक प्रत्थ-एक्षक (Librarian) का रहना जरूरी है। वे ही व्यक्ति प्रन्थरक्षक हो सकते हैं, जो ज्ञानो, कर्मंड, सुविवेचक तथा नाना भाषा और शास्त्रोंसे जानकार हों। कारण, उनसे किसी आवश्यकीय विषयके प्रश्न वा यथायथ उत्तर पाया जाता है। सभी विषयोंमें पारदर्शी प्रन्थरक्षक ही जनसाधारणके प्रियमाजन हो सकते हैं। प्राहककी इच्छानुसार पुस्तकको अलमारी आदिसे वाहर निकालना उनका काम नहीं है। जो प्राहकको पुस्तक देते हैं, उन्हें Issuing office। कहते हैं।

पुस्तक-तालिका (Catalogue) वनानेमें निम्निलिखित ६ विषय रह सकते हैं—(१) अमुक प्रन्थकारकी अमुक पुस्तक है वा नहीं ? (२) अमुक प्रन्थकारकी अमुक पुस्तक है वा नहीं ? (२) अमुक प्रन्थकारकी वनाई हुई कौन कौन पुस्तक है ? (३) अमुक प्रन्थ पुस्तकालयमें है, वा नहीं ? (४) अमुक विषयक वा घटनासमाश्रित कोई पुस्तक प्रन्थालयमें मिल सकती है वा नहीं ? (५) अमुक कौन कौन प्रन्थ हैं ? (६) किसी विशिष्ट सम्प्रदाय वा भाषाके सम्बन्धमें कितनी पुस्तकें मिल सकती हैं ? जिस प्रम्थसे उक्त

प्रश्नोंका प्रकृत उत्तर मिल जाता है, उसीको पुस्तक-तालिका कहते हैं। इस कारण किसी पुस्तकागारमें (१) और (२), किसीमें (३), किसीमें (४) वा (५) लें कर तालिका वनाई जाती है। किन्तु चाहे जो हो, विषयगत हो, प्र'थ-नामगत हो वा प्रम्थकर्त्ता नामगत हो सभी अकारादिकमसे (Alphabetically) सज्जित होती हैं। तालिका छपवानेमें खर्च तो होता है, पर उसके व्यवहारमें उतना कप्र नहीं होता। हस्तलिखित तालिकामें प्रम्थको वाहर निकाल लेना वड़ा किन है। तालिकाको वार वार छपवाना अच्छा नहीं; क्योंकि महिने दो महिनेके वाद जव जव किर नये प्रम्थ संयोजित होते हैं, तव उसमें वड़ी दिकत होती है।

वर्तमान प्रथासे जो सव तालिकाएं प्रस्तुत हुई हैं, उनमें प्रन्थकर्त्ता और प्रन्थवित विषयोंका मूलांश लिपिवद्ध हुआ है। प्रन्थ और सामान्यतः तद्धणित विषय मालूम हो जानेसे पाठक सहजमें समक्त सकेंगे, कि उसमें उसकी लेख्य प्रतिपोषक कोई घटना लिखी है वा नहीं।

( Administration-) ही पुस्त-कार्यप्रणाली कालयका प्रधान अङ्ग है। जिससे प्राहक और सभ्य महोदय संतुष्ट रहें तथा उन्हें इच्छानुसार प्रन्थादि पढ़ने-को मिलते रहें, इस विषय पर परिचालक-समितिकी दृष्टि रहना उचित है। जिससे आयव्ययका हिसाव साफ रहे और प्रतिमास नये नये प्रन्थ खरीदनेका सुप्रवन्ध हो, इसके प्रति भी लक्ष्य रखना कत्तंत्र्य है । प्रन्थादिमें घूल न पड़े, धूल फाड़ते समय जिससे कर्मचारिगण उनके पृष्ठ न फाड़ डाले, इस विषयमें भी दृष्टि रखना आवश्यक है। सालमें २१३ वार ग्रन्थसंख्या ( stock ) निर्द्धारित करना कत्त व्य है। जव कोई नई पुस्तक पुस्तकालय-में आवे, तब कुछ दिनके लिये उसे सबके सामने रख दे जिससे सभी प्राहक उस नई पुस्तकको पढ़ सके । अन-न्तर उसमें पुस्तकालयका नाम, नम्त्रर आदि चिपका कर अलमारीमें यथास्थान पर रख दें । पुस्तकोलयसे ब्राह्कको पुस्तक देने वा उसे वापिस छेनेमें साफ साफ हिसाव रखना आवश्यक है। प्राह्क, जव तक पुस्तक र्खनेका नियम 👸 तव तक उसे अपने पास रख कर

वापस कर दे। पुस्तकालयकी रक्षा हर हालतसे करना चाहिये, नहीं तो सम्भव है, कि आहक वा सम्य महोदयके हाथसे पुस्तक नए भी हो सकती है। पुस्तकालयको आग लगनेसे वचानेके लिये वहां एक जलयन्त (pump)-का रहना नितान्त आवश्यक है। पुस्तकी (सं० स्त्रो०) पुस्तक, पोथी। पुस्तिशम्बी (सं० स्त्रो०) शिम्बीलताभेद, एक प्रकारकी सेम। पुस्पुस (सं० पु०) पुस्तक रोगं। पुस्पुसश्वासक—(Pulmonata) वह जो हवामें पुस-पुस्त हारा सांस लेता है। पुह्कर (हिं० पु०) पुष्कर देखी।

पुहकरमूल (हिं० पु॰) पु॰हरमूल देखो । पुहाना (हिं० कि॰) प्रथित कराना, पिरोनेका काम कराना, गुथयाना ।

पुहुप (हिं॰ पु॰) पुष्प, फूल ।
पुहुपी (हिं॰ क्री॰) पृथ्वी, भूमि ;
पुहुरेनु (हिं॰ पु॰) पुष्परेणु, फूलकी धूल, पराग ।
पुहुची (हिं॰ स्त्री॰) पृथिवी, भूमि ।
पूँचा (हिं॰ पु॰) १ सीपका कीड़ा। (स्त्री॰) २ सपेरोंका
वाजा, महुवर।

पूंछ (हिं० स्त्री०) १ लांगूल, पुच्छ, जन्तुओं, पिश्चय की झें आदिके शरीरमें सिरसे आरम्म मान कर सबसे अन्तिम या पिछला भाग, दुम। मजुन्योंसे भिन्न प्राणियों के शरीरका वह गावदुमा भाग जी गुद्मार्गके ऊपर रिढ़की हट्टीकी सन्धिमें या उससे निकल कर नीचेकी ओर कुछ दूर तक लम्बा चला जाता है। भिन्न जीचोंकी पूंछें भिन्न आकारकी होती हैं। पर सभीकी पूंछें उनके गुद्मार्गके ऊपरसे ही गुरू होती हैं। सरीस्प वर्गके जीचोंकी दुम रीढ़की हट्टीकी सीधमें आगेकी ओर अधिकाधिक पतली होती हुई चली जाती हैं। मछलीकी पूंछ उसके उद्रमागके नीचेका पतला भाग है। अधिकांश मछलियोंकी पूंछके अन्तमें पर होते हैं। पिश्चयोंकी पूंछ परींका एक गुच्छा होती है। इसका अन्तिम भाग अधिक फैला हुआ और आरम्मका संकुचित होता है। की झाँकी पूंछ उनके सध्यभागके संकुचित होता है।

और पछिका नुकीला भाग है। भिड़का डंक उसकी पूंछसे हो निकलता है। स्तनपायी जन्तुओं मेंसे कुछ-की पूंछ उनके शेष शरीरके बराबर या उससे भी अधिक लम्बी होती हैं; यथा लंगूरकी पूंछ। इस वर्गके प्रायः सभी जीवोंकी पूंछ पर वाल नहीं होते; रोप होते हैं। पर हां, किसी किसीकी पूंछ वे अन्तमें वालोंका एक गुच्छा होता है। घोड़ेकी पूंछ पर सर्वत वड़े वड़े वाल होते हैं।

२ किसा पदार्थके पीछेका भाग। ३ जो किसोके पीछे या साथ रहे; पिछलगु, पुछल्ला। वृंद्धगन्छ (हि॰ पु॰) पुछमञ्क देखो । २ नालेमें पुंछड़ी (हिं० स्त्री० ) १ लांगूल, पुच्छ, पूंछ । चढावके आगे आगे चछनेवाला पानी । पुंछताछ (हिं स्त्री) पूक्त ह दे हो। पूंछना (हिं० किं०) प्रका देखी। पूँछपांछ (हिं० स्रों०) प्रचपांच दे हो । पूंजस्तारा (हि॰ पु॰) केंद्र देखा । पूंजना ( हि० कि० ) नये वन्दरको पकड्ना । पूजी (हिं स्त्री०) १ वह घन जिससे कोई कारोबार शुद्ध किया गया हो या चलता हो, वह धन या रुपया जो किसी व्यापार अथवा व्यवसायमें लगाया गया हो। किसी दूकान, कोठो, कारखाने, वैंक आदिकी निजकी चर या अचर संम्यति, मूलधन। २ किसी व्येक्ति या समुदायका ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या कालमें लगा सके। निर्वाहकी आवश्यकतासे अधिक धन या सामग्रो, सञ्चित धनः सम्पत्ति, जमा । ३ चपया-पैसा, धन। ४ किसी विषयमें किसीका परिज्ञान या जानकारो, किसी विषयमें किसीकी सामध्ये या वेछ । ५ समूह, पुंज, ढेर।

पूंड (हि॰ स्त्री॰) पीठ।
पूजा (हि॰ पु॰) मालपुआ, एक प्रकारकी पूरी जो आटेकी
गुड़ या चीनोकी रसमें घोल कर घोमें छानी जाती है।
खादकी लिये इसमें कतरे हुए मेचे भी छोड़ते हैं।
पूखी—दोआवके अन्तर्गत कैनपुरीके एक प्रसिद्ध कवि।

लगभग १७४६ ई०में इनका जनम हुआ था। पूग (सं॰ क्की॰) पूयते मुसनेनेति पूनान किस (छापू

खण्डिभ्यः कित्। उण् १।१२३) १ गुवाकफड, सुपारी-का फड़। पर्याय—पूगकड, चिक्कणी, चिक्का, चिक्कग, सीब्यक, उद्वेग, कमुकफड इत्यादि।

विशेष गुवाक शब्द है देखी ।

इसका गुण — कफ और पित्तनाशक, रुझ, वषत्र-वलेदमलनाशक, कवाय और कुछ मधुर और सारक है। ( धुश्रतधुत्र ॰ ४६ अ० )। अविसंहिताके मतसे यह क । य मधुर अर्थात् पहले कवाय पोछे मधुर, भेदक, पित्त और कफनाशक है। पक पूगफल वातवद्ध क, रुझ, भेदन, कफनाशक, गुरु, अभिष्यन्दि, मधुर, वहि-नाशक होता है। प्रथम वर्षका पूग विषतुत्य, दितोय-का भेदक और दुर्जर तथा तृतीयादि वर्षका सुधातुत्य रसायन है।

२ अङ्कोट, हेरा । ३ पनसवृक्ष, करहरू । ४ शह-तृतका पेड़ । ५ छन्द । ६ भाव । ७ कएटकीवृक्ष, एक प्रकारकी कटेरी । ८ समूह, वृन्द, हेर । पूगकृत (सं • ति • ) स्तृयाकारमें स्थापित, जो टीलेके आकारका हो । २ सं गृहोत, इकहा किया हुआ, राशि, हेर ।

पूगलण्ड (सं ० पु० ) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली-सुपारीका चूर्ण ऽ२ सेर, दूध १६ सेर, चोनी १२॥ सेर घो ऽ२ सेर; इन सन दृष्योंको एक साथ पाक कर उपयुक्त समयमें गुड़त्वक्, तेजपत्न, इलायची, नागेश्वर, विकटू, लबङ्ग, रक्तचन्द्रन, जटामांसो, तालीशपत, पद्मवीज, नोलसुंधि, वंशलोबन, सिंवाइा, जोरा, भूमिकुआएड, गोक्षर, शतमूलो, मालतोपुष्य, आमलको और कर्पूर प्रत्येक ४ तोला ले कर यथाविधि पाक करे। बाद एक स्निग्ध भारडमें इसे रख छोड़े। इसकी सेवनमाता एक तोला है। तव रोगोके अवस्थानुसार इससे कम ज्यादा हो सकता है। इसका सेवन करनेसे सव प्रकारके शूल, विम, सम्ञपित्त, हद्दाह, भ्रमि, मूर्च्छा, आमवात, मेदो-विकार, प्लोहा पाण्डु, अश्मरो और मूलकृष्छ् विनष्ट होता है। यह खएड अत्यन्त रसायन, शुक्रवर्द्ध क और पुष्टिकारक है। इसके सेवनसे वन्ध्या पुत और वृद्ध ध्यक्ति तरुणता लाभ करते हैं। शूलरोगमें यह रामवाण ही है। ( मैक्व्यस्ति। श्रुत्ररोगाधिक ) :-

पूगपात ( सं० क्लो० ) पूगस्य दन्तचितपूगरसस्य आधार-भूतं पातं। पूगपीठ, पीकदान। इसका पर्याय—फरु-वक है। पूगपीठ (सं० क्ली०) पूगस्य दन्तचर्वितपूगरसस्य पीठ-माधारपाद्व'। ः निष्ठीचनपात्न, पूगपात्न, पीकदान, उगाल दान । पर्याय—कटकोल, पतद्वप्रह । पूर्वपुष्पिका ( सं० स्त्री० ) पूर्यसहितंः पुष्पमत्रेति पूर्वपुष्प-कप्। कापि अतइत्वं। विवाहसम्बन्धि पुष्पताम्बूल। विवाहसम्बन्ध स्थिर हो जाने पर जो पुष्प सहित पान दिया जाना है, उसे पूगपुष्पिका कहते हैं । दूसरा नाम कुहिल भी है। पूराफल (सं० क्वी०) पूरास्य गुवाकस्य फलं । गुवाक-फल, सुपारी। यग देखी। पूगमग्ड (सं० पु०) प्रश्नवृक्ष, पाकड़का पेड़ । पूगरोट ( सं० पु० ) पूगवृक्ष इव रोट्यति, द्वीप्यते प्रकाशते इति रुटः अच्। १ हिन्तालवृक्ष, एक प्रकारका ताड़। २ खर्जूरविशेष, एक जातिकी खजूर। इस 'पूगवोट' ऐसा पाठ भी देखा जाता है। पूगवृक्ष ( सं॰ पु॰ ) ऋमुवृक्ष, सुपारीका पेड़ । पूर्गिन् ( सं० पु० ) गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़ । पूर्गी ( सं०० स्त्री० ) सुपारी । पूर्गीफल , सं० क्ली ) गुवाक, सुपारी। पूरव (सं० ति०) पूरी भवः, दिगादित्वात् यत् । (पा ४। ३।५४४ ) पूरामव, पूर्योत्पन्न, सुपारीसे जो उत्पन्न हो ।

एक अति प्राचीन प्राम । प्राचीन चोलराज-निर्मित भर-द्वाजेम्बरके मन्दिरके लिये. ही यह स्थान प्रसिद्ध है। आरुकाड़ू वा छः वनोंमें जो छः प्रधान मन्दिर हैं उनमें-से अरद्वाजेश्वरका मन्दिर भी एक है । पुड़त्या (.सं० पु०.) सामान्य वस्त्र, कपड़ा । पूंछ (सं० स्त्री०) १ जिज्ञासा, पूछनेका भाव।२ आद्र, आवभगत, खातिर इज्जत । ३ खोज, चाह, तलव, जसरत।

पूङ्काह्र मन्द्राज प्रदेशके अर्काट जिलान्तर्गत, अर्काटसे ४

मोल पूर्वदक्षिण, पालार-आनिकटके समीयमें अवस्थित

क्रमाञ्च (हि॰ स्त्री॰) पृत्रताव देखी । पूछताछ (हि॰ सी॰) अधुसन्धान वा जांच पड़ताल,

जिञ्चासा, किसो वातका पता छगानेके छिए वार वार प्रक्ष करना या पूछना, वातचोत करके किसी विपयमें खोज। पूछना (हिं० कि०) १ जिज्ञासा करना, कोई वातः जानने-की इच्छासे सवाछ करना, कोई वात दरियापत करना। २ किसी व्यक्तिके प्रति सत्कारके सामान्य भाव प्रकट करना, किसीका कुशल, स्थान आदि पूछना, या उससे वैठने आदिके लिए कहना, सम्बोधन करना । ३ सहायता करनेकी इच्छासे किसीका हाल जाननेकी चेष्टा करना, खोज खबर छेना। ४ ध्यान देना; टोकना। ५ आदर<sup>:</sup> करना, गुण या मूल्य जानना, कद्र करना 🖰 🗥 पूछपाछ (हि॰ स्त्री॰) पूडताङ देखी। पूछाताछो ( हि॰ स्त्री॰ ) पूछ।पाछी देखो १ पूछापाछी ( हिं॰ स्त्री॰ ) पूछनेकी किया या मान्न.।

पूज (हिं पु ) १ देवता। (स्त्री ) २ खितयों आदिंमें वह गणेशपूजन जो यह्योपमीत, विवाह आदि शुभ कर्मीके पहले होता है। (वि०) ३ पूजनीय, पूजनेयोग्य।

पूजक (सं० ति०) पूजयतीति पूज-ण्डुल्। पूजाकर्ता, पूजा करनेवाला, वह जो पूजा न करे।

पूजन (सं० क्की०) पूज-भावे-ल्युट् । १ पूजा, अर्जना, देवताकी सेवा और बन्दना। पूजा देखो। २ सम्मान, आदर, खातिरदारी ।

पूजना (हिं कि ) १ भिक्त या श्रद्धाके साथ किसीकी सेवा करना, किसीको प्रसन्न या परितुष्ट करनेके लिए कोई कार्य करना, आदर सत्कार करना। २ ईश्वर या किसी देवी देवताके प्रति श्रद्धा, सम्मान, विनय और समर्पण्का भाव प्रकट करनेवाला कार्य करना, आराधना करना, अर्चना करना । ३ वन्दना करना, सम्मान करना, वड़ा मानना, सिर भुकाना। ४ रिसवत देना, घुस देना। ५ नया वन्दर पकड़ना। ६ आस पासके धरातलके समान हो जाना, गहराईका भरना या बरावर हो जाना। असे, गड्हा पूजना, घाव पूजना । ७ पूरा होना, वरावर हो जाना, कभी न रह आना। जैसे, यह क्षति या हानि इस जन्ममें तो नहीं पूजने की । ८ समाप्त होना, बीतना । ६ चुकता होना, पटना । यथा, ऋण पूजना । पूजनी (संश्वात ) यूज्यते इति यूज कर्मणि स्यूट कीप्रं।

१ चटका । २ ब्रह्मदत्त गृहस्थित शकुनि, विहङ्गम-स्त्री- । विशेष ।

राजा ब्रह्मदत्तके घरमें पूजनी नामक एक पश्ली था।
पक्त ही समयमें राजा और उस शकुनिके पुत हुए।
वाद राजाने उस शकुनिके पुतको मार डाला। शकुनिने
शोक और कोधसे अधीर हो कर उस राजपुतको आंखे
उपाट लीं।

इस पूजनी और ब्रह्मदक्ता संवाद प्रहाभारतमें ।
प्रान्तिपर्वेके १३६ अध्यायमें विस्तृतभावसे लिखा है ।
पूजनीय (सं० ति० ) पूज अनीयर्। १ आराध्य, अर्वनीय, पूजनेयोग्य। २ आदरणीय, सम्मानयोग्य।
पूजमान (हिं० वि० ) पूजनाय, पूज्य।
पूजयित (सं० ति० ) पूजनाय, पूज्य।
पूजा (सं० ति० ) पूजनमिति पूजक, पूजा करनेवाला।
पूजा (सं० त्वी०) पूजनमिति पूज-अङ् वित्वपूजि
कियक्तिवर्चभ्य। या भागि०५) तत्याप्। १ पूजन,
अर्चना, आराधना। ईश्वर या किसी देवी देवताके प्रति
अद्धा, विनय, सम्मान और समर्पणका भाव प्रकट करनेवाला कार्य, पूजा कहलाता है। पर्याय नमस्या, अयविति, सपर्या, अर्चा, अर्हणा, जुति।

सभी धर्मशास्त्रीमें पूजाकी व्यवस्था लिखी है। अति . संक्षित भावमें उसकी आलोचना नोचे को गई है।

े देवपूजक पहले स्नान, शिखिवन्धन कर हस्तपादादि उत्तमकपसे धो लें। वाद हाथमें कुश ले कर आसन पर पूर्व या उत्तरमुख वैठ आचमनपूर्वक यथाविधान पूजा करें।

पञ्चोपचार, द्शोपचार और पोड़शोपचार प्रभृति द्वारा देवपूजा करनी चाहिए।

पूजाका साधारण विधान।—पूजा करनेमें पहले अध्यादिन्यास, करशुद्धि अर्थान् अङ्ग और कराङ्गन्यास, अंगुलि तथा व्यापकन्यास, इदादिन्यास, तालतय, दिग्-वन्धन भीर प्राणायाम करना चाहिये। वादमें जिस देवताकी पूजा करनी हो, उसका ध्यान, पादादि द्वारा पूजा और जप करके पूजा समाप्त करनी होती है।

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे जो पूजा की जाती है उसे पञ्चोपचार, जिसमें इन पांचींके सित्रा पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपके भीर आचमन भी हो वह दशोपचार तथा जिसमें उक्त दशके अतिरिक्त आसन, सागत, सान, वसन और आभरण हो वह पोड़शोपचार कहलाती है।

अन्यविध पोड़ग़ीपचार-पाय, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुग्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्हल, अर्चना, स्तोल, तर्पण और प्रणाम। अष्टाद्गोपचार-आसन, खागत, पाद्य, अर्घ्य, आच-मनीय, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, दर्पण, माल्यानुलेपन, प्रणाम और विसर्जन।

पर्शतशान् अर्थान् छत्तेस उपचार—आसन, अभ्य-श्चन, उद्धत्तेन, निष्क्षण, सम्माजेन, सर्पिरादिखपन, आवा-हन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, मधुपके, पुनराच-मनीय, वस्त्र तथा यञ्चोपवीत, अरुङ्कार, गन्ध, पुष, धृष, दीप, ताम्बूल, नैवेदा, पुष्पमाला, अनुलेपन, भ्रथ्या, चामर-द्यजन, आद्शदर्शन, नमस्कार, नत्तेन, गीतवाद्य, गान, स्तुति, होम, प्रदक्षिण, दन्तकाष्ट-प्रदान और देव-विसर्जन।

शक्ति-विषयमें चतुःपष्टि (६४) उपचार—१ आसना-रोहण, २ सुगन्धि नैलाभ्यङ्ग, ३ मजनशालाध्रवेशन, ४ मजनमणिपीठोपयेशन, ५ दिव्यम्बानोय, ५ उद्वर्नन, ७ उ णोदक स्नान, ८ कनक-कलसंस्थित सकल तीर्थाभिषेक, ६ घौतवस्त्रपरिमाजेन, १० अरुण दुकुलपरिधान, ११ दुकुलोत्तरोय, १२ आलेपमण्डपप्रवेशन, १३ आलेपमणिपीठोपवेशन, 38 चन्द्न, कस्तूरी, रोचना और दिव्यगन्धि कपूर, द्वारा सर्वाङ्गानुलेपन, १५ केशकलापमें कालागुरु, धृप, मिलका, मालती, जाती, चम्पक, अशोक, शतपत्न, पूग, कुहरी, पुन्नाग, प्रभृति सर्वे ऋतूद्वन्यपुष्प द्वारा मात्यभूषण, १६ भूषणभएडपत्रवेशन, १७ भूषणभणिवीठोपवेशन, १८ नवमणिमुकुट, १६ चन्द्रशकट, २० सोमन्तसिन्द्र्र, २१ तिलकरत, २२ कालाञ्चन, २३ कर्णपालीयुगल, २४ नासा-भरण, २५ अधरयायक, २६ प्रथनभूषण, २७ कनकचित्र-पदक, २८ महापदक, २६ मुक्तावलि, ३० एकावलि, ३१ देवच्छन्दक, ३२ केयूरयुगलचतुष्टय, ३३ वलयावलि, ३४ ऊर्मिकावलि, ३५ काञ्चोदाम, ३६ कटिसूत, ३७ शोभाल्या-भरण, ३८ पादकटक, ३६ रत्ननृषुर, ४० पादांगुरीयक, ४१ पक हाथमें पाश, ४२ दूसरेमें अंकुश, ४३ तोसरेमें पुण्डे सू- चाप, ४४ चौथेमें पुष्पवाण, ४५ माणिक्यपादुका, ४६ आवरण-देवताके साथ सिंहासनारोहण, ४७ कामेश्वर-पर्यङ्कोपवेशन, ४८ अष्ट्रनाशव-चधक, ४६ आचमनीय, ५० कर्पूरविद्यका, ५१ आनन्द, उल्लास, विलास और हास, ५२ मङ्गलारातिक, ५३ श्वेतच्छत, ५४ चामरयुगल, ५५ द्पैण, ५६ तालवृन्त, ५७ गन्ध, ५८ पुष्प, ५६ धूप, ६० दीप, ६१ नैवेद्य, ६२ पुनराचमनीय, ६३ तास्वृल, ६४ वन्दन।

जिनको जैसा विभव है, वे उसीके अनुसार पश्च आदिसे छे कर उक्त सभी उपचारों द्वारा देवपूजा करें। वित्तकी शठता कर देवपूजामें उपचारहीन होनेसे देव-पूजाका फल नहीं मिलता, वरं उससे अनिष्ट ही होता है। अतः कशिप वित्तशाध्य करना उचित नहीं। अशौ-चादि होनेसे देवपूजा नहीं करनी चाहिये।

"अशुचिनं महामायाँ पूजयेत् तु कदाचन ।
अवश्यन्तु स्मेरेन्मंत्रं सोऽतिभक्तियुतो नरः॥
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणञ्च न विद्यते ।
सर्वेपामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं वजेत्॥" इत्यादि
(कालका पु॰ ५४ अ॰)

अशुचि अवस्थामें देवपूजा करना उचित नहीं; किन्तु शुचि हो कर पूजा को जा सकती है। जनन वा मरणाशीचमें देवपूजा विधेय नहीं है, परन्तु अत्यन्त भक्ति-परायण होनेसे मन्त्र स्मरण कर सकता है। दाँतसे लेह निकलने पर मन्त्रस्मरण भी निषेध है। शरीरसे रक्तसाय होनेसे, शौरकर्म और मैथुनादिके बाद देवपूजा नहीं करनी चाहिये। महागुरुनिपातमें पक्त चपके मध्य अर्थात् सिपएडीकरण नहीं होनेसे देवपूजाका अधिकारों नहीं हो सकता।

वैदिक कार्यमें ब्राह्मण ला कर देवपूजा कर सकते हैं, किन्तु तान्तिक कार्यमें तन्त्रामुसार दोक्षित नहीं होनेसे किसी तन्त्रोक्त पूजादिमें अधिकार नहीं होता। प्रतिमा, पट, घट वा जलादिमें देवपूजा कर्त्तंव्य है। देव पूजाके पहले गणेशको पूजा करनी होती है। गणेशपूजा न कर अन्य देवताकी पूजा करनेसे वह निष्कल होती है।

"देवतादी यदा मोहात् गणेशो न च पूज्यते । तदा पूजाफलं हन्ति विघराजो गणाधिपः॥" ( आहिक तत्व । ) पूजाविधिमें पहले सूर्यार्घ्यं, गणेशपूजा, दुर्गा और शिवादि पञ्चदेवता आदिकी पूजा कर पीछे मूलपूजा करनी होतो है।

सभी देवता पूजे जा सकते हैं। भग्न आसन वा अर्घ्यपात प्रहण कर पूजा करना उचित नहीं। ऊषर, क्षारभूमि, कृमियुक्त स्थान अथवा अमार्जित स्थान पर वैठ कर पूजन नहीं करना चाहिए।

पूजा सास्विक, राजसिक और तामसिकके मेदसे तीन प्रकारकी है। जो पूजा निष्काम भावसे विना किसी आडम्बरके और सचो भक्तिसे सत्त्वप्रकृति कत्तां द्वारा की जाय, वह सान्विक; जो सकाम भाव और समारोह से राजसिक प्रकृति कत्तां द्वारा की जाती है वह राजसिक और जो विना विधि, उपचार तथा मक्तिके केवल लोगों-को दिखानेके लिए की जाय वह तामसिक कहलाती है।

पूजादि कर उसका फल भगवानको समर्पण करना ही विधेय हैं। गीतामें खयं भगवान्ने कहा है, कि जो कुछ करो, वह मुक्ते समर्पण कर दो; 'तल्कुक्च मद्भूणं' (गीता)। पूजादिके शेवमें 'एतलुका कर्मफलं श्रीकृष्णांच अर्णमस्तु' 'इस पूजाका कर्मफल श्रीकृष्णको अर्पण किया' ऐसा वाक्य बोलना चाहिए। इस मन्त्रके पढ़नेसे भगवान्के ऊपर सभी कर्मफल अर्पण किये गये, सो नहीं। बथाथंमें में जो कुछ करता हूं, वह सब भगवत्मे रित हो कर ही करता हूं इस ख्यालसे यदि पूजादिका फल कायमनोवाक्य द्वारा भगवान्को अर्पत किया जायं, तो उसो-को प्रकृत अर्पण कहते हैं।

विष्णुपूजा और शिवपूजा आदि ब्राह्मणोंके (स्नाना-हारकी तरह ) नित्य कर्मके मध्य परिगणनीय है। यदि कोई मोहवश न करे, तो उसे पापमागी होना पड़ेगा।

पूजाके नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन और भेद माने जाते हैं। शिव, िषणु आदिकी जो पूजा प्रति-दिन की जाती है वह नित्य, जो पूजा कामना कर अर्थात् सुख-सौमाग्यकी आकांक्षासे अथवा विपत्यतीकारके लिये की जाती है वह काम्य कहलाती है। हुगोंत्सव सरस्वतीपूजन आदि भी काम्यपूजाके मध्य गिने जाते हैं। जो पूजा पुतजन्म आदि विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट कारणोंसे की जाती है, उसे नैमिश्वक पूजा कहते हैं।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह तिविध पूजा प्रत्येक-का अवश्य कर्त्तं है। पूजाको प्रणाली पृजापदितमें देखी। २ वह धार्मिक इत्य जो जल, फूल, फल, अक्षत अथवा इसी प्रकारके और पदार्थ किसी देव देवी पर चढ़ा कर या उसके निमित्त रख कर किया जाता है। ३ आदर, सत्कार, खातिर, आव भगत। ४ प्रहार, तिरस्कार, दण्ड, ताड़ना। ५ किसीको प्रसन्न करनेके लिए कुछ देना।

पूजाखएड-वौद्धव्रन्थभेद ।

पूजाधार (सं० पु०) पूजानां आधारः । देवताओं के पूजनाधार जलादि । जल, विष्णुचक, यन्त, प्रतिमा, शालप्रामशिलादिमें देवपूजा करना विधेय है, इसीलिए इनका नाम पूजाधार पड़ा है। तान्तिक पूजामें यन्त्र लिख कर उसमें पूजा करनी चाहिए। यन्त्र भिन्न देवपूजा विफल है, क्योंकि यन्त्र देवतास्वक्षप है।

पूजाई ( सं॰ ति॰ ) पूजामईतीति पूजा अई-अच् ( अई: । षा ३ २।१२ ) मान्य, पूजने योग्य ।

पूजाविषु दाक्षिणात्यके त्रिवन्दरम्का एक महोत्सव। दशहरा उत्सवके समय पद्मनाभपुरके कुमारस्वामी (कार्त्तिकेय) विवन्दरमें लाये जाते हैं। इस देवमूर्त्ति-को लानेमें तिवाङ्कोङ्राजके २००० फनम् । मुद्राविशेष ) खर्च होते हैं। कुमारस्वामीको नेयूर, ताम्रपणीं और करमनयूर इन तीन वड़ी नदियोंके पार आना पड़ता है। प्रवाद है, कि कुमारखामीने बुद्धे नाम ह एक कुरवरमणी-का और यैवमने नामक एक परवकन्याका पाणिग्रहण किया था। इस नीच जातीय रमणियोंके संस्नवहेत् उन्हें पद्मनाभदेवके मन्दिरमें प्रवेश करने नहीं दिया जाता है। कुमारखामीकी पूजाके वाद राजसरकार उन्हें पायेयखरूप २००० फनम् देती है। उनके छोटने-के समय बहुत-सी देवनर्त्तकी, नायरसेना, तहसीलदार आदि अनेक गण्यमान्य व्यक्ति महासमारोहसे देवताके साथ साथ जाते हैं। अन्तमें स्वयं महाराज आ कर उस उत्सवमें कुछ समयके लिए योगदान करते हैं।

पूजित (सं॰ ति॰) पूज-क । अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई हो । इसका पर्याय अञ्चित है ।

पूजितव्य (सं वि ) पूज-तव्य । पूजनीय, पूजा करने योग्य। पूजिल (सं० पु०) पूज्यते इति पूज इलच्, स च कित् (ग्रप्तादिश्य: किन्। उण् १,५७) १ देवता। (ति०) २ पूजनीय, पूजायोग्य।

पूज्य (सं० पु०) पूजियतुमर्दैः पूज-यत् (अर्दे इस्रवृत्यः ।
वा ३ ३।१६६) १ श्वशुर, ससुर । (ति०) २ पूजनीय,
पूजायोग्य । पर्याय—प्रतीक्ष्य । ३ माननीय, आदर
योग्य ।

पूज्यता ( सं॰ स्त्री॰ ) पूज्यस्य भावः, तल्-टाप् । पूज्यत्व, पूजनीयका भाव, पूजायोग्य होना ।

पूज्यपाद ( सं॰ ति॰ ) जिसके पैर पूजनीय हों, परमाराध्य, अत्यन्त पूज्य ।

पूज्यपाद—पक विख्यात जैन-वैयाकरण। इन्होंने पाणिः नीय कारिकावृत्तिकी रचना की। कोई कोई कहते हैं, कि पूज्यपाद नाम नहीं हैं, उपाधि है। सम्भवतः जैन-पिएडत देवनन्दि वा गुणनन्दिकी उपाधि भी हो सकती है।

पूज्यमान (सं० ति०) पूज-कर्मणि शानस्। १ सेव्यमान, जिसकी पूजा की जा रही हो, पूजा जाता हुआ। (क्की०) २ भ्वेतजीरक, सफेद जीरा।

पूटरी (हिं ॰ स्त्री॰) ईखके रसकी वह अवस्था जो उसके खांड वननेसे पहले होती है।

पूरीन (हिं ० स्त्री ०) पुरीन देखी ।

पूठा (हिं० पु०) शुहा देखी।

पूड़ा ( हिं॰ पु॰ ) वृक्षा देखी।

पूड़ी (हिं स्त्री) १ पूरी देखी। २ मृदङ्ग या तवले पर मढ़ा हुआ गोल चमड़ा।

पूर्णी उत्तर आकंट जिलेका आणीं जागीरके अन्तर्गत एक अति प्राचीन प्राम । यह आणीं शहरसे २ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। एक समय यहां वहुत वड़ी तांवेकी जिनमूर्त्ति थी। अभी भी वहु शिलालिपियुक्त उसका प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। इस अञ्चलमें यही जैनोंके मध्य सर्वप्रधान मन्दिर समका जाता है।

पूण् (हिं पु॰) १ पत्थर । (स्त्री॰) २ पूर्णमासी, पूर्णिमा ।

पूत (सं० ति०) पू-शोधे क । १ वतादि द्वारा शुद्ध । पर्याय—पवित, प्रयत । २ शुद्ध, शुचि, पवित । दक्षि गोमयप्रभृति स्वभावतः पवित है । ३ सत्य, सचा। (पु०) पूचते स्व चेनेति पू-करणे-क । ४ शङ्ख । ५ श्र्वे त-कुश, सफेद कुश । ६ विकङ्कतवृक्ष, कंटाईका पेड़ । ७ प्रक्षवृक्ष, पलास । ८ तिलकवृक्ष, तिलका पेड़ । (क्की०) पूचते स्मेति पू कर्मणि-क । ६ निर्दु पधान्य, वह अन्न जिसकी भूसी निकाल दी गई हो । इसका पर्याय वहलीकृत है । १० जलाशय ।

पूत (हिं ० पु०) १ पुत्न, छड़का, वेटा । २ चूव्हेंके दोनों किनारों और वीचके वे नुकीले उमार जिनके सहारे पर तवा या और वरतन रखते हैं।

पूतकता (सं० स्त्री०) वेदोक्त ऋषिणत्तीभेद, एक वैदिक ऋषिकी स्त्रीका नाम।

पूतकतायी ('सं॰ स्त्रो॰) पूतकतोरिन्द्रस्य स्त्री पुतकतु-ङीप्, ऐकारादेशस्य (पूतकतोरैचः पा ४।११३६) इन्द्रपत्नो, शची।

पूतकतु ( सं॰ पु॰ ) पूतः क्रतुर्येन । इन्द्र ।

पूतगन्य (सं॰ पु॰) पूतः पवितो गन्धो यस्य, वर्षरक, काली वर्षरी तुलसी।

पूतड़ा (हिं॰ पु॰) वह छोटा विछीना जो वर्चोंके नीचे इसिळिये विछाया जाता है, कि वड़ा विछीना मळस्तादिः से बचा रहे।

पूततृण ( सं० क्की० ) पूतं पवित्तं तृणमिति नित्यं कर्मधा०। यवेतक्करा, संफेदकुरा।

पूतदक्ष ( सं० ति० ) शुद्धवल ।

पूतदारु ( सं॰ पु॰ ) पलाश, ढाक ।

पूतट्टु ( सं॰ पु॰ ) पूतः पवित्रो द्वुः । १ पठाश, ढाक । २ देवदार । ३ खदिर, खैरका पेड़ ।

पूतधात्म (सं० क्ली०) पूतं धान्यमिति नित्यकर्मधा०। तिलं।

पूतनः ( सं॰ पु॰ ) गुदकुन्दरोग, वैद्यकके अनुसार गुदामें होनेवाला एक प्रकारका रोग । २ वेताल ।

पूतना (सं० स्त्री०) पूतं करोतीति तत्करोतीति णिच्, ततो युच् । १ हरीतकी, पीली हड़ । २ गन्धमांसी, सुरान्ध जटामासी । ३ थोगिविशेष, एक योगीका नाम । ४ दानवीमेद । भागवतमें १०म स्कन्धके ६ठें अध्यायमें इसकी भाक्यायिका इस प्रकार लिखी है । एक दिन

श्रीकृष्णको मारनेके लिपे कंसने वालघातिनी पूतनाको हुकुम दिया। कामचारिणी पूतना मायावलसे परम रमणीय रूप धारण कर गोकुलमें नन्दके घर पहुंचो। इसने अपने स्तनों पर इसलिये विप लगा लिया था, कि श्रीकृष्ण दूध पी कर उसके प्रमावसे मर जांय। परन्तु श्रोकृष्ण पर विपका तो कुल प्रमाव न पड़ा उलटे उन्होंने इसका सारा रक्त चूस कर इसीको मार डाला। मरनेके समय इसने वहुत अधिक लम्बा चौड़ा शरीर श्रारण किया था और जितनी दूरमें वह गिरी उतनी दूरकी जमीन धंस गई थी। पीछे श्रीकृष्ण इसके वक्षास्थल पर खेल करने लगे।

हरिवंशमें इसकी कथा इस प्रकार आई है—कंसके आदेशसे कंसधावी पूतना शकुनीवेश धारण कर आधी रातको नन्दके घर पहुंची। वार वार विकट शब्द करके क्षीरधारा वरसाती हुई वह शकटके ऊरुके पर वैठ गई। दो पहर रात थी, सभी निद्रामें अवेतन थे। इसी समय वह राक्षसी श्रीकृष्णको स्तन पिछाने छगी। कृष्ण स्तनपान करने छगे। थोड़े ही समयके वाद वह शकुनीवेशधारी पूतना छिन्नस्तनी हो उच्वे:स्वरसे चीत्कार करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ो। इस पर नन्द आदि भी जग उठे और पूतनाकी स्तदेहको देख कर वह चमत्कृत हुए, तथा उसकी सृत्युका कारण कुछ भो स्थिर न कर सके। (इरिवंश ६२ २००)

आज भी मथुरा नगरसे थोड़ी ही दूर पर 'पूतना-खाड़' नामक एक खाड़ी देखी जाती है। प्रवाद है कि भगवान्के स्पर्शसे दानवी पूतनाने यहां राक्षसी शरीर फैलाया था। उसके गिरनेसे ही वह स्थान गड़हा हो गया है। ब्रह्माएडपुराणके वृहद्वनमाहात्म्यमें महावक-तीर्थ-वर्णनप्रसङ्गमें इस स्थानकी गणना पविवतीर्थमें की गई है। कार्त्तिक शुक्का बष्ठीको महावनमें पूतनाका मेला आरम्म होता है।

५ सुश्रुतके अनुसार एक वालप्रह या वालरोग। इसमें वच्चेको दिन रातमें कभी अच्छी नींद नहीं आती। पतले और मैले रंगके दस्त होते रहते हैं। शरीरसे कौवेको-सी गन्ध आती वहुत प्यास लगती और उल्टी होती है तथा रोगटे खड़े रहते हैं।

इसकी चिकित्सा—कपोत-वङ्का (ज्योतिकाती), अर-लुक, वरुण, पारिभद्रक, अरूफोत, इनका काथ परिषेचन करनेसे; बच, हरीतकी, गोलमीचें, हरिताल, मनःशिला, कुछ और सर्जारस इन सब द्रव्योंसे प्रस्तुत पाक तेल लगानेसे; तुगाक्षीर, मधुरक, कुछ, तालिश, खदिर और चन्दन इन सब द्रव्यों द्वारा पाक किये हुप घृतका सेवन करनेसे; बच, कुछ, हिंगुं, गिरिकदम्ब, इलायची और हरेणु इनका धृम-प्रयोग करनेसे यह रोग प्रशमित होता है।

गन्धनाकुली, कुम्मिका, बेरकी आंडीकी मजा, कर्कट-की अस्थि और घृत इनका धूप भी हितकर है। काका-दनी, चित्रफला, विम्वी और गुञ्जा इन्हें शरीरमें धारण करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

मत्स्य; अन्न, कृशंर और मांस इन सव द्रव्योंको मट्टी-के एक ढक्कनमें रख कर उसे किसी चीजसे ढंक दे और शून्यगृहमें निवेदन कर उपहारके साथ पूजा करे। पीछे उच्छिए जलसे स्नान करा कर निम्नलिखित मन्त्रसे स्तव करे। मन्त्र—

> "मिलनाम्बरसंवृता मिलना रूथ्नमूर्वं जा। शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना॥ दुदर्शना सुदुर्गन्था कराला मेघकालिका। भिक्षागाराश्रया देवी दारुकं पातु पूतना॥"

( सुश्रु॰ ड॰ तन्त ३३ अ॰ ) पूतनाकेशो ( सं॰ क्की॰ ) सुगन्धजरामासी । पूतनारि (सं॰ पु॰) पूतनाया अरिः शत्रुः । पूतनाको मारने-वाले, श्रोक्तृष्ण ।

पूतनासूदन ( सं॰ पु॰ ) पूतनां सूद्यति सूद्तिवानिति वा सूदु-स्यु । श्रीकृष्ण । ं

पूतनाहड़ ( हिं॰ स्त्री॰ ) छोटी हड़ ।

पूतनाहन् (सं॰ पु॰) पूतनां हन्तीति हन-किप्। श्रीकृष्ण। पूतनिका (हिं॰ स्त्री॰) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। पूतनी (सं॰ स्त्री॰) खनामख्यात एक सुगन्धशाक, पुदीना। पूतपती (सं॰ स्त्री॰) तुलसीपत।

पूतफल ( सं॰ पु॰ ) पूतानि पविताणि फलानि यस्य । पनस, कटहल ।

पूतवन्धु (सं॰ ति॰) प्वित स्तीतावृत्ता।

पूतभृत् (सं॰ पु॰) पूर्त शुद्ध' सोमरसं विभक्ति भृ-किप् तुक् च । सोमरसाधार पात्रभेद, प्राचीनकालका एक वरतन जिसमें सोमरस रखा जाता था ।

पूतमंति (सं० ति०) पूता मितः कमधा० । १ पवित मिति, पवित बुद्धि । पूता मितियस्य । २ विशुद्धचित्त व्यक्ति, पवित अन्तःकरणवाला । (पु० ) ३ शिवका एक नाम ।

पूतमाक्ष ( सं॰ पु॰ ) गोलप्रवर्त्तक ऋषिमेद । पूतयव (सं॰ अट्य॰ ) पूता निस्तुषीकृता यवा अत तिप्र-दुग्वादित्वाद्व्ययीभावः । पूतयवाधाका खलादि ।

पूतरा (हि॰ पु॰ ) १ पुत, लड़का, वाल-वद्या । २ पुतला-देखो ।

पूतरी (हिं० स्त्री०) पुतली देखी।

पूता (सं॰ स्त्री॰) पूत-टाप्। १ दूर्वा, दूव। २ शुद्ध, पवित्र। पूतात्मन् (सं॰ पु॰) पूतः पवित्र आत्मा समावः। १ पवित्र समावः, शुद्धअन्तःकरण। पूत आत्मा सक्तपं यस्य। २ विष्णु। (ति॰) ३ शुद्ध-अन्तःकरणका, जिसकी आत्मा पवित्र हो।

पूति (सं० क्ली०) पुनातीति प्-कर्त्तरि किच्। १ रोहिष तृण, रोहिष सोधिया । (स्ती०) पु-भावे किन् । २ पवितता, शुचिता । ३ दुर्गन्ध, वद्वू । ४ खट्टाशमुष्क, गन्धमार्जार, मुश्कविलाव । ५ दुर्गन्धिविशिष्ट, वद्वूदार । पूतिक (सं० क्ली०) पूत्या दुर्गन्धेन कायतीति कैक । १ विष्ठा, पाखाना, गू । (पु०) २ पूतिकरञ्जवृक्ष, कांटा करंज, दुर्गन्ध करंज । (ति०) ३ दुर्गन्धिविशिष्ट, खराब गन्धवाला ।

पूतिकरज (सं० पु०) पूतियुक्तः करजः। करजमेद् । पतिकरञ्ज देखो ।

पूतिकएटक ( सं॰ पु॰ ) ईंगुदीवृक्ष, हिंगोट । पूतिकन्या ( सं॰ स्त्री॰ ) पूतिका, पुदीना ।

पूतिकरञ्ज (सं॰ पु॰) पूतियुक्तः करञ्जः । करञ्जमेद, कांटा कंरज (Guilandina Bonducella) पर्याय—प्रकीर्यं, पूतीकरज, पूतिकरज, पूतिक, पूतीक, कल्लिकारक, कल्लिमालक, कल्लहनाशक, प्रकीर्णं, रजनीपुष्प, सुमनस्, पूतिकर्णंक, केंड्रयं और कलिमाल्य । गुण—कट्ठा तिक, उष्ण और विष, वातपीड़ा, कण्डु, विचर्चिका, कुष्ठ और त्वग्दोषनाशक ।

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय—करज, नक्तमाल, करज और चिरविल्वक है। गुण – करु, तीक्ष्ण, उच्च-विधे तथा योनिरोग, कुष्ठ, उदावर्च, गुल्म, अर्श, व्रण, किम और कफनाशक। पत्तेका गुण —कफ, वायु, अर्श, क्रिम और शोधनाशक, भेदक, करुविपाक, उज्जवीर्थ, पित्तवर्द्धक तथा लघु। फलका गुण —कफ, वायु, प्रमेह, अर्श, क्रिम, और कुष्ठनाशक।

पूरिकर्ण (सं॰ पु॰) पूरिदुर्गन्धः कर्णो यस्मात्। कर्णरोग-विशेष, कानका एक रोग।

इसका लक्षण—कुपितदोप द्वारा क्षत होने अपना अभिधात लगनेसे कानमें फुंसियां हो जातो हैं और उनके पकने या कानमें पानी जाने पर उससे बदब्दार जो पीप निकलती है, उसे प्रतिकर्ण कहते हैं। इस रोग-में पीप निकलनेके साथ साथ कान खुजलाता भी है।

इसकी चिकित्सा—खहे नीवके रसमें खर्जिकाक्षार-चूर्ण मिला कर कानमें देनेसे कर्णस्त्राव, वेदना और दाह जाता रहता है। आम, जामुन, मधुक तथा-वटके नये पत्ते द्वारा पक्रतेल बना कर जातीपल द्वारा पाक करे। पीछे उसे कानमें देनेसे पूतिकर्णरोग वहुत जल्द प्रशमित होता है। स्त्रियोंके दूधसे रसाञ्जन घोस कर मधुके साथ कानमें देनेसे वहु कालोत्पन्न कर्णस्त्राव और प्रतिकर्ण जाता रहता है। कूट, हिंगु, वच, देवदाह, सौंफ, सॉट और सैन्यव द्वारा तेल पाक करे। वाद उसे कपड़ें में छान कर कानमें देनेसे उक्त रोग जल्द आराम हो जाता है। इस रोगमें गुग्गुलका धूम भी विशेष उपकारी है। (भावप्र०)

सुश्रुतके मतसे सुरसादिगणके काथसे पहले कान-को अच्छी तरह धो डालें। वाद उसीका चूण कानमें देनेसे यह रोग दूर हो जाता है। निसोधके रससे पाक किया हुआ तेल अथवा मधु मिला हुआ निसोध-का रस, गृहधूम और गुड़ एक साथ कानमें देनैसे पृतिकर्णरोग आरोग्य होता है।

वालकोंके पृतिकर्ण रोग होनेसे उसमें निश्नलिखित तैलीपम उपकारी है। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतेल ऽ१ सेर, कल्कार्थ वहेड़ा, कूट, हरिताल, मैनसिल प्रत्येक ऽ४ सेर, पाकका जल १६ सेर। वरुण, आर्द्रे, कपित्थ, आम्र और जम्बू इन सर्वोका पत्न तथा जाती फूलके पत्तों द्वारा तैल पाक कर कानमें देनेसे पूर्तिक गरीग प्रशमित होता है।

पूर्तिकर्णक (सं० पु०)-पृतिः कर्णो यस्मात् कप्। पृतिकर्णे रोग, कानका एक रोग।

पूरिका (सं क्यो ) पूर्या कायतीति कैक टाप् ।१ मार्जारी, विल्ली। २ कीटविशेष, एक प्रकारकी शहदकी मक्खी । ३ छताशाकविशेष, पोईका साग ( Basella Rubra) पर्याय-कलम्बी, पिच्छिला, पिच्छिलच्छदा, मोहनी, मदशाक, विशाला, वलिपोदकी। यह तीन प्रकारको होती है, सामान्या, शुद्रपता और वनजाता। गुण--कडु, मधुर और निद्रा, आलस्य, रुचि, विद्यम और श्लेप्मकारक। ब्राह्मणादि वर्णके लिये यह साग लाना निपिद्ध है। इसके खानेसे वतौर ब्रह्महत्याका पाप लगता है। द्वादशी दिन भी यह शाक्रमोजन निषद वत-लाया गया है। इस पर किसी किसीका कहना है, कि जब प्तिकाभक्षण सामान्यतोनिपिद्ध है, तो फिर हादशीके दिन भी इससे न खाना चाहिये, ऐसा क्यों कहा गया ? इसकी मीमांसा यही, कि शूदादिकी इसके खानेमें दोष नहीं लगता । किन्तु उन्हें भी द्वादशो दिन यह जाना नहीं चाहिये। ब्राह्मणादि वर्ण यदि द्वादशीके दिन इसे खांय, तो वड़े भारी दोषका भागी वनना पड़ता है।

ताण्ड्यब्राह्मणमें लिखा है, कि पूरिका सोमके अंश-से उत्पन्न हुई है। इसलिए यदि सोमका अभाव हो, तो उसके प्रतिनिधिक्षणमें अर्थात् सोमके बदलेमें इसे लिया जा सकता है।

पूर्तिकामिक्षका (सं० स्त्री०) पृथुमधुमिक्षकाविशेष, एक प्रकारकी वड़ी मण्ली, डांस ।

पूरिकामुख (सं॰ पु॰) पूरिकाया मुख मिव मुखं यस्य। शम्बूक, घोंघा।

पूरिकाष्ठ (सं० क्ली०) पूरिकाष्ठमिति कर्मधा०। १ देवदार, देवदार। २ सरलवृक्ष, धूपसरल।

पूरिकाष्ठक ( सं॰ क्षी॰ ) पूरिकाष्ठ-स्वार्थे कन् । सरल्वृक्षः धूपसरल ।

पूतिकाह (सं० पु०) पूतिकरञ्ज, दुर्गन्धि करंज।

पृतिकीट (सं० पु०) कीटमेद, एक प्रकारकी शहदकी मक्खी ।

पूतिकेशर (सं० पु०) पृतिकेसर देखो । पूर्तिकेश्वरतीर्थं (सं० क्की०) शिवपुराणोक्त तीर्थेमेद।

पृतिकेसर (सं० पु०) १ गन्धमार्जार, मुश्क विलाव। २ नागकेसर ।

पृतिगन्ध (सं० क्को० ) पृतिर्गन्धो यस्य । १ रङ्गधातु, रांगा। २ सुगन्ध तृण, खुशवूदार घास। (पु॰)३ इ'गुदोवृक्ष, हिंगोट वा गोंदो। (ति०) दुर्गन्घ, वदबू। पृतिगन्धा । सं । स्त्री । ) सोमराजी, वकुची, वावची । पृतिगन्धि (सं वि ) पृतिर्गन्धो यस्य तत इ, निम्ध ये दुरवृतिसुपुरसिभ्यः । वा ५।४।१६५) दुर्गन्ध, वद्यू । पूर्तिगन्धिक (सं० ति०) पूर्तिगन्धिस्वार्थे कन्। दुर्गन्ध,

पृतिगन्धिका (सं० स्त्री०) पृतिगन्धिक-टाप् । १ वाकुची, वावची। २ पूतिशाक, पोय।

पूर्तिघास ( संं पु॰ ) सुभूतोक जन्तुमेद, सुभूतमें वर्णित मृगकी जातिका एक जन्तु ।

पूर्तितेला ( सं० स्त्री० ) पूर्ति दुगॅन्घं तेलं यस्याः । ज्योति-ष्मती, मालकंगनी ।

पुतिद् ( सं० पु० ) तरुविङ्गल, वनविङ्गल । पूतिदछा ( सं० स्त्री० ) तेजपत ।

पूतिनस्य (सं ० पु०) पूतिदु र्गन्धो नस्यः नासिकाभचो रोगः । नासारोगभेद । इसका रुक्षण—दूपितपित्त, रके तौर कफ द्वारा गले और तालुमूलकी वायु पृतिभावा-पन्न होनेसे मुख और नाकसें अत्यन्त दुर्गन्य निकलती है। इसीको पृतिनस्य कहते हैं।

इसकी चिकित्सा—कएटकारी, दन्ती, वच, सहिजन, तुलसी, तिषदु और सैन्धव इन सव बल्क द्वारा तैल पाक कर नस्य छेनेसे पृतिनस्य जाता रहता है।

सहिजनका घींज, वृहतीवीज, दन्तीवीज, तिकटु और सैन्यव इन सर्वोंके कल्क तथा विल्वपतके रस द्वारा तेल पाक कर प्रयोग करनेसे पूतिनस्य आरोग्य होता है।

सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—गले और तालुमूलमें दोष विद्य्धं हो कर जव मुख और नाकसे दुर्गन्धयुक्त वायु निकलती है तव उसको पृतिनस्य कहते हैं।

Vol. XIV. 66

इस रोगमें नाड़ीस्वेद, स्रोहस्रेद, वमन और श्रंसन प्रयोज्य है। तीक्ष्णरसके साथ छघु अन्त अल्प परि-माणमें भोजन, उज्ण उदकपान और उपयुक्त समयमें धूमपान कत्त्रं य है। हिंगु, तिकटु, इन्द्रयव, शिवाटी, लाझा, क्ंकुम, कटफल, वच, कुप्ट, छेटी इलायची, विडङ्ग और करंज इन सव द्रव्योंको गोमूलके साथ सरसोंके तेलमें पाक कर नस्य लेना चाहिए । ऐसा करनेसे पृतिनस्य रोग वहुत जब्द-जाता ्रहता है। पूतिनासिक (सं० ति०) पूतिनासिकाऽस्य । दुर्गन्धनासायुक्त,

जिसके नाक या ध्वाससे दुर्गन्य निकलती हो, जो पिशुन हैं, वे परजन्ममें पूतिनासिक हो कर जन्मग्रहण करते हैं।

पूर्तिपत (सं । पु ०) पूर्ति पतं यस्य । १ श्योनाकभेद, सोना-पाठा । २ पीतलोध्र, पीला लोध ।

पूर्तिपत्निका ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रसारिणी छता, पसरन । पूर्तिपर्ण ( सं० पु० ) करञ्जनृक्ष, दुर्गन्ध करज । २ इगुदी-वृक्ष, गोंदी।

पूर्तिपर्णेक (सं० पु०) वृतिपर्ण देखी । पूर्तिपहुवा ( सं० स्त्री० ) राजसुवी, वड़ा करेला । पूतिपुष्प ( सं० पु० ) इंगुदीवृक्ष, गोंदी |

पूर्तिपुष्पिका (सं० स्त्री०) पूर्ति पुष्पमस्याः, कापि अत-इत्वं) मधुमातुलुङ्ग, चकोतरा नीव । मातुर्खं ग देखी ।

पूतिफल (सं॰ पु॰) पूति फलं यस्त्राः । सोमराजी, वावची । पुतिफला (सं० स्त्री०) पृतिक हो देखा।

पूर्तिफली (सं० स्त्रो०) पूर्तिफलं यस्त्राः, ङीय्। सोम-राजी, वाकुची, वावची । पर्याय—अवल्गुज, वाकुची, सुपर्णिका, शशिलेखा, ऋष्णफला, सोमा, सोमवल्ली, कालमेषी और कुष्टवी।

प्तिमजा ( सं॰ स्त्री॰) इंगुदीवृक्ष, गोंदी । पूर्तिमयूरिका ( सं० स्त्री० ) पूर्तिम यूरोव, ततः सार्थे कन्, हुखरूच । १ अजगन्धा, वर्वरी । २ वन्य तुलसी, वनतुलसी । पूरिमास्त (सं०पु०) १ कर्कन्धु, छोटी वेरका पेड़ । २ विल्ववृक्ष, बेलका पेड़ ।

प्तिमाय (सं० पु०) एक गोतप्रवत्तं क ऋषि। पूर्तिमांस ( सं॰ क्ली॰ ) दुर्गन्ध मांस, पर्यु पित मांस । गुण-सद्य प्राणनाशक।

पूर्तिमुक्त (सं० पु०) मलनिर्गम। पूतिमूषिका ( सं० स्त्रो० ) छुछुन्दरी, छछुंदर । पूर्तिमृत्तिक (सं० क्की०) नरकमेद, पुराणानुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। पूर्तिमेद ( सं॰ पु॰ ) पूर्तिमेदोऽस्य । अरिमेद, दुर्गन्ध खैर । पूर्तियुग्दला (सं० स्त्री०) रोहिबतृण, रोहिब सोधिया। पूर्तियोनि (सं० पु०) उपप्छुता नामक योनिरोगभेद, (Morbid sensibility of the uteras) योनिरोग देखी । पृतिरक्त (सं० पु०) नासारीगभेद, एक रोग जिसमें नाकमें-े से दुर्गन्धियुक्त रक्त निकलता है। पूतिरज्जु ( सं० स्त्री० ) लतामेद, एक लता । पृतिवक्त (सं॰ पु॰) पृति-वक्तमस्य। दुर्गन्ययुक्त मुख, जिसके मुंहसे दुर्गन्ध निकली हो। पूर्तिवर्वरी (सं॰ स्त्रो॰) वनतुलसो, जंगली तुलसी, काली वर्वेरी। पूर्तिवात ( सं॰ पु॰ ) पूत्रये पावित्राय वातो यस्य विस्व वृक्ष, वेलका पेड़ । पूतिवृक्ष ( सं॰ पु॰ ) पूतिर्वृक्षः । १ श्योनाकः, सोनापाठा । २ पवित वा दुर्गन्ध वृक्ष। पूर्तिशाक ( सं० पु० ) चकवृक्ष, अगस्त । पूर्तिशारिजा (सं॰ स्त्री॰ ) पूर्तिः शारिरिव जायते इति जन-इ-राप्, वनविलाव । पृतिसञ्जय (सं०पु०) १ जनपदिविशेष । २ उक्त देशके वासी । पूती (सं० स्त्री०) पूतीकरञ्ज। पूती (हिं० स्त्री०) १ छहस्रुनकी गांठ। २ जड़ जी गांठके रूपमें हो। पतीक ( सं॰ पु॰ ) पति वा ङीच्, तद्वत् कायतीति, कै-क, वा पतिक पृथोदरादित्वात् साधुः । १ पतिकरञ्ज, दुर्गन्ध या कांटा करंज । २ गन्धमार्जार, विलाव । पतीकद्वय ( सं० पु० ) करञ्जद्वय, करंज और नाटा करंज । पंतीकपत ( सं० क्षी० ) करंजका पत्ता । पतीकप्रवाल ( सं० पु० ) करअपहाव । पूर्तीकरञ्ज (सं० पु०) पतिकरञ्ज पृषीदरादित्वात् साधु । करञ्जमेद, कांटा करंज। प्तीका (सं स्त्री ) पूर्तिका पृषीदरादित्वात् साधु। पतिका, पोय, पोई।

पूतुदार ( सं० पु० ) पलाश वृक्ष । पतुद्र (सं० पु०) १ खदिर, खैर। २ देवदार, देवदार। ( क्वी॰ ) ३ देवदारुवृक्षका फल । ' पूरकारी (सं० स्त्री०) १ सरस्रती । २ नागींकी राज-धानी। पृत्यएड (सं ० पु०) पति दुर्गन्धमएडमस्य। १ गन्ध-कीट, एक वदवृदार कीड़ा। २ वह हिरण जिसकी नामि-से कस्तूरी निकलती है। पतित ( सं ० ति० ) पजन किया हुआ । पतिम ( सं ० ति० ) पवनसाधन, शुद्धिकर । पथ ( हि॰ पु॰ ) वालूका ऊ चा टीला या दूह।' ं पथा ( हिं० पु० ) पूथ दें हो । पथिका (सं क्षी ) पृतिका पृपोदरादित्वात् साधुः। पृतिका, पोई, पोयका साग। पदना ( हिं० पु० ) उत्तरी भारतमें मिलनेवाला एक पक्षी । यह अकसर भूरे रंगका होता है, परन्तु ऋतुमेदके अनु-सार इसका रंग कुछ कुछ वदला करता है। इसकी देह प्रायः ७ इञ्च लम्बी होती हैं। यह घासका घोंसला वना कर रहता है और जमीन पर चलां करता है। पुरीना देखी। पून (सं० ति०) पू-क' (५त्रो विनासे । पा ८ श४४) इंबस्य वार्त्तिकोक्त्या) तस्य न। नष्ट, वरवाद। पून (हिं० पु०) १ जंगली वादामका पेड़। यह भारतके पश्चिमी किनारों पर होता है। इसके फूछ और पत्तियां द्याके काममें आती हैं और फलमेंसे तेल निकाला जाता है। २ तलवारकी मुठियाका निक्ला सिरा। ३ कलपून नामक वृक्ष जिसकी लंकड़ी इंपार्स वनानेके काममें आती है। इसके वीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है। ४ पुराय, देखो । ५ पूर्ण देखो । पूनना ( हि॰ पु॰ ) एक प्रकारकी ईख । पूनव (हिं० स्त्री॰) पूर्णिमा या पूनो देखो। पूनसलाई (हिं० स्नो०) वह पतली लकड़ी जिस पर र्छ-की पूनियां कातनेके लिये वनाते हैं। पूना-दाक्षिणत्यमें वस्वई प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा॰ १७ ५४ से १६ २४ उ० और देशा० ७३ १६ से ७५ १० पूर्वों अवस्थित है। भूपरिमाण ५३४६ वर्त-

मील है। इसके उत्तरमें अहमदनगर जिला, पूर्वमें अहमदनगर और शोलापुर, दक्षिणमें नीरा नदी तथा पश्चिममें कोलावा और थाना जिला है। पश्चिम और दक्षिणका 'भोर' सामन्तराज्य इसी जिलेके अन्तर्भु क है।

जिलेके पश्चिमांशमें सह्याद्रि नामक पर्वतमाला विराजित है जो क्रमशः दक्षिण-पूर्वकी ओर जा निम्नसे निम्नतर उपत्यकामें परिणत हो कर समतलक्षेत्रमें मिल गई है। एक 'घाट' वा गिरिपथ छोड़ कर पर्वत पार होनेका कोई उपाय नहीं है। 'वोरघाट' नामक गिरिपथमें रेलगाड़ी और वैलगाड़ी जानेके दो सरल पथ हैं। सह्याद्रि-शिंखरसे अनेक जलकोत पर्वतको धोते हुए भोमा नदीमें गिरे हैं। इन शाखा क्षोतोंमें मूठा वा मूला नदी मशहूर है। पूना नगर इसके दक्षिण-तट पर वसा हुआ है। नगरसे ५ कोस दक्षिण पश्चिममें खदक-वासला हद है। पूना और किरकी नगरमें इसका जल खच होता है।

यहां किरकी, हबेली, जुन्नर, खेड्, सिरुर, पुरन्धर-पुर, मावल, इन्दुपुर और भीमखड़ी नामक ८ उपविभाग े हैं। जिलेका विचार-कार्य उन्हीं सब स्थानोंमें परि-चालित होता है। यहांके रेशमी वस्त्र, मोटे सूती कपड़े, कम्बल, रूपे और पीतलके गहने, पालादि, सुन्दर मट्टोके खिलीने, टोकरे और खसखसके पंखे जनसाधारणके आदरणीय हैं। वे सव द्रव्य प्रस्तुत ही कर नाना देशीं-में वेचनेके लिये भेजे जाते हैं। पहले यहां कागजका विस्तृत कारोवार था, पर अभी धीरे धोरे हास होता जा रहा है। वाणिज्यकी सुविधाके लिये पत्थरके रास्ते तो हैं, पर रेलपथके खुल जानेसे दक्षिण-महाराष्ट्र और मुम्बई आदि स्थानोंमें जाने आनेकी विशेष सुविधा हो गई है। पूनासे महाबालेश्वर जानेमें कर्तीजी, कपरोली, सएडला, सेरोल, बाई और पश्चगञ्ज हो कर जाना पड़ता है। यहां प्रायः सभी प्रकारके अनाज और अंगुरकी खेती होती है। कभी कभी काफी पानी नहीं वरसनेसे वावल आदि इतना महंगा होता है, कि भारी दुर्भिक्ष पड़नेकी सम्भावना हो जाती है। (१७६२-६३, १८०२, १८२४-२५ १८४५-४६, १८६६-६७, १८७६-७७, १८६४ भीर १६००-०२ ई०में अधिक और महपपरिमाणमें दुर्मिक्ष-

का आसास पाया गया है।) साधारण मनुष्य रुषि-कार्य भिन्न दास्यवृत्ति, इष्टक्तिर्माण और स्त्रधर कर्म-कारादिके कार्य करते हैं। जिले भरमें ११७८ ग्राम और ११ शहर लगते हैं। जनसंख्या ६६५३३० है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पार्वतीय असम्य जातियोंके नाना शाखामुक मनुष्य यहां वास करते हैं। वम्बई प्रे सिडेन्सी-के अन्धान्य सभी स्थानोंकी अपेक्षा इस स्थानका जल-वायु खास्थ्यप्रद, शुष्क और वलकारक है।

पार्श्ववत्तीं सतारा और शोलापुरका इतिहास छे कर ही पूनाका इतिहास बना है। पूर्वतन हिन्दूराजाओं की पेतिहासिक घटनावली उस समयके राजवंशके साथ मिश्रित थी। पूना अथवा इसी प्रकारके किसी स्थान-विशेषके नाम पर तत्कालीन इतिहास नहीं था। चालुक्य-वंशीय राजगण महाराष्ट्रदेशमें राज्य करते थे।

मुसलमानोंके शासनकालसे ही वर्त्त मान ऐतिहासिक घटनापं धारावाहिक रूपमें लिखी जाती हैं। महाराष्ट्रोंके अम्युदय पर पूनाने महाराष्ट्र-जगत्में उन्चा स्थान पाया था। उस समयका पूनाका इतिहास जनसाधारणके हृद्यमें आज भी जगमगा रहा है। पूना ही मरहजेंका वासस्थान और सर्वेप्रधान राजधानी तथा महाराष्ट्र-विजयलक्तीके प्रतिष्ठाता वीरकेशरी शिवाजी-वंशका जनमस्थान था।

पनाके चारों ओर पर्वतमाला है। पर्वतके ऊपर गिरिदुर्ग रहनेके कारण वह स्थान सुदृढ़ भावसे रिक्षत है। दाशिणात्यमें मुसलमान-राजवंशको प्रथम प्रतिष्ठासे अह्मदनगर और वीजापुर राजाओंकी उन्नतिके साथ साथ इस स्थानका पेतिहासिक आलोक विकीर्ण हो गया। पीछे १७वीं शताब्दीमें महात्मा शिवाजीकी राज्यप्रतिष्ठाके साथ ही पूनाके गौरवकी वृद्धि हुई। १८वीं शताब्दीमें यह नगर कड्गालसे पञ्जाब और विल्लीसे महिसुर पर्यन्त एक विस्तृत साम्राज्यके केन्द्रक्रममें गिना जाने लगा था।

श्ली शताब्दीके आरम्भमें शालिघाहन नामक एक हिन्दू राजा महाराष्ट्रदेशमें राज्य करते थे। गोदाबरीके किनार पैठान नगरमें उनकी राजधानी थी। राजा जब-

सिंहने पहनुंकि भगा कर चालुंक्यवंशकी प्रतिष्टा की। इंसके वाद कर्णाटक आदि दाक्षिणात्य देशोंमें चालुक्य-वंशीय राजपूत राजाओंने अपना अपना आधिपत्य फैला लिया था। शोलापुरके निकटवर्त्ती कल्पाण नगरमें उनकी राजपताका फहरा रही थी। १२वीं शताब्हीमें जव चालुक्यवंशका अवसान हुआ, तव देवगिरि (दौलता-बाद )-के यादव-वंशधर इस प्रदेशका शासन करते थे। इनके राजत्वकालमें मुसलमानोंने पहले पहल १२६४ ई०में महाराष्ट्र पर आक्रमण किया। किन्तु १३१२ ई० तक यादववंशीय राजाओंने यहां राज्य किया था। फिरि-स्तामें लिखा है, कि सम्राट् महम्मद तुगलकने १३४० ई॰में इस प्रदेश पर आक्रमण कर कोन्धाना दुर्ग (सिंह-गढ़) जीता । १३४५ ई० तक दाक्षिणात्यभूमि दिल्लीश्वरके अभीन रही। पीछे मुसलमान अमीरोंने विद्रोही हो कर महम्मद तुगलकके अधीनता-पाशको काट डाला । इसी समयसे गुलवर्गा ( कुलवर्गा )-के वाह्यनीराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। इसके वाद १४२१ ई०में अहमदशाह बाह्मनी प्राचीन हिन्दूराजधानी विदर नगर ( विदर्भ )-में अपनी पूर्वतन राजधानी उठा लाये। १३६६ ई०से १४०८ ई० तक महाराष्ट्रदेशमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। वह दुर्भिक्ष जनसाधारणमें 'दुर्गादेवी' नामसे प्रसिद्ध है। इस दारुण दुर्सिक्षसे दाक्षिणात्य जनग्रन्य हो पड़ा। महा-राष्ट्र-सरदारोंने अच्छा मौका देख कर मुसलमानोंके चंगुल-से पार्वतीय प्रदेश और दुर्भेंच दुर्गाद् छोन लिये। बाह्मनी राजाओंने खोये हुए स्थानको फिरसे दखल करनेके लिये महाराष्ट्रींके साथ कई एक लड़ाइयां कीं, पर सभी युद्धमें वे अकृतकार्यं होते गये। अन्तमें १४७२ ई०को ब्राह्मनीवंशके शेप साधीन राज-मन्ती महमूद-गवान्ते इनमेंसे कुछ स्थानों पर पुनरिधकार जमाया। इसके बाद उक्त राजमन्त्री वाह्मनी-राज्यके शासनकार्यको नृतन प्रणालीमें लिपिवद्ध कर गये। जुन्नर नगर, इन्दापुर, मान्देश, वाई, बेलगाम और कोङ्कणका सदर गिना गया और अहमदत्तगर-राजवंशके प्रतिष्ठाता अहमद-शाह ही वहांके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। भीमानदोके तीरवर्त्ती जिले बीजापुरके शासनकर्तं त्वंमें रहे। आविसिनिया देशके सेनापति वस्तूर विनारके द्राथ गुलवर्ग सौंपा

गया तथा जैन खाँ और खाजा-जहानने पुरन्थर, शोला-पुर तथा और कई जिलाओंका शासनभार प्रहण किया

जुनरमें जाते हो अहमदशाहने मरहठोंके हाथसे शिवनेर, चावन्द, लोहगढ़, पुरन्धर, कोन्धाना (सिहगढ़)
और कोङ्कणके अन्तर्वसीं अनेक स्थान छीन लिये।
उत्तरोत्तर जयश्रीलामसे उनकी स्पर्धा पहलेसे कहीं बढ़
चली। अव वे वाह्यनीराजका अधीनतापाश उनमीचन
करनेकी आगे बड़े। पहले वरणानदीके दक्षिण-तीरस्थ
प्रदेशके शासनकर्ता वहादुर गेलानी ही विव्रोही हुए।
साथ साथ आदिलशाहके उमाड़नेसे चाकनके जागीरदार जैनउद्दीन्ने उनका पदानुसरण किया। अतः १४८६
ई०में अहमदशाह उनसे मितता तोड़ देनेकी बाध्य हुए।
इस पर जैनउद्दीनने उत्तेजित हो कर उन्हें युद्धके लिये
बुलाया। दोनों पक्षमें लड़ाई छिड़ गई। जैनउद्दीन कोई
उपाय न देख चाकन-दुर्गमें छिप रहे। अहमदकी अधीनस्थ सेनाने मोमवेगसे दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।
युद्धमें जैनउद्दीन मारे गये और दुर्ग शत्रुके हाथ लगा।

इसी वीचमें वीजापुरके अधिपति युद्धफ बादिल-शाहने अपनेको भीमानदोके उत्तर तीरस्थ प्रदेशोंको साधीन राजा वतला कर घोषणा कर दो। दाक्षिणात्य-के नूतन राजाओंके वीच १४६१ ई०में एक सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार निजामशाही राजगण नीरानदीके उत्तरवत्ती और कर्माणके पूर्ववत्ती देशोंके अधिकारी हुए। नीरा और भीमाके दक्षिणांशवत्ती स्थान वीजापुर राजके ही दखलमें रहे। अन्यान्य सरदारोंने इस विद्रोहमें साथ तो दिया था, पर वे खाधोनतालाम न कर सके। दस्तूर-दिनार यथाकम १४६५, १४६८ और १५०४ ई०-में वीजापुरके साथ युद्धमें परास्त हुए और अन्तमें मारे गये। अव उनका गुलवर्गा राज्यसिक्षासन वीजापुरके हाथ लगा। १५११ ई०में बीजापुरराजने झोलापुर पर दखल जमाया।

अनन्तर अमीर वेरिद द्वारा गुलबर्गा-अधिकार और और कमाल खाँके पतन पर गुलवर्गाका पुनरुद्वार संघ-दित हुआ। पुरन्धर और उसके आस पासके प्रदेश कई वर्षों तक ख्वाजा जहानके अधिकारमें रहे। १८२३ ई०में कई एक गुद्धोंके बाद बीजापुर और अक्ष्मदनगर राज्यके बीच सन्धि स्थापित हुई। इस्माइल आदिलशाहकी वहनसे वहांन निजामशाहने विवाह किया। विवाहमें कन्याके यौतुक सरूप शोला-पुर देनेकी वात थी। पर उक्त सम्पत्ति नहीं मिलनेसे निजामशाही राजाओंने अपना दावा मांग मेजा। इस स्वसे उपर्यु परि दोनों पक्षमें प्रायः ४० वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें (१५६३-६४ ई०में) उन्होंने विजयन्तगरपति रामराजको अपनेसे अधिक चलशाली समक्त कर आपसमें मेल कर लिया और रामराजकी क्षमताको सर्व करनेके लिये १५६५ ई०में युद्ध ठान दिया। तालिकोटमें दोनों दलके बीच यमसान लड़ाई लिड़ी। युद्धमें रामराज मारे गये और उनकी सेना विध्वस्त हुई। इसके वाद दाक्षिणात्यमूमिमें कुछ समयके लिये शान्ति वनी रही।

१५६० ई०में वोजायुरके प्रतिनिधि दिलावर खाँ अहमदनगरको भाग आये और २य बुर्हान-निजामशाहको शोलायुर देनेके लिये अनुरोध किया। १५६२ ई०में इला-हिम आदिल शाहसे अहमदनगरकी सेना पराजित हुई और-दिलावर बन्दो हो कर सतारा-दुर्ग भेजे गये।

इस वार दाक्षिणात्यमें मुगलराजवंशका आक्रमण आरम्भ हुआ। १६०० ई०में अहमदनगर अकवरके हाथ लगा था। हवसी-सरदार मालिक अम्बरने पुनः उस पर अधिकार जमाया। १६१६ ई०में जहाङ्गीरके पुत शाह जहांने सहमदनगरके कुछ अंश दखल कर लिये।

१६२६ ई०में मुगल-शासनकर्त्तांके विद्रोही होने पर पुनः युद्ध आरम्म हुआ। १६३३ ई०में दीलतावाद मुगलों-के हाथ लगा और राजा वन्दी हुए। उस समयके मरहटा सरदारोंके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति शाहजी मोंसलेने पूर्वतन राज-वंशके एक व्यक्तिको सिंहासन पर विठाया। उन्होंने परेख्डासे मुगलोंको मार भगाया और पूना तथा गङ्गथर-जिलाको अच्छी तरह लूटा।

शाहजहांने पराजयका संबाद पाते ही दाक्षिणात्यकी ओर 'संसैन्य याता कर दी। १६३६ ई०में वीजापुरके राजाने पराजित हो कर उनको अधोनता खीकार की। शाहजीके अधिकृत स्थानोंको दखळ करनेमें उन्हें विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ी। १६३७ ई०में शाहजीने आत्म समर्पण किया और उसके साथ ही साथ निजामशाही-

वंशका विराग भी बुक्त गया। भीमा नदीके उत्तरःतीर-वत्ती जुकर आदि स्थान मुगलसाम्राज्यके हुए और दक्षिणतीरवत्ती भूभाग वीजापुरके राजाको दिये गये। शाहजी वीजापुरके अधीन नौकरी करने लगे और पारि-तोषिक खरूप उन्हें पूना, सुपा, इन्दापुर, वारामित और मावल नामक स्थान जागीरमें मिले थे।

वीजापुर राजके अधीन मरहठा-सरदारके शिक्षित "वर्गी" नामक अभ्वारीही सेनादलने मुगल-युद्धमें विशेष रणपाणिडत्य दिखा कर जनसाधारणमें प्रतिपत्ति लाम की थी। छोटे छोटे दुग मरहरा-सरदारोंके हाथ सुपुर्द थे। मुसलमान 'मोकसदार'के अधीन हिन्दू-कॅर्म-चारिगण राजस्व वस्ळ करते थे। इस समय अनेक मरहठावंशने 'देशमुख' और 'सरदेशमुख'का कार्यभार व्रहण किया। जब चारों ओर मरहठालोग राजकर्ममें नियुक्त थे और चारों ओरके दुर्ग प्रायः मरहठा सरदारीं-से परिचालित होते थे, ठीक उसी समय वीजापुर राज-वंशकी अवनतिका सूलपात आरमा हुआ। शाहजीके पुत महावीर शिवाजीने सुयोग समक्त कर अपना सिर उठाया। उन्होंके मोहमस्त्रसे मुग्ध हो मरहठालोग दलके दल आने लगे और उनके दलमें मिल गये। अपर-हठोंकी उमति और अंतनतिके सम्बन्धका विशेष इतिहास शिवाजी शब्दमें देखी ।

१८१८ ईं भी अन्तिम पेशवा वाजीरावकी मृत्युंके साथ साथ मरहठा-पराक्रमका भी अवसान हो गया। इसके वाद पूनामें और कोई घटना न घटी। विख्यात सिपाहीविद्रोहके समय भी यहां किसी प्रकारका औद्धत्य नहीं देखा गया। विद्रोहगुरु देशप्रसिद्ध नाना-साहेव इन्हीं वीजारावके दस्तक पुत्र थे।

इस जिलेके प्रत्येक ग्राम और नगरमें देवमन्दिर स्थापित हैं। कुछ तो अति प्राचीन हैं और कुछ विलक्क आधुनिक। कुछ खंडहरमें परिणत हो गये और कुछ अपना शिखर अपरको उठा कर पूर्वतन गौरवकी रक्षा कर रहे हैं। यहांके अधिकांश हिन्दू शैव हैं, इस कारण शिव-मन्दिरकी संख्या ही अधिक है। स्थान स्थान पर शिला-लिपि भी दृष्टिगोचर होती है।

विद्याशिक्षामें यह जिला वस्वई-प्रे सिडेन्सीके चीवीस

Vol. XIV 67

जिलोंमें सातवां है। अभी यहां २ शिल्पकालेज, १ व्यवसायी कालेज, १ विश्वानकालेज, १४ हाई-स्कूल, २१ मिड्लि स्कूल और ३४१ प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूल और कालेजके अलावा यहां ४ अस्पताल और २० चिकित्सालय हैं। जिलेमें एक पागलखाना (Lunatic asylum) भी है।

२ उक्त जिलेका प्रधान नगर और दक्षिण-भारतमें अङ्गरेजराजका प्रधान सेना निवास । यह अक्षा० १८ देश ४० और देशा० ७३ ५१ पू० वर्म्यईसे ११६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यह नगर समुद्रपृष्ठसे १८५० फुट ऊंचा और मलवार-उपकूलसे प्रायः ३१ कोस पूर्व मुटानदीके दाहिने किनारे सुद्रहर्दु में द्वारा सुरक्षित है। प्रत्येक वर्षके जुलाई माससे ले कर नवम्बर मास तक वर्म्यई-गवमेंएट यहां रह कर राजकार्यकी पर्यालोचना करती है। यहां प्रेटइण्डियन पेनिन्सुला रेलवेका एक स्टेशन है। जनसंख्या प्रायः १५३३२० है।

मूता और मूलाका सङ्गम छोड़ कर यहां नागमारी, भैरवा, माणिक नाला, आम्त्रिल ओड़ा, खड़क और वासलाकी नहर नगरके वीच हो कर वहतो हुई पार्वती-हुद्में गिरी है। इस प्रकार जलसिक होने पर भी नगर-का अधिकांश स्थान प्रस्तरमय और अनुर्वर है। पश्चिम-से पूर्वमें अपेक्षाकृत समतल भूमि देखी जाती है। उत्तरमें कहीं भी ऊंची भूमि दृष्टिगोचर नहीं होती। एकमात दक्षिणमें ही सिंहगढ़-भूलेश्वर पर्वतमाला, में मूता और मूलाका सङ्गमस्थान, मध्यभागमें खड़क-वासलाकी नहर और दक्षिणकी ओर पार्वतीहदतीरवर्ती पार्वती पर्वतके शिखर पर प्रतिष्ठित देवमन्दिर ही नगरकी शोभाको वढ़ाता और जनसाधारणको मनोरञ्जन करता है। नगरमें जलका अभाव दूर करनेके लिये और भी कितनी नहर वा जल-प्रणाली काटी गई हैं। पेशवा बालाजी वाजीराव द्वारा १७५० ई०में कट्राजखाल और पार्वतीहद काटा गया और आम्विल ओड़ा नामक जलस्रोतकी गतिको पलटा कर हदके साथ संवद्ध किया गया है। १७६० ई०में नानाफड़नवीसने जो नहर काट निकाली थी, वह 'नानाका खाल' नामसे प्रसिद्ध है। अलावा इसके रास्तियाख़ाल, चौधरीका

खाल, मृताखाल आदि कई एक खालें देशवासियोंके उत्साहसे कारे गये हैं। यहांके जलकी कल वम्मईवासी सर जमसेठजी जि जि भाईके एकमात उत्साहसे स्थापित हुई थी। इन्होंने विशेष उपकारिता दिखा कर ५ लाख ७ हजार रुपये इसके वनानेमें खर्च किये थे। नगर भरमें केवल दो तीन हो लंबे चौड़े पथ हैं और सभी संकरे हैं । पूर्व-पश्चिम विस्तृत गलियोंमेंसे एक पेशवाओंके अधिकार कालमें हत्याकारियोंको दण्ड देनेके लिये निर्दिष्ट थी। यहां खुनी असामी को लाकर हाथीके पैर तले फेंक दिये जाते थे। यहांका घर प्रायः एकतला है, किन्तु रास्तेके उपरके मकान साधारणतः उद्यानयुक्त हैं । महाराष्ट्र-गौरव पूर्वतन वीर और सिववीं को अहालिकादि अधिकांश भग्नावस्थामें पड़ी है। शनि-वार नामक पेट वा मुहल्लेमें पेशवाका जो राजप्रासाद था, वह १८२७ ई०में जल कर विलक्कल भस्मसात् हो गया। अभी केवल चारों ओरके सुदृढ प्राकार रह गये हैं।

राजससंप्रह, प्रहरियोंका थाना और विचारादि राज-कीय कार्योंकी सुविधाके लिये वहुत पहलेसे ही पूना नगर कई पक 'पेट' वा मुहल्लेमें विभक्त था। मुसलमानी अधिकारमें एक और 'पथ' मुसलमानी नाम पर स्थापित हुआ। अन्तमें पेशवाके राजसके समय यह फिर नूतन नाममें प्रवत्तित हुआ। नागकारी नदीके पूर्व मङ्गलवार, सोमवार, रास्तिया, न्याहल, नाना और भवानी; पश्चिम कसवा, आदित्यवार, गणेश, वेताल, गञ्ज, मुजाफर और घोडपाड़का 'पथ' तथा मृता नदीके समीप नीवार, नारा-यण, सदाशिव, बुधवार और शुक्रवार आदि पेट अव-स्थित है।

उपरि उक्त १८ महल्लोंमें तथा नदीके किनारे वहु संख्यक प्राचीन मन्दिर हैं। किसी किसी महल्लेमें प्रासादकी तरह अञ्चालिका भी देखी जाती हैं।

सोमगर-पूर्व नाम साईस्तापुर। यह १६६२-६४ ई०में वाह्मिणात्यके मुगल-शासनकर्ता साईस्ताबाँसे स्थापित हुआ है। यहां अनेक ध्वंसावशेष देखे जाते हैं।

मंगलवार-प्राचीन नाम शाहपुर। यहांका नागेश्वर-

का विष्णुमन्दिर देखने छायक हैं। रास्तिया—पेशवाके अश्वारोहियोंके नेता आनन्दराव छद्मणने जबसे यहां शिव-मन्दिरकी स्थापना की, तबसे यह स्थान शिवपुरी कहलाने लगा है। अभी यह केवल उक्त बंशके नामकी घोषणा करता है। यहांका 'रास्तियाभवन' नामक सबसे वड़ा प्रासाद देखने योग्य है। प्रतिवर्षके श्रावण मासमें शिराल शेठ लिङ्गायत-वाणीके उद्देश्यसे एक वड़ा मेला लगता है।

श्यहाल—पेशवा वालाजी वाजीरावके खासगीवालके रक्षक न्यहालके नामानुसार यह स्थापित है।

नाना वा इतुमान—यह १७६१ई०में नानाफड़नवीससे स्थापित हुआ है। पारिसयोंका अग्निमन्दिर, घोड़े पीर-का अस्ताना, निवधुङ्ग विठोवाके मन्दिर आदि प्रधान हैं।

भगनी—पेशवा सवाई माधोरावके राजत्वकालमें नानाफड़नवीसने इसे स्थापितं किया। इसका प्राचीन नाम वोवन वा जेज़्व है। यहांका भवानीदेवी और तेलफ शदेवीका मन्दिर ही प्रधान है।

कथर सर्वभाचीन और उपविभागका सदर । यहां-का अम्बरखाना, पुरन्थरका भवन, शेख सल्लाकी दो कब्र और गणपतिका मन्दिर प्रधान है।

भादित्यवार—प्राचीन नाम मालमपुर। वालाजी वाजीरावके शासनकालमें महाजन-व्यवहार जोषीने इसे प्रतिष्ठित किया। दुर्जनसिंहका पाग, फड़क्का प्रासाद, बोहोरादियोंका जमात्लाना, जुमा-मस्जिद और सोमेश्वर-मन्दिर प्रधान है।

गणे. — पूर्वोक्त जीवाजी पन्थ खासगीवाल द्वारा प्रतिष्ठित। मारुतीका दोलमन्दिर और दगड़ी नगोराका नागपञ्चमी मेला हो श्रेष्ठ है।

वंताल उक्त जीवाजीपन्थ द्वारा प्रतिष्ठित । पहले इसका नाम गुरुवार था । जबसे वैतालमन्दिर वनाया गया है, तबसे यह वर्त्तमान नाममें परिवर्त्तित हुआ है। श्रीपार्श्वनाथ और वेताल-मन्दिर तथा राज्य वागशैरका तकिया देखने योग्य है।

मुजफ्काज ग—सरदार मुजफ्फर-जङ्ग द्वारा प्रतिष्ठित ।

धोरपडे—धम पेशचाके शासनकालमें माधोजीराव
मोंसलेने इसे वसाया । यह स्थान पहले घोर-पड़े वा
अध्वारोही सेना-दलके अधिकारमें था।

शनिवार—पूर्व नाम मुर्जु दावाद । १७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें मुसलमानींने इसे वसाया । यहां शनिवार-वाड वा पुरातन राजभवनका ध्वंसावशेष, मण्डई, ओङ्कारेश्वर, हरिहरेश्वर, अमृतेश्वर और शनिवार मारुति-मन्दिर तथा पींजरापोल है ।

नारायण---५म पेशवा नारायणराव वल्लालके नाम पर यह वसाया गया है। मोदिचा और मातिचा गण-पतिका-मन्दिर, अष्टभुजा-मन्दिर, गायकवाड़-भवन और मानकेश्वरका विष्णुमन्दिर प्रधान है।

सदाबिव—३य पेशवाके भाई सदाशिवराव भाऊ द्वारा स्थापित। अंगरेजाधिकारके वाद इसका पुनः संस्कार हो कर 'नवि' नाम रखा गया है। लकड़ीपुल, विठोवा, मुरलीधर और नरश्राशका मन्दिर, खाजिनाविहार, नाना-फड़नवीसका जलाधार, विश्रामवाग (१८७६ ई०में अग्निसे इसका कुछ अंश नष्ट हो गया), प्रतिनिधिकी गोट, सोतिया महसोवाका मन्दिर, सासुनका आतुराश्रम, पार्वतीहृद और मन्दिर आदि प्रधान हैं।

वुषवार—१६६० ई०में सम्राट् औरङ्गजेव द्वारा प्रति-ष्ठित। इसका प्रचीन नाम मह्जावाद था। ८म पेशवा-का राजप्रासाद (१७६६-१८१७ ई०) वा बुधवारावाङ, बेळवाग, भाङ्गिया मार्चतिका मन्दिर, कोतवाळ चावड़ी, तांवड़ी योगेश्वरी, काळीयोगेश्वरी और खनाळीरामका मन्दिर, मोरोवा दादाका भवन, भिद्का भवन, धमधार-का भवन, ठठका राममन्दिर और पासोदिया-मार्चतिका मन्दिर ही प्रधान है।

शुक्षनार—जीवाजी पन्थ खासगीवाल कर्त क स्थापित । यहां तालिमखाना, तुलसीवाग, लक्कड़खाना, कालाहुद, भावनखानी, रामेश्वरमन्दिर, पन्थसंचिवका प्रासाद, चौधरीभवन, हीरावाग और पारशनाथका मन्दिर हीं प्रधान है।

पूना नगरके मध्य और विहर्मागमें पावैती, पाषाण, वृद्धे श्वर, भैरव, पञ्चालेश्वरका गुहामन्दिर, ओङ्कारेश्वर, हरिहरेश्वर, अमृतेश्वर, नागेश्वर, सोमेश्वर, रामेश्वर और सङ्गमेश्वर महादेवका मन्दिर तथा वालाजी, नरपत्सीर, नर्शोवा खुन्या, मुरलीधर, गोसमपुरके विष्णु, तुलसीवाग-के राम, वेलवागके विष्णु और लकड़ीपुलके विठोबाका मन्दिर, एतद्भिन्न भवानी, ताड़वड़ी, योगेश्वरी आदि देनोमन्दिर और गणपतिका मन्दिर है। उक्त मन्दिरोंमेंसे प्राप्तभस्सभी नदीके किनारे अवस्थित हैं। इन सब मन्दिर्शेका कारुकार्य दुरा नहीं है।

उपरि उक्त मन्दिर और अद्वालिकादि छोड़ कर कल, कृषि और इञ्चिनियरि-शिक्षाका एक वैद्यानिक-विश्वविद्या-लय; सिन्दिया छत्रो, वारुद और गोलाखाना, गोरावागान, ७ ईसाई-गिर्जा, पारसियोंका प्रेतमवन, होलकर-सेतु, सङ्गमपुल और वेलेक्ली आदि सेतु, सेनावारिक, जेल-खाना और-साधारण पुस्तकालय आदि कई एक साधा-रण-स्थान हैं। मुसलमानी अमलमें (१२६०-१६३६ ईश्मेंत) कसवा नगरमें ही सेनानिवास था। इस कारण यह नगर सफेद पत्थरोंके प्राचीरसे घरा हुआ था। यह आचीत दुर्ग मृता नदीके किनारे अभी ज्नाकोट नाम-से मशहर है। कोङ्कण-दरजा, नगरहार, मालिवेश, कुम्भा-वास-आदि कई एक इसके द्वार हैं। किरकी और पूनामें सेनाकी छावनी है।

पूनाकाः संस्कृत नाम पुण्यपुर है । पुण्यसिलला और मूलाके सङ्गमस्थल पर अवस्थित तथा देव-मिन्द्रिरादिसे भरपूर रहनेके कारण यह पुण्य जीवन हिन्द्र-गणसेवित एक प्राचीन नगरमें गिना गया है। भामदीके पञ्चालेश्वर आदि शैय गुहामिन्दर और गणेश खिन्दकी वहु कालस्थायी गुहाए वहांके प्राचीनत्वका एकमाल निद्दर्शन है । इस प्राचीन समयमें पूना नगरमें ब्राह्मणोंका वास था। संस्कारवशतः वे उपदेवताके प्रकापसे नगरकी रक्षा करनेके लिये वहिरोवा, महाशोवा, नारायणे

#. स्थानीय प्रवादके अनुवार वह गुहामन्दिर ५३५ शकका, पर उसकी, गठनादि हे खकर कोई कोई उसे अबी वा दवी शत ब्ली-का बना हुआ मानते हैं। ठाउँ मेळेब्सिया (Lord Valentia, 1803)-ने टलेमीकथित Punnata of Punnatuaो ही वर्तमान पूता नगर सामित किया है। अमणकारी फाइयर (Eryer) (१६७३-७५ इं०में)-ने- अपने मानचित्रमें पूता नगरको anatu नामसे उत्लेख किया है। प्राचीन मानचित्रका, 'Panatu' और टलेमीका Pannatu एक श्वर, पुण्येश्वर और मारुतिदेव-मिल्स्की प्रतिष्ठा करते थे। १२६० ई०में दिल्लीश्वर अलाउद्दीन खिलजीकी सेनाने पूना पर अधिकार जमाया। विध्यमी मुसलमानींके अत्या-चार और प्रमावसे पुण्येश्वर तथा नारायणेश्वरका मिल्स् यथाक्रम सेख-सल्लाकी वड़ी और छोटी द्रगाहमें क्पा-न्तरित हुआ। शिवाजीके पितामह मालोजी मोंसलाकी सम्बद्ध ना करके १५६५ ई०में अहमद नगरपित स्य वहा-दुर निजामने उन्हें पूना, स्पा, शीवन और चाकनका विभाग दान किया। उस सम्पत्तिके दुर्ग भी उनके अधि-कारभुक्त हुए।

१६२० ई०में. अहमदनगरके मन्त्री मालिक अम्यरके सेनानायक सिद्धीयाकुवके अत्याचारसे तथा १६३० ई०-में दुर्मिक्षके प्रपीड़नसे अनेक छोग पूना छोड़ कर भाग गये। उसी साल वीजापुर राज महमूदके मन्त्री मुरार जगदेवरावने मालोजीके पुत शाहजीके विरुद्ध युद्ध करके पूना नगरको तहस नहस कर डाला। अनन्तर शाहजी-के वीजापुरराजकी अधीनता स्वीकार करने पर महमूदने पुनः १६३६ ई०में शिवाजीके पिताको पैतृक सम्पत्तिका अधिकार दे दिया । अव शिवाजीने पुनामें रहना पसन्द किया और दादाजी कौएडदेव नामक किसी ब्राह्मणको अपनी सम्पत्तिकी देख-रेखका भार सौंपा। इन्होंके पत्नसे श्रोदीन पूनानगर पुनः जनाकीर्ण और दिनों दिन समृद्धि-शाली होता गया । महाराष्ट्र गौरव शिवाजी और उनकी माता जिजिवाईको रहनेके लिये दादाजीने पालमहाल-(वर्त्त मान अम्बरखाना) नामक एक प्रासाद वनवा दिया। १६४७ ई॰में कोएडदेवकी मृत्यु होने पर शिवाजीने शासन भार अपने हाथ लिया । १६६२ ई२में मरहडा-दस्युगणका उपद्रव रोकनेके लिये. औरङ्गावादके आसन-कर्त्ता साईस्ता खाँने शिवाजी पर चढ़ाई कर दी । शिवाजीने भग कर सिंहगढ़-दुर्गमें अश्रम् वियात । धीरे धीरे पूना, सूपा और चाकनके सभी हुएँ मुग़लेंके हाथ लगे । १६६३ ई०में साईस्ता खाँ लालमहलमें आ कर रहने छगे। अपनी छाती पर यवनींका. शयन भला शिवाजीको कव अच्छा लग सकता था ! वे फौरन पूना पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे 🎼 वारातके बहानेसे जा उन्होंने निदित - साईस्ताः खाँ पर हमला कर

दिया। साईस्ता खाँ किसी तरह प्राण लेकर भागे। इसके बाद सेनापित जयसिंहने पनाको फिरसे दखल किया। शिवाजी दौड़नेमें वड़े तेज थे, कोई भी उनका पीछा करनेका दुःस्साहस नहीं कर सकता था, इस कारण सम्राट् औरङ्गजेवने प्रसन्न हो कर उन्हें १६६७ ई०में पूना, चाकन और सूपा विभाग लीटा दिया। इसके बाद खानजहानने पूना पर आक्रमण किया और १७६३ ई०में हैदरावादके निजामअलीने इसे अच्छी तरह लूटा और जला डाला था।

होलकर और सिन्दियाराजके आधिपत्यसे पेशवाओं-का क्रमशः वलक्षय होता जाता था। महाराष्ट्रकेत दिनीं दिन रणनिनादसे ग्रंजने लगे। क्रमशः अङ्गरेजराजकी सहायताकी ज़रूरत पड़ी। १८८२ ई०में वसाई ( वेसिन )-की सन्धिके अनुसार पेशवाकी सहायताके लिये एक दल अङ्गरेजी-सेना पूनामें रखी गई। वैठनेकी जगह मिल जाने पर लोग सोनेकी जगह आसानीसे वना लेते हैं। यही हालत अङ्गरेजोंकी हुई । अव वे धीरे घीरे पूनाके राजकार्यमें हाथ वढाने लगे। १७६२ ई०में सर चार्ल्स मैलेट प्रथम प्रतिनिधि हो कर यहां आये। १८१७ ई०में पेशवा वाजीरावने अंगरेजोंसे सन्धि कर ली। सन्धि Treaty of Poona नामसे प्रसिद्ध है। समय दाक्षिणात्यमें पिएडारियोंनेः उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। अङ्गरेजींने उनका दमन करनेके लिये पेशवासे सहायतार्भांगी। पेशवा भी दशहराके वाद सेना देनेको प्रतिश्रुत हुए । दशहरा भी बीत चला, उसके साथ साथ मरहठा सेना आ कर पूनाके चारों ओर जुटने लगीं। मरहटोंने जूनमासकी सन्धि तोड़ कर उसी सालके नवम्बर मासमें अङ्गरेजों पर चढ़ाई कर दी। फिस्कीके: युद्धमें: पराजित-हो: मरहरोंने: आत्मसमर्पण किया। - वृटिशकी विजय-पताका पूनामें फहराने छगी। इसःसमय अ गरेजीसेनाके अत्याचारसे पूनावासीके धन प्राण नष्ट हुए थे। १८१८ ई०में कीरीगावके युद्धमें मरहठा-सेनाके पराजित. होने पर-बृटिश-गवर्में एटने-पेशवा. वाजी-रावको राज्यच्युत करके शासनभार अपने हाथमें छे छिया और पेशवाको कानपुरके निकटवर्ती विदुर नगरमें नजर-वंदी करके मेज दिया। १८१६ ईंग्में ब्राह्मणॉकी, अधि-

नायकतामें अंगरेजींकी हत्या करनेके छिये पूना नगरमें एक दुष्टव्ल संगठित हुआ। एलफिन्एन साहवने पड़-यन्तकारी दलपतियोंकी कमान गोलोंसे उड़ा दिया। इसकेः वाद पूना नगरमें और किसी प्रकारकी घटना नहीं घटी। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय यहां विद्रोहका लक्षण दिखाई दिया था। १८६० ई०में रेल-पथके खुल जानेसे यहांके वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। १८७६-७७ ई॰में पूनामें भारी अकाल पड़ा था । १८७६ ई०मैं खड्कवासलामें जलकी कल स्थापित हो जानेसे अभी नगरका अर्जु वर स्थान भी फलपुष्पसे हरा भरा दीखता है। इस समय दस्युपति चासुदेव बलवन्त फडकके उपद्रवसे पूनावासी तंग तंग आ गये थे। फिलहाल पूना-नगर दक्षिण-भारतके सामरिक विभागकाः प्रधान केन्द्र समका जाता है। यहां मिडिल और प्राइ-मरी स्कूलके अलावा वारह हाई स्कूल और तीन कालेज हैं।

पूनाक (हिं० स्त्री०) तेलहनमेंकी वची हुई सीठी, खली।
पूनिउ' (हिं० स्त्री०) पूनी देखो।
पूनी (सं० स्त्री०) पूति, शुद्धि।
पूनी (हिं० स्त्री०) धुनी हुई रहकी वह वसी जो चरखे पर

स्त कातनेके लिये तैयार की जाती है। पूनो (हिं० स्त्री०) पूर्णमासी, पूर्णिमा।

पूप ( सं॰ पु॰ ) पू-किष्, पुवं पिवर्तं पातिः रक्षतीतिः पा∻ क । पिएक, पूञाःया मालपूञाः नामका मीटा, पकताल । पूप चुरानेसे पिपीलिका ( चींटी-) होना पड़ताः है ।

पूपला ( सं० स्त्री० ) पूपं तदाकारं लाति लान्क । पोलिका, पूपली, प्राचीनकालका एक प्रकारका मीठा पकवान । पूपली ( सं० स्त्री० ) पूपल-डीप् । पूपला देखी ।

पूपली (सं क्षां) १ वचोंने खेलनेका काठका वहुत छोटा खिलीना जो छोटी डंडीके आकारका होता है और जिसके दोनों सिरे कुछ मोटे होते हैं। २ पोली नली। ३ वांस आदिमेंसे काटी हुई वह छोटी खोलली नली. जिसमें देशी पङ्कोंकी डंडीका अन्तिम भाग फंसाया रहता. है और जिसके सहारे पंखा सहजमें चारों- और घूमा. पूपशाला (सं० स्त्री०) अपूप-विकयार्थं गृह, वह स्थान जहां पूप आदि पकवान रखे और बेचे जाते हैं।

पूपालो ( सं० स्त्रो० ) पूपाय अलतीति अल-अच्, गौरादित्वात् ङीष् । मालपूआ, पआ ।

पपाएका (सं० स्त्री०) पूपद्रव्यसाघनी अग्रका अप्रमो।
गौणचान्द्र पौपमासकी कृष्णाप्रमी। इस दिन पप
द्वारा पितृलोकका थाद्ध करना होता है, इसलिये
इसे पूपाप्रमो कहते हैं। यह थाद्ध अवश्यकतंथ्य है।
रासपूर्णिमाके वाद जो कृष्णाप्रमी होती है, उसी
दिन यह थाद्ध करना चाहिथे। तीन अप्रका थाद्ध
विहित हुए हैं, --पूपाप्रका, मांसाप्रका और शाकाएका। पप, मांस तथा शाक इन तीन द्रव्य द्वारा
अप्रमीमें थाद्ध करना होता है, अतः इनका पूपाप्रकादि
नाम हुआ है।

पूपिक (सं • स्त्रो॰) पूपः पपाकारोऽस्त्यस्या इति ठन्, ततप्राप्। पलिका, पआ, पूरी आदि पकवान।

पय ( सं ॰ क्की॰ ) पयते दुगन्धो भवतीति पूय-अच्। पक्षत्रणादि सम्भव घनीभूत शुक्कवर्ण विकृत रक्त, पीप, मवाद। पर्याय—क्षतज, मलज, पूयन, प्रसित।

पक्रवणादिसे पय निकलता रहता है। पयवर्द्ध क द्रथ्य—नया चावल, उरद, तिल, कुलथी, वरवटी, हरि-द्रण शाक, अमुद्रथ्य, लवण, करुद्रथ्य, गुड़, पिएक, शुक्त-मांस वकरी अथवा भैंसका दूध, निर्जल देशमें जो पशु पैदा होता है उसका मांस, शीतल जल, क्शर (खिचड़ी), पायस, दिघ, दूध तथा तक आदि प्यवद्ध क है, इसलिये इन सब चीजोंका परित्याग करना चाहिये।

पयउडश (हि॰ पु॰) भोजपतकी जातिका एक वृक्ष। यह बसिया पहाड़ी और वरमामें पाया जाता है। इसकी छाल मणिपुर आदिके जंगली लोग बाते हैं और पानीके घड़े पर उसकी मजबूतीके लिये लपेटते हैं।

पयका (सं ॰ पु॰) पुराणानुसार एक प्रेतयोनि । इसमें मरनेंके उपरान्त वे वैश्य हो जाते हैं जो अपने धमसे च्युत होते हैं। कहते हैं, कि ऐसे प्रेतोंका आहार पीप है। पयकुएड (सं ॰ पु॰) पुराणानुसार एक नरकका नाम। पूथप्रमेह (सं ॰ पु॰) एक प्रकारका रोग जिसमें पीपके समान मूल होता है अथवा जिसमें मूलमेंसे पीपके समान हुर्गन्थ आती है।

पूयमानयच (स'० अव्य०) पूयमाना निस्तुषोक्तियमाणा यवा यत, तिष्ठदुःचादित्वादव्ययोमावः। परिष्कियमाण यवाधार खळादि।

पूयरक्त ( सं० पु० ) पूयविशिष्टं रक्तमसिन् । नाक-का एक रोग । इस रोगका निदान-रक्तपित्तके आधिषय अथवा ललाटमें अभिधातादिके हेतु नाक-से लेह्न मिला हुआ पीप निकलता है, इसीको पूय-रक्त कहते हैं ।

इसकी चिकित्सा -इस रोगमें नाड़ीवणकी तरह चिकित्सा करनी होती है और वमन करा कर अवगीड़न, तीक्ष्ण द्रव्यका चूर्ण नल द्वारा प्रयोग करनेसे यह अति शीध आरोग्य हो जाता है।

पूयवद्धेन (सं०पु०) पूरं वर्द्धयित वृध-णिच्-स्युद्। सुश्रुतोक्त नवधान्यादि द्रव्यगणभेद। ये सव द्रव्य खोने-से पूय वद्दता है। वृय देखो।

पूयवाहं ( सं॰ पु॰ ) एक नरकका नाम।

पूयस्राव (सं॰ पु॰) १ नेत्रसन्धिगत रोगविशेष । इसका लक्षण—नेत्रका सन्धिस्थान एक जाता है और उससे पीप वहने लगती है, इसीको पूयस्याव कहते हैं। २ अभ्य-का नेत्ररोगविशेष ।

पूयारि (सं॰ पु॰) पूयानामरिः, तद्विनाशकत्वात् । निम्ववृक्ष, नीमका पेड़ ।

पूयालस (सं० पु०) पूय अलस इव यत, सान्द्रत्वेन चिरान्निर्गमनादेव तथात्वं। आँखोंका एक रोग जिसमें उसकी पुतलोकी सन्धिमें शोथ होनेके कारण वह स्थान पक जाता है और उसमेंसे दुर्गन्धियुक्त पीप निक-लती है।

पूर्योद (सं० क्की०) पूरमिवोदकमत, उदादेशः। नरकमेद।
पूर (सं० क्की०) पूरयति सौगन्धेनेति पूर-कं । १ दाहागुरु,
दाह अगर। (पु०) २ जलसमूह, वाढ़। ३ वणसंशुद्धि,
घाव पूरा होना या वढ़ना। ४ खाद्यविशेष, वे मसाले या
दूसरे पदार्थ जो किसी पकवानके भीतर भरे जाते हैं। ५
पूरक प्राणायामकारीका नासारन्त्र द्वारा वाहरमें यवनाक्षण, प्राणायाममें पूरककी किया।

पूर (हिं० वि०) पूर्ण देखी।

पूरक (सं० पु०) पूरयतीति पूरि-ण्वुल्। १ वीजपूर । २
गुणक अङ्क, वह अङ्क जिससे गुणा किया जाता है । ३
ध्यानकारोका नासिकागत उच्छ्वास, प्राणायामका अङ्गविशेप । ४ प्रे तदेहनिक्पादक अशौचकालमें देय दशविशेप । ४ प्रे तदेहनिक्पादक अशौचकालमें देय दशविशेष । मृत्याकिको देह मस्पीभूत होनेके वाद अशौचकालके मध्य पिएड द्वारा देहको पूरण करना होता है,
इसीसे इसका नाम पूरक पड़ा । दशिपएड द्वारा देह
पूरण होनेके कारण इसे दशिपएड भी कहते हैं । जो
प्रे तव्यक्तिका अग्निसंस्कार करें, वे नौ दिनमें नौ पिएड
और जो श्राद्धाधिकारी हैं, वे अशौचान्त दिनमें पूरकविएड अर्थात् दुशम पिएड दें । इस पिएड द्वारा सारी
देह पूर्ण होती है ।

देह व्यतीत किसी प्रकार खगं और नरकादिका भोग नहीं हो सकता। जब यह पाट्कोंषिक देह भस्मादिक्षपमें परिणत होतो है, तब उसकी इस पिएड द्वारा प्रेत-देह होती है। यह प्रेत-देह होनेके वाद उसका श्राद्धादि कार्य सम्पन्न होता है। पीछे साल पूरने पर अर्थात् सपिएडी-करणके वाद उसे भोगदेह होगी। इसी भोगदेह द्वारा खर्गनरकादिका भोग हुआ करता है।

मृत्युके बाद ही तेज, वायु और आकाश इन तीनों भूतोंकी सहायतासे अतिवाहिक देह होती है, जिसे प्रेत-देह भी कहते हैं।

इस समय वह देह आकाशस्थित, निरावलम्ब, वायु-भूत और निराश्रय हो कर रहती है तथा शीत, वात और तपोद्ध त भयानक यातनाका अनुभव करती है।

पूरक पिण्डकी व्यवस्था ।— जिसकी अग्निकिया होगी, उसीका पूरकपिएड विधेय हैं। जो अग्निसंस्कार करें, वे ही पूरकपिएड दें। अशौचके प्रथम नौ दिन तक प्रतिदिन एक एक पिएड करके और दशवें दिन शेष पिएड देना होगा। शूद्रादिकों ६ दिनमें ६ पिएड और ३०वें दिनमें दशवों पिएड देना होगा। जिसके पूर्णाशौच नहीं होता उसे जिस दिन अशौचान्त होगा उसी दिन पूरक पिएड देना होगा।

प्रथम पिएडसे मस्तक ; द्वितीय पिएडसे कर्ण, चश्च और नासिका ; तृतीय पिएडसे गला, अंस, युज मौर वक्षःस्थल ; चतुर्थ पिएडसे नामि, लिङ्ग और गुद ; पञ्चम पिएडसे जानु, जङ्गा और पादइय; पष्ट पिएडसे मर्म सप्तमसे समस्त नाड़िया; अप्टमसे दन्त और रोम; नवमसे वीर्य और दशम पिएडसे सम त देह पूर्णताको प्राप्त होती है। इसी प्रकार मृत व्यक्तिकी देहके अङ्गादि पूरण होते हैं।

> "शिरस्त्वाद्ये न पिण्डेन प्रे तस्य कियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकान्तु समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथा कमात् । चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानुजङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥ दन्तरोमाद्यप्रमेन चीर्यञ्च नवमेन तु । दशमेन च पूर्णत्वं तृमता श्रद्धिपर्ययः ॥" (श्रृद्धितःस्व)

यह पिएड प्रति दिन एक एक करके देना होता है। किन्तु तीन दिन अशीच होने पर पहले दिन एक, दूसरे दिन चार और तोसरे दिन पांच, इसी प्रकार दश पिएड देना होगा। जिसके केवल एक दिन तक अशीच है; उसे उसी दिन प्रकपिएड देना चाहिये।

यदि किसी कारणवशतः अग्निदाता पूरकिपण्ड न दे, तो आधश्राद्धकारीको अन्तिम दिन या आधश्राद्धके पूरक पिण्ड दे कर ऊर्णातन्तुमय वास द्वारा उसकी अर्चाना करनी चाहिये।

पुर्तादिके अभावमें स्त्री यदि सामीका पूरक पिएड प्रदान करे और वह उस समय रजसला रहे, तो वस्त्र त्याग कर पुनः स्नान कर ले और तव पूरक पिएड, दे। पूरकपिएडदानका प्रयोग सर्व सत्कर्मपद्धतिमें सचिस्तार लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर और अधिक नहीं लिखा गया।

( ति० ) ५ पूरणकर्ता, पुरा करनेवाला ।
पुरण ( सं० क्ली० ) पूर्यतेऽनेनेति पुर-करणे ल्युट् । १ पूरकपिएड, दशाहिषड । २ वृष्टि, मेहँ । ३ कुटकट । ४ अङ्कका
गुणन, अङ्कोंका गुना करना । ५ वस्तिनेत प्रश्नित बन्त
द्वारा कर्णादिमें तैलादि पूरणकर्म, कान आदिमें तेल आदि
भरनेकी किया । ६ वापतन्तु । ( पु० ) ७ सेतु, पुल ।
८ सुगन्धतृण । ६ नागरमोथा, केंवटी । १० पूरणार्थ पकतैल । ११ विष्णुतैल । पुरयतीति पूरि कर्त्व रिन्त्यु । १२

संख्यापूरण। १३ वातजन्य व्रणवेदना विशेष, एक प्रकार-का व्रण या फोड़ा जो वातके प्रकोपसे होता है। १४ समुद्र। १५ परिपूर्ण करनेकी क्रिया, भरनेकी क्रिया। १६ समाप्त या तमाम करना, पूरा करनेकी क्रिया। १७ पुनर्नवा, गदहपूरना। (वि०) १८ पूरक, पूण कारक, पूरा करनेवाला।

पूरणकाश्यप (सं० पु०) पूर्णकाश्यप देखो । पूरणमळ—१ गिद्धौड़के एक राजा । सम्राट् अकवरशाह-के सेनापति राजा मानसिंहने विहार आ कर इन्हें परास्त किया था ।

२ कच्छवाह-वंशीय एक राजा। ये पृथ्वीराज-कच्छवाहके पुत्र थे।

३:उक्त राजाके भ्रातृपौत । इनके पितामहका नाम राजा विहारीमल और पिताका नाम राय सिन्हदी पूर-ं विया था । ये छोग गह्छोत-वंशीय राजपूत थे । पिता-के मरने पर पूरण चन्देरी और रायसिन-प्रदेशके जासन-कत्तां हुए । १५३२ ई०में गुजरातपति वहादुरशाहके आक-मणसे रायसिन्-दुर्भ और अपने राज्यको वचानेके लिये ं पिता-पुतमें लड़ाई हो गई थी । इसके वाद हुमायूके . प्रतिद्वन्द्वी दुव<sup>6</sup>त्त शेरशाहने इनके आचरण पर कुद्ध हो रायसिन् जोतनेका इरादा किया । दलवलके साथ इनके राज्यमें पहुंच कर शेरशाहने पूरणमलको अपने पास बुला भेजा। राजमहिपीने समभा था, कि इस वार राजाका निस्तार नहीं, सो उसने खामीको अच्छी तरह सिखा ृपढ़ा दिया । राजाने भी चतुरा प्रियतमा पत्नीकी सलाहसे ,,६००० अश्वारोही सेना छे कर राजाका अभिनन्दन किया। :अब सम्राट्के पेटमें चूहे कूदने लगे। उन्होंने छः हजार दुद्ध पे राजपूर्तीको पराजय करना अपनी शक्तिसे वाहर समभा, इस कारण १ सी अध्वारोही और १ सी वहु- मूद्य उपढौकन दे कर राजाको अधोनता स्वीकार कर . ली । किन्तु राजाको अपने कब्जेमें लानेकी इच्छासे वे . वहां छः मास तक ठहर कर पूरणमलकी सेनाकी वल-.परीक्षा करने लगे । ६५० हिजरीमें पुनः दोनोंमें लड़ाई ं छिड़ी । शेरशाहने रायसिन-दुर्गको जीत लिया और ्राजाको वाराणसीका शासनकत्तृत्व देनेका प्रलोमन दे , ?कर, दुर्गसे वाहर कर दिया । राजा भी, दुर्गका त्याग कर

स्त्री-पुत ले कर विव्रत हो पड़ें। कालके कुचकसे शतु-के हाथ वे नजरबंदी हुए । राजाने चकान्त समक अपने होथसे प्रियतमा-प्रणयनीकी हत्या कर डाली और आत्मीयवर्गको भी इसी प्रकार स्त्री-हत्या करनेका आदेश किया । जब वे लोग अन्तःपुर-निवद्धा प्रिय-प्रणयिनीगण-की सतीत्वरक्षाके लिये ऐसे दृढ़त्रतमें वती थे, ठीक उसी समय वहुत तड़के अफगान लोग चारों ओरसे आ कर हिन्दू पर टूट पड़ें और उन्हें एक एक कर यमपुर भेजने लगे। प्रणमलने भी आत्मरक्षामें समर्थ हो जीवन-दान किया । जो सव राजपूत-महिलायें पकड़ी गई थीं, उन राजपूत-कुलललनाओंके ऊपर दुवृ<sup>9</sup>त्त मुसलमान-नायक शेरशाहने अत्याचार करनेमें कोई कसर उठा न रखी। छः मासके मध्य उन्होंने हिन्दू-मुसलमानके वैर-निर्यातनको पूर्णमालामें दिखलाया था। यहां तक कि उन्होंने छल करके पूरणमलको पकड़ा और मार डाला तथा अन्तमें उनकी कन्याकी वाजारमें नृत्यगीत-व्यव-सायी नर्सकीके हाथ सींपनेमें जरा भी सङ्कोच न किया# ।

पूरणी (सं० स्त्री०) पूर्यते अनयेति पूरि-स्युद्, ङीप्। १ शास्मिलवृक्ष, सेमर। २ पूरणकारिका, पूरा करनेवाली। पूरणीय (सं० ति०) पूर-अनीयर्। पूरणके योग्य। पूरन (हिं० वि०) पूर्ण देशो। पूरनकाम (हिं० वि०) पूर्ण हो तेशो। पूरनकाम (हिं० वि०) पूर्ण हो तेशो। पूरनपूरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी मीठी कचौड़ी। पूरनमासी (हिं० स्त्री०) १ पूर्ति करना, कमी या तुटिको पूरा करना। २ मनोरथ पूर्ण या सफल करना, सिद्ध करना।

# तारीख-इ-शेरकाही नामक मुसलमानी। इतिहाधेरें इस भीषण अत्याचारकी कथा लिपिनद्ध है। १२३२ ई॰ में नहा-दुरके आक्रमण समय भी इस प्रकारका एक और अखाचार संघटित हुआ था। सलतान बहाइर श्वाहने उस समय प्रणमलकी निमाता दुर्गोहनीके क्यमधुर्य पर सुरथ हो उनका पाणिग्रहण करना चाहो। विस्तृत विनवण भीरट-इ-विक-न्द्री नामक ग्राह्मों देखी। ३ किसी चीजको किसी चीजसे आच्छादित करना, हाकना। ४ वजाना, फूंकना। ५ व्याप्त हो जाना, पूर्ण होना, भर जाना। ६ मङ्गुल अवसरों पर आटे, अवीर आदिसे देचताओं के पूजन आदिके लिये चौखुंटे क्षेत्र आदि वनाना, चौक वनाना। ७ वटना।

पूरव (हिं॰ पु॰) प्राची, पूर्व, वह दिशा जिसमें सूर्यका इदय होता है।

पूरवळ (हिं० पु॰ ) १ प्राचीन समय, पुराना जमाना । २ पूर्वजन्म, इस जन्मसे पहलेवाला जन्म ।

पूरवला (हिं० पु॰) १ पूर्व जन्मका । २ प्राचीन कालका, पुराना ।

पूरविया (हि॰ पु॰) पु॰वी देखी।

पूरवी (हिं विं ) १ पूर्वसम्बन्धी, पूरवका २ पूर्वी देखी। (पु॰) ३ एक प्रकारका दादरा जो विहारी भाषामें होता हैं और विहारप्रान्तमें गाया जाता है। (स्त्री॰) ४ पूर्वी नामकी रागिणी।

पूरियतव्य (सं० ति०) पूर तच्य । पूरणीय, पूरा करने योग्य ।

पूरियतः ( सं० त्रि० ) पूर-तृच् । १ पूरक, पूर्ण करनेवाला । ( पु० ) २ विष्णु ।

पूरा (हिं० वि०) १ परिपूणें, जो खाळी न हो, भरा। २ समस्त, समग्र, समूचा, जिसका अंश या विभाग न किया गया हो अथवा जिसके टुकड़े या विभाग न हुए हों, सोळह आना। ३ पूणें, कामिळ, जिसमें कोई कमो या कसर न रह गई हो। ४ यथेष्ट, काफों, भरपूर। ५ सम्पादित, रुत, पूणें, सम्पन्न। ६ तुष्ट, पूणें।

प्राम्न (सं० क्की०) प्रं प्रकमम्रमतः। वृक्षाम्न, महाम्न, विषाविछ।

पूरिका (सं॰ स्ती॰) पूर्यते इति पूरि-क, स्तियां डीप्, पूरो, ततः खार्थे कन, टाप् पूर्वंहस्वच । पिष्टकभेद, कचौड़ी । भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है, उरदको अच्छी तरह चूर्णे कर उसमें नमक, अदरक और हींग मिलाचे । वाद मैदेके भीतर उसे दे करके पिष्टकाकार बना कर खौलते हुए तेल या बीमें छान ले। वस, इसीको पूरिका कहते हैं। इसका गुण मुखरोचक, मधुर रस, गुरु, क्रिन्ध, वलकारक,

रक्तिपत्तका दोषजनक, पाकमें उच्च, वायुनाशक और चक्षका तेजोहारक है। यह तैलपकको अपेक्षा घृतपक होनेसे चक्षका हितकारक और रक्तिपत्तनाशक होता है। पूरित (सं० ति०) पूर्यंते स्मेति पृ पूरि-वा क (बा दास्त-शान्तपूर्णेति पाश्चरारण) इति पक्षे इट्।१ कृतपूरण, परिपूर्णे, भरा हुआ, लवालव । २ गुणित, गुणा किया हुआ। ३ तम।

पूरिन् ( सं० ति० ) पूर्णकारी, पूरा करनेवाला।

पूरिया (हिं पु॰) पाड़व जातिका एक राग । यह सन्ध्या समय गाया जाता है। इसमें पञ्चम स्वर वर्जित है। किसीके मतसे यह भैरत्र-रागका पुत्र और किसीके मत-से सङ्करराग है।

पूरियाकल्याण (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक सङ्कर राग। इसके गानेका समय रातका पहला पहर है। पूरि (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध पकवान जिसे साधारण रोटी आदिकी तरह वेल कर खीलते घीमें छान लेते हैं। २ मृदंग, तवले, ढोल आदिके मुंह पर मदा हुआ गोल चमड़ा। (वि०) ३ 'पूरा' शब्दका स्त्रीलिङ्गक्य। पूरु (सं० पु०) पृ वाहुलकात् छ। १ मनुष्य। मनुष्यके अर्थमें यह शब्द वहुवचनान्त होता है। २ वैराज मनुके एक पुलका नाम। ३ जह के एक पुलका नाम। ४ राक्षस-भेद। ५ ययातिपुलमेद। पुठ देखी।

पूरुजित् ( सं॰ पु॰ ) विग्णु । पूरुब ( सं॰ पु॰ ) दृरब देवी ।

पूरुमुज समुद्रज जीवयोनिमेद । आवयविक विभिन्नता देख कर वैक्षानिकोंने इनका श्रेणी-विभाग और नाम-करण किया है। साधारण अङ्गरेजीमें ये Polypes और 1'olypiers नामक दो विशिष्ट श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। जिसका आकार छोटे शैवालकी तरह होता, उसे Polypes और जो गुल्मादि छोटे पौधेके सदूश होता है उसे Polypiers कहते हैं। कोई कोई पूरुमुज देखनेमें ठोक उद्धिद्दके जैसा लगता है। ये जलजकीट हैं वा जीवभुक् शैवाल वा उद्धिद, इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर देना वड़ा ही कठिन है। प्रसिद्ध फरासी पिएडत टएडन (M. Tandon) साहवने खहत 'सामुद्रिक भुवन' नामक पुस्तकमें गभीर गवेषणा द्वारा जो जीवतत्त्व प्रकट किया है, वही जनसाथारणमें आदरणीय है।

Vol. XIV. 69

इस क्षद्र जीवके सम्बन्धमें यदि आलोचना की जाय, तो कुत्हल पैदा होता है और जगदीश्वरकी अपार महिमा भलकती है। जलके तारतम्यानुसार इनमें भी विशेष पृथक्ता देखी जाती है। सुमिप्ट नदोके जलमें और लवणाक्त समुद्र-जलमें वहुत अन्तर देखा जाता है। होनोंकी कार्यप्रणाली भी अनेकांशम विभिन्न हैं।

इसके वड़े से वड़े जीवका आकार एक इश्वके तृती-यांशसे अधिक नहीं होता है। ऐसे छोटे आकारसे इनकी प्रकृत अवस्थाका निरूपण करना वडा हो कठिन है। नदीके जलमें जो सब पूरुभुज उत्पन्न होते हैं, खाद्यादिभेद्से उनका गातवर्ण विभिन्न हो जाता है। उनकी गर्भस्थलोके वहिर्देशमें जो सब शुद्राकार उपनल संक्षिप्र देखे जाते हैं, वे ही क्रमणः परिवर्द्धित हो कर एक स्वतन्त पूरुभुजका आकार धारण करते हैं। जव यह अंशावयव अपने भरण-पोपणके उपयुक्त हो जाता है, तव मातृगातसे विच्युत हो कर उसकी एक स्ततन्त जीवरूपमें गिनती होती है। एक पृथ्भुजके शरीरमें एक दूसरे क्षुद्राकार नळक्षपी पूरुभुजका उद्भव प्रायः शरत्-कालमें ही हुआ करता है। पूर्णावयव पाते ही वह गिर कर जलके नीचे चला जाता है। शीतकालमें वह उसी भावमें रहता है। पोछे वसन्त ऋतु आने पर उसके कलेवरकी वृद्धि होती है। यदि किसी एक पूरुभुजको सात या आठ खएडोंमें विभक्त किया जाय, तो दो दिन-के मध्य वह एक एक कटा हुआ खएड फिरसे पूर्णाकार धारण करता है। इस प्रकार एकको काट कर नष्ट कर डाळनेसे उसकी कोई विशेष क्षति नहीं होती, वरन् नित्य नये पूरुभुज-वंशका विस्तार होता है। षया ही ईश्वर-की अपार महिमा है!

और भी एक आश्चर्यका विषय यह है, कि उदर-स्थलीकी भीतरी ओरको मोजेकी तरह उल्टा देनेसे भी इनके जीव-जगत्की वाह्य क्रियादिका कोई व्याघान वा व्यक्तिक्रम नहीं देखा जाता। पहलेकी तरह अब भी वे खाते पीते हैं। वाहरका जो चमड़ा पूर्वावस्थामें निश्वास-प्रश्वासका एकमाल क्रियास्थल था, अभी वहां पाकस्थली-का काम करता है। सच.पूछिये, तो प्रभुजके हृदय, इृद्यन्त, यस्त, धमनी, मस्तक वा मस्तिष्क आदि कुछ भी नहीं है ; केवल धूसर शैवालकण सहूश वाहु हो उनके हाथ, पांच, ओष्ट और स्पर्शेन्द्रियका काम करती है।

पूरुष ( सं० पु० ) पूरति अप्रें गच्छतीति पुर-कुपन् (पुर: कुषन् । डण् ४.७४ ) ततः (अन्येषामिष द्वयते । वा ६।३।१३७ इति निपातनात् दीर्घः । १ पुरुष,नर, सादमी । पुरुषका श्रमाश्चम छक्षण पुरुष शह्म देशी ।

२ नित्यमुक्त शुद्धस्त्रभाव, चेतन, आतमा । सांस्य-दर्शनमें पूरुपका विषय इस प्रकार लिखा है,— पुरुप चेतन, प्रमाता अर्थात् प्रमा-साक्षो है। यह 'पुरिशेते' अर्थात् लिङ्गशरीरमें अवस्थान करता है, इसीसे इसका पुरुप नाम पड़ा है। यही पुरुप चेतन हेतु आत्मपद्वाच्य है। सांस्यके मतसे यह निखिल ब्रह्माएड प्रकृति और पुरुपात्मक है। इनमेंसे प्रकृति वा पुरुप कीन है, उसी विषयकी यहां आलोचना की जाती है।

पुरुष भिन्न आग्रह्म स्तम्त्र पर्यन्त समस्त जगत् ही प्रकृति है। इसके मध्य मूलप्रकृति अति सूक्ष्म और आदिम है। उसो मूल प्रकृतिने धीरे धीरे विकृत हो कर इस असीम ब्रह्माण्डको सृष्टिकी है और वह आज भी ब्रह्माण्डाकारमें अवस्थान करतो है। जो इस जगत्का मूल वा सूक्ष्मवीज है वही प्रकृति है और जो उसका विकार है, वही जगत् है।

जगत्की मूल अवस्था वा अव्यक्त अवस्थाका नाम प्रकृति और व्यक्तावस्था वा सविकार अवस्थाका नाम जगत् है। प्रकृतिका विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखी।

सांख्याचार्य कपिलने पदार्थ-निर्णयके मूल पत्तनकाल-में कीन पदार्थ प्रकृति है, कीन विकृति है तथा कीन अनु-भय अर्थात् न प्रकृति और न विकृति हो, इस प्रकार श्रेणीविभाग करके प्रकृतिका अन्यक, विकृतिका अ्यक और उभयात्मक पदार्थका न्यकाव्यक तथा अनुभय पदार्थका 'श्र' अर्थात् शाता वा पुरुष नाम रक्षा है। पीछे उन्होंने उनकी संख्या, परीक्षा और लक्षणका निद्रिश किया है।

यह अनुभयकप 'क्र' पदार्थ पुरुष और आत्मा शादि भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं। पुरुष अनुभयात्मक है अर्थात् प्रकृति नहीं है और न विकृति ही है। प्रकृति शब्दसे कारण और विकृति शब्दसे उसका कार्य समका जाता है।

पुरुष कूटस्थ है अर्थात् जन्यधर्मका अनाश्रय, अवि-कारी और असङ्ग है। इसीसे पुरुष कारण नहीं हो सकता। पुरुष नित्य है, उसकी उत्पत्ति नहीं है, इस कारण कार्य भी नहीं हो सकता। अतएव पुरुष अनुभया-त्मक है।

यह पुरुष चमैचक्षके अगोचर, हस्तपद्के अवाहा और मनके अगम्य है । इस 'ह' पदार्थने विविध सम्प्रदायके निकट विविध रूपोंमें प्रकाश पाया है । इनमेंसे सांख्या-चार्योका सन्मत पुरुष जिस भावमें प्रकाश पाता है, उसी-का विषय यहां आलोच्य है।

पुरुषके अस्तित्वका क्या प्रमाण है ? इस पर कपिल कहते हैं, 'अस्तिह्यायमा नास्तित्व धाधनाभनाव' नास्तित्व-साधक प्रमाण नहीं रहनेके कारण मनुष्य आत्मनास्तिक नहीं हो सकता। मैं' मैं हूं' 'मेरा' यह आत्मानुभावक-ज्ञान सर्वोंके हैं। जिसे आत्मा है, उसीको इसका ज्ञान है। अतप्य पुरुष (आत्मा) नहीं है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता, यह स्वतासिद्ध है।

पुरुष है, ति हिपयक सामान्य श्वान भी है। किन्तु इसका विशेष श्वान नहीं है। 'मैं हूं' केवल इतना हो श्वान है। किन्तु मैं क्या हूं अथवा मेरा खहूप कैसा है ? यह अयोगियोंको मालूम नहीं।

इन्द्रियगणके वाद्यासक समाव होनेसे ही अयोगी
व्यक्ति पुरुषके यथार्थ ज्ञानसे विश्वित हैं। अत्यन्त संयोगवलसे जिस प्रकार लोहा और आग एक हो जाती है,
मानव भी उसी प्रकार भ्रम और प्रकृतिके अतिसाकिध्यप्रयुक्त अनातमपदार्थमें एकीभूत हो कर में करता हूं'
कभी विहास्य मांसपिएडमें आत्मसम्बन्ध स्थापन करके
भेरे पुत्र हैं' भेरे कलत हैं' ऐसा कह कर त्र्याञ्चल होते हैं
इत्यादि प्रकृतिकी मायासे मोहित हो कर, इसी प्रकार
देहेन्द्रियादि नाना पदार्थोंमें आत्मत्व स्थापन करके वृथा
कलेश पाते हैं। किन्तु में ( पुरुष ) कौन हूं और मेरा
स्वरूप कैसा है, यह सुल और दुःलभोग मेरा प्रकृत है वा
नहीं; इसका हुल भी क्षान नहीं है।

पूर्वं समयमें मनीवियोंके आतम-जिहासा उपस्थित

होने पर जो आत्मतत्त्वज्ञ थे, उन्होंकी वे शरण होते थे। वे इस आत्मविषयक यथार्थ तत्त्वका उपदेश दे कर सभी संदेहको दूर कर देते थे। नाना पदार्थीमें पुरुषत्वभ्रम नहीं होता था।

दूश्यपदार्थमातमं कोई भी पुरुष नहीं है। पहले पुरुषका सरुप जो जानना चाहते थे, वे योगका आश्रय कर तथा इन्द्रियका वहिगमन रोक कर सभी विषयोंसे अवगत हो ज्ञाते थे। 'गूढारम न प्रकाशते' पुरुष (आतमा) अपने पार्श्वचर अज्ञानसे सर्वदा आवृत हैं, इसी कारण अयोगी, अब्रह्मचारी और अविवेकी पुरुषके निकट वे प्रकाश नहीं पाते। 'नायमारमा प्रवचनेन लम्मः' पुरुष वाक्पारिजन्यमें नहीं मिलते। 'न शरीरपरिकर्त्तनः' यदि सारे शरीरको सएड-विखएड करके अनुसन्धान मी क्यों न किया जाय, तो भो उसमें पुरुष दिखाई नहीं देते।

पुरुष हस्तपदादि अवयव, तद्घटित देह, पांच प्रकारके प्राण, ग्यारह इन्द्रिय, मन, वृद्धि, अहङ्कार, इन सवके अति-रिक्त हैं। इस अतिरिक्त पदार्थकी स्पूर्ति, भान वां साक्षात्कार लामका प ज्याव उपाय है ध्यान। 'आत्मा वा अरे हृहनः' श्रोतको अन्तको निदिश्यासितन्यः' ( सुति ) ध्यानका आलम्यन आसवाष्य है, अनुकूल तकं वा विचार उसका विध्ननाएक है।

'द्रव' तबिति निद्वें पटुं प्रवणाऽपि न शक्यते ।' वह आंतमां चा पुरुष यही है, ऐसा गुरु भी नहीं वतला सकते। गुरु शब्दसे यहां आत्मविद्व गुरु समभना चाहिये।

विरागी मानव जब गुरुके उपदेशानुसार समी विञ्न वाधाको दूर और इन्द्रियोंको विषयान्तरसे प्रत्याहत कर ध्यानिष्ठ होते हैं तब उसके वाद अविवेक दूर हो जाने-से वे ज्ञान द्वारा पुरुषका खरूप जान सकते हैं। कपिछनें इस वात पर 'वेहादिन्यितिरकोऽसा' इस स्तका अर्थ यो है—यह स्यूछ देह, पञ्चप्राण, पतिष्ठ इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि इनमेंसे कोई भी पुरुष नहीं है। युद्ध इन सबसे विलक्ष्ठ पृथक् है।

इस पुरुष (आतमा) के विषयमें विभिन्न मत देखा जाता है। स्थूछ शरीर, प्राण, वायु, चक्षरादि इन्द्रिय ये सव पुरुष (आतमा) नहीं हैं सहो, पर मन जो आत्मा नहीं है, इसका प्रमाण क्या ? ज्ञान और इच्छा आदि जो कुछ चेतन गुण हैं, सङ्करणिवकल्प अवधारण आदि जो कुछ चेतनकाय हैं, सभी समनस्क पदार्थमें देखे जाते हैं। इन्द्रिय और प्राणके निर्यापार होने पर भी मन निवृत नहीं रहता। इत्यादि विरुद्ध मतके उत्तरमें कपिल कहते हैं, —मनको आत्मा वा पुरुप समक्ष कर निश्चिन्त रह जाना मुमुक्ष जीवको उचित नहीं। तत्त्वदर्शी ऋपियोंको धारणा, ध्यान, समाधि और प्रज्ञा द्वारा मालूम हुआ था, कि पुरुष नित्य शुद्धसभाव और चित्सक्ष, है। पुरुष जो मन और चुद्धिसे स्वतन्त है, यह मननशील ज्ञानो मनुष्यका अनुभवसिद्ध है।

अनुभवप्रणाली इस प्रकार है— मन जब अपनेको स्थिरमावमें देखता है, तब उसे यह मालूम होता है, कि में आत्मा नहीं हूं, आत्माके अधोन हूं। मैं पुरुषका भोगोपकरणमाल हूं। मन सिक्षय और सिवकार है, पर पुरुष निष्क्रिय और निर्विकार। किसी समय वा किसी अवस्थामें पुरुषका विकार नहीं होता। संशय, निश्चय, विपर्यय, सन्धान और निर्वाचन ये सब मनके ही धर्म हैं। पुरुष इन सबके दर्शक वा साक्षि-माल हैं।

मन पुरुपसे पृथक् है, इसमें जरा भी संदेह नहीं हो सकता। थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होगा, कि व्यवहारिक ज्ञान इसकी गवाही देता है। 'मेरा मन' छोड़ कर 'में मन हूं' ऐसा कोई भी नहीं कहता और उसके आकारका ज्ञान भी नहीं होता। 'मेरा मन' इस स्वतः-उत्पन्न ज्ञानकी व्यवहार-परम्परा लक्ष्य करनेसे पुरुपके साथ मनके दृष्ट्र-दृश्यभावके अतिरिक्त ऐक्यसम्बन्ध दिखाई नहीं देता। पुरुप दृष्टा है और मन दृश्य। पुरुप-के साथ मनका यदि वैसा स्थिरतर सम्बन्ध नहीं रहता, तो मनुष्य अवश्य कभी न कभी 'मेरा मन' इसके बदलेमें 'में मन हूं' ऐसा कहते; पर भूलसे भी इस व्यवहारकी अन्यथा देखनेमें नहीं आती।

'में' यह ज्ञान मनका चिर-निकद और खतःसिद्ध भाव-विशेष है। इसीसे वह वृत्तिक्षमें कल्पित हुआ है। जिस हेतु मनोवृत्ति है, उसी हेतु वह 'में', प्रकृत 'में' (पुरुष)-से मिन्न है। जो प्रकृत 'में' है वह में हत्याकार मनो-वृत्ति-समाक्ष्य केवल-चैतन्य है। वृत्तिक्ष अपनापनमें प्रकाशक-केवल चैतन्य ही प्रकृत ही 'में' है। पुरुष चैतन्यह्नपी हैं और मन जड़ह्नपी, पुरुषकां हा-भाव प्रकाश है और जड़का खमाव अप्रकाश। मन जो जड़ वा अप्रकाश-खमावका है, वह अनुभव और गुक्ति दोनों सिद्ध है। मन यदि पुरुषको तरह प्रकाश-खमाव-का होता, तो मनुष्य सुप्ति, मूच्छां और मुखादि अवस्था-में प्राप्त नहीं होते। क्योंकि, जो जिसका खमाव है, वह कभी भी उससे अलग नहीं होता। उल्लाता नहीं है, अथच अग्नि है, ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। अत-पव सुप्ति और मूच्छांदि मानसकी अप्रकाश अवस्था देख कर मनका जड़त्य सहजमें निणीत हो सकता है।

इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि पुरुषको प्रकाण रूपी कहनेमें जो फल है, मनको प्रकाशरूपी कहने में भी वही फल है, सुप्ति मूर्च्छों आदि अप्रकाश अवस्था देख कर मनका जिस प्रकार अप्रकाशत्व अवधारण किया जा सकता है, उसी प्रकार पुरुषका भी जड़त्व निसंदेह निर्णीत हो सकता है।

इस पर कपिछ कहते हैं, सो नहीं। पुरुषका जो प्रकाशस्त्रभाव है, वह कभी भी तिरोहित नहीं होता। परन्तु कुछ विशेषता है, वह यह है, कि मनके संयोगसे पुरुपका प्रकाश दूना हो जाता है। दिनमें घरकी दीवार पर जो प्रकाश रहता है, सफेद कांच द्वारा जब वाहरका प्रकाश उसमें प्रतिक्षेप किया जाता है, तब उस दिवार पर-का साधारण प्रकाश दूना हो जाता है। वह दूना प्रकाश वहुत तीव्र और वहुत उजला दिखाई देता है। पुरुषके मनःसंयोग-कालका प्रकाश भी उसी प्रकार दूना है। द्विगुणित होनेके कारण जाप्रत्कालका चैतन्य अधिक चिस्पष्ट अर्थात् जाज्वल्यमान है। काचस्थानीय मन जव तमोगुणके उद्रेक वशतः मलिन रहता है अर्थात् आत्म-प्रकाशका प्रतिविस्व ग्रहण नहीं कर सकता, तब पुरुषका प्रकाश विलुप्त-प्राय वा खल्प हो जाता है। वही सुप्ति और मूर्च्यादि कालका एकगुणप्रकाश है। जाप्रत्-कालका द्विगुणित प्रकाश उस समय अल्प हो कर एक-गुणित होता है। इस कारण छोग कहते हैं, कि मूर्ज्ज में ज्ञान नहीं रहता। किन्तु उस समय भी पुरुष अपने पकगुणित प्रकाशमें विराजित रहते हैं। यदि कहो, कि अवस्थामें पुरुषके सत्ता स्फूर्ति रहती है, इस सिद्धान्तका

क्या प्रमाण है ? तो इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है, कि सुप्तोत्थित मूर्च्छित व्यक्तिकी सुप्ति भी मुर्च्छाभङ्गका परवर्ती अनुभव है। मैं अज्ञान था, कुछ भी होश नहीं था, इस अनुभवके एकदेशमें जो 'में' और वही तात्कालिक आत्मसत्ता वा आत्म-'धा' अंश है. प्रकाश रहनेका अनुमापक है। उस समय यदि किसी प्रकारको सत्ता स्फूर्ति नहीं रहतो, तो कभी भी जीवके उस प्रकार स्मरणात्मक ज्ञान उपस्थित नहीं हो सकता था। पूर्वानुमवसे उत्पन्न संस्कारके वलसे ही स्मरणा-त्मक ज्ञानका उदय होता है, यह नियम खोकार करनेसे यह भी स्वीकार करना होगा, कि उस समयमें (पुरुष निज स्वाभाविक प्रकाशमें अवस्थित था। विषयका अस्फूर्ण, मनका अप्रकाश और अज्ञान ये सभी एक हैं। मन जो उस समय आत्मप्रतिविम्न ग्रहण करनेमें अक्षम था, उसे और कोई देख न सका, केवल पुरुषने देखा था। उस समय पुरुषने यह देखा था, कि मन तमसाच्छन्न है, पुरुषने तमसाच्छन्न मनको देखा था, इसी कारण वे नोंद टूटनेके वाद उसका स्मरण और अनुमान करनेमें समर्थ हैं।

नास्तिक तार्किकोंका मन अपनी सत्तास्कूर्त्तिकों कायम रख कर दूसरेको भी प्रकाश करता है। एकमात मनके वलसे ही जीव सव्यापार है, मनके अभावमें निर्वा-पार है, सुतरां मन ही 'आत्मा' (पुरुष) है, ये सब वाते' नितान्त हैय हैं।

प्रकृतिसे है कर चरमकार्य प्रयन्त सभी जड़ पदार्थ Vol. XIV, 70 संहत और मिलित गुणजय-सहरा हैं। सुतरां यह सुख
-दुख-मोहात्मक है। अतपत्र पदार्थ अर्थात् दूसरेका
प्रयोजन-सम्पादनार्थ उनका उद्भव है। गृह, शय्या आसनादि पदार्थ संघातहप है अथच परार्थ है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। तदनुसार संघातमात ही पदार्थ है, यह स्थिर
हो चुका। अव प्रकृति महदादि सभी संघात हें, अतपव
वे परार्थ हैं उसके अतिरिक्त और कोई भी पुरुष
नहीं है।

कपिल कहते हैं,—''शरोरादिव्यतिरिक्तः पुमान्। संहतपरार्थत्वात्॥"( सांख्यस्० १।१३७-१३८)

पुरुष शरीरसे भिन्न हैं, यह संहत वस्तुकी परार्थता देखनेसे अनुमान किया जा सकता है। इस विषयकी यहां कुछ विशेषक्रपसे आलोचना की जाती है।

गृह, शय्या, आसन प्रभृति सभी वस्तु संघात अर्थात् संहत पदार्थं हें। संघातमात ही पदार्थं है अर्थात् दूसरेका प्रयोजन-सम्पादक है। जगत्में इसका व्यभि-चार नहीं है। शरीर भी संहत पदार्थ वा संघात है। अतएव शरीर भी परार्थ होगा, इसमें संदेह नहीं। जगतके सभी स इत पदार्थ परार्थ हैं, केवल शरीर संहत होते हुए भी परार्थ नहीं होगा, यह करूपना युक्ति-विगर्हित है। और इसमें कोई प्रमाण नहीं है। शरीर परार्थ है, इसके सिद्ध होनेसे ही यह सिद्ध होता है, कि शरीर चेतन नहीं है। शरीरके अतिरिक्त कोई दूसरा ही चेतन है। शरीर उसीका प्रयोजन सम्पादन करता है। क्योंकि, जो अचे-तन है, उसका कोई प्रयोजन हो नहीं रह सकता । इष्ट-साधनता ही ज्ञानप्रवृत्तिका हेतु हैं। जिसके उद्देशसे प्रवृत्ति होती है, वही इप्ट है, वही प्रयोजन है । शरीर संहत होनेके कारण दूसरे पदार्थका प्रयोजन सम्पादन करता है। वह दूसरा पदार्थ और कोई नहीं है, असंहत पुष्प है। उसकी चेतना अवश्यम्मावी है। सुतरां शरीर-चेतन, यह भ्रान्त कल्पनामात है। स्फटिकमणि वस्तुतः लोहित नहीं होने पर भी सन्निहित जवाकुसुमके लौहित्य-में जिस प्रकार वह स्फटिकगतरूपमें प्रतीयमान होती है. उसी प्रकार शरीर वस्तुतः चेतन नहीं होने पर भी सिक्ष-हित आत्माकी चेतना केवल शरीर-गतक्रपमें प्रतीयमान

होती है। असंहत पुरुष और संहत शरीर इन दोनींकी चेतना स्वीकार करनेका कोई भी कारण नहीं है। वरन् शरोरके चेतन होनेसे वह परार्थ हो ही नहीं सकता। क्योंकि, चेतन स्वतन्त है। जो स्वतन्त है, वह परार्थ नहीं है। इसमें आपित यह हो सकती है, कि नौकर मालिकका प्रयोजन सम्पादन करता है, मालिकको तरह नौकर भी चेतन है। अतप्त्र पक चेतन दूसरेका चेतनका प्रयोजन सम्पादन कर सकता है। इसके उत्तरमें यही कहना है, कि चेतन नौकर है, किन्तु नौकरकी आतमा मालिकका प्रयोजन सम्पादन कर सकता है। इसके उत्तरमें यही कहना है, कि चेतन नौकर है, किन्तु नौकरकी आतमा मालिकका प्रयोजन सम्पादन नहीं करती। नौकरका अचेतन शरीर ही मालिकका प्रयोजन सम्पादन किया करता है, आतमा नहीं। शरीर चेतन होनेसे वह किसी हालतसे परार्थ नहीं हो सकता।

द्वितीयतः विगुणात्मक रथादि सारथि प्रभृति चेतन कर्नु क अधिष्ठित है। वृद्धि आदि भी अन्य कर्नु क अधि-ष्ठित होगी, वही अन्य पुरूप है। तृनीयतः सुख और दुःख यथाक्रमसे अनुकूलवेदनीय और दुःखका प्रतिकृलवेदनीय है। सुखका अनुकूलवेदनीय और दुःखका प्रतिकृलवेदनीय गुणातीत पुरुप है। वृद्धि आदि स्वयं सुख और दुःखा-तमक है, इस कारण वह सुखकी अनुकूलवेदनीय वा दुःखकी प्रतिकृलवेदनीय नहीं हो सकती है। क्योंकि, ऐसा होनेसे स्विक्रया विरोध खड़ा होता है। चतुर्थतः बुद्धि आदि दूश्य हैं अतएव उसके दुष्टुक्पमें भी पुरुष सिद्ध होता है। कारण विना दुष्ट्राके दृश्य नहीं रह सकता है।

सांख्यकारिकामें लिखा है—
"संघातपरार्थत्वात् विगुणादिविपर्य्यवादिघष्टानात्।
पुरुषोऽस्ति भोषतृमावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥"
(सांख्यकारिका १७)

संघातपरार्थत्व, तिगुणादि विपर्यय, मोमतुमाव और कैवल्यार्थप्रवृत्ति इन सब कारणोंसे पुरुपका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह पुरुप एक है वा अनेक, इसके उत्तरमें सांख्याचार्यगण कहते हैं,—

"जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च । पुरुषवहुत्वं सिद्धं त्रेगुण्यविषय्पैयाच्चैव ॥" (सांख्यका० १८)

्र पुरुष प्रत्येक शरीरमें भिन्न भिन्न है, समस्त शरीर-

में एक पुरुप नहीं है । समस्त शरीरमें यदि एक पुरुष होता, तो जन्ममरणादिकी व्यवस्था नहीं हो सकती थी। एकके जन्मसे सर्वोका जन्म, एकके मरणसे सर्वोका मरण, पकके अन्धतादिसे सवींको अन्धतादि, पकको प्रवृत्तिसे सर्वोको प्रवृत्ति और एकके सुख-दुःखसे सर्वोके सुख-दुःख हो सकते थे। किन्तु वैसा नहीं होता, इस कारण शरीरमेदसे पुरुष भी मिन्न भिन्न है। यह पुरुष साक्षी है, क्योंकि प्रकृति अपना समस्त आचरण पुरुषको दिखाती है। वादी और प्रतिवादी जिसे विवाद विपय दिखाते हैं, छोग उसे साक्षो कहते हैं। प्रकृति भी अपना आचरण पुरुषको दिखातो है, इस कारण पुरुष साक्षी और दृष्ट्रा है। पुरुष ब्रिगुणातीत है, इसीसे वह अकर्त्ता, उदासीन और केवल भर्यात् कैवल्ययुक्त है। दुःखनयका अत्यन्तामाव कैववय है। दुःख गुणघर्म है, पुरुष गुणांतोत है, इसीसे पुरुष कैवल्ययुक्त है। प्रधान महदादि भोग्य होनेके कारण वह भोकाकी अपेक्षा करता है। क्योंकि भोकाके विना भोग्यता हो ही नहीं सकती। बुद्धि आदिमें प्रतिविभिन्नत पुरुष बुद्धादि-गत दुःख अपना है, ऐसा समकता है। विवेकज्ञान होनेसे पुरुपका यह व्यवहारिक दुःख जाता रहता है। इस विवेकज्ञानके लिये पुरुष प्रकृतिकी अपेक्षा करता है। दोनींको दोनीं-के प्रति अपेक्षा है, इस कारण प्रकृतिपुरुषका संयोग होता है। इसी संयोगसे सृष्टि होती है।

सांख्यकारिकामें लिखा है—
"पुरुपस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पुङ्ग्वन्धवदुमयोरिप संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥"
( सांख्यका० २१)

गतिशिक्तिहीन और दृक्शिकि सम्पन्न पंगु तथा दृक्शिकिहीन और गितशिकियुक्त अन्ध ये दोनों एक दूसरेकी अपेक्षा करते हैं। इस कारण दोनों ही परस्पर संयुक्त होते हैं। दृक्शिकिसम्पन्न पंगु गितशिकियुक्त अन्धिके कंधे पर चढ़ कर पथ दिखळा देता है और अन्ध भी उसीके अनुसार चळता है। इस प्रकार दोनोंकी ही इच्छा पूरी होती है। प्रकृति और पुरूपका संयोग भी उसी प्रकार है। यहां पर पुरुपको पंगु और प्रकृतिको अन्ध माना गया है। कारण, पुरुष दृक्शिक्युक्त और किया-

शिक्तशून्य तथा प्रकृति कियाशिक्तयुक्त और इक्शिकि-शून्य है। इसी संयोगके कारण ही प्रकृति महदादि अचे-तन होते हुए भी चेतनकी तरह और पुरुष वस्तुतः अकर्त्ता होते हुए भी गुणके कर्त्यु त्वमें कर्त्ताकी तरह प्रतीयमान होता है।

बुद्धिसत्त्व पर भी पुरुष प्रतिविम्बित होते हैं। इस विषयकी यहां कुछ आलोचना करना उचित है। आवरक तमोगुणके अभिभूत होनेसे सत्त्वगुणका उद्भव होता है। सत्त्व खच्छ, लघु और प्रकाशक है।

"सत्त्वं लघु प्रकाणकिमध्मुपष्टमाकं चलञ्च रजः। गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवचार्थतो वृत्तिः॥" (सांख्यका० १३)

इस पर पुरुषका प्रतिविम्न पड़ता है। मिलन आदश उउज्वल प्रकाशके निकटवर्त्ती होने पर भी वह समुज्ज्वल नहीं होता। किन्तु निर्मल आदर्श उज्ज्वल वस्तुके निकट उज्ज्वलता धारण करता है। उसी प्रकार चित्-शक्तिके निकट रहने पर भी तमोभिभूत चित्तमें चित्तकी छाया वा प्रकाशरूपता नहीं होती। सत्त्वसमुद्रे क होनेसे चित्त-शक्तिके सान्निध्यवशतः चित्त भी उज्ज्वलता वा प्रकाश-रूपताको धारण करता है। इसके द्वारा चित्प्रतिविम्ब-का विषत बहुत कुछ जाना जा सकता है।

बुद्धिसत्त्व पर चित्शिकका प्रतिविम्व पड़नेसे ही शनादि वृत्तियां वस्तुतः बुद्धितत्त्वका धर्म होने पर भी वे पुरुषके धर्म हैं, ऐसा प्रतीत होता है। मिलन दर्पणमें मुखका प्रतिविम्व पड़नेसे जिस प्रकार दर्पणकी मिलनता मुंख पर दिखाई देती है, उसी प्रकार बुद्धितत्त्वगत श्वानादि वृत्तियां पुरुषगतक्षपमें प्रतिभात होती हैं। इसीका नाम चेतनाशिकका अनुप्रह वा पीरुषय वोध है। फिर बुद्धितत्त्व और उसका अध्यवसाय अचेतन होने पर भी इसमें चेतन पुरुष प्रतिविम्वित होता है, इस कारण यह चेतनकी तरह प्रतीत होता है। इससे जाना जाता है, कि वाचस्पतिमिश्रके मतसे बुद्धिवृत्तिमें पुरुष प्रतिविम्वित होता है, पुरुषमें बुद्धिवृत्ति प्रतिविम्वित नहीं होती। पातअलभाष्यकार वेद्ध्यासका मत भी इसी प्रकार है। किन्तु सांख्य-भाष्यकार विश्वानिभक्षके मतसे बुद्धिवृत्ति श्रितिविम्वत नहीं होती। यातअलभाष्यकार वेद्ध्यासका मत भी इसी प्रकार है। किन्तु सांख्य-भाष्यकार विश्वानिभक्षके मतसे बुद्धिवृत्ति श्रीतिविम्व अङ्गीकृत

हुआ है। उनके मतसे पुरुष जिस प्रकार बुद्धिवृत्तिमें प्रति-विम्वित होते हैं, बुद्धिवृत्ति भी उसी प्रकार पुरुषमें प्रति-विम्वित होती है। वे कहते हैं, कि विषयके साथ इन्द्रिय-का सन्निकर्ष होनेसे बुद्धिके विषयाकार परिणाम वा वृत्ति होती है। वह विषयाकार बुद्धिवृत्ति पुरुषमें प्रति-विम्वित हो कर चमकने लगती है। पुरुष अथच उसकी बुद्धिकी तरह विषयाकारता भिन्न विषय प्रहण वा विषय-मोग नहीं हो सकता। अतएव पुरुषमें प्रतिविम्बरूप विप-याकारता है ऐसा खोकार किया जाता है। विक्वानिमक्षने अपने मतका समर्थन करनेके लिये यह प्रमाण दिया है—

"तिस्मिंश्चिद्दर्धने स्कारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ता प्रतिविम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥" (बांख्यद० १।१ स्वमा०)

तटस्थ वृक्ष जिस प्रकार सरोवरमें प्रतिविभिनत होता है, उसी प्रकार विस्तृत उस चैतन्यखरूप दर्पणमें समस्त वस्तु दृष्टि अर्थात् बुद्धिको विषयाकार वृत्तियां प्रति-विभिन्नत होती हैं। विज्ञानभिक्षुने और भी कहा है—

"प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव न । प्रमार्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिविम्वनम् ॥"

सांख्यकारोंके मतसे विशुद्ध चेतन अर्थात् पुरुष प्रमाता वा प्रमासाक्षी है और विषयाकार बुद्धि प्रमाण है। वुद्धिवृत्ति और चैतन्यका परस्पर प्रतिविम्व होता है, इसी कारण प्रज्वलित लीहपिएडमें अग्निव्यवहारकी तरह बुद्धिवृत्तिमें वोर्घका व्यवहार हुआ करता है। वुद्धिवृत्ति क्षणमंगुर है, इसीसे वोध भी क्षणभंगुर समका जाता है। विज्ञानिमञ्जे स्पर्दाके साथ कहा है, कि अन्य-वुद्धिवाले मनुष्य वुद्धिवृत्ति और वोधका विवेक अर्थात् पार्थक्य नहीं समक सकते। तार्किक और वौद्ध आदि सर्वोंने इस विषयमें धोखा खाया है। सांख्य लोगोंने वुद्धिवृत्ति और वोधका विवेक समका था, इस कारण उनकी श्रेष्ठता है। विज्ञानिमक्षुके मतसे वुद्धिवृत्तिकी तरह सुख और दुःखात्मक वुद्धिवृत्ति भी पुरुषमें प्रति-विम्वित होती है ; अर्थात् पुरुषमें साक्षात् सम्बन्धमें सुख दुःखादि नहीं रहने पर भी प्रतिविम्वरूपमें सुखदुःखादि-का अस्तित्व है। यही सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त है। पुरुषके यथार्थमें दुःखादि शून्य होनेसे वह इस प्रकार

सुखादि सम्पन्न होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है।
सांख्यके मतसे पुरुष अनेक हैं। अथच एक दूसरेके
अविरोधी हैं। जिस प्रकार घरमें अनेक दोषोंके जलनेसे वे
एक दूसरेके अविरोध भावमें अवस्थान करते हैं, कोई
भी किसीको वाधा नहीं देता, सवोंको सभी जगह व्याप्ति
रहती है, उसी प्रकार जीवभावापन्न असंख्य पुरुप भी एक
दूसरेके अविरोधभावमें अवस्थान करते हैं। अथच
किसीको कोई वाधा नहीं होती। एक दोपके जलने या
वुक्तनेसे जिस प्रकार दूसरा दीप नहीं जलता या वुक्ता,
उसी प्रकार एक पुरुषके वन्धन वा मोक्ससे सवींका मोक्स
नहीं होता। इससे प्रमाणित होता है, कि पुरुष प्रत्येक
शरीरमें भिन्न भिन्न है, सांख्याचार्योंने, पुरुष अनेक हैं,
ऐसा सिद्धान्त किया है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें इस मतका खएडन किया गया है।

वेदान्तके मतसे पुरुष एक है, अनेक नहीं। एक हो
पुरुष मनके नानात्यमें नाना रूपोंमें प्रकाशित होता है।
शङ्कराचार्यने अपनी असाधारण प्रतिमाके वलसे श्रुति
आदि प्रमाण द्वारा वह पुरुषवाद-मतका खएडन किया है,
उनका कहना है कि, 'ये सभी ब्रह्मात्मक हैं' 'चे हो सत्य
हैं, वे ही आतमा हैं' 'वे हो तुम हें' 'ये सभी ब्रह्म हैं' 'इस
आतमामें किसी प्रकारका नानात्यभेद नहीं हैं' इत्यादि।
जिस प्रकार घटाकाश प्रभृति महाकाशसे भिन्न नहीं है,
सृगतृष्णिका जिस प्रकार ऊपर भूमिकी अनतिरिक्त है,
उसी प्रकार भोक्त भोग्य पप्रश्च और ब्रह्म अनतिरिक्त हैं।
उसी प्रकार भोक्त भोग्य पप्रश्च और ब्रह्म अनतिरिक्त हैं।

यदि यह कहा जाय, कि ब्रह्म वहुक्ष हैं, वृक्ष जिस प्रकार वहुशाखान्वित हैं, बृह्म भी उसी प्रकार वहुशाक्षान्वित हैं। ब्रह्म भी उसी प्रकार वहुशक्तिप्रवृत्तियुक्त हैं। ब्रह्म ब्रह्मका एकत्व नानात्व होनों ही सत्य है। वृक्ष जिस प्रकार वृक्षक्षमें एक और शाखा पछ्नवादि क्ष्ममें अनेक हैं तथा समुद्र समुद्र-क्ष्ममें एक और फेनतरङ्गादि रूपमें अनेक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म भी ब्रह्मक्षमें एक, पर जीवादि भावमें अनेक हैं। (इस विषयमें जो सब युक्तियां और तर्क हैं, वे वेदान्त शब्दमें दिये गये हैं।)

पहले ही कहा जा चुका है, कि संसार, सुख और दुःस पुरुषके नहीं हैं। अब इस विषयकी यहां थोड़ी आलोचना करनी चाहिये।

ख्याल करना चाहिये, कि अग्निके संयोगसे अयःपिण्ड जिस प्रकार अग्निकी तरह प्रतीयमान होता है, उसी प्रकार पुरुष-संयोगसे चित्प्रतिविम्य द्वारा बुद्धि भी चेतन-की तरह प्रतीयमान होती है। सुतरां बुद्धिका कर्जृत्व और भोक्तृत्व पुरुषमें प्रतीयमान हुआ करता है। यही पुरुषका संसार है।

थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होता है, कि संसार-को दशामें भी यथार्थमें पुरुषके कैवल्य वा मुक्तिका कोई भी व्याघात नहीं होता। क्योंकि, पुरुष उस समय भी केवल ही रहते हैं। उक्त प्रणालीकमसे बुद्धि ही विवेक-ज्ञान द्वारा पुरुषकी मुक्ति-साधिका है। वन्ध्र, मोझ और संसार वस्तुतः पुरुषके नहीं हैं। पुरुषके आध्रयमें बुद्धि ही वद्ध, मुक्त और संसारमागी हुआ करती है।

सांख्याचार्यांका कहना है, कि सभी वाहे। न्यूप्य प्रामाध्यक्षके, मन विषयाध्यक्षके अर्थात् देशाध्यक्षके, सुद्ध सर्वाध्यक्षके और पुरुप महाराजस्थानीय हैं। प्रामाध्यक्ष प्रजासे कर छे कर विषयाध्यक्षको और विषयाध्यक्ष सर्वाध्यक्षको हेता है। सर्वाध्यक्ष महाराजका प्रयोजन सम्पादन करता है। उसी प्रकार इन्द्रियां विषयको आलोचना करके उसे मनके निकट उपस्थित करती हैं और मन सङ्ख्य करके बुद्धिके निकट समर्पण करता है। बुद्धि उक्त कमसे पुरुपका भोगापर्वा सम्पादन करती है। इन्द्रियकी आलोचना, मनका सङ्ख्य, अहङ्कार करती है। इन्द्रियकी आलोचना, मनका सङ्ख्य, अहङ्कार का अभिमान और बुद्धिका अध्यवसाय यथाक्रम हुआ करता है। पुरुपार्थ-निर्वाहके लिये ही इनकी प्रवृत्ति होती है।

प्रकृति खयं सृष्टिकतीं है। सांख्यकारिकामें लिखा है—
"वत्सविवृद्धिनिमित्तं शोरस्य यथा प्रवृत्तिरहस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥"
( सांख्यका १ ५० )

वचोंको पालनेके लिये जिस प्रकार अचेतन दुःधकी प्रवृत्ति होती है, पुरुषके भोगापवर्गके लिये उसी प्रकार अचेतन प्रकृतिकी भी प्रवृत्ति होती है। नर्जकी जिस प्रकार समासदोंको अपना नृत्य दिखा कर नृत्यसे निवृत्त होती है, प्रकृति भी उसी प्रकार पुरुषके निकट अपना होती है, प्रकृति भी उसी प्रकार पुरुषके निकट अपना सकर दिखा कर निवृत्त होती है।

"रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात् । पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्थ निवर्त्तते प्रकृतिः॥" ( म स कां० ५८ )

गुणवान् भृत्य निर्गुण प्रभुको आराधना करके जिस प्रकार कोई उपकार उससे पानेकी आशा नहीं करता, गुण-वती प्रकृति भी उसी प्रकार तरह तरहके उपायोंसे निर्गुण पुरुका उपकार करके उससे किसी प्रकारके प्रत्युपकारकी आशा नहीं करती । असूर्यम्पश्या कुलवधूका दैवात् घूँ घट उठ जाय और वह एक बार किसीं पुरुषसे देखी जाय, तो वह जिस प्रकार लजासे दूसरी वार उस पुरुपको देखनेका मौका नहीं देती, उसी प्रकार प्रकृति भी किसी पुरुषसे विवेक्जान द्वारा देखी जाने पर पुनर्वार उनके दर्शनपथ पर उपस्थित नहीं होती अर्थात् मुक्त पुरुषके सम्बन्धमें प्रकृतिकी भी दृष्टि नहीं होती । पुरुषके आश्रयमें प्रकृति-का ही वन्ध, मोक्ष और संसार है। सच पूछिये, तो पुरुपके वन्ध, मोक्ष और संसार नहीं है। भृत्यगत जय और पराजय जिस प्रकार स्वामीसे उपचरित होती है, उसो प्रकार प्रकृतिगत वन्ध्रमोक्ष भी पुरुषसे उपचरित होता है।

कोशकीट जिस प्रकार अपनेसे ही आपको बांधता है, प्रकृति भी उसी प्रकार अपनेसे ही आपको बन्धती है। यदि सचमुच देखा जाच तो पुरुषके वन्ध मोक्ष कुछ भी नहीं है।

आदरके साथ चौवीस तत्त्वोंके विवेकज्ञानका अभ्यास करनेसे 'में पुरुष हूं, में प्रकृति वा वुद्धादि नहीं हूं, में कर्ता नहीं हूं, किसी विषयमें मेरा खामाविक खामित्य नहीं है, इस प्रकार विवेक-विषयमें साक्षात्कारात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है। यद्यपि मिथ्याज्ञान-वासना अनादि, है और विवेकज्ञान तथा विवेक-ज्ञानवासना सादि, तो मी विवेक-ज्ञान मिथ्या-ज्ञानका और विवेक-ज्ञान-वासना मिथ्या-ज्ञान-वासना उच्छेद साधन करती है। क्योंकि, तत्त्वविषयमें वुद्धिका खामाविक पक्षपात है, इस कारण तत्त्वज्ञान प्रवळ और मिथ्याज्ञान दुर्वळ है। विरोधस्थळ-में प्रवळ दुर्वळका उच्छेद साधन करता है, यह सवोंको मालूम है। सुतरां मिथ्याज्ञान द्वारा तत्त्वज्ञान याधकी आश्रक्ता और पुनः विपर्थय वा मिथ्याज्ञानको उत्पत्तिकी

आशङ्का नहीं हो सकती। जिस प्रकार वीजके असावमें अंकुर नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिपुरुपका संयोग रहने पर भी विवेकस्याति द्वारा अविवेक विनष्ट हुआ है, उसकी फिर सृष्टि नहीं होती। शब्दादि विषयभोग पुरुपका स्नामाविक नहीं है । मिथ्याज्ञान ही मोगका निवन्धन वा हेतु है। मिथ्याज्ञानके विनष्ट होनेसे भोग हो नहीं सकता। अतएव तव सृष्टिका कोई भी प्रयोजन नहीं। उक्त रूपसे विवेकसाक्षात्कार होनेसे सिञ्चत धर्माधर्म वीजभाव नष्ट हो जाता है, इस कारण वह जन्मादिरूप फल उत्पादन नहीं कर सकता। वाच-स्पति-मिश्रका कहना है, कि जलसिक्त भूमि पर हो योज अं क़रोत्पादन कर सकते हैं। प्रखर सूर्यतापसे जिस भूमिका जल सुख गया है, वैसी ऊपर भूमिमें जिस प्रकार वोजको अ कुरोत्पत्ति असम्भव है, उसी प्रकार मिथ्या-ज्ञानादिक्षप फ्लेश रहनेसे ही वह सञ्चित कर्मफल उत्पादनमें समर्थ होता है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्या-ज्ञानादि बलेश अपनीत होनेसे फिर कर्मफल समुत्पन्न नहीं हो सकता। इसका तात्पर्य यह कि क्लेशक्रप जलसे अवसिक्त बुद्धिकप भूमि पर ही कर्मकप वीज फल-रूप अंकुर उत्पादन करता है। तत्त्वज्ञानरूप प्रकर सूर्यकिरणसे समस्त म्लेशरूप सलिल परिशुक्त होनेसे बुद्धिभूमि ऊपर हो जाती है। वैसी ऊपर भूमिमें अंकुरी-त्पत्ति किस प्रकार होगी ?

यद्यपि तत्त्वज्ञपुरुषका कमैं कल नहीं हो सकता, तो भो जिस धर्मात्रमंने फल प्रसव करना आरम्भ कर दिया है अर्थात् जिस धर्माधमके प्रभावसे जिसके फलमोगके लिये वर्त्तमान शरीर उत्पन्न हुआ है उसे प्रवृत्तवेग कह कर उसका प्रतिरोध होना असम्भव है । कुम्मकार इएडादि द्वारा चक्के को घुमाता है, किन्तु इस प्रकार कई वार चक्केको घुमा कर दएड अलग कर लेनेसे भी जिस प्रकार वेगास्य संस्कारके वलसे चक्का कुछ काल आप ही आप घूमता रहता है, उसी प्रकार सिश्चत धर्माधमँके फलप्रसव करनेमें असमर्थ होने पर भी उसने जो कर्म-फल उत्पन्न करना आरम्भ किया है, उसी प्रारण्य फलके कर्मानुसार तत्त्वक पुरुषका शरीर कुछ काल तक अवस्थित रहता है। प्रारण्य कर्मफलमोगके वाद विवेकन पुरुषका शरीर कुछ काल तक अवस्थित होनेके पीछे जब इस भोग-देहका अवसान हो जाता है, तब फिर देहोत्पत्ति नहीं होती। क्योंकि तस्यज्ञान द्वारा कर्माशयका बीजभाव दग्ध हो गया है। दग्धवीज जिस प्रकार अंकुर नहीं दे सकता, ज्ञानदग्ध कर्माशय भी उसी प्रकार तस्वज्ञ पुरुषकी देह उत्पादन नहीं कर सकता। उस समय पुरुषकी ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति होती है। ऐकान्तिक और आत्यन्तिक शुग्दका अर्थ अवश्य-ममावी और अविनासी समक्षना चाहिये। शास्त्रसिद्धान्त सभी प्रणिधान करके देखनेसे मालूम होता है, कि भोगके अतिरिक्त प्रारुध फल कर्माशयका क्षय नहीं होता। अनारुध विपाक वा अनारुध फलकर्माशय तस्यज्ञान द्वारा दृश्यवीजकी तरह अकर्मण्य होता है। उसमें फिर फल प्रसव करनेकी शक्ति नहीं रह जाती।

पुरुष मुक्त और अमुक्त है। अमुक्त एक एक पुरुषके एक एक सुक्ष्मशरीरके पहले ही प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। वह महाप्रलय काल तक स्थायी रहता है। यह सूक्ष्म-शरीर पूर्वगृहीत स्थ्लदेहका परित्याग और अभिनव स्थूल देहका प्रहण करता है। यही पुरुषका संसार है। चित्र जिस प्रकार विना आश्रयके नहीं रह सकता, उसी प्रकार बुद्धादि भी विना आश्रयके नहीं रह सकती। इसीसे स्थूल शरीर लिङ्गशरीरका आश्रय है। सुपिएडत वाचस्पतिमिश्रके मतसे शरीर स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो प्रकारका है। विज्ञानभिक्ष्रके मतसे शरीर तीन है, सूक्ष्मशरीर, अधिष्ठानशरीर और स्थूलशरीर । उनका कहना है, कि स्थूल देहके परित्यागके बाद लिङ्गदेहका जो लोकान्तर गमन होता है, वह इसी अधिष्ठानशरीरके आश्रयमें होता है । उनके मतानुसार लिङ्गशरीर वा सूक्ष्मशरीर कभी भी विना आश्रयके नहीं रह सकता। स्थलभूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठानशरीर माना गया है। इस अधिष्ठानशरीरका दूसरा नाम है अतिवाहिक शरीर। जब तक पुरुषकी विवेकख्याति नहीं होती, तव तक पे सव शरीरग्रह्ण अवस्यम्भावी है। किसी न किसी दिन पुरुषकी विवेकस्थाति होगी ही । विवेकस्याति होनेसे पुरुष असङ्ग, नित्यशुद्ध, बुद्ध भीर मुक्तसभाव होते हैं। प्रकृतिधर्ममें पुरुषने अपनेको सुखी दुःखी समन्ता था जब वियेकस्याति हुई, तब उन्होंने देखा कि वह कुछ भी मेरा नहीं है। 'तदा इष्टु: स्वरूपे नाषस्थान',। तब वे केवल द्रष्ट्राके स्वरूपमें अवस्थान करने लगे।

प्रकृति और शंहधदर्शन शब्द देखी। पूर्ण (सं० ति०) पूर्यतेस्मेति पॄ-पूरि वा-क (ना दान्त-शान् वूर्णदे । तहप चक्रनवसाः पा अवि । इति इझमावो निपा-त्यते च । १ पूरित, परिपूर्ण, पूरा, भरा हुआ । २ सीय सुखेच्छावद्न्य, अभावशून्य, जिसे कोई इच्छा या अपेक्षा न हो । ३ सकल, अबिएडत, समूचा । ४ समग्र, सारा, सवका सब । ५ आप्तकाम, परितृप्त, जिसकी इच्छा पूण ही गई हो । ६ यथेष्ट, भरपूर, काफी। ७ सफल, सिद्ध। ८ समाप्त, जो पूरा हो चुका हो। (पु॰) ६ प्रधाके पुत एक गन्धर्वका नाम। १० एक नागका नाम। ११ पक्षि-विशेषका खरमेद। १२ जल। १३ विष्णु, परमेश्वर। १४ काश्मीरवासी कोई शास्त्रविदु पंडित। इन्होंने विमाषा-शास्त्रकी रचना की थी। १५ बौद्ध शास्त्रोक्त मैतायणीके पूर्ण अतीत एक पुलका नाम । (पु॰) सङ्गीत या तालमें वह रूथान जो 'सम अतीत'-के एक मालाके वाद आता है। यह स्थान भी कभी कभी समका काम देता है। पूर्णक (सं० पु०) पूर्ण ( च बायां बन् । या ५।३।७५) इति कन्। १ खण<sup>९</sup> चूड़पश्ली, ताम्रचूड़, मुर्गा। २ देवयोनि चिशेष, देवताओंकी एक योनि। ३ र्फा देखी। पूर्णं कंस ( सं० पु० ) परिपूर्णं घट, भरा हुआ घड़ा। पूर्णककुदु ( सं० ति०) पूण ककुदमस्य, अवस्थायान्त्य-लोपः समासान्तः । तरुणवयस्क वृष, जवान वैल या सांढ़ ।

पूर्णकलावटी (सं० स्त्री०) औषधिवशेष । प्रस्तुत प्रणाली— पारा एक तीला, गन्धक १ तीला, लीह, धवईका फूल, बेलसींठ, विष, इन्द्रयव, आकनादि, जीरा, धिनया, रसा-अन, सीहागा और शिलाजतु प्रत्येक तीन तीला तथा मोधा, पञ्चमूली, बला, गजपीपल, अनार, सिघाड़ा, नागेश्वर, जासुन, भृष्ट्रपाज, जयन्ती और केशराज प्रत्येक दो तीला; इन सबोंको एक साथ पीस कर २ माग्रीके बरावर गोली बनावे । इसका अनुपान महा है। इसके सेवनसे प्रहणी, गूल, दाह, ज्वर आदि रोग शोप्र जाता रहता है। पूर्णकाकुद ( सं० ति० ) पूर्णं काकुदं तालु अस्य न अन्त्य-लोपः । पूर्णतालुकमात ।

पूर्णकाम (सं॰ पु॰) पूर्णः कामो यस्य । १ आप्तेच्छु, पर-मेश्वर । (ति॰) २ आप्तकाम, जिसे वातकी कामना या चाहन रह गई हो, जिसकी सारी इच्छाएं तृप्त हो चुकी हों । ३ कामनाशून्य, निष्काम ।

पूर्णकाश्यप—वौद्धशास्त्रोक्त एक प्रसिद्ध तीर्थिक। शाक्य-बुद्धने जिन छः तीर्थिकोंको अपने ऐश्वर्यप्रभावसे परास्त किया था, ये उनमेंसे एक थे।

बुद्धने जिस समय धर्मप्रसार नहीं किया था, उसके पहले ही पूर्णकाश्यप अपने मतप्रचारमें छगे थे। वहुतोंने उनका मत अवलम्बन किया था। मगधके राजासे ले कर दीन दुखिया तक सभी उनकी भक्तिश्रद्धा करने छगे थे।

भोटदेशीय वौद्धप्रन्थके मतसे बुद्धदे वी छः तीर्थिकों-मेंसे पूर्णकाश्यप प्रधान थे। ये नंगे ही सर्वोंके सामने घूमा फिरा करते थे। उनका कहना था, कि यह जगत् अनन्त है, अथच सान्त है, अक्षय है अथच क्षयशील है, असीम है अथच ससीम है, चित्त और देह एक है, अथच अभिन्न है, परलोक है अथच नहीं है, पिता वा माता कोई नहीं है, जन्म मृत्यु नहीं है। जिन्होंने परम सत्य पा लिया है और जिन्हें ऐसा मालूम हो गया है, कि यह जीवन और परजीवन एक नहीं, परस्पर भिन्न है तथा इसी जन्ममें मुक्ति होगी, वे ही साधु व्यक्ति जानते हैं, कि परजन्म नहीं है - इसी जन्ममें उनका शेष, ध्वंस वा मृत्यु निश्चित है। मृत्युके वाद पुनः जनम नहीं होता। यह देह खार भूतोंसे वनी है। मृत्यु होनेसे ये चार भूत, क्षिति—पृथ्वीमें, अप् — जलमें तेज — अग्निमें और महत्-वायुमें मिल जांयगे। पूर्णकाश्यपके मतसे यहो परम-तत्त्व है।

श्रावस्ती और जेतवनके मध्य बुद्धके साथ पूर्ण-काश्यपकी में ट हुई थी उस समय पूर्णकाश्यप अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। बुद्धने पेसा अपूर्वकौशल दिखाया था, कि पूर्ण और पांच तीर्थिक विस्तयाभिभूत हो कर भाग चले थे।

पूर्णकाश्यप बुद्धके ऐश्वर्यसे पराभूत हो कर वड़े ही

मर्माहत हुए थे। वे स्नान करनेके वहाने एक सरोवरमें वैठे और गलेमें वालुकापूर्ण एक कलस वांघ कर डूव मरे।

पूर्णकुट (सं॰ पु॰) एक प्रकारकी चिड़िया । भष, कूट, पूरि, करवक और करायिका ये सव पक्षी पूर्णकुट कहलाते हैं। यह शब्द "पूर्णकुट" इस प्रकार दीर्घ- ककारयुक्त भी लिखा जाता है।

पूर्णकुम्भ ( सं॰ पु॰ ) सिललाविभिः पूर्णः कुम्भः । जल-पूरित घट, पानीसे भरा घड़ा। पूर्णकुम्भ सामने रस कर याता करनेसे विशेष शुभ होता है। सभी शुभ-कर्मोंमें दरवाजे पर पूर्णकुम्भ स्थापित होता है।

पूर्णंकोशा (सं० स्त्री०) छताभेद, एक प्रकारकी छता।
पूर्णंकोषा (सं० स्त्री०) १ यविष्टिक भक्षद्रव्य, प्राचीम
कालका एक प्रकारका प्रकवान जो जौके आदेका बनता
था। २ कचौरो।

पूर्णकोष्ठा (सं० स्त्री०) पूर्णं कोष्ठमस्याः। नागरमोधा। पूर्णगढ़—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलान्तर्गत एक बन्दर। यह अक्षा० १६ ४८ उ० और देशा० ७३ २० पूर्ण्के मध्य, रत्नगिरि नगरसे ६ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां-की मचकुन्दी नदीमें छोटे छोटे जहाज आ जा सकते हैं। यहां पक किला है।

पूर्णगभस्ति (सं० ति०) सम्पूर्ण-धनहस्त । पूर्णगर्मा (सं० स्त्री०) पूर्णः गर्भः यस्याः । १ आसन्न-प्रसवा स्त्री, वह स्त्री जिसे शोव्र प्रसव होनेकी सम्मावना हो। २ पूरणपोलिका, पूरन पूरी।

पूर्णेचन्द्र (सं० पु०) पूर्णः चन्द्रः । १ पूर्णिमाका चन्द्रमा, अपनी सब कलाओंसे युक्त चन्द्रमा । २ धातुपारायण नामक प्र'यके प्रणेता । माघवीय धातुवृत्तिमें इसका उल्लेख है ।

पूर्णचन्द्ररस (सं॰ पु॰) रसौपधविशेष । यह पूर्णचन्द्ररस स्रव्य और बृहत्तके भेदसे दो प्रकारका है । स्रव्यकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, अम्र, लीह, शिलाजतु, विङ्क्ष और स्र्णमाक्षिक इन सब द्रव्योंका समभाग मधु और घीमें पीस फर एक माशोके बराबर गोली बनावे । यह भौरूघ विशेष बलकर है।

. पृदत् पूर्णचन्द्ररसकी प्रस्तुत प्रणाली-भगरद् 8 तीला,

गन्धक ४ तोला, लौह ८ तोला, अम्र ८ तोला, रीप्य २ तोला, रङ्ग ४ तोला, खर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र १ तोला, कांसा १ तोला, जातिफल, लवङ्ग, इलायची, दावचीनी, जीरा, कर्पूर, प्रियंगु प्रत्येक २ तोला, इन सव द्रव्योंकी धृतकुमारीके रसमें पीस कर तिफला और अंडीके रसमें भावना देवे। वाद अंडीके पत्तेमें वांघ कर तीन रात तक धानकी ढेरीमें रख छोड़े। इसकी गोली चनेके वरावर होनी चाहिए। इसका अनुपान पानका रस है। यह औषघ वल्य, वृष्य, रसायनश्रेष्ठ और वाजीकरण है, इसका सेवन करनेसे कास, श्वास, अवचि, आमशूल, कटिशूल आदि सभी प्रकारके शूल, अजीर्ण, ग्रहणी, आम-वात, अम्लिपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह और वातरक रोग प्रशमित होते हैं। इससे मेधावृद्धि, मदन-की तरह कमनीय कान्ति और शरीरमें वलवृद्धि होती है। इसके सेवनसे वृद्धव्यक्ति भी तरुणत्वकी प्राप्त होते हैं। यह रसायन श्रेष्ठ और राजसेव्य है।

पूर्णचन्द्रोदयरस ( सं० पु०) रसीयधमेद । प्रस्तुत प्रणाली—हरिताल, लीह और अम्र प्रत्येक ८ तीला ; कपूर, पारा, गन्धक प्रत्येक एक तीला; जैती, मुरामांसी, तेजपत्त, शडी, तालिशपत्त, नागेश्वर, सींठ, पीपल, मिर्च, दाहचीनी, पिष्पलीमूल और लींग प्रत्येक दो तीला इन सब चीजींको मिला कर गोली वनावे । इसका सेवन करनेसे अतीसार, ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल और परिणामशूल आदि जाते रहते हैं । यह अतिसाररोगमें अत्यन्त उत्कृष्ट औपभ्र हैं । अनुपान और माला रोगीके अवस्था नुसार स्थिर करनी चाहिये।

पूर्णतया (सं॰ अव्य॰ ) पूर्णस्पसे, पूरे तौरसे। पूर्णतः (सं॰ अव्य॰ ) पूर्णतया, पूरी तरहसे। पूर्णता (सं॰ स्त्री॰ ) पूर्णस्य भावः तल्-टाप्। पूर्णत्व, पूर्णका भाव, पूर्ण होना।

पूर्णदर्च (सं० क्की०) १ वेदिक क्रियामेद । २ पूर्णिमा ।
पूर्णपरिवर्त्तक (सं० पु०) (Metabola) वह जीव जो
अपने जीवनमें अनेक वार अपना रूप आदि वदलता हो ।
यथा—दंश, मक्षिका, तितली आदि ।

पूर्णपर्वेन्दु ( सं॰ स्त्री॰ ) पूर्णः पर्वेणि इन्दुः पर्वेन्दुः यत्र । पोर्णमासी, पूर्णिमा । पूर्णपात (सं० क्की०) पूर्णञ्च तत् पातञ्चेति नित्यक्तम-धारयः। १ वस्तुपूर्णे पात्न, वर्द्धापक । २ उत्सवकालमे गृहीत वस्त्रालङ्कारादि, पुत्रजन्मादिके उत्सवके समय पारितोषिक या इनामके रूपमें मिछे हुए वस्त्र, अलङ्कार आदि। इसका पर्याय—पूर्णालक है। ३ होमान्तमें ब्रह्माको देय दक्षिणारूप द्रव्यमेद । होमकर्ममें ब्रह्मस्थापन करना होता है। वाद होम शेप होने पर उन्हें पूग-पात दक्षिणामें देना चाहिये। एक पात आतपतण्डुल द्वारा पूर्णे कर उसमें नाना प्रकारके उपकरण और फड देने होते हैं। पूर्णपातका परिमाण संस्कारतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—आठ मुहीकी एक कुञ्चि और आठ कुञ्चिका एक पुष्कल होता है। ऐसे ही चार पुष्कल अर्थात् २५६ मुहीके परिमाण तण्डुलयुक्त पातको पूर्णपात कहते हैं। इसमें यदि अशक हो, तो जिससे अनेक मजुष्य तृप्त हों उतने हो परिमाणका तण्डुलादि पूणपात देना चाहिये। होमकर्ममें इस प्रकारका पूर्णपात ही ब्रह्माके दक्षिणारूपमें कल्पित हुआ है। इसके सिवा अन्य ब्रह्मदक्षिणा नहीं देना चाहिये। ४ जलपूर्णपात।

पूर्णप्रकाश—पक प्रन्थकार, मन्त्रमुक्तावलीके रचियता।
पूर्णप्रज्ञ (सं० ति०) पूर्णा प्रज्ञा यस्य। १ सम्पूर्ण बुद्धि,
पूर्णज्ञानी, वहुत बुद्धिमान, जिसकी बुद्धिमें कोई बुटि या
कमी न हो। २ पूर्णप्रज्ञदर्शनके कर्क्ता मध्वाचाये। इनकी
गिनती वैश्यवमतके संस्थापक आचायोंमें है। वैदान्तस्त्र पर इन्होंने 'माध्वभाष्य' नामक है तपक्ष-प्रतिपादक
भाष्य लिखा है। हनुमान और भीमके वाद ये वायुके
तीसरे अवतार माने गये हैं। अपने भाष्यमें इन्होंने
स्वयं भी यह वात लिखी है। इनका एक नाम आनन्दतीथं भी है।

पूर्णप्रबदर्शन—पूर्ण-प्रबप्यक्तित दर्शन । पुर्णप्रबक्ते और मी दो नामान्तर हैं, मध्य-मन्दिर और मध्य । पूर्णप्रबने अपने माध्यभाष्यमें लिखा है, कि वे वायुके तृतीय अवतार हैं। वायुका प्रथम अवतार हमान, द्वितीय भीम और तृतीय स्वयं वे हैं।

शङ्कराचार्यने मसाधारण प्रतिभावलसे वेदान्तस्वके शारीरकभाष्यमें अहै तमत संस्थापन किया है। किन्तु रामानुज और पूर्णप्रज्ञ दोनों ही उस स्वका अवलम्बन करके द्वैतवावकी संस्थापना की है। रामानुज और पूर्ण-प्रश्न दोनोंका ही मत प्रायः एक सा है। पूर्णप्रश्नने वेदान्त-स्त्र और उसके रामानुजकत भाष्यका अवलम्बन करके यह दर्शन बनाया है। यों कहिये, कि तत्कृत वेदान्त-भाष्य ही इस दर्शनका मूल है। वेदान्तस्त्रके अर्थविप-र्ययके कारण इस दर्शनकी उत्पत्ति हुई है।

पूर्णप्रज्ञके मतसे पदार्थ तीन है, चित्, अचित् और इंश्वर । चित् जीवपदवाच्य, भोका, असंकुचित, अप-रिच्छिन्त, निर्मलज्ञानखरूप और नित्य तथा अनादि कर्म-रूप अविद्यावेष्टित हैं। भगवदाराधना और तत्-पद्माप्त्यादि जीवका खभाव है । केशायको सौ भागोंमें विभक्त कर उसके एक भागको फिर सौ भागोंमें विभक्त करनेसे वह जितना सुक्ष्म होता है, जीव उतना ही सुक्ष्म है। अचित् भोग्य और द्रश्य पदवाच्य, अचेतन खरूप, जडात्मक जगत् और भोग्यत्व विकारास्पदत्वादि स्वभावशाली है। वह अचित् पदार्थं तोन प्रकारका है, भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन । जिसे भोग किया जाता है, उसे भोग्य, जैसे अन्नपानीय प्रभृतिः जिसके द्वारा भीग किया जाता है, उसे भोगोपकरण, जैसे मोजन पालादि और जिसमें भोग किया जाता है, जसे भोगायतन कहते हैं, जैसे शरीर प्रभृति। ईश्वर सर्वोंके नियामक हरिपदवाच्य, जगत्के कर्त्ता, उपा-दान और सर्वोंके अन्तर्यामी हैं। वे अपरिच्छिन्न ज्ञान, पेश्वर्यं, वीर्यं, शक्ति, तेज आदि गुणसम्पन्न हैं।

चित् और अचित् सभी उनके शरीर-सक्तप, पुरुषी-त्तम और वासुदेवादि उनकी संज्ञा है। वे परम कारुणिक और भक्तवत्सल हैं और उपासकोंको यथोचित फल देने-के लिये लीलावशतः पांच प्रकारकी मूर्त्ति धारण करते हैं, प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादिः द्वितीय रामादि अवतारसक्तप विभवः तृतीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध ये चार संज्ञाकान्त व्यूहः चतुर्थं सूक्ष्म और सम्पूर्ण वासु-देव नामक परब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी सव जीवोंके नियन्ता। इस पांच प्रकारको मूर्तियोंमें पूर्व पूर्वकी उपा-सना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तर उपासनामें अधिकार होता है। अभिगमन, उपादान, इज्या, खाध्याय और योगभेदसे भगवान्की उपासना भी चार प्रकारकी है। देवमन्दिरके मार्जन और अनुलेपन आदिको अभिगमन गन्धपुष्पादि पूजीपकरणके आयोजनकी उपादान ; पूजा-की इज्या ; अर्थानुसन्धान-पूर्वक मन्त्रजप तथा स्तोत्नपाठ, नामकीर्त्तन एवं तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासकी स्वाध्याय और देवतानुसन्धानको योग कहते हैं। इस प्रकार भगवद उपासना द्वारा ज्ञानलाभ होनेसे करणामय भग-वान् अपने भक्तोंको नित्य पद प्रदान करते हैं। उस पद-की प्राप्ति होनेसे भगवान् कौन हैं, उसका सम्यक् ज्ञान हो जाता है। तव फिर पूनर्जनमादि कुछ भी नहीं होता।

इत सब विषयोंमें रामानुज और पूर्ण प्रश्न दोनोंका हो मत समान है। किन्तु रामानुजका कहना है, कि चित् और अचितके साथ ईश्वरके भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों ही हैं। जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली पशु और मनु-प्यादिका परस्पर भेद है, उसी प्रकार पूर्वोक्त समाव और स्वरूपके वैलक्षण्यवशतः चिद्चिदके साथ ईश्वरका भी मेदखीकार करना होगा। फिर जिस प्रकार मैं सुन्दर हु' 'मैं स्थूल हुं' इत्यादि व्यवहारसिद्ध भौतिक शरीरके साथ जीवात्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चित् अचित् समी वस्तु ईश्वरके शरीर हैं। सुतरां शरीरात्म-भावमें चिद्चित् भी वस्तुओंके साथ ईश्वरका अभेद भी है, यह कहना पड़ेगा। जिस प्रकार एकमाल मृत्तिकाके हो विभिन्न घट और शरावादि नाना ऋपोंमें अवस्थान करनेके कारण घटके साथ मृत्तिकाका भेदाभेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार एकमाल परमेश्वरके चिदचिद नाना क्पोंमें विराजमान होनेके कारण चिदचिद्वके साथ उस-का मेदामेद भी है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। क्योंकि ईश्वरके आकारलहरूप चिद्चिदुका परस्पर भेद् हे कर तथा उन दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मभावमें अमेद-वशतः मेदामेद हुआ है। फिर देखो, जिसका जो अन्तर्यामा होता है, वही उसका शरीर समका जाता है । भौतिक देहका अन्तर्यामी जीव है, इस कारण भौतिक देह जीवका शरीर है। उसी प्रकार जीवका अन्तर्यामी ईश्वर है, इस जीवको ईश्वरका शरीर कहना होगा। अतएव जिस प्रकार 'में सुन्दर हूं' 'में स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माके शरीरात्म भावमें असेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार 'तस्व वि देत' तो', हे इवैतकेती ! तुम ईश्वर इत्यादि श्रुतियोंमें जीवातमा और ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेद निर्दिष्ट हुए हो।

फलतः इस श्रुति द्वारा विलक्कल अभेद प्रतीत नहीं होता, पर हां इसे भेदाभेद कहा जा सकता है। रामानुज-की इस बात पर अर्थात् भेद, अभेद और भेदाभेद इस विरुद्ध तस्वतयका स्वीकार करने पर पूर्णप्रज्ञ कहते हैं, कि इसमें उन्होंने केवल प्रकारान्तरसे शङ्कराचार्यके ही मत-की पोषकता की है, वे यथार्थ रूपमें गन्तव्य पथ पर जा नहीं सके। अतएव उनका मत अश्रद्धेय है। मध्वा-चार्यने अपने भाष्यमें शङ्करको दिखलाया है, जीव और ईश्वरके साथ जो परस्पर भेद है, उसमें और कोई संशय रह सकता। उस भाष्यमें लिखा है 'स बातमा तस्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् जीव और ईश्वरमें मेद नहीं है जीव और ईश्वर एक ही हैं। इस श्रुतिका ऐसा तात्पर्य नहीं, इस-का तात्पर्य इस प्रकार है, हे खेतकेतो, 'तस्य त्वं' उसका तुम हो, इस पन्डी समास द्वारा उसमें जीव ईखरका सेवक है, अर्थात् उसीका तुम हो, उसीके लिये तुम्हारी सृष्टि हुई है, यही अर्थ सुसंगत है । जीव और ईश्वरमें अभेद है, ऐसा अर्थ किसी तरह सुसङ्गत नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त ऐसा अर्थ भी समभा जाता है, कि जीव ब्रह्मसे भिन्न है।

पूर्णप्रज्ञने दो तत्त्व स्त्रीकार किया है, स्वतन्त्र और अस-तन्त्र । इनमेंसे भगवान् सर्वदोपवर्जित और अशेप सद्ग ण-के आश्रय खहप हैं। विन्मु हो खतन्त्र तत्त्व और जीवगण अखतन्त्रगत अर्थात् ईश्वरायत्त हैं। सेव्यसेवक-भावावलम्बी ईश्वर और जीवका परस्पर भेद और युक्ति उसी प्रकार सिद्ध होती है, जिस प्रकार राजा और भृत्यका परस्पर भेद देखा जाता है। अतएव जो जीव और ईश्वरकी अभेद-चिन्ताको उपासना कहते हैं तथा वैसी उपासनाका जो अनुष्ठान करते हैं, उन्हें परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता, वरन् नरक होता है । उसका कारण यह है, यदि भृत्यपदस्थ कोई व्यक्ति राजपद पानेकी इच्छा करे, अथवा मैं राजा हूं, इस प्रकार घोषणा कर दे, तो राजा उसे भारी दण्ड देते हैं। फिर जो व्यक्ति निज अपकर्ष चोतनपूर्वक राजाका गुणानुकीर्त्तन करे, तो राजा प्रसन्न हो कर उसे समुचित पारितोपिक देते हैं। अतएव मैं ईश्वरका सेवक हूं, यह जान कर ईश्वरके गुणोत्कर्पादि कोर्त्तनरूप सेवाके विना किसी तरह अभिलंबित फल-

प्राप्तिको सम्भावना नहीं। 'मैं ईश्वर हूं' अथवा 'मैं ईश्वर हूंगा' इस प्रकार उनकी उपासनासे अनिए भिन्न कोई इए फल नहीं होता।

ईश्वर पूर्ण हैं और उन्होंने हो इस जगत्को परिपूर्ण किया है, इसीसे उन्हें पूर्ण कहते हैं। ईश्वरके उसी पूर्णभावको ले कर निखिल संसार पूर्ण होता है।

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण दमुच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"

(वेदान्तस्० मध्य० शहाह)

इस ईश्वरके सम्बन्धमें मनीपियोंने नाना प्रकारके तर्कजाल फैलाये हैं, किन्तु तर्क द्वारा यह स्थिर नहीं हो सकता। 'नैषा तर्केण मतिरपनीया।

( मध्वभाष्य वेदांतस्० ११।१६)

भगवान विष्णुसे इस निष्किल जगत्की सृष्टि हुई है। भगवान विष्णुने, जो अनन्त समुद्रशायी हैं, यह ब्रह्माएड-रूप कोप ही जिनका वीर्य है, अपने शरीरसे विविध प्रकारकी सृष्टि की है।

परव्रह्म शब्दसे विष्णुका ही वोध होता है। शिव और च्हादि नाना प्रकारके नामकरणको जगह पूर्णप्रकृते लिखा है—भगवान विष्णु नाना प्रकारके रोगोंको दूर करते हैं, इसीसे उनका नाम च्ह्र ; सवींके ईश्वर हैं, इस कारण ईशान ; महत्त्वाधिक्यवशतः महादेव ; जो संसार-सागरसे मुक्त हो कर खगमें सुखभोग करते हैं, वैसे नाकोंके आश्रयदाता हैं, इस कारण पिनाकी ; सुखमय होनेके कारण शर्व ; कतुस्वरूप देह वस्त्रदूपमें परिधान करते हैं, इस कारण कित्तवास ; विरेचन हेतु विरिश्व ; (वृंहण अर्थात्) वृद्धि करते हैं, इस कारण ब्रह्म, अनन्त पेश्वर्य-अधिपति हैं, इस कारण इन्द्र नाम वड़ा है। इस प्रकार भगवान विष्णुके अनेक नाम हैं।

पूर्णप्रहादर्शनके मतसे—भगवान विष्णुकी सेवा तीन प्रकारकी है, अङ्कन, नामकरण और भजन। इनमेंसे अङ्कनकी सभी पद्धतियां साकत्यसंहिता-परिशिष्टमें विशेषरूपसे लिखी हैं। और उनकी अवश्यकर्त्तव्यता तैत्तिरीयक उपनिपदमें प्रतिपादित हुई है। नारायणके चकादि अस्त्रोंका चिह जिससे सभी अङ्गोंमें चिरकाल विराजित रहे, तक्षलीहादि द्वारा वैसा करना. अवश्य

कर्त्तव्य है। दाहि हाथमें सुदर्शनचक्रका और वाएं में शङ्कृचिह्न धारण करे। कारण, उन चिह्नोंको देखनेसे भगवान्का हमेशा स्मरण होता रहेगा और उससे अभि-लियत फल सिद्ध भी शीध्र होगी। अङ्कनकी सभी प्रक्रियाएं अग्निपुराणमें भी लिखी हैं, विस्तृत हो जानेके भयसे यहां उनका वर्णन नहीं किया गया।

द्वितीय सेवा नामकरण है। अपने पुत्रादिमें केश-वादि नाम रखने होंगे, क्योंकि इससे भगवान्का नाम-कीर्तन हमेशा होता रहेगा। तृतीय सेवा भजन है। यह भजन तीन प्रकारका है, कायिक, वाचिक और मान-सिक। इनमेंसे कायिक भजनके फिर तीन भेद हैं, दान, परिवाण और परिरक्षण। वाचिक चार प्रकारका है—सत्य, हित, प्रिय और खाध्याय अर्थात् शान्त्रपाड तथा मानसिक भी तीन है—दया, स्पृहा और श्रद्धा। जैसे—

"सम्पूज्य ब्राह्मणं भयत्या शूजोऽपि ब्राह्मणो भवेत्।"

इस वाषय द्वारा यदि शूर भी भक्तिपूर्वक द्वाहाणकी पूजा करे, तो वह ब्राहाण हो सकता है अर्थात् ब्राहाणकी तरह पविवादि गुणविशिष्ट होता है। इसी प्रकार 'ब्रहाविद ब्रह्में व भवति' यह श्रुति-वाष्य ब्रह्मक और ब्रह्मका अभेद न वतला कर ब्रह्मकानो व्यक्ति ब्रह्मके समान सर्वक्ष-त्वादि गुणसम्पन्न होता है, ऐसा अर्थ वतलाता है। श्रुतिमें 'माया, अविद्या, नियति, मोहिनी, प्रकृति और वासना' इन छः शब्दोंका जो प्रयोग है, उनका अर्थ भगवान विण्णुको इच्छामात है, -ब्रह्म तवादियोंकी कल्पित अविद्या नहीं। फिर प्रपञ्च शब्दमें कहा गया है, उसका अर्थ प्रकृष्ट पञ्चमेद है। यथा—जोवेश्वरमेद, जड़ेश्वरमेद, जड़जीवमेद और जीवगण तथा जड़पदार्थका परस्पर मेद। वह प्रपञ्च सत्य और अनादिसिद्ध है।

विष्णुका सर्वोत्कर्ष पृतिपादन करना सभी शास्त्रोंका पृथान उद्देश्य है। धमँ, अर्थ, काम और मोक्ष यही चार पृकारका पुरुपार्थ है। इनमेंसे मोक्ष ही नित्य है और सभी स्थायी हैं। अतपव पृथान पुरुपार्थ मोक्षकी यहा पूर्वक पृप्ति करना पृत्येक चुद्धिमान व्यक्तिके अवस्य कर्तंव्य है। किन्तु मगवान विष्णुके प्रसन्न हुए विना मोक्ष मिछना दुरुभ है और ज्ञानके विना मगवान विष्णु

पुसन्त हो नहीं सकते। इस ज्ञान शब्दसे विष्णुके सर्वो-त्कर्पज्ञानका वोध होता है। केवल मूढ़ व्यक्ति हो जीव-प्रोरक विष्णुको जीवसे पृथक् नहीं समक्त सकता, पर जो बुद्धिमान् ध्यक्ति हैं, उनके अन्तःकरणमें विष्णु और जीवका परस्पर भेद है, यह स्पष्टक्षपसे पृतीत होता है।

व्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवगण अनित्य और क्षर हैं, तथा छन्नी अक्षर-शब्दवाच्य हैं। उन क्षराक्षरोंमेंसे विष्णु प्रधान और खातन्त्र शित्त हैं तथा विद्यान और सुखादि गुणोंके आधारस्त्र हैं, शेष सभो विष्णुके अधोन हैं। इन सवका सम्यक्षपसे ज्ञान हो जाने पर विष्णुके साथ सहवास और नित्य सुकका उपभोग होता है।

श्रुतिमें लिखा है, कि एक वस्तु अर्थात् ब्रह्मका तत्त्व-हान हो जानेसे सभी वस्तु जानो जा सकतो हैं। इसका तात्पयं यह, कि जिस प्रकार प्रामस्थ प्रधान व्यक्तियोंको जान लेने पर प्राम जाना जाता है और पिताको जान लेने पर पुत्र जाना जाता है अर्थात् पुत्रको जाननेकी फिर अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार इस जगत्के प्रधान-भूत और पिताके स्वरूप जो ब्रह्म हैं, उन्हें जान सकनेसे ही सभो वस्तु जानी जाती हैं अर्थात् वूसरेको जाननेकी फिर अपेक्षा नहीं रहती, नहीं तो इस श्रुति द्वारा वास्त-विक अभेद नहीं समभा जायगा।

अह तमतावलम्बी जो व्यासकृत वेदान्तस्त्रका क्रुटार्थं किया करते हैं, यह क्ल भी नहीं है। उन सब स्तोंका इस प्रकार अर्थ करना ही सुसङ्गत है। कुछ स्तोंके यथाश्रुत ताल्पर्यका अर्थ लिखा गया। इसीसे समक सकेंगे, कि शङ्करादि-भाष्यमें क्रुटार्थं हो सन्निवेशित हुआ,है।

'अयातो वृद्धानिहासा' इस सूतके 'अय' शब्दका आन-न्तर्य, अधिकार आर मङ्गळ' यही तीन अर्थ हैं।

'अथ शब्दो मङ्गळाथींऽधिकारानन्तर्यार्थश्च ।' (वेदान्त० मध्व० १।१।१)

फिर 'अतः' इस शब्दका अर्थ है हेतु, यह गरुड़-पुराणके ब्रह्मनारद-संवादमें छिखा है। जब नारायणके प्रसन्न हुए विना मोक्ष नहीं होता, तव ब्रह्मजिझासा अर्थात् ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करना अवश्य कर्त्तव्य है, बही इस स्वका तात्पार्थ है। 'जन्माग्रह्म यतः' इस स्वमं व्रह्मके लक्षण कहे गये हैं। इस स्वका अर्थ इस प्रकार है—जिनसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थित और संहार हुआ करता है, जो नित्य निर्दोष, अशेप सहुगुणाश्र्य हैं वही नारायण ब्रह्म हैं। वैसे ब्रह्मका प्रमाण क्या हैं ? इस उत्तरमें उन्होंने कहा हैं, 'शाह्मगोनित्नाव' सभी शाह्म हों निरुक्त ब्रह्मके प्रमाण हैं। क्योंकि, ब्रह्म हो सभी शाह्मोंके प्रतिपाद्य हैं। उस स्वोक्त शास्त्र शब्द सो सभी शाह्मोंके प्रतिपाद्य हैं। उस स्वोक्त शास्त्र शब्द सो चारों वेद, महाभारत, नारदपञ्चरात, रामायण और उन सव ब्रन्थोंके सभी प्रतिपोधक ब्रन्थ समक्ता चाहिये। ब्रह्मको शास्त्र-प्रतिपाद्यता किस प्रकार स्वीकार की जाती है, इस आशङ्का पर वे कहते हैं, 'तन्तु समन्वयात्' सभी शाह्मोंके उपक्रम और उपसंहारमें ब्रह्म हो प्रतिपादित हुए हैं, इस कारण उस आशङ्काका समन्वय भी हुआ है।

विस्तार हो जानेके भयसे सभी नहीं लिखे गये। इस दर्शनका विस्तृत विवरण आनन्दतीर्थ-कृत भाष्य, रामानुज-दर्शन, नारदपञ्चरात आदिमें लिखा है।

रामातुज, मध्य, शंकराचार्य आदि शब्द देखो । पूर्णवीज (सं० पु०) पूर्ण वीजंयस्य । वीजपूर, विजीरा

नीवू ।

पूर्णभद्ध (सं० पु०) १ नागभेद । इसका पुत रत्नभद्र और रत्नभद्रका पुत्र हरिकेश था । २ पक राजपिडत । इन्होंने सोममन्त्रीके आदेशसे १५१४ ई०में पञ्चतन्त्र प्रनथ-का पुनः संस्कार किया ।

पूर्णभवा—वङ्गालके दिनाजपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी।
यह ब्राह्मणपुकुर नामक जलासे निकल कर मालदह
जिलेमें महानन्दासे आ मिली हैं। देपा, नर्सा, शियालदंगा, घाघरा, हानचाकाटाखाल, हरडङ्गा और मीना नामकी इसकी कई एक शाखाएं हैं।

पूर्णमळ्ळ-माळवदेशके एक राजा । ये गुजरातराज विशाल-वेचके समसामयिक और १३०० विक्रम-सम्वत्में विद्य-मान थे ।

पूर्णमा (सं० स्त्री०) पूर्णः कलापूर्णश्चन्द्रो मीयतेऽस्यां म-घनर्थे-क-टाप्। पूर्णमासो तिथि, पूर्णिमा। पूर्णमास् (सं० स्त्री०) पूर्णः कलाभिः पूर्णो माश्चन्द्रमा यतः । १ पूर्णिमा । पूर्णं मासं मिमीते मा-असुन् । २ सूर्यं । ३ चन्द्रमा ।

पूर्णमास (सं० पु०) पूर्णमासी पूर्णिमा, साघनत्वेनास्त्य-स्येति, अव्। १ पौर्णमासयाग, प्राचीनकाळका एक याग जो पूर्णिमाको किया जाता था। २ धाताका एक पुत्र जो उसकी अनुमति नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था। पूर्णी मासो यहेपि। ३ पूर्णिमा।

पूर्णमासी (सं क्यों ) पूर्णमास-गौरादित्यात् छोष्। पूर्णिमा, चन्द्रमासकी अन्तिम तिथि, शुक्क पक्षका अन्तिम या पन्द्रह्यां दिन।

पूणमुख (सं० पु०) जनमेजयके सर्पसतमें दग्घ नागमेत्,

एक नाग जो जनमेजयके सर्पयत्नमें जलाया गया था।

पूर्णमैतायनीपुत—सुद्ध भगवान्के अनुचरोंमेंसे एक। थे

पश्चिम भारतके सुरपाक नामक स्थानमें रहते थे। स्तका अभ्यास करनेवाले वीद इनकी उपासना करते थे।

पूणयोग (सं० पु०) बाहुयुद्धभेद। जरासन्धके साथ भीमने यही युद्ध किया था।

पूर्णराज-तोमर-वंशीय एक राजा। एर्णन्यस्य ( गंद विक्र ) स्थोतानिको केरा स

पूर्णवन्धुर ( सं॰ ति॰ ) स्तोतादिको देय धनसे पूरित स्य द्वारा युक्त ।

पूर्णवपुस् (सं॰ ति॰) पूर्णदेहिवशिष्ट, पूर्णशरीरवाला। पूर्णवर्मन् (सं॰ पु॰) मगधके एक वौद्ध राजा। ये सम्राट् अशोकके शेप वंशधर थे। गौड़राज शशाङ्कने वोधिगयाके जिस वोधिवृक्षको नष्ट कर दिया था, उसे इन्होंने फिरसे सञ्जीवित किया। चीनपरिवाजक यूपनचुअङ्गके भ्रमण-वृत्तान्तसे झात होता है, कि उसके आनेके पहले ही वे मगध-सिहासन पर वैठे थे। वोधगयाके शिलादित्य-विहारके समीप इनको प्रतिष्ठित ८० फुट ऊँची बुद्धमूर्ति के आच्छादनके लिये एक मन्दिरको वात भी उक्तं परिवाजकने उल्लेख की है। पुरुषिश्च हेखो।

२ यबद्वीपवासी एक राजा । थे छठो शतान्दीमें विद्यमान थे। पूर्णविराम (सं॰ पु॰) वाचकके लिये सबसे बड़े विराम या ठहरावका चिह्न या सङ्कोत, लिपिप्रणालीमें वह चिह्न जो वाक्यके पूर्ण हो जाने पर लगाता जाता है। अङ्गरेजी आदि अधिकांश लिपियोंमें और उन्हींके अनुकरण पर मराठी आदिमें भीं, यह चिह्न एक विन्दु "' " के रूपमें होता है। परन्तु नागरी, बंगला आदिमें इसके लिये खड़ी पाई "। "-का व्यवहार होता है।

पूर्णविषम (सं॰ पु॰) ताल (सङ्गीत)-में एक स्थान जो कभी कभी समका काम देता है।

पूर्णवैनाशिक ( सं॰ पु॰ ) सर्ववैनाशिक, सर्वशून्यत्ववादो-बीद्रमेत् ।

पूर्णशैल (सं॰ पु॰) योगिनीतन्त्रोहिस्तित एक पर्वत । पूर्णसेन वरवचिकृत योगशतकके टीकाकार ।

पूर्णहोम (सं० पु०) पूर्णं: होमः । पूर्णाहुति । होमके अन्त-में पूर्णाहुती देनी होती है । पूर्णाहुती मृड्नामानि होगी । अतपव मृड्नामक अग्निका आवाहनादि कर यजमान समेत पुरोहित उठ कर उसमें पूर्णाहुति देवें ।

पूर्णा (संव स्त्रीव) पूर्ण-दाप्। तिथि-विशेष। पश्चमी, दशमी, पूर्णिमा और अमावस्या तिथिको पूर्णातिथि कहते हैं इस पूर्णा तिथिमें स्त्रोसंसर्ग नहीं करना चाहिये। वृहस्पतिवारको पूर्ण तिथि होनेसे सिद्धयोग होता है। सिद्धयोग यातादिमें विशेष प्रशस्त है।

पूर्णा—वरार राज्यकी एक नदी। इसका प्राचीन नाम पयोष्णी है। यह सतपुरा पहाड़से निकल कर तासी नदी-में था मिली है। काटापूर्ण, मूर्णा, मान, धान, शाहनूर, चन्द्रभागा और वान नामकी इसकी कई एक शाखा हैं। वरारके अन्तर्गत पूर्णासैकतमें प्रचुर और उत्कृष्ट कपास उपजता है।

पूर्णांघात (सं॰ पु॰) ताल (संगीत) में वह स्थान जो अनाघातके उपरान्त एक मालाके वाद आता है। कभी कभी यह स्थान भी समका काम देता है।

पूर्णाङ्गद ( सं० पु० ) एक नाग ।

पूर्णाञ्जलि (सं० वि०) अञ्जलिपूर्ण, अञ्जलि भर, जितना अञ्जलिमें आ सके।

पूर्णानक ( सं० क्को० ) पूर्णालक, पूर्णपात ।

पूर्णानन्द (सं० पु०) पूर्ण आनन्दो यह । १ परमेश्वर । २ तन्त्रप्रकरणकार विद्वद्धे व ।

पूर्णानन्द—१ महावाक्यार्थप्रवन्ध, योगसंग्रहटीका, श्रुति-सार, श्रुतिसारसमुखय और सुरेश्वरवार्त्तिकटीका आदि प्रन्थरचयिताके नाम। एक ही व्यक्तिने उल्लिखित पांच पुस्तुके वनाई थीं, यह दीक नहीं कहा जा सकता।

Vol. XIV. 73

शिष्य थे, इसीलिए पूर्णचन्द्राक्षम नामसे प्रसिद्ध हुए।
३ पर्चक्रनिरूपणविरूपाक्षपञ्चाशिका-टीकाके रचयिता।
१ पूर्णानन्द कविचक्रवर्ती—विख्यात दांशीनिक। थे नारायण
महके शिष्य थे। इन्होंने तत्त्वमुक्तावली, मायावादशतदूषणी, तत्त्वाववीधटीका (सांख्य), योगवासिष्ठसारटीका और शतदूषणीयमन नामक कई एक प्रन्थ प्रणयन
किये। जनसाधारणमें थे गौड़पूर्णानन्द नामसे परिचित थे।

पूर्णानन्द चक्रवर्ती एक संस्कृतवित् परिडत । इन्हेंनि सुन्दरीशक्तिदानटीका, श्यामारहस्य, तन्तानन्दतरङ्गिणी, तत्त्वचिन्तामणि और षट्चकप्रकरण आदि कई एक प्रन्थोंकी रचना की ।

पूर्णानन्दताथं — एक प्रसिद्ध टीकाकार । इन्होंने अहे त-मकरन्दटीका, अन्तःकरणप्रवोधटीका, अवध्वगीताटीका, अष्टावकगीताटीका, आत्मज्ञानोपदेशटीका, आत्मानात्म-विवेकटीका, आत्माववोधटीका और दक्षिणासूर्त्तस्तोत-टीका आदि ग्रन्थ वनाये।

पूर्णानन्दनाथ—एक प्रन्थकार । पूर्णानंदपरमहं स देखो । पूर्णानन्दपरमहं स — एक विख्यात पिएडत । ये ब्रह्मानन्द-परमहं स — एक विख्यात पिएडत । ये ब्रह्मानन्द-परमहं सके शिष्य थे । इन्होंने ककारादि-कालीसहस्वनाम, कालिकादिसहस्वनामस्तुतिरत्नदीका, कालिका-रहस्य, गद्यवल्लरी, तत्त्वचिन्तामणि (१५७९ ई०में रिचत), तत्त्वानन्दतरिङ्गणी, वामकेश्वरतन्त्वमें महातिषुरसुन्दरी-मन्त्वनामसहस्र, शाक्तकम (१५७२ ई०में), श्यामारहस्य, पर्चकक्रम वा पर्चक्रमभेद, सुमगोदरद्पण और ब्रह्मानन्दस्त पर्चकर्दीपिकाकी एक टीका प्रणयन की।

पूर्णानन्दब्रह्मचारी—एक कवि । कवीन्द्रचन्द्रोद्यमें इनका उक्लेख है।

पूर्णानन्दसरस्रती तत्त्वविवेकसिद्धान्ततत्त्वविन्दुरीका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये पुरुषोत्तमानन्द तथा अद्वैता-नन्द यतिके शिष्य थे।

पूर्णामिषेक ( सं॰ पु॰ ) पूर्णः अभिषेकः । तन्त्रोक्त कौला-भिषेक्रभेद, महाभिषेक । तन्त्र शब्द देखो ।

पूर्णामृता (सं० स्त्री०) चान्दकी सोलह कलाओंका नाम । पूर्णायु ( सं० स्त्री० ) पूर्णायु देखी । पूर्णायुस् (सं० पु०) १ प्राधेय गन्धर्वभेद । पूर्णमायु-रस्य । २ शतायुक्त, सौ वर्षको आयुवाला । (क्लो०) ३ शतवर्षमित जीवनकाल, सौ वर्ष तक पहुंचनेवाला जीवनकाल । (ति०) ४ पूरी आयुवाला । पूर्णालक (सं० क्ली०) पूर्णपात । इसका पाठान्तर 'पूर्णा-नक' ऐसा भी देखनेमें आता है। पूर्णपात्र देखी । पूर्णावतार (सं० पु०) पूर्णः अवतारः । १ घोड्श कला-युक्त अवतार, किसी देवताका सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त अवतार । विष्णु भगवानके पूर्णावतार नृसिंह, राम और श्रीकृष्ण हैं। अन्यान्य अवतार कलावतार हैं।

"पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराष्ट्विसुः। परिपूर्णतमः कृष्णो चैकुण्डे गोळोके खयं॥" ( ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ६ अ० )

२ विष्णुके वे अवतार जो अंशावतार नहीं थे। वैत्यवगण गौराङ्गदेवको विष्णुका पूर्णावतार मानते हैं। फिर किसीके मतसे वे अंशावतार हैं। वंतन्य शब्द देखे। पूर्णाशा (सं० छो०) नदीभेद, एक नदीका नाम। पूर्णाश्रम—पूर्योगसारणो नामक प्रन्थके पूणेता। पूर्णाहुति (सं० छो०) पूर्णा आहुतिः। होमसमाप्तिमें अन्तिम आहुति। पूर्णशम देखे। पूर्णिमा, पूर्णमासी। पूर्णिका (सं० छो०) पू-निङ्। पूर्णिमा, पूर्णमासी। पूर्णिका (सं० छो०) नासाच्छिनी नामक पक्षी, एक चिडिया जिसकी चोंचका दोहरी होना माना जाता है। पूर्णिमा (सं० छो०) मरीचिपुतः। पूर्णिमा (सं० छो०) पूर्णिः पूरणं, पूर्णि मिमीते इति माम्हिन्दा पश्चदशोतिथि, पूर्णमासी। पर्याय—पौर्णमासो, पित्राः, चान्दो, पूर्णमासो, अनन्ता, चन्द्रमाता, निरञ्जना, ज्योत्स्त्रो, इन्दुमती, सिता।

देवीपुराणमें लिखा है, कि पूर्णिमा दो प्रकारको है, राका और अनुमती। जिस पूर्णिमामें कलान्यून चन्द्रमा सूर्यास्तसे कुछ पहले उदय होता है, वह पूर्णिमा अनुमती कहलाती है। यह पूर्णिमा अर्थात् चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा देविपतरींकी अनुमत है, इसिल्पे इसका नाम अनुमती है। सूर्यास्तके बाद अथवा सूर्यास्तके साथ साथ जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द उदय होता है, वह पूर्णिमा राका कहलाती है। चन्द्रको रजनकारिका होनेके कारण शेव पूर्णिमाका नाम राका पड़ा है।

परिपूर्णमण्डलके साथ चन्द्र जिस तिथिमें उदय होता है, वही दिन पूर्णिमा कहलाता है।

"कालक्षये व्यतिकान्ते दिवापूणौं परस्परं। जन्द्रादित्यौ पराह्वे तु पूर्णस्वात् पूर्णिमा समृता ॥" (कालमाधवीय)

तिथितत्त्वमें इसकी व्यवस्था आदिका विषय इस प्रकार लिखा है चतुदशीं युक्त पूर्णिमा ही प्रशस्त है। चतुदशीं के साथ पूर्णिमाका युग्मादरवंशतः चतुदैशो पूर्णिमा हो दैव वा पैतकभें आदरणीय है।

अमावस्या वा पूर्णिमामें गृङ्गादितीर्थमें स्नानादि करनेसे यमपुरका दर्शन नहीं होता है।

पूर्णिमा तिथिमें यदि चन्द्र और वृहस्पतित्रहका योग हो, तो उसे महापूर्णिमा कहते हैं। इसमें स्नानदानादि करनेसे अशेय फलप्राप्ति होतो है।

यदि वेशाखमासकी पूर्णिमातिथिमें देवता, यम और पितरोंका मधुसंयुक्त तिल द्वारा तर्पण किया जाय, तो जन्मकृत् सभी पाप दूर होते हैं और दश हजार वर्ष तक स्वर्गलोकमें गति होती हैं।

महाज्येष्ठी पूर्णिमा—ज्येष्ठमासको पूर्णिमा तिथिके ज्येष्ठानश्वतमें यदि वृहस्पति और चन्द्रग्रह रहें और इस दिन यदि गुरुवार हो, तो महाज्येष्ठी होती है। ज्येष्ठा वा अनुराधानक्षतमें वृहस्पति और चन्द्र रहनेसे तथा रोहिणो नक्षतमें रवि और गुरुवार नहीं होनेसे भी यह योग होता है।

ज्येष्ठ नामक सम्बत्सरमें ज्येष्ठमासको पूर्णिमा तिथिमें ज्येष्ठानस्रत होनेसे महाज्येष्ठी होतो है। जिस वर्षमें मूला वा ज्येष्ठानस्रतमें वृहस्पतिका उदय वा अस्त होता है, उसी वर्षका नाम ज्येष्ठसम्बत्सर है।

महाज्येष्ठो पूर्णिमामें पुरुषोत्तमके दर्शन करनेसे विष्णु-लोक पास होता है और गङ्गासानसे मोक्ष मिलता है।

माध और श्राबणमासको पूर्णिमा तिधिमें श्राद अवश्य कर्त्तव्य है। यदि यह तिथि दोनों दिन रहे, तो किस दिन श्राद्धादि होंगे उसकी व्यवस्था इस प्कार है—यदि पूर्व दिन सङ्गव वा रोहिणो लाग हो, तो पूर्व दिन और यदि दोनों दिन सङ्गवकाल रहे, तो दूसरे दिन श्राद्ध करना बाहिए। सुबोंदवके बाद तीन सुद्धते प्रातःकाल, इसके वाद तीन मुद्धर्चका नाम सङ्गव है। आवाद, माघ और कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिमें यथाशक्ति दान करना चाहिये। फाल्युनकी पूर्णिमाको दोलप्रिमा कहते हैं। इस दिन श्रीकृष्णका दोलारोह-णोत्सव सर्वोको करना चाहिये। आध्विन मासकी पूर्णिमामें कोजागरी लक्ष्मी-पूजा करना उचित है।

इसकी व्यवस्थादिका विषय कोजागरी शब्दमें देख । कार्त्तिकमासकी पूर्णिमामें रासोत्सव सर्वोंको करना उचित है। पूर्णिमा तिथिकी गिनती पर्वोंमें है, इस लिये इस दिन स्त्री-सम्भोग और तैलमांसादि वर्जनीय है। फाल्गुनमासकी पूर्णिमा मन्वन्तरा है; इसमें स्नानदानादि करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। अमावश्या देखो।

पूर्णिमा तिथिमें जन्मग्रहण करनेसे कन्द्र्येतुस्य रूप-वान, युवतीपिय, वलवान, शास्त्रमें सुनियुण, सर्वदा पुकुल्लिक्त और न्याय द्वारा विद्युल धन उपार्जन करता है।

"क्रन्दर्पंतुल्यो युवतीपियश्च न्यायाप्तवित्तः सततं सहर्यः । शूरोवली शास्त्रविचारदश्चश्चेत् पूर्णिमा जन्मनि यस्य जन्तोः ॥" (कोष्ठीप्॰ )

पूर्णिया—विहार प्रान्तके भागलपुर विभागांन्तर्गत एक जिला । यह उक्त विभागके उक्तर-पूर्व अक्षा० २५' १५ं-से २६' ३५ंड० और देशा० ८७' र्से ८८' ३५' पू०-के मध्य अवस्थित है । इसके उक्तरमें नेपालराज्य और दार्जिलिङ्ग, पूर्वमें जलपाईगूड़ी, दिनाजपुर और मालदह, दक्षिणमें गङ्गानदी और पश्चिममें भागलपुर जिला है। भूपरिमाण ४६६४ वर्गमोल है। पूर्णिया नगर ही इसका सदर है।

यहांके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें विशेष कुछ भी नहीं जाना जाता है। किरान्तीजाति (किरात)की कस्पना(१) और पुराकल्पित-गल्पसमूहमें आर्य (हिन्दू) और अनार्थ किरातोंका युद्ध तथा पराभव वर्णित है। कोशी और करतोया नदीके उत्तर तथा पूर्व तीर पर किरात, कीचक आदि अनार्यजातिका वासस्थान देखनेमें आता है। उक्त वंशीय सरदारगण अपनेको 'राइ' शाखासुक राजपूत बतलाते हैं। किन्तु कोई कोई इन्हें कोचवंशोन्सवके जैसा अनुमान करते हैं।

मुसलमानोंके आगमनसे यहांके प्रकृत इतिहासका स्वापाव हुआ। महम्मद-इ-विद्यारने जिस समय बङ्गाल पर चढ़ाई की थी, उस समय इसका कुछ अंश नदीयाराज लक्ष्मणसेनके अधिकारभुक्त था। सुना जाता है, कि मुसलमान-कवलसे खदेश-रक्षाके लिए उक्त राजाने भागलपुरके निकटक्थ वीरवांध वनवाया था। १३वीं शताब्दीमें यह जिला बङ्गालके मुसलमान-शासनकर्त्तां के अधीन हुआ।

१७वीं शताब्दोंके मध्यंकाल तक इस जिलेका और कीई उल्लेख नहीं देखा जाता है। यहां तक कि, एक फौजदारका नाम भी नहीं मिलता। वँगालके अफगान-शासनकर्त्ता शेरशाहके साथ जव दिल्लीध्वर हुमायून्का युद्ध हुआं था, तव सम्राट्की सहायताके लिए यहांसे चंदा वसूल किया गया था । १७वीं शताब्दीके अन्तमें अस्तवल खाँ फौजदार नियुक्त हुए। वाद् उन्होंने नवाद-की उपाधि लाभ कर राजसासंब्रह ( अतीन )-का कार्य-भार प्रहण किया। इनके वाद अवदुह्या खाँ १६८० ई०में असफिन्द्यर साँ पूर्णियाके नवावपद पर नियुक्त हुए। वारह वर्ष शासन करनेके वाद भवनीयर खाँ उनके पढ पर अधिष्ठित हुए। १७२२ ई०में भवनोयरके मरने पर सैफ खाँने शासनकर्मृ त्य ग्रहण किया । अपने वंश-गौरवमें मत्त रह कर उन्होंने यथार्थमें पूर्णियाके नवावी-पदको गौरवस्थल वना दिया था। वंशमर्यादामें अपने को उच्च जान कर चे बङ्गालके नवाव मुर्शिर्दकुली खाँकी पीसी निफसा बेगमसे विवाह करनेमें कुण्ठित हुए थे।

पूर्णियाके सिंहासन पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने नेपाल सीमान्त पर चढाई कर दी और 'तराई' नामक स्थानको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। १७३१ ई०में उन्होंने चीरनगरके जमींदार चीरणाह पर भी आक-मण कर उनके अधिकृत धर्मपुर आदि चार परगने जीत लिए।(२)

<sup>ं (</sup>१) कुरुपे।गडनका युद्ध और किरात-पराभवादि यहांके अधिवासियोंके सम्बन्धमें प्रयम बल्केखयोग्य पटना है।

<sup>(</sup>२) ये एक प्रसिद्ध सनिक पुरुष ये इसके पहुले उन्होंने उन्नारा के शासनकालमें कितनी ही डवीसा-रमणियोंके प्रति अस्यासार

सैफ खाँकी मृत्युके वाद यथाक्रम महस्मद आवेद और वहादुर खांने पूणि याके मसनद पर अधि-कार जमाया। वहादुरको पदच्युत कर उनके पद पर अलीवदींके जामाता सौलत्जङ्ग नियुक्त किये गये। इनका दूसरा नाम सैयद अहमद था। १७५७ ई०में ये इस लोक-से चल बसे । बाद उनके एकमात पुत सकतजङ्ग पितृ-सिहासन पर अधिरूढ़ हुए। सकत नीच प्रकृतिके मनुष्य थे। राज्यवासी और पूर्वतन राजकर्मचारिगण उनके कडोर व्यवहारसे उत्त्यक्त हो उदे। इधर सकत पूर्णियाके सिहासन पर वैठ कर अत्याचारसे देशको ध्वंस कर रहे थे, उघर दुव् त सिराज बङ्गालका मसनद पा कर राज्यवासी प्रधान प्रधान मनुष्योंके कुलमान विसर्जनमें इतसङ्करप हुए थे। मृत अलीवदींके इन दो दौहिलोंने पूर्णकपसे उनका मुखोज्ज्वल किया था। सिराजने वन्सी मीरजाफर खाँकों पदच्युत कर दिया। अपमान-विषसे जर्जेरित मीरजाफर प्रतिहिंसाके लिए पूर्णिया गए और बङ्गालके मस्नद पर अधिकार करनेके लिए सकतको कुमन्तणा दी। प्रलुव्ध हृदयमें आशाहणी अग्नि जल उठी। वे अपने भाईके दोष द्वंढने लगे।

सिराजको जब इस षड्यन्त्रका पता लगा तब वे युद्धकी तैयारो करने लग गये (३)। राजा मोहनलाल सिराजके इलवलको ले कर आगे वह । काकजोल परगनेके बिद्यावाड़ी नामक स्थानमें दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। मूर्खं सकतने किसीकी न सुनी, बरन कोधान्य हो कर बड़े श्वर पर आक्रमण करनेके लिए हुकुम दिया। जलाभूममें उनकी अश्वारोही सेना भूमि सात् हो गई, किन्तु कायस्थ कुल-गौरव श्यामसुन्दरने अपनी अधीनस्थ कामानवाही

सेना ले कर अंसीम वीरत्यका परिचय दिया था। युद्ध-क्षेत्रमें सकत मारे गए और उनकी सेनाने भाग कर नगर-में आश्रय लिया। विजयी सेनाने दो दिनके वाद ही नगर पर भी दखल जमाया। सकतके वाद राय मेकराज खाँ, हाजिर अली खाँ, कादिर हुसेन खां, अल्लाकुली खाँ, शेर-अली खाँ, सिपाहीदार जंग, राजा सुचेतराय, राजीउहीन मुहम्मद खाँ और मुहम्मद अली खाँ आदिने यथाकम शासनभार प्राप्त किया। १७९० ई०में मुहमदको पद-च्युत कर मि० डुकारेल (Mr Ducarrel) प्रथम अङ्ग-रेजराजपरिचालक (Superintendent)-के क्यमें नियुक्त हुए।

स्थानीय जलवायु उतना खराव नहीं है। मोति-हारीके निकटवर्त्तीं छोटे पहाड़ और नेपाल-सीमान्तवर्त्ती क्रमोचनित्र भूमिके सिवा प्रायः सभी स्थान समतल हैं। पतड्भिन्न कोशो, कालाकोशो, पनार और महानन्दा आदि गङ्गाको चार शाखा नदियां (४) जिलेमें प्रवाहित हैं। इस कारण यहांकी उर्वरतामें विशेष हानि नहीं होतो। कोशी नदी पूर्वगतिका परित्याग कर और भी पश्चिमको वह र है है। बालुकामय गड्डे जहां तहां खें हैं। वर्षा-कालमें उसमें सामान्य धारा चलती है। कोशी और महानन्दामें वाणिज्यं-द्रध्य ले कर आ जा सकते हैं। यहां चावल, तम्बाकू, पाट और नीलकी अच्छी खेती होती है। उक्त निदयोंके अलावा यहां लगभग ५८ सुविस्तृत जला-भूमि हैं जिनका जल दारुण ग्रीष्ममें भी नहीं सुलता। कीटापुरका भील १० हजार वीघा और शक्ति भील प्रायः ४ मील विस्तृत है। इनको देखने हीसे एक वड़ा हद सा प्रतीत होता है। जिलेके पश्चिममें खेतीवारीका कोई

किया था । इस कारण अवत देशवासियोंने इनके विरुद्ध अन्नधारण किया । किन्तु उनका पूर्णियाशासन मुझिवेचना और न्याम्परतापूर्ण था।

<sup>(</sup>३) दछवछ हे साथ सिराज आतृदमनके लिए राजमहल तह अप्रयर हुए। उसी समय कलक्तेमें इष्ट्िश्या कम्यनी-के क्ष्मचारियों के औदलकी खबर पा कर ने ससैन्य कलक्तेशे लीडे। इसके बाद अन्यक्य (the Black Hole:-का हत्याकायह स्वित होता है।

<sup>(</sup>४) इन चार निवर्गेकी और भी प्रशाखाएँ हैं,-कोशी (इसका वूसरा नाम कोकिकी है। यह बाधिराज कुशिककी कन्या और मुनिप्तनी थीं, बाद ऋषि प्रार्थनामे सित्र्वा हुई;)—नामश्वार, मणंहरण और राजमोहन ; कालाकोशी — सौरा; पनार—बाकडा, पर्नाण; महानन्दा--वाहिनी और पिताल, धंक, कोंकाई और बाई क्षोर बतुआ, मेछि यमुना, चूलांगा, चेंपा, बलासन। इनके मलाबा और भी होटी लोटी निवर्ग हैं।

चिह्न नहीं दिखाई पड़ता, केवल गोचर-भूमि हो नजर आती हैं। इसमें ग्वाले अपनी स्त्रियोंके साथ गाय, भेंस चराते हैं। इन सव 'रायना' जमीनका कर देना पड़ता है। गङ्गाके किनारे और धमेंपुर परगनेमें दरमङ्गा-महाराजकी जो जमींदारी है, उसकी गोचारण-भूमिका खजाना नहीं लगता, सिफ गो-महिबादि चरानेका खजाना देना पड़ता है।

यहांके आदिम अधिवासियने वहुत कुछ अंश हिन्दूधर्म ग्रहण किया है। वे स्थानीय ब्राह्मण, कायस्थ या राजपूतके कियाकलायका विशेष अनुकरण करते हैं। यहांकी जनसंख्या १८७४७६४ है जिनमें हिन्दुओंकी संख्या ही सबसे अधिक है और मुसलमानोंकी इससे कुछ कम । इसके अलावा अग्रोरी, अतिथ, वैष्णव कवीरपन्थी, नानकशाही, संन्यासी, सिख, सुफाशाही और ईसाई आदि सम्प्रदायभुक्त मनुन्य भी देखनेमें आते हैं। इस जिलेके चार उपविभागमें पूर्णिया, बंशगांव, शीतळपुर-खास, कृष्णगञ्ज (किशनगंज), रानीगंज, भरतगांव और कसवा नामक ७ प्रधान नगर और कई एक गएडव्राम भी हैं। इस जिलेमें पूर्णिया सदर, किशनगंज और प्रधान रेलवे जंकशन कटिहार, ये तीन शहर ही लगते हैं। इस जिलेका पूर्वी भाग ही उपजाऊ और वृक्षोंसे हरा भरा दिखाई पड़ता है और पश्चिमी भाग वालुकामय ही है। यहां घने जङ्गल तो नहीं हैं किन्तु आमके पेड़ तथा अन्यान्य पेड़ पौधे वहुता-यतसे पाये जाते हैं जिनमें जंगली सुअर, भैंसे, चीता और और कभी कभी वाघ भी मिलते हैं। जिलेमें वर्षा प्रचुर परिमाणमें होती है, इस कारण गङ्गा, कोशी आदि अन्यान्य छोटी छोटी निदयोंकी वाढ्से फसलमें हानी पहु चती है।

बङ्गालको तरह यहां पर्याप्त परिमाणमें धान उपजता हैं, पाट और तम्बाक् इसकी अपेक्षा कम । दलहन और तेलहन अनाजको खेती भी बहुत देखी जाती है। विशेषतः सरसों और तीसी बहुत होती है। उत्तरमें उत्तम पाट और दक्षिणमें नील उपजता है। बाढ़की बजहसे फसल कम नहीं लगती, किन्तु अनावृष्टि होनेसे भारी अकाल पड़ जाता है। १७९० ई०में यहां जी अकाल पड़ा धा Vol. XIV. 74 उसमें सैकड़ों मनुष्य मरे थे। १७१८ और १८७४-ई०में इसी प्रकार दो वार फसलमें हानी हुई थी, किन्तु भारी अकाल नहीं पड़ा था।

दक्षिणमें नीलप्रस्तुत करना जिस प्रकार निम्न श्रेणीके अधिवासियोंकी प्रधान जीविका है, उत्तरमें उसी प्रकार पारसे चर और थैली तैयार करनेका विस्तृत कारवार है। तांवे और जस्तेके साथ 'विद्री' नामक उपधातुकी मिला कर यहां हुका, थाली और जलपात बनाया जाता है। कारीगर लोग उस पर कपेका फूल आदि कारकार्य गढ़ कर उसे बेचते हैं। इसके सिवा सूती वा पश्मीने कम्बल, सिन्दूर, चूड़ी आदि प्रस्तुत करना ही यहांकी खियों और पुरुषोंका व्यवसाय है। किशनगंजमें कागजिया नामक प्रायः तीस चालीस घर मुसलमान है जो मुनियासी और कोष्टा पारको कूट कर कागज प्रस्तुत करते और उसीसे अपनी जीविका चलाते हैं।

यहांसे चावल और अत्यान्य खाद्य अन्न, पाट, तेलहन (प्रधानतः सरसों) और तम्बाकूकी रक्षकी तथा दिनाज-पुरसे चावल और धान, कलकत्तेसे खाद्य पदार्थ, चीनी, नमक और किराशन तेल, युक्तप्रदेशसे कपड़े, चीनी और कोयलेकी आमदनी होती है। फारवीसगंज, रानीगंज, कसवा, पूर्णिया, किटहार, वारसोइ, किशनगंज और खरखरी ये ही व्यवसायके केन्द्र हैं। उक्त कई एक जगहोंमें रेलपथके कारण विशेष सुविधा भी है। नेपालसे जो वाणिज्य व्यवसाय होता है, वह अकसर वैलगाड़ी, कुली अथवा बैलों पर लाद कर ही होता है।

यह जिला सदर पूर्णिया, किशनगंज और वसन्तपुर नामक तीन सविविजनोंमें वांटा गया है। यह जिला कलकृरके अधीन हैं, उनकी मददके लिए और भी पांच कर्मचारो हैं। यहां कुल पांच दीवानी अदालत मुन्-सिफके अधीन हैं। इनमेंसे दो किसनगंजमें और वाकी पूर्णिया, वसन्तपुर और किटहारमें रहते हैं। उक्त तीन शहरोंमें यथाकम दो, पांच और एक फौजदारी अदालत भी है। यहांका राजस्व कुल बारह लाखके लगभग है। सदर पूर्णिया और किशनगञ्जमें म्यूनिसिपलीटी है और अन्यान्य जगह डिप्लियट-वोड द्वारा प्रवन्ध होता है। कुर- ें सेळाके समीप कोशी नदीमें रेळवेपुळ है और महानन्दामें भी बारसोईके पास एक सुन्दर पुळ है।

इस जिलेमें शिक्षाका प्रचार वहुत कम देखा जाता है। जिले भरमें कुल १०८४ विद्यालय हैं जिनमेंसे १६ सेके-एडरी, ६१८ प्राइमरी और १५० अन्यान्य स्कूल हैं। जिलेमें लगभग १७ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० २५ १५ से २६ ७ उ० और देशा० ८७ से ८७ ५६ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २५७१ वर्ण मील है। यहांकी जमीन बहुत ही नीची और सई है, आवहवा भी अच्छी नहीं है; इस कारण यहांकी जनसंख्या बहुत थोड़ी है। इसमें इसी नामका एक शहर, प्रधान रेलवे जंकशन किट हार और कुल १५२८ ग्राम लगते हैं। यहां पूर्णिया, किटहार, कसवा, फुलवरिया, इछामती और वारसोई नामके मशहूर वाजार हैं। यहांके काढ़ागोला नामक स्थानमें एक हाट भी लगती है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-विगागका सदर। यह सौरा नदीके पूर्व किनारे अक्षा० २५ ं ४६ ं उ० भीर देशा० ८७ ं २८ ं पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १५ हजार है। यहांका रथान अखास्थ्यकर है। पिश्चम उपकण्डवसीं पूर्वतन रामवागकी राजधानी अभी पूर्णिया नगरके अन्तर्भु क हुई है। पाचीन कालाकोशीको खाई और अन्यान्य कारणींसे यहांकी जनसंख्या दिनों दिन कमतो जातो है। यहां एक कैदखाना भी है जिसमें २५० कैदी रह सकते हैं। कैदखानें कम्बल, दरी और नेवार आदि प्रस्तुत किये जाते और वाजारोंमें वेचे जाते हैं। इस नगरमें पाटका भी भारी कारवार है।

पूर्णेन्दु (सं० पु०) पूर्णं इन्दुः कर्मघा०। पूर्णिमाका चन्द्र, पूर्णचन्द्र।

पूर्णेया—महिसुर राज्य-सचिव। ये 'दीवान-पूर्णेया' नाम-से प्रसिद्ध और जातिके ब्राह्मण थे। १७६६ ई०में मुसल-मानराज टीपू सुलतान जब श्रोरङ्गपत्तन-अवरोधमें मारे गये, तब महिसुर-राज्य अङ्गरेजोंके हाथ लगा। अङ्गरेज-राजने पूर्वतन राजवंशीय चमराजपुत कृष्णराजको सिहा-सन पर विठाया। वालकराजको नावालिगीमें (१७६६-

१८१० ई० तक ) राजकार्यकी देख-रेखके लिये ये ही सिविव नियुक्त हुए । चक्षुलज्ञा छोड़ कर इन्होंने जिस वृक्ष्ताके साथ राजकार्य चलाया, कि उससे थोड़े ही दिनोंके मध्य राजकीय पूर्ण हो गया । खर्य अङ्गरेज-राज ही इनकी निरपेक्षता, परिमाणदर्शिता और न्याय-परता देख कर चमत्कृत हुए तथा उनकी की हुई कार्या-चली पर प्रसन्न हो कर पारितोषिक-स्वक्ष १८०७ ई०में एक जागीर दान दी । आज भी उस तालुकाका इनके वंशघर भोग करते हैं। ये महिसुरके अङ्गरेजप्रतिनिधि क्लोज साहव (Sir Bary Close )-के नाम पर क्लोजपेट और अपने छड़के श्रानिवासके नाम पर श्रीनिवासपुर नामक एक नगर स्थापित कर गये हैं। पूर्णोत्कट (सं० पु०) प्राच्यदेशस्थ पर्वतमेद, मार्कण्डेय

पुराणमें वर्णित एक पूर्वदेशीय पर्वत । पूर्णीत्सङ्ग (सं० पु० ) १ अन्ववंशीय एक राजा । (ति०) २ पूर्णकोडदेश, जिसको गोद भरी हो । पूर्णीद्रा (सं० स्त्री०) देवीयिशेष ।

वूर्णीपमा ( सं० स्ती०) उपमालङ्कारमेद, उपमा अलङ्कारवूर्णीपमा ( सं० स्ती०) उपमालङ्कारमेद, उपमा अलङ्कारका वह मेद जिसमें उसके चारों अङ्ग अर्थात् उपमेय
उपमान, वाचक और धर्म प्रकट रूपसे प्रस्तुत हों।

पूर्त्त (स० ह्वी०) पृ-पालने भावे क (न व्याप्मूर्चिक्वमहां।
पाल्य ५१७ इति निष्ठा तस्य न नत्वं। १ पालन। पिपर्त्ति
पालयत्यनेन जीवानिति क। २ स्नातादि कर्म, स्रोदने
अथवा निर्माण करनेका कार्य।

पुष्करिणी, सभा, त्रापो, देवगृहादि और आराम, ये सव काम पूर्च कर्म कहलाते हैं। पुष्करिणीखनन, रास्ता प्रस्तुत करना भी पूसकार्य है। यह पूर्तकार्य विशेष पुण्यप्रद है। ब्राह्मणींका यह प्रथम धर्मधन है। यदि कोई पूर्तकार्य नहीं करके अर्थात् पुष्करिणी आदि प्रस्तुत न कर क्यवापी आदि खोदवाते हैं, तो उससे मी पूर्च कर्मकी तरह फल मिलता है। पूस्त कर्म द्वारा मोक्ष लग्न होता है।

"इष्टापूर्तं द्विजातीनां प्रथमं धर्मसाधनं । इष्टेन रूभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षञ्च विन्दति ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । पतितान्युद्धरेष्ट्व यस्तु स पूर्तं फरूमश्जुते ॥" (बराह्यु॰)

ं द्विजातीनां इष्टापूर्तं, इस वचनानुसार द्विजातियोंके लिये ही इप्टापूर्त विहित हुआ है - शूर्ज़ेका अधिकार नहीं, ऐसा ही समभा जाता है। किन्तु ऐसा नहीं है। वचनान्तर द्वारा स्त्रो और शूद्र दोनोंको ही पूर्त-कर्मका अधिकार है।

(ति०) २ पृ-कर्मणि-क । ३ पूरित । ४ छन्न, आच्छा-दित, ढका हुआ। पूर्त विमाग ( सं॰ पु॰ ) इमारतादि निर्माण और खननादि कार्यमें नियुक्त राजकीय विभाग, वह सरकारी विभाग या मुह्कमा जिसका काम सड़क, नहर, पुल, मकान आदि वनवाना है। इसे Public works Department भी कहते हैं।

पूर्ति (सं स्त्री ) पृ-भावे कि । १ पूरण, भरनेका भाव। २ गुणन, गुणा करनेका भाव । ३ किसी आरम्भ किये हुए कार्यकी समाप्ति । ४ पूर्णता, पूरायन । ५ किसी काममें अपेक्षित वस्तुकी प्रस्तुति, किसी काममें जो वस्तु चाहिषे उसकी कमीको पूरा करनेकी किया। ६ बापी, कूप, तड़ाग आदिका उत्सर्ग ।

पूर्तिकाम (सं० ति०) पूर्तिः धनादि-पूरणं कामो यस्य। ंधनादि पूरणामिलाषी ।

पूर्त्तिन् ( सं० ति० ) पूर्त्त मनेन पूर्त-इनिः ( इष्टादिभ्यश्व । पा पायद् ) १ तृप्तिप्रद्, तृप्ति हेनेवाला । २ इच्छापूरक, इच्छा पूर्ण करनेवाला। ३ पूरित। (पु॰) ४ श्राद्ध। पूर्कार (सं॰ क्वी॰) पुरः द्वारं। पुर या नरकका द्वार, गोपुर।

पूर्पति (सं पु ।) पुरः पतिः। पुरका पति, नगरका खामी।

पूर्व (हिं० पु०) १ पूर्व देखो । (वि०) २ पूर्व देखो । पूर्वभक्षिका ( सं० स्त्रो० ) प्रातराश, प्रातःकाल किया जाने-वाला भोजन, जलपान ।

पूर्मिद् (सं० ति०) असुरपुरभेदक।

·पूर्मिच ( सं० क्ली० ) संग्राम, युद्ध ।

पूर्व (सं वि ) प वयप्, पूर-ण्यत् वा । १ पूरणीय, पूरा करनेयोग्य अथवा जिसे पूरा करना हो । २ पालनोय । ( पु॰ ) ३ तृणवृक्ष, एक तृणघान्य ।

प्रथम, आदि, पहलेका। २ समग्र, सम्चाः। ३ अप्र, अगला, आगेका। ४ ज्येष्ठ, वड़ा । ५ पुराकालीन, प्राचीन, पुराना । ६ पश्चाद्वर्त्तीं; पिछला । दिक्, देश और काल-वाचक अर्थमें यह शब्द सर्वनाम है, तिलिङ्गमें इसका सर्वे शब्दकी तरह शब्दरूप होगा। जहां पर सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी, वहां नर शब्दकी तरह रूप होगा।

(पुं०) ७ वह दिशा जिस ओर सूर्य निकलता हुआ-रिखळाई देता हो, पश्चिमके सामनेकी दिशा । ८ जैन-मतानुसार सात तीछ, पांच खरव, साठ अर्व वर्षका एक काल-विभाग। (अव्य०) ६ पहले, पेश्तर रे

पूर्वेक (सं० पु०) १ पूर्वेज, पुरवा, वापदादा । ( अञ्य०) २ सहित, साथ । इस अर्थमें यह शब्द प्रायः संयुक्त संज्ञाके अन्तमें आता है। यथा-ध्यानपूर्वक, निश्चय-पूर्वक ।

पूर्वकर्मन् (सं० ह्यों०) पूर्व कर्मं। प्रथम कर्म। सुश्रुतमें तीन प्रकारके कर्मका उल्लेख है ; यथा-पूर्वकर्म, प्रधान-कर्म और पश्चात्कर्म । रोगोत्पत्तिके पहले तत्तदुव्याधिके प्रति जो सब काम पहले किये जाते हैं, उसे पूर्वकर्म कहते हैं।

पूर्वकल्प (सं॰ पु॰ )१ पूर्वकाल, पहला समय । २ पूर्व-वत्तीं कल्प।

पूर्वेकामकृत्वन् (सं० वि०) पूर्वेकामनापूरण। पूर्वेकाय ( सं॰ पु॰ ) पूर्वकायस्य, वा कायस्य पूर्व । कायका पूर्वभाग, शरीरमें नाभिसे ऊपरका भाग ।

पूर्वकारिन् ( सं० ति० ) पूर्वकर्मिष्ट, पहले करनेवाला । पूर्वकाल ( सं॰ पु॰ ) पूर्वः कालः । प्राचीनकाल,[पुराकाल । पूर्वकालिक (सं० ति०) पूर्वकालः साधनतयाऽस्तस्य टन् । १ पूर्वकालसाध्य, जो पूर्वकालमें किया गया हो । २ पूर्वकालजात, जिसकी उत्पत्ति या जन्म पूर्वकालमें हुआ हो। ३ पूर्व कालीन, पूर्व कालसम्बन्धी, जिसकी स्थिति पूर्वकालमें हो।

पूर्वकालिककिया । सं० स्त्री० ) वह असमापिका या अपूर्ण : किया जिसका काल किसो दूसरी पूर्ण कियाके पहले पड़ता हो। पूर्व (सं० ति०) पूर्व-निमन्त्रणे, निवासे वा अच्।१ पूर्वकाष्ट्रा (सं० स्त्री०) पूर्व काष्टा। पूर्वदिक, पूर्व दिशा।

पूर्वकृत् (सं० त्नि० पूर्व-कृ-किप्। पूर्व दिशाके कत्तां सूर्य।

पूर्वकृत (सं० ति०) पूर्वे पूर्वस्मिन् वा कृतः। पुराकृत, पूर्वकालमें किया हुआ।

पूर्वाकोटि ( सं० स्त्री० ) विमतिपत्तिमें पूर्वोपात्त विषय, पूर्वापक्ष ।

पूर्वाग (सं० ति० ) पूर्वे गच्छतीति गम-ड । पूर्वागामी । पूर्वागङ्गा (सं० स्त्री० ) पूर्वा चासी गङ्गा चेति । नर्गादा नदी ।

पूर्वगत--जैनोंके दृष्टियादके अन्तर्गत एक प्रन्थ । पूर्वगत्वन् ( सं॰ त्रि॰ ) पूर्वगामी ।

पूर्विचित् (सं० ति०) पूर्विचि किप् तुक् च। पूर्विचयन-कारी, पहले चुननेवाला।

पूर्विचित्ति (सं० ति०) चित-भावे किन्, चित्तिः, पूर्वैचित्तिः स्मरणं यस्य । १ पूर्वानुभवविषय । (स्त्री०) २ अप्सराभेद, इन्द्रको एक अप्सराका नाम ।

पूर्वज (सं० पु०) पूर्वे जायते पूर्व-जन-ड। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई, अप्रजा। २ पूर्वपुरुष, पुरला, वाप, दादा, पर-दादा आदि। ३ चन्द्रलोकस्थित दिव्यपितृगण, चन्द्र-लोकमें रहनेवाले दिव्य पितृगण। इस अर्थमें यह शब्द बहुदचनान्त होता है। पर्याय—चन्द्रगोलस्थ, न्यस्त-शक्ष, स्वधाभुज, कव्यवालादि। ये सव शब्द भी वहु-बचनान्त हैं। (ति.०) पूर्वकालोत्पन्न, पूर्वकालमें उत्पन्न। पूर्वजन (सं० पु०) पुराकालीन पुरुष, पुराने समयके लोग।

पूर्वजनमन् (सं० क्ली०) पूर्व जनमः। वर्त्तमानसे पहलेका जन्म, पिछला जनमः। इस जन्ममें पूर्व जन्मार्जित कर्मका शुंभाशुभ भोग करना पड़ता है।

पूर्वजनमां (सं० पु०) अप्रज, वड़ा भाई।

पर्वंजा (सं० स्त्रो०) पूर्व ज-टाप्। ज्येष्ठा भगिनी, वड़ी बहुन।

पूर्वजाति (सं॰ स्त्री॰) पूर्वजन्म, पिछला जन्म ।
पूर्वजित (सं॰ पु॰) पूर्वो जिनः । अतीत जिनविशेष ।
पूर्वीय—मञ्जुश्री, ज्ञानदर्पण, मञ्जुभद्र, मञ्जुघोष, कुमार,
अष्टारचकवान, स्थिरचक्र, वज्रधर, प्रज्ञाकाय, आविराट्,
नोलोस्पली, महाराज, नील, शार्दृलवाहन, धियाम्पति,

खड्गी, दन्ती, विभूषण, वालवत, पञ्चचीर, सिंहकेलि, शिखाधर और वागीश्वर।

पूर्वज्ञान (सं० क्ली०) पूर्वस्य जन्मनः ज्ञानं । १ पूर्वजन्मका ज्ञान, पूर्वजन्ममें अर्जित ज्ञान जो इस जन्ममें भी विद्य-मान हो । २ पहलेका ज्ञान ।

पूर्वतन (सं० वि०) पूर्व मावार्थे-तन । पुराकालीन, पुराने समयका।

पूर्वतस् (सं० अव्य०) पूर्व-तिसल् । पूर्वसे, पहलेसे । पूर्वतापनीय -- नृसिहतापनीय उपनिषद्का पूर्वभाग । पूर्वत्व (सं० क्की०) पूर्वस्य भावः, त्व । पूर्वका भाव,

पूर्वका धर्म ।

पूर्वेथा (सं० अध्य०) पूच-इवार्थे छन्दसि थाल्। पूर्व-तुल्य, पहलेकी तरह।

पूर्वेदक्षिणा (सं० स्त्र ०) पूर्वेक्याः दक्षिणस्याश्चान्तराला दिक् 'दिङ्नामान्तराले' इति समासः। १ पूर्व और दक्षिणके वीचका कोना, अग्निकोण। २ तदिक्षिथत देश। पूर्वेदिक्पति (सं० पु०) पूर्वेदिशः पतिः पतिरिषपितः। १ इन्द्र। २ मेषसिंहादि राशि, मेप, सिंह और धर्नुराशि पूर्वेदिशाके अधिपति हैं।

पूर्वदिग्वदन (संब्हाक) पूर्वदिशि वदनमस्य। मेप, सिंह और धनु ये तीन राशियां हैं।

पूर्वेदिगीश (सं॰ पु॰) पूर्वेदिशामीशः। १ पूर्वेदिशाका अधिपति, इन्द्र। २ मेष, सिंह और धुनुराशि।

पूर्वदिन (सं० क्की०) पूर्वस्य दिनं। पूर्वका दिन । पूर्वदिश् (सं० स्त्री०) पूर्वा दिक् ।१ जिस दिशामें सूर्व उदय होते हों, पूरव ।२ उक्त दिशाके पति इन्द्र ।

पूर्विद्ध (सं० क्की०) पूर्वं दिष्टं भाग्यं साधनत्वेन अस्त्य-स्य-अच्। पूर्वभाग्यानुरूप जात दुःखादि, वह सुख दुःख आदिजो पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्कूप भोगना पड़े। पूर्विद्य (सं० पु०) पूर्वश्चासी देवश्चेति वा पूर्वदेव इति सुप्सुपेति समासः। १ असुर। यह पहले सुर अर्थात् देवता था, पीछे अन्याय कर्मद्वारा सुरत्वसे सृष्ट हो कर दैत्यमावको प्राप्त हुआ। २ नरनारायण। इस अर्थमें यह शब्द द्विवचनान्त होता है।

पूर्वदेवता (सं० स्त्री०) अनादि देवतारूप पितृगण। पूर्व अर्थात् फल्पान्तरमें पितृगण देवतास्वरूप थे, अतः उनका नाम पूर्वदेवता है। पूर्वदेश (सं० पु०) पूर्व देशः कर्मघा०। प्राचीदिगवस्थित
जनपद, पूर्वदिशाका देश। इसका पर्याय वर्त्तानि है।
पूर्व दिशामें मागघ, शोण, वारेन्द्र, गौड़, राढ, वर्द्ध मान,
तमोलुक, प्राग्ज्योतिय और उदयादि ये सव देश
पूर्वपदवाच्य हैं।

पूर्वदेह (सं० पु०) पूर्व शरीर, पहलेका शरीर। पूर्वदेहिक (सं० त्नि०) पूर्वजन्मकृत, पूर्वजन्मका किय हुआ। पूर्वनड़क (सं० क्ली०) जङ्घादेशस्थ अस्थिविशेष, जांघकी एक हड्डीका नाम।

पूर्वनिक्रपण सं० पु०) भाग्य, किस्मत ।
पूर्वन्याय (सं० पु०) किसी अभियोगमें प्रतिवादीका यह
कहना है, कि ऐसे अभियोगमें मैं वादीको पराजित कर
चुका हूं। यह उत्तरका एक प्रकार है।

पूर्वपक्ष (सं० पु०) पूवः पक्षः । १ कृष्ण पक्ष । २ शास्त्रीय संशयनिराशार्थ प्रक्ष, शास्त्रविचारके समय संशय-निराश-के लिए जो प्रश्न किया जाता है, उसे पूर्व पक्ष कहते हैं । पूर्वपक्ष होने पर उत्तरमें जो वात कही जाती है, उसे उत्तरपक्ष कहते हैं । ३ सिद्धान्तविरुद्ध कोटि । पर्याय—चोद्य, देश्य, फिक्किका । ४ अधिकरणावयवमेद, व्यवहार विशेष, व्यवहार या अभियोगमें वादी द्वारा उपस्थित वात, मुद्देका दावा ।

वीरिमत्रोदयमें चार प्रकारका उल्लेख देखनेमें आता है, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, क्रियापाद और निर्णयपाद। पूर्व-पक्षको नालिश कहते हैं। व्यवहारतत्त्व, मिताक्षरा और वीरिमत्रोदय आदिमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

व्यवहार शब्द देखी । पूर्वपक्षपाद ( सं० पु० ) पूर्वपक्ष एव पादः । चतुष्पाद व्यव-हारके अन्तर्गत प्रथम पाद ।

पूर्वपक्षिन् (सं० ति०) १ वह जो पूर्वपक्ष उपस्थित करे। २ वह जो किसी प्रकारका दावा दायर करे।

पूर्वपक्षी (हिं० वि०) पूर्वपित ऐसी।

पूर्वपक्षीय (सं • ति • ) पूर्वपक्षे भवः, गहादित्वात् छ । पुपक्ष-सम्बन्वधीय ।

पूर्वपञ्चाल-पञ्चालका पूर्वा श ।

पूर्वण्द (सं० ह्वी०) पूर्व पदं। १ पूर्ववसी विभक्ति-अन्त पद। २ पूर्ववृक्षी स्थान।

Vol. XIV. 75

पूर्वपदिक (सं० ति०) पूर्वपदमघीते पूर्वपद-इकत् । पूर्व-पद्वेत्ता, पूर्वपदाध्यायी ।

पूर्व पद्य ( सं० ति० ) पूर्व पदभव ।

पूर्व पर्व त ( सं॰ पु॰ ) पूर्व : पूर्व दिक्स्थः पर्व तः । उदया-चल, उदयपर्व त, वह कल्पित पर्वत जिसके पीछेसे सूर्य-का उदय होना माना जाता है ।

पूर्वेपा (सं० ति०) पूर्व-पा-िकप्। पूर्वपेय, अप्रपेय, पहले पीने लायक।

पूर्वपाञ्चालक (सं॰ ति॰) पूर्विस्मिन् पञ्चाले भवः बुञ्। पूर्वपञ्चालमें होनेवाला।

पूर्वपाटलीपुतक ( सं० ति० ) पूर्वपाटलीपुते भयः, बुज्, न पूर्वपदवृद्धि । पूर्व पाटलीपुतनगरभव, पूर्व पाटलीपुतमें उत्पन्न ।

पूर्वपाणिनीय (सं॰ पु॰) पाणिनिका पूर्वदेशीय शिष्य द्वारा पढ़ा हुआ व्याकरण ।

पूर्वपाद (सं० पु०) पूर्व पादस्य एकदेशिस० । अत्र-चरण, अत्रपाद ।

पूर्वपान ( सं॰ क्की॰ ) अप्रपान, पहले पीना । पूर्वपाय्य ( सं॰ क्की॰ ) पूर्वपेय ।

पूर्वपालिन् (सं॰ पु॰) पूर्व देशं दिशं वा पालयति पालि-णिनि । १ पौरस्त्यदेशपति नृपभेद, पौरस्त्य देशके राजा । २ पूर्वदिगोश स्न्द्र ।

पूर्वेपितामह (सं॰ पु॰ ) पूर्वेः पितामद्वात् । प्रपितामह्, परदादा ।

पूर्वपीठिका (सं० स्त्रो०) कथाप्रनथावतरणिकामेद ।
पूर्वपीति (सं० स्त्रो०) पूर्वकालमें प्रवृत्त पान ।
पूर्वपुरुष (सं० पु०) पूर्वः पुरुषः । १ पितादितिक पुरुष,
वाप, दादा, परदादा आदि पुरुषा। २ ब्रह्मा ।
पूर्वपेय (सं० क्ली०) पूर्वे पेयं । पूर्वपान, पहले पीना ।
पूर्वपेय (सं० स्त्री०) पूर्वे प्रात्न, पूर्वस्मृति ।
पूर्वपत्तानी (सं० स्त्री०) पूर्वा फल्युनोति कमेघा०। अश्विनी
आदि सत्ताईस नक्षतींमेंसे स्वाद्यां स्वयदाः

आदि सत्ताईस नक्षतोंमेंसे ग्यारहवां नक्षतः। इसका आकार दो तारकायुक्त चारपाईकी तरह है। इसके अधिग्राज्ञी देवता यम हैं। इस नक्षतमें जन्म लेक्कि सिहराणि होती है। पूर्वफन्मुनो नक्षतमें महुल्लाने एशा सीर इस्ती नक्षतमें उक्त दशाका भोगकाल २८ भारत है। इस नक्षतके प्रतिपादमें ८ मास, प्रतिद्र्सें और प्रति-पलमें १६ द्र्ड द्शाका भोग रहता है। यह नक्षत्र अघोमुख है। इस नक्षतमें जन्मग्रहण करनेसे ग्रूर, त्यागी, साहसी, भूमिपति, अत्यन्त कोपन, शिराल, अतिद्क्ष, धूर्च, कूर और वायुप्रकृतिका होता है।

कोष्ठीकलापके मतसे इस नक्षतमें जन्म-प्रहण करने-से धनवान, प्रवासशील, हतशतु, कामकलापिएडत, जना-श्रयी और हृष्टान्तःकरण होता है।

पूर्वफल्गुनीभव (सं० पु०) पूर्वफल्गुन्यां भवतीति भू-अच् । वृहस्पति ।

पूर्वभाइपद ( सं० पु० ) अश्विनी आदि नक्षतोंके अन्तर्गत पचीसवां नक्षत्र । पर्याय—प्रोष्टपदा, पूर्वभाद्रपादा और पूर्वभाद्रपदा। इसका आकार घण्टेकी तरह और दो नक्षतयुक्त है। इस नक्षतके प्रथम तीन पादमें कुम्मराशि और शेष पादमें मीनराशि होती है। इस नक्षतमें जन्म **छेनेसे राहुकी दशा होती है। इस नक्षतका भोगका**ल चार वर्ष है। इसके प्रतिपादमें एक वर्ष, प्रतिदण्डमें २४ दिन और प्रतिपलमें २४ दण्ड होते हैं। शतपद्चकानु-सार नामकरण करनेसे इस नक्षत्रके प्रतिपादमें 'शे, शो, द, दि,' ये सव अक्षरादिके नाम होंगे। इसमें सिंहजातीय नक्षत जन्मग्रहण करनेसे अल्पवित्तसम्पन्न, दाता, विनयी, सद्घृत्तिपरायण, प्रियवाक्य-कथनशील, चञ्चलचित्त, प्रवासशील और राजसेवक होता है। कोष्टीप्रदीपके मतसे—जितेन्द्रिय, सब प्रकारको कलामें कुशल और प्रधान होता है।

पूर्वभाग् (सं० ति०) पूर्व भजते भज-िव। पूर्वभजना-कारी।

पूर्वभाग (सं० पु०) १ प्रथम भाग । २ ऊर्ड भाग । पूर्वभाद्रपदा (सं० स्त्री० एक नक्षतका नाम । पूर्वभाद द देखी ।

पूर्वभाव (सं० पुं० ) पुर्वो भावः । १ पूर्ववित्ते कारणत्व । २ पूर्ववित्तभाव, पदार्थधर्मभेद । ३ पूर्वरागसे अपर । पूर्वभाविन (सं० वि०) पूर्व भवित भू-णिनि । १ कारण । २ पूर्ववित्ति पदार्थमात ।

पूर्वभाषिन (सं० ति०) पूर्व भाषते भाष-णिनि । पूर्ववका । पूर्वभूत सं० ति० ) १ जो पहले गुजर गया हो । २ पूर्ववर्ती, पहला । पूर्व मारिन् (सं० ति०) पूच -मृ-णिनि । पूर्व मृत, पहले हो मरा हुआं।

पूर्व मीमांसा (सं० स्त्री०) हिन्दुओंका एक दशन। इसके कर्त्ता जैमिनि मुनि माने जाते हैं। इस शास्त्रमें कर्मकाएडसम्बन्धी वातोंका निर्णय किया गया है।

मीनांसा देखी । पूर्व यज्ञ (सं० पु०) पूर्व श्वासी यज्ञश्चेति, वा पूर्व पूर्व पूर्व समिन् काले यज्ञः । जिनविशेष। पर्याय—मणिसद्र, जम्मल और जलेन्द्र।

पूर्वयायात ( सं० क्की० ) ययातिसम्बन्धोय पूर्वाख्यात । पूर्वयावन् ( सं० पु० ) अग्रगामो, आगे चलनेवाला । पूर्वरङ्ग सं० पु०) पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति रञ्ज-अधिकरणे वज् । नाट्योपक्रम, नाटकका प्रारम्भिक संगीत या स्तुति । पर्याय—प्राक्संगीत, गुणनिका । इसका लक्षण—

> "यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्ग-विद्योपशान्तये । कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वं रङ्गः स उच्यते॥" ( साहित्यदर्पण )

रङ्गालयमें कुशीलव (नट) नाट्यके पहले विप्त-शान्तिके लिये अथवा दर्शकोंको सावधान करनेके लिये जो अनुष्ठान करता है, उसे पूर्व रङ्ग कहते हैं। पूर्वराग (सं० पु०) पूर्व पूर्व जातो रागोऽनुरागः। नायक और नायिकाकी दशाविशेष, नायक अथवा नायिकाकी एक अवस्था जो दोनोंके संयोग होनेसे पहले प्रमके कारण होती है, प्रथमानुराग, पूर्वानुराग। इसका लक्षण—

> "श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढ़रागयोः । दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पृवं रागः स उच्यते॥" ( सा॰ द॰ )

च्याधि, मुच्छां और मृत्यु है।

कुछ लोगोंका मत है, कि पूर्व राग पहले नायिकाओं में होता है, पीछे नायकमें । नायकको देखने पर या किसी- के मुंहसे उसके रूप-गुण आदिकी प्रशंसा सुनने पर नायिकाको मनमें जो पूम उत्पन्न होता है, उसीको पूर्व राग कहते हैं। जैसे, इंसके मुंहसे नलको पृशंसा सुन कर दमयन्तीमें अनुरोगका उत्पन्न होना। इसमें नायकसे मिलनेका अभिलाय, उसके सम्बन्धमें चिन्ता, उसका

स्मरण, सिंख्योंसे उसकी चर्चा, उससे मिलनेके लिये उद्यानता, पूलाप, उन्मत्तता, रोग, मूर्च्छा भीर मृत्यु ये दश वाते होती हैं। यही पूर्व रागकी दश अवस्था हैं, इसे कामदशा भी कहते हैं। पूर्व राग उसी समय तक रहता है, जब तक नायक नायिकाका मिलन न हो। मिलनके उपरान्त उसे प्रेम वा प्रीति कहते हैं।

महाकाव्यमें नायिकाके विरहवणनस्थलमें पूर्व राग और उसकी दश अवस्थाओंका वर्णन करना होता है। पर पूर्व भागको शेष दशा जो मृत्यु है, उसका वर्णन नहीं करना चाहिये। नीलो, कुसुम्म और मिल्लेष्ठाके भेदसे यह पूर्व राग तीन पुकारका है।

पूर्व राग अवस्थामें जब तक नायक और नायिकाका मिलन नहीं होता, तब तक एक दूसरेमें जो भाव उत्पन्न होता रहता है, उसे दशा कहते हैं। यह दशा दश पूकारकी है, यथा—लालसा, उद्देग, जागर्य, तानव, जिल्हमा, वैयत्र, ज्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

पूर्वरात (सं० पु०) रातेः पूर्वो भागः, अच्-समासः (रात्र ह हाः पुंक्षि। पा २.४।२६) इति पुंस्त्वं। रात्रिका पूर्वभाग।

पूर्व कप (सं क हो ) पूर्व कपिमित कर्मधा । १ पूर्व - लक्षण, भावि व्याधिवोधक चिह्न, आगमस्चक लक्षण, किसी वस्तुका वह चिह्न या लक्षण जो उस वस्तुके उप-स्थित होनेके पहले हो पूकट हो, आसार । २ पहलेका कप, वह आकार या रंग ढंग जिसमें कोई वन्तु पहले रही हो।

पूर्वेळक्षण (सं० क्ली०) पूर्वं लक्षणं । पूर्वचिह्न, भावि-पदार्थेका प्रथम चिह्न, आगमसुचक लक्षण ।

पूर्वेवत् (सं० अध्य०) पूर्वस्येव पूर्वेण तुल्यं वा किया, इवार्थे वित । १ पहलेकी तरह कियान्वितमेद । २ पूर्वेतुल्य, पहलेकी तरह, जैसा पहले था वैसा ही। (क्री०) पूर्वे कारणं विषयतया अस्त्यस्य मतुप्, मस्य व । ३ कारण द्वारा कार्यानुमान, किसी कार्यका वह अनुमान जी उसके कारणको देख कर उसके होनेसे ही किया जाय । अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्व वत्, शेषवत् और सामान्यतीद्वष्ट । यहां उनका विषय वहुत संक्षेपमें लिखा जाता है। कारण और कार्यके मध्य पहले कारणकी सत्ता

रहती है, पीछे अर्थात् उत्तरकालमें उसके द्वारा कार्यकी उत्पत्ति होती है, इसीसे पूर्व शब्दका अर्थ कारण और शेष शब्दका अर्थ कारण द्वारा कार्यका अर्थ कार्य है। अतप्त जहां कारण द्वारा कार्यका अजुमान होता है, उसका नाम पूर्व वत् है। मेध-की उन्तित देख कर बृष्टि होगी, इस प्रकार अजुमान करनेका नाम पूर्व वत् अजुमान है। यहां कारण द्वारा कार्यका अजुमान होता है। वृष्टिका कारण मेघ है, वही कारण देख कर कार्यानुमान होनेसे पूर्व वत् अजुमान हुआ है।

पूर्ववत् शब्द-मत्वर्थप्रत्यय और वतिप्रत्यय, इन दोनों प्रकारसे व्युत्पादित हो सकता है। मत्वर्थ-प्रत्यय-पक्षमें पूच चत् शब्दका अर्थ पूच<sup>°</sup>युक्त और पूच<sup>°</sup>-शब्दका अर्थ कारण है । वति-प्रत्ययार्थ होनेसे पूर्व-वत् शब्दका अर्थ पूर्वे तुल्य होता है । जहां सम्बन्ध प्रहणकालमें अर्थात् व्याप्तिकानकालमें लिङ्गलिङ्गी वा साध्य-साधनका प्रत्यक्ष, पीछे प्रत्यक्ष-पिद्रष्ट साधन द्वारा वैसा ही अर्थात् प्रत्यक्षदर्शनयोग्य साध्यका अनुमान होता है, वहां पूव दृष्टके तुल्यरूप साध्यका अनुमान होता है, इस कारण उस अनुमानका नाम पूर्व वत् है। महा-नसमें धूम और वहिका सम्बन्ध वा व्याप्ति गृहीत हुई है। कालान्तरमें वैसा ही अर्थात् महानस-द्रष्ट धूमके समान धूम देख कर पर्वतादि पर वैसा ही अर्थात् महा-नस-द्रष्ट वहिके समान वहिका अनुमान होता है। यही पूर्व वत् अनुमान है। जहां व्याप्तिग्रहणकालमें साध्य और साधन दोनोंका प्रत्यक्ष होता है, वहां वैसे ही साधन द्वारा वैसे ही साध्यका अनुमान होनेसे पूर्व वत् अनु-मान हुआ करता है। (न्यायदर्शन) सांख्यदर्शनमें भी यह अनुमान खीकृत हुआ है। वीत और अवीतके भेद-से अनुमान दो प्रकारका है। इस वीत अनुमानके भी फिर दो मेद हैं, पूर वत् और सामान्यतोदृष्ट । उक्त अनु-मानके सम्बन्धमें न्यायदर्शन और वाचस्पति मिश्रका मत एक-सा है।

पूर्वं वयस् (ति०) पूर्वं वयः, कालावस्थामेदोऽस्य । १ वाल्पावस्थान्वित, छोटी उम्रवाला । २ वाल्यावस्था, लड्कपन ।

पूर्व वयस ( सं॰ क्वी॰ ) पूर्व वयः कर्मधा॰ वेदे अच्समा-सान्तः। वाल्यवयस, छोटी उम्र। पूर्व वयासिन् (सं० ति० जीवनका पूर्व वा प्रथमकाल, बचपन ।

पूर्व वर्तिन् (सं० ति०) पूर्व वर्त्तते वृत-णिनि । प्रांक्-वर्त्तिमात, जो पहले हो या रह चुका हो, पहलेका । पूर्व वह (सं० ति०) पर्व वस्तुकारी अपने के

पूर्व वह् (सं० ति०) पूर्व वहनकारी, भागे ले जाने-वाला।

पूर्व वाद (सं ० पु०) पूर्वी वादः। १ राजद्वारमें प्रथमा-भियोग, व्यवहार शास्त्रके अनुसार वह अभियोग जो कोई व्यक्ति न्यायालयमें पहले उपस्थित करे, पहला दावा, नालिश।

पूर्व वादिन् (सं ॰ पु॰) पूर्व वादोऽस्त्यस्येति पूर्व वाद-इति । प्रागभियोक्ता, पूर्व वाद-कारक, वह जी न्यायालय आइमें पूर्व वाद या अभियोग उपस्थित करे, मुद्दई।

पूर्व वायु पाद था जानयाग उपास्यत कर, मुद्द । पूर्व वायु (सं ० पु०) पूर्व दिक्स्मवः वायुः। पूर्व दिक्स्सि वहनेवाळी हवा, पूर्वी हवा। इसका गुण—पर्व दिशाः से जो हवा वहती है वह मधुर और ळवणरसविशिष्ट, स्निग्ध, अम्नुपित्तजनक और रक्तपित्तवद्वों क होती है; विशेपतः जो क्षतरोग, विपरोग, अथवा ज्रणरोगविशिष्ट हैं वा जिनका शरीर श्लेप्मज है, उनके लिये यह हवा विशेप अनिष्टकर है। किन्तु जो वायुरोगा, श्रान्त हैं अथवा जिनके शरीरका कफ्साग सूख गया है, उनके लिये उक्त हवा विशेप उपकारी है।

पूर्ववार्षिक (सं॰ ति॰ ) पूर्वं वर्षाणां पकदेशिस॰ 'कालात् ठज्' इति ठञ्, उत्तरपदवृद्धिः। जो वर्षाके पहुछे हो।

पूर्व वाह् ( सं॰ पु॰ ) पूर्वे वयसि वहति वह-ण्वि । पूर्वे -वयसमें वाहक, वचपनमें ले जानेवाला ।

पूर्व विद् (सं० ति०) पूर्व घेत्ति विद-क्विप्। पूर्व वृत्तान्त-वेत्ता, पुरानी वातोंको जाननेवाला, इतिहास आदिका क्वाता।

पूर्व वृत्त (सं ० क्ली ०) पूर्व वृत्तं । प्राचीनवृत्तं, इतिहास ।
पूर्व वैरिन् (सं ० पु०) पूर्व शतु, पहलेका दुश्मन ।
पूर्व शारद (सं ० ति०) पूर्व शारदः पकदेशिसमासः,
'अवयवाद्वतोः' इति अण् उत्तरपदवृद्धः । शरत्मृतुका
पूर्व मव, जो शरत् ऋतुके पहले हो ।

पूर्व शोप (सं ० वि०) पूर्व की ओर मस्तकयुक्त ।

पून शैळ (सं ० पु०) पूर्व शौळः । उदयपर्व त, उदयाचल । पूर्व सक्य (सं ० क्की०) पूर्व सक्ष्मः एकदेशि-समासः । (उत्तरमृग-पूर्वाच सक्ष्मः । पा ५१४।६८) इति अच् समा-सान्तः । सक्थिका पूर्व भाग ।

पूर्व सङ् ( सं ० ति० ) सामने वैटा हुआ । पूर्व सन्ध्या ( सं ० स्त्री० ) प्रातःकाल ।

पूर्व<sup>र</sup>समुद्र (सं॰ पु॰) पूर्वः समुद्रः । पूर्ववर्त्तिसमुद्र, पूर्वं सागर ।

पूर्व सर (सं० ति०) पूर्वः सन् सरतीति पूर्व-स् (पूर्वे कतीर । पा ३।२।१६) इति ट। अप्रगामी, आगे चलनेवाला।

पूर्व सागर ( सं ० दि ० ) पूर्व देशं सरतीति अण्। अप्र-गामी।

पूर्व सारिन् (सं ० त्रि०) पूर्व सरित गच्छतीति सःणिनि । पूर्व गामी, पहले जानेवाला ।

पूर्वं स् (सं ० ति ०) पूर्वं वा प्रथमोत्पन्ना।

पूर्व स्थ ( सं ० ति० ) पूर्वे तिष्ठति स्था-क । पूर्वे स्थित । पूर्व हृति ( सं ० स्त्री० ) पूर्वाह्वान ।

पूर्व होम ( सं॰ पु॰ ) अप्रदेय होम, पहले दिया जानेवाला होम ।

पूर्वा ( सं० स्त्री० ) पूर्वं-टाप् । १ पूर्वादिक्, पूर्वं दिशा, पूरव । पर्याय—प्राची, परा, माघोनी, पेन्दी, माघवती । २ पूर्वाफाल्गुनी देखो ।

पूर्वा - १ अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक तह-सील वा उपविभाग । यह अक्षा० २६ ं ८ से २६ ं ४० ं उ० और देशा० ८० देश से ८१ ं ६ ं पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४७ वर्गमील है। इसमें १० परगते और ५३८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर । यह उन्नावसे दश कोस दिशाण-पूर्व, अक्षाण २६ रु २० २० उ० और देशाण ८० ४८ ५५ पूर्ण मध्य अवस्थित है । पहले यही नगर उन्नाव जिलेका सदर था । अङ्गरेजोंके अधीन आनेके बाद जब उन्नाव नगरमें शासन विभाग लाया गया, तब यहांकी समृद्धका हास हो गया। अभी यहांसे उन्नाव, रायवरेली, लखनऊ, कानपुर, बकसर आदि प्रसिद्ध नगर जानेका रास्ता है। प्रति सप्ताहमें

यहां दो वार हाट लगती और वर्षमें तीन वार मेला लगता है।

पूर्वाति (सं॰ पु॰) पूर्वस्याचित अम्नि, आवसथ्य अम्नि । पूर्वाचल (सं॰ पु॰) पूर्वः अचलः । पूर्वाद्रि, उदयाचल । पूर्वातिथ (सं॰ क्की॰) साममेद ।

पूर्वातिथि ( सं० पु० ) गोतप्रवर ऋपिभेद ।

पूर्वादि (सं० ति ) पूर्वे आदिर्यस्य । पूर्वे आदि करके शब्दगण । यथा — पूर्वे, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, स्व, अन्तर । (स्त्रो०) पूर्वा आदिर्यस्याः । २ पूर्वादि दिशा ।

पूर्वाद़ि (सं॰ पु॰) पूर्वः पूर्वं दिक् स्थितो वा अदिः। उदयाचल । इसका पर्याय दिनमूर्द्वा है।

पूर्वाधिराम ( सं० क्वी० ) पूर्व भारतमें प्रचलित रामका पूर्वाख्यान ।

पूर्वानिल (सं॰ पु॰ ) पूर्वः अनिलः। पूर्वदिक्भव वायु, पूरवकी हवा।

पूर्वानुयोग (सं० पु०) दृष्टिवादमेद । दृष्टिवाद पांच प्रकारका है,—प्रतिकर्ग, स्व, पूर्वानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ।

पूर्वो तुराग (सं॰ पु॰) अनुराग या प्रेमका आरम्भ, किसी-के गुण सुन कर अथवा उसका चिल या रूप देख कर उत्पन्न होनेवाला प्रेम! साहित्यमें पूर्वा तुराग उस समय तक माना जाता है, जब तक प्रेमी और प्रेमिकाका मिलन न हो। मिलनेके उपरान्त उसे प्रेम या प्रीति कहते हैं।

पूर्वान्त (सं॰ पु॰) पूर्वपदका अन्तिम । पूर्वकंटि देखो । पूर्वापर (सं॰ ति॰) पूर्वश्च अपरश्व । १ पूर्व और अपर देश, अगला और पिछला । २ आनुपूर्विक, कमानुसार, आगे पीछे । (पु॰) ३ पूर्व और पश्चिम ।

पूर्वापर्य (सं॰ क्का॰) पूर्वापरयोर्मावः ध्यञ् न उत्तरपद वृद्धिः । पूर्वापरका भाव ।

पूर्वापहाना (सं० स्त्री०) पूर्वमपहीयते अप-हा-कर्माण ल्युट्, अजादित्वात् टाप् । पूर्वापहान कर्म ।

पूर्वापुप् (सं० ति०) धनादि द्वारा पूर्वस्तोताओंका पोषक । पूर्वाफाल्गुनी (सं० स्त्री०) नश्नतोंमें ग्यारहवां नश्नत । इसका आकार पलंगकी तरह माना जाता है और इसमें दो तारे हैं। प्रकल्यनी देखी।

Vol XIV 76

पूर्वाभाद्रपद ( सं ॰ पु॰ ) नक्षतोंमें पचीसवां नक्षत । विशेष पूर्वभाद्रपदमें देखी ।

पूर्वाभाद्रपदा ( सं स्त्रो॰ ) नक्षत्र देखो । पूर्वाभिभापिन् ( सं ॰ ति॰ ) पूर्वमभिभापते अभि-भाप-णिनि । पूर्ववक्ता, पहले वोलनेवाला । पूर्वाभिमुख ( सं ॰ ति॰ ) पूर्वमुख ।

पूर्वाभिषेक (सं ॰ पु॰) १ प्रथम अभिषेक । २ एक प्रकार-का मन्त ।

पूर्वाम्बुधि (सं०पु०) पूर्वः अम्बुधिः। पूर्वे समुद्र। पूर्वाराम (सं० ह्यो०) वौद्धसंघारामभेद, एक प्रकारका वौद्धसंघ या मठ।

पूर्वार्चिक (सं० क्ली०) सामवेदका प्रथम अंश या पूर्वार्द्ध ।

पूर्वार्जित ( सं॰ ति॰ ) पूर्व अजितः । पूर्व में उपार्जित, पहलेका अर्जन या जमा किया हुआ।

पुवार्द्ध ( सं॰ पु॰ ) पूर्वोऽर्द्धः । प्रथमाद्ध , किसी पुस्तकः का पहला आधा भाग, शुरुका आधा हिस्सा ।

पूर्वाद्ध काय (सं॰ पु॰) शरीरका पूर्वाद्ध वा सम्मुख-भाग।

पूर्वाद्धः (सं० ति०) पूर्वाद्धः भवः पक्षे यत्। पूर्वाद्धः -भव, जो पूर्वाद्धः से उत्पन्न हुआ हो।

पूर्वावेदक (सं० पु०) पूर्व मावेदयतीति आ-विद्द-णिच्-ल्यु । जो अभियोग उपस्थित करे, वादी, मुद्दई ।

पूर्वाशिन् (सं० ति०) पूर्व<sup>९</sup>-अश-णिनि । पहले भोजन करनेवाला ।

पूर्वापाढ़ ( सं० पु० ) पूर्णवाढा देखी ।

पूर्वापाढ़ा (सं ० स्ती ०) पूर्वा चासी आषाढ़ा चेति। अध्विनी आदि सत्ताईस नक्षतोंमेंसे वीसवां नक्षता। इसका आकार सूर्यको तरह माना जाता है और इसमें चार तारे हैं; प्रतान्तरसे यह हस्तिदन्ताकृति और दो तारका युक्त है।

इस नक्षतके अधिष्ठाली देवता जल हैं और यह अधी-मुख नक्षत है। इस नक्षतमें जन्मग्रहण करनेसे राक्षस होता है। यह नक्षत नक्षलजातीय है। शतपद-चका-जुसार नामकरण करनेसे प्रथमादि पादमें यथाकम भू, ध, फ, ढ़' इन अक्षरोंके नाम होंगे; पूर्वापाढ़ां नक्षतके प्रथम पादमें जन्म होनेसे धनुराशि और शेष तीन पादमें मकरराशि होती है। इस नक्षतमें जन्म होनेमें वृहस्पित-की दशा होती है। इसका प्रति नक्षतमें शह मास, प्रति-पादमें ११२११५ दिन, प्रति द्र्डमें २८१३० द्र्ड और प्रति प्रसमें २८१३० प्रस्त भोग रहता है।

इस नक्षत्रमें जनमग्रहण करनेसे वालक सभी मसुष्यों द्वारा स्तूयमान, अनुगत, देवतामक्त, वन्धुओंका माननीय, अत्यन्त पटु तथा वैरियोंका दण्ड-सक्कप होता है।

कोष्टीप्रदीपमें लिखा है,—

"भूयोभूयस्त्यमानानुरको-भक्तो देवे वन्युमान्योऽतिदक्षः। पूर्वापाढ़ा जन्मकाले यदि स्या-दापाढ़ः स्याद्वे रिचर्गे नितान्तं॥"

पूर्वाशिन (सं ० ति०) पूर्व भोजी, पहले खानेवाला ।
पूर्वाह (सं ० पु०) अहः पूर्व पूर्वापरेत्यादिना एकदेशि
समासः, ततएच् (अहोऽह एतेभ्यः। पा पा४।८८) इति
अहादेशः ततो णत्वं (अहाऽदगत। पा ना४।७)
पुंस्त्वश्च। (पा २।४।२६) १ तिथा-विभक्त दिनमानका
प्रथम भाग, दिनमानके तीन भागमेंसे पहला भाग।

दिनमानका समान तीन भाग कर उसके प्रथम भागका नाम पूर्वाह, मध्यभागका मध्याह और शेषभाग-का नाम अपराह है। पूर्वाहकाल देवताओंका अर्थात् देवताओंके जो सब कार्य हैं, उन्हें इसी पूर्वाहकालमें करना होता है; इसलिये पूजादि पूर्वाहकालमें होतो है।

पूर्वाहमें देवताओं, मध्याहमें मनुष्यों और अपराहमें पितरोंके कार्यादि करना उचित है।

२ द्विधाविभक्त दिनका पूर्वभाग, दिनका पहला आधा भाग, संवेरेसे दुपहर तकका समय ।

पूर्वाहक (सं ० पु०) पूर्वाह जातः बुन् (पूर्वाहायशहासी मूळप्रदीवावस्क शद्युन् । पा ४।२।२८) १ पूर्वाहजात, पूर्वाह सम्बन्धी, पूर्वाहका । (पु०) स्वाधी कन् । २ पूर्वाह । पूर्वाहतन (सं० ति०) पूर्वाह भवः इति ट्या तुर्व्च। (विभाषा पूर्वाहपराहाभ्यां। पा ४।३।२४) पूर्वाहभव,

दिनके प्रथम भागमें होनेवाला ।
पूर्वाहिक (सं० ति०) पूर्वाहः साधनतयाऽस्त्यस्य ठन् ।
पूर्वाहिसाध्य कमें, वह छत्य जो दिनके पहले भागमें किया
जाता है।

पूर्वाह तन (सं० ति०) पूर्वाह भव।
पूर्वित (सं० ति०) १ जो पहले किया गया हो। २ पूर्व आमन्तित, पहले ही बुलाया हुआ। ३ पूर्वक। पूर्विन सं० ति०) पूर्व इतमनेन 'पूर्वादिनिः' इति इनि। पूर्विकियाकारक।

पूर्विनेष्ट (सं० ति०) पूर्वस्थित ।

पूर्वी (हिं॰ पु॰) १ पूरवमें होनेवाला एक प्रकारका चावल।
२ एक प्रकारका दादरा जो विहार प्रान्तमें गाया जाता
है और जिसकी भाषा विहारी होती है। ३ सम्पूर्ण
जातिका एक राग जिसके गानेका समय सन्ध्या है।
कुछ लोगोंके मतसे यह श्री रागको रागिनी है और कुछ
लोग इसे भैरवी तथा गौरी अथवा देविगरि, गौड़ और
गौरीसे मिल कर वनी हुई संकर-रागिनी भी मानते हैं।
इसके गानेका समय दिनमें २५ दण्डसे २८ दण्ड तक
है। (वि॰) ४ पूर्व दिशासे सम्बन्ध रखनेवाला, पूरक्का।
पूर्वीधाट (हि॰ पु॰) दिशासे सम्बन्ध रखनेवाला, पूरक्का।
पूर्वीधाट (हि॰ पु॰) दिशासे सम्बन्ध रखनेवाला, पूरक्का।
पहाड़ोंका सिलसिला। यह वालेश्वरसे कन्याकुमारी
तक चला गया है और वहीं पिश्चमी घाटके अन्तिम
अ'शसे मिल गया है। इसकी औसत अंवाई लगभग
१५०० पुट है।

पूर्वे प ( सं० अध्य०) पूर्व दिशा, देश वा कालमें। पूर्वे तर ( सं० त्रि०) पूर्वभिन्न, पश्चिम।

पूर्वे चुः (हिं पु॰) वह श्राद्ध जो अगहन, पृस, माघ और प्रागुनके कृष्णपक्षकी सप्तमी विधिको किया जाता है। पूर्वे चुस् (सं॰ अव्य०) पूर्विस्मन्नहनीति पूर्वे-पद्युस् (सः एकत-पनायेषमः परेषव्यवपृप्वें हर्ग्येष्ठिति। पा प्राइ।२२) इति निपात्यते। १ पूर्वेदिन। २ प्रातःकाल, सबेरा। ३ धर्मवासर।

पूर्वे खुकामशमी (सं ० स्त्री०) १ पूर्वेदिग्वित् नगरोमेद, पूर्वे का एक नगर । पूर्वे खुकामशम्यां भवः अण्, उत्तर-पदवृद्धिः । २ पूर्वे खुकामशमसे उत्पन्न ।

पूर्वोक्त ( सं ० ति० ) पूर्वकथित, पहले कहा हुआ, जिसका जिक्र पहले था चुका हो ।

पूर्वोत्तरा (सं • स्त्री०) पूर्व स्थाः उत्तरस्थाश्वान्तराला दिक् । ईशान कोण, पूर्व और उत्तरके वीचकी दिशा । पूर्वोत्पन्न (सं • ति०) पूर्व कालमें उत्पन्न । पूर्व (सं ० ति ०) पूर्व्येः इतं ( पूर्वेः इतिमनयौ । पा ४।४। १३: ) इति य। पूर्वे सिद्ध, पूर्व इत ।

पूर्व्य स्तुति (सं० स्त्री०) पूर्व ऋषियों द्वारा की हुई स्तुति।

पूलक ( सं ॰ पु॰ ) पूल-ण्बुल् । १ तृणादिका स्तूप, घास-का रीला या ढेर । २ धान्यनृणादिकी मुधि, म्ंज आदि-का वंधा हुआ मुद्दा, पूल ।

पूला (हिं॰ पु॰) मूंज आदिका वंघा हुआ मुग़, पूलक । पूलाक (सं॰ पु॰) पूलाक पृषोदरादित्वात् साधुः। तुच्छधान्य।

पूळास (सं॰ त्रि॰) पूळ-राशीकरणे घञ्, तमस्यति अस-क्षेपे अण्। तृणादिस्तूपविक्षेपक।

पूलासककुएड (सं० क्ली०) कुएडस्य पूलासकः, राजदन्ता-दित्वात् पर-निपातः । कुएडतृणादिका निवारक । पूलिका (सं० स्त्री०) पूरिका रस्य छ । पूपमेद, एक प्रकारका पूआ ।

पूलिया (हि॰ स्त्री॰) एक नीच मुसलमान जाति जो मलवार प्रदेशमें रहती है।

पूलो ( हि॰ स्त्रो॰ ) छोटा पूला।

पूळीची ( हिं•स्त्री• ) मलवार प्रदेशकी एक असभ्य जाति।

पूल्य ( सं ० हो० ) पूलाक, तुच्छ धान्य ।

पूबा (हिं पुर) अ देखी।

पूप (सं॰ पु॰) पूषिति पूप-ता। १ ब्रह्मवास्वृक्ष, शह-त्तका पेड़। २ पौषमास ।

पूष—वरार राज्यके अन्तर्गत एक नदी। वासिम नगरके जत्तरवर्ती काटाग्रामसे यह निकल कर ३२ कोस दक्षिण- पूर्व की ओर वहती हुई सङ्गमके समीप वेणगङ्गामें मिल गई है। जो अववाहिका पूप और काटापूर्णासे निकली है उसके ऊपर पार्श्वस्थ भूमि हो उर्वरा है।

पूषक (सं पु॰) पूय-सार्थे कन् । १ व्रह्मदारुवृक्ष, शहत्त्त-का पेड़ । २ शहतूतका फल ।

पूषड़—१ वरारराज्यके वासिम जिलान्तर्गत एक तालुक । भूपरिमाण १२७३ वर्गमील है। इसमें २ नगर और ३०६ प्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका प्रधान मगर और सदर। यह अक्षा०

१६ ५४ ३० उठ और देशा० ७९ ३६ ३० पू॰ के मध्य वासिम नगरसे १२ कोस दिशणपूर्वमें पूपड़ नदीके किनारे वसा हुआ है। यहां के अधिवासी हिन्दू हैं। दो सुप्राचीन हिन्दूमन्दिर और कितने हो ध्वंसावशिष्ट प्राचीन मन्दिर देखने होसे यहां को पूर्व समृद्धिकी कल्पना की जाती है। अभी श्रीहीन होने पर भी तहसीलदारकी सदर कचहरी और राजस्वविभागीय कर्मचारियों का आवास प्रायः पचास वर्षसे भी अधिक समयसे यहीं पर है।

पूयण् (सं॰ पु॰) पूषतीति पूय-वृद्धी (सन उक्षण् पूषन् होहिक्षि । वण् १११५८) इति किनन् प्रत्ययान्तो निपात्यते । १सूर्य । यह सूर्य द्वादशादित्यमेंसे पक हैं । महासारतमें नारह सूर्योंके नामकी जगह पर नौ ही सूर्यका उल्लेख है ।

पौराणिक ग्रन्थमें पूपाकी द्वादशादित्यके मध्य गिनती तो है, पर वेदमें ऐसा देखनेमें नहीं आता। चारो वेदमें ही पूपाकी स्तुति है। पूपाका धातुगत अर्थ पोषक वा परिपालक है। तैत्तिरीय-ग्राह्मणमें लिखा है, कि "पृषा पशुओंके प्रजननिवता" (१।७२।४) अर्थात् पूषा पशुओंके प्रजननकारी हैं। तैत्तिरीय संहिताके मतसे, "पूषा वा शिव्यस्य बोर्थस्य प्रदात।" पूषा ही इन्द्रिय वा वीर्यके प्रदानकारी हैं।

इस प्रकार वेदमें पूपा कहीं पशुओं के पोषक तथा परिवर्द्ध के, कहां मनुष्यों के सम्पत्ति-पोषक, कहीं गी-ताड़न -दएडहस्त गोपाल और कहीं छागवाहन माने गये हैं; कहीं पर ऐसा भी उल्लेज मिलता है, कि उन्होंने सूर्य-देवके कपमें निल्लिल जगत् परिदर्शन किया है। उनकी सहायतासे दिनरात होती है। कहीं पर वे अपनी भगिनी-के अनुरागी, ऐन्द्रजालिकों के पृष्ठपोषक और पाणिप्रहण कालमें विवाहमन्त्रमें उपस्थित हैं। अनेक स्थानों पर वे इन्द्र और भगके साथ स्तुत अर्थात् पूजित हुए हैं। तैत्तरीय संहितामें लिला है, कि रहका यशमाग न देनेके कारण उन्होंने पूषाके दाँत तोड़ दिये थे। निष्क और इसके परवर्त्ती प्रन्थोंमें पूपा सूर्यक्रपमें ही वर्णित हुए हैं। पूपण (सं० ति०) पूष्णः पृथिया इटं अण् वेदे न वृद्धिः नीप्रालोपः। पार्थिय पदार्थी, मिट्टोकी वनी चीज।

पूषणा (सं० स्त्री०) पूष्य-च्यु, स्त्रियां टाप्। कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृकाका नाम। पूषण्वत् (सं० ति० पूषण-मतुप् मस्य वः। पुष्टियुक्त। पूषदन्तहर (सं० पु०) पुष्णः सूर्यभेदस्य दन्तं हरति ह-अच्। दक्षयज्ञ कालमें पूपाके दन्तोत्पाटक शिवांश वीर-भद्र, शिवके अंशसे उत्पन्न वीरभद्रका नाम, जिसने दक्षके यज्ञके समय सूर्यका दाँत तोड़ा था।

पूषध्न ( सं॰ पु॰) वैवस्तत मनुके एक पुत्रका नाम । पूषभाषा ( सं स्त्री॰ ) पूषेव सूर्यद्दव भाषते इति भाष-अच्-टाप् । इन्द्रनगरी, सुरपुरी ।

पूर्वमित (सं० पु०) गोभिलका एक नाम।

पूबराति ( सं॰ पु॰ ) पूपा तंदाख्यो देवो रातिर्दाता यस्य । सूर्यादेय वस्तु ।

पूपा (सं०स्त्री०) १ पृथिवी । २ दाहिने कानकी एक नाड़ीका नाम ।

५वा (हिं० पु०) सूर्य । पूपण् देखो ।

पूपा—विहार प्रदेशके दरभङ्गा जिलान्तर्गत अङ्गरेज गवर्में एटकी एक भूसम्पत्ति । भू रिमाण ४५२८ एकड़ है । तिरहुत कलकृरीकी पुरानी नत्थीसे जाना जाता है, कि १७६६ ई०में लोदापुर, पुपा, चाँदमारी और देशपुर आदि स्थानके मालिक सर्दारोंने अङ्गरेजराजके उक्त स्थान निष्कर दान दिया और एक कवाला भी लिखा, ताकि उनके उत्तराधिकारिगण कोई आपत्ति न कर सके। १७६८ ई॰में वलतियारपुर तककी वन्यभूमि उसके साथ मिला दी गई। १८७२ ई० तक ेह स्थान गवर्मेंग्टकी अभ्वपालवृद्धिका अड्डा रहा। १८७५ ई०में यहां रुपिकार्य सम्बन्धी एक कारखाना, १६०४-में एक कालेज और उद्योग-शिल्पशाला (Research Laboratory) खोली गई। यहां तमाकू, फूल और धानकी अच्छी खेती होती है। पूष्मात्मज ( सं॰ पु॰ ) पूष्णः आत्मजः। मेघ, वादल । सूर्यसे ही वृष्टि होती है, इसिलए पूपात्मज शन्दका अर्थ मेघ होता है।

पूचासुहरू (सं॰ पु॰) पूष्णोऽसहरू । शिव, महादेव । शिवजीने दक्षयज्ञकालमें खीय अंशज वीरभद्रक्षपमें सूर्यका दाँत तोड़ा था, इसलिए उनका लाम पूरासहरू पड़ा । पूस (हि॰ पु॰) अगहनके वाद और भावके पर्लेका महोना, हेमन्त ऋतुका दूसरा चान्द्रमास । इसकी पूर्ण-मासी तिथिको पुष्य नक्षत्र पड़ता है।

पृक्का (सं० स्त्री०) स्पृश्यते इति स्पृश्-वाहुलकात् कक्, पृवोदरादित्वात् साधुः । १ शाक्तविशेष, असवरम नामका गन्ध द्रव्य । इसका व्यवहार औषघोमें होता है । पर्वाय— मरुन्माला, पिशुना, देवोलता, लघु, समुद्रान्ता, वघु, कोटिवर्षा, लङ्कायिका, मरुत्, माला, स्पृक्का, कोटिवर्षा, लङ्कायिका, तस्कर, चोरक और चएड । गुण—पक्ते पर मधुर, हृद्य, पित्त और कफनाशक । २ पृक्कापुष्य । ३ लताकस्तूरी ।

पृक्त (·सं॰ ह्वी॰ ) पृच्यते-सम, संबध्यते स्मेति पृच-सम्पर्कें क । १ घन । (लि॰ ) २ सम्पर्केयुक्त, सम्बन्धवाला । पृक्ति (सं॰ स्त्रो॰ ) पृच-भावे किन् । १ सम्पर्के, सम्बन्ध, लगाव । २ स्पर्श, स्पृष्टि, छूना ।

पृक्थ ( सं० क्ली० ) धन, सम्पत्ति ।

पृक्ष ( सं० पु० ) अन्न, अनाज ।

पृक्षस् (सं० पु०) पृच-वाहु० असि सुट्च । अन्न, अनाज । पृक्षयाम ( सं० पु० ) अन्न-नियमन स्तोत वा यञ्च । पृक्षघ् , सं० स्त्रो० ) प्र-क्षघ्-किप्, वेदॆ प्रशब्दस्य सम्प्र-

सारणं । प्रकृष्टक्ष्या ।

पृच्छक (सं॰ ति॰ ) १ जिज्ञासाकारी, प्रश्न करनेवाला, पूछनेवाला । २ अनुसन्घित्सु, जिज्ञासु, जाननेकी इच्छा रखनेवाला ।

पृच्छना ( सं ० स्त्री० ) जिज्ञासा करना, पूछना ।

पृच्छा ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रश्न, सवाल।

पृच्छ्य (सं ० ति ०) पृच्छ वाहुलकात् कर्मणि क्यप्, ं सम्प्रसारणं । जिज्ञास्य, जो पूछने योग्य हो ।

पृत् (सं ० स्त्री०) पृ-पालने किप्, तुक् च। १ सेना, फौज। २ संग्राम, युद्ध, लड़ाई।

पृतना (सं क्रो॰) प्रियते इति पृङ् व्यायामे वाहुलकात् तनन्, गुणाभावश्च। १ सेना, फीज। २ वाहिनीतय, एक सेनाविभाग। अमर और भरतने लिखा है, कि २४३ हाथी, २४३ रथ, ७२६ घुड़सवार और १२१५ पैदल सिपाही कुल २४३०-का समुह पृतना कहलाता है। व्याप्रिवन्ते अस् योद्धारः इति तनन्। ३ संप्राम, लड़ाई। ४ ममुल्य, आदमी।

**वृ**तनाज् ( सं ० ति० ) सेनाजेता, सेना जीत्<u>ने</u>वाला । षृतनाजित् ( सं∘ ति० ) १ सेनाजित् । ( पु० ) २ एकाह पृतनाज्य ( सं ० ह्यो० ) संप्राम, युद्ध । पृतनानी ( सं ॰ पु॰ ) पृतना नामक सेनाका अफसर। पृतनापति ( सं ॰ पु॰ ) सेनापति । पृतनायाट् (सं०पु०) पृतनासाह् देखी। पृतनासाह् ( सं ०पु०) पृतनां सहते सह-ण्वि । इन्द्र । इस साह् शब्दका षाट् इत्प होनेसे पत्व होगा, दूसुरी जगह नहीं । पृतनासाह्य ( सं. ० क्वी० ) परकीय सेनाविभव। पृतनाहव ( सं ० पु० ) पृतनासु हवः, ह्वेञो भावेऽनुपसगे-स्थेत्यद्, सम्प्रसारणञ्च। संप्राममें रक्षणार्थ आह्वान, युद्धमें रक्षाके लिए पुकारना। पृतन्या ( सं॰ स्त्रो॰ ) सेना, फीज । पृतन्यु ( सं ० ति ० ) युद्धे च्छु, जो युद्ध करना चाहता हो, जो छड़नेके छिये तैयार हो। पृत्सुति ( सं॰ स्त्रो॰ ) सेना, फौज । पृत्सुध (संपु॰) पृत्सु धीयते धा कर्मेणि घन्नर्थे क। संप्राम, युद्ध । पृथक् (सं ० अध्य ०) प्रथयतीति प्रथ विक्षेपे (प्रथः कित सम्प्रसार्णकर । उण् १।१३६) इति अजि कित्-सम्प्रसार-णञ्जा । १ भिन्न, अलग, जुदा । पर्याय—विना, अन्तरेण, ऋते, हिस्क्, नाना, वर्जन । २ इतर, नीच । पृथकरण (सं ० क्वी०) सम्मिलित वस्तुका भिन्नकरण, अलगाव, अलग करनेका भाव । पृथक्कार्य (सं० क्ली०) भिन्न कर्म। थक किया (सं ० स्त्री०) अलग करनेका काम। पृथक् क्षेत (सं ॰ पु॰) पृथक् भिन्नं क्षेतं उत्पत्तिस्थानं े यस्य। एक ही पिता परन्तु भिन्न मातासे उत्पन्न सन्तान । पृथक्च्छद ( सं ॰ पु॰ ) अक्षीटनृक्ष, अखरीटका पेड़ । पृथका ( सं ॰ स्रो॰ ) पृथक् होनेका भाव, अलगाव, अल-हदगी । पृथक्त्व (सं को०) पृथगित्यस्य भावः पृथक् भावे

क। पृथक् होनेका भाव, अलगाव।

Vol. XIV. 77

पृथक्तवच् ( सं ० स्त्री० ) पृथक् त्वग् यस्याः राप् । मूर्वा-लता। मूबंदिखी। पुथक्पणीं ( सं ० स्त्री० ) पृथक् पर्णानि युस्याः ( पाककर्ण-वर्णं पुरुवक वेति । पा शाशाः ४) इति ङ्रोष् । पिठवन नामकी ओषि । पर्याय—पृश्निपणीं, चित्रपणीं, अंब्रि-वर्ह्सिका । पृथगात्मता (सं क्षी ) पृथक् आत्मा खरूपं यस्य, तस्य भावः तल्-टाप्। १ विवेक, विरक्तता, विराग। २ भेव्, अन्तर। पृथगातिमका (सं ० स्त्री०) पृथक् आतमा खरूपं यस्याः-कापि अत इत्वं। व्यक्ति। पृथग्जन ( सं० पु० ) पृथक् सज्जनेभ्यो विभिन्नो जनः । १ मूर्ख, वेवकूफ। २ नीच व्यक्ति, कमीना आदमी। ३ पामर, पापी । पृथावीज (सं ० पु०) पृथक् विभिन्नानि नीजानि यस्य। महातकवृक्ष, मिलावां । पृथग्भाव ( स'० पु० ) पृथक्टव, अलग होनेका भाव । पृथग्भूत ( सं ० दि० ) जो अलग हुआ हो । पृथग्विघ ( सं ० द्वि० ) पृथक् भिन्ना विधा यस्य । नाना-रूप। पृथवान ( सं ० पु० ) पृथिवी ।

पृथवी (स'० स्त्री०) प्रथते विस्तारमेतीति प्रथ-षिवन् सम्प्रसारणञ्च ( वये विवन् सम्प्रसारणकच । उण १११५० ) पृथिवी ।

पृथा (सं ० स्त्री०) कुन्तिभोजकी कन्या कुन्ती, पावडु-राजाको पत्नो । भागवतमें इस प्रकार लिखा है,—महा-राज देवमीड़के पुत शूर थे। इन्हीं शूरके औरस और मारिवाके गर्भसे वसुदेवादि दश पुत और प्रथा आदि पांच कन्याएं उत्पन्न हुई । राजा श्रूरने अपने मिल कुन्तिमोजको निःसन्तान देख पृथाको दत्तकपुत्री खरूपमें प्रदान किया । पृथाने वाल्यकालमें दुर्वासा मुनिको परिचर्यादिसे खुश कर उनसे देवाहानविद्या पाई । कुन्ती-ने कुमारी अवस्थामें एक दिन इस मन्त्रकी परीक्षा करने-के लिये सूर्यदेवका आह्वान किया। सूर्य मन्त्रके वलसे उसी समय उपस्थित हुए। यह देख कुन्ती भौचक सी रह गई । बाद कुन्तीने हाथ जीड़ कर कहा, मैंने

परीक्षार्थ इस मन्तका प्रयोग किया था, आपसे मुक्ते कोई प्रयोजन नहीं। इस पर सूर्यने कहा, 'देवदर्शन व्यर्थ नहीं जाते, तुक्ते गर्भधारण करना हो पड़ेगा। यदि कन्या समक्त कर सङ्कोच करती हो, तो जिससे तुम्हारी योनि भ्रष्ट न हो, में वैसा हो कर्क गा।' सूर्य इस प्रकार कुन्ती-को गर्भाधान कर खर्ग चले गये। कुन्तीके भी उसी समय एक पुल हुआ। लोकलजाके उरसे कुन्तीने उस पुलको नदीमें फेंक दिया। पीछे पाण्डुके साथ इनका विवाह हुआ और उसी देवाहान-मन्तके वलसे कुन्तीने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इन तीन पुलोंको पाया।

विशेष क्रिती शब्दः देखो ।

पृथाज (सं० पु०) पृथायां जायते जन-इ। १ युधि-ष्टिरादि कुन्तीके पुत्त। २ अर्जु नवृक्ष।

पृथापति ( सं ० पु० ) पृथायाः पतिः । पाण्डुराज । पृथिका (सं० स्त्री०) प्रथ-घत्रथें क, स्वार्थे क, अत इत्त्वं । शतपदी ।

पृथित् ( सं॰ पु॰ ) प्रथ-वाहुळकात् किन् सम्प्रसारणञ्च। वेणपुत पृथु नामक नृष।

पृथिवी (सं० स्त्री०) प्रथते विस्तारं गच्छतीति प्रथ-पिवन, सम्प्रसारणञ्च, (प्रथे: पिवन् धम्प्रधारणङच । उण १।१५०) ततो ङीप्। मर्त्यादिका अधिष्ठानभूत। पर्याय-भू, भूमि, अचला, अनन्ता, रसा, विश्वम्भरा, घरा, स्थिरा, धरिलो घरणी उया, श्लीणी, श्लिति, काश्यपी, वसुमती, व 🗝 घा, उवीं, वसुन्धरा, गोला, कु, पृथ्वी, अवनि, मेदिनी, मही, भूर, भूमि, धरणि, क्षोणि, क्षोणी, श्लौणी, क्षमा, अवनी, महि, रत्नगर्भा, साग-राम्यरा, अञ्घिमेखला, भूतघाली, रत्नावती, देहिनी, पारा, विपुला, मध्यमलोकवर्त्मा, धरणीधरा, धारणी, महाकाएडा, जगद्रहा, गन्धवती, खएडनी, गिरिकर्णिका, धारियती, धाती, सागरमेखला, सहा, अचलकीला, गी, अिंधद्वीपा, द्विरा, इड़ा, इड़िका, इला, इलिका, उद्धि-वस्रा, इरा, आदिमा, ईला, वरा, उर्वरा, आद्या, जगती, पृथु, भुवनमाता, निश्चला, वीजप्रस्, श्यामा, क्रोड़कान्ता, खगवती, अदिति, पृथवी । ( शन्दा<sup>र्णव</sup> ) ः

वैदिक पर्याय—गी, गा, ज्ना, क्ष्ना, क्षा, क्षामा, क्षीणी, क्षिति, अवनि, उची, पृथ्वी, मही, रिप, अविति,

इला, निऋंति, भू, भूमि, पूषा, गातु, गीता। ( वेदिनघण्ड १ ४०)

वेदमें पृथिवीशय्य पक्षान्तरमें अन्तरोक्ष नामसे भी उक्त हुआ हैं—

"स दाघार पृथिवीं चामुतेमां" ( ऋक् १०।१२१।१) 'यद्वा पृथिवीत्यन्तरिक्ष नाम' ( सायण )

श्रुति और स्मृतिका मत्।

पृथिवीको उत्पत्तिके विषय्रमें श्रुतिमें इस प्रकार लिखा है,--, आकाशात् वायुव योर्गिनसनेराप अद्भय पृथिवी-चोरपवते'' (श्वतिः इससे प्रमाणित होता है, कि एक समय आकाश वा वाप्प समस्त जगन्मएंडलमें व्याप्त था। पीछे प्रत्येक वाष्पकणाके परस्पर आकर्षण और संघातसे अणु परमाणुकी उत्पत्ति हुई है। जैन-दर्शनमें लिखा है-"अण्वाद्दीनां संघातात् दुव्युणुकादय उत्पद्यन्ते । तत स्थाव-स्थिताकृष्टशक्तिरेवाद्यसंयोगे कारणभावमाप्यते।" अणु-ओंके परस्पर संघातसे द्वि-अणु, तसरेणु आदि उत्पन्न हो कर आकाशमार्गमें फैल जाते हैं। धीरे धीरे जगह-व्यापकत्व और घनत्व प्राप्त होता है। अन्तमें उनके मध्य अवस्थित आकृष्ट-शक्ति ही आद्यसंयोगसे कारणता पाती है। इसके द्वारा एक जगद्यापी आणविक आकर्पणशक्तिका परिचय मिलता है। घनीभूत अणुः मएडलोके आकर्षणाधिक्यके कारण दूरवर्त्तो अपेक्षाऋत स्क्ष्मतर अणुओंकी गतिसे वायुका, पीछे द्रुतगमन सीर संघर्षणके कारण अग्निका, अग्निका उत्ताप घनीमूत हो कर शीतल होनेके समय जलका और उसी जलसे पृथिवोका अस्तित्व सूचित हुआ है।

ऋग्वेदसंहितामें (१।५६।२) अग्नि हो पृथिवीकी नाभि और ज्योतिकप मानी गई है— "मूर्द्धादिवो नाभिरग्निः पृथिष्या अथाभवद्रती रोदस्योः। तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्थ्याय॥"

भारय—'अयमिनिदिनो यु लोक्स मूर्जा विरोबत प्रधानभूतो भवति । पृथिच्याः भूमेश्व नामिः संनाहकः रक्षक इसर्थः ।
अथानन्तरं रोदस्योधावा पृषिग्योरयमरतिरिधातिरमवत ।
हे निधानर तं तादशं देवं दानाविगुणयुक्तं ता तां देवायः
सर्वेदेना आयाय विदुषे मनवे यजमानाय वा ज्योतिरित् अयोतीइसमेशाकनयन्त उद्यादकन् ।

सायणभाष्यके ऐसे अर्थसे यह सावित होता है, कि तिजक्षण अग्नि ही स्वर्गादि सृष्टलोकका प्रधान है और वहीं ज्योतिक्षणे, वैश्वानर पृथियो-रक्षक स्पर्ध हैं, इसमें सन्देह नहीं । सूर्यके आकर्षण और उत्तत रिश्मसे पृथिवीका रक्षण होता है, यह पौराणिक उपपत्ति और वैज्ञानिक तस्वसमुद्ध त भ्रुव सत्य वैदिक मतसे भी समीचीन माना जाता है।

वाजसनेयसंहितामें भी लिखा है—
"हद्राः संसुज्य पृथिवीं वृहज्योतिः समीघिरे ।
तेषां भानुरजस्राह्म्ब्बुको देवेषु रोचते ॥"
( शुक्तवा ११।५४ )

इसके भाष्यमें महोधरने लिखा हैं — "ये नहा; पृथिवीं पार्थिवं पिग्रह्न' संस्थ्य शर्करायोरधार-क्लें संयोज्य सुद्द-ज्ययोतिः श्रीकमिन' समीधिरे सम्यक् शीपितवन्तः । तेवां नहाणां श्रकः श्रुद्धो देवीध्यमानोऽनसं: शतुपक्षीण इव देवेषु मध्ये भातः शीपतः रोचते प्रकाशते इत् एवार्यः ॥"

वद्रगणने सूक्ष्म सिकतालों हिकट्ट और पाषाणचूर्ण मिला कर पिएडाकारमें पार्थिय पृथिवीको सृष्टि करके वृह्यज्योति प्राप्त की। इसके फलसे चट्टोंकी देदीप्यमाना दीति देवताओं के मध्य प्रकाशित हुई थी। इससे स्पष्ट समन्ता जाता है, कि पिएडाकार पार्थिय जगत् गोल है और स्थूल भूत यह लौहकीट्ट पाषाण चूर्णादि पदार्थ पाञ्चमीतिक विकृतिमात है तथा गन्धतन्माल परिणत हो कर पृथिवीका उत्पादक हुआ था। शतपथनाह्यणके (धं वृष्यिवीभृतस्य प्रथमना' (शतर १ १८११।२११०) आदि प्रयोगसे पृथिवीकी भूतोत्पत्तिकी कथा प्रकट होती है।

भगवान् मनुने जगत्की उत्पत्ति और सृष्टिके सम्यन्धमें जो वर्णन किया है, उसमें भी कोई मतपार्थक्य नहीं
देखा जाता। उनके मतसे यह परिदृश्यमान विश्वसंसार
एक समय गाढ़ तमसाच्छन्न था। वह अवस्था दृष्टिगोचर नहीं होती थी और न उक्षण द्वारा ही उसका पता
चलता था। उस समय वह अवस्था ज्ञान और तकसे
अतीत होकर सर्वतोमावमें निदित थी। पीछे स्वयम्भु
भगवान्ने महाभूतादि चौवीस तत्त्वोमें प्रवृत्तवीर्य हो कर
इस विश्वसंसारको प्रकट किया और धीरे धीरे वे ही
उस तमोवस्थाके ध्वंसक्पमें धक हुए थे। मनोमाब-

त्राह्य सूक्ष्मतम अध्यक पुरुष ही शरीराकारमें प्रादु-र्भूत हुए। विविध प्रजासृष्टिकी कामनासे उन्होंने अपते शरीरसे ध्यानयोग द्वोरा पहले जलको सृष्टि को । उस जलमें अपना शक्तिबीज मिलाकर सुवर्णवर्णोपम सूर्य-के जैसा आभाविशिष्ट एक अएड निर्माण किया। उसके वाद सर्वलोकपितामह् ब्रह्मरूपमें उन्होंने खर्य उस अएडके मध्य जन्म लिया। नर अर्थात् परमात्मासे प्रस्त होनेके कारण अपत्यप्रत्ययमें जलका नारा और नारा ब्रह्मरूपमें अवस्थित परमात्माके प्रथम आश्रयमूत होनेके कारण ब्रह्मका नारायण नाम रखा गया है। वे आदिकारण अध्यक्तानित्य और सद्सदात्मक हैं। तत्कत्त्र क उत्पा-दित उन प्रथम पुरुपको भी लोग ब्रह्मा कहते हैं। भग-वान् ब्रह्माने इस ब्रह्माएडमें ब्रह्ममानके संवत्सरकां छ तक वास कर अन्तमें आत्मगत ध्यानवलसे उसे दो खएड· कर डाळा । इसके ऊद्ध खएडमें स्वृगदि-लोक और अधोखएडमें पृथिव्यादि, मध्य भागमें आकाश, अष्टिवक् और शाश्वत सभी समुद्र सृष्टि हुए। आत्मानुभवसे ब्रह्माने मनका उद्धार किया। मनस्कू-रणके पहले महत्तत्त्वका विकाश हुआ था। इसके वाद विषयप्रहणाक्षम इन्द्रियोंकी सृष्टि हुई। अनन्तकार्याक्षेत्र, अहङ्कार और पञ्चतनमातमें आत्मयोजनासे देवमनु यादि जीवोंका उद्भव हुआ । मूर्त्तिसम्पादंक ये छह सुद्मतम अवयव पश्चभूतादिका आश्रय लिये हुए हैं, इसलिये वह आश्रयस्थान शरीर नामसे प्रसिद्ध हुआ है। आका-शादि महाभूत भी शरीरका आश्रय लेते हैं। महत्तत्त्व, अहङ्कारतस्व और पञ्चतन्मात्र इन सात दैवशक्तिकी स्तमातासे इस जगत्की सृष्टि हुई है अविनाशी-कारणसे इसी प्रकार अस्थिर सभी कार्योंकी उत्पत्ति हुई है। आकाशादि सभी भूतोंमें पहलेको छोड़ कर और समी भूत अपने अपने गुणातिरिक्त पूर्व के गुणको ब्रहण करते हैं। आकाशका गुण शब्द हैं; वायुका शन्द और स्पर्श ; अम्निका शन्द, स्पर्श, और रूप ; जलका शब्द, स्पर्श, इ.प और रस तथा पृथिवीका गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। अनन्तर स्थलतर दूरयमान पदार्थादिका सूच्मपञ्चतन्मावसे उद्भव हुआ है। वह परमदेव (ब्रह्म) जब जागरित

रहते हैं तब यह विश्वव्रह्माएंड भी उस समय चेष्टित रहता है। उस शान्तात्माके निद्रा छेने पर विश्वब्रह्माएड भी निमीलित हो जाता है तथा विश्वसंसारमें महाप्रलय संघटित होता है। ब्रह्मरातके अवसान पर प्रसुप्तावस्था-से उत्थित और प्रतिवुद्ध हो स्वयं ब्रह्मदेव सृष्टिकार्यमें लग जाते हैं। परमात्मा कर्तृ क सृष्टिकामनासे प्रेरित मन वा मवत्तत्त्वसे पहले शब्द्रगुणविशिष्ट आकाशकी उत्पत्ति और आकाशकी विकृतिसे वलवान् सर्व गन्धवह स्पर्शेगुणात्मक पवित्र वायुकी उत्पत्ति हुई। वायुकी विकृतिसे तमोनाशक और समस्त वस्तुओंके प्रकाशक दोप्तिमान तेजः ( रूप ) उत्पन्न हुए । तेज विकृत हो कर ही जल (रस)-में परिणत हुआ, पीछे कालकमसे जलसे ही गन्धगुणसम्पन्ना पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है। महाप्रलयावसानके वाद सृष्टिके पहले पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति इसी प्रकार गोचरीभूत हुआ करती है, इसी तरह असंख्य असंख्य मन्वन्तर और लक्ष लक्ष वार विश्वकी सृष्टि और लय हुआ है । ( मनु १५८० क्लोक')

व्रह्माएडादि विभिन्न पुराणोंमें भी निखिल विश्वका तमोमयत्व और अनादि अनन्तपरिव्याप्तत्व कल्पित हुआ है। इस तमोमय विश्वमें गुणसाम्य उपस्थित होनेके कारण क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्रधान-प्रकृतिका सृष्टिकाल आरम्भ हुआ और सबसे पहले हो सूच्म और महद्रगुणसंयुक्त अव्यक्त समावृत महत्तत्त्वको प्रादुर्भाव हुआ । सत्त्व-गुणोद्दिक उसी महतत्त्वको सत्त्वगुणप्रकाशक मन कहते हैं। यही मन कारण नामसे प्रसिद्ध है। सत्त्वविद्द-गण महत्तत्त्वको ही सृष्टिकर्त्ता वतलाते हैं। सङ्कल्प और अर्ध्यवसाय उनकी वृत्ति हैं, लोकतत्त्वार्थके हेतुसक्रप धर्मादि उनका रूप और सत्त्व है, तथा सत्त्व, रजः और तमः उनका गुण है। महत्तत्त्व गुणत्रयविशिष्ट होने पर भी रजोगुणके आधिषयवशतः उससे महत्परिवृत और भूतादि विकृत अहङ्कारको सृष्टि होती है। अहङ्कारमें तमोगुणकी अधिकता रहनेसे तमोगुणाकान्त भूतसमूहका आदिकारणस्वरूप भूततन्मात उत्पन्न होता है। उस भूततन्मातसे शब्दतन्मात और सन्छिद्र आकाशकी उत्पत्ति मानी जाती है। विकारजनक भूतादिसे शब्द-तन्मात भूतादि कर्तुक पुनर्वार आवरित होनेके कारण

उससे स्परीतन्माल और स्परीगुणयुक्त वायु उत्पन्न हुई। शब्दतन्मात और आकाशके आवरणसे स्परीतन्मातसे रूपतन्माल और तेजकी उत्पत्ति हुई । रूपतन्मातके आवरणसे रसतन्मात और जलका रसतन्मातके आव-गन्धतनमात्रं और गन्धतन्मात रसतन्मात आवरित होनेसे गन्धगुणयुक्त क्षितिका कर्त्तुक आविर्भाव हुवा था । इस प्रकार गन्धतन्मात शन्ः स्पर्श, रूप और रसकर्नु क समाविष्ट होनेके कारण शब्द-स्परी-ह्रप-रस-गन्ध यही पांच गुण पृथिवीके माने गये हैं। केवल स्थूलभूतका हो यह ी्नयम जानना चाहिये। भूतसमृह शान्त, घोर और मूढ़ गुणयुक्त होनेके कारण विशेष नामोसे परिचित हैं। ये आपसमें अनुप्रविष्ट हो कर एक दूसरेके घारणकर्त्ता हुआ करते हैं। लोका-लोकाचल परिवृत यह परिदृश्यमान सभी पदार्थ भूमिके अन्तर्भृत हैं। महद्रादि त्रिशेपान्त सात पदार्थ आपसमें संमिश्रित हो कर पुरुपके अधिग्रान प्राप्त होते हैं। उसी अव्यक्तके अनुप्रहर्से अण्डकी उत्पत्ति होती है। विशेष पदार्थसमूहसे पादुभूत अएड ब्रह्मकार्यकलापका कारणस्वरूप है। उस प्राकृत अएडके विवुद्ध होनेसे ही भूतसमूहके आदिकर्त्ता प्रथम शरीरी हिरण्यगर्भ क्षेत्र पुरुष जीवारमासमृहको सृष्टि करते हैं। खणीमय सुमेर पर्वत ही हिरण्यगर्भका गर्भ है, समुद्र उनका गर्भोद्देक और पर्वतगण उनके जरायुं हैं। सप्तसमुद्र, सुमहत् पर्वत-समूह और शतसहस्र नदी-परिवेधित सप्तद्वीपा पृथिबी, चराचर समुदाय विश्व और चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत वायु प्रमृति सभी लोकालोकसमृह इसी अएडके अन्तर्भूत हैं। अएडका वहिर्मांग भी दश गुण जल द्वारा परिवेष्टित है, उसके ऊपर दश गुण तेज, तेजके ऊपर दश गुण वायु, वायु दश गुण आकाश द्वारा और आकाश भूतगण द्वारा आच्छादित है।

भूतगण महत्परिवृत और महान अध्यक्त द्वारा आवृत हैं। इस प्रकार अष्ट प्रकृति हो एक दूसरेका आवरण हो स सांह्यकार कपिलने भी इस मतका प्रवार किया है— "तत्र पृथिवी धारणभावेन प्रवर्तभाना चतुर्णभुषकार करोति। श्रुहदस्पर्शक्तपरसगम्भवती प्रज्ञचुर्णा पृथिवी।" (शांह्यतस्वकी १५१६६) कर अण्डेका आवरक हुई है। विकारिसमूहसे विकार-के आधाराध्यभावमें अष्ट प्रकृति ही एक दूसरेकी सृष्टि | और प्रलयकालमें लग किया करती है।

(त्र्याग्रहपु॰ प्रक्रियापाद ४ में २० २३-८० कोक)
इससे प्रतिपन्न होता हैं, कि शास्त्रकार मनु और
पुराणकारोंने वैद्यानिक सत्यका पूर्णाभास पाया था।
या तो उन्होंने योगवलसे इन समस्त सत्यका द्यारोद्घाटन
किया हो, या प्रकृत वैद्यानिक चर्चाप्रसूत इन समस्त
घटनावलियोंको वे लिपिवद्ध कर गये हैं। धर्मप्राण
हिन्दूके निकट ईश्वरु वा स्नष्टाका एकत्यकरूपना नितान्त
असम्भव नहीं है। इसी कारण इस सत्यसमृहका मूल
सभी ईश्वरमें आरोपित हुआ है। वर्त्त मान भूविदोंने
जगत्सृष्टिके आदिमें जो तमोमयत्वकी कल्पना की है, हम
लोगोंके प्राचीनतम आर्थ स्रृपियोंने भी उस वातको
दूसरे प्रकारसे व्यक्त किया है, ईश्वरशक्तिके विकाशसे भूततन्मात द्वारा आकाशादिकी सृष्टि हुई है यही वर्त्त मान
वैद्यानिकका Ether वा वाष्प है।

भृतत्त्वविद्देंने जब वाष्यको ही जगत्को उत्पत्तिका म्लीभृतकारण वतलाया है, तव आकाशोत्पत्तिकी किया कहांसे हुई ? यह अवश्य खीकार करना पड़ेगा, कि मह तस्व सत्त्वरज्ञः प्रभृति तीनों गुण अहङ्कार और भूत-तन्मात (१) किसी स्थानतर कल्पनाका फल है। उन्होंके सहयोगसे आकाशकी उत्पत्ति हुई है। पीछे आकाशादिकी विकृतिसे वायवादि क्पान्तरित हुआ है। उनके मतिसम् सीर-जगत् भी पृथिवी है और यह मानवाकाश हो पार्थिव पृथिवी। आकाश मण्डलस्थ ज्योतिक प्रहगण-परस्पर पृथक् और वक्षमावमें भूमण करते हैं। सूर्य-प्रहके समस्त नक्षत्वमण्डलका उद्भव, वायु-युक्त किरण जालसे जगत्का जलाकर्षण, उत्तरायण और दक्षिणायन कालमें रिश्मद्वयकी हासवृद्धि, सुपुम्ना नामक रिश्मसे प्रतिदिन चन्द्रालोकवर्द्ध न प्रभृति अनेक कथाओंकी एकता है, पर प्रभेद इतना ही है, कि वर्त्व मान वैज्ञानिकोंने

पृथिवीकी भूमणशीलता और सूर्यके स्थायित्वकी केट्य-ना की है। भास्कराचार्य आदिके यह वात समर्थन करने पर भी लल्लाचार्य, ब्रह्मगुप्त और पुराणकारगण सूर्यका भूमणत्व स्वीकार करते हैं। परन्तु ब्रह्माएडपुराणकारने ब्रह्मणको वायुनिर्मित अदृश्य रिम-द्वारा भ्रवनश्रव-में निवद और यथानिर्दिए पत पर भ्राम्यमाण दिखला दिया है तथा भ्रवपरिवेष्टित सूर्य भी भ्रमणशील हैं, यह भी लिखा है।(२)

## वौराणिक कल्पित मत ।

इस पृथिवोकी उत्पत्तिका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखएडके सप्तम अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,---भगवान् नारायणने एक दिन नारदसे कहा, महर्षे ! कोई कोई कहते हैं, कि वह पृथियो मधुकैटभके भेदसे उत्पन्न हुई है। किन्तु वह विरुद्ध मत तुम्हारे निकट व्यक्त करता हुं सुनो । पुराकालमें जव वे दुर्द पे दोनों असुर मघु-कैटम विण्णुके साथ हजारों वर्ष तक युद्ध करके अन्तर्में उनका अद्भ तवीर्य और युद्ध देव परितुष्ट हुए थे, तव उन्होंने कहा था, अच्छा, हम दोनों मरनेको राजी हैं, किन्तु जहां पृथिवी जलमन्न न हो, उसी स्थान पर हम दोनोंका वध कीजिये। इतनी वात कहते न कहते पृथियी खयं आ कर उनके सामने व्यक्त हुईं। अनन्तर वे दोनों मारे गये और उनके शरीरसे मेदोराशि उत्पन्न हुई । इस घटनासे जो पृथिवीका 'मेदिनो' नाम रखते हैं, उनका कहना है, कि पहले पृथिवी जलप्रवाहसे थोई जानेके कारण करा हो गई थीं ; पीछे दोनों असुरकी मेदोराशिके योगसे परिपुष्ट हुई हैं। किन्तु पृथिवीकी ज़त्पत्तिके सम्बन्धमें प्राचीनकालसे पुष्करतीर्थामें रह कर हमने साक्षात् धर्मसे सववादि-सम्मत जो विवरण सुना है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। अति प्राचीन कालमें चिरजंल-मग्न महाविराट् पुरुपके शरीर पर बहुत दिनों तक सर्वाङ्ग सङ्गी मैळ जम गयी थी। कालफ्रमसे वह मैळ उनके प्रत्येक रोमकूपमें प्रविष्ट हो गयी जिससे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई। है मुने ! पृथिवी उनके प्रत्येक रोमकूपेंमें स्थिरभावसे रह कर पीछे वारम्वार जलके ऊपर आवि भूत और कमी कमी जलके मध्य तिरोसूत होने लगीं।

<sup>(</sup>१) स्वीकार करनेकी बात है, कि ये सब ग्रन्द सचमुच किसी वैद्यानिक आलोचनासे छिद्यान्त हुआ है। इसका अर्थ भी उसी प्रकार स्वतंत्र्ममावर्ष्ट एहीत हुआ कबता है। ऋग्वेद (पार्टपाइ) में पृथिवी ही सूर्यका आस्तरण मानी गई है। Vol. XIV.

<sup>(</sup>२) वृद्धांत्रसुराण अनुवनापाद ५५-५७ अध्याच ।

इस प्रकार पृथिवी सृष्टिकालमें आविर्मू त, स्थितिकालमें जलके ऊपर स्थित और प्रलयकालमें जलमध्यगत होने लगीं। धोरे घोरे वसुधा प्रत्येक विश्वमें अवस्थान कर शैल, चन, सप्तद्वोप, सप्तसागर, हिमालय, मेरु, गृह, चन्द्र और सूर्यमें परिवृत हुईं। पीछे ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति करके समस्त सुरलोक, समस्त पुण्यतीर्था और पुण्य भारतवर्ष पर शोभित हुए। पृथिवीके अघी-भागमें सप्त पाताल और ऊदुध्वीभागमें ब्रह्मलोक अव-स्थान करने लगा। इस प्रकार पृथिवी पर समन्र विश्व निर्मित हुआ। इस विश्वके सर्वोच्च भाग पर गोलोक और वैकुएउघाम अवस्थित है। ये दोनों धाम नित्य हैं, उनका कमो भी ध्वंश नहीं है। इसके अतिरिक्त और सभो विश्व कृतिम तथा नश्वर हैं। हे ब्रह्मन्! प्राकृत प्रलय उपस्थित होने पर जब ब्रह्माका भी विलय होता है. तव सृष्टि प्रारम्भमें भगवान् विष्णु आत्म द्वारा महा-विराट पुरुषको सृष्टि करते हैं। उस प्रलयके समय क्षितिको अधिष्ठाली देवी भी दिक्, आकाश और ईश्वर इन तीन सत्य पदार्थके साथ अवस्थान करती हैं। ये वराह्कल्पमें सुर, मुनि, वित्र और गन्धर्न आदि कत्तृ<sup>'</sup>क पूजित हो कर पीछे वराहरूपघारी भगवान् विष्णुकी भ्रुति-सम्मता पत्नी हुईं। इनके पुत मङ्गल और पौत्न चल्टे श हुए इत्यादि।

वसुधाने कहा —हे भगवन ! में आपके आज्ञानु-सार वराहरूप धारण कर लीलाकमसे ही इस सचराचर विश्वमण्डलको धारण करूंगी। परन्तु मुक्ता, शुक्ति, हरिको अर्चना, शिवलिङ्ग, शिला, शङ्क्षु, प्रदीप, मन्त्र, माणिक्य, हीरक, मणि, जपमाला, यज्ञसूत्र, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, पुष्पमाला, कर्पूर, सुवर्ण, गोरोच्चना, चन्दन और शालप्राम-जल इन सव चस्तुओंको धारण न कर सक्नुंगी। क्योंकि उक्त द्रव्य यदि विना आधारके मेरे उपर एक्खे जांय, तो मुक्ते वड़ा हो क्लेश होगा। भग-वान्ने कहा—हे सुन्दरि! जो मूढ़ व्यक्ति ये सव द्रव्य विना आधारके तुम्हारे उत्पर रखेंगे, दिव्य-परिमित सौ वर्ष तक कालसूत्र नरक वास करेंगे।

इस पृथिवीको पूजा, मन्त, ध्यान, दान, स्तव और जनन आदिका विधिनिपेध विवरण विस्तार हो जानेके भयसे नहीं लिखा गया। ( ह्या नैनर्सपुराण प्रकृतिखंडहै अम अध्यानमें पृथिवी- 'पास राज देखी।)

उक्त पुराणके श्रीकृष्ण-जन्मखएडमें लिखा है, कि मन्त, मङ्गळकुम्म, शिवलिङ्ग, कुंकुम, मधुकाष्ट, चन्दन, कस्तूरो, तीर्थमृत्तिका, खड्ग, गएडकखड्ग, स्फटिक, पद्मराग, इन्द्रनील, सूर्यकान्तमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, निर्माल्य और हरिद्वर्ण मणि आदि पृथिवोक्ते ऊपर नहीं रखनी चाहिये। ये सव द्रव्य पृथिवोके भारसक्त हैं। जो कृष्णभक्तिहीन और कृष्णभक्तोंकी निन्दा करते हैं, जो अपनी धर्माचारहीन और नित्य किया नहीं करते, जिन्हें वेदवाक्यमें श्रद्धा नहीं है, जो पिता माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और पोव्य-परिजनींका प्रतिपालन नहीं करते, जो मिथ्यावादी और निष्ठुर हैं तथा जो 'सब मनुष्य गुरु-निन्दक, मिलट्रोही, ऋतव्र, मिथ्यासाक्षिदाता, विश्वास-घाती, न्यासहर, हरिनामविकयी, जीवघाती, गुरुद्रोही, प्रामयाजी, लोभी, रावदाही और शूदगृहभोजी हैं, पृथिवी उनके भारसे पीड़ित रहती हैं। अलावा इसके जो पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत और नियम कुछ भो तहीं करते तथा सर्वदा गो, ब्राह्मण, देवता और वैष्णवींसे होप रखते हैं तथा जिनके मुखसे हरिकथा कमी नहीं निकलती और न भीतर हरिभक्ति ही हैं, वे पापिष्ट हैं। पृथिवी उन्के भार-से क्वान्त होती हैं। । व्रश्न ेवसे श्रीकृष्णवन्त्रसु० ४४० )

इस पृथिवो पर ग्रामशस्यादिको उत्पत्तिके सम्बन्धेमें विण्णुपुराण लयोदश अध्यायके प्रथमांशमें पृथुचरितमें इस प्रकार लिखा है, —पृथिवीपित सम्राट् पृथुके
राजत्वके प्रारम्भमें प्रजाने दुर्भिक्षादि नाना क्रेशोंसे
पीड़ित हो राजाके पांस जा निवेदन किया, 'राजन!
धरिती अराजक अवस्थामें सभी ओषधियां ग्रास कर
गई हैं; इसलिये अनके अभावसे प्रजाका दिनों दिन क्षय
होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें विधाताने आपको हो
हम लोगोंका प्रतिपालक निर्दिष्ट कर दिया है। अतप्त
हे प्रजानाथ! हम लोग आपकी प्रजा हैं, जिससे हमलोगोंकी जीवनरक्षा हो, वैसी कोई जीवनौषधि हम
लोगोंकी प्रदान कीजिये।' राजा पृथु प्रजाकी कातरोकि
सुन कर वसुन्धरा पर वहें विगड़े और धतुर्वाण हाथमें
ले कर उसी समय उनके प्रति दीड़ पड़े। इधर वसुन्धरा

ने भी पृथुराजाको उस अवस्थामें आते देख उरके मारे गोका रूप घारण कर लिया और ब्रह्मलोकादिकी ओर रवाना हुईं, पर कहीं भी उन्हें चैन न मिला। जहां जहां वे जा कर उहरती थीं, वहीं उन्हें मालूम पड़ता था, कि पृथु राजा हाथमें शरासन लिये सामने खड़े हैं। अन्तमें प्राणके भयसे वसुधा देवीने राजासे कहा, नरेन्द्र! आप मुक्ते वघ करनेके लिये उद्यत हुए हैं ; किन्तु स्रोहत्या करना महापाप है, क्या यह आए नहीं जानते ?' इस पर राजाने कहा, 'यदि एक दुए व्यक्तिका : विनाश करनेसे वहुतींको जीवन रक्षा हो, तो वैसी हिंसा-से पाय नहीं होता, वरं पुण्य ही होता है।' वसुन्धराने फिर निवेदन किया, 'हे प्रजानाथ ! आप यदि प्रजाके उपकारके लिये मेरी हत्या करते हैं, तो वताइये, आपकी प्रजाका वासस्थान कहां होगा? राजाने जवाव दिया, 'वसुधे! तुम मेरा शासन प्राह्म नहीं करती, इसीसे तुम्हें विनाश करके में अपने योगवलसे प्रजाको धारण करूंगा।' राजाके इस प्रकार कहन पर पृथिवी डर गईं भीर उन्हें प्रणाम कर वोलीं, 'राजन्! आप यदि चाहें, तो मैं फिर आपको सभी जीर्ण ओपिंघयां दे सकती हूं, पर हां! आप मुक्ते एक वत्स दें और तमाम समतल करवा डालें। ऐसा होनेसे ही मेरा दूध गिर कर सब जगह समान भावमें फैल जायगा।' पृथुराजने पृथिवीके अतु-रोघसे घतुकोटि द्वारा वहुसंख्यक पर्यतको अपने स्थान-से ह्या दिया और नतोन्नत भूमागको इस प्रकार सम-तल करवा डाला जिससे पृथिवी प्रचुर शस्य उत्पादन कर सकें। महाराज पृथुके राजत्व-कालसे ही यह पृथिवी नगर ग्राम और प्रशस्त वणिक्षथ आदिमें विभक्त हुई हैं। ऋषि, गोरक्षा और ग्रस्यादि उसी समय-से सुचारुरूपमें सम्पन्न होने लगे। इसके पहले और कभी भी ऐसा नहीं हुआ था। पृथुराजने प्रजाकी भलाईके लिये खायम्भुव मनुको वत्सको कट्यना करके अपने हाथसे इस पृथिवासे शस्यादि दोहन किये थे, इसीसे भूमिका पृथिवी नाम पड़ा है।

नेयायिकोंका मत्।

न्यायके मतसे यह पृथिवी गुरु और रसयुक्त है।
इसमें रूप, नैमित्तिक द्रवत्व और प्रत्यक्षयोगिता विद्यमान

है। स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, द्रवत्व, गुरुत्व, रूप, रस और गन्ध ये चौदह इसके गुण हैं।

गन्य दो प्रकारको है, सौरम और असौरम । इन्हीं दो गन्यके हेतु पृथिवी है, अर्थात् जहां गन्य है वहां क्षिति-का अंग्र है, ऐसा जानना चाहिये। इस पृथिवीमें नाना प्रकारके रूप और छह प्रकारके रस विद्यमान हैं। इस-का स्पश-अनुष्ण, अग्रीत और पाकज है।

पृथिवी हो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। पर-माणुस्ररूपा पृथिवी नित्य और अवयवशास्त्रिनी पृथिवी अनित्य है। यह सावयव-पृथिवी देह, इन्द्रिय और विषम मेद्से तीन प्रकारकी है। इनमेंसे योनिजादि देहरूपा, ब्राणरूपा, इन्द्रियात्मिका और द्वाणुकादि ब्रह्माएड पर्यन्त पृथिवी विषयात्मिका नामसे प्रसिद्ध है।

पारचारय वा आधुनिक मतसे भूतस्य।

नद्नदीगिरिमालासे ले कर आसमुद्र तक विस्तृत भूमि खएड-जिस पर हम लोग (मनुष्यमात ही) वास करते हैं, जिसके उत्पन्न जात दृथसे हम लोग उदर भरते हैं, वहीं-सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला भूखएड पृथिवी ही है। दिग्वलय ( दृष्टिच्यापिका Horizon ) परिवेष्टित वन उप-वन आदि जो सव प्राकृतिक सौन्दर्य देख कर हम लोग विमोहित होते हैं, दैत्य दानव मानव और पशु पक्षी कीट पतङ्ग जिस भूमि पर विचरण करते हैं, वही भूमएडल है। वायु और वाण्य जिस प्रकार जगत्के अङ्गाधोन हैं, सूर्यां होक भी उसी प्रकार जीवका प्राणदायी है । इसी कारण स्यंके साथ पृथिवोका घनिष्ट सम्पर्क स्चित हुना है। विशेष आलोचना और अनुसन्धान करनेसे मालूम हुआ है, कि पृथिवीके उत्पत्तिकालसे भिन्न भिन्न युगोंमें भिन्न भिन्न जोव-जगत् ख्रष्टाकी अपार करूणासे इस कर्म-क्षेत्रमें प्रकाशमान हुआ था । पौराणिकी कल्पनासे आदि ( सत्य ) युगमें मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह आदि अव-तारोंका आविभीव कल्पित हुआ है और उसी प्रसङ्गमें विभिन्न श्रेणीकी जीवदेहादिका चणन लिपिवद हुवा है। परन्तु वैद्यानिक अनुसन्धानसे आविष्कृत प्रस्तरीभृत अस्थिदेहके अवस्थानसे उस युगके मृत्तिकास्तरकी प्राचोनता यदि खीकार की जाय, तो यह स्पष्ट प्रतीतं

होता है, कि पृथिवीको प्रथमावस्थामें अद्भुताकार बृहदा-यतन अनेक जीव जगत्में विद्यमान थे।

यूरोपोय तत्त्वविदोंने पृथिवीजीवनके इतिहासको चार युगोंमें विभक्त किया है—१ छा, आर्कियन इरा ( Archaean Era ) वा युगमें Laurentian Period और Huronian Period नामक दो पूर्वतन प्रारुध विभागोंका उल्लेख है। २रा, पेलियोजोइक इरा ( Paleozoic Fra ) वा युगके ( Silurian, Davoniar, Catboniferous ) विभागमें यथाक्रम कशेरकास्थिविहीन कीव, मतस्य और वृक्षलता शम्बूकादिका उद्भव देखा जाता है। ३रा, मेसोजइक (Mesozoic Era) युगके (Triassic Jurassic Cretaccous) कालमें एकमाल सरीख्पका प्रावल्य लक्षित होता है। ४था, सिनोजङ्क ( Cenozoic Era ) युगके Tertiary और : ¿uaternary विभागमें स्थूलचर्मा स्तन्यपायो जीव और मानव-जातिकी उत्पत्ति होती है। इसके वाद् Post Tertiary प्रभृति युगान्तरका भी उल्लेख देखा जाता है। त्रेता और द्वापरादि युगके पहले पृथिवोका अस्तित्व हम लोग भी खीकार करते हैं। सत्ययुगसे हिन्दूजातिकी वर्त्तमान पृथिवी है। मतस्ययुगसे हो जव पृथिवीके जीवोंके इतिहासका प्रथम निद्शेन पाया जाता है, तव उसे प्रथम मान कर परवर्ती युगकी कल्पना की गई। १ला (Age of Fishes) २रा-सरीख्वयुग ( Age of Repules.) इरा स्तन्यपायोगुग (Age of Mammals) और 8था-मनुष्ययुग (Age of Man)। पुराणाख्यानमें जीवशून्य अपार जलधि-जलमें मत्स्य ही जगतका प्रथम जीव है। धीरे घीरे कुमें, वराह, नृसिंह आदिका अधिष्ठान हुआ है । परमेश्वरको इच्छा पर हो ज्ञवं सृष्टि है, तव वे ही मानो भिन्न भिन्न जीवक्रपोंमें अवतोणे हुए । ऐसी रूपक-कल्पना नितान्त अन्याय

भी नहीं जाती। पुराणमें द्वितीय युगमें जिस प्रकार प्रकार्ड शरीर और अङ्गुतायतन कूर्मकी अवतारणा की

है, उसी प्रकार द्वितीय युगान्तर प्राप्त 'श्लिसियोसोरस इक्कथियसोरस' आदि प्रकाएडदेही सरीस्प्रका हम लोग निद्शन पाते हैं। इसके वाद अस्थूलचर्मा स्तन्यपायी स्तुष्पद जन्तुओंका आविर्मावकाल है। सबके अन्तमें

30%

मनुष्य प्रथम जन्मकालमें अपेक्षाकृत निक्कष्टाकार था। महामित बार्ड्डनने इस विषयमें अनेक वादानुवाद किये हैं। यही कारण है, कि इम लोगोंके देशमें वामनरूपी मानवके पहले नृसिद्दावतारका उल्लेख़ आया होगा। यह अनुमान जनसाधारणसे सत्य नहीं माने जाने पर भी पौराणिक उपाख्यानके मध्य रूपक रूपमें अनेक वैज्ञानिक सत्य सन्निवेशित है। विक्रानके आलोकसे यदि देखा जाय, तो उससे अनेक लुप्त सत्यका उद्धार हो सकता है।

पास्वाध्य मतसे पृथिवीकी अस्पति ।

सूर्वके साथ पृथिवीका जो घनिष्ट सम्बन्ध है, वह सहजमें जाना जाता है। उनकी ज्योतिः विस्फारित आलोकराशि नहीं पानेसे हम लोग कभी भी देख नहीं सकते और न समस्त जागतिक पदार्थ चिरप्राणता लाभ कर सकता। अभी प्रश्न हो सकया है, कि यह पालियती धरित्रो और सर्वप्राणदायो सूर्य कहांसे आये? इस पर यदि थोड़ा भी विचार किया जाय, तो हम लोगोंका कौतुहल बढ़ता हैं और हम लोग इस विस्तृत ब्रह्माएडकी उत्पत्ति जाननेके लिये स्तर: इच्छुक होते हैं।

पृथिवी हम लोगोंका वासस्थान है, इसीसे पृथिवी तत्त्व जाननेके लिये हम लोग इतने व्याकुल हैं; किन्तु सौर जगत्के प्रत्येक ज्योतिष्कके साथ प्रत्येकका ऐसा विशेष सम्बन्ध है, कि एककी भी उत्पत्ति जाननेमें दूसरीकी भी उत्पत्ति उसके साथ जाननी होती है। किसी किसी जातिकी किम्बदन्तोमें सृष्टि-सम्पर्कीय जो कथा सिज्ञविशित है, वह कल्पनाप्रस्त होनेके कारण अशाह है। किन्तु प्राकृतिक नियमावलीकी पर्यालोचना द्वारा इस विषयमें जो सिद्धान्त हुआ है, वही वैज्ञानिक जगत्में परिगृहीत और जनसाधारणका अनुमोदित है।

सौर जगत् एक वृक्ष है, सूर्य उसके काएड और उप-प्रहादि उसकी शाखा-प्रशाखा मात हैं। जमेन-दार्शनिक काएटने वैज्ञानिक नियमानुसार सृष्टिके सम्बन्धमें आलो-चना करके स्थिर किया है, कि प्रह और उपप्रहादिक

<sup>#</sup> वस समय केवल **६ ग्रह और ६ उ**पग्रह आ<sup>विस्</sup>रत हुए थे।

आकाशमार्गमें एक हो समतलपथसे स्यके चारों और वकाकारमें धूमते हैं, कमो भी दैव समाधित नहीं हो सकते, वरन किसी साधारण नियम उलसे यह समस्त सौर जगन् एक ही पथसे प्रधावित होता है, किसी पदार्थ द्वारा ज्योतिष्कगण परस्पर संयुक्त रहनेसे समस्त्रमें चल सकते थे, पर यथार्थमें इथरमय (Ether) आकाशमें प्रहगण एक दूसरेसे अलग रह कर घूमते हैं। इथरके जैसे स्तमतर पदार्थमें संलिम रह कर प्रहादिकी ऐसी गति क्यों हुई? काण्डका कहना है, कि पहले सौर जगन् आवर्त्तमान विश्ड्वल वाप्पमय पदार्थराशिमें व्याप्त था। किसी किसी जगह वाप्पके धना रहनेके कारण माध्याकपणके वलसे वाप्प-जगन्के लघु अंश धने स्थानके वाप्पके साथ मिल कर एक एक गोलकमें परिणत हुए हैं।

हराङ (Sir William Herschel )-ने दूरवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे आकाशमें भिन्न भिन्न अवस्थापन्न भिन्न भिन्न वाष्पख्रड देख कर यह स्थिर किया है, कि प्रदीत नीहारिका राशिके अवस्थान्तरसे ही जगत्की अभिव्यक्ति है और आकाशमें आज भी जो सव नीहारिका विद्यमान हैं, कालकमसे वह भी एक एक ज्योतिष्कमें परिणत होंगी आधुनिक ज्योतिर्विद्रिने परीक्षा द्वारा उक्त मतका समर्थन किया है। छैप्लेस ( Laplace )-ने सौरजगत्का गति-सामञ्जरय देख कर जी कारण निर्देश किया है, वह भी पूर्वमतका समर्थन करता है। उनके मतसे आकाशमें अभी जो प्रह उपप्रह विराजित हैं, वे एक समय ( सीरजगत्-को आदिम अवस्थामें) विशाल गोलाकार ज्वलन्त वाप्प-राशिमें ध्याप्त थे। क्रमशः वह वाष्पराशि एक आवर्त्तन-शलाका अवलम्बन करके अपने चारों ओर ग्रुमती थी। इस प्रकार वाष्पराशि शीतल हो कर केन्द्रकी और संकु-चित होने लगी । सङ्कोचनके अनुसार घूमनेवाले सभी पदार्थोंकी गतिकी बेगवृद्धिसे केन्द्रातिगशक्ति वढ़ती है। घूमते हुए गोलकके कटिदेशकी गति सबसे अधिक है, इस कारण वहांकी केन्द्रातिगशक्ति उसी परिमाणमें अधिक है। गोलकके प्रत्येक अंशकी केन्द्राति :-शक्ति भी उस अंशकी माध्यानंपंणशक्ति जव तक समानमावमें

रहती है, तब तक लगातार घूमती रहेगी। 🛎 इस प्रकार उस वाप्य-गोलककी केन्द्रातिग-शक्तिके बढ् जानेसे विधुव रेखासन्निहित स्थल केन्द्राकर्पणको अतिक्रम करके मुळांशसे विच्छिन्न हो जाता है और एक स्वतन्त अंगु-रीयकाकार चक्रक्रप धारण करता है। अवशिष्ट अंशसे फिर विच्छिन्न हो कर वह अतिविस्तृत वाप्पराशि कुछ खतन्त्र चक्रोंसे परिवेधित एक वृहत्तर गोलक्रमें परिणत होती है। वही हम छोगोंके सूर्य हैं। एक एक स्वतन्त चकके धनस्थानके आकर्षणसे चारों ओरके सभी छोटे छोटे अंश मिल कर एक एक स्वतन्त्र ब्रह्रूपमें सुष्ट हुए हैं। पूर्वोक्त रूपसे परित्यक्त अतिविस्तृत चक्रके भीतर-से छोटे छोटे चक्र खतन्त्र हो कर जो सव ज्योतिष्क हुए हैं उनका नाम उपग्रह है। यदि किसी चक्रके सभी स्थानींका घनत्व और उसके कारण आकर्षण भी समान हो, तो उक्त पदार्थराशि खतन्त्र गोलकमें परिणत न हो कर शनिप्रहके जैसे प्रहके चारों और चक्राकारमें घूमती रहती है अथवा उस चक्रसे विच्छिन्न हो छोटो छोटी प्रहमालाके रूपमें परिणत होती है।

छैप्लेसका मत वैद्यानिक-जगत्में विशेष आद्रणीय है। उनके मतानुसार सौर जगत्में सूर्य हो आद्मि ज्योतिष्क हैं और सभी सूर्यसे विच्छित्र हो कर आये हैं। पृथिवोके सभाव और उत्पत्तिका पता लगानेमें लियनिक (Leibnitz), लैप्लेस, हर्शेल (Sir John Herschel), दार्शनिक काएट (Kant) और स्रोडेनवर्ग (Swedenborg) आदि महायुखाँने वड़ा परिश्रम किया। लैप्लेसने निगमनप्रणालीसे नीहारिकाकल्पन (Nebular hypothesis)-का जो सिद्धान्त स्थिर किया है, आधुनिक पण्डित सर विलियम टमसन और हेल्महल्टस व्याप्ति (Induction) प्रणालीसे उसी सिद्धान्त पर प्रांचे हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि स्यैके उत्पातके विना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। छोटे पतङ्गके पंख आने-से ले कर प्रकाएड पर्यतके चूर्णन तक सभी कार्य सूर्यके उत्तापसे सम्पादित होता है। सूर्यसे हम लोग पृथिवीका जीवन-एक्षाकारी जितना उत्ताप पाते हैं, कुल मिला कर

Vol. XIV. 79

<sup>#</sup> जन्हारका जमता हुआ बनका इसका एक प्रकृष अहा-इरण है।

उसका २१७०००००० गुणा उत्ताप वेकार इधर उधर पड़ता है। स्पैसे इतना उत्ताप निकलने पर भी वह किस प्रकार अपने उत्तापकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए हैं? प्राकृतिक नियमसे वाष्प शीतल होनेके समय संकृचित हो उत्ताप विक्षेप करता है। स्पैक्षप वाष्पगीलक शीतल हो कर जितना संकृचित होता है, उतना ही उसका उत्ताप वढ़ता है(१)। सूर्य देली।

सूर्यपरित्यक वाण्यीय चक्र गोलकक्षप धारण करके सूर्यके चारों ओर घूमता है। धीरे धीरे वह शीतल और घना हो कर तरल हो जाता है। तरल गोलकके घूमनेसे उसके दो मेरु कुछ दव जाते और मध्य देश स्कीत हो उठता है। (२) उक्क नियमानुसार सूर्यत्यक एक वाण्यचक्र पृथिवीको गतिका परिमाण लेकर न्युटनने विषुवरेखास्थ प्रदेशको उन्नति और मेरु सिन्नहित प्रदेशको अवनतिका परिमाण स्थिर किया है। १७३६ ई०में फ्रान्सको वैद्यानिक समासे क्लारो, लेमनिये आदि कुछ मनुष्य पृथिवीके वृत्तांशका परिमाण लेनेके लिये लाप्लाएडदेश मेजे गये और उसो समयमें वुगें तथा कंदामिनने दक्षिण-अमेरिकाकी विषुवरेखाका परिमाण अवलम्बन करके अङ्कर्णना द्वारा न्युटनका गणन-फल प्रतिपादित किया।

वाष्पमय पृथिवो शीतल हो कर धीरे धीरे जब धनो अवस्थामें आई, तव सभी वाष्प तरल हुआ, इसका कोई निश्चय नहीं । कुछ ती उसी अवस्थामें पृथिवीके उत्पर रह गई और कुछ आज भी पृथिवीके उत्पर मौजूद है। पृथिवीका यह वाष्पावरण एक समय चन्द्र तक विस्तृत था, इसमें सन्देह नहीं । उस तरल अवस्था-

(१) गणना द्वारा स्थिर हुआ है, कि सूर्य उतापशिक ज्ययं करके भी नवमें २२० फुट अपना ज्यास संक्रित करते हैं। इस हिसाबसे प्रति ग्रातान्दमें सूर्यका थ मीड संकोचन आवश्यक है। इस प्रकार एक समय सूर्यवाद्य बुध, पृथिवी-कक्ष, यहां तक कि सौर-जगत्मय ज्याप्त था।

(२) मेर्सितिहित स्थानकी अपेक्षा कोटिसितिहित स्थानकी केन्द्रातिग गति अधिक होनेके कारण वह केन्द्रातुग श्राक्तिकी अतिकाम करके स्पीत होती है और दोनों मेर विषुवरेखाकी सीर दब कर दोनों ओर निपक जाता है।

में पृथिवीका उत्ताप २००० सेविद्यों इ जिभीका परिमाण था। तापमान-यन्त्रके १०० उत्तापसे ही कुछ उवलने लगता है, २००० उत्तापसे लीह प्रभृति घातुमय इल और अपरापर वस्तु यदि वाष्पाकारमें पृथिवीके ऊपर वह भी जाय, तो आक्वर्य ही क्या!

जिस आकाशमें अभी प्रहण अवस्थित हैं, वहांका उत्ताप बहुत कम है। उत्तप्त तरल पृथिवीने (२०००') शीतल आकाशपथमें घूम कर भपना उत्ताप बहुत कुछ घटा दिया। शीतलताके कारण तरल पदार्थ धना हो कर और भी दूढ़तर होने छगा । च दके आकर्षणसे ज्वार-भाराके कारण पृथिवी और भी शीतल हो गई। इत्यादि कारणोंसे जब पृथिबी एक तरहसे शीतल होती आई, तव मेरुसन्निहित समुद्र बहते हुए हिमशैलकी तरह अद्धैतरलावस्थापन्न जमी हुई पदार्थराशि पृथिबी पर जहां तहां बहने लगा । धीरे घीरे तरल पृथिवीके समस्त पृष्ठदेशने इस प्रकार जमी हुई प्दार्थराशि पर आवृत हो कर एक आवरणकी सृष्टि की। किन्तु ऐसे सूक्ष्म आच्छादनसे आभ्यन्तरीण ज्वार भाटा बंद नहीं हुआ। वीच वीचमें आवरणको छेद कर तरलपदार्थ-राशि प्रचएड वेगसे ऊपरको ओर उत्क्षिप्त होने छगी। धीरे धीरे ऊद्धींत्थित पदार्थराशि ही शीतल हो कर पर्नतरूपमें परिणत हुई।

सभी हम लोग पर्वतश्रेणी-समाकीण वाष्पमिष्डत उत्तत मरुमय पृथिवी देखते हैं। धीरे धीरे उत्तापका और भी हास हुआ। जब श्रून्य स्थानमें बहते हुए जलीय-वाष्पका वाष्पाकारमें रहना असम्मव हो उठा, तव वही वाष्पराशि जम कर उत्तत जलाकारमें पृथिवी पर गिरी। पृथिवीके जपर वृष्टिपतन-युगका यह प्रथम आरम्भ है। उच्च पृथिवीके जपर वृष्टि पड़ते ही वह उच्च वाष्पाकारमें जपरको उठा। शीतल आकाशके संस्पर्शसे वह पुनः शीतल हो कर वृष्टिक्पमें जमीन पर गिरा। जलकी धनी धनी अवस्थाके परिवर्तनसे अन्धकाराच्छक्ष पृथिवीने विधुत्के आलोक और वक्षकी ध्वनिसे धनधरा वजा विया। यह भौतिक विश्व कर्व तक वला था, उसका कोई निक्चय नहीं है। जलके सारी पृथिवी पर फैल जानेसे वाष्पावरण कुछ पतला हो आवा

·; V.

नीर अस्कुट सूर्यराशिने वह दिगन्तव्यापी अन्यकार मेद कर अपने आलोकसे जलस्रावित पृथिवीको पुलकित कर डाला था।

भारतीय मतते पृथिवीका आकार और त्यम व ।

सारतवरीय प्राचीनतम भूगोलवित् परिडतींने
पृथिवीके ऑकारनिर्णयमें यथेष्ट वुडिमत्ताका परिचय
दिया है। किसी किसी पुराणमें पृथिवीको लिकोण वा
चतुंकोणादिकंपमें वतलाया है। विष्णुपुराण और
भागवतमें पृथिवीका आकार पद्मपत्नके जैसा वतलाया
है। सिडान्तिशरोमणिमें गणित और युक्तिवलमें घरणीका जैसा आकार और समाव निर्णीत हुआ है, वह
सर्वतीभावमें यूरोपीय ज्योतिर्विदोंका मत प्रतिपोयक है।
"भूमें पिएंडः श्रशाङ्कमक्विरिविक्रजेज्यार्किनक्षतकक्षा।
वृत्तेवृत्वो वृतः सन् मृद्दिनलस्लिलव्योमतेजोमयोऽयं।
नान्योधारः सशक्त्येव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य एन्डे,
निन्धं विश्वज्ञ शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात॥"

( झिद्रान्तशिरोमणि )

पञ्चभूतमय यह गोलाकार भूमिखंख चन्द्र, बुध, शुक, मंक्नेंल, वृह्हेंपंति, शनि और नक्षतकक्षींवृतसे आवृत्त हो कर विना किसी आधारके आकाश-पथमें अपने शक्तिवल परे अवस्थित है; और उसी शक्तिके प्रभावसे देव-देत्यादिके साथ विश्वसंसार अधिष्ठित है।

गोलाध्यायमें ब्रह्माएडके गोलत्वका िर्भेष्ट प्रमाण मिलता है—

"भूभूघरतिदशदानवमानवाद्या ये

याश्च धिष्ट्यगमनेचरचक्रकक्षाः।

\* कोई कोई यूरोपीय वैद्वालिक पृथिवीके आकृतिगत बाइरेयसे उत्तर-दक्षिण अमेरिका और अभिकाके त्रिकोणत और यूरोप-एशियाको चतुर्भुजनक्ष्म केरिया करते हैं। "It will be seen that the three continents of North and South America and Africa are triangular in shape and that the great continent of Europe and Asia, while it is more or less quadrilateral, sends great peninsulas into the Océan" (Beale's World's Progress, p. 3.) लोकव्यवस्थितिरुपयु परिप्रदिष्ठा

ब्रह्माएडभाएडजररे तिवृदं समस्तं ॥" ज्योतिर्विदोंने पृथिवी पर्वं त, देवदानव, मानव भौर उपर्यु परि सप्तलोकींकी व्यवस्थिति इस ब्रह्माएडभाएडो-द्रामें कल्पना की है। पृथिवीको गोल्डत्वका विषय नीचे लिखा जाता है।

यह परिदृश्यमान पृथिवी कदम्व-पुष्पकी तरह गोछ तथा वन, पर्वत और नगरादि परिशोभित है।

"सर्गतः परतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः । कदम्बकुसुमग्रन्थिः केशरप्रसरैरिव ॥"

भूगोल शम्दमें विस्तृत विवरण देखी।

पृथिवी गोल है, इसके प्रमाणार्थ भारतीय ज्योतिर्वि-वोंने जो युक्तियां अवलम्बन की हैं, वे सर्वतोभावमें प्राह्य हैं। चन्द्रमाको अपना प्रकाश नहीं है, स्र्यिकिरण द्वारा वे आलोकित होते हैं। पृथिवींके छायापात द्वारा स्र्यि-किरणके अवरोधको चन्द्रमहण कहते हैं। उस समय पृथिवींकी जो छाया चन्द्रमा पर पड़ती है, वह हमेशा गोलाकार दिखाई देती हैं। धरिली यदि गोलाकार नहीं होती, तो उसकी छाया कमी भी गोल दिखा नहीं पड़ती। प्रहणके समय चन्द्रकी श्रङ्गोन्नति ही गोलाकार छाया-पातका कारण है। चन्द्रग्रहण और श्रंगोन्नति शुझ्द देखो।

मत्स्य और कुर्मपुराणमें पृथिवीका गोलत्व स्वीकृत हुआ है।

"ऊद्दृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मएडलाइतिः। स्पर्भानोस्तु वृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयं॥" ( क्रुर्मपु०पु० ४०११५ और मत्स्यपु० १२८।६० )

किन्तु किसी किसी पुराणके मतसे बसुधाको सम-तल वतलाया गया है। महामित भास्कराचार्यने युक्ति द्वारा उस मतका खएडन कियाँ है—

"यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणीतरणिः क्षितेः। उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरेरमरेरिव नेक्ष्यते॥"

पृथिवी यदि द्र्पणोद्रको तरह समतल होती, तो उसके बहुत ऊपर भ्रमणशील सूर्य मनुष्यको हमेशा दिखाई देता अर्थात् कभी भी दिन रात संघटित नहीं होती।

# यूरोपीय पिड्नोंने घरामंडलको कनल नीवृत्ती तरह गोल और उत्तर दंशिणमें कुछ विपटा बंतलाया है। पृथिवीके समतलस्व मतका निरसन और गोलत्व प्रतिपादनार्थं ज्योतिर्वित् ल्लाचार्यं इस प्रकार कहते हैं— "समता यदि विद्यते भुयस्तरवस्तालनिमाबहुष्ल्याः। कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो वान्ति सुदूरसंस्थिताः॥"

पृथिवी यदि समतल होती, तो तालप्रमाण वहुत बड़े बड़े वृक्ष दूरसे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते ? इससे पृथिवीका गोलत्य ही स्चित हुआ है, कारण हम लोग जितने ही दूर बढ़ते जाते हैं, लक्ष्यवृक्ष क्रमशः छोटा दिखाई देने लगता है, अन्तमें वह विलक्षल अदृश्य हो जाता।

पृथिवीका गोलत्वनिवन्धन ही जो दिन रात होता है, सिद्धान्तज्योतिःशास्त्रमें वह प्रतिपन्न हुआ है। किन्तु पुराणशास्त्रमें दिवारात्रके निमित्त धरित्रोके मध्यस्थल पर सुमेहपर्वतकी अवस्थिति निरूपित हुई है। उस पर्वतके अन्तरालमें सूर्यगमनके लिये पृथिवी अन्धकार समाच्छन्न होती है। भारकराचार्यने उक्त मतका प्रतिवाद करके इस प्रकार युक्तिप्रदर्शन की है,—

"यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः

स न दृश्यते।

उदगसौ ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिण-भागके॥"

सुमेर पर्वत पर हो यदि रजनीका कारण हो, तो सूर्य जव उसके दूसरी ओर जाते हैं, तव उस खर्णपर्वत-को चमफ दमक क्यों नहीं दिखाई देती ? उक्त पर्वत तो हमेशा उत्तरकी ओर स्थित है, पर सूर्यदेव दक्षिणको ओर अर्थात् सुमेर पर्वतसे अत्यन्त दूरमें क्यों उदित होते ?

( यहां यह आपित हो सकती है, कि वहुदूरस्थ सुमेरु
पर्वत हम लोगोंके दृष्टिपथारूढ़ नहीं हो सकता। किन्तु
अस्तकालमें जब हम लोग सूर्यको देखते हैं, तब तिन्नकरवत्तीं पर्वत क्यों नहीं दिखाई देगा? रूपक अंशको
बाद दे कर यदि देखा जाय, तो सिद्धान्तज्योतिःशास्त्रके
साथ पौराणिक मतका विशेष अनैक्य मालूम नहीं
पड़ेगा। भूमएडलके उत्तरमें सुमेरु पर्वत है। उत्तरप्रुच-नक्षतका निम्नस्थ भूभाग उसका शिखर कहलाता
है। उक्त शिखरका देश देवभूमि स्वर्ग और तिहिपरीत
विश्रण प्रुवका निम्नस्थ प्रदेश पाताल नामसे प्रसिद्ध है।

यथार्थमें अधःप्रदेशका नाम पाताल है, इसी कारण अमेरिका अधःप्रदेश पाताल कहलाता है। भूमण्डलके उत्तरांशका रूपक नाम यदि सुमेर हो, तो सुमेर पर्वतको
ही दिवारालका कारण कह सकते हैं। भूमण्डलकी
गोलाई दिवारालका कारण है, यह ज्योतिःशास्त्र-सम्मत
है। स्र्यंका सुमेर पर्वतके अन्तरालमें जाना यह पौराणिक मत प्रकारान्तरमें उक्त मतका पोपण करता है।
पुराणमें इस सुमेरको खर्णमय वतलाया है। उत्तरकेन्द्रस्थ यृहज्ज्योति ( Autona Bornel-- ) सुमेरके
स्वर्णमय रूपकत्त्वका कारण है।)

पृथिवी गोल होने पर भी प्रत्यक्षतः समतलक्षेतको तरह क्यों दिखाई २ती ?

"अन्यकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतोमुखं। पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां चसुन्धरां॥" (स्र्थैसि॰)

विपुल अवनीमण्डलके सम्बन्धमें मानवगण वहुत छोटे हैं, इसी कारण पृथिवी वास्तविक गोलाकार होने पर भी लोगोंको चकाकार समतलक्षेत्रको तरह दि बाई देती है। गोलाध्यायमें इसके और भी कितने प्रमाण मिलते हैं—

"समी यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी . नितरां तनीयान्।

नरश्च तत्पृष्टगतस्य इत्स्ना समेव तस्य प्रति• भात्यतः सा॥" ( गोलाध्याय )

भूमएडलके विषुल होनेके कारण ही भूपरिधिका शतांश तत्पृष्ठस्थित मनुष्यके पक्षमें समतलक्ष्पमें प्रति-भात होता है।

वसुधा जव गोल है, तव अवश्य ही ऊर्द्धाधः मानना होगा, तो फिर क्या कारण है, कि निम्नदिक्स्थ य्राम-नगरवासिगण रूजलित नहीं होते। वसुधा गोल होने पर भी उसके ऊर्द्ध अधः नहीं है, वह कल्पनामात है। सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है:—

"सर्वतेव महीगोले खह्थानमुपरिस्थितं । मन्यते ये यतो गोलस्तस्य कोड् कवाप्यधः॥" (सूर्यसिद्धान्त)

पृथिवी गोलाकार और आकाशमें स्थित है, इस्

लिये उसके ऊर्द कहां है ! और फिर अधः ही कहां है ! भूमएडल पर सभी अपने अपने स्थानको उपरिस्थित समकते हैं । इस विषयमें भास्कराचार्य और भी लिखते हैं.—

"यो यत्न तिग्रत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि-स्थितञ्च ।

स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्थेगिवा-मनन्ति॥

क्षधः शिरस्काः कुदलान्तरस्था छाया मनुष्य स्व नीरतीरे।

अनाङ्कलास्तिर्यगधःस्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत वयं यथात ॥"

जो व्यक्ति जिस स्थान पर रहते हैं, उस स्थान पर रह कर ही वह धरातलको अपने पद-तलके नीचे और अपनेको धरितीके ऊपर सम-भता है। पृथिवोका 8र्थ भाग (६० अंश) स्थित व्यक्तिमातके ही धरामण्डलके ऊपर अधिष्ठित रहने पर भी तिर्यगुभावमें है पेसा मालूम पड़ता है। फिर जो टीक विपरीत भागमें (१८० ऊपरमें) वास करते हैं, जंडाशय-तीरस्थ मनुष्यके जळगत प्रतिविम्बकी तरह उन्हें हम लोग औंधे मुंह खड़े समभते हैं। फलतः यह एक भ्रममात है। इस स्थान पर हम छोग जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार वे लोग भी उस स्थान पर सुखसे रहते हैं। सवोंके पदके नीचे घरणी और मस्तकके ऊपर अनन्त आकाश है। अभी प्रश्न हो सकता है, कि यदि पृथिवीकी श्रन्यमार्गमें अवस्थित हो, तो किस प्रकार वा किस आश्चर्य शक्तिवलसे मनुष्यादि जीव और विच्युत प्रस्तरबण्डादि भूपृष्ठ पर स्थिर है ? आकर्षण-शक्ति-वलसे पार्थिवपदार्थे पृथिवी पर संयत रह कर अनन्त शक्तिके आधार उस ईश्वरका नियम प्रतिपालन करते हैं। ज्योतिःशास्त्रमें पृथिवीका कीई दूसरा आधार कल्पित नहीं हुआ है। परिडतप्रवर भास्कराचार्यने पुराणादि-की इन सब विषयोंकी धारणाको युक्ति द्वारा खएडन किया है-

"मूर्जोधर्ता चेद्वरित्रास्तदन्य-स्तस्ताप्यन्योऽप्येवमतानवस्था। Vol. XIV 80 अन्त्ये कल्या चेत् खशकिःकिमाचे किनोभृमिः खाष्टमूर्तेश्च मृतिः॥"

धरितोधारणके निमित्त यदि मूर्तिमत् आधार स्वीकार किया जाय, तो एकके वाद दूसरेको लेकर् अनन्त आधार मानना पड़ेगा । फिर यदि शेषकी ही स्वीय शक्ति मानी जाय, तो वह शक्ति पृथिवीकी ही स्वीं नहीं स्वीकार की जायगी २। पृथिवी भी सामान्य नहीं है। शास्त्रमें इसे शिवकी अष्टमूर्तिमेंसे एक वतलाया है। भास्कराचार्यने निम्नलिखित युक्तिसे इस विषयकां उपसंहार किया—

"वथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्वृतिः के कठिनत्यमश्मनि। मरुचलो भूरचला स्वभावतो

यतीविचित्रावत वस्तु शक्तयः॥"
जिस प्रकार सूर्याग्निमं उण्यता, चन्द्रमामं शीतस्त्रता, जरुमं प्रवाह, पाषाणमं कठिनता और वायुमं चञ्चलता सामाविक है, उसी प्रकार पृथिवी भी स्वभावतः ही अचला है। क्योंकि वस्तुशक्ति अति विचित्र है। एक अचला शब्द प्रयोगसे ही जो मास्करने पृथिवीका निराधारत्वप्रतिपादन किया है, सो नहीं; उससे पौराणिक कूर्मादि आधारविषयक कल्पना और बौद्धशास्त्रोक्त धरणीका निरन्तर अधोगमनमत निराकृत हुआ है। जो वस्तु समावतः ही अचल है, उसे पकड़ कर रक्षना निष्ययोजन है। वौद्धाचार्यने जिस युक्ति और प्रमाण द्वारा पृथिवीका अधोगमन प्रतिपादन किया है, सिद्धान्तकारने उसी भ्रममतका खण्डन किया है—

"भएअरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः। बस्यं न दृदञ्ज गुरू क्षमातः खेऽधः

प्रयातीति वद्नित वौद्धाः॥" (गोलाध्याय )

वौद्धाचायंका कहना है, कि इतस्ततः राशिचक्रका भ्रमण देख कर ही वसुमती आधारशून्य प्रतीत होती है।(३) ऊपर फेंका हुआ गुरु पदार्थ जिस प्रकार आकाशमें

- (२) श्रीमद्भागवतमं अनन्तरेषका पृथिवीका साधार वतलाया है, उन अनन्तका टूबरा नाम वक्षण है।
- (२) इस विषयंत्र बोद्धात मी पौराणित प्रतका विरोधी है। बादमण पौराणिक मतका प्रतिकाद करते हैं, कि

नहीं ठहर सकता, नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार गुरु भार पृथिवी भी अघोगामिनी होती है।(8) वौद्धगण जिस कारणसे वसुन्धराके अधःपतन पर विश्वास करते हैं, भास्कराचार्यने उस कारणके निर्देश पर ही प्रतिवाद किया है—

"भूः केऽधः खलु यातीति बुद्धिक्वौद्धा मुधा कथन् । यातायातन्तु द्रुष्ट्वापि खे यत् क्षिप्तं गुरुक्षितिम्॥" आकाशमें निक्षित्त गुरुपदार्थका पृथिवी पर यातायात देखं कर ही धरणी नीचे जाती है, ऐसा जो कहते हो, सो भारी भूल है।(५) ज्योतिर्विद्याविशारद भास्करका कहना है, कि उक्तशक्ति पृथिवीका आकर्षण छोड़ कर और कुछ भी नहीं है—

"आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।

आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क पतित्वयं खे॥" (गोलाध्याय)

पृथिवीमें आकर्षणशक्ति है, उसी शक्तिके वलसे शून्य मार्गमें फेंकी हुई गुरु वस्तु इसकी ओर आक्रप्ट होती है। पृथिवी स्वयं चतुपार्श्वस्थ समान आकाशमें कहां पड़ेगी ? यथार्थमें विशाल आकाशके ऊपर नीचे नहीं है। स्वभावतः ही द्राडायमान मनुष्यके मस्तककी ओरको ऊपरं और पादकी ओरको नीचे कहते हैं।(६)

पृथिवीके यदि आधार रहता. तो उधके चारों ओर प्रसक्षराधि-चक किसी हालतमे घूम नहीं सकता था, उस आधारमे अवश्य ही टक्कर समता।

- (४) पृथिवीका नियत अधोगमन यदि स्वीकार किया जाय, तो पृथ्वीसे चन्द्रस्मूर्यादि मर्शेकी दूरता प्रतिमुहुर्तमें अधिक होती, पर वैसा नहीं है। इस कारण योद्धाचार्थगण समस्त सीर्जगत्के अनन्त आकाशमें अधःपतन स्वीकार करते हैं; यह संस्कृत ज्योतिष और पुराणमत-विकद्ध है।
- (५) घरणी यदि निम्नगामिनी होती, तो आंकाशमें निक्षित पदार्थ उसके ऊपर ठहर जाता। कारण, ग्रेरेभार पृथिबी अपेक्षांकृत लघु पदार्थमें और भी जल्ही गिर पड़ती, स्नित पदार्थ किसी हालतमें उसको स्पर्ध नहीं कर सकता था।
  - (हैं) १६८६ ई भी सर आइजक न्युटनने यूरोपेलगर्डन

भारतवर्षीय भूगोळिवित् पिएडतगण प्राप्त-नर्गर-नदीपर्वतादिका संस्थान निर्णय करनेमें वड़े ही असतर्क थे।
भूगोळसंकान्त गणित गणनामें इन्होंने जैसी पारदर्शिता
प्राप्त की थी, उसकी तुळनामें यह कुछ भी नहीं है।
पुराणादिमें इस विपयके जो कुछ निदर्शन मिळते हैं,
काळकमसे वे सव विछ्ठात वा नामान्तरित हो गथे हैं।
इस कारण उन सव गुरुतर विपयोंका परित्याग कर
गोळज्ञानका उपयोगी स्थान हो आळोचित होता है।
"ळङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्थाः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरः सौम्यऽथ याग्ये वड्वानळक्च॥
कुचृत्तपादान्तरितानितानि स्थानानि षड़ गोळविंदो वंदित।
ळङ्कापुरेऽर्कस्य यदोद्यः स्यात् तदा दिनाई यमकोटि पूर्ण
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकाळः स्याद्रोमके राविदंळं तदेव।"

पृथिवीके आकर्षणशक्तिका विषय पहले पहल प्रकाशित किया, किन्तु सेक्नों वर्ष पहले भारतवासीको यह तस्व मास्म या। भानुपंगिक अन्यतस्वका आविष्कार करनेके कारण वैद्यानिक जगत्में उनकी ख्याति फैल गई है। पृथिवीश केन्द्रस्थान ही पार्थिवाकवेणका मूल है, इसे पहले पहल खुटनने ही दिवरे किया | इसीका नाम माध्याकपण है। सभी बह एक द्वरैके आकर्षणसे संबद्ध रह कर अपने अपने कथ पर लगाः तार घूमते हैं। भागवतके पूम स्कन्धके २२वें अध्यायोर्क ''यथा कुलालचकेण मूमता सह भूमता तदाश्रयाणी पिंपी-लिकादीनां गतिरन्यैन प्रदेशान्तरेष्वत्युगलभगमानत्वात्। एवं नक्षत्रराशिभिरुवलिसतेन कालचंकेणं पूर्व भेरुकें प्रदक्षिणतः परिधावता सह परिवादमानानां सूर्वाचीनां ग्रेहाणां गतिरवयेन नक्षत्रास्तरे राश्यन्तरे चोपळभ्यंगानत्व त् ॥" इंखार्दि वंचर्न-प्रमाणेसे सूर्यादियहों न कालवकसे एयंक् रूपक् मूर्मणेल स्वित होता है। फलतः नक्षत्रं।न्तर वा राह्यन्तरमें इंस्की बेन्य प्रकारकी गति उपलब्ध होती है। जगत्के अनर्वत्वेकी कर्वनी करनेसे सुरीदिका मूमण उतना असंगतं नहीं समझा जातीं। इससे और भी मालार होता है, कि प्रदूर पृथिवीसे हमें लेगे जो सूर्यक गति देखते हैं. वह काम्पनिक मात्र हैं। प्रहेंकी अपने अ ने कक्ष पर घूमना ही माध्याकर्षण हैं।

माध्याकर्षण देखो ।

( गोंलाध्याय )

भूमएडलके मध्यस्थलमें लड्डा, पूर्वमें यमकोटि, पश्चिममें रोमकपत्तन, अधस्थलमें सिखपुर, उत्तरमें सुमेर और दक्षिणमें बड़वानल (कुमेर) है। गोलवित पण्डितगण उक्त छह स्थानोंको भूपरिधिके पादान्तरित अर्थात् चतुर्थांश समानान्तरित रूपमें स्थित वतलाते हैं। लड्डा-पुरमें जिस समय सूर्यका उदय होता है, उस समय यमकोटिमें दिन दो पहर, सिखपुरमें अस्तकाल और रोमक-पत्तनमें दो पहर रात होती है।

भ्रुवोन्नति और अक्षच्छायाके अभाव द्वारा भूगोलका मध्यस्थल जाना जाता है।

> "तेषामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः। नतासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरित्यते॥" (सूर्यसिद्धान्त)

विवाकर विषुववृत्तस्थ हो कर उक्त छङ्का आदि चारों नगरके ऊपर होते हुए जाते हैं। इस कारण उन सव स्थानोंमें अझच्छाया और अझांशक्षप घ्रु वोन्नित नहीं है। यह जान छेना आवश्यक है, कि अझच्छाया और घ्रु वोन्नित नहीं रहनेसे ही भूगोळके मध्यवत्तीं पूर्वापर वृत्तका नाम निरझवृत्त पड़ा है। जिस दिन दिनरात समान रहती है, उस दिन सूर्य उस वृत्तके उपर हो कर ग्रमण करते हैं, इसीसे उसका विषुववृत्त नाम पड़ा है। वह वृत्त और निरझवृत्त यथार्थमें अमिन्न है।

दक्षिण और उत्तर मेरुके आकाशके ऊपर दो भ्रुव-तारे हैं। निरक्षदेशके छोग उन तारोंको क्षितिजवृत्तके साथ संख्या देखते हैं। इस कारण उक्त चार पुरींकी भ्रुवोन्नति नहीं है।

प्राचीन ज्योतिर्विदोंने जिस प्रमाणसे पृथिवीका मध्यस्थल गोल सावित किया है, वही दूसरे प्रकारसे सारी पृथिवीके सम्यक् गोलत्वका परिचायक हुआ है।

निरक्ष देशके मनुष्य दक्षिण और उत्तर-ध्रुवको क्षिति-मण्डलको साथ संलग्न और निज मस्तकोपरिस्थ आकाश-में ध्रुवसंश्रित राशिचकको जलयन्तको तरह भ्रमणशील देखते हैं। मध्य परिधिसे जितना ही उत्तर आगे बढ़ते हैं, यह राशिचक उतना ही दक्षिणमें अवनत और उत्तरध्रुव उन्नत दिखाई देता है। फिर मध्य परिधिसे दक्षिण चा उत्तर जितनी दूर आगे वहें, उतनी हो दूर तकका स्थान अपसार-योजन कहलाता है। इस अपसार-योजन द्वारा पृथिवीका अंश निरूपित होता है। निरक्षदेशके मनुष्य जिस प्रकार दोनों ध्रुवको क्षितिजके संलग्न देखते हैं, मेघवासी मनुष्य भी नक्षतचकको उसी प्रकार देखते हैं।

मेरुदेशस्य व्यक्तिगण उत्तरध्रुवको आकाशके वीचमें (मस्तकके अपर) और वड्वास्थित व्यक्तिगण दक्षिण- ध्रुवको अपने अपने मस्तकके अपर देखते हैं। उक्त दोनों व्यक्तियोंसे नक्षत्वक क्षितिजके साथ छन्न और दक्षिण-वाममें भ्राम्यमाण देखा जाता है। जब देखते हैं, कि पृथिवीके अपर नीचे (उत्तर और दक्षिण) और वीचमें आकाश मूमि तथा नक्षत्वक उस उस देशवासीके निकट समभावमें उन्नत और क्षितिज संख्यन है तव किस प्रकार पृथिवीके गोछत्व पर अविश्वास किया जा सकता है।

यूरोपीय वैशानिकोंने जिस उपायका अवलम्बन कर पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन किया है, वह नीचे देते हैं।

वाश्चात्यमत ।

पृथिवीका आकृतिनिरूपण ही वैद्यानिकींका एक महदुइ श्य है। कारण, उससे ज्योतिःशास्त्रके अनेक तत्त्व परिस्कुट हो सकते हैं और भूलोकका व्यासांश ले कर घु छोकस्थित नक्षतादिका अवस्थान और दूरत्वगणना सहज हो पड़ती है। दृष्टिव्यापिकाके मध्यस्थलमें द्रडाव-मान व्यक्तिका पृथ्विपृष्ठ गोलाकार और समतल तथा शिरोदेशस्थ उच्च आकाश क्रमशः ही दिग्वलयमें मिश्रित अैसा मालूम पड़ता है। उत्तर वा दक्षिणकी ओर जाने-.बाला व्यक्ति मेरुदेशस्थ नक्षतावली (Circumpolar Stars)की क्रमोन्नति और भिन्न ओरकी अवनति देखता है। समुद्रमें अर्णवपोतके घीरे घीरे द्रष्टिसे गायव होते देखकर भी पूर्वतन ज्योतिर्विदींने पृथिवीका गोलत्व स्वीकार कियां है। आरिएटलके वर्णनसे जाना जाता है, कि गणि-तज्ञींने भूपरिधि ४ लाख स्टाडिया स्थिर की है। प्राटी-स्थेनिसने पृथिवीकी आकृति निर्णय करनेमें मनोंयोगी हो कर आजुपङ्गिक जो सव जागतिक व्यापार लक्ष्य किये थे, उन्हींका अवलम्बन करके वर्त्तमान वैद्यानिकींने पृथिवी-का गोलत्व प्रतिपाद्न करनेमें सफलता पाई है। इजिप्तके उत्तरांशवर्त्ती सायनी ( Syene ) नगरमें उन्होंने सूयको

उत्तर क्रान्ति (Summer Solstice)-सीमावत्तीं और मस्तकोद्धं व लम्बरेखास्थित देखा तथा उस समय समान देशोंमें अवस्थित अलेकसन्द्रिया नगरीमें इसके शिरोविन्दु-का अन्तर ७ १२ और दोनोंका व्यवधान ५००० प्राडिया गणना करके पृथिवीकी परिधी २ लाख ५० हजार प्राडिया स्थिर कीं। परवत्तीं पोसिष्ठोनियस्ने भिन्न पथ-का अवलम्बन करके स्यंके वदले तारेकी सहायतासे पृथिवीकी परिधी २ लाख ४० हजार प्राडिया प्रतिपन्न की। दलेमीने अपने भूविद्याविषयक प्रन्थमें पृथिवी परिधिके ३६० अंग्रके एकांग्रको ५०० प्राडिया निरूपण किया है।

८१४ ई०में अरवराज खलीका अल् मामुनने पृथिवीका आयतन जाननेके लिये दो दल ज्योतिर्विदोंको उत्तर और दक्षिण दिशामें भेजा। मिसोपोटेमिया नगरका वड़ा मैदान ही उनका केन्द्रस्थल था। किन्तु विशेष परिश्रम करने पर भी वे कृतकार्यं न हो सके। अन्तमें फरासी--देशवासी फर्नेल (Fernel) नामक किसी व्यक्तिने पारि-नगरके द्राधिमांशके ऊपर हो कर परिभ्रमणकालमें यान-चकगति द्वारा जो दूरत्वका परिमाण स्थिर किया था, पीछे उसीको सहायतासे ज्योतिष्कमण्डलकी आलोचना में प्रवृत्त हो कर वे अज्ञात पृथिवीपरिधिके एक (बिग्री) अंशका परिमाण निरूपण करनेमें समर्थ हुए थे। १६१७ ई॰में लेडेन Leyden ) नगरमें भूवित् स्नेल (Wsn·li) ने पृथिवीका परिमाण स्थिर करनेमें खूब चेपा की। उन-का परिश्रमफल १७२६ ई॰में मुसेनवुक ( Muschenbrock ) द्वारा परीक्षित हो कर प्रकाशित किया। रिचार्ड नरउड नामक किसी अङ्गरेजने १६३७ ई०की ११वीं जूनको लएडन-त्राधिमाके सूर्यकी ऊँचाई ६२ १ और १६३५ ई०की ६ठी जूनको यार्क द्राधिमाकी अँचाई ( Meridian altitude ) ५६ ३३ निरीक्षण करके तथा दोनों नगरकी अन्तर्वत्तीं दूरीका अवळम्बन कर वे जिस सिद्धान्त पर पदुंचे हैं, उससे डिग्रोका परिमाण ३६७१७६ फुट हुआ था।

१६६६ ई॰में पिएडतवर पिकार्ड दूरवीक्षणकी सहा-यतासे द्राधिमांश निरूपण कनेनेमें समर्थ हुए थे . इसके लिये उन्हें पारी ( Paris )-के निकटवत्ती मेलभोसिनसे ले कर आमेन सन्निधिस्थ सोदौँ (Sourdon) नगर तक एक तिकोणव्याप्ति (Triangulation स्रोकार करनी पड़ी थी। उसका परिमाण ८८५० ट्राईज (Toise) निरूपित हुआ। इसीसे १ डिग्रीका परिमाण ५००६० ट्राइज स्त्रीकार किया जाता है।

यूरोपखएडमें आज तक पृथिवीका पूर्णगोलत्व स्वीकृत हुआ था तथा भूपरिमाण निर्देश करनेमें और कोई विशेष उपाय अवलम्बित नहीं हुआ। अन्तमें रीकर (Richer)-का अभिनव आविष्कार होते ही उस विषय-में गणितज्ञोंकी दृष्टि आरुष्ट हुई। इस समयसे पृथिवीका आकार गोळ है, उस पर छोगोंको सन्देह होने छगा। उक्त विख्यात ज्योतिर्वित् भूवक्रता (Terrestrial refraction )-का निरूपण करनेके लिये फरासी-विश्वान सभा ( Academy of Sciences of Paris ) द्वारा कायेन-( Cayenne ) द्वीप भजे गये । वहां वे अपनी घड़ीमें २॥ मिनटका अन्तर देख कर चमत्कृत हुए। उक्त द्वीपमें २॥ मिनट कम रहनेके कारण उन्हें दोलक Pendulum)-की गति घटा देनी पड़ी | वारिन और दाशे ( Varin aud Dashayes )-ने अफ्रिका और अमेरिका देशमें तथा परवर्त्तीकालमें महामति न्युटनने अपनी 'प्रिन्सपिया' नामक पुस्तकमें इस विषयकी आलोचना पर अच्छी तरह समभा दिया है। पृथिवीकी विषुवरेखान्तर्वर्ती स्थानोंकी स्फीति तथा भू-केन्द्रके दूरत्वनिवन्धन केन्द्र-विमुखी (Cantrifugal) शक्तिकी प्रतिवन्धकता ही ·आरुप्रशक्तिके हासका कारण है।

१६८४से १७१८ ई०के मध्य जे और डि केसिनी
( J and D Cassine ) ने भूवृत्तका परिमाण िशर
करनेकी इच्छासे उत्तर पारीसे इनकार्क और दक्षिण
पारीसे कोलियर तकके विस्तृत स्थानमें विकोणव्याप्ति
द्वारा जो परिमाण ग्रहण किया, उससे उत्तर और दक्षिण
भूवृत्तके पकांश (१ डिग्री) का परिमाण यथाकम
५६६६० और ५७०६७ द्वाइज प्रतिपादित होता है। इससे
यह मालूम होता है, कि अक्षांशकी वृद्धिके साथ वृत्तांशका हास ही पृथिवीके प्रवर्त्तु लामास ( Prolate Spheroid) का अन्यतम कारण है। यह मत न्यूटन और
हिडगेन्स-प्रवर्त्तित मतका विरुद्ध होनेके कारण यूरोप-

जगत्में भारी हलचल पड़ गई और इस विषयको स्थिर करनेके लिये पारीकी वैद्यानिक सभासे द्राधिमांशके परिणाम-निह्ने शार्थ एक इल विषुववृत्तके सन्निक्ट और दूसरा दल उत्त. अक्षांशदेशमें गया। १७३५ ई०के १५वें लुईके तत्त्वावधानमें, बुगेन, कन्दामिन आदि (M. M. Godin, Bouguer and De la Condamine)ने दक्षिण-अमेरिकाके पेठ राज्यके अन्तर्गत विपुववत्तके समान्तरदेशमें और क्लारो, कामो आदि (Clairaur, Camus, Maupertuie, Lemonnier and Onthier )-ने वोधनियोपसागर-समीपवर्त्तों मेठदेशकी विस्तृतिका परिमाण श्रहण किया। दोनोंके परिद्रशनिल्ल्य परिमाणफलको आलोचना करनेसे तथा दोलक द्वारा आकर्षणीशक्तिका निरूपण करनेसे यही स्थिर हुआ है, कि यह भूमएडल प्रवर्त्तु लाभास नहीं है, अव

· १७४० ई०में केसिनो डि-थुरी और लासेलो ( Lassine de Thury and Lacaille )-ने पूर्ववर्सी दोनों केसिनीका पदानुसरण करके भिन्न पथका अवलम्बन किया। उनके मतसे अक्षांशकी वृद्धिके साथ भ्वृतांश-की १ डिश्री वृद्धि मालूम पड़ती है। १७५२ ई०को इत्तमाशा अन्तरी में लेसेलीने भूषृत्तांशका जो परिमाण प्रहण किया था, उससे भाशातीत फललाभ हुआ तथा एक भूवृत्तांश ५७०३७ ट्राइज निर्णीत हुआ था। इसके वाद वस्कोभिच और वेकारियाने (Boscovich and Beccaria) यूरोपखएडमें तथा मेसन और सिपसनने उत्तर-अमेरिकामें वर्र्यमान अङ्गरेजी प्रथासे विकोणव्याप्ति द्वारा वृत्तांशका परिमाण स्थिर किया। १७८३ ई०में पारी और प्रीनइचका भौगोलिक सम्बन्धनिर्णय करनेके लिये रायल-सोसाइटीसे जैनरल राय (General Roy) इङ्गळेएड-पक्षमें और काउएट केसिनी, मेकाएन तथा डेळाम्ब्रे फरासी-पक्षमें सदस्य निर्वाचित हुए। राम-रहेन-प्रवर्श्वित 'थिउडोलाइट' यन्त्रकी सहायतासे परि-माण-प्रहणमें उन्हें विशेष छुविधा हुई।

१८३८ ई॰में वेसेल-प्रणीत Gradmessung in Ostpreussen नामक पुस्तक प्रकाशित होनेसे भू-विज्ञानमें नृतन आलोक विकाशित हुआ । इसमें नक्षत वा Vol. XIV 81 वृत्तांशका निरूपण करनेमें तिकोण व्याप्तिके अलावा चतुरस्त्रप्रथा (Least squares) अवलम्बित हुई थी। उसका गणितांश इतना जटिल है, कि लोग उसे समक नहीं संकते।

१८६० ई०में द्भुवे (F. G. Struve)-प्रणीत Are du Meridien de 25° 20 entre le Danube et la Mer Glaciale mesure depuis 1816 Jusqu'en 1855 नामक प्रस्थ प्रकाशित हुआ। पृथिवीके आस्ति-निर्णयमें पेसा अपूर्व वैद्यानिक प्रस्थ और दूसरा नहीं है। इसमें सुदूरवत्तीं अक्षांशका परिभाण प्रायः अन्नान्तक्रपमें दिया गया है।

न्युटनने माध्याकर्षण और केन्द्रविमुखी वा केन्द्रातिग (Centritigal) शिकको ही पृथिवीके आकारनिर्णयका मूलाधार स्थिर किया है। समसावमें काणिक
(Angular)-वेगसे भ्राम्यमान किसी समधर्मा तरलपदार्थको भ्रमणशील किसी एक अववर्षु लामास (೧६late spheroid) तुल्याकृतित्वप्राप्ति स्वीकार करके
न्यूटनने उसकी मध्यरेखाका परिमाण २३० २३१ निकपण किया है। उसके वाद उन्होंने स्थानविशेषके आकपण-वेलक्षण्य और वृत्तामासत्व (Ellipticity) तथा
धनत्व (Density)-का व्यतिक्रम निरीक्षण करके पृथिवीका जलाधारत्व और गोलत्व सम्पादन किया है। क्रारो,
लेप्लेस आदि महात्मगण भी गणितविद्याकी सहायतासे
दो विभिन्न स्थानोंके आकर्षणसे पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन कर गये हैं।

यह अवश्य खोकार्य और सम्माद्य है, कि आदिम अव-स्थामें पृथिवी एक सुनृहत् तरल-पिएड (Fluid mass) रूपमें परिणत थी। क्रमशः उत्ताविक्षेपसे शीतलता पा कर उसके ऊपरी भाग पर दुग्धसरकी तरह आवरक जम जाता है और विकृताङ्ग पर्व तादि मिएडत हो कर बत्तमान ठींस (Solid) आकारमें रूपान्तरित हुआ है। भूएष्ठ पर इतस्ततः पर्वत नदनदी समुद्र और द्वीपावली विराजित रहनेके कारण गणनाकार्यमें विशेष वाधा पड़ती है और पृथिवीको धूमनेके योग्य जो एक पृष्ठ है, वह भी कल्पनातीत हो जाता है।

ये सव होने पर भी अङ्कविद्याकी सहायतासे पृथिवीका

का अएडाइतित्व प्रतिपादन करनेके लिये गणितज्ञोंने पक आवर्त्त नद्एड (Axis of rotation) खीकार कर लिया है तथा पृथिवो पर अक्ष (Latitude) और द्राघिमा (Longitude) रेखा विलिम्बत करके स्थान निर्णयमें सफलता पाई है। इस प्रकार युक्ति और गणना द्वारा पृथिवीका गोलत्व प्रमाणित होने पर भी उसका परिमाण निर्द्धारण करनेमें उनके यलकी लाध-वता नहीं देखी जाती। उत्तरोत्तर गणना द्वारा वे पृथ्वो-पृष्ठकी परिधि और व्यासादि निरूपण करके यशस्वी ही गये हैं।

## पृथिवीका परिमाण ।

ब्रह्माएडपुराणमें पृथिवीका विस्तार ५० कोटी बोजन बतलाया है। मेरके मध्यस्थानसे प्रत्येक दिशामें इस पृथिवीका यथार्थविस्तार ५० हजार योजन है। समद्भिपवती यह पृथिवी मेरके प्रत्येक और ३ कोटी १ लक्ष ७६ योजन विस्तीण है। इस विस्तारकी अपेक्षा पृथिवी-मएडकी परिधि तिगुनी है। तारकासन्तियेशकी परिधिकी तरह भूसन्तियेशकी भी मएडलाकार परिधि ज्ञाननी चाहिये।(७) उक्त अएडकटाहके मध्य सप्तद्वीपा पृथिवी अवस्थित है।(८) उसके ऊपर यथाकम भू, भूव, स्था महा, जन, तपा और सत्य नामक छताकृति मएडलाकार सात लोक और नीचे सात पाताल अवस्थित है।(६)

(७) ब्रह्माग्रहपुराण अतुर्वस्पाद ५४ अध्याय १६-२१
कोक । यहां पुराणकारीने भूमण्डलका गोलल स्वीकार किया
है। वैद्यानिक मतमें सूर्यसे नेयनुन मा व्यवधान २८०००००००
मील है।

(८) ''अगुडस्यःश्तिन्तिमे छोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।" ( ब्रह्मागुड अनु० ५४।२४ )

(६) श्रीमद्भागवत पम स्कन्ध २४ अ० और 'पाताल' शब्द देखी। कोई कोई प्रत्यकार सुमेहको सर्ग, निरक्षदेशको मन्ध्रे और बहुवाको ही पाताल मानते हैं। इसी छाएण सुमेहक स्थानवासी देवलोकोंकी दिन रात हम लोगोंकी दिन-रातसे विभिन्न कल्पित हुई है। हम लोगों का १२ माद हन लोगोंका एक दिन और रात होता है। पुराणमें जब सात लोकोंके सात विभिन्न केन्द्र स्थिर हुए हैं, तब किस प्रकार सप्तपातालके एकत्वकी करपना की जाती हैं ? स्थार्थमें सनस्त जगत् के कर

वैद्यानिक मतसे पृथिवी स्पैकेन्द्रक और सौरजगत्के अन्तर्गत प्रम ब्रह्सपर्में (१०) परिगणित है। मङ्गळ और यहस्पित-कक्षके मध्यवत्तीं छोटे छोटे तारों (Asteroid को मध्य इसकी आकृति सबसे बड़ी है। विपुववृत्तमें भूमएडळका व्यास ७६२६ मील और मेरवेशमें ७८६८ मील है पृथिवीका आयतन २६१००० छन्न घनमील और भूपृष्ठ १६७३१०००० वर्गमीलमात है।(११) जलकी अपेक्षा भूमाग ५०६ गुना मोटा है। स्पैकी तुळनामं भूपिएडका आकृतिपरिमाण ०००० २०८१७३ और स्पैसे इसकी दूरी ५ कोटि कोस है।(१२) इतनी दूरसे स्पर्धिकरणको पृथिवी पर पहुंचने तथा पूर्ण विकाश पानेमें ८ मिनिट १३ ३ सेकेएड लगता है। पृथिवी गोलाकार है, पर उत्तर और इक्षिण मेरवेशमें १३ मील करके स्विपटी है।

दिनके बाद रात और रातके बाद दिन आता है। सबेरे पूर्वदिशामें सूर्य उगते और पश्चिममें डूबते हैं। रातको आकाशकी नक्षत-गति देखनेसे भी सूर्य और ग्रह-नक्षतादिका पृथिवीपरिवर्च न समका जाता है। इसी कारण माल्म होता है, कि पुराकालमें गूरोपखण्डमें भी

मन पौराणिक पृथिवी है, तब उसकी ऐसी परिमाण-करवना नितांन्त असंगत नहीं है। दक्षिशिक्तिके वहिर्मृत होनेके कारण ही माळम पडता है, कि पौराणिक लोग सतलेक और सर-पातालकी केन्द्रतारका निद्धीरित नहीं कर गये हैं। बेहानिक दक्षिते दूरवन्तीं एक एक लोटा तारा हम लोगों के सूर्यके बडा है।

<sup>(</sup>१०) बृहस्पति, शनि, नेपचन, यूरेनस भादि ग्रह मृथिनी-से वर्ड हैं।

<sup>(</sup>११) भारकरावार्यने पृत्रिवीकी परिषि श्रीर न्यायके
गुणनफडको ही भूपृष्ठ क्षेत्रफड निर्णीत किया है। बोबन-संख्यामें पृत्रिवीका परिमाण ४१६७, ब्याय १८५१२% शौर पृष्ठक्षेत्रफड ७५५२०१४ है। भारतवर्धीय व्योतिर्विद्धें अप यूरोपीय वैद्यानिक तस्वविद्धेंकी इसमें प्रथकता हेवी बाती है।

<sup>(</sup>१२) Lardner's Museum of Science and Arts Vol. II, p. 28. किंतु किसी किसी ज्योतिर्विदने १५००००० मीछ स्थिर किया है।

पृथियो सौर जगत्का केन्द्र मानी जाती थी। (१३) पहले हिपार्कस नामक ज्योतिर्विद्दने इस मतका उद्घावन किया। श्री शताब्दीमें मिस्रवासी रहेमी इस विषयको अच्छी तरहसे लिपिवद कर गये हैं। इस कारण ज्योतिष्क जगत्की यह कल्यित भ्रमणप्रणाली 'रहेमिक थेवरी' कहल्लाती है। १५वीं शताब्दी तक यह भ्रान्तमत यूरोप-खण्डमें प्रचलित था। पीछे विख्यात ज्योतिर्विद कोपार्णिकसने इस मतको निराकरण करके प्रमाणित किया है, कि पृथिवी २८ घंटे (दिनरात) में एक वार अपने मेरदण्डके चारों ओर भावर्त्तन करती है, इसोलिये सूर्य और नक्षतमण्डलीकी इस प्रकार दृश्यमान गति मालूम पड़ती है।

कोपाणिकस्ने १५वीं शतान्दीमें जिस प्रकार सत्य प्रकाशित किया, आर्य भूमि भारतवर्षके श्रेष्ठ ज्योतिर्विद्द आर्यभर कोपाणिकस्के सेंकड़ों वर्ष पहले पृथिवीकी उसी प्रकार गतिविधि अच्छी तरह वर्णन कर गये हैं। पृथिवीकी समस्त गति हो प्रायः उसी समय आविन्कृत हुई थी। यहां तक कि, क्रान्तिपातकी वक्रगति (Precession of the Equinoxes) जो पृथिवीकी गतिसम्भूत हैं, उसे यूरोपमें निरूपित होनेके पहले आर्य भर स्थिर कर गये हैं।

## पृथिनीकी गति।

वर्रामान वैद्यानिकोंके मतसे यह पृथिवो २८ घंटेमें वा एक नाक्षितिक दिनमें एक वार अपने मेर्ट्रण्डके चारों और घूम कर पुनः पूर्वायस्थामें छौट आती है। यही पृथिवोकी आहिक गति ( iarnal Rotation or its axis) है। यह आहिक गति ही दिन रातका कारण है। आहिक गति द्वारा पृथिवोके जब जिस अंगमें सूर्य रहते हैं, तब उस भागमें दिन और विपरीत भागमें रात होती है। पृथिवी यदि अपने मेर्ट्युडको अयनमण्डलके ऊपर रख कर टोक सीधी घूमती, तो सब समय भूपृष्ठके सभी स्थानों पूर दिन-रातका मान समान दिखाई देता। किन्तु यथार्थमें हम लोग दिन-रात समान नहीं देखते। शीत-

कालमें दिन छोटा और रात वड़ी तथा श्रीध्मकालमें दिन वड़ा और रात छोटी होती है।

गोलाकार पृथिवी स्थिर मेस्ट्एडको पकड़ कर अयनमएडलमें मानो कुछ वक्रमाव वा चापगितसे घूमा करती
है। उत्तर मेस जब सूर्यके जितने सम्मुख रहता है, तब
दक्षिणमेस सूर्यके उतने ही विमुख हो जाता है। इस
लिये विपुवरेखाके उत्तर भागमें जितना समय तक दिन
उहरता है, दक्षिण भागमें उससे अधिक मालामें रातिकी
वृद्धि होती है। केवल विपुववृत्तस्थ प्रदेशोंमें दिनरातका
भाग समान रहता है। जब तक पृथिवो इस अवस्थामें
रह कर घूमेगी, तब तक २४ घंटेके मध्य एक वार घूम
जाने पर भी दक्षिणमेस सूर्यके अभिमुखी और उत्तरमेस
सूर्यके जिमुखी नहीं होगा। सुतरां दक्षिणमेसमें २४ घंटा
और उत्तरमें भी २४ घंटा दिन रहेगा।

इस प्रकार भ्रमणशील पृथिवीके दक्षिणमेक्से विषुव-रेखाके मध्यवत्तीं सभी दूरवत्तीं स्थान अपने दूरत्वके परि-माणानुसार जिस परिमाणमें सूर्यके अभिमुख पड़ते हैं, उसकी अपेक्षा अधिक भाग विमुखमें रहते हैं। इसी कारण यहां राविका परिमाण अधिक होता है। इसी प्रकार सूर्य जब कर्कटराशिमें रहते हैं, तब उत्तर मेक्देशमें छद्द मास दिन और दक्षिणमें छह मास रात तथा दक्षि-णायनमें जब मकरराशिमें रहते हैं, तब दक्षिणमेक्में छह मास दिन और उत्तरमेक्में छह मास रात होती है।

अयनमण्डलमें कौणिकभावमें रह कर पृथिवी प्रति-दिन एक वार करके अपने मेर्ड्य्डको आवर्त्तन करती है। किन्तु इस चापात्मक आवर्त्तनके कारण दिनरातका वैषम्य क्यों होता है? तथा कभी उत्तरमेरुमें प्रकाश कभी अन्धकार, एक स्थानमें दिन छोटा, दूसरे स्थानमें वड़ा, ऐसा परिवर्त्तन को होता है, सो क्यों?

आहिक-गति हो यदि पृथिवीकी एकमात गति होती, तो कभी भी दिनरातका विपर्यय संघटित नहीं होता। स्यं जिस नक्षतराशिके निकट रहते, उसे हम लोग हमेशा उसी स्थान पर देखते। प्रतिदिन अपने चारों और एक वार करके घूमती घूमती पृथिवी एक वर्षमें एक वार स्यंका प्रदक्षिण कर भाती है। इसे पृथिवीकी वार्षिक-गति (Revolution on an orbit) कहते हैं। प्रति-

<sup>(</sup>१२) किसी किसी पुराणकारने इस मतना पोषकता की है, किंद्र मास्यपुराणके बद्धत कीकांश है नह भूम निराकत होता है।

दिन सूर्य और नक्षतादिका स्थान परिवर्शन हो इसका प्रमाण है। हमं लोग सूर्यकी गति पर्यवेक्षण करके देखते हैं, कि १० चैत (२२वीं मार्च)-को विष्णुपदकान्ति-वृत ( Vernal equinox ) में स्पैद्व ठीक पूर्वमें उदय हो कर पश्चिममें अस्त होते हैं। इसके बाद तीन मास तक उत्तरोत्तर उच्च हो कर १० आपाँढ ( २२वीं जून )-को सूर्यदेव उत्तरकान्ति सीमारुढ़ ( Summer Solstice ) होते हैं उस समय दिन बहुत बड़ा होता है। फिर बक्र-गतिसे छौट कर तीन मासके वाद १० आश्विन (१२वीं सितस्वर )-को हरिपद वा तुलाकान्तिमें (Antumnal Equinox) दिनरात वरावर होती है। पोछे सूर्य क्रवशः दक्षिणको ओर अग्रसर हो कर १० पौष ( २४वीं दिसम्बर)-को दक्षिणकान्ति सीमामें (Winter Solstice ) पहुंचने हैं । उस समय दिन बहुत ही छोटा होता है। इस प्रकार एक बार उत्तरप्रान्तसे आरम्भ कर फिर-से प्रत्यावर्त्तन करनेमें सूर्यको एक वर्ष छगता है। सूर्व को इस प्रत्यक्षगति ( Apparent motion ) द्वारा आकाशमें एक वृत्तामास अङ्कित होता है। जिसे राशि-चक वा सूर्य का अयनमण्डल कहते है। सूर्य की ऐसी दूश्यमान गति क्यों होती है ; यह पहले ही कहा जा चुका है । पृथिवी दिनों दिन सूर्यसे कुछ कुछ हट कर फिर पक वर्गमें उसी पूर्वस्थान पर छीट आतो हैं। छह मास तक हम लोग मस्तकके ऊपर ब्रह्मकटाहमें जिस तारका-मएडलीको देखते हैं, वह फिर छह मास तक हम लोगींके पैरके नोचे ब्रह्मकटाहमें रहती है । पृथिवीके उमय मेख-वत्ती तारोंको छोड़ कर सूर्य परिम्नमणके साथ साथ अन्य संभी तारोंकी वैसी ही परिदृश्यशान गिन होती है। दोनों मेरुके ऊपर आकाशमें जो सब तारे हैं, वे कभी भी अद्रश्य नहीं होते। कारण पृथिवी अपने अयनमण्डलके ऊपर < इं डिग्री २८ मिनट कौणिकभावमें अवस्थित है . और हमेशा प्रायः उसी समान भावमें चली आई है। इसी कारण दोनों मेरुका लक्ष्य ठीक एक ही ओर निवद्ध मालूम पड़ता है।

२४ घंटेमें पृथियी अपने आपको एक वार आवर्तन करतो है और एक वर्षमें उसी प्रकार एक वार सूर्य का प्रदुष्पण कर आती है। पृथियोकी इन दो गतियोंके मिल्नेसे एक और गति उत्पन्न होती है।

पृथिवी चापगितसे आकाश-पथमें सर्पकुण्डलाकृति चक्र बनाती है। स्यंके प्रदक्षिणकालमें जिस चक्राकार पथसे पृथिवी घूमती है, वही उसका अयनमण्डल है। यह अयनमण्डल विलक्कल गोलाकार नहीं है, वहुत कुछ डिम्बाकृति (वृत्तामास) सा है। इसके दो अधिश्रय वा नामि (Focus) हैं। एक अधिश्रयमें सूर्य अव-स्थित और दूसरा खाली पड़ा है। इसी कारण अयन-मण्डलके सब स्थानोंसे सूर्य समान दूरी पर नहीं हैं।

आहिक और वार्षिक गतिके अलावा पृथिवीके और भी दो गति हैं, एक कान्तिपातकी वक्रगति (Prece ssion of the Equinoxes) और दूसरी मेस्लक्ष्य-परि-वत्तन-गति (Nutation)। इन दोनोंकी प्रकृति इतनी जटिल है, कि अङ्कुशास्त्रको सहायताके विना उसकी विवृति सहजमें वीधगम्य नहीं होतो। सुतरां संक्षेपमें उसका आभास दिया जाता है।

पृथिवी अपने अपने अयनमण्डलमें चापात्मकगतिसे अवस्थित रह कर प्रतिदिन भ्रमणकालमें अपनी विषुव-रेखाके सिर्फ दो विन्दुको कक्षसे स्वर्श कराती है। परन्तु वह एक ही विन्दुद्ध्य कक्षके ऊपर हमेशा समभाव-में नहीं पड़ता। प्रतिवर्ष कान्तिपात ५० १० सेकेएड पहले पड़ता है अर्थात् आज विषुवरेखाका जो विन्दु कक्षके ऊपर पड़ता है, आगामी वर्ष उस दिन उस विन्दु-से ५० र० सेकेएड पोछे वह विन्दु कक्षको स्पर्श करता है, इस प्रकार २५८६८ वर्षोंमें फिर वह एक हो विन्दु कहके ऊपर आ पहुंचता है । क्रान्तिपातकी यह गति पृथिवी-की दो स्वतन्त्र गतिका कार्यफल है। पृथिवीके मेरुदेश-की अपेक्षा विषुवद्वृत्तस्थ पदार्थसमप्टि (Equatorial protuberance ) अधिक है । सुतरां मेरुदेशमें चन्द्र-स्र्यंका आकर्षणप्रभाव विषुववृत्तस्य स्थानकी अपेक्षा अवश्य अधिक होगा। आकर्षणके ऐसे वैपम्यके कारण कान्तिपात कमशः पीछे पड़ जाता है। चन्द्रस्यैके ्आकर्षणके प्रभावसे जिस प्रकार क्रान्तिपातकी वक्रगति सम्पादित होती है, उसी प्रकार प्रहोंके समवेत आकर्षण-से पृथिवीकी एक और अग्रगति उत्पन्न होती है । इन दोनों गतियोंके कार्यफल्से प्रतिवर्ष क्रान्तिपातका ५० १० सिकेएड पीछे पड़ता है वा ५० १० सेकेएड आगे सम्पन्न होता है।

इस गतिसे हम लोग जागितक व्यापारमें तीन घटना समाश्रित देखते हैं।

विषुवरेखाका प्रत्येक विन्दु जितना ही हटता है उतना ही पृथिवीका मेर चक्राकार-पथसे घूम जाता है। पृथिवीका मेर जिस चक्राकार पथ हो कर घूमता है, उसका केन्द्र है पृथिवीकक्षका मेर । सुतरां २५८६८ वर्षोमें उस केन्द्रके चारों ओर पृथिवीका मेर एक एक वृत्त अङ्कृत करता है। इस गित द्वारा मेरवर्त्ती नक्षतराशिका सुदीर्घकालमें स्थानपरिवर्त्त न मालूम पड़ता है।

विषुवरेखाका एक एक विन्दु हट कर जितना हो उस-के पूर्विस्थित विन्दुकक्ष पर आ जाता है, उतना ही नक्षव-राशिमें सूर्यका उदयकालप्रमेद और ऋतुवैषम्य लक्षित होता है। एक नक्षवसे उस नक्षवमें लीट आनेमें पृथिवीका जो समय लगता है, उसे नाक्षव वहसर (Sidereal year) कहते हैं। छत्तिकानक्षवके उद्यस्थानसे सूर्यके पुनः इत्तिकामें लीट आनेसे एक वर्ष पूरा होता है।

सौर वर्षकी समयाव्यता ही ऋतु-परिवर्त्तनका मूल और वर्त्तमान वैपम्यका प्रधान कारण है। यदि प्रति-वर्ण ऋतूत्पादक सौरवर्ण नाक्षतवर्णसे २० गि० २० से० पहले उपस्थित हो, तो उसी परिमाणमें प्रत्येक ऋतु भी नाक्षतवर्णके पहले सम्पादित होगी। इस प्रकार पुनः २५८६८ वर्णके वाद नाक्षत और सौर जूतन वर्ण ठीक एक ही समयमें आरब्ध हुआ करता है अर्थात् आज नाक्षत वर्णके जिस मासनें जिस दिनमें समान दिनरात हुई है, २५८६८ वर्ण वाद ठीक उसी दिन उसी समयमें समान दिनरात होगी।

हिन्दू लोग नाक्षवकी और अङ्गरेज लोग सौरवर्णकी गणना किया करते हैं। यूरोपीय गणनासे जिस मासमें जो ऋतु पड़ती है, वह प्रायः एक ही रहती है। परन्तु आर्य लोगोंकी नाक्षव-गणनासे प्रतिवर्ण समान दिनरात २० मि० २० से० पहले हो जानेके कारण अनेक वर्ण पीछे कमशः ऋतुकालका परिवर्त्तन हुआ है। पहले जिस समय ऋतुराज वसन्तका आविर्माव होता था, अभी उस समय निदारण प्रीष्मके समय वर्षा आई है। इस प्रकार पृतिशोंके होनों भागमें ऋतुकालका विशेष वैलक्षण्य दिखाई हैता है।

Vol. XIV. 82

पहले जव वैशाखमासके प्रथम दिनमें वासन्तिक सम-रातिदिन होता था, उस समय उसी दिनसे भारत-वासियोंने नृतनवर्णकी गणना आरम्म की है। परन्तु अभी १० चैतको समान रात दिन आरम्म हुआ है, अतः पुनः वैशाखमासके प्रथम दिनमें समान रात दिन होनेमें प्रायः २५००० वर्ष लगेंगे। पहले वासन्तिक समान रात दिन-में सूर्य मेप राशिमें उद्य होते थे, अभी उस दिन मीन-राशि अतिक्रम करनेमें १० अंश वाको रह जाता है। इस प्रकार सूर्य कमशः पीछे उगते उगते २५८६८ वर्णके वाद पुनः उसी एक नस्त्वमें उद्य होंगे।

क्रान्तिपातके सचल होनेके कारण पृथिवीकी इससे जो मृद्रुगित होतो है, उससे अयनमंडल धीरे धीरे परिवर्त्तित होता जाता है। इस कक्ष्मपिवर्त्तनगित द्वारा
पृथिवीके एक और वर्ण उत्पन्न होता है जिसे अङ्गरेजीमें
Anomalistic वा सौर-व्यवधान वर्ण कहते हैं। पृथिवी
कक्षका जो विन्दु सूर्य से सर्वापेक्षा निकट है, उस विन्दुसे आरम्भ करके पुन, सर्वापेक्षा निकटस्थ विन्दुमें लीट
आनेसे एक वर्ण पूरा होता है। कक्ष अपरिचत्तित रह
कर यदि वह विन्दु अचल रहता, तो सौर-व्यवधान
और नासववर्णका परिमाण समान होता। परन्तु
पृथिवी ऐसी मृदुगितसे अपने अयनमण्डलको परिवर्त्त'न
करती है, कि एक अवस्थासे उस अवस्थामें लीट आनेमें
पृथिवीको १०८००० वर्ण लगता है।

कश्च ऐसे परिवर्त नके कारण एक वर्ण पहले कश्च-के जिस विन्दु पर आनेसे पृथिवी सूर्य से सर्वापेक्षा निकटवर्ती रहती उस विन्दु के दूसरे वर्ण और भी १२ सेकेएड अप्रसर होनेसे वह फिर पहलेके जैसा सर्वा-पेक्षा सूर्य के निकटवर्ती होती है । सुतरं उस स्थान पर आनेमें पृथिवीको और भी १२ सेकेण्ड समय लगता है। इस कारण सौर-व्यवधान-वर्णका परिमाण नाक्षल-वर्णसे प्रायः ४ मिनट ३६ सेकेण्ड अधिक है अर्थात् सूर्य-सम्पर्कमें पृथिवीका व्यवधान समान होनेमें प्रति वर्ण ४ मिनट ३६ सेकेण्ड अधिक समयकी आवश्यकता होती है।(१४)

रिष्ठ है कि उस रिजननिविधे अनेक नैसिनिक व्यापार क्षांचत होते है। हराणमें युन्धुगको जिस महाप्रस्कृते

स्य<sup>°</sup>की दूरोके सम्पर्कमें पृथिजीकश्वकी एक अवस्थासे पुनः उस अवस्थामें आनेमें १०८००० वर्ष, किन्तु ऋतु सम्पर्कमें स्येका दूरत्व-परिमाण समान होनेमें प्रायः २० हजार वर्ष लगते हैं।

ऋत्त्पादक सौरवर्ष और सौरव्यवधान-वर्षके पर-स्पर वृत्ताभासका व्यवधान ६१ ६ सेकेएड है। इन दो वत्सरोंको एक अवस्थामें आनेमें भी २० हजार वर्ष लगते हैं आर इसीके ऊपर ऋतुसम्पर्कमें सूर्यका दूरत्व-परिवर्त्तन निर्भर करता है।

पृथिवोको मेरुलक्ष्य-परिवर्त्तनगित प्रधानतः चन्द्रमाके आकर्षणसे होती है। परन्तु प्रहोंके समवेत आकर्षण द्वारा इसकी हास-वृद्धि हुआ करती है। पृथिवीके दोनों मेरु यद्यपि उत्तर दक्षिणमें लक्ष्यवद्ध हैं, तौमो चन्द्रमाके आकर्षणसं उत्तरमेरुकी उत्तराकाशमें और दक्षिणमेरुकी दक्षिणाकाशमें ऊद्ध्र्याधः गित होती है। पृथिवीमेरुकी इस चक्षाकार मन्दगितके साथ साथ दोनों मेरु पर ही पूर्वोक्त प्रकारको एक और गित हो जाती है। इसलिये दोनों ही मेरु आकाशमें लहू की तरह विसरणशोल विह अङ्कित करते हैं। इस गितसे १६ वर्षके वाद चन्द्रसूर्य और पृथिवीकी एक अवस्था होती है। इस कारण ऐसा एक एक चिह्न अङ्कित करनेमें अर्थात् एक मेरुके नीचेसे ऊपर उठ कर फिर उस नोचे स्थान पर आनेमें १६ वर्ष लगते हैं।

कथा जिखी है, सम्मनतः पृथिनीकी यह निभन्न गति ही उन समस्त दुर्घटनाओं का मूल है। भृतरनकी आलोचनासे मान्द्रम होता है, कि जगतमें एक एक समय प्रलय छपस्थित हुआ या। यूरोपख्राइमें पोष्टिक्सोसिन युगमें अनन्त तुपारसे आञ्चत वैसे ही जगद्भ सका एक निदर्शन पाया गया है। वैद्वानिक एडहीमरने इसका क्योतिषक कारण निर्देश करते हुए कहा है, कि कान्तिपातकी नकगति द्वारा १० हजार वर्षमें पृथिनीके अर्थ सूर्य सम्पर्कते अपनी अनस्थित परिनर्तन करते है। इसी नियमसे छत्तरार्थके आज अयनम छलके अति निकट प्रान्तमें रहने पर भी वह १० हजार वर्षके बाद दूर प्रांतमें नका जाता है। इसी कारण तुपारशैस्के स्वावसे उत्तर-यूरोपके सभी जीव नष्ठ हो जाते हैं।

#### घनत्व ।

पृथियोका परिमाण और गतिनिणय करनेमें ज्योति-र्विद्रगण जिस प्रकार वद्धपरिकर हुए थे, इसका वनत्व ( Density ) और गुरुत्व ( weight ) मालूम करनेमें वे उसी प्रकार यहागील थे। किसी एक परिमेय शुद्रवस्तु-की आकृष्टिशक्तिके साथ पृथिवीकी आकर्षणशक्तिकी तुलना करनेसे इस विषयका स्पष्ट आभास पाया जाना है। एक पर्वतस्तृपके मस्तकोद्दर्ध्वस्थानसे उसके ओछनको विच्युति ' Deflection of the plammet from the vertical position )-का अनुसरण करके तृगेन, मास्के-लिन आदि ज्योतिर्विद् पृथिवीका गुरुत्व निरीक्षण करनेमें समर्थं हुए थे। उन्होंने अपने अपने निर्दिष्ट पर्वतः की ओलनविच्युति ४ से ५ तक लक्ष्य करके तथा उस उस पर्वतका घनत्व वा गुरुत्व निह्नपण करके यह स्थिर किया, कि पृथिवीपिएंडका गुरुत्व जलको अपेक्षा ५ गुणा अधिक है। किन्तु पर्वतका यथायथ गुरुत्व निरूपित नहीं होनेके कारण इसका यथार्थ्य अवधारित नहीं होता। इसके वाद काभेएिडस् परीक्षा द्वारा मि॰ फ्रान्सिस वेली (Mr.Francis Baily) सीसकके गुरुत्व और पृथिवी-की आकृष्टिशक्तिकी तुलनामें जलकी अपेक्षा पृथिवीका गुरुत्व ५६ ७ स्थिर कर गये हैं। तृतीयतः राजज्योति-विंदु प्रो ( Mr. Airy, Astronomer Royal ) १८५8 ई०में टाइन नदीके किनारे और हर्टन कोयलेके गड्ढेसे १२६० फुट निम्नतम प्रदेशमें घड़ीके दोलक यन्त्रकी गति-विच्युतिको छक्ष्य करके जिस सिद्धान्त पर पहुंचै थे, वह पृथिधीका गुरुत्य निर्णय करनेमें वड़ा ही उपयोगी है । उन्होंने भूपृष्ट जौर गड्ढेके निम्नस्थ दोलकका दैनिक व्यवधान २१ सेकेएड निरीक्षण करके यह स्थिर किया है, कि भूपृष्ठसे उस निम्नस्थानमें आकर्षण १८१८० संख्यक अंश अधिक है। इस अंकफलसे उन्होंने पृथिवीका गुरुत्व जलकी अपेक्षा ६से ७ गुणा अधिक निर्णय किया।

### ताप ।

पृथिवीके वाहर और भीतर उत्ताप है। उत्ताप जीव-जगत्का प्राणदायी है। अनन्ताकाशका तेज, सूर्यका ताप-दान और वायुके निष्पीड़नसे जगत्में एक उत्ताप विकीर्ण होता है। हम छोग सूर्यकिरणसे जो उत्ताप पाते हैं उसी-

ही पृथिवीके भ्रमण और सूर्यसे स्थानविशेषमें पृथिवी-के स्थानभेदसे शीतग्रीष्मादि हुआ करता है। किन्तु पृथिवीका आभ्यन्तरिक उत्ताप इससे स्वतन्त है। भृपृष्ठसे हम लोग जितना ही नीचे जाते हैं, दैनिक उत्तापका व्यतिकम उतना ही कम मालूम पड्ना है, यहां तक, कि खूव नीचे जाने पर एक ऐसा स्थान मिलेगा, जहां वाह्यिक ताप विलक्कल अनुभूत नहीं होता। ऋतुके परिवर्त्तनसे उस स्थानके उत्तापका परिवर्त्तन दिखाई देता है। इस स्थानसे और भी निव्नतम प्रदेशमे जानेसे पुनः थोड़ा थोड़ा उत्ताप मालूम पड़ता है। प्रति ४०।५० फुटमें १ं फारेनहीट उत्तापकी वृद्धि होतो है अथवा १ मील नीचे जानेसे प्रायः १०० उत्ताप पाया जाता है। इस हिसाबसे नीचेका ताप भी लेनेसे ५० मील और भी अस्यन्तर भागमें ५००० ताप-प्रसाव देखा जाता है। इस प्रकार उत्तापकी कल्पनासे जग<sub>्</sub>में उत्पत्तिके प्रारम्ममें सार्वजनोन तेजका आविर्माव समका जाता है। इससे यही अनुमान किया जाता है, कि ऐसे प्रचएडतापसे कोई भी धातु गाढ़ा हो कर नहीं रह सकता, अवश्य हो उसे गल कर द्रव होना पडता है। आग्नेयगिरिनिःसत धावत तरल पदार्थादि इसका निदर्शन है। इसी धारणासे वैश्वानिकांने पृथिवीका आदि तरलत्व स्वीकार किया है। अभो देखा जाता है, कि पृथिवीका अभ्यन्तरभाग ताप-युक्त तरलपदार्थसे परिपूर्ण है और यह भूपृष्ठ ( Crest ) दुग्धसरको तरह स्निन्ध हो कर उत्पन्न हुआ है। केन्द्र-गत ताप ( Central heat) को स्वोकार करके फ़रियर, हम्बोल्ट आदि भूतस्यविद्दगण अभिनय तस्वायिकारमें सफलमनोरथ हुए हैं। पर्वतादिकी उत्पत्ति और भूमि-कम्प इसो तापका निदान है।

ताप शब्दमें विस्तृत विवरण देखें।

अनन्तक्रोड़ाविए-वाष्परिश घंनीभूत हो कर क्रमशः तरल हो जाता है। वही उत्तम तरल जलराशि शीतल होनेके समय दृद आवरणसे आच्छादित रहती है। धीरे धीरे उसके ऊपर स्तर पर स्तर पड़ कर भूपपञ्जर पत्थर-के जैसा कठिन हो जाता है। ऊपरमें जो महो देखनेमें आती है, क्रमशः वह पत्थर हो कर कुछ समय बाद श्लेटादि घन श्रन्थियुक्त पत्थरमें परिणत हो जायगी। मही और पर्वतादिके नीचेसे नीचे स्थानमें द्रवमय पत्थर वा धातवादिका हृद या जलस्रोत देखनेमें भाता है। भृतस और पर्वत शब्द देखा। भूपृग्रके नीचे विभिन्न स्तरोंमें जो सब निहित प्रस्तरास्थिका निदर्शन मिलता है, इससे एक एक प्रलयको कर्मना की जाती है।

पृथिवीका ६ त्पति-काळ।

क्या वर्रामान वैज्ञानिक युगमें, क्या पूर्वतन आय हिन्दुओं के मध्य, पृथ्तीका वयस-निर्णय करनेमें विशेष आन्दोलन चला आ रहा है ? वैज्ञानिक वा ज्योतिर्विद्-गण अपने अपने मतावलम्बनसे जिस प्रकार पृथिवीका उत्पत्तिकाल-निर्णय करनेमें समर्थ हुए हैं, पूर्वतन हिन्दू-शास्त्रकारोंने भी उन सब विषयोंको योगवलसे प्रगट किया है।

प्राचीन हिन्दूशास्त्रादिमें जगत्का अनन्त-कालक्याप्तित्य खीकृत हुआ है। भगवान मनुने "आसीदिदं तमोभूतं" प्रभृति वचनों द्वारा उसका समर्थन किया है। क्रमशः स्थेके विकाश और तेजीविकिरणसे जो वाष्प वा निहारिका वनती है, उसीसे पश्चभूतमय इस गोलाकार पिएडकी उत्पत्ति है। परन्तु बहुत दिन हुए, यह उत्पत्ति संसाधित हुई है, कोई भी इसे निश्चय रूपसे कहनेमें समर्थ नहीं हैं।

पुराणसे तथा वैज्ञानिक अनुसन्धानसे आविष्कत हुआ है, कि पृथिवी भिन्न भिन्न समयमें प्रलय-फ्रावित हो फिरसे सृष्ट हुई है। एकहत्तर गुगके वाद प्रलय और एक एक मन्वन्तर अर्थात् नृतन मनुका अवस्थितिकाल कल्पित हुआ है। मन्वन्तरकालकी सन्धिका परिमाण सत्ययुगके वरावर है। उस सन्धिके समयमं पृथिवी जल्रष्ठावित होती है। चाक्षुप मन्वन्तरके महाप्रलयके वाद यह सप्तद्वीपवती पृथिवी विराजित हुई है। अभी पिज्ञका देखनेसे अम वैवस्वत मनुका आविर्भावकाल और श्वेतवराह कल्पाब्द ४३२०००००० मालूम होता है। इनमेंसे १६७२४६६००१ अब्द वीत चुके और १६५५८८-५००१ अब्द हुए, म-सृष्ट हुई है।

वर्त्तमान विख्यात ज्योतिर्विद् न्युकोम्य और हलडेन-इत ज्योतिर्विद्या-विषयक पुस्तकमें लिखा है, कि नोहा-रिकासे (Nebular hypothosis) वैज्ञानिक आलोचना द्वारा आज भी पृथिवीकी उत्पत्ति खोछत नहीं हुई है, तो भो खभावकी सम्यक् पर्यालोचना (Studies of nature) द्वारा यह सूल दार्शनिक सिद्धान्तसे प्राह्य हुआ है। जागतिक विस्तृत व्यापारके अनुशीलनसे देखा जाता है, कि यह धरा-मएडल आतमरक्षणशील शिक्ति-विशिष्ट (Self-sustaining) नहीं है, भौतिक देह (Organism) की तरह एक ही भावमें कारण द्वारा (Laws of action) परिचालित होती है और काल कमसे उसीमें इसका लय होगा। न्युकोम्बन पृथिवोका उत्पत्तिकाल खीकार किया है; किन्तु उसका प्रकृत गुणफल नहीं मिलनेके कारण दो कोटि वर्षसे भी अपर इसका उत्पत्तिकाल ग्रहण किया है। उनके मतानुसार कालकमसे सूर्य और तारकादिका तेज क्षय होगा, धरा पुनः सन्धकारसे छा जायगो और कल्पान्तरमें नूतन सृष्टिकार्यका आरम्म होगा।

### भूषायु ।

पृथिवीमें जो वायुराशि निर्छिप्त है, जिसका सेवन करके हम लोग जीवन-धारण करते हैं उसी विश्वजनीन वायुको प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें भूवायु कहा गया है। भारतवर्षीय पूर्वतन ज्योतिःशास्त्रह पण्डितोंने भी भूपृष्ठसे ले कर आकाश तक सात प्रकारके विभिन्न वायुस्तरोंको स्वीकार किया है। यह वायु यदि नहीं रहती तो पृथिवी प्राणहीन शरीरकी तरह अकर्मण्य हो जाती। जलजन्तु-गण जिस प्रकार हमेशा जलमें रह कर जीवन वारण करते हैं, क्षणमात्र जलसे अलग होनेसे ही प्राण जानेका दर रहता है, उसी प्रकार हम लोग भी इस भूवायुके मध्य सर्वदा निमज्जित हैं। वायुविहीन हो कर यह जीव-जगत् क्षणकाल भी जीवनकी रक्षा नहीं कर सकता। पुराणादिकी तरह ज्योतिःशास्त्रमें भो इस प्रकार वायुका उद्देश है।

प्रधमतः भ्वायु, तब आवह, उसके अपर प्रवह, प्रवह-के अपर उद्रह, उद्रहके अपर सुवह, सुवहके अपर परि-बह और सबके अपरमें प्रसिद्ध परावह वायु अवस्थित है। पृथिवीपृष्ठसे बारह योजन अपर तक भ्वायुको सीमा है। विद्युत् और मेघ इस भ्वायुका आश्रय लेता है। विकानिब्दैन ब्योमयान पर चढ़ कर यह सावित किया

हैं, कि पृथिवीके उपरिस्थ यह विभिन्न वायुस्तर विभिन्न चापसे स्थूल और सूच्म वा लघु हुआ करता है तथा वे सव वायु हमेशा भिन्न भिन्न दिशामें बहती हैं, ऐसा भनुमान किया जाता है।

प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें लिखा है, कि—मानवावास यह घरा सात द्वीप और सात समुद्रसे आवृत है; इसमें जम्यू, प्लक्ष आदि सात द्वीप और भारत, फिम्पुरुप, हरि, रस्यक, हिरण्मय, कुरु, इलावृत, भद्राश्च, केतुमाल आदि नौ वर्ष लगते हैं। प्रत्येक वर्षमें सात सात करके कुलपर्वत हैं। अलावा इसके सैकड़ों नदी, उपनदी, पर्वत, जनपद और नगर उन सव वर्षोंको आलोकित करते थे। कालक्रमसे वे सब नाम परिवर्त्तित हो गये हैं अथवा वे सब जनपदादि हमेशाके लिये कालको अनन्त कोड़में सो गये हैं।

वर्त्तमान गठन ले कर यदि देखा जाय, तो पृथियी चार वड़े वड़े भूखएडोंसे, दो वड़े और कई एक छोटे द्वीपों तथा द्वीपमालाओंसे परिपूर्ण है। भूतत्त्वकी गठन ले कर अनुमान करनेसे देखा जाता है, कि पशिया, यूरोप, अफ़्रिका, उत्तर अमेरिका और दक्षिण-अमेरिका धे सव महादेश परस्पर विच्छिन्न रह कर एक समयमें परस्पर संयोजित हुए 📢 फिर भूतत्त्वके गठनानुसार किसी स्थानका हास और किसी स्थानको वृद्धि होती है। वाणिज्यकी उन्नतिके छिये फरासियोंके पैकान्तिक यससे अफ़िका महादेश अरव-कक्षसे विच्युत हो गया है और भूमध्य तथा लोहित-सागरके परस्पर योजित होनैसे एक सुविस्तृत वाणिज्य पथ खुल गया है। भारतवर्षके दक्षिण और सिंहलके बीच जो सब छोटी छोटी द्वीप-माला देखी जाती हैं, वे सेतुवन्ध नामसे मशहूर हैं।(१५) भूतत्त्वविद्गण उनकी गठन-प्रणालीसे अनुमान करते हैं, कि वे सब द्वाप एक समय भारतके साथ संयुक्त थे। पक्षणाः देखी ।

पशियाके उत्तर-पूर्वराज्य साइविरियासे हे कर उत्तर-अमेरिकाके मध्यवत्ती वेरि प्रणाली तकमें जो सव छोटे छोटे द्वीप हैं उनकी तथा उन स्थानोंके जलकी अल्पताकी

<sup>(</sup>१-१) अतायुगमें रावणका नाश करने के क्रिये श्रीराम॰ चन्त्रजी इसी प्रथस लंका गये वे ।

भालीचना करनेसे मालूम होता है, कि पनामायोजकके दक्षिण-अमेरिका-संयोगको तरह एक समय अमेरिका-भूमि भी पशियाखर के साथ मिली हुई थी। पशिया, यूरोप, अफ्रिका और उत्तर-दक्षिण अमेरिका आदि हीपाकार वृहत् भूभाग महादेश कहलाता है। अप्रेलिया और न्युजिलैएड अपेक्षाहत छोटा हीप है। उसके वाद मदागास्कर, इङ्गलैएड, स्काटलैएड, आयर-लैएड, सिहल, खुमाला, वोर्णियो, यावा, वालि, फर्मूजा, जापान आदि छोटे हीप हैं। अलावा इसके फिलिपाइन, पोलिनेसियन, पापुयन, इजियन और एरटाट्का आदि और भो कई एक हीपपुड़ हैं।

## महादेशविभाग ।

एशिय'—साइविरिया, माञ्चुरिया, जापान, चीन, चोनतातार, तिञ्चत, मङ्गोलिया, तुर्किस्तान, तुरुक्ष, अरव, पारस्य, अफगानिस्तान, वेलुचिस्तान, भारत, श्याम, ब्रह्म, कम्योज, आनम, कोखिन, मलय, गङ्गा-वहिर्भूत उपद्वीप। ये सव देश वा राज्य छोटे छोटे विभागोंमें विमक्त हैं।

युराय—प्रेटिनिटन, फ्रान्स, स्पेन, पुर्त्तगाल, इटली, तुषक्क, ग्रीस, अप्निया, स्वीजलैंएड, हालैएड, वेलजियम, जर्मनी, पोलएड, डेन्मार्क, नारवे, स्वीडन, रूसिया।

भिष्का—मरको, अलिजिरिया, दिउनिस, तीपिल, इजिप्त, न्युविया, भाविसिनिया, जञ्जीवर, मोजाम्बिक, लान्सभाल, नेटाल, काफ्रोरिया, केपकलोनी, अरेञ्ज-फिप्टेट, कङ्गोफिप्टेट, सेनिगाम्बिया, गीनी, गोल्डकोष्ट, और मध्य अफिकाके—चेजुआना, मोम्बासा, प्रिकोया आदि छोटे छोटे देशोय राज्य हैं।

वत्तर-अमेरिक —ग्रीनछैएड, एछास्का, कनाडाराज्य, युक्तराज्य, मेक्सिको, युकेटन, कोष्टरिका, गोआटिमाछा, इन्दुरस, निकारागोआ, सानसलमदेर, वेष्टइएिडया-ब्रीपपुञ्ज।

दिन्न अमेरिका—इकोयाडर, कलम्बिया, भेनिजिउला, विनिदाद, गायना ( अङ्गरेज, फरासी और ओलन्दाज ), ब्रेजिल, पेरु, विलिभिया, पारागुई, ओरागुई, ला प्लाटा (अर्जेएटाइन रिपब्लिक), चोली और फाक्लैएड-द्वीपपुज । छोटें छोटे द्वीपींका भिन्न भिन्न नामोल्लेख निष्ययोजन है । क्योंकि इनमेंसे अधिकांश अङ्गरेज, जर्मन, फरासी और रूस आदि राजाओंके अधिकारभुक्त हैं।

## समुद्रविभाग ।

ऊपर कहें गये स्थळविमागोंकी तरह पृथिवीपृष्ट पर के जळविमागका नाम नीचे दिया जाता है—अट-ळाएटक-महासागर (यूरोप और अमेरिकाके मध्य, प्रशान्त-महासागर (प्रियाके दक्षिणसे छे कर अफ्रिका और अप्ने लियाके दक्षिण तक अक्षा॰ ३५'), दक्षिण-महा-सागर (मारत-महासागर और दक्षिण-मेरुके मध्य), उत्तर-महासागर (प्रिया-यूरोप और अमेरिकाके उत्तर-से सुमेरु पर्वत), अळावा इसके मूमध्यसागर, उत्तर सागर, अरव-उपसागर, बङ्गोपसागर, मेक्सिको उप-सागर आदि अनेक छोटे छोटे जळविमाग हैं।

समस्त पृथिवीके मध्य जो सव जळविभाग सबसे श्रेष्ट हैं, उनके नाम ये हैं—

महादेश—पशिवा, देश—कसिया, पर्वत—हिमालय, द्वीप—अष्ट्रेलिया, हद—कास्पियन, नदी—मिसिसिपि और यंसिकियं।

कालक्रमसे पृथिवी पर अनेक अद्भ त और अत्या-श्चर्य शिल्पकार्य प्रतिष्ठित हुए हैं। उन सबके निर्माताकी अकातर व्यवशीलता, निर्माणनैपुण्य और परिश्रम देखनेसे अवाक् होना पड़ता है। भारतवर्षका ताजमहल, वाचि-लोनियर आकाशोद्यान, इजिसका पीरांमीड और स्फिङ्क-मूर्त्ति, रोडस् तथा साइप्रस द्वीपके ऊपरकी कलोसस्-मूर्त्ति (Colossus), रोमराजधानोका कलेसियम् और चीनका सुविख्यात प्राचीर संसारमें बहुत मशहूर (Wonders of world) हैं।

पृथिवीकन्द ( सं० पु० ) भूकन्द ।

पृथिवीकम्प ( सं॰ पु॰ ) पृथिन्याः कम्पः । भूकम्प ।

भूभिकस्य हेन्द्रो ।

पृथिवोक्षित् ( सं॰ पु॰ ) पृथिवीं क्षियति क्षि-पेश्वर्ये किप्, तुक् च । पृथिवीपति, राजा ।

पृथिवीचन्द्र (सं॰ पु॰ ) पृथिव्यारचन्द्र इव । राजा । पृथिवीगीता (सं॰ स्त्री॰) पृथिव्या गीता । पृथिवीको कथा । विष्णुपुराणमें ४थे अंशके २४वें अध्यायमें 'पृथिवीगीता'

Vol. XIV 83

वर्णित है । पृथिवीगीता सुनने वा पढ़नेसे पाप करता है और परलोकमें सद्दगति मिलती है। पृथिवीञ्जय ( सं॰ पु॰) पृथिवीं जयति-जि-बाहु॰ खरा, मुम् च। एक दानवका नाम। पृथिवीतीथँ ( सं० क्ली०) तीर्थंमेद । पृथिबीधर मिश्राचार्ये—एक धर्मशास्त्रकार। रघुनन्दनने शुद्धितत्त्वमें इनका नामोल्लेख किया है। पृथिबीपति (सं०पु०) पृथिब्याः पतिः। १ राजा। २ ऋषभ नामकी ओषधि। ३ यम। पृथिवीपतिस्रि-पशुपत्यष्टक नामक प्रन्थके प्रणेता। ्पृथिबीपाल ( सं० पु० ) पृथिवीं पालयतीति पृथिवी-पाल-अण् । १ राजा । २ चन्हमानवंशीय नदोलके एक राजा जेन्द्रराजके पुत्र । पृथिनीसुन् ( सं० पु० ) पृथिवीं सुनक्ति अवति सुज अवने किप्। भूपाल, राजा। पृथिवोमण्ड (सं० पु०-ह्यी० ) कर्दम, कीचड़ । पृथिवीमय ( सं० ति० ) मृष्मय, मृतिकायुक्त । पृथिवीमूल-एक हिन्दू राजा । कन्दालीमें इनकी राज-धानी थी। इनके पिताका नाम प्रभाकर था। वृधिवीरुह (सं० पु०) पृथिव्यां रोहति रुह-क । भूमिरुह, वृक्ष । पृथिवीलोक (सं० पु०) भूलोक। पृधिवीवर्मा —१ गङ्गाके पूर्वान्तदेशके अधिपति । २ कलिङ्ग-के एक गङ्गवंशीय राजा। इनके पिताका नाम महेन्द्रवर्म-देव था। पृथिवीश (सं० पु०) पृथिव्या ईशः। राजा। पृथिवीशक (सं० पु०) पृथिव्यां शक इव। राजा। पृथिचीध्वर ( सं० पु० ) पृथिच्या ईश्वरः । पृथिवीका अधि-पति, राजा । पृथिचीषेण—वाकाटकवंशीय एक हिन्दूराज। ये भहाराज रुद्रसेनके पुत्र थे । पृथिवीस्य (सं० ति०) जो पृथिवी पर वास करता हो, भूमि पर रहनेवाला। पृथिव्यापीड़ (सं० पु०) काश्मीरका एक राजा। काश्मीर देखी ।

पृथी ( सं पु ) वेणके पुत्र राजर्षि पृथुका एक नाम।

पृथी (हिं० स्त्री०) पृथिवी देखी। पृयु ( सं॰ पु॰ ) प्रथते विख्यातो भवतीति प्रथ-कु, सम्प्र-सारणञ्ज (प्रथिनदिश्रस्जां सम्प्रसार्णं वलीपथ । स्ण् १।२६ । ते तायुगके सूर्यवंशीय पञ्चम राजा । वेणराजाके मरने पर उनके दिहने हाथको हिलानेसे इनको उत्पत्ति हुई थी। भागवतमें इनका विषय इस प्रकार छिखा है--जव राजा वेणका देहान्त हुआ, तव उनके कोई सन्तान न थी । इसिलिये ब्राह्मण लोग उनके दोनों हाथ पकड़ कर हिलाने लगे। उस समय उनके एक हाथसे स्त्री और एक हाथसे पुरुष उत्पन्न हुआ। उन दोनों को देख कर ब्राह्मण छोग आपसमें कहने छगे, 'यह पुरुप भगवान विष्णुका और स्त्री लक्ष्मीका अंग है। इस कारण पुरुषका नाम पृयु रखा जाय और स्त्री उनकी पत्नी वनाई जाय।' इस प्रकार उस पुरुपका नाम पृथु रत कर ब्राह्मण लोग उनका गुणकोर्त्तन करने लगे और नाना प्रकारके वाद्यगीतादि माङ्गलिक काय भी होने छगे। स्वयं ब्रह्मा देवताओं के साथ उस स्थान पर पहुंचे और पृथुके दहिने हाथमें भगवान्का चक्र तथा पैरमें रेखा देख कर उन्हें भगवान्का अंश वतलाया। अव ब्राह्मण उनके अभिषेकको तैयारियां करने छगे। जो कन्या उत्पन्न हुई थी, उसका नाम अचि रखा गया। त्राह्मणो ने सप-ह्यीक पृथुका यथाविधान अभिषेक कार्य सम्पन्त किया। अभी घनद कुवेरने पृथुको स्वर्णमय आसन, वरुणने शुभछल, वायुने वालव्यजन और धर्मने कीर्त्तिमयी माला, इन्द्रने उत्कृष्ट किरोट, धर्मराजने द्मनकारक दण्ड, ब्रह्मा-ने वेदमय कवच, सरस्वतीने मनोहर हार, हरिने सुदर्शन-चक्र और लक्ष्मोने विविध सम्पत्ति प्रदान की। पीछे रुर्ते अस्ति, अभ्विकाने चर्म, सोमने अमृतमय अश्व, विश्वकर्मा ने सुन्दर रथ, अनिने छाग और गोश्युङ्ग-निर्मित घतुस्,

सूर्यने रिममय वाण और भूमिने योगमय पादुका उपहार-

में दी। नाट्यादि कुशल खेचरोंने इन्हें नृत्य, गीत और

वाद्य तथा अन्तर्थानविद्या प्रदान की। ऋषियोंने अमोध

आशीर्वाद दिया और समुद्रने स्वसछिछोत्पन्न शङ्क तथा

सिन्धु पर्वत और नदोने असंख्य रथ इन्हें समर्पण किये।

करनेको तैयार हुए, तव इन्होंने उन्हें रोक कर कहा,

स्त, मागध और वन्दिगण जव सभाय<sup>े</sup> पृथुका स्तव

'अभी मेरी गुणावली अव्यक्त है, जब मैं स्तवके योग्य होऊंगा, तब तुम लोग स्तव करना'।

अव विश्रमण पृथुको राज्याभिषेक करके 'तुम इस पृथ्वीका पालक हो, यथाविधि इसका पालन करो' इस प्रकार आदेश दे कर अपने अपने स्थानको चल दिये। उस समय पृथिवीमेंसे अन्न उत्पन्न होना वन्द हो गया, जिससे सब लोग वहुत दुःखित हुए, पीछे पृथुके निकट आ कर उन्हीं ने निवेदन किया, 'महाराज ! ब्राह्मणों ने आपको हम लोगोंका वृत्तिपद और शरण दाना वनाया है। हम लोग अन्नके अभावसे विनष्ट होनेको हैं, इसलिये आप अन्न प्रदान कर हम लोगोंकी प्राण-रक्षा कीजिये। आप अन्निल लोकके पालक और सवींके जीवनदाता हैं।'

महाराज पृथु प्रजाका ऐसा विलापवाष्य सुन कर वड़े दुःखी हुए और वीले, 'पृथिवी सभी ओपिघरोंका बीज खा गई है, इसलिये अन्न उत्पन्न नहीं होता है। अव तुम लोग घर जाओ, मैं शीव्र ही अन्नाभाय दूर कर देता हूं।' प्रजाका क्लेश निवारण करनेके लिये राजा पृथुने कमान पर तीर चढ़ाया और पृथिवीकी ओर दौड़ पड़े। यह देख कर पृथिवी गौका कप धारण कर भागने लगी। राजाने भी उनका पीछा किया।

जब पृथिवी भागती भागती थक गई तब पृथुकी शरणमें आई और कहने लगी, 'राजन्! आप आश्रित-वत्सल ओर सव प्राणियोंके पालक हैं। अतएव मेरी रक्षा कीजिये। आप प्रजा पालनके लिये मुक्ते विनष्ट करनेको उद्यत हुए हैं, किन्तु मैं इस ब्रह्माण्डकी दूढ़ तरणी स्वरूप हूं, मेरे हो ऊपर यह विश्व प्रतिष्ठित है। मुक्ते विदीर्ण कर क्या जलराशिके मध्य अपनी प्रजाको रक्षा कर सकेंगे ? आप तो प्रजा-पालक ठहरे, तो फिर क्यों प्रजानाशका उपयोग कर रहे हैं ?' इत्यादि प्रकारसे पृथिवीने नानाविध स्तव और हितकर वाक्य तो कहे, पर पृथुका क्रोध जरा भी शान्त न हुआ । पृथिवीने पुनः निवेदन किया, 'महाराज! त्रह्याने मुक्त पर जो ओषधियां आदि उत्पन्न की थीं, उनका लोग दुरुपयोग करने छगे, आपके समान कोई भी उपयुक्त राजा न थे, प्रजा-पालन और यहादिकी और उनका जरा भी ध्यान न था, सभी चोर वन गये । इसिछिये मैंने यज्ञार्थ ओपधियोंको अपने पेटमें एख लिया है । यदि इस प्रकार मैं उनकी रक्षा नहीं करती, तो कभी सम्भव नहीं था, कि आप उनका नाम तक भी जान सकते। वे सव ओपधियां मेरे पेटमें वहुत दिनों तक रहनेके कारण जीणें हो गई हैं। आप एक उपायसे उन्हें निकाल लीजिये, जिससे मेरा अभिलाय सिद्ध हो। आप वल्ला दुहने का वरतन और दुहनेवाला स्थिर करके मुक्ते दुहिये जिससे मैं क्षीरमय अभीए प्रदान करूं। राजन ! आप मुक्ते इस प्रकार समतल वना दीजिये जिससे वर्षा महतुका अवसान होने पर भी देववृष्ट जलराशि मेरे ऊपर पतित हो कर तमाम समान भावमें फैल जाय।'

इस पर पृथुने मनुको वछड़ा वनाया और अपने हाथ पर पृथिवोद्धपी गौसे सव औषधियां दूह छीं। इसके उपरान्त पंद्रह ऋषियोंने जिनकी जैसी अभिलापा थी, वृहस्पतिको वछड़ा वना कर अपने कानों में वेदमय पवित्व दूध दूहा।

इसके बाद दैत्य और दानवोंने भी प्रह्वादको वछडा वना कर लौहवानमें सुरा और आसव ; गन्धव और अप्सराओं ने विश्वावसुको वछ डा वना कर पद्ममय पातमें सौन्दयं और माधुयंके साथ मधु : श्राद्धदेव पितरों अर्थमाको वछडा बना कर अपक मृण्मय पातमें श्रद्धा-पूर्वंक कव्य ; सिद्धींने भगवान् कपिलको वछडा वना कर अणिमादि ऐश्वर्य और सङ्कल्पमयी सिद्धिः विद्याघर और खेचरों ने कपिलको हो वछड़ा वना कर खेचरादि-विद्या। किन्नर और मायाबी व्यक्तियों ने मयदानवको वछडा वना कर अन्तर्घान-विद्या और माया दूही थीं। यह माया अति आश्चर्य है। इसके वलसे सभी अभिलाप सिद्ध होते हैं। अनन्तर यक्ष, राक्षस, भूत और पिशा-चादि मांसमोजी व्यक्तियोंने रुद्को वछडा वना कर कपालपालमें रुधिरद्भप आसव, फणहीन सर्पगण और समस्त सर्पजाति तथा वश्चिकादि दंदशुकने तक्षकको वछड़ा वना कर चिलसप पालमें अपनी अपनी जातिका विष दूहा था । इसी प्रकार पशुओं ने भी बद्रवाहन वृषभको बळड़ा बना कर अरण्य रूप पात्रमें तृणक्रप क्षीर, -मांसासी जन्तुओं ने मृगेन्द्रको वछड़ा वना कर अपने शरीरकप पातमें मांसकप दुग्ध; पर्वतोंने हिमालयको

वत्स वना कर अपने अपने सानुक्ष्य पात्रमें विविध धातु दूहे। इस प्रकार सवों ने अपनी अपनी रुचिके अनुसार पृथिवीको दुह कर अपना अभिलाष पूरा किया।

अनन्तर पृथुने संतुष्ट हो कर पृथिवीको 'दुहिता' कह कर सम्बोधन किया और तव उसके वहुतसे पवैतों आदि-को तोड़ कर इसिलिये सम कर दिया जिसमें वर्षाका जल एक स्थान पर एक न जाय। पीछे वे वीज पृथिवीके चारों और निश्चिस हुए और अनेक नगरप्राम आदि वसाये गये। अव पृथिवी शस्यशालिनी हुई और प्रजा आनन्दसे काल व्यतीत करने लगी।

इस समय पृथुने ६६ यज्ञ किये। जब वे सौवाँ यज्ञ करने लगे, तब इन्द्र उनके यज्ञका घोड़ा ले कर भागे। पृथुने उनका पीछा किया। इस समय इन्द्रने अनेक प्रकारका रूप धारण किये थे जिनसे जैन, बौद्ध और कापालिक आदि मर्तोंकी सृष्टि हुई।

पृथु इन्द्रसे अपना घोड़ा छीन लाये थे, इस कारण इन-का 'विजिताश्व' नाम पड़ा था। इस यक्षमें मन्त द्वारा पृथु इन्द्रको भस्म करना चाहते थे, पर ब्रह्माने आ कर दोनोंमें मेल करा दिया। यक्ष समाप्त करके पृथुने सनत्कुमारसे ज्ञान प्राप्त किया और अपने पर दुहितृसदृशी पृथिवीका भार सौंपा। पीछे वे अपनी स्त्रीको साथ ले कर तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये, वहीं उन्होंने योगके द्वारा अपने इस भोगशरीरका अन्त किया। (भागवतमें ४११५ अ०से ले कर २४ अ० तक पृथुका विस्तृत विवरण लिखा उसे देखों।)

२ चतुर्थं मन्वन्तरके मध्य एक सप्तर्षि। ३ कुकुत्स्थ-के पुत्र अनेनाभूराजपुतः । ४ अजमीड-वंशीय पारपुतके पुत्रभेद् । ५ कोष्टु वंशीय चित्रके पुतः नृपभेदः । ५ दानव-भेदः । ७ प्रियवत-वंशोन्द्रव विभुके पुतः । ८ तामस मन्वन्तरीय ऋषिविशेषः । ६ महादेव । १० अग्नि । (पु०) ११ विष्णु । (स्त्री०) १२ कृष्णजीरक, काला जीरा । पर्याय-

"कृष्णजीरं सुगन्धञ्च तथैवोद्वारशोधनः। कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका। पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुः कृष्णोपकुञ्चिका॥"

( भावप्रकाश )

१३ त्वकपणीं । १४ हिंगुपती। १५ अहिफेन,

अफीम। १६ एक हाथका मान, दो वालिश्तकी लग्नाई।
(ति॰ १७ महत्, वड़ा। १८ विस्तृत, चौड़ा। १६
अगणिव, असंख्य, अधिक। २० प्रवीण, कुशल, चतुर।
पृथु—१ चिएडकामक विशिष्टमुनिके गोतवंशसम्भूत एक
राजा, पे पाठारीय प्रभुजातिके थे। २ चन्द्रवंशीय
कान्तिराजके पुत्रभेद। ३ मुद्राराक्षसके प्रणेता विशाखदत्तके पिता।

पृथुक (सं० पु०) पृथुरेव पृथुसंज्ञायां कन् वा प्रथते इति प्रथ-( अभेकपृथुकेति । उण् ५,५३ ` इति कुकन् सम्प्रसारणञ्च। १ चिपिटक, चिड्वा, चिउड़ा। इस शब्दका क्षीविलङ्ग-में भी व्यवहार देखा जाता है।

हरे, भिगोप या कुछ उवाले हुए धानको भून कर कूटनेसे चिड्ना तैयार करना होता है। इसलिए यह 'द्विःखिन्न' अन्न नामसे प्रसिद्ध है। यह चिड्ना देशियशेष-से शुद्ध है सही, किन्तु ब्राह्मण, यित, विधवा और ब्रह्मचारोको यह नहीं खाना चाहिए। यह देवताको भी चढ़ाना उचित नहीं। इसका गुण—गुरु, वलकारक कफ और विष्टम्मकारक है।

२ चाक्षष मन्बन्तरका एक देवगण। ३ वालक, लड़का। पृथु-स्वार्थे क। ४ पृथुशब्दार्थ।

पृथुकन्दन (सं॰ क्ली॰) तृणविशेष।

पृथुकर्मन् (सं० पु० ) शशविन्दुके पुत और चित्ररथके पौत ।

पृथुकल्पिनो (सं० स्त्री०) पृथुकऱ्यना, विस्तृत कल्पना । पृथुका (सं० स्त्री०) पृथुक-स्त्रियां टाप् । १ हिंगुपती । २ वाळिका ।

पृथुकालुकी (सं० स्त्री०) रक्तालुमेद । पृथुकीय (सं० त्रि०) पृथुकाय हितं अपूर्पादित्वात् छ । पृथुकहित ।

पृथुक्तीत्तं (सं० पु०)१ शशिवन्दुके पुतका नाम।
श्रिको एक कन्या। ३ पृथातुजा वस्त्रेवभगिती, पृथाकी एक छोटो वहनका नाम। (ति०)
पृथुः कीर्त्तिर्थस्य। ४ वृहद्वयशस्त्री, महायशस्क, जिसकी
कीर्त्ति वहुत अधिक हो।

पृथुकोल (सं॰ पु॰) पृथुः कोलः। राजवदर, वड़ा वैर। पृथुक्तला (सं॰ पु॰) जीरक, जीरा। पृथुक्य (सं० ति०) पृथुकाय हितं यन्। पृथुकहितः, पृथुके पृथुरा ( सं॰ पु॰ ) चाक्षपमन्यन्तरके देवताओंका एक भेद । पृथुगन्धा ( सं० स्त्री० ) गन्धराय्या । पृथुप्रीच (सं॰ पु॰ ) राक्षसमेद । ( ति॰) पृथुः घोवा यस्य । विस्तोर्ण योवायुक्त, जिसकी गईन लम्बी हो । पृथुग्मन् ( सं० ति० ) पृथुभावप्राप्त । पृथुच्छद् (सं॰ पु॰) पृथवश्छदाः पताणि यस्य । १ हरि-दर्भ, एक प्रकारका डाम । २ हाथीकन्द । ३ वृहत्पत्र । पृथुजय (सं० पु०) शशविन्दुके पुतका नाम। पृथुजाघन ( सं० ति० ) त्रिपुलनितम्य, लम्बी जांघवाला । पृथुजय (सं० द्वि०) शीघ्रगामी तेज चलनेवाला। पृथुता (सं० स्त्री०) पृथोर्मावः पृथु-तल्ल-टाप् । १ पृथुत्व, पृथु होनेका भाव। २ विस्तार, फैलाव। पृथुत्त्व ( हिं० पु० ) प्रयुता देखी। पृथुदर्शिन् ( सं० ति० ) पृथु-दृश्-णिनि । वहुदर्शीं, चतुर, सयाना । पृथुदान ( सं० पु० ) शशचिन्दुके एक पुतका नाम । पृथुपक्षस् (सं वि वे ) पृथुः पक्षः यस्य । वृहत् पाश्वं-द्वययुक्त । पृथुपत्र ( सं॰ पु॰ ) पृथूनि पत्नाणि यस्य । १ लाल लह-सुन। २ हाथीकन्द। पृथुपर्शु ( सं० ति० ) विस्तीण पार्श्वास्थियुक्त । पृथुपलाशिका ( सं० स्त्री० ) पृथनि पलाशानि यस्याः, कप् टापि अत इत्त्वम्। शटी, कचूर। पृथुपाजस् ( सं॰ बि॰ ) १ अतितेजस्वी, जिसकी कींचि बहुत अधिक हो । २ विपुल वेगयुक्त, शोघ्रगामी । पृथुपाणि (सं० वि०) पृथुः पाणियं स्य । आजानुस्रम्वतसुज, जिसके हाथ वहुत लम्बे या घुटनों तक हीं। पृथुप्रगाण ( सं० ति०) पृथु प्रगाणं यस्य । पृथुगीतियुक्त । पृथुपगामन् (सं० ति०) शीघगामी, तेज चलनेवाला। पृथुप्रथ ( सं० ति०) विस्तृतकीर्त्ति, जिसकी कीर्त्ति वहुत दूर फैली हो। पथुप्रोथ (सं॰ ति॰) अभ्वादिकी तरह विपुळ नासा-रन्त्रविशिष्ट, घोड़े की तरह वड़ी नथनीवाला। पृथुवुध्न ( सं॰ पु॰ ) स्थूलमूल । Vol XIV 84

पृथुमेरव-वीद्वोंके एक देवताका नाम । पृथुमुद्वीका ( सं॰ स्त्री ) सूत्तम द्राक्षा, किशमिश । पृथुयशस् (सं० ति० ) पृथु महत् यशो यस्य । १ महा-यशस्त्री। (पु॰) २ शशिवन्दुके एक पुतका नाम। पृथुयशस्—१ उत्पलपरिमलके प्रणेता । २ होरापट्पञ्चा-शिकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम वराहमिहिर था। पृथुयामन् ( सं० त्नि० ) पृथुरथ । पृथुरिष्म (सं॰ पु॰ ) ! यतिमेद । २ विस्तृत रिष्मशाली । पृथुराज-पक राजा। पृथु टेखो। पृथुराष्ट्र—वौद्ध गएडव्यूहवर्णित एक देश । पृथुरुक्त ( सं० पु० ) क्रोष्टुचंशीय रुक्तकवचके पुत्र । पृथुरोमन् ( सं॰ पु॰ ) पृथूनि रोमाणि, स्रोमस्थानीयानि शब्कान्यस्येति। १ मत्स्य, मछली। (बि॰) २ वह-होमयुक्त, वड़े वड़े रोए वाला। पृथुल सं ० ति ०) पृथुं पृथुत्वमस्यास्तोति पृथु-सिध्मादि-त्वात् छच्, या पृथुं छातीति छा-क। १ महत्, वड़ा, भारी। २ स्थूल, मोटा, ताजा। ३ अधिक, हेर, बहुत। पृथुला ( सं॰ स्त्रो॰ ) हिगुपत्नी । पृथुलाक्ष (सं० ति० ) पृथुले अक्षिणी यस्य पच समा-सान्तः। वृहन्नेवयुक्त, वड़ी आँखवाला। पृथुलोमा (सं० स्त्री०) १ मीनराशि । २ मछली । पृथुचक्त ( सं० ति० ) पृथु चक्ते यस्य । १ वृहन्मुखयुक्त, वड़ा मुंहवाला। (स्त्री०) २ कुमारानुचर-मातृकामेद। पृथुवेग ( सं० ति० ) पृथुः वेगः वस्य । १ महत्वेगयुक्त । (पु॰ पृथुः वेगः कर्मधा॰। २ प्रवल वेग। पृश्जिम्व ( सं॰ पु॰ ) पृथुः शिम्वा यस्याः । १ झ्योनाक-भेद, सोनापाठा । २ पोतलोध, पोलो लोघ । ३ असि-शिम्बी । पृथुशिरस् (सं० ति०) वृहत् मस्तकविशिष्ट, वड़ा सिरं-पृथुशिरा ( सं ॰ स्त्री॰ ) कृष्णजलीका, काली जींक। पृथुभ्दङ्गक ( सं० पु० ) मेचविशेष, मेदा । पृथुरोखर ( सं॰ पु॰ ) पृथु महत् रोखरं श्रङ्गं यस्य । पर्वत, पहाडु । पृथुश्रव (सं॰ ति॰) पृथुः श्रवः कर्णो यस्य। कर्णयुक्त, वड़े कानवाला ।

पृथुश्रवस् (सं० पु०) १ कुंमारानुचरमेद्, क्रात्तिकेपके एक
अनुचरका नाम । २ शशिवन्दुके एक पुतका नाम । ३
नवें मनुके एक पुतका नाम । ४ सरयूका पुत्रमेद् ।
पृथुश्रवा —एक हिन्दू राजा । ये महाकालीके भक्त और
भूचएडमुनिके गोतजात थे ।

पृथुश्रोणि (सं कि०) पृथुः श्रोणियँस्य । वृहत् नितम्व-युक्त ।

पृथुसेन ( सं॰ पु॰ ) अनुवंशोय रुचिरनृपके पुत्रका नाम । पृथुस्कन्ध ( सं॰ पु॰ ) पृथुः स्युलः स्कन्धो यस्य । शूकर, सूअर ।

पृथ्दक (सं० ह्रो०) पृथुपुण्यप्रदत्यात् महदृदकं यस्य।
कुरुशेवके अन्तर्गत एक नगर और प्राचीन तीर्थ। यह
वर्त्तमान पञ्जावप्रदेशके अम्बाला-जिलेमें प्रवाहित पुण्य-सिल्ला सरस्वतीके दाहिने किनारे अझा० २६ ५८ ४५ विकास स्था० ७६ ३७ १५ पू०के मध्य अवस्थित है।
अभी इसे लोग पेहेवा कहते हैं। प्रसिद्ध थानेश्वर नगरसे
यह स्थान ६॥ कोस दूर पड़ता है।

महातमा वेणके पुत राजचकवत्तीं पृथु ससागरा
पृथिवीके अधीश्वर हुए। जव उनके पिता मरे, तव सरखतीके किनारे इसी स्थान पर उन्होंने अन्त्येष्टिकिया की
और देहान्तके १२ दिन तक उसी नदीके किनारे वैठ
अस्यागतींकी जलदान देते रहे। इस कारण उस
जलतटका पृथुदक नाम पड़ा है। पिताके श्राद्धगौरवकी
रक्षाके लिये महाराज पृथुने यहां एक नगर वसाया।
तभीसे वह स्थान प्रतिष्ठाता राजाके नामसे ही घोषित
होता आ रहा है।

थानेश्वरकी तरह यह स्थान भी पवित माना गया है। प्रायः ३०से ४० फुट उच्च मृत्तिकास्त्पके ऊपर और नीचे वसे रहनेके कारण छोग इस स्थानके प्राचीनत्वकी कर्यना करते हैं। यहांके स्त्पमेंसे जो वड़ी ईटें, खोदित प्रस्तरमूर्ति, देवालय और द्वारदेशादिका ध्वंसावशेष, स्तम्म और मृण्मयी प्रतिमूर्त्ति पाई गई हैं, उनकी आलोचना करनेसे उस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता। इस स्थानसे आविष्कृत मुद्रादि और अन्यान्य निदर्शन प्रायः थानेश्वरके समकालवत्तीं हैं।

पेहोवा नगरके पश्चिम गोरक्षनाथके शिष्य गरीवनाथ-

का मन्दिर हैं। उस मन्दिरके गातमें राममद्रदेवके पुत राजा भोजदेवको २७६ सम्वत्में उत्कीर्ण एक शिलालि। प्रथित है। दक्षिण-पूर्वमें पञ्जावके निकट 'सिद्धगिरिकी हवेली' नामक अद्दालिकामें एक और शिलालिपि निवद देखी जाती है। वह लिपि भोजदेवके पुत्र महेन्द्रपाल-देवके नीचे सातवीं पीढ़ोमें देवराज द्वारा खोदी गई है।

सम्मवतः गजनीपित महमृद्देन जिस समय धानेश्वा तर्हा था, उसी समय इस नगरकी पूर्वश्री जाती रही। परवर्त्ती मुसलमानराजने इस स्थानका तीर्थमाहात्म्य लोप करनेकी इच्छासे घृतस्रवामें एक उद्यान-वाटिका तैयार कराई। जब कोई तीर्थयाती इस स्थान पर आता था, तब उसी समय उसे चालान कर दिया जाता था। इस प्रकार धीरे धीरे यहांकी जनसंख्या घटने लगी। अन्तमें सिखजातिके अभ्युद्ध होने पर कितने तीर्थ पुनः संस्कृत हो कर प्रतिष्ठित हुए हैं।

वहां अनेक पुण्यसिलला पुष्करिणो और तीयस्थान हैं जिनमेंसे कुछ तो ध्वंस हो गये हैं और कुछ आज भी विद्यमान हैं। मधुस्रवा, घृतस्रवा, पापान्तक, ययाति, वृहस्पति और पृथ्वीश्वरादि तीर्थं प्रधान हैं। अलावा इसके और भी कितने छोटे छोटे तीर्थं हैं (इस्सेन्भें उन सब तीर्योक्ता विदरण देखी)

वामनपुराणमें लिखा है, कि महामुनि विश्वामितने इस तीर्थमें स्नान कर ब्राह्मण्यलाम किया था। यह तीर्थ सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें स्नानदानादि करनेसे अक्षय पुण्य प्राप्त होता है और अन्तमें परमागति मिलती है। वामनपु० ३८अ०

महाभारतमें लिखा है. कि पृथ्दकतीर्थ सभी तीर्थांसे श्रेष्ठ है। कुरुक्षेत्र तीर्थ अतिशय पुण्यप्रद माना गया है। उसकी अपेक्षा सरस्त्रती है और सरस्त्रतीसे भी यह तीर्थ अधिक पुण्यदायक है। इस तीर्थमें मृत्यु होनेसे परमागति प्राप्त होती है। सनत्कुमार और स्वयं व्यासदेवने भी कहा है—

"पुण्यमाहुः कुरुक्षेतं कुरुक्षेतान् सरस्ततो । सरस्तत्याञ्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथ्द्कम् ॥ उत्तमं सर्वतीर्थानां यस्त्यजेदात्मनस्तजुम् । पृथ्द्दके जप्यपयो न तस्य मरणं भवेत्॥ गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महातमना ।

वेदे च नियतं राजन्नधिगच्छेत् पृथ्द्कम् ॥
पृथ्द्कात् तीर्थतमं नान्यतीर्थं कुरुद्धः ।
तन्मध्यं तत् पविलञ्च पावनञ्च न संशयः ॥
तल स्नात्वा दिवं यान्ति येऽपि पापकृता नराः ।"
( महाभारत ३।८३।१३२-१३६ )

पृथ्द्कस्वामी चतुर्वेद—इनके पिताका नाम था मधुस्दन।
ये ब्रह्मगुप्तरुत खर्डखाद्यकी टीका और ब्रह्मसिद्धान्तवासना-भाष्यके रचिता थे।

पृथुद्दर (सं० पु० ) पृथु महदुद्दं यस्य । १ मेप, मेढ़ा । (बि०) २ वृहत्रुक्षि, बड़े पेटवाला ।

पृथ्वी (सं० स्त्री०) पृथुः स्थ्हत्वगुणयुक्ता (बोनोगुण-वचनात्। या ४।१।४४) इति जीप्। पृथिवी। अन्यन्त सीड़ी अथवा पृथुकी दृहिनाके कारण इसका नाम पृथ्वी पड़ा। (पृथ्वी देखो।)

२ हिंगुपती । ३ क्रण्णजीरक, कालाजीरा । ४ वृत्ता-हैत्मातृमेद । ५ पुनर्णशा । ६ स्थ्हेला, वड़ी इलायची । ७ अकेवृक्ष । ८ आदित्यमका । ६ छन्दोमेद । इस छन्दके प्रति पादमें सत्तरह अक्षर होते हैं और अप्रम तथा नवम-में यति होती हैं । इसके २रा, ६डा, ८वां, १२वां, १४वां १५वां, और १७वां अक्षर गुरु और शेप वणं लघु होते हैं । १० पञ्चभूतों या तत्त्वोमेंसे एक । इसका प्रधान गुण गन्ध है, पर इसमें गौण रूपसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चारों गुण भी हैं । विशेष भूत शब्दमें देखा । ११ पृथ्वी-का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टो और पत्थर आदिका है और जिस पर हम सब प्राणी चलते फिरते हैं, भूमि, धरती, जमीन । १२ मिट्टी।

पृथ्वीका (सं० स्त्री०) पृथ्वी स्वार्थे कन्।१ वृहदेला, बड़ी इलायची। २ स्क्ष्मेला, छोटी इलायची। ३ कृष्ण-जीरक, काला जीरा। ४ हिं गुपतो।

पृथ्वीकुरवक ( सं॰ पु॰ ) पृथ्व्यां भूमी कुरवक इव । श्वेत मन्दारक, सफेद मदार या आक ।

पृथ्वीगर्भ (सं० पु०) पृथ्वीच लम्बमानो गर्भ उद्रमस्य । लम्बोदर, गणेश ।

ृष्ट्यीगृह (सं० क्की०) गहर, गुफा। पृथ्वीचन्द्रसूरी—एक जैन परिडत। पृथ्वीचांद—१ चम्वाके भूम्यधिकारो । पितृह्नता जगत्-सिंहका प्रतिशोध छैनेके लिये १६४१ ई॰में ये सम्राद्पुत शाहजहांकी अनुशासे ससैन्य उपस्थित हुए। इस कामके लिए इन्हें दिल्लीश्वरसे एक हजारी मनसवदार और चार सौ अश्वारोही सेना मिली। वाद सम्राद्के आदेशानु-सार ये चय्वाको लीटे और तारागढ़-दुर्गके सन्निकटस्थ पार्व त्य प्रदेशमें सैन्यसंग्रह करके पुनष्ट्यमसे ग्वालियरराज मानसिंहके सहायतासे तारागढ़ पर आक्रमण कर दिया और जगत्सिहको परास्त किया।

२ कच्छत्राह्यंशीय राय मनोहरके पुत्र । पिताकी मृत्युके वाद स्वराज्य पर अधिष्ठित हो कर इन्होंने रायकी उपाधि और पांच सी पदाति तथा नीन सी अभ्वारोही सेनाका अधिनायकत्व प्राप्त किया ।

पृथ्वीज (सं० बि०) पृथ्व्यां जायते इति जन-छ । १ भूमि-जात, जमीनसे पैदा होनेवाला । (क्वी०) गड्लवण, सांभर नमक ।

पृथ्वीतल (सं० पु) १ संसार, दुनियां। २ यह श्ररातल जिस पर हम लोग चलते फिरने हैं, जमोनको सनह। पृथ्वीद्र्याल--राजद्र्यद्वाता, कोत्याल, पुलिसका प्रधान कर्मचारो।

पृथ्विदेव १म - हिह्यवंशीय चेदिराज्यके एक राजा । ये राजा रहराजके पुत्र थे । रह्नपुरमें इनकी राजधानी थो । पृथ्विदेव २य - हिह्यवंशीय राजा २य रह्नदेवके पुत्र और १म पृथ्विदेवके प्रपीत । चोड्गङ्ग-पराजयके वाद कल्डिङ्ग-नगरमें रह्नदेवकी राजधानी हुई । रह्नपुरको शिलालिपि-में ८६३ कल्डचुरी संवत्सरमें इनका राज्यकाल लिखा है । पृथ्विदेव ३य--पृथ्विदेवके हितीय प्रपीत । रह्नपुरमें ये राज्य करते थे ।

पृथ्विद्यी—वीद्धंदेवताभेद । आर्या वसुन्धरा नामसे प्रसिद्ध है । वसुन्धरा-व्रतोत्पस्यावदान नामक वीद्ध्यन्थमें इसका वास तुषित नामक स्वर्गमें वर्णित है । महावस्तु-अव दानमें लिखा है, कि इन्होंने गुरु काश्यपक्षी प्रार्थनासे व्राह्मणोंका ध्वंस किया था । वसुन्थरा देखो ।

पृथ्वीधर ( सं॰ पु॰ ) धरतीति 'पचाद्यच्' इति अच् । मही-धर, पर्वत, पहाड़ ।

पृथ्वीधर--मिथिलाराज रामसिंहदेवके आश्रित एक

पिरिडत । इन्होंने मुच्छकटिकारीकाकी रचना की ।
पृथ्वीधर आचार्य—१ कातन्त्रविस्तरिववरणके प्रणेता । २
शम्भुनाथके शिष्य । इन्होंने भुवनेश्वरीस्तोत, लघुसप्तशतीस्तोत, सरस्त्रतीस्तोत्त और भुवनेश्वर्यर्चनपद्धित
नामक कई एक प्रन्थ रचे । ३ रत्नकोषके रचिता ।
पृथ्वीधर मह—एक किया । इन्होंने अभिज्ञान शकुन्तलरोका प्रणयन की । इनके पुत्रका नाम राघव मह था।
पृथ्वीनाथ (सं० पु०) राजा।

पृथ्वीनारायण शाह — नेपालके एक गोर्खाराज । इनके पिताका नाम नरभूपाल शाह था । पाल्पासे आ कर उद्यपुर-राजवंशने सप्तगण्डकीतीरवर्ती गोर्खालिराज्यमें राज्य स्थापित किया । पृथ्वीनारायणने अपने बाहुवलसे नेपालराज्य जीता । उन्हींके अत्याचारसे कीर्तिपुरकी महिमा लुन और नासकाटापुर नाम प्रवर्त्तित हुआ है । नासकाटापुर और नेपाल देखी ।

पृथ्वीपत्—सागरप्रदेशके एक राजा। इन्होंने पेशवासे विलिहरा नामकी भूसम्पत्ति पाई थी।

पृथ्वीपति ( सं॰ पु॰ ) पृथ्वग्रः पतिः । पृथिवीपाल, राजा । पृथ्वीपाल ( सं॰ पु॰ ) पृथ्वीं पालयतीति पालि-भण् । १ पृथिवीका पालन करनेवाला, राजा । २ राजतरङ्गिणो-वर्णित काश्मीरका एक राजा ।

पृथ्वीपुत ( सं॰ पु॰ ) मङ्गलप्रह ।

पृथ्वीपुर ( सं॰ पु॰ ) मगधराज्यके अन्तर्गत एक नगर । पृथ्वीसुज् ( सं॰ पु॰ ) पृथ्वीं सुङ्क्ते सुज-िकप । महोपित, राजा ।

पृथ्वीमल मेवारके एक राणा। राहुप और लक्ष्मणसिह-के मध्यवर्ती राजत्वकालमें ये चित्तौरके राजसिंहासन पर अधिकढ़ हुए। इन्होंने असीम साहसके साथ वहुत से राजपूर्तोंकी खून खरावी कर मुसलमानोंके कवलसे हिन्दूके प्रधान तीर्थ गयापुरोका उद्धार किया था। इनकी निर्मीकता और खधमेंत्रे मिकता देख कर मुसलमानोंने हिन्दूधमेंके प्रति अत्याचार करना छोड़ दिया।

पृथ्वीमल्ल मद्नपालके पुत और मान्याताके ज्येष्ठ भ्राता।
इन्होंने बालचिकित्सा वा शिशुरक्षारत्न नामक वैद्यकश्रन्थ
की रचना की।

पृथ्वीमलुराज-महाणव नामक प्रन्थके रचयिता।

पृथ्वीराज—भारतके एक शेष और प्रधान हिन्दूराजा।
उन्होंने भारतवर्ष पर केवल अपना आधिपत्य ही नहीं
फैलाया था, वरन् उनका सुतीव प्रमाव इस भारतके कोने
कोने अप्रतिहतभावमें फैल गया था तथा दिल्लीका सिहा-सन मुसलमानोंके हाथ आनेके पहले भारतीय हिन्दू-राजाओंमें उन्होंने श्रेष्ठ पद प्राप्त किया था।

चांद कविका प्रशंग।

चाँद किवने लिखा है, 'दिल्लीपित अनङ्गपाल जब काम-ध्वजके साथ संग्राममें प्रवृत्त हुए, उस समय अजमेरपित सोमेश्वरने उन्हें खासी मदद पहुंचाई थी। इस कारण दिल्लीश्वरने अपनी छोटी लड़की कमलाको सोमेश्वरके हाथ सौंप दिया। इसी कमलाके गर्भसे पृथ्वीराज उत्पन्न हुए। अनङ्गपालकी वड़ी लड़की सुन्दरीके साथ विजयपालका विवाह हुआ था जिससे कन्नोजपित जयचन्द्रने जनमग्रहण किया।'

चाँद कविके वर्णनसे पृथ्वीराजका वंशपरिचय इस प्रकार जाना जाता है—पृथ्वीराजके पितामहका नाम आनन्दमेवजी, प्रपितामहका जयसिंह और वृद्धप्रपितामह का नाम आना था। इन्होंने १११५ विक्रमशाकमें जन्म लिया। पृथिराजरासीमें इनके जन्मके सम्बन्धमें जो लिखा है, वह नीचे देते हैं—

"एकादश से पश्चदह, विक्रमसाक अनन्द। तिहि रिपुजय पुरहरणको, भय पृथिराज नरिन्द ॥ एकादस से पश्चदह, विक्रम जिम भ्रम स्रुच। एतिय साक पृथिराज को, लिख्बो विभ्र गुन गुप्त॥" (पृथिराजरासी १।६६४-५)

आनन्दमय १११५ विक्रमशाकमें उस रिपुहारी और पुरजयकारी पृथिवीराज नरेन्द्रका जन्म हुया। 'पृथिराज-रासी'-प्रनथके आदिपव-प्रकाशक पिएडत मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्यके मतसे,—चाँदकविने उक्त दोहामें जो 'अनन्द' शब्द लिखा है, उसका अर्थ अ-नन्द (६) है अर्थात् १००-६ = ६०।६१ ऐसा कल्पित अर्थ मान कर वे कहते हैं, कि १११५ विक्रम ६०।६१ = १२०५।६ सनन्द विक्रममें पृथ्वीराजने जन्मग्रहण किया। (काशीसे तत्-कर्तं क प्रकाशित पृथिराजरासी १३६-१४० पृष्ठ दृष्ट्य।) किन्तु उनका यह कष्ट कल्पितं अर्थ समीचीन नहीं है।

यहां 'अनन्द' शब्द 'आनन्द' सक्तप ही व्यवद्वत हुआ है। ऐसे 'अनन्द' शब्दका प्रयोग 'पृथिराजरासो'-में कई जगह आया है। यथा—

"अनगपाल तूं अर यरणं किय तीरथथ अनन्द ।" ( पशियाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित पृथिराजरासो, २य भाग ६६ पृ० )

विशेषतः परवर्त्ती पद्धरी स्ठोकमें पृथ्वीराजकी जन्म-पत्नीके उपलक्षमें चाँदकविने ऐसा लिखा है—

"द्रवार वैठि सोमेस राय, छीने हजार जोतिंग बुछाय॥
कही जन्म कर्म वाछकविनोद, सुभ छगन महूरत सुनत मोद्
संवत इक्कद्म पञ्च अगग, वैसाखमास पख कृष्ण छग्ग॥
गुरु सिद्धिजोग चिवानिक्त, गर नाम करण सिसुपरमहित्त॥
क्रया प्रकास इक घरिय रात, पछ तीस अंश त्रयवाछ जात॥
गुरु बुध शुक्र परिदसै थान, अष्टमै वार शनि फछ विनान॥
पञ्च दुर थान परिसोम भोम, ग्यारमैं राह वछ करन होम॥
वारमैं सूर सो करन रङ्ग, अनमी नमाय तिन करै भङ्ग॥
प्रिथराज नाम वछ हरै छत, दिल्हीय तखत मण्डै सुछत॥
च्याळीस तोन तीन वर्षसाज, किल पुहमि इन्द्र उद्धार काज"
(आदिएवे ७०५-७१०)

द्रवारमें वैठ कर राजा सोमेश्वरने ज्योतिपीको सामने वुलाया और कहा, 'वालकका जन्म, कर्म और शुभलग्न वता दीजिये, जिसे सुन कर मेरा चित्त प्रसन्न हो।' सम्वत् १११५, वैसालमास, कृष्णपक्ष, गुरुवार, सिद्धियोग, चिलानक्षत और शिशुका परमहितकर गर-करण ; एक दण्ड ३० पल और ३ अंश रात रहते ऊपा-प्रकाशकालमें शिशुने जनम प्रहण किया। उनके द्शम स्थानमें वृहस्पति, बुध और शुक्र ; अप्टममें शनि ; पञ्चम और द्वितीयमें सोम और मङ्गळ ; एकाव्शमें ( खळोंके नाशनार्थ ) राहु और द्वादशमें सूर्य हैं। यह वालक शतुदलका निपातन करनेमें समर्थ होगा। पृथ्वी-राज इसका नाम रहेगा। दिल्लीके सिंहासनको ये सुशोभित करेंगे। इस कलियुगमें वे ४३ वर्ष तक पृथिवीके उद्धारकार्यमें लगे रहें गे अर्थात् केवल ४३ वर्ष तक जीवित रहेंगे। चाँदकवि वर्णित जन्मपतीसे भी पृथ्वीराजका जन्मकाल १११५ विक्रम सम्वत् अर्थात् १०५८ ई० होता है। सुतरां पण्डित विष्णुलालकी कप्ट-कल्पना ग्रहणयोग्य नहीं है।'

Vol. X1V 85

वचपनसे ही इनके शौर्यवीर्यका परिचय पाया जाता है। दरवारमें प्रतापसिंह चालुक्यने अपनी मूं छों पर ताव दिया था, इस कारण रुष्ण (कान्ह) चौहान्ते उन्हें मार डाला। इस पर पृथ्वीराज वड़े विगड़े और उन्हें आँखें वांध रखनेंके लिये वाध्य किया था। राजा होनेंके पहले ही पृथ्वीराजने नाहरराय और मेवातियोंको जीता था। इसके वाद ही साहबुद्दीन घोरीसे प्रेरित हुसेन खाँके साथ उनका विपुल संग्राम छिड़ा। युद्धमें साहबुद्दीन पराजित और हुसेन मारे गये। एक दिन पृथ्वीराज जब आखेटको निकले, तब शाहबुद्दीनने अत किंत भावसे उन पर आक्रमण कर दिया। इस समय चौहान-वीरके साथ वहुत कम आदमी थे, तिस पर भो पृथ्वीराजने अतुल विक्रमसे घोरको परास्त कर ही डाला।

गुजरातके राजा भोलाराय वड़े ही अहङ्कारी हो उठे थे। पृथ्वीराजने उनका दर्प चूर्ण कर डाला। इसके बाद इञ्जिनोके साथ पृथ्वीराजका विवाह हुआ।

दिल्लीपतिके साथ जव मुगलोंका युद्ध छिड़ा, तव उसमें पृथ्वीरायने वड़ी वीरता दिखलाई थी। चन्द्र पुण्डीरके दाहिमी नामक एक परम रूपवती कन्या थी जो पृथ्वीराजको व्याही गई। कैमास, चन्द्रसेनी पुण्डिर और चामण्डराय ये तीनों दाहिमीके माई थे। परवर्त्ती कालमें तीनोंने ही दिल्लीश्वरके अधोन उच्च पद प्राप्त किया। पृथ्वीके मातामह अनङ्गपालके दो कन्या छोड़ कर और कोई पुत्त-सन्तान न थी। उन्होंने पृथ्वीराजके पराक्रम, बुद्धि और गुण पर मुग्ध हो कर उन्हींको दिल्ली राज्य समर्पण किया और आप वद्रिकाश्रमको चल दिये। ११३८ विक्रम-सम्बत्में हेमन्तकाल मार्गशीर्प शुक्कपञ्चमी तिथि और सिद्धियोगमें पृथ्वीराज मातामह द्वारा दिल्लीके सिंहासन पर अभिपक्त हुव थे।

चाँदने लिखा है—

"ग्यारह सै अठतीसा मानं भी दिल्ली नृप रा चौहानं। विक्रम विन सक वन्धी सूरं तपै राज पृथिराज करूरं॥"
- (माधो भाट-कथा ६५)

अनङ्गपाल दिल्ली छोड़ कर चले गये, यह धुन कर साहबुद्दीन वड़ी धूमधामसे दिल्ली पर चढ़ाई करनेके लिये आ धमके। माघोमाटने आ कर पृथ्वीराजको इसकी खवर दी। हिन्दू-मुसलमानमें तुमुल-संप्राम चलने लगा। साहबुद्दीन पराजित और वन्दी हुए। पीछे उपयुक्त अर्थद्ग्ड देनेके वाद उन्हें छुटकारा मिला। इसके अनन्तर पद्मावतीके साथ पृथ्वीराजका विवाह हुआ। इस समय चन्देलराजकी तृती तमाम बोल रही थी।

दिख्छीपतिके साथ उनकी छड़ाई छिड़ी। अब्हा और ऊदछ नामक वनाफर राजपूत-वंशीय दो महावीरोंने परिमाछका पक्ष छिया। किन्तु वे सबके सब पृथ्वीराजसे पराजय खीकार करनेको वाध्य हुए। अनन्तर पृथ्वीराज-को नहन पृथाके साथ चित्तोरपति समर्रसहका विवाह हुआ।

दिरहोपितको सहू-वनमें प्रचुर धन हाथ हमा।
जमीन कोड़ कर उस धनको निकालते समय सुलतानने
उन पर आक्रमण कर दिया। इस वार भी वे पहलेके
जैसा पृथ्वीराजके हाथ वन्दी हुए और प्रचुर अर्थद्रण्ड दे
कर जानकी रिहाई पाई।

दैवगिरि-राजकन्या शशित्रताको पानेकी आशासे कन्नोजाश्विपति जयचन्द्र देवगिरिको पश्चारे। किन्तु इसके पहले ही पृथ्वीराज उस कन्याको हर लाये थे। यह ले कर दोनोंमें लडाई उन गई। जयचन्द्रने वहुसंख्यक सेना ले कर दैवगिरिको घेर लिया। अन्तमें वे पृथ्वी-राजके सेनापति चामएडरायसे परास्त हुए।

चामएडराय देविगिरिको फतह कर छोटे, इसी समय दिव्छोपित रेवाके किनारे हाथीके शिकारमें आये हुए थे। यहां उन्हें लाहोरके शासनकर्त्ता चन्द्र पुएडोरसे एक पत मिळा जिसमें लिखा था, कि साहबुद्दीनके सेनापित तातार माठफ खाँ दिल्ली पर आक्रमण करनेके लिये विलक्तल तैयार हैं। फिर क्या था, दिल्लीश्वरने उसी समय दलवलके साथ पञ्चनदको ओर याता कर दी। यहां उन्होंने सुना, कि चंद्रपुएडीर उनकी अव्रगामी सेना ले कर गजनी-पितको रोकने तो गये हैं पर वे इस कार्यमें कृतकार्य नहीं होंगे। दिल्लीपित स्वयं युद्धस्थलमें कृद पड़े और साह-बुद्दीनको गति रोको। इस युद्धमें दोनों पक्षके अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति खेत रहे। अन्तमें साहबुद्दीनने परास्त हो

कर पूर्वेवत् वन्दित्व स्त्रीकार किया । गजनीपति एक मास तीन दिन कैदमें रहे, पीछे काफी धन दे कर छुटकारा पाया ।

इधर वद्रिकाश्रममें अनङ्गपालको यह सम्बाद मिला, कि उनकी प्रिय प्रजा पृथ्वीराजके हाथसे बहुत कष्ट पा रही है, इस कारण उन्हें फिर राज्यभार प्रहण करना कर्त च्य है। इसी मौकेमें मालवराज महीपाल पहले सोमेश्वरकी राजधानी सम्भर और पीछे दिल्ली पर आकमण करनेके लिये अप्रसर हुए। किन्तु सोमेश्वरके निकट महीपालकी पूरी हार हुई। इधर अनङ्गपाल-पश्चके कुछ लोगोंने बद्दिकाश्रम आ कर उन्हें राज्यप्रहण करनेका अनुरोध किया। उन लोगोंकी वात पर अनङ्गपालने पृथ्वीराजको अपने मन्त्री द्वारा कहला मेजा, "या तो तुम राज्य छोड़ दो, या बद्दिकाश्रम आ कर मुकसे मुलाकात करो"।

पृथ्वीराजने वृह् की वात पर कान नहीं दिया। इस पर वृद्ध-अनङ्गपाल ससैन्य उनसे युद्ध करनेके लिये आये। गजनीके सुलतानने भी दलवलसे आ कर अनङ्गपालका साथ दिया। पृथ्वीराज इस पर भी विनलित न हुए। रणशेलमें मातामहके साथ उन्होंने मुलाकात की। उनके प्रिय-मन्त्री केमास अनङ्गपालके हाथीको आहत कर वृद्ध राजाको केंद्र करने आये। इस समय सुलतान उनकी रक्षा करनेके लिये आगे वह, पर पृथ्वीराजके हाथसे वे भी केंद्र कर लिये गये। पृथ्वी राजने वड़े आदर और सम्मानसे मातामहको प्रहण किया। साहबुद्दे नको इस वार प्रसुर अर्थ देना पड़ा। वृद्ध अनङ्गपालको उस समय भो राज्यिलप्सा दूर नहीं हुई थी। वे एक वर्ष तक दिल्लीमें रहे और पृथ्वीराजके व्यवहार पर वड़े प्रसन्न हो कर पुनः वद्रिकांश्रमको चल दिये।

गजनीपित वार बार ठोकर खाते गये थे। अतः इस वार वे बहुसंख्यक सेना छे कर घघर नदीके किनारे जा धमके ; किन्तु इस बार भी उन्होंने पूर्ववत् प्रतिफल पाया।

इसके वाद पृथ्वीराजने कर्णाटकी याता कर दी। वहां-से वे केव्हन नामक एक नायकको साथ छै ११८१ सम्वत्में दिल्ली वापिस आये। पहलेसे हो कन्नोजपित जयचन्द पृथ्वीराजके शबु थे।
बे भी सुलतान साहयुद्दीनके साथ मिल कर पृथ्वीके
विकद पड़-यन्त रचने लगे। फलतः पीपामें गहरीं मुठभेड़ हो गई। अनन्तर दिल्लीपितने दोनों पश्चमें इन्द्रावती
नामक एक सुन्दरीका पाणिय्रहण किया। उनके साथ कुछ
दिन सुखसे विता कर दिल्लीश्वर आखेरको निकले। इस
अवसरमें सुलतानने उन पर धावा वोल दिया। दिल्लीके
अन्यतम सेनापित जैतरावने महाविक्तम दिखा कर सुलतानको परास्त किया। इसके वाद पृथ्वीराजने कांगुरा
गिरिदुर्ग जीत कर हंसावतीको पत्नी वनाया।

गुजरराजके साथ अजमेरपित सोमेश्वरका वहुत दिनोंसे विवाद चला भा रहा था। गुजरपित भोला-भोमने गुमभावसे सोमेश्वरको मार डाला। इसके वाद सुलतानने पुनः दिल्ली पर हमला कर दिया। खट्ट बनमें देंनों पक्षमें युद्ध छिड़ा। इस वार भो मन्तिवर केमास-के प्रभावसे ११४० सम्वत्में सुलतान साहबुद्दीन परास्त हुए। गजनी-पितृका दर्प चूर्ण करके पृथ्वीराज पितृ-हत्याका प्रतिशोध लेनेके लिये गुजरातको चल दिये। गुजरातके चालुक्यराज भोलाराय-भोमने भी वहुसंख्यक सेना ले कर दिल्लीश्वरका सामना किया। किन्तु पृथ्वी राजके कौशलसे उन्हें कालका आतिथा स्वीकार करना पड़ा।

सभी पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर दोनों जगहके अधीध्वर वन वैठे। एक दिन दिल्लीमें इन्हें मालूम हुआ कि, कजीज
पति जयचन्द्रकी कन्या संयोगित। (संयुक्ता)-ने पण किया
है, कि वह पृथ्वीराजके सिवा और किसीके गलेमें वरमाला न डालेगी। इधर जयचन्द्र कन्याको पालस्य करनेके अभिप्रायसे स्वयम्बरका आयोजन कर रहे हैं। जयचन्द्र पृथ्वीराजका जानी दुश्मन होने पर भी अभी उनकी
कन्याका अभिलाप पूरा करनेके लिये दिल्लीपतिने कजीजको याला की। वहुतसे विश्वासी लोगोंको नगरके वाहर
रख कर आपने संयोगिताका प्रकृत मनोभाव जाननेके
लिये छत्रवेशसे कजीज-राजगृहमें प्रवेश किया। वहां
उन्हें अच्छी तरह मालूम हुआ, कि जयचन्द्र-कन्या सचमुच उनकी सम्पूर्ण उपयुक्ता है, उन्हें छोड़ कर दूसरेको
वह कदापि न बरेगी। इसके बाद मेवारपति समरसिंहके साथ जयचन्द्रकी लडाई छिही।

पहले संयोगिताको पाने, दूसरे समर्रासहके पक्षमें रह कर जयबन्द्रका द्पैचूर्ण करनेके लिये पृथ्वीराज आयोजन करने लगे।

सम्बत् ११५० शकमें पृथ्वीराजके प्रिय मन्त्री कैमास सुरधामको सिधारे। सम्वत् ११५१ शकमें इन्होंने संयो-गिताको लानेके लिये वड़ी धूमधामसे कन्नोजकी याता की। 🕸 कन्नोजपति जयचन्द्रके साथ इन्हें तुमुल संग्राम करना पड़ा । अन्तमें दिल्छीपति कन्नोजपतिको परास्त कर और उनकी परम सुन्दरी कन्या संयोगिताको छे कर अपनी राजधानी लौटे। यह अपमान जयचन्द्रके इद्यमें वाणसे चुभ गया। उन्होने पृथ्वीराजकी अधःपातित करनेकी आशासे गजनीपतिका आश्रय लिया। इस बार जयचन्द्रकी सहायतासे सुलतान प्रोत्साहित हो पुनः विल्ही पर आक्रमण करनेको आये। इस वार प्रथम युद्ध-में भीर-पुण्डीरकी वीरतासे सुलतानको पोठ दिखानी पड़ी। किन्तु वार वार अपमानित होने पर भी ये भग्न-मरोरथ न हुए। जयचन्द्रने प्रचुर अर्थ और सैन्य द्वारां सुलतानको मदद पहुंचाई। इस वार सुलतान भी हजारो मुसलमान-सेनाके साथ घचरक्षेत्रमें जा धमके । पृथ्वी-राज भी प्रधान प्रधान सामन्तों को एकत कर रणझैलमें कृद पडे । उनके वहनोइ समर्रासह भी उनकी सहायतामें पहुंचे। ऐसी घमसान छडाई और कभी नहीं हुई थी। ११५८ सम्बतु श्रावणमास शनिवार कर्केटसंक्रान्तिमें युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें पहले पृथ्वीराजकी ही जीत हुई थी, किन्तु हिन्दुओंके प्रह्वेगुण्यसे आखिर सुछतानने हो विजय-छक्ष्मी पाई। समर्रासहने खदेश और खजातिके हिये रणक्षेत्रमें जीवन उत्सर्ग किया। पृथ्वीराज मुसल-मानके हाथसे वन्दी हो गजनी भेज दिये गये। यहां उनकी दोनों आंखें निकाल ली गईं। कविचन्द्र (चाँदकवि) अपने प्रभुके दर्शनार्थं वडी मुक्तिलसे गजनी आये और कौशल-क्रमसे गजनीके अधीन काम करने छगे। पीछे एक दिन कारागारमें उन्होंने पृथ्वीराजके साथ मुळाकात की। सुलतानने जन कविचाँदके मुखसे सुना, कि पृथ्वीराज

(कनव्यवस्र)

अन्यादह स इक्यावना, चेत तीज र्शवनाह । कनवन दीखन कारने चल्यो मुनंभिताह ॥ "

शब्दमेदी-वाण चलानेमें वड़े सिद्धहस्त हैं, तव उन्हें यह देखनेकी वड़ी लालसा हुई। इस अवसरमें चन्द्रने अन्ध पृथ्वीराजको सम्वोधन कर कहा;—

"वारह वांस वत्तीस गज, अंगुल चारि प्रमाण। इतने पर पतसाह है, मित खुक्के चौहान ॥ फेरि न जननी जनिम है, फेरि न खैंचि कमान। सात वार तुम चूकियो, अब न चूक चौहान॥ धर पलक्यौ पलटी धरा, पलक्यौ हाथ कमान। चन्द कहै पृथिराजसों, जनि पलटे चौहान॥"

यह सुनते ही पृथ्वीराजने एक शब्दभेदी-वाण चलाया और वह तीर ठीक गयासुद्दीनके कलेजेमें जा लगा। वह तो मर गया, पर विपक्ष दल उन दोनों पर टूट पड़े। वस, चन्दने भटपट यह सोरठा पढ़ा,—

"अवकी चढ़ी कमान, को जाने कब फिर चढ़े। जिन चुक्के चौहान, इक्के मारिय इक्क सर॥" यह कहते हो पूर्व संकेतानुसार पृथ्वीराजने चन्दको और चन्दने पृथ्वीराजको मार डाला।

पृथ्वीराज जव मुसलमानके हाथसे वन्दी हो कर गजनी आये, तव उधर उनके पुत रायनसिंह (नारायणसिंह) विल्लीके सिंहासन पर बैठे, किन्तु राज्यलक्ष्मीका उपभोग उनके भाग्यमें न वदा था। वे शीघ्र ही मुसलमानोंके हाथ से मारे गये और विल्लीराज्य मुसलमानोंके हाथ लगा।

चंदकविने अपने "पृथिराजरासी" नामक सुवृहत् काव्यमें अ पृथ्वीराजका जो कुछ हाल लिखा है, वहीं यहां प्र संक्षेपमें दिया गया। राजस्थानके इतिवृत्त-लेखक टाड साहव और वर्त्तमान पाश्चात्य तथा देशीय अनेक ऐतिहासिकोंने चंदके आख्यानको प्रकृत इतिहास-मूलक माना है।

यह अवश्य कह सकते हैं, कि हिन्दी साहित्यमें चांद-कविका 'पृथिराजरासी' सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यके जैसा आदृत होगा, पर ऐतिहासिक साहित्यमें इसका कैसा आसन होगा, कह नहीं सकते। नाना कारणोंसे हम लोग प्रच-

लित पृथ्वीराजरासके अधिकांश विवरणको प्रामाणिक नहीं मान सकते।

श्ला कारण, पृथ्वीराज और समरसिंहके समकाल-में जो सब शिलालिपियां उत्कीर्ण हुईं, नके साथ चांद-कविकी उक्तिका प्रायः सामञ्जरूप नहीं है।

२य, पृथ्वीराजके समकालमें उनकी सभाके किसी कवि द्वारा संस्कृत भाषामें 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक काव्य लिखा गया। इसमें पृथ्वीराजके विषयमें जो सव वाते' लिखी हैं, उनके साथ भी चांदकविका विवरण नहीं मिलता।

३य, पृथ्वीराजके समसामयिक मुसलमान ऐति-हासिकोंने पृथ्वीराजके विषयमें जो कुछ लिखा है, उसके साथ भी पृथ्वीराजरासका सामञ्जस्य नहीं है।

अव शिलालिपि आदि सामयिक ग्रन्थोंमें पृथ्वीराज-का परिचय किस प्रकार लिखा है, यह भी देखना चाहिये।

# पृथ्वीराजका ऐतिहासिक एरिचय ।

पृथ्वीराजके पितामह अणींराज और पिता सोमेश्वर थे। सोमेश्वरने १२२६ सम्बन्में (११६६ ई०)-के फालान मासकी कृष्णतृतीया तक राज्य किया। इसी वर्ष पृथ्वी-राज सि'हासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके प्रधान मन्तीका नाम कद्ग्ववाम और प्रधान राजभाट ( वन्दिराज) का पृथ्वीभट था । सिंहासन पर वैठनेके वाद हो नाना देशों को जोत कर प्रतिष्ठा लाभ को । ५७१ हिजरी (११७५ ई०)-में साहबुद्दीन घोरीने मूळतान पर अधिकार जमाया। इस समयसे उनके हृद्यमें भारतजयकी लिप्सा वलवती हुई। ५७४ हिजरी (११७८ई०)-में वे उचा और मूलतान होते हुए (गुजरातकी राजधानी) नाहरवारा ( अनहस्रवाद्वपत्तन)-को ओर अप्रसर हुए। मूलराज और भीमदेवके साध उनकी गहरी मुठमेंड हुई। घोरीराजके आक्रमणसे खदेशकी गौरव-रक्षा करनेके छिये पृथ्वीराजने सेना मेज गुर्जराधिपतिको सहायता को थो। इस युद्धमें विफल मनोरथ हो साहबुद्दीन खदेश छीटनेको वाध्य हुए। यह संवाद पा कर दिल्लीपतिने गुजरराजदूतकी यथेष्ट उपहार दिया था। इसके वाद साहबुद्दीनने खोरासानको जीता। इस उपलक्षमें वे 'सुलतान मुस्जुद्दीन' और उनके माई

क्ष इस महाकान्यमें प्राय: लाख़से जगर कविताएँ हैं। ऐस उच्च एहाचान्य हिन्दी-भाषाने और दुःग नहीं है। ७० इस.सीमें यह महाकान्य नित सुमा है।

समसुद्दीन 'सुलतान गियासुद्दीन' उपाधिसे विभूपित हुए। ५९९ हिजरो (११८१ई०)-में मुद्दुद्दीन सुलतान-ने महमूदके वंशधर खुसरु मालिकसे लाहोर जीतनेकी चेष्टा की। इस समय १२४६ सम्वत्में पृथ्वीराजने चन्देलराज परमिद्देवको परास्त किया और उनके अधि-कारभुक जेजाकभुक्ति देश पर दखल जमाया। इसी वर्ष (५९८ हिजरोमें) मुद्दुद्दीन दलवलके साथ देवलको गये और उसके अन्तर्गत समुद्दतीरवर्त्ती अनेक जनपद तथा प्रसुर अर्थ अपना कर स्वदेशको लीटे।

५७६ हिजरी (११८३ ई०)-में सुलतान मुइजुद्दीनने . पुनः भारतवर्षे पर दाँत गड़ाता। जम्मुराज चकदेवने वहतसे उपहारके साथ अपने छोटे भाई रामदेवको सुल-तानके पास कहला भेजा, कि इस समय खुसकके राज्य-पर अधिकार करनेमें विशेष सुविधा है। सुलतानने वडे आदरसे राजदूतको ग्रहण किया और तमाम इस वातको घोषणा कर दी, कि खुसरु मालिकका लाह्नोर (लाहोर) राज्य उनके अधिकारभुक्त हो गया। पर वे लाहोर दखल न कर सके, केवल उसके चारों ओरके प्रदेशोंमें लूट मार करते हुए देशको लीट गये। अन्तमें राजाचक्रदेवके अनुरोधसे सियालकोट आ कर उन्होंने पुनः दुर्गको दुखल कर लिया। पीछे दुर्गका फिरसे संस्कार करके वहां हुसेन-इ-खरमीलको दुर्गाध्यक्ष वनाया और आप स्वदेशको छीट गये। इसके वाद ही खुसरुमालिक हिन्दुस्तानी-सेना और खोखरजातिसे सहायता पा कर पुनः सियालकोटके दुर्गद्वार पर जा डटे। किन्तु उसी समय चकदेवकी सेना खरमीलकी सहायतामें पहुंच गई जिससे खुसर दुर्ग को छोड़ देना पड़ा। उस समय भी समस्त ळाहोर प्रदेश खुसरु माळिकके शासनाधीन था। किन्तु मह्मृद्यंशके गौरव-रवि प्रायः अस्त हो रहे थे। ५८२ हिजरी ( ११८६ ई० )-में सुलतान मुस्ज-उद्दीनने सिन्धुनदी पार कर पञ्चनद पर आक्रमण कर दिया।

इस समय चक्रदेवकी मृत्यु हो गई। उनके पुत विजयदेव उस समय जम्मुके अधिपति थे। विजयदेव-के पुत नर्रासहदेव वहुत-सी सेनाके साथ वितस्ताके किनारे सुळतानके साथ मिळ गये। खुसकमाळिकने

Vol. XIV. 86

वचावका कोई रास्ता न देख सुलतानसे सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की । सुलतानके साथ मुलाकात करनेके अभि-प्रायसे वे लाहोरके बाहर आये । सुलतानने अच्छा मौका देख कर उन्हें केंद्र कर लिया । अब लाहोर और खुसरुके अधिकृत पञ्चनद-प्रदेश गजनीपतिके हाथ आ गया । मृल-तानके दुर्गपित सिपासलर अली-इ-करमाथ पर लाहोरका कुल भार सौंपा गया और (तवकत्-इ-नासिरो रचयिता मिन्हाजके पिता) मौलाना सराज्-उहोन इ-मिनहाज सुल-तानके अधीनस्थ हिन्दुस्तानी सेनाके काजी नियुक्त हुए।

उक्त घटनाके वाद ही कन्नोजपति (विजयचन्द्रके पुत्र) जयचन्द्रके साथ पृथ्वीराजका तुमुल-संग्राम आरम्भ हुआ। इस युद्धमें विजय पा कर अजमेरपतिने 'परम-भद्दारक महाराजाधिराज'को उपाधि पाई।

५८७ हिजरी (११६१ ई०)-में सुलतान मुइज-उद्दीनने तवर-हिन्दा (भाष्टिन्दा )-के दुर्ग पर अधिकार किया और काजी जियाउद्दीनके ऊपर उसका रक्षाभार सौंप आप चले गये। जियाउद्दोन १२०० तुलाकी अध्वारोही लेकर आठ मास तक दुगंरक्षामें नियुक्त रहे। इधर पृथ्वीराज दो लाख अभ्वारोही और ३००० निपादीके साथ भारिन्दा-के उदार और सुलतानके मिल जम्मुराज विजयदेवको शासन करनेके लिये दौड़ पड़े। सुलतान मुइज-उद्दीन-ने भी प्रायः लाखसे अधिक सेनाको ले कर 'तराइनगढ़'-में पृथ्वीराजका सामना किया । जयचन्द्र विजयदेव आदि कुछ राजाओंको छोड़ कर हिन्दुस्थानके प्रायः सभी राजोंने पृथ्वीराजका साथ दिया था। कुरुक्षेतके इस महासमरमें पृथ्वीराजके भाई दिल्लीपति गोविन्दराय हाथी पर सवार हो सैन्य-परिचालन कर रहे थे। सुलतान सवसे पहले रणहस्ती पर ही टूट पड़े और वरछेसे गोविन्दरायके दो दांत तोड़ डाले। किन्तु महावीर गोविन्दरायने वड़ी वीरतासे कवच द्वारा आतमरक्षा की और भीमवेगसे झुलतान पर धावा किया। यह सन्धान वर्ध न निकला। सुलतानको गहरी चोट लगी जिससे वे वेचैन हो पड़े। घोड़ेको पीठसे वे नीचे िर ही रहे थे, कि एक खालज सेनाने उन्हें पहचान लिया और रणस्थलसे वाहर ले जा कर उनकी जान बचाई।

मुसलमानी सेनाको रणमें पीठ दिखानी पड़ी। हिन्दू-वीरोंको जयध्वनिसे गगनमण्डल गूंज उठा।

पलायमान घोरी अमोर और उमरावगण पहले सुलतानको अपने साथ न देख कर वड़े व्याकुल हुए। पीछे जब उन्हें मालूम हुआ, कि सुलतान खुशीसे हैं, तब वे सबके सब उनसे आ मिले।

पूर्ववत् जियाउद्दीन काज़ी तुलाकीके हाथ तवरहिन्द-दुर्गका भार सुपुर्द कर गजनीको चल दिये ।

अव पृथ्वीराज तवरहिन्द जा धमके । दोनों पश्चमें धमसान लड़ाई छिड़ी । १२ माससे अधिक काल तक मुसलमान लोग दुर्गकी रक्षा करते रहे। पीछे सुलतान-से आदेश पा कर उन्होंने अपनी राह ली और दुर्ग पृथ्वीराजके हाथ लगा।

कर बहुत क्षन्य हुए थे। दर्पदलनहारी पृथ्वीराजकी विजयवार्ता सुन कर बहुत क्षन्य हुए थे। दर्पदलनहारी पृथ्वीराजको किस प्रकार शान्ति दी जाय, उसीकी फिक्रमें वे लग गये। उन्होंने फौरन दूत द्वारा सुलतान मुइज-उद्दीनको कहला भेजा, कि "वे यथासाध्य सुलतानकी सहायता करेंगे। पृथ्वीराजको अधःपातित करनेके लिये वे अपना समस्त धनवल समर्पण करनेको प्रस्तुत हैं।" जयचन्द्रके जैसा जम्मुपति विजयदेवने भी सुलतानका पक्ष अवलम्बन किया था।

पूर्व-पराजयका प्रतिशोध लेनेके लिये सुलतानने गृह-शतु हिन्दूराजाओंसे सहायता पा कर विपुल उत्साहसे भारतवर्षमें प्रवेश किया । उनके साथ १२००० सुदक्ष और भीषण असधारी योद्धा थे। उनके आनेके पहले ही पृथ्वीराजने तवरहिन्दका हुर्ग जीत कर तराइनके किनारे छावनी डाल रखी थी। उनके साथ प्रायः दो लाख राज-पूत और अफगानी सेना थी।

फिर उसी कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत पुण्यसिक्टा सरखती-के किनारे दोनों दलमें मुठमेंड़ हुई। इस वार सुलतानने चारों ओरसे आक्रमण करनेकी व्यवस्था की। प्रत्येक ओरसे सुदक्ष तीरन्दाज अश्वारोही टूट पड़े। जयचन्द्रकी सेना और जम्मूराजकुमार नर्रासहदेवने ससैन्य सुलतान-का साथ दिया। इस समय मानो कुरु-पाएडवकी ही लड़ाई खिड़ी हुई थीं। भाग्यलद्मो इस वार मुसलमानोंके

प्रति ही प्रसन्न थीं। युद्धके दिन वहुत तड़के जिस समय हिन्दूसेना प्रातः कृत्य कर रहे थे, ठीक उसी समय सुल-तानने अकस्मात् पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी। गृह-विरितासे ५८८ हिजरी (११६३ ई०) में महावीर पृथ्वीराज स्त्र सुखतानके हाथसे परास्त हुए। उनके दक्षिण हस्त-स्कष्ण महावीर गीविन्द्रायने इस गुद्धमें जीवन उत्सर्ग किया। सुछतानने उस प्रतित भग्नदन्त-वीरको पहचान हिया था।

पृथ्वीराज हमेशा गजकी पीठ परसे हो छड़ रहे थे।
गोविन्द्रायका पतन और अपनी पराजय जान वे घोड़े
पर सवार हो नौ दो ग्यारह हो गये। सरखतीके निकट
वे शबुके हाथ वन्दी हुए और पीछे मुसलमानके हाथसे
मारे गये। इसके साथ साथ पृथ्वीराजकी राजधानी
अजमेर, शिवालिक-प्रदेश, हाँसी, सरखती आदि जनपद
सुलतान मुइज-उद्दीनके हाथमें आये। सुलतान मुइजउद्दीनने आकर जब अजमेर पर दखल जमाया तव
पृथ्वीराजके पुत्रने सुलतानकी अधीनताखीकार कर ली।
इस कारण सुलतानने उन्हें राजपद पर प्रतिष्ठित किया।
पीछे सुलतानने कुतुव-उद्दीनके जपर शासन भार दे कर
गजनीकी याता की। किन्तु उस समय भी दिल्ली
मुसलमानोंके हाथ न आई थी। दूसरे वर्ष ५८६ हिजरी
(११६४ ई०)-में कुतुव-उद्दीनने दिल्ली नगरी पर अपना
पूरा अधिकार जमाया।

गतान्तरसे सुलतान मुइज उद्दीन अजमीरमें पृथ्वी राजके पुलको प्रतिष्ठित करके दिल्ली प्रधारे। उस समय दिल्लीनगर खाण्डिरायके एक ज्ञातिके अधिकारमें था। उन्होंने भी सुलतानकी अधीनता लीकार की। सुतर्रा सुलतान उनके साथ कोई छेड़ छाड़ न कर गजनीको चल दिये। इसी वर्ष कुतुवने सुना, कि नाहरवालाके राजा (गुर्जरराज)ने बहुतसी जाट सेना ले कर हाँसी पर चढ़ाई कर दी है। वे फौरन वड़ी तेजीसे हाँसीको रवाना हुए। नाहरवाड़ाकी सेना कुतुवके पहुंचते ही चंपत हो गई। इसके वाद कुतुव-उद्दीनने दिल्लीमें ही अपना रहना पसन्द किया। इसके कुछ समय वाद ही पृथ्वीराजके माई हम्मीरराजने रणस्तमभगढ़में अधिष्ठित ही पितृराज्य पानेकी चेष्टा की। इस पर अजमीरपति

पृथ्वीराजकुमारके साथ उनका युद्ध हुआ। कुतुवुद्दीन अजमीरराजको विपदमें देख कर उन्हें मदद देनेके लिये दलवलके साथ अजमीर आये। मुसलमानी सेनाके आगमन पर हम्मीर पार्वत्य प्रदेशमें जा लिये। इधर कुतुवकी अनुपस्थितिमें दिलीके चाहमानराजने वहुत-सी सेना संग्रह कर अपनी खाधीनता घोषणा कर दी। राहमें कुतुवुद्दीनके साथ उनका एक युद्ध हुआ। किन्तु चाहमानराज मुसलमानोंके हाथसे पराजित और निहत हुए। उनका मस्तक दिली भेज दिया गया। इसके साथ साथ दिल्लीके हिन्द्राजत्वका अवसान हुआ।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रन्थ छोड़ कर प्रवादसे पृथ्वी-राजका विषय जो कुछ मालूम होता है वह नीचे देते हैं;-

पृथ्वीराजने अकोरी नामक स्थानमें परमाल (परमार्वी) वेवको और पेन्धात नामक स्थानमें जयचन्द्रको परास्त किया। उन्होंने दिल्लीको चारों ओर प्राचीरसे घेर दिया, लोनी और सम्मलमें दुर्ग बनाया और चुनारको अधिकार कर कुछ काल वहां वास किया। साह-वुहीन घोरीसे परास्त होनेके बाद वे खैरागढ़में बन्दी थे। वह आश्चर्यका विषय है, कि पृथ्वीराजकी जो मुद्रा पाई गई है, उसके एक ओर पृथ्वीराजदेवका और दूसरी ओर उनके विजेता भुइज-उद्दीन मुहस्मद विन साम'का नाम अङ्कित है। अधिक सम्भव है, कि पृथ्वीराजपुतने घोरीको अधीनता खीकार करनेके वाद जो सिक्का चलाया उसी पर उक्त नाम रहा होगा।

अभी चाँदकविका वर्णन मिला कर देखें, तो वहुत अंशोंमें मेल नहीं खायगा। चाँदकिव और उनके अनु-वर्त्ती टाइने चित्तोरपित समर्रासहको पृथ्वीराजके वह-नोई वतलाया है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। आव्-पहाड़ पर अचलेश्वर-मन्दिरके समीपस्थ संन्यासिमठमें राणा समर्रासहकी जो शिलाप्रशस्ति उत्कीर्ण है, उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि १३४२ सम्बत्से (१२८५६०)में समर्रासह राजत्व करते थे। समर्रासह शब्द विक्तृन विवरण देखो। इत्यादि नाना कारणोंसे चाँदकविका उक्ति विश्वासयोग्य नहीं है। पर हाँ उन्होंने पूर्वतन पृथ्वी-राजका कहानोम्लक कोई प्रन्थ देख कर अपना 'रासी' वनाया होगा। यहीं कारण है, कि वीच वीचमें पृथ्वी- राजकी प्रकृत जीवनीकी कथा भी पाई जाती है । अ पृथ्वीराज—१ रुक्मिणी-कृष्णावल्लीकाव्यके प्रणेता ।

२ वप्पावंशसम्भूत कुम्मराणाके पौत और रावमल्छ-के द्वितीय पुतः। तीनों साईमें मनसुटाव रहनेके कारण पिता रायमक्लने पृथ्वीके द्वागील व्यवहारसे असन्तुष्ट हो उन्हें' निर्वासित कर दिया था। चौहानवीर दिल्लीभ्वर पृथ्वीराजकी तरह वे भी वीर, साहसी, उत्साही और रणिपासु थे। यहां तक, कि वे उन्मत्तको तरह सव समय, "विधाताने मेवारका शासन मेरे भाग्यमें लिखा है" ऐसा घम घम कर कहा करते थे। एक दिन वे लोग अपने चचा सूर्यमलके साथ वैठ कर चित्तोरके भावी उत्तराधिकारित्व ले कर तके वितर्क कर रहे थे। इसी समय सङ्गने(१) आ कर कहा, 'नाहरमुगराकी चारण देवीकी परिचारिका जिन्हें राजा पसन्द करेंगी, सवींके एक मतसे वे ही मेवारके सिंहासन पर अभिषिक होंगे।' तदनुसार अपने अपने माग्यकी परीक्षा करनेके लिये घे उस संन्यासिनीके आश्रयमें गये। पृथ्वीराजने जब देखा, कि संन्यासिनीने सङ्गको ही मेवारका भावी अधीश्वर ठहराया, तव वे मन्दिरके भीतर ही भाई और चचाके प्रतिद्वन्द्वी हो उठे। घात-प्रतिघातसे दोनों ही क्षत-विक्षताङ्ग और विकलेन्द्रिय हो पड़े। आरोग्य हो कर भी पृथ्वीराजकी हत्या करनेका मोका दुंढ रहे थे।

दिलीधर चीतोज्ञपत लेखग्गां वल जीत ॥ (११२१)
अर्थात १६०० सम्बत् (१६२१ ई०)-में चित्तोरपतिने
दिली पर आक्रमण किया। इस छिक्ति सी उनके युग्यकी
आधुनिकता समझी जाती है। (J. A. S. B. 1885, p. 26)
टाउं साइवने लिखा है, कि मेवारपति अमरसिंह (राज्यकार
१५६०-१६२२ ई०में)-ने यह पृथ्वीराजरासी संग्रह किया।
सम्भवत: चांदकविका ग्रम्थ इन समय सम्पूर्णक्ष्यसे विकृत हो
गया होगा, इसीसे चांदकविके ग्रन्थसे प्रकृत ऐतिहासिक तस्व
निकाल केना एक प्रकार ससम्भव सा हो गया है।

(१) इन्होंने ही लाख राजपूतोंको साथ छे तेमुरकुलविलक नावरका सामना किया था।

<sup>#</sup> बॉदकविने एक जगह लिखा है-

<sup>&#</sup>x27;'सोरे स सत्तोतरे विक्रम साक वदीत ।

राणा रायमलने पृथ्वीका ऐसा औद्धत्य सुन कर उन्हें राज्यसे निकाल भगाया।

पृथ्वी केवल पांच अध्वारोहीको ले कर गड़वारके अन्तर्गत नदील नगर जा धमके। इसी समय मीना लोगोंने यहां अपनी गोटी जमा ली थी। पृथ्वी उक्त दलमें मिल गये और मीना लोगोंको निहत कर सोढ़ागढ़ चल दिये। वहां उन्होंने चौहानवंशीय सङ्ग-सोलाङ्कीकी कन्याका पाणित्रहण किया। पृथ्वीराजने अपने श्वशुर और ओका (२) नामक किसी महाजनको वहांका शासनकर्ता नियुक्त किया।

सङ्ग छिप रहे हैं, जयमरुछ (३) मारे गये हैं और पृथ्वीका भाग्य चमक उठा है, यह देख कर रायमरुछ पृथ्वीको अपने राज्यमें बुळानेके ळिये वाध्य हुए। पृथ्वी घर छोटे, तब यहां वे भाईको अवमानना कायुरुपकी तरह वहन न कर सके, वरन अपने वीरोचित उद्यमसे पूरतान पर आक्रमण कर उनकी ळड़की तारावाईको हर छाये। यह रमणी योद्धाके वेशमें रहना अधिक पसन्द करतो थीं। जहां कहीं उनके स्वामी छड़ाई करनेकी जाते थे, ये भी हाथमें धनुर्याण छिये उनके साथ हो छेती थीं।

इधर संन्यासिनीकी वात पर प्रणोदित सूर्यमल्लने राज्य पानेकी आशासि सारङ्गदेवके साथ मालवराजकी शरण ली और उनकी सहायतासे कई स्थान दखल कर लिये। उन लोगोंके चित्तोर-आक्रमणकालमें खयं राय मल्लने गम्मीरा नदीके किनारे विद्रोहियों पर आक्रमण किया। अस्त्राधातसे जर्जरित रायमल्ल मूर्च्छित हो पड़े। इस समय पृथ्वीराज हजार अध्वारोहियोंको ले कर पुनः दूने उत्साहसे लड़ाई करने लगे। दोनों दलमें खूव खून- खरावी हुई, रक्तकी नदी वह गई। आखिर पृथ्वीने खयं सूर्यमल्लको आहत कर पिताका मनोरथ पूरा किया। पीछे वे जयपताका उड़ाते हुए चित्तोरको ओर अप्रसर हुए। चिद्रोहीदल जरा भी शान्त न थे, बदला चुकानेके लिये अवसर हुढ़ रहे थे। वार वार आक्रमण करके उन्होंने पृथ्वीराजको तंग तंग कर डाला। किन्तु इस पर भी पृथ्वीराज विचलित न हुए। सारङ्गदेव उनके हाथसे मारे गये। सूर्यमल्लने सिंद्र भाग कर अपनी जान वचाई और प्रतापगढ़ देवलमें जा कर राज्य स्थापन किया। पृथ्वीके बहनोईने जो आयुके अधिपति थे, उन्हें विप खिला कर मार डाला। ये शिश्रोदिया कुलगीरव थे।

३ सुप्रसिद्ध कवि और अकवर-शाहके सभासतु।
पक्त तो वीकानेरके राजकुमार, दूसरे वीर पुरुष और
तेजस्वी किव भी थे। ये उदार हृदयसे विसोरके राणा
प्रतापको स्वाधीनता-रक्षाके लिये मन ही मन धन्यवाद
देते थे। जब अकवरने प्रतापका सन्त्रिपत पृथ्वीको दिवलाया, तब इन्होंने सम्नाट्से साफ साफ कहा था, 'चाहे
प्रतापको आप अपना सारा राज्य भी क्यों न दे दें, तो भी
वे अपनी अवनित स्वीकार नहीं करेंगे।' दूसरे दिन उन्होंने
प्रतापको अपने दूत द्वारा एक गुत पत्न भेजा। उस पतको पढ़ कर प्रतापकी निर्वाणोन्मुख तेजीविह सहसा
धन्न उठी। पृथ्वीराजने उसी पत्नमें एक जगह लिखा
था, "पवित्व राजपूतकुलमें जनम ले कर ऐसा कीन है जो
यवनके हाथ अपना मानसम्ब्रम-वेच सकता।"

पृथ्वीराजका विवाह मेवारराजके भाई शकिसिंहकी छड़कीसे हुआ था। इस गुणवती विनताके पिवत सतीत्व वळसे ही वीरकिव पृथ्वीराज आत्मकुळगोरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। एक दिन खोसरोजके अधिवेशनकाळमें सम्राट्ने मेवार-राजकुमारोके हपळावथ्य पर मुध्य हो प्रेमासिक प्रकट की। पिजरावह विहिंद्गी अकवरके मायाजाळमें फँस गई। किन्तु ज्योंही सम्राट्ने अपनी वाहु वढ़ाते हुए राजकुमारोके सामने पहुंचे, त्योंही तेज छुरी दिखा कर उन्होंने अकवरका हदयरक पान करना चाहा था। अकवरने भी वज्राहतकी तरह स्तिम्मतप्राय रह कर सतीके सम्मानकी रक्षा की थी। अमर किव पृथ्वीराजकी छोटी छोटी किवता आज भी राजपूतानेके कीने कोनेमें गाई जाती है।

<sup>(</sup>१) पृथ्वीराज जब गडवार पहुँचे, उस समय उन्हें रसद घट गई थी। इस छिये अपनी अंगूठी उन्होंने ओझाके हाथ वेच डाली। अदर्शक में वहमं गूठी उन्हों के हारा राज-पुत्रके होत वेची गई थी। ओझाने ही उन्हें कह सन कर मीनाके दलमें मिला दिया।

<sup>(</sup>३) इन्होंने राव इरतानकी कन्या ताराधाईका पाणिग्रहण करना चाहा था, पर ऐसा नहीं हुआ, उल्टे वे ही यमपुरको मेज दिये गये।

४ रांडोर राजपूतर्वशीय एक सेनापति। सम्राट् शाहजहानका कार्य करके ये विशेष सम्मानित और पुर-स्कृत हुए थे। १६५६ ई०को दाक्षिणात्यमें उनकी मृत्यु हुई।

५ गुहिलवंशीय राजपूत, राणा राज्यमल्लके पुत । १५५७ सम्वत्में महाकुमार पृथ्वीराज विद्यमान थे। मेवारके अन्तर्गत मेदपाट नगरमें उनकी राजधानी थी।

६ एक दूसरे हिन्दूराजा। गड़हादेशाधिपिन राजा हदयेशकी शिलालिपिमें उनका परिचय पाया जाता है। पृथ्वीराम—रहुवंशीय एक सरदार। पिता मेरद और पुत पृथ्वी दोनों ही पहले पित्रत मैलापतीर्थंके करेया नामक जैनसम्प्रदायके दीक्षा-गुरु थे। ७६७ शक (८७५-९ ६०)-में राष्ट्रकुटराज २य कृष्णने इन्हें महासामन्त तथा महा-मण्डलेश्वरकी उपाधि दी थो।

पृथ्वीश (सं० पु०) पृथीव्याः ईशः । भूमिपति, राजा । पृथ्वीश—नागपुरके अन्तर्गत रत्नपुराधिप रत्नराजके पुत । इनको माताका नाम नोनव्छोदेवी था ।

पृथ्वीसिह—१ कच्छवाहवंशीय जयपुरके अधिपति। ये १७९८ ई॰में पिताकी राजगही पर बैठे, किन्तु अपने भाई प्रतापसिहकी प्रवश्चनासे राज्यस्रष्ट हुए।

२ एक वुन्देला-राज । जहांगीर और शाहजहान्के समकालमें उर्चामें इनकी राजधानी थी।

३ वुन्देलासरदार पन्नापित छत्नशालके वंशधर। अपने भाई शोभासिहके राजत्वकाल (१७४४ ई०)में मनमाना हिस्सा न मिलनेके कारण ये पेश्वाको शरणमें पहुंचे और उन्हें राजस्का चतुर्थांश देनेमें राजो हो कर गड़हाकोट राज्य पर दखल जमा। १७४८ ई०में इन्होंने मालधन नगर जीत कर वहां राजधानी वसाई और उसे सुरक्षित करनेके लिये एक दुर्ग भी वनवाया। १७९३ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

४ मारवाड्के राजा यशोवन्त सिंहके वड़े छड़के।
जव औरङ्गजेबने यशोवन्त सिंहको विद्रोही अफगानीका
दमनं करनेके छिपे काबुछ भेजा, उस समय यशोवन्त
सिंहने इन्हींको राज्यका भार सौंपा था। ये ही उस
समय मारवाड्का शासन करते थे। औरङ्गजेवने इन्हें
पक बार अपनी राजसभामें बुछचावा। पृथ्वीसिंह
Vol. XIV. 87

सम्राट्की आहा नहीं टालं सके, वे दिल्ली पहुंचे । सम्राट्-ने उनका अच्छा स्नागत किया था। रीतिके अनुसार प्रव्वीसिंह वादशाहके समीप ही वैठते थे। एक दिन वे समामें आये और वादशाहको सलाम करके अपने आसन पर वैठने जाते ही थे. इतनेमें वादशाहने उन्हें हँस कर अंपने समीप बुलाया। जब वे वादशाहके समीप जा कर खड़े हो गये, तव वादशाहने उनके हाथ पकड़ कर धीरे धीरे कहा, 'राडौर ! मैंने सुना है, कि तुम इन भुजाओंमें अपने पिताके समान वल रखते हो, अच्छा कहो, इस समय तुम क्या करोगे ?' पृथ्वीसिंहने उत्तर दिया, 'ईश्वर दिल्लीभ्वरका कल्याण करें। बादशाह ! जव साधारण राजा और प्रजा पर आपका हाथ फैलता है, तव उनकी सभी इच्छाएं पूरी होती हैं, पर सौभाग्यवश आपने इस सेयकके हाथ खयं ही पकड़ छिये हैं, अतपव अब मैं सारी पृथ्वीको जीत सकता हूं।' इतना कहते कहते राठौर वीरके शरीरमें मानी नये वलका संचार हुआ। उस समय वादशाइने कहा,—देखते हैं, यह जवान दूसरा कुट्टन है। औरङ्गजेव यशोचन्त सिंहको कुट्टन कहा करते थे। वाद-शाहने प्रसन्न हो कर पृथ्वीसिंहको खिलअत दी। रीतिके अनुसार राठोरबीर वादशाहके दिये कपड़े वहीं पहन लिये और अंपने आसन पर जा वैठे।

किन्तु यही दिन उस नवयुवकका उल्लासमय जीवन-का अन्तिम दिन था । राजसमासे घर लौटते लौटते पृथ्वीसिंह व्याकुल हो गये। उनके हृद्यमें ऐंठन होने लगी, सिर कांपने लगा। देखते देखते यशोवन्तके हृद्य-का आनन्द, राठीर-कुलका होनहार वीर कुमार पृथ्वी-सिंह सदाके लिये इस धराधामसे सुरधामको चल विये।

कहते हैं, कि वादशाहने उन जिल्लाशतके कपड़ोंमें इस प्रकार विषका योग कर दिया था, जिनके पहननेके कारण पृथ्यीसिंहका अन्त-डुआ।

५ जयपुरके महाराज माधोसिंहके पुता। जन ये नन्हें वक्के थें, तभी इनके पिता सुरधामको सिधार गये। कक्की उमरमें हो इनका राज्याभिषेक सम्पादित हुआ। पृथ्वीसिंह छोटी रानीके पुता थे। पटरानीके पुता प्रत्नापसिंह थे। अतपन पटरानी ही राज्यकी देख-रेख करने लगी। ये चन्द्रावंशकी कन्या थीं। परन्तु फिरोज नामक एक फीलवानसे गुप्त प्रणय करके इन्होंने अपनेकी कलिंद्धित कर दिया था। महारानीने उसे राजसभाका सदस्य बना दिया। इस पर सभी सामन्त अप्रसन्न हीं गये। महाराष्ट्र अम्बाजीने सुअवसर देख कर एक वेतन-भोजी सेना कर वस्ल करनेके लिये मेज दी। इस समय द्रवारमें फिरोजकी ही चलती वनती थी, सभी हीनवल हो गये थे। इसी प्रकार नी वर्ष तक आमेरका राज्य चला। बाद एक दिन पृथ्वीसिंह घोड़ से गिर कर पञ्चत्व-को प्राप्त हुए। बहुतेरे कहते हैं, कि पटरानीने इनकी विष-प्रयोग द्वारा मरवा डाला है। बोकानेर और कृष्ण-गढ़की राजकुमारियोंसे इनका विवाह हुआ था। कृष्ण-गढ़की राजकुमारियोंसे मानसिंह नामक इन्हें एक पुत भी हुआ था।

पृदाकु (सं० पु०) पदेते इति पर्द अपानशब्दे (पर्दिनित् सम्प्रसारणमहो १३च । उण् ३।८०) इति काकु, रेफस्य सम्प्र-सारणं अस्लोपश्च । १ सपै, सांप । २ वृश्चिक, विच्छू । ३ व्याव्र, वाघ, चीता । ४ कुञ्जर, हाथी । ५ वृष्ट्र, पेड़ । पृदाकुसानु (सं० पु०) पृदाकुः गजइव सानुः समुन्नतः । १ इन्द्र । २ सपैवत् उन्नतशिरस्क, सांपकी तरह ऊंचा सिरवाला ।

पृशन ( सं० ति० ) स्पर्शन साध्य वाहुयुद्ध । पृशनायु ( सं० ति० ) आत्मनः पृशनमिच्छति क्यच् तत उ । अपनेको छूनेकी इच्छा करनेवाला ।

पृशन्य (सं० पु०) स्पृश-भावे क्यु, पृषोदरादित्वात् सलोपः पृशनं स्पर्शः तत्र साधुः यत्। स्पर्शसाध्य, छूने काचिल।

पृश्चि (सं० वि०) स्पृश्यते इति स्पृशसंस्पर्शे । द्वाण प्रश्निति । जण् ४।५२ ) इति निपातनात् साधुः । १ दुवैलास्थियुक वर्षे, जिसका शरीर दुवला पतला हो । २ शुक्कवर्ण, सफेद रंगका । ३ नानावर्ण, चितकवरा । ४ साधारण, मामुलो । (स्त्री०) स्पृशित द्रव्यजातं इति वा स्पृश-निपातनात् साधुः ( द्वाणप्रश्नीति । जण् ४।५२ ) ५ रिश्म, किरण । ६ सुतपाराजकी पुली । ये जन्मान्तरमें देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई थीं । भागवतके दशम स्कन्धमें इनका विवरण लिखा है । ७ पृश्चिपणीं, पिठवन । ८ चितकवरी

गाय, चितले रंगकी गाय। (पु०) ६ ऋषिमेद, एक प्राचीन ऋषिका नाम। १० युधाजित् राजाके माद्रीगर्भजात एक पुत। ११ अञ्च, अनाज। १२ वेद। १३ जल, पानी। १४ अमृत।

पृक्षिका (सं० स्त्री०) पृक्षो ज़ले कायते शोभते इति कै.क.,
यद्वा पृक्षि स्वरूपं कं जलं यत । कुम्मिका, जलकुंमी।
पृक्षिगमें (सं० पु०) पृक्षिवेदादयो गर्मे यस्य यद्वा पृक्षिः
जन्मान्तरजातदेवकी तस्याः गर्मः उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्येति अच्। श्रोकृष्ण । अन्त, वेद, जल और अमृतका नाम पृक्षि है और यह पृक्षि श्रीकृष्णके गर्मस्वरूप है,
इसलिए पृक्षिगर्भ नाम हुआ है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि श्रीकृष्ण पृश्चिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, अतः उनका नाम पृश्चिगर्भ पड़ा।

ये भगवान्के चौबीस छीछावतारमें ग्यारहवां अवतार हैं। इनका दूसरा नाम घुवप्रिय भी है।

श्रीरूष्णने देवकीसे कहा—हे सति! तुम हो पूर्व-जन्ममें खायम्भुव मन्वन्तरमें पृश्चि हुई थीं। पृश्चिगर्भका वासस्थान ब्रह्मलोकके ऊपरी भागमें है।

पृश्चिगु (सं० ति०) पृश्नयो नाना वर्णत्वात् साधारणा गावो रश्मयोऽस्य । नानावर्ण दीप्तियुक्त ।

पृश्चिपणीं (सं० स्त्री०) पृश्चि स्वस्यं पर्णमस्याः ङीप्। लताविशेष, पिठवनलता । (Hemionitis Cordifolia)

संस्कृत पर्याय पृथक्षणीं, चित्रपणीं, अङ्ग्रिविल्लका, कोष्टु विन्ना, सिंहपुच्छी, कलिश, धाविन, गुहा, पिष्ठपणीं, लाङ्गली, कोष्टु पुच्छिका, पृणेपणीं, कलशी, कोष्टु कमेखला, दीर्घा, श्रुगालवृन्ता, तिपणीं, सिंहपुच्छिका, दीर्घपता, अतिगुहा, घृष्टिला, चित्रपणिका, महागुहा, श्रुगालविन्ना, धमनी, मेखला, लांगूलिका, पृष्टिपणीं, दीर्घपणीं, अ'विषणीं और धावणी।

गुण—कटुरस और अतिसार, कास, वातरोग, ज्वर, उनमाद, वण तथा दाहनाशक, विदोषव्र, बृष्य, मधुर, सारक और श्वास, रक्तातीसार, तृष्णा तथा विमिनवारक। पृक्षिभद्र (सं० पु०; पृश्नी भद्रं यस्य। पृक्षिगर्भजात श्रीकृष्ण।

पृक्षिमत् ( सं० ति० ) पृष्टिनविशिष्ट । पृक्षिमातृ ( सं०;पु० ) पृष्टिनः नानावर्णा भूमिमतिव जन्म

· भूमिर्थेस्य । समासान्तविधेरनित्यत्वात् न कप् । नाना वर्ण भूमिजात । पृश्निश्दङ्ग (सं० पु० ) पृश्निर्वेदादयः श्टङ्गमिव यस्य । १ विष्णु । पृक्षि स्वरुपं श्रङ्गमिव शुएडाव्रं यस्य । २ गणेश । पृक्षिसक्थ ( सं० ति० ) पृश्नियुक्त सक्थिविशिए । पृश्निह्न् ( सं० ति० । पृश्नियुक्त सर्पहननकारी । पृक्षी सं स्त्रो॰) स्पृशति जलमिति स्पृश-नि ततो वा ङीय्। वारिपणीं, कुम्मिका, जलकुम्भी। पृवत् (सं क्हो ) पर्वति सिञ्चति पृष-सेचने (वर्तम।ने पृषद्बुहद् महिदिति । उण् २:८४ ) इति अतिप्रत्ययो गुणा-भावश्च निपात्यते । जलविन्दु, पानीकी वृंद । पृयत् (सं • पु •) पर्पतीति पृषि-सेके (पृषिरिक्तभ्यां कित्। उण् ३।१११) इति अतच् सच कित् । १ विन्दु, वृंद । २ श्वेतविन्दुयुक्त भृग, चितला हिरन, चीतल पाढ़ा । पर्याय—रंकु, शवलपृष्टक । ३ राजा द्रुपद्के पिता-का नाम । ४ मण्डलिसर्पके अन्तर्गत एक सर्प । ५ रोहित नामकी मछली । पृषताम्पति (सं॰ पु॰) पृपतां विन्दूनां पतिर्नेता, इत्यलुक्-समासः। वायु, हवा। पृपताभ्व (सं० पु०) पृषतो मृगविशेषोऽभ्व इव गति-साबनं वाहनो वा यस्य । वायु, हवा । पृषती (सं० स्त्री०) पृयत-स्त्रियां ङीप्। श्वेतविन्दु-युक्ता मृगी, वह मृगी जिसकी देहमें सफेद दाग हों। पृपत्क (सं ॰ पु॰ ) पृष्यते सिच्यते क्षिप्यते इति प्य-अति ततः संज्ञायाम् कन्। वाण। पृषत्ता (सं॰ स्त्री॰ ) पृषतो भावः तल्-टाप्। पृषत् या जलविन्दुका भाव वा धर्म। पृपदंश ( सं॰ पु॰) पृपति विन्दौ अंशोऽस्य । वायु, हवा । पृषदभ्य (सं॰ पु॰) पृयन् मृगविशेपोऽभ्य इव वाहको बस्य । १ वायु, हवा । २ राजर्षिभेद, महाभारतके अनुसार एक राजर्षिका नाम । ३ विरूपाक्षके पुलका नाम । पृषदाञ्च (सं० क्ली०) पृपद्भिः दिघिविन्दुभिः सहितमाज्यं। सद्ध्याज्य, दही मिला हुआ घी। पृषद्भ ( सं० पु० ) वैवस्वत मनुके पुतका नाम । पृषद्भु (सं॰ पु॰) द्वापरयुगीय युधिष्ठिरपक्षस्थित एक राजा ।

पृपद्भरा ( सं० स्त्री० ) रुरुकी पत्नी मेनकाकी कन्याका नाम। पृथह्ल ( सं॰ पु॰ ) पृथ्देव वलमस्य । वायुका घोड़ा । पृयन्ति ( सं॰ पु॰ ) पर्पति सिञ्चतीति पृय-सेचने अति, निपातनात् साधुः । जलविन्दु । पृवमाया ( सं॰ स्त्री∙ ) पर्वतीति पृय-सेके क, पृषा अमृत-वर्षिणी भाषा यत । अमरावती, इन्द्रपुरी । पृयाकरा (सं॰ स्त्रां॰) पृय-भावे क्विय् पृपे सेचनाय आकी-र्यते इति आ-क्ष-अप्-टाप् । तांलनेका वाट । पृयातक ( सं॰ क्ली॰ ) पृयन्तं पृयदाज्यं आतकते हसतीति तक-अच्, पृयोदरादित्वात् साधुः । दिधयुक्त घृत, दही मिला हुआ थी। पृपोद्र (सं० ति०) पृपदुद्रं यस्य ( पृषोदरादीनि यभी-वृदिष्ट**ै।** पा ६।३।१०६ ) इति त-छोपः। १ खढपोद्दर, जिसका पेट छोटा हो। (पु॰) २ वायु, हवा। पृवोदरादि ( सं॰ पु॰ ) पृयोदर आदि पाणिन्युक्त शन्द्रगण । गण यथा—पृपोद्र, पृपोत्थान, वलाहक, ज्ञीमूत, श्मशान, उल्रुखल, पिशाच, वृपी, मयूर। जो सव पद व्याकरणके स्वानुसार सिद्ध नहीं होते वे सव पृपोदरादित्वहेतु सिद्ध होते हैं। कहीं पर वर्णा-गम वा वर्णविपर्यय, कहीं पर वर्णका विकार वा नाश इत्यादि होनेसे उसे पृपोदरादि कहते हैं। यथा-पृपोदर: पृपत्-उद्र । यहां पर 'पृपत्' शब्दके 'त्' भागका लोप होनेसे पृयोदर ऐसा पद हुआ है। इसी प्रकार सव जगह जानना चाहिए। वर्णांगम द्वारा हंस, वर्णेके विपर्ययसे सिंह, वर्णेका आदेश करनेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृयो-दर पद सिद्ध हुआ है। पृपोद्यान ( सं० क्ली० ) पृपद् उद्यानं पृपोदरादित्वात् त् ळोपः । क्षद्रउपवन, छोटा वगीचा । पृष्ट (सं॰ ति॰ ) पृषु- सेमे प्रच्छ वा क । १ सिक, सी वा हुआ। २ संस्पृष्ट, छुलाया हुआ। ३ जिज्ञासित, पूछा हुआ।

पृष्ट (हिं० पु०) े मृष्ठ देखी।

पृष्टवन्धु (सं॰ पु॰ ) अपेक्षितफळ प्रश्नविपयस्तोताके

पृष्टहायन ( सं० पु० ) १ धान्यभेद, एक प्रकारका धान । २ गज, हाथी ।

पृष्टि (सं॰ स्त्रो॰) पृष-सेके भावे किन् । १ सेक । प्रच्छ-किन् । २ जिज्ञासा, पूछनेकी किया या भाव । पृष-कर्त्तरि किच् । ३ पार्श्वस्थ । ४ पृष्टदेश, पिछला भाग । पृष्टिपणीं, (सं॰ स्त्रो॰) पृश्विपणीं, पिठवन स्ता । पृष्टियामय (सं॰ पु॰) पृष्टरोग ।

पृथ्ट्यामयिन् (सं० त्रि०) पृष्ठरोगयुक्त, जिसकी पीठमें रोग हुआ हो।

पृष्ठ (सं० क्की०) पृष्यते सिच्यते इति पृष (तियपृष्ठगूव यूपशेषाः । उण् २।१२) इति थक् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ शरीरका पश्चाद्धाग, पीठ । २ किसी वस्तुका वह भाग या तल जो ऊपरकी ओर हो, ऊपरी तल । ३ स्तोल विशेष । ४ पीछेका भाग, पीछा । ५ पुस्तकका पता, पत्ना । ६ पुस्तकके पन्नेका एक ओरका तल । पृष्ठक (सं० क्की०) पृष्ठ-स्वार्थे कन् । पृष्ठदेश, पश्चाद्धाग, पीठकी ओरका हिस्सा ।

पृष्ठगोप ( सं॰ पु॰ ) पृष्टं गोपायित गुप-वा अन् । पृथ्वेश-रक्षक योद्धा, वह सैनिक जो सेनाके पिछले भागकी रक्षाके लिए नियुक्त हो ।

पृष्ठग्रन्थि ( सं॰ पु॰ ) पृष्ठस्य ग्रन्थः । गङ्गुरोग, क्रूवड़ । पृष्टग्रह् ( सं॰ पु॰ ) घोड़ोंका वातन्याधिरोग ।

पृष्ठचक्षस् (सं० पु०) पृष्ठे पश्चाद्धागे चक्षः द्वष्टिः तद्दव्या-पारोऽस्य । १ भव्लूक, भालू, रोछ। २ ककँट, केंकड़ा। पृष्ठचर (सं० वि०) पृष्ठे चरतीति चर-ट। १ पश्चाद्धागमें स्थित। २ पश्चादुगामी, पीछे चलनेवाला।

पृष्ठज (सं० ति०) पृष्ठे पश्चात् जायते जन-ड । पश्चादु-जात, जो पीछे जन्मा हो ।

पृष्ठजाह (सं० ति०) पृष्ठस्य मूलं कर्णादित्वात् मूले जाहच् । षुष्ठमूळ ।

पृग्रतःप्रथित (सं॰ पु॰) खड्ग चलानेका ढंग, तलवारका एक हाथ।

पृष्ठतल्पन् ( सं॰ क्ली॰ ) तल्पमिव आचरित तल्प ल्युट, पृष्ठस्य तल्पनं ६-तत् ।। पीठ-शय्या ।

पृष्ठतस् ( सं० अव्य० ) पृष्ठ ( प्रतिगोगं पञ्चम्यास्तिसः । पा ्राष्ट्राष्ट्र ) इत्यस्य 'आद्यादिभ्यः उपसंख्यानं' इति चार्तिः कोक्त्या तसि । १ पश्चात्, पीछे । पृष्ठदेश, पिछला भाग । पृष्ठद्वष्टि (सं० पु० ) पृष्ठे दृष्टिर्दर्शनं यस्य । मल्लूक, भालू, रोछ ।

पृष्ठपणीं (सं॰ स्त्री॰) पिठवनलता ।

पृष्ठपोषक (सं० पु०) १ सहायक, मददगार। २ पीठ ठोंकनेवाळा।

पृष्ठफल ( सं० पु० ) किसी पिएडके ऊपरी भागका क्षेत्र फल।

पृष्ठमङ्ग (सं० पु०) युद्धका एक हंग। इसमें शृहुसेनाका पिछला भाग आक्रमण करके नष्ट किया जाता है।

पृष्टभाग (सं • पु • ) १ पिछला माग । २ पुरत, पीठ । पृष्टममैन् (सं • क्को • ) पृष्टे ममें । पृष्टिस्थित ममैमेद । सुश्रुतमें ममेंका विषय इस प्रकार लिखा है—मांस, शिरा, अस्थि, स्नायु और सन्धि इनके सिन्नवेशको ममें कहते हैं । ममेंस्थानमें हमेशा प्राण रहते हैं । अत्यव ममैदेश आहत होनेसे नाना प्रकारको पीड़ा यहां तक कि मृत्यु भी हो जातो है ।

पृष्ठदेशस्थ ममका विषय कहा जाता है। मेर्ट्एड-के दोनों ओर श्रोणिस्थानमें अस्थिमय मर्भ है, जिसमें कटीक और तरुण नामके दो मर्भ हैं। यदि किसी प्रकार इन मर्मोंमें चोट छग जाय, तो रक्तक्षय तथा तज्जन्य पाण्डु, विवर्ण और ऋपकी विकृति हो कर मृत्यु होती है।

पार्श्व और जधनके चिह्मांगमें पृष्ठवंशसे कुछ नी बे दोनों ओर 'कुकुन्दर' नामक दो मर्म हैं। ये मर्म विद्व होने से शरीरके अधोभागमें स्पर्शकान नहीं रह जाता और किया-शिकका व्याधात होता है। श्रेणों के मध्यस्थित दोनों अस्थिकाएडों के उत्पर जो स्थान आश्यका आव्छादन और अधोभागके पार्श्वदेशमें संख्यन है, शरीरके दोनों पार्श्वके उसी स्थानमें नितम्ब नामक दो अस्थिममें हैं। इसमें आधात लगने से शरीरका अधोभाग स्व जाता है और धीरे धीरे मृत्यु भी हो जाती है। दोनों जधनसे वक्ष्मानमें उत्परकी ओर और दोनों जधन तथा पार्श्वक मध्य स्थल अधोभागके पार्श्वद्वयमें संख्यन पार्श्वक मध्य स्थल अधोभागके पार्श्वद्वयमें संख्यन पार्श्वक मध्य स्थल अधोभागके पार्श्वद्वयमें संख्यन पार्श्व सिन्ध नामक दो शिराममें हैं जिनमें किसो प्रकारकी चोट लगनेसे मृत्यु हो जाती है। स्तनमूलके साथ समान रेखामें स्थित पृष्ठदण्डके दोनों वगलमें बृहतो नामके मर्मद्वय हैं। इनमें आधात पहुंचते हा अत्यन्त रक्तवाव होता है और मनुष्य

मर जाते हैं। पृष्ठके उपरिभागमें पृष्ठद्रग्डके दोनों वगल विक सन्थि (तीन अस्थिकी सन्धि)-संलग्न अंशफलक हो अस्थि-ममें हैं। इनके विद्ध होने पर बाहु निस्पन्द या स्व जाते हैं। बाहुद्रयके ऊर्ध्वदेशमें ग्रीवाके मध्यस्थल और अंशफलक तथा स्कन्धके सन्धिस्थान-में अंश नामक स्नायुममेंद्रय है। यह ममं विद्ध होनेसे वाहु-स्तब्ध होता है। पृष्ठदेशमें बही चौदह ममं हैं, इसीसे वे सब पृथ्वममें कृहलाते हैं।

पृष्ठमांस ( सं॰ क्को॰ ) पृष्ठस्य मांसं । पशु प्रभृतिकी पीठ परका मांस । पृष्ठमांस, वृथामांस और निन्दित मांस कदापि नहीं खाना चाहिए।

पृष्ठमांसाद (सं० ति०) पृन्ठे परोक्षे मांसाद इव, असम-क्षमनिष्ट-जनकवाष्यकथनादस्य तथात्वं । १ परोक्षमें शाष्ट्रयपूर्वक वाष्याभिधायां और दोषोधोषक व्यक्ति, वह जो पीठ पीछे किसीकी निन्दा या बुराई करता हो, चुगळ-खोर । (ति०) पृष्ठमांसमत्तीति मांस-अद-अण्। २ पृष्ठमांस भक्षक, पीठका मांस खानेवाला।

पृष्ठमांसादन (सं० क्की०) पृष्ठे परोक्षे मांसादनं मांस-भक्षणमिव (कीर्त्तनस्मास्मानिष्टननकात्) १ परोक्षमें दोय-कीर्त्तन, पीछे किसीकी निन्दा करना, चुगळी। (ति०) २ परोक्षमें निन्दा करनेवाळा, चुगळखोर। पष्टमांस- अद-कर्त्तरि ल्यु। ३ पृष्टमांस-भक्षक।

पृष्ठयज्वन् (सं० पु॰) पृःष्ठेः रथन्तरादिभिरिष्टवान् यज-वनिष्। रथन्तरादि ६ स्तोतसमृहद्वारा यज्ञकारक।

पृष्ठयान (सं॰ क्ली॰) पृष्ठेन यानं गमनं। पृष्ट द्वारा गमन, पीडके वल चलना फिरना।

पष्टरक्ष ( सं० पु० ) पृष्टं रक्षतीति रक्ष-अण् । पृष्टदेश-रक्षक योधमेद, पृष्टगोप ।

पृष्ठरक्षण ( सं॰ ह्ही॰ ) पृष्ठस्य पृष्ठदेशस्य रक्षणं। पृष्ठदेशकी रक्षा, पश्चाहरक्षा ।

पृष्ठवंश (सं॰ पु॰) पृष्ठस्य वंशः वंश इव दएड इत्यर्थः। पृष्ठास्थि, रीढ़। पर्याय—रीढ़क।

पृष्टवास्तु (सं० क्ली०) एक मकानके ऊपर अथवा एक खंडके ऊपर दूसरे खंड पर वना हुआ मकान।

पृष्ठवाह् ( सं॰ पु॰ ) पृष्ठं युगपार्श्वं वहतीति वह-ण्वि । १ युगपार्श्वग वृष । ( ति॰ ) पृष्ठं पृष्ठभागं वहतीति वह-ण्वि । २ पश्चादुभाग वाहकः।

Vol XIV 88

पृष्ठवाह्य (सं॰ पु॰) पृष्ठे वाह्यं वहनीय द्रव्यमस्य । पृष्ठ द्वारा भारवाहक वृष, वह वैल या पशु जिसकी पीठ पर वोक्त लादा जाता है। इसका पर्याय—स्थौरी और पृष्ठय है।

पृष्टशय (सं० ति०) पृथ्ठे शेते पृष्टरूपाधिकरणोपदे कर्संरि अच्। पृष्टशायी, पीठके वळ सोनेवाळा।

पृष्ठश्रङ्क (सं॰ पु॰) पृष्ठे श्रङ्कमस्य, श्रङ्कस्य वक्तभावेन पृष्ठगमनात् तथात्वं। वनछाग, जंगस्री वकरा।

पृष्ठशृङ्गिन् (सं॰ पु॰ ) पृष्ठे श्वङ्गिमव अस्यास्तीति श्वङ्ग-इनि । १ महिप, भैंसा । २ मीमसेन । ३ नपुंसक, नामर्द, हिजड़ा । ४ मैप, भेड़ा ।

पृष्ठानुग (सं॰ ति॰) पृष्ठे अनुगच्छतीति अनु-गम-ड । पीछे जानेवाला ।

पृष्ठानुगामिन् ( सं० ति० ) पश्चाद्दगामी ।

पृष्ठास्थि (सं० क्ली०) पृष्ठस्य अस्थि । पृष्ठवंश, रीढ़, पोडकी हड़ी ।

पृष्ठेमुख (सं० क्ली० ) पृष्ठे मुखमस्य अलुक् समासः । कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम । पृष्ठोदय (सं० पु० ) पृष्ठेन उदयी यस्य । मेय, वृष्, कर्कट धन, मुकर और मीन लान । ये छः राणिकां

कर्कट, धनु, मकर और मीन लग्न। ये छः राशिकां पीठकी ओरसे उदय होती हैं। पष्ट्य (सं० क्री०) प्रप्रानां स्तोवविशेषाणां समझ इति

पृष्ट्य (सं० ह्री०) पृष्टानां स्तोत्नविशेषाणां समूद्ध इति (न्नाझणमाणवनावपाद यत्। पा धारा४२) इत्यस्य 'पृष्टादुपसंख्यानं' इति वार्त्तिकोक्त्या यत्। १ स्तोत्नसमूद्ध। (पु०) पृष्टेन वहतीति पृष्ट-यत्। २ भारबाहक अव्य, वह घोड़ा जिसकी पीट पर बोक्त लादा जाता है। (ति०) ३ धारक। ४ पृष्टभव, पीठका।

पृष्ट्यस्तोम (सं० पु०) पृष्ट्यस्तोम-साधनतया अस्त्यस्य-अच् । सामवेदशिसद्ध पर्मतुभेद, यज्ञका पड़ाहिक नामक एक समय-विभाग ।

पृष्ट्यावलम्य (सं० पु०) यज्ञके कुछ विशिष्ट पांच विन, यज्ञका पांच दिनका एक समय विभाग।

पृष्णि (सं व स्त्री ) पृश्चि-पृषोदरादित्वात् साधुः । पार्षण-भाग । (ति ) २ नानावण युक्त ।

पृष्णिपणीं (सं स्त्री) पृष्टिनपणीं पृषोदरा साहः पृष्टिनपणीं, पिडवनलता। पें (हि॰ पु॰) पें पेंका शब्द जो रोने, वाजा फूंकने आदि से निकलता है।

पंग (हिं० स्त्री॰) १ हिंडोले या फूलेका,फूलते समय एक ओरसे दूसरी ओरको जाना। (पु॰)२ एक प्रकारका पक्षी।

पेंगियामैना (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको मैना जिसे सत-भैया भी कहते हैं। स्तभैया देखी।

पेंघर (हि पु॰) एक प्रकारका पक्षी। इसकी आंखें लाल, चोंच सफेद और शरीर मटमैले रंगका होता है।

पेंघा (हिं पु॰) पेंघट देखो।

पेंच (हिं० पु०) पेव देखी।

पेंचक (हिं० पु०) पेचक देखी।

पेंचकश (हिं० पु०) पेचकश देखे।।

पेंजनी (हिं० पु०) वैंजनी देखी।

पेंड (हिं० स्त्री०) पैंठ देखी।

पेंड़ (हिं पु॰) एक प्रकारका सारस पक्षी जिसकी चोंच पीली होती है। २ पेड़ हेखों। ३ पेंड़ देखों।

पेंड्ना (हिं० किं०) वेडमा देखो ।

पॅड़्की (हिं० स्त्री०) १ सुनारोंका वह ओजार जिससे फंक कर वे लोग आग सुलगाते हैं, फूंकनी। २ पंडुक पक्षी, फाखता। ३ पिराक या गुक्तिया नामका पकवान।

गुक्षिया देखो ।

पेंदा (हिं॰ पु॰) किसी वस्तुका निचला भाग जिसके आधार पर वह ठहरती या रखो जाती हो, विलकुल निचला भाग, तला।

पेंदी (हिं० स्त्री०) १ किसी चस्तुका निचला भाग। २ तोप या वन्दूककी कोठी। ३ गुदा, गांड़। ४ मूली या गाजर आदिकी जड़।

र्पेशन (हिं० स्त्री०) पेन्शन देखी।

पेशनर (हिं० पु०) पेन्शनर देखों।

पेंसिल (हिं० स्त्री०) पेन्सिल देखी।

पेउश (हिं पु ) पेउसी देखी।

पेउसी (हिं० स्त्रीं०) १ व्याई हुई गाय या में सका पहले दिनका दूध। यह वहुत गाढा और कुछ पीछे रंगका होता है। यह दूध पीने लायक नहीं होता। इसे तेली भी कहते हैं। २ एक प्रकारका प्रकवान जो उक्त दूधमें सींठ और शकर आदि डाल कर पकाया और जमाया जाता है। यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर होता है। पेगू—दक्षिण ब्रह्मका एक विभाग। यह अक्षा० १६ १६ से १६ ११ उ० और देशा० ६८ ४१ से ६६ ५४ पू० के मध्य अवस्थित है। रंगून, हन्यवती, धरावती, प्रोम, अङ्गरेजाधिकृत ब्रह्म और पेगू नगर इस विभागके अन्तर्गत हैं। भूपरिमाण ६१५६ वर्गमील और जनसंख्या १८२०६३८ है। इसमें ८ शहर और ६८१७ प्राम लगते हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बो हें। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बो हें। अधिवासियोंमें लेकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बो हें। अधिवासियों छपजीवो हैं। यहां धानको फसल अच्छी लगती है। अलावा इसके रजी, तमाकृ, रुई और फलादिकी भो खेती होती है।

र उक्त विभागके हन्धवाड़ी जिलान्तर्गत एक तालुक। इसका उत्तर-पश्चिम प्रदेश जंगल और पर्वतसे समाकीर्ण है। दक्षिणभाग विलक्कल समतल है। यहां दक्षिण पूर्वसे दक्षिण पश्चिममें पेगूनदो वह गई है। पेगूकी उपत्यका-भूमि १५०० फुट ऊंची है। इसके उत्तर उक्त नदीके दोनों किनारे निविड़ वनसे आच्छन्न हैं। मध्यमें प्रवाहित पे क्नदी पूर्वकी ओर सितुङ्ग नदीमें मिल गई है। मेत्को नगर तक इससे एक नहर काट कर निकालो गई है जिससे स्थानीय उर्वरताकी वृद्धि हुई है। रंगूनसे पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दीमें पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला निर्मेत रास्तेके वदलेमें एक नया रास्ता प्रस्तुत हुआ है। सितुङ्ग-मेली और ररावती-मेलीप्टेट रेलवेके खुल जानेसे वाणिज्यको विशेष स्विधा हुई है।

३ निम्नव्रह्मका एक जिला । यह अक्षा० १६ ं ५४ ंसे १८ ं २५ ं उ० और देशा० ६५ ं ५७ से ६६ ं ५४ ं पू॰ के मध्य अवस्थित है। भूपिरमाण ४२७६ वर्गमील है। यों तो जिलेमें अनेक नदी बहती हैं, पर सबसे बड़ी पेगू ही हैं। जङ्गलमें हाथी भी पाये जाते हैं, जो फसल करनेके पहले पहाड़ परसे उतरते और फसलको वरवाद कर डालते हैं। आवहवा रंगूनको-सी है। पहाड़के समीप होनेके कारण वर्षा अधिक होती है।

१५वीं शताब्दीके पहलेका पेगूका इतिहास वहुत कम मालूम है। करोव ढाई सौ वर्ष तक ब्रह्मलोगोंने यहां

राज्य किया। पीछे तलहङ्गने उन्हें परास्त कर अपना अधिकार जमाया। तलरङ्गके प्रसिद्ध राजा रजदित १३८५ ई०में सिहासन पर वैठे। ये वड़े रणिपासु थे, लड़ाईके सिवा इनका किसी और ध्यान न था। लेकिन कहते हैं, कि १४२२ ई०में मृत्युके पहले उन्होंने प्रजाकी भलाईकी ओर विशेष ध्यान दिया, धर्म तथा प्रजा सम्ब-न्धीय अच्छे अच्छे कार्य किये जो आज भी उन्हें अपर वनाये हुए हैं। १५३४ ई०में तौगूके तविनश्वेतीने यहां घेरा डाला और आखिर इस पर अधिकार जमा ही लिया। उन्होंने पेग्सें दश वर्ष तक राज्य किया और अपने नामको चिरस्थायी रखनेके लिये बहुतसे मन्दिर वनवाये। उनकी मृत्युके वाद उनके सेनापति बइत-नोंग 'सिनव्युम्युशिन' नाम धारण कर राजसिंहा-सन पर वैठे। १५८१ ई०में उनके मरने पर वह विस्तृत राज्य एक अनुपयुक्त उत्तराधिकारीके हाथ लगा । १७वीं शताब्दीके आरम्भमें आवाके ब्रह्मोंने इस पर अपना कब्जा किया।

अङ्गरेज-श्रह्मके प्रथम युद्धमें रंग्न अवरोधके समय

त्रह्मसेनापित पेगू भाग गये । उनकी सारी सेना भी

तितर वितर हो गई। अधिवासियोंके अनुरोधसे वृटिशराजने ससैन्य जा कर नगरको अधिकार कर लिया।

स्य ब्रह्मयुद्धमें ब्रह्मवासियोंने अङ्गरेजोंकी कमान और
रसद लूट ली तथा पगोदा (मन्दिर)-चत्वर पर दखल
जमाया। इसी सालके नवम्यरमासमें ब्रिगेडियर नील
साहव दलवलके साथ वहां गये और ब्रह्म लोगोंको
परास्त किया। नीलके लोटते न लौटते दोनों पक्षमें

पुनः युद्ध छिड़ा जो दिसम्बरमास तक चलता रहा।
अन्तमें जेनरल गाडचिनके ससैन्य पहुंचने पर ब्रह्मलोग
अपनी जान ले कर भागे।

इस जिलेमें २ शहर और ११७४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ३३६५७२ है। राजकार्यको सुविधाके लिये जिला दो उपविभागोंमें विभक्त हैं, पेगू और नौगलेविन। गांवके प्रधान राजस वस्त्र करते हैं। पेसे प्रधानोंको संख्या ५३१ है। उन्हें वस्त्रके अनुसार कमीशन मिलता है। कभी कभी चे लोग छोटे छोटे मामलेका भी फैसला करते हैं। इसमें उन्हें फीस लेनेका अधिकार है। पेग् और टोंग्के वोच एक जज़ हैं जो बड़े वड़े अपराधों पर बिचार करते हैं। अदालतमें चोरी डकैती-की पेशी वहुत कम होती है। जिले भरमें ८ अस्पताल, २० सेकण्ड्रो, २८१-प्राइमरी और ३६३ पलिमेण्टरी स्कूल हैं। म्युनिसिपल स्कूल ही सबसे प्रसिद्ध है।

४ उक्त जिलेका एक शहर। इसका प्राचीन नाम कामलङ्का है। यह अक्षा० १७ २० उ० और देशा० ६६ २६ पू०, रंगूनसे ४७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। कहते हैं, कि ५७३ ई०मं थ-म-ल और वे म-ल नामक धतुम राजपुत्नोंने इस नगरको वसाया था। उसके पहले प्राचीन पेगू नगरमें चिल्ड्न राज्यको राजधानी थी। इन राजवंशघरोंने एक समय सितुङ्ग और इरा-वती उपत्यका, आवा, पकचान, श्याम और आराकन-तक विस्तृत स्थानों पर अपना शासन फैलाया था।

पर्चस इतिवृत्तसे हम लोगोंको पता लगता है, कि १६वीं शताब्दीमें पेगूराज्यको आकृति विस्तृति और सुन्दरता वहुद्ख्यापी थी। यूरोपीय भ्रमणकारी फ्रेंड-रिक (Caesar Frederick)-ने लिखा है, कि, "निरापदसे पेगू नगर पहुंच कर हम लोगोंने देखा, कि पुरात्तन नगरमें देशीय और वैदेशिक वणिक, महाजन आदि व्यवसायी लोग नाना प्रकारके काम काजमें लिस हैं। नगर तो लोटा है, पर वाणिज्य जोरों चलता है। इस कारण लोगोंकी संख्या भी आस पासके स्थानोंसे अधिक है।

१६वीं शताब्दीके मध्य भागमें अलाम्प्राने पेग्राज्य जीत कर तल्डङ्ग जातिका चिह्न लोप करनेका सङ्कल्प किया। तद्मुसार उन्होंने प्रत्येक घरको तहस नहस कर अधिवासियोंको मार भगाया। १७८५ ई०में उनके प्रपौत वोदत्त-पधा सिंहासन पर वैठे। उन्होंने भिन्न प्रथासे राज्यशासन करके पेग्र और रंग्र्न नगरमें राज-कीय सदर वसाया। कर्णलं साइमसके विचरणसे माल्म होता है, कि यह नगर एक समय सुरक्षित और उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था।

यहांका जायेङ्ग-गा-नइङ्ग और शो एमदु-पागोदा देखने लायक है। तलइङ्गोंकी यह मन्दिरकीर्त्ति रंग्नके शोएदा-गोन-पागोदाकी अपेक्षा जनसाधारणके निकट प्रवित्त समभी जाती है । यह भूमिपृष्टसे ३६१ फुट ऊंचा है। इसकी यह आछित अफ्रिकाके सबसे बड़े गीरामीडिकी तुलनामें प्रायः ८३ फुट कम हैं। यह इङ्गलिएडके सेएट-पाल-गिर्जाका मुकावला करता है। प्रवाद है, कि शाक्य-खुद्धके आविर्मावके कुछ दिन वाद हो दो वणिकोंने इस प्रदेशमें आ कर उक्त पागोदाकी नीव डालो थी। पर-बत्तों पेगू राजाओंके यत्नसे वीच बीचमें उसका संस्कार होता गया। पीछे विगत चार-सौ वर्ष पहले उसका वर्त्तमान आकार संगठित हुआ है।

पेगू—हन्थवाड़ी जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह पेगूथोमा-से निकल कर पहले दक्षिण-पूर्व और पीछे दक्षिण-पश्चिम-की ओर बहती हुई रोदुन नगरके निकट ह्लां-वारेङ्गन् नदीमें गिरी है। इस नदीमें ज्वार भाट आता है। नदी-के दोनों किनारे शालका वन है।

पंगुद्दन—खनामजात जलचर पश्चिजातिवशेष (lenguin)। इनकी आरुति हंसकी-सी है। दक्षिण समुद्रके नोहार और वफसे ढके हुए विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है। समुद्रज शम्बूक ही इनका एकमात आहार है। ये गमीर समुद्रमें गोता मारते और शम्बकादिको आसानीसे वाहर निकालते हैं। इनकी देह वहुत वारीक और मुलायम रोंएसे ढंकी रहती है। पूँछ इतनी छोटो होती है, कि देखनेमें नहीं आती। इनके शरीर परका रंग तमाम एकसा नहीं होता। माथा और कंघा काला, कएठ पीला, छाती और पेट सफेद तथा पीठ नीली होती है। ये दल वांध कर इधर उधर उड़ते हैं। एक एक दलमें ३० वा ४० हजार पश्ची उड़ते देखे जाते हैं। वृद्ध पश्ची प्रायः दो हांध लम्बा, तौलमें पनद्रह सेरसे कम नहीं होता। तेल और चवींसे इनका शरीर परिपूर्ण रहनेके कारण मांस खादिष्ट नहीं होता है।

. इस पक्षीका पकड़नेवाला शिकारी दल एक आदमी-की कमरमें जंजीर बांध कर उसे पेंगुइनसे परिवृत पर्वत पर लटका देता है। पीछे वह आदमी इच्छानुसार पक्षी पकड़ कर जंजीरके सहारे ऊपर खींच लिया जाता है।

विज्ञानविदींने इस जातिको Spheniscenae श्रेणी-भुक्त किया है। इनके मध्य Sphenicus, Endyptes, Pygosceles और Aptenodytes कई एक थोक हैं। Sphenicus demersus-की आंखें लम्बी और चींच टेढ़ी तथा पतली होती हैं। पैर और चोंचका रंग काला, पीठ कालापन लिये सफेद और छाती भी सफेद होती है। अटलाएटक और कुमेरुवृत्तस्थ समुद्रके किनारे (Antartic seas) फाकलैएड द्वीपपुञ्ज और उत्तमाशा अन्तरीपमें ये अकसर देखे जाते हैं।

Eudyptes chrysocome सिर चिपरा और लम्बा, रंग लाल, पीठका रंग काला, पेट मखमलके जैसा कोमल और सफेद, पंखका ऊपरी भाग काला ओर भीतरी भाग सफेद तथा दोनों पैर पीले होते हैं। दक्षिण-समुद्रके अक्षा० ४३ ८ ३८ और देशा० ५६ ५६ ४६ पिश्वम-में लेसन साहवने इस जातिके पक्षोका शिकार किया था।(१)

Aptenodytes l'atachonica—आंख सिरसे वड़ी पतली, सीधी, आगेकी ओर टेड़ी और नीचेकी ओर लाल है। सिर और गलेके रोए काल होते हैं। सिर और गलेके रोए काल होते हैं। सिर और गलेके सध्यभागमें कानके दोनों वगलसे कमला नीत्र्की तरह पोले पंख लटकते हैं। पेटके पर साटनकी तरह चमकीले सफेद और वीच वीचमें पीले दाग होते हैं। दोन पैर छोटे, पर मजत्रत हैं। खड़े होने पर इनकी ऊ वाई ३ फुटसे कम नहीं होती। मेगेलन-प्रणाली, फाकलेएड द्वीप और कुमेर सिक्कटस्थ द्वीपा-वलोमें इस जातिके पक्षी मिलते हैं।२ पापुआ, न्युगिनो आदि द्वीपोमें Pygosceles शाखाकी पक्षिजाति देखनेमें आती है। इक्षिण-समुद्रका पे गुइन और उत्तर-समुद्रका आक (Auk) नामक पक्षी प्रायः एक-सा है। केवल आंख, दोनों पैर और अवयवमें कुछ कुछ प्रमेद देखा जाता है।

पेच ( सं॰ पु॰ ) उलूकपक्षी, उल्लू । पेच ( फा॰ पु॰ ) १ चक्कर, घुमाव, फेर, लपेट । २ धूर्तता, चालाकी, चालवाजी । ३ पगड़ीकी लपेट, पगड़ीका फेरा।

<sup>(</sup>१) M. Lesson इत Zoologie de la coquille नामक प्र'यमें इनकी आइति और प्रकृतिका विषय निस्तः रित इनमें लिखा है।

<sup>(</sup>२) Mr. Weddell-लिखित Voyage to the South Pole नामक पुस्तकमें इस जातिका विवरण लिखा है।

४ कठिनता, उल्लान, वर्षेड़ा । ५ स्कू, वह कील या कांटा जिसके नुकीले आधे भाग पर चक्करदार गड़ारियां वनी होती हैं और जो ठोंक कर नहीं विक धुमा कर जड़ा जाता है। ६ पतंग या गुड़ी लड्नेके समय दो या अधिक पतंगोंके डोरका एक दूसरेमें फंस जाना। ७ यन्त, मशीन, किसी प्रकारकी कल । ८ युक्ति, तरकीव। ६ मशीनका पुरजा, यन्त्रका कोई विशेष अंग जिसके सहारे कोई विशेष कार्य होता है। १० कुश्तीमें वह विशेष किया वा घात जिससे प्रतिद्वन्द्वी पछाड्। जाय, कुश्तीमें दूसरे की पछाड़नेकी युक्ति। ११ यन्त्रका बह विशेष अंग जिसको द्वाने घुमाने या हिलाने आदिसे वह यन्त्र अथवा उसका कोई अंश चलता या रकता हो। १२ एक प्रकारका आभूपण। यह टोपी या पगडीमें सामनेको ओर खोंसा या लगाया जाता है, सिरपेच। १३ गोशपेच, सिरपेचकी तरहका एक प्रकारका आभूपण जो कानोंमें पहना जाता है। १४ तलेके किसी परन या ताळ-के वोलमेंसे कोई एक टुकड़ा निकाल कर उसके स्थान पर ठीक उतना ही वड़ा हुकड़ा लगा देना। १५ पेटका मरोड़। पेचिश दे हो। १६ पेचताव देखी।

पेचक (सं० पु०) पचित पच्यते वा पच (पिनमचोतेच च। वण् ४१३०) इति बुन, उपधाया अत इत्वं। पिन्न-विशेय, उल्क्रुपक्षी। संस्कृत पर्याय—उल्कृक, वायसाराति, शक्राख्य, निवान्य, वक्रनासिक, हरिनेत, विवामीत, नखाशी, पोयु, घर्षर, काक्रमीर, नक्तचारी, निशाचर, कौशिक, द्वारासन, पेच, रक्तनासिक, भीरुक।

अङ्गरेजीमें इसे आउछ (Owl) कहते हैं। यह निशा-चर है, केवल रातको हो दोख पड़ता है। इस कारण रातको वाहर निकलता और इन्दुरादिको पकड़ खाता है। दिनको अपने कोटरसे वाहर नहीं निकलता। यदि संयोगसे निकल पड़े, तो कौंचे उसे चोंच मार कर क्षत-विश्वत कर डालते हैं। इनका शरीर परसे ढंका रहता है

Vol. XIV. 89

और मुख चका-सा गोल होता है। दोनों आँखें मनुष्यकी तरह सामने रहती हैं। नाक भी हम लोगोंकी नाकके समान और पैर शिकारी पश्लीके सदृश होते हैं। चंगुलमें तेज नाखून होते जिनसे वे अंधेरी रातमें भी शिकार पकड़ संकते हैं। इनकी दृष्टि जैसी तीव होती, श्रवणशिक भी वैसी ही सूदम होती है। इन्दुरादिके पैरका शब्द ये सहजमें सुन लेते हैं। येरल (Mr. Yarrell) साहवने लिखा है,—गोलाकार मुखकेन्द्रके वोच सुचिकण पश्मगहरमें दो चश्च रहनेके कारण चश्चगोलकमें आलोकरिशमके सञ्चयको क्षमता अधिक रहती है। यही कारण है, कि वे दूरमें विचरणशोल इन्दुरादिको अच्छी तरह देख सकते हैं। इनकी व्राण, स्पर्श और आखादशक्ति प्रायः अन्यान्य शिकारो पक्षी-सी होती है।

पिश्वतस्विविद्दाने पेचक जातिको Strigidae श्रेणी
मुक्त किया है। अन्यान्य शिकारो पिश्चियोंकी तरह

इनका भी थोक निर्दिष्ट हुआ है। फरासी पिश्चिविद्दगण

पेचक (Chats Huants) के दो थोक मानते हैं;—?

दिवाचारी तीक्ष्णदृष्टि शिकारळोळुप पेचक (Accipitrine owl) और निशाचर, जो केवळ रातमें ही शिकार

करते, दिनमें वाहर निकळते ही नहीं (Nocturnal owls)। प्रथम भागमें Strix Lapponica, S. Nyctea,

S. Uralensis और S. funerea तथा द्वितीय भागमें

S. nebulosa, S. Aluco, S. flammea, S. Passerina, S. Tengmalmi और S. Acadica नामक कई

एक भिन्न जातिके पेचक अन्तर्भुक्त हुए हैं।

जिन्हें मस्तकके ऊपर पशुश्ङ्कको तरह कलगी हाती है, पिस्तिन्वविदोंने उन्हें निम्नोक श्रेणीमें शामिल किया है। जिसकी आकृति एक-सी है, वैसी पेचक जातिकी Strix brachyotu, S. Bubo, S. Otus और S. Scops आदि और भी कितनी जातियां किएंश की गई हैं। सीयेन्सन (Mr. Swainson) साहवने पेचक-जातिको तीन विशिष्ट श्रेणियोंमें विभक्त किया है,—१ Typical group वृहत्कर्ण, २ Subtypical शुद्र कर्ण और ३ Aberrant—श्रद्ध मस्तक और श्रद्धं पुच्छ (दोनों पैर लोम हारा आच्छादित)।

प्रे साहव (Mr. G. R. Gray)-ने निशाचर पेचकॉको

<sup>#</sup> पेचक चो।की तरह रातको बादर निकलता है। दुष्ट कुचरित्र व्यक्ति दिनको पुलिमके मयसे बाहर निकल कर रातको ही बाब्निरी करते हैं अथवा जो दिनको नीच कार्थमें प्रजृत रह कर रातको बाबू मे-सी शानकोकत दिखाते हैं उन्हें व्यासि 'पेचक' कहते हैं।

( Accipetres Nocturni ) Surninoe, Buboninoe, Ululinoe और Strigidoe नामक चार उपविभागों-में विभक्त किया है। उक्त भागोंके मध्य और भी विभिन्न जातिके निदर्शन पाये जाते हैं।

पृथिवी पर सब जगह पेचक जातिका वास है। श्रीष्म-के समय सुदूर सुमेच और कुमेच्चृत्तस्थित द्वीपोंमें इनका अम्युद्य होता है। प्रवल शीतके समय विकृोग्या वन्दर-में सैकड़ों पेचक देखे गये थे। जेम्सरोज नामक किसी परिदशैंकने लिखा है, कि उस शीतके पूर्ववत्तीं शरत्काल-में पेचकोंने यहां अंडे पारे थे। मेगेलन-प्रणालीस्थित फेमिन वन्दरमें भी S.Rufipes और S. nana) पेचक जातिका गमनागमन होता है। पशियां, यूरोप, अफ्रिका, अमेरिका और अट्टेलिया द्वीपमें नाना जातिके पेचकोंका वास देखा जाता है।

ये साधारणतः पश्ली और चतुष्पदादि जन्तुके मांससे अपना पेट भरते हैं। डि, nycten और डि, flammen श्रेणीके पश्लीका मुख्य आहार केवल मछली है। यूरोप और अमेरिकामें वृहत्-शृङ्गं (Large-horned) पेचक खरगोश, तीतर, वनमुर्गा और छोटे छोटे पश्ली खाते हैं। चूहा, छुछुन्दर, छोटा छोटा पश्ली, साप, केकड़ा आदि भी छोटे पेचकका खाद्य है। क्षुद्रकर्ण पेचक (Short earned—Strix brachyotus) केवल वादुर खा कर अपनी जान वचाता है।

Strix flammen—श्वेतपेचक, गातवर्णकी विभिश्वासे इसको अङ्गरेजीमें Barn, white, Church,
illihowlet, owlet, Madge-howlet, Madge,
Hissing और creech पेचक आदि; फ्रान्समें Pelit
chathuant Plombe, इन्लीमें Barbagianni; जर्मनमें Scheleierkauz, perl Elue; नद्रलेखमें De kerkuil, वेल्समें Dylluan wen कहते हैं। ये प्रायः १३ ईञ्च
लम्बे होते हैं। मादा पेचक नरसे सफेद होती है। शावकगण श्वेतपक्षमिण्डित हो कर बहुत दिनों तक घोंसलेमें
रहते हैं। पुराने घर, गिरजाकी चूड़ा और ग्रामके समीपवन्ती बृक्ष-कोटरादिमें मादा एक बार ३ वा ४ अण्डे
पारती है, इनके घोसले परिकार परिच्छन रहते हैं। Іvy

नामक पेचकके अंडेसे इनका अंडा छोटा है, पर अपेक्षा-छत गोलाकार होता है | 🌣

ये हड्डी, मांस, पर और रोएं सक्को एक साथ निगल जाते हैं। पीछे हड्डी और पर को उगल देते हैं। अन्यान्य पालित पक्षीके साथ ये मिल कर रहते और कुत्तेकी तरह खाद्य खिपा कर रखते हैं।

उरल पर्वत पर जो पेचक (Surnia Uralensis)
देखा जाता है, उसका मुंह सफेद और वहा होता, पंखसे पूछ लग्नो होती और उसमें एक कतारसे दाग रहता
है। इस जातिका पेचक दो फुट लग्ना होता है जिसमेंसे पूंछ प्रायः १० इच्च होती हैं। इनका प्रधान खाद्य
विद्धी और वड़ा बड़ा पक्षी है। Surnia funerea पेचक
उक्त पेचकसे छोटा अर्थात् २५ इच्च लग्ना होता है।
मादा पेचक नरसे बड़ी होती है। उनके बच्चे जब तक
धोंसले नहीं छोड़ते, तब तक उनका शरीर उज्जूल ध्सरवर्णके परसे ढँका रहता है। एतिङ्कित्र Strix pesserina, S. badia, S. capensis, Athene capensis,
Otus capensis और Noctua Boobook नामक कई
एक स्वतन्त्व पेचक जाति देखी जाती है।

श्रङ्गकी तरह कलमीदार पेचक 'Bubo' श्रेणीमुक है। इनके मध्य B. maximus और B. Varginianus नामके दो थोक हैं। पहले थोकके पेचकका सींग और आकार दूसरे थोकसे वहुत कुछ वड़ा होता है। अंग-रेजीमें इसे Great or eagle owl, इटलीमें Gufo grande, फ्रान्समें Le Hibou, Grand Duc, जर्मनमें Grosse ohieula और अर्थ लियामें Buhu कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम Strix Bubo है। छोटा छोटा मृगशावक, खरगोश, छुछुन्दर, चूहा, पक्षी, वेंग और सरीस्प तथा पतङ्गादि इनका आहार है। पर्यतकी कन्दरा, पुराने दुर्ग और खंडहरमें थे घोसले बनाते हैं। मादा २,३ अथवा

ं Mr. Blythने लिखा है, कि प्रीव्यक्तलमें एक घावले-में दो अंडे देखें जाते हैं। उनके साथ साथ मादा दो और अंडे पारती हैं। ने दोनों अंडे पूर्वोक्त अंडोंके कूटनेके बाद कूटते हैं। उसके साथ तीसरी बार पुनः दो अंडे पारे जाते हैं। उन कह नक्योंके निकलते निकलते प्राय: श्रीतकाल बीत जाता है। (Field, Naturalist's Magazine, vol I.) 8 अंडे एक साथ पारती हैं। अंडे देखनेमें मुर्गाके अंडेसे लगते हैं। मादा अपने वच्चेको तब तक आहार जुटाती हैं, जब तक वच्चा अच्छी तरह छड़ना सीख नहीं लेता। अगस्तमासके शेपमें बच्चे आपसे आप यम फिर कर खाने लगते हैं। इस जातिके पेचकमें इतनी शक्ति रहती है, कि यदि मेड़ियाको इसके पैरमें बांध दिया जाय, तो वह उसे ले कर आसानीसे उड़ सकता है। B. Vargininus वा भर्जिनियस् श्रङ्गयुक्त पेचक अमेरिकाके नाना स्थानीमें देखे जाते हैं। इनका समाव प्रायः पूर्वीक पेचकसे मिलता जुलता है, पर आकारमें कुछ छोटे होते हैं। चौंचसे ले कर पूंछ तककी लम्बाई प्रायः २६ इञ्च है।

२ करिषुच्छम्लोपान्त, हाथीकी दुमका अन्तमाग । ३ गुदाच्छादक मांसपिएडविशेप । ४ पर्यङ्क, पलंग, चार-पाई । ५ यूक, जूं । ६ मेघ, वादल ।

पेचकश (फा॰ पु॰) १ लोहेका वना हुआ वह घुमावदार पेच जिसकी सहायतासे वोतलका काग निकाला जाता है। इसे पहले घुमाते हुए कागमें धंसाते हैं और जव वह कुछ अन्दर चला जाता है, तव अपरकी ओर खींचते हैं जिससे काग वोतलके वाहर निकल आता है। २ लोहारों और वर्ड़यों आदिका औजार। इससे वे लोग पेच (स्क) जड़ते अथवा निकालते हैं यह भागेसे चपटा और कुछ जुकीला लोहा होता है। इसके पिछले भागमें पकड़नेके लिए दस्ता जड़ा रहता है।

पेचिकन् (सं०पु०) हस्ती, हाथी।

पेचताव (फा॰ पु॰) विवशता आदिके कारण प्रकट न किया जानेवाला क्रोध, वह गुस्सा जो मन-ही-मनमें रह जाय और निकला न जा सके।

पेंचदार (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका कसीदेका काम । इसमें काढ़ते समय फेंदे लगाए जाते हैं। (बि॰) २ कडिन, उलकानेवाला, जिसमें कोई उलकाव हो। ३ पेच बाला, जिसमें कोई पेच या कल लगी हो।

पेचना (हिं किं ) दो वस्तुओं के वीचमें उसी प्रकारकी तीसरी वस्तु इस प्रकार घुसेड़ देना जिससे साधारणतः वह दिखाई न पड़े, इस तरह लगाना जिसमें पता न लगे। पेचनी (हिं स्त्रो) चिकन वा कामदानीके काममें एक सीधो लकीर पर काढ़ा हुआ कसीदा। पेचवान (फा॰ पु॰) १ फशीं या गुड़गुड़ीमें लगाई जाने वाली वड़ी सटक। वड़ा हुका। पेचा (हिं॰ पु॰) उल्लूपक्षी। पेचिका (सं॰ स्त्री॰) उल्लूपक्षीका मादा। पेचिल (सं॰ पु॰) पच-वाहुलकात् इलच्, अत इच। हस्ती, हाथी। पेचिश (फा॰ स्त्री॰) मरोड़, पेटकी एक प्रकारकी पीड़ा। यह आंच होनेके कारण होती है।

पेचीदगी (फा॰ स्त्री॰) १ पेचीला होनेका भाव, धुमावदार होनेका भाव। २ उलमाव।

पेचीदा (फा॰ वि॰) १ पेचदार, जिसमें वहुत पेच हो। २ मुश्किल, उलमावदार, जो टेढ़ा मेढ़ा और किंडिन हो। पेचीला (फा॰ वि॰) १ धुमाव फिराववाला, जिसमें वहुत पेच हों। २ मुश्किल उलमावदार।

पेञ्जली (सं० स्त्री०) पच्यते इति पच-उलच्, अत इत्सं, गौरादित्यात् डीप्। शाकभेद, एक प्रकारका साग। पेज (हिं० स्त्री०) रवड़ी, वसौंधी।

पेज (अं ॰ पु॰) पुस्तकका पृष्ठ, पक्षा, वरक, सफहा। पेट (सं॰ पु॰) पेटतीति पिट-अच्। १ प्रहस्त, चपत, थप्पड़। (ति॰) २ संहिताकारक।

पेट (हिं पु । १ उर्र, शरीरमें थैलेके आकारका वह भाग जिसमें पहुंच कर भोजन पचता है। बहुत ही निस्त कोटिके जीवोंमें गलेके नीचेका प्रायः सारा भाग पेटका हो काम देता है। कुछ जोवोंके किसी प्रकारकी पाचनं-किया न रहनेके कारण पेट भी नहीं होता है। छेकिन उच कोटिके जीवोंके शरीरके प्रायः मध्य भागमें थैलेके आकारका एक विशेष अङ्ग होता है। इसमें पाचन-रस वनता और भोजन पत्राता है। मनुष्यों और चौपाइयों आदिमें यह अङ्ग पसलियों के नीचे और जननेन्ट्रियसे कुछ ऊपर रहता है। पाचक-रस वनाने और भोजन पचानिवाले सव अङ्ग अर्थात् आमाश्य, पक्याशय, जिंगर, तिल्ली, गुरदे आदि इसीके अन्तर्गत रहते हैं। इसीके नीचेका भाग कटोरेके आकारका होता है जिसमें आंतें और मूताग्रय रहता है। पिसयों आदि कुछ जीवोंमें पकके बदले दो पेट होते हैं। २ पर्चीनी, ओफर, पेटके अन्दरकी थैली। इसमें खाद्य पदार्थ रहता और पचता है।

३ अन्तः करण, मन, दिल । ४ गमं, हमल । ५ चकीके पांठोंका वह तल जो दोनों को जोड़नेसे भोतर पड़े । ६ सिल आदिका वह भाग जो कृटा हुआ और खुरदुरा रहता है और जिस पर रख कर कोई चोज पीसी जाती है। जीविका, रोजी। ८ समाई, गुंजाईश। ६ पोली-वस्तुके वीचका या भीतरी भाग, किसी पदार्थके अन्दरका स्थान जिसमें कोई चोज भरी जा सके। १० वन्दूक या तोपका वह स्थान जहां गोली या गोला भरा जाता है।

पेटक (सं॰ पु॰) पेटतीति पिट-ण्वुल्। १ मञ्जूषा, पिटारा । पर्याय—पिटक, पेड़ा । २ समूह, ढेर । पेटल (हिं॰ वि॰) वड़े पेटवाला, तींदल ।

पेटा (हि॰ पु॰) १ सीमा, हद। २ पूरा विवरण, तफ-सील, व्योरा। ३ किसी पदार्थका मध्य भाग, वीचका हिस्सा। ४ वृत्त, घेरा। ५ नदीका पाट। ६ वड़ा टोकरा। ७ पशुओं की अंतड़ी। ८ नदीके वहनेका मार्ग। ६ पतंग या गुड़ीकी डोरका कोल। उड़ती हुई गुड़ीकी डोरका वह अंश जो वीचमें कुछ ढीला हो कर लटक जाता है।

अंश जो चीचमें कुछ ढाला हा कर लटक जाता है। पेटाक (सं० पु०) पृथोद्रादित्वात् साधुः । पेटक, पिटारा।

पेरारा (हिं॰ पु॰ ) पिरारा देखी ।

पेटाथीं (हिं वि॰) जो पेट भरनेको ही सव कुछ सम-भता है। पेट्ट, भुक्खड़।

पेटार्थू (हिं० वि०) पेटार्थी देखी ।

पेटिका (सं॰ स्त्री॰) पिटतीति पिट-ण्वुल् कापि अंत इत्त्वं। १ वृक्षविशेष, पिटारी नामका पेड़। पर्याय—कुवेराक्षी, कुलिङ्गाक्षी, कृष्णवृन्तिका। २ छोटी पिटारी। ३ सन्दूक, पेटी।

पेटी (सं० ति०) पेट-गौरादित्वात् ङीप्। पेटक।
पेटी (हिं० स्त्री०) १ छोटा सन्दूक, सन्दूकची। २ चपरास। २ पेटका वह भाग जहां तिवली पड़ती है, छाती
शौर पेडूके वीचका स्थान। ४ केंची, छुरा आदि रखनेके
लिए हजामकी किसवत। ५ कमरवन्द, कमरमें वांधनेका
चीड़ा तसमा। ६ वह डोर जो बुलवुलकी कमरमें उसे
हाथ पर वैठानेके लिए वांधते हैं।

पेटू (हिं॰ वि॰) जो वहुत खाता हो, जिसे सदा पेट भरनेकी ही फिक्र रहे, भुष्खड़ ।

पेटेंट (अं० वि०) १ किसी आविष्कारक आविष्कारके सम्वन्धमें सरकार द्वारा की हुई रजिस्टरो। इसकी सहायतासे वह आविष्कारक हो अपने आविष्कारसे आर्थिक लाभ उठा सकता है, दूसरे किसीको उसकी नकल करके आर्थिक लाभ उठानेका अधिकार नहीं रह जाता। यह रजिस्टरी नये प्रकारको मशीनों, यन्तों, युक्तियों या ओप-धियों आदिके सम्बन्धमें होती हैं। ऐसी रजिस्टरीके वाद उस आविष्कार का पदार्थ आदि जिसकी इस क्रकार राजिस्टरी हो चुकी हो।

पेड ( हिं० पु० ) पैठ देखों ।

पेठा हि॰ पू॰ ) सफेद रंगका कुम्हड़ा। कुम्हड़ा देखो। पेठापुर—२ वस्वई प्रदेशकी महीकान्ठा एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यहांके सरदारगण वरोदाके गायक-वाङ्को वार्षिक ८६३०) रु० राजस्व दिया करते थे। अन-हलवाड़ा-पत्तनके जिस हिन्दूराजपूतवंशको १२६८ ई॰में अलाउद्दीनने परास्त किया था, यहांके सामन्तगण उसी प्राचीन राजपूत यंशके हें । उक्त यंशके अन्तिम राजाने अपने पुत श्रोरामसिंह (सारङ्गदेव)को कलोल नगर और इसीके पाश्यवत्तों कई एक ग्राम दिये। इसी व्यक्तिसे दशवीं पीढ़ीमें हेरुताजी नामक किसी व्यक्तिने १४४५ ई०में अपने मामा पिठाजीको मार कर उनके राज्य पेशपुर पर अधिकार कर लिया। महोकान्ठाके अधिष्ठानसे इस वंशके सरदारगण अद्ध स्वाधीनता भोग करते आये हैं। १८७८ ई॰में ठाकुर गम्मीर सिंह अपने पिता हिम्प्रतसिंहके पद पर अभिपिक हुए। ये वघेळावंशोय राजपूत हैं। इनके दत्तक प्रहणकी क्षमता नहीं हैं, किन्तु ज्येष्ठपुतके राज्याधिकारको प्राप्ति खोकृत हुई है। वर्त्तमान सामन्त-का नाम ठाकुर फतेसि ह जी है।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर और सरदारोंकी वासभूमि। यह अक्षा० २३ १३ १० उ० और देशा० ७२ ३३ ३० पू०के मध्य, साबरमती नदीके पिश्वम किनारे पर अवस्थित है। यहां एक प्रकारका रङ्गीन कार्पास्तवस्त्र प्रस्तुत होता है जो साधारणतः स्थामराज्यमें ही भेजा जाता है।

पेड (अं ० वि०) १ वैरिंग या वैरंगका उलटा, जिसका मह-स्ल, कर या भाड़ा आदि दे दिया गया हो । २ जो चुकता कर दिया गया हो, जो बस्छ कर दिया गया हो। पेड़ (हिं पु॰) १ वृक्ष, दरस्त । २ मूछ कारण, आदि कारण।

पेड्ना (हिं० किं०) पेरना देखों।

पेड़ा (सं॰ पु॰) पेटा-पृयोदरादित्वात् साधुः । मंजूपा, पिटारी, पेटी ।

पेड़ा (हिं॰ पु॰) १ खोवा और खांडसे वनी हुई एक प्रसिद्ध मिठाई जिसका आकार गोळ चिपटा होता है। २ गुंधे हुए आंटेकी लोई।

पेड़ागाँव—वार्यं प्रदेशके अहमदावाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह श्रीगोएडसे ४ कोस दक्षिणमें भोमानदीके उत्तर किनारे पर वसा हुआ है। इस नगरकी पूर्वसमृद्धि अभी जाती रही है—वह अभी प्रायः ध्वंसावशेपमें परि-णत हो गई है। अभी हेमाडपन्थियोंका वलेश्वर, लक्षी-नारायण, मिल्कार्ज न और रामेश्वर नामक चार देवालय वर्त्तमान हैं। किन्तु वे भी भग्नावस्थामें हें—किसीका मएडप, किसीका पीठस्थान और नाना शिल्पकार्ययुक्त स्तम्भ दीवार आदि गिर गई हैं।

१६८० ई०में यह नगर मुगलसेनाका प्रधान अड्डा था और यहां रसव्खाना, वाक्दखाना तथा गोला गोली आदि रखी जाती थी। दाक्षिणात्यके मुगलशासनकर्ता खाँ जहान्ते १६७२ ई०में शिवाजोका पीला करते हुए यहां लावनी डाली थी और वादमें दुर्ग वनवाया था। भीमा नदीसे नगरमें जल आनेके लिये उन्होंने एक खाई खुदवा दी है। हाथी द्वारा चक्रयोगसे नदीका जल खींचा जाता था। यह हस्तिगृह और कलगृह आज भी मौजूद है। खाँ जहान इस नगरका नाम वहादुरगढ़ रख गये हैं। १६७३ ई०में वहादुर खाँ पेड़गांवके शासनकर्ता थे। १७५६ ई०में वहादुर खाँ पेड़गांवके शासनकर्ता थे। १७५६ ई०में अहमद्नगरदुर्ग पेश्रवाके हाथ आया और साथ साथ यह नगर पेश्रवाके भाई सदाशिवरावके अधिकारमुक्त हुआ। उसी समयसे १८१८ ई० तक यह महाराष्ट्रके दखलमें रहा।

पेड़ार (हि॰ पु॰) एक प्रकारका वृक्ष ।

पेड़ी (हिं० स्त्री०) १ वह खेत जिसमें पहले ऊख वीया गया हो और जो फिर गेहुं वोनेके लिए जीता जाय। २ वह पान जो पुराना तोड़ा हुआ तो न हो, पर पुराने पौधोंमें वादमें हुआ हो, पुराने पौधेका पान। २ पानका पुराना पौधा। ४ काएड, घड़, वृक्षकी पींड। ५ वह कर जो प्रति वृक्ष पर लगाया जाय। ६ मनुष्यका घड़, ज़रीरका ऊपरी भाग। ७ एक वारका काटा हुआ नोलका पौधा। ८ हेड़ी देखी।

पेड़् (हिं पु॰) र गर्माशय। २ उपस्थ, नाभि और मृतेन्द्रियके वीचका स्थान।

पेढ़ान (सं० पु०) अवसर्षिणोके जिनोत्तमभेद ।
पेतलाद वरोदाराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २२'२६ ३० और देशा० ७२'५० पू०के मध्य अवस्थित है। यहां तम्याक् और वस्त्रका विस्तृत कारवार है। पेतिनिक दाक्षिणात्यके प्राचीन राजवंश । अहमदनगरके उत्तर-पूर्व पैठान नगरमें ये लोग २५० ई० सन्के पहले राज्य करते थे और भोज राजाओं के समसामयिक थे। पेत्य (सं० क्ली०) पीयते इति पा-पाने (अन्वेभ्योऽपि दश्यन्ते । उण् ४।१०५) इति इत्यन् । १ अमृत । २ घृत, थी। (पु०) ३ पतनशील पशु, लाग, वकरा।

पेदड़ी (हिं० स्त्रो०) पिदी देखो। पेदन—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन

वसा है। यहांके अगस्त्येश्वर खामीके मन्दिरमें १२२० ई० की एक और १२२५ ई०की तीन शिलालिपि हैं। पेदर (हि० पु०) एक प्रकारका वहुत वहां जंगली पेड़। इसके पत्ते प्रति वर्षे भड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी वहुत मजरूत और भीतरसे सफेद होती है। यह मेज, कुरसियां, अलमारियां और नावें बनाने तथा इमारतके काममें आती है। इसकी जड़, पत्ते और फूल ओपधिके रूपमें भी काम आते हैं। यह मन्द्रास और वंगालमें वहुतायतसे होता है।

ग्राम। यह मछलीपत्तन नगरसे ढाई कोस उत्तर

पेडु (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।
पेदकल्लेपल्ली (पेदकुलपल्ली)—कृष्णा जिलेका एक प्राचीन
नगर। यह मछलीपत्तनसे चार कोस दक्षिण-पित्त्वममें
अवस्थित है। यहांके नागेश्वरस्वामीके मन्दिर-प्राकारमें
राजा २य प्रतापरुद्रके समयमें उत्कीर्ण १२१८ शककी एक
और अन्यान्य स्थानमें और भी लगभग चौदह शिलालिपि
देवनेमें आती हैं। जिनमेंसे १०७६ शककी उत्कीर्ण

Vol. XIV 90

शिलालिपि सबसे पुरानी है। अन्यान्य शिलालिपियां सम्भवतः १२वें और १३वें शक्तमें उत्कीर्ण हुई हैं।

पेह्काञ्चरला—कृष्णाजिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह बिनुकोएडसे २ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहांके भीमेश्वर-मन्दिरके समीप १०७१ शक्तमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। यहांकी पूर्व समृद्धिका परिचायक और भी दो मन्दिरका भग्वावशेष देखनेमें आता है।

पेह्कानाल—मन्द्राजप्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका एक दूसरा नाम 'कृष्णरायसमुद्र' नन्दरालसे तीन कीस दक्षिण-पश्चिममें वसा है। विजयन्तगरके राजा सदाशियके राजत्वकालमें मन्दिरके खर्चके लिये दानज्ञापक चेन्नकेशवस्त्रामीके मन्दिरमें १४८१ शक्कि और विद्वपस्तामीके मन्दिरमें १४६६ शककी उत्कीणी दी शिलालिपि पाई गई हैं।

पेद्गालंपाड़ — कृष्णा जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह दाचे-पह्नीसे तीन कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां एक विचित्न शिल्पकार्ययुक्त प्राचीन मन्दिर है जिसका पुनः-संस्कारकाल १६६५ शक शिलालिपि द्वारा जाना जाता है। कई एक वीरकीर्त्ति और नागकीर्त्तिके अलावा यहां और भी शिलालिपि और दो पुराने मन्दिरका निदर्शन पाया जाता है।

पेट्टचेरुकूर—कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह बापटलासे पांच कोस उत्तर-पिर्चिममें अवस्थित है। यहां विविक्तमस्वामी-मिन्दिरके गरुड्स्तम्मके ऊपर दो शिलालिपि और उसीके समीप कई एक शिलाफलक नजर आते हैं। इस ग्रामचासी एक ध्यक्तिके पास और भी तीन ताम्रफलक हैं जो यथाक्रम विष्णुवर्द्ध न-महाराज मिल्लिये और वेमराज-प्रदत्त हैं।

पेइतित्य-समुद्रम्—मन्द्राजप्रदेशके कङ्प्या जिल्लान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह मदनपह्नीसे ११ कोस उत्तर-पश्चिममें पड़ता है । यहांके कई एक प्राचीन मन्दिर और दुर्गके स्वंसावशेषके मध्य शिलालिपि पाई जाती है ।

पेह्नपही - कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह रेपब्ल-से ७ कोस दक्षिण-पश्चिम और निजामपत्तनसे २ कोस उत्तर-समुद्रके किनारे वसा हुआ है। यहां समुद्रके किनारे चर पड़ जानेसे नगरके तीरवत्ती स्थान पहलेकी

अपेक्षा चौड़ा हो गया है। इसी वन्दरमें अङ्गरेज-विषक्षीने सक्से पहले कोठीं वनवाई। १६११ ई०में कोठीस्थापन होते ही इस स्थानका पेट्रिपोली नाम पड़ा। लगभग १६६७ ई० तक इस कोठीका काम चला। वाद १७५३ ई०में निजाम द्वारा यह स्थान फरासीके हाथ आया। पुनः निजाम सलावतजङ्गने यह नगर निजामपत्तन सर-कारके अन्तर्भु क अङ्गरेजोंको दे दिया।

पेद्दपाड — गोदावरी जिलान्तगंत एक प्राचीन स्थात। यह इलोरासे ७ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके सोमेश्वर-मन्दिरके कल्याणमण्डपमें ११४० शककी उत्कीर्ण शिलालिपिमें मण्डपनिर्माताकी कीर्तिघोषणा की गई है।

पेद्दिवजयराम—विशाखपत्तन जिलेके विजयनगरके अधि-पित। ये १७१० ई०में राज्यारोहण कर १७१२ ई०में पोत-जुरसे अपनो राजधानी विजयनगरमें उठा लाये और अपने ही नाम पर नगरका नाम रक्षा अत्यन्त परिश्रम और अर्थध्यय कर उन्होंने एक हुगे वनवाया और १७५४ ई०में चिकाकोलके फौजदार जाफरअली खाँके साथ मितता की। वाद फरासी-सेनापित वूसीके साथ जब इनका परिचय हुआ, तब इन्होंने उक्त मित्रता तोड़ दी। वूसी-की सहायतासे १७५७ ई०में वीविलीके शासनकर्ताको पराजित और निहत कर अपनी वैरताका बदला लिया। उनको यह विजयख्याति वहुत दूर तक नहीं फैली थी। युद्धावसानके तीसरे ही दिन रातको ये गुप्त श्रव द्वारा अपने शिविरमें मार डाले गये। विजयनगर देखो।

अपन शिवरम मार डाल गया विकास एक प्राचीन पेहवेगी—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेका एक प्राचीन नगर। यह इलोरासे तीन कोस उत्तर अवस्थित है। वेङ्गी तैलङ्ग राजाओंकी यहां राजधानी थी। ६०५ ई०में वालुक्यराजने उन्हें परास्त कर मार मगाया। ताप्रशासनसे जाना जाता है, कि वालुक्योंसे पहले ४थी शताब्दीमें यहां शालङ्कायन-वंशीय नरपतिगण राज्य करते थे (१)। वेङ्गीराज्य दक्षिण भारतमें एक प्राचीनतम राज्य

<sup>(1)</sup> Indian Antiquary, Vol. V. p. 177 टडेनी के इस राजव शक्ता बल्डेल न करनेके कारण, सुनेंड बाइन सनका राजलकाल २री शतान्त्रीन बतलाते हैं।

है। पल्लबगंशीय राजा यहां राजत्व करते थे। काञ्चीपुरके पल्लव राजाओं के साथ इनका सम्बन्ध है (२)।
जान पहता है, कि वालुक्यक तृ क वेङ्गी-विजयके वाद ही
काञ्चीपुरमें पल्लवों का आधिपत्य फैला। इस पेहवेगी के
निकटवर्ती चिन्नवेगी और पांच मील दक्षिण-पूर्व देएडलूह नामक नगर तक फैले हुए स्थानके ध्वंसावशेपसे
इसके प्राचीनत्वकी कल्पना की जाती है। प्रचाद है, कि
मुसलमान राजाओं ने बेगी और देएडल्डक ध्वंसावशेपसे
इलोरादुर्भ वनवाया था।

पेइहल्ली—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां बहुत-सी प्राचीन कीर्त्तियोंका निद-र्शन मिलता है। स्थानीय नदीके वीचमें रङ्गस्वामीका मन्दिर प्रतिष्टित है।

पे हापुर—गोदावरी जिलेके पेहापुर तालुकका सदर । यह अक्षा० १७ ४ ५५ उ० और देशा० ८२ १० ३५ पू०, राजमहेन्द्रीसे १२॥ कोस पूर्वोत्तरमें अवस्थित है । यहां मृत्तिका और प्रस्तरनिर्मित एक दुर्गका निदर्शन मिलता है । उसके अभ्यन्तरमागस्थ ग्रहादिमें कारकार्ययुक्त काग्र-शिल्पनैपुण्य है।

पेन (हि॰ पु॰) छसोड़े की जातिका एक वृक्ष जो गढ़-वाछमें होता है। इसकी छकड़ी मजवूत होती है। इसे 'कूम' भो कहते हैं।

पेनगङ्गा (बेनगङ्गा)—बेरार राज्यके अन्तर्गत एक नदी।
बुलदाना जिलेके पिश्वमवर्ती देवलघाट पर्वतके दूसरे
किनारेसे यह निकलती है और माहुरके समीप उत्तरमुखी
हो कर पूर्वकी ओर कुल टेड़ी हो गई है। स्थानीय प्रवाद
है, कि जामदण्य परशुरामने यहीं पर तीर फेंका था, इसी
लिए स्रोतकी वकगति हुई है। जनसाधारणमें यह स्थान
पवित्त और पुण्यक्षेत्र माना जाता है। यहांके जलप्रपात
सहस्रकुएड नामसे प्रसिद्ध है और नदीस्रोत भी 'वांधगङ्गा' कहलाता। यह नदी नाना वन अधित्यका उपत्यका पार करती हुई जगादनगरके समीप वर्दा नदीमें
मिल गई है। अरान और अर्णा नामको इसकी दो
शासार्ये हैं।

पेनी ( अं ० स्त्री० ) इङ्गलैएडमें चलनेवाला तांवेका सिका जो एक शिलिङ्गका वारहवाँ भाग होता है। यह भारतके प्रायः तीन पैसोंके वरावर मृत्यका होता है।

पेनीबेट ( अ' ॰ पु॰ ) एक अ' प्रेजी तौल जो लगभग १० रत्तीके वरावर होती है।

पेनुगोएडा—गोदावरी जिलेके तुनुक् तालुकान्तर्गत एक गएडग्राम। यह सद्रसे ४ कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है। यहां तीन सुप्राचीन मन्द्रिक अलावा वसविकन्याका और एक मन्द्रिर है। कन्यकापुराण नामक स्थलपुराणमें उक्त मन्द्रिका माहात्म्य वर्णित है।

पेन्ताकोट—मन्द्राज प्रदेशके विशास्त्रापत्तन जिळेके सब-सिद्धि तालुकान्तर्गत एक श्रुद्ध ग्राम । यहां नमक और अन्यान्य द्रध्यके कारखाने हैं। जहाज पर माल लादनेके समय नदीका मुख वन्द कर दिया जाता है।

पेन्द्रव—१ मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेके उत्तरभाग-स्थित एक सामन्त राज्य । यह विन्ध्यपर्यंतके अभित्यका-देशमें अवस्थित है । भूपिरमाण ५८५ वर्गमील है । यहांके सरदारगण राजगींड़वंशीय हैं । शासनकर्त्तासे इन्होंने यह सम्पत्ति पाई थी ।

२ उक्त राज्यका सदर । यह अञ्चा० २२ ं ४७ ं ४० और देशा० ८२ ं पू०के मध्य, विलासपुरसे रेवा जानेके रास्ते पर अवस्थित है । इसी लिए यह स्थान वाणिज्यका केन्द्रस्थल हो गया है । यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसा-वशेष आज भी देखनेमें आता है ।

पेन्धात् — युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलान्तर्गत एक गएडप्राम । जोखैयामें पविलक्षेतके महामेलेके उपलक्षमें धार्मिकोंके समागमके लिए ही यह स्थान प्रसिद्ध है। पुतप्राप्तिकी कामनासे सैकड़ों वन्ध्यानारी यहां आती हैं।

पेन्धारा—कर्णाटवासी तृणविकयी जातिविशेष । धास काट कर वेचना हो इन लोगोंका कार्य और एकमाल उप-जीविका है; इसलिए इनका नाम ऐसा पड़ा है (१)। ये लोग पहले हिन्दू थे, वादमें इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए हैं और अपनेको सुन्नीके हनीफीसम्प्रदायमुक्त वतलाते हैं। ११वीं शदाब्दीके प्रारम्ममें ये लोग दल वाध कर

<sup>(</sup>R) urnell's S. Ind. Patacography, p. 15

<sup>(</sup>१) स्थानीव 'वेन्ध' शब्दका अर्थ घाषका गुक्छा है।

भारतमें चारों ओर फैल गए और दस्युवृत्ति, अत्याचार प्रभृति द्वारा गृहादि दग्ध और नाना यन्त्रणा दे कर ग्राम- वासियोंको उत्कण्डित किया। ये खोपुष्ठप दोनों ही लम्बे, मजबूत और काले होते हैं। हिन्द्री, मालबी और मराठी हो इनकी ग्राम्य-भाषा है। ये लोग कर्मठ और परिश्रम- शील होते हैं, किन्तु अतिरिक्त मद्यपायी और खभावतः हो अपरिकार रहते हैं।

सजातिमें ही थे लोग विवाहादि करते हैं। विवाह और अन्त्येणिके समय ये काजोका आश्रय लेते हैं, किन्तु अन्यान्य कार्योंमें अपनेमेंसे किसी एकको जमादार वा मड़र वना कर बात तय करते हैं। मुसलमानोंसे इनका पार्थक्य यही है, कि ये लोग गोमांस नहीं खाते और हिन्दू देवदेवीकी पूजा तथा पर्वापलक्षमें उपवासादि करते हैं। यल्लामादेवीके प्रति इनकी खूव भक्ति है। नाना जाति-के मेलसे इस सङ्करजातिकी उत्पत्ति हुई है।

पेन्घारी--पिण्डारी देखी।

वेसकोएड ( वेनुकोएडा )—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत पेनुकोएड तालुकका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० १८' ५' १५" उ० और देशा० ७९' ३८' १०" पू॰में अयस्थित है। यहांका गिरिदुर्ग सुन्दर और सुर-क्षित है। १५६५ ई०में तालिकोटकी लड़ाईमें मुसल-मानोंसे पराजित हो कर विजयनगरके राजाने इस पहाड़ी दुर्गमें आश्रय लिया। यह दुर्ग दानेदार (Granite) पत्थरसे वना हुआ है। ध्वंसावशिष्ट राजवासाद, भास्कर-शिल्प और हिन्दूमुसलमानोंके जीणेमन्दिर तथा मस्जिद-के स्मृतिचिह्न इधर उधर पड़े हैं। कालके स्रोतमें गत-प्राय गन्यामहरू नामक राजवासाद आज भो पूर्वकीर्ति-के गौरवको सूचना देता है। इसका भित्ति भाग प्राचीन हिन्दूशिल्पका परिचायक और स्थानीय महादेव-मन्दिर-का समकालवर्त्ती-सा प्रतीत होता है। उपरितलको .गद्धन देखनेसे परवर्तीं मुसलमान-राजत्वकालमें निर्मित और तत्कालीन शिल्पसे परिपूर्ण जान पड़ती है। शेर अलीकी मस्जिद उन सर्वोमेंसे श्रेष्ट और सुन्दर है। यह अद्यासिका काले पत्थरकी वनी हुई है। इसके पीछे पर्वत श्रङ्ग लगभग ६०० पुट उन्चा है। जगह जगह पर मस्जिद, मिनार, पान्थशाला, समाधिमन्दिर, चूड़ास्तम्म

(Tower), प्रस्तरस्तम्भ और अन्यान्य प्राचीन कीर्ति-का ध्वंसावशेष नजर आता है। नगरके मध्य दो जैन-मन्दिरोंमेंसे एकमें आज भी पूजाषाठ होता है। दुर्गके बीच दो प्राचीन मन्दिरोंका कार्कार्य वहुत सुन्दर है— समस्त भारतमें ऐसा स्ट्मकार्य विरल है। दुर्गके उत्तर-द्वारके एक कोनेमें हनुमानकी एक प्रकाएड मूर्ति पड़ी है (१)। यहां बहुत-सी प्राचीन शिलालिपियां पाई गई हों। इनमेंसे कितनी ही दुर्गप्रान्तमें और कई एक गोपाल-स्वामी, आञ्चनेय, रामखामी, केशवस्वामी तथा अविमुक्ते-श्वर-स्वामीके मन्दिरमें और सत्यभोदरायल खामीके मठमें एक शिलालिपि देखनेमें आती है। शेरशाहकी मस्जिद-में १८८६ शकका उत्कीर्ण एक शिलाफलक है। यह फलक या तो मुसलमानविजेता मस्जिद-निर्माणकालमें अन्य स्थानसे लाये हों, अथवा उन्होंने प्राचीन हिन्द-कीर्त्तिके ऊपर वह मस्जिद वनवाई हो।

पेन्नार-दक्षिण-भारतमें प्रवाहित दो नदी। इनका प्राचीन नाम पिनाकिनी है। दोनों ही महिसुर राज्यके नन्दी-दुर्ग पर्वतसे निकल कर पूर्वकी ओर कर्णाटराज्यमें बहती हुई बङ्गोपसागरमें गिरी हैं। १म, नन्दीदुर्गेके उत्तर-पश्चिम चेन्नकेशय पर्यंतसे उत्तर-पिनाकिनी निकल कर लगभग ३५'र मीलके वाद समुद्रमें मिलती है। इसके पापन्नी और चितावती नामक दो शाखा नदी हैं।१८७४ ई०में इसके ऊपरका रेलवे पुल टूट गया। मन्द्राज इरि-गेशन कम्पनीकी काटी हुई खालने कृष्णा और उत्तर-पेन्नार को मिलाया है। १८५५ ई०में इस नदीवक्षमें अनिकट वनाया गया है। कभी कभी वाढ़के आ जानेसे वहुत हानि होती है। १८८३ ई॰की वाढ़ उल्लेखयोग्य है। २य, दक्षिण पिनाकिनी भी चेन्नकेश्व पर्वतसे निकल कर सेएट-डेभिड दुर्गके समीप समुद्रमें गिरी है। स्तर्की लम्बाई करीव २४५ मील हैं। वङ्गलूर जिलेके कृषिकार्षके लिये इसका पानी पुष्करिणीमें भर कर रखा जाता है। होसकोट नामक पुष्करिणीका घेरा १० मील है।

<sup>(</sup>१) Madras Journal, 1878, p. 866, District Manual, p. 63 और Taylor's Oriental Annual, 1840, 'धर्मे विस्तृत विवर्ण देखी।

पेशाहोबिलम (पेन्नहोब्लापग)—सन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह गुटीसे १४ कोस इक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन मन्दिर-में विजयनगराधिप सदाशिवके राजत्व समयमें उनके सेनापति द्वारा उत्कीण १४७८ शकको एक शिलालिपि भी है।

पेन्शन (अं क्ली ) मासिक या वार्षिक वृत्ति। यह किसी व्यक्ति अथवा परिवारके लोगोंको उसकी पिछली सेवाओंके कारण दो जाती है। जो मनुष्य कुछ निश्चित समय तक किसी राजकीय विभागमें काम कर चुकते हैं, उन्हें वृद्धावस्थामें नौकरीसे अलग होने पर, कुछ वृत्ति दो जाती है जो उनके वेतनके आधेके लगमग होती है। सेनाविभागके कर्मचादियोंके मारे जाने पर उनके परिवारवालोंको अथवा किसी राज्यको जीत लेने पर उस राजकुलके लोगों और उनके वंशजोंको भी इसी प्रकार कुछ वृत्ति दी जाती है। इसी प्रकारकी वृत्तियी 'पेनशन' कहलाती हैं।

पेन्शनर ( बं ॰ पु॰ ) पेन्शन पानेवाळा व्यक्ति, वह जिसे । पेन्शन मिळती हो ।

पेन्सिल (अं ० स्रो०) लिखनेका एक प्रसिद्ध साधन जिस-से विना दावात या स्पाहीके ही लिखा जाता है। यह प्रायः सुरमे, सोसे, रंगोन खिड़्या या इसी प्रकारकी और किसो सामग्रीकी वनी हुई पतली लम्बी सलाई होती है जो या तो कलमके आकारकी गोल लम्बी लकड़ीके अन्दर लगी हुई होती है, या किसी धातुके खानेमें अट-काई हुई होती है।

पेन्हाना (हिं किं ) वहनाना दे हो।

पेपर ( अं ॰ पु॰ ) १ संवाद्पत्त, असवार । २ द्स्ताचेज, तमस्तुक, सनद या और कोई छेस जो कागज पर छिखा हो । ३ कागज ।

पेपरमिट (हिं पु॰) विषयिषट देखी।

पेमचा (हिं पु॰) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

पेय (सं० क्की॰) पीयते यदिति पा-पाने कर्मणि यत् । (ईदर्गत । पा ६१४,६५ इति आत ईत् ततो गुणः । १ जल, पानी । २ दुम्ध, दूध । ३ अप्रविध अझके अन्तर्गत अञ्चिष्टिये, आठ प्रकारके अजीमेंसे एक । ४ पीनेकी वस्तु, वह चीज जो पीनेके काममें आती है। (ति॰) ५ पातव्य, पानयोग्य, पीने लायक, जिसे पी सकें।

वेया (सं० स्त्री०) पीयते इति पा-यत् ततप्टाप्। १ सिक्थसमन्वित पेय द्रव्य, मांड मिली हुई पीने योग्य वस्तु, चावलोंको वनी हुई एक प्रकारको लपसी। यह पर्याय मुकावलोंके मतसे पन्द्रह गुने, चकदत्तके मतसे पारह गुणे, और परिभाषाप्रदीपके मतसे चौदह गुने पानीमें पका कर तैयार की जाती है। यह स्वेद और अन्तिजनक तथा भूख, प्यास, ग्लानि, दौर्यल्य और कुक्षिरोगकी नाशक मानी जाती है। २ आर्ट्रक, अद्रक। ३ शतपुष्पी, सोआ नामक साग। ४ कपाय। ५ खच्छ मएड, सफेद मांड। ६ श्राणा, सौंफ।

पेयूप (सं० पु०-क्की०) पीय-पाने ,पीयेहवन् । दण् ४१०६) इति ऊपन् बहुळबचनात् गुणः । १ अभिनव दुग्ध, नव- प्रस्ता गाभीका प्रथम सात दिनका दूध, वह दूध जो गौके वच्चा देनेके सात दिन वाद तक निकळता है, पेउस । आयुर्वेदमें ळिखा है, कि ऐसा दूध स्वादमें अच्छा नहीं होता और हानिकारक होता है। २ अवृत । ३ अभिनव सिंप, सद्य प्रस्तुत वृत, ताजा घी।

पेरज (सं० क्लो०) उपमणिमेद । पेरांन देशी ।

भूमिमें कहीं कहीं धानकी खेती होती है।

पेरजागढ़—मध्यप्रदेशके चान्दा जिलान्तर्गत एक पार्च-तीय मुभाग। इसकी लम्बाई और चौड़ाई यधाकम १३ और ६ मील है। यह चोमूर और ब्रह्मपुरी परगनेके मध्य अवस्थित है। सबसे ऊँचे शिखरके नाम पर ही इस पर्वतमालाका नाम पड़ा है। इस शिखरदेशसे 'सात-वहिनी' नामक सप्त जलघारा वहती है। प्रवाद है, कि पर्वतश्रद्धस्थ गुहामें सात वहन तपस्या करती थीं। इक मप्तधारा उनकी स्मृतिका चिद्व है। पर्वतकी उपत्यका-

पेरना (हिं० किं०) १ आवश्यकतासे वहुत अधिक विलम्ब करना, किसी काममें वहुत देर लगाना । २ दो भारी तथा कड़ी वस्तुओं के वोश्वमें डाल कर किसी तीसरी वस्तुको इस प्रकार दवाना कि उसका रस निकल आवे । ३ कष्ट-देना, वहुत सताना । ४ किसी वस्तुको किसी यन्त्रमें डाल कर घुमाना । ५ प्रेरणा करना, चलाना । ६ पठाना, मेजना ।

Vol. XIV 91

पेरम्बलूर—१ मन्द्राज प्रदेशके तिचिनापछी जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ६८६ वर्गमील है और सभी स्थान प्रायः समतल है। इसके उत्तराई की मिट्टी काली और कठिन तथा दक्षिणाई की पर्वतमय है। यहां रागी (Eleusine Corocane), कांगनि (Pacicum miliaceum) और कंग्र (Pennisetum typhoideum) आदि शस्योंकी खेती होतो है। उपविभागके करीव आधे स्थानमें कपास उपजता है।

२ उक्त उपविभागका सदर और प्रधान नगर। तिचिनापल्लीसे मन्द्राज जानेके रास्ते पर वसा है। पेरम्वाकम्—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपत जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२ ५४ ३० उ० और देशा० ८० १५ ४० पूर्वे मध्य काञ्चीपुर नगरसे प्रायः ७ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासी सभी हिन्दू हैं । १७८० ई०में यहां अङ्गरेज-सेनाओं पर वड़ी विपत्ति पड़ी थी। कर्नल बेली ३७०० सेना ले कर जब यहां आये, तव हैदरअलीने उन्हें घेर लिया और सवोंको . जानसे मार डाला । १७८१ ई०में सर आयर कूटने यहीं पर हैदरकी सेनाको परास्त कर सेलिनगढ़ तक खदेड़ा। पेरलक्षेत्र—दाक्षिणात्यके समुद्रतीरवत्तीं एक प्राचीन तीर्थ । टलेमो यह ्स्थान Paraha नामसे उल्लेख कर गए हैं। कोई कोई तओर जिलेके कोलेवण-नदीतीरवर्ती स्थानको ही पेरलस्थल वतलाते हैं। यहां एक ग्राचीन विष्णु-मन्दिर है जो हिन्दुओंके मध्य परम पवित स्थान गिना जाता है।

स्कन्दपुराणके पेरलस्थल-प्राहात्म्यमें विस्तृत विवरण देखो । पेरली (हिं० स्त्री०) ताएडच-मृत्यका एक भेद । इसमें अङ्गविक्षेप अधिक होता है और अभिनय कम । इसे 'देशी' भी कहते हैं।

पेरविल — मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक नगर।
यह रेपलीसे ५ कोस उत्तर-पिश्चप्रमें वसा है। यहां चोल
राजाओंके प्रतिष्ठित दो प्राचीन मन्दिर देखनेमें आता है।
मन्दिरगालमें एक शिलालिप और निकटवर्ची आरादिम्मपुरमें कई एक ताम्रशासन हैं।

पेरवा (हिं पु॰) पेरनेवाला, वह जो कोल्ह आदिमें कोई चीज पेरता हो। पेरवाह (हिं पु०) पेरवा देखो ।

पेरा (हिं० पु०) १ पोतनो मिट्टी, एक प्रकारकी मिट्टी जिससे दीवार, घर इत्यादि पोतनेका काम लिया जाता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए होता है। २ पेड़ा देखो।

पेरियप्पा—एक नाट्यकार । ये यज्ञरामके पुत्न और राम-भद्रके समसामयिक थे । इन्होंने 'श्रङ्कारमञ्जरी-शाह-राजी' नामक एक नाटक प्रणयन किया है।

पेरिम--वावेलमण्डव प्रणालीस्थित एक द्वीप । यह अख-उपक्लसे १॥ मोल और अफ्रिका-उपकूलसे ६ मोल दूर में, अक्षा० १२ ं ४० ं उ० उ० और देशा० ४३ ं २३ पूर्वमें अवस्थित है। इसकी छम्बाई और चौड़ाई यथाकम ३॥ और १। मील है। यह स्थान अङ्गरेजोंके अधिकृत आदन-गवर्मेण्टके शासनाधीनमें है। यह द्वीप प्रायः पर्वत-मय है। आम्नेयपर्वत-निःस्त भस्मावशेषसे इसकी उत्पत्ति हु है। अपरमें सिर्फ २८५ फ़ुट ऊंचा एक पहाड़ नजर आता है जिसका अपरांश समुद्रमें डुवा हुआ है। द्वीप-पृष्ठके अन्यस्थलमें जो देखा जाता है, वह स्थलविशेष पर पत्थर वन्धी हुई सतहकी तरह मालूम पदता है। किन्तु द्वीप इस प्रकार पर्वतात्रभागमें स्थित होने पर भी इसकी तीरभूमिमें जहाजादि लगानेके लिये वन्द्रगाहकी नाई उपयुक्त स्थान है। पेरिप्लस प्रन्थमें यह द्वीप 'दीवोदी-रस द्वीप' और अरववासी कर्ने,क 'मयुन' नामसे अभिहित है। १५१३ ई०में पुत्तगीज-सेनापति अलबूकर्क लोहितसागरसे लौटनेके समय इस द्वोपके उच स्थान पर खृष्टका 'कूश' स्थापन कर इसका भेराकूज नाम रख गये हैं। पीछे यह स्थान वाणिज्यविद्वे पी दस्यु लोगोंके अधिकृत हुआ। यह दस्युद्छ सर्वदा छोहितसागरके मुख पर पण्यव्रव्य लूटनेके लिए घुमता फिरता और इसी द्योपमें आश्रय छेता था। उन छोगों ने यहां दुर्गादि स्थापन कर रहनेकी विशेष चेष्टा की, किन्तु अत्यन्त परि-श्रमसे ६० फुट पर्वत खोदनेसे भी पानी न निकला। वाद वे इस स्थानको छोड़ कर मेरीद्वीपमें जाने को वाध्य हुए। १७६६ ई०में इप्ट-इल्डिया-कम्पनीने इस स्थान पर अपना दखल जमाया। उसी समय फरासीसैन्य टीपूरे साथ मित्रता करनेकी इच्छासे इजिप्टराज्यमें अपना प्रभाव फैला रही थी।

'खेज कैनल' कारनेके वाद् लोहितसागर हो कर यूरोपीय वाणिज्यपोत जाने आनेमें सुविधा हो जानेसे भारतगवमें एटने १८५७ ई०में यहां एक 'लाइट-हाउस' वनानेके लिए पुनः यह द्वीप अपने कन्जेमें कर लिया। १८६१ ई०में आलोकवारिका साथ साथ एक छोटा सैनि-कावास भी वनाया गया।

पेरिम—काम्बे उपसागरिस्थत एक छोटा द्वीप। इसकी लम्बाई १८०० गज और चौड़ाई ३००से ५००गज है। यह अक्षा० २१ इ६ उ० और देशा० ७२ २३ ३० पूर्वके मध्य समुदोपक्क छो। कोस दूरमें वसा है। पेरिष्ठ समें यह द्वीप वाइओनस (Baionas) नामसे प्रसिद्ध है। यह द्वीप पर्वतमय है। मृतस्वविद्दगण इसे टार्टियारी स्तरसे उद्भत वतलाते हैं। इस द्वीपके दक्षिणपूर्वभागमें कितने हो यृहदाकार जीवोंकी प्रस्तरास्थि पाई जाती है। १८६५ ई०में यहां एक आलोक गृह वा 'लाइट हाउस' वनाया गया है। ज्वारके समय भी इसकी ऊंचाई लगभग १०० फुट रहती है; २० मील दूरवत्तीं जहाज पर अलोक रिम देखनें में आती है।

वेरिया—१ मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक गिरि-सङ्कट । यह अक्षा० ११ १५ उ० और देशा० ७५ ५० पूर्वके मध्य, कन्तन्र्से सामन्तवाड़ी जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

२ मन्द्राजप्रदेशवासी नीच अरूपृश्य जातिविशेष ।

परिया टेखो ।

पेरियाकुलम्—१ मदुरा जिलान्तर्गत एक उपविभाग । भूपरिमाण ११६६ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका सदर और प्रधान नगर। यह वराइनदीके किनारे वसा है।

पेरियापाटन—१ महिसुर राज्यके अन्तर्गत एक उपविभाग।
इसका दूसरा नाम हुनस्र है और भूपरिमाण 88% वर्गमोल है। इसके उत्तर-पिश्चममें कावेरी नदी और
दक्षिण-पूर्वमें लक्ष्मणतीर्थ नामक पुण्यसिलला स्तोतिस्विनी
वहती है। यहांका पृष्ट्यपुर-गिरिश्टक्स समुद्रपृष्टसे ४३५०
फुट के बा है।

२ उक्त उपविभागका सदर । १८६५ ई०में हुनस्र नगरमें सदर कचहरी चले जानेसे यह स्थान एक गएड- प्राममें परिणत हो गया है। यह स्थान वहुत प्राचीन है, इसका पूर्वनाम था 'सिहपाटन'। १२वीं शताब्दीमें किसी चोल राजाने यहां एक मन्दिर और पुष्करिणीकी प्रतिष्ठा की। १६५६ ई०में कुर्गराजने एक दुर्ग वनवाया। महिस्सुर हेन्द्रराजसरदारने पेरिया-उदयाके इस दुर्ग पर अधिकार कर प्रस्तर द्वारा उसका पुनर्निमाण किया जिसका ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान है। हिन्दू सेना-पितने पेरिया-उदयाका सिहपत्तन नाम वदल कर अपने नाम पर पेरियापाटन रखा। टीयू-सुलतानके राजत्व-कालमें यहां कुर्ग और महिसुरकी सेनाका युद्ध हुआ। अङ्गरेजींने तीन वार इस स्थान पर दखल जमाया। १७६१ ई०में जनरल प्वारक्रिकको गित रोकनेके लिए टीयूने इस नगरका कुछ अंश जला दिया था।

पेरियार—तिवांकुड़ राज्यमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० १० ४० उ० और देशा० ७६ ५६ पू०से निकल कर कोड़क्नुद्रके समीप समुद्रमें गिरी है। मल्लाई, शेर-धानी, पेरिक्नकोठाई, मुद्रपल्ली, कुन्दनपाड़ा, और पहा-मलय आदि कई एक शाला नदी उल्लेखयोग्य हैं।

पेरिस—फान्सकी राजधानी। पारिस तया फारत देखो। पेरी (हिं० स्त्री०) पीछे रंगमें रङ्गी हुई घोती जो विवाहमें वर या वधूको पहनाई जाती है। इसे पियरो भी कहते हैं।

पेट (सं० पु०) पीयते रसानिति पीङ् पाने । (मिपीभ्यां ह:। उण् ४।१०१) इति ह । १ अग्नि, आग । २ सूय । ३ समुद्र, सागर । (वि०) ४ रक्षक, वचानेवाला । ५ पुरक, पूरा करनेवाला ।

पेरु दक्षिण-अमेरिकाके अन्तगत एक खाघीन राज्य। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक स्मृतिचिह देखनेमें आते हैं। अमेरिका देखो।

पैर--वीर देखी।

पेरुक (सं० पु०) एक राजाका नाम।

पेरुगङ्गी—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलेका एक प्राचीन स्थात । यह वालजापेटसे ४॥ कोस उत्तर-पूचमें वसा है। यहां जैन-धर्मावलिक्योंका प्रधान अड्डा था। आज भो जैन-प्रतिस्नृत्तिं नाना स्थानोंमें विक्षित दिखाई पड़ती है। महाराष्ट्रींने इस स्थानके एक प्राचीन शिव-मन्दिरका जीणेसंस्कार किया। पेश्नगर—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपत् जिलेका एक प्राचीन नगर। यह मदुरान्तकसे शा कोस उत्तर-पश्चिम-में अवस्थित है। यहां नाना काश्कार्ययुक्त एक प्राचीन शिवमन्दिर है। एक ध्वंसावशिष्ट जैनमन्दिरके कितने हो प्रस्तरसण्ड यहांके प्राचीन विष्णुमन्दिरके गावसंलग्न देखनेमें आते हैं। यहां कुछ शिलालिपियां भी हैं। पेश्न्दलयूर—कोयम्बतुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह सत्यमङ्गलम्से १० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन शिवमन्दिरमें कई एक शिलालिपि हैं जिनमेंसे एक सुन्दरपाण्ड्यदेवके शासनके तेईसवें वर्षमें उत्कीण है। मन्दिरके खर्चके लिए महिसुरराज कृष्णराज उदयारका दिया हुआ एक शासन है।

पेरुन्दुरई—कीयम्बतुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह इरोद्से पांच कोस दक्षिण-पिश्वममें पड़ता है और यहां एक रेलवेस्टेशन है। यहां एक प्राचीन विष्णुमन्दिर और परवर्ती विजयमङ्गलग्राममें एक जैन मन्दिरका ध्वंसावशेष देखा जाता है।(१)

पहमाल—दाक्षिणात्यके विवांकुड़ (केरल) राज्यका एक प्राचीन राजवंश। विवांकुड़का इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि परशुरामाधिष्टित नम्युरियोंका आधिपत्य जव शेव हो नथा, तव तहे शीय ब्राह्मणगण प्रति १२ वर्ष पर पक क्षविय राजा निर्वाचित करने लगे। इसके वाद पेहमाल वंशका आविर्माव हुआ। इस वंशके प्रसिद्ध राजा वेर-मान पेहमाल चेरराज्यके अधीन सामन्तरूपसे उक्त प्रदेश-का शासन करते थे। उनको मृत्युके वाद केरलराज्य वंट गया और तिरुवनकोडू-नगरमें सबसे वड़ की राज-धानी स्थापित हुई। इस वंशकी चौवीस पीढ़ोमें राजा वीरवर्मा पेहमालके राजा हुए।

इनके बादके राजाओं का विवरण त्रिवाङ्कुर शन्दमें देखो। पेरुमालमलय—महुरा जिलान्तर्गत एक गिरिश्टङ्ग। यह पलनीसे पांच कोस उत्तर-पुचैमें वसा है। इसके पश्चिम ढालुटेशमें वहुतसे प्राचीन ध्वंसावशेष पड़े हैं।

पेरुमुकल—दक्षिण आर्काट जिलान्तर्गत एक प्रचीन नगर। यह तिएडीचनसे ३ कोस पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है।

यहां ३७० फुट ऊँचे पर्वतपृष्ठ पर एक छोटा गड़ है। पर्वतके शिखर पर एक मन्दिर भी है। पहाड़ छोटा होने पर भी आसानीसे ऊपर नहीं चढ़ सकते हैं। १९५६ ई०-में वन्दिवासयुद्धकी पराजयके वाद पुंदीचेरीकी ओर भागे हुए फरासोसियोंने इसी दुर्गमें आश्रय हिया था। अंगरेज सेनापति .कूटने पीछेसे उन पर आक्रमण किया, किन्तु वे आप हो मारे गय । पुनषद्यमसे अङ्गरेजोंने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया। अत्र्यसंख्यक फरासी-सेनाने गोली-वास्तद और रसादि को करके मृतवाय हो आत्म-समर्पण किया। १७८० ई०में हैद्रअळीने इस स्थान पर चढ़ाई की, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। १७८२ ई॰में यह उनके अधिकारमुक्त हुआ। १७८३ ई०में उक्त स्थान फिरसे अंगरेजोंके हाथ लगा। वाद १७६० ई०में टोपू सुलतानने अंगरेजोंको हरा कर उस पर अपना दखल जमाया। पेरूर—१ कोयम्बतुर जिळान्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० १० ५८ उ० और देशा० ७९ पू०के मध्य अव-स्थित है। कोई कोई उत्तर-चिद्म्वरम्में अवस्थित रहनेके कारण इसे 'मेल' नामसे पुकारते हैं। यह स्थान दाक्षिणात्यके एक पविबतीर्थमें गिना जाता है। यहां चोलराज्यके प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिरके उपर एक दूसरा मन्दिर वना है। एक समय यह स्थान हयशाल वहाल-वंशीय राजाओंके अधिकारमें था । विक्रमचोड्-देव, सुन्दरपाण्ड्य आदि राजाओंके राजत्वकार्टमें उत्कीर्ण अनेक शिलालिपियां भी पाई जाती हैं। मन्दिर-के चारों ओर पथवाट पर नाना स्थानोंमें प्राचीन प्रस्तर-मूर्त्ति और वीरकीर्त्तिशापक प्रस्तरसमूह पड़े हुए हैं।

२ मळवार जिळान्तगीत एक ग्राम । यह अङ्गारीपुरसे १० कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है । यहां बहुत सी प्राचीन मूर्त्तिका निदर्शन पाया गया है।

पेहर—तिन्नेवेली जिलेका एक प्राचीन स्थान । यह श्री-वैकुराठम्से १। कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन विष्णुमन्दिरमें शिलालिपि उत्कीर्ण है।

पेरोज (सं० क्ली०) उपरत्नविशेष, फीरोजा नामक एक प्रकारका वहुमूल्य पत्थर। पर्याय—हरिताइन, पेरज। यह दो प्रकारका होता है, सहमाङ्ग और हरित। गुण— सुक्रपाय, मधुर, दीपन और शूलनाशक। इसके संयोगसे

<sup>(</sup>१) काई कोई इस व्यसावशिष्ट मूर्तिसमूहको व्यझण्यय का परिचायक मानते हैं।

स्थावर और जङ्गम-विय तथा भृतादि दोष विनष्ट पेवड़ी (हिं० स्रो०) १ रामरज, पोली रज। २ पोर्ले होता है । पेल (सं॰ क्ला॰) पेलति सदा चलतीति पेल-अच् । १ पुरुष- , पेवर ( हि॰ पु॰ ) पीला रंग । जाना । पेलढ़ (हिं० पु०) पेल्हड देखो । पेलना (हिं किं) १ धका देना, डकेलना । २ अवझा . करना, टाळ देना । ३ वळप्रयोग करना, जवरदस्ता | पेवसी (हिं० स्त्री०) पेवस देखो । करना । ४ प्रविष्ट करना, घुसेड़ना । ५ जोरसे भीतर पेश (सं० पु०) पिश-अच् । रूप । ठेलना या धंसाना, दवा कर भीतर घुसाना, दवाना। पेश (फा० क्रि० वि०) सम्मुख, सामने, आगे। ६ त्यागना, फेंकना, इटाना। ७ गुदामैधुन करना। पेशकन्त्र (फा॰ स्वी॰) कटारी। ढीलना। ६ पेरना देखो। पेलव ( सं० ति० ) पेलं कम्पनं वातीति वा-क । १ विरल । २ क्या, दुवला। ३ कोमल, मृदु। ४ स्त्म। नाशवान । ६ लघु, छोटा । पेलवाना (हि॰ क्ली॰) दूसरैकी पेलनेमें प्रवृत्त करना, पे लनेका काम दूसरेसे कराना। पेलना देखो। पेला (हिं पुरु) १ अपराध, कसूर । २ तकरार, भगड़ा। ३ पे लनेकी क्रिया या भाव। ४ आक्रमण, चढ़ाई, पे लास (अं ० पु॰) मङ्गल और वृहस्पतिके वीच एक 🖟 ग्रह। यह सूर्यसे २८॥ करोड़ मीलकी दूरी पर है। चार वर्ष आड मासमें यह ब्रह सूर्यकी परिक्रमा करता है। इसका आकार चन्द्रमाके आकारसे छोटा होता है। १८०२ ई॰में डाकर आछवर्जने पहले पहल इसका पता लगाया था। पेछि ( सं० पु॰ ) पेल-इन् । गमनशील, गन्ता, जानेवाला । पेलिन् ( सं॰ पु॰ ) घोटक, घोडा । पेलिशाला ( सं० स्त्री० ) अभ्वशाला, अस्तवल । पेलु (हिं॰ पु॰) १ पति, खाविद। २ उपपति, जार। ३ पेळनेवाळा, वह जी पेळता हो। ४ गुदा-भञ्जन करने-वाळा। ५ जवरद्स्त, वळवान्। पेल्हड़ (हि॰ पु॰) अएडकोय, फोता। पेवँ (हि॰ पु॰ ) ग्रेम। पवसङ् (हि॰ पु॰) पियक्ष हे हेली।

Vol. XIV 92

रंगकी वुकनी । चिह्नाङ्गमेद, अएडकोय। (पु॰)२ क्षद्रांश।३ गमन, पेवलि—अभिनयशून्य केवल अङ्गविक्षेपवाहुत्य द्वारा नृत्य। पेवस (हिं पु॰) हालकी व्याई गाय या भैसका दूध। यह वहुत गाढ़ा और रंगमें कुछ पोछा होता है। यह हानिकारक होनेके कारण पीने योग्य नहीं होता है। ८ आक्रमण करनेके लिये सामने छोड़ना, आगे वढ़ाना, पेशकश (फा॰ पु॰) १ सीगात, तोहफा। २ नजर मेंट। , पेशकार (फा॰ पु॰) हाकिमके सामने कागज पत्र पेश करके उस पर हाकिमकी आज्ञा लिखनेवाला कर्मचारी, किसी दफ्तरका वह कार्यकर्ता जो उस दृख्रको कागज पत अफसरके सामने पेश करके उन पर उसकी आज्ञा खेता है । पेशकारी (फा० स्त्री०) १ पेशकारका काम। २ पेश-कारका पद् । पेशखेमा (फा॰ पु॰ ) १ फौजका वह समान जो पहछेसे ही आगे भेज दिया जाय, सेनाकी खेमा तम्बू आदि वह आवश्यक साम्रयों जो उसके किसी स्थान पर पहुंचनेसे पहले उसके सुभीतेके लिये मेजी जाती हो ! २ हरा-वल, फीजका वह अगला हिस्सा जो आगे आगे चलता है। ३ किसी वात या घटनाका पूर्व लक्षण। पेशगी (फा॰ स्त्री॰) पुरस्कार या मजदूरी आदिका वह अंश जो काम होनेके पहले ही दिया जाय, अगौड़ी, थगाऊ। पेशतर (फा० कि॰ वि०) पूर्व, पहले। पेशताख ( फा॰ स्त्री॰ ) एक प्रकारकी मेहराव। यह अच्छी इमारतोंमें द्रवाजेके ऊपर और आगेकी ओर निकली हुई वनाई जाती है। पेशदस्त ( हिं० पु० ) पेशकार देखी। पेशदस्ती (फा० स्त्री०) जवरदस्ती, ज्यादती, वह अनुः चित कार्य जो किसी पक्षकी ओरसे पहले हो। पेश्यबंद (फा॰ पु॰) चारजामेमें लगा हुआ वह दोहरा वृन्धन

जो घोड़ेकी गईन परसे ला कर दूसरी ओर वांध दिया जाता है। इस वन्धनके कारण चारजामा घोड़ेकी दुम-की ओर नहीं खिसक सकता।

पेशावंदी (फा० स्त्रो०) १ पूर्व चिन्तित युक्ति, पहलेसे किया हुआ गवन्य या वचावकी युक्ति । २ छल, थोखा । पेशराज (फा० पु०) पत्थर होमेवाला मजदूर, वह मजदूर जो राज वा मेमारके लिये पत्थर हो कर लाता हो । पेशल (सं० लि०) पेश-अवयवे मावे घन, पेशं लातीति ला-क, वा पेशोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वात् लच्च । १ चारु, प्रनोमुग्धकारी, मनोहर, सुन्दर । २ दक्ष, प्रवीण, चतुर । ३ धूर्च, चालाक । १ कोमल । (पु०) ५ विष्णु । अमरशेकाकार भरतने लिखा है, कि 'पेशल' शब्द तालव्य श, मूर्ड प्यप और दन्त्य सं इन तोन सकारके सध्य ही होगा अर्थात् 'पेशल, पेपल, पेसल' इस प्रकार होगा । ६ सोकुमार्थ, सुकुमारता, नजाकत । पेशलता (सं० स्त्रो०) १ सोकुमार्थ, सुकुमारता, नजाकत । यसन्दर्थ, सुन्दरता, खूवस्रती । ३ धूत्तता, चालाकी ।

पेशळत्व ( सं॰ ह्वी॰ ) ये शळस्य भावः त्व । पे शळता, पेशळका भाव चा धर्म ।

पेशवा—प्रधान राजमन्तो। छत्रपति शिवाजीके आदेश-रचित 'राजव्यवहारकोप" नामक पारसीक संस्कृत अभिधानमें लिखा है,— 'प्रधान: पेशवा तथा।" प्रधान किसे कहते हैं और उनका कार्य क्या है, इस सम्बन्धमें शुक्रनीतिसंग्रहमें इस प्रकार लिखा है।

"पुरोधाश्च प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवस्तथा।
मन्द्रो च प्राङ्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः॥
अमात्य दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश॥"
"सर्वदर्शी प्रधानस्तु सेनावित् सचिवस्तथा॥" ८४
"सत्यं वा यदि वासत्यं कार्यजातञ्च यत् किल।
सर्वेपां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिन्तयेत्॥" ८६
उससे जाना जाता है, कि समस्त राजपुक्षोंक

इससे जाना जाता है, कि समस्त राजपुरुषोंकी अनुष्ठित कार्यावलीके जो परिदर्शक हैं तथा सब प्रकार-राजकार्य विषय जो अच्छी तरह जानते थे, वे ही प्राचीन-कालमे 'प्रधान' कहलाते थे।

चुसलमान राजाओंके विशेषतः दाक्षिणात्यके सुल-

तानोंके प्रधान मन्त्रिगण पेशवा नामसे ही पुकारे जाते थे। किन्तु पेशवा शब्द उस समयके भारत-इतिहासमें उतना प्रसिद्ध नहीं था। महाराष्ट्र-साम्राज्यके प्रतिष्ठ ता छतपति शिवाजीके प्रधान मन्त्री भी पेशवा उपधिसे परिचित थे। महाराज शिवाजीने अपने राज्याभिषेक कालमें उस उपाधिके वदले प्राचीन हिन्दूनीतिशास्त्रका अनुसरण करके "पण्डितप्रधान" उपाधिका प्रवर्तन किया । उनके मरनेके वाद समस्त महाराष्ट्र-राजमन्त्रियोंने परिडत-प्रधान'-की उपाधि धारण कर छी थी। परन्तु इतना होने पर भी पारसिक पेशवा शब्दका प्रचार हास नहीं हुआ। वरन् शिवाजीके पौत महाराज शाहुके राजत्वकालमं देशमें पारसिक शब्दके समधिक प्रचारके साथ 'पेशवा' शब्दका पुनः राज-दरवारमें प्रचार हुआ। किन्तु इस पर भी इतिहासमें 'पेशवा' शब्दकी प्रधानता प्रतिष्ठित नहीं हुई। शाहुके राजत्वकालमें उनके प्रधान मन्त्री वालाजी विश्व-नाथकी मृत्युके वाद् उनके पुत प्रथम वाजीराव और पीछे वाजीरावके पुत वालाजी वाजीरावने कार्यद्सता और बुद्धिमत्ताके गुणसे पेशवाका पद प्राप्त किया। महा-राज शाहुकी परलोक-प्राप्तिके वाद उनके वंशमें नितान्त अकर्मण्य पुरुपपरम्पराका आविर्भाव हो जानेसे उनके मन्तिवंशका प्रभाव दिन दूना रात चौगुना वढ़ने छगा। सच पृछिये तो उन्हों ने हो महाराष्ट्र-समाजका नेतृपद ग्रहण किया। इस कारण उन छोगों के मध्य उत्तरोत्तर समधिक क्षमताशाली व्यक्तियोंका जन्म लेनेसे तथा समस्त भारत-साम्राज्यमें उनकी विजय-वैजयन्तीके फह-रानेसे "पेशवा" नाम इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हो गया ।

मुसलमानी अमलदारीमें साधारणतः मुसलमान लोग ही पेशवाके पद पर नियुक्त होते थे। १७वीं शतान्दी-को महाराष्ट्रदलमें नवशक्तिका सञ्चार होनेसे जब उन्होंने मुसलमानोंका शासन-श्रङ्खल उच्छेद कर खदेशको खाधीनतारत्नसे भूपित कर दिया, तब महाराष्ट्रवासी योग्य व्यक्तियोंके भाग्यमें खदेशीय राजोंके अधीन गीरवकर पेशवा-पद और पेशवा-उपाधिका लाभ घटने लगा। किन्तु दाक्षिणात्यमें मुसलमानी अमलमें भी दो एक महाराष्ट्रीय अपने असाधारण कार्मगुणसे अति उच- पद पर नियुक्त होते थे। इनेके मध्य 'कम्ब्ररसेन' नामक एक व्यक्तिने निजामशाही वंशके सुलतान वुर्हानशाह नामक राजाके प्रधान मन्त्री वा पेशवा पद पाया था। सुतरंग महाराष्ट्रियोंके मध्य वे ही सर्वप्रधान पेशवामें गिने जाते थे।

'क्रवा-सेन'-फिरिस्ताके इतिहासमें इनका नाम आया है। फिरिस्ताके अनुवादकोंमेंसे किसीने इन्हें 'कम्बर-सेन' और किसीने "कोङ्गारसेन' वतलाया है। दोनों नाममेंसे किसोका भी स्पष्ट अर्थ मालूम नहीं पड़ता। हिन्दूका नाम रखनेमें मुसलमान और अङ्गरेज-लेखक जैसी भूल करते हैं, वह किसीसे छिपा नहीं है। कोङ्गारसेन वा कुमारसेन यह नाम वैदेशिक छेखक और अनुवादकोंके हाथसे विकृत हो कर काँयेरसेन वा कम्कर-सेन हुआ है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जो कुछ हो, कुमारसेन वा कम्बरसेन जातिके ब्राह्मण थे। अह्यदनगर-के निजामशाही राजवंशके प्रतिष्ठाता अह्यद्शाहके पुत बुर्हान निजामशाहके (१५०८से १५५३ ई०) राजत्व-कालमें प्रादुभू त हुए। उनकी प्रतिसा, धर्मभोरुता, दूर-र्दारीता और राजनीति-नियुणता आदि गुण देख कर निजामशाह उनकी वड़ी खातिर करते थे। उस समयके मन्त्री पेशवा शेखजाफरके अत्याचारसे प्रजा वड़ी ही उत्पीड़ित हो ताहि ताहि करने लगी । यह देख कर सुलतानने उन्हें अव्चयुत कर कम्बरसेनको उस पद पर प्रतिष्ठित किया। यह घटना १६२६ ई०में हुई थो। कम्बरसेनके नीतिकौशलुसे बुर्हानशाह प्रतिद्वन्द्री स्वेदारीं और दिल्लीश्वरके हाथसे आत्मरक्षा और मरहठा-राजाओंका विद्रोह-इमन करनेमें समर्थ हुए थे।

इसके बाद सी वर्षके भीतर किसी भी महाराष्ट्रीय-ने किसी दरवारमें 'पे शवा'-की उपाधि नहीं पाई। १७वीं शताब्दीमें महातमा शिवाजी जब मुसलमानोंके हाथसे एक एक कर सभी प्रदेशोंका उद्धार करने छगे, उस समय मरहठोंका भाग्य फिर चमका और एक एक कर अपनी योग्यताके अनुसार उच्चपदको प्राप्त होते गये।

श्यामराज नीलकण्ड रञ्जक नामक एक प्राचीन ब्राह्मण कर्मचारी शिवाजीके वचयनकालसे उनके खराज्यस्थापन-विषयमें प्रधान परामर्शदाता थे। शिवाजीका अधि-

कार जब वढ चढ़ गया और उन्होंने राजाकी उपाधि भ्रारण की, तब श्यामराजनीलकण्ड पे शवा पद पर नियुक्त हुए। (१६५६ ई०में) महाराष्ट्रदेशमें राजमन्त्रियोंको भी युद्धक्षेत्रमें जाना पड़ता था। इस कारण शिवाजीने श्यामराज नीलंकण्डको एक दल सेनाका भी अधिनायक वता दिया। नीरा और कोयना नहीं मध्यवत्तीं नवः विजित प्रदेशके निरीक्षण और वन्दोंवस्तका भार भी उन पर सौंपा गया था। १६५८ ई०में कोङ्कणप्रदेश दखल करनेके लिये शिवाजीने श्यामराज-नीलक उकी मेजा। उस समय वहां जिल्लाके सिद्दि लोगींका आधिपत्य था है मुड़ी भर सेना है कर ने हिफाएड बहुबान शबुका सामना कव तक कर सकते थे, इस वार् उनकी याता विफल गई। फते खाँ सिहिने जब सुना, कि श्वामराज ब्लवल-के साथ आ रहे हैं, तब आधी राहमें ही उन पर धावा वोल दिया और बुरी तरह परास्त किया। शिवाजीकी सेना इसके पहले और कहीं भी किसीके परास्त नहीं हुई थो । सुतरां इस प्रथम पराजयसें शिवाजी वहें ही दुः खित हुए। श्यामराज नीळकण्ठकी इस पराभवके लिये पदच्युत होना पड़ । महाराज शिवाजीके प्रथम पे शवा श्यामराजनीलकण्डकी एक मुद्रा साताराके राज-भवनमें पाई गई है जिसकी पीठ पर यों लिखा है.-"श्रीशिव नरपति हर्षनिदान, श्यामराज मतिमत् मधान।"

रयामराज-नोलकण्डके वाद जो शिवाजी महाराजके पे शवा-पद पर सुशोभित हुए, उनका नाम था मयूरेश्वर (मोरेश्वर) विमल पिङ्गले। वे संक्षेपमें मोरेपएड वा मोरो पिएडत नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके पिताका नाम था विमलाचार्य। विमलाचार्य शिवाजीके पिता शाहजोके कर्णाटकस्थित जागीरके अन्यतम तस्वावधायक थे। मोरोपएड कुछ दिन पिताके साथ कर्णाटदेशमें रह कर १६५३ ई०में महाराष्ट्रदेश आगे। यहां थोड़े ही दिनोंके मध्य शिवाजीके अवीन काम करके पुरन्दरदुर्गके रक्षाकार्यमें नियुक्त हो गथे। मोरोपएडके कार्यसे शिवाजी वड़े ही सन्तुष्ट हुए और छण्णानदिक मुहाने सक्षाद्रिके शिवर पर उन्हें एक दुर्ग वनवानेका भार दिया। यह कार्य भी मोरोपएडने बड़ी ही दक्षतासे शेष कर डाला। पीछे और भी कतिपय दुर्गनिर्माणका मार उन पर सौंपा

गया था। स्थापत्य-विद्याको तरह सामरिक विभागके कार्यमें भी उनकी विशेष दक्षता थी। जावलीप्रदेश और श्रृङ्गारपुर-राज्य दखल करनेमें उन्होंने शिवाजीको सव प्रकारसे सहायता पहुंचाई थी। इस कारण शिवाजी उन्हें बहुत चाहते थे। अन्त्तर १६५८ ई०में श्यामराज बएड जब फते खाँ सिद्दिके हाथसे परास्त हो कर लौटे, तब शिबाजीने उन्हें एक दल सेनाके साथ सिद्दियोंका दमन करनेके लिये भेजा। इस नवीन सेनापितके सैन्यु-परिचालन-कौशल और शौर्यग्रुणसे फते खाँको दातों उंगली काटनी पड़ी। किन्तु इस युद्धके शेष होनेके पहले हो बिजापुर-खुलतानके प्रसिद्ध सेनापित अफजल खाँने शिवाजीके राज्य पर आक्रमण कर दिया जिससे मोरोपएडको सराज्य लौट जाना पडा।

अनन्तर शिवाजीके साथ इन्द्रयुद्धमें अफजल मारे गषे। पोछे उनकी वारद्द हजार सेना और प्रसिद्ध सेना-पतियोंको परास्त करनेके लिये मोरोपएड और नेताजी प्रालकर आदि शिवाजीके समर-कुशल सेनापित नियुक्त दुए। इस युद्धमें ब्राह्मणवीर मोरोपएडने असीम साहस दिक्सलावा और शृतुपक्षके १५० हाथी, ७ हजार घोड़े, ४ सी ऊंट और ७० लाख होन (सुवर्णमुद्धा) लूट कर देश लीटे। महाराज शिवाजीने उनकी रणदक्षता पर प्रसन्न हो कर उन्हें संम्मानस्चक परिच्छादि द्वारा गौर-वान्तित किया।

शिवाजीके देशविजय-कालमें इस ब्राह्मण-युवकने बढ़ी लहायता की थी। मुसलमानीके साथ मोरोपएड जितनी वार लड़े थे, सर्वोमें उनकी जीत हुई थी। राजनीतिश्वसा और राज्यके भीतरो शासन-व्यापारमें भी उनकी विशेष दक्षता थी। इस कारण १६६७ ई॰में शिवाजीने जब दिलीकी बाता को थी, तब राजकार्य देखनेका कुछ भार मोरोपएड पर हो सौंपा था। शिवाजी की अनुपस्थितिमें मोरोपएड केवल उनके प्रतिनिधिकपमें राज्यरक्षा और यथाविधि प्रजापालन करके ही निश्चित व थे, उन्होंने कतिपय देशोंको जीत कर शिवाजीके प्रतिश्वित खाधीन हिन्दूराज्यकी सीमा भी वढ़ा दी थी। उनके वनाबे हुए राजसंकान्त नियमादि भी राजा और प्रजाके पक्षमें विशेष सुविधाजनक थे। शिवाजी

जब दिल्लांसे मथुरा जान ले कर भागे, तव मुगलसम्राट्के अनुचरोंने उनका वहां तक पीछा किया। शिवाजीके साथ उस समय उनके दश वर्षके पुत्र शम्माजो भी थे। उसे छे कर भागना मुक्क्छि समम्त कर शिवाजी विशेष चिन्तित हो पड़ें। उस समय मथुरामें मोरोपएडके साले कृष्णाजीपएड रहते थे । उन्होंने महाराजको विपन्न देख कर शम्भाजीकी रक्षा और उसे निर्विध देस पहुंचा देनेका भार अपने सिर पर लिया। अर शिवाजी खुळासा हुए और मथुरासे चल दिये। इधर मुगळ-चरोंने शम्भाजीको पहचान लिया जिससे वड़ी गडुबड़ी उडी । इस पर ऋष्णाजीपएडने शम्माजीको भपना भाँजा वताया और मुगल-दूतका सन्देह दूर करनेके लिये खय' ब्राह्मण हो कर भी शम्भाजीके साथ वैठ कर भोजन अनन्तर ने अपने दो भाइयोंको सहायतासे शम्माजीको साथ लिये लिपके रायगढ़ पहुंचे। अवने पुतको सहीसलामत देख कर शिवाजीने धन और 'विश्वासराब'-की उपाधि दे कृष्णजीपएडको विदा किया।

शिवाजीके दिल्लीसे लौटनेके बाद उनके साथ मुगर्ली-की जितनी लड़ाइबाँ हुईं, उनमेंसे अधिकांशमें मोरोपएड-ने समर-कुशलता दिखलाई थी । १६७१ ई०में पूनाके उत्तराञ्चलस्थित कई एक प्रसिद्ध दुर्ग उन्होंने अपनी वारह हजार पदातिक सेनाके वलसे मुगलोंके हाथसे खीन लिये। उनमेंसे 'साहर' नामक दुगैके अधिकारकालमें मोगल-सेनापति पसंलास खाँके साथ उनका जो घोरतर युद्ध हुआ था, वह उस समयके महाराष्ट्र इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध है। इस युद्धमें मोरोपएडने असाधारण शौर्य और समरकुशलता दिखलाते हुए २२ प्रसिद्ध मुगल-सेनाध्यक्षींको कैद किया था। अलावा इसके ५ हजार घोड़े, १२५ हाथी, ६ इजार ऊंट और प्रबुर धन भी हाथ छंगे थे। शिवाजी इस फतहकी सवर सुन कर फूले न समाये और उस विजयो ब्राह्मणवीरका गीरव वढ़ानेके लिये उन्हें एक प्रशंसापूर्ण पन, १ हाथी, १ वढ़ियां घोड़ा और भूपण परिच्छादि पुरस्कारसहप भेज दिये।

महाराष्ट्रदेशके एक ग्राम्यगीतिमें इस साह रो-युद्रका जो वर्णन है उसमें यों लिखा है, "कुरुझेलके युद्धमें अर्च नने जिस प्रकार कौरवका नाश किया था, साह रेकि संप्राममें मोरोपएड पेशवाने भी उसी प्रकार मुगल-सेना-को यमपुर मेजा था।

इसके वाद १६७४ ई०में शिवाजीका जब राज्यामिषेक हुआ, उस समय मोरोपएडका पेशवा-पद दृढ़ किया गया और शिवाजीके आठ प्रधानोंके मध्य वे 'मुख्यप्रधान' नामसे प्रसिद्ध हुए। राज्याभिषेक-कालमें शिवाजी ने अपने सचिवोंका फारसी नाम उठा कर प्राचीन नीति-शास्त्रकथित संस्कृत नाम रखा। तदनुसार मोरोपएड-को "समस्त राजकार्यथुरन्धर राजमान्य राजश्री मोरेश्वर-पण्डित-प्रधान" इसी उपाधिसे पत्न लिखना होगा, यह स्थिर हुआ।

पेशवा-पदके कर्तथादि सम्बन्धमें इस समय जो निर्दा-रित हुआ, वह इस प्रकार है,—(१) राजकार्य-विषयक मन्त्रणा, (२) सभी कर्मचारियोंको एक मत कर राज-कार्यनिर्वाह और सवींके प्रति समदर्शिता; (३) सर्वदा सव प्रकारसे राज्यके हितसाधनमें मनोयोग; (४) सैन्य-वलकी सहायतासे नव देश विजय; (५) शत्रुयक्षका तथा परराष्ट्रसंक्रान्त समस्त संवाद-संप्रह; (६) राज-कार्यविषयक पत्रादि पर राजमुद्राङ्कित और खनामाङ्कित करना। मोरोपएड यही सव कार्य करते थे। उनकी तनसाह १५ हजार होन वा खणमुद्रा थी। (१ होन = ३॥ ६०)।

इस घटनाके दो वर्ष वाद शिवाजी तज़ोर जीतनेके लिये अमसर हुए। जिस समय आनाजीदत्ती नामक किसी माह्यण-सचिवके ऊपर राज्यरहाका मार छुपुर्छ था, उस समय भी मीरोपएडको सभी राजकार्य देखनेकी क्षमता दी गई थी। कारण, मीरोपएडको अप क्षा शिवाजीके अधिकत्तर विश्वस्त और बुद्धिमान, कर्मचारी और कोई भी न थे। यही कारण था, कि शिवाजी उन्हें अपना दाहिना हाथ समक्ते थे। मोरोपएडने हो उत्तर-कोङ्कण और वागळान प्रदेशसे मुगळ-शासनका उच्छेद करके उक्त दोनों प्रदेशको शिवाजीके दखळमें कर दिया था। उनको चेशसे प्रायः ७० दुर्ग मुगळोंके हाथसे निकळ कर शिवाजीके हाथ छगे थे। कितने नये नये दुर्ग भी वे वनवा गये। छरतको लूटने, पुर्त्तगीज और आविसिनियीं-

के दमन, दुर्गादि तथा राजकार्यके पर्यवेक्षणादिमें वे हमेशा तैयार रहते थे। अपने खार्यके प्रति उनको विलक्कल दृष्टि न थी। इसी कारण शिवाजीका उन पर असाधारण विश्वास था। आनाजीदत्तो नामक शिवाजीके अन्यतम प्राह्मण कमचारी भी एक इतकर्मा पुरुप थे। किन्तु मोरोपएडके प्रति शिवाजीको अधिकतर निर्मरशीखता देख कर वे इन (मोरोपएड)-के विद्वेपी हो उठेथे। शिवाजीके जीते-जी वह विद्वेपी देखनेमें आया।

१६८० ई०में शिवाजीकी सृत्यु होने पर नवप्रति-प्रित महाराष्ट्र राज्यमें बड़ी गड़बड़ी उठी । शिवाजीके वडें छडके शम्माजी नितान्त दुश्चरित और अव्यवस्थित चित्तके थे। इस कारण शिवाजीने उन्हें पनाला-दुर्गमें केंद्र कर रखा था। मरते समय उन्होंने कतिएय प्रधान कर्मचारियोंके निकट जो अपना अभिप्राय प्रकट कियां था, वह यों है, "शम्भाजी यदि राजा होगा, तो वह अपनी बुद्धिके दोपसे सारा राज्य नष्ट कर देगाः कनिष्ठ पुत्र राजा-रामसे राज्यकी उन्नति होंगी, ऐसा मुन्हे विश्वास है।" शिवाज़ीके इस मन्तव्यके ऊपर निर्भर करके राजकर्भ-चारियोंने राजारामको राजा वनानेका संकल्प किया। शिवाजोकी मृत्युके वाद उनकी चार रानियों मेंसे केवल राजारामकी माता सोयरावाई ही जोवित थीं। ज्येष्ट शम्माजीको विञ्चित कर वह अपने पुतको राजा वनानेकी विशेष चेष्टा करने छगीं। इघर औरङ्गजेव भी इस समय दाक्षिणात्य जीतनेके छिये असंख्य सेनाके साथ हैदरा-वादके करीव करीव आ गये थे । महाराष्ट्र-विजय भी उनका मधान लक्ष्य था। इस कारण श्रक्तमैण्य और क्रर प्रकृति शम्माजीके वदलेमें धीरखभाव-सम्पन्न राजाराम-को सिंहासन पर स्थापन करना ही सभी कर्मचारियोंने अच्छा समन्ता। उन्होंने शिवाजीका मृत्यु-संवाद छिपा रबा और पनाळा-दुगेंसे शम्माजी निकलने न पार्वे, इस-के लिये वहांके हवलदारको एक पत्र लिख सेजा। दुर्भाग्यक्रतसे वह पत शंम्माजीके हाथ पड़ा । वस, अव क्या था, उन्हों ने उसी समय दुर्वके कर्मसारियों को केंद् कर सिहासन पानेके लिये कतियय मरहटा-सरवारों की पत लिख मेजें। उनके कौशलसे वहुतेरे उनके धर्शामृत हो गये। अव उन लोगोंकी सहायतासे शम्माजीने कुछ

सेनापितयोंको कैद कर ससैन्य रायगढ़की और याता कर दी। इघर श्रीमती सोयरा वाईके आदेशसे मोरो । एड आदि कमैचारियोंने राजारामको सिहासन पर विटा दिया था। रायगढ़ पहुंचते ही शम्माजीने सबसे पहले मोरो-पएड और आनाजीदत्तोंके घर लूट कर उन्हें कैद कर लिया (१) और राजविद्रोहापराधी कितने ब्राह्मणेतर जातीय कर्मचारियोंको उसी समय प्राणदएडकी आज्ञा दे दी। राजाराम भी नजरवन्दी हुए। उनकी माताकी वड़ी निष्द्ररतासे हत्या की गई।

शम्भाजी जव सिंहासन पर वैठे। तव उन्होंने अभि-पेकोत्सवके उपलक्ष्यमें मोरोपएडको मुक्त कर दिया था। अपर कर्मचारियोंने मी इस समय मुक्ति पाई। शिवाजी-के समय जो आठ प्रधान थे, उनमेंसे सर्वोंको अपने अपने पद पर प्रतिष्ठित किया । मोरोपएडने भी अपना पद पाया, लेकिन शिवाजीके समय उन्हें जो क्षमता और प्रतिपत्ति थी, उसे वे पानेसे विश्वत हुए । शम्भाजीके दुराचारसे सभी तंग तंग आ गये। अव उन पीड़ित कर्मुचारियोंने राजारामको पुनः सिहासन पर विठानेकी चेष्टा की। इन षडयन्त्रकारियोंके मध्य मोरोपएडके प्रति-द्वन्द्वी आनाजीदत्ती अप्रनायक थे। यह खबर शम्माः जीको लगते ही उन्होंने भट विष्ठवकारियों को कैद कर लिया। इनमेंसे बहुतोंको प्राणदण्डको आज्ञा हुई। आनाजी-दत्तोको भी देहान्त-दण्डभोग करना पड़ा था। राज्यमें इस प्रकार ब्रह्महत्या होनेसे सभी अत्यन्त दुःखी हुए थे; किन्तु किसीको भी ऐसा न हुआ कि शस्भाजीको इस विषयमें कुछ कहें। मोरोपण्डके प्रति आनाजी दत्तोका विद्वे पभाव था, तो भी अपने प्रतिद्वन्द्वीकी हत्या-से असन्त्रष्ट हो उन्होंने खुल्लमखुला शम्भाजीसे कहा था, "महाराज ! आपने एक प्राचीन कर्मचारी और ब्राह्मण-का वध करके अच्छा काम नहीं किया। आपका यह

कार्य नितान्त अधममूलक और अञ्चताप्रसूत हुआ है।
इसका फल आपको एक दिन अवश्य भोगना पड़ेगा।"
मोरोपण्डको यह स्पंप्र उक्ति गम्माजोके हृद्यमें तीर सी
जा चुमी। फलतः मोरोपण्डको एक दिन गिरिदुर्गमें
विन्दमावमें रहना पड़ा था। इसके वाद शिवाजीके
फणांटिस्थत प्रतिनिधि और शासनकर्त्ता बहुमूल्य उपढ़ीकनादिके साथ शम्माजोके दर्शन करने आये। उन्होंने
शम्माजोको राजनीतिचिरुद्ध कार्यावलीके लिये दो चार
मीठो मीठो वार्ते कहीं। इस पर शम्माजीने मोरोपएडको कारागारसे छोड़ दिया। किन्तु इसके वाद वे पेशवाके पद पर नियुक्त न किये गये। इस घटनाके कुछ
दिन वाद ही १६८३।४ ई०में उनके कप्टम वार्ड क्यजीवनका अवसान हुआ।

शिवाजीने राज्याभियेककालमें अपने आढ प्रधानोंके जो संस्कृत नाम रखे थे, उनमेंसे एकके सिवा और सभी महाराष्ट्र-साम्राज्यके अवसान तक अविकृत रहे। किन्तु पेशवा पदका "मुख्यप्रधान" यह संस्कृत नाम शिवाजीकी मृत्युके वाद थोड़े ही दिनोंके मध्य विलुस हो ग्या और पीछे पुनः पारसिक 'पेशवा' शब्दका विशेष प्रचार हुआ था।

नीलकण्ड मोरेश्वर पेशवा-ये मयूरेश्वर तिमल-पिङ्गलके पुत थे। मोरोपएडके दूसरी वार कैंद होनेसे नीलकएठपएड पेशवाके पद पर प्रतिष्ठित हुए। किन्तु उन्होंने केवल पेशवाका पद ही शप्त किया था, प्रस्त पदोचित कोई भी क्षमता उन्हें न दी गई थी। कलश वा कवजी नामक एक कान्यकुव्ज-वंशीय ब्राह्मण हीनमति शुम्माजीके वड़े ही विश्वासभाजन थे। इस कारण प्रधान मन्त्रीका पद उन्हींको मिला। इस व्यक्तिके राज-कार्यमें तथा तन्त्रशास्त्र और तान्त्रिक अनुष्ठानमें विशेष ज्ञान था। वे मन्तवलसे राज्य और धनकी वृद्धि कर सकते थे। शम्भाजीके मनमें उन्होंने ऐसा विश्वास जमा दिया था, कि वे उनके एकान्त पक्षपाती हो गये थे। उन-की वातमें पड़ कर शक्साजीने अनेक प्राचीन कार्यदेश और विश्वस्त कर्मचारियोंको पद च्युत कर दिया था। इस व्यक्तिके हाथ शम्भाजीने समस्त राजकार्यका भार सौंप दिया और आप नशेमें चूर रह कर अन्तापुरमें

<sup>(</sup>१) इमने बखरळेखक मतानुसार यह विवरण लिपिन के किया। प्रायार-के कहा कहना है, कि अपरापर कमेंचारियों को विवद्ने देख कर और आना जीदनों के साथ निर्विवादपूर्व के के हैं काम न कर सकते के कारण मोरोपगाइने आतमरक्षा के लिये प्रमानिक प्रमानिक विवासभाजन न हो सके।

आंमोद-प्रमोद करने छगे । इसका फर्छ यह हुआ, कि राज्य-में तमाम अशान्ति फैल गई, कर्मचारी जहां तहां खाधीन हो उठे। शिवाजोके समयकी सामरिक और प्रजा-पालन-मूलक नियमावलीका उल्लङ्घन करनेसे देशमें घोर अराज-कता उपस्थित हुई। प्रजा कप्टका सहन न कर मुगल भौर वीजापुर राज्यमें जा कर रहने लगीं। इधर शम्माजी-की अवस्था भी विलास-व्यसनसे ऐसी शोखनीय हो गई. कि कवजीके सिवा और किसीकों भी उनसे भेंट करनेका हुकुम न रहा। अन्तमें उनकी अवस्थाने वढते वढते ऐसा रूप घारण कर लिया, कि कवजी भी उनके पास जानेसे डरते थे। अवसर पा कर मुगलसम्राट् औरङ्गजेवने इस समय महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया। अङ्गरेज और पुर्तगोज वणिकाँने तथा कोङ्कणके हवसियोंने वदला चुकानेमें कोई कसर उठा न रखी। शम्माजीने कई वार वीरता दिखलाई थी, पर उनकी वह वीरता बुकते हुए विरागकी रोशनी-सी थी। विश्व व्यक्तियोंका परामशं ले कर कार्यं करना वे प्रकृतिके विलक्कल विरुद्ध समभते थे। राजनीतिझानने तो उन्हें मानी छुआ ही नहीं था। बीजापुर और गोलकुएडासे सहायता मिलने पर भी वे मुगलोंको रोकनेमें अग्रसर न हुए। अतः महाराष्ट्र पर मुगलोंकी गोटी जम गई। अन्तमें उन्हें शत्रृने चारों और-से घेर लिया। इस अन्तिम कालमें उन्होंने पक बार और . अपना विकाम दिखलाया और मुगलोंके साध युद्धक्षेत्रमें कूर कर प्राणत्याग करनेका सङ्कृत्प किया। किन्तु ब्रह गौरव उनके भाग्यमें वदा नहीं था। मुगलोंने उन्हें किंद कर वड़ी निष्ठुरतासे मार डाला।

शम्माजीके राजत्वकालमें नीलकर्टपर्ड केवल नाममातके पेशवा पद पर अधिष्ठित थे, सभी काम काज कवजी द्वारा ही परिचालित होता था। नीलकर्ट पर केवल कर्णाटक प्रदेशका शासन-भार सुपुर्द था। १६६७ ई० तक वे उसी प्रदेशमें रहे।

शम्माजीकी मृत्युके वाद उनके छोटे माई राजारामने मुक्तिलाभ करके राज्यशासन चलाना चाहा । पर उनकी उमर थोड़ी थी, चारों और मुगलोंकी तृती वोल रही थी, इस कारण अपने वन्धुवांधवोंके साथ छन्नवेशमें महाराष्ट्र-का त्याग कर उन्हें शाहजो (महाराज शिवाजीके पिता)-

की जागीर तञ्जोर अञ्चलके गिरिदुर्गमें जा आश्रय लेना पड़ा | उनके पधारनेकी खबर सुन कर नीलकएड पएड तञ्जोरमें अच्छो व्यवस्था करके उनका स्वागत करनेके लिये दौड़ पड़े । मुगल लोग जिससे उन्हें तक्षोर आनेमें वाधा न दे सके, नीलकएठने उसका भी वन्दीवस्त कर दिया था। अनन्तर राजाराम वहां निरापदसे पहुंचे और सिंहासन पर बैठ कर उन्होंने आठ प्रधानको पुनः नियुक्त किया। नीलकएठपएडका पेशवा-पद फिरसे मजबूत कर दिया गया। बहुत दिनों तक मुगलोंके साथ युद्ध करके जव राजाराम १६६७ ई०में महाराष्ट्रदेश लीटे, तब नील-कएडपएड भी उनके साथ विशलगढ़ तक आये। इसके वाद राजार मके राजत्व कालके शेव पर्यन्त वे पेशवा-पद पर मतिष्ठित रहे। इतने दिनों तक आठ मधानींके मध्य पेशवा ही मुख्य प्रधान माने जाते थे। राजारामके समय आठ प्रधानोंके ऊपर "प्रतिनिधि" नामक एक पदकी सृष्टि हुई। महाद निराजी नामक एक ब्राह्मणने राजारामको जिज्जि भागते समय विशेष सहायता की थी। मुगलोंके साथ युद्ध-विशहमें उन्होंने अपनी बीरता और कार्य-कुशलता अच्छी तरह दिखलाई थी। इस कारण राजा-रामने "प्रतिनिधि" पदकी सृष्टि करके उन्हें ही उस पद पर प्रतिष्ठित किया । नीलकएडपएड पिताके जैसे कार्य-दक्ष और यशस्रो नहीं थे, अतः प्रतिनिधिकी प्रतिपत्ति उस समय महाराष्ट्र देशमें विशेष वढ़ गई थीं। यहां तक कि पेशवाका नाम भी छोग एक तरहसे भूछ गये थे। उनकी राजमुद्रा पर निम्नलिखित स्रोक उतकीणी था,---

"श्रीराजाराम नरपति हर्षनिधान। मोरेश्वर-स्रुत नीलकारक मुख्यप्रधान॥"

राजारामकी मृत्युके वाद उनकी स्त्री ताराबाईने भपने दश वर्षके छड़केकी अमात्य रामचन्द्र नीलकएड, प्रतिनिधि प्रहाद निराजी और पेशवा नीलकएडकी बहा-यतासे महाराष्ट्र-सिहासन पर विठाया। ताराबाई अतिशय बुद्धिमती और राजनीतिकुशला रमणी थीं। मुगलों का ख्याल था, कि राजारामके मरने पर महाराष्ट्रगण हताश हो जांयगे। किन्तु ताराबाई जैसी ब्सतासे राजकाय करने लगीं, कि मुगलोंकी दातों उँगली काटने पड़ी। ताराबाई असीम उत्साहसे युद्धकी तैयारी करने लगीं।

- नाना दुर्गोमें खुद्से जा कर दुर्मपितयोंको छड़ाई करनेके छिये उत्साह देने छगीं। आखिर मुसलमानोंको अपनी भूल माननो पड़ी। औरङ्गजेन २० वर्ष तक छड़ाई करते रहे, पर सभी वार उनकी हार होती गई। आखिर महा-राष्ट्रोंका विक्रम दिन दिन बढ़ता देख वे प्राण लेकर दाक्षिणात्यसे भागे। १७०७ ई०के फरवरीमासमें अहमदनगर पहुंचते ही उनका प्राणान्त हुआ।

और जुजेवकी मृत्युके वाद उनके छड़कोमें गद्दी पानेके छिये विवाद खड़ा हुआ। इससे महाराष्ट्रोंकी क्षमता
और भी वढ़ गई। उन छोगोंके पुनः पुनः आक्रमणसे तंग
आ कर मुगछोंने मेदनीतिका अवछम्यन किया। शम्भाजीके मरनेके वाद उनके नावाछिग छड़के शाहु और माता
यशोदावाईको मुगछोंने केंद्र कर रखा था। सम्माट्ने
उनके प्रति किसा भी प्रकारका असद्य्यवहार नहीं किया
था। अभी उत्तेजित मरहनें को शान्त करनेके छिये मुगछोंने
ने शाहु और उसकी माताको छोड़ दिया तथा मरहठोंके
साथ सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने समका
था, कि शाहुको छोड़ देनेसे एक राज्यमें दो राजा होंगे।
राजारामके पुत्रके साथ शाहुका विवाद अवश्य होगा
और इसी कछहाग्निसे महाराष्ट्र-राज्य आखिर भस्मशेष
हो जायगा। पर उनकी उस आशा पर भी पानी
फेर गया।

श्राहुकी मुक्तिका संवाद सुन कर तारावाईने उन्हें राज्यांशसे विश्वत करनेके लिये जाल-शाहु वतला कर घोषणा कर दी। किन्तु इससे कोई विशेष फल न निकला। महाराष्ट्रमें आ कर शाहुने कुछ वड़े वड़े सरदारोंको अपने हाथ कर लिये और तारावाईके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त किया। इस प्रकार १७०८ ई०के मार्चमासमें ये सातारा सिहासन पर अधिकृद्ध हुए। राजारामके समय महाराष्ट्र-की राजधानी सातारामें स्थापित हुई थी।

शाहुके महाराष्ट्र-देश आने पर नीलकराउपएड पेशवा सारावाईका पक्ष ले कर उनके विरुद्ध चाल चलने लगे। किन्तु उनके अधीन कुछ सेनापित खान्देशमें पांच हजार सेनाके साथ शाहुसे मिल गये थे। इस पर भी नील-कएउका दिमाग नहीं पलटा। तारावाईके युद्धमें हार खा कर भाग जाने पर भी वे उसोके साथ हो लिये। इसके कुछ समय वाद ही उनका देहान्त हुआ। नीलकर्द्धपर्वं अपनी जीवद्शामें कभी भी खाधीन-भावसे अपनी कायदक्षता न दिखा सके थे।

वहिरो (भैरव) मोरेश्वर पिंगके।—महाराजशाहु जव छत्रपतिको उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर वैठे, तव उन्होंने मीलक्रएठके छोटे भाई बहिरोपएडको पे शवा-पद पर नियुक्त किया । १७५३-ई० तक वे शाहुके प्रधान मन्ती-का कार्य करते रहे । नीलकएठपएडकी तरह उनका जीवन विशेष घटनापूर्ण नहीं था। कल्याण, जुन्नर और राज-माठो आदि तालुकांका रक्षा-भार उन्हीं पर सौंपा गया था । वे महाराज शाहुको युद्ध-विमहमें किसी प्रकारकी सहायता न पहुंचा सके। वरन् १७१३ ई०के शेपभागमें जव वे काहोजी आंग्रका चिद्रोह दमन करने गये. तव वहीं पराजित हो कर वन्दी हुए। उनके रक्षणाधीन राजमठी आदि स्थान भी आंप्रके हाथ छगे। इस समय वालाजी विश्वनाथ नामक एक ब्राह्मण-कर्मचारीकी राजदरवारमें भच्छी चलतो थी। वे आंप्रको परास्त कर वहिरोपएडको कैदसे छुड़ा लाये। इस पर शाहु वड़े प्रसन्न हुए और उन्होंको पेशवा वा मुख्य प्रधानका पर प्रदान किया। वहिरोपएड पदच्युत हुए। तभीसे वालाजी विश्वनाथके चंशधरोंकी कार्यदक्षताके गुणसे महाराष्ट्रराज्यका पेशवा-पद उन्हींके यंशानुगत हुआ। यहां तक, कि आखिर वे लोग एक प्रकारसे महाराष्ट्रदेशमें सर्वेसर्वा हो उठे।

पिजलवंशके साथ पेशवा-पदका सम्बन्ध यहीं पर छिन्न हुआ। पिङ्गलवंशमें एक मोरोपएड ही जन्मभूमिके सुरुत पुन्न निकले थे। वङ्गदेश तथा संयुक्त प्रदेशकी विभिन्न श्रेणोकी तरह महाराष्ट्रमें भी देशस्य, कोङ्क णस्थ और कहाड़े इन तीन श्रेणोके ज्ञाह्मण हैं। पिङ्गले वंशीयगण देशस्य श्रेणीके अन्तर्गत वा सह्याद्रिके पूर्वाञ्चलवासी थे। इसके वाद पेशवापद जिनके पुरुवानुगत हुआ, वे कोङ्कणस्थ पेशवाओंके प्रभुत्वकालमें देशस्थ गण उनसे कुछ असन्तुष्ट रहा करते थे, कारण राजकार्यविपयमें उनकी उतनी दक्षता न थो। इनके पहले कोङ्कण-देशीयगणको राजकार्यमें प्रवेश होनेका अवसर नहीं मिला था। वालाजी विश्वताथके वंशधरोंको अमलदीं मिला था। समो राजकार्यमें कोङ्कणस्थ ज्ञाह्मणोंको ही सरमार थी।

बाहाजी विश्वनाथ।—कोङ्कण अन्तगत वाणकोट नामक प्रणालीके उत्तरी किनारे श्रीवद्ध नग्राम है, वहीं बाहाजी विश्वनाथका जन्म हुआ था। उस समय श्री-वद्ध न ग्राम जिल्ला-होपके सिद्दी वा आविसिनीयगणके अधीन था। प्राचीनकालमें यह ग्राम वाणिज्य-ध्यवसाय-के लिये विशेष प्रसिद्ध रहा।

वालाजो विश्वनाथके पितामह जनाईन प्राइमह श्रीवद्ध न श्रामके प्रधान और श्रामलेखक थे। महालकी जनावंदी कामकी देखरेख और श्रामका राजस वस्ल भादिका भार उन्हों पर अर्पित था। उनके हो लड़कोमेंसे वड़े लड़के विश्वनाथप्ड पृश्क पद पर नियुक्त हुए थे। विश्वनाथके पुत वालाजी विश्वनाथ-भहको भी प्रधान और शामलेखकका पद प्राप्त हुआ था। सुत्रा देशके राजनीतिक व्यापारके साथ उनका वहुत कुछ लगाव था।

१८वों शताब्दीके प्रारम्भमें सुवर्ण दुर्ग यह जलदुर्ग वाणकोट नामक प्रणालीके मुहानेके समीप अवस्थित हैं) और उससे १५ मील दक्षिण अञ्जनवेल नामक दुर्ग तथा उसके आसपासके प्रदेश जिल्लाके सिद्दियोंके शासना-ें धीन थे। इस कारण वाणकोट-प्रणाळी पर भी उन्होंने अपना आधिपत्य जमा रखा था। इधर आंद्रो उपाधिकारी मरहुठा परिवारके हाथ महाराष्ट्रीय नौसेनाका आधिपत्य था। इस कारण समुद्रतीरवर्त्ती स्थानींका अधिकार ले कर नौसेनापति काहोजी आंत्रे के साथ सिहियोंकी दुश्मनी चल रही थी। बीच वीचमें युद्ध भी हो जाया करता था। बालाजी विश्वनाथ-भट्टने जब युवावस्थामें कदम रखा, तव वे युवती और गुणवती भार्या राधावाई तथा वाजी-राव और चिमाजी भव्या नामक अपने दोनों पुत्रोंके साथ श्रीवर्द्ध नग्राममें सुखसे रहने लगे। उसी समय काहोजो आंग्रे और जिल्लराके मिश्रपति सिद्दि कासिममें विषम विचादानल धधक उठा। काहोजी सिद्दिके कमेचारियोंको मुलावेमें डाल कर अपने दलमें लानेकी चेएा कर रहे थे। इसी बीच किसी दुए व्यक्तिने सिद्दि कासिमसे जा कहा, -"बालाजो विभ्वनाथने छिपके आंग्रेका पक्ष लिया है।" कासिम अत्यन्त लघुमति और सन्द्रिःधिचित्रके आदमी थे। उन्हों ने इस वात पर विश्वास कर वालाजीको

सपरिवार पकड़ लानेके लिये इकुम दे दिया। पहले वालाजीके किनष्ट-ज्ञानोजी पकड़े गये। सिहिने विना विचार किये ही उन्हें द्राहकी आजा दे दी। हतमाय जानोजीको एक वोरेमें वंद कर समुद्रमें फेंक दिया गया (१७०१ ई०में)।

इस घटनासे विश्वनाथ कुछ डर गये और अपनी जान वचानेके लिये संपरिवार वाणकोट-प्रणालीके दक्षिणा-श्रलियत वेलास प्रामं चले गये। इस प्राममें हरि-महादेव-भानु नामक एक सज्जन ब्राह्मण रहते थे। वालाजीके साथ उनका वाल्यवन्युत्व था। वालाज़ीने भविष्यत् कर्तव्यताके सम्बन्धमें उनके साथ सलाह करके यह स्थिर किया, कि कोङ्कणका परित्याग कर सह्यादिके पूर्वाञ्चल किसी भी स्थानमें जा नौकरी करना ही उनके लिये अच्छा होगा। मानु-परिवादको अवस्था भो ग्रोचनीय थी, इस कारण उन्होंने भी वालाजोके साथ जानेकी इच्छा प्रकट की।

इसके वाद मह और मानु धोड़ी ही दूर वह थे, कि सिहि कासिमको वालाजीके भागनेको खबर लग गई। उन्होंने उसीं समय वालाजीको एकड़नेके लिये अञ्चनवेलको दुर्गाधिपतिके पास एक पत्र लिख मेजा। सह्यादिके समीप तिओराघाट नामक स्थानमें वालाजी पकड़े गये और अञ्चनवेलके दुर्गीमें केंद्र करके मेज दिये गये। सिहिके आदेशसे उन्हें उस दुर्गमें २५ दिन तक रहना पड़ा था। इस विपत् कालमें हरि महादेव-भानुने अपने दो भाइयींको साथ ले वड़ी मुश्किलसे किलेदारको वशीमूत किया। उन लोगोंकी चेष्टासे वालाजीको छुटकारा मिला। इस स्तकता पर वालाजीने अपने उपार्जनका चतुर्था श भानु भाइयोंको दिया था।

सहादि पार कर भट्ट और मानुने पूनाके निकर्टास्थत सासवड्-शामके अस्वाजीविस्वक पुरन्दर नामक किसी सम्द्रान्त ब्राह्मणके यहां आश्रय लिया। इस समय महा-राष्ट्र देशमें घोर विद्वव चल रहा था। महाराज राजा-रामकी पत्नी तारावाई यहांका शासन कर रही थीं। मर-हठें लोग मुगलोंको अपने देशसे मार मगानेके लिये व प्राणपणसे युद्ध कर रहे थे। जो व्यक्ति कैसा ही घोड़ा वा एक वल्लम पा लेता, वह उसी समय मुगलोंको

Vol. XIV 94

खदेख्ता जाता था। अमात्य रामचन्द्रपण्ड, प्रतिनिधि परशुराम तिम्बक, सचिव शङ्क्ष्यजी नारायण और धनाजी जाधव आदि महाराष्ट्रीय सरदारोंके बीर्यविकासे सारा दाक्षिणात्य कांप रहा था। मुगळ लोग मरहठोंकी हद्रमूर्ति देख कर भाग रहे थे। मुगळ शासित प्रदेशमें महाराष्ट्रोंकी जड़ मजबूत होती जा रही थी। सुतरां कार्यक्षम और बुद्धिमान ध्यक्तियोंके लिये इस समय कार्यक्षेत्रमें अभाव नहीं था।

अस्वाजोपण्ड, बालाजीपण्ड और भानु तोनीं माईने आपसमें सलाह करके पहले किसो मो व्यवसायमें प्रवृत्त होना हो उनके लिये लाभजनक होगा, ऐसा स्थिर किया। तदनुसार वे लोग पहले महाराष्ट्र राजधानी साताराको चल दिये (१७०७ ई०में )। वहां अम्वाजी और वालाजीने राजप्रतिनिधि परशुराम-बिम्बकके मेनु-ग्रहसे एक तालुकके राजस वस्ल करनेका ठेका लिया। उनकी अधीनतामें ५ सौ अभ्वारोही सेना थी। अम्बाजी पण्ड जैसे सम्प्रान्त और वालाजी विश्वनाथ जैसे प्रधान व्यक्तिकी दक्षता देख कर प्रतिनिधि महाशय बद्दे खुश हुए और उन्हें सेनापति धनाजी-जाधव-रावके अधीन राजस्वविभागमें कारकूनके पद पर नियुक्त किया । १७०६ ई॰में बाळाजीकी तनखाह वार्षिक १सी मुद्रा कायम हुई । भानुके तीन भाइयोंमैंसे छोटे रामाजो महादेवने सचिव शङ्करजी नारायणकी अधीनतामें नौकरी पाई। हरिमहादेव और वालाजी महादेव भानु, बालाजी विश्व-नाथके समीप रहने लगे।

इस समय महाराष्ट्रराज्यमें नाना प्रकारका निष्ठव नल रहा था, इस कारण राजस्व वस्त्रको उतनी सुविधा न थी । शाहुके सिहासनाक्द होने पर विश्व-कुलाकी बहुत कुछ लाघवता हुई। सुतरां बालाजो विश्व-नाथ राजस्व संकान्त कार्यका विशेष सुप्रवन्थ करनेकी नेप्रा करने लगे। स्विकायमें उत्साह दे कर उन्होंने राजस वस्त्र करनेका ऐसा नियम नलाया तथा तत्-संकान्त हिसावके कागज-पतोंको इस हिसावसे प्रस्तुत किया, कि थोड़े हो दिनोंके मध्य राजस्व विभागकी सारी गड़बड़ी जातो रही। उनकी ऐसी कार्यदक्षताका परि-न्यय पा कर सेनापति जाधवराव उनकी वड़ी खातिर

करने छगे। महाराज शाहुके निकट भी वालाजी विश्व-नाथकी कार्यतत्परताकी कथा लिपी न रही। १७०६।१० ई०में धनाजी-जाधवके मरने पर महाराज शाहुने राजल-विभागका कुल भार वालाजी विश्वनाथके ऊपर अपण किया। जाधवरावके पुत चन्द्रसेनके हाथ केवल सामरिक-विभागका भार रहा। अब बालाजीके ऊपर सेनापित-का कोई भी कन्द्रित्व न रहा। इस घटनासे चन्द्रसेन बड़े दुःखित हुए और बालाजोके प्रति विद्रेप करने लगे। इसके वाद जो घटना घटी उससे वह विद्रेप और भी वढ़ गया। चन्द्रसेन वालाबीके जानी दुश्मन हो गये।

औरङ्गजेवकी मृत्युके वाद उनके वड़े छड़के वहादुरशाहने सेनापति ज्रुटफकर खाँको दाक्षिणात्यका शासनकर्ता
वनाया था। मुगळ-सेनापतिको हैदरावाद दखळ करनेमें
महाराष्ट्रपति शाहुने उन्हें खासी मदद पहुंचाई थी।
जुटफकरखाँ पहळेसे ही शाहुके मङ्गळाकांक्षो थे। वर्त्तमान
घटनासे उन्होंने वहादुरशाहसे कह सुन कर शाहुको
दक्षिणापथका औथ और सरदेशमुखो (राजखका दशमांग)
स्वत्वको सनद दिखवाई थी। १७१२ ई०में वहादुरशाहको
मृत्यु हुई। दिख्लीका सिहासन छे कर उनके छड़के
आपसमें कगड़ने छगे। इसका फळ यह हुआ, कि पहळे
जहान्दरशाह और पीछे फक्खसियर राजसिहासन पर
वैठे। इस विश्वको समय जुटफकर खाँ मारे गये। पीछे
चीनकिळीच खाँ नामक पक मुसळमान-सरदार दाक्षि
णात्यके स्वेदार हुए और उन्हें 'निजाम उछ मुळक'की
उपाधि दी गई।

इस नये स्वेदारके आने पर जब महाराज शाहुने देखा, कि मुगलराज्यसे चौध और सरदेशमुखी पहलेके जैसा वस्ल नहीं होता है, तब उन्होंने १७१३ ई०में सेना-पति चन्द्रसेन-जाभवको दलबलके साथ चौध वस्ल करने भेजा। संगृहीत राजसकी यथायोग्य व्यवस्था करनेके लिये बालाजी विश्वनाथ उनके सहकारी क्यमें भेजे गये। इस पर सेनापतिने समका, कि बालाजी विश्वनाथ उनका कार्यपरिद्शीन करनेके लिये ही भेजे गये हैं। इसमें उन्होंने अपना अपमान समका और इसका बदला लेनेके लिये वे मौका दूढ़ने लगे।

लीटते समय एक दिन जब वे लीग आखेटको निकले तव दैवकमसे वालाजीके अधीन कुछ अध्वारीहियोंके हाथ चन्द्रसेनके कुछ नौकर घायल हुए । चन्द्रसेनने अपने मनमें समका, कि यह सब वालाजीकी चालवाजी है, जान वृश्व कर ऐसा किया गया है। इस कारण उन्होंने अप-राधीको कठोर दएड देनेका सङ्ख्य किया। अपने अध्वारोहीको निरपराध बतलाते हुए उनसे क्षमा मांगी । इस पर दोनोंमें विवाद खड़ा हुआ। सेनापतिने वालाजी विश्वनाथको विपन्न करनेका उपयुक्त समय पा कर दलवलके साथ उन पर आक्रमण कर दिया। उस समय वालाजीके साथ उनके दोनों पुत और अम्वाजी-पएड पुरन्दरे तथा कुछ अभ्वारोही सेना थी। अतः उन्होंने सेनापतिका सामना करना अच्छा नहीं समका, इसिंछिये अपने परिवार समेत सासवाड ग्राममें और पीछे वहांसे भी भाग कर पुरन्दर-दुर्गमें चले गये। वह दुर्ग शङ्करजी नारायण सचिवके रक्षणाधीन था। वहाँके प्रधान कर्मचारीने पहले तो उन्हें आश्रय देना चाहा, पर जब सुना, कि सेनापति वहसंख्यक सेनाके साथ पुरन्दर आ रहे हैं, तब बालाजीको निराश कर दिया। वहांसे सेनापतिका दल भी उनका पीछा करता था रहा था। वालाजी विश्वनाथ पाएडवगढ़में आश्रय लेनेके लिये दौड़ पड़े। उस समय विलाजीराव और नाथजी घुमाळ नामक दो मरहठे किलेदारोंकी चेएासे राहमें ही पाद सौ सेना इकट्टी कंर ली गई। वालाजीके साथ प्रायः सीसे अधिक सेना थी। अब वालाजीको कुछ जोर हुआ और दां सौ सेना ले कर वे नोरा नदीके किनारे चन्यसेनकी सेना पर दूट पड़े। कुछ समय तक दोनोंमें घमसान युद्ध चलता रहा। आखिर वालाजीकी ही हार हुई और वे पुनः वहांसे जान हे कर भागे। चन्द्रसेनने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा।

वालाजी वड़ी विपद्ध फेलते हुए पाएडवगढ़ पहुंचे। वहांसे उन्होंने अम्बाजीपएड पुरन्दरको महाराज शाहुके निकट सहायता मांगनेके लिये मेजा। शाह वालाजीको कार्यदक्ष और विश्वस्त कर्मचारी समक्तते थे। उनकी विपद्दवार्त्ता सुनते ही उन्हें आश्वास दे कर सातारा बुलाया। इघर चन्द्रसेन पाएडवगढ़में घेरा डाले हुए थे। जव उन्हें वालाजीका पता लग गया, तव शाहुको कहला मेजा, कि "यदि वालाजीको मेरे हाथ सुपुर्व नहीं करोगे, तो में मुगलोंसे जा मिलूंगा।" सेनापितका ऐसा औदत्य दे व कर शाहु वहें विगड़े और उनका दमन करनेके लिये सर-लक्कर-हैयत्राव निम्वालकरको मेजा। इस युद्धमें चन्द्रसेनने हार खा कर मुगल-स्वेदार निजाम-उल् मुक्कका आश्रय श्रहण किया। वालाजो विश्वनाथ उस भयङ्कर विपद्धसे रक्षा पा कर अपने दोनों पुत्रोंके साथ सांतारा लीटे।

हैयतरायने चन्द्रसेनको परास्त कर मुगलराज्यमें लूट-पाट आरम्स किया। यह देख कर निजाम-उल्-मुक्तने उनके विकद युद्ध करनेके लिये चन्द्रसेनको हुकुम दिया। यह संवाद पा कर महाराज शाहुने वालाजी विश्वनाथको 'सेनाकर्त्ता'(१) यह गौरवस्चक उपाधि दे कर बहुसख्यक सेनाके साथ निम्बालकरको सहायतामें भेजा। वालाजी सर-लस्करसे जा मिले। अब पुरन्दरके समीप दोनों दल-में युद्ध छिड़ गया। युद्धमें महाराष्ट्रोंकी आंशिक जय हुई (१७१३ ई०)।

इस समय महाराष्ट्रराज्यकी विश्वह्वला वहुत वह गई थो। साहुके साथ युद्धमें परास्त हो कर तारावाईने कोहापुरमें अपने लड़केको राजा कह कर घोषणा कर दी

(१) महाराष्ट्र-राज्यके प्रधान सेनावित चन्द्रसेनने शत्रु वस-अवलम्बन किया था, इन करण शाहुकी सैन्यसंख्या बहुत घट गई। इस समय ताराबाई चन्द्रसेनको इस्तमत करके नाना उपायोंने शाहुके अपर सरदारोंको अपने दलमें लानेकी चेहा कर रही थी। इस समय बालाजी-विस्तनाथ यदि अपनी नीरता नहीं दिखलाते, तो निरचय था कि शाहुको वरदार तारा-चाईके दलमें न मिल सके। बरन बहुसंख्यक नृतन सेना-संग्रह कर बालाजीने ग्रांहुका सैन्यामाव दूर कर दिया। इसी कारण उन्हें 'सेनाकत्ती' की उपाधि मिली थी। यावर सफ-ने सिनाकत्ती' शब्दका Agent in charge of the army ऐसा अर्थ लगाया है। परन्तु यह इम लोगोंके ख्यालसे युक्तिसंगत नहीं है। महाराष्ट्र-लेखकराण 'सेना-कत्त'-का अर्थ 'सैन्यदक्ता स्विश्वक्ती' ऐसा अर्थ लगाते हैं और यही ठीक भी है। अीर वहां एक नेई राजधानी वसाई। १७१२ ई०के मईमास-में ( ग्राव्ट-डफ़के मतसे जनवरीमें ) उस वालककी मृत्यु हुई । पीछे भगत्योंने राजारामको छोटो स्त्रीके गर्भजात 'शम्भाजी' नामक वालकको गही पर विठाया और आप राजकार्य देंखने छगे । इस कारण महाराष्ट्रीय सरदारोंमें-से किसीने शाहुका पस और किसीने अथवा कोह्नापुरके अधिपतिने शम्माजीका पक्ष अवलम्बन किया था। कुछ तो मुगलोंके साथ मिल गये थे और कोई निरपेक्ष रह कर खप्रधान और विद्रोही हो उठे थे। शेषोक्त सरदारोंके मध्य दामाजी थोरत और उदयजो चौहाम ही प्रधान थे। उदयजीके उपद्रवसे शाहु तंग तंग आ गये और उन्हें अपने राज्यके पकांशका चौथ वसूल करनेका खत्व देने-को वाध्य हुए। उधर काहोजी आंग्रे कोहापुरपति-शम्भाजीका पक्ष छे कर शाहुके अधिकृत कल्याण-प्रदेश जीतनेकी तैयारी कर रहेथे। दूसरी ओर कृष्णराव खटावकर नामक राजा उपाधिधारी एक व्यक्तिने चिद्रोही हो कर राज्यमें उपद्रव आरम्म कर दिया था। अलावा इसक और भी कितने छोटे छोटे मरहठा-सामन्त शाहुकी अधोनता स्वीकार नहीं करते थे।

वालाजी विश्वनाथके बुद्धिकीशल और शौर्यगुणसे यह सब अराजकता दूर हो गई थी। शाहुका आदेश ले कर वालाजी विश्वनाथने पहले दामाजी थोरतके विरुद्ध युद्धयाता की । दामाजी पूनासे ४० मील दक्षिणमें अव-स्थित "हिङ्गन" ग्रामके सुदृढ़ छोटे दुर्गके अधिपति थे। दुर्गके चारों ओर प्रायः २० कोस तकके सभी प्रदेश उन्हींके अधीन थे । वालाजीको दलवल आते देख कर टामाजीने पहले उन्हें वाधा दैनेकी चेष्टा की, पीछे नितान्त भय खा कर सन्धिप्रार्थी हुए। विल्वपत्न तथा हल्दी छू कर उन्होंने शपथ खाया और वालाजीको दुर्ग समपूर्ण कर दिया । किन्तु वालाजी ज्यों ही ससैन्य दुर्गमें घुसे, त्यों ही दामाजीने उन्हें कैद कर लिया। अम्याजी-पण्ड पुरन्दरे आदि कर्मचारियोंने उनका सांध दिया। विश्वासघातक थोरत निष्मयसहरूप उनसे वहुत रुपये मांगने लगे। महाराष्ट्रपति शाहुको वालाजी विश्वनाथकी मुकिके लिये जो कुछ दामाजीने मांगा उतना देना ही पड़ा था।

थोरतके हाथसे मुक्ति पा कर जब वालाजी सातारा आये, तब यहां उन्हें कृष्णराव खटावकरका दमन करनेके लिये आदेश मिला। सिव नारायणशङ्कर थोरतके विकद्ध और पेशवा विहरोपण्ड पिङ्गले काहोजी आङ्ग्रेके विकद्ध भेजे गये। सातारासे उक्त तीनों व्यक्ति प्रायः एक ही साथ निकले थे। इनमेंसे वालाजी विश्वनाथने ही अपनी यातामें सफलता पाई थी। आउन्त्र नामक स्थानके समीप उन्हों ने कृष्णराव खटावकरको युद्धमें अच्छी तरह परास्त किया। थोरतके साथ युद्धमें नारायणशङ्कर और आंत्रे के साथ युद्धमें विहरोपण्ड परास्त हो वन्दी हुए। आंत्रे के वल विहरोपण्डको कैद कर शान्त नहीं हुए। आंत्रे केवल विहरोपण्डको आदि स्थानोंको जीत कर महाराष्ट्र-राजधानी सातारा पर चढाई करनेका आयोजन करने लगे।

अभी वालाजी विश्वनाथ पर ही आंब्रेका दमनुसार सौंपा गया। वालाजीने तीस हजार सेनाके साथ आंग्रे के चिरुद्ध याता कर दो । लीहगढ़ उनके हाथ लगा और शतुकी भी हार हुई। पीछे उन्होंने काहोजीसे सन्धि करके महाराष्ट्र-राज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी शाहुको पत लिखा, कि काह्रोजी उनकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार हैं। आंत्रे जैसे प्रवल पराक्रान्त व्यक्तिको कौशलसे वशीसृत नहीं करनेसे उनके द्वारा राज्यमें विशेष अनिष्ठ होनेको सम्भावना थी, यही जान कर वालाजीने इस नीतिका अवलम्यन किया, अधिक क्या, वालाजीकी यह सामनीति सुफलपद हुई। आंग्रेने कोहापुरके शम्माजी-का परित्याग कर शाहुका पश्च लिया । वालाजीकी मध्य-स्थतामें जो सन्धि स्थापित हुई, उसके फलसे पेशवा वहिरोपएड काराभुक्त हुए । कोह्रापुरके साथ काही-जीका कुल सन्धम्य टूट गया। शाहु महाराजके जो अब दुर्भ आंग्रेने वलपूर्वक दखल कर लियेथे, राजमाठी छोड़ कर और सब लौटा दिये। आंध्रेकी १६ सुद्रह दुर्ग, १६ सामान्य दुर्ग और महाराष्ट्र-रणतरीके समूहकी अध्यक्षता मिली। इसके बतिरिक काहोजीको 'सर्खेल'-की उपाधि दी गई। सर्खेलकी उपाधि और पोताध्यक्षताकी सनद शाहुकी ओरसे खर्य वालाजी विश्वनाथने काहोजी आंग्रेको प्रदान की थी।

इस प्रकार पेशवाको कारामुक तथा महावली आंग्रे के साथ सन्धि स्थापन आदि कार्य सम्पन्न करके वालाजी विश्वनाथ १७१३ ई०के आखिरमें महाराष्ट्रराजधानी सातारा लोटे। महाराज शाहुने उनके कार्यसे प्रसन्न हो कर उन्हें विशेषकपसे सम्मानित और पुरस्कृत किया। वहिरोप्एड-पिङ्गले आंग्रे के हाथ वन्दी हुए थे, इस कारण तथा उनमें कार्यदक्षताका अभाव देख कर महाराज शाहुने उन्हें पद-च्युत कर दिया। वालाजी विश्वनाथ अपनी कार्य-चुशलताके पुरस्कारखक्ष उस पद पर अभिविक हुए (१७१३ ई०को १६वीं नवम्बर)। वालाजीको पेशवा पद पर अभिविक करते समय महाराज शाहुने सभी सामन्तों-को खुला कर दरदार लगाया और वड़े समारोहके साथ उन्हें पदोचित परिच्छवादि प्रदान किये।

पेश्वा वा मुख्य प्रधानपद्के परिच्छादिकी तालिका— (१) चादर, (२) सुवर्ण सुत्रखचित पगड़ी, (३) जामेयर नामक शाल, (४) कटिवन्धनी, (५) सुवर्ण-मुद्राङ्कित उत्तरीय वल, (६) किमखाद, (७) राजमुद्रा छुरिका, (८) असि-चर्म, (६) जरी पटका नामक जातीय पताका, (१०) चौधड़ा नामक राजसम्भ्रमोचित बाधभाएड, (११) तीन हस्ती, (१२) एक अभ्ब, (१३) शिरपेच, (१४ मुक्ताकी माला, (१५) चोना, (१६) मुक्तायुक्त कर्णभूषा, (१७) मुकागुच्छमय शिरोभूषण, (१८) कलमदान।

सभी पेशवाके मुख्यप्रधानको ही ये सब राजचिह्न दिये जाते थे। "श्रीमन्त" यह उपाधि इसी समय उन्हें दी जाती थी। तदनुसार बालाजी सरकारी कागजपत्न पर "श्रीमन्त बालाजी विश्वनाथ पएड (पिएडत) प्रधान" इसी नामसे उल्लिखित होने लगे। उनकी राजमुद्रा इस प्रकार थी.—

> "ग्राह नर्वित हवेनिषान । वालाबी विश्वनाथ सुख्य प्रघाः ॥"(१)

(१) पेशवानोंकी राजसुद्रा पर इस प्रकार उस्टा "½" किसे जानेका कारण यह था, कि पहले महारमा श्विवानीके समयसे पिंगले-वंशके पुरुष पेशवा पर पर प्रतिष्ठित थे। महाराज शाहुने पिंगले-वंशके हाथसे पेशवाका अधिकार, "मट" व'राके हाथ अपेण किया, इस व'राज्यरके चिह्नकरूप "प्रवान" शाहुने तकार विपरीत भावमें लिखनेकी प्रथा शाहुने चढाई।

वालाजी विश्वनाथको पेशवा-पद देते समय उनके मिल अम्वाजीपएड पुरन्दर उनके मुतालिक वा उपमन्ती नियुक्त किये गये। वालाजीके अनुरोधसे महाराज शाहुने हरि महादेव भानुको पेशवाके फड़नवीस (Sudet)-कार्य पर भर्त्ती किया। इस प्रकार जो वालाजी विश्वनाथ छह वर्ष पहले सिहियोंके भयसे देश छोड़ भागे थे, आज उन्हींने अपने असाधारण प्रतिमा वलसे प्रधान मन्तीका पद प्राप्त कर अपने वन्धुवान्धवींको भी उञ्चपद पर प्रतिष्ठित किया।

शाहुके साथ सिन्धिमें आंश्रेको जो सव दुर्ग मिले थे, उनमेंसे श्रोवर्द्धन आदि कतिपय स्थान सिहियोंने सुविधा पा कर अपना लिये थे। उन सव स्थानोंको सिहियोंसे पुनर्श्वरण करनेके लिये काहोजीने पेशवा विश्वनाथसे सहायताकी प्रार्थना की। अन्तमें वालाजी और काहोजीने मिल कर सिहियोंको परास्त किया (१७१५ ई॰ जनवरी)।

इसके वाद वालाजी विश्वनाथ सेनापित मानसिंह मोरे (चन्द्रसेनके वाद इन्होंको महाराष्ट्रीय सेनाका अधि-नायकत्व मिला ) और सर-लक्ष्कर हैंबतराव निम्वालकर-के साथ दामाजी घोरतके चिरुद्ध मेजे गये (१७१५ ई०)। सचिव नारायण-शङ्कर धोरतके हाथसे वन्दी हुए थे। अतपव दामाजीके विरुद्ध यदि सहसा युद्ध याता की जाय, तो सम्भव है, कि वे सचिवको मार डालेंगे, इस भयसे वालाजी विश्वनाथने पहले उनसे मेल कर लिया और सचिवको कारागारसे किसी तरह छुड़ाया। अव वालाजीने धोरतके गढ़ पर चढ़ाई कर दो और तोपसे गढ़को मूमिसात कर डाला। पीछे दामाजीको केंद्र कर सातारा भेज दिया।

सिववकी माता पसुवाईने इतहाताके चिह्नसहप वालाजी विश्वनाथको अपने अधिकारस्थित पुरन्दर दुर्ग और पूना-प्रदेश दिया। वालाजीने महाराज शाहुकी अनु-मित और सनद-पत ले कर उसे प्रहण किया। इस समय प्नाप्रदेश मुगल-पक्षीय सरदार वाजीकदम नामक एक व्यक्तिके अधिकारमें था। वालाजीने उस व्यक्तिको वशीभूत करके निर्विमतासे पूनामें अपनी धाक जमा ली। उनकी चेष्टासे पूनामें लोगोंको जो चोरका भय रहता

Vol. XIV. 95

था, वह जाता रहा और कृषकींकी अवस्थाकी उन्नति हुई। अन्तमें पूना ही पेशवावंशका प्रधान वासस्थान और महाराष्ट्र-शक्तिका केन्द्रस्थळ वनाया गया।

्रस समयसे महाराज शाहुके दरवारमें वालाजी विश्वनाथकी प्रतिपत्ति दिनों दिन बढ़ने लगे। यहां तक, कि
विना उनके अनुमोदनके राज्यका कोई भी कार्य नहीं
किया जाता था। वे प्रायः सभी विपयोंमें महात्मा
शिवाजीकी प्रतिष्ठित नियमावलीका अनुसरण करते थे।
किन्तु शम्माजीके समयसे मुगलोंके अनुकरण पर एक
कुत्सित प्रथा प्रचलित हुई थी। वह प्रथा यह थी, कि
जो सरदार अपने मुजबल्से जिस प्रदेशको जीत सकेंगे,
वह प्रदेश उन्हींको जागीरसक्षप दिया जायगा। शिवाजी
इस नोतिके घोर विरोधी थे। वालाजीने उसका ममं न
समक्त कर शाहु महाराजके द्वारा अनेक सरदारोंको सनदपत्न दिलवाये थे। इससे राज्यकी कैसी क्षति होती थी,
उस ओर दुर्भायकमसे प्रतिभाशालो मुख्यप्रधान
(वालाजी) का जरा भी ध्यान न था।

इस समय उत्तर-भारतमें दिल्लीके द्रवारमें एक भयानक गोलमाल खड़ा हा गया था। औरङ्गजेवके प्रपीत फरविशयर दिल्लीके सिहासन पर आरूढ़ थे। सैयद अवदुल्ला खाँ और सैयद हुसेनअली खाँके हाथकी वे कठवृतली हो रहे हैं, यह जान कर वे और उनके वन्यु-वर्ग उन दोनोंके हाथसे परिवाण पानेके लिये कोशिश कर रहे थे । इधर दोनों सैयद भी नाना उपायसे अपने आधिपत्यको अञ्जूष्ण रखनेके लिये चेष्टा करने छते। आखिर १७१७ ई०में दोनों पक्ष खुल्छमखुल्छा लड़ाई की नैयारी करने लगे । सैयद हुसेनअलीने महाराज शाहुसे सहायता मांगी। उन्होंने कह्ला मेजा, कि शाहु यदि इस समय उन्हें ५० हजार सेनासे मदद दें, तो वे नर्मदाके दक्षिणस्थित समस्त मुगल-राज्यका चौथ और सरदेशमुखी वस्रूल करनेकी सनद उन्हें वादशाहसे दिला देंगे। अलावा इसके वे सेनाका बर्च मासिक १५ लाख रुपये देनेको भी तैयार हो गये।

इस समय महाराष्ट्रराज्यका अन्तर्विग्रह मिट गया था और शाहु तमाम महाराष्ट्र देश पर एकाधिपत्य कर रहे थे । इस कारण सैयदोंको सेनासे सहायता करना इस समय महाराष्ट्रोंके लिये दुःसाध्य नहीं था । महा-राज शाहुने सेनापित मानसिंह, मोरे, परासाजी भोंसले, शम्भाजी मोंसले, विश्वासराव पवार आदि सेनापितयोंको ५० हजार सेनाके साथ सैयदकी सहा-यतामें दिल्ली-याता करनेका हुकुम दिया। बालाजी विश्वनाथके ऊपर उन सव सेनापितयों के तस्वावधान-का भार सौंपा गया।

महाराष्ट्रसेना दिख्डी पहुंची। दिख्डीका गोडमाड घोरे घोरे बढ़ने छगा। उस विश्वमं फरुखिंग्यर मारे गये और महम्मदशाह सिहासन पर स्थापित हुए (१७१६ ई०)। विख्डीवासी सैयद भाइयोंके प्रति नितान्त असन्तुष्ट थे। इस कारण उनकी मददमें आये हुए मरहगें पर भी उन्हें कोध हो आया था। एक दिन वाडाजी विश्वनाथ सैयद भाइयों के साथ वादशाहके दरवारमें गये। इघर दिहीवासियों ने विद्रोही हो कर मरहठों पर आक्रमण कर दिया। इस दुर्घटनामें प्रायः १५ सौ मरहठे मारे गये। किन्तु सैयदने काफी रुपये दे कर उन छोगों की क्षति पूरी की। पीछे उन्हों ने वादशाहकी मुद्राङ्कित एक सनद झरा मरहठों को दाक्षिणात्यका चौध, सरदेशमुखी और खराज्यका(१) सम्पूर्ण स्वत्व प्रदान किया।

यहां पर यह कह देना आवश्यक है, कि मुगलों के शिविरसे लीटते समय शाहुने वादशाहसे एक निदर्शन वा सनद ले ली थी। महात्मा शिवाजीके उपार्जित सराज्यका वे विश्विसङ्गत उत्तराधिकारी तो थे, पर उनकी अनुपिस्थितिमें महाराष्ट्रदेशमें जो सब गोलमाल हुआ था तथा उनकी चाची नारावाईने जो अपने लड़केकी राज्यका एकमाल उत्तराधिकारी वतला कर घोषणा कर दी थी, उससे उनका उत्तराधिकार-स्वत्य महाराष्ट्रीय

<sup>(</sup>१) स्वराल्य — जनवित महाराज विनाजी के शासित प्रदेश महाराज्य में स्वराज्य माने प्रतिद्ध हैं। स्वराज्य कहने अधानतः पूना, सुपा, इन्दापुर, नाई, मानळ, पातारा, कहाड, खटान, माण, फलटन, मलकापुर, तारळे, पहनाळा. असेरा, खन्न, कोहलापुर, कोंकण और तुंग्रामा नवीके असरा. सिम्म कोपळ, गदक तथा 'इन्याळ परमना—वे सर भूमाग समझे जाते हैं।

सरदारों से कहां तक खीकृत होगा, इस विषयमें उन्हें स्वभावतः ही संशय हो गया था । यही कारण था, कि उन्होंने वादशाहसे खराज्यका उत्तराधिकार पानेकी एक सनद हे ही थी। इस सनद्के वहसे वे अपनेको दिही-के सम्राट्के अधीन सामन्त राजा वतला कर महाराष्ट्र-देश पहुंचे । इसके वाद वहुत कुछ सनदके वलसे स्तराज्यका प्रकृत उत्तराधिकारी वतला कर तथा कुछ जागीर आदिका लोभ दिला कर शाहुने अधिकांश महा-राष्ट्र-सेनापतियोंको अपने दलमें मिला लिया । इस प्रकार शाहुके आगमन पर महाराष्ट्रराज्यमें दो नये विपयोंकी सूचना हुई-१ला शिवाजी, शम्भाजी और राजाराम आदि भौंसले-राजगण जो अपनेको खाधीन हिन्दुराजा कहा करते थे, वह इस समयसे विलुप्त हो गया। शाहुने जो अपनेको मुगल-सम्राट्के अधीन सामन्त राजा वतला कर घोषणा कर दो उससे महाराष्ट्रमें छत्रपतियोंकी खतन्त्रता जाती रही। परवर्त्तीकालमें मुगल-सम्राट्की क्षमता क्रमशः श्लोण होती तो आ रही थी, पर तोभी पेशवा सिन्दे, होळकर आदि प्रवल,पराकान्त महाराष्ट्रीय-गणको भी नाममातका दिल्लीश्वरका सार्वभौमत्व स्वीकार करना पड़ता था। दूसरा, शिवाजीके समय सरञ्जामी जागीर वा सैन्यपोवणके लिये पुरुषपरम्पराक्रमसे भूस-म्पत्ति-भोगका खत्व किसीको भी नहीं दिया जाता था। शाहुने महाराष्ट्र-सेनापतियोंको अपने दलमें लानेके लिये उन्हें वंशानुक्रमिक जागीर खत्व दे कर जो नयी प्रथा चलाई, उससे महाराष्ट्रराज्यनाशके कारणका वीज उत्पन्न हुआ। सरदार छोग पुरुवानुक्रमसे जागीरका भोग करके प्रवल हो उठे और साम्राज्यघटित राजनीतिके साथ उनके जागीरभुक्त प्रदेशके खार्थादिका वीच वीचमें विरोध होने लगा । इसका ुपरिणाम यह हुआ, कि महाराष्ट्रसाम्राज्य खएडशः विभक्त हो कर सम्पूर्ण विलीन हो गया।

जो कुछ हो, शाहुने वाद्शाह्से खराज भोग करनेकी सनद तो पाई, पर फरुखशियरके दाक्षिणात्य स्वेदार निजाम-उल-मुल्कने उस सनदकी अवज्ञा करके खराजके अनेक स्थान वलपूर्वक अधिकार कर लिये। इस उपलक्षमें मुगलोंके साथ महाराष्ट्रोंका अकसर युद्ध हुआ करता था। इसका निवारण करनेके लिये शाहुको नये वादशाहसे नई सनद छेनी पड़ी। दिल्लीका गोलमाल दूर करनेके लिपे सैयदने जब उनसे सेना सहायतामें मांगी तब शाहुने जो सब खत्व वादशाहसे मांगे थे, उसका अधिकांश पेशवा बालाजी विश्वनाथ दिल्लीसे लौटते समय मंजूर कराके लाये। शाहुकी ओरसे वालाजी विश्वनाथने निस्नलिखित खत्वोंके लिये प्रार्थनाकी थी—

- १। छत्रपति महाराज शिवाजीके उपार्जित खराज्यका सम्पूर्ण उपमोग जिससे महाराष्ट्रीयगण कर सके, उसकी सनद ।
- २। दाक्षिणात्यके अन्तर्गत वीजापुर, हैदरावाद, कर्णाटक, तञ्जोर, तिचिनापल्ली और महिसुर इन छह वादशाही प्रदेशोंसे चौथ (जमावंदी वा राजस्वका चतु-र्थांश) तथा सरदेशमुखी (राज्यकी कुल आयका दश-मांश) गरहठोंको भर्षण।
- ३। मुगलोंके अधिकृत शिवनेरो-दुर्ग (इसी दुर्गमें महात्मा शिवाजीका जन्म हुआ था और विम्वक-दुर्ग मरहरोंको प्रत्यर्पण।
- ४। गोएडवन और वैरारके जो सव प्रदेश "सेना साहव स्वे" कानहोजो भोंसळेसे अधिकत हुए हैं, उन्हें मरहठोंके सराजभुक्त कर देना।
- ५। शाहुके महाराष्ट्र-आगमनकालमें उनकी माता और दूसरे आत्मीयगण प्रतिभूरूपमें दिल्लीमें रहते थे, उन्हें खदेश जानेका अनुमतिप्रदान।
- ६ । कर्णाटकमें महात्मा शिवाजी और उनके पिता शाहजीके समय जो सव अंश अधिकृत हुए थे, उन्हें मरहडोंको पुनः प्रदान । खान्देशमें शिवाजीका जहां जहां अधिकार था, उसके वदलेमें महाराष्ट्रदेशके पूर्वा-श्रुलस्थित परस्रपुर आदि प्रदेश-दान ।

वादशाहके ये सव खत्वप्रदान करनेसे महाराष्ट्र-पति शाहु निम्नलिखित शर्त मंजूर करेंगे, ऐसा वालाजी-ने अङ्गीकार किया—

- १। छतपति महाराज शाहु सामन्तरूपमें दिल्लीश्वरको वार्पिक दश लाख रुपये कर प्रदान करेंगे।
- २। सरदेशमुखी खत्वलाभके प्रतिदानमें मरहठोंको शान्तिरक्षाके लिये दायी होना पड़ेगा। जिन सव प्रदेशों-से वे सरदेशमुखी वसूल करेंगे, उन सब प्रदेशोंमें यदि

चोर डकैतोंका उपद्रवं हो जाय, तो उन्हें उसकी क्षति पूरी कर देनी पड़ेगी।

३। चौथं वस्लके स्वत्वके लिये महाराष्ट्रोंको १५ हंजार सेनाके साथ वादशाहको मदद देनेमें हमेशा तैयार रहना पड़ेगा। जब जहां कहीं आवश्यकता होगी, तब यहां वादशाही स्वेंदारको १५ हजार सेनासे मदद देनी होगी।

8 । कोह्वापुरके शम्माजी और उनके पक्षीय सरदार-गण यदि कर्णाटक, वीजापुर और हैदरावाद आदि वाद-शाही प्रदेशोंमें उपद्रव मचार्ये, तो महाराज शाहुको उसका प्रतिविधान करना होगा। यहां तक, कि शम्माजीके अत्याचारसे वादशाही प्रजाकी क्षति होनेसे यह क्षति भी शाहुको ही पूरी करनी पड़ेगी।

हुसेनअलीने इन सब शर्तीमेंसे प्रायः सभी शर्तें मंजूर कर ली थीं। वालाजी विश्वनाथके दिल्ली जाते समय महाराज शाहुने उन्हें वादशाहुसे दौलतावाद और वांदा ये दोनों दुर्ग तथा गुजरात और मालवप्रदेशमें चौथ वस्ल करनेका स्वत्व मंजूर करानेके लिये यथा-साध्य चेष्टा करने कह दिया था।

दिह्वीसे लौटते समय वालाजीने सैयद्की सहायता पा कर वादशाहसे खराज्यकी सनद पुनर्श्रहण की, यह पहले ही कहा जा चुका है। महाराज शाहुकी माता और अपर आत्मीयगणको भी वे मुक्त करके अपने तत्वावधानमें खदेश लाये। शाहुने जो सव अधिकार मांगे थे, वे सभी दिये गये। केवल दो एक विषयों में सैयदने उनकी इच्छा पूरी न की। वे सव विषय ये थे,—

(१) खानदेशमें महाराष्ट्री का जिन सव हुगाँ पर अधिकार था, वह। (२) तिम्बक हुगें और उसके चारों ओरके प्रदेश। ३ तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणस्थित जो सव प्रदेश मरहठों ने वलपूर्वक छीन लिये थे, वह।

अलावा इसके सेना साहव सूवे काहोजी भोंसलेने वेरार-अञ्चलमें जो सब प्रदेश दखल किये थे, उन्हें लौटा देनेमें सैयदने अनिच्छा प्रकट की। गुजरात और मालव-प्रदेशमें चौथ वसूल करनेका अधिकार मरहटोंको मिला था या नहीं, उसे ठीक ठीक नहीं कह सकते। महाराष्ट्रीय लेखकों का कहना है, कि बादशाहने उन्हें यह अधिकार भी दिया था। त्राएट डफ साहवके मतसे ये सब अधि-कार उन्हें दूसरे समय दिये जायंगे, ऐसा सैयद भाइयों-के कहने पर वालाजी विश्वनाथ देवराव हिङ्गणे नामक एक सुचतुर ब्राह्मणको दिल्लीमें दूत स्वरूप रख स्वदेण लीटे। इसके अतिरिक्त लीटते समय वे जयपुर, उदयपुर आदि राजाओं से मिल्ले और शाहुके साथ जिससे उनकी मित्रता बनी रहें, ऐसा अनुरोध कर आये।

वालाजो विश्वनाथ जव दिल्लोमें थे, उस समय एक घटना घटी, वह भी यहीं पर उल्लेख योग्य है । दाक्षि-णात्यके मुगल-शासित भदेशों में चौथ और सरदेशमुखी खत्वको सनद मरहठोंको दो गई है, यह सुन कर दिल्लोके अधिवासी वड़े असन्तुष्ट हुए। सनद् छे कर जब वालाजी दरवारसे यमुनाके किनारे अपने शिविरमें उसी समय राहमें उन पर आक्रमण करके उनसे सनद-पत्र छोन छेंगे,—इस प्रकार दिल्लीके दुष्ट व्यक्तियों ने आपसमें सलाह की। वालाजी जव दरवारसे निकले, तव हो उन्हें इसकी खवर लग गई। पोछे चे अपने मिल महादेच मानुके उपदेशसे सामान्य भृत्यके वेशमें सनद ले कर शिविरकी ओर खाना हुए। इघर वालाजी महादेव भानु पेशवाकी पोशाकसे भूपित हो पालकोसे प्रकाश्य राज-पथ हो कर चले। पड्यन्त-कारियों ने पे त्वा समक्त कर आक्रमण किया और मार डाळा। इस समय उनके सहचरींने उनकी रक्षा करने-के लिये वड़ी वीरता दिखलाई थी, पर सभी चेश निष्फल गई। प्रसिद्ध नाना फड़नवीस इस आत्मी-त्सर्गकारो वालाजी-महादेव-भानुके पाँव थे। पितामहके जैसे पौत नाना फडनवीसने भी पेशवाओं की राज्यरक्षा-के लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी।

दिह्नीसे सनद ले कर वालाजी विश्वनाथ १७१६ ई॰की ४थी जुलाईको सातारा पहुंचे। महाराज शाहुने अपने विजयी पेशवाका वड़ी धूमधामसे स्वयं आगे वढ़ कर स्वागत किया। इस सनदके फल से मरहठों के राज्यमें जो सब मुगल-थाने थे, वे सब उठा दिये गये। "स्वराज्य"-में और कहीं भी मुसल-मानो अधिकार न रहा। अलावा इसके शाहुकी प्रति-पत्ति भी खूव वढ़ गई। महाराज शाहुने इन सब कार्यों के

पुरस्कारस्त्रस्य वालाजी विश्वनाथको पूना जिलेके अन्तर्गत पांच महालके सरदेशमुखी स्वत्व और कुछ प्राप्तों के समस्त उपस्वत्व भोगका अधिकार प्रदान किया। खानदेश और वालाघाट अञ्चलका शासन-भार पहलेसे ही उन पर अर्पित था।

वालाजी विश्वनाथ राज्यके विहःश्रां क्षेत्र पराक्षम खर्व करके अभी कुछ निश्चिन्त हो गये थे। इस कारण उन्हें अव राज्यकी आभ्यन्तर व्यवस्थाका संस्कार करने का अवसर मिला। इतने दिनों तक आय व्यय और सरदारों के प्राप्य अंशका कोई भी निर्द्धारित नियम नहीं रहने के कारण अंशीदारों में अकसर कलह हो जाया करता था। वालाजी विश्वनाथने उसे दूर करने के लिये जमावंदीका स्क्ष्म हिसाव पत्न देख कर आयव्ययके सम्बन्धमें कुछ विशेष नियम निर्द्धारित कर दिये। इस नये निर्द्धारणके फलसे राजकार्यका गोलमाल वहुत कुछ शान्त हो गया और राज्यकी श्रीवृद्धिकी ओर सर्वोको खामाबिक अनुराग उत्पन्न हुआ। इसके सिवा मुसलमानों के हाथसे कमशः नये नये प्रदेशोंको प्रहण करनेकी आकांक्षा मरहर्जेके हृद्यमें उत्पन्न हुई। इसी कारण वे सव नियम यहां पर उद्धृत किये जाते हैं,—

- (१) सरदेश-मुखी आयके कुल हकदार राजा (गई।के मालिक) हैं, इस पर किसी दूसरेका खत्व नहीं रहेगा।
- (२) राज्यकी अवशिष्ट आय "खराज्य" नामसे प्रसिद्ध होगी। छत्रपति महाराज शिवाजीके उपाजित राज्यखण्ड आज तक स्वराज कहलाता था। वालाजी विक्वनाथने उसके वदले दूसरे अर्थमें उस शब्दका प्रवर्त्तन किया। सरदेशमुखी भिन्न और सभी प्रकारका खत्व तथा आय आजसे "स्वराज" कहलाने लगी। वालाजी विश्वनाथने उसके ध्ययकी निम्नलिखित प्रकारसे स्यवस्था की—
- (क) स्वराजकी सैकड़े पीछे २५) रु आय राजा पार्वेगे। इसका नाम 'राजवावती' रहेगा।
- (ख) स्वराज्यके भविशष्ट तीन-चतुर्थां शका नाम भोकासा'रहेगा । इसमेंसे दो अंश राजा, अपने इच्छा-वुसार किसो दो कर्मचारीको देंगे। इसमेंसे स्वराज्यकी समस्त आयका सैकड़े पीछे ६ अंश एक व्यक्तिको दिया

जायगा। यह अंश 'शाहोता' कहलायगा। महाराज शाहुने यह अंश पन्य-सचिवको वंशपरम्पराक्रमसे दान किया था।

- (ग) अविशिष्ट सैकड़े पीछे ६६ अंशका नाम 'आयेन मोकासा' रखा गया। इनमेंसे तीन अंश, राजा जिसे चाहें, दे सकते हैं। इस अंशका नाम 'नाड्गौड़ा' था।
- ( घ ) खराज्यकी समस्त आयका अवशिष्ट ६६ अंश सरदारोंको जागीर देनेमें खर्च होगा ।
- (३) 'राजवावती' वस्ल करनेका भार पेशवा, प्रति-निधि और सचिव पर रहेगा ।

मोकासाके मध्य दूसरेका प्राप्य अंश सचिव महाशय वस्तृ कर लेंगे । दूरस्थित तालुकासे राजा अपने कर्म-चारियोंको भेज कर मोकासाका रुपया वस्तृ करावेंगे।

"नाष्ट्रगौड़ा" और "जागीर" जिन्होंने पाई है, उसके रुपये वे ही वसूल कर लेंगे।

( ४ ) सरदारोंके मध्य आपसमें सङ्गाव-वृद्धिके लिये एककी जागोरमें दूसरेका कतिपय खत्य रहेगा, यह व्यवस्था भी की गई।

इस नये नियमावलीके फलसे एकको झित वृद्धिके साथ दूसरेका खार्थ-सम्बन्ध घनिष्टमावमें होनेके कारण मरहठा सरदारोंके मध्य एकता-संस्थापनका पथ परिकार हो गया और उसीके फलसे भविष्यमें मरहठोंका साम्राज्य सारे भारतवर्षमें फैल गया था।

ये सव नियम स्थापन करनेके सिवा मुसलमानविष्ठवसे इयक जो जर्जर हो गये थे, छिपकार्यमें उन्हें उत्साह
दिलानेके लिये मालगुजारीका दर भी कुछ घटा दो गई
थी । चोर-डकैतका भय दूर करनेके लिये उन्होंने कोई
कसर उठा न रखी । राज्यकी आभ्यत्तर शासनव्यवस्थाकी श्रीवृद्धिमें लगातार परिश्रम करनेके कारण वालाजी
विश्वनाथका खास्थ्य खराव हो गया। इस अवस्थामें भी
उन्हें दो वार युद्धयाला करनी पड़ी थी । इसके वाद
जलवायु वदलने और कुछ दिन आराम करनेकी इच्छासे
वे महाराज शाहुकी अनुमित ले "सासवड्" शाममें जा
कर रहने लगे। किन्तु वहां खास्थ्यमें कुछ भी परिवर्तन
नहीं हुआ, वरन दिनों दिन खराव ही होता गया। आखिर
१७२० ई०के अमिलमासमें (शाल्य उफके मतसे-अक्तूवर

मासमें ) वे इह्यामका परित्याग कर सुरधामको सिधार गये। वाळाजीकी मृत्युका संवाद सुन कर शाहु वड्डे दुःखित हुए थे।

बालाजी विश्वनाथ उतने समरकुशल तो नहीं थे, पर साहस, योद्धा और राजनीतिमें उन्होंने अच्छा नाम कमा लिया था। शाहुका मुगलराज-परिवारमें ही पालन-पोषण हुआ था, इस कारण वे विलासपरायणताके दास हो गये थे। वालाजी विश्वनाथ जैसे कार्यदक्ष पेशवासे यदि उन्हें सहायता नहीं मिलती, तो कभी भी सम्भव नहीं था, कि वे महाराष्ट्रदेशमें ऐसी प्रतिपत्ति लाभ कर सकते।

बालाजी विश्वनाथके मृत्युकालमें उनकी स्त्री राधा-बाई, पुत वाजीराव और चिमाजी अप्पा उनके पास ही थे। इसके वाद १७५३ ई०में राधावाईकी मृत्यु हुई। मृत्युकालमें वालाजीकी उमर करीव ५० वर्षकी होगी। बाजीराव और चिमाजीके सिवा उन्हें दो कन्या भी थीं।(१)

बाजीराव बल्लाल पेशवा—१६६६ ई०को श्रीवर्ड न प्राप्तमें उनका जन्म हुआ। वे वचपनसे ही पिताके साथ छड़ाईमें जाया करते थे। इस कारण शीर्य और साहस किसी अंशमें अपने पितासे कम नहीं था। चन्द्रसेनके साथ वालाजीके विग्रहकालमें, दामाजी थोरतके विरुद्ध युद्धयाता कालमें और सैयद भाइयों के कार्योद्धारके लिये दिल्लीगमनकालमें वाजोराव भी पिताके साथ थे। पिताकी मृत्युके पहले सैयदों के प्रतिनिधि आलम अलीकी सहायता करनेके लिये वे खान्देश गये थे। पिताकी मृत्युके १५ दिन पीछे १७२० ई०की १७वीं अप्रिलको वाजीराव शाहुसे पेशवाके परिच्छादिके साथ उक्त पद प्राप्त किया। श्रीपितराव प्रतिनिधि आदि कुछ राजपुरुषों ने इस विषयमें शाहुको कुछ और सलाह दी थी। किन्तु वालाजी विश्वनाथको कार्यावलीका समरण कर तथा वे ६।९ वर्षसे अधिक पेशवापदकी सुखभीग न कर सकेंगे, यह सोच कर महाराज शाहुने वाजोरावको पितृपद पर अभिषिक्त कर ही दिया।

पेशवा-पद पर प्रतिष्ठित होते ही वाजीरावने महाराज शाहुसे पूनामें अपनी वासस्थान निर्दिष्ट करनेकी अनुमित ली। पीछे अपनी माता और आत्मीयगणको पूनामें ला रखा। वापूजी श्रीपति नामक एक व्यक्ति पुरन्दर-दुर्गके अधिपति थे। वाजीरावने उन्हें पूनाके स्वेदार-पद पर नियुक्त किया। उन्होंने रम्भाजी जाधव नामक एक बुद्धिमान् व्यक्तिको वापूजीकी अधीनतामें रह कर पूना ग्रामको शहरमें परिणत करनेका भार सौंपा। उनकी चेष्टासे थोड़े ही वर्षोंके अन्दर पूनामें वहुसंख्यक व्यवसायी और कारीगर वस गये और पूना ग्राम शहरमें परिणत हो गया।

वाजीरावने जव पेशवाका पद पाया, उसी समय भारतवर्षकी राजनीतिक अवस्था कैसी थी, उसका संक्षिप्त परिचय यहां पर देना आवश्यक है। क्योंकि यह देनेसे पाठकवर्ग वाजीरावकी कार्य-प्रणालीका ममें अच्छी तरह समक सकेंगे।

इस समय मरहठा-सरदारोंका आतमवित्रह वहुत कुछ शान्त हो गया था। परन्तु राजवंशके कलहमें कुछ सर-दार तो शाहुके पक्षमें और कुछ कोह्वापुरके शम्माजीके पक्षमें थे। इतना होने पर भी वालाजी विश्वनाथकी चेष्टासे शाहुका ही पक्ष मजवृत हो गया था और देशमें चोरों-डकैतोंकी बुनियाद भी रहने न पाई थी। दिल्लीके राजपरिवर्त्तन व्यापारमें मरहठोंने विशेष सहायता की थी जिससे महाराष्ट्र-शक्तिकी प्रतिपत्ति उत्तर भारतमें विशेषह्मप्ते प्रतिष्ठित हो गई थी।

भारतवर्ष मणिकाञ्चनकी जन्मभूमि हैं, यह संवाद पा कर पाश्चात्य वणिकोंने इसके पहले ही इस देशमें पदा-पंण किया था । पहले पुत्तेगीज वणिकोंका ही इस देशमें आगमन हुआ । किन्तु देशकी अवस्था देख कर उन्होंने थोड़े ही दिनोंके अन्दर वणिक्वृत्ति छोड़ दी और राजकीय व्यापारकी ओर ध्यान दिया। कमशः इस देशके राजाओंका छिद्रान्वेषण करके उन लोगोंके साथ रह कर शक्ति-परीक्षाकी वासना भी उनकी वलवती हो गई। पश्चिम समुद्रके तीरवत्तीं वहुसंख्यक

<sup>(</sup>१) इनमें से बडी कन्या आनुवाईका '६चळकरळजी' प्रदेशके जभीदार वेंकटराव घोरपडेके साथ और छोटी कन्या मागु-बाईका वारामती नगरके प्रसिद्ध उत्तमणं वायूजी नायकके माई आवाजी नायकके साथ विवाह, हुआ था।

वन्दरों पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। १७२० ई०कों वाजीरावने राजकायमें प्रवृत्त हो कर देखा, कि पुर्चगीज लोग भी मरहरोंको वलिष्ठ श्रेणीमें गिने जा सकते हैं।

पुत्त गीजों की समृद्धि देख कर फरासीस, ओलन्दाज और अंगरेज-विणकों ने भी इस देशकी धन-सम्मत्ति लृदनेके लिये पिश्चिम-भारतमें शुभागमन किया। गोआ, दायमन, दीड, दम्बई, खम्बायत्, साधी, स्रत, चील, वसई, पुंदिचेरी, राजापुर, वेंगुलें, कारिकल, यानान, चन्दननगर आदि स्थानों में इन सब वैदेशिक विणक्तों ने अपनी अपनी कोठी खोली थीं। किन्तु १७२० ई० तक फरासीस अथवा अंगरेज लोग इस देशके राजकीय व्यापारमें हाथ नहीं डाल सके थे।

इधर उत्तर-भारतमें मुगलवादशाहकी अवस्था दिनींदिन शोचनीय हो रही थी । सैयद भाइयों की चेष्टासे
महम्मदशाह दिख्लीके सिंहासन पर अधिकत थे। वे आप
जैसे विलासिय और व्यसनासक थे उनके कमचारी
भो वैसे ही नितान्त अकर्मण्य थे। सुनरां राजदरवार
यथेच्छाचार और विलासव्यसनकी लीलाभूमि हो गया।
प्रजाके ऊपर घोर अत्याचार होने लगा। राजस्य इतना
कम वस्ल होने लगा, कि वादशाहका दैनिक खर्च भी
चलना कठिन हो गया। वादशाह ऋण लेने लगे। ऋण
परिशोधके लिये प्रजाके ऊपर नया कर वैठाया जाने
लगा। दुवंल प्रजाका आर्त्तनाद सुननेवाला कोई भी
न रह गया।

इस समय और क्रुजेवकी अमलदारीके एक सुद्ध्र राजनीति-विशारद्द सरदारने अपने वाहुवल और बुद्धिकौशलसे भारतवर्षमें मुसलमानोंके नएपाय गौरव-की पुनः प्रतिष्ठा की। पवर्द्ध मान महाराष्ट्रशक्तिको गति रोकनेके लिये उन्होंने जो नेएा की, वह वहुत कुछ फली-भूत हुई। इस वीरवरका नाम था निगलीज खाँ वा निजाम-उल-मुल्क। सैयद् भाइयोंने ही उन्हें मालवको स्वेदारक्ष्पमें दाक्षिणात्य मेजा था। दिली द्रवारमें सैपदोंकी असाधारण प्रतिप्रत्ति वढ़तो जा रही है, यह देख कर ने दंग रह गये। वाद्शाहको करतलगत करनेको उनकी जो उन्होंने दाक्षिणात्यमें अपनी गोटी जमा कर वल-वृद्धिका

सङ्कल्प किया। उन्होंने प्रथमतः खुक्लमखुक्ला विद्रोह-ें घोषणा और माछवसे छे कर नर्मदा किनारे तक सभी भूभाग पर चढ़ाई कर दो। आशीरगढ़ दुर्ग जीत कर अधिकांश मुगल सरदारको अपने दलमें मिला लिया। यह संवाद पा कर सैयद भाइयोंने दिलावर खाँ नामक पक सेनापतिको निजाम उल-मुक्तको विरुद्ध मेजा। औरङ्गावादसे हुसेनअलोके भतीजे आलमअलीने भी उन-के विरुद्ध युद्धयाला कर दी। आसमअसीकी सहायतामें खण्डेराव दभाड़ें, दामाजी गायकवाड़, वाजीराव आदि महाराष्ट्रीय सेनापति गये थे। वाजीराय युद्धसेतमें उतरे थे वा नहीं, कह नहीं सकते। पर अन्यान्य मरहुडा सर-दारोंने इस युद्धमें विशेष शौर्यवीर्य दिखलाया था, पेसा वणन मिलता है। इतना होने पर भी निजामके हाथ आलमअर्जी और दिळावर खाँ को परास्त होना पड़ा। उनकी हार सुन कर हुसेन-अलीने दिल्लीसे वादशाहको साथ लिये निजामके विरुद्ध याता की । कहते हैं, कि राह-में वादशाहके इज़ारेसे ही उन्हें गुप्तघातकके हाथ प्राण गंवाने पड़े। इसके वाद उनके भाई अवदुला भी कारा-गारमें हूं स दिये गये।

इस प्रकार विना आयासके निजाम-उल-मुल्कका उन्नित-पथ साफ हो गया। वाद्गाह महम्मद ग्राहने उन्हें अपने प्रधान मंत्रीके पद पर चर कर दिल्ली बुलाया। किन्तु वीजापुरमें विग्रय बड़ा हो जानेसे १७२८ ई० तक उन्हें दिल्ली जानेका अवकाश नहीं मिला। जो कुछ हो, वाजीरावने पेशवाका पद पा कर देखा, कि मुसलमानोंके मध्य निजाम-उल-मुल्क ही उनके एकमाल प्रधान प्रति-द्वन्दीस्पमें दाक्षिणात्य प्रदेशमें बड़े हैं।

पूर्ववर्णित विद्यवकालमें खान्देशसे मरहरोंके प्राप्य चौथ और सरदेशमुखी-संकान्त प्राप्य राजसके वस्तुलमें विभवाधा होने लगे। पेशवा होते ही वार्जारावने सुना, कि खान्देशके मुगल लोग महाराष्ट्रीय मोकसदारोंको वस्तुल करनेमें वाधा हेते हैं। १७२१ ई०में उन्होंने राम-चन्द्र गणेश नामक एक महाराष्ट्रीय सेनापितको खान्देश और मालवप्रदेशमें चौथ और सरदेशमुख सत्व वस्तुल करनेके लिये मेजा। रामचन्द्र गणेशको मुगलांने प्राण-पणसे वाधा देनेमें कोई कसर उठा न रखी। तथापि वे वाहुवलसे समस्त खत्य वस्ल करके वापिस आये। दूसरे वर्ष भी वस्लमें वड़ी गड़वड़ी उठी जिससे वाजी-राव उदाजी पवारको ससैन्य मालवप्रदेश भेजनेको वाध्य हुए। उदाजीने मालवके प्रत्येक परग्नेके राजपुरुषके नामसे महाराज शाहुका आदेशपत लिया और १७२२-१७२३ ई०में मालवसे चीथ तथा सरदेशमुखी संकान्त प्राप्य वस्ल कर लौटे। फिर दूसरे वर्ष उदाजी पवारके साथ वाजीरावने अपने छोटे भाई चिमनाजी अप्पाको मालवप्रदेशमें भेजा। वहांके सरदार राजा गिरिधरने लड़ाई करनेकी इच्छासे उन्हें रोका। आखिर वे शुद्धमें हार खा कर भागे।

वाजीरावको पूरी इच्छा थी, कि मालवदेशको अच्छी तरह जीत कर धीरे श्रीरे उत्तरभारतमें महाराष्ट्र-सामाज्य फैलायंगे। यदि उन्हें शौर्य और उत्साहका अवतार कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस कारण प्रति-निधि श्रीपतिराव उन्हें ईर्घ्यांकी दृष्टिसे देखते थे। वाजी-राव जिससे अपना विक्रम और कार्यदक्षता दिखा कर महाराज शाहुके अधिकतर पीतिभाजन न हो सके, इस-के लिये वे हमेशा यल करते थे। महाराजके निकट जव कभी वाजीराव उत्तरभारत जानेकी वात उठाते, तव श्रीपतिराव पेसी ऐसी युक्तिसङ्गत वार्तोसे महाराजके कान भर देते थे, कि उनको याता एक जाती थी। कई वार ऐसी घटना हो जानेसे महाराज शाहुने इसकी निष्यत्ति करनेके लिये एक सभा की । दरवारमें सभी सरदार और सामन्त उपस्थित हुए। प्रतिनिधिने पहले वाजीरावके प्रस्तावका उल्लेख कर उसके प्रतिवादमें बहुत-सी वाते कहीं। उन्हों ने कहा,--

"पेशवाने अपने पक्षका वलावल विना सोचे विचारे ही हिन्दुस्तान (उत्तर-भारत) जीतनेका प्रसङ्ग उडाया है। सच पूलिये, तो अभी हम लोगों में ऐसी शिक नहीं, कि सामान्य विद्रोहका भी दमन कर सकें निजामको महावली पराक्रमों सेना हम लोगों के द्वार पर आ कर युद्धके लिये प्रार्थना करती है। उन लोगों की रणकण्ड्वति निवृत्त करनेकी हम लोगों में शिक नहीं। अधिक क्या, अपना प्राप्य चौथ और सरदेशमुखी खत्व ही हम लोग निर्विरोध वस्ल नहीं कर सकते। ऐसी हालतमें हम लोगों को उचित है, कि विदेश जीतनेमें प्रवृत्त न हो कर पहले खराज्यको ही दृढ वनानेकी कोशिश करें। कोल्हापुरके शम्माजीके साथ हम लोगों का जो विरोध है, उसकी मीमांसा और कर्णाटक अञ्चलमें महात्मा शिवाजीने जो राज्य वसाया था, उसका पुनरुद्धार न करके उत्तर-भारतकी चढ़ाई करना, मैं राज्यके पक्षमें जरा भी हितकर नहीं समकता। पेशवाकी तरह हम लोगों में भी शौर्य और साहस है, पर विदेश जा कर शौर्यं प्रकाश करनेका यह उपयुक्त समय नहीं है।"

वाजीराव एक सुवक्ता थे। उन्हों ने प्रतिनिधिके इस प्रतिवाद्के उत्तरमें ओजस्विनी भाषामें जो लम्बी चौड़ी वक्रता दी उसका मर्मार्थ इस प्रकार है.—"प्रति-निधिका उपदेश वडा ही विस्मयकर है। वर्त्तमानकालको प्रकृत अवस्थासे वे विलक्कर अनिभन्न हैं। मुगल साम्राज्यरूप महातर अभी जीर्णावस्थाको प्राप्त हुआ है। उसके मूलमें कुठाराघात करनेका इससे उपयुक्त अवसर और कभी नहीं मिल सकता। कारण, मुगल-वादशाह अभी मरहठों के मुखापेश्ची हुए हैं। वीरश्रेष्ठ मरहठों की ही सहायतासे वे अपने अधिकारको रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि मरहडा-वीर अपनी वीरता दिखा दें, तो सम्मव है, कि सारा भारतवर्ष उनके कवलमें आ जायगा। केवल निजाम-उल-मुल्कके भयसे मुगलराज्य पर अपनी गोटी जमानेका ऐसा सुयोग छोड़ देना मैं कभी भी सङ्गत नहीं सम-भता । इस प्रकार दुम दवानेसे किस प्रकार राज्यकी वृद्धि होगी ? परलोकगत महाराज शिवाजी दौलतावाद-में औरङ्गजेव जैसे प्रवल शतुके रहते हुए भो वीजापुर और गोलकुएडाको विरुद्ध युद्धयाता करनेसे वाज नहीं आये थे और उक्त सुलतानों को अच्छी तरह दमन करनेके पहले उन्हों ने कर्णाटक जीतनेका सुअवसर नहीं छोड़ा था । महाराज शम्माजीकी मृत्युके वाद महाराज राजारामको भी इस प्रकार अनेक वार साहस दिखळाने पड़े थे। प्रतिनिधिको तरह यदि वे भीख्ता दिखलाते, तो क्या कभी सम्भव था, कि वे कायसम्पादन कर सकते थे ? फलतः निजाम-उल-मुल्कसे भय करनेका कोई भी कारण नहीं है। कोहापुरके

शमाजीके साथ जब चाहें, तभी सन्धि करके कर्णाटक-की व्यवस्था कर सकते हैं। पहले हिन्दुओंके निजल हिन्दुस्तान जब हम लोगोंने वैदेशिकोंको भगा कर अज्ञीकिक यश कमा लिया है और ईश्वरकी इपासे मुगर्लोके हाथसे नष्ट्रपाय खराज्यका उद्घार भी किया है, तव इस महाराष्ट्रीय सेनाके वीर्यवलसे हम लोग हिमालय-शिखर पर अवस्थित "अटक" में महाराष्ट्रीय विजय- ( पनाका अवश्य फहरा सर्जेंगे । उश्चपद् पर प्रतिष्टित रह कर यदि महान् कार्य न कर सका, तो राज्यका उचपद पानेका फल ही क्या ?(१) महाराज! आप मुक्ते केवल सनद्पत दीजिये। मैं नृतन सैन्यद्र गडन करके मुगल-साम्राज्य पर अवश्य अधिकार करूंगा। निजाम-उट्-- मुक्तको दमन करनेका भार भी मेरे ही ऊपर रहा । समप्र यवनराज्यका उच्छेद कर भारतवर्षेमें सर्वत हिन्दूराज्य स्थापन करनेको महात्मा शिवाजी महाराजकी विशेप इच्छा थी। अकाल मृत्युके कारण उनका वह उद्देश्य सिद्ध होने न पाया। महाराज ( शाहु )-के पुण्यवलसे में वहं कार्यं किये दिखाता हूं । विशेयतः पितृदेवके साथ उत्तरभारत जा कर में वहांको अवस्था अपनी आंखोंसे देख आया हूं । हिन्दुस्तानके देशीय राजाओंके साथ इस विपयमें पहले ही हम लोगोंकी सन्धि स्थापित हो चुकी है। अभी केवल महाराजका आदेश होनेसे ही में उस कार्यको सिद्ध कर सकता हूं। कर्णाटक और कोहापुरके शस्याजीका व्यापार यदि प्रतिनिधि महाशय विशेष गुरु-तर समकते हों, तो अभी जो सेना सज्जित है, उसे छे कर कुछ वड़े वड़े सरदारोंके साथ वे उस ओर याता कर सकते हैं। उत्तर-भारत-विजयका भार महाराजका आदेश पाने पर में अपने ऊपर छेता हूं ।"

वाजीरावको ऐसी उत्साह और उत्तेजनापूर्ण वक्तृता
सुन कर महाराज शाहु वड़े प्रसन्न हुए और उनकी भूरी
प्रशंसा करते हुए वोले, "वालाजी पन्थके औरससे आप
जैसे शीर्यशाली और कार्यवृक्ष व्यक्तिका जनमग्रहण सम्भवपर है। आप जैसे कर्मचारी जिनकी अधीनतामें हैं, उनके
लिये हिमालयके अपर पारस्थित किश्वरखाइमें भी विजय-

Vol. XIV. 97

पताका फहराना कोई आरवर्ष नहीं । उनके हिन्दुस्तान-विजयको वात निहायत ही तुन्छ है। अतएव आप उत्तरभारतको जांय, निजाम उल्.मुक्क और कर्णाटक विजयका भार हम लोगोंके ऊपर रहा।" इतना कह कर महाराज शाहुने खिलअत दे कर वाजोरावको सम्मानित किया। उस दिनके दरवारमें वाजोरावको ओ ओजिखनी वक्ता दो थी, उससे महाराष्ट्रीय सरदार-समाजमें उनको वाहवाही होने लगो। साताराके दरवारमें प्रतिनिधि श्रीपतिरावका जो गीरव और प्रमुख्य था, इस घटनासे उसका वहुत कुछ हास हो गया। महाराज शाहु भी वाजोरावके एकान्त पश्चपाती हो गये, और उन्हें उत्तरभारत-विजयका सनद-पत्न भेज दिया। १७२५ ई०में यह घटना घटी थी।

राजसमामें वाजीरावने जैसी वीररसपूर्ण वक्तता दी थीं, उनका शीर्य और साहस भी वैसा ही था। वे ऐसे सुस्थकाय और कप्रसिहण्यु थे, कि चंद्राई कालमें वे कभी कभी आड दश दिन तक घोड़े परसे उतरते ही नहीं थे और कल्चे चने तथा मकईको हाथसे चूर कर वही खा कर रह जाते थे। उनकी बुद्धि भी अतीव विशाल थीं। राजकार्यमें उनके जैसे धुरन्धर व्यक्ति महाराष्ट्र भरमें कोई नहीं था। वे अमायिक और कुछ कुछ विलासप्रिय भी थे।

उत्तर-भारतमें महाराष्ट्र-क्षमता फैलानेके लिये उन्हों-ने जिस सैन्यइलका गठन किया; उसमेंसे बहुतों ने पीछे विशेष प्रसिद्धि पाई थीं। उन लोगों के मध्य मल्हारराव होलकर, राणोजी सिन्दे (सिन्दिया), गोविन्दराव बुन्देला और उदाजी पवार आदिके नाम विशेष उल्लेख-थोग्य है।(१) ये.लोग (उदाजी पदारको छोड़ कर)

<sup>(</sup>१) बाजारावका यह बात प्रतिनिधिके हृद्यमे मानो 'तीरवी बुभ गई

<sup>(</sup>१) मन्दाररावके पिता पूना जिलान्तर्गत नीस नहीं के किनारे होल नामक एक ग्राम है, उसी शामके चौगुला वा प्रामर करके अधीन काम करते थे। मेव-पालन उनका पुरुषानुकानिक व्यवसाय था। मन्दाराव ववपनमें नेव चरावे थे। गुवावस्थामें उन्होंने महाराष्ट्रीय सैनिक विभागमें प्रवेश किया। बाजी सबने उनकी दुदिमत्ताका परिचय पा कर सन्हों अपने सैन्यदलके अन्तर्भत कर लिया। पीले उनकी भीरे

तो गरीव खानदानके, पर वाजीरावके साथ रह कर उन्होंने इतिहासमें अमरत्व प्राप्त कर लिया है।

महाराज शाहुसे सनद पा कर वाजीरावने पहले मालविजयके लिये दो वार याला की । दोनों ही वार उन्होंने राजा गिरिधरको हराया और कर देनेके लिये वाध्य किया। युद्धमें जयलाम करनेके वाद जो लुटपार-का आरम्म हुआ उसमें वाजीरावको खासी रकम हाथ लगी। मलहारराव होलकर, राणोजी सिन्दे और उदाजी पवारने इस युद्धमें विशेष वीरता दिखाई थी, इस कारण वाजीरावने उन्हें मालवका चौथ और सरदेशमुखोके ध्यये चस्ल करनेका वंशयरम्परागत अधिकारपत प्रदान किया तथा सेनाखर्चके लिये 'मोकसा' नामक आयका अर्द्धांश (इनमेंसे होलकर सैकड़े पीछे २२॥), सिन्दे २२॥) और पवार १०)के हिसावसे ) लेनेका हुक्म दिया (१७२५ ई०)।

महात्मां शिवाजीकी चेष्टासे कर्णाटक मराठोंके अधिकारमें आ गया था। निजाम-उल्-मुल्कने दक्षि-णात्यकी स्वेदारी पाते ही उस प्रदेशको अपने हाथ कर लिया था। उसका पुनरुद्धार करनेके लिये प्रतिनिधि वहे उत्सुक्त थे। बाजीराय मालवको जोत कर जब लीटे, तब प्रतिनिधि महाशयके अनुरोधसे महाराज शाहु-ने उन्हें कर्णाटक पर चढ़ाई करनेका हुक्म दिया। इस

धीरे उन्नति होती गई और वे एक विशाल भूखण्डके अधीश्वर बन बेठे।

राणोजीविन्द्रे—ग्वालियरके विन्दिया वंशके आविपुरुष ।
य पहले सुगलों के अधीन काम करते थे । मुगलों की अवनित का सूत्रपात और स्वजातिका अम्युद्य देख कर इन्होंने पेशवा बालाजी विश्वनाथके यहां बार्गी वा अश्वारोहीका कार्य प्रहण किया । किन्तु सामान्य मृत्यमानमें ही उन्होंने अनेक दिन व्यतीत किये थे । राणोजीकी निष्ठा देख कर बाजीरावने उनकी तरकी कर थे । मल्हार्गावके साथ इनका विशेष सद्माव था । गोविन्द्राव बुन्देला रत्निगिरि जिलान्त्रगत नेवर यामके कलकरणीके पुत्र थे । पिताकी मृत्युके वाद इन्होंने अनक्ष कष्टसे पीडित हो बाजीरावका सेवकत्व ग्रहण किया । कार्यतत्य-रताके गुणसे ये बुन्देलखं कके सुनेदार बनवाये गये । समय कर्णाटककी याता करना वाजीरावने अच्छा नहीं समका और महाराज शाहुके निकट अपना अभिप्राय प्रकट किया, तो भी प्रतिनिधिको प्रसन्न करनेके हेतु उन्हें उसी समय युद्धयाता करनी पड़ी। फलतः कर्णाटकसे सरदेशमुखी और चौथ वस्ल तो हुआ सही पर उस प्रदेशके अखास्थ्यकर जलवायुके दोपसे महाराष्ट्रीय सैनिकॉमिंसे बहुतों की जान गई (१७२६ ई०में)।

वाजीरावकी गति रोकना सहज नहीं है, यह देख कर निजाम-उल्-मुल्क एक नया कौशल जाल फैला कर मराठो'के अभ्युदय निवारणकी चेष्टा करने छगे। सच पूछिये, तो इस समय मराठे लोग भी निजाम-उल-मुक्क-के ए तमात उरके कारण थे। दिल्ली-द्रवारमें प्रधा-नता लाभ करना ही उनके जीवनका आज तक प्रधान *लक्ष* था। किन्तु अमो वह लक्ष्य परिवक्तित हो गया। कारण, १७२२ ई०में दिल्ली जा कर उन्हों ने वादशाही दरवारकी जैसी शोचनीय अवस्था देखी, उससे उनका लक्ष्य फलीभूत होवे, ऐसा उन्हें प्रतीत नहों हुआ । वे थोड़े हो दिनों के अन्दर दिल्लीसे पदत्याग कर दाक्षिणात्य आये। यहां उन्होंने अपनी उद्याकाङ्क्षाकी परितृप्तिका स्वतन्त्रःक्षेत प्रस्तुत करनेका सङ्कर्य किया। उन्हों ने पहले दिल्लीके बादशाहके विरुद्ध विद्रोह्घोषणा करके अपनेको दाक्षिणात्यके खाधीन अधिपति बतला कर प्रचार कर दिया। दिल्ली-के वादशाहका उन्हें जरा भी भय न था। दाक्षिणात्य-में अञ्चण्ण प्रताप जमानेमें उन्हों ने मराठों को हो कल्टक-स्वरूप समभा । इस कारण मराठो को अधःपात करना ही अभीसे उनके जीवनका मूळमन्द हुआ।

मराठे लोग मालवको जीत कर गुजरात और उत्तर-भारतमें अपनी धाक जमानेको कोशिश कर रहे हैं, यह देख कर निजाम मन हो मन कुछ सन्तुष्ट हुप थे। कारण उन्हों ने समका था, कि मराठों की दृष्टि उत्तर-भारतकी ओर आकृष्ट होनेसे वलसञ्चय करनेका उन्हें अवकाश मिल जायगा। अलावा इसके वादशाहके साथ मराठों-का विश्रह होनेसे दोनों दलकों दुर्वलता होनेको सम्मा-वना है—अन्ततः बादशाहको शक्ति सवश्य ही हास होगो। किन्तु केवल यही सोच कर वे निश्चिन्त न वैठे, वरन् उन्होंने मराठोंके हाथसे आत्मरक्षाका एक और उपाय सोच रखा।

मुगल-वादशाहको दी हुई सनदके बलसे मराठे लोग प्रतिवर्षं निजामके राज्यसे चौथ और सरदेशमुखी विप-यक कर वस्ल करते और तदुपलक्षमें प्रतिवर्ष उन्हें निजामके राज्यमें जाना पड़ता था। यह रोकनेके लिये उन्होंने ग्राहुके निकट एक प्रस्ताव लिख मेजा, कि महा-राज यदि निजाम-राज्यका चौथ और सरदेशमुखीका स्रत्व छोड़ दें, तो निजाम उन्हें दर्भ मरतवे कुछ करोड़ नगद रुपये और उनके शासनाधीन इन्दापुरके निकटस्थ कुछ परगने निश्कर जागीर-स्वरूप प्रदान करेंगे। वाजी-राव इस प्रस्ताव पर कभी भी सहमत नहीं होंगे, यह निजामको अच्छी तरह मालूम था। अभी वाजीराव कर्णाटदेश लडाई करने गये थे, इसी कारण ऐसे अनसर-में उन्होंने शाहुके निकट यह प्रस्ताव लिख मेजा था । राजसभामें निजासके प्रस्तावका समर्थन करनेके लिये ने श्रीपतिराच प्रतिनिधि महाशय थे जिन्हें निजामने रेवाके अञ्चलमें जागीरका लोभ दिखा कर वशीभूत कर लिया था। लघुमति प्रतिनिधिने महाराज शाहुको समभाया, कि निजामके प्रस्तावके अनुसार कार्य करनेसे मराठोंको चिशेष लाभ होगा। इस कारण सरलमति शाहुने उस प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दे दी। इस समय सहसा कर्णाटक-विजय प्राप्त करके वाजीराव सातारा छाँदे। इस घटनाका विषय सुनते ही वे निजामको चाल अच्छो तरह समभ्य गये। उन्हीं ने शाहु महाराजको समकाया, कि किसी भी कारण निजाम-राज्यमें चौथ और सरदेशमुखीका स्वत्व न छोड़ें। छोड़नेसे उक्त राज्यमें हमलोगों की प्रतिपत्तिकी हानि होगो। इससे निजामको जी मराठो का उर है, वह जाता रहेगा और तव उन्हें हम लोगों के चिरुद्ध गुप्त पड़यन्त करनेका अवसर मिल जायगा। इस पर शाहुने उक्त प्रस्ताव पर अपनी असम्मति प्रकट की। प्रतिनिधिके ऊपर महाराज वड़े विगड़े और इस कारण वाजीरावके साथ प्रतिनिधि वैरमाव रखने छो।

इस कौशलजालको ध्यर्थ होते देख निजामने एक दूसरी चाल चली। उन्होंने कोहापुरके शम्भाजीका पक्ष ले कर महाराष्ट्र-समाजमें गृह-विवादानल प्रज्वलित करनेकी चेष्टा की । वर्षके शेषमें जव शाहुके कर्मचारी चौध और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिये निजामराज्य उपस्थित हुए तव निजामने कहा, "महाराज शाहु और महाराज शम्माजी दोनों ही हमसे चौथ मांगते हैं । ऐसी अवस्थामें महाराष्ट्रराज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी कौन हैं, जब तक इसका निर्णय नहीं होगा, तव तक हम चौय और सरदेशमुखीके रुपये किसीको भी नहीं दे सकते।" इतना कह कर निजामने महाराज शाहुके कर्मचारियोंको स्वराज्यसे निकाछ दिया । निजामकी यह चाल भी वाजीरावके निकट न चली। उन्होंने कहा, कि चौध वस्त करनेकी वादशाही सनद जिनके नाम पर है, निजाम उन्होंको चौथ देनेके लिये वाध्य हैं। शाहुने उनकी युक्तिकी सारवत्ता समभ कर निजामके कार्यकी वडी निन्दा को। पीछे उन्होंने निजामके विरुद्ध युद्ध-याला करके चौथ और सरदेशमुखी चसूलका हुकुम विया। १७२७ ई०के नवस्वर मासमें वाजीरावने राज्यके सभी योद्धाओंको है कर युद्धवाता कर दी। इथर निजाम भी युद्धके लिये तैयार थे।

इस समय निजामके साथ जो युद्ध हुआ, उसमें वाजोरावने असाधारण वीरता दिखलाई थी। उन्होंने पहले बुहरनपुरको लूटा और उसे भस्मसात् करनेके अभित्रायसे नगरकी ओर कदम वढाया। यह देख कर निजाम अपने दलवलके साथ बुहरतपुरकी रक्षाके लिये चल दिये। निजामकी सारी सेना उस और गई है. यह देख कर उन्हों ने थोड़ी-सी सेना बुहरतपुर भेजी और भाप प्रधान प्रधान सेनापतियों के साथ सहसा गुज-रातमें घुस पड़े। वहांके स्र्वेदार सरबुलन्दकी युद्धमें जर्जरित कर सारे गुजरातको अच्छो तरह लुटा । इधर निजाम स्वेदार सर बुखन्दको बाट जोह रहे थे। पीछे जव उन्हें मालूम हुआ, कि वाजीरावने गुजरात पर आक-मण कर दिया है, तव उन्हों ने भट पूनाको चढ़ाई कर दी। यह खबर पाते ही बाजीरावने वड़ी तेजीसे उनका पीछा किया। निजामने वाजीरावको अपनी पीठ पर देख पूना-की याता रोक दी भौर वाजीरावके साथ युद्ध ठान दिया। सुचतुर वाजोराव उनके साथ विविध खण्ड युद्धींमें क्रमशः

पश्चात्पद हो कर गोदावरी तीरवत्ती एक विकट स्थानमें था पहुंचे । निजाम अपनी भावी विपद् विलकुल समक्त न सके। वाजीरावने निजाम-पक्षीय सेनाके चतुष्पार्श्व-वत्तीं जङ्गलको दग्ध कर उन लोगों के आश्रय ग्रहणका पथ वन्द कर दिया। इसके वाद महाराष्ट्रकी सेनाने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया। अब दोनों में घमसान लडाई छिड गई। निजामका तोपखाना मराठोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट था, इस कारण अनेक महाराष्ट्रसेना विनष्ट हुईं। इस पर भी वाजीरावने उस स्थानका परित्याग नहीं किया और निजामका सैन्यदछ जिससे खाद्यादिका संग्रह न कर सके, इस ओर विशेष ध्यान दिया। अभी निजामको अपनी विपद् सुक्त पड़ीं। उनके साथ कोह्रापुरके शम्माजी, चन्द्रसेन जाधव, राव रम्भा निम्बालकर आदि मराठा सेनापति थे। निजाम उन लोगोंकी सहायतासे वाजी-रावका पराभव खर्व करनेके लिये महाराज शम्माजीसे अनुरोध करने छगे। किन्तु उन छोगोंके मध्य नाना विषयों में मतमेद हो जानेके कारण निजामके दलमें वड़ी गृड्वड़ी उठी । इधर निजामकी सेना पेटकी चिन्तामें थी, उधर वाजीरावके सैन्यदलसे सन् सन् शब्द करती हुई गोली वहुतो को यमपुर भेजने लगी। अब कोई उपाय न देख निजामने सन्धिका प्रस्ताव किया। तकैवितकीके वाद निम्नलिखित शर्त स्थिर हुई---

- (१) निजाम कोह्नापुरके शम्माजीका पक्ष छोड़ दें।
- (२) निजाम राज्यमें जो सव महाराष्ट्रीय कर्मचारी प्रतिवर्ष चौथ वस्तुल करने जाते हैं, उनकी रक्षाके लिये निजाम अपने राज्यके कुछ हुर्ग मराठों को दें।
- (३) चौथ और सरदेशमुखीके जितने रुपये वाकी पड़ गये हैं, वहुत जल्द चुफती कर दें।

इस प्रकार सिन्ध स्थापित हो जानेके वाद निजामने वाजीरावको अभ्यथित करनेके लिये अपने शिविरमें बुलाया। असाधारण साहससम्पन्न वाजीराव केवल दो तीन नीकरों के साथ शतु-शिविरमें गये। यह घटना १७२८ ई०में घटी। इसी समय वाज रावने सेना-की दर्च चलानेके लिये सिन्दे (सिन्दिया) और होलकर-को १२ परगने जा ति स्वद्धप दिये।

गुजरात पर मराठे लोग वहुत दिनोंसे दांत गड़ाये हुए

थे। निजामके साथ प्रथम गुद्धकालमें वाजीरावने एक वार गुजरात पर आक्रमण किया था। १७२६ ई०में उन्होंने काफी सेना साथ दे अपने माई चिमनाजी अप्पाकी गुज-रात मेजा और पीछे आप भी वहां गये। उन्होंने सर-बुलन्द खाँ को कहा, कि यदि गुजरातका चौथ और सर-देशमुखी बस्ल करनेका स्वत्व मराठों को मिले, तो वे गुजरातकी शान्तिरक्षाका भार प्रहण करेंगे। सरबुलन्द खाँने इसे स्वीकार कर जो सन्धि की, उसके अनुसार,—

- (१) सूरत प्रदेश छोड़ कर अविशय समस्त गुज-रातका चौथ और सरदेशमुखीका स्वत्व महाराज शाहुको दिया गया ।
- (२) गुजरात-वासीको चोर डकैतोंके हाथसे वचानेके लिये महारा'द्रपति सर्वदा २५सी अश्वा हो गुजरातमें रखनेको राजी हुए।
- (३) गुजरातके विद्रोह-प्रिय जमींदारोंको कोई भी महाराष्ट्रीय किसी भी प्रकारसे सहायता नहीं दे सकेंगे। इस सन्यिके समय वाजीरायने सेनापित तिम्वकराय दभोड़को वहांके मोकसा और सरदेशमुख सत्यका एक अंश दिये।

इस समय मालवके राजा गिरिधरने महाराष्ट्रोंको चौथ न दे कर शलुता कर ली। इस कारण दोनोंमें युद्ध चला। राजा गिरिधर मारे गये। इस पर दिल्लीके नादशाहने दायवहादुर नामक अपने एक आत्मीयको मालव मेजा। नवीन स्वेदारके शौर्यवलसे मराठींको पीछे हटना पड़ा, पर पीछे जव चिमनाजी अप्पा, पिलाजी जाधव और मल्हारराव पहुंचे, तव मराठींकी विजय हुई और दाय-वहादुर युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

इसके वाद महम्मद खाँ वङ्गण नामक एक सेनापति-के ऊपर माळवका शासन-कर्तृ त्व सौंपा गया। इलाहा-वादमदेश भी उन्होंके शासनाघीन था। वुन्देलकएड नामक राज्य इन्हों दो राज्योंके मध्य अवस्थित था। इसके पहले छलपति शिवाजीके उपदेशानुसार क्षित्य-वीर छलसालने इस देशमें हिन्दूराज्य वसाया था। महम्मद्खान इस हिन्दूराज्यको नष्ट करनेके लिये जी जानसे कोशिश करने लगे। राजा छलसाल पुनः पुनः युद करके भी प्रभावशाली महम्मद खाँका आक्रमण रोक न सके। अत्र निरुपाय हो और वाजीरावको हिन्दुओंका प्रक्रमात वन्धु समक छत्तसालने उनसे सहायता मांगों और निम्नलिखित मर्म पर एक श्लोक लिख मेजा,—"पूर्व-कालमें वराहसे आकान्त हो गजराज जिस प्रकार विपन्न हो गया था, हम लोग भा आज उसी प्रकार-विपन्न हो गये हैं। बुन्देलागण वाजी हारने पर है, इस समय हे वाजीराव! उन लोगों की लाज रखो।"

यह कातरोकिपूर्ण स्होक पढ़ कर वाजीरावका हृद्य मुसलमानों के ब्राससे विपन्न हिन्दूराज्यकी रक्षा करने के लिये व्याकुल हो उठा। स्यं दलवलके साथ महम्मदलां के विकद्म यांका कर दी। वहां अपने पराक्रमवलसे वङ्गणको अच्छी तरह हराया और वुन्देलखएडको स्वाघीन हिन्दू-राज्य मानने के लिये उन्हें वाध्य किया। समर-विजयी वाजीराव जव छवसालसे मिलने गये, तव वृद्ध राजाने प्रे माश्रुपूर्ण नयनसे उन्हें आलिङ्गन किया और स्वों के सामने उन्हें अपना तृतीय पुत्र कह कर सीकार किया। इस युद्धमें पराजित शबुके प्रति मराठों ने सङ्गव किया था। इस विपद्धसे छतसालने जो उद्धार पाया था, इस क्तकतामें उन्हों ने वाजीरावको यमुना-तीरवर्ती काँसी नामक दुर्ग और उसके आस पासकी सवा दो लाख रुपये आयकी भूसम्पत्ति प्रदान की। यह बदना १७२६ है की २२वीं अप्रिलको हुई थी।

१७३३ ई०में छतसालके मृत्युकालमें वाजीराव उनसे मिलने गये थे। उस समय राजाने उन्हें और भी एक लाक दश हजार रुपये आयका राज्यांश दान किया। गोविन्दराव वुन्देला नामक एक ब्राह्मण पर ३ लाख ३० हजार रुपये आयके प्रदेशका शासनभार अर्पण किया गया। काल्यों और सागर आदि नगर गोविन्दरावसे स्थापित हुए। वुन्देलकएड अञ्चलमें महाराष्ट्रशक्तिकी जड़ गोविन्दरावके वाहुक्लसे ही मजवृत हुई थी। पानीपतके युद्धमें उनकी मृत्यु हुई।

इसके पहले निजाम वाजोरावके हाथसे पराजित हुए थे, इस कारण वे वदला चुकानेके लिये अवसर हुंद रहे थे। वाजीरावके साथ उनकी सन्धि हो चुकी थी और उनमें ऐसी शक्ति भी नहीं, कि उनका मुकावला खुल्लम-खुला कर सकें। इस कारण वे लिएके वाजीरावके प्रति- द्वित्वर्योको सहायता देनेको सेष्टा कर रहे थे। इस समय
गृहिववाद हो जानेसे निजामका भाग्य खुळ गया। गुजरातमें १७२६ ई०को सरवुलन्द खाँके साथ जो सन्धि हुई
थी, उसमें वाजीरायने सहगामी सेनापित विम्वकराव
दमोड़के मतामत प्रहण नहीं किया। पहलेसे ही वाजीरावको तमाम प्रतिपत्ति देख कर वे उनसे डाह करते आ
रहे थे। इस घटनासे वे अपनेको अपमानित समन्द कर
वाजीराव पर वहें असन्तुष्ट हुए।

निजाम तो मौका इंड ही रहेथे, कि किसी तरह कुटदेवीका आगमन हो । अब वैसा ही आ गुजरा । दोनोंमें मनमुरावका हाल सुन कर वे वड़े प्रसन्न हुए और इस विद्वे पानिमें इत्थन फेंकनेकी प्राणपणसे कोशिश करने लगे। सेनापति तिम्बकरावने जब देखा, कि निजाम उनकी सहायता करनेको तैयार हैं, तव वे वाजीराव पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। उनकी उत्ते-जनासे पिलाजी गायकवाड आदि कई एक सेनापति भी वागी हो गये। अब सर्वोने मिल कर ३५ हजार सेनाके साथ वाजोरावका सर्वनाश करनेके छिये गुजरातसे पूना की याता कर दी। तिम्बकरावने डिडौरा पिटवा दिया, कि वाजीरावकी प्रतिपत्ति हद्से ज्यादा हो जानेके कारण महाराज शाहुकी शक्ति थोडे ही दिनोंमें ढीली पड जायगी। इस कारण वे पेशवाका दर्प चूर्ण करके शाहुकी क्षमता वड़ानेके लिये युद्ध कर रहे हैं और अनेक प्रसिद्ध मराठा-सेनापतियोंने भी इस कायेमें साथ दिया है। कहना नहीं पड़ेगा, कि यह सुनते ही बहुतेरों ने सेनापति तिम्बक्का पश्च अवलम्बन किया । वाजीराव यह संबाद पा कर जरा भो विचलित न हुए। उन्हों ने, जहां तक हो सका, वड़ी फ़ुत्तींसे सैन्यसंप्रह करके सेनापतिके विरुद्ध याता कर दी। उन्होंने घोषणा की कि, "सेनापति हिन्दू होते हुए निजामकी वातमें पड़ कर महाराष्ट्र राज्यमें गृह-विवादकी सूचना करते हैं। अतएव जो प्रस्त स्वराज्यके मङ्गळकामी हैं, उन्हें सेनापतिके विरुद्ध अख्रधारण करना कर्त्तथ्य है। "इस घोषणाके फलसे वाजीरावके दलकी बहुत कुछ पुष्टि हुई।

१७३० ई०के सितम्बरमासमें वाजाराव और चिमना-जी अप्पाने आत्मरक्षाके लिये १८ हजार सेना है कर सेनापित तिम्बक द्माइ के विरुद्ध कुच किया। गुजरात पहुंच कर उन्होंने पहले सेनापितके साथ सिन्धका प्रस्ताव उठाया। किन्तु गृह विवाद अनर्थका मूल है, इसे न समफ कर तथा पेशवाको भीत जान सेनापितने लड़ाई ठान दी। बड़ोदाके निकटवत्तीं दंभई नामक स्थानमें दोनों पक्षमें तुमुल संप्राम हुआ। निजाम-उल्-मुल्कसे सहा-यता पानेकी जो आशा थी, सो नहीं हुई। वाजीरावके अदंभुत सैनापत्यके गुणसे ३५ हजार सेना रहते हुए भी शखुओं की हार हुई। स्वयं सेनापित भी गुद्धमें मारे गंधे। पिलाजी गायकवाड़के दो पुत्र भी इस गुद्धमें वीरगितको प्राप्त हुए। स्वयं पिलाजी आहत हो कर भागे। होल्कर और सिन्दियाने इस गुद्धमें विशेष विक्रम दिखलाया था। (१७३१ ई० फरवरी)

पेशवा गुजरातका वन्दोवस्त कर आये, तव प्रति-निधिने महाराजके निकट वाजीरावकी चुगली खाई, सेनापतिके मरने पर महाराज बड़े ही दुःखित हुए। किन्तु बाजीरावने जब सभी घरना सुना दी, तब वे निजाम पर बहुत बिगड़ें। उन्होंने सेनापतिके पुत यशवन्तरावको सैनापत्य प्रदान कर वाजीरोवके साथ मेळ करा दिया। फिर भी कभो जिससे कोई कलइ होने न पावे इसके लिये उन्होंने दोनोंसे प्रतिज्ञापत लिखवा कर ले लिया। तभीसे गुजरातका सम्पूर्णं शासन-भार सेना-पतिके ऊपर अर्पित हुआ। मालवमें वाजीराव सर्वे-सर्वा हुए। वात यह ठहरी, कि गुजरातके राजसका अर्द्धां श वाजीरावके हाथसे राजकोषमें मेजा जायगा और सरबुलन्द खाँसे प्राप्य अन्यान्य प्रदेशोंकी आय सेनापति खयं राजसरकारमें मेजेंगे। इस समय पिलाजी गायकवाडके साथ भी बाजोरावका मेल हो गया और गायकवाडने शाहुसे' 'सेनाखास खेल"-की उपाधि पाई।

सेनापति तिम्बकराव दभाड़े प्रति वर्ष श्रावणमासमें देशिबिदेशके पिएडतोंको बुला कर उन्हें योग्यतानुसार दिश्वणादि दिया करते थे। उनकी सृत्युके वाद यह कार्य बन्द हो गया। पीछे वाजीरावने उसे फिर जारी किया। इस कार्यमें वार्षिक ६०।७० हजार रुपये खर्च होते थे। उनके पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवाकी अमलदारोमें वह सर्च यदा कर १६ लास रुपये कर दिया

गया था। अङ्गरेनींने भी १८५१ ई० तक यह दानकाय निभाया था। उसके वादसे उस रुपयेका एकांग्र शास्त्रालोचनापिय ब्राह्मण-परिवारको देनेमें और शेष दक्षिणा "प्राह्म कमिटी"और 'दक्षिणा फेलोशिप' परीक्षामें सर्च होने लगा। "दक्षिणा-पाह्म-कमिटी" से आज भी महाराष्ट्र-भाषामें उत्कृष्ट प्रन्थलेखकको योग्यतानुसार ५०से ५०० २० तक पुरस्कारमें दिये जाते हैं।

सेनापतिके साथ भगड़ा मिट जानेके वाद वाजीराव-ने निजामको इस गृह-विवादका मूळ समभा और तब वे उनके विरुद्ध गुद्धयाताका आयोजन करने ळगे। यह देख कर निजाम डर गये और सन्धिका प्रस्ताव पेश किया। स्थिर हुआ, कि निजाम इसके वाद मराठोंके किसी भी काममें हाथ नहीं डाळ सकते और बाजीराव स्थाधीन भावमें समस्त दाक्षिणात्य पर आधिपत्य करेंगे।

दूसरे वर्ष वाजीराव जब मालव गये, तव दोनींमें साक्षात् हो कर यह स्थिर हुआ, कि मालव जाते आते समय वाजीरावको सेना सान्देशस्थित निजामके अधिकारमें उपद्रव नहीं कर सकती तथा निजाम भी चौथ और सरदेशमुजीका द्वापा विना तगादाके पेशवाको प्रतिवर्ष देनेमें वाध्य हैं।

इसके बाद जिल्लाके सिहियोंके साथ महाराष्ट्रपति-का विवाद खड़ा हुआ । महाराज शाहुने श्रीपतिरायको उनके विरुद्ध भेजा । किन्तु वहां उनकी हार हुई । अव शाहुने माळवसे वाजीरावको बुला भेजा । वाजीरावने राणोजी सिन्दे और मलहारराव होल्करको माळवका भार दे कर जिल्लाको लिये प्रस्थान कर दिया । युद्धमें सिहि पराजित हुए । उस अञ्चलके ११ मुद्द्शोंकी आय-का अर्द्धांश मराठोंको मिला । रायगढ़ आदि पांच प्रसिद्ध दुर्ग भी उनके हाथ लगे । इस कायसे सन्तुष्ट हो महाराज शाहुने वाजीरावको रायगढ़ और निकटवर्ती प्रदेशोंका आधिपत्य प्रदान किया ।

अनन्तर उत्तर-भारतको और जो वाजीरावको हृष्टि आरुष्ट हुई, उसके कतिपय कारण थे। प्रथमतः गुजरात और मालव जीतनेके बाद वाजीरावने उस प्रदेशका चौथ और सरदेशमुखी स्वत्वके सभी पत बादशाह्से मांगे। वादशाहने पहलेकी प्रतिश्रुति (अर्थात् बालाजी विश्वनाय-

को उन दोनीं प्रदेशके चौथ आदिको सनद देनेकी जो वात थी, उसे भूल कर वाजीरावके प्रस्तावको नामंज्र किया और सर-बुलन्द खाँने वाजीरावको वह स्वत्व दिया था, इस कारण उन्हें पदच्युत और अवज्ञात किया गया। उनके स्थान पर योघपुरके राजा अभयसिंहको गुजरातका स्वेदार वना कर भेजा। अभयसिंह वड़े ऋ रमकृतिके आदमी थे। उन्होंने अपने पिताकी हत्या कर सिहासन द्खल कर लिया था। उन्होंने पिलाजी गायक-वाङ्को परास्त कर पोछे गुप्तधातक द्वारा उन्हें मरवा दाला। इस घटनासे मराठे लोग डरे नहीं, बरन् अत्यन्त उत्तेजित हुए। अभयसिंहको मराठोंका प्रताप अच्छी तरह मालूम था, इसलिये वे जान ले कर भागे। इसके वाद महम्मद खाँ बङ्गशकी मृत्युके वाद जयपुरके राजा सवाई जयसिंह मालवके सुवेदार वना कर मेजे गये, उनके साथ वाजीरावका सन्द्राव था । उनकी सहायता से वाजीरावने वादशाहको मौखिक भावमें माछवका अस्थायो अधिकार प्राप्त किया। किन्तु गुजरात और मालवके चौथ तथा सरदेशमुखोकी लिखित सनदके लिये प्रार्थना करने पर भी उन्हें नहीं मिली। इन सव कारणोंसे १७३५ ई॰में उन्होंने जब सिद्दिके विरुद्ध अभि-यान किया, तव सिन्दे और होल्करको आगरे तक मुगल-प्रदेश पर आक्रमण करनेका हुकुम दे दिया था।

इन सद कारणोंके सिवा और कोई भी कारण न था। वाजीरावकी सेना और सामन्त अधिक हो जानेके कारण वे ऋणों हो गये थे। सेना असन्तुष्ट हो गईं, कारण उन्हें समय पर तनखाह न मिलने लगीं। अब वाजीराव भारी विपद्में पड़ गये। महात्मा रामदास स्थामी जिस प्रकार राजनीति और धर्मनीति विपयमें छतपित महात्मा शिवाजीके गुरु थे, उसी प्रकार ब्रह्में न्द्रस्वामी नामक पक महापुरुप वाजीरावके गुरु और राजनीतिक परामशेदाता रहे। नितात विपन्न हो कर वाजीरावने उन्हें पत लिखा। उत्तरमें स्वामीजीने लिख मेजा, "विपट्नके समय धेये खोना तुम्हारे जैसे व्यक्तिको उचित नहीं है। तुम मालवदेश पर अच्छो तरह अधिकार कर दिल्ली बढ़ाईकी चेष्टा करो। ऐसा होनेसे अर्थका कष्ट जाता रहेगा, म्लेक्डदमन और हिंदू-साम्राज्यका विस्तार

होगा।" इत्यादि उत्साह और उपदेशपूर्ण पत पढ़ कर वाजीरावने ढाढ़स वांधा और दिख्लीकी ओर अप्रसर होनेका संकल्प किया।

बाजीरावके आदेशसे महाराष्ट्रसेना माळवसे छे कर चम्बलनदीके किनारे तक फैल गई। मल्हारराव होल-करकी अधीनतामें एक दल सेना आगरा पार हुई। उन लोगोंका ताएडव-नृत्य देख कर वादशाह शङ्कित हो गये। प्रधान मन्त्री खान-दौरानने सन्धिका प्रस्ताव करके मेजा। वाहशाहके साथ सलाह करके वे वाजीरावको मालवके चौथ और सरदेशमुखी तथा गुजरातके सरदेशमुखी खत्वकी सनद देनेके लिये प्रस्तुत हुए। परन्तु वादशाह-के अधीन तुराणी सरदारींकी प्रतिवन्यकतासे वह पस्ताव मंजूर नहीं हुआ। इस पर खान-दौरानने वाजीरावकों सुचित किया, कि वाद्शाह अपनी सन्धिके वद्लेमें चम्बल नदीके दक्षिणम्बलस्थित मुगलशासित प्रदेशसे वार्षिक १३ ळाख रुपये देने और पश्चिममें वृंदी कोटासे छे कर पूर्व बुधावर तक समस्त राजपूत-शासित प्रदेशोंसे वार्षिक १० छाख ६० हजार रुपये कर वसूछ करनेका अधिकार देनेको तैयार हैं। वाजीरावको शेयोक्त अधि-कार देनेका उद्देश यह था, कि ऐसा होनेसे महाराष्ट्र और राजपूत आपसमें छड कर मर मिटेंगे और तव मुसलमानोंको अपने प्रनष्टगौरवके पुनरुद्धारका अच्छा अवसर मिलेगा। किन्तु वाजीराव इस पर सन्तुष्ट न हुए और अधिकके छिये प्रार्थना करने छगे। उन्होंने इस वार जो सव स्वत्व वादशाहसे मांगे थे, उनमेंसे एक विशेष उल्लेखयोग्य है । हिन्दुओंके प्रधान तीर्थ मथुरा, प्रयाग, काशी और गया ये चार प्रदेश जिससे विश्वमी मुसल्यानोंके हाथसे निकल कर मराठोंके शासनाधीन हों, इसके लिये वाजीरावने वादशाहसे विशेष अनुरोध किया। परन्तु वादशाहको यह मंजूर नहीं हुआ। अलाबा इसके एक और स्वत्वमें भी कुछ कसर रह गई। स्नान्-दीरानने वाजीरावसे छह लाख रुपये उपदीकत-स्वरूप छे कर सारे दाक्षिणात्यके "सरदेशपाण्डे" नामक पदका स्वत्व प्रदान किया। इस स्वत्वके अनुसार दाक्षिणात्य-स्थित निजाम-उल-मुल्क द्वारा शासित पदेशींकी समस्त आयके ऊपर सैंकड़े पीछे ७) रु के हिसावसे वसूछ

करनेकां अधिकार वाजीरावको मिला। निजामके साथ खानदौरानको पटती नहीं थी, इस कारण उन्होंने निजाम-का अ<sup>प</sup>मान करनेके छिये ही यह स्वत्व वाजीरावको दिया था। निजामके ऊपर अपनी धाक जमानेका वाजी-रावने यह सुअवसर हाथसे नहीं छोड़ा और इस कारण वड़ी खुशीसे वादशाहको छह लाख रुपये दे कर यह ' स्वत्व खरीद लिया। निजाम वाजीरावके प्रति पहलेसे ही विद्वेष रखते थे, अव उनका विद्वेष और भी वढ़ गया। इधर वादशाहने जब देखा, कि वाजीरावकी सव मांगे पूरी नहीं हुई ओर मराठोंकी क्षमता दिनों दिन वढ़ती हो जा रही है, तव उन्होंने आत्मरक्षाके लिये किसी ं और उपायका अवलम्बन करना चाहा । उन्होंने निजाम-उल-मुक्तको वन्धुभावमं एक पत्र लिखा और महाराष्ट्-चढ़ाईको रोकनेके लिये सहायता मांगी। निजामका जो कुछ अपराध था सो वादशाहने अभी माफ कर दिया। इस पर निजामके आनन्दका पारावार न रहा। वे फौरन दलवलके साथ बादशाहकी सहायता करनेके <sup>े</sup> लिये उत्तर-भारतकी और चल दिये।

यह संवाद पा कर वाजीरावने ससैन्य दिल्लीकी याता कर दी। खानदौरानकी अधीनतामें वादशाही फौज उनकी गति रोकनेके लिये आगरा गई। अयोध्यांमें सुवेदार सादत खाँने अकस्मात् एक दल सेना ले कर मराठों पर धावा वोल दिया । बहुतसी मराठी-सेना मारी गईं, होटकर यमुना तैर कर पार हो गये। इस जीत पर सादत खाँ फूले न समाये और उन्होंने वाद-शाहको एक पत इस प्रकार लिख भेजा, "हम लोगोंने दो हजार मराठी-सेनाको युद्धसेतमें मार डाला है। मल्-हारराव होल्कर वड़ी बुरी तरहसे घायल हुए हैं। एक मराठा-सेनापति हम लीगोंके हाथसे मारा गया है। मराठे जान छे कर भागे हैं। भागते समय यसुना पार करनेमें दो हजार मराठी-सेना डूव मरी है।" सच पूछिये, तो ये सव वाते विलकुल फूडी थीं। किन्तु इस संवाद पर दिल्ली-दरवारमें आनन्दस्रोत वह गया। वाजीरावका दंपं चूर्ण हुआ, यह जान कर दिल्लीके उमराच उत्सव करने छगे। आगरेमें जो महाराष्ट्रोय दूत था, उसे मार भगाया गया। (१७३६ ई०)

उस स्मय वाजीराव राजप्रतानेमै थें। वे बुधा-वरके राजपूत राजाको युद्धमें परास्त कर उनसे कर हे कर और वहां अपना आधिपत्य जमा कर मलहाररावकी सेनासे मिलंने आ रहे थे। इसी समय उन्हें मालूम हुआ, कि होलकर-युद्धमें परास्त हुए हैं। वे लम्बी लम्बी टांगें मारते हुए दिल्लीके निकट पहुंचे। यहां उन्होंने महाराष्ट्र-दूनको अवमाननाके प्रतिकारस्वद्भप दिल्ही नगरीको भरमसात् कर डालेंगे, ऐसी घोषणा कर दी। सारी दिल्लीमें हलवल मच गई। लोग भयसे विह्नल हो पड़े। किंतु वाजोरावने न तो दिल्लोको लूटा और न भरमसात् ही किया, वरन् वादशाहके निकट संधि-प्रस्ताव लिख भेजा। वादणाहकी मर्यादारक्षाके लिये हो वाजीरावने उस नृशंस-कार्यमें हाथ नहीं डाला। किंतु वहांके अमीर उमरावने कुछ और समभ लिया था। वे लोग वाजीरावको भयभीत समक्त आठ हजार सेनाके साथ उन पर टूट पडें। अव दोनों में जो युद्ध चला. उसमें करीव छः सौ मुगळसेना निहत हुईं । मुगळपक्षीय एक सरदार आहत और एक सेनापति निहत हुए। उनके एक हाथी और दो हजार घोड़े मराठींके हाथ लगे। वाजीरावकी वहुत थोड़ी सेना इस युद्धमें विनष्ट हुई थो ( ५७३७ ई० )।

अव दिहीं के उमराव होशमें आये। उन्होंने बाद-शाहकी ओरसे वाजीराव के साथ सन्धिकी वात उठायी। इस समय वाजीराव गङ्गा और यमुनाके दोआव पर अधिकार करनेकी चेष्टामें थे। परन्तु शाहु महाराजने उन्हें कोङ्कणमें पुर्चगीजोंका सामना करनेके लिये सहसा बुला लिया। इस कारण वाजीरावको वादशाहके साथ सन्धि कर वहुत जल्द साताराको लौटना पड़ा। इस सन्धिमें वाजीरावको मालवप्रदेशका एक छत अधिकार और युद्धथयसहस्प १३ लाख रुपये मिले।

इधर महाराष्ट्र-नौसेनापित आंग्रे के साथ पुर्तगोजी का मनोमालिन्य हो जानेसे आंग्रे ने महाराज शाहुसे सहायता मांगो। महाराजके आदेशसे वाजीराव पुर्तगोजींके विच्छ खड़े हो गये। कुळावाके निकट दोनीं-में मुटमेड़ हुई, आखिर मराठो-सेनाकी हो जीत हुई (१७३७ ई०)।

कुळावाके पुर्त्तगीजॉको प्रास्त कर वाजीरावने साल-सेट (Salsette ) और वेसिन (Bassein ) पर आकृ-मण कर दिया । इसमें वेसिनके निकटवत्ती घोडवन्दर-दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। पीछे थानानगरमें घेरा डाला गया। यह स्थान भी वाजीरावने पुत्तगीजोंसे छे छिया। अनन्तर उन छोगो'के वन्दरा नामक सेना-निवास पर .वाजीरावकी दृष्टि पड़ी। वाजीराव यदि वन्दरा पर आक्रमण कर दें, तो सम्भव है, कि वे वम्वई पर भी धावा वोल हैंगे, इस भयसे अङ्गरेज लोग चुपकेसे पुर्तागोजों की सहायता कर रहे थे। पुर्त्तगीजों को युद्धमें परास्त करनेके लिये पेशवाने समरदक्ष अरवी, मावली और हेटकारियोंको अपनी सेनामें भत्तीं किया। किन्तु वन्दरा पर आक्रमण करनेके पहले ही उन्हें खवर लगी कि मराठों-के विनाशके लिये दिल्लीमें नाना प्रकारके उपाय और पडयंत हो रहे हैं। अतः उन्हें पुर्रागीज-दमनका परि-त्याग कर दिल्लीकी ओर याता करनी पड़ी।

इसके पहले वादशाहको सहायता करनेके लिये निजाम उल्-मुक्त ससैन्य दिल्ली बुलाये गये थे। निजाम-को इस कार्यमें उत्साह देनेके लिये वाद्याहने उनके ळड्केको माळव और गुजरातप्रदेशकी सूबेदारी दो थी। दिल्छीमें वाजीरावके हाथसे वादशाही सेनाकी हार होने-के वाद निजाम-उल्मुब्क दलवलके साथ उत्तर-भारत जा धमके। वादशाहने वाजीरावके साथ जो संधि की थी, उसे वे भूल कर निजामको मराठों के विरुद्ध उत्ते जित करने लगे। अपने सामन्त-राजाओं को भी उन्होंने निजामकी सहायता करनेका आदेश किया। राजाके सिवा और सर्वोंने निजामका साथ दिया। दिल्ली-भ्वरके समस्त सामन्त-राजाओंको साथ छै जव वे गङ्गा-यमुनाके दोआव होते हुए मालव पहुंचे, उस समय उनके पास ३४ हजार सेना थीं। इधर वाजीराव बड़ी तेजी-से प्रायः ८० हजार सेनाके साथ नर्मदा उत्तीण हुए। उस समय सिरोज्ज नामक स्थानमें निजामका अड्डा था।

१७३८ ई०के जनवरीमासमें भूपाल नामक स्थानमें दोनोंमें मुटभेंड़ हुई। पहले दिनके युद्धमें ही निजाम पक्षके ५सी राजपूत मारे गये। शत्रुपक्षके ७सी घोड़े मराठोंके हाथ लगे। मराठी-सेना १सी निहत और

Vol. XIV. 99

,३ सी आहत हुई थीं । दूसरे दिन जो युद्ध हुआ उसमें मुसळमानोंकी १५सी सेना मारी गई थीं। वाजीराव-ने असाधारण वृक्षताके साथ निजामको चारों ओरसे घेर लिया। निजामने विपद्व जान कर वादशाहरे सहायता मांगी। किन्तु खान-दौरानके साथ मनोमालिन्य और वादशाहका उनके प्रति आन्तरिक विराग रहनेके कारण दिल्लीसे सहायता न मिली। अव निजामके सहकारी राजपूर्तोंने वाजीरावकी शरण छी । किन्तु निजामको शिक्षा देनेके लिये उन्होंने पहले उनकी वात पर कान नहीं दिया। इस समय रसद भा घट चली थी जिससे निजाम दिनों दिन दुवले पतले होते जा रहे थे। उनके पुत्र नासिरजङ्गको जब यह खबर लगी, तब वे सेनाके साथ पिताकी सहायतामें आ रहे थे, किन्तु वाजीरावके आदेशसे उनके भाई चिमनाजी अप्पाने उन्हें रास्तेमें ही रोक दिया। अव निजामने रक्षाका कोई उपाय न देख २४ दिन तक कष्ट फेलनेके वाद वाजीरावकी शरण ली। दोनोंमें सन्धि स्थापित हुई। शर्त यह उहरी, कि समस्त माछवदेश और नर्मदा तथा चम्बलके मध्यवत्तीं प्रदेश वे वादशाहको कह सुन कर मराडों को दिला दें तथा लड़ाईका खर्च ५० लाख रुपये भी दे दें। ये सब शतें मंजूर कर निजामने वाजीरावके हाथसे लाण पाया (१७३६ ई॰की फरवरी)। इस युद्धके फलसे मालवमें महाराष्ट्रका अधिकार निकाएटक हो गया।

इघर कोडू णमें पुर्रागोजों के साथ मराठों का पुनः विवाद खड़ा हुआ। विमनाजी अप्पा और सिन्देके आक्षमणसे पुर्तगीज तंग तंग आ गये, जिससे उन्हें तारापुरमें युद्धघोषणा कर देनी पड़ी। इस युद्धमें पुर्तगीजों को ही हार हुई (१७३६ ई०में)। इस समय राघोजों मों सला, महाराज शाहुकी अनुमतिके विना पूर्व करकसे ले कर उत्तर-प्रयाग तकके प्रदेशों में लूट पाट करके अपनी शिक्त वहा रहे थे। अतः उनका दमन करनेके लिये बाजीरावको एक दल सेना मेजनी पड़ी। किन्तु सेना-पितकी मूर्वतासे वह सेन्यदल पराजित हो लीट आया। अव वाजीरावने स्वयं राघोजीके विकद्ध याता करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु इसी वीच दिल्ली अञ्चलमें राजनीतिक विग्नव खड़ा हुआ। जिससे वाजीराव उत्तर-

भारत जानेको बाध्य हुए। वाजीरावको संवाद आया, कि इराणके वादशाह नादिरशाहने दिल्ली पर आक्रमण कर मुगलो का पराभव और मयूरसिंहासन अधिकार कर लिया **है। उनके हाथ निजाम पराजित, सादत** खाँ वन्दी भीर खानदौरान् निहत हुए हैं। केवल इतना ही नहीं, वे एक लाख सेनाके साथ दाक्षिणात्य पर चढ़ाई करनेका उद्योग कर रहे हैं। इस संवादसे वाजीराव जरा भी विचलित न हुए, वरन् दूने उत्साहसे नादिरशाहको रोकने-के लिये तैयार हो गये। उन्होंने नासिरजङ्गको पत लिखा, कि नादिरशाह हिंदू-मुसलमान दोनों के ही शब हैं। अतएव इस समय हम लोगों को गृहविवाद भल कर उनकी गति रोकना सर्वथा कर्त्तव्य है। उन्होंने चिमनाजी अप्याको भो खबर दी, कि वे अभी कोङ्कणमें पूर्तगोजों का दमन स्थगित रखें और दलवलके साथ। नादिरको गति रोकनेके लिये मेरा साथ दें। नादिर-शाह जिससे चम्बल नदो पार न कर सके, इसके लिये वाजीराव विलक्क नैयार हो गये।

नादिरशाहने दिख्छी पर क्यों चढ़ाई की तथा वे यहां के अधिवासियों के साथ किस तरह पेश आये, इस विपयकी आछोचना करना यहां पर अप्रासिक्षिक होगा। तोभी इस सम्बन्धमें एक वात कह देना आवश्यक है। नादिरशाह भारतवर्ष पर आक्रमण करने के जो सब आयोजन कर रहे थे वह दिख्छोद्रवारको बहुत दिन तक मालूम न हो सका। यहां तक, कि सिंधुनदी के उपर पुल वना कर पञ्जाब घुसने के पहले तकका हाल दिखीवासीको कुछ भी मालूम नहीं था। इसका एकमाल कारण वाजीरावका डर था। वाजीरावका दमन करना जकरो है, दिख्छोद्रवार केवल इसी आयोजनमें उलभा हुआ था। नादिरशाहकी और किसीको भो दृष्टि न थी। ऐसे हो सुअवसरमें नादिरशाह विना रोक टोकके दिख्ली तक घुस गये थे।

नादिरशाहके भारत-आक्रमणका कारण भले ही कुछ हो सकता हो, पर भारतको सम्पत्ति लूटना उनका एक प्रधान उद्देश्य था। तदनुसार वे दिल्लो लूट कर प्रायः १४० करोड धनरसादिके साथ खदेशको लौटे। अतः वाजीरावको उनके विरुद्ध युद्धयाला करनेकी आवश्यकता न हुई। इसं समय कोङ्कणमें पुर्त्तगीजोंके साथ एक प्रसिद्ध युद्धमें चिमनाजो अप्पाको जीत हुई। इस युद्धका विब-रण और मराठोंके साथ पुर्त्तगीजोंके कलहका कारण यहां पर संक्षेपमें देना आवश्यक है।

१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें गोआ, दमन, दीउ, दभोल, सालसेइट, वैसिन आदि स्थानीम पुर्तगीजोंका अधिकार जम गया था । वे लोग केवल इन सद स्थानींप्र दुर्गादि वना कर निश्चिन्त हो यैठे थे, सो नहीं। वहांके अधिवासियोंके प्रति धर्मसम्बन्धमें यन्परोनास्ति अत्या-चार भी करते थे। वे लोग रोमन कैथलिक धर्मावलस्यो थे, इस कारण वलपूर्वक दूसरेको क्रिस्तान वनाना उनका धर्मकार्यं समन्ता जाता था । विधर्मियोंके प्रति अत्याचार करके उन्हें ईसा-धर्ममें लानेके लिये उन्होंने अपने देशमें एक सभाकी स्थापना की थी। भारतमें भी उसकी एक शाखा खुल गई थी। जो विधमी ईसा-धमंत्रो सहजर्म माननेको तैयार नहीं होते, उन्हें सभाके सदस्य कैंद करते, उपवासादि क्लेश हेते, वेंत मारते, उत्तप्त करतन पर सुलाते, उनके अङ्ग पर जलतो हुई वत्तो रख देते. इस प्रकार तरह तरहके उत्पात किया करते थे। सच पृछिये, तो ईसाइयोंने इस समय भारत था कर जैसा अत्याचार आरम्भ कर दिया था, वैसा और किसी भी विधर्मीन नहीं किया। हिन्द्की वात तो दूर रहे, मुसलमानोंके प्रति भी उनका अत्याचार भीषण था। पुर्त्तगीजोंने अपने अधि-कृत स्थानोंके समस्त हिन्दृ-वासियोंको नाना प्रकारकी यन्त्रणासे उत्पीड़ित करके ईसा-धर्मावलम्बी वनाया था।

पुर्तगीजों के अत्याचारसे जज्जेरित हो हिन्दू लोगोंने वोरिया वधना ले कर महाराष्ट्र-शासित देशमें आश्रय लिया था । बहुतों ने तो दुःसह अत्याचारके हाथसे हमेशाके लिये छुटकारा पानेके लिये समुद्रमें कृद कर प्राणिवसर्जन किये। जिन्हों ने विद्रोही हो कर उनके कार्यमें वाधा डालनेकी कोशिश की थो, वे सवंश मार डाले गये। आखिर वचे खुचेने नितान्त उत्यक्त हो महाराष्ट्रपति शाहु और पेशवा वाजीरावकी शरण ली। उन वेचारोंने आश्रयदाताके निकट यह कह कर एक आवेदन-पत्न भेजा, कि महाराष्ट्रपति जव हिन्दूधमेंके रक्षक हैं, तव विश्वमीं पुर्चगीजों से हम लोगों की रक्षा करना उनका

कर्ताम है। यह आवेदनपत्र पा कर महाराज शाहुने पुर्रागीजो'के हाथसे हिंदूधर्मियो'की रक्षा करनेके लिये बाजीराव और चिमनाजी अप्पाकी कोङ्कण-देश भेजा। इस समय महाराष्ट्र-नौसेनापति आंग्रेने पुर्रागीजों के विरुद्ध शाहुसे सहायताके छिये प्रार्थना की थी । बाजीरावकी सहायतासे यद्यपि आंग्रेकी पुर्रागीजो पर जीत हो गई थी, तोभी बाजीरावने जो खदेश न छीट कर पुर्रागीजो के अन्यान्य नगरों पर आक्रमण किया था, उसका कारण पूर्वकथित आवेदनपत था। पुर्चगीजो -का इमन करनेके लिये गुरु ब्रह्में न्द्रखामीने भी चिमनाजी और वाजीरावको उत्साहित कर पत लिखा था। गीजो'के हाथसे हिंदूधर्मियों की रक्षाके लिपे ही बाजी-रावके दिल्ली यादामें वाध्य होने पर भी, चिमनाजी भप्पाने वहुत दिनों तक कोङ्कणको नहीं छोड़ा। पुर्च-गीजो'का भच्छी तरह अधःपात करना ही उनका उद्देश्य था, इस कारण पूरे दो वर्ष युद्ध करके उन्हों ने सालसेट आदि अनेक प्रदेश जीत लिये थे । मराठों ने जैसी वीरता और कभी नहीं दिखलाई थी, सो पुर्रागीजों के साथ युद्धमें दिखला दी।

दो वर्ष तक नाना स्थानोंमें छोटी छोटी लडाइयोंके बाद १७३६ ई०में मराठींने वेसिन पर चढ़ाई कर दी। तीन मास घेरा डालने पर भी दुर्ग उन लोगोंके हाथ न लगा। पुर्तंगीजोंने यूरोक्से सहायता मंगाई थी। उनके तोपके सामने महाराष्ट्रीय-सेना बार वार छतभङ्ग होने लगी। मराठो'ने सुरंग करके वाहद द्वारा दुर्गप्राचीर उड़ा देनेकी चेटा की थीं। किन्तु फल कुछ भी न निकला। पीछे चिमनाजी अप्पाने एक दिन दुर्ग जीतनेकी प्रतिका करके अपने सरदारोंसे कहा, "तुम लोग यदि दुर्गमें प्रवेश नहीं कर सकते, तो मुन्ते तोपके मुंह पर वांच कर गोलीके साथ दुर्गके भीतर फेंक दो ।" यह सुनते ही दूढ़ अध्यवसायके साथ सवो ने मिल कर पुनः दुर्ग पर भावा वोछ दिया । इस वार मराठी की जीत इर । मराडो ने वेसिनके दुर्गस्थित कोसचिक्को विद्यप्त कर अपनी जातीय पताका फहराई (१७३६ ई० १६वीं जून )। इस युद्भें मराठों ने जैसा शौर्य दिखलाया था, कि पुर्त्तगीजों को दांतीं अंगसी काटनी पड़ी थी। इस युद्धमें पुर्त्तगोजों को ७सौ और मराठों की ५ हजार सेना वीरगतिको प्राप्त हुई थीं । कुछ मिछा कर दो वर्षके भीतर पुर्त्तगोजों के साथ युद्धमें १४ हजार महाराष्ट्र-योद्धा हताश हुए थे। किन्तु उसका फछ यही हुआ, कि गोथा और उसके आस पासके प्रदेश छोड़ कर पुर्त्तगोजों के अधिकृत और सभी स्थान मराठों के हाथ छगे। उसके साथ साथ हिन्दुओं के निर्यातन-भोगका भी अवसान हुआ था। बेसिन-तुर्ग पर अधिकार करते समय दुर्गाधिपति-परिवारको एक महिला महाराष्ट्रीय-सैनिकवृन्दके कवछमें आ गई। किन्तु चिमनाजोने उसे सम्प्रानपूर्वक अपने आत्मीयगणके निकट भेज दिया। बेसिनके ईसाइयोंसे चिमनाजो अप्पाक्ती प्रशंसा सुनतेमें आती है।

इधर नादिरशाहके चले जानेके वाद दिल्लीकी अवस्था पेसी शोचनीय हो गई, कि वाजीराय यदि इस समय कोशिश करते तो मुगल-साम्राज्यको राजधानीमें महाराष्ट्-विजयपताका अवश्य उड़ती और मुगल-वाद्शाहीका नाम निशान नहीं रहता। किन्तु उन्हों ने ऐसा नहीं किया। अन्ततः कुछ दिनके लिये दिल्लीके सिहासन पर साधी-गोपालसद्भप एक बादशाहको रखना उन्होंने अच्छा समभा। दिल्लीभ्वरकी इस विपिन्न दशामें भी वाजी-रावने एक वश्यतास्वीकारपतके साथ उनके निकट १०१ मोहर उपढौकन खरूप भेजीं। उस पत्नको स्वीकार कर नादशाहने हाथी घोड़े परिच्छदादि द्वारा वाजीरावका सम्मान किया । किन्तु निजाम-उल-मुल्कके साथ भूपालमें जो सन्धि हुई, उसमें वाजीरावको माळव-प्रदेशकी नृतन सनद देनेकी शत थी, पर वह शर्त पूरी नहीं हुई। इस पर वाजीरावने कोई छेड़छाड़ करना भच्छा नहीं समका।

इस समय भो सिन्दे-होळकर आदि वाजीरावके सरदार कोङ्कणसे लीट कर उनसे मिळ न सके । इस कारण इसी वीचमें वाजीरावने राजपूत और वुन्देलखाएडके राजाओं के साथ मिलता कर ली। निजामके विच्छ फिर-से याता करनेके उद्देश्यसे ही उन्हों ने राजपूत राजाओं -से सन्धि कर ली थी। वाक्षिणात्यसे निजामका अस्तित्व लोप करमा ही उनका इस समय प्रधान उद्देश्य हो गया था। किन्तु तदुपयोगी आयोजनका उनमें अभाव था। अछावा इसके राघोजी भी सले और दामाजी गायकवाड़ उनके प्रति विद्देष रखते थे। उन लोगो के साथ शबुता हो जानेसे ही वाजीरावको इस समय कुछ व्यतिव्यस्त होना पड़ा था। परन्तु थोड़े ही दिनो के अन्दर उन्हों ने राघोजीके निकट जा कर निजामके सम्बन्धमें अपना अभिपाय प्रकट किया और उनसे मित्रता कर ली। उन्हें यह भी लोभ दिया, कि निजामका यदि हम लोग उच्छेद कर सके, तो लूटमें जो कुछ माल हाथ लगेगा उसका एक भाग आपको मिलेगा।

अव राघोजीका ध्यान कर्णाट-विजयको ओर भाकृष्ट हुआ। निजाम उस समय भी उत्तरभारतमें थे। इस कारण वाजीरावने दाक्षिणात्यमें उनके पुत्रके साथ युद्ध ठान दिया। इस युद्धमें पहले वाजीरावकी ही हार हुई थी, पर पीछे नासिरजङ्ग अच्छी तरह परास्त हुए। किन्तु नासिरजङ्ग भी चैसे व्यक्ति नहीं थे, कि सहजमें पीठ दिखाते। इस कारण वाजीरावको बहुत दिनों तक उनके साथ युद्ध-व्यापारमें लित रहना पड़ा। इन सब युद्धोंमें उनकी जीत तो हुई पर उससे महाराष्ट्र-राज्यको कोई विशेव स्थायी लाभ दीख न पड़ा। अतः वाजीरावने नासिरके साथ प्रतिष्ठान-नगरमें एक सन्धि कर ली। इस सन्धिके फलसे नर्मदा-तीरवर्त्ती दो प्रदेश उन्हें निजामके पुत्रसे मिले।

नासिरजङ्गके साथ युद्धका परिणाम उनके इच्छा
मुसार नहीं हुआ, यह देख वे वड़े क्षण्ण हुए। क्रमागत

युद्ध-व्यापारमें लगे रहनेसे वाजीराव ऋणमें डूव गये थे।

इस समय महाजनों के तकाज़े से वे तङ्ग आ गये।

अतः अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें उन्हों ने ब्रह्मे न्द्रस्वामीके निकट एक पत इस प्रकार लिख भेजा, "मैं

विविध विपद्ध, ऋण और निराशासे आच्छत्र हो नितान्त

मानसिक यन्त्रणाका भोग कर कर रहा हूं। जिस

अवस्थामें मनुष्य विपपान करनेको प्रवृत्त हो जाते हैं,

बही अवस्था मेरी आन पड़ी है। महाराजके निकट

मेरे अनेक शखु हैं। इस समय यदि मैं सातारा जाऊं।

तो वे मुक्ते विपन्न करनेसे वाज नहीं आवेंगे। इस

समय मृत्यु यदि मेरे समीप आ जाय, तो उसे मैं अच्छा

समक्रंगा।"

किंतु वाजीराव विषद्में अधीर होनेवाले पात नहीं थे। उन्हों ने सातारा वा पूना न लीट कर नूतन विजय द्वारा हो अपनी अवस्थाको सुधारना चाहा। इस उद्देश्यसे वे उत्तर-भारतको ओर अप्रसर हुए। नर्मदा नदीके किनारे पहुंचते न पहुंचते उनका स्वास्थ्य विलक्कल खराव हो गया और नवज्वरसे वे इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे। यह अकस्मात् घटना १७४० ई०की-२२वीं अप्रल (वैशाख शुक्का त्रयोदशी दिन) को घटी। मृत्युकालमें उन्हों ने मुसलमानके हाथसे अपने देशको सम्पूर्ण मुक्त करनेके लिये सिन्दे और होलकरको उपदेश दिया था।

मृत्युकालमें वाजीरावकी अवस्था ४५ वर्ष की थी। उनकी वीरता और शिक्कि भोर ध्यान देनेसे वे अकाल ही कराल कालके गालमें पतित हुए थे, ऐसा कहना होगा। उनकी मृत्युके संवादसे सारे महाराष्ट्रमें हाहाकार मच गया था। महाराज शाहु शोकसे अधीर हो गये थे। यहां तक कहा जाता है, कि निजाम-उल्मुलक भी उनका मृत्यु-संवाद सुन कर विमर्ष हुए थे।

वाजीरावने २० वर्ष तक पेशवा-पद पर कार्य किया था। उनके शासनकालका अधिकांश युद्धमें ही वीता था। इसी कारण राज्यकी भीतरी व्यवस्था-सुधारनेका उन्हें कभी भी अवसर नहीं मिला। उनकी वीरताकी तरह उनकी उचाकांक्षा भी असाधारण थी। सारे भारतवर्षकी मुसल-मानोंके शासनपाशसे मुक्त कर हिन्दूसाम्राज्यकी प्रतिष्ठा करना उनके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। उनके चरितमें जरा भी ऐव न था। वे वूरदर्शी, सरल और द्यालु थे। उनकी द्यालुताके गुणसे निजाम-उल्-मुल्कने कई वार रक्षा पाई थी। वहुतोंका ऐसा ख्याल है, कि इस द्यालुताके लिये ही वे राजनीतिक्षेत्रमें विशेष विपन्न हुए थे। राजनीतिक कठोरताके साथ शरणापन्न निजामका विनाश कर डालनेसे दाक्षिणात्यमें भराठोंका एक प्रधान कर्यक दर ही जाता।

स्वराज्यमें वाजीरावके अनेक शतु थे। प्रतिनिधि राघोजी भोंसले, सेनापित दभाड़े और गायकवाड़ वे सब हमेशा उनका अनिद्य करनेमें लगे रहते थे। वालाजी विश्वनाथने सचिवोंके राजस्व-विभागकी जो प्रधा प्रवर्तित की थी, उसके फलसे जिस परिमाणमें इष्ट, उसी परिमाणमें अनिष्टकी भी सूचना हुई थी।

वाजीरावके समय पुर्त्तगीजोंका भछीभांति दमन हुआ था। इस पर अंगरेज छोग वड़े प्रसन्न हुए थे। वे छोग पुर्त्तगीजोंकी पोछ कभी कभी चिमनाजी अप्पाके निकट खोछ दिया करते थे, इस कारण महाराष्ट्र-द्रवारमें उनकी वड़ी खातिर थी। यहां तक, कि १७३६ ई०में जब वेसिन मराठोंके हाथ छगा तव अंगरेजोंसे सन्धि करके उन्हें महाराष्ट्रदेशमें ज्यवसाय करनेका अधिकार भी मिछा था।

वाजीराव देखनेमें सुश्री थे। शेष अवस्थामें वे कुछ विलासी भी हो गये थे। मस्तानी नामकी एक अपरूप लावण्यवती मुसलमान-युवतीके प्रेममें फँस कर वे कुछ दिन राजकार्य तक भी भूल गये थे। वहुतोंने उनका चरित सुधारनेकी कोशिश की, पर वर्थ। महाराज शाहु भी इस कारण उन पर वड़े असन्तुए हुए। पीछे यह कहलवा कर भय दिखलाया, कि यदि वे अपना चरित नहीं सुधा-रेंगे, तो उनके भाई चिमनाजी वैराग्य प्रहण कर संसार-का त्याग कर देंगे। अव वाजीरावका होश ठिकाने आया, कुमार्गसे अपनी प्रवृत्ति विलकुछ हरा ली। इस समय शहु भी अनेक हो गये थे। ऋणदातागण उन्हें निश्चिन्त देख कर तगादे पर तगादा करने लगे। इस समय उन्हें जैसा मानसिक दुःख हुआ था, वह ब्रह्में न्द्रस्वामीको लिखित पत्नसे ही मालुम होता है।

वाजीरावके तीन पुत्र थे। वड़े का नाम वालाजी वाजी-राव मैंभलेका जनादैन वावा और छोटेका नाम रघुनाथ-राव, था। जनादैन वावा १२ वर्षकी उमरमें १७४५ ई०को परलोक सिघार गये। अलावा इसके मस्तानीके गर्भसे भी इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम था समशेर वहादुर।

वालाभी दाजीराव पेनवा।

१७२१ ई०के शेषमें इनका जन्म हुआ। वचपन से ही पिताके साथ रह कर राजकार्यकी देख-भाल किया करते थे, इस कारण थोड़े ही उमरमें ये कुल विषयोंसे जानकार हो गये। वाजीराव और चिमनाजी जव युद्धमें जाते थे, वालाजी ही शाहुके निकट रह कर पितृपदके अन्यान्य कार्य सम्पन्न करते थे। बाजीरावकी मृत्युके समय वे अपने Vol. XIV, 100

चंचाके साथ कोङ्कणदेशमें युद्ध करने गये थे। उस समय
राघोजी मौंसले कर्णाटकमें लिचिनापहीके दुर्गमें घेरा
डाले हुए थे। वे वाजीरावका मृत्यु-संवाद सुनते ही वावुजी नायक नामक अपने एक मिलको साथ ले सालारा
पहुंचे। वाजीरावके पद पर जिससे वावूजी नायक अभिपिक हीं इसके लिये वे महाराज शाहुसे पुनः पुनः अनुरोध करने लगे। उन्होंने शाहुको यह प्रलोभन दिया, कि
वावूजी नायक धनी व्यक्ति हैं, यदि उन्हें पेशवाका पद
दिया जाय तो महाराजको उपद्रौकनमें प्रचुर धन हाथ
लग सकता है। किन्तु प्रतिनिधि और गायकवाड़ इस
समय राघोजीके अनुकूल नहीं थे तथा खयं चिमनाजी
अप्पाको ले कर वालाजी शाहुके निकट पहुंच गये थे, इस
कारण राघोजीकी सारी चेष्टाएं व्यर्थ गईं। वाजीरावके
कार्यकलापका विषय शाहु भूले नहीं थे, सो उन्होंने उनके
पुतको ही पेशवा पद पर नियुक्त किया।

वालाजी वाजीरावको पेशवा पद पर नियुक्त करनेके लिये यथारीति दरवार लगाया गया । उस समय नवीन पेशवाको महाराज शाहुने जो सव उपदेश दिये, वे इस प्रकार हैं,—"वाजीराव महाराष्ट्र राज्यके लिये अनेक कप्ट-साध्य कार्य कर गये हैं । इराणी (नादिरशाह)की दमन करनेके लिये मैंने उन्हें भेजा था। उनका भी उस विषयमें खूव उत्साह था। इराणी इस देशसे जो धनरतादि है गये हैं उन्हें छौटा छानेके छिये उनका विशेष यत्न था। किन्तु आयुः शेय हो जानेसे वे इस कार्यको कर न सके। तुम उनका पुत्र हो, अतएव उनकी और मेरी यह वासना पूर्णं करना तुम्हारा एकमाल कर्त्तेच्य है। अटकके दूसरे किनारे मराठा सवारोंको छे जावो और अपनी वीरता दिखळाचो ।" फिर म्या था, वाळाजी योग्य पिताके योग्य पुत थे, १७५८ ई॰में उन्होंने शाहु तथा अपने पिताकी वासना पूरी कर दी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश महाराज शाहु इसे देख कर अपनी आँख जुड़ानेके लिये जीवित न थे।

वालाजी वाजोरावके पेशवा होने पर राघोजी पुनः कर्णाटक जा धमके। उनकी चेष्टासे विचिनापली मर ठीं-के हाथ लगा। पेशवाकी सेना पर इस दुर्गरसाका भार सौंपा गया और आर्क टके राजखसे वालाजीकी वार्षिक २० हजार रुपये दिये जांयगे, ऐसा स्थिर हुआ। १७४१ ई०के प्रारम्भमें यही वालाजीका प्रधान लाम हुआ। वाजीरावके मरते ही दिलीके वादशाहने अजीमउला-खाँ नामक एक सरदार पर मालवकी स्वेदारी सौंपी। वालाजी वाजीराव और चिमनाजी अप्पाने वादशाहको पूर्व कत सिन्ध और प्रतिश्रुतिका विषय याद दिला कर मालवका अधिकार पानेके लिये प्रार्थना की, वादशाहने उनकी प्रार्थना सुन कर पहले पूर्वकृत सिन्धकी वावतमें १५ लाख वपये मेज दिये। पोले मालवके अधिकारदानके सम्बन्धमें सिन्ध स्थिर करनेको कहा। दोनों पक्षके मेलसे वहुत सा शर्तें निर्द्धारित हुई; पर वादशाहने तदनुसार

कार्य करके वालाजीको मालवका अधिकार न दिया।
वाजीरावकी मृत्युके वाद चिमनाजी अप्पा और
वालाजी रावने शङ्करजी नारायण और खर्डोजी माणकर
नामक दो व्यक्तियोंको अपने स्थान पर रख साताराकी
याता कर दी। उन दो चीरपुरुपोंके कौशलसे सिद्दि
(हवसी) और पुत्त गीज लोग कई स्थानोंमें परास्त हुए
तथा रेवद्र्डा, यगोवतगढ़, मनोहरगढ़, मार्डवी, घोड़वन्दर और उरण आदि मराठोंके हाथ लगे। इस घटनाके कुछ दिन वाद ही चिमनाजी अप्पाका देहान्त हुआ
(१७४१ ई० जनवरी)। प्रसिद्ध सदाशित्रराव वा भावसाहव उन्होंके पुत्र थे।

चिमनाजीकी मृत्युके वाद वालाजी मालवका परि-त्याग कर स्वदेश लीटे। अनन्तर एक वर्ष तक पूना और सातारामें रह कर उन्होंने राज्यकी आभ्यन्तरिक शासनका वहुत कुछ सुधार किया। इस कार्यमें बालाजीको विशेष दक्षता देख कर महाराज शाहु वड़े सन्तुष्ट हुए और उन्हें पुत्तिगीजोंसे विजित प्रदेशोंका अधिकार प्रदान किया। अलावा इसके वालाजीको गुज-रात और मालवके कर वस्तुल करनेका कुल भार अपित हुआ। इससे पेशवाकी क्षमता वहुत ही बढ़ गई।

इस समय वङ्गाल और विहार अञ्चलमें राघोजी भींसलेकी सेना घुस कर उपद्रव कर रही थी। राघोजी विना महाराज शाहुको आज्ञाके ही स्वाधीनभावसे कार्य कर रहे थे, इस कारण उनका दमन करनेके लिये वालाजी भेजे गये। वाराणसी, प्रयाग, गया और मथुरा आदि स्थान का मुसलमानो के हाथसे उद्धार करनेकी वाजीराव-

की विशेष इच्छा थी। इस कारण वालाजी पहले प्रयाग जीत कर विहार गये और राघीजी पर चढाई करनेका आयोजन करने लगे। किन्तु राघोजीकी वातमें पड कर इस समय गुजरातसे गायकवाड मालव जीतनेको जा रहे थे, अतः वालाजीको कुछ दिनके लिये विहारकी याता रोक देनी पड़ी । गायकवाड़का सामना करनेके लिये वालाजीने धारराज्यके अधिपति आनन्दरावसे मितता कर ली । इसके वाद उन्होंने निजाम-उल-मुक्क (वे उस समय उत्तर-भारतमें हो थे ) और जयसिंहके कहने-से उत्तर-मारतके मुगळशासित प्रदेशों के चौथके छिपे वादशाहसे प्रार्थना की । इस समय मराठों की चलती देख कर वादशाह डर गये और वहुमुख्य खितावके साथ उनकी मांग पूरी की। किन्तु इस विषयमें उन्होंने लिखित सनद नहीं दो । वर्ष पूरा होने पर फिसी समय वे चौथके रुपये भेज दिया करते थे। पर नंद-शाह्का ख्याल कुछ और था । वालाजी कुछ शान्ति प्रकृतिके व्यक्ति थे, लिखित सनद मिलो वा नहीं उसके लिये उन्हें परवाह नहीं। केवल वार्विक रुपये पा कर ही चे सन्तुष्ट हो गये थे।

इधर वङ्गालमें राघोजीके सरदार भास्कर-पर्डका अत्याचार दिनों दिन वढ़ता जा रहा था, इस कारण वादग्राहने वालाजोसे कहा, कि यदि आप वङ्गालको रहा करें के लिये जांय, तो मैं मालवकी सनद और अजीमावादका चौथ वस्तल करनेका अधिकार दूं। वालाजी राजी ही गये और तदनुसार दलवलके साथ मुशीदावाद जा धमके। रादमें जिससे सेनाओंके उपद्रवसे कृषिकों की कीई क्षति न हो उसके लिये उन्होंने यथोचित उपाय अवलम्बन किया था। मुशीदावाद पहुंचने पर अलीवदींने सेनाका खर्च हे देना स्वीकार किया। वालाजोके आनेको खबर सुन कर राघोजी बङ्गालसे नौ दो ग्यारह हो गये। पर वालाजीने वड़ी तेजीसे उनका पीछा किया और वहुत-सो सेनाको यमपुरका मेहमान बनाया।

इस जयलाभके वाद वालाजी मालव लीटे और वाद-शाहसे प्रतिश्रुत सनदके लिये प्राथना की। वादशाहके पक्षमें उनकी प्रार्थना अप्राह्म करनेका कोई भी कारण न था, तो भी मालव जैसे प्रदेशकी सनद हेनेकी उन्हें जरा भी इच्छा न थी। अब उन्होंने एक चाल चली, निजाम और जयसिंहसे सलाह ले कर अपने पुत अह-ममद्शाहको मालवका नाममात्रका अधिपति वनाया और वालाजीको उनके प्रतिनिधिक्तपमें मालव-शासनकी क्षमता प्रदान की (१७४३ ई० ।

यह सनद पा कर वालाजीने जो सन्धिपत लिख दिया, उसको शर्त इस प्रकार थी,—

- (१) मालवके वहिभू<sup>९</sup>त किसी भी मुगल-प्रदेशमें कोई मराठा-सरदार जा कर उपद्रव नहीं कर सकता।
- (२) वादशाहके समीप एक उपयुक्त मर ठा-सर-दार ५सौ सवारोंके साथ सर्वदा उपस्थित रहेंगे।
- (३ वादशाहके किसी पर चढ़ाई कालमें वालाजी १२ हजार सवार उनकी सहायतामें मेजे गे। इनमेंसे ८ हजार सेनाका खर्च वादशाहको देना पड़ेगा।
- (४) चम्बलनदोके उत्तराञ्चलस्थित जमींदारोंसे निर्द्धारित 'पेशकश'की अपेक्षा अधिक धन कभी भी नहीं मांगा जायगा और उस प्रदेशके यदि कोई भी जमींदार वागी हो जांय, तो उनका दमन करनेके लिये ४ हजार सेनासे वादशाहकी सहायता करनी होगी।
- (५) मालवकी प्रजाने वादशाहसे जो जागीर और देवोत्तर-सम्पत्ति पाई है, उसमें मराठे लोग दखल दिहानी नहीं कर सकते।

इस सिन्धिके अनुसार कार्य करनेके लिये वादशाह-को ओरसे जयसिंह और वालाजी वाजीरावकी ओरसे राणोजी सिन्दे, मलहारराव होलकर, यशोवन्तराव पवार और पिलाजी जाधव जामिन दुए। यहां पर यह कह देना उचित है, कि इस जामिनका कोई मोल नहीं था।

यह वृहत् कार्य शेप करके वालाजी सातारा लौटे।
यहां उन्होंने आय-व्ययका कुल हिसाव महाराज शाहुको
समका दिया। इस समय विलासव्यसनासक शाहु
नाममातके महाराज थे। सभी क्षमता वालाजीके ही
हाथ थी। इतना अधिकार पा कर भी वालाजीने प्रमुके
प्रति कभी असम्मान नहीं दिखलाया। प्रतिवर्ष वे राज्यके समस्त आय-व्ययका हिसाव यथारीति शाहुको समका
दिया करते थे।

इस समय राघोजी वालाजीसे मित्रता करनेके अभि-प्रायसे पतादि मेजने छगे और उनसे **मु**ळाकात करनेके लिये वेरारसे खाना हुए। इस प्रकार राघोजी वालाजी-को प्रतारित कर सातारा पर आक्रमण करनेका यथा-सम्भव आयोजन करने लगे । उधर गुजरातसे गायक-वाड़ साताराके विरुद्ध आ रहे थे। सातारामें श्रोपति-राव प्रतिनिधिने मृत्युशय्या पर रह कर भी वालाजोकी क्षमता ह्रास करनेके छिये कोई कसर उठा न रखी । वे यद्यपि राघोजीके साथ नहीं मिले थे, तोभी गायकवाड़के साथ उनकी पूरी सहानुभृति थी । जो कुछ हो, इस गुप्त पड्यन्तका विषय वालाजीसे छिपा न रह सका। उन्होंने अपने सैन्यवलकी सहायतासे इस विपद्से रक्षा पानेको अपेक्षा सामनीतिका अवलम्बन करना अच्छा समका । आखिर शाहुकी मध्यस्थतामें राघीजीकी जो उनसे सन्धि हुई, उसके अनुसार राघोजीने छखनऊ, पटना, वङ्ग और उड़ीसा प्रदेशका कर वसूल करनेका अधिकार पाया। वालाजी और उनके पूर्वपुरुपींकी उपार्जित जागोर और मोकाससत्व, कोङ्गण और मालवप्रदेशका आधिपत्य, इलाहावाद, आगरा, अजमीर, मुगलशासित मङ्गलवेढे आदि प्रदेशोंका चौथ तथा परनाः अञ्चलके तीन परगना, आर्क ट अञ्चलसे वार्षिक २० हजार रुपये और वेरारके अन्तर्गत राघोजोंके अधोन कतिएय प्रामों-का खत्व वालाजी भोग करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ। इस सन्धिके फलसे वालाजीके साथ राघोजीका जो कुछ विरोध था सो जाता रहा और गायकवाड नितान्त सहायश्रन्य हो पडे ।

शाहुकी मृत्युके वाद साताराके सिंहासन पर खयं अधिकार करनेको जो उच्च आकांक्षा राघोजीके मनमें वहुत दिनोंसे जागरित थो, वह इस सन्धिके फलसे प्रशस्त हो गई और अब बङ्गादि देशमें यथेच्छा अपना आधिपत्य फैलानेकी और उनका ध्यान आकृष्ट हुआ।

इस समय तक उत्तर-भारतमें नर्मदा, सुवर्ण रेखा और गङ्गा इन तीन नदियोंके मध्यवत्तीं प्रदेशमें बालाजीकी धाक अच्छी तरह जम गई थी। इस समय महाराज शाहुने वालाजीको गङ्गाके उत्तरसे हे कर हिमालय तक अपना अधिकार फैलानेका अधिकार दे दिया और साथ "साथ सनद भी लिख दी (१७४५ ई०)।

इसके वाद राघोजोंने पुनः वङ्गालदेशमें अपनी गोटी जमाने के लिये २० हजार खेनाके साथ भास्करपंडकों भेजा। इस समय पूर्वकृत वादशाहों संधिके अनुसार वालाजी अलीवदींकी सहायता करनेमें वाध्य थे। किंतु राघोजीके साथ अभी जो नई संधि हो गई थी, उससे वे राघोजीको वङ्गविजयमें वाधा न दे सके। बादशाहने वड़े नम्र हो कर उन्हें पत्र लिखा था। परन्तु उन्होंने उसका कोई संतोपजनक उत्तर नहीं दिया, केवल इतना ही लिख भेजा, कि वे अभी खराज्यके कार्यमें लिप्त हैं, जरा भी अवकाश नहीं मिलता। कुछ दिन तक वे उत्तर-भारत वा मालव अञ्चल नहीं गये, सातारा जा कर राज्यको आभ्यन्तरिक व्यवस्था सुधारने लगे।

🎅 🕝 दूसरे वर्षे अर्थात् १७४६ ई०में वालाजीने अपने चचेरे भाई (चिमनाजी अप्पाके पुतः) सदाशिवरावको महा दाजीपंड पुरन्दरके कारकून सखाराम वापूके साथ कर्णा-**टक जीतनेके लिये भेजा । १७२६ ई०के वाद पेशवाओं-**्के पक्षमेंसे आज तक किसीने कर्णाटक जीतनेकी चेप्रा · नहीं की । कर्णाटप्रदेशके ऊपर प्रतिनिधि और उनके पक्षवालोंके दाँत गड़े थे। इस कारण आत्मविप्रहके भयसे वाजीरावने इस काममें हस्तक्षेप नहीं किया। प्रन्तु उस प्रदेशमें निजामकी क्षमता दिनों दिन दढ़ती ्देख उन्होंने १७४० ई०के प्रारम्भमें राघोजीको कर्णाटक े भेजा । उनकी मृत्युके वाद भी उनके पुत वालाजीने इतने दिनों तक कर्णाटकके व्यापारमें हाथ नहीं वंटाया। परन्तु जव उन्होंने देखा, कि प्रतिनिधि श्रीपतिरावके पर-लोक जानेके वाद कर्णाटक रक्षाकी कोई विशेष चेष्टा नहीं हो रही है तथा प्रदेशके मुखियोंने महाराष्ट्रीय स्रत्वापहरण-पूर्वक महाराष्ट्रीय वसूल करनेवालोंको मार भगाया है, तव उन्होंने सदाशिवरावको उसी साल कर्णाटकका विद्रोह-दमन करनेके लिये भेजा। सदाशिवरावके साथ गुद्धमें सावनुरके नवाव परास्त हो कर सन्धिप्रार्थी हुए। -मराठोंने वार्षिक ५० हजार रुपये आयका राज्यांश उन्हें दिया और अवशिष्ट समस्त सावनुर प्रदेश अर्थात् तुङ्ग-भद्रा नदीके उत्तराञ्चलस्थित समस्त प्रदेश अपने कब्जेमें

कर लिये । कर्णाटकमें खोई हुई महाराष्ट्रशक्तिकी पुतः प्रतिष्ठा कर जब सदाशिवराव सातारा लीटे, तब महा-राज शाहुने सन्तुष्ठ हो उन्हें पितृपद पर प्रतिष्ठित किया। चिमनाजी अप्पा वाजीरावके अधीन सहकारी सेनानायक थे। सदाशिवरावको बालाजीके अधीन वही पद दिया गया। सदाशिवराव भाव इतिहासमें 'भावसाहव' नामसे प्रसिद्ध हैं।

१७४७ ई०में वुन्देळखएड-राजाके साथ वाळाजीकी एक नई संधि हुई। उस संधिके अनुसार उन्होंने वाजी-रावके प्राप्त राज्यांश छोड़ कर छहसाळके पुतसे वार्षिक १६॥ लाख रुपये आयका प्रदेश पाया। पत्राके हीरक की खानसे जो आय आवेगी, उसका आधा उन्हें मिलेगा, यह स्थिर हुआ। अव उन्होंने राज्यके मीतरी संस्कारमें विशेष ध्यान दिया और इपकोंकी अवस्था उन्नत करनेके लिये विविध उपायोंका अवलम्बन किया। चोर डकैतोंके हाथसे प्रामवासियोंको वचानके लिये यथी-चित व्यवस्थाका प्रणयन और प्रवर्तन किया गया। दूसरे दूसरे विभागोंमें भी उनके यत्नसे बहुत कुछ संस्कार हुआ। राज्यमें तमाम उन्नतिके लक्षण दोख पड़ने लगे। इस समय उत्तर-भारतमें, दाक्षिणात्य और कर्णाटकमें कतिपय घटनाओंका सूत्वपात हो जानसे वालाजीको यहांका सब काम काज छोड़ कर वहीं जाना पड़ा।

१७४८ ई०में अहादशाह अव्यालीने पहली वार भारत-वर्ष पर आक्रमण किया और मुगलोंके हाथसे परास्त हो अपना सा मुंह लिये घर लौटा। इस घटनाके पक मास वाद महम्मदशाहकी मृत्यु हुई। उनके पुत अहादशाह दिल्लीके सिहासन पर अधिकृद हुए। इसको दो तीन मास पोछे १०४ वर्षकी उनरमें निजाम उठ मुख्क भी इस लोकसे चल वसे। अब राज्यका उत्तराधिकार लेकर उनके छह पुतोंमें विवाद खड़ा हुआ। इसी अवसरमें वालाजीने दाक्षिणात्यसे निजामका मूलोच्छेद करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु इस समय सातारामें जो कुकाएड चल रहा था, उसको लिये बालाजीको वहां जाना पड़ा।

१७४० ई०से ले कर १७४८ ई० तकके मध्य शाहुकी दो स्त्री और तीन वपका एक लड़का परलोक सिधार गया जिससे वे राज्यकार्यमें नितान्त उदासी हो पड़ । १८४८ ई०में उनकी प्रियतमा भार्या संगुणाकी मृत्युसे तो. उन पर शोकका पहाड़ ट्रूट पड़ा। वे पागळ हो गये। दिनों दिन उनका खास्थ्य खराव होने लगा। उनके चित्तकी स्थिरता विलक्कल जाती रही। एक दिन सामान्य कारणसे विरक्त हो उन्होंने वालाजीको पदच्युत करना चाहा और इस कारण उनसे वातचीत तथा भेंट मुला-कात करना विलक्कल वंद कर दिया। जब वालाजी अपना सर्वेख उपढ़ौकनखरूप उन्हें देनेको राजी हुए, तब शाहुने कोध शान्त कर उन्हें अपने पास चुलाया। पेशवा अकेले उनके सामने जा खड़े हुए।

शाहुने उन्हें देखते ही विना जूता पहने नंगे पांचसे अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वालाजी वड़े ही चतुर थे, सव वातें ताड़ गये और जूता अपने हाथ ले कर उनका पीछा किया। जब शाहुने उनको ओर घूम कर देखा, तव वालाजीने इसी समय दोनों जूते उनके पैरके समीप रख दिये। इस पर शाहु वड़े प्रसन्न हुए और उन्हें खपद पर प्रतिष्ठित किया।

उनकी मानसिक विकृति घीरे घीरे दूर होती गई। किन्तु सास्थ्यके विषयों वे किसी भी प्रकार उन्नति लाभ न कर सके। उस समय उनकी उमर केवल ६६ वर्षकी थी। जीनेकी कम आशा जान कर उन्होंने राज्यका वन्दोवस्त करनेके लिये अपने आठ प्रधानों और सरदारोंकी बुला कर कहा, "अपनी मृत्युके वाद कोल्हा-पुरकी तारावाईके पौत राजारामको में गोद लेता हूं। उन्हें राजा वना कर आप लोग विश्वस्तताके साथ राज्यपालन करना।"

यह संवाद सुन कर महाराजकी पटरानी सकदरवाई वड़ी असन्तुए हुईं। उन्होंने समका, कि तारावाईका प्रपील यदि राजा होगा, तो उनका प्रभुत्व विलक्षल जाता रहेगा। इस कारण, वे अपने मन मुआफिक एक वालकको गोद ले कर स्वयं राजकार्य चलानेकी चेष्टा करने लगीं। प्रतिनिधि जगजीवन राव और उनके आश्रित यमाजी शिवदेव उनके पक्षपाती हुए। कोव्हापुरके शम्माजीको भी उन्होंने अपने वलमें मिला लिया और तारावाईने अपने पुत्रको कैद करनेके लिये खण्डेराव न्यायाधीश महाशयको हुकुम दिया।

Vol. XIV. 101

वालाजी विश्वनाथ शाहुके मतानुसार कार्य कर रहे थे, इस कारण सकवरवाई उन पर जलने लगीं। अलावा इसके दरवारमें भी उनके अनेक दुश्मन थे।

महाराजका खास्थ्य दिनों दिन अधिक शोचनीय होने लगा। सकवरवाई वालाजीके पक्षके किसी भी व्यक्ति-को महाराजके साथ साक्षात् करनेको अनुमति नहीं देंगी, ऐसा आदेश उन्होंने प्रचार कर दिया। इस पर महाराज वड़े दुःखित हुए। उन्होंने सकवरवाईको समका कर कहा. कि वालाजीसे वढ़ कर क्षमताशाली और उपयुक्त व्यक्ति अभी राज्य भरमें कोई नहीं है। सुतरां उनके विरुद्ध कौन खड़ा हो सकता है ? किन्तु रानीने उस वात पर कान नहीं दिया। उन्हों ने प्रतिनिधि आदिको राजकार्यं चलानेमें विलकुल उपयुक्त समभा। शाहुने कहा था, "तुम्हारी चेष्टा सफल नहीं होगी। पेशवाकी क्षमता अतुल है, वुद्धिकौशल अन्नतिहत है। अतएव उन्होंकी सलाह ले कर कार्य करो।" रानी टससे मस न हुई। उन्होंने प्रतिशा की-"चाहे मृत्यु हो या चाहे उद्देश्यसाधन । यदि चेष्टा विफल हुई, तो पतिके साथ सती हो कर भावी अपमानकी शान्ति करू गी।" इसके वाद तारावाईके पौतको जालो राजाराम कह कर घोषणा कर दी। इधर उन्होंने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा की थी, कि बालाजी पक्षके कोई भी व्यक्ति अथवा वालाजी भी क्यों न हों, यदि राजपासादमें प्रवेश करे, तो गुप्तधातक द्वारा वह यमपुर भेज दिया जायगा । अव वालाजीकी अवस्था वड़ी सङ्ख्यापन्न हुई।

वालाजीका साहस भी अतुल था। ऐसी अवस्थामें भी वे वीच वीचमें महाराजके द्यौन कर ही लेते थे।
एक दिन परम विश्वासी गोविन्दराव चिटनवीसके साथ
सलाह करके महाराज शाहुने राज्यकी भावी व्यवस्थाके
सम्बन्धमें वालाजीके नामसे एक आदेश-पत लिखा।
उनके इस शेप आदेश-पतानुसार वालाजी वाजीरावने
समस्त महाराज्यसेनाका आधिपत्य और सैनापत्य प्राप्त
किया। सातारा और कोल्हापुरका राज्य जिससे एकत
न हो तथा राजारामको राज्याभिषिक कर यथानियम
राजकार्थ परिचालित हो, उसका भी आदेश इस पत्नमें
लिखा था। अलावा इसके हिन्दूधमेरक्षाके लिये तथा

हिन्द्राज्यको फैलानेके लिये जो कुछ करना चाहिये था, कुल अधिकार वालाजोको दिया गया। अनन्तर इस आदेश पत्रके अनुसार कार्य करनेके लिये उन्होंने पेशवाको शपथ खाने कहा। शपथ खानेके वाद पूर्वोक्त आदेशपत्र उनके हाथ सौंपा गया। इस आदेशपत्रके वलसे वालाजी वाजीराव शाहुको परलोकप्राप्तिके वाद मराठा-समाजके नेता हो गये।

शाहुके राज्यकी भविष्यत् अवस्थाके सम्बन्धमें ऐसा वन्दोवस्त करने पर भी सकवरवाई निश्चिन्त न वैठीं। उन्होंने पाशवशक्तिको सहायतासे तारावाईके पौतको राजच्युत करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु अपना संकल्प छिपानेके लिये उन्होंने तमाम घोषणा कर दी, कि महा-राजका शारीरिक अमङ्गल होनेसे वे उनकी अनुमृता हो कर पति-प्रेमका चरम दृष्टान्त दिखलायेंगी। महाराज शाहुने रानीके इस अभिसन्धिका हाल जान कर वालाजी-को सूचित किया, कि राज्यकी शान्तिरक्षाके लिये इस समय सैन्यसंग्रह करना आवश्यक है। वालाजीने वातकी वातमें ३४ हजार सेना इकट्टी कर छी । सकवरवाईने भी ७।८ हजार सेनाका संप्रह किया था। उन्होंने कोहा-पुरके शम्माजीको भी अपनी सहायतामें बुलाया। इधर महाराजका मृत्युकाल निकट आ गया । वे १७४८ ई०की ध्वीं दिसम्बर शुक्रवारको इहधामका परित्याग कर सुरधामको सिधार गये।

पेशवाने यह संवाद पाते ही पल भरमें प्रतिनिधि और उनके आश्रित यमाजी शिवदेवको केंद्र कर पुरन्दर नामक गिरिदुर्ग मेज दिया। कोल्हापुरके शम्माजीने ऐसे समयमें रानीसे सम्बन्ध रखना नहीं चाहा और उसका साथ उसी समय छोड़ दिया। रानीने राघोजी और गायकवाड़की अपनी सहायतामें बुलाया था, पर वे एक भी न आये। अब वालाजीने तमाम अपना प्रभुत्व फैला लिया। सकवरवाई किंकत्त्व्यविमृह हो गईं। महा-राजकी भविष्य वाणी सफल हुई। इसके वाद वालाजी और तारावाईकी अधीनता स्वीकार कर जीवित रहनेकी अपेक्षा उन्होंने मरना ही श्रेय समका। इस ख्यालसे उन्होंने वारोधर्मानुसार अनुष्ठता होनेका सङ्कल्प किया। इस अन्तिम कालमें उन्होंने पेशवासे मित्रता कर उन्हों आशी-

र्वाद-स्वरूप एक अंगूंठी और चौकड़ा नामक कर्णभूषण उतार कर दिया। वालाजीने रानीका ऋण परिशोध करनेकी प्रतिज्ञा की और अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी ही कर डाली। जो कुछ हो, शाहुका यथारीति सत्कार और रानीका सहगमन न्यांपार सुसम्पन्न हुआ।

इस प्रसङ्घर्मे प्राएट-डफ आदि अङ्गरेज लेखकीने वालाजीके चरित्र पर जो दोपारोपण किया है, उसका यहां पर संक्षेपमें उल्लेख और प्रतिवाद कर देना आव-श्यक है। पहले उफने कहा है, कि वालाजीने रानीको सती होनेके लिये वाध्य किया था। उन्होंने रानीके भाई-से कहा, 'यदि आपकी वहन महाराजकी सहमृता न होगी, तो आपके चंशमें कलङ्क लग जायगा और सारे महाराष्ट्र-राज्यकी मर्यादा घूळमें मिल जायगी।' अलावा इसके उन्होंने रानीके भाईको जागीर देनेका लोभ भी दिखलाया था। डफ साहवको यह तत्त्व कहां मिला, मालूम नहीं। महाराष्ट्रवखर (इतिहास)-के लेखकींका मत जो ऊपरमें लिखा जा चुका है उसे पढ़नेसे वाराजी पर दोधारोपण करनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वरत् रानीके स्वतः प्रवृत्त हो कर स्वामीका सहगमन करना उनके उस हताश अवस्थाका नितान्त स्वामाविक था, ऐसा ही वोध होता है। खामोका सहगमन उस समय महाराष्ट्र-समाज और राजदरवारमें अवश्य पालनीय धर्म समभा जाता था, सी भी नहीं। रानीका पड़पंत परि सफल होता, तो वे अपने पूर्वघोषित सहगमनका सङ्ख्य परित्याग कर सकती थीं, इसमें समाज उनकी निन्दा नहीं कर सकता था। जब उनकी चेष्टा विफल हो गई तव यदि वे पूर्वधोषणानुसार सहस्रता न होतीं, तो उनके नाममें वहा नहीं लगता सो हम नहीं कह सकते। किन्तु ये सव वार्ते वालाजीके समभाये विना वे नहीं समऋ सकती थीं, यह हमें विश्वास नहीं होता। वरत सकवरवाई जैसी अभिमानिनी और उद्यकांक्षासम्पन्न रमणीने इष्टसाधनमें असमर्थं होनेसे अवमानना सहनेकी अपेक्षा खामीके साथ सती होना अच्छा है, ऐसी प्रतिज्ञा यदि की भी होगी, तो कोई आश्वर्य नहीं ।

इसके बाद प्राएट डफ मिहोदयने लिखा है, कि देशके प्रकृत इतिहासमें अभिन्न व्यक्तिगण इस घटनाको घृणाकी

दृष्टिसे देखा करते हैं। उन लोगोंके मतसे ऐसे सहगमनमें वाध्य करतेको अपेक्षा सकवरवाईको किसी भी दोपसे कलंकित कर मार डालना उचित था। एक दल वालाजी-का शतु था। क्या डफ महोदयने उसी दलको इतिहास-तत्त्वज्ञ बतलाया है ? जनसाधारणका मत वे किस प्रकार जान सके। किसी भी महाराष्ट्रीय रचनामें ऐसा भाव प्रकाशित नहीं हुआ है । अन्यान्य स्थानींमें भी इसी प्रकार जनसाधारणके मतकी दुहाई दे कर डफ महोदय अत्यन्त अङ्गत सिद्धान्तींकी ख्यापना करनेमें प्रयासी हुए हैं। उदाहरणस्वरूप एक घटनाका उत्लेख करते हैं। उन्होंने अपने प्रन्थमें शिवाजी-चरित्रके समा-लोचना-प्रसङ्गमें लिखा है, कि चन्द्रराव मोरेकी हत्यामें जो शिवाजीका दोष था, यह वात सभी महाराष्ट्र-वासी स्वीकार करते हैं; किन्तु अफजल खाँकी हत्यामें शिवाजी-का दोष था, यह बात कतिपय विश्व व्यक्तियोंको छोड़ कर जनसाधारण स्त्रीकार नहीं करते ! किन्तु महाराष्ट्रीय किसी भी प्रंथमें ऐसे भावका आभास नहीं है। फिर खजातीय हिन्दूराजाकी शिवाजीने हत्या करवाई थी; यह वात खीकार करनेमें जो नहीं संकुचते, वे विधर्मी अफ-जलखाँको हत्यामें शिवाजीको कपरता खीकार नहीं करते, इसीको किस प्रकार सङ्गत समक कर विश्वास कर सकते हैं ? वरन् महाराष्ट्रीय-लेखकके प्रन्थमें उक्त मही-दयकी उक्तिका विरोधी विवरण ही पाया जाता है। इस कारण यहां भी वालाजीके सम्वन्धमें वे विज्ञ महाराध्ट्र-वासियोंकी दुहाई दे कर जिस सिद्धान्तकी स्थापनामें प्रयासी हुए हैं, उसके यथार्थ्य-विषयमें हम लोगोंको घोर सन्देह है । सकवरवाईके भाईको जागीरका प्रलो-भन दिया गया था, इस विषयमें महाराष्ट्रीय लेखक जव नीरव हैं, तव जब तक कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता, तव तक उसे भी हम लोग विश्वास नहीं कर सकते।

शाहुके अन्तिम आदेशपतके विषयमें भी अंगरेज इतिहास लेक्कोंने नाना प्रकारका सन्देह किया है। वह पत यथाथेमें शाहु महाराजके हाथका लिखा था वा नहीं, उस विषयमें उन्होंने कहा है, कि धूर्च ब्राह्मण वालाजी वाजीरावने कौशलसे समस्त राज्यभार अपने हाथ कर

लिया था। वे लोग ऐसा जो कहते हैं, उसका कारण भी हमारी समक्तमें नहीं आता । पेशवाओंके प्रति स्वामाविक विद्वेप रखनेके सिवा और इसका कोई कारण हमारे ख्यालसे नहीं हो सकता है। क्योंकि, शाहुके सन्तानादि न रहने तथा राजवंशमें राज्यशासनयोग्य कोई व्यक्ति न होनेके कारण शाहुके पक्षमें अपने आठ प्रधानोंके ऊपर राज्यका भार सौंप कर दत्तकप्रहणके सिवा और दूसरा कोई उपाय नहीं था। आठ प्रधानोंके मध्य पदमर्यादा, कार्यदक्षता और क्षमतामें पेशवा ही वह चह थे। अतः उनके ऊपर राजकार्य देखनेका कुछ भार सौंपना भी शाहुके पक्षमें स्वाभाविक था। उस समय भारतवर्षकी राजनीतिक अवस्था जैसी थी, कि वालाजी जैसे व्यक्तिको छोड़ कर यदि किसी दूसरे पर राज्यका कुल भार शाहु महाराज सौंप जाते, तो यह ध्रुव था, कि थोड़े ही दिनों-के अन्दर राज्य चौपर हो जाता। यही सीच विचार कर शाहुने वालाजी पर राजकार्यका कुल भार सौंपा था। सकवरवाईकी आकांक्षा उच्च होने पर भी शाहुको यह अच्छी तरह मालूम था, कि विस्तीर्ण महाराष्ट्रराज्य वह सुचारुद्धपसे न चळा सर्जेगी, राज्यमें तमाम अशान्तिका राज्य हो जायगा । इस कारण उन्होंने शान्तिरक्षाके लिये सेनासंग्रहका हुकुन दिया था। उसके वाद शाहुका दत्तकपुत जैसा अकर्मण्य निकला, कि यदि कोई राज्यपरिदर्शक नियुक्त होते, तो वे उनके हाथके खिलीने हो जाते। अतः उस विषयमें वालाजीका दोष देना वा उन्हें राज्यापहारक कहना भी युक्तिसङ्गत नहीं है।

शाहुकी मृत्युके वाद वाळाजी तारावाईके पाँत राजा-रामको साताराके सिंहासन पर विठा कर उनके अभि-प्रायामुक्षप कार्य करने छगे। राज्यकी भावी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार करनेके छिये शाहुकी जीवहशामें ही राधीजी भोंसछे, गायकवाड़ और सेनापित दभाड़े आदि सरदारीके यहां बुछावा मेजा गया। परन्तु एक राधीजी-को छोड़ कर और कीई भी इस समय नहीं आये। राजारामके अभिवेककाछमें एक राधीजी और जागीर-दारोंके सिवा सातारामें कोई भी उपस्थित नहीं हुए। महाराज शाहु चिटनवीस और पेशवाको ही सभी राजकार्य-परिचाछनका भार दे गये थे। कोव्हापुरपित श्राम्माजीके मयसे राजारामका अपनी मौसीके घरमें पालन पोषण हुआ था। राज्याभिषेककालमें उनकी अवस्था ३० वर्षकी हो गई थी। अधिक काल तक देहात् में रहनेके कारण उन्हें राजकार्यका विलक्ष ज्ञान नहीं था। इधर महाराष्ट्र-साम्राज्य आधा भारतवर्ष तक अपना प्रभुत्व जमाये था। भोंसलेकी उमर उस वक्त ढल गई थी, दूसरे वे वङ्ग-विहार और उड़ीसा है कर व्यस्त थे। गायकवाड और दमाडे साताराके राजकार्यकी अवेक्षा थपनी अपनी जागीरकी उन्नति करना ही अच्छा समभते थे । अतः पेशवा वाष्ठाजो वाजीरावके कंधे पर विस्तीर्ण महाराष्ट्र-साम्राज्यका भार पड़ा। नये राजाकी अमल-दारीमें वालाजीने राघोजी और दूसरे जागीरदारोंकी नई सनद दी। महाराज शाहुने राज्यकी जैसी व्यवस्था करने कहा था, वालाजी उसी भावमें उसे सम्पन्न करने लगे। इस समय पेशवा विशेषतः पूनामें ही रहते थे। अतः उसी स्थानमें रह कर वे जिससे अधिकांश राज-कार्य चला सकें, चिटनबीस और राघोजीकी सलाहसे उनकी व्यवस्था कर ली। इसके वाद जी सव दुर्घटना धरीं उनसे साताराके साथ महाराष्ट्र-राज्यका सम्बन्ध वहुत कुछ हट गया और पूना ही महाराष्ट्रराज्यका केन्द्र-स्वरूप हुआ।

राजारामकी अकर्मण्यतासे वालाजीने महाराष्ट्र-समाजका नेतृत्व पा कर सारे भारतवर्षको जीतने, मुसलमान-शासनकर्ताओंका उच्छेद करने और देशीय हिन्दूराजाओंको मराठाकी अधोनता स्वीकार करानेका सङ्कल्प किया—-अन्ततः उनके लिखित पतादि पढ़ने और उनके कार्यकलापकी पर्यालोचना करनेसे ऐसा ही प्रतीत होता है।

शाहुकी मृत्युके समय सिन्दे और होळकर वालाजी-के निकट सातारामें उपस्थित थे। राजारामके निर्विच्न सिहासनाकड़ होने पर बालाजीने जब जागीरदारोंको नई सनद कर दी, उस समय मालवकी आयको सिन्दे और होलकरके वीच वांट दिया। मालवकी आय कुल डेड़ करोड़मेंसे होलकरको ७४॥ लाख और सिन्देको ६५॥ लाख रुपये आयको जागीर सेनाके खर्चके लिये दी और उन्हें उत्तर-भारत जानेका फरमान मिला। मालव जाते समय उन्होंने निजामके पुतको दक्षिण आकटको छड़ाईमें लिप्त देख खान्देशके अन्तर्गत धोड़प आदि कतिपय दुर्ग , अपने हाथ कर लिये । इधर गुजरातका राजस वहुत दिनों-से दभाड़े नहीं देते थे, इस कारण वालाजीने रघुनाथ-रावको उसे वस्ल करनेके लिये भेजा। गुजरातका बजाना वहुत दिनोंसे वाकी पड़ गया था । इधर निजाम उल्-मुल्कको मृत्युके समय उनके राज्यमें गोलमालके सुयोग पर वालाजीने महाराष्ट्रराज्य फैलानेका जो सङ्कल्प किया था, उसे वे महोराज शाहुके मृत्युकालीन गोलमालके कारण कार्यमें परिणत न कर सके। अभी राजारामकी सातारामें प्रतिष्टित कर उन्होंने निजामके काममें हाथ डाला। इसी वीच निजामके दूसरे छड्के नासिरजङ्गने पिताकी गई। पर अधिकार जमाया। निजामके वड़े छड़के उस समय दिल्लीके काममें उलके थे इस कारण यथासमय दक्षिणात्य नहीं पहुंच सके। इधर निजामके पांच पुत्रों और उनके भतीजे मुजफ्फरजङ्गमें आत्म-विद्रोह खड़ा हुआ। फरा-सियोंने मुजफ्तरका और अंगरेजोंने नासिरका साथ दे कर अवना मतलव निकाल लिया। गुप्तधातकके हाथसे दोनों प्रतिद्वन्द्वी मारे गये। पीछे फरासियोंने निजामके तीसरे लड़के सलावतजङ्गको सिहासन दखल करनेमें सहायता पहुंचाई। इसी सुअवसरमें अंगरेज और फरासी-ने करमएडळके किनारे अपनी गोटी जमा ली। बालाजीने भी इस समय महाष्ट्रराज्यको उन्नतिके शिखर पर पहुंचते का सङ्ख्य किया।

सातारामें उनके श्रांतुओंने इस समय सलावतजङ्गकों वालाजीके विरुद्ध खड़े होनेके लिये उन्हेंजित किया। वालाजीने सलावतजङ्गका दमन करनेके लिये निजामके वड़े लड़के गाजीउद्दीनको दिल्लीसे दाक्षिणात्य युलाने और उन्हें निजामका सिहासन दिलानेका वचन दिया। गाजी-उद्दीनको इस वातको खबर देनेके लिये वालाजीने सिन्दे और होलकरके पास पत्न मेजा। उस समय वेदोनों उत्तर-भारतमें थे। सलावत्को भय दिखा कर उनसे अर्थ और राज्यांशमहण करना ही वालाजीका प्रधान उद्देश्य था। इस कारण उन्होंने सिन्दे और होलकरको पत्न लिखा था, कि वे गाजीउद्दीनको दाक्षिणात्यकी स्वेदारी देनेका हरगीज वचन न देवें, उन्हें केवल

आशामें भुला कर दाक्षिणात्य भेज देनेकी कोशिश करें।

पहले सलावत्को उरानेके लिये वालाजीने १७५१
ई॰के जनवरी मासमें औरङ्गावादके निकट उन पर सहसा
आक्रमण कर दिया। पीछे उनसे १५ लाल रुपये
करखरूप वस्ल कर पुनः कृष्णानदीके किनारे, रायचूड़के
निकट उन पर चढ़ाई कर दी और गाजीउद्दीनको सिंहासन छोड़ देनेके लिये उनसे अनुरोध किया। इस पर
सलावत् जङ्गने सातारा जा कर चहांके राजपुरुषोंसे
सहायता मांगनेका विचार किया था। परन्तु जव उन्होंने
देखा, कि वालाजी गाजीउद्दीनके विलक्षल पक्षपाती हैं
और लड़ाईका विराट आयोजन कर रहे हैं, तव लाचार
हो कर उन्हें सन्धिके लिये प्रार्थना करनी पडी।

इघर उत्तर-भारतमें सिन्दे और होलकर रोहिलोंके साथ छडाईकी तैयारी कर रहेथे। दिल्लीश्वरके तदानीन्तन वजीर अयोध्याके नवाव सफद्रजङ्गके साथ रोहिलोंकी घोर शबुता चल रही थो। रोहिलोंने वार वार चढाई करके वजीरको तंग कर डाला। उन्होंने सिन्दे और होलकरकी सहायतासे उन लोगोंका दमन करना चाहा । वजीर सफदरजङ्गके वुलानेसे १७५१ ई०के प्रारम्भमें सिन्दे और होलकर गङ्गा और यमुनाके दोआवमें पहुंचे । यहां उन्होंने दोआवके आस पास प्रदेशोंको तहस नहस कर डाला। ५०।६० हजार रोहिला-सेना मारी गई । इस प्रत्युकारमें वजीरने दोआवका एक अंश सिन्दे और होलकरको अलावा इसके लूटका माल, हजारों घोडे हाथी और धन उनके हाथ लगा। यह संवाद पा कर वालाजीने सिन्दें और होलकरकी भूरि भूरि प्रशंसा की। मराठी-सेनाने गङ्गा यसुना पार कर पठानोंको जीता और वजीरकी भली भांति रक्षा की, यह सुन कर वे वड़े प्रसन्न हुए। किन्तु उनके ख्यालसे वजीरके लिये अपनी जान लड़ा कर रोहिलोंका सर्वनाश कर देना अच्छा नहीं हुआ। रोहिलोंका कुछ दमन कर वजीरसे पुरस्कार और रोहिलोंके साथ सन्धिस्थापनपूर्वक उनसे दोआवका एक अंश प्रहण करना हो इस क्षेत्रमें उचित था। यह वात भी उन्होंने सिन्द्रे और होलकरको सचित की। फलतः इस क्षेत्रमें रोहिलोंके साथ सन्धि न करके उन्होंने जो वजीरसे दोआवका एक अंश प्रहण किया (जो पीछे राजनीतिके हिसावसे दोषावह ठहराया गया था) उसका फल पानीपतकी लड़ाईमें सिन्दें और होलकरको अच्छी तरह मिल गया।

रोहिला-दमनमें लिप्त रहनेके कारण उन दोनोंको गाजीउद्दीनके साथ दाक्षिणात्य आनेमें विलम्ब होने लगा। इधर वालाजी वाजीराव रायचूड़के निकट सला-वत्जङ्गको आक्रमण कर उनसे अर्थ और राज्यांश पानेकी चेहा कर रहे थे। इसी समय सातारासे एक भयङ्कर विश्वका संवाद आया। सुतरां सलावतसे दो लाख रुपये ले कर ही वालाजीको वड़ी व्यन्नतासे सातारा जाना पड़ा।

राजारामके सातारा सिंहासन पर अधिकढ़ होनेके वाद तारावाईने पेशवा वालाजीको पदच्युत करके राज-कार्यकी कुल क्षमता अपने हाथ ले ली और पेशवा-पद पर किसी दूसरेको नियुक्त करनेकी कोशिश करने लगी। तारावाई जैसी वृद्धिमती रमणी थी, वह पाठकोंसे छिपा नहीं है। इस रमणीने शाहुको 'जालशाहु' प्रतिपन्न करनेके लिये और उनका राज्याधिकार लोप करनेके लिये कैसी चेप्रा को थी, वह पहले ही कहा जा चुका है। राज्याद्धढ होने पर भा उन्होंने अपना दाव निकालनेमें कोई कसर उठा न रखी थी। इस कारण १७३० ई०में उन्हें पकड कर सातारा-दुर्ग में कैद कर रखा था। अभी ७० वर्षकी उमरमें मुक्तिलाभ करके वे फिरसे अपना अक्षण्ण प्रभुत्व जमानेकी कोशिश करने लगी। प्रतिनिधि जगजीवनराव और वमाजी शिवदेवको वालाजीने पहले उन्होंने अभी तारावाईका ही मुक्तिदान दे दिया था। साथ दिया और उन्हींकी वातमें पड कर उन दोनोंने युद्धकी घोषणा कर दो। वालाजीके माइयोंके मध्य जिससे गृहविवादका सुत्रपात हो जाय और सिन्दे तथा होलकर जिससे उनका पक्ष छोड़ कर तारावाईके पक्षमें मिल जांय एवं राघोजी भो सले जिससे वालाजीका पक्ष छोड़ कर मुगलोंका पक्ष लेवें, इसके लिये वे जी जानसे कोशिश करने लगीं। निजाम सलावतजङ्गको भी तारावाईने अपनी सहायतामें बुछाया था । किंतु वालाजीके श्रेष्ठ राजनीति कौशलसे तारावाईकी कुल चेषा व्यथ गई।

वालाजीने पहले प्रतिनिधिका विद्रोह-दमन करनेके लिये भाव साहवको दलवलके साथ भेजा। राजाराम अपनी इच्छासे इस अभियानमें भाव साहवके सहायक रूपमें गये थे। तिस पर भी प्रतिनिधि संधि करनेको विलक्कल राजी न हुए। आखिर सङ्गोला नामक स्थानमें दोनों पक्षमें मुठमेड हो गई। प्रतिनिधि और यामाजी शिवदेव हार खा कर भागे। पेशवा और तारावाईके वीच जो संघर्ष चल रहा था उसका परिणाम शुभकर नहीं होगा, यह सोच कर तथा साम्राज्य-शासनका गुरुत्व अनुभव कर राजारामने इस समय पेशवाकी समस्त राजकार्य-परिचालनका सनद्पत प्रदान किया और आप वार्षिक ६५ लाख रुपये आयका प्रदेश ले कर निर्विध-पूर्वेक काळ व्यतीत करना चाहा । सङ्गोळा-दुर्गेमें ही इन सब विषयोंका शेष बन्दोवस्त करके वे सातारा लौटे। गुजरातमें दभाड़े का शासनाधिकार था। किंतु परलोकगत तिम्बकराव दभाड़े के पुत बड़े ही अक्रमण्य थे, इस कारण गुजरातमें अकसर अशांति हुआ करती थी। इस वातका तथा वाकी खजानेका उल्लेख कर भाव साहबने इस समय वालाजीके नामसे गुजरातके अर्द्धा श-की सनद्के लिये प्रार्थना की । राजारामने उनकी यह मांग भी पूरी की। कर्णाट-अञ्चलमें वावूजी नायक स्वे-दार थे। उपढोकन और अधिक राजस्व देनेमें स्वीकृत हो कर पेशवाने इस समय वहांकी स्वेदारी भी राजाराम-से ले ली। इस पर ताराबाई वड़ी असंतुष्ट हुई और उन्हें स्वाधोन भावमें राजकार्यका परिचालन करनेके लिये उपदेश देने लगी। किंतु जब राजाराम ऐसा भारी बोक्त अपने शिर छेनेसे इनकार चछे गये, तब तारावाईने उन्हें सातारा-दुर्गमे कैद किया (२४ नवम्बर १७५०ई०)। पेशवाने उन्हें जो जागीर देनेका वचन दिया था, वह न दे कर वार्षिक ६५ रुपये नगद ही देनेकी व्यवस्था कर दी । इन सव कारणोंसे सातारा-सिंहासनका माहात्म्य बिलकुल घर गया।

राजारामको कैंद्र करके ताराबाईने वहांके सेनापितको कहला मेजा, "सातारामें जितने कोङ्कणस्थ ब्राह्मण (बालाजी पेशवा कोङ्कणप्रदेशस्थ ब्राह्मण थे) हैं उन्हें भोली वरसा कर सातारासे मार भगाओ।" केवल यही

नहीं, उन्होंने दामाजी गायकवाड़को भी लिखा कि, "मराठा-क्षित्रयका राज्य ब्राह्मण हथिया रहा है! इस समय उसकी रक्षा करनेमें आपको सहायता देना कर्तथ्य है।" यह एत पाते ही दामाजी दलवल समेत साताराकी ओर चल दिये।

इधर निजाम-उल-मुल्कके तीसरे लड़के सलावत्जङ्ग तारावाईके अनुरोधसे उन्हें सहायताके लिये सातारा जा रहे थे । वालाजीने कृष्णानदीके कितारे उन्हें रोक रखा। सळावत् सन्धिप्रार्थी हुए। इस समय दामाजीके सातारा जानेकी खबर वालाजीके कानमें पडी। अतः उन्होंने १२ लाख रुपये ले कर सलावतजङ्गसे सन्धि कर और वड़ी तेजीसे गायकवाड़के विरुद्ध थाता की । पहले उन्होंने साताराकी रक्षाका प्रवन्य किया। तारावाई जिससे दुर्गत्याग न कर सकें, उसका भी वन्दोवस्त उन्हें करना पडा। इधर गायकवाड़को वाधा देनेके लिये भी वे तैयार हो गये। सलपीघाटके निकट दोनोंमें युद हुआ। पहले वालाजीकी सेनाके पीठ दिखाने पर भी पीछे दमाजी गायकवाड़को ही पराजय हुई। गायकवाड़ दूसरी राहसे भग कर सातारामें तारावाईसे जा मिले। यहां महादजी अम्वाजी पुरन्दरेने पेशवाकी ओरसे छड़ कर उन्हें परास्त किया। पेशवाके भयसे प्रतिनिधिको अव गायकवाड्की सहायता करनेका साहस नहीं हुआ। अतएव गायकबाड़की लाचार हो कर पेशवाके साथ सन्धि करनी पड़ी।

दसाड़े के यहां गुजरातका राजस यहुत दिनों से बाकी पड़ गया था। दमाजी दमाड़े के मातहत थे, इस कारण बालाजीने अभी उनसे राजसके लिये प्रार्थना की। दमाजीके इनकार चले जाने पर बालाजीने उनके साथ युद्ध ठान दिया और अकारण खून खरावीके बाद उनकी सेना पर हटात् आक्रमण कर उन्हें केंद्र कर लिया। (१७५१ ई०के मार्च मासमें) गुजरातके खजाने के लिये दमाड़े की भी कारागारकी हवा खाने पड़ी। पीछे जब उन दोनोंने वालाजीकी शरण ली, तव उनहें तरस आया और फिर जो कुल अपराध था, सो माफ कर दिया। १७५१ ई०के नवस्वर मासमें दमाड़े और १७५२ ई०की २५वीं फरवरीकों दमाजी कारागारसे

मुक्त हुए। तारावाईको राजवंशीया जान कर वालाजी उन्हें कैद नहीं किया, वरन् वे मीठी मीठी वार्तोसे प्रसन्न करनेकी कोशिश करने लगे। परन्तु इससे कोई भी फल न निकला। अव वालाजी साताराकी तारावाई को छोड आए पूना छोटे। इस समयसे तारावाईको कठो-रतासे राजाराम सातारा-दुर्गके एक आद्र प्रकोष्टमें कदन्न सा कर रुग्नदेहसे कालयापन करने लगे। १७६१ ई०के दिसम्बरमासमें तारावाईकी मृत्यु होने पर वालाजीके पुत पेशवा माधवरावने उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया। इसके पहले वालाजीने कई वार उन्हें मुक्त करनेके लिये तारावाईसे अनुरोध किया था। परन्तु वृद्धा टस-से मस नहीं हुई। प्राएट डफका कहना है, कि राजाराम-को मुक्त करना वालाजीकी आन्तरिक इच्छा न थी और राजाके छुटकारा पाने वर भी वालाजीने उन्हें सातारा नगरके वाहर खच्छन्दाचरणका अधिकार नहीं दिया था। पेशवाका ऐसा व्यवहार सामान्य नीतिकी दृष्टिसे दूवणीय होने पर भो राजनीतिके हिसावसे वह विशेष दीर्पाई नहीं समका जायगा। क्योंकि दुर्वल और अकर्मण्य व्यक्तिको राजपद पर प्रतिष्ठित रख कर सुनीतिकी मर्यादा रक्षाकी अपेक्षा क्षमताशाली व्यक्तिके हाथ राज्यभार रहना राज्यके पक्षमें अधिकतर कल्याणकर है।

तारावाईके विश्वव-दमनमें जव वालाजी वाजीराव विशेष व्यस्त थे, उस समय उनके घरमें जो विवाद उपस्थित हुआ, उसका हाल यहां देना आवश्यक है। रामवन्द्रवावा नामक एक व्यक्तिको वालाजीरावने राणोजी
सिन्देके दीवानी-पद पर नियुक्त कर दिया था। १७५० ई०
राणोजीको मृत्यु होने पर उनके वड़े लड़के जयप्पा सिन्देका दीवानी-पद पानेके लिये रामचन्द्रवावाने भावसाहवको लाखसे ऊपर मुद्रा भेंट हे कर पेशवाके निकट अपना
पक्ष समर्थन करनेके लिये कहा। जयप्पाके साथ राम
चन्द्र वावाको पटती नहीं थो और न होलकरके साथ
उनका सद्भाव ही था। अतः वालाजीने रामचंद्र वावाको
पदच्युत किया। इस काममें भावसाहवकी वात न
रहनेके कारण उन्होंने क्षुत्य हो रामचंद्ररावको अपने
दीवानी-पद पर नियुक्त किया। मल्हारराव होलकरकी भी रामचंद्रवावाकी पदच्युतिमें सलाह थी, इस

कारण उन पर भी भावसाहवका क्रोध था। इस विद्वेष-के फलसे आखिर पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्र-वैभवकी पूर्णाहृति हुई।

रामचंद्रवावाने इस अपमानका वद्छा छेनेके छिये भावसाहवको वालाजीके निकट पेशवाका प्रघानं कार्य-निर्वाहक पद मांगनेके लिये सलाह दी । महदाजीएंड पुरन्दरे उस समय पेशवाके मातहत थे । पुरन्दरे-परि-वारके साथ वहुत दिनेंसि पेशवा-चंशकी दोश्ती चली आती थी। अतएव उन्हें पद्च्युत करनेकी वालाजी विलकुल राजी न हुए । इस पर रामचंद्रवावा कोल्हा-प्रके शस्माजीसे भाव साहवके नाम पेशवापद-ग्रहणका आमंत्रणपत लाये। भाव साहवको कोल्हापुरपति द्वारा पेशवापद मिलनेसे वे वालाजीके एक प्रतिद्वन्द्री हो जांयगे और उसके फलसे राज्यनाश होनेकी भी सम्भावना है, यह जान कर खदेशमक महदाजीपंड पुरन्दरेने अपना पद त्याग कर उस पद पर भावसाहवको नियुक्त करनेके लिये वालाजीसे अनुरोध किया । वालाजीको भी वही करना पडा । महदाजीके आत्मत्यागके फलसे इस प्रकार पेशवाका गृहविवाद शांत हुआ। इसके वाद वालाजीने पुरन्दरेको एक दल सेनाका अधिनायक वनाया।

रामचंद्रवावाके साथ होल्करके दीवान गङ्गाधर यशोवंतका अच्छा सञ्जाव था। इस कारण वे उनकी मध्यस्थतामें मव्हारराव होव्करको तारावाईके पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। सिन्दे को भी इसी प्रकार तारावाईके पक्षमें खींचनेको चेष्टा की गई थी। वे दोनों ही पेशवाके विश्वस्त सेवक थे। विशेषतः सिन्दे की प्रभुभक्ति असाधारण थी, इस कारण रामचंद्र-वावाकी वह चेष्टा सफल न हुई। फलतः राजारामके सिहासनारुढ़ होनेके वाद दो एक वर्षके भीतर तारावाईने वाळाजीको तंग तंग कर डाळा । किंतु वाळाजो वाजी-रावने असाघारण धेर्य, साहस और नीतिकौशळसे सभी विपट्से उत्तीर्ण हो तारावाईके समस्त सहायताकारियों-को दमित और वशीभूत किया। अव तारावाई निरु-पाय हो सातारामें शान्तभावसे रहने छगीं । पेशवा वालाजीने उनके निर्वाहके लिये ६०।७० लाख रुपये आयको एक जागीर उन्हें दी थी। किन्तु उसकी भी

यथारीति व्यवस्था करना उनके लिये असम्मव हो गया। वादमें उन्होंने १७५५ ई०में पेशवाको जागीर लौटा दी और नगद रुपये देनेका अनुरोध किया। सारे महा-राष्ट्र-साम्राज्यका प्रमुत्व प्रहण करनेके लिये जो पेशवाके विरुद्ध हो गई थीं, उनकी इस प्रकार अक्षमता देख लोगोंकी उनके प्रति भक्ति घट गई, इतना ही कह देना पर्याप्त है। तारावाईका विष्ठव-दमन करनेके लिये वालाजीको २५ लाख रुपये कर्ज ले कर १५ हजार नई सेनाका संप्रह करना पड़ा था। इतनी सेनाके अलावा उन्हें और भी ४० हजार सेना थी।

तारावाईके उद्भावित अंतर्बिष्ठवके निवारणकालमें वालाजी वाजीरावके प्रधान सहाय सिन्दे और होलकर रोहिला-दमनमें उलके हुए थे। इस कारण कई वार बुळावा जाने पर भी वे दोनों उनकी सहायतामें उपस्थित न हो सके थे। उन छोगोंको दूरदेशगत देख कर सळावत् जङ्गने फरासियों से सहायता पा कर वालाजी वाजी-राव पर आक्रमण कर दिया। सातारेके विपक्षियों का उस समय अच्छी तरह दमन हो चुका था, इस कारण वालाजीने निभीकचित्तसे उनका सामना किया। सलावत आग लगा कर समस्त देशों को तहस नहस करते हुए पूनाकी ओर अग्रसर हुए। तलेगांव नामक स्थानके निकट दोनों पक्षकी मुठभेड़ हो गई। प्रथम दिनके युद्धमें मराठे लोग चन्द्रग्रहण (१८५१ ई० २२ नवम्बर)-के उप-लक्ष्में स्नानादि कर रहे थे। इसी समय रातको फरासी-सेनापति वूसीने सहसा उन पर आक्रमण कर छतभङ्ग कर डाला । दूसरे ही दिन मराठोंने इस अप-मानका वद्ला ले ही लिया। इस संघर्षमें सलावत्की वहुतसी सेना मारी गई। फरासी-सेनापति वृसीके तोप-खानेकी छांहमें रह कर मुगलसेनाने अपनी जान वचाई। तिम्बक एकयोटी नामक किसी मराठा-सेनापतिने इस युद्धमें असाधारण वीरता दिखा कर 'फांफड़े' अर्थात् महावीरकी उपाधि पाई थी। इस समय सलावत्जङ्गकी खवर लगी, कि खान्देशका तिम्बक नामक प्रसिद्ध दुर्ग वालाजीके किसी सरदारसे अधिकृत कर लिया गया है। अतः उन्होंने उसके उद्धारके लिये अहमदनगरकी और याला कर दो। किन्तु राघीजी भोंसलेने पूर्व दिशासे

उन पर आक्रमण कर दिया । वहुत दिनोंसे वेतन न मिलनेके कारण सेनाविद्रोही हो गई थी जिससे सलावत्जङ्गको वालाजीके साथ सन्धि करके हैदरावाद लौटना पड़ा । इसके कुछ दिन वाद ही उनके मन्त्री रामदासर्यएड (राजा रघुनाथदास) विद्रोही सैनिकोंके हाथसे मारे गये (१७५२ ई०को ७वीं अप्रिल)। इसी रामदासपएडके भतीजेको तारावाईने वालाजी वाजोरावके पद पर पेशवा नियुक्त करनेका सङ्कर्म किया था।

सलावत्जङ्गको दुर्वल वनानेके लिये वालाजीने पहले ही भेदनीतिका अवलम्बन कर रखा था। हैदरावादके दरवारमें वैदेशिक फरासियोंकी प्रवलता देख सर लस्कर और निम्चालकर आदि निजामके मराठा-सरदार वहें असन्तुष्ट हुए थे। वालाजीने उन्हें समन्ता कर कहा, कि गाजीउद्दोनको दाक्षिणात्य हैदरावादमें ला सकनेसे ही फरासियोंका भाग्यविपर्यंथ होगा और मराठा की प्रवलता वढ़ेगी। इस वात पर निजामके मराठा-सर-दारों ने वालाजीका पक्ष लिया।

इधर इन सव कामों से वालाजी वड़े ही, ऋणप्रस्त हो गये। एक तो अर्थामाव था ही, दूसरे तारावाईके पड़यन्त्रकी आशङ्कासे वालाजी गयासुद्दीनको यथा-सम्मव शीघ्र ही दाक्षिणात्य लानेके लिये सिन्दे और होलकरको पुनः पुनः पत्र लिखने लगे। वे लोग भी सफदरजङ्गकी सहायतासे वादशाहसे गाजी नाम पर दाक्षिणात्यकी स्वेदारो सनद ले कर घोर वर्षाकालमें औरङ्गावाद पहुंचे। पेशवा भी उनका खागत करनेके लिये वहां ससैन्य उपस्थित थे। उस समय वालाजीके पास कुल डेढ़ लाख सेना थी। गाजीके हैदरावादमें प्रतिष्ठित होने पर वालाजी उनसे पारिश्रमिक खद्भप तासीसे गोदावरी तक वेरारके पिष्ट्यमाञ्चलस्थित समस्त मुभाग पावेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

पेशवाकी सैन्यसंख्या और गाजोउद्दीनकी आगमन-वार्त्ता सुन कर सलावत्जङ्ग दंग रह गये। पेशवाके साथ सन्धि करनेके लिये उन्हों ने दृत भेजा। इसी वीचमें निजाम-उल-मुल्कके छोटे लड़के निजाम अलीकी माताने सहसा गाजीको विष खिला कर मार डाला (१७५२ ई०की १२वीं सितम्बर)। इस पर पेशवा और सिन्दे होल्कर वड़े विषण्ण हुए। गाजीको मृत्यु होने पर भी उन लोगों की उद्देश्य सिडिमें कोई वाधा न पहुंची। कारण, इस समय पेशवाकी अधीनतामें प्रायः सभी मराद्रा-सरदार इस प्रकार समन्नेत हो गये थे, कि गाजीके अङ्गीकृत प्रदेश यदि मराठोंको न मिला, तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा, ऐसा ही मालूम पड़ा। फरासो-सेनापति वृसी भी मराठों का सैन्यसंब्रह देख कर डर गये और सलावत्जङ्गको सन्धि करनेकी सलाह दी। बालाजीको बेरार, तासी और गोदावरीके मध्यवत्तीं सभी प्रदेश विना युद्धके मिले।

इसके नाद गुजरात पर अधिकार करनेके लिये वालाजीने रचनाथरानको भेजा। इस बार गुजरात जा कर रघुनाथ कुछ भी न कर सके। अब सुरत जीतनेकी उनकी इच्छा हुई। किंतु ताराबाईके गोलमालके कारण बालाजीने उन्हें शीघ्र ही छीट आनेका हुकुम दिया। अतः दूसरीः बार वे राजासमकी प्रदत्तः सनदके अनुः सार गुजरातका अद्धैभाग जीतनेके लिये १७५१ ई०क्रे अमतूबरमासमें भेजे गये। किंतु इसके वाव ही निजाम-ने पूना पर चढ़ाई कर दी थी, जिससे उन्हें वालाजीकी सहायतामें छौटना पड़ा । अभीनि जामके साथ सिन्धि हो जानेसे स्धुनाथरावने पुनः गुजरातकी याताःकी (१७५३ ई०की १३वीं फरवरीः)। इसको पहले १७५३ ्र इंथ्के फरवरी मासमें दमांजी गायकवाड़ने पूनाके कारा-गास्से छुटकारा पाया धा । उस समय पेशवाके साध जो संधि हुई, उसमें यह स्थिर हुआ, कि गुजरातक वाकी सजानेकी बाबतमें गायकवाड़ पेशवाको १५ लास रुपग्ने दे'गे'। गुजरातका अर्द्धांश उन्हें दिया जायगा। अळावा इसके गायकवाड़ जो नूतनप्रदेश जीतेंगे, खर्च बाद दे कर उनकी आयका अर्द्धा'श पेशवाको मिलेगा और पेशवाके अभियानकालमें दमाजी १० हजार सेना के कर उनकी सहायता करेंगे। दमाड़े के मातहतकी तौर पर पेशवाको वे ५ लाख रुपये वार्पिक करवान और साताराके राजारामके निर्वाहके लिये भी कई लाख रुपये प्रतिवर्षे देंगे। इधर राघोजी भोंसलेकी-मृत्यु हो जानेसे उनके पुत जानोजी भोंसले "सेनासाहत सुवे" का पद पानेके लिये उपस्थित हुए। वालाजीने उन्हें उक्त पर पर प्रतिष्ठित तो किया, पर शर्त यह उहरी, कि उन्हें

साताराके महाराजके निर्वाहके छिये वार्षिक ६ लाख रुपये देने होंगे और जहरत पहने पर बालाजीकी १० हजार सेनासे सहायता पहुंचानी होगी। जो कुछ हो, रघुनाथराव पूर्वोक्त सन्धिके अनुसार दमाजीसे गुजरात-का अर्द्धांश लेनेके लिये भेजे गये। वहां जा कर उन्होंने १७५३ ई०के अप्रिल मासमें अहमदनगर पर अधिकार कर लिया तथा गायकवाडसे प्राप्त सभी प्रदेशों में अपना आधिपत्य जमाया। दमाजीके पूना अवरोधकालमें मुगलपक्षीय जवानमर्दं खाँने अहमद्नग्र दुर्गको अपने अधिकार कर लिया था। अहमद्नगर-अधिकारकालमें कान्देशके अन्तर्गंत मालेगाँवके दुर्गनिर्माता नरशङ्करने तथा विञ्चुअञ्चलके जागीरदार विदृल शिवदैवने असा-श्रारण वीरत्व दिला कर विशेष प्रसिद्धि पाई थी। मुक्ति-पुरी द्वारकानगरी भी इस समय पेशवाके हाथ लगी। वहां प्रतिदिन जिससे एक सौ ब्राह्मण भोजन करें, उसके लिये पेशवा-सस्कारसे ५ हजार रुपये वार्षिक आयकी ब्रह्मोत्तर भूसम्पत्ति उत्सृष्ट हुई थी।

गुजरातसे रघुनाथरात्र ससैन्य मालव पर आक्रमण कर सिन्दे और होलकरकी सहायतासे काठियावाड़, दूंदी, क्रोटा, राजगढ़, उदयपुर, जूनागढ़, नरवार, ग्वालियर, फांसी, काल्पी आदि स्थानों से चौथ और कर वस्त्व करते हुए भरतपुर पहुंचे। जाठ लोग कुम्भेरीकी लड़ाईमें परास्त हो पेशवाको कर देनेमें सहमत हुए और नगद ६० लाख रुपये दे कर सन्धि कर ली। अनन्तर रघुनाथ दिल्लो, रोहिलखएड, कुमायूं, काशी, प्रयाग, जयनगर, राजपृताना आदि प्रदेशोंमें महाराष्ट्रशक्तिका प्रभाष दिखळाते हुए १७५५ ई०के अगस्तमासमें पूना लीटे। दिल्लीमें रहते समय उन्हों ने वादशाह अहमद-शाह और उनके वजीर सफदरजङ्गको पद्च्युत कर**के** इजुउद्दीन् शाह् नामक राज्वंशीय एक व्यक्तिको द्वितीय भालम्गोरको उपाधि दे दिल्लीके सिंहासन पर अभिविक्त किया था। रघुनाथरावकी सहायतासे शाहबुद्दीन् गाजी उसके मन्त्री हुए (१७५४ ई०की २री जून) । किन्तु इन सव घटनाओं और अभियानके साथ वालाजी वाजीरावः का साक्षात् सम्बन्ध न रहनेके कारण वह प्रसङ्ग यहीं पर छोड़ दिया गया।

Vol. XIV. 103

इस प्रकार रघुनाथराव और सिन्दे होलकर आदि सरदारगण जब उत्तर-भारतमें मराठाका आधिपत्य फैला रहे थे, उस समय वालाजीराव भी चुप बैठे न थे। उन्होंने सलावत्जङ्गके साथ सिन्ध करनेके वाद ही कर्णाटककी और याता कर दी। १७५७ ई०में भावसाहब-ने कर्णाट-प्रदेशके ३६ परगनों वा सावजुरके नवावके राज्यके प्रायः अर्डांश पर अधिकार कर लिया था।

कर्णाट अञ्चलके जमींदार वड़े उद्धत हो गये थे, इस कारण वीच वीचमें उन लोगों का दमन और राजख़ वसूल करनेके लिये पेशवाको सेना मेजनी पड़ती थी। इधर कई वर्षों तक नाना कारणों से पेशवा कर्णाटका राजस्त्र वसूल कर न सके। अतः अभी भावसाहव-को साथ लें वे स्वयं कर्णाटको चल दिये। वे प्रथमतः १७५३ ई०में जनवरीसे जुलाई मास तक श्रीरङ्गपत्तन, सौन्दा, विद्तुरकी 'आदि प्रदेशी'के विद्रोही जमींदारों को देनेसे वाध्य कर पूना छोटे। दूसरे वर्ष अवशिष्ट कर्णाट-में आधिपत्य जमानेके लिये. भावसाहव और रामचन्द्र वावा मेजे गये । उन्हों ने होली-हुन्नर नामक दुर्गको अपने वाहुवंलसे द्खल कर श्रीरङ्गपत्तन पर आक्रमण कर विया । यह देख कर कर्णाटके सभी जमींदारों ने उनकी वश्यता स्वीकार कर छी तथा वाकी राजख प्रदान और भविष्यमें निर्विरोध यथा समय राजस्व देनेकी प्रतिशा की। अपने उद्देश्यको सिद्ध कर भावसाहव जूनमासमें खदेश लीटे ।

कृष्णानदीके दक्षिणसे रामेश्वर पर्यन्त मराठाके स्वराजभुक्त हो जाय, यही वालाजीका उद्देश्य था। इस कारण १७५५ ई०के जनवरी मासमें वे विदनुरको जीतनेके लिये चल दिये। वह स्थान सावनुरके नवावके शासनाधीन था। किंतु निजाम सलावतजङ्ग पूर्वा- खलमें भो सलेके अधिकृत स्थानों पर अधिकार करनेकी चेष्टा कर रहे थे, इस कारण उनका दमन करनेके लिये उन्हें वहां जाना पड़ा। उस समय बृहस्पित सिहराशिमें थे, अतः जितनी युद्धयाता को गई सभी निष्फल हुई।

्र दूसरे वर्षके आरम्भमें ही वालाजी वाजीरावने रघु-नाथराव, भावसाहव, महदाजी पुरन्दरे, मल्हारराव,

जानोजी बीर मुघोजी भो सले, विदुल शिवदेव आहि सरदारों को ले कर सावनुर पर आक्रमण कर दिया। इस समय मुजफ्फर जी नामक एक सरदारने महदाजी पुरन्दरेसे कलह करके सावनुरके नवावका आश्रयः प्रहण किया। ये अङ्गरेजी ढंग पर सेनाको युद्धविद्या सिखाते थे। उन्हें सुपूर्व कर देनेके लिये पेशवाने नवावको पत लिखा, पर नवावने उस पर कान नहीं दिया । इस कारण वाळाजी वाजोरावने अपना समभ कर युदकी घोषणा कर दी । १७४७ ई० के सन्धिकालमें नवाकी वागलकोट नामक दुर्ग पेशवाको देनेका वचन दिया था, पर आज तक वह वचन पूरा नहीं हुआ। अतः इस समय वह भी अधिकृत कर . लिया गया । सलावतजङ्गको भी पेशवाने अभी अपने दलमें मिला लिया था, इस कारण उन्होंने भी इस युद्धमें साथ दिया। कड़प्पा और कर्णालके नवाव तथा मुरारराव घोरपड़े नामक किसी मराठा-जमींदारने सावजुरके नवावका पक्ष लिया था। परंतु समय पर कोई भी पहुंच न सके, जिससे नवावकी कई मास तक अकेळा सावनुर-दुर्गकी रक्षा करनी पड़ी। आखिर मळ्हाररावने दोनोंमें सन्धि करा दी। इसमें मराठोंको युद्धके व्ययस्वरूप ११ लाख रुपये और मिश्र-कोट, हुवली, कुन्दगोल आदि परगने मिले। अलावा इसके सोन्दें और विदनुर प्रदेशके कर वसूल करनेका अधिकार वालाजीको मिला । नवाव एकवारगी ११ छास रुपये गिन देनेमें विलकुल असमर्थ थे, इस कारण वड्डा-पुरके दुर्गका अधिकार कुछ दिनों के लिये मराठोंके हाथ रहा । मुजपफरजङ्गने पुनः पेशवाको अधीनता स्वीकार की । इसके वाद सोन्द्रे अञ्चलमें अपनी गोटो जमानेके लिये वालाजीने गोपालराव पटवर्द<sup>९</sup>न नामक एक ब्राह्मण सरदारको भेजा। उन्होंने उस प्रदेशके देशाइयों (जर्मी-दारों )-का दमन करके उन्हें आठ छाल रुपये कर-स्वरूप देनेके लिपे वाध्य किया। इनमेंसे उन्होंने २॥० लाब रुपयेके बदलेमें मदैनगढ़ वा फोएडा दुर्ग समर्पण किया। इस प्रकार १६७४ ई०में छतपति महात्मा शिवाजीने जो फोएडा-दुर्ग जीत कर स्वराजभुक्त किया था तथा जो शम्माजीके राजत्वकालमें मुगलीके हाथ लगा था, वह इतने दिनोंके वाद फिर मराठोंके शासनाधीन

हुआ। इसके वाद पेशवा वालाजी वाजीराव तुङ्गभद्राके दक्षिण किनारे गये और नूतन-प्राप्त विदनुर आदि प्रदेशों- से करसंप्रह कर पूना लीटे। दश वर्ष पहले मराठों के स्वराज्यकी दक्षिणी सीमा पर कृष्णानदी थी, अमी उसके वदलेमें तुङ्गभद्रानदी हो गई है।

ूर्यस्य समय तुलाजी आंग्रे स्वाधीन हो कर निःशङ्क भावसे समुद्रतीरवर्ची स्थानों में खूट पाट कर रहे थे। उनका अत्याचार बाछाजीको रोकना जरूरी था। किन्तु नी-सेनापति आंग्रे के साथ जल-युद्ध करना सहज नहीं है, यह सोच कर वालाजीने अङ्गरेज वणिकोंकी सहायता-से आंग्रे को दमन करनेका सङ्ख्य किया। १७५६ ई०की २२वी मार्चको स्थिर हुआ, कि अङ्गरेत और पेशवा-की नौ-सेना सम्मिलित हो कर ६४ तीपो के साथ सुवर्ण-दुर्ग और विजय-दुर्ग पर आक्रमण करेंगी । तदनुसार जञ्जीरा, सुवर्णदुर्ग और विजयदुर्ग वातकी वातमें उनके हाथ आ गये । पेशवाको सुवर्णेंदुर्ग और विजयदुर्ग मिला । वाणकोट दुर्ग और तत्सिंबहित १० ग्राम सङ्गरेजो को मिले। इस समय वालाजो वाजीरावकी इच्छा हुई, कि मूसी वुसी नामक फरासी-सेनापतिकी अपने आश्रयमें रख मराडो-सेनाको अङ्गरेजी ढंग पर युद्धविद्या सिखावें। किन्तु वूसी जिन सव शर्तों पर यह काम करनेको राजी हुए, वह दालाजोको पसन्द न आई। अतः उन्हें इस सङ्कलपका त्याग करना पड़ा।

१७५७ ई०की १ली जनवरीको वालाजीरावने भावसाहव और ६० हजार सेनाको साथ ले दक्षिण दिग्विजय
के लिये याता कर दी। मुरारराव घोरपड़ ने छह हजार
सेना ले कर उनका साथ दिया । मार्च मासमें वे
श्रीरङ्गपत्तन पहुंचे और वहांके अधिपतिके प्रधान मन्तीको
वाकी खजाना खुकानेके लिये कहा । रुपयेकी तायदाद
ले कर भी गड़बड़ी उठी थी । अतप्त युद्ध अनिवाय
हो गया। पेशवा श्रीरंगपत्तनमें घेरा डाल कर १७ दिन
तक उस पर गोली वरसाते रहे। एक दिन एक गोली
नगरके मध्यस्थित श्रीरङ्गदेवके मन्दिरशिखर पर जा
गिरी। ठीक इसी समय वालाजीके तापकानेकी एक
तोप कट गई जिससे कितने गोलन्दाज मारे गये। इस
घटनामें दोनों पक्षने दैवप्रतिकूल समक्त कर सन्धिकी

वात छेड़ी। पेशाचा ३२ ळाख रुपये ले कर अवरोध उटा लेनेको राजी हुए। इनमेंसे तन्द्राजने ५ लाख घपये नगद् और वाकी रुपये जव तक वस्त्र न हो जांय, तव तकको लिये चौदह परगने दिये । इन चौदह परगनीका कर वस्ल करनेके लिये पेशवाने अपनी ओरसे कर्मचारी नियुक्त किया और शान्तिरक्षाके लिये उन्हें वहां छह हजार सेना रखनी पड़ी। इसके वाद उन्होंने शिरे नामक प्रदेश पर धावा बोल दिया। शिरे, होसकोट, कोलर, वालापुर और वङ्गलूर आदि पांच परगने छतपति शिवाजीकी चेष्टासे भराहों के हस्तगत हुए थे। सुतरां उन सव प्रदेशों को पुनः स्वराज्य-भुक्त करनेकी वासना वालाजीके हृद्यमें आप ही आप उदित हुई । तदनुसार उन्हों ने उक्त पांच परगनों -मेंसे अधिकांश स्थान पर अधिकार जमा ही लिया। वालाजीने शिरे परगतेके नवाव (कर्णाटकमें जिन्हें सामान्य भूसम्पत्ति थी, वे भी अपनेको नवाव कहा करते थे) मीर फैजुलाको सामान्य जागीर शिरे नगर दे कर दुर्गादि-के साथ सभी परगने महाराष्ट्र-राज्यभुक्त कर लिये।

इसके वाद वर्षाकाल जब समीप आया, तब बालाजी-ने वलवन्तराव गणपत और मेहेन्दले नामक किसी ब्राह्मण सरदारको वहां छावनी डाल कर रहनेका हुकुम दिया और आप पूना लीटे। यह देख कर उस अञ्चलके कड़ापा नामक स्थानके नवावने कर्ण्छ, सावनुर आदि स्थानींके परान नवावींको तथा मुरारराव घोरपड्, मन्द्राज-की अङ्गरेजी सेना और चित्तलदुर्गके जमींदारको साथ ले वलवन्तराव पर हठात् आक्रमण कर दिया और उन्हें पराज़ित करनेका पड्यन्त रचा। किन्तु पड्यन्त्रमें जिन्होंने साथ दिया था, उनमेंसे कोई भी कार्यक्षेत्रमें न उतरे। सुतरां वलवन्त रावके साथ युद्धमें कड़ापाके नवाव मारे गये और होसकोट, कडापा आदि स्थान मराठाँके हाथ लगे। वर्षाकालमें ही यह युद्ध हुआ था। आक ट-के नवावसे भी वलवन्त रावने ४॥० लाख रुपये कर-स्व प बस्ल किये। इनमेंसे दो लाख नगद और ढाई लाख रुपये आयका राज्यांश पेशवाको मिला।

वर्षाकालमें पेशवाकी सेनाको दूसरी ओर युद्धमें लिस देख हैदरअलीको सलाहसे श्रीरंगपत्तनके नन्दराजने मेराठोंकी सन्धि तोड़ दी और कुछ समय पहले जो छहें १४ परगर्ने मिले थे, उन्हें वहांसे मार भगाया तथा अपना आधिपत्य फिरसें जमाया। परन्तुं इसे समय सिलावतजङ्गका राज्यविष्ठव उपस्थित हो जानेसे बले बन्तराव नन्दरावकी उनके औद्धत्यका प्रतिफल न दे सके। सिंध ससैन्य पेशवाकी सहायतामें चल दिये। इस समय विदन्दरप्रदेशमें अधिकार-स्थापन भी बालाजी और मेहेन्द्लेका प्रधान उद्देश्य था। निजामके साथ विप्रह खड़ा हो जानेसे वह सिद्ध नहीं हुआ। इसे समय नन्दर्भ जोनेसे वह सिद्ध नहीं हुआ। इसे समय नन्दर्भ जोनेसे वह सिद्ध नहीं हुआ। इसे समय नन्दर्भ जानेसे वाह्मिणात्यमें हैदर्ग अलिका अभ्युद्ध होता वा नहीं, सन्देह हैं।

१७५७ है० के अगस्त मासमें संलोबतजंड़ के भाई बुंसलतजंड़ और निजाम अलीन प्रधान मन्ती शोह नैवाज
क्षाकी सहायतासे संलोबतजंड़ को पहच्युत और फरासियोंको निजाम राज्यसे विताड़ित करनेका भयड़ पड़यन्त रचा। इस राष्ट्रविद्धवकी सचना देख कर बालाजीने अपने सैन्यसामन्तीको विदेशसे स्वदेश लीट कर
महाराष्ट्रीय स्वार्थरक्षाके लिये तत्पर होने कहा। अतः
बलवन्तराव मेहेन्दलेको कर्णाट्यदेशका त्यांग कर स्वदेश
जाना पड़ा। इस षड़यन्तसे विद्धवकारियोंको उद्देश
सिद्ध नहीं हुआ। शाह नवाज मारे गये और बुंसलतजड़ा प्रधान मन्तीके पद पर प्रतिष्ठित हुए। फरासियोंका
प्रभाव बढ़ चढ़ गया। अंग्रेजोंने इस सुअवसर्रमें बलपूर्वक सूरतको दखल करनेकी चेंद्य को और वालाजी
वाजीरावने निजामअलीके उपदेशानुसार युद्ध करके
वाविक रक्ष लाख रुपये आयका राज्यांग प्राप्त किया।

श्रुष्ट इं०के प्रारम्भमें वालाजीने गोंपालराव गोविन्द्पटवर्द न और आनन्द्राव रास्तेको अधीनतामें एक दल सेना कर्णाट देश मेजी। पेशवीके सरदारीने कर्णाट-प्रवेश करते ही नन्द्राजकी पूर्वद्त्त १४ परेगनी पर अपना आधिपत्य स्थापन किया। गोपोलरावने चैना-पट्टन जीत कर जब बङ्गेलूरमें घेरो डाला, तब हैंद्रेशली उनके विरुद्ध डट गये। वे एक ऐसे स्थानमें रह कर युद्ध करने लगे, कि जहाँ महाराष्ट्र अध्वारीही अपना विक्रम बिलकुल दिखा न सके। इस यातामें गोपील-

रेविके साथ उतेनी केमीन भी न थीं। इंधर ग्रंस और अभिनिस्मक नैशं अकिर्मिणसम्बन्धमें हैंदेरबली वहें सिद्ध-हुँस्त थे। तिंस पर भी गोपाळरांचे और ऑनिस्ट्रावन तीन मासं तक नानां खेएडंग्रुइमि है दरअलोको व्यति-ब्यस्त कर डाला और उनके अधिकृत कितने स्थान अपने वेंखलें। कर लियें । हैदर्रअलीनें उनकी पीछा छोड़ा नहीं, अंध्यें वेसीयकी साथ बार्र वीर उने पर ओक्रेमण करते ही रहे। आंबिर छड़ेहिं करते करते दीनों देले ऊर्व गर्थ और तेंवें संनिध कर लीं। ईस सन्धिकें अंद्रेसीर थी-रङ्गेपत्तिको अवरीधकालिमैं स्वीकृत इर लाख रुपयेक अविशिष्टं २७ लींखें तथा ५ लींखें रूपयें और हैं कर गोपीलरावेने १४ परगंनी की अधिकार छोड़ दिया। इस प्रकार संनिध हो जीनेंसे वीलाजी जुंड असंतुर हुए सीर गोपालर विके प्रति अकिमेण्यतिका आरीप किया। इस सम्बन्धमें गोपालंखनिने बालाजीकी जो पत लिंबा था उसमें एक जंगेह कहा है, व्यदि हम लोगे हैंक्की युद्धमें व्यति व्यस्त नहीं करते, तो उनके जैसे व्यक्ति ईर लॉखं रुपयें नंगदं (इनमेंसे १६ लॉख रुपये कींद्रेने पंडु थे) दें करें सिन्धं मील लेते; यह बया समाव थां !" गोंपोलरावने वह यघार्थ कहा था वा नहीं, बीलांजीको पींछे मार्ल्स हुंथा ।

इसके वाद स्थानीय राजांओं के युद्धविमहादिमें महा-राष्ट्रीय सेनाने सुविधानुसार किसी एक पहकी अव-लंबन करके उस प्रदेशके कित्रिय स्थान देखल कर लिये थे और प्रचेर धन भी उनके हाँथ लगे गया था। किंतु इस समय उत्तरमारतमें पानीपतकी लड़ाईमें उन लीगों का जो भागविष्यय हुआ, उससे तीन चार वर्ष तक कंणरिकी और दृष्टि पात करनेका उन्हें अवसर नहीं मिला। इसी बीच वालाजी बाजीरावका जीवन भी शेष ही चला थी।

पानीपतकी चढ़ाईके कुछ पहिले निजामके सीथ एक बार विचाद खड़ा डुआ था। अहमदेनगर-हुंगे ऑन्ट्रिंग अन्तर्गत होने पर भी निजामके अधिकारमें था। विसाजी करण नामक वालाजीके किसी सेनिपितिने वहाँके हुंगे एक अधिकार कर लिया रिश्वति है कर हुंगे एक अधिकार कर लिया (१७वीं अकित्वर १७५६ ई०में)। इस कारण सेला वंत्जङ्गने युद्धकी घोषणा करके पेशवाके विरुद्ध याता को । इसी समय भावसाहवं पानीपतके लिये सेनादल सजा कर उत्तर-मारतको जा रहे थे। मिंजरा नदीके किनारे उदयगिरि नामक स्थानमें दोनों पक्षमें मुठमें इ हो गई। इस युद्धमें मराठी ने विजयपतीका फहराई। निजामपक्षके ३ हजार आदमी मराठी के हाथसे यमपुर सिंघार गंवे। दंश हाथी और 8 तीप मरीठों के हाथ लिंगी। उनकी भी वहुतसी सेना इस युद्धमें मारी गई थीं। अंत्र निजांमें अर्लीनें संन्धिका प्रस्ताव करके मेजा। वीळाँजीराव, र्घुनीथराव आदिके इस युद्धमें उपस्थित रहने पर भी सेनापतित्वं भावसाहवके ही हाथ था। उन्हों ने सेन्धिका प्रस्ताव अप्राह्म करके निजामकी समूल ध्वस करनेकी इच्छा प्रकट की। अव संला-वितंत्रं और निजामि अलीने अपने सम्पूर्ण आतमसमर्पण-के चिन्हेंसंहर्ण संराज्यकी राजमुद्रों (Seal of State) र्डनके निकट भेज दीं। निजामको नितान्त शरणागत जीन कर भावसाहवेंने संन्धिको प्रस्ताव प्राह्म कर लिया । दौळताबाद, असीर्रगढ़ं, शिवनेरी, वीर्जापुर, वुंहरनपुर, र्सीलहेर बीर मॉलहर यें छंहं दुगै तथा वीजापुर, विदर और औरङ्गावीद प्रदेशीसे कुछ वीपिक ६२ छाँबिसे अर्घिक रुपेये ऑयका राज्यांश सन्धिक मूल्यस्वेद्धेप दान केर निजाम स्विदेशकी चेल दिये।

श्रुतिं श्रें, उनमें से अधिकां श्रें सरदारीकी सैन्यरकाके लिये जीगीरस्वकाप मिलता था। इसे बार भी ६२ लाख ३६ हजार कंपये आयके राज्यशिमें से प्रायः ४१ लाख कंपयेका प्रदेश सरदार तथा कमचारियोंका सैन्यपीवणके लिये मिलता था। वालाजीके पुत्र माधवराव और उनके मतीज भावसाहव आदि आतमिय लीगोंने ही इस वार अधिकां श्रें जागीर पाई था। इस समय निजामराज्य की पिरेमाण इतना घंट गया, कि थोड़े ही दिनोंके अन्दर समस्त दाक्षिणात्य मराजीके ही हाथ आ जाती। परन्तु पानीपितंकी लेड़ाईमें इन लोगोंको जैसा धका पहुंचा, कि भविष्यंत् घंटनीकी स्रोंत दूसरी ही आरसे वह चला।

वीलाजीके शासनकालमें दक्षिण तुङ्गमद्रानदी पर्यन्त जिस प्रकीर महाराष्ट्रराज्य फैल गया थी, उत्तरमें भी उसी प्रकार अटकनदीके उस पार तक उन्होंने अपनी सोमा वढ़ा छी थी। दक्षिणभारतमें जिस प्रकार स्वयं वाछाजी और भावसाहव मुसळमान-शासनका मूळो-च्छेद करनेमें प्रयासी हुए थे, उत्तरभारतमें भी उसी प्रकार रघुनाथराव और सिन्दे होळकर आदि सरदारगण मुसळमानोंके भीतिप्रद हो उठे थे। दिल्लीके वादशाह उन लोगोंके बिलकुल करायत्त हो गये थे। मुसळमानों ने अपनी क्षमताका हास होते देख अहम्द्शाह अवदलीकी सहायतासे पुनः भारतवर्ष पर मुगळ वादशाहो स्थापन करनेके लिये प्राणपणसे कोशिश को। उसोके फलसे प्रसिद्ध पानीपतकी लड़ाई छिड़ो थी।

१७३६ ई॰ के प्रारम्भमें नादिरशाहने भारतवर्ष पर चढ़ाई करके दिवलोको उजाड़ डाला था, यह पहले हो कहा जा चुका है। वे स्वदेश छौट कर थोड़े ही दिनो के बाद गुप्तघातकके हाथसे मारे गये। पीछे उनके अन्यतम सरदार अवदिली इराणंके सिहासन पर वैंडे। १७८४ ई॰के प्रारम्भमें अंददली मूलतान और लाहोर पर द्खल कर सरहिन्द तक अवसर हुए। वहां मुगल सेना-से पराजित हो दुम दवा कर भागे । इस पर भो उनकी सर्वनाशकर शक्तिका परिचय पा कर दिल्लीके उमराव भयभीत हो गये थे। दिल्लीके दरवारकी अवस्था इस समय जैसी शोचनीय हो रही थी, कि अवद्लोने जव दूसरी वार भारतमें प्रवेश किया, तव उन्हें रोकनेका वाद-शाहो सेनाको साहस नहीं हुआ। इस समय रोहिलो का दमन भी विशेष आवश्यक था। इस कारण अववली और रोहिलो का दमन करनेके लिये दिल्ली-दरवारने महाराष्ट्री -से सहायता लेना जरूरी समभा। तद्नुसार १७५७ ई०में दिल्लीके वादशाह अहमदशाहने वजीर सफदरजङ्गकी सलाह है कर वालाजी वाजीरावको नाम पर सिन्दे और होळकरकी मध्यस्थामें 'अहदनामा' वा फरमान दिया। इस फरमानसे अवदाली रोहिला और सिन्धुप्रदेशके अमीरोंको दमन करने तथा राजपूताना और दिल्लीप्रदेशकी १ नित-रक्षाके लिये वालाजी वाजीराव वाध्य हुए। इस कार्य-के लिये वादशाहने उन्हें लाहोर,मूलतान, रोहिलखएड और सिन्धु-राजपूताना इन चार प्रदेशोंका चौथ वसूल करनेका अधिकार दिया। इस सन्धियवको प्रतिश्रुति-

रक्षाके लिये रोहिलों तथा अवदालीके साथ पेशवाको युद्ध करना पड़ा । इस सनद-पतसे उन्होंने चौथ वस्ल करने-का जो अधिकार पाया था, उसकी रक्षा करनेके लिये अवाध्य राजपूर्तोंके साथ पुनः पुनः युद्ध करना पड़ा था।

१७५१ ई०में सिन्दे और होलकरने जो रोहिलखएड पर आक्रमण किया था, सो केवल लूटनेकी इच्छासे नहीं, वरन् पूर्वोक्त सन्धिकी शर्चका पालन करना ही प्रधान कारण था । वे छोग जब रोहिछा-समरमें नियुक्त थे उस समय अवदाछी दूसरी वार भारतवर्ष आ धमके। किन्तु सिन्दे-होछकरको छे कर वजीर उन्हें रोकने जा ही रहे थे, कि वादशाहने उसके पहले हो पञ्जावका अधिकार दे कर उन्हें' विदा कर दिया था । १७५२ ई०में उन दोनों प्रदेशों का अवदालीके हाथसे उद्धार करना मराठोंका प्रधान ,कर्त्तव्य था । किन्तु इस बार वे पञ्जाव पर दखल न कर सके। पीछे रघुनाथराव उत्तर-भारत जा कर पूर्वोक्त सनद-पत्नके वलसे राज-पुताना, कुम्मेरी, नागोर, दिल्ली आदि प्रदेशों में अपना आधिपत्य जमाने लगे । इसी समय वर्षाऋतुका आग-मन हुआ । अतएव वे इस समय देश छौट गये और पुनः अगस्त मासमें पूना आये । दूसरे वर्ष जन-वरीसे छे कर जून तक सावनूरके अवरोधकार्यमें सहा-यता दे कर वर्षाकालका अवसान होते ही गुजरातके कतिपय मुसलमान सरदारोंने विप्लव खड़ा कर दिया था। उन छोगोंका दमन करके रघुनाथराव मालवदेश गये। इस समय अवदालीकी आगमनवार्त्ता उनके कर्णगोचर हुई, जिससे वे उनका मुकावला करनेके लिये वालाजीकी अनुमति ले कर वड़ी तेजीसे दिल्लीकी ओर चल दिये। इघर वालाजी स्वयं श्रीरङ्गपत्तनको रवाना हुए।

१७५७के फरवरी मासमें रघुनाथरावने मल्हारराव होलकरके साथ अवदालीके विरुद्ध याता की। जाते समय उन्होंने वालाजीको पत लिखा, कि चे उनकी सहायतामें सिन्देको अति शोघ्र भेज देवें। उस समय सलावतजङ्गके विरुद्ध दाक्षिणात्यमें जो पड़यन्त चल रहा था, उसी लिये दत्ताजी सिन्दे ससैन्य पेशवाके निकट उपस्थित थे। यह पत्न पा कर वालाजीने उन्हें रघुनाथरावकी सहायता-में भेजा। रघुनाथरावके साथ इस समय यद्यपि छह हजार सेनासे अधिक न थी तो भी अवदालीको आगमनवासी छुनते ही वे दिल्लीको दौड़ पड़ें।

वूसरो यालामें पञ्जावके जो सव प्रदेश अवदालीके हाथ खगे थे, नपे वजीर मीर शाह-बुद्दीन गाजीने पुनः उन पर दखल जमाया। पीछे उन्होंने अपनेको निष्कएटक समक्र कर अन्ताजी मणिकेश्वर नामक पेशवाके किसी एक ब्राह्मणकी दिल्लीको शान्तिरक्षाका भार सौंप दिया और आप आमोद-प्रमोद्में अपना समय विताने लगे। नाजीव खाँ नामक गाजीके अधीनस्थ और उन्होंके दुकड़ोंसे परे हुए एक रोहिलासरदारने प्रभुका सर्वनाश करनेके लिये इस पंड्-यन्त्रमें साथ दिया। मुगलोंकी प्राचीन राजधानी दिल्ली जो महाराष्ट्रीय सरदारके रक्षणाधीन थी, इसमें वहुतेरे अमीरोंने अपना अपमान समका, किन्तु गाजीको पद्च्युत किये विना दिल्लीसे मराठोंकी प्रवेलता कभी भो तिरोहित नहीं हो सकती। यह सीच कर उन्होंने अंददाळीको हिन्दू-रक्षकके हाथसे मुगलराजधानी दिल्लीके उदारसाधनके लिये आमन्त्रण किया । नजीव लाँ और शाहजादी मलका-जमानी इस षड्यन्त्रके मूळ नायक थे।

पञ्जाव हाथसे निकल गया था, इस कारण यह निम न्त्रणपत पानेके पहले ही अवदालीने भारतवर्ष पर साक्र-मण करनेका सङ्कल्प किया था। अव उन्हें और भी अच्छा मौका हाथ लगा। काफो सेना संप्रह कर उन्होंने १७५६ ई०के शेषमें खेवरघाटीमें पाले पडनेके पहले कन्यार छोडा । उनके सरहिन्द पहुंचने पर शाहबुद्दीन गाजी होश में आये। उन्होंने जहां तक हो सका, वहुत जब्द कित-पय सेना इकट्टी कर नजीवखाँको अवदालीके विरुद्ध मेजा। अवदलीकी सेना ज्यों हो दिख्लीमें घुसो, त्यों ही नजीव प्रकाश्यभावमें शतुके साथ मिल गये। नजीवकी इस विश्वासघातकतासे गाजो और दिल्लोके वादशाह. इराणी वादशाहके हाथसे बन्दी हुए और दिल्लीमें अफगानी सेना-के पैशाचिक ताएडवसे रकको घारा वह चली। अन्ताजी मणिकेश्वर अपनी सेनाके साथ जान छेकर भागे। दिल्लीको भलीभांति लूट कर तथा वहुसंख्यक अधिवासि-योंकी हत्या कर अवदाली मार्च मासमें मथुराको चल दिये । उस समय वहां पर्वोपलक्षमें (शायद होलीमें) नाना देशके हिंदू जुटे हुए थे। निर्मोही अफगानी सेनाके खब्गाघातसे बहुसंख्यक ब्राह्मण, साधु, सन्यासी, वालक और रमणी छिन्नशोर्ष हुईं! रमणियोंके प्रति पाशव अत्याचार और गोरकसे हिन्दूदेवियोंको स्नान करानेसे भो वाज नहीं आये। इधर उत्तर-भारतमें निदायके प्रकोपकी वृद्धि होनेसे बहुसंख्यक अफगानोसेना उसके शिकार वन गईं। इस कारण वे तैमुरशाहको पञ्जावमें रख कर वड़ो फुर्त्तोंसे स्वदेश वापिस गये। यह घटना १७५७ ई०में घटी थी।

इधर जुलाई मासके प्रारम्भमें रघुनाथराव विल्लोके उपकएड भाग पर ससैन्य उपिध्यत हुए । इसी वीचमें अवरापर सरदारोंने भो उनका साथ दिया जिससे उनकी सैन्यसंख्या पहलेसे कहीं वढ़ गई। उनका एक पत पढ़ने-से मालूम होता है, कि जब वे दिल्लो पहुंचे तब अवदाली-के खदेश जानेकी खबर सुन कर बड़े विपण्ण हुए थे। महाराष्ट्रीय लेखकोंका कहना है, कि रघुनाथरावके दल-वल साथ आनेकी खबर सुनते ही अवदालो जान ले कर देश भागे थे।

गाजो और वादशाह आलम्गीरने अवदालीको शरण ली थी, इस कारण उन्होंने उन दोनोंकी पद्च्युत नहीं किया था। पर वे नजीव खाँको दिल्लीश्वरका सैन्यापत्य प्रदान कर गये थे। अतएव दिल्लीमें नजीरके प्रभुत्वकी सीमा न रही। पेशवाके प्रतिनिधि अन्ताजी मणि-केश्वर भो दिल्लीमें पुनरागमन न कर सके। इस कारण रघुनाथने गाजीको जो नजीवसे विगडे हुए थे, साथ ले दिल्ली पर धावा वोल दिया। १५ दिन तक किसी भी तरह शहरकी गक्षा करके आखिर नजीव खाँने उनकी शरण ली । रघुनाथने नजीवको विश्वासघाती जान कर उनको शक्ति खर्व करनेके लिये उनके दोआवस्थित जागीर ( यह जागीर गाजीकी कृपासे ही नजीवको मिली थी) जन्त करनेका संकल्प किया था। किंतु मलहारके विशेष अनुनय विनय करने पर वे उन्हें विना किसी द्एड-के छोड़ देनेको वाध्य हुए। मलहाररावकी सेनासे रक्षित हो नजीव अक्षत शरीरसे रोहिलखएडके अन्तर्गत शक-ताल नगर पहुंच सके थे। इतना ही कहना काफी है. कि मुल्हाररावने इसके लिये नजीवसे मोटी रकम रिश्-वतमें पाई थी। इस कपटाचारी नजीवके लिये ही पानीपतमें मराठोंका सर्वनाश हुआ था।

इसके वाद रघुनाथरावने दिल्ली शहर और दुर्ग-अधि-कार तथा वादशाहको अपने हाथसे पुनरभिंपिक कर अन्ताजी मणिकेश्वरको फिरसे वहांका शांतिरक्षक नियुक्त किया। इसके वाद उनका ध्यान दिल्लीप्रदेश और रोहिलखएडके वन्दोवस्तकी ओर आकृष्ट हुआ। अवदालीके अनुप्रहसे 'वे सव प्रदेश अफगान द्वारा विध्वस्त हो 'वे-चिराग' (दोपशून्य) हो गये थे। इस पर तथा मथुराको दुरवस्था पर अवदालीके प्रति उनका विशेष क्रोध था। १७५८ ई०के प्रारम्भमें उन्होंने छाहोरके लिये प्रस्थान किया। लाहोर प्रमृति प्रदेश उस समय अवदालीके पुत्र तैमुरशाहके शासनाधीन थे। रघुनायकी आगमनवार्त्ता सुनते ही वे ससैन्य कन्धारको भाग गये। रघुनाथने लाहोर पर अधिकार कर लक्त्मीनारायण नामक उस देशके एक कार्यदक्ष कायस्थ कर्मचारीके हाथ वहांका शासन-भार सोंपा और आप उत्तरदिशाको चल दिये। इसके बाद वे भीमवेगसे मूलतान और पञ्जावके अपरापर अंशोंको आक्रमण, छुएठन और अधिकार करते हुए भारतकी उत्तरी सोमा अटकनगरमें पहुंचे। यहां महाराष्ट्रीय विजयचिद्रखरूप उनकी जातीय गैरिक पताका फहराई गई और कृष्णा-तीरजात दाक्षिणात्य अभ्व अटक-में सिन्धनदीके जलमें अवगाहन और उसका जल पी कर परितृप्त हुए। इस घटनाका महाराष्ट्रीय लेखकोंने वड़े ही गौरवसे वर्णन किया है।

इसी स्थान पर मराठोंकी विभवीन्नति चरमसीमा-को पहुंची थी। महाराज शाहुने वालाजी वाजीरावको पेशवा-पद पर अधिष्ठित करते समय जिस कार्यसिद्धिके लिये उनसे अनुरोध किया था, उसे आज वालाजीने कर दिखाया। किन्तु पेशवाओंकी उद्य आकांक्षाका यहां पर शेष भी हुआ। सारे भारतवर्षसे मुसलमानी शासन-की जड़ काटना और वहां हिन्दूराज्य स्थापन करना ही वालाजीके जीवनका प्रधान लक्ष्य था। रघुनाथरावकी आकांक्षा इससे भी कहीं वढ़ कर थी। कन्धारमें प्रवेश कर उन्होंने अवदालीका दर्प चूणे करनेके उद्देश्यसे ,वालाजीको जो पत लिखा था, वह इस प्रकार है,—

"अकवर वादशाहकी अधीनतामें जो सव प्रदेश थे, पेशवाओंकी अधीनतामें वे सव प्रदेश क्यों न रहें गे ?" ऐसा विश्वास किया जाता है, कि काबुल कन्धासों भी महाराष्ट्र-आधिपत्य जमाना उनका उद्देश्य था । भाव-साहबकी उच्च आकांक्षा पर सर्वोंको विस्मित होना पड़ा। उनका यहां तक ख्याल था, कि समुद्रवलयाङ्किता भारत-भूमि पार कर 'कनष्टान्टिनोपलमें' महाराष्ट्र-विजयकेतु यदि फहराया जाय, तो मराठो का गौरव है।

जो कुछ हो, एक मास तक अरकमें रह कर रघुनाथराव और मल्हारराव होलकर लाहोर लौटे। इधर
वर्षाकाल नजदीक आ गया था, अतः उन्हें खदेश लौटना
जकरी आन पड़ा। लाहोर छोड़ते ही अन्दाली पुनः
आविर्भूत होंगे, यह उन्हें अच्छी तरह माल्म था।
किन्तु वर्षाकालमें विदेशमें रहना भी अच्छा नहीं, यह
समक्त कर उन्होंने सीमान्तरक्षाका भार कुछ सरदारों के
जपर सौंपा और आप दाक्षिणात्यको चल दिये। राहमें
दत्ताजो सिन्देसे मुलाकात होने पर रघुनाथने उन्हें नजीव
खाँका दर्पचूर्ण करनेका हुकुम दिया। पीछे वे कूच करते
हुए पूना पहुंचे (१७५८ ई० अक्तूवर मास)।

इस समय भारतवर्षमें तमाम पेशवाओं की तूती बोल रही थी। महिसुर, हैदरावाद, मारवाड़ और दिल्ली आदि अञ्चलो'में उनका प्रभुत्व था । पञ्जाव, अजमीर, मालव, महाराष्ट्र, गुजरात और कर्णाट अञ्चलमें उनकी जड़ मजबूत हो गई थी। राजपूताना और अयोध्या थादि प्रदेशों से उन्हें चौथ निर्विघ्न मिलता जाता था। निजाम, महिसुरके नवाव आदि प्रवलशक्ति पेशवाके प्रतापसे शिर भुका कर उन्हें कर दिया करती थीं। पेशवाओं ने दिङ्कीके सिंहासन पर अपने मनानीत व्यक्ति-को वादशाई वना कर उन्हें अपने हाथका खिलीना वना लिया था। भारतवर्षमें अव उनके एक भी शलु रह न गया। महाराष्ट्र-राज्यमें जहां देखो वहीं शान्तिका राज्य था। इन सव छड़ाइयोंमें छिप्त रहने पर भी पेशवाओंने खदेशकी आस्यन्तरिक उन्नतिमें विशेष ध्यान दिया था। वालाजी-के समय और उन्होंकी विशेष वेष्टासे देश भरमें आर्थ-विद्याका बहुल प्रचार हो गया था। उन्हों ने वेद, स्पृति, द्रशंनशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध शास्त्रोः में सुपिएडत ब्राह्मणों की प्रतिवर्ष परीक्षा छे कर उन्हें मृति देनेकी व्यवस्था कर दी थी। इस कार्यमें वे कमी

कभी वार्षिक १८ लाख रुपये खर्च कर डालते थे। काशी, रामेश्वर, मिथिला आदि दूर देशों से भी वहुसंख्यक ब्राह्मण प्रतिवर्ष पसीक्षा दे कर दक्षिणा लेनेके लिपे पूता आते थे। दक्षिणाके लिये आये हुए ब्राह्मणों की परीक्षा छेने और दक्षिणा देनेके छिपे पूनामें एक खतंत्र आवास-मण्डप बनाया गया था। पुरस्कारके लोभसे देशको ब्राह्मण सन्तानों की शास्त्र पढ़नेकी और विशेष प्रवृत्ति हो गई थी। देशिषदेशसे प्राचीन संस्कृत प्रंथादि संग्रह कर उन्हें पूनाके राजकीय पुस्तकालयमें रखनेका अच्छा बन्दोवस्त था। कवि, शिल्पी, चित्रकर और गीतविद्याविशारद व्यक्तिगण भी राजद्रवारमें पडे रहते थे । देशीय फ़पक और वणिक श्रेणीकी उन्नतिकी और भी बालाजीका विशेष लक्ष्य था। इन पर विश्वों हा विस्तृत विवर्ण महागाद शब्द के टेबो। इस समय जिस प्रकार शान्ति विराजती थी, उसी प्रकार यदि कुछ दिन और अक्षुण्ण भावमें रह जाती, तो देशके अन्तर्वाणिज्य और वहिर्वाणिज्यके विस्तारमें तथा कळाविद्याके विशिष्ट संस्कारमें पेशवागण विशेष ध्यान दे सकते थे।

किन्तु नाना कारणोंसे ऐसा नहीं हुआ। एकवारणों अनेक राज्योंके उनके करतल आ जानेसे शबुकी क्षमता हीन तो हो गई, पर उनकी संख्या घटी नहीं, बढ़ती हो गई। अलावा इसके सरदारोंके कार्यकलापके प्रति तीक्ष्ण दृष्टि नहीं रखनेसे तथा उन लोगोंके मनमें पापः युद्धिका उद्य हो जानेसे मृहाराष्ट्र राज्यकी अवनित होने लगी। गृहविवाद भीर आत्मीयगणका मनोमालित्य भी उनके शक्तिहासका एक प्रधान कारण हुआ। पानी- पतकी लड़ाई होनेके पहलेसे जिस प्रकार उन सब अनिष्टकर उपादानोंका सञ्चय होता था और वे उपादान जिस प्रकार पानीपतकी लड़ाईमें पेशवाओंके वैभवनाण के कारण हुए, सो नीचे देते हैं।

रघुनाथरावके दाक्षिणात्य छौटने पर दत्ताजी सिन्दें नजीव खाँके विनाशके छिये दौड़ पड़े। पेशवाने दत्ता जी पर और भी कई कार्य सौंये थे। जनमेंसे (१) छाहोरका बन्दोवस्त करनेके बाद वहांसे राजस्व संप्रह कर मेजना, (२) सुजा-उद्दोछाको वशोभूत कर वाराणसी, प्रयाग, अयोध्या और गया दन चार प्रधान तार्थ

مختلا الموادية الموادية في الموادية الموادية في الموا

क्षेत्रोंका अधिकारप्रहण, यही दो यहां पर उल्लेखयोग्य हैं। लाहोरका वन्दोबस्त करके दत्ताजीने नजीवके विरुद्ध याता की। इसी समय मलहारराव होलकर्रने उनसे मिल कर कुछ दूसरो ही सलाह दो । उन्होंने इसाजीकों समका कर कहा, "सारे भारतवर्षमें धूर्च नजीवके सिवा अभी पेखवाकी और कोई शतु नहीं है। उस नजीवका यदि आज नाश किया जायगा, तो फिर पेशवा हम लोगों का पहलेके जैसा सम्मान नहीं करेंगे। पेशवा निष्कएटक होनेसे सामान्य दूत भेज कर अटकसे अना-यास राजस्वादि वसूल कर सकेंगे और हम लोगीको 'शिव-निर्माल्यवत्' अनावश्यक समक कर अनादर करेंगे। भतपव नजीवकी रक्षा करको पेशवाको दमित करना हम लोगोंका कत्तव्य है। सुजा-उद्दौलाको वदलेमें नजीव-- को मिलता द्वारा वशीभूत करनेसे भी अयोध्या, काशी ं आदि प्रदेश हाथ लग सकते हैं।" मलहाररावके इस दुष्ट उपदेश पर मुख्य हो सिन्दे उस समय बालाजीका आदेश उल्लुइन कर दिया। किन्तु थोडे ही दिनोंके मध्य उन्हें मालूम हो गया, कि नजीवकी रक्षा करना मानो सांपको दुध पिला कर पोसना था।

वाळाजी बाजीराव पेशवाक्रळमें असाधारण राज-ंनीति-विशारद् थे। पेशवा-पद् प्राप्तिके बादसे नाना · प्रकारके आत्म विव्रहके दमनमें लिस रहने पर भी उन्होंने सारे भारतवर्ष पर पेशवाओंका अन्रतिहत प्रभाव स्थापन कर लिया था। छतपति महातमा शिवाजी और उनके ग्रह रामदास सामीके समयसे मराठोंके दृद्यमें जो हिंद्यत् बादशाही वा हिन्दूसाम्राज्य-स्थापनकी वासना वद्रमूल हुई थी, वह वालाजी वाजीरावके समयमें ही सफल हो जाती। परंतु पानोपतकी छड़ाईके पहले उनके सरदारोंने उत्तरभारतवर्षमं जो सव अभियान और युद्ध-विग्रह किये, उनमें प्रायः सभी जगह बालाजीके उपदेशके विरुद्ध कार्य किये गये थे, इसीसे वे इष्ट-फलसाधक नहीं हुए। सरदारोंमेंसे बहुतेरे खार्थेलुन्य भौर पेशवाओंके भवाध्य हो गये थे । उन्हें शासन करनेकी यक्ति वालाजी-में न थी और उस समय सरदारोंका शासन विलक्कल सम्भवपर भी नहीं था। सारे भारतवर्ष जीत कर सुशा-सित रकना १८वीं शतान्दीमें भतीय दुष्कर कार्य था,

Vol. XIV. 105

उसके लिये वहुसंख्यक सेना रखनेकी आवश्यकता थी। यही जान कर वालाजीने काफी सेना रखी थी; किन्तु सरदारोंमेंसे वहुतेरे यथासमय राजख वस्ल कर खयं हड़प कर जाते थे, पेशवाके प्रास कुछ भी नहीं भेजते थे जिससे पेशवा-सरकारको ऋणप्रस्त होना पड़ा था।

वालाजीका उपदेश अप्राह्म फर उनके सरदारींने जो भूल की थी, उसीके फलसे पानीपतमें उन लोगोंका सर्व-नाश हुआ। बालाजीके लिखित अनेक पर्तीमें एकके साथ शबुता और दूसरेके साथ मित्रता करनेका उपदेश दिया गया है, ऐसा देखनेमें आता है। उन्होंने उत्तरभारतवर्षमें सवींके साथ एक ही वार शतुता करनेसे अपने सरदारोंको वार वार निषेध कर दिया था। किन्तु उनका उपदेश प्रतिपालित नहीं हुआ। अयोध्याके नवाव सुजा-उद्दीलाने दत्ताजीसे प्रस्ताव किया था, कि गाजी-उद्दीनको पद्च्युत करके उन्हें यदि बजोरका पद मिले, तो वे मराठोंको नगद ५० लाख रुपये गिन देंगे। उसी प्रकार नजीवखाँ भी दिल्लीश्वरका सेनापतित्व पाने पर ३० लाख रूपये देनेको राजी हुए थे। किन्तु वालाजीरावने इन दोनों प्रस्तावींमें-से किसीको मंजूर नहीं किया। क्योंकि, गाजीउद्दीन मराठोंके आश्रित थे; अतः विना दोषके उन्हें पदच्युत करना उन्होंने अच्छा नहीं समभा । विशेषतः सुजाको मन्तित्व प्रदान करनेसे वे अपने मित्र जाट छोगोंके साथ मिल कर मराठोंके विकद खड़े हो सकते हैं, यह सन्देह वालाजीके मनमें हो गया था। इसी कारण उन्होंने प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों हिन्दूके प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र यदि मुसलमानकवलसे छुड़ा सकें, तो वे सुजा-को वङ्गदेशका एकांश जीत कर देंगे। सुजाको इस प्रस्तावमें विशेष आपत्ति न थो'। वांलाजीका प्रस्ताव कार्यमें परिणत होनेसे वह महाराष्ट्रशक्तिके पक्षमें मङ्गळ-कर होता, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सिन्दे होलकरकी बुद्धिके दोपसे ऐसा न होने पाया। उन्हों ने नजीवलाँके साथ मित्रता कर हो। सुतरां सुजाउद्दौहाके साथ सख्य स्थापित नहीं हुआ।

नजीवखाँका विनाश करनेके लिये बालाजीने बार बार सरदारोंकी आदेशपत लिखा था। १७५६ ई०की

५३वां मार्च और २री मईको उन्हों ने इस विषयमें द्त्ताजी और जनकोजी सिन्देको जो लिखा था, उसका कुछ अंश यों है,—"नजीवखाँको वक्सीगिरि सैनापत्य देनेसे वह तीस लाख रुपये खुशीसे दे सकते हैं, पर याद रहे, वह पका विश्वासघातक और जुआचोर है। उसे वक्सीगिरि और अवदालीको दिल्ली देना एक ही वात है। नजीवकी सहा-यता करना दूध पिला कर सांप पोसनेके समान अनिष्टकर होगा। नजीवखाँको आधा अवदाली जान कर उससे अलग ही रहना, भूल कर भी मिलता न करना।" पेशवा-का ऐसा स्पष्ट उपदेश और आदेश रहते हुए भी मल-हारराव होलकरको कुमंत्रणामें पड़ कर सिन्देने नजीवके विरुद्ध युद्धयाला नहीं की। अन्ताजी माणिकेश्वर, नारो-शङ्कर आदि वालाजोके अपर सरदारों ने यहां तक कि खयं जनकोजी सिन्द्रेने भी नजीवका दमन करनेका सङ्ख्य किया था। किंतु मलहारजी होलकर और दत्ताजो सिन्दे तथा गोविंद पंत बुन्दे ला भादि सरदारीं-को अवाध्यतासे वह कार्यमें परिणत होने न पाया। गोविंद पंत वन्दे लाके कहनेसे सिन्दे और होलकरने नजीवके साथ मिलता कर ही ली। विश्वासघातक नजीव भी अपनी -मोठी मीठी वातों से उन्हें मोहित कर मराठों के सर्व-नाशका आयोजन करने लगा उसने सुजा भीर महाराष्ट्र-विद्वेषी योधपुरपित विजयसिंह छिपके मिछ कर फरका-वादके नवाव और दिख्लीश्वरकी सहायतासे अवदलीको वुला भेजा। सिन्दे और होलकर इस पड्यन्तका कुछ भी पता न लगा सके। दूरदर्शी वालाजीका उपदेशभी उन . दोनोंने अग्राह्य किया । इसका फल सारो महाराष्ट्रजातिको भोगना पडा । खयं दत्ताजीको कुटिल नजीवके हाथसे उसके थोड़े ही दिनोंके बाद प्राणत्याग करने पड़े थे।

विशेष विवरण सिन्दे (सिन्दिया) शब्दने देखो।
१७५६ ई०में वङ्गदेशको जीत कर उसका एकांश
सुजाको देने और उनसे अयोध्या, काशो तथा प्रयाग
प्रहण करनेका पेशवाका सङ्गल्प था। १७५७ ई०में
अवदली जब दिल्लीको भस्मसात् कर रहे थे, उसी समय
अङ्गदेजीने पलाशी-युद्धमें जयी हो भारत पर अपने
साम्राज्य स्थापनकी नीव डाली थी। इतना हो कहना
एर्याप्त है, कि पेशवाका संकल्प यदि सिद्ध हो जाता, तो

भारतका इतिहास अन्य मूर्ति धारण करता । पेशवाने अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये पहले लाहोरप्रदेशका खुवन्दोवस्त कर सारी सेना दिल्लीमें इकट्टो करनेका सर-दारोंको हुकुम दिया था। उन्हें सुजाउदौलाके साथ वङ्गदेश पर चढ़ाई करनेके लिये कहा गया था। दङ्ग देश जीतनेके लिये रघुनाथराव भेजे जांयगे, यह भी स्थिर हुआ था, पर सामान्य लामके लिये नजीवके साथ मित्रता करके सिन्दे-होलकरने वालाजोको आशा पर पानो फेर दिया । उन लोगों को दुर्बु दिके फलसे लाहोरका बन्दोवस्त स्थायी नहीं हुआ, और न सुजा-उद्दीलाके साथ मित्रता हो हुई। 'भुजङ्गप्रकृति' नजीव-के चाडुवाक्य पर मुग्ध हो वे निश्चिन्त हो रहे। इधर नजीवकी प्ररोचनासे समस्त उत्तर-भारतमें मुसलमान लोग मराठोंके विरुद्ध इकट्टे होने लगे। अवदलीने भी विपुल सेनाके साथ आ कर भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया।

इस प्रकार वालाजीका उपदेश लिख्न हो जानेसे तीसरी पानीपतको लड़ाईका स्वपात हुआ। नजीवका पड़यन्व पूर्णावस्थाको प्राप्त होनेसे जब अवदली प्रकाव-में घुसा, तव सिन्दे-होलकरकी आँखें खुली। उन्होंने अवदली पर आक्रमण करनेके लिये याता की। परन्तु उन्हें ही पराभव खोकार करना पड़ा। केवल यही नहीं, दलोके हाथसे वे अनेक सेना सामन्तों सहित मारे गये। यह संचाद १७६० ई०के जनवरीमासमें पूना पहुंचा।

यह संवाद पानेके दो सप्ताह पहले उदयगिरिके युद्धमें पेशवाने निजामको घरास्त किया था। इसके बाद
हैदरअलीके विरुद्ध युद्धयाला करना बालाजोका उद्देश्य
था। केवल यही नहीं, समस्त दाक्षिणात्यसे मुसलमानशासनका शेष चिह्न पर्यन्त विलुप्त करनेकी इच्छा भी
उनके हृद्यमें वलवतो थो। किंतु अबदलीके हाथसे
जव सिन्दे होलकरकी पराजय-वार्त्ता सुनी, तब उन्हें
अपना संकल्प स्थागित रख कर उत्तर-भारतमें सेना
भेजनो पड़ी। इस सेनाका अधिनायकत्व किसे दिये
जांय, इस विषयमें बड़ी वाक्वितएडा हुई। रघुनाथरावके अभियानके फलसे राज्यकी आयवदि होनेकी बात

तो दूर रहे, ८० लाख रुपये और कर्ज हो गये थे। इस कारण इस वार सदाशिव भावको सेनापित वना कर अवद्लीके विरुद्ध भेजा गया। विश्वासराच नामक बालाजोके बड़े लड़के भी उनके साथ थे। बहुतों के मतसे सदाशिवराव भावको सेनापित बनानेमें बालाजी की बड़ी भारी भूल हुई थी।

भावसाहवने अपनी विवुजवाहिनीके साथ दिलोकी ओर याता की । कुछ्क्षेत्रके विस्मृत समग्पाङ्गणमें अह्यद्शाह अवदली, नजीव खाँ रोहिला. खुजाउद्दौला, कुतवशाह, अहमद खाँ, दुन्दे खाँ आदि रोहिला, पठान् और दुराणी सरदारगण अपने अपने चतुरङ्गवलके साथ उतरे । १७६१ ई०की १४वीं जनवरीकी दोनों पक्षमें घीर संग्राम आरम्भ हुआ । इस बार मराठोंकी पूरी हार हुई । इस युद्धका विस्तृत विवरण भाक (भाव) साहब शब्दमें हैं खो ।

उत्तर-भारतमें श्रह्णपक्षकी प्रवलता देख कर वालाजी वाजीराव दलवलके साथ भावसाहवकी सहायतामें उत्तर-भारतको चल दिये। नर्भदा पार होते ही उन्हों ने पानीपतकी पराभववान्तां सुनीं। जो व्यक्ति यह संवाद ले कर बाया था, यह एक शाहुकार (महाजन) का दूत था। पत्र संक्षेपमें इस प्रकार लिखा था, "पानीपतकी लड़ाईमें दो लाल स्वलित हुए, २७ मीहर खोई गई और हपये पैसे कितने नष्ट हुए उसकी शुमार नहीं।" इस संक तसे पेशवाने समका, कि भावसाहब सौर विश्वास-राव अपने २७ सेनापतियों के साथ मारे गये हैं और बहुतसो सेना विनष्ट हुई हैं। कुछ दिन बाद हो गुद्ध क्षेत्रसे भागे हुए प्रराठ उनके पास पहुंच गये। पानीपतमें उनका जो सर्वनाश हुआ था, उसका विस्तृत विवरण उनलिंगोंकी जवानीसे सुना। अव वे हताशहदयसे पूना लाँटे।

पानीपतकी दुर्घटनासे प्रराहोंकी असीम श्रित हुई। उनके प्रधान प्रधान सेनापति और लाखों सेना इस संप्रामानलमें भस्मीभूत हुई। महाराष्ट्रदेशके प्रायः सभी सरदारों और सम्प्रान्त जागीरदारोंने प्राण विसर्जनकिये। वहुसंख्यक मराठा-परिवारोंका अस्तित्व एकवारगी विलुप्त हो गया। महाराष्ट्रका एक परिवार भी इस घटनामें आत्मवियोगसे वचने न पाया। घर घर रोना पीटना पड़ गया। वालाजी वाजीरावके वड़े लड़के विश्वासराव और

उनके भतीजे भावसाहव युद्धमें वीरगितको प्राप्त हुए थे। उनकी विशाल दिग्विजयो सैन्यइलका ऐसे शोच-नीय परिणामका विषय सुन कर वालाजीका कलेजा हुक टूक हो गया। भाव साहवके शोकसे और वियोगिविधुर मसंख्य प्रजाका हाहाकार-रव सुननेसे वे उन्माद्यस्त हो, थोड़े ही दिनोंके मध्य (१७६१ ई०के शेप जून मास-में) इस घराधामको छोड़ सुरधामको सिधार गये। उनके जैसे वृरदर्शी नेताके अभावसे महाराष्ट्र-समाजका मेरुद्गुड भानप्राय ही गया। पेशवाका अमित प्रताप यहीं पर खर्च हुआ।

पेशवाई (फा॰ स्त्री॰) १ अगवानी, किसी माननीय पुरुष-के आने पर कुछ दूर आगे चल कर उसका खागत करना। २ पेशवाका पद या कार्य। ३ पेशवाओंकी शासन कला। पेशवाज (फा॰ स्त्री॰) एक प्रकारका घाघरा जो वेश्वाएं या नर्वेकियां नाचनेके समय पहनती हैं। इसका घेरा कुछ अधिक होता है और इसमें अकसर जरदोजीका काम बना रहता है।

पेशस् (सं॰ क्वी॰) पिश-असुन् । १ रूप २ हिरण्य । पेशस्कार (सं॰ ति॰) पेशो रूपान्तरं करोति कु-अग् । स्वरूपका कोटमेद, रूप वद्छने शळा की झा ।

पेशस्कारी (सं॰ स्त्री॰ ) पेशस्कार-स्त्रियां डीव् । स्वकतीं, चेहरा वनानेवाली ।

पेशहरूत (सं० पु०) कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा।
यह कोड़ा जिस किसी कीड़े की पकड़ता है, वह अपना
रूप परित्याग करना है। इसलिए इस कीड़े का नाम
पेशहरूत हुआ है।

पेशा फा॰ पु॰) ध्यवसाय, उद्यम, यह कार्य जो मनुष्य नियमित रूपसे अपनी जीविका उपार्जित करनेके लिये करता हो।

पेशानी (का॰ स्त्री॰) १ कपाल, ललाट, भाल, माथा । २ प्रारम्य, भाग्य, किस्मत । ३ किसी पदार्थका अपरी और आगेका भाग ।

पैशाव (फा॰ पु॰) १ मूत, मृत। २ थीय, धातु। ३ सन्तान, औक्षाद।

<sup>\* &#</sup>x27;पेश्वा' शब्दकी वरपत्तिके इतिहास की अखीचना करनेसे मालूप होता है, कि ११५२ है जैं अलाउद्दीनने ही सबसे पहले 'भन्त्री' उपरिचित्तकप इस 'पेश्वा' सब्दका व्यव-हार किया है।

पेशावसाना (फा॰ पु॰) पेशाब करनेकी जगह।
पेशावर—पञ्जाबके लाटके अधीन एक जिला। यह
अक्षा॰ ३३ ४६ से ३४ ३२ उ० और देशां ७१ २२ से
७२ ४५ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६३१
बर्गमील है। इसके उत्तर-पिश्चम और दक्षिणमें सफेदकोह तथा हिन्दुकुश पर्वतमाला, दक्षिण-पूर्वमें सिन्धु नदी
और पूर्वोत्तरमें खात और बोनका पर्वत है। उन पर्वतों
पर पटानबंशीय खाधीन जातिका बास है। जिलेके मध्य
हो कर कावुल और खात नदी बहती हैं।

स्वाभाविक सौन्दर्यसे पेशावर उपत्यका परिपूर्ण है। चारों और बिस्तृत शैलंमालां मानी रङ्गभूमिकी सोपान-श्रेणीवत् सजी हुई है। दक्षिण-ओर खद्दक पर्वतमाला क्रमशः ३ हजार फुटसे हुई ७ हजार फुट ऊँची है और क्रम्शः कावुल नदीकी उपत्यका-भूमि अतिक्रम कर खैवर-घाटी तक चली गई है। इस पर्भतश्रेणीके मध्य मुलाधर नामक श्रद्धदेश ७०६० फुट ऊंचा है। काबुल नदीके उत्तरांशसे गिरिमाळाका विस्तार है। हिन्दुकुश और सिन्धुनदीकी मध्यवर्ती पर्वतमालाका नाम है स्नात। इन पर्वतावच्छित्र देशों में युसुफजे आदि पार्वतीय जाति-का वास है। होतिमर्दनके सन्निकटस्थ करमार शृङ्क और पञ्चपीर पर्वत जनसाधारणके रहने योग्य है। काबुल, खात, कालापानी और वाड़ आदि कई एक स्रोतिखिनी उक्त पर्वती की घोती हुई सिन्धुनदीमें जा गिरी है। पर्वतों की प्राकृतिक अवस्थितिसे भूतस्विवदों ने विशेष आलोचना द्वारा निरूपण किया है कि 'पोष्ट टार्टियरी' युगप्रारम्भमें यह उपत्यकामूमि ह्रदसे परिपूर्ण थी। काल-के क्षयशील आक्रमणसे जव उनका रुद्ध जलनिर्गमपथ उन्युक्त हुआ, तब घीरे घीरे उस जलराशिने ढालु पथसे प्रवाहित हो सिन्धुके कलेवरको बढ़ाया था। पेशावरकी वर्त्तमान गर्भगमीरता, वालुकासंयुक्त दलदलके मध्य विभिन्न श्रेणियोंके प्रस्तरादिके अवस्थान और अटक दुर्भके समीपवाली नदीकी गीली जमीन हो कर बहनेसे ही प्रकृत घटनाका सन्धान मिळता है। पश्चिम और मध्यभागमें काबुछ तथा स्नात-नदी जहां बहती हैं वहां स्रेती वारी अच्छी होती है। दूसरी जगह जलकष्ट रहने पर भी सभी ऋतुओं में उत्कृष्ट और प्रचुर श्रुव्य उत्पन्न होता है। पर्वताच्छादित पश्चिम ओरकी शोमा निराली
है। सुगमीर वनराजी, भीतिसंकुल गिरिसङ्कट और सुप्राचीन चूड़ाशोमित मसजिदें पर्वतशिखर पर आसमानसे बातें करती हैं। सम्मुखमें शस्यश्यामल धान्य क्षेतािर्
और पश्चाद्धागमें सुदूर देशस्थित तुवारावृत पर्वतच्चृड़ा
रजताचलकी तरह अपूर्व शोभाशाली दिखाती है। असक
नगरके उत्तर काबुल और सिन्धुनदीमें सोना पाया जाता
है। चैत वैशाल और आश्चिन कार्त्तिकमें मलाह लोग
स्वर्णरेगुको साफ कर बाहर निकालते हैं। सोनेके
अलावा यहां कडून और बजीरमें लोहा, सुरमा आदि
सनिज पदार्थ पाये जाते हैं। मनेरीके समीप जरद
वर्णका एक प्रकारका ममेर पत्थर मिलता है जिसले
स्फटिककी माला और चूड़ो आदि सलङ्कार बनाये
जाते हैं।

युसुफजे और हस्तनगरके समीपक्तीं तथा अन्यान्व पार्वतीय जङ्गळों में शहत्त, शीशम, काऊ, ककोर, शाल आदि नाना प्रकारके मूल्यबान वृक्ष पाये जाते हैं। उन सव जंगलों में हरिण, शूकर, चीता, लकड़वाधा, श्याल आदि खुंखार जानवरों तथा तरह तरहके पिक्षयों का बास है। स्थानीय अधिवासियों और नाना स्थानों के शिकारियों के उपद्वसे यहां की पशुसंख्या धीरे धीरे घटती जा रही है। सम्राट् अकवर यहां गैं ड़ के शिकारमें आये थे। गग्रहार देखों।

आर्य हिन्दुओं के भारताधिष्ठानसे ही पेशावर उपत्यका-का इतिहास आरम्भ हुआ है। महामारतादिमें इस स्थानको गान्धारराज्यके अन्तर्गत वतलाया है। चन्द्र-वंशीय गन्धार राजाओं ने पेशावर नगरमें ही राजधानी वसाई थी। पहले इसका नाम था परुषकस्थली और पुरुपपुर। मुसलमानी अमलवारीमें पेशावर नाम रखा गया है।

ई० ६डीं शताब्दीके पहले पेशावर-राज्य सैनकल-वंश-धरोके अधिकारभुक्त था । उक्त वंशोय राजाओंने पारंसी सेनाको परास्त कर भारतवर्षको शतुके आक्रमण और वैदेशिकको करवानसे वचाया था । ५वीं शताब्दीके पहले उन्होंने राजपूतवंशीय केदराजको #

क ये दरायुस् के पिता विस्तान्तके समसामयिक थे।

पेशावर जीतनेसे विमुख किया था। आलेकसन्दर पुरुराजको परास्त करनेकी कामनासे जब इस प्रदेशमें उपस्थित हुप, तव यहांके अधिवासियोंने उन्हें विशेष वाधा दी थी। युसुफजै विमागके शेरगढ़के समीप सम्राट् अशोकका जो अनुशासन पाया गया है उससे इस प्रदेश-में उनके शासनविस्तारकी कट्यना की जाती है। १६५ ई०सन्के पहले बौद्ध विताइनप्रसङ्घमे पुष्पमितका प्रभाव पेशावर तक फैला हुआ था। विक्तयाराज मिलिन्द ( Menander )-के समय सिन्धुके किनारे श्रीक लोगीं-का पुनरम्युदय हुआ था। उनके वंशधर वोकात ( Eucratides, 145 B. C. )-ने पञ्जाव तक अपनी राज्य-सीमा फैलाई थी। पीछे शकराजाओंके अम्युद्यकालमें कोरासन, अफगान, पञ्जाव और सिन्धुप्रदेश तक राज्य-रूपमें परिगणित हुआ । शकराजाओंको भाग्यलक्ष्मी जव बिदा हो गई, तब यह स्थान ७वीं शताब्दी तक लाहोर और दिल्लीके हिन्दूराजाओंके अधीन रहा। मसुदी, आबुरिहान अलेबेरणी आदि अरव-मौगोलिकीन १०वीं शताब्दीमें इस स्थानका पेशावर नाम रखा। १६वी शताब्दीमें सम्राद् वावरकी लिपिमालामें पर्शावर नाम पाया जाता है। सम्राट् अकनर जन पर्शावर शब्द-का कोई अर्थ न निकाल सके, तब उन्होंने इसका पैशा-वर' वा सीमान्तनगर नाम रखा।

आरियनके बर्णनसे मालूम होता है, कि अलेकसन्दर-के सेनापित हिफाण्रियनने हस्ती (Astes)-को परास्त कर पुष्कळावती पर अधिकार किया। चिंति-अनुवादित बस्रुवन्युचरितमें गान्धारराज्यकी राजधानी पुरुपपुर नाम-से उल्लिखित हुई है। चीनपरिमाजक फाहियान ४०० ई०में और सुङ्गयुन ५२० ई०में पेशावर नगर आये थे। ७वीं शतान्दीके प्रारम्भमें चीनपरिमाजक फाहियान पुनः इस प्रदेशमें पधारे। उन्होंने इस राजधानीका पुरुपपुर (पी-लु-प-पु-लो) नाम रख कर इस स्थानकी प्राचीन कीचियोंका विस्तृत इतिवृत्त लिपियज्ञ किया है। उन्हीं के विवरणसे हम लीगोंको मालूम होता है, कि उनके भारता-गामनकालमें इस गान्धार राज्यका कुछ अंश किपश वा कावुलराज्यके अन्तर्भु क था।

परित्राजक यूपनञ्जकक्षे वर्णनसे जाना जाता है, कि

"पुरुषपुर राजधानीका घेरा ४० लोग वा प्रायः ६॥ मील था। पूर्वतन राजवंशका लोप हो जानेसे कपिशराजके अधीनस्थ कर्मचारिगण इस प्रदेशका शासनकार्य चलाते हैं। नगर और प्रामादि श्रीहीन हो गये हैं। पकमाब पुरुपपुर-राजप्रासाद्के निकट प्रायः हजार मनुष्यींका वास है। फल, पुष्प आदिसे इस स्थानकी शोभा निराली है। ईखके रससे देशवासी मिल्ली तैयार करते हैं। यहां नारायणदेव, असङ्गवोधिसत्त्व, वसुवन्धु वोधिसत्त्व, धर्मतात, मनोहित और आर्य पार्धिक प्रभृति वौद्ध शास्त्र-कारोंने जन्मग्रहण किया था। उस समय विद्याचर्चा इतनी जोरों थी, कि यएनचुचङ्ग देशवासियोंको भी ह और कोमल सभावापन्न वतला गये हैं। वौद्ध धर्म सम्प्रदाय व्यतीत वहां अन्यान्य सम्प्रदायों की भी प्रतिपत्ति हुई थी , विल्लंस-प्राय चौद्रकोत्तियों के निद्शैनखरूप छतागुच्छाच्छादित और ध्वंसावशिष्ट एक हजार संघाराम द्वष्टिगीचर होते हैं। अधिकांश स्तूप कालकी क्रोड़में शायित हैं। राज-धानीमें जो कुछ अपूब्य वीदकीर्त्तियां रह गई हैं। परि-व्राजकने उन्हींका यथासम्भव उल्लेख किया है;—१ भिक्षा-पातस्तूप(१), २ पीपलका वृक्ष (२), ३ कनिष्कस्तूप (३)

<sup>(</sup>१) शाक्यवृद्धके निर्वाणकालके बाद वनका मिक्षायात्र नाना देश पर्यटन करता हुआ आखिर करनारमें आया था। यहां वसके कथर एक छन्द्रत स्तूर बनाया गया। सर हेनरी राजिनसनका कहना है, कि नहांके मुसलमान उसे पवित्र कीर्ति समझ कर भिक्त करते हैं। गौतमञ्जदके भिक्षापात्रके इस अर्थाक्षर्य भ्रमणसे प्राचीन इसा संन्यासियोंके निकट गौतम सेस्ट-जोस-कत् (वोधिसस्वका अपभूश) नामसे परिचित थे। इस वातको मोक्षम्बर आदिने भी सुक्तकस्वत्रे स्वीकार किया है।

<sup>(</sup>२) यूएनचन रने इस झुनको १सी फुट जँग और उसके नीचे पूर्ववर्ती चार बुढोंकी प्रस्तरमृत्ति देखी थी। मुंगयुनने इसे बोधिवृक्ष और तत्यार्थित्य प्रन्दिरको राजा कनिष्कका प्रति-छित बतलाया है। मुगलसम्राद् वाचरने १४०५ ई०में यह वक्ष देखा था।

<sup>(</sup>३) यह प्रस्तरस्तूप राजा किनस्कड़ा प्रतिष्ठित किया हुआ है। फाहियानने इसे ४सी फुट ऊँचा और यूएन-चुन राने ५ तक्षेत्रा बतलाया है। बनके आगमनकालमें यहां

और सङ्घाराम(४) बौद्धकीर्त्तिके प्रकृष्ट निद्दर्शन हैं। अलावा इसके असंख्य बौद्धमूर्त्ति और पूर्वतन बौद्धयुगके प्रस्तर-स्तम्मादि भी हैं। अलेकसन्दरके पञ्जाव-विजयके वाद यहां श्रीक जातिने अपना प्रभाव फैलाया था। उस समयकी खोदित मूर्त्ति वा अपरापर कीर्त्तियां बौद्ध तथा श्रीकमावमें परिपूर्ण (Graeco Buddhistic sculpture) हैं। पेशावरकी किसी बुद्धमूर्त्तिके निम्नदेशमें २९४ सम्बत्में उत्क्रीण एक शिलाफलक पाया गया है (५)

पुस्तकादि पढ़नेसे मालूम होता है, कि अत्री शताब्दी-के मध्यभागमें यहां हिन्दुओंकी प्रधानता थी। स्थानीय इतिवृत्तमें ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही अफगान वा पटानजातिका शुभागमन स्चित हुआ है, इसके बाद पेशावर-उपत्यका दिल्लीके हिन्दूसाम्राज्य और अफगान-राज्यके मध्य पड़ कर उभयपक्षींय युद्धविप्रहके केन्द्रस्थल

अर्थेख्य बुद्धमूर्तियाँ दथर वधर विखरी हुई थी। नूएन चुत्र'गने इस स्तूरको अग्निद्ध दिखा था।

Beal's Bud. Rec. West. World, Vol. I. p. 101-3.

18) यह भी महाराज किन्दिक द्वारा उक्त हुइत स्तूरके पश्चिममें प्रतिष्ठित बतलाया जाता है। यूएनचुव ग जब यहां आये, उस समय भी संबाराभके मग्नप्राय द्वितल एहावि अव विष्टाये। उन्होंने हीनयान मतावलम्बी बौद्ध संन्यासियोंको इस संवाराममें निवाभ्यास करते हिला था। १ वी प्रताक्य तक बह स्थान बौद्ध भी और ज्ञानचर्चीका केन्द्रस्थल रहा। Journ. As. Soc. Beng 1849, p. 494.

(५) किन्क-चेनत (शक)-के हिसाबसे यदि गणनाकी जाय, तो यह ३५१-२ ई०में उत्कीणे प्रतीत होता है। किंद्र गण्डफेरिय (Gondaphares) की तफत इ बहिनी खिला किंपिमें १०३ सम्बत् पाया जाता है। गण्डफेरिया-राजकी प्रचलित मुद्दासे बात होता है, कि ने १ली श्वाब्धिके प्रथम भागमें नियमान थे। अतएन तंत्प्रचलित संवताब्द विकामंक (B. C. 57) अथवा अन्य अन्यस्चक होगा तथा बन्हीने जो विकास संवत् वा तत्यामिषक कोई घटना-समाधितकाल प्रदान किया होगा, इसमें सन्देह नहीं। (Ind Ant. xviii, p. 257)

में परिणत हुई थी। इस समय भी अफगान लोग महस्मद-प्रवर्त्तित इस्छामधर्ममें दीक्षित नहीं हुए थे। वे लोग हजारा और रावलपिएडीवासी गक्कर जातिकी सहायतासे कावुळनदीके दक्षिणतीरस्थ पार्वतीय प्रदेशमें आ कर दस गये थे। किन्तु उस समय पेशावर, हस्तनगर और युसुफजै-प्रदेश हिन्दूराजोंके शासनभुक्त था। ६७८ ई०में स्रोरासानके राजा सबुक्तगीनके साथ लाहोरराज जवपाल-का युद्ध हुआ। राजा जयपाल पराजित हो जान ले कर भागे। पीछे सबुक्तगीनने पेशावर पर अधिकार जमाया और वहां २० हजार अध्वारोही नियुक्त कर आप स्वदेश-को लौट गये। उनके लड़के सुलतान महसूरने (६) कई बार पेशावर उपत्यकामें युद्ध किया था। उनमेंसे रावलपिएडीके चच-क्षेत्रमें अनङ्गपालके साथ जो गुद्ध हुआ, वह भारत इतिहासमें एक घोर दुर्घ दना हैं। मह-मूद पेशावरमें रह कर ही भारत पर चढ़ाई फरनेका आयोजन करते थे। पीछे प्रायः सौ वर्षे तक यह स्थान गजनोके अघीन रहा (७)।

महमूदके कुछ पहले दिलजाक नामक दुई ध पठात-वंशने यहां अपनी गोटी जमाई। १२०६ ई०में साहबुद्दीनके मरने पर घोरके पठानवंशने सिन्धुनदी तक अपना दखल कर लिया था। किन्तु दिलजाकोंने पेशावरका कुछ भी अंश अपने हाथसे जाने नहीं दिया। १५वीं शतान्दीके शेषभागसे ही यहां अफगानजाति रहने लगीं।

तैमुरवंशधर उलुघवेगने जब खखै पठानोंको, (८) काबुछ से निकाल भगाया, तब युसुफजै, गिगियानी और मुह-समदजै नामकको तीन जातियाँ पेशावर उपत्यकामें बस

<sup>(</sup>६) इन्होंके घलने पठान लोग इसलाम-छम्में चीलित हुए। इन्होंने ही सबसे पहले भारतवर्ष पर अधिकार नमाया था। महमूद देखी।

<sup>(</sup>७) गशनीसे के कर लाहोर तक गजनी-राज्यकी सम्बार्ध शी। पेशावर उक्त राज्यके ठीक नीचमें पडता था। महब्द भारतक्षेत्रे को कुछ छट लाते थे, वह पेशावरमें ही रखा बाता था। जनके बाद बाद आक्रमण बीद छटपांटले यह स्थान चीरे धीरे जनमानवहीन और व्याध्रगण्डारादिसे पूर्ण हो ग्राथा।

<sup>(</sup>८) अमणकारी पठाननातिमेद ।-

गई'। दिलजाकों ने उन लोगों के रहनेके लिये कुछ अनु वर जमीन दो। इसके कुछ समय वादहों दोनों दलमें कलह पैदा हुआ। आतिध्यके पुरस्कार स्वक्ष्य उन्हों ने दिलजाकों को हजाराकों ओर खदेड़ दिया। अव गिगियानी स्वात और काबुलनदीके सङ्गम स्थलमें, मुहम्मदजै हस्तनगरमें और युसुफजै लोग युसुफजैके उर्वर क्षेत्रमें रहने लगे।

इस प्रकार तीन स्वतन्त्रभागों में विभक्त हो पठान लोग मुखों पर ताब दे रहे थे। १५१६ ई०में मुगल-सम्राट् वावरने विल्लाक् सरदारों से मिल कर इन पठान-की तीनीं जातियों को अपने काव्यों कर लिया था। वावर और शेरशाह वंशधरों के परस्पर युद्धवित्रहसे पेशावरके भाग्यों बहुत विपर्यय हुआ था। हुनायूं ने दिल्लाकों -को एकदम मार भाग्या था, उनकी बुनियाद तक भी रहने न दो थी। एकमान्न अकवरशाहके विशाल साम-व्यन्तने पेशावरको शलुविष्ठवसे रक्षा की थो। जहांगोर, शाहजहां और औरङ्गजेक्के राज्यकालमें पेशावरके लोग भनिच्छा रहते हुए भी दिल्लो मिहासनको अवीनता स्वी-कार करनेको वाध्य हुए थे। आखिर औरङ्गजेवके राज्यकालमें ही पदानों ने विद्रोही हो कर मुगलके

१७३८ ई॰में यह स्थान नादिरशाह के हाथ छगा। परवर्ती दुरानीराजवंश के अधिकारकाल में कावुछराजसरकार के कार्यादि पेशावर राजधानी में ही परिचाछित होते थे। १७६३ ई॰में तैम्रशाह के मरने पर अफगान राज्य में घोर विश्व हुंछ उपस्थित हुई। इस विष्ठव में पेशवाकी मी वहुत कुछ मुसीवतें उठानी पड़ी थीं। अवसर पा कर सिख छोग मुस छमान शतुके प्रतिहिसासाधन में अप्रसर हुए और नंगी तछ वारसे उन्हों ने (१८१८ ई॰में) पर्वतके पाद तक सभी स्थानों को पददछित कर डाला। १८२३ ई॰में सिख छोगों का दर्पचूर्ण करने के छिये आजीम खाँ कावुछसे पेशावरकी और रवाना हुए। किंतु रणजितसे हार खा कर उन्हें सिख की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। रणजित्सिह के वछ राजस्व के मिखारी थे, राज्य स्थापनाकी और उनका जरा भी ध्यान न था। पराजित राजगण उन्हें उपयुक्त नजराना

अथवा राजकर दें कर छुटकारा पाते थे (६)। जो ठीक समय पर राजकर नहीं भेजते, उनका राज्य छारखार कर दिया जाता था। लूटके मालसे सिख-राजकोष भर जाता था। अफगान और सिख-युद्धके वाद पेशावरमें सिखको प्रधानता स्थापित हुई। सरदार अविताविले (General Avitabile) यहांके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए।

१८४८ ई०में यह प्रदेश वृटिश साम्राज्यभुक हुआ।
१८५७ ई०के गद्रमें यहांके सिपाही बागी हो गये थे।
वड़ी मुश्किलसे जेनरल निकलसनने उनका दमन किया।
वृटिश गवर्मेण्टने वहुतोंको फांसीमें लटका कर अथवा
तोपसे उड़ा कर कठोर हृद्यका परिचय दिया था।

इस जिलेमें ७ शहर और ७६३ शाम लगते हैं। जन संख्या करीव आठ ढाए है। पहले विद्याशिक्षाकी ओर लोगोंका ध्यान कम था। अभी जिले भरमें १०सेकेएड्री, ७८ प्राइमरी, २०८ प्रतिमेएट्री स्कूल, ६४ वालिका स्कूल, ४ हाई-स्कूल और १ शिल्पकालेज है। विद्या-विभागकी और ६१००६० एक्चे होते हैं। अलावा इसके सिमिल अस्पताल और ४ चिकित्सालय भी हैं।

२ पेशावर जिलेकी एक तहसील । यह अक्षा॰ ३३ ं ४३ ं से ३४ ं १३ ं उ॰ तथा देशा॰ ७१ ं २२ ं से ७१ ं ४५ ं पू॰ के मध्य अवस्थित हैं। भूपरिमाण ४५१ वर्गमील और जन-संख्या ढाई लाखके करीव हैं। काबुलकी नहर इस तह-सीलको दो भागोंमें विभक्त करतो हैं। इसमें कुल २५६ शाम लगते हैं। राजस पांच लाख कपयेसे कम नहीं होगा।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार विभागीय सदर। यह अक्षां० ३४' १ उ० और देशां० ७१' ३५ पू०- के मध्य अवस्थित है। यह खात और कायुलसङ्गमसे ६॥ कोस, जमकददुर्गसे ५॥ कोस, लाहोर-राजधानीसे १३८ कोस, वम्बईसे १५७६ मील और वलकत्तेसे १५५२ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या ७६५१४७ है। जिनमेंसे मुसलमानकी संख्या ही अधिक हैं। यही शहर प्राचीन गान्धार राज्यकी राज्यानी है। यहां बोद्दकीर्त्तिके ध्वं-सावशेष आज भी पूर्वगीरवकी रक्षा करते हैं। जिलेका इतिहास देखी। वर्तमान नगरकी गृहवारिकाका गठन-

<sup>(</sup>६) महाराज रणजित्के आदेशमे खड्णसिंहने पेशा-बरमें पठान-राज यार महम्मदको परास्त किया था। पीछे उन्होंने रणजित्को उपयुक्त नजराना दे कर निष्कृति पार्रे।

कार्य उतना विदयां नहीं है। सिख-सरदार अविताविलेने नगरको चारों ओरसे महीकी दीवालसे घेर दिया है। नगर-प्रवेशके १६ द्वार हैं। द्वार वंद होनेके पहले हर एक रातको तोपध्वनि होतो है। इनमेंसे एकका नाम 'कावुल-गेट' है जो ५० फ़ुट प्रशस्त है (१०)। सर हार्बंट एडवा-र्डिसके स्मरणार्थ यह फिरसे वनाया गया। नगरके वीच हो कर एक खाई दौड़ गई है। पीनेका जल क्रूपसे · निकाला जाता है। प्राचीन गृहादि उपयूपरि युद्धविष्ठवसे नप्र हो गये हैं। कितनी मसजिदें नगरकी शोभा वढ़ाती हैं। प्राचीन बौद्ध सङ्घाराम हिन्दूमन्दिरमें परिणत हुआ है। वर्त्तमान घोर खिल नामक वृहत् वाटिका उसी सङ्घारामके ऊपर निर्मित है। अभी इसमें सराय और तहसोलको कचहरी लगती है। प्राचीरके वाहर उत्तर-प्रश्चिम दिशामें वाळा-हिसरका प्राचीन दुर्ग है । नगर-के दक्षिणपश्चिम वनमारी वाघवन और वाघशाहो नामके वगीचोंमें तरह तरहके फल फूल लगते हैं। लोग वहांके दोनो वगीचोंको वजोरवाग कहते हैं। शहरके उत्तर 'शाहोवाग' नामकी वाटिका देखने छायक है।

नगरसे एक कोस पश्चिम पेशावरका विख्यात गोरा-बाजार (Military Coantonment) है । ६८४८-६ ई०में यह नगर अंगरेजोंके अधीन हुआ। इराणी सर-अलीमर्दनखाँकी उद्यानवाटिकामें ही रेसिडेएटका अड्डा है। राजकोप और दक्षर इसी घर है। गोरावाजारका घेरा ४ कीससे कम नहीं होगा। नौसदर, जमकद और चेरटका किला इसीके अधीन है।

कावुल, वोखारा और मध्य पशियाके अन्यान्य राज्यों-के साथ भारतीय वाणिज्यका यह केन्द्रस्थान है। विला-यती वस्तु, शाल, चीनी, घी, नमक, गेहूं, तेल, अनाज, छुरी, केंचो आदि द्रव्य भारतवर्षसे पशिया और कावुल, युखारा और वजीर नगरमें भेजे जाते हैं। उनके वदलेमें कावुल आदि नानादेशोत्पन्न दृष्य, वीखारेका चमड़ा, घोड़ा, रेशम, पिस्ता, किशमिस, पशम, औपध, मोहर, सीना और रुपेका सूता और फीता आदि दृष्य पहले पेशावर आते हैं। पेशावरसे पञ्चाव, काश्मीर, वम्बई, कलकत्ते आदि स्थानोंमें रक्षनी होती है।

शहरमें ४ हाई स्कूल, १ शिल्पकालेज, १ अस्पताल और चार ४ चिकित्सालय हैं। पेशावर (फा॰ पु॰ ) ब्यवसायी, किसी प्रकारका हैला

पेशावर (फा॰ पु॰) ब्यवसायी, किसी प्रकारका पेशा करनेवाळा।

पेशि (सं० पु०) पिश हिपिशीति । उग् ४।११व) १ शतकोटि । (स्त्री०) २ मापविदल । ३ अएड, अंडा । ४ आद-कादि द्विदल, अरहरकी दाल । ५ आम्रादिकी शलादी, अमचूर । ६ खएडीकृत आदंक, शलादी, टुकड़े दुकड़े किये हुए अमचूर ।

पेशिका ( सं॰ स्त्री॰ ) अएड, अंडा।

पेशितृ (सं० ति०) प्रतिमादिका अवयवकत्तां, मूर्ति गढनेवाळा ।

पेशी (सं० स्त्री०) पिश-इन वा डीप्। १ अएड, अंडा।
२ वज्र । ३ मापविदल, उड़दकी दाल । ४ सुपक कलिका,
पकी हुई कली। ५ मांसी, जटांमासी। ६ खड गविकान,
तलवारकी म्यान। ७ नदीमेद। ८ पिशाकी मेद।
६ राक्षसीमेद। १० वाद्यविशेष, एक प्रकारका डील।
११ गर्भवेष्टन-चममय कोष, चमड़ेकी वह थैली जिसमें
गर्भ रहता है। १२ मांसपिएडी, शरीरके भीतर मांसकी
गुल्थी या गांठ।

मांसिपिएडीको पेशी कहते हैं। सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है, शरीरके सभी अङ्गोंमें पेशी है। कुछ पेशियोंकी संख्या ५०० है। इनमेंसे हाथ पैसें ४००, कोष्ठमें ६६, गले और उसके ऊपरमें ३४ हैं। प्रति उँगलीमें तीन तीन करके पन्त्रह, पैरके ऊपरी भागमें दश, क्लेदेशमें दश, पददल और गुल्फदेशमें वश, पददल और गुल्फदेशमें वश, गुल्फ मौर जानु दोनोंक मध्यस्थलमें बीस, जानुमें पांच, ऊरुदेशमें वीस और वंक्षणमें दश। इस प्रकार प्रत्येक पैसें सी सी कर दो सी और इतना ही पेशियां दोनों हाथमें हैं। इस प्रकार हाथ और पाँचकी पेशियां मिला कर चार सी होती हैं।

पायुदेशमें तीन, मेढ़में एक, मेढ़देशके सेवना स्थानमें एक, दोनों मुक्तमें दो, दोनों नितम्बमें पांच पांच करके दश, वस्तिके ऊपरीभागमें दो, उदरमें पांच, नाभिमें एक, पृष्ठके ऊद्ध भागमें पांच पांच करके दश, दोनों पार्वमें छह, वक्षास्थलमें दश, स्कन्ध सिक्थके बारों ओर सात, छह, वक्षास्थलमें दश, स्कन्ध सिक्थके बारों ओर सात,

<sup>(</sup>१०) काबुलसे ले कर इस द्वार तक एक सीमा रास्ता नला आया है।

हृद्य और आमाशयमें दो, यहत्, प्लीहा और उण्डुकमें छह, प्रीवामें चार, हृतुमें आठ, काकल और गलेमें एक एक करके दो, तालुमें दो, जिहामें एक, दोनों ओष्ट्रमें दो, नाक, में दो, चक्षमें दो, दोनों गएडमें चार, दोनों कानमें दो. ललाटमें चार और मस्तकमें एक। यही पांच सौ पेशियां सारे शरीरमें अवस्थित हैं। शरीरकी शिरा, स्नायु, अस्थि, पर्च और सन्धि पेशियों द्वारा आवृत रहनेसे ही शरीरके अ'ग हिलते डोलते हैं। स्त्रीके शरीरमें पुवयकी अपेक्षा वीस पेशी और अधिक हैं। इनमेंसे दोनों स्तनमें पांच पांच करके दश जो योवनकालमें बढ़ती हैं, अपत्य पथमें चार जिनमेंसे उस पथके मुँह पर दो और वाहर दो, गर्भाच्छिद्रमें तीन और शुक्शोणितके प्रवेशपथमें तीन हैं। पुरुपके मुक्षदेशमें जो सब पेशियां रहती हैं, खीके शरीरमें वे सब पेशियां, अन्तभूत फलकीय (गर्माश्रय )- को ढँकी रहती हैं। ( हुन्युन शारीरस्था ५ ४० )

यूरोपीय चिकित्सकोंके मतमें भी मानवदेह पेशी-मिएडत है। इसीसे देहयष्टिका एक और भंगरेजी नाम है Muscular System | जिन सद पेशियोंसे शारीरिक अंश सञ्चालित वा प्रसारित होते हैं उन्हें Tensor और उसोलनकारी पेशीको Levator कहते हैं। में सब पेशियां स्थिति-स्थापक, रक्ताम और सूच्म तन्तुमय पदार्थ ( Myoline ) द्वारा आच्छादित हैं। श्रीरके मध्यकी पेशियां कहीं न कहीं अपनो नीचेवाली हर्होसे जुड़ी रहती कि पेशीमं जलका भाग अधिक है और जीवित देहमें यह प्रायः अद<sup>®</sup>सच्छ है। कुछ पेशियां भनुप्रस्थ ( Transversalis ) और कुछ तिशीर्ष (Triceps ) अवस्थामें शरीरके मध्य प्रलम्बित हैं। प्रत्येक पेशीतन्त जिस प्रकार किली (Myolemma) द्वारा आच्छादित है, उसी प्रकार एक एक पेशीखएड भी किल्ली (Aponeurosis)-से सम्बन्ध रखता है। साधारणतः दो श्रेणीकी पेशियां शरीरमें विद्यमान हैं । इनमेंसे कुछ पेशियां देसी हैं जो इच्छा करते ही ( Voluntary ) हिलाई डुलाई जा सकती हैं और कुछ ऐसी हैं जो इच्छा करने पर भी भवने स्थानसे ( lnvoluntary ) नहीं हटती. । अन्त-ंबद्दा नली, मूलाशय, जननेन्द्रिय, धमनी, शिरा और लसि- का निल्योंके प्राचीर-स्थानमें अचल और भविशिष्टांशमें सञ्चालनक्षम पेशी ही चत्तेमान देखी जाती हैं।

समान है। किन्सु जिनकी किया साधारणतः लक्षित हुआ करती हैं, नीचे उनकी यथासम्भव तालिका उद्ध त की गई है। करोटी प्रदेशकी १, ललाट और पण्चात् कपाल (Occipito frontalis) की पेशी द्वारा होनों भू का उत्तोलन, ललाटका आकुञ्चन और मुखमण्डलका विभिन्नभाव प्रकाशित होता है। २, हो मस्तकपेशी (Recti Minoris), ३ अक्षिपुटपेशीकी सहायतासे हम लीग भांख मूँ दते हैं। ४ भूसङ्कोचक पेशी, ५ अक्षिपुटाम आकर्क पेशी, ६ अक्षिप्लवकी अदुश्वींत्तीलक पेशी, ७ गोलककी अद्व श्वींतिलक पेशी, ८ गोलककी अद्व श्वींतिलक पेशी, ८ गोलककी अद्व श्वींतिलक पेशी, ७ गोलककी अद्व श्वींतिलक पेशी, ७ गोलककी अद्व श्वींतिलको भीतर और (Trochlearis, और १० अक्षिगोलकको भीतर और बाहर करनेवाली तथा कनीनिकाको अक्षिकोटरके वाहा और उत्त श्वींतिककारों गोलर के वाहा और अद्व श्वींतिलको भीतर और

· समस्त मुखमण्डलके मध्य नासिकामें ३, ओष्टमें ६, सघरमें ४, हनूमें ५, कर्षमें ३, कर्णाभ्यन्तरमें ४, ब्रोवामें ३३, तालुमें ८ और पृष्टदेशमें ७, वक्षमें ५, उद्दर्भे ६, विरुपमें ८ (स्त्रियोंके केवल ७ ५-अदुर्ध्वशालाके स्कन्ध भौर प्रगएडमें १५, प्रकोष्टमें २२, इस्तमें ११ और सक्यि वा निम्नशासामें ५२ प्रधान येशियां हैं। मलावा इसके और भी हो सौ-से अधिक छोटी शाखा प्रशाखायुक्त पेशियां हैं। इन सव पेशियोंकी सहायतासे भंगी का सञ्चालन, प्रसारण, सङ्कोचन, स्थितिस्थापन आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। जैसे, कोई पेशी मुंह खोलनेके सनय होंडको ऊपर उडाती है, कोई हाथ उठानेमें सहायक होती है, कोई उसे मर्यादा-से भागे बढ़ानेसे रोकती हैं, कोई गरदनको अधिक भुकने नहीं देती, कोई पेटके भीतरक किसी यन्त्रको द्वाये रखती है और कोई मल अथवा मूलके त्यागने अथवा रोकनेमें सहायता देती है। जिह्नाकी पेशियां ( Masoglossi ) जिह्नाको हिलाती डोलाती और उसे भीतर तथा वाहर ख़ींचती है। किसी एक पेशोसे जिह्नाके पार्क्न और वाहरमें सञ्चालन और अवनमनक्रिया साधित होती हैं। इसीसे उसका एक साधारण नाम है

Vol. XIV. 107

Polychrestus । जिह्नामूल और निम्न हमुके मध्य स्थलकी जिह्नापेशोको Genio-glossus कहते हैं।

ताल्की पेशी ताल्को उठाती है। प्रत्येक पेशीका कार्य खतन्त है, कोई ताल्को खींचती है, कोई काफलको उठाती है, कोई ताल्को अवरोध करती है, कोई निगलनेम़ें सहायता देती हैं। एक और प्रकारको पेशी है जिससे परचाह औरका नासारन्य अवरुद्ध किया जा सकता है।

जिस यन्त्रकी सहायतासे हम लोग वाक्य उच्चारण करते अथवा स्वरको उठा और गिरा सकते हैं, उस स्वर-यन्त्रको तन्त्रियो को लिम्बतमायमें टाने रखनेको एक स्त्रतन्त पेशो है। एक और ऐसी पेशी है जो खरतन्त्री-- को सीधमें खींच कर उसको उपास्थिको बाहरकी ओर घुमाती है, दूसरी पेशी स्वरतन्त्रियोंको छोटी भीर शिथिल कर देती हैं। पृष्टदेश और पृष्ठवंशमें जो पेशियां संलग्न हैं उनमेंसे एकके द्वारा मस्तक बाहरकी और आरुष्ट होता है। अपर पेशीकी सहायतासे ऊद्धर्ध बाहु ऊपर और नीचेकी ओर उठती है। वह पेशी पंजरेको खडा करती और वेहकाएडको सामनेकी ओर आकर्षण करती है। श्वासप्रहणकालमें एक पेशो पंजरेको उठाये रखती और दूसरी श्वासत्याग कालमें इसे भीतर दवाने रखती है। चार पेशियों के सहारे मेरुद्र सीघा खडा है और देहकाएड पीछेकी ओर भुकाया जा सकता है। किसी पेशीसे पृष्ठवंश ऋज है, किसीसे गला सीधा, किसीसे मस्तककी हुड्डी और मस्तक इधर उधर घुमाया जा सकता है, एक पेशी गलेके मेरुद्रण्डको स्थिर रखती है और दूसरी तीन पेणियां पृष्टवंशको सीधा रस कर घुमाती हैं।

वक्षप्रदेशमें जो पेशी है, वे श्वासप्रहणकालमें पंजरेकी
उठाये रहती है, श्वासत्यागकालमें पंजरेकी दबाये रहती
और उसकी उपास्थियों को सामने उठाती हैं। इन
दोके सिवा श्वासप्रहणकालमें एक और पेशी है। श्वास
छोड़ते समय एक पेशी उपास्थियों को नीचे खींचती
और दूसरी पंजरेको उत्तोलित करती है। उठरके बीचमें
भा एक पेशी है जिसे Diaphram वा Midriff कहते
हैं। उदरके अभ्यन्तरस्थ यन्ती की दबाये रखने और
वस्तरको वस्तिके ऊपर अवनत रखनेके लिये दो पेशी

विद्यमान हैं। वहुत सी ऐसी पेशियां हैं जो वक्षको विस्ति के ऊपर वा विस्तिको वक्षके ऊपर निमत और पार्वभावः मैं नत तथा उद्दर्यंतको सम्प्रक् प्रकारमे निपीड़ित करनेमें समर्थ हैं।

मानवदेहंके द्वारपथमें पेशी हैं। आवश्यकतानुसार को सब मुद्रित होती हैं, उन्हें वेष्टक वा सङ्कोचक (Sphinoter) पेशी कहते हैं। स्त्री वा पुरुषके विटपदेशमें जितनी पेशियां हैं उनमें गुरुसङ्कोच-पेशी (Sphinoter Ani) ही मलद्वारको अवस्द्ध रखती हैं। मृतनाली-(Ejaculator)मेंसे एक मृत्रनिर्गमकी विद्ध और शिश्तके उत्थानसाधन तथा पुंलिङ्गके उत्थानकी संरक्षा करती है। कोई पेशी सरलान्त्रके निम्नांश और मृत्राश्यको धारण करती तथा पेशावके स्रोतको रोकती है। शाह्यवर्त्तपेशी शङ्कावर्त्तको घारण करती है। यह पेशी सरलान्त्रके विद्यान करती है। यह पेशी श्रीर विद्विकी निर्गम-पथको रोके रहती है। यह पेशी योनिको संकुचित रखती और दूसरी अगांकुरको उक्षित करती है।

एक बड़ी पेशी प्रगएडको सम्मुख और निम्नकी ओर आकर्षण करती तथा श्वासग्रहणमें पंतरोंको उठाये रहती है। दूसरी दूसरी पेशियों मेंसे कोई श्वासग्रहणकालमें पञ्च-रास्थि वा पशु काको और स्कन्धाप्रको उसोलित करती है। कोई जर्क अस्थिको अवनमित, कोई प्रगएडास्थिको आगे पीछे उत्तोलित और आवर्तित करती है। किसी पेशी द्वारा प्रकोष्ठ आकुञ्चित और चित होता है। निम्न वाहको आकुञ्चित और प्रकोद्धको प्रसारित करनेकी दो स्रतन्त्र पेशियां हैं। वङ्क्षणास्थि (ˌIschium ) से हे कर होनें जानुकी ऊदुध्योस्थि ( Femur ) तक विलम्बित पेगी (Quadratus Femoris) ऊरुदेशको मृकिशाली वनाती है। कटिदेशके दोनीं पार्श्वमें Psoas-magnus और Psoas parvus नामक हो श्रोणीपेशी हैं। उनमेंसे पहली पेशो दोनों घुटनोंको आगे दढ़ानेमें सहायता 'हेती 🖁 और सदर पृष्टवंशको वस्तिगहरके ऊपर भुकानेमें मदद पहुंचाती है। Obturator Externus और Ob internus नामक दोनों पेशी रोधकशक्तिविशिष्ट है। बे दोनों पेशियो तथा जानुदेशस्थित Obturator नामक स्नायु गुहादि देशको अवरुद और दोनी जानुको सुसं-

लंग रखनेमें समर्थ हैं। Obturator Externus नामक श्रेणोपेशों नीचे Masculi gemini or Gemellus (Superior और inferior) नामक और भी दो मांसपेशियां हैं। निम्नपदकी पेशियां Cruralis Crarocus या जङ्कापेशी कहलाती हैं। निम्नपदके दोनीं डिम्ब वा जङ्काडिम्बस्थ पेशी (Gastroenemii) मानवकी स्थर उधर चलनेमें सहायता देती हैं। एतिन्न शरीरके प्रकोष्ठ, हस्स और निम्नशाखामें और भी अनेक पेशियां हैं जो उन सब प्रत्यङ्गोंके सञ्चालनमें उपयोगी हैं।

पेशियां शरीरके अङ्गप्रत्यङ्गको सञ्चालित करती हैं।

ममुख्य इन्हीं पेशियोंको सहायतासे उठते, बैठते, खड़े होते,

चलते फिरते, दौड़ते, रोते, इंसते और वातचीत करते

हैं। पेशियां जब तक सिक्रय रहतो हैं, तब तक मानव
स्वेच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। पेशिके वलिष्ठ होनेसे

मानव अमित वलशाली होते हैं। पेशिकशक्ति (Myodynamia) की अधिकतासे मानववाह विश्वविजयी हो

सकती है। कण्ठके सुमोहन सुरसे जगन्मुन्धत्व एकमाल

पेशियोंका गुण है। स्नायुओंकी सहायतासे पेशीकी

क्षमता बढ़ती है। स्वायु देखी। स्नायविक दुर्वलता

उपस्थित होनेसे कमशः पैशिक दुर्वलता (Myotility) आ

जातो है। पेशियोंमें जब वेदनाका अनुभव होता है, तब

उसे पेशीशूल (Myalgia) कहते हैं। श्रोणीपेशीके

पदाहका नाम Psoites है।

पेशीकोष (सं॰ पु॰) पेश्याः कोषः । अएडकोष, फोता । पेशीनगोई (फा॰ स्त्री॰) भविष्यद्वाणी, भविष्य कथन । पेश्तर (फा॰ क्रि॰ विं॰) पूर्व, पहले ।

पेश्यएंड (स॰ क्लो॰) १ मांसपिएडाकार अएड, मांसपिएड-के आकारका अंडा। २ मांसगोलक।

वेथक ( सं० ति० ) वेषणकारी, पीसनैवाला ।

पेपण (सं॰ क्की॰) पिष-भाचे-छ्युट् । १ अवयविभाग द्वारा चूर्णन, पीसना। २ जल । ३ शतगुप्ता । ४ तिधार स्नूहीवृक्ष, तिधारा थृहुडुं ।

पेषणि (सं० स्त्री०) पेरणी दंखां।

वेबणी ( सं॰ स्त्री॰ ) पिच्यतेऽनयेति पिष-अणि, ना ङीष्। पेषणशिला, सिला जिस पर कोई चीज पीसी जाय। पर्याय—पट्ट, गृहाइमा, गृहकच्छप । यह पश्चस्नामेंसे एक है । सिला पर द्रव्यादि पीसनेके समय नाना कीट आदि-के प्राण जाते हैं । इस लिए पीसनेवालेको स्वगंप्राप्ति नहीं होती । (मत अ॰ ३१६८) वेषणीय (सं॰ ति॰) पिध-अनीयर । पेषणाई, पीसने लायक ।

वेषना (हिं० कि.॰) पेखना देखो । पेषल (सं० ति०) पेपोऽस्यास्तीति पेप-सिध्मादित्वात् लच् । पेशल । पेशल देखो ।

पेषाक (सं०पु०)) पिय-आकन्। पेषणी, सिलां। पेषि (सं०पु०) पियं-इन्। वज्र।

पेवी (सं• स्त्री॰) हिंसिका, पिशाचिनी।

पेव्ह ( सं॰ ति॰ ) पिष-तृच् । पेषणकारी, पीसनेवाला । पेव्य ( सं॰ ति॰ ) पेषणयोग्य, पीसनेलायक ।

पेस (हिं वि ) पेश देखी।

पेसल (सं० ति० ) पेस-लच् वा पेशल-पृयोदरादित्वात् साधुः । पेशल । पेशल देखो ।

पेसुक ( सं॰ ति॰ ) पिस-वाहु॰ उकत् । अभिवर्द्ध नशीलं, वदनेवाला ।

पेखर (सं॰ ति॰) पिस-शीलार्थं वरच्। गतिशीलं, चलनेवाला।

पेहंडा (हिं॰ स्त्री॰) कचरी नामका छताकां फछ। यह कुंदरूके आकारका होता है और इसकी तरकारी तथा कंचरी वनती है।

पेहिता (सं क्ली व प्रसारणी, गंधप्रसारी।
पेहोवा—पञ्जावके कर्णाल जिलान्तर्गत केथल तहसीलका
पक प्राचीन शहर और हिन्दू-तीर्थस्थान। यह अश्लाव स्ं प्रश्चित शहर और हिन्दू-तीर्थस्थान। यह अश्लाव स्ं प्रश्चित शहर और हिन्दू-तीर्थस्थान। यह अश्लाव स्ं प्रश्चित शहर अग्लाव कर्णा देश प्रवित्त सिल्ला सरस्रतीनदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। यह कुरुक्षेतके अन्तर्गत है। पेहोवा संस्कृत पृथ्-दक (राजा वेणके पुत्त) शृब्दका अपम्रं शहर है। यहां स्वी शताब्दीकी जो दो शिलालिपि पाई गई हैं उनसे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले राजा मोज और उनके लड़के कन्नोज-राज महेन्द्रपालके राज्यान्तर्गत था। प्राचीनकालमें तोमरवंश प्रतिष्ठित विष्णुका एक मन्दिर

था, पर अभी उसका नाम-निशान भी नहीं है। सिख-पतनके वाद कैथलके भायगणने इस पर अधिकार जमाया। आखिर वृटिश-गवर्मेंग्टने कैथ ठके साथ साथ इसे भी अपने अधिकारमें कर लिया। यद्यपि इसकी अभी पूर्वेश्री जाती रही, तो भी हिन्दुओं के निकट यह पवित्र तीर्थके जैसा गण्य होता है। इसके पास ही मराठों के बनाये हुए पृथुदकेश्वर या पृथवेश्वर और खामी कार्त्तिकके मन्दिर विद्यमान हैं। कहते हैं, कि कात्तिकका मन्दिर युद्धदेवता कात्तिकेयके उद्देशसे महाभारत-युद्धके पहलेका प्रतिष्ठित है।

पैंकड़ा (हि॰ पु॰ ) १ वेड़ी । २ पैरका कड़ा । ३ ऊँ टकी नकेल ।

पैंग (हिं० स्त्री०) १ मोरकी पूंछ। २ धनुपका डोरी। पैंचना (हिं० किं०) १ पछोरना, अताज फटकना। २ पछटना, फेरना।

पैंचा (हिं॰ पु॰) पलटा, हेर फेर।

पैंजना (हिं० पु०) पैरका एक आभूषण। यह कड़े के आकारका पर उससे मीटा और खोखला होता है। इस-के भीतर कंकडियां पड़ी रहती हैं जिससे चलनेमें यह वजता है।

पैजनियां (हिं० स्त्री०) वैजनी देखी।

वैंजनी (हिं० स्त्रीं०) १ स्त्रियों और वचोंका कड़े की तरह पैरमें पहननेका एक गहना। यह खोखला होता है और इसके भीतर कंकड़ियां पड़ी रहती हैं जिससे चलने-में यह फन फन वजता है। घोड़ोंके पैरमें भी उन्हें कभो कभी पहनाते हैं। २ सम्गड़ या वैलगाड़ीके पहिएके आगेको वह टेढ़ी लकड़ी जिसके छेदमेंसे धुरा निकला रहता है।

पैंठ (हिं० स्त्री०) १ वाजार, हाट। २ दूकान, हटी। ३ दूसरी हुंडी जो महाजन हुंडीके खो जाने पर लिख देता है। 8 वाजारका दिन, हाट लगनेवाला दिन।

पै'ठौर ( हि॰ पु॰ )दूकान, हाट।

पैंड (हिं पु॰) १ मार्ग, पथ, राह, पगडंडी। २ पग, कदम, एक स्थानसे उठा कर जितनी दूरी पर पैर रखा जाय उतनी दूरी। ३ चलनेमें एक जगहसे उठा कर दूसरी आगह पर पैर रखना, डग।

पेंड़ा (हिं॰ पु ) १ प्रणाली, रोति । २ मार्ग, पथ, रास्ता । ३ अस्तवल, घुड़सार।

पैंड़िया ( हिं॰ पु॰ ) कोव्हमें गन्ने भरनेवाला । पैंड़ो ( हिं॰ पु॰ ) वैंडा देखी ।

पैतालिस (हि॰ पु॰) १ चालिससे पांच अधिककी संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—४५। (वि॰) २ जो गिनतीमें चालिससे पांच अधिक हो, चालिस और पांच।

पैतालीस (हिं वि ) पैतालिस देखो।

पैंती (हिं० स्त्री०) १ पवित्रों, कुशको पेंठ कर वनाया हुआ छल्ला जिसे श्राद्धादि कमें करते समय उंगलीमें पहनते हैं। २ तांवे या तिलोहकी अंगूठी यह पवित्रताके लिये अनामिकामें पहनी जाती है।

पैतीस (हिं॰ वि॰) १ जो गिनतीमें तीससे पांच अधिक हो, तीस और पांच। (पु॰) २ तीससे पांच अधिककी संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—३५।

पै'यां (हि॰ स्त्री॰ ) पैर, पांच।

पैंसर (हि॰ पु॰) १ साउसे पांच अधिककी संख्या या अङ्क । यह इस प्रकार लिखा जाता है—६५। (वि॰) २ जो गिनतीमें साउसे पांच अधिक हो, साठ और पांच।

पै (हिं पु ) १ माड़ी देनेकी किया, कलफ चढ़ाना।
२ पय देखों। (स्त्री) ३ दोप, ऐच, नुक्स। (अथ)
४ प्रति, ओर, तरफ। ५ निकट, समीप, पास। ६ परन्तु,
लेकिन, पर। ७ अनन्तर, पीछे। ८ निश्चय, अवश्य,
जक्तर। (प्रत्य) ६ अधिकरंण-सूचक एक विभक्ति, पर,
ऊपर। १० करण-सूचक विभक्ति, द्वारा, से।

पैकर हि॰ पु॰) कपाससे रूई इकट्टी करनेवाला। पैकरी (हि॰ स्त्रो॰) पांवमें पहननेका एक गहना, पैरी। पैकार (फा॰ पु॰) छोटा व्यापारी, थोड़ी पूंथीका रोज-

गारो, फुटकर वैचनेवाला, फेरीवाला ।

वैकारी (हिं पु॰) वैकार देखी।

पैकी (हिं॰ पु॰) मेले तमाशेमें घूम घूम कर लोगोंको हुई। पिलानेवाला ।

पैकेट (अ' पु॰) पुलि'दा, मुद्दा, छोटी गठरी।

पैलाना (हिं पु०) पायखाना देखो ।

पैगंबर (फा॰ पु॰) धर्मप्रवर्त्तक, मनुष्योंके पास ईश्वरका संदेसा छे कर आनेवाला।

पैगंवरा (फा॰ स्त्रो॰) १ पैगंवरका कार्य या पद । २ पैगंवर होनेका भाव। ३ एक प्रकारका गेहूं। (वि०) ४ पैगंवर-सम्बन्धी । पैग (हि॰ पु॰ ) कदम, डग, फाल। पैगाम (फा॰ पु॰) १ सन्देश, संहेसा । २ विवाह-सम्बन्ध-की वात जो कहो या कहलाई जाय। पैङ्ग (सं । पु ।) एक ऋषिका नाम । पैङ्गराज (सं० पु० ) एक प्रकारका पश्ची । पैङ्गरायग (सं० पु० स्त्रो०) पिङ्गज्ञहत्र ऋषेः गोतापत्यं नड़ादित्वात् फक्। पिङ्गुल ऋषिका गोलापत्य। • पैङ्ग-रायण' की जगह विङ्गार ऋषिका गोत्रापत्य वा 'पिङ्गर' इस शब्दके 'र'को स्थान पर 'ल' करनेसे पिङ्गल होगा। पैङ्गुल (सं॰ पु॰) पिङ्गलस्यापत्यं गर्गादित्वात् यञ्, पिङ्गल्य, । तस्य छाताः कर्णादित्वाद्ण्, यह्योपः। १ पिङ्गहापत्यके छातसमूह । यह बहुवचनान्त है । २ उपनिषड्मेद । पिङ्गछऋत छन्दोशास्त्र। पैङ्गलोदायनि ( सं० पु० स्त्री० ) पैङ्गलोदायनस्यापत्यं इञ् । १ शाच्यभव नामक ऋषिके गोतापत्य । २ उतके युवा पैङ्गह्य ( सं॰ पु॰ स्त्री॰) पिङ्गह्रस्य गोत्नापत्यं गर्गादित्वात् यज्। १ पिङ्गल ऋषिका गोतापत्य । ( क्ली॰ ) २ पिङ्गल-कृतं छन्दोप्रन्थ। (बि॰) ३ पिङ्गलवर्णयुक्त। पैङ्गाक्षीपुत ( सं० पु० ) ऋपिमेद । पैङ्गि (सं० पु० स्त्रो०) विङ्गस्यापत्यमित्र्। पिङ्गस्रपिका पैङ्गिन् (सं० पु०) पिङ्गेन ऋषिणा प्रोक्तः कल्पः इति । पिङ्गऋपिप्रोक्त कल्पस्त । पैङ्ग्य (सं॰ पु॰) पिङ्ग-चाहुळकात् अपत्ये यञ्। पिङ्ग ऋषिके पुत्न, ये गोत्नपवर्त्तक ऋषि थे। पैच्छित्य (सं॰ ञ्ली॰ ) पिच्छिलस्येदं अण् । पिच्छिल सम्बन्धी, पिच्छिलता 🕽 🗵 पैज (हि॰ स्थी॰) १ प्रतिद्वन्द्रिता, किसीके विरोधमें किया हुआ हठ, होड़, जिद्र। २ पण, प्रतिशा, टेक। (पु॰) ३ पैतरा । पैजनी (हिं० स्त्री०) पेंत्रनी देखी। पैजवन ( सं॰ पु॰ ) पिजवनस्थापत्यं अण् । नृपभेद, | Vol. XIV 108

सुदास राजा। इस शब्दका पाठा तर पेथवन और प्रेय-वन भी है। सुदास शब्द देखी। पैजा (हिं पुर्ः) पायना, लोहेका कड़ा। यह किवाड़के छेटमें इसलिये पहनाया रहता है जिसमें किवाड़ उतर न सके। पैजामा (हिं पुर ) वायजामा देखी । पैजार (फा॰ पु॰) जूता, पनही । पैजूलायन : सं॰ पु॰ ) पजूलस्य ऋषेः गोतापत्यं अभ्वादि-त्वान् फञ्। पिजुल ऋपिका गोलापत्य। पैंडजूव (सं० पु०) पिञ्जूचे साधुः अण्। कर्ण, कान। पैटक ( सं० पु० ) पिटकस्यापत्यं ( शिवादिभ्योऽग् । पा ८।१।११२) इति अण्। १ पिटकापत्य, पिटकी सन्तति। ( ति० ) २ बौद्धपिरकसम्बन्धीय । पैटकिक ( सं० बि० ) पिटकेन हरति ( इग्स्युत्संगादिभ्य: । गा ४। ५१५) इति उक्। पिटक द्वारा हरणकारी। पैटाक ( सं० पु० ) पिटाक-शिवादित्वात् अपत्यार्थे अण् । पिराकापत्य । पैठ (हि॰ स्त्री॰ )१ प्रवेश, घुसनेका भाव, दखल । २ गति, पहुंच, आना जाना। पैंडना ( हिं० कि०. प्रवेश करना, प्रविष्ट होना, घुसना । पैठान--महाराष्ट्रके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद । यह गोदावरीके किनारे अवस्थित है। प्राचीन प्रन्थादिमें यह स्थान प्रतिष्ठानपुरी नामसे उविञ्जिति हुआ है। दक्षिणापथमें यह नगर एक समय वाणिज्य-केन्द्र था। पेरियुससे पता लगता है, कि यहांसे अकीक पस्तरादि महकच्छ वन्द्रमें छा कर दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते थे। चीनपरिवाजक यृपनचुवङ्गने इस नगरका ध्वंसावशेष देखा था। पैठाना (हिं० किं०) प्रवेश कराना, ग्रुसाना। पैडार (हि॰ पु॰) १ प्रवेश, पैड । २ प्रवेशद्वार, दरवाजा । पैंडारी (हिं० स्त्री०) १ प्रवेश, पैंड। २ गति, पहुंच। पैठिक (सं पु॰) एक राक्षसका नाम। पैठी (हिं० स्त्री०) वदला, एवज । पैटीनसि (सं० पु०) १ मुनिविशेष, एक समृतिकार। २ गोतप्रवर्त्तक ऋपिभेद्। पैड़िक (सं० ति०) पिड़का सम्यन्धीय।

पैड़ी (हिं० पु०) १ पौदर, वह स्थान जहां सिचाईके लिए जलाशयसे पानी ले कर ढालते हैं। २ सीढ़ी, वह जिस पर पैर रख कर ऊपर चढ़ें। ३ कुएं पर चरसा खींचने-वाले पैलोंके चलनेके लिए वना हुआ ढालवां रास्ता। पैएडपातिक (सं० ति०) भिक्षोपजीवी, भिक्षासे निर्वाह करनेवाला । पैएडायन (सं० पु० स्त्रो०) पिएडऋषेगींतापत्यं नड़ादि-त्वात् फक्। पिएडऋपिका गोतापत्य। पैपिडक्य (सं० ह्हीं ०) पिण्डं परिपण्डं भक्ष्यतयाऽस्त्यस्य ठन् ततो यक् व्यञ् वा। भिश्लोपजीवनः वैगिडन्य ( सं॰ क्लो॰ ) विण्डं परविण्डं भक्ष्यतयाऽस्त्य-स्येति पिएड-इन्, ततः ध्वञ् । भैक्षजीविका । पैएडा (सं० ति०) पिएडां भवः ( क्वीदिभ्यो एयः। पा धाशाश्पर ) पिएडीभव । पैतदारव (सं० ति० ) पीतदारोविकारः । (प्राणिरजतादिभ्ये}-ऽङा् । पा **४**।४५४ ) इति अञ्। पीतदारुका विकार। पैतरा (हिं॰ पु॰ ) १ तलवार चलाने या कुश्ती लड़नेमें घूम फिर कर पैर रखनेकी मुद्रा, वार करनेका ठाट। २ धूल पर पड़ा हुआ पदिचिह्न, पैरका निशान, खोज । पैतरावण ( सं॰ पु॰ ) गोतप्रवर ऋपिमेद । पैतरी ( हिं० स्त्रो० ) रेशम फेरनेकी परेती। पैतला ( हिं० वि० ) छिछला, पायाव, उथला । पैतलाय (हि॰ वि॰ ) दलालको वोलीमें सतह । पैताना ( हिं० पु० ) पायताना देखी । पैतापुतीय ( सं॰ ति॰ ) पितापुतसम्बन्धीय । पैतामह (सं० ति०) पितामहस्येदं पितामह (तस्येदं। पा ४।३।१२• ) इत्यण् । पितामह-संम्यन्धी । पैतामहिक (सं० ति०) पितामहादागतं (विधायोनियम्ब-न्धेभ्यो बुज्। पा ३।४।७७) इति बुज्। पितामहसे आगंत, पितामहसे प्राप्त । पैतृक (सं० ति०) पितुरागतं पितुरिदं चेति, पितृ-ठत्र्। पितृसम्बन्धी, पुरतैनी, पुरखींका। पैतृकमूमि (सं॰ स्त्री॰ ) पैतृकी पितृसम्बन्धिनी भूमिः। पितृसम्बन्धि-स्थान, पुरतैनी। पितृपुरुप जिस स्थानमें वास करते हैं, उसे पैतृक भूमि कहते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें

लिखा है, कि पैतृकभूमि तीर्थंसक्तप हैं। तोर्थमें वासं करनेसे जो फल मिलता है, पैतृकभूमिका वास भी वैसा हो फलदायक है। पैतृकभूमिमें यदि पितरों अबहादि कार्य न किये जांय, तो सभी निष्फल होते हैं। पितृ और देवकार्य पैतृकभूमिमें करना हो सर्वतोभावसे विधेय है। क्योंकि, इस स्थानमें वे सब कार्य सम्पूर्ण फलदायक हैं। पुत्न, पौत, कलत यहां तक कि प्राणसे भी पैतृकभूमि श्रेष्ठ है। पैतृकभूमिस्थत पुष्करिणी-सान तीर्थस्नान तुल्य है। पैतृकभूमिसं मरनेसे तीर्थ-मृत्युका फल मिलता है। पैतृकभूमिको जन्मभूमि भी कहते हैं, इसलिये कहावत है,—

"जननी जनमभूमिश्च खर्गादपि गरीयसी।" पैतृमत्य ( सं० ति० ) पितृमत्यां अनुद्वायां कन्यायां भवः कुर्वादित्वात् एय। (ग ४।१।१३२) अन्द्रा कन्यासे जात, अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न । पैतृमेधिक ( सं० ति० ) पितृमेधसम्बन्धीय । पैतृयज्ञिक ( सं• ति० ) पितृयज्ञसम्बन्धीय । पैतृयज्ञीय (सं० ति०) पितृयज्ञ-छ। पितृयज्ञाङ्गभूत, पितृयज्ञसम्बन्धीय । पैतृष्वस्रीय ( सं० पु० स्त्रो० ) पितृष्वसुरपत्यमिति (पितृध-सुरुण्। पा ४११,१३२) इति छण् ततः षत्वम्। पितः भगिनीपुत, वुआका लड्का। पैतृष्वस्रे य ( सं० पु० स्त्रो• ) पितुः ससुरपत्यं (बक्तिनेवः । पा ४।१।१३३ ) इति ज्ञापकत्वात् ढक् अन्त्यलोपस्य ततः पत्चम् । पितृष्वसाका अपत्य, बुआको छड़को या छड़का । पैत्त ( सं॰ ति॰ ) पित्तादागतं पित्तस्य ग्रमनं कोपनं चेति पित्त-अण् । १ पित्तज, पित्तसे उत्पन्न । २ पित्तसम्बन्धी । ( पु॰ ) ३ तिलक्षुप, तिलका पेड़ । पैतल (सं॰ ति॰ ) पित्तल-अंग्। पित्तलसम्बन्धी। पैत्तिक (सं० ति०) पित्तेन निवृतः इति पित्त-छत्। पित्तज, पित्तसम्बन्धी, पित्तसे उत्पन्न। पैत्तिको ( सं॰ स्त्री॰ ) योनिव्यापद्दविशेप । पैत ( सं॰ इही॰ ) पितुरिद्मिति पितृ-अण्। १ पितृतीय, अ'गूठे और तर्जनीके वीचका भाग। २ पितृसम्बन्धी श्राद्धादि । पैताहोरात (सं० पु०) पैतः अहोरातः। पितृलोकका

दिवारात । एक महीनेमें पितृअहोरात होता है। पैता (सं० ति०) पितृसम्बन्धीय। पैथला ( हि॰ वि॰ ) छिछला. पायाव, उथला । पैदर (हिं पूर ) पैदल देखी। पैदल (हि॰ पु॰ ) १ पदाति, पैदल, सिपाही। २ पाद-चारण, पाँव पाँव चलना। ३ शतरंजमें नीचे द्रजेकी गोटो । यह सीघा चलती और आड़ा मारती है। (वि०) 8 पांच पांच चलनेवाला, जो सवारी आदि पर न हो। (कि॰ वि॰) ५ पैरोंसे, सवारी आदि पर नहीं। पैदा (फा• वि०) १ आविभूत, प्रकट, उपस्थित। २ प्रसुत, जन्मा हुआ। ३ अजित, कमाया हुआ। पैदाइश (फा॰ स्त्री•) उत्पत्ति, जन्म । पैदाइशी (फा॰ वि॰) १ प्राकृतिक, खाभाविक। २ जन्मका, वहुत पुराना। पैदावार ( फा॰ स्त्रो॰ उपज, फसल । पैदावारी (हि॰ स्त्री०) पैदावार देखो । पैद्ध ( सं॰ पु॰ स्त्री॰ ) अश्व, घोडा । पैन (हि॰ पु॰) १ पनाळा । २ नाळी । पैनद्धक ( सं॰ ति॰ ) पिनद्ध-चतुरर्थ्यां वराहादित्वात् । फक्। पिनद्ध समीपादि। पैना (हि॰ पु॰) १ हलवाहोंकी वैल हांकनेकी छोटी छड़ी। २ अंकुश, लोहेका नुकीला छड़। ३ घातु गलानेका मसाला। ४ पैन देखो। (वि०) ५ तीक्ष्ण, चोखा, धारदार, तेज 🏻 पैनाक ( सं ० त्रि० ) पिनाकसम्बन्धी । पैनाना ( हिं० क्रि∙ ) छुरो आदिकी धारको रगड़ कर पैनी करना, चोखा करना । पैन्हना (हि॰ क्रि॰ ) पहनमा देखो । पैप्पलाद ( सं ॰ पु॰ ) पिप्पलादेन ऋषिणा प्रोक्तमधीयते अण्। १ पिप्पलादऋषि-प्रोक्त शास्त्र अध्ययनकारी लोक-समूह। २ तदर्थवेसा। यह शब्द बहुवचनान्त है। पैप्पलादक ( सं • ति ॰ ) पिप्पलादके शिक्षासम्बन्धो । पैप्पलादि (सं• पु०) पिप्पलादस्य ऋषेरपत्यं इञ्। पिप्पलादऋषिका अपत्य । ये गोतप्रवर्त्तक ऋपि थे । पैमक (हिं० स्त्री॰) कलावत्तकी बनी हुई एक प्रकारकी सुनहरी गोट या लेस । इसे अङ्गरले टोपी आदिके किनारे पर लगाते हैं।

पैमाइश (फा॰ स्त्री॰ ) मापनेकी किया या भाव, माप । पैमाना (फा॰ पु॰ ) मानद्र्य्ड, मापनेका औजार, वह वस्तु जिससे कोई वस्तु मापी जाय। पैमाल ( हि० वि० ) पामां देखो । पैयवन-पंजवन देखो । पैयां (हिं स्त्री) पैर, पांत्र । पैया (हिं• पु॰) १ दीन हीन, खुम्ख। २ विना सतका अनाजका दाना, खोखला दाना, मारा हुआ दाना। ३ पूर्व बङ्गाल, चट्टग्राम और ब्रह्ममें अधिकतासे होने-वाला एक प्रकारका वांस। इसमें वड़े वड़े फल लगते हैं जो खानेके काममें आते हैं। वंशलोचन भी इस वांसमें वहुत निकलता है। यह वांस वहुत सीभा जाता है और गांठें भी इसमें दूर दूर पर होती हैं। चट्टप्रा में इसकी चटाइयां वहुत वनती हैं। यह घरोंमें भी लगाया जाता है। इसे मूलीमतंगा और तराईका बाँस भी कहते हैं । पैयृक्ष ( सं ० ति० ) पीयृक्षायाः विकारः ( तालादिभ्योऽग । पा ४।४।१५२) इति विकारार्थे अण्। पीयृक्षावृक्षका विकार। पैयुष ( सं • क्ली० ) पीयुष । पैर (हि॰ पु॰) १ गतिसाधक अङ्ग, चरण, पांच। २ ध्रुल आदि पर पडा हुआ पैरका चिह्न, पैरका निशान। ३ खलियान, वह स्थान जहां खेतसे कर कर आई हुई फसल दाना भाडनेके लिये फैलाई जाती है। ४ खेतसे कट कर आए डंठल सहित अनाजका अराला। ५ प्रदर-रोग । पैरउडान (हि॰ पु•) कुश्तीका एक पेच। इसमें वायां पैर आगे वढा कर वाएं हाथसे जोडकी खातो पर घका देते और उसी समय दहिने हाथसे उसके पैरके घुटनेको उठा कर और वायां पैर उसके दहने पैरमें अडा कर फ़ुरतीसे उसे अपनी ओर खोंच कर चित कर देते हैं। पैरगाड़ी ( हिं० स्त्री० ) वह हलकी गाडी जो वैठे वैठे पैर दवानेसे चलती है। पैरना (हिं० किं० ) पानीके ऊपर हाथ पैर चळाते हुप जाना, तैरना ।

पैरवी (फा॰ स्त्री॰ ) १ आज्ञापालन । २ पक्षका मण्डन,

किसी वातके अनुकूल प्रयत्न, कोशिश, दौड्धूप । ३ अनु-गमन, अनुसरण, कदम वा कदम चलना ! पैरवीकार ( फा॰ पु॰ ) पैरवी करनेवाला । पैरा (हिं पु॰) १ पड़े हुए चरण, आया हुआ कदम, पौरा। २ पैरमें पहननेका एक प्रकारका कड़ा। ३ किसी ऊ'ची जगह पर चढ़नेके लिये लकड़ियोंके वल्ले आदि रख कर वनाया हुओ रास्ता। ४ एक प्रकार-की दक्षिणी कपास। इसके पेड़ वहुत दिनों तक रहते हैं और डंठल लाल रंगके होते हैं। रुई इसकी वहुत साफ नहीं होती, उसमें कुछ ललाईपन या भूरापन होता है। यह कपास मध्यभारतसे लेकर मन्द्राज तक होती है। ५ लकडीका खाना जिसमें सोनार अपने कांट्रे वाट रखता है। ६ याल देखो।

पैरा ( अं ॰ पु॰ ) छेखका उनना अंश जितनेमें कोई एक वात पूरी हो जाय और जो जगह छोड़ कर अलग किया गया हो। जिस पंक्ति पर एक पैरा समाप्त होता है, दूसरा पैरा उन प'किको छोड़ कर और किनारेसे कुछ हुटा कर आरम्भ किया है।

'पैराई (हिं० स्त्री० १ टैरनेकी कला। २ पैरने या तैरने-की किया या भाव। ३ तैरनेकी मजदूरी।

पैराक (हिं॰ पु॰ ) तैराक, तैरनेवाला ।

पैराग्राफ ( अं० पु० ) वेरा देखो ।

पैराना ( हि॰ क्रि॰ ) तैराना, पैरनेका काम कराना ।

पैराव ( हिं० पु॰ ) डुवाव, इतना पानी जिसे केवल तैर ही कर पार कर सकें।

पैराशूट ( अं ० पु० ) एक वहुत वड़ा छाता । इसके सहारे वैलून ( गुन्वारा ) घोरे घीरे जमीन पर उतरता और गिर कर टूटता फ्रुटता नहीं।

पैरी ( हिं॰ पु॰ ) १ पैरमें पहननेका एक चौड़ा गहना। यह फूल या कांसेका बना होता है और इसे नीच जाति की स्त्रियां पहनता हैं। २ अनाजके स्र्खे पौघों पर वैछ चला कर और इंडा मार कर दाना <sup>'</sup>फाड़नेकी किया दांयनेका काम, दवांई। ४ सीढ़ी, पैड़ी। ५ मेड़ोंके वाल कतरनेका काम।

पैरोकार (हिं ० पु०) पैरवीकार देखी । रैंळ ( सं॰ पु॰) पीलार्या पीलनाम्न्यां क्रियामपत्बं

(पीळाया वा। पा ४।१।११८) इति अपत्यार्थे अण। १ पीलाका अपत्य । २ एक ब्राह्मण । इन्होंने वेदव्यासके संहिताविभागं करने पर ऋग्वेदका अध्ययन किया था। पैलगर्ग (सं०पु०) १ एक ऋषिका नाम। ये जिस आश्रममें रहते थे, वह तीर्थंस्थानमें गिना जाता है।

२ युधिष्टिरके कुछपुरोहित धीम्पके पुत्र। ये राज-सूययक्षमें होतृपद पर नियोजित थे। ब्रह्मचैवर्षके मतसे ये निदान-रचियता माने जाते हैं। पैलगी ( हि॰ स्त्री॰ ) अभिवन्दन, प्रणाम, पालागन ।

पैलव ( सं० ति० ) पीली दीयते कायं वा न्युणदित्वात् अण्। पीलसम्बन्धी, पीलुके पेड्का।

पैला (हि॰ पु॰) १ चार सेर नापका वरतन, चार सेर अनाज नापनेकी डिलिया। २ नाँदके आकरका मिट्टीका वरतन जिससे दूध दही ढांकते हैं, वड़ी पैली।

पैळादि ( सं० पु० ) पैछ आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगण भेद् । गण यथा—पैल, शालिङ्क, सात्यिक, सात्यङ्कामि, राहवि, रावणि, औदञ्ची, औदवती, औदमेदिः औवमिज, औद्रभृज्जि, दैवस्थानि, पैङ्गलोदायनि, राह्श्वति, भौलिङ्गि राणि, औदन्यि, औद्गाहमानि, औज्जिहानि, औदशुदि ।

पैली (हिं० स्त्री॰) १ अनाज या तेल रखनेका मिट्टीका चौड़ा वरतन। २ मिट्टीका एक वरतन जिससे अनाज या तेल नापा जाता है।

पैलुमूळ ( सं० त्नि० ) पीलुमूले दीयते काय वा ( खुशदिग्ये-ऽण्। वा ५।१।६० ) पीलुम्लमें देने योग्य।

पैलुवहक (सं० दि०) पिलुवहे भवः ( प्रत्यपुरवहान्तात्र । वा ४।२।१२२) इति बुज्। पीलू वह जलादि भव। पैवंद ( फा॰ पु॰) सम्बन्धी, इप्ट मित्न, मेलजोलका आदमी। २ कपड़े आदिका वह छोटा टुकड़ा जो किसी वह कपड़े आदिका छेद बंद करनेके लिए जोड़ कर सी दिया जाता है, चकती, जोड़, धिगली। ३ किसी पेड़की टहनी काट कर उसी जातिके दूसरे पेड़को टहनीमें जीड़ कर वांधना जिससे फल वढ़ जायँ या उनमें नया खाद आ

जाय । पैवंदी (फा० वि०) १ वर्णसङ्कर, दोगला। २ कलमी,

पैवंद लगा कर पैदा किया हुआ। (पु॰) ३ बड़ा आँड

शफ़ताल् ।

पैवस्त (फा॰ वि॰) जो भीतर घुस कर सब भागोंमें फैल गया हो, समाया हुआ, सोखा हुआ। पैशलय (सं॰ हो) पेशल-ज्यम्। पेशलता, कोमलता। पैशाच (सं॰ पु॰) पिशाचस्यायमिति पिशाच-अण्। १ अधूम प्रकार विवाहके अन्तर्गत विवाहभेद, आठ प्रकार-

के विवाहमेंसे एक। मनुमें छिखा है—
"सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रही यतोपगच्छति।
स पापिष्टो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः॥"
(मनु ३।३४)

सीई हुई कन्याका हरण करके अधवा मदोन्मत्त कन्या-को फुसला कर उसके साथ विवाह करनेसे वह पैगाच विवाह कहलाता है। आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे यह विवाह अत्यन्त पापजनक और अधम है। याज्ञवरक्यने लिखा है,—

. "राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यका छलात्।" (याजवल्क्य १।६१)

छलक्रमसे अथवा कन्याका निद्रादि अवस्थामें हरण कर उसके साथ विवाह करनेका नाम पैशाच विवाह है। २ पिशाच। ३ आयुधजीविसङ्घमेद, एक आयुध-जीवी सङ्घका नाम, एक लड़ाका दल। ४ हारितोक्त दानभेद। स्त्रियां ङीय्। ५ प्राष्ट्रतभाषाभेद। ६ पौशाचका देखो। (ति०) ७ पिशाच सम्बन्धी, पिशाचका बनाया हुआ। ८ पिशाच देशका।

पैशासकाय (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त राजस कायके अन्तर्गत कायविशेष, सुश्रुतमें कहे हुए कायों (शरीरों)-मेंसे एक जो राजस कायके अन्तर्गत है।

> "उच्छिद्यहारता तैक्ष्ण्यं साहसप्रियता तथा। स्रोलोलुपत्यं नैलैंडनं पैशाचकायलक्षणम्॥" ( सुश्रुत २।४। अ० )

जूटा बानेकी रुचि, सभावका तीसापन, दुःसाहस, स्त्रीलोलुपता और निर्लजता ये सब पैशाचकायके लक्षण हैं।

पैशाचविवाह ( सं पु० ) पैशाष देखो ।

पैशाचिक ( सं॰ ति॰ ) वीभत्स, पिशाचसम्बन्धीय, पिशाचोंका, राक्षसी ।

पैशाची (सं० स्त्रो०) प्राकृत भाषाभेद, एक प्रकारकी प्राकृत भाषा।

Vol. XIV. 109

पैशुन (सं• ह्री॰) पिशुनस्य भावः कमें वा ( हायनान्त-बुनादिम्योऽण्। पा ५१११३०) इति अण्। पिशुनका भाव वा कमें, पिशुनता, खुगलखोरी। पैशनिक (सं• ति॰) पश्चात्से निन्दाकारी, पीछे निन्दा

पैशुनिक (सं । ति ।) पश्चात्से निन्दाकारी, पीछे निन्दा या चुगली करनेवाला ।

पैशुन्य (सं• हो।) पिशुनस्य भावः पिशुन (गुणनचनन।सणा-दिभ्दः कर्मणि च। पा ४।१।१२४) इति प्यञ्। पिशुनता, सलता, चुगलकोरी। यह दश प्रकारके पापके अन्तर्गत पाङ्मय पाप है।

"रौशुन्यं साहसं द्रोह ईर्यास्यार्थदृषणम् । वाग्दण्डजञ्च पारुन्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥" (तिथितस्व)

पैष्ट (सं • ति ०) पिष्टस्थेदमिति पिष्ट-अण्। पिष्टसम्बन्धी। पैष्टिक (सं • हो ०) पिष्ट उत्र । १ पिष्टसमूह । २ मच-विशेष, जी, चावल आदि अज्ञोंको सड़ा कर बनाया हुआ मद्य ।

पैद्यों (सं• स्त्रो०) पिष्टेन निवृत्तेंति पिष्ट-अण्-ङीप् । बिविध धान्य विकार-जात अम्ल मद्य, एक प्रकारकी शराब जो जौ चावल आदि अश्लोंको सड़ा कर वनाई जाती है। इसका गुण--कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, मधुर, अतिदीपन, वातनाशक, कफवर्द्ध के, ईषत् पित्तकर और मोहजनक है।

"गौड़ी माध्वी तथा पैद्यी निर्यासा कथितापरा। इति चतुर्विधा हे याः सुरास्तासां प्रमेदकाः॥" ( हारीत ११ अ० )

यह पैड़ी मद्यसेवन शास्त्रमें निपिद्ध बतलाया गया है। जो यह मद्य पान करते हैं, उनकी गिनती महापातकीमें होती है।

"ब्रह्मा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।

पते सर्वे पृथक् हेया महापातिकनो नराः॥"

( मनु ६।२३५ )

पैसना (हि॰ कि॰) प्रवेश करना, पैडना, घुसना। पैसरा (हि॰ पु॰) व्यापार, प्रयत्न, जंजाल, मंभर, वलेड़ा। वैसा (हि॰ पु॰) १ तीन पाईका सिका, पाव आना, तांबेका सबसे अधिक चलता सिका। यह आनेका चौथा और रुपयेका चौसडवां भाग होता है। २ रुपवा, पैसा, बन, बौलत। पैसार ( हि॰ पु॰ ) प्रवेशद्वार, भीतर जानेका मार्ग, पैठ । पैसिजरगाड़ी ( हि॰ स्त्री॰ ) मुसाफिरोंको छे जानेवासी रेलगाड़ी ।

पैसुकायन ( सं० पु० ) गोतप्रवर ऋषिभेद ।

पैसेवाला (हि॰ पु॰ ) १ धनवान, धनी, मालदार। २ सराफ, पैसा वेचनेवाला।

पैहरा (हिं० पु॰) पैकर, विनिया, कपासके खेतमें रूई इक्कडी करनेवाला।

पैहारो (हिं० वि०) केवल दूध पी कर रहनेवाला (साधु) । पों (हिं० स्त्री०) १ अधोवायु निकलनेका शब्द । २ लम्बी नाल या भोंपेको फ़्रूंकनेसे निकला हुआ शब्द । ३ लम्बी नालके आकारका वाजा जिसमें फ़्रूंकनेसे 'पों' शब्द निकलता है, भोंपा।

पोंकना (हिं० किं०) १ अत्यन्त भयभीत होना, वहुत डरना । २ पतला पाखान फिरना । (पु०) ३ पतला दस्त होनेका रोग ।

पोंका (हिं॰ पु॰) वड़ा फर्तिगा जो पौधों पर उड़ता फिरता है, वोंका।

पोंगली (हिं० स्त्रीं०) १ वह निरया जो दोवारा चाक पर-से वना कर उतारी गई हो । २ पोंगी देखी ।

पोंगा (हि॰ पु॰) १ कागज पत रखनेके लिए दीन आदिकी वनी हुई लम्बी खोखली नली, चोंगा। २ वांसका खोखला, पोर, वांसकी नली। ३ पांचकी नली। (वि॰) ४ युद्धिहीन, मूर्खे, अहमक। ५ पोला, खोखला।

पोंगी (हिं० स्त्री०) १ चार या पांच अंगुलकी वांसकी पोली नली। यह वांसके वीजनेकी डांडोमें लगी होती हैं। हांकनेवाले इसे पकड़ कर वीजनेकी घुमाते हैं। २ छोटी पोली नली। ३ ऊंख वा वांस आदिमें दो गांटोंके वीचका प्रदेश वा भाग। ४ नरकुलकी एक नली जिस पर जुलाहे तागा लपेट कर ताना या भरनी करते हैं। पोंछ (हिं० स्त्री०) पृंष्ट देही।

पोंछन (हिं॰ पु॰) किसी लगी हुई चीजका वह वचा हुआ अंश जो पोंछनेसे निकले।

पो'छना (हिं० कि०) १ लगो हुई गोली वस्तुको जोरसे हाथ या कपड़ा आदि फेर कर उठाना या हटाना। २ पड़ी हुई गर्द, मैल आदिको हाथ या कपड़ा जोरसे फेर

कर दूर करना, रगड़ कर साफ करना। जो वस्तु लगी या पड़ी हो तथा जिस पर कोई वस्तु लगी या पड़ी हो अर्थात् आधार और आधेय दोनों इस कियाके कर्म होते हैं। ऋटकेसे साफ करनेको माड़ना और रगड़ कर साफ करनेको पींछना कहते हैं। (पु॰) ३ पींछनेका कपड़ा, जो पींछनेके लिये हो।

पोंटा (हिं॰ पु॰) नाकका मल।

पोटी (हिं स्त्री०) एक प्रकारकी छोटो मछली।

पोआ ( हि॰ पु॰ ) सांपका दञ्चा, संपोला ।

पोआना (हिं० क्रि॰) १ पोनेका काम करना। २ गीले आटेकी लोईको गोल रोटीके रूपमें वना वना कर पकाने वालेको सेंकनेके लिये देना।

ेपोइया ( हिं० स्त्री० ) घोड़े की दो दो पैर फेंकते हुए दौड़, सरपट चाल ।

पोइस (हिं० स्त्रीं०) १ सरपट, दौड़। (अथ्यं०) २ देखों, हटो, बचो। गधे, खद्धर आदि छै कर चछनेवाछे, छोगीं-को छू जानेसे बचानेके छिये 'पोश' 'पोस' अथवा 'पोइश' 'पोइस' पुकारते चछते हैं।

पोई (हिं स्त्रीं) १ एक लता जिसकी पत्तियां पानकी-सी
गोल पर दलकी मोटी होती हैं। इसमें छोटे छोटे फलोंके
गुच्छे लगते हैं जिन्हें पकने पर चिड़िया खाती हैं। पोई
दो प्रकारको होती है— एक काले डंउलकी, दूसरी हरे
डंउलकी। वरसातमें यह वहुत उपजती है। पिचयोंका
लोग साग खाते हैं। एक जंगलो पोई भी होती है जिसकी पत्तियां लम्बोत्तरी होती हैं। इसका साग अच्छा नहीं
होता। पोईकी लतामें रेशे होते हैं जो रस्सी वटनेके काम
में आते हैं। वैद्यकमें पोई गरम, विकारक, कफवर्द क
और निद्राजनक मानी गई है। इसके संस्कृत पर्याय—
उपोदकी, कलम्बी, पिच्छिला, मोहिनी, विशाला, मदशाका और पृतिका हैं। २ अंकुर, नरम-कल्ला। ३ ईखका
कल्ला, ईखकी आंख। ४ गेंद्रं, ज्वार, वाजरे आदिका नरम
और छोटा पौधा, जई। गन्नेका पोर।

पोकना (हिं० क्रि॰) १ महुएका पका हुआ फल। २ पोकना देखो।

पोकरण (पोकर्ण )—राजपूतानेके योघपुर राज्यान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २६ ५५ उ० और देशा० 39. ५८ प्०के मध्य, फुलाईसि जयशालमीर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। एक समय यह नगर विशेष समृद्धशाली था, अभी इसका अधिकांग्र श्रीहीन हो गया है। प्राचीन नगरके नाम पर ही उसकी वगलमें वर्तमान नगर स्थापित हुआ है। एक जैन-मिन्द्र और बहांके राजवंशधरोंके मितिष्टित कीर्तिस्तम्भादि इस प्रवतन परित्यक नगरकी अस्य कीर्ति है। नगर चारों औरसे मस्तर-प्राचीर द्वारा परिवेष्टित है। राजपूतानेके अन्यान्य नगर और सिन्धुपदेशके साथ यहांका खूब कारवार चलता है। योधपुर राजवंशके एक व्यक्ति यहांके प्रधान पद पर अधिष्टित हैं।

पोकर्णे - युक्तप्रदेशवासी ब्राह्मणश्रॅणीमेर । इनकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें वहुतसी वातें प्रचलित हैं। इनका कहना है, कि 'पुष्पक्रणे' नामके अपमंशसे उनका पोकर्ण नाम पड़ा है। इस नामकरणंके सम्बन्धमें इन लोगोंके मध्य एक गर्य भी प्रचलित हैं, ये लोग वैष्णव और छत्तमीकी पूजा करते थे। एक बार पार्वतीने इन लोगोंकी मांस खाने कहा, किन्तु इन्होंने अखीकार किया। इस पर पार्वतीने ऋद हो कर इन्हें शाप दिया और ये छोग जय-शालमीरको छोड़ कर सिन्धु, कच्छ, मृलतान और पद्माद-के नाना स्थानों में जा कर वस गये। अन्यान्य जातियों-का कहना है, कि ब्राह्मणके औरस और मोहिनी नामक धीवर कन्याके गर्मसे इनकी उत्पत्ति हैं । इन छोगींमें उपनयनप्रथा प्रचलित है। विवाहकालमें अथवा किसी पुण्यतीर्थमें यत्सामान्य विधिविहित कर्मके वाद उपवीत दान करना होता है। कोई सुत्राह्मण उनके साथ भोजन नहीं करता। इनके मध्य सगोतमें विवाह निपिद्ध है। जातवालकके छठें दिन (पष्टीपूजाके दिन) गृहस्थ-रमणियां गान करती हुई वालकके ननिहाल जाती भौर बहांसे एक मिट्टीका बोड़ा है आती हैं। विवाह-कालमें पुरुषगण नाचते और ख़ियां असील गान करती हैं। जिस कुडारसे उन्होंने पुष्करका खनन किया था, अव भी पञ्जाववासी उसकी पूजा करते हैं। राज-पूतानावासी भाडियारों के ये ही पक्तमात ब्राह्मण हैं। सभा प्रकारके नित्यकर्म इनके द्वारा साधित होते हैं। जात्यंश और सामाजिक आचार-व्यवहारमें ये लोग ,

सारस्तत ब्राह्मणींको अपेक्षा हैय हैं। सिन्धुपरेशके सार स्तांके साथ इनका प्रचटन देखा जाता हैं। पोकणे छोग प्रायः निरामिपमोजी हैं। हिन्दुऑको धर्मकर्मको ग्रिक्षा देना ही इनका प्रधान कार्य है। ये छोग मस्तक पर उण्णीय धारण करते हैं। सिन्धुपरेशके पोकणे अपना जातिकी गौरववृद्धिके छिपे कठोर आचरणसे दिन विताते हैं। एक्शण देखों।

पोकल (हि॰ वि॰ ) १ तस्वशून्य, निःसार । २ कमजोर, नाजुक, पुलपुला । ३ पोला, खोखला ।

पोस (हिं॰ पु॰ ) पालने पोसनेका सम्बन्ध या लगाव. पोस ।

पोषानरी (हिं॰ स्त्री॰) हरकीके वीचका गङ्डा जिसमें नरी लगा कर जुलाहे कपड़ा उनते हैं।

पोखना (हि॰ कि॰) १ यलकना, पोखाना, गाय मैंस आदिका, वशा देनेका समय समीप आने पर, हाथ पैर आदिका ढीला पड़ जाना और यनका सूज आना। २ पालना, पोसना।

पोसर (हिं॰ पु॰) १ तालाव, पोलरा । २ पटेवाजीमें एक बार जो प्रतिपक्षीकी कमर पर इहनी और होता है।

पोसरा (हिं॰ पु॰) वह जलागृय जो सोद कर वनाया गया हो, तालाव।

पोबराज (हिंo go) पुत्रशज देखी।

पोबरी ( हि॰ स्त्री॰ ) छोटा पोबरा, तहैया।

पोगएड (सं॰ पु॰) पुनातीति प्-विच् पौः शुद्धो गएडो यस्य । १ दश वर्षीय वालक, पांचसे दश वर्ष तककी अवस्थाका वालक । कुछ लोग पांचसे पन्द्रह वर्ष तक पोगएड मानते हैं । पौः गएड दश पकदेशोऽस्य । २ अपो-गएड । ३ समावतः न्यूनाधिकाङ्ग, वह जिसका कोई अंग लोटा, वड़ा या अधिक हो । उन्नीस या दक्कीस उंगिलयां होने अथवा किसो अङ्गृकी न्यूनता वा अधिकता रहनेसे उसे पोगएड कहते हैं ।

पोतिहाँ—पश्चिम-चालुम्यराज विनयादित्यके अधीन पक सेन्द्रकर्वशीय सामन्तराज ।

पोङ्गरु—दक्षिण-भारतमें हिन्दू द्वारा अनुष्ठित प्रवॉटसव भेद। पौपनासमें जब सूर्यदेव मकरसंक्रान्तिकी और अप्र-सर होते हैं, तब उसो मकरसंक्रान्तिसे यह उत्सव शुक होता है। पोच (हिं० वि०१ १ श्लीण, अशक्त, हीन । २ निरुष्ट, शुद्र, तुच्छ, नीच।

पोचारा ( हि॰ पु॰ ) पुनास देखी ।

पोची (हिं० स्त्री॰) निचाई, बुराई, हेठापन।

पोछना (हिं किं ) वोंक्रना देखी।

पोट ( सं॰ पु॰ ) पुरत्यत्रेति पुर-संश्लेषे आधारे घन्। वेश्म, घरकी नीवें । पुट श्लेपे घन् । २ संश्लेप । ३ स्पर्श, छूना । ४ मेल, मिलान ।

पोट (हि॰ स्त्री॰) १ पोटली, मोटरी, बुकचा। २ मुर्देके ऊपरकी चादर, कृफनके ऊपरका कपड़ा। ३ वुस्तकके पन्नोंकी वह जगह जहांसे जुज़बंदी या सिलाई होती है। पोटगल ( सं॰ पु॰ ) पोटेन संश्लेषेण गलतीति गल-अच् । १ नरसळ, नरकट। २ काश, कांस। ३ मत्स्य, मछळी। ४ चैकरञ्ज-सर्प भेद, एक प्रकारका सांप ।

पोटना (हि॰ क्रि॰) १ पंजेमें करना, फुसलाना, हथियाना, वातमें लाना । २ वटीरना, समेटना ।

पोडळ —तिव्यतको राजधानी लासानगरीका विख्यात सङ्घाराम ।

पोटरो (हिं० स्त्री०) पोढबी देखी।

पोटलक (सं० ह्यी०) पोटेन लीयते ली-ड, सार्थे-क। पोढ़ाना (हि० क्रि०) १ दूढ़ होना, मजबूत होना। संश्विष्ट बस्त्रादि, पोटली, गडरी।

पोटला—बौद्धप्रन्थवर्णित एक प्राचीन नगर और बन्दर 📗 यह नगर सिन्धु नदी-मुहानास्थित द्वीपांशमें अवस्थित था। शाक्यगण कपिलवस्तुमें आ कर वास करनेके पहले इसी स्थानमें रहते थे।

पोटला (हि॰ पु॰) बड़ी गठरी।

पोटलो ( हिं०स्त्री० ) छोटो गठरो, छोटा वकुचा।

पोटा (सं क्लो ) पुरति स्त्रीपुरुषसहर्षं संश्रिज्यतीति पुर-अच् टाव् च। १ पुंलक्षणस्त्री, वह स्त्री जिसमें पुरुष-के से लक्षण हों। जिस स्त्रीकी दाढ़ी या मूं छके स्थान पर वाल हों, उसे पोटा कहते हैं । २ दासी । ३ घड़ियाल । पोटा (हिं॰ पु॰ ) १ उदराशय, पेटकी थेली । २ सामध्ये, साहस, पित्ता । ३ समाई, औकात, विसात । ४ चिड़िया-का वचा जिसे पर न निकले हों, गेदा। ५ आंखकी पलक । ६ उंगलीका छोर । ७ नाकका मल या एलेप्सा । पोटास ( अं॰ पु॰ ६ वह क्षार जो पहले जलाद हुए पौत्रों- } की राखसे निकाला जाता था, पर अंव कुछ सनिज पदार्थोंसे प्राप्त होता है। पौधोंकी राखको पानीमें घोल-कर निथारते हैं, फिर उस निथरे हुए पानीको औटाते हैं जिससे क्षार गार्ढ़ों हो कर नीचे जम जाता है। चुकच्र-की सीठी ( चोनी निकालने पर वची हुई ) और भेड़ींके ऊनसे भी पोटास निकलता है। शोरा, जवासार आदि पोटास ही कहाते हैं। पोटास औषध और शिल्पमें काम आता है।

पोटाहिका ( सं० स्त्री०) गुञ्जा।

पोटिक ( रं • स्त्री० ) पोटः संब्लेपीऽस्त्यस्पेति उन्। विस्फोटक ।

पोद्दलिका ( सं स्त्री•) पोटलिका, पृषोदरादित्वात् साधुः। पोरली, गठरी।

पोड्ली (सं क्यी ) पोटेन संश्लेपेण लीवते इति ली-इ, पृयोदरादित्वात् साधुः, ङोप्। पोट्टलिका, पोटली, गडरी। पोहील (सं॰ पु॰) अवसर्पि णीके जीवोत्तम मेद।

पोड़ (सं० पु०) पुड़तोति पुड़-उन्। कपालास्थितल, खोपडीका ऊपरी भाग ।

पोढ़ा (हिं० वि०) १ पुष्ट, दृढ़, मजदूत । २ कडोर, कडिन । २ पक्का पड़ना।

पोत (सं पु ) पुनाति इति पू-( इसंवि । व ३।८६) इति तन् । १ वहित्र, नाव, जहाज । २ गृहस्थान, वरकी नींव । ३ वस्त्र, कपड़ा । ४ दशवपींय हस्ती, दश वर्षका हाथीका बचा। ५ प्रस्तरविशेष, एक प्रकारका पत्थर। ६ पशु पश्ची आदिका छोटा वन्त्रा । 🧕 छोटा पौघा। ८ वह गर्मेस्थ पिएड जिस पर भिक्लो न चढ़ी हो। ६ कपडेकी युनावट।

षोत (हिं॰ स्त्रो॰) १ माला या गुरियाका दाना। २ काँचकी गुरियाका दाना। यह भिन्न भिन्न रंगींका होता है। इसका आकार कोदोंके दानेके वरावर देखा जाता है। निम्न जातिकी स्त्रियां इसे तागेमें ग्र्थ कर गलेमें पह-नतो हैं। शाभा बढ़ानेके लिये लोग इसे छड़ी और नैवे आदि पर भो लपेटते हैं। ( पु॰ ) ३ प्रवृत्ति, ढंग, ढब । ४ अवसर, बारी, दाँव। (फा॰ पु॰) ५ भूकर, जमीन-का लगान।

पीतक (सं 0 पु ०) पीत इच कायित के क, खार्थे क या।
१ पोतपदार्थे। २ नागमेद, महाभारतके अनुसार एक
नागका नाम। ३ शिशु, तीन महीनेका वश्या। ४ दश
वर्षका हाथी।

पोतको (सं• स्त्री॰) पोतक-स्त्रियां ङीप्। १ उपोदकी, पोई नामकी छता। २ झ्यामाकपक्षी।

पोतगाँव—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलान्तर्गत एक सामन्त-राज्य। यह अक्षा १२० उ० और देशा १८० ११ पू • के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४ वर्गमील है। यहां विस्तृत शालवन है।

पीतनगर युक्तप्रदेशमें प्रतापगढ़ जिलावासी जातिविशेष।
साधुभाषामें इनका नाम है 'पोतकार'। पोत या कांचकी
माला बनाना हो इनकी एकमाब उपजीविका है। इसीसे
इनका नाम पोतगार पड़ा है। ये छोग अपनेको क्षित्य
जातिके बतलाते हैं, किन्तु इनके ऐसे नीचवृत्ति प्रहण
और समाजच्युतिके सम्बन्धमें कोई भी जनश्रुति नहीं
मिलती। ये छोग यज्ञोपवीत पहनते हैं और दूसरेको
सजातिमें घुसने नहीं देते। इनका आचार व्यवहार
उव्यथ्रेणीके हिन्दू-सा है। कोई भी मछली मांस नहीं
खाते, सभी निरामिष हैं। अपनी जातिको छोड़ कर
और दूसरे किसीके साथ बैठ कर खान पान नहीं
करते हैं।

पोतज (सं॰ पु॰) पोतः सन् नतु डिम्बादिकप इति भावः, जायते जन-ड। कुञ्जरादि, हाथी या घोड़े का वह वसा जो आँवल या खेड़ीमें लिपटा हुआ अपनी माताके गर्भसे उत्पन्न हो।

पोतड़ा (हि॰ पु॰) वर्षीके चूतड़ोंके नीचे रखनेका कपड़ा। गंतरा।

पोतदार (हिं॰ पु॰) १ वह व्यक्ति जिसके पास लगान करका रुपया रला जाय, लजानची । २ वह व्यक्ति जो सजानेमें रुपया परखनेका काम करता हो, परखी ।

पोतधारिन् (सं॰ पु॰) जहाजका अध्यक्ष, कर्णधार। पोतन-पक् प्राचीन जनपद। (जैनस्पव्सिः चरित १।९९) पोतन (हिं॰ पु॰) १ पवित, खच्छ, शुद्ध। २ पवित करनेवाला।

पोतनहर (हि॰ स्त्री॰) १ घर पोतनेके लिये मही घोल कर | Vol XIV, 110 रखनेका वरतन । २ घर पोतनेवाली स्त्री । ३ अन्न, आँत, अँतडी ।

पोतन (हिं० किं०) १ किसी गोली पदार्थको दूसरे पदार्थे पर फैला कर लगाना, चुपड़ना । २ किसी स्थानको मट्टी, गोवर, चूने आदिसे लीपना । ३ किसी गीले या सूखे पदार्थको किसी वस्तु पर ऐसा लगाना, कि वह उस पर जम जाय। (पु०) ४ पोतनेका कपड़ा, पोता।

पोतनायक (सं० पु० ) पोतस्य नायकः । पोताध्यक्ष, जहाजका कप्तान, नावका मांभी ।

पोतप्लव (सं॰ पु॰) पोतेन प्लवते प्ल-अच्। नौका द्वारा तारक, वह जो नावसे नदी पार करता हो।

पोतराजा-धारवारवासी जातिविशेष। इनकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें प्रवाद है, कि इस वंशके किसी पूर्वपुरुपने ब्राह्मणवेशमें दयमव नाम्नी छक्तीदेवीकी अ'शभृता किसी रमणीका पाणिग्रहण किया। दोनोंके सहवाससे पुत-सन्तनादि उत्पन्न हुई । एक दिन उसने होलय पत्नीके अनु-रोधसे अपनी माताको स्वगृह छाया। किसी उत्सवमें दयमय अपने बंधुवांधवोंको मिष्टाझ-भोजन करा रही थीं, इसी समय माताने अपने पुतसे कहा, "बेटा! सच सच-कहो, महिपजिह्वादग्ध और इस मिष्टान्नमें कौन अधिक रुचिकर हैं" ? इस प्रकार दयमवने नीच संसर्गेसे अपनेको प्रतारित, अपदस्थ अपमानित समभः कर पहले अपने बाल वचोंको मार डाला, पीछे खामीकी हत्याके लिये आगे वढ़ीं। इस प्रकार महिषमर्दिनीने महिषद्भप्रधारी खामीको मार कर अपना क्रोध शान्त किया। आखिर वासगृहको जला कर वे खर्गधामको चली गईं। तभीसे उस खामीके वंशघर 'पोतराजा' वा महिषके राजा कहलाने लगे।

पोतराजोंकी संख्या वहुत थोड़ी है। धारवार जिलेमें द्यमवके उद्देश्यसे एक मेला लगता है, जो आठ दिन तक रहता है। मेलेके समय पोतराजवंशधर आमन्त्रित ही कर नायकता करते हैं। मेला आरम्भ होनेके वाद एक दिन कई एक भेंसे और वकरे विलक्षे लिये लाये जाते हैं। भेंसे द्यमवके होलयवंशीय खामी और वकरे उसके वंशधर अरक्षमें आम्यदेवीके सामने मारे जाते हैं। जो पोतराज उत्सवका नायक वनता है, वह नंगे हो कर एक वकरे पर वाधकी तरह फपटता है और अपने दांतोंसे

उसका कएड फाड़ कर रक्तपान करता हुआ उस मरे ककरेंको प्रामकी निर्दिष्ट सीमा पर छे जाता है। मेलेके शेष दिन वह व्यक्ति अझेंलङ्ग अवस्थामें अपने मस्तकके ऊपर कुछ अन्त रख छेता और उसे छींटते हुए सारे प्रामका प्रदक्षिण कर आता है। जाते समय चार कोनेमें चार वकरोंको विल देता है। इन सब कार्योमें जितने पशुओंकी विल होती है, उनमेंसे कुछ उसे प्राप्त होता है। इनका अन्यान्य आचार-व्यवहार होलयके साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है। होलय देखो।

पोतवणिज् (सं॰ पु॰) पोतेन वणिक् । वहित द्वारा वाणिज्यकर्त्ता, वह जो नाव जहाज द्वारा वाणिज्य व्यवसाय करता है। पर्याय —सांयातिक, नौवाणिज्यकर, समुद्रयानचारी।

पोतभङ्ग (सं॰ पु॰) जहाज आदिका त्फानके समय समुद्रगर्भस्थ पर्वतसे टक्कर खा कर नष्ट होना।

पोतरक (सं० पु०) पोतल टेबी।

पोतरक्ष ( सं॰ पु॰ ) पोतं रक्षति रक्ष-अण् । केनिपातक, डांड या बह्रो जिससे नाव चल्राई जाती है ।

पोतल--१ सिन्धुतीरवर्ती एक प्राचीन वन्दर । २ तिन्वत राजधानी लासा नगरीके दलै-लामाका आवास-स्थान । इसका दूसरा नाम पोतरक है।

पोतलक ( सं० पु० ) पर्वतिविशेष, एक पहाड़का नाम । पोतलकिवय (सं० पु०) पोतलकः पर्वतिविशेषः प्रियोऽस्य । युद्धविशेष ।

पोतला (हि॰ पु॰) तावे पर घो पोत कर से की हुई चपाती, परांठा।

पोतवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन प्राम । यह वेजवाड़ासे ११ मील उत्तर-पश्चिममें अव-स्थित है। यहां फकीर-तक्य नामक स्तूपके ऊपर एक प्रस्तरफलक है जिसमें १०७६ शकमें उत्कीण महामएडले-ध्वर पोतराज-कृत्या प्रोलग्मदेवीका एक अनुशासन देखा जाता है।

पोतवाह (सं॰ पु॰) पोतं नावं वहतीति वह-(कर्म॰या पा इ।२।१) इत्यण् । वहित्रवाहिक, मांकी, महाह । पोता (हिं॰ पु॰) १ पुत्रका पुत्र, बेटेका वेटा । २ यहमें सोलह प्रधान ऋत्विजोमिसे एक । ३ पवित्र वायु, हवा । ४ विष्णु । ५१५ या १६ अंगुल तम्बी एक प्रकारकी मछली । यह हिन्दुस्तानकी प्रायः सब निद्योंमें मिलती हैं । ६ घुली हुई मिट्टी जिसका लेप दीवार आदि पर करते हैं । ७ पोतनेका कपड़ा, यह कूची जिससे घरोंमें फेरा जाता है । (फा॰ पु॰ ) ८ पोत, लगान । ६ अएड-कोप ।

पोताच्छादन ( सं० क्ली० ) पोतिमय आच्छादयतीति आ-छादि-ल्यु । चस्रकुद्दिम, तम्बू, डेरा ।

पोताएड ( सं० पु० ) अश्वमुष्करोगभेद, घोड़े के अंडकोय-का एक रोग।

पोताघान (सं० क्षी०) आघीयतेऽत्रेति च्युट् आघानं पोतानां अएडजमत्स्यनामाधानम् । क्षुद्राएड मत्स्य-संघात मछिकयोंके दच्चोंका समृह्, छांचर ।

पोतारा ( हिं॰ पु॰ ) युतारा देखो ।

पोतारी (हिं ० स्त्री०) पोतनेका कपड़ा।

पोताश्रय ( सं० पु० ) वह स्थान जहां जहाज छंगर डांछे रहता है, वन्दरभाह ।

पोतास (सं० पु०) कर्पू रिवशेष, भीमसेनी कपूर।
पोतिका (सं० स्त्री०) १ पोईकी वेळ। २ वस्त्र, कपड़ा।
पोतिया (हिं० पु०) १ वह छोटी थैळी जिसे छोग पासमें
लिए रहते और जिसमें चूना, तंवाकू, सुपारी आदि
रखते हैं। २ वह कपड़े का टुकड़ा जिसे साधु पहनते
हैं या जिसे पद्दन कर छोग नहाते हैं। ३ एक प्रकारका

पोती (हिं० स्त्रीं०) १ पुतकी पुती, बेटेकी बेटी। २ पानीका वह पुतारा जो मद्य चुवाते समय वरतन पर फेरा जाता है। इससे जो भाप भभकेसे उठती है, वह उस वरतनमें जा कर ठंढी हो जाती है और मद्यके रूपमें टपकती है। ३ मिट्टोका लेप जो हंड़ियाको पेंदी पर इसलिये चढ़ाया जाता है जिसमें अधिक आंच न लगे।

पोतुन्द — विशाखपत्तन जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्धं स्थान। यह विमलीपत्तनसे १२ मील उत्तर-पिवममें अवस्थित है। यहां एक अति प्राचीन मन्दिरका ध्वंसाव-शेष, कलिङ्गगङ्गके वनाये हुए दो प्राचीन दुर्ग और विजय-नगराधिप राज्यदेवरायके प्रतिष्ठित जयस्तम्म हैं।

पोतः (सं॰ पु॰) पूत्रण् । १ यज्ञादिमें नियोजित पुरोहित-विशेष, ऋत्त्रिक् । २ पवित वायु । ३ विष्णु ।

पोत्या (सं क्यें) पोतानां समृहः (पःशादिम्यो यः। या ४।२।४६ इति य, नत्ष्राप् । पोनसमृह । पोत ( सं० ह्यी० ) पूपते ऽनेनेति पू- ( इज्जूकायो: पुः । **२१२१८६ ) इति प्ट्रन् । १ शूकरमुखात्र भाग, स्**अरका र्वाग। २ छ।ङ्गळ मुंबाध, हलकी फाली। ३ वज्र। ४ वहित, जहाज, नाव । ५ पोतृनामक ऋत्विक्का पात-भेद् । ६ नात्रका डांड ।

पोतायुघ (सं० पु० ) तन्मुखात्रमेव आयुधं यस्य । शूकर, सुअर ।

पोबिदंदाज (सं बि ) पोबिदंदातः जायते जन-इ। १ शूकरदन्तजात पदार्थमात । (क्वी०) २ शूकरदन्त-जात रता।

पोतिन् ( सं॰ पु॰ ) पोतमस्यास्तीति पोत-इनि । १ शूकर, सूअर। (ति०) २ पोतिविशिष्ट।

पोतिरथा (सं स्त्री ) पोत्री शुक्तरः रथ-इव गतिसाध-कोऽस्याः। जिनशक्तिविशेष।

प्रोतिय (सं वि ) पोतुः कर्म छ। पोतृकत्तव्य कर्म, ऋतिवक् कर्तव्य कार्यभेद् ।

पोधकी (सं स्त्री ) वालकींका नेतवर्त्मज रोगविशेष, छोटे छोटे वचींका नेसरीग । इसमें आंखमें खुजली और पोड़ा होती है, पानी वहता है और सरसींके वरावर छोटी छोटो लाल लाल पुंसिया निकल आती हैं। पोधा (हिं पु ) १ कागजोंकी गही। २ वड़ी पोथी, वडी

पुस्तक । इसका प्रयोग विशेषतः व्यंग्य या विनोद्में ही आता है, जैसे-तुम इतना वडा पोथा लिये कहां फिरते हो।

पोद--निम्नवङ्गचासी एक प्रसिद्ध जाति । इनका दूसरा नाम पद्मराज और चासी भी है। ये लोग अपनेको महामारतोक पुण्डू वतलाते हैं। महाभारतमें जिस पुण्डूक वा दक्षिण पुण्डूका उल्लेख है, ये लो : शायद उसी जातिके हैं। पुराइ, देखी।

फिर इस जातिमेंसे कोई कोई अपनेकी महाभार-तोक्त पौण्डूक वासुदेववंशके और कोई वलरामको पत्नी रैवतीके गर्भसे उत्पन्न वतलाते हैं। परन्तु जो इस जाति-के शिक्षित व्यक्ति हैं, वे कायस्थके औरस और नापित-

त्रह्मवैवर्तके मतसे वैश्वके औरस आर कलवारकी क्रन्यासे पौण्डुक जातिकी उत्पत्ति है।

उच जातिको जैसा इन लोगोंमें भी विवाहसम्बन्धके निर्दिष्ट नियम हैं। अकसर ५से ६ वर्षके भीतर कन्या व्याही जाती है। इन लोगोंमें विधवा विवाह नहीं चलता और न मनमुद्राव होने पर नीच जातिके जैसा एक दूसरे-का त्याग ही कर सकते हैं।

इन लोगोंके मध्य चैत्णव, शैव, शाक, सौर और गाणपत्य इन्हीं पांच सस्प्रदायोंके छीग देखे जाते हैं। राड़ीय त्राह्मण पुरोहिताई करते हैं।

हिन्दूसमाजमें इनकी गिनती निम्नश्रेणीमें की गई है। ब्राह्मणसे छे कर नवशाख तक इनके हाथका पानी नहीं पीते। बैणाव पोट् बहुत कुछ निष्ठावान् हैं, वे मांस नहीं खाते।

इस जातिके लोग साधारणतः ऋषि और मत्स्य द्वारा जीविका-निर्वाह करते हैं। अभी वे लोग उन्न जातिमें मिलनेकी कोशिश करते हैं। इनमेंसे कोई कोई सोनार, लोहार, वढई आदिका काम भी करता है। पोदना (हि॰ पु॰ ) एक छोटो चिडिया । २ छोटे डील डीलका पुरुष, नाटा आदमी, ठॅगना आदमी । पोद्छक्कर--नेव्लर जिलास्य एक प्राचीन प्राम। यहां

एक प्राचीन गणेशमन्दिर और दुर्गका खंडहर है। पोदिका ( सं ० स्त्रो० ) कसम्बोशाक, कस्त्री साग । पोदिली-मन्द्राजके नेस्त्र जिलेकी एक जमींदारी तह-सीछ । यह अक्षा० १५ रई से १५ ४५ उ० और देशा० ७६ १२ से ७६ ४६ पु॰के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण ५६४ वर्गमील और जनसंख्या साठ हजारके लग-भग है। इसमें १११ त्राम लगते हैं। यह तहसील वेङ्कटगिरि राज्यका एक भाग है। गर्लडिन्नेके समीप वेळीकोएड पहाड़ी पर एक मन्दिर है। उक्त पहाड़ी तह-सीलके पश्चिम हो कर दौड़ गई है। मूसी और गएडल-करमा नामकी दो नदियां तहसील होती हुई वङ्गालकी खाड़ीमें जा गिरी हैं।

पोडुवरपट्टी—मदुरा जिलेके पलनी तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन प्राप्त । यह पलनीसे १० मील उत्तर-पूर्व पङ्गा कन्याके गर्भसे पोदजातिकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। है। यहां कई एक प्राचीन विष्णुमन्दिर हैं जिनमें शिला

लिपि उत्कीर्ण देखो जाती हैं। यहांकी एक मसजिद्में जो शिलालिपि उत्कीर्ण है उसमें सिनप्पनायक कर्नु क सुसलमानींको भूमिदानकी कथा लिखी है।

पोद्दार (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जो गांजेकी जातियां तथा खेतोके ढंग जानता हो ।

पोना (हि॰ कि॰) १ गीले आटेकी लोईको हाथसे दवा दवा कर घुमाते हुए रोटोके आकारमें वढ़ाना, गोले आटे-को चपाती गढ़ना। २ पकाना। ३ पिरोना, गूथना, पोहना।

पोनानी—१ मन्द्राजप्रदेशके मलवार जिलेका तालुक। यह
अक्षा० १० १५ उ० और देशा० ७५ ५२ से ७६ १३ पू०के
मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३६ वर्गमील और जन-संख्या चार लाखसे ऊपर है। यहांका राजस्व ५१६०००) रु० है।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १० ४८ उ० और देशा० ७५ ५६ पू० पोनानी नदीके मुहाने पर अविध्यत है। जनसंख्या दश हजारके करीव है जिनमेंसे माप्पिलाओंकी संख्या ही अधिक है। कालिकट और कोचिनके मध्य यह स्थान माप्पिलाओंका प्रधान बंदर माना जाता है। यहांसे जलपथ हो कर कोचिन तिवांकुड़ और मन्द्राज रेलवेके तिचर स्टेशनमें जानेकी सुविधा रहनेके कारण यथेष्ट लवण-वाणिज्य होता है।

माप्पिलाओं के प्रधान याजक तङ्गल यहां वास करते हैं। यहां मुसलमानोंका जो मदरसा है उससे मुसलमान-छातोंको उपाधि मिलती है। १६६२ ई०में ओलन्दाजोंके कोचिन दखल करने पर अङ्गरेजोंने यहां आ कर अड्डा जमाया। १७८२ ई०में कनेल मैक्कीउड हैदरअली पर आक्रमण करनेके लिये इसी स्थान पर उतरे थे। शहरमें २७ मसजिदें हैं जिनमेंसे जमाथ मसजिद ही प्रधान है। कहते हैं, कि उक मसजिद १५१० ई०में बनाई गई थी। अलावा इसके यहां मुनसिकी अदालत भी लगती है।

३ मन्द्राजप्रदेशकी एक नदी । यह अनमलय पर्वतसे निकल कर पालघाट होती हुई पोनानी नगरके समीप समुद्रमें गिरी है।

पोन्नानी-पोनानी देखी।

पोस्तूर—कृष्णा जिलान्तर्गत एक अति प्राचीन स्थान । यह

वंगपटलासे १५ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। यहां डिप्टी तहसीलदारकी सदर कचहरी लगती है। यहांका देवमन्दिर वहुत पुराना है। इसके पूर्वद्वारके एक स्तम्भमें १०४१ शककी उत्कीर्ण कुलोत्तुङ्ग बोलकी शिलालिपि है। इस अञ्चलके हिन्दुओंके निकट यह मन्दिर अति पुण्यपद समक्ता जाता है। पोन्नूरुस्थलमाहात्मामें उसी देव-मन्दिरका माहात्मा वर्णित है।

पोन्नेरी—मन्द्राजके चेङ्गलपट्ट जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३'११' से १३'३४' उ० और देशा० ८०'५' से ८०' २१' पू० बङ्गालकी खाड़ीके किनारे अवस्थित है। मूपरिमाण ३४७ वर्गमील और जनसंख्या करीव १३६५६७ है। कोर्त्तलैयर और अरनिया नामकी नदी तालुकके मध्य ही कर वह गई हैं। तालुकका कुछ अंश उर्वरा और कुछ अंश उत्तरा ही। कलकत्तेसे मन्द्राज जानेका रास्ता इसी तालुक हो कर गया है।

२ चेङ्गलपट्ट जिलेका एक नगर और उक्त तालुकका सदर। यह नारायणवरम्के दाहिने किनारे मन्द्राज शहर-से २० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित हैं। वहां एक थाना और डाकघर है।

पोप ( अं । पु॰ ) ईसाइयोंके कैथलिक सम्प्रदायकें प्रधान धर्मगुरु । इनका प्रधान स्थान यूरोपमें इटलीराज्यका रोम नगर है। १४वीं शताब्दी तक संसारके सभी ईसाई-धर्मावलम्बी राज्यीं पर पोपका बड़ा प्रभाव था। उनका पद सभो ईसाई-सम्राट्से श्रेष्ठ और उनका कर्तृत्व समस्त ईसाई-मण्डलीके ऊपर था। रोमनकाथलिक ईसाई-सम्प्रदायके वे सर्वमय कर्त्ता थे। उनकी आहा और उद्यमसे कितनी 'क्रूजेड' या मजहवी लढ़ाइयां हुई हैं, कितने राजेश्वर सिंहासनच्युत हुए हैं और कितनी कीर्त्तियां स्थापित हुई हैं, उसकी इयत्ता नहीं । १५वीं शताब्दीमें लूथर नामक एक नये सम्प्रदाय स्थापककी शिक्षासे वहुतीने पोपोंके हाथसे छुटकारा पानेकी कोशिश की थी । इसी समय इङ्गुलैएडराज ८म हेनरीने अपनी पत्नो कैथरिनको छोड़ने और बोलिनसे विवाह करनेकी अनुमति मांगी। इस पर पोपने अनिच्छा प्रकट की जिस-से ने आगववूले हो गये। उन्होंने पोपका अधिकार उठा दिया और अपनेको इङ्गलैएडके सभी गिरजाओंके प्रधान

नायकं (Supreme head of the English church ) पोरुआ (हि॰ पु॰ ) पोरिया। वतला कर घोपणा कर दी। इस समयसे पोपका अधि-कार घटने छगा और उनके अधीन जितने धर्म-मन्दिर थे, सभी हाथसे निकल गये। क्रमणः घोटेएएट सम्प्रदायकी · वढ़तीसे पोपका प्रभाव जो भी वचा खुचा था, वह भी जाता रहा। परन्तु पुराने कैथलिक सम्प्रदायके मानने-वार्लोमें पोपका अभी वैसा ही आदर है। उनका अभि-पेक आदि उसी प्रकार किया जाता है जैसे महाराजाओं-विस्तृत विवरण खृष्टान्, रोम, ख्रथर आदि का होता है। शब्दों देखो।

पोपला (हिं ० पि०) १ पचका और सुकड़ा हुआ । २ ी विना दांतका, जिसमें दांत न हों, जैसे बुढोंका पोपला मंह। ३ जिसके मुंहमें दांत न हों।

पोपलाना (हिं॰ क्रि॰) पोपला होना।

पोपली (हि॰ स्त्री०) आमकी गुउली ग्रिस कर वनाया हुआ वाजा। यह वाजा विशेष कर छोटे छोटे वच्चे वजाते हैं। पोय (हिं श्ली ) पे ई देखी।

पोया (हिं पु ) १ वृक्षका नरम पौधा। २ वचा। ३ सांवका छोटा वचा, सँपौळा ।

पोर ( हिं० स्त्री० १ उंगळीकी गांठ या जोड़ जहांसे वह कुक सकती है। २ उंगळीका वह भाग जो दो गांठींके वीच हो। ३ रीढ़; पीठ। ४ ईख, वांस, नरसल, सरकंडे आदिका वह भाग जो दो गांठोंके वीच हो।

पोरकाइ-मन्द्राजके तिख्यांकोर राज्यके अर्न्तगत अम्बाला-पुलै तालुकका एक शहर। यह अक्षार्धं २२ उ० और देशा॰ ७६' २२' पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २२६४ है। पहले यह स्थान चम्पकसेरी-राजाके अधीन था। १७४७ ई॰मे तिरुवांकोरके हाथ आया। यहां एक दुर्भ है जिसे कहते हैं, कि चोलराजाओंके पहले कुरु म्बरीने वनाया था।

पोरा (हिं० स्त्री०) १ लकड़ीका मंडलाकार दुकड़ा, लकड़ीका गोल कुंदा। २ कुंदेकी तरह मोटा आदमी। पोरिया ( हिं॰ स्रो॰) हाथ परकी उंगलियोंकी पोरोंमें पहनतेका एक चांदीका गहना । यह छल्लेके जैसा होता है, पर इसमें घुंधरूके गुच्छे या भव्ये लगे रहते हैं। पोरी (हिं० स्त्रो ०) एक प्रकारकी कड़ी मट्टी।

Vol. XIV. 111

पोरमामिल्ल—मन्द्राजके कड़ापा जिल्लान्त गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० १५ र् और देंगा० ७६ पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५५२२ है। पहले यहां एक पोलिगर-सरदार रहते थे। उनके दुगेका ध्वंसावशेष आज भी देखनेमें आता है। यहांके भैरवके मन्दिरमें ्रस्ह र कमें उत्कीर्ण बुक्तरायके पुत भास्कररायकी शिलालिपि है। अलावा इसके यहां लक्मीकान्तस्वामीका पुराना मन्दिर हैं । प्रवाद है, कि भास्कररायने उक्त मन्दिरका संस्कार कराया था। गृहरमें एक अति उत्ऋष्ट पुष्करिणी है।

पोर्ट (अं ॰ पु॰) अंगूरसे वनी हुई एक प्रकारकी शराव। यह भवकेसे नहीं चुआई जाती, अंगुरके रसको धूपमें सडा कर वनाई जाती है। इसमें वहुत कम नशा रहता है, इसीसे लोग इसका सेवन पुष्टईके रूपमें करते हैं।

पोर्टकेनिङ्ग--- २४ परगनेके अन्तर्ग त एक विलुप्त वन्दर । यह अक्षा० २२ १६ (१५ डि॰ और देशा० ८८ ४६ २० पू०के मध्य अवस्थित है। हुगलोनदीका वन्हर प्रतिवर्ष वालुसे भरते देख अङ्गरेजचिणक वहुत व्याकुल हो गये। उन्हों ने मातलाके मुहाने पर एक वन्दर और नगर वसानेके लिये वड़े लाट डलहौसीके पास आवेदनपत मेजा । इस पर गवर्में एटने अतिशीव्र २५००० वीघा जमीन इकट्टी कर दी। अव नया शहर वसानेका सभी इन्तजाम पका हो गया. म्युनिस्पलिटी भी संगठित हुई। गवर्मण्टने वडे लाटके हाथ नगरका भार सौंपा। वड़े वड़े सौदागरींकी कोठी कोली गई । वाणिज्य व्यवसायकी सुविधाके लिये कलकत्ते तक रेळलाइन दौड़ गई। मातलाके मुहाने पर वहुतसे पोताश्रय, जहाज रखनेके लिये जेटी और वड़ी बड़ी चावलकी कलें खोली गई। पीछे बड़े लाट कैनिङ्गके नामानुसार इसका "पोर्टकैनिङ्ग" नाम रखा गया। नगर और वन्दरकी स्थापनामें लाखों रुपये खर्च हुए, पर कोई फल नहीं निकला। समुद्रगामी एक भ जहाज इस वन्दरमें नहीं आता। गवर्मेण्टका स्वाल था, कि चावलका व्यवसाय चलानेसे काफी लाम होगा और वहुतसे जहाज यहां लङ्गर डालेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ।

आखिर १८७१ ई०में छोटे लाटने यहांका वन्दर उठा दिया। जो सब कार्यालय खोले गये थे, वे छोड़ दिवे गये । पहलेके जैसा इस वन्दरका अधिकांश जङ्गलमें परि-णत हो गया। अभी यहां पोर्ट कमिश्नरींकी कचहरी और रेलवे ध्टेशन है।

पोर्ट व्लेयर—अन्दामानद्वीपींका प्रधान वन्दर।

सन्दामान देखी।

पोर्टी नोवो—मन्द्राजके दक्षिण आर्कट जिलेका एक वन्दर पोलच (हि॰ पु॰) १ वह परनो जमीन जो गत वर्ष और शहर । यह अक्षा० ११ ं ३० ं उ० और देशां० ७६ ४६ पू०के मध्य भेलर नदीके किनारे अवस्थित है। जन संख्यादश हजारसे ऊपर है, जिनमेंसे चतुर्था श मुसलमान हैं। यहां एक समय दिनेमार और पुर्तगोजोंका बहुत छम्बा चौड़ा कारवार था। १६८२ ई॰में अंगरेजींने यहां कोठी खोली। यहांसे सर आयरकूटने ८००० सेना ले कर हैदरअलोकी ६० हजार सेनाका मुकावला किया था। यहां प्रतिवर्ध प्रायः ६ लाख रुपये द्रव्यको रक्षनी और लाखसे अपरको आमदनी होती है। यहांकी चटाई वहुत मशहूर है।

पोर्तुगीज--पुर्तगीन देखो ।

पोछ ( सं० ति० ) पुछ-ज्यकादित्यान् ण । १ महत्त्वयुक्त, प्रभाववाला। (पुर्व) २ पिष्टकमेद, एक प्रकारका फुछका। ३ कटिपोथ, नामिके नोचेका भाग, पेड़ । ' ४ पुञ्ज, देर ।

पोल (हि॰ पु॰) १ शुन्यस्थान, अवकाश । २ सार-हीनता, अन्तःसारश्रन्यता, खोखलापन । ३ प्रवेशद्वार, कहीं जानेका फाटक। ४ आंगन, सहन।

पोल-गुजरातके महीकान्ता एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा : राज्य। यह महोकान्ताके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस भूभागका अधिकांश जंगळ और पर्दतसे भरा है। यहांकी प्रधान उपज ज्वार, वाजरा, चना और कंगनो है।

यहांके राजवंश अपनेको कन्नोजके अन्तिम हिन्दूराजा जयचाँदके वंशघर वतलाते हैं। जयचाँदके दो पुत्र थे, शिवजी और शोनकजी। मारवारके राजगण शिवजीके वंशधर हैं। शोनकजीने १२५७ ई०में इदरमें राज्य वसाया। २६ पोढ़ो तक शोनकजोके वंशको 'राव'की उपाधि रही। १६५६ ई०में इस वंशके शेष खाधीन राजा जगन्नाथराव

मुसलमानोंसे राज्यच्युत हुए। अव पोल नामक स्थान-में राजपरिवारगण आ कर वस गये। पीछे वे लोग इस पार्वत्य भूभागके राव कहळाने ळगे। यहांके अधि-पति किसी दूसरे राजाके अधीन नहीं हैं।

पोलक ( डिं॰ पु॰ ) लम्बे बासके छोर पर चरखीमें बंघा हुआ पयाल। इससे छुककी तरह जला कर विगड़े हाथीको इराते हैं।

रक्बी बोनेके पहले जीती गई हो, जीनाल। २ वह ऊसर या वंजर जमीन जिसे जुते या दूरे तीन वर्ष हो गये हों।

पोलएड - यूरोप महादेशके अन्तर्गत एक प्राचीन राज्य। एक समय यह वाल्टिक समुद्दे छे कर वेसारविया और कार्पेथियन पर्वतमाला तक तथा पश्चिम प्रसियासे ले कर पूर्व रूस तक फैला हुआ था। यह छोटा राज्य उत्तर-पूर्वमें पर्वतमालासे समाकीर्ण है। भूपरिमाण २८२००० वर्गमील है।

प्राचीनकालमें पोलएडराज्य ड्यूक उपाधिकारी सर-दारोंसे शासित होता था। उक सरदारगण पोस जातिके थे। ८४० ई०में पियह (Piast वा Piastus) राज्याधिकार करनेके पहले और किसो भी वंशने यहां धारावाहिक राज्य नहीं किया। वियष्ट-वंशधरींने प्रायः पाच शताब्द तक शासनदण्ड धारण किया था। उसके वाद निर्वाचन-प्रणालीका स्वपात हुआ। उपयुक्त पावकी राजमुकुट दिया जाने लगा। उक्त राजाओंके राजस्य-कालमें शासनमें बहुत कुछ सुधार होने पर भी गृह-विवादके फलसे तमाम अशान्ति फैल गई थी। घीड़े धोरे उस गृहविवादसे राज्य चौपट हो गया। आपसकी लड़ाईसे राज्यमें अराजकताका शासन देख पार्श्वती राजगण इस गोलमालको मिटानेके लिये तैयार हो गये। आखिर छल, वल और कौशलसे १७७२ ई०में हसिया, प्र सिया और अष्ट्रियाने पोलएडको ग्रास कर ही डाला। रूसिया पूर्वाड, अष्ट्रिया दक्षिण-पश्चिम और प्रसिया वाणिज्यप्रधान उत्तर-पश्चिम हो कर भी शान्त न हुए। ह्नस-राजने पुनः १७६२ ई०में आक्रमण करके १७६३ और १७६४ ई ब्की इसका वचा खुचा भाग भी हड़प कर लिया। वोनापार्टका पोलएड-विजयसे बहुत परिवर्तन हुआ। नेपोलयन दे बो। इसके वाद फरासी-राज्यके , अधःपतन पर प्रसिया और अष्ट्रियाने पूर्वसम्पत्तिका कुछ अंश प्राप्त किया और अविशिष्ट रूसियाके हाथ लगा। १८३० ई०में पोलजाति बागो हुई। वार्तनगरवासी क्रिसका मुकाविला न कर सके और आतमसमर्पण करनेको वाध्य हुए। पोल लोग भी राज्य छोड़ चम्पत हुए। १८३२ ई०में पोलएड रूससाधाज्यमें मिला लिया गया। १८४६ ई०में अष्ट्रियाधिकृत काकोनगरमें खाधीनता पानेकी कोशिश की गई थी। १८६३-४ ई०में एक और राष्ट्रक विश्वव संघटित हुआ था। इससम्राट्ने अमृत परिश्रमक्ते उस विद्रोहका दमन किया था। तमीसे पोलएड-

पोलमपही—कृष्णा जिलास्थ एक प्राचीन प्राम । यह , नन्दीप्रामसे १७ मील उत्तर-पृत्विसमें अवस्थित है । इस । प्रामके समीप प्राचीन वौद्धकीर्तिका ध्वंसावशेष देखा जाता है ।

पोला (हिं ॰ पु॰) १ मध्यप्रदेशमें होनेवाला एक छोटा पेड़। इसकी लकड़ी भीतरसे वहुत सफेद और नरम निकलती हैं जिससे उस पर खुदाईका काम वहुन अच्छा होता है। वजनमें भी भारी होती हैं। हल आदि खेती के सामान उससे बनाये जाते हैं। भीतरी छालमें रेशे होते हैं जो रस्सी बनानेके काममें आते हैं। पेड़ वरसातमें वीजींसे उगता है। २ स्तका लच्छा जो परेती पर लपेटनेसे वन जाता है। (वि॰) ३ जो भीतरसे कड़ा न हो, पुलयुला। ८ जो भोतरसे भरा न हो, खोखला। ५ अन्तःसारशून्य, निःसार।

पोला—मराठोंके मध्य चृषोत्सवभेद । महादेवके नाम पर वा वृषोत्सर्गमें जो सब सांढ़ तिशूलाङ्कित हैं, उन्हें श्रात्रणी पूर्णिमाके दिन सजा कर पूजते और नगरका प्रदक्षिण कराते हैं। इस दिन उन्हें परिश्रम करना नहीं होता।

पोलाद (हिं ॰ पु॰) फौलाद देखी।

पोछारी (हिं ० स्त्री० ) छेनीके आकारका एक छोटा औजार । इससे सोनार खोरिया, कंगन, घुंघुरु आदिके दानोंको फिरफिरेमें रख कर खलते हैं। यह तीन चार अंगुलका होता है और इसकी नोक पर छोटा-सा गोल हाना बना रहता है।

पोलाव ( हिं• पु• ) पुलाव देखी ।

पोलावरम्—१ मन्द्राजके गोदावरी जिलेका एक उप-विभाग। इसमें पोलावरम, चोदावरम् और येलावरम् नामके तीन तालुक लगते हैं।

२ मन्द्राजके गोदावरी जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १७ ७ से १७ २८ उ० और देशा० ८१ ५ से ८१ ३७ प्०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५८२७४ है। इसमें २६२ प्राम लगते हैं। राजस्व ६४०००। ६० है।

पोलिका (सं॰ स्त्री॰) पोली सार्थ-कन, टाप्, पूर्वहस्वश्च।
पिग्रकविशेष, एक प्रकारकी चपाती। संस्कृत पर्याय—
पूलिका, पोलि, पूपिका, पूपला। मैदेकी पतली सिद्ध
रोटीको पोलिका कहते हैं। यह पोलिका लिसका
अर्थात् मोहनमीपके साथ खानो चाहिये। इसमें मएडकका-सा गुण है।

पोलिगर — दाक्षिणात्यके सरदारोंकी उपाधि। तामिल 'पोलिगम' शब्दका अर्थ दुर्ग और 'करम'-का अर्थ रक्षां है। यथार्थमें ये लोग गितरसङ्क्ष्य और वन्यभूमिकी रक्षा करने थे, इसी कारण इनका पोलिगर नाम पड़ां है। पोलिगर कहनेसे पहाड़ी सरदारोंका वीधं होतां है। ये लोग वहुत कुछ खार्थान भावमें अपने अपने प्रदेगका शासन कर गये हैं। अरियालेरे, वाङ्गरयाचम्, वोमराज, कोइलरपेह, पलेरेमपेना, पहापुरम, मदुरा, तिन्नेबेलि, नहुमनबल्लकोह, नल्लतोक्चशविल्ले, सावन्य, उद्यगिरि, वरदाचलम् और सावन्तवाड़ी आदि देश एक समय विभिन्न पोलिगरोंके अधिकारमुक्तं थे।

तिन्नवेलीके पोलिगर लोग एक समय सभी पोलिगरोंसे श्रेष्ठ थे। उनकी उपाधि थी 'तोएडमान राजा मरवर'। मन्द्राजके उत्तर वङ्गरयाचम्, दमरहा और वोमराजाके पोलिगरोंने निजाम और अङ्गगरेजोंके साथ युद्ध किया था। जुन्तर और पनालाके पोलिगर लोग शिवाजीके हाथसे दमित हुए थे। दूसरे स्थानके पोलिगरोंने अङ्गरेजोंके हाथसे वीरगति पाई थी।

पोलिटिकल (अं० वि०) राज्यप्रवन्ध-सम्बन्धी, शासन-सम्बन्धी, राजनीतिक ।

पोलिटिकल एजंग्ट ( सं ॰ पु॰ ) वह राजपुरुष जो दूसरे राज्यमें अंपने राज्यकी ओरसे उसके स्वत्व और व्यापा-रादिकी रक्षाके लिये रहता है, राजनीतिक प्रतिनिधि। पोलिन्द ( सं॰ पु॰ ) पोतस्य अलिन्द इवेति पृपोदरादि-त्वात् साधुः। नौकावययभेद, नावकी लम्बाईमें दोनों ओर लकड़ोकी पट्टियोंसे वना हुआ यह ऊंचा और चौरस स्थान जिस पर याती वैठते हैं। पोलिया (हिं• स्त्री०) १ एक पोला गहना जिसे स्त्रियां पैरोंमें पहनती हैं। (पु०) २ वौरिया देखी। पोली (सं॰ स्त्री॰) पोलति महत्त्वं गच्छतीति पुल ज्वाला-दित्वात् ण ङीप्। पिएकविशेष, पतली रोटी। पोली (हिं० स्त्री०) जङ्गली कुसुम या वरें। इसका तेल अफरीदी मोमजामा वनानेके काममें आता है। पोलर-१ मन्द्राजके नेवलर जिलेकी जमींदारी तहसील। यह अक्षा० १३ ३० से १३ ५६ उ० तथा देशा० ७६ ५१ से ८०' ह पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके पूरवमें वङ्गालकी खाड़ी पड़ती है । भूपरिमाण ३५५ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ७४५१२ है। इसमें १३६ प्राम लगते हैं। यों तो यहां वहतसी निदयां वहती हैं, पर स्वर्ण-मुखी नामकी एक ही नदी प्रधान है। यहां धान, रागी और कम्यूकी फसल अच्छी लगती है।

र मन्द्राजके उत्तरीय आर्कट जिलेका दक्षिण तालुक। यह अक्षा० १२ र० से १२ ४५ उ० और देशा० ७८ ५१ से ७६ २२ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६६ वर्गमील और जनसंख्या करोद डेढ़ लाखके है। इसमें पोलूर नामका एक शहर और १७० श्राम लगते हैं। राजख तीन लाखसे ऊपर है। तालुकका अधिकांश पर्यंतमाला-समाकीण है।

३ उक्त तालुकका एक शहर । यह अक्षा० १२ देश उ० और देशा० ७६ ७ पूर्ण मध्य अवस्थित है। जन-संख्या प्रायः ६२०६ है। नगरके पास ही एक प्राचीन दुर्गका ध्यंसायशेष और ५ मोल दूरमें लोहेको खान देखो जाती है।

पोलेपहो—कृष्णा जिलेका एक प्राचीन ग्राम । यह दाचे-पङ्गोसे १० मोल दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां अति प्राचीनकालके तीन शिवमन्दिर हैं । इनमेंसे एक परशुराम-प्रतिष्ठित वतलाया जाता है। सिद्ध श्वरसामीके मन्दिरमें प्राचीन शिलालि उत्कीर्ण देखी जाती हैं। पोली (अं पु०) चौगानकी तरहका एक अङ्गरेजी खेल जो घोड़े पर चढ़ कर खेला जाता है। पोली मार्की एक भिनिसवासी। मार्की पोली १२५० ई०में अपने पिताके साथ कनस्तान्तिनोपल आये और वहांसे वोखारा, पारस्य, चीनतातार, चीन और भारत आदि नाना देशोंमें परिश्लमण कर उन सव देशोंका प्रकृत विव-रण लिपिवद्ध कर गये। वे केवल देशश्लमणमें ही यशसी हुए थे, सो नहीं, जेनोआकी लड़ाईमें इन्होंने सेनानायक हो कर अपनी चीरताका परिचय भी दिया था। इसके वाद स्वदेश लीट कर इन्होंने मिनिसनगरीको महासभा

पोल्लाचि १ मन्द्राजके कोयम्बतोर जिलेका उपविभाग। इसमें पोल्लाचि, पल्लदम और उदमलपेट नामके तीन तालुक लगते हैं।

का सदस्यपद सुशोभित किया।

२ मन्द्राजके कोयम्यतोर जिलेका दक्षिण-पश्चिम तालुक। यह अक्षा० १० १५ से १० ५५ उ० और देशा० ७६ ४६ से ७९ १६ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७१० वर्गमोल और जनसंख्या प्रायः १६५६०८ है। इसमें इसो नामका एक शहर और १५ ग्राम लगते हैं। राजस्व ३०४००। रु०का है। तालुकका दक्षिणीय भाग पर्यंत और जङ्गलसे परिपूर्ण है।

३ उक्त तालुकका प्रधान शहर। यह अक्षा० १० ३६ वि को को देशा० ७९ १ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संख्या नी हजारके करीव है। यहां हाट, पिथकाश्रम, अस्पताल और मजिन्द्रेटके घर हैं।

पोवार—राजपूत जातिकी शाखाभेद । पुषार देखां।
पोविन्द —भारतको उत्तर-पिश्चम सोमान्तवत्तों एक विणक्
जाति । मध्य पशियाके साथ भारतीय वाणिज्य एकमात
इन्होंके द्वारा पिरचालित होता है। ये लोग स्वभावतः
ही भ्रमणशोल हैं, एक स्थान पर स्थायीक्तपसे नहीं रहते
हैं। इनमें लोहानी, नसर, नियाजी, दावतानी, मियांबेल
और करोती आदि अनेक विभिन्न श्रेणियां हैं। उन
श्रेणियोंमें भी फिर स्वतन्त्त थोक हैं। पूर्वोक्त श्रेणीमैंसे
कोई कोई दिल्ली, कानपूर, वाराणसी और भारतके

अन्यान्य नगरोंमें तथा गजनी, खिळात्-इ-घिळजे, कावुल, कन्यार और होरट आदि स्थानोंमें पण्यद्वय हो कर जाते आते हैं। ये लोग पशम, रेशम, पशमीने, कम्बल, शुष्क फल, औपध, मसाला और घोड़े हाथी ले कर भारतवर्ष वेचने आते हैं और यहांसे शिल्पजात नाना द्रव्य तथा विलायती कपड़े खरीद कर ले जाते हैं। इस प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा इनमेंसे अनेक धनी हो गये हैं। सर्वोके पास प्रायः अच्छे अच्छे घोडे हैं। किसीके साध इनका विरोध होनेसे ये लोग वातकी वातमें १४ हजार अ बारोही इकट्ठे कर सकते हैं। विणक होने पर भी ये युद्धनिपुण हैं और पार्वतीय शीतप्रधान देशोंमें वास करनेके कारण विछिप्त और तेजस्वी हैं। काबुलसे ले कर काटिवाज तक विना रोक टोकके वाणिज्य द्रव्य लाते हैं, किन्तु जितना ही ये लोग भारतको सीमामें अप्रसर होते जाते हैं, उतना ही इनका भय वढ़ता जाता है। कभी डकैत वा अङ्गरेजी-सेना मौका पा कर इनके द्रव्यादि लूट लेती हैं। इस कारण काटिवाजसे रवाना होते ही ये छोग दछ वांघ कर चछते हैं। एक एक दछमें ५ हजार-से १० हजार विछप्त हथियारचंद पुरुष रहते हैं। प्रत्येक दलमें एक दलपति रहता है जिसकी उपाधि खाँ है। सुशिक्षित सैन्यश्रेणीकी तरह ये लोग राहमें कभी कभी लड़ाई भी ठान देते हैं। मेजर एडवार्डिस (Major Edwardes )-ने लिखा है, कि ऐसा एक भी पोविन्द देखनेमें नहीं आया जो एक न एक अङ्गुसे दीन न हो— किसीके नाक नहीं हैं, कोई चक्ष्हीन है, कोई छिन्नहस्त है, इस प्रकार प्रायः सभोके शरोर पर युद्धविष्रहके अस्त्र-चिह्न दिखाई देते हैं।

वाजिरी जाति इनके जानी दुशमन हैं। वाजिरीअधिवासित देशके उत्तर-पश्चिममें करोति शाखाके
पोविन्द रहते हैं। इस प्रदेशमें शीत अधिक पड़नेके
कारण विशेष कर तम्बूमें ही रहते हैं। दूध, घी, मध्यवन,
पनीर आदि इनके वसन्त कालका खाद्य है। घी दूधके
सेवनसे तथा शीतप्रधानमें वास करनेसे इनके शरीरका
रंग सफेद हो गया है। पशिया भर ये सवींसे सुन्दर
और सुश्री देखनेमें लगते हैं। पोविन्दोंके मध्य नसर
शाखा ही समधिक वलशाली है। प्रीध्मकालमें ये लोग

घिलडी जातिके तोकी और ओरकशाखाके साथ मिल कर रहते हैं। शीत पडते ही देराजातको भाग जाते हैं। नसेरा लोग उतने वाणिज्यप्रिय नहीं हैं। अपने पालित गाय, भैंस, ऊंट आदिसे ही गुजारा चलाते हैं और आच्छादनयोग्य तम्बू तैथार कर लेते हैं। वे लोग निष्दुर, कुतिसत और करस्त्रभावके हैं, अकारण जीव जन्तु-की हत्या करनेमें जरा भी कुिएठत नहीं होते। इनका कद छोटा, रंग काला और मुखमएडल खभावतः ही भयोत्पादक है। पानी, दौलतखेल और मियांखेल नामक लोहानीशाखाके पोविन्द खेतो-वारी करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। केवल मियांखेलके कुछ लोग मध्य-पशियामें वाणिज्य-व्यवसाय चलाते हैं। वे लोग अपने अपने स्त्री-पुतके रक्षणावेक्षणके लिये नियुक्त कर प्रीप्म-ऋतुमें वोखारा, समरकन्द् और काबुल आदि स्थानोंमें जाते हैं और आवश्यकतानुसार द्रव्यादि खरीद कर गोमलगिरिसङ्कट होते हुए देराजात पहुंचते हैं। वहां अपना अपना माल वेच कर वे श्रीमऋत्में स्वदेश लौरते हैं।

पोविन्द लोग हो मध्य-पशियाके पक्तमात व्यवसायी नहों है। परज्ञा, गएडपुर और वावरजाति तथा अन्यान्य हिन्दू लोग आज भी मध्य-पशियामें वाणिज्य किया करते हैं। सिख लोगोंके समय पोविन्होंके पण्यद्रव्य पर अधिक कर लगाया गया था । अङ्गरेज गवर्मेंग्टने कावुल, खोरा-सान, पारस्य आदि मध्य-एशियाके राज्यसे लाये हुए द्रव्यों पर कम शुक्क वस्ल करनेका हुकुम दिया। अङ्ग-रैजो-राज्यमें प्रायः २५ हजार पोविन्द छावनी डाले हुए हैं। वे छोग भारतसीमाके वाहर स्वाधीन और दुर्द्ध र्ष भावमें विचरण करते हैं। किन्तु गोमल, मांभी, हैंदर, जर्कानी आदि गिरिपथ पार होते ही ये मानी मन्तमुग्ध-वत् सुशील और सुभद्र हो जाते हैं। भारतके एक प्रान्त-से दूसरे प्रान्त तक विस्तृत स्थानमें जब ये छोग विच्छिन्त हो कर रहते हैं, तव कभो भो अपनी उन्नप्रकृतिका परि-चय नहीं देते, वरन् निरीहमाव दिखानेकी चेष्टा करते हैं। ऐसी अवस्थामें रहनेसे उनकी सतर्कताप्रवृत्ति ऐसी शिथिछ हो जाती हैं, कि चोर वड़ी आसानीसे उनका माल चुरा सकते हैं। किन्तु फिरसे गिरिसङ्कट पहुंचते ही उनके कुटिल चक्षु पुनः प्रस्फुटिन होते हैं।

पोशाक (फा॰ स्त्रो॰) वस्त्र, परिश्रान, पहनावा। पोशाको (फा॰ पु॰) १ एक कपड़ा जो गाढ़ेंसे बारोक और तनजेवसे मोटा होता है। २ अच्छा कपड़ा। पोशोदगो (फा॰ स्त्री॰) गुप्ति, छिपाव। पोशीदा (फा० वि०) गुप्त, छिपा हुआ। पोष (सं ु ०) पुष-भावे घञ्। १ पोपण, पालन । २ भाधिक्य, वृद्धि- बढ़ती । ३ तुष्टि, स'तीय । ४ अभ्युद्य, उन्नति। ५ धन, दौलत। पोषक (सं० ति•) पोपयतीति पुष-णिच्-रुयु । १ पालक, . पालनेवाला । २ वर्द्ध क, वढ़ानेवाला । ३ सहायक, <sup>१</sup> सहायता देनेवाला ।

पोषण (संग्रहींग) पुष-त्युद्। १ पुष्टि। २ पालन । ३ वद्धेन, बढ़ती। ४ सहायता।

पोषणप्रवाह । सं • ह्यो ० ) वह शक्ति जिससे खाया हुआ पदार्थ रक्तमांसादिमें परिणत हो कर शरीरकी पुष्टि होती है।

पोषध ( हिं पु॰ ) उपवास त्रत ।

पोषघोषित ( सं० त्रि० ) उपोषित, उपवास किया हुआ । पोषना (हिं० क्रि॰) पालना।

पोषयित्तु (सं • पु •) पोषयतीति पुष-णिच् । १ काकगोष्य, पिक, कोयल। (ति०) २ पोषणकर्त्ता, पोषनेवाला । ३ भर्ता, लामी, मालिक।

पोवयिष्णु (सं• ति०) पुव-णिच् तत इन्गुच् (भगमन्ता-रुवायेरिनरशुषु । पा ६।४१५५ ) इति अय्। पोपक, पालने-नाला ।

१ पोषक, पालने-षोषित (सं॰ ति॰ ) पुप-णिच् तृच्। वाला । २ पाला दुभा ।

पोषुक ( सं० ति∙ ) पुष- बाहु० उक । पोषणकरणशीळ, पालनेवाला ।

पोष्टा (हिं० वि॰) पोष्ट्र देखो ।

पोष्टृ (सं॰ पु॰) पुष्णातीति पुष-तृच्। १ पूरीक, करंज। २ पोपणकर्त्ता, पालनेवाला ।

पोष्ट्यर (सं० वि०) पोष्ट्रुपु वरः । पोषकश्रेष्ठ । पोप्य (सं० ति०) पुष्यते इति पुष-ण्यत् । १ पोषणीय, पाळने योग्य । (पु॰ ) २ भृत्य, नौकर, दास । जिनका प्रतिपालन कुरना असरव कर्त्तव्य है, उन्हें पोध्य कहते हैं। पोष्य-

वर्गका प्रतिपालन नहीं करनेसे प्रत्यवायप्रस्त होना पड़ता है। इस कारण पोश्यद्वर्गका यत्नपूर्वक पालन करना हर एकका कर्त्तव्य है।

माता, पिता, गु.इ, पत्ती, सन्तान, अभ्यागत, शरणागत, अतिथि और अग्नि ये नी पोध्यवर्ग हैं। ये सव अवश्य प्रतिपालनीय हैं। सैकड़ीं अपकर्म करते हुए भी इन्हें प्रतिपालन करना चाहिये। इनका प्रतिपालन किये विना कोई भी कर्म न करे।

"ज्ञातिर्वन्धुजनः श्लीणस्तथा नाथः समाश्रितः। अन्येऽप्यधनयुक्ताश्च पोप्यवर्गं उदाहतः॥" (दक्षसं०) शरणागत और इरिद्र ये सव भी पोष्ववर्गमें गिने गये हैं । आहिकतत्त्वमें लिखा है, कि पोव्यवर्गका पालन करनेसे उत्तम स्वर्ग लाभ और उन्हें पीड़ा होनेसे नरक होता है।

"भरणं पोत्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्। नरकं पीड़ने चास्य तस्माद्यक्तेन तान् भरेत्॥" ( आहिकतस्य )

पोध्यपुत (सं० पु० ) पोव्यः पुतः पोष्यत्वेनैव पुतत्वं प्राप्तः इत्यर्थः। १ पालनादि द्वारा पुतत्वप्राप्त, पुतके समान पाला हुआ लड़का। २ दत्तक पुत्र। अपुत्र व्यक्ति पिएडप्राप्तिके लिये जिस पुनको ग्रहण कर पालता है उसे पोण्यपुत कहते हैं।

"अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः। पिग्डोद्ककियाहेतोर्नामसंकीर्त्त नाय च॥" (महु.) अपुत्र व्यक्तिको पिएडोदकादि किया और नाम-कीर्त्त नके लिये पोध्यपुत प्रहण करना चाहिये। वह पोख पुत उनके मरनेके वाद पिएडोदकादि दे कर धनका अधि-कारी होता है। पोष्यपुतका अशौच केवल तीन दिन है, परन्तु उसके पुतादिका सम्पूर्णशौच होगा। पोष्यपुतकी पत्नीका भी अशौच तीन दिन है, परन्तु कोई कोई एक मास तक मानते हैं। पर यह मत विशेष समीचीन नहीं है। पोध्यपुत्रका विशेष विवरण दत्तक श<sup>द</sup>दमें देखो । पोव्यवर्ग ( सं ॰ पु॰ ) पोव्याणां प्रतिपालनीयानां वर्षः । प्रतिपालनीयगण । पोध्य शब्द हे खी ।

पोस ( हिं० पु॰ ) पालनेकी इतहता, पालनेवालेके साथ प्रेम या हेल मेल।

पोसन (हि॰ पु॰) रक्षा, पालन । पोसना (हि॰ कि॰) १ रक्षा करना, पालना । पोस्ट (अ॰ स्त्री॰) १ जगह, स्थान । २ पद, ओहदा । ३ नौकरो । ४ डाकखाना ।

पोस्टआफिस (अं॰ पु॰) डाकघर, डाकखाना। पोस्टकार्ड (अं॰ पु॰) एक मोटे कागजका टुकड़ा जिस पर पत लिख कर खुला भेजते हैं।

पोस्टमार्टम (अं० पु०) १ मृत्युका कारण आदि निश्चित करनेके छिये मरने पर किसी प्राणीके शरीरकी चीर फाड़। २ वह परीक्षा जो किमी प्राणीकी छाशको चीर फाड़ कर की जाय।

पोस्टमास्टर (अं॰ पु॰) डाकघरका सवसे वड़ा कर्मचारी। पोस्टमैन (अं॰ पु॰) इधर उधर त्रिही बांटनेवाला, चिही रसां।

पोस्टरहंक (अं ० स्त्री ॰ ) लकड़ीके अक्षर छापनेमें काम आनेवाली एक प्रकारकी छापेकी स्याही ।

पोस्टलगाइड (अं० पु०) डाकघर-सम्बन्धीय पुस्तक। इसमें बाक द्वारा चिट्टी, पारसल आदि भेजनेके नियम और डाकघरोंके नाम लिखे रहते हैं।

पोस्टेज (अं क्झो०) डाक द्वारा चिट्ठी पारसल आहि भेजनेका महसूर ।

पोस्त (फा॰ पु॰) १ वक्कल, छिलका। २ चमड़ा, खाल। ३ अकीमके पौधेका डोडा। ४ अफीमका पौधा, पोस्ता। पोस्ना फा॰ पु॰) स्वनामयसिद्ध वृश्चिर्येप (Papaver Somniferum)। इसके डोडेमेंसे अफीम निकलता हैं, इस कारण इसे अकीमका पौधा भी कहते हैं। भारतवर्षमें विशेष कर सफेद और दाना पोस्ते (White poppy) को खेतो अधिक होती है। उद्मिद्दिवद्दुन्गण अनुमान करते हैं, कि भूमध्यसागरके उपकूलमें, स्पेन, अलिजिर्या और ब्रोस आदि राज्योंमें तथा कर्सिका, सिसली और साइमस द्वीपमें जो जङ्गलो पोस्तदानेके पौधे (Papaver Somnifirum) उगते हैं। उपयुक्त स्थानमें और जलगायुके गुणसे उन्हीं। पौधोंसे अकीम उत्पादक पोस्ता उत्पन्न हुआ है।

यह भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—हिन्दी—अफीम, पोस्ता; वंगाल—पोस्त; नेपाल— अक्तीमः अयोध्या—पोस्ताः द्वामायुन—पोधनः पञ्जाव— खस्त्वसः, पोस्तः, छोदः, अफोमः, खिसखसः वम्बर्धः— अक्तीमः, अशो, खश्खुन पोस्तः महाराष्ट्रः—आकृ, पोस्तः, खुसखुसः गुजराती—अक्तीना, पोस्तः, खुशखुशः द्वाधि-णात्य—अफोमः, खशखशके वीदे, खशखशः, तामिल— अचिनीः, गशगशः, पोस्तकतोलः, गशगशतोलः, कसकसः ; तेलग्र्—अभिनीः, गसगसालतोलः, गसगसालः, कसकसः ; कणाडी—खसखसः, गसगसे, अफीमः मलय—कशकश-करूपः, कसक्तशालः, कशकशक-कुरः, अफियूनः ब्रह्म—भैन भैनजीः सिङ्गापुर —अविनः संस्कृत—अहिफेन ( कहीं कहीं पोस्तवीजम् )ः अरव—अफिजनः, किशरलखश-खशः, विजरूलखशखशः, आधुनीमः पारस्य—खशखशः, अफिजनः, पोस्ते कीकनरः, तुखमी-कोकनरः। ये सव केवल पौधीके नाम हैं।

इसका पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। पित्तवां भौग या गाँजेकी पित्तयोंकी तरह कटावदार पर बहुन वड़ी और सुन्दर होनी हैं। उंठलोंमें रोड्यां-सो होती हैं। फाल्गुन चैतमें पौधा फूलने लगता है। पौधोंके बीचोबीच-से एक लम्बी पतली नाल ऊपरकी और जाती है जिसके सिरे पर चार पांच पखड़ियोंके कटोरेके आकारका वहुत सुन्दर गोल फूल लगता है।

अंगरेज-शासित भारतवर्षमें विना गवर्मेण्टको अनुमितिके कोई भी अर्जामकी खेतो नहीं कर सकता। एकमाल अफीम प्रस्तुत ही गवर्मेण्टका व्यवसाय है। डोडेसे
हो अफीम निकलतो है। डोडा तोन बार अंगुलका होता
है। जब यह कुछ बढ़ जाता है, नव उसमें लोहेकी नहरनीसे खड़ा चीरा या पाँछ लगा देते हैं। पाँछ लगनेसे
उसमेंसे हलके गुलावी रंगका दूध निकलता है। यह दूध
दूसरे दिन लाल रंगका हो कर जम जाता है। यही जमा
हुआ दूध अफीम है। एक डोडेसे तीन चार बार दूध
पाँछ कर निकाला जा सकता है। अफीम निकालनेके
बाद डोडेमें जो बीज या दाने रहते हैं, उन्हें प्रीसनेसे
एक प्रकारका तेल निकलता है। बङ्गालके पोस्त-दानोंसे
उत्कृप्ट तेल तैयार होता है। यह तेल मालवजात पोस्तेके तेलकी अपेक्षा विशेष कार्यकारी और औपधमें व्यवहत होता है। मालवका तेल केवल दीआ बालनेके

काममें आता है। तेलसे वत्ती और सावन भी तैयार होता है। युरोपमें ओलीम तेलमें यह मिलाया जाता है। तोसीके तेलके वदलेमें कहीं कहीं चितकारगण इसी तेलको काममें लाते हैं। फूलकी पखिड़पींको भो लोग मिट्टीके गरम ताचे पर इकट्टा करके गोल रोटीके हुपमें जमाते हैं जिसे पत्तर कहते हैं। सुखे डोडोंसे राईकेसे सफेट सफेद वीज निकलते हैं जो पो-तेके दाने कहलाते हैं और खाप जाते हैं। पोस्तेका तेल सुखाद्य होता और वालने-से साफ रोशनी होती है। तेल निकालनेके वाद जो भूसी रह जाती है, गरीव लोग उसे खाते हैं और मवेशीको भी खिलाते हैं। मि॰ विनधम ( Mr. Bingham )-ने लिखा है, कि पोस्तेके दानेमें प्रायः ३० भाग तेल है। तेल खच्छ और खादहीन होता, धृपमें रखनेसे ही परिष्कार हो जाता है। इसमें माद्कताशक्ति कुछ भी नहीं है। पोस्तेका दाना सुनिष्ट होता है। मिठाई वनानेवाले इससे एक . प्रकारकी पीठी बनाते हैं।

प्राचीन प्रत्थादि पढ़नेसे जाना जाता है, कि पहले अरबोंने ही एशियामाइनरसे ले कर सुदूर चीन पर्यन्त इसका प्रचार किया था। पीछे खलीफाओंके उद्यमसे यह चीन और भारतवर्षमें लाया गया। आज भी चीनदेशमें एशियामाइनर और इजिमराज्यमें अफीमको विस्तृत खेती होती है। हिमालयके पार्वनीय नट पर सफेद, लाल और काले दानेके पौधे उगते हैं।

भारतवर्षमें और भो दो प्रकारके लाल दानोंके पोस्ते ।
( P. Rhoeas और P. dubium ) पाये जाते हैं जिन्हें हिन्दिमें लाल पोस्ता; दाक्षिणात्यमें लाल खराखराका भाड़, अरवमें खराखरा इ-मनसुर और अंगरेजीमें Bedpoppy वा Corn Rose कहते हैं। इनकी पखड़ियोंसे ओपधादि रंगाई जातो हैं। इसके डोडेका गुण मादक और वेदनावसादक है। काश्मीर, गढ़वाल, कुमायुन, इजारा आदि हिमालयके पहाड़ी देशोंमें तथा गोधूम-क्षेत्र में P. Rhoeas श्रेणीका पौधा उत्पन्न होता है। अक-गानिस्तान और पारस्य राज्यमें P. dubium जातिके पौधे वहुतायतसे देखे जाते हैं।

मालचदेशमें प्रायः ३ लाख वोचेकी जमीनमें पोस्तेकी खेती होती है। अफीमके अलावा प्रति वीचेमें २ मन पोस्तादाना होता है। फ्रान्समें केवल तेलके लिये एक प्रकारका पोस्ता उपजाया जाता है। भारतवपेसे जो सब पोस्तेके दाने बेलजियम, फ्रान्स, इङ्गलैएड आदि यूरी-पीय देशोंमें मेजे जाते हैं, उनमेंसे कुछ अंग्र पारस्थदेशका रहना है। कलकत्ते, दम्बई आर मन्द्राज नगरसे नाना देशोंमें पोस्तेकी रफ़नी होती है। पोस्तेकी जातिके २५ या २६ पोधे होते हैं, पर उनमेंसे अफोम नहीं निकलतो। वे शोभाके लिये वगीचोंमें लगाये जाते हैं। उनके फूल चट-कीले लाल रंगके होते हैं जिनको सुन्दरताका फारसीके कवियोंने इतना वर्णन किया है।

पोस्तेसे जो अफीम प्रस्तुत होती है उसमें नाना
भेपजगुण है। पहले यूरोपखएडमें उन सब ओपिश्रयींका
व्यवहार था। अभी भारतीय अफीमकी खेती बढ़ जानेसे
तज्जात ओपश्रादिका भी विशेष व्यवहार होने लगा है।
इसका गुण—उत्तेजक, वेदनानाशक, वेदनानिवारक और
मादक। इसमें विषके जैसा गुण है। अतिरिक्त सेवनसे
अधिक नशा आता है। उस समय प्रीवास्थिदेशमें उसका
प्रकोप देखा जाता है। अधिक नशा चढ़नेसे प्राणनाशकी
भी सम्माचना रहती है। दारुण प्रदाहमें अथवा विषमादि
ज्वरमें अफीम मिली हुई औपश्रादि दी जाती है। अफीमसे प्रस्तुत मिक्या, लाडेनम आदि एलोपैथिक औप्ध,
गांजा और अफीम मिश्रित तमाकृ, चण्डू वा मोदक
आदि मादक-प्रव्यक्त सेवनसे बहुत नशा होता है। कभी
कभी उसकी अधिकतासे प्राण भी निकल जाते हैं।
विस्तुत विवरण अहिफेन शब्दमें देखी।

पोस्ती (फा॰ पु॰) १ वह जो नरोंके लिये पोस्तेके डोडे-को पीस कर पीता हो । २ आलसी आदमी । ३ गुड़िया-के आकारका कागजका एक खिलीना । इसकी पैदीमें महीका ठोस गोल दीया-सा भरा रहता है । पैदीसे ऊपर-की ओर यह गावदुम होता जाता है । यह हमेशा खड़ा हो रहता है, लेटानेसे या ऊपर गिरनेसे तुरत खड़ा हो जाता है ।

पोस्तीन (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका पहरावा जो गरम और मुलायम रोएंवाले समूर आदि कुछ जानवरीकी खालका वना होता है। इसे पामीर, तुर्किस्तान और मध्य-पशियान के लाग पहनते हैं। २ खालका वना हुआ कोट जिनमें नीचेको और वाल होते हैं।

पोहना (हिं किं किं) १ पिरोना, ग्रंथना । २ छेरना । ३ पोतना, छगाना । ४ घुसाना, धंसाना, जड़ना । ५ पोसना, घोसना । (विं) ६ घुसनेवाला, भेदनेवाला । पोहर (हिं ० पु०) १ वह स्थान जहां पशु चराये जाते हैं वा चरते हैं, चरहा । २ घास या पशुओं के चरनेका चारा, चरी ।

पोहा ( हिं॰ पु॰ ) पशु, चौपाया । पोहिया ( हिं॰ पु॰ ) चरवाहा ।

पौंचा ( हिं० पु॰ : साढे पांचका पहाड़ा ।

पींडई हि॰ पु॰ ) १ पींड़ के रंगका, गन्नई। (पु॰ २ पींडे-के रंगके जैसा पक रंग। इसमें २० सेर टेस्का रंग और डेढ़ छटांक हल्दी पड़ती है। रंग पीलापन लिये हरा होना है। इसे गर्नाइ भी कहते हैं।

पोंड़ा (हिं • पु • ) एक प्रकारकी वड़ी और मोटी जातिकी ईख या गन्ना । इसका छिलका कुछ कड़ा होता है, पर उसमें रस बहुत अधिक होना है। यह ईख विशेषतः चूसनेके काममें आती है। लोग इसके रससे गुड़, चीनी आदि नहीं वनाते। इस ईखके दो भेद हैं, सफेद और काला । सुश्रुतमें पौंड़ाको शीतल और पुष्ट वतलाया है। कहते हैं, कि पौंड़ा पहले पहल इस देशमें चीनसे आया

वींपद्रह देखो ।

पोंडी हिं क्सी । पोंदना है हो।
पोंदना (हिं कि ) पोंदना है हो।
पोंदना (हिं कि ) तैरना।
पोंदि (हिं क्सी ०) पोंदी है हो।
पोंदिया (हिं ० पु०) पोंदिया है हो।
पोंदिया (हिं ० पु०) पोंदिया है हो।
पोंदिया (सं० पु० स्त्रो०) पुंश्चली अपत्ये-डक्। पुंश्चली-का अपत्य।

पोंश्चल्य (सं० क्ली०) पुंश्चल भावे-प्यञ् । १ असतीत्व परपुरुपगामित्व । २ पुरुप और स्त्रीका छिप कर व्यभिचार । पुरुपको देख कर स्त्रीके मनमें जो विकार उत्पन्न होता है, उसे पोंश्चल्य कहते हैं । मेघातिथिने पोंश्चल्य शब्दका ऐसा अर्थ लगाया है—'यितमन कत्मिद्दच पुंसि हरेटे वेथाच्चलन' कथमनेन संप्रयुज्येयेतिरेतसो विद्वारः जीणां तत्पोंश्चल्यम्'। (मेथातिथि)

कुल्लूकने भी इसी अर्थका समर्थन किया है। Vol. XIV 113

पोहना (हिं कि कि ) १ पिरोना, ग्रंथना । २ छेटना । ३ पाँसवन (सं क ही ) पुंसवनमेत्र स्वार्थे अण्। पुंसवन-

पोंसायन (सं॰ पु॰) सोंबामणीमें याजक राजमेद । पोंस्न (सं॰ क्षी॰) पुंस इदं पुंस ( स्त्रीपुं धाभ्यां नहल-इनो मननात । पा शारा८७ । इति स्नञ् । १ पुंस्त्व । २ धेर्य । (बि॰) ३ पुरुषमें उत्पन्न । ४ पुरुषसे आगत । स्त्रियां इतिप् । ५ पुरुषयोग्या । ६ पुरुषहिता ।

पौ (हि॰ स्त्रो॰) १ पौसाला, प्याऊ । २ ज्योति, किरण। ३ पाँसेकी एक चाल या दाँव। (पु॰) ४ पैर। ५ जड़। पौआ (हि॰ पु॰) पौना देखो।

पौगएड (सं० क्वी०) पोगएडस्य भावः, पोगएड-अण्। अवस्थाविरोप, पांच वर्षसे दश वर्ष तककी अवस्था।

"कौमारं पञ्चमाञ्चान्तं पौगण्डं दशमाविध । कैशोरमापञ्चदशात् यौवनञ्च ततः परम् ॥"

(भागः १।१२।३७)

पांच वर्ष तककी अवस्थाको कौमार, दश वर्ष तकको पौगएड, पन्ट्रह वर्ष तक कैशोर और उसके वादकी अवस्थाको यौवन कहते हैं। (ति॰) पौगएडावस्थायुक्त, जो पांचसे दश वर्ष तकके भीतर हो।

पौजिष्ट ( सं॰ पु॰ स्त्री॰ ) अन्त्यज्ञ जातिभेद् । पौटायन (सं॰ पु॰स्त्री॰) पुटस्य ऋषेर्गीतापत्यम्, ( अःबा-

हिम्यः कम् । पा शरा१र०) इति स्त्वेण पुर-फम् । पुर ऋषिका गोतापत्य ।

पोठ (हिं॰ स्त्रो॰) जोतकी एक रीति इस रीतिके अनुसार प्रतिवर्षे जोतनेका अधिकार नियमानुसार बद्छता रहता है।

पौडर (अं ० पु०) १ चूर्ण, बुकनी । २ एक सफेद बुकनी ं जिसे लोग मुंह पर लगाते हैं।

पौड़ी (हिं स्त्री॰) १ छकड़ीका वह मोढ़ा जिस पर मदारी वन्दरको नचाते समय विठाता है। २ एक प्रकार-की बहुत कड़ी मट्टी।

पोंदना (हिं० कि॰) १ फूलना, आगे पीछे हिलना । २ लेटना, सोना ।

पौढ़ना (हिं० क्रि॰) १ डुलाना, फूलाना । २ लेटाना । पौणिक्या (सं॰ स्त्री॰) पुण गोतस्य स्त्री-अण् (गोत्र:वयवात् । पा धारा•९) इति ष्यङ् टाप् । पुलगोतकी स्त्री । पौएडरीक (सं० क्की०) पुएडरीकमिन पुएडरीक (गर्भरा-दिभ्योऽण् । पा भाइ।१००) इत्यण् । १ प्रपौएडरीक, प्रपौएडरीयकवृक्ष, पुएडरी । २ कुग्रविशेष इसका आकार पंत्रपत्रके जैसा होता है । ३ यज्ञविशेष, । ४ वम्बई बदेशमें वेळगाँवके निकट एक पवित क्षेत्र । ५ स्थलपद्म, थलकमल ।

पौएडर्य (सं० क्ली०) पुएडर्यमेव स्वार्थे अण् । १ प्रपौएडरीक, पुएडरी । पर्याय-प्रपीएडरीक और पीएडरीयक । गुण-मधुर, तिक्त, कथाय, शुक्तयद्ध क, शीतल, चक्षुका हितकर, पाकमें मधुर, पित्त और कफनाशक। २ स्थलपश। पौरुड् (सं० पु०) १ गौड़देश वङ्गोत्तर वरेन्द्र भूमि। २ पुण्ड्रदेशवासी । ३ पुण्ड्रदेशके राजा । ४ भीमसेनके एक शंखका नाम । ५ इक्षुभेद, मोटा गन्ना, पौंड़ा । ६ पुण्डू-देशके वसुदेवका पुत्र जो मिथ्या वासुदेव फहलाया। प्रैण्डू ह देखो । ७ मनुके अनुसार एक जाति जो पहले । क्षितिय थी पर पीछे संस्कारभ्रष्ट हो कर वृष्टत्वको प्राप्त हो गई थी। (ति०) ८ पुण्डू देशोन्हव, पुण्डू देशका। पीणडूक ( सं० पु०) पी:डू एव स्वार्थे कन्। १ इक्षुभेद, एक प्रकारका मीटा गन्ना, पौड़ा। संस्कृत पर्याय -- । पोंडिक, भीरुक, बंशक, शतपोरक, कान्तार, तपेसेक्, कान्डेश्च, सूचिपतक, नैपाल, दीर्घपत्न, नीलपोर और कोश-कृत । गुण—शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकर, श्लेंघाल, सारक, अविदाही, गुरुपाक और वष्य । पुण्डू देखी। २ एक पतित जाति । ब्रह्मयैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि शोण्डिका (कलवारिन) के गर्भ और वैश्यके औरससे यह जाति उत्पन्न हुई है।

३ पुण्डूदेशके एक राजा। ये जरासन्थ्रके सम्बन्धी।
थे। इनके पिताका भी नाम वस्तुदेव था, इस कारण ये
अपनेकी वास्तुदेव कहा करते थे। राजस्ययक्षके समय
भीमने इन्हें परास्त किया था। श्रीकृष्णके समान ये भी
अपना रूप बनाये रहते थे। एक दिन नारदके मुंहसे श्रीकृष्णकी महिमा सुन कर ये वड़े विगड़े और कहने छगे,
मेरे अतिरिक्त और दूसरा वास्तुदेव है कौन। अतः इन्होंने
एकछव्य आदि वीरोंको छे कर द्वारका पर चढ़ाई कर दी।
उनके आक्रमणसे द्वारकावासी वड़े विह्नल हो गये।
दोनींमें घनचीर युद्ध-आरम्भ हुआ। वहुतों यादववीरों

और बङ्गीय बीरोंकी जान गई। आखिर कृष्णके कीशलसे पीण्डूक वासुदेव मारे गये। हरिबंश, विष्णुपुराण, भागवत और ब्रह्मपुराणके ६६वें अध्यायमें विस्तृत विवरण देखो।

४ पोण्ड्देशोद्भव क्षतियविशेष । ये लोग क्रमंशः बृष-लत्वको प्राप्त हुए थे । पौग्ड्क देखो ।

पौण्डुक वासुदेव—पुण्डुदेशके एक पराकान्त राजा। ये

मगधाधिप जरासन्धके सम्बन्धी थे। इरिवंशके मतसे
इनके पिताका नाम वासुदेव था। वासुदेवके दो पत्नी थीं,
सुतनु और नाराची। सुतनुके गर्भसे पौण्डुक और
नाराचीके गर्भसे कपिल उत्पन्न हुए। कपिलने योगधर्मका अवलम्बन किया। पौण्डुक पौण्डुराज्य पा कर
पौण्डुक वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुए।

विशेष विवरण पौषड्क शब्दमें देखो।

पौण्डूनगर ( सं॰ पु॰ ) पौण्डूनगरे भवः अण् तस्य प्राच्य-देशत्वेऽपि नगरान्तत्वेन उत्तरपद्यृद्धिः । पौण्डूनगरभव. पुण्डूदेशका ।

पौण्डूमात्सक (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।
पौण्डूवत्स (सं० पु०) वेदकी एक शाखाका नाम।
पौण्डूवद्ध न (सं० पु•) पौण्ड्राणामिश्वविशेषाणां वर्द्ध नं
यस। नगरभेद। पुराडूवर्द्धन देखो।

पौण्डिक (सं॰ पु॰) पुण्डि-स्वार्थे उत् । १ इक्षुमेद, पौंडा नामका गन्ता। पर्याय-पुण्डे क्षु, पुण्ड, सेब्य, अतिरस, मधु । २ गोलप्रवर ऋषिमेद । ३ छवा नामका पश्ली । ४ पुण्डिक नामक देश ।

पौण्य (सं• ति०) पुण्येषु श्रोतस्मार्तकर्मसु साधुः अग्। पुण्यकर्मकारक।

पौतन (सं॰ हो॰ ) पूतना-अण्। पूतना-सम्बन्धीय जन-पदभेद और उस देशके अधिवासी।

पीताना (हिं पु॰) १ पैतः ना देखें। २ लकड़ीका एक आँजार जो जुलाहोंके करघेमें रहता है। यह चार थे गुल लग्ना और चौकोर होता है। इसके बीचमें छेद रहता है जिसमें रस्सी लगा कर इसे पीसरमें बांध देते हैं। कपड़ा बुनते समय यह करघेके गड़देमें लटकता रहता है। इसे पैरके अंगूटेमें फँसा कर ऊपर नीचे उठाते और दवाते हैं। ऐसा करनेसे राष्ट्र पौसर आदि दवते और उठते हैं।

<sup>(</sup>१) मत्स्यपुराणके मतसे स्थरानी ।

पौतिक (सं० ति०) पूतिकेत दुर्गन्धिना निवृत्तं (सङ्कळा-दिभ्यश्च। पा ४।२।७५) इति अण्। पूतिक द्रव्यनिवृत्त, एक प्रकारका मधु।

पौतिनासिक्य (सं० त्रि०) पूतिनासिक-ष्यञ्। १ पूति-नस्यरोगप्रस्त, जिसे पीनस रोग हुआ हो। (क्षी०) २ नासिका रोग, पीनस रोग।

पौतिमाय (सं॰ पु॰) पृतिमायस्य ऋषेः गोलायत्यं गर्गादि-त्वात् यञ्, तस्य छालाः (क्र्यवादिभ्यो गोते। या ४।२।१११) इति अण् यछोपद्यः। पौतिमायके छालसमूह, पृतिमाय ऋषिके गोलायत्यके छाल।

पौतिमाविपुत (सं•पु•) ऋषिभेद।

पौतिमाप (सं • पु ०) प्तिमापस्य ऋषेः गोलापत्यं (गर्गाः विभ्यो यम् । पा ४।१।१ ०५) प्तिमाप ऋषिका गोलापत्य । पौतिमाध्यायण (सं • पु • ) पौतिमाध ऋषिका पु ं अपत्य । पौतृक (सं ० क्ली ०) गोतुरिदं ठञ्। ऋत्यिक्भेद, पोतृसम्बन्धी ।

पौत्तलिक (सं० ति०) १ प्रतिमापूजक, मृत्तिपूजक। २ पुतली सम्बन्धी, पुतलीका।

पौतिक (सं० क्री॰) पुत्तिकासिमें प्रमिक्षकाविशेषेः इतम्, पुत्तिका (क्षायां। पा ४।१।११०) इति उन्। आढ प्रकारके मधुके मध्य एक प्रकार मधु। पिङ्गल्लयणं पुत्तिका नामकी एक प्रकारको मधुमक्खी होती है। उसी मक्खीसे यह मधु निकाला जाता है, इस कारण इसे पौत्तिक कहते हैं। यह मधु श्रीके समान होता है और प्रायः नेपालसे आता है। पौत (सं० पु॰) पुतस्यापत्यं पुत ( भर्ष्यान तयें-विदादिम्बोऽन्। पा ४।१।१०४) इति अञ्। पुतका पुत, लड़केका लड़का, पौता।

पौतजीविक (सं० क्ली०) वह कत्रच जो पुतर्श्वीवके बीजसे बनाया जाता है।

पौतायण (सं० पु॰) पुतस्य अपत्यं पुत (हरितादिभ्गेऽनः। पा ४।१।१००) इति अपत्यार्थे फक्। पुतका अपत्य । पौतिकेय (सं० पु॰) पुतिकापुत, लड़कीका लड़का जो अपने नाना की सम्पतिका उत्तराधिकारी हो।

पौतिक्य (सं० क्ली॰) पुतिकस्य पुतिकायाः वा भावः (पायन्तपुगेहितादिक्यो यक्। पा ५।१।१२८) इति भावे यक्। पुतिक वा पुतिकाका भाव। पौतिन् ( सं• ति• ) पौतिविर्शिष्ट । पौती ( सं• स्त्री• ) पुतस्य अपत्यं स्त्री, पुत-अञ्-ङीप् । पुतात्मजा, पुतको बेटो, पोती ।

पौद (हिं स्त्री) १ छोटा पौघा, नया निकलता हुआ पेड़। २ वह कोमल छोटा पौधा जो एक स्थानसे जलाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाया जा सके। ३ सन्तान, यंश। ४ वह वस्त्र जो वड़े लोगोंके मार्गमें इसलिये विछाया जाता है, कि वे उस परसे हो कर चलें, पाँवड़ी, पाँवड़ा।

पौदन्य (सं॰ पु•) महाभारतके अनुसार एक नगरका नाम जहां अश्मक राजाकी राजधानी थी।

पौर्र (हिं० स्त्री०) १ पैरका चिहा २ वह राह जी पैरकी रगड़सें बन गई हो, पगडंडी । ३ वह राह जिस पर हो कर कोल्ह्र या मोट खींचनेवाला वैल घूमता या आता जाता है।

पौदा (हिं पु॰) १ वह पेड़ जो अभी वढ़ रहा हो, नया निकलता हुआं पेड़ ।-२ छोटा पेड़, क्षुप, गुल्म आदि। -३ बुलबुलकी पेटीमें वांभनेका रेशंम या स्तका फुंदना। पौद्रगलिक (सं० ति०) १ स्वार्थेपर, स्वार्थों। २ पुद्रगल-सम्बन्धी, द्रव्य या भूतसम्बन्धी। ३ जीवसम्बन्धी। पौधन (हिं० स्त्री०) मट्टीका वह पात जिसमें खाना रख कर परोसा जाता है।

पौधा (हिं॰ पु॰) १ नया निकलता हुआ पेड्, उगता हुआ नरम पेड्। २ छोटा पेड्, क्षुप, गुल्म आदि। पौधि (हिं॰ स्त्री॰) पौद देखो।

पौनःपुनिक (संब्रिक) पुनः पुनर्भवः, पुनः पुनः उज्ज्ञ् टिलोपः। १ पुनःपुनः भव, जो वार वार हो, फिर फिर होनेवाला । (क्की०) २ दशमिक भग्नांशभेद। (Recurring)

पौनःपुन्य (सं० क्ली०) पुनः पुनः स्वार्थेन्यञ्, रिलीपः। पुनर्वार, दूसरो वार । पर्याय—वारम्वार, मुद्दः, गृथ्वत्, असकृत्, पुनः पुनः, वारम्वारेण, आसीकृण, प्रतिक्षण । पौनराधियक (सं० ति०) पुनः अन्याधान-सम्बन्धीय। पौनरक्क (सं० ति०) पुनरुक्तस्य भावः अण् ( ऋगय-नादिभ्यः। पा ४।३।०३) इति भवार्थे अण् । १ पुनर्वार उक्ति, फिरसे कहना। २ द्वैगुण्य।

पौनविक्तक (सं कही ) पुनवक्तमध बेर्ति, तत् परं वा अधीते (क्रव्सवादिम्द्रान्तात् दक । पा धाराह०) इति दक् । १ पुनवक्तार्थामक । २ पुनवक्तपदाध्येता । पौनर्णाव (सं ॰ पु॰) सिन्नपात ज्वरमेद । इसमें रोगी लम्बी सांसें लेता है और पीड़ासे वहुत तलफता है। पौनभेव (सं ॰ पु॰) पुनर्भु वोऽपत्यमिति पुनर्भु (अदृह्या-वक्तन्त्रंग विद्वादिभ्यो ऽन् । पा धाराह०४) इति अञ् । १ वारह प्रकारके पुत्रोमेसे दक पुत्र, पुनर्भु का पुत्र । "या पत्या वा परित्यक्ता विध्या वा स्वयेच्छ्या । उत्पादयेत् पुनर्भू त्वा स पौनर्भव उच्यते ॥" (मनु हारू॰५)

पतिसे परित्यक्ता अथवा बिधवा स्त्री यदि अपनी इच्छासे दूसरेके साथ विवाह करे, तो उससे जो पुत उत्पन्न होता है, उसे पौनभैव पुत कहते हैं।

वह स्त्री यदि अक्षतयोनि रह कर परपुरुषगत अथवा पूर्चपतिके निकट लौट आवे, तो भर्ता उसका फिरसे पाणिग्रहण कर सकता है। वह स्त्री भर्ताको पुनम् -पत्नी होगी और भर्ता पीनभ व कहलायगा।

"सा चेदशतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भन्नां सा पुनः संस्कारमहीति॥" (मनु ६।१७६)

(ति॰) २ पुनर्भूसम्बन्धी, पुनर्भूका। ३ पुनर्भूसे उत्पन्न।

पौनर्भवा (सं क्षी) कन्याविशेष, वह कन्या जिसका किसीके साथ एक वार विवाह-संस्कार हो गया हो और दूसरी वार दूसरेके साथ विवाह किया जाय। कश्यपने सात प्रकारकी पौनर्भवा कन्याएं माना हैं, यथा—

"सप्त पौनभैवाः कत्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । वाचा दसा मनोदत्ता छतकौतुकमङ्गला ॥ उद्करूपशिता या च या च पाणिगृहीतिका । अग्नि परिगता या च पुनभू अभवा च या । इत्येताः काश्यपेनोका दहन्ति कुलमग्निवत्।" (उद्घाहतत्त्व)

वाक्द्सा, मनोदत्ता, कृतकौतुकमङ्गला, उदकस्परिता, पाणिगुहीतिका, अग्निपरिगता और पुनर्भू प्रमवा। ये सातों कन्याय वर्जनीया हैं अर्थात् इन सातोंके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। पौना (हिं o पुo) १ पौनका पहाड़ा। २ काठ या लाहेकी वड़ी करछी। इसका सिरा गोल और चिपटा होता है। इससे आग पर चढ़े कड़ाहमेंसे प्रियां कचीरियाँ आदि निकाली जाती हैं।

पीनार (हिं स्त्री) कमलके फूलकी नाल या डंडल। कमलकी नाल वहुत नरम और कोमल होती है। उसके ऊपर महीन महोन रोइयां या काँटेसे होते हैं।

पीनारि (हिं० स्त्री०) पौनार देखी।

पौनिया (हिं० पु०) वह कपड़ा जसका यान पौन धानके वरावर होता है और अर्ज भी वहुत कम होता है।

पौनी (हिं स्त्री) १ गाँवमें वे काम करनेवाले जिन्हें अनाज की राशिमेंसे अंश मिलता है। २ नाई, वारो, घोवी आदि काम करनेवाले जो विवाह आदि उत्सवों पर इनाम पाते हैं। ३ छोटा पौना।

पौने (हिं ॰ वि॰) किसी संख्यामेंसे चौथाई माग कम, किसी संख्याका तीन चौथाई।

पौषिक (सं० ति०) अयूप-निर्माणदक्ष, जो अपूप वनानेमें पटु हो ।

पौमान (हि॰ पु॰) १ पवमान देखो । २ जलाशय, पोखरा ।

पौर (सं० क्की॰) पुरे भवम्, पुर (तत्र भवः । पा धारापः) इत्यण् । १ रोहियत्यण्, कसा नामको घास । संस्कृत पर्याय—कत्तृण्, रोहिय, देवजण्य, सौगन्धिक, भूनिक, ध्यासपौर, श्यामक, धूमगन्धिक । (पु०) २ पुरुराजपुत्र । ३ नेखी नामक गन्धद्रव्य, नख । (ति०) ४ पुरसम्बन्धी, नगरका । ५ नगरके उत्पन्न । ६ उद्रप्रूरक, पेटू । ७ पूर्व दिशा वा काळमें उत्पन्न ।

पौरक (सं० पु०) पौर इव कायतीति कै-क। गृहवाह्यो-पवन, घरके वाहरका उपवन, पाई वाग।

पौरकुत्स (सं० क्की०) तीर्थमेद, महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

पौरकुत्सी (सं॰ स्त्री॰) पुरुकुत्सस्म-अपत्यं स्त्री पुरुकुत्स-इञ्-ङीप् । गाधिराजकी माता ।

पौरगीय (सं० त्रि०) पुरग-कृशाश्वादित्वात् छण् । पा ४।२।८०) पुरजनसमीपादि ।

पौरजन ( सं॰ पु॰ ) पुर वा जनपदवासी।

पौरञ्जन ( सं॰ हि॰ ) राजा पुरञ्जनसम्बन्धीय । पौरण (सं० पु॰) पूरणस्य ऋवेः गोतापत्यं अण्। १ पूरण ऋषिका गोक्षापत्य, गोत्नप्रवर ऋषिभेद् । २ पूरण। पौरन्दर ( सं॰ स्त्री॰ ) पुरन्दरस्येदं पुरन्दरी देवताऽस्य वा अण्। १ इन्द्रसम्बन्धी। २ ज्येष्ठानक्षतः। पौरव ( सं • पु॰ ) पुरोरपत्यमिति पुरु-अण् । १ पुरुवंश । पुरुके यंशधर पौरव नामसे प्रसिद्ध हैं। यथातिने अपने पुत पुरुसे यौवनावस्था पा कर कहा था, "तुमने मेरी जरा है कर यथार्थ पुतका कार्य किया है, इस कारण तुम्हारा बंश पौरव नामसे विख्यात होगा।" २ देशविशेष, उत्तर-पूर्वका एक देश। ३ उक्त देश-निवासी। ४ उक देशके राजा । ( ति॰ ) ५ पुरुके वंशका, पुरुसे उत्पन्न । पौरवक (सं॰ पु॰) पौरव-सार्थे कन्। पौरवशन्दार्थ। पौरवी (सं॰ स्त्री•) १ युधिष्ठिरकी एक स्त्रीका नाम। २ वसुदेवकी स्त्रीका नाम । ३ संगीतमें एक मुच्छेना । इसका सरगम इस प्रकार है,—ध, नि, स, रे, ग, म, प । प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे। पौरवीय (सं० ति•) पौरवी राजा भक्तिरस्य ( जनविना जनपदत्रस् सर्वे जनपदेन समानशन्दानां बहुवचने। पा ४।३।२०० ) इति छ । पौरत्रनृप-भक्तियुक्त । पौरइचरणिक (सं० ति०) पुरश्चरणस्य व्याख्पानस्तत भवो वा ठञ्। (षा ४।३।०२)१ पुरश्चरणप्रतिपादक ग्रन्थव्याख्यान ग्रन्थ । २ इस ग्रन्थसे उत्पन्न । पौरस ( सं• पु॰ ) नखी नामक गन्धद्रव्य । पौरसस्य (सं॰ पु॰) वह मित्रता जो एक ही नगर वा श्राममें रहनेसे परस्पर होती है। पौरस्त्री ( सं० स्त्री ) अन्तःपुर-वासिनी स्त्री । पौरस्त्य (सं• ति•) पुरोभवः, पुरस् (दक्षिणायश्चातुपुर-बस्यकः। पा ४।५१८५ ) इति त्यक्। १ प्रथम, पहला । २ पूर्वेदिक्भन्न, पूर्वदिशामें होनेवाला । पौरा ( सं॰ पु॰ ) पड़े बुए चरण, आया हुआ कद्म, पैरा। पौरागीय (सं॰ ति॰) पुराग-ऋशाश्वादित्वात् छण्। ( पा ४।२।<• ) पूर्वकालगतके अदूरदेशादि । पौराण ( सं० ति० ) पुराणे पठितः अण् । १ पुराणपठित, पुराणोंमें कहा वा लिखा हुआ। २ पुराणसंग्वन्थी। पीराणिक (सं• ति•) पुराणमधीते वेद या पुराण (भास्या-Vol. XIV. 114

नाव्यायिकैतिहावपुराणेभ्यःन । पा धारार०) इत्यस्य वार्त्ति-कोक्त्या ठक्। १ पुराणचेत्ता । २ पुराणपाठी । तय्या-र्वाण, कश्यण, सावर्णि, अऋतत्रण, वैशम्पायन और हारोत ये छः पौराणिक थे। ३ पुराणसम्बन्धीय, पुराणका। ४ पूर्वतन कालीन, प्राचीन कालका। (पु॰) ५ अठारह माताके छन्दोंको संख्या। पौरि ( हि॰ स्त्री॰ ) पौरी देखी । पौरिक (सं पु ) १ दाक्षिणात्यदेशभेद । २ पुरसम्ब-पौरिया ( हि॰ पु॰ ) द्वारपाल, ड्योडीदार, द्रवान । पौरी (हिं स्त्री) घरके भीतरका वह भाग जो द्वारमें प्रवेश करते ही पड़े और थोड़ी दूर तक छम्बो कोठरी या गलीके रूपमें चला गया हो, डारेड़ो। पौचकुत्स ( सं॰ पु॰ ) पुरुकुत्सस्य ऋषेः गोतापत्यं अण्। पुरुकुत्स ऋषिका गोलापत्य, गोलप्रवर ऋषिमेद्र। पीवकुरिस ( सं । पु । पुवकुरसस्यापत्यं इत् । पुरकुरस-का अवस्य । पौरुकुत्स्य (सं० पु०) पुरुकुत्सस्यापत्यं ध्यञ् । पुरुकुत्स-का अपत्य। पौरुमद्ग (सं॰ क्वी॰ ) सामभेद । पौरुमह ( सं० क्की० ) सामभेद । पौरुमीड़ ( सं॰ क्ली॰ ) सामभेद । पौरुशिष्टि ( सं० पु० ) ऋषिमेद । पौरुष (सं॰ ह्यी॰ ) पुरुषस्य भावः कर्म द्वा युवादि-त्वादण्। १ पुरुषका भाव। २ पुरुषका कर्म। ३ पुरुषका तेज, पुरुषत्व । ४ पराक्रम । ५ रेत । ६ साहस । ७ उद्यमः उद्योग । ८ गहराई या ऊँ चाईकी एक माप, पुरसा । 🛭 ६ उतना वोभू जितना एक आदमी उठा सके। (ति०) १० पुरुषसम्बन्धीय । ११ पुरुषपरिमित । १२ पुरुषबाह्य । १३ पुरुषकार । मानव जिस कर्म द्वारा इस जगत्में शुभाशुभ फल पाते हैं, उसे पौरुप कहते हैं। स्तार्थे अण्। १३ पुरुपर्शन्दार्थं । १४ पुत्रागवृक्ष । पौरुपमेधिक ( सं० ति० ) पुरुपमेधसम्बन्धीय। पौरुपाधिक (सं० बि०) पुरुपवत् पुरुपाकार। पौरुयांशकिन् (सं० पु०) पुरुषांशकेन ऋषिणा प्रोक्त-मधीयते शौनकादित्वात् णिनि । पुरुपांशक ऋषिप्रोक्ता-

ध्येत्समूह् ।

पौरुषाद (सं० ति०) पुरुषाद वा नरखादकसम्बन्धी।
पौरुषिक (सं० ति०) १ पुरुषसम्बन्धीय। (पु०)
२ पुरुषका उपासक।
पौरुषेय (सं० पु०) पुरुष (सर्वपुरुषाभ्यां गढरूची। पा
धारा१०) इत्यत पुरुषाद्वधविकारसमूहस्तेन इतेषु
पन्धर्थेषु ढम्।१ पुरुषका समृह, जनसमुदाय। २ वध।
३ पुरुषका कर्म, मनुष्यका काम। ४ रोजको मजदूरी या
काम करनेवालां मजदूर।५ पुरुषका विकार। (ति०) ६
पुरुषसम्बन्धी, पुरुषका। ७ पुरुषकृत, आद्मोका किया
हुआ। ८ आध्यात्मिक।
पौरुषेयत्व (सं० क्की०) पौरुपेयस्य भावः त्व। पौरुषेयका

पौरुषेयत्व ( सं० क्षी० ) पौरुषेयस्य भावः त्व । पौरुषेयक भाव या कर्म ।

पौरुष्य ( सं० ति० ) १ पुरुषसम्त्रन्थी । (क्ली०) २ पुरुपता, साहस ।

पौरुद्वत (सं० पु०) पुरुद्वत या इन्द्रका अख्न, वज्र। पौरु (हिं० पु०) भूमिका एक भेद, एक प्रकारकी मही या जमीन जिसके कई भेद होते हैं।

पौरेय (सं • ति ०) पुरस्यादूरदेशादि, पुर (सख्यादिभ्यो छन्। पा ४।२।५ १ इति छन्। नगरके समीप देशादि।

पौरोगव ( सं॰ पु॰ स्त्री ) पुरोऽत्रे गौर्नेत्रं यस्येति, पुरोगुः, ततः प्रज्ञादित्वादण् । पाकशालाध्यक्ष ।

वौरोडाश (सं॰ पु॰) पुरोडाश एव प्रकादित्वादण्। पुरोडाश । २ पुरोडाश-सहचरित मन्त्र ।

पौरोडाशिक (सं॰ पु॰) पुरोडाशसहचरितो मन्तः, पुरो-डाशः स एव पौरोडाशः, तस्य म्याज्यानस्ततः भवो वा। पुरोडाशिक, पुरोडाशसहचरित मन्तः।

पौरोभाग्य (सं० क्वी॰़) पुरोभागिन-ष्यञ्, अन्त्यलोपं आद्यचो वृद्धिश्च । केवल दोषमात दर्शन ।

पौरोहित (सं० ति०) पुरोहितस्य धर्मं पुरोहित-(अण् महिष्यादिभ्यः। पा ४।४।४८) इति अण्। पुरोहितका धम, पुरोहितका कार्य।

पौरोहितिक (सं० पु॰) पुरोहितिका (शिवादिभ्योऽण्। पा शाराहरू२) इति अपत्यार्थे अण्। पुरोहितकी सन्ति । पौरोहित्य (सं० क्की) पुरोहितस्य कर्म, प्यञ्। पुरोहितका कर्म वा श्रम, पुरोहितका

पौर्णदर्व (सं० क्ली०) पूर्णिया दर्खा निष्पाद्यं कर्म-अण् । वैदिक कर्मभेद्र ।

पौर्णमास (सं० पु०) पौर्णमास्यां भवः पौर्णमासी (सिंग्वेडाइय तु नत्त्रेभयोऽण पा धा३।१६) इत्यण्। पौर्णमासीविहित यागविशेष, एक याग या इष्टिका जो पूर्णमाके दिन होती थी। इस यागका विधान कात्यायनधीत स्वमें सविस्तार छिखा है।

पौणमासायण (सं० क्वी०) पूर्णि मामें अनुष्ठेय यागमेद् । पौर्णमासिक (सं० वि०) पूर्णमास्यां भवः 'कालात् उज्' इति ठञ् । पौर्णमासभव यागादि ।

पौर्णमासी (सं क्ली ) पूर्णमासी । यज्ञींमें प्रतिपदुत्तरा पूर्णमासीका ही ब्रहण होता है । पूर्णमासी दो वकारकी मानी गई है, एक पूर्वा जिसे पञ्चदशी भी कहते हैं, दूसरी उत्तरा जिसे प्रतिपदुत्तरा कहते हैं :

पौर्णमासी—वृन्दावनकी वृद्धा तपिसनी । मृहद्द्गणोहे श-दीपिकामें लिखा है, कि ये अवन्तीपुरवासी सान्दिपनि-मुनिकी माता और देवर्षि नारहको शिष्या थीं।

पौर्णमास्य (सं॰ ह्वी॰) पौर्णमास्यां भवः बाहुलकात् यत्। पौर्णमासभव यागादि, पूर्णिमाको होनेवाला यह आदि।

पौर्णमी (सं० स्त्री०) पूणतया चन्द्रो मीयतेऽत मा-आधारे घन्नर्थे क, स्वार्थे अण् ततो डीप्। पूर्णिमातिथि। पौर्णसौगन्धका गोतापत्य। पौर्त्ते (सं० स्त्री०) पूर्ण-अण्। पूर्णकम-सम्बन्धीय, पूर्श-कार्थ।

पौर्त्तिक (सं॰ ति॰) पूर्त्ताय साधुः ठक् । पूर्रासाधनकर्म । पौर्य ( सं॰ पु• स्त्री॰ ) पुरस्य अपत्यं ( क्रवीदिभ्यो ण: । पा

- ४।१।१५१) इति ण्य । पुरनाम राजाकी संतित । पौचेदेहिक (सं• ति०) पूर्वदेह-ठक् । पूर्वदेहसम्बन्धीय । पौचेनगरेय (सं• ति०) पूर्वनगर्या भवः, (नवादिभ्यः ठक् । पा धाराह०) इति ठक् । पूर्वनगरीभव ।

पीर्वपञ्चालक (सं० ति०) पूर्वपञ्चाले भनः अण् ततः (दिग्रोऽनदाणां। पा णश्रुष्ठ) इति वृद्धिः। पूर्वपञ्चाल-

भव, जो पूर्वपञ्चालमें होता हो । पौर्वपदिक (सं॰ ति॰) पूर्वपदं गृह्णति (परोत्तरपदं गृह्णि । · पा अधारेह ) इति ठञ् । पूर्वपद्याहक । पौर्वमद्र ( सं० ति० ) पूर्वमद्र ( मद्रे भ्योऽन् । वा धारा१०५ ) इति अत्र, पूर्वपदवृद्धिः। मद्रके पूर्व और। पौर्ववर्षिक ( सं • ति ॰ ) पूर्वासु वर्षोसु भवः पूर्ववर्षा-उक् । पूर्ववर्षाभव, जो पूर्व वर्षामें हो। पौबेशाल ( सं• ति• ) पूर्वस्यां शालायां भवः अञ् ( पा शरा१०७ ) पूर्वशालाभव, जो पूर्वशालामें हो । पौर्वातिथ ( सं । पु ) गोतप्रवर ऋषिभेद । पौर्वापर्य (सं• क्की• ) पूर्वापरयोभीवः ध्यञ् । १ पूर्वा-परत्व, पूर्व और पर अर्थात् आगे और पीछेका भाव। २ अनुक्रमण, सिलसिला। ३ कारण, वजह। ४ फल, नतीजा । पौवार्ड (सं० ति॰) पूर्वार्ड भवः, अञ्। पूर्वार्ड भवः, जो पूर्वाद्ध में हो। पौर्वार्द्धिक (सं• ति०) पूर्वार्द्धे -भव-ठम्। जो पूर्वार्द्धे -में हो। पौर्वाद्र्यं (सं ० ति • ) पूर्वाद्रं -ष्यञ् । पूर्वाद्रं भव । पौर्वाह्निक (सं ० ति.०) पूर्वाह्न (विभाषा पूर्वाह्न(पराभ्यां। वा ४।३।२४) इति ठञ्। १ पूर्वाह्ममें होनेवाला। २ पूर्वाहसम्बन्धी। षौर्विक (सं • ति • ) पूर्वस्मिन् भवः ठज्। पूर्वमें होने-बाला। पौलस्ती ( सं ० स्त्रो० ) पुलस्तस्य स्त्रापत्यः, पुलस्त-यञ् , ङीव् यलोपः । पुलस्त्यको स्त्री अपत्य, सूर्वनला । पौलस्त्य (सं ॰ पु॰) पुलस्तेः पुलस्तस्य वा अपत्यं पुलस्ति-गर्गादित्वात् यञ् । १ पुलस्त्यका पुत वा उनके वंशका पुरुष। २ कुवेर। ३ रावण कुम्मकर्ण और विभीपण। ८ चन्द्र। ५ एक ज्योतिर्विद्ध। पौलस्त्यो ( सं ० स्त्रो० ) १ पुलस्त्यवंशजा, पुलस्त्यवंश-को स्त्रो-अपत्य। २ सूर्पनखा। पौला (हि॰ पु॰) विना खूं टीके एक प्रकारकी खड़ाऊँ। छेदमें वंधी हुई रस्सोमें अँगूटा फँसा रहता है। पौछाक ( सं ० त्नि० ) पुछाकस्य विकारः पछाशादित्वात् **अञ**्। पुलाकविकार। पौलास ( सं • ति • ) पुलासः तृणादि स्तूपविक्षेपकः तेन निवृत्तः, (संकलादिभ्यक्षः। पा ४।२,७५) इति अञ्। तृणादि स्तूपविशेष द्वारा निवृ<sup>९</sup>त ।

पौलि (सं पु ) पोलतीति पुल-महत्त्वे ज्वलादित्वात् ण, पौलेन निवृत्तः सुतङ्गमादित्वादिञ् । १ पाकानस्था-गत फलायादि । २ आरब्धपाक यवसपेपादि, थोड़ा भुना हुआ जौ, सरसों आदि । ३ दरदम्ध । पर्याय— आपक्व, अभ्यूप, अभ्योप । (स्त्री ) ४ पोलिका, फुलका, रोटी ।

पौलिया ( हि॰ पु॰ ) पौरिया देखो ।

पौलिश—पुलिशरचित-सिद्धान्तमेद । पुलिश देखो । पौली (हिं० स्त्री०) १ पौरी, ड्योढ़ो । २ पैरका बह भाग जिसमें जूता, खड़ाऊँ आदि पहनते हैं, पड़ीसे छे कर उंगलियों तकका भाग । ३ पैरका निशान जो धूछ, गोली मही आदि पर पड़ जाता है, पदचिह ।

पौलुषि (स'० पु०) १ पुलुवंशीय सत्ययन्न ऋषिभेद । इनका नाम शतपथत्राह्मणमें आया है । २ पुलुवंशमें उत्पन्न पुरुष ।

पौलोम ( सं ० ति ० ) पुलोम्नः अपत्यमिति पुलोमन-अण् अणो लोपः। १ पुलोमा ऋषिका हैअपत्य या पुत्त। २ कौशोतक उपनिषद्दके अनुसार दैत्योंकी एक जातिका नाम।

पौलोमी (सं० स्त्री०) १ इन्द्राणी। २ भृगु महर्विकी पत्नोका नाम।

पौल्कस (सं ॰ बि॰) पुल्कस-अण्। १ पुल्कसजाति-सम्बन्धोय। (पु॰)२ पुल्कसजातिका मनुष्य।

पौवा (हिं पु॰) १ एक सेरका चौथाई भाग, सेरका चतुर्था श । २ मही या काट आदिका एक बरतन जिसमें पाव भर पानी, दुधः आदि था जाय ।

पौष (सं० पु०) पौषो पौर्णमास्यस्मिन्तित, सास्मिन्
पौर्णमासीत्यण्। वैशाखादि वारह मासके अन्तर्गत
नवम मास। इस मासमें पूर्णिमाके दिन पुष्यानक्षतका
योग होता है, इसोसे इसका पौष नाम पड़ा है। यह सौर
और चान्द्रके भेदसे दो प्रकारका है। फिर चान्द्रपौषके
भो दो भेद हैं, गौणचान्द्र और मुख्यचान्द्र। सौरमासमें
सूर्य जव वृश्चिकराशिसे अनुराशिमें आते हैं, तब इस
मासका आरम्म होता है। जब तक सूर्य इस राशिमें
रहते हैं, तब तकका समय पौषमास कहलाता है। यह
मास प्रायः २६ दिनोंका होता है। चान्द्रमासमें रिवके

धन्राशिमें रहनेसे शुक्काप्रतिपद्से छे कर अमावश्या तक-को मुख्यचान्द्र पौष और कृष्णाप्रतिपदसे छे कर पौर्णमासी तकको गौणंचान्द्र पौप कहते हैं। पौषमासमें जन्म छेनेसे मन्त्रणारक्षक, कुश, परोपकारी, पिनृधनवर्जित, कुछ लक्ष्यार्थ, व्यवशील, विधिन्न और धीर होता है।

इस मासके पर्याय—तैय, सहस्य, पौषिक, हैमन, तिष्य, तिष्यक हैं। २ जैववर्षमेश ३ पक्ष। पौषी (स'० स्त्री०) पुष्य 'नक्षत्रेण् युक्तः' इत्यण् । तिष्य-पुष्येति यलोपः। १ पुष्ययुक्ता पौर्णमासी, पौपमासकी पूर्णिमा। २ पुष्यनक्षत्रयुक्ता राति।

पौकर (सं क हो ) पुष्करस्येदमिति पुष्कर अण्। १ पुष्करमूल । पर्याय -पुष्कर, पद्मपत्न, काश्मीर, कुप्रमेद । गुण-कद्व, तिक्त, वात, कफ, ज्वर, शोध, अरुचि, श्वास और पाश्वशूलनाशक । भावप्रकाशमें लिखा है, कि इसके अभावमें कुप्र दिया जा सकता है। २ पद्ममूल, भीसा, भसीड़ । ३ परएडमूल, रेंड्रोकी जड़ । ४ स्थलपद्म । (ति ) ५ पुष्करसम्बन्धी ।

पौष्करक ( सं ० हि० ) नीलपदा-सम्बन्धीय ।

पौकरमूल (सं ० क्ली०) पुष्करं सुगन्धद्रव्यं तस्य इदं पौष्करं मूलं । पुष्करमूल ।

पौक्तरसादि (सं० पु०) १ एक वैयाकरण ऋपिका नाम जिनके मतका उल्लेख महाभाष्यमें है । २ पुक्तरसद् नामक ऋपिके गोलमें उत्पन्न पुरुष ।

पौक्तरिणी (सं ० स्त्री०) पुष्कराणां समूहोऽस्या अस्तीति पौष्कर-इनि स्त्रियां डीप्। पुष्करिणी, छोटा पोखरा। पौष्करेयक (सं ० त्नि०) पुष्करे जातः ( फर्श्वाहेश्यो ठक ज्। पा ४।२।१५) इति ठकञ्। पुष्करमें जात, तालावमें होनेवाला।

पौष्कल (सं० ति०) पुष्कलेन निवृंत्तं सङ्कलादित्वादण्। (पा ४।२।७५) १ पुष्कसनिवृत्तः। (क्वी०) २ साम-मेद, एक सामका नाम।

पौक्तलावत (सं ० पु०) दिवोदास धन्वन्तरिके प्रति आयु-

र्चेद ज्ञानार्थ पृथ्नकारक सुश्रुत-सहाध्यायिमेद । पौक्कलेयक (सं० ति०) पुष्कले जातादि, कर्त्वादित्वात् उक ज् । पुष्कलमें होनेवाला । पौक्कल्य (सं० क्ली०) पुष्कल-ध्यज् । सम्पूणत्व, सम्पूर्णता । पौष्टिक (सं० क्ली०) पुष्ट्ये वृह्ध्ये हितम्, पुष्टिन्छन्। र पुष्टिसाधन-कर्म, वह कर्म जिससे धन जन आदिको वृद्धि हो। २ क्षीरके समय गालाच्छादनवस्त्रविशेष, वह कपड़ा जो मुंडनके समय सिर पर डाल दिया जाता है। ३ पुष्टिकर औषध, वह औषध जिसका सैवन करनेसे शरीर-में ताकत हो। ४ पुष्टिकर दक्षगण (बि.०) ५ पुष्टिहित, वलवीर्यदायक।

पौष्टी (सं० स्त्री०) राजा पुरुकी एक स्त्री।

पीष्ण (सं० ति०) पुवा देवताऽस्य तस्येदं वा अण् षणन्तत्वात् उपधालोपः । १ पुषा देवता-सम्बन्धो, पुषादेवताका। (पु०) २ रेवती नक्षतः।

पौत्र्णावत सं० पु० ) पुष्णावत गोबापत्य।

पौष्प ( सं ० क्ही ० ) पुष्पेण निवृत्तं पुष्पस्पेदं वेति पुष्प अण् । १ पुष्पसाध्य मद्य, फूर्लीसे निकाला हुआ मद्य । २ पुष्परेणु, फूलको घूल, पराग । ( नि • ) ३ पुष्प-निर्मित, फूलका बना हुआ । ४ पुष्पसम्बन्धो ।

पौष्पक (स० हो०) पुष्पेण कायतीति कै-क, वा पुष्पक-खार्थे अण्। कुसुमाञ्जन।

पौष्पी (सं० स्त्री०) पुष्पस्य इयं पुष्प-अण् गौरादित्वात् ङीच् । देशचिशेष, पुष्पपुर या पाटलिपुत ।

पौत्य (सं० पु०) पूर्वोऽपत्यमिति पूषण-ष्यञ् । १ कर-वीर पुराधिपति पूपके छड्के । शिवांशन चन्द्रशेखरते इनके पुलरूपमें जनममहण किया था। (कार्विकान धर्म अध्याय) २ नृपमेद । इन्होंने उतङ्क ऋषिको गुरुद्दिणामें अपने दोनों कुएडल दिये थे । (महाभारत ११३।११२) तद्धिकृत्य कृतो मन्धः अण् । (क्की०) ३ महाभारतके आदिपर्यान्तर्गत पर्वमेद ।

पौसला (हिं० स्त्री०) १ पानी पिलानेका स्थान । २ प्यासी को पानी पिलानेका प्रबन्ध ।

पौसार (हिं कों) लकड़ीका एक डंडा जो ताने और राछके नीचे लगा रहता है। यह करछेके भीतर खता है। इसीके पैरसे दवा कर राछको ऊंचा नीचा करते हैं।

पौसेरा (हिं० पु०) पाव सेरकी तोल । पौहारी (हिं० पु०) वह जो केवल दूख पी कर रहे, अन्न आदि न खाय।

प्याऊ (हि॰ पु•) सर्वसाधारणको पानी पिलानेका स्थान, पौसरा । प्याज (फा॰ पु॰) एक प्रसिद्ध कन्द जो विलकुल गोल गांठके आकारका होता है।

विश्वेष विवरण पहाग्रह शन्दमें देखों।
व्याजी (फा॰ वि॰) प्याजीके रंगका, हलका गुलाबी।
प्याट् (सं॰ अव्य॰) भो, है, सम्योधन
व्यान (सं॰ कि॰) रफीत।
प्याना (हिं॰ कि॰) पिलाना देखों।
प्यायन (सं॰ वि॰) वर्ड नशक्तिशील।
प्यायस्थूल (सं॰ पु॰) गोतप्रवर ऋपिभेद।
प्यार (हिं॰ पु॰) १ स्तेह, प्रेम, बाह। १ वह स्पर्श,
बुक्रन, सम्बोधन आदि जिससे प्रेम स्चित हो। ३
असार या पियार नामका वृक्ष जिसका दीज चिरौंजी है।

प्यारा (हि॰ वि॰ ) १ प्रीतिपात, जिसे प्यार करें। २ जो

भला मालम हो, जो अच्छा लगे। ३ जो छोडा न जाय,

जिसे कोई अलग करना न चाहे । प्यारी ( सं ॰ स्त्री॰ ) श्रीराधिका ।

पारीचाँद मिल-कलकत्तेके निमतल्लानिचासी एक कायस्थ-सन्तान। इनके पिताका नाम रामनारायनमिल था। 'अन्होंने सङ्गीतविद्याकी उन्नतिके लिये सङ्गीततरिङ्गिणी नामक प्रनथ रचा। प्यारीचांदने १८२७ ई०में हिन्दूकालेजमें प्रवेश किया। यहां विद्याशिक्षा सम्पन्न करके उन्होंने धोडे ही दिनोंमें प्रचुर अर्थ उपार्जन कर लिया । डफ साहव ( Mr. Duff )ने इन्हें खुष्टानधर्ममें दीक्षित करनेकी वहुत कोशिश की, पर कृतकार्य न हो सके। उच्चशिक्षा पा कर भी इन्होंने गवर्में एटकी नौकरी कभी नहीं की । विपयकर्म में लिप्त रहते हुए भी साहित्यसेवाकी ओर इनका विशेष ध्यान था। टेकचांद ठाकुर नामसे इन्होंने वङ्गळा भाषामें "अलालके घरके दुलाल", "अमेदी", "आध्यात्मिका" आदि प्रनथ लिखे। "आलालके घरके दुलाल" नामक प्रन्थ वङ्गालियोंके निकट विशेष परिचित है। आज भी सिमिल सर्विस ( Civil service ) परीक्षाकी पाठ्य पुस्तक निर्वाचित हुई है। G. D. Oswill M. A. ने इस प्रनथका अंगरेजीमें अनुवाद कर 'The Spoilt Child नाम रखा । केवल वङ्गलामें ही नहीं अङ्गरेजीमें भी ये अनेक प्रन्थ लिख गये हैं । इनमेंसे कलकत्ता रिभ्यु मामक मासिक पविकामें लिखित जमींदार और प्रजा-

सम्बन्धीय एक प्रवन्ध पार्कियामेण्डके मेम्बरोको आलो-चनाका विषय हो गया था। आप हेयर साहेव ( David Hare )की समरणार्थं समा, पशुकप्रनिवारिणी समा आदिके स्थापयिता और British Indian Association )आदिके उद्यमशील सम्य थे।

प्यारीमोहन वन्दोपाध्याय—कलकत्ते के सन्निकटस्थ गङ्गातीरवर्त्ती उत्तरपाड़ाके एक ब्राह्मण । विद्याशिक्षाके वाद्
ये बृटिश-गवर्मेंग्रटके अधीन 'मुनसिफ' पद पा कर युक्तप्रदेशको चले गये । सिपाही-विद्रोहके समय ये इलाहावादमें थे । विद्रोहियोंको धोरतर अत्याचारी देख कर
उनके दमनके लिये आगे वढ़े । विद्रोहियोंके साथ
युद्ध करके इन्होंने विजयपताका फहराई । इस कारण
बृटिशगवर्मेंग्रटने इन्हें "Fighting Munsiff"की उपाधि
दी थी ।

प्याला (फा॰ पु॰) १ एक विशेष प्रकारका छोटा कटोरा। इसका ऊपरी भाग या मुंह नीचेवाले भाग या पेंदेकी अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा होता है। इसका व्यवहार साधारणतः जल, दूध या शराव बादि पीनेमें होता है, छोटा कटोरा, जाम। २ गर्भाशय। ३ जुलाहोंका मट्टीका वह वरतन जिसमें वे नरी भिगोते हैं। ४ तोप या वन्दूक आदिमें वह गड़ा या स्थान जिसमें रंजक रखते हैं। ५ भीख मांगनेका पात, खप्पर।

पास (हिं० स्त्री०) १ जल पीनेकी इच्छा, तृष्णा, तृपा।

शरीरके सव अंगोंमें कुछ न कुछ जलका अंश रहता है। उसो जलसे सव अंगोंको पुष्टि होती है। जव यह जल शरीरके काममें आनेके कारण घट जाता है, तव सारे शरीरमें एक प्रकारका आलस्य मालूम होने लगता है। उस समय जल पीनेकों जो इच्छा होती है, उसीका नाम प्यास है। जीवोंके लिये प्यास मूखसे वढ़ कर कप्ट-दायक होतो है। कारण, जलकी आवश्यकता शरीरके प्रत्येक खायुकों होती हैं। भोजनके विना मनुष्य कुछ अधिक दिनों तक जीवन-धारण कर सकता है, पर जलके विना थोड़े हो समयमें उनका प्राण-पखेक उड़ जाता है। जिस मनुष्यको प्याससे मौत होतो है, वे मरनेसे पहले बागल हो जाते हैं। विशेष विवरण द्याणा ग्रव्दमें हेखों।

२ किसी पदार्थ आदिकी प्राप्तिकी प्रवल इच्छा, प्रवल कामना। प्यासा (हिं० वि॰ ) जिसे प्यास लगो हो, जो पानी पीना चाहता हो ।

प्युक्ष्न (सं० क्ली०) अपि-उझ वाडुलकात् नक् अपेरह्लोपः। १ कायु। २ अजगर सर्पे।

प्युष (सं० क्की०) १ विभाग। २ दाह।

प्यून ( अं॰ पु॰ ) चपरासी, हलकारा ।

प्यूस ( हिं० पु० ) पेवस देखों।

ष्यूसी हिं० स्त्री०) पेवसी देखी।

ब्योरी (हि॰ स्त्री॰) १ कईकी मोटी वत्ती। २ एक प्रकार का पीला रंग।

प्योसर (हिं॰ पु॰) हालकी व्याई हुई गौका दूध। प्योसार (हिं॰ पु॰) स्त्रीके लिये पिताका गृह, पीहर,

मायका । क्योंदा (हिं० पु०) वैब'द देखी ।

ध्यौसरी ( हि॰ पु॰ ) पेवसी देखो ।

प्र (सं॰ अन्य॰) प्रथयतीति, प्रथ-छ । १ वीस उपसगींमेसे
पक । २ गति । ३ उत्कर्ष । ४ सर्वतीभाव । ५ प्राथम्य ।
६ छ गति । ७ उत्पत्ति । ८ व्यवहार । ६ आरम्म ।
प्रजग (सं॰ क्ली॰) प्राग्युगं पृपोदरादित्वात् साधुः । १
प्राग्वनी युग । २ शस्त्रभेद, एक हथियारका नाम ।

प्रकङ्कत (सं० पु०) १ प्रकृष्ट विप, तेज जहर । २ प्रकृष्ट गमनयुक्त सर्पविशेष, तेजीसे भागनेवाला एक प्रकारका साँप।

प्रकच (सं० ति०) जिसके रोंगटे खड़े हों।

प्रकट (सं० ति०) प्रकटतीति प्र-कट-अच्। १ स्पष्ट, व्यक्त, जाहिर । २ जो प्रत्यक्ष हुआ हो । ३ उत्पन्न, आविभूत । प्रकटन (सं० क्वी०) प्र-कट-ल्युट्। व्यक्तीकरण, प्रकट होने-की क्रिया ।

प्रकटादित्य-काशीधामके एक वैष्णव राजा। इनके पिता को नाम वालादित्य और माताका नाम भ्रवला था। प्रकटित (सं० वि०) प्र-कट-क । प्रकाशित, जो प्रकट हुआ हो।

प्रकण्य (सं० पु०) प्रकृष्टाः कण्वा यतः, ऋषिभिन्नत्वात् न सुद्धे । देशभेद, एक देशका नाम ।

प्रकथन (सं• क्ली• ) प्र-कख-ल्युट्। प्रकृष्टरूपसे कथन, साफ साफ कहना, खुलासा वयान। प्रकम्प ( सं० पु० ) प्र-कम्प अच् । प्रकम्पन, कपकेषी,

प्रकम्पन (सं० पु०) प्रकम्पयतोति प्र-कपि-णिच्-ल्यु । १ वाग्रु; हवा । २ नरकविशेष, एक नरकका नाम । ३ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम । (क्ली०) ४ कम्पाति-शय, बहुतं थरथराहट । ५ वाग्रुका स्थितिस्थापक पदार्थ ।

जो पदार्थ आघात वा किसी दूसरी तरहसे अव-स्थान्तरित होने पर भी थोड़े ही समयके अन्दर पूर्व अवस्थाको प्राप्त होता है उसे स्थितिस्थापक पदार्थ कहते हैं। आधात द्वारा जो परमाणु अवसारित होते हैं वे अपने सामनेके परमाणुओंको हटाये विना खयं अप-सारित नहीं हो सकते । किन्तु उन्हें अपसारित करनेंमें अपने पर प्रतिघात पहुंचता है। इस प्रकार उनमें एक गति उत्पन्न हो जाती है। उस गतिसे वे एक वार एक पार्श्वमें और दूसरी बार दूसरे पार्श्वमें अपसारित हो कर दोलाययान होता रहता है। आहत पदार्थ कुछ समय तक इधर उधर चालित हो कर स्थिर हो जाता है और पूर्वभाव अबलम्बन करता है। स्थितिशापक पदार्थके परमाणुओंकी ऐसी गति और प्रत्यागतिको कम्पन बा प्रकरपन (Vibration) कहते हैं। इसी प्रकरपनसे सुर निकलता है। यह प्रकम्पन सुसम्पादित यन्त्रसे निकलते ही संङ्गीत-खर उत्पन्न करता है। यदि यन्त्रका कोई तार अच्छी तरह कस दिया जाय, तो उसकी कम्पन-संख्या अधिक होगी अर्थात् थोडे ही समय कई वार हिलडोल कर स्थिर हो जायगा।

६ कम्पमान, हिलता हुआ। (ति॰) ७ प्रकम्पन-कारक, हिलानेवाला।

प्रकम्पनीय (सं० ति०) प्र-क्षिप-अनियर्। प्रकम्पनयोग्य। प्रकम्पमान (सं० ति०) अत्यन्त हिलता हुआ, जो धर-धराता हो।

प्रकम्पित (सं॰ ति॰) प्र-कम्पि-कः। प्रकम्पनयुक्तः जो कम्पित हुआ है।

प्रकम्पन् (सं० ति०) प्रकम्पोऽस्थास्तीति इति । प्रकम्प युक्त । प्रकरण्य ( सं० ति० ) प्र-क्रिय-यत् । प्रकरपनयोग्य, कांपने । या थरथराने लायक ।

प्रकर (सं क् क्वी ) प्रकीयते इति प्र-क्ष कर्मणि अप् । १ अगुरु-चन्दन, अगर नामक गन्धद्रव्य । २ समूह । ३ विकीर्ण कुसुमादि, खिला हुआ फूल । १ साहाय्य, सहारा मदद । ५ अधिकार, दखल । ६ कर्मपदु, खूद काम करनेवाला । ७ अतिक्षेप । ८ पुण्णादिका स्तवक ।

प्रकरण (सं॰ क्ली॰) प्रक्रियते अस्मिन्निति प्र-क्र-आधारे ल्युट । १ प्रस्ताव । २ वत्तान्त, जिक्र करना । ३ अभिनेय प्रकार, प्रसङ्ग विषय । ४ इपकभेद, दृश्यंकाव्यके अन्तर्गत रूपकके दश भेदोंमेंसे एक। साहित्यदपणके अनुसार इसमें सामाजिक और प्रेमसम्बन्धी कल्पित घटनाएं होनी चाहिये और प्रधानतः शृङ्गाररस ही रहना चाहिये ) जिस प्रकरणकी नायिका वेश्या हो वह शुद्ध और जिसकी नायिका कुलबधू हो वह सङ्कीर्णप्रकरण कहलाता है। नाटककी मांति इसका नायक बहुत उच-कोटिका पुरुप नहीं होता और न इसका आख्यान कोई प्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक वृत्त होता है। इसका नायक और मन्त्री ब्राह्मण वा सम्ब्रान्त वणिक् होता है। इसके और सभी लक्षण नाटकर्से हैं। नाटककी तरह इसका अभिनय होता है, इसिछये इसे द्रश्यकाव्यके अन्तर्गत माना गया है। संस्कृतके मुच्छक टिक, मालती-माधव और पुष्पभूषित आदि प्रकरणके ही अन्तर्गत हैं। इनमेंसे मृच्छकटिकका नायक ब्राह्मण, मालतीमाधवका अमात्य और पुष्पभूषितका नायक चणिक् है।

नाटक देखा ।

५ शास्त्रसिद्धान्त प्रतिपाद्य प्रन्थमेद । ६ कर्त्तव्यार्थक यचन, वह वचन जिसमें कोई कार्य अवश्य करनेका विधान हो । ७ प्रन्थसिन्ध । ८ पाद, एकार्थाविच्छन्न सुत्रसमूह ।

प्रकरणपाद ( सं• पु॰ ) बौद्धशास्त्रभेद ।

प्रकरणसम (सं॰ पु॰) गौतमोक्त हेत्वाभासभेद्। इसे सत्त्रतिपक्ष भी कहते हैं।

प्रकरणी (सं० स्त्रो०) नाटिकामेद। नाटिकाका नाम ही प्रकरणी वा प्रकरणिका है। इसमें शृङ्काररस प्रधान

है। सार्थवाहादि इसके नायक और नायिकाकी तुल्प-वंशजा नायिका है। यथा—रत्नावली नाटिका। नाटिका और नाटक शब्द देखी।

प्रकरी (सं खो ) प्रकीर्णते अत्रेति प्र-इ-अप् गौरादि-त्वात् ङीप्। १ नाट्याङ्गमेद, नाटकमें प्रयोजनसिद्धिके पांच साधनीमेंसे प्रकः। इसमें किसी एक देशव्यापी चरित्रका वर्णन होता है। २ एक प्रकारका गानः।

प्रकरितृ ( सं॰ ति॰ ) विक्षेप्ता, फेंकनेवाला ।

प्रकर्त्तथ्य (सं• क्ली॰) प्र-कृ-तथ्य । प्रकृप्रकंपसे करणीय, अवश्य करने लायक ।

प्रकर्त्यु ( सं॰ ति॰ ) प्र-म्न तृन् । प्रकृष्टरूपसे कारक, अच्छी तरह करनेवाला ।

प्रकर्ष (सं ॰ पु॰) प्र-कृप-भावे घम्। १ उत्कर्ष, उत्तमता। २ अधिकता, वहुतायत। ३ प्रकृष्टकपसे कर्पण, अच्छी तरह जोता हुआ।

प्रकर्षक ( सं• पु॰ ) प्र-कृष-ण्वुल् । उत्कर्षक, उत्कर्षे करनेवाला ।

प्रकर्षण (सं० क्लो०) प्र-कृष-ल्युट्। १ उत्कर्ष, प्रकर्ष। २ आधिषय, अधिकता।

प्रकर्षणीय ( सं ० ति० ) प्र-कृष-अनीयर् । उत्कर्षणीय, जी . उत्कर्ष करनेके योग्य हो ।

प्रकर्षेवत् ( सं ० बि० ) प्रकर्षो विद्यतेऽसा मतुष्, मसा व । उत्कर्षेयुक्त, गुणवान् ।

प्रकर्षिन् (सं ॰ लि॰) प्रकर्षो विद्यतेऽस्तर, इति । प्रकर्ष-युक्त ।

प्रकर्षित (सं ० हो ०) १ प्रकृष्टह्यसे आकर्षित । २ जिस सूद पर रूपया लगाया गया है, उससे ज्यादा सूद वस्त्ल करना।

प्रकलिवद् (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टां कलां वेसि विद-किंप् षृयो-दरादित्वात् हुखः। १ विणक्जन। २ अङ्गाता। प्रकला (सं ॰ स्त्री॰) एक कलाका साठ्यां भाग। प्रकल्पना (सं ॰ स्त्री॰) निष्टिचत करना, स्थिर करना। प्रकल्पयित् (सं ॰ ति॰) विधानकर्त्तां, स्थिर करनेवाला। प्रकल्पित (सं ॰ ति॰) विहित, निष्टिचत किया हुआ। प्रकल्पित (सं ॰ ति॰) चृह्चालनोविशेष, एक प्रकारकी वड़ी चलनी। प्रकट्य ( सं ० ति० ) प्र-करण-पत्। प्रकटणनीय, प्रकटणन करनेयोग्य ।

प्रकल्याण (सं ० ति ०) अति उत्क्रप्ट, अति उत्तम, वहुत विद्यो ।

प्रकश (सं ॰ पु॰) प्र-कश-अप्। १ पीड़न, पीड़ा देना। २ कोड़ें से मारना।

प्रकशी (सं ॰ खी॰ ) यूकरोग। इसमें पुरुपेंकी मूले-न्द्रिय सूज जाती है। यह इन्द्रीको वढ़ानेवाली ओपधियों-का प्रयोग करनेसे होता है।

प्रकार्ड (सं ॰ पु॰ क्ली॰) प्रकृष्टः कार्ण्डः इति प्रादिसमासः।
१ मूलसे ले कर शास्त्रा तकका वृक्षभाग, स्कन्य, वृक्षका
तना। पर्याय—स्कन्य, कार्ण्ड, दर्ग्ड। २ वृक्ष, पेड़।
३ शास्त्रा, डाल । (ति॰) ४ वहुत वड़ा। ५ वहुत
विस्तृत।

प्रकार्ट्डर ( सं॰ पु॰ ) प्रकार्ट्ड' राति गृह्णति रा-क। वृक्ष, पेड़।

प्रकाम (सं ० ति०) प्रगतं काममिति पादिसमासः। १ यथेए, काफो, पूरा। (पु०) २ कामना, इच्छा। प्रकामम् (सं ० अव्य०) प्र-कम-णमुळ्। १ अत्यर्थ। २ असुमति।

प्रकामोद्य (सं० पु०) देवसेद, एक वैदिक देवता ।
प्रकार (सं० पु०) प्रभेदकरणं प्रकृष्करणं विति, प्र-कृ-वंज् ।
१ भेद, किस्म । २ सादृश्य, समानता, वरावरी । ३
भांति, तरह । ४ विशिष्ट ज्ञानहेतु भासमान पदार्थ ।
प्रकार (हिं० स्त्री०) प्राकार, चहारदीवारी, परकोटा, घेरा ।
प्रकारक (सं० ति०) प्रकारसम्बन्धीय, उस प्रकारका ।
प्रकारता (सं० स्त्री०) प्रकारसम्भावः तस्त्र-टाप् । विपयताभेद ।

प्रकारवत् (सं ० ति ०) प्रकारः विद्यतेऽस्य मतुप्, मसा-व । प्रकारयुक्त ।

प्रकारान्तर (सं ॰ पु॰) अन्यः प्रकारः। अन्य प्रकार, दूसरी तरह।

प्रकालन (सं० ति०) प्रकालयित प्र-कालि-ल्यु । १ हिंसक। (पु०) २ सपैमेद, एक प्रकारका साँप। (क्वी०) मावे ल्युट्। ३ मारण, प्रारना।

प्रकाश ( है । क्वीं । प्रकाशते इति प्रकाश-अच्। १

कांस्य, कांसा। २ वह जिसके द्वारा वस्तुओंका ह्रए नेलोंको गोचर होता है, दीति, आभा।

वैज्ञानिकोंके मतानुसार जिस प्रकार ताप गतिशक्ति-का एक रूप है, उसी प्रकार प्रकाश भी है। प्रकाश कोई वस्तु नहीं है जिसमें भारीपन हो । किसी वस्तु पर प्रकाश पडनेसे उसकी तोल उतनी ही रहेगी जितनी अंधेरेमें थी । प्रकाशके सम्बन्धमं इधर वैद्यानिकोंका यह सिद्धान्त है, कि प्रकाश एक प्रकारकी तरङ्गवत् गति है। यह गति किसो ज्योतिष्मान पदार्थं के द्वारा ईयर वा आकाशद्र्यमें उत्पन्न होती है और वंदती है। जलमें यदि पत्थर फेंका जाय, तो जहां पत्थर गिरता है वहां जलमें श्लोभ उत्पन्न होता है जिसमें तरंगें उठ कर चारों ओर वढ़ने छगती हैं। ठीक इसी प्रकार ज्योति-न्मान् पदार्थ द्वारा ईथर वा आकाशद्रव्यमें जो श्लोम उत्पन्न होता है यह प्रकाशको तरङ्गोंके रूपमें चलता है। यह आकाशद्रन्य विभु वा सर्वध्यापक पदार्थ है । यह पदार्थ जिस प्रकार ब्रह्में और नश्रवोंके मध्य अंतरिक्षमें सर्वत भरा है उसी प्रकार डोससे डोस वस्तुओंके पर-माणुओं और अणुओंके मध्यमें भो । अतः प्रकाशका वाहक पदार्थमें यही आकाशह्य है । प्रकाशतरङ्गेंकी गति कल्पनातीत है। वे एक सेकएडमें १८६००० मील के हिसावसे चलती हैं। प्रकाशकी जो किरने निकलती हैं, यद्यपि उन सर्वोंकी एक-सी गति है तो भी तरंगोंकी लम्बाईके कारण उनमें भेद होता है। तरंगे भिन्न भिन्न लम्बाईकी होती हैं। इससे किसी दक प्रकारकी तरङ्गें-से वनी हुई किरनें दूसरे प्रकारकी तरङ्गेंसे वनी हुई किरनोंसे मिन्न होती हैं। यही मेद्र रंगोंके मेदका कारण है । जैसे, जिस तरङ्गका विस्तार '००००१६ इश्च होता है, वह वैंगनी रंग और जिसका विस्तार ००००२४ इञ्च होता वह लाल रंग होता है। पहले न्यूटन आदि प्राचीन तत्त्वविदीने प्रकाशको अगुमय वस्तुः के रूपमें माना था, पर पीछे वह अखएड वस्तुकी तरङ्गीके क्रवका माना गया। इघर थोड़े दिनोंसे फिर अणुमय माननेकी प्रवृत्ति चैशानिकोंमें दिखाई पड़ रही है।

(पु॰) ३ रोह, धृप । इसका पर्याय द्योत और आतप है। ४ प्रदीस, स्पष्ट होना, साफ समक्तमें आना । पर्याय— स्फुट, स्पष्ट, प्रकट, उल्बण, ध्यक्त, प्रव्यक्त, उदिक । ५ प्रहास, हंसी ठट्टा । ६ प्रकटन, गोचर होना । ९ विस्तार । ८ प्रसिद्ध । ६ विकाश । सांख्यके मतसे पुरुष प्रकाशस्त्रभावका है । प्रकृति इसके साथ प्रकाश अर्थात् पुरुषका योग होनेसे प्रकाश हुआ करता है ।

विशेष विवरण प्रकृति, पुरुष और सांस्पदर्शनमें देखो ।
चैष्णचशास्त्रके मतसे-आकार, गुण और लीलामें पेक्य
रह कर जब एक ही चित्रहका युगपत् अनेक स्थानोंमें
आविर्माव होता है तब उसे प्रकाश कहते हैं । जैसे,
द्वारकामें श्रीकृष्ण प्रति मन्दिरमें ही पृथक् पृथक् रूपमें
सर्वोको दिखाई देते थे। १० चैवस्वत मनुके एक पुत्रका
नाम। ११ शिव, महादेव । १२ घोड़ की पीठ परकी
चमक। १३ किसी प्रन्थ या पुस्तकका विभाग।

(ति०) १४ प्रकाशित, जगमगाता हुआ। १५ विक-सित, स्फुटित। १६ प्रकट, प्रत्यक्ष, गोचर। १७ अति प्रसिद्ध, सर्वत जाना सुना हुआ। १८ स्पष्ट, समक्तमें आया हुआ।

प्रकाशक (सं० ति०) प्रकाशयति प्र-काश-णिच् -ण्वुल् । १ प्रकाश वेनेवाला । (पु०) २ सूर्य आदि । २ कांस्य, कांसा । ३ सांख्यमतसिद्ध सत्त्वगुण । ४ वह जो प्रकट करे जैसे प्रन्थप्रकाशक । ५ महावेवका एक नाम ।

प्रकाशकबातृ (सं० पु०) प्रकाशकस्य आतपस्य ज्ञाता । १ कुक्कुट, मुर्गो । (बि०) २ प्रकाशक ज्ञातृमाव, प्रकाश जतानेवाळा।

प्रकाशकाम (सं वि वि ) सौन्दर्य वा सम्मान-अभिलायी। प्रकाशकार (हि॰ पु॰),प्रकाशक देखी।

प्रकाशता ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रकाशस्य-भावः, तल-टाप्। प्रकाशका भाव या धर्मे, प्रकाशत्व।

प्रकाशदेवी—काश्मीरकी एक रानी। इन्होंने प्रकाशिका विहारकी स्थापना की।

प्रकाशघर-तस्यचिन्तामणिदीकाके प्रणेता।

मकाशधर्मं ( सं० पु० ) सूर्य ।

प्रकाशभृष्ट (सं० पु०) भृष्ट नायकके दो मेदोंमंसे एक। यह नायक प्रकृत रूपसे भृष्टता करता है, नायिकाके साथ साथ लगा करता है, सबके सामने संकोच त्याग कर हंसी ठहा करता है, किड़कने आदि पर भी नहीं मानता।

ता। सांख्यके मतसे नाम। ३ प्रकाशित करनेका काम्र, प्रकाशमें लानेका काम। ४ किसी अन्यके छए जाने पर उसे सर्वसाधारणमें प्रचलित करनेका काम। प्रचलित करनेका काम। प्रकाशमित चीनदेशवासी एक वौद्ध श्रमण । इनका काम स्वीतिक नाम भा स्थानको। भारतवर्षमें प्रकाशमित नाम

प्रकाशमित चीनदेशवासी एक वौद्ध ध्रमण । इनका चैनिक नाम था यूयनचो। भारतवर्षमें प्रकाशमित नाम-से ही विख्यात थे। इनके माता पिता दोनों ही धनी और कुलीन घरानेके थे। इस प्रकार अच्छी अवस्था रहने पर भी इनके मनमें एकाएक चैराय ज्ञानका सञ्चार हो भाया। ६३८ ई०के किसी समय इन्होंने संसारधर्मका परित्याग कर भारतवर्ष आनेकी इच्छा प्रकट की। इसी उद्देशसे चे संस्कृत साहित्यकी आछोचनामें प्रवृत्त हो ता-हि-सि मन्दिर पहुंचे। उपस्थित पाठ समाप्त होनेके वाद ये यति धर्म और द्राइप्रहण कर जेतवन-सङ्गारामकी ओर अथसर हुए। इस प्रकार परिव्राजकके क्रपमें इन्होंने तुस्तारराज्य, जलन्धर, महावोधि ( मगध ), नालन्द, नेपाल, तिव्यत, काश्मीर, लाटदेश चाहिक आदि नाना राज्योंमें स्मृतिचिह और विहारादि दर्शनकी कामनासे पर्यटन किया। मध्यभारतके अमरावती नगरमें ६० वर्षकी उमरमें इनकी मृत्यु हुई।

प्रकाशन ( सं० ति० ) प्रकाशयति प्र-काश-णिच्-ल्यु । १

प्रकाशकारक, प्रकाश करनेवाला । (पु॰) २ विष्णुका एक

प्रकाशमान (सं० ति०) १ प्रकाशयुक्त, चमकीला। २ प्रसिद्ध, मशहूर।

प्रकाशवत् ( सं ० ब्रि० ) प्रकाशनं विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व । प्रकाशनयुक्त, चमकीला ।

प्रकाशवर्ष—काश्मीरदेशवासी एक किव । आप हर्षके पुत और किव दर्शनीयके पिता थे। आपकी वनाई हुई किरा-तार्जुनीय टीकाका विषय मिल्लिनाथने उक्लेख किया है। प्रकाशवान (हिं० वि०) प्रकाशमान देखो।

प्रकाशवियोग (सं॰ पु॰) केशवके अनुसार संयोगके दो भेदोंमेंसे एक।

प्रकाशसंयोग (सं॰ पु॰) केशवके अनुसार वियोगके दो भेदोंमेंसे एक।

प्रकाशात्मन् (सं० पु०) प्रकाश भात्मा खरूपं देहो वा यस्य । १ सूर्य । २ विल्णु । (ति०) ३ व्यक्तसभाव ।

प्रकाशात्मा -- एक प्रन्थकार, रामके शिष्य । इन्होंने मैति-

Vol. XIV. 116

उपनिषद्दीपिका नामक एक प्रन्थकी रचना की है। प्रकाशात्मा यित वा खामी — एक नैयायिक। ये अनत्यानुभव खामीके छात थे। दक्षिणामूर्तिस्तोतार्थ-प्रतिपादकनिवन्ध वा मानसीहास, पञ्चपादिकाविवरण, छौकिकन्यात्रमुक्तावछी, शारीरक मीमांसान्यायसंप्रह और ब्रह्मसूत नामक प्रन्थ इन्होंके रचित हैं।

प्रकाशादित्य—१ लघुमानसोदाहरणके प्रणेता। २ एक प्राचीन हिन्दूराजा। इनके चलाये हुए जो सिक्के पाये गये हैं उन पर अश्वचिह्न अङ्कित है।

प्रकाशानन्द (सं० पु०) १ प्रबोधानन्द देखो । २ देहरादूनके रहनेवाले एक कवि । इनका जन्म १६१८ संघत्में हुआ था। इन्होंने "श्रीरामजीका दर्शन" नामक श्रन्थ वनाया था।

प्रकाशानन्द—एक विख्यात पिएडत । इनका दूसरा नाम मिल्लकार्जुन यतीन्द्र था । ताराभिकतरिङ्गणो, महालक्षी-पद्धति, वेदान्तिसिद्धान्तमुक्तावली, श्रीविद्यापद्धति और उनके गुरु सुभगानन्द्-आरब्ध मनोरमा नामक तन्त्रराज-टीकाका अविशिष्टांश सम्पूर्ण करके यशोभागी हुए थे। ये ज्ञातानन्दके शिष्य तथा नाना दोक्षित और महादेव सरस्ततीके गुरु थे।

२ प्रयोगमुखटोकाके रचयिता।

प्रकाशित (सं॰ ति॰) प्रकाशो जातोऽस्येति प्रकाश-तारका-दित्वात् इतच्, या प्र-काश-णिच्-क । १ प्रकाशिविशिष्ट, चमकता हुआ । २ जिस पर प्रकाश पड़ रहा हो । ३ जो प्रकाशमें आ चुका हो । भावे क । (क्को॰) ४ प्रकाश । ५ शोभित । ६ दीपित । ७ प्रस्फुटित । ८ उद्घावित ।

प्रकाशिता (सं॰ स्त्री॰) प्रकाशिनो भावः, तल्-टाप् । प्रका-शित्व, प्रकाशका भाव या धर्म ।

प्रकाशिन् (सं॰ ति॰) प्रकाश-अस्त्यर्थे इनि । प्रकाशयुक्त, जिसमें प्रकाश हो ।

प्रकाशीकरण (सं० क्वी०) अप्रकाशः प्रकाशकरणं, अभूत-तद्भावे चित्र। जो अप्रकाश था उसका प्रकाश।

पुकाशितर (सं॰ पु॰) पुकाशादितरः। पुकाशिमन्न,

अपूकाश । प्रकाश्य (सं० ति०) प्र-काशि कर्मणि यत् । प्रकाशनीय, जाहिर करने योग्य ।

प्रकार्थ्य ( हिं० क्रि॰-वि॰ ) प्रकट रूपसे, स्पष्टतया । प्रकिरण ( सं० क्ली० ) प्रक्षेप, फॅकना ।

प्रकीण (सं० क्की०) प्रकीयंते स्मेति प्र-क्व-विक्षेपे का १ प्रम्थांश, अध्याय, प्रकरण । २ चामर, चंबर । ३ प्रिकरं दुर्गन्धवाला करंज । ४ उच्छुङ्कल, उद्देश्व । ५ फुट्फर किवता । ६ उन्मत्त, पागल । (ति०) ७ विक्षिप्त, छितराश हुआ । ८ विस्तृत, फैला हुआ । ६ मिश्रित, मिला हुआ । १० ताना प्रकारका । ११ विभिन्न जातीय, नाना जातिका प्रकीणेक (सं० क्की०) प्रकीणे खार्थे-कन । १ चामर, चंबर । २ अध्याय, प्रकरण । ३ विस्तार । ४ वह जिसमें तरह तरहकी चीजें मिली हों, फुटकर । ५ अनुक्त प्रायश्चित्त, वह पाप जिसके प्रायश्चित्तका प्रन्थोंमें उल्लेख न हों, फुटकर पाप । प्रकीणे संज्ञायां कन । ६ तुरङ्गम, घोड़ा । प्रकीणेकेशी (सं० स्त्री०) दुर्गा ।

प्रकीर्त्तन (सं० क्ली०) १ घोषण, घोषण करना । १ उच्चेःस्वरसे नामगान, जोर जोरसे कीर्त्तन करना ।

प्रकीर्त्ति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रशस्ति, प्रशंसा। २ प्रसिद्धि, ख्याति । ३ घोपणा ।

प्रकोत्तित (सं० दि०) प्रकीत्त्र्येते स्मेति प्र-कृत्तः । कथित, कहा हुआ ।

प्रकीर्ये (सं० पु॰) प्रकीर्यंते इति प्र-क्र-यक् । १ करअमेद, दुर्गन्यवाला करअ । २ घृतकरङ्ग । ३ रीठाकरअ । (ति॰) ४ विक्षिप्य । ५ व्याप्य ।

प्रकुञ्ज ( सं॰ पु॰ ) फलकप मानमेद, आड तोले या एक एक पलका मान ।

प्रकुपित (सं० वि०) प्र-कुप-क । १ अतिशय मुद्ध, जो वहुत मुद्ध हो । २ जिसका प्रकोप वहुत वढ़ गया हो । प्रकुछ (सं० क्ली०) प्रकर्षण कोछित राशीकरोति मैंबी-करोति चेति, प्र-कुछ क । प्रशस्त देह, सुन्द्र शरीर । प्रकुष्माएडी (सं० स्त्री०) हुर्गा ।

प्रकृत (सं० ति०) प्रक्रियते स्मेति प्र-क्र-क । १ अधिकृत । २ आरब्ध । ३ प्रकरणप्राप्त । ४ निर्मित, रचित । ५ यथार्थ, वास्तविक । ६ प्रकर्षक्रपसे कृत । ७ अविकृत । ८ प्रकान्त ।

प्रकृतता (सं॰ स्त्री॰) १ याधार्थ्य । २ प्रकृतका भाव । ३ आरम्म, आरब्धता । ४ तर्कादिका याधार्थ्य निरूपण । प्रकृति (सं क्षी ) प्रिक्रयते कार्यादिकमनयेति, प्र-कृ-किन् । १ सभाव, मिज़ाज । २ मूल वा प्रधान गुण जो सदा वना रहे, तासीर । ३ योनि । ४ लिङ्ग । ५ स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और वल ये सप्त अङ्ग हैं। इनका दूसरा नाम राज्य भी है । ६ धर्माध्यक्षादि सप्त प्रकृति—
"धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोषाध्यक्षस्य भूषतिः

दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोऽभवन्॥" (मनु)
धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोपाध्यक्ष, भूपति, दूत, पुरोधा
और दैवज्ञ ये सप्त प्रकृति हैं। ७ शिल्पी। ८ शक्ति। ६
योपित्। १० परमातमा। ११ आकाशादि भूतपञ्चक।
१२ करण। १३ गुद्धा। १४ जन्तु। १५ छन्दोभेद। इस
छन्दके प्रति चरणमें २१ अक्षर रहते हैं। १६ माता। १७
प्रत्ययनिमित्त शब्दभेद। जिसमें प्रत्यय हो, उसे प्रकृति
कहते हैं। प्रकृतिके वाद हो प्रत्यय हुआ करता है। नाम
और धातुके भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है। नाम शब्दका
अर्थ है 'प्रातिपदिक'। नाम और धातु यही दो प्रकृति हैं।

प्रकृति भिन्न प्रत्यय हो नहीं सकता । जो आगमादि होता है, उसे प्रत्यय कहते हैं। शब्दशक्तिप्रकाशिकामें इसके विचारादिका विशेष विवरण सिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं सिखा गया।

प्रकर्षेण सृष्ट्यादिकं करोतीति प्र-इः कर्त्तरि किच्। १८ भगवान्की मायाख्या शक्ति। यह परा अपराभेदसे दो प्रकारकी है--पराप्रकृति और अपराष्ठकृति।

ब्रह्मवैवर्त्तंपुराणके प्रकृतिखएडमें लिखा है, कि , प्रकृति पांच प्रकारकी हैं।

> "गणेशजननी दुर्गा राधा लक्तीः संरखती । साविती च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पश्चमी स्मृता।" ( त्रह्मवैवर्त्तपु० )

गणेशकी माता दुर्गा, राधा, स्टक्ष्मी, सरखती और सावित्री स्टिविधानमें यही पांच प्रकृति नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रकृति शन्दकी नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

> "प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता ॥" "गुणे प्रकृष्टे सत्त्वे च प्रशन्दो वर्त्तते श्रुतौ । मध्यमे रजसि कृश्च तिशन्दस्तामसः स्मृतः ॥ तिगुणात्मसहत्वा या सर्वशक्तिसमन्विता ।

प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥ - प्रथमे वर्त्त ते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥" ( ब्रह्मवैवर्त्त पु॰ प्रकृतिख॰)

प्रश्वास्त अर्थ प्रकृष्टवासक और कृति शब्दका अर्थ सृष्टिवासक है। जो देवी सृष्टिविषयमें प्रकृष्टा हैं, वे ही प्रकृति हैं अर्थात् जो सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, उन्होंको प्रकृति कहते हैं। अथवा प्रशब्दका अर्थ सत्त्व, ह शब्दका रजः और ति शब्दका अर्थ तमः हैं। जो इन तीन गुणोंकी खरूपा, सर्वशक्ति-समन्विता और सृष्टि करनेमें प्रधान हैं, वे ही प्रकृति हैं। अथवा प्रशब्दका अर्थ रहना और कृति शब्दका अर्थ सृष्टि है। जो देवी सृष्टिके पहले वर्त्त मान थीं, उन्होंका नाम प्रकृति है। जब भगवानने इस जगत्की सृष्टि को, तब वे योग द्वारा दो मागोंमें विभक्त हुए थे, दक्षिणाङ्गमें पुरुष और वामाङ्गमें प्रकृति । अत्यव यह प्रकृति ब्रह्मखरूपा, नित्या और सनातनी है।

दुर्गा प्रभृति जिन पांच प्रभृतियोंकी कथा उत्पर लिखी गई है, उनके सहए और लक्षणका विषय ब्रह्मचेचर्च-पुराणके प्रकृतिखण्डमें सविस्तार लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

पुरुपके नामके पहले प्रकृति नामका उद्यारण करना होता है। यदि कोई पुरुपका नाम पहले उद्यारण करके पीछे प्रकृतिका नाम ले, तो उसे मातृगमनतुल्य पाप होता है। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजनमस्व० ५० अ०)

सस्य, रजः, और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि प्रकृतिके कीई कारण नहीं है, इसीसे इसको प्रकृति कहते हैं। महदादि प्रकृतिके विकार वा कार्य हैं।

"प्रकृतेः कारणायोगानमता प्रकृतिरेव सा । महत्तत्त्वाद्यः सप्तंशक्तेविंकृतयः स्मृताः॥"

(भावप्र०)

जव सत्त्व, रजः और तमोगुण समभावमें रहते हैं, तव उसे मूलप्रकृति कहते हैं। भावप्रकाश और सुश्रुत-प्रभृतिमें प्रकृतिका विवरण जो लिखा है, वह सांख्यमतके जैसा है, इसीसे उसका विषय यहां नहीं लिखा गया। अभी अति संक्षिपभावमें सांख्यमतानुह्न प्रकृतिका विषय दिया जाता है।

प्रकृति ही जगत्क सूल वा वीज है। प्रकृतिसे ही विश्वव्रह्माएड उत्पन्न हुआ है। प्रसृतिकी जव विकृति अवस्था है, तव ही जगत् अवस्था है अर्थात् प्रकृतिके विकार वा परिणामसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है । प्रकृतिकी जब तक स्वरूपाबस्था है, तब प्रलयाबस्था है । प्रकृतिके दो प्रकारका परिणाम है, खरूपपरिणाम और विरूप-परिणाम । खरूप-परिणाममें प्रकृति-अवस्था अर्थात् अन्यक्तावस्था है। विरूप परिणाममें यही जगद-वस्था है। प्रकृतिके जव विरूप परिणाम होता है, तव इस जगत्का आविर्भाव और जव खद्धपपरिणाम होता है, तव ही जगन्का ध्वंस हो कर प्रलय हुआ करता है। इस प्रकार प्रकृतिके खरूप और विरूप परिणामसे जगत्-का आविर्माव और फिर तिरोभाव होता है। प्रकृति ही जगन्का आदि कारण वा जगन्का वीज है। सृष्टिकी पूर्वावस्था, प्रकृति वा अव्यक्त तत्त्व अत्यन्त दुर्लक्ष्य, व्यापक और शब्दस्पर्शादि गुणवर्जित है। अतएव प्रकृति-का खरूप कैसा है, इसका पता लगाना वहुत कठिन है। संसारी पुरुपोंके लिये मूलप्रकृति और उसके निजका असंसारीहर निराकरण करना वड़ा हो कठिन है। जिसने कभी दूध नहीं देखा है, केवल घी ही देखा है, बैसे व्यक्तिको घोको प्रकृति अर्थात् उत्पत्तिस्थान दूधके भाकारका अनुभव कराना जैसा कठिन है, वैसा ही वर्त्त-मान जगद्दएा साधारण जीवको इसके मूल प्रकृतिके खद्भपका अनुभव कराना एक प्रकार दुःसाध्य है।

प्रकृति और पुरुपका विषय रूपकमावमें इस प्रकार वर्णित है। प्रकृतिको कुलकामिनी और संसारी पुरुप-को खामी वतलाया गया है। प्रकृति अपने खामी-पुरुप-के निकट आत्मगरीर हमेशा आवृत रख कर हपशोकादि प्रकट करती है। पुरुप भी उस आवृताङ्गीके वृथा आलि-ङ्गनसे मुख हो कर वृथा हपैशोकादि अनुभव करते हैं। इस अवस्थामें यदि कोई प्रकृतिका खरूप जानना चाहे तो उनका यह अभिप्राय सहजमें पूर्ण होगा।

पहले अधिकारी होना पड़ेगा। अधिकारी होनेमें श्रवण, मनन और निदिध्यासनकी आवश्यकता है। श्रवणादि द्वारां घीरे घीरे चित्तप्रसाद उपस्थित होगा। चित्त जब अति सुप्रसन्न अर्थात् निर्मल होगा, तब प्रहाति का आलिङ्गन अर्थात् विषयानुभवजनित सुख अच्छा नहीं लगेगा। उस समय ये सब सुख सुख नहीं सममे जायंगे, प्रत्युत किस प्रकार इसका परिहार हो, किस प्रकार इसके आक्रमणसे रक्षा मिले, इसी प्रकारकी चेष्टा उत्पन्न होगी। जब यह देखा जाय, कि चित्त दुःखिमिश्रित सांसारिक सुखसे अत्यन्त चिरत हो गया है और मैं क्या हं, इस प्रक्षका प्रत्युत्तर पानेके लिये ब्याकुल हो रहा है, तभी जानना चाहिये, कि प्रकृति देखनेका अधिकार हुआ है। उस समय प्रकृतिको देखनेको जो चेष्टा होगी, वह विफल नहीं जायगी।

यहां यह कह देना आवश्यक है, कि प्रकृति इन्द्रियज्ञानका गोचर नहीं है। प्रकृति दर्शनके लिये केवल
तीन उपाय निर्द्धारित हैं, श्रवण, मनन और निदिश्यासन। प्रकृति-परिज्ञानके निमित जो सब आप्तयाक्य
हैं, उनका अर्थावधारण करनेका नाम श्रवण,
अवधृत अर्थको अनुकूल-युक्ति द्वारा हुढ़ अर्थात्
अयिचात्य करनेका नाम मनन और उस हुढ़क्रत
अर्थका निरन्तर ध्यान करनेका नाम निदिध्यासन है।
यह निद्ध्यासन-सांख्यमें तत्त्वाभ्यास नामसे ख्यात है।
तत्त्वाभ्यास वारम्वार करते करते चित्तका जड़त्व विनाश
हो कर सत्त्वोत्कर्ष होता है और मनको प्रकाशशिक
वढ़ती है।

प्रकृति-परिज्ञानके लिये शास्त्रमें ये सव आमवाक्य सिन्नवेशित हैं—"नेद्ममूलं भवित" "सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः।" (श्रुति) अर्थात् जो जो वस्तु उत्पन्न होतो है, वहो वही वस्तु प्रजा है। जो जो वस्तु प्रजा है, वही वही वस्तु जन्मवान है। जिसकी पैदाइश है, उसका मूल है। वह मूल क्या है? वही मूल प्रकृति है, प्रकृति मूलकारणकी संज्ञा है और कुछ भी नहीं है। यह मूल सत्त्वादि तोनों दृज्योंका सम्भहार है। श्रुतिमें लिखा है,—

"सजामेकां लोहितशुक्कष्टणां वह्नैः प्रजाः स्जमानां नमामः। अजा ये तां जुषमानां भजन्ते जहत्येनां भुक्तभोगां,नुमस्तान्॥"

'लोहित' रजः 'शुक्त' स<del>रव</del> और 'कृष्ण' तमः ये ही

सिम्प्रिलित तीन द्रव्य आदि तत्त्व वा मूल हैं। उसी मूलसे इस असंख्य विचित्त प्रजाकी उटपत्ति हुई है। जिस प्रकार पिता माठाका अधिकांश गुण सन्तानोंमें रहता है, उसी प्रकार प्रकृत्युत्पन्न जगत्में उसके गुण संकान्त हुए हैं।

'ब्स्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' श्रीर तम नामक तीनों द्रव्योंकी साम्यावस्था है अर्थात् तीनों द्रव्य समभावमें वा अन्युः ज्ञथ नातिरिक्त भावमें रहते हैं, तव उन्हें प्रकृति कहते हैं। प्रकृति, प्रधान, अध्यक्त, जगदुयोनि, जगदीज ये सब एक पर्वायशब्द हैं। जब उनको न्यूनाधिकता घटती है अर्थान् एक प्रवृद्ध हो कर दूसरेको अभिभूत करता है, तव थोड़ा थोड़ा करके उसका नाना परिगान आरम्म होता है। प्रकृतिके इस प्रकार परिगाम आरम्भ होनेसे प्रथम परि-णाश महत्, हितीय अहंकार और तृतीय इन्द्रिय तथा पञ्चतन्त्रात कड्लाता है। इस प्रकार प्रकृतिके परिणामसे जगत्को उत्पत्ति हुई है। प्रकृति क्षणकालमात भी परि-णत हुए विना नहीं रह सकती। ना गरिणम्बक्षणभ्य वित्रवे' इसीसे वे सर्वदा परिणता होती हैं।

शास्त्रका तात्पर्यं यह है, कि सत्त्व, रज, और तमः इन तीन सम्मिलित द्रव्यों वा तीन अवयवगुक्त एक अनश्वर द्रव्यका पारिभाषिक नाम प्रकृति है। ये अनादि और अनन्त हैं। प्रकृति गुणपदार्थं है वा द्रव्यपदार्थं ? इसके उत्तरमें शास्त्रने कहा है, कि प्रकृति द्रव्यपदार्थं है। सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों ही यदि द्रव्य हीं, तो इन्हें गुण क्यों कहते ? इसका कारण यह है, कि शास्त्रकारगण उप-करणद्रव्यको गुण और अङ्ग कहा करते हें। सत्त्वादि द्रव्य भी आत्माके सुख-दुःखके उपकरण हैं, इसी कारण वे गुण हैं। पशु रस्सीसे वांधे जाते हैं और रस्तीके नहीं रहने पर वे खुळे रहते हों, इस कारण रस्सी गुण है। पुरुष भी सत्त्वादिगुणसे वद्य और तिह्रक्वेदसे सुक्त होते हैं, उसीके अनुसार सत्त्वादि गुण हें। पुरुष-रूप पशु इससे वांधे जाते हों, इस कारण इसका गुण नाम पड़ा है।

जिस प्रकार स्थ्मतम वीजसे फलपतादिसम्पन्न प्रकारड वृक्ष उत्पन्न होता है, उसा प्रकार जगद्रीज Vol. XIV 117

प्रकृतिसे यह विशाल ब्रह्माएडस्पो वृक्ष उत्पन्न हुआ है। प्रकृतिके परिणाम अर्थात् जगतीस्य पदार्थोंके कार्यं कारण प्रभावको परीक्षा करनेसे उससे चार सत्य उप-लब्ब होते हैं। प्रथम—कारणह्यका जो कुछ गुण है, वह कार्यद्रव्यमें संक्रमित होता है,--जिस प्रकार प्रदृक्ति समस्त गुण तदुत्वन्न घटमें अनुकान्त होते हैं। द्वितीय-जो जब बिनष्ट होता है, वह उस समय खीय कारणमें ही विर्छान हो जाता है। दीप बुम्ह गया, परन्तु बह शिखाकार अग्निपिएड कहां गया ? मालूम होता है, कि हवा छगने पर वा हवाके नहीं रहने पर वह वुकः गया। वुम्त जाने पर इस व्यापारके प्रति प्रणिधान करनेसे देखा जाता है, कि जी बायु पुञ्चलनका कार्ण है, दीप नामक अग्निपिएड उसी कारण वायुमें लीन हो गया है, इसके सिवा और कुछ भी नहीं है। अतएव जो जब विनष्ट होता है, वह उस समय अपने कारणमें ही विलीन हो जाता है। कारणमें विलीन होना—कारणापन्न होना ही विनाश है। तृतीय-कार्यकी अपेक्षा कारणकी सुस्मता है। न्यप्रोधवुक्षका कारणीभृत न्यप्रोध बीज है, उसकी अपेक्षा वह वहुत ही स्ट्रम है। चतुर्थ-कार्य अपने कारणको आयत्त नहीं कर सकता, किन्तु कारण कर सकता है। इन्हीं चारों नियमों से प्रकृतिज्ञानकी उपयुक्त युक्ति उत्पन्न होती है। प्रकृतिकी स्क्मता, व्यापकता, उमका अस्तिस्व और स्थिति पुकार जाननेके लिये योग-वळ और उसका साधन आवश्यक है, अन्यथा पृङ्गतिका खरूप किसी हालतसे जाना नहीं जा सकता।

यहां तक शास्त्र और युक्ति हारा जो कुछ दिखलाया
गया, उससे माल्म होता है, कि आत्मा (पुरप) भिन्न
आत्रह्म स्तम्त पर्यन्त समस्त जगत् पृष्ठित है। मृल प्रकृति
अति स्तम् और आदिम है। उस आदिम पृष्ठिती
कर्मणः विद्यत हो कर इस असीम ब्रह्माएडकी एप्टि की
है और असी भी वे ब्रह्माएडाकारमें अवस्थान करते है।
जगत्को मृल या अव्यक्त अवस्थाका नाम पृष्ठित और
व्यक्तावस्था वा सविकार अवस्थाका नाम जगत् है।
पृष्ठितका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता।
प्रकृतिके अवस्थागत भेदके अनुसार प्रकृतिका धर्म वा
स्वमाव अत्यन्त पृथक् है। उसकी अव्यक्तावस्थामें

्रैं किसी विशेष धर्मका कृकाश नहीं रहता। जितने परिणाम होते हैं उतने ही भिन्न भिन्न धर्म प्रकट हुआ करते हैं। प्रकृति जाननेका एक और संकीण उपाय है। यह यों है, -कृतिम और धकृतिम जो कुछ द्रश्य है उसका मूळ स्थूळ-भूत है। स्थूळभूतका मूळ स्क्ष्मभूत, स्क्ष्मभूतका मूळ अहंतत्त्व, अहंतस्वका मूळ महत्तत्त्व और जो मह-त्तत्त्वका मूळ है, वही प्रकृति है।

प्रकृतिका साधर्म्य और वैधर्म्य पहले ही कहा जा चुका है। जगत्की अध्यकावस्था प्रकृति थीर उसकी न्यकाचस्था जगत् है । अन्यकावस्थाका धर्म न्यका-वस्थाके धर्मसे पृथक् है। तिगुणात्मिका प्रकृतिकी दो अवस्थाके समस्त श्रमींको दो धेणी करके समभना होगा । एक श्रेणीमें साधारण धर्म और दूसरी श्रेणीमें असाधारण धर्म है। सांख्यशास्त्रका स्थूल सिद्धान्त यह है, कि कितने धमें ऐसे हैं जो वाक्तावस्थामें रहते हैं, अवाकावस्थामें नहीं रहते और कितने धर्म ऐसे हैं जो अवाकावस्थामें ही रहते हैं, वाकावस्थामें नहीं रहते। फिर वहुतसे धर्म ऐसे भी हैं जो दोनों ही अवस्थामें रहते हैं। जो केवल अवाकावस्थामें रहते हैं, वाकावस्थामें नहीं रहते, वे अवाकावस्थाके असाधारण धर्म हैं। इसी प्रकार वाकावस्थाके सम्बन्धमें जानना चाहिये। फिर जो सभी अवस्थाओंमें रहते, वे प्रकृति और विकृति इन दोनों ही अवस्थामें रहते हैं। वे प्रकृति और विकृति इन दोनों अवस्थाओं के साधारण धर्म हैं। यह भी स्परण रखता होगा, कि जो अग्राकावस्थाका साधर्य है, वह वाकावस्थाका वैधर्म्य और जो वाकावस्थाका साधर्य है, वह अवाक्तावस्थाका वैधर्य है।

व्यक्तावस्थाका साधर्म्य प्रत्येक व्यक्त सहेतुक, अनित्य, अन्यापी, सिक्रिय, अनेक और आश्रित अर्थात् कारण द्रव्यका आश्रय किये हुए हैं; लिङ्ग, सावयव और प्रतम्ब अर्थात् कारणके अर्थान है। ये सव व्यक्तावस्था-के साधर्य और अव्यक्तावस्थाके वैधर्म्य हैं।

ष्मयक्तावस्थाका साधम्य-अहेतुक, नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, श्रनाश्चित, अलिङ्ग, निरवयन और अपरतन्त्र अर्थात् कारणके अभीन नहीं है। ये सन अवाकावस्थाके साधम्य और वाकावस्थाके वैधम्य हैं। दोनों अवस्था- के साधम्य न्त्रेगुण्य हैं अर्थात् गुणतयकी अवस्थित, अविवेकिता, विषय, सामान्य, प्रसवधमीं हैं। ये सव वाकावस्थामें भी हैं और अवाकावस्थामें भी। इन सव धमाँके प्रकृतिकी स्वरूप शक्तिमें आरूढ़ रहनेके कारण इनके द्वारा केवल प्रकृतिका अवस्थामें व और आत्माकी स्वतन्त्रता निणींत होती है। किन्तु जिससे आत्माकी भोगसिद्धि होती है, जगत्का कार्य सुवावरूपसे चलता है, वह धमें उसकी अवयवशिकां अवस्थित है।

अनयवर्शकार्में कीन कीन धम अवस्थित है, उसका नियय नीचे लिखा जाता है। प्रकृतिके एक अनयवका नाम सत्त्व है। यह सत्त्व लघुप्रकाश और सुखराकिषिशिष्ट है। प्रसन्नता, स्वच्छता, प्रीति, तितिका और सन्तो-पादि अनेक मेद रहने पर भी उन्हें सामान्यतः सुखान्मक कहा गया। एक दूसरा अवयव रज है। यह रज गुण्लघुका समावेशसाधक, उपएम्भक, वाधा और बलका समावेशकारक, चलनशील और दुःखात्मक है। इसके भी शोकादि नाना भेद हैं। तीसरे अवयवका नाम तम है। यह तम गुण्ल, आवरक अर्थात् प्रकाशका पृतिवन्धक और मोहरूपी है। इस तमोगुणकी निद्रा, तन्द्रा, आलसा, वुद्धिमान्य आदि अनेक भेद रहने पर भी संक्षेपमें इसे मोहात्मक कहा गया है।

उक्त गुणान्वित तीनों द्रवा जव सममागमें रहते हैं, तव पृक्ठित पदामिधेय और वर्णनातीत है। वैपन्य वा विकृतसे आरम्म होने पर पृक्ठितमें वह धर्म उद्गृत वा पृवाक और वर्णनीय हुआ करता है। इसीसे सत्वादि-द्रवाके क्रमानुयायी अन्य नाम शुक्क, रक्त और कृष्ण रवे गये हैं।

सांख्याचार्यांका सिद्धान्त है, कि पृष्ठिक ित्रगुणता-निवन्धन जगत्की पृत्येक वस्तु ितगुण है। पृत्रांक धर्मसमूह अर्थात् सुख, दुःख, मोह, पृकाश, पृवृति, नियमन, लघु, चल और गुरु ये सब धर्म जगत्की पृत्येक वस्तुमें हैं। यहां तक, कि पक सामान्य तृणशरीरमें भी वे सब गुण थोड़ा बहुत करके जक्तर हैं। ऐसे तारतस्यका कारण गुणसंयोगका तारतस्य है। जगत्में जो लैगुण्य देखा जाता है, पृष्ठिका तैगुण्य ही उसका कारण है। पृष्ठित ही समस्त जगत्का कारण और जगत् उसका कार्य है। कारणमें जो नहीं रहता, कार्यमें उसका रहना विलक्कल असम्मव है। ऊपर कहे गये तीनों गुणोंके घर्मके अतिरिक्त और सी अनेक विशेष धर्म हैं। उन्हीं धर्मोंके रहनेसे जगत्को पेसी विचित्रता है। वह धर्म अभिभावा और अभिभावक भाव है। जितने गुण हैं, सभी एक दूसरेकी अभिभूत करते हैं और सभी आपसको वाधा देनेकी चेष्टा करते हैं—यहो भाव है। सत्त्वके पृवल होनेसे यथासम्भव रज और तम अभिभूत होता है। तम पूंबल हो कर सत्त्व और रजको अभिभव करता है। इस प्कार एक दूसरेको अभिभव करनेका नाम अभिभाष्य अभिभावक भाव है। सत्त्वादि तीनों गुण एक दूसरेके अभिभावा और अभि भावक हैं अथच एक दूसरेके सहचर हैं। एक दूसरेको छोड नहीं सकता। तम है, सत्त्व नहीं है, वा सत्त्व है, तम नहीं है, पेसा नहीं होता। तोन तीनोंके ही सहचर हैं। समस्त वस्तु तिगुण तो हैं, पर समितगुण नहीं हैं। समान तीन गुण जगद्वस्थामें नहीं रहता। न्यूना-धिक भावमें रहनेसे ही जगत्की ऐसी विचितता है।

प्रकृतिका परिणाम ।- पहले ही कहा जा चुका है. कि प्रकृति परिणामिनी है प्रकृति परिणता हुए विना क्षणकाल भी ठहर नहीं सकती । जव जगत् नहीं था, तव प्रकृतिकी वह अवस्था महाप्रखय, अव्यक्त और प्रधान कहलाती थी । किन्तु उस अवस्थामें भी प्रकृतिके परिणामका विराम नहीं था। परिणाम-वादी कपिलका कहना है, कि परिणाम दो पुकारका है, सदृशपरिणाम और विसदृश परिणाम। परिणाम, परिवर्त्तन, अवस्थान्तर, खद्भप-प्रस्युति ये सव एक हो अर्थमें व्यव-हत होते हैं। महाप्रलयकालमें जो परिणाम होता है वह सद्भगपरिणाम है। सत्त्व सत्त्वकृपमें, रजः रजोरूपमें और तमः तमोद्भपमें जो परिणत होता है, उसे सदूशपरिणाम कहते हैं। जब विसदृश परिणाम आरम्भ होता है, तभी जगत् रचनाका आरम्भ है। जगत् अवस्थाके आने पर प्रकृति नये नये विसदृश परिणाम प्रसव करती है। विसदृशपरिणामका विवरण यह है, कि महत् तन्माल उत्पत्ति और उसोके स्थलभूत प्रभृतिके फलसे विभिन्न वस्तु उत्पन्न होती है।

उक्त दी प्रकारके परिणाम सर्वकालके निमित्त-निय-मित हैं। अति दूर अतीतकालसे अनन्त भविष्यकालका निमित्त-नियमित है। स्वामाविक वा सहज जान कर जिसे अपरिणामी समऋते हैं, वह भी यथार्थमें अपरि-णामी नहीं है। चन्द्र, सूर्य, जल, वायु आदि इनमेंसे कोई भी अपरिणामी नहीं है। पर हां, वे सब प्राकृतिक जड़. पदार्थके परिणाम हैं, अत्यन्त मृदु और सूत्रम हैं। वस्तु-का तीव परिणाम अति शीव अनुभूत होता है। चन्द्र स्य आदि मृदु परिणाममें आवद्ध रहनेके कारण उनका परि-णाम अनुभवगोचरमें तो नहीं आता, पर युक्तिगोचरमें अवश्य आता है। मृदु परिणामकी चरमसीमा ही सदृश परिणाम जाननेका द्रष्टान्त है। तीत्र परिणामकी इतनी तीवता है, कि पूर्वक्षणमें समुत्पन्न वस्तुका परिणाम पर-क्षणमें हो अनुभूत होता है। फिर मृदु परिणामकी इतनी मृद्ता है, कि कई शताब्दी तक उसकी कुछ भी उपलब्धि नहीं होती ।

प्रकृतिके विशेष विशेष परिणामका नाम जनम, मृत्यु, जरा, उत्पत्ति, स्थिति, लय, वाल्य, यौवन, वार्द्धम्य, जोर्णता,नवता, मध्यता और दृढ़ता इत्यादि है। कल सूर्यको हमने जिस अवस्थामें देखा था, आज उसकी वह अवस्था नहों है, परिणाम हो गया है। आदिसर्गकालमें पृथिवीके प्राणीका जैसा समावादि था, तथा किपलके समय जैसा था, आज हम लोगोंके समय वैसा नहीं है, परिवर्त्तन हो गया है। अधिक क्या कहा जाय, परिणामसमावा प्रकृतिके, तहुत्पन्न पृथिवी और तदाश्रित स्थावर जङ्ग-मात्मक वस्तुके अनिर्वाच्य परिणामकी कथाका मन ही मन विचार करना भी कठिन स्यापार है।

सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त है, कि प्रकृति जड़ा, अस्वा-धीना अथच जगत्की निर्माणकर्ती है। इस सिद्धान्त पर विरुद्धवादियोंका कहना है, कि जड़वस्तु आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती। यद्यपि कोई जड़ कभी भी आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती। यद्यपि कोई जड़ कभी भी आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती, तो भी उसकी वह प्रवृत्ति अनियमित अर्थात् श्रृङ्खलाहीन है। ज्ञानशक्ति नहीं रहनेसे कोई भी कभी नियमित कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार सुकौशलसम्पन्न जगत्का निर्माण क्या इच्छादि गुणशून्य जड़स्वभावा प्रकृति द्वारा सम्भव है? ज्ञानशून्या प्रकृतिके इसकी कही होने पर अव तक वह विश्वङ्खल हुआ रहता अथवा नियमितकपसे चन्द्र सूर्यादि परिभ्रमण नहीं कर सकते । मनुष्यका पुत मनुष्य और वृक्षका अंकुर वृक्ष न हो कर कुछ औरका और होता । अतपव जगतकी विचित्तता देख कर यह अनुमान करना होगा, कि इसके मूलमें अव्याहतेच्छ ज्ञानसम्पन्न सर्वशक्तिमान् कोई एक कर्तृ पुरुप अधिष्ठाता वा नियामक हैं । वे ही प्रकृतिके द्वारा सुनियमसे जगत्की सृष्टि और स्थित करते हैं।

इस पर कपिल कहते हैं, सो नहीं—रथ एक अचेतन वस्तु है, चेतनावान पुरुप उसमें अधिष्ठित रह कर उसे जिस प्कार स्वेच्छानुसार नियमितकपसे गतिमान करते हैं अथवा सुवर्णखण्ड एक जड़द्रश्य है, कोई कुराली स्वर्णकार उसका अधिष्ठाता वा कर्त्ता हो कर उसे जिस प्रकार परिणामित करता है, प्रकृतिके सम्बन्धमें उस प्रकार परिमापक वा प्ररणकर्त्ता कोई नहीं हैं । वैसे अधिष्ठाताका अनुमान निष्ययोजन है। प्रकृति जड़ हैं, इस कारण रथनियन्ता सारथिकी तरह उसका कोई स्वतन्त्व नियन्ता है, ऐसी कल्पना करना निष्ययोजन है। प्रकृति अस्वाधीन है, इस कारण उसे परिणामित करनेके लिये अन्य पृथक् व्यक्तिका प्रयोजन नहीं होता। अनादि और अनन्त पुरुपण हो उसके अधिष्ठाता हैं और निज शिक्त हो उसके परिणामकी प्रयोजक है।

इस पर कपिल कहते हैं—''तत्विक्ष्यानादिषष्ठातृ'व' मणिवत्।"

जिस प्रकार सन्तिधानवशतः इच्छादि गुणहीन जड़ख-भावयुक्त अथस्कान्तमणि लोहेके सम्बन्धमें सचेतन अधि-प्राताकी तरह कार्यकारी होता है, उसी प्रकार सान्निध्य-वशतः निर्गुण निष्क्रिय आत्मा ही वेसी प्रकृतिके अधि-प्राता वा प्रेरकका कार्य करती है। जिस प्रकार लोह और चुम्बक दोनों ही जड़स्वभावके, इच्छादि गुणशून्य और स्वयं प्रवृत्तिरहित अथच परस्पर सन्निहित होते ही एक दूसरेकी विकिया उपस्थित करती है, उसी प्रकार आत्मा-के निष्क्रिय और निरिच्छ तथा प्रकृतिके जड़ा और खतः प्रवृत्तिरहिता होने पर भी सन्निधानविशेषके वलसे प्रकृतिशरीरमें परिणामशक्तिका उदय हुआ करता है।

र जङ्खभाव कह कर अनियमित परिणामकी आशङ्का अलोक आशङ्का है। क्योंकि, नियमितरूपसे परिणत होना ही प्रकृतिका स्वभाव हैं। तद्जुसार प्रत्येक वस्तु ही नियमित परिणामके अधीन है। दूधका दिधि मिन्न कर्दम-परिणाम नहीं होता।

सांख्याचार्य ईश्वरकृष्णने कहा है—"विल्लवत् प्रति प्रतिगुणाक्ष पविशेषात्" मेघनिमु<sup>°</sup>क सछिल एक है, उसका एक रूप है और एक रस है; किन्तु वह एक और एक रसात्मक जल पृथ्वी पर आ कर नाना प्रकारके पार्थिव विकारोंके संयोगसे अर्थात् ताल और ताली आदि भिन्न भिन्न वीजभावापन्त विकारके साथ संयुक्त हो कर विभिन्न रूपमें विभिन्न रसमें परिणत हुआ करता है। तालवीज वा तालचूक्षने जिसे आकर्षण किया, वह एक रस हुआ और नारिकेलने जिसे आकर्षण किया, वह अन्य रस हुआ । अतएव एक ही जल जिस प्रकार कारण-विशेषके संसर्गसे भिन्न भिन्न फल और भिन्न भिन्न वस्तुमें कटु, तिक, कपाय, मधुर और अम्रु आदि रस उत्पन्न करता है, उसी प्रकार पृकृतिनिष्ठ गुणतयके एक एक गुणका अभिभव और एक एक गुणका समुद्भव हो जानेसे पुवलके सहयोगसे दुवैल गुण विकृत हो जाते हैं। अतएव पृक्तिके नियमित परिणामके लिये पृक्ति-की स्वीय शक्ति वा स्वतःसिद्ध स्वभाव व्यतीत सतन्त्र पूरक रहना अकल्पनीय है।

प्रकृतिका प्रथम परिगाम ।—पृकृतिका पृथम विकाश महत्तत्त्व है। यह खिएके प्रारम्भमें असंसारी और अश्ररीरो आतमाके सिनिधियशतः पृकृतिके मध्य प्रथम पृस्कृतित होता है। पहले गुणसमुदायके साम्यमङ्गसे सबसे पहले रजोगुणने सत्त्वगुणको उद्गिक किया था अर्थात् पहले मूलपृकृतिसे सभी तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। मूलपृकृति, महत्त्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, कप, रस और गन्धतन्माव ये पञ्चतन्माव, पञ्चकमेन्द्रिय, पञ्चशानेन्द्रिय और मन ये एकादश-इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत यही चौवीस तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व पृकृत्युत्पन्न हैं, सुतरां जड़ हैं। सांख्याचार्यने दन सब तत्त्वोंको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है—

"मूलपुकृतिरविकृतिमेहदाद्याः पृकृतिविकृतयः सप्त। योड्शकस्तु विकारो न पृकृतिने विकृतिः पुरुषः॥" (सांख्यका०३) कुछ तत्त्व केवल ही प्रकृति हैं अर्थान् किसीकी भी विकृति नहीं है। कुछ तत्त्व प्रकृति-विकृति हैं अर्थान् उभयात्मक हैं, प्रकृति भी है और विकृति भी है। कोई कोई तत्त्व केवल विकृति है अर्थात् किसी भी तत्त्वकी प्रकृति नहीं है। प्रकृति शब्दका अर्थ उपादान-कारण और विकृतिका अर्थ कार्य है। जिस मूलप्रकृतिसे जगन्की उत्पत्ति हुई है, उसका कोई कारण नहीं है। क्योंकि, मूलप्रकृति कारणजन्य होने पर वह कारण भी कारणान्तर-जन्य है। फिर वह कारण भी अपरकारणजन्य है इत्यादि क्यसे अनवस्था दोषका निवारण करनेके लिये मूल प्रकृतिका कोई कारण नहीं है। अतः इस स्वतःसिद्धको अवस्य स्वीकार करना पड़ेगा।

अतएव केवल मूलप्रकृति ही प्रकृति है, किसीकी नी विकृति नहीं है । महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चतन्त्राल ये सात प्रकृति-विकृति वा उभयरूप हैं अर्थात् किसी तत्त्वकी प्रकृति और किसीकी विकृति है। महत्तत्त्व मूखप्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण वह मूलप्रकृतिकी विकृति है । इस महत्तस्वसे अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई है। इसीस महतस्त्र अहङ्कारत्तस्त्र को प्रकृति है। उक्त प्रकारसे अहङ्कारतस्य प्रहस्तस्यकी विकृति है और उससे पञ्चतन्मात्र तथा एकाव्या इन्डियों-की उत्पत्ति हुई है, इस कारण अहङ्कारतत्त्व, पश्चतन्मात और एकादश इन्द्रियकी प्रकृति है। पञ्चतनमाल भी उक्त-रूपसे अहङ्कारतत्त्वको चिक्रति है और उससे पञ्चमहा-भूतकी उत्पत्ति हुई है । इस कारण पञ्चमहाभूत और पकादश इन्द्रिय किसी भी तत्त्रान्तरकी उपादान आरम्भक नहीं होती। सुतरां वे प्रकृति नहों हैं, केवल विश्वति हैं। सांख्यके मतसे प्रकृति जगन्का मूळ है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

इस विषयमें वादियोंका विस्तर मतभेद देखा जाता है। प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, यह सब कोई स्वीकार नहीं करते।

वौंद्ध लोग असद्वावी हैं। उनके मतानुसार अभावसे भावकी उत्पत्ति होती है। उनका कहना है,—वीजसे अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती; किन्तु पार्थिव उल्लाता और

Vol. XIV. 118

जलादिके संयोगसे जब बीज विनष्ट हो जाता है, तब अंकुरकी उत्पत्ति हुआ करती है। सुतरां भावद्वप वीज अंकुरका कारण नहीं है। वीजका पृथ्वंसहत अभाव ही अंकुरहर भावपदार्थका कारण है। इस दृष्टान्त द्वारा सर्वत अभाव ही भावोद्यिता कारण है। वौद्ध-गण ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचे हैं ; किन्तु इस पर सांख्या वार्यगणका कहना है. कि यह सिद्धान्त समा-त्मक है। वीजके पृथ्यंसके वाद अंकुरकी उत्पत्ति होती हैं, सही पर वीजका निरम्बय विनाश नहीं होता : वीज विनष्ट तो होता है, पर विनष्ट वीजका अवयव नष्ट नहीं होता। वह भावभूत वीजावयव अंकुरका उत्पादक है। वीजाभाव (वीजका अभाव) अंकुरका उत्पादक नहीं है। अभाव यदि भावीत्पत्तिका कारण हो, तो सव जगह सर्वभावोंकी उत्पत्ति हो सकती है। अतएव अभाव भावो-त्पत्तिका कारण नहीं हैं। भावपदार्थे ही भावपदार्थकी उत्पत्तिका कारण है। वौद्धोंके असद्वादकी तरह वैदान्तिक विवर्त्तवाद भी सांख्याचार्योंके निकट बादूत नहीं होता। प्कृतिके परिणाम द्वारा ही जगत्की उत्पत्ति हुई है, सांख्याचायोंने यही पृतिपादन किया है। विवर्त्त और विकारका छक्षण इस पुकार है :--

"सतस्वतोऽन्यथा पृथा विवर्त्ते इत्युदीरितः। अतस्वतोऽन्यथा पृथा विकार इत्युदाहृतः॥"

वस्तुके साथ जो अन्यथा पृथा वा अन्यक्ष जान है, वह विकार है और यस्तुके नहीं रहने पर भी जो अन्यक्ष जान होता है उसका नाम विवर्त्त है। इसका ताल्प्ये यह कि परिणामवाहिगोंके मतानुसार कारण विकृत वा अवस्थान्तर मात है अर्थात् कार्यकारणमें परिणत होता है। खतरां कार्यक्ष वस्तु है। कार्यकान निर्वस्तुक नहीं है। विवर्त्तवाहिगोंके मतसे कारण अविकृत हो रहता है, अथव उसमें वस्तुगत्या कार्य नहीं रहने पर भी केवल कार्यकी प्रतीति होती है। जिस प्रकार दुःधकी दृष्टिभावोत्पत्ति प्रश्तित परिणामवादका दृष्टान्त है और रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रश्च वा जगत् नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रश्चकी प्रतीति होती है। रज्जुसप्की प्रतीति-का कारण जिस प्रकार इन्द्रियदोय है, उसी प्रकार प्रश्च वा जगत् नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रश्चकी प्रतीति होती है। रज्जुसप्की प्रतीति-का कारण जिस प्रकार इन्द्रियदोय है, उसी प्रकार प्रश्च व्रातीतिका कारण जिस प्रकार इन्द्रियदोय है, उसी प्रकार प्रश्च व्रातीतिका कारण जिस प्रकार इन्द्रियदोय है, उसी प्रकार प्रश्च व्रातीतिका कारण जनारि अनारि अनिद्याह्म दोय है। रज्जुमें

पूतीयमान सपं जिस प्रकार रज्जुका विवत्त है, ब्रह्ममें प्रतीयमान प्रपञ्च भी उसी प्रकार ब्रह्मका विवर्त्तमात है। यथार्थमें प्रपञ्च नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। रज्जुसपंकी तरह प्रपञ्च भी प्रतीयमान मात है।

सांख्याचार्यों का कहना है, कि रज्जुमें सपंको प्रतोति होनेके वाद यदि प्रणिधानपूर्वक इसकी विवेचना की आय, तो यह सर्प नहीं है रज्जु है, ऐसा वाधज्ञान उप-स्थित होगा। सुतरां रज्जुमें सर्प-प्रतीति भ्रमात्मक है, ऐसा कहा जा सकता है। इसी युक्तिके अनुसार सांख्या-चार्यंते विवर्त्तवादका निराकरण किया है। थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम पड़ेगा, कि परिणामवादमें कार्य कारणसे भिन्न नहीं है. कारणका अवस्थान्तरमात है। दुग्ध द्धिरूपमें, सुवर्ण कुएडल रूपमें, मृत्तिका घटरूपमें और तन्तु परक्तपमें परिणत होता है। अतएव दिध, कुएडल, घट और पट यथाक्रम दुग्ध, सुवर्ण, मृत्तिका और तन्तुसे वस्तुगत्या भिन्न है, ऐसा नहीं कह सकते। कार्य यदि कारणसे भिन्न ही नहीं हुआ, तो ऐसा भी समभा जा सकता है, कि उत्पत्तिके पहले भी कार्य सून्म-रूपमें विद्यमान था । कारकव्यापार अर्थात् जिन सव उपायोंसे फार्यकी उत्पत्ति होती है यथार्थमें वे सव उपाय वा कारकव्यापार कार्यके उत्पादक नहीं है। क्योंकि, उसके पहले भी कार्य सूच्मक्षपमें कारणमें विद्यमान था। अतएव कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं है,-अभि-ध्यञ्जक वा प्रकाशक अर्थात् पूर्वमें सूत्म और अव्यक्तरूपमें कार्य विद्यमान था। कारकव्यापार द्वारा उसकी केवल स्थूलक्रपमें अभिवाक्ति होती है। अभी यह मालूम होता है, कि सांख्याचायों ने परिणामवादका अवलम्बन करनेके कारण सत्कार्यवाद ही स्थिर किया है। वेदान्तदर्शनके भाष्यमें शङ्कराचार्यने ये सव मत निराकरण किये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां ये सब विषय नहीं लिखे गये ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि सत्त्व, रजः और तमः यही तीनों गुण जगत्के मूल कारण हैं। जिस प्रकार वत्ती और तैल प्रत्येक अनल विरोधी होने पर भी दोनों मिल कर अनलके साथ कप्रकाशक्त्य कार्य सम्पादन करता है तथा वात, पित्त और श्लेष्मा परस्पर विख्य

समावका होने पर भो जिस प्रकार तीनों मिल कर शरीरश्रारणहर कार्य निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार तीनों गुण यद्यपि परस्पर विरुद्धस्थभावके हैं, तो भी तीनों मिल कर सकार्य सम्पादनमें समर्थ है। इन तीनों गुणों-मेंसे कोई भी हर परिणाम मिन झणकाल भी नहीं एह सकता, जगत्में जो वैपम्य दिखाई देता है, परिणाम, वैषम्य उसका हेतु है। प्रकृतिसे ले कर चरम पर्यन्त सभी जड़वर्ग ही संहत वा मिलित गुणतय सहत है। सुतरां सुख दु:ख मोहात्मक है। ये सब पदार्थ हैं अर्थात् दूसरेका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हैं। गृह, श्रम्या, आसनादि पदार्थ संघातस्य अथच परार्थ हैं, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। तदनुसार संघातमात ही परार्थ है, यह स्थिर किया जा सकता है।

प्रकृतिसे जगत्की सृष्टि हुई है। सृष्टि दो प्रकारकी है, प्रत्ययसर्ग और तन्मातसर्ग । प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तस्य वा बुद्धितस्य है। उसकी असाधारणवृत्ति वा व्यापार अध्यवसाय वा निरुवय है। वुद्धिके घर्म आठ हैं,—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, पेश्वर्य, अधम, अज्ञान, अवैराग्य और अनेश्वर्य । इनमेंसे प्रथम चार सात्विक और परवर्ती चार तामस हैं । महत्तत्त्वका कार्य अह-ङ्कारतत्त्व है। अभिमान उसकी वृत्ति है। यह अहङ्कार-तीन प्रकारका है-विकारिक वा सान्यिक, तैजस वा राजस और भूतादि वा तामस है। एकादश इन्द्रिय सास्त्रिक अहङ्कारसे और तन्मातपञ्चक तामस अहङ्कारसे उत्पन्न हुआ है । राजस अहङ्कार दोनों वर्गोंकी उत्पत्तिका साहाय्यकारीमात है । चक्षु, श्रोत, व्राण, रसन और त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रिय वा श्रानेन्द्रिय, वाक् पाणि, पाद, वायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। मन लगा कर एकादश इन्दिय और यह उभया-त्मक अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनोंमें क्या **झातेन्द्रिय और क्या कर्मेन्द्रिय कोई** भी मनके अधि-ग्रान भिन्न ख ख विष्यमें प्रवृत्त नहीं हो सकती। मन की असाधारण वृत्ति सङ्कल्प हैं । रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श ये पांच यथाक्रम चक्षरादि पांच युद्धोन्द्रियकी वृत्ति वा व्यापार है। वचन वा कथन, आदान वा ग्रहण, विहरण वा गमन, उत्सर्ग वा त्याग और आनन्द वे पांच यथाक्रम वागादि पश्चकर्मेन्द्रियकी वृत्ति है । मन, अहङ्कार और वुद्धि ये तीन अन्तःकरण हैं और चक्षुरांदि
दश वाह्यकरण हैं। अव तीनों अन्तःकरणकी असाधारण
वृत्तिका विषय कहा जाता है। उनकी साधारणवृत्ति
प्रणादि पश्चवायु हैं।

सभी तन्मां अति स्क्ष्म हैं, इसीसे चे अविशेष हैं। पञ्चतन्मातसे पञ्च महाभूवकी उत्पत्ति हुई है। इन पांच महाभूवोंमें कोई सुसकर और छद्यु, कोई दुःखकर और चञ्चल तथा कोई विपादकर वा गुरु हैं। अतपन ये विशेष नामोंसे पुकारे जाते हैं। समस्त विशेष भी तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं, स्क्ष्मशरीर, मातापितृज्ञ वा स्थूलशरीर और तद्विरिक्त महाभूत।

महत्तरव, अहङ्कार, एकाद्श इन्द्रिय और पञ्चतन्मात इत सर्वोको समिष्टि ही सूद्म शरीर है। समस्त इन्द्रियां शान्त, घोर और मूढ़ात्मक हैं। अतः ये सव विशेष हैं। सूद्ध्म-शरीर इन्द्रियधित हैं, इस कारण इसकी गिनती विशेष-में की गई है। प्रति पुरुपके लिये एक एक शरीर परि-कल्पित है। पुरुप एक एक शरीर प्रहण कर सुखदु:खादि-का भोग करते हैं। जब तक पुरुपकी विवेकल्याति नहीं होगी, तब तक प्रकृति पुरुपका साथ नहीं छोड़ेगी। प्रकृति पुरुपकी विवेकल्याति उत्पन्न करा कर आप ही अपसृत हो जांयगीं।

पुरवहा विशेष विवरण पृश्य ब्वहमें देखो ।

जो सव सृष्टिकी-कथाएँ कही गईं, वे पृष्ठतिके विरूप
परिणामसे होतो हैं, यह पहले ही कहा जा जुका है। जव
तक पृष्ठतिका पेसा विरूप परिणाम रहेगा, तव तक इस
जगत्की स्थिति है। फिर जब सक्य-परिणामसे आरम्म
होगा, तव भी इस जगत्का प्रलय होगा और जब प्रलय
होगा, तव इसी प्रणालीसे सभी पदार्थ कारणद्रव्यमें लीत
हो जायंगे। जो तस्त्रसे उत्पन्न हुआ था, वह उसीमें
लीन हो जायगा। पञ्चमहाभूत अपने कारणसामग्री पञ्चतन्मालमें, पञ्चतन्माल और एकाद्या इन्द्रिय अहङ्कारतस्त्रमें
तथा अहङ्कारतस्त्र महत्त्वमें और आखिर महत् जब प्रकृतिमें लीन हो जायगा, तव केवल मूल प्रकृति वस जायगी।
इस प्रकार प्रकृतिके स्वरूप और विरूप-परिमाणमें एक
वार जगत्की उत्यक्ति स्वरूप श्रंद वार जगत्का प्रलय
होता है। अन्यान्य विषय श्रंद्यर्शन शन्दमें देखो।

प्रकृतिज (सं॰ ति॰) प्रकृत्या जायते जन-ड । १ समावज जो प्रकृति या समावसे उत्पन्न हुआ हो । प्रकृति रूपेण जायते जन-ड । २ प्रकृतिसमावरूप सांख्यमत-सिद्ध सत्त्वादिगुण ।

प्रकृतिधर्म (सं॰ पु॰) प्रकृतिर्धर्मः । सांख्यमतसिद्ध प्रकृति-का धर्मभेद । प्रकृति देखो ।

प्रकृतियुख्य ( सं० पु० ) प्रवान पुख्य ।

प्रकृतिभाव (सं० पु०) १ खभाव । २ सिन्धका नियम जिसमें दो पर्दों मिलनेसे कोई विकार नहीं होता । प्रकृतिमण्डल (सं० क्ली०) प्रकृतीनां मण्डलं । १ राज्याङ्ग-खामी और अमात्यिद, राज्यके स्वामी, अमात्य, सुहद, कोप, राष्ट्र, दुर्ग और वल इन सातों अंगोंका समृह । २ प्रजाका समृह ।

प्रकृतिमत् (सं० ति०) प्रकृति-मतुप् । प्रकृतिविशिष्ट । प्रकृतिवत् (सं० अध्य०) प्रकृत्या तुल्यं प्रकृति-विति । १ पृकृतितुह्य, पृकृतिके सदृश् । २ व्याकरणपृसिद्ध आदिश्यमान पृकृतिभूतका स्थानिवत् कार्ये ।

पृकृतियशित्य (सं० पु०) पृकृतिको अधिकारमें छाने या रखनेकी शक्ति।

पृक्तिशास्त्र ( सं॰ पु॰) वह शास्त्र जिसमें पृक्तिक वार्तो-का विचार किया जाय।

प्ङ्तिसिद्ध (सं० ति०) स्त्राभाविक, प्राकृत, नैसर्गिक। प्रकृतिस्थ (सं० ति०) प्रकृति-स्था-क। १ खीय भावापन्न, जो अपनी प्राकृतिक भवस्थामें हो। २ खाभाविक

प्रकृतिस्थसूर्य (सं० पु०) उत्तरायण उहाङ्घन करके आया हुआ सूर्य ।

प्रकृतिजी भें (सं॰ पु॰) साधारण या साभाविक अजी भें । प्रकृत्यादि (सं॰ पु॰) प्रकृतिशब्द भादिर्यस्य । तृतीया-निमित्त शब्दगणमेद् । गण स्था—प्रकृति, प्राय, गोत, सम, वियम, द्विद्रोण, पञ्चक, साइस ।

प्रकृष (सं कि ) प्रकृष्यते हित प्र-कृष-क । १ प्रकर्ष-युक्त, प्रधान, खास । पर्याय—मुख्य, प्रमुख्य, प्रवह, वार्व्य, वरेण्य, प्रवर, पुरोग, अनुकर, प्राप्रहर, प्रवेक, प्रधान, अप्रे-सर, उत्तम, अप्र, प्रामणी, अप्रणी, अप्रिम, जात्य, अप्रा, अनुक्तम, अनवराई, प्रष्ट, पराई, पर । २ आकृष्ट, खिचा रुआ। प्रकृष्टता ( सं० स्त्रो० ) उत्कृष्टता, उत्तमता, श्रेष्टता । प्रकृष्टत्व ( सं० ह्वी० ) प्रकष्टता, उत्कृष्टता ।

प्रकृष्य (सं० ति० ) प्र-रुष-कर्मणि-क्यप् । खींचने लायक ।

प्रकलत (सं० ति०) प्र-क्लप-क । १ रचित । २ सम्भूत । प्रकलित (सं० स्त्रो०) प्र-क्लप-भावे-किन् । विद्यमानता, मौजूदगी ।

प्रकेत (सं ० ति०) प्र-कित-णिच्-अच्। १ प्रकर्प रूपसे ज्ञापक । (क्वी०) २ प्रकृष्टसुखसाधन अन्त । प्रकेतन (सं ० क्वी०) १ अन्न । २ प्रकृष्टरूपसे ज्ञापन ।

प्रकोट ( म'० पु० ) १ परकोटा । परिखा, शहरपनाह । २ घुस्स ।

प्रकोथ (सं॰ पु॰) प्र-क्वथ-भावे-त्रज् । १ प्रकृष्टपतन । ५ संशोप । ३ पूर्तिभावापन्न ।

प्रकीप (सं ० पु०) प्र-कुप-घज्। १ अतिशय कीप। २ जबरादिकी उत्कटता, वीमारीका अधिक और तेज होना। ३ श्लोम। ४ चश्चलता, चपलता। ५ शरीरके वान, पित्त आदि वा किसी कारणसे विगड़ जाना जिससे रोग उत्प-न्त होता है।

प्रकोपन (सं० क्वी०) प्र-कुप-त्युट्। '१ वन्धन । २ क्रुद्धकरण, गुस्सा करना, नाराज होना । ३ अन्यादिका उद्दीपन, आग सुलगाना । ४ क्षोभ । ५ चाञ्चल्य । ६ वात-पित्त आदिका कोष । वातादि संक्षोभके कारणको प्रकोप वा प्रकोपन कहते हैं। सुश्रुतके मतानुसार निम्नोक्त कारणसे दोपका प्रकोप होता है। वलवान्के साथ व्यायाम वा अतिरिक्त व्यायाम, स्त्री संसर्ग, अध्ययन, पतन, धावन, प्रपीड़न, अभिघात, लङ्घन, प्रवन, सन्तरण, राबि-जागरण, भारवहन, गज, अभ्व, रथ आदि पर चढ़नेसे, पैदल चलनेसे, कटु, कपाय, तिक्त वा रुक्षद्रया, लघु अथवा शीतल तेजःविशिष्ट द्रय्य, सुन्कशाक, सुन्कमांस, कोदों, मूंग, मसूर, अरहर और उरद आदि अन्न खानेसे अन्शन, विपरीत भोजन, अधिक भोजन करनेसे और वात, मूल, पुरीप, शुक्र, शर्दी, हिसा, उद्गार और अथु आदिका वेग रोकनेसे वायुका प्रकोप होता है। विशेपतः मेयाच्छन्न दिनमें, शीतलवायुके प्रवहनकालमें, प्रतिदिन प्रभात और अपराहकालमें तथा अत्र परिपाक हो जाने पर वायुका प्रकोप होता है।

कोघ, शोक, भय, चिन्ता, उपवास, अग्निदाह, मैथुन, उपगमन, अथवा कटु, असु, छवण, तीक्ष्ण, उय्म, छघु, विदाही, तिलतेल, पिण्याक, कुछथी, सरसों, चिकनाकी साग, गोधा, मछली, वकरें और भेड़े का मांस, वही, मद्या, छेना, कांजी, शराव या शरावकी कोई विकृति और असुरस्विशिष्ट फल, मद्दा और रौक्रका उत्ताप, इन सव कारणोंसे पित्तका प्रकोप होता है। विशेषतः उत्मिक्षा करनेसे या उत्मक्षालमें, मेधके अवसान पर, मध्याहकालमें या दोपहर रातिमें तथा भुकत्रच्य परिपाकके समय पित्तका प्रकोप होता है।

दियानिद्रा, श्रमका अभाव, मधुररस, अप्रुरस, छवण-रस, शीतळ, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिळ, द्रववस्तु, हैमन्तिक, धान्य, यव, माप, गोधूम, तिळिपिएक, दिघ, दुग्ध, कृशर, पायस, इक्षुविकार, मांस, मृणाङ, केशर, श्रङ्गाटक, मधुररसविशिए अङाबु और कुप्माएड आदि ळताफळ, सम्यक्भोजन वा अतिरिक्त भोजन, इन सबसे ख्लेपाका प्रकोप होता हैं। विशेपतः शीनिक्रिया करनेसे, शीत और वसन्त ऋतुमें तथा प्रतिदिन प्रातः और सायंकाळमें एवं भोजन करते हो रलेप्माका प्रकोप होता है।

पुकोपनीय ( सं० ति० ) पु-कुप-णिच्-अनीयर् । पृकोपनाहं, पुकोपनके योग्य ।

पुकोपित ( सं० ति० ) पृ-कुप-णिच् क, वा पृकोपः तारका-दित्वादितच् । पृकोप या उत्तेतित किया हुआ ।

पृक्षोपितृ (सं० ति०) पृ.कुप-णिच्-नृण्। पृक्षोपक, गुस्सा करनेवाला।

पुकोप्ट ( सं ॰ पु॰ ) पूकुष्यतेऽनेनेति पू-कुप-निष्कर्षे ( उपि-कुषीति । उण् २।४ ) इति स्थन् । १ कुर्परके अघो-भागस्थित मणिवन्ध पर्यन्त वाहुभाग, कोहिनोके नीचेका हिस्सा । २ द्वारका अंशविशेष, सदर फाटकके पासकी कोठरी । ३ वड़ा आंगन जिसके चारों और इमारत हो ।

पूकोच्या (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।
पूक्खर (सं० पु०) पूखर पूर्वोदरादित्यात् वा पृक्षर-अव्
सा। १ अध्यसन्नाह, घोड़े की पाखर। २ कुक्कुर,
कुत्ता। ३ अध्यतर, खचर। (ति०) ४ अत्यन्त तीव,

र्ताक्ष्ण, पूचएड । पूकन्तु (सं० ति०) प्-क्रम-तृन् । उपक्रमकर्त्ता, शुरू क्रुरनेवाला । पृक्षम (सं॰ पु॰) प्र-क्षम भावे घञ्। १ कम, शिलशिला। २ अवसर, मौका। ३ अतिक्रम, उल्लङ्घन। ४ पृथमा-रम्म, वह उपाय जो किसी कार्यके आरम्भमें किया जाय।

पूक्रमण (सं० क्वो०) पू-क्रम-ल्युट्। १ अच्छी तरह घूमाना, खूव भ्रमण करना। २ पार करना। ३ आरस्म कराना। ४ आगे वढ़ना।

प्रक्रमसङ्ग (सं ० पु॰) पृक्रमस्य भङ्गः। साहित्यमें एक दोप। यह दोष उस समय होता है, जब किसी नियमके वर्णनमें आरम्म किये हुए क्रम आदिका डीक डीक पालन नहीं होता।

पूकान्त (सं० ति०) पु-क्रम-कः । १ पूकरणस्थ, पूकरण-प्राप्त । २ आरब्ध ।

पूकामणि—भोजविद्या वा भौतिकविद्याका प्रकरणविशेष । प्रक्रिया (सं॰ स्रो॰) प्र-कृ-श । १ प्रकरण । २ राजाओंका वैद्यर छत्न आदिका धारण । पर्याय—अधिकार, अधी-कार, नियतविधि । ३ प्रकृष्टकार्य, युक्ति, तरीका ।

प्रकोड़ ( सं ॰ पु॰ ) प्रकृष्ट कीड़न ।

प्रकोड़िन् (सं० ति०) प्र-कोड़-णिनि । प्रकृप्रक्षपसे कीड़ा-युक्त ।

प्रकोश (सं०पु०) आक्रोश।

प्रक्तित्र (सं'० ति० ) प्र-क्तिद्-कः । १ तृप्तः । २ प्रकृष्ट-इत्यसे फ्लेद्युक्त, वहुक्लेद्युक्तः ।

प्रिक्षित्रवर्त्तिम् (सं॰ पु॰) नेत्तरोगिवशिप । इसमें आँख-की पलकें वाहरसे सूज जाती हैं और पीड़ा होती है तथा आंखोंमें कीचड़ भर जाता है।

प्रष्ठेद (सं• पु॰) प्र-क्किद्-घञ्। आर्द्र ता, नमी, तरी। प्रष्ठेदन (सं॰ क्की॰) आद्रीकरण, गोला करना, भिगोना। प्रष्ठेदचत् (सं॰ ति॰) प्रष्ठेद-अस्त्यर्थे मतुष्, मस्य व। प्रष्ठेदयुक्त, प्रक्किन्न।

प्रकलेदिन् (सं० ति०) प्रकलेद्-अस्त्यर्थे इति । प्रकलेद्युक्त । प्रकण (सं० पु०) कण शब्दे, (क्वणो गि. १००० । पार्श्वाद्विद्ध इति-अप् । १ वोणाध्वति । २ शब्द ।

प्रकाण (सं०पु०) प्र-क्रण-घञ्। प्रकण। प्रक्षय (सं०पु०) प्र-क्षि-अप्। नाश, बरवादी।

प्रश्नमण (सं ० पु॰) विनाशन, नाश करना, वरवाद करना।

Vol. XIV 119

प्रसर ( सं ॰ पु॰ ) प्रकर्षेण क्षरति सञ्चलतीति प्र-क्षर अच् । अश्वसन्ताह्, अश्वकवच, घोड़े की पालर ।

प्रसरण (सं ॰ क्वी॰ ) प्र श्वर-ल्युट् । प्रकृष्टरूपसे श्वरण, भारना, वहना ।

प्रक्षाल ( सं ० ति ० ) प्रश्नालयति श्नालि-अच् । शोघक प्रायश्चित्त ।

प्रक्षालन (स'० क्को० ) प्र-क्षालि ल्युट्। मार्जन, जलसे साफ करनेकी किया ।

प्रक्षालनीय (सं ० ति०) प्र-क्षालि अनीयर्। प्रश्नालनके योग्य। साफ करने लायक।

प्रश्नास्त्रित (सं० ति० ) प्रक्षास्त्रि क्त । १ घौत, श्रोया हुआ । २ मार्जित, साफ किया हुआ ।

प्रक्षाल्य ( सं ० ति० ) प्र-क्षालि-यत्। प्रक्षालनीय, घोने . या साफ करनेयोग्य।

प्रक्षित ( सं॰ बि॰ ) प्र-क्षिप-क्त । १ निक्षित, फेंका हुआ । २ विन्यस्त, पीछेसे मिलाया हुआ, ऊपरसे वढ़ाया हुआ । ३ अन्तर्निचेशित, अन्दर रखा हुआ।

प्रक्षेप (सं • पु • ) प्र-िक्षर-घन्। १ औषधादिमें क्षेप-णीय द्रवा, वह पदार्थ जो औषध आदिमें ऊपरसे डाला जाय। २ विक्षेप, फेंकना, डालना। ३ लितराना, विखराना। ४ मिलाना, वढ़ाना। ५ वह मूलधन जो किसी व्यापारिक समाज या संस्थाका प्रत्येक सदस्य लगा दे, हिस्सेदारोंकी अलग अलग लगाई हुई प्ंजी। प्रक्षेपण (सं • क्ली • ) प्र-िक्षय-ल्युद्। १ निक्षेपण, फेंकना। २ ऊपरसे मिलाना। ३ जहाज आदिका चलाना। ४ निष्चित करना।

प्रश्लेपि (सं• स्त्री•) अश्लर लिखनेको एक विशेष रीति।

प्रक्षेपिन् ( सं ॰ ति॰ ) प्रक्षेप-अस्त्यर्थे इनि । प्रक्षेपयुक्त । प्रक्षेप्तवा ( सं ॰ ति॰ ) प्र-क्षिप-तवा । प्रक्षेपणीय, फेंकने लायक ।

प्रक्षेप्य ( सं ० ति ० ) प्र-क्षिप-यत् । प्रक्षेपयोग्य ।

प्रक्षोभण (स'० क्वी०) प्रकृष्टहरासे क्षोभण, घवराहर, वेचैनी।

प्रस्वेडन ( सं ॰ पु॰ ) प्रक्वेड्यतीति प्र-क्ष्विड्-अव्यक्तशब्दे-

त्यु । १ नाराच, लोहेका वाण । २ अवाक्त शब्द, शोर गुल ।

प्रक्ष्वेदन (सं०पु०) प्रक्ष्वेदतीति प्र-श्विद-अवाक्तशब्दे, ल्यु। नोरास, लोहेका तीर।

प्रखर (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः खरः । १ अध्वसज्जा, घोड़ेकी पाखर । २ अभ्वतर, खचर । ३ कुक्कुर, कुत्ता । (ति॰) 8 तीक्ष्ण, प्रचर्रड । ५ धारदार, चोखा, पैना ।

प्रकरता (सं० स्त्री०) प्रखर होनेको क्रिया या भाव, तेजी।

प्रबल ( सं ० ति० ) वहुत वड़ा दुए।

प्रखाद (सं ० ति ०) प्रकृष्टरूपसे खादिता, खादक, खाने-वाला ।

प्रस्य ( सं ० ति० ) प्रख्यातीति प्र-ख्या ख्याती क । उत्तर-पादमें तुल्पार्थवाचक ।

प्रख्या (सं • स्त्री • ) प्र-ख्या भावे अङ्। १ विख्याति, प्रसिद्धि । २ उपमा । ३ समता, वरावरी ।

प्रख्यात (सं ० ति०) प्र-ख्यायुक्त । प्रसिद्ध, विख्यात, मशहूर ।

प्रख्यातवप्तृक (सं० पु०) प्रख्यातो वष्ता जनियता यस्य, 'नद्रुयत्श्चेति' कप्। विख्यातिपतृक, वह जिसका पिता बहुत प्रसिद्ध हो।

प्रस्थाति (सं ० स्त्री०) प्र-ख्या-किन् । विख्याति, प्रसिद्धि । प्रस्थास् (सं ० पु०) प्र-चक्ष-असि, 'वहुल' शिच' इत्यु-के ने शित्। प्रजापति ।

प्रगण्ड ( सं॰ पु॰ ) प्रत्यासन्नो गण्डो त्रन्थिर्यस्य । कंथेसे ले कर कोहनी तकका भाव ।

प्रगएडी (सं० स्त्री०) प्रगएड गौरादित्वात डीप्। १ वहिःप्राकार, दुर्ग आदिका प्राकार जिस पर वैठ कर दूर दूरकी चीजे देखते हैं, बाहरी दीबार।

प्रगतजानु (सं ० ति०) प्रगते संक्षिन्दे जानुनी यस्य । असंहत जानुक, टेढ़ा या मुड़ा पाँचवाला । पर्याय—प्रज्ञू, प्रज्ञ, प्रगतनानुक ।

प्रगन्ध (सं• पु॰) प्रकृष्टी गन्घोऽस्य । पप द, दवन पापड़ा । २ प्रकृष्ट गन्धगुक्त ।

प्रगट (हिं• वि• ) प्रकट है खो।

प्रगटन ( हिं• पु॰ ) प्रकटन देखी ।

प्रगटना (हिं० किं०) प्रगट, होना, जाहिर होना।
प्रगटना (हिं० किं०) प्रकट करना, जाहिर करना।
प्रगम (सं० पु०) प्र-गम अप्। प्रगमन, आगे बढ़ना।
प्रगमन (सं० क्ली०) प्र-गम-ल्युट्। १ आगे बढ़ना। २ उन्नति,
तरक्ती। ३ छड़ाई, क्लगड़ा। ४ वह भाषण जिसमें
कोई अच्छा उत्तर दिया गया हो, अन्द्रा या माक्ल
जवाव।

प्रगमनीय (सं० ति०) प्र-गम-अनीयर् । गमनकं योग्य, आगे वढ़ने लायक।

प्रगर्जन (सं २ हो) ०) अतिगर्जन, भीषण शब्द । प्रगर्द्धिन (सं ० ति० ) प्रकृष्टरूपसे अभिकांक्षायुक्त । प्रगत्नि (सं ० ति० ) प्रगत्मते इति पु-गत्म-भाष्टै। प्रचा-

द्यच् । १ पृत्युत्पन्तमित, सम्पन्न बुद्धिवाळा । २ उद्धत, जिसमें नम्रता न हो । ३ निर्लंज, भृष्ट, वेह्या । ४ दाम्मिक, अभिमानी । ५ चतुर, होशियार । ६ उत्साही, साहसी, हिम्मती । ७ समय पर ठीक उत्तर देनेशाळा, हाजिर जवाव । ८ निर्भय, निद्धर । ६ वोळनेमें संकोच न रखने-वाळा, वकवादी । १० गम्भीर, भरा पूरा । ११ पृथान, मुख्य । १२ पुष्ट । १३ समर्थ ।

प्रगल्म—कालिङ्गाधिपति गङ्गचंशीय एक राजा, वृषध्वजने पुल। कोई कोई इन्हें पृगर्भ भी कहते हैं।

पुत । कार नाह राष्ट्र पूरान का गर्य है।
प्रगत्म आचार्य — १ एक विख्यात नैयायिक । इनके पिताका नाम नरपित और माताका नाम जाहवी देवी था।
ये शुभङ्कर नामसे भी परिचित हैं। इन्होंने तस्वचिन्तामणिटीका, श्रीद्पे णखण्डन नामक खण्डनखाद्यीका,
उपमानखण्ड, न्यायमतवण्डन और पूमाणखण्डन नामक
कर्द एक प्रन्थ वनाये हैं।

२ विद्यार्णेव नामक श्रन्थके रचयिता। ये विष्णुशर्मा के शिष्य थे।

प्रगत्भता (सं ० ति ०) प्रगत् भस्य भावः 'त्वतती भावे' इति तल्। १ प्रागत्म्य, बुद्धिको सम्पन्नता । पर्याय— उत्साह, अभियोग, उद्यम, प्रौदि, उद्योग, कियदैतिका, अध्यवसाय, उर्ज । २ बौद्धत्य, उद्धतता । ३ निर्छ-ज्ञता, धृष्टता, वेह्याई । ४ दाम्भिकता, अभिमान । ५ वुद्धिमत्ता, होशियारी । ६ उत्साह, साहस, हिम्मत । ७ वाक्ष्मातुरी, हाजिर जवाबी । ८ निभयता, सङ्गोवका अभाव | ६ व्यर्थकी वातचीत, वकवाद | १० गम्भीरता |
११ प्रधानता, मुख्यता | १२ पुग्रता | १३ सामर्थ्य, गिक |
प्रगत्मवचना (सं० स्त्री०) मध्या नायिकाके चार भेटोंमेंसे
एक | यह नायिका वातों ही वातोंमें अपना दुःख और
क्रोध प्रकट करती और उल्हना देती है । साहित्यद्रपंणके मतानुसार कामान्धा, पूण्यीवना, सब प्रकारके
रितिविपयमें अभिज्ञा, भावीन्नता और अल्पल्जायुका
इत्यादि लक्षणोंको नायिकाको प्रगत्मानायिका कहते हैं ।
रसमञ्जरीमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है जो
सब प्रकारके केलिकलाप विषयोंसे जानकार है, उसे
प्रगत्मा कहते हैं । इसको चेग्रा रितिशीति और आनन्दके
कारण आत्मसंमोह है। यहनायिका तीन प्रकारकी है,
धीरा, अधीरा और धीराधीरा ।

विशेष विधरण नाविका शब्दमे देखो । प्रगल्मा (सं० स्त्री०) प्रौढ़ा नायिका । प्रन्तमक्वन देखो । प्रगल्मित ( सं० बि० ) प्रगल्मयुक्त ।

प्रगाढ़ (सं० ति०) प्रकर्षेण गाहाते स्मेति प्र-गाह-क । (यस्य विभाषा । ११ ७१२१५ ) इति न इट् । १ अतिशय, अधिक । २ दृढ़, बहुत गाढ़ा या गहरा । ३ निविड़, धना; कठोर ।

प्रगास् ( सं॰ ति॰ ) प्र-गै-तृच् । उत्तम गायक, अच्छा गानेवाला ।

प्रगाथ (सं॰ पु॰ प्र प्रन्थ वाहुं आधारे घञ्। १ वह अर्थ जहां वेदमें दो ऋक् तीन किये जाते हैं,उसे प्रगाथ कहते हैं। सामसंहिता-भाष्यमें इसका विशेष विवरण छिखा है। २ प्रगाथक्षपमें ध्येष मन्द्र।

प्रगाद्य ( सं॰ क्वी॰ ) प्र-गद्द-ण्यत् । प्रकृष्टरूपसे गद्नीय अर्थात् कथनीय ।

प्रगामिन् ( सं॰ बि॰ ) प्र-गम-णिनि । प्रकृष्टस्तपसे गंमन-शील, जानेवासा ।

प्रगायिन् (सं० ति० ) प्र-गा-णिनि । गायक, गानेवाला । प्रगाइन (सं० क्षी ) प्र-गाह-ल्युट् । प्रकृष्टस्पसे अव-गाइन, मज्जन, मांजना ।

त्रगीति (सं० स्त्री०) प्र-गा-किन् । एक प्रकारका छन्द् । प्रगुण (सं० ति०) प्रकर्षेण गुणो यत । १ ऋजु । २ प्रकृष्ट गुणयुक्त, गुणवान् । ३ अनुकूछ । ४ कार्यकुशह, द्स, होशियार । प्रगुणिन् (सं० ति०) प्रगुण अस्त्यर्थे इति। प्रकृष्ट गुणशाली, गुणवान्।

प्रगुण्य ( सं॰ ति॰ ) कार्यकुशल, होशियार । प्रगृहीत (सं॰ ति॰ ) प्र-प्रह-क । १ प्रकृष्टक्पमें गृहीत, जो

अच्छी तरह प्रहण किया गया हो। २ जिसका उच्चारण विना सन्धिके नियमोंका ध्यान रखे किया जाय।

प्रमुद्ध (सं० ति०) प्र मृद्धते इति प्र-मृह-स्यप् (पदास्दे-िव हा प्रस्थेषु च। पा ३।१।११६) स्यप् ततः (प्रहिज्येति। वा ६।१।१६) सम्प्रसारणम्। १ जो विना सन्त्रिके नियमोंका ध्यान रखे उच्चारण करनेके योग्य हो। २ जो प्रहण करनेके योग्य हो। (पु०) ३ स्मृति। ४ वाक्य। प्रमे (सं० अञ्य०) प्रकर्षेण गीयतेऽतेति प्र-मे-के। प्रातः,

प्रगे (सं॰ अन्य॰ ) प्रकर्षेण गीयतेऽत्रेति प्र-गे-के । प्रातः, प्रभात ।

प्रगेतन (सं० वि०) प्रगे प्रातर्भव इति प्रगे (सायक्विर-मिति। ४.३।२३) इति द्यु तुट् च। प्रातर्भव। इसका पर्याय-श्वस्तन है।

प्रगेनिशा (सं॰ ति॰) प्रगे प्रातःकालो निशेव खापहेतु-र्यस्य। प्रातःकालशायी, जो सवेरे सोता हो।

प्रगेशय ( सं॰ हि॰ ) प्रगे शेते शी-अच् । प्रातःशायी, सबेरे सोनेवाळा ।

प्रप्रह (सं० पु०) प्रगृह्यते इति प्रगृह्यात्यनेनेति वा (प्रहृद्वह-निर्देशन १२ । ११ १५०) इति प्रज्ञ, भाव पश्चे अप ।
१ तुलास्त्व, तराज्ञ आदिमें वंधी हुई डोरी। २ अश्वादिकी रिश्म, घोड़े आदि पशुओंकी लगाम। ३ वन्दी, कैदी।
8 भुज, वाहु। ५ रिश्म, किरण। ६ धारण, प्रहण करने
या पकड़नेका भाव या ढंग। ७ सुवर्णालु महीकह, एक
प्रकारका अमलतास। ८ किणकावृक्ष, किनयारी। १६
इन्द्रियादिका निप्रह, इन्द्रियद्मन। १० नियमन, शासन।
१२ अवलम्बन, आधार। १२ विष्णु। १३ सुवर्ण, सीना।
१८ मार्गदर्शक,नेता। १५ आदर, सत्कार। १६ सूर्ण अथवा
वन्द्रमाके प्रहणका आरम्भ। १७ अनुप्रह, स्त्या प्रहके
साथ रहनेवाला छोटा ग्रह।

प्रवहण सं० पु०) १ व्रहण करनेकी किया या भाव, धारण । २ सुर्य आदिके व्रहणका आरम्भ । ३ घोड़े आदि पशुओं-को साधना । ४ तराजु आदिकी डोरी । ५ छगाम, बाग । प्रगाह (सं० पु०) प्रगृहाते इति प्र-ग्रह (प्रवणिनां । पा ३।३।४२। 'वरमीच।' पा ३।३।५३ ) इति च घञ्।

प्रयह देखो ।

प्रय्रीव ( सं० पु० क्ली० ) प्रक्रुएा ग्रीवाकृतिरस्य । १ गृहादि-में प्रान्तवार्य दारुपंक्ति, किसी मकानके चारों तरफका वह घेरा जो छद्दे या वांस आदि गाड़ कर बनाया जाता है। २ वातायन, भरोखा, छोटी खिड़को । ३ सुखशाला, आमोद्-प्रमोद् करनेका स्थान । ४ अभ्वशालां, अस्तवल । ५ द्रुमशीर्षक, वृक्षका ऊपरी भाग। (ति०) ६ प्ररूप्ट-ग्रीवान्वित, जिसका गला सुन्दर हो।

प्रघटक (सं० ति० ) १ घटनाकारी । (क्की०) २ सिद्धान्त । प्रघटाविद् ( सं ० ति० ) प्रघटां आडम्यरं वेत्तीति । शास्त्र-शएड, शास्त्राभित्र ।

प्रग्रहक ( सं ० पु०) प्र-घट्ट-ण्युल् । १ सिद्धान्त । २ सं यो-

प्रघण (सं पु॰) प्रविशस्त्रिज्ञेनैः पादैः प्रकर्पेणहन्यते इति प्र-इन (अगार्र कर्देशे प्रवण: प्रवान<sup>रे</sup>च। पा ३।३।७६) कर्मणि अप्, णत्यञ्च । १ वहिर्द्वारप्रकोष्टक, वरामदा, अलिन्द । २ ताम्रकुम्म, तांवेका घड़ा । ३ लौहमुद्रर, लोहे-का मुद्रर । ४ गृहाभ्यन्तरशय्यार्थ पिष्डिका, घरके भीतरकी वह पिएडी जिस पर सोते हैं।

प्रघन (सं०पु०) प्रकर्षेणऽन्यते इति प्र-हन-अप् वा णत्यं । प्रवण देखो ।

प्रघस (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण अत्तीति प्र-अद्-अप् । (घनशेष । पा २।४।३८) इति घस्लादेशः ।१ असुर ।२ दैत्य । ३ राश्चसमेद, एक राक्षस जो रावणको सेनाका मुख्य सेनानायक था और जिसे हुनुमान्ने प्रमदावन उजाड़नेके समय मारा था। ४ कुमारानुचर-मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम । (ति०) ५ भक्षक, खानेवाला ।

प्रघाण (सं॰ पु॰) प्रहत्यते इति प्र-हन-अप् पक्षे वृद्धिश्च । (पा ३।३।३।३६ ) प्रधण ।

प्रधाप (सं ० पु.०) प्रकर्पेण हत्यते यत्रेति प्र-हन-घञ्। १ युद्ध, छड़ाई । २ मारण, मारना ।

प्रधान ( सं ॰ पु॰) प्र-हन-अप् यृद्धश्च पक्षे न णत्यं ।

प्रघास ( सं ॰ पु॰ ) प्र-घस्-घन्। १ प्रकृष्टक्रपसे भक्षणीय

हविरादि । २ वरुणप्रधास, एक प्रकारका चातुर्मास्य याग ।

प्रधासिन् (सं० ति०) प्रघासयुक्त मरुद्रण, प्रघासयह-युक्त।

प्रघास्य ( सं ० ति ० ) प्रकृष्टरुपसे भन्नणीय, अच्छी तरह खाने लायक ।

प्रघुण ( सं ० पु० ) प्र-घुण-क । अतिथि, मेहमान । प्रभूणें (सं ॰ पु॰) प्रधूणेति समतीति प्र-भूणे-अच्। अतिथि, मेहमान ।

प्रघोर ( सं ० ति० ) अति कठिन, वहुत अधिक कठिन। प्रघोवक ( सं० पु० ) प्र घुप भावे घञ्, ततः कन् । ध्वनि । प्रचक्र (सं ० ह्यी०) प्रगतश्चक्रमिति प्रादिसमासः। प्रस्थित सैन्य, वह सेना जिसने कूच वोल दिया।

प्रचक्षस् (सं॰ पु॰) प्रकर्पेण चक्षते वक्तीति प्र-चक्ष-असि,न क्यादेशः । वृहस्पति ।

प्रचण्ड (सं० ति०) प्रकर्पेण चण्डः। १ वहुत अधिक तीत्र, तेज्ञ, उप्र । २ प्रवल, बहुत अधिक वेगवान् । ३ भयद्भर । ४ कठिन, कठोर । ५ दुःसह, असह। ६ वड़ा, भारी। ७ पुष्ट, वलवान्। ८ वहुत गरम। ६ प्रतापी । (पु॰) प्रकर्वेण चएडः उप्रगुणत्वात्। १० श्वेतकरवीर, सफेद कनेर। ११ वत्सप्री नामक राजाके सुनन्दागर्भजात एक पुत्र । १२ शिवका एक गण ।

प्रचएड—राष्ट्रक्टराज २य ग्रम्मके महासामन्त । ये ऋस-वकवंशीय धवलप्पके पुत्र थे। पिताके वाहुवलसे उपा-र्जित ७५० ग्रामींका आधिपत्य इन्हीं पर सौंपा था। इनके अधीन चन्द्रगुप्त नामक एक द्एडनायक इस मूभाग-का शासन करते थे। ये ८३२ शकमें विद्यमान थे।

प्रचण्ड--वौद्धराज अजातशतुके एक मन्ती । वेश्याशकि॰ प्रयुक्त इन्होंने राजासे अपमानित हो कर प्रवज्याका अव<sup>्</sup> लम्बन किया ।

प्रचएडता (सं॰ स्त्री॰) १ प्रचएड होनेका भाव, तेजी, तीखा-पन । २ भयङ्करता ।

प्रचर्डत्य ( सं० पु० ) श्रचण्डता देखो । प्रचएडदेव—गौड़देशाधिपति एक क्षतिय राजा। धार्मिक राजा अपनी कार्यकुशळताके लिये जनसाधारणके पूज

थे। ये शाक और वीरवतीके उपासक थे। वौद्धपुमाव-

कालमें इनके मनमें निर्वाणप्राप्तिकी आकांक्षा बलवती हुई। अतः अपने लड्के शक्तिदेवको राजपद पर विठा कर आप साधुकोंके साथ नाना देशोंमें पर्यटनको निकल गये। नेपालराज्यमें पहुंच कर थे जगत्के अपूर्व सौन्द्ये पर विमोहित हो पडे । कमशः वहांके सभी तीर्थी और पीठ स्थानादिका पर्यवेक्षण कर इन्होंने तिरत्न और खय-म्भुनाथकी पूजा शेष की । पीछे मंजुश्रीपर्यंत पर चढ़ कर गुणाकरमिश्चे वौद्धधर्म प्रहण किया। अव ये शान्तश्री नामसे प्रसिद्ध हुए। जो सब हिन्द्रमतावलम्बी इनके साथ नेपाल गये थे, वे सबके सब वीद हो गये और सङ्घारामादिमें रह कर धर्मचर्चा करने लगे। इन्होंने ही स्वयम्भूनाथको पवित्र वह्निरक्षाके लिये अपने गुरु गुणाकरसे अनुरोध किया था। इनके प्रस्ताव पर मुग्ध हो कर गुणा-करजीने 'लयोदशाभिषेक' द्वारा शरीर पवित्रकर शान्ति-कर बज्राचार्य नाम रखा। इसी समयसे नेपालमें गौड-देश वासियोंका आना शुद्ध हुआ।

स्वयम्भूपुराणका भ्यः अध्वाव देखो । अचएडमूर्ति (सं० स्त्री•) प्रचल्ड मूर्तिर्यस्य । १ वरुण-वृक्ष । २ उप्रमूर्ति, भयानक देहविशिष्ट । प्रचएडसेन—पक ताम्रलिस-देशाधिपति ।

प्रचएडा (सं• स्त्री•) प्रकर्षेण चएडा। १ अतिकोपणा।
२ भगवतीकी सस्तीविशेष। ३ दुर्गाकी अप्रनायिकाके
अन्तर्गत नायिकाविशेष। देवीभागवतमें लिखा है, कि
छगलएड नामक पीठस्थानमें यह प्रचएडादेवी विराजित
हैं। ४ श्वेतदूर्वा, सफेद दूव जिसके फूल सफेद
होते हैं।

प्रचता (सं० अव10) देवगण द्वारा याचमान ।
प्रचय (सं० पु०) प्रचीयते इति प्र-चिम् चयने (एरच्। प्रच्। प्रच्। द्वारा (एरच्। प्रच्। प्रच्। द्वारा (एरच्। प्रच्। द्वारा (एरच्। प्रच्। द्वारा (एरच्। द्वारा (एरच्। द्वारा (एरच्। द्वारा प्रच्। द्वारा प्रच्। द्वारा प्रच्। द्वारा प्रच्। द्वारा पुष्प और फलादि चयन, लकड़ी आदिकी सहायतासे पूल या फल एकल करना। ६ वेद्पाठ विधिमें एक प्रकारका खर। इस खरके उच्चारणके विधानानुसार पाठकको अपना हाथ नाकके पास ले जानेकी आवश्यकता पड़ती है।

प्तवबन ( सं ० क्षी० ) वैदिक खरव्रामभेद । Vol. XIV. 120

प्रचयस्पर (सं• पु॰) १ प्रचितिस्तर। २ सञ्चय। प्रचर । सं ॰ पु॰ ) प्रचरत्यस्मिनिति प्र-चर-आधारे अप्। १ मार्ग, रास्ता । २ प्रकृष्टरूपसे गमन । प्रचरण ( सं॰ क्ली॰ ) विचरण, चलना, फिरना। प्रचरद्वप (सं० ति०) प्रचरत् प्रकाशमानं रूपं सहपं यस्य । १ वाकरूप । २ प्रचारविशिष्ट, प्रचलित । प्रचरित ( सं० बि० ) प्रचलित, चलता हुआ । प्रचल ( सं॰ ति॰ ) प्र-चल-अच् । १ प्रसृष्ट चलन्युक्त, चञ्चल। (पु०)२ मयूर, मोर।३ सौम्यकीटविरोष। पचलक ( सं॰ पु॰ ) कीटमेद, सौम्य नामका कीड़ा। प्रचलन ( सं ॰ क्ली॰ ) प्रवर्त्तन, चलन । प्रचला (सं ० स्त्री०) १ वह निदा जो वैठे या खड़े हुए मनुष्यको आती है। २ वह पापकर्म जिसके उदयसे ऐसी निदा आती है। ३ सरट, गिरगिट। प्रचलाक (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण चलतीति प्र-चल-आकन्। १ शराघात २ शिखएख। ३ भुजङ्गम। ४ मयूरपुच्छ। प्रचलाकिन् । ( सं ० पु० ) प्रचलाक-शिखएडोऽसग्रास्तीति प्रचलाक-इनि । १ मयूर, मोर । २ सर्प, सांप । प्रचलायित ( सं ० ति ० ) प्रचलाय-क । निद्रादि द्वारा घूर्णित ।

प्रचलित (सं ० ति ०) प्र-चल-क । १ प्रस्थित, हृढ़, स्थिर । २ प्रसिद्ध, मशहूर । ३ जिसका चलन हो, चलता हुआ । (क्री ०) ४ सद्योवण विशेष, हालका निकला हुआ फोड़ा ।

प्रचाय (सं० पु०) प्र-चि-धञ्। १ हस्त द्वारा द्रव्यादि

पकत करना, हाथसे कोई चीज इकट्टा करना। २ राशि,

ढेर । ३ वृद्धि, अधिकता। ४ उपचय, सञ्चय।
प्रचायक (सं० ति०) १ स्टब्स स्लोकन

प्रचायक (सं ० ति०) १ इकट्ठा करनेवाला, ढेर लगाने-वाला।

प्रचायिका (सं ॰ स्त्री॰) पृचि-भावे ण्वुल्, टाप् कापि अत इस्त्रं। १ प्रचयनकत्रीं स्त्री, वैदिक गान करनेवाली स्त्री। २ परीपाटीपूर्वेक पुष्पादि चयन, सिलसिलेसे फूल तोड़ना।

प्रचार ( सं० पु० ) प्रचरणमिति प्र-चय-भावे धञ् । १ प्रचरण, चलन, रवाज । २ प्रकाश । ३ प्रसिद्धि । ४ ध्यक्त । प्रचरत्यस्मिन् प्र-चर-आधारे घञ् । ५ गवादिका

चरणस्थान, मवेशी आदि चरनेका मैदान, चरागाह। ६ अश्वका नेतरोगविशेष, घोड़ोंकी आँखका एक रोग। इसमें आँखोंके आस पासका मांस वढ़ कर दूप्टि रोक लेता है । कृतविद्य अध्वचिकित्सकको चाहिये, कि जिस घोड़े को यह रोग हुआ है, उसे जमीन पर सुला कर उस वढ़े हुए माँसको काट डाले। परन्तु काटते समय ज़िस-से चक्षःस्थित अक्षिगोलक पर किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुंचे, इस पर विशेष ध्यान रहे । पीछे मधु या सैन्धवसे दोनों आंख भर दे। कुछ समयके वाद उसे जलसे धो कर शङ्खुजा शिरावेध और कुष्ट, वच, चई, हिकटु, रुवण और सुराके साथ प्रतिपान देना होता है। इस समय घोड़े को वायुशून्य स्थानमें ले जा कर दूव खिलानी चाहिये। ऐसी अवस्थामें मधुर भोजन वा गुरुभोजन निषिद्ध है। (अखनै य क)

प्रचारक ( सं॰ ति॰ ) प्रचारयशीति प्र-चारि-ण्युल् । प्का-श्रुक, प्रचार करनेघाळा, फैळानेवाळा।

प्चारण (सं० ह्यो॰) पू-चारि-ल्युट्। १ पृकाशकरण, पुचार करना । २ चलन, रिघाज ।

ण्चारित ( सं ० बि० ) पूचार, तारकाहित्वादि तच् वा पू-चारि-क। जिसका चार हुआ है, फैलाया हुआ।

प्चारिन् (सं • ति • ) पु-चर-णिनि । १ पुचारकारी, पुचार ऋरनेयाला । २ गमनशील, जानेवाला ।

पुचाल ( सं ० पु० ) पूकृष्टः चालः । १ वीणाका काष्ठ-मय अवयव। २ यूपका कटकमेद्।

प्रचालित (सं • बि • ) प्र-चालि-कः । जिसका प्रचलन किया गवा हो, जो चलावा गया हो।

प्रचिकित (सं ० ति०) विशिष्ट चैतन्ययुक्त ।

प्रचिक्तीषु (सं० ति०) प्रकत्तुं मिच्छुः प्र-कृ-सन्, तत-उ। प्रतिकारेच्छु, जो वदलः लेना चाइता हो ।

प्रचित (सं० ति०) प्र-चि-क्त । १ कृतचयन, जिसका फल तोड़ लिया गया हो । २ प्रचयसरयुक्त । संख्यायां कन्। ३ दण्डकभेद। '

प्रचीवल ( सं ० क्वी० ) प्रचेयं वलं यत, पृषोदरादित्वात् साधुः। वीरण, खसकी जड़।

प्रचीर ( सं ॰ पु॰ ) बत्सयी राजाके सुनन्दागभँजात एक पुत्रका नाम ।

प्रचुर ( सं ॰ ति॰ ) प्रचोरतीति प्र-चुर ( इगुग्धहेति । प्रा ∍।१।१३५ ) इति क<sub>ः</sub> या प्रगतञ्**ञुराया इति प्रोदिस**∙। १ अनेक । पर्याय—प्रभूत, प्राज्य, अद्भ्र, वहुछ, बहु, पुरुह, पुरु, भूयिग्ड, स्फिर, भूय, भूरि । (पु॰) २ च्रौर, चीर ।

प्रचुरता (सं॰ स्त्री॰ । प्रचुरसा भावः प्रचुर-तळ्-दाप्। पाचुर्य, अधिकता, ज्यादती ।

प्रचुरपुरुष ( सं ० पु० । प्रचोरतीति प्र-चुर-क प्रचुरश्चासी पुरुषश्चेति। १ चौर, चोर। २ वहुनर, अनेक लोग। प्रचेतगढ़—महाराष्ट्रके अन्तगेत एक दुर्गं। शिवाजीने वड़े चातुरीसे इस दुर्ग पर अधिकार किया था । १८१८ ई॰के जूनमासमें यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया।

प्रचेतस् सं ० पु०) प्रचेततीति प्र-चित-असुन् । १ वरुण । २ मुनिविशेष । ३ प्रजापितभेद । ४ एक मुनि और धर्म-शास्त्र-प्रणेता । ५ पृथुके प्रपीत और प्राचीनवर्हिके दश पुत । विष्णुपुराणके मतसे इन्होंने दश हजार वर्ष तक समुद्रके भीतर घुस कर कठिन तपस्या की थी और विष्णुसे प्रजासृष्टिका वर पाया था। कण्डुकम्या मारिषा-के गर्भ और इन्हींके औरससे दक्षका जन्म हुआ था।६ प्राचीनवर्हिराजपुत्त । ७ अनुत्रंशीय नृपभेद । ८ प्राचीन वहिंकी सामुद्री भार्या-गर्भजात पुत्रभेद। (ति॰) ६ प्रकृष्ट इदय, बुद्धिमान्, होशियार, चतुर।

प्रचेत्रसी (सं॰ स्त्रो॰) प्रचेतयित मूर्चिछतमिति प्र-चित्-णिच् अतस्, गौरादित्वात् ङीप् । १ कटफल, कावफ्र । २ प्रचेताकी कन्या ।

प्रचेता (सं ० पु०) १ चेतम ् देखो ।

प्रचेतुन ( सं० ति०) प्र-चित-उन् । प्ररुष्ट ज्ञानयुक्त, वुद्धिमान् ।

पचेतृ (सं॰ पु॰) प्रचेतित युद्धादि स्थाने वीरान् सिङ्काने-तीति प्र-चित-तृच्। सारथि।

प्रचेय ( सं ० ति० ) १ जो चयन करने योग्य हो, जो चुनने या संग्रह करने लायक हो । २ ग्राइ, जो ग्रहण करने योग्य हो ।

प्रचेल ( सं ॰ ह्री॰ ) प्रचोतीति प्र-चेल-अच्। १ पीत-काष्ट्र, पीला चन्दन । २ पीतमुद्र, पीली मू ग ।

प्रचेलक (सं ॰ पु॰) प्रकर्षण चेलति गच्छतीति प्र-चेल-

ण्वुल् । १ अभ्व, घोड़ा । ( ति॰ )ः प्रक्रप्ट गतियुक्त, वहुत अधिक चलनेवाला ।

प्रचेलुक (सं ॰ पु॰) १ पाचक । २ मानमेद, एक माप।
प्रचोद (सं ॰ पु॰) प्र-चुद-घञ्। प्रेरणा, उत्तेजना।

प्रचोदक (सं ० ति०) प्रचोदयित प्रेरयतीति चुद-प्रेरणे ण्वुल्। प्रेरक, उनेजित करनेवाला।

प्रचोदन (सं ० क्ली०) प्र-चुद-ल्युट्। १ प्रेरण, उत्तेजना।

२ आज्ञा, हुकुम । ३ नियम, कायदा, कानून । प्रचोदनी (सं० स्त्री०) प्रचोद्यते अपमार्यते रोगोऽनया चुद-णिच्-रुयुर्-ङोप् । १ करदकारिका, करेहनी । २

दुरालभा, जवासा ।

प्रचोदित (सं० ति०) प्र-चुद्-कः। प्रेरित, जो उत्तेजित किया गया हो।

प्रचोदिन् ( सं॰ व्रि॰ ) प्रें रणाकारी, उत्तेतित करनेवाला । प्रचोदिना (सं॰ स्त्रो॰) १ लताभेद, एक प्रकारकी घेल । २

कएटकारिका, कटेहरी।

प्रच्छक ( सं॰ ति॰ ) प्रश्न करनेवाला, पूछनेवाला ।

प्रच्छद ( सं० पु०) प्रच्छाचतेऽनेनेति प्र-च्छद-णिच् करणे घ (छादेधेंद्श्युपसर्गस्य। पा ६।४।६६) इति उपघायां हस्तः। १ आच्छादन बस्त्रादि, छपेदनेका कपड़ा। २ कम्बल। ३ चोगा।

प्रच्छद् ( सं॰ क्षी ) प्रच्छाद्यति प्र-छाद्-िक्कप् हस्तः । अन्न, अनाज ।

प्रच्छद्पर ( सं॰ पु॰ ) प्रच्छाद्यतेऽनेन स-चासौ परश्चेति । आच्छादनपर, आवरणवस्त्र । पर्याय—निचोल, निचुल, निचोली ।

प्रच्छना (सं•स्नी•) प्रच्छ-वाह्यस्कात् युच् राप्। जिज्ञासा, पूछना।

प्रच्छन्न (सं० हो०) प्र-छद-क। १ अन्तर्हार, गुप्तद्वार। (ति०) २ आच्छादित, ढका हुआ। ३ गोपित, छिपा हुआ।

प्रच्छद्दं न (सं ॰ ह्ही ॰) प्र-च्छद्-भावे ब्युट् । १ वमन, कै । २ सांसकी वायुको नाकके रास्ते वाहर निकालना ।

प्रच्छित्ता (सं ० स्त्री०) प्र-च्छित् -चमने (रोगाख्यायां गृबुळ् बहुळम् । पा ३।३।१०८) इति ण्बुळ् स्त्रियां द्वापि स्रत इत्यं। १ वमी, उल्दी, ने । २ वमनका रोग। (वि०) ३ वमन-कारक, जिससे वमन हो।

प्रच्छादन (सं ० ह्री०) प्रच्छाद्यतेऽनेनेति प्र-च्छदु-णिच् ल्युट्।१ उत्तरीय वस्त्र, ओढ़नेका वस्त्र, चादर। पर्याय— प्रावरण, सं व्यान, उत्तरीयक। २ नेतच्छद, आंजकी परुक। भावे ल्युट्।३ गोपन, छिपानेका भाव।

प्रच्छादित (सं ० ति ०) प्र-च्छद्-णिच्-क । आच्छादित, ढका हुआ।

प्रच्छान (सं ० क्ली०) प्र-च्छो भावे ल्युट्। १ प्रकृप्रच्छेदन, अच्छी तरह काटना। २ सुभुतोक्त शस्त्रविस्रवाणभेद, सुश्रुतके अनुसार घाव चीरनेका एक प्रकार।

प्रच्छाय ( सं ० क्ली० ) प्रकृष्टा छाया । यत ) प्रकृष्ट छाना । उत्तम छाया, अच्छी छांह ।

प्रच्छिर् (सं • ति • ) प्र-छिद्-किप् । प्रच्छेद्कर्सा, छेद्ने या कारनेवाला ।

प्रच्छिल (सं० ति० ) प्रच्छ-बाह्यलकात् इलच् । निर्जन, जनग्रन्य ।

प्रच्छेद (सं० ह्यो०) प्र-छिद-घञ् । प्रकृष्ट छेद, अच्छी तरह काटना ।

प्रच्छेदन (सं ० क्लो०) खएड करना, छेदने या कादनेकी किया।

प्रच्छेद्य (सं.० ति०) छेदनयोग्य, काटने लायक।

प्रच्यव (सं ॰ पु॰) प्र-च्यु-अच्। प्रक्षरण, भापसे आप बहुना, भारना ।

प्रच्यवन (सं० क्ली०) प्र-च्यु-च्युट् । क्षरण, भरना, वहना । प्रच्यावन (सं० क्ली०) गतिपरिवर्त्तन, किसी आरब्धकर्म-से लौटा कर अन्य कर्ममें प्रवर्त्त करना, क्षरण, भरना, बहना ।

प्रच्याचुक (सं० क्लो∙ ) क्षणस्थायी, थोड़ी देर तक उहरने-वाला ।

अच्युत (सं ० ति ०) गिरा हुआ, अपने स्थानसे हटा हुआ । अच्युति ( सं ० ति ० ) प्र-च्यु-किन् । क्षरण, अपने स्थानसे गिरने या हटनेका भाव ।

प्रज (सं० पु०) प्रविश्य जायायां जायते प्र-जन- ह । पति, स्वामी । पति जायाके गभेमें प्रवेश कर वार वार नया जन्म छेता है, इसीसे प्रज शब्दसे पतिका बोध होता है । प्रजिम (सं० ति०) प्र-गम-ज्ञाने कि, ब्रित्वं उपधालीपः । प्रजाशील । प्रजङ्घ (सं० ति०) प्रकृष्टा जङ्घा यस्य। राक्षसमेद, रावण-को सेनाका एक मुख्य राक्षस जिसे अंगदने मारा था। प्रजन (सं० पु०) प्रजायतेऽनेनेति प्र-जन-करणे घञ् (जित्वच्योश्व।पा ण३१३५) इति न चृद्धिः। १ गर्भधारण करनेके लिये पशुओंका मैथन, जोड़ा खाना। २ पशुओंके गर्भधारण करनेका समय । ३ पुरुषेन्द्रिय, लिङ्ग।प्र जन-भावे घञ्। ४ पुलोत्पादन, सन्तान उत्पन्न करनेका काम। (ति०) ५ जनयिता, जन्म देनेवाला।

प्रजनन (सं० क्की० प्रजायतेऽनेनेति प्र-जन-ख्युट्।१ योनि।प्र-जन-भावे ख्युट्।२ जन्म। २ धालीकर्म, दाई-का काम। ४ प्रगम, सन्तान उत्पन्न करनेका काम। (ति•) ५ प्रजोत्पादक, जन्म देनेवाला।

प्रजनिका (सं ॰ स्त्री॰) प्रजनयतीति प्र-जन-णिच् ण्वुल्, टापि भतइन्यं। माता।

प्रजनियत् ( सं॰ पु॰ ) सर्वसृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा ।

ध्जनिष्णु (सं• क्षि• ) प्र-जनि-इष्णुच् । जनन, जन्म देनेवाला ।

प्रजनुक ( सं॰ पु॰ ) प्रं-जन-वाहुलकात् उक । प्रजनशील, वह जो सन्तान उत्पन्न करता हो ।

प्रजन् (सं ० स्त्री०) प्र-जन-वाहु० ऊ। य्रजनन, सन्तान उत्तपन्न करनेका काम।

प्रजय (सं ॰ पु॰) प्र-जि-अच्। प्ररूष्टजय, उत्तम जीत।
प्रजल्प (सं ॰ पु॰) प्र-जल्प-भाने घञ्। १ वास्यविशेष,
व्यर्थकी इथर उधरकी वात, गप। २ वह वात जो अपने
प्रियको प्रसम्न करनेके लिये की जाय।

प्रजल्पन ( सं ० क्लो० ) कथोपकथन, वातचीत ।

प्रजलिपस (सं ० ति ०) १ कथिस, कहा हुआ। २ व्यक्त, प्रकट। ३ वाक्यारम्मी, जिसने कहना आरम्भ कर दिया हो।

प्रजल्पिता (सं० स्त्री०) १ वह बात जो कही जा चुकी हो। २ जल्पनाकारिणी, गप लड़ानेवाली औरत।

प्रजव ( सं ॰ पु॰ ) प्रजवनमिति प्र-जु-भावे-अप् । प्रकृष्ट-वेग, तेज साल ।

प्रजविन् (सं० क्षि०) प्रजवतीति प्र-स्त ( प्रजोरिनिः । पः वाशिष् ) इति इति । प्रकृष्टवेगयुक्त, बहुतं अधिक बलनेवाला ।

प्रजिहत (सं 0 पु 0) १ पुराण । २ गाहेपत्य अमि ।
प्रजा (सं 0 स्त्री 0) प्रजायते इति प्र-जन उपगं च मंहायां ।
प ३।२ ६६ ) इति ड स्त्रियां टाप् । १ सन्तान, सन्नित ।
पिता और माताके दोषानुसार विभिन्न प्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है। २ वह जनसमूह जो किसी एक राज्यके अधीन या एक राज्यके अधीन या एक राज्यके अन्तर्गत रहता हो। ३ उत्पत्ति, जनन । ४ राज्यके निवासी, रिआया, रैयत । ५ मारतीय गांधोंमें छोटी जातियोंके वे छोग जो विना वेतन पाये ही काम करते हैं। ऐसे छोगोंको कभी किसी उत्सव पर अधवा व्याह शादी आविमें कुछ पुरस्कार दे दिया जाता है। नाक, कुम्हार आदि पौनीकी गिनती प्रजामें को गई है।

प्रजाकर ( सं ॰ पु॰ ) वह तलवार जिससे प्रजाकी वृद्धि होती है। विकल्पमें तलवारका ही वोध होता है, क्योंकि भुजवलसे ही ( तलवार द्वारा ) प्रजावृद्धि और देशजय होनेकी सरभावना है।

प्रजाकाम ( सं ॰ लि॰ ) पुताभिलाषी, पुतकी इच्छा रखने-बाला ।

प्रजाकार (सं ० पु०) सृष्टिकर्त्ता, प्रजापित, ब्रह्मा।
प्रजागर (सं ० पु०) प्र-जागृ (ऋदोर ्। वा३।३।५०) इति
भावे अव्। १ प्रकृष्टरूपसे जागरण, जगना, नींद न आना।
२ विष्णु । ३ प्राण । ४ नींद न आनेका रोग। (बि०)
५ पालक, रक्षाकर्त्ता, वचानेवाला।

प्रजागरण (सं ० क्षी०) अत्यन्त जागरण, विलक्कल मींद म आना।

प्रजागरा (सं॰ स्त्री॰) एक अप्सराका नाम। प्रजाझ (सं॰ ति॰) प्रजां हन्तीति। प्रजानाशकारी, प्रजाका नाश करनेवाला।

प्रजाचन्द्र (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजा। प्रजात (सं॰ ति॰) प्र-जन-कः। १ प्रकृष्टक्रएसे ज्ञात।

( पु॰ ) २ अध्वभेद, एक प्रकारका घोड़ा।

प्रजातन्तु (सं॰ पु॰ ) प्रजायाः प्रजनस्य तन्तुरिष । १ सन्तान, श्रौलाद । २ वंश, कुल ।

प्रजाता (सं ॰ स्त्री॰) प्रजातं प्रजननं सुतादीनामुरपति रित्यर्थः, तदस्या अस्तीति अच्, ततप्राप् । प्रस्ता स्त्री, जिसको बालक उत्पन्न हुआ हो। प्रजाति (सं ० स्त्री०) प्र-जन-किन् । १ प्रजा । २ प्रज-नन । ३ पौतोटपत्ति । ४ राजपुत्रमेद । इनका दूसरा नाम प्रजानि है ।

प्रजातिमन् ( सं ० ति० ) प्रजाति सम्यन्थीय ।

प्रजा०ति देखो ।

प्रजाद (सं ० स्त्री०) प्रजां ददातीति । गर्भदा नामकी ओषित्र जिससे वांकपन दूर होता है ।

प्रजादा (सं० स्त्री०) प्रजां गर्भदोषनिवारणेन सन्तितं ददातीति दा-क टाप्। १ गर्भदाती क्षुप, गर्भ देनेवाली भोषधि-स्ता। (बि०) २ प्रजादाता, सन्तान देनेवाली। प्रजादान (सं० ह्वी०) प्रजायाः दानं। १ प्रजाका दान। २ प्रजाका आदान, ग्रहण। प्रजातः जन्मतः दानं शुद्धि-रस्य। ३ रजत, चाँदी।

प्रजाद्वार (सं ० क्ली०) १ प्रजा या सन्तान उत्पन्न करने-का साधन या उपाय। २ सूर्यका नामान्तर।

प्रजाधर्म ( सं ॰ पु॰ ) प्रजा या पुलका कर्त्तेव्य कमें । प्रजाध्यक्ष ( सं ॰ पु॰ ) प्रजायाः अध्यक्षः । १ प्रजापति ।

२ दक्ष ३ कर्दम। ४ सूर्ट।

प्रजानन्ती (सं ॰ स्त्री॰) प्रजानातीति प्र-हा-शन्-ङीप्। पण्डिता, विदुषी।

प्रजानाथ (सं॰ पु॰ ) प्रजायाः नाथः । १ लोकनाथ, नृष, राजा । २ ब्रह्मा । ३ मन्त्र । ४ दक्ष ।

प्रजानिषेक (सं० पु०) १ गर्भधारण । २ गर्भस्थ व्रूण, पुत ।

प्रज्ञान्तक (सं० पु०) प्रजायाः अन्तकः। काल, यम।
प्रजाप (सं० पु० प्रजाः पातीति-पा रक्षणे क। राजा।
प्रजापति (सं० पु०) प्रज्ञानां पतिः। १ त्रह्मा। ब्रह्मापुत
प्रजापतिसे विराट उत्पन्न हुए हैं। वि ।ट वेस्तो।

बेदों और उपनिषदोंसे ले कर पुराणों तकमें प्रजापित-के सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रचलित हैं। तैसि-राय ब्राह्मणमें लिखा है, कि ब्रह्माके पुत्र प्रजापित प्रजा-सृष्टि करनेके वाद मायाके वशमें हो कर भिन्न भिन्न शरीरोंमें वंध गये थे। उन्हें इस अवरोधसे मुक्त करनेके लिये देवताओंने एक अध्वमेध-यञ्च किया। इस पर शरीर पिञ्जरसे मुक्त हो कर उन्होंने देवताओंको पेश्वर्यलामका बर दिया था। ऐतरैय-ब्राह्मणमें लिखा है, कि प्रजापितने सम्मोग किया था जिससे सृगनक्षतको उत्पत्ति हुई थी और वे स्वयं तथा उपा दोनों मिल कर रोहिणी नामक नक्षतके क्यमें परिवर्त्तित हो गये थे। सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि देवराज इन्द्रने प्रजापतिसे सूक्त भारमज्ञान तथा वैरोचनने स्थूल आत्मज्ञान प्राप्त किया था। पुराणोंमें ब्रह्माके पुत अनेक प्रजापतियों-का उल्लेख है।

आहिकतत्त्वमें दश प्रजापतिका उल्लेख हैं, यथा— मरीचि, अति, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, कतु, प्रचेता विशिष्ठ, भृगु और नारद।

महाभारतमें मोक्षधमैंमें इक्कीस प्रजापतियोंका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—ब्रह्मा, स्थाणु, मन्जु, दक्ष, खृगु, धमै, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अलि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, विशष्ठ, परमेष्टी, विवस्तत्, सोम, कर्दम, क्रोध, अर्वाक् और क्रीत । पुरुषमेधयद्यमें प्रजापतिके आगे पुरुषकी वली दी जाती है। पुरुषमें देखो।

पुराणादिमें इन सवके अलावा और भी प्रजापतिका उल्लेख है। यथा—शंयु। "म्यु: प्रजापति; ।'' (श्रुति )

युक्तप्रदेशके कुम्हार अपने अपने चाकका प्रजापति रूपमें पूजन करते हैं।

२ दक्षादि। ३ महीपाल, राजा। ४ इन्द्र। ५ जामाता, दमाद। ६ दिवाकर, सूर्य। ७ वहि, आग। ८ त्वधा, विश्वकर्मा। ६ पिता। १० यज्ञ। ११ मनु। मालिक या वड़ा, वह जो परिवारका पालन-पोपण करता हो। १३ एक तारा। १४ साठ संवत्सरोंमेंसे पांचवां संवत्सर । १५ आड प्रकारके विवाहींमेंसे एक प्रकारका विवाह। प्रजापित देखो। १६ खनामख्यात कीटभेद, (Butter-fly) । इसका शरीर पतंगके जैसा तीन भागोंमें विभक्त है—मुखमएडळ, वक्ष और उदर तथा गुहादेश। शरीरके दोनों वगलमें दो रहते हैं । पंखका अगला और पिछला कुछ छोटा होता है तथा वह कांचको तरह सफेद मालूम पड़ता है। इस जातिका कीड़ा रात दिन मधु-सञ्चयमें लगा रहता है। ये निरीह सभावके होते और वृक्षपतादि गलित काष्ठ तथा जीवलोमपशमादि

Vol. XIV, 121

खा कर अपना गुजारा चलाते हैं। टिड्डीकी तरह ये शस्य प्रजायिनी (सं० स्त्री०) माता। वृक्षादिके क्षयकारक नहीं है।

पतङ्ग शन्दमें तिशेष विवर्ण देखी।

वैग्रानिकोंने इस जातिके पतङ्गका Lepidoptera नाम रखा है। इसके मध्य फिर तीन श्रेणी-बिभाग किये गये हैं, L. Diurna, Nocturna और L. Crepuscularia। जो प्रजापति दिवाकालमें विहार करते थे वे Diurna, जो स्यांस्तकालमें बिहार करते, वे Nocturna और जो सवेरे, हो पहर तथा सन्ध्याकालमें विचरण करते वे Crepuscularia नामसे निर्दिष्ट हुए हैं। भारुतिके अनुसार इनकी भी पदसंख्याकी हास वृद्धि देखी जाती है। छोटे प्रजापितके १० और वड़े के १६ पैर होते हैं। इनमेंसे ६ मुखमें, ८ उदरमें और २ गुहादेशमें भवस्थित हैं। भारतवर्षके हिमालय प्रदेशमें तथा दार्जिलिङ्ग नामक स्थानमें नाना वर्णीमें चित्रित चिमिन्न जातीय प्रजापित देखे जाते हैं। उनका गातवर्ण ऐसा मनोहर होता, कि देखनेसे ही उन्हें पकडनेकी इच्छा होती है। विद्यानविदोंके यत्तसे सैकडों विभिन्न प्रकारके प्रजापति संगृहीत हो कलकत्तेके 'पशियादिक म्यूजियम' नामक जादूघरमें रखे गये हैं।

प्रजापित—हिंगुलवासी एक हिन्दूसाधु। उन्होंने ब्रह्ममें साकारत्वकी कत्यना करके शिष्यमण्डलोको शिक्षा दी। उनके मतसे परमात्मामें मानवात्माको लोनता ही देहका मोक्ष है।

प्रजापतिगृहीत (सं० वि०) घातृसृष्ट, विधातासे सृष्ट ।
प्रजापतिगृहीत (सं० वि०) घातृसृष्ट, विधातासे सृष्ट ।
प्रजापतिगृहीत (सं० पु०) दक्षप्रजापति ।
प्रजापतिपति (सं० पु०) दक्षप्रजापति ।
प्रजापतियञ्च (सं० पु०) प्रजापतेर्यक्षः दक्ष्यक्ष ।
प्रजापतिछोक (सं० पु०) ब्रह्मछोक ।
प्रजापतिछोक (सं० पु०) ब्रह्मछोक ।
प्रजापतिहृद्य (सं क्षी०) सामभेद ।
प्रजापती (सं० स्त्री०) शाक्यवुद्धकी पाछियती गोतमी,
गौतमयुद्धको पाछनेवाछी गोतमीका नाम ।
प्रजापाछ (सं० पु०) प्रजां पाछयतीति पाछ-अण् । प्रजापाछक, प्रजाका पाछन करनेवाछा ।
प्रजापाछ्य (सं० क्षी०) प्रजापाछनयोग्य ।

प्रजावत्- (सं० ति०) राजाऽस्त्यस्य मतुष् मस्य व । १ सन्तानयुक्त, जिसके सन्तानसन्तति हो । (पु•)२ पुक्तियुक्त नृप, योग्य राजा। प्रजाबती (सं॰ स्त्री॰) पूजाबत्-ङीप् । १ भ्रातृजाया, माई-की स्त्री। २ वड़े भाईकी स्त्री, भाभी, भौजाई। ३ पिय-त्रतपत्ती, प्रियत्रत राताकी स्त्रीका नाम। ४ सन्तान-विशिष्टा, वहुत-से लड़कोंकी माता। ५ गर्भवती स्त्री। प्रजाविद् ( सं० ति० ) प्रजां चिन्द्तीति किप् । पृजालाभ-प्रजासनि (सं॰ पु॰) प्रजां सनोति ददाति सम-स्न्। प्रजोत्पाद्कः । प्रजास्ज् ( सं॰ पु॰ ) स्ष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा । प्रजाहित (सं० स्त्री०) प्रजाये हितम्। १ जल, पानी। ( ति॰ ) २ प्रजोपकार, प्रजाकी भलाई। प्रजित् ( सं ० ति ० ) विजेता, विजय करनेवाला । प्रजिन (सं• पु॰) प्रकर्षेण जयतीति प्र-जि-बाहुलकात् नक् । वायु, हवा । प्रजिहीर्पु (सं ० ति ०) प्रहर्त्तु मिच्छुः । प्र-इ-सन्-उ। प्रहा-रेच्छु, जो आघात करना चाहती। प्रजीवन ( सं॰ क्वी॰ ) जीविका, रोजी। प्रजुष्ट (सं ० ति० ) प्र-जुप-क । प्रसक्त, लगा हुआ। प्रजेश ( सं॰ पु॰ ) प्रजानामीशः । प्रजापति । प्रजेश्वर ( सं० पु० ) प्रजानामीश्वरः । राजा । प्रज्माटिका ( सं० स्त्री० ) प्राकृत छन्दोमेद । इसके प्रत्येक चरणमें १६ मालाएं होती है। इसे पदरी, पद्धिका, प्रज्वलय और प्रज्वलिया भी महते हैं। प्रज्ञ (सं० ति०) प्रकर्पेण जानातीति प्र-जा। ( भावश्वीप-संगै। या २१११६२) इति क। विद्वान, जानकार। प्रज्ञता (सं॰ स्त्री॰) प्रज्ञस्य भावः, तल्-दाष् । पारि्डत्य, विद्वता। प्रज्ञति ( सं॰ स्त्री॰) प्र-ज्ञा-णिच्-िक्तन् । १ सङ्केत, स्त्रारा । २ ज्ञान, अक्तु। ३ ज्ञापन, जतानेका भाव। ४ स्चना, खवर । ५ जिनविद्यादेवीविशीप। प्रज्ञतिवादिन् ( सं० ति० ) ज्ञानवादी । प्रज्ञसी (सं स्त्रो॰) प्रमृप्ति वाहु छोष्। जिनविद्यादेवी-विशेष। जैनोंकी एक विद्यादेवी।

प्रज्ञा (सं॰ स्त्री॰) प्र-ज्ञा-क, टाप् । १ वुद्धि, ज्ञान । इसके ग्यारह चैदिक पर्याय हैं, यथा-केतु, केत, चेतस्, चित्त, कतु, असु, घी, शची, माया, वयुन, अभिख्या । २ एका-व्रता । ३ प्राज्ञी, प्रकर्षेण जानाति या । ४ सरखती । प्रज्ञा—वीद्धशास्त्रमें 'प्रज्ञा' का अर्थ ज्ञान वा वुद्धि वतलाया है। गुणकारएडव्यूहमें लिखा है, कि जव जगत्में कुछ भी न था, तव स्वयम्भू आदि बुद्ध रूपमें आविभूत हुए। उन्हीं एक बुद्धने चार हाथोंकी कल्पना करके अपनी इच्छासे प्रशाकी सृष्टि की। बुद्ध और प्रश्नाने एक साथ मिल कर 'प्रश्वा उपाय' नामघारण किया । अप्रासाह-स्निका प्रज्ञापारमित प्रन्थमें लिखा है, कि एकमात बुद्ध ही जगत्के गुरू और प्रज्ञा गुणोंके आवार हैं। कमशः पौत्तलिक प्रवाहमें पड कर 'प्रकृति' खरूपा प्रज्ञादेवी देवता-रूपमें आदृत हुई थी। पूजाखएडमें वे जगन्माता, निरूप, प्रज्ञारूप, प्रज्ञापारमिता और प्रकृति इन सव नामों से पूजित हुई हैं। प्रहादेवी ही जगत्प्रकृतिकी अनुरूपा (Diva Natura) और धर्म मानी गई हैं ! नौद धर्मपुराणमें गौहाटीके कामेश्वरी-मन्दिरके योनिपीट विकोणाकार यन्त्रको जगन्माता बतलाया है। आदि प्रज्ञा वा धर्म हो प्रज्ञादेवी हैं। जब सभी श्रन्यमय था, तब एकमात प्रशादेवी ही आकाशसे मूर्त्तिमें प्रकाशित हुई थीं । योनिपीटस्थ तिकोणाकार यन्त्रके विन्दुसे वे अपनी इच्छासे आदि प्रज्ञारूपमें और उक्त तिकोणके पार्श्वदराङसे बुद्ध, धर्म और सङ्घ उत्पन्न हुए ।

प्रज्ञाकर—एक मैथिलपिएडत। ये विद्याकरके पुत और मिश्र आनम्दकर खामोके पौत थे। इन्होंने सुवोधिनी नामक नलोदयदीकाकी रचना की।

प्रज्ञाकाय (सं• पु•) प्रज्ञा काय इच अस्य । बौद्धाचार्य मञ्जुघोष ।

प्रज्ञाकूट ( सं॰ पु॰ ) वोधिसत्त्वभेद ।

प्रज्ञाचक्षस् (सं॰ पु॰ ) प्रज्ञा एव चक्षुर्थस्य । १ धृतराष्ट्र । (ति॰ ) २ प्रज्ञाचक्षुःयुक्त, जिसके प्रज्ञारूप चक्ष हो । ३ अंधा ।

प्रश्वाचन्द्र—एक बौद्धपुरोहित । चीनपरिनृाजक इत्सिं जब नालन्दासे तीन योजन पश्चिम तिलाढ़क सङ्घाराममें पहुंचे, उस समय ये वहांके आचार्य थे। प्रज्ञाह्य (सं• पु॰) प्रश्नाया आह्य युक्तः । प्रज्ञासम्पन्न, बुद्धियुक्त ।

प्रज्ञातर—मध्यभारतवासी एक बौद्धाचार्य। दाक्षिणात्य जा कर इन्होंने वहांके २य राजपुत्र वोधिथर्मको (१) धर्मों-पदेश दिया था। ४५७ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

प्रज्ञातृ (सं ० ति ०) प्र-ज्ञा-तृण् । सर्वाभिज्ञ ।
प्रज्ञाति (सं ० पु०) स्वार्थे अण् प्रत्ययनिमित्त शब्दगणभेद । १ प्रज्ञ आदि करके शब्दगण । गण यथा—प्रज्ञ,
वणिज्, उशिज्, उण्जिज्, प्रत्यक्ष, विद्वस्, विदिन्, पोड़न्,
विद्या, मनस्, श्रोत, शरीर, जुद्धत्, कृष्णमृग, चिकीर्षत्,
चोर, शतु, योध, चक्षुस्, वसु, एसन्, मक्त, कुञ्च,
सत्वत्, दशाहै, वयस्, व्याकृत, असुर, रक्षस्, पिशाच,
अशनि, कर्यापण, देवता और वन्धु । २ अस्त्यर्थमें
ण-प्रत्यय निमित्त शब्दगणभेद । गण यथा—प्रज्ञा
और श्रद्धा ।

प्रकादित्य (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजा । काश्मीर देखों ! प्रकान (सं॰ क्षी॰) प्रकायतेऽनेनेति प्र ज्ञा-ल्युट् । १ वुद्धि, ज्ञानं । २ चिह्न, निशान । ३ चैतन्य, होश । ४ पण्डित, विद्वान् ।

प्रश्नानन्द—एक वौद्ध-पिएडत । प्रश्नास्त्रस्पके शिष्य । इन्होंनें तत्त्वप्रकाशिका नामक तत्त्वालोकटीका और त्रिपुटी-प्रकरणटीका नामक और भी एक प्रन्थ रचे हैं ।

प्रज्ञानाश्रम—स्वात्मनिरूपणप्रकरण नामक प्रन्थको टोकाके रचयिता ।

प्रज्ञापारमिता (सं ० स्त्री ०) बौद्ध-प्रन्थोंके अनुसार दश पार्रामताओंमेंसे एक जिसे गौतम-बुद्धने अपने मर्कट जन्ममें प्राप्त किया था।

प्रज्ञाप्त (सं० ति० ) १ सज्जित, सजाया हुआ । २ आदिए, हुकुम दिया हुआ ।

प्रज्ञाभद्र—एक वौद्धाचार्य । चीनपरिव्राज्ञक यूपनचुवङ्ग जव तिलाढ़क सङ्घाराममें आये, उस समय ये वहां पुरो-हिताई करते थे । यूपनचुवङ्गने ६३७ ई०में उनसे धर्म-संक्रान्त कितने भ्रम मिटा लिये थे ।

<sup>(</sup>१) ये बोधिवर्त प्२६ ई०में धर्मप्रचार करनेके छिये चीन देशा गये थे।

पृज्ञामय ( सं० ति० ) प्रशा-खरूपे मयट्। प्रशासक्रप, वुद्धिमान्।

प्रज्ञाल (सं० ति०) प्रज्ञास्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। चुद्धियुक्त, पण्डित।

प्रज्ञायत् (सं० ति०) प्रज्ञा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। प्रज्ञायुक्त, वुद्धिमान्।

पूज्ञावमेन एक वौद्ध-धर्मशास्त्रवेता । ये चीनराज्यके अन्तर्गत कोरियाविभागके सिको नामक स्थानमें रहते थे। इनका चैनिक नाम ह्विइ-छुन् था। भारत पर धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे इन्होंने खराज्य छोड़ दिया और अपना समय वौद्ध-संन्यासियोंके साथ वितानेका सङ्कृष्य किया। राहमें ये गुयन-चौरके साथ मिल गये। १० वर्ष तक ये अमरावत सङ्घाराममें ठहरे थे। पीछे गन्धारसन्द-मन्दिरमें आ कर इन्होंने संस्कृत अध्ययनमें अपना शेप जीवन विताया।

प्जासहाय ( सं० पु० ) ज्ञानी, बुद्धिमान्।

प्रशिन् ( सं॰ ति॰ ) प्रज्ञास्त्यस्येति इनि । पण्डित ।

प्रज्ञिल ( सं॰ ति॰ ) प्रज्ञा-अस्त्यर्थे पिच्छादित्वात् इलच् । पण्डित, वुद्धिमान् ।

प्रज्ञु ( सं॰ पु॰ ) प्रगते जानुना यस्य जानुनो झः। प्रगतः जानुक, खञ्जपाद ।

प्रज्वलन ( सं॰ क्ली॰ ) प्र-जल-ल्युट् । प्रक्रप्रज्वलन, अच्छी तरह जलनेकी क्रिया ।

पूज्वलित (सं० ति०) प्र-जल-क्त । १ प्रकृष्टज्वलनयुक्त, दह-कता हुआ, घघकता हुआ। २ अति खच्छ, वहुत साफ।

प्रज्वित्या (हि॰ पु॰ ) छन्दोविशेष, एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें १६ मालाएं होती हैं।

प्रज्वार (सं॰ पु॰) १ ज्वरका प्रदाह, बुखारकी गर्मी । २ एक गन्धवीका नाम ।

प्रज्वालन (हि॰ कि॰) जलाना, दहकाना।

प्रडीन (सं० पु॰े प्र-डी-नभ गतौ का। पक्षियोंकी गति-विशेष ।

पण ( सं० ति० ) प्राचीन, पुराना ।

पूण (हिं॰ पु॰) किसी कामको करनेके लिये किया हुआ अटल निश्चय, प्रतिज्ञा। पूणरखं ( सं॰ पु॰) प्रकृष्टः नरखः पूर्वपदात् णत्यं । नखात्र, नाखूनका अगला भाग ।

पूणत ( सं० त्नि० ) प्र-नम-क । १ प्रणतिविशिष्ट, प्रणाम करता हुआ । २ वक्र, वहुत भुका हुआ । (पु०) ३ प्रणाम करनेवाळा । ४ दास, सेवक । ५ भक्त, उपासक ।

पूणतपाल ( सं॰ पु॰ ) दीनों, दासों या भक्तजनोंका पालन करनेवाला, दीनरक्षक ।

पूर्णात (सं• स्त्री॰) प्रकृष्टं नमनं प्र-तम-भावे-किन् । १ प्रणाम, प्रणिपात, दण्डवत । २ नम्रता । ३ विनती । पूर्णादन (सं॰ पु॰) प्र-नद्र-भावे ल्युट् णत्वं । प्रणद्, बहुत जोरसे होनेवाला शन्द ।

पुणम (हिं पु ) वणम देखी।

पूणमन (सं• पु॰) १ मुकना। २ दण्डवत या नमस्कार करना, प्रणाम करना।

पूणम्य (सं ० ति ०) प्रणम्य, प्रणाम करने योग्य, वन्दनीय। पूण्य (सं ० पु०) प्रणयनं प्रणो (एःच्। ५। ३।३।५६) इति अच्। १ प्रतियुक्त प्रार्थना। २ प्रेम। ३ विश्वास, भरोसा। ४ निर्वाण, मोक्ष। ५ श्रद्धा। ६ प्रसव, स्रोका सन्तान उत्पन्न करना। ७ प्रार्थना।

पूणयन (सं० क्की०) प्र-णी-भावे-ल्युट् णत्वं । १ रचना, वनाना, करना । २ होम आदिके समय अनिका एक संस्कार।

पूणयनीय (सं ० ति०) प्र-नी-कर्मणि-अनीयर्। १ प्रकर्ष-रूपसे नेतव्य। २ संस्कार्य वहिमेद। ३ अग्नि-संस्कार-सम्बन्धी, इध्मकाग्रादि।

पूणयचत् (सं ० ति०) प्रणय-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। प्रणययुक्त ।

पूणयचिहति , सं • स्त्री • ) प्रणयस्य विहतिः। असीकार, नामंजूर।

पूर्णयिता (सं • स्त्री •) प्रणयिनो भावः तस्-टाप् । प्रणयी-्का भाव या धर्मे ।

प्रणियन् (सं ० पु०) प्रणयोऽस्यास्तीति प्रणय-इनि । १ सामी, पति, पूरेम करनेवाला । (ति०) २ प्रणययुक्त । पृणियनी (सं ० स्त्री०) १ पूरिमका, यह जिसके साथ पूरेम किया जाय । २ स्त्री, पत्नी ।

प्रणयी (सं • पु • अणियन देखा ।

पूणव (सं ॰ पु॰) प्रकर्षण नृयते स्त्यते आत्मा खें एदेवता चानेनेतित्र नु (ऋदेरप्। पा ३,३।५०) इति अप ततो णत्यं, अथवा ब्रह्मविष्णुमहेशारूपत्वात् प्रणम्यते इति प्रनम् कर्मणि-घञ् सं शापूर्वकत्वात् वृद्ध्य सावः, षृपोद्रादि-त्वात् मस्य वान् १ ओङ्कार । वेदपाठके पहले ओङ्कारका उद्यारण होता है।

> "भोङ्कारप्रणवस्तारो वेदादिवैर्त्तुलो ध्रुवः। तैगुण्यं तिगुणो ब्रह्म सत्यो मन्तादिरव्ययः। ब्रह्मवीजं तितस्वञ्च पञ्चरिमिस्त्रदैवतः॥" (वीजवर्णाभिधानतन्तः)

अ, उ और म, इन तीन अक्षरोंकी सन्धि हो कर ओङ्कार शब्द निष्पन्न हुआ है। इनमेंसे अ-कार शब्दसे विष्णु, उन्कारसे महेश्वर और म-कारसे ब्रह्माका वोध होता है अर्थात् ओङ्कार वा प्रणव कहनेसे ये तीनों ही समभे जाते हैं।

"अकारो विष्णुकदृष्टि उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेण तयो मताः।"
( महानिर्वाणतन्त )

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मणको वेदपाउके पहले और पोछे प्रणवका उचारण करना चाहिये।

"व्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वंपरस्ताच विशीर्यते ॥" ( मनुंश७४)

पातञ्जलदर्शनमें प्रणवको ईश्वर-बाचक वतलाया है। प्रणव जपादि द्वारा ईश्वरकी उपासना होती है। प्रणव वेदका आदि वा प्रथम है।

"आसीन्महोक्षितामाद्यः प्रणवन्द्च्छसामिव ।" (रघुवं १० स०)

ओङ्कार या प्रणव यह प्राङ्गलिक है। किसी भी कार्यके पहले इसका उचारण करनेसे मङ्गल होता है। ओङ्कार और अद्य ये दो शब्द ब्रह्माका कएड छेद कर वाहर निकले थे, इसीसे ये दीनों शब्द मङ्गलजनक हैं।

"ओङ्कारएवाथ शब्दश्व द्वावेती ब्रह्मणः पुरा। "कण्डं मित्वा विनिर्याती तेन माङ्गळिकावुमी॥" (सांख्यवचनमान्य)

तिधितत्त्वमें रघुनन्दनने लिखा है, कि पाठ वा Vol. XIV, 122 यज्ञादिकालमें यदि कुछ न्पून, अतिरिक्त, छित्रयुक्त ना अयित्रिय हो, तो ओङ्कार उच्चारण करनेसे वे सव अछित्र वा अविकल हो जाते हैं अर्थात् इससे सदोप भी निर्दोष हो जाता है।

मृत्युकालमें यदि कोई विष्णुका स्मरण कर 'ओं' इस अक्षरका उच्चारण करते हुए देह त्याग करे, तो वह परम-गतिको प्राप्त होता है।

"ओ" मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥" (गीता ८।१४)

विशेष विवरण औंकार शब्दमें देखी ।

२ सामावयवमेद । ३ परमेश्वर । प्रणवना (हिं० किं०) प्रणाम या नमस्कार करना, श्रद्धा और नम्रतापूर्वक किसीके सामने भुकना । प्रणस (सं० ति०) प्रगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्य नसादेशः, अस् समासान्तः णत्वश्च । विगतनासिका,

प्रणाड़ी ( सं॰ क्लो॰ ) प्रणाल<del>ी लस्य उ</del> । १ प्रणाले देखो । २ द्वारमात ।

जिसकी नाक कट गई हो, नकटा।

प्रणाद (सं० पु०) प्रणदनिर्मित प्र-णद-धञ् । १ अनुरागज शब्द, आनन्दध्यिन । २ उद्यशब्द, बहुत जोरसे होनेवाली आवाज । ३ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग इसमें कानोंमें तरह तरहकी गूँज सुनाई देती हैं । ४ चक्रवर्त्तीमेद । प्रणाम (सं० पु०) प्र-णम-भावे धञ् । प्रणति, प्रणिपात, दण्डवत् । प्रणाम चार प्रकारका होता है, अभिवादन, अष्टाङ्ग, पञ्चाङ्ग और करशिरःसंगंग ।

> "यद्वभ्यां कराभ्यां जानुध्यामुरसा शिरसा दूशा। वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥" (कालिकायु०)

दोनों हाथ, दोनों पैर, जानु, वशस्थल, मस्तक, इन आठ अङ्गोंसे जो प्रणाम किया जाता है उसे अद्याङ्ग प्रणाम कहते हैं। श्रीकृष्णके उद्देशसे जो अद्याङ्गप्रणाम करता है, बह सहस्रजन्मार्जित पापसे मुक्त हो कर विष्णुलोक जाता है। इसके बाद पञ्चाङ्ग प्रणाम है।

"वाहुम्यां चैव जानुम्यां शिरसा वचसा दूशा। पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमी॥" (कालिकाषु०) पूजामय ( सं० ति० ) प्रज्ञा-खरूपे मयट्। प्रज्ञाखरूप, बुद्धिमान्।

प्रज्ञाल (सं० ति०) प्रज्ञास्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच् । बुद्धियुक्त, पण्डित ।

प्रज्ञायतः ( सं० ति० ) प्रज्ञा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । प्रज्ञायुक्त, बुद्धिमान् ।

पूज्ञावर्मन् एक वौद्ध-धर्मशास्त्रवेत्ता । ये चीनराज्यके अन्तर्गत कोरियाविभागके सिको नामक स्थानमें रहते थे। इनका चैनिक नाम ह्विइ-छुन् था। भारत पर धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे इन्होंने खराज्य छोड़ दिया और अपना समय वौद्ध-संन्यासियोंके साथ वितानेका सङ्कर्ण किया। राहमें ये गुयन-चौरके साथ मिल गये। १० वर्ष तक ये अमराधत सङ्घाराममें छहरे थे। पीछे गन्धारसन्द-मन्दिरमें आ कर इन्होंने संस्कृत अध्ययनमें अपना शेष जीवन विताया।

प्जासहाय ( सं० पु० ) ज्ञानो, बुद्धिमान्।

प्रजिन् (सं वि वि ) प्रश्वास्त्यस्येति इनि । पण्डित ।

प्रज्ञिल ( सं॰ ति॰ ) प्रज्ञा-अस्त्यर्थे पिच्छादित्वात् इलच् । परिडत, वुद्धिमान् ।

प्रज्ञु (सं॰ पु॰) प्रगते जानुना यस्य जानुनो झः। प्रगतः जानुकः, खञ्जपाद ।

प्रज्वलन ( सं॰ क्षी॰ ) प्र-जल-ल्युर् । प्ररूष्टज्वलन, अच्छी तरह जलनेकी किया ।

पुज्वलित (सं० ति०) प्र-जल-क । १ प्रकृष्टज्वलनयुक्त, दह-कता हुआ, धधकता हुआ। २ अति खच्छ, वहुत साफ।

प्रज्यलिया ( हिं॰ पु॰ ) छन्दोविशेष, एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें १६ मालाएं होती हैं।

प्रज्वार (सं॰ पु॰ ) १ ज्वरका प्रदाह, बुखारकी गर्मी । २ एक गन्धर्वका नाम ।

प्रज्यालन (हिं० क्रि०) जलाना, दहकाना।

प्रडीन (सं० पु॰े प्र-डी-नभ गतौ कः। पक्षियोंकी गति-विशेष ।

पूण ( सं० ति० ) प्राचीन, पुराना ।

पूण (हिं० पु०) किसी कामको करनेके लिये किया हुआ अटल निश्चय, प्रतिज्ञा । पूणरत्न ( सं॰ पु॰) प्रकृष्टः नरतः पूर्वपदात् णत्वं । नलाग्र, नाखुनका अगला भाग ।

पूणत ( सं० ति० ) प्र-नम-क । १ प्रणतिविशिष्ट, प्रणाम करता हुआ । २ वक्र, बहुत भुका हुआ । (पु०) ३ प्रणाम करनेवाला । ४ दास, सेवक । ५ भक्त, उपासक ।

पूणतपाल ( सं॰ पु॰ ) दीनों, दासों या भक्तजनोंका पालन करनेवाला, दीनरक्षक ।

पूर्णित (सं• स्त्री॰) प्रकृष्टं नमनं प्र-नम-भावे-क्तिन् । १ प्रणाम, प्रणिपात, दण्डवत । २ नम्रता । ३ विनती । पूर्णदन (सं॰ पु॰) प्र-नद-भावे ल्युट् णत्वं । प्रणद, वहुत जोरसे होनेवाला शब्द ।

पुणम (हिं पु॰) प्रणाम देखो ।

पूणमन (सं• पु॰) १ फुकना। २ दएडवत या नमस्कार करना, प्रणाम करना।

पूणस्य (सं० ति०) प्रणस्य, प्रणाम करने योग्य, वन्त्नीय। पूण्य (सं० पु०) प्रणयनं प्रःणो (एटच्। धा शश्यः) इति अच्। १ प्रतियुक्त प्रार्थना। २ प्रेम। ३ विश्वास, भरोसा। ४ निर्वाण, मोक्ष। ५ श्रद्धा। ६ प्रसव, स्रोका सन्तान उत्पन्न करना। ७ प्रार्थना।

पूणयन (सं० ह्यो०) प्र-णी-भावे-ल्युट् णत्वं। १ रचना, वनाना, करना । २ होम आदिके समय अग्निका एक संस्कार।

पूणयनीय (सं ० ति०) प्र-नी-कर्मणि-अनीयर्। १ प्रकर्ष-रूपसे नेतब्य। २ सं स्कार्य विद्विमेद्। ३ अग्नि-संस्कार-सम्बन्धी, इध्मकाष्ट्रादि।

पूणयवत् (सं • ति •) प्रणय-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । प्रणययुक्त ।

पूणयविद्दति । सं ० स्त्री० ) प्रणयस्य विद्दतिः । असीकार, नामंजूर ।

पूर्णियता (सं • स्त्री •) प्रणियनो भावः तल्-राप् । प्रणयौ-्का भाव या धर्म ।

प्रणयिन् (सं ॰ पु॰) प्रणयोऽस्थास्तीति प्रणय-इनि। १ स्वामी, पति, पूम करनेवाला। (ति॰) २ प्रणययुक्त। पूज्यिनी (सं ॰ स्त्री॰) १ पूमिका, वह जिसके साथ पूम किया जाय। २ स्त्री, पत्नी।

प्रणयी (सं० पु०) प्रणायन, देखो ।

पूणव (सं० पु०) प्रकर्षेण नूयते स्त्यते आत्मा खे एदेवता चानेनेतिप्र नु (ऋदोरण् । पा ३.३।५०) इति अप ततो णत्वं, अथवा ब्रह्मविष्णुमहेशरूपत्वात् प्रणम्यते इति प्र नम कर्मणि-धन् संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्ध्य भावः, षृषोद्रादि-त्वात् मस्य वा । १ ओङ्कार । वेदपाठके पहले ओङ्कारका उश्चारण होता है ।

> "भोङ्कारप्रणवस्तारो वेदादिर्वर्चुळो घ्रुवः। तेयुण्यं त्रिगुणो ब्रह्म सत्यो मन्तादिरव्ययः। ब्रह्मवीजं त्रितस्वञ्च पञ्चरिमस्त्रिदैवतः॥" (वीजवर्णामिधानतन्त्र)

अ, उ और म, इन तीन अक्षरोंकी सन्धि हो कर ओङ्कार शब्द निष्पन्न हुआ है। इनमेंसे अ-कार शब्दसे विष्णु, उ-कारसे महेश्वर और म-कारसे ब्रह्माका वोध होता है भर्धात् ओङ्कार वा प्रणव कहनेसे ये तीनों ही समके जाते हैं।

"सकारो विष्णुरुदृष्टि उकारस्तु महेश्वरः। मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेण त्रयो मताः।"

( महानिर्वाणतन्त )

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मणको वेदपाठके पहले और पीछे प्रणवका उचारण करना चाहिये।

"ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वंपरस्ताच विशीर्यते ॥"

( मनु श्रे १)

पातञ्जलदर्शनमें प्रणवको ईश्वर-बाचक वतलाया है। प्रणव जपादि द्वारा ईश्वरकी उपासना होती है। प्रणव वेदका आदि वा प्रथम है।

> "शासीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवन्द्च्छसामिव ।" (रघुवं १० स०)

भोङ्कार या प्रणव यह प्राङ्गिलिक है। किसी भी कार्यके पहले इसका उच्चारण करनेसे मङ्गल होता है। ओङ्कार और अध ये दो शब्द ब्रह्माका कएउ छेद कर वाहर निकले थे, इसीसे ये दीनों शब्द मङ्गलजनक हैं।

"भोङ्कारश्वाथ शन्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
"कराठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुमौ॥"
( सांख्यवचनभाष्य )

तिथितस्वमें रघुनन्दनने लिखा है, कि पाठ या

यश्चादिकालमें यदि कुछ न्यून, अतिरिक्त, छिद्रयुक्त वा अयिश्वय हो, तो ओङ्कार उच्चारण करनेसे वे सव अछिद्र वा अविकल हो जाते हैं अर्थात् इससे सदोप भी निर्दोष हो जाता है।

मृत्युकालमें यदि कोई विष्णुका स्मरण कर 'ओं' इस अक्षरका उचारण करते हुए देह त्याग करें, तो वह परम-गतिको प्राप्त होता है।

"सोँ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुरुमरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥" (गीता ८।१४)

विशेष विवरण औं कार शब्दमें देखी ।

२ सामावयवमेद । ३ परमेश्वर ।

प्रणवना (हिं० किं०) प्रणाम या नमस्कार करना, श्रद्धा और
नम्रतापूर्वक किसीके सामने फुकना ।

प्रणस (सं० ति०) प्रगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्य
नसादेशः, अच् समासान्तः णत्बद्ध । विगतनासिका,
जिसको नाक कट गई हो, नकटा ।

प्रणाड़ी (सं० झो०) प्रणाळी-छस्य-ड । १ श्रणाठो देखो ।
२ द्वारमात ।

प्रणाद (सं॰ पु॰) प्रणदनिमिति प्र-णद्-धञ् । १ अनुरागज शब्द, आनन्द्ध्वित । २ उद्यशब्द, बहुत जोरसे होनेवाली आवाज । ३ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग इसमें कानोंमें तरह तरहकी गूँज सुनाई देती है । ४ चक्रवर्त्तीमेद । प्रणाम (सं॰ पु॰) प्र-णम-भावे धञ् । प्रणति, प्रणिपात, दण्डवत् । प्रणाम चार प्रकारका होता है, अभिवाद्न, अष्टाङ्ग, पञ्चाङ्ग और करशिरःसंयोग ।

"पड्स्यां कराभ्यां जानुध्यामुरसा शिरसा दृशा। वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥" (कालिकायु०)

दोनों हाथ, दोनों पैर, जानु, वसस्थल, मस्तक, इन आठ अङ्गोंसे जो प्रणाम किया जाता है उसे अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं। श्रीकृष्णके उद्देशसे जो अष्टाङ्गप्रणाम करता है; बह सहस्रजन्मार्जित पापसे मुक्त हो कर विष्णुलोक जाता है। इसके वाद पञ्चाङ्ग प्रणाम है।

"वाहुभ्यां चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा द्वशा । पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमी॥" (कालिकायु०) दोनों वाहु, दोनों जानु, मस्तक, वाष्य और चशु इन पांच अङ्गोसे जो प्रणाम किया जाता है, उसे पञ्चाङ्ग प्रणाम कहते हैं। देवमूर्त्ति और ब्राह्मणादि पर नजर षड़ते ही उन्हें प्रणाम करना चाहिये। जो देवताके उद्देश्यसे कभी भी प्रणाम नहीं करने उनका शरीर शव तुल्य है। अतः उसके साथ कभी भी वातचीत नहीं करनी चाहिये।

> "सम्बद्धा न नमेनद्यस्तु विग्णवे शर्मकारिणे। शवोपमं विज्ञानीयात् कदाचिदपि नालपेत्॥" ( वृहन्तारदीयपु० )

कायिक, वाचिक और मानसिकके भेदसे यह तीन प्रकारका है। ब्राह्मणको शूद्र-पूजित देवताका प्रणाम नहीं करना चाहिये।

> "यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेदयदि। निष्कृतिस्तस्य नास्त्येव प्रायश्चित्तायुतैरपि॥" (कर्मलोचन)

देवताके उद्देश्यसे प्रणाम करनेसे अशेष मङ्गल होता है। अश्यान्य विवस्ण नमस्कार कन्दमें देखी। प्रणामिन् (सं कि०) प्रणामकारी, प्रणाम करनेवाला। प्रणायक (सं पु०) १ सेनानायक, सरदार। २ पथ-प्रदर्शक, वह जो मार्ग दिखलाता हो।

प्रणाञ्च (सं० क्षि०) प्रणीयते इति प्र-णी-ण्येत् । (प्रणाण्योऽ सन्मतौ । पा ३।१।१२८) इति साधुः । १ असम्मत । २ अभिलाष विवर्जित, निस्पृह । ३ साधु, न्यायवान् । ४ प्रिय ।

प्रणाल (सं• पु॰) प्रणल्यते जलादि निःसार्यतेऽनेनेति प्र-णरू श्रेम् । जलिःसरणमागं, जल निकलनेका मार्ग, पनाला । प्रणालस (सं॰ पु॰) १ जीवशाक । २ वस्तुशाक । प्रणालिका (सं॰ स्त्री॰) १ परनाली, नाली । २ वन्त्र्ककी नली ।

प्रणाली (सं क्ली) प्रणाल-गौरादित्वात् डीष् । १ जलिः सरणमार्ग, पानी निकलनेका रास्ता, नाली । २ पर-स्परा । ३ श्रेणी । ४ रीति, चाल, परिपाटी । ५ पदित, ढंग, तरीका । ६ द्वार, द्रवाजा । ७ जलमागमेद, वह क्लोटा जलमार्ग जो जलके दो बड़े भागोंको मिलाता हो । ८ सुंघनी देनेकी नली ।

प्रणाश (सं० पु०) प्र-नस-घम् ततो णत्व'। १ मृत्यु, मौत। २ पलायन, भागना। ३ नाश, वरवादी। प्रणाशन (सं० पु०) प्र-नश-णिच्-एयु। सम्यक्हपसे नाश या ध्व'स।

प्रणाशी ( सं॰ त्नि॰ ) नाशकारी, नाश करनेवाला । प्राणि सित ( सं॰ त्नि॰ ) प्र-निस-क णत्वं । चुन्नित, जिसका चुम्बन लिया गया हो ।

प्रणिक्षण ( सं ० क्की० ) प्र-निक्ष-ल्युट् णत्वं । उत्तमकपसे चुम्वन ।

प्रणिधान (सं० पु•) पृणिधायतेऽनेनेति पृ-णि-धा-स्युट् णत्वं। १ रखा जाना। २ समाधि, मनकी एकाव्रता। ३ ध्यान। ४ समाधि द्वारा दृष्टि। ५ अपणि। ६ भकि-विशेष। ७ कर्मफल्ट्याग। ८ पृयत्व। ६ अति अधिक उपासना। १० भावी जन्मके सम्बन्धमें किसी पृकारकी पृथिना। ११ पृवेश, गति।

प्रणिधि (सं• पु॰) पृणिधीयते पृनिःधाः कि, णत्वं। १ चर, भेदिया, गोईं दा। २ याचन, मांगना। ३ अवधान, मनोभाव, दिलका लगाव। ४ पृथिना, विनती। प्रणिधेय (सं॰ ति०) प्र-ति-धाः यह । प्रणिधानयोग्य।

प्रणिधेय (सं० ति०) प्र-नि-धा-यत् । प्रणिधानयोग्य । प्रणिनाद (सं० पु०) प्र-नि-नद-धञ् । चञ्रशन्द्वत् गर्ज न शन्द, वज्रके जैसा गरजना ।

प्रणिपतन ( सं॰ ह्यी॰ ) पून्नि-पत-ल्युट् । पृणिपात, प्रणाम ।

प्रणिहित (सं० ति०) प्र-नि-धा-क्त, घा ओहि, णत्वं। १ स्थापित, जिसकी स्थापना की गई हो। २ पाप्त, पाया हुआ। ३ समाहित, रखा हुआ। ४ मिश्रित, मिला हुआ। प्रणी (सं० ति०) प्रणयति प्र-नी किप्। १ कारक, करने वाला। (पु॰) २ ईश्वर।

प्रणीत (सं० ति०) प्र-णी-क । १ निर्मित, बनाया हुआ। २ क्षिप्त, फॅका हुआ। ३ विहित, जिसका विधान किया गया हो। ४ प्रवेशित, जिसका प्रवेश किया गया हो। ५ पास पहुंचाया हुआ। ६ संशोधित, सुधारा हुआ। ३ जिसका मन्त्रसे संस्कार किया गया हो। (पु०) ८ मन्त्रः संस्कृत जल, वह जल जिसका मन्त्रसे संस्कार किया गया हो। क्षा भोजन। १० अच्छी तरह प्रकाया हुआ भोजन।

प्रणीता (सं० स्त्री०) प्रणीत-टाप् । १ वह जल जो यहकी कार्यके लिये वेदमंत्रोंको पढ़ते हुए कुएंसे निकाला जाता है और मन्त्रोचारण सिहत छान कर रखा जाता है। २ मंत्रसंस्कृत जलाभार विशेष, यह पात जिसमें उपयुक्त जल रक्या जाता।

प्रणीप (सं॰ ति॰) प्रणो कर्मणि वेदे क्या । वह वेदिक मन्त्र जिससे किसी चोजका संस्कार किया जाय । प्रणुत (सं॰ ति॰) प्र-णु-का। स्तुत, प्रशंसित। प्रणुदु (सं॰ ति॰, प्र-नुद-किए। १ प्ररणकारी। २ मुग्ध। ३ विचलित। ४ अनुरोध। ५ रोकनेवाला। ६ विताइन-कारी, मार भागनेवाला।

प्रणुष्त (सं • ति ॰ ) प्र-नुद-क । १ नियुक्त, लगाया हुआ । २ प्रेरित, भेजा हुआ । ३ कस्पित, कंपाया हुआ । ४ विताड़ित, भगाया हुआ ।

प्रणेजन ( सं० क्की०) १ प्रक्षालन, धोनां, साफ करना। (ति०) २ प्रक्षालनकारक, धोने या साफ करनेवाला।

प्रणेता ( सं॰ बि॰ ) रचयिता, वनानेवाला।

प्रणेत (सं० ति०) प्र-णी-तृच्। भ्रणेता देखी।
प्रणेय (सं० ति०) प्रकर्षेण नेतुं शक्यः, प्र-णी (भनोयत्।
पा १। १६०) इति यत्। १ वश्य, अधीन। २ इतलौकिक
संस्कार, जिसके लौकिक संस्कार हो चुके हों। ३ प्रापणीय, पाने लायक।

प्रणोदित (सं • ति • ) प्र-तुद-णिच् क । १ प्रे रित । २ नियोजित ।

प्रतक्कन् (सं॰ पु॰) प्र-तक-गतौ वनिष् । प्रकर्ष द्वारा गति युक्त, वहुत अधिक चळनेवाळा ।

प्रतत (सं॰ ति॰) प्र-तन-कः। विस्तृत, छंवा चौड़ा, फैला हुआ।

प्रतित (सं ॰ स्त्री॰) प्र-तन-किच्। १ विस्तृति, विस्तार, फैटाव। २ वही, छता।

प्रतती (सं० स्त्रो०) प्रतति-ङीष्। व्रतती।

प्रतद्वसु (सं ॰ पु॰ ) प्रतत् प्राप्तं वसु घनं येन । १ प्राप्त-वसुक, वह जिसने घन प्राप्त किया हो । २ विस्तीर्ण धन, काफी सम्पत्ति ।

प्रतन (सं ० ति०) प्र (नथ पुराणेप्रोत्। पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्तिकोक्त्या चकारात् द्र्यु तुट् च् । पुरातन, पुराना। प्रतना (सं• स्त्री•) १ गोजिह्वा, गोजिया साग । २ वाट्या-लक । ३ वीजकन्द ।

प्रतन्तु (सं ० ति०) प्रकृष्टस्तनुः प्रादिस०। १ अतिअल्प, बहुत छोटा। २ अति सूक्ष्म, बहुत बारीक। ३ क्षीण, दुवला।

प्रतपन (सं ० क्ली०) १ नरकभेद, एक नरकका नाम। २ उत्ताप, गरमी। ३ प्रज्विलतकरण, तपाना।

प्रतप्त (सं० ति०) प्र-तप-कः। १ उत्तप्त । २ तापित । ३ कथित ।

प्रतमक (सं० पु०) श्वासरोगभेद, एक प्रकारका दमा। प्रतमाम् (सं० अध्य०) प्र-तमप् आमु। अत्यन्त प्रकव। प्रतमाळी (हि० स्त्री०) कटोरी।

प्रतर (सं॰ पु॰) पू-तृ-भावे अप् । १ पृक्षष्टकपसे तरण, अच्छी तरह पार करना । २ प्तरणाधार, वेदा ।

पृतर्क ( सं॰ पु॰ ) पृन्तर्क अप्। १ संशय, संदेह। २ तर्च, वादविवाद।

पृतर्केण ( सं ० ह्वी० ) प्-तर्क, भावे न्युट्। वितर्क, वाद-विवाद । पर्याय—तर्क, न्यूह, वह, ऊह, वितर्कण, अध्याहारण, अध्याहार, ऊहण।

प्रतक्यं (सं विव ) प्र-तकं-यत् । अतर्कणीय ।
प्रतदंन (सं क्षि) प्र-तदं-भावे वयुद् । १ ताइन,
ताइना । (पु०) २ दिचोदासपुत्रमेद, काशीराज दिवोदासके पुत्र । वीतह्य्य नामक एक राजाने जब दिवोदासको पुत्र । वीतह्य्य नामक एक राजाने जब दिवोदासका वंश नष्ट कर डाला, तव उन्होंने भृगुकी सहायतासे एक पुत्रेष्टि-यद्य किया । इस यद्यसे उन्हें एक पुत्र
प्राप्त हुआ जिसका प्रतर्दन नाम रखा गया । अव प्रतर्दन
पितृशतु वीतह्य्य द्वारा किये गये दुष्कमंका वदला लेनेको
अप्रसर हो गये । वीतह्य्यने डरके मारे भृगुमुनिकी
शरण ली । ३ विष्णु । ४ ऋषिमेद । (ति०) ५ ताइक ।
प्रतल (सं क्षी०) प्रकृष्टं तलं । १ पातालमेद, पातालके सातर्ये भागका नाम । २ विस्तृतांगुलि पाणि, हाथकी हथेली ।

प्रतान (सं o go) प्र-तन-घत्र् । १ ऋषिमेव, एक प्राचान ऋषिका नाम । २ वायुरोगविशेष, अपतानक नामक रोग जिसमें वार वार मुर्च्छा आती है । ३ वेल, लता । ४ तन्तु, रेशा (ति o) ५ विस्तृत, लम्बा चौड़ा । ६ तन्तुयुक्त, रेशोदार । प्रतानवत् ( मः o ति o ) प्रतान-मतुप् मस्य व । प्रतान-थुक्त ।

त्रतानिन् ( सं ० ति० ) प्र-तन-णिनि । विस्तीर्णं, लम्वा न्त्रीड़ा ।

प्रतानिनी (सं० स्त्री०) प्रतानिन्-स्त्रियां ङीप् । १ प्रतान-वती । २ विस्तृत स्रतादि ।

प्रताप (सं ० पु०) प्र-तप-घञ्। १ पौष्प, वीरता, मर-दानगी। २ वळ, पराक्रम आदि महस्वका ऐसा प्रभाव जिसके कारण उपद्रवी या विरोधी शान्त रहें, तेज, इक-वाळ। ३ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़। ४ रामचन्द्रके एक संखाका नाम। ५ युवराजका छत। ६ ताप, गरमी। प्रताप—एक प्राचीन राजा। अर्डु द पर्वतकी शिळालिपिमें इनका परिचय मिळता है।

प्रतापउउजैनीय—विहारवासी एक राजा। इनके पिताका नाम दलपत था। शाहजहानके शासनकालके १म वर्ष-में (१६६६ ई०में) ये डेढ़ हजारी मनसवदार थे। पिक्चम और सासेरामके उत्तर भोजपुरमें इनको राजधानी थी। उक्त सम्राट्के राज्यकालके १०वें वर्षमें जब प्रताप विद्रोही हुए, तब अवदुल्लाने भोजपुर पर दखल जमाया। प्रतापके आत्मसमप्पण करने पर भो सम्राट्ने उन्हें यमपुर भेज हो दिया। उनकी स्त्री वलपूर्वक इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुई और अवदुल्लाके पौतके साथ ब्याही गई।

·प्रतापक्षितीन्र—पक राजा । रोहतासगढ़की शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वे १२२३ ई०में विद्यमान थे।

प्रतापकुँ वरि वाई—मारवाड़के महाराजा मानसिंहकी रानी। ये जाखण गांव परगना जोध्रपुरके भादी ठाकुर गोयंददासजीकी पुती थो। इनका विवाह संवत् १८८६-में हुआ था। इन्होंने कई मिन्दर वनवाये और ये वहुत दान-पुण्य किया करती थीं। ७० वर्षकी अवस्थामें संवत् १६४३में इनका खगैवास हुआ। इन्होंने अपने पिताके यहां शिक्षा प्राप्त की थी और संवत् १६००में विधवा हो जाने पर देवपूजन तथा काव्यकी ओर अधिक ध्यान लगाया। इनकी कविता देवपक्षकी हैं, जो मनो-हर है। इनके निम्नलिखित प्रन्थ हैं—

ज्ञानसागर, ज्ञानप्रकाश, प्रतापपचीसी, प्रेमसागर, रामचन्द्रनाममहिमा, रामगुणसागर, रघुवरस्नेहलीला, रामपूरे मसुखसागर, रामसुजसपचीसी, पितका संवत् १६२३ चैतवदी ११की, रघुनाधजीके कवित्त और भजन-पदहरजस । इनकी गणना मधुस्दनदासकी श्रेणीमें है। पूतापगञ्ज-अयोध्या पूर्देशके वड्डवांकी जिलेकी एक तहसील।

पूतापगढ़ —युक्तप्रदेशके फैजाबाद विभागका एक जिला।
यह अक्षा० २५ ं ३४ से २६ ं २१ ं उ० और देशा० ८१ ं १६ ं
से ८२ ं २७ ं पू०के मध्म अवस्थित है। भूपिमाण १४४२
वर्गमोल है। इसके उत्तरमें रायवरेली और सुलतानपुर;
पूर्व और पश्चिममें जीनपुर; दक्षिणमें इलाहाबाद और
पश्चिममें इलाहाबाद तथा रायवरेली है। इसके दक्षिण
पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वमें गङ्गानदी और पूर्वसीमामें गोमती
नदी वह गई है। १८६६ ई०में प्रासादपुर सलोन परगना
रायवरेलीकी सीमाभुक्त हो जानेसे इसका आयतन घट
गया है।

सारा भूभाग जङ्गळ और शस्यक्षेत्रसे परिपूर्ण है। विशेषतः दक्षिणका भाग और भागोंसे घना है। नदीके निकटवत्तीं भग्नस्तरका विशाल दूश्य और क्रमोच निवन भूमिका श्यामल शस्यक्षेत्र तथा प्रामादिका आम्रकानन जिलेकी सुन्दरताको वढ़ाता है। गङ्गा और गोदावरीके अञावा यहां से नामक एक और नदी वहती है । वर्षा-कालमें अधिक जल हो जानेसे नार्चे हमेशा भाती जाती हैं। उस समय अनेक शाखा निद्यां उसमें मिल जाती हैं। यहां वहुत-सी वड़ी वड़ी भीलें हैं जो वर्षकालमें विलकुल भर जाती हैं। किन्तु गहराई कम रहनेके कारण नार्चे नहीं चलतीं । यहांकी जमीनमें लवण, सोरा और कंकड़ पाया जाता है। सरकारने छवण और सोरे-का व्यवसाय वन्द कर दिया है। अलावा इसके यहां सव प्रकारको रज्वी, खरीफ, अनाज और तरह तरहका धान उपजता है। तमाकू, चीनी, घी, गुड़, अफीम, तेल, गाय, वकरे, सींग, और चमड़े की रक्तनी दूर दूर देशोंमें होती है। इस जिलेका इतिहास भार जिलेसे सम्बन्ध रखता है। भार देखो। इस जिलेमें ४ शहर और २१६७ प्राम लगते हैं। जनसंख्या ६१२८४८ है। विद्या-शिक्षामें यह जिला उतना वढ़ा चढ़ा नहीं है। यहां कुल मिला कर १६५ स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १० अस्य ताल और चिकित्सालय हैं।

यह जिला खास्थ्यप्रद होने पर भी यहांके अधिवासि-गण विशेष सुखी नहीं हैं। शीतकालमें रोगकी प्रवलता देखी जाती है। १८६८-६६ ई०में विस्चिका और वसन्तके साथ दुर्भिक्षने आ कर जिलेको विलक्कल उजाड़-सा कर दिया था।

२ उक्त जिलेकी तहसील । यह अक्षा० २५ ४३ से २६ १९ उ० तथा देशा० ८१ ३१ से ८२ ४ पू०के मध्य अवस्थित है। इस तहसीलमें ३ शहर और ६७६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या करीव ३१६५८० है। से नामकी नदी तहसीलके मध्य हो कर वह गई है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा॰ २५ ५४ उर और देशार ८१ ५७ पूर्व मध्य सवस्थित है। बेळासे यह शहर पांच मीळ दक्षिण पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। कहते हैं, कि १६१७-१८ ई०में राजा प्रतापसिंहने प्राचीन अलारिखपुर वा आरो नगरके जपर इस नगरको वसाया। उनका वनाया हुआ हुगै आज भी वर्त्तमान है। करीव डेढ सौ वर्ष पहले अयोध्या-के राजाने इसे अपने दखलमें कर लिया। अयोध्या अङ्गरेजोंके हाथ आनेके वाद यह स्थान प्राचीन राजवंशके अजितसिंह नामक किसी व्यक्तिके हाथ वैच डाला गया। पहले यह नगर वहुत लम्बा चौड़ा था। १८५७ ई०के गदरके वाद इसकी वाहरवाली दीवार तीड़वा दी गई, परन्तु भीतरकी दीवार और वगीचा आज भी विद्यमान है। यहां चार हिन्दू-देवमन्दिर और ६ मस्जिटें देखी जातो हैं। सकर्णी और सै नदोके सङ्गमस्थल पर पञ्च-सिद्धा नामक दुर्गामन्दिर अवस्थित है। सन्द्विएडक श्राममें चिरिडकादेवीका जो मन्दिर है वह एक विख्यात तीर्थमें गिना जाता है। निकटवत्तीं गोएडा प्राममें आज भी प्राचीन ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। प्रतापगढ़ नगरसे ७ कोस पश्चिम हिन्दौर नामक प्राप्त है। प्रवाद है, कि हन्दवी नामक राक्षसने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। यहांकी ध्वंसावशिष्ट प्राचीन कीर्त्तिका निदर्शन आज भी देवनेमें आता है। यहां एक स्कूल और औपघालय है जिसका खर्च राजाकी ओरसे दिया जाता है।

प्रतापगढ़—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह सतार २३ ३२ से २४ १८ उ० और देशार ७४ २६ से Vol. XIV. 123 ७५ं पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८८६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें उदयपुर, पश्चिममें वांसवारा, दक्षिणमें रतलाम और पूर्वमें जौरा, मन्दसार और नीमक है। उत्तर-पश्चिम विभाग पर्वत और जङ्गलसे परिपूर्ण है। यहां केवल भील जाति रहती है। देवलियाके-दक्षिण प्राचीन हुर्गसुरक्षित जूनागढ़, पर्वतके ऊपर वड़ी पुष्क-रिणो और कूप हैं। दकोर नामक स्थानमें पहले वहुतसे परथर मिलते थे।

प्रतापगढ़के महारावल उपाधिधारी शिशोदीयवंशीय राजपूत हैं। ये लोग अपनेकी उदयपुर राजवंशकी कनिष्ठ शाखासे उत्पन्न वतलाते हैं। मालवराज्यमें मरालेंकी गोटी जम जानेसे वहांके सरदार हीलकरपतिकी राजकर देने लगे थे। १८१८ ई०में यह स्थान अङ्गरेजोंके दखलमें आया। मन्देश्वरकी सन्धिके अनुसार वृद्धिर सरकारने होलकरसे प्रतापगढ़का राजस्व पाप्त किया; किन्तु पीछे वह वृद्धिशराजकोयसे होलकरको दिया गया। १८४४ ई०में दलपतिसिंह यहांके सिहासन पर वैठे। १८६४ ई०में उनकी मृत्युके वाद उनके लड़के उदयसिंहने राज्यभार प्राप्त किया। पीछे १८६० ई०में रघुनाथसिंह गद्दी पर वैठे। वृद्धिश सरकारसे इन्हें १५ सलामो तोपे मिलती हैं। इनके अधीन ५० जागीरहार हैं।

इस राज्यमें १ शहर और ४१२ प्राम लगते हैं। जन-संख्या पचास हजारसे ऊपर है। इनमेंसे सैकड़े पीछे ६१ हिन्दू, २२ भील, ६ जैन और शेपमें अन्यान्य जातियां हैं। यहांका विचार और शासनादिकार्य एकमात सर-दारके अर्थान है। वे ही प्रजाके दएडमुएडके कर्ता हैं। उनके अधीन १२ कमान, ४० बरकन्दाज, २७५ अध्वारोही और ६५ पदार्ति सैन्य हैं। विद्याशिक्षामें यह राज्य वहुत पीछे पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे ४ पढ़े लिखे मनुष्य मिलते हैं। अभी केवल तीन स्कूल और एक अस्प-ताल है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर । यह अक्षा • २४ र उ० और देशा • ७४ ४७ पू० राजपूताना मालवा रेलचे-के मन्देश्वर स्टेशनसे २० मील पश्चिममें अवस्थित है। १८वीं शतान्दीके प्रारम्भमें महारावल प्रतापसिंहसे यह नगर स्थापित हुआ। समुद्रपृष्ठसे यह १६६० फुट ऊंचा

है। शहर चारों ओर प्राचीरसे घिरा हुआ है। सलीम प्रतापगिरि—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिल्लेकी एक जमीं-सिंह जब १७५८ ई०में राजगद्दी पर वैठे, तब उन्होंने यह प्राचीर वनवाया था। उस प्राचीरमें ८ प्रवेशद्वार हैं। प्रतापचन्द्र—कुमायुन् प्रदेशके एक राजा। इनका शास-नगरके दक्षिण-पश्चिममें जो छोटा दुर्ग है उसमें महा-रावलके परिवार रहते हैं। अभी वर्त्तमान सरदारने प्रतापदेव—काश्मीरके एक राजा। आप तिथिनिर्णय अपने रहनेके लिये दूसरो जगह राजप्रासाद वनवाया है। इससे पूर्ववास परित्यक्त और जनहोन हो गया है। यहां प्रतापदेवराय-दाक्षिणात्यके अन्तर्गत विजयनगरके एक ३ विष्णुमन्दिर, ३ शिवमन्दिर और ४ जैनमन्दिर हैं। पन्ने वा मिनारके ऊपर सोनेके जड़ाऊ कामके लिये . प्रतापगढ वहुत कुछ विख्यात है। यह काम केवल दो ही घरके लोग अच्छी तरह कर सकते हैं। इस राज्यकी प्राचीन राजधानी देवलिया विलकुल उजाड सी हो गई है। यह स्थान प्रतापगढ़से ४ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। शहरमें एक देलियाफ आफिस, छोटा जेल, एक ए.ङ्गळो-चर्नाचयूलर मिडिल स्कूल और अस्पताल है, जिसका नाम रघुनाथ होसपिरल रखा गया है।

पतापगढ -त्रम्बईप्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरि-दुर्ग। यह अक्षा० १७ ५५ उ० और देशा० . ७३ ३५ पु॰ पश्चिमचाट पर्वतके शिखरदेश पर महावालेश्वरसे 8 कोस दक्षिण-पिश्चम अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इस दुर्गकी ऊ'चाई ३५४३ फुट है। इसके उत्तर-पश्चिममें ७ से ८ सी फुट ऊंची पर्वत चूड़ा, पूर्व और दक्षिणमें ३०-४० फूट गुम्बज और चुड़ादि उन्नत देखी जाती हैं। १६५५ ई०में महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने जावलीके राजा-को हत्या कर उनके अधिकृत रोहिलदुर्ग अपने दखलमें कर लिया और प्रतापगढ़-दुर्ग स्थापन किया। उनके विरुद्ध बोजापुरराज-प्रेरित मुसलमान सेनापति अफज़ल खाँकी निष्ठर हत्या यहीं पर हुई थी । १८१८ ई०में महाराष्ट्रयुद्धके समय प्रतापगढ़ अङ्गरेजोंके हाथ लगा। प्रतापगढ---मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति । यह मोतुरके निकट अवस्थित है। भूपरि-माण २८६ चर्गमील है। पहले यह हराई सरदारोंके अधिकारभुक्त थी। १६वीं शताब्दीके ब्रारम्भमें जब यह शोनपुरसे अलग कर दी गई, तव हराई सरदारोंके भाईने इसका शासनभार ब्रह्ण किया। पगारा नामक प्रधान य्राममें सरदारोंका प्रासाद है।

दारी सम्पत्ति। किमेदी देखो।

काळ १३८३,शक माना जाता है।

रचियता सिद्धलक्मणके प्रतिपालक थे।

राजा। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये १३८६ शक सम्वत्के वैशाखमासमें गतासु हुए थे। प्रतापध्यस्त्रदेच--जापिस्राधिपति । महानायक इनकी उपाधि थी। दक्षिण-विहारके सासेरामके निकटवर्ती ताराचएडी पर्वत पर १२२५ शकमें उत्कीर्ण इनकी एक शिलालिप मिलती है।

प्रतापन ( सं॰ क्षी॰ ) प्र-तप-णिच्- भावे ह्युद्र्। १ पीइन, कप्र पहुंचाना। (पु॰) प्रतापयतीति-प्र-तप-णिच् स्य । २ नरकविशेष. एक नरकका नाम । इसका दूसरा नाम कुम्मीपाक है। ३ विष्णु। (ति०) ४ क्लेणदायक, कप्ट द्नेवाला।

प्रतापनगर--वङ्गालके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध वाणिज्यः स्थान । यहां चावलका वहुत लम्वा चौड़ा कारखाना है। प्रतापनारायणिसश्च-कात्यायन गोत कान्यकुःज ब्राह्मण। इनके पूर्वज वैजेगांवमें रहते थे । इनका जन्म १८५६ ई०-को आश्विन कृष्ण श्मीमें हुआ था। इनके पिता सङ्खटाप्रसादजी एक अच्छे ज्योतियी थे। वे अपने पुत-को भी ज्योतिप पढ़ाना चाहते थे, पर इनकी रुचि न होनेके कारण इनको अङ्गरेजी पढ़ाने छगे। १८७५ ई०में इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया था। इतने दिनोंमें अंग्रेजी-भाषामें इनको कुछ अभिज्ञता हो गई थी। संस्कृत और फारसीका भो इन्हें कुछ कुछ ज्ञान हो गया था।

काव्यांकुर इनके हृद्यमें पहले हो जम चुका था। धोरे-धीरे ये उत्तम किंव हो गये। १८८३ ई०में इन्होंने ब्राह्मण नामक एक पत्र निकाला जो दश वर्ष तक चलता रहा। संस्कृत और फारसीमें भी ये हिन्दीके समान कविता कर सकते थे। कुछ दिनों तक ये कालाकांकरसे प्रकाशित "हिन्दोस्थान"के सहकारी सम्पादक रहे। मिस्टर ब्रैडलाके भारत गमनके उपलक्षमें इन्होंने कविता की

थो उससे इनकी वड़ी प्रशंसा हुई थी। कांग्रे सके ये वड़े पक्षपाती थे। इनका मत यह था,—

> "चहदु जु सांची निज कल्यान । तो सव मिछि भारत सन्तान॥ जपौ निरन्तर एक जवान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥"

इनका स्वर्गवास सम्यत् १६५१में ३८ वर्षकी अवस्थामें हो गया। १२ पुस्तकोंका इन्होंने भाषानुवाद किया है और २० पुस्तकों लिखी हैं। इनकी गणना तोप कविकी श्रेणीमें है।

प्रतापपाल—करौलीके एक राजा । प्रतापनारायण सिंह राजेन्द्र—इनका जन्मस्थान हल्दी था। ये संवत् १६३४ में पैदा हुए थे और इन्होंने 'परवस-प्रताप' प्रनथकी रचना की थी। प्रतापपुर (सं० क्ली०) जनपदमेद।

प्रतापभानु प्रतापमार्चाएडके रचयिता।

प्रतापमञ्ज—१ नेपालके एक राजा। आप लक्षीनृसिंहके पुत्र थे। आपका दूसरा नाम था जयप्रतापमछदेव। २ वधेला (चालुक्य) यंशके एक राजा, हुणिगरेवके पुत्र। प्रतापमुक्तर (सं० पु०) राजपुत्रमेद।

प्रतापराज-परशुरामप्रतापके प्रणेता । इनका पूरा नाम साम्वाजी प्रतापराज है।

२ एक राजा । ये न्यायसिद्धान्तदीपप्रभावके प्रणेता प्रसिद्ध नैयायिक शेपान्तके प्रतिपालक थे। प्रतापराय—हिमालयतटवर्त्ती मानकोटके एक राजा। सम्राट् अकवरशाहके विरुद्ध खड़े होने पर इन्हें उनके सेनापित जैन खाँने कैंद कर लिया।

प्रतापसद्र—१ वरङ्गलके विख्यात राजा । अपने वाहुवलसे ये दाक्षिणात्य जीत कर राजशिरोभूषण हुए थे ।

काकतीय (१) पृताप आन्ध्रराज्यकी राजधानीमें रहते थे।

(१) यह राजवंश काकती (हुगां) देवीकी उपासना करता या, इस कारण इतका काकतीय नाम पड़ा । प्रताप-चरित्रमें पाण्ड रुत्र अर्जुनसे इस वंशकी उत्पत्ति मानी गई है। किन्तु वरंगळके काकतीयगण अपनेको सूर्यव शोद्मन बतळाते हैं। कांचीपुरके गणपतिव शानतेश काकतीय व गके चंशावळी सम्बन्धमें बहुत गोळमाळ देखा जाता है। बरंगळ देखो। इन्होंने अनेक देशों पर दखल जमाया था । सिवनेरीके यादवराज रामचन्द्र इनके डरसे गोदावरीके उस पार भाग गये थे। १२६५ ई०से १३२३ ई० तक इन्होंने राज्य किया था। तिचिनापल्लोके अम्बुकेश्वर-मन्दिरके वाहर दोवारमें उनकी शिलालिपि उत्कीणी है।

२ उत्कलप्रदेशके एक राजा। इनकी वंशोपाधि गज-पति थी। इनके पिताका नाम पुरुषोत्तमदेव और माताका नाम पद्मावती था। किपिलेश्वरदेव इनके पितामह थे। ये विद्वज्जनप्रतिपालक और महाधार्मिक थे। पथ्यापथ्य-विनिश्चयके प्रणेता विश्वनाधसेन इनके सभा-पिइत थे। कौतुकचिन्तामणि, निर्णयसंग्रह, प्रतापमार्त्तग्ड और सरस्वतीविलास नामक ग्रन्थ इन्होंके वनाये हुए हैं।

वचपनसे विद्याभ्यासमें रत रह कर इन्होंने नाना शास्त्रोमें च्युत्पत्ति लाभ की थी। धर्मशास्त्रमें इनका अच्छा हान था। दूर दूरके लोग धर्मशास्त्रमें सलाह लेनेके लिये इनके पास आते थे। केवल शास्त्रविद्यामें ही नहीं, युद्धविद्यामें भी ये विशेष निपुण थे। पिताकी मृत्युके वाद १५०३ ई०में ये राजगहो पर वैठे और पुनके समान पुजाका पालन करने लगे। इनको राजनीतिक ख्याति और विजय-गौरव समग्र दक्षिण-भारतमें फैल गया था। पहले ये वौद्धपक्षपाती थे। पीछे अपनी स्त्रोके अनुरोधसे तथा और कई कारणोंसे ये ब्राह्मण्यधर्मकी पृधानता खीकार करनेको वाध्य हुए। निद्याके महाप्रभु श्रोचैतन्यदेव जव उत्कलक्षेत्र पहुंचे, तव इन्होंने उनसे वैष्णवधर्मकी दीक्षा लो। इस समयसे ये वौद्धधर्मके विद्वे पी हो वौद्धग्रन्थोंको खोज खोज कर जलाने लगे।

युद्धविद्यामें ये वह ही निपुण थे। इसीके फलसे इन्होंने रामेश्वर सेतुवन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया था। असंख्य दुर्ग और विजयनगर-राज्य उनके कन्जेमें आ गये थे। इसी वीच बङ्गालके पटानोंने उत्कल पर चढ़ाई कर दी। कटकके शासनकर्त्ता अनन्तसिंह जो उन्हें रोकने गये थे, जान ले कर भागे और काटजूड़ीके दक्षिण तीरवर्त्ती सारङ्गाढ़में आश्रय लिया। इस जीतसे उत्साहित हो म्लेच्छोंने पुरीधाम पर आक्रमण करनेका सङ्खल्प किया। पंडा लोगोंने पवित्न देवमृत्तिको चिल्का भीलमें छिपा रखा। यह संवाद पाते ही प्रतापहर दलवलके साथ उत्कल पहुंचे और म्लेच्छोंको मार भगाया। किन्तु इस युद्धमें इनका वल इतना क्षय हो गया था, कि आखिर इन्हें यवनराजके साथ सन्धि करनी पड़ी थी। अब पठान लोग उत्कलका परित्याग कर बङ्गालको लौटे। इक्कीस वर्ष राज्य करनेके बाद प्रतापहर १५२४ ई०में परलोकको सिधारे। उनके ३२ पुत्र थे। सच पूछिये तो उनके राज्यकालको बाद ही उड़ीसामें गङ्गराजवंशका अवसान हुआ। आप उत्कलके बराहमन्दिर धादिकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। प्रतापवर्मन—चन्दे लवंशीय एक राजा।

प्रतापवल्लाल-बेल्लीगांवके अधिपति । गुणचन्द्राचार्य आप-के राजकार्यके परिदर्शक थे ।

प्रतापबुन्दे ला—एक वुन्देला राजा। इन्होंने १५३१ ई॰में ओच्छो जागीर स्थापन करके वहां बुन्दे लाको वसाया। प्रतापबत् (सं॰ ति॰) प्रतापः विद्यतेऽस्य प्रताप-मतुप्-मस्य व। १ प्रतापयुक्त, इकवालमंद। (पु॰) २ स्कन्दा-नुचर गणभेद। ३ विष्णु।

प्रतापवान् (हि॰ वि॰) प्रतापवत् देखो । प्रतापशोलः—कन्नौजाधिपति, पुष्पभूतिके वंशधर । इनका नाम प्रभाकरवद्धेन था। प्रभाकरवर्द्धन देखो ।

प्रतापशील—उज्जियनोपित हर्षविक्रमादित्यके पुत ।
प्रतापसहाय—पक किय । ये पहले उदयपुरमें राणा राजसिंहके यहां रहते थे । वहां गड़बड़ हो जानेसे वृंदी चले
गये जहां इनको जागीर तथा खिताव मिला । तभीसे
ये वहीं रहने लगे । इनकी किवता साधारण श्रेणीकी है ।
इन्होंने १७०० ई०में स्फुटकाव्य वनाया ।

प्रतापसिंह—१ काश्मीरके एक महाराज । १८८५ ई०में पिता महाराज रणवीरसिंहकी मृत्युके वाद ये राजगही पर वैठे।

२ जयपुरके एक राजा । इन्होंने १७९८ ई॰में पिता मधुसिहकी मृत्युके वाद राजसिहासन सुशोभित किया । ये एक उदारनोतिक राजा थे । इनके शासनकालमें (१७८८ ई॰में ) कर्नल पोलियर वेदशास्त्रकी खोजमें जय-पुर राजधानी आये थे । इन्होंने उम पेद्रो दि सिलमा नामक एक पुर्तगोजको अपने यहां राजवैधक्रपमें नियुक्त किया था। ३ तञ्जोरके एक राजा। ये महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके भतीजे और शरभोजीके पुत्र थे। इनके भाई शाहजीने राजच्युत हो कर सेएडहेमिडके किलेमें अङ्गरेजींकी शरण लो। अब अङ्गरेज विणकोंने प्रतापसिंहके साथ युद्धशोपणा कर दी। इस पर ये डर गये और देवीकोटा नामक दुगै उन्हें दे कर सिन्ध कर लो। उनके वादसे तञ्जोर-राजवंश 'प्रतापसिंह'-को उपाधिसे भूपित हुआ।

8 नेपालाधिपति गुर्खाराज पृथ्वीनारायणके पुत<sub>।</sub> १७९१ ई०में इन्होंने राजसिंहासन प्राप्त किया। प्रतापसिंह ( नारायण ) -- साताराके अधिपति। ये महा-राज २य शाहुके पुत्र और राघोजी मोंसलेके पौत थे। पेशवा वाजीरावने इन्हें कैद कर रखा था । जब अला-साहवकी राज्यच्युति हुई, तव इन्होंने छुटकारा पा कर अङ्गरेजीकी सहायतासे राजसिंहासन पर द्खल जमाया। अङ्गरेजींके अनुप्रह्से वरणा और नीरा नदीके मध्यवत्ती भूभागसे छे कर पश्चिम सहादि और पूर्व पर्रहरपुर तक-के स्थान इनके द्खलमें आ गये थे। पूनाके कुछ अंश इन्होंने अपनी जागीरमें मिला लिया। अङ्गरेजींकी सहा-यतासे १८१८ ई०में इन्होंने पेशवा पर घावा कर दिया और शोलावुर जा कर नगर और दुर्ग पर अधिकार जमाया। १८१६ ई०में प्रतापके साथ अङ्गरेजोंकी जो सन्धि हुई उसमें इन्हें और भी प्रचुर सम्पत्ति हाथ छगी। परन्तु १८३६ ई०में सन्धिकी शर्ते तोड़ देनेके कारण ये राज्य-च्युत किये गये। पोछे वाराणसीमें १८४७ ई०को इनका देहान्त हुआ।

प्रतापसिह—प्रतापगढ़के प्रतिष्ठाता एक राजा । प्रतापगढ देखां।

प्रतापसिह—रामकर्णामृतके प्रणेता । प्रतापसिहदेव—प्रतापकहपद्गुम नामक सुविख्यात ग्रन्थ-रचियता ।

प्रतापसिह—एक प्र'धकार, राज्यलामस्तोत और राम-विज्ञापनस्तोत नामक दो प्रन्थ इनके वनाये हुए हैं। प्रतापसिह (राणा)—राजपूतकुल-गौरव मेवारके एक राणा, वित्तोराधिपति राणा उदयसिहके पुत्र। ये पिताके जैसे दुर्वल हृदयके न थे। इन्होंने मुगलसम्राट् अकवरशाहके प्रतिद्वन्द्वी हो कर वीरताका जो प्रिचय दिया था, वह आज भी भारतवासीकी स्पर्धा और गौरव-परिचायक है। प्रतापकी उदारता, नीतिकुशलता, दुःखकातरता, रण-नियुणता और कप्टसिह्ण्युता आदिका विचार कर देखने-से वे सभी अलौकिक जैसे मालूम पड़ते हैं। उनका अरण्यवास, हब्दीघाटका युद्ध, चित्तोर्टसिहासन प्राप्ति आदि कार्य वड़े ही विस्मयकर तथा हिन्द्वीरताके अपूर्व द्वरान हैं।

१५६८ ईं ० में राजपूतशिककी आवासभूमि अजेय चित्तोरपुरी उनके हाथसे जाती रही तथा तहस नहस भी कर डांळी गईं! मुगळ-सैन्य प्रवाहसे मिथत चित्तोर नर-नारीके शोणितमें प्लावित और श्मशानमें परिणत हुआ था! अकवरके कठोर आदेशसे सभी देवालय और प्रसादमाला तथा राजनिदर्शन मिलयामेट कर बाले गये! राणा उदयसिंहने दु:बसन्तस-हृदयसे चित्तोर-का परित्याग कर राजपिप्पलीके गुहिलोंका आश्रय प्रहण किया! इस शोचनीय दुर्धटनाके चार ही वर्ष वाद उनके पाण पखेक उड गये!

उद्यसिंहकी मृत्युके वाद उनके किन प्र पृत जयम छ उद्यप्त नेये सिंहासन पर वैठे। राणा उदयसिंहकी अन्यतमा महिपी शोणिगुरू-राजकुमारीके गर्भसे पृतापने जनमप्रहण किया। प्रतापको शिशोदिया राजसिंहासन पर अभिषेक करनेकी कामनासे उनके मामा फलौरपित वहां जा पहुंचे। उन्होंकी प्ररोचनासे मेवारके प्रधान राणा चन्द्रावत् कृष्णने प्रतापका पक्ष छेनेका संकल्प किया। वोनों वीरोंने जयम छको गहीसे उतार कर निम्नासन पर वैढने कहा और प्रतापको देवीदत्त खड़ गसे सजा कर तीन वार भूमि स्पर्शपूर्वक मेवारपित कह कर घोषणा कर दी। अनन्तर अन्यान्य राजपूत सरदारोंने सालुक्शको रावत कृष्णका उदाहरण अनुसरण किया। अभिषेकोत्सव हो जानेके इन्छ समय वाद ही नवीन भूपित प्रतापने सभीको पितृपुक्षानुष्ठित प्राचीन 'अहेरिया' उत्सवमें योगदान करनेका अनुरोध किया।

प्रताप सुप्रसिद्ध शिशोदीयकुलके समस्त राजीपाधि और मानसम्ब्रमके उत्तर्राधकारी हुए तो सहो, पर उनके राज्य नहीं, राजधानी नहीं, उपाय नहीं, और न कोई अव-लम्बन ही था। जो थोड़े आत्मीय और सदेशीय सेना- पति थे, वे मुसलमानोंके पापप्रलोभनमें पड़ कर राजपूतगौरवकी उपेक्षा नहीं करते, विपदके उपयु परि कठोर
कशाधातसे विपर्यस्त हो वे लोग भी धीरे घीरे निःस्पृह,
निष्प्रम, स्फूर्तिहीन और विमृद्धित्त हो गये। किन्तु
प्रतापका वीरहृद्य क्षणमातके लिये भी भयभीत और
विषण्ण नहीं हुआ। सजातिके प्रनष्ट गौरवका पुनस्द्वार
करनेके लिये ये स्देशवैरिके विरुद्ध समरानल प्रज्वलित
करनेको अप्रसर हुए। जब वे अपनेको अकेला, निःसहाय
और निःसम्बल देखते तथा अपने चिर-वैरी अकवरशाहको
प्रवलप्रतापशालो और विपुल सहायसम्पन्न समक्तते
थे, तब उनका क्षुदृहृद्य दूने आनन्दसे नाच उठता था।

वचपनसे ही खदेशीय कवियोंका काव्यप्रन्थ पढ़नेसे व्रतापको अपने पूर्वपुरुपोंकी अद्भ त वीरकीर्त्तिका वृत्तान्त मालम हो गया था। उस समय उनका सुकुमारहृद्य दुर्जय बोरतासे परिपूर्ण होता जाता था। पूर्वपुरुषोंका इतिवृत्त पढ़ कर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि वे कभी भी मारवार, अम्बर, वीकानेर और बुन्दिपति अथवा अपने सहोदर भाई सागरजीकी तरह मुगलोंके चरणमें आतम-विकय कर मातृदुःध कलङ्कित न करेंगे। वहुतेरे राजपूत प्रवलप्रताप अकवरके हाथ अपनी कन्या वा वहनको अर्पण कर उनके प्रेमभाजन हुए थे, किन्तु तेजस्वी प्रताप-ने अपनेको जोखिममें देख कर भी ऐसे घृणित पन्धीका अवलम्बन कभी भी न किया। बरन् विपद्नके साथ साथ उनका साहस तथा उच्मशीलता और भी दूनी वढ़ती ही गई थी। उसी साहसके वल पचीस वर्ष तक दोई एड प्रताप मुग्ल सम्राट् अकवरशाहके समवेत वल और उद्यमको व्यथं करते रहे थे।

प्रतापका अदुभुत वीरत्व और लोकविस्मयकर कीर्ति-कलाप आज भी मेवारकी प्रत्येक उपत्यकामें उचलन्त अक्षरोंमें कलक रहा है। वह कीर्तिकलाप आज भी प्रत्येक राजपूतसे गाया जाता है। पापप्रलोभन वा भयसे डर कर राजपूतोंने जो प्रतापका परित्याग कर मुगलोंका पश्च लिया था उससे वे जरा भी विचलित न हुए, वरन् और भी दूने उत्साहसे डटे रहे। वीरवर जयमल और पुत्तके वंशधर पाणपणसे उनकी सहायता करते थे और देवल-वाड़ाके सरदार आत्मोत्सर्ग खोकार करके उनका दक्षिण-हस्तसक्षप वन गये थे। मुगलसैन्यसे उत्सादित चित्तोरपुरीका भट्ट कविगण विभूषणा विधवा रमणी कह कर वर्णन कर गये हैं। प्रतापने जननी-जनमभूमिके शोकसे विधावचिह्न धारण कर सब प्रकारके भोगखुल और आमोद-प्रमोद पर लात मारी। सोने और चांदीके वरतनींको दूर फेंक कर वे उनके बदले 'पतेरा' का व्यवहार करने लगे। वे तृण-श्या पर सोते थे तथा शोकचिह्न खरूप लम्बे केज और दाढ़ी उन्होंने रख ली थी। चित्तोरकी शोचनीय अधःपतन-वार्ता जतानेके लिये तथा मेवारवासियोंको चित्तोरके उद्धारमें उत्साहित करनेके लिये उन्होंने नगारेको सेनाके आगे न वजा कर पीलेमें वजानेका हुकुम दे दिया। सदश्ये मिक आर्यवीरके दंशधर आज भी उनकी चलाई हुई विधिका अनुष्टान किया करते हैं।

जनमभूमिकी ऐसी दुरवस्था देख कर प्रताप प्रायः कहा करते थे, "मेरे और राणा सङ्ग (प्रतापके पिता-मह) के बीच यदि कापुरुप उदयसिंह जनमग्रहण नहीं करते, तो कोई भी तुर्क राजस्थानमें अपना शासन फैला नहीं सकता था।"

राजनीतिज्ञ और वहुद्शीं सामन्तोंकी सहायतासे प्रतापने खराज्यके तत्कालोपयोगी सभी विधि नियम वनाये। सामयिक कार्यमें सहायता पानेकी आशासे उन्होंने नई नई भूमिवृत्ति निर्देश कर दी। प्रयोजन जान कर कमलमीरमें प्रधान राजपाट स्थापित हुआ। शतृ जिससे नगरमें धुसने न पांचे, उसकी पूरी व्यवस्था कर दो गई। इसके साथ साथ गोलकुएडा और अन्यान्य गिरिदुर्ग भो सुरक्षित किये गये। प्रतापने जव देखा, कि छोटेसे मेवार-के समतलक्षेत्रमें सेना रहनेका गुंजाइश नहीं है, तव उन्हों ने पितृपुरुपोंके आचरणका अनुसरण करके अपनी प्रजाको पहाड़ी देशमें आश्रय लेनेका हुकुम दिया और तमाम हिढ़ोरा पिट्या दिया, कि जो इस आदेशका प्रतिकुला-चरण करेगा उसे पृण्यद्एड मिलेगा। प्रतापके इस आदेशका पालन करके राजपूत लोग मुसलमानोंके हाथसे आदेशका पालन करके राजपूत लोग मुसलमानोंके हाथसे

आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। सारे मेवारका जनस्थान विजनविपिनमें परिणत हुआ। यहां तक, कि जब तक उस घोर महासमरका अवसान न हुआ, तव तक अर-वली शैलमालाका पूर्वी भाग वे-चिराग वना रहा। कहा जाता है, कि वीरवर प्रताप राजाज्ञाका सम्यक् प्रतिपालन होता है वा नहीं, इसकी परोक्षा करनेके लिये वे पर्वता-श्रमसे घोडे पर सवार हो नोचे उतरते थे । प्रतापके कठोर अनुशासनसे राजस्थानका कुसुम-कानन थोडे ही दिनोंके अन्दर उजाड़ सा हो गया। धन्छोमी विजेता-ओंकी अव विजयस्पृहाको सम्भावना न रही । मुगल-राजसरकारके साथ यूरोपमें जो वाणिज्य स्थापित हुसा था उससे पण्यद्रव्य सौराश्रादि भारतीय वन्दरसे मेवार-प्रदेशके मध्य हो कर जाता था । प्रतापको आज्ञासे उनकी सेना जो अरवली पर्वतमालाके जंगली प्रदेशोंमें घूमा करती थी, नीचे उतर कर मुगलसेना पर आक्रमण करती और उनका वाणिज्यद्रव्य ॡर लेती थी।

अकवरने प्रतापको दण्ड देनेके लिये अपनी प्रधान सेना अजमेरमें रखी और प्रकाश्यक्ष्यसे उनके विरुद्ध युद्ध-घोपणा कर दी। उस प्रकार्ड समरविहका प्रतिरोध करनेमें केवल इन्होंने ही अपना जीवन न्योछावर कर दिया था और सभी राजा वादशाहकी कृपाके भिभुक हो कर देशद्रोही हो गये थे । इस प्रकार राजस्थानके राजाओंने मुगल सम्राट्के हाथ अपनी खाधीनता तथा वंशमर्यादा वेच दी, परन्तु प्रतापने अपनी खाघीनताके लिये जीवन न्योछावर कर दिया है—चाहे कुछ हो जाय, प्रताप मुगल सम्राट्की अधीनता खीकार नहीं करेंगे। प्रतापकी शक्ति वहुत कुछ घट जाने पर भी वे जरा भी निरुत्साह न हुए। स्वदेशवासियोंने मुगलोंके पाप-प्रजोमनसे स्वधर्मकी तिलाञ्जलि दे कर स्वदेशके विरुद्ध भातृभूमिके विषक्ष अस्त्र धारण किया था। राणाने इन सव म्लेन्छपदानत राजाओंके साथ सम्बन्ध तोड़ कर दिल्ली, पत्तन, मारवाड़ और घारावासी प्राचीन राजवंश-के साथ मिलता कर ली। प्रतापसिंहने प्रतिश्चा की थीं, कि पतित राजपूतोंके साथ कभी भी आहार व्यवहार वा सख्यता नहीं करेंगे। वे वीरकी तरह शिशोदियाकुलकी गौरव रक्षा करनेमें विलक्कल समर्थ

<sup>#</sup> प्रेरा-पलाश चा वटपत्रका बना हुआ पात्रविशेष । अभी महीके बने हुए चर्तन हो प्रदेश कहते हैं । Tod's Rejasthan, Vol. I, 3?3 n.

थे। उपेक्षित राजपूतगण घोरे घोरे उनके शजु हो उठे। सैकड़ों विपर्झें पड़ कर भी वे अपने जीवन-को तुच्छ समकते थे। क्षण भरके लिये वे प्रतिक्षा पालनमें पराड्मुख नहीं हुए।

शोलापुरके समरक्षेत्रमें विजयी हो कर अम्बरराज-कुमार मानसिंह दिली छौटनेके पहले कमलमीर आये और प्रतापका आतिथ्य स्वीकार किया। प्रतापने भी विशेष सौजन्य पूर्वक उदयसागरके किनारे पहुंच कर उनका अच्छा सत्कार किया। उसी सरीवरके ऊंचे तद पर अम्बरपतिके सम्मानार्थ एक भारी भोजकी तैयारी को गई। जब भोजनको सामग्री विलकुर प्रस्तुत हो गई, तव राजा खानेके लिये बुलाये गये। कुमार अमरसि ह उनका यथोचित आदर सत्कार करनेके लिये खड़े थे। जलसेमें प्रतापको न देख कर मानसिंहको संदेह हो गया और उन्होंने उनकी अनुपहिचतिका कारण पूछा, उत्तरमें अनरसिंहने कहा, कि पिताजीके सिरमें पीड़ा होनेके कारण यहां पहुंच न सके। इस पर भी मानसिंहका सन्देह दूर न हुआ। पीछे पताप स्वयं उनके समीए पहुंचे और कड़क कर वोले, "जिस प्रकिने तुर्कोंके हाथ अपनी वहनको समर्पण कर दिया है और जो तुर्कोंके साथ वैठ कर खाता पीता है, सूर्यवंशीय राणा कमी भी उसके साथ वैठ कर भोजन नहीं कर सकते।" कुमार मानसिंह अपने कर्मदोपसे ही अप मानित हुए। प्रतापने उन्हें निमन्त्रण नहीं किया था. जिससे वे इस असीजन्यके भागी होते। अव मान सिंहके ज्ञानसङ्घ खुळ गये। उन्होंने अपनेको अपन मानित समभ कर अब स्परांतक भी न किया और तुरत आसन परसे उड खड़े हुए। परन्तु जो कुछ अन्न उन्होंने इएदेवको निवेदन किया था, उसको वे अपने साफ़ेमें रख कर वहांसे चल दिये। जाते समय वे इस अपमानका वद्छा चुकानेकी पृतिज्ञा करते गये । मानसिंहके साथ समरक्षेतमें यदि उनकी मुलाकात हो जाय तो वे वड़े हो प्सन्न होंगे, इस प्रकार प्रतापने भी अपना अभिप्राय ५कट किया था।

जव यह संवाद वादशाहके कानमें पहुंचा, तव वे प्रदीमिस हकी तरह गरज उठे। उन्होंने मानिस हकी

अवमाननासे अपनेको भी अपमानित समभा और कोध-की छहरें उनकी धमनियोंमें दौड गईं। और भो राज-पून राजा जो प्रतापके गौरवसे जला करते थे -- मान-सिंहके सहायक वने। सम्राट्के पुत सलीम वड़ी सेनाके सेनापित हो कर अरवली प्रदेशमें आ कर उप-स्थित हुए। प्रताप भी २२ हजार स्वदेशभक्त वीर राजपूर्तोंको छै कर अरवछीकी पहाड़ी पर मुगल सेनाकी राह देख रहे थे। कमलमीरके दक्षिण पर्वत और वनार्कार्ण ४० मीलकी विस्तृत भूमि प्रतापकी सेनाकी केन्द्रभूमि वनी। इस भूमिकी चारो और पर्वतमाला है, ऊपर जानेका एक भी अच्छा रास्ता नहीं। इस प्रदेशको हृद्दीघाटी कहते हैं। छीळाञ्जेल हृद्दीघाटीके समर प्राङ्गणमें प्रतापने अक्षय नाम कमाया था। जव तक केवल एक शिशोदिया मेवारका शासनदण्ड परिचालित करेगा और एक भी राजपृत कवि जीवित रहेगा, तव तक हल्दीघाटीको स्पृति कोई भी विस्पृत नहीं होगा।

दोनों दलमें विपुल संप्राम छिड़ ऱ्या। दोनों दलके योदा आपसमें छड़ रहे थे। मुसलमानी सेना अपना विक्रम दिखला रही थी। स्वदेशभक्त मातृभूमिके उद्घार-के लिये उन्मत्ति हके समान शतु सेनाका विनाश कर रहे थे। इसी समय प्रतापके सम्मुख हाथी पर चढे हुए सलोम आ धमके। उनका हाथी रक्षकोंसे घिरा हुआ था, तथापि प्रतापका विजयी घोड़ा 'चेतक' सेना-को चोरता फाड़ता आगेको ओर वढ़ा। प्रतापके युद्ध-कौशलसे रक्षकसेना मारी गईं। सलीम हाथो पर वैठे हुए थे। प्रतापने उसे ताक कर भाळा चळाया। प्रताप-का भाला हौंदेमें लगा। हाथीवान मारा गया, हौदा चूर हो गया, सलीमके प्राण वच गये। उस हाथीको छोड कर सलीम दूसरे हाथी पर सवार हुए और रणस्थलसे नौ दो ग्यारह हो गये। प्रतापने मानसिंहको वहुत ढुंढा, परन्तु वे नहीं मिले। कुछ ऐतिहासिकोंका कहना है, कि मानसिंह हर्स्वोघाटीके युद्धमें गये ही नहीं । परन्तु दूसरा पक्ष कहता है, कि मानसिंह भी युद्धमें गये थे, परन्तु वे डेरे पर ही वैठे रहे, युद्धमें नहीं गये थे।

इवर प्रमुभक्त मुगलोंके राजपुतको रक्षाके लिये भीवण प्राणवण था और उधर दृढ्पतिज्ञ राजपृतोंके

राजपूतपतिकी सहायतामें भीषण उत्साह दिया। दोनी दलकी चीरताने एक केन्ड्रीभृत हो कर दोंना दलको विमुख कर दिया। मृतदेहसे वह स्थान प्रावित हो गया। प्रताप सात वार आहत हो कर भी मध्याइ-भार्तण्डके सदूश रणक्षेत्रमें प्रदीत थे। राजच्छत उस समय भी उनके सिर पर था। वैरी दलने उस चिह्नका लक्ष्य करके उन पर आक्रमण कर दिया। तीन वार प्रतापके जीवनका सन्देह उपस्थित हुआ, पर शत्रुदछने उनका एक वाल भी वांका कर न सका। पीछे प्रताप रणक्षेत्रमें अगण्य नरमुएडका ढेर देख अवसन्न और निष-त्साह हो पड़े। इसी समय मुगलोंने बड़ी तेजीसे राणा पर आक्रमण कर दिया। राजसक्त कालापति सन्नाने प्रतापके जीवनको सङ्कटापन्न देख राजछत और मुकट उनके सिर परसे खींच कर अपने सिर पर धारण किया। मुगलीने मनाको ही प्रताप समका और उन पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला। उनके इस आत्मत्यागसे उनके वंशधरगण उसी दिनसे मेवारका राजचित्र वहन करते आ रहे हैं। कालापतिका यह आत्मदान जगत्में अतुल-नीय है।

प्रताप घोड़ो पर सवार हो अकेले नद्नदी पार करने हुए जान छे कर भागे। पोछे केवलमात हल्दीघाटीके अत्यन्त अद्भुत युद्धके स्मृतिचिह्न सक्कप सैनिकींकी मृत देहराशि रह गई। मुगलवाहिनीके सिवा वीस हजार राजपूत सेनाओंमेंसे केवल भाउ हजार सेना युद्धमूमिमें वच रहीं। प्रतापको भागते देख दो मुगळवीरोंने उनका पोछा किया। शबु पीछे आ रहा है, यह सीच कर प्रतापने प्राणपणसे घोड़ा छोड़ा । महाराणा प्रतापके अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे, चेतकके भी अङ्गीमें कितने ही घाव लगे थे, तथापि वह प्रभुभक्त घोड़ा अपने प्रभुकी तरह क्षतविक्षताङ्ग होने पर भी तीरके समान छूटा। इसी समय प्रतापने सुना, कि पीछेसे मानो कोई उन्हें पुकार रहा है। घूम कर उन्होंने देखा, कि पीछे और कोई भी नहीं है - उनका भाई शक्तिसह है। प्रतापके साथ उनकी दुश्मनी थी, इस कारण उन्होंने भाईका पक्ष छोड़ कर मेवाड़के घोर शतु ः हो अकवरशाहसे सहायता मांगी थी। वादशाही सेना-

के वीच रह कर ही शक्तिने देखा था,-नीले घोडे पर सवार हो, उन्होंके खदेश और खजातिके मुख उज्जूल करनेवाले उनके भाई अकेले वड़े वेगसे भागे जा रहे हैं। जातीय-सम्मानकी रक्षामें बद्धपरिकर भाईकी वात याद कर उनका हृदय विघल गया, कोध विलक्कल जाता रहा । भानुसनेहविगिलत हृदयसे वे मुगलराजका साथ छोड भाईका आलिङ्गन करनेके लिये उन्मत्त हो गये थे। जिस मुसलमानी-सेनापतिने प्रतापका पाछा किया था, उसको हत्या कर भाईकी जीवनरक्षा करना ही शकका उद्देश्य था। वहुत दूर तक उस मुसलमानवीरके साथ जा कर उन्होंने भालेसे उसके प्राण ले लिये और स्नेह-पूर्ण हृद्यसे प्रतापके समीप जा भ्रातृवत्सलताको परा-का छा दिखलाई । इसी स्थान पर ही श्रमकातर 'चेतक'को जीवनलीला शेष हुई। प्रतापने उस घोड़े के स्परणाथ वहां एक छतरी वनवा दी। अव प्रताप शकके . योड़े पर सवार हो बहांसे चल दिये। क्षणकालके लिये भ्रात्सम्मिलन सुखभोग करके शक्त पूर्वीक मृत खोरा-सनी सेनाके घोड़े पर सवार हो सलीमके पास उप-स्थित हुए। सलीमने उन्हें अभयदान दे कर इस प्रकार घोड़े अदल वदल करनेका कारण पूछा। सलीमने उन्हें आद्योपान्त कुछ वाते सुना दी। पीछे वे भी आनन्द चित्तसे प्रतापसिंहके साथ उदयपुरमें जा मिले।

१६३२ सम्वत् ७ श्रावण (१५७६ ई० जुलाई)को हल्दीघाट महायुद्धका अन्त हुआ। अव सम्राट्युत सलीमशाह जयोल्लासित चित्तसे गिरिप्रदेशका परित्याग कर
चले। वर्णाकालका समय था, चारों थोर जल ही जल
नजर आता था, इस कारण शबुसेना आगे वढ़ न सकी।
युद्ध कुछ कालके लिये वन्द रहा। वसन्तकाल आने पर
मुगलोंने फिरसे लड़ाई ठान दी। प्रतापने इस वार भी
हार खा कर कमलमीरके गिरिदुगमें आश्रय लिया।
सलीमके अधीनस्थ कोका सेनापित शाहवाज खाँने वहुत
सो सेना ले कर कमलमीरमें घेरा डाला। प्रताप बड़ी
वोरतासे लड़े और शबुसेनाकी कुल चेष्टाप धर्थ कर
दी। परन्तु आवूपित देवरा-सरदारकी विश्वासघातकतासे उन्हें इस स्थानका भी परित्याग करना पड़ा।
इस वार प्रतापने चीन्द नामक स्थानमें आश्रय लिया।

कमलमीर (कुम्ममेर )-का गिरिदुर्ग प्रतापके हाथसे जाता रहा। खदेशवैरी राजपूतवीर मानसिंहने गोल-कुएडाके गिरिदुर्ग पर आक्रमण किया। महन्वत खाँने उद्यपुर पर अधिकार कर लिया। अक्रवरका अन्यतम सेनापित फरीद खाँ छप्पन प्रदेशको जीतता हुआ चौन्द तक आगे वढ़ा। प्रताप प्कापक प्रचएडिवकमसे मुगल-सेना पर टूट पड़ें। इस वार शतुसेनाकी विशेप क्षति हुई। उन्हें फिर प्रतापके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न हुआ। इस समय पुनः वर्षाम्नतु भो पहुंच गई। युद्ध वन्द रहा। प्रतापको भी विश्रामका अवसर मिला।

इस प्रकार युद्ध करते करते वर्षों गुजर गये। सेनाकी वे-शुमार मृत्यु पर वे भी अपनेको विपन्न समक्तने छगे। उनका परिवारवर्गं उनको उतकएडाका एकमात्र कारण हो उठा। एक समय कारानिवासी भोलोंने उनके पुतक्लादिको जवराकी रांगेकी खानमें छिपा कर आसन्त विपद्धसे रक्षा की थो। खयं दिल्लीश्वरने रणकी इस अद्भुत वीरताका गुणानुवाद किया था। जङ्गलमें भूख प्याससे सन्तान-सन्तिको कातर होते देख कर भी वे धैर्यसे न डिगे। एक दिन क्षुधातुर कन्यापुतका आर्त्तनाव सुन कर उनका धैर्य विलक्षल जाता रहा था। उन्होंने राजाके नाम पर लानत देते हुए वाद्याहके निकट सन्यिका प्रस्ताव लिख भेजा।

ंप्रतापकी इस प्रकार आशातीत नम्नता देख कर दिलीश्वर वड़े प्रसन्न हुए और राजधानीमें आनन्दोत्सव
करनेका हुकुम दिया। वादशाहने वीकानेरके राजकुमार
कविवर पृथ्वीराजको भी राणाका मेजा हुआ पत्न दिखलाया। पृथ्वीराज देखो।

पत पढ़ कर पृथ्वीराजने सम्राट्से कहा, कि प्रताप कभी भी विजातीयके निकट शिर नहीं मुका सकते। तथा सम्राट्की अनुमति छे कर उन्होंने इस सम्बन्धमें प्रतापकी एक पत छिखना चाहा। पत्नमें उन्होंने प्रतापकी अवन्तिके स्वीकारसम्बन्धमें कोई जिक्र नहीं किया, केवछ भोजसिनी भाषामें कुछ कविता छिल कर ऐसे हीन कार्यसे अछग रहनेका अनुरोध किया। पत्न पढ़ते ही प्रतापकी धमनियोंमें साधीनताकी आग धश्रक उठी। वे पुनः १० हजार सेनासंग्रह कर युद्धके छिये तैयार हो गये।

आईन-इ-अकवरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि सम्राट्

अकवरशाहके राजत्वके २१वें वर्षमें मानसिंह मुगळसेना-के नायक हो प्रतापके विरुद्ध अप्रसर हुए। मुगळसेना-के पराजित होने पर भी राजा विहारीमहुके पुत जग-न्ताथने मुगलींकी गौरवरसा की थी। दूसरे वर्ष अर्थात् १५७९ ई॰में राजा भगवान्दासने मुगळवाहिनी छे कर प्रतापके विरुद्ध युद्ध किया। उसी साल सम्राट्ने अज-मेरमें रहते समय सेनापति कुमार मानसिंहको पांच हजार सेनाके साथ प्रतापके विरुद्ध गोलकुएडा और कमलमीर जीवनेके लिये मेजा। आसफ खाँ इस सेनादलके मीर वक्सी नियुक्त हुए। चिचीर-युद्धके वाद प्रतापने हिन्दू-वाडाके पर्व तके मध्य गोगएडा । नगर वसाया और इस निभृत निवासमें रह कर वे मुगलसेनाके साथ युद्धकी तैयारी करने लगे। कुमार मानसिंह जब गोगुएडाके समीप पहुंचे, तब प्रतापने हल्दीघाट पर्वतके वाहर आ कर शतका सामना किया । दोनों पक्षके सैकड़ों राज-पूत मारे गये । इस गुद्धमें प्रताप-पक्षके रामेश्वर गोलि-यारी और उनके पुत शालिवाहन तथा चित्तोरपित जय-मलके पुत रामदास खेत रहे। राणा प्रताप दिग्विदिक शानशून्य हो कर घमसान युद्ध करने छगे। उनका सारा शरोर क्षतविक्षत हो गया। आखिर वे मी रणस्यलका परित्याग कर प्राणरक्षाके लिये भाग चले। पराजित राजपूतगण मुगलोंके हाथसे प्राण गंवाये। मानसिंहने अपनी विजयवार्सा वादशाहको सुनाई और हल्दीबाट गिरिसङ्कुट पार कर गोगुएडा पर अधिकार जमाया ( ६८५ हिजरो )<sup>९</sup>। प्रताप और उनके अधीनस्य सामन्तीं

क बदानीने इस स्थानका नाम को क्राष्ट्रा किन्तु। है।

भ अगलपक्षके मानधिदके सधीन साम्मरपित राजा कोन-करण, भगवानदासके पुत्र मधुसिंह और राजा निहारी देखके पुत्र मगननाथ अदि थे। ( adauni, in Elliot, Vol. v, p, 397-398 and Blochmann's Ain, P. 487)

ग बहोनी इस युद्धमें स्वयं उपस्थित थे। उन्होंने जिला है, कि दोनों पक्षके राजपूत-योद्धा इतने निकटवर्सी हो कर लडते थे, कि उनका पश्च निवासन करना कठिन है।

( Badauni, vol II, p, 331; বৰধন্-যু-সহৰত্ত Elliot, vol, v, p, 399) पर कुद्ध हो सम्राह्ने १५७८-८० ई०में मीर वक्सी शाह-वाज खाँको उनके विरुद्ध सेजा। राजा भगवान्दास, मान-सिंह आदि राजपूत सरदार उनके साथ चले। शाहवाजने कमलमीर दुर्गमें घेरा डाला और उसे जीत लिया। पोछे गोगुएडा-दुर्ग और उदयपुर नगर भी उनके हाथ लगे #।

लगातार युद्धसे प्रतापकी शक्ति विलकुल जाती रही। उन्होंने शमशान तुल्य मेवाड्राज्य और चित्तोर-का परित्याग कर सिन्धुतीरके निकटवर्त्ती प्राचीन सग्दी राजधानीको जाने और वहां शिशोदिया-कुलका गौरव-निकेतन वसानेका सङ्करण किया। उनके जीवनके सह-चर सामन्तगण, जो पराधीनताको अपेक्षा निर्वासनको अच्छा समभते थे, उनके साथ साथ जानेको दृढ प्रतिज्ञ हुए। सङ्कर्णसिद्धिको प्रत्याशासे प्रताप साधन्त और आत्मीयगणसे परिवृत हो अरवलीका परित्याग कर ज्यों ही मरुदेश पार कर रहे थे, त्यों ही उनके त्रिय सचिव भामगाने पित्रप्रपार्जित काफी धनरत्न ले कर उनके चरणोंमें समर्पण किया । नितान्त निरुपाय और सामध्यं-हीन प्रताप, असमयमें प्रचुर अर्थे पा कर मातृभूवि-परि-त्यागका जो सङ्खल्प था, उससे विरत हो गये। उन्होंने देखा कि यह धनरत हो कर वे और भी वारह वर्ष तक २० हजार सेनासंग्रह कर खदेशकी गौरवरक्षा कर सर्केंगे।

इस प्रकार प्रताप काफी धनरत पा कर पुनः युद्धको तैयारी करने छगे। मुगलोंने उनकी तत्कालोन अवस्था-की विवेचना कर समका, कि वे मरुदेश पार कर भाग रहे हैं। किन्तु थोड़े ही दिनोके अन्दर उनका यह सुख-खप्न टूट गया। प्रताप एकाएक कुद्ध केशरीकी तरह गरजते हुए शाहवाजकी सेना पर टूट पड़े। इस वार

# आईन इ-जक्त्रतिमें लिखा है, कि राणा संन्यासीके वेशमें भागे थे। अक्त्रतामा और तवकत् इ-अक्त्रतिमें लिखा है, कि प्रताप गहरी रातको बांसनाष्टाके पहाडी प्रदेशमें भाग गये थे। (Elliot's Muhammadan Historians, Vol. v. p. 410 and vl. p. 58) वहुत-सी मुगलसेना विनष्ट हुई। मुगलोंके आतमस्का-का आयोजन करनेने पहले ही कमलमीर दखल किया गया। अवदुला प्रतापको प्रवएडगति रोक न सके और दलवल समेत मारे गये। इस प्रकार घीरे घीरे वत्तीस दुर्ग उनके हाथ लगे। विघमीं मुसलमानसेना वड़ी कठोरतासे राजपूतोंके हाथ मारे गये। इस प्रकार एक वर्षके अन्दर प्रतापने सारा मेवाड़ शलुके हाथसे अपने कब्जेमें कर लिया। केवल चित्तोर, अजमीर और मएडलगढ़ वाकी रह गया। इतने पर भी उनके प्रतिजिघांसावृध्ति शान्त न हुई। खदेशद्रीही मानसिंहका दर्प चूर्ण करनेके लिये उन्हों ने मानसिंहके राज्य अम्बरप्रदेश पर आक्र-मण कर दिया और उसी राज्यके अन्तर्गत भालपुर गांचकी लूटा।

तदन्तर उदयपुरको भी महाराणाने अपने अधिकारमें कर लिया। वादशाहने भी अब युद्ध बन्द करना उचित समभा। प्रतापने उद्यपुरको मेवाड राज्यको राजधानो वनाया । परन्तु चिस्तोरका उद्धार वे कर न सके । समस्त जीवन युद्ध तथा और भी अनेक कर्षोंके कारण प्तापका शरीर शिथिल हो गया था। महाराणा प्ताप मृत्यु शय्या पर सो रहे हैं, बीर सामन्त खड़े हैं, पुत अमरसिंह सामने हाथ जोहें खहें है। महाराणाको बेधाओंसे मालूम होता है, कि वे कुछ कहना चाहते हैं। साल्म्या सरदारसे पूँछा, क्या आज्ञा है। महाराणा बोछे "अमरसिंह मेरे सामने प्रतिक्षा करे, कि इम छोग चिलासमें लिप्त न होंगे और तुम भी प्रतिहा करो, कि इनको भोग विलासमें लिप्त न होने दें गे और चित्तोरके उद्घारमें इनकी सहायता करोगे।" दोनों ने उसी समय प्रतिज्ञा की। महाराणा प्रताप विचोर-का उद्धार न कर सके, इसका कष्ट उनको रहा ही । चिचोरका उदार और खजातिकी खाधीनता उनके जीवन का उद्देश्य था। इनमेंसे उन्होंने एक सिद्ध किया था, पर दूसरा सिद्ध कर न सके। इसी कारण वे राजभवनमें नहीं रहते थे। कुटो ही उनका बासस्थान थी, अमर-सिंह स्त्रमान हो से विलासी थे, इसी कारण प्रतापसिंह समभते थे, कि यह देशकी खाधीनताकी रक्षा करने वीग्य नहीं है। मृत्युके पहले उन्होंने कई वार अपना इस प्रकार-का अभिप्राय प्रकाशित किया था। इस कारण प्रतापने

मृत्युके समयं प्रधान सामन्तींसे तलवार छुला कर यह प्रतिश्वा कराई थी, कि हमलोग सर्वदा कुमार अमरसिंह-के साथ रहेंगे और उनको विलासी न वनने देंगे।

जिस विपुळ मुगळवाहिनोके साथ प्रताप वीस वर्ष तक युद्धमें उलके हुए थे उसकी संख्या ग्रीकके विरुद्ध प्रोरित पारस्पराज जरक्षेशको वडी फौजको अपेक्षा कहीं अधिक थी। यदि मेवारका प्रकृति इतिहास लिपिवद रहता, यदि एक धुसिडाइडिस् ( Thucydides ) वा जेनोफन ( Zenophon) मेवारराज्यमें जन्म ग्रहण करते, तो पिलोपनिसस् (Peleponnesns )-का समराभिनय अथवा 'दश सहस्र' का प्रत्यावर्त्त कभी भी प्रतापके जीवनके समतुत्य नहीं हो सकता था। इघर मुगल-सेनाका जैसा असाधारण रणचातुर्य, दुर्दम दुराकाङ्क्षा, अपरिमेय उद्यम और ज्वलन्त धर्मानुराग था, उधर वैसा ही प्रतापकी अद्म्य चीरता, प्रस्कुरित उच्चाकांक्षा, अनन्य साधारण खदेशानुराग, अलौकिक अध्यवसाय, सुविश्वसैन्य परिचालना और धर्मप्रणोदित मनोवेग इन सब गुणोंसे विभूपित हो वीरकेशरी प्रताप प्रवल वल-शाली सम्राट् अकवरको वाहिनीको विमुख कर सके थे। अरवलीका विशालक्षेत ही प्रतापको कार्यावलीका प्रमाण-स्थल है। उक्त अरवली पहाड़ पर ऐसा कोई भी स्थान न था जहां प्रतापकी पवित्र वीरकीर्त्ति अनुष्ठित न हुई हो। सन् १५६७ ई०में यह भारतका सूर्य राजपूतानेमें अस्त हुवा था । १७ पुत्र छोड़ कर प्रताप सुरधाम पथारे थे। उनमेंसे अमरसिंह सबसे वह थे।

र मेवाइके महाराणा, जगत्सिंहके पुत । छोग इन्हें दूसरे प्रतापसिंह कहा करते थे। १७५२ ई॰में ये मेवाइके सिंहासन पर वैठे। ये पहले प्रतापके समान न ये। गुणोंमें ठोक उनके विपरीत थे। वे स्वजातिके मुख उडज्जूल करनेवाले थे और ये स्वजातिके मुखमें कालिमा पोतनेवाले थे। इनके समयमें कोई ऐसी घटना न घटी जो लिखने योग्य हो। इन्होंने केवल तीन वर्ष तक राज्य किया। इनके शासनकालमें मराठोंने तीन वार इन पर आक्रमण किया। मेवाइ राज्यको लुटेरे मराठोंने तहस नहस कर डाला। अम्बरके राजा जयसिंहकी कन्याको इन्होंने ज्याहा था। उसके गर्मसे राजसिंह नामक एक पुत उदपंत्र हुआ था।

३ अम्बर ( वस मान जयपुर )-के राजा, माधीसिहके पुत । माधीसिंहकी मृत्युके वाद प्रतापसिंहके वैमाल भाई पृथ्वीसिंह राजसिंहासन पर अभिषिक हुए। परन्तु प्रध्वीसिंह अकाल ही कराल कालके गालमें फंसे। पीछे व्रतापसित अम्बरके राजा वनाये गये। उस समय राजा खुशहाळीराम अम्बरके प्रधान मन्तो थे । राजनीतिमें वे वडे चतुर थे। इस कारण राजा खुशहाळीराम फिरोजकी शक्ति नष्ट करनेकी कोशिश करने लगे। फिरोज माघोसिहकी विधवा रानीका उपपति था। राजा खुशहालीराम पहले माचेरीके सामन्तको अधीनतामें थे। परन्तु अम्बरके राजमन्त्री हो कर भी खुशहालोराम अपने पूर्वप्रभुको भूल नहीं गये थे। वे भीतर हो भीतर माचेरी सामन्तको खाघीन वनानेका भी प्रयत्न करते जाते थे। अनेक छल वल करके फिरोजको खुशहालीराम-ने मरवा डाला । इस समय माचेरी सामन्त और ख़ुश-हालीराम इन दोनोंमें खार्थका भागड़ा खड़ा हुआ। एक व्लने लुटेरे मराठोंका आश्रय प्रहण किया । लुटेरे मराठों को अच्छा अवसर हाथ लगा। वे प्रजा पर मन-माना अत्याचार करने छगे। प्रतापसिंह जव तक नवा-छिग थे तव तक अम्बरमें इसी प्रकार अशान्ति फैली रही। जव महाराज प्रतापने अपने हाथमें राज्यका भार प्रहण किया, तव उन्हों ने समस्त विपत्तियों को दूर हटा दिया। मराठोंका दमन करनेका भी उन्होंने दूढ़ संकल्प कर लिया

इसी समय छुटेरे मूर्ख मराठोंने हर प्रान्तमें भयङ्कर खूट आरम्भ कर दी थी। इनके भयसे सारा भारत कांप उठा। महाराज प्रतापिसहने यह निश्चित कर दिया, कि अब मराठोंका दमन किये विना राजपूतानेके राज्योंका मङ्गल नहीं है। १७८७ ईं मारवाड़के सिहासन पर महाराज विजयसिंह सुशोभित थे। प्रतापिसहने मारवाड़-राजके पास दूतके हाथ एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था, "छुटेरे और हमलोगोंके दुश्मन मराठागण हृदयभेदी अत्याचारोंसे हमलोगोंको तंग तंग कर रहे हैं। इस कारण उनका दमन करना हमारा फज है। समस्त राजप्त-राजाओंको चाहिये, कि वे आपसमें मिल कर युद्धमें अपने शत्रुको परास्त करें और तव फिरसे निश्चन्त हो कर राज्य करें। मैंने खुदसे रणप्राङ्गणमें जा कर मराठों

को इएड देनेका विचार कर लिया है। अतएव यदि आप अपनी राडोर-सेनाको मेरी सहायताके लिये मेज दें, तो मैं आसानीसे अपनी जातिके शतुओंका अहङ्कार मट्टीमें मिला दूं।" यह पत्न पाते हो मारवाड़पति विजयसिंह-ने सेनाको तैयार हो जानेका हुकुम दे दिया। इसके पहले हो वड़ी मुसीवतमें पड़ कर अजमेरका अधिकार मराठोंको दे दिया गया था। इस समय प्रतापको विशेष उद्योगी देख कर पुनः अजमेर पर अधिकार करनेको कामनासे वे अप्रसर हुए। वलवान् राठोर-सेनाके सेना-पति नियुक्त हुए जवानदास।

तुङ्गा नामक स्थानमें मराठोंके नेता सेंधिया और उनके शिक्षित फरासीसी सेनापित डिवाइनने वडी तेजी-से मारवाड़ और जयपुरकी संयुक्त सेना पर धावा वोल विया । दोनों दलमें घमसान युद्ध होने लगा । अपनी जाति की रक्षाके लिये बीर राठोर और कछवाहे लडने लगे। संधिया भाग चला, उसकी सेना तितर वितर हो गई। मराठीसेना युद्धके सामान छोड़ कर चम्पत हुई । विजयी राठोर और कछवाहोंने उस धनको आपसमें वांट लिया। इस युद्धके विजयोपलक्षमें प्रतापसिंहने एक वहुत वड़ा उत्सव किया।इस उत्सवमें २० लाख रुपये दीन दुखियोंको वाँटे गये। प्रतापसिंहकी वीरता और युद्ध-कोशलसे मराठा लुटेरोंका अभिमान महीमें मिल गया । अव राजपूतानेमें पुनः शान्ति विराजने छगी । परन्तु गृहः कलह और विजातीय आक्रमणोंसे जर्जरित राजपूतानेके राजाओंमें इस विजयकी शान्ति वहुत दिनों तक न रह सकी।

प्रतापसिंहकी सलाहसे मारवाइराजने अपनी सेना
तुङ्गारके युद्धमें भेज दी थी। इस समय माघोजी
सिंधिया मारवाड़ पर चढ़ आया। मारवाड़राजने प्रतापसिंहसे मदद मांगी। इन्होंने भी अपनी सेना भेज दी।
परन्तु सेनाके पहुंचने पर राठोर भाटोंने कछवाहोंकी
निन्दा गाई, जिससे वे वड़े विगड़े। उनका क्रोध इतना
वढ़ा कि वे इस वातको भूल गये कि हमको क्या करना है।
राठोर और महाराष्ट्र सेनामें छड़ाई चलने लगी। कछवाहोंकी सेना वैठी वैठी तमाशा देखती रही, मरोठोंकी
जात हुई। यदि वे इस वार भी दोनों सेना मिल जातीं,

तो मराठोंका द्रप<sup>8</sup> सर्वदाके छिये चूर्णे हो जाता। यह वृत्तान्त सुन कर प्रतापसिंहको वड़ा दुःख हुआं। १८०३ ई०में महाराज प्रताप इस छोकसे चळ वसे।

८ खएडे लाके राजा राव इन्द्रसिंहके पुंत । पिताकी मृत्युके समय ये विलकुल वालक थे। इनके मन्त्रियोंने मराठोंको काफी धन दे कर इनकी रक्षा की। उस संमय खण्डेलाके दो अघीश्वर थे, प्रतापसिंह और नर-सिंहदास । प्रतापिस हसे जव अम्बरके राजा कर मांगते थे, तब वे अपना निर्दिष्ट कर दे दिया करते थे, परन्तु नर्रासहदास नहीं देते थे। इस कारण अम्परराजके सेना-पति नन्दराम सेना छे कर हछदिया आये। प्रताप-सिंहने अच्छा मीका देख कर अध्यरराजके सेनापतिसे कहा, 'यदि खण्डेलाप्रदेश हमारे दखलमें करा दिया जाय, तों में समस्त खण्डेळाका कर दुंगा।' सेनापतिने इसे कवूळ कर लिया। यहां तक कि, प्रतापसिंहको समस्त खण्डेला-राज्यका अधिकारपत दे दिया गया। प्रतापसिंहने भी उस राज्य पर अपनी गोटी जमा ली। गोविन्द्गढ़में जा कर रहने छगे। प्रतापसिंहने गोविन्दगढ़ पर भी आक्रमण कर दिया। परन्तु नन्दराम हलदियाने रिशवत ले कर नरसिंहको पुनः राज्य दिला दिया। नन्द-राम हलदियाके भाग जाने पर अम्बरराजका सेनापति आशाराम पुनः इस प्रदेशमें घुसा और घोलेसे प्रतापृसिह तथा नरसिंह दोनोंको कैद कर लिया। प्रतापसिंह बहुत दिनों तक कारागारमें रहे । जब मारवाड्राज और अम्बर-राजमें युद्ध आरम्भ हुआ, तव प्रतापिसह और नर्रासह दोनों छोड़ दिये गये। नर्रासहदास तो मारवाड़के युद्धमें मारे गये, परन्तु प्रतापका पता नहीं।

प्रतापस (सं॰ पु॰) तपसि साधुः अण् प्रकृष्टस्तापसः, प्रादिस॰। १ प्रकृष्टतापस, उत्तम तेजसी।२ शुक्कार्क वृक्ष, सफेद मंदार।

प्रतापादित्य वङ्गज कायस्थ-कुलतिलक गुह्वंशीय यशो-हराधिपति। जिस समय (१५६४ ई०मं) इनका जनम हुआ, उस समय अफगान वा पठान जातीय मुसलमान-राजा वङ्गाल, विहार और उड़ीसाका शासन करते थे। प्रतापके जन्मके कुछ पहले सुलेमान करानो वङ्गाल और विहार जीत कर उड़ीसा जीतनेका आयोजन कर रहे थे। कालापहाइ नामक एक स्थधमत्यागी हिन्दूने उद्गीसा पर दलल जमाया। इस समय प्रवल प्रताप अकवरशाह दिलोके सिहासन पर अधिष्ठित थे और सारे भारतवर्षमें उनकी तृती वोल रही थी। सुलेमानने वादगाहको उपढ़ी-कन मेज कर खुश कर रखा था। इस कारण अकवरने वङ्गालजयको और दृष्टिपात नहीं किया। इस समय गीड़नगरमें वङ्गालकी राजधानी थी।

गीड़तगरमें प्रतापका जन्म हुआ था। इनके पिता श्रीहरि और चाचा जानकीवहम नवावके अधीन कानूनगोका काम करते थे। दांनों भाई परम वैणाव थे। कहते हैं, कि जिस समय कालापहाड़ने उड़ीसा जांत कर जगनाथमूर्ति तोड़नेकी आज्ञा दी, उस समय श्रोहरिकी चेग्रसे पंडा लोगोंने जगनाथमूर्ति अन्यत लिपा रखा था, इस कारण मूर्तिको रक्षा करनेमें समर्थ हो श्रीहरिने अपनेको छतार्थ समना था।

१६वीं शताब्दीके मध्यभागमें वङ्गालका भाग्यचक वहुत कुळ परिवर्त्तन हो गया। किन्तु जब जो राजा सिंहासन पर वैदे, उन्होंने श्रीहरि और जानकोबल्डमके गुणसे वशीभूत हो उन्हें अपने अपने पदसे च्युत नहीं किया। इस प्रकार दोनों भाई नवावके यहां नौकरी करके थोड़े ही दिनोंमें धनशालो हो गये थे। नवाव सुलेमानशाहने श्रोहरिको 'विकमादित्य' और जानको वहुम को 'वसन्तराय'की उपाधि दो। तवसे ये दोनों भाई उपाधि नामसे ही प्रसिद्ध हुए।

उस समयकी रीतिके अनुसार प्रताप पांच वर्षकी उमरमें स्कूलमें भत्तों हुए। उस समय पारसी राजमाया थी, जिन्हें राजसेवा वा प्रतिष्ठालामकी इच्छा होती, वे पारसी पढ़ते थे। जिनकी इच्छा होती, वे पारसी और अरवी दोनों ही भाषा सीखते थे। प्रतापको वचपनमें उक्त दोनों ही भाषा सीखनी पड़ी थी।

आज जिस प्रकार देहातोंमें छोटे छोटे छड़के तीर धनुष छे कर खेछते देखे जाते हैं, उस समय भी उसी उसी प्रकार सर्वोंको धनुर्विद्याका अभ्यास करना पड़ता था। चोर उकतोंसे आत्मरक्षा करनेके छिये उस समय धनुर्वाण ही प्रधान श्रह्म था। युद्धमें भी धनुर्वाणका ध्यवहार होता था। इस कारण सब कोई वहें चावसे

यह विद्या सीखते थे। प्रताव भी तीर चलानेमें वड़े सिद्धहस्त थे। उनका एक भी वार खाली नहीं जाता था। अन्यान्य अल चलाना और अभ्वारोहण आदि कार्योमें भी प्रताप वड़े दक्ष थे।

१५७३ ई०में सुलेमानके छोटे लड़के दाऊद खाँ वङ्गाल विहार और उड़ीसाके नवाव हुए। सुलेमानने जिस प्रकार वादशाहको उपदीकनादि मेज कर खुश रखा करते थे, उस प्रकार दाऊदने नहीं किया। वरन वे अपनेको अकवर शाहके मुकाबलेका समक्षते लगा। उन्होंने देखा, कि उनका भड़ार धनरलादिसे परिपूर्ण हैं, दो लाख पठान सेना उनकी आझाका पालन करनेको हर- चक्क तैयार हैं, काफो लड़ाईके सामान, हजारों तोप उनके अक्षागारमें मौजूद हैं, कालापहाड़ आदि रणनियुण सेना उनके लिये जान देनेको तैयार हैं।

सुलेमानकी मृत्युके दूसरे वर्ष मुगल सेनापित मुनीव साँने सम्राह्का प्राय कर दाऊदसे मांग मेजा। तेज और उत्साहसे उद्दीप्त हो नवावने सम्राह-सेनापितकी कर मेजनेके वदले अवशास्त्रक उत्तर मेजा। इस कारण युद्ध अपरिहार्य हो गया। यह देख कर विक्रमादित्यने यमुना और इच्छामती नदींके वियोग स्थान पर किला वनवा लिया। उनके वन्धु वान्थव जो पूर्व वङ्गालमें रहा करते थे उनको भी वहीं युला लिया। यही वर्च-मान यशोहर जिला है। यहां पहले चौद साँको जागीर थो। चौद साँके कोई उत्तराधिकारी न होनेके कारण वह स्थान जनशून्य हो गया। सिंह वाघ आदि हिंस जन्तु-औंको वह निवासभूमि हो गया था। धनरत्नकी रक्षाके लिये विक्रमादित्यने उस स्थानको पसन्द किया। था।

विक्रमादित्य और वसन्तरायको राजधानीमें रहते लगे। नवाव उन दोनों पर आवश्यक कार्य भार सोंप विहारको ओर अमसर हुए। वहां उन्होंने सम्राट्के अधिकारस्थ एक छोटे दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। यह संवाद पाते ही अकवरणाहने एक वड़ी सेना युद्धक्षेत्रमें मेजी। सम्राट् सेनापित मुनोम खाँ और राजा टोडर-मलने पडानसेनाको परास्त कर दाऊदको मार भगाया। आखिर पटनेके हाजीपुरमें दोनोंमें वहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें मुगलसेनाने हाजीपुरको जीत

Vol. XIV, 126

लिया। हार खा कर दाऊद उड़ीसा भागे। गौड़के धनी और सम्ब्रान्त व्यक्ति राजधानी छोड़ कर यशोहरक चले गये। विक्रमादित्य और वसन्तराय छद्मे वेशमें रहने लगे। नवावने आवश्यकीय कागज पत्नको जमीन में गाड़ रखा। कुछ समय वाद दाऊदने मुगलसेगा-पतिको वङ्गाल और विहार दे कर सन्धि कर ली।

सिन्ध स्थापनके वाद सेनापित मुनीम खाँन गौड़की याता कर दी। यहां महामारीका भारी प्रकोप था। प्रतिदिन इतने मनुष्य मरते थे, कि लोग श्रवका अच्छी तरह सत्कार नहीं कर सकते थे, केवव गङ्गाजल छिड़क कर उसे फेंक देते थे। सेनापित मुनीम खाँ भी महामारीके शिकार वन गये। नागरिक लोग, जहां जिसकी इच्छा हुई, भाग गये। इस प्रकार गौड़नगर श्मशान-सा दीख पड़ने लगा। जो स्थान हजारसे अधिक वर्ष तक अन्यतम प्रधान नगर समका जाता था, जहां के हिन्दूराजाओंने उत्तर-भारत पर भी एक दिन प्रधानता स्थापन की थो, जहांके ध्वंसावशिष्ट कीर्त्तिस्तम्म आज भी देश विदेशके दर्शकोंको तृप्त करते हैं वह स्थान १५७५ ई०की महामारीमें, भारतके मानचित्रसे विद्युत्त हो गया और उसके स्थानमें, सुदूर सुन्दरवनके जङ्गलप्रदेशमें एक अपरिचित स्थान थारोहर नामसे प्रसिद्ध हो गया।

विक्रमादित्यने जव मुगल-सेनापितका मृत्युसंवाद् दाऊदके पास मेजा, तव उनके आनन्दका पारावार न रहा। उन्होंने इसी समय सेना सजानेका हुकुम दे दिया और प्रायः पवास हजार घुड़सवार हे कर वे वड़े वेगसे वङ्गालको ओर चल दिये। उत्साहहीन मुगलसेना उनकी गित रोक न सकी। दाऊद मुगलसेनाको हताहत करते हुए राजमहल तक वढ़े। यहां सम्राट्के सेनापित खाँजहान और राजा टोडरमलने उन्हें रोका। मुगल-पठानमें पुनः तुमुल-संग्राम छिड़ गया। पठान लोग हथेली पर जान ले कर लड़ने लगे। इस वार भी राजा टोडरमलके उद्योग-से कालापहाड़ आदि पठान-सेनापितयोंकी चेष्टा व्यर्थ गई। इस युद्धमें दाऊदके सेनापित कालापहाड़ और सर्य दाऊद भी मारे गये। पठान-सेना छत्तभङ्ग हो भाग चली दाऊदकी मृत्युके साथ पठानसेनाको जय-आशा पर

पानी फेर गया। अव मुगलप्रभुताका जड़ वङ्गालमें वहुत मजबूत हो गई।

राजा टोडरमलने गुद्धमें फतह पा कर तमाम घोषणा कर दी, कि जो कोई बङ्गाल राजस्विययक कागजपत उन्हें समक्ता देगा, उसे वे विशेषक्ष्यसे पुरक्तार देंगे। नवाद दाऊदको मृत्यु हो जानेसे विक्रमादित्य और दसन्तरायको आशा निराशामें पलट गई थी। अब दोनों भाइयोंने संन्यासीका वेश छोड़ दिया और टोडरमलसे मुलाकात की। राजा टोडरमलने उनका अच्छा सत्कार किया और शक्ति भर उन्हें मदद देनेका वचन दिया। उन्होंने भी राज्यके राजस्विययक कागजपत समक्ता दिये। इस पर टोडरमल उन पर बढ़े मसन्न हुए और उनकी जागीर कायम रखी। पीछे वे दोनों भाई 'महाराजा' राजा' और की उपाधिसे भूपित हुए। प्रवाद है, कि विक्रमादित्य और वसन्तरायके 'राजस्विययक कागजपतको मिसिसक्य प्रहण कर टोडरमलने बङ्गालमें राजस्व सम्बन्धीय बन्दो-वस्त किया था।

जिस समय वङ्गालमें भाग्यच्क परिवर्तित हो रहा था, उस समय प्रताप यशोहरमें रहते थे। वे नवाब दाऊदकी पराजय और मृत्यु-सम्वाद पर वड़े दुःखित हुए। राजमहरूके युद्ध के वाद विक्रमादित्य यशोहर आये । यहां चद्रही पकी एक राजकुमारीके साथ प्रताप-का विवाह हुआ। कहते हैं, इस विवाहोत्सवमें लाखीं रुपये खर्च हुए थे। इस समय इनकी अवस्था केवल चौद्ह वर्षको थो। विक्रमादित्यके पिता भवानन्दने इनका 'प्रतापादित्य' नाम रखा था। युवक प्रताप शिकार खेलने वनमें जम्या करते थे। उस समय उनका साहस बुद्धि और कप्टसहिष्णुता आदि देख कर लोगोंको आस्वर्य होता था। १५७५ ई०में जो महामारी हुई थी उससे गौड़ जनशून्य हो गया था, परन्तु यशोहरकी श्रीवृद्धि हुई । गौडुका यश हरण करनेके कारण यशोहर नाम सार्थक हुआ था। ऋमशः प्रतापका स्वभाव उद्धत हो गया। वे वातचीतमें पिता और चाचाकी आज्ञाका तिरस्कार कर दिया करते थे। विक्रमादित्य पुतके इस दुर्घ्य वहारसे वड़े चिन्तित हुए। प्राणसम भाई वसन्तरायका प्रताप अपमान करेगा, विक्रमावित्यको इसका भारी डर था। पीछे पुतके कारण भाईसे किसी प्रकारका विवाद न हो

इसिलिये उन्होंने युक्तिसे पुतका कहीं दूर हटा देनेका विचार किया। उन्होंने अकवरकी राजधानी आगरेमें प्रतापको मेज दिया। वसन्तरायका प्रतापमें वड़ा स्नेह था। उन्होंने भाईसे प्रतापको आगरा न मेजनेके लिये कहा था। परन्तु प्रतापने यह समक्त लिया था, कि चाचा हीके कारण में निकाला जा रहा हूं। जो हो, आगरे जानेसे प्रतापका मन्तियोंके साथ परिचय हुआ और उनकी सहायतासे वादशाह अकवरके साथ भी उनकी जान पहचान हुई। प्रतापका भाग्य चमका: धोरे धोरे वे कुमार सलोम और टोडरमल आदिके मित्र हो गये।

इसके बाद प्रताप वयोवृद्धोंके साथ मुगल-द्रवारकी अवस्था और मुगलोंकी राजनीतिके गृह रहस्यसे अवगत होने लगे, मुगलसेनाका समर-कीग्रल सीखने लगे। प्रवाद है, कि सम्राट्सभामें एक समस्याकी पूर्ति करके प्रताप सम्राट्के प्रमाजन हो गये थे। सम्राट्ने एक दिन अपने समा-सदस्योंको एक कविताका शेप चरण कह कर अपर तीन चरण पूरा करनेको कहा। यह शेप चरण था "श्वेत मुजङ्गिनी जात चलिहें" कोई भी उस समस्याकी सम्राट्के मन माफिक पूर्ति न कर सका। आखिर प्रतापने सम्राट्की अनुमति ले कर इस प्रकार पूर्ति की,—

"सो वरकामिनी नीर निहारित रीत भिलहें। चिर आंचरको गठ पर वापिको धारहुं चल्ल चिलहें॥ वाय वेचारी आपन मनमें उपमा चिहहें। कैछन मरावित ख़ेतभुजङ्गिनी जात चिलहें॥"

इस प्रकार समस्याको पृत्ति करके प्रतापने सम्राट्का विशेष अनुप्रह लाम किया था।

इस समय बङ्गालमें जागीरदारोंने मिल कर विद्रोह खड़ा कर दिया था। इस कारण राजा टोडरमल पुनः उनका दमन करनेके लिये भेजे गये। राजधानीसे टोडरमलकी अनुपिरधित देख प्रतापने एक चाल चली। यशोहरकी मालगुजारी वादशाहके खजानेमें जमा करनेके लिये विकमादित्य प्रतापके यहां भेज दिया करते थे। प्रतापने जब देखा, कि में सम्राट् और उनके मन्तियोंका विश्वासी हो गया हुं, तब उन्होंने मालगुजारी दाखिल करना बन्द कर दिया। यशोहरसे यथासमय राजकोणमें

दाखिल करनेके लिये रुपये भेजे जाते थे। परन्तु वे दाखिल नहीं होने पाते थे। इस मालगुजारी वाकी पड़ जाने पर सम्राट्ने प्रताप-को बुला कर इसका कारण पूछा । प्रतापने उत्तर दिया, "हमारे पिता वृद्ध हो गये हैं। इस कारण चाचा ही गज्यका प्रवन्ध करते हैं। मालूम पड़ता है, कि किसी कारणसे चाचा मालगुजारी नहीं मेजते और उनकी अयोग्यताके कारण राज्यमें भी सर्वदा अराजकता केली रहती है।" यह सुन कर वादशाह वहें विगड़े और राज कर-देने पर प्रताप हीको राजा वनानेकी उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया । वहुत शीघ्र ही प्रतापने वाकी राज्य-कर दे दिया। वादशाहने उसमेंसे तीन लाख रुपये उनको जीटा दिये और उनको राजाके सनद-पत दे कर उन्हें यशोहर भेज दिया। इस प्रकार प्रतापका पितृद्रोह फर्लामूत हुआ। सन्नाट्से २२ हजार सेना छे कर प्रताप वहांसे चल दिये। जव विक्रमादित्य और वसन्तरायने सुना, कि सम्राट्की आहासे प्रताप राज्य लेने आ रहे हैं, तब वे व ः प्रसन्न हुए। पुलको राज्य देनेके लिये विक्रमादित्य वड़े हिपंत हुए। दोनों भाई वड़े हर्पके साथ प्रनापकी वाट जोह रहे थे। उनके आनेसे नगरवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु यशोहर पदार्पण करते ही प्रतापने नगर घेर छिया और राजकोष पर अधिकार जमाया। प्रतापको डर हुआ था कि वसन्तराय उन्हें रोवेंगे। परन्तु यहां सो कुछ नहीं हुआ। पिता और चाचा प्रतापके व्यवहारसे दुःखित हुए और नगरवासी भी हक्के वक्के हो गये। विक्रमादित्य और वसन्तराय उनके डेरेमें गये और उनकी दुष्टताकी कोई वात न कह कर तथा अनेक प्रकारके उपदेश दे कर राज्य ब्रहण करनेके लिये उनसे कहा । प्रताप पिताके साथ राजमहलमें आये। प्रताप वड़ी धूमधामसे राज्या-भिषिक्त किये गये। राजसिंहासन पर वैठ कर प्रतापने अपने राज्यका सुप्रवन्ध करके पुत्त<sup>र</sup>गोज छुटेरोंका दमन किया। प्रतापके पराक्रमकी चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। इसी समय विक्रमादित्यका परलोकवास हुआ । प्रतापने वाचाके कहनेसे उत्कलसे उत्कलेखर नामक महादेव और गोविन्द्देव नामक श्रीकृष्णकी मूर्त्ति यशोहरमें

स्थापित की, कई एक किले वनवाये और कालीगञ्जके निकट एक नगर वसाया जिसका नाम 'प्रतापनगर' रखा। इच्छामती नदीके किनारे रायपुर प्राप्तमें खाई खोद कर उन्होंने जहाज वनाने और उसकी मरस्मत करनेका एक कारखाना खोला, वड़ी वड़ी सड़कों वनवाई और उनके दोनों किनारे प्रान्त पथिकोंको आश्रय देनेके लिये वृक्ष रोपे।

दिह्नीसे प्रस्थान करते समय प्रताप कमलखोजा नामक एक हव्सी जातिके अध्यसेनानायकको अपने साथ लाये थे, उसकी सहायतासे प्रतापने घीरे घीरे दश हजार, अध्यसेना सुशिक्षित कर रखी थी। पीछे उन्होंने यूरो-पीय हंगसे गोलन्दाज सेनाकी तैयारी की और पुर्त्तगीजोंकी सहायतासे कमान, गोले तथा वास्त्र तैयार करनेका कारखाना खोला। इस समय मगरी समुद्रके उपकूल भागमें 'हरमद' (Armada) अर्थात् जलद्रस्युगण भारी उपद्रव मचा रहे थे। लोग तंग तंग आ गये थे। उनका दमन करनेके लिये उन्होंने नौवलसेनाका संग्रह किया और पुत्त गोजोंकी सहायतासे जलद्रस्युको वहुत दूर तक खदेर भगाया। इन्हें अर्थका अभाव नहीं था, खजाना धन रत्नसे परिपूर्ण था।

१५८८ ई०के शेप भागमें राजा मानसिंह वङ्गाल, विहार और उड़ीसाके शासनकर्ता नियुक्त हुए। इस समय वङ्गाल और विहारमें मुगलप्रभुता वद्धमूल होने पर भी उड़ीसाके पठान मुगर्लोके विलकुल पदानत नहीं हुए वे मौका पा कर वङ्गाळ पर आक्रमण करके ऊथम मचा रहे थे। इन सब उपद्रवींका निवारण और राजखिवन-यक वन्दोवस्त सुनियमसे चलानेके लिये ही सम्राट्के प्रधान सेनापति राजपूतवीर मानसिंह काबुलसे भेजे गये थे। इस समय पठानोंने कतलूखांके नेतृत्वमें उड़ीसा-को जीत कर वङ्गदेशमें दामोदर नदी तक अपना अधि-कार फैला लिया था। राजा मानसिंहने दो छोटी छोटी लड़ाइयोंके वाद उन्हें परास्त किया। सम्राट्को कर देना स्वीकार करके उन्होंने उड़ीसाका अधिकार प्राप्त किया । किन्तु १५६२ ई०में पठानोंने उड़ीसाका जगन्नाथ-मन्दिर लूटा और यातियोंके प्रति घोर अत्याचार किया। इस पर मानसिंहने वड़े क्रुद्ध हो युद्धयाता कर दी।

वङ्गालके जमींदार सहायताके लिये वुलाये गये।
प्रतापकी सहानुभूति पठानों पर रहने पर भी वे मानसिंहका आह्वान प्रत्याख्यान न कर सके। विशेषतः जगन्नाथमन्दिरके लूटनेसे वे पठान-दलपित पर निशेष विरक्त हुए थे। कतल्लुखां इस समय जीबित नहीं थे।
प्रताप एक दल घुड़सवार और एक दल पैदल सेना ले कर खयं मानसिंहकी सहायतामें गये। उड़ीसा जीतनेके वाद वे वहुत सी मूर्त्तियां संग्रह कर अपने घर लाये थे।

मानसिंह प्रतापके व्यवहार पर वह प्रसन्त हुए और उन्होंने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया। इसी समयसे वे प्रतापको स्नेहृदृष्टिसे देखने छगे। प्रताप भी जहां तक हो सकता था सम्राट्-सेनापितको प्रसन्न रखनेको कोशिश किया करते थे। उनमें एक ऐसा विछक्षण गुणधा, कि जो कोई उन्हें देखते थे, वे उन्हें प्रम किये विना नहीं रह सकते थे। इस कारण थोड़े हो समयके भीतर प्रताप छोकप्रिय हो गये। सप्तश्राम वा हुगछीमें एक मुगछ फौजदार रहते थे। राजा मानसिंहके शासनकालमें वङ्गाछमें राजस्वविषयक वन्दोवस्त होता था। इस उपछक्षमें प्रजाके प्रति जैसा भीषण अत्याचार किया जाता था, इतिहास पढ़नेसे वह मालूम हो सकता है।

इस समय सरकार सिलिमावाद, सातगाँव, बाकला आदि सरकारोंमें यथेए अत्याचार हो रहा था। प्रजा अपनी जन्मभूमि छोड़ कर भाग रही थी। ऐसे निराश्य जितने मनुष्य प्रतापके निकट पहुंचे, सर्वोको उन्होंने आश्रय दिया था। प्रतापने उन्हें रहने लायक स्थान, खेतीको उपयोगी भूमि और आवश्यकीय द्रष्पादि प्रदात किये थे। इस पर हुगलीके फौजदार प्रताप पर विगइं और इसकी खबर उन्होंने मानसिंहको दी। इसका पूरा पता लगानेके लिये मानसिंहने अपने विश्वस्त कर्मचारी शङ्कर चक्रवर्गोंको वहां मेजा। किन्तु मुसलमान कर्मचारियोंके चक्रान्तसे शङ्कर केंद्र कर लिये गये। पीछे प्रतापको चेप्रासे शङ्करको छुटकारा मिला और मानसिंह का भो क्रीध उंढा हुआ। किन्तु हुगलीके फौजदारकी कुदृष्टि प्रताप परसे न हटी। मानसिंहके निकट उन्होंने कई वार चुगली खाई, पर कोई फल न निकला।

इसी समय प्रतापने यशोहरेश्वरी शिलामयी प्रतिमा

पाई। प्रवाद है तथा दक्षिण वङ्गालके वङ्गज कायस्थोंका आज भी स्थिर विश्वास है, कि प्रतापके गुणसे मुन्ध हो भगवती भवानी शिलामयी रूपमें यशोहरमें आविर्भूत हुई थीं। इस घटनाके वलसे प्रतापका उत्साह और भी दूना वढ़ गया। सभी उन्हें ईश्वरानुगृहोत समक्षने लगे। प्रतापने भी भक्तिपूर्ण हृदयसे देवीका नाम यशोहरेश्वरी रख कर उनकी सेवाके लिये यशोहरका उपखत्व प्रदान किया।

इस घटनाके कुछ समय वाद प्रताप चनः द्वीपके राज-कार्यमें इस्तक्ष्ये करने छगे। चन्द्र इंपके अधिपति राजा । कन्द्रपंनारायणकी मृत्यु हुई। पीछे उनके नावालिग छड़के रामचन्द्रराय राजिसिंहासन पर वेठे। उस समय रामचन्द्रकी उमर ६ वर्षसे अधिक नहीं होगी। शायद यह घटना १६६६ ई॰ में घटी थी राज्यलाभ करनेके कुछ समय वाद ही रामचन्द्रराय एक भारी सङ्क्ष्टमें पड़ गये। उन्हें अपने तथा प्रजाके धनप्राणकी रक्षा करना । कएकर हो गया।

इस समय जलइस्यु हे भयसे दक्षिण बङ्गाल नितान्त उत्पीडित हो गया था। पुत्तेगीजोंके विवरणसे जाना 🔉 जाता है, कि वे आराक्ष्मके राजाके अधिकारस्य वाणिज्य व्यवसायियों पर अत्याचार करते थे। उनके नेता कार्वा-लहो वाकला वा चन्द्रद्वीपमें थड़ा करके मगों और बड़ा ४-नौयातियों का वड़ा नुकसान और अपमान करते थे। इस कारण आराकन-राजने वाकलाके कुछ अंश पर अधि-कार कर लिया। चन्द्रद्वीपके बाल राजा दो अत्याचा-रियों के प्रवल प्रतापसे प्रायः हतसर्वस हो गये थे। इस अवस्थामें उन्हें प्रतापकी सहायताके सिवा और कोई रास्ता सूफ नहीं पड़ा। दोनों राजवंशमें शोणित सम्बन्ध भी था। प्रताप उन्हें मदद पहुंचानेको तैयार हो गये। उन्होंने अपने नौवलको सजा कर प्रग और पुर्त-गीजोंका दमन करनेके लिये याता कर दी। चल्द्रहाएमें प्रतापका आगमन सुन कर जलदस्युगण शीघ ही वाकला-राज्यसे भाग चले। पीछे प्रतापने आराकनके राजासे मेल कर लिया। इस समय भाराकनके राजा अत्यन्त वलशाली थे। सन्धिमें शर्त यह थी, कि दोमेंसे कोई भी शत्रुऑको आश्रय न देंगे। अव पुर्त्तगीज-व्स्युगण चट-श्राम और सन्दोपकी ओर चम्पत हुए।

Vol. XIV 127

१५६८ ई०के प्रथम भागमें सम्राट् अकवरने राजा मानसिंहको दक्षिणापथके युद्धमें मेजा। मानसिंहके जाने पर हुगलीके फौजदार प्रतापके साथ वद्ला चुकाने का अवसर हृद्ने छगे। अभी येनकेन प्रकारेण प्रताप-को अपमानित करना हो उनका लक्ष्य था। जो नधे गासनकर्त्ता हो कर आये, उन्होंने सहजमें फीजवारको वात पर विश्वास कर लिया। प्रतापने शासनकर्त्ताको सन्तुष्ट रखनेको कोशिश तो की थी, पर कोई फल न हुआ। वे मुगल-सेनासे अपनेको मुक्त करनेका पड्यन्त करने छगे । इस समय दक्षिण और पूर्व वङ्गालमें इन-की क्षमता खूव चढ़ी वढ़ी थी । सर्वसाधारणके ये क्रिय भो थे । विशेषतः अपनेको दैववलसे वलिए समभ्त कर वे उत्साहित हो गये थे। उनके अधीन ५२ हजार डाली, ५१ हजार धानुकी, १० हजार अध्वारोही और १६ हजार हाथी युद्धके लिये हमेशा तैयार रहते थे। अलावा इसके 'मुहत्पासहस्त" थर्थात् अनियपित काफी सेना भी थी। यूरोपीय प्रथासे शिक्षित गोलन्दाज-सेना और तोपका भी अभाव नहीं था । उनका भंडार धन-रत्नादिसे भरा था और वे अपनेको नौवलसे विशेष वलिष्ठ समभते थे। मुगलींसे अपमानित होनेके कारण उन्होंने अपनेको खुद धिकारा । इस समय टोडरमल जीवित नहीं थे और न राजा मानसिंह हो दिल्लीमें थे। सलीम पिता-के विरुद्ध विट्रोह खड़ा कर उनके विरागभाजन हो गये थे। इस कारण प्रतापने सम्राट्-द्रवारसे प्रतिकारकी कोई आशा न देखी । अव वे केवल अपनी तलवारके भरोसे रहे। किन्तु सहसा किसी कार्यको कर चैठना उन्होंने अच्छा नहीं समफा। इस कारण चाचासे इस विषयमें सलाह ली। वसन्तराय दिल्लीभ्वरको विलक्षण क्षमतासे अच्छी तरह जानकार थे। वङ्गालका भाग्य-चक उन्होंने अनेक वार वदलते देखा था । नवाव दाऊइ-का भाष्यविषयीय सर्वेदा उनके हृद्यमें जागरित था। अभारोप अवस्थामें हरिनाम छे कर दिन कारनेकी उनकी प्रवल इच्छा थी । अतः प्रतापके प्रस्तावको उन्होंने श्राह्म नहीं किया, वरज् यह कार्य करनेसे उन्हें वार वार मना किया। परन्तु प्रतापने उनको एक भी न सुनी। उन्होंने स्वाधीन भावसे राज्य करनेका संकल्प किया।

सस्मवतः (५६६ ई०में प्रतापने अपनेको स्वाधीन राजा कह कर घोषणा कर दी। धूमघाटमें वे महासमारोहसे सिहासन पर वैठे। इस उपलक्षमें बङ्गालके प्रायः सभी राजे महाराजे उपस्थित हुए और प्रतापके कार्यमें विशेष सहानुभूति प्रकट की थी।

प्रताप राज्याभिषेकके दिन कल्पतरु हुए थे अर्थात् सर्वोको मुंह मांगा दान मिला था । प्रतापको महिषो । प्तापके साथ राजासन पर वैठ कर अभिविक्त हुई थीं, उस दिन प्रताप और उनकी स्त्रीने मुक्तहस्तसे दान किया था। हाथी, घोड़े, रथ, गी, भैंस, जमीन जिसने जो वस्तु मांगी, उसे वही मिली । यह देख कर एक ब्राह्मणने उनकी दानशक्तिकी परीक्षा करनेके लिये एक कौशळ रचा । ब्राह्मणने प्रतापसे कहा, "महाराज! में महिषीके लिये पार्थना करता हूं।" ब्राह्मणके मुखसे यह निदारुण वात सुन कर सभाके सभी मनुष्य आग वत्रले हो उठे । वे ब्राह्मणको सभासे मार भगानेका उद्योग करने छगे। किन्तु प्रतापने सर्वोको रोक दिया। उन्होंने महिपोसे ब्राह्मणके साथ जाने कहा और ब्राह्मण-की सेवामें रोप जीवन वितानेका अनुरोध किया। उन्होंने सभास्थ व्यक्तियोंको सम्बोधन करके कहा "मैंने प्रतिज्ञा को है, कि मुकसे आज जो चाहेगा, उसे वही दान कर्रुंगा। अभी मैं अपना अर्द्धाङ्क दान करके सत्यका पालन कर्र्जगा।" प्रतापका दृढ़ता देव कर सभी चमत्हत हो गये । प्रताप-महिषी प्रतापकी अनुरूपा थीं । वे ब्राह्मणके पास जा खड़ी हुईं और हाथ जोड़ कर ब्राह्मणके आदेशकी अपेक्षा करने छगीं। ब्राह्मण भी यह विस्मयकर व्यापार देख कर अवाक् हो गये। अव उन्होंने कहा, "महाराजकी दानशक्ति जाननेके लिये मैंने ऐसी असङ्गत प्रार्थना की है । महिषो मेरी कन्या स्वरूप है, में पुनः महाराजको दान करता हूं। जब आप राजा हैं, तब शास्त्रानुसार मेरा दान छेनेको आप चाध्य हैं।" प्रतापने पहले तो इसे स्वीकार नहीं किया, पर पीछे शास्त्रके व्यवस्थानुसार महिपीकी तौलके वरावर अर्थ दे कर ब्राह्मण देवताको विदा किया और महिबीको पुनश्रेहण किया। यहां यह भी उल्लेख कर देना उचित है, कि महिषीके वड़े लड़के-को उमर उस समय १२ वर्षकी थो। कन्या विन्दूमती-

की वयस भी ८ वर्ष और शेष दी पुत्रोंकी उमर ४१५ वर्षसे कमी न थी।

किसी समय दिल्लीसे एक भार कि प्रतापसे कुछ पानेकी आशासे आये। उस समय प्रताप राजधानीमें नहों थे। आखेरकी वाहर गये हुए थे, भार किने यहीं जाकर उनकी मुलाकात की। किने थाना अभिप्राय प्रकट करने पर राजाने उन्हें राजसभामें आने कहा। इस पर किने गिड़गिड़ा कर कहा, "महाराज! मुक्ते आये बहुत दिन हो गये हैं, सौभाग्यवश आपके दर्शन हो गये। फिर न मालूम कव दर्शन होंगे। इस कारण आपकी जो इच्छा हो, अभी देनेकी हुपा करें।" प्रतापने उसी समय उन्हें एक घोड़ा और सहस्र मुद्रा पारितोषिकमें दीं। भारने प्रतापकी दानशीलता देख कर कहा था, "मैं भारतके कोने कीने घुमा हूं, पर महाराज जैसे दानशील राजाको कहीं भी न देखा।"

प्रतापकी दानशीलताने प्रतापको सर्वजनप्रिय वना दिया था। वसन्तराय मितव्ययी थे। दुर्छोका दमन करने-में उनका विशेष ध्यान था। इसी कारण अशेष गुण रहते हुए भी वे प्रतापके समान लोकप्रिय न हुए। प्रताप-को उदारता भी असाधारण थी।

प्रतापने जिस समय खाधीनताका अवलम्यन किया, उस समय उनके गुरु श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार जीवित नहीं थे। इसके कुछ पहले उनकी मृत्यु हो चुकी थो। प्रतापने तर्कालङ्कारके भाई चएडीवरको पौरोहित्य पद पर वरण किया। तर्कालङ्कार यदि जीवित रहते, तो सम्भव था, ि वे प्रतापकी मतिको पलट सकते थे। पर 'नियतिः केन वाध्यते।'

प्रतापने खाधीनता लाभ करके अपने नाम पर सिका चलाया। अव हुगलीके फीजदार और मुगलगासनकता दोनों ही प्रतापकी विभूतिसे जल उठे और उन्हें दमन करनेके लिये दलबलके साथ आगे वह । उधर प्रताप भी निश्चेष्ट न थे। वे मुगलसेनापितका आगमन सुन कर सम्मुख युद्ध करनेके लिये वाहर तो न निकले, पर अनिय-मित युद्धका आयोजन करने लगे। मुगलसेनाके गङ्गा पार करने पर प्रतापकी सेनाने उनकी रसद लूट ली और उनके आने जानेका रास्ता चारों ओरसे वंद कर दिया। तंथापि मुगलसेनापति अप्रसर होते ही गये। आधुनिक वसीतीरहाट नामक स्थानके निकट इच्छामतिके किनारे प्रतापकी सेनाने मु ालसेनाको रोका। संप्रामपुर प्राममें दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। मुगलसेना परास्त हुई। जो इच्छामती पार कर न सके, वे वड़ी मुश्किलसे प्राण ले कर भागे थे। इस वार मुगलोंकी वहुत सी सेना विनष्ट हुई थो। हुगलोंके फीजदार और मुगलसेनापति भी प्राण ले कर भागे थे। यह घटना १५६६ ई०में घटो थी।

इस घटनाके वाद मुगलोंको प्रतापादित्य पर चढ़ाई-करनेका मौका न मिला। इस कारण उड़ीसाके पठानों ने पुतः विद्रोह खड़ा कर दिया। उस विद्रोहके दमन-में मुगलोंको १६०२ ई० तक उलके रहना पड़ा था। इस कारण प्रतापको अपनो शक्ति वढ़ानेका अच्छा अवसर मिल गया।

प्रतापने खाधीन हो कर भी अधिकारस्थ मुसलमानोंके , प्रति कभी अत्याचार नहीं किया । चरन मुसलमानोंकी । उपासनाके लिये आनो राजधानी धूमघाटमें 'टेड्रा मस-जिद' नामकी एक सुन्दर मसजिद अपने खर्चसे वनता दी । थो । इसका कुछ अंग्रा आज भी विद्यमान है । सुनते हैं, कि वहुतसे पठान प्रतापसे परास्त हो कर उनके यहां नौकरी करने लगे थे । प्रतापने पुर्तगोज धर्मधाजकोंको अपने अधिकारमें गिर्जा वनानेकी अनुमति दी थो । बहुत-से पुर्तगोज उनका सैनिककार्य करते थे जिनकी उपा-सनाके लिये प्रतापने अपने खर्चसे गिर्जा वनवा दिया । था । आप कहर हिन्दू होने पर भी किसीके धममें आक्षेप नहों करते थे ।

पहले प्रताप वैष्णव थे, पोछे शिलामयोका अनुप्रह लाम कर शाक हो गये थे। किन्तु जब तक तर्कालङ्गार जीवित रहे, तब तक उनके शरीरमें कोई दोप घुसने न पाया।

पुत्तैगीत-छेखक डु जारिकने उल्लेख किया है, कि १६०२ ई०के शेष भागमें पुर्त्तगीज लोग चाँद खी-पतिका आश्रय पानेके लिये अपने दलपति कार्वाल-होके अधीन यशोहर गये। प्रतापने उन्हें आश्रय तो दिया, पर आराकन-राजको प्रसन्न करनेके लिये दलपति कार्वालहो-की हत्या कर डालो। किर किसी लेखकका कहना है, कि प्रतापने उसकी हत्या नहीं की थी। चारघाट नामक स्थानमें हिरिस् ड़ी नामका एक विनया रहता था। उसके सात वाणिज्य जहाज थे। पुर्तगीज-जलदस्युने हिरिको वहुत तंग कर डाला था, उसके जहाज लूट लिये थे। इस पर वहांके लोग वड़े विगड़े, फलतः जव कार्वालहों आदि पुर्तगीजगण यशोहर गये, तव वदला चुकानेके लिये एक उन्मत्त जनताने कार्वालहोंको मार डाला। उस समय प्रताप धूमघाटमें थे। दो पहर रातको उन्हें इस हत्याको खवर लगी थी।

इस समय मुगलींका ध्यान पुनः वङ्गालकी और आकृष्ट हुआ। परन्तु सम्राट् अकवर युवराज सलीमकी अवाध्यता और तृतीय पुत दानियालकी मृत्युसे वड़े दुःखित थे। तथापि उन्होंने मानसिंहको वङ्गाल भेजनेकी कल्पना की। किन्तु यह कार्यमें परिणत होनेके पहले ही १६०५ ई०के अक्तूवर मासमें उनका देहान्त हो गया। अव युवराज सलीम जहांगोर नाम धारण कर राजसिंहा-सन पर वैठे। वङ्गदेशको अपने शासनमें लानेके लिये उन्होंने राजा मानसिंहको सेजा। मानसिंहके साथ वाईस उमराव अपनी अपनी सेना ले कर चले। प्रायः डेड़ लाख मुगल और राजपूत सेना वङ्गाधिप प्रतापादित्यकी वलगरीक्षाके लिये मेजी गईं। १६०६ ई०के प्रथम भागमें याता करके मानसिंह काशी पहुंचे। यहां उन्हें एक वङ्गाली ब्रह्मचारीसे कुछ सहायता मिल गई जिससे उन्हें वहुत कुछ रहस्यों-का पता लग गया।

इधर प्रताप भी निश्चिन्त नहीं वैठे थे। उन्होंने पहले-की तरह केवल यशोहरमें ही अपना डेरा नहीं जमाया, वरन मानिसहकी गति रोकनेके लिये चारों ओर सेना भेज दो। दक्षिण और पूर्वसे उन पर आक्रमण कोई न कर न सके, इसके लिये उन्होंने श्रीपुरके अधिपति केदार-रायको सतर्क कर दिया था। गङ्गातीरवत्तीं और मधिकारस्थ अन्यान्य स्थानोंके दुगं उन्होंने पहलेसे ही सिज्जत कर रखा था। मानिसह वर्द्ध मान तक पहुंच गये, यह संवाद पा कर वे नीसैन्य, अधिकांश गीलन्दाज सैन्य और अपरसैन्य ले कर भागीरथीके किनारे जगहल नामक स्थानमें उनको वाट जोहने लगे। भागीरथी तीर-के उभय पार्श्वस्थ श्रामोंमे जितनी नावें थी, उन्हें वे एक जगह संग्रह कर रखा और ग्रामवासियोंको स्थानान्त-रित करके सम्राट्-सेनापतिके आहारीय संग्रहका पथ बंद कर दिया।

मानसिंहके वद्ध मान पहुंचने पर निद्या-राजवंशके पूर्वपुष्य भवानन्द मजुमदार उनसे मिलने गये। उस समय भयानन्द हुगलीके फौजदारके अधोन कानूनगोका काम करते थे। भवानन्दने मानसिंहसे हाथ जोड़ कर कहा, "प्रभो! आपके आगमनसे इस देशके सभी भूष्य-धिकारो भाग गये हैं। हम कुछ प्राम्याधिकारो आपके दर्शनलामकी आशासे यहां पहुंचे हैं। यदि कोई काम करनेका हमें आदेश दें, तो अन्तःकरणसे उसका प्रतिपालन करनेको प्रस्तुत हें।" मानसिंहको उस समय भागीरथी पार करना था। इस कारण उन्होंने भवानन्दको नौका संप्रहका भार दिया। भवानन्द भो सम्राद्सेनापतिका अनुप्रहमाजन होनेकी आशासे नौका संप्रह करने लगे और थोड़े ही दिनों के मध्य गाड़ी पर लाद कर वहुत-सी नार्वे इकड़ी कर दो। अव मानसिंह भागीरथी पार करनेका आयोजन करने लगे।

इस समय मानिसंह के साथ करीव तीन छाल आदमी थे। राजमहल के पाकु इ-राज बंश के पूर्व पुरुष ने दो तीन हजार धनुर्वाणधारी अनियमित सेना छे कर मानिसंह का साथ दिया। मानिसंह एक दिनमें गङ्गा पार होना चाहते थे। चैत मास का दिन था। यदि गङ्गा पार करते समय प्रतापकी नौसेना उन्हें वाधा देनेको अप्रसर हो जाय, तो वे भारी विपद् में पड़ नायंगे, इस आशङ्कासे मानिसंह वहुत जल्द गङ्गा पार होनेका आयो-जन करने लगे। रातको वे सबके सब वर्द्ध मानसे रवाना हुए और चौदह को सका रास्ता तै कर वहुत सबेरे भागी-रथी के किनारे पहुंचे। दिन भरमें सारी सेना गङ्गा पार हो गई और चायड़ा ग्रामके निकट उन्होंने छावनो डाली।

मानसिंह ससैन्य गङ्गा पार कर गये हैं, यह सुन कर प्रताप कुछ काल तक हतज्ञान ही पड़े। उन्होंने समभा था, कि मुगळसेनापित आधुनिक कलकत्तेके निकट वा जियेणीके निस्न भागरथी पार करेंगे, परन्तु सो नहीं हुआ। वे भयानन्दकी सहायतासे नयद्वीपके निकट भागी-

रथा पार कर चुके थे। अब प्रताप किंक तैयविमूढ़ हो गये । तथापि उन्हों ने निराशको अपने प्रतमें घुसने न दिया और धैर्यधारण कर उनका मुकावला करनेको दिल-कुछ तैयार हो गये। उन्होंने मानसिंह पर अतर्भित अवस्थामें आक्रमण करना ही युक्तियुक्त समका। किन्तु प्रतिकृल दैववशसे उनकी एक भी युक्ति काममें न आई। जिस दिन प्रताप ससैन्य अत्रसर होते, उसके एक दिन पहलेसे आकाश घन बटासे घिर आया। जोरसे तूफान वहने लगा, उसके साथ साथ मूसलघार वृष्टि और ओले भी पड़ने लगे। तमाम जल ही जल दिखाई देने लगा। मृष्टिसे युद्धोपकरण भरे वेकाम हो गये, तथा घोड़े हाथी रसद ढोनेवाले जन्तु आश्रयस्थान लोजने लगे। एक सप्ताह नक वृष्टि होती रही थी। इससे लोगोंको कितना कप्ट हुआ, चह वर्णनातीत है। सेनाके मध्य विश्वङ्खला उपस्थित और आहारीय सामग्रीका अभाव देख प्रतापको अप्रसर होनेका साहस न हुआ। सेनापतियीं-की सलाह ले कर यशोहर लौटना ही उन्होंने अच्छा सममा । मानित हको वाघा देनेकी व्यवस्था करके प्रताप ससैन्य यशोहर लौट गये।।

इस समय कालनोके दत्त प्रतापके अधीन कर-संप्राहक थे। अनियमित सैन्यसंग्रह करना भी उनका कार्य था। उन्हें आवश्यकीय संवादादि संग्रह करने और शबुशिविरमें रसदका अभाव करनेका भार दे कर तथा यसुना और भागोरथीके मध्यवत्तीं स्थानमें मानसिंह-को वाधा देनेके लिये उपयुक्त सेनादल छोड़ प्रताप यसोहर लीटे। किन्तु यदि वे जानते होते, कि उस समय शबुशिविरमें कैती शोचनोय दशा गुजर रही है, तो शायद वे एक वार शबुकी वलपरीक्षा किये विना कभी भी न लीटते।

उस समय मुगलसेनामें विपम विश्वक्षला हो गई थी, मानसिंह स्वयं चापड़ाप्राममें अपनी वीस हजार राजपूत सेना ले कर छावनी डाले हुए थे। किन्तु अपरा पर सेनाकी दुर्वशाका पारावार न था। जो त्कानके समय नदी पार कर रहे थे वे जलमें डूव मरे। जो तंड्में रहते थे, उनका तंत्रू उड़ कर कहां चला गया, पता नहीं। यज्ञपात और वक्षपातसे सेकड़ों मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त हुंप। कमान और गाड़ी विलक्क उत्तरवाद हो गई। गाथी घोड़े आदि जो सब जन्तु नड़ीके चरमें थे वे वह गये और वहुतसे डूब मरे। कड़नेका तात्पर्य यह कि मुगलसेना दुईशाकी चरमसोमा तक पहुंच गई।

मानसिंह गाडी पर जो सब नावें छाद कर लाये थे, उसी पर वैठ कर उन्होंने प्राणरक्षा जी। सेनाकी दुर-वस्था देख कर चे वड़े कातर हुए। क्या करना चाहिये, भविष्यमें क्या होगा, इसी ऊहापोहमें वे पड़े रहे। उनके हिन्दूयोद्धा और सेनापति भयभीत हो पड़े। वे लोग प्रतापादित्यको भवानीका वर पुत्र समऋते थे। ये सब दैवविड्म्बना प्रतापके प्रति देवीकी प्रसन्नताका परिचय है, यही उन छोगींकी धारणा थी। मानसिंह सेनाका मनोभाव समन्त कर चिन्तित और विषण्ण हो पड़े। इसी समय भवानन्द मजूमदारने नाव पर रसद् ला कर मानसिंहको उपहारमें दी। मान-सिंह भवानन्दकी ऐकान्तिक श्रद्धा देख कर वहे प्रसन्न हुए। भवानन्दने इस समय विप्रह्न्यतिष्टाके लिये प्रसुर भन्न संप्रह किया था जिसे उन्होंने मुगळसेनाको दान कर दिया। भवानन्दसे यदि यह सहायता न मिळती, तो मुगलसेनाकी दुर्गतिकी सोमा न रहती। मानसिंह अभी विशेव उत्साहित हुए और यशोहर जानेका परामर्श करने लगे।

पहले मुगलसेनापित विना आगे पीछे तेखे जिस प्रकार
यशोहर जानेमें विपदस्थ हुए थे, उस प्रकार मानसिह
इस वार न हुए। वे प्रतापपक्षीय लोगोंके हस्तगत करनेकी चेष्टा करने लगे। कसवाके किलेदार भवेश्वररायने
मानसिहकी बश्यता खीकार कर ली और अपनी शिक
भर उन्हें सहायता पहुंचानेका वचन दिया। इसके वाद
सेना और तोपश्रेणीके जाने की सुविधाके लिये मानसिह
पथ पस्तुत करने लगे। उस पथका नाम गीड़बङ्गका
जंगल रखा गया। आज भी उस पथका कुछ कुछ अंश
देखनेमें आता है। मानसिहने सेनाके लिये आवश्यकीय
आहारीय और भारवाही जन्तु संग्रह करके शुभदिनमें
यशोहरकी याता कर दी।

प्रतापने जब सुना, कि कसवा उनके हाथसे जाता रहा और भवेश्वर मानसिंहकी सहायता कर रहे हैं, तब बे र Vol. XIV. 128 मर्माहत हो पड़े। परन्तु कालिनोके दत्तकी प्रभुभिक देख कर वे पुनः उत्साहित हुए। पीछे उन्होंने सभी किले-द्रारोंको पवित जाह्रवीका जल छुआ कर देवी शिलामयी-के सामने उनसे प्रतिका कराई, कि कोई भी देह-प्राण रहते शतुके हाथ किला समर्पण न करे। प्रतापने यशोहर-रक्षाका भार अपने भांजे गुप्तजयके हाथ सौंपा। गुप्तजय हुत्वित्त, साहसी और विश्वासमाजन थे। इतमें सव गुण रहनेके कारण वे प्रतापके एकमात प्रिय हो गये थे। उनका शरीर सुस्थ नहीं था, इस कारण प्रतापने उसे समराङ्गनमें न भेज कर पुरोके रक्षा-कार्यमें नियुक्त किया। उनका विवाह नहीं हुआ था। प्रतिपालक मामाकी परा-जयके वाद वे भवानीविषयक सङ्गीतकी रचना कर अपना समय वितात थे।

प्रतापने यशोहरके निकटवत्तों प्रामवासियोंको निरा-तङ्क रखनेके लिये उन्हें दुर्गसुरक्षित यशोहर भेज दिया था। यशोहरमें काफो रसद भी संप्रह की गई। पुरके बाहर आक्रमणयोग्य स्थान सुरक्षित किया गया। जमीनके अन्दर बाहद गाड़ कर रखी गई। दुर्ग और नदी तीरस्थ स्थानोंमें तोपश्रेणी सिज्जत थो और कतिपय रण-तरी रखामती तथा यसुनाके वियोगस्थान पर शत्नुको वाधा देनेके लिये उटी दुई थी। इस प्रकार सज धज कर प्रताप मानसिंहके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

मुगळवाहिनी धीरे घीरे यशोहरकी ओर वढ़ने छगी।
प्रतापने देखा, कि मार्नासह जिस नियमसे अप्रसर होते
आ रहे हैं, उससे उन पर अतर्कितभावमें आक्रमण करना
कठिन है, अगर आक्रमण किया भो जाय, तो फळाफळको
सम्भावना नहीं। इस कारण उन्होंने ऐसी हाळतमें मानसिंह पर आक्रमण नहीं किया। यमुना पार करते समय
उन्हें वाधा देना हो उन्होंने उचित समका। अजगर सर्वकी
तरह मुगळसेना अप्रसर हो यशोहरके दूसरे किनारे पहुंच
गई। उम समय वैशासका महीना शेष हो चळा था।

१६:६ई०के वैशाखमासके शेवमें मानसिंह यशोहर वा ईश्वरीपुरके पश्चिम पहुंचे। यहां अपनी छावनी डाल कर उन्होंने शिष्टाचारानुसार प्रतावके निकट दूत मेजा। दूत वेड़ी वा श्रङ्खल और तलवार ले कर गया था इस प्रकार जानेका ताल्पर्य यह, कि वश्यता स्वीकार त्रतके वंदी होचें अथवा तलवार है कर युद्ध करें।
प्रताप मार्नासहका पत पढ़ कर वड़े कुद्ध हुए और
अपने भाट केशवभट्टको समुचित उत्तर देनेके लिये
इशारा किया। केशवभट्टने दूतको लक्ष्य करके कहा,
"स्रतियगण तलवारके वलसे ही उत्यरक्षा करते हैं जो
स्रतिय मृत्युके भयसे शतुके आगे शिर कुकाता है, वह इह
कालमें नरकमोग करता है। मुसल गर्नोके साथ सम्बन्ध
स्थापन करके जड़बुद्धिवशतः मार्नासह अपना जातीय
कर्त्तेच्य भूल गये हैं। जो कुछ हो, इस समय उनके साथ
युद्ध करना प्रतापका पकान्त कर्त्तंच्य है।" इतना कह
कर भट्टने दूतके हाथसे तलवार ले प्रतापको दे दी। दूत
वहांसे लीटे और मार्नासहंसे कुल वार्ते उसने कह
सुनाईं। अव मार्नासह यशोहर पर आक्रमण करनेके
लिये बिलकुल तैयार हो गये।

ईश्वरीपुर आक्रमण करनेमें कालि दी पार करना आवश्यक था। जहां पर मानसिंहकी सेना छावनी डाली हुई थी, वहांसे उक्त नदो पार करनेकी उन्होंने सुविधा न देखीं। कारण, उसके दूसरे किनारे प्रतापको तोपश्रेणी सिज्जित थी और पास ही उनकी रणतरी भी चकर लगा रही थी। मानसिंह गुप्तचरोंके मुखसे यह संचाद पहले सुन चुके थे । इसी कारण उन्होंने उस स्थान पर कालिन्दी पार करना अच्छा नहीं समभा। व्ांसे पंच कोस दक्षिण हट कर एक अरक्षित स्थानमें नदी पार करनेंकी उनकी इच्छा थी । किन्तु कार्यवशतः मानसिंह प्रतापको घोखा देनेके लिये ऐसा दिखलाने लगे, मानो वे उसी स्थान पर नदी पार करेंगे। भागीरथी पार करते समय नाव नहीं रहनेके कारण उन्हें वड़ी मुसीवतें उठानी पड़ी थीं। इस कारण वे इस वार वहुत-सी नावें गाड़ी पर छाद कर अपने साथ लाये थे। प्रतापकी इसकी कुछ भी खवर न लगी, कि मुगलसेना किस स्थान पर नदी पार करेगी। सुगर्लोने प्रतापको रणतरीके ऊपर गोला वरसाना आरम्म कर दिया और प्रतापके दुर्गका छक्ष्य करके वे तोपँ दागने छगे। प्रताप भो इस गोलावर्षणका जवाव देने लगे। उनके गोला-वर्षणके सामने वादशाही गोलन्दाज ठहर न सके। एक पहर तक गोलावर्षण करके उनकी कमान भूमिसात्

हो गई। घीरै घीरै रात हो चली, तिस पर भी मुगलीने गोला वरसाना छोड़ा नहीं। इधर उनकी सेना अंधेरी रातमें दक्षिणकी ओर हट कर अभीए स्थान पर पहुंची और वड़ी तेजीसे नदी पार करने लगी। वहां पर प्रतापकी जो मुद्दो भर सेना थी, वह सहजमें परास्त हुई। अन्यान्य सेनाओंके घटनास्थल पर पहुंचनेके पहले ही अधिकांश मुगलसेना नदी पार कर खुकी थी। इसकी खबर प्रतापको वड़ी देरीसे लगो। सबेरे जब वे उस स्थान पर पहुंचे, तव मुगलसेनाको नदीके इस पार देख हाथ मलते रह गये।

अब प्रतापको चैन कहा, वे फौरन शबु पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। प्रधान सेनापति सूर्यः कान्त गुहको मुगलसेनाके मध्य भाग पर, सेनापति प्रतापसिंहको वाम प्रार्श्व पर और गोलन्दाज सेनानायक कड़ाको विपक्षव्यूहके पार्खमाग पर आक्रमण कर देनेको हुकुम मिला। सामन्त मदनमलको दाली सेना हे कर गोलन्दाज सेनाके पार्श्वभागकी रक्षा करनेको कहा गया। सुखा नामक क्रूटयुद्धविशास्त् सेनापति और खयं प्रतापा-दित्य पार्वतोयसेना ले कर युद्धकी गतिका पर्यवेक्षण करने छगे। मानसिंह अद्ध<sup>्</sup>चन्द्राकारकृति व्यूहरचना करके युद्धके लिये प्रस्तुत थे। प्रतापके आक्रमणका क्रीशर देख वे विस्मित हो गये। तथापि उन्होंने अति शीव्र सैन्यचालना करके बङ्गसेनाकी गति रोकदी। किन्तु वङ्गसेनाका प्रथम आक्रयणवेग मुगलसेना न सह सकी। पहले हो जो दश भुगल उमराव अवसर हुए थे, वे गोलन्दाज सेनाका तथा सूर्यकान्तगुहका आक्रमण निवारण करनेमें समर्थ न हुए। दोनों आक्रमण-के वेगसे ये जर्जर हो गये । दशो उमराव मारे गये । <sup>अव</sup> सूर्यकान्त प्रतापसिंह और हृदाने मिल कर मुगलसेनाके वामभाग पर आक्रमण कर दिया। सेनाको विपद्मी देख कर खर्य मानसिंह वङ्गसेनाको गति रोकनेके छिये आगे वढ़ें । फिन्तु उनके पहुंचनेके पहले दश हजार मुगलसेना निहत हो चुकी थी। इधर रूढ़ाके गोलन्दाजसेनाके आक्रमणसे अनेक मुगळसेना धराशायी हो रहेथे। विपद्का भयङ्कर रूप देख कर मानसिंहने सूर्यकान्तगुहकी गति रोकनेके लिये बीस हजार सेना भेजी। अर तुमुंड संप्राम वडने लगा। दोनों पक्षकी सेना हताहर हुई। फिन्तु बङ्गसेनाकी कुछ अधिक स्रति हुई। प्रायः दग हजार सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। इतना होने पर भी युद्ध चलता ही रहा। प्राणपणसे दोनों दलके योद्धा लड़ते रहे। सूर्यकान्तगुहने असोम साहससे राजपूत-सेना-नायक गाजी उपाधिकारी उमरावकी आक्रमण करके मार डाला । सेनानायककी मृत्यु पर राजपूत-चोर दूनी उत्साहसे छड़ने छगे। उनके विकामसे वङ्गसेना दंग रह गई। सुयोग समभ कर मानसिंहने वीस हजार तुर्की-सेना भेजी और प्रतापादित्यके अधीनस्थ सेना पर चढ़ाई कर दी। वे सब सेना वन्दूकधारी थी। प्रायः पांच हजार वङ्गसेना उनकी गोलीके शिकार वन गई। युद्धमें वलक्षय देख प्रतापिसंह स्थिर न रह सके। वे पार्वतीय सेनाको छे कर वज्रपानकी तरह मानसिंहकी अधीनस्थ सेना पर टूट पड़े। आममांक्षाशी यह पार्च-तीय सेना चर्म और असि है कर लड़ती थीं। वे कमी कभी पृथक् पृथक् दलमें विभक्त हो कर, कभी विच्छिन्न भावमें, कभी एक साथ मिल कर शतु पर आक्रप्रण मह्युद्धमें वन्दूकधारी उन्हें पीछे करने लगी । हुदा न सके। उनमेंसे अनेक पर्वतीय सेनाके हाथ प्राण गॅवाये। इसके वाद् प्रदन्मलुके अधीनस्थ ढाली योद्धा-ने मानसिंहके अधीनस्थ योद्धा पर धावा वोल दिया। जिस हाथी पर सवार हो मानसिंह छड़ रहे थे, ढाली-सेनाने उसे मार डाला । मानसिंह तुरत जमीन पर ऋद पड़े और अइ्भुत शिक्षावलसे आक्रमणकारियोंको खएड खएड कर डाला । मानसिंहको विपर्मे देख महमृद् आदि मुसलमान सेनापतिगण उनकी सहायता-में आगे वहूं । इस स्थान पर घमसान युद्ध चलने लगा । किन्तु मानसि हके गहरी चीट खाने पर मुगलसेना लड़ाई छोड़ पीछेको हट गई। पांच कोस तक पीछे हट कर उन्होंने छावनी ढाळी। श्रान्त हान्त वङ्गसेना उन्हें और अधिक दूर तक खदेर न सकी । यह युद्ध सारा दिन चल्ता रहा था। मुगलसेनाकी महतो क्षति हुई थी। उनके पायः चतुर्थां श हताहत और अनेक सेना-पति निहत हुद थे।

प्रतापादित्यके साथ प्रथम संघर्षमें मानसिंह बङ्गा-

घिपका अदुभुत समरकौंशल देख विस्मित हो गये । आज तक वे जितने शबुओंके साथ छड़े थे, ऐसे शिक्षित और समरकुगुल सेनापति उन्होने कहीं नहीं देखा था। काबुल, दक्षिणापथ आदि देशों पर उन्हों ने अधिकार किया था सहो, पर प्रतापक्षी सेनाके सदृश शिक्षित सेनासे उन्हें कमी मुठमेड़ नहीं हुई थी। जिन सब मुगल सेनापतियों-ने शकवरशाहके अधीन भारतके नाना स्थानों में युद्ध किया था, वे भो वङ्गालीका रणकौशल देख आश्चर्यान्वित हुए। मानसिंह पहलेसे ही प्रतापक्षो चाहते थे । अभी उनके वीरत्व पर और भी मुख्य हो गये। सेनाका क्षय देख कर उन्हों ने समम्मा था, कि अपरिमित सेनाका क्षय किये विना वे प्रतापको कात्र्में न कर सकेंगे। इधर वर्षाकाळ-का भी समय आ पहुंचा। इन सब कारणों से मानसि ह प्रतापके साथ संधि करनेको इच्छुक हुए। उनकी इच्छा थो, कि वे प्रतापको अपने साथ दिल्ली छे जांयगे और वहां सम्राट् जहांगीरसे उनका मेळ करा देंगे। यह सम्याद ले कर उन्तींने प्रतापके निकट एक विश्वासी अनु-चर मेजा। किंतु प्रतापने मानसिंहको बात पर विश्वास नहीं किया। वे समकते थे, कि सम्राट्से अव उन्हें मित्रता होनेकी आशा नहीं, क्यों कि उन्हों ने राजीपाधि थारण को है, अपने नाम पर सिका चलाया है, चचाकी हत्या की है, अन्यान्य जमोंदारों का राज्य छीन लिया है। ऐसी हाउतमें सम्राट् उनसे मिलता करेंगे, यह कदापि सम्मय नहीं । विशेषतः भगवती भवानीकी ऋषासे वे जयी हो सकेंगे, यह आशा उनके हृदयसे अब भी दूर नहीं हुई थी। उपस्थित युद्धमें उनका वलक्षय होने पर भी मुगलों की विशेष क्षति हुई थी । इन सव कारणों से उनके मन्त्री आदिने मानसि हके मेजे हुए प्रस्तावको खीकार करनेकी सलाह न दी। प्रतापके आत्मीय, खजन, गुरु, पुरोहित सवो ने संधिका पक्ष समर्थन किन्तु प्रतापने किसीकी वात न सुनी केवल मंतीकी ही वात पर वे डरे रहे।

अनन्तर मानसिंहने यशोहरको घेरनेकी चेटा को। जिन सव उपायोंका अवलम्बन करके प्रताप उनके शिविर-में रसद पहुंचने न देते थे, उन्हीं सव उपायोंका अवलम्बन करके वे प्रतापकी राजधानीमें, जिससे खाद्य-सामग्री पहुं-

चने न पावे, उसकी चेष्टा करने छगे। इस समय यशो-हरमें बहुतसे लोगोंका वास था। पार्श्ववत्तीं अनेक स्थानोंके छोग निरातङ्क होनेकी आशासे यशोहर जा कर रहने लगे। प्रताप भी अनेक ग्रामींको जनशून्य करके वहांके वासियोंको यशोहर लाये थे। इन सब लोगों को खाय सामग्रीका वहुत कप्ट होने छगा । सेनाके छिये भी वहुत कप रसद वच गई थी। जिस जिस स्थानसे खाद्य-सामग्री संगृहीत होती थी, उन सव स्थानो के छोगो ने मुगलोंका पक्ष अवलम्बन किया। एकमात कालनीके दत्त प्रतापके पक्षमें रह गये। वे जहां तक हो सका, खाद्यादि संप्रह करके यशोहर भेजने छगे। किंतु इतनी सामग्रीसे क्या हो सकता था? थोडे ही दिनों के मध्य यशोहरमें अजका विलक्षल अभाव हो गया । प्रतापके लाख चेष्टा करने पर भो अन्न कष्ट दूर नहीं हुआ। उन्होंने एक दिन फिर-से मुगलसेना पर आक्रमण कर दिया और विजय प्राप्त की। परंतु इस पर भी मुगळवाहिनीने यशोहरका परि-त्याग नहीं किया। वे अपने सुरक्षित शिविरमें ही रहने लगीं। प्रतापने मानसिंहको युद्धमें परास्त तो कर दिया, पर वे उन्हें यशोहरसे न भगा सके। रसद् घट जानेसे प्रतापकी सेना वहुत कष्ट पाने लगी।

एक दिन युद्धावमानके वाद प्रताप रातको वन्धु और अमात्योंके साथ वैठ कर पासे खेळ रहे थे। इसी समय एक भिलारिनी वृद्धे औरतने उनके पास आ कर अपना दुखड़ा रोया, वह एक तो त्रूढ़ी थो, दूसरे अन्नका कष्ट, इस कारण राजनीतिका अर्थ उसे कहां तक मालूम हो सकता था। बार बार अन्न भिक्षा करके उसने प्रताप-को तंग कर डाला। अभी प्रतापका स्वभाव पहलेके जैसा रहा नहीं, उन्होंने कठोर होना सोख लिया था । विशे-वतः ऐसे अन्नकष्टके समय वे कितनेका अभिलाष पूर्ण कर सकते ? इस समय वे नशेमें चूर रहते थे। वृद्धाकी कातरोक्तिसे उन्हें दया तो क्या आवेगी, क्रोधका उदय हो आया। उन्हों ने उसे वध्यभूमिमें हे जा कर उसके दोनों स्तन काट डालनेका हुकुम दिया । घातकने फौरन हुकुम तामिल किया। शङ्कर प्रभृति मन्त्रियों ने भी राजाको इस काजसे नहीं रोका। राजाज्ञाके विरुद्ध किसीने एक बात भी न कही।

विजातीय क्रोधके वशवत्तीं हो कर प्रताप इस जम्म कार्यका आदेश दे अन्तःपुर चले गये। महिपोके निकट जा कर उन्हों ने मानसिक शान्तिलामकी चेष्टा की। किन्तु जो कार्य करनेका उन्हों ने आदेश दिया उससे उन्हें शान्तिलामकी सम्मावना कहां ? जीवनकी शान्ति अव फिर उन्हें मिलनेको नहीं।

प्रवाद है, कि प्रतापने उस रातको मानसिक क्लेश दूर करने की अशासी खूव शराव पी ली । नशेकी उत्तेजना-से वे सभी वात भूल गये, वेचैन हो पड़ें । महिपीके साथ क्रीड़ा कौतुक करके रात विताने को चेष्टा करने छगे। इसी समय एक दिव्यवस्त्र और दिव्यालङ्कार पहनी सोलह वर्षकी दिव्याङ्गनाने उनके केलिगृहमें प्रवेश किया और भिक्षान्नके लिये पार्थना की। उसे भ्रष्टा स्त्री समक कर राजाने राजपुरीसे निकल जानेको कहा। जाते समय उस दिव्याङ्गाने भी कहा, "महाराज ! सत्यपाशसे मुक्त हो कर मैंने तुक्ते परित्याग किया । तमने मुक्ते 'जाओ' ऐसा कहा है, इस कारण तुम अव मेरा अनुग्रह-लाभ करने योग्य नहीं।" यह निश्चय है, कि मनुष्य जव तक ईश्वरदत्त शक्तिका अपव्यवहार न करेगा, तव तक ईश्वरकी उस पर कृपा वनो रहती है। क्षमताका अप-व्यवहार करनेसे ईश्वरके अनुप्रहरूभसे विश्वत होना पडता है। यही कारण है, कि भगवती भवानी उन्हें छोड देनेको वाध्य हुई' । प्रतापादित्यने जब तक कुमार्ग-में पांच नहीं उठाया तव तक सभी लोगों की उन पर सहानुभूति वनी रही। ज्यों ही वे जनसाधारण-के प्रति असदुन्यवहार करने लगे त्योंही वे अप्रिय हो उठे और दैवानुप्रह भी उनसे हट गया।

नगर भरमें वृद्धाका स्तनच्छेद-वृत्तान्त फैळ गया।
यह घटना सुन कर सवो के रोंगटे खड़े हो गये। प्रतापको जो दिलसे चाहते थे, वे भी जानी दुश्मम हो गये।
प्रताप पक्षके स्वजन, गुरु पुरोहित आदिने अभी प्रतापका
पतन अवश्यम्भावी समक्ता, सवोंका मन अत्यन्त विषण्ण
हो गया। प्रताप जनसाधारणकी सहानुभूति खो वैठे।
केवल सेनाकी ही उन पर पूवंकी-सी श्रद्धा वनी रहो।
इस घटनाका सम्याद मुगल-शिविर तक पहुंच गया।
मानसिंह आदिके आनन्दका पारावार न रहा। उन्होंने

विश्वासी चरको गुप्रनावमें यहोहर मेजा और नगर-वालियों को अपने दलनें मिला छेनेकी कोशिश की। इसी वीचमें एक और घटना घटी जिससे लोग और मी विचलित हो गये।

यशोहरेश्वरी जिलामची प्रतिना इतिमास्या थीं। हरान् रात नरमें ने पिल्निनात्या हो गई। सनी लोग कहते लगे, कि देवी प्रतापके प्रति विरक्त हो विमुखी हो गई हैं। सर्वसाधारणका नन इस घटनासे नितान्त विहल हो गया। उन्हों ने समन्द्रा, कि प्रताप देवी भवानीसे परित्यक हो गये, उन्हें अब युद्धमें जय पानेकी जरा भी आज्ञा न रही। सनो के मनमें इस प्रकारको एक धारणा वद्ममूल हो गई। इधर मानिस है आदि भी अवसर समन्द्र कर सनो को और भी विनीपिका दिखलाने लगे। धीरे धीरे यशोहर नासियों ने सम्राह्म साथ देना स्वीकार कर लिया और रातको नुपकेसे वे मुगल-सेनाको यशोहर लोड़ देगे, ऐसा अलोकार किया।

यशोहरके दुर्गरसक गुनजवको यह संवाद पहले मान्द्रम न हो सका। इस कारण वे उस मकार प्रस्तुत भी न थे। उन्होंने यह भूछ कर भी नहीं समन्त्र था, कि प्रतापके गुरु पुरोहित और बार्त्माय स्वजनगण मुगलोंका पस अवल्यन करके चुपकेसे गृह के हाथ नगर समर्पन करेंगे। किंतु हो पहर रातको जब राजपुत्रसेनाने मगरमें प्रदेश कर सिंहनाद् किया, तव उन्हें समन्दनेमें देर व छगी। उन्होंने देखा, कि नगर पर अधिकार कर अपरिनेय सुगळ सेना दुर्ग पर आक्रमण करने आ रहां हैं। अब वे सान-र्ध्यानुसार दुर्गस्क्षाको चेष्टा करने छो। उनका सेना अपने अपने स्थान पर डट गई और शतुके ऊपर अजल-थारले अन्तिवृष्टि करने छगी। इस प्रकार बहुत देर दक युद्ध होता रहा दुर्गरक्षो सेनाकी संख्या बहुत धोड़ी थी तो भी उन्होंने प्राणपणसे युद्ध किया। उन्हें पूर्ध आशा थी, कि प्रताप इस समय आ कर उनकी सहा यता करेंने, किंतु उस समय धताप वृमघाटमें ऐश कर रहेथे। वे समय पर गुदस्थङमें पहुंच न सके। दुर्गरही-सेना अपनी शक्ति भर युद्ध करके ह्यन्त हो ू

गई। बहुतसे ग्रहुके ग्रिकार वन गये। गुप्ततय दुर्ग-रहा असन्तव देव राजपरिवारस्य व्यक्तियों को तथा यथास्त्रमव आवश्यकीय ज्ञ्चादिको छे कर नाव पर चड़े और वृज्यादकी ओर चळ दिये। दुर्ग ग्रहुके हाथ छगा। सुगळपक्ष निवान्त उत्साहित हुआ। प्रतापने यह दायम सम्बाद पा कर भी बाह्यतः किसी प्रकारका विभादिचाइ पक्ट न किया।

वशोहरदुर्ग शबुके हाय छगा, शिछाप्रयां विमुखी हुई, उनके गुरु, पुरोहित, आत्नीयखजन बनायका परिस्याग कर शबुके लाय निछ गये। इतना होने पर भी प्रतापका साहल और उत्साह यहा नहीं। उन्होंने युंच करना हो पण किया। उनका सङ्ख्य और प्रतिका अटल रही। प्रतापने पक समय मार्नीसहको बन्द्र-युद्धमें आह्वान करके यह युद्ध येन करना चाहा था। परन्तु जयपुरराज इस समय नृद्ध हो गये थे, इस कारण प्रनापके प्रस्तावको लीकार नहीं किया। अन प्रताप अनकितमावसे मार्नीसह पर आक्रमण करनेका अवसर इड्ने छगे। किंतु मार्नीसहके शिविरमें प्रतापका गुप्त रहस्य माज्ञम हो जाया करता था. इस कारण मुगळसेना प्रतापकी वेष्टा वर्थ करनेके छिये हमेगा प्रस्तुन रहती थी। दीच वोचमें कएडयुद्ध चळने छगा।

पक्त दिन प्रवाप थोड़ीसे अध्वारोही सेना छे करअनित भावसे पक्त दछ नुगळसेना पर आक्रमण करते के
छिपे वाहर निर्मेश । प्रायद यह संबाद नुगळोंको पहले हो
माळून हो खुका था । नुगळसेनाके आक्रमण करने पर
उन्होंने देखा, कि बारों भोरसे नुगळसेना उन्हें चेरनेको
तैयारी कर रही हैं। अन उन्होंने छीट जाना ही अच्छा
समन्ता । किंतु मानसिंह आहिने था कर उनका रास्ता
रोक दिया । अनंतर जय अयवा प्रायकी आग्रा नहीं
है यह देख कर प्रताप मृत्युका आळित्तन करनेको तैयार
हो गये । वे थोड़ी-सी सेना छे कर वज्रपावकी तरह
मानसिंह पर हुट पड़े । किंतु थोड़ी देर तक युद्ध
करनेके वाद प्रताप सज्ञाद-सेनायिको प्रशीररकी सेनाका संहार कर मानसिंहके साथ भिड़ गये ।
मानसिंहकी उनर इस समय ६० वयंसे अधिक ही बुकी

Yoi. XIY. 129

थी। गत युद्धमें आहत हो कर उनका शरीर भी वैसा सुस्थ न था। तो भी वे मानके डरसे युद्ध करनेको वाध्य हुए। अव दोनोंमें युद्ध चलने लगा। विचित शिक्षा और अद्भुत कीशळसे वे प्रतापकी सभी चेषा निष्फल करने लगे। मानसिंहने जो अद्दुभुत निपुणता दिखा कर चढ़ती जवानीमें सम्राट् अकवरकी जीवनरक्षा की थी, इस बुढ़ावा समयमें भी उस युद्धपदुताने उनका परित्याग नहीं किया। कुछ समय छड़ते रहनेके वाद प्रतापने उनका कवच भिद डाळा । अव मानसिंह असि-चर्म छे कर युद्ध करने छगे। दोनोंकी सेना दर्शककी तरह टकटकी लगाये देखने लगी। वहु काल तक युद्ध करते रहनेके वाद प्रतापने मानसिंहको भूमिशायी कर दिया और खड्ग छे कर उनका संहार करनेके लिये अपना दाहिना हाथ उडाया। डोक इसी समय पोछेसे कचुरायने आ कर प्रतापका दाहिना हाथ अपने खड्गसे दो खएड कर डाळा। प्रताप भी मूर्चिछत .हो कर जमोन पर गिर पड़ें। मुगलोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया।

प्रतापकी मृत्यु निश्चय हो गई है, यह समक कर उनकी सारी सेना तितर वितर हो गई। कुमार उद्य, सेनापित सूर्यकान्त आदिने पराजयके वाद प्राण रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं, यह समक्ष कर सवींको छीटाया और मुगछसेना पर फिरसे आक्रमण कर दिया। अव फिर तुमुछ-युद्ध छिड़ गया। मुगछसेना कितनो निहत हुई, उसकी शुमार नहीं। इधर कुमार उद्य भी कचूरायके हाथसे यमपुर भेजे गये। सूर्यकान्त रूड़ा आदि सेना पितयोंने एक एक कर प्राणविसर्जन किया। इतने पर भी मुद्दी भर वङ्गसेनाने युद्ध नहीं छोड़ा। प्रतापके साथ उनका सुशिक्षित सेन्यदछ और सेनापितगण मारे गये। मन्ती शङ्कर भी कैद कर छिये गये।

मानसिंह आहत प्रतापको कैद कर उनकी शुश्रूषा करने छगे। कुछ दिन बाद प्रताप होशमें आये, पर उन्होंने किसीसे एक बात भी न कही। मानसिंहने उन्हें छोहेके पिंजरेमें कैद कर रखा। प्रतापकी स्त्रोने इस दुर्घटनाका संचाद पा कर यमुना नदीमें आत्मविसर्जन किया। कचुराय 'यशोहरजित्' की उपाधि पा कर यशो- इरके राजा हुए। प्रतापका जो पुत्र बन्दी हुआ था उसे

सम्राट् जहांगीरने मुसलमानी धर्ममें दीक्षित कर पञ्जाबों वसाया । सुनते हैं, कि उनका वंश आज भी मौजूह है। कचुराय निःसन्तान थे। उनके माई चन्द्रशेखर रायके वंश आज भी नूरनगर और खोड़ागाछीमें वास कर रहे हैं।

मानसिंद्दने कचुरायको यशोहरमें अभिषिक्त कर दिल्लीकी याला कर दी। यशोहरकी अधिष्ठाती शिला-मयी देवीप्रतिमाको चे अपने साथ ले गये और राजधानी अम्बरमें उनकी प्रतिष्ठा की। पुरातन जयपुरमें आज भी वह प्रतिमा देखनेमें आती है। वहांके लोग उन्हें शिला-देवी कहते हैं। अम्बर देखो।

दिल्ली लाते समय प्रतापका वाराणासीमें देहान्त हुआ। कोई कोई कहते हैं, कि उनकी मृतदेह दिल्लो लाई गई थी, पर यह कूट है। कहा जाता है, कि सम्राट् जहांगीरने प्रतापको मृत्यु पर शोक प्रकट किया था। इस प्रकार प्रतापने अपने प्राणकी आहुति दे कर मातृपूजारूप महायज्ञका उद्यापन किया था।

प्रतापादित्य—१ गढ़ादेशाधिपति एक राजा। २ काश्मीर प्रदेशके एक राजा। राजा १म युधिप्रिरकी राज्यच्युति-के बाद हुएँ राजा हुए सही, पर तमाम अराजकता फैल गई। मन्त्रियोंने राज्यकी दुरवस्था देख प्रतापादित्य नामक किसी भिन्न देशोय राजपुतको खदेशमें बुलाया और राजपद पर अभिषिक किया। ३ काश्मीरके कर्कोट वंशीय एक राजा, राजा दुल भवद्ध नके पुत्त। राजमहिषी नरेन्द्रप्रमाके गभसे इनके चन्द्रापीड़, मुकापीड़ और तारा पीड़ नामके तीन पुत्त उत्पन्न हुए थे।

प्रतापी (हि॰ वि॰) १ प्रतापवान, इकवालमंद । २ दुःख-दायी, सतानेवाला । (पु॰) ३ रामचन्द्रके एक सलाका नाम ।

प्रतारक (सं । ति ।) प्रतारयतीति प्र-तृ-णिच्-ण्डुल् । १ वञ्चक, ठग । २ धूर्च, चालाक ।

प्रतारण (सं० क्ली०) प्र-तृ-णिच्-भावे-स्युट्। वश्चन रुगी। पर्याय-प्रतारणा, व्यलीक, अभिसन्धान।

सः चीनके इतिहासमें इन कर्कोटवंशीय राजपुत्रोंके नाम मिलने हैं।

व्रतारणा (सं॰ स्त्री॰) प्रतारण-स्त्रियां दाप्। वञ्चना, उगी ।

प्रतारणीय ( सं॰ ति॰) प्र-तृ-णिच् अनीयर् । प्रतारणयोग्य, ठगने लायक ।

प्रतारित (सं० ति०) प्र-तृ णिच्-क । १ वश्चित, जो ठगा गवा हो। २ पारप्रापित।

प्रतिचा ( हि॰ स्त्री॰ ) धनुपक्ती खोरी, ज्या, चिल्ला । प्रति (सं॰ अथः ) प्रथते इति प्रथ-विख्यातौ वाहुलकात् इति । वोस उपसर्गों मेंसे पांचवां उपसर्ग, एक उपसर्ग : जो शब्दोंके आरम्भमें लगाया जाता है और नीचे लिखे अर्थ देता है। १ प्रतिनिधि। २ विपरीत। ३ प्रति-कूल । ४ परिवर्ता । ५ प्रत्येक । ६ पुनर्वार । ७ लक्ष्य । ८ ऊपर। ६ लक्षण, चिह्न। १० आमिमुख्य। ११ वीप्सा । १२ व्यावृत्ति । १३ प्रशस्ति । १४ विरोध । १५ इत्यम्मूत कथन । १६ अख्यमाता । १७ अंश, भाग । १८ प्रतिदिन । १६ साद्वश्य । २० निश्चय । २१ २५ व्यावृत्ति । २६ प्रशस्ति ।

प्रति (हिं० अध्य०) १ सामने, मुकाबिलेमें । २ ओर, ! तरफ। (स्त्री॰) ३ कापी, नकल। ४ एक ही प्रकार-की कई वस्तुओंमें पृथक् पृथक् एक एक वस्तु, अद्द । प्रतिक (सं० ति०) कार्यापणेन कीतः (कार्यापण दिठन, वक्तव्या प्रतिरादेशश्व वा । पा भाराव्य वार्तिक ) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या टिठन्। १ कार्यापाणिक, जो १६ पण वा ८२८० कौड़ियोंमें खरीदा गया हो।

प्रतिक इ युक ( सं० पु० ) विपक्ष, शहु ।

प्रतिकर्छ ( सं॰ अन्य॰ ) करडे कर्रहरूय समीपे वा वीप्-सार्या सामीये वा अव्ययीमावः। १ कएठ कण्डमें। २ कण्ठसामीव्य।

प्रतिकर ( सं० पु०) प्रति-ऋ-विक्षेपे भावे अप् । १ विस्ती-र्णता। २ विक्षेप।

प्रतिकर्तुं ( सं॰ ति॰ ) पृति-इ-तृच् । पृतीकारकर्त्तां, बदला चुकानेवाला ।

पुतिकर्त्तं च्य (सं । ति । पुति-इ-तच्य । पुतिकरणीय, वदला चुकाने लायक।

पार्थिवादिवत् समासः। १ पूसाधन, यह कर्मं जो किसी दूसरे कमैंके द्वारा पुरित हो। २ वेश, भेस। ३ पृति-कार, वदला । ४ अङ्गसंस्कार, शरीरको संवारना । ५ विद्यमान गुणान्तराधान।

प्रतिकर्प (सं॰ पु॰) प्रति-कर्प-भावे-घञ्। समाकर्षेण। प्रतिकल्य ( सं॰ ति॰ ) अतिकल्पनीय, सजाने लायक। प्रतिकश (सं० ति०) प्रति-कश-गतिशासनयोः अच्। १ सहाय, सहायता करनेवाला । २ पुरोग, पथदशंक । ३ वार्त्ताहर। (पु॰) प्रतिगतः कशां पृादिसमासः । ४ कशाघातप्राप्त अभ्व, वह घोड़ा जिसे चावुक लगा हो । प्रतिकष्ट (सं० क्ली०) प्रतिहर कष्ट । १ कर्मानुहर कष्ट । २ उसका कारण।

प्रतिकाङ्क्षिन् (सं० वि०) आकाङ्क्षायुक्त । प्रतिकाम (सं० अध्य०) कामं कामं प्रति अध्ययीभावः । प्रत्येक काम।

प्रतिकामिनी ( सं० खी० ) सपत्नी, सौत। निन्दा। २२ समाव। २३ व्याप्ति। २४ समाधि। । प्रतिकाय (सं॰ पु॰) प्रति-चि-घञ्, क्वादेशः वा प्रतिगतः कायो यत । १ शरत्र्य, छस्य । २ तस्वीर, प्रतिक्रप, प्रतिमा, मूर्ति । ३ प्रतिपक्ष, प्रतिवादी ।

> प्रतिकार (सं० पु०) प्रति-क्व-घन् । प्रतोकार, वद्सा, किसीको वातका उचित उपाय। २ चिकित्सा, इलाज। प्रतिकारक (सं॰ पु॰ ) प्रतिकार करनेवाला, वदला चुकाने-

> प्रतिकारिन् ( सं० वि०) प्रति-क्र-णिनि । प्रतिकारक, वदला चुकानेवाला ।

> प्रतिकार्य (सं॰ ति॰) जो प्रतीकार करनेके योग्य हो, जिसका प्रतिकार किया जा सके।

> प्रतिकाश ( सं ० ति० ) प्रति-कश-धञ् । ्प्रतीकाश, तुल्य । प्रतिकास (सं० ति०) प्रति-कास-धन्। प्रतीकाश, एक-सा।

प्रतिकितव ( सं॰ पु॰ ) प्रतिकृत्नः कितवः प्रादितत्पुरुपः । ब तकारके प्रतिकृष्ठ च तकार, जुआरीके मुकावलेमें जुआ खेलनेवाला जुआरी ।

प्रतिकुञ्चित (सं० ति०) प्रति-कुञ्च-क । १ वक, टेड़ा। २ वकोकृत, टेड़ा किया हुआ।

प्रतिकर्म (सं॰ क्ली॰) प्रत्यङ्गं प्रतिख्यातं वा कर्म, शाक- प्रतिकुअर (सं॰ पु॰) प्रतिपक्ष कुअर, प्रतिपक्षीय हस्ती ।

प्रतिकूप ( रं॰ पु॰ ) प्रतिक्षपः क्ष्यः । परिखा, खाई । प्रतिकूल ( सं॰ ति॰ ) प्रतीपं क्षूलादिति । १ अनुकूल, जो अनुकूल न हो, खिलाफ, उलटा । ( कि॰) २ विपरीता-चरण, प्रतिकूल आचरण, विपरीतता । ३ प्रतिपक्षी, वह जो विरोध या प्रतिकृलता करे ।

प्रतिकूलकारी (सं० ति०) प्रतिकूल-मृ-णिनि । पृतिकूल आचरणकारी, विपरोत आचरण करनेवाला ।

प्रतिक्रूलकृत (सं० ति०) पृतिक्रूलं करोति क्र-किप् तुक् च। पृतिक्रूलाचरणकारी, पृतिक्रूल आचरण करनेवाला। प्रतिक्रूलतस् (सं० अन्य०) पृतिक्रूल-तसिल्। प्रतिक्रूलमें। प्रतिक्रूलता (सं० स्त्री०) प्रतिक्रूलस्य भावः, तल्-टाप्। पृतिक्रुलत्व, पृतिक्रूल आचरण।

प्रतिक्छप्रवर्तिन् (सं ० ति०) पृतिकूळे पृवर्तेते प्र-वृत-णिनि। जो किसीके विरुद्ध ठाना गया हो।

प्रतिकूलवचन (सं॰ क्वी॰) प्रतिकूल यत् वचनं। प्रति-वाक्य, विरुद्ध वाक्य।

प्रतिक्क्लवादिन (सं॰ ति॰) प्रतिक्क्लं वद्ति प्रतिक्कल-चद-णिनि । किसीके विरुद्ध वोलनेवाला ।

प्रतिकृत (सं ० वि०) १ जिसका वदला हो चुका हो। २ जिसके विरुद्ध प्रयत्न किया जा चुका हो।

प्रतिकृति (सं॰ स्त्री॰) प्रकृष्टा कृतिः । १ प्रतिमा, प्रति-मूर्ति । २ प्रतिनिधि, तस्वीर, चित्र । ३ प्रतीकार, वदला । ४ प्रतिविम्य, छाया । ५ पूजन, पूजा ।

प्रतिकृत्य ( सं ॰ बि॰ ) पूर्तीकारयोग्य, जो पूर्तीकार करने-के लायक हो ।

प्रतिरुष्ट (सं ० ति०) पृतिरुज्यते स्पेति पृति-रुष-क्त । १ निरुष्ट, जो वहुत ही निन्दित या बुरा हो । (क्ली०) २ दो वारका जोता हुआ खेत ।

प्रतिक्रम (सं० पु०) १ पृत्यावर्त्तन, स्रीट आना । २ प्रति-कुछ आचार।

प्रतिक्रिया सं क्लो०) १ पृतीकार, वद्छा। २ एक ओर कोई क्रिया होते पर परिणाम स्वरूप दूसरी ओर होते-वाछो क्रिया। ३ संस्कार, सजावट। ४ शमन या निवारणका उपाय।

प्रतिकुष्ट (सं० ति०) १ दरिद्र । २ नीरस । प्रतिकोध (सं पु०) क्रुद्ध व्यक्तिके प्रतिरूप क्रोध । प्रतिक्षण (सं॰ अञ्य॰) क्षणं क्षणं प्रति । पौनःपुन्य, किर फिर ।

प्रतिक्षय (सं० पु० प्रतिक्षिणोति हिनस्ति विपक्षादीनिति पृति-क्षि-अच्। रक्षक, चचानेवाळा ।

प्रतिक्षिप्त (सं० वि०) पृतिक्षि यते स्मेति पृति-क्षिप-क। १ पृपित, भेजा हुआ। २ अधिक्षिप्त, फेंका हुआ।३ निन्दित, तिरस्कृत। ४ वारित, रोका हुआ।५ आहूप, चुळाया हुआ।

प्रतिक्षेप (सं० पु० ं प्रति-क्षिप-भावे-घत्र्। १ तिरस्कार। २ फेंकना। ३ रोकना।

प्रतिक्षेपण (सं • क्ली॰) पृतिक्षिप-णिच्-ल्युट् । निराकरण । प्रतिखुर (सं॰ पु॰) मूढ़गर्भभेद, वह मूढ़गर्भ जिसमें वालक हाथ पैर वाहर निकाल कर अपने घड़ और सिरसे योनि-मार्गको रोक देता है ।

प्रतिख्याति (सं॰ स्त्रो॰) पृति-ख्या-भावे-क्तिन्। १ विख्याति। २ अतिख्याति । ३ पृसिद्धि ।

प्रतिगज ( सं ॰ पु॰ ) पृतिपक्षीय हस्ती ।

प्रतिगत ( सं ० क्वी० ) प्तिमुखं गतं गमनं । १ पक्षियोंकी गतिविशेष । २ पृत्यागत, जो वापस आया हो ।

प्रतिगन्या ( सं॰ स्त्रो॰ ) सोमराजी ।

प्रतिगर ( सं॰ पु॰ ) प्रतिगोर्यते प्रत्युचार्यते प्रति-गॄ-भावे अप् । वैदिक मन्त्रविशेषका उच्चारणभेद ।

प्रतिगरितृ (सं० द्वि०) प्रति-गृ-तृच्। प्रतिशब्द्कारी। प्रतिगर्जन (सं० क्वी०) किसोके विषद्व गर्जन।

प्रतिगिरि (सं॰ पु॰) १ शुद्र पर्वत, छोटा पहाड़। २ पर्वत सदूश, वह जो देखनेमें पहाड़के समान हो।

प्रतिगृह (सं॰ अव्य॰) गृहं गृहं प्रतिगृहं। प्रत्येक घरमें, घर घरमें।

प्रतिगृहीत (सं० ति०) प्रति-ग्रह-क । गृहीत, जो है लिया गया हो ।

प्रतिगृहीता (सं० स्त्री०) धर्मपत्नी, वह स्त्री जिसका पाणित्रहण किया गया हो।

प्रतिग्रहीतृ (सं॰ ति॰ ) प्रति-प्रह-तृच् । प्रतिप्रहकारक, प्रतिग्रह करनेवाला ।

प्रतिगृह्य (सं० वि०) प्रति-प्रह-क्यप् । प्रतिप्रहणीय, स्रेने स्रायक । प्रतिगेह (सं॰ अद्यर्॰) घर घरमें ।
प्रतिग्रह (सं॰ पु॰) प्रतिग्रहणीमेति प्रतिग्रह (गृद्वृह विद्यामहव । या शश्यप्र) इति भावे अप् । १ स्त्रीकरण, स्वीकार, ग्रहण । २ सैन्यपृष्ट, सेनाका पिछछा ।
भाग । ३ पतद्व्रह, पोकदान, उगाछदान । ४ उस दानका छेना जो ग्राह्मणको विधिपूर्वक दिया जाय । इस प्रकारका दान छेना ब्राह्मणके छः कर्मोंमेंसे एक है। ।
ब्राह्मण प्रतिग्रह द्वारा धन उपार्जन कर सकते हैं।

"प्रतिप्रहार्जिता वित्रे क्षितिये शस्त्रनिर्जिताः।
वैश्वे न्यायार्जिताश्चार्थाः शूत्रे शुश्रृपयार्जिताः॥"
( गहड् पु० २१५ अ० )

अयाचित भावमें यदि प्रतिष्रह छिया जाय तो उसमें कोई दोष नहों।

> "अयाचितोपपत्रे तु नास्ति दोयः प्रतिप्रहे । अष्टतं तं विदुर्देवास्तस्मात्तन्नैवनिदु<sup>°</sup>देत् ॥" (गरुड्यु• २१५ अ०)

अयाचित भावमं प्राप्त होनेसे वह प्रतिप्रह लिया जा सकता है, इसमें कोई दोप नहीं। ब्राह्मणको छह कर्म करना विश्वेय हैं; यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और पृतिप्रह। अतप्व प्रतिप्रह ब्राह्मणका स्वधम होने पर भी तीर्थादिमें प्रतिप्रह न ले, लेनेसे तीर्थ जानेका कोई फल नहीं। अतप्व ब्राह्मणको कभी मी तीर्थ वा पुण्यायतनमें ऐसा दान नहीं ब्रह्मण करना चाहिए।

"सुवर्णमथ युक्तातमा तथैवान्यप्रतिग्रहम्। स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यच्चेनेऽपि वा॥ निग्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तदनमञ्जते। ३ तस्तीर्थं न गृह्णोयात् पुण्येष्वायतनेषु च॥" ( कूर्मपु० ३३ थ०)

राजादि, शूद्र, पतित और निन्दित व्यक्तियोंसे प्रति यह छेना विलकुल निपेध है।

" न राज्ञः प्रतिगृह्योयान्न शूर्यितताद्यि । न चान्यस्मादशकश्च निन्दितान् वर्जयेद्युधः॥" ( कूर्मपु० १५ अ० )

विद्याहीन ब्राह्मण कभी भी प्रतिब्रह न है। सुवर्ण, भूमि, तिल, गो प्रभृति यदि अविद्यान व्यक्ति प्रतिब्रह है, तो सभी भस्मीभूत हो जाते हैं तथा दाताको भी कोई Vol. XIV 180

फल नहीं होता। ब्राझणको गहित प्रतिप्रह अर्थात् जो सव प्रतिप्रह शास्त्रप्रें निन्दित वतलाये गये हैं उन्हें कभो भी प्रहण नहीं करना चाहिये।

किन्तु जव भारीसे भारी विषद् पहुंच जाय, तव गहित प्रतिप्रह लिया जा सकता है। दाता दान करके उसकी चिन्ता न करे तथा प्रतिप्राही दान ले कर और पानेके लिये जी न वड़ावे। यदि मोहके वशीभृत हो कर ऐसा करे, तो दोनोंको ही नरक होता है।

"व्ता च न स्परेदानं प्रतिप्राही न याचते। ताबुभी नरकं याती दाता चैव प्रतिप्रही।" ( वृहत्पाराग्रर० ४ अ०)

प्रतिप्रहस्तमधं कोई ध्यक्ति यदि प्रतिप्रह न करे, तो दानशोलोंके लिये जो लोक विहित है, उसे भी उसी-लोककी प्राप्ति होती है।

> "प्रतिप्रहसमधौं हि नादत्ते यः प्रतिप्रहम्। ये लोका दानशीलानां सतामाप्तोति पुष्कलान्॥" (याज्ञवल्क्य)

अपने भोगके लिये कभो भी प्रतिग्रहण ले, पर देवता और अतिथि पूजादिके लिये प्रतिग्रह विश्रेय है। प्रतिग्रहार्जित अर्थ द्वारा यह नहीं करना चाहिये,

करनेसे चाएडालयोनिमें जन्म होता है।

"वाएडालो जायते यज्ञकरणाच्छूट्रभिक्षितात्।" ( शुद्धितस्व )

५ पृतिकृष्ट ग्रह । ६ प्रत्यिभयोग, किसीके अभियोग छगाने पर उछटे उसी पर अभियोग छगाना । ७ अधि-कारमें छाना, पकड़ना । ८ पाणिग्रहण, विवाह । ६ उपराग, ग्रहण । १० अभ्यर्थना, खागत । ११ विरोध करना, मुकावछा करना । १२ उत्तर देना, जवाव देना । प्रतिग्रहण (सं० क्की०) प्रति-ग्रह-छुद् । प्रतिग्रह छेना, विधिपूर्वक दिया हुआ दान छेना । प्रतिग्रहरू (सं० ति०) प्रति-ग्रह-णिनि । प्रतिग्रहकारक, प्रतिग्रह छेनेवाछा, दान छेनेवाछा । प्रतिग्रहीता (हि० वि०) दान छेनेवाछा ।

प्रतिग्रहोत् (सं० ति०) प्रति-ग्रह-तृच्। प्रतिग्रहकर्ता, दान छेनेचाला।

प्रतिप्राम (सं॰ अञ्य॰) ग्राम ग्राममें, प्रत्येक गांवमें।

प्रतिप्राह (सं० पु०) प्रतिगृह्णाति निष्ठीवनादिकमिति प्रति-प्रह (विभाषा प्रदः। पा ३।१।१४३) इति ण। १ पतद्यह, पोकदान। २ प्रतिप्रह, ग्रहण करना, छेना। प्रतिग्रहक (सं० पु०) प्रतिग्रहकारक, प्रतिग्रह छेनेवाला। प्रतिग्रहिक (सं० वि०) प्रति-ग्रह-णिनि। प्रतिग्रहकारक, दान छेनेवाला।

प्रतिप्राह्य (सं० ति०) प्रति-प्रह क्यप् (प्रत्यिपभ्यां प्रहे:। पा ३।१।११८) प्रतिग्रहके योग्य, प्रहण करने छायक।

प्रतिघ (सं० पु०) प्रतिहन्त्यनेनेति, प्रति-हन ड, न्यङ्का-दित्वात् कुत्वं। १ क्रोध, गुस्सा। २ मारना। ३ मूर्च्छा, वेहोशी। ४ रुकावट डालनेवाला। ५ प्रति-कुल, विरुद्ध।

प्रतिघात (सं० पु०) प्रति-हन-णिच् भावे अप्। १ मारण, मारना। २ वह आघात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो, टक्कर। ३ प्रतिवन्ध, वाधा। ४ निराश, निक्षेप।

प्रतिघातक ( सं॰ ति॰ ) प्रतिघातकारी, प्रतिघात करने-वाला।

प्रतिघातन (सं॰ क्की॰) प्रति-हन-णिच्-ल्युट्। १ हत्या, मारना। २ वाधा, रुकावट।

प्रतिघातिका (सं० स्त्री०) विव्नकारिणी, वाधा **डा**लने-वाला ।

प्रतिघातिन् (सं० ति०) १ प्रतिघातकारी, विरोध करने-वाला। २ टक्कर मारनेवाला। (पु०) ३ शतु, वैरी, दुश्मन।

प्रतिघाती (हिं पु॰) शिवगितम् देखो ।

प्रतिव्न ( सं० क्की० ) प्रतिहन्त्यस्मिन्निति प्रति-हन घअर्थे क । अङ्ग, शरीर, वदन ।

प्रतिचक्र (सैं॰ हों॰) प्रतिक्षपं चक्रं। १ प्रतिक्षप राज-मण्डल। २ प्रतिक्षप चक्र।

प्रतिचक्षण ( सं : क्ली • ) प्रति-चक्ष-ल्युट् । प्रतिनियतदर्शन, प्रतिदिन दर्शन ।

प्रतिचक्ष्य (सं० ति०) प्रति-चक्ष-ण्यत् वा ख्यादेशाभावः । प्रकर्षक्रपमें दृश्य, जो साफ साफ दिखाई दे ।

प्रतिचन्द्र ( सं॰ पु॰ ) प्रतिरूप चन्द्र, चन्द्रकी प्रतिरूति ।

प्रतिचिकीर्पा (सं० स्त्री०) प्रतिकर्त्तुर्मिच्छा पृति-छ-सन्टाप्। पृतीकार करनेकी इच्छा।
पृतिचिति (सं० ति०) पृत्येक स्तर।
पृतिचिन्तन (सं० पु०) पुनर्विचार, फिरसे सोचना।
प्रतिच्छन्द (सं० क्ली०) १ प्रतिद्धप। २ अनुरोध। ३ प्रतिछति।

प्रतिच्छन्दक ( सं ० ति ० ) प्रति-च्छन्द-ण्बुल् । प्रतिनिधि । पृतिच्छाया ( सं ० स्त्री ० ) पृतिगता छावामिति । १ पृति-छति, मिद्दो पत्थर आदिकी वनी हुई मृत्ति । २ चित्रे, तस्त्रीर । २ पृतिविम्य, परछाई । ४ साद्रश्य । प्रतिच्छेद ( सं ० पु० ) पृति-छिद्द-घञ् । पृतिवन्ध, वाधा,

पृतिछाँई (हिं० स्त्री०) प्रतिच्छ या देखो । पृतिछाया (हिं० स्त्री०) पृतिविंव, परछांही । प्रतिछाँहो (हिं० स्त्री०) प्रतिष्ठाया देखें ।

रुकावट ।

प्रतिजङ्घा (सं॰ स्त्री॰) प्रतिगता जङ्घां। अप्रजङ्का, जांघका अगला भाग।

पृतिजन (सं ० अध्य०) वीष्सायामव्ययीभावः। पृत्येकः के पृति।

प्रतिजनादि (सं॰ पु॰) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । गण यथा—प्रतिजन, इदंयुग, संयुग, समयुग, परयुग, परकुळ, परस्यकुळ, अमुष्यकूळ, सर्वजन, विश्वजन, महाजन, पञ्चजन ।

प्रतिजन्य (सं० क्की० ) प्रतिकूलं जन्यं युद्धं यस्य, प्रतिजने विपक्षजनपदे भवः यत् वा । १ प्रतिबल्छ । २ प्रतिपक्ष-जनपदभय ।

प्रतिज्ञस्य ( सं॰ पु॰) प्रतिगतो जल्पं । १ बाक्यविशेष । २ सम्मतिपृदान, दूसरेके मतके साथ अपना मत मिलाना, सलाह ।

प्रतिजागर (सं ॰ पु॰) प्रतिजागरण मिति पृति-जागृ-घञ्।
(जाप्रोऽपीती। पा अशं ४५) इति गुणः। १ पृत्यवेक्षणः।
२ प्रत्यवेक्षा, खूव होशियारी रखना। ३ रक्षा। ४ रक्षाके
लिये नियोगः।

प्रतिजिह्ना (सं क्ली ) पृतिह्नपा जिह्ना । तालुमूलस्थ जिह्निका, गलेके अन्दरकी घंटी; कौवा । पर्याय— प्रतिजिह्निका, माध्वी, रसनकाकु, अलिजिह्निका । प्रतिजिहिका (सं० स्रो०) पृतिजिह्ना सार्थे कन, टापि अत इत्वं। पृतिजिह्ना, छोटो जीम।

प्रतिजीवन (सं ० हो० पुनर्जीवनप्राप्ति, फिरसे जन्म होना।

प्रतिज्ञा (सं ० स्त्रो०) पृतिक्षायते इति प्रति-क्षा (आतश्चीय-धर्म। पा २।२।१०६) इति अञ् । १ कर्चय्यप्रकारक ज्ञानानु-क्रूल न्यापार, कोई काम करने या न करने आदिके सम्यन्यमें दृढ़ निश्चय । २ न्यायमें अनुमानके पांच खएडों या अवययों मेंसे पहला अवयव । न्याय देखो । २ शपथ, सौगंध, कसम । ३ अभियोग, दावा ।

प्रतिज्ञाकर मैथिल—नलोद्यटोकाके रचयिता। ये प्रज्ञाकर नामसे परि चत थे।

प्रतिज्ञात (सं० वि०) प्रतिज्ञायते स्मेति प्रतिज्ञा-कः। १ भङ्गीकृत, स्रीकार किया हुआ। २ साध्य, करने या हो सकने योग्य।

प्रतिज्ञान ( सं ० ह्हो० ) प्रति-ज्ञा-च्युट्। प्रतिज्ञा ।

प्रतिश्वान्तर (सं० क्कों) अन्या प्रतिश्वा मयूरव्यंसकादित्वात् समासः । गीतमस्त्रोक्त निग्रहस्थानमेद । प्रतिश्वात भर्थका जहां निषेध होता है, वहां उस वाक्यको स्थिर करनेके लिये अन्य जिस प्रतिश्वाका निर्देश किया जाता है, उसे प्रतिश्वान्तर कहते हैं। निग्रहस्थान देखो।

प्रतिज्ञापत्न (सं • क्ली॰) प्रतिज्ञास्चकं पत्नम्, मध्यपदलोपि-कर्मधारयः। भाषापत्नविशेष, मह पत्न जिस पर कोई प्रतिज्ञा लिसी हो, इकरारनामा।

प्रतिज्ञाविरोध (सं॰ पु॰) गौतमस्त्रोक्त निप्रहस्थानभेद । प्रतिज्ञा और हेतु इन दोनोंका जो विरोध होता है, उसे प्रतिज्ञाविरोध कहते हैं। निप्रहस्थान देखो।

प्रतिज्ञासं न्यास (सं ० हो०) गौतमस्त्रोक्त निप्रहस्थान-मेद।

प्रतिज्ञाहानि (सं ० ज्ञी०) गौतमस्त्रतोक निग्रहस्थानभेद। प्रतिज्ञे थ (सं ० पु०) प्रतिज्ञानात्यनेनेति प्रति-ज्ञा-यत्। १ स्तुतिपाठक। २ प्रतिज्ञा करनेमें समर्थ। (ति०)३ प्रतिज्ञातव्य।

प्रतितन्त्व (सं भ बलो०) प्रतिकृष्टं तन्त्वं शास्त्रं प्रादि-समासः। स्वमतिविरुद्धशास्त्र, वह शास्त्र जिसके सिद्धान्त अपने शास्त्रके सिद्धान्तींके प्रतिकृष्ट हीं। प्रतितन्त्रसिद्धान्त (स'० पु०) गौतमस्त्रोक्त सिद्धान्तभेद, वह सिद्धान्त जो कुछ शास्त्रोंमें हो और कुछने न हो। जैसे, मीमांसामें 'शब्द' को नित्य माना है, पर न्यायमें वह अनित्य माना जाता है।

प्रतितर ( सं॰ पु॰) पृतितीयंतेऽनेन पृति-तृ-करणे अप्। नौकाचाळन दएडादि, नाव खेनेका वर्ळा। प्तिताळ (सं॰ पु॰) पृतिगतस्ताळम्। ताळविशेप, सङ्गीनमें ताळका एक पृकार। इसमें कांतार, समराख्य, वैकुएठ और वाञ्छित ये चारों ताळ हैं।

प्रतितास्त्रे ( सं ॰ स्त्रो॰ ) प्रतिगता तास्त्रमिति गौरादिस्वात्, ङीप् । तास्कोदुधाटन यन्त्र, तास्त्रे ।

प्रतित्णी (सं क्सी ) सुभुतोक्त वातरोगभेद। इसमें गुदा अथवा मूनाशयसे पीड़ा उठ कर पेट तक पहुंचती है। यह रोग वायुके विगड़नेसे होता है।

प्रतिथि ( सं ० पु० ) देवरथ नामक एक धर्मप्रवर्त्त क । प्रतिदर्ख ( सं ० ति० ) अवाध्य, दुद्धर्य ।

प्रतिदत्त (सं ० ति ०) १ लौटाया हुआ, वापस किया हुआ। २ वदलेमें दिया हुआ।

प्रतिदर्शन ( सं ॰ क्ली॰ ) परिदर्शन ।

प्रतिदान ( सं ॰ क्छी॰ ) प्रतिकृत्य दानं प्रतिकृतं दानं वा । १ विनिमय, परिवर्त्तं न, बद्छा । २ न्यस्तार्पण, छो या रखी हुई चीजको छोटाना ।

प्रतिदारण (सं ॰ क्लो॰) प्रतिदार्यंतेऽस्मिन्निति प्रति-द्व-णिच्-आधारे ल्युट्।१ युद्ध, लड़ाई। भाचे ल्युट्।२ भेदन।

प्रतिदिन (सं॰ क्ली॰) दिनं दिनं प्रति । प्रत्यह, रोज रोज।

प्रतिद्वन् (सं • पु०) श्रितदोव्यतोति प्रति-द्वि । कनिन् युव्वि तिक्षाजिधन्त्रियु प्रतिदिवः । उण् १।१५६) इति कणिन् । १ सूर्ये । २ प्रांतदिन ।

प्रतिदिवस (सं ० अव्य०) प्रत्येक दिन, हर रोज।

प्रतिदीवन् (सं ॰ पु॰) प्रतिदिवन् पृयोदरादित्वात् साधुः। सूर्य ।

प्रतिदुह् ( सं ॰ पु॰ ) पृत्यह दोहनदुग्ध, हर रोजका दुहा हुआ दूध । प्रतिदूतः सं० पु०) प्रतिपक्षमें प्रेरित दूत वा राजकर्भ-चारी।

प्रतिदेय (सं० ति०) प्रति-दा यत्। १ क्रीतद्रन्यका दुष्कीत बुद्धि द्वारा दान, खरीदी हुई चीजको वापस कर देना। २ प्रतिदान करने योग्य, जो वदलने यो लीटाने लायक हो। प्रतिदेवत (सं० ति०) प्रत्येक देवताके योग्य। प्रतिदेवता (सं० स्त्रो०) प्रतिपक्ष-देवता। प्रतिदेवतम् (सं० अन्य०) प्रत्येक देवताके उपयोगी। प्रतिदृशान्तसम (सं० पु०) गौतमस्त्रोक्त जातिमेद, न्याय-में एक प्रकारकी जाति।

प्रतिद्वह (सं० ति०) १ प्रत्युपकारसाधनेच्छु । २ प्रति-हिंसा ग्रहणमें समुत्सुक ।

प्रतिद्वन्द (सं॰ क्ली॰) प्रतिक्षपं द्वन्द्वं प्रादिसमासः। तुल्ययुद्ध, वरावरवालीको लड़ाई।

प्रतिद्वन्द्विता (सं० स्त्रो०) अपनेसे समान व्यक्तिका विरोध, वरावरवालेकी लड़ाई।

प्रतिद्वन्द्वो (सं० पु०) प्रतिद्वन्द्व मस्त्यस्य इनि । १ प्रति-पक्ष । २ शतु । ३ समकक्ष, मुकावलेका लड़नेवाला । प्रतिद्विरद (सं० पु०) प्रतिद्वन्द्वो हस्ती, प्रतिगज । प्रतिधर्मु (सं० ति०) प्रति-धृ-तृच् । निराकारक । प्रतिधा (सं० स्त्रो०) प्रति-धा भावे-किए । प्रतिविधान । प्रतिधान (सं० स्त्रो०) प्रति-धा भावे ल्युट् । प्रतिविधान, निराकरण ।

प्रतिधावन (सं० क्की०) प्रति-धाव-ल्युट्। प्रतिमुख, पीछे की ओर दौडना।

प्रतिधि (सं । पु ) प्रतिमुखं घीयते प्रति धा-कर्मणि कि । स्तोत्तविशेष, सन्ध्याके समय पढ़ा जानेवाला एक प्रकार-का वैदिक स्तोत । २ ईपाका तिर्यंक गतकाष्ठ ।

(ऋक् १०।८५।८)

प्रतिधुर (सं॰ पु॰) सिज्जित अश्वयुग्मका एक, दो सजे सजाये घोड़ोंमेंसे एक।

प्रतिचृष्य (सं० ति०) १ प्रतियुद्धमें शक्त । २ उपेक्षणीय । प्रतिथ्वनि (सं० पु०) प्रतिरूपो ध्वनिरिति । प्रतिशब्द, अपनी उत्पत्तिके स्थान पर फिरसे सुनाई पड्नेवाला शब्द । पर्याय—प्रतिनाद, प्रतिश्रुत, पृतिध्वनि ।

वायुमें क्षोभ होनेके कारण लहरें उटती हैं। इन्हीं

लहरोंसे शन्दको उत्पत्ति होती है । जब इन लहरोंके रास्तेमें प्राचीर वा चट्टान आदि जैसे कोई वाधक पदार्थ थाता है, तब ये छहरें उससे टकर खा कर छीटती हैं। यही कारण है, कि वह शब्द पुनः उस स्थान पर सुनाई देता है जहांसे वह उत्पन्न हुआ था। यदि वायुकी छहरोंको रोकनैवाला पदार्थं शब्द उत्पन्न होनेके स्थानके ठीक सामने होता है, तव तो प्रतिध्वनि शब्द उत्पन्त होनेके स्थान पर ही सुनाई पड़ती है। परन्तु यदि वह डीक सामने न हो, तो प्रतिध्वनि भी इघर उधर सुनाई पडेगी। यदि लगातार वहुतले शब्द किये जांय, तो शन्दोंकी प्रतिध्वनि साफ नहीं सुनाई पड़ती, पर शब्दों-की समाप्ति पर अन्तिम शृष्ट्की प्रतिश्वनि वहुत ही स्पष्ट कर्ष गोचर होती है। जैसे, यदि किसी वहुत वह तालाव-के किनारे या किसी वडे गुम्बदके नीचे खडे हो कर 'हाथी या घोडा' ऐसा कहा जाय, तो प्रतिध्वनिमें 'घोडा' वहुत साफ सुनाई देगा। साधारणतः प्रतिध्वनि उत्पन्न होनेमें एक सेकेंएड वा नवां अंश लगता है। इसिंखें इससे कम अन्तर पर जो शब्द होंगे, उनकी प्रतिध्वनि स्पष्ट नहीं होगी। शब्दकी गति प्रति सेकेएड करीव ११२५ फुट है। अतः जहां वाधक स्थान शब्द उत्पन्न होनेके स्थानसे (११२५ का १८ वा अंश) ६२ फुटसे कम अन्तर पर होगा, वहां प्रतिध्वनि नहीं सुनाई देगी। सवसे अधिक स्पष्ट प्रतिध्वनि उसी शब्दकी होती है जो अक्रस्मात् और उद्य खरसे कहा जाता है। प्रतिध्वनि सुनाई पडनेके ये सब स्थान हैं, कमरा, गुम्बद, तालाव, कूप, नगरके प्राचोर, चन, पर्वत और तराई। किसी किसी स्थान पर ऐसा भी होता है, कि ग्रव्यको कई कई प्रतिध्वनियां हीती हैं।

२ शब्दसे ध्याप्त होना, गुंजना। ३ दूसरोंके भावों या विचारों आदिका दोहराया जाना।

प्रतिध्वान ( सं० क्की० ) प्रतिध्वननमिति प्रति ध्वन-धन्। प्रतिध्वनि, प्रतिशब्द ।

प्रतिनन्दन ( सं० क्ली० ) प्रति-नन्द भावे ल्युट् । आशीर्वाद-पूर्वेक अभिनन्दन, वह अभिनन्दन जो आशीर्वाद देते हुए किया जाय ।

प्रतिनप्तः ( सं० पु॰ ) प्रतिस्त्रो नप्ता नप्तुः सदृश इत्यर्थः । प्रपौत, परपोता । प्रतिनव (सं० ति०) प्रतिगतं नवं नवतामिति। न्तन, नया। प्रतिनर्तक—महाराज अप्र शिलादित्यके राजकर्मचारीको उपाधिमेद। यह सम्मवतः भट्ट, कवि, राजदूत वा घरकोंको मान्यस्चक पद्वी है। प्रतिना (हि० स्त्री०) प्रतना देखो। प्रतिनाग (सं० पु०) प्रतिगज, प्रतिद्वन्द्रो हस्ती। प्रतिनाड़ी (सं० स्त्री०) उपनाड़िका, छोटी नाड़ी।

प्रतिनाद ( सं० पु० ) प्रति-नद-घम् । प्रतिशब्द । प्रतिशब्द । प्रतिशब्द न देखा ।

प्रतिनायन (सं० ति०) नामसम्बन्धीय।
प्रतिनायक (सं० पु०) प्रतिकृतः नायकः। प्रतिकृत्वनायकः,
नाटकों और काट्यों आदिमें नायकका प्रतिद्वन्द्वी पात।
औसे रामायणमें रामका प्रतिनायक रावण है।
प्रतिनाह (सं० पु०) एक प्रकारका रोंग । इसमें नाकके
नथनोंमें कफ एकनेसे श्वासका चलना वंद हो जाता है
प्रतिनिधि (सं० पु०) प्रतिनिधीयने सद्दशो कियने इति
प्रतिनिधि (सं० पु०) प्रतिनिधीयने सद्दशो कियने इति
प्रतिनिधा वनगंधाः किः। वा। वाह स्रति कि।
१ प्रतिमा, प्रतिमृति। २ वह स्रकि जो किसी दूसरेकी
ओरसे कोई काम करनेके लिये नियुक्त हो।

यदि आप कोई कार्य करनेमें असमर्थं हों, तो प्रति-निधिसे यह काम करा सकते । शास्त्रमें इस प्रति-निधिका विपय लिखा है। कहां पर प्रतिनिधिको आवश्य-कता हैं और कहां नहीं, इसका विषय कात्यायनश्रीत-स्त्रमें वतलाया गया है। रघुनन्दनने कात्यायनमता-नुयायी एकादशीतत्त्वमें इस प्कार लिखा है।

पकान्त असमर्थ होने पर विनयी पुत्न, वहन वा भाई पृतिनिधि वनाये जा सकते हैं। यदि इनका अमाव हो तो ब्राह्मण पृतिनिधि हो सकते हैं।

"पुतं चा विनयोपेतं भगिनीं मातरं तथा। एषामभाव पत्रान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत्॥"

( पकादशीतस्व )

काम्यकमेंमें पृतिनिधिकी जरूरत नहीं, पर नित्य भीर नैमित्तिक कमेंमें पृतिनिधि दे सकते हैं। काम्यकम स्वयं कर्षेट्य है।

Vol XIV, 131

"काम्यो पृतिनिधिर्नास्ति नित्यनैमित्तिके हि सः। काम्येपूयकमादृद्धभन्ये पृतिनिधि विदुः॥" ( एकादशीतत्त्वधृत कालमाधव )

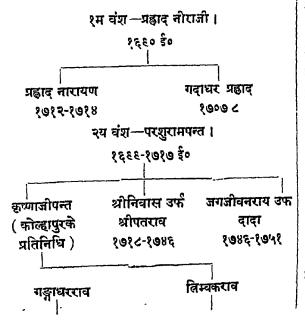
माधवाचार्यने इसका तात्पर्य इस प्कार लिखा है,— नित्य और नैमित्तिक कर्मका आरम्भ स्वयं करें। पीछे पूर्तिनिधि द्वारा करा सकते हैं। काम्यकर्म, जहां तक हो सके, अपने हाथसे करें, पर यदि आरम्म कराके वीचमें ही असमर्थ हो जाय, तो पूर्तिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। यह जिस काम्यकर्मको कथा कही गई, वह श्रीतकाम्य-पर है। किन्तु काम्य स्मार्त्तकर्मके स्वयं उपक्रम करके पीछे पुर्तिनिधि द्वारा करा सकते हैं।

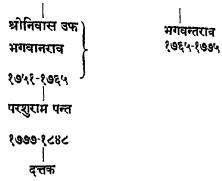
इसी नियमसे पृतिनिधि करना विधेय है। दैवादि कार्योमें जिन सब द्रव्योंका विधान है, वे सब द्रव्य यदि संग्रहीत न हों, तो उसके बदलेमें अन्य द्रव्य दिया जा सकता है। जैसे मधुके अभावमें गुड़।

आयुर्वेदके मतसे - औपधादि पुस्तुत करनेमं जो औषधियां कही गई हैं, उतमेंसे एक द्रव्य यदि दुःपाण्य हो, तो उसका पृतिनिधि प्रहण कर औषध पृस्तुत करना विधेय है। शास्त्रमें पृतिनिधि द्रध्यका विषय इस प्कार लिखा है-पुराने गुड़के अभावमें नये गुड़को चार पहर तक धूपमें सुखा हो। सीरान्द्र मद्दीके अभावमें पङ्क-पपॅटी, लोहेके अभावमें लोह-कोट, खेत सर्प पके अगाव में साधारण सर्पंप, चई और गजपिष्पलीके अभावमें पिषरामूल, कुंकुमके अभावमें हरिज्ञा, मुक्ताके अभाधमें शुक्तिकचूण, हीरकके अभावमें वैकान्त अथवा कौड़ीकी मस्म, खर्ण और री यके अभावमें लौहभस्म, पुन्करमूलके अभावमें कुट, रास्ताके अभावमें परगाछा, रसाञ्चनके अभावमें दाहहरिदाका काथ, पुष्पके वदलेमें कचा फल, मेदाके अभावमें अञ्चगन्धा, महामेदके अभावमें अनन्त-म्ल, जीवकके वदलेमें गुलञ्च, ऋषमकके वदलेमें भूमि-कुष्माएड, ऋदिके वद्लेमें विजवन्द, वृद्धिके वद्लेमें गोरक्ष, काकोली और क्षीरकाकोलीके अमावमें शतमूली, इसी प्रकार अन्यान्य दुःधके अभावमें गर्य दुःध प्रहण करना चाहिये । उपरि उक्त द्रव्योंके अलावा यदि अन्य किसी द्रव्यका अभाव हो, तो उस द्रव्यके समान गुण-वाले किसी अन्य द्रव्यका प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिनिधि—महाराष्ट्रदेशस्य एक प्रसिद्ध ब्राह्मणवंश । १६६० ई०में जुल्फकर खाँके आक्रमणसे अपनेको वचाने-के लिये राजाराम जिञ्जीको भाग आये । प्रह्वाद नीराजी नामक किसी महाराष्ट्रवीरके परामशंसे उन्होंने आत्म-रक्षा को थी । राजकाय चलानेके लिये जिञ्जीमें एक नृतन सभा बुलाई गई। उक्त राजसभामें अप्र पृथानको अपेक्षा सम्मानस्चक 'प्रतिनिधि' उपाधिसे प्रह्वाद नीराजी भूपित हुए थे।

कोरेगांच तालुकके अधीन किनहर्द-ग्रामवासी ब्राह्मण विम्वक कृष्ण कुलकरणीके पुत्र परशुराम पन्त १६६८ ई०में राजाराम द्वारा प्रतिनिधि-पद पर नियुक्त हुए। १७०० ई०में राजारामकी विध्वा पत्नी तारावाईने उन्हें फिरसें प्रतिनिधिके पद पर प्रतिष्ठित किया। इस समयके युद्धविग्रह- तें उन्होंने प्रधान सेनापतिका कायं किया था। १७०७ ई०में वे शाहुसे भृत और काराकद्ध हुए। इस अवसरमें प्रह्वाद नारा यणके पुत्र गदाधर प्रह्वादने प्रतिनिधिका पद प्राप्त किया। १७१० ई०में गदाधरकी मृत्यु हुई। पिछे परशुराम पन्त फिरसे प्रतिनिधिके पद पर आकढ़ हुए। किन्तु दूसरे ही वर्ष उन्हें पदच्युत करके नारायण प्रह्वाद उस पद पर नियुक्त किये गये। अनन्तर १७१३-१४ ई०- में परशुरामने फिरसे प्रतिनिधिका पद पाया। पीछे वह पद उनके वंशाधीन हो गया।





श्रीनिवासराव ( इनके पुत पैतृक सम्पत्तिके दखील-कार हैं।

प्रतिनिधिगण अपनी अपनी उपभोग्य सम्पत्तिसे सैन्य
रक्षा करते थे। पेशवा वाळाजी वाजीरावके शासनकाळमें
१७४० ई०को श्रीपत्राव रघुजी मींसळेके साथ कर्णाटक
पर आक्रपण करनेके ळिये अप्रसर हुए। अनन्तर वहांते
ळीट कर उन दोनोंने तिचीनपळीकी याता कर दी।
१७४१ ई०की २६वीं मार्चकी तज्जीरके राजाने महाराष्ट्रके
हाथ आत्मसमर्पण किया। १७३० ई०में श्रोपत्रावने
कोव्हापुरके राजाकी जीता। महाराष्ट्र-अवनिके
साथ साथ क्रमशः प्रतिनिधियोंका भी प्रताप हास होता
आया। फिलहाळ अङ्गरेजी शासनमें प्रतिनिधिगण
प्रभुत्व और प्रतिपत्तिहीन हो गये हैं।

विश्तृत विद्याण महाराष्ट्र शब्दम देखी।
प्रतिनिधित्व (सं० पु०) प्रतिनिधि होनेकी किया या
भाव, प्रतिनिधि होनेका काम।
प्रतिनित्व (सं० पु०) प्रतिध्विम, प्रतिशब्द।
प्रतिनिपात (सं० पु०) १ निक्षेप। २ प्रतिधातसे निहत।
प्रतिनियम (सं० पु०) प्रत्येकं नियमः। व्यवस्था, हर एकः के प्रति एक नियम।
प्रतिनिर्जित (सं० वि०) १ पराजित, हराया हुआ। २ विताड़ित, भगाया हुआ।
प्रतिनिर्देश (सं० पु०) पूर्वनिर्देश, वह जिसका पहले उल्लेख किया जा खुका हो।
प्रतिनिर्देशक (सं० वि०) पूर्वनिर्देश, जो पहले कहा गया हो।
प्रतिनिर्देशक (सं० वि०) प्रति निर्-दिश कमेणि प्यत्।
निर्देश करने योग्य।

प्रतिनिर्यातन ( सं० क्ली० ) प्रति-निर्-यात-ल्युट् । वह अप-कार जो किसी अपकारके वदलेंमें किया जाय। २ पृत्य-पंण। ३ प्रतिहिसा-साधन।

प्रतिनिवर्त्तन (सं० क्की०) प्रति-निर्-षृत-भावे-ज्युट्। १ अभीष्ट चस्तुसे निवृत्ति । २ निवारण ।

प्रतिनिवारण (सं क्री॰) प्रति-नि-वृ-णिच् ल्युट् । प्रतिपेध, प्रतिवारण।

प्रतिनिवासन (सं० हो०) वौद्ध भिश्रुओं के पहननेका एक वस्त्र।

प्रतिनिवृत्त (सं ० ति ०) प्रति-नि-वृत्तः । प्रत्यागत, लौटा हुआ।

निशामें।

प्रतिनोद् (सं॰ पु॰) प्रति-सुद्-घर्। प्रतिप्रेरण।

प्रतिन्यस्त ( सं ॰ ति ॰ ) १ प्रतिगच्छित । २ स्थगिद् ।

प्रतिन्याय (सं० अव्य०) प्रति-नि-अय वा इ-धत्र् । २ यथा- प्रतिपत्त्र्य (सं० क्की०) प्रतिपदे संविदे त्या वादाभेद् गत अत्यागमन ।

प्रतिन्युङ्क (सं॰ पु॰) ओङ्कार स्वरके प्रतियोग्य न्युङ्क प्रतिपत्नफला (सं॰ स्त्री॰) प्रतिपतं फलं यस्याः । क्ष्ट्र-शब्दका प्रयोग।

प्रतिष , सं॰ पु॰ ) प्रति पाति पालयतीति प्रति-पा-क । ; प्रतिपथ (सं॰ अध्य॰ ) पथिमध्य, राहमें । राजा शान्तनुके विताका नाम ।

वतिपञ्च (सं॰ पु॰ ) प्रतिक्रुञ्चः पञ्चः इति वादिसः । १ ' शबु, दुश्मन । २ प्रतिवादी, उत्तर देनेवाला । ३ सादृश्य, 💡 समानता, वरावरी । ४ विरोघी पक्ष, विरुद्ध दल । ५ विरुद्ध पक्ष, दूसरे फरीककी वात।

प्रतिपक्षता (सं॰ स्रो॰) प्रतिपक्षस्य भावः तल्-दाव्। प्रतिपक्षका भाव, विरोध।

प्रतिपक्षित (सं॰ पु॰) प्रतिपक्षः जातोऽस्य तारकादि-हवादितच् । हेत्वाभासभेद, पांच प्रकारके हेत्वाभासमें-से चौथा प्रकार।

प्रतिपक्षी ( सं॰ पु॰ ) विपक्षी, विरोधी शबु ।

प्रतिपच्छ (हि॰ पु॰ ) प्रतिपक्ष दे हो ।

प्रतिपच्छी (हिं० पु०) प्रतिपक्षी देखी।

प्रतिषण ( सं॰ पु॰ ) प्रतिरूपः पणः । परिमाण-कल्पन । प्रतिपण्य ( सं ॰ ह्वी॰ ) वह द्रव्य जो किसी द्रव्यके बद्छेमें लिया जाता है।

प्रतिपत् ( हिं० स्त्रों० ) शविवद् नृस्तो ।

प्रतिपत्ति (सं क्यों) प्रतिपद्निमिति प्रतिपद्कित्। ( प्रवृत्ति। २ प्राप्ति, पाना। ३ ज्ञान। ४ अनुतान। ५ दान देना। ६ कार्यं रूपर्ने लाना। ७ प्रतिपादन, निरू पण । ८ प्रमाणपूर्वेक पर्शन, जोमें वैठाना । ६ स्वीकृति, मानना । १० पद्याप्ति, प्रतिष्ठा, धाक । ११ आव्र, सत्कार। १२ निश्चय, दृढ़ विचार। ३ परिणाम। १४ गौरव।

प्रतिपत्तिकर्म (हिं पु॰) भ्राद आदिमें वह कर्म जो सव-के अन्तमें किया जाय, सबके पीछे किया जानेवाला कर्म । प्रतिपत्तिपरह ( सं॰ पु॰ ) प्रतिपत्तये परह । बाद्यविशेष, प्रतिनिश ( सं ॰ अत्र॰ ) निशायां निशायां प्रति । प्रति- 🖟 वह ढोळ जिसे वजवानेका अधिकार केवळ अभिज्ञान वर्गके होगोंको था। इसका पर्याय हम्बापदह है।

> प्रतिपत्तिमत् (सं ॰ ति ॰ ) प्रतिपत्तिः विद्यतेऽस्य मतुप्। र्घातपत्तियुक्त ।

> एक प्रकारका वड़ा हो छ।

कारबेह, छोटी करेली ।

। प्रतिपथगति (सं० त्रि०) १ प्रतिपथातिचाहनकारी । २ विषधगामी।

प्रतिपथिक ( सं० ब्रि॰ ) प्रतिपथमेति प्रतिपथ—( प्रतिपः-मेति द'व । पा धोधां १२ ) इति दृन् । प्रत्येक प्यमें गमन-कारी।

प्रतिपद्द ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रतिपद्यते उपऋम्यतेऽनयेति प्रति-पद्-करणे-किए्। १ दगड्वाच, प्राचीनकाळका एक प्रकारका बड़ा डोल । २ मार्ग, रास्ता । ३ आरम्म । ४ बुद्धि, समक्त । ५ श्रेणी, पंक्ति । ६ अग्विकी जन्मतिथि । ७ तिथिनिशेष, पश्चको पहली तिथि। चन्द्रकलाका हास होनेसे कृष्णपक्षको और वृद्धि होनेसे शुक्कपक्षको प्रतिपद् होगो । शुक्काप्रतिपद्द कहनेसे १ अङ्क और कृष्णा कहनेसे १७ अङ्कका वीघ होता है। यदि यह तिथि दो दिन तक रहें, तो इसकी व्यवस्था इस प्रकार होती हैं कृष्णाप्रतिः पद् द्वितीयायुक्त और शुक्काप्रतिपद् अमाचस्यायुक्त प्राह्म है। इसमें तिथि गुग्माद्र नहीं होगा; परन्तु उपवास-

विषयमें रूणाविताह रितीयायुक्त होनेसे वह प्रहणीय नहीं होगी।

कार्त्तिकमामनें शुक्त्यतिपद्धके दिन बलिके उद्देश्यसे धृपदीपादि द्वारा पूजा करनी होनी है। इस प्रतिपद्धको बलिप्रतिपद्ध कदने हैं। मन्त्र यथा—

"विलिस्तः ! नमस्तुभ्य विरोचनसुन प्रमो । भविषयेन्द्र सुराराते पूजेय' प्रतिगृतताम्॥"

( तिथितस्य )

दस प्रतिपदमें स्नानदानादि करनेसे शतगुण फल । प्राप्त होता है।

"महायुण्या तिथिरियं चितराज्यप्रवर्दिनी ।

हनानं दानं महायुण्यं कात्तिकेऽस्यां तिथी भवेत् ॥"

अप्रहायणमासकी कृश्मात्रतिपद्दके दिन रोहिणी

नद्रत्वका योग होनेसे यदि उस दिन गङ्गास्तानादि किया

जान, तो जतम्य्येप्रहणकालीन गङ्गास्नानादिके समान

फल प्राप्त होता है।

"राहिण्या प्रांतगदुयुक्ता मार्गे मासि सितैनरा। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यप्रहरातैः समा॥" (तिथितस्य)

पतिपद्द तिथिका नाम नन्दा है,— "व्रतिपद्दे एकाद्गी पन्दी नन्दा जे या मनीपिभिः।" ( ज्योतिस्तत्त्व )

इस नन्दा अर्थात् प्रतिपद् आदि तिथियोंमें तेल नहीं लगाना चाहिये।

"तन्दामु नाभ्यङ्गमुपाचरेच झीरख रिकासु जयासु मांसम् पूर्णासु योपिन् परिवर्जनीया भग्रासु सर्वाणि समाचरेच"

प्रतिपद् तिथिमें कुप्माएड (कुम्ह्डा) न छाना चाहिये, खानेसे अर्थकी हानि होती है। शास्त्रमें इस निधिको शोरकार्य भी निपिद वतलाया है।

"क्षीर' विशाखा प्रतिपहुनु वर्ज्य'।" ( तिथितस्व ) तिथ ऽन्द देखं।।

प्रतिपद्धं तिथि अग्निकी जन्मतिथि है। वराहपुराणके महातपोपाण्यानमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रतिपद्रतिथिमें जो जन्म लेता है, वह मणिकनक-विभूवगर्स संयुक्त, मनोहर कान्तिविशिष्ट, प्रतापग्राली

और सूर्वतिस्वही तरह असी कुटमा हमराग काल करनेवाला होता है। अलेखार ।

प्रतिषद् ( संव अध्यव ) पदे पदे प्रतिपद्धित्यधानाः । १ पद पदने । १ स्थान स्थानमे । ४ हो ००६ छ। भेद ।

प्रतिपदा ( सं॰ रती॰ ) - हिमी पन्नही पट्टो विधि, हैं :-पद, परिचा ।

 पितपत्त (सं विव प्रतिपत्ति संति प्रतिपर्तः । १
 अयगत, जाना दुआ । २ अद्भादत, अपनाया दुआ । ३
 प्रचएड । ४ प्रमाणित, साधित, निश्चित । ५ पिप् दं
 भरा पूरा । ६ प्ररणागत । ७ सम्प्रानित, जिन्हों ।
 प्रतिष्ठा को गई हो । ८ प्राप्त, जो निष्ठा हो । ६ प्रस् जो लिया हुआ हो । १० अनुभत, अनिगुक्त ।

प्रतिषम्नक्त (सं ॰ पु॰) योद्धजात्त्रोक्त चार प्रतारके आवारे सम्प्रदाय ।

प्रतिपर्णेशिफा ( सं ॰ खी॰ ) द्रवन्तंबृद्ध, मृमा हाती। प्रतिपाण ( सं ॰ पु॰ ) प्रति-पण-चन् । प्रतिरूप गृतकीय, - जुर्फो प्रतिपक्षीका रखा हुआ दांव । २ चिनित्रयमे र्यक्त - पण, बदलेमें लगाई हुई बाजी ।

प्रतिपात ( सं ० थव्य० ) पात्रे पात्रे प्रतिपायमित्यक्षां भावः । प्रत्येक मनुष्य ।

प्रतिपादक (सं ० वि ०) प्रतिपाद्यनीति प्रतिपर्धान्य ण्युळ्। १ प्रतिपत्तिज्ञनक, अन्छी तगर् समस्तिया कहनेवाला। २ प्रतिपन्नकारक, प्रतिपन्न करनेपाला। ३ निर्वाहक, निर्वाह करनेवाला। ४ उत्पादक, उत्पास करनेवाला।

प्रतिपादन (सं ० हों।) प्रतिपद णिच् मार्च न्युर्। १३ न।
२ प्रतिपत्ति, अच्छो तर्त् समन्ताना । ३ नि पादन,
निरूपण । ४ प्रमाण, सञ्जूत । ५ उत्पत्ति, वैशासा।
६ पुरस्कार, इनाम ।

प्रतिपादनीय ( सं २ वि २ ) प्रति पद-णिन् अर्गायम् : अत्र करनेके योग्य ।

प्रतिपाद्यित् (सं ० वि०) प्रति पद् णिच् गृन् । प्रतिपाद्र प्रतिपादन करनेवाला ।

व्रतिपादित ( सं ॰ वि ॰ । व्रति पद णिचन्तः । निर्पारितः जिसका प्रतिपादन हो नुका हो । २ दन, तो दिया गरा हो। ३ स्थिरीकृत, जिसका निश्चय हो चुका हो। 8 शोधित, जो सुधारा जा चुका हो।

प्रतिपाद्य (सं॰ ति॰) प्रति-पद-णिच्-कर्मणि यत्। १ वोधनीय, निरूपण करनेके योग्य। २ अभिधेय। ३ दातव्य, देनेके योग्य।

प्रतिपान (सं॰ क्ली॰) प्रति-पा-व्युट्। पानीयज्ञल, पीने लायक जल।

प्रतिपाप (सं ॰ पु॰) १ अनाचारका प्रतिदान । २ पापी-के प्रति तुल्यह्मप निष्टुर व्यवहार, वह कटोर और पाप-ह्मप व्यवहार जो किसी पापोके साथ किया जाय ।

प्रतिपाल (सं॰ पु॰) वह जो पालन करे, रक्षक, पोषक । प्रतिपालक (सं॰ वि॰) प्रतिपालयतीति प्रति-पा-णिच् ण्वुल्। १ पालनकर्त्ता, पालन-पोषण करनेवाला । २

अपेक्षाकारी। प्रतिपालन (सं० क्वो०) प्रति-पा-णिच् भावे ल्युट्। १ रक्षण, रक्षा करनेकी क्रिया या भाव। २ पोपण, पालन

करनेकी क्रिया या भाव । ३ निर्वाह, तामील । प्रतिपालनीय ( सं ० ति० ) प्रति-पा-णिच् अनीयर् । प्रति-पाल्य, प्रतिपालनके योग्य ।

प्रतिपालित (सं० त्नि०) १ पालन किया हुआ। २ रक्षित।

प्रतिपाल्य (सं॰ ति॰) प्रति-पा-णिच् कर्मणि यत्। १ प्रतिपालनोय, पालन करनेके योग्य। २ रक्षा करनेके योग्य।

प्रतिपित्सा (सं० स्त्रो०) प्रतिपत्तृमिच्छा, प्रतिपद्-सन् अङ्, टाप्। १ प्रतिपत्तिकी इच्छा। २ पानेकी इच्छा। प्रतिपीड़न (सं० क्षी०) प्रति-पीड़-ल्युट्। प्रतिरूप पीड़न, अनुरूप पीड़न।

प्रतिपुरुष (सं० अव्य०) पुरुषे पुरुषे प्रतिपुरुषित्यव्ययी-भावः। १ प्रत्येक पुरुष। (पु०) २ प्रतिनिधि, वह पुरुष जो किसी दूसरे पुरुषके स्थान पर हो कर काम करें। ३ वह पुतला जो प्राचीन कालके चोर लोग घुसने-के पहले घरमें फेंका करते थे। जब इस प्रतिपुरुषके फेंकने पर घरके लोग किसी प्रकारका शोर नहीं करते थे, तब चोर घरमें घुसते थे। ४ सङ्गी, साथी। ५ सहकारी, वह जो साथमें काम करे।

Vol. XIV 132

प्रतिपुष्य (सं० क्ली०) प्रतिवार चन्द्रमाका पुष्यानक्षत्तमें प्रवेश।

प्रतिपुस्तक (सं० क्लो॰) प्रतिरूप लिखित ग्रन्थ, किसी कितावकी नकले।

प्रतिपूजक (सं ० ति०) प्रति-पूज-ण्बुल् । प्रतिह्नप पूजा-कारी, अभिवादनकरनेवाला ।

प्रतिपूजन (सं॰ पु॰) प्रतिपदं पूजनं प्रादिस॰। १ दूसरेको पूजा करते देख उसोके अनुसार पूजा करना। २ आभिमुख्य द्वारा पूजन, अभिवादन, साहव सलामत।

प्रतिपूजा ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रतिरूप पूजा, अभिवादन ।

प्रतिप्रस्त (सं० बि०) प्रतिप्रस्ते स्मेति प्रति प्रस्कः। १ प्रतिप्रसवविशिष्ट, जिसके विषयमें प्रतिप्रसव हो।२ पुनः सम्भावित।

प्रतिप्रस्थाता (हिं • पु • ) शतिप्रस्थातृ देखो ।

प्रतिप्रस्थातु (सं॰ पु॰) प्रति-प्र-स्था-तृच् । सोमयागीय म्हित्वग्भेद, सोमयाजी १६ म्हित्वजोंमेंसे छठां महित्वज ।

प्रतिप्रस्थान (सं• क्डी॰) प्रतिक्छं प्रस्थानं प्रादिसं। १ विच्द्रपक्षाश्रयणं। (ति॰) २ प्रतिक्छ प्रस्थानयुक्त। ३ निप्राह्म।

प्रतिप्रहार (सं ॰ पु॰) प्रतिरूपः प्रहारः प्रादिसः। १ कृतप्रहारके अनुरूप प्रहार, मार पर मार। २ प्रतिघात-भेद।

प्रतिप्रकार (सं० पु०) प्रतिक्षपः प्राकारः । १ तुल्यक्षप प्राचीर । २ दुर्गके वहिर्दिकस्थ प्राचीर, दुगके वाहरकी दीवार ।

प्रतिप्राभृत ( सं ॰ म्ली॰ ) उपढोंकन प्रत्यप ण, रिश्चत वापिस करना।

प्रतिप्राश् ( सं॰ ति॰ ) दूसरेका भोजन खा छेना ।

प्रतिप्रास्थानिक (सं॰ ति॰) १ प्रतिप्रस्थाताके कर्म-सम्बन्धीय। २ प्रतिप्रस्थाताका कार्य।

प्रतिप्रिय ( सं॰ क्ली॰ ) प्रत्युपकार, वह उपकार जो किसी ः उपकारके वहले किया जाय ।

प्रतिष्रैप (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः प्रैपः प्राद्सि॰। नियोजित कर्तृ क नियोक्ताके प्रति पुनः प्रेरण।

प्रतिष्ठवन (सं० क्लो॰ ) पश्चादुखम्फन, पीछेकी ओर कृदना। प्रतिफल (सं० ह्रो०) प्रतिफलतोति प्रतिफल अच्। १ प्रतिविम्त्र, छाया। २ परिणाम, नतोजा। ३ वह वात जो किसी वातका वदला देने या लेनेके लिये की जाय। ४ प्रत्युपकार।

प्रतिफलन (सं० क्षी०) प्रति फल-ल्युट्। १ प्रतिविम्ब, परिछांही। २ सादृश्य, समानता।

मतिफला ( सं ० स्त्री० ) वकुची, वावची ।

प्रतिफल्लित (सं• ति•)प्रति-फल्ल-क्ता प्रतिविम्यित। प्रतिफुल्लक (सं• ति•) प्रतिफुल्लिति विकसतीति प्रति-फुल्ल-ण्युल्। १ प्रफुल्ला। २ पुष्पशुक्ता

प्रतिवद्ध (सं० ति०) प्रति-वन्ध-क । १ प्रतिवन्धविशिष्ट, जिसमें किसी प्रकारका प्रतिवन्ध हो, जिसमें कोई रुका-वट हो। २ जिसमें कोई वाधा डाली गई हो। ३ नियंतित।

प्रतिबन्ध (सं० पु०) प्रति-वन्ध-धञ्। १ कार्यं प्रतिधात, बाधा, विध्न । २ रोक, रुकाबट, अटकाव । ३ प्रवन्ध, बंदोबस्त ।

प्रतिबन्धक (सं॰ पु॰) प्रतिबद्धातीति प्रति-बन्ध ण्वुल्। १ विटप, चृक्ष। (लि॰) २ रोकनेवाला। ३ वाधा डालनेवाला।

प्रतिवन्धकता (सं० स्त्री०) १ रुकावट, रोक, अड़चन। २ विघ्न, वाधा।

प्रतिवन्धि (सं० पु०) प्रतिवध्नात्यनेनेति प्रतिवन्ध-इन्। अनिष्टान्तर प्रसञ्जक वाक्य, प्रतिवन्ध।

प्रतिवन्धिका ( सं ० स्त्रो० । प्रतिवन्धक स्त्रियां टाप्, कापि अत-इत्वं। प्रतिवन्धक।

प्रतिवन्यु (सं॰ पु॰ ) प्रतिरूपो वन्युः प्रादिसमासः। वन्यु तुल्य दौहित्रादि, वह जो बन्युके समान हो।

प्रतिवध्य (सं० ति०) प्रति-वन्ध-यत्। प्रतिवन्धनीय। प्रतिवल (सं० ति०) प्रतिगतं वलमस्य। १ समर्थं,

शक्त । २ शकिमें समान, वरावरकी ताकतवाला ।

प्रतिवला (सं० स्त्री०) अतिवला, ककही नामका पौधा। प्रतिवाणी (सं० स्त्री०) प्रतिरूपा वाणी। १ प्रत्युक्ति,

प्रत्युत्तर । २ अनुपयुक्त । ३ असुविधाजनक । अमनोमत ।

प्रतिवाधक (सं० ति०) १ वाधा करनेवाला, रोकनेवाला । २ कष्ट पहुंचानेवाला । प्रतिवाधन (स'० हो०) प्रति-वाध-ल्युट्। १ बिब्न, वाधा। २ पीड़ा, कष्टे।

प्रतिवाहु (सं०पु॰) प्रतिगतो वाहुं। १ वाहका अगला भाग। २ पुराणानुसार श्वफल्कके एक पुत और अक्रूरके भाईका नाम।

प्रतिविभ्व ( सं ॰ पु॰) प्रतिह्नपं विभ्वं प्राविस॰ । १ प्रतिमा, मृत्ति । २ प्रतिच्छाया, परछाई, छाया । ३ दप<sup>°</sup>ण, शोशा । ४ चित्न, तस्वीर ।

प्रतिविम्बक (सं० पु॰ ) परछाँईके समान पोछे पीछे चलनेवाला।

प्रतिविम्बन (सं ० हो) ०) प्रतिविम्ब नामधातु भावे स्युट्। अनुकरण । सन्छपदार्थमें अनुरूप आङ्गति पतन ।

प्रतिविम्बबाद (सं॰ पु॰) प्रतिविम्बस्य वादः ६ तत्। वेदान्तका वह सिद्धान्त जिसके अनुसार यह माना जाता है, कि जीव वास्तवमें ईश्वरका प्रतिविम्ब मात है।

वेदास्तद्श न भीर ब्रह्म शृथ्द देखां।

प्रतिविम्वित (सं ० ति०) १ जिसका प्रतिविम्य पड़ता हो, जिसकी परछाँही पड़ती हो। २ वह जो परछाँही पड़नेके कारण दिखाई पड़ता हो। ३ जो कुछ अस्पष्ट रूपसे व्यक्त होता हो, जिसका आभास मिळता हो।

प्रतिवीज (सं• ह्यो०) नष्ट वीज, जिसका वीज नष्ट हो गया हो। जिसकी उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो।

प्रतियुद्ध (सं ० ति ०) प्रति-बुध-कर्त्तरि क । १ जागरित, जागा हुआ । २ झात, जो जाना गया हो । ३ आलोचित, जिसकी आलोचना की गई हो । ४ उन्नत, जिसकी उन्नति हुई हो ।

प्रतिबुद्धि (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-बुध-किच् । विपरीत बुद्धि, उलटी समभा।

प्रतिवोध (सं ॰ पु॰) प्रति-युध भावे धज्। १ जागरण, जागना। २ ज्ञान। (ति॰) ३ जागरित, जागा हुआ। ४ ज्ञाता, जाननेवाला।

प्रतिवोधक (सं० द्वि०) प्रति-वोधयतीति प्रति-वृध-णिव्-ण्डुल् । १ तिरस्कारकारक, निन्दा करनेवाला । २ शिक्षक, शिक्षा देनेवाला । ३ प्रतिवोध करानेवाला । ४ जागरण-कारी, जागनेवाला । ५ झान उत्पन्न करनेवाला ।

प्रतिवोधन (स'० क्ली०) १ पृवोधन, ज्ञान उत्पन्न कराना। (क्की०) २ जागरण, जगाना। पृतिवोधवत् ( सं ० ति० पृति-वोधः अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व । प्रतिवीधयुक्त । प्रतिवोधिर् (सं ० त्रि०) प्रति-त्रुध-भविष्यति-णिनि । भावि प्रतिवोधयुक्त । २ शास्त्र-प्रतिवोधी । प्रतिवोधिपुत (सं०पु०) एक वौद्धाचार्य। प्रतिसद (सं ० पु०) प्रतिकृत्नो भटः प्रादि समासः । । १ प्रतियोध, वरावरका योद्धा। २ वह जिससे युद्ध होता हो, मुकावला करनेवाला । ३ शतु, वैरी, दुश्मन । এतिभरता ( स'० स्त्री० ) शबुता, दुश्मनी, वैर । प्रतिभय (सं० ति०) प्रतिगतं भयं यत्न । १ भयङ्कर । ( क्ली॰ ) २ प्रतिगतं भयं प्राद्सि॰ । २ भय, डर । प्रतिभत्ति (सं ० स्त्री०) पिता माताका भरणपोपण। प्रतिभा (सं ० स्त्रो•) प्रति-भाति शोभते (ति प्रति-भा-ऋप्-टाप् । १ बुडि, समभा । २ प्रत्युत्पन्नमतित्व, वह असाधारण मानसिक शक्ति जिसकी सहायतासे मनुष्य आपसे आप, विशेष प्रयत्न किये विना ही किसी काममें वहृत अधिक योग्यता प्राप्त कर छेता और दूसरोंसे आगे वढ् जाता है।३ दीप्ति, चमक। सादूर्य, समानता। प्रतिभाकृट ( सं ॰ पु॰ ) एक वोधिसत्वका नाम। प्रतिभाग (सं ० क्ली०) १ वह फल जी प्रत्येक मनुष्य । राजाके व्यवहारके लिये उन्हें देता है। २ प्रत्येक भाग। प्रतिभागशस् ( सं ० अव्य० ) प्रत्येक भाग । प्रतिभात (सं ० ति०) प्रति-भा-कर्त्तरि-क। १ ज्ञानमें बहता हुआ। २ प्रदीप्तियुक्त, जगमगाता हुआ। प्रतिमान (सं ० ह्यी०) प्रति-मा-स्युट् । १ वृद्धि, समकः। २ प्रभा, चमक । प्रतिभानवत् ( सं ० ति० ) प्रतिभान अस्त्यर्थे मतुप् मस्य च । प्रतिभानयुक्त । प्रतिभानु (सं ० पु०) सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्ण-के एक पुलका नाम। प्रतिभान्वित सं० ति० ) प्रतिभया अन्वितः । १ प्रगल्भ, प्रतिमाशाली । २ प्रत्युत्पन्नमतियुक्त । ( पु॰) ३ श्रीकृष्ण-के ६४ प्रकारके मुख्य गुणोंमेंसे एक गुण। प्रतिभामुख ( सं॰ ति॰) प्रतिभान्वितं मुखमस्य। प्रगत्भ, प्रतिभाशाली ।

प्रतिभावत् ( सं ० त्रि० ) प्रतिमा विचतेऽस्य मतुप् मस्य । प्रतिभान्वित, प्रतिभाशास्त्री । चमकदार। प्रतिभावान् (हिं ० वि० ) प्रतिभावत देखो । प्रतिभाशाली सं• वि• ) प्रतिभावाला, जिसमें प्रतिभा हो । प्रतिभाषा (सं ० स्त्री०) १ उत्तर, जवाव। २ वह जो किसी उत्तरके उत्तरमें कहा जाय, प्रत्युत्तर । ३ वादीका कथन, मुद्दईका वयान । प्रतिभास (सं ० पु॰) प्रति भास-भावे-वज् । १ प्रकाश, चमका २ आइति। ३ भ्रम, धोखा। कर्त्र सच्। ८ प्रकाशमान । प्रतिभासन (सं० क्ली०) प्रति-भास-ल्युर्। प्रकाशन । प्रतिभासम्पन्न ( सं ० द्वि० ) प्रतिभाशाली, जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिमाहानि ( सं ० पु० ) प्रतिभायाः हानिः । वुद्धिनाश । प्रतिभिन्न ( सं ० बि० ) विभक्त, जो अलग हो गया हो । प्रतिभू ( सं ० पु० ) प्रतिरूपः प्रतिनिधिर्वा भवतीति । प्रति-भू ( भुव: सहान्तर्याः । पा ३।२।१३६ ) इति किए । स्टग्नक, व्यवहार-शास्त्रमें वह व्यक्ति जो ऋण देनेवाले (उत्तमर्ण)-के सामने ऋण लेनेवाले ( अधमर्थ ) की जमानत करे.

याद्यवस्वयसंहितामें प्रतिभूका विषय इस प्रकार लिखा है—

जामिन ।

"वर्शने मत्यये दाने प्रतिभाव्यं विधीयते । आद्यौ तु वितथे दाव्या वितरस्य सुता अपि॥" (याज्ञ० २।५४)

दर्शन, प्रत्यय और दान इन तीन कार्योंमें जामिनकी जकरत पड़ती है। अर्थान् विचारपितके निकट आप इसे छोड़ दें, 'जकरत पड़ने पर में इसे हाजिर कर दूंगा' ऐसे दर्शनका तथा किसो महाजनको कहे, 'आप इसे ऋण दें, यह आपको धोखा नहीं देगा, वड़ा विश्वासी है' ऐसे विश्वासका एवं 'वह यदि नहीं देगा, तो में दूंगा' ऐसे दानका यही तीन प्रकारका प्रतिभूत्व विहित हुआ है। इनमेंसे दर्शन और विश्वास सम्बन्धीय प्रतिभू-की वात यदि ठीक न हो अर्थात् थे दोनों यदि पीछे

हर जांय, तो महाजनका रुपया इन्हीं दोनीको देना पड़ेगा। पग्नु यदि इसी वीच उनकी मृत्यु हो जाय, तो उनके पुत उस ऋणके दायी नहीं हो सकते। जिसके लिये प्रतिभू हुए थे, वह यदि ऋण परिशोध न करें, तो उन्हें ही उत्तमणेका ऋण परिशोध 'करना होगा उनकी मृत्यु होने पर उनके छड़के ऋणशोध करेंगे। दशैन और प्रत्ययके प्रतिभुञोंकी मृत्यु पर उनके छड़के यदि जामिनके अनुरूप कार्यं न कर सके, तो उन्हें कोई पाप नहीं होगा। परन्तु दानके प्रतिभूका पुत यदि ऋण परिशोध न करें, तो वह अवश्य पापभागी होता है। यदि वहुतसे आदमी अंशका निर्देश न करके किसी एकके प्रतिभू हों, तो उसी प्रकार विशेष अंशका निर्देश न करके समो मिल कर अध्रमणेंके अभिप्रायानुसार ऋण शोध करनेको वाध्य हैं। प्रतिभूके सामने उत्तमर्ण जो कुछ देगा, अधमणै-प्रतिमूको उसका दूना लगा कर देना होगा। परन्तु स्त्री-पशुका अधमर्ण स्त्री-पशुपदान-कारी प्रतिभूको सवत्स स्त्रीपशु देवे। इसी प्रकार धान्य-के अधमर्णको उसे (प्रतिभूको ) तिगुना धान, चस्रके अधमर्णको चौगुना वस्र और रसके अधमर्णको अठ-गुना रस देना चाहिये। ( याज्ञवल्क्यहरू २ अ०)

इसका विस्तृत विव ण मतुके अग्रग अक्षायमें देखा। प्रतिमेद (सं० पु०) प्रति-भिद्यत्वज्ञ । १ प्रभेद, अन्तर, फर्का २ आविष्कार।

प्रतिभेदन ( सं० हो० ) प्रति-भिद-भावे ब्युट् । १ नेतादि-का उत्पादन, आंख आदिका निकालना । २ विभाग करना । ३ भेद उत्पन्न करना, खोलना ।

प्रतिभोग (सं० पु०) प्रति-भुज घन्। उपभोग।
प्रतिम (सं० ति०) प्रतिभातीति प्रति-मा-क (अत्वर्वाद-सर्गे। पा ३।१।१।६) सद्रुण, समान। इस शब्दका व्यवहार केवल यौगिकमें, शब्दके अन्तमें होता है। जैसे, मेधप्रतिम अर्थात् मेघके समान।

प्रतिमण्डक (सं॰ पु॰) शालक रागका एक मेद।
प्रतिमण्डल (सं॰ लि॰) प्रतिकृषं प्रण्डलं, प्रादिसमासः।
स्यादि मण्डलकी परिधि, सूर्यं आदि चमकते हुए अहोंका
वेरा।

प्रतिमत्स्य ( सं॰ पु॰ ) जाति तथा तन्नामक देशचासी।

प्रतिमन्त्रण (सं० क्ली०) उत्तर देना, जवाव देना। प्रतिमर्श ( सं ० पु० ) शिरोवस्तिमेद, एक प्रकारको शिरो वस्ति जो नस्यके पांच मेदोंके अन्तर्गत हैं। सुश्रुत्रा लिखा है, - औपध्र अथवा औषधके साथ पकाये हुए घीको नाकके नथनों द्वारा ऊपर चढ़ानेका नाम नस्य है। यः नस्य दो प्रकारका है, शिरोविरेचन और स्नेहन। इन दोनोंके भी फिर पांच भाग किये गये हैं, यथा-नस्य, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड़ और प्रधमन। इस प्रति-मर्शका चौदह समयमें प्रयोग किया जा सकता है। यथा~ प्रातःकाल सो कर उडनेके समय दतुवन करनेके वाद, घरसे वाहर निकलनेके समय, मलमूल परित्यागके वाद, कवलग्रहण और अञ्चनप्रयोगके वाद, व्यायाम, व्यवसाय वा पथम्रमणके वाद, अभुक्तकालमें, वमन और दिवा-निदाके उपरान्त और सायंकालमें। ये चौदह प्रतिमर्श-के उपयुक्त समय माने गये हैं। इनमेंसे प्रातःकाल सी कर उठनेके समय इसका सेवन करनेसे नाकका मह निकल जाता है और मन प्रफुल रहता है। दतुवन करने-के वाद सेवन करनेसे दांत मजवूत होते और मुंहकी दुर्गन्ध नए होती है। घरसे वाहर निकलनेके समय सेवन करनेसे घूली और घुआं आदि नाकमें घुस नहीं सकते। मलमूल त्यागके वाद सेवन करनेसे आंखींकी ज्योति वढ़ती है। अभुक्तकालमे सेवन करनेसे श्रोतपथ-की विशुद्धिता और छघुता ; वमनके वाद सेवन करनेसे स्रोतपथसंत्रम रहेप्मा परिष्कृत हो कर अन्तमें रुचि ; दिवानिद्राके वाद सेवन करनेसे निद्राजन्य गुरुत्व और मलनाश तथा चित्तको एकाप्रता ; सायंकालमें सेवन करनेसे सुखसे निरा और उत्तम प्रवोध होता है। भिन भिन्न समयके प्रतिमरीका भिन्न भिन्न परिणाम वत-लावा गवा है।

प्रतिमञ्ज ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिकुलो मङ्घः प्रादिसमासः । प्रति-योध, शत्रुता, विरोध ।

प्रतिमा (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिमीयत इति अति-मा-अङ् तत-प्राप्। १ अनुकृति, किसोकी वास्तविक अथवा किएत आकृतिके अनुसार वनाई हुई मूर्ति या चित्र। २ गज-दन्तवन्ध, हाथियोंके दांत परका पीतल या तांबे आदिका वन्धन। ३ पृतिविम्व, छाया। ४ मट्टी, पत्थर या धातु आदिको वनी हुई देवताओंकी मूर्ति। पर्याय— प्रतिमान, प्रतियातना, प्रतिविश्व, प्रतिच्छाया, अर्था, प्रतिकृति, प्रतिच्छन्द, प्रतिनिधि, प्रतिकाय, प्रतिकृत।

'n

١,

"गिरिष्टे तु सा तस्मिन् स्थिता खसितलोचना । विभाजमाना शुशुभे पृतिमेव हिरणमयी॥"

( महाभारत १।१७।२७ )

शास्त्रीय पूमाणके अनुसार मृत्तिका, शिला और स्वर्णादि द्वारा देवताकी पृतिमृत्ति वनानी चाहिये। यह पृतिमा व्यक्त और स्थापितके भेदसे दो पृकारका है। जो स्वयमुत्पन्न है, वही व्यक्त है और जिसे मद्दी आदि द्वारा वना कर मन्त द्वारा प्रतिष्ठित करते हैं, उसका नाम स्थापित प्रतिमा है।

किस देवताको कैसी आकृति और उसके अङ्गप्रत्य-ङ्गादिका कैसा परिमाण होना चाहिये, इसका विस्तृत विवरण मरस्यपुराणके प्रतिमालक्षण नामक २३२, २३३ और २३४ अध्यायमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया।

देवीपुराणके मतसे,-एक दिन देवराज इन्द्रने ब्रह्मासे प्रतिमाकी आराधनाके विषयमें कुछ प्रश्न किये। इस पर ब्रह्मा, प्रधान प्रधान देवताओंने प्राचीनकालमें जिस जिस देवताकी आराधना करके जैसा जैसा वैभव प्राप्त किया था, उसके सम्मन्धमें इस प्रकार कहने छगे,— 'हे देवेश ! पहले शम्भुने अक्षमाला धारण करके मन्त-शक्तिमयी देवीकी आराधना की। इसीसे वे सर्वोके ईश्वर हुए हैं। मैं शैलमयी देवीकी पूजा करता हूं, इस कारण यह सुदुर्लभ ब्रह्मत्व मुक्ते प्राप्त हुआ है । विष्णु हमेशा इन्ट्रनोछमयी देवीको अर्चना करते हें, अतः उन्होंने सनातन ब्रह्मत्व प्राप्त किया। इसो प्रकार विश्वदेवगणने रौप्यमयी देवीकी, वायुने पित्तलमयीकी, वसुगणने कांस्य-मयीकी, दोनों अश्विनीकुमारने पार्थिवमयीकी, वरुणने स्फटिकमयीकी, अग्निने अन्नमयीकी, दिवाकरने ताझ-मयीकी, चन्द्रने मुक्तामयीकी, पन्नगगणने प्रवालमयीकी, असुरगण और राक्षसगणने छष्णलौहमयीको, पिशाचगणने पिञ्चल और सीसकमयीकी तथा मातृकागणने वज्रलोह-मयी देवोकी भक्तिपूर्वक आराधना करके प्रम वैसव वात किया था। अतएब हे इन्द्र! यदि तुम भी परम गति पाना चाहो, तो मणिमयी प्रतिमाका निर्माण करके शिवा-देवीकी आराधना करो। इससे तुम्हारे सभी अभीष्ट सिद्ध हो सकते हैं।

उक्त सभी प्रतिमाको सब प्रकारके प्रस्तर, शुभमय काष्टगृह और बलभोयुक्त मण्डपमें स्थापन करना हो प्रशस्त है। प्रतिमाको स्थापित करते समय पहले गन्य, पुष्प, धूप, दीप और माल्य आभरणादि द्वारा पहले उनका अधिवास करके पीछे नाना प्रकारकी वेदध्विन, वादित और खोकण्डध्यनिके साथ स्थापन करना होता है। इस प्रकार कहे गये उपकरणादि द्वारा जो व्यक्ति प्रतिमाकी स्थापना करते हैं, वे परलोकमें अञ्चल छुल लाभ करते हैं।

अग्निपुराणके मतसे,—भगवान्ने कहा है, कि मैं कियावानोंकी अग्निमें, मनीपियोंके हृद्यमें, खल्पवुद्धि-वालोंकी प्रतिमामें और द्यानियोंमें सव जगह विराजमान हूं। अर्थात् क्रियानिष्ठ व्यक्ति अग्निमें, मनीपो हृद्यमें और ज्ञानिगण समी जगह मेरे अस्तित्वको कल्पना करके दर्शन पाते हैं।

"अग्नौ कियावतामस्मि हृदि चाहं मनीविणाम् । प्रतिमाखन्पद्यद्योनां ज्ञानिनामस्मि सर्वेतः॥" (अग्निपु०).

सुवर्ण, रजत, ताम्र, रत, प्रस्तर, काष्ट्र, स्त्रीह स्त्रीर सीसक साधारणतः इन्हीं सब धातुर्जीकी सुन्दर प्रतिमा बना कर पूजा करना प्रशस्त है।

लक्षणान्वित मनोहर प्रतिमा वना कर मानव यदि पूजा करे, तो उसे अक्षय विष्णुलोकमें स्थान मिलता है। "प्रतिमां लक्षणवतीं यः कुर्याक्वेव मानवः।

केशवस्य परं लोकमक्षयं प्रतिपद्यते ॥" (ऑग्नपु०) प्रतिमाको गढ़ कर उनकी पूजा करनेका कारण तन्त्र-में इस प्रकार लिखा है—

"चिन्मयस्याप्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः। साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना॥" साधकोंको सुविधाके लिये हो उस चिन्मय, अब्रमेय, निष्कल और अशरीरी ब्रह्मका रूप कल्पित होता है।

4 तौलनेका वाट, वटखरा । ६ साहित्वका एक अलङ्कार । इसमें किसो मनुष्य पदार्थ वा व्यक्तिकी स्थापनाका वर्णन होता है ।

Vol. XIV. 133

पृतिमान (सं० क्ली०) पृतिमीयतेऽनेनेति पृति-मा-ख्युट्।
१ पृतिविम्य, परछांही। २ हाथीके दोनों वड़े दांतोंके
वीचका स्थान। ३ साहुरण, समानता, वरावरी। ४ हस्ती
का छछाटदेश, हाथीका मस्तक। ५ हृष्टान्त, उदाहरण।
६ पृतिनिधि।

पृतिमाया (सं० क्की०) पष्ट्यमान कवितावली । स्मरण-शक्तिका परिचय देनेके लिये जो सव कविताप पढ़ी जाती हैं उन्हें प्रतिमाया कहते हैं। २ प्रतिक्षप माया। पृतिमार्गक (सं० पु०) प्रतिदिशं मार्गो गमनपन्था यस्य। १ पुरविशेष । २ प्रत्येक मार्ग।

प्रतिमाला (सं खो ) स्मरणशक्तिका परिचय देनेके लिये दो आदमियोंका एक दूसरेके पीछे लगातार क्षोक वा कविता पढ़ना। कभी कभी एकके क्षोकका अन्तिम अक्षर लेकर दूसरा उसी अक्षरसे आरम्भ करनेवाला क्षोक पढ़ता है। इसे अंत्याक्षरी कहते हैं। जो आगे नहीं कह सकता, उसकी हार समभी जाती है।

पृतिमास (सं॰ अव/०) मासे मासे प्रतिमासमित्यवायी-भावः । प्रत्येक मास, हर माह ।

प्रतिमास्य ( सं॰ पु॰ ) जनपद और तज्जनपदवासी जाति-विशोष ।

प्रतिमित (सं० पु०) नृपभेद । २ प्रत्येक मित ।
प्रतिमुक्कल (सं० अव्य०) प्रत्येक मुक्कल या कली ।
प्रतिमुक्क (सं० वि०) प्रतिमुच्यते स्मेति प्रति-मुच-क । १
परिहित वस्त्रादि, पहना हुआ कपड़ा । २ परित्यक्त,
जिसका त्याग कर दिया गया हो । ३ वद्ध, जो वंधा हुआ
हो । ४ प्रतिनिवृत्त, जो रोक दिया गया हो । ५ विच्युत,
जो अलग कर दिया गया हो । ६ प्रत्यपित, जो फिरसे
दिया गया हो ।

प्रतिमुख ( सं ॰ क्ली॰ ) साहित्यद्पैणोक्त नाटकाङ्ग सन्धि-भेद, नाटककी पांच अङ्गसंधियोंमेंसे एक । "मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहतिः । इति पञ्चास्य भेदाः स्युः क्रमाह्यक्षणमुच्यते ॥" ( साहित्यद॰ ६ अ॰ )

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्घ और उपसंहति यही पांच नाटककी अङ्गसन्धि है। नाटकके प्रतिमुखमें ठास, परिसप, विधृत, तापन, नर्म, नर्मग्रुति, प्रगमन, विरोध, पर्यु पासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार ये सव प्रतिमुखके अङ्ग हैं अर्थात् जहां प्रतिमुख वर्णित होगा वहां इन सव विषयोंकी वर्णना करनी होगी । रित-भोगार्थ इच्छाका नाम विलास है।

"समीहा रंतिभोगार्था विलास इति कथ्यते।" (साहित्यदः)

इसका उदाहरण-

"कामं प्रिया न खुलमा मनस्तु तदुभावदर्शनाश्वासि।" ( शकुन्तला )

प्रिया सुलमा नहीं है, तिस पर भी मन उसे देखनेका नितान्त अभिलापी है। यहां रितभोगार्थ इच्छाका चर्णन हुआ है, इसीसे यह विलास हुआ।

२ पश्चाद्धाग, किसी चीजका पीछळा भाग। प्रतिमुद्रा ( सं ० स्त्री० ) नामाङ्कित मोहरकी छाप। प्रतिमुद्धत्ते ( सं ० अञ्य० ) प्रत्येक मुद्दूर्च, अनवरत, ळगा-तार।

प्रतिमूर्त्ति (सं • स्त्री॰) प्रतिरूपा मृत्तिः प्रादिसः । देवादि-मृत्ति, आकृति, छवि ।

प्रतिमूपिका (सं॰ स्त्री) इन्दुरिवशेष, एक प्रकारका चूहा।

प्रतिमोक्ष ( सं ० पु० ) मोक्षप्राप्ति ।

प्रतिमोक्षण (सं० क्लो॰) १ मोक्ष्यक्षि । २ मोचन ।

प्रतिमोचन (सं ० क्ली०) प्रति-मुच्-ल्युट्। १ वन्यन-मोचन, वन्धनसे मुक्त करना। २ निर्यातन। ३ परिधान। प्रतियद्ध (सं ० पु॰) प्रतियत्यते इति प्रति-यत् प्रक्ते (यज्याच यतिरुद्धप्रच्छवस्रों, वर्ष्ट् । पा २।३।१०) इति नङ। १ लिप्सा, लालच। २ उपप्रह । ३ निप्रहादि। ४ वन्दी, कैदी। ५ संस्कार। ६ गुणान्तराधानक्तप संस्कार। ७ प्रहणादि। ८ रचना (ति०) ६ प्रयत्नयुक्त।

प्रतियातन (सं ० ह्यी ० ) प्रति-यात-त्युर् । वैरनिर्यातन । प्रतियातना (सं ० ह्यी ० ) प्रतियात्यतेऽनया इति प्रति-यत- णिच् (न्यास्थन्धोयुष । पा ३।३११ ०० । इति युच् ततप्राप्। १ प्रतिमा, मूर्ति । २ तुल्यह्म यातना ।

प्रतियान (सं ० ह्यी ) प्रति-या-ल्युट्। प्रतिगमन, लीटना, वापिस भाना ।

Jan 1 - 200

प्रतियायिन् ( सं ० ति० ) प्रति-या-भविष्यति गम्यादित्वात् णिनि । भावियानयुक्त, भविष्यत् यानयुक्त । प्रतियुद्ध (सं० क्ली०) प्रतिरूपं युद्धं प्रादिसमासः। अनुह्मपयुद्ध, बरावरीकी लड़ाई। प्रतियूयप ( सं ॰ पु॰ ) तुल्यक्रप यूथपति । प्रतियोग ( सं ॰ पु॰ ) प्रति युज्यते इति प्रति-युज-भावे घञ्। १ विरोधविपक्षता, शबुता, तुशमनी । २ विरुद्ध-सम्बन्ध, विरोधी पदार्थोंका संयोग। ३ पुनरुद्योग, वह उद्योग जो फिरसे किया जाय । ४ मारक, वह जिससे किसी पदार्थका परिणाम नष्ट हो जाय। प्रतियोगिक (सं ० ति०) १ प्रतियोगयुक्त । २ निकट सम्बन्धयुक्त । प्रतियोगिता (सं• स्त्री०) प्रतियोगिनः भावः, प्रतियोगि-भावे- तल्-स्रियां टाप् । १ प्रतिद्वन्द्विता, चढ़ा-ऊपरी । २ बिरोध, शबुता। प्रतियोगितावच्छेदक ( सं ० वि ०) प्रतियोगितावच्छित्र धर्म, जिसमें प्रतियोगिता हो, ऐसा धर्म । प्रतियोगिन् (सं ॰ पु॰) प्रतिक्रपं युज्यते इति प्रति-युज-घिनुण्। १ विरोधी, वैरी । २ हिस्सेदार, शरीक । ३ सहायक, मददगार । ४ साथी । ५ वरावरवाला, जोड़का । ( ति॰ ) ६ मुकावलेका, वरावरीका । ७ मुकावला करने-वाला, सामना करनेवाला। प्रतियोद्धा (हिं पु॰) १ शतु, विरोधी । २ मुकावलेका **छडनेवा**छा । पतियोद्ध्र (सं ० ति०) प्रति-युध-तृष् । प्रतिरूप योदा । प्रतियोद्धा देखो । प्रतियोध ( सं॰ पु॰ ) प्रति-युध-धन् । प्रतिभट, प्रतिक्रप-योद्धा । प्रतियोनि (सं॰ अब्य॰ ) १ प्रत्येक योनि । २ उत्पत्तिके अनुरूप । प्रतिर ( सं ॰ ति॰ ) जठरमें चिरकाद्यावस्थान, जो सदाके लिये पेटमें रहता है। प्रतिरक्षण ( सं ॰ पु॰ ) रहा,हिफाजत । प्रतिरथ ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिकूछी रथी यस्य, प्रादिसमासः। १ प्रतियोघ, वरावरीका लड्नेवाला । २ पुराणानुसार यदुवंशी वजाभ्वके पुतका नाम।

प्रतिरम्म ( सं • पु॰ ) प्रतिलम्म, लाम । प्रतिरव ( सं ॰ क्ली॰ ) प्रतिरुवन्ति प्रति-र-करोरि अचू । १ प्राण। २ प्रतिकूल शब्द। प्रतिराज ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिपक्ष नृपति, विपश्च राजा । प्रतिराजन् (सं ० पु०) विपक्ष राजा। प्रतिरात (सं० अन्य०) प्रत्येक रात । प्रतिराध (सं० पु०) १ वाधा, विघ्न । प्रतिरुद्ध (सं ० ति ०) प्रति-रुध-क । १ अवरुद्ध, रुका हुआ। २ निवारित, अटका हुआ। प्रतिरूप ( सं ० ह्यी० ) प्रतिगतं प्रतिरूतं वा रूपमिति प्रादि समासः । १ प्रतिमा, मूर्ति । २ महाभारतके अनुसार एक दानवका नाम । ३ चित्र, तस्तीर । ४ मेरुसाचिंकी दुहिता। (ति॰) प्रतिगतं रूपमस्य। ५ अनुरूप, एक-सा। प्रतिरूपक ( सं ० क्ली० ) प्रतिरूप-स्वार्थे-कन्। प्रतिविस्य। प्रतिरूप्य ( सं ० क्वी० ) समस्पता, तुल्यरूपता । प्रतिरोद्धा (हि॰ वि॰ ) १ विरोधी, शबुता करनेवाला। २ वात्रा डालनेवाला, रोकनेवाला । प्रतिरोद्ध (सं० वि०) प्रति-रुध नृण्। प्रतिगेदा देखो। मतिरोध । सं ० पु॰ ) प्रतिरुध्यनेऽ नेनेति प्रति-स्थ-करणे घत्र्। १ तिरस्कार । २ निरोध । ३ प्रतिविस्त्र । व्रति-रुघ-कर्त्तरि अच्। ४ सत्व्रतिपञ्ग। प्रतिरोधक ( सं॰ पु॰ ) प्रतिवणद्धि प्रतिवध्य सीर्यं करो-तीति प्रति-रुध-ण्बुल्। १ प्रतिवन्धक, रोकने या वाधा-डालनेवाला । २ हटचौर, चोर, ठग, डाकू आदि । प्रतिरोधन (सं॰ क्ली॰) प्रति-रुध-स्युट् । प्रतिरोध, प्रतिरोध करनेको क्रिया या भाव। प्रतिरोधित (सं ० ति०) प्रति-रुध-णिच्-क । १ निवा-रित, जो रोका गया हो । २ ब्याहत, जिसमें वाधा डाली गई हो । प्रतिरोधिन् (सं॰ पु॰) प्रतिरुणद्वीति प्रति-रुध-णिनि। १ प्रतिवन्धक, रोकने या वाधा डालनेवाला। २ चोर, डकैत आदि। प्रतिलक्षण ( सं ॰ क्ली॰ ) चिह्न, सनूत । प्रतिलभ्य (सं॰ पु॰) प्रति-लभ-यत् । प्राप्तियोग्य, वह जो पाने लायक हो। प्रतिख्म्म (सं ॰ पु॰) प्रति-खम्म-मावे-घञ् । लाम, प्राप्ति ।

प्रतिलाभ (स॰ पु॰) प्रति-लभ-घज् । १ लाम, प्राप्ति । २ शालक रागको एक मेद ।

प्रतिलिङ्ग ( सं ॰ अन्य ) प्रत्येक लिङ्ग ।

प्रतिलिपि (सं ॰ स्त्री॰) लेखकी नकल, किसी लिखी हुई चीजकी नफल।

प्रतिलोम (सं ० ति ०) प्रतिगतं लोम आनुकुल्यं। अव प्रत्यक्व पूर्वीत् सामलोम्नः। पा ५/४/३५/इति समासान्तोऽ च् प्रत्ययः। १ विपरीत, प्रतिकूलः। २ विलोम, जो नीचेसे ऊपरकी ओर गया हो, जो सीधा न हो । ३ नीच।

प्रतिलोमक ( सं ० पु० ) प्रतिलोम स्वार्थे कन् । १ विपरीत, प्रतिकूल । २ लोमका विपरीत ।

प्रतिलोमज (सं० वि०) प्रतिलोमात् जायते इति प्रतिलोम-जन्-ड । १ नीचवर्णके पुरुष और उच्च वर्णको कन्यासे उत्पन्न सन्तान । यह जाति अति निरुष्ट होती है। "संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः।

अन्योन्यव्यतिषकाश्च तान् प्रवक्ष्याम्यशेषत ॥"

(मनु १० अ०)

गनुमें लिखा है, कि परस्परकी आसक्तिवशतः सङ्कर जातिकी उत्पत्ति होती है। यह सङ्कर जाति अनलोमज और प्रतिन्होमज है। इस सङ्कर जातिमें चएडाल, सूत, वैदेह, आयोगव, मागध और क्षत्ता ये छः प्रतिलोमज सङ्करवर्ण हैं। सूत क्षतिय पिता और ब्राह्मणी मातासे, वैदेहिक वैश्य पिता और ब्राह्मणी मातासे, चाएडाल शूद पिता और ब्राह्मणी मातासे, चाएडाल शूद पिता और ब्राह्मणी मातासे, मागध वैश्य पिता और क्षतिया मातासे तथा आयोगव जाति शूद पिता और वैश्या मातासे तथा आयोगव जाति शूद पिता और वैश्या मातासे उत्पन्न हुई है। इन लोगोंको पितृकार्यका अधिकार नहीं है। ये सभो जातियां नराधम हैं।(अह १० अ०)

विश्णुसंहितामें लिखा है, प्रतिलोमा स्त्रीसे उत्पन्न
पुत्त आर्यस माजमें निन्दित हैं। इन सब जातियों मेंसे
आगोगवों की वृत्ति रङ्गावतरण, पुक्तसों (क्षत्ता)की व्याधत्व,
मागथों को स्तवपाठ, चएडालों की वध्यवध अर्थात्
जल्लादका कार्य, वैदेहिकों की स्त्रोरक्षा और स्त्रीजोवन
तथा स्त्रों को वृत्ति अश्वसारथ्य निर्द्धारित हुई है।
ग्रामके वहिर्मागमें वास और सुतव्यक्तिका वस्त्र पहनना

ही चएडालोंका विशेषत्य है। (विष्णु-०१६ अ०) प्रतिलोमतस् (सं० अव्य०) प्रतिलोम-तस् । प्रतिलोम कमसे, प्रतिलोमकपसे ।

प्रतिलोमविवाह (सं० पु०) वह विवाह जिसमें पुरुष नीच वर्णका और स्त्रो उच्च वर्णकी हो।

प्रतिवक्तव्य ( सं ० ति० ) प्रति-वच-तन्य । प्रत्युक्तर योग्य, जवाव देने लायक ।

प्रतिवचन (सं० क्षी०) प्रतिद्धपं यचनं प्रादिसमास:। १ प्रतिवाक्य । २ उत्तर । ३ विरुद्धवाक्य । ४ प्रति-निर्देश ।

प्रतिवचस् ( सं ० क्वी० ) प्रतिरूपं वचः। प्रत्युत्तर, जवाब ।

प्रतिवत् (सं० ति०) प्रति अस्त्यर्थे मतुष् मस्य व। प्रतिशब्द्युक्त ।

प्रतिवत्सर (सं• अव्य॰) प्रति वर्षे, हर साल। प्रतिवन (सं• अव्य॰) प्रत्येक वनमें।

प्रतिवर्णिक (सं• ति० ) १ अनुद्धप वर्णसम्बन्धी । २ तुल्यवर्णयुक्त ।

प्रतिवर्त्तन (सं० क्की०) प्रति-वृत-ल्युद् प्रत्यागमन, लौरना, वापिस आना ।

प्रतिवतमैन् ( सं॰ ति॰ ) भिन्न पथावलम्बी, प्रतिक्रूल-प्रथानुचारी ।

प्रतिचर्द्धिन् ( सं ० ति० ) प्रति-वृध-णिनि । तुल्यवलशाली, अपने जोड़का ।

प्रतिवसति ( सं॰ थन्य॰ ) प्रत्येक गृहमें, घर घरमें। प्रतिवसथ ( सं॰ पु॰ ) ग्राम, गांव।

प्रतिवस्तु (सं ० स्त्री०) प्रतिरूपं वस्तु प्रादिसमासः। तुल्यरूप वस्तु, एक-सा पदार्थं।

प्रतिवस्तूपमा (सं० स्त्रो०) अर्थालङ्कारमेद, वह कावग्रा-लङ्कार जिसमें उपमेय और उपमानके साधारण धर्मका वर्णन अलग अलग वाक्योंमें किया जाय। इसका लक्षण—

"प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाषःयोगंम्यसाम्ययोः।
पकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्त निर्दिश्यते पृथक्॥"
\_ (साहित्यद० १०११६३)

उदाहरण—"धन्यासि चैद्भि गुणैक्दारैर्यया समाक्ष-व्यत नैपघोऽपि इतः स्तुतिः काखलु चन्द्रिकाया यद्ग्धि-मप्युत्तरलोकरोति॥" (साहित्यद्०१०प०)

हे वैदर्भि ! तुम धन्य हो, क्योंकि उदार गुण-समृह द्वारा तुमने नलको भी आरूष्ट किया है । चन्द्रिका यदि समुद्रको तरङ्ग कुला कर डाले, तो इसमें उसकी तारीफ ही क्या ! अर्थात् तुम्हारे गुणसे नल राजा आरूष्ट होंगे, इसमें और आश्चर्य ही क्या ! यहां पर उत्तरलो-करण और समाकर्पण दोनों हो एक हैं, परन्तु भिन्न बाक्य द्वारा निर्दिष्ट होनेके कारण प्रतिवस्त्पमा अलङ्कार हुआ । यह अलङ्कार मालाकार है, अर्थात् दो वाक्य न हो कर यदि विभिन्न शब्द द्वारा अनेक वाक्यगत एकी-कारण हो, तो भी प्रतिवस्त्पमा अलङ्कार होगा ।

प्रतिवहन (सं • क्ली॰) प्रति-वह-ल्युट्। विरुद्धदिशामें जाना, उलटी ओर ले जाना।

प्रतिवाक्य (सं० क्ली०) १ प्रतिरूप वाक्य । २ प्रतिध्वनि । ३ उत्तर प्रत्युत्तर ।

प्रतिवाच् (सं • स्त्री • ) प्रतिक्रपा वाक् । उत्तर, जवाव । प्रतिवाणि (सं • स्त्री • ) प्रतिक्रपा वाणिः प्राद्सि • । १ उत्तर, जवाव । २ प्रतिकूल वाक्य । ३ समानार्थं वाक्य । ४ प्रतिस्विति ।

प्रतिवात (सं ० ति ०) प्रतिगतः वातो यतः, प्रादि-समासः। १ जिस औरसे वायु आती हो। २ बातामिसुख्य, वायुका प्रतिकृत । (पु ०)३ वित्व मृक्ष, बेळका पेड़।

प्रतिबाद (सं ॰ पु॰) प्रति-यद्-भावे-घञ्। १ वह वात जो किसी दूसरी वात अथवा सिद्धान्तका विरोध करने-के लिये कही जाय, विरोध, खएडन। २ विवाद, वहस। ३ उत्तर, जवाव।

प्रतिवादक ( सं० पु० ) प्रतिवाद करनेवाळा, वह जो प्रति-वाद करे।

प्रतिवादिता (सं • स्त्री • ) १ पृतिवादींका धर्म । २ प्रति-वादका भाव ।

पतिवादी (सं० पु०) १ वह जो पृतिवाद करे। प्रतिवाद या खएडन करनेवाला। २ वह जो किसी वात में तर्क करे। ३ वह जो वादीको वातका उत्तर है।

पतिवाप (सं ॰ पु॰) पति-वप-धञ्। १ कषाय औषधमें | Vol. XIV 134

चूर्णादि पृथ्लेप । वृक्षमूलादिका काथ वनानेके वाद उसमें जो द्रव्य डाला जाता है, उसे पृतिवाप कहते हैं। २ कल्क, चूर्ण । ३ धातुभस्मीकरण, धातुको मस्म करनेका काम । ४ पानीय औषधविशेप । पृतिवार (सं०पु०) पृति-वृ-धञ्। निवारण, रोकना । पृतिवारण (सं०ात०) पृांत-वारि-कत्तरि त्यु । १ निवा-रक, रोकनेवाला । (पु०) २ दैत्यमेद, एक असुरका नाम । ३ मत्त हस्ती, मतवाला हाथी । भावे-त्यु ट्। ४ निवारण, रोकना, मना करना ।

प्रतिवार्ता (सं ० स्त्री०) प्रतिहरण वार्ता । प्रत्युत्तर स्थानीय-वृत्तान्तमेद ।

प्रतिवार्य (सं० त्नि०) प्रति-वृ-ण्यत् । निवारणीय । पूर्तिवाश (सं० क्वी०) पूर्तिवाद, वाक्वितएडा । पूर्तिवास (सं० स्त्री०) १ सुगन्धि, सुवास, खुशवू । २ पड़ोस, समीपका निवास ।

पूर्तिवासर (सं॰ पु॰) पूर्तिगतो वासरं।पूर्तिदिन, हर रोज।

पृतिवासिता ( सं॰ स्त्री॰ ) पड़ोसका निवास, प्तिवासका भाव ।

प्रतिवासी (सं० पु०) पड़ीसमें रहनैवाला, पड़ोसी।
प्रतिवासुदेव (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार विष्णु या
वासुदेवके नी शत् जो नरकमें गये थे। उनके नाम
ये हैं—अश्वय्रीव, तारक, मोद्क, मधु, निशुम्म, वलि,
प्रह्वाद, रावण और जरासन्ध।

प्रतिवाह ( सं॰ पु॰) पुराणानुसार अक्रूरके आई, श्वफलके पुत्र।

प्तिविधान (सं० क्ली०) पृति-वि-धा-त्युट्। १ पृति-कार। २ पृष्ठतिके उपपादनके लिये उपायका अवलम्बन। पृतिविधि (सं० पु०) विधीयते वि-धा-कि। पृतीकार। पृतिविधित्सा (सं० स्त्री०) पृतिविधातुमिच्छा पृति-विधा-सन्, स्त्रियां टाप्। पृतिकारको इच्छा।

प्रतिविधेय (सं० ति०) प्रतिविधानके योग्य, प्रतिकार करने लायक।

पूर्तिविन्ध्य (सं॰ पु॰) द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न युधि-ष्टिरके पुतका नाम।

प्रतिविभाग ( सं ॰ पु॰ ) पृति-वि-भज-घज्। पृत्येक विभाग । पृतिविरक्ति (सं० ति०) पृति-वि-रम-क्तिन् । १ वे राग्य, प्त्येक वस्तुके पृति विरक्ति। २ विराम। पृतिविरुद्ध (सं० ति०) विद्रीहभावापन्न, विरुद्धाचारी। प्रतिविशेष (सं०पु०) विशेष घटना। प्रतिविशिष्ट (सं० ति०) प्रति-वि-शास-क । उत्ऋष्ट । प्रतिविश्व (सं०पु०) विश्वका प्रत्येक पदार्थ। प्रतिविषय ( सं ० पु० ) शन्दादि प्रत्येक विषय अर्थात् स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। प्रतिविषा ( सं • स्त्री॰ ) प्रतीप विषं यस्याः । अतिविषा, अतीस । प्रतिविष्णु (सं० क्ली०) विष्णुं विष्णुं प्रति । १ प्रत्येक विष्णुके प्रति । (पु॰) २ विष्णुके प्रतिद्वन्द्वी राजा मुचु-कुन्द्का एक नाम। प्रतिविष्णुक (सं॰ पु॰) प्रतिगतो विष्णु यस्मिन्निति, प्रति-विष्णुम् चुकुन्दो नृपतिः तन्नाम्ना कायति प्रकाशते इति कै क। १ मुचुकुन्द नामक फूलका पौधा। २ क्षोरिणीभेद, एक प्रकारकी खिरनी। प्रतिवीक्षणीय (सं० ति०) प्रति-वि-ईक्ष-अनीयर् । प्रति बीक्षणके योग्य, देखने लायक। प्रतिवीज ( सं० क्की० ) तारनागाम्र हेमकृत पारदनिवन्धन द्रव्य । प्रतिचीर (सं० पु०) १ समकक्षवीर, जोड़का योदा। २ तुल्यशतु, जोड़का दुश्मन। प्रतिवीर्थं (सं० ति०) प्रतिरोध करनेका उपयुक्त शकि-सम्पन्न, जिसमें विरोध करनेके लिये यथेष्ट वल हो। प्रतिवृत्ति ( सं ० अव्य० ) शब्दकी हस्वदीर्धमाता । प्रतिवृष ( सं ॰ पु॰ ) उन्मत्त वृष, मतवाला साँढ़ । प्रतिवेद (सं० अव्य०) प्रत्येक वेदमें जो है। प्रतिवेदक-एक श्रेणीके राजकर्मचारियोंकी सम्राट् अशोकने राज्यके सभी संवाद जाननेके लिये इन्हें नियुक्त किया था। प्रतिवेदशाख ( सं ० अन्य० ) वेदकी प्रत्येक शासामें । प्रतिवेल ( सं ० अन्य • ) प्रत्येक मुहूर्तमें, क्षण क्षणमें । प्रतिवेश ( सं ॰ पु॰ ) प्रत्यागतो वेशो निवेशः प्रतिविशत्य-

ते ति आधारे धन् वा। १ प्रतिवासि गृह, घरके सामने या पासका घर, पड़ोसका मकान। २ पड़ोस। (ति॰) ४ आसन्नवत्तीं, नजदीकका। प्रतिवेशवासिन् (सं ० ति०) प्रतिवेशं वसतीति वस-णिनि । प्रतिवासी । प्रतिवेशिन् (सं ० ति ०) प्रतिवेश आसन्नवर्त्तिगृहमस्यां-स्तीति इनि । प्रतिवासी, पड़ोसमें रहनेवाला। प्रतिवेश्मन् ( सं ० क्षी ० ) प्रतिवासीका घर, पड़ोसका मकान । प्रतिवेश्य ( सं ॰ पु॰ ) पृतिवासी, पड़ोसमें रहनेवाला। प्रतिवैर ( सं ० क्ली० ) प्रतिहिसा, अपकारका प्रत्युपकार। प्रतिचोढय्य (सं ० त्नि०) पृति-वह-तब्य । पृतिवहनीय, प्रति-वहनयोग्य । पृतिन्यूह (सं ॰ पु॰) प्रतिरूपः बूहः प्रादिसः। सैन्य-विन्यासका प्रतिरूप बूह । प्रतियोम ( सं ॰ पु॰ ) राजपुलमेद । प्रतिशङ्का ( सं ० स्त्री ) वह शङ्का जो वरावर वनी रहे। प्रतिशबु ( सं ० पु० ) पृतिपक्ष शबु । प्रतिशन्द ( सं • पु • ) पृतिह्मपः शन्दः पृदिस • । १ प्रति-ध्वनि, गूंज। २ शन्दानुरूप। प्रतिशब्दग (सं ० ति०) शब्दानुसार गमनकारी। पृतिशम (सं०पु०) १ नाश । २ मुक्ति । प्तिशमय्य (सं ॰ पु॰ ) यथानियुक्त, वह जो सुपथमें स्था-पन करने योग्य हो। पृतिशयन ( सं ० क्लो० ) पृति-शी-भावे-ल्युट् । प्रतिखाप, किसी कामनाकी सिद्धिकी इच्छासे देवताके स्थान पर खाना पीना छोड़ कर पड़ा रहना, धरना देना। प्रतिशयित (सं ० ति०) प्रति-शी-क। प्रातशयनकारी, धरना देनेवाला। प्रतिशर ( सं ० पु० ) खण्ड खण्ड करना, चूर चूर करना। . प्रतिशरण ( सं ० पु० ) स्वकमेमें विश्वासंस्थापन। प्रतिशशिन् ( सं ॰ पु॰ ) चन्द्रमाका प्रतिविस्न । प्रतिशाख ( सं ० अन्य० ) वेदको प्रत्येक शाखामें। प्रतिशाप ( सं॰ पु• ) प्रत्यमिसम्पात, फिरसे शाप देना । प्रतिशासन ( सं ० ह्यो ० ) प्रति-शास् भावे न्युट् । वुला कर नौकर आदिको किसी कार्यमें छगाना।

प्रतिशिष्य ( सं ॰ पु॰ ) शिष्यानुशिष्य, शिष्यका शिष्य । प्रतिशिष्ट (सं ॰ ति ॰) प्रतिशास्त -क्त । प्रे पित, भेजा हुआ । २ प्रत्याख्यात, छौटा हुआ ।

प्रतिशीवन ( सं ० क्ली० ) विरामस्थल, ठहरनेकी जगह । प्रतिशुक्त ( सं ० अन्य० ) शुक्रप्रहकी ओर ।

प्रतिशोध (हिं॰ पु॰) वह काम जो किसी वातका वदला जुकानेके लिये किया जाय।

प्रतिश्या (स'० स्त्री०) प्रतिश्यायते इति प्रति-श्चैङ्-गती (शातश्चोपसर्गे। पा २।१।१३६) इति क-न्राप्। प्रति-श्याय, पीनस रोग।

प्रतिश्याय ( सं॰ पु॰ ) प्रतिक्षण श्यायते प्रति-श्यै-( श्याद्-वयास् संवर्ताणिति। पा ३।(।१४१) इति ण। नासारोग विशेष। इसका छक्षण सुभूतमें इस प्रकार लिखा है-मलमूलादिका वेगधारण, अजीणे, नासारन्ध्रमें ध्रमप्रवेश, अधिकवाच्यकथन, कोध, धूल ऋतुविपर्य्याय, राविज्ञागरण. दिवानिद्रा, शीतल जलका आधक व्यवहार, शैत्यक्रिया, अधिक मैथुन और रोदन आदि कारणोंसे मस्तकमें कफ घना हो जाता है जिससे वायु कुपित हो कर सद्यः प्रतिश्याय रोग उत्पादन करती है। फिर वायु, पित्त, कफ और रक्तके पृथक् पृथक् वा मिलित भावमें क्रमशः मस्तकमें सञ्चित पवं अपने अपने कारणसे क्रपित होनेसे प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण- -प्रतिश्याय होनेके पहले हिका, सिरका भारो होना, स्तब्धता, अङ्गमर्दन, रोमाञ्च, नासिकासे धूम निकलनेके जैसा अनुभव, तालुज्वाला और नाक मुख हो कर जलसाव, सर्वदा लोमहर्पण आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। यह रोग वायु, पित्त, कफ और विदोषज हुआ करता है।

प्रतिश्याय रोग वायुजन्य होनेसे नासारन्त्र स्तब्ध, अवरुद्ध और अल्पसावविशिष्ट तथा गला, तालु और आष्ठ स्म जाता है। पित्तजन्य होनेसे नाक हो कर कुछ पीला और गरम राल निकलती तथा शरीरमें दवें मालुम पड़ता है। रोगो कुश, पाण्डुवर्ण और तृपातुर होता है तथा धूम-संयुक्त अग्निकी तरह वमन करता है। कफज होनेसे नाक हो कर सफेद और शीतल कफ वार वार टपकता

रहता है, दोनों आंखें सफेद और फूल जाती हैं, सिर और मुंह भारी मालूम पड़ता है। विदोषज होनेसे रोग पुनः पुनः उत्पन्न हो कर चाहे पका हो वा न हो, आप ही आप छूट जाता है। इसमें अपोनस रोगके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तजन्य होनेसे रक्तसाव, चक्ष ताम्रवर्ण और वक्षःस्थलमें आहत होनेकी तरह चेदना होती है। निःध्वास और मुखसे दुर्गन्य निकलती है तथा प्राणशक्ति

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम—जिस किसी प्रति-श्यायमें निःश्वाससे दुर्गन्य निकलती है, ब्राणशक्तिका लोप होता है। तथा नाक कभी ठंढी और कभी सूखी रहती हैं, कभी वंद और कभी विवृत हो जाती है, उस प्रतिश्यायको दुए और कएसाध्य समक्तना चाहिये। यथाकालमें चिकित्सा नहीं होनेसे वह प्रतिश्याय और भी भीषण रूप धारण करता है। पीछे उसमें छोटे छोटे सफेद कीड़े उत्पन्न होते हैं। कीड़ के उत्पन्न होनेसे कृमिज शिरोरोगकें सभी लक्षण दिखाई देने लगते हैं। प्रतिश्यायके गाढ़ा होने पर क्रमशः वाधिय, नेवहीनता वा नाना प्रकारके उत्कट नेवरोग, ब्राणनाश, शोथ, अन्तिमान्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—सद्योजात वा अभिनव पृतिश्याय छोड़ कर और सभी प्रकारके प्रतिश्याय रोगोंमें घृतपान, विविध प्रकारका स्वेद और वमन तथा अधिक दिनका होनेसे अवपीड़नका प्रयोग हितकर है। प्रतिश्याय यदि पक न गया हो, तो उसे पकानेके लिये स्वेद-प्रयोग, अम्लके साथ भोजन अथवा दुःघ और आद्र क. रक्षविकार (गुड़ आदि) के साथ सेवन करना कर्त्वा है । प्रति-श्याय पक कर यदि घना या अवलम्वित हो गया हो, तो उसे शिरोविरेचन द्वारा वाहर निकाले । सद्वैध दोष और अवस्थाकी विवेचना करके विरेचन, आस्थापन, धूमपान और कवल अहणका प्रयोग करे। प्रतिश्याय-रोगमें वायुशून्य स्थानमें शयन, उपवेशन, अङ्गचालनादि क्रिया, मस्तक पर गुरु और उप्ण वस्त्रवन्थन, रुक्ष पलान्न और सिद्धिका सेवन उपकारजनक है। शीतल जलपान, स्त्रीसङ्ग, चिन्ता, अतिशय रुक्ष्ण अन्नसेवन, बेगधारण और नृतन मद्यसेवन प्रतिश्याय रोगोके छिये विशेष

अपकारक है। वमन, अङ्गका अवसाद, ज्वर, अरुचि, अरित और अतीसार इन सव उपद्रवेंका छङ्घंन, पाचन, अग्निदीपन आदि क्रिया द्वारा चिकित्सा करे। औषध और आहारके नियम द्वारा सभी उपद्रवेंका प्रतिकार करना विधेय है।

वातिकजन्य प्रतिश्याय होनेसे विदार्थादि गणके साथ घृत पाक करके उसमें पञ्चलवण मिला दे, पीछे उस घृतका नस्य, पान और घूम आदिमें प्रयोग करे । यह पित्त वा रक्त जन्य होनेसे काकोल्यादि गणके साथ घृत पका कर सेवन अथवा शीतल परिपेचन और प्रदेहका प्रयोग हितकर है । सर्जरस, रक्तचन्दन, प्रियंग्र, मधु, शर्करा, द्राक्षा, सौंफ, गाम्भारो और यष्ट्रमधु ये सब द्रव्य वेरके चूरके साथ मधुरगण विरेचनाके साथ पृथोज्य हैं। धववृक्षका त्वक, तिफला, श्यामालता, लोध, यिप्रधु और गाम्भारी इन सब द्रव्योंका कल्क तथा दश गुण दुःध के साथ पाक किये हुए तेलका उपयुक्त कालमें अर्थात् प्रकावस्थामें नस्यके साथ प्योग करे।

यह रोग कफज होनेसे पहले तिल और उरद्के योगसे पाक किये हुए घृत द्वारा उसे स्निग्ध करे, पीछे यवागु- के संयोगसे वमन कराये। इसके वाद कफनाशक विधिका अवलम्बन विधेय है। श्वेत और पीत वला, घृहती, कएटकारी, विड़क्ष, मनसा, श्वेतामूल, श्वामालता, भद्रा, पुनर्णवा इन सब द्रध्योंके साथ पाक किये हुए तेलका नस्यमें प्योग करे। देवदार, अपामागं, सरलकाष्ठ, दन्ती और ईंगुदी इन सब द्रव्योंकी बत्ती बना कर धूम प्रयोग करनेसे यह रोग बहुत जल्द जाता रहता है। सिन्नपात होनेसे कटु, तिक्त, तोक्ष्ण, धूम और कटु औषध प्रयोज्य है। रसाञ्चन, अतीस, मोथा और देवदार इन्हें एक साथ मिलावे। पीछे उसका तेल पाक करके नस्यमें प्रयोग करे। मोथा, गजपिप्पली, सेन्धव, चीता, तुत्थ, करञ्जवोज, लवण और देवदार इनका प्रस्तुत कषाय तथा पाक किया हुआ तेल शिरोविरेचनमें प्रयोज्य है।

अद्धं माग जलसंयुक्त दुग्धमें मृग वा पक्षीका मांस तथा जलजात वातझ भौषधका पुरुपाक करे। जव पानी का अंश कुछ भी न रहे, केवल दूध रह जाय, तव उसे उतार कर ठंढा होने दे। बादमें ऊपरसे घी डाल दे। उस घीमें सर्वगन्धा, सनन्तम्ल, शर्करा, यण्मिधु वा रक्तचन्दनका कल्क डोल कर पुनः दश गुण दुग्धमें उसे पाक करे। इसका नस्यमें प्रयोग करनेसे सभी प्रकारके प्रतिश्याय आरोग्य हो जाते हैं। (अधुत उत्तरत २४४०)

अन्यान्य वैद्यक प्रन्थोंमें लिखा है—प्रतिश्याय-रोगमें पिपरा, सोहिजनका वीज, विड़ङ्ग और मिर्च इनके चूर्णका नस्य लेने तथा कचूर, भुइं आंवला और विकटु इनके चूर्णको घी और पुराने गुड़के साथ सेवन करनेसे यह रोग अति शीघ्र दूर हो जाता है। पुटपाक जयन्तीपत, तैल और सैन्धव लवणके साथ इसका प्रतिदिन सेवन विधेय है। चित्रकहरीतकी और लक्मीविलासरस आदि औषध्र इस रोगमें विशेष उपकारक है।

पश्यापथ्य—प्रतिश्याय आदि नासारोगोंमें कफ़ शान्तिकर पथ्य वावस्थेय है। कफका अधिक उपद्रव रहनेसे रोटी वा उससे भी अधिक क्ले अथच लघु पथ्य-को सावश्यकता है। इस रोगमें ज्वर यदि खूव चढ़ आया-हो, तो अन्न वंद कर दे, लघु पथ्यका सेवन करावे।

भावप्रकाश, चरक, चकदत्त आदि वैद्यक प्रन्थोंमें इस रोगके निदान और चिकित्सादिका विषय भी छिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उक्छेख नहीं किया गया।

प्रतिश्रम (सं० पु०) परिश्रम, मेहनत।

प्रतिश्रय ( सं॰ पु॰ ) प्रतिश्रीयते अस्मिन्निति, प्रति-श्रि-आघारे अच्। १ यद्यशाला, वह स्थान जहां यद्य होता है। २ सभा। ३ स्थान। ४ निवास।

प्रतिश्रव (सं० क्ली०) प्रति-श्रु (ऋदोःप् । पा शशपण) इति अप् । अङ्गीकार, स्तीकार ।

प्रतिश्रवण (सं० क्ली०) प्रति-श्रु-मावे ल्युट्। १ अङ्गीकार स्वीकृति, मंजूरी । २ श्रवणानुगत ।

प्रतिश्रवस् (सं॰ पु॰) १ गोत्तप्रबर-ऋषिमेद् । २ परि-क्षित्-पुत्र भीमसेनात्मज ।

प्रतिश्रुत् (सं॰ स्त्री॰ ) प्रतिक्रपं श्रयते इति प्रति-श्रु सम्पदादित्वात् क्रिप्। प्रतिध्वनि, गूंब।

प्रतिश्रुत (सं ० ति ०) प्रतिश्रयते स्मेति प्रतिश्रु-क। अङ्गीद्यत, स्वीकार किया हुआ।

प्रतिश्रुति ( सं ० स्त्री० ) प्रति-श्रु-भावे-किन् । १ अङ्गीकार,

मंज्री, रजामंदी । २ प्रतिध्वनि, गुंज । ३ प्रतिज्ञा, इकरार। ४ वसुदेवके एक पुतका नाम। प्रतिश्रुत्का ( सं ॰ स्त्री॰ ) देवतामेद, एक वैदिक देवताका नाम । प्रतिश्रोता (सं॰ पु॰) अनुमति देनेवाला, मंजूर करने-• बाला । प्रतिस्रोक (सं० थव्य०) प्रत्येक स्रोकर्मे । प्रतिपिद्ध ( सं ० ति० ) प्रति-सिध-क । १ प्रतियेघ विषय, । प्रतिष्टन्य ( सं ० ति० ) बाघाप्राप्त, जोरका गया हो । निषिद्ध, निवारित। प्रतियेध (सं ० पु॰ ) १ नियेध, मनाही । २ खएडन । ३ एक प्रकारका अर्थाळङ्कार। इसमें किसी प्रसिद्ध निषेध या अन्तरका इस प्रकार उल्लेख किया जाता है जिससे उसका कुछ विशेष अर्थ निकले । प्रतिषेघोषमा देखो । प्रतिपेधक ( सं ० ति० ) प्रतिपेधतीति प्रति-सिध्-ण्बुल् । प्रतिपेधकर्त्ता, मना करनेवाला, रोकनेवाला। प्रतिपेधन (:सं॰ क्ली॰) प्रति-सिध्-खुट्। प्रतिपेध, निपेध। प्रतिपेधनीय ( सं ० ति० ) प्रति-सिध्-अनीयर् । प्रतिपेध योग्य, मना करने लायक । प्रतिपेघोक्ति ( सं ० स्त्री० ) प्रतिपेधवाक्यकथन । प्रतिषेघोपमा (सं ० स्त्री०) उपमा असङ्कारमेद । जहां उप-मान उपमेयके मध्य साहृश्य प्रतिपेध द्वारा अधिक वैचित्रा वर्षित हो, वहां यह अलङ्कार होता है।

"न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितु"। कलड्डिनो जडस्येति प्रतिपेयोपमैव सा ॥" (काव्यादर्श)

कळडूरी और इड़ चन्द्रमाके साथ तुम्हारे उस मुसकी तुलना कभी भी नहीं हो सकती। चन्द्रमा और मुलके साथ उपमा और उपमेय भाव है। चन्द्रमा कळड्डी और जड़ हैं तथा तुम्हारा मुख निष्कळड्ड और सचल है, यह वैचित्राह्मपम वर्णित हुआ है। इस प्रकार चन्द्रमाके साथ तुम्हारे मुखकी तुलना असम्भव है। सादृश्य द्वारा इस प्रकार प्रतिपेध होनेके कारण यह मलङ्कार हुआ ।

प्रतिष्क (सं ॰ पु॰ ) प्रतिष्कन्दति प्रतिगच्छतीति प्रति-स्कन्द-बाहुळकात् उ । दूत ।

Vol XIV 135

प्रतिष्करा ( सं ० पु॰ ) प्रतिकरातीति प्रति-करा-अच्, वाहुलकात् सुद्। १ सहाय, मदद्। २ वार्त्ताहर, दूत । ३ चमड़े की वदी, चाबुक ।

प्रतिष्क्रय (सं॰ पु॰) प्रति कष्यतेऽनेनेति प्रति-कप-हिसायां अच, बाहुलकात् सुट्। चर्म राज्यू, चमड़े की वद्धी ।

प्रतिषक्त (सं ॰ पु॰) चर, दूत। प्रतिष्टम्म ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिष्टम्मनमिति प्रति-स्तन्म भावे-घञ्, पत्व'। प्रतिबन्ध।

प्रतिष्ट्रति (सं० स्त्री०) प्रति-स्तु-किन् । प्रतिलक्ष्य करके स्तुति ।

त्रतिग्रोत ( सं ॰ बि॰ ) स्तुतिकार्यमें विशेष दक्ष । प्रतिष्ठ ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिष्ठा अस्यास्तीति अच् । १ जैन-मेद, जैनियोंके अनुसार छुपार्श्व नामक वृत्ताह्तको ( त्रि॰ ) २ प्रतिष्टायुक्त, प्रसिद्ध, पिताका नाम। मशहूर ।

प्रतिष्ठा ( सं ० स्त्री० ) प्रति तिष्ठवीति प्रति-स्था ( आवःची-पर्सो । पा ३।३।१०६ ) इति अङ्, टाप् । १ गौरव, मान-मर्यादा । २ क्षिति, पृथ्वी । ३ स्थान, जगह । ४ आश्रय, ठिकाना । ५ यागनिय्यत्ति, यक्षकी समाप्ति । ६ चतुरह्मर पद्य, चार वर्णोंका वृत्त। ७ स्थिति, उहरात्र। ८ शरीर । ६ स्थापना, रखा जाना । १० प्रक्याति, प्रसिद्धि । १२ यग, कीर्ति । १३ बादर, सत्कार । १३ ब्रतका उद्यापन । १४ एक प्रकारका छन्द । १५ देवताकी प्रतिमा-की स्थापना।

देवताओंकी मूर्ति वना कर उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। विना प्रतिष्ठाके प्जादि कुछ भी नहीं होती। रघुनन्दनने देवप्रतिष्ठातस्वमं प्रतिष्ठाको जो वावस्था की है, वह इस प्रकार है, सुदर्णादि निर्मित प्रतिमा प्रस्तुत करके पीछे उसकी प्रतिष्ठा करनी होगी। प्रतिष्ठाकर्ममें फालान, चैत्र, चैशास और ज्येष्टमास प्रशस्त है। रायण अतीत होने पर शुन शुक्कपश्चमें, पञ्चमी, दितीया, तृतीया, सप्तमी, द्शमी, पीर्णमासी और त्रयोद्शीमें जो मतिष्ठा की जाती है, वह शुभफलदा है।

"चैते वा फाल्गुने वापि ज्यैष्ठे वा माधवे तथा। समयः सर्व देवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्॥ प्राप्य पक्षं शुभं शुक्कमतीते चोत्तरायणे। पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा॥ दशमी पौणमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी। तासु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत्॥" (देवप्रतिष्ठातस्व)

सभी देवताकी विशेषतः केशवकी प्रतिष्ठा उत्तरायण-में शुक्कपक्ष और शुभदिनमें कर्त्तवा है। यदि कृष्णपक्षमें करनेकी इच्छा हो, तो पञ्चमी और अष्टमी तिथिमें कर सकते हैं। भुजवलभीममें लिखा है—युगादि, अयन, विषुवद्वय, चन्द्र और सूर्यप्रहण वा पर्वदिन तथा जिस देवताको जो तिथि है, उसी तिथिमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

प्रतिष्ठाविधेय तिथि यथा—धनद्की प्रतिपद, लद्मीकी द्वितीया, भग्नानीकी तृतीया, उनके पुलकी चतुर्थी, सोम-राजकी पञ्चमी, गुहकी षष्ठी, मास्करकी सप्तमी, दुर्गाकी अध्यो, मातृगण (गौरो, पद्मा आदि षोड्श मातृकाकी)की नवमी, वासुकीकी दशमी, ऋषियोंकी पकादशी, चक्र-पाणिकी द्वादशी और नारायणकी पौर्णमासी तिथि प्रतिष्ठाविषयमें शुभ है। माघ, फाल्गुन, चैल, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन सब महीनोंमें प्रतिष्ठाकार्य शुभ-जनक वतलाया गया है।

"माघे वा फाल्गुने वापि चैतवेशाखयोरिप। ज्यैष्ठाबाढ़कयोर्वापि प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्॥" ( देवप्रतिष्ठातत्त्वधृत प्रतिष्ठासमुच्य )

भविष्यपुराणमें लिखा है—सोम, वृहस्पति, शुक्र और वृधवारमें प्रतिष्ठा करनी होती है। मत्स्यपुराणके मतसे पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा, मूला, उत्तरफाल्गुनी, उत्तर-भाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवणा, रोहिणी, पूर्वभाद्रपद, हस्ता, अश्विनी, रेवती, पुष्या, मृगशिरा, अनुराधा, और स्वातिनक्षत्रमें प्रतिष्ठा प्रशस्त है। दीपिकाके मतसे—रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्ता, पुनर्वस्न, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें तथा कमैकर्त्ताकी चन्द्र और तारा विशुद्धिमें

बृहस्पतिके केन्द्रगत होनेसे शुभतिथिमें विधिपूर्वक प्रतिष्ठाकार्यं करना चाहिये।

देवादिकी प्रतिष्ठा करनेमें उपयुक्त वेदविद ब्राह्मणोंको आचार्य वना कर उन्हींसे प्रतिष्ठाकार्य कराना चाहिये। जिन सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करनी होगी, उन सब देवताओंका स्त्री, अनुपनीतद्विज और शूद्र व्यक्ति स्पर्श न करे। यदि वे अञ्चानवशतः स्पर्श कर हो, तो उस देव-प्रतिमाका अभिषेक वा पुनःप्रतिष्ठा करना आवश्यक है।

व्राह्मण, क्षतिय, वैश्य और श्रूद्ध ये चारों वर्ण देव-प्रतिष्ठा कर सकते हैं। किन्तु क्षतियादि तीन वर्णांको ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठा करानी चाहिये। देवताकी प्रतिष्ठा हो जाने पर ही उसमें देवत्व होता है। किसी भी देवताकी मूर्त्ति बना कर उसकी पूजा तब तक नहीं करनी चाहिये, जब तक उसकी प्रतिष्ठा न हो छे।

देवताकी पूजापद्धतिके अनुसार अङ्ग-देवताकी पूजादि करके पीछे प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है।

प्राणप्रतिष्ठाके मन्त—''शां हीं कों ये रं रं वं यं यं वं सं हों हों सः अमुष्य प्राणो इह प्राणाः आमिस्यादि अमुष्य बोष इहित्यत, आमिस्यादि अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि, आमिस्यादि अमुष्य वाङ् मनश्वश्चेश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः स्रान्तु च । अस्यै देवत्वख्तंयाये स्वाहा ते यद्धरीरयन् ॥"

इसी मन्त्रसे देवताकी प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है। जिस देवताकी प्राणप्रतिष्ठा करनी होगी उस देवताका नाम षष्ठी विभक्त्यन्त करके निर्देश करना होता है। देवताके हृद्य पर हाथ रख कर प्राणस्थापन और मन्त्रमें जिन सव स्थानोंकी कथा लिखी गई है उन सब स्थानों पर हाथ रख कर तत्त्वत् अङ्गप्रत्यङ्गादि-का उज्जीवन करना होगा। इस नियमसे प्राणप्रतिष्ठा हो जाने पर उसमें देवत्व आ जाता है।

देवप्रतिष्ठा करनेमें कर्मकर्त्ताको वृद्धिश्राद्ध करना होता है। पुत्रजनन, पुत्रका अन्नप्रदान, चूड़ा, पुंसवन, वत, पाणिश्रहण, देवादिको प्रतिष्ठा और नवगृहमें प्रवेश ये सब गृहस्थोंके वृद्धिकर हैं। इसीसे इन सब कार्बी-में वृद्धिश्राद्ध करना आवश्यक है। यथाविधि देवप्रतिष्ठा करनेसे इह और परलोकमें अशेष पुष्य प्राप्त होता है। अपने विभवानुसार देवप्रतिग्रा करना सर्वोका कत्तवा है।

एक दिनमें यदि देवप्रतिष्ठा, वास्तुयाग और गृहोत्सर्ग

ये तीनों कार्य करने हों तो, एक वृद्धि करनेसे ही सव
काम चल जायगा, पृथक् पृथक् कार्यके लिये वृद्धिश्राद्ध करना नहीं पड़ेगा। (इस प्रतिग्राका विषय
गरुड़पुराणके ४८वें अध्यायमें तथा मतस्यपुराणमें सिवस्तार लिखा है।)

जलाश्रयप्रतिष्ठा, देवगृहप्रतिष्ठा, मठप्रतिष्ठा आदि स्थानोंमें भी पूर्वोक्त वावस्था जाननी चाहिये।

यदि कोई देवताका गृह निर्माण करके उस गृहमें देवमूर्चि प्रतिष्ठित तथा उस गृहको विविध चित्र द्वारा शोभित करे, तो प्रतिप्राता देवलोकको प्राप्त होता है। देवगृहके लिये यदि कोई भूमिदान करे, उसे भी देवलोक-की प्राप्ति होती है। मृत्निर्मित देवगृहकी प्रतिष्ठा करने-में जो फल होता है, काप्टनिर्मित गृहमें उससे कोटि गूण अधिक फल, इष्टकालयमें उससे दूना और प्रस्तरनिर्मित देवगृहकी प्रतिष्ठा करनेमें द्विपराद्ध गुण फल प्राप्त होता है। इसमें धनी और दिख्में विशेषता यह है, कि धनी व्यक्ति प्रस्तरनिर्मित गृहमें जो फललाभ करते हैं, दरिद बक्ति मृत्निर्मित गृहमें भी वही फल पाते हैं। यथाविधि प्रतिष्ठादि करके ब्राह्मणमोजन कराना उचित है। ब्राह्मणोंकी संख्या हुजार या एक सौ आठ या पचास अथवा वीससे कम नहीं होनी चाहिये। यदि दीस ब्राह्मणको भी भोजन करानेमें असमर्थं हो, ती यथाशकि भोजन करा सकते हैं।

> ''ततः साहस्रं विप्राणामथवाष्टोत्तरं शतम्। भोजयेच्च यथाशक्तया पञ्चाशद्वाथ विशतिम्॥"ं (मठमतिष्ठातत्त्व)

जो सव देवमूर्ति प्रतिष्ठित होंगी, प्रतिदिन यथा-विधान उनकी पूजा अवश्य कर्त्वय है। इन प्रतिष्ठित मूर्त्तिकी यदि एक दिन पूजा न की जाय, तो उनकी द्विगुण अर्ज ना करनी होगी। यदि एक मास वा उससे भी अधिक दिन तक उनकी पूजा न हुई हो, तो पुन: प्रतिष्ठा करनी होती है। किसी किसीका यह भी कहना है, कि प्रतिष्ठा न करके अभियेक करनेसे काम चल सकता है। परन्तु पुन: प्रतिष्ठा करना ही मुख्य कल्प है। अस्पृत्यसे स्पृष्ट होनेसे अर्थात् जिनका स्पर्श नहीं करना चाहिये, वे यदि मूर्तिको छू छैं, तो पुनर्वार प्रतिष्ठा करे। प्रतिष्ठित मूर्ति खण्डित, स्फुटित, दृग्ध, भ्रष्ट, स्थान-वर्जित, यागहीन, पशुस्पृष्ट, दुष्टभूमि पर पतित, अपर देवताके मन्त्र द्वारा पूजित और पतितस्पर्श दूपित ये द्या प्रकारके दोवयुक्त होनेसे उस मूर्तिमें देवत्व नहीं रहता।

जलाशय प्रभृतिकी प्रतिष्ठा उसी उसी पद्धतिके अनुसार कर्च व्य है। पहले प्रतिष्ठाका जो काल वतलाया गया है, सभी प्रकारकी प्रतिष्ठा उस कालमें विधेय है। केवल व्रतप्रतिष्ठाकी जगह जो व्रत जिस वर्षमें साध्य है, उस वर्षके शेषमें प्रतिष्ठा करनी होगी। इसमें प्रतिष्ठा करनेसे अकाल और मलमास आहिका दोप नहीं लगता। यदि वह प्रतिष्ठा किसी विध्ववश्तः न की जाय, तो अकाल अथवा मलमासमें नहीं कर सकते। जिस वर्षमें कालशुद्धि रहेगी, उसी वर्ष प्रतिष्ठा विधेय है। १६ स्थेयमेंद।

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्मित्रधौ वैरत्यागः।" ( पातं २।३५ )

श्राह्सा प्रतिष्ठा होनेसे उसकी और किसीके साथ शतुता नहीं रहती अर्थात् चित्त यदि हिंसाशून्य एवं अहिंसाधर्म प्रवल वा पराकाष्ट्राको प्राप्त हो, तो उसके निकट हिस्र जन्तु भहिंस्र हो जायगा। व्याघ्र, भटलूक, और सर्पादिपूर्ण गिरिगहर वा निविड अरण्य कहीं भी अहिंसाप्रतिष्ठ व्यक्तिकी समाधिमें विध्न नहीं पहंच सकता। कोई हिंसजन्तु भी उसकी हिंसा नहीं कर सकता। बााधादि जो मनुष्योंकी हिसा करते हैं, बह केवल उनका दोप नहीं है, मनुष्योंका भी दोप है। तुम हिंसा करते हो, इस कारण वे भी तुम्हारी हिसा करते हैं। तुम्हारा मन हिंसाकी आशङ्का करता है, इस कारण वे भी तुम्हें शब्रु जान कर तुम्हारी हिंसा करते हैं। मजुष्यको देखते ही उन्हें जो हिंसा वृत्तिका उदव होता है, वह मजुन्यके दोपसे ही होता है। चित्त यदि अहिंसा प्रतिष्ठित हो अर्थात् हिंसाको यदि जन्मकी तरह भूल जाय, तो एक अपूर्व<sup>°</sup> श्री उत्पन्न होती । उस श्रीको देखनेसे सभी प्राणी उसके समीप हिंसासभावका

परित्याग करता है। कोई भो उसकी हिंसा नहीं कर सकता।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

( पातञ्जलद० २।३६ )

सत्यप्रतिष्ठ होनेसे धर्माधर्मेक्षप क्रियाफलके खाधीन हो जाता है। मिथ्याको यदि एक वार भूल जाय, चित्त यदि किसी प्रकारके मिथ्यासम्पर्केसे कलुष्ति न होवे केवलमाल सत्य ही यदि हृदयमें स्फुरित होता रहे, तो कार्यका फल भी उसके अधीन होता है अर्थात् सत्यप्रतिष्ठ वाक्ति जिस वाकाका प्रयोग करेगा, वह उसी समय सिद्ध होगा। 'स्वर्ग जाओ' कहनेसे स्वर्गमें वा 'नरक जाओ' कहनेसे नरकमें जायगा। उसका वाक्य कभी भी टलनेको नहीं।

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानं।"

(पातञ्चलद॰ २।३७)

अस्तेय प्रतिष्ठा होनेसे अर्थात् असीय यदि दूढ़मूल हो जाय, तो उसके समीप सभी रत्न आप ही आप पहुंच जायगा।

"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्येलाभः॥"

( पातञ्चलद० २।३८ )

ब्रह्मचर्यको प्रतिष्ठा होनेसे वोर्यलाम होता है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा अर्थात् वोर्यनिरोध विषयमें सुसिद्ध होनेसे
वीर्य अर्थात् निरितशय सामर्थ्य उत्पन्न होती है। यदि
वीय वा चरमधातुका कणमात्व भी विरुत्त वा विचलित
न हो, भूलसे भी यदि कभी मनमें कामोदय न
हो, तो चित्तमें एक ऐसी अन्द्रुत सामर्थ्य पैदा होगो
जिसके वलसे चित्त हमेशा अव्याहत रहेगा अर्थात्
कभी भी विचलित न होगा। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठ व्यक्तिके
हदयमें एक ऐसी अन्द्र त क्षमता उत्पन्न होती है, कि वे
जिस वक्त जिसे जो उपदेश देंगे, उसी वक्त वह सिद्ध हो
जायगा। उस समय उन्हें अणिमादिशक्ति उपस्थित
होगी। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यके उनके अधिगत हो
जानेसे वे जब जी चाहेंगे तभी कर डालेंगे। योगीमातको ही अहिसादि प्रतिष्ठाविषयमें यत्नवान होना चाहिये।

प्रतिष्ठाकाम (सं० लि०) १ यशःप्राधीं । २ गृहादिकी प्रतिष्टा करनेमें इच्छुक । ३ स्थितिकाम । प्रतिष्ठात (सं० पु०) प्रति-स्था-तृण् । ऋत्विक्मेद । प्रतिष्ठात्व (सं० क्को०) प्रतिष्ठा-त्व । प्रतिष्ठाका भाव । प्रतिष्ठान (सं० क्को०) प्रतितिष्ठत्यत्रेति प्रति-स्था-अधि-करणे ल्युट् । १ जनपद्मेद, पुकरवाकी राजधानी । हरि-वंशमें इस नगरको गङ्गाके किनारे अवस्थित वतलाया है। यहां ऐलकी राजधानी थी । (हरिव श २६।४७-४६)

प्रति स्था-भावे-स्युट्। २ व्रतादिकी समाप्ति पर कर्त्तेव्य कर्मभेद, वह कृत्य जो व्रत आदिको समाप्ति पर किया जाय। ३ स्थापित या प्रतिष्ठित करनेकी क्रिया, रखना, वैठाना। ४ देवमूर्त्तिकी स्थापना। ५ जड़, मूल। ६ उपाधि, पदवी। ७ स्थान, जगह। ८ विख्याति, प्रसिद्धि, नामवरी।

प्रतिष्ठानपुर चन्द्रचंशीय प्रथमराज पुरूरवाकी राजधानी । यह नगर गङ्गा यमुनाके सङ्गंम पर वर्त्तमान कूसी नामक स्थानके आस पास था। यहां समुद्रगुप्त और हर्पगुप्तने एक किला वनवाया था जिसका गिरा पड़ा अंश अव तक वर्त्तीमान है। कुछ वर्षे हुए यहां कुमारगुप्तके २४ सिक्के जमीनमेंसे निकाले गये हैं।

२ गोदावरी तीरवत्तीं महाराष्ट्रकी प्राचीन राजधानी। अभी यह निजाम राज्यके अन्तभू क हो गया है। यहां शालिवाहन राजाकी राजधानी थी। टलेमीने लिखा है, कि अन्ध्रषंशीय महाराज श्रीपुलोमायी यहांका शासन करते थे। पैठान है जो।

प्रतिष्ठापन (सं॰ क्की॰) प्रति-स्था-णिच् ल्युट्। देवमूर्तिकी स्थापना।

प्रतिष्ठापयितः ( सं० ति० ) प्रति-स्था-णिच्-तृच् । प्रतिष्ठा-पनकर्त्तां, मूर्त्तिको स्थापना करनेवाला ।

प्रतिष्ठापत (सं॰ पु॰) वह पत जो किसीकी प्रतिष्ठाका सूचक हो, सम्मानपत।

प्रतिष्ठापयितव्य (सं० ति०) प्रति-स्था-णिच्-तव्य । स्था-पन योग्य ।

प्रतिष्ठावत् सं० ति०) प्रतिष्ठा विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व । प्रतिष्ठायुक्त, इज्जतदार ।

(पातञ्जलद॰ २पा॰) प्रतिष्ठाचान् (हि॰ वि॰) जिसको प्रतिष्ठा हो, इज्जतदार ।

प्रतिष्ठि (सं क्ली ) प्रतिष्ठाश्रय, सर्वोको प्रतिष्ठा । प्रतिष्ठित (सं कि ) प्रतिष्ठा जाता अस्पेति तारकादि-त्वादितच् । १ प्रतिष्ठायुक्त, इज्जतदार । २ गौरवान्वित । ३ विष्यात, प्रशंसित । ४ संस्कृत । ५ अधिगत । ६ जिसको प्रतिष्ठा की गई हो । (पु०) ७ विष्णु । प्रतिष्ठिति (सं क्लो ) प्रतिष्ठान, स्थापित करनेका भाव या कार्ये।

प्रतिष्णात (सं ० त्रि०) प्रति-स्ना-क यत्वं । १ प्रतिस्नात, विशुद्ध । २ पूत, पवित्र ।

प्रतिश्चिका (सं ० स्त्री०) प्रति-का-स्वार्धे क, कापि अत-इत्वं सुवमादित्वात् वत्वं। प्रतिस्नानकारिणी स्त्री। प्रतिसंकम (सं ० पु०) प्रतिरूपः संक्रमः प्रादिसमासः। १ प्रतिच्छाया। २ सञ्चार। (ति०) ३ प्रतिसंकान्त। प्रतिसं व्या (सं ० स्त्री०) प्रति-सम्-स्था-भावे अङ्। प्रसं-स्थान, सांक्यके अनुसार शानका एक भेद। २ चेतना। प्रतिसं स्थानिरोध (सं ० पु०) प्रतिसं स्थापूर्वं को निरोधः। बुद्धिपूर्वं क भावपदार्थके नाशरूप वौधमतिसद्ध पदार्थ-भेद।

वौद्ध दार्शनिकोंने प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्या निरोध और आकाश इन तीन पदार्थोंको सक्रपशून्य, तुच्छ और अमावमाल वतलाया है। महामति शङ्करा-चार्यने वेदान्तदर्शनके भाष्यमें इस मतका खएडन इस प्रकार किया है.—

"प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या निरोधा प्राप्तिरविच्छेदात्॥" (वैदान्तसूत्र २।२।२२)

वैनाशिकोंका कहना है, कि तोन छोड़ कर सभी संस्कृत अर्थात् उत्पाय, क्षणिक (क्षणकालस्थायी) और बुद्धिवोध्य अर्थात् बुद्धिप्रकाश्य हैं। वे तीन पदार्थ ये हैं—प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध और आकाश। निरोध शब्दका अर्थ हैं विनाश। कितनी वस्तु ऐसी हैं जो ज्ञानपूर्वक निरुद्ध वा विनष्ट होती हैं और कितनी आप हो आप निरुद्ध होती हैं। वौद्ध लोग इन तीनोंको सक्रपशून्य तुच्छ और अभावमाल सममते हैं। बुद्धिपूर्व क अर्थात् जान वूम कर यह नष्ट करता है, ऐसे विनाशका नाम प्रतिसंख्या-निरोध है। भामतीने इस स्वकं व्याख्यास्थलमें लिखा है, भावप्रतीपा संख्यावृद्धिः प्रतिसंख्या, तथा निरोध

पृतिसंख्यानिरोधः सन्तमिममसन्तं करोमीत्येवमकारता च बुद्धेर्भावप्रतीपत्वम्।'

तुम जिसे सत्य कहते हो उसे में बुद्धिपूर्वंक असत् करूंगा, इसका नाम प्रतिसंख्यानिरोध । अबुद्धिपूर्वंक विनाश का नाम अप्रतिसंख्यानिरोध और आवरणामावका नाम आकाश है । वैनाशिक लोग जो प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोधकी वात कहते हैं वह विलक्कल अस-माव है । कारण, उनके मतसे मी विच्छेदका अमाव नहीं है । अब विचारनेकी वात है, कि यह प्रतिसंख्या-निरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध किसका है ? सन्तानका वा सन्तानीका ?

सन्तानका अर्थ प्रवाह और सन्तानीका अर्थ प्रवाहान्तगैत पदार्थ है। इसका दूसरा नाम भाव वा वस्तु है।
जैसे तरङ्ग और जल; स्रोतः और जल। जिस प्रकार
एक तरङ्ग, दूसरी तरङ्गको उत्पादन कर आप नष्ट हो
जाती है और फिर वह तरङ्ग भी अन्य तरङ्ग पैदा करनेके
वाद नजर नहीं आती, उसी प्रकार एक भाव अन्य भावको पैदा कर नष्ट हो जाता है और दूसरे भावके भी नष्ट
होते न होते उससे प्रक नया भाव निकल आता है।
इस प्रकार जन्मविनाशका स्रोत सर्वदा वहता रहता है।
भविद्या संस्कारको और संस्कारविद्यानको पैदा कर
नष्ट होता है, अतएव वे भी कारण-कार्यके स्रोत गिने
जाते हैं।

उपर जो कहा गया, कि यह निरोध किसका है, सन्तानका या सन्तानंका? इसके उत्तरमें यही कहना है, कि सन्तानका निरोध असम्भव है। क्योंकि, सन्तानी सन्तानोंके मध्य परस्पर कारण-कार्यक्षपमें अनुभूत रहती है। इस कारण सन्तानका विच्छेद असम्भव होता है। सन्तानीका निरोध भी असम्भव है। इसका भी कारण यह है, कि किसी भी भाव (पदार्थ नका निरन्वय और निरुपाक्य विनाश नहीं होता। वस्तुमाव हो किसी भी अवस्थामें क्यों न प्राप्त हो, प्रत्यभिज्ञाके वलसे उसका अविच्छेद ही देखा जाता है। अमुक वस्तु अभी ऐसी हुई है, यह प्रत्यभिज्ञा जान उस वस्तुका निरन्वय विनाशका नहीं होना ही साक्ष्य देता है। किसी किसी अवस्थामें स्पष्ट प्रत्यभिज्ञा सचमुच नहीं होती। नहीं होने पर भी कचिद्द हुए अन्वय-

Vol. XIV. 136

के विच्छेदाभाववळसे उस वस्तुका अन्वय वा अविच्छेद | अनुमित हो सकता है। इस प्रकार सुगतोंका दो प्रकार- का विनाश अयुक्त है अर्थात् परस्पर संलग्न कारणकायै- धाराका विच्छेद नहीं होनेके कारण सौगत मतसे सिद्ध प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध दोनों हो असम्भव-होता है।

इस पर बौद्धोंका कहना है, कि अविद्यादिक निरोध-में मोक्ष है। अविद्यादिका निरोध उक्त दोनों निरोधोंका अन्तःपाती है। यदि ऐसा ही हो, तो हमारा पूछना यही है, कि अविद्यादिका निरोध क्या ससहाय है, (यमनिय-मादि अङ्गोंके साथ) क्या यह सम्यक् ज्ञान द्वारा होता है वा आप ही आप? यदि ससहाय सम्यक्ज्ञानसे होता है, ऐसा कहा जाय, तो 'क्षणिकवाद' सभी पदार्थ स्थावतः क्षणिबनाशो हैं, इस प्रतिज्ञाका त्याग करना होगा। यदि कहा जाय, कि आप ही होता है, तो अविद्यादि निरोध-का उपदेश निरर्थक हो जाता है। सुतरां दोनों हो पक्षमें दोष है। अतयव अविद्यादिके प्रतिसंख्यानिरोध तथा अप्रतिसंख्यानिरोधविषयमें दोनोंमें ही दोष है। अतयव वौद्धोंका मत नितान्त अयौक्तिक प्रतीत होता है।

प्रतिसंयोद्धः (सं० ति०) प्रति-सम-युघ-तृच् । प्रतियोद्धा, जोडका ।

प्रतिसंत्रयन (सं० क्वी०) प्रति-सम-ली-न्युट् । सम्पूर्ण-क्वपसे लीन होना ।

प्रतिसंवत्सर (सं० अव्य०) प्रत्येक वर्षे, हर साछ । प्रतिसंविद् (सं० स्त्री०) प्रत्येक वस्तुका यथार्थ ज्ञान । प्रतिसंविद्पाप्त (सं० पु०) वोधिसत्त्वभेद । प्रतिसंविद्पा (सं० वि०) पूर्णतत्त्वज्ञ ।

प्रतिसंवेदिन् ( सं ० ति० ) सुखमोगी ।

प्रतिसंस्थान ( सं ० क्वी० ) प्रति-सम-स्था-ल्युट् । मध्यमें अवस्थान, प्रवेश ।

ग्रतिसंहार (सं ० पु०) प्रति-सं-द्व-घञ् । १ निवर्त्तन, निवारण । २ प्रत्याकर्षण, सङ्कोच ।

प्रतिसंहत (सं० ति०) प्रति-सं-ह-क् । १ संकुचित । २ निवर्त्तित । ३ अनुरुद्ध ।

प्रतिसङ्गक्षिका (सं ० स्त्री०) वौद्धभिक्षुकोंका वह कपड़ा जिसे वे धूळीसे वचनेके लिये पहनते हैं।

प्रतिसङ्गिन् ( सं॰ पु॰ ) प्रतिसङ्ग-इनि । प्रतिसङ्ग, युद्ध । प्रतिसञ्चर (सं॰ पु॰ ) प्रति सञ्चरन्ति कियाशून्य विली-यन्तेऽस्यां प्रति सम-चर-आधारे अप् । १ प्रलयभेद । "यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत् । तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः॥" ( मार्के॰पु॰ ४६ २४० )

जिस समय यह विश्व प्रकृतिमें लीन हो जायगा, तभी प्रतिसञ्चर होगा। २ प्रलयमात। प्रतिसञ्जिहोषु ( सं० त्रि० ) प्रतिसंहर्त्तुमिच्छुः प्रति-सम्-ह-सन, तत उ। प्रतिसंहार करनेमें इच्छुक। प्रतिसदृक्ष ( सं ० त्नि० ) समानदर्शी, एक-सा देखनेवाला । प्रतिसदृश ( सं० दि० ) प्रत्येकके प्रति समानदर्शी, सबको एकसा देखनेवाला। प्रतिसन्देश ( सं॰ पु॰ ) प्रतिरूपः सन्देशः प्रादिसमासः । सन्देशानुसार प्रत्युत्तररूप वाचिक वृत्तान्तभेद । प्रतिसन्धान ( सं० क्की० ) प्रति-सम्-धा-भावे-ल्युट् । अतु-सन्धान, हुंदना, खोजना। प्रतिसन्थानिक (सं॰ पु॰) राजाओं आदिकी स्तुति करने-वाला मागध । प्रतिसन्धि ( सं॰ दु॰ ) प्रतीपः सन्धिः प्रादिसमासः। 找 वियोग, विछोह । २ अनुसन्धान, हूं ढ़ना । ३ पुनर्जन्म । ८ उपरम । प्रतिसन्भेय (सं० ति०) प्रति-सम्-धा-कर्मणि यत्। प्रती-कारयोग्य । प्रतिसम (सं० ति०) प्रतिकृतः समः। विसदृश, जो देखनेमें समान न हो। प्रतिसमन्त (सं॰ ति ) प्रतिगतं समन्तात् येन प्रादिशहं पृपोदरादित्वात् साधुः । प्राप्तसमन्तान्द्राव । प्रतिसमाधान (सं० क्ली०) प्रति-सम्-आ-धा-ल्युट्। प्रतिकार । प्रतिसमाधय ( सं० वि० ) प्रति-सम्-आ-धा-यत्। प्रती-कार्य, प्रतीकारके लायक । प्रतिसमासन ( सं॰ क्लो॰ ) प्रति-सम्-था-थस भावे ब्युट् । निरसन, निवारण। प्रतिसर ( सं॰ पु॰ ) प्रतिसरतीति प्रति-सः अच् । १ मन्त-

भेद्, जादृका मन्त्र । २ माल्य, माला । ३ कङ्कुण, एक प्रकार

का गहना । 8 घाहमें पयननेका कंकण । ५ प्रातःकाल, सवेरा । ६ वणशुद्धि, जब्मका मर आना । ७ चम्पृष्ठ, सेनाका पिछला माग । ८ मादा हाथी, हथनी । ६ मएडल । १० भृत्य, नौकर । (ति०) ११ नियोज्य । प्रतिसरण (सं० क्षी०) किस चीजके वल टेक कर रहना । प्रतिसर्ग (सं० पु०) प्रतिस्तर सर्गः । ब्रह्माकी सृष्टिके वाद दक्षादिकी सृष्टि, वे सव सृष्टियां जो इन्द्र, विराट् पुरुष, मनु, यक्ष और मरीचि आदि ब्रह्माके मानस-पुर्तोने उत्पन्न की थीं।

कालिकापुराणमें प्रतिसर्गका विषय इस प्रकार लिखा है—चद्र, विराट्पुक्य, मजु, दक्ष और मरीचि आदि ब्रह्माके मानस पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने जो जो सृष्टि की है, उसका नाम प्रतिसर्ग हैं। विराट्पुल मजुने अन्य छः मनुओंकी सृष्टि करके वहुतों प्रजाकी सृष्टि की। क्रमशः उस मनुकों सन्तिसखा सारे संसारमें फैल गई। खायम्भुव मनुने प्रजा-सृष्टि करनेकी कामनासे पहले जिन इः पुलोंको इत्पादन किया, वे सभी मनु थे। उनके नाम थे खारी-चिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षय और विवस्तान।

यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग, गन्धवै, किन्नर, विद्या-थर, अप्सरा, सिद्ध, भूत, विद्युत्, मेघ, छता, गुल्म, तृण, मत्स्य, पशु, कीट और अन्यान्य जलज स्थलज प्राणी आदिकी सायम्भुव मनुने अपने पुत्नोंके साथ मिल कर सृष्टि की, इसीसे इसको उनका प्रतिसर्ग कहते हैं। सायम्भवपुत छःम नुर्जीने भी अपने अपने अधिकारमें प्रति-सर्गं करके चराचर व्याप्त किया। उन्होंने वराहयज्ञ, यूपादि यक्षीय द्रव्य, धर्म, अधर्म और यावतीय गुणोंकी सृष्टि की। इसीसे उन्हें वाराह प्रतिसर्ग कहते हैं। दक्षने भनेक प्रधान प्रधान देविषं, महर्षि और सोमप आदि पितरोंको उत्पादन करके सृष्टि प्रवर्त्तित की। यही दक्षका प्रतिसगॅं है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षतिय, ऊरसे वैश्य और पदतलसे शूद्र और चारों मुखसे चार वेद उत्पन्न हुए। ब्रह्माका प्रतिसर्ग होनेके कारण यह ब्राह्मसर्गे कद्दलाया । मरीचिसे कृश्यप और कश्यपसे समस्त जगत्, देव, दैत्य, दानव आदिकी सृष्टि हुई । इस-का नाम मारीच प्रतिसर्ग रखा गया । अतिके नेतसे चन्द्रमा भीर चन्द्रमासे जगत्व्यापक चन्द्रमंश उत्पन्न

हुए, यही सोमसर्ग वा अतिका प्रतिसर्ग है। पुलस्त्यके पुत्र आज्यप नामक पितरों और राक्षसोंका प्रतिसर्ग पुलस्त्य कहलाता है। हस्ती, अध्व आदिको पुलहने सृष्टि की, इस कारण इसे पुलहका प्रतिसगं कहते हैं । सूर्य-सन्तिम ८८ हजार वालखिल्यगण ऋतुके पुत हैं, अतः ये क्रतुके प्रतिसर्ग कहलाये । ८६ हजार प्राचेतसगण प्रचेताके पुत्र थे. यह प्रचेताका प्रतिसर्ग कहलाता है। सुकालीन पितृगण और अरुन्धतीगर्भसम्भत अन्य ५० योगी बशिष्ठके पुत्र थे, इसका नाम वासिष्ठ प्रतिसगं है। भृगुसे भागी-वोंकी उत्पत्ति हुई । वे सभी दैत्योंके पुरोहित, कवि और महाप्राञ्च थे तथा सारे संसारमें उनका प्रसार था, यही भागव प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। नारदसे नाना प्रकारके नक्षत, विमान, प्रश्न, उत्तर, नृत्य, गीत और कौतक उत्पन्न हुए, इस कारण इसका नाम नारद प्रतिसर्गं पडा। इन्हीं दक्षमरीचि आदि ऋषियोंने अनेक पत उत्पादन किये और उन सबका विवाह कर खर्ग और मर्त्यको परिपूर्ण कर दिया । उनके पुत्रपौतादिकी सन्तान-सन्तित आज भी भुवनमण्डल पर वर्त्तमान है और उत्पन्न हो रही हैं। विष्णुके नयनसे सूर्य, मनसे चन्द्र, कर्णसे वसु और दशदिक तथा मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई थीं, इस कारण यह विष्णुका प्रतिसर्ग कहलाया। पीछे चन्द्रमा अतिके नैतसे और सूर्यं कश्यपपत्नी अदितिसे पूजित हो कर कश्यपके औरस और अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। चद्रसे चार प्रकारके भृतोंकी उत्पत्ति हुई, १ला कुक्कुर, वराह और उच्यूक्तपधारो, २रा श्युङ्गाल और वानर रूपधारी, ३रा मल्लुकानन और विडालानन रूप-धारी और ४था बग्राव्रमुखी तथा सिंहमुखी। नाना शस्त्रधारी, कामरूपी और महावल पराकान्त थे। यह रुद्रका प्रतिसर्ग है। कल्पके शेषमें इन सब प्रति-सर्गोंका लय हुआ करता है। (कालिका पु॰ २६ ४०) २ प्रलय । ( अव्र० ) ३ सर्गं सर्गंमें, प्रति सर्गंमें ।

प्रतिसयं (सं ॰ पु॰) प्रतिसरे भवः यत्। रुद्रभेदः, एक रुद्रका नाम। २ विवाहोचित हस्तस्त्रभवमातः, विवाह-के समय हाथमें वांधा जानेवाळा कंगन।

प्रतिसध्य ( सं ॰ बि॰ ) प्रतिगतं सन्यं वाममिति । प्रति-क्ल, विपरीत । प्रतिसन्धानिक ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिसन्धानं प्रयोजनमस्येति प्रतिसन्धान-ठक् । मागध, स्तुतिपाठक ।

प्रतिसाम (सं ० ति०) साम्नि साम्नि वीप्सायामय्ययी-भावः अच् समासान्तः । प्रत्येक साममें, हरएक साम-मन्त्रमें ।

प्रतिसामन्त ( सं॰ पु॰ ) विपक्ष, शबु ।

प्रतिसायम् ( सं॰ अवा० ) प्रति सन्ध्याकालमें ।

प्रतिसारण (सं० ति०) प्रतिसारयित प्रति-स्-णिच्-स्यु। १ अपसारक, हटानेवाला। २ दूरीकारक, दूर करनेवाला। (पु०) ३ दूरीकरण, दूर हटाना, अलग करना। ४ सुशु-तोक्त अनिकार्यभेद। यह अग्निकार्य चार प्रकारका है, चलय, विन्दू, विलेखन और प्रतिसारण। इसमें गरम घो या तेल आदिकी सहायतासे कोई स्थान जलाया जाता है। ववासीर, भगन्दर, अर्वुद आदि रोगोंमें यह विधेय है। ५ प्रणचिकित्साङ्ग। ६ दन्तवर्षणभेद, मंजन। किसी प्रकारके चूण या अवलेह आदि द्वारा दांत, जीम और मुंहको उंगलीसे धीरे धीरे घिसनेका नाम प्रसारण है। प्रतिदिन नियमित रूपसे प्रतिसारण करनेसे मुखकी विरसता, दुर्गन्ध, मुखशोष, तृष्णा, अरुचि और दन्तपीड़ा जाती रहती है।

प्रतिसारणीय (सं० ति०) प्रति-स्-णिच् कर्मणि अनी-यर् । १ स्थानान्तर नयनीय, हटा कर दूसरे स्थान पर ले जानेके योग्य । (पु०) २ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी क्षार-पाक-विधि । यह कुष्ट, भगन्दर, दाद, कुष्ठवण, काई, मुहासे और ववासीर आदिमें अधिक उपयोगी होती हैं।

प्रतिसारा (सं ० स्त्री०) पश्चबुद्ध-शक्तिमेद, बौद्ध तान्तिकीं-के अनुसार एक प्रकारकी शक्ति जिसका मन्त्र धारण करनेसे सब प्रकारकी विघ्न वाधाओंका दूर होना माना जाता है।

प्रतिसारित (सं० ति०) प्रति-स-णिच्-कः। १ परिचालित, चलाया हुआ, हटाया हुआ। २ प्रवर्त्तित, वदला हुआ। ३ दूरीकृत, अलग किया हुआ। ४ संशोधित, शोधा हुआ।

प्रतिसारिन् (सं॰ ति॰) प्रतीपं सरित स-णिच्-णिनि। १ प्रतीपगामी। २ नीचगामी।

प्रतिसिद्ध —दाक्षिणात्यमें प्रचिलत (राजा ३य जयसिंहके समसामियक) राजकरविशेष।

प्रतिसीरा (सं० स्त्री०) प्रतिसिनोति प्रतिवध्नातीति प्रति-सि (शुक्ति-भिशां वीर्षश्च। तण् २।२५) क्रुन् दीर्घश्च, ततप्राप्। यवनिका, परदा।

प्रतिस्पर्ध (सं० पु०) प्रतिरूपः स्पर्धः प्राद्स०। १ इकलास, गिरगिट। २ आकाशमें होनेवाला एक प्रकारका
उत्पात जिसमें स्पर्ध निकला हुआ हिलाई हेता है। ३
स्पर्धपरिवेश, स्पर्धका मण्डल या घेरा। वृहत्संहितामें
लिखा है, कि जिस ऋतुमें स्पर्धका जैसा वर्ण होता है, उस
ऋतुमें यदि प्रतिस्पर्धका वर्ण भी वैसा हो हो अथवा वैद्रुपसद्दश, स्वच्छ और शुक्कवणं युक्त हो, तो वह वर्ष क्षेम भौर
सुभिक्षकर होगा, ऐसा समक्षना चाहिये। पीतवर्ण होनेसे वग्नाधि, अशोकपुष्पकी तरह होनेसे शास्त्रप्रकोप अर्थात्
युद्धादि उपस्थित होता है। प्रतिस्पर्धके उद्य होनेसे
दस्युभय, आतङ्क और नृपविनाश होता है। उत्तरमें
प्रतिस्पर्ध होनेसे अधिक जल, दक्षिणमें होनेसे प्रवल वायु,
दोनों दिक् होनेसे सिललभय, ऊपरमें होनेसे राजभय
और नीचे होनेसे महामारीका भय वना रहता है।
(हहत्षं• ३० ८०)

प्रतिसूर्यक (सं॰ पु॰) प्रतिसूर्य खार्थे कन्। कृकंडास्, गिरगिट। २ सूर्यका परिवेश। शितसूर्थ देखो।

प्रतिसूर्याशयानक (सं॰ पु॰) सूर्यके उत्तापमें सोनेवाला कुम्भीर, सरट आदि।

प्रतिस्रष्ट ( सं ० ति० ) प्रति-स्ज-कर्मणि-क । १ प्रे पित, भेजा हुआ । २ प्रत्याख्यात, छौटा हुआ ।

प्रतिसेना (सं० स्त्री०) विपक्षियोंकी सेना, दुश्मनकी फौज।

प्रतिसोमा (सं० स्त्री०) प्रतिरूपः सोमः सोमवल्ली यस्याः। महिषवल्ली, छिरेटा नामकी बेल । प्रतिस्कन्थ (सं॰ पु॰ ) १ कुमारानुचरभेद । २ नियम-सन्ध्यङ्गभेद ।

प्रतिस्त्री (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिह्नपा स्त्री प्रादिसमासः। १ परनारी, पराया औरत। आभिमुख्ये अव्ययीभावः। (अव्य॰) २ स्त्रीके अभिमुख।

प्रतिस्थान (सं० अव्य०) प्रत्येक स्थानमं, हर जगह।
प्रतिस्नेह (सं० पु०) प्रति-स्नेह-घन्। प्रतिरूप स्नेह।
प्रतिस्पर्झा (सं० स्त्रो) प्रति-स्पर्झ-भावे-सङ्। प्रतिरूपास्पर्झा, किसी काममें दूसरेसे वढ़ जानेकी इच्छा या
उद्योग, लागडाँट, चढ़ा ऊपरी। २ विवाद, भगड़ा।
प्रतिस्पर्झन् (सं० ति०) १ विद्रोही, उद्द्र्ड। २ प्रतिस्पर्झयुक्त, मुकावला या वरावरी करनेवाला।

प्रतिस्परा (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः स्पराः । १ प्रतिदूत । २ आगमनप्रतीक्षा, किसीकी वाट जीहना ।

प्रतिस्पाशन ( सं० बि० ) प्रतिस्पश, वाधक ।

प्रतिस्फलन ( सं० पु० ) विस्तार, फैलाव ।

प्रतिस्मृति ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रतिरूपा समृतिः प्रादिसमासः । प्रतिरूप समृतिशास्त्र ।

प्रतिस्याय ( सं० पु० ) प्रतिश्याय देखी ।

प्रतिस्नाव (सं० पु०) एक प्रकारका रोग । इसमें नाकमेंसे पीला या सफेद रंगका वहुत गाड़ा कफ निकलता है।

श्रतिस्रोतस् (सं॰ क्षी॰) प्रतीपं स्रोतं प्रादिसः । स्रोतके प्रतिकुल गमन, विरुद्ध धारमें जाना ।

प्रतिखर ( सं ॰ पु॰ ) प्रति-ख-शन्दोपतापयोः, भावे आधारे वा अप् । प्रतिशब्द, गूंज । २ उपतापाधार, सूर्यकिरण-सम्पर्कस्थान ।

प्रतिहत (सं० ति०) प्रतिहन्यते स्मेति प्रति-हन-का । १ निरस्त, हराया हुआ । २ ध्याहत, मना किया हुआ । ३ आहत, चोट खाया हुआ । ४ प्रेरित, उसकाया हुआ । ५ अवरुद्ध, रुका हुआ । ६ प्रतिस्वित्तित, गिरा हुआ । ७ प्रतिवद्ध, बंधा हुआ । ६ द्विए, जिसे द्वेष हो । ६ निराश, जिसे आशा न हो ।

प्रतिहति (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-हन-भावे-किन् । १ प्रतिघात, वह आघात जो किसीके आघात करने पर किया जाय । २ कीघ, गुस्सा । ३ रोकने या हटानेकी चेष्टा । ४ टक्कर । प्रतिहन्ता (सं ॰ पु॰) १ रोकनेवाला, बाधक । २ मुकावले-में खड़ा हो कर मारनेवाला ।

Vol. XIV 137

प्रतिहन्तृ ( सं ० ति ० ) प्रति-हन-तृच् । प्रतिहन्ता देखी । प्रतिहन्तव्य (सं ० ति ०) प्रति-हन-तव्य । प्रतिहननके योग्य, मारनेके छायक ।

प्रतिहरण (सं० क्ली०) प्रति-ह-स्युट् । विनाश, वरवादी । प्रतिहर्सा (हिं० पु०) १ सोलह ऋत्विजींमेंसे वारहवां ऋत्विज । २ वह जो विनाश करे । ३ भरतवंशीय प्रतीह-राजाके एक पुत्रका नाम ।

प्रतिहन् (सं ० ति०) प्रति-ह-तृन् । प्रतिहर्त्तः देखो । प्रतिहर्षण (सं ० क्षी०) प्रतिरूपं हर्षणं प्रादिसमासः । १ हर्षानुरूप हर्षे । हप-णिच्च ्च्युट् । २ प्रतिरूप सन्तोष सम्पादन ।

प्रतिहस्त (सं॰ पु॰ं) प्रतिद्भपः हस्तोऽवलम्यनद्भपो यस्य । प्रतिनिधि ।

प्रतिहार (सं० पु०) प्रति विषयं प्रत्येकं वा हरति स्वामि-समीपमानयतीति प्रति-ह-अण्। १ द्वारपाल, इरवान, ड्योढ़ीदार। २ द्वार, दरवाजा, ड्योढ़ी। ३ मायाकार, ऐन्द्रजालिक, वाजीगर। ४ परमेष्ठीके पुत्र। ५ सामका अवयवमेद, सामवेद-गानका एक अंग। ६ राजकर्मचारी-मेद, प्राचीनकालके एक राजकर्मचारी जो सदा राजाओंके पास रहा करते थे और जो राआओंको सव प्रकारके समाचार आदि खुनाया करते थे। अकसर पढ़े लिखे ब्राह्मण या राजवंशके लोग इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। ७ चोवदार, नकीव। ८ एक प्रकारकी सन्धि। ६ दाक्षिणात्यवासी राजवंशभेद। उत्तर-भारतके परिहारगण पहले दक्षिणमें प्रतिहार कहलाते थे। परिहार हैखो।

प्रतिहारक (सं० पु०) प्रतिक्षपं हरतोति ह-ण्वुल्। १ ऐन्द्र-जालिक, वाजोगर। २ वह जो प्रतिहार सामगान करता हो।

प्रतिहारण (सं० क्वी०) प्रति-ह-णिच्-ल्युट्। १ प्रवेशद्वार, दरवाजा। २ प्रवेशन, द्वार आदिमें प्रवेश करनेकी आजा। प्रतिहारतर (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्रकारका अस्त्र। इसका वावहार, दूसरोंके चलाए हुए अस्त्रोंको निष्फल करनेके लिये होता है।

प्रतिहारत्व (सं ॰ पु॰) प्रतिहार या द्वारपालका काम या पद ।

प्रतिहारिन् ( सं ॰ पु॰ ) प्रति-ह-णिनि । द्वारपाल, ड्योदी-दार ।

प्रतिहारी ( हिं॰ पु॰ ) प्रतिहारिन् देखो । प्रतिहार्य ( सं॰ ति॰ ) प्रति-ह-ण्यत् । परिहार्यं, छोड़ने छायक ।

प्रतिहास (सं० पु०) प्रतिह्नपः हासः प्रादिसः। १ उपहासकारीके प्रति हास्य, हंसी करनेवालोंके साथ हंसी।
२ करवीरवृक्ष, कनेर। ३ शुक्ककरवीर, सफेद कनेर।
प्रतिहिंसा (सं० स्त्री०) प्रतिहिंस-अङ्-टाप्। १ वैरनिर्यातन, वैर चुकाना, वदला लेना। २ वह हिंसा जो
किसो हिंसाका बदला चुकानेके लिये की जाय।
प्रतिहिति (सं० पु०) शरयोजना, चिल्ला चढ़ाना।
प्रतिहृत (सं० अवर०) प्रत्येक हृद्यमें।
प्रतिहृत (सं० पु०) प्रति हृ-आधारे अप्। समीप,
नजदीक।

प्रतोक (सं • पु • ) प्रति-कन् निपातनात् दीर्घः । १ अव-यव, अङ्ग । २ पता, चिह्न, निशान । ३ किसी पद्य वा गद्यके आदि या अन्तके कुछ शब्द लिख कर या पढ़ कर उस पूरे वाक्यका पता वतलाना । ४ मुख, मुंह । ५ आकृति, रूप, स्रत । ६ प्रतिरूप, स्थानापन्न वस्तु । ७ प्रतिमा, मृत्ति । ८ वसुके पुत्न और ओघमानके पिताका नाम । ६ मक्के पुत्नका नाम , १० पटोल, परवल । ११ उपासनाभेद । श्रुतिमें प्रतीकोपासनाका विधान लिखा है । छान्दोग्य उपनिषद्में कई जगह इस उपा-सनाका उल्लेख देखनेमें आता है । वेदान्तदर्शन और उसके भाष्यमें प्रतोकका जो विषय लिखा है, वह इस प्रकार है; —"न प्रतीके नहिवः" (वेदान्त धारा )

मनब्रह्म, आदित्यब्रह्म, नामब्रह्म इत्यादि शास्त्रींमें विहित हुए हैं। अतएव इनकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। मन, आदित्य और नाम ( ओं, तत्, सत् हिरिविष्णु इत्यादि ) ये सव प्रतीक हैं। इन सर्वोसे ब्रह्मबुद्धि उत्थापित करनी होगी। इस प्रकार उपासना करनेका नाम प्रतीकोपासना है। ब्रह्म और उपासक जीव अभिन्न है, यह भाव स्थिर रखकर 'में ही नाम हूं', 'में ही आदित्य हूं', ऐसा समकोगे या ब्रह्मको ही मन, आदित्य और नाम वतलाओगे ? इसके उत्तरमें।

शङ्कराचार्यने कहा है—प्रतीकमें अहं ज्ञान न्यस्त मत करो। कारण, प्रतीकोपासक प्रतीकको अहं अर्थात् आत्मा नहीं मानते। इसी कारण प्रतीकमें 'अहंग्रह' उपासना सिद्ध नहीं होती। 'न प्रतीके नहि सः' इस स्वभाष्यमें शङ्कराचार्यने ऐसा लिखा है—मन ब्रह्म है। मनकी ऐसी उपासनाका नाम अध्यातम-उपासना है, आकाश ब्रह्म है—ऐसी उपासनाका नाम अध्यत्म-उपासना है, आकाश ब्रह्म है—ऐसी उपासनाका नाम अध्यत्म-उपासना और नामक्रप-में ब्रह्मोपासना ही नामब्रह्म उत्पासना है। अध्यात्म, अधिदेव, और नामब्रह्म इत्यादिक्षप उपासनाका नाम प्रतीकोपासना है।

अध्यातमादि रूपमें अनेक प्रकारकी प्रतीकोपासना वतलाई गई है। इसमें संशय यह है, कि इन सब प्रतीकोंमें अहंबानका उत्पादन करना होगा वा नहीं ? पूर्वपक्षमें यह मिलता है, कि इन सब प्रतीकोंमें आत्ममति (अहंबान) करना ही युक्तिसिद्ध है। कारण, श्रुतिमें ब्रह्मको आत्मा बतलाया है। इस विषयका तात्पय यह, कि कोई भी प्रतीक क्यों न हो, सभी जब ब्रह्मविकार हैं, तब निश्चय ही वे सब ब्रह्म हैं। जो ब्रह्म है, वही आत्मा है। इसके उत्तरमें श्रङ्कराचार्यने ऐसा कहा है—'न श्रताक क्योत! वश्नीयात, नह्मुपासकः, श्रतीकानि व्यस्तान्वात्मत्वेन।इलगेत! (वेदान्तद् भाष्प)

प्रतोकमें आत्ममित अर्थात् अहंज्ञान प्रवाहित न करें। कारण, प्रतीकोपासक किसी भी प्रतीकको आत्म-भावमें नहीं देखते अर्थात् आत्माके जैसा नहीं मानते। प्रतीक ब्रह्मका विकार होनेके कारण ब्रह्म है। अत्यव ब्रह्म ही आत्मा हैं, ऐसा जो कहते हैं उनको भारी भूल है। क्योंकि, उससे प्रतीकका प्रतीकत्व विलोप हो सकता है। नाम प्रभृति प्रतीक (उपासनाका अवल-भ्वन) ब्रह्मके विकार तो हैं, पर उनमें ब्रह्मदृष्टि प्रवाहित करनेमें विकारभाव उपमिद्दित होगा और वे सव ब्रह्मभावका आश्रय छैंगे। यदि नामादिका खरूप विज्ञप्त हुआ, तो प्रतीक रहा कहां! अहंज्ञान प्रवाहित होगा किसमें!

ं ब्रह्म ही आत्मा है, यह भाव स्थिर रखनेमें ब्रह्मद्वृष्टिके उपदेशसे आत्मज्ञान सिद्ध तो हो सकता, पर उससे रष्ट-सिद्धि नहीं होगी। कारण, उस प्रकारके दर्शनसे कर्नुं-

त्वावि संसारधर्म निराकृत नहीं होता। ब्रह्म हो आत्मा ह-यही दर्शन कर्नुंत्वादि सर्वसंसारधर्म निराकरण पूर्वेक उदित होता है। उसकी अनिराकरण अवस्थामें ही उन सव उपासनाओंका विधान है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि उक्त प्रकारकी कल्पनासे उपासक प्रतीकके साथ समान होनेकी चेष्टा तो करता है, पर उससे अहंबान उत्पन्न नहीं होता । जीव और प्रतीकका खद्भपगतभेद तथा विधि श्रवण नहीं रहनेके कारण प्रतीकमें अहंग्रहउपासनाकी विलक्क सम्मावना नहीं। जो रुचक है वही खस्तिक है। रुचक और स्वस्तिक पूर्वकालका अलङ्कारविशेष है। अलङ्कारहर्पमें इन दोनोंकी एकता नहीं है ; किन्तु सुवर्ण-रूपमें एकता है। अतएव सुवर्णत्व प्रकारमें अभेद रहने पर भी उन दोनों (खस्तिक और रुचक)के सरूपमें यथेष्ट प्रमेद है। खुवर्णत्व प्रकारमें रुचक खस्तिककी एकता-की तरह ब्रह्मात्मभावकी एकता ब्रह्म करनेमें प्रतीकामाव-की प्राप्ति होती है। इसोखे प्रतीकमें अहंजान नहीं किया जा सकता अर्थात् प्रतीकोपासनासे अहंज्ञान लाभ नहीं होता ।

पूर्वीक चाक्यमें अर्यात् मनत्रहा इत्यादिकी उपासना-में और भी अनेक संशय हैं। ब्रह्ममें आदित्यादि बुद्धि न्यस्त करनी होगी या आदित्यादिमें ब्रह्मवुद्धि ? इसका विषय ळिखा गया । अव प्रतीकोपासनाविधायक वाक्य-निचयमें ब्रह्म शब्दके साथ आदित्यादि शब्दका समा-नाधिकरण देखा जाता है। यथा—'सादित्यब्रह्म' 'प्राण-व्रह्म' 'विद्यु त्व्रह्म' इत्यादि । इन सव वाक्वोंमें समान विभक्तिका प्रयोग होनेसे एकार्थता ही प्रतीत होती है। आदित्य शब्द और ब्रह्म शब्दका वास्तविक सामानाधि-करण्य (एकार्थता) असम्भव है। कारण, उक्त दोनों शब्द विभिन्नार्थवाची हैं। जिस प्रकार गी, अन्व प्रसृति शब्दोंका यथार्थं सामनाधिकरण नहीं है, उसी प्रकार उन सव विभिन्नार्थवाची शन्दोंका भी सामानाधिकरण्य नहीं है। यदि कहा जाय, कि ब्रह्मादित्यके प्रकृतिविकृति-भाव है—ब्रह्म प्रकृति और आदित्य विकृति है—तद्नुसार ब्रह्मादित्यके भी ब्रह्माकाश प्रभृतिके मृद्घटादिकी तरह सामानाधिकरण्य सम्भव है अर्थात् मृद्वविकार घटको मृत्तिका कहनेकी प्रथा है, तद्बुसार वह्मविकार आदि-

त्यादिको ब्रह्म कहना सङ्गत तो है, पर इसके द्वारा सामा-नाधिकरण्य सम्भव नहीं । कारण, प्रकृति ब्रह्मके साथ आहित्यादि विकारका अमेद साधनेमें विकारका विलय साधित होता है और उससे प्रतीक (उपासनाके आल-म्यन )-का अभाव उपस्थित होता है।

श्रुति-प्रमाणानुसार यह जाना जाता है, कि एकाई त-बोधकालमें कौन किसका उपास्य होता है ? कोई भी नहीं होता-यह अभिप्राय अकाट्य होने पर सचमुच श्रुतिका परिमितविकारप्रहण व्यर्थ होगा । यदि ऐसा हो, तो क्यों वे (श्रुति) आदित्यादि विकारका उल्लेख करते हैं? क्यों वे ब्रह्मज्ञानार्थ प्रतीक निर्देश करते हैं। इसका उत्तर यही है, कि जिस प्रकार ब्राह्मण ही अनि है अर्थात् अनि तुल्य इत्यादि स्थलमें ब्राह्मणमें अग्निवृद्धिका आरोप है उसी प्रकार वहां भी ब्रह्ममें आदित्यादि वुद्धिका अथवा आदित्यादिमें ब्रह्मवुद्धिका आरोप है, यही मालम होता हैं। किन्तु किसमें कीन युद्धि आरोपित करनी होगी? यही संशय है, आदित्यादिमें ब्रह्मबुद्धिको या ब्रह्ममें आदित्यादि बुद्धिको ? ब्रह्ममें ही आदित्यादि बुद्धि उत्पा-दन करनो होगो, यदि उन ( श्रुति )-की सम्प्रति है। प्योंकि ब्रह्म ही उपास्य हैं। ब्रह्मको आदित्य जान कर उनका ध्यान करनेसे बहाका ध्यान वा उनासना सिद हो कर फलपद होती है। यही शास्त्रमाणसिद्ध है। पूर्वपक्षकी प्राप्ति होनेसे, आदित्यादिमें ही ब्रह्मदर्शन करें, पेसा सिद्धान्त हुआ है। उसका प्रतिकारण उत्क्रप्रता है, व्रह्म ही सर्वोत्हृष्ट हैं। उनकी दृष्टिसे दृष्ट होने पर अर्थात् ब्रह्मभावमे भावित होने पर वे उत्छप्ट हो कर यथोक्त फल देते हैं।

'त्रहा त्यादेशः', 'त्रहा त्युपासीत', 'त्रहा त्युपास्ते' इत्यादि श्रुति द्वारा सर्वत ब्रह्म शब्दका और शुद्ध आदि-त्यादि श्रुति द्वारा सर्वत ब्रह्म शब्दका और शुद्ध आदि-त्यादि शक्तका उच्चारण हुआ। इस पर यह निर्णीत होता है, कि शुक्तिको रजतके जैसा समक्रते हें, इत्यादि स्थलमें शुक्ति शब्द जिस प्रकार शुक्तिकावाची है, उसमें जो 'रजत' शब्दका प्रयोग है, वह केवल रजतज्ञानका उपलक्षक है; अर्थात् वह रजतकी तरह केवल प्रतीत हो होती है, यथार्थमें वह रजत है नहीं। 'आदित्यो ब्रह्मे ति' इत्यादि स्थलमें भी उसी प्रकार जानना चाहिये। फलतः

पहले आदित्यादि प्रतीकमें ब्रह्मचुद्धिकी अध्यस्त करे।
" स य प्रतदेवं विद्वान् आदित्यं ब्रह्मोत्युपास्ते।"
( छान्दोग्य॰ उप० ३।१६ )

कोई उपासक वा ज्ञानी प्रदर्शित प्रकारसे आदित्यकी व्रह्मभावमें उपासना करते हैं, कोई उपासक 'वाक्य ही व्रह्म हैं' इस वाक्यकी उपासना करते हैं, इस प्रकार प्रतीतकोपासनासे फललाभ तो होता है, पर आत्मज्ञान नहीं होता। अतिथि उपासना (सेवा)-से जिस प्रकार फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार आदित्यादि प्रतीकोपासनासे भी फल मिलता है। उस फलके देनेवाले ब्रह्म हैं। जिस प्रकार प्रतिमादिमें विष्णुदर्शन हैं उसी प्रकार आदित्यादिमें भी ब्रह्मदर्शन। जिस प्रकार प्रतिमामें विष्णुको उपासना है, उसी प्रकार आदित्यादिमें भी ब्रह्मकी उपासना। (वेदान्तमाध्य क्षाप्य हु०)

(त्रि॰) ११ प्रतिकूल, विरुद्ध । १२ विलोम, जो नीचेसे ऊपरकी ओर गया हो ।

प्रतीकवत् (सं ० ति ०) प्रतीक-अस्तर्थे मतुप् मस्य व। १ प्रतीकयुक्त । २ मुखयुक्त । (पु०) ३ अग्निका नामभेद । प्रतीकार (सं ० पु०) प्रतिकरणमिति प्रति-छ-घञ् उपसर्गे-स्पेति पक्षे दीर्घः । १ कृतापकारका प्रत्यपकार, वह काम जो किसीके किये हुए अपकारका बदला चुकाने अथवा उसे निष्फल करनेके लिये किया जाय। २ चिकित्सा, इलाज । ३ प्रतिधान ।

मतीकार्य (सं॰ ति॰) मितकारयोग्य, वद्ला चुकाने लायक।

प्रतीकाश ( सं ० पु०) प्रतिकाशते इति प्रति काश-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। उपमा, प्रतिकाश।

प्रतीकाश्व ( सं ॰ पु॰) भानुवत् राजाके एक पुतका नाम । प्रतीकास ( सं ॰ पु॰ ) प्रति-कस-घञ् । प्रतीकाश ।

प्रतीकोपासना (सं ० स्त्री०) किसी विशेष पदार्थमें व्यापक ग्रह्मकी भावना करके उसे पूजना और यह मानना कि हम उसी ब्रह्मकी पूजा करते हैं।

प्रतीक्ष (सं ० ति ०) प्रति-इक्ष-अच् । प्रतीक्षाकारी, वाट जोहनेवाला ।

प्रतीक्षक (सं ० ति ०) प्रति-इक्ष-प्वुल् । १ प्रतीक्षाकारक, आसरा देखनेवाळा । २ पूजक, पूजा करनेवाळा । प्रतीक्षण (सं ० ह्वी०) प्रति-ईक्ष-ल्युट्।१ प्रतीक्षाकरण, आसरा देखना। २ क्रपादृष्टि, मेहरवानीकी नजर। प्रतीक्षणीय (सं ० ति०) प्रति-ईक्ष-अनीयर्। प्रतीक्षण-योग्य।

प्रतीक्षा ( सं ० स्त्री०) प्रति-ईक्ष-अङ् । १ प्रतीक्षण, आसरा, इंतजार । २ प्रतिपालन, किसीका भरण पोपण करना । ३ पूजा ।

प्रतीक्षिन् (सं० ति०) प्रति-ईक्ष-णिनि । १ प्रतीक्षा-कारक, प्रतीक्षा करनेवाला । २ प्जाकारक, पूजा करने-वाला ।

प्रतोक्ष्य (सं ० ति०) प्रतोक्षते इति प्रति-ईश्न-ण्यत्। १ पूज्य, पूजा करने लायक। २ प्रतोक्षणीय, प्रतोक्षा करने योग्य। प्रतीघात (सं ० पु०) प्रति-इन-भावे घञ् वाहुलकात् दीर्घः। १ प्रतिघात, वह आघात जो किसीके भाघात करने पर हो। २ वह आघात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो, टक्कर। ३ वकावट, वाधा। ४ निराश। ५ निश्चेष।

प्रतिघातिन् (सं ० वि०) प्रति-हन्-णिनि । प्रतिघातयुक्त । प्रतिचां (सं ० स्त्री०) प्रतिदिनान्तं प्रतिदिनान्ते इत्यर्थः अञ्चति सूर्यमिति अञ्च - गतिपूजनयोः (ऋतिक् १ष्ट सण् विष्णिणगञ्ज्वपुषिक्षाध । या १।२।५९) इति किन् अनलोपो दीघेष्य, 'उगितश्येति' इति ङीप् । पश्चिमदिक्, पश्चिम दिशा । २ पश्चिमभिमुखी । ३ प्रतिनिवृत्तमुखी ।

प्रतीचीन ( सं ० ति ० ) प्रतीचिभवं प्रत्यच् ( विभाषाङ्गे-रहि ६ विद्यांका । ४।० इति ख, अञ्जोषो दीर्घश्च । १ प्रत्यक् पश्चिम दिशाका, पछाहीं । २ पराङ्गमुख, जिसने मुंह फेर लिया हो ।

प्रतीचिनेड् ( सं ० क्ली० ) सामभेद ।

प्रतीचीश (सं॰ पु॰) पश्चिम दिशाके खामी, वरुण। प्रतीच्छक (सं॰ ति॰) प्रतिगता इच्छा यस्य प्रादिस॰ ततः कप्। प्राहक, छेनेवाला।

प्रतीच्य (म.' ० ति ०) प्रतीच्यां भवः, प्रतीची-यत् । पश्चिम-दिग्जात । पश्चिमदिशामें होनेवाला ।

प्रतीत (सं ० ति ०) प्रतीयते स्म प्रत्येकमगाद्वेति, प्रति-इण् कर्मणि, कर्त्तरि वा क । १ ख्यात, प्रसिद्ध, मशहूर । २ प्रसन्न, खुरा। ३ ज्ञात, विदित, जाना हुआ। (पु॰)
४ विश्वदेवका अन्यतम।
प्रतीतसेन (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद।
प्रतीताक्षरा (सं॰ स्त्रो॰) प्रतीतः अक्षरः यत। विश्वासयोग्य वाक्यसम्बल्लित।
प्रतीतार्थ (सं॰ ति॰) स्वीकृतार्थ, अनुमोदितार्थ।
प्रतीति सं॰ स्त्री॰) प्रति-इन्-भावे किन्। १ ज्ञान,
जानकारी। २ दृढ़ निश्चय, विश्वास, यकीन। ३ प्रसिद्धि,
स्पाति। ४ आनन्द, प्रसन्नता । ५ आदर।
प्रतीत्यसमुत्पाद (सं॰ पु॰) वेदमन्त्राद्धिका पद्विशेष।
प्रतीत्यसमुत्पाद (सं॰ पु॰) वेदमन्त्राद्धिका पद्विशेष।
प्रतीत्यसमुत्पाद (सं॰ पु॰) वेदमन्त्राद्धिका निदानतत्त्वभेद।
जिन सव कारण-परम्परासे जीवकी जाति, उत्पत्ति
निर्णीत दुई है, वे प्रत्ययनिवन्धन ही दुःखके कारण हैं।
स्लेशव्याधि-प्रपीड़ित मनुष्योंके दुःखसे कातर हो शाक्यकुमार सिद्धार्थने वोधिवृमके नीचे बुद्धत्व लाभके समय

जीवनव्याधिके कारण स्वरूप द्वाद्श निवानका आविष्कार

किया था। उक्त द्वादश निदानतत्त्वका नाम प्रतीत्य-

समृत्पाद है।

ळित-विस्तरमें लिखा है—अविद्या, संस्कार, विद्यान, नामक्य, यड़ायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और दुःख ये वारह जोवोत्पत्तिके निदान हैं। अविद्यासे संस्कार, संस्कारसे विद्यान, विद्यानसे नामक्य इस प्रकार अन्यान्य सम्बन्धविशिष्ट हो कर जातिसे जरा, मरण, शोक, दुःख, परिदेव, दौर्मन्य और उपायास आदि उत्पन्न हुए हैं। मानवजीवनका उत्पत्तिकारण निर्देश करनेमें पहले मृत्युकारणका निर्देश करना आवश्यक है। जाति या जन्म नहीं रहने से मृत्यु नहीं हों सकती। मृत्युका उत्पत्तिकारण यदि जाति हो, तो यह अवश्य स्व कार करना पड़ेगा, कि कोई एक वियय जातिका उत्पत्तिनिदान है। इस प्रकार मानव दुःखके कारणभूत द्वादश परस्पर सम्बन्धविशिष्ट निदान आवि-कृत हुए हैं।

इस निदानतत्त्व वा धर्मसूत्रका प्रकृत अर्थे छे कर बहुत मतमेद चल रहा है। वीद्धाचार्योंने इसकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है। हीनयानमतावलिन्योंके साथ महापानसम्प्रदायकी एकता देखी जाती है। बौद्ध भिन्न

Vol. XIV. 138

अन्यान्य दार्शानिकोंने भी इसकी भिन्न भिन्न रूपसे व्याख्या को है। वौद्धशास्त्रमें प्रतीत्यसमुत्पादके मूल-खरूप द्वादश निदानमें जो पारिभाषिक संज्ञा व्यवहृत हुई है उसका सम्पूर्ण अर्थप्रह नहीं होने पर भी यथा सम्भव उन सब शब्दोंका अर्थ नीचे लिखा जाता है—

अविद्या—अज्ञान् वा ज्ञानका अभाव—जगत् और जागतिक पदार्थोंका नित्य और सत्य ज्ञान ( यथार्थमें जगत् असत्)।

संस्कार—अविद्याजात भ्रान्तिज्ञान निवन्धन मान-सिक व्यापारमेद । कप रस गन्ध शब्द स्पर्श—अर्थात् शीत श्रीषम ज्वाला यातना सुख दुःख समृति अनुभूति भय हर्ष लज्जा चेष्टा आदि सभी संस्कार हैं । संस्कारके योगसे मनःशरीर संगठित हुआ है । विना संस्कारके कुछ भो नहीं हो सकता । सभी संस्कारके एकत होने-से मैं पूर्ण, जायत, नाना उपाधिभूषित, महैश्वर्यमय और 'अह' कपमें दण्डायमान होता हूं, किन्तु वह विद्यानादि-का सहायसापेक्ष है ।

विद्यान—हान, यह छः प्रकारका है—१ चाक्षण, २ श्रावण, ३ श्राणज, ४ रासन, ५ त्वाच और ६ मानस।

नामक्रय-प्रत्यक्ष-जगत्, 'नाम'का अर्थ अन्तर वा मनोजगत् और 'क्रप'का अर्थ वाह्य वा जड़जगत् है। नामक्रपसे सारे संसारका वोध होता है। वीद्धदर्शनमें नामक्रप पदार्थको पश्चस्कन्धको समष्टि वतलाया है।

वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञानस्कन्ध, इन चारोंके योगसे नामकी तथा क्षिति, अप, तेज और मस्त् इन चारोंके योगसे 'रूप' नामक पञ्चम स्कन्ध-की उत्पत्ति हुई है। वेदना, संज्ञा और संस्कार कहनेसे समस्त चित्तवृत्तियोंका ही उब्लेख किया गया। उसमें विज्ञानयुक्त होनेसे ही अन्तःशरीर वा मनोजगत् निर्मित होता है। वह प्रकाएड मनोमयजगत् एक नाममात है। फिर 'पुद्रल' पुष्प एकेश्वर में ही—एक नाम और एक रूपकी समष्टिमात हूं।

पड़ायतन—जड़शरीर, चक्ष, कर्णं, नासिका, जिह्ना, शरीर और मन इन छः इन्द्रियोंका आश्रयस्वरूप हम छोगोंका शरीर है।

स्परी-जड़शरीरके साथ जड़जगत्का सम्बन्ध।

वेदना—स्परीजात रूपरसगन्यादिकी अनुभूति । तृष्णा—आकांक्षा या प्रवृत्ति, वाह्यजगत्के साथ अन्तर्जं गत्का सम्बन्ध रखनेकी इच्छा । भतान्तरसे सुखकर विपयकी लाभेच्छा और कप्रजनक विपयकी वर्जनेच्छा ।

उपादान—उपकरण, स्त्रीके प्रति स्वामीका अनुराग वा प्रवल आसक्तिका भाव ।

भव—सत्ता वा अस्तित्व (Becoming or Existence)

जाति—जन्म वा उत्पत्ति।

जरामरण-जन्मजन्य दुःखादि ।

पूर्वोक्त द्वादश पदार्थ इतरेतर सम्बन्धविशिष्ट है। ब्रह्मसूब-टोकाकार गोविन्दनाधने इस निदान-श्रृङ्खलाको मनुष्यजीवनका इतिहास वतलाया है । मातृगभेमें भ्रणके मध्य मनुष्य-जीवनका आरम्भ है । वहां पहले पहल वहुत संस्कार वा सामान्य चित्तवृत्तिका विकाश होता है, साथ साथ सुखदुःखादिको अनुभूतिका सञ्चार हुआ करता है। इस प्रमेदानुभूतिका मूल अविद्या, भक्रान वा भ्रान्ति है। संस्कारके क्रमशः परिस्फुट होनेसे विज्ञानका उदय होता है। उससे भ्रण मानो वहुत कुछ सुखदुःखादिका अनुभव करना सोख लेता है। क्रमशः नामरूपका विकाश है—वह वहुत कुछ सूक्ष्मगरीर भाव-का—विज्ञान और संस्कारका आश्रयभूत है। इसके वाद पड़ायतन वा भवयवादिसम्पन्न जड़शरीर वहुत कुछ पूर्णाकार धारण करता है। अभीसे इन्द्रियादिका कार्य शुरू होता 🕻 । क्रमशः वाह्यजगत्के साथ उस स्थूलशरीरका स्पर्श हो जाता है। अभी मान लेना चाहिये, कि भ्र ण मातृगर्भंसे भृमिष्ठ नहीं हुआ है। मातृ-गर्भ ही उसका वाह्यजगत् है। उस जगत्के साथ स्वर्श-जन्य उसे वेदनादिका अनुभव हांता है। वेदनासे 'तृष्णा' अर्थात् आराम उपभोग और दुःखपरिहारकी आकांक्षा ; उससे 'उपादान' वा सुखलाभ और दुःखपरिहारकी विशेष चेष्टा होती हैं। ऐसी अवस्थामें पहुंचनेसे 'भव' अर्थात् गर्भस्थ भ्रणने पूर्णकपसे मनुष्यसत्ता प्राप्त की है, ऐसा समभा जाता है। इसी समय मालूम होता है, कि वह मातुगर्भसे बाहर निकल कर 'जाति' वा मनुष्यजन्म

लाभ करता है। उस वैचारेके जातिलामका फल ही जरामरणकी अभिवाक्ति (Evolution) है। वोधिवृक्ष-के नीचे भगवान्ते जिस मीमांसाका आविष्कार किया, वह मानो एक फिजिओलाजीतत्त्व (शरीरविद्या)के जैसा है।

हिन्दूशास्त्रमें मानवकी १० दशाओंका उल्लेख है। वीद्धोंका प्रतीत्यसमुत्पाद व्यापार भो मानवजीबनका इतिहासमात है। उस इतिहासकी १२ दशाओंमें भभिव्यक्ति हुई है। बुद्धदेवने किस प्रकार यह धर्म-तत्त्व प्राप्त किया और कवसे यह वीद्ध-समाजमें प्रचलित तथा आदृत हुआ, वीद्धशास्त्रसे उसका पता चलता है।

महावंशके २ अध्यायमें लिखा है, कि शाक्यकुमार सिद्धार्थने २६वर्षकी उमरमें गृहाश्रमका परित्याग किया। वे गयाके निकटवत्तीं नैरक्षना नदीके किनारे छः वर्ष तक वोधिवृक्षके नीचे ध्यानमन रहे। उसके तपके प्रभावसे इर कर 'मार' वलवल समेत भाग चले। ३५ वर्षकी उमरमें उन्होंने युद्धत्वलाम किया था। वुद्धत्वप्राप्तिके साथ साथ उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद कप धर्महानप्राप्त किया।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परस्पर कार्यकारण-भावापत्र यह प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्व वौद्धभंका एक प्रधान अङ्ग है। कारण-परम्परा द्वारा अविद्यासंस्काः रादिसं जो कार्य उत्पन्न होता है, वह श्रृङ्खलायुक्त नहीं होने पर भी निरपेक्ष प्रवृत्त हो कर कार्योनमुख हुआ करता है। कारणसमवायका नाम प्रत्यय (dependence) है। माध्यमिकस्त्रमें चार प्रकारके प्रत्ययकी वातें लिखी हैं—

"चत्वारः प्रत्यया हेतुश्चाळम्यनमनन्तरम् । तथैवाधिपतेयं यत् प्रत्ययो नास्ति पश्चमः॥" ( माध्यमिकसूझ १।३ )

हेतु, आलम्बन, अनन्तर और आधिपतेयके सिवा और पश्चम सम्बन्ध नहीं हैं। प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्वमें जो द्वादश निदानका उल्लेख है, वह परस्पर हेतूपनिबन्ध नहीं होने पर भी किसी किसी अन्योन्यसम्बन्धमें निवद है। अविद्या और संस्कारमें हेतुसम्बन्ध वर्त्तमान है, किन्तु संस्कार और विज्ञानका सम्बन्ध अन्यक्षप है। हम लोगोंकी निगाह पर जब कोई चित्र पड़ता है, तब पहले पहल हम लोग उसका विशेषत्व उपलब्ध नहीं कर सकते। अविद्यासे ही धीरे धीरे हम लोग उस मूर्तिका विशेषत्व निरूपण कर लेते हैं। इस प्रकार संस्कार वा अनुमूर्ति द्वारा हम लोग चाक्षुप ज्ञानकी सार्धकता करते हैं। यह मेरी माता है, इत्यादि ग्रान्तज्ञान अविद्याजनित है। श्रान्तज्ञानवश्तः मनमें जो व्यापारादि संबदित होता है, वह संस्कारसे उत्पन्न है। इस कारण संस्कार और अविद्या परस्पर उत्पादक शक्तिविशिष्टके जैसा कल्पित है। इसी प्रकार विज्ञान, नामस्प, पड़ायतन आदि एक दूसरेके साथ अवच्छिन्न भावमें सम्बन्धयुक्त हुआ है। 'ज्ञाति' वा जन्म नहीं होनेसे दुःखका आस्थान नहीं रहता, इसीसे जरामरणकल्प जड़शरीरको ही जन्मसे उत्पन्न दुःखका मूलसक्स वतलाया है।

शङ्कर-पदानुस्त प्र्यपाद आनन्दगिरिने अपने वेदान्त-भाष्य (शश्६)-के ऊपर जो टीका टिप्पणी की है, उसमें जस्मादि पूर्वापर विषय अविद्याजनित है। मतान्तर-से अविद्यादि भी जन्मादिके साथ परस्पर सम्बन्ध विशिष्ट कही गई है। इस प्रकार यह एक द्वाद्य प्रन्थियुक्त श्टङ्खलविशिष्ट हो कर जलयन्त्र (घटीयन्त्र)-के जेंसा लगा-तारं घूमता है।

हिन्दू दार्शनिक वाचस्पितिमिश्रने उक स्वकी टीकामें वुद्धधर्मम्लक प्रतीत्यसमुत्पाद्वत्त्वकी एक संक्षेप
व्याख्या दी है,—"वुद्धदेवने संक्षेपमें कहा है, कि प्रतीत्यसमुत्पाद् अप प्रत्ययफल मात है। इसके दो कारण हैं,
हेत्पिनिवन्ध और प्रत्ययोपिनिवन्ध । वाह्य और आध्यातिमक्षेत्रसे इसको और भी दो भागोंमें विभक्त किया जा
सकता है। वाह्यहेन्पिनिवन्ध इस प्रकार है,—बीजसे अंकुर, अंकुरसे पत, पत्नसे काएड, काएडसे नाल,
नालसे गर्भे, गर्भसे शूक, शूकसे पुष्प और पुष्पसे फल
उत्पन्न होता है। इसी प्रकार वीजसे निर्लिप्तभावमें फलपुष्पादिका उन्द्रव होता है। परन्तु वीज यह नहीं जानता,
कि वह अंकुरका कर्चा है अथवा अंकुर भी समक्ष नहीं
सकता, कि वीज हो उसका उत्पादक है। इसी प्रकार
फल और पुष्पके मध्य निर्वर्चिक और उत्पादक्ता ज्ञान

नहीं उत्पन्न होता। बीजादिका चैतन्य असिद्ध तथा अन्य अधिष्ठाताका अभाव होने पर भी कार्यकारणभावित्यम उपलब्ध होता है। प्रत्ययोपितवन्यके विपयमें उन्होंने छिखा है, कि हेतु-समवायका नाम प्रत्यय है। पड़्धातुका मेल होनेसे वीजहेतु अंकुर उत्पन्न हो सकता है। पृथिवी वीजका संप्रहकार्य समाप्त करके अंकुरको दृढ़ करती है। जल द्वारा बीज स्नेहयुक्त होता है। तेज द्वारा बीजका परिपाक होता, वायुके योगसे वीज अनिनिह त हो कर अंकुरोत्पादन करता और आकाश बीजको आवरण शून्य करता तथा ऋतु द्वारा बीज परिणितको प्राप्त होता है। इससे यह सावित हुआ, कि इन सव अविद्यत धातुओं के मेलसे बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं होता। पृथिवी यह नहीं जानती, कि वह बीजका संग्रह कार्य करती है अथवा बीज भी नहीं कह सकता, कि वह उसकता ( अंकुरका) परिणामसाधन करता है।

आध्यात्मिक प्रतीत्यसमुत्पाद्के भी इसी प्रकार हो कारण निर्दिष्ट हुए हैं। अविद्या संस्कारसे छे कर जाति जरामरणादि पर्यन्त आध्यात्मिक प्रतीत्यसमुत्पादका हेन्पनिवन्ध है। यहां पर अविद्याको भी माल्म नहीं, कि वह संस्कारका निर्वर्त्तनकर्ता है अथवा संस्कार भी यह नहीं कह सकता, कि वह अविद्याका निर्वत्तिता है। इस प्रकार जात्यादि भी एक दूसरेके निर्वर्त्तक और निर्वत्तित भावको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं। अविद्यादि स्वयं असेतन होने पर भी उसमें चेतनान्तरका अधिष्ठान हुआ है। सुतर्रा अनेतन बीजादि पदार्थके अंकुरादिकी उत्पत्तिकी तरह संस्कारादिका अन्य सेतनाधिष्ठान प्रतीय-मान होता है।

पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश और विश्वानधातुकी समिप्रिसे कायकी उत्पत्ति हुई है। यही प्रत्ययोपनिवन्ध्य आध्यात्मिक प्रतीत्यसमृत्पादकी अभिव्यक्ति है। पृथिवी-से कायकी कठिनता, जलसे स्नेहता, तेजसे अशितपीत-रूपता, वायुसे भ्वास प्रभ्वासादि और आकाशसे काया सुपिरभावापन्न होती है। पश्चिविज्ञानकार्यसंयुक्त विश्वानधातु ही नामरूप अंकुरका सम्पादक है। आध्यात्मिका अविकला पृथिव्यादि धातुके एकत समावेशसे कायाकी उत्पत्ति है; किन्तु पृथिवी भी नहीं जानती, कि उसीसे

कायाकी कठिनता हुई है अथवा कायाको भी यह ज्ञान नहीं, कि उसकी उत्पत्तिका हेतु पृथिवी है। यही प्रत्यक्ष-द्रष्ट प्रतोत्यसमुत्पाद है। दाशॅनिकप्रवर वाचरूपतिमिश्रने बौद्धमतका खण्डन करते हुए प्रतोत्यसमुत्पाद-धर्मतत्त्व-का जो अर्थ किया है वही यहां पर उद्घृत हुआ। इसका मूळांश ऐसा दुवेंध्य है, कि उसका कोई परिस्फुट भाव भाषामें लिपिवद्ध नहीं किया जा सकता।

सर्वेदर्शनसं प्रहकार माधवाचार्यने भी वौद्धदर्शन-भागमें प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्वकी पूर्वोक्तरूपसे विवृति की है। अश्वघोषने निज कृत बुद्धचरितमें अविद्याको ही जगत्रूप वृक्ष और दुःखका मूलकारण वतळाया है। माध्यमिकसूलके टीकाकार चन्द्रकी तंका कहना है, कि इतरेतर सम्बन्धविशिष्ट द्वादश निदानतत्त्व ही प्रतीत्य-समुत्पाद है। यह क्षणस्थायी नहीं और न चिरस्थायी ही है, ज्ञाता नहीं है और न ज्ञेय ही है। इसका नाश नहीं है और न यह किसीको नए ही करता है। नदीस्रोतको तरह निरन्तर वह रहा है। शालिस्तम्मसूत्रमें आध्यात्मिक प्रतीत्यसमुत्पाद-तत्त्व दो भागोमें विभक्त बुआ है, हेतूपनिवन्ध और प्रत्ययोपनिवन्ध । हेतूपनिवन्ध में अविद्यादि कारणपरम्परा एक दूसरेका उत्पत्तिसाधक हुई है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और विज्ञान इन छः पदार्थों के मेलसे प्रत्ययोपनिवन्ध निष्पादित हुआ है। क्षितिसे देह, जलसे उसकी परिपृष्टि, अग्निसे पाककार्य, वायुसे भ्वासिकया और आकाशसे कायका सुषिर भाव हुआ करता है, तथा विज्ञान द्वारा ही शरीर इन्द्रियसायुज्यको प्राप्त होता है। इन छह धातुओंके पर-स्पर मेळसे पूर्णदेहविशिष्ट हो कर जीव 'नाम' पाता है। अथच पृथिव्यादि कोई भी नहीं कह सकता, कि मैं ही परवर्त्तीका निष्पादक हूं अथवा परवर्त्ती भी अपनेको पूर्वका निष्पन्न नहीं कह सकतो।

वेदान्तसूत्रकी व्याख्या देखी।

मायालक्षण-सभाव-विशिष्ट पदार्थमात ही असामिक है। हेतु और प्रत्ययके अविफलत्य हेतु वे निरन्तर कार्य-कारी हुए हैं। यह स्वयंग्रत नहीं है, अथवा यह न पर-ग्रत है न ईश्वरकृत, न कालपरिणामित ही है, न प्रकृतिसम्भूत न एकैककारणाधीन है और न अहेतुसमुत्पन्न हो। बुद्धघोष- ने विशुद्धिमाग्ग नामक पालिग्रन्थमें संस्कार वा कर्मको ही मनुष्यके जातितत्त्वका मूलकारण वतलाया है। उक्त श्रन्थमें कई जगह तत् कर्नु क उक्त द्वादशतत्त्वका ऐसा अर्थ लिखा है—चार सत्यकी अज्ञानता ही अविद्या है संस्कार—शारोरिक, वाचिनक वा मानसिक सदसत् कर्मादि, प्रत्यक्षज्ञान ही विज्ञान है; वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूपस्कान ही विज्ञान है; वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूपस्कन्थके सहयोगसे नामकए; चक्षुकर्ण नासिका जिह्ना त्वक् और मन ये छः षड़ायतन हैं; सुखदुःखादिकी अनुभूतिमात हो वेदना है, रूपरसादिकी वलवती इच्छाका नाम तृष्णा है; उपादान—आसक्ति,; भव—कमसत्ता; जाति—जन्म और जरामरणादि—दुःख-कारण।

प्रतीदर्श (सं० पु०) शतपथब्राह्मणोक एक व्यक्तिका नाम।
प्रतीनाह (सं० पु०) प्रति-नह-घञ्। वाहुं दोर्घ। १
वाधा देना। २ कर्णरोगभेद। ३ पताका।
प्रतीन्थक (सं० पु०) विदेहराजाके एक पुतका नाम।
प्रतीप (सं० ति०) प्रतिकुला आपो यस्मिन्। (इक्ष्मिन्धः प्रयामानद्वे। पा ५।४।७४) इति अप्रत्यय (इष्यन्त ६ पर्गेम्थोऽप ईत्। पा ६।३।६३) इति ई।। १ प्रतिकुल, उलटा। (पु०) २ चन्द्रचंशीय एक राजाका नाम।

३ अर्थालङ्कारमेद । इसमें उपमेयको उपमानके समान न कह कर उलटा उपमानको उपमेयके समान कहते हैं अथवा उपमेय द्वारा उपमानका तिरस्कार वर्णन करते हैं । उदा-हरण— "यरवन्नेतसमानकान्ति सिल्ले मग्न' तिदन्दीवरं मेधेरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारो शशी ।

येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गतः त्वत्साद्गश्यविनोदमातमि मे देवेन न क्षम्यते॥" हे प्रिये! तुम्हारे नयनके समान जिसकी कान्ति थी, वह इन्दीवर अभी जलमें इव गया है। जो शशी तुम्हारे मुखकी शोभा धारण करता था, वह भी अभी मैघसे ढक गया है। फिर जो तुम्हारी चालका अनुकरण करते थे, वे राजहंस भी अभी मानससरोवरको चले गये हैं। अत-पव हे प्रिये! मैं जो तुम्हारी सदृशता देख कर भी कुछ शान्तिलाम करता, प्रतिकृत देवको वह भी अच्छा न लगा।

यहां पर इन्दीवर, शशी और राजहंस ये सव प्रसिद्ध उपमान होने पर भो उन्हें उल्मेयमें वर्णन किया गया है। द्वितीय उदाहरण यथा—

"तद्वषतं यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद्र पुति-स्तचक्षूर्यदि हारितं कुनलयेस्तच्चेत् स्मितं का सुधा। धिक् कन्दर्पधनुर्नुं नौ यदि च ते किंवा वहु त्रमहे यत्सत्यं पुनदकनस्तुनिमुखः सर्गकमो वेधसः।" (साहित्यद्पण १० परि)

उसके मुखके साथ चन्द्रमाकी तुलना नहीं होती, कान्तिके सामने सुवर्ण लजा जाता है, दोनों चक्षुके निकट कुवलयदल हार मानता है। एक वारकी थोड़ी मुसकराहट सुधाको भी तुच्छ वतलाती है। दोनों भ्रू मदनके कुसुम-धनुको भी मात करता है। अधिक क्या कहा जाय, विधाताने सचमुच सारी सुन्दरता इसीकी सृष्टिमें लगा दी है। इसके समान और दूसरी वस्तु है ही नहीं।

यहां पर मुख और चन्द्र, कान्ति और सुवर्णधुति, चक्षु और कुवलय, हास्य (मुसकराहट) और सुधा, भू और धनु ये सव उपमान और उपमेय भावमें चिर-ग्रसिद्ध हैं। मुख इतना सुन्दर है, कि चन्द्रमाके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती, अतपव चन्द्रमाका कथन निष्फल है। इस निष्फलताके अभिधानके कारण यहां पर प्रतीप अलङ्कार हुआ। (साहित्यद० १०।७४२)

४ चन्द्रवंशीय ऋक्षराजपुत्न, शान्तनुराजके पिता। प्रतीपक (सं० पु०) प्रतीप-स्वार्थ-कन्। १ प्रतीप देखोः। २ हर्यश्व-राजपुत्न यहुके एक पुत्रका नाम।

प्रतीपग ( सं॰ ति॰ ) प्रतीपं गच्छति गम-ड । प्रतिकूळ-गामी, उळटा आचरण करनेवाळा ।

व्रतीपगति ( सं ० ति० ) प्रतिकूछगति ।

प्रतीपगमन (सं० क्को ) प्रतीपं गमनं । प्रतिकूलगमन । प्रतीपगामिन् (सं० बि०) प्रतीपं गच्छति गम-णिनि । प्रतिकूल-गमनकारी ।

प्रतीपतरण ( सं० क्लो० ) जलस्रोतके विपरीत और नाव चलाना ।

प्रतीपदर्शिन् (सं॰ ति॰) प्रतीपं वामं पश्यति दृश-णिनि । १ प्रतिकुलदर्शक । स्त्रियां ङीप् । २ स्त्रीमात । प्रतीपदर्शिनी (सं॰ स्त्री॰) देखते ही मुंह फेर लेनेवाली

नई स्त्री।

Vol. XIV, 139

प्रतीपवचन ( सं ॰ ह्री॰ ) प्रतीपं वचनं । प्रतिकूलवाभ्य, खण्डन ।

प्रतीपाश्व ( सं ० पु०) राजमेद ।

प्रतीपिन् (सं॰ ति॰) प्रतीपः विद्यतेऽ स्य (सुखाधि-भ्यस्व । धारा१३१) इति इनि । प्रतीपयुक्त, जो कार्यके प्रतिकृत्व हों ।

प्रतीपोक्ति (सं • स्त्री • ) किसीके कथनके विषद्ध कहना, खएडन ।

प्रतीवोध (सं०) प्रति-बुध-घञ्। वोध वाहुं दीर्घः। १ ज्ञान। २ सतर्कता। ३ प्रतिक्षण बुध्यमान। प्रतीयमान (सं० ति०) १ ज्ञान पड़ता हुआ। २ ध्वनि या व्यंग्य द्वारा प्रकट होता हुआ।

प्रतीर (सं ॰ क्ली॰) प्रतीरयति जलगतिकमैसमाप्ति नयतीति प्र-तीर-कमैसमाप्ती क । तट, किनारा ।

प्रतीराध ( सं० पु० ) प्रति-राध-घत्र् वाहुं दीर्घः । प्रतिराध देखी ।

प्रतीवर्त्त ( सं ० ति० ) प्रति-वत्-घञ्-वाहुं दीर्घः । गोळा-कार ।

प्रतीवाप (सं ॰ पु॰) प्रत्युय्यते प्रक्षिप्यते अथवा निविच्यते-ऽस्मिन्निति प्रति-चप-निषेकादौ घञ्, वाहुं दीघः। १ गलित सर्णादिका द्रच्यान्तर द्वारा अवचूर्णन, सोने आदि गलाये द्रच्यका रूप वदलनेके लिये उसे मिलाना। २ निक्षेपण, फेंकनेकी किया। ३ दैवी उपद्रव। ४ औषध जो पीनेके लिये काढे आदिमें मिलाया जाय।

प्रतीवी ( सं० ति० ) प्रति-बो-किप्-वेदे साधुः । प्रति-गमनशील ।

प्रतोबेश (सं॰ पु॰) प्रतिबिश्यते इति प्रति-विश् घञ्, उप-सर्गस्य वाहु॰ दोर्घः । प्रतिवेश, पड़ोस ।

प्रतीवेशिन् ( सं० ति० ) प्रतीवेशोऽस्यास्तीति प्रतिवेश ( अत इनि ठनौ । पा ५१२। ११ ) इति इनि । प्रतिवेशी, पड़ोसमें रहनेवाला, पड़ोसी ।

प्रतीवैश्य ( सं॰ पु॰ ) पुराणानुसार एक देशका नाम । प्रतीशा ( सं॰ स्त्री॰ ) सम्मानना, श्रद्धा ।

प्रतीह (सं॰ पु॰) भरतवं शीय सुवर्चलाके गर्भसे उत्पन्न परमेष्ठीके एक पुतका नाम। प्रतीहार ( सं० पु॰ ) प्रति-द्व-घञ् वाहु॰ दीर्घः। १ द्वार, द्रवाजा। २ द्वारपाल। इसका लक्षण-"इङ्गिताकारतत्त्वको वलवान् प्रियदशैनः।

अप्रमादी सदा दक्षः प्रतिहारः स उचते ॥"

( चाणक्यसंग्रह )

जो ईङ्गित और आकारसे अभिन्न (ईङ्गित शब्दका अर्थ है हृद्यगत भाव और आकारका अङ्गचिहादि—इस-के तत्त्वसे जो अवगत हैं ) तथा वलवान्, प्रियदशन, प्रमादशून्य, और सव कामोंमें दक्ष हैं, उन्हींको प्रतिहार कहते हैं। मतस्यपुराणमें इसका लक्षण इस प्रकार है-

> "प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः। वित्तप्राहश्च सर्वेपां प्रतीहारो विधीयते॥"

> > ( मत्स्यपु० १६८ अ० )

पांशु, सुरूप, कार्येदक्ष, प्रियवादी, अनुद्धत और सर्वो-के चित्तप्राहक आदि गुणसम्पन्न व्यक्ति प्रतीहार हो सकते हैं।

३ सन्धिका एक भेद । वह मेल या सन्धि जो कोई यह कह कर करता है, कि पहले में तुम्हारा काम कर देता ! प्रतूर्त्त ( सं० ति० ) प्र-तूर रोगे क । १ प्रकृष्टावेगान्वित। हूं पीछे तुम मेरा करना।

प्रतीहारिन् (सं ० ति० ) प्रतिहरति खामिसमीपे सर्वविपय-मिति प्रति-ह-णिनि उपसर्गस्य दीर्घः वा प्रतीहारः रक्षणी-यत्वेनास्यास्तीति इनि । द्वारी, द्वाररक्षक, ड्योढ़ीदार। प्रतीहारी (सं ० स्त्री०) प्रतीहारोऽस्या अस्तीति-अच, गौरा-दित्वात् ङीप्। द्वारस्थिता, द्वारपालिका।

प्रतीहास (सं ॰ पु॰) प्रतिह्वयो हासोऽस्य उपसर्गस्य दोर्घः । करवीर, कनेर।

प्रतुएडक (सं॰ पु॰) जीवकशाक, जीवक नामका साग। प्रतुद ( सं॰ पु॰ ) प्रतुदतीति प्र-तुद्-क । वे पश्री जो अपना भक्ष्य चोंचसे तोड़ कर खाते हैं। यथा—गोध, श्पेन, कंक, काक, द्रोणकाक, उल्लू और मयूर। इनके मांसका गुण—छघु, शीत, मधुर, कषाय और मानवका हितकर । सुश्रुतमें लिखा है—कपोत, पारावत, भृङ्गराज, परभृतक, यप्टिक, कुलिङ्ग, गृहकुलिङ्ग, गोक्षोड़क, डिप्डिमानक, शतप तक,मातृनिन्दक भेदशी, शुक, सारिका, वलगुली, गिरिशाल ह्वाल, दृषक, सुग्रही, खज्जरीरक, हारीत और दात्यूह आदि पक्षी प्रतुद् जातिके हैं । इनके मांसका गुण़—कवाय, मधुर

रूक्ष, फलाहारी, वायुकर, पित्त और श्लेमानाशक, शीतल, मूलरोधक तथा अल्पतेजस्कर।

( इश्चतसूत्र० ४६३० )।

चरकके मतसे शतपत, भृङ्गराज, कोयप्री, जोवजीवक, कैरात, कोकिल, अत्यूह, गोपापल, प्रियात्मज, लट्टा, लट्टापक वभु, वरहा, तिण्डिमानक, जरी, दुन्दुभि, वाकावलोह, पृष्टकु, लिङ्गक, कपोत, शुक्कशारङ्ग, चिरिटीक, कुयधिक, शारिका, कलविङ्क, चटक, अङ्गारच्युङ्क, पारावत और पाण्डविक ये सव प्रतुद्जातीय पश्ची हैं।

(च. इ.सूत्र । २७ अ । )

प्रतुष्टि ( सं० स्त्री०) प्र-तुप-क्तिन् । १ अतिरुप सन्तोष । २ उपादेय ।

प्रत्णी (सं० स्त्री०) स्नायुकी दुवँछतासे होनेवाळा एक प्रकारका रोग। इसमें गुदासे पीड़ा उत्पन्न हो कर अंत-ड़ियों तक पहुंचती है।

प्रतूद ( सं० पु० ) एक वैदिक ऋपिका नाम जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें है।

भावे-क। (क्ली०) २ प्रकृष्टवेग।

प्रतूत्तंक (सं० ति०) प्रतूर्त्तमस्त्यर्थे बुन् ।गो बदादिभ्यो बुन् । पा प्रशिद्ध ) प्रकृष्टवेगयुक्त ।

प्रतृत्ति ( सं॰ स्त्री॰ ) प्ररूप्टोगयुक्त, वह जिसकी चाल तेज हो।

प्रतृत्विका (सं० स्त्री०) प्रकृष्टं त्लमत कप् कापि इत्वं। शय्याभेद, तोशक।

प्रतोद ( सं० पु० ) प्रतुद्यते ऽनेनेति प्र-तुद-करणे घञ् । १ अभ्वादिताङ्गद्राङ, चाबुक, कोड़ा। पर्याय-प्राजन, प्रव-यन, तोत, तोदन। २ सामभेद, एक प्रकारका सामगान। ३ पैना, औगी।

प्रतोदिन् (सं० ति०) १ वेधकारी, छेद करनेवाला। २ चावुक मारनेवाला ।

प्रतोली ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रतुल्यते परिमीयते इति प्र-तुल परि-माणे घञ्, गौरादित्वात् ङोष् । १ रथ्या, रास्ता । २ अभ्य-न्तरमार्ग, गली, कूचा। ३ दुर्गका वह द्वार जो नगरकी ओर हो। ४ फोड़ों आदि पर पट्टी वांधनेका एक ढंग। इस ढंगकी पट्टो डोड़ी आदि पर बांघी जाती है।

५ इस ढंगकी बांघी हुई पट्टी। ६ सोपानश्रेणीशोभित -नगरद्वार, नगरका वह दरवाजा जिसमें सीढ़िया छगी हों। प्रतोप (सं॰ पु॰) प्र-तुप भावे चक्। १ सन्तोप, तृष्टि। २ पुराणानुसार सायम्मु व मनुके एक पुतका नाम। (ति॰) ३ सन्तोपयुक्त, जिसे सन्तोप हो।

प्रत्त (सं० क्षि०) प्रदीयते स्मेति प्रन्दा कः। (अच उपसर्गाद तः। पा अश्वप्रक) इति तादेगः। दत्त, जिसे दिया गया हो।

प्रति (सं० स्त्री ) प्र-दा-कि । दान ।

प्रतिपातु—महाज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत गुण्डुर तालुक का एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० १६ १२ उ० और देशा० ८० २४ पू०के मध्य अवस्थित है। यह गुण्डुर नगरसे ५ कोस दूर पड़ता है। यहांके दण्डेश्वर स्वामीके शिवमन्दिरमें सात शिलालिपियां हैं। इनमेंसे ११४४ शक-सम्बत्में चोलराजके समय उत्कीण शिला-लिपि ही सबसे पुरानी है। प्रवाद है, कि वह मन्दिर १०२३ शकमें किसी चोलराजसे स्थापित हुआ है। स्था-नीय वेणुगोपाल-स्वामीका विष्णुमन्दिर रेड्डी सरदारोंसे बनाया गया है।

प्रस (सं० ति० ) 'प्र-निश्च-पुराणे प्रात्' इति चकारात् तप् । प्राचीन, पुराना ।

प्रस्तत्त्व (सं॰ क्ली॰) पुरातत्त्व, वह विद्या जिसमें प्राचीन कालकी वार्तीका विवेचन हो।

प्रसतस्विविद् (सं॰ पु॰ ) प्रसस्य तस्वं वेति विद्य-किप् । प्रत्नतस्वन्न, वह जो प्राचीन तस्वींसे अवगत हों, इति-हासवेत्ता।

प्रत्नथा (सं• अञ्य॰ ) प्रत्न इवार्धे थाच्। प्राचीनके जैसा।

प्रत्नवत् (सं॰ अन्य॰) प्रत्न-इयार्थे वति । पुरातनके समान ।

प्रत्यंश ( सं ० क्ली० ) प्रत्येक अंश वा विमाग ।

प्रत्यंशु ( सं ॰ ति •) प्रतिगवों ऽशु अत्या॰-स॰। १ प्राप्तां-शुक्र। २ प्रतिगतांशुक्र।

प्रत्यक् (हिं क्रिव्विव्) १ पीछे । २ पश्चिम् ।

प्रत्यक्चेतन (सं० पु०) प्रतीपं विपरीतमञ्जति जानित प्रति-अञ्च-किप्, ततः प्रत्यक् चेतनः कर्मधा०। सांख्यमत- सिद्ध पुरुष, योगके अनुसार वह पुरुष जिसकी चित्तवृत्ति विलकुल निर्मल हो चुको हो, जिसे आत्मझान हो चुका हो और जो प्रणव आदिका जय करके अपना खरूप पह-चाननेमें समर्थ हो चुका हो।

योगस्त्रमें लिखा है कि चित्त जब नितान्त निर्मेल होता, किसी प्रकारका गुणाधिकार नहीं रहता, तब प्रत्यक्चैतन्यका ज्ञान अर्थात् रारीरान्तर्गत आत्मा सम्बन्धीय ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञानके उत्पन्न होनेसे किसी प्रकारका बिन्न नहीं रहता। विवेकस्यातियुक्त पुरुष हो प्रत्यक्चैतन्य कहलाते हैं।

रजीजन्य अस्थिरता वा चलिंचता आदि समाधि-के प्रवल विश्व है। पुरुष जव प्रणवादि जप द्वारा अपना खरूप जान लेते हैं, तब फिर कोई विकार रहने नहीं पाता।

२ अन्तरातमा ! ३ परमेश्वर । प्रत्यक्त्व (सं० क्की०) १ पश्चाद्दिक्में पीछेको ओर । २ नजदीक, अपनी ओर ।

प्रत्यक्पणीं (सं ० स्त्री०) प्रत्यिश्च पर्णानि अस्याः, पाक-कणोंति डीप्। रकापामार्गे, चिचड़ा। २ द्रवन्ती, मूसाकानी।

प्रत्यक्षुष्पी (सं ॰ स्त्री॰) प्रत्यित्व पुष्पाणि यस्याः। अपामार्गे, चिचडा।

प्रत्यक्वोधि—वौद्ध यतियोंकी एक अवस्था।

प्रत्यक्शिरस् (सं ॰ ति ॰) पीछेकी ओर मस्तक्युक, जिसका सिर पीछेको ओर घुमा हो।

प्रत्यक्श्रेणी ( सं ० स्त्री०) प्रतीची श्रेणी यस्याः समासान्त-विधेरनित्यत्वात् कप् । दन्तीवृक्ष मूसाकानी ।

प्रत्यक्खरु - प्रत्यक्तत्त्वदीपिकाटीकाके प्रणेता, प्रत्यक् प्रकाशके शिष्य।

प्रत्यक्ष (सं० ति०) प्रतिगतमिक्ष इन्द्रियं यत, समासे अच्, वा प्रत्यक्षमस्त्यस्येति अशं आदित्वाद्च् । १ इन्द्रियः प्राह्म, जिसका ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा हो सके । २ इन्द्रियगोचर, जो आंखोंके सामने हो । (क्वी०) ३ निर्धाचन, भेदज्ञान । ४ इन्द्रियसिकर्यजन्य ज्ञान, चार प्रकारके प्रमाणोंमेंसे एक प्रमाण जो सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, प्रत्यक्ष प्रमाण । अक्षि शम्बका अर्थ चक्षु है, अतएव

इस चक्षसे जो ज्ञांन उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अक्षि शब्दसे इन्द्रियमातका ही वोध होता है। यह ज्ञान छः प्रकारका है।

आस्तिक वा नास्तिक आदि सभी दार्शनिक पण्डितीं-ने प्रत्यक्षको प्रमाण खीकारा है, इसमें किसीका भी मतभेद नहीं है। अति संक्षिप्त भावमें इस प्रत्यक्ष-प्रमाणका विषय छिखा जाता है।

गौतमस्त्रमं किला है—

"प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ।"

(गौतमस्० १।३ अ०)

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण हैं। इनमेंसे प्रत्यक्ष प्रमाण सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि इसमें किसीका मतभेद नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण-का लक्षण इस प्रकार हैं; "इन्द्रियार्थसन्निकर्पोत्पन्नं जानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं।"

(गौनमस • ११४)

चक्ष. त्वक् भौर नासिका आदि वाह्य इन्द्रिय अथवा आस्यन्तरिक इन्द्रियं मन विषय आदिको प्राप्त कर जो अन्यभिचारी अर्थात् न्यभिचार नहीं होता—यधार्थ ज्ञानका जनक होता है, चैसे ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष-प्रमाण है। चक्ष और जिह्नादि इन्द्रिय द्वारा रूपरसादिका जो साक्षात्कार होता है वही साक्षात्कार प्रत्यक्ष प्रमाण है। यहां पर यह आशङ्का हो सकती है, कि जब चश वाह्यवस्तुका प्रत्यक्ष उत्पादन करता है, उस समय चक् शरीरमें ही रहता है, शरीरसे निकलता नहीं । घटादि-में संयुक्त हो कर किस प्रकार उसका प्रत्यक्ष सम्पादन करता है, थोड़ा गौर कर देखनेसे हो यह शङ्का दूर हो सकती है। दीपके जिस प्रकार घरके एक कोनेमें रहने पर भी उसकी प्रभा घर भरमें फैल जाती है, उसी प्रकार चक्षपदार्थं तेजस अर्थात् तेजःस्वरूप 🕏 । सुतरां तत्प्रयुक्त उसको स्हम प्रभा निकलती है। उक्त स्हम प्रभा अववर्ती पदार्थको पाकर 'यह मनुष्य है' 'यह गी है' इत्यादि ज्ञान उत्पन्न करा देती है।

त्विगिन्द्रिय सारे शरीरमें व्याप्त है। अतपव इस्त-पदादि किसी अवयवके साथ शीत उष्णादि किसी भी वस्तुका स्पर्श होनेसे ही उसका प्रत्यक्ष होता है। त्विगि- न्त्रिय द्वारा केवल कपका प्रत्यक्ष नहीं होता। क्य प्रिन्न नयन द्वारा जिसका प्रत्यक्ष होता है, त्वक् द्वारा भो उस-का प्रत्यक्ष अवश्यम्मावो है। रसनेन्त्रिय रसयुक्त पदार्थंको पा कर उसके माधुर्यादि गुणको साक्षात्कार करतो है। इसी प्रकार नासिका गन्धको और कर्णेन्द्रिय ग्रव्यको प्रहण कर तथा मन ज्ञान और सुखादि क्य आभ्यन्तरिक पदार्थंको अनुभव कर प्रत्यक्ष गोचर करता है।

रक्तवस्तु समीपस्थित स्फटिकादिमें जो रक्ता प्रत्यक्ष करती है, वही प्रत्यक्ष भ्रमात्मक है। क्योंकि स्फटिक शुक्कवर्ण है, उसमें रक्तवर्ण ज्ञान अयथार्थ है। इसीसे प्रत्यक्षळक्षणमें 'अव्यमिचारि' पद अर्थात् भ्रम मिन्न यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है।

इन्द्रिय और विषय इन दोनोंके मध्य जिस सम्बन्ध-के रहनेसे प्रत्यक्ष होता है, उसी सम्बन्धका नाम सिन-कर्ष है। यह सिनकर्ष छः प्रकारका है। यथा—संयोग, संयुक्त, समचाय, संयुक्तसमवेतसमबाय, समबायसम-वेत,समबाय और विशेषणता।

इनमेंसे प्रथमतः इन्द्रिय दृष्यमें युक्त होती है। इसी-से द्रव्यके प्रत्यक्षमें जो सन्निकर्ष है, वही संयोग गुण और किया है। द्रव्यमें जो जाति रहती है, उसके प्रत्यक्ष-में जो सन्तिकर्ष हैं, उसे संयुक्तसमवाय कहते हैं। गुण और क्रियामें जो जाति रहती है, उसके प्रत्यक्षमें संयुक्त-समवेतसमवाय है। शब्द प्रत्यक्षमें समवायसन्तिकपे है। क्योंकि, कर्णेन्द्रिय गगनखरूप हैं। उसके साथ शम्द-का समवाय सम्बन्ध ही है । शन्दत्व जाति प्रत्यस्रमें समवेतसमवाय है। अभावपत्यक्षमें विशेषणता सन्नि-कर्प है। यह प्रत्यक्ष दो भागोंमें विभक्त है। जिनमेंसे पहला अन्यपद्देश्य वा निर्विकल्पक है । यह ज्ञान प्रथम इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होता है और गोत्वधर्म तथा गोधर्मि प्रभृतिको पृथक्रूपमें विषय करता है, गोत्वादि गवादि सम्बन्धको नहीं करता। दूसरा प्रत्यक्ष व्यवसायात्मक है। इसे सविकल्प भी कहते हैं। यह प्रत्यक्ष गवादिमें गोत्वादिके सम्बन्धको विषय करता है। इसीसे गोख-विशिष्ट गो ऐसे प्रत्यक्षका आकार हो जाती है। इस प्रमाणका विषय पूर्वोक्त सूतके भाष्यमें उक्त प्रकारका ही सुतार्थ कल्पित हुआ है।

गौतमसूत्रमें 'प्रत्यक्ष' यह स्वतन्त्र प्रमाण है वा नहीं, इसकी परीक्षाका विषय इस प्रकार लिखा है।

कोई कोई आश्ङ्का कर सकते हैं, कि प्रत्यक्ष नामक एक स्वतन्त्र प्रमाण रहनेसे उसकी परोक्षा आवश्यक है। प्रत्यक्ष प्रमाणको यदि स्वतन्त्र प्रमाण न प्राना जाय, तो क्या दोष होता है सो गीतमने इस प्रकार कहा है—

"प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशप्रहणादुपलन्धेः।"

( गौ० शशर८ )

चक्षरादि इन्द्रिय चृक्षके सन्निकर्यसे उत्पन्न एक
चृक्ष हैं, ऐसे ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान वा प्रत्यक्ष प्रमाण कहते
हैं। इस प्रत्यक्षक्षपमें अभिमत उक्त ज्ञान अनुमित्यात्मक
मात है अर्थात् यह प्रत्यक्षज्ञान अनुमितिका प्रकार मेद
मात है। क्योंकि कोई एक अङ्ग ग्रहण करनेसे सम्पूर्ण
चृक्षका ज्ञान होता है। अतपव उक्त ज्ञान अनुमित्यात्मक
है, यहरू वीकार करना ही पड़ेगा। जिस प्रकार धूम
ग्रहण (ज्ञान) द्वारा अप्रत्यक्षीभृत चिह्नका ज्ञान होता है—
इस कारण उक्त चिह्नज्ञानको जिस प्रकार अनुमित्यात्मक
स्वीकार करते हो—उसी प्रकार प्रकृत्यक्षान द्वारा
अप्रत्यक्षीभृत अपरांशका जो ज्ञान होता है, उसे भी
अनुमित्यात्मक मानना कर्त्तव्य है। सुतरां प्रत्यक्ष अनुमानसे स्वतन्त्र और कोई प्रमाण नहीं है। वादियोंको
यह आग्रङ्का दूर करनेके लिये निम्नलिखित सूत्र दिया
गया है—

"न प्रत्यक्षेण यावत्तावद्रय्युपलम्मात् ।" ( गीतमस् ० २।२।२६ )

अनुमिति सिन्त प्रत्यक्ष नामक प्रमाण नहीं है, यह कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण, मूल वा शाखादिकप किसो पकदेशका प्रत्यक्ष उत्पन्न करता है। अतपव प्रत्यक्षमालका उच्छे द हो ही नहीं सकता। यह देखा जाता है, कि अनुमान प्रत्यक्षमूलक है अर्थात् इसके मूलमें प्रत्यक्ष है। नाना स्थानोंमें धूप धूमहेतु बहिका एकल स्थितिद्र्शन और यहि शून्य देशमें धूमका अभाव देख कर हम लोग यह निश्चय करते हैं, कि जहां जहां धूम है वहां वहां यहि भी है, यह एक व्यातिहान माल है। फिर कहीं कहीं धूम देखनेसे अप्रत्यक्षोभूत बहिका अनुमान होता है। अतपव अनुमिति वा अनु-

मान प्रत्यक्षम् छक है। इस कारण प्रत्यक्ष-प्रमाण नहीं रहने से पहले अनुमान ही सिद्ध नहीं हो सकता और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिन्निहित चस्तुकी अवधारणा उत्पन्न होतो है। अनुमान प्रमाण द्वारा अप्रत्यक्षम्त वस्तुका ज्ञान होता है। अतएव प्रत्यक्ष अनुमानका कार्य जव विभिन्न है, तव अनुमानसे प्रत्यक्ष एक स्वतन्त्व प्रमाण है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। वृक्षादि सावयव पदार्थके प्रत्यक्षकी जगह उक्त आपत्ति मले ही प्राह्म हो सकती है, पर निरवयव शब्द और गन्धादिका प्रत्यक्ष अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। कारण, उक्त शब्द और गन्धादि निरवयव होनेके कारण जनका पकदेश प्रहण करनेसे अपरदेशको अनुमिति नहीं उत्पन्न हो सकती। सुतरां प्रत्यक्ष प्रमाण अवश्य स्वीकार्य है।

प्रत्यक्षमातका उच्छेद नहीं होने पर भी उक्त वृक्षादि सावयव वस्तुका ज्ञान अनुमित्यात्मक है, यह खोकार करनेमें कोई दोप नहीं होगा। गौतमस्त्रमें यह आपत्ति भी निराकृत हुई है,—''न वेक्देशोपक्रिक्यस्वपविस्क्रावात्।" गौ॰ ११२१३०

उक्त वृक्षके प्रत्यक्षस्थलमें एकदेशमालको उपलिध हुआ करती है, यह खीकार नहीं किया जा सकता। कारण, ऐसा होनेसे पृथक अवयवीको सत्ता खीकार करनी पड़ेगी। सुतरां अवयव प्रत्यक्षकालमें अवयवीका भी प्रत्यक्ष उत्पन्न कर देता है। यदि इसके उत्तरमें यह कहा जाय, कि सभी अवयवोंके साथ जव चक्रुरादिका सम्बन्ध नहीं है, तब अवयवीका प्रत्यक्ष किस प्रकार हो सकता ? यह सङ्गत नहीं है, यथार्थमें अवयवीका ही प्रत्यक्ष होता है। सभी अवयवींके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध अपेक्षा नहीं करता। किसी व्यक्तिके हस्त वा पदादि किसो एक अवयवका रूपशे करनेसे उक्त व्यक्तिका स्पर्श किया जाता है, यह अवश्य खोकार्य है। यदि समी अवयवींका स्पर्श होनेसे ही उक्त व्यक्तिका स्पर्श होगा, पेसा कहा जाय, तो कभी भो उक्त व्यक्तिका स्पर्श करने-की सम्मावना नहीं रहती । सूत्म सूत्म अवयव अवयवा-न्तर द्वारा व्यवहित है, इस कारण एक ही समयमें सभी अवयवींका स्पर्श नितान्त असम्भव है। अतपव उक्त

Vol XIV 140

अवयवी व्यक्तिके कभी भी स्पार्शनिक प्रत्यक्ष उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः यह कहना एड़े गा, कि किसी एक अवयवके साथ स्पर्श होनेसे हो अवयवीके साथ स्पर्श हुआ करता है। अवयवके प्रत्यक्षकालमें अवयवीका भी प्रत्यक्ष होता है। उसीको तरह अवयवीके चाक्षुपादि-प्रत्यक्ष हुआ करता है, यह वाध्य हो कर स्वीकार करना पड़े गा। सुतरां चृक्षादि प्रत्यक्षको और कुछ भो अनुप-पत्ति न रही।

इन सव तर्केयुक्ति द्वारा यह स्थिर हुआ, कि प्रत्यक्ष एक स्वतन्त्र प्रमाण है। जो प्रत्यक्षको अनुमित्यात्मक कहते, वे भारी भूछ करते हैं। (न्यायदर्शन)

गौतमस्तानुसार प्रत्यक्षके लक्षण और प्रत्यक्ष स्वतन्त्र प्रमाण है वा नहीं, इस विषयकी आलोचना हो चुकी। अब यह देखना चाहिये, कि किस प्रकार प्रत्यक्ष होता है। सर्वोने यह प्रमाण स्वीकार किया है वा नहीं, उसका विषय अति संक्षिप्तमावमें लिखा जाता है। प्रत्यक्षप्रमाण सर्ववादिसम्मत है इसमें किसीकी भो आपित्त नहीं देखी जातो। प्रमाणचिन्तकोंका कहना है, कि प्रत्यक्षप्रमाण प्रमाणान्तरका जीवनस्वरूप है। प्रत्यक्षप्रमाणका यथार्थ रूपमें निर्णय होनेसे अन्यान्य सभी प्रमाण सहज हो जाते हैं। इन्द्रियभेदके अनुसार प्रत्यक्षमेद स्वीछत होता है।

"प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगतौ पुनः। अनुमानञ्च तत्र्वापि सांख्यः शब्दञ्च ते उमे॥" (वेदान्तका०)

चार्वाकने एक माल प्रत्यक्षको ही प्रमाण वतलाया है। उनके मतसे अनुमानादि प्रमाण नहीं है। इस मतका बौद्धदार्शनिकोंने भी अनुमोदन किया है।

तत्त्वकौमुदीमें लिखा है, "अनुमान प्रमाण नहीं है, प्रताक्ष ही एकमात प्रमाण है" जो ऐसा कहते हैं, वाचरूपतिमिश्र आदिने तक और युक्ति द्वारा उनके इस मतका खएडन किया है, केवल खएडन ही नहीं किया है, वरन इसे अति अश्रद्धेय और अयौक्तिक भी बतलाया है।

अभी इस प्रमाणके विषयकी आलोचना की जाती है। नयनादि इन्द्रिय द्वारा यथार्थ रूपमें सभी वस्तुओंका जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं। यह

छः प्रकारका है, चाक्षुष, ब्राणज, रासन, त्वाच्, श्रावण और मानस । चक्षु, ब्राण, रसना, त्वक्, श्रोत और मन इन छह इन्द्रिय द्वारा यथाक्रम उछिखित छह प्रकारके प्रत्यक्ष उत्पन्न होते हैं। गन्ध, तद्दगत सुरभित्व और असुरभित्वादि जातिका ब्राणज प्रत्यक्षः मधुरादि रस और तदुगत मधुरत्वादि जातिका रासन प्रत्यक्षः नील-पीतादि रूप तत्तत् रूपविशिष्ट द्रव्य और नीलृत्व पीतत्व आदि जाति एवं उन सव रूपविशष्ट द्रव्योंकी किया तथा योग्यवृत्तिसमवायादिका चाक्षुपप्रत्यक्षः उद्भृत शीत उष्णादि स्पशे और ताद्वरा स्परीविशिष्ट द्रन्यादिका त्वाच प्रत्यक्षः; शब्द और तद्गत वर्णत्व और ध्वनित्वादि जाति-का श्रावण प्रत्यक्ष और सुख दुःखादि आत्मवृत्ति गुण-की आतमा तथा सुखत्वादि जातिका मानस प्रत्यक्ष होता है । उक्त पड़िन्द्रिय द्वारा इसी प्रकार छः तरहके प्रताक्ष हुआ करते हैं । इन छः तरहके प्रमाणींमेंसे चास्य प्रत्यक्ष ही प्रधान है। नीचे चाक्षष प्रत्यक्ष पर ही थोडा विचार किया जाता है।

वज्जिरिन्दिय और वाक्षुव हान वा वाज्जुव प्रस्पन्न । चक्षरिन्द्रिय क्या है ? किस प्रकार चक्षु द्वारा वस्तुका ज्ञान होता है ? इस विषयमें मिन्न मिन्न मत देखे जातें हैं ।

किसी वीद्यका कहना है, कि चक्षु के केन्द्रस्थानमें जो सफेद काला गोल अंश दिखाई देता है, उसे तारा वा मणि कहते हैं। उसका दूसरा नाम कृष्णसार भी है। चाक्षु व ज्ञान वा चाक्षु व प्रत्यप्रके प्रति वह कृष्ण-सारयन्त्र ही मूख्यकारण है। क्योंकि, कृष्णसारयन्त्र के अविद्यत रहनेसे ही वस्तुप्रह होता है, अन्यथा नहीं होता। इस कारण यह कहना उचित है, कि कृष्णसारयन्त्र होता। इस कारण यह कहना उचित है, कि कृष्णसारयन्त्र होता। इस कारण यह कहना उचित है, कि कृष्णसारयन्त्र ही इन्द्रिय है। कृष्णसारके अलावा और कोई चक्षरिन्द्रय ही नहीं है।

इस पर सांख्यशास्त्र कहते हैं, कि कृष्णसारको इन्द्रिय कहना सम्पूर्ण भ्रम है।

"अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामिश्रष्टानं ॥" जो वास्तविक इन्द्रिय है, वही अतीन्द्रिय है। कभी भी उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। द्रश्यमान कृष्णसार उसका अधिष्ठानमात है। अधिष्ठान (आश्रय)को अधिष्ठित अर्थात् इन्द्रिय कहना नितान्त भ्रम है।

थोडा गीर कर देखनेसे मालूम होगा, कि विषय और इन्द्रिय इन दोनोंका संयोग नहीं होनेसे वस्तुवह नहीं हो सकता । सन्निकर्पं व्यतीत दोनों वस्तुकी संयोग-घटना हो हो नहीं सकती। विषय और इन्द्रिय इन दोनोंका अत्यन्त असन्निक्रप्रतानिवन्धन संयोग नहीं हो सकता। संयोग होनेसे भी उपलब्धि नहीं होती। यदि विना संयोगके केवल कृष्णसारके अस्तित्वसे ही वस्तुकान होता, तो इस जगतमें कोई भी वस्तु अक्रात नहीं रह सकती थी। जब तक शरीर रहता है, तव तक कृष्णसार भी रहता है। जव कृष्णसार समी समय विद्यमान है और वस्तु भी सव जगह निपतित है, तव तत्तावत्का शान जो नहीं होता, सी मयों ? व्यवहित वस्तु ही फिर अञ्चात क्यों रहती ? फिर भी जगत्में जितने प्रकाशक पदार्थ देखे जाते हैं, सभी प्रकाश्य वस्तुके साथ संयुक्त हो कर हो प्रकाश देते हैं । दीप एक प्रकाशक वस्तु है। वह जिस वस्तुके साथ संयुक्त होता है उसी वस्तुको प्रकाश देता है । जिस वस्तुके साथ वह संयुक्त होने नहीं पाता, उस वस्तुको वह प्रकाश नही दे सकता । यदि वैसा होता, तो गृहान्तरीय दीप गृहान्तरीय वस्तुको प्रकाश कर सकता था। अत-पव दूरस्थित वस्तुके साथ चक्ष्र्रिन्द्रियका संयोग सिद्ध करनेके लिपे एक ऐसे पदार्थको इन्द्रिय कहना उचित है जों चक्षगोलकमें अधिष्ठित रह कर गोलकसे अविच्छिन्त रूपमें प्रसर्पित हो दूरस्थित वस्तुके साथ संयुक्त हो सकता है।

वह पदार्थं क्या है ? इसके उत्तरमें नैयायिकोंका कहना है, कि वह पदार्थं भौतिक अर्थात् तेजोविशेप है। परन्तु साल्यकार कहते हैं, कि वह वस्तु आहङ्कारिक अर्थात् अहंतत्त्वका परिणामिवशेप है। चक्षु और चाश्चप प्रत्यक्षके सम्बन्धमें नैयायिकोंका मत है, कि ऐसे कृष्णसार यन्त्रमें एक प्रकारको रिश्म है। वही रिश्म चक्षरिन्द्रिय कहलाती हैं। वह रिश्म समस्त्रपातको तरह धारा-कार और अविच्छित्र भावमें कृष्णसारसे विनिःस्त हो सामनेको वस्तुके साथ संयुक्त होती है। संयुक्त होते ही आत्मामें यह 'अमुक वस्तु' इत्याकार ज्ञान पैदा करती है। दीपालोक जिस प्रकार चक्षुप्मान् व्यक्तिके

सम्यन्धमें वस्तुको प्रकाशित करता है, अचक्षु व्यक्तिके साथ नहीं करता, उसी प्रकार रिममय चक्षुरिन्द्रिय भी मनःसंयुक्त हो कर रूपविशिष्ट वस्तुको प्रकाशित करता है। इपहीन वस्तु वा अमनोयोग चक्षु चाक्षुप प्रत्यक्ष उत्पन्न नहीं करता। प्रत्यक्षके प्रति मनःसंयोग ही प्रधान कारण है विना मनःसंयोगके किसी प्रकारका प्रत्यक्ष नहीं होता। यह मल नैयायिकोंका है; परन्तु सांख्यका मत कुछ और है। उनके मतानुसार सभी इन्द्रियां भौतिक नहीं हैं। वे आहङ्कारिक अर्थात् अहङ्कारः तत्त्वके परिणामसे उत्पन्न हुई हैं। कारण, चक्ष अपनी अपेक्षा न्यूनवस्तुको, फिर वृहत् वस्तुको भी ग्रहण करता है। चक्षरिन्द्रिय यदि भौतिक होती, तो वह कभी भी वृहत् वस्तुको ग्रहण नहीं कर सकती थी। क्योंकि, किसी छोटी वस्तुमें बड़ी वस्तु व्यापित हो सकती हो, पेसा आज तक नहीं देखा गया है। विशेषतः भूत पदार्थ की ऐसी कोई भी शक्ति नहीं जिससे वह विना विभागके दुरस्थ वस्तुके साथ सम्मिलित हो सके। लो, कि तेजमें वैसी शक्ति है, तो फिर हम लोग क्यों नहीं सर्वदा देख सकते, कि छोटे छोटे दोप प्रभा रूपमें वहुत दूर जा रहा है और अपनी अपेक्षा अधिक परिमाण-युक्त वस्तुको साथ लिये हुए है।

इतग्रादि अनेक प्रकारकी युक्ति द्वारा चक्षरादि इन्द्रिय-का नैयायिक-कल्पित यौतिकत्त्व खिएडत हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे ये सव तर्व और युक्ति यहां पर नहीं दिखलाई गईं।

चाक्षुप प्रत्यक्षकी प्रक्रिया वा प्रणालीके सम्बन्धमें क्रियलका अभिप्राय क्या है, सो ठोक ठीक मालूम नहीं। इस विपयमें सांख्याचायों का भा मतमेद देखा जाता है। कोई आचार्य शिकवादी है और कोई शिक सहकृत वृत्तिवादी। शिकवादी आचार्योंका कहना है, कि कृष्ण-सारमें एक प्रकारकी विपयग्राहिणी शिक है जो चक्षु-रिन्द्रिय शब्दकी वाच्य है। हम लोग जो देखते हैं, वह दूरयमान वस्तुका प्रतिविम्यमात है। कृष्णसार जब अपनी शिकसे अपने खच्छांशमें वस्तुका प्रतिविम्य प्रहण करता है, तब उस वस्तुका पहले अविकित्यत ज्ञान होता है। पीछे मनकी सहायतासे यह अमुक वस्तु इस आकारका है, ऐसा ज्ञान हिथर हो जाता है।

चाक्षुप प्रताक्षमें आलोककी सहायता रहना आव-श्यक है। वस्तुमें व्यक्त, रूप और वृहत्त्वके रहने तथा कांच आदि स्वच्छ पदार्थ भिन्न अन्य किसो मिलन पदार्थको व्यवधान नही रहनेसे प्रयोजनीय वस्तुका समूचा शरीर प्रताक्षका गोचर नहीं होता। सम्मुखका अद्ध ही प्रताक्षका विषय होता है। अपराद्ध अनुमेय है। यह अनुमान साथ ही साथ हुआ करता है। चक्षु-गोलक दो होने पर भी इन्द्रिय एक है। अतिदूर और अतिसामी य प्रभृति नवविध प्रतिवन्धक रहनेसे चाक्षुष नहीं होगा।

पश्चीके वहुत दूर चले जानेसे वह दृष्टिवहिर्भूत हो जाता है। फिर आँखका काजल और नाककी जड़ जो वहुत समीपमें है उसे भी हम लोग नहीं देख सकते। गोलक वा इन्द्रियमें किसी प्रकारका व्याघात पहुं-चनेसे ज्ञानका भी आघात हाता है। विमना और उन्मना होनेसे भी दृष्ट दृश्यका ज्ञान नहीं रहता। परमाणु अति स्क्म होनेके कारण वह दिखाई नहीं देता। सौरालांकमें अभिभूत रहनेके कारण दिनको नक्षतादिके दर्शन नहीं होते। स्वजातीय दो वस्तुके एकत होनेसे उनमेंसे प्रतेतक दिखाई नहीं देता। जैसे, काठमें अग्नि है, दूधमें दही है, घी भी है, किन्तु जब तक वह मानवीय व्यवहारमें अभिव्यक्त नहीं होता, तव तक वह प्रताक्ष विषयमें नहीं आता। यह सब देख कर सांख्या-चार्यांने कहा है, कि अतिदूरत्व, अतिसामीप्य, इदियका नाश, अमनोयोग, अतिसृक्ष्मता, अमिभव, स्वजातीयके साथ सम्मिलन, अनिमयक्तता, ये सव चाक्षुषप्रत्यक्षके प्रतिवन्ध हैं। ये सब प्रतिवन्धक केवल प्रतासके निवृत्ति-जनक हैं सो नहीं, स्थलविशेषमें कोई कोई विपर्ययवीध-का भी कारण होता है।

शास्त्रके नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके चाक्षुषप्रत्यक्षका विषय वर्णित हुआ है । कांच आदि खच्छ पदार्थका व्यवधान रहनेसे देखा जाता है, पर मिलन पदार्थ रहनेसे नहीं देखा जाता, इसका क्या कारण ? आइनेमें भात्यप्रतिविम्य विपरीत क्यों दिखाई देता है ? वायाँ भाग दाहिने और दाहिना भाग वापैमें अवस्थित दिखाई देता है, नदी किनारेका वृक्ष अधाशिर, आकाशके चन्द्र- सूर्यादिका प्रतिविभ्य जलके ऊपर वहता हुआ न दिखाई दे कर मध्य निमान अर्थात् इव रहनेके जैसा दिखाई देता है। इस प्रकार ये सव जो विपरीत भावमें दिखाई देते हैं, उसका कारण क्या ?

कितनी दूर, कितनी सामीय्य, कितनी सूक्ष्म और किसी स्थूछ वस्तुका दर्शन होता है और नहीं होता है ? तथा कहांसे दृष्टिचातिकम आरब्ध होता है ? वे सव विषय नाना शास्त्रोंमें नाना प्रकारसे वर्णित हुए हैं।

उक्त प्रश्नोंके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि भ्रमवशतः ये सब हुआ करते हैं। दार्शनिकोंने इसकी अध्यास, आरोप और अविवेक आदि नाना आख्या प्रदान की है।

दर्शनशास्त्रमें भ्रमकी उत्पत्ति और निवृत्तिकारण वर्णित है तथा अवान्तरप्रमेद भी निर्णीत हुआ है। सांस्य और वेदान्त-मतसे भ्रमझान स्वयं मिथ्या है; किन्तु उनका फल सत्य है। रज्जुसर्प देखनेसे प्रकृत सर्परंशनको तरह भय और कम्प दोनों ही होता है। भ्रममात हो असद्वस्तु-अवगाही है, तथापि उसके कोई न कोई फल अवश्य है अर्थात् उसके द्वारा जीवकी प्रवृत्ति निवृत्ति उत्पन्न होती है। अनुसन्धान करनेसे देखा जाता है, कि भ्रमके भिन्न भिन्न प्रमाव और फलभेद है। यही सव देख कर भ्रमझानकी श्रेणीमेद किएत हुआ है। पहले सोपाधिक और निरुपाधिक ये दो मेद, पीले सम्बादो, विसम्बादो, आहार्य और सौपाधिक आहार्य ये सार भेद वा श्रेणी किएत हुई हैं। धम देखो।

भ्रमोत्पत्तिके प्रधानतः तीन कारण हैं—दोष, सम्म-योग और संस्कार । इनमेंसे दोषके कई मेद हैं, यथा— निमित्तगत, कालगत और देशगत। निमित्तगत दोष यह है, कि जो इन्द्रिय जिस प्रत्यक्षकी जनक है, वह इन्द्रिय दोष-दुष्ट होना। चाक्ष्रप्रत्यक्षका जनक चक्ष है वह चक्ष्रु यदि पित्तदोषसे विकृत हो गया हो, तो अति श्वेत वस्तु भी हरिद्रावर्णकी दिखाई देती हैं। सन्ध्यादि कालका मन्दान्धकार प्रभृति दोष, कालदोष और अति-दूरत्व, अतिसामित्य आदि देशगत दोष हैं।

सम्प्रयोग—सम्प्रयोग शब्दका अर्थ है—जिस वस्तुमें भ्रम उत्पन्न होता है, उस वस्तुके सर्वा शकी स्फूर्ति नहीं

होना, अर्थात् किसी एक सामान्यांशमें प्रकाशित होना । संस्कार संस्कार शब्दसे यहां सदृश वस्तुका स्मरण समभा जायगा। कोई कोई संस्कारके वदलेमें सादृश्यको ही मुमोटपत्तिका कारण वतलाते हैं । उस मतका अभि-प्राय है, कि वस्तुके किसी एक अंशमें सादृश्य नहीं रहने-से भूम उत्पन्न नहीं होता। रज्जुमें ही सर्पभूम होता है, चतुकोणक्षेत्रमें सर्पभूम नहीं होता। अतएव किसी साद्रश्यमान पदार्थमें हो दोप वा सम्प्रयोगवशतः भूम हुआ करता है। भ्रम और प्रतिवन्धक रहित हो कर चक्षु-के साथ विपयका सन्निकर्प होनेसे चाश्रुप प्रताक्ष उत्पन्न होता है।

धवणेन्त्रिय और श्रावणहान वा श्रावणप्रतत्रक्ष ।

चशु केवल रूपमें हो संसक्त है, चक्षु द्वारा रूप वा रूपविशिष्ट पदार्थ दिखाई देता है। उसके द्वारा शन्द-स्पर्शादिका ज्ञान नहीं होता। शब्दादि ज्ञानके लिये और भी चार इन्द्रियां हैं। उनमेंसे शब्दश्रहणकारी श्रवणेन्द्रिय और उसके द्वारा श्रावण प्रत्यक्षका विषय कहा गया है।

चक्ष् रिन्द्रियकी तरह श्रवणिन्द्रिय भी प्रत्यक्षको अगोचर है। नेवल अनुमिति द्वारा ही अनुभव करना पड़ता है। अवणेन्द्रियका आश्रय अर्थात् गोलक कर्णान्तः भदेश है। कर्णशंकुलिके अभ्यन्तर प्रदेशमें जो अवकाश (अन्तर) है, उसका नाम श्रोताकाश है। श्रवणेन्द्रिय शंकुलि स्थानमें अधिष्ठित रह कर शब्दग्रहणकार्य निर्वाह करती है। शास्त्र-में शब्दब्रहणकी दो प्रकारको प्रणालो वर्णित हैं। इनमेंसे एक प्रणाली वीचितरङ्गन्यायानुसारिणो है और दूसरी कदम्बगोलकन्यायानुसारिणी ।

किसी एक स्थिरजलवाले जलाशयमें अभिधात पहुं-चानेसे अभिधातको जगह वेग उत्पन्न होता है। वह वेग जलको तरङ्गायित करता है। जिस प्रकार प्रथमोत्पन्न उस बेगसे वेगान्तर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तरङ्गसे भी तरङ्गान्तर उत्पन्न होता है। तरङ्गसे तरङ्गान्तर होते होते वह धीरे घीरे छोटी लहरोकी तरह हो जाती है। मध्यमें यदि कहीं भी वेगनिरोधक वस्तु मिल जाय, तो वहीं पर वह पतित हो कर नष्ट हो जाती है, नहों तो कुछ दूर जा कर विलीन हो जायगी। इसी प्रकार पहले आकाशमें ध्वनि उत्येन्त हुई, यह ध्वनि तरङ्गायमान वासुमें आरो- |

Vol. XIV. 141

हण करके इन्द्रि ।स्थान कर्णशंकुलिमें पहुंच गई । इन्द्रिय-ने उस ध्वनिको ब्रहण कर आत्माके पास पहुंचा दिया। इसका तात्पर्य यह, कि शब्द कर्णशंकुळीस्थित शब्दवाही स्नायुका अवलम्बन करके मनके निकट गमन करता है। निकटस्थ आत्मा उसे प्रकाश करती है अर्थात् अनुभव करती है। इसीका ही दूसरा नाम सुनना वा श्रवण है। निकटमें यदि श्रवणेन्द्रिय न रहे, तो वह व्यर्थ होता है। सुतरां आकाशीत्पन्न शन्द आकाशमें ही विलीन हो जाता है।

स्थिरजलवाले जलाशयमें भाघात (करनेसे जो तरंग उत्पन्न होती है, यह तो कभी किनारे छूती और कभी नहीं भी छूती है। उसका कारण भाघातका वल है अर्थात् आघातसे उत्पन्न वेगका तारतम्य है। वेगकी अधिकता रहनेसे तरङ्गकी दूरगति और अल्पता रहनेसे अदूरगति होती है। शब्दको गतिको भी ठीक उसी प्रकार जाना चाहिये। बेंग जिस परिमाणमें उपस्थित होगा, शब्दकी गति भी उसी परिमाणमें होगी। दार्शनिक पण्डितोंने ऐसी वीचितरङ्गके द्रशन्तमें श्रवणेन्दियको शब्द्प्रहण-प्रणालीका वर्णेन किया है और निम्नलिखित घटनाओंको सोपपत्तिक वतलाया है।

शब्दबहनकारी वायुको विपरीत गतिके प्रवल रहनेसे निकटोत्पन्न शब्द भी यथावत् गृहोत नहीं होता । सामने-में रहनेसे दूरोत्पन्न शन्द भी नजदोकके जैसा सुनाई देता है। श्रवणेन्द्रिय और आघातस्थान इन दोनोंमें वायुक्ती वेगरोधक वस्तुका व्यवधान रहनेसे सुनाई नहीं देता, अगर सुनाई भी देता है, तो वहुत कम । पार्थिय प्रदेशका दूरत्य जिस परिमाणमें शब्दशानका प्रतिवन्धक है, जलनय प्रदेशमें उससे कम परिमाणमें प्रतिबंधक होता है।

वीचितरङ्गन्यायवादी और कदम्बगोलकन्यायवादीका मत प्रायः एक-सा है। केवल इतना ही प्रभेद हैं, कि वीचि-तरङ्गवादीके मतसे एक ही शब्द उत्पन्न होता है, कदम्यगोलकन्यायवादीके मतसे कदम्यकेशरकी तरह उसके ऊपर नाना शब्द होते हैं। कदम्बकुखुमका किञ्जल्का-रोहणस्थान वर्त्तूल है। उस वर्त्तूल अंशके चारों ओर एक थाकमें अनेक केशर उत्पन्न होते हैं । उन सद केशरोंके ऊपर दूसरा गुच्छा रहता है। शन्द भी उसी प्रकार आघात

स्थलसे एक समयमें दशों ओर दश संख्यामें उत्पत्तिलाम करता है। उन दश शब्दोंसे अन्य दश शब्द निकलते हैं। क्रमशः अन्य दश शब्द इसी प्रकार इन्द्रियस्थानको प्राप्त होते हैं।

दोनोंके मतसे शब्द अभिघात स्थानसे उत्पन्न होता और इन्द्रियस्थानमें जा कर प्रकाशलाम करता है। किसी किसीका कहना है, कि शब्द आघात स्थलसे उत्पन्न नहीं होता, आघातस्थलमें केवल वेग उत्पन्न होता है। यह शब्द कानमें पहुंचनेसे यहां अनुहूप शब्द उत्पन्न करता है और वही श्रवणेन्द्रियसे गृहीत होता है। 'शब्दस्तु श्रोतोत्पन्नः श्रवणेन्द्रिये गृहाते।' इस प्रकार श्रावणप्रत्यक्ष हुआ करता है।

स्पर्शनप्रत्यक्ष वा स्पर्श वा स्पर्श प्राह्य त्विगिन्द्रय ।

इस इन्द्रिय द्वारा शीत, उज्ण, खर, तीव्र आदि नाना जातीय स्पर्शंक्षान होता है। द्रव्य वा द्रव्यनिष्ठ किसी गुणोंके त्वक् संयुक्त होते ही इन्द्रियात्मक त्वक् द्रव्यगत शीतलत्वादि गुणको प्रहण कर क्षान गोचर कराता है अर्थात् मनकी सहायतासे आत्मामें उन सवका क्षान पैदा करता है। त्वक्में द्रव्यसंयीग होनेसे ही त्वक् द्रव्यगत सभी गुणोंको प्रहण करते हैं। किन्तु कोमलत्व और कठिनत्व इन दो गुणोंको प्रहण करनेमें उसे कुछ विशेष संयोगकी अपेक्षा करनी पड़ती है। सामान्य संयोग द्वारा कोमलत्व कठिनत्वका प्रहण नहीं होता। द्वद्वतर संयोग ही दोनों ज्ञानका प्रधान कारण है।

त्विगिन्द्रियका आश्रयस्थान त्वक् अर्थात् चमैविशेष है। द्रश्यान वाह्यचमै इन्द्रिय नहीं है। यदि द्रश्य-मान चमै इन्द्रिय होता, तो केवल वाह्य शीतलत्वादिका अनुभव हो सकता था, वेदनादि अनन्तरस्परांका नहीं। अतएव त्विगिन्द्रिय केवल वाह्यचमैन्यापक है, सो नहीं, प्रत्युत वह आपादतलमस्तक अन्तर्वाद्य पांरन्याप्त है। यह इन्द्रिय समस्त शरीरव्यापी है, इस कारण वाह्यस्परींकी तरह अन्तरस्परों भी यथायथ अनुभूत हुआ करता है। इन्द्रियात्मक त्वक् वाहर और भीतर सव जगत् विराजित रहने पर भी अंगुलिके अप्रभागमें उसका उत्कर्ष है। यही कारण है, कि हस्तांगुलि और पदांगुलिके अप्रभागसे मनुष्य अत्यन्त सूक्ष्म 'स्पर्शादिका अनुभव कर

सकते हैं। न्यायके मतानुसार यह इन्द्रिय वायवीय है और सांख्यसे आहङ्कारिक। इसी त्वगिन्द्रिय द्वारा त्वाच वा स्पर्शन प्रत्यक्ष होता है।

रासन प्रात्यक्ष, रासन वा रासनहान । ।

यह इन्द्रिय कटु, तिक, कषाय आदि रसानुभवका द्वारस्वरूप है। रसनाके द्वारा कटुतिकादि रसका प्रत्यक्ष होता है। रसकान और रासनप्रत्यक्ष पर्यायक शब्द है। रासनप्रत्यक्ष द्रव्याश्रित रसके साथ रसनाका संयोग होनेके वाद उत्पन्न होता है। रसनेन्द्रियका गोलक अर्थात् आश्रय जिह्वा है। न्यायके मतसे यह इन्दिय जलीय है और सांख्यसे आहङ्कारिक। उक्त रूपसे रसना द्वारा रासन-प्रत्यक्ष हुआ करता है।

व्रानन प्रत्यक्त व्राणेन्दियं वा गश्यक्तान ।

यह इन्द्रिय भिन्न भिन्न गन्धशानका हेतु है। इसका स्थान नासादण्डका अभ्यन्तरमूल वतलाया गया है। वायुसे लाई हुई गन्ध इन्द्रिय स्थानमें संयुक्त होती है, उसके वाद उसका प्रत्यक्ष अर्थात् ज्ञान होता है। यह इन्द्रिय न्यायके मतसे पार्थिव और सांख्यके मतसे अहङ्कारोत्पन्न है।

## मानस प्रत्यक्ष वा मानस ।

मन एक इन्द्रिय है। इस इन्द्रिय द्वारा जो प्रत्यक्ष वा ज्ञान होता है, उसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं। कोई कोई मनको इन्द्रिय नहीं मानते, पर सांख्यके मतसे मन इन्द्रिय वतलाया गया है। जो मनका इन्द्रियत्व स्वीकार नहीं करते, उनके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि शब्द, स्परी, रूप, रस आदि वाह्य वस्तुओंका धर्म पांच प्रकारके वाह्यकरणों द्वारा गृहीत होता है, पर सुख, दुःख, यत्न आदि आन्तर धर्मीका गृहीता कीन है ! वाह्य पदार्थ साक्षात्कारके निमित्त जिस प्रकार वाह्यकरण वा वहिरिन्द्रियका रहना आवश्यक है, उसी प्रकार अन्तः पदार्थ साक्षात्कारके निमित्त अन्तःकरणका रहना आवश्यक है। ज्ञानकरणत्वसद्दप इन्द्रियस्रक्षण चक्षु-रादिके जैसे मनके भी हैं। मन ही सुख दुःखादि ज्ञानका अद्वितीयकरण है अर्थात् मनसे ही सुखदुःसादि-का प्रत्यक्ष होता है। सुख दुःख साक्षात्कार हमेशा ही हुआ करता है, इस कारण उसका अपलाप विलक्त

असम्मवं है । सुख दुःखादिका साक्षात्कार चक्ष, कर्ण, नासिका, त्वक् इन्हीं सब द्वारा सुसम्पन्न होता है, ऐसा नहीं कह सकते । मन ही एकमात सुख्दुःख साक्षात्कारका द्वार है, यह स्वतः ही खीकार फरना पड़ेगा। अतएव मन द्वारा ही सुख दुःखादिका मानस प्रत्यक्ष हुआ करता है।

इस मानस अरयक्षका विषय मनस शब्दमें देखो। छः प्रकारके प्रत्यक्ष प्रमाणींका विषय लिखा गया। न्यायशास्त्रमें विशेषतः नव्यन्यायमें इसका विषय पुङ्कानु-पुङ्करूपमें आलोचित हुआ है। ( नव्यन्याय चार खएडोंमेंसे पहला प्रत्यक्षखएड है। इसी प्रत्यक्षखएडमें प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय विशेषस्त्यसे वर्णित हुआ है।)

(अव्य०) अक्षि अक्षि प्रतीति चीप्सायां, अक्ष्नोराभि-सुक्यमित्यर्थे, ( ब्रक्षणं नाभित्रति भाभिसुक्षे पा । रा१११४ ) इत्यव्ययीभावः ततप्राच्। २ इन्द्रियलक्षण, अपरोक्ष । "फल्ल्चनभिसन्याय क्षेतिणां वीजिनान्तथा । प्रताक्षं क्षेतिणामर्थों वीजाद्योनिर्गरायसो ॥"

( मनुशपर )

प्रत्यक्षतमा ( सं० अन्य० ) प्रत्यक्ष-तमप्-आमु । प्रत्यक्ष-प्रमाणक्रपमें ।

प्रत्यक्षतस् ( सं ॰ अन्य॰ ) प्रत्यक्ष तसिल् । प्रत्यक्षरूपमें, साक्षात् सम्बन्धमें ।

प्रत्यक्षता ( सं॰ स्त्रो॰ ) प्रत्यक्षस्य भावः तल्-टाप् । प्रत्यक्ष-त्व, प्रत्यक्ष होनेका भाव ।

प्रत्यक्षदर्शन (सं० ति०) प्रत्यक्षं पश्यतीति प्रत्यक्ष-दूश-ल्यु, प्रत्यक्षं दर्शनं यस्येति चा । १ साक्षी, जिसने अपनी आंखोंसे सब देखो हों । (क्ली०) २ प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन, साक्षात् सम्बन्धमें देखना ।

प्रत्यक्षदर्शिन् (सं॰ ति॰) प्रत्यक्षं पश्यति दृश-णिनि । साक्षी, जिसने रूपसे कोई घटना देखी हो ।

प्रत्यक्षद्वरा ( सं० ति० ) प्रत्यक्षं पश्यति द्वरा-किप् । स्वयं द्रष्टा, प्रत्यक्षदर्शी ।

प्रत्यक्षद्वर्य ( सं ० ति० ) प्रत्यक्षेण दृश्यः । प्रत्यक्षकपसे दर्शनीय, साफ साफ दिखाई देने लायक ।

प्रत्यक्षद्वप्र (सं ० वि ०) प्रत्यक्षेण द्वप्रः । प्रत्यक्षरूपसे जी देखा गया हो । प्रत्यक्षप्रमा ( सं॰ स्त्री॰ ) यथार्थं ज्ञान । प्रत्यक्षमक्ष (सं॰ पु॰ ) प्रत्यक्षरूपसे भक्षण ।

प्रत्यक्षत्रवण (सं ० क्की ०) प्रत्यक्षं पृथक्तया उपलभ्य-मानं लवणं। पाकनिष्पत्तिके वाद व्यञ्जनादिमें दीयमान लवण, वह नमक जो भोजन पक चुकनेके वाद उसमें और डाला गया हो। शास्त्रोंमें श्राद्ध आदि अवसरों पर इस प्रकार नमक देनेका निषेध है। पाकके समय यदि भूलसे नमक न डाला गया हो, तो पोछसे उसमें नमक न देना चाहिये।

प्रत्यक्षवादिन् (सं० पु०) पताक्ष-मेव प्रमाणत्वेन वद्तीति वदणिनि । १ वीद्ध । ये लोग प्रताक्ष भिन्न अन्य किसी प्रमाणको स्वीकार नहीं करते, इसीसे इन्हें प्रताक्षवादी कहते हैं। चार्चाक भी प्रत्यक्षवादी हैं। (बि०) २ प्रत्यक्षवादिमात ।

मत्यक्षवृत्ति (सं ० ति०) प्रतक्ष रूपसे दर्शनयोग्य । प्रत्यक्षी (सं ० ति०) प्रताक्षमस्तास्येति प्रताक्ष-इनि । वाक्त-द्वप्रार्थं, साक्षात् द्रष्टवा ।

प्रत्यक्षीकरण (सं० क्ली०) अत्रताक्षप्रताक्षकरणं अभूत-तद्भावे चित्र। अप्रताक्षका प्रताक्षकरण, इन्द्रिय द्वारा ज्ञान करा देना, सामने ला कर प्रताक्ष करा देना।

प्रत्यक्षीभृत (सं ० ति ०) जिसका ज्ञान दन्द्रियों द्वारा हुआ हो, जो प्रताक्ष हुआ हो।

प्रत्यगक्ष ( सं ० क्वी० ) समक्ष, मुकावला ।

प्रत्यगातमन् ( सं ॰ पु॰ ) प्रतीचो जीवस्य आतमा स्वद्भपं । १ परमेश्वर, ब्रह्मचैतन्य ।

प्रतागानन्द (सं ० ति०) १ मनही मन आनन्दयुक्त । (पु०) २ वहा ।

प्रत्यगाशापित (सं० पु०) प्रतागाशायाः पश्चिमस्या दिशः अधिपितः। पश्चिम दिशाने अधिपित, वरुण। प्रत्यगुद्ध् (सं० स्त्री०) प्रतीच्या उदीच्याश्च अन्तराला दिक्। पश्चिम और उत्तर दिशाका कोना, वायुकोन। प्रत्यिन (सं० अवा०) प्रतीक अग्निमें।

प्रत्यम (सं पंभवार ) प्रताक भागम । प्रत्यम (सं पंभवार प्रतिगतमम श्रेष्ठ प्रथम दर्शनं यस्येति । १ नृतन, नया, ताजा ।२ शोधित, सोधा हुआ । (पु०) ३ पुराणानुसार उपरिचर वसुके एक पुतका नाम । प्रत्यमगन्या (सं प्रति०) स्वर्णयूथिका, सोनजूही । प्रत्यप्रथ ( सं ० पु० ) अहिच्छतादेश, दक्षिण पांचाछ । प्रत्यप्रह ( सं ० पु० ) चेदिदेशके एक राजाका नाम । प्रत्यङ्ग ( सं॰ क्की॰ ) प्रतिगतमङ्गमिति । १ अवयवविशेष । सुंश्रुतमें लिखा है,—मस्तक, उदर, पृष्ठ, नामि, ललाट, नासा, चिद्रुक, वस्ति और श्रीवा एक एक है। कर्ण, नेत, नासा, भ्र , शङ्क, अंश, गएड, कक्ष, स्तन, मुन्क, पार्श्व, नितम्य, जानु, वाहु और ऊरु दो दो हैं। उंगली वीस हैं। अलावा इसके त्वक्, कला, धातु, मल, दोप, यकृत्, श्लीहा, फुसफुस, हृदय, आशय, अन्त, दो वृक्व, स्रोत, कएडरा, जाल, रज्जु, सेवनी, सङ्गात, सीमन्त, अस्थि, सन्धि, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी और योगवह-स्रोत। समूचा शरीर इन्हों सब अङ्गोंमें विभक्त है। इनमेंसे त्वक्, कला, आशय और घातु प्रतेत्रक सात सात हैं, शिरा १०७, पेशी ५००, स्नायु ६००, अस्थि ३००, सन्धि २१०, मर्म १२७, धमनी २४, दोष और मन तीन तीन तथा शरीरके द्वार ६ हैं।

( सुश्रुत श्रीरस्था ५ अ० )

२ अप्रधान, जो प्रसिद्ध न हो । ३ प्रत्येक अङ्गके प्रति । (पु॰) ४ नृपविशेष, एक राजाका नाम । प्रत्यङ्गिरस (सं॰ पु॰) चाक्षष मन्वन्तर आङ्गिरस अर्थात् अङ्गिरोत्पन्न ऋषिभेद ।

प्रत्यङ्गिरा (सं० स्त्रो०) १ देवीविशेष, तान्तिकोंकी एक देवी। मन्त्रमहौषधिके ८म तरङ्गमें इसके प्रयोगादिका विषय लिखा है। २ कएटकशिरीषवृक्ष, सिरसका पेड़। ३ विसखोपरा।

प्रत्यङमुख (सं० ति०) प्रताङ्मुखं यस्य । पश्चिमाभिमुख । प्रताच् (सं० ति०) प्रताञ्चतीति प्रति-अञ्च-िक् । १ पश्चिमदिशा । २ पश्चिमदेश । ३ पश्चिमकाल । ४ प्रतिगत । ५ अभिमुख । ६ अन्तर्यामी, स्वातमा । प्रत्यञ्चा (हि० स्त्री०) धनुषकी डोरी जिसमें लगा कर वाण छोड़ा जाता है ।

प्रत्यश्चित ( सं ॰ ति ॰) प्रति-अञ्चन्तः। प्रतिपूजितः, सम्मानितः।

प्रत्यञ्जन (सं ० क्ली०) प्रतिरूपमनुरूपमञ्जनं प्रादिस०। १ अनुरूपाञ्जन। २ अञ्जन द्वारा नेतप्रसादन, आंखमें अंजन छगा कर उसे अच्छा करना। प्रत्यद्न (सं॰ क्ली॰) प्रति-अदु-ल्युट्। भोजन, बाय, खाना।

प्रत्यध्मान ( सं ० पु० - एक प्रकारका वातरोग ।

प्रत्यनीक (सं० पु०) प्रतिगत अनीकं युद्धमिति। १ शतु।
२ प्रतिपक्ष । ३ विरोधो । ४ विध्न, वाधा । ५ प्रतिवादी ।
६ प्रतिपक्ष सेना । ७ अर्थाळङ्कारमेद, कविताका वह
अर्थाळङ्कार जिसमें किसीके पक्षमें रहनेवाळे या संबंधोके
प्रति किसी हित या अहितका किया जाना वर्णन किया
जाय । यथा—'तं । विनिजितमनी भवस्पः । सुन्दर । भवस्पनुक्षा । पश्चिभिधुगपदेव श्रारैस्तां ताप्यस्यवुश्वादिव कामः ॥"

(कान्यप्र•)

हे सुन्दर! रूपमें तुमने कन्द्रपैको जीत लिया है। यह क्यों मी तुम्हारे ही ऊपर विशेष अनुरक्ता है। इस कारण कन्द्र्ष तुम्हारे प्रति होष करके ही युगपत् पञ्चशर द्वारा उसे कछ दे रहा है। यहां पर कन्द्र्य जिसके रूपसे विजित हुआ, उसका वह किसी प्रकार प्रतीकार न कर सका। परन्तु जो स्त्री उसको प्रिय थी, उसीको वह कछ देने लगा तथा यह कछ रिपुका ही उत्कर्षजनक होनेके कारण यहां प्रत्यनीक अलङ्कार हुआ।

प्रत्यनुमान (सं० क्को०) प्रतिरूपमनुमानं प्रादि-तत्। अनु-मानके विरुद्ध अनुमान, तर्कमें वह अनुमान जो किसी दूसरेके अनुमानका खंडन करते हुए किया जाय।

प्रत्यन्त (सं॰ तु॰) प्रतिगतोऽन्त मिति, 'अत्यादयः क्रान्ता-धर्थे' इति समासः । १ म्लेच्छदेश । २ प्रान्तदुर्ग । (ति॰) ३ तद्दे शजात । ४ सिककृष्ट ।

प्रत्यन्तपर्वत ( सं॰ पु॰ ) प्रत्यन्तः सन्निकृष्टः पर्वतः । महा-पर्वतसमीपवत्तीं क्षद्र पर्वत, वह छोटा पहाड़ जो बड़े पहाड़के समीप हो ।

प्रत्यन्तर ( सं० ति० ) प्रति-प्राप्त-मनन्तरं अत्यां सं । प्रत्या-सन्न, समीप, नजदीक ।

प्रत्यपकार (सं० पु०) प्रति-अप-कृ-घञ्। अपकारका प्रति-शोध, वह अपकार जो किसी अपकारके वदलेमें किया जाय।

प्रत्यब्द ( सं॰ अद्य॰ ) प्रत्येक वत्सर, हर साल । प्रत्यभिघारण ( सं॰ क्ली॰ ) फिरसे जल सींचना । प्रत्यभिचरण (सं॰ पु॰ ) निवारण, रोकने या हटानेकी किया।

प्रत्यभिद्या (सं० स्त्री०) प्रतिगता अभिद्या अत्या० स०। १ वह ज्ञान जो फिसी देखी हुई चीजको अथवा उसके समान किसी और चीजको फिरसे देखने पर हो। २ वह अभेद्द्यान जिसके अनुसार ईश्वर और जीवातमा दोनों एक ही माने जाते हैं।

प्रत्यभिद्यादर्शन (सं० क्की०) प्रत्यभिद्यायाः दर्शनं शास्त्रं।
माहेश्वरशास्त्रभेद्। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंप्रहमें इस
दर्शनका मत संप्रह किया है। वहुत संक्षेपमें उनके दर्शनोक विययकी यहां पर आस्त्रोचना की जातो है।

इस दर्शनके मतसे भक्तवत्सल महेश्वर ही परमेश्वर माने गये हैं। इस दर्शनके मतावलम्बी तुरी तन्तु भादि जड़ात्मक बस्तुओंको पटादि कार्यका कारण न वतला कर एकमाल महेश्वरको हो जगत्कार्यका कारण वतलाते हैं। जिस प्रकार तपःप्रभावशाली तापसगण विना इएक और चूर्णं प्रभृतिके निविद् अरण्यमें इच्छानुसार वड़ी वड़ी अष्टालिकाये' बनाते और विना स्त्रीप्रसङ्गके ही मानस-पुतादि उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार जगदीश्वर महादेव-ने जगिन्नमाण विषयमें जड़ात्मक जगदन्तर्गत किसी वस्तुकी अपेक्षा किये विना स्वेच्छावशतः इस जगत्का निर्माण किया है। परमेश्वरके सिवा और कोई भी किसी कार्यका कारण नहीं है। यदि पटादिकार्यकी तुरीतन्तु आदि जड़बस्तु कारण होती, तो तुरीतन्तु आदिके नहीं रहने पर कभी भी कैवल योगियोंकी इच्छा द्वारा पटादि कार्यं नहीं हो सकता था। ज्योंकि विना कारणके कोई भी कार्य नहीं होता, यह नियम सब जगह देखा जाता हैं। अतएव जब तुरी और तन्तुको नहीं रहने पर भी बोगिबोंको इच्छा वशतः पटादि कार्य सम्यन्त होता है, तन पटादि कार्थके प्रति तुरी प्रभृति जो बास्तविक कारण नहीं हैं, इसमें और कहनेकी जरूरत हो क्या ? परमेश्वर महादेव किसीसे भी नियोजित हो कर इस जगत्का निर्माण नहीं करते तथा किसी वस्तुसी सहायता लेनेकी भी उन्हें जहरत नहीं पड़ती। इसीसे उन्हें खतंत्र कहा गया है । जिस प्रकार खच्छ द्र्पण्में शरीरादिका प्रति-विम्य पड़नेसे शरीरादि दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार Vol. XIV 142

जगदीश्वरमें सभी वस्तुओंका प्रतिविम्य पड़नेसे शरीरादि दृष्टिगोचर होता है। इस कारण परमेश्वर महादेवको यदि जगदर्शनदर्पण भी कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं।
जिस प्रकार बहुरूपी व्यक्ति अपने इच्छानुसार कभी राजा,
कभी मिक्षु क, कभी खी, कभी कुमार और कभी चृद्ध
आदिका रूप धारण करता है, उसी प्रकार भगवान,
महेश्वर भी स्थावर जङ्गमादि नाना रूपीमें रहनेकी इच्छा
करते हुए स्थावर और जङ्गमात्मक जगत्का निर्माण
करते हुँ तथा उन सब रूपोमें रहते भी हैं। अतः यह
जगत् ईश्वरात्मक है, इसमें और कोई सन्दे ह रहने नहीं
पाया। परमेश्वर आनन्दस्करण और प्रमाता हैं अर्थात्
ज्ञाता और ज्ञानखरूप है। छतरां अस्मदादिका घटपटादि विषयक जो जो ज्ञान होता है, वह सभी परमेश्वर
स्वरूप है।

इस पर वादिगण आपित करते हैं, कि यदि सभी वस्तुविपयक सभी छान एकमात ईश्वरस्तरूप हों, तो घट-छानके साथ पटछानका कोई मेद नहीं रहता, पह आपीत्त थोड़ा गौर कर देखनेसे उठ ही नहीं सकती है। यथार्थमें सभी वस्तुविषयक ज्ञानका भेद नहीं रहने पर घटपटादि विषयका मेद ले कर घटछानसे पटछान भिन्न है, ऐसा कहनेमें उज्ज क्या! कुएडल और कटकादि रूपमें परिणत सुवर्णका वास्तविक मेद नहीं रहने पर भी कुएडल और कटकादि रूप उपाधिक भेदसे कुएडलसे कट-कालकुतर भिन्न है, ऐसा सब कोई कहते हैं। उपाधिक भेदसे ही विभिन्न प्रकारका ज्ञान हुआ करता है।

इस दर्शनके मतसे मुक्तिखरूप परापर सिद्धिका उपाय एकमाल प्रत्यभिज्ञा है। अन्यमतकी तरह इस मतमें भी पूजा, ध्यान, जप, याग और योगादिके अनु-ग्रानकी जरूरत नहीं। प्रत्यभिज्ञा द्वारा ही सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं। 'सं एवेश्वरोऽह" वही परमेश्वर में हूं। ऐसे परमेश्वरके साथ जीवातमाके अमेदज्ञानको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। जिस प्रकार खर्वाकृति व्यक्तिको सामन कहते हैं, उसी प्रकार पहले उपदिए व्यक्तिको स्वर्वाकृति दृष्टि-गोचर होनेसे 'खोऽय' वामना:' वह यही वामन है, इस प्रकार जो ज्ञान होता है उसे नैयायिक लोग प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। प्रत्यभिक्वालाभ होनेसे ही मुक्ति होती है। इसी कारण इस दर्शनका प्रत्यभिक्वादर्शन नाम रखा गया है। श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्व और अनुमानादि द्वारा ईश्वरका सक्त्य और शिक्त जान कर, वह शिक्त भी जीवातमामें है, इस प्रकार क्षानलाभ करनेमें 'च एवेश्वरोऽइ' वही ईश्वर में हूं, ऐसा जो ज्ञान होता है, उसे प्रतन्मतावलम्बी व्यक्तियोंका प्रत्यभिक्षा शब्द द्वारा निर्देश करना नितान्त अमूलक वा सक्योलकिष्यत नहीं है। इस प्रकार प्रत्यभिक्षा शास्त्रान्तर द्वारा समुत्यन्त होनेकी विलक्षल सम्भावना नहीं। यही कारण है, कि इस शास्त्रको दृसरे दूसरे शास्त्रोंको अपेक्षा विशेष आदरणीय और श्रेयस्कर वतलाया गया है।

इस दर्शनके मतसे जीवात्माके साथ परमात्माका मेद नहीं है अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा हैं और परभात्मा ही जीवात्मा। पर हां, एक दूसरेके साथ जो मेदझान हुआ करता है, वह भूममात हैं। जोवात्माके साथ परमात्माका जो अमेद हैं, वह अनुमानसिद्ध हैं। जिस व्यक्तिके ज्ञान और कियाशिक नहीं हैं, वह परमेश्वर नहीं हैं, जैसे गृहादि। अव देखना चाहिये, कि जव जीवात्माकी वे सब शक्तियां देखी जाती हैं, तब जीवात्मा जो ईश्वरसे भिन्न नहीं है, इसमें और कोई सन्दे ह रह नहीं गया।

यहां पर कोई कोई यह आपत्ति करते हों, कि यदि जीवमें ईश्वरता ही रहे, तो उस ईश्वरताखरूप शिवत्वप्राप्तिके निमित्त आत्मप्रताभिज्ञाका प्रयोजन ही क्या ? जिस प्रकार मद्दीमें गिरा हुआ वीज, चाहे जान वूक कर गिराया गया हो, वा अनजान, जलसंयोगादि होनेसे ही अंकुरोत्पादन करता है, उसी प्रकार ज्ञात हो, वा अज्ञात, जीवमें यदि सचमुच ईश्वरता रहे, तो ईश्वर की तरह जीव जगन्निर्माणादि जो नहों कर सकता हें, सो क्यों ? इस प्रकारकी आपत्ति आपाततः उठ तो सकती है, पर थोड़ा गीर कर देखनेसे वह आपत्ति विलक्ति छीन्नमूल हो जायेगी । देखों, कहीं कहीं कारण रहनेसे और कहीं कहीं कारण ज्ञात होनेसे हो कार्य हुआ करता है। जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक उस कारण द्वारा कार्य हो ही नहीं सकतां।

जैसे, इस घरमें पिशाच है, जब तक यह मालूम नहीं होता, तब तक उस घरके पिशाचसे भीर व्यक्ति किसी प्रकारका भय नहीं खाता। किंतु उस पिशाचका ज्ञान हो जानेसे हो भीर व्यक्ति भय खाने लगता है। इसी प्रकार जीवमें ईश्वरता रहने पर भी उसे विना जाने ईश्वरकी तरह वह कोई कार्य नहीं कर सकता। जिस प्रकार अपरिमित धन रहने पर भी किसी व्यक्तिको बज्ञाना-चस्थामें प्रीति नहीं होती, परन्तु जब उसका ज्ञान हो जाता है, तब आनन्दका ठिकाना नहीं रहता, उसी प्रकार में ही ईश्वर हूं, इस प्रकार जीवमें ईश्वरता ज्ञान होनेसे एक असाधारण प्रीति उत्पन्न होती है। इस कारण आत्मप्रताभिज्ञा अवश्य कर्त्तव्य है, इसमें कोई सन्दे ह नहीं। जिससे आत्मप्रताभिज्ञा हो, बैसा करना प्रताकका अवश्य कर्त्तव्य है।

इस दर्शनके मतसे परमातमा स्वतःप्रकाशमान है अर्थात् परमात्मा आप ही प्रकाश पाते हैं। जिस प्रकार आलोकका संयोग नहीं होनेसे गृहस्थित घटपटादि वस्तुओंका प्रकाश नहीं होता, उसी प्रकार परमेश्वरका प्रकाश किसी कारणकी अपेक्षा नहीं करता। वे सवंत सर्वदा प्रकाशमान हैं। यहां पर कोई कोई यह आपत्ति करते हैं, कि जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अमेदं है तथा परमात्मा परमात्मरूपमें सर्वदा और सब जगह प्रकाशमान हैं, यह अवश्य खीकार करना पड़ेगा, नहीं तो जोवात्मा और परमात्मामें जो परस्पर अमेद है, सो नहीं रह सकता। कारण, जिस वस्तुका अभेद जिस वस्तुमें रहता है, उस वस्तुके प्रकाशकालमें अवश्य ही उस वस्तुका प्रकाश होता है, ऐसा ही नियम है। परन्तु परमात्मारूपमें जीवात्माका जो सर्वदा प्रकाश होता हैं, यह खीकार नहीं किया जा सकता। कारण, स्वीकार करनेसे जीवात्माके वैसे प्रकाशके निमित्त प्रता-भिज्ञा दर्शनको आवश्यकता ही क्या रह जायगी। जोवात्माका वैसा प्रकाश तो सिद्ध ही है। सिद्धविषय साधनमें कभी भी किसी वाकिकी अवृत्ति नहीं होती। इस प्रकारको आपत्ति उठाने पर केवल इतना ही कहना प्रयाप्त होगा, कि जिस प्रकार किसी कामिनीको यह मालूम ही जाय, कि अमुक घरमें एक सुरसिक नायक

है, उसका स्वर अति मधुर है, अन्पूम रूपलावण्य हैं और सहास्य बदन हैं। अब वह जिस प्रकार उस नायकके पास जाती है और वार वार उसे देखती हैं, पर जब तक उस नायकके गुण उसके दृष्टिगोचर नहीं होते, तब तक वह आहादित नहीं होती और न उसके शरीरके सम्पूर्ण सात्विक भावका आविर्भाव ही होता है, उसी प्रकार परमात्मरूपमें जीवका प्रकाश होने पर भी तब तक पूर्णभाव पानेकी सम्भावना नहीं, जब तक ईश्वरके ईश्वरतादि गुण उसमें भी है, ऐसा उसे मालुम न हो जाय। परन्तु जब गुरुवाक्य सुन कर सर्वश्वत्वादिरूप ईश्वरका धर्म मुक्तमें भी है, ऐसे ज्ञानका उद्य हो जाय, तब पूर्णभावका आविर्भाव हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। अत्यव उस पूर्णतालामके लिये प्रतामिज्ञादशैनकी विशेष आवश्यकता है, यह अवश्य खीकार करना पड़ेगा।

पदार्थिनि णेयविषयमें प्रताभिज्ञाद्दीन और रसेश्वर-दर्शनका मत प्रायः एक सा है।

( सर्वदश्रीनसंग्रहपृतश्रयभिद्राद० )

प्रत्यभिक्षान (सं क्षी॰) प्रति-अभि-क्षा-स्युट्। अभिक्षान, सदृश वस्तुको देख कर किसी पहले देखी हुई वस्तुका स्मरण।

भत्यभिनन्दिन् (सं ० ति ०) प्रति-अभि-नन्द्-इति । प्रता-भिनन्द्नकारक, आह्वानकारक।

प्रत्यमिभाषिन् ( सं ॰ स्त्री॰ ) प्रति-अभि-भाष-णिनि । अभिनन्दनकारक, अभिनन्दन करनेवाला ।

त्रत्यमिमर्श (सं० पु०) प्रति-अभि-मृज्-वज्। १ त्रर्पण, रगड़। २ स्पर्शन, छूना।

प्रत्यिभमर्शन ( सं ० ह्यां० ) प्रति-अभि-मृश्-त्युद् । अभि-मर्शन ।

प्रत्यभिमेथन ( सं ० क्ली० ) घृणास्चक प्रतात्तर ।

प्रत्यभियोग (सं ॰ पु॰) प्रतिक्षोऽभियोगः। प्रतापराध, वह अभियोग जो अभियुक्त अपने वादो अथवा अभि-योग छगानेवाछे पर छगावे। व्यवहारशास्त्रके अनु-सार ऐसा करना वर्जित है। अभियुक्त जब तक अपने आपको निद्राप न प्रमाणित कर छे, तब तक उसे वादो पर कोई अभियोग छगानेका अधिकार नहीं है।

प्रत्यमिवाद (सं ० पु०) प्रति-अभि-वद्-णिच् भावे घञ्। अभिवादकके तत्प्रतिक्ष आशीर्वचनादि, वह आशीर्वाद जो किसी पूज्य या वड़ेका अभिवादन करने पर मिले। ब्राह्मणादि गुरुजनींको यदि कोई अभिवादन करे, तो उन्हें प्रतामिवादन करना चाहिये।

मनुसंहितामें लिखा है—लोकिक द्यान, वेदिकज्ञान वा आध्यात्मिक ज्ञान जिनसे प्राप्त किया जाय, उन्हें. तथा सदुत्राह्मण और गुरुजनको देखनेसे ही अभिवादन करना कर्त्तच्य है। अभियादनके वाद् उन्हें अत्यभिवादन करना चाहिये। जो अभिवादन करते हैं उनकी आयु, यश और वलकी वृद्धि होती है। श्रेष्ठजनको अभिवादन करनेके वाद् 'अभिवादये अमुद्रनामहमस्मीति' में अमुक व्यक्ति हूं, आपको अभिवादन करता हूं, ऐसा कह कर अपना नाम उचारण करना चाहिये । यदि वह संस्कृत न ज्ञानता हो, तो अभिवादनके बाद 'में' ऐसा ऋहना चाहिये। सभी लियोंको भी इसी प्रकार अभिवादन करना कर्चवर है। अभिवादन करने पर ब्राह्मणको 'बायु-ष्मान भर मौन्य' ऐसा वाक्य ऋहना चाहिये । जो ब्राह्मण प्रताभित्रादन करना न जानते हों, विद्वान, वाक्तिको चाहिये कि उन्हें अभिवादन न करें। शूद्र जिस प्रकार अनभिवाद्य हैं, उन्हें भी उसी प्रकार समम्बना चाहिये। (मनु२००)

प्रत्यभिवादक (सं॰ ति॰) प्रति-अभि-वद-णिच्-ण्बुळ्। प्रताभिवादनकारी, प्रताभिवादन करनेवाळा।

मत्यभिवाद्न (सं० क्वी०) प्रति-अभि-चद्-णिच्-ल्युट्। भत्रभिवाद, वह आगोर्वाट् जो किसी पूज्य या वड्डेका अभिवादन करने पर मिले। भविभवाद टेखी।

प्रत्यभिवाद्यितः (सं ० ति०) प्रति-अभि-वद्-णिच्-तृच् । प्रत्यभिवाद्कः।

प्रत्यभिस्कन्द्न (सं० ह्यो०) प्रति-अभि-स्कन्द्-भावे-ल्युद् । प्रतामियोग ।

प्रत्यभ्यतुज्ञा (सं ० खी०) प्रति-अभि-अनु-ज्ञा-थङ् । प्रत्या-देश, अनुज्ञा, हुकुम ।

प्रत्यमित (सं०पु०) शत्, दुश्मन ।

प्रत्यय ( सं ॰ पु॰) प्रति-इण् भावकरणादी चथापथं अच् । १ अधीन, मातहत । २ शपथ, सीगंघ । ३ ज्ञान, बुद्धि । ४ विश्वास, एतवार । ५ प्रामाण्यक्तप निश्चय, सवृत । ६ हेतु, कारण । ७ छिद्र, छेद । ८ शन्दमेद । ६ आचार । १० ख्याति, प्रसिद्धि । ११ निश्चय । १२ खादु, ज़ायका । १३ सहकारिका गण, मददगार । १४ विचार, ख्याल । १४ व्याख्या, शरह । १६ आवश्यकता, जकरत । १७ चिह्न, लक्षण । १८ निर्णय, फैसला । १६ सम्मति, राय । २० विष्णुका एक नाम । २१ वह रीति जिसके द्वारा छंदों के भेद और उनकी संख्या जानी जाय । छन्दोशास्त्रमें ६ प्रताय हैं, यथा—प्रस्तर, स्ची, पाताल, उद्दिए, नए, मेरु, खएडमेरु, पताका और मक्केटी । २२ व्याकरणमें वह अक्षर या मूलशब्दके अन्तमें उसके अर्थमें कोई विशेषता उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे लगाया जाय ।

प्रत्ययकारिन् (सं० वि०) प्रतायं करोतीति क्र-णिनि । १ विश्वासकारक, विश्वास दिलानेशाला । स्त्रियां कीप । २ प्रतायकारिणी मुद्रा, मोहर । मोहरकी लाप रहनेसे लोगोंके प्रत्यय होता है, इसीसे इसको प्रतायकारिणी कहते हैं।

प्रत्ययत्व (सं० ह्ली०) प्रत्यस्य भावः, त्व । प्रत्यययका भाव वा धर्म ।

प्रत्ययनस्त्व ( सं॰ क्षी॰ ) पुनःप्राप्त, वह जो फिरसे मिला हो।

प्रत्ययसर्गं ( सं॰ पु॰ ) महत्तत्त्व या वुद्धिसे उत्पन्न सृष्टि । प्रत्ययिक ( सं॰ ति॰ ) प्रत्यययुक्त ।

प्रत्ययित (सं० ति) प्रत्ययो विश्वासः सञ्जरोऽस्येति प्रत्यये (तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६) इति इतच्। १ आप्त, प्राप्त। २ विश्वस्त, जिसका विश्वास किया जाय। ३ प्रतिगत, छौटा हुमा।

प्रत्ययिन् (सं० ति०) प्रत्यय-इनि। प्रत्यययुक्त, विश्वस्त। प्रत्यरा (सं० स्त्रो०) प्रतिनिहिताः भराः प्रादिस०। छकड़ी-की चौड़ी पर्ट्यो जो पहिएकी गड़ारी और पुड़ीके बीचमें उसे मजबूत रखनेके लिये जड़ी रहती है।

प्रत्यरि (सं॰ पु॰) प्रति-म्रह-इन् । १ शतु, दुश्मन । २ जन्म-तारासे पांचवा, चीदहवां और तेईसवां तारा । यह तारा शुभकार्य मात्रमें निन्दनीय है। चन्द्र और ताराशुद्धिमें सभी कार्य करने होते हें, विशेषतः कृष्णपक्षमें ताराशुद्धि नहीं होनेसे कोई भो कार्य नहीं करना चाहिये । प्रत्यरि- तारामें छवण दान करके शुभकार्य किये जा सकते हैं। 'अत्यरी छवणं दयात्' (ज्योतिस्तत्त्व )

प्रत्यके ( सं॰ पु॰ ) प्रतिसूर्यं, सूर्यमण्डलभेद् ।

प्रत्यर्चेन (सं० क्ली०) प्रति-अर्च-ह्युद्। प्रतिनमस्कार, प्रतिपूजा।

प्रत्यर्थे ( सं० पु॰ ) एक प्रकारका प्रतिस्यें।

प्रत्यर्थंक (सं॰ पु॰) शतु, दुश्मन।

प्रत्यर्थिक ( सं० पु० ) विपक्ष, शबु ।

प्रत्यर्थी (सं॰ पु॰) प्रतिशोधं प्रतिकूछं वा अर्थयते इति प्रतिकूछं वा अर्थयते इति प्रति-अर्थ-णिनि । १ शबु, दुश्मन । २ प्रतिवादी, मुद्दालेह ।

प्रत्यर्पण (सं० हो०) प्रति-ऋ-णिच्-ल्युट् पुकागमः। प्रतिदान, दानमें पाया हुआ धन फिर दान करना।

प्रत्यपेणोय (सं० ति०) प्रति-ऋ-णिच् अनीयर्। प्रत्यपेण-के योग्य।

प्रत्यर्पित (सं॰ ति॰ ) प्रति-ऋ-णिष्-क । प्रतिदत्त, जो फिरसे लौटा दिया गया हो ।

प्रत्यर्प ( सं॰ पु॰ ) १ ढालवां प्रदेश । २ पार्श्वदेश । प्रत्यर्ह ( सं॰ अव्य॰ ) प्रतिपूजाके योग्य, सम्माननीय । प्रत्यवकर्रान (सं॰ ति॰) प्रति-अव-कर्शि-स्युर् । क्शत्वकर, निवर्त्तक ।

प्रत्यवनेजन (सं० ह्वी०) प्रतिक्षपमवनेजनं प्रादि-स०।
श्राद्धाङ्ग प्रथम जलादि दानके अनुक्षप पिएडके ऊपर
कियमाण पुनरवनेजन, श्राद्धमें पिएडदानकी वेदी पर
विष्ठाप हुए कुशों पर जल सींचनेका संस्कार।

प्रत्यवमर्शे ( सं॰ पु॰ ) प्रति-अव-मृश-क्षान्तौ भावे घत् । १ अनुसन्धान, पता लगाना । २ विवेक, अच्छे बुरेका विचार करना ।

प्रत्यवमर्शन ( सं० क्ली० ) प्रति-अव-मृश-ल्युट्ं । १ अनु-सन्धान । २ युक्तायुक्त विचार ।

प्रत्यवमर्शवत् ( सं० ति० ) प्रत्यवमर्शः विद्यतेऽस्य, मतुष् मस्य व । १ प्रत्यवमर्शयुक्त । २ चिन्तान्वित ।

प्रत्यवमर्प (सं॰ पु॰) प्रति-अव-मृष-क्षान्तौ-भावे-धञ्। सहन, सहा करना।

प्रत्यवमर्षेण (सं॰ क्ली॰) प्रति-अव-मृप-भावे च्युट्। १ सहन । २ युक्तायुक्त विचार । प्रत्यवर (सं॰ वि॰) प्रतिक्षे अवरः प्रादिस॰ । अतिनिरुष्ट, जो सबसे अधिक निरुष्ट हो ।

> "प्रतिगृहात् याजनाद्वा तथैवाध्यापनादिष । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः॥" ( मनु १०।१०६ )

त्राह्मणोंके निन्दिताध्यापन, याजन और प्रतिमह इन तोनोंमेंसे प्रांतम्रह प्रत्यवर है अर्थात् अति निरूप्ट है। प्रत्यवस्तिह (सं० ति०) अभिमुखमें अवतरण, सामनेमें उतरना।

प्रत्यवरोधन (सं० क्वी०) प्रति-अव-रुध-णिच्-ल्युट्। १ अवरोधन। २ विघ्नोत्पाद करना, वाधा देना।

प्रत्यवरोह (सं० पु०) प्रति-अव-रुह-घम्। १ अवरोह, उतरना। २ सोपान, सोढ़ी। ३ अप्रहायणमासमें गृद्ध उत्सवविशेष, वैदिक कालका एक प्रकारका गृह्य उत्सव जो अगहन मासमें होता था।

प्रत्यवरोहण ( सं॰ क्को॰ ) प्रति-अव-रुह-रुयुट् । १ निस्न अवतरण, नीचे उतरना। २ अप्रहायणमासमें गृह्य उत्सव-विशेष ।

प्रत्यवरोहणीय (सं० ति०) प्रति-अव-मह-णिच्-अनीयर्। १ अवरोहणके योग्य। २ वाजयेययक्षकी एकाह साध्य विछ।

प्रत्यवरोहिन् ( सं० लि० ) प्रति-अव-वह-णिनि । नोचे उत-रनेवाळा ।

प्रत्यवसान (सं० क्षो०) प्रति-अव-सो-स्युट् । भोजन, खाना ।

प्रत्यवसित ( सं॰ ति॰ ) प्रति-अय-सो-क्त । मक्षित, स्नाया हुआ ।

प्रत्यवस्कन्द (सं॰ पु॰) प्रति॰अव-स्कन्द-धन् । चतुर्विध उत्तरके अन्तर्गत उत्तरविशेष, व्यवहारशास्त्रके अनुसार प्रतिवादीका वह उत्तर जो वादीके कथनका अएडन करनेके लिये दिया जाय, जवाव-दावा ।

प्रत्यवस्कन्दन (सं० क्षी०) प्रति-अव-स्कन्द-ल्युट् । प्रत्यवस्कन्द देखो ।

प्रत्यवस्था ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रति-अव-स्था-भावे अङ् । प्रति-पक्षरूपसे अवस्थान ।

Vol XIV 143

प्रत्यवस्थात् (सं॰ ति॰) प्रतिपक्षतया अवतिप्रते प्रति-अव-स्था-तृच् । शतु, दुश्मन ।

प्रत्यवस्थान ' सं॰ क्ली॰ ) प्रति-अव-स्था-ल्युद् । विपक्ष-रूपसे अवस्थान, शतुतारूपमें रहना ।

प्रत्यवहार (सं॰ पु॰) प्रति-अव-ह-भावे-धञ्।१ संहार, मार डालना।२ लड़नेके लिये तैयार, सैनिकोंको लड़नेसे रोकना।

प्रत्यवाय (सं॰ पु॰) प्रतावाय्यते इति-प्रति-अव-अय गती घञ्। १ पाप या दोष जो शास्त्रीम वतलाये हुए निताकर्म-के न करनेसे होता है। २ भारी परिवर्त्तन, उलटफेर । ३ जो नहीं है उसका न उत्पन्न होना या जो है उसका न रह जाना।

प्रत्यदेक्षण (सं० क्की०) प्रति-अव ईक्ष भावे-ख्युद्। १ पूर्वापर आलोचना, किसी वातको वहुत अच्छी तरह देखना, समक्षना या जाँचना। २ अनुसन्धान, खोज। ३ विचार। ४ प्रतिजागर, खूब होशियारी रखना। प्रत्यवेक्षा (सं० स्त्री०) प्रति-अव-ईक्ष-भावे-अ। प्रतावेक्षण, तत्त्वावधान।

प्रत्यवेक्ष्य (सं० त्नि० ) प्रति-अव-ईक्ष-यत् । १ प्रता्रवेक्षण-योग्य, देखरेख करने लायक । २ अनुसन्धेय, खोज करने योग्य । ३ विचार्य, विचारने योग्य ।

प्रत्यश्म (सं० पु०) प्रतिकृषः अश्मा। गैरिक, गेक् ।
प्रत्यष्टीला (दृंसं० स्त्री०) सुश्रुतोक्त अष्टीला तुल्य रोगमेद,
सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका वातरोग। इसमें नामिके
नीचे पेडूमें एक गुडली-सी हो जाती है जिसमें पीड़ा
होती है। यदि गुडलीमें पीड़ा न हो उसे 'वातष्टीला' कहते
हैं। गुडली मलमूलके द्वारको रोक देती हैं जिसके
कारण रोगी मलमूलका तग्गग नहीं कर सकता।

बानव्याधि श्रव्ह देखो ।

प्रत्यस्तगमन (सं० ह्यो०) सूर्यका अस्तगमन, सूर्यका इवना।

प्रत्यस्तमय (सं॰ पु॰) १ अस्तगमन, ड्वना । २ विराम, डहराब । ३ ध्वंस, वरवादी ।

प्रत्यस्त्र ( सं॰ क्ली॰) प्रतिद्धयं अस्त्रं । प्रतिद्धयं अस्त्र, तुल्य-द्धपं अस्त्र, एक-सा हथियार ।

प्रत्यह (सं० अव्य०) अहः अहः प्रति (नषु'सहादस्याम् । पा ५।४।१०९) इति टच्। प्रतिदिन, रोजरोज । प्रत्याकार (सं० पु०) प्रतिह्नयः खड्गैन सदृशः आकारो यस्य। खड्गकोष, स्थान।

यस्य । खड् गकाष, स्यान ।
प्रत्याक्षेपक सं० ति० ) उपहासकारी, हँ सी उड़ानेवाला ।
प्रत्याख्यात (सं० ति०) प्रति-आ-ख्या-क । १ दूरीकृत, हटाया
हुआ, दूर किया हुआ । पर्याय—प्रतप्रादिए, निरस्त,
निराकृत, निकृत, विप्रकृत । २ अखीकृत, नामंजूर किया
हुआ । ३ निकत्साहहीकृत, उत्साहहीन किया हुआ ।
प्रत्याख्यातृ (सं० ति०) प्रति-आ-ख्या-तृच् । प्रत्याख्यानकारक, प्रत्याख्यान करनेवाला ।

प्रत्याख्यान ( सं ० क्वो० ) प्रति-आ-ख्या भावे व्युट् । १ निराकरण, दुर करना । २ खएडन ।

प्रत्याख्यायिन् (सं ० वि०) प्रति-आ-ख्या-णिन्, युकागमः। प्रत्याख्याता, प्रत्याख्यान करनेवाला ।

प्रत्याख्येय (सं ० ति०) प्रति-आ-ख्या-यत् । प्रत्याख्यानके योग्य, निराकरणीय !

प्रत्यागत ( सं ० ति ० ) प्रति-आ-गम-क । १ प्रतिनिवृत्त, जो छीट आया हो, वापस आया हुआ । (पु०) २ पैतरे-का एक प्रकार । ३ कुरतीका एक पेंच ।

प्रत्यागति ( सं ० स्त्री० ) प्रति-स्रा-गम भावे किन् । प्रत्या-गमन, दोवारा क्षाना ।

प्रत्यागम (सं ॰ पु॰) प्रत्यागमनिमति, प्रति-आ-गम-अप्। प्रत्यागमन, छोट भाना।

प्रत्यागमन ( सं ० क्षी० ) प्रति-आ-गम-च्युट् । १ प्रत्रा-गम, स्रोट आना, वापसी । २ दोवारा आना ।

प्रत्याघात ( सं॰ पु॰ )१ चोटके वदलेकी चोट, वह आधात जो किसी आघातके वदलेमें हो। २ टकर।

प्रत्याचार ( सं ० पु॰ ) प्रति-आ-चर-घञ् । सदाचार-सम्पन्न, अच्छा आचरणवाला ।

प्रत्याताय ( सं ॰ पु॰ ) प्रति-आ-तप्-घञ् । रौद्रयुक्त स्थान, वह जगह जहां घूप हो ।

प्रत्यात्मन् (सं ० ति०) १ प्रतेत्रक, हरएक । २ एकाकी, अकेळा ।

प्रत्यात्मक (सं० ति०) किसी एक व्यक्तिका अधिकृत। प्रत्यात्मा (सं० ह्वी०) प्रतिविम्ब, छाया। प्रत्यादर्श (सं० पु०) प्रतिहृप चित्र। प्रत्यादान (सं ० हो०) प्रति-आ-दा-ल्युट् । पुनग्रँ हण, फिरसे लेना ।

प्रत्यादिता ( सं ० पु० ) प्रतिसूर्य । प्रतिसूर्य देखो ।

प्रत्यादिष्ट ( सं ० ति ० ) प्रत्यादिश्येतेस्मेति प्रति-आ-दिश् क । १ प्रत्यादेशविशिष्ट । पर्याय—निरस्त, प्रत्या-ख्यात, निराकृत, निकृत, विप्रकृत । २ त्यक, छोड़ा हुआ। ३ ज्ञापित, ज्ञताया हुआ।

प्रत्यादेश (सं ॰ पु॰) प्रत्यादेशनिमति प्रति-धा-दिश-धज्। १ निराक्तरण, प्रत्याख्यान । २ खण्डन । ३ भक्तींके प्रति देवताओंका आदेश, आकाशवाणी ।

प्रत्याचान ( सं॰ ह्रो॰ ) प्रतिपत्त्या धोयते प्रति-आ-धा-कर्म-णि-ल्युट्। १ मस्तक, सिर। २ द्वितीयाधान।

प्रत्याध्मान (सं० पु०) प्रतिगतमाध्यानमीयत् शब्दो यह। वातव्याधिरोगविशेष ।

इसका लक्षण—वायुके एक जानेसे जव शब्द और यातनाके साथ उदर शोध आध्मात हो जाता है, तव उसे आध्मातरोग कहते हैं। यह पार्श्व और हदयदेशसे निःस्त्रत हो कर आमाशयमें आध्मानरोग उत्पन्न करता है, इसीका नाम प्रतप्राध्मान है। इस रोगमें वमन, लङ्कन, दीपन और वस्तिकमें आवश्यक है।

प्रत्यानयन (सं० क्ली० ) प्रति-क्षा नी-ल्युट् । पुनरुद्वाप, फिरसे लाना ।

प्रत्यानीत ( सं० त्नि० ) प्रति-आ-नी-क । जो फिरसे छ।या गया हो, जिसका पुनरुद्वार हुआ हो ।

प्रत्यानेय ( सं॰ ति॰ ) १ फिरसे छाने योग्य । २ सत्पर्यमें छाने योग्य ।

प्रत्यापत्ति ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रति-आ भावे किन् । १ वैराग्य । २ पुनरागमन ।

प्रत्यापीड़ (सं० पु०) छन्दोभेद ।

अत्याप्नवन ( सं० क्ली० ) प्रति-मा-ग्लु-ग्युट् । माप्नावित होना, उछलना, कूदना ।

प्रतासान (सं० ति०) प्रतिरूप तथा आसायते प्रति-आ-स्ना-कर्मणि स्युट् । प्रतिनिधि ।

प्रत्याम्नाय ( सं॰ पु॰ ) प्रतिरूप-तथा आम्नायते प्रति-आ-मा-कर्मणि-घन् । प्रतिनिधिरूपमें विधीयमान ।

प्रत्याय ( सं० पु०) राजस्त, कर।

प्रत्यायक ( सं० ति०) प्रति-इ-ण्वुल् । १ विश्वासकारक । २ बोधक ।

प्रत्यायन (सं॰ क्की॰) प्रति-आ-इ-णिच्च् 'नौगमिरवीधने' इति न गमादेशः भावे ल्युट्। १ वीधन। २ विश्वास-जनन।

प्रत्यायित (सं॰ ति॰) १ विश्वस्त । (पु॰) २ विश्वस्त कर्म-चारी।

प्रत्यायितव्य (सं॰ ति॰) विश्वासके उपयुक्त, विश्वास करने लायक।

प्रत्यारमा (सं० पु०) प्रतिकृपः आरम्मः प्रादिसं। पश्चात् आरम्म । पहले आरम्म करके पीछे आरम्म करनेका नाम प्रत्यारम्म है ।

प्रत्यालीढ़ (सं० क्को॰) प्रति-आ-लिह्-क । १ घन्यीगणके पादसंस्थानविशेष, धनुष चलानेवालोंके वैठनेका एक प्रकार । इसमें वे घनुष चलानेके समय वायां पैर आगे वढ़ा देते हैं और दिहना पैर पीछे खींच लेते हैं । (ति॰) २ आखादित, चला हुआ । ३ अशित, खाया हुआ ।

प्रत्यावत्तंन (सं० ह्यी०) प्रति-आ-वृत-णिच्, वा भावे ल्युट्।१ प्रतिनिवृत्ति । २ प्रतिनिवारण ।

प्रत्यावृत्त (सं० वि०) प्रति-आ-यृत-क । १ प्रत्रागत, लौटा हुआ । २ पुनरावृत्त, दोहराया हुआ ।

प्रत्याशा (सं का को ) प्रति-किञ्चित् वस्तु लक्षीकृता आ समन्तात् अश्वुते व्याप्नोतोति प्रति-आ-अश्-अच्, ततप्राप्। १ आकांक्षा, मरोसा। २ प्रताय।

प्रत्याश्रय ( सं॰ पु॰) प्रति-आ-श्रि-अच् । आश्रयगृह, पनाह लेनेको जगह ।

प्रत्याश्राव (सं० पु०) पति-आ-श्रु-णिच्, भावे अच्। १ उद्देश करके श्रावण । कर्मणि अच्। २ 'अस्तु ओपड़्' ऐसा शन्द ।

प्रत्याश्रावण (सं० क्को०) प्रति-आ-श्रु-णिच्, मावे ल्युट्। अम्नीध्र कर्वं क अध्वयुं के प्रति मन्तविशेषका आश्रवण। प्रत्याश्वास (सं० पु०) प्रति-आ-श्वस्-घम्। पुनर्वार आश्वास।

प्रत्याश्वासन (सं० क्वी०) प्रति-आ-श्वस-णिच्-ल्युट्। सान्त्वनार्थं आश्वासन।

प्रत्यासङ्ग (सं॰ पु॰) १ संभव। २ संयोग।

प्रत्यासित (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-आ-सद् भावे किन् । १ नैकट्य, निकटता । २ नैयायिक मतसिद्ध अलौकिक प्रतास जनक सम्यन्यमात्र । आवित्त देखो ।

प्रत्यासन्न (सं॰ ति॰ ) प्रति-आ-सद्-कः। निकटवत्तीं, नजदीकका ।

प्रत्यासर ( सं० पु० ) प्रत्यास्त्रियते इति प्रति-आस् ( ऋदो-रप् । पा ३।३।५७ ) इत्यप् । सैन्यपृष्ठ, सेनाका पिछला भाग ।

प्रत्यासार (सं॰ पु॰) प्रत्याक्षियते प्रति-भा-स्-घम् । सैन्य-पूछ, सेनाका पिछळा भाग ।

प्रत्याखर (सं॰ पु॰) प्रत्याखरित प्रति-आ- ख-अच्। १ प्रत्यागत । २ सूर्य । सूर्य अस्त हो कर फिर उदित होते हैं, इसीसे इनका सूर्य नाम पड़ा है।

प्रत्याहरण (सं० क्ली०) प्रति-आ-ह भावे ल्युट् । १ प्रत्या-हार । २ प्रत्यावर्त्तन ।

प्रत्याहार (सं॰ पु॰) प्रति-आ-ह भावे घज्। १ अपने अपने विषयसे इन्द्रियका आकर्षण। २ योगाङ्ग विशेष, योगके आठ अङ्गीमेंसे एक अङ्ग जिसमें इन्द्रियोंको उनके विषयों-से हटा कर चित्तका अनुसरण किया जाता है।

> "प्रत्याहारश्च तकैश्च प्राणायामस्तृतीयकः। समाधिर्धारणं ध्यानं पड्ड्गो योगसंप्रहः॥"

> > ( भरत )

प्रत्याहार, तक, प्राणायाम, समाधि, धारण और ध्यान यहो छः योगके सङ्ग हैं। पातञ्जलदर्शनमें यम नियम आदि आठ योगाङ्ग कहे गये हैं। इनमेंसे प्रत्याहार पञ्चम योगाङ्ग है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम नामक योगाङ्ग के सनुष्ठान द्वारा शरीर और मनके परि- एकत वा सुसंस्कृत होनेके वाद प्रत्याहार नामक योगाङ्ग- का अभ्यास करना पड़ता है। पूर्वोक्त चारके सिद्ध होनेसे इसका अभ्यास सहज हो जाता है। यदि चक्षु रादि इन्द्रियां किसी सुन्दर कप पर बुरे भावसे जा पड़े, तो उन्हें वहां- से हटा कर अपने चित्तको शान्त करनेका नाम प्रत्याहार है। चक्ष जिससे बुरी राह पर न दौड़े, कण जिससे अप- शब्दका श्रवण न करे, नासिका जिससे बुरी गंध न ले, ऐसा हो उपाय करना चाहिये। प्रत्येक इन्दिय जिससे अपने अपने ग्रहीतथ्य विषयका त्याग कर अविकृत

अवस्थामें चित्तकी अनुगत रहे, वही करना चाहिये। इसी अभ्यासका नाम प्रत्राहार है। यह प्रत्राहार नामक योगाङ्ग जब अभ्यस्त हो जाता है, तब जानना चाहिये, कि सभी इन्द्रियां वशीभूत हो चुकी हैं। मनोहर रूप देखने-से चक्षु खभावतः ही उस और आकृष्ट होता है। किन्तु कैसा ही मनोहर रूप क्यों न हो, इस योगके अभ्यस्त हो जानेसे चक्षु जरा भी उस पर आसक नहीं होगा। जब सभी इन्द्रियां इसी राह पर आ जाँय, तब समक्ता चाहिये, कि प्रत्राहार नामक योगाङ्ग सिद्ध हो चुका। इन्द्रियां जब इच्छानुरूप वशीभूत होती हैं, तब समाधि आसानीसे करतलगत हो जाती है।

प्रत्याहार योगाङ्गका अभ्यास बड़ा ही कठिन है। यदि कोई अस्त्रधारी राजा अपने नौकरके हाथ चपनो भर तेल देकर कहें, कि शांघ्र जाओ, दौड़ें हुए जाओ, पर देखना, तेल गिरने न पावे, अगर एक बुन्द भी गिरेगा, तो इसी अख्रसे सिर काट लिया जायगा, ऐसी अवस्थामें भृत्यको जिस प्रकार दूढ़िचत्त रखना आवश्यक है, जिस प्रकार अङ्ग-संयमकी आवश्यकता है- प्रत्याहार अभ्यासकालमें भी उसी प्रकार दृढ्चित्त और अङ्गसंयमकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ दिन वाद जब वह अभ्यस्त वा खायत्त हो जायगा, तव चित्तको जिधर चाहो, घुमा सकते हो । अव चक्षू रादि इंद्रिया भी उसका अनुवर्त्तन करेंगी ; किसी भी प्रकारका रूप चक्षुको और कोई भी शब्द कर्णको आकर्षण नहीं कर सकता। जब यह प्रत्याहार सम्पूर्णेरूपसे आयत्त हो जायगा, तव धारणा, ध्यान वा समाधि उसके लिये कुछ भी कठिन मालूम नहीं पड़ेगा। यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार योगाङ्ग जव तक अच्छी तरह अभ्यस्त नहीं हो जाँयगे, तव तक इसकी सिद्धि नहीं हो सकती। ( पात्रज्ञलद॰ साधनपा॰)

३ संज्ञाविशेष, एक प्रकारकी संज्ञा ।
प्रत्याहार्य (सं० ति०) प्रत्याहारके योग्य ।
प्रत्युक्त (सं० ति०) प्रति-वच कमेणि क । १ उत्तरित,
जिसे जवाव दिया गया हों। २ प्रतिवाक्य द्वारा निराकृत ।
प्रत्युक्त (सं० स्त्री०) प्रतिवचनमिति प्रति-वच भावे
किन, प्रतिकृपा उक्तिरिति वा । प्रत्युक्तर, जवाव ।
प्रत्युच्चारण (सं० क्ली०) पुनर्वार उच्चारण, फिरसे कहना ।

प्रत्युजीवन (सं० क्ली०) प्रति-उद्-जीव भावे ल्युट्। पुनर्जीवन, मरे हुए व्यक्तिका फिरसे जी उठना। "रसविच्छेदहेतुत्वात् मरणं नैव वर्ण्यते। वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरतः॥' (साहित्यद०)

रसविच्छेदके कारण काव्य और नाटकादिमें मृत्यु-का वर्णन नहीं करना चाहिये। यदि मृत्युका वर्णन किया भी जाय, तो शीघ्र ही उसका प्रतुर्ज्जीवन वर्णन करना भी आवश्यक है। जिस प्रकार कविने कादम्बरी-में पहले मृतुरका वर्णन करके पीछे जीवनप्राप्तिका भी वर्णन किया है।

प्रत्युक्त (सं ० अव्य०) प्रति-च उक्तच इति द्वन्द्वः। १ वैप-रोत्य, इसके विरुद्ध, विक्ति, वरन्। २ किसी दूसरेके पक्षका खंडन या अपने पक्षका मंडन करनेके छिये विप-रोत भाव, विपरीतता।

प्रत्युत्कर्षं ( सं ० पु० ) मूल्याधिक्य।

प्रत्युत्क्रम (सं० पु०) प्रत्युत्क्रमिमित प्रति-उत्क्रम-घज्। १ प्रकृष्ट योग, युद्धके लिये तैयारी! २ प्रधान प्रयोजना-नुक्ल प्रयोजनानुष्ठान, वह उद्योग जो कोई कार्य आरम्म करनेके लिये किया जाय। ३ युद्धका प्रथम आक्रमण, जो युद्धके समय सवसे पहले हो।

प्रत्युत्क्रान्ति (सं० स्त्री०) प्रति-उत्-क्रम-किन्। प्रत्युत्कम। प्रत्युत्तिध्य (सं० स्त्री०) १ धारण । २ अवसम्बन। ३ रक्षण । ४ स्थापन।

प्रत्युत्तरभ ( सं ॰ पु॰ ) प्रत्युत्तन्त्रि ।

प्रत्युत्तर (सं० क्ली०) प्रतिक्रपमुत्तरं । उत्तरका उत्तर, जवावका जवाव।

प्रत्युत्थान (सं० क्की०) प्रत्युत्थोयते इति प्रति-उत्-स्था-ल्युट्। १ अभ्युत्थान, किसी वड़े या पूज्यके आने पर उनके खागत और आदरके लिये आसर्न छोड़ कर उठ खड़ा होना।

प्रत्युत्थायिन (सं ० ति०) प्रति उत् स्था-णिनि युकागमः। प्रत्युत्थान कारक, अभ्युत्थान करनेवाला। प्रत्युत्थेय (सं ० ति०) प्रत्युत्थानके उपयुक्त। प्रत्युत्पन्न (सं ० ति०) प्रति-उत्-पद-क्तः। १ उत्पिति- विशिष्ट, जो फिरसे उत्पन्न हुआ हो। २ जो ठोक समय पर उत्पन्न हुआ हो। ३ सत्वर, हठात्।

प्रत्युत्पन्तमति ( सं ० ति ० ) प्रत्युत्पन्ता तत्कालोचिता मितर्यस्य । १ उपस्थित विषयमें जिसकी बुद्धिका स्फूरण हो, ठीक समय पर जिसकी बुद्धि काम कर जाय । २ स्र्थ्मवुद्धियुक्त । पर्याय—कुशाधीयवुद्धि, स्थ्मदर्शी, तत्कालधी, प्रतिमान्वित ।

पत्युदाहरण (स'० क्ली०) प्रतिकृत्वमुदाहरणं प्रादिस०। उदाहरणके वैपरीत्य द्वारा उदाहरण।

प्रत्युद्धगति (सं ० स्त्री०) प्रति-उत्-गम । प्रत्युद्धम । प्रत्युद्धगम (सं ० स्त्री०) प्रति-उत्-गम-अप् । १ प्रत्युद्धगन, किसीके आने पर उसका स्वागत करनेके लिये उठ कर खड़ा हो जाना । २ प्रतिगमन ।

प्रत्युद्रमन (सं ० क्ली०) प्रति-उत्-गम-ल्युट् । प्रत्युत्थान । प्रत्युद्रमनीय (सं ० ति०) प्रति-उत्-गम-अनीयर् । १ प्रत्युत्गमनके उपयुक्त, सम्मान करने योग्य । (क्ली०) २ भौतवस्त्रयुग्म, एक प्रकारका वस्त्र जो प्राचीन कालके यशीमें या भीजनके समय पहना जाता था ।

प्रत्युद्वार (सं॰ पु॰) वायुजन्य रोगभेद, एक प्रकारका वायुरोग।

प्रत्युद्यम (सं० पु०) १ तुल्यपरिमाण । (बि०) २ प्रत्युद्यमयुक्त । ३ तुल्य परिमाणविशिष्ट ।

प्रत्युद्यमिन् (सं० ति०) प्रति-उत्-यम-अस्तार्थे इनि । १ तुल्य परिमाणविशिष्ट। २ अद्म्य । ३ तुल्य वलशाली । प्रत्युद्यातु (सं० ति०) प्रति-उद्द-या-तृच् । विरुद्धमें गमनकारो, शब् पर आक्रमण करनेवाला ।

प्रत्युवामिन् ( सं ० ति० ) प्रति-उत्-यम-णिनि । १ तुल्य परिमाणविशिष्ट । २ अद्म्य । ३ समकक्ष ।

प्रत्युन्तमन ( सं ० क्ली० ) प्रतिकृत्वमुन्नमनं प्रादिस० । फिर-से अझ होना ।

प्रत्युपकार (स ॰ पु॰) प्रतिक्षपः उपकारः प्राद्सि॰ । उपकाराजुक्षप हितानुष्ठान, वह उपकार जो किसी उपकारके वद्छेमें किया जाय।

प्रत्युपकारिन् (सं ० ति ०) प्रति-उप-क्र-णिनि । प्रत्युपकार, उपकारका बदला देनेवाला ।

Vol. XIV. 144

प्रत्युपिक्रया (सं ० स्त्री०) प्रतिक्षपा उपिक्रया प्रादिस०। प्रत्युपकार ।

प्रत्युपदेश (सं॰ पु॰) प्रति-उप-दिश-घञ् वा प्रतिरूपः उप-देश प्रादिस॰। १ उपदेशानुरूप शिक्षाप्रदान। २ उप-कारानुरूप हिताचरण।

प्रत्युपभोग ( सं॰ पु॰ ) प्रति-उप-भुज-घम् । सुखमोग । प्रत्युपमान ( सं॰ क्ली॰ ) उपमानका वैपरीत्य ।

प्रत्युपवेश (सं ॰ पु॰) वलपूर्वक राजी कराना।

प्रत्युपस्थान ( सं॰ ह्यो॰) निकटवत्तीं स्थान, आसपासकी जगह।

प्रत्युपस्पर्शन ( सं ० क्ली०) जल द्वारा धौतकारण, पानीसे साफ करना।

प्रत्युपह्व (सं ॰ पु॰) देवताओंका आवाहन-मन्त्रपाठ । प्रत्युपहार (सं ॰ पु॰) प्रतिरूपः उपहारः प्रादिस॰। अनु-रूप उपहार, भेंट देनेयोग्य द्रवा ।

प्रत्युपाकरण ( सं ० ह्यी० ) पुनः वेदपाठारस्म ।

प्रत्युपेय (सं ० त्नि०) १ प्रतिदानके योग्य, दानदेने छायक । २ आळोचनीय, विचारने छायक ।

प्रत्युत (सं० ति०) प्रतिचप्-क । १ जो धौतुकमें विया गया हो । २ सज्जित, सजाया हुआ । ३ खचित, जड़ा हुआ । ४ विचितित, खींचा हुआ ।

प्रत्युरस ( सं॰ अबा॰ ) उरसि विमक्तार्थे व्ययीभावः । (प्रेतेहरसः सन्तमीस्थात पा ५।४।=२ ) वक्षःस्थल पर, छाती पर ।

प्रत्युल्क (सं०पु०) प्रतिकूल उल्क्रस्य प्रादिस०।१ काक, कौवा। प्रतिरूपः उलुको यस्य कप्। २ उल्लूकी आरुतिका एक पक्षी।

प्रत्युप (सं॰ पु॰) प्रतोषति विनाशयति अन्धकारमिति प्रति-उप्-दाहे (इग्रकाति। पा ३।१।१३६) इति क। प्रत्यूप, प्रभात, तङ्का।

प्रत्युपस् (सं ० क्ली०) प्रत्योपति नाशयतान्धकारमिति प्रति-उप् (डपः कित्। डण् शारु३) इति असि, स च कित्। प्रत्यूप, प्रातःकाल।

मत्यूद्ध (सं ० अन्य) जद्दध्वीदिक, ऊपरकी ओर।

प्रत्यूप (सं ॰ पु॰) प्रत्यूपति रुजति कामुकानिति प्रति-ऊप् रोगे क । १ प्रभात, तड्का । २ सूर्य । ३ वसुभेद, एक वसुका नाम ।

प्रत्यूपस् ( सं ॰ क्को॰ ) प्रति-उप्-असि । प्रभात, तङ्का । प्रत्यूष्य ( सं ० त्नि० ) दहनीय, दाह करनेके योग्य । प्रत्यूह ( सं ॰ पु॰ ) प्रयूत्हनमिति प्रति-ऊह्-घञ् । विद्रा, वाधा ।

प्रत्युच (सं० अन्य०) ऋचं ऋचं प्रति वीप्सायामन्ययी। भावः अच्समासान्तः। एक एक ऋक्में। प्रत्येक (सं० ति०) समूह अथवा वहुतोंमेंसे हरएक,

अलग अलग ।

प्रत्येकत्व (सं ० पु० ) प्रत्येकका भाव या धर्म। प्रत्येकवुद्ध (स'० पु०) १ एकवुद्धका नाम । २ मानवकी १म प्रत्येक, २य श्रावक और बुद्धत्वपाप्तिका क्रमभेद्। ३य महायानिक, ये तीनों मिल कर 'ति-यान' कहलाते हैं। वौद्धशास्त्रमें सैकड़ों वुद्धका उल्लेख है।

प्रत्येक्शस् (सं ० अव्य०) एक एक कर । प्रत्येतन्य (सं ० ति०) स्तीकृत, मंजूर किया हुआ। प्रत्येनस ( सं ॰ पु॰ ) १ विचारक । २ उत्तराधिकारी, जो मरे आदमीके ऋणका दायी हो।

प्रतास (सं • पु • ) प्र-त्रसु-धन् । १ भय, डर । २ कम्प, कंपकंपी |

प्रथन ( सं ० क्ली० ) प्रथ-ल्यु ट् । १ प्रकांशकरण, प्रकाशमें **ळानेकी क्रिया या भाव**। २ विस्तार । ३ गुल्मभेद, एक प्रकारकी लता ।

प्रथम (सं ० ति०) प्रथते प्रसिद्धो भवतीति प्रथ । प्रयेशमन् । ष्ठण् पा६८) इति अमच् । १ प्रधान, मुख्य । २ आदिम, पहला, आदिका । पर्याय—आदि, पूर्व, पीरस्त्रा, आद्य, अग्रिम, प्राक् । ३ सर्वश्रेष्ठ, सबसे अच्छा । (कि॰ वि॰ ) ४ पहले, पेश्तर, आगे ।

प्रथमक (सं ० ति०) प्रथम-खार्थे कन् । प्रथमशन्दार्थ। प्रथमकल्पित (सं वि ) पहले जिसकी कल्पना की गई हो।

प्रथमकारक (सं • पु • ) व्याकरणमें कर्त्ताकारक। प्रथमकुसुम (सं १ पु॰ ) शुक्तमरुवकवृक्ष, सफेद फूलके अगस्तका वृक्ष ।

प्रथमगर्भ ( सं॰ प्र॰ ) प्रथम वारका गर्भ । प्रथमच्छद (सं ० ति०) १ प्रथमका आच्छादन । २ अग्नि-का आच्छाद्यिता।

प्रथमज (सं॰ बि॰) प्रथमं जायते जन-इ। १ पूर्वजात, जो पहले उत्पन्न हुआ हो। २ प्रथम गर्भजात, जो सक्से पहले गर्भसे उत्पन्न हुआ हो । ३ अप्रज, ज्येष्ठ । प्रथमजात ( सं॰ वि॰ ) प्रथमे जातः। अप्रज, वड़ा। प्रथमतः ( सं ॰ अव्य॰) प्रथम-सप्तम्यर्थे तसिल् । पहलेसे, सवसे पहले।

प्रथमपुरुष (सं॰ पु॰) १ आदिपुरुष, पुराने जमानेका आदमी। २ व्याकरणोक्त आख्यात विभक्तिका संज्ञ-वोधक शब्द, व्याकरणमें वह सर्वनाम जो वोलनेवाले पुरुपको सूचित करता है। ३ मैतायणीसूतके प्रणेता, प्रथमप्रकाशके शिष्य ।

प्रथयमाज् (सं ० ति० ) प्रथम-भज-णिव । १ प्रथम भाग प्रहण करनेवाला । २ उत्पत्तिकालविभागकारी।

प्रथमयज्ञ ( सं ॰ पु॰ ) यज्ञका प्रथम उत्सर्ग ।

प्रथमरात ( सं ० पु० ) रातिका प्रथम भाग।

प्रथमवयसिन् ( सं ० ति० ) प्रथमवयोऽस्त्यस्य बाहु० इनि सान्तत्वात् न पदत्वं । प्रथमवयोयुक्त ।

प्रथमवास्य ( सं ० ति० ) पूर्वपरिहित ।

प्रथमवित्ता (सं० ति०) प्रथमं वित्ता विन्ना लग्या। प्रथमपरिणीता स्त्री, पहलेकी व्याही औरत ।

प्रथमश्रवस् ( सं ० ति० ) अतिशय ख्यातियुक्त, जिसे धन वा यशकी ख्याति हो।

प्रथमसङ्गम् (सं०पु०) प्रथम सम्मेलन, पहली बार मुलाकात ।

प्रथमसाहस ( सं ॰ पु॰ ) साहस द्एडभेद, प्राचीन व्यव-हारशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका साहसद्ख्ड। दण्डमें २५० पण तक जुरमाना होता था। यह दण्ड-साधारण अपराधोंके लिये होता था।

प्रथमस्थान ( सं ० क्ली० ) वेदमन्त्र उच्चारण करनेके समय धीमा या नीचा खर।

प्रथमस्वर (सं ० क्ली०) सामभेद, एक प्रकारका साम-

प्रथमा (सं०स्त्री०) १ मद्य, मिंदरा। २ व्याकरणका कर्त्ताकारक ।

प्रथमागामिन् (सं ० ति०) प्रथमोक्त, जो पहले कहा गया हो ।

प्रथमाङ्ग लि (सं०पु० स्ता०) प्रथमा अंगुलिः कर्मधा०। वृद्धांगुष्ट ।

प्रथमादेश ( सं ० पु० ) किसी पदके पहले आदेश । प्रथमार्द्ध ( सं ० पु० क्ली०) पूर्वाद्ध , पहलेका आधा भाग प्रथमाश्रम ( सं ० पु० क्ली० ) प्रथमः आश्रमः कम० । ब्रह्म- वर्याश्रम ।

प्रथमेतर (सं ० ति ०) प्रथमादितरः । प्रथम भिन्न, दूसरा । प्रथयत् (सं ० ति ०) प्रथ-णिच्-तृण् विख्यातिकारक । १ विस्तृतिकारक, फैलानेवाला । २ घोषणाकारी, घोषणा करनेवाला ।

प्रथस् (सं ० ति०) प्रवृद्ध, खूव वढ़ा हुआ।
प्रथस्वत् (सं ० ति०) विस्तारयुक्त, खूव लस्वा चौड़ा।
प्रथा (सं ० स्त्री०) प्रथ-(विद्भिद विभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४)
इत्यङ् ततष्टाप्। १ ख्याति, प्रसिद्धि। २ रीति, रिवाज,
नियम।

प्रथित (सं ० ति०) प्रथ-क । १ ख्यात, मशहूर । (पु०) २ पुराणानुसार स्वारोचिष मनुके पुतका नाम ।

प्रथितत्व (सं ० क्ली०) प्रथितस्य भावः त्व । प्रथितका भाव या धर्म ।

प्रधिति ( सं ० स्त्री० ) ख्याति, प्रसिद्धि ।

प्रथिमन् (सं॰ पु॰) पृथोर्मावः (पृथ्वादिभ्यइम्निष्वा । पा ५।१।१२२) इति इमनिच्, प्रथादेशः । १ पृथुका भाव, पृथुत्व, वहुतायत । (बि॰) अतिशयेन पृथुः इमनिच्। २ अतिशय पृथुत्वयुक्त, खूव सम्या चौड़ा ।

प्रथिमिनी ( सं ० स्त्री० ) प्रथिमास्त्यस्या इति प्रथिमन् ( सङ्गर्था मन्माभ्यां । पा पारा१३७ ) इति इनि । प्रथिम-युक्त स्त्री ।

प्रियवी (सं ० स्त्री० ) पृथिवी पृयोदरादित्वात् साधुः। पृथिवो ।

प्रथिष्ठ ( सं॰ ति॰ ) अतिशयेन पृथुः पृथु-इष्टन, प्रथादेशः । अतिशय वृहत्, खून लम्वा चौड़ा ।

पृथु ( सं० पु० ) प्रथते प्रथ-उण् । १ विष्णु । २ एथु देखो । पृथुक ( सं० पु०) प्रथ-वाहुं उक् । पृथुक, चिडवा ।

पद (सं कि कि ) प्रद्वातीति दा-क । दाता, देनेवाला । इस शब्दका प्रयोग सदा यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है, जैसे सुखपद, मोक्षपद । प्रदक्षिण (सं॰ पु॰ क्ली॰) प्रगतं दक्षिणमिति ( तिष्ठद्य प्रस्तीनिच्। पा २। १९७) इति समासः । देवपूजन आदिके समय देवमूर्त्ति आदिको दाहिनी ओर कर भक्ति-पूर्वक उसके चारों ओर घूमना, परिक्रमा।

"एकं देव्यां रवी सप्त तीणि कूर्याद्विनायके। चत्वारि केशवे कूर्यात् शिवे चार्द्ध भदक्षिणम्॥" ( कर्मळीचन )

स्त्रीको देवताके उद्देशसे एक वार, रविके सात वार, विनायकके तोन वार, केशवके चार वार और महादेवके अद्धेवार प्रदक्षिण करना चाहिये।

कालिकापुराणमें प्रदक्षिणका विषय इस प्रकार लिखा है,—दाहिने हाथको फैला कर तथा सिर भुका कर देवताको दाहिनी शोर कर एक या तीन वार उनको जो परिक्रमा की जाती है, उसे प्रदक्षिण कहते हैं। यह प्रद-क्षिण सब प्रकारके देवताओंका तुष्टिप्रद है। जो मनुष्य देवीका एक सौ आठ वार प्रदक्षिण करता है उसकी सब प्रकारकी कामना सिद्ध होती और आखिर उसे मोक्ष-लाम होता है।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशं तस्याश्च शाम्भवीम् । ततश्च दक्षिणां गत्वा नमस्कारिक्षकोणवत् ॥ अद्ध<sup>°</sup>चन्द्रं महेशस्य पृष्ठतश्च समीरितम् । शिवप्रदक्षिणे मन्त्री अद्ध<sup>°</sup>चन्द्रक्षमेण तु ॥ सव्यासव्यक्तमेणैव सोमसूत्वं न लङ्घ्येत् ।" 'सोमसूत्वं जलनिःसरणस्थानं' "प्सार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्नशिराः पुनः । दश्येत् दक्षिणं पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः । तिथा च वेष्टयेत् सम्यक् देवतायाः प्रदक्षिणं ॥"

प्रविश्वणकालमें पहले दक्षिणसे वायुकोण, पीछे शाम्मवी दिक् और तदन्तर दक्षिणदिक् जा कर विकोण-वत् नमस्कार करे। पृष्ठदिक्से अद्धंचन्द्राकारमें शिवका प्रदक्षिण करना कर्त्तं है। दाहिना हाथ फैला कर और सिर भुका कर दाहिनी ओरसे प्रदक्षिण करना चाहिये।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि भक्तिपूर्वंक देव-प्रदक्षिण करनेसे यमपुरका दर्शन करना नहीं पड़ता । तीन वार प्रदक्षिण और साएाङ्ग प्रणाम करनेसे दश अश्वमेध करनेका फल होता है।

> "प्रदक्षिणां ये कुर्वन्ति भक्तियुक्ते न चेतसा । न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम्॥ यस्त्रिः प्रदक्षिणं कुर्यात् साष्टाङ्गकप्रणामकम् । दशाश्वमेधस्य फलं प्राप्नुयानात संशयः॥" (हरिभक्तिविं)

भक्तिपूर्वक विष्णुके विमानका एक वार प्रदक्षिण करनेसे सौ अश्वमेधयज्ञ करनेका फल होता है। जो भगवान विष्णुका प्रदक्षिण करता है, वह इंसयुक्त विमान पर चढ़ कर खर्गलोक जातां है। विष्णुका एक वार प्रदक्षिण नहीं करना चाहिये।

"एकहस्तप्रणामश्च एका चैव प्रदक्षिणा।
भकाले दर्शनं विष्णोहंन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥"
भकाले भोजनादि समये' (हरिभक्तिवि० ८वि०)
एक हाथसे प्रणाम, एक वार प्रदक्षिण वा अकालमें
विष्णुदर्शन करनेसे पुराकृत सभी पुण्य नष्ट होते हैं।
अतएव देवताका एक वार भूल कर भी प्रदक्षिण नहीं
करना चाहिये। (हरिभक्तिवि० ८वि०)

(ति०) २ समर्थ, योग्य । प्रदक्षिणा (सं० स्त्री०) १ प्रदक्षिण देखो । २ प्रदक्षिण स्थान । प्रदक्षिणक्रिया ( सं० स्त्री० ) प्रदक्षिण-कार्यं, प्रदक्षिण करना ।

प्रदक्षिणपद्विका (सं० स्त्री०) प्राङ्गणभूमि, आंगन । प्रदक्षिणाच्चेस् (सं० ति०) जिस भग्निकी शिखा दाहिनी ओर पुज्विति हो ।

प्रदक्षिणावर्त्त (सं० ति० ) १ प्रदक्षिणाचिस् । २ दक्षिणा-वर्त्त, दक्षिण ओर पाकयुक्त ।

प्रदक्षिणावृत्क (सं० ति०) दक्षिणको ओर न्यस्त, जो दाहिनी ओर स्थित हो।

प्रदक्षिणित् (सं० अब्य ०) प्रदक्षिणं पृपोदरादित्वात् साधुः । प्रदक्षिण ।

प्रदग्धव (सं० ति०) प्र-दह-तव्य । दहनयोग्य, दाह करने लायक ।

प्रदत्त (सं० ति०) प्र-दा-क । १ अर्पित, जो दिया जा चुका हो । (पु०) २ गन्ध्रवंभेद, एक गन्धवंका नाम ।

प्रदिद (सं० ति०) प्रकृष्ट दानयुक्त ।

प्रदर (सं० पु०) प्र-दूर-विदारणे ऋरोरप्। पा ३।३।४७) इति अप्। १ भङ्ग, फोडने या तोड़नेका भाव। २ दारणसाधन वाण, भिदनेवाळा तीर । ३ विदार, फाड़ना। ४ स्त्रीरोगभेद, स्त्रीका एक रोग। (Fluor albus) यह रोग दो प्रकारका है-पंक जिसमंसे स्नाव छाल रंगका होता है, उसे रक्तप्रदर वा मेनोरेजिया और जिसमें साव सफेद रंगका होता है, उसे श्वेतप्रदर वा व्युकोरिया कहते हैं। इसका दूसरा नाम असक्द्र है। श्लीरमत्स्यादि संयोग-विरुद्ध द्रव्यभोजन, मद्यपान, पहलेका आहार जीर्ण होने पर भी पुनर्वार भोजन, अपन्त द्रव्यमोजन, गर्मपात, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्यटन, अधिक यानारोहण, शोक, उपवास, भारवहुन, अभिघात, और दिनमें अतिनिद्रा आदि कारणोंसे प्रदर रोग उत्पन्न होता है। गर्भाशयसे सफेद या लाल रंगका लसीदार पानीसा वहना और और उससे कभी कभी दुगन्य निकलना ही इस रोगका साधारण लक्षण है। जिस प्रदरमें अपक रसयुक्त, पिच्छिल, पाण्डुवर्णे और धोए हुए मांसके जलकी तरह स्नाव निक-लता है, उसे कफज ; जिसमें पीत, नील, कृष्ण वा रक-वर्ण उणास्त्राव दाह और वेदनाके साथ प्रवहवेगमें निक-छता है, उसे पित्तज ; जिसमें रूझ, अरुणवर्ण, फेनदार और धोये हुए मांसके जलको तरह स्नाच वहुत दर्द करके निकलता है, उसे वातज कहते हैं। सन्निपातज प्रदर-रोगमें मधु, घृत वा हरिताल रंगका साव निकलता है और उसमेंसे मुर्देकी सी गन्ध निकलती है। यह वहुत कठिन रोग है। चिकित्सा करने पर भी दूर नहीं होता। प्रदररोगिणीके रक्त और वलका क्षोण होनेसे स्राव हमेशा निकलता रहता है तथा तृष्णा, दाह और ज्वरादि उप-द्रवके उपस्थित होनेसे रोग असाध्य हो जाता है।

वाधक नामक रोग भी प्रदररोगके अन्तर्गत है। प्रायः सभी वाधकोंमें कभी कभी योनिद्वारसे अल्पपरिमाणमें एवेत स्नाव निकलता है। कटिमें, दोनों स्तनमें अधवा सारे शरीरमें दारण वेदना होती है। वाध दिखे।

वातजप्रदररोगमें दीघ ६ तोला, सचल लवण है आने भर, तथा कृष्णजीरा, यप्टिमधु और नीलोत्पल— प्रत्येक 19 आने भर तथा मधु आघ तोला सदको एक रोगीको सेत्रन करावे । पित्तजप्रदरमें अङ्कसको रस अथवा गुलञ्जके रसको चीनीके साथ मिला कर सेवन करे। रक्तप्रदरमं श्वासका उपद्रव रहनेसे उक्त श्रीयघ-के साथ कञ्जिका और सींठ मिलाना उचित है । यह-हूमरके रसका छाक्षाके जलके साथ सेवन करनेसे प्रदर-रोगका रक्तस्राव अतिशीघ वंद हो जाता है। २ तोला भशोककी छालको आध सेर जलमें सिद्ध कर जब पाव भर जल रह जाय, तव उसमें सेर भर दूध डाल दे। वाद उसे फिर आंच पर चढ़ावे । जब देखे, कि केवल दूधका भाग वच गया है, तव उसे उतार छे। रोगिणीके अग्निवलकी विवेचना कर उपयुक्त मात्रामें उसे सेवन करनेसे रक्तप्रदर निवारित होता है। दर्बादि काथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्णे, पुष्यानुगचूर्णं, प्रदरादिजौह, प्रदरान्तकलौह, अशोकधृत, सितकल्याण घृत, अशोकारिए और पताङ्गासच आदि यावतीय औषध-का रोगोका अवस्था देन कर प्रयोग करे। अजीर्ण, अनिमान्य और ज्वर आदि उपद्व रहनेसे घीका सेवन विलक्कल निषेध है । वायुका उपद्रव अथवा पेटमें वेदना रहनेसे प्रियङ्ग् वादि वा प्रमेहिमिहिरतैल मदैन करें, इससे भारी उपकार दे नेमें आयेगा।

पदर आदि रोगींमें पुराना वारोक चावल, मूंग, मस्र और चनेको दाल, कच्चे केले, करेली, डूमर, पटोल, पुराने कुम्हड़े को मृत्रपथ्य तरकारी रोगीका दिनका पथ्य है। यदि पचा सके, तो वीच वीचमें वकरेके मांस-का जूस भो दे सकते हैं। रातको क्षधानुसार रोटो आदि खाना आवश्यक है। तीन चार दिनके अन्तर गरम जलसे सनान कराना हितकर है।

प्रदर्शित लीह (सं० क्की० औपधमेद । प्रस्तुत प्रणाली— कूटजकी छाल १२॥० सेर, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ८ सेर । इस क्वाथको छान कर फिरसे पाक करे । गाढ़ा होने पर उसमें वराकान्ता, मोचरस, आकनादि, वेलसींट, मोथा, धाईका फूल, अतीस, अवरकको मस्म और लोहे-की भस्म प्रत्येकका एक पल चूर्ण डाल दे । इसकी माता ।०) चवकोसे ले कर १ तोला तक है । कुशमूल-चूर्ण मिश्रित जल इसका अनुमान वतलाया गया है । इसमें पुष्टिकर और वलवद्ध के गुण है ।

Vol. XIV. 145

साथ मिला दे। दो दो बंदेके वाद २ तोला मालामें प्रदरान्तकरस ( सं० क्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत रागीको सेवन करावे। पित्तजप्रदरमें अडूसके रस प्रेया गुलञ्चके रसको चीनीके साथ मिला कर सेवन करे। रक्तप्रदरमें श्वासका उपज्ञव रहनेसे उक्त औषध- के साथ किला और सींठ मिलाना उचित है। यहा- वाराके स्थान अपना स्थान करनेसे प्रदर- करनेसे सब प्रकारके प्रदररोग जाते रहते हैं।

प्रदरान्तकलोह (सं० हो०) भीषधमेद । प्रस्तुत प्रणाळी-लोहा, ताँवा, हरिताल, राँगा, अवरक, कोड़ी, सोंठ, पोपर, मिचं, हरितकी, आमलको, वहेड़ा, चिताम्ल, विड्ड्ग, पञ्चलवण, चई, पीपल, शङ्कमस्म, वच, हवुपाफल, कुड़, कचूर, आकनादि, देवदार, हलायची, वीजताड़कका वीज, इन सब द्रव्योंके वरावर वरावर माग चूर्णको मधु और चीनीमें डाल कर घोंट ले। वाद उसे घीके साथ भाषना दे कर गोली वनावे। (रम्यस्मकर)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें लिखा है, कि पूर्वोक्त सभी समान भागके चूणको एक साथ मिला कर गोली बनावे। पोछे घृत, मधु और चीनीके साथ उसका सेवन करनेसे रक्त, श्वेत, नील और पीतादि कठिन प्रदर दूर हो जाते हैं।

प्रदर्श ( सं॰ पु॰ ) प्र-दृश-घञ् । १ दर्शन, भें ट, मुलाकात । २ आदेश, हुकुम ।

प्रदर्शक (सं० ति० प्र-दर्शि-ण्युल् । १ प्रदर्शनकारी, दिख-कानेवाला । दर्शक, देखनेवाला । (पु०) ३ द्रष्टा, गुरु । प्रदर्शन (सं० क्षी०) प्र-द्वश्-णिच्-स्युट् । १ उल्लेख, जिक । २ दिखलानेका काम । ३ प्रदर्शनी ।

प्रदर्शनी (सं ० स्त्री०) वह जगह जहां हर तरहकी वस्तुएं लोगोंको दिखलानेके लिये रखी जाय । नुमाइस ।

प्रदर्शित (सं ० ति ०) जो दिखलाया गया हो, दिखलाया हुआ।

प्रदर्शी ( सं ० ति० ) दशैन, देखनेवाला ।

प्रवल ( सं ॰ पु॰ ) प्रकर्षेण दलति दालयतीत्यर्थः वा-प्र-दल-अच् । वाण, तीर ।

प्रदब ( सं॰ पु॰ ) दुनोति दु-अच् 'दुन्योरज्जपसर्गे' इति अनुपसर्गे इत्युक्ते न ण । १ प्रकृष्टतापक । भावे अप् । २ प्रकृष्ट ताप ।

प्रदच्य (सं॰ पु॰ ) प्रदवाय हितं वाहु॰ यत्। दावाग्नि, जङ्गलको भाग। प्रदहन ( सं॰ क्ली॰ ) प्र-दह-न्युर्। प्रकृष्ट रूपसे दहन, अच्छी तरह जलना।

पदा ( सं ॰ स्त्री॰) प्र-दा-भावे अङ् । १ प्रकृष्टदान । (ति॰) २ प्रकृष्टदायक ।

प्रदाता (हिं ० ति०) प्रदातृ हेखो ।

प्रदातः (सं ० ति०) प्रददातीति प्र-दा-तृण्। १ प्रक्षप्रदान-कारक, दाता (पु०) २ वह जो खूव दान देता हो, वहुत वड़ा दानी। ३ इन्द्र। ४ विश्वदेवके अन्तर्गत एक देवताका नाम।

प्रदातन्थ (सं० ति०) प्र-दा-तन्य । दानके योग्य । प्रदान (सं० क्वी०) प्र-दा-भावे ल्युट्। १ दान, देनेकी किया। २ प्रकृष्ट दान, वख्शिश । ३ विवाह, शादी । ४ अंकुश ।

प्रदानक (सं० ह्वी०) प्रदान-खार्थे-कन् । प्रदान देखो । प्रदानरुचि (सं० ति०) प्रदाने रुचिर्यस्य । जिसे दान-कार्यमें रुचि हो ।

प्रदानवत् ( सं ० ति० ) प्रदान अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । दानयुक्त, दानशील, दानी ।

प्रदानशूर (सं० पु०) १ दानचीर, वहुत वड़ा दानी। २ एक वोधिसत्वका नाम।

प्रदानिक ( सं ० ति० ) प्रदान-सम्बन्धीय।

प्रदान्त (सं॰ पु॰) सम्प्रदायभेद ।

प्रदापयितृ (सं० ति०) प्र-दा-णिच्-तृच् । दानकारी, दान करनेवाला ।

प्रदायक ( सं ० ति० ) प्रदानकारी, देनेवाला ।

प्रदायिन् ( सं ० ति०) प्र-दा-णिनि । प्रदानकारी, जो दे । प्रदाव ( सं ० ति०) दावाग्नि, जङ्गलकी आग ।

पूदाह (सं ० पु०) प्-दह-घन्। दाह। न्याधिष्रस्त जीव-शरीरमें ज्वराधिक्य अथवा दारुण वेदनाके समय जो उत्ताप मालूम होता है, उसे चिकित्साशास्त्रमें प्रदाह (Inflammation) कहा है। वाह्य वा स्थानिक पूदाइ होनेसे वह स्थान लाल और स्फीत देखा जाता है तथा रोगी उस स्थानमें वेदना और उत्ताप अनुभव करता है। आभ्यन्तरिक होनेसे वेदना और ज्वर आदि लक्षण द्वारा इसका कारण मालूम किया जाता है।

वहुतसे चिकित्सकोंका कहना है, कि देहाभ्यन्तरस्य

किसो यन्त वा विधानके आहत नहीं होनेसे प्राह नहीं हो सकता। फिर कोई कहते हैं, कि विधान वा उसको रक्त नालियोंके एक समय विनष्ट होने पर भी प्राह नहीं हो सकता। सुविज्ञ चिकित्सकोंने उसके जो अनेक प्रकारके आनुमाणिक कारण वतलाये हैं उनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते है।

डा॰ सएडरसन (Dr. Burdon Sanderson) के मतसे इसका प्रधान कारण आधात है जो विधान अथवा यन्त्रके मध्य किसी न किसी प्रकारसे उपस्थित हो सकता है। डा॰ लिएर (Dr. Lister) का कहना है, कि स्नायुमएडल वा किसी विशेष स्नायुमें उत्तेजनाके कारण मासोमोटर नामक स्नायु विगड़ कर प्रवाह उत्पन्न करता है। डा॰ भिकों (Dr. Virchow) के मतसे सभी विधानोंके परिषोपणका व्याघात होनेसे प्रवाह होता है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि सूच्म अज्ञादि (Grm) द्वारा ही प्रवाह हुआ करता है।

प्रदाहके दो कारण वतलाये जा सकते हैं—! पूर्व-वर्त्ती और २ उद्दीपक । पूर्ववर्त्ती कारण दो प्रकारका है, साधारण और स्थानिक ।

अति भोजन द्वारा रक्ताधिक्य वा अनाहार और पीड़ाके द्वारा रक्तकी होनता, विविधमादक द्रव्यके सेवन- से शारीरिक श्लीणता, स्कोटकयुक्त ज्वर, वातरोग, उप- दंश और वहुमूलादि व्याधिमें रक्तका विपाक होना अथवा मूलयन्त्र वा चमकी कियाका सुचारुह्तपसे निर्याह न होना, शरीरके मध्य अनिष्टकर पदार्थोंका उत्पादन निवन्धन और शिशु, वृद्ध वा रक्तप्रधान धातुविशिष्ट व्यक्तियोंका शारीरिक प्रदाह—ये सव साधारण कारण हैं। विधान वा रक्तनालोकी अपकृष्टता वा अप्रवल रक्ताधिक्य और स्पर्शशक्तिकी हीनता अर्थात् उत्ताप वा उत्तेजक द्रव्यका संयोगज्ञान नहीं रहना हो स्थानिक प्रदाहका कारण है।

उद्दीपक कारण तीन अंशोंमें विभक्त है—१ साधा रण उद्दीरक कारण, २ स्थानिक उद्दीपक कारण और ३ आनुसङ्गिक (Secondary) उद्दीपक कारण।

साधारण उद्दीपक कारण—शरीरके मध्य वायु द्वारा विपाक पदार्थका प्रवेश अथवा आप ही आप विपक्ती उत्पत्ति, जैसे वातरोगमें विष कचूं क पेरिकाडाइटिसकी उत्पत्ति। धर्मावस्थामें शरीरमें शीतल वायु लगनेसे ध्रान्यन्तिक सभी यन्त्रोंमें प्रदाह उत्पन्त होता है। इसके द्वारा त्वक्स्थ रक्तनालियोंका सङ्कोचन होता हैं। अधिक रक्त आम्यन्तरिक यन्त्रके मध्य प्रवाहित होनेसे अथवा धर्मीनवारण होनेके वाद अनिष्टकर पदार्थ वाहर निकलने नहीं पाते जिससे यन्त्रके मध्य प्रदाह मालूम पड़ता है। सहसा प्राचीन चर्मरोगके आरोग्य होनेके वाद अथवा किसी पर्यायिक अपस्रावके वन्द्र हो जानेसे आम्यन्तरिक यन्त्रमें रक्त अधिक जमा हो जाता है जिससे प्रदाह होने लगता है।

आधात अथवा शरीरके मध्य किसी कृमि, क्षतास्थि, अर्जुद, पथरी आदिका अवसान, त्वक्संलग्नमें क्षत वा फोस्कादिका कारण (अग्नि अथवा कोरन आपल आदिका संस्पर्श), विषाल जन्तुका दंशन, आर्सेनिक सेवन अथवा अधिक शीत वा उत्तापका अवस्थान ही स्थानिक उद्दोपनका कारण है।

निकटवर्त्ती स्थानसे प्रदाहकी विस्तृति, यान्तिक क्रियाधिन्य और स्नायुकी उत्तेजना ही आनुसङ्गिक कारण है। वैंग अथवा वादुरके दैनेको सुईसे विद्ध करने-से उत्तेजनाके वाद् छोटी छोटो धमनियां पहले संक्र-चित हो कर पीछे प्रसारित होने लगती हैं। धमनी-प्रसारणके कुछ वाद शिरा और कैशिकासमृहका प्रसा-रण होता हैं। प्रदाह होनेसे सूक्त रक्तनालियां दिखाई देती हैं। उस समय रक्तस्रोत वड़ी तेजीसे वहता है। घीरे घीरे शोणित शिथिलमावमें सञ्चालित हो कर अव-रुद्धताको प्राप्त होती है। प्रदाहित स्थानके चारों वगल रक्त प्रवलक्त्पमें सञ्चालित होता है। पीड़िताङ्गमें उसकी सञ्चालन-क्रिया चौगुनी वढ़ जाती है। प्रदाहित स्थान-के कोधोंमें विशेष परिवर्त्तन देखा जाता है । कहीं कहीं नृतन कोपकी भी उत्पत्ति देखी जाती है। मूलयन्त्रके प्रदाहमें युरिनारी टिउरने मध्य मेघाकृति अखच्छ इपिधि-लियम (Clondy swelling)-की तरह वह अस्वच्छ औ। स्फीत देखा जाता है। प्रदाहके वढ़नेसे वे नये कोप गलने लगते हैं।

प्रदाहित स्थानसे एक प्रकारका तरल पदार्थ निक-

लता है। कारण, स्थानविशेषमें यह निःस्त पदार्थ-नाना प्रकारका हो जाता है। तरल होनेसे उसे सिग्म् और गाढ़ा होनेसे लिम्फ कहते हैं। श्लैष्मिक फिल्लोके प्रवाहजनित लिम्फका नाम म्युसिन् (Mucin) है।

प्रदाहके दीर्घकाल तक स्थायी होनेसे उससे तत्तत् अङ्गुका रूपान्तर हुआ करता है। १ शोपण, २ पूय, ३ क्षत, ४ कोमलता, ५ विगलन और ६ इंड्रता आदि प्रदाहके परिणाम हैं। प्रदाह अनेक प्रकारका है-१ प्रवल और ऐष्यूट ( Acute ), अप्रवल वा सवसे ऐक्यूट, प्राचीन वा कणिक, वलवत् वा स्थेनिक (Sthenic), हुर्बेल ना एथेनिक ( Asthenic ), विस्तृत वा डिफ्यूज (Diffuse) सीमावद वा सर्कम्पसकाइब्ड (Circomscribed ) खोत्पन्न वा प्राहमरी ( Primary ) और अनु-सङ्गिक वा सेकेएडरी। प्रदाहनिवारणके लिये घर्मकारक, मूत्रकारक, विरेचक और अवसादक औपघादिका प्रयोग आवश्यक है। रोगी यदि दुवैल हो, तो उसे वलकारक आहार और सुरा देवे। निद्रा और वेदनानिवारणके लिये अफीम मिली दुई औपघादिका प्रयोग करे । मूत-यन्त्र, मस्तिष्कं और फुस्फुसके प्रदाहमें अ तीमका सेवन वडी होशियारीसे करे।

प्रदि (सं ० ति०) प्र-दा-'उपसर्गे घोः किः' इति-कि । त्रदानकर्त्ता, दानी ।

प्रदिग्ध (सं ० छो०) प्र-दिह-कर्मणि क । १ मांसव्यक्षन-मेद, विशेष प्रकारसे पका हुआ मांस । अधिक घृतमें पहले मांसको अच्छी तरह भून ले । पीछे उसे उत्पाजल-में उत्तम रूपसे सिद्ध कर जीरा गोलमिर्च मसाला आदि डाल दे । बाद नीचे उतार कर घृत, तक और विजा-तक (दारुवीनी, इलायची, तेजपव )-से,वधार ले । इसी-को प्रदिग्धमांस कहते हैं । इसमें वलकर, मांसकर, अग्नि-वर्ष क और कफिपत्तनाशक गुण माना गया है । (वि०) २ स्निग्ध किया हुआ, तेल या घीसे चिकना किया हुआ।

प्रदिव (सं श्रि ) प्रकर्षेण दीव्यति प्र-दिव्धिव । १ प्रकर्षक्षपमें द्योतमान, जो खूव चमकता हो । (स्त्री ) २ पुरातन, पुराना । ३ प्रकृष्ट दिन । ४ पूर्व दिन । प्रदिश् (सं० स्त्री०) प्रगता दिग्भ्यः। १ विदिक्, दो मुख्य दिशाओंके वीचका कोना। २ प्रकृष्ट दिक् । प्रदिशा (हि० स्त्री०) प्रदिश् हेखा। प्रदीप (सं० पु०) प्रकर्षण दीपयित प्रकाशयित प्रदीप्यते इति वा, प्र-दीप-णिच् वा-क । दीप, दीआ, चिराग। पर्याय—स्नेहादीपक, कज्जलध्वज, शिखा-तरु, गृहमणि, ज्योत्स्नावृक्ष, दशेन्धन, दोषातिलक, दोषास्य, नयनो-त्सव।

"न कारणात् स्याद्विमिदे कुमारः
प्रवित्तितो दीप इव प्रदीपात्।" (रघु ५१३७)
देवपूजामें दीपदान अवश्य करना चाहिये। दीपदान
विशेष पुण्यजनक है।

कालिकापुराणमें इस प्रदीपका विषय इस प्रकार लिखा है—प्रदीप सात प्रकारका है, घृतप्रदीप, तिलतैल-युक्त-प्रदीप. सार्षपतैलयुक्त प्रदीप, निर्यासजात-पृदीप, और अन्नजात दधिजात राजिकाजात प्रदीप, प्रदीष । विना प्रदीपके किसी भी प्रकारका दैवकार्य नहीं करना चाहिये। दैव वा पैत कोई भी कार्य करना हो, पहले प्रदीप वालना आवश्यक है। उक्त सात प्रकारके प्रदीपोंमें पांच प्रकारकी वत्तीका व्यवहार किया जा सकता है। पद्मभव सूल, दर्भगर्भसूल, शणज, वादर और कोषो-द्भवस्त इन पांच प्रकारके स्त्रोंसे प्रदीपकी जो बत्ती वनाई जाती हैं वे विशेष प्रशस्त हैं। तैजस, दारुमय, वा नारिकेलजात दोपींका मृण्मय **छौहनि**मि<sup>°</sup>त. आधार वनावे और इन हीमेंसे किसी आधार . पर दीप रखे । भूळ कर भी जमीन पर न रखे। वसु-मती सव कुछ सहन कर सकती है केवल दो चीज नहीं अकायके निमित्त पदाघात और प्रदीपका ताप । अत-एव जिससे पृथ्वी पर ताप छाने न पावे, वैसा ही उपाय करना चाहिए। यदि पृथ्वी पर किसी प्रकार ताप छग जाय, तो ऐसा प्रदीप देनेसे ताम्रताप नामक नरक होता है । देवताओंको जो दोष दान करना होता है, उसका ताप यदि चार उंगली दूरसे पाया जाय, तो उसे पाप-विह कहते हैं। ऐसा प्रदीपदान विशेष अनिष्टजनक है। नेलादिके आह्वादकर, शोभनादियुक्त, भूमितापवर्जित, सुशिख, शब्दशून्य, निर्धूम, अनति हस्त और दक्षिणावर्त-

वर्त्तियुक्त प्रदोप विशेष लक्ष्मीपुद हैं। पृदीप यदि द्रु पर स्थित हो और उसका पात स्नेह द्वारा परिपृत्ति रहे तथा वत्ती यदि दक्षिणावर्त्तमें रह कर उज्ज्वलभावसे जन्ने तो वही प्रदीप सर्वोत्तम और सव देवताओंका तुष्टिप्रह माना गया है। यदि वह दीप वृक्ष पर न रहे, तो मध्यम और यदि प्रदीपपातमें तेल न हो, तो उसे अधम कहते हैं। साधक शणसूत वा वृक्षके त्वक् अथवा जीर्ण और मिलन वस्त्रकी वत्ती काममें न लावे। श्रीवृद्धिके लिये सर्वदा रुईकी वत्तीका प्रयोग करे। कोपज वा रोमज सूत वत्तीके लिये विलक्कल निषिद्ध है । पृत और तेल दोनोंको एक साथ िला कर प्रदोप न वाले, वालनेसे तामिस्र नामक नरक होता है। प्राणोकी चर्ची, मज्ञा और अस्थिनिर्यास प्रदीपमें न डाले, डालनेसे नरक भुगना पड़ता है। अस्थिनिर्मित पात अथवा दुर्गन्यादि-युक्त पात्रमें प्रदीपस्थापन न करे। देवताके निमित्त कल्पित पृदीप कभी भो न बुतावे। जान कर अधवा लोभादिके वशीभूत हो कदापि पृदीपका हरण न करे, क्योंकि दोपहारक अंधा और निर्वापक व्यक्ति बहरा होता है। (कालकापुर ६८) कात्तिकमासमें आकाशमें अवश्य दीप जलाना चाहिये, इससे अक्षयफल लाम होता है।

"कार्त्तिके मासि यो द्यात् प्रदीपं सर्पिरादिना । आकाशे मण्डके वापि स चाक्षयफल लभेत्॥" (कमैलो॰)

अग्निपुराण आदिमें भी इस प्रदीपका विवरण लिखा है, पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया । कार्तिकी कृष्णाचतुर्दशीमें प्रदीपदान विशेष मङ्गलजनक है । शेष शब्द देखी ।

२ प्रकाश, रोशनी । ३ वह जिससे प्रकाश हो । 8 सम्पूण जातिका एक राग । इसके गानेका समय तीसरा पहर है । कोई कोई इसे दीपक रागका एक पुत वत-लाते हैं ।

प्रदीपक (सं॰ पु॰) १ प्रकाशक, प्रकाशमें लानेवाला।
२ नी प्रकारके विषोंमेंसे एक प्रकारका भयंकर स्थावर
विष । इसके सुंघने मालसे मनुष्य मर जाता है। यह
विष एक पौधेकी जड़ है जिसके पत्ते खजूरके से होते हैं

बीर जो समुद्रके फिनारे बहुतायतसे पैदा होता है। इसे प्रदीपन भी कहते हैं।

प्रदीपन ( सं० क्वं.० ) प्र-दीप-रुयुट् । १ प्रकाशन, प्रकाश करनेका काम। २ उद्दोपन, उज्ज्वल करना, चमकाना। (पु॰) प्रदीपयतोति प्रन्दीप-णिच्-ह्यु । ३ स्थावर-विप-भेद। प्रवीतक देखी।

पदीपशरणध्यज ( सं ० पु० ) महोरगराजभेद ।

प्रदीपशाह ( सं ॰ पु॰ ) राजवुतमेद ।

प्रदीपसिंह--गयचिन्तामणि और चित्रच्यूड़ामणिके रच-यिता ।

प्रदोपिका (सं ० स्त्रो०) १ छोटी लालटेन । २ एक रागिणी जिसे कोई कोई दीवकरागकी स्त्री वतलाते हैं।

भदीपोय ( सं ० ति०) भदीपाय हितः अपूपादित्वात् छ । प्रदीपहित ।

प्रदीप्त (स • ति • ) प्र-दीप-कर्त्तरि कः । १ उज्ज्वल, चमक-दार । २ प्रकाशवान्, जगमगाता हुआ ।

प्रदीप्तवर्मा—सिंहपुर-राजवंशके एक राजा । आप जाल-न्धरमें राज्य करते थे।

प्रदीप्ति (सं० स्त्री०) १ प्रकाश, रोशनी । २ आभा, चमक ।

प्रदीर्घ ( सं ० वि० ) अतिशय दीघै, खूद चीड़ा ।

मदुह् ( सं ० त्नि०) प्र-दुह-सत्स्वियेत्यादिना किप्। प्रकर्ष-रूपसे दोग्धा, जो अच्छी तरह दूही गई हो।

प्रदूपक ( सं ० ति० ) नष्टकारी, वरवाद करनेवाला ।

प्रदृप्ति (स'० स्त्री०) प्र-दृष-किच् । दृप्तियुक्त, अत्यन्त अहङ्कारी }

प्रदृषण (सं ० हि०) १ नष्टकारो, चौपट करनेवाला । (क्ली॰) २ नष्ट, वरवाद ।

प्रदेय ( सं० ति० ) प्र-दा-यत्। १ दानके उपयुक्त, विवाह करनेके योग्य। २ दान करने योग्य, जो देनेके छायक हो। (पु॰) ३ उपहार, भेंद, नजर।

मदेश ( स'o go ) प्रदिश्यते इति प्र-दिश् (हडरन । पा ३।३। १२३ इति बञ् (दपसर्गस्य घटन्यमनुष्ये बहुलं । (१३।१२२) इति पाक्षिको दीर्घाभावः। १ किसी देशका वह वड़ा विभाग जिसकी भाषा, रोति, व्यवहार, जलवायु, शासन-पद्धति आदि उसी देशके अन्य विभागोंकी इन सव वातोंसे भिन्न हीं। प्रान्त, स्वा। २ स्थान, जगह, मुकाम।

Vol. XIV. 146

३ सं ज्ञा, नाम। ४ तन्त्रयुक्तिविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी तन्त्र-युक्ति । ५ वृद्धांगुष्टके आगेसे तर्जनी के अप्र पर्यन्त परिमाण, अ'गुड़ेके अगले सिरेसे ले कर तर्जनीके अगले सिरे तककी दूरी, छोटा वित्ता या वालिश्त । ६ अङ्ग, अवयव । ७ मित्ति, दीबार । ८ पद ।

प्रदेशकारिन् ( सं ० त्रि० ) प्रदेशं करोति ऋ णिनि । १ एक देशकारी। (पु॰) २ योगियोंका एक सम्प्रदाय।

प्रदेशन (सं ० क्वी०) प्रदिश्यते अनेनेति प्र-दिश-करणे ब्युट्। वह जो किसी वडे या राजाको उपहारके रूपमें दिया जाय, भेंट, नजर। पर्याय-प्राभृत, उपायन, उपग्राह्य, उपहार, उपदा ।

प्रदेशनी ( सं ० स्त्री० ) प्रदेशन-ङोप् । तजेनी, अंगृहेके पासकी उ'गली।

प्रदेशवत्। सं ० ति ० ) प्रदेशः अस्त्यर्थे मतुष् मस्य व । प्रदेशयुक्त ।

प्रदेशिनो ( सं ० स्त्री० ) प्रदिशतीति प्र-दिश-णिनि, ङीप् । १ तर्जनी, अंगूरेके पासकी उंगली । २ शास्त्रविशेष, एक शास्त्रका नाम।

प्रदेशी ( सं ० ति० ) प्रदेश सम्बन्धी, प्रदेशका । प्रदेख (सं ० पु॰ ) धर्माधिकरणिक, विचारक। प्रदेह (सं ॰ पु॰) प्रदिह्यते इति प्र-दिह लेपने-चम्। प्रलेप, वह भौपध या लेप आदि जो फोड़े पर उसे दवाने-के लिये लगाया जाय। २ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका व्यञ्जन ।

प्रदोप (सं॰ पु॰) दोपा रातिः, प्रारम्भे दोपाया इति प्रादिसः । १ रजनोमुख । रातिके प्रथम चार दण्डका नाम प्रदोष है। "प्रदोषोऽस्तमगादूर्व घटिकाद्वयमिष्यते।" 'षटिका दग्रह द्वय'' ( वियितस्व ) सूर्यके अस्त होनेके वाद दो घटिका समयको प्रदोपकाल कहते हैं। स्पर्गस्तके वाद चार दएडकाल ही ग्रदोष है। कोजागरी लक्ष्मीपूजा आदि प्रदोपकालमें करनी होती है।

रातिके प्रथमभाग अर्थात् प्रथम प्रहरको भी प्रदोप त्रयोदशी, चतुर्थीं, सप्तमी और द्वादशी तिथिके प्रदोपमें अध्ययन नहीं करना चाहिये। इन सव प्रदोर्वोका नाम यथाकम सारखत, गाणपत, सौर और.

वैष्णव प्रदोप है। यहां पर प्रदोप शब्दका अर्थ है, रातिके बाद। अर्थात् लयोद्शी प्रभृतिकी रातिमें अध्ययन न करे। प्रदोपव्रत स्थलके प्रदोप शब्दमें रातिका प्रथम एक प्रहर ऐसा अर्थ स्थिर करना होगा। कोजागरी लक्ष्मी-पूजा आदि स्थलमें प्रदोप शब्दका अर्थ सूर्यास्तसे ४ दएड काल समक्तना चाहिये। इस हिसावसे स्थान विशेषमें प्रदोव शब्दका अर्थ ४ दएड, १ प्रहर और सारी रात होता है। प्रदोपवतका विषय हेमाद्रिके वतखएडमें सविस्तार लिखा है,-शास्त्रमें कई जगह प्रदोपकालमें कियानुष्टान-का विधान है। किन्तु प्रदोप शब्दका अर्थ यदि ४ द्राड, १ पहर और सारी रात हो, तो किस समय कैसा अर्थ प्रहुण करना होगा ? इसके उत्तरमें केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि कर्मविशेपमें शास्त्रकी उक्ति देख कर उसे स्थिर करना ही विधेय है। फलतः प्रायः अधिकांश जगह सूर्यास्तके वाद प्रथम चार दएडको ही प्रदोपकाल वतलाया है। स्थानिवशेपमें प्रदोप शब्दका अर्थ एक पहर वा सारी रात होने पर भो वह कर्म विशेपमें विशे-पोक्ति द्वारा ही पृथक् रूपमें समका जायगा। 'पदीयो रजनीमुख'' (अप्तर) रजनीके मुखभागका नाम प्रदोप हैं। इस उक्ति द्वारा भी प्रदोप शब्दसे रातिका प्रथम चार दएडकाल ही समभा जाता है।

"बद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।.'' ( कुमार ५१४८ )

२ वड़ा दोष, भारी अपराध । ३ वह अंधेरा जी संध्या समय होता है। ४ तयोदशीका वत । दिन भर उप्रवास करके संध्या समय शिवका पूजन करनेके वाद भीजन करना होता है। यह वत प्रायः, पुतकी कामनासे हो किया जाता है। (ति०) ५ दुष्ट, पाजी।

प्रदोषक (सं० ति०) प्रदोपे भवः कालात् ठञ्चंधित्वा पूर्वाह्वे त्यादिना बुन् । प्रदोपकालभव, प्रदोपकालमें होनेवाला।

प्रदोह (सं ॰ पु॰) प्र-दुह-धञ्। दोहन, दूहना।
प्रद्धटिका (सं ॰ स्त्री॰) पञ्जटिका देखो।
प्रद्धु (सं • क्ली॰) प्ररुष्टा द्योः खर्गी यस्मात् तत्। पुण्य।

प्रद्युझ (सं० पु०) प्रकृष्टं चुम्नं वस्तं यस्य । १ कन्द्रं, कामदेव । २ रुक्मिणीगर्भजात श्रीकृष्णके पुत । ये भग-वान वासुदेवके चतुर्थां श थे ।

"एकदेवं चतुःपादं चतुधां पुनरच्युतः। विमेद वासुदेवोऽसो प्रद्यु द्वी हिर्राच्ययः॥" तथा—"अनिरुद्धः खयं ब्रह्मा प्रद्युद्धः काम एव च। वलदेवः खयं शेपः कृष्णश्च प्रकृतेः परः॥"

(ब्रह्मवेवर्त्तंपु० श्रोकृष्णजन्म ११६ ४०) पुराणमें लिखा है, कि कामदेव जब महादेवके कोपाग्निमें भस्म हो गये, तव पतिवियोग-विधुत रति-देवी महादेवके पास जा कर बहुत विळाए करने लगीं। पीछे उनकी स्तुति करके खामिलामके लिये पार्थना की। रतिको कातरोक्तिसे शिवजीका कोध शान्त हुआ। उन्हों-ने रतिसे कहा, 'श्रीकृष्णके औरस और रुक्मिणीके गर्भसे मदन जनमग्रहण करेगा, सो तुम दुःख शोकादिका परित्याग कर अपना घर चली जा।' यथासमय लक्सी-रूपा रुक्तिमणीके गर्भसे कन्द्र्वेरूपधारी प्रद्युचने जन्म-प्रहण किया। जन्म होनेके सातवें दिन श्रीकृष्णके प्रवह शबु शम्बरासुरने उसे हर लिया । यह वात श्रीकृष्णको मालूम तो हो गई, पर उन्होंने इसका कुछ भी प्रतिविधान न किया। दैत्यपति शस्वरको रानोका नाम मायावती था। मायावतीके कोई पुत्र न था; अतएव शम्बरने प्रद्यु झको मायावतीके हाथ सौंप दिया । मायावती भी पुलक्तित अन्तःकरणसे वालकका मुखचन्द्र निरीक्षण कर-के आनन्द-सागरमें गोता खाने छगो । धीरे धीरे उसे अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्त स्मरण होने लगे। अव उसे पक्की धारणा हो गई कि, 'देवादिदेव शूलपाणिने मुद्ध हो कर इन्हींको अनङ्ग किया था। ये ही मेरे पूर्वजन्मके स्वामी हैं।' अव शिशुको अपना पति जान उसने लालन पालन स्वयं करना उचित न समक्त धायके हाथ लगा दिया। रसायनके प्रयोगसे प्रयुद्ध थोड़े ही दिनोंके मध्य जवान हो गये । इस प्रकार परिवर्दित हो उन्होंने मायावतीके निकट दानवीमायाकी शिक्षा दी।

अव मायावती भी उनसे स्त्रीके समान भाव प्रकट करने लगी। यह देख प्रद्युचने एक दिन मायावतीसे पूछा, 'तुम मेरे प्रति पुत्रभाव छोड़ कर इस प्रकारका विपरीत-

भाव क्यों प्रकाशित करती हो ? इस पर मायावती प्रयुम्नको एकान्तमें छे जा कर कहने छगी, 'तुम हमारे पुत नहीं हो, शम्वरमी तुम्हारा पिता नहीं है। तुम्हारा जन्म वृष्णिवंशमें हुआ है। तुम्हारी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्ण है। तुम्हारे जन्मके सातवें दिन सौर घर-से शम्बरने तुम्हें चुरा लाया है। मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हुई हूं, तुम शम्बरको मारो और मेरा मनोरथ पूर्ण करो ।' यह सुन कर प्रयुद्ध शम्बर पर बड़े विगड़े और उसका क्रोध बढ़ानेको कोशिश करने छगे। बहुत देर तक ऊहा-पोहके वाद उन्होंने भक्षास्त्र द्वारा सिहद्वारके ऊपरका रत-ध्यज काट डाला । इसकी खवर लगते ही शम्बरने क्रोधसे अधीर हो अपने पुर्लोको बुलाया और प्रच्रमकी हत्या करनेमें प्रोत्साहित किया । अनन्तर चित्रसेनादि उनके सी पुत अख्रशस्त्रसे परिवृत्त हो रुक्मिणीनन्दन प्रयुद्धके साथ युद्ध करनेमें तैयार हो गये। प्रयुव्नके शरजालसे विद्ध हो एक एक कर शम्वरके सभी पुत यमपुरको सिधारे। पीछे पुनः समराकांक्षासे उद्दीप्त हो प्रद्युम केशरीकी तरह संवामस्थलमें विचरण करने लगे। शम्बर पुर्तोकी मृत्यु पर हतचेतन हो कर भी दूम शतुके प्रभाव से क्षुव्ध हो गये और रणसज़ाकी तैयारी करने लगे। रथ पर सवार हो दलवलके साथ वे रणक्षेत्रमें कृद पड़े । दोनोंमें घमसान युद्ध चलने लगा। पीछे दुर्घंद, केतुमाली शबुहन्ता और प्रमर्दन प्रभृति दैत्यवीरगण घोरतर युद्धके वाद मैदानमें ढेर हो गये। अव दैत्यसेनागण समराङ्गण-का परित्याग कर आत्मरक्षाका उपाय देखने लगी ।

अनन्तर दैत्यराज शम्बर व्यथित हृदयसं प्रद्युक्तके सामने हुए। उनकी हृदयनिहित प्रतिजिधासां वृत्ति कुछ भी घटी न थी। अब दोनों में मुठभेड़ हुई। बाहुगुद्धके वाद मायायुद्ध आरम्म हुआ। हृज्यातनय प्रद्युक्तने पहले से हो मायावतीसे यह विद्या सीख रखी थी। शम्बरने जब देखा कि शबुको परास्त करनेका कोई उपाय नहीं हैं, तब उन्होंने पार्वतीप्रदत्त हेममुद्गर चलाना चाहा। इसी समय सर्गसे देवराजने नारदके हाथ वैज्यावास और अभेद्य कवच प्रद्युक्तके निकट भेज दिया। नारद भी यथा निवेदन करके इन्द्रके समीप लाँटे। शम्बरने महाकुद्ध हो हैममुद्गर आने हाथमें हिवरा हिवरा। प्रदानरने महाकुद्ध हो हैममुद्गर आने हाथमें लिखा। प्रदानन रथ परसे उतरे और

पार्वतीको मन ही मन प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे । देवीके वरसे दैत्यनिश्चित मुद्गर कन्दर्वके गलेमें पद्म-मालाके जैसा जा लटका। इसके वाद चैण्णवास्त्र द्वारा उन्होंने शम्बरराजको पृथ्वी पर गिरा दिया। इस प्रकार दैत्यपति शस्यरके निहत होने पर प्रयुक्त श्रीलामपूर्वक समरक्कान्ति दूर करनेके लिये अन्तःपुरमें रतिदेवीके साथ जा मिले । इसके वाद ऋक्षवन्त नगरका परित्याग कर ने दोनों द्वारकापुरी चल दिये। थोड़े ही समयके अन्दर ने द्वारकापुरी पहुंच गये। अन्तःपुरचारी केशव-महिषीगण ऐसे कन्द्रपे वपुका अवलोकन कर युगपत् विस्मित, इष्ट और भयभीत हो गई थीं। श्रीकृष्ण इसके पहले ही नारद-के मुखसे शम्यरनिधनवार्त्ता सुन चुके थे। अत वे हठात् अन्तःपुर घुसे और पुत्र तथा पुत्रवधुको देख कर फूले न समाये। पीछे उन्होंने रुक्मिणीको सम्बोधन कर कहा, 'यह तुम्हारा ज्येष्ठपुत्र प्रद्युम्न हैं और यह साधुशोला कामिनो तुम्हारे पुतको भार्या है।' अनन्तर श्रोक्रणके आदेशसे रुपिमणीदेवीने पुत और पुतवधृको स्नेहपूर्वक आलिङ्गन करती हुई ग्रहमें प्रवेश किया।

(हरिवंग १६२-१६५ म०)

३ वैष्णवींके अ गमोक चर्तु व्युहात्मक विष्णुका अंश-भेद! वासुदेव, संकर्षण, प्रशुम्म और अनिरुद्ध ये चार संज्ञाकान्तव्यृह हैं। (रामानुजद॰) ४ सनत्कुमार भंश जात। ५ नड्छाके गर्भसे उत्पन्न मनुके एक पुतका नाम। (ति॰) ६ अत्यन्त वली, वहुत वड़ा बीर।

प्रचुम्न--१ एक प्राचीन ज्योतिर्विद् । ब्रह्मगुप्तने खरचित ब्रह्मसिद्धान्त नामक ब्रन्थमें उनका नामोक्छेख किया है। २ एक कवि । ३ चन्द्रगच्छके अन्तगत एक जैनस्रि, वोधिसागरके शिष्य और देवचन्द्रके गुरु ।

प्रद्युम्नआचार्य—संस्कृतके एक वड़े विद्वान् । इनका दूसरा नाम वेदान्ततीर्थं भी है। १५७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

प्रद्युम्निम् । — १ चैतन्यमहाप्रभुके सहचर एक वैष्णव।
'छण्णचैतन्योदयावली' नामक प्रन्थ इन्हींका वनाया हुआ
है। २ नीलाचलवासी, जगन्नाथके सेवकोंमेंसे एक। महाप्रभु जव दक्षिणदेश भ्रमण करते हुए आये, तव सार्वभीमने अपरापर भक्तोंके साथ इन्हें भी श्रीमहाप्रभुके द्यीन
करा दिये थे।

प्रद्युम्नदास-प्रक प्रन्थरचियता।ये नागौड़राजा दलेल- । प्रद्योतिन् ( सं० कि० ) प्रद्योतते प्र-द्युत्-णिनि । आलोक-सिंहके यहां रहते थे। इन्होंने १७२७ ई०में काव्यमञ्जरी-प्रनथकी रचना की थो।

प्रद्युम्नपीठ-काश्मीरके श्रीनगरके अन्तर्गत हरिपर्यतस्य पवित्र तीर्थक्षेत्र ।

प्रद्यु म्नपुर (सं० क्ली०) प्रद्यु म्नकी राजधानी जो चन्द्रभागा-तीर पर अवस्थित थी।

प्रद्युम्नसूरि-१ राजगच्छके अन्तर्गत एक जैन परिडत, अभयदेवकं गुरु। तर्कशास्त्रमें उनका विशेष पारिडत्य था। इन्होंने दिगम्बरोंको परास्त कर उनका नाम विलक्कल मिटा दिया था। ८४ प्रन्थोंकी इन्होंने रचना की। सपा-दलक्ष, त्रिभुवनगिरि आदि जनपदींके राजा इनकी कविता पढ़ कर वड़े प्रसन्त हुए थे।

२ चन्द्रगच्छभुक्त सर्वदेवके शिप्य।

३ आसड़-प्रणोत विवेक-मञ्जरोके भाष्यकार वाळचन्ट्र-के सहकारी। उक्त टीका १३२२ सम्यत्के कात्तिक मासमें समाप्त हुई । इन्होंने धर्मकुमार साधुक्ती ग्रालिमद्चरितः रचनाकालमें ( १३३४ सम्वत्में ) विशेष सहायता पहुंचाई थी। ये कनकप्रभास्रिके शिष्य थे।

४ विचारसारप्रकरणके प्रणेता देवप्रभाके शिष्य।

५ चन्द्रगच्छके अन्तर्भु क एक जैनाचार्य । आप यशो-देवके शिष्य और मानवदेवके गुरु थे। तपागच्छकी पट्टा-वलीमें आपका नाम वत्तीस पर्यायोंमें उहिखित हुआ है। प्रद्योत (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो द्योतः । १ रश्मि, किरण । २ यक्ष-भेद, एक यक्षका नाम । ३ दीप्ति, चमक ।

प्रद्योतन ( सं॰ पु॰ ) प्रद्योतते इति प्र-द्युत् ( अनुदात्तेतथ-इलादेः। पा शरा१४६ इति युच्। १ सूर्य। (क्ना०) २ दीप्ति,चमक । ३ द्योतनशील, वह जो खूव जगमगाता हो । प्रद्योतन भट्टाचार्य-एक राजकवि, वलभद्रके पुत । इन्होंने वुन्दे लाराज वीरभद्रदेवके आदेशसे शरदागमचन्द्रालोक-प्रकाशकी रचना की । प्रायश्चित्त और समयालोककाव्य नामक इनके वनाये हुए दो प्रन्थ और भी देखनेमें आते हैं ।

प्रद्योतनस्र्रिःं─खरतरगच्छके अन्तर्गत एक जैनस्रिः। ये बुद्धदेवके शिष्य और मानदेवके गुरु थे।

युक्त, जिसमें प्रकाश हो।

प्रद्रच (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो द्रवः प्रादिस॰ । पलायन, भागना । मद्राणक (सं० वि०) प्र-द्रा-कुत्सितायां गतौ क, खार्थे कन्। कुरिसत गतिप्राप्त, नीच जातिका।

प्रदाच ( सं० पु० ) प्र-दु ( त्रेषु स्तुलवा । पा भाभा२७ ) इति घञ्। पलायन, भागना।

प्रदाबिन् (सं० ति०) प्र-दु-ताच्छिरुपे णिनि । पछायनशीस, भागनेवाला ।

प्रद्वार (सं ० क्ली०) प्रगतं द्वारं प्रादिसं। द्वारप्रान्तभाग, दरवाजेका अगला हिस्सा।

प्रहिष् ( सं ० ति० ) प्र-हिष्-किष् । घृणायुक्त ।

प्रद्वेष (सं ० पु०) प्र-द्विष्-चञ्। १ द्वेष, डाह। २ घृणा। ३ शत्तुता, वैर, दुश्मनी।

प्रह्रे वण ( सं ० क्लो० ) प्र-द्विप्-ल्युट्। ह्य ।

प्रद्वेपो (सं॰ स्त्री॰ ) महाभारतके अनुसार दीर्घेतमा ऋषिको स्त्रीका नाम।

प्रधन (सं १ क्ही०) प्रदध्यतीति प्र-धा (इ.विमिन्दिन-धाङाज- क्युः । उ<sup>ण्</sup> २।८१ ) इति वाहुलकात् क्युः आतो लोपश्च । १ युद्ध, लड़ाई । प्रकृष्टं धनं यस्य । (ति॰) २ प्रभूत धनविशिष्ट, जिसके पास काफी सम्पत्ति हो। प्रधन्य ( सं ० ति० ) प्रभूतधननि मित्त गो ।

प्रधमन (सं० हो०) प्र-धम-ध्वाने भावे ल्युट्। १ मुख-मारुतव्यापारभेद, वैद्यकमं वह क्रिया जिसमें कोई औपघ या चूणं आदि नाकके रास्ते जोरसे सुद्याँ कर जपर चढ़ाया जाय। २ नस्यविशेष, वैद्यक्रमें एक प्रकारकी सुँघनी ।

प्रधर्ष ( सं॰ पु॰ ) प्र-धृष्-घज् । घर्षण, आऋमण । प्रघर्षक (सं ० ति०) प्रघर्षणकारी, भाक्रमण करनेवाला। प्रधर्षण ( सं ० क्ली०) प्र-धृष-ल्युट् । १ आक्रमण, चड़ाई । २ अपमान, अनादर । ३ वलपूर्वेक किसी स्त्रीका सतीत्व भंग करना, वलात्कार।

प्रधर्षणीय (सं० ति०) प्र-धृप्-अनीयर् । प्रधर्षणके योग्य ।

प्रधर्पित (सं । ति०) १ जिस पर आक्रतण किया गया हो।

२ जिसका अपमान किया गया हो । ३ वह स्त्री जिसके साथ वळाटकार किया गया हो ।

प्रधा (सं ० ति ०) प्र-धा-भावे-अङ् । १ निधान । २ दश्च प्रजापतिको कन्या जिसका विवाह कश्यपके साथ हुआ था।

प्रधान (सं० ह्यी०) प्रश्नते सर्वमातमनीति-प्र-धा-युच्। १ प्रकृति, संसारका उपादान कारण। प्रकृतिके प्रधम जो परिणाम है, उसी बुद्धितस्वको प्रधान कहते हैं। जगत्के खृष्टिविषयमें यहो प्रधान मूळ है। कारण, इसी प्रधानसे सर्वोको उत्पत्ति हुई है। फिर जब जगत्का तिरोभाव होगा, तब इसी प्रधानमें जगत् छीन हो जायगा। प्रकृति देखे।

२ महापात, सेनाध्यक्ष । ३ परमात्मा, ईश्वर । ४ वृद्धि, समक्ष । ५ सचित्र, मन्ती । ६ राजि मेद, एक राजि केता नाम । ७ सरदार, नेता । (ति० ) ८ सवीं च्य, श्रेष्ठ । पर्याय — प्रमुख, प्रवेक, श्रवुत्तम, उत्तम, मुख्य, वर्ष्य, वर्रण्य, प्रवज्ञ, अनवराद्धी, पराद्धी, श्रप्र, भाग्रहर, प्राय, अग्र्य, अग्रीय, अग्रिम । ६ मुख्य, खास ।

प्रधान—महाराष्ट्रराज्यके राजकर्मचारियोंकी उपाधिविशेष।
महाराष्ट्रकेशरो शिवाजीने राजकार्यकी परिचालना करनेके लिये एक शासन-सभा संगठित को। आठ प्रकारके
कार्यनिर्वाहके लिये आठ पर्दोकी सृष्टि हुई। तेजसी
दुद्धिमान् आठ व्यक्ति उक्त भाठ पर्दो पर निर्वाचित होते
थे। वे आठ पद ये सव थे.—

१ पेशवा—प्रधानमन्त्री वा कार्याध्यक्ष मोरेश्वरपिङ्ग्छे। २ मजुमदार—आयव्ययके परिदर्शक और धन रक्षक—आवाजी सोमदेव कल्याणीके सुवेदार।

३ सर्नीस—राजकीय कागज पतादिके रक्षक और पत तथा दानपतादिके परिदर्शक

४ वङ्कनोस-गोपनीय कागज-पतादिके रक्षक और पुररक्षी सेना दलके व्यवस्थापक

५ सरनोवत्— अश्वारोही सैन्य—प्रतापराव गूजर पदातिक सैन्य—येशजी कङ्क । Vol. XIV. 147 ६ द्वीर (वजीर) परराष्ट्रसचिव—सोमनाथ पन्थ। ७ न्यायाधीश—विचारविमाग।ध्यक्ष—नीराजी रावजी और गुमाजी-नायक।

८ न्यायशास्त्री हिन्द्शास्त्रज्ञ कर्म-विधि, दण्डविधि और ज्योतिपादि विज्ञान ) तत्त्वका संग्रह करना । शम्भु उपाध्याय और पीछे ही इनका कार्य था। । रघुनाथ पन्थ।

पूर्वोक्त व्यक्तिगण कार्यनिर्वाहक समितिके उक्त अप्रपद् पद् पर नियुक्त हुए थे। न्यायाधीश और न्यायशास्त्री को छोड़ कर शेष छह व्यक्तियोंको सैन्यपरिवालना करनी होती थी। इस कारण उन लोगोंको अपना अपना काम करनेका अवकाश नहीं मिलता था। उनके सह-कारी द्वारा ही काम काज चलाया जाता था।

राजसिंहासन पर अघिष्ठित हो कर शिवाजीने पूर्वोक पदामिषिक कमँचारियोंका पारसी नामके वदलेमें संस्कृत नाम रखा। नोचे उक आठ मंतियोंके नाम दिये जाते हैं—

नाम पूर्वोपाधि संस्कृताभिधान । मोरोपन्त पिङ्गले पेशवा मुख्यप्रधान रामचन्द् पन्त मजूमदार पन्त अमात्य अन्नाजी दत्त सरनोस पन्त सचिव द्त्ताजी पन्त वङ्कनीस मन्ती हम्बीररावमोहिते सरनोवत् सेनापति जनार्देनपन्त हत्तुवन्त दवीर सामन्त वालाजी पन्त न्यायाघीश न्यायाधीश रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री पिएडत राव।

ये सव पद जव संस्कृत नामोंमें परिवित्तत हुए उसके वाद्से उक्त मन्तिद्छ 'अष्टमधान' कहलाने लगे। यही आठ व्यक्ति राजाको हर विषयमें सलाह देते थे। जब कभी लड़ाई छिड़ जाती थी, तव इन्हें दलवलके साथ रणहोतमें शत् का सामना करना पड़ता था। पहले पदाति और अध्वारोही सेनाके दो विमिन्न नायक रहते थे, पर अभी दोनोंका काम एक ही सेनापितने ग्रहण किया। इसके वाद मिन्न भिन्न महाराष्ट्र-राजाओंके समयमें भी इसी प्रकार अष्टप्रधान सभा बुलाई जाती थी। प्रधान लोग राजाके सर्वेसवों थे। प्रधान होग राजाके सर्वेसवों थे। प्रधान होग राजाके सर्वेसवों थे। प्रधाराष्ट्र देखी।

प्रधानक (सं ० ह्यी०) प्रधान-स्वार्थे कन् । सांख्यके अनुसार बुद्धि-तत्त्व।

प्रधानकर्म (सं० ह्वी०) प्रधानं कर्म । प्रधान कार्य । सुश्रुतमें लिखा है, कि कर्म तीन प्रकारका है, पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात्कर्म । इनमेंसे रोगकी उत्पत्ति होने पर जो कर्म किया जाता है, उसे प्रधान कर्म कहते हैं।

(सुध्रुत सूत्र ०५ स०)

प्रधानकथि—एक भाषाके कथि । इनका जन्म-संयत् १७९५ में हुआ था । इनके कथित्त अति मनोहर होते थे । प्रधान केशवराय—एक भाषा-कथि । इन्होंने शालिहोत नामक अश्विचिकित्साविषयक ग्रन्थ भाषामें वनाया है । प्रधानतस् (सं १ अव्य० ) प्रधान-तसिल् । प्रधान कपसे । प्रधानता (सं ० स्त्री० ) प्रधानस्य भावः प्रधान-तल्-हाप् । प्रधानत्व, प्रधान होनेका भाव, धर्म, कार्य या पद । प्रधानधातु (मं ० पु० ) प्रधानं धातु कर्मधा० । चरमधातु, शरीरके सब धातुऑमेंसे प्रधान शुक और वीर्य । प्रधानभाज् (सं ० ति० ) प्रधानं भजते भज्-णि । प्रधानभाज् (सं ० ति० ) प्रधानं भजते भज्-णि । प्रधानभाजी, जो प्रधान भाग पाते हों ।

भाजा, जा प्रधान भाग पात हा।
प्रधानात्मन् (सं ० पु॰) विष्णु, परमातमा।
प्रधारण (सं० ति०) प्र-धारि-ल्युट्। प्रकृष्टकपसे धारण।
प्रधायन (सं० क्री०) प्र-धाय-ल्युट्। १ प्रकृष्टकपसे
धायन, खूव तेजीसे दौड़ना। २ उत्तमकपसे धौतकरण,
अच्छी तरह साफ करना। (पु०)३ वायु, हवा।
प्रधि (सं० पु०) प्रधीयतेऽनेनेति प्र-धा (डपधों धोः
किः। पा ३।३।६२) इति किः। नीम, पहियेका घुरा।
प्रधी (सं० ति०) प्रकृष्टा धौर्यस्य। १ प्रकृष्ट-बुद्धियुक्त,
खूव समम्बरा । २ प्रकृष्ट ध्यानकारक। (स्त्री०)
प्रकृष्टा-धीः प्रादिस०। ३ उत्कृष्टा बुद्धि, अच्छी समकः।
प्रधूपित (सं० ति०) प्र-धृप-क वा प्रकृष्ण धूपितः। १
तप्त, तपाया हुआ। २ दोप्त, चमकता हुआ। ३ सन्तापित, जिसे सन्ताप या दुःख हुआ हो।

प्रधूयिता (सं ० स्त्री०) न्योतिपोक्त सूर्यगन्तव्यादिक्, वह दिशा जिधर सूर्य वढ़ रहा हो ।

प्रधृष्टि (सं क्षी ) प्र-धृष-क्तिन्। दमन, धर्षण, दलन।

प्रधृष्य (सं ० ति ०) प्र-धृष-क्यष् । प्रधर्षणयोग्य, द्मन करने लायक ।

प्रध्मा ( सं ० त्रि० ) जोरसे वहना।

प्रध्मात ( सं ० ति० ) प्र-ध्मा-क । १ शब्दित, ध्वनित । २ सन्धुक्षित ।

प्रध्मापन (सं ० क्की० ) प्र-ध्मापि-ल्युट्। अवरुद्धवायु-नालीकी श्वामकिया सम्पादन करनेके लिये एक प्रकार-की प्रक्रिया।

प्रध्मापित ( सं ० हि ० ) प्र-ध्मा-खार्थे णिच्-क । ध्वनित, शब्दित ।

प्रध्यान ( सं॰ क्ली॰ ) प्र÷ध्यै-ख्युट् । प्रकृष्टरूपसे ध्यान, गभीर ध्यान ।

प्रध्वंस (सं ॰ पु॰) प्र-ध्वंस भावे वज् । १ नाश, विनाश । २ सांख्यके मतसे किसी वस्तुकी अतीत अवस्था । सांख्य मतवाले यह नहीं मानते, कि किसी वस्तुका नाश होता है। इसीलिये वे किसी पटार्थकी अतीत अवस्थाको ही प्रध्वंस कहते हैं ।

प्रध्यंसक (सं ० ति०) विनाशक, नाश करनेवाला। प्रध्यंसन (सं ० ति०) १ ध्यंसक, नाश करनेवाला। (क्की०) २ ध्यंस, वरवादी।

प्रध्वंसाभाव ( सं ० पु॰ ) न्यायके अनुसार पांच प्रकारके अभावोमिसे एक प्रकारका अभाव ।

प्रध्वंसिन् (सं • ति • ) प्र-ध्वंस-णिनि । प्रध्वंसरील, नाग करनेवाला ।

प्रध्वस्तः सं वित्व ) प्र-ध्यंस-क । १ जिसका प्रध्यंस हो चुका हो, जो नष्ट हो गया हो । २ अतीत, जो वीत गया हो । (पुर्व) ३ तान्त्रिकॉके अनुसार एक प्रकार-का मन्त्र ।

प्रनस्रु (सं ॰ पु॰ ) प्रगता नप्तारं जनकतया अत्यांस॰। पौत्नके पुत्र, परपोता ।

प्रनर्दक सं० ति०) प्रनर्द-ण्वुल् ; णीप शत्वामावात् न णत्वं। प्रकर्वकपसे नर्दनकारक ।

प्रनष्ट (सं ० ति ०) प्र-नश-क । प्रकर्षक्रपसे नागयुक्त । प्रनामी (हिं ० स्त्री०) वह धन या दक्षिणा जो गुरु, ब्राह्मण या गोम्बामी आदिको शिष्य या भक्त छोग प्रणाम करने को समय देते हैं।

प्रनायक ( सं० ति० ) प्रकृष्टो नायकोऽस्य प्रशन्दस्य नयति प्रति उपसर्गत्वाभावात् न णत्वं । प्रकृष्टनायकयुक्त ।

1 ... 19 .... 12. 1

प्रनाशन (हिं पु॰) १ वस्तुक शाकः। २ जीवशाकः। पुनाशन (हिं॰ पु॰) प्रणाशन वेखो ।

प्रनाशिन् ( सं॰ ति॰) पु-नश-णिनि, ततः णस्वं । प्रणाशशीळ, नाश करनेवाळा ।

प्रनिसित ( सं ० ति० ) प्र-णिस-क्त । चुम्बित, जिसका चुम्बन किया गया हो ।

प्रनिधातन (सं॰ क्ली॰ ) प्र-णि-हन्-णिच् भावे घञ् विकल्पे णरवाभावः । प्रणिधातन, वध ।

प्रनिन्दन (सं॰ क्ली॰) प्र-निन्द-ल्युट् । प्रक्रष्टक्रथसे निन्दा । प्रनीड़ (सं॰ त्रि॰) प्गतो नीड़ात् । नीड़त्यागी, (वह पक्षी) जिसने अपना घोंसला छोड़ दिया हो। पुनृत्य (सं॰ क्ली॰) पुक्रष्टकपसे नृत्य, नाच।

पूपम्ब (सं॰ ति॰ ) पू-पच-क्त । पूक्तप्रक्षपसे पक्त्र, जो भलीभांति पक गया हो ।

पूपश्च ( सं॰ पु॰ ) पूगतः पक्षं अत्यां सं। पक्षात्र, पंखका अगळा हिस्सा।

पुषञ्च (सं ॰ पु॰) पूपञ्च्यते इति प्र-पच्चि व्यक्तीकरणे घञ्। १ विपर्यास, उल्लट पलट, इचरका उधर । २ विस्तार, फैलाव। ३ सञ्चय, जमा। ४ पांच तत्त्वोंका उत्तरोत्तर अनेक भेदोंमें विस्तार, संसार, भवजाल। ५ सांसारिक व्यवहारोंका विस्तार, दुनियांका जंजाल। ६ वखेड़ा, कमेल, । ७ धोखा, ढोंग, आडम्बर।

पूपञ्चक (सं० ति० ) पूपञ्च कन् । १ विस्तारक, फैलाने-वाला । (क्वो० ) २ विस्तृतिकरण, फैलानो ।

पुपञ्चन (सं क्हों ) विस्तृतिकरण, विस्तार वढ़ाना।
पूपञ्चित (सं ० वि०) पुपञ्च्यते स्मेति पु-पचि-कः। १
विस्तृत । २ भ्रमयुक्त । ३ पुतारित, जो उगा गया हो।
पुपञ्चो (सं ० वि०) १ पुपञ्च करनेवाला। २ छली,
कपटी । ३ भगड़ालु, वखेडिया।

पूपण ( सं ० पु॰ ) विनिमय, वद्छा।

पुपतन (सं ० क्को०) पूपतत्यस्यात् पू-पत-ल्यु ट् । १ पतना-पादान वृक्षादि । भावे ल्युट् । २ पूकर्षक्षपत्ने पतन । ( ति० ३ पूपतनीय ।

पुपथ (सं॰ ति॰ ) पुरुष्टः पन्था यत । शिथिल, थका-मौदा ।

पृपथ्य (सं ० ति ०) पृष्ठम्यं पश्यं पृादिस ०। १ अत्यन्तहित । २ बहुसेचित मार्गभव । पूपथ्या (सं० स्त्री०) हरीतकी, हड़ ।
पूपद (सं० ह्वी०) पूर्वा पूगतं वा पदमिति
पूर्विस् । पादात्र, पैरका भगला भाग।
पूपदन (सं० ह्वी०) पू-पद-स्युद् । पूर्वेश ।
पपदीन (सं० त्वि०) पूपदं व्याप्नोति छ । पादात्र-

प्रपन्न (सं॰ ति॰) प्रपचते स्मेति प्र-पद-कः। १ प्राप्त, आया हुआ। २ शरणागत, शरणमें साया हुआ।

प्रपन्नाड़ ( सं ॰ पु॰ ) प्रपन्नमलति भूषयतीति प्रपन्न-अल् (कर्मेण्यण । पा ३।२।१ ) इत्यण् डलयोरैक्यं । १ प्रपुन्नाड़, चक्रमर्देक, चक्रबंडु । २ दद्र मर्दन ।

प्रपर्ण (सं॰ क्ली॰) पतित पत्न, गिरा हुआ पत्ता । प्रपलायण (सं॰ क्ली॰) प्र-प-लय-ल्युट् । प्रकृष्टद्वपसे पलायन ।

प्रपवण (संव ह्यी०) प्र-पू-च्युट् । १ पवित्रीकरण, पवित्र करना। २ परिष्कृतकरण, साफ करना।

प्रपचणीय (सं० ति०) प्र-पृ-अनीयर् । प्रवणयोग्य । प्रपा (सं० त्नी०) प्रकर्षण पिवन्त्यस्यापिति, प्र-पा (भातक्ष्वोपवर्षो । पा ३।२।१०६) इत्यङ्, घञ्धें को वा । १ पानीय-शालिका, वह स्थान जहां प्यासोंको पानी पिलाया जाता है । हेमाद्रिके दानखर्रहमें लिखा है, कि चैत, वैशाख, उयेष्ठ और आषाढ़ इन चार महिनोंमें प्रपा या पनसाल तैयार करके प्यासोंको पानी पिलावे । जिस दिन इसका आरम्भ किया जाय, उस दिन ब्राह्मण भोजन और शेप दिन ब्राह्मण, जाति तथा कुटुम्बादिको भोजन करा कर इसका उद्यापन करें । जो पनसाल देते हैं, उन्हें अक्षयस्वर्गकी प्राप्ति होती है । पानीयग्राङका देखो । २ यक्षशाला ।

प्रपाक ( सं॰ पु॰ ) प्र-पच-्चज् । पक्ष्वताकरण, पकानेकी किया ।

प्रपाठक (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः पाठोऽत कप्। १ वेदके अध्यायोंका एक अंश। २ श्रोतग्रन्थका एक अंश। प्रपाणि (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः पाणिः प्रादिसमासः। पाणि-तळ, हथेली।

प्रपाण्डु (स'० ति०) प्रकृष्टः पाण्डुः । अतिशय पाण्डु-वर्णे । प्रपाण्डुर (सं० ति०) अतिशय श्वेत, विलक्कुल सफेद। प्रपात (सं० पु०) प्रपतत्यस्मादिति प्र-पत (अक्तीरे च कारके संज्ञायां। पा ३।३।१६ इति घञ्। १ निरवलम्बन पर्वतादिका पाश्वे, पहाड़ या चट्टानका ऐसा किनारा जिसके नीचे कोई रोक न हो। २ निर्फर, फरना। ३ उड्डीनगतिविशेष, एक प्रकारकी उड़ान। ४ कुल, किनारा। ५ प्रपातन, एकवारगी नीचे गिरना।

प्रपातन (सं ० क्की०) पातन, नीचे गिरना ।

प्रपातिन् (सं क्हो॰) प्रपातः अस्त्यर्थे इनि । प्रपात-युक्त पर्वत ।

प्रपाथ ( सं ॰ पु॰ ) पन्था, रास्ता ।

प्रपाद (सं० पु०) १ असमयमें प्रसव । २ असमयमें दान । प्रपादिक (सं० पु०) मयूर, मोर ।

प्रपादुक (सं० क्वी०) १ गमन, जाना। २ प्रत्यागमन, लौटना।

प्रपान ( सं ॰ क्ली॰ ) पानीयशाला, पौसला ।

प्रपानक (सं॰ क्की॰) प्रकृष्टं पान-मस्य कप्। एक प्रकारकी पीनेकी वस्तु जो फलोंके गूदे रस आदिको पानीमें घोळ कर नमक, मिर्च चीनी आदि डाल कर बनाई जाती है।

प्रपापूरण (सं ० क्की०) प्रपायः पूरणं। जल द्वारा प्रपा पूर्णकरण, हौद्को पानीसे भरना।

प्रपापूरणीय (सं० ति०) प्रपापूरणप्रयोगनमस्य, छ। प्रपापूरणप्रयोजनक।

प्रपायिन् ( सं॰ हि॰) पृषिवतीति प्र-पा-णिनि । १ पानकर्त्ता, पीनेवाला । २ रक्षणकर्त्ता, वचानेवाला ।

प्रपालन (सं॰ क्ली॰) प्र-पाल-ल्युट्। प्रकृष्टकपसे पालन, अच्छी तरह रक्षा करना।

प्रपालिन् (सं०पु०) १ वलदेवका एक नाम। (ति०) २ पालक।

प्रपावन (सं क्ह्रो०) प्रपेव कामपूरकं वनं वा प्रकर्षेण पावयतीति पू णिच्-कत्तीर ल्यु । वनभेद, कामारण्य । प्रियामह (सं ० पु०) प्रकर्षेण पितामहः, पितामह-स्यापि पिता । १ त्रह्या । २ परव्रह्य । ब्रह्मासे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है और ब्रह्मा परब्रह्मसे उत्पन्न हुए

हैं, इसीसे उनका प्रितामह नाम पड़ा है। ३ पितामहके पिता, दादाका वाप, परदादा ।

प्रिपतृच्य (सं ॰ पु॰) प्रिपतामहका भ्राता, परदादाका भाई।

प्रिपित्व (सं० ९०) १ प्रक्रम, सिलसिला। २ संग्राम, युद्ध। ३ समीप, नजदीक। (ति०) ४ प्राप्त, पाया हुआ। ५ सन्निहित, नजदीकका।

प्रपित्सु (सं० त्नि० ) प्र-पद्- सन्, उ । पानेका अभि-लापी ।

प्रपोड़न (सं० क्ले०) प्र-पीड़-ल्युट् । १ प्रकृष्ट रूपसे पीड़न, अच्छी तरह सताना । २ धारक औपध ।

प्रपुर्द्धरीक ( सं० क्ली०) प्रपौर्द्धरीक, पुंडरिया।

प्रपुत (सं॰ पु॰) पौत, पोता।

प्रपुताइ (सं॰ पु॰) पुमांसं नाइयतीति नइ-भ्रंशे अण् प्रकृष्टः
पुन्नाइः प्रादिसः पृयोदरादित्वात् साधुः। प्रपुन्नाइ,
चकवंड। इसके सागका गुण—कफनाशक, रक्ष, छघु,
शीत और वात तथा पित्तप्रकोपक।

प्रपुन्नड़ । सं० पु॰ ) प्रपुन्नाड़ पृषोदरादित्वात् । साधुः । प्रपुन्नाडु, चकवँड ।

प्रपुन्ताट (सं० पु० ) पुमांसं नाटयति नट-णिच्-अण्। चक्रमद् चक्रवेड ।

प्रपुत्ताटच्छद ( सं० प्र० ) चणकवृक्ष । २ चक्रमद<sup>९</sup>पत । प्रपुत्ताङ् ( सं० पु० ) प्रपुत्तार, चक्रमद<sup>९</sup> ।

प्रपुन्नाल ( सं॰ पु॰ ) प्रपुन्नाड़, रस्य लत्वं । प्रपुन्नाड़ ।

प्रपुराणघृत (सं० क्की०) वहुत पुराना घी।

प्रपुराणधान्य ( सं॰ क्ली॰ ) वहुत पुराना धान ।

प्रपुष्पित (सं• ति•) प्रकृष्ट रूपसे पुष्पित, फूलसे लदा हुआ।

प्रपूरक (सं० ति०) १ पूरणकारी, पूरा करनेवाला। २ आनन्ददायक, खुश करनेवाला।

प्रपूरण (सं क् क्वी ) प्र-पूर-स्युद् । प्रकृष्टक्षयसे पूरण । प्रपूरिका (सं वि ) प्रपूर्यते कएटकैरिति प्र-पूर-कर्मणि-धञ् वा प्रयूरयतोति प्र-पूर-ण्डुल् कापि अतइत्वं । कएट-कारो, भटकटैया ।

प्रपूरित (सं० ति०) प्र-पूर-क । जो परिपूर्ण किया गया हो। प्रपूर्वेग (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः पूर्वेगः पूर्वेवत्तौ प्रादिसः। सृष्टिके प्राग्वत्तौ परमेश्वर । सृष्टिके पहले एकमात परमेश्वर ही थे, इसीसे उनका प्रपूर्व नाम पड़ा है।

प्रपृथक् (सं० अन्य०) पृथककपमें ।
प्रपृप्र (सं० कि०) उन्ततपृष्ठ, जिसकी पीठ ऊँची हो ।
प्रपौएडरीक (सं० क्ली०) पुएडरीक-स्वार्थे अञ्, मरुष्टं पौएडरीक स्थेव पुष्पं यस्य । हस्ती और मनुष्यके चक्षुका हितकर क्षद्रविटप, पुएडरीका पौधा । कहते हैं, कि इसका रस आंखमें लगानेसे आंखके रोग दूर होते हैं । इसकी पत्तियां शालपणींकी पत्तियोंकी-सी होती हैं । संस्कृत पर्याय—चक्षुष्य, शीत, श्रीपुष्य, पुएडरी, पुएडरीयक, पौएडरीय, सुपुष्य, सानुज, अनुज । गुण—चक्षुका हितकर, मधुर, तिक, शीतल, पित्त रक्त, जण, ज्वर, दाह और तृष्णानाशक । भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—मधुर, तिक्त, कथाय, शुक्रवर्द्धक, चक्षुका हितकर, पाकमें भधुर, कान्तिप्रद, पित्त, कक्ष यौर रक्तवेषनाशक ।

प्रपौत (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण पौतः पौतस्यापि पुतत्वात् तथात्वं । पौतका पुत्न, पोतेका छड्का, पड्पोता । इसका पर्याय प्रतिनप्ता है ।

प्रपौती (सं० स्त्री०) पौतको कन्या, पोतेकी छड्की।
प्रयायन (सं० स्त्री०) प्र-प्याय-ल्युट्। वृद्धि, स्थूलता।
प्रप्यायनीय (सं० ति०) प्र-प्याय-अनीयर्। वृद्धिके योग्य।
प्रप्यायत् (सं० ति०) प्र-प्याय-तृष् । वृद्धियुक्त, जो स्थूल
हो गया हो।

प्रप्रोथ ( सं० पु० क्ली० ) गुल्ममेद् ।

प्रस्नावन सं को को ) प्र-प्सु-णिच् ल्युट् । १ जलप्लावन । २ जल द्वारा अम्ब्यादि निर्वापण, पानीसे आग बुताना । प्रफर्वी (सं को ) प्रकृष्ट पर्व नितम्बस्थानं यस्या स्त्रियां कीप्, पृषोदरादित्वात् साधुः । १ प्रशस्त नितम्बा स्त्री । (ति ) २ प्रकृष्टगतियुक्त, तेजीसे चलनेवाला ।

प्रफुड़ना (हिं० किं०) व्रकुलत देखो।

प्रफुलना (हिं० किं०) फूलना।

प्रफुला (हिं० स्त्री०) १ कुनुदिनी, कुईं । २ कमलिनि, कमल।

प्रफुलित (हि॰ वि॰)१ कुसुमित, जिला हुआ। २ प्रफुल, सानन्दित।

Vo. XIV- 148

प्रफुल्त (सं० ति०) प्रफुछ देखो ।

प्रपुद्ध (सं० ति०) फलतीति फलाविसरणे का। (आद्येति। पा ।१११६) इति इड्भावः (ति च। पा ।१४।८६) इति उत् (अवुवसर्गत फुल्ल क्षिवेति। पा ।१४।५५) इति निष्ठातस्य लः, ततः प्रादिस० वा प्रफुलतीति फुल्लविकशने अच्। १ विकाशयुक्त, बिला हुआ। पर्याय—उत्कुल, संफुल, व्यकोष, विकच, स्फुट, फुल्ल, विकसित, पुङ्ग, जूम्म, स्मित, उन्मिपित, दिनत, स्फुटित, उच्छृसित, विजृम्मित, स्मेर, विनिद्र, उन्निद्र, विमुद्र, हसित। २ कुलुमित, फूला हुआ, । ३ खुला हुआ, जो मुंदा हुआ न हो। ४ प्रसन्न, आनन्दित।

प्रफुल्लचन्द्र वन्दोपाध्याय-एक ख्यातनामा वङ्गीय प्रन्थकार । इनके पिताका नामं शिवचन्द्र वन्दोपाध्याय और माताका शारदासुन्दरीदेवी था। इनका जन्म १२५६ सालकी ११वीं आश्विनको हुआ था। इन्होंने अपना साराजीवन साहित्य-चर्चामें विताया था। इन्हें केवल वंगलामें ही नहीं, उड़िया, हिन्दी, तैलङ्ग, लाटिन और त्रीक भाषामें भी अच्छा शान था। वाब्मीकि और तत्सामयिक वृत्तान्तको प्रकाशित करनेके पहले ही प्रफुल वात्रूने ग्रीक और हिन्दू नामक एक और ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। आठ नौ वपं ग्रीक और संस्कृत भाषामें रचित ग्रन्थको एकाग्र-चित्तसे पढ़ कर इन्होंने उक्त प्रन्थकी रचना की थी। उस प्रनथके प्रति पत्नमें जटिल भाषामें प्रनथकारको चिन्ता-शीलता, बहुदर्शिता, पाएडत्य और उद्भावनी शक्ति प्रस्फु-दित हुई है। उक्त प्रन्थके अलावा इन्होंने दो और वड़े वड़े प्रन्थोंमें हाथ लगाया था, १ला वङ्गला भावामें एक सविस्तार मनोविश्वान Mental Philosophy )-प्रकाश और २रा राढ़ोय त्राह्मण-समाजका इतिहास-सङ्ख्लुलन ।

आपको साहित्यसेवासे मुग्ध हो बङ्गीय साहित्य-परिपद्दने आपको १३०५ सालमें सहकारी सभापतिका पद दे कर सम्मानित किया। वृटिश-गवर्मेंग्द्रने आपकी कार्य-दक्षतासे प्रसन्न हो १६०० ई०में आपको पूर्वबङ्गके स्थायी हेपुटी पोष्टमास्टर-जनरलके पद पर नियुक्त किया। उसी सालकी ३१वीं अगस्तको आप इस घराधामको छोड़ परलोकको सिधार गये।

प्रवन्ध ( सं॰ पु॰ ) प्रवध्यते इति प्र-वन्ध-घञ् । १ प्रकृष्ट

वन्धन, वांधनेकी डोरी आदि । २ कई वस्तुओं या वातों-का एकमें प्रथन, योजना । ३ एक दूसरेसे संबद्ध वाक्य-रचनाका विस्तार, लेख या अनेक संबद्ध पद्योंमें पूरा होने-वाला काव्य । ४ आयोजन, उपाय । ५ पूर्वापरसंगति, बंधा हुआ सिलसिला । ६ व्यवस्था, वंदोवस्त, इन्तजाम । प्रवन्धकल्पना (सं० स्रो०) प्रवन्धस्य कल्पना रचना । १ संदर्भ रचना, प्रवन्ध रचना । । २ वहुनृता स्तोकसत्या-कथा, ऐसा प्रवन्ध जिसमें थोडी-सी सत्य कथामें वहुत सी वात ऊपरसे मिलाई गई हो ।

प्रवर्ह ( सं ० ति ० ) प्र-वह स्तुतौ वृद्धौ वा अच्। प्रधान, श्रेष्ठ ।

प्रवल (सं० पु०) प्रकृष्टं वलतीति प्र-वल-प्राणने अच्। १ पल्लव, कोंपल। २ पसारिणीलता। (ति०) प्रकृष्ठं वलं यस्य। ३ प्रकृष्टवलयुक्त, वलवान, प्रचएड। ४ तुंद, उप्र, जोरका।

त्रवला (सं ० स्त्री०) पृक्षन्यं वलमस्याः। १ प्रसारिणी भोषधि । बि०) २ प्रकृष्ट वलवती, वहुत वलवती । ३ प्रचण्ड ।

प्रवलाकिन् ( सं ॰ पु॰ ) सप्, सांप ।

प्रवास ( सं० पु० ) प्रवास देखो ।

प्रबालक । सं ० पु० । यक्षमेद ।

प्रबालकीर—प्रवालकीट देखो ।

प्वालपद्म ( सं॰ क्लो॰ ) रक्तोपल, लाल कमल ।

पुंबालफल (सं॰ क्ली॰ ) पुंवालवद्गक्तं फलं यस्य । रक्त-चन्दन, लालचंदन ।

षुबाळवत् ( सं ० ति ० ) पुवाळअस्त्ये मतुप्, मस्य वः । प्रवाळयुक्त ।

प्रवालाश्मन्तक सं • पु • ) प्रवाल इव अश्मन्तकः रक्त । त्वात् । रक्ताश्मन्तक वृक्ष ।

प्रबालिक ( सं ॰ पु॰ ) प्रवालोऽस्त्यस्य वाहुत्येनेति प्रवाल ( अत इनिठनौ ।पा ५!२।११५ ) इति ठन् । जीवशाक ।

प्रवास ( सं ॰ पु॰ ) प्रवास देखो ।

त्रबाह ( सं ० पु० ) प्रवाह देखी ।

प्रवाहु (सं ॰ पु॰) प्रगतो वाहु-मिति । क्रूपैरका अधो-भाग, हाथका अगला भाग, पहुंचा ।

प्रबाहुक (सं ० अध्य०) प्रकृष्टो बाहुरत कप्। १ सीधमें, एक लाइनमें। २ समतलमें, सतहके वरावर। प्रवीन (सं० ति०) प्रवीण देखो।

प्रबुद्ध (सं० ति०) प्र-बुध-कः। १ प्रवोधयुक्त, जागा हुआः। २ परिडत, ज्ञानीः। ३ विकसित, खिला हुआः। ४ होशमें आया हुआ, जिसे चेत हुआ हो। (पु०)५ नव योगेश्वरोंमेंसे एक योगेश्वरः। ६ ऋपभदेवके एक पुत्र जो भागवतके अनुसार परम भागवत थे।

प्रवुद्धता ( सं ० स्त्री० ) प्रवुद्धरू . भावः, तल राष् । प्रकृष्ट्-वोध, प्रकृष्ट ज्ञान ।

प्रबुध् (सं० ति०) प्र-बुध-किप्। प्रबुद्ध।

प्रबुध (सं० पु०) प्र-बुध-क। वोध, ज्ञान।

प्रवोध (सं० पु०) प्र-बुध अप गमे भावे धन्। १ प्रकृष्ट-हान, यथाथ ज्ञान। २ विकाश, बिल्लना। ३ सान्त्वना, अ।श्वासन, ढाढ़स। ४ चेतावनी। ५ महावुद्धकी एक अवस्था। ६ जागना, नींदका हटना।

प्रवोधक (सं ० ति० ) १ जगानेवाला । २ चेतानेवाला । ३ समभानेवाला । ४ सान्त्वना देनेवाला, ढाढ्स वंधाने-वाला ।

प्रवोधन (सं० क्की०) प्र-बुध-ल्युट्। १ यथार्थ ज्ञान, चेत। २ जागरण, जागना। ३ जागरित करण, नींद्से उठाना। ४ विकाश, खिळना। ५ सान्त्वना, आधा-सन। ६ ज्ञापन, जताना। ७ न्यूनपूर्वगन्ध चन्दनादि-का प्रयत्नविशेष द्वारा पुनर्वार सौगन्धोत्पादन, चन्दन आदि जिसकी सुगन्ध चळी गई हो, उसे फिर सुगन्धित करना।

प्रवोधना (हिं० किं०) १ जगाना, नींद्से उठाना। २ सचेत करना, होशियार करना। ३ ढाढ़स देना, तसही देना। ४ मनमें वात विठाना, समभाना बुभाना। ५ पट्टी पढ़ाना, सिखाना।

प्रवोधनो (सं क्ली ) प्रवोध्यतेऽनयति प्र-वृध-णिच् ल्युट, ङीप्। १ दुरालमा, धमासा। प्रवृध्यते हरि-रत्नेति। २ कार्त्तिक शुक्कपक्षको एकादशी, देवोत्थान एकादशी। इस दिन भगवान् प्रबुद्ध होते अर्थात् सो कर उठते हैं, इसीसे इस एकादशीका प्रवोधनी नाम पड़ा है। आषाढ़ शुक्का एकादशीको दिन भगवान् सोते और कार्त्तिकमासको शुक्का एकादशीको उठते हैं, इसीसे इसका दूसरा नाम उत्थान एकादशी भी है। "विण्णुः शेते सदापाढे प्रयुध्यते च कार्त्तिके।" (तिथितच्च)

एकाद्शी करना हर व्यक्तिका कर्त्तन्य है। विशेषतः उत्थान एकाद्शी तो सर्वोको अवश्य ही करनी चाहिये। हरिभक्तिविलासमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

"जनम प्रभृति यत्पुण्यं नरेणोपार्जितं भुवि । वृथा भवति तन्सर्वं न इत्वा वोधवासरम्॥" (हरिभक्ति० १६ वि०)

जन्मके वादसे ही जो पुण्यानुष्टान किये गये हैं, वे सभी इस उत्थान एकादशीके नहीं करनेसे निष्फल होते हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्तिकों यह एकादशी करना कर्त्तव्य है। इस एकादशीके दिन उपवास करके विष्णुके उद्देशसे नाना प्रकारके उत्सव करने होते हैं। इस दिन विष्णुका माहात्म्य सुननेसे पापक्षय और पुण्यविद्धत तथा अन्तमें मुक्तिलाम होता है। जो यह प्रवोधनो एकादशी करते हैं, उनके कुल तक भी उद्धार पाते हैं और उन्हें अध्वमेध आदि यह करनेका फल होता है। इस दिन विष्णुके उद्देशसे स्नान, दान, तप और होम आदि इनमेंसे जिस किसीका अनुप्रान किया जाय, वह अक्षय होता है।

जिन्हें यह एकादशी करनी हो, वे इसके पूर्व दिन संयम कर दूसरे दिन उपवास करे। इस दिन जलाशय-के समीप जा भगवान विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करे। भनन्तर विष्णुकी मूर्त्तिको जलाशयमें ले जा कर सङ्कल्प करनेके बाद उनका प्रवोधन करे। प्रवोधनके समय निम्नलिखित मन्त्रपाठ करना होता है। यथा—

"ब्रह्मे न्द्रख्द्राग्निकुवेरस्यसोमादिभिर्वन्दितपाद्पद्मः ।
वुध्यस देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रमावेन सुखेन देव ॥
इयन्तु द्वादर्शा वैव प्रवोधार्थं विनिर्मिता ।
त्वयैव सर्वछोकानां हितायं शेपशायिना ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्विय सुप्ते जगत्सुसमुत्थिते चोत्थितं भवेत् ॥
गता मेघा वियच्चैव निर्मेछं निर्मेछा दिशः ।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ॥
ब्रह्मे न्द्रख्दै रिवेतक्यंमावो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीय ।

प्राप्ता तव द्वादशी कीमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥ मेवा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि च लोकनाथ ।" ( हरि० १६ )

प्रवोधानन्दसरस्वतो—एक संन्यासी । इनका पूर्व नाम प्रकाशानन्द था । कावेरीनदीके तीरवर्त्ती रङ्गक्षेतस्थ वेनकुएड नामक स्थानमें ये रहते थे । संन्यासावस्थामें ही ये प्रकाशानन्द नामसे प्रसिद्ध हुए ।

चार सो वर्ष पहले प्रकाशानन्द भारतके संन्यासियों-के मध्य विद्यागीरवर्मे वहं चढ़े थे। ये पृथक् ईश्वरका अस्तित्व अथवा अवतार स्वीकार नहीं करते थे। भक्ति नामका एक पदार्थ है, इस ओर उनका जरा भी ध्यान न था। इन्होंके समय श्रोचैतन्य-महाप्रभु भक्तिधर्मका प्रचार कर रहे थे, इस कारण प्रकाशानन्दका उनके साथ विवाद खड़ा हुआ। केवल इतना ही नहीं, प्रकाशानन्द-को सुननेमें थाया, कि चैतन्यमहायम् उनके आश्रममें जा कर उनके अति स्नेहके शिष्य गोपालको भक्तिपथ पर लाये हैं। इस पर चैतन्यदेवके ऊपर ये वह विगडे। किन्तु दोनोंका आश्रम पृथक् पृथक् था। प्रकाशानन्द-की इच्छा थी, कि यदि वे समीपमें रहते तो देखते कि वे कैसे हैं और उनका भक्तिधर्म कैसा है। किन्तु अपनी आशा पूर्णं करनेका इन्होंने कोई उपाय नहीं देखा । क्रमशः प्रकाशानन्द—जो समुद्रके जैसे गम्भीर थे, वे भी अधैर्य हो उठे। पीछे उन्होंने एक यात्रोके साथ निम्न श्लोक लिख कर चैतन्यके पास भेज दिया । यथा-

"यतास्ते मणिकणिकामलसरः स्वद्दीर्घिका दीर्घिका, रत्नन्तारकमोक्षदं तनुभृते शम्भुः स्वयं यच्छति। तस्मिन्नद्दभुतधामिन समरिपोनिर्वाणमार्गे स्थिते, मूढ़ोऽन्यत मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति॥" अर्थात् प्रकाशानन्दने श्रीगौराङ्गको एक तरहसे 'मूढ़' कह कर गाली दी। जो हो, गौराङ्गने प्रकाशानन्दकी सम्मानरक्षाके लिये नोचेका उसके उत्तरमें भेजा,---

"धर्माम्मोमणिकणिका भगवतः पादाम्बुभागीरथी, काशोनां पतिरद्धं मेव भजते श्रीविश्वनाथः स्वयं। एतस्यैव दि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं, भस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भजसखे श्रीपादनिर्वाणदं॥" जो प्रकाशानन्द संन्यासियोंके राजा हैं, उन्हें उबदेश ? इस वार प्रकाशानन्दने खुल्लमखुल्ला गाली गलीज देते |
हुए एक और स्लोक लिख मेजा, जो इस प्रकार है,—

"विश्वामितपराशरप्रभृतयोवाताम्बुपणांशना,
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्रेव मोहं गताः।

शाल्यान्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुज्जते मानवास्तेपामिन्द्रियनिप्रहो यदिः भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरं॥"

श्रीगौराङ्गप्रभु महाप्रसादका त्याग नहीं करते थे और

भक्तोंके आग्रहसे कभी कभी उत्तम वस्तु भी ग्रहण कर
लेते थे। इसीका उब्लेख करते हुए प्रकाशानन्दने उक्त
स्लोक मेजा था।

महाप्रभु इसका उत्तर और क्या देते ? उनके किसी भक्तने एक श्लोक लिख कर उसका उत्तर दिया था।

इसके वाद प्रकाणानन्दको सुननेमें आया, कि नीला-चलके वासुदेव सार्वमौम उन चैतन्यके फंदेमें पड़ कर वैष्णव हो गये हैं। सार्वभौम भी प्रकाशानन्दकी तरह क्षमताशाली भारत-प्रसिद्ध व्यक्ति थे। सार्वभौमका यह संवाद सुन कर चैतन्यके प्रति प्रकाशानन्दकी मिक तो क्या होगी और भी होप वढ़ गया। उन्होंने समका, कि चैतन्य अवश्य ही ऐन्द्रजालिक होगा। इस कारण अपने शिष्योंको बुला कर उन्होंने कह दिया, 'चैतन्य ऐन्द्र-जालिक है। जो उसके पास जायगा, मोहिनीवशसे वह उसे मुख कर देगा। अतः तुममेंसे कोई भी उस प्रता-रकके पास न जाना। इस काशोपुरीमें उसकी एक भी चाल न चलेगी। उसके मारे वह हमसे भेंट भी नहीं करता है।"

इसके वाद एक महाराष्ट्रीय विद्यने काशीवासी सभी संन्यासियोंको निमन्त्रण किया । गौराङ्ग संन्यासियोंके साथ नहीं मिलते थे । किन्तु आज विद्यके आद्रहसे उन्होंने विद्यका निमन्त्रण स्वीकार किया। आज उनसे प्रकाशानन्दकी मुलाकात होगी।

प्रकाशानन्द निर्मीक थे, इस भारतमें ऐसा कीई भी पिएडत नहीं, जो उनसे तर्क वितर्क कर सकते। अभी वे हजारों शिप्योंसे परिवेष्टित हो सभामें बैठे हुए हैं। उनके मनका भाव यह था, कि चैतन्यके आने पर वे उनसे केवल दो वात करेंगे। दो हो वातमें उन्हें निर्वाक् कर देंगे।

इसी समय महात्रभु प्रसन्न चदनसे हरिकीर्त्तन करते हुए अवने भक्तोंके साथ उस सहस्र संन्यासिसमन्वित सभा-में उपस्थित हुए। उनके चेहरे पर कोई विशेष भाव नहीं था, पर उनके भक्त लोग वड़े ध्याकुल थे, कि न जाने आज क्या घटना घटेगी?

महाप्रभुने सलजित भावमें पहले संन्यासी समाको नमस्कार किया। पीछे पादमक्षालन्को जगह जा कर पैर घो लिये और उसी जगह वैष्ठ गये।

प्रकाशानन्द सदाशय व्यक्ति थे, चिरशतु होने पर भी उन्हें अपवित स्थान पर क्यों चैठने देते ! अतः उन्होंने आप्रहपूर्वक उन्हें सभामें ला कर विठाया। चस्तुतः प्रभुके विनयनम्र वाक्य पर, उनके विनीत व्यव-हार पर और उनके मधुर मूर्त्तिदर्शन पर प्रकाशानन्द मोहित हो गये। पीछे कुछ देर तक तर्क वितर्क करनेके वाद प्रकाशानन्दका गर्व जाता रहा, उनके हदयमें भिक्का सञ्चार हो आया। अव उन्होंने हजारों शिष्यके सामने श्री चैतन्यको ईश्वर वतला कर उनके प्रति भक्ति प्रदर्शन की। अव काशोपुरोमें हरिनामकी मानो पाढ़ उमड़ आई। जव कभी चैतन्य वाहर निकलते थे, लोगोंकी अपार भोड़ हो जाती थी, प्रकाशनन्द भी अपने शिष्योंके साथ उनके पीछे पोछे चलते थे।

प्रवोधित (सं॰ त्रि॰) १ जो जगाया गया हो, जागा हुआ। २ जिसका प्रवोध किया गया हो। ३ ज्ञानप्राप्त।

प्रवोधिता (सं रुं स्त्री०) एक वर्णवृत्ति । इसके प्रत्येक चरणमें रुगण जगण फिर सगण जगण और अन्तमें गुरु होता है। इसे सुनन्दिनी और मञ्जुभाषिणी भी कहते हैं।

प्रवोधिन् (सं० ति०) प्रवोधयति प्र-वुध-णिच्-णिनि। प्रवोधकारक, जगानेवाला ।

प्रवोधिनी (सं क्षी०) प्रवोधयित हरिमिति प्रवोधन-डीप्। १ उत्थान एकादशी । प्रतोधनी देखो । २ दुरा-लभा, धमासा ।

प्रमङ्ग (सं० ति०) प्र-भञ्ज-घञ्। भग्न, दूरा फूरा। प्रमङ्गर (सं० ति०) प्रकृष्टकपसे भंगुर, नाशशील। प्रमञ्जन (सं० पु०) प्रकर्षेण भणिक वृक्षादीनिति प्र-भनज -युच्। १ वायु, हवा। २ प्रचएड वायु, आंधी। ३ नाम, तोड़, उखाड़ पखाड़ । ( ति० ) ४ अञ्चनकारक, तोड़ने फोड़नेवाला ।

प्रभञ्जन—मणिपुरके एक राजा, महाराज देवाह्यके पुत्र । ये राजर्पि सुरामां व शके थे ।

प्रभद्ग (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टं भद्गं यस्मात् । १ निम्ब, नीम । प्रभद्ग (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टं भद्गं यस्मात् । १ निम्ब, नीम । प्रकृष्टो भद्ग इति प्रादिसः । (बि॰) २ श्रेष्ट ।

प्रभद्गक (सं० ह्यी०) १ छन्दीभेद । पन्द्रह अक्षरींका एक वर्णवृत्त । २ पारिभद्रवृक्ष, फरहद्दका पेड़ । ३ प्रसा-रणी, गन्धप्रसारिणी नामकी छता ।

प्रमदा (सं ० स्त्री०) प्रकृष्टं भद्नं यस्मात्, टाप्। प्रसा-रिणी स्ता।

प्रभत्तं (सं ० ति०ं प्र-भृ-तृच् । १ सम्यक् रूपसे प्रभरण । २ नजदीकमें लाना ।

प्रभमीन (सं ० पु०) भृ-भावे कत्तरि वा मणिन, प्रकृष्टं भमी भरणं, प्रकृष्टः भमी भर्चा ऋत्विक् वा यस्मिन्। १ यह। (क्की०) २ प्रकर्वक्षपसे भरण, सम्पादन। प्रभव (सं० पु०) प्रभवत्यस्मादिति प्र-भू 'अकर्त्तरि च कारके' इत्यधिकारात् ( ऋरोरव्। पा ३।३।५७) इति अप्। १ जन्महेतु, उत्पत्तिका कारण। २ जलमूल, जलका निर्गम-स्थान। ३ मुनिभेद, एक मुनिका नाम। ४ पराक्रम। ५ जन्म, उत्पत्ति। ६ सृष्टि, संसार। ७ विण्यु। ८ जैन-स्थविरभेद। इ साध्यभेद। १० ज्योतियोक्तं साठ संव-

यृहत्संहितामें लिखा है—यृहस्पति जिस समय धनिष्ठानश्रवका प्रथमांश प्राप्त कर माघमासमें उदय होते हैं, उस वर्ष प्रभव नामक संवत्सर होता है। यह संव त्सर प्राणियोंके लिये हितपद है। इस वर्ष यदि कहीं वृष्टि न हो, बायु या अग्निका कोप हो, ईतिका भय हो, तो भी प्राणियोंका विशेष सनिष्ट नहीं होता। (बि०) ११ प्रमृत, वहुत ज्यादा।

त्सरोमें एक संवत्सर। इस संवत्सरमें वृष्टि अधिक

होती है और प्रजा नीरोग तथा सुखी रहती है।

प्रभवन (सं ० ह्यी०) प्रभू-ल्युट् । १ उत्पत्ति । २ मूछ । ३ आकार । १ अधिष्ठान । (ति०) ५ उत्पन्न । प्रभवप्रभु (सं० पु०) जैनोंकी षष्ठ श्रुतकेवली । प्रभवदि (सं० पु०) प्रभव आद्यियां । प्रभव आदि पष्टि-संवत्सर । षष्टिवंदत्वर देखो ।

Vol. XIV. 149

प्रभविन् (सं वि ) प्रभू-नृत् । प्रभावशाली ।
प्रभविन्यु (सं वि ) प्रभवितुं शीलमस्येति प्र-भू(भुवश्व । या श्वाराश्वर) इति इण्युच् । १ प्रभावशील । २
प्रकर्षेक्षपसे भवनशील । (पु ) ३ विष्यु । १ प्रभु ।
प्रभविष्युता (सं खी ) प्रभविष्यु-भावे तल्-राप् ।
प्रभुता, प्रभु-विष्युका भाव ।

प्रभव्य (सं ० ति०) प्रभु-यत्। प्रभवनीय।
प्रभा (सं ० ति०) प्रश्नरेण भातीति प्र-भा (आन्ध्वोपको ।
पा श्रि० हि। इति अङ्। १ कुवेरपुरी। भा-भावे अङ्।
२ दीप्ति, चमक। पर्याय—रोचिस्च ति, शोचिस्, त्विपा,
ओजस्, भास्, रुचि, विभा, आलोक, प्रकाश, तेजस्,
रुच्। ३ दुर्गा। ४ सर्मानुकी कन्याभेद, नहुपकी माता।
५ गोपीविशेष। ६ एक अप्सराका नाम। ७ एक द्वादशाक्षरा वृत्ति जिसे मन्दाकिनी भी कहते हैं। ८ स्यैका
विम्व। ६ स्यैकी पत्नी। युक्तप्रदेशवासी काँजर जातिके
लोग इनकी उपासना करते हैं। उनका कहना है, कि
आलोकमयी प्रभादेवी ही गोमेपादिको सुस्थ रखती हैं।
अहीर लोग भी इनकी पूजा करते हैं।

प्रभाकर (सं ० पु०) प्रमां करोतीति छ (दिवाविमानिग्राप्रभेति। पा इ।२।२१) इति ट । १ सूर्य । २ अग्नि। ३
चन्द्र । ४ अर्कवृक्ष, मदारका वृक्ष । ५ समुद्र । ६ अग्रममन्वन्तरीय देवगणभेद, मार्कएडे यपुराणके अनुसार
आठवें मन्वन्तरके देवताओं के देवता । ७ अतिचंशीय
मुनिविशेष । ८ नागभेद, एक नागका नाम । ६ मीमांसकमेद । दर्शनशास्त्र आदिमें इनका मत 'प्रभाकर
मत' कहलाता है। ये गुरुक्षपमें प्रसिद्ध थे। १० कुशद्वीपस्थितवर्षभेद, मत्स्यपुराणके अनुसार कुशद्वीपके
एक वर्षका नाम ।

प्रभाकर—१ दाक्षिणात्यप्रदेशके एक सामन्त राजा। इनके पृथिवीमूल नामक एक पुत्र था। पृथिवीमूल देखो।

२ तन्त्रप्रस्थके प्रणेता। ३ काशीतत्त्वद्वीपिका और गयापद्वितदीपिकाके रचिता। ४ कृष्णविलासकाव्यके रचिता। ५ धर्मसारके प्रणेता। ६ मूधरके पुत्व। इन्होंने १६१७ ई०में गीतराधवकी रचना की। ७ अलङ्कार-रहस्यके प्रणेता, माधवके पुत्व। ८ माधवसङ्के पुत्व और रामेश्वर भङ्के पौत्व। ये विश्वनाथ और रघुनाथके

न्नाता तथा उनके छात थे। एकावलीप्रकाश कुमार सभ्मवदीका, चूर्णिका नामक वासवदत्ताटीका, रास-प्रदीप ( १५८३ ), छद्युसप्तशतिका स्तव (१६२६) विवाह परळ और शास्त्रदीपिका नाम प्रन्थ इन्होंके बनाये हुए हैं। १५६४ ई०में इनका जन्म हुआ।

प्रमाकरगुरु—वृहतीमीमांसास्त्रभाष्यके रचियता, शालिक-नाथके गुरु। विदग्धमुखमण्डनमें इनका नाम आया है। प्रभाकरदत्त- एक संस्कृत कवि।

प्रभाकरदेव—१ एक संस्कृत कवि। २ एक अभिधानके प्रणेता ।

प्रभाकर देवश—गोतप्रवर और वाक्पुप्पमाला केशवकृत गोलप्रवरनिर्णयके टोका-रचयिता।

प्रभाकरनन्दन-एक लंस्कृत कवि ।

प्रभाक्तरभट्ट--१ ख्यातनामा पिएडत । २ पयोग्रहसमर्थन प्रकारके रचयिता वासुदेवके पिता। ३ औचित्यविचार-चर्चाके क्षेमेन्ट्र-उद्गृत एक कवि । ४ न्यायविवेक नामक मीमांसा-प्रनथके प्रणेना । ५ प्रमाकराहिकप्रणेता ।

प्रेमाकरवर्द्ध न—कन्नोजके वैश्यवंशीय एक राजा। थाने-श्वरमें इनकी राजधानी थी। इनके पिताका नाम आदित्य-बद्ध<sup>े</sup>न और माताका महासेनगुप्ता था। चीनपरिव्राजक यूपनचुदंगके वर्णनसे मालृम होता है, कि ये हर्पवद्ध न और राज्यवर्द नके पिता थे। महाराज हपेके सभाकवि वाणभट्टने हर्पचरितमें लिखा है, कि श्रीकण्ठराज्यके पुप्प-भूति (पुष्यभूति ) नामक एक अधिवासी इनके पूर्व-पुरुष थे । इनका दूसरा नाम था प्रतापशील । गन्धार, हूण, सिन्धु, गुर्जर, लाट और मालव आदि राज्य इनके अधि-कारभुक्त थे। इन्होंने यशोमतीका पाणिग्रहण किया, जिनके गर्भसे उक्त दो पुत और महादेवी (राज्यश्री) नामक एक कल्या उत्पन्न हुई । प्रभाकरने भएडी नामक उचपदस्थ कर्मचारीके ऊपर दोनोंका शिक्षामार सोंपा। मों लिरराज अवन्तिवर्माके पुत्र ग्रहवर्माके साथ राज्यश्री-का विवाह हुआ। आजमगढ़ जिलेके मधुवन प्रामसे जो शिलालिपि पाई गई है उससे जाना जाता है, कि प्रवल पराक्रमशाली राजा-प्रभाकर सूर्यके उपासक वे। किन्तु ' - उनको स्त्री यशोमती सुगतकी भक्त और उनके चलाय हुर<sub>ा</sub>

धर्ममतकी पक्षपातिनी थों । प्रभाकरकी मृत्युक्र वाद उन के वड़े छड़के राज्यवर्द्ध न गद्दी पर वैठे।

प्रभाक्तरमित्र—एक कवि।

प्रभाकरी - वोधिसच्चोंकी तृतीयावस्था । १छी अवस्थाका नाम प्रमुद्ति, ररीका विमला और ररीका प्रमाकरी है। इसी नीसरी अवस्थामें मानवहृद्यकी वृत्तियों दृद्वद् हो कर विश्वास वा भक्ति उत्पन्न करती है।

प्रभाकीट (सं ० पु॰) प्रभान्वितः कीटः मध्यपदलीपि-कर्मधा०। खद्योत, झुगन्।

प्रभाग ( सं॰ पु॰ ) प्र-भज-घञ्। १ विभागका विभाग। २ भग्नांशका भग्नांश, भिन्नका भिन्न ।

प्रभाचन्द्र-- एक विख्यात परिइत । जैनेन्द्रव्याकरणमें स्नका उल्लेख है।

प्रसाचन्द्र—१ एक जैनधर्म-प्रवर्त्तेक । दिगम्बर-पद्मवर्टीमें इन्हें नेमिचन्टके गुरु और लोकेन्त्रके शिष्य रतलाया है।

२ पृथिवीचन्द्रके शिष्य । १३६० सम्वत्में इन्होंने हरिः भद्रकृत जम्बृद्धीप-संप्रहिणीकी टीका लिखी है। ये कृष्ण-गच्छके अन्तर्भु क थे और १३६१ संवत्में इन्होंने धर्मिशिक्षा देना आरम्भ किया।

प्रभाचन्द्रदेव—दिगस्वर पट्टावर्हा वर्णित शिष्य और पद्मनिन्दिके गुरु । इन्होंने पूज्यपादीय ग्राखकी एक टोका रची है। १३१० संवत्में ये विद्यमान थे।

प्रभाचन्द्रसूरि-प्रभावकचरित्रके रचयिता । १३३४ सम्बत् में इनकी लिखी हुई धर्मकुमारसाधुके गालिभद्रचरितकी एक पुस्तक पाई गई है।

प्रभाज (सं ॰ पु॰ ) प्र-भज-ण्वि । विभागकारी । प्रभाञ्जन ( सं॰ पु॰ ) शोभाञ्जन, सहजनका पेड़ ।

प्रभात (सं ० क्ली०) प्रकर्षेण भातुं प्रवृत्तमिति प्रभा आदि कर्मणि क, वा प्रकृष्टं भातं दीतिरत्नेति । १ प्रातःकाल, सवेरा । पर्याय—प्रत्यूय, अहमुं ब, कल्य, उपा, प्रत्यूपा, दिनादि, निशान्त, ट्युप्, प्रगे, प्राह्र, गोल, गोसङ्ग, उपस्, उपक, ऊपा, विभात ।

शाकका मत है, कि प्रभातकाल यदि प्रतिदिन हुर्गा-का स्मरण किया जाय, तो जिस प्रकार सूर्यके उद्य होने-से अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार आपद जातो रहती है। प्रभातकालमें आत्महितेच्छु व्यक्तियोंको वैद्य, पुरोहित, भन्दां और दैवज्ञके दर्शन करने चाहिये ।

"वेद्यः पुरोहितो मन्ती दैवज्ञोऽथ चतुधकः । प्रभातकाले द्रष्टच्यो नित्यं सिध्यमिच्छता॥" ( राजवल्लम )

श्रातःश्रस शब्द देखी ।

२ एक देवता जो सूर्य और प्रभासे उत्पन्न माना गया है। प्रमाती (सं • स्त्री • ) १ प्रत्यूप और प्रमास नामक वसुओंकी माता। २ एक प्रकारका गीत जो प्रातःकाल गाया जाता है। ३ दन्तधावन, दातुन । प्रभातीर्थं ( सं ० क्की० ) शिवपुराणोक्त तीर्थंभेद् । प्रमान (सं० क्ली० ) प्र-भा-स्युट्। ज्योति, दीति। प्रभानन्दस्रि-चन्द्रगच्छके एक जैनगुरु, देवभद्के शिष्य और चन्द्रस्रि तथा विमलस्रिके गुरु। प्रभानीय ( सं ० ति० ) प्र-भा-अनीयर् । दीप्ति । प्रमापन (सं ० ह्यी०) दीप्तिसम्पादन, उजाला करना। प्रभापनीय ( सं॰ त्नि॰ ) प्रभापनयोग्य । प्रमापाल ( सं॰ पु॰ ) वोधिसस्वमेद, पक वोधिसस्व । प्रभाप्ररोह् (सं० पु०) आलोकरिंग । प्रभामग्डल (सं० ञ्लो०) १ गोलाकार-रिम । २ दीप्ति-पुञ्ज ।

प्रमामय (सं० ति०) दीप्तिमय ।
प्रमामित-एक वीद्ध-सन्यासी । ये जातिके क्षतिय थे ।
मध्यभारत इनका जन्मस्थान था । ६२७ ई०में ये चीनराज्य गये थे और ६३३ ई०को ६६ वर्षकी अतस्थामें
पञ्चत्वको प्राप्त हुए ।

प्रभारक (सं॰ पु॰) नागभेद, एक नाग।
प्रभाव (सं॰ पु॰) प्र-भू-घञ्। १ तेज, प्रताप, रोवदाव।
२ सामर्थ्य, शक्ति। ३ विक्रम, महिमा। ४ शान्ति।
५ उद्भव, प्रादुर्माव। ६ इतना मान या अधिकार कि जो
वात चाहे कर या करा सके, साख या द्वाव। ७ अन्तःकरणको किसी ओर प्रवृत्त करनेका गुण। ८ प्रवृत्ति
पर होनेवाला फल या परिणाम, असर। ६ सारोचिपमनुके एक पुत जो कलावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए ये। १०
प्रभाके गर्भसे उत्पन्न सुर्थके एक पुत। ११ सुग्रीवके
एक मन्तीका नाम।

प्रभावक ( सं० वि० ) प्रभावशाली ।

प्रभावज (सं० ति०) प्रभावात् जायते इति-जन-उ। १ शक्तिविशेष, एक प्रकारकी राजशिक जो कोष और दण्ड-के क्यमें व्यक्त होती है। २ एक प्रकारका रोग जो देवता, ऋषि, वृद्धादिके शाप वा प्रहादिके हेरफेरसे उत्पन्न होता है। (ति०)३ प्रभावजात, प्रभावसे उत्पन्न।

प्रभावता (सं॰ स्त्री॰) प्रमावस्य भावः तल्-टाप्। प्रभावका भाव।

प्रभावत् (सं ० ति ०) प्रभा-अस्यस्येति प्रभा-मतुप् मस्य व । प्रभायुक्तः।

प्रभावती (सं ० स्त्री०) प्रभावत् छीप्। १ प्रभावविशिष्टा, वह स्त्री जिसका खूव रोवदाव हो । २ कुमारके एक अनुचर मातृगणका नाम । ३ भारतके अनुसार अङ्ग-देशके राजा चित्ररथकी रानी । ४ भारतके अनुसार सूर्य-की पत्नीका नाम । ५ तेरह असरोंका एक छन्द जिसे रचिरा कहते हैं । ६ शिवके एक गणकी वीणाका नाम । ७ प्रभाती नामका एक राग वा गीत । (ति०) ८ प्रभाव-शीछ।

प्रभावती—१ जनपद्मेद । २ नदीविशेष । इस प्रभावती और वाङ्मतीके सङ्गमस्थल पर जयतीर्थं अवस्थित हैं। प्रभावतीगुप्ता—वाकाटकवंशीया एक महाराज्ञी, पहाराजा-धिराज देवगुप्तकी कन्या । इनका विवाह राजा २४ चट्ट सेनसे हुआ था । इनके प्रवरसेन नामक एक पुत था । प्रभावन (सं० वि०) क्षमताशाली, प्रभावशाली ।

प्रभावना (सं० स्त्री०) उद्भावना, प्रकाश ।

प्रभावयूह् ( सं ॰ पु॰ ) वौद्धशास्त्रोक्त देवताभेद् । प्रभाव ( सं ॰ पु॰ ) प्रभावते यः सः प्र-भाव-अच् । वसु-

मेद, एक वसुका नाम । प्रभाषण ( सं ० क्की० ) प्र-भाव-णिनि । प्रकृष्टकपसे भावण, अच्छो तरह कहना ।

प्रभाषित् ( सं ० ति० ) प्र-भाष-णिनि । प्रकृष्टरूपसे कथन-शील, अच्छी तरह कहनेवाला ।

प्रभास (सं ॰ पु॰) प्रभासते शोभत इति प्र-भास-अद्य । १ सोमतीर्थ । यह तीर्थं अतिशय श्रेष्ठ है। इस तीथमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात यज्ञका फल होता है। (तारत ३।०२।५६-५७) स्कन्दपुराणके प्रभासक्एड- में इस क्षेत्रमाहात्त्यका चिस्तृत विचरण लिखा है।
गुजरातमें सोमनाथका मन्दिर इसी तीर्थंके अन्तर्गत
था। अभी इसे सोमनाथ कहते हैं। सोमनाथ देखो।
२ वसुमेद, एक वसुका नाम। ३ कुमारका एक अनुचर।
४ अष्टम मन्वन्तरका एक देवगण। ५ दीप्ति, ज्योति।
६ जैनगणाधिपमेद। (ति०) ७ पूर्णप्रभायुक।
।।
।।

प्रभासन ( सं॰ क्ली॰ ) दीप्ति, ज्योति । प्रभास्तर ( सं॰ बि॰ ) दीप्तिशाली ।

प्रभिद् (सं ० ति ०) प्र-भिद्द-िष्वप् । प्रकृष्टकपसे भेद-कारक ।

प्रभिन्न (सं॰ पु॰) प्र-भिद्-क्त । १ मदमत्त हस्ती, मतवाला हाथी । पर्याय—गर्जित, मत्त, भ्रान्त, मदकल । (वि॰) २ पूर्ण भेद्युक्त ।

प्रभु (सं ॰ पु॰) प्रभवतीति प्र-भु-हु । १ विष्णु । २ शिव । ३ पारद, पारा । ४ शब्द, आवाज । ५ अधिपति, नायक । जो अनुग्रह या निग्रह करनेमें समर्थ हो उन्हें प्रभु कहते हैं । पर्याय—स्वामी, ईश्वर, पति, ईशित, अधिभू, नायक, नेता, परिवृद्ध, अधिप, पालक । ६ वम्बईप्रान्तके कायस्थों की उपाधि । कायस्थ और पत्तनीप्रभु हेखो । ७ स्वामी, मालिक । ८ अष्टम मन्वन्तरीय देवगणभेद । (ति०) ६ नित्य । १० शक्त । ११ श्रेष्ठ ।

प्रभुता (सं ० स्त्री०) मभोभावः तल्-टाप्। १ महत्त्व, बड़ाई। २ शासनाधिकार, हुकूमत। ३ वैभव। ४ मालिकपन, साहिबी।

प्रभुत्व ( सं ॰ पु॰ ) १भुता देखो ।

प्रभुत्वाक्षेप (सं ० पु०) अर्थालङ्कारमेद । इसका लक्षण— यदि कोई खाधीनपतिका नायिका नायकके विदेश आदि जानेके विषयमें कोई विघ्नजनक बिशिष्ट कारण न दिखा-कर केवल अपने प्रभुत्वामिमानसे ही नायकको रुद्ध कर रखे अर्थात् नायकको जो जानेसे रोके, तो वहां यह अल-छुार होता है। जैसे कोई नायिका अपने नायकसे कहती है—'हे प्रिय! सचमुच विदेश जानेसे तुम काफी धन उपार्जन कर सकोगे। जाते समय राहमें कोई कप्ट भी न होगा। इधर मुक्त पर भी कोई विपद्ध पड़नेकी सक्तावना नहीं, पर हे प्राणनाथ! मैं अनुरोध करती है, कि विदेश मत जाओ।' यहां पर नायकके विदेश जानेके प्रति किसी प्रकारका विच्नजनक हेतु नहीं रहने पर भी उस विपयमें केवल नायिकाके प्रभुत्वसे ही नायकका जाना रुक सकता है, इस कारण यह अलङ्कार हुआ।

प्रभुदेव (सं ॰ पु॰) योगशास्त्रके प्रवर्त्तक ऋषिमेद्। प्रभुमक (सं ॰ पु॰) प्रमोर्भक । १ उत्तम घोटक, बढ़िया घोड़ा। (बि॰) २ प्रभुभक्तिपरायण, नमकहलाल। ३ कुलीन।

प्रभूत (सं० ति०) प्र-भू-क । १ प्रचुर, वहुत अधिक । २ उद्गत, निकला हुआ । ३ भूत, जो अच्छी तरह हो चुका हो । ४ उन्नत, वढ़ा हुआ । (पु०) ५ पश्चभूत, तत्त्व । प्रभूतक (सं० ति०) प्रभूतः विद्यतेऽस्य प्रभूत- मत्त्वर्थे (गोवदादिभ्यो द्वन्। पा ५।२।६२ इति द्वन्। प्रमूत- युक्त, वलवान्।

प्रभ्तत्त्व ( सं<sup>1</sup>० ह्वी० ) प्रभृतस्य भावः त्व । प्रचुरता, प्रभृ-तता ।

प्रभूततीक्ष्णद्वस्था (सं० स्त्री०) राजिका, लाल सरसों। प्रभूतरत्न (सं० पु०) १ बुद्धभेद। (ति०) २ वहुधन-युक्त।

प्रभूति (सं ॰ त्नि ॰) प्रभु भावे किन्। १ उत्पत्ति । २ शकि । ३ प्रसुरता, अधिकता ।

प्रभूद्याल कायस्थ अजयगढ्के रहनेवाले एक साधारण प्रमथकार । इनका जन्म संवत् १६१५में हुआ था । इन्होंने "क्षान प्रकाश' नामक प्रमथकी रचना की थी ।

प्रभूवन् ( सं ० ति०) प्र-भू-भ्वनिष् । सामध्येयुक, वलवान् ।

प्रभुवसु ( सं॰ ति॰ ) प्रभूधनशाली इन्द् ।

प्रभू:णु (सं० व्रि०) प्रभवतीति प्रन्यू (ग्ळाजिश्यक्व गाउ । पा ३ १।/३९ ) इति ग्स्नु । १ क्षम, समर्थं । २ शक्त, योग्य । ३ प्रभाशील ।

प्रभृति ( सं ० अव्य० ) प्र-भृ-किच् । १ इत्यादि, आदि । वगैरह । ( स्त्रो० ) २ प्रकृष्ट आयोजन ।

प्रश्रृथ (सं ० ति०) प्रभृ-वाहुं थक् । प्ररूप्टमरण । प्रमेद (सं ० पु०) प्र-सिद्द-घञ् । १ मेद, विभिन्नता । पर्याय—प्रकार, विशेष, भिदा, अन्तर । २ स्फोटन, फोड़ कर निकलना । प्रभेदक (सं० ति०) १ प्रक्रप्रक्षपसे भेदक। २ विभाग-कारो।

प्रमेदन (सं० हो)०)१ प्रहायकपसे भेदन। (ति०) २ प्रमेदक।

प्रभेदनी (सं० स्त्री०) वह अस्त्र जिससे छेद किया जाय। प्रमेदिका (सं० स्त्री०) ? वेधन अस्त्रविशेष, वेधने या छेदने-का अस्त्र । २ भेदकारिणो, छेद करनेवाली।

प्रमेश्वर (सं॰ पु॰ ) शिवपुराणोक्त तीर्थविशेष । प्रमंश (सं॰ पु॰ ) प्र-मंश-अच् । सप्ट होना, विच्छिन्न होना ।

प्रभंशधु (सं ० पु०) सुश्रुतोक्त नासागत रोगभेद, पोनस
रोग । अधिक तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थं स्ंघने, स्यंकी
ओर देखने और नाकमें अधिक वत्ती आदि हुंसनेसे
उसके भीतरका मर्मस्थानं दूपित हो जाता है और अधिक
छीकें आने लगती हैं। इसको क्षवधु कहते हैं। पीछे
जव मूर्दि ण सिद्धात, गाढ़ा, विदग्ध लवणविशिष्ट कफ
पित्तसे तापित हो कर नाक हो कर गिरता है, तव उसे
प्रभंशधु रोग कहते हैं। (सुधु त निदानस्थात ३२ न०)
प्रभंशिन (सं ० ति०) प्रभंश अस्त्यथें इति। प्रभंशधु।
प्रभंशुक (सं ० ति०) प्रभंश शिल्प होनी या अलग
करनेवाला।

प्रस्रष्ट ( सं ० ति० ) प्रमन्श-क । १ भ्रंशयुक्त, गिरा हुआ । २ दृटा हुआ ।

प्रभ्रष्टक ( स ॰ पु॰ ) शिखावलम्बिनी माला, सिरसे लट-कतो हुई माला ।

प्रमंहिप्रीय ( सं ० क्ली० ) सामभेद ।

प्रमगन्द (सं॰ पु॰) १ वार्द्ध्यपिङ, स्दस्तोर । २ राजमेद, एक वेदोक्त राजाका नाम ।

प्रमङ्गन ( सं ० हो० ) अप्रगामी, अगुआ ।

प्रमणस् (सं ० ति ० ) प्रकृष्टं मनी यस्य, संज्ञात्वे णत्वं अन्यत अणत्वं । १ हर्पयुक्त, प्रसन्न । २ सावधान, होशियार । ३ दयालु, मेहरवान ।

प्रमर्ग्डल ( सं ० पु० ह्यो० ) चक्तेमि, पहियेका धुरा । प्रमतक ( सं ० पु० ) प्राचीन ऋषिभेद ।

प्रमति (सं ॰ दि॰) प्रहाश मतिर्यस्य । १ प्रहाशमति युक्त, । उत्तम युद्धियाला । २ प्रतीचीश्वर सुनय राजाके पुरी-

हित कश्वपवंशीय ऋषिमेद । ३ च्यवन ऋषिके एक पुत्र-का नाम । ४ गृत्समदऋषिवंशीय वागिन्द् ऋषिके पुत्र ऋषिमेद । ५ नृगके एक पुत्रका नाम । ६ उसी वंशके वत्सशीके एक पुत्रका नाम ।

प्रमत्त (सं० ति०) प्रमाद्यति स्मेति प्र-मद-गत्यर्थे क । तस्य णत्वा-भावः । १ उन्मत्त, मतद्याला । २ विक्षिप्त, पागल । ३ जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो, जो सावधान या सचेत न हो । ४ सन्ध्याधिहीन, जो सन्ध्यादि नहीं करता हो । (पु०) ५ भास पक्षी । ६ काकविशेष, एक प्रकारका कीवा । ७ लाङ्गलीवृक्ष ।

प्रमत्तगीत (सं० क्ली० प्रमत्तेनं गीतं। प्रमत्त कर्नु क गीत, वह गान जिसे पगला आदमी गाता हो।

ममत्तता (सं॰ खो॰) १ मस्ती । २ पागलपन । पूमत्तवत् (सं॰ बि॰) पूमत्त-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। पूमादयुक्त, वावला ।

पूमथ (सं ॰ पु॰) प्रमथतीति प्र-मथ-अच्। १ घोटक, घोड़ा। २ शिवके पारिपद। इनको संख्या ३६ करोड़ वताई गई है।

"वर्तिंशत्तु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमाः। तलैकत सहस्राणि भागे पोड्श संस्थिता॥" इत्यादि ( कालिकापु० २६ स०)

कालिकापुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—
महादेवके मुखके फेनसे प्रमथोंकी उत्पत्ति हुई है। जव
ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों मिल कर फिरसे जगत्सृष्टि विषय पर विचार कर रहे थे, उसी समय चार
भागोंमें विभक्त छह करोड़ प्रमथगण आ कर महादेवकी
अर्चना करने लगे। इनमेंसे एक भागमें नानाक्तपधारी जटा
और अर्द्ध चन्द्रविशिष्ट १३ हजार प्रमथ थे। ये सवके
सव भोगविमुख, ध्यानपरायण, योगो और मदमात्सर्यादि
रिहत थे। कभो भी किसीसे कुछ मांगते न थे।
स्कचन्द्रनादि उपमोग्य विषयमें उनका अनुराग नहीं था।
स्कचन्द्रनादि उपमोग्य विषयमें उनका अनुराग नहीं था।
स्वीपुतादि संसारी सुखकी उन्हें जरा भी चाह न थी।
योगिशिक्षाके लिये सर्चदा ध्यानपरायण हो वे महादेवको
चारों ओरसे ग्रेरे रहते थे।

प्तिद्धित्र प्रम्थगण कामुक और महादेवको कीड़ा-विषयमें सहायता करते हैं। ये सब प्रमथगण विचित्न आभरणोंसे अलंकत, जटाज्र और अद्ध चन्द्रचिशिष्ट, शिपकी तरह शुभवर्ण वृपाढढ़, उमाकी तरह सुन्दरी कामोनियोंसे सेवित, विचित्नमाल्य द्वारा विभूषित हैं, इस प्रकार नाना प्रकारके मनोहर वेशोंमें प्रमथगण उमाके साथ की हापरायण महादेवका अनुगमन करते हैं। ये सव महादेवकी तरह अद्ध अङ्गमें गौरीका रूप धारण किये हुए हैं। महादेव पार्वतीके साथ जब सुखविलासादि करते हैं, उस समय ये महादेवके द्वार-देशकी रक्षा करते हैं। प्रतिदिन जिस समय महादेव आकाशपथसे विचरण करते हैं, उक्त प्रमथगण उस समय उनके पीछे पीछे चलते हैं तथा जिस समय वे ध्यानमें रहते हैं उस समय ये उनकी परिचर्या करते हैं। ये प्रमथगण मायावी हैं।

कुछ प्रमथगण युद्धस्थानमें जा कर शत्का संहार करते हैं, ऐसे प्रमधोंकी संख्या ६ करोड़ है। गायक प्रमथ-गण मृदङ्ग पणव आदि वाद्योंके साथ मधुरत्वरसे गान करके महादेवके समीप नृत्य करते हैं। तीन कोटि प्रमध नाना रूप धारण कर महादेवके पीछे पीछे चलते हैं। सर्वशास्त्रार्थविद् वलवान् प्रमथगण मायावलसे सभी कार्य अधिक प्या, अणिमादि ऐश्वर्रशाली कर सकते हैं। प्रमथगण मुहत्तं भरमें तीनों छोकका परिक्रमण कर आते हैं। रुद्र नामक अन्य प्रमथगण जटा और अद्ध चन्द्र द्वारा भूषित हो सुरेन्द्रके आदेशसे हमेशा खर्गमें रहते हैं। एक कोटि प्रवलपराकम प्रमथ निरन्तर महादेवकी सेवा किया करते हैं. जो सब प्रमथ पावियोंको अपनी महिमासे विस्मया-न्वित करके धार्मिकोंका प्रतिपालन और उनका विस्मय दूर करते, वे वराहगणको निधन और महादेवकी सेवा करने के लिये उत्पन्न हुए थे। महादेवने वराह नरसिंह और हरि-को देख कुछ काल तक चिन्ता करके जो शब्द किया था, उसीसे इन सबोंकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण ये वहु-क्षपी हुए। महावलवान् प्रमथगण यद्यपि क्र्र कार्य नहीं ं करते, तो भी उनकी आकृति ही ऐसी भयङ्कर है, कि सब कोई भय खाते हैं। पर्वतप्रान्त पर जो फल, फूल, पत, जल आदि चढाये जाते, वही इनका खाद्य है। कभी कभी ये सब महादेवका भोजन भी खा लिया करते हैं। प्रमथ-गण चैत्रमासकी चर्त्दशी भिन्न सभी तिथियोंमें आमिप भोजन करते हैं। (कालिकायु॰ ३१ अ०)

३ धृतराधूके एक पुतका नाम ।

प्रमथन ( सं० स्त्री० ) प्र-मथ भावे वयुट् । १ वध, हत्या । २ घलेशन, यन्त्रणा देना । ३ विलोड्न, मथना । ४ उन्मूलन, जड्से उखाड़ना । ५ मटन, रौंदना । ६ त्याग, छोड़ना । ७ परिभव, अपमान, तिरष्कार । ( ति० ) ८ प्रमायक । प्रमथनाथ ( सं० पु० ) महादेव, शिव ।

प्रमथा (सं० स्त्री०) प्रमथित विदोपानिति-प्र-मथःअच्। १ हरीतकी, हड़। यह विदोष-नाशक है, इसीसे इसका नाम प्रमथा पड़ा। २ पीडा. तकलीफ।

प्रमथाधिप (सं॰ पु॰) प्रमथानां अधिपः । महादेव, शिव । प्रमथालय (सं॰ पु॰ ) नरकभेद ।

प्रमधित (सं० क्री०) प्रकर्षेण मथितं। १ निजल तक् मद्दा जिसमें ऊपरसे पानी न मिला हो। २ नवनीत, मक्क्षन। (ति०,२ प्रकर्षक्षपसे मधित, खूद मधा हुआ।

प्रमद् (सं क्यों ) १ ज्योति । २ इच्छा, प्रवृत्ति । प्रमद (सं ० पु०) प्र-मद-( प्रमदसम्मदी हर्षे । पा ३।३।६८) इति अप् । १ हर्ष, आनन्द । प्रमाद्यत्यनेनेति प्र-मद करणे अप् । २ प्रस्तूरफल, धत्रेका फल, फूल । दानव-चिशोष । ४ चशिष्टके एक पुतका नाम । ये उत्तम मन्वन्तर में सप्तर्षिके मध्य एक थे । ५ मत्तता, मतवालापन (ति०)६ मत्त, मतवाला ।

प्रमद्क (सं० पु०) १ परलोकसत्तावादी नास्तिकमेद। जो सव नास्तिक परलोककी सत्ता स्वीकार नहीं करते, उनका कहना है, कि इहलोकके अलावा और कोई लोक है ही नहीं। प्रदस्तार्थे कन्। २ प्रमद हेखे।

प्रमद्कानन (सं० क्की०) प्रमदानां काननं (ङारो. इन्द्रसोर्चहुत्रम्। पा (१३१६३) इति हस्तः वा प्रमदाय हर्षाय यत् काननं। प्रमदावन, राजाओंके अन्तःपुरोचित उद्यान।

प्रमद्वन (सं ० क्ली०) प्रमदानां वनं, ङ्यापोरिति हसः। प्रमोदकानन, आनन्दकानन ।

प्रमदा (सं ० स्त्री०) प्रमदयति पुरुषमिति प्र-मद-हर्थे-णिच्-अच्-वा प्रमदो हर्षोऽस्त्यस्या इति अच्-टाप्। १ उत्तमा-स्त्री, सुन्दरी स्त्री। प्रियंगु, मालकंगनी। ३ चतुर्दशा-क्षरपादक वृत्तिविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें १४ अक्षर रहते हैं। प्रमदाकानन (सं० ह्री०) प्रमदानां काननं । प्रमद्वन । प्रमदावन (सं० ह्री०) प्रमदानां वनं । प्रमद्वन । प्रमद्वितव्य (सं० ह्री०) प्रमदानां वनं । प्रमद्वन । प्रमद्वितव्य (सं० ह्री०) प्रमद्वन्तव्य । उपेक्षायोग्य । प्रमहरा (संक्षी०) शुनककी माता, कवकी भार्या । गन्धवीराज विश्वावसु और मेनका अप्सरासे इसका जन्म हुआ था । स्थूलकेश मुनि इसका लालन पालन करते थे । मुनिने प्रमति मुनिके पुत कवके साथ इसका विवाह कर दिया । (भारत ।। अरु व ह्येयुक्त, प्रसन्न । प्रमनस् (सं० ति०) प्रकृष्टं मनो यस्य । ह्येयुक्त, प्रसन्न ।

ì

प्रमन्थ (सं o पु o) अन्युत्पादक काष्ट्रमेद । किसी किसी पुराविद्का विश्वास है, कि यही शब्द रूपकमावमें श्रीकलोगोंके निकट Prometheus नामसे वर्णित हुआ है। अन्नि देखी।

प्रमना (हिं० त्रि०) प्रमनस् देखी ।

प्रमन्यु (सं ० पु०) प्रियन्नतवंशीय वोरन्नतके एक पुत,
मन्यूके कितप्र श्नाता। (मागवत ५।१५।१५)
प्रमन्द (सं ० पु०) सुगन्धयुक्त वृक्षमेद।
प्रमन्द्वी (सं ० स्त्री०) सुगन्धयुक्त वृक्षमेद।
प्रमन्यु (सं ० ति०) प्रकृष्टं मनुर्थस्य। १ अतिशय कोधयुक्त, वहुत गुस्सावर। पु०) २ अति कोध, वहुत गुस्सा।
प्रमय (सं ० पु०) प्र-मी-वधे मावे-अच्। वध, हिंसा।
प्रमय (सं ० ति०) प्र-मी-वधे कर्त्तीर उन्। हिंसक, मारनेवाला।

प्रमर (सं॰ पु॰) प्रकृष्टकपसे मारियता, वह जो उत्तमकपः से शबुका दमन करता हो।

प्रमरण (सं ० ह्यो०) प्रकृष्टकपसे मदंन, अच्छी तरह दमन करना।

पमर्दक (सं ० ति०) प्र-मृद्ध-पञ्चल् । प्रकृष्टकपसे मदेक । प्रमहैन (सं ० ति०) प्रमृद्धाति प्र-मृद्ध-ल्यु । १ प्रकृष्टकपसे मदेक, खून मर्दन करनेवाला । (पु०) २ दैत्यविशेष, एक असुरका नाम । ३ विष्णु समस्त जगत्का मर्दन करते हैं, इसीसे उन्हें प्रमर्दन कहते हैं। ३ प्रकृष्टकपसे मर्दन, अच्छो तरह मलना दलना । ४ खून कुचलना, रींदना । ५ दमन करना, नष्ट करना ।

प्रमर्दितु ( सं ० ति० ) प्रमर्दनकर्त्ता, मर्दन करनेवाला ।

प्रमर्दिन् ( सं ० ति० ' पृष्ठग्रहत्त्वे मर्दनशील, अच्छी तरह दलन करनेवाला ।

प्रमहस् (सं ० ति०) पृक्षप्टं महः तेजः यस्य । पृक्षप्ट तेजस्वी, पुभावशाली ।

प्रमा ( सं॰ स्त्रो॰ ) प्रमोयते इति प्रमाङ् माने ( आतश्चोप सर्गे । पा शश्चश्वः ) इति अङ् टाप् । १ यथार्थं ज्ञान, शुद्धवोध ।

नैयायिकोंके मतसे अथविज्ञानका नाम प्रमा है। 'यत् मर्थविज्ञान' धा प्रमा' ( नात्वायन ) जिससे अर्थका विज्ञान मर्थात् सम्यक् वोध हो, उसे प्रमा कहते हैं। जिसमें जो है, उसमें उसके अनुभवका नाम प्रमा है। 'यत यदन्ति तत तस्यानुभवः' 'तद्वति तत्प्रकारको द्वां' ( नात्धा ) जहां जैसी वात है, वहां उस प्रकारके ज्ञानका नाम प्रमा है। इन सव वचनोंका स्थूल तात्पर्य यह है, कि भ्रम भिन्न ज्ञानका नाम प्रमा है। जिस ज्ञानमें किसी प्कारका स्रमप्रमाद नहीं है, वही प्रमापदवाच्य है। भ्रमप्रमादादि दोष दिखाई देनेसे अप्रमा और भ्रमश्रान्य होनेसे ही प्रमा होगी।

जिसमें जो गुण और दोष है, उसे उसी गुण और दोषका जाननेका नाम यथार्थ ज्ञान वा प्रमा है। जैसे ज्ञानी व्यक्तिको पिएडत और अन्धेको अन्धा जानना। जिसमें जो गुण और दोष नहीं है, उसे उसो गुण गा दोषका जाननेका अयथार्थ ज्ञान वा अप्रमा कहते हैं। जैसे पिएडतको मूर्ख और रज्ज्को सर्पके जैसा जानना। विशेष विवाण प्रमाण शन्दमें देखी। २ नींव। ३ माप। प्रमाण (सं० क्को०) प्रमीयते विश्वमनेनेति प्र-मा-रुगुद्। १ विष्णु। २ नित्य। ३ मर्यादा, थाप, साख। ४ गास्त्र। ५ एक अलङ्कार। इसमें आट प्रमाणोंमेंसे किसी पक्का कथन होता है। ६ सत्यता, सचाई। ७ निश्चय, यकीन। ८ प्रामाणिक वात या वस्तु, आदरकी चीज। ६ इयत्ता, हद। १० मूलघन। ११ प्रमाणपत्न, आदेश-पत्न। १२ वह कारण वा मुख्य हेतु जिससे ज्ञान हो, वह वात जिससे कोई दूसरो वात सिद्ध हो, प्रमा, सबूत।

सभी दशंनशास्त्रमें प्रमाणका विषय आलोचित हुआ है। अति संक्षिप्तमावमें उसका विषय यहां लिखा जाता है। सांख्यदर्शनमें कपिलने जो प्रमाणका सूत लिखा है, वह यों है—"द्वयोरेकतरस्य वाप्य सिन्नकृष्टार्थंपरिच्छितेः प्रमा तत्साधकं तिलिविधं प्रमाणम्।" वस्तु जव तक समम्ममं नहीं आती है, तव तक वह असिनकृष्ट या असम्बन्ध रहती है। असिनकृष्ट वस्तु इन्द्रियदि द्वारा सिनकृष्ट अर्थात् बुद्धग्राह्मद् होनेसे जो उस वस्तुका परिच्छेद, इयत्ताका धारण या स्वरूपनिश्चय होता है, वही परिच्छेद, वा अवधारण प्रमा कहलाता है। प्रमा प्रमात्पुरुष अथवा बुद्धिका धर्म है। जो उस वस्तुनिश्चयकारिणी प्रमाका साक्षात्कारक अर्थात् जनक है, उसीको प्रमाण कहते हैं।

वस्तु जब तक इन्द्रियके साथ संयुक्त नहीं होतो, तव तक वह असन्निकृष्ट रहती है। पीछे वह असन्निकृष्ट वस्तु सन्निकृष्ट अर्थात् इन्द्रियसंयुक्त हो कर अथवा पुरुषके निकट परिच्छेद पाती है; अर्थात् वह एतद्रृप और अमुक इत्याकारमें अवधृत होती है। वह अध्य-वसाय वा बुद्धिका विकाश विशेष प्रमा नामसे प्रसिद्ध है।

उक्त प्रकारका प्रमा-क्षान साक्षात् सम्बन्धमें जिसके द्वारा उत्पन्न होता है, उसका नाम प्रमाण है। अधिक कहना क्या, प्रमाण द्वारा ही वस्तुकी परीक्षा सिद्ध होती है। अव प्रश्न हो सकता है, कि प्रमाण कितने प्रकारका है, एक है वा अनेक ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि जब बस्तु नाना प्रकारको है और उनकी अवस्था भी अनेक है -- अतीतावस्था, अनागता-वस्था और वर्त्तमानावस्था, तव स्यूल, सूक्ष्म, दृश्यादृश्य पदार्थ परिपूर्ण वहुगुणयुक्त जगत्की परीक्षाके लिये जी एकमाल प्रमाण रहेगा सो असम्भव है। जगत्को कोई भी वस्त अखरड दराडायमान नहीं है, परीक्षासाधक पदार्थ एक होनेसे जिस समयमें परोक्षितव्य वर्त्तमान है, उस समयमें परीझासाधक सामग्री रह भी सकती है या नहीं भी रह सकतो है और जिस समयमें परिशासाधक प्रमाण विद्यमान है, उस समय परीक्षितव्य वस्तु नहीं भी रह सकती है। इस प्रकार होनेसे परोक्षा अप्रतिष्ठित होती है। अप्रतिष्ठितत्व दोषपरिहारके लिये एक ऐसा पदार्थ खोकार्य है, जो तोनोंकालमें अवस्थायो है। प्रमाणके एक

होनेसे तैकालिक परीक्षा सिद्ध नहीं होती। सुतरां वर्तमान परोक्षाके लिये जिस प्रकार सर्वसम्मत प्रत्यक्ष उपस्थित है, उसी प्रकार अतीत और अनागत परीक्षाके लिये प्रगाणान्तरका रहना आवश्यक है। परीक्षाकार्यको जगदन्तःपातो स्रोकार करना होगा, नहीं करनेसे जगत्की असम्पूणताकी आपित्त होती है। अतः यह क.ना या स्रोकार करना उचित है, कि जगत्की अवस्था और पदार्थ जिस प्रकार अनेक है, उसी प्रकार तहुप्राहक प्रमाण भी अनेक है।

प्रमाणकी संख्या कितनी है, इसमें वहुतोंका मतभेद् देखा जाता है। कोई एक, कोई दो, कोई तीन, कोई चार, कोई पांच और कोई छः प्रमाण स्वीकार करते हैं। वेदान्तकारिकामें इस प्रमाणके मतभेदिविषयमें ऐसा छिखा है—

"प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणाद्युगतौ पुनः । अनुमानञ्च तचापि सांख्याः शब्दञ्च ते उमे ॥ न्यायैकदेशिंनोऽप्येवमुपमानञ्च केषलम् । अर्थापच्या सहैतानि चत्वार्यादुः प्रभाकराः ॥ अभावषष्ठान्येतानि भट्टावेदान्तिनस्तथा । सम्भवैतिह्ययुक्तानि इति पौराणिका जगुः॥"

(वेदान्तका०)

न्यायदर्शनमें प्रमाणका विषय सविस्तार लिखा है।
महर्षि गौतमने खप्रणीत गौतमस्त्रमें जो सोलह पदार्थोंका
स्वीकार किया है, उसके आरम्भमें ही प्रमाण शब्दका
उल्लेख देखा जाता है। कारण, प्रमाण द्वारा सभी
पदार्थ स्थिर किये जाते हैं। यही कारण है, कि उन्होंने
पहले नमाण शब्दका ही उल्लेख किया है।

महर्षि गीतमने चार प्रकारका प्रमाण माना है। 'श्रयः क्षानुमानोपमानग्रहनः श्रमाणानि" (गीनम् ११११) प्रमाण शन्द प्र+मा + त्युट प्र-उपसग, मा-घातु और त्युट् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। प्र-उपसगैके साथ मा-घातुका अथ यथायञ्चान और त्युट् प्रत्ययका अथं करण है। तीनों मिल कर प्रमितिके कारणका बोध करता है, इसीसे इसको प्रमाण कहते हैं।

कार्यमात ही कर्त्ता है और वह करणकी अपेक्षा करता है। कर्त्ता और करणके नहीं रहनेसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। बस्नादि कार्यका कर्ता तन्तुवाय हैं और तुरी आदि उसका करण है। इसी प्रकार ज्ञान भी जब एक कार्य है, तब उसके कर्ता और करण अवश्य है। जिसके यापार के बाद ही कार्य उत्पन्न होता है, उसका नाम करण है। आत्माके यत्नसे ज्ञान पैदा होता है, उसका नाम करण है। आत्माके यत्नसे ज्ञान पैदा होता है, इसोसे ज्ञानका कर्ता आत्मा है। इन्द्रिय और व्याप्तिज्ञानादि आदिके व्यापारके वाद ज्ञान उत्पन्न होता है, इसोसे इन्द्रिय और व्याप्तिज्ञानादि ज्ञानके करण हैं। उस ज्ञानका करण ही प्रमाण है। यह प्रमाण चार प्रकारका है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान भीर शब्द। प्रत्यक्ष शब्दसे ज्ञानविशेषका और ज्ञानविशेषके करणका भी बोध होता है।

त्रत्यक्ष प्रमाणकः विषय प्रत्यक्ष शन्दः देखी ।

अनुमान शब्द अनुमिति-करणका वीधक है। इस कारण अनुमितिका करण ही अनुमान प्रमाण है। अनु पश्चात्, मान अर्थात् ज्ञान, पश्चाद् ज्ञान ही अनु-मान है। व्याप्य पदार्थ (धूमादि)-के दर्शनान्तर व्यापक पदार्थ (वहि प्रभृति )-के निश्चयको अनुमिति कहते हैं। जब किसी मकानमेंसे दूरसे धूथाँ निकलते दिखाई देता है, तव उस मकानमें विह है, ऐसा सवींको प्रतीत होता है। नदीमें जलवृद्धि वा वेगकी अधिकता देखनेसे किसी देशमें अवश्य वृष्टि हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहां पर उक्त विह और वृष्टिका निश्चय किसी इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ, पर व्याप्य धूमादि वा नदीवृद्धि और चेग देख कर ही यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, इसीसे उक्त निश्चयको अनुमान कहते हैं। यहां पर धूम वहिका व्याप्य और विह धूमका व्यापक है। नदीवृद्धि और वेग वृष्टिका व्याप्य तथा वृष्टि नदीवृद्धि और वेगकी व्यापक है । जिस पदार्थके नहीं रहनेसे जिस वस्तुका ्अभाव रहता है, उस पदार्थंकी व्याप्य उक्त वस्तु होती है। जैसे, वहिके नहीं रहनेसे धूम कभी भी नहीं रह सकता, . अतएव घूम विह पदाथका व्याप्य और घूमका व्यापक है। वृष्टि नहीं होनेसे नदीकी वृद्धि या जलका वेग कभी नहीं हो सकता, अतएव नदीवृद्धि वृष्टिकी व्याप्य और वृष्टि . उसको ब्याएक है ।

जो ज्ञान जिस पदार्थके बाद उत्पन्न होता है, वही Vo. XIV- 151 पदाय उस ज्ञानका करण होता है। अमुक स्थानमें विह है, यह ज्ञान धूम देखनेके वाद उत्पन्न होता है तथा नदोकी वृद्धि देखनेके वाद वृष्टि हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। अतप्त धूमदर्शनादि वह्यादिकी अनु-मितिका करण हुआ है। इसी प्रकार उपमितिका करण उपमान और शब्दवीधका करण शब्दप्रमाण स्थिर करना होगा।

गौतमस्त्वमे अनुमानका लक्षण इस प्रकार निर्दिए हुआ है,—

"अथ तत्पूर्वेकं तिविधमनुमानं पूर्वेवत् शेपवत् सामा-न्यतो दृष्टश्च" (गौतमस्० १११,५)

किसी व्याप्य पदार्थको देख कर अन्य किसी व्यापक-का जो निश्चय होता है, उसे अनुमिति कहते हैं। अनु-मितिस्थलमें पहले लिङ्गदर्शन, पीछे लिङ्गलिङ्गी अर्थात् हेतुसाध्यका सम्बन्धज्ञान वा व्याप्तिज्ञान, अन्तमे अप्रत्यक्ष अर्थ (साध्य) का ज्ञान होता है। इसी साध्यका ज्ञान अनुमिति है। व्याप्तिज्ञान वा लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्धदर्शन ही करण है, परामर्श अर्थात् साध्यव्यातियुक्त हेतुका पक्ष-वृत्तित्वद्यान ही व्यापार है। लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध अर्थात् ध्याप्तिज्ञान करण होनेके कारण अनुमान है। क्योंकि, पहले लिङ्गदशन, पीछे व्याप्तिका ज्ञान वा स्मरण हुसा करता है। अनु अर्थात् पश्चात् या लिङ्गदर्शनके वाद मान अर्थात् लिङ्गलिङ्गोके सम्वन्ध-न्नान होनेका नाम ही अनुमान है। यह अनुमान प्रमाण प्रत्यक्षपूर्चेक है। क्योंकि, लिङ्गका प्रत्यक्ष नहीं होनेसे लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध स्मरण नहीं हो सकता । लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध भी पहले प्रत्यक्ष हुआ है। कारण, अननुभूत विषयका स्मरण नहीं हो सकता । जिस व्यक्तिने महानस (रसीई-घर )-में विह और सहचार अर्थात् सहावस्थान प्रत्यक्ष किया है, क्रमशः पर्वत पर धूम दिखाई देनेसे उसीको विहिधूमके सम्बन्ध वा व्याप्तिका स्मरण हो सकता है। जिस व्यक्तिने वहि और धूमके सामानाधिकरण्यका कभी भी अनुभव नहीं किया; उसके लिये वहिधूमकी ध्यातिका स्मरण विलक्कल असम्भव है। कहनेका तात्पर्य यह, कि अव्यवहित भावमें हो चाहे व्यवहित भावमें, अनुमानके मूलमें अवश्य ही प्रत्यक्ष रहेगा।

पहले ही कहा जा चुका है, कि व्याप्य पदार्थको देख कर अन्य किसी व्यापकका णो निश्चय होता है, वही अनुमिति है। किसी पदार्थंको देखनेसे ही अन्य पदार्थका निश्चय होता है, सो नहीं। यदि ऐसा होता, तो गाय देखनेसे घोड़ेका और घट देखनेसे परका निश्चय हो सकता या। इस कारण व्याप्य देखनेसे ही व्यापकका निश्चय होता है, यही अवधारण करना होगा। जैसे-धूम देखनेसे पर्वतका, गृहादिमें अग्नि तथा नदी-वृद्धि देखनेसे वृष्टिका और पत देखनेसे लेखकका निर्णय होता है। यहां पर धूम वहिका व्याप्य है। व्याप्तिविशिष्ट होनेके कारण हो उसका नाम व्याप्य पड़ा - है। साध्यशून्यदेशमें अर्थात् साध्य जिस स्थान पर रहता है, उस स्थानमें नहीं रहनेको व्याप्ति कहते हैं। ृ शब्द जिसकी अनुमिति होता है, उसका नाम पक्ष है। ्यहां पर विहिष्ृष्टि प्रभृतिकी अनुमिति होती है, इसीसे ्र विह्न और वृष्ट्यादि साध्य है। विह्नयून्यदेशमें कभी धून नहीं रहता अर्थात् विह नहीं है, वहां धूमका असन्ताव है। इस कारण धूम विह्नका व्याप्य है। वृष्टि नहीं ंहोनेसे नदी किसी तरह वढ़ नहीं सकती। जहां अधिक वृष्टि होती है, वहीं नदीकी वृद्धि है। इस कारण वृष्टिका न्याव्य नदीवृद्धि है, ऐसा जानना होगा। पर्व तादि पर . विह्नव्याच्य धूमादिका दर्शन हो कर पीछे विह्नव्याप्य धूम-विशिष्ट पव<sup>९</sup>तादि और वृष्टिच्याप्य नदी वृद्धिविशिष्ट देशादिका निश्चय होता है। पीछे बहिमान पव तादि और नदीवृद्धिविशिष्ट देशादिसप अनुमिति उत्पन्न होती े है। इस प्रकार जिस विह आदिका अनुमान होता है, उसका कारण जिस पदार्थका प्रत्यक्ष होता है, उसके साथ ् इन्द्रियका संयोग हुए विना नहीं होता। यहां पर्वे तादि पर जो वहिका निर्णय अथवा देशादिमें वृष्टिका निर्णय हैं, उसमें इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं है तथा किसी वाक्य द्वारा भी उसका ज्ञान नहीं होता। इस कारण उसे शब्दप्रमाण भी नहीं कह सकते। अतः साध्यव्याप्य हेतु-, विशिष्ट पक्ष पर्वतादिक्षप झान हो कर जो जान उत्पन्न होता है, उसीका नाम अनुमिति है।

यह अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्व वत्, शेववत् और सामान्यतोद्वष्ट । इनमेंसे कारणहेतुक, अनुमानका नाम पूर्व वत् है। यथा—मेघकी उन्नति देख कर शोध वृष्टि होगी, इस प्रकार अनुमान तथा रोगविशेष देख कर मृत्यु सन्निकट है, पेसा अनुमान है। यहां पर वृष्टि-का कारण मेघकी उन्नति और मृत्युका कारण रोगविशेष है। ये दोनों हेतुज्ञापक होनेके कारण वह अनुमिति कारणिङ्किक अनुमान हुई है।

कार्यहेतुक अनुमान अर्थात् कार्यको हेतु करके कारण-की जो अनुमिति होती है, उसके कारणको शेपवत् अनुमान कहते हैं। यथा—धूमादि देख कर अनि आदि-की अनुमिति और नदीका वेगाधिक्य देख कर अतीतवृष्टि अनुमिति।

जहां कार्य और कारण-भिन्नहेतुक जो अनुमान होता है, उसे सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। यथा—जन्यत्थ देख कर विनाशित्वकी अनुमिति इत्यादि।

नव्य नैयायिकोंने, केवलान्वयि अनुमानका नाम पूर्वेवत् अनुमान, केवलव्यतिरेकी अनुमानका नाम शेष-वत् अनुमान और अन्वयव्यतिरेकी अनुमानका सामा-न्यतोद्वष्ट अनुमान नाम स्थिर किया है।

जहां वातिरेक वासि न रह कर केवल अन्वय-वासिकान रहता है और उससे जो अनुमिति उत्पन्न होती है, उसके कारणको केवलान्वयी कहते हैं। अन्वय-वासिकान न रह कर वातिरेक वासिकानके लिये जो अनुमिति होती है, उसका कारण केवलवातिरेकी है। दोनों वासिकानसे जो अनुमिति उत्पन्न होती है उसका कारण अन्वयवातिरेकी है। वासि दो प्रकारकी है, अन्वयवासि और वातिरेकवासि। नवा नैयायिकोंने ये सब विषय ले कर इतने स्क्ष्मभावमें विचार किया है, कि उसका समक्तना वहुत कठिन है।

पूर्ववत अनुमान—कारण और कार्यके मध्य पहले कारणकी सत्ता रहती है। पीछे अर्थात् उत्तरकालमें उससे कायकी उत्पत्ति होती है। इस लिये पूर्व शब्दका अर्थ कारण और शेष शब्दका अर्थ कार्य है। अतपव जहां कारण द्वारा कार्यका अनुमान होता है, उसीका नाम पूर्ववत् है। यथा—मेघकी उन्नति देख कर वृष्टिका अनुमान। पूर्ववत् शब्द मत्वर्थंप्रत्यय और वितिमृत्यय दोनों प्रकारसे सिद्ध हो सकता है। मत्वर्थं-

13. - v. ..... 16.

'प्रत्यय द्वारा सिद्ध होनेसे पूर्वेवत् (शब्दका अर्थ पूर्वेयुक है। पूर्व ग्रव्हका अर्थ फारण है। कारणयुक्त अनु-मानका उदाहरण पहले ही दिखळाया जा चुका है। पूर्व-वत् शब्द वतिप्रत्यय करके निष्पन्न होनेसे इसका अर्थ पूर्वतुल्य होता है। तदनुसार दूसरी तरहसे अनुमानका हैविध्य लिखा जाता है। जहां सम्बन्ध ग्रहणकालमें अर्थात् व्याप्तिज्ञानकालमें लिङ्गलिङ्गी वा साध्यसाधनका प्रत्यक्ष होता है, पीछे प्रत्यक्षपिद्वष्ट साधन द्वारा प्रत्यक्ष-वर्शनयोग्य साध्यका अनुमान होता है, वहां पूर्वद्रुष्टके तुल्यह्रप साध्यका अनुमान होनेके कारण उसका पूर्व-वत् नाम पड़ा है। पाकशालामें धूम और बहिका सम्बन्ध वा व्याप्ति गृहीत हुई है । कालान्तरमें तथाविध अर्थात् महानसदृष्ट धूमके समान धूम देख कर पर्वतादि पर तथाविध बहिका अनुमान होता है। जहां व्याप्तिप्रहण-कालमें साध्य और साघन दोनोंका प्रत्यक्ष होता है, वहां तथाविध साधन द्वारा तथाविध साध्यका अनुमान होने-से पूर्ववत् अनुमान हुआ करता है। इस अनुमानमें प्रत्यक्ष साधन द्वारा प्रत्यक्षयोग्य साध्यका अनुमान होता है अर्थात् पहले प्रत्यक्षद्वष्ट नियत सम्बन्ध पदार्थद्वयका एक पदार्थ देख कर अपर पदार्थका अनुमान होता है। यही पूर्ववत् अनुमान है।

शेयवत् अनुयान—कार्य द्वारा कारणके अनुमानका नाम शेपवत् अनुमान है अर्थात् कार्य देख कर जहां कारणका अनुमान किया जाता है वहां शेपवत् अनुमान होता है। नदीकी परिपूर्णता और स्रोतकी प्रखरता देख कर जो सतीतवृष्टिका अनुमान होता है, उसका नाम शेपवत् अनुमान है। कारण, नदीका पूर्णत्व और स्रोतका प्रखरत्वविशेष वृष्टिका कार्य है। वृष्टिके जलने ही वह काम सम्पादन किया है। सुतरां यहां कार्य देख कर कारणका अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य है। इसका पक्ष उत्पाद्ध और विनाश प्रत्यक्षसिद्ध है। इस कारण शम्द सामान्य वा विशेषादि हो ही नहीं सकता। क्योंकि, सामान्यादि पदार्थकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। इन्य, गुण और कर्म ये तीन पदार्थ अनित्य हैं। शन्द भी

अनित्य है, अतपव शब्द द्रव्य, गुण वा कर्मपदार्थके अन्त-र्भृत है। यदि इस प्रकारका संदेह उपस्थित हो और यदि विशेषक्रपसे विवेचना कर देखा जाय, तो यह अवश्य कहना पड़ेगा, कि शब्द द्रव्यपदार्थ नहीं हो सकता। कारण, उत्पन्न द्रव्यमात ही अनेक द्रव्यवृत्तियुक्त है। कोई उत्पन्न द्रध्य पक्तमात द्रव्यमें नहीं रहता, अनेक द्रव्यमें हो रहता है। ऋषाल और कपालिका ये दोनों द्रस्य घट-अधिकरण हैं। जिन सब तन्तुओं द्वारा पाट वा वस्तु प्रस्तुत हुआ है, वे सव तन्तु पटके अधिकरण हैं। अवयवदुव्यक्ते परस्पर संयोगसे अवयविदुव्यकी उत्पत्ति होती है। अतएव अवयवद्रन्य अवयविद्रन्यका आश्रय वा अधिकरण है । अवयवद्रव्य अनेक है, इस कारण अवयविद्रय भी अनेकांश्रित वा अनेकवृत्तियुक्त हैं। वह एक द्रव्यवृत्ति हो ही नहीं सकता। परन्तु शन्द एक-द्रव्यवृत्ति है। आकाश शब्दका अधिकरण है। आकाश केवल एक है, अनेक नहीं। जन्यद्रव्यमात ही अनेक द्रध्यवृत्ति है, शब्द जन्य है, अथच एक द्रव्यवृत्ति है। इस कारण शब्द द्रव्यपदार्थ हो ही नहीं सकता। शब्दको कमेंपदार्थ कहना भी उचित नहीं । क्योंकि, कमें कर्मा-न्तरका जनक नहीं होता । किन्तु शब्द शब्दान्तरका जनक हो सकता है। अभिघात द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है, दूरस्थित व्यक्ति उसे सुनने नहीं पाता। वह प्रखरोत्पन्म शब्द दूसरे शब्दको उत्पन्न करता है। इस प्रकार वीचितरङ्गको तरह शब्द्परम्परासे उत्पन्न होते होते दूरस्थ श्रोताके कानमें उस शब्दकी उत्पत्ति होती है ; दूरस्य श्रोता केवल वही शब्द सुनता है। निकटस्य व्यक्तिको तोम, दूरस्थ व्यक्तिको मन्द, दूरतरस्थ व्यक्तिको मन्दतः राव्द सुनाई देता है । यदि सभी एक तरहका शब्द सुने, तो उसका तीव्रमन्दभाव नहीं हो सकता। अतपव यह स्थिर हुआ, कि उक्त स्थलमें भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न शब्द सुनते हैं। पूर्व पूर्व शब्द पर शन्दका जनक है। अतएव शन्द कर्म नहीं है। क्योंकि, कमें दूसरे कमेका जनक नहीं होता। उक्त प्रकारसे शन्दका द्रव्यत्व और कर्मत्व प्रतिपिद्ध हुआ। शब्दमें सामान्यत्वादिकी प्रसक्ति वा सम्भावना नहीं है। कारण, शब्द अनित्य है और सामान्यादि नित्य है। सुतरां

सम्भावितके मध्य जो अवशिष्ट रहा, शब्द वही पदार्थ है। इसी प्रकार शब्दका गुणत्व स्थिर होता है। इसीका नाम शेषवत् अनुमान है।

धामान्यतोद्द्ध अनुष्रान—पूर्ववत् और शेषवत् अनु-मानका नाम सामान्यतोद्दृष्ट है। देशान्तरदृष्ट वस्तुका देशान्तरमें दर्शन, वह वस्तु गतिपूर्वक देखनेमें आती है। गृहमें दृष्ट व्यक्तिका रध्यामें दर्शन, उसका गतिपूर्वक सन्देह नहीं है। आदित्य भी देशान्तरमें दृष्ट हो कर देशान्तरमें दृष्ट होते हैं। अतयव अप्रत्यक्ष होने पर भी आदित्यकी गतिका अनुमान किया जा सकता है। यही अनुमान सामान्यतोद्रृष्ट है। क्योंकि, सामान्यतः देखा गया है, कि अन्यब दृष्टका अन्यत द्र्शन गतिपूर्वक है। तद्नुसार आदित्यकी गतिका अनुमान किया जाता है।

जो लिङ्गी वा साध्य कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता, अथच प्रत्यक्ष साध्य और साधनके अनुसार सामानातः व्याप्तिज्ञानके वलसे अनुमित होता है, वैसे नित्य-परोक्ष-साध्यका अनुमान सामान्यतोद्रष्ट अनुमान है। क्योंकि, सामानातः किसी विषयको देख कर अप्रत्यक्ष अर्थात् प्रत्यक्षके अयोग्य विषयका अनुमान होता है। रूपादिकी उपलब्धि वा ज्ञप्न द्वारा चश्चुरादि इन्द्रियका अनुमान है। छेदादि किया परशु प्रसृति करणसाध्य अर्थात् परशु-करण द्वारा छेदिकिया सम्पन्न होती है। इसी प्रकार पाकादिकिया काष्टादिरूप करणसाध्य है, विशेष २ किया विशेष विशेष करणसाध्य देख कर क्रियामात ही करण-साध्य है। अतएव रूपादिकी उपलब्धि और क्रिया भी करणसाध्य है। इस प्रकार रूपांदि उपलिध्यका कारण अनुमित होता है। जो कपादिकी उपलिधका कारण-इत्म अनुमित है, वही चक्षरादिकी इन्द्रिय है। सभी इन्द्रियां अतीन्द्रिय हैं, वे कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होतीं। होग अकसर जिन सव संस्थानको चक्षरादि इन्द्रिय कहते हैं, वे यथार्थमें चक्षरादि इन्द्रिय नहीं हैं। वे इन्द्रियके अधिष्ठान वा स्थानमात हैं । इनके दो मेद हैं, स्वार्थ और परार्थं। स्वयं समभतेके लिये जो अनुमान किया जाता है, लिङ्गदर्शन और ब्याप्तिस्मरणसे ही वह पर्यवसित होता है। परार्थं अनुमान अर्थात् दूसरेको समन्धानेका जो अनुमान होता है, वह न्यायसाध्य है। पञ्चअवयवयुक्त

वाक्यविशाषका नाम न्याय है । इस एंडव अवयव्युक्त स्यापः का विषय न्यायदर्शनमें देखों ।

प्रत्यक्ष प्रमाण प्रायः वर्त्तमान विषयग्रहणमें ही पय-विसत हुआ करता है। परन्तु अनुमान वैसा नहीं है। अनुमानका कार्यक्षेत्र वर्त्तमानकी तरह अतीत और अना-गतविषयग्रहण करनेमें भी समर्थ है। धूम देखनेसे वर्त्त-मान अग्निका, नदीकी वृद्धि देखनेसे अतीत वृष्टिका और मेघोन्नति देखनेसे अनागत वा भविष्य वृष्टिका अनुमान होता है।

अनुमानका लक्षण तो कहा गया, अव उपमान-प्रमाणका विषय लिखा जाता है। महर्षि गौतमने उप-मानका लक्षण इस प्रकार वतलाया है,—

"प्रसिद्ध साधम्मीत् साध्यसाधनमुपमानं।"
(गौतमस् १(१)६)
"प्रज्ञातेन सामान्यात् प्रज्ञापनीयस्य प्रज्ञापनमुपमानमिति"
(वातसा•)

जिस व्यक्तिने नीलगाय कभी नहीं देखी है तथा उसके खरूपसे वह कुछ भी जान-कार नहीं है उस व्यक्तिको यदि कहा जाय, कि गोसदूश नोलगाय होती है औ<sup>,</sup> यदि वह पीछे जंगल जाय तो वहां नीलगाय देख कर यही अनुमान करेगा, कि यह पशु गायके सदृश है । अनन्तर चह गोसदृश पशु गवयपद्वाच्य है, इस पूर्ववाक्याधका स्मरण करके यह पशु गव .पदवाच्य है, ऐसा स्थिर करता है। इस प्रकार स्थिर करनेका नाम उपमिति है। गोसदृश गवय, इस वाक्यार्थका जो स्मरण होता है, वही व्यापार है। पीछे यह पशु गोसदृश है, इसंप्रकारका जो प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, उसका नाम उपमान है। स्वस्थित प्रसिद्ध शन्द प्रसिद्ध गवादिका बोधक है, उसके साधम्य अर्थात् गवादिका सादृश्य ज्ञान है । इस प्रकारका साध्यसाधन ही उपमान शब्दार्थ है। नैयायिक लोग वैधर्म्यज्ञानको भी उपप्रान कहा करते हैं। यथा-अतिदीघं गलविशिष्ट और कठिन ऋएटकमक्षण-कारी, अति चञ्चल अधर और ओप्रशाली जो पशु होता हैं, वह करभपद्वाच्य है। इस प्रकार उपदेशप्राप्त हो कर यदि कोई व्यक्ति ऊंट देख ले, तो वह जरूर अनुमान

करेगा, कि इस पशुका गला लम्बा और अधर ओप्र अति चञ्चल है तथा यह कठिन कएटकभोजी है, अतः यही जन्तु करभयद्वाच्य है। इस प्रकारका निश्चय ही छप-मिति है। यहां इस पशुमें वर्त्तमान जो अति दीर्घ गल -देशादि है, वह अन्य पशुका वैधर्म्य हे अर्थात् अन्य पशुमें ये सब धर्म नहीं हैं। यह पशु तद्विशिष्ट है, यही ज्ञान उप-मान कहळाता है तथा उस प्रकारका दीर्घ गळादि धर्म-विशिष्ट पशु ही करभपद्वाच्य है, इत्यादि उपदेश वाक्यार्थका जो ज्ञान है उसे वत्रापार कहते हैं । इसका स्थूळ तात्पर्य यह, कि प्रसिद्ध पदार्थके सादूर्य द्वारा अप्रसिद्ध पदार्थके साधन वा ज्ञानका नाम उपमान है। संशा और संशाका सम्बन्धं ज्ञान है अर्थात् इस पदार्थका यह नाम है, वा यह वस्तु इस शब्दका अर्थ है, ऐसे उप-मानका फल-गोसदूरागवय है, पहले ही इसका उदा-हरण दिया जा चुका है। कुछ वढ़ा चढ़ा कर कहनेसे ही इस उपमान प्रमाणका विषय सहजवीध्यं ही जायगा। गवय ( नीख गाय ) नामक एक प्रकारका जंगली पशु है। गवय कैसा पशु है, यह नगरवासी नहीं जानते, कथा-प्रसङ्गमें नगरवासीके प्रश्नानुसार जंगली आदमीने कहा, कि गवय पशु देखनेमें गायके जैसा होता है। संयोगवश वह नगरवासी आखेटको जंगल गया और वहां दैवात पक गवय पशु उसकी निगाहमें पड़ा। वह नगरवासी .उस सदृष्ट पूर्व पशुको देख कर जंगली आदमीके पूर्व-कथनानुसार समऋ गया, कि इसी अद्वृष्टपूर्व पशुक्ता नाम गवय है अथवा इसी जातिका पशु गवय शब्दका अधे है। यहां प्रसिद्ध गोपशुके सादृश्य द्वारा अप्रसिद्ध गवय पशु-का साधन वा प्रशापन हुआ है। क्योंकि, अदृष्ट पूर्व पशुमें गोपशुका साद्वश्य देख कर ही इसका हुनाम गवय है वा इस जातिका.पशु गवय शब्दका अर्थ है, द्रष्टाकी ऐसा **ज्ञान** हो गया है। यहां अदूष्टपूर्व जंगली पशुमें गी-सादृश्य दर्शन करण है, जंगली आदमीका वाक्य वा उसके अर्थका स्मरण न्यापार है और इस जातिका पशु गवय शब्दका अर्थ है, यह ब्रानफल है । इ सी प्रकार उप-मिति द्वआ करती है।

महर्षि गौतमने शब्दप्रमाणका लक्षण इस प्रकार वतलाया है—

Vol. XIV, 152

"आप्तोपदेशः शन्द इति । स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्॥"

(गौतमस्० १।१।७-८)

आसोपदेशका नाम शन्द्रमाण है। शन्द प्रतिपाद्य वर्धविषयमें जो अग्रान्त हैं, जिनके प्रतारणादिरूप दूपित अभिसन्धि नहीं है, जिन्होंने जिसे यथार्थ समक्त लिया है, उसे दूसरेको समकाना हो जिसका उद्देश्य है, वे उस विषयमें आप्त हैं। उनका उपदेश शब्दक्तप्रमाण है।

आसोपदेश या आस व्यक्तिका उपदेश अर्थात् वक्तव्य विषयमें यथार्थ ज्ञानशाली और प्रतारणादि यून्य वका, उसका उपदेश, आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य-युक्त वाष्य ही प्रमाण होगा । यथा—'पुत ! तुम विद्या-म्यास करो और सत्य वाष्य वोलो । जो विद्वान् नहीं है और जो भूठ वोलता है, उसका कोई सम्मान नहीं करता ।' इस प्रकार पिता प्रभृतिका वाष्य । वालुकामय भूमि पर स्यं की किरण पड़नेसे वहां जिसे जलभूम हुआ है, वह व्यक्ति भूमवश उस स्थानमें जल है, यदि पेसा वाष्य कहे, तो वह वाष्य वस्तुतः जलका वोधक नहीं होता, इसीसे वह प्रमाण नहीं है। खल और विणक्गण प्रतारक होते हैं, इस कारण उनका वाष्य भी प्रामाणिक नहीं है। इन सव वाष्योंमें अतिव्याप्तिकरण-जन्य सूलमें आस ऐसा विशेषण दिया गया है। आसवाष्य भूमप्रमा-दादि दोषशून्य है, अर्थात् इसमें कुल भी दोषभूम नहीं है।

जिस वाषयका पद कत्तां, कर्म और करण आदिका वोधक खर है अथवा हल्वर्णक्रप चिह्नयुक्त है, उसे साकांक्ष वाक्य कहते हैं। जो वाक्य इन चिह्नोंसे रहित है, उसका नाम निराकांक्ष वाक्य है। यथा—शिन्य गुरुको पूछता है, यहां शिन्य पदोत्तर कर्मृ वोधक 'अ' और गुरुपदोत्तर कर्म-वोधक 'को' इन दो वर्णोंके रहनेसे शिन्य गुरुसे कोई विवय पूछता है, ऐसा अथं होता है। यहां पर यदि शिन्य-पदोत्तर 'अ' न रह कर 'में' और गुरुपदोत्तर 'को' न रह कर 'में' और गुरुपदोत्तर 'को' न रह कर 'का' रहता, तो इस प्रकार जो वाक्य वना उससे शिन्य गुरुसे पूछता है, ऐसा अर्थ कभी भी नहीं हो सकता था। इसीसे यह वाक्य निराकाङ्क्ष है। जिन दो पदार्थों-का परस्पर सम्बन्ध नहीं रहता, उस पदार्थके वोधजनक वाक्यका नाम अयोग्यवाक्य है। यथा विद्वर्शतिल समुद्र

छङ्कन करता है, यहां विह और सैत्यगुणका तथा समुद्र- · लङ्घनका परस्पर सम्बन्ध नहीं रहनेके कारण उस वाक्य-को अयोग्य वाक्य कहा जायगा। जो पद दो परस्पर अर्थवोधक होगा, यदि उसके मध्य अन्य पदका व्यवधान न रहे, तो उसे आसक्ति कहते हैं । यथा—सूर्ये उदय होते हैं, यहां पर सूर्यपद और उद्यपद्के मध्य अन्य पदका व्यवधान नहीं हैं, इस कारण उसे आसकियुक्त-पद कहें गे। 'गाय आतो हैं, सूर्य अस्त होते हैं, वर्षके साथ' यहां पर 'गाय और वर्षके साथ पद्' इन दोनोंके मध्य सूर्य आदि पदका व्यवधान रहनेके कारण वे दोनों . पद आसक्ति-रहित हुए हैं। उसके द्वारा वर्षके साथ गाय • आती हैं, ऐसा समभा जायगा। पदके साथ अर्थका सम्बन्धज्ञान हो कर अर्थका स्मरण होनेसे शब्दवोध होता है। वैसे सम्यन्धका नाम शक्ति और लक्षणा है। इनमेंसे पद और पदार्थके साक्षात् सम्बन्धका नाम शक्ति और वैसे सम्बन्धयुक्त जो अर्थ होगा उसका नाम शक्य है। उस शक्यका जो सम्बन्ध है, उसका नाम लक्षणा है। शब्दप्रमाणके प्रति तात्पर्येज्ञान भी कारण है। इस वाका द्वारा ऐसा अर्थवोध होवे, इस प्रकार वक्ताकी इच्छा ही तात्पर्य पदार्थे है ।

इस शब्दअमाणके फिर दो भेद हैं—द्रष्टार्थक और अद्रुष्टार्थक । इस जगत्में प्रसिद्ध जो पदार्थ है, उसके वोधजनक वाष्यका नाम द्रष्टार्थक है। यथा—पुत कामना करके पुतिष्टि नामक याग करे और शरीरकी पुष्टिके लिये धृत भोजन करे इत्यादि वाक्य प्रसिद्ध पुत और याग तथा शरीरपुष्टि आदिका वोध कराता है, इस कारण ये सव वाक्य द्रष्टार्थक हें। परलोकप्रसिद्ध पदार्थका वोधक जो वाक्य है उसका नाम अद्रुष्टार्थक है। यथा—"ल्यांका- मोऽश्वमेधेन यजेत" ल्यांको कामना करके अश्वमेध्य ग करे और इन्द्रत्वकी इच्छा करके अग्निष्टोम य.ग करे, इत्यादि वाक्य परलोक माल प्रसिद्ध जो ल्यांदि है, उसके वोधक हैं। इस कारण यह अद्रुष्टार्थक हुआ।

नैयायिकोक्त प्रमाणका विषय एक तरहसे कहा गया। मीमांसकगण उक्त चार प्रकारके प्रमाणके अतिरिक्त ऐतिहा, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव नामक और भी चार प्रमाण खीकार किये हैं। गौतमका कहना है, कि ये सब

प्रमाण प्रमाणपद्वाच्य नहीं हैं, संक्षिप्तप्रमावमें इसका विषय नीचे लिखा जाता है।

१। ऐतिहा प्रमाण—जिसका प्रथम प्रवर्शक कौन है, इसका ठोक पता नहीं, अथच वहुकालसे प्रवादमाल चला जा रहा है, उसे ऐतिहाप्रमाण कहते हैं। "इतेहोचुर्नृद्धाः इसे तिश्चं इह वटे यद्धाः प्रतिवस्तीति" वृद्ध लोग कहते हैं, कि इस वटवृक्ष पर यक्ष वास करता है। ऐसे प्रमाणका नाम ऐतिहाप्रमाण है।

ा अर्था गति प्रमाण—अर्थाधीन आपितका नाम अर्था-पत्ति है। जहां किसी एक पदार्थको संस्थापन करनेमें किसी दूसरे पदार्थका अर्थायत्त होता है, वहां उसे अर्था-पत्ति कहते हैं। जैसे, मेब नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती, यह सिद्ध करनेमें मेबसे ही वृष्टि होती है, यह अर्थाधीन सिद्ध होता है। अतयब अर्थापत्ति भी सतन्त एक प्रमाण है।

३। सम्भव प्रमाण—जिसके द्वारा व्यापक किसी पदार्थकी सत्ता पदार्थकी सत्ता प्रहणाधीन व्याप्य किसी पदार्थकी सत्ता प्रहण की जाती है। जैसे व्यापक सहस्रक्षानाधीन व्याप्य शतका ज्ञान होता है, अर्थात् सहस्र वस्तुका ज्ञान हासिल करनेमें शतवस्तुका ज्ञान हो कर पोछे सहस्र वस्तुका ज्ञान होता है।

४। अभाव प्रमाण—जिससे विरोधी किसी वस्तुका अभाव देखनेसे तिहरोधी पदार्थकी कल्पना की जाती है, उसे अभावप्रमाण कहते हैं। जैसे, नकुलाभाव देखनेसे तिहरोधी सर्पकी कल्पना की जाती है, इसिल्ये नकुलाभाव एक अभाव नामक प्रमाण है।

गौतमने इन चारों प्रमाणके सम्बन्धमें तके और
युक्ति दिखा कर मिन्न प्रमाण कह कर और कुछ भी
खीकार नहीं किया । उनका कहना है—"शब्द ऐतिहा
नर्यान्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादन्तरभावादन्तरभी
प्रमाण अतिरिक्त नहीं है, वह शब्दप्रमाणान्तरभूत
है । जिस प्रकार शब्द प्रमाण-स्थलमें प्रमाणयोग्य शब्दाधीन अर्थवीय हुआ करता है, उसी
प्रकार ऐतिहास्थलमें भी वैसा ही शब्दाधीन अर्थमह
होता है । सुतर्रा उसे शब्दप्रमाणान्तर्भूत स्वीकार

करना अवश्य कर्त्तव्य है। इसी प्रकार अर्थापति, सम्भव और अभाव अतिरिक्त प्रमाण नहीं है। किन्तु यह अनु-माणप्रमाणके अन्तमू त है। कारण, प्रत्यक्षीमृत पदार्थं -दर्शनके ळिये अप्रत्यक्षीमृत पदार्थं के ज्ञानकरणको अनु-मान कहते हैं। जिस प्रकार प्रत्यक्षीमृत धूमदशन अप-त्यक्षीमृत बिह्नज्ञानको अनुमित्यात्मक स्वीकार करता है, उसी प्रकार अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव स्थलमें भी प्रत्यक्षीमृत वस्तु ज्ञानाधीन अप्रत्यक्षीमृत वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होता है। सुतर्रा उन्हें अनुमानके अन्तम् त स्वीकार करना कर्त्तव्य है।

सच पृष्ठिये, तो अर्थापत्ति प्रभृति स्वतन्त प्रमाण नहीं है। कारण, उपपादाज्ञान द्वारा उपपादक कल्पनाकी अर्थापत्ति कहते हैं। डौसे हम लोग यदि सवल सुस्थ अथच स्थूलकाय एवं दिनके अमोजी किसी न्यक्तिको देखें, तो उस समय हमें अवश्य ज्ञान होगा, कि यह व्यक्ति निश्चय ही रातको भोजन करता है, क्योंकि दिनका अभोजी व्यक्ति यदि रातको भोजन न करे, तो उसका स्थूलत्व कभी भी नहीं रह सकता। अतएव यह रातको भोजन करता है, ऐसा निश्चय होता है। जिस वस्तुके नहीं रहनेसे जो वस्तु अनुपपन्न होती है, यह वस्तु उपपाद्य है। यथार्थ में विना राह्मिभोजनके दिनके अभुक्त व्यक्तिका स्थूलत्व अनुपपन्न है। इस कारण स्थूलत्व उपवाद्य और जिसका अभाव होनेसे जिसकी अनुपपत्ति होती है उसे उपपादक कहते हैं। जैसे, रातिभोजनका अमाव होनेसे स्थूळत्वकी अनुपपत्ति होतो है, इसीसे रातिभोजन उपपादक है । अतपव यहां पर स्थूलत्व द्वारा उपपादक रातिमोजन किएत हुआ है, इसीसे अर्थापत्ति हुई। यह अर्थापत्ति. खतन्त्र प्रमाण हो हो नहीं सकती।

अव प्रश्न उठता है, कि किसी भी वस्तुकी उत्पादक कोई भी वस्तु हो सकती है वा नहीं? इसके उत्तरमें यहीं कहना है कि किसी वस्तुकी उत्पादक उसी सम्यन्ध-की वस्तु हो सकती है, दूसरी नहीं। कारण घटका उत्पा-दक पट नहीं हो सकता; किन्तु स्यूलत्वका उपपादक मोजन अवस्य है। अतप्त्व यह कहना होगा, कि उप-पादक और उपपादका परस्पर ध्याय्य्यायकसाय सम्यन्ध है। न्याय्य उपपाद्य द्वारा न्यापक उपपादक किएत होता है। यह अनश्य खीकार करने योग्य है। अन्या-पक कभी भी आपाद्य तथा अन्याय्य आपादक नहीं हो सकता। अतपन आपाद्य और आपादकका परस्पर न्याप्यन्यापक सम्बन्ध अनश्य खीकार्य है। अतः जिस प्रकार न्याय्यधूम द्वारा न्यापक चिह्नज्ञानको अनुमित्या-त्मक खीकार करना होगा उसी प्रकार उक्त ज्ञानको अनुमित्यात्मक खीकार करना निधेय है।

मेध नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती। मेघ होनेसे ही
वृष्टि होगी, इस प्रकारकी अर्थाधीन आपित ही अर्थापित
है। उस अर्थापितकों कभी भी स्वतन्त प्रमाणरूपमें
मान नहीं सकते। कारण, मेघ होने पर भी कदाचित
जव वृष्टि नहीं होती है, तव अर्थापांत प्रमाण नहीं है।
विना मेघके वृष्टि होती ही नहीं, इसके द्वारा मेघ होने दे
ही वृष्टि होती है इस प्रकारका उदाहरण अर्थापित नहीं
है। किन्तु मेघ नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती, इसका
वात्पर्य यह, कि वृष्टि होनेमें मेघकी आवश्यकता है। जहां
कार्यसत्त्वा द्वारा कारणसत्त्वा अर्थाधीन होता है, वहां
अर्थापितका उदाहरण जानना होगा। इत्यादि प्रकारमें
अर्थापितका प्रमाण नहीं है। यह अनुमान प्रमाणके
मध्य हो निविष्ट है, ऐसा प्रमाणित हुआ है।

अभाव प्रमाण है वा नहीं ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि अभाव नामका कोई प्रमाण नहीं है, कारण वह प्रमेथ नहीं है। जो प्रमाञ्चान (यथार्थ ज्ञानका) का विषय नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है। अभाव प्रमाञ्चानका विषय नहीं है, सुतरां अलीकका प्रमाणत्व सिद्ध नहीं हो सकता। इस पर अभाववादी कहते हैं, कि अभाव पदार्थ अवश्य खीकाय है। कारण, अभाव ज्ञान द्वारा वावहार निष्पन्न होता है। जिसको ज्ञान द्वारा वावहार सिद्ध होता है, उसका अस्तित्व अवश्य अङ्गोकार करने योग्य है। 'नील घट ले आवी' इस प्रकार यदि किसीको कहा जाय, तो उसे नीलत्यका ज्ञान रहनेके कारण वह साधारण घटमेंसे नीलघटको ले आता है। फिर 'अनीलघट ले आवी' इस प्रकार आदेश करने पर भी वह साधारण घटमेंसे नीलाभावविशिष्ट घटको पृथक कर लाता है। अभावज्ञान नहीं होनेसे

कभी भी वैसे व्यवहारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अत-एव प्रतिपत्तिसाधक अभाव पदार्थको अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। इस पर आपत्ति यह उठ सकती है, कि अनीलघट लाओ, इस वाक्य द्वारा नीलाभावका ज्ञान हो कर अनीलघटका ज्ञान होता है। किन्तु इस तरह नीला-भावका ज्ञान किस प्रकार होगा ? यदि उक्त घटमें नीली-त्पत्ति हो, तो नीलाभाव नहीं है और यदि उसमें नील-गुण न रहे, तो अभावज्ञान नहीं हो सकता । कारण, अभाव ज्ञान प्रतियोगो ज्ञानसापेक्ष है। जो वस्तु नहीं है उसका अभावविषयक ज्ञान नहीं हो सकता। स्रतरां नीलगुण घटमें नहीं रहनेसे नीलाभाव ज्ञान किस प्रकार होगा ? ऐसी आशङ्का पर इतना ही कहना पर्याप्त है, कि प्रतियोग्यधिकरणीभृत देशान्तरमें प्रतियोगिसत्तारूप लक्षण द्वारा अभावकी उत्पत्ति हो सकती है; अभावाधिकरणमें प्रतियोगिसत्ता अपेक्षित नहीं है। किसी भी देशमें प्रतियोगिसत्ता द्वारा अनधिकरण देशमें अभावकी सिद्धि हो सकती है ?

इत्यादि रूपसे उसका वाद-प्रतिवाद प्रदर्शित हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका पूरा विवरण नहीं दिया गया। स्थूलतात्पर्य, यह कि अभावादिका प्रामाण्य किसी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

( न्यायदर्शन )

किसी किसी दर्शनने कई प्रकारके प्रमाण स्वीकार किये हैं जिनका विषय संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।

- १। चार्वाकदर्शनमें एकमात प्रत्यक्ष प्रमाणको हो स्वीकार किया है। ये लोग प्रत्यक्ष भिन्न अन्य प्रमाणको स्वीकार नहीं करते।
- २। वौद्धदार्शनिकके मतसे प्रत्सक्ष और अनुमान यही दो प्रमाण हैं।
- ३। रामानुजने प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यही तीन प्रकारका प्रमाण बतलाया है।
- ४ । पूर्णप्रज्ञके मतसे प्रमाण तीन है, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ।
- ५ । चेशेपिकके मतसे प्रत्यक्ष और अनुमान यही दा प्रमाण है।
- ६। न्यायके मतसे प्रमाण चार है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ।

- ७ । सांख्यके मतसे तीन प्रमाण हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ।
- ८ । पातञ्जलके मतसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यहो तीन प्रमाण हैं ।

सांख्य, वेदान्त और मीमांसाकारका कहना है, कि चक्षु जिस प्रकार स्वतः-प्रमाण है, प्रमाणिनचयके (आगम) आसवाक्य भी उसी प्रकार स्वतः प्रमाण है। चक्षु प्रमाण है वा नहीं; चक्षु ने ठीक देखा या नहीं; इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं होता। जो प्रत्यक्षवान है, उसकी जिस प्रकार परोक्षा नहीं की जाती, उसी प्रकार आसवाक्यप्रस्त ज्ञानकी भी परीक्षा निषेध है। वाक्य-प्रमाण परिनिष्ठित ज्ञानका प्रमाण्य आप ही आप स्थिरता को प्राप्त होता है, उसमें अन्य प्रमाणकी जक्षरत नहीं पड़ती।

इसीसे मीमांसा-परिशोधित वा विचारित वेदार्थ-विज्ञान स्वतःप्रमाण है। विचारित वेदवाक्य जो ज्ञान उत्पन्न करता है वह ज्ञान अम्रान्त है अर्थात् यथार्थ लौकिक वाक्यमें भी विचारयोगकी आवश्यकता है। विचारित लौकिक वाक्य भी यथार्थ ज्ञानका जनक है। प्रमेद इतना ही है, कि लौकिक वाक्य ऐहिक पदार्थको और वैदिक वाक्य ऐहिक पारितक दोनों प्रकारके पदार्थ-को प्रतिपादन करते हैं।

वचपनसे शब्द श्रवण, कार्य दर्शन, व्यवहार पद्धितका पर्यवेक्षण और मनन करते करते मनुष्य आगे चल
शब्द राशिको विचित्न शिक्तसे अवगत हो सकता है।
शब्दमें जो विचित्न अर्थ प्रत्ययक सामर्थ्य है, उसका श्रात
होनेका नाम व्युत्पत्ति है। व्युत्पत्तिमान पुरुष हो
विचारका अधिकारी है। भूम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि
दोषरहित व्युत्पन्न पुरुष विचारपूषक जो कहते हैं, वह
सत्य है। सांख्यके मतसे विचारित वेदवाक्य और योगी
पुरुषका वाक्य दोनों ही सत्यक्षान उत्पन्न करते हैं
वैसा ही वाक्य आप्तयाक्य कहलाता है। उस प्रकारका आप्त वाक्य-समुत्थ उपदेशिक श्रान सव प्रकारकी
अनर्थनिवृत्तियोंका उपाय है। इसमें ग्रम, प्रमाद, संशय
आदि किसी प्रकारका दोष नहीं है। सांख्यके प्रकृतिपुरुषके विवेकशन वा वैद्रान्तिकोंके ब्रह्मशनको आप्त

वाक्यके ऊपर निर्भंद देख कर ऋषिगण विचारित वेद-वाक्यको चक्षुको अोसा गुरुतर प्रमाण समऋते हैं। इसी कारण ऋषियोंके निकट वेदका इतना आदर है। योगियों और ऋषियोंका वाक्य भी वेदार्थानुयायी है। इस कारण उनका वाक्य भी प्रमाण है। यही सांख्य भीर वेदान्तोक्त आंगम प्रमाण है।

(ति॰) १२ सत्यवादी, सच वोळनेवाळा।१३ प्रमाणित, चरितार्थ।१४ मान्य,सीकारयोग्य।(अन्य॰) १५ भवधि या सीमासुचक शब्द, पयन्त, तक। प्रमाणक (सं॰ ति॰) प्रमाण-स्वाधे कन्।१ प्रमाण शहद देखो।२ वेड, घेरा।

प्रमाणकुश्छ ( सं॰ पु॰ ) अच्छा तर्क करनेवाला । प्रमाणकोटि ( सं॰ क्षि॰ ) प्रमाण मानी जानेवाली वातों या वस्तुकोंका घेरा ।

प्रमाणता ( सं॰ स्त्री॰) प्रमाणस्य भावः तल्-हार्। प्रामाण्यः प्रमाणका भाव वा धर्म।

प्रमाणपत (सं॰ पु॰) वह लिखा हुआ कागज जिस परका लेख किसी वातका प्रमाण हो, सर्टिफिकेट। प्रमाणपुरुष (सं॰ पु॰) जिसके निर्णयको माननेके लिये दोनों पक्षके लोग तैयार हों, पंच।

प्रमाणलक्षण (सं० क्ली०) प्रमाणस्य लक्षणं ६ तत्। प्रमाणका लक्षण, वह लक्षण जिससे प्रमाण सावित हो। प्रमाणवत् (सं० ति०) प्रमाणं विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य व। प्रमाणयुक्त, जिसमें प्रमाण हो।

प्रमाणवाक्य (सं॰ क्ली॰) प्रमाणं प्रामाण्यक्तपं यत् वाक्यं। प्रामाण्यसक्तप वाक्य, वेदवाक्य, आसवाक्य, ये सव प्रमाणक्तपमं व्यवहत होते हैं, इसीसे इन्हें प्रमाणवाक्य कहते हैं। प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध हो लेकिन वह यदि वेदविकद्ध हो, तो उसे प्रमाणवाक्य नहीं कहेंगे।

अमाणवाधितार्थंक (सं o पु०) प्रमाणेन वाधितः अर्थो यस्य, ततः कप्। तर्कविशेष। यह दो प्रकारका है, व्याप्ति-प्राहक और विशेष परिशोधक। धूम यदि बहिज्यामि-चारी हो, तो वह प्रमाण जन्य नहीं हो सकता, इसीको व्याप्तिप्राहक और पर्वत यदि निर्वहि हो, तो निर्धूम होगा।

इसे विषयपरिशोधक कहते हैं। (तकैनागरीशी) प्रमाणान्तरता (सं० स्री०) अन्यत् प्रमाणं, तस्य भावः तस्र-द्यप्। अन्य प्रकारका उपाय।

Vol. XIV, 153

प्रमाणिक (सं विव ) प्रमाणं सिद्धिहेतुतयाऽस्त्यस्य उन् । १ प्रमाणसिद्ध, जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो । २ परिमाणभेद्युक्त, मध्यमांगुल और कूर्परा-न्तरमित परिमाणयुक्त हस्त ।

प्रमाणिका (सं क्वीं ) प्रमाण-स्त्रियां टाप्। अष्टा-क्षरपादक छन्दोभेद । इस छन्दके प्रत्येक चरणमें पक क्रमण, एक रगण, एक छघु और एक गुरु होते हैं। इसका दूसरा नाम 'नगस्त्रकृषिणी' भी है।

प्रमाणित ( सं॰ ति॰) प्रमाण द्वारा सिङ, सत्य ठहराया हुआ।

प्रमाणी ( सं ० स्त्री० ) प्रमाणिका वा नगस्यस्पिणी छन्द-का नाम ।

प्रमाणीकृत (सं ० वि०) अप्रमाणं प्रमाणं कृतं प्रमाण अभूततन्त्राचे च्चि, ततः कृत्तः। प्रमाणस्यसे निश्चितः, प्रमाणस्यसे जिसका स्वीकार किया गया हो।

प्रमातव्य ( सं॰ ति॰ ) प्रमथनयोग्य, वध्य, मारने लायक । प्रमाता ( सं॰ पु॰ ) प्रनात है यो ।

प्रमातामह (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टी मातामहस्तस्यापि जनकत्वा-दिति प्रादिस॰। मातामहका पिता, परनाना।

प्रमातामहो (सं ० स्त्री०) प्रमातामहकी पत्नी, परनानी। प्रमात् (सं ० ति०) प्रमिनोति प्र-मि-तृच् । १ प्रमा- शानकर्चा, प्रमाणों द्वारा प्रमेयक शानको प्राप्त करनेवाला। नैयायिकोंके मतसे आतमा और सांख्यके मतसे युद्धचेतन पुष्प बुद्धिसाक्षी हैं। वेदान्तके मतसे अन्तःकरणवृत्तिप्रतिविम्वित वा तद्वचिन्छन्न चैतन्य ही प्रमाता है। २ शानका कर्चा आतमा या चेतन पुष्प। ३ विययसे भिन्न विषयी, द्रष्टा, साक्षी।

प्रमात ( सं ॰ पु॰ स्त्रो॰ ) निर्दिष्ट संख्या ।

प्रमात्व (सं० क्की०) प्रमायाः भावः त्व । प्रमाका धम वा भाव ।

प्रमाय (सं० पु०) प्र-मथ भावे-घज्। १ प्रमथन, मयन। २ वलपूर्वक हरण, छीन खसोट। ३ निपातन करके भूमि पर पेयण, प्रतिद्वन्द्वीको भूमि पर पटक कर उस पर चढ़ वैठना और घस्सा देना। ४ मर्दन, नाश करना। ५ पीड़न, दु:ख देना।- ६ वध, हत्या करना। ७ शिव-पारियदु प्रमथगण, शिवके एक गणका नाम। ८ स्कट्के .अनुचरका नाम । ६ महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । १० किसी स्त्रीसे उसकी इच्छाके विरुद्ध संभोग ।

प्रमाथिन् (सं० ति०) प्र-मथ-णिनि । १ पौड्नकर्त्तां, पीड़ित करनेवाला । २ मारणकर्त्तां, मारनेवाला । ३ पीड़ादायक, दुःख-दायी । (पु०) ५ राक्षसविशेष, रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम । यह खरका साथी था । ६ रामचन्द्रजीकी सेनाका एक यूथपित वन्दर । ७ वृहत्संहिताके अनुसार वृहस्पतिके ऐन्द्र नामक तीसरे युगका दूसरा संव-त्सर । ८ वह औपध जो मुल, आंख, कान आदि छिद्रों-से कफादिके सञ्चयको दूर कर दे । ६ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । १० अप्सरामेद, एक अप्सराका नाम । प्रमाथी (सं० ति०) प्रमाथिन् देखा ।

प्रमाद (सं० पु०) प्र-मद-घज्। १ अनवधानता, असाव-धानता। २ भ्रम, भानित। ३ अन्तःकरणकी दुबँछता। प्रमाद तमोगुणका धमं है। तमोगुणकी अधिकता होनेसे हमेशा प्रमाद होता है। ४ योगशास्त्रानुसार समाधिके साधनोंकी भावना न करना वा उन्हें ठीक न समभना। यह नौ प्रकारके अन्तरायोंमें चौथा है। इससे साधक-को चित्तविक्षेप होता है।

प्रमाद्वत् ( सं ० ति ० ) प्रमादोऽस्त्यस्पेति प्रमाद्- मतुप् मस्य वः । प्रमाद्युक्त, प्रमत्तः । पर्याय—जन्म, असमीक्ष्य-कारी, खट्टारुढ़ ।

प्रमादिक (सं ० ति०) प्रमादशील, भूल खूक करनेवाला। प्रमादिका (सं० स्त्री०) प्रमाणोऽनवधानताऽस्त्यस्या इति, प्रमाद-उन, टाप्। दूषिता कन्या, वह कन्या जिसे किसीने दूषित कर दिया हो। पर्याय—संवेदा, दूषिता, धर्ष-कारिणी।

प्रमादिन (सं ० ति०) प्रमादोऽस्त्यस्पेति प्रमाद्-इनि । १ प्रमाद्निशिष्ट, असावधान रहनेवाला । (पु०) २ वृह-स्पितिके शक्ताग्नि दैवत नामक दशमयुगका दूसरा संव-त्सर । इसमें लोग आलसी रहते हैं, क्रान्तियां होती हैं और लाल फूलके पेड़ोंके वीज नष्ट हो जाते हैं । ३ पागल, बावला ।

प्रमादिनी (सं० स्त्री०) हिंडील रागकी एक सहचरीका नाम। प्रमादी (सं० ति०) प्रमादिन देखो। प्रमापण (सं० ह्वी०) प्रमी-हिंसायां खार्थे णिच, भावे-ल्युद्। मारण, नाश। प्रमापयिता (सं० ति०) प्रमापयितृ देखो। प्रमापयितृ (सं० ति०) १ प्रमथनयोग्य। २ भनिष्टकर, हानि पहुँ चानेवाला। २ धातक, नाश करनेवाला। प्रमायु (सं० ति०) विनाशयोग्य, नाशशील। प्रमायुक्त (सं० ति०) प्र-मी ताच्छील्ये उक्क्म्। मरणशील,

क्षर, ध्वं सशील । प्रमार (सं० पु०)१ प्रदृष्टद्वपसे मृत्यु । २ राजपूत

श्रेणीसेद । परमार देखो । प्रमार्जेक (सं० वि०) १ साफ करनेवाला । २ प्रमार्जन-कारक, हटानेवाला ।

प्रमार्जन (सं ० क्की०) १ परिष्कार करना, साफ करना। २ पोंछना, भाड़ना। ३ हराना, दूर करना। प्रमित (सं ० ति०) प्र-मि-क्त, वा प्र-मा-क ( शतिश्वति मास्थेति । पा ५।४०) इतोत्वं। १ ज्ञात, विदित, अवगत। २ निश्चित। ३ परिमित। ४ अल्प, थोड़ा। ५ जिसका यथार्थं ज्ञान हुआ हो, प्रमाणों द्वारा जिसे प्रमा नामक ज्ञान प्राप्त हुआ हो। ५ अवधारित, प्रमा-

णित । ६ अन्यूनातिरिक्त, न अधिक न कम ।
प्रमिताक्षरा (सं० स्त्री०) प्रमितानि परिमितानि अक्षराणि
यस्यां । १ सिद्धान्तिशिरोमणिव्याख्यानक्रपा टीका । २
मुद्धत्ते चिन्तामणिटीकामेद । ३ द्वादशाक्षरपादक छन्दीमेद । इसके प्रत्येक चरणमें सगण जगण और अन्तमें
दो सगण होते हैं ।

प्रमिताशन (सं० क्वी०) प्रमितमशनं । अल्पमात भोजन, वहुत थोड़ा खांना ।

प्रमिति (सं॰ स्त्री॰) प्र-मा-किन्, वा मि-किन् । प्रमा, वह यथार्थ ज्ञान जो प्रमाण द्वारा प्राप्त हो ।

प्रमीढ़ (सं॰ ति॰ ) प्र-मिह-सेचने-क । १ घन, गाढ़ा । २ मृतित, मूतसे निकला हुआ ।

प्रमीत (सं॰ ति॰) प्री-मी-हिंसायां-क । १ मृत, मरा हुआ। ( पु॰ ) २ यज्ञार्थं हतपशु, यज्ञके लिये मारा हुआ पशु ।

وي نهر با الآن

प्रमीति (सं० स्त्री०) हनन, वघं। २ मृत्यु, मरण। प्रमीलक (सं० पु०) १ तन्द्रा, उँघाई । २ शरीरका आलस्य, शरीरको दुवलता ।

प्रमोछन (सं क्लीं) प्र-मोछ-च्युट् । निमीछन, मूँदना । प्रमोछा (सं क्लीं) प्रमीछनमिति प्र-मीछ-संमीछने (ग्रोब इकः । पा शशर्वे इति अ, ततप्राप् । १ तन्द्रा, उंघाई । २ मुद्रण, मूंदना । ३ तन्त्री । ४ अवसाद, थका-वट । ५ रावणपुत इन्द्रजित्की पत्नी ।

प्रमोलिन (सं० ति०) १ मुद्रणकारी, आँख मूंद्नेवाला। (पु०) २ एक दैत्य।

प्रमीलो (सं० ति०) प्रभीविन देखो ।

प्रमुक्ति (सं० स्त्री०) प्र-मुच्-कि । मोक्ष ।

प्रमुख (सं० क्ली०) प्रकृष्टं मुखमारम्भः । १ तत्काल, उस समय । २ सम्मुख, सामने । (पु०) ३ आदि, आरम्म । ४ समूह, ढेर । ५ पुत्रागवृक्ष । (ति०) ६ प्रथम, पहला । ७ मुख्य, प्रधान । ८ मान्य, प्रतिष्ठित । (अध्य०) ६ इससे आरम्भ करके, और और, इत्यादि, वगे-रह ।

प्रमुखतस् (सं॰ अब्य॰ ) प्रमुख-तसिल् । प्रमुखमें, सामनेमें ।

प्रमुच ( सं॰ पु॰ ) १ ऋषिमेद, एक ऋषिका नाम । (ति॰) २ मोका, मुक्त देनेवाळा ।

प्रमुचु (सं॰ पु॰) ऋषिमेद एक ऋषिका नाम ।

प्रमुद्ध (सं० ति०) प्रकृष्टा मुत्प्रीतियस्य । १ हृष्ट्, आन-न्दित । (स्त्री०) प्रकृष्टा मुत् कर्मधा । २ प्रकृष्ट आनन्द । प्रमुद्दित (सं० ति०) प्र-मुद्ध-क (उद्दुपचादिति । पा १।२।२१) इति कित् । हृष्ट्, प्रसन्न, आनन्दित ।

प्रमुद्तिवद्ना (सं क्षी ) द्वाद्शाक्षरपादक छन्दोमेद, बारह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति जिसे मन्दाकिनी भी कहते हैं। मन्दाकिनी देखो।

प्रमूपित ( सं॰ बि॰ ) चोरित, अपहत ।

प्रमृग ( सं॰ थन्य॰ ) प्रकृष्टा मृगा यत्न, तिष्टदुग्वादित्वाद्-न्ययीभावः । वहुमृगयुक्त स्थान ।

प्रमृग्य ( सं॰ ति॰ ) प्रमृग-यत् । प्रकृप्रस्पसे अन्वेषणीय, जिसकी अच्छी तरह तलाग्र की जाय ।

प्रमृण (सं॰ स्नि॰) प्रकृष्टरूपसे हिंसक, हिंसा करनेत्राला।

प्रमृत (सं० क्ली॰) प्रकृष्टं मृतं प्राणिहिंसितं यत । मन्क क्षणरूप जीवनोधायमेद, मनुके अनुसार हल जीत कर जीविका करनेका नाम । हल चलनेसे महीमें रहनेवाले बहुतसे जीव मर जाते हैं, इसीसे उसे मृत कहते हैं। प्रमृतक (सं० ति०) प्रमृत खार्थे कन्। प्रमृत देखों। प्रमृश (सं० ति०) प्रमृशित मृश-इगुपधेति-क। पण्डित, विद्वान।

प्रमुष्ट ( सं॰ ति॰ ) प्रमुज्ज । १ निरस्त । २ मार्जित । प्रमुष्य ( सं॰ ति॰ ) प्रमर्पेणयोग्य ।

प्रमेय (सं ० ति ०) १ जो प्रमाणका विषय हो सके, जिसका वोध करा सके । २ जिसका मान वतलाया जा सके, जिसका अंदाज करा सके । ३ अवधार्य, जिसका निर्धारण कर सके । (पु०) ४ वह जो प्रमा या यथार्थ जानका विषय हो, वह जिसका वोध प्रमाण द्वारा करा सके । न्यायदर्शनमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्तिद्यो प्रेश्यमाव प्रलब्ध । हा-प्रण क्ष प्रनेयम् ॥" (गौतमत् • ११११६)

प्रमेय शस्त्रका अथं है प्रमाज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञानकां विषय । स्त्रमें आत्मा शरीर इत्यादि शृङ्क्ष्मरा केवल लक्ष्य निर्दिष्ट हुआ है । अर्थात् आत्मा, शरीर, इन्ट्रिय, अर्थ, मन, प्रवित्त, दोष, प्रत्यभाव, फल, सुख, अपवर्ग ये वारह तथा तु शृङ्क्वोध्यद्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात लक्ष्य निर्देश करानेमें पदार्थ मात ही प्रमेयपद्वाच्य है । इनमेंसे आत्माशरीर प्रभृति द्वादशका ज्ञान होनेसे दुःसमय संसारमें विराग और आत्मतत्त्वज्ञान हो कर शीष्ठ मोक्षलाभ होता है।

पूर्वोक सूत्रमें महर्षि गौतमने आत्मादि अपवर्गान्त वारहको प्रमेय कह कर निर्देश किया है। इनमेंसे कणादोक्त आत्मा आंशिकभावमें भूतपञ्चक, रूप, रस, गन्ध,
स्पर्श और शब्द, बुद्धि, मन प्रवृत्ति, इच्छा, हेप ये सव
निर्दिष्ट तो हुए हैं, पर काल और दिक् नामक द्रव्य,
संयोगादिग्रुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय
निर्दिष्ट नहीं हुए हैं। सुतरां कणादोक्त पदार्थोंको प्रमेय
पदार्थके अन्तर्गत नहीं कह सकते। यह आपित सभीचीन तो है, परन्तु भाष्यकारको उक्तिके प्रति लक्ष्य करनेसे उक्त आपित सहजमें दूर हो सकती है। उक्त स्त्रमें
भाष्यकारने जो लिखा है वह इस प्रकार है—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय तथा उनके अवान्तरमेदसे अपिरसं य अन्य प्रमेय भी हैं। परन्तु आत्मादि अपवर्गान्त प्रमेयका तत्त्वज्ञान अप-वर्गका साधन और उनका मिथ्याज्ञान संसारका हेतु हैं। इसीसे आत्मादि अपवर्गान्त प्रमेय विशेषक्रपसे उपिदृष्ट हुए हैं। इसके तात्पयं टीकाकारका कहना है, कि जिनके तत्त्वज्ञानसे अपवर्ग और जिनके अतत्त्वज्ञानसे संसार होता है वैसा प्रमेय आत्मादि अपवर्गान्त वारह है। इससे कम नहीं है और न अधिक ही हैं। इस पर वार्त्तिककारने कहा है, कि अन्य भी प्रमेय हैं, परन्तु जिनके तत्त्वज्ञानसं मुक्ति होती हैं वैसा प्रमेय यही सब हैं।

महर्षि गौतमने खक्त स्त्रमें 'तु' शब्दका निर्देश करके यही स्थिर किया है, कि आत्मादि अपवर्गान्त प्रिमेय मोक्षोपयांगिक पमें मुमुक्षके प्रति उपिद्ध हुआ हैं। उससे अन्य प्रमेयका निराकरण नहीं होता। सुतरां कणादोक पदार्थ भी गौतमके प्रमेय पदार्थके अन्तर्गत हैं, यह निःसन्देह कहा जा सकता है। स्त्रकारका अभिप्राय जाननेके और भी कारण हैं—

'प्रमेया च तुला प्रामण्यवत्'' (गौतम्सु॰ इस स्वके प्रति लक्ष्य करनेसे यह और भी विस्तार हो जाता है ।

जिस द्रव्य द्वारा द्व्यान्तरके गुरुत्वका इयत्तापरिकान होता है, उसका नाम तुला है। यह तुला द्रव्यप्रमाण, सुवर्णादि गुरुद्वय प्रमेय है। किन्तु तुला द्रव्य जिस प्रकार प्रमाण होता है, उसी प्रकार प्रमेय भी हो सकता है। जब तुला द्रव्यके परिमाण परिकानके लिये सुव-णीदि द्रव्य द्वारा तुलाद्रव्यका इयत्तापरिच्छेद किया जाता है, तब परिच्छेदक सुवर्णादि द्रव्यप्रमाण और परिच्छेद त्वा द्वा प्रमेय होगा। इस पर वार्त्तिककार कहते हैं, कि तुलाद्रव्य जब तक अपर द्रव्यकी इयत्ताके परिच्छेदका हेतु होता है, तभी तक वह प्रमाण है। जब तक अपर द्रव्य द्वारा तुलाद्व्यकी इयत्ताका परिच्छेद किया जाता है, तब तक वह परिच्छेदक द्व्यका प्रमाण और परिच्छेदमान तुला-द्व्य प्रमेय होगा। यथा-थमें निमित्तके मेदसे एक पदार्थमें अनेक पदोंका प्रयोग परिद्वार्थ है। जिस अवस्थामें कोई वस्तु प्रमाका साधन

होती हैं उस अवस्थामें वह प्रमाण है। फिर जिस अवस्थामें वह वस्तु प्रमाका विषय होती हैं उस अवस्थामें वह प्रमेय हैं, इसे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। स्त्रोक्त यदि केवल वारह ही प्रमेय हों, तो 'तुला प्रमेय' स्त्रकारको यह उक्ति नितान्त असङ्गत हो जाती हैं। यद्यपि स्त्रनिदिंध वारह पदार्थों के मध्य तुलाका पाठ नहीं आता, तो भी तुलाको प्रमेय कहा जाता है। अतप्य यह जानना होगा, कि जिसका तत्त्वज्ञान अपवर्गका और अतत्त्वज्ञान संसारका हेतु हैं। वहीं प्रमेयस्त्रमें अभिहित हुआ है। स्त्रकार अत्य प्रकारका भी प्रमेय वतलाते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो पूर्वापर सङ्गति नहीं हो सकती। अतप्य कणादोक पदार्थ गौतमके प्रमेय पदार्थ के अन्तर्गत हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

अव प्रश्न उठता है, कि प्रमेय पदार्थमें यदि समस्त पदार्थों का अन्तर्भाव होता, तो एक पदार्थ कहनेसे ही काम चल सकता था, तव फिर गौतमने जो सोलह पदार्थ और वारह प्रमेय वतलाये हैं, सो क्यों? इसके उत्तरमें भाष्यकारने कहा है, कि प्रस्थानमेद रक्षाके लिये संश्यादि पदार्थ कहे गये हैं। यदि वैसा नहीं होता, तो आन्वीक्षिकी अर्थात् न्यायविद्या भी अध्यातमविद्या । तमें पर्यवसित होती।

इस पर वाचस्पितिमिश्र कहते हैं, कि यदि ऐसा स्वीकार न किया जाता, तो आन्वीक्षिकी भी वयीके अन्तर्गत हो जाती। वयी, वार्ता, दण्डनीति और आन्वीक्षिकी ये चार विद्या प्राणियोंके उपकारके लिये उपिष्ट हुई हैं। इनमेंसे वयीका प्रस्थान अन्तिहोत्तहवनादि, वार्त्तका प्रस्थान हलशकटादि, दण्डनीतिका प्रस्थान, सामी, अमात्य प्रभृति और आन्वीक्षिकीका प्रस्थान, संश्यादि है। प्रस्थान शब्दका अर्थ है असाधारण प्रतिपाद्यविषय। प्रस्थानमेदसे ही विद्याभेद हुआ करता है। फलतः न्यायके साथ जिन सव पदार्थोंका संस्रव है, गौतमने उन्हें ही पदार्थ वतलाया है। सुतरां संश्यादिका कीर्तन निर्धंक है, ऐसा किसी हालतसे नहीं कह सकता। प्रमाण पदार्थ प्रमेय प्रदार्थके अन्तर्गत है, इसमें संदेह करनेका कोई कारण नहीं। क्योंकि, चक्षुरादि इन्द्रिय प्रत्यक्षप्रमाण

है। उनकी गिनती साक्षात् प्रमेय पदार्थमें की गई है। व्याप्तिकान अनुमान और सादृश्यकान उपमान है, ये दोनों वुद्धिक्प प्रमेयके तथा शब्दक्प प्रमाण अर्थक्प प्रमेयके अन्तर्गत हैं। किन्तु चक्षरादि पदार्थ प्रमाकी साधन अवस्थामें प्रमाण माना जाता है और प्रमाकी विषय-अवस्थामें वही फिर प्रमेयपद्वाच्य होता है। उल्लिखित कारणोंसे प्रमाण पदार्थ प्रमेय पदार्थके अन्तर्गत होने पर भी पृथक्षमावमें कहा गया है। (न्यायदर्शन)

आ। मादि द्वादश प्रमेगक। विषय उन्हीं सब शब्दों में देखी। वेदान्तके मतसे शुद्ध चैतन्य ब्रह्म ही एकमात प्रमेय हैं।

प्रमेयत्व ( सं ० क्की० ) प्रमेयस्य भावः त्व । प्रमेयका भाव या धर्म ।

प्रमेह (सं • पु •) प्रकर्षेण मेहति क्षरित वीर्याद्रिनेनिति प्र-मिह क्षरणे करणे घडा। स्वनामख्यात रोगविशेष, मेह-रोगविशेष। (A urinary affection, a gleet, gonno rrhoea) पर्याय—मेह, मूलदीष, बहुमूलता। इस रोग-का लक्षण—

"आस्या सुखं खप्तसुखं द्घीनि प्राम्योदका-

नूपरसाः पयांसि । नवान्तपानं गुड्वैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच सर्वम्॥" (माधवनि०)

सर्वदा उपवेशन वा शयन, दिध, प्राम्यमांस, औदक-मांस और आनूपमांस, दुन्ध तथा नूतन तण्डुलका अन्न-मक्षण, नूतन जल, चीनी और मिटाई वादि अतिशय मिष्टमोजन तथा कफजनक द्रव्य खानेसे प्रमेहरीग उत्पन्न होता है।

सुश्रुतमें लिखा है—दिवासम, अपरिश्रमी और भालस्य प्रसक्त होनेसे तथा शीतल, स्निष्ध, मधुर द्रव अन्त-भक्षण करनेसे निश्चय ही प्रमेहरोग होता है। इस प्रकार अहिताचारो पुरुपकी वातिपत्तक्ष्रेप्मा विना परिपाक हुए ही मेदधातुके साथ मिल जाती और मूलवाहिनी नाड़ोके मध्य प्रवेश कर अधोमागमें चली जाती है। वहां वस्तिमुक्का आश्रय करके भेदकरणकी तरह यन्त्रणा उत्पन्न करती है। ये सब लक्षण होनेसे प्रमेह हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। करतल और पद्तलमें दाह,

देह स्निग्ध, पिच्छिल और भार, मूल शुक्कवणें और मधुर, तन्द्रा, अवसाद, पिपासा, निश्वासमें दुर्गन्ध, तालु, गल-देश, जिह्वा और दन्तमें मलकी उत्पत्ति, केशका जिह्ल भाव तथा नखवृद्धि ये सव प्रमेहरोगके पूर्वलक्षण माने गये हैं। सभी प्रकारके प्रमेहमें मूल अधिक उत्तरता है। इस रोगमें व्रोधसम्भूत पीड़का उत्पन्न होती है। जन-निन्त्रयके अपर जो फोड़ा निकलता है उसे पीड़का कहते हैं। प्रमेहरोग २० प्रकारके हैं उनमेंसे उदक्रमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिएमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनमेंह और लालमेह, हरिद्रामेह, माखिएमेह और रक्तमेह ये छः प्रकार पित्तज और रसामेह, मजामेह, क्षीद्रमेह और हस्तिमेह ये चार प्रकार वातज प्रमेह हैं।

ये सव प्रमेहरोग होनेके पहले दन्त, चक्ष् और कर्णादि-में अधिक मलसञ्चय, हस्त और पदादिमें ज्वाला, देहकी चिक्कणता, तृष्णा और मुखकी मधुरता होती है। अधिक परिमाणमें सूत्र और मूलकी आविलता ( मैलापन ) ये दो प्रमेहके साधारण लक्षण हैं। उदकप्रमेहमें मूल मैला, कभी खच्छ, पिच्छिल, परिमाणमें अधिक श्वेतवर्ण, जल-वत् और गन्धहीन होता है। इस्मेहमें मूत इस्र्रसके जैसा मिठास होता है सान्द्रमेहमें पेशावको अधिक काल तक रखनेसे वह घना हो जाता है। सुरामेहमें सुराके समान तथा ऊपरी भागमें स्वच्छ भौर निचले भागमें घना मूत दिखाई देता है। पिप्टमेहमें मूत्रत्याग करते समय रोगोके रोंगटे खड़े हो जाते तथा जलकी तरह सफेद और अधिक पेशाव उतरता है। शुक्रमेहमें मूल शुक्रकी तरह वा शुक्रमिश्रित होता है। सिकतामेहमें मूतके साथ वालुकाकणाकी तरह कठिन पदार्थ निक-लता है। शीतमेहमें मूल अतिशय शीतल, मधुस्वाद और परिमाणमें अधिक होता है। शनैमेंहमें वहुत धीरे धीरे थल्प मूत निकलता है। छालामेहमें लालायुक्त तन्तु-विशिष्ट और पिच्छिल पेशात्र उतरता है । क्षारमेहमें मूल क्षारजलको तरह गन्ध, वर्ण, आस्वाद और स्परीविशिष्ट होता है। हरिद्रामेहमें हरिद्रावर्ण और कटुरसयुक्त तथा मूत्रत्यागकालमें लिङ्गमें जलन मालूम होतो है। मञ्जिष्टा-मेहमें मञ्जिष्टाजलके समान रक्तवर्ण और मछलीकी तरह

-46

गन्धयुक्त मूल निकलता है। रक्तमेहमें मछलीकी तरह गन्धविशिष्ट, उल्ला और खारा पेशाव उतरता है। वसा-मेहमें चवींके समान अथवा चवींमिश्रित मूल बार वार निकलता है। कोई कोई वसामेहको सिपेमेंह भी कहते हैं। मज्जमेहमें मज्जतुल्य वा मज्जमिश्रित मूल निकलता हैं। हस्तिमेहमें रोगी मतवाले हाथीको तरह हमेशा पेशाव करता है और पेशाव करनेके पहले किसी प्रकार-का वेग उपस्थित नहीं होता। कभी कभी तो मूलरोध होते भी देखा जाता है।

प्रमेहरोगका उपद्रव—दश प्रकारके कफज मेहोंमें अजीए, अरुचि, विम, निद्मिधक्य, खांसीके साथ कफिल्योवन और पीनस; छः प्रकारके पित्तज मेहोंमें वस्ति और लिङ्गनालमें सुई चुमनेकी-सो वेदना, लिङ्गनालमें पाक, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्रोद्धार, मूर्च्छा और मलमेद तथा चार प्रकारके वातज मेहोंमें उदावर्च, कम्प, हदयमें वेदना, सब प्रकारके आहारमें लोभ, शूल, अनिद्म, शोप, कास और श्वास ये सब उपद्व उठ सकते हैं। उपद्व-युक्त सभी प्रकारका प्रमेह प्रायः कप्टसाध्य है।

पित्तज-प्रमेहमें दोनों चृपणका अवदारण ( लम्या होना ), वस्तिभेद, मेदृतोद, हृदिशूल, अम्लिकाज्यर, अति-सार, अरुचि, वमन, गातका उद्भाव, दाह, मूर्च्छा, पिपासा, निद्रानाश, पाण्डुरोग, विद्या और मूलकी पीत-वर्णता ये सव उपद्रव होते हैं।

ये सव प्रमेह उपस्थित होनेसे यदि उपयुक्त चिकित्सा न की जाय, तो रोगीको गया गुजरा ही सममना चाहिये। शरीरमें चर्वी और मेदके अधिक रहनेसे तथा समस्त धातुओं के तिदोप द्वारा द्वित होनेसे प्रमेहरोगीके शरीरमें दश प्रकारको पोड़का उत्पन्न होती है। इन सव पीड़काओं के नाम हैं शराविका, सपीपका, कच्छिपका, जालिनी, विनता, पुतिणी, मस्रिका, अलजी, विदारिका और विद्धिका। इनका लक्षण—शरावके जैसा परिमाण और उसका मध्यस्थल निम्न होनेसे शराविका; श्वेतसर्थपके समान तथा उसीकी तरह शरीरमें स्थित होनेसे सर्षपो; दाहगुक्त और कूर्मकी तरह संस्थित होनेसे कच्छिपका; तीव्रदाहगुक्त और पीड़काके नील-कर्ण तथा उन्नत होनेसे विनता, संकुचित और उन्नत

हांनेसे पुतिणी, मस्रके जैसा संस्थित होनेसे मस्रिका, रक्त और श्वेतवण कठिन स्फोटयुक्त होनेसे अलजी, भूमिकुप्माण्डकी तरह गोल और कठिन होनेसे विदारिका तथा विद्रधिके लक्षणविशिष्ट होनेसे भी विद्रधिका समभी जाती है। दुवल अवस्थामें यदि रोगीके मल्हार, हदय, मस्तक, अंशदेश, ष्टष्ट और ममस्थानमें उपद्रविशिष्ट पीड़का हो, तो उसे असाध्य जानना चाहिये। समूचे शरीरको निष्पीड़न करके यदि मेद्द मजा और वसायुक्त आसाव वायुकर्णृ क अधोभागमें निःस्त हो, तो इसमें भी रोगीकी जान पर खतरा है, ऐसा समभना चाहिये। प्रमेहके पूर्व लक्षणका भाव दृष्ट होने तथा मूलके अधिक परिमाणमें निकलनेसे ही जानना चाहिये, कि उसे प्रमेहरोग हुआ है। पीड़कामें अतिशय पीड़ित और उपद्रविशिष्ट होनेसे मधुमेह होता है। यह मधुमेह दुःसाध्य है।

सभी प्रकारके प्रमेहरोग अचिकित्स्यमावमें अधिक दिन रहनेसे मधुमेहरूपमें परिणत होते हैं। इसमें मूल मधुके समान घना, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मिठास होता है। मधुमेह अवस्थामें जिस जिस दोषकी अधिकता रहती है, उस उस दोपसे उत्पन्न प्रमेह-लक्षण दिखाई देते हैं। (सुश्रुत निदान ६३ अ०)

प्रमेहरोग स्वभावतः कप्रसाध्य है। अता यह रोग होते ही उसकी विशेपक्षपसे चिकित्सा करना आवश्यक है। सुश्रुतके मतसे प्रमेहरोग दो प्रकारका है सहज और कुपथ्यजन्य। पितामाताके वीजदोपसे जो रोग उत्पन्न होता है उसे सहज और जो कुपथ्य द्वारा होता है उसे कुपथ्य-जन्य कहते हैं। दोनों ही प्रकारके प्रमेहमें पहले श्ररीरकी कुश्यता, कक्षता, अन्य आहार, पिपासा आदि उपद्रव होते हैं। पीछे देहकी स्थूलता, क्षिम्धता, अधिक आहार, श्रुप्याप्रियता, आसनिप्रयता वा निद्राशीलता आदि लक्षण दोख पड़ते हैं। कुश होनेसे अन्नपानके नियम द्वारा और स्थूल होनेसे उपवासादि काशेकर किया द्वारा चिकित्सा विधेय हैं।

प्रमेहरोगियोंके लिये सौवीरक (कांजी), तूषोदक, शुक्त, सुरा, आसव, दुग्ध, जल, तैल, घृत, इश्रुविकार, द्धि, पिटान्न, अमुपानक, ग्राम्य वा अन्पदेशजात पशुका मांस ये सव विशेष निषिद्ध हैं। शालि, पिंद्र, यव, गोधूम, कोड़व और उद्दालक ये सब यदि पुराने हों, तो प्रमेहरोगी खा सकते हैं। चना, अरहर, कुलथी और मृंगको जमालगोटेके तेलमें पाक कर, तीता और कसैला शाक, पेशाव रोकनेवाला जङ्गली मांस और जिन सब ड़ब्योंसे मेद शुक्क होता है, उन्हें तेलमें एका कर प्रमेहरोगी भोजन कर सकते हैं। असु-भोजन विलक्षल निपिद्ध है, स्नान कर सकते हैं। परन्तु प्रमेहको यदि अधिकता हो तो लान नहीं करना ही अच्छा है।

प्रमेहरोगोको पहले किन्ध कर पूर्वोक्त किसी प्रकारके तेल द्वारा वा प्रियंगु आदि सिद्ध घृत द्वारा वमन और विरेचन करावे। विरेचनके वाद सुरसादिकपाय द्वारा आस्थापन करे। शरीरमें यदि जलन देती हो, तो स्नेह-वर्जित न्यप्रोधादिके कपायमें सींड, भद्रदार और मोथा डाल कर मधु तथा सैन्धवके साथ पान करे। इसके द्वारा देह विशुद्ध होनेसे हरिद्रा, आमलकीका रस, मधुके साथ पान अथवा लिफला, देवदार और मोथा इन्हें हरिद्रायुक्त आमलकीके रसमें पीस कर मधुके साथ पाक करे। क्रूटज, कपित्थ, रोहित, विभीतक और सप्तपर्णपुष्प इनका कल्क अथवा निम्य, आरग्वध, सप्तपर्ण, मूर्वा, क्रूटज, सोमवृक्ष वा पलाश इन सव वृक्षोंका त्वक्, पत, मृल, फल और पुष्प इन सवका कपाय प्रस्तुत करके सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

उदकमेहमें पारिजातकपाय, इश्रुमेहमें जयन्तीकपाय, धुरामेहमें लिङ्गकपाय, सिकतामेंहमें चिवककपाय, शनैमेंहमें खिद्र-कपाय, लवणप्रमेहमें पाठा और अगुक्का
कपाय, पिष्टमेहमें हरिद्रा और दावहरिद्राका कपाय,
सान्द्रमेहमें सप्तपर्णकपाय, शुक्रमेहमें दुर्वा, शैचाल, प्लव,
हठ, करख और कलेखका कपाय, फेनमेहमें विफला,
आरग्वध और दाख्तिका कपाय, फेनमेहमें विफला,
आरग्वध और दाख्तिका कपाय, केनमेहमें विफला,
आरग्वध और दाख्तका कपाय, इन्हें मधुके साथ
पान करे। कफजप्रमेहमें शेपोक्त दो प्रकारका अधिक
परिमाणमें मधुके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार
होता है। पित्तज नीलप्रमेहमें शालसारादि कपाय वा
अश्वत्थकपाय, हरिदामेहमें राजवृक्षकपाय, अमुमेहमें मधुमिश्रित न्यग्रोधादि कपाय, क्षारमेहमें विफलाकपाय,
मिश्रित न्यग्रोधादि कपाय, क्षारमेहमें विफलाकपाय,

गुड़ची, तिन्दुकास्थि, खर्जूर और गाम्भारीका क्याय, इन्हें मधुके साथ पान करनेसे विशेष फायदा देखा जाता है।

जो सव प्रमेह असाध्य वतलाये गये हैं, वे अच्छी तरह चिकित्सित होनेसे याय होते हैं। इस कारण असाध्य प्रमेहकी भी चिकित्सा विधेय है। असाध्य प्रमेहकी भी चिकित्सा विधेय है। असाध्य प्रमेहके मध्य सिंपमेहमें कुछ, कूटज, सोनापाठा, हिंगु और कटकी इनके कटकका गुड़ूची और चित्रकके कपायके साथ सेवन करे; वसामेहमें अग्निमन्थका कपाय, झौट्रमेहमें खदिर या गुवाककपाय, वस्तिमेहमें तिन्दूक, किपत्थ, शिरोप, पलाश, सोनापाठा, मूर्चा और दुरालभा इनके कपायको मधुके साथ सेवन करनेसे वे सव असाध्य प्रमेह याप्य रहते हैं। इन सव प्रमेहोंमें हाथी, घोड़े, स्वर, गधे-और उटकी हड़ीका क्षार सेवन करनेसे भी विशेष उपकार होता है। प्रमेहमें यदि ज्वाला रहे, तो जलीयकन्द और दूधके साध यवागु प्रस्तुत करके मधुके साथ सेवन करें।

त्रियंगु, अनन्ता, यूथिका, पद्मा, लोहितिका, अम्बष्टा, दाड़िमत्सक्, शालपणीं, पुन्ताग, नागकेशर, धातुकी, धातकी, वक्तल, शालमली और मोचरस इनका अरिष्ट वा आसव प्रस्तुत करे। इसके सेवनसे प्रमेहरोग जाता रहता है। श्रुङ्गाटक, गिलोड्यांवप, सृणाल, कशेरक, यष्टिमधु, आन्न, जम्बू, असन, अर्जुन, रोग्न, मल्लातक, चर्मवृक्ष, गिरिकाणिका, शैलज, निचुल, दाड़िम, अजकण, हरिवृक्ष, राजादन, गोववंटा और विकड़त इनका अरिष्ट, अवलेह वा आसव प्रस्तुत करके सेवन करनेसे प्रमेहरोग प्रशमित होता है।

प्रमेहरोगकी वृद्धि होनेसे वरायाम, युद्ध, कीड़ा गज, तुरङ्ग और रथादिमें भ्रमण तथा अल्लसञ्चालन करनेसे विशेष उरकार होता है। रोगी यदि निर्धन और निःसहाय हो, तो पादुका और छलका परित्याग कर मिल्लाहार तथा संयतिचत्तसे सौ योजनसे अधिक भ्रमण करे। स्थामाक, नीवार, आमलक, कपित्थ, तिन्दुक और अस्मन्तक फल खा कर वन चनमें भ्रमण, सर्वदा गो और ब्राह्मणका अनुगामी हो गोमूल तथा गोमय मक्षण करे। इससे प्रमेहरोगकी शान्ति होती हैं। प्रमेहरोगको पीड़का होनेसे उसकी भी चिकित्सा विधेय हैं। प्रमेहरोगीका मूझ पिच्छिलता और आविलताशून्य, निर्मेल, तिक और कटुरसिविशिष्ट होनेसे रोग आरोग्य हुआ हैं, ऐसा जानना चाहिये।

( सुध्रुत चिकित्सा १२-१३ अ०)

प्रमेहरोगके वहुतसे मुष्टियोग हैं-प्रमेहरोग स्वमा-वतः ही कप्टसाध्य है। इस रोगका आक्रमण होते ही ं विशेष सावधानीसे रहना उचित हैं। गुलञ्चका रस, आमलकोका रस, कचे सेमरका रस प्रमेहरोगका उत्कृष्ट · मुष्टियोग हैं । त्रिफला, देवदारु, दारुहृरिदुा और मोथा इनके काथका मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके ·प्रमेह प्रशमित होते हैं। मधु और हरिाद्।युक्त आमलकी-का रस भी उसी प्रकार उपकारी है। शुक्रमेहमें दुःधके साथ शतमूलीका रस अथवा प्रतिदिन सबेरे आध पाव . कचे दूधमें उतना ही पानो मिला कर पी जानेसे विशेष उपकार होता है। पलाशफूल एक तोला और चीनी आध तोला इन्हें ठंढे जलके साथ सेवन करनेसे सभो प्रकार-के प्रमेह निवारित होते हैं। रांगेकी भस्म प्रमेहरोगकी एक उत्कृष्ट औपध है। सेमरफूलके रस, मधु और हरिदाचूर्णके साथ २ रत्ती भर रांगेकी भस्मका सेवन करनेसे प्रमेहरोग अतिशीघ्र जाता रहता है ।

प्रमेहरोगमें मूलरोध होनेसे ककड़ोका वीज, सैन्धव-लवण और विफला इनके चवन्नी भर चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करें। कुशावलेह और मूलकुच्छ्र-रोगकी अन्यान्य औपधोंका भी सेवन करनेसे विशेष उप-कार होता हैं।

इलायचीका चूर्णं, मेहकुलान्तकरस, मेहमुद्गरविका, वङ्गेश्वर, वृहत्हरिशङ्कररस, चन्दनासव और दाड़िमाद्य-घृत आदि औपधका तथा प्रमेहिमिहिर आदि तेलका रोगकी अवस्थाका विचार करके सभी प्रकारके प्रमेह रोगोंमें स्ववहार किया जाता है।

प्रमेह-पीड़कामें यज्ञह्रमरका दूध लगावे अथवा सोमराजीके वीजको पीस कर प्रलेप दे। अनन्तमूल, श्मामालता, द्राक्षा, निसोथ, कटकी, हरीतकी, अङ्कसकी छाल, नीमकी छाल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा और गोक्षरवोज, इन सब द्रवर्गेका काथ सेवन करनेसे प्रमेहपीड़का प्रश-मित होती है। शारिवादि लौह, शारिवादिआसव और मकरध्यजका रस इस अवस्थाकी उपयुक्त औषध है। प्रमेहरोगकी अन्यान्य औपधोंका भी इसमें विवेचनापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। अधिक दूध, मिष्टद्रवा, अधिक मत्स्य, लालमिर्च, शाक, अम्र द्रवा, उरद्की दाल, दृधि, गुड़, लोकी, ताड़की गरी और अन्यान्य कफवर्ड क द्रवाभोजन, मद्यपान, मैथुन, द्रिवानिद्रा, राव्रिजागरण, आतप्सेवन, मूलका वेगधारण और अधिक धूमपान पे सब प्रमेहरोगमें विशेष अनिष्टकारक हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि स्त्रियोंके प्रमेहरोग नहीं होता।

"रजः प्रवत्तते यस्मात् मासि मासि विशोधयेत्। सर्वान् शरीरदोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः॥"

(भावप्र०)

स्त्रियोंके प्रति मासमें रजोरक स्नाव हो कर शारीरिक समस्त दोप विशोधित होते हैं, इस कारण वे प्रमेहरोगा-कान्ता नहीं होतीं। किन्तु कहीं कहीं अनार्त वा स्नियोंके यह रोग होते देखा गया है। प्रमेहरोगीमें कोई वलवान् होता है और कोई दुर्वल । इनमेंसे कुश व्यक्तिके लिपे वल और मांसवृद्धिकर औपघ तथा अधिक दोप और वलसम्पन्न वाक्तिके लिपे संशोधन अर्थाः विरेचनादिका प्रयोग विशेष हितकर हैं। जब वमन और विरेचन द्वारा सभी दोप ऊद्धध्वीधः निःस्त हो जाय, तव सन्तर्पणिक्रया कत्तवा है। जिस प्रमेहरोगीको संशोधनका सेवन करना निपिद्ध हैं, उनके लिये संशमन औपधविशेष उप-कारजनक हैं। विकिर (हंस, मयूर और कुक्कुटादि), प्रतुद (कपोतादि) पक्षी तथा छागादि जंगली पशुके मांस-का यूप, अल्प परिमाणमें कषाय रस, चूर्ण अवलेह, मस्र और म्'ग आदिका लघु आहार प्रमेह रोगमें हितकर है। श्यामाक कामिनोधान्य, गोध्म, चना, अरहर, कुलथी और उड़द ये सव द्रवा यदि साल भरसे ऊपरके हों, तो उन-का सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। मधु और हरिदा संयुक्त आमलकीका रस, त्रिफला, देवदार और मोथेका काथ पान करनेसे प्रमेह प्रशमित होता है। बिफला, लौह, शिलाजतु वा हरीतकी चूणेंका मधुके साथ अवलेह करनेसे वा गुलञ्चके रसको मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह जाते रहते हैं। थोड़ी सी फिटकरीके चूरको नारियलको वीचमें भर कर उसे रात भर कीचड़में

गाड़ रखे। सवेरे उसे निकाल कर उस चूर्ण और जलको एक साथ पान करनेसे वहुत दिनोंका प्रमेह नए हो जाता है। अलावा इसके कुशायलेह, शिलाजतु, सालसारादि-लेह, दाड़िमाधपृत, वृहदुदाड़िमाधपृत, महादाड़िमाध पृत, विड़क्कादि लौह, पञ्चाननरस, मेहकुलानकरस, मेहा-नलरस, चन्द्रकला, तारकेश्वर, सोमेश्वररस, सर्वेश्वररस, वेदविद्यावटी, वङ्गेश्वर, वृहदुङ्गेश्वर, वङ्गाएक, वसन्त-कुसुमाकररस, चन्द्रप्रभादि विका, मेहिमिहिरतेल, प्रमेह-मिहिरतेल, इन्द्रवटी, मेहमुद्ररविद्या, सोमनाथरस और देवदावरिए इन सव पृत और तेलका सेवन करनेसे प्रमेहरोग प्रशसित होता है। चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगीका धातु और वलावल देख कर औपधका प्रयोग करें।। (भेष स्थारना श्रीहरोगा०)

भावप्रकाश, चरक, चकदत्त आदिमें इस रोगका विशेष विवरण लिखा है, पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

यह रोग महापातकज है। अतपव इसमें प्रायश्चित्त करना अवश्य कर्त्वं स्य है। मेहरोग रेखो।

प्रमेहिमिहिरतैल (सं ॰ ह्यां ॰) तैलीपभमेद ! इसकी प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ सेर, करकार्य लाझा ८ सेर, जल ६४ सेर, शेप १६ सेर, सतम्लीका रस ४ सेर, दुग्ध ४ सेर, दिश्वका जल १६ सेर, करकार्य सीयां, देवदार, मीथा, हिरद्रा, दारुहिर्द्रा, मूर्वा, छुट, अश्वगन्धा, श्वेतचन्दन, रकचन्दन, रेणुक, कटकी, यिष्टमधु, रास्ना, गुइत्वक्, इलायची, वरङ्गी, चई, धनिया, वला, गोरक्षमुंडो, पिठ-वन, मिखण्डा, सरलकाण्ड, पद्मकाष्ट, लोध, सौफ, वच, जीरा, खसकी जड़, जायफल, अइसकी छाल, तगरपादुका प्रत्येक दो तोला। यथानियम इस तेलको पाक करे। ग्ररीरमें इसकी मालिस करनेसे दाह, पिपासा और मुख-शोयादि उपद्वींके साथ सभी प्रकारके प्रमेह रोग जाते रहते हैं। (मैयव्यराना॰ प्रमेहरोगा)

प्रमेहिन् (सं o पु॰) प्र-मिह-णिनि । १ प्रमेहरोगी । २ नन्दिवृक्ष ।

प्रमोक्तवा (सं० वि०) प्र-मुच्-तब्य । मुक्तिके योग्य । प्रमोक्ष (सं० पु०) १ विमुक्ति, छुटकारा । २ निर्वाण, मोक्ष । ३ त्याग, छोड़ना ।

Vel. XIV. 155

प्रमोक्षण (सं ० क्ली०) प्रकृष्टकपसे मुक्ति ।
प्रमोचन (सं ० ति०) प्रकर्षण मुच्यतेऽनेन प्र-मुच-ल्युद् ।
१ प्रकृष्ट मोचनकर्चा, अच्छी तरह प्रमोचन करनेवाला ।
(क्ली०) २ प्रकृष्टकपसे मोचन, अच्छी तरह खुड़ाना । ३
प्रमोचनसाधन, खूब हरण करना । स्त्रियां ङीप् ।
४ गवाक्षी । ५ गोडुम्बा, एक प्रकारकी ककड़ी, गोमा ककड़ी ।

प्रमोद (सं० पु०) प्र-मुद हुएँ भावे घञ्। १ हुए, आनन्द। २ आमीद, सुख। ३ नागमेद, एक नागका नाम। ४ झुतारा-नुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम। ५ मुख्य सिद्धि-भेद, एक सिद्धिका नाम। मुख्यसिद्धि तीन प्रकारकी है, प्रमोद, मुदित, और मोदमान। सर्वोत्कर्पसे जब भाध्या-तिमक दुःखकी निवृत्ति होती है, तब यह सिद्धि होती है। ६ मृहस्पतिके पहले युगके चौथे वर्षका नाम। (ति०) ७ प्रमोद युक्त, हुर्ययुक।

प्रमोदक (सं॰ पु॰) १ पष्टिकधान्य, साठी धान । २ शालि-धान्यविशेष, एक प्रकारका जड़हद ।

प्रमोदन (सं० ति०) प्रमोदयित प्र-मुद-णिच्-ल्यु । १ हपंकारक । (पु०) २ विप्णु । (क्क्रो०) ३ हपंसम्पादन । प्रमोदमान (सं० क्की०) सांख्यवर्णित अष्टसिद्धिमेंसे एक । प्रमोदसहक (सं० क्की०) कृतान्नभेद, एक प्रकारकी औषध । यह गाढ़े दही और चीनोमें मिर्च, पीपल, लींग, और कपूर मल कर उसमें अनारके एके दाने डाल कर वनती है। इससे दीपन होता है तथा यकावट और प्यास दूर होती है।

प्रमोदा (सं० स्त्री०) सांख्यके अनुसार आड प्रकारकी सिद्धियों मेंसे एक। यह आधिदैविक दुःखोंके नष्ट होने पर प्राप्त होती हैं।

प्रमोदित (सं० ति०) प्र-मुद्-हर्पे-क ( उदुपधादिति । पा १।२:११) इति किदमावः; प्रमोदोऽस्य जात इति तारका-दित्वादि तच् वा। १ प्रमोदयुक्त, आनन्दित, हर्पित। (पु०) २ कुवेर।

प्रमोदिन् (सं ० ति०) प्रमोदयतीति प्र-मुद-णिच् णिनि । १ प्रग्रह हपयुक्त । २ हपजनक ।

प्रमोदिनी (सं० स्त्री०) जिङ्गिनी चूझ, जिगिनका पेड़ । प्रमोह (सं० पु०) प्र-मुह-चन् । १ प्रकृष्टकप मोह । २ प्रमोहक, मुर्च्छा । प्रमोहन (सं० क्ली०) प्रमुद्धतेऽनेन प्र-मुह-करणे-ल्युट, ग्रामोऽयति प्र-मुह-णिच्-ल्यु वा। १ प्रमोहसाधन, वह अस्त्र जिसके प्रयोगसे शत्नुद्छमें प्रमोहको उत्पत्ति हो। २ मोहित करना। (ति०) ३ प्रमोदकारकमात। प्रमोहिन् (सं० ति०) प्रमोहयतीति प्र-मुह-णिनि। मोह-जनक।

प्रम्लोचन्ती (सं० स्त्री०) अप्सराभेद । प्रम्लोचा (सं० स्त्री०) प्रम्लोचित तापसादीन् प्रतिगच्छ-तीति प्र-म्लुच-गतौ अच्-टाप् । अप्सराविशेष, एक अप्सरा ।

प्रयक्ष ( सं ॰ पु॰ ) प्र-यक्ष-पूजायां अच् । पूज्य । प्रयज् ( सं ॰ स्त्री॰ ) वलि, उत्सर्ग ।

प्रयज्यु (सं० ति०) प्र-यज 'यजिसनिशुद्धिमसिद्निभ्यो युच्, इति युच् निरन्नासिकत्वात् अनादेशो न । अध्वर्यु । प्रयत् (सं० ति०) प्र-यम-क वा प्रयते धर्माद्यर्थमिति प्र-यत-अच् । १ पवित, संयत । २ नम्न, दीन । ३ प्रयत्न-शीछ । ४ दक्त, दिया हुआ ।

प्रयतात्मा (सं॰ ति॰) १ संयत आत्मावाळा, जितेन्द्रिय, संयमो । (पु॰) २ शिव ।

प्रयति (स'० स्त्री०) प्रत्यम-क्तिन् । प्रथम संयम । प्रयतितव्य (सं० ति०) प्रन्यत-तव्य । प्रयत्नके योग्य । प्रयक्तव्य (सं० ति०) प्रयक्तयोग्य ।

प्रयत्न (सं० पु०) प्र-यत यत्ने (यज्ञयाचयतविच्छप्रव्यवक्षा नङ् । पा ३।३।४०) इति नङ् । प्रकृष्टयत्न, चेष्टा, कोशिश ।

नैयायिकों के मतसे प्रयत्न तीन प्रकारका है, प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि । इप्टसाधनता ज्ञान, चिकीर्षा (यह हमारा कर्त्ताच्य है, ऐसी इच्छा), कृतिसाध्यत्व ज्ञान और उपादानप्रत्यक्ष ये सब प्रवृत्तिके कारण हैं। जो काम करनेकी इच्छा नहीं होती उसे करनेके लिये कोई भी प्रवृत्त नहीं होता । इच्छा होने पर भी यित समका जाय, कि यह काम मेरी शक्तिके वाहर है, तो वह काम करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। असाध्य विषयमें प्रवृत्त होना असम्भव है। इतना होने पर भी जिस उपादानसे कार्यसम्भव करना होगा, उस उपादानका प्रत्यक्ष नहीं होने पर वह कार्य नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार महीके नहीं रहने से घड़े आदि नहीं वन सकते तथा चावलके नहीं रहनेसे

रसोई नहीं वन सकती, उसी प्रकार विना उपादानके कोई कार्य नहीं किया जा सकता । शरीरमें प्राणवायुका सञ्च-रण अर्थात् निश्वास प्रश्वासादि जिस प्रयत्तभावसे होते हैं, उसका नाम जीवनयोनि प्रयत्त है। २ फलार्थियोंके प्रारम्थ कर्मोकी पाँच अवस्थामेंसे एक । ३ वणीं के उचा-रणमें होनेवाली क्रिया । उचारण प्रयत्न दो प्रकारका होता है, आभ्यन्तर और वाह्य। ध्वनि निकलनेके पहले वागि-न्द्रियकी क्रियाको आभ्यम्तर प्रयत्न और ध्वनिके अन्तकी कियाको बाह्य प्रयत्न कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्नके अनु-सार वर्णोंके चार भेद हैं, विवृत, स्पृप्ट, ईपत् विवृत और ईषत् स्पृष्ट । जिनके उच्चारणमें वागिन्द्रिय खुली रहती हैं, उसे विवृत, अैसे, खर ; जिनके उचारणमें वागिन्द्रिय-का द्वार वंद रहता है, उसे स्पष्ट, जैसे 'क' 'से' 'म' तक १५ व्यञ्जन ; जिनके उचारणमें वागिन्द्रिय कुछ खुली रहती है, उसे ईपत् विवृत, अैसे, व र छ व और श प स ह को ईषत् स्पष्ट कहते हैं। वाह्य प्रयत्नके अनुसार दो भेद हैं, अघोप और घोष। अघोप वर्णोंके उचारणमें सिर्फ श्वासका उपयोग होता है, कोई नाद नहीं होता, यथा-क ख च छ ट ठ त थ प फ श प और स । घोप वर्णांके उच्चारणमें केवल नाद्का उपयोग होता है, यथा—शेव व्यञ्जन और सव खर ।

प्रयत्नवत् (सं० त्ति०) प्रयत्नोऽस्यास्ति प्रयत्न-मतुप्-मस्य-व। प्रयत्नयुक्त ।

प्रयत्नवान् ( हिं० वि० ) प्रयत्नमें लगा हुआ ।

प्रयत्तरीथित्य (सं॰ क्ली॰) स्वामाविक प्रयत्नके उपरमपूर्वक प्रयत्नभेद । यह योगाङ्ग आसनसिद्धिके निमित्त
आवश्यक है। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है—"अयतमें थि॰
ल्यानन्तसमाविचम्यां" (पात्रकलक्ष्य रा४७) 'वलत्वात स्थैयेविच।तकस्य स्वामाविक प्रयत्नस्य शेविल्य ववरमः'
(भोजवृत्ति) आसन जय करनेमें शास्त्रविहित प्रयत्नकी
आवश्यकता है। आसन जय करनेमें शास्त्रविहित प्रयत्नकी
आवश्यकता है। आसन जय करनेके लिये स्वामाविक
प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अर्थात् अयोगी मनुष्य हमेशा
जैसे प्रयत्नसे उपवेशन करते हैं, वैसे प्रयत्नका परित्याग
कर योगशास्त्रोक्त प्रयत्न शिक्षा करे। पोछे उसी प्रयत्नको
काममें ला कर आसन जय करना होता है। स्वामाविक
प्रयत्नका उपरम होनेसे-योगशास्त्रोक्त यो प्रयत्नविशेष हैं,
उसीको प्रयत्नशैथिल्य कहते हैं।

प्रयन्त (सं० ति०) प्र-यम-तृच् । १ प्रकर्षक्रपसे यन्ता । द

प्रयस् (सं० क्वी०) प्रयस्पतेऽय प्र-यस-आधारे-किए । अन्त । प्रयसा (सं० स्त्री०) एक राझसी जिसे रावणने सीताको समकानेके लिये नियत किया था।

प्रयस्त (सं ० ति०) प्र-यस-प्रयत्ने-क । १ प्रयास द्वारा कृत । २ सुसंस्कृत । (क्वी०) ३ घृतचतुर्जातकादि द्वारा प्रयत्न संस्कृत व्यक्षन ।

प्रयस्तत् (सं० ति०) हविर्लक्षणान्नयुक्त ।
प्रया (सं० स्त्री०) प्रकर्षेह्रपसे शतुके प्रति अभियायी
वल । वह ताकत जो शतुके प्रति अच्छी तरह लगाई
गई हो।

प्रयाग (सं० पु०) प्रकृष्टो यागो यागफलं यस्य यस्मात् या ।
१ एक प्रसिद्ध तीर्थं जो गंगा यमुनाके सङ्गम पर है।
प्रयाग तीर्थंका विषय प्रायः सभी पुराणोंमें आया
है। यहां अति संक्षिप्त भावमें उसके माहात्म्यका विषय
लिखा जाता है। कहते हैं, कि पापी सभी प्रकारके
पापानुष्ठान करके यदि प्रयाग तीर्थमें मस्तक मुद्दावे, तो
उसके सव पाप जाते रहते हैं। मत्स्यपुराणमें प्रयागतीर्थंके माहात्म्यका विषय १०२ अध्यायसे ले कर १०७
अध्याय तक विस्तृतमावमें लिखा है, यहां उसका संक्षित

"एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं तिपु लोकेषु विश्रुतम् । न शक्यं कथितं राजन् तिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।" इत्यादि । ( मत्स्यपु० १०२ अ० )

विवरण दिया जाता है,---

प्रयागतीर्थं प्रजापितका क्षेत्र-हैं और तिलोकिविख्यात है। इसका माहातम्य सी वर्ष तक कहने पर भी शेष नहीं हो सकता। इस तीर्थमें स्रोतस्वती गंगा और यसुना विद्यमान हैं। साठ हजार वीरपुरुष गङ्गाकी और स्वयं सूर्यदेव यसुनाकी रक्षा कर रहे हैं। यहां एक यर-वृक्ष है जिसके रक्षक स्वयं श्रूलपाणि हैं। सभी देवता मिल कर इस पापनाशक स्थानकी रक्षा करते हैं। यहांका माहात्स्य पेसा है, कि केवल नाम लेनेसे हो पापका क्षय होता और दर्शनसे सभी पाप जाते रहते हैं। इस तीर्थमें पांच कुएड हैं जिनके मध्य जाहनी देवी अवस्थित हैं। प्रयागतीर्थ में प्रवेश करते ही सभी पाप

भ्वंस हो जाते हैं और मन ही मन जो कामना की जाती है वह पूरी होती है। इस तीर्थ में न्स्नानदानादि और पितरेंका तर्पण करके यदि देहावसान हो जाय, तो वह दीप्तकाञ्चन सदृश और स्पेतुल्य तेजस्क विमान पर चढ़ कर खर्गगतिको प्राप्त होता है। वहां पहुंच कर वह गन्धवं और अप्सराओंके मध्य वास करता है। देश, विदेश, गृह वा अरण्य जहां कहीं भी मृत्युकालमें प्रयागका समरण किया जाय, मृत्युके वाद उसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होती है। जब उसका पुण्यक्षय हो जाता है, तब वह स्वर्गलोकसे परिश्रष्ट हो जम्बूद्वीपका अधिपति हो कर जन्मब्रहण करता है।

प्रयागतीर्थमें यदि सिर्फ एक पयिसनी गाभी श्रोतिय ब्राह्मणको दान दी जाय, तो उसे पांच करोड़ गुण अधिक फललाभ होता है। इस तीर्थमें किसी सवारी-से जाना विलक्कल मना है। यदि कोई धनगर्वेचे उन्मत्त हो सवारी द्वारा इस तीर्थमें जाय, तो उसे तीर्थमें जाने-का कोई फल नहीं।

"ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेत् यानेन यो नरः । निष्फलं तस्य तत्तार्थं तस्मान् यानञ्च वन्जैयेत्॥" ( मत्स्यपु० )

इस तोधेमें जिसे जैसा विभव है उसे तद्युसार दान करना चाहिये। इस तीथेमें जो अक्षयवट है उसके नीचे यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे दद्छोककी प्राप्ति होती है।

"वरमूळं समासाद्य यस्तु भाणाम् परित्यजेत्। सर्वेलोकानतिकस्य रुदृलोकं स गच्छति॥"

(मत्स्यपु०)

यह तीर्थ गङ्गा और यमुनाके सङ्गमस्थल पर अव-स्थित है, इसीसे यहां देवता, दानव, गन्धर्च और ऋषि हमेशा विद्यमान रहते हैं। माधमासमें इस तीर्थमें सभी तोर्थोंका समागम होता है, इसीसे उक्त मासमें यह तीर्थ करनेसे सव तीर्थोंका फललाम होता है।

"माघे मासि गमिप्यन्ति गङ्गायामुनसङ्गमं । गवां शतसहस्रस्य सन्यक्दत्तस्य यत्फलं । प्रयागे माघमासे वे साहं स्नातस्य वत्फलम् ॥"

( मत्स्यपु॰ )

विधिप्रक हजार गाय दान करनेमें जो फल है, माघमासमें प्रयागतीर्थमें तीन दिन स्नान करनेसे वही फलप्राप्त होता है। माघमासमें प्रयाग स्नान ही सर्वा-पेक्षा प्रशस्त है।

गङ्गा और यमुनाके मध्य जो अन्निमं आत्म-विसर्जन करते हैं वे शरीरिक्थित रोमपरिमित वर्ण पर्यन्त स्वर्ग-लोकमं वास करते हैं। प्रयागतीर्थामं समस्त मस्तक मुण्डन करनेसे केशपरिमित वर्ण तक स्वर्गलोककी गति होती हैं। यहां पर केशमुण्डको ही सर्वापेक्षा प्रशस्त वतलाया हैं। स्त्रियोंके केशच्छेदकी साधारण यह विधि हैं, कि वे सिर्फ केशके अग्रभागसे दो अंगुल परिमित केश कटावे, परन्तु प्रयागमें उन्हें समूचा मस्तक मुण्डवाना होता है। केशमूलका आश्रय करके शरीरमें पाप अवस्थित रहते हैं, इसी क रण सभी केश मुंडवा बालने होते हैं। यदि कोई मोहवश केश न मुंडवावे, तो उसे कोटिकुलके साथ कल्प पर्यन्त रीरव नरककी हवा खानी पड़ती है। अतः प्रयागमें केश छेदन अवश्य कर्त्व हैं।

पद्मपुराण-भृमिखएडके १२३वें अध्यायमें तथा कूर्म-पुरागके ३३वें अध्यायमें प्रयागतीर्थके माहात्म्यादिका विषय विस्तृत भावमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं छिखा गया। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है, कि यह तीर्थ आजसे नहीं वहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है और यहांके ही जलसे प्राचीन राजाओं-का अभिषेक होता था। इस वातका उल्लेख वाल्मीकि रामायणमें हैं। वन जाते समय श्रीरामचन्दु प्रयागमें भरद्वाज ऋषिके आश्रम पर होते हुए गये थे। प्रयाग वहुत दिनों तक कोशल-राज्यके अन्तर्गत था। अशोक आदि वौद्धोंके अनेक मठ और विहार थे। अशोकका स्तम्म अव तक किलेके भीतर खड़ा है जिसमें समुद्-गुप्तकी प्रशस्ति खुदी हुई है। फाहियान नामक चीनी याती ४१४ ई॰में यहां आये थे। उस समय प्रयाग कोशल राज्यमें ही लगता था। प्रयागके उस पारही प्रतिष्टान नामक प्रसिद्ध दुर्ग था जिसे समुद्गुप्तने वहुत द्वढ़ किया था। (धिशेष विवरण इलाहाबाद ६०६में देखी।

२ वहुतसे यज्ञोंका स्थान । प्रयागदत्त—विज्ञानन्दकरी नामक वैद्यजीवनटीकाके रचयिता । प्रयागदास-पद्मकोश नामक अभिधानके प्रणेता। प्रयागभय ( सं॰ पु॰ ) प्रकृष्ट यागकारिजनात् विभेति स-पद्परिष्रहशङ्क्षयेति भी-अच्। इन्द्र। प्रयागवाल ( हि॰ पु॰ ) प्रयाग तीर्थंका पंडा। प्रयाचक (सं० त्नि०) प्रार्थनाकारी, मांगने या चाहनेवाला । प्रयाचन (सं० क्ली०) याच्जा, प्रार्थना। प्रयाज (सं०पु०) प्र-यज-घञ् यज्ञाङ्गत्वात् न कुत्यं। दशपौर्णमासाद्यङ्गया नेद, दशंपौर्णमास यज्ञके अन्तर्गत पक अङ्ग यज्ञ। यह यज्ञ पांच प्रकारका है। प्रयाजवत् ( सं॰ पु॰ ) प्रयाज अस्त्यर्थे मतुष् मस्य वः। प्रयाजरूप कमेंभेद्पश्चकयुक्त प्रधान याग दर्शादि। प्रयाण (सं० ह्यी०) प्रन्यां-स्युद्, णत्वं। १ गमन, जाना, कुच, रवानगी। संस्कृत पर्याय-प्रस्थान, गमन, हज्या, अभिनिर्याण, प्रयाणक । २ युद्धयाता, चढ़ाई । राजाओंके युद्धादि प्रमाणमें ये सव वर्णनीय हैं। यथा—भेरीनिखन, भूकम्प, वलघूलि, करभ, वृष, ध्वज, छत्न, विणक, शकर और रथ। (कविकल्प ता) ३ भारम्भ, किसी कामका छिड्ना । प्रयाणक (सं ० क्वी०) प्रयाण-सार्थे कन्। प्रनाग देखे। । प्रयाणकाल (सं ० पु०) १ जानेका समय, याताका समय। २ इस लोकसे प्रस्थानका समय, मृत्युका समय। प्रयाणभङ्ग ( सं ० पु० ) याताभङ्ग । प्रयाणपूरी (सं ० स्त्री०) दक्षिणमें कावेरी नदीके तट पर एक प्राचीन तीर्थ । इसका माहातम्य स्कन्दपुराणमें वर्णित है। यहां वहुत पुराना एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। प्रयाणीय ( सं ० ति० ) प्र-या-अनोयर्, णत्वं । गम्य, अप्र-सर होने योग्य। प्रयात ( सं॰ पु॰ ) प्रकर्षेण यातः वा प्र-या-कर्त्तरि-क । १ भृगु, ऊंचा किनारा जिस परसे गिरनेसे कोई वस्तु एक दम नीचे चली जाय। २ सौप्तिक, निदाके समय चढ़ाई कर देना । (लि॰) ३ प्रकर्षरूपसे गन्ता, खूव चलनेया जाने वाला । ४ गत, गया हुआ् । ५ मृत, मरा हुआ । ६ सुप्त, सीया हुआ । कर्भणि-क । ७ प्रयोण द्वारा प्राप्त, जो युद्धमें मिला हो। (क्की०) भावे-क। ८ गमन, जाना। १ प्रगन्तव्य, जाने प्रयातव्य ( सं ० ति० ) प्र-या-तव्य । लायक। २ आक्रम्य, चढ़ाई करने लायक।

प्रयापण ( सं ० हो० ) १ अप्रगमन, आगे जाना । २ विवा-इन, भगाना, चलता करना ।

प्रयापणीय (सं० ति०) १ अग्रगामी । २ प्रेरणीय । प्रयाम (सं० पु०) प्र-यम-घञ् । १ दुष्पाव्यता, महैंगी । २ आदर, कदर । ३ देश या काळसम्बन्धी दीर्घता, लम्बाई । ४ संयम, बंधा हुआ आचरण ।

प्रयामन् ( सं ० ति ० ) प्रयाण, गमन ।

प्रयायिन् (सं ० ति०) पून्या-णिनि, व्यादन्तात्-युक्च। गन्ता, ज्ञानेवाला।

प्रयास (सं ॰ पु॰) प्र-यस प्रयत्नेघञ् । १ प्रयत्न, उद्योग, कोशिश । पर्याय—श्रम, क्रम, क्रोश, परिश्रम, आयास, वरायाम । २ श्रम, मेहनत । ३ इच्छा ।

प्रयिषु ( सं ० ति० ) प्र-या वाहुलकात् कु,' द्वित्वे अस्या-सस्य अत इत्वं । प्रयाणयुक्त ।

प्रयुक्त (सं ० वि०) प्र-युज्ज-क। १ प्रकर्षक्रपमें युक्त, अच्छी तरह जोड़ा हुआ। २ प्रेरित, जो किसी काममें छगाया गया हो। ३ प्रयोज्य, जिसका खूव प्रयोग किया गया हो। ४ प्रकृष्ट संयोगविशिष्ट, अच्छी तरह मिला हुआ। ५ प्रकृष्ट निन्दायुक्त। ६ प्रकृष्ट संयमविशिष्ट। प्रयुक्ति (सं ० स्त्रो०) प्र-युज्ज-भावे-किन्। १ प्रयोजन। २ प्रयोग।

प्रयुग (सं० क्ली०) प्रउग, पृववसी युग।

प्रयुज (सं ० दि०) प्र-युज सत्स्द्रियेत्यादिना-िकप्। प्रयुज-चातुर्मास्यके अन्तर्गत कियामेद् । च तुर्मान्य देखी । प्रयुजमान (सं ० दि०) प्र-युज-शानच्। जिसका प्रयोग किया गया हो।

प्रयुक्षान (सं० ति०) पु-युज-शानच् । प्रयोगकारी ।
प्रयुत (सं० क्वी०) प्रकरेंण युतं । दश लाककी संख्या ।
(ति०) २ दश लाख । ३ सहित, समेत । ४ अस्पए,
गड़वड़ । ५ प्रकृषक्षपसे संयुत, खूव मिला हुआ ।
प्रयुति (सं० स्त्री०) प्र-यु-भावे-किन् । १ प्रकर्षक्षपसे
योग । २ प्रयोग ।

प्रयुतेश्वर (सं॰ ह्यी॰) स्कन्दपुराणोक्त तीर्थमेद। प्रयुत्छ (सं॰ पु॰) १ योद्धा, वीर। २ मेप, मेड़ा।३ संन्यासी।४ वायु। ५ इन्द्र।

प्रयुद्ध (सं• क्ली॰) प्रकृष्टं युद्ध प्रादिसः। अत्यन्त युद्ध। प्रयुद्धार्थं (सं ॰ पु॰) प्रयुद्धः अर्थो यस्य सः। प्रत्युत्क्रम । प्रयुध् (सं ॰ ति ॰) प्र-युध्-क्षिय । प्रकृष्ट योद्धा, भारी वीर ।

प्रयोक्ता ( सं ० पु० ) प्रयोक्तृ देखी ।

प्रयोक्तृ (सं० ति०) प्रयुणकीति प्र-युज-तृच् । १ प्रयोग-कर्त्तां, ध्रवहीर करनेवाला । २ अनुष्ठाता, अनुष्ठान करने-वाला । ३ नियोगकर्त्तां, नियोजित करनेवाला । (पु०) ४ उत्तमणे, ऋण देनेवाला, महाजन । ५ प्रधान अभि-नय करनेवाला, सूलधार ।

प्रयोक्तव्य (सं॰ ति॰ ) प्र-युज्ञ-तन्य । १ प्रयोगयोग्य, उच्चारण लायक ।

प्रयोग (सं० पु०) प्र-युज्ञ-भावकर्मीदौ यधायथं घञ् ततो कुत्वं। १ अनुष्ठान, आयोजन, साधन। २ शब्दा-दिका उचारणभेद। ३ अनुमानाङ्ग पञ्चावयव वाक्यो-चारण, अनुमानके पाचों अवयवोंका उचारण। ४ अभि-नय नाटकका खेल । ५ व्यवहार, इस्तेमाल, वरता जाना । ६ प्रक्रिया, क्रियाका साधन, विधान । ७ तान्तिक उप-चार या साधन जो वारह कहे जाते हैं। मारण, मोहन, उचारन, कीलन, विद्वे पण, कामनाशन, स्तम्भन, वशी-करण, आकर्षण, वन्दिमोचन, कामपूरण और वाकप्रसा-रण। ८ निद्रशॅन, द्वष्टान्त। ६ घोटक, घोड़ा। रोगोके दोपों तथा देश, काल और अग्निका विचार कर औपधकी वाबस्था, उपचार। ११ यज्ञादि कर्मों के अनुष्टानका वोध करानेवाली विधि, पद्धति । १२ धनकी चुद्धिके लिये ऋणदान, रुपया वढ़ानेके लिये सुद पर दिया जाना । १३ सामदण्ड आदि उपायोंका अवलम्दत । १४ शस्त्रादिमोचन । १५ नायक और नायिकाकी मिलन-रूप कियामेद् ।

प्रयोगवस्ति (सं ॰ पु॰) रसायन जौर वाजीकरणमें प्रयोज्य वस्ति । यह वस्ति ८ प्रकारकी है, पहले १ स्नेहवस्ति, पीछे ३ निरूहवस्ति और उसके वाद ४ स्नेहवस्ति।

प्रयोगचिधि ( सं ० पु० ) प्रयोगज्ञापको चिधिः मध्यपद्-लोपी कर्मधा० । प्रयोगकी अविलम्बज्ञापक विधि ।

प्रयोगातिशय (सं॰ पु॰) साहित्यदर्पणोक्त नाटकाङ्ग-प्रस्तावनाभेद । इसका लक्षण—

Vol. XIV. 156

"यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगीऽन्यः प्रयुज्यते। तेन पात्तवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥"

(साहित्यद०६ ब०)

यदि एक प्रयोगमें अन्य प्रयोग प्रयुक्त हो और उसे उपलक्ष्य कर पालका प्रवेश हो, तो प्रयोगातिशय प्रस्तावना होती है। जैसे, कुन्दमाला नामके संस्कृत नाटकमें स्वधारने नृत्यके लिये अपनी भार्याको बुलानेके प्रयोग द्वारा सीता और लक्ष्मणका प्रयोग स्चित किया और उस प्रयोगका अवलम्बन करके सीता और लक्ष्मण प्रविध हुए।

प्रयोगार्थ (सं ॰ पु॰) प्रयोगस्यायं 'अर्थेन सह नित्य-समासः विभक्तालोपश्च' इति वार्त्तिकोक्ताः प्रयोगोऽर्थ-प्रयोजनमस्य वा । प्रत्युत्कम, प्रधान प्रयोगके अनुकूल प्रयोजनानुष्ठान ।

प्रयोगिन् (सं ० ति०) प्रयोगोऽस्त्यस्येति प्रयोग ( अत इतिठनौ । पा ५।२।११५) इति इनि । प्रयोगयुक्त, प्रयोग करनेवाला ।

प्रयोगी ( सं ० पु० ) प्रयोगिन् देखी ।

प्रयोगीय (सं ० ति० वावस्थेय, औषधमें जिसका प्रयोग किया जाय।

प्रयोग्य (सं ० ति ०) प्रयुज्यते प्र-युज-कर्मणि-ण्यत्, कुत्वं । प्रयोज्य अभ्व ।

प्रयोजक (सं० ति०) प्रयुनिक प्रेरयित कार्यादी, भृत्यादी-निति, प्र-युज्-ण्बुल्। १ प्रयोगकर्त्ता, अनुप्रान करनेवाला। २ प्रेरक, काममें लगानेवाला। ३ नि वन्ता, इन्तजाम करनेवाला।

प्रयोजन (सं ० हो) ०) पृयुज्यते इति प्-युज-ल्युट्। १ कार्यं, काम। २ हेतु, कारण। ३ उद्देश्य, अभिपाय, मतलव।

"सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत् पृयोजनं नोकः तावत् केन पृयुज्यते॥" (पृाञ्च)

कोई विषय कहनेके पहले उसका प्रयोजन कह देना आवश्यक है। कारण, विना प्रयोजनके किसीकी भी किसी विषयमें प्रयृत्ति नहीं होती। यह प्रयोजन दो प्रकारका है, मुख्य और गौण।

जिस उद्देश्यसे जिसकी प्रवृत्ति होती है, उसका नाम प्रयोजन है। मनुष्य जो कोई काम करते हैं उसका चरम लक्ष्य है सुखप्राप्ति वा दुःखपरिहार । अतपव सुब और दुःखाभाव मुख्य प्रयोजन है । अलावा इसके सर्वोकी गीण प्रयोजनमें गिनती की गई है।

गौतमने सोलह पदार्थं वतलाये हैं, उनमेंसे प्रयोजन चौथा है। जिस वस्तुका अभिलाव करके कार्यमें प्रवृत्ति उत्यन्न होती है, वही वस्तु प्रयोजनका पदार्थ है। सुस अथवा परिश्रमादिके लिये दुःख निवृत्तिकी इच्छा करके भोजन और शयनादि किये जाते हैं, इसीसे सुख और दुःखनिवृति इसका प्रयोजन है। भोजनादिको इच्छाके पाक आदि कार्य सम्पादन होते हैं। इस कारण भोजनादि भी प्रयोजन हैं। पाक आदिके उद्देश्यसे काष्ट्र और अनि-संग्रह किया जाता है, अतः ये दोनों भी प्रयोजन हैं। अभी यही प्रतिपन्न हुआ, कि कार्यमात ही किसी कार्यका प्रयोजन है। इससे इच्छाविषयत्व ही प्रयोजन सामान्य-का लक्षण हुआ; किन्तु भोजन करनेसे सुख अथवा दुःख-की निवृत्ति होगी, ऐसा उद्देश्य करके ही भोजन करनेमें लोगोंकी प्रवृत्ति होती है। परन्तु भोजन करनेसे सुख अथवा दुःखकी निवृत्ति नहीं होगी, यदि ऐसा निश्चय रहे, तो कभी भी भोजनादि करनेमें किसीकी इच्छा न हो सकती। अतएव भोजनादि विषयमें इच्छा हो सुख अथवा दुःखनिवृत्तिविषयक इच्छाके अधीन है। इस कारण भोजनादि गौण प्रयोजन है। सुखदुःखनिवृत्ति विषयमें इच्छा स्वभावतः ही हुआ करती है, अर्थात् सुल अथवा दुःखनिवृत्ति ंहोनेसे अन्य फल होगा, ऐसी इच्छा करके सुख अथवा दुःख निवृत्तिविषयक इच्छा उत्पन्न नहीं होती। इसीसे सुख और दुःखनिवृत्ति मुख्य प्रयोजन है। भोजन और पाक आदि गौण प्रयोजन हैं। कोई कोई सुखसाक्षात्कारको भी मुख्य प्रयोजन कहते हैं। इनमेंसे सुख, दुःखामाव और सुखसाक्षात्कार ये तीनीं ही मुख्य प्रयोजन हैं।

मनीषिगण आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिको ही एकमाल नुख्य प्रयोजन कह गये हैं । मुख्य और गीण प्रयो-जनके दो छक्षण इस प्रकार हैं—'अन्ये<sup>च्छ</sup>।नधीनेच्छा विष**यस** ग्रह्मप्रयोजनाल अन्येच्<sup>छ</sup>।घीनेच्छाचिषम्स भौगप्रयोजनाव'' (मुक्तिबादमें गदाधर) जहां दूसरेकी इच्छा-के अनधीन इच्छाविषयत्व होगा, वहां मुख्यप्रयोजन और जहां अन्येच्छाके अधीन इच्छाविषयत्व होगा, वहां गौण प्रयोजन होता है। अन्येच्छाके अधीन और अनधीन यही गौण मुख्यका प्रमेद है। (न्यायदश न)

प्रयोजनवत् ( सं॰ ति॰ ) प्रयोजनं विचतेऽस्य मतुष् मस्य व । प्रयोजनयुक्त ।

प्रयोजनवतीलक्षणा (सं० स्त्री०) वह लक्षणा जो प्रयोजन द्वारा वाच्यार्थसे मिन्न अर्थ प्रकट करे । लक्षणके दो भेद हैं, प्रयोजनवतो और रूढ़ि। 'युद्धक्षेत्रमें वहुत-सी तलचारे' आ गई।' इस वाक्यमें यदि तलवारका अर्थ तलवार ही किया जाय, तो अर्थमें वाधा पड़ती हैं। इससे प्रयोजन-वश तलवारका अर्थ तलवारवंद सिपाही लेना पड़ता है। अतः जिस लक्षण द्वारा यह अर्थ लिया गया वह प्रयोजन-वती हुई। परन्तु कुछ छक्ष्यार्थ सद् हो गये हैं। जैसे, 'कार्यमें कुराल' कुरालका अर्थ कुरा इकट्टा करनेवाला होता है, पर यह शब्द दक्ष या निपुणके अर्थमें ऋढ़ हो गया है। इस प्रकारका अर्थ रुढ़िलक्षणा द्वारा प्रकट होता है। प्रयोजनवत् ( सं॰ ति॰ ) प्रयोजनं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । प्रयोजनयुक्त, मतलव रखनेवाला । प्रयोजनवान् (हिं० वि०) प्रयोजनवत देखो । प्रयोजनीय (सं ० ति ०) कामका, मतलवका । प्रयोज्य (सं ० ति०) प्र-मुज्ज ्ण्यत् । ( प्रयोज्यनियोज्यौ शक्वार्थे। पा ७।३।६८) इति निपातनात् साधुः। प्रयोगके योग्य, काममें छाने छायक । २ कत्तंच्य, आचरण-योग्य । ३ प्रेरित करने योग्य, काममें लगाए जाने लायक । (पु॰) ४ प्रेष्यभृत्य, नौकर। ५ मूलधन। ६ णिजन्त धातुका प्रकृत्यर्थं कर्ता । ७ प्रयोज्यत्वसकृप सम्बन्धमेद । प्रयोत् (स'० बि०) प्र-यु-तृच्। प्रकर्षक्रपसे मिश्रयिता, अच्छी तरह मिळानेवाला।

प्रयमेथ (सं ० पु॰) प्रियमेथका पुं अपत्य । प्रस्स (सं ० ति॰) प्ररूपक्षपसे रक्षाकारी, रक्षक । प्रस्सण (सं ० क्को॰) संरक्षण, अच्छी तरह रक्षा करना । प्रस्थ (सं ० अन्य॰) प्रगतो रथो यत्न तिप्रहुग्वादित्वाद-व्ययोभावः । प्रगतस्थयुक्त देश ।

प्रराधस् (सं ० पु०) अङ्गिरसवंशोय ऋषिमेव । 🕡

प्रराध्य (सं ॰ ्ति॰) प्र-राध-यत् । प्रशृष्टकपसे स्तुत्य, प्रशंसा लायक ।

प्ररिक्षन् (सं ० ति ०) प्र-रिच-ड्वनिप् । प्रकृष्टस्पसे विरेचन-कर्ता ।

प्रस्त (स'० ति०) प्र-रुज-क । १ प्रकृष्टरोगकारक । (पु०) २ देवसैन्याधिपमेद । ३ राक्षसमेद ।

प्रवह (सं ० ति ०) प्र-वह-क । प्ररोहणकारी, अपरको वढ़ने-वाला, जैसे अंकुर, कल्ला, पौधा ।

प्रस्तृ (स' ० ति ०) प्र-रुह-क । १ प्ररोहणकर्ता, ऊपरको वढ़नेवाला । २ वद्धमूल । ३ जात, उत्पन्न । ४ प्रवृद्ध, खूव वढ़ा हुआ । (पु०) ५ जठर । कहीं कहीं 'जरह' ऐसा पाठ भी देखनेमें आता है । ६ सञ्जात वृक्षादि ।

प्रकृद्धि (सं ० स्त्री०) प्र-सह-किन् । वृद्धि, उन्नति, बढ़ती । प्रदेश (सं ० पु०) प्रदेखन, दान ।

प्ररेचन (सं० क्की०) प्र-रिचिर्-विरेचने भावे ल्युट् । १ रुचि-सम्पादन, रुचि दिलाना, चाह पैदा करना । २ मोहित करना । ३ उत्तेजित करना ।

प्ररोचना (सं० स्त्रो०) प्र-रुच् णिच्-युच् टाप्। १ उत्ते-जना, बढ़ावा। २ रुचिसम्पाइन, चाह या रुचि उत्पन्न करनेकी किया। ३ प्रस्तावनाका अङ्गमेद, नाटकके अभि-नयमें प्रस्तावनाके वीच स्वधार, नट, नटी आदिका नाटक और नाटककारकी प्रशंसामें कुछ कहना जिससे दर्शकोंको रुचि उत्पन्न हो। 8 अभिनयके वीच आगे आनेवाली वातका रुचिकर रूपमें कथन।

प्ररोधन (सं० क्ली०) प्र-रुघ ल्युट् । आरोहण, ऊपर उठाना । प्ररोह (सं० पु०) प्ररोहतीति प्र-रुह-अच् । १ अंकुर, अंखुआ, कल्ला । २ नन्दीवृक्ष, तुनका पेड़ । ३ आरोह, चढ़ाव । ४ उत्पत्ति, पैदाइश । ५ प्ररोहण, ऊपरकी और निकलना ।

प्ररोहण (सं ० हो०) प्र-रह-भावे न्युट्। १ उत्पत्ति, पैदा-इश । २ आरोह, चढ़ाव । ३ भूमिसे निकलना, उगना । प्ररोहभूमि ,सं० स्त्री०) उर्वरा भूमि, उपजाऊ जमीन । प्ररोहशाखी (सं० पु०) वे वृक्ष जिनको कलम लगानेसे लग जाय।

प्रलपन (सं ० क्ली०) प्-लप-भावे-त्युद्। १ प्लाप, कहना, वकना। २ अनर्थक बाक्य, वकवाद करना। प्रलिपत (सं ० ति ०) प्-लप-क । १ कथित, कहा हुआ । २ वृथा उक्त, अनर्थक कथित । (क्वी०) भावे-क । ३ पृलाप । प्रलब्धव्य (सं० ति०) प्-लभ-तव्य । १ पृक्टरूपसे लब्धव्य, पाने योग्य । २ पृवञ्चनाह<sup>6</sup>, ठगने लायक ।

प्रलम्ब (सं ० पु०) पृलम्बते इति प्-लम्ब-अच् । अतिदीर्घ-त्वादेव तथात्वं। १ दैत्यभेद । यह दुवनुका पुत्र था और मनुष्यसे मारा गया था। २ एक दानव जिसे वळरामने मारा था। भागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—एक वार कृष्ण वलराम गोपोंके साथ वृन्दावनमें बोल रहे थे। इसी समय प्रलम्बासुर भी गोपवेशमें उनके साथ मिल कर खेलने लगा। भगवान् कृष्ण उस दुप्रकी अभिसन्धि ताड़ गये। वे गोप-वालकोंके साथ कृतिम मल्लयुद्ध करने लगे। इस कृतिम युद्धमें यह ठहराव हुआ, कि जो हार जायगा वह जीतनेवालेको कंधे पर विटा कर निर्दिष्टस्थान तक छे जाय। गोप-वेशधारी पुलम्ब हारा और वलरामको कंधे पर लेकर भागने लगा। उन्हें दूर देश ले कर मार डालना ही पुलम्बका प्कमात उद्देश्य था। किन्तु वलराम उसके कंधे पर चढ़ कर ऐसे भारी हो गये, कि दुष्ट दानव उन्हें ढो नहीं सका। अन्तमें प्रस्रम्व अपनी मूर्त्ति घारण करके वसरामकी ओर वढ़ा, किन्तु शीघ्र ही युद्धमें वलराम द्वारा मारा गया। इसकी मृत्यु पर देवताओंके आनन्दका पारावार न रहा । (भागवत १०१८ अ०) ३ लपुप, खीरा । ४ पयोधर, स्तन । ५ लताकुर, दुनगा। ६ शाखा, डाल। ७ हारमेद, एक प्रकारका हार। ८ प्रलम्बन, लटकाव।६ रामाय-णीक्त जनपद्विरोप । १० अंकुर, अंखुआ । ११ वङ्ग, रांगा । १२ तालाकु र । १३ तालखर्ड । १४ तपुपवीज, ् खीरेका वीया । १५ व्यर्थका विलम्य, काममें शिथिलता या टालटूल। (ति०)१६ लम्यमान, नीचेकी ओर दूर तक लटकता हुआ। १६ लम्बा। १७ देगा हुआ टिका हुआ । १८ निकला हुआ, किसी ओरका वढ़ा हुआ । १६ शिथिल, सुस्त।

प्रलम्बक (सं ० पु॰) सुगन्धतृण, सुगन्धित घास। प्रलम्बध्न (सं॰ पु॰) प्रलम्बं हन्तीति हन-क। वलराम। प्रलम्बन (सं॰ क्ली॰) १ प्ररूप्टकपसे लम्बन, लटकाब, भुलाव। २ अवलम्बन, सहारा लेना।

प्रलम्बिमिद् (सं॰ पु॰) प्रलम्बं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। वलराम ।

प्रलम्वान्त (सं० पु०) प्रलम्वो लम्बमानः अन्तो यस्य। दीर्घान्तकोपविशिष्ट, लम्बमान कोप।

प्रलम्बित (सं० ति० ) प्र-लम्ब क्त । प्रकर्णक्रपसे लम्बित, खूव नीचे तक लटकाया हुआ ।

प्रलम्बिन् ( सं॰ ति॰ ) प्रलम्ब-अस्त्यर्थे इनि । १ प्रलम्ब-युक्त, दूर तक लटकनेवाला । २ भाश्रयी, सहारा लेने-वाला ।

प्रस्ति (सं० ति०) प्रकन्ति दें हो । प्रस्ति (सं० पु०) प्र-स्त्रभः घम्, सुमागमः । प्रकर्णकपसे स्राम ।

प्रलम्मन ( सं॰ क्ली॰ ) प्र-लभ-भावे-ल्युट् । १ प्रकर्षकपसे लाभ, प्राप्ति होना । २ छल, घोखा ।

प्रलय (सं॰ पु॰) प्रलीयतेऽस्मिन्निति प्र-ली-आधारे अच् (ए॰च् । पा ६।३।॰६॰ निखिल भूतादिका लयाधार काल-मेद, जगत्के नाना क्ष्पोंका प्रकृतिमें लीन हो कर मिद्र-जाना । पर्याय—संवर्त्त, करुप, क्षय, करुपान्त, लय, संक्षय, विलय, प्रतिसर्ग, प्रतिसञ्चर । पुराणोंमें संसारके नाशका वर्णन कई प्रकारसे आया है । कूर्मपुराणके अनुसार प्रलय चार प्रकारका होता है, नित्य, नैमित्तिक प्राकृत और आत्यन्तिक । यथा—

"नित्यं नैमित्तिकं चैव प्राञ्चतात्यन्तिकौ तथा। नित्यं संकीर्त्यंते नाझा मुनिभिः प्रतिसञ्चर॥" (क्रूर्मपु० ४२ अ०)

लोकमें जो वरावर क्षय हुआ करता है वह नित्य प्रलय है। कल्पके अन्तमें तीनों लोकोंका जो क्षय होता हैं वह नैमित्तिक वा ब्राह्म प्रलय कहलाता है। जिस समय प्रकृतिके महदादि विशेष तक विलीन हो जाते हैं उस समय प्राकृतिक प्रलय होता है। श्रानको पूर्णा-वस्था प्राप्त होने पर ब्रह्म या चितमें लीन हो जानेका नाम आत्यन्तिक प्रलय है।

नैमित्तिक प्रलयके सम्बन्धमें कूर्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—एक हजार चतुर्यु गके अन्तमें जो प्रलय उप-स्थित होता है उस प्रलयमें भगवान प्रजापित प्रजागणको अपनेमें रखनेको इच्छा करते हैं। इस समय समस्त भूतल पर सी वर्ष तक दारुण अनावृष्टि रहती है। घीरे धीरे भयडूर अनावृष्टि होनेसे चराचरका नाश होने लगता है। शस्य असार हो मट्टीमें परिणत हो जाते हैं। सप्तरिंग दिवाकर गगनमें उड़ कर उत्तम किरण जाल द्वारा महार्णवकी जलराणि चूसने लगते हैं। क्रमशः प्रदीम रिष्म सप्तस्येष्यमें चारों खोर उदित हो कर अग्निकी तरह इस लोकको दग्ध करती हैं। पीछे बह अग्नितुल्य किरणराग्नि उन्हर्ध्य और यघोलोक तक पैल जाती हैं । इस प्रकार जलपदीप्त वहु सहस्र शिखा-समाकुछ सतसूर्य सारी वसुन्धराको हुन्ध कर गगन-तलमें अवस्थान करते हैं। ऋमगः दह्यमान वसुन्वरा परके यावतीय नद्, नदी, द्वीप और पर्धत आदि सूर्यके तापसे सूल कर बिलकुल स्नेहहीन हो जाते हैं। इस समय ज्वालामालासमाकुल पेदीप्तपावक भी अपने तेज द्वारा चारों लोकींको क्ष करनेमें प्रवृत्त होता है । इसके वाद स्थावर जङ्गम सभी पदाथों के विलीन ही जानेसे पृथ्वी पर एक भी तरुलतादि दृष्टिगोचर नहीं होती है। एकमाल भूमि ही कुर्मपृष्ट पर विराजती देखी. जाती हैं। नभोमएडल अग्निशिखासे जाञ्चल्यमान हो जाता है। समुद्र वा पातालगत जो सव तीर्थ हैं, वे सभी अपने अपने स्थान पर भूमिक्पमें परिणत हो जाते हैं। सप्तधा विभिन्न हञ्यवाहन इस प्रकार द्वीप, पर्गत, वर्ग और महोद्धिको भस्मसात् करके नदी आदिके जलपानसे अदीत होने लगता है तथा एकमाल पृथ्वीको आश्रय कर जलता है। अनन्तर घोर वडवानलका प्रकोप होता है। उसके प्रकोपसे पृथ्वी परके सभी पर्वत और बचे खुचे प्राणी जल कर भस्म हो जाते हैं। उनकी शिखा हजारी योजन तक फैली रहती है इस कालाग्निके प्रभावसे गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, ऊरग और राक्षस तथा भूळॉक, भुवलोंक, स्वलोंक और महलोंक तक भी दृश्य होने खगता है।

इथर नील, पीत, हरित, धूझ आदि नाना वर्णों के भयडूर जलदजाल गगनतलमें उठ कर दिग्दिगन्तको समाच्छन्न कर डालते हैं। पीछे भ्रवणकठोर श्रति भैरव निनादसे नभस्यलको गुंजाते हुएं मृपल धारमें निरन्तर वर्षा वरसाते हैं। बहुत देर तक इस प्रकार वर्षा होनेसे Vol. XIV. 157 वह सप्तधा विभिन्न विश्वप्रासी विभावसु गान्त हो जाता है तथा सर्वेत जलपूर्ण होनेके कारण होनतेजा आनि भी जलमें धुस जाती हैं। अनिके तुम जानेसे हीपशैल-समन्विता वसुन्धरा और समसागर जलपूर्ण हो जाते हैं। वर्षाजलके प्रवाहसे सारी वसुन्धरा प्लावित रहती हैं। साथ साथ पर्वेतादि वचे खुचे पदार्थ सभी जलप्रवाहमें विलीन हो जाते हैं। उस एकार्णवीसृत जलप्रवाहमें एकमात प्रजापित ही योगनिद्राकी गीदमें सो रहते हैं।

शकृतिक प्रलयके सम्बन्धमें कृत्तेपुराणमें इस प्रकार खिखा है,—हो अपराद<sup>6</sup>काल बीत जाने पर लोकसं हारक कालाग्नि इस निखिल जगन्को भस्मसान् करनेकी इच्छा-से आत्माको आत्मामें समावेश करातो है । पीछे महेश्वर-स्पर्मे सुर, असुर और मनुष्येंके साथ समस्त ब्रह्माण्ड-को दृश्य करतो है। भगवान महादेव भी अग्निरूपमें अति भयङ्करभावसे होगोंका संहार करने हम जाते हैं। इस वकार समस्त प्राणियोंको दृग्ध कर वे ब्रह्मशिरा नामक पक्त महामन्त देवताओंके शरीर पर फेंक्ते हैं। मन्त्रके प्रभावसे जव देवताओंका भी देह भस्मीभृत हो आते हैं. तव एकपात हिमशैलतन्दिनी भगवती ही साझी-रूपी भगवान ग्रम्भ की समीपवर्तिनी हो अवस्थानं करती है। उस समय शम्मु चन्द्रसूर्यादि ज्योतिष्क पदार्थों से गगनमण्डलको आच्छादित कर देवताओंके मस्तक और कपासकी माला बनाते और उसीसे अपनेकी सजाते हैं। उनके सहस्र नयन, सहस्र देह, सहस्र हस्त, सहस्र चरण और शरीरमें सहस्र प्रभा विद्यमान रहती है। उनके भयद्भर और वदनमएडल नयन ढाल दिखाई देते हैं। उनके हाथमें विश्ल, परिधानमें व्यात्रचर्म है। उस समय वे पेश्वरिक योगका अवलस्वन करके परमानन्दप्रचूर आतमामृत पान करते हैं और देवी गिरिजाके प्रति दृष्टिपात करके नाचते हैं। पीछे मङ्कर-मयी भवानी भी भर्ताका ताएडवामृत पान करके योगा-वलम्बनसे उनके शरीरमें प्रवेश करती हैं। भगवान पिनाकपाणि ताएडवरसका परित्याग कर ब्रह्माग्डमग्डल दम्ध ऋरनेकं वाद् निज इच्छासे पुनः प्रकृतिस्य होते हैं। घीरे घीरे सारी पृथ्वी जलमें विलीन हो जातो है। थिन उस जलतस्वको ग्रास करती है। इस प्रकार सगुण वेज

वायुमें, सगुण वायु आकाशमें, सगुण आकाश भूतादिमें और इन्द्रिय तैजसमें विलीन हो जाती है। वैकारिक अवस्थामें देवताओंका भी लय हुआ करता है। वैकारिक, तैजस और भूतादि ये तीनों अहङ्कार महत्में विलीन होते हैं। महत् भी तीनों अहङ्कारके साथ संहार होता है।

इस प्रकार महेश्वर यावतीय भूत और तत्त्वका संहार करके प्रधान और परम पुरुपको भी परस्पर संहार करनेमें नियोग करते हैं। प्रधान तथा पुरुप ये दोनों जन्ममरणहीन हैं। उनका कभी भी विखय नहीं है। किन्तु इस समय महेश्वरकी इच्छासे उनका भी संहार होता है। प्रधानसे छे कर रुद्र पर्यन्त सभीका रुद्र हंहार करते हैं। उन्हींकी संहारिणी शक्ति नित्य है। जिनका मन सर्वदा परमज्ञानमें निविष्ट है, शङ्कर उन योगियों- का भी आत्यन्तिक छय करते हैं।

चिष्णुपुराणमें प्रलयका विषय इस प्रकार लिखा है—
नैमित्तिक, आत्यन्तिक और प्राकृतिक भेदसे प्रलय
तीन प्रकारका है। कल्पान्त कालमें जो ब्राह्म प्रलय होता
है उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। मोक्षरूप प्रलयका नाम आत्यन्तिक और द्विपराद्ध क प्रलयका नाम
प्राकृत प्रलय है।

नैमित्तिक अति त्राह्म प्रलय भयानक है। चतुर्युंग सहस्रके वाद महीतलके श्लीण होने पर सौ वर्ष तक वृष्टि नहीं होती। इससे अल्पसार यावतीय पार्थिव जीव क्षयको प्राप्त होते हैं। इसके वाद भगवान विष्णु रुद्रक्रपमें समस्त प्रजाको अपनेमें विलीन करते और सूर्यकी सप्तविध रिममें अवस्थान करके सभी जल-को पी जाते हैं। केवल यही नहीं, जलज जीव और भूमि-गत जलको अच्छी तरह चूस कर शैल, प्रसवण और पाताल आदि इस ब्रह्माएडमें जितना जल है सभी शोपण करते हैं। भगवान विष्णुने इस प्रकार जलपान द्वारा पुष्ट हो सूर्यकी जिन सात रिमयोंका अवलम्बन करके जलशोपण किया था, वे सव सूर्यरिम उस समय स्यँरूपमें प्रका-शित होती हैं। पदीप्त ये सात भास्कर ऊर्द और अधः-स्थित समस्त भुवनको अच्छी तरह दग्ध कर डालते हैं। इस प्रकार तिभुवन सूर्यतापसे दग्ध हो कर नितान्त परि-

शुष्क हो गये। इस समय त्रिभुवनस्थित सभी वृक्षादि सुख कर विलोन हो जाते हैं, क्षेयल वसुधा क्रुमपृष्टके आकारमें दिखाई देती है। अनन्तर भगवान रुद्रुक्षणे विप्णु अपनी निःश्वाससम्भूत अग्निसे पातालको भस्म करते हैं। पीछे वह काळानळ समस्त पाताळखएडको दृष्ध कर ऊर्द्ध गामी हो पृथ्वीतल, भुवलोंक और खलोंकको भी भस्मसात् कर डालता है। प्रखर कालानलके तेजसे विनष्ट समस्त चराचर तिभुवन उस समय एक वड़ी कड़ाहीके सदृश दीख पड़ता है। इस समय दोनों लोकके निवासी प्रचएड अनलतापसे पीड़ित हो महलॉक्सें आश्रय लेते हैं। किन्तु वहां भी चैन न पा कर वे जनलोक चले जाते हैं। इसके वाद् भगवान् विष्णुके मुखनिः ध्वास द्वारा नाना वर्णके मेघोंकी सृष्टि होती है। वे सब मेघ तमाम आकाणमें फैल जाते और सौ वर्ष तक मूपलधारमें वृष्टि करते हैं। इस प्रकार लगातार वृष्टिसे प्रचएड अनल वुक जाता है। पीछे मेघ जगत्को वृष्टि द्वारा तरावीर करके धीरे धीरे भुवलॉक और खर्गलोकको प्रावित कर डालता है। इस समय समस्त लोक अन्धकारमय और स्थावर जङ्गम सभी पदार्थं विनष्ट हो जाते हैं। जब सप्तर्पियोंका स्थान तक भी जलमग्न हो जाता है, तब अखिल ब्रह्माएड एक महासमूद्रके जैसा मालूम पड्ता है। पीछे भगवान् विष्णुके निःश्वाससे प्रवल वायुकी उत्पत्ति होती है। यह वायु सो वर्ष तक प्रचएड वेगसे वहती है जिससे सभी मेघ ध्वंसप्राप्त हो जाते हैं। अनन्तर् भगव न् विष्णु उस वायुको ध्वंस कर अनन्त समुद्रमें शेपशय्या पर सो जाते हैं।

इस समय केवल शनकादि ऋषि भगवानका वरावर स्तव किया करते हैं। अनन्त जलराशिके सिवा इस समय और कुछ भी नजर नहीं आता है। ३६० दिनका मनुष्योंका एक वर्ष और इस एक वर्षको देवताओंकी एक दिनरात होती है। इस प्रकार ३६० वर्षका देवताओंका एक वर्ष और ऐसे १ हजार वर्षका मनुष्योंका चार युग होता है। इस प्रकार एक हजार चतुर्युंगका ब्रह्माका एक दिन और उतने ही की एक रात होती है। इसी रातमें वह प्रलय होता है। फिर जव उतना समय दीत जायगा अर्थात् ब्रह्माका दिन आयेगा, तव इस जगत्की फिरसे सृष्टि होगी। यही नैमित्तिक प्रलय है।

प्राकृतिक प्रलय—पूर्वोक्त रूपमें अनावृष्टि और अन-लके सम्पर्कसे जव पाताल आदि सभी लोक निःस्नेह हो जाते हैं, तव महत्तत्वादि पृथ्वी पर्यन्त विकारसमूहको ध्वंस करनेके लिये प्रलयकाल उपस्थित होता है। प्राकृतिक प्रलयमें पहले जल पृथ्वीके गन्धगुणको श्रास करता है। जब पृथ्वीसे समस्त गन्ध जल द्वारा आकृष्ट हो जाती है, तव यह पृथ्वी लयको प्राप्त होती है। गन्धके विनष्ट हो जानेके वाद पृथ्वी जलके साथ मिल जाती है। रससे जलकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण जल भी रसात्मक है। इस समय जल अत्यन्त वर्द्धित हो कर महाशब्द करता तथा समस्त भुवनको डुवोता हुआ वड़े वेगसे वहता है। पीछे जलकर गुण जो रस है उसे अग्नि शोपण करना शुरू कर देती है। कालक्रमसे अग्नि द्वारा शोपित हो कर जव रसतन्मात अग्निमें विलीन हो जाता है, तव वह रसहीन जल तेजके मध्य प्रवेश करता है। पीछे वह तेज क्रमशः अत्यन्त प्रवलस्य धारण कर सारे भूवनमें फैल जाता है। वह अग्नि सारे भुवनके सार भागको शोपण कर लगातार तापप्रदान करती है। ऊर्द अधः सभी प्रदेश जब अग्नि द्वारा दग्ध हो जाते हैं, तव वायु समस्त तेजके आधार जो प्रभाकर है उन्हें ही यास कर डालती है। तेजके विनष्ट हो जानेसे समस्त भुवन वायुमय हो जाते हैं और तेज पूर्वोक्त प्रकारसे हत-रूप हो कर प्रशान्त होता है। उस समय केवल प्रवल वायु ही चारों ओर प्रवाहित होती है। तेजके वायुमें प्वेश करनेसे समस्त भुवन अन्धकारमय हो जाते हैं। पीछे वह पुचएड वायु अपने उत्पत्तिवीज आकाशका अव-लम्बन करके दशों दिशाओं में वहती है। क्रमशः वायुका गुण जो स्पर्श है, उसे आकाश प्रास कर डालता है। उस समय वायु शान्त हो जातो है और रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये सभी मूर्त्तिहीन आकाशमें विलीन हो जाते हैं। अभी केवल शब्द ही अवस्थित रहता है। पीछे अहङ्कार-तत्त्व और मौतिक इन्द्रियोंको ग्रास करता है। इस समय शब्दादि कुछ भी नहीं रहता। यह अहङ्कारतत्त्व भी अपने प्रकृति महतत्त्वमें लीन हो जाती है। पीछे महतत्त्व भी प्रकृतिमें छोन हो जाता है। इस प्रकार स्यूछसे छे कर सुद्भ तक समस्त जगत्के अपनी अपनी प्रकृतिमें लीन

हो जानेसे केवल प्रकृति ही अवशिष्ट रह जाती है। यह प्रकृति तिगुणमयी है। यह प्यक्त और अव्यक्त उमय- सक्तिपणी है। इसके अतिरिक्त सर्वोंके अधिष्ठाता-रूपमें एक पुरुप हैं। वे पुरुष केवल ज्ञानस्तरूप हैं। वे परव्रह्म परमात्माके अंश हैं। पीछे यह व्यक्ताव्यक्तस्किपणी प्रकृति और परमात्माके अंशसक्तप पुरुष ये दोनों ही परमात्मामें लीन हो जांयगे। इस समय एक ब्रह्माके सिवा और कुछ भी नहीं रहेगा। विश्वब्रह्माएड तव ब्रह्माक्य हो जायगा। यही ब्राह्मतिक प्रलय है। द्विपराद्ध परिमितकाल तक यह ब्राह्मतिक प्रलय हो। द्विपराद्ध परिमितकाल तक यह ब्राह्मतिक प्रलय होता है। यद्यपि उस नित्य परमात्माके दिन-रात कुछ भी नहीं है, तो भी सर्वापक्षा उनकी श्रेष्ठता दिखानेके लिये पूर्वोक्त परिमितकाल हो और उनका दिवा और रात्नि कलियत हुई है।

आत्यन्तिक प्रलय-जीवका मोक्षरूप जो प्रलय है उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। विद्वान् लोग आध्या-त्मिकादि तापतयको जान कर ज्ञान और चैराग्य द्वारा आत्यन्तिक लयप्राप्त होते हैं। वे पहले देखते हैं, कि यह जगत् दुःखमय है, यहां कुछ भी सुख नहीं है। सर्वदा आध्यात्मिकादि तापत्नय जीवोंको सता रहा है। अतपव इस तापत्रयका जिससे आत्यन्तिक लय हो उसका उपाय करना एकमात कर्त्त व्य है। इस प्रकार मनीपिगण विचार करके ज्ञान और वैराग्य द्वारा मोक्षलाभ करते हैं। मोक्ष प्राप्त हो जानेसे उनका आत्यन्तिक लय होता है। आध्यात्मिकादि दुःखका विषय पहले ही कहा जा चुका है। वह आध्यात्मिक ताप दो प्रकारका है, शारीर और मानस । वायु, पित्त और श्लेष्मानिवन्धन नाना प्रकारको व्याधि शारीर तथा काम, क्रोध आदि रिपु जनित मानस दुःख है । मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच प्रभृति द्वारा जो दुःख होता है, उसी आधिभोतिक एवं शोत, उष्ण, वायु, वर्षा आदि द्वारा जो दुःख होता है उसे आधि-दैविक दुःख कहते हैं। इन सव दुखोंसे तथा वार वार-की जन्ममृत्युसे क्लेशकी सीमा नहीं रहती । स्त्री, पुत, भृत्य, गृह, क्षेत्र और धनादि द्वारा मनुष्यको जितना क्लेश होता है, उसकी अपेक्षा सुखका भाग वहुत ही कम है। यह संसार दुःखमय है। विना मुक्तिके कहीं भो सुख नहीं है। इसीसे विद्वान छोग सर्व दा भगवत्-

प्राप्तिके लिये यस करते हैं। कर्म और ज्ञान ये दौनों भगवत्प्राप्तिके हेतु हैं। ज्ञान दो प्रकारका है, आगम और विवेकज। शब्दब्रह्म आगम द्वारा और परमब्रह्म विवेक द्वारा जाना जाता है। जिस प्रकार प्रदीप अन्ध-कारको नष्ट करता है, उसी प्रकार आगमद्वारा शब्द-ब्रह्म जान लेनेसे सभी अज्ञान दूर हो जाते हैं। किन्तु परब्रह्म केवल विवेक द्वारा ही जाना जाता है। सूर्यके उद्य होनेसे अन्धकारराशिकी तरह अज्ञानान्धकार विलक्ष तिरोहित हो जाता है। उस समय वे वस्तुके खक्तपसे अवगत हो कर सब प्रकारके दुःखोंसे निष्कृतिलाभ करते हैं अर्थात् उस समय वे मुक्त हो जाते हैं। जो मुक्त हुए हैं, उन्हें आत्यन्तिक प्रलय हुआ है। इससे जीवगण शाश्वत ब्रह्मसक्ष्य आत्यन्तिक क्ष्य नाम पड़नेका यही कारण है। (विष्णुप् ६)१।९ अ०)

विष्णुपुराणके मतसे प्राकृत प्रलय ही महाप्रलय है। कालिकापुराणमें लिखा है,—जव कल्पका अवसान होता है, तव दैनन्दिन प्रलय हुअ करता है। इन सव प्रलयको मन्वन्तर कहा जा सकता है। मन्वन्तर शब्दका अर्थ मनुका अधिकारकाल है। एक एक मनु जब तक प्रजाका शासन करते हैं, तब तक अनेक नामसे मन्बन्तर प्रचलित होता है। चौदह मन्वन्तरका एक एक कल्प और यही एक कल्प विधाताका दिन है। ब्रह्मके एक दिन वीत जाने पर जगत्में उत्पात शुरू होता है। इस समय महामाया योगनिद्रा ब्रह्माका आश्रय लेती है। लोक-पितामह ब्रह्मा भी अमिततेजा विष्णुके नाभिकमलमें प्रविष्ट हो कर सुखसे सोते हैं। अनन्तर विष्णु खयं तेलोक्य संहर्ता रुद्धपी हो पहलेकी तरह समस्त भुवन· मएडलको चिनए करते हैं। वे जिस प्रकार महाप्रलय-कालमें वायु और विक्वितो सहायतासे सभीको दग्ध करते हैं, उसी प्रकार दैनन्दिन प्रलयमें भी वे तिलोकका दाह किया करते हैं। बैलोक्यदाहकालमें कृशानुतापपीड़ित महलांक वासिगण तापार्च हो जनलोकमें आश्रय लेते हैं। अनन्तर रुद् नाना वर्णके मेघसमूह द्वारा वृष्टि करके भ्रुवलोक पर्यन्त ब्रापी जलराशिसे भुवनमण्डलको परि-पूर्ण कर डालते हैं। इस समय परमेश्वर तैलोक्यको अपने जठराभ्यन्तरमें रख कर नागपर्यङ्क पर गयन करते हैं। इस समय ब्रह्मा उनके नाभिकमलमें और छन्नी उनके समीप अवस्थान करती हैं। जब कालानलसे समस्त भुवनमर्खळ दग्ध हो जाता है और बैलोक्यग्रास-से परितृप्त परमेश्वर योगनिद्राके वशीभूत होते हैं, तव अनन्त पृथिवीका त्याग कर चिष्णुके निकट चले जाते अनन्तके पृथ्वी त्याग करनेसे पृथिवी क्षण भरमें अश्रोगत होते होते क्र्मंपृष्ट पर पतित हो खएर्डावखएड हो जाती है। इस समय क्रमं पदनिकर द्वारा जलके जपर वहती हुई पृथ्वीको धारण करता है । श्लीरोदसमुद्रमें जहां मगवान् विष्णु छच्मीके साथ निद्ामिछापी है। अनन्त वहां जा कर है लोक्यग्रासतृप्त उस परमेश्वरको मध्यम फण द्वारा धारण करता है। उसका पूर्वेफण ऊपरकी ओर कढ़ा, दक्षिण फण उपाधान और उत्तर-फण पादोपाधानरूपमें रहता है । पश्चिमफण तालवृन्त-का काम करता है। विष्णुके शङ्क, चक्र, गदा और पद्मकी रख्ना अनन्तके आग्नेय फणसे होती हैं। इस प्रकार अनन्त अपने शरीरको नारायणको शय्या वना कर तथा जलमग्ना पृथ्वीके ऊपर अधोदेह स्थापन कर लक्ती-सहचर नारायणको मस्तक पर धारण करता है। उस समय नारायणके नाभिकमलमें ब्रह्मा और जठराभ्यन्तरमें **बैलोक्य ।वराजित रहता हैं। नारायण ब्रह्माका एक दिन** तक इस प्रकार शयन करते हैं।

यह प्रलय ब्रह्माके प्रतिदिनके अन्तमें ही होता है, इसीसे पुराविद्गण इसे दैनन्दिन प्रलय कहते हैं। रांत वीत जाने पर फिरसे सृष्टि होती है। इस प्रकार ब्रह्माके दिनमें सृष्टि और रातमें प्रलय होता है।

( कालिकापु० २७अ०)

नैयायिकोंने दो प्रकारका प्रलय वतलाया है, खएड प्रलय और महाप्रलय। किन्तु नव्य नैयायिकगण महा-प्रलय स्वीकार नहीं करते। उनके मतसे खएड और महाप्रलयका लक्षण इस प्रकार है—

> "जन्यद्रव्यानिधिकरण हालस्व ख्राडप्रलयस्व जन्यभावानिविकरणकालस्य महाप्रलयस्व ।"

जन्यद्रव्यका अनधिकरणकालत्व ही खएडप्रलयत्व है अर्थात् जव जन्यद्रव्यके अधिकरण मातका ही अभाव होगा, तव खएडप्रलय और जन्यभावके अनधिकरणकाल-में ही महाप्रलय होता है। नव्य नैयायिकींने वहुतों तर्क और युक्ति द्वारा महाप्रलयको अप्रामाण्यता स्थिर की है। विशेष विषरण महाप्रलय शब्द में देखो।

सांख्याचार्यांके मतसे प्रवृत्तिके परिणामसे जगत्की सृष्टि और लय हुआ करता है । प्रकृतिके सबंदा परि-माण होता है। यह परिणाम दो प्रकारका है, खरूपपरि-णाम और विरूपपरिणाम। जव खरूपपरिणाम होता है, तब ही प्रलय हुआ करता है। फिर विरूपपरिणाम-से जगत्की सृष्टि होती है । प्रशृति सत्त्व, रजः और तमोगुणात्मिका है। इस प्रकृतिका सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोद्भपमें और तमः तमोद्भपमें जव परिणाम होता है, तव ही प्रलय होता है। प्रकृतिके कभी स्वरूपपरिणाम और कभी विरूपपरिणाम होगा, पर उसे जाननेका कोई उपाय नहीं। जिस प्रकार पौराणिकोंके मतसे ब्रह्माके रातिकालमें प्रलय होता है, उस प्रकार इसके किसी समयकी स्थिरता नहीं है। परिणाम होते होते जव सद्भव परिणोम होगा, तर प्रस्तय और सद्द्रपपरिणाम होते होते जब विरूप परिणामका आरम्भ होता, तव जगत्की सृष्टि होती है। जव प्रस्तिके खरूपपरिणामसे आरम्भ होता है, तब पहले महामूत पञ्चतन्मालमें, पञ्च-तन्मात और एकादश इन्द्रिय अहङ्कारतत्त्वमें, अहं तत्त्व स्वीयकारण महतत्त्व और महतत्त्व प्रकृतिमें लीन होगा। इस समय केवल पृथिवी ही रहेगी और कुछ भी नहीं। यही सांख्योक्त प्रलय है। इसका विषय साख्वदर्शन, प्रकृति और पृथिवी शब्दमें देख ।

२ वैष्णवोंके मतसे नायिकोंके आठ प्रकारके सात्विक भावोंमेंसे अप्रम सात्विकभाव । प्रलय सात्विकभाव सुख और दुःख दोनोंही अवस्थामें अनुमृत होता है। भृविपतन आदि इसका अनुभव है। ३ साहित्यव्र्यणोक सात्विक भावभेद। ४ मृच्छा, बेहोशी। ५ लयको प्राप्त होना, विलीन होना, न रह जाना।

प्रलयता ( सं ॰ स्त्री॰ ) प्रलयस्य भावः, तल्, टाप् । प्रल-यत्व, प्रलयका भाव या धर्म ।

प्रलयन ( सं ० क्ली० ) उत्पत्तिस्थान ।

प्रलयलाट (सं० ति० ) प्रक्रपा ललाटोऽस्य ( उपनर्गात्-Vol. XIV. 158 स्वांग ध्रुवमपर्श्व । या ६।२।१७७) इति अन्तीदात्तस्वं । प्रकृष्ट ललाटयुक्त, सुन्दर कपालवाला ।

प्रख्व (सं ॰ पु॰) प्र-ल्रु-भावे-अप्। १ प्रकर्णक्रपसे छेदन, अच्छी तरह काटना। २ खएडभेद, टुकड़ा, घज्जी। ३ लेश।

प्रलबन (सं० क्ली०) प्र-बलू-स्युट् । प्रकर्णकपसे छेदन, अच्छी तरह काटना ।

प्रलंबित् ( सं ० ति० ) प्र-ॡ-तृण्। प्रकर्गकपके छेदनकारी, अच्छी तरह काटनेवाला।

प्रलवित्र (सं० ह्यी०) प्रलूपते अनेन प्र-लू-करणे इत । छेदनसाधन अस्त्रादि, काटनेका हथियार ।

प्रलाप (सं० पु०) प्रलपनमिति प्र-लप-भावे धम् । १ प्रला-पन, वकना, कहना । २ अनर्थकवाष्य, व्यर्थकी वकवाद । ३ निष्प्रयोजन जम्मत्तादि वचन, अनाप शनाप वात, पागलोंकी-सी वड़ वड़ । ४ आलाप, वातचीत । ५ रोग-का उपसर्ग भेद । ज्वरादि रोगका वेग अधिक रहने पर रोगी प्रलाप करता है । इसका लक्षण—

> "स्वदेहकुिपताद्वातादसम्बन्धं निरर्थकं। वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीत्तितः॥" ( वैद्यक्रनि०

मनुष्य खदैहमें कुपित वायु द्वारा निरर्थंक जो सव वाक्य कहते हैं, उसे प्रलाप कहते हैं। वायु कुपित होने-से ही प्रलाप होता है, यह प्रलाप जिस रोगके कारण हुआ करता है, उस रोगको शान्ति करनेसे प्रलापकी शान्ति होती है।

प्रलापक (सं० पु०) सिन्तपातज्वरमें । इसका लक्षण— जिस सिन्तपात ज्वरमें धर्म, अम, गालवेदना, कम्प, सन्ताप, विम, करलवेदना और शरीर अत्यन्त गुरु होता है, उसीको प्रलापक वा प्रलापि-सिन्तपात कहते हैं। इसकी चिकित्सा—तगरपादुका, पित्तपापड़ा, अमलतास, मोधा, करकों, लामज्जक, अमावमें खसखसकी जड़, अश्वयान्धा, ब्राह्मी, द्राक्षा, चन्दन, दशमूल और शङ्क्षपुष्पी इनके समान भागको एक साथ मिला काढ़ा वनावे। उसका प्रति दिन सेवन करनेसे प्रलापक सिन्तपात अति शीझ जाता रहता है। सान्त्यनावाक्य, अञ्चन, तीक्ष्ण नस्थ और तिमिरका सेवन करनेसे मन प्रकृतिस्थ होता है।
मनके प्रकृतिस्थ होनेसे प्रलापको शान्ति होती है।
प्रलापन सं० क्ली०) प्र-लप्-णिच्-ल्युट्। १ आलापन,
संभाषण। २ वकना, कहना।
प्रलापवत् (सं० दि०) प्रलापः विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व।
प्रलापयुक्त, अनाप शनाप वकनेवाला।
प्रलापहा (सं० पु०) प्रलापं हन्तीति हन-किप्। कुलत्था-

प्रकापहा ( स॰ पु॰) प्रकाप हन्तात हन-किप्। कुलत्था-अन, एक प्रकारका अंजन। प्रकापिता (सं॰ स्त्री॰) प्रकापिनो भावः तल्-टाप्। १ प्रला-

पित्व, प्रलापेका भाव या धर्म । २ प्रेमालाप । पृलापिन् (सं ० ति०) प्र-लप (प्रेलपसूर्यमण्वदववः । पा ३।२।१४५) इति ताच्छोल्ये धिनुन् । १ पृलपनशील, पृलाप करनेवाला, अंड यंड वकनेवाला । २ सक्तिपात ज्वर-मेद् । प्रलापक देखो ।

पूळीन (सं॰ बि॰) पू-छी-कर्त्तरि क्त । १ पूळयपूाप्त, समाया हुआ । २ चेष्टाशून्य, जड़वत् ।

पूळीनता ( सं ० स्त्री० ) प्ळीनस्य निश्चेष्टस्य भावः तळ्-टाप् । १ पूळय, नाश । २ चेष्टानाश, जड़त्व । पूळून (सं ० पु०) १ कीटभेद, एक पूकारका कीड़ा । (ति०) पु-लु-क्त । २ छिन्न, कटा हुआ ।

पूछेप (सं ० षु०) प्र-लिप्-भावे-घञ् । व्रणादि शोषणार्थं द्रव्यविशेष द्वारा लेपनिवशेष, पुल्टिस । सुश्रुतमें लिखा है, कि सब प्रकारके स्जनमें पहले प्रलेप दो प्रकारका होता है, सामान्य और विशेष । फिर इसके भी तीन भेद किये जा सकते हैं, यथा—प्रलेप, प्रदेह और आलेप । जिस रोगमें वा जिस अवस्थामें जिस प्रकारका प्रलेप विधेय हैं, वह उन्हों सब रोगप्रकरणोंमें विणंत हुआ है।

प्रलेप जय सूख जाय, तव उसे शरीर पर नहीं रखना चाहिये। शुष्क प्रलेप कोई काम नहीं करता, वरन् शरी-रमें पोड़ा देता है। इन तीन प्रकारके प्रलेपोमेंसे शुष्क या अशुष्क, शीतल और अल्प होनेसे उसे प्रलेप कहते हैं; उष्ण अथना शीतल, अनेक अथवा अल्प होनेसे उसे प्रदेह और दोनों प्रकारके मध्यवत्तीं होनेसे उसे आलेप कहते हैं। रक्तपित्तज रोगमें आलेप विधेय है। वातश्लेष्मजन्य रोग होनेसे अथवा भग्न अस्थिका संयोग करनेमें वा त्रणके शोधन और पूरण करनेमें प्रदेह विधेय है। सत वा अक्षत दोनों हालतमें 'प्रदेहका व्यवहार किया जाता है। जिसका क्षतस्थान पर प्रयोग किया जाता है, उसे कक्ष अथवा निरुद्धालेपन कहते हैं। इससे नणका मान ( अर्थात् रसरकादिका निकलना ) रुक जाता और नण कोमल होता है।

जो स्जन क्षारसे दग्ध नहीं होती उसके छिये आले-पन हितकर है। जो द्रव्य भक्षण वा पान करनेसे शरीरके अभ्यन्तरस्थ दोवोंको शान्ति होती है, उस द्रव्यका प्रहेष देनेसे वे दोव जाते रहते हैं। शरीरके मर्मस्थानमें अधवा गुहास्थानमें जो सब रोग होते हैं, उनके संशोधनके छिये आलेपन विधेय हैं। आलेपन प्रस्तुत करनेमें पिच-जन्य रोगोंमें समस्त आलेपन मिला कर वह जितना होगा उसके सोलह भागोंमेंसे छः भाग स्नेहद्रव्य अर्थात् यृत, तैल और वसा आदिमेंसे कोई एक उसमें मिला दे। वायुजन्य रोग नवार भाग और श्लेष्मजरोगमें आधा भाग स्नेहद्रव्य मिलाना होगा। इसका वहुत बना करके प्रलेप देना उचित है। जब तक उससे उष्णता निकलती रहे, तब तक उसमें शीतल आलेपनका प्रयोग न करे, केवल उष्ण आलेपन देते रहना चाहिये।

शरीरमें यदि प्रदेहका छेपन करना हो, तो दिनमें छेपन करना ही विश्रेय है । विशेषतः पित्तजन्य और रक्तज अभियात अर्थात् शरीरमें किसी आयात जन्य अथवा विपजन्य होनेसे दिवाभागमें ही छेपन करना फर्चं य है। जो प्रछेप पूर्वदिनका प्रस्तुत किया हुआ हो उसका प्रयोग कदापि न करें। क्योंकि, वह प्रछेप गाढ़ हो जाता है और उसका प्रयोग करनेसे उष्णता, वेदना और जलन होती है। प्रछेपके ऊपर प्रछेप भूछ कर भी न देवे, अथवा जो प्रछेप शरीरसे एक वार अछन कर दिया गया हो उसका फिरसे शरीरमें प्रयोग करना कर्चंट नहीं, करनेसे हानिके सिवा छाम नहीं है।

वहुतसे स्थानों पर पृष्ठेप दे कर उसे वांध देना होता है ; नहीं तो वह गिर पड़ता है। इस वन्धनके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—प्रलेप वन्धन करनेमें वृक्षका त्वक् निर्मित वस्त्र, कार्पास वस्त्र, कम्बल, पटवस्त्र, वर्म, वृक्ष की अभ्यन्तरस्थित छाल, कह का खएड, शहतृतका फल ये सब द्रव्य प्रलेपके ऊपर दे कर उसके वाद वांघ रखे, तथा रोग और कालकी विवेचना कर भिषक् बन्धन हुट्य स्थिर करे । वंधन करनेमें प्रथमतः घना प्रलेप दे । उसके ऊपरी भाग पर सरल और असंकुचित भावमें कोमल पहुबख द्वारा वन्धन करे । त्रणके ऊपरी भाग पर यदि मजवृत गांडदी जाय, तो प्रलेपकी औषध विच्छिन्न हो जाती है। विपरीत भावमें वन्धन होनेसे अर्थात् जहां जैसा यन्धन देना उचित है, वहां वैसा न देनेसे त्रणका मुंह विस जाता है । त्रणके आयतानुसार यह वन्धन तीन प्रकारका होता है-दृढ़, सम और शिथिल । वन्धनमें कप्ट वोध होनेसे उसे दूढ़वन्ध, वन्धनमध्य वायुके गमनागमन करनेसे शिथिछवन्ध और दोनोंके मध्यवत्तीं होनेसे उसे समवन्ध कहते हैं। नितम्ब, उदर, वगल, काछ, छाती और मस्तक इन सब स्थानीं में इड़ वन्धन, हाथ, पांब, मुंह, कान, कण्ठ, मेढ़, पीठ, पार्श्व और उद्दरमें समवन्धन तथा चशुके सन्धिस्थानमें केवल शिथिल वंघन करना होता है।

( प्रश्रुत सुत्रस्था॰ १= २० )

प्रत्ये द्वारा दुःसाध्य वणादि आरोग्य होते देखे गये हैं। चरक और सुयुनादि वैद्यक्तप्रन्थोंमें इसका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहों लिखा गया।

प्रलेपक (सं० ति०) प्र-लिए-ण्डुल्। १ प्रलेपकर्ता, लेप करनेवाला। (पु०) २ जीणेज्यरमेद, एक प्रकारका पुराना बुखार। यह ज्यर वात कफसे उत्पन्न होता है। इसमें पसीनेके संसर्गसे चमड़ा लिपा हुआ अर्थात् भीगा सा रहता है और उत्तर वहुत थोड़ा थोड़ा रहता है। यह ज्वर अत्यन्त कप्रसाध्य है।

विशेष विवरण ज्वर शब्दः देखो। वियां दाप्, कापि अत इत्वं, प्रकेषिका तस्या धर्म महिष्यादित्वादण्। ३ प्रकेषिकाका धर्म। प्रकेषन (सं० पु०) छेप करनेकी किया, पोतनेका काम। प्रकेष्य (सं० वि०) १ प्रकेषयोग्य, छेपने छायक। (पु०) २ कुञ्चित केशदाम, धुँघराछे वाछ। प्रकेह (सं० पु०) प्रकिह्यते इति प्र-लिह्-धन्। व्यञ्जन-विशेष। पाकराजेश्वरमें इसकी प्रस्तुत प्रणालीका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले मांसके छोटे छोटे खएड काट कर तेल या घीमें तल ले। पीछे उसमें तम लवण-युक्त गन्ध डाल दे। जब तक उसमेंसे पट पट शब्द निक-लता रहे, तब तक उसे आंच परसे न उतारे, सिद्ध होने दे। अनन्तर उसमें अनारका पानी डाल कर कुछ काल तक और पाक करता रहे। जब अच्छो तरह सिद्ध हो जाय, तब उसमें सींठ और जीरा छोड़ दे। पीछे आंच परसे उतार कर मांसकों शोरवासे अलग रखे। अब शोरविको कपड़े से ढक कर हींग और घृतयुक्त भूपसे धूपित करे, वादमें उसे एक दूसरे वरतनमें रख दे। इसीका नाम प्रलेह है।

गीड्देशीय प्रलेह—पूर्वोक्त प्रकारसे मांसकी पाक कर उसमें हींग, अद्रुक, चीजपुर, इलायची और लचण डाल देनेसे गीड्देशीय प्रलेह बनता है । यह रुचिकर, वल्य, और वायुरोगनाशक, श्राहक, पित्तवद्व क और आध्मान-नाशक गुण माना गया है।

पूर्ण प्रसेह—मांसप्रणके योग्यानुसार कोष्टाकार कर-के घृतमें मांसको भुन है। पीछे प्रहेहकी विधिके अनु-सार पाक करे, इसीका नाम पूर्णप्रहेह है। इसका गुण— वातनाशक, ग्रेंग्मा और मुखबैरस्यनाशक तथा गुरु है।

शुक्कवर्ण प्रलेह—पूर्वीक पृकारसे मांसको पाक कर धनिये, होंग, दिध और दृतः अर्द्ध पकावस्थामें खिन्न-मांसको डाल दे। पीछे उसे आँच परसे उतार लेने पर शुक्कवर्ण प्रलेह वनता है।

पीतवर्ण प्रलेह—शुक्कवर्ण प्लेहके जैसा मांसका पाक कर हरिया और कुंकुममिश्रित करनेसे यह प्रलेह होता है। अलावा इसके रक्तवर्ण प्रलेह, हरिद्वर्ण प्रलेह और वटकप्लेह आदि नाना प्रकारके प्रलेहोंका प्रस्तुत विवरण लिखा है। मांसकी तरह मछलीका भी प्रलेह प्रस्तुत किया जाता है।

मत्स्य पूलेह—मछ्छोंके पूछेहको भी मांसकी तरह पाक करना होता है। इसकी और सब विधि पूर्ववत् है, सिर्फ इतना ही पूभेद है, कि इसे तेलमें भुनना पड़ता है। पूलेहन (सं० हों०) प्-छिह-स्युर्। चारना।

पूलोप (सं॰ पु॰) प्-लुप-घञ् । पृक्कप्रकपसे लोप, ध्वंस, नाश । पूलोन (सं २ पुर) पून्छुन-वज्, वा पूङ्घः लोनः । पूङ्घ लोन, लाल्च ।

पूळोनक (सं ० पु०) पूळोसनकारी, टाटच देनेवाटा । प्रकोनन (सं० ति०) १ पद्यक्त, ठाटच देनेवाटा । हो०। २ होन दिखाना, टाटच दिखाना ।

प्रलोनि ( सं॰ स्त्रो॰ ) दालुक्ता, दाल् ।

प्रलोनिन् सं विश्व प्रस्तुन-निनि । प्रलोनयुक्तः प्रलोनिन फैसनिवाला ।

प्रलोनित । सं० वि० । प्रलोनिने आया हुआ. हलचाया हुआ ।

प्रहोस्य (सं० वि० ) १ प्रहोतनयोग्य । २ आकर्षजीय । ३ जनिकापयोग्य ।

प्रकोलुप । सं वि । प्रकृष्टः लोलुपः प्रादिसः । १ अति-शय लोलुप । । पु ) २ गरुड्वंगीय कुन्तिपुत पक्षिनेद । प्रव ( सं ) क्ली ) गति, गमन ।

प्रवक्त ( सं० वि० ) प्र-गतो साधुक्तारित्वे द्योत्ये दुन् । १ भूयोगतियुक्त । २ इसमें साधुकारी ।

प्रवक्तु ( सं ) दि ) प्रकर्षेण वक्ति यः, प्रन्वन्तृत् । १ वेदादिवाचक, उपदेश देनेवाला । २ सहका, अच्छी तरह समन्य कर कहनेवाला ।

प्रवक्तव्यः सं० वि० । प्र-वच-तच्यः । प्रकृष्टरूपसे वचनीयः - अच्छो तरह कहने लायकः ।

प्रवक्तुत्व । सं० क्ली० । प्रवन्तृं सीवः । प्रक्तुत्व । प्रवकाका । साव वा धर्म ।

प्रवत ( सं ) पु ) स्त्री । एतवा-स्ट्य रः । स्त्रा, पस्ती । प्रवङ्ग ( सं ) पु । स्त्री । एतवङ्ग स्ट्य-रः । एतवङ्ग पस्ती । प्रवचन (सं) हो । प्रवचन । प्रवचन प्रवचन क्यन, अर्थ स्त्रीस कर दताना । २ वेदाङ्ग । ३ प्रकृष्टवाक्य, स्थास्या ।

प्रवन्यावित ( सं॰ पु॰ ) हासके रृष् देहोर्नेसे एक । प्रवट ( सं॰ पु॰ ) प्रु-अट-खार्चे-अण् । गोधून, गेहुँ । प्रवान के विश्व प्रविद्यति यु प्रविद्यति सुद्। १ वी केनगः नीवा होता पया हो, इन्ह्यों । २ वत् मुका हुआ । ३ प्रवृत्त, रत । ३ प्रज्ञा । १ प्रवृत्त, रत । ३ प्रज्ञा । १ प्रवृत्त, तत । ३ प्रज्ञा । १ प्रवृत्त, तत्वारे । ११ प्रवृत्त, व्हारे । ६ किन्छ । १० प्रवृत, वरावरे । ११ प्रवृत्त । १३ प्रवृत्त । १४ प्रवृत्त । १४ प्रवृत्त । १४ प्रवृत्त । १४ प्रवृत्त ।

पुबरता (सं १ स्त्रीश) पुबरास्य मादः टङ्कार् । पुदरका - माच या वर्ने ।

प्वमवन् (सं ) वि ) । प्वम अस्त्यवे स्तुग्रस्य व ) । प्वमयुक्तः ।

पुषत् (तं ) स्त्रीः) पुष्ये वाति वा इति । १ पृष्ये अयोत् तिस्त स्थानमें ज्ञानेवालो । १ प्रवेतका डाखुरेस, पराङ्का किनास ।

पृत्तवत् सं शिवः प्रत् अस्तर्ये स्तुन्त्ववः तान्द्रत्वात् न पर्त्वं । अत्यन्त विस्तारपुदः, वृत्र क्या चीड्रा ।

प्वतस्य द्यविका (संश्रह्मोश) प्वतस्य द्वासं प्रतियद् उति-दंस्याः । नायिकानेद्दं, वह नायिका जिलका पति विदेश जानेवाला हो । इस नायिकाको नेष्ठा—काङ्क्यद्दं, काला पूँचा, गमनविक्रोपद्शेव, निर्वेदं, सन्ताद, सन्तोद्दं निःश्वास और वाष्पादि । रसमञ्जरीमें सुन्या, नक्या पूँछा, परकीया आदि नेहाँसे इसके भी को नेद् बक्टाये गये हैं।

पुनस्टरपूरेवर्सा (सं १ स्त्रोः) प्रवस्टरपतिका । प्रवद् ।सं १ सि०। प्रवृष्टरपते वाध । प्रवद्ग ।सं १ हो०। बोपचा ।

प्रवित्त : सं श्रिकः । योषकः योषना कर्णवाला । प्रविद्यानम् (सं श्रिकः) या सावे बाहुलकाम् स्रोजन् : अवत् प्रकृष्णितियुक्तः यामा गतिवेस्य । प्रकृष्ट गमनकाराः तेले सं वलनेकाला ।

प्रवप (सं २ वि२) अतिगय स्यूट, अत्यन्त नेशेषुट । प्रवपन (सं २ हो)२) प्रदृष्टरूपसे वपन । २ मृंछ शृङ्गी सुङ्ग वाना । प्रवयन (सं • क्ली •) प्रवीयतेऽनेनेति प्र-श्रज-गतौ क्षेपणे च ल्युट्। (वार्यो। मा श्रष्टाषण ) इति वी, (कृत्यचः। पा ८।४।२६) इति णत्वं। १ प्रतोद, पैना। प्र-वय-गतौ-भावे ल्युट्। २ प्रकर्षक से गप्रन, तेजीसे चलना।

प्रवयनीय (सं ० ति०) प्र-अज अनीयर्, अजे-वीं । प्रव-यनयोग्य।

प्रवयस् ( सं ० ति० ) प्रगतं वयो यस्य ।' १ वृद्ध, वृ्हा । २ पुरातन, पुराना ।

प्रवय्या ( सं ॰ स्त्री॰ ) प्र-न्नि-यत् 'भय्य प्रवय्ये छन्दिसि' इति निपातनात् सिद्धं । प्रकवेष्ठपसे गतियुक्ता स्त्री, तेजीसे चलनेवाली औरत ।

प्रवर (सं ० ज्ञी०) प्र-न्नियते इति प्र-वृ-अप्। १ अगुरु चन्दन, अगरकी लकड़ी। २ गोत। ३ सन्तति। ४ गोतप्रवर्त्तक मुनि। जैसे, जमदिन गोतके प्रवर्त्तक ऋषि जमदिन, और्व और विशिष्ठ; गर्ग गोतके गाग्व, कौस्तुभ और माण्डच्य इत्यादि। विशेष विवरण गेल्व शब्द में देखो। ५ स्नुही वृक्ष । ६ कृष्णमुद्ग, कोली मूंग। (ति०) ७ श्रेष्ठ, वड़ा, मुख्य।

प्रवरिगरि (सं ० पु०) मगध देशके एक पव तका प्राचीन नाम । इसे आज कल वरावर पहाड़ कहते हैं। गयासे ७ कोस उत्तर-पूर्व पड़ता है।

प्रवरण (सं० क्की०) १ देवताओंका आवाहन । २ वर्षा-ऋतुके शेषमें होनेवाला वौद्धका एक उत्सव ।

प्रवरदास—चैतन्यप्रकरणके प्रणेता। इनकी उपाधि ब्रह्म-बिद्ध है।

प्रवरधातु ( सं॰ पु॰ ) मूल्यवान् धातुविशेष ।

प्रवरपुर—१ काश्मीरस्थ नगरमेद । राजा प्रवरसेनने इस नगरको वसाया । २ मध्यप्रदेशस्थ प्रवरसेन प्रतिष्ठित पक ग्राम ।

प्रवरभूपति ( सं० पु० ) राजभेद । प्रवरहेन देखो ।

प्रवरलित (सं० क्ली०) पोड़शाक्षरपादक छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर रहते हैं। इसके १ला, ७वां, ८वां, १वां, १०वां, ११वां सीर १४वां अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं।

प्रवरवाहन ( सं० पु० ) प्रवरं वाहनंग योः । अध्विनोकुमार-

Vol. XIV. 159

प्रवरसेन—१ गोनन्द-वंशीय एक काश्मीरराज । इनका दूसरा नाम था श्रेष्ठसेन । लोग इन्हें तज्जीन भी कहा करते थे । ये वड़े वीर थे । इन्होंने प्रवरेश्वर नामक शिय और मातृचक्रको स्थापना की थी । अलावा रूनके इन्होंने और भी कितने पुराने मन्दिरोंका संस्कार कराया । प्रवरेश्वर शिवको इन्होंने लिगते देश दिया था । ३० वर्ष राज्य करके थे सुरधामको सिधार गये ।

२ ये द्वितीय प्रवरसेनके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके पिताका नाम तोरमान था। १म प्रवरसेनके थे पीत थे। उनकी मृत्युके वाद उनके ज्येष्ठ पुत्र हिरण्य काश्मीर-की राजगद्दी पर वैठे। तोरमान छोटे होनेके कारण युवराजके पद पर अभिषिक हुए। युवराज तोरमानने अपने नाम पर सोनेका सिक्का चलाया। इस पर राजा वडे विगड़े और तोरमानको कैंद कर लिया। उस समय तोरमानकी स्त्री अञ्जना गर्भवती थी। पतिकी आज्ञासे वह एक कुम्हारके यहां रहने लगी। वहीं इस प्रवरसेन-का जन्म हुआ । प्रवरसेनकी वाल्यावस्थाके खेलोंसे सर्वोको मालूम हो गया था, कि वे उच्चवंशी और भावी ाजा हैं। ये अपने साथियोंके साथ खेलमें राजा वनते और सवका शासन करते थे। एक समय इनके मामा जयेन्द्रने इन्हें देखं पाया । आस्तृति आदि देखनेसे उन्हें सन्देह हुआ। ये उस वालकके पीछे पीछे गये। वहां अञ्जनाको देख कर जयेन्द्रका कुल सन्देह जाता रहा। जव जयेग्द्रसे प्रवरसेनको सव वातोंकी खवर लगी, तव ये आगववूला हो गये। परन्तु मामाके अनुरोधसे इन्होंने क्रोध शान्त किया और उसी समय तीर्थयाताको निकल पडे।

हिरण्यगुतके मरने पर काश्मीरका राजसिंहासन कुछ दिनों तक खाळी ही था। पीछे उज्जयिनीपति चिकमा-दित्यकी साझासे मातृगुत काश्मीरके राजा हुए।

प्रवरसेन तीर्थपर्यटन करते करते श्रीपर्वत पर पहुंचे। वहां उन्होंने अपने राज्यकी दुर्दशा और पिताकी मृत्युकी वात सुनी। इस पर वे वड़े दुःखित हुए। इसके प्रति-कारका उपाय सोच ही रहे थे, कि अश्वपाद नामक सिद्ध वहां पहुंच गया। उसने प्रवरसेनसे प्रार्थना की, "आप मेरे पहलेके गुरु हैं। मैंने आप हीसे सिद्धि पाई है। उस समय जब मैंने आपसे निवेदन किया था, कि आप क्या बाहते हैं, तब आपने कहा था, मुक्ते राज्य चाहिये। मैंने आपका मनोरथ पूरा करनेके लिये भग-बात् चन्द्रशेखरसे प्रार्थना की है। उन्होंने कहा, प्रवरसेन मेरा अनुचर है, मैं उसका अभीष्ट पूरा कर्फ गा।" इतनी बात कह कर वह सिद्ध चला गया। प्रवरसेन भी तपस्थामें लग गये। शिवजी यथासमय पघारे और प्रवरसेनको वर दे कर चले गये।

कुछ समय प्रवरसेन काश्मीरके समीप पहुंचे। राज-मन्द्रीको जब मालूम हुआ, कि प्रवरसेन काश्मीरके]निकट पहुंच गये हैं, तव वे उनके पास गये और मातृगुप्तके विरुद्ध युद्ध करनेके विषयमें सलाह करने लगे। प्रवर-सेनने जवाब दिया, कि मेरी हृद्य-आँखें विक्रमादित्यका ख़न देखनेके लिये लालायित हैं। मातृगुप्तके साथ मेरा कुछ विरोध नहीं है। जो क्लेशका सहन कर सकते हें, यदि वे शबु भी हैं, तो उनको कप्ट देनेसे क्या फायदा है। जो छोटे छोटोंको पराजय कर जगत्में वीरके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका नाश करनेवाले ही सच्वे वीर कह-श्तना कह कर प्रचरसेन मन्तियोंके साथ विक्रमादित्यसे छड़ाई करनेके लिये रवाना हो गये। राह-में ही खबर लगी, कि विक्रमादित्य पञ्चत्वकी प्राप्त हुए। इससे प्रवरसेनको वड़ा दुःख हुआ । इसी समय इन्हें संवाद आया, कि काश्मीरराज विक्रमादित्य राज्यका एरित्याग कर कहीं जा रहे हैं। प्रवरसेनने समन्ता, कि शायद् मेरे पश्चवालीने उन्हें राजच्युत कर दिया हो। इसका निर्णय करनेके लिये वे खर्य मात्गुप्तके निकट गये और बड़े विनीत-स्वरसे राज्य-त्यानका कारण उनसे पूछा । मातृगुप्तने कहा 'राजन् ! जिसने सुक्ते राजा बनाया था, वह इस संसारसे जाता रहा। अतः अब मेरा भी राज्यभोग करना अन्याय और छत्रप्रता है। प्रवरसेतने मातृगुप्तको वहुत समकाया, कि आप राज्यका परित्याग न करें। परन्तु उन्होंने एक भी न सुनी और वे काशी जा कर संन्यासी हो गये। अव प्रवरसेन काश्मीरके सिंहासन पर तो वैठे, पर राज्यकी जो कुछ आय थी, उसे वे मारागुप्तके पास काशी भेज दिया करते थे। दश वर्षेके वाद मातृगुत सुरधामको सिधार गये।

प्रवरसेन काश्मीरका शासन करने छगे, उनकी सेनाओंने भारतके अन्यान्य प्रान्तोंको भी अपने कब्जेमें कर छिया था। विक्रमादित्यके पुत शिलादित्यको शबुओंने राज्यसे मार भगाया था। अब प्रवरसेनने शिलादित्यको उसका पितृराज्य दिला दिया। काश्मीरका जो सिहासन विक्रमादित्य छे गये थे उसे थे छौटा लाये। इनके यहासे वितस्ता नदी पर नौकाओंका पुल बंध गया था। प्रवरसेनने अपने नाम पर एक नगर भी वसाया था। अळावा इसके और भी कितने ही महान राजो-चित कार्य इन्होंने किये। ६० वर्ष तक इन्होंने राज्य किया था।

३ सेतुवन्धकाव्यके प्रणेता काश्मीरराज। रनकी किता-शक्तिका उल्लेख क्षेमेन्द्र और वाणभट्ट किने श्रीहर्षचिरतकी अनुक्रमणिकामें किया है। प्राकृतमाणों जितने काव्य रनके रचे हुए हैं, उनमेंसे 'सेतुवन्ध' सबसे श्रेष्ट हैं।

8 वाकारक-चंशीय महाराज । ये २य प्रवरसेनके अतिवृद्ध प्रियामह और राजा १म रुद्रसेनके पितामह थे। इनका विष्णुवृद्धगील था। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्होंने अन्निप्टोम, अप्तीयाम, उक्ध्य, पोड़शिन, अतिराल, वाजपेय, वृहस्पितसव और चार अश्वमेध आदि यहाँका अनुष्ठान किया। इनकी उपाधि 'चराहदेव' थी।

अजारदाके गुहामन्दिरमें जो शिलालिपि पाई गई है, उसमें इनका 'प्रवरसेन बराहदेव' नाम देखनेमें आता है। ५ वाकाटक-वंशीय एक महाराज। प्रवरपुरमें इनकी राजधानी थी। राजा २य ख्रसेनके औरस और प्रभा-वती गुप्ताके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। शिलालिपिमें

इनकी दानशीलताका प्रकृष्ट परिचय मिलता है। प्रचरा (सं क्षी ) १ अगुरुकाष्ट्र, अगरकी लकड़ी। २ पलाशबृक्ष ।

प्रवरा—दाक्षिणात्यके अहमदनगर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। इसका प्राचीन नाम पयोधरा है। मूछा, महा-छुड़्गी और अहूळा इनकी शाखानदी हैं। प्रायः १२० मीछ रास्ता तै कर यह तोकनगरके निकट गोदावरीमें मिछती है। राजुर, अकोछ, सङ्गमेर, राहुरी, नेवास, तोक और प्रवरासङ्गम नामक नगर इसके किनारे अव-स्थित है। इसको जल सास्थ्यकर है।

प्रवरासङ्गम—अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत एक नगर।
प्रवरानदीके दाहिने किनारे गोदावरी सङ्गमतट पर यह
वसा हुआ है। नदीके दूसरे किनारे तोकनगर अवस्थित
है। दोनों नगर ही ब्राह्मण-प्रसिद्ध हैं। पहले यहां वहुतसे हिन्द्-मन्दिर थे। १७६१ ई०में पानीपत-छड़ाईके वाद
निज्ञामअलीने वहुतों मन्दिर तहस नहस कर खाले। यह
स्थान जनसाधारणमें पवित्र तीर्थके जैसा गण्य है।
यहांका सिद्धे थ्वर महादेवका मन्दिर किसी ब्राह्मणसे
प्रतिष्ठित हुआ है। कहते हैं, कि मन्दिरके वनानेमें लाखसे स्थिक रुपये बर्च हुए थे। प्रति वर्ष महाशिवराविवतके उपलक्षमें यहां एक मेला लगता है।

प्रवरेश्वर ( सं॰ पु॰ ) प्रवरसेन राजा ।

प्रवर्ग (सं० पु०) प्रवृज्यते निःक्षियते हिनरादिकमस्मि-चिति प्रचृज-अधिकरणे घम्। १ होमाग्निं, हवन करने-की अग्नि। प्रवृज्यतेऽसी घज्। २ प्रवर्गयह्में अतु-ष्टेय होम।

प्रवर्ग्य (सं॰ पु॰ ) प्र बृज-कर्मणि ण्यत्, सुत्व । प्रवर्ग-यक्षमें अनुष्टेय होम।

प्रवर्ग्यवत् (सं० ति०) प्रवर्ग्य-अस्त्यर्थे मतुष् मस्य च। १ प्रवरायुक्त । (पु०) २ यज्ञमेद ।

प्रवत्त (सं ॰ पु॰) १ कार्यारम्म, डानना । २ गीलाकार अलङ्कार भेद, गोल आकारका एक आभूषण । ३ एक प्रकारके मेघ।

प्रवर्त्तक (सं • ति • ) प्रवर्त्त यतीति प्र-वृत-पिच ्णवृत् । १ प्रवर्त्त नकारी, किसी कामको चलानेवाला । २ आरम्भ करनेवाला, चलानेवाला । ३ प्रवृत्त करनेवाला, काममें लगानेवाला । ४ न्याय करनेवाला । ५ गति देनेवाला । ६ न्याय करनेवाला । ५ गति देनेवाला । ६ जभारनेवाला, उसकानेवाला, विचारक रनेवाला । ७ निकालनेवाला, ईजाद करनेवाला । (इति • ) ८ नाटकमें प्रस्तावनाका एक मेद । इसमें स्त्रधार वर्त्त मान समयका वर्णन करता है और उसीका सम्बन्ध लिये पालका प्रवेश होता है।

प्रवर्तन (सं ० ह्ही०) प्र-वृत-णिच्-ल्युट् । १ प्रवृत्ति । २ कार्य भारम्म करना, डानना । ३ उत्ते जना, प्रेरणा, डस- काना । ४ कार्यसञ्चालन, कामकी चलाना । ५ प्रचार करना ।

प्रवर्त्तना (सं ॰ स्त्री॰) प्र-वृत्-िणच्-युच्, टाण्। प्रवृत्तिवान, प्रवृत्त करनेकी क्रिया, उत्तेजना। २ आरम्म, टानना। ३ उत्तेजना, उमारना। ४ प्रेरणा, उसकाना। ५ नियो-जन, किसी काममें छगाने या नियुक्त करनेकी क्रिया। प्रवर्त्तनीय (सं ॰ ति॰) प्र-वृत-िणच्-अनीयर्। प्रवर्त्तन-योग्य।

प्रवर्त्तमान (सं० ति०) प्र-वृत-णिच्-शानच् । किसी काममें प्रवृत्त होना।

प्रवर्त्तमानक (सं० बि०) प्रवत्तमान खार्थे कन् । प्रवर्त्तमान । प्रवर्त्तियतु (सं० बि०) प्र-वृत-णिच्-तृण् । १ प्रवर्त्तक । २ अनिवर्त्तक, अविच्छे दकारी । ३ संस्थापक ।

प्रवर्तित (सं ० ति०) प्र-वृत-णिच्-क । १ चालित, चलाया हुआ। २ उत्पादितं, पैदा किया हुआ। ३ भारव्य, ठाना हुआ। ४ प्रत्यावर्तितं, लौटाया हुआ। ५ उत्तेजितं, उभारा हुआ।

प्रवर्त्तितव्य (सं० ति०) प्र-वृत-णिच्-तव्यं। १ प्रवर्त्तन-योग्य। २ अनुष्टेय।

प्रवर्त्तित् (सं ० ति०) प्र-वृत्त-तृण् । प्रवर्त्तनकारी । प्रवर्त्तिन् (सं ० ति०) प्र-वृत-णिनि । १ प्रवर्त्तयुक्त, प्रव-तंक । २ अप्रगामी । ३ प्रवाहशील । ४ उत्पत्तिशील । प्रवर्त्य (सं ० ति०) किसी कार्यमें प्रवृत्त या उत्ते जन-योग्य ।

प्रवद्ध फ ( सं ० ति० ) प्र-वृध-णिच -ण्वुल् । प्रवद्ध नकारी, वृद्धि करनेवाला ।

प्रवर्द्धन (सं० क्ली०) प्र-वृध-भावे-ल्युट्। १ विवर्द्धन, वढ़ती। (ति०) र वृद्धिकारक, वढ़ानेवाला।

प्रवर्ष (सं० पु०) १ प्रकृष्टकपसे वर्षण, अतिवृधि । २ वृष्टि ।

प्रवर्षण (सं ० क्वीं ०) १ प्रकृष्टक्तपसे वर्षण, वारिश । २ किष्किन्धाके समीपका एक पर्वत जिस पर श्रीराम और छक्ष्मणने निवास किया था।

प्रवर्ष ( सं ० ति० ) प्रवर्षति प्रवर्ष ते प्र-वृह-अच् । प्रधान,

प्रवलाकिन् (सं॰ पु॰ ) १ भुजङ्ग, सांप । २ चिलमेखलक, मयूर, मोर । प्रवहह (सं०पु०) प्रहेलिका, पहेली। प्रवल्हिका (सं०स्त्री०) प्रहेलिका, पहेली। प्रवस्थ (सं०स्त्री०) १ प्रस्थान। २ प्रवास। प्रवस्त (सं०स्त्री०) १ प्रवासयाता, विदेश गमन। २ वहिंगमन, वाहर जाना।

प्रवसु ( सं॰ पु॰ ) इलिनृपपुत दुष्मन्तम्राता नृपमेद । प्रवस्तव्य ( सं॰ ति॰ ) प्र-वस-तव्य । प्रस्थानयोग्य, वाहर निकलने लायक ।

प्रवह (सं ० पु०) प्र-वह-भावे अच्। १ गृह नगरादिसे वहिर्गमन, घर नगर आदिसे वाहर निकलना। २ वायु, सात वायुओंमेंसे एक वायु। यह वायु आवह वायुके ऊपर अवस्थित है। इसी वायुका आश्रय करके ज्योतिष्क-मण्डल आकाशतलमें अवस्थित है। ३ मेघविशेष, एक प्रकारके वादल। ४ खूव वहाव। ५ कुएड जिसमें नाली द्वारा जल जाय।

प्रवहन (सं ० क्की०) प्रोहातेऽनेनेति प्र-वह-करणे ह्युट्। १ कर्णीरय, डोळी। २ यान, सवागी। ३ पोत, नाव। ४ छोटा परदेदार स्थ, वहळी। ५ छे जाना। ६ कन्याकी विवाह देना।

प्रवह्नि (सं ॰ स्त्री॰) प्रवह्नते आच्छादयतीति प्र-वह-इन् । प्रवह्निका, पहेली ।

प्रविह्या (सं० स्त्री०) प्र-वह्न-ण्युल्-टाप्, अत-इत्वं। प्रहे-लिका, पहेली।

प्रचा ( सं ॰ पु॰ ) प्रकर्षेण वाति गच्छति वा क्विप् । अन्न, अनाज ।

प्रवाक । सं ० पु० ) घोषण करनेवाला ।

प्रवास (सं ० ति ०) प्रकृष्टा वाग् यस्य । १ युक्तियुक्त र गण्यका, उचित वोलनेवाला । २ वहुत वोलनेवाला, इधर उधरकी हाँकनेवाला । ३ युक्तिपदु, अच्छा वहस करनेवाला । (स्त्री ०) ४ प्रकृष्टा वागिति प्रादिस ०। ५ प्रकृष्टवाक्य, उचित वचन ।

प्रवाचक (सं॰ ति॰) प्रकृष्टं वक्तीति प्र-वच-ण्वुल्। प्रभृष्टवक्ता, अच्छा वोलनेवाला।

प्रवाचन ( सं ० क्ली० ) प्र-वच-णिच न्त्युट् । प्रकृष्टरूपसे कथन, अच्छी तरह कहना ।

प्रवाच्य (सं ० ति० ) प्र-वर्च-ण्यत् ( यजयाजस्य १वर्वस्य ।

पा श्री६६) इति कुत्वासावः। १ सम्यक् वक्तव्य, अच्छी तरह कहने योग्य।२ निन्य, निन्दा करने योग्य। प्रवाड़ ( सं ० पु० ) प्रवाछ छस्य डृत्वं। प्रवाछ, मूंगा। प्रवाड़सागर ( सं ० पु० ) बुद्ध।

प्रवाण (सं ० ह्यी०) कपड़े का किनारा वनाना।
प्रवाणि (सं ० स्त्री०) प्रकर्षेण ऊयतेऽनयेति प्र-वे करणेव्युट्, ङीप् निपातनात् ङीपो हुस्वः। तन्त्रशलाका,
जुलाहोका एक सौजार, ढरकी, नाल।

प्रवाणी ( सं ० स्त्री० ) प्र-वे ल्युट् ङीप् । तन्त्रशलाका, नाल, ढरकी ।

प्रवात (सं ० ति०) प्रकर्षण वाति प्र-वा-शतः। १ प्रकृष्ट गतियुक्त, तेज चलनेवाला । २ हवासे हिलता हुआ, भोंके खाता हुआ । (पु०) ३ प्रवल वायु, तेज हवा। ४ सुखसेव्य वातयुक्त देशादि, वह स्थान जहां खूद हवा हो। - ५ प्रवण, ढाल, उतार।

प्रवातसार ( सं ॰ पु॰ ) बुद्ध ।

प्रधानेज ( सं ॰ ति ॰ ) प्रवाते जायते जन-उ, अलुक्स ॰। निम्नप्रदेशमें होनेवाला ।

प्रवाद ( सं ॰ पु॰ ) प्रकृष्टी वादः प्र-वद-घञ् वा । १ जन॰ रव, जनश्रुति । २ परस्परं वाष्यं, वातचीत । ३ अपवादं, फूठी वदनामी । ४ जनसमाजमें प्रसिद्ध वाष्यः ५ पर-स्परं कथोपकथन ।

प्रशादक ( सं ॰ लि॰ ) प्रकृष्टी दादकः प्रादिस॰। प्रकृष्ट रूपसे वादक, वादकारी।

पूवादिन् ( सं ० त्नि० ) प्र-वद् ताच्छोल्ये णिनि । परस्पर कथन कारक ।

पूजाद्य (सं० ति० ) प्र-चद-ण्यत् । १ कथनयोग्य, कहने लायक । २ घोषणाई, पुकाशित करने योग्य ।

पुवापयितः (सं ० ति०) पु-वप-णिच्-तृण् । रोपयिता, रोपनेवाला ।

पूचापिन् (सं० ति०) पु-चप-णिनि । त्रपनकारी, बोने-वाला।

पूवाष्य ( सं ॰ क्की॰ ) क्षिप्रता, तेजी ।

प्रवार (सं ॰ पु॰ ) प्र-वृणोत्यनेनेति प्र-वृ-करणे घञ् । १ प्रवर । २ वस्त्र, आञ्छादन । ३ उत्तरीय वस्त्र, चादर या दुपद्वा । प्रवारण (सं ० हो०) प्र-वृ-णिच्-्स्युट्। १ काम्यदान, वह दान जो किसी कामनासे किया जाय। २ नियेध। ३ वर्षा सतु वीतने पर होनेवाला वीद्धींका एक उत्सव। प्रवार्थ (सं ० ति०) प्र-वृ-ण्यत्। सन्तीपयोग्य, तृप्ति लायक।

प्रवाल (सं o पुo क्लीo) प्रवलतीति प्र-यल-प्राणने ( व्यक्ति-तिकक्षन्तेभ्यो ण। पा श्रार्थिशः चा प्र-चल णिच्-अच्। १ रक्तवर्णं वर्त्त्लाकार रत्नविशेष, मूंगा । पर्याय—विद्रुम, अङ्गारकमणि, अम्मोधिवल्लम, भौमरत्न, रक्ताङ्ग, रक्ताकार, लतामणि।

इस प्रवालका चलित नाम मूंगा है। इसके अधि-प्रावी देवता मङ्गल हैं। ज्योतियके मतानुसार मङ्गल-प्रहके विरुद्ध होनेसे यदि प्रवालदान और प्रवाल धारण किया जाय, तो शुभ होता है। मङ्गलप्रहके चिरुद्ध होनेसे यदि शरीरमें फोड़े आदि हो जांय तो प्रवालदान, धारण और घिस कर प्रतिदिन भोजन करनेसे विशेष उपकार होता है।

जिन सद प्रवालोंका वर्ण, शशकके रक्तके जैसा होता है, वही प्रवाल प्रथम और प्रधान है। जिसका वर्ण गुंजा सिन्दूर वा दाड़िज्यपुष्पके जैसा लाल होता है, वह द्वितीय श्रेणीका प्रवाल है। जो ढाक वा पाटलीपुष्पके जैसा होता है, वही तृतीय श्रेणीका विद्रुम है और जो प्रवाल कोकनदके जैसा वर्ण धारण करता है, वह सबसे निक्षष्ट प्रवाल माना गया है।

प्रसन्नता अर्थात् परिकार कान्तियुक्त, कोमल अर्थात् सुखवेध्य, स्निग्ध वा देखनेमें घृत तैलादिके जैसा और सुराग अर्थात् । नोज वर्णिविशिष्ट विद्रुम ही सर्वोत्कृष्ट है। इसे धारण करनेसे धनधान्यादिकी वृद्धि होती और विपमय जाता रहता है। अन्यान्य रह्नोंकी तरह प्रवालके भी चार वर्ण निर्द्धारित हुए हैं। पूर्वोक्त चार श्रेणीके प्रवाल भी ब्राह्मणादि चार जातिके तथा विभिन्न गुणशाली माने गये हैं। सुराग, सुस्निग्ध, सुखवेध्य, वहु-कालस्थायी, लावण्य और सुन्दर वर्ण ही प्रवालका पृथान गुण है। ऐसे प्रवालके धारणसे धनधान्यकी वृद्धि होती है। हिमालयप्रदेशमें एक प्रकारका लाल प्रवाल मिलता है। राजनिक एटमें लिखा

है, कि विशुद्ध अर्थात् श्यामिकादि दोपरिहत, दृढ़, धन, मुगोल, स्निन्ध, सर्गाङ्गसुन्दर और सुन्दर वर्णविशिष्ट, समान, वजनमें भारी और शिराशून्य प्रवालघारणसे शुभफल प्राप्त होता है। विवर्ण और खर वा खसखस ये दो प्रवालके प्रधान दोप हैं। पतन्त्रित्र रेखा आदि और भी इसके अनेक दोप वतलाये गये हैं। रेखायुक्त प्रवालका धारण करनेसे यश और लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। आवत्त रहनेसे वंशनाश होता है। पहलदोप नाना रोगोंके उत्पादक, विन्दु धनविनाशक, वासदोप भयोत्पादक और नीलिकादोप मृत्युकारक है। अलावा इसके राजनिर्धरकार और भी कहते हैं, कि गौरवर्ण, रंग तथा जलभावापन्न, वक्ष, स्क्ष्मकोटर अर्थात् छिद्रप्राय चिह्नयुक्त, हक्ष, कृष्णवर्ण, हल्का और खेतविन्दुयुक्त प्रवाल अशुभ-जनक हैं।

शुकाचार्यका कहना है, कि मुक्ता और प्रवांल कभी कभी जीर्णताको प्राप्त होता है। शुक्रनीतिके मतसे १ तोला उत्कृष्ट प्रवाल आध तोले सोनेके समान है, किन्तु युक्तिकत्यतरुके मतसे—"मूद्यं शुद्धप्रवालस्य रीव्यद्विगुण-मुच्यते।"—निदोंष और परीक्षित प्रवाल चांदीसे दूना मूत्यवान है अर्था १ दो तोले शुद्ध चांदीका जो मृत्य होगा, १ तोले प्रवालका भी वहीं मूल्य है।

वहुत पहलेसे ही पृथ्वीके सभी जनपदोंसे प्रवाल रत्नका अलङ्कारक्षमें व्यवहार होता आ रहा है। थिउ-फाटसने प्रवालका विशेष उल्लेख किया है। प्राचीन गलजाति भी प्रवालका अलङ्कार पहना करती थी। वर्त्त-मान कालमें अलङ्कारके लिये जो सब प्रवाल व्यवहृत होते हैं, वें भूमध्य और लोहितसागरसे निकाले जाते हैं। यह मणिरत भारतवासी अङ्गमें धारण करते हैं। भारतवाक्षे अधिवासी मात ही पलाकाटीकी माला पहनते हैं। आज भी गुक्तप्रदेशवासी और सन्थाल परगनेकी कोल भील आदि आदि जातियोंमें इसका विशेष आदर देखा जाता है। ज्योतिःशालमें लिखा है, कि यह रत्न मङ्गल-प्रहका अतिप्रिय है। इसे धारण करनेसे सब प्रकारके

# यहां पर मुवर्ण शब्दमे तत्काल प्रचलित ८० रत्ती समझा जाता है। ''प्रवाल' तोलकमित' स्वर्णाई' मूल्यमहैतिः"

( गुक्रनीति )

Vol. XIV. 160

पाप जाते रहते हैं तथा अलक्सीकी दृष्टि नहीं रहती। इसीसे इसका दूसरा नाम भौमरत रखा गया है। वैद्यक्त-शाख़के मतसे विद्रुमका साधारण गुण सारक, कपाय, स्वादु और शीतल है। राजनिर्धएटकारके मतसे प्रवालका गुण—मधुर, अमुरसयुक्त, कपित्तादि दोषनाशक, बलकारी और कान्तिप्रद। यदि खियां इसे धारण करे, तो विशेष मङ्गललाभ होता है। इससे नाना प्रकारकी औषध भी प्रस्तुत होती हैं। राजवल्लभके मतसे इसका गुण—सारक, शीतवीर्थ, कपाय, खादुपाक, विमकारक, और चक्षुका हितजनक। पक्ते केलेमें पलाखएड भर कर उसका सेवन करनेसे रक्तदोषजन्य गालक्षत (स्फोट-कादि) आरोग्य होता है। शुक्रनीतिमें इसे खल्यरत वतलाया है, भीचे गे।मेदिवद् भे।

गरुड्युराणमें छिखा है, कि प्रवाल सनीसक, देवक और रोमक आदि स्थानोंमें उत्पन्न होता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी प्रवाल पाये जाते हैं, पर वे उतने उत्क्रप्ट नहीं होते । प्रवालमणिके उत्पत्ति-सम्बन्धमें लिखा है, कि श्वेत-समुद्रके मध्य विद्र मा नामक एक प्रकारकी लता उगती है। उस लतासे वज्र-सद्भग गुणविशिष्ट अति दुर्लभ विद्वमरत्न पाया जाता है। रह्मतत्त्वविदोंका कहना है, कि पत्थरकी तरह कठिन होना इसका स्वाभाविक गुण नहीं है । यत्नपूर्वक जलके साथ अग्निमें सिद्ध करनेसे वह पत्थरके समान कड़ा हो जाता है, नचेत् प्रथमावस्थामें यह घनीभूत मांसनिर्यास-की तरह दिखाई देता है। शुक्रनीतिमें लिखा है, कि यह विद्र मरत्न लौहशालका द्वारा विद्र किथा जा सकता है। इसकी वर्णपरीक्षाके सम्बन्धमें उक्त प्रन्थकारने कहा है—"बंधीतरक्तवाक् भामप्रियं विद्युममुत्तमं।" अल्य पोत-मिश्रित रक्तकान्ति विद्रुम हो उत्तम है और वही सर्वोका प्रिय है । गरुड़पुराणमें प्रवालको पाप और अलक्मी-नाशक वतलाया है।

२ किसलय, कोंपल, कोमल पत्ता । ३ वीणाद्ग्ङ, सितारा या तॅंब्र्रेकी लकड़ी।

प्रवालकीट—खनामप्रसिद्ध समुद्रज क्षुद्राकार कीटयोनि-विशेष (Actinozoa)। जीवतत्त्वविदोंने इन्हें Coeletenrata श्रेणीभुक्त किया है। पूरुभुज शब्दमें जो सव Polypes नामक कीटजातिका उल्लेख किया गया है,

थे उसीके अन्यतम हैं। देहवक्लीनलाकार, चोपक नल के जैंसा और शीर्षदेश चिप्टा है। उस चिपटेके मस्तक भागमें वहुत वारोक तथा गोलाकार रोंगटे होते हैं। मस्तकभागके मध्यस्थलमें मुंह रहता है। हां करनेले उदरमाग वाहर निकल आता है । पाकस्थलीके चारी ओर छोटे छोटे गह्वर होते हैं। वे गह्वर फिर लियत-भावमें विभक्त हैं। इस प्रकार इस क्ष्रृद्र कीट जातिके शरीरमें असंख्य गर्त रहते हैं। इसके वहिर्यागका शारी-रिक आच्छादन दो है, The ectoderm and the endoderm । उन सव गहरोंके मुखमें पुष्पाकृति डिम्बकोप (Ovaria) रहता है। उस पुंष्पस्थानके उपर्युपरि प्रस्फुटनसे द्वितोय जीवकी उत्पत्ति हुआ करती है। इस प्रकार समुद्रगर्भके एक एक स्थानमें भिन्न भिन्न जातिके असंख्य प्रवाल उत्पन्न होते हैं। पूरुभुजकी तरह ये भी पृथक् पृथक् नहीं रहते, एक दूसरेमें सटे रहते हैं। जो सव प्रवाल एक दूसरेसे सट कर रहते हैं, उनको आकृति पक-सी है। Ctenophora श्रेणीको छोड कर अपर Actinozoa जातिके स्नायुमण्डली अथवा गर्भकोप नहीं है। इनके शरीरकी दोनों वेपनी मांसल होने पर भी उनमें खड़ीके समान चूर्णपदार्थ सञ्चित हुआ करता है। धीरे धीरे वही पदार्थ अस्थिक समान कठिन हो कर शम्वकादिके खोलकी तरह अन्तर वा वहिर्मागका आवरणखरूप हो जाता है। खड़ीकी तरह आवरणयुक्त होनेके कारण प्रवालका अङ्गरेजी नाम Coral रखा गया है। विज्ञानविदों ने प्रवालकीटको तीन भागों में विभक्त किया है-१ कठिन आवरणयुक्त खतन्त्रकीट, २ वाह्या-वरणयुक्त जीव और ३ अन्तरावरणयुक्त जीव । वाणि-ज्यार्थं जो सव प्रवाल इकट्टे किये जाते हैं, वे प्रायः शेषोक्त दो श्रे णियोंके अन्तर्गत हैं। समुद्रगर्भमें जो सव प्रवालमिश्डित पर्वत ( coral reef ) वा द्वीपमाला (coral island) निकले हैं, उनके उत्पत्ति-निर्णयमें एकमात यही कहा जा सकता है, कि अभ्यन्तरमें आव-रणात्मक कीटके मांसयुक्त स्थानमें पुनः पुनः पुष्पप्रस्फुः टनसे द्वितीय जीवकी अवतारणा और उस आवरणात्मक जीवसङ्घको दूढ़ता ही ऐसे खड़ीके समान प्रवाल-पर्वत-की उत्पत्तिका कारण है।

जीवतत्त्वविद्रोंने Actinozoa श्रेणोकी Zoantharia, Alcyonaria, Rugosa और Ctenophora इन्हों चार भागों में विभक्त किया है। पेलियोजिक ( palaeozoic) पर्वतमालाके मध्य आज भी Rugosa जातीय प्रवालका प्रस्तरीभृत कङ्गाल देखनेमें भाता है। तैरनेवाले Ctenophora के शरीरमें खड़ीके समान कठिनावरण (calcarious skeleton) उत्पन्न नहीं होता । भारतवर्षमें जो सब प्रवाल व्यवहृत होते हैं वे Aleyonaria और Zoantharia-से उत्पन्न हैं। शेपोक्त दोनों ही जातिका गात मांसल है। Zoantharia श्रेणोमें भी दो स्वतन्त भाग है—Z. Sclerodermata और Z Sclerobasica । इनकी देहकी अन्तर्वेष्टनी ( Endoderm )-से कार्यनेट आव लाइम नामक एक प्रकारका पदार्थ निकलता है। यथार्थमें इस जातिके जीवींका अभ्यन्तरभाग कठिन होने पर भी वहिर्भागमें मांस रहनेके कारण वह वहुत कोमळ होता है। इस मांसके शरीरमें प्रस्फुटित होनेसे वहतसे खतन्त कीट अपनी माताके शरीरमें संयुक्त हो जाते हैं जिससे अनेक जीवोंका समावेश हुआ करता है। इसके शरीरसे अकसर चुणैवत् पदार्थं निकला करता है। पीछे वह पदार्थ भापसमें संलग्न हो कर समृद्र-गर्भके मध्य पर्वताकारमें परिणत हो जाता है। Sclebrobasica और Meyonaria जातिके कीटसङ्घकी हरा-न्तर प्राप्तिसे अलङ्कार-व्यवहार्यं रक्तवणं प्रवाल उत्पन्न होते हैं। भारत-महासागरमें विभिन्न श्रे णीके प्रवाखसे कुछ पर्वतश्रङ्गोंकी उत्पत्ति देशी जाती है। लाशाद्वीप, मालद्रीप और निकीवर द्वीपपुत्र प्रवालमिएडत हैं। पारस्य उपसागर और छोहितसागरके सुगभीर तछमें प्रचाळ पाया जाता है। सिन्धुप्रदेशसे छे कर मलवार उपकुल और तिन्नेवेली तकके प्रदेशमें अनेक प्रवालोंकी हिंहुयां देखी जाती हैं। ये सव हिंहुयां मकान वनाते समय पत्थर वा चूनेके रूपमें व्यवद्धत होती हैं।

वैद्यानिकोंने परीक्षा करके यह स्थिर किया है, कि विधुवरेखाके दोनों वगलमें स्थित प्रायः ६ सी कोस परि-भित स्थानको प्रवालवन्ध (Coral zone) कहते हैं। मोरे साहव 'Mr. ). Murray)-ने अटलाएटक और प्रशान्त महासागरमें प्रवाल देखा था। वही सब प्रवाल मौसुम वायु द्वारा स्रोतमें परिचालित हो कर विभिन्न स्थानोंमें बले गये हैं। जिस प्रवालसे अलङ्कारादि प्रस्तुत होते हैं, यह समुद्रके वहुंत नीचे २०से १२० हाथके मध्य पाया जाता है। थोड़ी सी भी गर्मी लगनेसे ये भर जाते हैं। इसी कारण करुणामय जगदीश्वरने उन्हें अन्यकारतम सागरगर्भमें रहनेका स्थान बना दिया है।

प्रवास (सं॰ पु॰) प्रवसन्त्यस्मित्रिति प्र-चस ( इच्छ ) पा २।३।१२१) इति घम्। १ विदेश । २ अपना घर या देश छोड़ कर दूसरे देशमें रहना। यदि कोई व्यक्ति घर छोड़ कर वारह वर्ष तक विदेशमें रहे और उसकी यदि कोई खोज खबर न लगे, तो उसका प्रेतावधारण करना होता है अर्थात् उसकी मृत्यु निश्चय जान कर औदुर्ध्वदेहिक क्रियादि विधेय हैं । वारह वर्षके मध्य यदि फिसी तरहका प्रमाणजनक मिल जाय, तो उसका प्रेतापधारण नहीं होगा। प्रवासके दिनसे वारह वर्षके वाद अर्थात् तेरहवें वर्षके आरम्ममें प्रवासीका प्रेतावधारण विधेय है। जिस मास तथा जिस दिनमें वह घरसे निकला था, उसी मास तथा उसी दिनमें प्रतिक्रिया कर्राव्य है । मृत्यु होने पर जो सब कियाएं की जग्ती हैं, वही कियाएं इसतें भी करनी होती हैं। केवल इतना ही प्रभेद है, कि इसमें उसको कुशपुत्तलिका करके चान्द्रायण और पीछे कुश-पुत्तलिकाका दाह करना पडता है। विदेशगत व्यक्तिका प्रथम गमन दिन यदि मालूम न रहे, तो उस कृष्णाष्टमी वा अमावस्यांके दिन प्रेतकार्य करना होगा। दिन और मास दोनों ही मालूम न रहने पर आपाढ-मासको अमावस्थाके दिन प्रेतहृत्य किया जा सकता है। मदनरत्नमें लिखा है, कि पितृविपयमें प्रनद्गह वर्षे प्रवासके वाद में तावधारण होगा । वारह वर्षमें जो कहा गया है, सो पितृ भिन्न और सभी व्यक्तियोंने प्रति ।

श्राकारिकामें लिखा है, कि पूर्ण वयस्क व्यक्ति यदि प्रवासी हो और २० वर्ष तक यदि उसका कोई सम्पाद न मिले, तो उसका प्रतावधारण विधेय है। इसी प्रकार मध्यम वयस्क व्यक्तियोंका पन्द्र वर्ष और वृद्ध व्यक्ति-गीका वारह वर्ष के वाद श्राह्मकर्म करनेको लिखा है। "गतस्य न भवेत् वार्त्ता यावत् द्वाद्श्वार्षिकी । प्रे तावधारणं तस्य कत्तं व्यं सुतवान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्पातस्तन्मासि तददः क्रिया । दिनाज्ञाने सुदृस्तस्य आपादस्याथ वा सुदृः ॥ निर्णयसिन्धुधृत वृद्धमनुः—

प्रोषितस्य तथा कालो मतश्चेदद्वादशाब्दिकः ।
प्राप्ते लयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत्॥
वृद्धस्पति—

यस्य न श्रूयते वार्त्ता यावद्दं द्वादशवत्सरान् । कुशपुतकदाहेन तस्य स्यादवधारणा ॥ भविष्यके मतसे :

पितिर प्रोपिते यस्य न वार्तां नैव चागमः । उद्धं पञ्चदशाद्वर्पात् कृत्वा तत् प्रतिरूपकम् ॥ कुर्य्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादोन्येव सर्वाणि प्रतिकर्माणि कारयेत् ।" द्वादशान्द्रप्रतीक्षा पितृभिन्नविपयेति मद्नरत्ने उक्तं, ग्रह्मकारिकायान्तु—-

तस्य पूर्णवयस्कस्य विंशत्यव्दोर्द्धतः क्रिया। द्वादशाद्वत्सरादूर्द्धमुत्तरे वयसि स्थिता॥" (तिथितत्व)

प्रवासी व्यक्तिको प्रवाससे लौट कर अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंकी पादवन्दना करनी चाहिये।

(कूर्वपु॰ सपवि॰ १३ अ०)

प्रवासन (सं॰ पु॰) १ देश या पुरसे वाहर निकालना, देश-निकाला। २ वध।

प्रवासित (सं० ति०) १ देशसे निकाला हुआ। २ हत, मारा हुआ।

प्रवासी ( सं० ति० ) विदेशमें निवास करनेवाला, परदेश-में रहनेवाला।

प्रवास्य ( सं॰ ति॰) प्र-वस् ण्यत् । प्रवासयोग्य, जो देश-से निकाले जाने योग्य हो।

प्रचाह (सं० पु०) प्र-वह-भावे वज्। १ प्रवृत्ति, भुकाव। २ जलस्रोत, पानीको गति। ३ व्यवहार, चलता हुआ काम। ४ प्रकृष्टाश्व, अच्छा वाहन या घोड़ा। ५ पुरीपादिका निर्गम, मलमूबत्याग। ६ धारा, वहता हुआ पानी। ७ कार्यका वरावर चला चलना, कौमका जारी रहना।

८ चळता हुआ क्रम, तार, सिलसिला। ६ प्रसार, विस्तार।

प्रवाहक (सं० पु०) प्रवहतीति प्र-वह-ण्वुल्। १ राक्षस। (ति०) २ प्ररूपवहनकर्त्ता, अच्छी तरह वहन करनेवाला। प्रवाहण (सं० पु०) १ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। २ ढोया जाना। ३ वहाया जाना। (ति०) प्रवाहयति प्र-वह-णिच्-ल्यु। ४ प्रवहणकारी, ढोनेवाला।

प्रवाहण जैवलि—पञ्चाल प्रदेशके प्रक राजा।

प्रवाहणी (सं० स्त्री०) मलद्वारमें सक्से ऊपरकी कुंडली जो मलको वाहर फेंकती है।

प्रवाहिका (सं० स्त्री०) प्रवहित मुहुमुंहुः प्रवर्तते इति प्र-चह-ण्वुल, टाप्, अत इत्वं। १ प्रहणी रोग। २ अती-सार, आमाशयरोग, इसका लक्षण—मन्द्भोजी व्यक्तिकी वायुके प्रवृद्ध होनेसे जव सिश्चत मल थोड़ा थोड़ा करके प्रवाहरूपमें अनेक वार निकलता है, तब प्रवाहिकारोगकी उत्पत्ति होती है। यह वातकृत होनेसे अतिशय शूल, षित्तकृत होनेसे पेट ज्वाला और कफज होनेसे कफके साथ मल निकलता है। अन्यान्य लक्षण और चिकित्सा अतीसार और ग्रहणीरोगकी तरह करनी होतो है।

विशेष विवरण प्रदणी और अतीसार शब्दमें देखो। अतीसाररोगमें वायु कर्नुक रक्त और पुरीष स्नुत होनेसे जब फेनकी तरह दस्त उतरता है, तब उसे प्रवा-हिका कहते हैं।

प्रवाहित (सं ० ति ०) १ जो वहाया गया हो । २ जो ढोया गया हो ।

प्रवाहिन् (सं ० ति०) प्र-वह-णिनि । १ प्रदाहयुत, वहने-वाला । २ तरल, द्रव । ३ वहानेवाला ।

प्रवाही (सं ॰ स्त्री॰) प्रोह्यते इति प्र-वह-घष्ट्, गौरादित्वात् ङीप् । वालुका, वालू ।

प्रवाहु (सं॰ पु॰) १ कूर्परका ऊद्धर्वभाग। २ प्रवाहिका। प्रवाहोत्था (सं॰ ति॰) वालुका, वालु।

प्रवाह्य (सं॰ ति॰) प्रवाहें भवः यत् । प्रवाहभव, स्रोतोभव । प्रविख्याति (सं॰ स्त्री॰) प्र-वि-ख्या-किन् । अति प्रसिद्धि । पर्याय-विश्राव ।

प्रविग्रह (सं ॰ पु॰) सन्धिमङ्ग ।

प्रविचय (सं॰ पु॰) १ अनुसन्धान, खोज । २ परीक्षा ।

प्रविचार (सं ॰ पु॰) उत्तमरूपसे विचार, सुविचार । प्रविचिन्तक (सं ॰ ति॰) भविष्यत्दर्शी, जो भविष्यत् सोच कर काम करता हो ।

प्रविचेतन (सं ० क्ली०) प्रकृष्टरूपसे चेतन, झान :

प्रविजय ( सं ॰ पु॰ ) जनपदमेद, उस देशके लोग ।

प्रविद् (स'० स्त्री०) प्र-विद्-किए । प्रवेदन ।

प्रविदार (सं ॰ पु॰) पृ-वि-दू-घञ्। अवदारण, विदीर्ण होना।

प्रविदारण (सं ० क्वी ०) प्रविदारयन्त्यवेति प्र-वि-द्र-णच्, आधारे ल्युट्। १ युद्ध, लड़ाई। प्र-वि-द्व-णिच् भाषे ल्युट्। २ अवदारण, पूर्णस्त्रपसे विदारण। ३ आकीर्ण। (ति०) प्र-वि-द्व-णिच्-कत्तंरि ल्युट्। ४ प्रविदारक, विदा-रण करनेवाला।

प्रविपल (सं o पु o) कालपरिमाणभेद, विपलके ६० भाग-का एक भाग।

प्रविभाग (सं० पु०) प्र-वि-भज्ञ-वञ् । १ प्रकृष्टरूपसे विभाग । २ अंश ।

प्रविर (सं • पु॰) पीतकाष्ट्र, एक प्रकारका चन्दन ।

प्रविरः (सं ० ति ०) १ अत्यव्य, वहुत थोड़ा । २ अति दुःया य, वहुत कठिन ।

प्रविलिम्बिन् (सं० ति०) प्र-वि-लम्ब-णिनि । विलम्बयुक्त ।

प्रविलय (सं ॰ पु॰) प्र-वि-ली-घञ् । १ सम्पूर्णकपसे ध्वंस २ विलकुल गायव हो जाना ।

प्रविल्लेन ( सं॰ पु॰) पुराणोक्त अन्ध्रवंशीय एक राजाका नाम ।

प्रविलापिन् (सं ० ति०) प्र-वि-लप-णिनि । १ विलापकारी । १ दुःख ।

प्रविवाद (स'० पु०) प्रकृष्टो विवादः प्रादिसः । प्रकृष्टक्षपसे विवाद, तर्कवितर्कं करना ।

प्रविविक्षु (सं ० ति ०) प्र-विश-सन् उ । प्रवेश करनेमें इच्छुक ।

प्रविश्लेष (सं o पु॰ ) प्रकृष्टो विश्लेष यस्य । प्रकृष्ट विश्लेष । पर्याय—विश्वर ।

प्रविपा (सं ० स्त्रीं ०) प्रहतं विषमनया । अतिविषा, अतीस । प्रविष्ट (सं ० वि०) प्र-विश-कत्तीरे क । १ प्रवेशविशिष्ट, पैठा हुआ, घुसा हुआ। स्त्रियां टाप्। २ पैप्पलादि कौशिककी माता। (हरिवंश १९१ अ०)

Vol. XIV. 161

प्रविष्टक (सं॰ क्षी॰) १ रङ्गमञ्चमें प्रवेश । २ गृहमें प्रवेशकारी, घरमें घुसनेवाला ।

प्रविस्तर (सं ॰ पु॰) प्र-वि-स्तु-अव । विस्तार, चौड़ाई। प्रविस्तार (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टकपते विस्तृति, काफी चोड़ाई। प्रवीण (सं ॰ ति॰) प्रकृष्टा संसाधिता वीणाऽस्य, वा प्रवीणयित वीणया गायकस्य नैपुण्यसिद्धे स्तत्तुल्य नैपुण्यति वीणया गायकस्य नैपुण्यसिद्धे स्तत्तुल्य नैपुण्यति वीणया गायकस्य नैपुण्यसिद्धे स्तत्तुल्य नैपुण्यति वीणयात्वं। १ निपुण्, होशियार। पर्याय निपुण, अभिन्न, विन्न, निण्णात्, शिक्षित, वैज्ञानिक, इतमुख, इती, कुशल। २ अच्छा गाने वज्ञाने या वोलनेवाला। (पु॰) २ भौत्य मनुके एक पुतका नाम।

प्रवीण कविराय—हिन्दीके एक कवि । इनका जन्म संवत् १६६२में हुआ था । ये नीति और शान्तरसके अच्छे कवि थे । इजारामें इनके वनाये कविन्तांगाये जाते हैं ।

प्रवीण ठाकुरप्रसाद—एक कवि । संवत् १६२४में इन्होंने जन्म प्रहण किया था। शाहगंज निकटवत्तीं पांलेया गांव-में इनका घर था। ये महाराज मानसिंहके दरवारमें रहते थे। इनको कविता सुन्दर होतो थी।

प्रवीणता (स'० स्त्री०) निपुणता, कुशलता, चतुराई।
प्रवीणताय पातुरि—वुन्देळखएड ओरळाकी रहनेवाली एक
किव । इसकी उत्पत्ति सम्वत् १६४०में हुई थी । केशवदासजीने किविप्रिया नामक प्रन्थमें इसकी वड़ी प्रशंसा
की है। जिससे साफ फलकता है, कि यह एक उत्तम
किव थी। यह राजा इन्द्रजित्के द्रवारमें रहती थी।
राजा इन्द्रजित् किव थे अतएव इनमें प्रेम हो गया था।
अकवर वादशाहने इसे अपने द्रवारमे वुळवाया था;
किन्दु राजा इन्द्रजित्ने इसे जाने नहीं दिया। छेकिन
यवनराजने जव अपनी त्योरी वद्छी तो प्रवीणरायने जाना
ही अच्छा समक्ता, व्यर्थ एक प्रवळ वादशाहसे विरोध
वढ़ाना अच्छा नहीं। वहां जा वादशाहको अच्छी २
किवतासे प्रसन्न कर पुनः राजा इन्द्रजित्के यहां छोट
आई।

प्रवीर (सं ० ति ०) प्ररुष्टः वीरः । १ सुमद, मारी योदा, बहादुर । (पु ०) २ भीत्यमनुके एक पुत । इनका दूसरा नाम प्रवीण भी है । ३ पुरुषंशीय प्रचिन्चत्के पुत । ४ उपदानवी-गर्भजात धर्मनेतके एक पुत । ५ चएडाल पुरुषविशेष । ६ माहिष्मतीके राजा नीलध्यजके पुत जो

ज्वालाके गभसे उत्पन्नधे। महाभारतमें इस प्रवीर अथवा ज्वालाका नाम कहीं भी नहीं आया है। परन्तु इनकी कथा जैमिनी-भारतमें इस प्रकार है-जब युधिप्रिर को अभ्यमेधका घोड़ा माहिष्मतीमें पहुंचा, तव राजकुमार प्रवीर रमणीय प्रमीद्काननमें बहुत-सी ख्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उनकी प्र यसी मदनमञ्जरी भी वहीं थी। सुन्दर घोड़े को देख कर मदनमञ्जरीने कहा, 'नाथ! वह वड़ा ही विचित्र घोड़ा है, उसे पकड़ कर ला दें और उसके ललाटमें जो पत वंधा है उसे पढ़ कर मुक्ते सुनाने-की कृपा करें।' प्रेयसीके कहनेसे राजकुमार घोड़ेको पकड़ लाये और पत्न खोल कर प्रियतमाकी सुनाया। उस पत्नमें इस प्रकार लिखा था, 'राजा युधिप्रिरने अध्व-मेघके लिये घोड़ा छोड़ा है। अर्जु न इसको रक्षामें नियुक्त हैं। जिसमें सामर्थ्य हो, वह इस घोड़ को पकड़े।' प्रवीरने अडु नको तृणके समान जान कर घोड़े को बांध रखा और युद्धके लिये तैयार हो गये।

इघर अर्जुंन, वृषकेतु, अनुशाल्व, पृथुम्न और यौव-नाश्वके साथ वहां पहुंच गये। पहले वृषकेतुके साथ लडाई छिड़ी जिसमें वृषकेतु पराजित हुए। परन्तु अनुशाल्वके सामने प्रवीर ठहर न सके, अचेत हो पड़ रहे।

इसी समय महावीर नीलध्वजने आ कर अर्जु न पर उनकी कन्या स्वाहाके साथ सूर्यका चढ़ाई कर दी। विवाह हुआ था। सूर्य इतने दिनों तक घर-जमाई थे। श्वश्रारको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने भी अर्जु नकी वहुत-सी सेनाको दग्ध कर डाला। आखिर उन्होंने अपनी वर्त्तमान अवस्थाका स्मरण करके अपनेको धिकारा। उनके परामर्शसे नीलध्वजने भर्जु नका घोड़ा छौटा देना चाहा । किन्तु वीररमणी ज्वाला अपने पतिको धिका-रती हुई वोली, 'आप वीर हैं, क्षतियकुलमें उत्पन्न हुए हैं, तव फिर क्यों घोड़े को छौटा देना चाहते हैं !' उन्होंने अपने पुतको भी रणस्थलमें भेज दिया। अव पत्नीकी उत्तेजनासे नीलध्वज पुनः युद्ध करनेको वाध्य हुए। क्रमशः उनके पुत्र भाई सबके सब युद्धक्षेत्रमें खेत रहे। आप भी एक दिन तक रणस्थलमें बेहोश थे।

दूसरे दिन सबेरे नीलध्वजने ज्वालाको बड़ी निन्दा

की और अर्जु नको घोड़े लौटा कर उनसे मेल कर लिया।

पुत युद्धमें मारे गये, पितने भी उनका पित्याग कर दिया, इतने पर भी वीररमणीका हृदय शान्त न हुआ। वे उसी समय मैकेको चलो गई और अपने माई उल्मूक-को अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उसारने लगी। उल्मूक वैसे पात थे नहीं, उन्होंने वहनकी पक भी वात न सुनी और उन्हें अपने घरसे निकल जानेको कहा।

इस प्रकार भाईसे तिरस्कृत ज्वाला नाय पर चढ़ कर गङ्गा पार कर रही थी। गङ्गादेवीका जल उनके पैरमें छू गया जिससे उन्होंने अपनेको पापप्रस्त समका। इस पर गङ्गा सहसा आविभू त हुई और इसका कारण पूछा। ज्वालाने उन्हें वहुत फटकारा, कि तुमने अपने सात पुलोंको हुवा दिया और आठवें पुत भीषमको यह गति हुई, कि अर्जु नने शिखएडीको सामने रख कर उसे मार डाला। इस पर गङ्गादेवीने कुद्ध हो कर शाप दिया, कि आजसे छह महीनेके भीतर अर्जु नका सिर कट कर गिर पड़ेगा। यह सुन कर उवाला प्रसन्न हो आगमें कुद पड़ी और अर्जु नके वधकी इच्छासे तीक्ष्णवाण हो कर वस्नुवाहनके त्णीरमें जा विराजी। (जेमिनिभारत) ७ उत्तम, विदया।

प्रवीरवर ( सं॰ पु॰ ) असुरमेद । प्रवीरवाहु ( सं॰ पु॰ ) राक्षसमेद । प्रवृज्य ( सं॰ ति॰ ) प्रवर्ग्य । प्रवृज्य ( सं॰ क्षी॰ ) प्रवर्जन, मनाही ।

प्रवृञ्जनीय (सं० ति०) प्र-वृञ्ज-कर्मणि-अनीयर् । १ प्रवर्ग्य । २ प्रवर्गयागके व्यवहारयोग्य ।

प्रवृत् ( सं॰ क्की॰ ) प्रवृणोति भूतानि प्र-वृ-क्षिप् । अन्न, अनाज ।

प्रवृत्होम ( सं॰ पु॰ ) होमभेद, एक प्रकारका होम । प्रवृताहुति ( सं॰ स्त्री॰ ) ऋत्विक् नियोगकालमें अनुष्टेय होमभेद ।

प्रवृत्त (सं० ति०) प्रवर्त्तते स्मेति प्र-नत्-कः १ प्रवृत्ति-विशिष्ट, किसी वातकी ओर भुका हुआ। २ आरम्म, ठानना। ३ प्रकृष्ट वर्रानविशिष्ट। ४ रत । ५ उत्पन्न ।

1. 1. X 3

६ चिलित । ७ नियुक्त । ८ (क्को॰ ) प्रवृत्तिलक्षण घर्म-विशेष । ६ प्रवृत्ति ।

प्रवृत्तक (सं० क्की०) वैतालीय प्रवरणीय मातावृत्तमेद । प्रवृत्तचक (सं० पु०) प्रवृत्तं स्वाज्ञानुसारेण चक्रं राष्ट्रादि यस्य। राष्ट्रादिमें अप्रतिहताज्ञ।

प्रवृत्ति (सं क्षी ) प्रवर्त्तते इति प्र-वृत-कित्। १ प्रवाह, वहाव। २ वार्त्ता, वृत्तान्तः। प्रवर्त्तं निर्मित प्र-वृत कित्। ३ प्रवर्त्तं ने, कामका चळना। प्रवर्त्तते व्याप्नोति प्रसिद्धस्वेन प्र-वृत्त-किव्। १ यहादिव्यापारः। ५ अवन्ति-प्रभृति देशः। ६ हस्तिमद्, हाधीका मदः। ७ मनका किसी विषयकी और छगाव, भुकाव। ८ उत्पत्ति, आरस्म। ६ सांसारिक विषयोंका प्रहण, दुनियांके धंधोंमें छोन होना। १० नैयायिकोंके मतसे यलविशेषः। इसका कारण चिकीर्षा, इतिसाध्यताहान, इष्टसाधनता-हान और उपादान प्रत्यक्ष है। । मास प्रंतः।

इष्टसाधनताहान प्रवृत्तिका और द्विष्टसाधनता हान निवृत्तिका कारण है। परिश्रम करनेसे कप्ट वा दुःख होता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। दुःख स्वभावतः ही द्विष्ट-है अर्थात् द्वेषका विषय है । कोई भी दुःखको पसन्द नहीं करता, सभी उससे होंप करते हैं। अतएव दःख द्विष्ट है। परिश्रम दुःखजनक है। अतः यह द्विष्ट-साधन है। इससे ऐसा प्रतिपन्न हुआ, कि द्विष्ट-साधनताझान ही निवृत्तिका कारण है। अतएव परि-श्रमसे प्रवृत्ति न हो कर निवृत्ति ही हो सकती। इस पर यह आशङ्का हो सकती है, कि द्विष्टसाधनताहान भी जिस प्रकार निवृत्तिका कारण है, इष्टसाधनताज्ञान भी उसी प्रकार प्रवृत्तिका कारण है। इष्ट-इच्छाका विषय अर्थात् जिसे पानेकी इच्छा होती है, उसका साधन है अर्थात् जिससे अभिल्पित वस्तु पाई जाती है, उसे इप्टसाधन कहते हैं। परिश्रम द्वारा अभिछषित वस्तु मिल सकती है, सुतरां परिश्रम इष्टसाधन है। क्योंकि, सुख और दुःबाभाव ही इच्छाका विषय हुआ करता है। परिश्रम द्वारा सुक्त और दुःकाभाव-सम्पन्न होता है, अतएव परि श्रमके द्विष्टसाधनता होनेके कारण जिस प्रकार उस विषयमें निवृत्ति हो सकती है, इष्टसाधनता होनेके कारण उसी प्रकार प्रवृत्ति भी ही सकती है। इसके

उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि प्रवृत्ति और निवृत्ति परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं। एक विषयमें · एक कालमें एक पुरुषकी परस्पर विरुद्ध प्रवृत्ति और निवृत्ति होना विलक्षुल असम्भव हैं। फेवल इप्साधनता-ज्ञान प्रवृत्तिका और ब्रिष्टसाधनताज्ञान निवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका ही विषय दुर्छम ही जाता है। कारण, ऐसा विषय नहीं, जो निरविच्छन्न सुख वा निरवच्छिम्न दुःख सम्पादन करे । समी विषय थोड़े वहुत सुखदुःखका साधन है। सुखसम्पादनमें प्रवृत्ति प्राणि-मातको ही स्वासाविक है। अभिलंषित शब्दादि विषयमें-इन्द्रियका सम्बन्ध होनेसे सुसकी उत्पत्ति हुआ करती है। अभिमत विषयमें इन्द्रियका सम्बन्ध इन्द्रियपरिचालना-सापेक्ष है। कई जगह अभिमत विषयके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध-सम्पादन चेष्टासापेक्ष है। निविष्टचित्तसे चिन्ता करनेसे सभी समभ सके ने, कि प्रत्येक सुखसाधनके साथ अन्ततः कुछ दुःख अपरिहार्यं रह गया है । निश्चेष्टमाव-में रह कर कभी भी विषय प्रहण नहीं किया जा सकता। अन्ततः शारीरिक शक्तियोंकी परिचालना आवश्यक है। इएसाधनता-ज्ञानमात प्रवृत्तिका और द्विष्टसाधनता-श्चानमात निवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्ति और निवृत्त एक प्रकारसे असम्भव हो जाती है। इसीसे आचार्योंने ऐसा सिद्धान्त किया है, कि इष्टसाधनताज्ञान प्रयूति-का कारण तो है, पर वलवदुद्विष्टसाधनताज्ञान उसका प्रतिवन्धक है। जिस विषयमें उत्कर वा अतिशय हे प होता है, उसका नाम वलवड्डिंग्ट है। मधु और विष-मिश्रित अन्न खानेमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती। मधु-मिश्रित थन्न सुखादु होता है। उसका मोजन इप्रसाधन होने पर भी विषमिश्रित अन्नका भोजन वलवडुद्विए-साधन है । क्योंकि विषमिश्रित अन्तमोजनसे मृत्यु हो सकती है, मृत्यु वलवद्दिए है। यही कारण है, कि मधुमिश्चित अन्न-भोजनमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती। इष्टसाधनताशानमात प्रवृत्तिके प्रति कारण होनेसे मधुविष-मिश्रित अन्नभोजनमें भी प्रवृत्ति न हो सकती । प्रन्तु एसा नहीं होता, इसी कारण वलवदुद्विप्रसाधनताज्ञान प्रवृत्तिका कारण होने पर भी वलवदुद्विष्टसाधनताज्ञान निवृत्तिके प्रतिवन्धनखक्तपमें अङ्गीकृत हुआ है । जिसे

विषयमें उत्कर वा अतिशय अभिलाष उत्पन्न होता है उसे वलवड्डिष्ट कहते हैं। वलवड्डिष्टसाधनताज्ञान निवृत्तिका प्रतिवन्धक नहीं होनेसे पाकादिमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती, वरन निवृत्ति होना हो सङ्गत है। कारण, पाक करनेमें कष्ट होता है, अतः पाककी द्विष्टसाधनता है। किन्तु पाकमें वलवदुद्विष्टसाधनता है, इस कारण पाक विषयमें निवृत्ति नहीं होती, वरन् प्रवृत्ति ही हुआ करती है। क्योंकि, पाक करके भोजन करनेसे जो तृप्ति वा सुख होता है वही वलवद्ददिष्ट है। इप्ट. और द्विप्रगत वल-वत्व समावतः व्यवस्थित् नहीं है। अवस्थामेद् और रुचिभेद्से यह विवेचित हुआ करता है। एक अवस्थामें जो वलवदुद्विए समभा जाता है, दूसरी अवस्थामें उसकी अन्यथा होती है। इससे यह प्रतिपन्न हुआ, कि वलवदुद्विष्ट-साधनताज्ञान नहीं होनेसे किसी विषयकी प्रवृत्ति नहीं होती । यह वलवदुद्धिप्रसाधनताज्ञान रुचि और अवस्थाके मेद्से विभिन्न प्रकारका हुआ करता है, जो एक व्यक्तिका अभिल्पित है वह दूसरेका अभिल्पित नहीं भी हो सकता है। इसीसे रुचि और अवस्थामेद्से इसे भिन्न भिन्न वतलाया गया है। कहनेका तात्पर्य यह, कि वल-वद्दद्विष्टसाधनताज्ञान होनेसे कार्यमें प्रवृत्ति और वल-बदुद्विए साधनताज्ञान होनेसे निवृत्ति होगी।

प्रहर्षि गौतमने प्रयुक्तिका लक्षण और विभाग करते हुए कहा है—"प्रवृक्तिकांगृबुद्धिश्चरीशरम्म इति" (गौतमञ्च० राश्व० १०) प्रयृक्तिहेतुत्यं प्रयक्तिमाशातारं हि रागाद्यः प्रवक्तियन्ति पुण्ये पापे वा' (वास्त्यायन) जगत्में प्राणिमात्रकों हो तीन प्रकारके कार्य कहने होते हैं। जब अन्य व्यक्तिकों कोई विषय जाननेकी इच्छा होती है, तब वाष्य प्रयोग करना होता है, वह वाष्य एक कार्य और जब तक यह कार्य कर्त्तव्य है या अकर्त्तव्य इत्यादिका निर्णय करना होता है, तब तक मानस्तिक चिन्ता और वस्तु-दर्शनादिकों भी आवश्यकता होती है। इस कारण मानस्तिक चिन्ता और वस्तु-दर्शनादिकों भी आवश्यकता होती है। इस कारण मानसिक चिन्ता और वस्तु-दर्शनादि भी कार्य है तथा किसीकों जब उत्पादन वा ग्रहण रक्षण आदिकों जकरत पड़ती है, तब शरीरके व्यापारकी अपेक्षा करता है। शरीरकों चालना नहीं होते। इस कारण शरीरका व्यापार भी सम्पादन नहीं होता। इस कारण शरीरका व्यापार भी

एक कार्य है। उक्त तीन कार्योंमेंसे जो कार्य करनेकी जव इच्छा होती है, तव आत्मामें एक प्रवृत्ति (यतः,) उत्पन्न होती है। उस प्रवृत्ति वा यत्नके होनेसे ही सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। जब तक वह प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं होती, तव तक कोई भो कार्य नहीं हो सकता है। वाक्यका उचारण करनेमें पहले आत्मामें यत होता है। पीछे उस यत द्वारा कण्ड और तालृ आदि स्थानींकी चालना होती है, अनन्तर वाष्य उद्यारित होता है। फिर मानसिक चिन्ता और वस्तुद्र्शनादि कार्य जव उत्पन्न होता है, तव जिस जिस विषयमें चिन्ता आदि कर्त्तथ है, उस विषयमें मनका अभिनिवेश और आत्माके साथ मनका संयोग हुआ करता है। वह अभिनिवेश या मनका संयोग आत्मामें नहीं होनेसे कभी भी दर्शनादि किया नहों हो सकतो। इस कारण मानसिक चिन्ता आदि भी प्रवृत्तिसाध्य है, इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् जो कोई कार्य क्यों न हो, आत्मामें यत्न नहीं होनेसे वह कार्य हो ही नहीं सकता है। उसी यहाका नाम प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति और यत्न एक ही पदार्थ है। महर्षि गौतंमने प्रवृत्तिको समभानेके लिये उक्त तीन कार्योंकी अनुकृति अर्थात् जनकरूपमें परिचय दें कर पूर्वोक्तरूपसे विभक्त किया है। सूत्रस्थ वाक्शब्द ही वाष्यका नाम है और वृद्धि शब्द मानसिक चिन्ताका वोधक तथा आरम्भ शब्द्से अनुकूछ अर्थात् वाषयानुकूळ और चिन्ता समभा जाता है आदिका अनुकूल तथा चेष्टानुकूल यही तोन प्रकारकी प्रवृत्ति हैं, ऐसा सूत्रके अर्थ से समभा जाता है। फिर सभी प्रवृत्ति दो प्रकारकी है, शुभक्तपा और अशुभक्तपा। हितकर कार्य करनेमें जो प्रवृत्ति होती है, उसे शुभक्षा और अहितकर कार्यमें जो प्रवृत्ति होती है, उसे भशुम-रूपा कहते हैं। (न्यायदश<sup>6</sup>न)

११ शब्दकी अर्थव।धनशक्तिमेद । वैसरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूत्तमा यही चार प्रकारकी शब्दप्रवृत्ति हैं। प्रवृत्तियम् (सं० पु०) प्रवृत्ति वृत्तान्तं जानावीति झा-क। चरविशेष। पर्याय—वार्त्तिक, वार्त्तायन। प्रवृत्तिनिमित्त (सं० हो०) अभिधेय, शक्यतावच्छेदक धर्म।

प्रवृत्तिविश्वान (सं० पु०) वाह्य पदार्थींसे प्राप्त शान । प्रवृद्ध (सं० ति०) प्रवद्ध ते स्मेति प्रनृथ-क । १ वृद्धियुक्त,

ख़ूव बढ़ा हुआ। पर्याय—एघिन, प्रोढ़। २ प्रसारित, खूव फैला हुआ। ३ प्रौढ़, ख़य पक्का। (पु॰) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक जिसे प्रस्त भी कहते हैं। इसमें तलवारकी नोंकसे शतुका शरीर छू सर जाता हैं। ५ अयोध्याके राजा रघुके एक पुता थे गुरुके ज़ापसे १२ वप<sup>°</sup>के लिये राक्षस हो गये थे। प्रवृद्धादि ( सं० क्ली० ) उत्तरपदके अन्तोदात्तता निमित्त पाणिनि-उक्त शब्दगणभेद । यथा---प्रवृद्ध, प्रयुत, अव-हित, अनवहित, खटाखढ़, कविशस्त । प्रचृद्धि (सं० स्त्री०) १ अतिशय पृद्धि । २ उन्नति । प्रवेक ( सं० ति० ) प्रविच्यते पृथक् क्रियते इति प्र-विच-कर्मणि घञ्। १ उत्तम, विद्या। २ प्रधान, मुख्य। प्रवेरा (सं० पु० ) प्रकृष्टो वेगः प्रादिस० । १ प्रवल वेग । (ति०) २ वेगविशिए। प्रवेगित (सं० ति०) प्रवेग-इतच् । प्रवेगयुक्त । प्रवेद ( सं० पु० ) यब, जौ । प्रवेण ( सं० प्र० ) एक प्रकारका वकरा । प्रवेणि (सं क्षो ) व्याप्नोतीति प्र-वेण-गती-इन् । १ कुथ, कथरी । २ वेणी, केशविन्यास । प्रवेणी (सं० स्त्री०) प्रवेणि-इदिकारादिति पाक्षिको-ङीप्। १ वेणी, केशविन्यास । २ गजपृष्ठस्थित विचित्र कम्बल, हाथीकी पीठ परका रंगविरंगा फूछ । ३ नदीविशेष, एक नदोका नाम । प्रवेता ( सं० पु० ) श्वेत, देखी । प्रवेतृ (सं० पु०) प्र-अज-तृन् , अजे-वा । सारथी, रथ-वान । प्रवेद ( सं॰ पु॰ ) प्र-विद्-घ्रम्, वा प्रकृष्टो वेदः प्रादिस॰। प्रकृष्ट्रहान, अच्छी समक्ष । प्रवेदरुत (सं० ति०) प्रवेद-रु-किप्। ज्ञापक, जताने-प्रवेदन ( सं० र्ज्ञा०) प्र-विद-णिच् ्ल्युट् । द्वापन, घोषणा । प्रवेद्य (सं ) ति ) प्र-विद-णिच्-यत् । प्रवेदनयोग्य । प्रवेष ( सं॰ पु॰ ) प्र-वेष्-त्रञ्। अतिराय कम्प, कंपकंपी। प्रवेपक (सं० पु०) प्र-वेप-ण्बुल् । १ कम्पन, कंपकंपी। (ति०) २ कम्पक, जिसे कॅपकपी होती हो ! प्रवेपयु ( सं॰ पु॰ ) प्र-वेप-अथुच्। कम्पन, कांपना । Vol. XIV. 162

प्रवेपन (सं० पु०) १ इत्यमेद । (क्वी०) २ कम्पन । ३ आन्दोलन । प्रवेपनिन् ( सं० ति० ) ज्ञह्युको कपानेवाला । प्रवेपनीय ( सं॰ ति॰ ) प्र-वेप-अनीयर् । कम्पनाई, कौंपने योग्य । 🕝 प्रवेरित ( सं॰ ति॰ ) इनस्ततः पातित, इधर उघर पड़ा हुआ। प्रवेळ ( सं० पु० ) प्र-वेळ-अच् । पीतमुद्द, पीळी मूंग । प्रवेश ( सं॰ पु॰ ) प्र-विश ं इल्य । ण ३।३।१२१ ) इति भावे वज् । १ अन्तर्विगाइन, भीतर जाना, घुसना । र गति, पहुंच। ३ किसी विषयका जानकारी। प्रवेशक (सं० पु०) १ प्रवेश करनेवाला। २ नाटकके अभिनयमें वह स्थल जहां कोई पात दो अंक्रोंके वीचकी घटनाका परिचय अपने वार्त्तालाप द्वारा देता है। प्रवेशन (सं० क्ली०) प्रविश्यतेऽनेनेति प्र-विश-करणे ल्युट् । १ सिंहद्वार । प्र-विश-भावे-ल्युट् । २ प्रवेश, भीतर जाना। प्रवेशनीय (सं० ति०) प्रवेशनं प्रयोजन यस्यं अनुप्रयचना-दित्वात् छ। प्रवेशसाधन, घुसनेछायक। प्रवेशयितव्य ( सं० ति० ) प्रवेश करने योग्य । प्रवेशिका (सं० स्त्री०) १ प्रवेशार्थ देय अर्थ, प्रवेशको लिये दिया जानेवाला धन । २ वह पत, चिद्वी या चित्र जिसे दिखा कर कहीं प्रवेश करने पाएं। प्रविशित (सं० ति०) प्-विश-णिच्-क। जिसमें प्रवेश कराया गया हो। पुर्वेशिन् (सं० ति०) प्र-विश-इनि । १ प्रवेशकारी । २ प्वेशयुक्त। (क्वी०) ३ प्रवेश। पुवेश्य (सं ॰ ति॰) प्र-चिश-ण्यत् । पुवेशाहँ, घुरूने योग्य । प्चेष्ट ( सं ॰ पु॰ ) प्रवेष्टते इति वेष्ट वेष्टने-अच्। १ वाहु । २ वाहुनीचभाग, वाहुका निचला भाग। ३ हस्तिदन्त-मांसं, हाथीके दाँत परका मांस। ४ गजपृष्टास्तरण, हाथी-की पीठका मांसल भाग जिस पर सवार चंद्रते हैं। प्रवेष्टक (सं ० पु०) प्रवेष्ट-स्वार्थ-प्राप्तास्त्ये-क । दक्षिणं वाहु, दहिना हाथ। प्रवेष्ट्य ( सं ॰ द्वि॰ ) प्र-विष-णिच्-तथ्य । प्रवेशार्हे, द्वसने प्रवेष्टा (सं० पु०) प्रवेष्ट्र देखी । प्रवेष्ट्र (सं० क्षि०) प्र-विश-तृष्ण्। प्रवेशकारी, घुसने

या पैठनेवाला :

प्रवोद् (सं ० ति ०) प्र-वह-तृच् प्रवर्णस्योकारः । १ प्रव-हनकारो, ढोनेवाला । (क्षी ०) २ वहन करना, ढोना । प्रवोध (सं ० क्षी ० १ ज्ञान, समक्ष । २ महाबुद्धकी अवस्थामेद ।

प्रध्यक (सं ० ति०) प्रव्यज्यतेम्मेति प्र-वि अनुज-कः, वा प्रकर्षेण व्यक्तः प्रादिस०। स्फुट, स्पष्ट।

प्रव्यक्ति , सं ० स्त्री० ) प्रकाश।

प्रध्याध (सं० पु०) प्रदृष्टी थ्याघो यत । खूव जोर छगा कर फेंका हुआ तीर जहां पर जा कर गिरे वहां तकका स्थान।

प्रवजन (सं॰ क्लो॰) प्रास्यगृहादि वजनं। संन्यास,
गृहस्थाश्रम और पुतादिका परित्याग कर प्रवज्या अव-स्टम्यन।

प्रविज्ञत (सं ० पु०) प्र-व्रज्ञ-क । बुद्धभिक्षशिष्य । पर्याय— चेलुक, श्रामणेर, महापाशक, गोमी । ति०) २ प्रव-ज्याश्रमविशिष्ट, गृहत्यागी ।

प्रव्रजिता (सं० स्त्री०) प्रव्रजितस्य लिङ्गमिव जरादिक-मस्त्यस्या इति अच्, टाप्। १ मांसी, जरामांसी।२ मुण्डोरी।३ गोरखमुं डी। ४ तापसी।

प्रवच्या (सं० स्त्री०) प्र वज (वन्यजोर्भावे क्यप् । पा पाइ।६८) इति भावे-क्यप् । १ संन्यास, मिक्षाश्रम । ब्रह्मचर्य, गाहस्थ और वानप्रस्थके वाद प्रवच्याका अवलम्बन करना होता है। पूर्वाश्रमधर्मका परित्याग कर प्रवच्याका अवलम्बन करना मना है।

> "बृथा सङ्करजातानां प्रवज्यासु च तिष्ठतां। आत्मनस्त्यागिनाञ्चौव निवसें तोदकक्रिया॥" , ( मन्र ५।८६ )

जो बृथा प्रव्रज्याश्रमका भवलम्बन करते वे पाप-भागी होते हैं। (क्ली॰) २ प्रव्रजन ।

प्रवज्यावसित (सं॰ पु॰) प्रवज्याया अवसितो विच्युतः । संन्यासभ्रष्ट, जो सन्यास प्रहण करके उससे च्युत हो गया हो । "प्रव्रज्यावसितो यत तथो वर्णा द्विजात्तमाः । निर्वासं कारयेद्वित्रं वासत्वं क्षतवेश्ययोः॥" (कात्यायन)

प्रविज्यास्रष्ट व्यक्तिको प्रायश्चित्त करना होता है। परन्तु प्रायश्चित्त करने पर भी उसके साथ खान पानका व्यवहार नहीं रखना चाहिये। मोहप्रयुक्त यदि कीई उसके साथ खान पान करे, तो उसे भी चान्द्रायणवत करना होता है।

प्रवज्यावत—नेपाली वौद्धोंका कर्मानुष्टानमेद। जो व्यक्ति 'वाँदा' होना चाहता है, उसे पहले यह वत करना होता है। नेपाल देखो।

पहले गुरुके निकट जा कर वह अपना अभिपाय प्कट करता है। पीछे उसके मङ्गलके लिये गुरु कलसी-पूजा करते हैं। अनन्तर कलसीका अभिषेक होता है। इस समय गुरु द्वारा प्राथींके मस्तक पर जल जिड़कनेके वाद नायक वाँढा आ कर उसके हाथमें एक अंगूडी पहना देते हैं। पोछे वह नायक 'वज़रक्षा' समाप्त करके गुरुमएडलकी पूजा करनेके वाद दूसरे दिनका कार्य शेप कर डालते हैं। व्रतिकयाके इस कार्यका नाम 'दुसल' है। तीसरे दिन प्रवज्यावत अनुष्ठित होता है। उस दिन संबेरे एक चैत्य सूर्त्ति, ब्रिस्टनमूर्त्ति, प्रज्ञापारमिता आदि विविध शुरस्त्रप्रन्थ, एक कलस, दिधपात, दूस्रे चार जलपूर्ण कुम्म, चीवर, निवास, पिएडपात, काप्ट-पादुका, पत, गन्धपात, सुवर्ण और रीप्य क्षर तथा भोज्यादि सज्जित पातादि सामने रख कर वह व्यक्ति-आसन पर बेठते हैं। पीछे गुरुमएडळ, चैत्य, तिरत्न तथा प्रज्ञापारमिता शास्त्रको उपासना करते हैं। अनन्तर वह बाँदामें अपनी गिनती करानेके लिये गुरुसे प्रार्थना करता है। इस पर गुरुदेव उस व्यक्तिका विरत, पञ्जशिक्षा और उपवासादि करनेकी तीन वार प्रतिश्वा कराते हैं। प्रतिश्वा कर चुकने पर गुरु उसे वाँढ़ा वनानेमें राजी होते हैं। इसके वाद मुख्डन और पञ्चामिषेक किया को जाती है। इस समय गुरु और दूसरे चार नायक आ कर उसके मस्तक पर जल छिड़क कर दीक्षा देते हैं और उसके कल्याणके लिये रत्नसम्भव बुद्धसे प्रार्थना भी करते हैं। पीछे गुरु उसे नृतन चीवर और निवास तथा कानका स्वर्णाभरण देते हैं। इस समय उसके पूर्व नामके ववलेमें वौद्ध यतियोंके जै सा नूतन नाम रखा जाता है। विरक्षकी पूजादि हो जानेके वाद नाना बुद्ध और वोधिसत्त्वोंको प्रणाम कर वह प्रवज्या श्रहण करता है और गुरुके सामने शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रज्ञास्कन्ध और विमुक्तिस्कन्धका प्रति-पालन करनेकी प्रतिज्ञा करता है। अनन्तर पञ्चोपचार-पूजा, अधिवासन, महाविल आदि वहुतसे धर्माचारोंका अनुष्ठान करना होता है। यह संस्कार हिन्दुओंके यज्ञो-पवीतके ढंग पर होता है।

प्रवश्चन ( सं ० पु० काग्रच्छे दनास्त्रभेद, कुठार, कुल्हाड़ी।

प्रवस्क (सं॰ पु॰) कर्त्तन, काटना।

प्रवाज् ( सं ॰ पु॰ ) १ नदोगर्भ । २ नदीका अत्यन्त निम्न देश ।

प्रवाज (सं॰ पु॰) प्र-व्रज-आधारे घञ्। १ अत्यन्त निस्नदेश, वहुत नीची जमीन । २ संन्यास ।

प्रवाजन (सं० क्को०) प्र-वज-णिच्-ल्युद्। निर्वासन। प्रवाजित (सं० ति०) प्र-वज-णिच्-क। निर्वासित, देशनिकाला।

प्रवाजिन ( सं ० पु॰ ) प्रवाज ।

प्रव्छय (सं० पु०) निमज्जन ।

प्रशंस (हिं ० वि०) प्रशंसाके योग्य, तारीफके लायक। प्रशंसक (सं ० बि०) १ प्रशंसाकारी, स्तुति करनेवाला। २ तोपामोद, खुशामदी।

प्रशंसन (सं ० क्को०) प्र-शन्स-भावे च्युट्। १ गुणकीर्तन द्वारा स्तुति, गुणींका वर्णन करते द्वुए स्तुति करना। २ धन्यवाद, साधुवाद।

प्रशंसनीय (सं ० ति०) प्र-शंस-अनीयर् । प्रशंसाके योग्य, तारीफके छायक ।

प्रशंसा (स'० स्त्रो०) प्र-शन्स-भावे-स, स्त्रियां टाप्। १ प्रशंसन, वड़ाई, तारीफ। पर्याय—वर्णना, ईडा, स्तव, स्तोत, स्तुति, चुति, श्लाघा, अर्थवाद। किसीको अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाित्ये।

"न चात्मानं प्रशंसेद्वा परिनन्दाञ्च वर्जधेत्। वेदिनिन्दां देविनन्दां प्रयत्ने न विवर्जं धेत्॥" (कर्मपु० उप० १५) प्रशंसित ( सं॰ ति॰) प्रशन्स-क । १ प्रशंसायुक, जिसकी तारीफ हुई हो, सराहा हुआ। (ह्वी॰)२ प्रशंसा, तारीफ।

प्रशंसिन् (सं ० ति०) प्र-शन्स-णिनि । जिसकी प्रशंसा हुई हो ।

प्रशंसोपमा (सं० स्त्रो०) काष्यादशोंक अर्थालङ्कारमेद । जहां उपमेयकी अधिक प्रशंसा करके उपमानको प्रशंसा द्योतित की जाती है, वहां यह अलङ्कार होता है। इसका उदा-हरण—

"ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मश्चन्द्रशम्भृशिरोधृतः।
तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते॥"
ब्रह्मासे जिस पद्मकी उत्पत्ति हुई है और खर्य महादेव
जिस चन्द्रमाको अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं,
हे सुन्दरि | वैसा पद्म और चन्द्र तुम्हारे मुलके साथ
तुल्नीय है। यहां पर पहले पद्म और चन्द्रकी प्रशंसा
हुई है और उस प्रशंसित उपमेय द्वारा उसके मुलके
साथ तुल्ना होनेका कारण उस मुलका सौन्दर्यातिशय
वर्णित हुआ है। इसीसे यहां पर यह अलङ्कार हुआ।
प्रशंस्य (सं० ति०) प्र-शन्स-यत्। प्रकर्यक्रयसे स्तुत्य,
प्रशंसनीय।

प्रशत्वन् (सं ॰ पु॰) प्र-सद्-क्वनिप्-तुर् च। १ समुद्र। स्त्रियां क्षोप् 'चनोरच' इति र। २ प्रशत्वरी नदी। प्रशम (सं ॰ पु॰) प्रशमनिमिति प्र-शम-भावे-धञ्। १ शमता, उपशम, शान्ति। २ भागवतके अनुसार रन्तिदेवके पुत्रका नाम।

प्रशमन (सं ० क्वी ०) प्र-शम-णिच्-ल्युट् । १ मारण, वघ । २ शमता, शान्ति । ३ प्रतिपादन । ४ स्थिरीकरण, स्थिर करना, वशमें लाना । ५ नाशन, ध्वंस करना । ६ सता-जित्के भाईका नाम । ७ अस्त्रप्रहार । (ति ०) ८ शान्तिकर, शान्ति करनेवाला ।

प्रशर्घ (सं० ति०) प्रकर्षकपसे अभिभवकारी।
प्रशस् (सं० स्त्री०) १ प्रशस्त । २ प्रशस्त छेदन । ३ इटार।
प्रशस्त (सं० ति०) प्रशस्यते स्मेति प्र-शन्स-क । १ प्रशंसनीय, सुन्दर । २ अतिश्रेष्ठ, उत्तम, बहुत बढ़िया। (क्वी०)
३ करज्योड़ि पाषाणमेद, करजोड़ी नामकी जड़ी। ४ क्षेम,
इश्ला

प्रशस्त—एक कि । ये पिएडत प्रशस्तक नामसे मशहूर थे। प्रशस्तकर (सं० पु०) प्रन्थकारमेद् । प्रशस्तवाद देखो। प्रशस्तवाद (सं० पु०) एक नैयायिक । इन्होंने प्रशस्तवाद-भाष्य नामक वैशेषिकस्त्रकी एक टोका लिखी है। वह प्रन्थ द्रव्यभाष्य, पदार्थोद्देश वा पदार्थधर्मसंग्रह नामसे भी प्रसिद्ध है। शङ्करमिश्रने इनका प्रशस्त वाचार्य नामसे उल्लेख किया है। इनके वनाये हुए भाष्यके व्योमशिवाध्यार्थ कृत व्योमवतो, श्रोधरकृत न्यायकन्दलो, उद्यनकृत किरणावली, श्रोवत्सकृत लोलावतो, जगदीशकृत पदार्थन्तन्त्वनिणय, मिल्लनाथकृत निष्किएटका और शालिखानाथकृत कुल टोकाण साथ कर कुल टीकाण साम भी मिलती हैं।

प्रशस्तव्य (सं० वि०) प्रशंसाके थीग्य।
प्रशस्तव्य (सं० पु०) १ वृहत्संहितोक्त मध्यदेशिक्थत
पर्वतमेद । २ एक देशका नाम । वृहत्संहिताके मतसे यह
देश ज्येष्ठा, पूर्व मूळ और शतिभषके अधिकारमें है।
प्रशस्ति (सं० स्त्री०) प्र-शन्स-भावे-किन् । १ प्रशंसा, स्तुति।
२ प्रशंसास्चक अनुशासन, वह प्रशंसास्चक वाक्य जो
किसीको पत्र ळिखते समय पत्रके आदिमें ळिखा जाता
है, सरनामा । ३ राजकीय अनुशायतियशेष, राजाकी
ओरसे एक प्रकारके आञ्चापत्र जो पत्थरोंकी चट्टानों वा
ताम्रपत्नादि पर खोदे जाते थे और जिनमें राजवंश तथा
कीर्त्त आदिका वर्णन होता था । 8 प्राचीन पुस्तकोंके
आदि और अन्तकी कुछ पंक्तिया जिनसे पुस्तकके कर्चा,
विषय और काळादिका परिचय मिळता हो ।

प्रशस्तिकृत (सं ० ति ०) प्रशस्ति स्तवं करोतीति प्रशस्ति है कि प् तुक्च । स्तुतिकर, प्रशंसा करनेवाला । प्रशस्य (सं ० ति ०) प्र-शन्स-कर्मणि क्यप् । १ प्रशंसनीय, प्रशंसाके योग्य । २ श्रेष्ठ, उत्तम । (क्की०) ३ प्रशंसन, प्रशंसा, तारीफ ।

प्रशस्यता (सं ॰ स्त्री॰) प्रशस्यस्य भावः तल्-टाप् । उत्ह-ष्टता, श्रष्ठात ।

प्रशाख (सं ० ति०) १ विस्तृत शाखायुक्त । (क्वी०) २ भ्रणगठनकी पञ्चमावस्था ।

प्रशाखा (सं ॰ स्त्री॰) प्रगता शाखां अत्यां समासः । अप्र-शाखा, शाखाकी शाखा, रहनी । प्रशाखिका (सं० ह्वी०) क्षद्र क्षद्र शाखा, छोटी टह्नी।
प्रशान (सं० ति०) प्रकर्षेण शास्यित यः प्रशानिक्य (अनुनानिक्य क्षित्र) पा हे। १११८ ) इति दोर्घः। शान्त, निश्चलगृत्तिवाला।
प्रशान्त (स० ति०) प्रकर्षेण शान्तः। १ प्रकृप्शमताविशिष्ट, वाञ्चलपहित, स्थिर । २ शान्त, निश्चल वृत्तिवाला। (पु०) ३ एक महासागर जो पशियाके पूर्व पशिया और अमेरिकाके वीचमें हैं।
प्रशान्तचारित्रमति (सं० पु०) वोधिसत्वभेद।
प्रशान्तचारित्रमति (सं० ति०) १ स्थिरमावमें भ्रमणकारी।
पु०) २ देवताभेद।
प्रशान्तचेष्ट (सं० ति०) प्रशान्ता चेष्टा यस्य। १ व्यापार-शून्य। २ स्थिर।

प्रशान्तता (सं० स्त्री० प्रशान्तस्य भावः तल्-टाप्। प्रशान्तका भाव या धर्म ।

प्रशान्तराग—गुजैरवंशीय राजा २य दद्दे विरुद् ।

राष्ट्रकुर देखो। प्रशान्तात्मन् (सं० पु०) १ महादेव। २ प्रशान्तस्वभाव।

प्रशान्ति (सं० स्त्री० ) प्रकृष्ट शान्ति । प्रशासन (सं० ह्यो० ) प्र-शास-भावे-व्युट् । १ कत्तंव्यको

शिक्षा जो शिष्म आदिको दी जाय। २ शासन।
प्रशासित (सं० वि०) १ जिसका अच्छा शासन किया
गया हो। २ शिक्षित।

प्रशासिता (सं० ति०) शासनकर्ता, शासक।
प्रशास्ता (सं० पु०) १ होताका सहकारी, एक ऋत्विक्। जिसे मैंबावरुण भो कहते हैं। २ ऋत्विक्। ३ मित। ४ शासनकर्ता।

प्रशासितः (सं ० ति० ) प्र-शास-तृण्। शासनकारी, नियन्ता।

प्रशास्तः'( सं० पु०) प्रशास्ता देखो ।
प्रशास्त्र (सं० ति०) प्र-शास्तुरिदं अण्, संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् न वृद्धिः । १ शास्त्रक्षप शंसनकत्त्रं सम्बन्धी ।
(पु०) २ एक यागका नाम । ३ प्रशस्ताका कर्म । ४
प्रशस्ताके सोमपान करनेका पात्र ।
प्राणिशिक्षं (सं० ति०) प्रकृष्टः शिथिकः प्रादिस् । अति-

प्रशिथिल ( सं ० बि० ) प्रकृष्टः शिथिलः प्रादिस० । अति-शिथ शिथिल ।

गशिष्टि (सं ० स्त्री० ) १ आदेश, आज्ञा, । २ अनुशासन, शिक्षा, उपदेश। प्रशिच्य (सं• पु॰) प्रगतः शिष्यमध्यापकत्वेन अत्या॰ सं। १ शिष्यका शिष्य । २ परम्परागत शिष्य । प्रशिस् ( सं॰ स्री॰ ) प्र-शास-क्रिप् । प्रशासन, आज्ञा । पशुकीय (सं० बि०) ऋकसंहिता-वर्णित 'प्र शुका! इति मन्तसम्बन्धीय । प्रशुद्धि ( सं॰ स्त्री॰ ) विशुद्धि । पशुध्रुक (सं० पु०) मेरुदेशका राजमेद, वाल्मीकीय रामा-यणके अनुसार मेरुदेशके एक राजाका नाम। प्रशोचन ( सं० ही० ) वैद्यककी एक क्रियाका नाम जिसमें रोगोके व्रणादिको जला देता है, दागना । प्रशोप ( सं॰ पु॰ ) शुष्क होना, सोखना । प्रशोषण (सं॰ पु॰) १ उपदेवभेद । २ सोखना, सुखाना । ३ पक राक्षस जो वचोंमें सुखंडी रोग फैलाता है। प्रश्न (सं० पु० ) प्रच्छनमिति प्रच्छ-् यनयाचयतेति । पा रारारक) इति नङ्, टक्क् वोः पूडिति। या हाशाहरू) इति श, (ब्रक्षेचेति । या ३।२।११७) इति न सम्प्रसारणं। १ जिज्ञासा, सवाल। २ वह वाक्य जिससे कोई वात

जाननेकी इच्छा प्रकट हो, पूछनेकी वात । ३ विचारणीय विषय । ४ एक उपनिषद् । इस उपनिषद्में ६ प्रश्न हैं और प्रत्येक प्रश्नके सातसे सोलह तक मन्त्र हैं। कुल मिला कर ६७ पन्त हैं । यह उपनिपद्द अथवेवेदीय उप-निपद् मानी जाती है। इसमें प्रजापतिने सृष्टिका उत्पत्ति-विषय अलङ्कारोंमें वताया है। कात्यायनजीका प्रथम प्रक्त है, कि प्रजा कहांसे उत्पन्न हुई, इसका उत्तर विस्तार-से दिया गया है। दूसरा प्रश्न भागव वैदर्भि करते हें, कि कौन देवता प्रजाका पालन करते हैं और कौन अपना वल दिखाते हैं। इसके उत्तरमें प्राण नामका देवता वड़ा वतलाया गया है। क्योंकि, उसीके वलसे इन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं । तीसरा प्रक्त आक्व-लायनजीका है, कि प्राण किस प्रकार वड़ा है और किस प्रकार उसका सम्बन्ध वाह्य और अन्तरात्मासे हैं। चौथा प्रश्न सौर्यायणी गार्ग्यने किया है, कि पुरुपोमें कौन सोता है, कीन जागता है, कीन खप्न देखता है, कीन सुख भोगता है। उत्तरमें पुरुषकी तीनों भवस्थाएँ दिखा कर आत्मा Vol. XIV. 163

सिद्ध की गई है। पांचवां प्रश्न जो शैव सत्यकामाने किया है, वह ऑकारके अर्थ और उपासनाके सम्बन्धमें। छठा प्रश्न सुकेश भरद्वाजजी करते हैं, कि सीलह कलाओं-वाला पुरुष कौन है ?

प्रश्नदूती ( सं० स्त्री० ) प्रश्नस्य दूतीच । प्रहेलिका, पहेली, वुक्तीवल ∤

प्रश्नविवाक (सं॰ पु॰) ऋतान् प्रश्नान् विवक्ति, उत्तरयति-वि-वच-कर्रारि संशायां घञ्। १ शुक्क यजुर्वेदसंहिता-के अनुसार प्राचीनकालके विद्वानोंका एक सेद जो भावी घटनाओंके विषयमें प्रश्नोंका उत्तर दिया करते थे। २ पश्च, सरपंच ।

प्रश्नविचाद ( सं० पु॰ ) तर्कवितर्कं, वितएडा । प्रश्नव्याकरण ( सं॰ पु॰ ) प्रश्नान् श्रिष्यकृतप्रश्नान् ध्याक-रोति उत्तरयति, वि-आ-म्र-स्यु, प्रश्नस्य स्थाकरणः । जैन-शास्त्रमेद, जैनियोंके एक शास्त्रका नाम। भावे ल्युट्। ( क्ली॰ ) २ पृष्टार्थ उत्तरज्ञापन ।

प्रश्नि सं० पु०) १ ऋषिमेद, एक ऋषि । २ जलकुम्मी । ३ पृश्निपर्णि, पिठवन ।

प्रश्निन् ( सं० ति० ) प्रश्न्युक्त, प्रश्नकारी।

प्रश्नी (सं० स्त्री०) पृश्नि, षृशोदरादित्वात् र, वाहु० ङीष् । कुम्मिका, जलकुम्भी।

प्रश्नोत्तर (सं० ह्यो०) १ प्रश्नका उत्तर, सवाल जवाव। २ तर्कवितर्का, पूछताछ । ३ शब्दालङ्कारमेद, वह काव्या-ळङ्कार जिसमें प्रश्न और उत्तर रहते हैं ।

प्रश्नोपनिपद्द (सं० स्त्री०) प्रश्नाधिकारेण प्रवृत्ता उप-निपद्। आथवाँपनिपद्भेद्। पांच प्रश्नोंका अधिकार करके यह उपनिषदु हुई है, इसीसे इसका प्रश्नोपनिषद् नाम पड़ा है।

प्रश्रय (सं॰ पु॰) प्रश्रयणमिति प्र-श्रि-भावे-अच्। १ प्रणय, विनय। २ साश्रयस्थान। ३ टेक, सहारा। ४ धर्म और हीसे उत्पन्न एक देवता।

प्रशयण (सं॰ क्ली॰) सौजन्य, शिष्टाचरण, विनय् । प्रश्रयिन् (सं० ति०) १ शिष्ट, सुजन । २ शान्त, नम्र,

विनीत।

प्रश्रवण ( सं॰ पु॰ ) रामायणके अनुसार एक पर्नात । प्रश्रवस् ( सं॰ ति॰ ) प्ररुष्ट अन्त ।

प्रश्रित (सं० ति० ) प्र-श्रि का। विनीत। प्रश्रथ (सं० ति०) प्रकृष्टः श्रथः प्रादिस०। शिथिल। प्रश्चित (सं० पु०) वैदिकसन्ध्याङ्गभेद । इसमें हस्व-वर्णके पहले अण्की जगह ओ होता है। प्रिश्रष्ट (सं वि ) प्र-श्लिप-क्त । १ सुसम्बन्ध, मिला-जुला। २ सन्धिप्राप्त। प्रश्लेष (सं० पु०) १ घनिष्ठ सम्बन्ध । २ सन्धि होनेमें स्वरोंका परस्पर मिल जाना। पृथ्वसितव्य ( सं० ति० ) पृथ्वास निकालने योग्य। प्रवास (सं० पु०) प्र-श्वस-भावे-घम्। कोष्टवायुका वहिनिःसारण, वह वायु जो नथनेसे वाहर निकलती है। प्राणायाम देखो । २ वायुके नथनेसे वाहर निकलनेकी । किया । प्रप्टब्य ( सं० त्रि० ) १ पूछने लायक। २ जिसे पूछना हो। पुष्टा ( सं० व्रि० ) पृश्नकर्त्ता, पूछनेवाला । पृष्टि ( सं० पु॰ ) पुच्छ कर्रारि वाहुलकात् ति । १ वाहन-त्रयमध्यवत्तीं युगविशेष, यह घोड़ा या वैल जो तीन घोड़ोंके रथ वा तीन वैलोंकी गाड़ीमें आगे जोता जाता है। २ दाहिने ओरका धोड़ा या वैल। ३ तिपाई। ( ति० ) ४ पार्श्वस्थ, पास खड़ा हुआ । प्रिष्टमत् (सं॰ लि॰) प्रष्टि-मतुप् । युग पाश्वैवाहनविशिष्ट । प्रष्टिवाहन (सं ० ति०) जो तीन वाहनसे ढोआ जाय। प्रियाहिन् (सं ॰ पु॰) रथ। प्रष्टु (सं ० ति०) प्रच्छ-तृच्। प्रध्या दंखो। प्रप्र (सं ० ति०) १ अप्रगामी, अगुवा । २ प्रधान, मुख्य । ३ **उत्तम, वढ़िया** । प्रप्रवाह् (सं ॰ पु॰) प्रष्ठः अप्रगामी सन् वहतीति प्रष्ठ-वह (बहस्य । पः ३।२।६४) इति जिव । युगपार्र्वम प्रथमयोजित द्ग्य गवादि, वह वछड़ा जो पहले पहले हलमें लगाया जाय। प्रष्ठी (सं॰ स्त्री॰) प्रष्ठ-ङीष् । प्रष्ठमार्या, अप्रगामीकी पत्नी । प्रष्टौही (सं ॰ स्त्री॰) प्रप्रवाह ( बाहः । या ४।१।६१ ) इति ङीप्। प्रथम गर्भवती गामि, पहलौटी गाय। पुसंख्या ( सं॰ स्त्री॰ ) १ पृक्षष्ट संख्या, मीजान, टोटल ।

प्रसंख्यान (सं॰ क्ली॰) प्-सम-ख्या-भावे त्युर्। १ सम्यक्

३ चिन्ता, भ्यान ।

ज्ञान, सत्यज्ञान । २ भात्मानुसन्धान, ध्यान । ( द्वि॰ ) ३ प्रकृष्टरूपसे सं'ख्यायुक्त । ४ सम्पन् ज्ञानयुक्त । प्रसक्त (सं ० ति०) प्र-सन्ज-क । १ नित्य । २ आसक्त, संबद्ध । ३ संश्विष्ठ, लगा हुआ । ४ प्रस्तावित । ५ जो बरावर लगा रहे, न छोड़नेवाला। (क्री॰) २ प्रसङ्ग विषय । प्रसक्ति (सं० स्त्री० ) प्-सनज-भावे-किन् । १ पूसङ्ग सम्पर्के। २ अनुमिति। ३ आपत्ति। ४ व्याप्ति। प्रसङ्ग ( सं ० पु० ) प्र-सन्ज-घञ् । १ प्रश्रप्ट सङ्ग, घनिए-सम्बन्ध, मेळ । २ व्याप्तिरूप सम्बन्ध । ३ वातोंका पर-स्पर सम्बन्ध, विपयका लगाव । ४ अनुरक्ति, लगन । ५ स्त्री-पुरुष संयोग। ६ विषयानुक्रम, प्रस्ताव। ७ अवसर। १० हेतु, कारण। प्रसङ्गवत् (सं ० ति०) प्रसङ्ग-अस्त्थे मतुष् मस्य व । १ प्रसङ्गयुक्त। २ आकस्मिक, हठात्। प्रसङ्गविध्वंस (सं० पु०) मानमोचनके छः उपा मिसे एक। प्रसङ्गविस्रं स ( सं० पु० ) मानमोचनके छः उपायोंमं अन्तिम । प्रसङ्गसम (सं ० पु०) न्यायमें जातिके अन्तर्गत एक प्रकारका प्रतिपेध। यह प्रतिवादीकी ओरसे होता है। इसमें प्रतिवादी कहता है, कि साधनका भी साधन कही और इस प्रकार वादीको उलक्तनमें डालना 'चाहता है। प्रसङ्घ (सं ० पु०) १ वहुसं ख्या, अनेकत्व । २ श्रेणीवद । प्रसन्ध्य ( सं ॰ पु॰ ) प्रसन्ध्यवित्येधस्य भोमो भीमसेन-वत् अन्त्यलोपः। प्रसज्यप्रतिषेध, अत्यन्ताभाव। प्रसज्यप्रतिवेध सं ० पु०, प्रसज्य प्रसिक्तं सम्पाद्य आरो-प्ये ति यावत् प्रतिषेधः । अत्यन्तामाव 'वसक्तं हि <sup>प्रति</sup>-णि यते<sup>।</sup> प्रसक्त हो प्रतिसिद्ध होता है। इस न्यायके अतु-सार वायुके रूप नहीं है। यहां पर पहले रूप आरो-पित हुआ था, पीछे स्थिर हुआ, कि वायुके रूप नहीं है। इस प्रकारका निषेध या अभाव ही प्रसज्यव्रतिषेध ही कर उसका निषेध होनेसे प्रसज्यप्रतिपेध होता है। २ नञ्भेद । जहां विधिकी अप्रधानता और निपेधकी प्रधानता होतो है तथा कियामें नम् अर्थात् अन्वय हुआ करता है, वहां प्रतिषेध नञ् होता है। इसका उदाहरण,

'नातिरात्ने पोड़शिनं गृहाति' अतिरात्न शब्दका अर्थ अतिरात यज्ञ और पोडशी शब्दका अर्थ सोमलतारस-पूर्ण पात है। अतिरात यश्चमें पोड़िश-ग्रहण नहीं करना चाहिये। यहां पर विधेय कर्म घोड़शिग्रहण है। इस-साक्षात् सम्बन्धमें विध्यर्थवाचक छट्के साथ अन्वय नहीं हुआ, इसीसे यहां प्रसज्यप्रतिषेध नज् हुआ है।

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्व्धः। भवेज्जन्मान्तरॆ रोगी पितृणां नोपतिप्रते ॥ "अह रोगीति निन्दाश्रवणान् प्रसज्यता।"

( माङमासतत्त्व )

पौप, चैतं और कृष्णपक्षमें नवात्र नहीं करना चाहिये, करनेसे जन्नान्तरमें रोगो होना पड़ता है। यह निर्पेध भी प्रसज्यप्रतिषेध है। नङा देखी।

प्रसत्ति (सं ० स्त्री०) प्र-सद-किन् । १ प्रसन्नता । २ निर्मे-लता, शुद्धि ।

प्रसत्यन् ( सं ॰ पु॰) प्रसोदतीति प्र-सद्-क्रनिप् । १ धर्म । २ प्रजापति ।

प्रसत्वरी (सं॰ स्त्री॰) प्रसत्वन् (बनोत्व पा ४।।।७) इति ङीप्रस्व। प्रतिपत्ति, प्राप्ति।

प्रसन्धान ( सं ० क्ली० ) क्रमपाठोक्त सन्धि, योग ।

प्रसन्धि (सं ० पु०) मनुवुद्धमेद् ।

प्रसन्न (सं ० ति ० ) प्रसीद्तीति प्र-सद्-गत्यर्थेति क । १ निर्मल, स्वच्छ । २ सन्तुए, तुए । ३ प्रफुछ, खुश। ४ अनुक्ल । ( पु॰ ) ५ महादेव ।

प्रसन्नकुपार चहोपाध्याय—वङ्गालको एक भावुक कवि। सङ्गीतरचनामें उनकी असाधारण क्षमता और गीतविद्याः में विशेष पारदर्शिता भी देखी जाती थी। इनका बङ्गळा १२५५ साळ १७ माघ्रमें जन्म हुआ था। ववपनसे ही ये सङ्गोतानुरागो थे । १३ वा १४ वर्षकी उमरसे ही वे अच्छी अच्छी गीतरचना कर सकते थे। सभी गीतोंका मूलमन्त एक था। ऐहिक सुख दुःख सम्पद् विपद् अनित्य है, अस्थायी है ; मुग्ध मानव यदि व्यर्थ वाग्चितएडा न करके एकाप्रचित्तसे मा काळी-के चरणोंमें शरण ले, तो उसके उद्धारका पथ मुक्त हो सकता है, यही एक महामन्त उनके सङ्गीतसमृहका प्राण था। महम्मद, नानक, चैतन्य आदि सर्वोके प्रति वे विशेष प्रसन्ना (सं० र्खा०) प्रसन्न-टाप्। १ मद्यविशेष, एक प्रकार-

मक्तिमान थे। ख्यं निष्ठावान पवित हिन्दू होने पर भी अहिन्द्रके प्रति उन्हें जरा भी घृणा द्वेष न था। यसन्नकुशार ठाकुर—कलकत्तेके विषयात ठाकुरवंशीय एक व्यक्ति। १८०३ ई०में इनका जन्म हुआ था। वचपनसे हो ये न्यायके पक्षपाती थे। थोड़े ही समयके अन्दर इन्होंने वकालत पास कर ली। सदर अदालतमें उन्नति और सुनामको प्रिष्टा करके ये सरकारी वकील हो गये। लाई डलहौसीके शासनकालमें इन्होंने उदारता और सहद्यता दिखा कर हिन्दूकालेजका सत्त्व शिश्लाविभाग-के हाथ समर्पण किया । लाई डलहीसीने इस खार्थ-त्याग पर इनकी भूरि भूरि पृशंसा की थी। वृद्धावस्थामें इन्होंने 'अनुवादक' नामक वङ्गला और 'रिफार्मर' नामक अंगरेजी पतिकाकी परिचालनाका भार प्रहण कर तत्का-लिक राजकीय और सामाजिक भान्दोलनुमें हाथ वटांया।

लाडं डलहौसीके शासनकालमें ये ध्ववस्थापक सभा (Legislative council)की सहकारितामें नियुक्त हुए। पेनेलकोड नामक फौजदारीदएडविधिके संशोधनकालमें इन्होंने सर वर्णिस पीकाक (Sir Barnes Peacock) की विशेष सहायता की थी। १८६६ ई॰की ३०वीं अप्रिल को इन्हें c. s. 1. की उपाधि मिलि । १८६८ ई॰को ३०वीं को ये इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे।

प्रसन्नचन्द्रसूरि—एक जैन पण्डित, अमयदेवके छात और सुमितके गुरु। इन्होंने जैनोंके नौ अङ्गोंकी टीका लिखी है।

प्रसन्नता (सं॰ स्त्री॰) प्रसन्नस्य भावः तल्-द्राप्। १ अनुत्रह, कृपा, प्रसाद। २ हर्ष, आनन्द। ३ प्रफुलुता। ४ खच्छता, निर्मछता । ५ उज्वलता ।

प्रसन्नत्व ( सं ० क्ली० ) प्रसन्नस्य भावः त्व । प्रसन्नता, निर्मलता ।

प्रसन्तमुख ( सं ॰ बि॰ ) जिसका मुख प्रसन्त हो, जिसकी आकृतिसे प्रसन्नता टपकती हो।

प्रसन्तवेङ्करेश्वर—एक प्राचीन चैणाव तीर्थ । श्रीरङ्गके पश्चिम कावेरी नदोके किनारे वह विष्णुमूर्सि स्यापित है । भविण्योत्तरपुराणके प्रसन्नवेङ्कटेश्वरमाहात्स्यमे इसका विशेष विवरण लिखा है।

की शराव । वैद्यक्तमें इसे गुल्म, वात, अर्श, शूछ और कफनाशक माना है। (ति०) २ प्रसादविशिष्टा । प्रसन्नात्मन् (सं० ति०) प्रसन्नो निर्मेछः आत्मा यस्य । १ प्रसन्नान्तःकरण, जो सदा प्रसन्न रहे । (पु०) २ विष्णु ।

प्रसन्तान्ध (सं०पु०) अश्वका नेतरोगविशेष। इसमें उसकी आँख देखनेमें तो ज्योंका त्यों रहती हैं पर उसे दिखाई नहीं पड़ता। यह असाध्यरोग है और अच्छा नहीं होता

प्रसन्नेरा ( सं ० स्त्रो० ) प्रसन्ना निर्मेला इरा जलमिव । एक प्रकारकी मदिरा ।

प्रसभ (सं॰ ति॰) प्रगता सभा समाधिकारोऽस्मात् प्रादि॰ वहुत्री॰ । १ वलात्कार । २ हठात् ।

प्रसमहरण (सं० क्ली०) वलपूर्वक हरण, उकेती। प्रसयन (सं० क्ली०) प्र-सि-वन्धने करणे ल्युट्।

वन्धनसाधन तन्तु, जाल ।

प्रसर (सं॰ पु॰) प्र-सु-भावाधारादौ यथाययं अप्। १ विस्तार, आगे वढ़ना । २ प्रसार, फैलाव । ३ दृष्टिका फैलाव, आँखकी पहुंच। ४ वेग, तेजी। ५ समृह, राशि। ६ व्याप्ति। ७ प्रकर्षे, प्रधानताः प्रभाव। ८ युद्ध, लड़ाई। ६ नाराच नामक अस्त्र। १० वीरता, साहस । ११ उत्पत्ति । १२ प्रणय, प्रेम । १३ एक प्रकार-का पौधा जो भूमिके ऊपर फैलता है । १४ वातपित्तादि प्रकृतियोंका सञ्चार या घटाव वढ़ाव । सुश्रुतके अनुसार कुपित दोष किस प्रकार शरीरमें फैल जाता है, उसका विषय यों है—सुरा प्रस्तुतकालमें जिस प्रकार किन्चो-दक ( मसालेका पानी ) और पिष्ठतण्डुलको एक साथ पीसनेसे वह वढ़ जाता है, उसी प्रकार सभी दोपोंके कुपित होनेसे वे वर्द्धित हो कर गतिविशिष्ट होते हैं। वायुकी गतिशक्ति द्वारा ही इनकी गति हुआ करती है। वायुक्ते अचेतन पदार्थ होने पर भी उसमें रजोगुण अधिक परिमाणमें है। रजोगुण सभी भावोंका प्रवर्तक है। जिस प्रकार किसी पुलके एक ओर अधिक जलराशि जमा रहनेसे वह जलराशि पुलकी तोड़ तो हुई दूसरी ओरमें स्थित जलके साथ मिलती और चारों आर फैल जाती है, ω सी प्रकार सभी प्रकारके दोपोंमेंसे किसी एक

दोषके विगड़नेसे वे सभी दोष स्वतन्त अथवा दो या सभी एक साथ अथवा शोणितके साथ मिल कर नाना प्रकारमें प्रसारित होते हैं। सभी दोपोंके मिलने अथवा स्वतन्त्र होनेसे वे पन्द्रह प्रकारमें प्रसारित होते हैं। यथा— वात, पित्त, श्लेप्मा, शोणित, वातिपत्त, वातश्लेष्मा, वात-शोणित, वातिपत्तश्लेप्मा और वातिपत्तशोणित। इसीका नाम प्रसर है।

जिस प्रकार आकाशके जिस स्थान पर मेशका सञ्चार होता है, उसी स्थान पर वृष्टि होती है, उसी प्रकार कुपित दोप जहां जहां प्रसारित होता है, उसी स्थान पर विकृति उत्पन्न होती है।

( धुश्रुत सूत्रस्था॰ २१२४० )

(ति॰) १५ विसर्पणकर्ता, गमनशोल ।
प्रसरण (सं॰ क्री॰) प्र-स्र-भावे-स्युट् । १ सेनाओंकी
सर्वतोव्याप्ति, सेनाका लूट पाटके लिये इधर उधर
फेलना । पर्याय—प्रसरणी, प्रसर्रण, प्रसारणी । २
सेनाका तृणकाष्ठके लिये इधर उधर जाना । ३ आगे
वदना, खिसकना । ४ विस्तृति, फेलाव । ५ व्याप्ति ।
६ उत्पत्ति । ७ विस्तार । ८ खार्थ-प्रवृत्ति ।

प्रसरणी (सं ० स्त्री०) प्र-सु'अर्त्तिसृद्यित्यानिः' इति अनि । प्रसरण, फैलाव,पसार ।

प्रसरा ( सं ० स्त्री० ) प्सारणी लता, गंधाली, पसरत । प्रसरित ( सं ० ति० ) १ फैला [हुआ, पसरा हुआ । २ विस्तृत । ३ आगेको वढ़ा हुआ, स्थानसे आगेको खसका हुआ ।

प्रसर्ग (सं॰ पु॰) प्र-सृज-घञ् । १ वर्षण, वरसाना । २ तिश्लेपण, किसी चीजको ऊपरसे छोड़ना, गिराना । प्रसजॅन (सं॰ ति॰) निश्लेपण, गिराना, डालना ।

प्रसर्प (सं॰ पु॰) प्र-सृप्-घञ् । १ गमन । (क्षी॰) २ सामभेद, एक प्रकारका सामगान ।

प्रसर्पक (सं॰ पु॰) १ यज्ञदर्शक, वह दर्शक जो यज्ञमें विना बुळाए आया हो। २ ऋत्विक्का सहकारीभेद, सहकारी ऋत्विज्। ३ अनिमन्त्रित व्यक्ति।

प्रसर्पण (सं० क्ली०) प्र-सृप-ल्युट्। १ गमन, जाना। २ प्रसरण, फैलाव । ३ सेनाका इधर उधर फैलना ४ खिसकना । ५ घुसना, पैठना । ६ गति, चलनेका भाव या कार्य ।

र्रसर्पिन् (सं॰ ति॰) प्रन्हप-णिनि । १ वऋगतिशील, रेंगनेवला । २ गतिशील । ३ यहकी सभामें जाने-बाला ।

प्रसल ( सं॰ पु॰ ) हेमन्त ऋतु !

गसव ( सं॰ पु॰ ) प्र-स् (ऋदोरप्। वा शश्रापः) इत्यप्। २ गर्भमोचन, वश्रा जननेको किया। पर्याय प्रस्ति। २ गर्भग्रहण, जन्म, उत्पत्ति। ४ अपत्य, सन्तान। ५ फल। ६ फूल। ७ आजा।

प्रसवका विषय भाव-प्रकाशमें इस प्रकार लिखा है— गभैवती स्त्री नवम, दशम, एकादश वा द्वादश मासमें सन्तान प्रसव करती हैं । इसकी अन्यथा होनेसे अर्थात् नवम मासके मध्य अथवा द्वादश मासके वाद प्रसव होने-से उसे अस्वाभाविक जानना चाहिये । भावप्रकाशके मतसे एकादश या द्वादश मास प्रसवका काल वतलाये जाने पर भी साधारणतः नवम दशम मासमें ही प्रसव हुआ करता है। इसके अतिरिक्त समयमें प्रसव होनेसे उसे अस्वामाविक कहते हैं।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि यदि गर्भवती स्त्री प्रसववेदनासे छटपटा रही हो, तो वटपत पर सुख-प्रसवमन्त्रचक्र लिख कर उसके मस्तक पर रख देनैसे सुखसे प्रसव होता है।

#### सुखप्रसवमन्त्र---

"अस्ति गोदावरी तीरै जम्मला नाम राक्षसी। तस्याः स्मरणमालेण विशस्या गर्भिणी भवेत्।"

#### सुखप्रसन्नचक---

"पञ्चरेसाः समुहित्यं तियंगूद्ध कमेण हि । पदानि पड्दशापाच त्वेकमाद्ये सुनी तयम् ॥ नवमे सप्त दयानु वाणं पञ्चदशे तथा । द्वितीयेऽप्टावप्टमे पट् दिशि द्वौ पोड्शे श्रुतिः ॥ पकादिना समं क्रेयमिच्छाङ्कार्द्धं तिकोणके । तदा द्वातिशदादिः स्याचतुण्कोण्ठेषु सर्वतः ॥ दर्शनाद्वारणात्तासां श्रुमंस्यादेषु कमेसु । द्वातिशत् प्रसवे नार्याश्चतुस्त्रिशहमे नृणाम् ॥ भूताविष्टे षु पञ्चाशन्मृतापत्यासु चै शतम् । . द्वासप्ततिस्तु वन्ध्यायां चतुः पष्टीरणाध्वनि ॥" (ज्योतिस्तस्व)

	<b>३</b> १	३२	३२	३२	
३२	१	૮	E	१४	३२ सुखप्रद्वचक
३२	११	१२	as.	દ્	३२ इसे वोल <del>बा</del> लमें
३२		વ	<b>ફ</b> ધ	۷	:   ३२ वत्तीसा घर
३२	१३	१०	ધ	8	३२ पूरण कहते हैं।
	३२	३२	<b>३</b> २	३२	•

जिस कार्यद्वारा जरासे भ्रृण तत्संलग्न्स्ल ( Placenta ) और आच्छादनी फिली ( Foetal membrane )-के साथ भूमिष्ठ हो कर निरपेक्षभावमें जीवनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त होता है, उसे प्रसव कहते हैं।

इसका विशेष विवरण घात्रीविधा शट्समें देखीं।

वृहत्संहितामें लिखा है, कि खियोंके प्रसविकार होनेसे वा दो तीन अथवा चार सन्तान एक वार जन्म लेनेसे अथवा हीनातिरिक्त कालमें प्रसव होनेसे देश और कुलका श्रय होता है। योड़ी, कंटनी, भेंस, गाय और हथनीके यमज उत्पन्न होनेसे वे वचती नहीं है। छः मास वीत जाने पर प्रसव वेंकृतका फल हुआ करता है। इसी-से इसकी शान्ति करना कर्च य है। शान्तिविषयमें गर्गने कहा है, उस स्त्रीका त्याग और ब्राह्मणोंको कामना- जुरूप दान तथा चतुष्पाद जन्तुओंको परमूभिमें छोड़ देना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे नगरस्वामी और अपने दलका अनिष्ट होता है।

वृहजातक आदि उयोतिप्र न्थोंमें प्रस्तीको कष्ट प्रसच वा सुखप्रसच आदिका विस्तृत विचरण लिखा है। प्रसचक (सं० पु०) प्रसचे न पुष्पादिना कायित शाभते इति कै-क। पियारका वृक्ष, चिरौंजीका पेड़। प्रसचन (सं० क्ली०)१ आनयन, लाना।२ वचा जनना। ३ गर्भ धारण।

Vol. XIV. 164

पसववन्धन (सं० क्ली०) प्रसवानां पुष्पफलानां वन्धनं यत । वह पतला सींका जिसके सिरे पर पत्ता या फूस लगता है, नाल ।

प्रसववेदना (सं० स्त्री०) पूसवजन्यवेदना, वह दर्द जो वचा जननेके समय होता है।

प्रसवस्थली ( सं॰ स्त्री॰ ) पुसवस्य स्थलोव । १ उत्पत्ति-स्थान, माता । २ नाटक ।

प्रसविता (सं० ति०) १ जन्म देनेवाला उत्पादक। २ अनुज्ञाकर्त्ता, हुकुम देनेवाला। (पु०) ३-पिता, वाप। प्रसवितः (सं० पु०) प्रभविता देखो।

प्रसविती (सं० स्त्री०) प्रसवितृ-स्त्रियां ङीप्। १ जन्म देने-वाली। २ माता।

प्रसविन् (सं॰ स्त्री॰) पु-सू-शीलार्थे इनि । १ प्रसवशील । २ उत्पादक, जन्मदाता ।

प्रसिवनी (सं० ति०) उत्पन्न करनेवाली, जननेवाली।
प्रसिवात्थान (सं० क्ली०) यज्जवेंदका सप्तद्श परिशिष्ट।
प्रसिव्य (सं० ति०) पृगतं सव्यादिति। १ पृतिकूल। २
पृसवनीय। (पु०) ३ वाई ओरसे परिक्रमा करना।
प्रसिह (सं० पु०) प्रसिहतीति-प्-सह-अच्। वे पश्ली, जो
भपाटा मार कर अपना भक्ष्य या शिकार पकड़ते हैं।
जैसे, कीआ, गीध, वाज, उल्लु, चील, नीलकएठ इत्यादि।
वैद्यकमें इन पश्लियोंका मांस उष्णवीयं माना गया है।
जो इनका मांस खाते हैं, उन्हें शोव, भस्मक और शुक्रक्षय रोग हो जाता है। २ अमलतास।

प्रसहन (सं॰ पु॰) पृगतं सहनं सहागुणो यस्मात्। १ हिंस्नपशु, हिंसक पशु। २ आलिङ्गन । प्र-सह-भावे-ल्युट्। ३ सहन । ४ क्षमा। (बि॰) ५ पृसहनयुक्त, सहन-शोलता।

प्रसहा (सं० स्त्रीं०) प्र-सह-अच्-टाप् । वृहतिका, कटाई । प्रसत्य (सं० अव्य०) पूकर्षण पोढ़ा इति पू-सह-काचो-व्यप् । १ हठात् वलात्कार । (ति०) पूसोह् शक्य इति पू-सह-यत् । २ जो अच्छो तरह सहन कर सके । प्रसहाचीर (सं० पु०) प्सद्य वलात्कारेण चौरः । हठात् चौर्यकारी, जवरदस्ती माल छोननेवाला ।

प्रसिद्यहरण (सं० क्ली०) प्रसद्य वलात्कारेण हरणं । १ वल-पूर्व क हरण, जवरदस्ती हर ले जाना । जैसे क्षतिय कम्यासीकी हरण करते थे ।

प्रसहन् (सं० वि०) पृ-सह-वितप्। पृसहनकर्ता।
प्रसातिका (सं० स्रो०) सो-नाशे-भावे-किन्, पृगता साति-र्नाशो यस्याः कप्। अनुत्रीहि, सावां। इस धानके तण्डुल द्वारा श्राद्धादि करनेसे पितृगण परितृत्त होते हैं।

"श्यामाकराजश्यामाकौ तद्वच्चैव पूसातिकाः। नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये॥" ( मार्कपु० ३२।६ )

प्रसाद (सं० पु०) प्र-सद-वज्। १ प्रसन्नता, खुशी। २ नैमंत्य, खच्छता। ३ अनुप्रह, रूपा। ४ खास्थ्य, तंदुकरतो। ५ गुरुजन सुकाविशए, गुरुजन आदिको देने पर वची हुई वस्तु जो काममें लाई जाय। ६ वह पदार्थ जिसे देवता या वड़े लोग प्रसन्न हो कर अपने भक्तों या सेवकोंको दें। ७ भोजन। ८ शब्दालङ्कारके अन्तर्गत एक वृत्ति, कीमलवृत्ति । ६ काव्यका गुणमेद, रसका धममेद। रस हो काव्यका प्राण है। जहां पाठमावसे ही अथंवोध होता है अथंच विषेत विषयके सम्बन्धमें चित्तमें स्थायिभाव अङ्कित होता है तथा ग्राम्य या जटिल शब्दोंका प्रयोग नहीं रहता, वहां प्रसाद-गुण होता है।

स्दी लकड़ीमें आग लगानेसे वह जिस प्रकार तुरत सुलग जाती है, उसी प्रकार जिस रचनाके सुनते ही चित्त आकृष्ट हो जाता है, वही प्रसादगुण है। इसमें जो सव शब्द प्रयुक्त होंगे उनका अर्थवोध सुनते ही हो जायगा। महाकवि कालिदासकी रचना प्रायः प्रसादगुणविशिष्ट है।

१० धर्मकी पत्नी मूर्त्तिसे उत्पन्न एक पुत । ११ दैवनेवेद्य, वह वस्तु जो देवताको चढ़ाई जाय । देवताके उद्देशसे जो उत्सगे किया जाता है, वही पोछे भकोंके निकट प्रसाद समका जाता है। हिन्दू, वौद्ध, खृष्टानं, मुसलमान आदि सभी जातियोंके निकट उपास्य देवका प्रसाद वड़े ही आदरकी वस्तु है। श्रीक्षेत्रके जगन्नाध-का प्रसादान्न महाप्रसाद कहा जाता है। अन्य स्थानोंमें अन्य देवका प्रसादान्न यदि ब्राह्मण भिन्न अन्य जाति छू छे, तो वह अपवित्र हो जाता है; परन्तु इस महा-प्रसादमें चैसा दोप नहीं समका जाता। स्खा हो, या वासी हो या किसी जातिसे स्पृष्ट भी क्यों न हो, वह महामहामसाद पवित्र और वैष्णवोंके निकट दुर्लभ सामग्री है।

वीदलोग भी बुद्धके उद्देशसे सभी जगह अनुका भीग चढ़ाते हैं। प्रोमके सुय-सनदी बुद्धमन्दिरके निकट जी पहाड़ है उस पर प्रसादान देरके देरमें पड़ा हुआ देखा जाता है। हिन्दू लोग प्रसाद की कभी भी अवहेला नहीं करते। प्रसाद पाते ही वे उसे सिर पर चढ़ाते हैं।

देवताके प्रति ऋतज्ञता और भक्तिप्रदर्शनसे ही प्रसाद-को सृष्टि है। वाइवेलमें भी देखा जाता है, कि आवेल देवप्रसादलाभक्ते लिये होम और उत्सर्ग करते हैं। वाइ-वेलमें एक जगह लिखा है, कि मांसविकय-स्थानमें जो स्थानमें जो प्रसादी मांस रहता है उसे अच्छे बुरेका विचार किये ही प्रहण करना चाहिये (Corinthians, x. 52 ) फिर एक जगह ऐसा भी लिखा है, कि प्रतिमाके सामने जी उत्सुष्ट होगा, उसे कभी ग्रहण न करे। ( Act xv. 29 ) अभी कोई भी खुष्टान प्रतिमाके सामने कोई द्रव्य उत्सर्ग नहीं करते। परन्तु हित्र और मुसल-मान लोग अपने अपने इप्रदेवके उद्देश्यसे कुरान निर्दिष्ट पशुका मांस निवेदन करके उसे प्रहण करते हैं। मुसलमानींका 'हलाल करना' है। आज भी युरोपमें जहां हिंघ लोगोंका वास है, वहां व्यवहार्य पशु चिहित किया रहता है। निविद्ध पशुका मांस जिससे किसीको न मिले, इसके लिये पशुवधकालमें एक हिव्याजक वहां खड़ा रहता है। यह याजक निहत पशुकी मांसे पर चिह्न दे कर 'कोआर' अर्थात् शास्त्रके मतसे व्यवहार्य, ऐसा लिख देता है। जहां इस प्रकारका प्रसादी मांस पकाया जाता है, वहां अच्छी सफाई रहती है। शाक और वैध्यव लोग भी प्रसादान्नके रन्धनस्थानमें किसीको भी घुसने नहीं देते।

प्रसादक (सं० ति०) १ अनुप्रहकारक । २ निर्मेछ । ३ प्रसन्न करनेवाला । ४ प्रीतिकर । (पु०) ५ प्रसाद । ६ वास्तुक, वशुपका साग । ७ देवधान्य, देवधान ।

प्रसादन ( सं॰ क्लो॰ ) प्रसादयतीति प्र-सद्द-णिच् -्ल्युट् । १ अन्न, अनाज । २ प्रसन्न करना । ( त्नि॰ ) ३ प्रसन्न करनेवाला, प्रसन्नता देनेवाला ।

प्रसादना ( सं॰ स्त्रो॰ ) प्र-सद-णिच्-युच्-टाप् । परि-चर्या, सेवा ।

प्रसादनीय ( सं ० ति०) प्र-सद-णिच -अनीयर् । प्रसादन-योग्य, प्रसन्न करने लायक । प्रसादपट्ट ( सं ॰ पु॰ ) सम्मानस्चक पट्टमेद । दो उँ गली विस्तृत पट्टका नाम प्रसादपट्ट है । यह प्रसादपट्ट सेना-पतिको लिये शुभजनक माना गया है ।

प्रसादपुर—अयोध्या प्रदेशके रायवरेली विभागके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह रुई नदीके उत्तर अवस्थित है। यहां वहुवेगमकी राजधानी थी। १७८३ ई०में यह स्वतन्त्र प्रशासक्ष्यमें गिना जाता था।

२ उक्त विभागका सदर । इसके समीप प्राचीन भग्नावरोष देखनेमें आता है । इनमेंसे इन्दू-व्यक्तिय राजाओंकी प्रचलित मुद्रा और ध्वंसावशेष दुर्गादि उन्लेखयोग्य है।

प्रसादवत् । सं ० ति ० ) प्रसाद-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । १ प्रसादयुक्त, अनुप्रहविशिष्ट । २ प्रसन्न । स्त्रियां ङीप् । ३ समाधिमेद ।

प्रसादान्न (सं ० क्ली०) देवताके प्रसाद्सक्त अन्त ।
प्रसादिन (सं ० ति०) १ प्रीतिकर । २ शान्तिकर । ३
शान्त । ४ अनुप्रह करनेवाला, कृपा करनेवाला । ५
निर्मल, स्वच्छ । (स्त्री०) ६ देवताओंको चढ़ाया हुआ
पदार्थ । ७ नैवेच । ८ वह पदार्थ जो पूज्य और वह लोग
छोटोंको दे, वड़ोंकी देनी । ६ देवताको वलि चढ़ाए
हुए पशुका मांस ।

प्रसाद्य (सं० वि०) प्रसादनयोग्य।

प्रसाधक (सं ० ति ०) प्रसाधयित प्र-साधि-ण्युल् । १
भूषक, अलंकत करनेवाला । २ सम्पादक, सम्पादन करनेवाला । ३ राजाओंको वस्त्र आभूषणादि पहनानेवाला ।
प्रसाधन (सं ० क्ली०) प्रसाध्यतेऽनेनेति प्र-साध-ल्यु ट् ।
१ वेशा । २ कङ्कतिका, कंघी । ३ अलङ्कार, श्रङ्कार । 8
सम्पादन । ५ महावला लता । (ति ०) ६ प्रसाधियता ।
प्रसाधनी (सं ० स्त्री०) प्रसाध्यतेऽनयेति प्र-साध-ल्यु ट्
ङोप् । १ सिद्धि । २ कङ्कतिका, कंघी ।

प्रसाधिका (सं क्झी ) प्रसाध्यति निष्पाद्यति प्र-साध्-ण्वुल्, टापि अतइत्वं । १ नीवारधान्य, निवार धान । २ अप्रवीहि, सार्वा । ३ वेशकारिणी स्त्री ।

प्रसाधित (सं० ति०) प्र-साधि-कः। १ अलंकत, सजाया हुआ। २ प्रकृष्ट निष्पन्तः।३ निष्पादितः। प्रसाध्य (सं० ति०) प्र-साधि-यत्।१ प्रसाधनयोग्य। (क्की०) २ पराजयः। प्रसार (सं ० पु०) प्र-स्-घञ्। १ विस्तार, फैलाव। २ तृणकाष्टादिका प्रवेश। ३ इतस्ततः गमन, इधर उधर जाना। ४ गमन, जाना। निगम, निकास। ६ सञ्चार। प्रसारण (सं ० क्ली०) प्र-स्-णिच्-ल्युट्। पांच प्रकारके कर्ममिसे एक। भाषापरिच्छदमें पांच प्रकारके कर्म वतलाये गये हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। २ परिवर्द्धन, वढ़ाना। ३ विस्तारकरण, पसारना।

प्रसारणी (सं० स्त्री०) प्रसार्थते इति प्र-सारि-ल्युट्-कीप्।
१ छताविशेष, गंधप्रसारी। इसे महाराष्ट्रमें चाँदवेली,
कलिङ्गमें हेसरणे और तैलङ्गमें गोन्तेम गोरुचेट्ट, सिवरेलचेट्ट कहते हैं। इसका गुण गुरु, वृष्य, वल और
सन्धानकर, वीर्थवर्द्ध क, उष्ण, वातनाशक, तिक्त, वात,
रक्त और कफनाशक है। राजनिघण्डुके मतसे इसका गुण—
गुरु, उष्ण, तिक्क, वात, अर्थ और श्वयधुनाशक तथा मलविष्टम्भहारक। संस्कृत पर्याय— सुप्रसरा, सारिणी,
प्रसरा, चारुपणीं, राजवला, भद्रपणीं, प्रतानिका, प्रवला,
राजपणीं, भद्रवला, चन्द्रवल्ली, प्रभद्रा। २ सेनाका लूटपाटके लिये इधर उधर जाना।

प्रसारित (सं ० त्नि०) विस्तृत, फैलाया हुआ । प्रसार्थ ( सं० त्नि० ) प्र-स्-ण्यत् । प्रसारणयोग्य, फैलाने लायक ।

प्रसारिणी (सं॰ स्त्री॰) १ गन्धप्रसारिणी लता ।२ लजालु लता, लाजवंती । २ देवधान्य, देवधान ।

प्रसारिन् (सं० ति०) प्रसरतोति प्र-स्-णिनि । १ प्रसरण-शील, फैलनेवाला । पर्याय—विस्तवर, विस्मर, विसारी । प्रसाह संपु०) १ पराजय । २ आत्मशासन ।

प्रसित (सं क्ली ) प्र-सो-क। १ पूय, पीव, मवाद।

(ति०) २ आसक ।

प्रसिति (सं० स्त्री०) प्रसिनोति वध्नात्यनयेति, प्र-सि-करणे-किन् । १ वन्धनसाधन रज्जु निगड़ादि, रस्सी । २ ज्वाला, लपट । ३ प्रवन्धन । ४ रिम ।

प्रसिद्ध (सं० ति०) प्रसिध्यतीति प्र-सिध-गत्यर्थेऽति क । १ भूषित, अलंकृत । २ विख्यात, भशहूर । ३ उन्नत ।

प्रसिद्धक (सं० पु०) १ जनकवंशीय राजमेद, मरुके पुत और कीर्त्तिरथके पिता। २ प्रसिद्ध देखी।

प्रसिद्धता (सं॰ स्त्री॰) प्रसिद्ध-तल्-राप् । स्याति, प्रसिद्धकाः भाव या धर्मे ।

प्रसिद्धि (सं० स्त्री०) प्र-सिध्-किन् । १ ख्याति । २ भृषः, सिगार ।

प्रसिद्धिमत् (सं॰ ति॰) प्रसिद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। प्रसिद्धिः युक्त।

प्रसुत् (सं० ति०) प्रवाहशील ।

प्रसुत (सं० ति०) १ उत्पन्न । २ दवा कर निचोड़ा हुआ । (क्की०) ३ संख्याभेद ।

प्रसुप् ( सं० ति० ) शतुओंका निद्राकारक।

प्रसुप्त ( सं॰ ति॰ ) प्र-खप-क । निदित, खूव सोया हुआ । प्रसुप्ति ( सं॰ स्त्री॰ ) प्रकृष्टा सुप्तिः वा प्र-सुप्-किन् । उत्तस निद्रा, गाढ़ी नींद ।

प्रसुव ( सं॰ पु॰ ) निर्यासन ।

प्रसुश्रुत (सं॰ पु॰) मरुराजका पुत्रभंद ।

प्रस् (सं श्लो ) प्रस्ते इति प्र-स्- (विश्वक्षिते। प्र ३।२।६१) इति किए। १ माता, जननी। २ घोटकी, घोड़ी। ३ कदली, केला। ४ वीरुत् लता। ५ नरम घास। ६ कुश। (ति०) प्रसवकती, उत्पन्न करनेवाली।

प्रस्का (सं० स्त्री०) प्रस्रेव प्रस्-सार्थे-कन्। १ वाजिनी, घोड़ी । २ अध्वरान्धा, असगन्ध ।

प्रस्त (सं वि वि ) प्र-स् कर्त्तरि-क । १ सञ्जात, उत्पन्त । २ उत्पादक । (पु वे) ३ चाक्षुप मन्वन्तरमें देवगणमेद । १ कुसुम, फूळ । ५ एक रोगका नाम जो स्त्रियोंको प्रसवके पीछे होता है । इसमें प्रस्ताको ज्वर होता,है और दस्त आते हैं ।

प्रसूत (हिं पु॰) एक रोगका नाम जिसमें रोगीके हाथ और पैरसे पसीना छूटा करता है।

प्रसूता (सं० स्त्री०) प्रसूतेस्म इति पू-सू-कर्त्तरि-क । १ जातसन्ताना, वह स्त्री जिसे वचा जना हो । पर्याय— जातापत्या, पूजाता, पूस्तिका । २ घोटकी, घोड़ी ।

प्रस्ति (सं० स्त्री०) पू-स्यते इति पू-स्-क्तिन् । १ प्सव, जनन । पू-स्-भावे-किन् । २ उद्भव । ३ तनय, वेटा । १ - दुद्दिता, वेटी । ५ सन्तित, अपत्य । ६ कारण, पृष्ठति । ७ उत्पत्तिस्थान । ८ जातपुसवा स्त्रो, वह स्त्रो जिसने पुसव किया हो। ६ दश प्रजापतिकी स्त्रीका नाम जिनसे सती-का जन्म हुआ था।

पृद्तिका (सं॰ स्त्री॰ ) पृद्धतः स्तोऽस्या अस्तीति ठन् । पृद्धता, वह स्त्री जिसे वशा हुआ हो ।

पृस्तिज (सं॰ हों।॰) पृस्तिरुक्तयमारम्पेत्यर्थः जायते रति जन-ड । १ दुःख । (ति॰) २ पृसचजातमात ।

प्रस्त ( सं॰ क्वी॰ ) पृस्ते स्मेति पृ-सू-क्त, ओदित्वात् निष्ठा तस्य नत्वं । १ पुष्प, फूछ । २ फछ । ३ अर्कवृक्ष, मदार । ४ घोड़ेका मुखका एक रोग । ( ति॰ ) ५ जात, उत्पन्न ।

प्रस्नक (संव क्षीव) १ प्रस्न, फूल । २ मुकुल, कली ।

प्रस्तवाण ( सं० पु० ) कामदेव ।

प्रस्तरससंम्भवा (सं० स्त्री०) पुष्पशकरा । प्रस्तेषु (सं० पु०) प्रस्तां पुष्पं इपुर्वाणो यस्य । काम-देव ।

प्रसूमन् ( सं० ति० ) पुष्पविशिष्ट । प्रसूचन् ( सं० ति० ) फलगुक्त ।

प्रस्त (सं वि कि ) प्र-स्य-क । १ प्रवृद्ध, वढ़ा हुआ । २ प्रसारित, फैला हुआ । ३ विनीत, नम्न ) ४ नियुक्त, तत्पर । ५ प्रेरित, भेजा हुआ । ६ प्रचलित । ७ इन्द्रियलोलुप, लंपट । ८ गत, गया हुआ । (पु०) ह अर्द्धा अली, गहरी की हुई हथेलो । १० हथेली सरका मान, पसर ।

प्रसृतज (सं॰ पु॰) महाभारतके अनुसार एक प्रकारका पुत जो व्यभिचारसे उत्पन्न हो, जैसे, कुएड और गोलक।

प्रस्ता (सं क्षी ) प्र-स्र-क, टाप्। जङ्गा, जांघ। प्रस्ति । सं व स्त्रो । प्र-स्र-किन्। १ विस्तार, फैलाव। २ सन्तित, सन्तान। ३ अर्डाञ्जल, गहरी की हुई इथेली। ४ सोएह तोलेके वरावरका मान।

प्रस्ए (सं० ति०) प्र-स्ज-क । १ प्रकर्षस्पसे सृष्ट, उत्पन्न । २ व्यक्त, परित्यक । ३ क्लेशित, दुःखित । (स्त्री०) ४ प्रस्ता संगुलि, फैली हुई उंगली ।

प्रसृप्त (सं० स्त्री०) युद्धका एक दांव।

प्रसेक (सं ॰ पु॰) प्रसेचनमिति प्र-सिच्-धन्। १ सेचन, सींचना। २ निचोड़, निसोध। ३ छिड़काव। ४ नसाध्यरोग, जिरियान। ५ द्रव पदार्थका वह अंश जी Vol. XIV. 165 रस रस कर टपके, पसेव। ६ त्ररक्षके अनुसार मुंहसे पानी छूटना और नाकसे श्लेप्मा गिरना।

प्रसेकता (सं क्षी ) प्रसेकस्य भावः तळ्-राप्। १ प्रसेकका भाव या धर्म। २ वमनादि समयमें क्लेप्मा भारता।

प्रसेकिन् (सं० पु०) प्र-सिच्-वाहु० घिणुन्। १ प्रसे-चनशील । २ प्रसेकयुक्त । ३ व्रणमेद । ४ असाध्य-रोगमेद ।

प्रसेदिका ( सं॰ स्त्री॰ ) क्षुद्राराम, छोटा उपचन । प्रसेदिवत् ( सं ० त्नि० ) प्र-सद्-कत्तंरि-कसु । प्रसव । 🦈 प्रसेन (सं॰ पु॰) अनमित्रके पीत क्षतियराज सताजित्के पक भाईका नाम। सत्ताजित्के पास एक मणि था। उस मणिका मुकावला करनेवाला उंसं समय और कहीं भी न था। एक दिन प्रसेन उसी पहन कर शिकार खेलने गये। बहां एक सिंह उन्हें मार मणि ले कर चला। अपनी गुफार्मे वह घुसना ही वाहता था, कि उसी समय जाम्बवान वहां पहुंचा और उसे मार कर मणि छीन ली। उस मणिको जाम्यवान्ने अपने लड्के को खेळनेके लिये दे विया। सताजित्ने प्रसेनजित्के न आने पर कृष्णचन्द्र पर यह अपवाद छगाया, कि उन्होंने प्रसेनको मणिके छोभसे मार ाला है। रूप्ण-चन्द्र इस अपवादको मिद्रानेके लिये जङ्गलमें गये । उन्हीं-ने मार्गमें प्रसेन बीर उसके घोड़े को मरा पाया । आगे चलने पर सिंह भी मरा हुआ मिला। भी आश्वर्यान्वित हुए। दूं दृते हुए वे आगे वद्दे और एक गुफामें उन्हें जाम्बबान मिछा। ऋक्षराजने उन्हें अभोष्टदेव जान कर अपनी कल्या जाम्बयतीको मणिके साथ अर्पित किया। कृष्णचन्द्र मणि और जाम्बवतीको ले कर आए और उन्होंने सताजित्को मणि दे कर अपना कलङ्क मिटाया। ( नागवत १०१५६ अ० ) यदि कोई नप्ट-चन्द्रके दिन हठात् चन्द्रदर्शन करे, तो दूसरे दिन सवेरे इस मणिहरण-वृत्तान्तका पाठ कर छेनेसे उसका पाप जाता रहता है। भागवतके १०।५६ अध्याय और हरि-वंशमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रसेनजित् (सं॰ पु॰) १ नृपभेद् । प्रधन देखी । २ कोशळाधिपति रक्ष्याकुवंशीय एक राजा । इनके पिता- का नाम सुगन्धि था। इन्होंने भी अजातशित्रु बुद्धको देखा था। ३ जैनधर्मप्रवर्शक पाश्येनाधदेवके श्वशुर एक राजा। ४ श्रावस्तिके अधिपति।

प्रसेव (सं०पु०) प्रसीव्यतेस्मेति प्र-सिव (अवर्तर चेति। प ३।३।१६) इति घञ्। १ वीणाङ्ग, वीनकी तुंवो। २ कपड़ेकी थेळी, थेळा। ३ प्रकृष्ट सेवन। (बि०) ४ स्यूत, सीया हुआ। ५ प्रथित, प्रसिद्ध।

प्रसेवक (सं०पु०) प्र-सिव-ण्बुल् वा प्रसेव एव स्वार्थे कन्। १ वीणाप्रान्तचककाष्ठ, वीनकी तूं वी। इसका पर्याय ककुभ है। २ स्तकी थैली, थैला। ३ थैली वनानेवाला पुरुष।

प्रस्कण्व (सं० पु०) प्रगतं कृण्वं पापं यस्मादिति (१६१०वहिन्धावृति । ता ६। । १५३) इति सुट्। ऋषिविशेष । ये
वैदिक सम्ध्याके अन्तर्गत सूर्योपस्थानमन्त्रके ऋषि थे ।
प्रस्कन्दन (सं० क्ली०) प्रस्कन्द-ल्युट्। १ विरैचन, जुलाव ।
२ महादेव । ३ अतीसार रोग । ४ आस्कन्दन । ४ आस्क न्दनका अपादान ।

प्रस्कन्ति (सं पु ) संग्रहप्रहणी रोग ।
प्रस्कन्त (सं वि ) प्रकर्षेण स्कन्नः, प्रादिसः । पतित,
समाजका नियम भङ्ग करनेवाला । २ गिरा हुआ । (पु ०)
३ अश्वरोगविशेष, धोड़ेका एक रोग । इस रोगमें
घोड़ेकी छाती भारी हो जाती और शरीर स्तब्ध हो
जाता है, तथा जब वह चलता है, तब कुबड़ेकी तरह

हाथ पैर वदोर कर चलता है।

प्रस्कुन्द (सं 0 पु 0) प्रगतः कुन्दं चकं, अत्यादिसं, पार-स्करादित्वात् सुट्। कुन्दाच्य चकाकार वेदिका। प्रस्खलन (सं 0 क्की 0) प्रकृष्टक्तपसे स्खलन, पतन। प्रस्तर (सं 0 पु 0) प्रस्तुणाति आच्छाद्यति यः, प्र-स्तु पचाद्यच्। शिला, पत्थर। पर्याय--प्रावन, पाषाण, उपल, अश्मन, दूशत्, दूषत्, पादारुक, पारटीट, मन्मरु, काचक, शिला।

थोड़ से पत्थर खरडोंके एक जगह रहनेसे गएडशैलकी और बहुतसे पत्थरोंके एक जगह रहनेसे पर्वतादिकी उत्पत्ति है। मट्टोका स्तर किस प्रकार जलवायुके प्रभावसे कठिन हो कर प्रस्तराकारमें रूपान्तरित होता है उसका विवरण पर्वत शब्दमें सविस्तार लिखा है। पर्वत है हो। वर्षां अविरत जलकोतसे तथा सामयिक भीषण तूफानसे शिलाखएड पर्वत परसे भौत वा विच्युत हो कर नीचे गिर पड़ता है। इस प्रकार पहुवर्षव्यापी संघर्षणसे खएड खरडाकारमें विचूर्ण पर्वतका ही पत्थर अभिधान हुआ करता है। समय समय पर पर्वतको काट कर हम लोग आवश्यकतानुसार जो शिलाखएड प्रहण करते हैं उसे ही अकसर पत्थर कहते हैं।

पत्थरके प्रधानतः दो मेद हैं—१ सिंच्छद्र (pervious) अर्थात् जिसमेंसे जल निकलता है और २ छिद्रहीन (Inpervious) अर्थात् जिसके भीतर जल घुसने नहीं पाता (जैसे कर्दम आदि)। उक्त दोनों श्रेणियोंके मध्य अवस्थान्तरमेदसे पत्थरके नानारूप विभाग और नामसंज्ञा हुई है। आग्नेयगिरि-निःस्त उस्त और गलित सावादि शीतल हो कर प्रस्तराकारमें एरिणत होता है, उसे आग्नेयप्रस्तर (Igneous rock) कहते हैं। जलमध्यियत परमाणुसमष्टि अपनी शक्ति जम कर किन हो जाती है। जलगभ में उत्पन्न होनेके कारण इस पत्थरका जलज वा पिल य (Aqueous दा Sedimentary) नाम पड़ा है। वह पिलमय भूखण्ड दृद्धीभूत हो कर पीछे प्रस्तर-स्तर (Stratified rocks)-में क्रपान्तरित होता है।

पूर्वोक्त स्तरके मध्य निहित जीवदेहके प्रस्तरीभूत कङ्कालको उस जोवकी 'प्रस्तरास्थि' (Fossils, कहते हैं। कोई कोई पत्थर विशिष्ट जलवायुके गुणसे परिवित्तत हो कर स्फिटिक (कांचकी तरह) का आकार धारण करता है। इसीका नाम Pebble है। १)

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें लाल, नीला, जर्ड आदि विभिन्न वर्णोंका पत्थर पाया जाता है। घर वनाने, प्रति-मूर्त्ति गढ़ने और अलङ्कारादि प्रस्तुत करनेमें ये सव पत्थर; विशेष उपयोगो हैं। दिल्लोंके समीपदेशवत्तीं लाल पत्थर, नर्मदा, गोदावरी और कृष्णा तीरवत्तीं श्लेट, रेतीला और मर्मर पत्थर, हिन्दूमिन्दर्शादका वेसिल्टिक ग्रीन्छोन, ब्रह्म-का मर्मर (बुद्धमूर्त्ति वनानेके लिये प्रशस्त), गृव्वा पर्वत-का मर्मरके समान श्वेत पत्थर, जयपुरका वरतन वनाने-का सफेव पत्थर और कैमुर गिरिश्रेणोंका पत्थर तथा

<sup>(</sup>१) इसीसे प्रसिद्ध पाथरका चश्मा बनता है।

चैनपुर, सासेरम, तिलोह और अकवरपुरके निकटवर्ती प्रदेशोंका पत्थर कलके जांता, नदीके पुल, घर, देवदेवी की मृत्ति आर जयस्तम्मादि वनानेमें व्यवहृत होता है। भारत, अमेरिका वा यूरोपवासियोंने जब धातुनिर्मित अखशस्त्रका व्यवहार करना नहीं सीखा था, उस समय आदिम जातिके लोग एकमात पत्थरके अखसे ही अपने सभी आवश्यकीय कार्य चलाते थे। उन सव पत्थरोंके वने हुए कुन्हाड़ी, छूरी और तीरके फलकका निदर्शन जगत् के नाना स्थानोंमें पाया गया है।(२)

प्राचीनकालके राजगण प्रस्तरफलकमें राजकीय विशेष कार्यवली लिपिबद्ध करते थे । राज्यजय, ग्रामदान, मन्दिर उत्सर्ग और साधारण दानकी पत्रलिपि (सनद) खरूप यह प्रचलित था।

प्राचीनतम राजाओंके कोत्तिक गए, उनके प्रवर्त्तित अनुशासन और विभिन्न घटनाओंका उल्लेख करते हुए जो उत्कीर्ण प्रस्तरफलक देखे जाते हैं, उन सभी शिला-फलकोंमें तत्सामयिक घटना वा उन सव वंशातुचरित भी कीर्त्तित रहता है। मौजेसने एक प्रस्तर-फलकमें ईश्वरकी १० अनुश्चा ( Ten commandments लिपिबद्ध की थी। पिकिन महानगरीके कनफुची-मन्दिर-में १० ढकारुति प्रस्तरखएडके ऊपर कविता लिखी है। प्रवाद है, कि सान और यौके समयमें वे सव फलक प्रति ष्टित हुए थे । वीद्ध सम्राट् अशोक अपनी कीर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिये तथा अपने धर्मानुशासनका प्रचार करनेके लिये पर्वतगात पर अनुशासनसमूह (Edict) उत्कीर्ण कर गये हैं। विस्तृत विवरण विकालिपि और त्रियदर्शी प्रमृति गर्नों देखो । रेतोले पत्थर ले कर हो पर्वतकी सृष्टि हैं सो नहीं। हिमालय पर्वत जिस पर्वतराशिसे गठित वन्ध्यागिरिमें वह नहीं है, उसका उपादान पकदम खतन्त है। जिस प्रकार मट्टी फठिन हो कर पत्थरमें परिणत होती है, उसी प्रकार कालक्रमसे और जलवायुके गुणसे तथा पार्श्वस्थ मृत्तिकारसके विशेपत्व• के कारण साधारण पत्थर रूपान्तरित हो कर मूल्यवान्

हीरक और वैदुर्याद मणिरत (Precious stones)में परिणत होता है।

जव हीरकादि मूल्यवान् मणि अथवा अपेक्षाकृत अरुपमूल्यके प्रस्तरादि स्वांभाविक अवस्थामें अर्थात् पर्वं तगहरस्थ खानमें वा पर्वं तगालमें निवद रहते हैं, तव वे मनुष्यके किसी काममें नहीं आते। उन्हें काममें लानेके लिये आवश्यकतानुसार काटना होता है। श्वेत, रेतीले वा दानेदार पत्थरको गृह-निर्माणके उप-योगो वनानेके लिये गोलाकार, लम्बे, तिकोण वा चतु-रस्र भावींमें कारते हैं। जल और वालुके योगसे करात-यन्त्र द्वारा एक वृहत् प्रस्तरखएडको सौ तह करके काम-में लाते हैं। कटोरे, गिलास, आदि पात छेनी यन्तकी सहायतासे इच्छानुसार खोदे जा सकते हैं। मन्दिरगाल-में संन्यस्त प्रस्तरफलक Slab)-के ऊपर उत्कीर्ण शिल्प-कार्य और चारुचित समूह तथा मिन्न मिन्न देवदेवियों-की मूर्त्ति और मनुष्यकी प्रतिकृति भास्करविद्याका प्रकृष्ट निदरान है। आक्करविद्या देखी।

खोदित शिल्पके द्वारा जिस प्रकार मोदे पत्थरकी श्रीवृद्धि होती है, उसी प्रकार हीरकादि मणिके पलको काट कर उसे उज्ज्वल बनाते हैं। हीरक, चूण, पन्ना, मरकत, नील, गाणेंट आदि मणियोंको पल काटनेसे औज्ज्वल्य और मूल्य वृद्धि होती है। उन्हें आवश्यकता- उसार काटनेके लिये दो तीन प्रकारकी कलें आविष्कृत हुई है। हीर देखों।

स्परोमणि ( Alchemist's stone ) नामक एक और प्रकारके पत्थरकी वात सुनी जाती है । उसका गुण है अपरापर धातुओंको सुवर्णमें परिणत करनां; किन्तु यह पत्थर है वा नहीं, इस विषयमें छोगोंको अब तक सन्देह है।

चुम्बक (Load-stone) नामक एक और प्रकारका पत्थर है जो अपने गुणसे दूरस्थित छौहादिको आकर्ष ण करता है। वैज्ञानिकोंने उस शक्तिको वैद्युतिक वत-छाया है। समुद्रगर्भमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें यह पत्थर पाया जाता है। छोहेमें इस एत्थरको घिसनेसे उस छोहे-में भी चुम्बकको शक्ति आ जाती है।

जगत्के सभ्य और असभ्य जातियोंके मध्य गिला-

<sup>(</sup>२) मि० वजानकोर्ड, छेफ्टेस्टनेस्विनी, सार्जन गिमरोज सर अलेकसन्दर, कानेहम आदि महोद्योंने स्वप्रणीत प्रन्थमें इसका यथेष्ठ प्रमाण हिया है।

बुजाकी विधि प्रचलित थी । सुसम्य यूरोपलएडमें पहले प्रस्तर-पूजाका जैसा समाद्र था, भारतके नाना स्थानोंमें भी उसी प्रकार पूजावाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। भारतमें पौत्तलिकताका स्रोत प्रवल होनेसे नाना प्रकार-की देवमूर्त्तिगठन और विव्ननाशके लिये नाना देवताओंकी कल्पनाका प्रयोजन होता है। इस कारण भारतमें जगह जगह सुसभ्य जातिमें भी खोदित प्रतिमूर्त्ति और अखो-दित सिल लोढेकी पूजा प्राम्य देवताक्रपमें प्रचलित है। गएडकीशिला ले कर शालव्रामह्नपमें नारायणकी पूजा, वर अश्वतथ आदि वृक्षोंके नीचे लोहे रख कर उसमें सिन्द्र और चन्दनलेपन पूर्वक शिव पञ्चानन्द आदि देवताओंकी पूजा, मनसावृक्षके नीचे लोढे रख कर मनसावेवीकी वह लोढ़ा-पत्थर पूजा, षष्टी पूजा आदि होती है। नदीमेंसे निकाला जाता है अथवा प्रस्तर खएडसे प्रस्तुत होता है। अलावा इसके खोदितप्रस्तर पर शिव, ब्रह्मा, विष्णु, दुर्गा, कालो, तारा आदि शक्ति मूर्चि, लक्त्रो, सर-स्वतो, इन्द्र, यम, राम, कृष्ण और बुद्धमूर्त्तिको भी पृजा देखी जाती है।

भारतीय आयों के सिवा अनायों में भी इस प्रकार शिलामयी प्रतिमापूजाका निदर्शन पाया जाता है। इ हिन्न धर्मप्रन्थमें भी शिलामूर्त्तिका उल्लेख है। फिनि-कीयगण एक अखएड पत्थर पर किसी एक देवमूर्त्तिकी पूजा करते थे। धर्मप्रवर्त्तिक महम्मदके आविर्भावके समय तक अरवी लोग एक खएड काले पत्थरकी पूजा करते आ रहे थे, पीले वह पत्थर कन्नकी दोवारमें गाड़ दिया गया। जूनानगरमें भी इस प्रकारका एक और पवित्व पत्थर है। वहांके अधिवासिगण धर्मके अनुरोधसे सूर्यकी और उस पत्थरको धुमाते हैं। हिन्नाइडिसमें एक कृष्णवर्णका पत्थर है जिसे वहांके लोग जाव्रत् वतलाते हैं। समय समय पर वह पत्थर आकाशवाणी द्वारा जनसाधारणको सभी-विषय जताते हैं।

मुगलसम्राट् वावरने लिखा है, कि जामयुद्धके अभि-नयमें पारसिकोंके मध्य आत्मविवाद खड़ा करनेके लिये पेन्द्रजालिकोंने अपने अपने पत्थर (magic stone) लेकर कार्य आरम्भ किया था। (४) आज भो मध्यपिशयाकी भ्रमणशील जातिमें उस पत्थरकी गुणावलिका आदर है। तुर्कमानोंका रजिया सरदार और कीरघीज वरन्ती सरदार आज भी इस पत्थरको अपने साथ लिये फिरते हैं। विषाक्त सप वा विच्छू (Scorpions) के कारनेसे यह कुरानके फतिहा-मन्त्रकी अपेक्षा विशेष उपकारो है, ऐसा उन लोगोंका विश्वास हैं।

इङ्गलेण उदेशीय वृत्ताकार न्यस्त प्रस्तरावलाको प्रोनहें (Stone-henge) कहते हैं। वह एक प्राचीन
कीर्त्तिका निदर्शन है। दक्षिणभारतमें कृष्णातीरवर्ती अमरावती नगरके वृत्ताकारमें प्रीधित लम्बमान प्रस्तर वौद्धशिल्पका निदर्शन होने पर भी एक दूसरेके अनुहर्ष है।
वर्त्तमान प्रथासे खोदित और शिल्पयुक्त 'फ्राश' चिहितप्रस्तरस्तम्भके वदले पहले समाधिस्तम्भक्षमें शवदेहके
ऊपर जो पत्थर सजाया जाता था, उसे 'क्रमलेक'
(Cromleche) कहते थे। जिस भाग्य-प्रस्तर (Stone
of Destiny) से आयलैंगड़के राज्यगण राज्याभिषिक
होते थे, वह अभी वेष्टिमिनिष्टरके प्राचीन राजतख्तके नीचे
जड़ा हुआ है।

पहले यूरोपखएडमें राजाओंको पत्थर पर विटा कर जैसी वड़ी धूमधामसे अभियेक करानेकी प्रथा थी, राजपूत राजाओंमें भी वैसा ही राज्याभियेक देखा जाता है। इस प्रकारका प्रस्तरसिंहासनाभियेक कानान जातिके मध्य (Canaanitish of origin) प्रचलित था। खीडन और दिनेमारके राजगण गोलाकार पत्थर पर अभियेक होते। हैं अविमेलेकराज(King Abmelech) साचेमके स्तम्म पर( Pillers of Shechem) और जेहोयस ( Jehoash ) प्रस्तरस्तम पर वैठ कर राजा होते हैं। गायल (Gael) जिस पत्थर पर वैठा करते थे, वह पवित और पेशी-शिकिविशिष्ट समभा जाता है। जैक केड (Jack Cade) ने लएडननगरका प्रस्तर खुला कर ही मर्टिमरको लएडनका राजा वतलाते हुए घोषणा कर दी थी। आइरिस सर-दारगण सम्पद्माप्तिकालमें प्रस्तर पर वैठते थे। हिरो-दोतसने पत्थर पर वीरोंके पदिचहका विषय उल्लेख

<sup>(</sup>३) पार्वतीय शादिम अनार्थ जातिकी प्रस्तर-पूजा कोट, गोंड आदि शन्दों में विद्वत हुई है

<sup>(8)</sup> Baber's Memoirs p. 450.

किया है। गयामें विष्णुपद, वृन्दावनमें कृष्णपद और | सिंहलमें वौद्धपदिवह-समृह प्रस्तर पर अङ्कित है।

कोल और बस लोगोंके मध्य स्मरणार्ध प्रस्तरखएड ( Monoliths ) रखा जाता है। हिमालय-पर्वतवासी कुनावरोंके मध्य शस्यरश्लाके लिये खेतमें प्रस्तरपूजा-विधि प्रचलित है। वह जमीन अधिक शस्यशालिनी होवे, ऐसा कह कर वे एक खएड पत्थर पर चूना और सिन्दूर पोत देते हैं। पीछे उसमें पांचों उंगलीकी छाप मार कर पूजा करते हैं। दाक्षिणात्यके उद्यानमें अथवा मैदानके किनारे वृक्षके नीचे सिन्दूर छगे हुए वहुतसे प्रस्तरवएड देखे जाते हैं। महिसुरवासी असग लोग भी शिला ले कर भूमिदेवताकी पूजा करते हैं। रेवासे ले कर वस्ता तकके विस्तृत स्थानमें सभ्य और असभ्यों-के मध्य प्रस्तरपूजा देखी जाती है । दाक्षिणात्यके वक-दार और वेतदार नामक निरुष्ट जातिके लोग अपने अपने घरमें प्रस्तरखण्ड पर भृतदेवकी पूजा करते हैं। वहांके अन्यान्य स्थानोंमें कृषक लोग शस्यक्षेतादिमें पांच खएड पत्थर सिन्दूरसे पोत कर रख देते हैं। जिन्हें वे लोग शसाक्षेतका रक्षाकर्त्ता और पञ्चपाण्डु कहते हैं। लम्पत् राज्यके वे कुनई नगरवासी एक खएड शायित पत्थरकी छाती पर एक शिलाको खडा करके धर्मह्रपमें कर उसकी पूजा करते हैं। उनका विश्वास है, कि इस देवता-के समीप अभक्तिपूर्वक जानेसे उसकी भाग्यलक्मी अप्रसन्न हो जाती है।

भारतमें जिस प्रकार हिन्दू-देवदेवियोंकी प्रस्तरमूर्ति-का विशेष आदर हैं, भीसदेशमें भी पहले उसी प्रकार जिएटर, भिनस आदि शिलामूर्तियोंकी पूजा प्रचलित थी। आज भी वे सव देवमूर्तियां देखनेमें आती हैं।

२ मिण । ३ दभैमुप्ति, डाभ या कुशका पूला । ४ पत्ते आदिका विछावन । ५ विछावन । ६ चमड़े की थैली । ७ चौड़ी सतह, समतल । ८ प्रस्तार । ६ एक तालका नाम ।

प्रस्तरण (सं० क्लो॰ '१ आस्तरण, विछावन। २ विछाना, फैलाना।

प्रस्तरणी (सं ॰ स्त्री॰) प्रस्तरस्तवाकारोऽस्त्यस्या इति प्रस्तर इति, ङीप् । १ गोलोनिका, श्वेतदूर्वा । २ गोजिक्का । Vol XIV. 166

प्रस्तरभेद (सं ॰ पु॰) पाषाणभेद, पखानभेद ।
प्रस्तरस्वेद (सं॰ पु॰) वातादिरोगमें स्वेदिविशेष ।
प्रस्तरेष्ठ (सं ॰ पु॰) प्रस्तरे तिष्ठति स्था-क, अलुक्
समासः, ततः पत्वं । प्रस्तरस्थायी विश्वदेवभेद ।
प्रस्तरोद्दभूत (सं ॰ क्ली॰) प्रस्तराल ।
प्रस्तरोपल (सं ॰ पु॰) चन्द्रकान्तमणि ।
प्रस्तव (सं ॰ पु॰) १ स्तुति, प्रशंसा । २ प्रभाव, शुम
मुद्दर्ते ।

प्रस्तान्त (सं ० क्की ०) पुरातन तं हुल, पुराना चावल । प्रस्तार (सं ० पु०) प्र-स्तु-घम् । १ तृणवन, घासका जंगल । पर्याय—तृणाटवी, ऋष् । २ पह्नवादि रचित शयनीय, घास या पत्तियोंका विछीना । ३ शय्यामाल, विछीना । ४ विस्तार, फैलाव । ५ आधिक्य, वृद्धि । ६ परत, पटल । ७ सोपान, सीढ़ी । ८ समतल, चौड़ी सतह । छन्दोशास्त्रके अनुसार नौ प्रत्ययोंमें पहला । इससे छन्दोंके भेदकी संख्या और क्पोंका ज्ञान होता है । इसके दो भेद हैं, वर्ण प्रस्तार और मालाप्रस्तार ।

प्रस्तारपङ्कि( सं ० स्त्री० ) छन्दोभेद । यह पंक्ति छन्दका एक भेद हैं । इसके पहले और दूसरे चरणोंमें वारह वारह अक्षर और चौथेमें आठ अक्षर होते हैं ।

प्रस्तारिन् ( सं० ति० ) प्रस्तारोऽस्थास्तीति इनि । प्रस्तार-युक्त, लम्या चीडा ।

प्रस्तार्थर्भन् (सं० क्की०) नेतरोगभेद, आँखका एक रोग। इसमें आँखके डेले पर चारों ओर लाल या काले रंगका मांस बढ़ आता है। चैद्यकके अनुसार इसकी उत्पत्ति सन्निपातके प्रकोपसे मानी गई है।

प्रस्ताव (सं० पु०) प्र-स्तु (प्रम्तुइ स्नुवः। पा ६१३।२०)
इति धञ्। १ अवसर। २ प्रसङ्ग, छिड़ी हुई वात। ३
प्रकरण, विषय। ४ अवसर पर कही हुई वात, जिक, चर्चा।
५ सभाके सामने उपस्थित मन्तव्य, सभा समाजमें उठाई
हुई वात। ६ सामचेदका एक अंश जो प्रस्तोता नामक
अद्यत्विक हारा पहले गाया जाता है। ७ प्राक्कथन, विषयपरिचय।

प्रस्तावन (सं० पु०) १ प्रस्ताव करनेकी क्रिया । २ प्रस्ताव करनेका भाव ।

प्रस्तावना (सं ० स्त्री०) प्रस्तावयति विज्ञापयति कार्या-

दिकमिति प्र-स्तु-णिच्-टाप्। १ आरम्म। २ नाटका। द प्रन्थमें अभिनयारम्म विषयक कथा, नाटकमें आख्यान या वस्तुके अभिनयके पूर्व विषयका परिचय देने, इतिवृत्त स्चित करने आदिके लिये उठाया हुआ प्रसङ्ग। स्वधार, नट, नटी, विद्षक, पारिपार्थिकके परस्पर कथोपकथन-के रूपमें प्रस्तावना होती है। इसमें कभी कभी कविका परिचय, सभाकी प्रशंसा आदि भी रहती है। भरतमुनिने इस प्रस्तावनाके पांच भेद वतलाये हैं, उद्धात्यक, कथो-द्धात, प्रयोगातिशय, प्रवर्त्तक और अवलगित।

( साहित्वद् ६१२८८ )

प्रस्ताचित (सं० ति०) जिसके लिये प्रस्ताच किया गया हो, जिसके लिये प्रस्ताच हुआ हो।

प्रस्ताव्य (सं० ति०) प्रस्तावनाके योग्य, प्रस्ताव करने लायक।

प्रस्तिर ( सं॰ पु॰ ) प्रस्तर निपातनात् इत्वं । पल्लवादि-रचित शय्या । घास पत्ते आदिका विछावन ।

प्रस्तीत (सं० ति०) प्र-स्तै-क (अस्योऽ वरस्याम्। प्राचित्र हित्त विद्या तस्य मो वा। १ संहत। २ ध्वनित। प्रस्तुत (सं० ति०) प्रस्तूयते स्मेति प्र-स्तु-क। १ प्रकरण-प्राप्त, जो कहा गया हो। २ प्रासङ्गिक, जिसकी वात उठाई गई हो। ३ निष्यन्त, जो किया गया हो। ४ प्रक्ष्येस्तुति-युक्त, जिसकी अच्छी तरह स्तुति या प्रशंसा की गई हो। ५ उपस्थित, जो सामने हो। ६ प्रतिपन्न, प्राप्त। ७ उपयुक्त, योग्य। ८ प्रशंसित, जिसकी तारोफ को गई हो। ६ उद्यत, तैयार। १० प्राकरणिक, प्रकरणयुक्त।

प्रस्तुतालङ्कार (सं॰ पु॰) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें एक प्रस्तुतके संवन्धमें कोई वात कह कर उसका अभि-प्राय दूसरे प्रस्तुतके प्रति घटाया जाता है।

प्रस्तुति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रस्तावना । २ प्रशंसा, स्मृति । ३ उपस्थिति । ४ निष्पत्ति, तैयारी ।

प्रस्तूत ( सं॰ पु॰ ) चाक्षष मन्चन्तरमें देवमेद ।

प्रस्तुत (सं० ति०) प्र-स्तु-क । १ अन्तरित । २ प्रकर्ष-कपसे विस्तारित ।

प्रस्तोक (सं० पु०) १ सञ्जयके पुत्रका नाम। २ एक प्रकारका सामगान।

प्रस्तोता (सं ० पु ० ) एक सामवेदी ऋत्विक् जो यहोंमें

पहले सामगानका आरम्भ करता है। (ति॰) २ प्रकर्ष-रूपसे स्तोता।

प्रस्तोतः ( सं० पु० ) प्रस्तोता देखा ।

प्रस्तोभ (सं ॰ पु॰) प्र-स्तुभ-घञ् । १ निवृत्तिमार्ग, प्रोत्सा-हन । २ सामभेद ।

प्रसथ (सं० पु० क्की०) प्रकर्षण तिष्ठतीति प्र-स्था (अत्वथीप-धर्मे । पा ३ १११३६ ) इति-क ; वा प्रतिष्ठतेऽस्मिन् अनेन वेति घन्नर्थे क । १ परिमाणविशेष, प्राचीन कालका एक मान । यह मान दो प्रकारका होता है, एक तौलनेका, दूसरा मापनेका । कोई चार कुड़वका और कोई दो शराव-का कुड़व मानते हैं । वहुतोंके मतसे एक प्रस्थ एक अढ़क का चतुर्थीश माना गया है । वमन, विरेचन और शोणित मोक्षणमें साढ़े तेरह पलका प्रस्थ माना जाता है । कुछ लोग इसे छः पलका और कुछ लोग द्रोणका धोड़शांश मानते हैं । २ पहाड़ोंका ऊंचा किनारा । ३ वह भाग जो ऊपर वहुत उठा हो । ४ विस्तार ।

प्रस्थकुसुम (सं० पु०) महत्रक तृक्ष, महवा।

प्रस्थपुष्प (सं० पु०) १ मरुवेका पौधा । २ छोटे पत्तींको तुलसी । ३ जम्बीरो नीवू ।

प्रस्तम्पच ( सं ० ति० ) प्रस्थ-पचनशील।

प्रस्थल (सं॰ पु॰) महाभारतके अनुसार पंजावके निकर-का एक देश जो उस समय सुशर्मा नामक राजाके अधि-कारमें था।

प्रस्थान (सं० क्की०) प्र-स्था-ल्युट्। १ अभियान, विजयके लिये सेना या राजाकी याला। २ गमन, रवानगी। ३ मार्ग। ४ उपदेशकी पद्धति या उपाय। ५ वैंखरी वाणीके भेद जो अठारह हैं, यथा—४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ६ पहननेके कपड़े आदि जिसे लोग यालाके मुहुत्ते पर घरसे निकाल कर यालाकी दिशामें कहीं पर रखवा देते हैं। जब कोई ठीक मुहुत्ते पर याला नहीं कर सकता, तब ऐसा किया जाता है।

प्रस्थानविद्य (सं० पु०) प्रस्थानस्य विद्यः। गमन-व्याघात, जानेमें रुकायट ।

प्रस्थानी (हिं० वि०) प्रस्थान करनेवाला, जानेवाला। प्रस्थानीय (सं० वि०) प्र-स्था-अनीयर्। प्रस्थान योग्य। प्रस्थापन (सं० क्वी०) प्र-स्था-णिच्-ल्युट्। प्रस्थान कराना, मेजना। २ प्ररण। ३ स्थापन।

प्रस्थापित ( सं० ति० ) प्र-स्था-णिच्-क । १ प्रे पित, मेजा हुआ। २ प्रकर्षस्तपसे स्थापित। प्रस्थाव्य ( सं० ति० ) १ प्रस्थानयोग्य । २ प्रेरणायोग्य । प्रस्थायी ( सं ० वि ० ) प्र-स्था 'भविष्यति गमिगाम्यादयः' इति णिनि । भाविगमनकर्त्ता, जो भविष्यमें प्रस्थान करने-वाला हो। प्रस्थावत् (सं ० ति०) प्रयाणसमर्थं, जो प्रयाण कर सकता हो। प्रस्थिका (सं ० स्त्री • ) प्रस्थस्तदाकारोऽस्या इति प्रस्थ-उन् । १ अम्बद्धा, आमङ्ग । २ याचिका, पुरोना । प्रस्थित ( सं ० ति ० ) प्र-स्था-क । १ गमनोद्यत, जो जाने-को तैयार हो। २ स्थिर, ठहरा धुआ। ३ दृढ़, मजबूत। ४ गत, जो गया हा। (पु०) ५ सोमपालभेद। प्रस्थिति ( सं ० बि ० ) प्रस्थान, याता । प्रस्थेय ( सं ० ति० ) प्रस्थानयोग्य । पुक्ष ( सं ॰ पु॰ ) स्नानपत । पूजव (स'० पु०) प्र स्तु अप्। १ श्लीराभिष्यन्द, दूधका वहना। २ क्षरण, टपकना। प्रस्नातृ ( सं० ति० ) स्नानकारो, स्नान करनेवाला । प्रसाविन् ( सं० वि० ) क्षरणशील । प्रस्तिग्ध (सं० बि०) १ तैलाक्त । २ स्नेहलिस । ३ प्रिय-वन्धु । ्प्रस्तुपा (सं॰ स्त्रो॰) स्नूपायां स्नूपा पृषोदरादि॰ साधुः। पतोह, पोतेकी स्त्रो। पस्नेय (सं० ति०) प्रस्नातुमर्हति प्र-स्ना-अर्हार्थे यत्। स्नानाई जलादि, स्नान करने योग्य जल आदि। प्रस्पन्दन ( सं० क्वी० ) प्र-स्पन्द-भावे-ल्युट् । प्रकर्षह्रपसे स्पन्दन । प्रस्फुट ( सं॰ ति॰ ) प्रस्फुटति विकशतोति प्र-स्फु-क । १ प्रकुल, बिला हुआ। २ प्रकाशित, साफ, प्रकट। प्रस्फोटन ( सं॰ क्ली॰) प्रस्फोट्यते उनेनेति प्र-स्फुट-णिच्, करणे व्युट्। १ सूर्प, सूप। २ ताड़न, पीटना। ३ विका-शन, विकसित होना या करना । ४ फटकना । ५ किसी वस्तुका इस प्रकार एकवारगी खुलना या फूटना उसके भीतरके पढ़ार्थ बेगसे वाहर निकल पड़ें। प्रस्यन्द ( सं ० पु० ) प्र-स्यन्द-भावे-घञ् ।

क्षरण, अच्छी तरह भरना। (ति०। २ प्रक्षरणकर्त्ता, वहानेवाला । प्रस्यन्दन (स'० क्ली०) प्र-स्यन्द-त्युट्। १ प्रकपरूपसे क्षरण। २ क्षरण, निःसरण। प्रस्यन्दिन् (सं० ति०) प्र-सान्द-अस्त्यर्थे इनि । १ प्रसान्द- ' युक्त। २ क्षरणशील। प्रसंस (सं ॰ पु॰) गर्भका पतन, भ्रंश। प्रसंसिन् (सं० ति०) १ पतनशील, गिरनेवाला। २ अकालप्रसवशील, अकालमें गिरनेवाला । प्रस्रव ( सं॰ पु॰ ) प्र-स्नु-अप् । क्षरण, भरना, वहना । प्रस्रवण ( सं ॰ पु॰ ) प्रस्नवति जलमस्मादिति प्र-स्नु-अपा-दाने ल्युट्।१ माल्यवत् पर्वत । २ खेद, घर्म, पसीना । ३ किसी स्थानसे गिर कर वहता हुआ पानी, प्रपात, संस्कृत पर्याय-उन्स, जलप्रसाव। भरता, निर्भर 🖡 प्रसवणजलका गुण-खच्छ, लघु, मधुर, रोचन और दोपक। ४ जल आदि द्रव पदार्थी का टपक टपक कर या गिर गिर कर बहना। ५ किसी स्थानसे निकल कर वहता हुआ पानो, स्रोता। ६ दुग्ध, दूध। ७ मूत्र, पेशाव। प्रस्वणी (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार वीस प्रकारकी योनियोंमेंसे एक। इसका दृसरा नाम दुष्पजाविनी है। इसमेंसे पानी-सा निकलता रहता है । इस योनिवाली स्त्रीको सन्तान होनेमें वड़ा कप्ट होता है। प्रसाव ( सं ॰ पु॰ ) प्रस्यते इति प्र-स्रु ( प्रे ुस्तुन्युः शशर७) इति धञ्। १ प्रकर्पेक्षपसे क्षरण, अच्छी तरह वहना। २ मूत, पेशाव। विशेष विवरण मूत्र शब्दमें देखो। ३ गोमूल, गायका मूत । गोमूल अति पवित है । रोहिणी-नक्षतमें गोमूत्रसे यदि मानव स्नान करे, तो उसके सव प्रकारके दोष जाते रहते हैं। "प्रस्तावेण तु यः स्नायात् रोहिण्यात् मानवो द्विजः। सव पापकृतान् दोषान् दहत्याशु न संशयः॥" (वराह्यु०) ४ प्रस्वण, भरना। प्रसृत ( सं ० ति० ) प्र-सृ-कः। क्षरित, मद्भा हुआ, गिरा १ प्रकर्षेक्रपसे । प्रस्तुति (सं ० स्त्री०) क्षरण, निःसरण ।

प्रस्तन ( सं॰ पु॰ ) प्र-स्तन-भावे अप्। उच्चैःशब्द, ऊंचा स्तर ।

प्रसाद ( सं ० ति० ) प्र-स्वद्-णिच्-असुन् । प्रकर्वक्रपसे साद्यिता, भच्छा साद् देनेवाला ।

प्रस्तान (सं०पु०) प्र-स्तन-घञ्। उच्चैःशब्द जोरका शब्द।

प्रस्वाप (सं ॰ पु॰) प्रस्वायते शहुरनेन प्र-स्वप-णिच्-करणे-अच्। १ शहुको प्रस्वापनसाधन अस्त्रभेद, एक अस्त्र जिसके प्रयोगसे शहुको युद्धस्थलभे निद्रा आ जाती है। २ वह वस्तु जिसके प्रयोगसे निद्रा आवे।

प्रसापन (सं० क्वी०) प्र-स्वपःणिच्-करणे ल्युर्। १ शतुके निद्राकारक अस्त्रमेद। (ति०) २ निद्राजनक।

प्रस्वापिनो ( सं ० स्त्री०) हरिव शके अनुसार कृष्णचन्द्रकी एक स्त्रीका नाम।

प्रखेद (सं० पु०) प्र खिद्-घञ्। अतिशय घमं, पसीना । प्रखेदिन् सं० ति०) प्रखेद- अस्त्यर्थे इति । प्रखेद-युक्त, घमंयुक्त ।

प्रहणन (सं ० क्वी०) प्र-हन-ल्युट् ( इग्तेरत् पृष<sup>®</sup>स्य । पः ८।४।२२) इति णत्वं । प्रकृष्टद्भपसे हनन, अच्छी तरह मारना ।

प्रहत (सं ० ति ०) प्रहन्यते स्मेति प्र-हन-क । १ हत, मारा हुआ । २ प्रताड़ित, पीटा हुआ । ३ प्रसारित, फैलाया हुआ । (पु०) ४ पासे आदिका फेंकना। ५ प्रहार, वार, ठोकर।

प्रह्नेमि (सं०ु०) प्रहाणां नैमिरिय, निपातनात् प्रसार प्रिं। चन्द्र, चन्द्रमा।

प्रहन्तव्य (सं० लि०) प्रं-हन-तव्य । प्रहणनयोग्य, वध योग्य ।

प्रहत्तु (सं ० ति ०) प्र-हन-तृच् । हन्ता, मारनेवाला । प्रहर (सं ० पु ०) प्रहियते हकादिरस्मिन्निति प्र-ह-घञ् अप् चा । दिनके ओठ सम भागोंमेंसे एक भाग, प्रहर । दिवा और राति मान समान नहीं रहता, इसीसे दिवा- इर्एडके चार भागमेंसे एक भागको 'दिवाप्रहर' और रातिमानके चार भागमेंसे एक भागको 'रातिप्रहर' कहते हैं। यांम शब्द हरें।

प्रहरक ( सं ० पु॰ ) १ प्रहरी, वह मनुष्य जो पहरे पर हो और घंटा वजाता हो । २ प्रहरिता, प्रहरीका काम । प्रहरकुटुवी ( सं० स्त्री० ) प्रहरस्य कुटुवी कुटुम्बिनी व । कुटुम्बिनी क्षुप, अर्कपुष्पी ।

प्रहरण ( सं ० क्की०) प्रहियतेऽनेनेति प्र-द्व-करणे ल्युट्। १ अस्त्र, हथियार। २ युद्ध, लड़ाई। ३ प्रहार, वार। ४ हरण करना, छीनना। ५ मारना, आघात पहुंचाना। ६ फेंकना, हटाना। ७ स्त्रियोंकी सवारीके लिये एक प्रकार-का परदेवाला रथ, वहली। ८ मृदङ्गके वारह प्रवन्धमंसे एक।

प्रहरणकिका (सं ० स्त्रो०) चतुर्दशाक्षरपादक छन्दोमेद, चौदह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति । इसके प्रत्येक चरणमें दो नगन, एक भगण, फिर एक नगण और अन्तमें छ्यु गुरु होते हैं।

प्रहरणीय (सं० बि०) प्र ह-अनीयर् । प्रहरणके योग्य। प्रहरो (सं० पु०) प्रहरोऽधिकारकालत्वेनास्त्यस्य इति। १ यामिक, पहर पहर पर घंटा वजानेवाला, घड़ियालो। २ प्रहरकालाधिकत सैन्यभेद, पहरा देनेवाला, नौको-दार।

प्रहत्त<sup>°</sup>च्य (सं ॰ त्नि ॰) प्र-ह्व-तच्य । प्रहरणीय, प्रहारयोख । प्रहर्त्ता (सं ॰ त्नि ॰) १ प्रहार करनेवाला । २ योदा । प्रहत्तु<sup>°</sup> (सं ॰ त्नि ॰) प्रहर्ता देखो ।

प्रहर्ष (सं० पु०) प्र-हृष्-घञ्। आनन्द, हर्ष । प्रहर्षेण (सं० पु०) प्रहर्षेयतीति प्र-हृष-णिच्-ल्यु । १ बुधप्रह । २ आनन्द । ३ एक अलङ्कार । इसमें विना उद्योगके अनायास किसीके वांछित पदार्थंकी प्राप्तिका वर्णन है। (ति०) २ हर्षविशिष्ट, हर्षकारक ।

प्रहर्षणी (सं ॰ स्त्री॰) प्रहर्षयतीति प्र-हृष-णिच्, ल्यु, डीष्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ छन्दोभेद, एक प्रकारकी वर्णवृति। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, फिर नगण, फिर जगण, रगण और अन्तमें एक गुरु होता है। तीसरे और दशवें वर्ण पर यति होती है।

प्रहृषुल सं ० पु० ) बुध नामक प्रह ।

प्रहस (सं ० पु०) राक्षसभेद, एक असुरका नाम।
प्रहसन (सं ० क्वी०) प्र-हस-भावे-ल्युट्। १ प्रहास,
अट्टहास, जोरकी हँसी। २ परिहास, हंसी, दिल्ली।
३ रूपकभेद। ४ हास्थरसप्रधान नाटकाङ्गभेद। इसमें
हास्यरस ही रहता है। पहलेके प्रहसनोंमें एक ही अंक

होता था, पर अव लोग कई कई अङ्कोंका प्रहसन लिखते हैं। समाजका कुरीतिसंशोधन और रहस्राजनक विव-रणका वर्णन करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस खेलमें नायक कोई राजा, धनी, ब्राह्मण वा धूर्त्त होता है और अनेक पात रहते हैं। इनमेंसे नीच जातिके पुष्प स्थियोंकी तरह प्राकृतभाषामें कथोपकथन करता है। 'हास्प्राणिव', 'कौतुकसर्वंख' और 'धूर्तसमागम' आदि प्रसिद्ध प्रहसन हैं।

साहित्यद्पेणके मतसे प्रहसनमें 'भाण'-के जैसा सन्धिका अङ्गसमृह, लास। और अङ्गाङ्कादि रहें'गे। इस-में वृत अर्थात् नाटकीय विषय कविकल्पित होना विधेय है। प्रहसनमें हासारस अङ्गी है। तपस्वी और ब्राह्मण आदि नायक होते हैं। खेल भरमें हासारस प्रधान रहता है। नग्टक देखो। ४ ध्यङ्गोक्ति, चुहल, खिल्ली। प्रहसन्ती (सं० स्त्रो०) प्रहस्ति प्रकर्षण विकशतीति प्र-हस-शतृ छोप् १ यूथी, जूही। २ वासन्ती । ३ प्रकृष्ट अङ्गारधानी, अच्छी अंगेठी। प्रहस्ति (सं० पु०) चुद्धभेद, एक चुद्धका नाम।

प्रहसित ( सं ० पु० ) बुद्धभेद, एक बुद्धका नाम । प्रहस्त ( सं ० पु० ) प्रततः प्रसृतो वा हस्तो यत । १ विस्तृतांगुलि पाणि, चपत, थप्पड़ । २ रामायणके अनु-सार एक सेनापतिका नाम ।

प्रहा ( सं ० स्त्री० ) प्रहन्ता, प्रहणनकारी ।

प्रहाण (सं० ह्यी० १ परित्याग । २ चित्तकी प्रकावता, ध्यान ।

प्रहाणि ( सं ० स्त्री० ) प्र-हा-नि, तती णत्वं । १ अपचय, हानि, घाटा । २ परित्याग । ३ हानि, नाश ।

प्रहार (सं॰ पु॰) प्रहरणिमति प्र-हृ-घञ्। १ आघात, चोट। २ निश्रह, युद्ध।

प्रहारक ( सं॰ पु॰ ) प्रहारकारी, मारनेवाला ।

प्रहारण (संः क्षी॰) प्र-ह्र-णिच्-ल्युट्। काम्यदान, मनचाहा दान

प्रहारना (हिं० कि०) १ आघात पहुंचाना, मारना । २ मारने-के लिये चलाना, फेंकना ।

प्रहारवर्मन् ( सं॰ पु॰ ) मिथिलाके एक राजा । प्रहारवल्ली ( सं॰ स्त्री॰ ) मांसरोहिणी लता।

प्रहारिन् (सं ॰ ति ॰ ) प्र-ह्र-णिनि । १ प्रहारकर्त्ता, मारने-Vol. XIV. 167 वाला। २ चंलानेवाला, फे कनेवाला। ३ नष्ट करने-वाला, दूर करनेवाला। (पु॰) ४ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम।

प्रहारुक (स'० ति०) वलपूर्वक हरणकारी, जवरदस्ती छोननेवाला।

प्रहार्य (सं ० ति ०) १ प्रहारयोग्य, मारने योग्य । २ हरण-योग्य ।

प्रहावत् (सं॰ ति॰) प्रहा-मतुष् मसा व। प्रहरण-युक्तः।

प्रहास (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टी हासी यसा वा प्र-हस-धन्। १ शिव। २ कार्त्तिकेयका एक अनुचर। ३ नागविशेष। प्रकृष्टी हासी यस्मात्। ४ नट। ५ अट्टहास, जोरकी हंसी, ठहाका। ६ सोमतीर्थंका एक नाम। यह प्रभास-का प्राकृत रूप जान पड़ता है।

प्रहासिक (सं॰ पु॰) हासाजनक, छोगोंको हं सानेवाला । प्रहासी (सं॰ ति॰) प्रकृष्टं हासयित हसति च यः, प्र-हस-णिच् वा णिनि । १ हासकारक, हं सानेवाला । पर्याय—वासन्तिक, केलिकिल, वैहासिक, विदूषक, प्रीतिद । २ हासकारी, हं सनेवाला ।

प्रहि ( सं ॰ पु॰ ) प्रकर्षेण हियतेऽत्नेति प्र-हः ( १६१तेः कृषे । उग् । ४।५२४ ) इति इण्, सच डित् । कूप, कुआँ ।

प्रहित (स'० ह्वी०) प्रधीयते स्मेति-प्र-धा-क । १ प्रेरित, उसकाया हुआ । २ क्षित, फेंका हुआ । ३ फटका हुआ । (क्वी०) ४ सूर्प, सूप । ५ सामभेद, एक प्रकारका साम ।

पहितङ्गम (सं ० ति ०) किसी कमों हे शसे गमन्कारी, किसी कामसे जानेवाला।

प्रहिता (सं • स्त्री •) प्रसारणी नामकी छता, गन्धप्रसारी । प्रहीण (सं • ति •) प्र-हा-त्यांगे क ( वु ग्रह्मनेति । प्र २१४१६ ६ ) इति सात ईत्, (आदितथ । ग्रास्त्र ) इति निष्ठा तस्य न, ततो णत्वं । परित्यक, छोड़ा हुआ । प्रागिरजा (सं • स्त्री •) कुटुस्विनी क्षप ।

प्रहुत (सं ॰ क्ली॰) प्रहुयते स्मेति प्र-हु-का । भूतयहा, विल-

"अहुतञ्च हुतम्चैव तथा प्रहुतमेव च। ब्राह्म' हुतं प्राशितञ्च पञ्चयत्रान् प्रचक्षते ॥ जपोऽहुतो झुतो होमः प्रहुतो भौतिको चलिः। ब्राह्मत्रं हुतं द्विजाब्रगार्था प्राशितं पितृतर्पणम्॥" (मनु ३। ३)

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्रह्माहुत और प्राशित ये पांच यह पश्चमहायह हैं। इनमेंसे जपका नाम अहुत, होमका नाम हुत और भूतयहका नाम प्रहुत है। भूतयह शब्दसे अतिथि-सेवाका हो वोध होता है। यह भूतयह वा प्रहुत प्रत्येक व्यक्तिको करना चाहिये।

प्रहृति (सं । स्त्री ।) प्रकृष्टो हुतिः प्राविस ।। प्रकृष्टा आहुति ।
प्रहृत (सं । क्रि ) प्र-ह-कमीण-क । १ स्तप्रहार, मारा
हुआ । २ प्रक्षित, फेंका हुआ । ३ पीटा हुआ, ठोंका हुआ ।
(पु ) ४ प्रहार, सीट, आघात । ५ एक गोलकार ऋषिका
नाम ।

प्रहुष्ट (सं ० ति ०) प्र-हुष क्त । अतिशय आहादित, अत्यन्त प्रसम्न ।

प्रहृष्टक ( सं o पुo ) काक, कौवा :

प्रहेणक (सं० क्षी०) प्रहेलकं पृयोदरादित्वात् लस्य ण। पिष्टकविशेष, लपसी। पर्याय—वाचन, व्रतोपायन, प्रहे-लक, वाचनक।

प्रहेलक (सं क्हीं ) प्रहिलति खादादिना अभिप्रायं सूचयतीति प्र-हिल-भावेसेचने ण्वुल् वा । १ प्रहेणक, इपसी । २ पहेली ।

प्रहेलिका (सं ० स्त्री०) प्रहिलित अभिप्रायं स्वयतीति प्र-हिल अभिप्रायस्चने क्युन् टापि अत-इत्यं। दुर्विज्ञानार्थं प्रश्न, कृटार्थभाषिता कथा, पहेली। पर्याय—प्रविहका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविह्निका, प्रविद्वाता अने भेद देखे जाते हैं, यथा—समागताप्रहेलिका, विद्वाता, व्युत्कान्ता, प्रमुषिता, परुषा, संख्याता, प्रकित्यता नामान्तिता, निभृता, सम्मूहा, परिहारिका, पकच्छन्ना, अभयच्छन्ना और सङ्क्षीणां। सरस्वतीकण्डा भरणमें ये सब भेद और उदाहरण लिखे हैं। इसके फिर दुए और निर्द्धभावसे भी अनेक भेद कल्पित हुए हैं। इनमेंसे उल्लिखत निर्द्ध प्रहेलिकाके अन्तर्गत है। साहित्यदर्पणकार इसकी गिनती अलङ्कारमें नहीं करते। क्योंकि, उनके मतसे प्रहेलिका रसकी परिपन्थी हुआ करती है।

विशेष विवर्ण पहें औ शब्द में दें खी ।

प्रहोष ('सं० पु०) प्रकर्षक्षपसे होम करनेमें असमर्थ। प्रहोषिन् (सं० ति०) प्रहु-वाहं इनि, सुगागमन्त्र । प्रकर्ष-क्षपसे होमकर्तां, अच्छी तरह होम करनेवाला । प्रहृत्ति (सं० स्त्री०) प्र-हाद-किन् हस्वः । प्रीति । प्रहृत्त (सं० पु०) प्रहृत्ताद्ते इति प्र-हादः शब्दे अच् वा प्रहृत्व्यति प्र-हाद-णिच-अच्, रलयोरेक्यं । १ प्रहृत्ल । २ नागमेद । ३ शब्द ।

प्रह्वास सं ० पु०)क्षय, नाश ।

प्रहादि सं ० पु० ) प्रहादका अनुवर ।

प्रहलुन्न (सं० ति०) प्र-हाद-क (इ.दो निष्ठायां । पा ६१४)६५) इति झेस्वः । प्रीत ।

प्रह्णाद् (सं० पु०) पृह्णादयतीति पृ-ह्णाद्-णिच्-अच्। पुराणपृसिद्ध दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र और पक पृथान विष्णुभक्त।

वैत्यपति हिरण्यकशिपुने ब्रह्माके वरसे तेलोक्यके आधिपत्य, सर्वदेवत्व और सव यक्षभागोंका अधिकार पाया था। सिद्ध ऋषिगण उनका स्तव गाया करते थे। धीरे धोरे देत्यरांज पेश्वयमदस्ते मत्त और मिदरासका हो गये। उन्हें प्रह्वाद नामका एक पुत्त था जिसकी विष्णुः भक्ति वाल्यावस्थासं ही पृकाशित हो गई थी। दैत्यरांजने पुरोहित वर्ण्ड और अमकंको पृह्वादको शिक्षा देनेके छिये नियुक्त किया। प्रह्वादको गुरु विष्णुका नाम न छेनेके छिये सर्वेदा प्रह्वादको उपदेश विया करते थे, पर उसका कुछ भी फल न हुआ। प्रह्वादको संगतसे अन्य दैत्य-वालक भी विष्णुभक्त हो गये। इससे अनथे होनेको सम्भा वना देख कर वर्ण्डामार्कने दैत्यरांजसे कह दिया। एक दिन नशेकी हालतमें दैत्यरांजने प्रह्वादसे कहा, कि आज तक तुमने जो कुछ पढ़ा है, सो सुनाओ। गुरु भी उसो जगह खड़े थे। पिताके उत्तरमें प्रह्वादने इस प्रकार कहा,-

"अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिश्यमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्मि महात्मानं सवंकारणकारणम् ॥"
यह सुन कर हिरण्यकिश्यु आग ववूला हो गया और
लाल लाल आँखें कर गुरुसे कहा, "तुमने मेरी अवज्ञा कर
वालकको मेरे हो शबुकी स्तुति सिख्लाई है।" गुरुजी तो
सरके मारे कुछ नहीं वोले, पर प्रहादने जवाब दिया, "कौन
किसको सिखा सकता है? हृदयके वे परमातमा विष्णु ही

अनुशासनकर्ता हैं। जिनके योगिध्येय परमपद शब्द-गोचरमें नहीं है, जिनसे इस विश्वकी सृष्टि हुई है, जो खर्य विश्व हैं वही परमेश्वर विष्णु हैं।"

हिरण्यकशिपुने कोध भरी वातोंसे कहा, 'मेरे रहते दूसरा कीन परमेश्वर है? वया तुम अपनी हथेली पर जान रख कर ऐसा कहते हो ?' प्रहादने उत्तर दिया, 'वे ही सर्वोंके परमेश्वर हें, केवल मेरे हृदयमें ही नहीं, सर्वोंके हृदयमें वे अधिकार किये हुए हैं।' दैत्यपति कोधसे अधीर हो वोला, 'दूर हो जा दुए! किसने तुम्हें ऐसा उपवेश दिया है!'

प्रहाद फिरसे गुरुगृहमें पढ़नेके लिये भेजे गये। गुरुने वहुत कुछ समऋया वुकाया, पर प्रह्वादने एक भी न सुनी। कुछ दिन वाद दैत्यराजने पुनः प्रहादको बुला मंगाया और पाठ-विषय सुनानेको कहा। प्रह्लाद्के मुखसे पुनः वहीं कथा निकलो। अब दैत्यराजके क्रोधका पारा और भी वढ़ चला। उन्होंने प्रहादको मरवा डालनेके लिये अनेक उपाय किये, परन्तु भगवान्की ऋपासे प्रह्वाद्की कुछ भी हानी न हुई। दैत्यराजने अपने उपायोंकी निष्फल होते देख फिरसे पुतको समभा कर कहा, 'निर्वोध ! अव भो सभय देता हूं, मेरी वात सुन ले, उस शतुका स्तव करना भूल जा।' प्रहादने भी निभैय हो कर उत्तर दिया, 'समस्त भयहारी उस अनन्तके हृद्यमें रहते हुए मुक्ते डर किस वात का ? पिताजी ! यदि अपनी भलाई चाहते हों, तो आप भी उन्हींका सरण किया करें। उनका सारण करनेसे ही सभो भय दूर हो जाते हैं।'

अव हिरण्यकशिपुने अपना क्रोध रोक न सका। उसने पहादको सहस्र विषधरसे डँसाया और पीछे दिग्गजके पैरोंसे कुचलवायां, पर प्रहादका वाल वाँका न हुआ। प्रज्यलित अग्निकुएडमें फेंक देने पर भी प्रहाद 'राम राम' करता वाहर निकल आया।

अनन्तर दैत्यपुरोहित भागीवातमज ( पएड और अमर्क) ने प्रहादको विष्णुका नाम भूल जानेके लिये वहुत कुछ उपदेश दिया, पर प्रहाद कव माननेवाले थे। वे अन्यान्य दानव-पुर्तोको भी बुला कर कहा करते थे, 'तुम लोग सभी देखते हो, कि इस देहसे जन्म होते ही

दुःख भोग कर रहे हो, सुख कुछ भी नहीं है। जिसे जो जितना अधिक पसन्द करता है, उसीके लिये उतना ही अधिक कप्ट होता है। धन कही चाहे जन कहो, सभी शोकदुःखका कारण है । इस कारण किसी पर अनु-राग करना उचित नहीं । हम वालकगण समऋते हैं, कि युवावस्था आने पर अपने कर्राध्यका पालन करेंगे, युवक समभते हैं, कि बुढ़ापा आनेसे कर्चव्य कर्म किया जायगा और वृद्ध समभते हैं, कि मेरी शक्ति सामध्ये जाती रही, समय रहते अपना कर्सव्य तो किया नहीं, अव क्या हो सकता है।' इस प्रकार चिर-जीवन ही वृथा कट जाता है, आत्माका काम होने नहीं पाता। समस्त जगत् इसी प्रकार दुःखमय है। इस अति दुःखमय भवार्णवर्मे पकमात विष्णु ही आश्रय हैं। यदि मेरी वार्तीकी क्ठी न समभो, तो उसी विष्णुका स्मरण किया करो। उनके प्रसन्न होनेसे जगत्में कुछ भी दुर्लंभ नहीं है। सर्वंत सम-दशीं वनो, समभाव ही विष्णुकी आराधना है। अभेद वुद्धि होनेसे हम छोग असुरभावका त्याग कर निवृति लाभ कर सकते हैं।

जव दैत्यराजको मालूम हुआ कि प्रहाद दूसरे दूसरे लड़कोंको भी वहका रहा है, तव उसने पाचकको बुलाया और अञ्चने साथ हलाहल विव मिलानेका हुकुम दिया। प्रहाद सहजमें उस हलाहल विपको जोण कर गये। अव हिण्यकशिपुने पुरोहितोंको बुलाया और अन्य उपायसे उसके प्राणनाश करनेको फर्माया। पुरो-हितोंने प्रहादको समभा कर कहा, 'पिता परम होते हैं। उनको वातका लङ्घन करना कदापि उचित नहीं ?' इस पर प्रहाद्ने जञाव दिया था, 'पिता सवींके गुरु हैं, इसमें सन्देह नहीं। वे मेरे पूजनीय हैं, यह भी मैं कत्रूल करता हूं। परन्तु चतुर्वेर्ग जिससे लाभ हो, उसे कौन नहीं चाहता ? तुम लोग कृत्या द्वारा मेरा नाश चाहते हो, पर कौन किसका नाश कर सकता है ? आत्मा हो आत्माका विनाश और रक्षा करती हैं।'

दैत्यपुरोहितींने जब देखा, कि प्रहाद विलक्कल अटल है, लाख चेष्टा करने पर भी वह दल नहीं सकता, तव उन्होंने भीषण आग्नेय कृत्याकी सृष्टि की। अग्निमय शूल प्रहादके पक्षमें लग कर चूर चूर हो गया। पीछे उस कृत्यासे पुरोहित लोग ही दृष्य होने लगे। 'कृष्ण रक्षा करो, कृष्ण रक्षा करो' ऐसा कहते हुए प्रह्वाद उन्हें वचानेकी दौड़ पड़े। प्रह्वादके स्पर्शसे ही याजकों ने रक्षा पाई।

हिरण्यकशिपुने इस अपूर्व प्रभावकी कथा सुन कर प्रहादको बुलाया और इसका कारण पूछा। प्रहादने जवाव दिया, 'यह मन्त्रादिकृत वा मेरा नैसर्गिक नहीं है। जिसके हृदयमें अच्युत वास करते हैं, यह उन्हींका सामान्य प्रभाव है। जो दूसरों का अनिष्ट नहीं करता है, जो सर्वोकी भलाई चाहता है, उसीका ऐसा प्रभाव है। पिताजी! कायमनोवाध्यसे जो दूसरेका अनिष्ट करता है, आगे चल कर उसीका अमङ्गल होता है।'

अव हिरण्यकशिषु क्षण भर भी स्थिर न रह सका। उसने प्रहादको समुख प्रासादचूड़ासे गिरिपृष्ठ पर फेंक देनेको कहा। अनुचरो ने राजाका आदेश पालन किया। किन्तु प्रहाद वाल वाल वच गया। अव दैत्यपितने शम्बर-से कहा, 'शम्बर! तुम माया जानते हो, सो माया द्वारा प्रहादका नाश करो।'

शम्बरको देख कर प्रह्वादने मधुसूदनका स्मरण किया।
भक्तके लिये भगवान्ते सुदर्शनको भेजा। उस चक्र द्वारा
शम्बरकी हजारों माया विनष्ट हुई। प्रह्वाद प्रसन्न चिक्तसे
गुरुके घर लीटे। गुरुने उन्हें शुक्रनीतिकी शिक्षा दी।

कुछ दिन बाद दैत्यपितने प्रह्वादको बुछ। कर नीति-शास्त्रका प्रसङ्ग पूछा। प्रह्वादने भी कहा, भैंने यह नीति-शास्त्र पढ़ा है, पर यह शास्त्र अच्छा नहीं है। इसमें मिलादिका साधन उपाय बतलाया गया है। पिताजी! साध्यके अभावमें साधनका प्रयोजन ही क्या? उस पर-मात्मा गोविन्दमें मिलामिलकी कथा रह नहीं सकती। वे मुक्तमें हैं, आपमें हैं और सभी जगह हैं। इसलिये कहता है, कि स्थावरजङ्गम जगत्को आत्मतुल्य देखना उचित है। ऐसा जाननेसे ही भगवान प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे सभी क्लेश दूर होते हैं। अनलसे, अनिलसे, सलिलसे, हलाहलसे किसीसे भी कोई अपकार नहीं कर सकता।

यह सुन कर दैत्यपित सिंहासन परसे उठे और प्रह्णादके छाती पर एक छात मारी। उनके आदेशसे दैत्योंने प्रह्णादका हाथ पाँव वांध कर समुद्रमें फेंक दिया। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। उसी अवस्थामें प्रहाद एकान्त चित्तसे भगवान्को पुकारने लगे और उनमें विल कुल लीन हो गये। अव योगके प्रभावसे प्रहाद विष्णु-मय देखते हैं और आप भी विष्णुमय हो गये हैं। उनके हाथ पांवका बन्धन ढीला हो गया। इसी समय उन्हें पीताम्बरधारी विष्णुके दर्शन हुए।

जव हिरण्यकशिपुने देखा, कि किसीसे इसकी मौत नहीं होतो, तब खयं तलवार ले कर वाहर आया और प्रह्वादका हाथ खंभेसे वांघ कहा, 'अरे मूर्खं! तेरा मृत्यु-काल पहुंच गया, अव अपने ईश्वरको वुलाओ । यदि तेरा ईश्वर सव स्थानोंमें वर्त्तमान है, तव इस खंभेमें क्यों नहीं है।' प्रहादने उस खंभकी ओर देखा और प्रणाम किया। तदनन्तर वे वोछे—यही तो हरि देखे जा रहे हैं। हिरण्य-कशिपुको वहां कुछ भी नहों दीख पड़ता था। उसने प्रह्लादको वहुत भला बुरा कह कर उस खंभ पर लात मारी। लातके लगते ही उस खंभेमें भयङ्कर शब्द हुआ । प्रहादने खंभेमें नृसिंह भगवानको देखा, परन्त अव भी हिरण्यकशिपुको कुछ दिखाई नहीं पडता था। अतएव वह भीचका हो कर चारों ओर देखने लगा, कि वह भयद्भर शब्द कहां हुआ ? उसी समय खंभेसे भयद्भर नृसिंह उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिषु गदा ले कर उस और दौड़ा। नृसिंहने उसे उठा कर अपनी जङ्गा पर रख लिया तथा नखोंसे उसका पेट फाड़ कर उसे मार डाला। अन-न्तर अन्यान्य दानव जो शस्त्र ले कर हिरण्यकशिपुके उद्धारके लिये प्रस्तुत थे, उन्हें भी मार डाला। हरिवंश-में लिखा है, कि हिरण्यकशिप और नृसिंहमें हजारों वर्ष तक युद्ध चलता रहा था। अन्तमें नृसिंहने उसे परास्त कर मार डाला।

अनन्तर देव गन्धवं आदि कोधशान्तिके लिये वृसिंह-की स्तुति करने लगे। ब्रह्माके कहनेसे प्रह्वादने वृसिंहके कोपकी शांतिके लिये स्तव किया। ब्रह्मादकी स्तुतिसे प्रसन्त हो कर भगवान वोले, 'मद्र ब्रह्माद! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं तुम पर प्रस न हुआ हूं, वर मांगों।' ब्रह्मादने हाथ जोड़ कर कहा, 'भगवान! मैं स्वभावसे हो कामासक्त हूं। अतः इन वरों का लोभ आप न दिखावें। यदि आप मुक्त वर देना चाहते ही हैं, तो यही दीजिये, कि मेरे हदयमें कामका अंकुर कभी उत्पन्त न हो।' भगवान्के कहनेसे प्रह्वादने दूसरा वर यह मांगा, कि हमारें पिताने जो आपका सक्तप न जान कर आपको निन्दा की है, उसके पापसे वे मुक्त हों। भगवान् वीले, 'केवल तुम्हारे पिताका हो उद्धार नहीं हुआ, किंतु उसके २१ पूर्वजोंका भी उद्धार हो गया। क्योंकि, उसके वंशमें तुम्हारा जनम हुआ।'

अव प्रहाद राजा हुए। यथा समय उनके विरेचनाभाव पुत्र और चिल नामक एक पौत्रने जन्म ग्रहण किया।
पहाद चिल पर राज्यमार सौंप कर तीर्थको निकल
पड़े। जब वे वदिकाक्षम पहुँ चे, तव उन्होंने वहां
नर-नारायणको भएड तपखो समम कर उनके साथ घोरतर युद्ध किया। सैकड़ों वर्ष तक दोनोंमें युद्ध चलता
रहा, पर प्रहाद नरनारायणको जीत न सके। अन्तमें
नैमिधारण्य आ कर वे विष्णुको तपस्या करने लगे।
विष्णुके दर्शन होने पर उन्हें समम्मनेमें देर न लगी, कि
नरनारायण ही साक्षात् मगवान् हैं, वलसे वा कीशलसे
उन्हें पराजय करना किसोका भी साध्य नहीं है। इसके
वाद वे फिरसे वदरिकाश्रम लीटे और नरनारायणके
चरणों पर गिर पड़े। नारायणने कहा, 'वत्स! तुमने
भक्तिके गुणसे मुक्ते पराहत किया।'

इस समय विल स्वर्गराज्य पर अधिकार कर वैठे। प्रहाद स्वर्ग जा कर अपने पौतसे मिले। विलने उन्हें स्वर्गराज्य छोड़ देना चाहा था, पर प्रहादने विष्णुध्यान-में ही अपना समय वितानेकी इच्छा प्रकट की। इस कारण सग राज्यकी तुच्छ समक्त कर उन्होंने प्रहण नहीं किया।

देवताओंको स्वर्ग में प्रतिष्ठित और चलिको छलनेके लिये वामन अवतीर्ण हुए। उनके आविर्मावसे दैत्योंका बल घटने लगा। विलने एक दिन प्रहादसे वीर्यहास होनेका कारण पूछा। किन्तु प्रहादके मुखसे जब उन्होंने सुना, कि वामन ही इसका कारण है, तब विलने सगर्व कहा था, "हरि कीन है ? उसके समान मेरे पास सैकड़ों वीर पुरुष मौजूद हैं। किसी भो देवताकी सामर्थ्य नहीं, जो मेरे एक वीरको परास्त कर सके।" विलकी गर्वोक्ति सुन कर प्रहादने कहा था, 'अरे मूर्खं! तुम्के धिकार है, त्वे वैक्कएडनाथकी निन्ता की ? मेरे प्राणसे वियतम Vol. XIV. 168

हरिको जान कर भी तूने उसे अग्राह्य किया ? इस महा-पापसे तेरा खगराज्य जाता रहेगा, तुक्ते पातालमें वास करना पड़ेगा। यथार्थमें पृह्वादके अभिशापसे ही विलि पातालवासी हुए थे। (बामनपु॰ ७-१० अव्याय , ४५-५७ अ०)। अन्तमें पृह्वादने तपस्था द्वारा निर्वाणमुक्ति पाप्त की। (विण्य पु॰ १।२२ अध्याय)

२ जनपद्विशेष, एक देशका नाम । ३ पुमोद, आनन्द । ४ शब्द, आवाज । ५ नागविशेष, एक नागका नाम । प्रहुद् १ प्रवोधचन्द्रोद्यहस्तामलक नामक प्रन्थके प्रणेता । ६ नरसिंहस्तुति और हर्यप्रक नामक हो प्रन्थके रचयिता । ३ चौहानवंशीय एक राजा, राजा वालहनके पुत्र ।

प्रहादक (सं ० ति०) आहादजनक, सन्तीयजनक। प्रहादन (सं ० क्षी०) प्र-होद-ल्युट्। आहादकरण, आनन्दकरण, प्रसन्न करना।

प्रहादनदेव—मालवके एक युवराज । ये अनिहलवाड़के चालुक्यराज्यके अधोनस्थ सामन्तराज धारावर्षदेवके छोटे भाई थे। सकलकलाविद्द पड़दरीनाश्रमी और जन-साधारण इनका विशेष सम्मान करते थे।

प्रहाद नीराजि—पक महाराष्ट्रसचिव । इन्होंने कई एक महाराष्ट्रयुद्धोंमें विशेष साहस और बुद्धिकौशलका परि-चय दिया था । प्रतिनिधि देखो ।

प्रहादिन् (सं० ति०) प्रहाद्-इनि । प्रहाद्युक्त, प्रसन्न । प्रहाद्युक्त, प्रसन्न । प्रहाद्युक्त, प्रसन्न । प्रहादिनी (सं० स्त्री०) रक्त लजालुका, लाल लाजवंती । प्रह (सं० ति०) प्रदूषते इति प्र-ह्वे-(स्वनिधृत्वरिष्येति वण् १११५३) इति वन्, आलोपश्च । १ नम्र । २ विनीत । ३ आसक्त । ४ प्रवण । ५ आवर्जित ।

प्रहच्ण (सं॰ क्ली॰) प्रकृष्टकपसे आह्वान, वुलाना । प्रह्मलोका (सं॰ स्त्री॰) प्रवह्मिका पृपोदरादित्वात् साधुः । प्रहेलिका, पहेली ।

प्रह्माञ्जलि (सं ० वि०) इताञ्जलिपुरसे मस्तकानतभावमें दण्डायमान, जो हाथ जोड़े सिर मुकाए खड़ा हो। प्रह्मार (सं ० पु०) १ आवाहन। २ स्तव।

प्राइमर (अं o पु o) १ किसी भाषाकी वह प्रारम्भिक पुस्तक जिसमें उस भाषाकी वर्णमाला आदि दी गई हो। २ किसी विषयकी वह प्रारम्भिक पुस्तक जिसमें उस विषय- का ज्ञान प्राप्त करनेवालोंके लिये साधारण मोटी मोटी वाते दो गई हैं।

प्रारवेट (अं॰ वि॰) १ जो सार्वजनिक न हो, विल्क निजके सम्बन्धका हो। २ जो सर्वसाधारणसे छिपा कर रखा जाय, गुप्त। ३ ध्यक्तिगत, निजका।

प्राइवेटसेके टरी (अं० पु०) किसी वड़े आदमीका निजका मन्त्री या सहायक, खास-नवीस, खास कलम।

प्रांशु (सं ० ति०) प्रकृष्टा अंशवोऽस्य । १ उच्च, उन्नत । (पु०) २ वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम । ३ वत्सप्रो राजाके सुदक्षिणा-गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम । १ विष्णु ।

प्रांशुता (सं ॰ स्त्रो॰) प्रांशोर्भावः तल-टाप्। प्रांशुका भाव वा धर्म, उचता।

प्राकर (सं० पु०) द्युतिमान् नृपके एक पुतका नाम। प्राकरणिक (सं० ति०) प्रकरणेन प्राप्तं ठक्। प्रकरण प्राप्त ।

प्राकर्ष (सं ० क्को०) सामभेद, एक प्रकारका साम। प्राकर्षिक (सं ० ति०) प्रकर्ष नित्यमह ति छेदादित्वात् उस्। १ नित्य प्रकर्षाह । २ उत्कर्षयोग्य।

प्राकर्षिक (सं० पु०) प्र-आ-कष-किरन्। १ स्त्रियोंका नत्तंक। स्त्रियोंके वीचमें नाचनेवाला पुरुष। २ परदा-रोपजीवी, दूसरोंकी स्त्रियोंसे जोविकानिर्वाह करनेवाला पुरुष, दलाल।

प्राकाम्य (सं ॰ क्ली॰) प्रकामस्य भावः व्यञ्। आठ प्रकार-के पेश्वर्थं या सिद्धियोंमेंसे एक। कहा जाता है, कि इस पेश्वर्थंके प्राप्त ही जाने पर मनुष्यकी इच्छाका व्याघात नहीं होता। वह जिस वस्तुकी इच्छा करता है वह उसे शीघ्र मिल, जाती है। यदि वह इच्छा करे, तो जमीनमें समा सकता है या आसमानमें उड़ सकता है।

प्राकार (सं ॰ पु॰) प्रक्रियते इति प्र-क्ट-घञ्, उपसर्गस्य घञीति दीर्घः। प्राचीर, चहारदीवारी। पर्याय—शास्त्र, साल, वरण, वप्र। प्राकारका परिमाण—

"ऊर्द्ध विश्वतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुमप्रदम्॥" ( ब्रह्मवैवर्त्तपु० ४।१३ अ० ) ः

१६ हाथ ऊँ चा घर भौर २० हाथसे ज्यादा ऊँ चा प्राचीर नहीं बनाना चाहिये, बनानेसे घरवालींका अनिष्ट

होता है। प्राचीर वा घरका द्वार दो हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा वनाना चाहिये। २ सर्वतोविस्तार् चारों ओर फैला हुआ।

प्राकारमर्दिन् (सं० ति०) पृकारं सृद्गति सृद-णिनिं, ६-तत्। पृाकारमेदक, दीवार काटनेवाला।

पुाकारीय (सं ० ति०) पूकारायां छ । १ पुाकार पूकृति, ईंट आदि । २ सम्भवत्पाकार देश, जहां दीवार खड़ी को जाय ।

प्राकार्षक ( सं ० पु० ) प्राक्षिक देखो ।

प्राकाश (सं० पु०) प्रकाश देखी।

प्राकास्य (सं॰ पु॰) १ सवके सामने प्रकाशन । २ स्थाति, प्रसिद्धि ।

प्राक्त (सं क्ली ) प्रकृष्टमकृतमकार्यं यस्य। १ नीच। २ प्रकृति-सम्बन्धी, प्रकृतिसे उत्पन्न। ३ स्वामाविक, सहज। ४ साधारण, मामूली। ५ लौकिक, संसारी। (स्त्री ) ६ वोलचालकी भाषा जिसका प्रचार किसी समय किसी प्रान्तमें हो अथवा रहा हो। ७ एक प्राचीन भाषा जिसका प्रचार प्राचीनकालमें भारतमें था। क्या बङ्गला, क्या उड़िया, क्या हिन्दी, क्या महाराष्ट्री भारतमें जितनी देशी भाषायँ प्रचलित हैं, वे सभी एक समय प्राकृत कहलाती थीं और प्राचीन प्राकृत भाषासे ही प्रचलित देशी भाषाओं की उत्पत्ति हुई है।

हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरणमें लिखा है, किं संस्कृत ही प्रकृति वा मूल है। उससे जो उत्पन्न हुआ है या होता आ रहा है वही प्राकृत है।

कृष्णपिएडतकी प्राकृतचिन्द्रकामें भी लिखा है,—
"प्रकृति संस्कृतं तत भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्।
तद्भवं तत्समं देशोत्येवमेतित्वधा मतं॥" (११८)
संस्कृत प्रकृति है, उससे उत्पन्न होनेके कारण इसका
प्राकृत नाम पड़ा है। इसके फिर तीन भेद हैं, संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी।

उपरोक्त प्रमाणके अनुसार इस देशके सभी पिएडत कहते हैं, कि संस्कृत ही प्राकृतभाषाकी जननी है। किन्तु वेवर प्रभृति प्राश्चात्य जर्मन पिएडत इस मतका अनुमोदन नहीं करते।

अध्यापक वेवर (Weber) का कहना है, कि संस्कत

भाषा समस्त आर्यं जातिका वोलचालको भाषा है, ऐसा नहीं कह सकते। यह केवल विद्यानकी भागा है। वैदिक भाषासे ही एक ओर सुगठित और सुप्रणालीवद्ध हो कर संस्कृतभाषाकी उत्पत्ति और दूसरी और मानवके प्रकृति-सिद्धं तथा अनियत वेगसे प्राकृतभाषाका चलन है। प्राचीन वैदिक भाषा ही कमशः भ्रष्ट हो कर जनसाधारण-की प्राकृत भाषा हो गई है। फिर वही वैदिक भाषा वैया-करणोंके हाथसे सुगडित और परिडतोंके हाथसे मार्जित हो कर संस्कृतकपमें परिणत हुई है। प्राकृत भाषाका अनि-यमितरूप संस्कृत-भाषामें नहीं है, फिन्तु वैदिक भाषामें पाया जाता है। जैसे, कुट= छत (ऋक् १।५६।४) काट= कत्ते, यावत्सः = यावचः, कृकलास = कृकदासु, खुल्लक = शुक्रक, भूज = श्रृज इत्यादि। यहां तक, कि रामायण भारतादि क व्यों में भी पेसी बहुत सी कथाएँ हैं जो उस समयकी प्रचलित प्राइतभाषा गृहीत हुई हैं, जैसे, 'गोपेन्द्र' की जगह 'गोविन्द।'

अध्यापक सीफ्रोकट साहवकी मतसी—'अध्यापक वेवरने कहा है, कि प्रास्तत भाषा वैदिक भाषाकी सम-कालीन है, वह समीचीन नहीं है। ऋग्वेदकी भाषा कमी भी सारे भारतमें प्रचछित न थी। आयोंके आदि निवास केवल पक्षावमें ही उसका प्रचार था। आयोंके चारों तरफ वहु संख्यक अनार्य जातिका वास था, वे विजेता-की भाषा ग्रहण करनेको बाध्य हुई थीं। उन्हींके मुखसे भार्यभाषा विकृत होता थी। फिर आर्यसन्तान भी शूद्र कन्या-ग्रहणमें वाध्य हुई थी तथा उनके संभ्रवसे आर्थगृह-में अनार्यभाषा प्रचलित हुई । अन्तमें राजनीतिक विष्नुवमें अनार्य जातिने हो राज्यशासन लाम किया और उन लोगों-के प्रमावसे अनकी भाषा जनसाघारणमें प्रचलित हुई। सचमुच रामायण महामारतादिमें अथवाधर्मभास्त्रमें यहां तक, कि वेदको ब्राह्मण-भाषा परिषदु वा पण्डित मण्डली छोड़ कर जनसाधारणमें कमी भी कथित मापासपसे प्रचलित न रही।

अध्यापक छासेनके मतसे—वैदिकमाषा एक समय कथितभाषा होने पर भी पाणिनिके समय 'भाषा' कहनेसे तत्काल प्रचित्तसं स्कृतभाषा समक्की जाती थी, पाणिनिकी उकिसे ऐसा जाना जाता है। किसी किसी वैदिकमन्त्रमें प्राक्तका विकृत कप तो देखा जाता है, पर प्राक्तभाषामें टूटा फूटा कप होनेमें अनेक समय लगे हैं। इस कारण संस्कृत और प्राक्तकी उत्पत्ति एक समयमें स्वीकार नहीं कर सकते। हिन्दू आयोंके भारतमें फैलनेके वाद प्राक्तकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु स्थान विशेषके संस्कृतकी अत्पत्ति हुई है। परन्तु स्थान विशेषके संस्कृतकी प्राक्तका उद्भव हुआ है, यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण, स्थानमेदसे संस्कृतभाषाका मेद अब तक भी निर्णीत नहीं हुआ। अशोकके समय प्राकृतभाषा लिखितभाषाक्रपमें व्यवहृत हुई थी। इस समय पूर्वभारत, गुजरात और कावुलका पूर्वा श इन तीन स्थानोंमें स्थानीय प्राकृतका प्रचार था। सुतरां मूल प्राकृतभाषाकी उत्पत्ति इसके भी पहले हुई है। कारण बुद्धको उकि संस्कृत और प्राकृत दोनों हो भाषामें लिपिन्वह हुई थी।

अच्यापक बेनफाई (Benfey )-के मतसे--'अशोकके समय दो प्रकारकी देशी माषा प्रचलित थी, एक गुजरात-में और दूसरी मगधमें। इन दो भाषाओंकी गठन देखनेसे मालूम होता है, कि उक्त दो प्रदेशोंमें संस्कृतभाषाके साथ एकत प्राकृत भाषा नहीं थी। एक समय बहां जिस संस्कृतमापाका प्रचार था, वही क्रमशः प्राकृतभाषामें परिणत हो गई है। अतएच अशोकके अम्युद्यके वहुत पहले स'स्कृतभाषा मृत हो चुकी थी भाषाका स्त्रपात हुमा था। वौद्धधर्मको पवित्र भाषा पाली है। प्रथम वौद्धगण यह निर्देश कर गणे हैं, कि उन्होंने स'स्कृत भाषामें अपने धर्मग्रन्थकी रचना नहीं की, किन्तु अपनी कथित भाषामें लिपिवद्ध की है। यह भाषा मगधकी प्रचलित भाषाके साथ संस्कृतका जो सम्बन्ध है, संस्कृतके साथ उक्त भाषाका भी वही सम्बन्ध देखा जाता है। अधिक सम्मव है, कि खृष्ट-पूर्व ६ठीं शताब्दीमें जिस समय वीद्रधर्मका अन्युदय हुआ, उस समय जनः साधारण संस्कृत भाषामें वोलचाल नहीं करते थे। अम्ततः इसके भी तीन सी वर्ष पहले यदि संस्कृतको जनसाधारणकी साषा मान छैं, तो अत्युक्ति नहीं।

इसी प्रकार यूरोपीय भाषा-तत्त्वविदीने प्राकृतभाषा-की उत्पत्ति निर्णय की है। उक्त पिएडतों मेंसे प्रत्येककी बातमें कुछ न कुछ सत्यता अयग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं। यथार्थमें आर्थजातिकी आदि भाषा वेदमें है। उस वैदिक-भाषारूप स्रोतस्वतीसे संस्कृत और प्राकृत दोनों ही घारा निकली है। जिस समयसे भापाका लिपिवद होना आरम्भ हुआ, उसी समयसे लिखित और कथित भाषा घीरे घीरे पृथक् होने लगी। किन्तु वेदसंहिताके प्रचार-कालमें लिपिपद्धति नहीं थी, सुतरां उस समय आर्य जन-साधारण जिस भाषामें वोलचाल करते थे, वही भाषा बेरमें पाई जाती है अर्थात् वेदसंहिताकी भाषा ही वैदिक-युगकी कथित भाषा है। पश्चनद और सरस्रतीय्रवाहित कुरक्षेत्रमें एक समय इसी भाषाका प्रचार था। आर्यांके भारतवर्षमें आधिपत्य फैलानेके साथ साथ उस भाषामें अपर प्रादेशिक भाषाका धोरे धीरे प्रवेश होने लगा। पत द्धिन्न कालके प्रसावसे कथितभाषा भी सामान्य रूपान्त-रित होती गई। यही कारण है, कि हमलोग वेदसंहिताको और उपनिपद्की भाषामें वहुत कम अन्तर देखते हैं। परन्तु प्रादेशिक भाषाने भारतीय आर्योंकी भाषा पर जो अपना प्रभाव डाला है, उसका निद्शैन प्राचीनतम संस्कृतभाषा-में अति विरल है। प्राचीनतम संस्कृत भाषामें जितने प्रन्थ मिलते हैं, वे सभो प्रायः उत्तरभारतवासी मुनि ऋपियोंके बनाये हैं। सुतरां उन सव प्रन्थोंका तमाम भारतमें प्रचार होते पर भी पूर्व-भारत, पश्चिम-भारत अथवा दाक्षिणात्य की प्रादेशिक भाषाका कुछ भी निदर्शन नहीं है। पाणिनि और निरुक्तकार यास्कके समय चैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा वहुत कुछ पार्थक्य हो गई थी, यह भी प्रादेशिक भावमें नहीं। वह वहु सहस्रवर्पव्यापी काल-प्रभावका फल है। इस समय संस्कृत भाषा 'लौकिक' वा जनसाधारणकी कथित भाषा समको जाने पर भी स्थान-भेदसे तत्कालप्रचलित संस्कृत भाषामें भी थोड़ी वहुत पृथक्ता देखी जाती थी।

यास्कर्ने लिखा है—"अथापि भाषिकेभ्यो धातुभ्यो तैनामाः कृतो भाष्यन्ते दम्नाः क्षेत्रसाधा इति । अथापि नैनमेभ्यो भाषिका उष्णं घृतमिति । अथापि प्रकृतय एवै-केषु भाष्यन्ते विकृतय एकेषु । शवतिर्गतिकर्मा कम्योजेष्येव भाष्यते विकारमस्य आर्येषु भाष्यन्ते शव इति । दातिलै-वनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु ।" (निक्क २।२) वैदिक अनेक विशेष्यपद (जैसे दम्ना, क्षेत्रसाधा)

भाषामें प्रचलित घातुसे उत्पन्न हुए हैं फिर भाषाके अनेक पद जैसे 'उरुणं' 'घृतं' वैदिक घातुसे निकले हैं। फिर एक जगह इसे प्रकृति (घातु ) और दूसरी जगह विकृति कहा गया है। जैसे 'शवति' घातु द्वारा कम्वोज-देशमें 'गतिकमें' समभा जाता है और आयों के मध्य इसीका विकार 'शव' (अर्थात् मृतदेह) शब्दका व्यवहार है। पूर्वदेशके लोग कत्तंनका अर्थ 'दाति' पर उत्तरदेशके लोग 'दात' (दा) लगाते हैं।

यास्ककी उक्तिसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज देशमें भी संस्कृत भाषा प्रचलित थी और देशमेदसे इस जव देशभेद और भाषाप्रयोगका तारतम्य हुआ था। कालमेदसे संस्कृत भावामें अन्वाधिक पार्थक्य और अर्थ व्यत्यय हो र ा था, ठीक उसी समय पाणिनि, वास्क आदि शाब्दिको'ने व्याकरणादि प्रणयन द्वारा संस्कृत भाषाकी सीमावड कर हाला। इसी समय लिपि प्रचलित हुई है। अतः परिडतोंको चेष्टासे उस समयसे व्याकरणके पथ प्रदर्शित हो कर जो सब प्रन्थ लिपिवद हुए, चलित भाषाके साथ उनका धीरे धीरे पार्थक्य होता गया। उस कथित भापासे ही पीछे आदि प्राकृत भापाकी उत्पत्ति हुई । प्राचीनतम आर्यभाषासे किस प्रकार प्राकृत भाषा-की उत्पत्ति हुई है नीचे उसकी एक तोलिका दी जाती है-

पुलिङ्ग एकववन ।

प्राक्त। पाछि । आर्पप्राष्ट्रत । संस्कृत । कारक। अगी अस्मि अगिग अग्निः कर्सा अगिग अगिंग अस्मि अग्निं कर्म अग्निना अग्निणा अंगिणा अस्तिना करण अग्गिस्मा अग्गिणी अग्गिणो अग्नेः अग्गिना अगोहिंती अपा० अग्गितो अग्गित

स० अग्नैः श्रग्गिणो,श्रग्गिस्स,श्रग्गिनो,-स्स श्रग्गिणो,-स्स श्रधि० अग्नौ श्रग्गिस्मि श्रग्गिम्हि-स्मि श्रग्गिस्मि स० अग्ने श्रम्गि श्रग्गि श्रग्गि पुलिङ्ग बहुवचन

क० अन्तयः अग्गयो अग्गयो अग्गीवो कर्म अग्नीन अग्गयो भग्गयो अग्गीऊ

प्राहतं कः अस्मिभिः अग्रिहिः अग्रिहिः, अग्रिहिः। अग्रिहिः, अग्रिहेः, अग्रिहः, अग्रिहेः, अग्रिहे
अर्ग अग्निषु अग्निसु, सु अग्रहेसु अग्र
भागा बुद्धार वुद्धार वुद्धार वुद्धार वुद्धार वुद्धा का त्वं त्वं तुमं तुनं तुनं तुनं तुनं तुनं तुनं तुनं तुन
कः वुद्धयः वुद्धो, वुद्धोओ वुद्धो, वुद्धो वुद्धो वुद्धो वुद्धो करः त्वया तिष्, तुमे, तहत्तो, तुमर्ता, करः वुद्धिः। वुद्धोहः, विव्या, विद्धारः वुद्धिः। वुद्धिः, विव्या, वुद्धिः। वुद्धिः। वुद्धिः, विव्या, वुद्धिः। वुद्धिः। वुद्धिः, विव्या, वुद्धाः। वुद्धिः, विव्या, वुद्धाः। वुद्धिः। वुद्धिः, विव्या, वुद्धाः। वुद्धिः। वुद्धिः, व्याः। वुद्धाः। वु
कर्ता द्या दाह, दार . वहुवचनमें। स० ते, तव तहाह, तुज्क तुम्ह (उज्क, उम्ह, उपह, प्रह, उपह, विह्न तुज्क तुम्ह (उज्क, उम्ह, उपह, उपह, उपह, उपह, उपह, उपह तुम्ह तुम तुम तुम तुम्ह तुम
कर्त्ता दधीन दहानि, पार्य अवचन ।  असमद् शब्दका एकवचन ।  असमद् शब्दका एकवचन ।  कर्ता सहं अहं अहं अहं, अम्हि, अस्मि  कर्ता सहं अहं अहं अहं, अम्हि, अस्मि  कर मां मां मं, मम मं, ममं, मिमं  कर मया मप्, मे मया मप्ता, ममादो, मज्कत्तो  स्व मे, मम मे, मम, अम्हें मे, ममं मे, मम अम्हि  सव मे, मम मे, मम, अम्हें मे, ममं मे, मम अम्हिस्म  अधिव स्वयि त्विय, तिय त्विय, तिय त्विम,
अधि मिय मिय महैं मिर्गाल, प्राप्त प्राप्त वहुवचन।  अस्मद् शब्दका वहुवचन।  अस्मद् शब्दका वहुवचन।  उस्मद् शब्दका वहुवचन।  वयं, मर्यं, अम्हें अम्हें अम्हों  कर्ता वरं अम्हें अम्हें अम्हों  कर्म अस्मान अमहें अम्हों अम्हों  कर्म तो तो तो ण
कमें { तः तो तो पि ।  Vol. XIV. 169

कर्म { युष्मान तुमहे, तुमहे { तुम्हे, तुव्मे । तुम्मे वो तुव्म, तुय्हे, वो वो अय्हे, तुल्मे, वे	चतस् चत्व पर्
्र तुमहेहि, तुम्हेंभि ( तुम्हेहि, उम्हेहि कर व्युक्ताभिः ( तुमहेहि तुमहेहि तुम्हेहि तुम्हेहि तुम्हेहि तुम्हेहि तुम्हेहि, उपहेहि तुम्हेहि, उपहेहि, तुमहेहित विव्यहेहित विव्यहेहित विव्यहेहित विव्यहेहित विव्यहेहित विव्यहेहित	प्ष्ठ दश क्यो पोड़
अपा॰ युष्मत् तुमहेहितो तुमहोहितो, तुमहोहितो, तुमहोहितो, तुय्भेहितो, तुय्भेहितो, तुय्भेहितो, तुय्मेहितो,	विंश तिंश पञ्चा पञ्च
तुम्हाहितो, तुज्भोहितो, इत्यादि	धुरुप १म मध्य
तुम्हाण (तुम्ह, तुङ्कं तुम्हाणं तुम्हाकं तुम्हाणं, तुमहरा तुम्हाहं तुम्हं तुम्हाहं तुम्हाहं, तुहाणं तुम्हाहं तुमाणं, तुवाणं तुव्भाण्,तुज्भाण	उत्तर १म मध्य
अधि॰ युष्मास तुम्हेसु, सुं तुम्हेसु तुम्हानु, तुमेसु, तुमासु, तुवेसु, त्वसु, तुहेसु, तुहसु, तुव्सेसु,	उत्त
तुष्मसु, तुष्मसु, तुष्मसु, तुष्मसु, तुष्म इत्यादि	पकर वहुव
अङ्कर क्या। द्वौ द्वे वो, दुवे, वे दे, दुवे दो, दुवे, वे वेणिण	
ति ति तिरि ति वि चत्वार चसारो चत्तारो चत्तारो चतुरः चतुरो चतुरो चउरो	एकव

तस्रः चतस्सो चत्ससो चतस्सी त्वारि , चत्तारि चत्तारि चत्तारि É छ .. छ छ ष्ठ छर्ठो छर्ठो सर्हो, छरठो श दह दस दस दह योदश तेरह तेलह, तेरह तेरह ोड्श सोलस सोलस सोलह वंशति वीसा वीसति, वीसं वीसा तीसा तिसति, तीसं त्रेंशत् नीसा স্থাগন্ पञ्ञासं पन्ना पण्णासा ञ्चपञ्चाशत् पणपण्णस पञ्चपत्र्ञास पणवण्णा

# कियापद् । वर्त्तमान काल एकवचन ।

संस्कृत। आर्पत्रा । रुप। पाछि । प्राकृत । भणति भणति भणति Ħ भणई भणसि ध्यम भणसि भणसि भणसि भणामि भणामि त्तम भणामि भणामि भणिम

# वर्त्तमान काल वहुवचन।

१म भणन्ति भणंति भणन्ति भणंति

मध्य० भणथ भणथ भणथ भणह, भणित्थ

उत्त० णामः भणामो भणाम 

भणामो

भणाम,

भणाम,

## अनुज्ञा ।

भण भण भण कव० भण भणतु भणउ भणतु भणतु भणह भणथ हुब० भणत : भणथ भणंतु भण तु भणंतु भणन्तु

# ्लर् कमैवाच्य

भजते भणाते भणाजते भणाजते भणाज्ञते भणीअप भणीयते भणाज्ञते भणीजप भणीयते भणाज्ञते भणिज्ञप

लट् णिच । ं (भाणेति भाणेड एक व०१म भाणयती भीणेति (भणापेति भणावेई

उपरोक्त तालिकाकी अच्छी तरह आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि आर्य पिएडतोंके मुखसे विशुद्ध उच्चा-रण द्वारा जो भाषा संस्कृतरूपमें गिनो जाती थी, वही जनसाधारणके मुखसे कुछ विकृत हो कर प्राकृतरूपमें परिणत हुई है। वेदसंहिताके प्रचलनस्थान पञ्चनद अथवा ब्रह्मावत्तंभूमिमें पहले संस्कृतभाषा विकृत हो कर प्राक्तकपमें प्रचलित हुई थी वा नहीं, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। इस अञ्चलमें बहुकाल तक संस्हत-भापा हो कथित भापारूपमें प्रचलित थी। ललितविस्तर-में जो प्राचीन 'गाथा' नामक भाषा हा प्रयोग है अधिक सम्भव है, कि वही यहांकी प्रचलित संस्कृत भाषाकी पर वर्त्ती कथितहर है। यही भाषा आगे चल कर पालिभाषा-में परिणत हो गई है। किन्तु आदि बाक्रतभाषा पहले किस स्थानमें प्रचलित थी, उसे जाननेका कोई उपाय नहां। वहुतोंका विश्वास है, कि महाराष्ट्रदेश हो प्राफृत भापाका आदि स्थान है। इसीसे छत्त्मीधरने चिन्द्रकामें लिखा है; "प्राकृतं महारा द्रोद्भवम्" अर्थात् महाराष्ट्रसे हो प्राष्ट्रत भाषाको उत्पत्ति है । चएडदेवकी प्राष्ट्रत-दीपिकामें लिखा है.---

"एतद्पि लोकानुसारात् नाटकादौ महाप्रयोग-दर्शनात् प्राकृतं महाराष्ट्रदेशीयं प्रकृष्टभाषणम् । तथाच द्एडी-

"महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं शकृतं बिदुः।"

लोक व्यवहारके अनुसार तथा नाटकादि और महा-कवियोंके प्रयोगानुसार महाराष्ट्रदेशीय प्राकृत ही उत्कृष्ट भाषा समभी जाती है। दएडीने भी यही लिखा है, कि महाराष्ट्रदेशमें जो पारुतभाषा प्रचलित थी वही श्रेष्ठ है।

रामतर्कवागीशने अपने प्राञ्चत-ऋख्पतरुके शारम्भमें ही लिखा है,---

"सर्वासु भाषाखिह हेतुभूतां भाषां महाराष्ट्रभवां पुरस्तात्। निरूपिययामि यथोपदेशं श्रीरामशर्माहमिमां प्रयसात्॥"

महाराष्ट्री भाषा ही सभी प्राकृत भाषाकी सार है अर्थात् दूसरे स्थानकी प्राकृत भाषाएं भी महाराष्ट्रीसे ही निकली हैं। इस प्रकार रामशर्माने वतलाया है, 'शौर-सेनी महाराष्ट्रीसे और महाराष्ट्री तथा शौरसेनीसे मागधी भाषाकी उत्पत्ति है।'

तव क्या महाराष्ट्रदेश ही प्राकृतभाषाका प्रचार हुआ धा ? इस सम्बन्धमें सन्देह करनेके अनेक कारण हैं। आर्व संस्कृत वा संस्कृत भाषाका प्राचीनतमकृप जिस प्रकार वैदिक भाषामें हैं, उसी प्रकार प्राकृतभाषाका भी व्यादिक्षप आर्पेपकृतिमें विद्यमान है। प्राचीन आर्थजाति जिस संस्कृत-भाषाका व्यवहार कर गई हैं अथच पाणि-न्यादि गाव्दिकोंके समय तत्कालप्रचलित व्याकरणके नियमानुसार जो साध्य नहीं थी, वह जिस प्रकार आर्ष समभी जाती थी, उसी प्रकार जब प्राकृतव्याकरण रचा जाता था, अथच वह तत्कालप्रचलित प्राष्ट्रतके साथ जिस प्राचीन प्राकृत भाषाका किसी किसी विषयमें पार्थेक्य देखा जाता था, वही 'आर्ष' वा 'पुरातन प्राकृत' समभी जाती है ।

अभी आर्प-त्रारुतकी आलोचना करना आवश्यक है। इस आर्पप्राकृतका आदिकप और गठनादि निर्णात हो जानेसे ही हम छोग प्राकृतभाषाके उत्पत्तिस्थानका वहुत कुछ पता लगा सकते हैं।

किसी किसी वौद और जैन पण्डितोंका मत है, कि पाणिनिने ही पहले पहल आर्थ-प्राकृतके लक्षण निरूपण किये हैं। केदारभट्टने लिखा है,---"पाणिनिर्भगवान् शाक्तलक्षणमपि व्यक्ति संस्कृताद्न्यत्।

दीर्घाक्षरश्च कुलचिदेकां मालामुपैतीति॥" भगवान् पाणिनिने संस्कृतं भिन्न प्राकृतके लक्षण भी प्रकाशित किये हें, कि दीर्घाकार कहीं कहीं एकमाता-युक्त अर्थात् हस्व हुआ करता है।'

स्यंप्रज्ञितटीकामें मलयगिरिने भी लिखा है,— "चत्तारि इति च सूत्रे नपुंसकत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्। प्राकृते हि लिङ्गं व्यभिचारि यदाह पाणिनिः सप्राकृत लक्षण, लिङ्गं व्यभिचायेपीति॥"

'इस स्तमें प्राकृत भाषा कह कर ही 'चत्तारि' नपु'-सकद्भपमें निर्दिष्ट हुई है। प्राकृतभाषामें लिङ्गका व्यभिचार देखा जाता है। पाणिनिने खरचित प्राकृत-लक्षणमें कहा है, 'लिङ्ग भी व्यभिचारी अर्थात् परि-वर्त्तनीय है।'

हम लोग अभी पाणिनि-रचित कोई भी प्राकृत ध्याकरण नहीं पाते हैं। मलयगिरिके मतसे पाणिनिने जो प्राकृत-व्याकरण लिखा था, उसका नाम है 'प्राकृत-छक्षण'। अभी चएडरचित 'प्राकृत**लक्षण' नामक** एक आर्पप्राकृतका व्याकरण प्रकाशित हुआ है। इस चएडके श्रन्थमें 'ह्रस्व' स'यागे" (२।३) इस सृतमें केदारमङ्की उक्ति और 'मनचिद्व्यत्ययः।" (११४) इस सूलमें मलयगिरिकी उक्ति तो संमधित हुई है, पर पाणिनिका दोहाई दे कर जो स्त उद्धृत हुआ है, ठीक वही स्त चएडके प्राकृत छक्षणमें नहीं है, इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि पाणिनि-नामधेय किसी व्यक्तिने 'प्राकृतलक्षण' नामक एक स्वतन्त्र व्याकरण लिखा था। यह पाणिनि और अप्टा-ध्यायिके रचयिता पाणिनि ये दोनों क्या एके व्यक्ति थे ? अद्याध्यायीमें पाणिनिने जिसे प्रचलित 'भापा' वतलाया है वही तत्काल प्रचलित संस्कृत भाषा है। सुतरां उनके समयमें ऐसी प्राकृत भाषा पुचलित थी वा नहीं तथा उसका व्याकरण लिखनेका प्रयाजन हुआ था ग्रा नहां, इस विषयमें सन्देह है। हमारा विश्वास है, कि अष्टाध्यायी नामक संस्कृत न्याकरणके रचयिता पाणिनि और पामृतलक्षणके पृणेता पाणिनि दोनों ही भिन्न न्यति हैं।

जो कुछ हो, चएडरचित आर्ष-प्राकृत-लक्षणमें हम लोग सुप्राचीन प्राकृत भाषाका बहुत कुछ परिचय पाते हें ।

चएडने प्राकृत, अपभ्रंश (३१३७), पैशाचिकी (३१३८) और मागधी (३१३६) इन चार प्रकारके प्राकृतींका उरुलेख किया है। इन चार प्रकारके प्राकृतींका भेद इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है—

"न छोपोऽपभ्रंशेऽघो रेफस्य।" ( ३।३७ )

अपभ्रंशमें अधो 'र' अर्धात् रफलाका लोप नहीं होता। जैसे—व्यव्न, व्रसि ।

["पैशाचिष्यां रणयोर लनौ।" ( ३।३८ )

पैशाचिकीमें 'र'-की जगह 'ल' और 'ण'-की जगह 'न' होता है। जैसे—अरे=अले, प्रणमत=पनमत। "मार्गाधकायां रसयोर छशौ ।" (३।३६) मार्गाधी-भाषामें 'र'-की जगह 'ल' और 'स'-को जगह 'श' होता है। जैसे चन्द्रकरनिकर=चन्द्रकल निकल, हंस=हंश।

उक्त प्राकृत-लक्षणके टीकाकारने संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, पैशाचिकी, मागधी और शौरसेनी इन छः भाषाओंका उहु खिकिया है। किन्तु उन्होंने भी महा-राष्ट्री-भाषाका कहीं उल्लेख नहीं किया।

वररुचिने ही अपने प्रकृतप्रकाशमें सबसे पहले महाराष्ट्री प्राकृतकी विस्तृतभावमें आलोचनः की है। उनके मतसे महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी यही चार प्राकृत भाषा हैं।

हेमचन्द्रने (मूल) शकृत, शौरसेनी, पैशाची, चुलिका पैशाची और अपभ्रंश इन छः प्कारके प्राकृतीं-का उल्लेख किया है। हेमचन्द्रने जिसे केवल प्राकृत वतलाया है, उसके साथ जैनशास्त्रमें न्यवहत अई-मागधिका साद्रश्य अधिक हे और वररुचिकथित महा-राष्ट्रीके साथ विलक्कल नहीं है। अतएव हेमचन्द्र-वर्णित मूल प्राकृतको किस प्रकार महाराष्ट्री कह सकते । फिर चएडने आपप्राकृतके वर्णनाकालमें मूल प्राकृतका जो लक्षण निर्देश किया है, उसके साथ वररुचि-वर्णित मूल प्राकृत या महाराष्ट्रीकी कई जगह एकता नहीं है। सुतरां चएडने जव महाराष्ट्री नामक किसी पाकृतका उल्लेख नहीं किया, अथच वररुचि निर्देशित म्लमाकृत वा महाराष्ट्रीके साथ जगह जगह पर पृथक ता देखी जाती है, तव किस प्रकार कहा जायगा, कि आर्पभाकृत-के उत्पत्तिकालमें महाराष्ट्रीकी उत्पत्ति हुई थी? इस हिसावसे महाराष्ट्रीको आदि प्राकृत और उससे अपर प्राकृत समूहकी उत्पत्ति किस प्रकार स्रोकार को जा सकती हैं ? अधिक सम्भव है, कि वरविचे महा-राष्ट्रीको भित्ति करके प्राकृत व्याकरण प्रकाशित करनेसे तत्परवर्त्ती दो एक आछङ्कारिक और आधुनिक वैया-करणोंने महाराष्ट्रीको ही आदि प्राकृत वतलाया है। किन्तु महाराष्ट्रीभाषा आदि प्राक्त भाषा है, ऐसा किसी भी पुाचीन वैयाकरणने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया।

फिर वौद्ध लोग मागधीको मूल भाषा समभते हैं।

उन्होंने कचायन (कात्यायन ) की 'प्योग सिद्ध' से जो वचन उद्दध्वत किया है, वह इस पृकार है—

"सा मागधी मूलभाषा नरा येयादिकप्पिका। ब्रह्मानो च स्मुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे॥"

जो मूल भाषा सव भाषाओंको आदिकल्पक है, जिस अशुतपूर्व भाषामें मनुष्य और ब्रह्म, यहां तक, कि सम्यक् वौद्ध लोग भी वातचीत करते हैं, वही भाषा मागधी है।

जैन लोग अद्ध मागधो भाषाको हो आदि भाषा जानते । हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने 'पन्नवना-स्त्र'से जो पृमाण उद्दध्त किया है, वह इस पुकार है,—

"से कि तं भाषारिया ? जेनं अद्धमगहाय भाषाय । भासेन्ति जत्थयनं वम्मीलिवि पवत्तर ।" अर्थात् किस भागमें उसका पूर्योग है ? अर्द्ध मागधी-भाषा जिससे प्रकाणित किया जाता है, वही ब्राह्मीलियि है ।

लिपिस्पिके वाद जितने प्रकारको लिपिमालाएं निकली हैं उनमें ब्राह्मोलिपि हो भारतवासीको आदि-लिपि है। पहले ही कहा जा खुका है, कि आयोंको श्रुति जब प्रचलित हुई, उस समय भी लिपिपद्धित नहीं थी। अधिक सम्भव है, कि देशप्रचलित भाषामें मनो-भाव प्रकाशित करनेके लिये सबसे पहले ब्राह्मोलिपि हो ज्यवहत हुई थी।

वीदों और जैनोंके आदि धर्मप्रन्थ मागधो (पालि) और अर्द्ध मागधो भाषामें रिजत हैं। जैनतीर्थं द्वरोंकी उपवेशावली भी इसी अर्द्ध मागधी भाषामें लिखो हुई हैं। जैनोंके भगवतीस्त्रमें चातुर्याम धर्मप्रकरणमें २३ वें तीर्थं द्वर पार्श्वनाथकी उक्ति पाई जाती है। ७७७ ई० सन्के पहले पार्श्वनाथका समेतिशिखर पर निर्वाण हुआ। उनका लीलाक्षेत्र काशों और मगध था। अतपन उस समय इस प्रदेशमें जो भाषा प्रचलित थीं उसी भाषामें निश्चय है, कि उन्होंने अपना अभिमत प्रकाशित किया था। पार्श्वनाथका मत जो भगवतीस्त्रमें है, वह अर्द्ध - मागधी भाषामें देखा जाता है।

पार्श्वनाथ, महाबीर और शाक्यवुद्ध इन्होंने जो मागधी भाषामें धर्मप्रचार किया था, उसका बहुत कुछ निदर्शन प्रियदर्शीको मागधीय अनुशासन्-लिपिमें तथा चएडको आर्पप्राकृत भाषामें विद्यमान है।

Vol. XIV. 170

प्रियद्शी को गुजरातसे आविश्वत अनुशासनमें ज भाषा व्यवहृत हुई है, सम्भवतः वही भाषा वहुत कुछ क्ष्पान्तिरत हो कर दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्री कहलाने लगी थी। फिर पूर्व-भारतसे प्रियद्शींकी जो सब अनुशासन-लिपियां आविश्कृत हुई हैं वही मागधी नामसे ख्यात थीं।

अध्यापक लासनके मतसे, 'वरहचि-वर्णित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची इन चार प्रकारके प्राकृतीं-मेंसे शौरसेनी और मागधी ये दोनों ही यथार्थमें स्थानीय लक्षणाकान्त हैं। इन दानोंमें शौरसेनी एक समय पश्चिमाञ्चलके विस्तृत प्रदेशमें कथित भाषाक्रपमें गिनी जातो थी और मागधी अशोककी शिलालिपिमें व्यवहृत हुई है तथा पूर्वभारतमें यही भाषा एक समय प्रचलित थो। महाराष्ट्र नाम रहने पर भी यह महाराष्ट्रप्रदेशकी भाषा नहीं समकी जाती। पैशाची नाम भी काल्पनिक समका जाता है।'

जो कुछ हो, अतिपूर्वकालमें भारतमें सव जगह प्रायः एक तरहसे प्राकृतभाषाका ही प्रचार था । अभी जिस वकार महाराष्ट्रीके साथ मागधी वा विहारी भाषाका प्रभेद देखा जाता है, पहले उस प्रकार नहीं देखा जाता था। वरष्विका प्राकृतप्रकाश और भारतवर्षके नाना स्थानोंसे आविष्कृत प्रियदशींकी अनुशासनलिपिकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि दो या ढाई हजार वर्ष पहले भारतीय आर्यजातिके मध्य जो कथित वा प्राकृतभाषा प्रचलित थी, वह सभी जगह प्रायः एक-सी थी, अति सामान्य इतरविशेष था । जैसे चएड अथवा वररुचिके स्थानभेदमें चार प्रकारकी प्राकृत-भाषाओंका उल्लेख करने पर भी यदि उन सब भाषाओंके मूल और गडनकी आलोचना की जाय, तो वहुत प्रमेद देखा जाता हैं। इसीसे वरहचिके १म ६ परिच्छेदमें महाराष्ट्री भाषा-की ४२४ सूलोंमें आलोचना करने पर भी उन्होंने १४ स्तोंमें पैशाची, १७ स्तोंमें मागधी और ३१ स्तोंमें शौर-सेनीका विशेषत्व दिखलाते हुए 'शेष' महाराष्ट्रीवत्' ऐसा कह कर उपसंहार किया है।

चएड और वररुचि दोनोंने ही प्राकृतभाषाके तिविध द्वप सीकार किये हैं; यथा संस्कृतयोनि, संस्कृतसम और देशी, जो संस्कृतयोनि है वह संस्कृतसे उत्पन्न है। यथा—संस्कृतमाता = प्राकृतमत्ता । नित्यं = निचं।

जिसका रूप विस्तृत नहीं होता, ठीक संस्कृतका मत ही रहता है, वहीं संस्कृतसम है। यथा—सूरो, सोमो, जालं कन्दलं।

संस्कृतके साथ जिसका कुछ भी मेळ नहीं है, अथच भिन्न भिन्न देशोंमें जिसका बोळचाळमें व्यवहार हैं, वही देशी है। यथा—महाराष्ट्रदेशमें भातु, भेटु; अन्ध्रदेशमें वर्षटकमु कुडु; कर्णाटदेशमें कुळु; द्राविड़में चोठ।

जिन्होंने प्राक्षतमाषाको संस्कृत भापाकी दृहिता वतलाया है, प्राक्षतके उक्त विविधक्तपकी आलोचना करनेसे
उनकी वातोंका समर्थन नहीं किया जा सकता। प्राकृतभाषाका अनेकांश संस्कृतभव होने पर भी जो देशी है
जिसका भारतवासी वहुत दिनोंसे व्यवहार करते आ रहे
हैं, उसे हम लोग कभी भी संस्कृत नहीं कह सकते।
प्राकृतका यही अंश भारतवासीका निजस्त है। इसी अंशके प्रभावसे देशभेद, कालभेद और लोगोंके उचारणभेदसे प्राकृतभाषाने नाना मूर्त्ति धारण की है तथा भारतके
एक प्रान्तको भाषा दूसरे प्रान्तमें अवोध्य हो गई है।
दाक्षिणात्यसे हो इस देशीय भाषाका प्रभाव विस्तृत
हुआ है। इस सम्बन्धमें कृष्ण पिएडतने अपनी प्राकृतचिन्द्रकामें इस प्रकार लिखा है, -

"अपभ्रंशस्तु यो मेदः षष्ठः सोऽत न लक्ष्यते।
देशभापादितुत्यत्यान्नाटकादावदर्शनात्॥
अनत्यन्तोपयोगाचातिप्रसङ्गभयादिष ।
प्रवमन्येऽपि ये मेदा लक्षिताः पूर्वं सूरिभिः॥
नेहोक्ताः किंतु नाम्नैते कीन्त्यन्ते स्पष्टबुद्धये।
महाराष्ट्री तथावन्ती शौरसेन्यद्धं मागधी।
वाह्नीकी मागधी चैव षड् ता दाक्षिणात्यजाः॥
श्वकाराभीरचण्डाल-शर्यद्राविड्रोक्जाः।
होना वनेचराणाञ्च विभाषा नाटकाश्रयाः॥
बाचण्डो लाटवैदर्भावुपनागरनागरी।
वावैरावन्त्यपाञ्चालटाक्रमालवकैकयाः॥
गौड्रोड्दैवपाश्चात्यपाण्ड्यकीन्तलसे हलाः।
कालिङ्गप्राच्यकणाट-काञ्च्यद्राविड्रगीज्जेराः॥
आभीरोमध्यदेशीयः स्दमभेद्व्यवस्थिताः।

सप्तविशत्यपभ्रंशा वैड़ालादिमभेदतः॥
काञ्चोदेशीयपाण्ड्ये च पाञ्चालं गौड़मागधं।
बाचएडदाक्षिणात्यञ्च शौरसेनं च कैक्यं॥
शावरं द्राविडं चैव पकादश पिशाचजाः।
पवमार्षमनापञ्च सङ्कीणं चोपजायते॥"

'प्राकृतका पप्रमेद अपभ्रं श है, देश प्रचलित जो सब भाषा है, वह उसीके समान है। नाटकादिमें उसका प्रयोग नहीं खा जाता। पूर्व पिएडतोंने और भी जिन सव भेदोंकी कल्पना की , वाहुल्य और अति प्रसङ्गके भयसे उसका जिक्र नहीं किया गया। किन्तु अच्छी तरह जाननेके लिये उनका केवल नाम दिया जाता है। महा-राष्ट्री, अवन्ती, शौरसेनी, अद्धीमागधी, वाह्वीकी और मागधी ये छः भाषा वाक्षिणात्यमं प्रचलित है। शकार, आसीर, चएडाल, शवर, द्राविड़ और उड़देशमें जो सव भाषा व्यथहत होतो हैं वे तथा चनचरोंकी व्यवहत होन भाषापें नाटकादिमें प्रयुक्त होतो हैं। वाचएड, लाट वैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्चर, आवस्त्य, पञ्चाल, टाइ, मालव, कैक्य, गौड़, उड़, दैव, पाश्चात्य, पाण्ड्, कीन्तल, गुर्ज्जर, आभीर और मध्यदेशीय वैड़ालादिभेदसे ये सता-इस भाषावं अपभ्रंश समभी जाती हैं तथा उन सब भाषा-ओंमें एक दूसरेके साथ अति सामान्य प्रमेद हैं। इनमेंसे ब्राचएड, काञ्ची, पाएडा, पाञ्चाल, गौड़, मागघ, दाह्<del>स</del> णात्य, शौरसेन, कैकय, शम्वर और द्राविड ये ग्यारह पै मच-भाषा हैं। अलावा इसके ये सब भाषापँ पुनः आपं, अनार्ष और सङ्कीर्ण मेदसे भी तीन प्रकारकी हुआ करती हैं।

अभी वङ्गला, उड़िया, गुजरातो, मराठी आदि देशीय वा अपभ्रंश भाषाके कितने प्रभेद हैं। किन्तु प्राचीन-कालमें इस प्रकारका प्रभेद नहीं था, कृष्णपिंडतके उद्घृत वचनसे यह साफ साफ जाना जाता है। यह बहुत दिनोंकी वात है। यहां तक, कि पांच सी वर्ष पहले वङ्गल, मिथिला, उड़िया और महाराष्ट्रमें जो भाषा प्रचलित थीं, सब मिला कर देखा गया, कि उस समय भी इन सब भाषाओं के घातु, प्रकृति, ग्रास्प शब्द और कह शब्द बहुत कुल मिलते जुलते थे। वह ही दुःखका विषय है, कि जितने ही दिन वीतते जाते हैं, जितना ही भारतीय विभिन्न भाषामें सैकड़ों प्रन्थ रिचत हो कर । भाषाकी श्रीवृद्धि कर रहे हैं, उतनी ही विभिन्न देशोंकी । विभिन्न भाषा विभिन्न मूर्त्ति धारण करती जा रही है। । जिनके साथ पहले हम लोग एक थे, अभी कालके प्रवाव-से भिन्न और संस्वशून्य हो गये।

प्राकृत भाषाके उच्चारणमें संस्कृतसे प्रभेद होने पर भी प्राकृत भाषाका व्याकरण संस्कृतानुसारी हैं। परन्तु प्राकृतोन्द्रव होने पर भी अभी भारतकी प्रचलित भाषाके व्याकरणके नियमादि विलक्षल स्वतन्त्र हैं। वङ्गभाषा, प्रहाराष्ट्र और मैथिल शुन्दमें विस्तृत विवर्ण हैस्सो .

## प्राकृतभाषाका विशेषत्व ।

संस्कृतभाषामें कुळ ६४ वणे हैं, परन्तु प्राकृत भाषामें सिर्फ दे हैं। यथा—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ यही ८ सर और क ख ग घ, च छ ज फ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध, प फ व म, य र छ च स ह यही २८ व्यञ्जन। परन्तु पैराचिकी भाषामें 'त' और मागधो भाषामें 'श कारका प्रयोग देखा जाता है। इन दोनोंको भी छेनेसे प्राकृत भाषामें -८ वणे होते हैं। अर्थात् साधारण प्राकृत भाषामें प्छत वर्ण और ऐ औ ऋ ऋ ल छ अ:, ङ ञ न श तथा प ये सब अक्षर नहीं हैं।

कृष्णविष्डतके उद्भृत वचनसे जाना गया है, कि प्राकृतके प्रधानतः तीन भेद हैं—आर्प, अनार्प और सङ्कीर्ण।

आर्पे प्राकृतमें प्रथमाकी जगह हितीया और सप्तमी-की जगह तृतीया विभक्ति देखी जाती है। यथा—चतु-विंशतिरपि जिनवराः =चीर्वासं वि जिणवरा। तस्मिन् काले तस्मिन् समये =तेणं कालेणं तेणं समक्षणं।

अनार्यं था साधारण प्राक्तमें संस्कृतको तरह लिङ्ग और विभक्ति रहने पर भा कई जगह विपर्यंय देखा जाता है। यथा संस्कृतमें विद्युत् स्त्रीलिङ्ग हैं, पर प्राकृतमें विज्जूको पुंलिङ्ग वतलाया है।

इसी प्रकार द्वियचनकी जगह वहुवचन होता है। यथा—संस्कृत देवी, ब्राह्मणी पादी इत्यादिकी जगह प्राकृत भाषामें यथाक्रम देवा, वम्भणा, पाया देखा जाता है। चतुर्थोंका प्रयोग वहुत कुछ पष्टीके जै सा है । यथा— नमः जिनाय = नमो जिनस्स ।

हमचन्द्रके मतसे ऋषिकथित प्राइत ही आपें वा पुरातन प्राइत है। श्वार अधित इसमें लिखा है, कि आप्रीप्राइतका वहुकप हुआ करता है, अर्थात् इसमें कोई खास नियम नहों है। इसकी सभी विधियाँ विकल्पमें प्रयुक्त हुआ करती हैं।

जै नोंके प्राचीन अङ्गादि अद्योगाधी भाषामें रचित हैं। इसीसे मालूम होता है, कि हेमचन्द्रने अद्योगाधीको हो आर्य वा पुरातन माहत वतलाया है। उनके मतसे— कर्त्यृ के एकवचनमें पदके अन्तमें 'अ' रहनेसे मागधी-भाषामें 'अ'-की जगह 'ए' होता है। किन्तु महाराष्ट्रीय भाषामें ऐसी विधि नहीं है। मागधी और अद्योगधी भाषामें जहां 'र' और 'स' होता है, मागधी भाषामें वहां यथाकम 'ल' और 'श' होता है। इस सामान्य प्रभेदको छोड़ कर दोनों भाषामें और कोई पृथक्ता नहीं है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि चएडने प्राकृत, मागधो, पैशाची और अपभ्रंश इन चार प्रकारके प्राकृतों-का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने महाराष्ट्री और शीर-सेनीका उल्लेख नहीं किया। शायद इन दो श्रेणियोंकी प्राकृत भाषा उनके समयमें प्रन्थनियद नहीं हुई होगी। चएडने मूल प्राकृत कह कर जिस भाषाकी विस्तृत आलोचना की है, उसके साथ मागधी भाषाकी वहुत कुछ एकता है। इस हिसावसे चएडका मूल वा आर्थ प्राकृत हो अर्द्ध मागधीका पुरातनक्षप समका जाता है। किन्तु उनके समयमें भी अर्द्ध मागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी-का पृथक् नाम नहीं हुआ।

हिमालयसे कुमारिका और गङ्गासागरसे सिन्धु इस विस्तृत जनपद्से सम्राट् प्रियद्शों के जो सब अनुशासन आविष्कृत हुए हैं उनमें हम लोग पालि वा प्राकृत भाषा-का तिविधक्कप पाते हैं:—पञ्जावो वा युक्तप्रदेशीय, उद्धियनी वा मध्यप्रदेशीय और मागधी वा प्राच्यदेशीय। युक्तप्रदेशीय भाषामें सभी जगह 'र' व्यवहृत हुआ है और चएडने 'अपन्नंश' कह कर जिस भाषाका लक्षण वतलाया है, उसके साथ इसका मेल देखा जाता है। मध्यप्रदेशीय वा भावन्त्य भाषा ही चएड विणत मूल प्राकृत है। इसका एक समय उज्जियिनो, गुजरात, महाराष्ट्र और किल्क्ष अञ्चलमें प्रचार था। प्राच्यदेशीय भाषामें सभी जगह 'र' की जगह 'ल' है। खाल्सी, मीरट, लौरिया, सहसराम, वरावर, रामगढ़ और घोलीसे प्राप्त प्रियदर्शीको लिपिमें सभी जगह इसी प्रकार 'ल'-का प्रयोग देखा जाता है। यही चएड-चर्णित मागधी है।

### स्वर-विधान ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राकृत भाषामें ऋ, ऋ, ल, ॡ, ऐ, औ ये छः खर नहीं हैं।

ऋ की जगह रि अथवा स्थानविशेषमें अ इ उ ए ओ हुआ करता है। चएड २।५, वरष्ठिच २।२७-३१) यथा— ऋणं = रिणं, घृतं, घतं, ऋषि = इसि, यृद्धः = बुड्ढो, यृन्तं = बॅटं, उत्कृष्टं = उक्कोसं।

ऐ की जगह ए, अइ और क्षिति इ वा ई हुआ करता है। (चएड २१६ ७, वररुचि ११३५-३६) यथा—तैलं = तेलं, शैलं = सेलो, सैन्धवं = सेन्धवं, सिन्धवं, ऐश्वर्यं = अइ-सरियं, भैरवः = भइरवो ; धैर्यं = धीरं।

आ, ई, ऊ इन सव दीर्घ खरोंके बाद संयुक्ताझर रहनेसे दीर्घ खर हस्त होता है, (चगड २।३) यथा -कार्य=कज्जं, तोक्ष्णं=तिक्खं, ऊर्द्धं= उड्ढं, उद्धं।

फिर हस्व स्वरके वाद युक्त व्यञ्जन रहनेसे हस्य स्वर । दीर्घ होता है तथा एक व्यञ्जनका लोप होता है। अवड २।२ यथा —धनाढ्ः =धनड्ढो, देव इन्द्र वा देवेन्द्र = देविन्दो ।

# व्यञ्जन-विधान ।

प्राकृत भाषामें मूर्ड ण्य ष वा तालव्य श नहों होता।
श और प की जगह स होता है। (वरहिच २।४३) यथा निशा = निसा, पण्ढ़ः = सण्ढ़ो, कषाय = कसायं। इस
प्रकार ट के स्थान पर ड और ड के स्थान पर ल होता
है। (वरहिच २।२०-२३) यथा - नता, विटप = विड्वो;
दाड़िमं = हालिमं।

प्राकृत भाषामें दन्त्य 'न' नहीं है। इस कारण सभी जगह 'ण' होता है। उधर पैशाची माषामें 'ण' नहीं है। ( वग्रड ३१३८ )

शब्दके अन्त्यस्थल हलका लोप होता है। (वरकि ६१२) यथा—यशस् = जसी, नमस = णही, कर्मन् = कर्मो, यावत् = जाव। स्रीलिङ्गमें शब्दके अन्त्यस्थ हलकी जगह आकार होता है। यथा—सरित्=सरिया, प्रतिपद=पड़िवा; किंतु विद्युत्, शरद और प्रावृट् शब्दकी जगह नहीं होता। इन तीन शब्दोंकी जगह यथाक्रम विज्जू, सरदो, पाउसी हुआ करता है। (वरहिव ४१६-११) शब्दके आदिमें यक्ती जगह ज होता है। (वर्षड ३११५) यथा—यौवनं = जुवूणं, स्यां = सुज्जो ; किन्तु युष्मद्के 'यकार'-की जगह तकार होता है। (वर्षड ३११०) यथा—युष्मासिः = तुम्हेहि। फिर यकारके मध्यमें रहनेसे पूर्वक्षप रहता है। यथ —प्रयागजलं = प्यागजलं।

क, ग, च, ज, त, द, प वर्गीय व, अन्त्यस्थ व, य इन सवका अकसर लोप हुआ करता है। ( वर्शिव २१६) यथा—मुकुल = मउलो, सागर = साथरो, वचनं = वयणे, रजतं = रअदं, वितानं विद्याणं, गदा = गथा, विपुलं = विद्यलं, वायुना = वादणा, जोवं = जीअं।

किन्तु कहीं कहीं श्रुतिमधुर होनेके लिये लोप नहीं होता । यथा—कुसुमं, पिअगमणं, (अपजलं =) अव-जल, अतुलं, आदरो शणारो, (अयशस् =) अजसी

ख, थ, ध, और भ को जगह ह होता है (वरहीय २।२७) यथा—मुखं = मुहं, मेघः = मेहो, गाथा = गाहा, राधा = राहा, सभा = सहा।

फिर स्थानविशेषमें लोप भी नहीं होता। यथा— प्रख्लः = प्रखलों, प्रलंघन = प्रलंघणों, अधीरों, उपलब्ध-भाव = उपलब्धभावो। (भामह २०२७)। किन्तु शौर-सेनो भाषाके त-को जगह र और थ-की जगह घ होता है। (चण्ड ११३९ टीका, बर्धि १२१० र का कभी कभी ल होता है। किन्तु मागधी और अपभ्रंशमें सभी जगह ऐसा ही हुआ करता है। यथा—हरिद्रा = हिल्हा, चरणो = चलणों, युधिष्ठर = जुहिट्ठिलों, अंगुरो = अंगुलि, किरात = किलादों, परिखा = फिलहा।

ण, म, ल, म और ह इन पांच वर्णोंका परिवर्त्तन नहीं होता है। (वर्श्वव २।२४) यथा—दश =दह, एका-दश =एगारह, द्वादश =वारह, क्योदश =तेरह।

फिर कहीं पर श की जगह ह और स दोनों ही होते हैं। यथा—दशवल =दहवली, दसवली।

प्राकृत भाषामें संयुक्तव्यञ्जनका यथेष्ठ परिवर्त्तन देखा जाता है। क, ग, ङ, त, द, प, प, स इन आठ वर्णोंका किसी वर्णके साथ युक्त होनेसे लोप होता है। यथा—अक = भत्तं, सिक्थक = सित्थओ, स्निष्ध = सिनिद्धो, खड्ग = खगो, उत्पलं = उप्पलं, मुद्दर = मुगगरो, सुप्त = सुत्तो, गोष्ठी = गोद्धी, स्वलित = बलिअं। (वर्षिच ३।१)

म, न और यकार यदि किसी वर्णके साथ भधोयुक्त हों तो उनका लोप होता है। यथा—रिशम =रस्सी, युग्मं = युगां, नग्न =णग्गो, सौम्य =सोम्मो। (दरहिष ३।२)

ल, व और रकारका किसी वर्णके साथ ऊपर वा नांचे युक्त होनेसे भी लोप होता है। (वरक्वि ३१३)। यथा—उल्का = उक्का, वल्कलं = वक्कलं, लुल्धक = लोद्धओं, पक्क = पिक्कं, अर्क = अक्को, शकु = सक्को।

ंकिसी किसी जगह युक्तवर्णके मध्य फिर स्वरागम हुआ करता है। (वरविच ३।६२) यथा, श्री = सिरी, ही = हिरी, कीत = किरीतो, क्लान्त = किछंतो, क्लेश = किछेसो।

संस्कृतका युक्तवर्ण प्राष्ट्रत भाषामें कैसा आकार धारण करता है, नीचे उसकी एक तालिका दी गई है:— प्राप्तुत संस्कृत

क = त्क, प्क, क, क्य, कु, क, क्र, ल्क, क। क्ख = त्ख प्ख, ख्य, झ, ष्क, स्क, स्थ, प्ख, ।ख। ग्ग = द्ग, हुग, ग्न, ग्य, अ, र्ग, ल्ग,। ग्घ=ङ्घ, दुघ, ब्र, ब्र, ब्री। ङ्क = ङ्क्ष च्च=च्य, त्य, चु, ची। च्छ= थ्य, छ, छ, स, त्स, त्स, त्स, त्स, त्स्य, टस, श्च। ज्ज = ज, ज, ज, ज, ज्व, घ, र्घ, य्य। ज्भ=ध्य, हा। ञ्ज =क, न्य, एय, ज्ञ । ह=त<sup>°</sup>, त्त्र। इ=ए, छ, स्त, स्थ। डु=त, दें। ड्ढ =ढ्य, र्घ । एट, एड =त्त, न्द्। ण्ण = मन, ज्ञ, स्न, त्र, ण्य, न्य, एं. एव, न्य । णह =क्न, श्न, व्या, स्न, ह, ह,। Vol. XIV. 171

त्त = क, स, ब, त्म, ब, त्व, त। त्थ = क्य, प्य, त, थ, स्त, व्ह स्थ। इ=म्द, ब्द, ब्र, द्र, दे, इ। द्र≕ध, ब्ध, र्ध, ध्व। न्द=न्त। (शौरसेनीमें) न्य =ह । प्प = क्प, त्प, प्य, प्र, प्र, हप, ह्य, क्र, तन । प्फ = क्फ, त्फ, क, स्फ, क, प, प, स्प। व्य = ग्व, इप, इ, र्व, त्र । ब्स =ग्स, इ्स, इह, भ्य, भ्र, ४, ह्व। | | | | | म्म =ङ्म, ण्म, न्म, म्य, मी, हम, म्छ । म्ह=पा, दम, सम, दम। च्य = यें, जें। र=र्थ । रि=य (कचित् पैशाचीमें ), दू (कचित्)। रिस, रिह=श, प, हैं। छ=स्य, छं, स्व, ये । ळ ्ह=ह। ब्ब = द्व, ब्य, ब्र, ब्र। ंस=र्श, श्र, ख, ख। स्स =शम, श्य, प्म, स्य, श्र, श्री, श्व, प, प्व, स्न, स्व । शब्दका द्वप ।

प्राकृत भाषामें द्विवचन और सम्प्रदान कारक नहीं होता। सम्प्रदानकी जगह पष्टी विभक्ति होती है। अपा-दान शब्दके अन्तमें हिन्तो और सुन्तो विभक्ति आती है।

प्राकृत भाषामें प्रधानतः ५ प्रकारके शब्दोंका क्ष्य देखा जाता है—१ छा कितने अ वा आकारान्त, ररा कितने हस्व इ वा दीर्घ ईकरान्त, ररा कितने उ वा उका-रान्त, 8था जो पहले ऋकारान्त था, ऐसे कितने शब्द और ५ वां पहले जो स्थलनान्त था, ऐसे कितने शब्द। शेषोक्त दों क्पों में ऋ की जगह प्रायः इ उ अथवा अर् वा आर होता है। सम्बन्ध पदमें भी इसी प्रकार होता है मातृ शब्दकी जगह माआ तथा आकारान्त स्त्रीलिङ्गकी तरह शब्दक्य होता है। व्यष्टनान्त शब्दका शेष वर्ग लोप तथा प्रथम ३ प्रकारमेंसे किसी एककी तरह क्षय होता

पक्षचचन

है। यथा—सरस्की जगह सर (पुंलिङ्गबद्दू ), अशिस् की जगह आसिसा (स्त्रीलिङ्गद्भ )। परन्तु हलन्त प्राकृतका रूप साधारण संस्कृतवत् होता है। यथा— भवदा (भवत् शब्दकी तृतीया), आउसा = आयुषा (आयुस् शब्दकी ३या)।

नीचे अकारान्त और आकारान्त शब्दका रूप दिख-लाया गया है:---ह्रीवलिङ्ग वण =वनं पुलिङ्ग सर=सरस् एकवचन वहुवचन सरा। (वणाइ, वणाणि) १मा। सरो (वणं) २या । सरं सरे, सरा। सरेहिं, सरेहि। ३या । सरेण ∫ सराहितो, सरेहितो पनी । { सरादी, सरादु, सराहि, सरा। े सरासुंतो, सरेसुंतो सराणं, सराण । ६ष्ट्री । सरस्स । सरेसु, सरेसुं। ७मी। सरे, सरस्ति। सरा। (वणाइं, वणाइ) सम्बो०। सर (वण) स्त्रीलिङ्ग माआ =मात्।

वहुवचन । एकवचन माञ्राओ, माभाउ, माथा । १मा। माआ माआओ, माआउ। द्या । साअं ( माथाहितो, ५मी । माआदो,-दु-हि । र माथासुतो। (माआणं, माआण ३या । ६ष्टी । ७मी । माआइ, माआए। (मायासु, माथासूं। माआओ, माआउ। सरबो०। माप स्रीलिङ्ग णई =नदी।

१मा। णई पाईओ, पाईउ।
२या। पाई' पाईओ, पाईउ।
५मी। पाईदो, दु-िं पाईहिंतो, पाईसुंतो।
२या। ) पाईअ, पाईआ पाईहिं, पाईहिं।
६प्री। पाईउ, पाईय पाईसुं, पाईसुं।
सम्बो०। पाई

सर्वनाम । प्राफ्त भाषामें सर्वनाम शब्दका कुछ विशेषत्व है । जैसे, किम् यदु तद्की जगह यथाकम 'क' 'ज' और 'त' ;

पतद्वकी जगह 'पद' वा 'प'; इदम्की जगह 'इम', अदस् को जगह 'अमु' कभी कभी 'अह' भी होता है। फिर किम्, यद्द और तद्दकी जगह स्थलविशेषमें 'कि' 'जि' 'ति' ऐसा देखा जाता है।

त =तद्द (पुंछिङ्ग)

वहुवचन ।

१मा। तो (ह्यी	विलङ्गमें तं ते) ( क्की॰ ताइ, ताइ' )						
२या। तं	ते।						
३या। तेण, तिणी	तेहि ।						
५मी। {	तत्तो, तत्तु, { ताहितो, तदो, तदु। तासु तो।						
६ष्टी। {	तस्स, तास, स \ ताण ताण, ो तेसि।						
७मी ।	तससि-स्सि, तस्मिं-तस्मि तेसु, तेसु । तहि, तत्त्थ ।						
स्त्रीलिङ्ग ।							
एकवचन ।	वहुवचन।						
१मा। ता।	ताओ ताउ ।						
२या। तं।	तीओ, तीउ।						
५मी। तादो, तादु।	ताहितो, तीहितो, 🕟						
३या । तिणा	सुंतो । ु ताप, ताइ, ताहि, तीहि।						
	तीप, तीइ, तांसा						
६ष्टी। तस्सा, तासे,	ते { तेसि, तासि, ताणं। जीणं, तीण, तीसि।						
तिस्सा, तीसे	🕽 तोध, तीया						
७मी। ताहे, तइआ	्रे तासु, तासु तीसु तीसु ।						
•	क्रियापद् ।						
वाकतशस्त्रके कियावटमें भी दिवचन नहीं होता।							

प्राकृतशम्दके क्रियापदमें भी द्विवचन नहीं होता। इस घातुका रूप दिया जाता है। वर्त्तमान काल।

पकवचन । वहुवचन ।
प्रथम । हसदि, हसइ । हसंति ।
मध्यम । हसि । हसह, हसधं-ध, हसित्था, हसत्थ ।
उत्तम । हसामि, हसिम, हसामो,-मु,-म, हसिमोहसम्हि । मु-म, हसम-इसम्ह ।

अनुद्या ।

१म। हसदु, इसद। हसंतु।

मध्यम । इससु, इसाहि, इसस्स । इसह, इसध, घं। उत्तम । इसमु । इसामी-म, इसमी-म, इसम्ह । पदान्तमें 'अ' की जगह 'ए'के इच्छानुसार ध्यवहार होते देखा जाता है। यथा—इसेमि, इसेंदु ।

भविष्यत्कालमें प्राकृतके कई रूप होते हैं। यथा— एकवचन--१स्सं, स्सामि । २ स्ससि । ३ स्सि । वहुवचन--१ स्सामो । २ स्सध, स्सह । ३ ससंति ।

फिर स्थानविशेषमें इकारका आगम भी देखा जाता है। यथा—हसिस्सम्, कहीं भविष्यत्कालमें 'स्स'की जगह 'च्छ' होता है। जैसे, श्रु धातुसे सोच्छम् वा सोच्छिस्सम्, वच धातुसे बोच्छम् वा वोच्छिस्सम्। फिर कहीं स्सकी जगह हि होते देखा जाता है। यथा— हसिहिमि।

प्राहतमें कर्मवास्यमें कर्नु वास्यकी विभक्ति व्यवहृत होती है। (संस्कृत 'यं-की जगह ईस वा ईज आदेश होता है) यथा—प्रकृत = पढ़ीस्रद्द, पड़िज्जद्द। कहीं कहीं य का लोप नहीं होने पर भी वह पूर्ववर्ती हलका क्रप धारण करता है। यथा—गम्यते = गम्भद्द, गमिज्जद्द। णिच् प्रत्ययका संस्कृतमें अय-की जगह ए होता है। यथा,—कारयति = कारेद्द, हासयति = हासेद्द्र।

फिर णिचमें 'आवे' ऐसा आदेश भी हुआ करता है। यथा—करावेद, हसावेद । ( नरहिन ७१२० )

हलके वाद तुम् और खरके वाद दुम् होनेसे वह पूर्व-वर्णके साथ युक्त होता है। यथा—वच्-तुम् वक्तुं = वत्तुम्। णि—दुम = णेदुम् (संस्कृत नेतुं)।

त्वा-की जगह तूण वा ऊण होता है। यथा—हत्वा= काऊण। प्राकृत गद्यमें कहीं त्वा-की जगह दुअ भी होता है। यथा—गदुअ=गत्वा। वर्त्त माण आदेश होता शानच्की जगह अन्त वा एन्त और माण आदेश होता है। यथा पढ़न्त, पढ़ेन्त, पढ़माण। स्त्रोलिङ्गमें शत शानच्के वाद ई और आकार आदेश होता है। यथा—हर्सई, हसंती, हसमाणा।

कर्मवाच्यके अतीतकालमें प्रायः संस्कृत रूप ही रहता है, परन्तु प्राकृतके नियममें वर्णप्रत्यय होता है। यथा— श्रुत = सुद्द, सुअ।

कर्मवाच्यके भविष्यत्कालमें 'य' पूर्वहलका रूप धारण

करता है और अनीयकी जगंह गतीय वा अणिज्ञ होतां है।

## अंध्यय ।

प्राकृतका अवन्य-विधान भी वहुत कुछ संंस्कृत-सा है। विशेषता इतनी ही है, कि 'इति'-की जगह ति होता है। यह यदि पूर्व शब्द के साथ युक्त हो, तो पूर्व-वर्णका आ, ई और ऊकार हस्स होता है। खलुकी जगह हस्स स्तर वा अनुस्तारके परवत्तीं प उकारके वाद क्ख़ और दीर्घस्तरके वाद खु होता है। इसी प्रकार अपि की जगह वि, इव की जगह विष वा ब्व, एव की जगह उजेन्य वा जेन्य होते देखा जाता है।

जिस साधारण प्राकृतका विषय आलोचित हुआ, डाकृर होरणली साहको मतानुसार ८वीं शताब्दी तक प्राकृतका यही रूप विद्यमान रहा। पोछे प्राकृत भाषाका विलकुल परिवर्तन हो गया। आजकलकी प्रचलित भाषामें वहा परिवर्त्तन देखा जाता है।

वहुतों संस्क त नारकों भी विभिन्न प्राक, त भाषाका प्रयोग देखा जाता है। जिस प्रकार वहुत समय हुए, संस्कृत भाषा मृत होने पर भी उसका पण्डितों के निकट पूर्वेवत् आदर होता आ रहा है, उसी प्रकार प्राचीन नारक वा सेतुवन्धादि प्राचीन प्राकृतकाव्य-धणित प्राकृत भाषाका वहुत दिनोंका लोग होने पर भी संस्कृत अलङ्कार और छन्दोशास्त्रों उसका प्रयोग आज भी देखा जाता है।

अमी संस्कृत नाटक लिखनेमें किसकी किस प्रकार-की प्राकृत भाषाका न्यवहार करना होगा, इस संवन्धमें माछङ्कारिकोंने ऐसा निर्देश किया है,—

प्राकृतचिन्द्रकाकार कृष्णपण्डितने ळिखा है,—
'देवगण, राजगण, मन्तिगण और अमात्य तथा
विणकोंकी भाषा संस्कृत होगी। कोई कोई संस्कृतमें,
कोई प्राकृतमें, कोई साधारण भाषामें और कोई व्यक्ति
म्लेख्य भाषामें वातचीत करेगा। यागयशादिमें म्लेख्य
भाषाका और खियोंको प्राकृत भिन्न अन्य भाषाका
व्यवहार नहीं करना चाहिये। कुलोन व्यक्तिकी सङ्क्तिणी
भाषाका और ज्ञानहोन व्यक्तिको संस्कृत भाषाका प्रयोग
करना निषद है। किन्तु जो परिव्राजक, मुनि अथवा

ब्राह्मण हैं, वे संस्कृत भिन्न अन्य भाषाका न्यवहार न करें। प्रधान व्यक्तिको प्रायः संस्कृत भाषाका न्यवहार करना चाहिये। परन्तु उन लोगोंके मध्य भाषान्तरका व्यवहार भी कभी कभी देखा जाता है। गलक, स्त्री, वृद्ध, वैश्य और अध्सरागण इन्हें संस्कृतभाषाका प्रयोग करना बिलकुल मना है। पर हां, विचित्रताके लिये यदि वीच वोचमें संस्कृत भाषाका प्रयोग किया जाय, तो कोई असङ्गत नहीं है। उत्तम न्यक्ति यदि ऐश्वर्यादि द्वारा प्रमत्त अथवा दारिद्रासे उपहत हों, तो प्राकृत भाषाका उद्यारण करना उनके लिये दोषावह नहीं होगा। राजा वा ब्राह्मण ये क्रीड़ाके लिये प्राकृतभाषाका न्यवहार कर सकते हैं। भाषा-विषयमें खयं भरत इन सब विषयों का उल्लेख कर गये हैं, अतः इन्हें निःसन्देह स्वी-कार करना पड़ेगा।

इस भाषाके विषयमें भारद्वाजने कुछ और तरहसे कहा है,—उनके मतसे गाथामात ही महाराष्ट्रभाषामें निवन्ध होगी। तिङ्गिन्त अन्यान्य सभी भाषाका नाट्य सम्बन्धमें प्रयोग किया जा सकता है। जो वालक, स्त्री, वृद्ध, भिक्षक, श्रावक अथवा कपरद्गडी तथा प्रहा-भिभृत, मत्त वा षण्डकपी हैं, उन्हें प्राकृत भाषाका ही **च्यवहार करना चाहिये । अलावा इसके नायिका वा** सिखयोंके लिये शौरसेनी, विदूषकादिके लिये प्राच्य, धूर्तीके लिये अवन्तिका, राक्षसींके लिये मागर्धा और अन्तःपुरवासी चेट्, राजपुत और श्रेष्टियोंके लिये अर्ड-मागधी भाषाका प्रयोग वतलाया है। शकार, दिन्यभावी योध और भारिश आदिके मध्य यथाक्रम शकारी, वाहिकी भौर शावरी भाषा ही प्रशस्त है । द्राविड़ादिकी द्राविड़ी, सनक और राक्षसोंकी औड़ी तथा काव्याङ्गमें वैता-छिकोंकी चेताळादि भाषा ही प्रसिद्ध है। किरात और वर्षर आदि जातियोंकी किसी प्रकारकी भाषा वा उसका स्रक्षण नहीं है ।

साहित्यवर्षणमें लिखा है—'छतात्मा उत्तम पुरुषोंके संस्कृतभाषाका और योषिदोंको शौरसेनीभाषाका प्रयोग करना चाहिये, किन्तु इन योविदोंकी जो सब गाथा रहेगी, उसमें महाराष्ट्र-भाषा ही प्रयुक्त होगी। पतिद्वन्न जो राजाओंके अन्तःपुरचारी हैं उन्हें मागधीका तथा चेट,

राजपुत और श्रेष्टीको अद्धैमागधी भाषाका व्यवहार करना होगा। विदूषक प्रभृतिके लिये प्राच्य, धूर्तोंके लिये अवन्तिका, योधनागरिकोंके लिये दाक्षिणात्य, शकार और शकोंके लिये शाकारी, दिन्योंके लिये वाहीकी, द्रविड़के लिये दाविड़ी, आमोरोंके लिये आमोर, पुक्सीं-के लिये चाएडाली और काष्ट्र तथा पतादि द्वारा जी जीविका निर्वाह करते हैं, उनके लिये शावरीभाषा प्रशस्त है। इसो प्रकार अङ्गारकारोंके लिये पैशाची, उत्तम चेटियोंके लिये शीरसेनी तथा वालक, षण्ड, प्रहविचारक, उन्मत्त वा आतुरोंके लिये शौरसेनी भाषा ही प्रसिद्ध है। परन्तु कभी कभी संस्कृतभाषा भी व्यवहत होती है। पेश्वर्यगर्वित, दारिद्रायुक्त और भिक्ष् आदिकी भाषा प्राकृत तथा उत्तमपरिव्राजिका ब्रह्मचारिणीको भाषा संस्कृत होगी। इसके अतिरिक्त देवीं, मन्त्री, कन्या और वेश्या इन लोगोंके लिथे भी संस्कृत भाषा वतलाई गई है। कार्यवशतः उत्तमादिकी भाषा विपर्यंय की जा सकती है। किन्तु योपित्, सखी, वालक, वेश्या, धूर्त और अप्सरा बैचित्रको भाषा संस्कृत ही होनी चाहिये।

## प्राकृत वैयाकरण।

प्राकृतभाषाकी शिक्षा देनेके लिये वहुतसे पिएडतींन प्राकृत च्याकरणकी रचना की है। इनमेंसे चण्ड, शाकल्य, भरत, कोहल, वररुचि और भामह ये सर्वा-पेक्षा प्रधान और प्राचीन हैं। मार्कएडेय कवीन्द्रने अपने प्राकृतसर्वेखमें इनका नामोव्लेख किया है । शाकृतसञ्जीवनीके रचयिता वसन्तराज्ञका नाम भी वे उल्लेख कर गये हैं। अलावा इसके लङ्के श्वररचित प्राष्टत-कामधेनु वा प्राकृतलङ्के भ्वर, समन्तभद्रकृत प्राकृतन्या-करण, हेमचन्द्रकृत प्राकृत शब्दानुशासन, विविकमदेवकृत प्राकृतव्याकरणवृत्ति, उद्यसौभाग्यगणिकृत प्राकृतप्रक्रिया वृत्ति नामक उसकी टीका, नरचन्द्रकृत नामक हेमप्राकृताध्यायटीका, क्रमदीश्वरकृत संक्षिप्तसार-प्राकृतपाद और नारायणकृत उसकी टीका, रामतर्भ-थागीशकृत प्राकृतकल्पतरः, प्राकृतकौमुदो, कृष्णपण्डित-वामनावार्यंकरञ्ज कविसार्वभौम-कृत प्राकृतचिन्द्रका, रचित प्राहतचिन्द्रका, चएडीवरशर्म-विरचित दीपिका नामक संशिवसारकी प्राकृतपाद्धीका, प्राकृत-

रहसा वा पड्भाषावासिक, लक्ष्मीधरकी पङ्भाषा-चिन्द्रका, कात्यायनकृत प्राकृतमञ्जरी, वसन्तराजरचित प्राकृतसञ्जीचनी, मार्क एड य कवीन्द्रका प्राकृतसर्वस्व, चाल्मीकि-रचित प्राकृतस्व, रघुनाथ-शर्म-विरचित प्रकृतानन्द, नरसिंह-रचित प्राकृतप्रदीपिका, चिन्नवीन्म भूपाल-रचित प्राकृतमणिदीपिका प्रसृति वहुतसे व्याकरण पार्य गये हैं।

प्राचीनभाषामें एक समय अनेक काव्यप्रन्थ रचे गये थे। अभी जो सब प्राकृत काव्य पाये जाते हैं उनमें महाराज सातवाहन-रचित सप्तशतो, राजा प्रवरसेन-रचित सेतुबन्ध और वाक्पति-रचित गौड़वधकाव्य विशेष उल्लेख योगा हैं।

८ प्रलयविशेष । ६ पराशर मुनिके मतसे वुधग्रहकी स्रोत प्रकारको गतियोंमें पहली और उस समयकी गति जब वह खाती, भरणी और इत्तिकामें रहता है। यह बालीस दिनकी होती है और इसमें भारोगा, वृष्टि, धान्यकी पृद्धि तथा मंगल होता है।

माञ्चतद्दतिवृत्त ( Natural History )—प्राकृति विषयक वृत्तान्त । पृथ्वी और तदुत्पन्न वस्तुओंका विवरण । जैसे बन्तुविद्या, धातुविद्या, उद्भिदुविद्या इत्यादि ।

प्राकृतज्ञर (सं० पु०) प्राकृतः प्रकृतिसम्बन्धी ज्वरः। वैद्यक्तके अनुसार वह ज्वर जो वर्षा, शरद या हेमन्त ऋतुमें ऋतुके प्रभावसे होता है। कहते हैं, कि वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुओं में क्रमशः वात, पित्त और कफकी प्रधानता होती है और उसी समय मनुष्य पर वातादिकी प्रधानतासे ऐसा ज्वर आक्रमण करता है। प्राकृतत्व (सं० क्ली०) प्राकृतस्य भावः त्व। प्राकृतका भाव या धर्म।

प्राहतदोय (सं० पु०) प्राकृतो दोयः। वर्षा, शरत् और बसन्त ऋतुमें यथाक्रम कुपित वात, पित्त और कफ-प्रकृतिसम्पन्न वातादि दोषः। वर्षा और शिशिरकालमें वायुका कोप, प्रीक्ष और शरत्कालमें पित्तका प्रकोप, हेमन्त और वसन्तकालमें कफ प्रकोप, ये सब प्राकृत दोष हैं। (बरक सूत्रस्थान १०४०)

प्राह्मततस्वविवेक (Natural Theology) वह शास्त्र जिसके द्वारा सृष्ट पदार्थवर्शनजनित तस्वज्ञान उत्पन्न हो।

Vol. XIV. 172

प्राञ्चततन्त्र (Democracy) प्रजातन्त्र, प्रजाके हस्तगत राज्यशासन् ।

प्राकृतमानुष (सं॰ पु॰) प्राकृतः सामान्यः मानुषः। सामान्य मनुष्य।

प्राकृतमित्त (सं॰ क्वी॰) प्राकृतं स्वाभाविकं मित्रं । स्वभाव-सिद्ध मित्र, जिसके साथ स्वाभाविक मित्रता हो । "सखा गरीयान् शत्रुश्च कृतिमस्तौ हि कार्यतः। स्याताममित्नौ मित्रे च सहजप्रकृताविष ।"

(माघ २।३६)

प्राकृत मित्र भी व्यवहार द्वारा प्राकृत शत्नु के जैसा होता है।

प्राकृतशत्तु (सं॰ पु॰) प्राकृतः स्वामाचिकः शतुः । १ स्वामाविक शत्तु । २ स्वदेशाव्यवहित देशावस्थित राजादि, विषयानन्तरवत्तीं नृष ।

प्राकृतसमाज ( House of Commons)— इङ्गलै॰ उदेशके राजकीय समासंकान्त साधारण लोकका समाज।

प्राकृतिक (सं० ति०) प्रकृति द्वज । १ प्रकृतिविकार । २ जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ हो । ३ प्रकृति-सम्बन्धी, प्रकृतिका । ४ स्वाभाविक, सहज । ५ साधारण, मामूली । ६ भौतिक । ७ सांसारिक, लौकिक । ८ नीच । (पु०) प्राकृतप्रलय ।

प्राकृतिक इतिवृत्त ( Natural History )— वह शास्त्र जिससे सृष्ट्रपदार्थके स्वरूप और अवस्थाका ज्ञान हो। प्राकृतिककार्य ( सं० क्ली० ) सृष्ट्रपदार्थ, वह पदार्थ जो केवल इन्द्रियके प्राह्म हो। जैसे, आलोक, शब्द और ताप प्रभृति।

प्राकृतिकभूगोल (सं० पु०) भूगोलविद्याका वह अङ्ग जिसमें भौगोलिक तत्त्वोंका तुलनात्मक दृष्टिसे विचार होता है। भूगभ शास्त्र और इसमें प्रभेद इतन ही है कि, भूगभं शास्त्र पृथ्वोकी वनावटके प्राचीन इतिहाससे सम्बन्ध रखता है और इस शास्त्रमें उसका वत्तंमान स्थिति तथा भिन्न भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओंका वर्णन होता है। इस विद्यामें यह वतलाया जाता है, कि पर्वत, समुद्र, निद्यां, द्रीप और महाद्वी . सादि किस प्रकार वनते हैं। पहाड़ोंकी ऊंचाई और समुद्रोंकी गहराई कितनी है। समुद्रमें ज्वारभाटा किस प्रकार आता. है और निद्यों तथा भोलों आदिको सृष्टि किस प्रकार होती है, इत्यादि।

प्राकृतिक विज्ञान ( Natural Science )—वह शास्त्र जिससे प्राकृतिक कार्य विवयक ज्ञान लाभ हो।

प्राक् (सं ० ति ०) १ पहलेका, अगला। (पु०) २ पूर्व, पूरव।

प्राक ्कर्म (सं ० ह्ही०) प्राक्तन-कर्म । १ पूर्वकर्म । २ अट्रष्ट, भाग्य ।

प्राक्करप ( सं ० पु० ) पुराकरप, पूर्वकरप ।

प्राक्कूल (सं ० ति०) प्रागप्रदर्भ, वह कुश जिसका अगला भाग पूर्व ओर किया गया हो ।

प्राक्केवल (सं॰ ति॰) जो पहलेसे ही भिन्नरूपमें प्रकट रहा हो।

प्राक्चरणा (सं ० स्त्री०) १ जननेन्द्रिय, योनि, भग । २ योनिका एक रोग ।

प्राक्चिर (सं ॰ अव्य॰) विलम्य होनेके पहले, यथाकालमें । प्राक्छाय (सं ॰ क्षी॰ प्राक् पूर्ववर्त्तिनी छाया यत दिने । पूर्वदिक्वत्ती छायायुक्त काल, जिस समय छाया पूर्व ओर पडती हो, अपराह्वकाल ।

प्राक्तन (सं ० पु०) १ वह कमं जो पहले किया जा चुका हो और आगे जिसका शुभ और अशुभ फल भोगना पड़े। भाग्य देखो। २ प्राचीन, पुराना।

प्राक्ततनय (सं० पु०) पूर्वशिष्य।

प्राक पद (सं० पु०) प्राक क्रपः पदः कर्मधा०। पूर्व-वसीं पद।

प्राक पुष्पा ( सं ० स्त्री० ) प्रोक पुष्पं यस्याः अजादित्वात् टाप् । प्राक वर्त्ति-पुष्पान्वित छता ।

प्राक्ष फुल ( सं ० पु० ) प्राक्ष फुल यस्य । पनस, कटहर । इसमें विना फूलके ही फल लगते हैं, इसीसे इसका प्राक्ष फल नाम पड़ा है ।

प्राक फुरुगुनी ( सं ० स्त्री० ) प्राची फुरगुनी, पूर्व फुरगुनी-नक्षत ।

प्राक फुल्गुनीभव (सं॰ पु॰) प्राक फुल्गुन्यां भव उत्पत्ति-र्यस्य । १ वृहस्पति । (ति॰) २ पूर्वफल्गुनी नक्षतमें जातमात, जो पूर्वफुल्गुनी नक्षतमें पैदा हुआ हो ।

प्राक फाल्पुन (सं० पु०) प्राक फल्पुन्यां भवः अण्। बृहस्पति। प्राक फाल्गुनी (सं० स्त्री०) पूर्व फाल्गुनी नक्षत । प्राक फाल्गुनेय (सं० पु०) प्राक फल्गुन्यां भव इति प्राक फल्गुन-ठज्। वृहस्पति।

प्राक् शिरस् (सं ० ति०) प्राक्ष शिरा यस्य। पूर्वकी ओर या अप्रभागमें मस्तकयुक्त।

प्राक शिरस्क (सं० ति०) प्राक शिरस्।

प्राक्श्ङ्गवत् (सं ० पु०) ऋषिभेद् ।

प्राक सन्ध्या ( सं ॰ स्त्री॰ ) प्राचीसन्ध्या कर्मघा॰ । पूर्वे॰ सन्ध्या, स्यौद्यके समयका सन्धिकाल, संवेरा ।

प्राक्त्सवन ( सं० ह्ली० ) प्राक्त्कालिक' सवन' यिइय प्रथम सवन ।

प्राक्सी (अं क स्त्रीक) १ वह लेख जिसके द्वारा किसी संख्याका कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य आदिको अपना प्रतिनिधि नियत करके उसे अपनी ओरसे उप-स्थित हो कर सम्मति प्रदान करनेका अधिकार देता है, प्रतिनिधिका पत्न २ वह वाक्ति जो किसी दूसरे वाकि-के स्थान पर उसका कर्त्तव्य पालन करे, प्रतिनिधि।

प्राक सौमिक (सं० पु०) सोमात् सोमयागात् प्राक् अन्ययीभावः, प्राक सोमं तत्र भवः ठञ्, उत्तरपद्दृद्धिः। १ सोमयोगके पहले कर्त्ताच्य अग्निहोत, वह कर्ताव्य जो यजमानको सोमयागके पूर्व कर लेना चाहिये। जैसे, अग्निहोत, दर्शपौर्णमास, पशुयाग। २ यह।

प्राक्ष स्रोतस् ( सं ० स्त्री० ) प्राक्ष यहिः स्रोतोऽस्याः । नदी, दरया ।

प्राखरं (सं ० क्ली०) प्रखरस्य, भावः प्रखर-ध्यम्। प्रख-रत्व, तीक्षणता, तेजी।

प्रागत्र (सं० ति०) प्राक् अत्रं यस्य । पूर्वाभिमुख, पूर्वकी ओर ।

प्रागद्य ( सं ) वि ) प्रगदिनोऽदूरदेशादि चतुरध्यादित्वात् ज्य । प्रगदीके समीप ।

प्रागमाव (सं ० पु०) प्राग्वत्तीं अभावः । अभावविशेष ।
अभाव तीन प्रकारका है, प्रागमाव, ध्वंसाभाव और
अत्यन्ताभाव । जो अभाव अपना प्रतियोगी उत्पन्न
करता है, उसका नाम प्रागभाव है । जिसका अभाव है,
उसे उसका प्रतियोगी कहते हैं । असे, इस वीजसे वृक्ष
उत्पन्न होगा । अभी वृक्ष नहीं है, भविष्यत्में होगा ।

अर्थान् अभी रक्षका अमाव है, पीछे दूस होगा। यह अमाय प्रतियोगोको उत्पन्न कर नष्ट हो जाता है अर्थात् वीजसे 7ृश्त हो जाने पर फिर प्रामभाव नहीं रहता । जिस वस्तुसे जो जो वस्तु उत्पन्न हो सकती है उसमें उसका **ब्रागाभव है। वृक्षको खड़ा कर वीज नष्ट** हो जाता है। इस प्रकार वस्तुकै उत्पन्न होनेसे प्रागभाव खर्य जाता रहता है। प्रागभावके नाश है, उत्पत्ति नहीं। प्रागत्म्य ( सं ॰ क्वी॰ ) प्रगत्मस्य भावः प्यञ्। १ प्रग-रुमता, वीरता। २ स्त्रियोंका अयत्नज्ञ भावविशेष । खियोंके चेष्टा नहीं करने पर भी प्रगल्भना उनका खाभा-विक गुण है। ३ साहस। ४ निभेयता। ५ घमंड। ६ चतुरता । ७ प्रधानता, प्रवलता । प्रागल्भ्यवत् ( सं० ति० ) प्रागल्भ्य-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । १ प्रागल्भ्ययुक्त, प्रगल्भताविशिष्ट । २ विश्वासी । ३ वृथावाषपयुक्त। प्रागवस्था ( सं० छी० ) प्राची अवस्था कर्मधा० । पूर्वा-वस्था । प्रागहि ( सं॰ पु॰ ) शाखाप्रवर्त्तक आचार्यभेद । प्रागाथ ( सं॰ ति॰ । १ प्रगाथ सम्बन्धीय । (पु॰) २ कलि, भर्ग और हर्यतका पुं अपत्य । प्रागाधिक ( सं॰ ति॰ ) प्रगाथ वा ऋग्वेदका अप्रममण्डल-सम्बन्धीय । प्रागायत ( सं॰ ति॰ ) पूर्वकी ओर आयत वा विस्तृत । प्रागार ( सं ॰ पु॰ क्ली॰ ) प्रासादगृह । प्रागाहिक ( सं ० ति० ) पौर्वाहिक, पूर्वाहमव । प्रागुक्ति (सं॰ स्त्री॰) प्राची उक्तिः कर्मधा॰ । पूर्वोक्ति, पूर्वे-का कथन। प्रागुत्तरा ( सं॰ स्त्री॰ ) प्राची उत्तरा दिक्। पूर्वोत्तर दिक्, पूर्व और उत्तरके वीचकी दिशा, ईशान कोण। प्रागुदीची ( स'० स्त्री० ) प्राची उदीची दिगिति कर्मधा०। पूर्वोत्तर दिक्, ईशान कोण। प्राप्गतनवत् (मं ॰ ति॰) प्राक्गमन-मतुष्-मस्य व । प्राक्-गमनयुक्त, पूर्वगामी। प्रान्गामिन् ( सं ० ति० ) पूर्वेगामी, अप्रगामी । प्राग्त्रीय (सं॰ ति॰) पूर्वकी ओर प्रीवा न्यस्त, पूर्वकी ओर

सिर किया हुआ।

प्राग्जन्म (सं ० ह्वी०) पूर्वजन्म । प्राग्जाति (सं० स्त्री०) पूर्वजाति । प्राग्ज्योतिप (सं० पु०) प्राक् ज्योतिपं नक्षतं यत । काम-रूप देश, कामाख्या प्रदेश । "अत्रैय हि स्थितो ब्रह्मा प्राङ्गुस्तं ससर्जं च । ततः प्राग्ज्योतिपाख्येयं पुरी शक्तपुरीसमा॥" (कालिकापु० ३७)

"भगवान नरकासुरसे कहते हैं—हे पुत! जिस स्थानमें करतोया नामकी गङ्गा नदी सर्वदा प्रवाहित हो रही हैं और जहां छितकान्ता देवी विराजती हैं, वहां तक तुम्हारी पुरी होगी। इसी स्थान पर जगत्मसिवनी योगनिद्रा महामाया देवी कामाख्याद्धप धारण कर सर्वदा विराजती हैं। इसी स्थान पर खयं महादेव, ब्रह्मा और में रहता हैं। चन्द्र सूर्य भी यहां ही रहते हैं। यह स्थान रहस्यमय है। अतः कोड़ार्थ सभी देवता यहां आये हैं। यहां सर्वतोभद्रा नामकी छत्त्मी विद्यमान हें। पहले इस नगरमें ब्रह्माने एक नक्षत्र रखा था। इसीसे इन्द्रपुरीके समान इस पुरीका नाम प्रागज्योतिय पड़ा है। तुम विद्याह करके अमात्योंके साथ यहां राज्य करो, मेंने तुम्हारा अभियेक किया। (इक्षिकापु० ३० ४०) इमहत्र देवो।

यद्यपि सूत्रप्रश्य और संहिताओं में इस राज्यका उल्लेख नहीं आया है, तो भी रामायण, महाभारत, पुराण और तन्त्रके प्रन्थों में इसका वर्णन देखने में आता है। मनु संहिता में प्राण्ड्योतिपका नाम नहीं लिखा है, किन्तु वहां भी किरातिन पेवित एक प्राच्य राज्यका उल्लेख है। महा-भारत में प्राण्ड्योतिपको किरातों की निवासभूमि लिखा है। अतप्य ऐसा मालूम होता है, कि मनुका किरातनिपेवित राज्य और महाभारतका प्राण्ड्योतिप दोनों एक ही हैं। किन्तु मनुने प्राण्ड्योतिपका नामोल्लेख क्यों नहों किया, इस प्रथका उत्तर देना इस समय कठिन है। मनुने किरात देशवासियों को क्षत्य वतलाया है। प न्तु उनका उपनयन आदि संस्कार न होनेके कारण वे शूद्रवत् हो गये हैं।

रामायणमें लिखा है,—कुराके पुत अमूर्तरजस्ने पित्वमिस्यित 'प्रागज्योतियपुर'-को वसाया। तेतायुगमें रावणने सीताको हर लिया था। उन्हें दृढ़नेके लिये सेनापित सुप्रीयने वानरोंको चारों ओर मेजा था। सुषेण मारीच आदि वानरोंको पश्चिमकी ओर भेजते समय सुप्रीय कहते हैं—

"योजनानि चतुःपष्टिर्वराहो नाम पर्वतः । सुवर्णेश्टङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ॥ तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातऋपमयं पुरम् । तस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥"

अगाध समुद्रसे ६४ योजन विस्तृत सुवर्णशिखर-विशिष्ट वराह नामक एक महायवत है। उस पर्वत पर सुवर्णनिर्मित प्राग्ज्योतिष नामकी एक पुरी अवस्थित है। उस पुरीमें नरक नामका एक दुरातमा दानव रहता है। रामायणवर्णित यह प्राग् ज्योतिपपुरी इस समय कहां है, उसका कुछ चिह्न है वा नहीं आदि वाते वतलाना वहुत ही कठिन है। इस समय प्राग ज्योतिप नामसे जो प्रदेश या नगर समभा जाता है, वह भारतका आसाम प्रदेश है। आसाम प्रदेशोंमें वड़े वड़े पर्वंत तो है, पर उसके समुद्रमध्यमें होनेके प्रमाण नहीं मिलते। त्रेतायुगसे आज तक बहुत समय वीत गये, इसमें कितने नगर वने और कितने पुराने नगर नष्ट हुए, कितने जलमय प्रदेश स्थल और कितने स्थलमय प्रदेश जलमय हो गये। अतः सम्भव है, कि त्रेतायुगमें श्रोरामचन्द्रके अवतार ब्रह्ण करनेके समय प्राग ज्योतिपका भारतभूमिसे सम्बन्ध न हो और वह समुद्रके वीचमें रहा हो। वही जलमय प्रदेश क्रमशः आज स्थलखरूपमें परिणत हो गया हो।

महाभारत (सभापर्व २३ अ०) में लिखा है—
युधिष्ठिरके राजस्य यक्षके समय जब अर्जुन दिग्विजयको
निकले, तब उनसे प्राग्ज्योतिपके राजा भगदत्तने किरात,
चीन तथा सागरतीरस्थ अन्यान्य अनूप्देशवासियोंकी बड़ी
सेना ले कर युद्ध किया था। कुरुक्षेतके युद्धमें भो भगदत्तने किरात, चीन आदि सेनाओं द्वारा दुर्याधनकी सहायता की थी। युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके समय भी
प्राग्ज्योतिषाधिपति भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तने युधिष्ठिरका
यज्ञाश्व वांध रखा था। पुनः अर्जुनसे युद्धमें परास्त हो
कर वह उनका करद राज्य हो गया। महाभारतमें सञ्जयकथित जनपदों में प्राग्ज्योतिषका नाम नहीं है। वहां

किरातदेशका उल्लेख हुआ है । मत्स्यपुराणमें प्रान् ज्योतिष प्राच्य जनपदोंमें लिखा गया है । वायुपुराण, ब्रह्माएडपुराण, वामनपुराण और ब्रह्मपुराण आदि पुराणों-में प्राग ज्योतिषको भारतवषके पूर्वभागमें अवस्थित वत-लाया है । विष्णुपुराणमें प्राग्ज्योतिपका नाम नहीं लिखा है । वहां उसके स्थानमें कामरूप राज्यका उल्लेख पाया जाता है । वहां भारतके नदनदियोंका नाम तथा स्थान निर्देश करते हुए महर्षि पराशर मैत्तेयसे कहते हैं, कि कामरूपनिवासो और दक्षिण देशनिवासी इन निर्योक्ता जल पीते हैं । इससे माल्यम पड़ता है, कि प्राचीन कालमें पूर्वदेशी राज्यों में कामरूप राज्य ही प्रसिद्ध था और पीछे वही प्राग्ज्योतिपके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

वराहमिहिरके भारतीय विभागवर्णनमें कामक्रयका नाम नहीं है। वहां प्रागुन्थोतिपका ही नाम लिखा गया है। परन्तु कालिदासके रघुवंशमें दोनों का नाम पाया जाता है। यथा—

"चकरमे तीर्ण लौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्व मैः॥
न प्रसेहे स रुद्धार्कं मसारावर्णं दुर्दिनम् ।
रथवर्त्म रजोऽप्यस्य कृत एव पताकिनीम् ।
तमीग्रः कामक्रपाणामत्याखरङलविकमम् ।
भेजे भिचकटैर्नागैरन्यानुपररोध यैः।
कामक्रपेश्वरस्तस्य हेमपीडाधि देवताम् ।
रख्नपुर्योपहारेण छायामानच पाद्योः॥"

रघुके छौहित्यनदी पार करने पर सेनाके हाथियोंके बांधनेसे जिस प्रकार कृष्णागुरुवृक्ष कांपते थे, प्राग्ज्योतियके राजा उसी प्रकार काँपने छगे। रघुके रथ
धोड़े तथा हाथीसे जो धूछ उड़मी थी उससे बिना
मेघके भी आकाश आच्छन्न हो जाता था। रघुको सेनाका
आक्रमण तो दूर रहा, प्राग् ज्योपाधिपति उस धूछको भी,
नहों सह सके। प्राग्ज्योतिपाधिपति जिन मदकावी
मातङ्गोसे दूसरों पर आक्रमण करते थे, वे ही मातङ्ग,
उन्हों ने इन्द्रसे भी अधिक वछशाछी रघुको उपहारमें
दिये। रघु सुवर्णपीठ पर बैठते थे, उनकी चरणप्रभासे
वह पीठ शोभा पा रहा था, कामक्रपेश्वरने आ कर रत्नकपी पुष्पोपहारसे उनके चरणींकी पूजा की।" इस वर्णनसे

मालूम पड़ता है, कि कामरूप राज्य कितने दिनोंसे वस-मान है तथा वह कभी कामरूप नामसे भौर कभी आग्-ज्योतिप नामसे असिद्ध था। किन्तु कालिकापुराणके एक श्लोकसे चिदित होता है, कि आग्ज्योतिप कामरूप-का एक भाग था। कामरूप एक देश था और उसकी राजधानी आग्ज्योतिप थी। कामरूप नामके सम्बन्ध-में कालिकापुराणमें लिखा है, कि महादेवकी कोपानिमें जल कर कामदेवने यही रूप आत किया था, तभीसे इस पीठका नाम 'कामरूप' हुआ। ब्रह्माने पहले यहां एक नक्षतको सृष्टि को थी, इस कारण इसका नाम आग्-ज्योतिप है। कामरूप और कोचविद्यारमें अन्यान्य विदरण देखो।

प्राग् ज्योतिपपुर (सं० पु०) प्राग् ज्योतिय देशकी राजधाना । इसे अभी गौहाटी कहते हैं। रामायणके अनुसार यह नगर कुशके पुत्र अमूर्तराज द्वारा वसाया गया था।

वाग्वृक्षिण ( सं० बि० ) पूर्ववृक्षिण । प्राग्वृक्षिणा ( सं० स्त्री० ) वह दक्षिणा जो पहले दी जाय ।

माग्द्राइ (सं० ति०) पूर्वकी और द्राड्युक्त।

प्राग्दिश (सं० स्त्री०) पूर्वेदिक, पूर्वे दिशा।

प्राग्दिशीय ( सं० ति० ) पूर्व दिक्भव, पूर्व और होने | वाला।

प्राग्देश ( सं॰ पु॰ ) पुव<sup>6</sup>देश, पूर्वाञ्चल ।

प्राग्द्वार ( सं० स्त्रो० ) पूर्व दिक्स्य द्वार, पूरव बोरका दर-वाजा ।

प्राग्वोधि (सं० क्ली०) पर्व तमेर, एक पर्वतका नाम ।
प्राग्भक (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त अन्नमक्षणके प्राक्कालकप भीपध-सेवन-कालमेर, दवा जानेके लिये मीजन
करनेसे पहलेका समय । सुश्रुतमें औपध सेवनके दश
काल बतलाये गये हैं । यथा—निर्मक, प्राग्भक, अधोभक्त और मध्यमक प्रभृति । इनमेंसे जानेके पहले
भीपध सेवन करनेका नाम प्राग्भक है। इस प्रकार
औषधका सेवन करनेसे वह कैके रास्ते वाहर नहीं निकलता, जाया हुआ अन्त बहुत अच्छी तरह पश्चाता और
वल बढ़ाता है। वृद्ध, शिशु, भीक और स्त्रोके लिये पेसे
ही समय दवा जानेका विधान है।

प्राग्मरा (सं॰ स्नी॰) जैन मतानुसार सिस्शिलाका एक

Vol. XIV. 172

प्राप्तार (सं॰ पु॰ ) प्रकृष्टो आरी यत । १ पर्वताप्रभाग । २ उत्कर्ष । ३ परंभाग ।

प्राप्रसर (सं० ति०) १ भप्रग, पहला । २ श्रेष्ठ । प्राप्रहर (सं० ति०) प्राप्ते प्रकृष्टात्रे हियतेऽसौ इ-भप् । श्रेष्ठ, मुख्य ।

प्राप्राट (सं• क्वी॰ ) प्राप्ने अटतीति अट-अच्। अधन-दथि, पतला दही।

प्राप्त्य ( सं॰ ति॰ ) प्रकर्षेणात्रे भव इति प्राप्त-यत् । भेष्ठ, वद्गा ।

प्राग्वंश (सं • पु॰) प्राञ्चतीति प्र-अञ्च-किन् प्राक्वंशः सपत्नीकयजमानादि समूहोऽतः । १ हविग्रं इसे पूर्वभाग-स्थित यजमानादिकी स्थितिके गृह्, यक्षशालामें वह धर जिसमें यजमानादि रहते हैं । २ विष्णु ।

प्राग्वचन (सं० क्ली॰) प्रागुक्तं वचनं । मन्वादि कतुं क पूर्वोक्त वचन, महासारतके अनुसार मन्वादि महर्वियोंके वचन ।

प्राप्तत् (सं० अन्य० ) पूर्वतुल्य वा कालतुल्य, पहलेके जैसा।

प्राग्वाट (सं० क्की०) शिलालिपि-चर्णित एक विस्तृत जन-पद, प्राचीनकालके एक नगरका नाम जो यमुना और गंगाके बीचमें था। भरतजी केकयसे अयोध्या बाते समय इस नगरमेंसे हो कर आये थे। मेवाड़ हैकी। प्राग्वेश (सं० पु०) पूर्वदेश।

प्राधर्मसङ् (सं० ति०) प्रकर्षकपसे दीतस्थानमें वर्तमान । प्राधात (सं० पु०) प्रकृष्ट आधातोऽस्मिन, वा प्राहल्यतेऽस्मि-न्निति, प्र-आ-इन आधारे धज् । विशेषकपसे आधात, कड़ी चोट ।

प्राचार (संव डु०) प्राचरणमिति प्र-चृ-प्रस्नवणे वस्, ( वषवर्ग<sup>६</sup>सथरूम्य मनुष्ये यहुरु । पा १११११९५ ) हत्यु-पसर्गस्य दांघः । घृतादि श्ररण ।

पाचुण ( सं॰ पु॰ ) प्राघोणते भ्राम्यक्षीति प्र-आ-श्रुण-कः । अतिथि, मेहमान ।

प्राघुणिक (सं॰ पु॰) प्राघुण-स्वायं उक् । अतिथि । प्राघूणिक (सं॰ पु॰) प्र-सा-घूर्ण-भावे घत्र् प्राघूर्णी भ्रमण तत साधु इति ठत्र्। अतिथि, मेहमान ।

प्राङ्ग सं ० पु० ) प्रहतः प्रकृष्टः वाङ्गमस्य प्रादि वहु० । १ पणववाय, छोटा नगाङ्ग । २ प्रकृष्ट देहयुक्त । प्राङ्गण (सं० क्वी०) प्रकृप्रमङ्गनमङ्गं यस्य। १ पणव-वाद्य, एक प्रकारका ढील । प्रकर्षेण अङ्गनं गमनं यत आंगन । पर्याय-अजिर, चत्वर, णत्वं। २ गृहभूमि, ्अङ्गन ।

"प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः। ् पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्निकाम्।।" (भविष्योत्तर)

शास्त्रानुसार प्राङ्गण सूर्यविद्ध होनेसे अशुभकर होता है। घरकी नीवं इस प्रकार डालनी चाहिये जिससे वह पूर्व-पिश्चम आयत न हो कर उत्तर-दक्षिण आयत हो। पूर्व पश्चिम आयत होनेसे सूर्यविद्ध और दक्षिणोत्तर आयतं होनेसे चन्द्रविद्ध होता है ; किन्तु वह चन्द्रविद्ध प्राङ्गण मनुष्यके लिपे शुभकर माना गया है।

प्राङ्ट्याय (सं॰ पु॰) प्राक् न्यायः । न्यवहारविषयमें उत्तर-भेत, व्यवहारशास्त्रके अनुसार भिमयोगका एक प्रकार-का उत्तर । इसके उपस्थित होने पर यह विवाद नहीं चल सकता। यह उत्तर उसी समय दिया जा सकता है जव कि उपस्थित विवादके सम्बन्धमें पहले ही न्याया-लयमें निर्णय हो चुका हो।

सं कि ) प्राक् पूर्वदिक्स्थं मुखं यस्य । पृवं-दिङ्मुख, जिसका मुंह पूर्व दिशाकी ओर हो । पूर्वंकी ओर मुंह कर प्रातःसन्ध्यादिकरनी होतो है। धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि जहां किसी दिशाका जिक्र नहीं किया गया है, वहां प्राङ्मुख जानना चाहिये।

प्राच् (सं ० ति०) प्र-अन्च किप्। पूर्वदेश, पूर्वकाल और पूर्वदिक्। (अव्य॰) प्राचिसप्तम्यर्थ असि तस्य लुक्। पूर्वकी ओर।

प्राच (सं० पु०) प्र-आ-चल-भृती बाहुलकात् उ । १ प्रकर्ष-रूपसे रक्षक, वह जो अच्छी तरह रक्षा करता हो । २ प्रकृष्ट गमन।

प्राचाजिह्न (सं० त्रि०) प्रोक्-देशस्थित जिह्नास्थानीय . ज्वांले ।

प्राचार ( सं ० पु० ) कीटमेद् । `

प्राचार्य ( सं० पु० ) १ आचार्य, गुरु, शिक्षक । २ विद्वान् , : परिइत ।

प्राचिका (सं॰्स्री॰) प्राञ्चतीति प्र-अञ्च-कृन् टापि अत

इत्वं। चनमक्षिका, डांसको जातिको एक प्रकारकी जंगली मक्खो (

प्राचिन्वत् ( सं ॰ पु ॰ ) राजमेद, एक राजाका नाम । प्राचो ( सं० स्त्री० ) प्रथमं अञ्चति सूर्यं प्राप्नोतीति प्र-अञ्च-क्विन् ( डिगतव | पा शश् ) इति डीप् । १ पूर्वेदिक, पूर्वदिशा । २ यह दिशा जो देवताके या अपने आगेकी ओर हो। ३ जलआंयला । (ति०)४ पूज्य,श्रेष्ठ। प्राचीन (सं० ति०) प्रागेवेति प्राक (विभाषाञ्चेरिक् रित्रवां । पा प्राधाद ) इति ख, खस्येनादेशः । १ पूर्वेदिक: देशकालमय, जो पूबंदेश या कालमें उत्पन्न हुआ हो। २ पूर्व, पहले । ३ पूर्वकालीन, पुराना, पिछले जमानेका । ८ यृद्ध, बुङ्ढा । ५ प्रागम्, अम्रज । ६ प्रकृष्ट गन्ता, अप-राङ्मुख । (पु॰) ७ प्राचीर । पर्याय—आवेष्टक, वृति । प्राचीनकाव्यमिश्र (सं ० पु० , वह दूश्यकाव्य जिसकी रचना प्राचीनकालमें हुई हो और जिसका अमिनय मी प्राचीनकालमें होता रहा हो। इसके पांच मेद हैं—१ नाट्य, २ नृत्य, ३ नृत्त, ४ ताएडव और ५ लास्य ।

प्राचीनकूल ( सं ॰ पु॰ ) एक प्राचीन ऋषिका नाम। इसका दूसरा नाम अपन्तिरतम और प्राचीनगर्भ भी है। प्राचीनगर्भ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

इन्हें प्राचीनकुल और आपान्तरतम भी कहते हैं। प्राचीनगौड़ ( सं ० पु० ) गौड़दे शीय एक प्राचीन प्रन्थ-कार । इन्होंने संबत्सरप्रदीपको रचना को ।

प्राचीनप्रीच (सं॰ ति॰ ) जिसका गला आगे या पूर्वकी ओर हो।

प्राचीनता (सं० स्त्री०) प्राचीन होनेका माव, पुराना-

प्राचीनतिलक ( सं ॰ पु॰ ) चन्द्रमा ।

प्राचीनत्व ( सं ० पु० ) प्राचीन होनेका भाव, पुरानापन। प्राचीनपक्ष ( सं ॰ ति॰ ) अग्रभागमें पक्षविशिष्ट ।

प्राचीनपनस (सं० पु०) प्राचीनः पनसः कर्मधाः । विव्य-वृक्ष, बेलका पेड़ ।

प्राचीनवर्हिस् (सं॰ पु॰ )१ इन्द्र । २ एक प्राचीन राजीका नाम । अग्निपुराणानुसार ये अग्निगोतीय राजा हविर्धानके पुत थे और प्रजापति कहलाते थे। प्रजेताः गण इनके पुत थे। لاقت الأرا

1

प्राचीनयोग (सं० पु०) प्राचीनो योगोऽस्य। ऋपिभेद, एक प्राचीन गोल-प्रवर्तं क ऋपिका नाम ।

प्राचीनयोगोपुत (सं० पु०) यद्धःशाखास्य ऋपिभेद।

प्राचीनयंश (सं० ति०) देवताभिमुल, देवताको ओर ।

प्राचीनवंश (सं० ति०) प्राचंश, जिसका भवलम्बनवंशदएड सामने या पूर्वकी ओर हो ।

प्राचीनशाल (सं० पु०) १ पूर्वदिग्स्थ गृह, पूर्वदिशाका

घर। २ पुरातन गृह, पुराना घर।

प्राचीना (सं० स्त्रो०) प्राचीन-टाप्। १ वनतिक्तिका,

अकवन आदि। २ रास्ना। ३ पाठा। ४ प्राक्रमवा,

नुद्धा।

प्राचीनाकरक (सं॰ पु॰) मधुर जम्बीरवृह्म । प्राचीनामलक (सं॰ क्की॰) पानीयामलक, जलआँवला । इसका पर्याय वारिवदर है। यह तिदोप और विपनाशक माना गया है।

प्राचीनावीत (सं० क्की०) प्राचीनं प्रदक्षिणं आवीयते स्मेति आ-वी-गत्यादी-क, वाधाचीनं आवेतीति गत्यर्थेति-क। यक्कीपवीत धारण करनेका एक प्रकार। इसमें वाम हस्त यक्कीपवीतसे वाहर और यक्कीपवीत दक्षिण स्कन्ध पर रहता है। इस प्रकारका यक्कीपवीत पितृकार्यमें धारण किया जाता है। यर्थाय—पितृस्तव्य, सव्य।

प्राचीनावीती (सं॰ पु॰) श्राचीनावीतमस्त्यस्येति प्राचीना-वीत-इनि । प्राचीनावीतविशिष्ट, वह जी प्राचीनावीत यसोपवीत धारण किये हीं, सद्य ।

प्राचीनोपवीत ( सं ० ति० ) प्राचीनावीत देखी । प्राचीपति (सं ० पु०) प्राच्याः पूर्वस्या दिशः पतिः इन्द्र । प्राचीवळ (सं० पु०) १ काकतुंडी, कीभाटीटी । २ काकजंद्या, चकसेनी । ३ गएडदुर्वा ।

प्राचीर (सं० क्की०) प्राचीयते इति प्र-आ-चिण् चयने (श्रुविचिमिकांबक्षीर्षथ। उण् २।२५) इति कन, दीर्घक्क। नगर या किले आदिके चारों ओर उसकी रक्षाके उद्देश्यसे वनाई हुई दीवार, चहार-दीवारी, शहरपनाह, परकोटा।

वाहरी आदमी जिससे घरमें प्रवेश न कर सके इसके छिपे सवोंको प्राचीर बनाना चाहिए। युक्तिकल्पतक्षमें छिसा है—राजगण जो प्राचीर बनावेंगे, वह हाथीके अमेरा और मनुष्यके अछङ्कनीय हो। राजाओंके प्राचीर राजद्रश्डकी तरह उन्नत होने चाहिये। प्राचीरमें चारीं बोर गुप्त द्वार रखना अवश्य कर्त्तव्य है। प्राचीरमें चारीं प्राचीर गुप्त द्वार रखना अवश्य कर्त्तव्य है। प्राचीर (सं० क्वो०) प्रचुरत्य भावः ष्यण्। प्रचुरता, आधिक्य, वहुतायत। प्राचीतस् (सं० पु०) प्रचीतसोऽपत्यमिति प्रचेतस्- अण्। श्वासीति प्रचीतक्तं नाम। श्रचेतागण जो प्राचीनवर्धिके पुत्र थे और जिनकी संख्या दश थी। श्विष्णु। श्वश्य। प्रविचाने अपत्य या वंद्यज। प्राचीस् (सं० भ्रव्य०) प्र-आ-चि-बाहु, डैसी। प्राचीन, पुराना।

प्राच्य (सं ॰ पु॰) प्राचि भवः, प्राच् (युपागपागुरक प्रतीची यत्। पा धारारे। रोते यत्। १ शरावती नवीके पूर्वका देश। (बि॰) २ पूर्वदिक्भव, पूर्व देश या दिशामें उत्पन्न। मार्कण्डेयपुराणके मतसे अङ्गारक, सुदकर, अन्तर्गिर, चिहिंगिरि, प्रचङ्ग, चङ्ग, माळद, माळविक्तक, मह्नोत्तर, प्रविजय, भार्गव, मह्नक, प्राग्च्योतिष, भद्र, विदेह, ताझिलक्षक, मह्न, मगच और गोनर्द पे सब प्राच्य-जनपद हैं। ३ पूर्वक्षस्वन्धी, पूर्वीय। ४ पूर्वकालका, पुराना।

प्राच्यक ( सं॰ ति॰ ) प्राच्य-खार्थे कन्। श्रच्य देखो । प्राच्यकसेरु ( सं॰ पु॰ ) कुंकुम, केशर ।

प्राच्यपदयुत्ति ( सं० स्त्री० ) वैदिक स्याकरणोक्त पदवृत्ति-भेद ।

प्राच्यवाट (सं० क्वी०) प्राच्यो वाटो यस्य । प्राक् देशस्य । प्राच्यवृत्ति (सं० व्ली०) वृत्तरत्नाकरोक्त छन्वोमेद, वैताली वृत्तिके एक भेदका नाम । इसके समपादींमें सौधी और पांचवी माता मिल कर गुरु हो जाती हैं। प्राच्यसप्तसम (सं० वि०) सप्तसमाः प्रमाणमस्य मातच, तस्य द्विगुत्वात् लुक । प्राचीन सप्तसम ।

प्राच्याध्वय्यु<sup>6</sup> (सं ॰ पु॰ ) प्राच्य अध्वयु<sup>6</sup> ।

प्राच्यायन (सं o पु॰ स्त्री॰) पूर्वके ऋषियोंके गोतमें उत्पन्न पुरुष।

प्राच्छ् (सं० ति०) पृच्छति प्रच्छ किप् निपातनात् दीर्घश्च । (वण् २।४०) १ जिशासक, पृछनेवाळा । २ प्राड् विवाक, न्यायाधीश । प्राजक (सं० पु०) प्राजयति प्रकर्षेण गमयति घोटकाद्ने- निति प्र-अज-णिच्-ण्बुल् । सार्थि, रथ चलानेवाला । प्राजन (सं० क्वी०) प्रवीयतेऽनेनेति प्र-अज-ल्युट् । (बायौ । पा २।४।५७) इति पक्षे व्यभावः । तोदन, चाबुक, कोड्रा ।

प्राजिह्त (सं० पु०) गाईपत्य अग्नि। प्राजापत सं० ति०) प्रजापतेः धर्मं महिष्यादित्वादण्। प्रजापतिका धर्म।

प्राजापत्य (सं ० हो०) प्रजापतिदेवतास्येति प्रजापति (विश्ववित्यादित्यपत्युत्तरपदात् ण्यः । वा ४।१।८५) इति ण्यः । १ द्वादशाहसाध्य व्रतिविशेष, एक व्रतका नाम जो बारह दिनका होता है। इस व्रतके पहले तीन दिन तक सायंकाल २२ श्रास, फिर तीन दिन तक प्रातःकाल २६ श्रास, फिर तीन दिन तक आपाचित अन्न २४ श्रास खा कर अन्तके दिन तीन दिन उपवास करना पड़ता है। अगम्यागमन, मद्य और गोमांस आदि कानेके प्रायश्चित्त- में यह व्रत किया जाता है। (गहरपु० २२६ अ०)

२ रोहिणीनक्षत । ३ आठ प्रकारके विवाहोंमें नौथा। इसमें कन्याका पिता वर और कन्याको पकत कर उनसे यह मितका कराता है, कि हम दोनों मिल कर गाईस्थ-धर्मका पालन करेंगे। पोछे वह दोनोंको पूजा करके वरको अलङ्कारयुक्त कन्याका दान करता है। ऐसे विवाहको काम भी कहते हैं। विशेष विवरण विवाह शब्दमें ऐखो। ४ प्रजापतिके पुता। ५ प्रयाग। ६ जैनराजमेद। इसका पर्याय तिपृष्ठ है। ७ यह। (ति०) ८ प्रजापतिसम्बन्धी। ६ प्रजापतिसे उत्पन्न।

प्राजापत्या (सं० स्त्री०) प्रजापित देवतास्या प्रजापित-ण्य, स्मियां टाप्। १ एक इष्टिका नाम। यह प्रवज्याश्रम वा संन्यासाश्रम श्रहणके समय की जाती है। इस यहामें सर्वस्व दक्षिणामें दे दिया जाता है। इसके देवता प्रजा-पति हैं।

> "प्राजापत्यां निरूप्येष्टि सर्वचेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यनीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेत् यहात् ॥" ( मनु ६।३८ )

प्राजापत्य याग समाप्त करके सर्वस्व दक्षिणामें दे दे। चीछे आत्मामें अग्नि आधान करके ब्राह्मण गृहसे इक्षरेयाका अवलम्बन करे। प्राजावत (सं० नि०) प्रजावत्या धम्यै महिष्यादित्वादण्। भ्रातृजायाका धमे ।

प्राजिक ( सं ० पु० ) ख़्रीन, वाज नामक पक्षी ।

प्राजिता ( सं ० पु० ) १ सारथी । (बि०) २ प्रकृष्टगृन्ता । प्राजितु ( सं ० पु० ) प्राजिता देखों ।

प्राजिन् (सं० पु०) प्र-अज-णिनि, न्यभावः। पक्षिभेद, पक प्रकारकी चिड्या।

प्राजिमठिका (सं• स्त्री॰) स्थानभेद् ।

प्राजेश (सं ० हो०) प्रजेशो देवतास्य अण्। १ रोहिणी नक्षतः। २ वह चरु आदि पदार्थं जो प्रजापति देवताके छिये हों।

श्राह्म (सं० पु०) प्रकर्षेण जानातीति प्र-हा-क, ततः प्रह्म-पव स्वार्थे अण्। १ कल्किदेवके ज्येष्ठभाता । २ बेदान्तके अनुसार जीवात्मा । (ति०) ३ बुद्धिमान, समऋदार, चतुर । ४ विद्वान, परिडत । ५ मूर्व, बेवकूफ ।

प्राञ्जत्व (सं० पु०) १ बुद्धिमत्ता । २ पाण्डित्य, पिहाता । ३ मूर्खेता, येवकूफी ।

ब्राज्ञमानी (सं॰ पु॰) आत्मानं प्राज्ञं मन्यते प्राज्ञ-मन्-णिनि । परिडताभिमानी, वह जिसे अपने पारिडत्यका अभिमान हो ।

प्राज्ञा (सं॰ स्त्री॰) प्रज्ञाऽस्त्यस्या इति अच्-राप्। १ बुद्धिमती, विदुषी । पर्याय—धीमती । २ बुद्धि, समभः।

प्राञ्ची (सं॰ स्त्री॰) प्रञ्ज-स्वार्थे-अण्-ुङीप्। १ स्वयंत्राती। २ पण्डितपत्ती। ३ सूर्येपत्ती।

प्राज्य (सं० ति०) प्र-व्ययते इति प्र-अज-ण्यत्, वीभावा-भावः। १ प्रचुर, अधिक, वहुत। २ प्रचुर घृतसम्पन्न, जिसमें बहुत घी पड़ा हों। (क्की०) ३ प्रभृत आज्य, प्रचुर घृत।

प्राज्यभट्ट (सं० पु०) राजाबली पताकाके रचयिता ेषक संस्कृत पेतिहासिक।

प्राञ्च (सं कि ) प्र-अञ्च-विच् । पूच देशकालवर्ती। प्राञ्जन (सं कि ) १ अञ्चन या रंग। २ प्राचीनकाल-का एक प्रकारका छेप या रंग जो बाण पर लगाया जाता था। प्राञ्जल (सं० ति०) प्र-अञ्जनाहुलकात् अलच्। १ सरल, सीधा। २ सचा। ३ वरावर, समान। प्राञ्जलि (सं० ति०) प्रवद्धाऽञ्जलियंन प्रादि वहुत्री०। १ बद्धाञ्जलिपुर, जो अञ्जलि वांधे हो। (पु०) २ सामवेदियों-का एक मेद। ३ अञ्जलि, अ जुलि। प्राञ्जलिक (सं० ति०) प्राञ्जलि। प्राञ्जलिक (सं० ति०) प्राञ्जलिरस्त्यस्य बीह्यादित्वादिनि। बद्धाञ्जलियुक।

प्राइत्त (सं ० पु०) प्रश्नकारक के द्वारा आहत।
प्राइ विवाक (सं ० पु०) पृच्छतीति प्राट् विविच्य वक्तीति
विवाकः ततः कर्मधारयः। १ वह जो न्यवहार-शास्त्रका
धाता हो और विवादों आदिका निर्णय करता हो, विचारक, जज (Judge)। पर्याय—अक्षदर्शक, व्यवहारदर्शी।
शास्त्रमें अष्टादश प्रकारके विवादपद निर्दिष्ट हुए हैं। उन
सव विवादोंकी जो मीमांसा करते हैं उन्होंको प्राइविवाक कहते हैं। राजाको उचित है, कि वे प्रजाके सव
प्रकारके विवादोंकी स्वयं मीमांसा करें। यदि उन्हें
अवकाश न रहे, तो प्राइ विवाक नियुक्त करें। इनका
स्वकाण—

"विवादे पृच्छति पन्नं प्रति पन्नं तथैव च । प्रियपूर पाग्ववदति प्राङ् विवाकस्ततः स्फृतः ॥" वृहस्पतिः ब्यासोऽपि—

"विवादानुगतः पृष्ट्वा ससभ्यस्तत् प्रयत्नतः। विचारयति येनासौ प्रार्ड्यवचाक स्ततः स्मृतः॥" ( वीरमित्नोदय)

विवाद-विषयमें जो प्रश्न और प्रतिप्रश्न करते हैं तथा पहले प्रियवाक्यका प्रयोग करते हैं उन्होंका नाम प्राङ्-् विवाक है। जो विषय ले कर विवाद चलता है उस विषयकी सभ्यगणके साथ आनुपूर्विक जिज्ञासा करके जो विचार करते, उन्हें प्राङ् विवाक कहते हैं।

राजा जब इन सव कार्योंको देखरेख स्वयं न कर सकते हों, तव उन्हें विद्वान श्राह्मणको विचारकके पट पर नियुक्त करना चाहिये। यह श्राह्मण तीन सम्योंके साथ धर्माधिकरणमें प्रवेश कर उपविष्ट वा उत्थितभावमें विचारादि काय करें। वे तीनों सम्य होवें तथा उन्हें अनुक् यज्ञः और सामवेदका सम्यक ज्ञान रहे। कभी भी अनुप-Vol. XIV. 174 युक्त मनुष्यकों इस काय में नियोग नहीं करना चाहिये। कारण, अयथार्थ विचारके लिये जो पाप होता है, उसके चतुर्था शके भागी राजा ही होते हैं। जातिमन्त्रोपजीवी ब्राह्मणको अथवा जो अपनेकी ब्राह्मण बतला कर घूमता फिरता है, पर वह कियानुग्रानरहित और ज्ञानशून्य है। ऐसे ब्राह्मणको भी यदि राजा चाहें, तो विचारकके पद पर निसुक्त कर सकते हैं। परन्तु शूद्र, चाहे वह सर्व-ग्रुणन्वित और धार्मिक हो चाहे ब्यवहारसे अच्छी तरह ज्ञानकार भी क्यों न हो उक्त पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। जिस राज्यमें शूद्र विचारक है, वह राज्य थोड़े ही दिनोंमें नए हो जाता है। (मह ८४०)

याइवस्वयसंहितामें लिखा हैं—राजा कोध और लोभ-शून्य हों धर्मशास्त्रायुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ व्यव-हार अर्थात् मुकदमेका खयं विचार करें। विचार न कर सकें तो प्रतिनिधि द्वारा करावें। मीमांसा-व्याकरणादि और वेदशास्त्रमें अभिन्न, धर्मशास्त्र-विद्र, धार्मिक, सत्यवादी और जो शब् तथा मिलमें पक्ष-पातवर्जित हैं उन्हीं ब्राह्मण तथा विणकींको सभासद नियुक्त करें। यदि अलङ्क्तीय काय वशतः राजा स्वयं विचार न कर सकें, तो पूर्वोक्त सभ्यगणके साथ एक सवंधर्मन ब्राह्मणको व्यवहारदर्शनमें नियुक्त करें। धे ही विचारक वा पाड़ विवाक कहलाते हैं। सभ्यगण यदि स्नेह, लाम अथवा भयप्रयुक्त धर्मशास्त्रविरुद्ध वा आचारविरुद्ध विचार करें, तो उस विवादमें व्यक्तिके लिये जो दण्ड विहित है, राजा उनमेंसे प्रत्येकको उससे दूना दएड देवें । (याइवल्क्य स० २ अः) वीरमिली-दयमें लिखा है, कि राजा यदि स्वयं विचार न कर सकें. तो समस्त शास्त्रपारम, शमद्मपरायण, कुळीन, मध्यस्थ, उद्धे गश्चन्य, स्थिरप्रकृतिसम्पन, परलोकभोष, धार्मिक और क्रोधरहित ब्राह्मणको प्राड् विवाकके पद पर नियुक्त करें। जिन्होंने केवल एक शास्त्रका अध्ययन किया हो, व विचा-रकके उपयुक्त नहीं हैं। यदि पूर्वोक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मण-का अभाव हो अर्थात् न मिले, तो उक्त गुणसम्पन्न क्षतियको अथवा उनके अभावमें वैश्यको नियुक्त कर सकते हैं। किन्तु शूदको भूछ कर भी उक्त पद प्रदान न करें। यदि कोई राजा ब्राह्मणका परित्याग कर चयलके

ऊपर विचारकार्यका भार सौंपे, तो उनका राज्य अति-शीघ नष्ट हो जाता है। राजा जिस प्रकार अभिपिक्त हो कर राजकार्यकी पर्यालीचना करते हैं, प्राड़् विवाक भी उसी प्रकार यथाविहित अभिषिक्त हो धर्मासन पर वैठ कर विचार-कार्य करें। जिससे वे किसी प्रकारके भ्रममें न पड़े उसके प्रति विशेष ध्यान रखना कर्त्तेव्य है। (वीरिमित्रोदय) विचार, विचारक, विचागलय देखों।

२ वह जो दूसरोंके अभियोग आदि चलाता या उनका उत्तर देता हो, वकील। प्राण् ( सं ० पु० ) प्राणिति प्र-अन-क्रिप् णत्वं । प्राण । प्राण ( सं० पु० ) प्राणिति जीवति वहुकालमिति, प्र-अन-अच् प्राणित्यनेनेति करणे घत्। १ ब्रह्मा। पक्षमाल प्राण रहनेसे ही जीवन रहता है, अतएव जीवकी उत्पत्ति और नाश प्राणहेतु ही हुआ करता है, इस कारण प्राण हो ब्रह्म हैं। २ पञ्चवृत्तिक देहस्थित वायु, हृदयमारुय। ३ वायु, हवा । ४ जैनशास्त्रानुसार पांच इन्द्रियां; मनो-बल, वाक्वल और कायवल नामक विविधवल उच्छास, निश्वास और आयु इन सक्का समूह। ५ श्वास, सांस। ६ वल, शक्ति। ७ पुराणानुसार एक कल्पका नाम जो ब्रह्माके शुक्क पक्षकी पछीके दिन पड्ता है। ८ छान्दोग्य ब्राह्मणके अनुसार प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत और मन। ६ वाराहमिहिर और आर्यभट आदिके अनुसार कालका वह विभाग जिसमें दश दीर्घ माताओं-का उचारण हो सके। यह विनाड़िकाका छठा भाग है। १० जीवन, जान। ११ मूलाधारमें रहनेवाली वायु। १२ अग्नि, आग। १३ वह जो प्राणींके समान प्यारा हो, परम प्रिय । वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्पियोंमेंसे एक ऋषि । १५ हरिवंशके अनुसार घर नामक वसुके एक पुतका नाम। १६ यकारवर्ण। १७ एक सामका नाम। १८ ब्रह्म। (६ विष्णु। २० धाताके एक पुतका नाम। २१ देहस्थित पञ्चवृत्तिक वायु जिससे प्राणी जीवित रहता है।

"प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टां वद्ध यते पृथक्।
प्राणनाच्चेव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते॥"
(भारत १२।३२८।३५)
वायु पृथक् पृथक् द्भपमें प्राणियोंकी सब प्रकारकी

चेष्टा बढ़ाती है। भूतोंके प्राणनके हेतु इसका प्राण नाम पड़ा। योगाणैयमें लिखा है—

> "इन्द्रनीलप्रतीकारां प्राणक्षप' प्रकीत्तितम् । आस्यनासिकयोर्मध्ये हन्मध्येनाभिमध्यमे ॥ प्राणालय इति प्राहुः पादांगुरुठेऽपि केचन । अपानयत्यपानोऽयमाहारख्य मलापितम् ॥"

> > (योगाणव)

प्राण इन्द्रनीलके जैसा है। आस्य और नासिका-के मध्यसागमें, इदय और नाभिके मध्यस्थलमें इसका आलय है। किसी किसीके मतसे पादांगुष्ठ भी प्राणा-लय है। सांख्यके मतसे—

> "सामान्यकरणगृत्तिः प्राणाद्यावयवाः पञ्च ॥" ( सांख्यका० २६ )

प्राण प्रभृति पञ्चवायु इन्द्रियसामान्यकी मिलित-वृत्ति है, जीवनधारण उसका कार्य है। सांख्याचार्यांके मतसे करण तेरह हैं, यथा—मन, बुद्धि और अहङ्कार पे तीन अन्तःकरण, पांच कर्मेन्द्रि । और पांच ज्ञानेन्द्रिय धे दश वाह्यकरण । इन सव करणोंकी दो प्रकारकी वृत्तियां हैं, असाधारण और साधारण । भिन्न भिन्न करणकी भिन्न भिम्न वृत्तिका नाम असाधारण वृत्ति है । कहना फजूल है, कि असाधारण वृत्ति करणभेदसे भिन्न है। प्योंकि, दो करणकी एक वृत्ति होनेसे उस वृत्तिका असा-धारणत्व वहीं रहता। वहां साधारण हो जाती है। निर्विशेपमें समस्त करणोंकी जो वृत्ति होतो है, उस-का नाम साधारण वा सामान्यवृत्ति है । प्राणादि वायुपञ्चक है, करण सर्वोक्ती साधारणवृत्तिमात है। सुतरां सांख्यके मतसे प्राण करणोंकी साधारण वृत्तिके सिवा और कुछ भी नहीं है । स्मरण रहे, कि सांस्या-चार्योंके मतसे वृत्ति और वृत्तिमतमें भेद नहीं है अर्थात् जिसकी वृत्ति होती है और जो वृत्ति होती है, इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही पदार्थ हैं।

किसी किसी पिएडतके मतसे प्राण ही आत्मा है। इन प्राणात्मवादियोंका मत नितान्त भ्रान्त है। यहां इस प्राणात्मवादका विषय अति संक्षिप्तभावमें लिखा जाता है। प्राणात्मवादियोंका कहना है, कि चक्षुरादि इन्द्रियके नहीं रहने पर भी यदि केवल प्राण रहे, तो मनुष्य जीवित

रह सकता है। अतएव इन्द्रिय आतमा नहीं है। उपनिषद्-में चक्षरादि इन्द्रियको भी प्राण वतलाया है। नासिका-प्राण मुख्य प्राण कहा गया है। प्राणके श्रेष्ठताविषयमें एक सुन्दर आख्यायिका छान्दोग्य-उपनिषद्में इस प्रकार लिखो है,—एक समय वापसकी श्रेष्ठता लेकर प्राणीमें विवाद खड़ा हुआ । चक्षुरादि प्रत्येक प्राण अपने-को श्रेष्ठ वतलाता था। मैं ही श्रेष्ठ हूं, सर्वोंको इसी वात-का अभिमान था। कोई भी अपनेको न्यून वा अश्रेष्ठ नहीं कहता था। सुतरां प्राणींका यह विवाद बापसमें निवट न सका। किसी एक महत् व्यक्तिकी सहायताकी आव-श्यकता हुई। सभी प्राण पिता प्रजापतिके समीप गये और वोले, 'भगवन्! हममेंसे कीन श्रेष्ठ है।' प्रजापितने जवाव विया, 'तुममेंसे जिसके उत्कान्त होनेसे अर्थात् जिसके साथ सम्बन्ध विच्छित्र होनेसे शरीर पापिष्ठतर अर्थात् मृत हो जाता है, वही श्रेष्ठ है।' प्रजापतिके इस प्रकार कहने पर पहले वागिन्द्रिय उत्कान्त हुई अर्थात् शरीरसे चली गई। इस प्रकार वागिन्द्रिय सौ वर्ष तक शरीरसे विच्छित्र रही, पीछे लौट कर उसने देखां, कि उसके नहीं रहनेसे भी शरीर जीवित रहा है। विस्मित हो कर उसने शरीरसे पूछा, 'विना मेरे तुम किस प्रकार जीवित रह सका ?' उत्तर मिला, 'मृक वोल तो नहीं सकता है, पर वह प्राण द्वारा प्राणनिकया, चक्षद्वारा दर्शनिकया, श्रोत द्वारा श्रवणिकया और मन द्वारा चिन्तािकया निर्वाह करके जीवित रहता है। उसी प्रकार मैं भी जीवित था। अव वागिन्दियने अपनेको श्रोप्ठ नहीं समका और उसी समय पुनः शरीरमें प्रवेश किया। चक्षुः उत्कान्त हुआ। उसने भी एक वर्षके वाद लौट कर देखा, कि उसके नहीं रहनेसे शरीर जीवित है मरा नहीं, उसने भी विस्मयके साथ शरीरसे पूछा, 'विना मेरे तुम किस प्रकार' जीवनधारण कर सका ?' उत्तर मिला, 'अन्धा देख तो नहीं' सकता, पर नह जिस प्रकार प्राण द्वारा प्राणन, वागिन्द्रिय द्वारा यदन, श्रोत द्वारा श्रवण और मन द्वारा चिन्ता करके जीवित रहता है, उसी प्रकार में जीवित था। चक्षुने जद सममा, कि वह किसी हालतसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता, तव वह शरीरमें प्रविष्ट हुआ। अव श्रोत उत्ज्ञान्त

हुआ। एक वर्षके वाद लौट कर उसने देखा, कि उसके अभावमें भी शरीर जीवित है, इसिलिये उसने अपनेकी श्रेष्ठ नहीं समका और शरीरमें पुनः प्रवेश किया। पीछे मन शरीरसे अलग हों गया। एकं वर्षके वाद लौट कर उसने देखा, कि उसके नहीं रहनेसे शरीर मरा नहीं है। उसने जव पूछा, कि मेरे नहीं रहनेसे तुम किस प्रकार जीवित रह सका । तव शरीरने जवाव दिया, 'अमनस्क वालकगण जिस प्रकार प्राण द्वारा प्राणन, वागिन्द्रिय द्वारा वदन, चक्षु द्वारा दर्शन और श्रोत द्वारा श्रवण कर जीवित रहते हैं, उसी प्रकार मैं जीवित था .' मनने समका, कि वह भी श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण शरीर-में प्रवेश किया। पीछे मुख्य प्राणने उत्क्रमणका उद्योग किया। वलवान् अध्य जिस प्रकार वन्धनरज्जुके समस्त शंकुको शिथिल कर देता है, उसी प्रकार प्राणके उत्क-मणेच्छासे वागादि सभी इन्द्रियां शिथिल होने लगीं। जव शरीरपातकी आशङ्का हुई, तव वागादि सभी इन्द्रि-योंने एक खरसे प्राणसे कहा, भगवन् ! आप शरीरसे अलग न होवें, आप हो श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं !'

इस श्रौत आख्यायिका द्वारा चक्षुरादि इन्द्रियकी अपेक्षा प्राणकी थ्रे छता प्रतिपन्न हुई है। किन्तु प्राण आतमा है, यह समर्थित नहीं हुआ। प्राण आतमा है, इस विपयका उक्त आख्यायिकामें कहीं भी जिक्र नहीं किया गया। सुतरां प्राण आतमा है, ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचनेसे म्रान्त होना पड़ेगा। कारण, ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचनेका मूल कारण होता है प्राणकी श्रृत्युक्त श्रेष्टता । श्रुतिमें प्राणकी श्रेष्ठता देख कर प्राण आत्मा है, इसे समर्थन करनेके पहले श्रुतिके तात्पर्यकी पर्या-लोचना करना उचित है। प्राणको श्रेष्ठता क्यों है, यह श्रुतिमें ही दिखलाया गया है,—'तान् वरिष्ठः प्राण तवाच मा मोहमापद्यथाहमें बेतत् वञ्चधाःमान' प्रविभव्यैतद्वाणमव-घम्य विधारयामि" (श्रुति) श्रेष्ठशाणने वागादि इन्द्रियोंसे कहा, 'तुम लोग भ्रान्त न होचो । मैं ही प्राण, अपान, समान, उदान और ज्यान इन पांच ऋपोंमें विभक्त हो कर शरीरको आलम्यनपूर्वंक इसे घारण करता हूं।' भी लिखा है, "शणेन रक्षन्तवर' कुलय'" (श्र ति) निकृष्ट

देह नामक गृहको प्राण द्वारा रक्षित करके जीव सोता है। श्रुतिमें और भी लिखा है,--- "यत्मात् कम्माच्वांगात् प्राण उत्कामित तदेव उच्छुष्यति तेम यदश्नाति यत् पिवति वेनेतरान् प्राणानवति" (श्रुति) । जिस किसी अङ्गसे प्राण उत्कान्त होता है, वह भङ्ग सुख जाता है। प्राण द्वारा जो भोजन वा ान किया जाता है, उससे अवरापर प्राण परिपुष्ट होते हैं। शरीरके जिस अङ्गमें किसी कारणसे आध्यात्मिक वायुका सञ्चार न हो, वह अङ्ग परिशुक्त हो जाता है। भोजन वा पान द्वारा शरीर और शरीरस्थ इन्द्रियोंकी परिपुष्टि होती है अर्थात् वलका सञ्चार होता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। इसीसे प्राणकी श्रेष्टता है। श्रु ति-ने भी कहा है, "किस्मन्नहमुत्कान्ते उत्कान्तो भविष्यामि किस्मन् वा प्रतिष्ठितेऽइ' प्रतिष्ठात्यामौति स प्राणमस्त्रत ।" ( श्रुति ) किसीके उत्भान्त होनेसे में उत्भान्त हुंगा, किसीके प्रतिष्ठित रहनेसे में प्रतिष्ठित रहुंगा। इस प्रकार विवे-चना करके उन्होंने प्राणकी सृष्टि की। जब तक देशमें प्राण अधिष्ठित रहता है, तव तक देहमें भात्मा भी अधि-प्रित रहती है। देहके साथ प्राणका सम्वन्ध विच्छिन होनेसे आत्माका भी सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। इसीसे प्राणको श्रेष्ठ वतलाया गया है।

पर प्रश्न सकता है, कि जव उठ प्राण आत्मा नहीं है, तव प्राण देहका प्रभु भी नहीं है, आत्मा ही देहका प्रभु है। सुतरां देहके साथ प्राणका सम्बन्ध विच्छिन्न होनेसे भी आत्मा देहमें रह सकती है। प्रभु भृत्यका अनुगामी क्यों होगा ? इसके उत्तरमें यही कहना है, कि प्रभुका नियम पर्यानुयोज्य है। प्रभुते ऐसा नियम क्यों चलाया ? यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता । आत्माने यह नियम किया है, कि प्राणके उत्कान्त होनेसे ही उसका उत्कान्त होगा। इस लिये ही प्राणकी सृष्टि हुई है। अतएव प्राणके उत्कान्त होनेसे आत्मा देहमें नहीं रह सकती। शब के भयसे महाराज सेनापित और सेनाको ले कर दुर्गमें आश्रय लेते हैं। शतुपक्षके दुर्गके अवरोध करने पर सेनापति और सेना जव तक दुर्गकी रक्षा कर सकती है, तब तक महाराज दुर्गका परित्याग नहीं करते। किन्तु सेनापति और सेनाके दुर्ग छोड़ कर भाग जानेसे महाराज हो दुर्गका प्रभु होते हुए भी उन्हें

भृत्यका अनुगमन करना पड़ता है अर्थात् तत्काल उन्हें भी दुर्गका परित्याग करना पड़ता है । सेनापित और सेना यद्यपि दुर्गके प्रभु नहीं हैं तो भी उनसे जिस प्रकार दुर्गकी रक्षा होती है, उसी प्रकार प्राणके आत्मा नहीं होने पर भी उससे शरीर रिश्वत होता है। प्राण द्वारा शरीरको रक्षा होती है, इसीसे इसको आत्मा कहना असङ्गत है। कारण, ऐसा होनेसे मस्तिष्क, हत्पिएड और पाकस्थली का यदि कोई अंश नष्ट हो जाय, तो शरीरकी रक्षा नहीं होनेके कारण उन्हें आत्मा कहना पड़ेगा। चक्षुरादि इन्द्रियोंके अभावमें भी प्राण रहते जीवन रहता है, उसका कारण दिखलाया जा चुका है। उससे जिस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियका आत्मत्व नहीं कहा जा सकता, अत- एव प्राणात्मवादका कोई प्रमाण नहीं है।

त्रैदान्तिक आचायोंके मतसे अध्यातमभाषापत्र वायु हो प्राण है। प्राणके वायुविशेष होनेसे प्राणात्मवादियोंके मतानुसार वायुका चैतन्य स्वीकार करना पहुंगा। वायुका चैतन्य स्वीकार करना असम्भव है, क्योंकि वायु भूतपदार्थ है।

आतमा भोका और चेतन है। प्राण भोका वा चेतना नहीं है। स्तम्भादि जिस प्रकार घरमें संहत है, प्राण भी उसी प्रकार घरपें हैं। स्तम्भादि संहत पदार्थ जिस प्रकार परार्थ है। प्राण भी उसी प्रकार परार्थ है। मूर्च्छा और सुपुत्ति आदि अवस्थामें प्राणको किया उपख्य होने पर भी उस समय चेतना नहीं रहती। इससे भी प्राणका अनात्मत्य प्रतिपन्न हुआ। प्राणादिके अनात्मत्य विवयमें गृहदारण्यक उपनिपद्दमें एक सुन्दर आख्यायिका लिखी है। वहदारण्यक उपनिपद्द देखी।

वेदान्तदशंनमें प्राणका विषय इस प्रकार लिखा है,—
"तथा प्राणाः" (वेदानतसू॰ २।४।१) ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न
हुआ है, इत्यादि सृष्टिप्रकरणमें प्राणकी उत्पत्ति नहीं कही
गई है। प्रत्युत किसी किसी श्रुतिमें प्राणकी अनुत्पत्ति
ही वर्णित हुई है। यथा—सृष्टिके पहले ऋषिगण ही
असत्रुपमें थे, वे ही ऋषि प्राण हैं। इस श्रुतिमें सृष्टिके
पहले प्राणकी अनुत्पत्ति वा प्राणासद्भाव कहा जाता है।
फिर अन्य श्रुतिमें प्राणकी उत्पत्ति भी देखनेमें भाती है।

."यथाग्नेविस्फुळिङ्गान्युचरन्त्येवमेवैतसादात्सनः सर्वे प्राणाः" (श्रुति ) जिस प्रकार अग्निसे छोटे छोटे विस्फु-लिङ्ग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार शात्मासे सव प्राणींकी उत्पत्ति होती है। "पतसाजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च""सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्" (श्रुति) इत्यादि ।'आत्मा-से प्राण, मन और सभी इन्दियां उत्पन्न हुई हैं। 'उसी आत्माने प्राणकी सृष्टि की' 'प्राणसे श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिबो, इन्द्रिय, मन और अन्न उत्पन्न हुआ हैं',इत्यादि भिन्न भिन्न श्रुतिमें भिन्न भिन्न उक्ति रहनेसे तथा एकतर निर्द्धारणके कारणका निरूपण नहीं रहनेसे प्राण उत्पन्न है वा अनुत्पन्न अर्थात् जन्य हैं वा नित्य, यह नहीं जाना जाता। इस संशयको दूर करनेके लिये "तथा प्राणाः" सूत्रमं तथा शब्दका उरुलेख देखनेमं आता है । लोकादि जिस प्रकार परब्रह्मसे उत्पन्न हैं, उसी प्रकार प्राण भी उससे उत्पन्न है। यह अर्थ तथा शब्दके प्रयोगसे प्रकटां होता है। 'उनसे प्राण, मन, आकाश, वायु आदि सभी उत्पन्न हुए हैं। इत्यादि उदाहरणमें भी आकाशादिकी तरह प्राणकी उत्पत्ति समकी जायगी। अथवा यह भी कहा जा सकता है, कि जैमिनिने जिस प्रकार दहुसूत व्यवहित उपमानको प्रहण किया है, उसी प्रकार ज्यासने भी, भाकाशादि जैसे ब्रह्मोत्पन्न हैं, वैसे प्राणसे भी पर-ब्रह्मोत्पन्न है, यही स्वीकार किया है। प्राण जो-विकारी मर्थात् जन्मवान् है, तत्त्रति हेतु श्रुति है। श्रुतिने कहा है, इसी कारण प्राणकी जन्मवत्ता स्वीकार की जाती है। किसो किसी श्रुतिमें प्राणकी अनुत्पत्ति श्रवण रहने ! पर भी अन्य श्रुतिमें उसकी उत्पत्ति सुनी जाती है। जो । वहु और प्रवल श्रुतिमें सुना जाता है, एक जगह अश्र-वण उसका निषेध नहीं कर सकता । अतएव श्रुतत्व-का विशेष न रहनेके कारण आकाशादिकी तरह प्राण भी उत्पन्न पदार्थ है, यह उक्ति निर्दोप है। प्राण उत्पन्न पदार्थं है इसमें कोई आपत्ति वा सन्देह नहीं। महा-मृति शङ्कराचार्यंने नाना प्रकारकी युक्तियां दिखलाते हुए तथा सभी श्रुतियोंका विरोध परिहार करते हुए प्राणका जन्यत्व स्थिर किया है। इसमें और कोई मतद्वेध नहीं है।

. किसी किसीके मतसे सृष्टिके पहले प्राणका अस्टित्व Vol. XIV 175 श्रवण रहनेके कारण अन्य श्रुतिमें कही गई उत्पत्ति मुख्य उत्पत्ति नहीं हैं, किन्तु गौण है। इसका प्रत्युत्तर यहीं है, कि गीणत्वको कुछ भी सम्भावना नहीं। कारण, जिस हेतु प्रतिहाहानि प्रसक्त होती है, उस हेतु प्राणको उत्पत्ति गौण नहीं है। श्रुतिमें लिखा है, भगवन्! क्या जाननेसे ये सव जाने जाते हैं, श्रुतिने इसी एक विज्ञानसे सवविश्वानसाधनार्थं 'इससे प्राण उत्पन्न हुआ है' इत्यादि वाक्य कहे हैं। बह प्रतिका उसी हालतमें सिद हो सकती हैं, जब प्राण प्रशृति समस्त जगत् ब्रह्मोत्पन्न हीं। क्योंकि, प्रकृतिके व्यतिरिक्त विकृति नहीं है। इसका अभि-प्राय यह, कि प्रकृति ही वस्तुसत् है, विकृतिका पृथक अस्तित्व नहीं है। मृत्तिका ही वस्तु घटनाम माल है। प्राणीत्पत्ति यदि गीण हो, तो अवश्य ही उस प्रतिशाकी हानि होगी । प्रतिज्ञा भी गौण हैं, ऐसा कहनेका कोई उपाय नहीं । वपोंकि श्रुतिने उपसंहारमें भी ब्रह्माको विश्वामित्र वतलाया है, 'यही विश्व ब्रह्म हैं और कुछ भी नहीं है'। यदि प्रश्न उठे, कि सृष्टिके पहले प्राणसङ्गाव-श्रवणकी गति कैसी थी ? उसका उत्तर यही हैं, कि वह कभी भी मूलप्रकृतिविषयक नहीं है अर्थात् प्राण परममूल नहीं है। जी परममूल है, वह अप्राण अमन है, इत्यादि। इस श्रुतिमें भी प्राणादि सर्वविशेषयर्जित माने गये हैं। वह वाष्य अवांतर प्रकृतिविषयक है । इसका अर्थ है, स्वविकारकी अपेक्षा उत्पत्तिके पहले प्राणका अस्तित्व।

प्राणकी उत्पत्ति भी भाकाशादिकी उत्पत्तिकी तरह मुख्य है। इसके प्रति भन्य हेतु यह है कि 'जायते' यह जन्मवाचो पदके पहले प्राणविषयमें श्रुत हो कर पीछे भाकाशादि दूसरे दूसरे पदार्थोंमें अनुवर्त्तित होनेके कारण तथा आकाशादिके जन्म मुख्य, गौण नहीं है, यह स्थापित हो जानेके कारण आकाशादिके साथ पठित प्राणका जन्म मुख्य है, गौण नहीं।

प्राण कितने हैं, पहले यही जानना आवश्यक है। सिन्न भिन्न श्रुतिने जो मिन्न भिन्न संख्या वतलाई है उससे संख्याविषयक संशय उत्पन्न होता है। किसी भुतिने सात प्राण, 'वसप्राणा; प्रभवन्ति तसात्' (श्रुति) किसीने आठ प्राण और किसीने नौ प्राणका उल्लेख किया है। यथा— 'उत्तमाङ्गस्थित सात प्राण और उसके निम्नस्थ दो प्राण'। फिर किसी श्रुतिमें दश प्राणकी कथा लिखी है। यथा— 'पुरुषमें नौ प्राण और दशवां प्राण नामि। किसी श्रुति-में ग्यारह प्राणींका वर्णन देखनेमें आता है। यथा— 'पुरुषमें दश प्राण और एकादश प्राण आत्मा।' केवल इतना ही नहीं, वारह और तेरह तक प्राणोंकी संख्या श्रुतिमें वतलाई गई है। परन्तु शङ्कराचार्यने वड़ी खोजसे यह स्थिर किया है, कि प्राणकी संख्या सात है, न उससे कम और न अधिक (वेदान्तदर्शनके २य पाद 'चतुर्थ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।)

वेदान्तमें सभी इन्द्रियोंको प्राण वतलाया है। वह प्राण दी प्रकारका है, मुख्य और अमुख्य। सभी इन्द्रियां अमुख्य प्राण हैं और प्राण ही मुख्य प्राण है। सभी प्राण अणु हैं। सूक्ष्मता और परिच्छिन्तता ही प्राण-का अणुत्व है, परमाणुतुत्यता नहीं है। प्राणके परमाणु तुत्य होनेसे युगपन् सर्वशरीरव्यापी कार्य हो ही नहीं सकता । सुतरां सभी प्राण स्क्ष्म हैं अर्थात् दृष्टिपथातीत माल हैं। मुख्य प्राण हो ज्येष्ट और श्रेष्ठ है। यह श्रीत-निर्देश ही श्रेष्ठ शब्दके प्राणवाचकत्वका प्रमाण है। प्राण ंकी ज्येष्ठता भी है। कारण, शुक्र निषेककालसे ही प्राण-वृत्तिलाम करता है अर्थात् गर्भस्थ शुक्र स्पन्दनिक्रया-न्वित होता है। निषेकके समय शुक्रमें यदि प्राणवृत्तिका उद्य नहीं होता, तो योनिनिधिक शुक्र अपत्याकारमें परि-णत नहीं हो सकता था। श्रीतादि प्राण इन्द्रिय) बहुत समयके वाद् अपने अपने स्थानकी विभाग-निष्पत्ति हो 'जानेसे उस उस स्थानमें वृत्ति लाभ करता है। इस कारण वे ज्येष्ठ नहीं हैं । गुणाधिम्यप्रयुक्त मुख्य प्राण श्रेष्ट है। पहले ही छान्दोग्य उपनिषद्की एक आख्यायिका द्वारा इसका प्रतिपादन हो चुका है । प्रस्तावित मुख्य प्राण कैसा है ? श्रुतिप्रमाणानुसार वायु ही प्राण है। "यः प्राणः स पत्र वायुः पञ्चविधः प्राणोऽपानो न्यान ं उदोनः समानः।" (श्रृति ) जो प्राण है वही वायु है। वायु पांच प्रकारको है, प्राण अपान, व्यान, उदान और समान । सांख्यशास्त्रका अभित्रंत पक्ष भी पूर्वपक्षमें ् पाया जाता है । 'सांख्यवादियोंका कहना है, कि प्राण -और कुछ भी नहीं हैं। इन्द्रियोंकी साधारणवृत्ति अर्थात् किया ही प्राण है। इस पर यह कहा जा सकता है, कि

प्राण वायु नहीं हैं और न इन्द्रियव्यापार ही है। क्योंकि, प्राणपृथक्षणसे उपदिए हुआ है। 'प्राण त्रह्मका चतुर्थ पाद हैं' ब्रह्मचतुर्थेपाद प्राण वायुक्षप ज्योति द्वारा अभि-व्यक्त हो कर तापप्रद अर्थान् कार्यक्षम होता है। इस श्रुतिने प्राणको वायुसे पृथक् वतलाया है।

प्राण यदि वायु हो, तो वह वायुसे पृथक क्यों वत-लाया गया ? इन्द्रियवृत्तिसे भी प्राणकी पृथक्ता है और वाक प्रभृति इन्द्रियकी गणनामें प्राणको गणना भी वृत्ति और वृत्तिमानका अभेदोपचार स्वीकार्य है । प्राणको यदि इन्द्रियव्यापार कहा जाय, तो उसकी गिनतो इन्द्रिय-से पृथक्कपमें क्यों होगी ? उससे प्राण, मन, समस्त इन्द्रियां, आकाश और वायु उत्पन्न हुई हैं। इस श्रुति-में भी प्राणको इन्द्रियव्यापारसे भिन्न वतलाया है।

श्रुतिका कहना है, कि चक्षुरादि इन्द्रियोंके सुप्त होनेसे इस नीचतम देहगृहकी प्राण द्वारा ही रक्षा होती है। प्राण जव जिस अङ्गका त्याग करता है, तव वह अंग सुख जाता है। प्राण जो पान करता है, भोजन करता है उससे दूसरे दूसरे प्राण रक्षा पाते हैं अर्थात् जीवित रहते हैं। श्रुतिमें भी प्राण कर्ष क शरीरेन्द्रिय-की पृष्टि वर्णित हुई है। आत्माने सोचा, कि मेरे उत्कान्त होनेसे में ही उत्कान्त होऊंगी। शरीरका त्याग कर जानेसे में कहां उहकंगा, मात्म नहीं। अनन्तर उसने प्राणकी सृष्टि की। इस श्रुतिमें भी जीवके प्राणा-धोनको उत्कान्ति और स्थिति वतलाया है।

मुख्य प्राणके जो बिशेष कार्य हैं वह श्रु तिप्रमाणसे जाना जाता है। प्राणकी पांच वृत्ति वा अवस्था हैं, यथा—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राणकी ये पांच इन्द्रियां क्रियांके मेदानुसार निर्द्धारित हुई हैं। यथा—प्राक्वृत्तिका नाम प्राण है और उसका कार्य उच्छ्वासादि है। अवाग्वृत्तिका नाम अपान है, उसका कार्य उत्सर्गादि अर्थात् मलमूद्र त्याग प्रभृति है। जो उक्त दोनोंके सन्धिस्थल पर वृत्तिमान् है उसे व्यान कहते हैं। इस व्यानका कार्य वीर्यवत् है अर्थात् अन्तिमन्थनादि वलसाध्य कार्यनिर्वाह है। ऊद्ध वृत्तिका नाम उदान है, यह उत्कान्त्यादिका कारण है। जो सर्वाङ्गमें समवृत्ति है उसे समान कहते हैं। समान द्वारा भुकान्न रस-

रकादि भावप्रास हो कर सारे शरीरमें पहुंचाया जाता है। इस प्रकार प्राण मनकी तरह पञ्चयृत्तिक है।

मुख्यप्राण भी इतर प्राणोंकी तरह अणु है, ऐसा जानना होगा। यह अणु परमाणुके समान नहीं है, यह बहुत ही सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्म दृष्टिके अगोचर है। प्राणकी पांच अवस्था सारे शरीरमें ज्याप्त है, इस कारण यह परमाणुके समान नहीं है। प्राण जव उटकान्त होता है, तब उसे पाश्यस्य नियुण व्यक्ति भी देख नहीं सकते। इसी कारण प्राणको सूक्ष्म कहा गया है। श्रुतिमें प्राणकी उत्कान्ति, गति और अगित विणित है, इसो कारण वह परिच्छिन्न अर्थात् परिमित है। प्राण व्यापक है। प्राणका वह व्यापित्व कभी आधिवैविक अभिप्रायमें और अग्यापित्य कभी आध्यात्मिक अभिप्रायमें है। आधि देविक प्राण समिष्टक है, इसीका दूसरा नाम हिरण्यन्य गर्म है। आध्यात्मिक प्राण व्यक्षित है, उसका दूसरा नाम प्राण है। प्राणका विभुत्व कभी भी आधिवैविक वा वाध्यात्मिक नहीं है।

प्रस्तावित सभी प्राण क्या अपनी अपनी महिमासे अर्थात् स्वाधीन क्षमतासे अपना अपना कार्य करते हैं या देवताके अधिष्ठान रहनेके कारण उन्हींकी शक्तिसे कार्य करते हैं ? इस पर थोड़ा विचार करनेसे मालूम होता है, कि कार्यशक्तिका योग रहनेके कारण प्राण अपनी अपनी महिमासे कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। देवताधिष्टित प्राणींका कायंप्रवृत्ति है अर्थात् वे देवताविशेयके अनु-प्रहसे अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, यदि यह स्वीकार कर हैं, तो उसी देवताकी भोकतृत्वप्राप्ति होती हैं; सुतरां जीवका भीक्तृत्व लोप होता है। तत्परिहारार्थ प्राणींकी स्वाधीन प्रवृत्ति स्वीकार करना ही उचित है। इससे यह स्थिर हुआ, कि अग्निप्रेमृति देवता कर्तृक धिधिष्ठित हो कर ही वागादि इन्द्रियां अपने कार्यमें प्रवृत्त होती हैं। उसका कारण श्रुतिवाक्य है अर्थात् श्रुतिने वही कहा है। यथा—'अम्निने वाक्य हो कर मुखर्से प्रवेश किया है' इत्यादि । अग्निका यह वाक्यभाव और मुख-प्रवेश देवतात्माके अधिग्रानरूपमं कहा गया है। देवता-का अधिष्ठान अर्थात् सम्बन्धविशेष छोड् कर वाक्यमें मधवा मुखमें प्रसिद्ध अग्निका कोई विशेष सम्पक<sup>8</sup> नहीं

देखा जाता। 'वायुने प्राण हो कर नासिकामें प्रवेश किया है।'इत्यादि प्रकारसे प्राणके अधिष्ठातो देवता है, यह भी मीमांसित हुआ है।

प्राणादिके अधिष्ठाती देवता रहने पर भी अृतिके द्वारा प्राणवान् अर्थात् देहेन्द्रियसंवातस्वामो जीवके साथ ही पूर्वीक प्राणींका सम्बन्ध रहना सावित होता है। जीवके साथ हो प्राणका नित्य अर्थात् अनुच्छेय सम्बन्ध है, प्राणाधिष्ठातो देवताके साथ नहीं। क्योंकि, प्रत्येक प्राणको उत्कान्तादिमें अर्थात् मरणादिके समय जीवातु-गमन करते देखा जाता है । श्रुतिमें लिखा है, जीवके उत्क्रमणमें उद्यत होनेसे प्राण उसका पश्चाद्गामी होता हैं और मुख्यपाणके उत्क्रमणमें प्रवृत्त होनेसे उसके साथ साथ अन्यान्य प्राण भी उत्क्रमण करते हैं। यही कारण हैं, कि प्राणके सर्वोका नियन्ती देवता रहने पर भी जीवका भोक्तृत्व विलुप्त महीं होता । नियन्त्री देवता सभी प्राणींके पक्षभूत हैं, भोक्तृत्वके नहीं । जिस प्रकार प्रदोप चक्षु रिन्दिय का उपकारक होनेके कारण चक्षुका सहायमात है। उसी प्रकार तद्धिष्टातो देवता केवल उनके सहायमात हैं। एक प्रधान प्राण और अव-शिष्ट अप्रधान एकादशप्राण (एकादश इन्द्रिय) चर्णित हुए हैं।

मुख्य प्राण और अन्यान्य प्राणके छक्षणमें वहुत प्रमेह
है। वागादि इन्द्रियोंके सुप्त होनेसे अर्थात् उनका अपना
अपना व्यापार उपरत होनेसे केवल एक मुख्यप्राण ही
जावत रहता है, अपने व्यापारमें नहीं छगा रहता। एकमात्र मुख्यप्राण ही मृंत्युवस्त नहीं है, सभी व्राण
मृत्युवस्त हैं। मुख्यप्राणके ही रहने से देहका अवस्थान
है और उसीकी उत्क्रान्तिसे देहका पतन है। इन्द्रियां
कपरसादि विषयकी आलोचना करती हैं, पर यह व्राण
सो नहीं करता। मुख्यमें अमुख्य व्राणका अर्थात् व्राण
और इन्द्रियके मध्य इस व्रकार वहुतों चैलक्षण्य देखे जाते
हैं। छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदमें इसका विषय
विशेषक्रपसे आलोचित हुआ है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया। (वेदान्तद० २१४ अ०)

वेदातसारमें नाग, कूमें, कुकर, देवदत्त और धनश्चय नामक पांच प्राणींका उल्लेख है। मृत्युकालमें सभी प्राण इन्द्रियोंको ले कर पीछे आप उत्कान्त हो जाता है। देही-के शरीरमें जब तक प्राण रहता है तब तक जीवन रहता है, प्राणके निकल जानेसे मृत्यु होती है। प्राण किस प्रकार देहसे निकलता है उसका विपय यहां पर संक्षेप-में लिखा जाता है। जीव जन्म ले कर नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक होता है। इससे नाना प्रकारके संस्कारों या अदृष्टोंकी उत्पत्ति होती हैं। वे सब संस्कार सुद्म शरीरमें एक एक करके उपलिप्त होते हैं। मानवकी जरा उपस्थित है ; वह जीर्णवस्त्रके समान है, सपैके निर्मोकः त्यागके समान हैं, पुनर्वार जराजीर्ण देहके परिवर्त्तनकी आवश्यकता हुई है। फिर आयु नहीं है, मृत्युकाल उप-स्थित है। जो वाह्यवायु इतने दिनों तक प्राणवायुके अनुप्रहसे चली आ रही है, जी वाह्य तेज दैहिक तापके समान आ रहा है, वह वायु और वह तेज अभी शरीरकी वायु और शरीरके तेजका प्रतिकृष्ट हो गया है। इसी कारण भुक्तद्रव्यका यथायथ पाठ, रसरकादिकी उत्पत्ति और सञ्चयन अवरुद्ध हो गया हैं। ऐसी अवस्था देख कर लोग कहने लगते हैं,—मुमूर्यु अर्थात् मृत्यु पहुंच गई। इसी समय शरीरतेज और वाह्यतेज दोनों सम्पर्क विच्छित्र हो जाते हैं। उनके विच्छित्र होनेसे ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाता है । इस समय मुख्य प्राण अपनी वृत्ति अर्थात् कार्यंको समेट छेता है और वलवत् वेगधारण करता है। अव श्वासोछ्वासकी जब वृद्धि होने लगी, तव लोग कहते हैं, कि भ्वास वा दमा पहुंच गया। यह श्वास या दमा और कुछ भी नहीं हैं, प्राण जो वल-वद्ववेगसे इन्द्रियोंको आकर्षण करती है, उसीसे निश्वास वायुकी अधिकता होती है। अब भ्वास या दमा चक्ष और कर्ण प्रभृति इन्द्रियोंको खींचने लगता है। वे सव अभी अपना अपना स्थान छोड़ कर प्राणमें मिल जाती है। इससे मुमूर्षुकी आँखोंमें जाल-सा पड़ जाता है जिस-से वह कुछ भी देखने नहीं पाता। इस समय मुख्य प्राण इन्द्रियमय सूदम शरीरको सङ्कोच कर छेता नाभिका परित्याग कर कएठमें पहुँच जाता है। लोग कहने लगते हैं, कि कल्डश्वास आ गया, अब देरी नहीं। इस समय मुख्यप्राण करठमें रह कर चित्तको आकर्षण करता है। चित्त भी स्थानच्युत होता और

प्राणमें आ कर मिल जाता है। इस समम लोग कहत हैं, कि अव ज्ञान नहीं रहा, खाट परसे उतारो। इसी समय मुख्यप्राण अपनी उद्गमन वृत्तिको अवलम्बन करके चैतन्याधिष्ठित सूच्म शरीरके साथ वाहर निकल जाता है और यह कौशिक वा स्थूल शरीर रह जाता है।

शास्त्रमें भी लिखा है, कि चक्ष्, कण, नासिका, मुख, नाभि, मलद्वार, प्रस्नावद्वार, पाँवकी वृद्धांगुलि और ब्रह्मरन्ध्र यही सब स्थान प्राण-निगैमनके द्वार हैं। जिस स्थान हो कर मनुष्यके प्राण निकलते हैं, वह स्थान किसी पक विशेष लक्षणका हो जाता है। मुख्हो कर निकलनेसे मुँख खुला रहता है, लिङ्ग हो कर निकलनेसे लिङ्गच्छिद विस्फारित होता है । भविष्यमें उत्तम जन्म यदि होनेको हो तो ऊर्द च्छिद्रसे और यदि अधम जन्म होनेको हो तो अधिश्चद्रसे प्राणत्याग होता है। ऊर्द छिद्रके मध्य ब्रह्मरन्ध्र ही श्र छ है और अधिश्छद्रके मध्य पादांगुलि सर्वापेक्षा अधम है। ब्रह्मरन्ध्र हो कर प्राणत्याग होना ब्रह्मलोकप्राप्तिका और पादांगुलि हो कर प्राणत्याग होना नरकगमनका छक्षण है। मासूम होता है, कि इसी कारण अन्तरज<sup>°</sup>लिकालमें मुमूर्पु व्यक्तिकी पदांगुलि-को दवा कर रखते हैं; किन्तु सूत्मतम प्राण इस प्रकार दव रहनेकी वस्तु नहीं है। जिसकी जैसी गति होगी, प्राण उसी भावमें चले जाते हैं। लाख चेष्टा करने पर भी उसको गति नहीं रोकी जा सकती। यदि किसीकी हुउात् मृत्यु हो जाय, तो भी उक्त व्यवस्थाकी अन्यथा नहीं होती । शिरश्छेद और वज्रपतनादि द्वारा मृत्यु होनेसे भी कथित प्रकारके नियम प्रतिपालित होते हैं ।

बेदान्तके मतसे प्राणमिलित आकाशादि पञ्चभूतके रजोअंशसे उत्पन्न हुए हैं। पञ्चकर्मेन्द्रियके साथ इन प्राणादि पञ्चको प्राणमय कोश कहते हैं। "इर प्रणादि-पञ्चकंकमे न्द्रियसहित' सन् प्राणम्य कोशो भवति"

(वेदान्तसार)

भारतीय दर्शनोंमें जिस प्रकार प्राणतत्त्व विवृत हुआ है, वर्तमान पाश्चात्य दार्शनिकोंने ठीक उसी प्रकारकी आलोचना नहीं की हैं। उन्होंने आणुवीक्षणिक परीक्षा-से देखा है, कि प्रत्येक शरीरमें शरीरप्रक्षक असंख्य सजीय कोषाणु (Celbs) हैं, जो चर्मचक्षु से दिखाई

नहीं देने पड़ते। उन कापाणुके मध्य अति तरल प्राण-पड़ू (Protoplasm) विद्यमान है। जड़से. किसी प्रकार इस प्राणपड़ुकी उत्पत्ति नहीं है। अह असेतन है। इसके किस स्थानमें प्राण हैं, पाश्चात्य दार्शनिक उसका पता लगा रहे हैं। शरीर शब्दमें बिस्तृत विवरण देखों।

सुश्रुतमें प्राणका विषय इस प्रकार लिखा है—भग-वान् खयम्भू ही प्राणवायु नामसे कथित हैं। ये खतन्त्र, नित्य और सर्वंगत हैं । ये प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके कारण हैं। ये खयं अव्यक्त हैं, किन्तु इनकी क्रियाप प्रत्यक्ष हैं। ये सूदम, शीतल, लघु, खर, तीर्थगुनामी, शब्द और स्वर्शगुणविशिष्ट, रजोगुणवहुल, अचिन्त्यशक्ति तथा देहस्थ सभी दोपेंकि नायक और रोगोंके राजा हैं। ये देहके मध्य क्षिप-कार्यकारी और शीवविचरणशील हैं । पकाशय और गुहादेश इनका अलय है। प्राणवायुके कुपित नहीं होनेसे दोप, धातु भौर अग्नि सममावमें रहतीं हैं, उन्हें अपने अपने विषयमें मवृत्ति होती है। नामस्थान-क्रियाके भेदसे अग्नि जिस प्रकार पांच भेड़ोंमें विभक्त है, यह प्राण भी उसी प्रकार पञ्चघा विभक्त है। यथा—प्राण, उदान, समान, यान और अपात । ये पांच प्राणवायु पांच स्थानमें रह कर देहियोंकी देह रक्षा करती हैं। जो वायु मुंहमें सञ्चरण करती है उसे प्राणवायु कहते हैं। प्राणवायु द्वारा देह-की रक्षा होती, भुक्त अन्न जडरमें जाता और प्राणधारण होता है। इस प्राणत्रायुके दूषित हॉनेसे प्रायः हिका भ्वास आदि रोग उत्पन्न होते हैं। जो वायु ऊर्द की ओर सञ्चरण करती उसे उदानवायु कहते हैं। इस उदानवायुके दूषित होनेसे स्कन्धसन्धिके ऊपरमें तरह तरहके रोग पैदा होते हैं। आमाशय और पकाशयके मध्यस्थलमें समानवायु रहती है । समानवायु जठर-स्थित अग्निके साथ मिल कर लाये हुए अन्नको पचाती है। इसके दूषित होनेसे गुल्म, अनिमान्य, अनिसार आदि रोगोंको उत्पत्ति होती है। व्यानवायु सारे शरीरमें यूमती है और बाहारजनित रमको शरीरमें नहन करती ; है। इसके द्वारा पसीना निकलता और देहसे रकस्नाव होता है अथवा याँ कहिये, कि इससे पांचों प्रकारके काम : होते हैं। व्यानवायुके कुपित होनेसे प्रायः सर्वदेहगत Yol. XIV. 176

रोग उत्पन्न होते हैं। अपानवायु पकाशयमें रहती है। इसके द्वारा मल, मूल, शुक्र, गर्भ और आतंवशोणित-कालमें आकृष्ट हो नीचेकी ओर जाता है। इसके कुपित होनेसे बस्ति और गुहादेशमें आश्रित सभी रोग उत्पन्न होते हैं ब्यान और अपान इन दो वायुके एकत्र कुपित होनेसे शुक्रदोप और प्रमेहरोग होता है। सभी वायु जव एक साथ कुपित होती है, तब वे शरीर छेद कर वाहर निकल जाती है। (इशुत निदानशान १ अ०)

वेदान्तसारमें भी लिखा है, कि ग्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पञ्चवायु ही पञ्चमाण हैं। इनमेंसे ऊर्द्ध गमनशील नासाग्रस्थायी चायुका नाम प्राण, अधी-गमनशील पायु आदि स्थानवत्तीं वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनशील शरीरस्थायी चायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनशील शरीरस्थायी उत्क्रमण बायुका नाम उदान और पीत अन्वजलादिकी समीकरणकारी वायुका नाम समान है। सांस्थमतावलम्बी आचायोंका कहना है, कि नाग, कुर्म, एकर, देवदत्त और धनञ्चय नामक और भी पांच वायु हैं। उदिरणकारी वायुको नाग, उन्मीलनकारी वायुको कुर्म, शुधाजनक वायुको इकर, जुम्भनकारी वायुको कुर्म, शुधाजनक वायुको इकर, जुम्भनकारकको देवदत्त और पोपणकारी वायुको धनञ्चय कहते हैं। किंतु वैदान्तिक आचार्योने इन नाशादि पञ्चवायुको शाणादि-पञ्चवायुके हो अन्तर्गत माना है।

(वेदान्तसार)

कर्मलोचनमें प्राणकर और प्राणहर द्रव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—सधोमांस, नवान्न, वालाखां-सम्भोग, शीरभोजन, धृत और उष्णोदक-सेवन ये छः द्रवा सद्याणकर है। शुष्कमांस, वृद्धाखी-गमन, शरत्-कालका स्टांसेवन, तरुणद्धि (सड़ा दहीं), प्रभात-कालमें मैंधुन और प्रभातकालमें निद्वा ये छः सद्याप्याप-नांशक माने गये हैं।

"सद्योमांसं नवान्तश्च वाला खी श्लीरभोजनम्। चृतमुण्णोदकञ्चेव सद्यः प्राणकराणि षट्॥ शुक्तं मासं स्त्रियो वृद्धा वालाकंस्तरुणं द्धि। प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि पट्॥" (कर्मलोचन

जब बीवका प्राणान्तरकाल पहुंच जाय, तब उसे

घरसे वाहर कर दे। पीछे आंगनमें कुशशय्या पर सुला कर जब तक पूर्ण त्याग न हो, तब तक उसके कानमें ईश्वरका नाम उच्चारण करे। अनन्तर प्राणत्याग हो जाने पर यथाविधि उसका सत्कार करे। सत्कारके वाद उसका अशौच होता है। (वराहपु०)

प्राणक (सं॰ पु॰) प्राणैः प्राणेन वा कायतीति कै-क । १ सत्त्वजातीय । २ प्राणिमात । ३ जीवकवृक्ष । ४ बोल, एक प्रकारका सुगन्धित गोंद । ५ प्राण ।

प्राणकर (सं० त्नि०) प्राणं वलं करोनीति क्र-ट। वल कारक, शक्तिवद्ध<sup>°</sup>क।

प्राणकर्म (सं० क्की०) प्राणानां कर्म ६-तत्। प्राण-समूहका कर्मभेद। इन्द्रियोंके जो सव कर्म हैं, कोई कोई उन्हींको प्राणकर्म कहते हैं। उपनिपद्में सभी इन्द्रियोंको प्राण वतलाया है। किंतु व गौण प्राण हैं। प्राणादि पञ्चप्राण मुख्यप्राण हैं। उनके अर्थात् इन्द्रियों-के कर्मको प्राणकर्म कहते हैं। इस इर्मका विषय प्राण शब्दमें देखों।

प्राणकष्ट (सं॰ पु॰) वह दुःख जो प्राण निकलते समय होता है, मरनेके समयकी पीड़ा।

प्राणकान्त (सं॰ पु॰ ) १ प्रियव्यक्ति, प्यारा । २ पति, स्थामी ।

प्राणकृच्छ्र (सं॰ पु॰) वह कष्ट जो मरनेके समय होता है, प्राणकष्ट ।

प्राणकृष्ण-जातकमकरंद् नामक संस्कृत ज्योतिपके प्रणेता । प्राणकृष्णविश्वास—संस्कृत-शास्त्रानुरागी कायस्थवंशीय वंगालके एक जमींदार। इनके पिताका नाम रामहरि-विश्वास था। इनकी मूल उपाधि 'दास' थी। इनके बृद्धिपतामह मुर्शिदावादके नवाव अलीवदींखाँके यहां मुंशीके पद नियुक्त थे। उस समय सारे आर्यावर्त्तेमें वर्गीका उत्पात चल रहा था। प्रभुके कार्यमें वे वर्गीके हाथसे मारे गये। इस लिये अलोवदींखाँमे उनके लड़के रामजीवनको बुला कर वसंतपुर नामक ग्राम जागीर स्वस्तप दिया। प्राणकृष्ण योग्य पिताके योग्यपुत्र थ। उन्होंने कोचिवहारके कलकृरकी दीवानी और सीदागरी-में खासी रकम इकट्टी कर ली थी। ये उच्च साधक और घोर तान्त्रिक भी थे। पिताका अनुसरण कर ये बहुतसे मन्दिर वनवा गये।

आप संस्कृत, बङ्गला, हिन्दी, पारसी और अंगरेजी भाषामें व्युत्पन्न और अतिशय विद्यानुरागी थे। बहुत खर्च करके आपने दुर्लभ तन्त्व, धर्मशास्त्र, ज्योतिप और आयुर्वेदीय प्र'थादिकां संग्रह किया था। आपने आठ प्रन्थ भी लिखे थे जिनमेंसे प्राणतोषिणी तन्त्व, प्राण-कृष्णीपधावली, वैष्णवामृत, क्रियाम्बुद्धि और प्राणकृष्ण शब्दाम्बुद्धि ये पांच मुद्दित हुए थे तथा भस्मकौमुदी, विष्णुकौमुदी आदिकी हस्तलिपि आज भी अमुद्दित अवस्थामें पड़ी है। उनका 'प्राणतोविणी' नामक प्रन्थ तान्तिकोंके निकट अमूल्य प्रन्थ समक्ता जाता है।

प्राणग्रह ( सं॰ पु॰ ) घ्राणाख्य इन्द्रिय । नासिका, नाक । प्राणघात ( सं॰ पु॰ ) हत्या, वध ।

प्राणघ्न ( सं ० ति ० ) प्राणं हन्ति-हन-टक् । प्राणनाशक, प्राण छेनेवाळा ।

प्राणच्छिद् (सं० ति०) प्राणान-छिनत्ति छिद्-िकिप्। प्राण च्छे दकारक, हत्या करनेवाला।

प्राणच्छेद ( सं॰ पु॰ ) प्राणवध, हत्या ।

प्राणजीवन (सं ॰ पु॰) पाणं जीवयति जीवि-ल्यु । १ परम प्रिय व्यक्ति, अत्यंत प्रिय मनुष्य । २ विष्णु जी पाणींकी रक्षा करते हैं। (बि॰) ३ प्राणस्थापक ।

प्राणतज्ञ ( सं ० पु० ) कल्पप्रभव वैमानिकभेद् ।

प्राणत्याग ( सं ॰ पु॰ ) प्राणानां त्यागः। प्राणका परि-त्याग, मर जाना।

प्राणथ ,सं० पु०) प्राणित्यनेनेति प्र-अन्-प्राणने (शिङ्शिपि क्षिमीति । उण ् ३११६ ) इति अथ । १ वायु, हवा । २ पूजापति । ३ तीर्थ, पविल स्थान । ४ जैनशास्त्रा-नुसार एक देवता जो कल्पभव नामक वैमानिक देवताओं-के अन्तर्गत है । (लि०) ५ वलवान, ताकतवाला । प्राणद (सं० क्षी०) प्राणं प्राणनं वलं ददातीति पूण्य-दां, (आतोऽनुपक्षेति । पा ३।२१३) इति क । १ जल, पानी । २ रक्त, खून । ३ जीवक नाम वृक्ष । ४ विष्णु । (लि०) । ५ पूण्यदाता, जो पूष्य दे । ६ पूष्यों की रक्षा करने-वाला ।

पाणदा (सं ० स्त्री०) प्राणद टाप्। १ जाल। २ ऋदि-वृक्ष । ३ हरीतकी, हरें।

प्राणदागुड़िका (सं ० स्त्री०) अर्शरोगाधिकारमें चक्रद्त्तीक

श्रीपश्चित्रिय । प्रस्तुत प्णाली—सींड ३ पल, मिर्च ४ पल, पीपल २ पल, चई १ पल, तालीणपल १ पल, नागेश्वर ४ तोला, पीपलमृत २ पल, तेजपत १ पल, छोटी
इलायची २ तोला, खसखसकी जड़ २ तोला, 'कोई कोई '
अन्तिम दो द्रव्य दो दो पल करके लेते हैं ), पुराना गुड़
३० पल इन सव द्व्योंको पक साथ पीस कर मीदक वनाये। रोगीका कोष्ठवड रहनेसे सींठके बदले हरीतकीका व्यवहार करे। पित्तार्शरोगमें गुड़के वदले चूर्णसमष्टिका चतुर्गुण चीनी डाल कर मीदक वनाना होता
है। इसकी माता आध तोला और अनुपान रोगीके
द्रोपकी अवस्थाके अनुसार दूध और जल पृमृति है। इस
औपधका सेवन करनेसे सव प्कारके अर्शरोग, पानात्यय,
मृतकुल, आदि नाना प्कारके रोगोंकी शांति होती है।
(मैक्श्नरतावली-अर्गोंऽधिकार)

प्राणदाता ( सं० पु० ) प्राणदातृ देखी । प्राणदातु ( सं० वि० ) प्राण-दा-तृष् । १ प्राणदायी, प्राण ' देनेवाला ।

प्राणदान ( सं० क्ली०) प्राणस्य दानं । १ जीवनदानः प्राण देना । २ किसीका मरने या मारे जानेसे वचाना ।

त्राणद्यूत (सं० क्ली० ) १ प्राणपण करके युद्ध, जीवनका . मोह छोड़ कर युद्ध करना । २ जान पर खेळना, जान ! धोखोमें डाळना ।

प्राणद्रोह ( सं ॰ पु॰ ) प्राणस्य द्रोहः हिंसा । प्राणहिंसा । प्राणघन ( सं ॰ पु॰ ) वह जी हृद्यका सर्वस्व हो, अत्यन्त प्रिय ।

प्राणधरमिश्र – जातकचन्द्रिकाके रचयिता।

प्राणघार (सं ० ति ० ) १ जीवित, प्राणवाला । (पु०) २ । ्प्राणयुक्त जीव, प्राणी, प्राणघारी ।

प्राणधारण (सं ० इही०) प्राणानां धारणं । १ जीवनधारण । । ६ शिव, महादेव ।

प्राणधारो ( सं ० ति० ) १ प्राणयुक्त, जीवित । २ जो सांस लेता हो, चेतन ।

प्राणत ः सं ० क्ली० ) प्र-अन-प्राणने ल्युट् । ? जीवन । २ चेप्रन, चेप्रा करना । ३ जल. पानी ।

प्राणनाथ (सं ० पु०) प्राणानां नाथः ६ तत् । १ पति, स्वामी । २ प्रिष्न व्यक्ति, प्रिमनम । प्राणनाथ—१ हैन्रज्ञभूष्णके स्वियता। इनके पिताका नाम जीवनाथ था। २ एक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक आचार्यका नाम। श्रणनाथी देखो। ३ एक प्राह्मण-कृति। इनका जनम संवत् १८५ में हुआ था। ये वैसवारेके रहनेवाले थे। इनका वनाया 'चक्रव्यृह इतिहास' नामक प्रन्थ उत्तम है। ४ कोटाके रहनेवाले एक कृति। सम्वत् १७८६में इन्होंने जनमप्रहण किया था। ये कोटा राज-इरवारके राजकृति थे। इनकी कृतिता सुन्दर होतो थी।

प्राणनाथ कायस्थ—साधारण श्रेणीके एक कवि । इनका जन्म सम्यन् १८४३में हुआ था । इन्होंने 'सुदामा चरित्र' तथा 'रागमाला' इन दो प्रन्थोंकी रचना की थी ।

प्राणनाथ तियेदी--एक कवि। इन्होंने १७६५ ई०में 'कल्कि-चरित' प्रन्थ बनाया था।

प्राणनाथवें च-एक प्रसिद्ध वैद्यक प्रन्थकार । इन्होंने संस्कृत भाषामें भेषज्यरसामृतसंहिता, रसप्रदीप और नैद्यदर्षणकी रचना की ।

प्राणनाथी—गुरु प्राणनाथ प्रतिष्टित एक धर्मसम्प्रदाय । प्राणनाथ जातिके क्षत्रिय थे और औरङ्गजेवके समयमें उत्पन्न हुए थे। हिन्दू और मुसलमानी दोनी शास्त्रीमें इनक **ब्रान था। ये 'महितारिवल' नामक एक प्रन्थमें वेदके साथ** कुरानका समन्वय करनेकी चेष्टा कर गये हैं। कहते हैं, कि उनकी शास्त्रव्यास्था पर मुन्ध हो कर वुन्देलके प्रसिद्ध राजा छत्नसाल उनके शिष्य वन गये थे। इसीसे कोई कोई मुसलमान लेखक छलशालको इस्लामधर्मावलम्बी कहनेसे वाज नहीं आये हैं। सन्न पृछिये तो छतशाखने कभी भी इस्लाम् धमेको ब्रहण नहीं किया था । प्राण-नाथका शिष्यत्व खोकार करनेसे ही मातृम होता है, कि ऐसी अफवाह उड़ गई है। गुरु प्राणनाधने भी कर्मी इस्लाम धर्मको प्रहण नहों किया। परन्तु इतना अवश्व हैं, कि इस्लामधर्ममें उनकी यथेष्ट आस्था थी । कवीर, नानक आदिके समान ये भी आजन्म साधु हो कर हिन्दू और मुसलमान वर्मकी एकताके सम्बन्धमें उपदेश देते रहे। हिन्दू और मुसलमान दोनों श्रेणीके वहुसंस्पक लोगोंने उनका शिष्यत्व खीकार किया था ।· माणनाथके मताबलम्बी प्राणनाथी कहलाते हैं।

एक समय बुन्देलवर्ड, गोरखपुर और मथुरा बाद्रि

अञ्चलोंमें वहुसंख्यक प्राणनाधियोंका वास था। अव भी वे कुछ संख्यामें देखे जाते हैं। ये लोग मूर्तिपूजा नहीं करते और प्राणनाथके प्रन्थोंकी वड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। इस सम्प्रदायमें प्रवेश करते समय इस सम्प्रदायवालोंके साथ, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान एक साथ बैठ कर खाना पड़ता है। वस केवल इतनी ही विशेषता है और सभी वातोंमें हिन्दू तथा मुसलमान अपने अपने पूवजोंके आचार व्यवहारका पालन करते हैं। प्राण-नाथने अनेक प्रन्थोंकी रचना की थी, पर अभी निम्न-लिखित प्रन्थ ही पाये जाते हैं—१ रासनाम, २ प्रकाश, ३ षट्रित,४ कलस, ५ सनन्ध, ६ कीर्तन, ७ खुलासा, ८ खेल्वत्, ६ पराक्रम इलाही दुर्लहिन, १० सागरश्रङ्गार, ११ बड़ीशिङ्गार, १२ सिद्धिभासा, १३ मारफतसानर,

प्राणनारायण—कामरूपके एक राजा। इनको उपलक्ष कर के ही जगन्नाथपिखतराजने 'प्राणामरण' नामक एक संस्कृत काव्यकी रचना की।

कामहर और कोचिवहार देखो।
प्राणनाश (सं ० पु०) प्राणिवनाश, प्राणत्याग।
प्राणनाशक (सं ० दि०) प्राण छेनेवाला, मार डालनेवाला।
प्राणिवग्रह (सं० पु०) प्राणका निग्रह, प्राणायाम।
प्राणन्त (सं० पु०) १ वायु। २ रसाञ्जन।
प्राणन्त (सं० खी०) प्राणन्त षित्वात् छीष्। १ क्षुघा,
भूख। २ हिचकी। ३ छीक।
प्राणप्त (सं० दि०) प्राणप्तेरपत्यादिः (अधपत्यादिभ्यव। पा ४।१।८४) इति अण्। अन्त्यलोपः।

प्राणपतिके अपत्यादि।
प्राणपति (सं० पु०) प्राणानां पतिः ६-तत्। १ आत्मा।
२ खामी। ३ हृद्य। ४ प्रिय व्यक्ति, प्यारा।
प्राणपत्नी (सं० खी०) १ प्राणसमान पत्नी। २ खर।
प्राणपरिक्रय (सं० पु॰) प्राणका मूल्य, प्राणपण।
प्राणपरिक्रीण (सं० वि०) १ जिसका जीवनक्षय होता
जा रहा हो। (क्री०) २ वृद्धावस्था।
प्राणपरिग्रह (सं० पु०) प्राणानां परिग्रहः। प्राणधारण,

जन्म ।

प्राणपरित्याग ( सं० पु० ो प्राणानां परित्यागः। प्राण-विनाश।

प्राणपरिवत्तन ( सं० पु० ) किसी मृत पुरुषकी आत्माकी किसी जीवित पुरुषके शरीरमें बुळाना ।

प्राणपा ( सं० स्त्रो० - प्राणरक्षक ।

प्राणप्यारा (हिं० पु०) १ प्रियतम, अत्यन्त प्रिय व्यक्ति। २ पति, खामी।

प्राणप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) १ प्राण धारण करना। २ हिन्दू-धर्मशास्त्रोंके अनुसार किसी नई वनी हुई सूर्त्तिको मन्दिर आदिमें स्थापित करते समय मन्त्रों द्वारा उसमें प्राणका आरोप करना। किसी मूर्तिकी जब तक प्राणप्रतिष्ठा न हो छे. तब तक वह मूर्ति पूजाके थोग्य नहीं होती और उसकी गणना साधारण धातु, मही या पत्थर आदिमें होती है। प्राणप्रतिष्ठाके बाद ही उस मूर्तिमें देवताका अस्तित्व माना जाता है।

प्राणप्रद (सं० ति०) प्राणं प्रद्दातीति प्र-दा-क। १ प्राण-दाता, जो प्राण दे । २ खास्थ्यवद्ध<sup>6</sup>क, शरीरका स्वास्थ्य और वल आदि वढ़ानेवाला ।

प्राणप्रदा (सं० स्त्री०) ऋदि नामक श्रोषधि।
प्राणप्रदायक (सं० ति०) प्राणप्रदानकारी, प्राणदाता।
प्राणप्रदायिन (सं० ति०) प्राण-प्र-दा-णिनि। प्राणदाता।
प्राणप्रिय सं० ति०) १ प्राणतुत्यिष्य, प्राणके समान
प्यारा। (पु०) २ अत्यन्त प्रिय न्यक्ति, प्राणप्यारा।
३ पति, स्वामी।

प्राणवल्लम ( सं ० पु० ) प्राणवल्बम देखो । पूराणमञ्ज ( सं ० पु० ) पूर्णिन प्राणिन भक्षः ३ तत् । प्राण द्वारा अवद्याणमात ।

पूरणसास्वत् (सं॰ पु॰) पूरणेन बायुना जलेन वा भास्वान् उद्दोतः। समुद् ।

पाणभूत ( सं० ति० ) पाणस्वरूप।

पाणसृत् (सं ० ति०) पाणं विभक्ति भृ-किए-तुक् च। १ पाणी, पाण धारण करनेवाला। २ पाणपोषक। (पु०) ३ विष्णु।

पूरणमय (सं ० ति०) पूरणसं युक्ता, जिसमें पूरण हो। पूरणमयकोश (सं ० पु०) वेदान्तके अनुसार पांच कोशों-मेसे दूसरा। यह पूरण, अपान, वरान, उदान और समान ं नामक पांच प्राणींसे बना हुआ माना जाता है।-वेदान्त-ः सारमें पांचों कर्मेन्टियोंको भी पूरणमय कोशके अन्तर्गत ्रमाना है। इसी पूर्णमय कोशसे मनुष्यको सुख-दुःखादि-का ज्ञान होता है। स्हमपूरण सारे शरीरमें फैट कर मनको सुखदुःखका वोध कराते हैं। इसी कोशको वीद-प्रन्योंमें चेदनास्नन्य माना है। पूर्णमल्ल नेपालके एक राजा, सुवर्णमल्लके पुतः। वृाणमोक्षण ( सं ॰ क्ली॰ ) पूाणानां मोक्षणं ६-तत् । पूाण-परित्याग । पूर्णयम (सं ॰ पु॰) पाणी यम्यतेऽनेन यम-करणे धज् न · वृद्धिः । · प्राणायाम । इसमें प्राण संयत होते हैं, इसीसे इसको प्राणयम कहते हैं। प्राणयाता (सं क्यो॰) प्राणानां याता ६-तत्। १ श्वास प्रश्वासके आने जानेकी क्रिया, सांसका आना 'जाना । २ गोजनादि जो जीवनके साधनभूत **हैं, वह** च्यापार जिनसे मनुष्य जीवित रहता है । प्राणयोनि ( सं॰ पु॰ ) प्राणस्य योनिः कारणं। १ परमे-भ्वर। २ जगत्प्राण वायु। प्राणरन्त्र (सं० क्ली०) १ प्राणवहिर्गमनका छिद्र, प्राण निकलनेका छिद्र, प्राण निकलनेका छेद। २ नासिका, नाक। ३ मुख, मुंह। प्राणरोध (सं ० पु०) प्राणान् रुध्यतेऽनेन रुध-करणे घत्रं। प्राणायाम, प्राण प्राणायाम द्वारा रुद्ध होते हैं। प्राणवत् ( सं ० ति० ) प्राण अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः। प्राणयुक्त, जिसमें प्राण हों। प्राणवथ ( सं ॰ पु॰ ) प्राणघात, जानसे मार डालना । प्राणवल्लम (सं•पु॰) १ वह जो प्यारा हो, प्रिय। २ खामी, पति। प्राणवान् (हिं पु॰) प्राणवत देखी। ब्राणवायु (सं० स्त्री०) १ पृाण । २ जीव । पूरणविद्या (सं क्स्री ) पूरणतत्त्व जाननेकी विद्या। पाणवृत्ति ( सं ॰ स्त्रीं॰ ) पाणानां वृत्तिः व्यापारः । पाणिका कार्य, पाण, अपान, उदान आदि पंच पाणीका काम। प्राण देखो । पुग्णब्यय (सं ० पु०) पाणस्य व्ययः ६ तत्। पाणका व्यय, पूर्णनाशं 🗀 🔗 🗥

grand of the start

Vol. XIV. 177

पूर्णशरीर (सं ॰ पु॰,) पूर्णः शरीर सक्तप यस्य । १ षाणात्मेक्स्पर्मे ध्येय परमेश्वर । २ उपनिषदींके अनुसार एक सूक्ष्म शरीर जो मनोमय माना गया है । इसींको ेविज्ञान और क्रियाका हेतु मानते हैं। पाणशोषण ( सं ० पु॰ , वाण । वाणसंन्यास (सं ० पु॰) मरण, मौत । पूरणसंयम ( सं॰ पु॰ ) पूरणानां संयमः। पाणायाम । पाणसरीय (सं ॰ पु॰) श्वासरीय। पाणसंवाद (सं पु॰) पाणानां संवादः ६ तत्। सभी प्राणीको संवाद, एकादशं इन्द्रिय और मुख्य प्राण इनका श्रेष्ठत्व् हे कर विवादकप संवाद्। इस प्रकरणमें प्राण-की श्रेष्ठता दिखानेके लिये पाणका ग्यारह इन्द्रियोंके साथ विवाद कराया गर्या है और अन्तमें सवसे पाणकी श्रेष्ठता खीकार कराई गई है। पाणसंशय (सं ० पु० ) पाणानां संशयः ६ तत्। १ जीवनसं शय, जीवनकी आशङ्का । २ मरणासन्नता । पाणसं हिता (सं व स्त्री ) चेदोंके पढ़नेका एक क्रम। इसमें एक सांसमें जहां तक अधिक हो सके पाठ किया जाता है। " त्राणसङ्कट (सं॰ पु॰ ) त्राणानां सङ्कटः ६-तत् । प्राण-संशय, जीवनकी आशङ्का । प्राणसद्भन (सं॰ क्ली॰ ) प्राणानां सदा गृहम्। श्रारीर । प्राणसन्देहं ( सं॰ पु॰ ) प्राणसंशय । प्राणसंन्यास ( सं ० पु० ) मरण, प्राणगमन । त्राणसम (सं॰ पु॰ )१ प्राणतुल्य प्रिय, प्राणके समान व्यारा । स्त्रियां टाप् । प्राणसमा, प्राणके समान, प्रिया पतां। प्राणसम्भूत ( सं० पु०) बायु, हवा। प्राणसमित ( सं० पु० ) १ नासिका पर्यन्त विस्तृत, नाक तक फैला हुआ। २ प्राणके समान प्रिय। प्राणसार ( सं ० ति ०) १ वल, शक्ति । २ वह जिसमें वहुत वळ, हो 👔 🗦 विरुष्ठ, ताकतवर 🚶 प्राणसुख-पक पारस्य भाषाविद् कायस्थ-परिडत। इन्होंने बादशाह महम्मदशाहके समय इन्शाए राहत ात' नामक एक पत-रचना-विषयक प्रन्य लिखा । प्राणस्त-( संब हो। ) जीवनस्त ।

आणहन्ता (सं० ति०) प्राणघातक, प्राण हेनेवाला । ... प्राणहर (सं० ति०) प्राणं हरति देहात् देहान्तरं प्रापयति वलं वा ह-अच्। १ मारक, नाशक। २ वलनाशक, शक्ति नष्ट करनेवाला। (पु०) ३ विष आदि जिससे प्राण निकल जाते हों।

प्राणहानि (सं॰ स्त्री॰) वह अवस्था जिसमें प्राणीं पर संकटहो, जान-जोकिम।

प्राणहारक (सं० क्की०) प्राणान् हरतीति ह-ण्बुल्। १ वत्सनाम। (ति०) २ प्राणनाशक, प्राण लेनेवाला। प्राणहारिन् (सं० ति०) प्राणान् हरतीति ह-णिनि। प्राणहारक, प्राण लेनेवाला।

प्राणिहता—मध्यप्रदेशमें प्रचाहित एक नदी। चन्दा जिले-के सिरोश्चके निकट वर्दा और वेणगङ्गा एक साथ मिल कर प्राणिहता नामसे गोदावरीमें जा िरी है। वर्षा-कालमें यह नदी जलसे विलक्कल भर जाती है, पर प्रीष्म कालमें कुछ भी जल नहीं रहता।

प्राणाग्निहोत (सं ० क्की०) प्राणक्षेप्रग्नौ होतम् । प्राण-समृहके पञ्चाहुतिकप अग्निहोतात्मक भोजन । भोजनके समय पञ्चप्राणके उद्देशसे पहले जो आहुतिकप भोजन किया जाता है उसे प्राणाग्निहोत कहते हैं । यथा— 'प्राणाय स्वाहा' 'अपानाय स्वाहा' । प्राणाद्वित देखो । ' 'उदानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा' । प्राणाद्वित देखो ।

२ प्राणाग्निहोत-प्रतिपादक कृष्णयञ्जर्वेदीय उप-निषद्धे द ।

प्राणाघात (सं ॰ पु॰) १ पीड़ा, कष्ट । २ हिंसा, हत्या । प्राणातिपात (सं॰ पु॰) प्राणानां अतिपातः । प्राण-निपात, प्राण विनाश ।

प्राणातिपातिवरमण (सं॰ पु॰) जैनमतानुसार अहिंसा वत । यह दो प्रकारका होता है—द्रन्य-प्राणातिपात-विरमण और भाषप्राणातिपातिवरमण । इस व्रतके पांच अतिचार हैं। वथ, वन्ध, छेदविच्छेद, अतिभारा-रोपण और भोगन्यवच्छेद।

प्राणात्मन् (सं० पु०) प्राणकपः भातमा। प्राणकप भातमा, छिङ्गातमा, जीवात्मा। उपनिषद्भे प्राणको हो भातमा वतलाया है। वेदान्तदर्शनमें महामति शङ्कराचार्यने सभा श्रुतियोंका समन्वय करके यह मत खएडन किया है। प्राण देखो।

प्राणात्यय (सं० पु॰) १ प्राणनाश यदि किसीके प्राण-नाशकी सम्भावना हो और कूठ वोल्नेसे यदि उसकी जान वच जाय, तो कूठ वोल सकते हैं, इसमें कोई पाप नहीं।

"न नर्मयुक्त वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाह काले।

प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥" (तिथितत्त्वधृत वचन)

परिहासच्छलसे खियोंके निकट, विवाहकालमें, प्राण तथा सब धन जाते समय भूठ बोलनेमें कोई पाप नहीं।

२ मृत्युकालोपलिश्तर्काल, प्राणात्ययकालमें किसी प्रकारका अन्न क्यों न हो उसे खानेमें कोई पाप नहीं होता । अर्थात् त्राह्मणादिको दिनमें दो वार भोजन नहीं करना चाहिये । परन्तु प्राणात्यकालमें यदि वार वार अन्न खानेकी इच्छा हो, तो उन्हें उनके इच्छानुसार अन्न दिया जा सकता है। इस प्रकार अन्नादि-भोजनमें कोई पाप नहीं होता।

"प्राणात्यये च संप्राप्ते योऽन्नमित्त वत स्ततः। न स पापेन लिप्येत पद्मपत्तिमवाम्मसा ॥" (स्मृति

, पाणाद (सं० ति० ) पाणभक्षके, जीवननाशक । पूर्णाश्रार (सं० ति० ) १ अत्यन्त पिय, व्यारा । २ प्रेम-। पात । ३ पति, स्वामी ।

प्राणाधिक ( सं॰ ति॰) पुर्णिभ्योऽधिकः । पुर्णिसे अधिक पुरुष, पति और पुत प्रभृति ।

प्राणाधिनाथ (सं ॰ पु॰) प्राणानामधिनाथः ६-तत्। पति । प्राणाधिप (सं ॰ पु॰) प्राणानां अधिपः । १ प्राणाधि-प्राती देवता ।

प्राणान्त (सं॰ पु॰) प्राणानां अन्तः ६-तत्। मरण, प्राण-नाश।

प्राणान्तक (सं ० ति ०) प्राण लेनेवाला, जान लेनेवाला। प्राणान्तिक (सं ० हो ०) प्राणान्तः प्रयोजनमस्य उण्। मरणकालिक प्रायश्चित्तावि, मरणकालमें कत्तं व्या प्रायश्चित्ता ।

प्राणापान (सं॰ पु॰) प्राणश्च अपानश्च द्वन्दः। १ प्राण भीर अपान वायु। २ अश्विनीकुमार।

The esses -

प्रोणायाध (सं॰ पु॰ ) प्राणानामावाधं पीड़ा ६-तत्। प्राणसंशय, जान-जोखिम।

प्राणायतन (सं कही ) प्राणोंके निकलनेका प्रधान स्थान वा मार्ग । याह्यदस्यसंहितामें दोनों कान; नाकके दोनों छेद, दोनों आँखें गुदा, लिङ्ग और मुखके द्वारा वे पूण निकलनेके नी पूधान मार्ग गिनाये गये हैं। स्न्हीं मार्गोंसे प्राणियोंके शरीरसे मृत्युके समय पूण निकलते हैं।

पूर्णायन (सं० पु॰ स्ती॰ । प्राणस्यापत्यं नदावित्वात् फक्। प्राणका अपत्य।

प्राणायाम (सं॰ पु॰) प्राणस्य वायुविशेषस्य आयामः रोधः | यद्वा प्राण आयम्यन्तेऽनेनेति-आ-यम्-करणे घञ् । प्राण-वायुका गतिविच्छेदकारक व्यापारमेद ।

प्राणायाम द्वारा सभी पाप दूर होते हैं। पूजा जप आदि जिस किसी धर्मकाय का अनुष्ठान करना होता है, उसके पहले प्राणायाम करना आवश्यक है। कारण, प्राणायाम द्वारा चित्त स्थिर होता है। चित्तके स्थिर नहीं होनेसे कोई भी काम सुश्रङ्खलमावमें सम्पन्न नहीं हो सकता। योगसूतके मतसे वायुका प्रच्छईन अर्थात् म कर्पणपूर्वक त्याग, विधारण अर्थात् आरुध्य-माण बायुको यथीक विधानानुसार धारण करने-से प्राणायाम होगा । पहले शास्त्रोक्त प्रणालीका अव-लम्बन करके गुरूपदेशक्रमसे नासिका द्वारा अमृतमय वाह्यवायु आकर्षण करे। पीछे परिमितस्यसे और योगशास्त्रोक विधानसे उसका धारण करना हीगा। अन्तर्मे धीरे धीरे शास्त्रानुवायी नियम द्वारा उसका परि-त्याम करना होगा। इसी प्रक्रियाका नाम प्राणायाम है। प्र—आ--यम ≓प्राणको सम्बक् संयत मर्थात् श्वानुकप निरोधकरण । प्राणकी गति यदि इच्छाधीन हो, तो चित्तको सहजमें स्थिर किया जा सकता है। क्योंकि, चाहे जो कोई इन्डियकार्य हो, सभी प्राणगतिके अधीन है। प्राच ही श्वास-प्रश्चास रूप गतिका अवल-सन करके समस्त देहयन्त्रकी परिचालित करते हैं.— भिन्न भिन्न इन्द्रियको भिन्न भिन्न कार्यमें उन्मुख कर डालते हैं। प्राण ही खाग्रङ्ब्यको रस रकादि आकारमें परिणत करके प्रत्येक इन्द्रियके पास अपँण करते हैं तथा

प्रत्येक इन्द्रिय और प्रत्येक देह यम्सकी गति, वल और खभावकी रक्षा करते हैं। प्राण ही इन्द्रियचक्र, नाड़ी-चक्र और मनके परिचालक है तथा प्राण ही मन-श्वाञ्चल्यके प्रधान कारण हैं। प्राणके चलतेसे मन चलता है और प्राणके स्थिर होनेसे मन भी स्थिर होता है। काम, कोघ, लोम और मोह आदि जो कुछ मनी-दीप है, जो कुछ विक्षेप हैं, सभी प्राणगतिके दोवसे हुआ करते हैं। प्राण यदि विशुद्ध हो, तो मनोदोप भी जातां रहता है। प्राण यदि निरुद्ध हो, तो उससे मनकी गति भी रुद्ध होती है। मनीपियोंने यह गूढ़ रहस्य योग द्वारा जान कर मनोदोपके निवारणके लिये, उसके विक्षेपका विनाश करनेके लिये वा पापक्षयके लिये प्राणायामका उपदेश दिया । यह प्राणायाम यदि सुसिद्ध हो, वा आयत्त हो, तो मनका जो कुछ विक्षेप है सभी जाता रहता है। उस समय चित्त निर्दोध और निर्विक्षेप हो कर आप ही आंप सुप्रसन्न, सुप्रकार, खच्छस्थिति, प्रवाहयोग्य वा एकाग्र हो जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राणायाम योगका अङ्गविशेष है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्या-हार. धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अङ्ग हैं। पहले यम, नियम और आसन जय होनेसे प्राणायाम नामक योगाम्यास करना विशेष है। यम, नियम और आसन-सिद्धिके पहले यदि प्राणायामका अनुष्ठान किया जाय तो वह सिद्ध नहीं होगा।

पतञ्जलिने पाणायामके लक्षण इस पकार निर्देश किये हैं—"तिस्मन् सित श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेदः प्राणायामः" (पातञ्जलद् राष्ट्र ) भासनसिद्ध होनेसे श्वास और प्रश्वासका गतिविच्छेद हो प्राणायाम है। श्वास और प्रश्वासकी सामाविक गति भङ्ग कर देनेसे उसे शास्त्रोक्त नियमके अधीन करना वा स्थानविशेषमें विद्वत करनेका नाम प्राणायाम है। आसन सिद्ध होने-से हो यह दुःसाध्य कार्य सहजमें सम्पन्न किया जाता है नचेत् यह बड़ा हो दुष्कर है। यह प्राणायाम फिर तीन प्रकारका है, वाद्यवृत्ति, अभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भ-वृत्ति। "वाद्याभ्यन्तरस्तम्भवस्तिश्रकालसंख्याभिः परि-दृश्चे दोधेः सूत्तमः" (पातञ्चलद् २१५०)

ं ये तिविध प्राणायाम देश, काल और संख्या द्वारा दीर्घ तथा सूच्मरूपमें सिद्ध होते देखे जाते हैं। प्राणा-यामके विषयकों जब तक अच्छी तरह आलोचना न को जायगी, तव तक इसका तात्पर्य इद्यंद्रम होना वड़ा ही कठिन है। सभी योगशास्त्रोंमें इसका 'कौशल और न्यवस्थाविषयक उपदेश तथा फलाफल<sup>,</sup> विशेषह्रपसे पर्यालोचित हुआ है। उन सव विषयोंको पर्यालोचना करनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि प्राणायाम एक प्रकारके प्राणवायुका यन्त्र है। अर्थात् प्राणवायु जो विना प्रयत्नके अर्थात् स्वाभाविकक्षपमें सर्वेदा भीतर वाहर गमनागमन करती है, प्रयत्नविशेषका अवलम्बन उसकी उस खाभाविक गतिको भङ्ग करके उसे किसी दूसरे नये भावके अधीन करना ही प्राणायाम है। यह प्राणायामरूप प्राणयन्त्र आयत्त होनेसे चित्त कैसा कौशली और धुमतापन्न हो जाता है वह वर्णनातीत है। प्राण-वायुकी चिराभ्यस्त वा स्वामाविक गतिको भङ्ग करके उसे नूतन नियमके अधीन रखनेका नाम प्राणायाम है। किन्तु इसमें कुछ विशेष व्यवस्था है, वह है पूर्वीक तीन प्रकारकी वृत्ति अर्थात् वाह्यनृत्ति, अभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति । औदर्यवायुके वाहर कर देने अथवा शास्त्रोक्त नियमसे सांस परित्याग करनेका नाम वाह्यवृत्ति है। इस वाहावृत्तिका दूसरा नाम रेचक है। वाहरकी ' वायु आकर्षण करके उसे शरीरके मध्य भर-नेका नाम अभ्यन्तरवृत्ति हैं। इसे पूरक भी कहते हैं। प्रपृरित वायुराशिको अभ्यन्तरमें रुद्ध करनेका नाम स्तम्भवृत्ति है। इस स्तम्भवृत्तिको कुम्मक भी कहते हैं। कुम्सके मध्य जलपूर्ण होनेसे वह जिस प्रकार निश्चल रहता है, हिलता डोलना नहीं है, उसी प्रकार शरीर जव वायुसे पूण हो जाता है, जव उसके भीतरकी परिपूर्ण वायु भी निश्चल हो जाती है, जरा भी हिलती डोलती नहीं । इसी कारण स्तम्भवृत्तिका नाम कुम्भक रखा गया है। श्ररीरकी शिरा प्रशृति समस्त छिद्र यदि वायुपूणं न रहे, तो तर्ङ्ग, आन्दोलन वा वेग उपस्थित हो कर शरोर-को विकल कर डालता है। किन्तु यदि समस्त स्थान पूर्ण हो जाय तो तरङ्ग, धान्दोलन वा वेग उत्पन्न नहीं होता । सुतरां शरीर भी निर्विकल, लघु और स्फीतप्राय हो जाता है।

तप्तशिला पर जलविन्दु रसनेसे वह जिस् प्रकार संकुचित वा सूख जाता है, उसी प्रकार सन्निरुद्ध वाय भी धीरे धीरे शरीरमें संकुचित हो कर सुत्मताको प्राप्त. होती है। उक्त लक्षणोकान्त तीनों प्राणायामके फिर **दो भेद वतलाये गये हैं, दोर्घ और सुद्म**। प्राणायामुकी दीर्घता और सूद्मता केवल स्थान, काल और संस्था-विशेष द्वारा जाती जाती है। रेचक प्राणायामकी दीर्घता तथा सूच्मतावोधक स्थान कैसा है ? प्रथमतः यह देखना होगा, कि रिच्यमान वायु कितनी दूर जाती है: प्रादेश वितस्ति वा हस्तपरिमितस्थानके वाहर जाती है वा उससे अधिक दूर जाती है, यदि अल्प दूर जाय तो उसे सूच्म, नहीं तो दीर्घ कहते हैं। हथेली पर तूला या सत्तू रख कर रेचन करनेसे ही वायुकी वहिगैतिका परि-माण जाना जाता है। ह्पूरक और कुम्मक प्राणायामकी स्थानिक दीर्घता और सूत्त्मता कितनी है, इसका विषय इस प्रकार लिखा है ः पूरक और कुम्भक प्राणायामका स्थान अभ्यन्तर है । पूरककालमें और कुम्भककालमें शरीरके भीतरका सव स्थान यदि वायुसे परिपूर्ण हैं, ऐसा अनुभव हो, तो वह दीर्घ, नहीं तो सूत्रम है। पूरक और कुम्मकका दीर्घ ही अच्छा है। पूरक वा कुम्मकुः कालमें यदि आपादमस्तक सभी जगह पिपीलिका-सञ्च रण-स्पर्शकी तरह स्पर्श वा किसी अन्य वायुक्रियाका अतु-भव हो, तो जानना चाहिये कि प्रपूरितवायु शरीरमें सभी जगह परिन्याप्त हुई है। इस प्रकार कालके द्वारा भी उक्त तीनों प्राणायामकी दीघंता और सूच्चताका- निर्णय किया जाता है.। रेचक हो चाहे पूरक हो, चाहे कुम्मक हो क्यों न हो, देखना होगा, कि वह कव तक स्थायी होता है। वह जितना ही अधिक काल तक स्थायी होगा, उतना ही वह दीर्घ और अच्छा अर्थात् भविष्यत् योगका उपयोगी होगा। इस प्रकार सांख्यगणना द्वारा भी उसकी दीवता और सूत्मता जानो जाती है । योगसिद्ध तपः स्वियोंने प्राणायामकी हस प्रकार दीर्घता आर सूत्मताको सहजमें सम्पन्न करनेकें लिये मन्त्रकी सृष्टि की है। मनः ही मन विधिकमसे १६।६॥३२ वार मन्त्र जप कर यथा-क्रम रेचक, पूरक और कुम्मक कर सकनेसे ही लिखित प्रकारको दीर्घता और स्त्मता निर्णीत होती है। योगि-

प्राणायाम-मन्त्रीको अथवा मन्त्रजपकी संख्याओंको ऐसे सुकौशलसे विधिवद किया है, कि मन्होंका यथा-विधि उद्यारण शेष होते ही प्राणानिरोधका कालादि परि-माण आप ही आप सम्पन्न होतां है। बादका वोल जिस प्रकार तालमाताके संख्यानुसार रचा जाता है, प्राणायामके मन्त्र भी उसी प्रकार कालायाताके नियमा-नुसार रचे रहते हैं।

उक्त तिविध प्राणायाम यदि वाहरके द्वादशांगुलादि ·परिमितःस्थान और हृद्य, नाभि, मस्तकाभ्यन्तर अथवा सारे शरोरमें व्याप्त शिरा प्रशिरा आदि अभ्यन्तर स्थानकी पर्यास्त्रोचना वा अनुसन्धानपूर्व क विहित हो, तो वह न्वतुर्थं प्राणायाम समन्ता जाता है। प्रथम अभ्यासके समय यह चतुर्थे प्राणायाम ही अवलम्बनीय है। किन्तु अभ्यासके दूढ़ हो जातेसे फिर स्थान वा कालके परिणामादिके प्रति लक्षा नहीं रहता और न अनु-सन्धान ही रहता । अनुसन्धान वा लक्षाके नहीं रहने पर भी सुदृढ़ अभ्यासके वलसे आप ही सम्पन्न होता है।

उक्त चतुर्विध प्राणायाम जब विना क्लेशके अर्थात् : सहजमें सम्पन्न होता रहेगा, तव जानना चाहिये, कि प्राणायाम सुसिद्ध हुआ है। प्राणायामके सिद्ध होनेसे ! ही चित्तको इच्छानुसार नियोग कर सकते हैं। इस विषयमें योगियोंका मत है, कि वुद्धिसत्त्व वा मानवीय । अन्तःकरण सर्वव्यापक और सर्ववस्तुपकाशक है। अविद्या प्रभृति बस्तेग और रागद्वे पादिकप मनोदीप दा पापने उसको तादृश बग्रापकता, प्रकाशकता और असीम भमताको ढक रखा है। प्राणायाम अभ्यस्त होनेसे उसका बह आवरण हर जाता है अर्थात् ट्रट जाता है। सुतरां उस समय चित्तका यथार्थसक्ष, समाव अथवा पूर्ण-मकाशशक्ति आविष्यत होता है। प्राणायाम द्वारा शरीर भौर मन सुसंस्कृत और परिष्कृत होता है। प्राणायाम योगाङ्ग अनुष्टानके वाद् प्रत्याहार योगाङ्गका अनुष्टानं करना पड़ता है। ( गतक रहदर्शन र गाद)

जो प**र**ले प्राणायाम योगाङ्गका अनुमान करें, उन्हें विशेष सावधान होना चाहिये नहीं ती उन्हें नाना प्रकारकी यीड़ा होनेकी सम्मावना है। प्राणायाम-शिक्षार्थी

Vol. XIV. 178

वाकि पहले गुरुके समीप रहं कर शास्त्रविधानका अव-लम्बन करते हैं। पीछे वड़ी सावधानीसे थोड़ा थोड़ा करके प्राणायाम सीखनेके बाद वह आयत होता है। अव योगी जहां चाहते वहां प्राणपरिचालन कर सकते है। प्राणायामके सुसिद्ध होनेसे कोई भी बगाबि रहने नहीं पाती। किन्तु यदि अयथा वा अनियमसे उसका अभ्यास किया जाय, तो सब प्रकारके रोग होते है। वायुका गतिवातिकप्र होनेसे हिका, भ्वास, कास, शिरः-पोड़ा, कर्णरोग, चक्षरोग तथा अन्यान्य विविध रोग उत्पन्न होते हैं। अतएव प्राणवायुके त्यागके समय अर्थात् रेचककालमें उसे उपयुक्तरूपसे परित्याग करना होता है पूरकके समय उपयुक्तकपसे पूरण और कुम्भक-के समय उपयुक्तरूपसे कुम्भक अर्थात् वायुप्रवाहको घारण करे । जो प्राणायामशिक्षा धीरे धीरे और उपयुक्तरूपसे की जाती है वह अति शीघ्र आयस और अपीड़क होती हैं। अन्यथा वह अनिष्टपद ही जाती है। प्राणवायु यदि सहसा वा इठात् आवद हो जाय, तो वह रोमकूप हो कर निकल कर देहको विदीर्ण कर सकती है तथा कुछ आदि क्षतरोग भी उत्पन्न करती है। अतएव जंगली हाथीकी नरह थीरे घीरे प्राणवायु-को वशीसूत करना होगा। एक वारमें उसे वशीसूत करनेको चेष्टा करना विङ्ग्वनामात है। इसमें कुफलके सिवा सुफलको जरा भी आशा नहीं। चाहे प्राणवायु हो वा अपानवायु कभी भी उसका वेगसे परित्याग न करे। श्र्वासवायुका ऐसे अञ्चवेगसे त्याग करना होगा, कि हथेली पर रखा हुआ सत्त् उड़ने नहीं पावे। ध्वास-वायुका आकर्षण और प्रपृतित वायुका परित्याग होनों ही किया धीरे धीरे करनी होंगी। कुम्मक, रेचक या पूरक इनमेंसे किसीके समय अङ्गप्रत्यङ्गको कम्पित न करे। निःश्वसित वायुका किस परिमाणमें वाहर आनः सामाविक होगां, यह पहले ही स्थिर कर लेना चाहिये। वायुकी स्वामाविक बहिरागतिका परिमाण मालूम नहीं रहनेसे प्राणायाम द्वारा किस परिमाणमें उसे संक्षिप्त करना होगा, इसका निर्णय नहीं हो सकता। नितान्तः अस्तामाविक कर डालनेसे इसके द्वारा पाणनाशकी भीः सम्मादना है। इस कारण प्राणवायुको चहिरागतिका

स्वाभाविक परिमाण निर्णय करके पीछे प्राणसंयममें प्रवृत्त होना उचित है। इस सम्वन्थमें पवनविजयस्वरो-दय-ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

प्राणवायुका देहसे निकल कर १२ उंगली तक वाहर ज्ञाना ही स्वाभाविक है। गानके समय १६ उंगली, भोजनके समय २०, सर्वेग-गमनके समय अर्थात् दौड कर जानेमें २४, निदाकालमें ३०, स्त्रीसंसगकालमें ३६ और व्यायामकालमें उससे भी अधिक वहिर्गत होती है। जो योगी प्राणसाधना द्वारा उसकी वहिर्गतिको स्वभा-वस्थ रख सकें, उसी योगीको परमायु वढ्ती है । प्राण-बायुकी वहिर्गति यदि अस्वाभाविक ही वा स्वाभाविक परिमाणसे अधिक परिमाणमें निकलती हो, तो जानना चाहिये, कि उसका आयुःक्षय होगा । यही योगशास्त्रका नियम है। इस कारण प्राणायामशिशिक्ष प्रथम योगी। को चाहिये, कि वे प्राणकी ऐसी स्वामाविक वहिर्गतिके प्रति लक्षा रख कर प्राणसाधना करें। वे जब कुम्भक-के वाद रेचक करेंगे अर्थात् आकृत्यमाण बाह्यवस्तुका परित्याग करेंगे, उस समय उन्हें सावधान रहना उचित है।

प्राणायाम योगाङ्गका अभ्यास करनेमें पहले उसका अधिकारी होना पड़ता है। जो सर्चदा व्याधिय त रहते हैं तथा बृद्ध हैं, युवाकालमें भी जो दुवँल हें, जिन्हें सच्च अर्थात् क्रोश सहनेकी विलक्षल शक्ति नहीं है अथवा जिन्हें मानसिक तेज नहीं है और जो गृहवासी हैं अर्थात् घर छोड़ कर किसी पुण्यतमस्थानमें रह नहीं सकते, स्नेहममतादिसे परिपूर्ण हैं, जिन्हें वहुत कम उत्साह है, जो निर्वोध अर्थात् क्रीवतुल्य निरुत्साही हैं वे सब व्यक्ति यदि प्राणायामका योग अवलम्बन करें, तो उन्हें वहुत समयके वाद सफलता मिल भो सकती है वा नहीं भी मिल सकती है, सफलता नहीं मिलने की ही बहुत सम्भावना है। ये सब व्यक्ति इसके निरुष्ट अधिकारी हैं।

जो अति प्रोढ़ नहीं हैं, अथच नियमितरूपसे योगा - भ्यासमें रत रहते हैं जिनके वीय अर्थात् उत्साह या अध्यवसाय है, जिनको बुद्धिवृत्ति समान है, और जिन्होंने योगपथका मध्यस्थान पर्यन्त अधिकार कर लिया है, जिनका उत्साह मध्यम है तथा संसाराशकि उतनी प्रवल नहीं है, वे व्यक्ति प्राणायामशिक्षाके मध्यमाधिकारी हैं।

जिनका आशय अर्थात् म्नका अभिप्राय अति पवित्र और महान है, जो वीर्यशाली, अति उत्साह्युक्त, क्षमाशील हैं, जो एक स्थानमें निश्चल वा सुस्थिर रह सकते हैं अर्थात् अञ्चलसभावके हैं, जो अरोगी, सुस्थमनाः, हिधर-बुद्धि और शास्त्रज्ञानसम्पन्न तथा सर्वदा शास्त्राभ्यासमें रत रहते हैं, वही व्यक्ति प्राणायामके प्रकृत अधिकारी हैं। उक्त गुणसम्पन्न व्यक्ति यदि चेष्टा करें, तो यथासम्मव-कालमें प्राणायामयोग सीख सकते हैं।

जो प्रभूत वलगाली हैं, जिनका अङ्ग प्रत्यङ्ग सुद्रह है, जो मानसिक अवस्थामें अति तीक्ष्ण या तीत्र हैं, जो गुणप्राम-विभूषित, अत्यन्त गान्तस्वमावयुक्त और सब भूतोंके मङ्गलेच्छु हैं, जिनका हृद्य करूणा वा द्यादिसे परिपूर्ण, ग्रदीर व्याधिहीन, भीतर वा वाहरमें किसी प्रकारकी मलिनता नहीं है, जो किसीका भय नहीं करते, वाधा वा विम्न जिन पर आक्रमण नहीं कर सकता और जो जरा भी विचलित नहीं होते तथा जो योगीके कुलमें, विद्वान् वा सिद्ध पुरुषके व ग्रामें उत्पन्न हुए हैं, वे ही विशेष अधिकारी हैं।

ये सब अधिकारी पहले ज्ञानी वा योगीके निकट सुशिक्षित होवे'। पीछे यमनियमादि योगसाधक गुणको आयत्त करना तथा संसाराशकि और लोकसङ्गका परि-त्याग करना चिधेय है। कुछ समय वाद वे किसी एक फलमूलादिसम्पन्न, सुभिश्न और निरुपद्रव स्थानमें जांय वहांके किसो एक शुचि अर्थात् पवितस्थानमें अथवा नदी समीपस्थ अरण्यके अन्तर्गत मनोरम प्रदेशमें मन-स्तुप्तिकर एक मठ वनाचे । वैसे स्थानमें विकालस्थायाँ, श्चिखभाव, एकाव्रवित्त, घोरप्रकृति, शुक्रमस्रघारी तथा आसन पर उपविष्ट हो प्राणायामका अभ्यास करें। इशं अथवा मृगचर्म फैला कर उसके ऊपर दूसरा आसनं विछा कर वैठें। अनन्तर इष्ट देवता और गुस्को प्रणाम कर पूर्व<sup>°</sup> अथवा उत्तरको ओर मुंह कर ग्रीवा, मस्तक तथा देहयप्रिको ठीक समान रखना होगा, जरा भी हिलने डोलने न पाने । दृष्टिको हमेशा मनके साथ नासाप्र पर्र लक्ष्य किये रखें। इसी भावमें आसन पर उपविष्ट हों - श्राणायाम, ध्यान वा धारणादिका अभ्यास करना होता । ं है।

योगचिन्तामणिके विधानानुसार पहले कोमल कुशा, उसके ऊपर मृगचर्म, मृगचमेंके ऊपर वस्त्र विछा कर अभ्यास करना उचित है।

अन्य योगशास्त्रोंके मतसे—प्राणायाम वा योगानुष्ठान-के लिये नदी तीर, कानन वा पर्व तगुहाका आश्रय लेना ही होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। मनके अनुकूल वा निहपद्रव स्थान जहां मिले वहीं प्राणायामका अभ्यास किया जा सकता है।

, "रातिशेषे निशीये वा सन्धयोक्सयोर्रापे।" इत्यादि।

उपदेशवाक्य रहनेके कारण प्रातः और सायंकालमें प्राणायामका तथा रातिके शेप और मध्यरातमें ध्यानका भनुत्तमकाल माना गया है। वस्तुतः इसी समयमें मनकी वसन्तता और शारोरिक सुस्थता कुछ अधिक रहती है। इस सम्बन्धमें घेरएडसंहिनामें इस प्रकार लिखा है,-"प्रथमतः स्थान, पीछे काल, अनन्तर मिताहार, सवके अन्तमें नौड़ीशुद्ध अर्थात् प्राणायामका अनुष्टान करना कर्त्तंत्र्य है। दूरदेश अर्थात् गुरुके वासस्थानसे कुछ दूर, अरण्य अर्थात् भक्षद्रव्यविहोन वन, राजधानी और जनता-पूर्ण स्थानमें प्राणायाम करनेसे सिद्ध होनेकी वात तो दूर रहे उलटे विघ्न हो सकता है। इन सब स्थानोंका परि-त्याग कर किसो एक मनोरम प्रदेशमें, धार्मिकराज्यमें. सुभिक्ष अर्थात् जहां अन्नका अभाव नहीं हो और न किसी उपद्रवको ही सम्भावना हो, वैसे स्थानमें जा कर प्राचीर-वेष्टित मध्यमाकार एक कुटीका निर्माण करना होगा। वह स्थान सुपरिष्कृत और गोमयळित रहे। हेमन्त, शिशिर, श्रीष्म और वर्षा ऋतुमें श्राणायाम वा योगारस्म करना विधेय नहीं हैं। उसका कारण यह, कि उन सव प्रतुओंमें प्राणायाम वा योगका आरम्भ करनेसे रोग होनेकी सम्भावना है। यह योगाङ्ग प्राणायामका विषय् कहा गया। योग देखो। पूजादि करनेमें पहले प्राणायाम करना होता है। विना प्राणायामके कोई भी पूजा सम्पन्न नहों होती। तन्त्रसारमें इस प्राणायामका विषय इस प्रकार लिखा है-

"भृतशुद्धि ततः कुर्यात् प्राणायामक्रमेण च । किन्छानामिकांगुर्न्दैर्यन्नासापुरघारणम् ॥ प्राणायामः सविश्वे यस्तज्ज्ञेनीमध्यमे विना॥" (तन्त्रसार)

पूजादिस्थलमें प्राणायाम क्रमसे भृतशुद्धि करनो होगी। कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ अंगुली द्वारा यथोक नियमसे नासापुरमें जो धारण किया जाता है, उसका नाम प्राणायाम है। अर्थात् सभी मन्त्र उक्त अंगुली द्वारा नासापुटमें ४, १६, ८, १६ वा ६४, ३२ दार शास्त्रोक्त नियमसे वायुधारण और त्याग करनेका नाम प्राणा-याम है। प्राणायामकालीन नासिकापुटमें तर्ज नी और मध्यमा अंगुलि न लगावे। यह प्राणायाम दो प्रकारका है, सगर्भ और निर्गर्भ। जहां मन्तरूप द्वारा प्राणायाम होता है, वहां उसे सगर्भ और जहां माता होती है, वहां उसे निगर्भ कहते हैं। मूलमन्त्र वीज है अर्थात् जिस देवताका प्राणायाम करना होगा, उस देवताका मूलमंत वा प्रणव पहले वामनासापुरमें अनामिका और कनिष्ठा तथा दक्षिण नासामूलमें अंगुष्टांगुली द्वारा पकड़ कर पहले १६ वार जप करे। जप करनेमें जितना समय लगे, उतने समय तक वामनासा द्वारा वायुपूरण करना होता है। पोछे वामं और दक्षिणनासापुरमें ६४ वार जप और उस जपसंख्याके परिमित काल तक वायुका कुभ्मक करे। पहले जो वायु नासापुर द्वारा भरी गई है, उस वायुको सारे शरीरमें छेना होगा। भनन्तर ३२ बार जप करनेमें जितना समय लगता है उतने समय तक उस वायुका त्याग करना होगा। इस प्रकार तीन वार करना होता है। वायुपूरण, कुम्मक वा रेचनके समय उक्त परि-मिति जप भो करना होगा । पहले यदि १६, ६१, ३२ वार कोई प्राणायाम करनेमें सनर्थ न हों, तो इसके तुरीयक चतुर्थ भागका एक भाग करना होगा। अर्थात् पहले ४, १६, ८ वार जप और तत्परिमितिकालमें वायु-धारण तथा रेचनादि करने होते हें । 8, १६, ८ इनसे क्रम बार प्राणायाम नहीं होता । पहले पहल जो प्राणा-याम करे', उन्हें दूसरे नियमसे करना चाहिये । इसका उत्तमद्भपते अभ्यास हो जानेके वाद १६, ६४ और ३२ बार कर सकते हैं। प्राणायामका साधारण नियम यह

है, कि जितना वायुप्रण है, उसका चौगुना कुम्मक और उसका आधा,रेचन करना होता है। प्राणायाम अवश्य कर्चंच्य है। विना प्राणायाम किये पूजा और मन्तजप कुछ भी नहीं होता। इससे प्राणायामका नित्यत्व अभिहित हुआ है। (तन्त्रसार) पूजा और मृतश्रुद्ध देखों।

चाहे वैदिक संध्या हो या तान्त्रिक संध्या, दोनों संध्यामें ही प्राणायाम करना होता है। तान्त्रिक और प्राणायाममें ब्राह्मण, क्षतिय, वैश्य, शूद्र चारीं बर्णोंके ही समान अधिकार हैं। जो कोई तन्त्रोक्त मंत्र ब्रह्ण करे, उसे प्रातः, मध्याह और सायाह इन तीनों समयमें सन्ध्याके साथ प्राणायामका अनुष्ठान करना होगा । ब्राह्मण सर्वस्व प्रभृति धर्मप्रन्थमें लिखा है, कि जो सब ब्राह्मण प्रतिदिन तिसंध्या यथाविहित प्राणा-यामका अनुष्ठान करते हैं, उनके सभी पाप जाते हैं। यहां पर ब्राह्मण शब्दसे उपलक्षणमाल समम्तना होगा। क्षतिय, बैश्य और श्रुद्र जो कोई वर्ण क्यों न हो प्राणायाम करनेसे उसका पाप नष्ट होता,है। सूर्यो-दयसे जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार जो प्राणायामका भाचरण करते हैं, उसके पाप विनष्ट होते हैं। शास्त्रमें इस प्राणायामको ही आद्य और श्रेठतप वत-लाया है। विस्तृत विवरण बाह्मणधर्वस्वमें देखो ।

प्राणायामी ( सं॰ ति॰ ) प्राणायाम अस्त्यर्थे इनि । प्राणा-यामानुष्ठानकारो, प्राणायाम करनेवाला ।

प्राणाय्य (सं॰ ति॰ ) उपयुक्त, योग्य ।

माणार्थवत् ( सं० लि० ) प्राण और धनवान् ।

प्राणावाय (सं॰ क्ली॰) प्राणेनावैति अव-इ-अच् । जैनियोंके चौदह पूर्वोमेंसे एक अङ्ग ।

प्राणासन ( सं ॰ क्ली॰ ) ख्रुयामलोक्त पूजाङ्ग भासनभेद । यह प्राणासन सर्वेसिद्धिपदायक है ।

व्राणाहित (सं० स्त्री०) प्राणक्षपेभ्यः अग्निभ्य आहुतिः।
भीजनके पहले गृहस्थके कर्तव्य प्राणक्षप अग्निके उद्देशः
से आहुति। भोजनके पहले पञ्चप्राणाग्निको यह आहुति
दे कर भोजन करना चाहिये। प्राणाहित मुद्रा द्वारा पञ्चप्राणाग्निको आहुति देनी पड़ती है। प्राणाग्निके उद्देशसे
जब आहुति देनी हो, तब तजनी, मध्यमा और अंगुष्ठ
भंगुलि योग कर देना होगा अपानवायुके उद्देशसे मध्यमा

अनामिका और अंगुष्ठ योग करके; ज्यानवायुके उद्देश-से किनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ अंगुिल योग करके तथा उदानवायुके उद्देशसे एकमाल तजेनी अंगुिल छोड़ कर और सभी अंगुिलके संयोगसे आहुित देनी होती है। घृत और व्यञ्जनादिके साथ अन्न पहले 'प्राणाय स्वाहा प्राण स्तृष्यित' 'अपानाय स्वाहा अपानस्तृष्यित' 'उदानाय स्वाहा उदानस्तृष्यित' 'समानाय स्वाहा समान-स्तृष्यित' 'व्यानाय स्वाहा ज्यानस्तृष्यित' इस प्रकार पञ्चप्राणागिको पञ्च आहुित दे कर मोजन करना होता है। इस पञ्चप्राणको आहुित देते समय यदि अन्तके साथ घृत न दिया जाय, तो पीछे घृत नहीं खा सकते हैं। आहुित देते समय मन्तसे प्रणवसंयुक्त अर्थात् 'औ प्राणाय स्वाहा' ऐसा कहुना होता है। पञ्चप्राणको इस प्रकार आहुित दिये विना ब्राह्मणको कभी भोजन नहीं करना चाहिये। (आहिक्तस्त्र)

प्राणिघातिन् (सं० ति०) प्राणिनं हन्ति हन-णिनि। प्राणीकी हत्या करनेवाला।

प्राणिणिषु (सं ० ति०) प्राणेच्छु, जीवनके अभिलायी। प्राणिद्युत (सं ० क्लो०) प्राणिभिर्मेपादिभिः कतं द्यृतमिति मध्यपदलोपिसमासः। पणपूर्वक मेपकुषकुद्यदिका युद्ध, अमेशास्त्रानुसार वह वाजी जो मेढ़े, तीतर, घोड़े आदि जीवोंकी लड़ाई या दौड़ आदि पर लगाई जाय।
प्राणिन् (सं ० ति०) प्राणाः सन्त्यस्येति प्राण (अतहिन ठनौ। पा पारा११५) इति इनि। १ प्राणिविशिष्ट, जिसमें प्राण हों (पु०) २ जन्तु, जीव। ३ मनुष्य। ४ वाक्ति। कहीं कहीं पुरुष अपनी स्त्रीके लिये और स्त्री अपने पतिके लिये 'प्राणी' शब्दका वावहार करते हैं।

प्राणिमत् ( स'॰ ति॰) प्राणिन अस्त्यर्थे मतुप्। प्राणि-युक्त स्थान, प्राणिविशिष्ट देशादि।

प्राणिमातः (सं ० स्त्री० ) प्राणिना माते व गर्भदातृत्वात् । गर्भदाती क्षुपं ।

प्राणिहित (सं० ति०) प्राणिनां हितः। १ प्राणियोंका हितसाधन । स्त्रियां टाप्। २ पोदुका, खड़ाऊं। ३ उपा-नत्, जूता । ४ लोकहितकारिणी ।

प्राणीत्य (सं॰ क्की॰) प्राणीतस्य प्रयोजितस्य भावः, प्रणीत-ष्यञ् । ऋण । प्राणेश (सं ॰ पु॰) प्रणानामीशः ६-तत् । १ पति, स्वामी । २ प्यारा, प्रेमी वाकि ।

प्राणेश्वर (सं॰ पु॰) प्राणानामीश्वरः ६-तत्। १ पति, स्वामी। २ प्रेमी वाक्ति, बहुत व्यारा।

प्राणीपहार ( सं॰ पु॰ ) प्राणस्य उपहारः भोजनं ६-तत्। आहार, भोजन ।

प्राण्यङ्ग (सं ० ह्री ०) प्राणानामङ्ग ६ तत्। प्राणियोंके । अवयव हस्तपादादि।

प्रात (हिं अवा०) सबेदे तड़के।

प्रातः ( सं ॰ पु॰ ) प्रभात, तड़का ।

प्रातःकर्म ( सं ॰ पु॰ ) यह कर्म जो प्रातःकाल किया जाता हो । प्रातःकृत देखो ।

प्रातःकार्यं (सं ० क्ली०) प्रातः प्रभातकालस्य कार्यं कर्त्तव्या किया। प्रभातकालके कर्त्तव्य कर्म।

शातःकाल (सं ॰ पु॰ पु॰) श्रातः प्रभातः कालः कर्मधा०।
१ प्रभातकाल, सवेरेका समय। २ रातके अन्तमें स्यों
दयके पूर्वका काल। यह तीन मुद्धक्ता माना गया है।
जिस समय सूर्य उदय होनेको होते हैं, उससे डेढ़ दो
धंटा पहले पूर्व दिशामें लालिमा दिखाई पड़ने लगती है
और उस ओरके नक्षतींका रंग फीका पड़ना श्रारम्म
होता है। उसी समयसे श्रातःकालका आरम्भ माना
जाता है।

प्रातःकालीन (सं॰ बि॰) प्रातःकालसम्बन्धी, प्रातः-कालका।

प्रातःकृत्य (खं० क्वी०) प्रातः प्रभातकाले कृत्यं कर्त्वं कार्यं वा प्रातः प्रभातकालस्य कृत्यं कर्त्तं व्या क्रिया । प्रभात-कालमें अनुष्ठेय कर्म, शास्त्रविहित प्रातःकत्त व्य कर्म । भित प्रत्यूप कालमें विद्यावनसे उठ कर पुनः राविको विद्यावन पर जाने तक जो सव कार्यं करने होते हैं, धर्म-शास्त्रमें उनका विषय विशेषक्रपसे पर्यालोचित हुआ है । रघुनन्दनने आहिकतत्त्वमें प्रातःकृत्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

त्राह्य मृह्दार्भें विछात्रनसे उठ कर देवता और ऋषियोंका स्मरण करना होगा । पश्चिमयामका नाम त्राह्य मृह्दार्भे हैं अर्थात् चार दण्ड रात रहते ही ब्राह्ममृह्दार्भकाळ उपस्थित होता है । इस सम्ब विछावन पर पड़े रह कर ही, ब्रह्मा, विश्णु, महे-श्वर और नवग्रह, मेरा सुप्रभात करें, ऐसा स्मरण करना चाहिये।

"ब्रह्मामुरारिस्तिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिस्रतो वुथस्च । गुरुस्च शुक्रः शनिराहुकेतु कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥"

पीछे गुरुदेवका स्मरण कर उनके उद्देशसे निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिये। मन्त"प्रातः शिरसि शुक्काब्जे द्विनेतं द्विभुजं गुरुम्।
प्रसन्तवदनं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम्॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मा इष्ट्रेवसक्तिपणे।
यस्य वाष्पामृतं हन्ति विषं संसारसंबक्तम्॥"

अपनेको सिश्चिदानन्द ब्रह्म समन्त कर स्मरण करें और वे हिद्स्थित हपीकेश जो कराते हैं, वहीं करता हूं, ऐसा समन्ते।

अनन्तर "प्रियदत्ताये भुवे नमः" ऐसा कह कर पृथ्वीको प्रणाम कर तब दाहिना कदम उठावे । गात्रोत्थान करके श्रोतिय, सुभगा, अग्नि वा अग्निचित्के दशेन करे, ापिष्ठ, दुर्भगा, मध, नग्न और नकटेका मुंह कभी भी न देखे। जहां धनी, श्रोतिय, राजा, नदी और वैध हैं, उसी स्थान पर वसना हितकर है। यदि प्रापिष्ठों पर निगाह पड़ जाय, मुंह देखनेसे—

"कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च। ऋतपणस्य राजपें कीर्ताने कलिनाशनं ॥"

इस मन्त्रका उचारण करे। वाव्में अवणोद्य काल-में मूत्रपुरीयोत्सर्गे भीर दन्तधावन करके प्रातःस्नान करे। दन्तवावन और प्रातःस्नान देखो।

नैस्ट्रेंत और प्रातःकालमें पुरीष त्याग करे । पुरीष त्यागकालमें दाहिने कान पर जनेऊ रखे । अधःशीख वापं हाथसे करे, दाहिने हाथ कभी भी नहीं । कर नाभि ऊपरका अङ्ग वापं हाथसे रुपर्श न करे । शीचमें अरिकामत जल लगता है। उतना जल नहीं मिलनेसे शुचि नहीं होती।

हाथमें मिट्टी देनेकी भी व्यवस्था है यथा लिङ्गमें एक बार, गुहामें तीन बार भीर बाए हाथमें दश बार। पीछे दोनों हाथमें सात बार मट्टी दे।

Vol. XIV 179

"एकालिङ्गे गुदे तिस्रो स्तथा वामकरे दश। उभयोः सप्तदातन्या सृदः शुद्धिमभीष्सता॥" ( आह्रिकतत्त्वधृत मनु और दक्ष)

प्रक्षालन और मार्ज नादि शेष्र करके आचमन करे, पीछे यथासम्मव स्प दर्शन विश्वेय है। पूर्वमुखी हो कर पद्मक्षालन करना होता है। ब्राह्मण पहले दाहिने पदको और शूद्र पहले वाप पदको प्रक्षालन करे। अन-न्तर हस्तप्रक्षालनपूर्वक शिखा वांध कर आचमन करे। ब्रिज गायली उच्चारण करके ब्रह्म-रन्ध्रके नैप्रप्ट तमें शिखा और जुड़ी वांध कर कार्य आरम्म करे।

"गायत्या तु शिखां चद्धा नैऋ त्यां ब्रह्मरन्ध्रतः। जूटिकाञ्च ततो वद्ध्वा ततः कर्म समारभेत्।।" ( आह्विकतत्त्वधृत ब्रह्मपु०)

शूद्र निम्नलिखित मन्त्रसे अपना शिखा वंधन करे— "ब्रह्मवाणीसहस्राणि शिववाणीशतानि च । विष्णोर्नामसहस्रेण शिखावन्धं करोम्पहं ॥ गच्छन्तु सकला देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तिष्ठत्वताचला लक्त्रीः शिखा मुक्तं करोम्पहं ॥" आचमनकालमें यदि जल न मिले, तो दाहिना कान छूना होता है । आवमन देखो ।

इसके वाद यथारीति दन्तभावन करे। दन्तभावन हेखो। परन्तु श्राद्धमें, जन्मदिनमें, विवाहमें, अजीणे होने पर, वतमें और उपवासमें दन्तधावन नहीं करना चाहिये। खदिर, कदस्य, बट, तिन्तिड़ी, आम्र, निम्य, अपामार्ग, विल्व, अके वा उडुम्बर ये सब काम्र दन्तधावनमें प्रशस्त हैं। यदि चतुर्देशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और रिव-संक्षान्ति इन सब दिनोंमें दन्तकाष्ट न मिले, तो वारह कुली जलसे मुंह घो लेनेसे ही शुद्धि होगी। अनामिका वा अंगुष्ट द्वारा दन्तधावन न करे। दन्तधावनके बाद प्रातः सान, प्रातःसन्ध्या, होम, देवकार्य और गुरु तथा शुम दशन करे। इसीको प्रातःस्त्रत्य कहते हैं। (आहरूत्तन)

कूर्मपुराणमें लिखा है—ब्राह्मसुद्धत्तेमें उठ कर मन ही मन इएदेव और धर्म अर्थको चिन्ता करे। उपाकाल दिखाई देनेसे आवश्यक कार्य निवदा कर दतुवन करे। पीछे नदी जलमें स्नान करके शुद्ध होवे। विना स्नान किये देह शुद्ध नहीं होतो, इसी कारण होमादि सभो

शुभ कर्मोंके पहले स्नान करना होता है। नित्य स्नानसे शरीर और मन पवित्न होता है। भावन शब्द देखो। स्नान करके देव, ऋषि और पितरोंके उद्देशसे तर्पण करना होता है। कुशसे जलविन्दु ले कर मन्त्रोधारणपूर्वक तर्पण करे। पहले आपोहिष्ठादि मन्त्र, गायती और वाकण मन्त्र पड़े। वैदमाता गायती और सूर्यके उद्देशसे जला-अलि दे। पीछे नदीके पूर्वकूलमें कुशासन पर वैठ तीन वार प्राणायाम करके संध्या करे। यही संध्या जगत प्रस्ति, मायातीता, निक्कला, ईश्वरी और पराशक्ति है। अनन्तर सूर्यमण्डलगता सावितीका जप करे। विप्रको पूर्वमुखी हो कर ही नित्य संध्यापूजा करनी चाहिये। संध्याहीन व्यक्ति सभी कर्मोंमें अयोग्य है। उसका कोई भी कार्य सफल नहीं होता। अन्तमें उसे नरककी प्राप्ति होती है। उदीयमान सूर्यको ऋग्, यज्ञः और साम वेदोक सौरमन्त्र द्वारा प्रणाम करे। प्रणामका मन्त्र इस प्रकार है, न

**"ॐ** क्षे खबोल्काय शान्ताय कारणवयहेतचे। निचेद्यामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानक्रिपणे॥ नमस्ते घृणये तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे। त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योतीरसोऽमृतम्। भूभृंवः खस्त्वमोङ्कारः सर्वे रुद्राः सनातनाः ॥ पुरुषः सन्महोऽतस्त्वां प्रणमामि कपर्दिनम् ॥ त्वमेव विश्वंबहुधा सद्सत् सूयसे च यत्। नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं गरणं गतः॥ प्राचेतसे नमस्तुभ्यमुमायाः पतये नमः। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने। विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः। नम उमापतथे तुभ्यमादित्याय नमोऽस्तु ते॥ नमस्ते बहुइस्ताय ब्यम्बकाय नमोस्तु ते। प्रपद्ये त्वां विद्धपाक्ष ! महान्तं परमेश्वरम् ॥ हिरण्मये गृहे गुप्तमात्मनं सर्वदेहिनाम्। नमस्यामि परं ज्योतिब्रह्माणां त्वां परामृतम्॥ विश्वं पशुपति भीमं नरनारीशरीरिणम्। नमः सूर्याय रुद्राय भाखते परमेष्ठिने। उप्राय सर्वेभक्ष्याय त्वां प्रपद्ये सदैव हि ॥"

यह कह कर स्तव पाठ करे। इसके वाद घर आ कर आंचमनादि शेष करके कार्य में लग जाँय। प्रातःसन्थ्या (सं ० स्त्री०) प्रातः प्रथमाद्वीया सन्थ्या। प्रातःकालमें कत्वा वैदिक और तान्तिक कर्त्वा उपा-सनाविशेष। वैदिक प्रातःसन्थ्यामें निम्नलिखित क्रियापं कही गई हैं। १ मार्जन, २ प्रार्थना, ३ प्राणायाम, ४ सावमन। ५ आपोमार्जन, ६ अधमर्पण, ७ स्वॉपस्थान, ८ देवतपंण, ६ साविज्ञावाहन, १० साविज्ञीध्यान, ११ साविज्ञावाहन, १० साविज्ञीध्यान, ११ साविज्ञावाहन, १० साविज्ञीध्यान, ११ साविज्ञावाहन, १० स्वाविज्ञावाहन, १० साविज्ञावाहन, १० स्वाविज्ञावाहन, १० साविज्ञावाहन, १० साविज्ञा

तान्तिक प्रातःसन्ध्याके कर्म—१ मन्ताचमन, २ जल-शुद्धि, ३ करेन्यास, ४ अङ्गन्यास, ५ अवमर्षण, ६ हस्त-शालन, ७ आचमन, ८ सूर्यार्घतान, १ गायत्रीको जल-इान, १० तर्पण, ११ गायतीस्नान, १२ गायतोजप, १३ जलसमर्पण, १८ इष्टरेषध्यान, १५ प्राणायाम, १६ मूल-मन्त्रजप और १७ नमस्कार।

प्रातःसवन ( सं ० क्ली० ) प्रातःकालमें अनुष्ठेय सीमयाग । प्रातःस्नात (सं ० ह्यी० ) प्रातः प्रभातसमये यत् स्नानं **७ तत् । प्रभातकाल कर्त्तव्य अवगाहनादि । धर्म और** सास्ध्यको वनाये रखनेके छिये प्रातःस्नान एकान्त उप-योगी है। प्रातःस्नानके सम्बन्धमें गरुड्युराणके ५०वें अध्यायमें लिखा है, कि उपाकालमें विधिविद्यित आवश्य-कतानुसार शौचिकिया निर्वाह करके पवित नदीजलमें रनान करे। जो प्रति दिन पापकार्यंका अनुष्टान करते हैं वे प्रातःस्नान द्वारा सभी पापेंसे मुक्त हो कर पवि-तता लाभ कर सकते हैं। अतएव प्रातःस्नान करना हर व्यक्तिका प्रकान्त कर्राव्य है। प्रातःश्नान निवान्त त्रयोजनोय होनेके कारण सभी इसकी प्रशंसा करते हैं। राबिकालमें निदित व्यक्तिके मुखसे यदि लगातार राल टपकती हो, तो पहले विना स्नान किये किसो कार्यका अनुष्ठान न करना चाहिये। सच पृछिपे, तो धाप-क्षालन करके पविवतालास करतेमें प्रातःस्नान जितना उपकारी है उतना और कोई प्रसिद्ध कमें नहीं है। विशे-षता जप अथवा होमावि कामीमें प्रातःस्नान करना ही पड़ता है, परन्तु अशक्त ज्यक्तियोंके प्रति अशिरस्कस्नान करना अशास्त्रीय नहीं है।

उक्त पुराणके ही २१५वें अध्यायमें लिखा है, कि

वातःकालमें संक्षेपसे और मध्याहमें विधानकामसे स्नान करना चाहिये । ये दो कालके स्नान केवल वानप्रस्थीं और गृहस्थोंके लिये ही प्रशस्त हैं। यति वा ब्रह्मचारीः के लिये यह नियम लागू नहीं है। यतिको तीनों शाम और ब्रह्मचारीमातको सिर्फ एक शाम स्नान करना चाहिये। जो प्रतिदिन उपाकालमें रविके उदय और अस्तकालीन स्नान फरते हैं, उनका वह स्नान प्राजापत्य-व्रतके समान है। अतएव उस स्नानसे महापातकका विनाश हो सकता है। यदि कोई एक वर्ष तक प्रतिदिन असापूर्वेक प्रातःस्नान करे, तो वारह वर्ष तक प्राजापत्यका अनुप्रान करनेमें जो फल वतलाया गया है, वहीं फल उस प्रातःस्नायीको प्राप्त होता है। जो विपुल भोगको कामना करते हों, उन्हें मात्र और फाल्गुन दो मास तक प्रतिदिन प्रातःस्नान करना उचित है। हवि-ब्याशी हो कर माधमासमें प्रातःस्नान करनेसे भोषण अतिपातकके हाथसे भी अध्याहति मिलतो है। यदि कोई माता, पिता भाता, सुहत् अथवा गुसके उद्देशसे पाता-स्नान करे, तो वह उस स्नानफलका वारहवां अंश लाभ कर सकता है। (गरडपुराण ५० और २१५ अ०)

प्रातःस्नायो सं ० ति०) जो प्रातःकाल स्नान करता हो, सबेरे नहानेवाला

प्रातःस्मरण (सं ० पु०) प्रातःकालके समय ईश्वर, देव-तादिके नामींका स्मरण या जप आदि करनेको क्रिया या भाव।

प्रातःस्मरणीय ( सं ७ बि ० ) जो प्रातःकाल स्मरण करनेके योग्य हो ।

प्रांतनाथ (हि॰ पु॰ ) सूर्य ।

प्रातर् (स'० अध्य०) प्र-अतः अरन् (प्राततेररन् ) उण् ५१५६)१ प्रमात, सबेरे । (पु०)२ पुष्यार्ण और प्रभा-के पुत, एक देवताका नाम ।

प्रातर (सं ॰ पु॰ ) नागभेद, एक नागका नाम । प्रातरतुवाक (सं ॰ पु॰ ) ऋग्वेदके अन्तर्गत वह अनुवाक् जो प्रातःसवन नामक कममें पढ़ा जाता है।

प्रातरभिवादन (सं o पु o) प्रातःकालका प्रणाम, वह अभिवादन जो प्रातःकाल सो कर उउनेके समय किया जाय।

प्रातरह ( सं ० पु० ) दिनका आद्यं श, दो पहरके पहलेका प्रातराश ( सं° पु॰ ) प्रातर्भोजन, जलपान, कलेवा। पर्याय-कल्यजिम् कल्यवर्ता । प्रातराशित ( सं॰ बि॰ ) प्रातःकालमें भुक्त, जिसने प्रातः-कालमें भोजन किया हो। पातराहुति ( सं o स्त्रीo ) प्रातःकालकी आहुति, वह भाहुति जो प्रातःकाल दी जाय । भातरित्वन् ( सं ० ति ० ) प्रातरागत, संबेरे आनेवाला । प्रातर्गेय ( सं ० पु० ) स्तुतिपाउक, स्तुतिवत । प्रावर्जित् ( सं ० ति० ) प्रावःकालमें जयकारी । प्रातर्दन ( सं० पु० ) प्रतद्ननके गोलापत्य, प्रतर्दनके गोलमें उत्पन्न पुरुष । प्रातिज्ञ (सं॰ पु॰) प्रातःकाल, मध्याह्रसे पहलेका समय। प्रातद्<sup>र</sup>ग्य ( सं० ह्यी० ) प्रातःकालमें पेयदुग्ध, वह दूभ औ सवेरे पीया जाय । प्रातदौंह (सं॰ पु॰) प्रातःकालमें दूध दुहनकी किया। प्रातगाँषतृ (सं० पु०) प्रातःभूंङ्को भुज-तृच्। काक, क्रीवा प्रातमीजन ( सं ० क्ली० ) प्रातराश, जलपान, कलेवा। प्रातर्यु क ( सं ० बि० ) प्रातःकालमें युक्त । प्रातर्यं ज ( सं ० ति ० ) प्रातःकालमें अश्व द्वारा युज्यमान । प्रातवस्तु ( सं ० ति० ) प्रातःकालमें दीप्तिशील । प्रातिस्रवर्गा (सं० स्त्री०) गङ्गा। प्रातहोंम : सं ० पु० ) प्रातःकालमें अनुष्ठे य होम । प्रातस्तराम् ( सं ० अव्य० ) अति प्रत्यूषमें, वहुत तड्के । प्रातस्त्य ( सं ० ति० ) प्रातःकाल-सम्बन्धीय । प्रातर्विकखरा ( सं० स्त्री० ) कल्लिकाभेद । प्राति (सं ० स्त्री०) १ पूरण। २ वृद्धांगुष्ट और तर्जनी-को मध्यवत्ती वितस्ति, अंगूठे और तर्ज नोके वीचका स्थान । प्रातिकारिटक (सं वि०) प्रतिकर्छं गृह्वाति। करह-ब्रहणकारी, गला पकड्नेवाला । प्रातिका (सं क्यी ) प्र-अत-ण्बुल्-टाप् अत इत्वम्। १ जवायृक्ष । २ वाद भय । प्रातिकामी (सं० पु०) १ भृत्य, नौकर । २ दुर्थोधनके एक दूतका नाम ।

प्रतिकुल वर्त्तमान। प्रातिकूल्य ( सं ० क्ली० ) प्रतिकूलस्य भावः गर्गादित्वात् यञ् । प्रतिकूलका भाव, प्रतिकूलताचरण । प्रातिकः (सं० हो०) प्रतिक-पुरोहितादित्वात् यक् । प्रतिक-भाव। प्रातिक्षेपिक (सं० ति०) प्रतिक्षेपकारी। प्रातिजनीन (सं ० ति०) प्रतिजनं साधु प्रतिजन-सञ्। प्रतिजन वा विपक्षके उपयुक्त। प्रातिज्ञ ( सं० ह्यी० ) प्रतिज्ञाका विषय, आलोचनाका प्रातिथेयो (सं० स्त्रां०) आध्वलायनयुद्योक्त एक साध्वी रमणी ! प्रातिदैवसिक (सं ० ति०) प्रतिदिवसे भवः। जो प्रति-दिन हो, हर रोज होनेवाला। प्रातिनिधिक (सं० पु० ) प्रतिनिधि खार्थे ठक्। प्रति-निधि। प्रातिपक्ष (सं० ति०) १ प्रतिपक्ष वा विपक्षसम्बन्धीय। २ विरुद्ध, प्रतिकूळ। प्रातिपक्षा (सं० क्ली• ) प्रतिपक्षस्य भावः। विपक्षता, शबुता । प्रातिपथिक ( सं० ति० ) प्रति पथमें गमनकारी । प्रातिपद ( सं० बि० ) प्रतिपद सम्बन्धीय । प्रातिपदिक । सं ० ति० ) प्रतिपदायां तिथौ भव इति प्रति-पद-छञ्। (कालात्रञ्। पा ४।२।११) १ प्रतिपत्-तिथिभव, प्रतिपद तिथिमें होनेवाला । ( पु॰ ) २ अग्नि । अग्निने संसारमें ख्याति पानेके लिये पितामह ब्रह्मासं तिथिके लिये प्रार्थना की । ब्रह्माने प्रसन्न हो कर उन्हें प्रतिपद् तिथिका अधिपति बना दिया। ( नराहपुराण ) ३ संस्कृत व्याकरणके अनुसार वह अर्थवान शब्द जो धातु न हो और न उसको सिद्धि विभक्ति लगनेसे हुई हो। प्रातिपदिकके अन्तर्गत ऐसे नाम, सर्वनाम, तिंद्र-तान्त, कृदन्त और समासान्त पद आते हैं जिनमें कारक-की विभक्तियां न लगाई गई हों। व्याकरणमें उनकी 'प्रातिपदिक' संज्ञा केवल विभक्तियोंको लगा कर उनसे सिद्ध पद बनानेके लिपे की गई हो।

प्रातिकूलिक ( सं ० ति ० ) प्रतिकूलं वर्तते प्रतिकूल-टकः।

एक राजाका नाम । २ एक ऋषिका नाम जो गोल-प्रवस्क थे।

प्रातिपेय (सं ॰ पु॰ ) महाभारतके अनुसार एक राजाका

प्रातिपौरुषिक (सं० त्रि०) प्रतिपुरुष सम्बन्धीयः मनुष्यत्व सम्बन्धीय ।

प्रातिबोध (सं० पु०) प्रतिबोधका पुं अपत्य। त्रातिबोधायन ( सं॰ पु॰) प्रतिवोधका गोलापत्य।

प्रातिम (सं ० ति ०) प्रतिभाऽस्त्यस्य प्रज्ञादित्वात् अण्। १ प्रतिमान्त्रित, जिसमें प्रतिमा हो । ( पु॰ ) २ उन पांच प्रकारके उपसर्गों या विद्योमेंसे एक प्रकारका विद्य जी बोगियोंके योगमें हुआ करते हैं। मार्कएडे यपुराणमें लिखा है, कि प्रातिम, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्च ये पांच योगियोंके योगविद्यके भयङ्कर हेतु हुआ करते हैं। इनमेंसे जिसके द्वारा योगीके चित्तमें यावतीय वेदार्थ, कान्यशास्त्रादिका अर्थ, विविध विद्या और नाना प्रकारके शिल्प प्रतिभात होते हैं उसे प्रातिभ कहते हैं। योगी जिसके द्वारा सहस्रयोजन दूरवर्त्ती शब्द श्रहण करके उसका अर्थ हृदयङ्गम कर सकते हें उसका नामः श्रावण हैं। जिसके प्रभावसे देवप्रतिम योगी पुरुष उन्मत्तकी तरह चारों ओर दृष्टिपात करते हैं वही दैव विस्त कह-छाता है। अछावा इसके समस्त आचाराँका परित्याग करनेसे और दोषवशतः योगोका मन जिस निरालम्ब-भावसे भ्रमित होता है उसे भ्रम और हानावर्त्त जव जलावर्च की तरह आकुलित हो कर योगीके चित्तको बिनष्ट करता है, तब उसे आवर्त्त क विच्न कहते हैं।

प्रातिभाग्य (सं॰ ह्यी॰ ) प्रतिभू-त्यञ् द्विपद्वृद्धिः । प्रतिभू-भाव, जमानत, जामिनि।

मातिभासिक (स<sup>\*</sup>० ति०) प्रतिभास-सम्बन्धी, अनुद्भवक । २ जो वास्तवमें हो पर पर भ्रमके कारण भासित हो। जैसे, रज्जुमें सर्पका झान प्राप्तिमासिक है। ३ जो ब्याव-हारिक न हो.।

प्रातिरूय ( सं ० ज्ञी० ) प्रतिरूपका भाव, अनुरूप । **ञातिलोमिक (सं॰ बि॰) १ गतिलोमसे उत्पन्न, आनु**-लोमिकका उल्लंख । २ विपश्च, विरुद्ध, अधीतिकर । Vol. XIV. 160

प्रातिपीय (सं॰ पु॰) १ राजभेद, महाभारतके अनुसार | प्रातिलोम्य (सं॰ क्ली॰) १ प्रतिलोमका भाव । २ बिंह-द्धता । ३ प्रतिकुछता ।

> प्रातिवेशिक ( सं ॰ पु॰ ) प्रतिवेश-यत् । पड़ोसी ।

> प्रातिवेशमक (सं० ति०) १ प्रतिवेशम वा प्रतिवेशीके गृहसम्बन्धीय। २ निकटवत्ती। (पु०)३ प्रतिवेशी, पड़ोसी ।

प्रातिवेश्य (सं० पु०) १ पड़ोस । २ पड़ोसी । ३ वह पड़ोसी जिसका द्वार अपने द्वारके ठीक सामने हो। प्रातिवेश्यक (सं ० पु०) प्रतिवेश्य खार्थे कत्। प्रतिवेशी, पडोसी।

प्रातिशाख्य (सं० क्ली॰) विभिन्न बेदके खर, पद, संहिता आदि निर्णयार्थे प्रन्थविशेष । प्रतिवेद की सिन्त सिन्त शाखा है। प्राचीनकालमें जो जिस शाखाका अध्ययन करते थे वे वंशपरम्परासे उसी शास्त्राके अनुरायी माने जाते थे। वैदिकयुगके वहुत समय वाद जब भिन्न भिन्न शासाध्यायी अपने अपने घेदपाठकालमें कुछ असमंजसमें पड़ गये, अथच उस समय जो सव वैदिक ज्याकरण प्रच-लित थे, उनसे बेदकी प्रतिशाखाके पद, क्रम वा स्वरादि-का निर्णय करनेमें सुविधा नहीं होती थी, तद प्रतिशाखाके स्वर और पदादिका विपर्य्यमिवारणार्थं प्रातिशाख्यकी उत्पत्ति हुई। एक समय वेदकी सभी शास्त्राओंका प्राति-शाख्य प्चिंति था। अभी केवल ऋग्वेदकी शाकल-शासाका शौनक रचित ऋक्पातिशास्य, यज्जव दकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य और वाजसनेय शाखाकाका काल्यायन-रचित वाजसनेय प्रातिशाख्य, सामवेदकी माध्यन्विनशाखाका पुष्पमुनि-रचित साम-प्रातिशाख्य और अधवं प्रातिशाख्य वा शौनकीय चतु-राध्यायिका पाई जाती है।

शौनककां ऋक्षातिशाख्य ३ काएड, ६ पटल और १०३ किएडकामें विभक्त है। इस प्रातिशाख्यके परि-शिष्ट रूपमें उपलेखसूत नामक एक प्रन्थ भी पाया जाता है। पहले विष्णुके पुतने ऋक्षातिशाख्यका भाष्य रचा, उसीको देख कर उबटाचार्य ने एक विस्तृत भाष्य लिया है।

तैचिरीय प्रातिशास्य ऋकप्रातिशास्यके बाद रचा

गया, यही पाश्चात्य पिएडतोंका मत है । इस प्राति-शाख्यमें आत्रेय, स्थविरकौएडन्य, भारद्वाज, वाख्मीकि, अग्निचेश्य, अग्निवेश्यायन, पौक्करसादि प्रभृति आयायाँका उल्लेख है। यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि इसमें तैत्तिरीय आरण्यक वा तैत्तिरीय ब्राह्मणका एक भी प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता । केवल तैत्तिरीय संहिताका विषय ही आलोचित हुआ है । आत्रेय, माहिष्येय और बरुचि-रचित तैत्तिरीय प्रातिशाख्यका भाष्य प्रचलित था; पर अभी वह नहीं मिलता है। वे सब प्राचीन भाष्य देख कर कार्त्तिकेयने विभाष्यरत्न नामक एक विस्तृत भाष्यकी रचना की है।

कात्यायनका वाजसनेय-प्रातिशाख्य आठ अध्यायमें विभक्त हैं। १म अध्यायमें संज्ञा ओर परिभापा, २य में खरप्रक्रिया, ३य-से ले कर ५म अध्याय तकमें संस्कार, ६प्र और 9म अध्यायमें क्रियाका उच्चारणभेद तथा ८म अध्यायमें खाध्याय वा वेदपाठका नियम वर्णित हुआ है। इस वाजसनेय प्रातिशाख्यमें शाकटायन, शाकार्य, गाग्ये, काश्यप, दाल्म्य, जातुकर्ण, शीनक, औपाशिवि, काण्य और माध्यन्दिन आदि पूर्वाचायों का उल्लेख है। इसके प्रथम अध्यायमें 'वेद' और 'भाष्य' इन्हीं दो भाषा-का उल्लेख देखनेमें आता है।

कुछ दिन पहले पाश्चात्य पिएडतोंका विश्वास था, कि सामप्रातिशाख्य नहीं मिलता, परन्तु अभी वह संदेह जाता रहा । आज कल जो सामप्रातिशाख्य मिलता है वह पुष्पमुनिका वनाया हुआ है । यह दश प्रपाठकमें विभक्त है। इसके प्रथम और द्वितीय प्रपाठकमें दशराब, संवत्सर, एकाह, अहीन, सब, प्रायश्चित्त और क्षुद्र पर्वानुसार स्तोबिय सामोंकी संज्ञाएं संक्षेपमें वर्णित हैं। तृतीय और चतुर्थ प्रपाठकमें सामके मध्य श्रुत आइ-भाव और प्रकृतिभावके सम्बन्धमें उपयुक्त उपदेश है; पश्चम प्रपाठकमें सामभक्ति कहां गीत और कहां अगीत रहेगी, उसकी ध्यवस्था; सप्तम और अग्रम प्रपाठकमें लोप, आगम और वर्णविकारके स्थानादि सम्बन्धमें विशेषभावसे उपदेश; नवम प्रपाठकमें माबकथन और

दशम वा शेष प्रपाठकमें कृष्टाकृष्ट-निर्णय तथा प्रस्ताव लक्षणादि वर्णित हुए हैं।

अथर्षप्रातिशास्य केवल दो ही पाये गये हैं—एक चार अध्यायमें सम्पूर्ण है। यह शौनकरचित है, इसीसे इसका गौनकीय चतुरध्यायिका नाम पड़ा है। इसमें छः मुख्य विषय आलोचित हुए हैं, १म—प्रन्थका उद्देश्य, परिचय और वृत्ति : २य—खर और खड़नसंयोग, उदात्तादि लक्षण, प्रगृह्य, अक्षरविन्यास, युक्तवर्ण, यम, अभिनिधान, नासिक्य, खरभक्ति, स्फोटन, कर्षण और वर्णक्रम ; ३य—संहिताप्रकरण : ४थ—क्रमनिर्णय : ५म—पद-निर्णय और इप्र—खाध्याय वा चेदपाठकी आवश्यकता-के सम्बन्धमें उपदेश ।

पाश्चात्य पण्डितोंमेंसे वहुतोंका विश्वास है, कि पाणिनि आदिके व्याकरण रचित होनेके वहुत पहले ये सभी प्रातिशाख्य रचे गये हैं। अभी जो सन प्रातिशाख्य मिलते हैं पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार उनमेंसे शौनकरिचत अथववेद-प्रातिशाख्य ही सर्वप्राचीन है। इसके वाद ऋक्प्रतिशाख्य, ऋक्प्रातिशाख्यके वाद नैत्तिरीय प्रातिशाख्य और सवके अन्तमें कात्यायनका वाजसनेय-प्रातिशाख्य है। पण्डित सत्यव्रतसामश्रमीके मतसे— "पुष्पप्रणीत सामप्रतिशाख्य पाणिनिस्त्वसे, यहां तक कि सर्वदर्शनज्येष्ठ मोमांसादर्शनसे भी प्राचीन है। कारण, मोमांसादर्शनकी अधिकरणमालामें 'तथाच सामगा आहु:—'वृद्ध' तालच्यमाह भवति।' इस सामप्रातिशाख्यका वचन उद्दश्वत है।'

अध्यापकं गोरुडण्डुकरने प्रचित सभी प्रातिशाष्य प्रत्थोंको पाणिनिके वाद्का वतलाया है। उन्होंने मोक्षमूलर, वेवर आदि जर्मन पण्डितोंके मतकी समालीचना की है। उनके मतसे चाजसनेय-प्रातिशाख्यके रचिता कात्यायन और पाणिनिस्तक वार्त्तिककार कात्यायन होनों हो एक वाक्ति थे। कात्यायनने अपने वार्त्तिकमें जिस प्रकार पाणिनिकी तीव्र आलोचना की है, वाजसनेय-प्रातिशाख्यके मध्य भी उसी प्रकार पाणिनिके अपर आक्रमण देखा जाता है। यथा—

पाणिनिस्तमें है—"अद्शैन' लोगः। (१।१।६०) अर्थात् अद्शीन ही लोप है। कात्यायन कहते हैं, 'वर्ण- स्यादर्शनं लोपः' (बाजसनेयप्रा० १।१८१) अर्थात् केवल लोप कहनेसे काम नहीं चलेगा, वर्णका अदर्शन होनेसे हो लोप समन्ता जायगा।

पाणिनिने कहा है,—"उच्चैख्दात्तः।" (१।२।२६) "नीचैरतुदात्तः" (१।२।३०) और "समाहारः खरितः" (१।२।३१)।

यहां वाजसनेय-प्रातिशाख्यकारने लिखा है कि केवल समाहार कहनेसे काम नहीं चलेगा 'उभयवान् खरितः' (१११०८-११०) अर्थात् उदात्त और अनुदात्त दोनोंके योगसे स्वरित, यही कहना उचित है।

पाणिनिने कहा है, 'तस्यादित उद्दात्तमद्ध' हस्व'।" इस स्वसं कात्यायनने संतुष्ट न हो कर दूसरा स्व किया, "तस्यादित उद्दात्त स्वराद्ध' माव'' (प्रा० १।१२६) उदात्त अद्ध' हस्व कहनेसे काम नहीं चळता, स्वरकी अद्ध मावा कहना ही अच्छा है। पाणिनिने कहा है, "तुलास्यप्रयत्नं सवर्णम्।" (१।१।६) कात्यायनने साफ तौरसे लिखा। है, "समानस्थानकरणास्यप्रयत्नसवर्णः।" (१।४६)

पाणिनि कहते हैं, "मुखनासिकावचनोऽजुनासिकः" (१११८) कात्यायन इससे संतुष्ट नहीं है। वे कहते हैं "मुखानुनासिकाकरणोऽनुनासिकः।" (११९५) पाणिनिने सूत किया है, "ओम् अभ्यादाने।" (८१२८७) अर्थात प्रारम्भमें ओम् रहना जरूरी है। पाणिनिके इस सूतसे जाना जाता है, कि उनके समयमें केवल वैदिक प्रन्थमें ही नहीं, सभी जगह प्रारम्भमें 'ओम्' व्यवहृत होता था। किन्तु वाजसनेय-प्रातिशाख्यकारने लिखा है, 'ओम्कारं वेदेषु' (१११८) "अथाकारं भाष्येषु" (१११६) अर्थात् वेदके प्रारम्भमें 'ओम्' और भाष्यके प्रारम्भमें 'अथ'का व्यवहार हुआं करता है। इस प्रमाण द्वारा बाजसनेय-प्रातिशाख्यकार पाणिनिके परवर्त्ती होते हैं।

वाजसनेय-प्रातिशाख्यकार और तैत्तिरीय प्रातिशाख्य-कार दोनोंने ही ऋक्ष्रातिशाख्यकार शौनकका मत उद्गृत किया है। स्रुतरां शौनक दोनों यद्धः प्रातिशाख्य-कारके पूर्ववर्त्ती होते हैं।

अथर्च और भ्रम् दोनों ही शौनक-रचित माने जाते हें, पर दोनों प्रन्थ एक व्यक्तिकी रचना है वा नहीं, उसका पता नहीं चलता। परन्तु शौनकने भ्रम्पाति- शास्यमें ज्यािं (ज्यािं )-का मत उद्धृत किया है।

महाभाष्य आदिसे जाना जाता है, कि ज्यािं पाणिनिकी अष्टाध्यायों के उपर 'संग्रह' नामक एक वृहत् ग्रन्थ

लिखा है। इन ज्यािं का दूसरा नाम दाक्षायन तथा

पाणिनिका दािं भुत है। पाणिनिके "यिं क्रिकेश्च"

(शश्रे ) सूत्रके भाष्यमें पत्रअिं ने गोतापत्य समभाने के

लिये उदाहरण खरूप 'दाक्षायण' शब्द ग्रहण किया है।

फिर 'अतइक्' (पा शार् १६५) सूत्रके भाष्यमें दक्षका

अपत्य वा पुत समभाने के लिये 'दािं श्रि' शब्दका उब्लेख

किया है। पाणिनि शार् १६२ सूत्रमें पौत और उसके

वंश्यरों को ही गोतापत्य वतलाया है। इस हिसावसे

पाणिनि दक्षके पौत वा दािं भुत और दाक्षायन ज्यािं दक्ष वा दािं सके गोतापत्य होते हैं।

पाणिनिने एक सूत किया है, "आचार्योपसर्जन-श्चान्तेवासी" (१।२:३६) अन्तेवासी अर्थात् शिष्यके पहले यदि उनको आचार्यपरम्पराके नाम रहें और द्वन्द्व समास हो, तो पूर्व पदका प्रश्वतिस्वर होता है। महा-भाष्यकार पतज्ञिलेने इसके उदाहरणस्वरूप लिखा है, "आपिशलपाणिनीय-न्याड़ीय-गौतमीयाः।" इस प्रमाण द्वारा भी पाणिनि न्याड़िके पूर्ववर्ती वा आचार्य होते हैं।

कोई कोई प्रातिशास्यको वैदिक व्याकरण समभते हैं। वेदके पड़ड्सके मध्य 'व्याकरण' एक है : परन्तु प्राति-प्रास्थका नाम पड़ड्स वा वैदिक व्याकरणके मध्य गृहीत नहीं होता। सचमुच प्रातिशास्थमें व्याकरणके लक्षण का विलक्षल अभाव है। इसीसे संस्कृतविद् पिएडतों-ने प्रातिशास्थको वेदकी शासाविशेषका नाद और सर यदित तथा पदको संहिनामें लानेके लिये विधिमृलक प्रन्थ वतला कर प्रकाशित विया है।

प्रातिश्रुत्क (सं॰ पु॰) प्रतिश्रुति तत्समये भव ठम्। प्रतिश्रवणके समय उत्पन्न पुरुष।

प्रातिस्विक (सं० बि०) प्रतिस्वं भवः, प्रतिस्व-ठक् । १ असाधारण । २ अपना, निजका । ३ प्रत्येकका यथाकम पृथक् पृथक्, अपना अपना । ४ अन्यासावारण, जो दूसरेके नहीं है । ५ आवेशिक ।

पातिहत (सं ० ति०) स्वरितका संश्वाभेद् ।

प्रातिहर्त (सं० क्वी०) प्रतिहर्त्तु भीवः कम वा उद्गातादि अञ्, (पा ५।१।१२६) प्रतिहर्त्ताका कमी। २ प्रतिहर्त्ता-का भाव।

प्रातिहार (सं॰ पु॰) प्रतिहार पव, स्वार्थे अण्।१ प्राति हारिक, मायावी। २ कोड़ाकुराली। ३ मायाकार, जादृगर। ४ प्रतिहार, द्वारपाल।

प्रातिहारक (सं॰ पु॰) प्रतिहारक पव, स्वार्थे अण्। प्रातिहारक।

प्रातिहारिक (सं० पु०) प्रतिहारः प्रतिहरणं वराजहत्यथें, स प्रयोजनमस्पेति प्रतिहार-ठञ् (पा ५।१।१०६) १ माया-कार, मायाबी, जादूगर। २ द्वारपाल। (ति०) ३ प्रतिहार सम्बन्धी।

प्रातिहार्य (सं० क्ली०) १ प्रतिहारका कार्य, द्वारपालका काम। २ इन्द्रजाल, माया, लाग।

प्रातीतिक (सं० ति०) प्रतीत्या निवृ<sup>९</sup>त्तः दम्। १ जिसको प्रतीति केवल चिन्ता या कल्पनाके द्वारा मनसे होती हो। ६ जिसकी प्रतीति स्वयं किसीको हो। प्रातीप (सं० पु०) प्रतीपस्यापत्यं प्रतीपस्यायं इति वा; प्रतीप-अण्। १ प्रतीप-नृपपुत, शान्तनुराज । २ प्रतीपका अपत्यं।

प्रातीपिक ( सं ० वि ० ) प्रतीपं वर्त्तते इति प्रतीप-ठञ् । १ प्रतिकूल आचरण करनेवाला, विरुद्धाचारी । २ विध-रीत, उल्टा ।

प्रातृद ( सं ० पु॰ ) ऋषिभेद, एक वैदिक ऋषिका नाम । प्रात्यक्ष ( सं ० ति॰ ) प्रत्यक्ष-सम्बन्धीय ।

प्रात्यप्रथि (सं ॰ पु॰) प्रत्यप्रथका गोतापत्य।

पूर्वितक (सं ॰ पु॰) १ वह राज्य जो सीमापान्तमें हो, ऐसा राज्य जो दो राज्योंकी सीमाके मध्यमें हो। २ सीमाकी रक्षाके लिये नियुक्त पुरुष।

प्रात्यिक (सं ० ति ०) प्रत्ययाय स्थित इति प्रत्यय-छक्।
१ प्रत्ययसम्बन्धीय । (पु०) २ मिताक्षराके अनुसार
तीन पुकारके पृतिभूमेंसे दूसरा।

प्रात्यहिक (सं क्षी ) पृतिदिनका, दैनिक।
पृाधमकल्पिक (सं कु ) पृथमकल्प आद्यारम्भ पृयोजनं
यस्य (पाप्राश्राह्म ) इति ठञ्, यद्वा पृथमकल्पमधीते
इति, विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यमिति ठक्। १

पृथमारच्य वेदाध्ययन । २ कल्परूपशिक्षाप्रन्थाध्ययन विपयीमूत । (ति०) पृथमकल्पे भवः ठक् । ३ पृथमा-रम्भोचित वेदाध्ययनादि । पृथमं शिक्षणीयं कल्पं आख-मधीते यः इत्यर्थे ठक् । ४ शैक्ष्य ।

प्राथमिक (सं० ति०) प्रथमे भवः-प्रथम-ठन्। १ प्रथम-भव, जो पहले उत्पन्न हुआ हो।२ प्रारम्भिक, आदिम। प्राथम्य (सं० ति०) प्रथम-ध्यन्। प्रथमका भाव, प्रथ-मता, पहलापन।

प्रादक्षिण्य (सं० पु०) प्रदक्षिण-सम्बन्धीय । प्रादानिक (सं० ति०) दानयोग्य, जो देने छायक हो । प्रादाय (सं० अन्य०) प्रकृष्ट रूपसे दत्त । प्रादि (सं० पु०) उपसर्ग संज्ञार्थ पाणिनि उक्त शस्त्रीद ।

प्रादिगण ये सव हैं,—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, तिस्, निर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप प्रभृति।

प्रादित्य ( सं ॰ पु॰ ) राजपुतभेद ।

प्रादुराक्षि । सं ० पु० ) गोल प्रवर ऋपिमेद

प्रादुर्भाव (सं॰ पु॰ ) प्रादुस्-भू-भावे-घञ् । १ आवि-र्भाव, प्रकट होना । २ विकाश । ३ उत्पत्ति ।

प्रादुर्भूत (सं॰ पु॰) १ आविर्भूत, प्रकटित । ३ विक-सित, निकला हुआ । ३ उत्पन्न ।

प्रादुर्भू तमनोभवा (सं० स्त्री०) केशवके अनुसार मध्याके चार भेदोंमेंसे एक । इसके मनमें कामका पूरा प्रादु-भाव होता है और कामकलाके समस्त चिह्न प्रकट होते हैं। साहित्यदर्पणमें इसे प्रकट्टस्मरयोवना लिखा है। प्रादुष्करण (सं० क्ली०) प्रादुस्-िक-अण्। १ प्रदर्शन, किसी अप्रकट वस्तुको प्रकट करनेका भाव। २ दृष्टि-गोचरकरण, दिखलाना।

प्रादुष्कृत (सं• ति॰) १ आविभूत, जो प्रकट हुआ हो। २ प्रदर्शित, जो दिखलाया गया हो।

प्रादुष्कृतवपु (सं ० ति ०) जो आकृति रूपविशिष्ट हो कर दृष्ट होती है। जैसे, मूर्त्तिविशिष्ट देव और भूतयोनिकी छायाका शरीरमें आविर्माव, शरीरमें भूतादिका आवेश। प्रादुष्कृत्य (सं ० ति ०) १ उत्पाद्य। २ प्रकट करनेयोग्य, जो दिखलाने लायक हो।

प्रादुष्य ( सं ॰ क्ली॰ ) प्रादुर्भाव ।

प्रादेश (स'० पु०) प्रदिश्यते प्र-दिश् हलश्चेति 'धञ्। ( उपसर्गस्य पत्रति दीर्घ ) १ तजैनी और अंगुप्रका मध्य-प्रदेश, तर्ज नी और अँगुठेके वीचका मांग। २ परि-माणमेर, पाचीनकालका एक मान जो अ गुरेकी नोकसे ले कर तज<sup>्</sup>नोकी नोक तकका होता था और नापनेके काममें आता था। ३ प्रदेश, स्थान।

प्रादेशन ( सं ० क्की० : प्र-आ-दिश्-स्य ट् । दान । प्रादेशमात (सं० ति०) वितस्तिपरिमित, विघत परिमाण। प्रादेशिक (सं० ति०) प्रदेशे मद-उक्। १ प्रदेशसव, किसी एक देशका । २ त्रसङ्कगत, त्रसङ्गानुसार । ३ पूर्व-वत्ती घटना वा दृष्टान्त द्वारा प्रतिपन्न । ४ आद्यर्थज्ञायक । ५ विशेष स्थानविषयक । (पु॰) ६ सामन्त, जमींदार या सरदार आदि। ७ स्वेदार।

प्रादेशिकेश्वर ( सं ० पु० ) सामन्तराज, सामान्य भूसम्प त्तिके अधिकारी वा राजा।

प्रादेशिन् ( सं ॰ बि॰ ) वितस्तिपरिमित, विलश्त भरका। प्रादेशिनी (सं० स्त्री० ) तज<sup>8</sup>नी ।

प्रादोप (सं॰ ति॰) प्रदोषस्या मिति प्रदोष-अण् । १ प्रदोष-सम्बन्धी, प्रदोषसे सम्बन्ध रखनैवाला । ( पु॰ ) २ प्रदोप्र-कालमें विचरणकारी मृगादि।

प्रादोषक (सं ० ति०) प्रदोषस्यायमिति प्रदोष-ठञ्। ( নিগা-प्रदोशाभ्याक्य । पा ४।३।१४ ) पृदोषकालमें होनेवाला । पुदोहनि ( सं ० पु० स्त्री० ) पुदोहनस्यापत्यं स्त्र् । पुदो-हनका अपत्य।

प्राद्युम्नि (सं ० पु० ) प्रद्युम्नका अपत्य ।

प्राचोति (सं ॰ पु॰ ) प्रचोतका अपत्य ।

प्राथनिक (सं॰ पु॰) प्रधर्ण संग्रामस्तत्साधनं प्रयो-जनमस्य ठक्। १ युद्धोपकरण, छड़ाईका सामान । (ति०) २ योद्धा, छड़ाका ।

प्राधा (सं॰ स्त्री॰) प्रधैव स्वार्थे ण । १ दक्षकी एक कन्याका नाम। २ काश्यपकी एक स्त्रीका नाम। पुराणींमें इसे गन्यवों और अप्सराओंकी माता वतलाया है।

प्राधानिक (सं ० स्त्री ०) प्रधान खार्थें-ठक्, तस्येदं ठक् वा । प्रधान, प्रधान सम्बन्धी ।

प्राधान्य ( सं ० क्ली० ) प्रधानस्य सावः प्रधान भावे प्यञ् । १ प्रधानत्व, मुख्यता । २ प्रधानता, श्रेष्टता ।

Vol. XIV. 181

प्राधान्यस्तुति (सं ० ति०)जो विशेष स्तुतिवादको श्राप्त हुए हैं।

प्राधीत ( सं ० ति० ) प्र-अधि-इङ्-क । प्रश्रष्टकपसे पठित, जो अच्छी तरह पढ़ा गया हो ।

प्राधेय (सं ० ति० ) १ प्राधाका अपत्य । २ उसका वंश-धर । (पु०) ३ जातिविशेष ।

प्राध्यायन (सं ० क्ली०) प्राधि-रङ्-ल्युट्। प्रक्रप्रक्रपसे अध्ययन, जोरसे आवृत्ति या पठन ।

प्राध्येषण (सं० क्ली०) प्रा-सिध-इष्-स्युट्। १ विद्या वा ज्ञानलाभ विषयमें प्रवृत्ति । २ ज्ञानाज नके कारण शिष्यके प्रति उपदेशवाक्य ।

प्राध्य (सं ० पु०) प्रागतोऽध्यानमिति अच्। (उक्तर्गाः दंधनः । पा ५१४।८५) प्रकृष्टोऽध्वा इति अच् समासान्त । १ वहुदूरगामी रथादि, जिस वस्तु पर सवार हो कर लोग लम्बी याता करें। २ लम्बी राह। ३ प्रहर। ४ प्रणतभाव, विनय । ५ वन्ध ।

प्राध्वम् ( सं ० अन्य० ) प्राध्वनतीति प्रा-सा-ध्वन-डिम । १ आनुकूल्य । आनुकूल्यार्थक शब्दसे नर्मन् और अनुकूल दोनों ही समभाते हैं। (पु०) २ नम्नता, चिनय। ३ वन्धन ।

प्राध्वंसन् ( सं ० पु० ) प्रध्वंसका अपत्य ।

प्राध्वन (सं ० पु०) प्रकृष्टः अध्वा प्रादिस० । १ प्रकृष्ट पथ, अच्छी सङ्द्र। २ नदीका गर्भ।

प्राध्वर ( सं ॰ पु॰ ) वृक्षकी शाखा, पेड़की डाल ।

प्रान्त (सं° पु॰) प्रकृष्टोऽन्तः । १ अन्त, शेष । २ किनारा, छोर। ३ दिशा, और। ४ किसी देशका एक भाग, प्रदेश। ५ एक ऋषिका नाम। ६ इस ऋषिके गोतको छोग।

प्रान्तग (सं ० त्रि०) प्रान्ते गच्छतीति गम-्ड। सीमा पर रहनेवाला, जो प्रान्तमें या सरहद पर रहता हो।

प्रान्ततस् (सं ० अव्य०) प्रान्त-तसिल् । प्रान्तदेशमें, सीमाभागमें।

प्रान्तदुर्ग (सं । क्की ।) सीमादेशस्थित नृपाश्रय स्थान वा दुर्ग<sup>°</sup>, वह दुर्ग<sup>°</sup> जो नगरके किनारे प्राचीरके वाहर

प्रान्तपुष्पा (सं० स्त्री०ं) १ पुष्पवृक्षंविशेष, एक फूलका पौधा। २ उस वृक्षका पुष्प।

प्रान्तभूमि ( सं॰ स्त्री॰ ) १ किसी पदार्थका अन्तिम भाग, किनारा । २ योगशास्त्रके अनुसार समाधि, जो योगकी अन्तिम सीमा मानी जाती है । ३ सोपान, सीढ़ी ।

पान्तर (सं ० ह्वी० , प्रूष्टमन्तरं अवका ो व्यवधानं वा यहा। १ वृक्षच्छायादिशून्य पथ, दो स्थानोंके वीचका लग्ना मार्ग, जिसमें जल या यूक्षों आदिकी छाया न हो। २ वन, जङ्गल। ३ दो गाँवोंके वीचकी भूमि। ४ दो पृंशोंके वीचका शून्य स्थान। ५ बृक्षके वीचका खोखला अंश।

पान्तव ति सं ० स्त्री०) क्षितिज।

पान्तशून्य (स'० ह्यी०) दूर शून्यपथ, दो स्थानीं के वीचका लग्या मार्ग जिसमें जल या वृक्षीं आदिकी छाया न हो।

प्रान्तायन (सं ० पु॰) प्रान्तका गीलापत्य, प्रान्त नामक ऋषिके गीलके लोग ।

पुनितक (सं० ति०) १ पुन्त सम्बन्धी, पुन्तीय । २ पूदेशी, किसी एक देश या प्रान्तसे सम्बन्ध रखनेवाला । पुनितय (सं० ति•) पुन्तक, प्रान्तसे सम्बन्ध रखनेवाला । वाला ।

प्रांशु (सं० ति०) १ उच्च, ऊँचा। (पु०) २ वैवस्तत मनुके एक पुतका नाम, विष्णु।

त्राप (सं॰ पु॰) प्-अप्। १ त्राप्ति, प्रापण। २ जल-सिक्त, जलपूर्ण।

प्रापक (सं ० ति०) १ प्राप्ति सन्वन्धीय । २ पानेवाला, जी पानेके योग्य हो । ३ प्राप्त होनेवाला ।

प्रापण ( सं॰ क्वी॰ ) प्र-आप्-व्युट् । र नयन, छे आना । २ प्राप्ति, मिलना । ३ प्र रण ।

प्रापणिक (सं० पु०) प्रापणाध्यते इति प्र-सा-पण व्यवहारे-किकन् । (अङ्गिणिकंषः ।इण् २)४१ पण्यविक्रंयी, सीदा या भाल वेचनेवाला ।

प्रापणीय (सं० ति०) प्राप्यते यत् प्र-आप् अनीयर्। प्राप्य, जो मिल्लने योग्य हो ।

प्रापिन् (सं॰ ति॰ ) प्राप्त करनेवाला, जिसे कुछ मिले । प्रापेय (सं॰ पु॰) गन्धवैगणविशेष । प्राधेय देखो । प्राप्त (सं० ति० ) प्र-आप्का १ १ प्रस्थापित, लक्ष । २ उत्पन्न । ३ समुपस्थित । ४ पाया हुआ, जो मिला हो । प्राप्तकारिन (सं० ति० ) उपयुक्त विचार द्वारा कार्यकारी । प्राप्तकाल (सं० पु० ) प्राप्तःकालोऽस्य । १ करणयोग्यकाल, कोई काम करने योग्य समय । २ उपयुक्त काल, उचित समय । ३ मरणयोग्य काल । ४ विवाहयोग्य उन्न । (ति•) ५ समयप्राप्त, जिसका काल भा गया हो ।

प्राप्तकालम् ( सं॰ अव्य॰ ) उपयुक्त समयमें, यथाकालमें । प्राप्तजीवन ( सं॰ लि॰ ) पुनर्जीवित, जिसकी नई जिन्दगी हुई हो ।

प्राप्तदोप ( सं० ति० ) दोषी, जिसने कोई दोष या अपराध किया हो ।

प्राप्तपञ्चत्व ( सं० ति० ) प्राप्तं पञ्चत्वं मरणं पेन । मृत, जो पञ्चत्व प्राप्त कर चुका हो ।

प्राप्तवृद्धि (सं॰ ति॰) १ वृद्धिमान, चतुर । २ जो बेहोश होनेके वाद फिर होशमें आया हो ।

प्राप्तभार सं• पु॰ ) प्राप्तभारः तहहनकालोऽस्य । भार-सहनशील वृपादि, वह वैल जो वोभ होता हो । प्राप्तभाव (सं॰ पु॰) प्राप्तो भावो येन । १ जाताझ । (ति॰) २ लब्ध सत्तादि । ३ जिसके मनमें भाव वा अवस्थान्तर उपस्थित हुआ हो ।

प्राप्तमनोरथ (सं० ति०) जिसकी वाञ्छा पूरी हुई हो। प्राप्तयौवन (सं० ति०) जिसका यौवनकाल, आ गया हो, जवान।

प्राप्तरूप (सं० ति०) प्राप्तं रूपं येन । १ मनोज्ञ । २ पण्डित । ३ रूपवान ।

प्राप्तवर (सं वि॰) अनुप्रह वा आशीर्वाद लाभकारी। प्राप्तव्य (सं॰ वि॰) प्राप्यते यत् । प्र-आप्-कर्मणि तन्य। प्राप्य, जो मिलनेको हो, मिलनेवाला।

प्राप्तव्यवहार (सं० ति०) १ जो युवक-जनोचित वयसको प्राप्त हुआ हो। २ जो व्यक्ति सकीय कार्यावली विष्पादन करने और कुलप्रधादि आचार व्यवहारकी रक्षा करनेमें समर्थ हो।

प्राप्तसूर्य (सं ॰ पु॰) जिसके मस्तकके उपर विलिमत सरल रेखामें सूर्य अवस्थित हों। प्राप्तस्थमर्थ (सं॰ पु॰) पञ्चतन्तो जिलित मनुःयवि रोषः। प्राप्ति (सं० स्त्री०) प्र-आप-किन्। १ उदय। २ धनादिकों वृद्धि। ३ अधिगम, अर्जन। ४ लाम, फायदा। ५ प्रापण, मिलना। ६ पहुंच। ७ अणिमादि आठ प्रकारके पेश्वयोंमें-से एक, जिससे वाञ्छित पदार्थ मिलता है अथवा सव इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ८ नाटकका सुसद उपसंहार। ६ फलित ज्योतिषके अनुसार चन्द्रमाका ग्यारहवां स्थान जिसे लाम भी कहते हैं। १० सङ्गति, मेल। ११ जरा-सन्धकों एक पुली जो कंससे व्याही थी। १२ कंसकलत-मेद, कंसकों एक स्त्रीका नाम। १३ समिति, सङ्घ। १४ प्राणायामको चार प्रकारकी अवस्थाओंमेंसे एक अवस्था। १५ संपीगसद्भय द्रव्यगुणमेद। १६ मुखाङ्गमेद। १७ काम-की पत्नीमेद। १८ सहममेद। १६ भाग्य। २० व्याप्ति, प्रवेश। २१ आय, आमदनी।

प्राप्तिसम (सं० क्ली०) गौतमोक्त जात्युत्तरभेद, वह प्रत्यव-स्थान या आपित्त जो हेतु और साध्यको ऐसी अवस्थामें जब कि दोनों प्राप्य हों, अविशिष्ट वतला कर की जाय। यथा—एक मनुष्य कहता है कि पर्वत विद्यमान् हैं, क्योंकि यह धूमवान् हैं; जैसे पाकगृह, इस पर वादी कहता हैं, कि पर्वत खूमवान् हैं, क्योंकि वह विद्यमान् हैं, जैसे पाक-गृह। प्रतिवादी आपित करता है, कि जहां अनि है क्या धूम वहां सर्वदा रहता है अथवा कभी नहीं भी रहता। यदि सर्वत रहता है, तो साध्य और साधकमें कोई अन्तर नहीं, फिर तो धूम अनिका वैसे ही साधक हो सकता है जैसे अन्ति धूमका। इसीको प्रातिसमजाति कहते हैं। प्राप्य (सं० बि०) प्र-आप्-ण्यत्। १ प्राप्तव्य, प्राप्त करने योग्य। २ जो पहुंचमें हो, जहां तक पहुंच हो सकती हो।

३ गम्य । ४ मिलने योग्य, जो मिल सके। (पु॰) ५ व्याकरणीक नियमविशेष । ६ कमँभेद । (अव्य०) ७ लम्बार्थ, पानेके लिये।

प्राप्यकारो (सं० पु०) इन्द्रिय जो किसी विषय तक पहुंच कर उसको ज्ञान करातो है। न्यायदर्शनके मतसे ऐसी इन्द्रिय केवल आँख हो है, परन्तु वेदान्त-दर्शनमें कहा है, कि कानमें भी यह गुण है।

प्राप्तस्य (सं० हो० १ प्रवस्था भाव, तेजी । २ प्रधानता । प्रावास्त्रिक ( सं० पु० ) प्रवास्त्रस्यवसायी, प्रवास्त्रका स्थापार करनेवास्त्रा पुरुष । प्रावीधक (सं॰ पु॰) वह पुरुष जो राजाओंको उनकी स्तुति सुना कर जगानेके लिये नियुक्त हो। प्राचीनकाल- में यह काम करनेके लिये मगध देशके लोग नियुक्त किये जाते थे जिन्हें मागध कहते थे।

प्रामञ्जन (सं० ह्वी०) प्रमञ्जनो देवताऽस्य अण्। १ बायुदेवता कतुंक अधिष्ठित, जो बायुदेवताके द्वारा अधिष्ठित हो। २ प्रमञ्जन वा बायुदेवता-सम्बन्धी। (पु०)३ स्वातिनक्षत।

प्रामव (सं० ह्वी०) प्रभोर्माव प्रमु-अण्। १ श्रेष्ठत्व, श्रेष्ठता। २ प्रमुत्व, अधिकार।

प्राभवत्य (सं ० क्ली०) प्रभवतो भावः ष्यञ्। विभुत्व, प्रभुता।

प्राभाकर ( सं॰ पु॰ ) प्रभाकरस्याय' तन्मतं वेत्तोति प्रभा-कर-अण् । प्रभाकर-सम्बन्धीय मीमांसकविशेष ।

प्रामातिक (स.० वि०) प्रभातसम्पकीय, सबेरेका। प्रामासिक (सं० वि०) प्रभासदेशभव, प्रभास देशका। प्राभृत (सं० क्ली०) प्राभ्रियते स्मेति प्र-आ-भृ-कः। उप-दौकन द्रवा, उपदार।

प्राभृतक (सं० क्ली०) प्राभृत-स्यार्थे-कन् । प्राभृत, उप-दौकन, उपहार । इसका पर्याय कौशलिका है।

प्राभृतीकृत (सं० ति०) १ उत्सगींकृत, जिसका उत्सगें दिया गया हो। २ उपहारक्षपमें प्रदत्त, जो इनाममें दिया गया हो।

प्रामित (सं॰ पु॰) दशम मन्चन्तरके अन्तर्गत सप्तर्पिके मध्य एक ऋषि।

प्रामाणिक (सं० ति०) प्रमाणादागतः प्रमाण-ठक् । १ हैतुक । २ जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो । ३ माननीय, मानने योग्य । ४ सत्य, ठीक । ५ शास्त्र-सिद्ध । ६ जो प्रमाणोंको मानता हो । ७ शास्त्र । (पु०) ८ व्यापारियोंका मुखिया ।

त्रामाण्य (सं॰ क्ली॰) प्रामाणस्य भावः त्रमाण-ध्यञ् । १ प्रमाकरणत्व, प्रमाणता । २ मान, सर्यादा ।

प्रामाण्यवाद (सं० पु०) प्रामाण्यस्य वादः कथनम्। १ प्रमाकारणता कथन । २ चिन्तामणि न्यायश्रंथविशेष । प्रामादिक (सं० ति०) प्रमाद-उक्। श्रमाद्घटित, द्रोप-युक्त, दूषित । भामादिकत्व (सं० क्ली०) प्रामादिकींका भाव। पामाच (सं० पु०) प्रमाचत्यनेनेति प्र-मद्-ण्यत्। १ अड्स (Gendarussa Adhadota)। २ उन्माद, पागलपन।

प्रामीत्य (सं० ह्वी०) प्रमयनमिति प्र-मी वधे-भावे-कः; ततः प्रमीते मरणे साधु इति ष्यञ्; अस्य वधतुल्यत्वा-त्तथात्वम्।१ ऋण, कर्जा। प्रमीतस्यभाव इति प्रमीत-ष्यञ्। २ मृतत्व।

प्रामीसरीनोट (अं ० पु॰ ) १ वह लेख या पत जिस पर लिखनेवाला अपना हस्ताक्षर करके यह प्रतिश्वा करे. कि मैं अमुक पुरुषको या जिसे वह आज्ञाका अधि-कार दे या जिसके पास यह छेख हो, किसी नियत समय पर उतना रुपया दे दूंगा, हुंडी । २ एक प्रकारका सरकारी कागज या ऋणपत । इसमें सरकार अपनी प्रजासे कुछ ऋण छे कर प्रतिश्वा करती है, कि मैंने इतना ऋण लिया 'और इसका इस हिसावसे सृद विया ककंगी। ऐसी हुंडीका सिरकारी खजानेसे वरावर समय समय पर सूद मिला करता है। जब हूंडी का नियत समय पूरा हो जाता है, तब सरकारसे उसका रुपया भी मिल सकता है। ऐसी हुंडी यदि मालिक चाहे, तो वीचों दूसरेके हाथ वैच भी सकते हैं। ऐसी हुंडी या नोटका भाव वरावर घटा वढ़ा करता है।

प्रामोदक (सं० ति०) मनोझ, मनोहारी।
प्राय (सं० पु०) प्रकृष्टमयनमिति प्र-अय-धञ् ; यद्वा-प्र-इअञ् । (पा १।३।५६) १ मरण, मौत । २ अनशनादि
तप जिससे मनुष्य शक्तिहोन हो कर मृतकके समान हो
जाता है या मर जाता है । ३ अवस्था, उन्न । ४
समान, तुल्य । ५ लगभग । ६ प्रवेश । (ति०) ७
णमक, जानेवाला ।

गामक, जानवाला।
प्रायः (सं० अवर्र् ) प्र-अय-गतौ असुन्। १ विशेषकर,
बहुधा, अकसर। २ लगभग, करीव करीव।
प्रायगत (सं० क्वि०) आसन्नमृत्यु, जो ६र रहा हो।
प्रायचित्त (सं० क्वी०) प्रायिक्त देखी।
प्रायण (सं० क्वी०) प्र-अय-भावे-स्युट्। १ शरीरपरिबर्त्तन, पक शरीर त्याग कर दूसरे शरीरमें जाना। २
अनशन द्वारा देहत्याग। ३ एक स्थानसे दूसरे स्थान

पर जाना । ४ जन्मान्तर । ५ वह दृश्य या आहार जो अनशन व्यतको समाप्ति पर ग्रहण किया जाता है, पारण । ६ प्रवेश, प्रारम्भ । ७ दुग्धमिश्रित खाद्यद्रव्यविशेष, एक प्रकारका खाद्यपदार्थ जो दूधमें मिला कर वना है । ८ जीवनपथ, जीवितावस्था ।

प्रायणान्त (सं० पु०) जीवनका शेष मृत्यु, मरण। प्रायणीय (सं० ति०) प्रायणे आरम्भिदने विहितः इति प्रायण-छ। १ प्रारम्भ दिन। २ सोमयागर्मे पहली सुत्याके दिनका कर्म। (ति०) ३ प्रारम्भिक, आरम्भ-सम्बन्त्री।

प्रायदर्शन (सं० क्की०) सबराखर दर्शनयोग्य भौतिक दृश्यादि, साधारण घटना जो प्रायः देखनेमें आती हो। प्रायद्वीप (सं० पु० स्थलका वह भाग जो तीन ओरसे पानीसे घिरा हो और केवल एक ओर स्थलसे मिला हो। प्रायमव (सं० ति०) नित्यसंघटनशील, जो साधारण रीतिसे अथवा प्रायः होता हो। प्रायमिधायिन (सं० ति०) जिसने अनग्रनवत द्वारा जीवनत्यागका सङ्करण किया हो।

प्रायवृत्त (सं० ति०) जो विलकुल गोल या चतु लाकार न हो पर वहुत कुछ गोल हो, अंडाकार । प्रायशः (सं० अन्य०) १ सव प्रकारसे, विलकुल तरहसे। २ वाहुल्यक्षपसे, अकसर।

प्रायश्चित्त (सं० क्की०) प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यसमा १। (पारस्करभ्यतीनि च संइया। पा १११११४०) इत्यत प्रायस्य चित्तिचित्तयो इति वार्तिकोक्त्या सुट् निपात्यते च। पापक्षयसाधन कर्म, वह कृत्य जिसके कहनेसे मनुष्यके पाप छूट जाते हैं। अङ्गिराने लिखा है—

"प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।

तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति समृतं ॥"

प्रायस् शब्दका अर्थं तप और चित्तका अर्थं निश्चय

है। तपोनिश्चययुक्त होनेसे उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

हारीतके मतसे,—"प्रयत्तवाहोपचितमग्रमं नाश्यतीति ।"
अर्थात् शुद्धि द्वारा सञ्चित पाप नाश होता है, इसीसे :

इसका प्रायश्चित्त नाम पड़ा है।

मनुष्यके प्रधानतः तीन प्रकारके पाप होने हैं—१छा, शास्त्रमें जिस जातिके लिये जो कार्य वतलाया गया है, उसका नहीं करना।

२रा,—शास्त्रमें जो काय<sup>°</sup> निपिद्ध वतलाये गये हैं, उनका अनुष्ठान।

ं रा, इन्द्रियका दमन न करके यथेच्छमावमें काम-भोग। इन तीन प्रकारके पापोंसे मनुष्यका पतन होता है। इस पापक्षयके लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है। जैसे---

ब्राह्मणका यथाकालमें उपनयन होना आवश्यक है।
यथाकालमें उपनयन नहीं होनेसे विहित कर्मके अनुग्रांनके कारण पाप होता है। अतएव यह पापक्षयक्षप
प्रायश्चित्त करके पीछे उपनयन करना होगा। इसी
प्रकार शूद्रके लिये द्विज्ञातिशुश्रूपा विहित है, किन्तु उसे
न करके यदि वह ब्राह्मणका आचार अवलम्बन करे, तो
उससे पाप होता है। उस पापक्षयके लिये शास्त्रानुसार
प्रायश्चित्त करना उचित है। इसी प्रकार ब्राह्मणके लिये
ग्रायश्चित्त करना उचित है। इसी प्रकार ब्राह्मणके लिये
ग्रायश्चित्त करना उचित है। इसी प्रकार ब्राह्मणके लिये
ग्रापान वा सुराविकय विशेषक्षपसे निन्दित और पापक
बतलाया गया है। निन्दित कर्मक्षप पापक्षयके लिये भी
प्रापश्चित्त आवश्यक है। इसी तरह परस्त्रोगमन, ब्राह्मणके चएडालीगमन आदिसे महापाप होता है और उसके
लिये भी प्रायश्चित्तको व्यवस्था है।

"जिस वर्णके छिये जिस पापके प्रायश्चित्तको जैसी Vol. XIV. 182 ध्यवस्था है—अवस्थामेदसे ने शकालांदिके अनुसार उसकी पूर्ण, पादन्यून, अर्द्ध और चौथाई व्यवस्था भी है। जैसे बालक, एद्ध, आतुर और स्त्रियोंके लिये आधा। १६ वर्ष-से कम उमरका वालक और ८० वर्ष से अधिक उमरका वृद्ध कहलाता है। पांचसे ग्यारह वर्ष तक पाद, वारहसे सोलह वर्ष तक अर्द्ध, पूरा सोलह वर्ष होनेसे पूर्ण प्रायिचत आवश्यक है। पांच वर्ष से कम होनेसे पाप नहीं लगता, सुतरां उसे प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त न्दुशेखरमें लिखा है—शास्त्र ब्राह्मण के लिये पूर्ण प्रायश्चित्त, क्षित्रयोंके लिये पादोन, वैश्यके लिये पादमात प्रायश्चित्त है। शूदके प्रायश्चित्तमें जप होमादि नहीं करने होते। अमन्त्रक करना होता है। जो याग यह करते हैं उन्हें जपादि अवश्य करना चाहिये।

प्रायश्चित्तस्थलमें जो पञ्चगन्यकी व्यवस्था है, वहां गोप्रयसे दूना गोमूल, चौगुना घृत और अठगुना दुग्ध तथा दिंध गाह्य है। एतद्भिन्न ताम्रवर्णा गोका मूले, श्चेतवर्णाका गोमय, पीतवर्णाका दिंध और कृष्णवर्णा गोका घृत हो प्रशस्त है। जो उक्त नियमका पालन करनेमें विलक्कल असमर्थ हैं, उनके लिये जहां गोदानकी व्यवस्था है वहां गोके अभावमें उसका मूल्य देना होता है। गोमूल्य इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है:—

गोके अभावमें चार तीला सीनेके वरावर चांदी, अथवा उसका आधा, अथवा चार भागका एक भाग भी दिया जा सकता है। परन्तु जो धनवान हैं उनके लिये गोमूल्यसकर पांच पुराण अर्थात् सोलह भाशा रजत-दानकी व्यवस्था है। इस प्रकार मध्यवित्तवालोंके लिये तीन पुराण और दिह्नके लिये एक कार्याएण मूल्यका विधान है। वृषकका मूल्य छः कार्याएण ही देना होगा, पर शूलपणि पांच कार्याएण वतलाते हैं। केवल गोमूल्यके लिये तीन पुराण ही उत्तम, ३२ पुराण मध्यम और एक पुराण अध्यम माना तथा है।

# प्रायश्चित्तका पूर्वोद्दकृत्य ।

प्रायश्चित्त करनेके एक दिन पहले सर्वोको केग्रा-नखादि कटचा डालने चाहिये। स्नानके वाद केवल घृत खा कर रहे। अनन्तर संध्याके समय घरके बाहर बैंड

कर बतादिका उल्लेखपूर्वक सङ्करंप करे। पहले जो नख केशादि कटानेकी वात कही गई है, वह विद्वान् ब्राह्मण, नरपति अथवा सघवा स्त्रियोंके लिये ही है । परन्त महापातकादि-स्थलमें उन्हें भी कटवाना कर्त्तव्य है। 'सधवा यदि सिर न मुड्वा सके, तो कमसे कम दो अंगुल केश छोड कर सव कटवा डाले । सधवा क्षियों-को तीर्थ क्षेत्रादिमें भी इसी नियमका पालन करना चाहिये। विधवा स्त्रियोंके लिये सिर अच्छी तरह मुडवा डालना ही शास्त्रविहित है। यदि कोई मोहवशतः ऐसा न करे, तो उसे विहित प्रायश्चित्तका दुना करना होगा भौर उसकी दक्षिणा भी दूनी होगी। जो त्रत तीन दिन-में समाप्त होगा, उसमें नखटोमादि कटवाना ही पहेंगा। इस प्रकार छः दिनके वतमें श्मश्रु और नौ दिनके वतमें शिखा छोड कर और सब कटवाना होगा। जो वत इससे भी अधिक दिनमें समाप्त होगा उसमें शिखा भी फरवानी पड़ेगी । स्त्रियां यदि तीन वा छः दिनमें कोई कार्य करनेको उद्यत हों, तो उन्हें केश नख आदि कुछ भी कटवानेकी जरूरत नहीं।

#### प्रायश्चिस्ततिथि।

अष्टमी या चतुर्वशी तिथिमें प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिये। परन्तु चतुर्वशीमें सङ्कल्प करके अमावस्थाके दिन प्रायश्चित्त कर सकते हैं।

#### प्रायदिचत्तप्रयोग ।

शास्त्रकारोंने प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें छः वर्ष, तीन वर्ष और डेढ़ वर्षकी व्यवस्था दी है। इनमेंसे ३० तीस प्राजापत्य करनेमें एक वर्ष, पै तालीसमें डेढ़ वर्ष और नक्बेमें तीन वर्षकी व्यवस्था है। अधिकांशके मतसे ही प्राजापत्यव्रतमें गवादि अथवा उसके निष्क्रयस्वरूप रजत, स्वर्ण अथवा उसका भाधा वा एकपाद अर्थात् चतुर्था शका एक अंश उत्सर्ग करना होगा। एतद्भिन्न फल, ताम्बूल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, पञ्चगव्य, मृत्तिका, भस्म, गोमय, दूर्वा, तिल, समित्, दर्भ, होमके लिये घृत, सभास्थ ब्राह्मणोंकी दक्षिणा और अनुकाकारी ब्राह्मणोंकी पुजाके निमित्त दक्षिणा ये सब आयोजन करने चाहिये।

जिन्हें प्रायश्चित्त करना होगा, वे पहले चार अथवा एक ब्राह्मणको सभासदुक्पमें विटा कर पीछे स्नान करे।

स्नानके वाद यदि पारग हों, तो आद्र वस्त्रसे ही उन सव ब्राह्मणोंका प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्गं प्रणाम करे। पीछे ब्राह्मणगण कर्त्तासे पूछे , कि तुमने कौन-सा काम किया हो, सच सच वोले, फूट कभी भी न वोली। इस प्रकार प्रश्नके वाद कर्त्ता सभ्यगणको गी अथवा वृषके मृत्य-खरूप खर्ण अथवा तद्द<sup>°</sup> वा तत्पाद, इनमेंसे किसी एक-के परिमाणानुसार रजतद्रव्य दान करके कहे, कि मेरा पाप यही है। इस प्रकार सङ्कल्पके वाद प्रदत्त द्रन्य सम्प्रगण-के सामने रख कर कहे-- "मेरा नाम अमुक है, मैंने जन्मसे छे कर आज तक ज्ञान या अज्ञान, काम या अकामवशतः बहुवार अथवा एक बार जो सब फायिक, वाचिक, मान-सिक, सांसर्गिक, स्पृष्ट वा अस्पृष्ट, भुक्त वा अभुक्त, पीत वा अपीत सर्वविध पातक, अतिपातक, उपपातक, लघ-पातक, सङ्करीकरण, मिलनीकरण, पालीकरण और जातिम् शकरणादि पातकका अनुष्ठान किया है। इनमेंसे सम्मावित पापोंको दूर करनेके छिये मुक्ते कौनसा प्राय-श्चित्त करना होगा रूपया कहिये।

खयं अशक हो कर प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पुता-दिको अपने एवजमें दे सकते हैं, पर उन्हें 'मेरे पिताकी जन्माविध' ऐसा कहना होगा। पहले जिन सव पापिंका उक्लेख किया गया उनमेंसे यदि एक महत्तर पापका प्रायश्चित्त करना हो, तो तुमने कौन काम किया है, ऐसे प्रवन पर मैंने अमुक्तवध, अमुक्तभक्षण वा अमुक अगम्या-गमन किया है, इत्यादि प्राकृत पापका उल्लेख करके उसका जो प्रायश्चित्त हो सकता है, उसीका उपदेश लेनेके लिये ब्राह्मणोंके निकट प्रार्थना करना कर्त्त ख है।

अनन्तर धर्म शास्त्रविदों के निकट प्राथ ना करनी होगी, कि मैंने जो सन महाघोर पाप किये हैं, उनकी संशुद्धिका उपाय विधान करें। यह कहकर उन्हें प्रणाम करना होता है। पीछे जन सम्यगण पापीकी सामध्ये पर विचार कर प्रायश्चित्तका निश्चय कर दें, तन कर्त्ता चन्दनपुष्पादि द्वारा पुस्तकपूजा और अनुवादक पूजा करके निवन्ध पूजाके लिये कुछ चीजें रखें और अनुवादकको पापानुसार दक्षिणा दे। अन अनुवादक फिर कर्ताको समका कर कहें, "पापनिराशार्थ यह प्रायश्चित्त तुम्हें करना

पड़े गा । ऐसा करनेसे तुम इतार्थं होगे' ऐसा कह कर व्यवस्थापत प्रदान करें।

सार्दाव्य प्रायश्चित्त करनेमें आधानाङ्गमें अग्निविच्छेदप्रत्यवाय-निराशार्थं विच्छेद दिनसे आरम्भ करके प्रतिबर्प एक एक कृच्छ्न करे । कर्ता 'ओम्' यह अङ्गीकार
करके सम्यगणकी विश्व करे । पीछे रिकाके सायाहमें
देशकालका उल्लेख करके 'अमुक्शमंणो मम जन्म प्रभृति
अस यावत् ज्ञानाज्ञानमध्ये संभावितानां 'पापानां निराशार्थं पर्पदुपदिष्टं साद्धं व्यप्रायश्चित्तं प्राच्योदीच्याङ्गसिहतं अमुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये इस प्रकार सङ्कृत्य
करे। पीछे—

"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
केशानाश्चित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशं वपाम्यहम्॥"
यह मन्त्र पढ़ कर क्षीरकार्य करे। क्षीरामावमें
सार्द्धाब्दब्रत दूना करना होता है तथा सभ्यगणको दूना
दक्षिणा भी देनी होती है। किन्तु सधवा स्त्री और
पिताके जीवित रहनेसे पुत्रका क्षीर निपिद्ध है। दशः
पांच केश कारनेसे हो काम चल सकता है। क्षीरकर्ममें शिखा न करावे। यदि कोई भ्रमसे करवा छै, तो
उसके पुनः संस्कारका आवश्यक है और उस जगह पर
कुशमय शिखा ब्रह्मग्रन्थि करके दाहिने कान पर रखनो
होती है। मयूखकारके मतसे कुच्छ्वाधिकमें क्षीरकमिविध,
कुच्छ न्यूनमें क्षीरकर्म अनावश्यक है।

श्रीरकर्मके वाद कुल्ली करके मन्त्रपाठपूर्वक दन्त-काष्ठ द्वारा जिह्वा उल्लेखन करे । मन्त्र यथा—

"भायुर्वेलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवस्ति च । त्रह्मप्रशाञ्च मेधाञ्च त्वशो देहि वनस्पते ॥"

अनन्तर स्नान करके भस्मादि दशस्नान करें। 'प्राय-न्विताङ्ग भस्मस्नान' करिष्ये' यह सङ्कल्प करके भस्म ले 'ईशानाय नस्मः' इस मन्त्रसे उस भस्म शिरा पर, 'तत्पुक-पाय नमः' इस मन्त्रसे मुख पर, 'अधोराय नमः' इस मन्त्रसे हृदय पर, 'वामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे गुह्य पर, 'संबोजाताय नमः' इस मन्त्रसे दोनों पाद पर और प्रणव उद्यारणपूर्वक सारे शरोर पर लेपन करके स्नान करे । इसीको मस्यस्नान कहते हैं। मस्मस्नानके बाद शास्त्रमन करके 'अथ गोमयस्नान' करिष्ये।' इस मन्त्रसे सङ्कल्प करे । पीछे गोमय ले कर प्रणव उद्यारणपूर्वक उसे दक्षिण ओरसे उत्तरकी ओर फेंक हे। आखिर 'मानस्तोक' इत्यादि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके 'क्षगमप्र' चरन्तीनां' इत्यादि कह कर सर्वाङ्गमें लेपन करे।

पीछे 'अवते हेड़' और 'प्रसम्राजे' यह उक स्क दो वार उच्चारण करके तीर्थकी प्रार्थना करनी होती है। 'याः प्रवतो निवत उद्वत' इत्यादि तीर्थं अभिमन्त्रण-मन्त्र- से स्नान करके दो वार आचमन करे। 'हिरण्यश्टङ्ग' इत्यादि तीर्थंप्रार्थना दशों प्रकारके स्नानमें ही करनी होती है। पीछे—

"अश्वकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्थरे । शिरसा धारियप्यामि रक्षस्व मां पदे पदे ॥" इस मन्त्रसे मृत्तिकाको अभिमन्तित कर— "ऊद्द्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना । मृत्तिके हरमे पापं यन्मया दुष्हृतं कृतम्॥"

इस मन्त्रसे मृत्तिका छे—'नमो मित्रस्य वरुणस्य' इत्यादि यन्त्रसे वह मृत्तिका सूर्यको दिखा कर 'गन्ध-द्वारां' वा 'स्यो ना पृथिवी' अथवा 'इदं विष्णु' इत्यादि मन्त्रसे शिरः प्रभृति अङ्गमें मृत्तिका छेपन करे। पीछे दो वार स्नान और दो वार आचमन करने होते हैं।

इसके वाद शुद्धोदकस्नान है। 'आपो अस्मानित'
इस मन्त्रसे सूर्यको ओर और 'इद् विष्णुरिति' मन्त्रसे
मवाहकी ओर मज्जन, पोछे पञ्चगवा और कुशोदकसे कः
प्रकारके स्नान करने होते हैं। 'तत्सिवतुः' इत्याहि
मन्त्रसे गोम्न् स्नान पोछे आचमन, 'गन्धद्वारां' इस
मन्त्रसे गोम्यस्नान, 'आप्यायस्व' इस मन्त्रसे दुष्धस्नान, 'दिश्रकान्ण' इस मन्त्रसे दिष्ठस्नान और 'देवस्य
त्वा सिवतुः प्रस इन्द्रियेणाभिविञ्चामि इति' इस मन्त्रसे
कुशोदकस्नान करना होता है। दश्विश्व स्नानप्रयोगमें
तीन स्नानके वाद अद्यमर्पण करे। अद्यमर्पण-तप्णका
मन्त्र, यथा- "प्रह्माद्यो ये देवाः तान देवांस्तर्पयामि।
मूदेवास्तर्पयामि। मुवर्देवांस्तर्पयामि। मुद्धेवास्तर्पयामि।
मूदेवास्तर्पयामि। मुवर्देवांस्तर्पयामि। भूभुंवः स्वर्देवांस्तर्पयामि निवीती। कृष्णाहे पायनादयो ये स्वययः
तान ऋवींस्तर्पयामि, मुवर्द्धं पीन०, स्वर्भागि०

भूभुँवः खर्ऋपोन्ः प्राचीनावीती । समः पितृमान्यमोङ्गि रस्तानिन्वात्तादयो ये पितरः तान् पितृन्०, मूः पितॄन०, भुवः पितृन्०, स्वः पितृ स्त०, भूभु वःस्वःपितृन्० । अन्तमे । यक्षतपंणादि करके वस्त्र पहने और तिलक लगावे। पीछे आचमन करके देशकालादिका उल्लेख करते हुए 'विष्णु-प्रोत्यर्थं प्रायश्चित्ताङ्गविष्णुश्राद्धसम्पत्तये श्रीविष्णृह्येशे ब्राह्मणभोजनपर्याप्तामनिष्कयीभृतं द्रव्यं दातुमहमुत्सृजे' ऐसा कहे । अनन्तर चार ब्राह्मणोंकी .पुजा करके उन्हें दान दे। 'तेन पापापहा क्षेमहाविष्णुः प्रीयतां' पीछे 'प्रायश्चित्तं पूर्वाङ्गगोदानं करिष्ये' इस प्रकार सङ्करण करके 'गवामङ्गे षु' इत्यादि मन्त्रसे गोदान वा तन्मूल्य द्वारा दान करे। देशकालादिका उल्लेख करके--- 'प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गहोमं करिष्ये । तद्कृतया स्थिएडलोल्लेखनाद्यग्निप्रतिष्ठापनादि करिष्ये।' प्रकार 'विदनामानमग्नि प्रतिष्ठापयामि' शेषमें इस प्रकार ध्यान करके 'प्रायश्चित्त पूर्वाङ्गहोममें देवतापरिष्रहार्थमन्या धानं करिष्ये' कहे । 'चक्षपी आज्ये नेत्य!दि' मन्तसे अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति इन प्रतिदेवताओं के उद्देश-से २७ करके घृताहुति और पृथिवी, विष्णु, घर, ब्रह्मा, अन्नि, सोम, सविता, प्रजापति और स्विष्टकृत अनि इन्हें यथोक्त मन्त्रसे एक सौ आठ वार घृताहुति दे।

आज्यसंस्कारकालमें पञ्चगव्य शोधन आज्यके साथ उसे अग्निके चारों ओर वेप्टन करे। ताम्र-पातमें वा पलाशपत्रमें गोमूल लिपल वा अप्रमाप, गायली द्वारा सफेद गायका गोमय १६ माप, 'गन्धद्वारां इति' मन्त्रसे पीली वा कपिला गायका दुग्ध ७ पल अथवा १२ माष, 'आप्यायस्त्र' इत्यादि मन्त्रसे नीली गायका दिध ७ पल वा १० माष, 'दिधिकाव्णो' इत्यादि मन्त्रसे ले कर काली गायका घृत एक पल वा ८ मास, तेजोसि शुक-मसीति' अथवा 'घृतं मिमिक्षे' इत्यादि मन्त्रसे ग्रहण कर तथा 'देवस्व त्वां' इत्यादि मन्त्रसे एक पल वा ४ माष कुशोद्क ले कर यश्चियकाष्ट्रसे आलोड्न करनेके वाद् प्रणव द्वारा अभिमन्त्रण करे। इसके वाद 'भूः खाहा अन्य इदं । भुवः स्वाहा वायव इदं'। स्वः स्वाहा सूर्यायेदं। भूभुँवः खाहा प्राज्ञापत्य इदं। इस प्रकार प्रति देवताके उद्देशसे २७ और १०८ वार आहुति दे। विष्णुके लिये । भूः स्वाहा विष्णव इदं । भुवः स्वाहा विष्णव इदं । भूभु वः स्वाहा विष्णव इदं । इस प्रकार १०८ वार आहुति दे कर प्रश्चगव्य होम करे । इससे पहले सात कुशपत्र पर प्रश्चगव्य ले कर 'इरावती धेनुमती॰ खाहा पृथिव्या इदं ० १ इदं विष्णः विष्णव इदं २ मानस्तो॰ स्त्राय ३ त्रह्मयक्षा॰, त्रह्मण इ० ४ त्रह्मस्थाने शकोदेवीति इत्यादि मन्त्रोंसे, 'अन्ये स्वाहा अन्य इदं । सोमाय स्वाहा सोमायेदं । तत्सिवतुर्वरेण्यं॰, स्यायेदं॰।, प्रजापतिके उद्दे शसे—'ओं स्वाहा प्रजापतय इदं ॰ अन्ये स्विष्टकृते स्वाहा । अन्वेय स्विष्टकृत इदं' इस प्रकार केवल दश वार आज्यकी पञ्चगव्याहुति दे । यदस्येति मन्त्रसे स्विष्टकृत होम करके प्रायश्चित्त होम शेष करनेके वाद ब्राह्मणको सम्बोधन करके 'त्रतप्रहणं करिष्ये' ऐसा कहे, ब्राह्मण भी आज्ञा दें, 'कुक्वं'।

'यःवगस्थितं अोम् उचारणपूर्वंक पञ्चगद्य, पीछे प्रणव उचारणपूर्वंक पञ्चगद्य पान करे । अशका-वस्थामें थोड़ा गोम्लादि दे। प्रामके बाहर नदीके किनारे तारोंको देख कर पे सा करना होता है। रातको तारे देख कर बत करे । मुमूर्षु के लिये वाहर आनेकी जक्षरत नहीं, इस दिन उसे उपवास करना होता है। यदि उपवास न कर सके, तो हविष्यभोजन विधेय है।

घर छौट कर प्रातःकालसे ले कर संकल्पित प्रत्याम्नायके अनुसार उत्तराङ्ग करे। गोके अभावमें उसके
मूल्य रजतादि दानकालमें पश्चगन्य पान करके 'इदं
सार्द्धांन्द्रे पञ्चन्यत्वादिशत् कृच्छु प्रत्याम्नायगोनिष्कयो
भूतं प्रतिकृच्छु 'निष्कतद्द्धृतद्द्धांन्यतमप्रमाणं राजतद्रव्यं
नानानामगोले भ्यो ब्राह्मणेभ्योः दातुमहमुत्सृजे।' इस
मन्त्रसे सङ्कल्प करे। पीछे उन सव द्रव्योको विभाग
कर 'आचीर्णस्यामुख प्रायश्चित्तस्य साङ्गतार्थमुत्तराराङ्गानि करिष्ये।' इस मन्त्रसे होम करे। अनन्तर
'स्थिएडलादि करिष्ये।' इस प्रकार सङ्कल्प करके पूर्वावत् विष्णुश्राद्ध और गोदान विधेय है। अव फिर यहां
पञ्चगन्यहोम करनेको जकरत नहीं। समर्थके लिये
गोमूमि और होमादि दशदान और अशक्तके लिये हिरण्यदान कर्राच्य है।

उत्पर जो सार्द्वाव्य-प्रायश्चित्तकी व्यवस्था लिखी गई, वह केवल ब्राह्मणके लिये हैं। स्त्री और शूद्रके लिये वेदमन्तका उद्यारण करना नियेध है, सभी अमन्तक करने होंगे। प्रायश्चित्तके वाद पार्वणश्राद्ध करना उचित है। पिताके जीवित रहने पर भी प्रायश्चित्तकर्ता पुत पिताको छोड़ कर उक्त श्राद्ध कर सकता है। स्त्रियोंको-पार्वणश्राद्धमें अधिकार नहीं है, इसीसे उन्हें भोज्यो-स्मर्ग करना वतलाया गया है। प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)

#### सव पाप प्रायश्चिरतविधि ।

महापातकादि सभी प्रकारके अक्षानकृत पापोंमें अस-मर्थके लिये सभी प्रायश्चित्त पड्ट्स, समर्थके लिये उसका दूना, ज्ञानकृत पापमें असमर्थके लिये तिगुना, अम्प्रासीके लिये चौगुना, अत्यन्त वा निरन्तर अम्यासमें पचगुना और बहुकालाभ्यासमें छः गुना प्रायश्चित्त वत-लाया गया है।

उपपातक अज्ञानकृत होनेसे असमर्थके लिये दो अब्द, अम्यासमें दूना, ज्ञान कृत होनेसे असमर्थके लिये तिगुना, अभ्यासमें चौगुना, निरन्तर अभ्यासमें पचगुना और वहुकालाभ्यासमें छःगुना विधेय हैं।

अज्ञानकृत प्रकीर्ण—पापमें असमर्थके लिये पकाव्द, अभ्यासमें दूना और उसके वाद पूर्ववत्।

क्षद्रपापमें पूर्ववत्, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र वा चान्द्रायण, अतिसामान्यपापमें १२ या ३६ वार प्राणायाम और स्त्री तथा शूद्रके छिये अमन्त्रक ।

खर वा ऊँटकी सवारीसे गमनकारी, नग्नस्वापी, नग्नावस्थामें भोका और दिवाभागमें स्वदारगामीको चाहिये, कि वे सचेल स्नानपूर्वंक प्राणायाम द्वारा शुद्ध हो लें। अज्ञानपूर्वंक होनेसे स्नानमाल, अभ्यासमें ४ प्राणायाम चतुरिधक अभ्यासमें एक उपवास, अत्यन्त अभ्यासमें किराल और इच्छा पूर्वंक खर वा उष्ट्रारोही विप्रके लिये द्विगुण वतलाया गया है।

गुरु, देव, विप्र, आचार्यं, माता, पिता, और राजाके प्रतिवाद, आक्रोश और पैशुम्यमें जिह्नादाह और हिरण्यः दान, अभ्यासमें सहस्र गायलीजप, अक्षानस्रत होनेसे प्राजापत्य करके स्नान और गुरुको संतुष्ट करके पवित्र होने।

Vol. XIV. 183

श्रद्रको विप्रातिक्रमादिमें सात रात क्षतियातिक्रममें एक उपवास करना चाहिये। विप्रकी मारनेकी इच्छासे दण्ड उठानेमें छच्छ, दण्डाघातमें अति-कुच्छ, आघातसे विश्वके रक्तपात होनेमें वा अभ्यन्तर रक्तमें वा त्वक्मेदमें कुच्छू, अस्थिमेदमें अतिकुच्छू, अङ्ग कटनेमें पराक्, अङ्गछेत्छेदनमें दश गोदान, ज्ञानतः होनेमें द्विगुणा वा २० गोदान और सभी जगह विप्रके पदाघात ले कर प्रणामपूर्वक उन्हें प्रसन्न करे। जलमें वा अग्निमें यदि अज्ञानवशतः किसी पीड़ित व्यक्तिका विष्टामूल स्पर्शं करे, तो सचेल सानपूर्वक गोस्पर्श, ज्ञानपूर्वक होनेसे उप-वास करके सचेल खान ; ज्ञानतः अभ्यासमें तीन उप-वास और तीन अधमर्षण विधेय हैं; किन्तु अनार्न्स व्यक्ति-का विनमूत होनेसे वा अत्यन्त अभ्यास रहनेसे तप्त-कुच्छ की व्यवस्था है। विना जलके पेशाव करनेमें भी पेसा ही जानना चाहिये। निर्जंछ अरण्यमें शौचकर्म करने-से सवस्त्रस्नान, मूबाविका वेग धारण करनेमें एक सी आठ वार जप, श्रौत वा स्मार्त्तकर्मलोपमें उपवास, सुर्यो-दयके वाद सुस्थ देह रहते स्वेच्छासे निदा करनेमें सावित्रीजप और निराहार। जीणे और मलयुक्त वस्न-धारणादिमें तथा स्नातकके वतलोपमें उपवास और आठ सी वार जप । पञ्चमहायक्को मध्य एकके लोप होने-में आतुरके लिये उपवास और धनीके लिये कृच्छाई । आहिताग्निकी पर्विमियाके लोपमें भी इसी प्रकार । विना स्नान किये भोजन करनेमें एक उपवास और सारा दिन जप। ऋतुकालमें भार्यागमन नहीं करनेसे छच्छ्राई ; अनिच्छा होनेमें शत प्राणायाम । अपनी भार्याको क्रोधके वशीभूत हो ्यमिचारिणी कहनेमें वर्णानुसार नवरात, पड़रात और तिरात कुच्छु ; गौड़ोंके मतसे सवोंके लिये प्राजापत्य । दान दे कर फिर उसे छेनेमें ऋपिचान्द्रायण । एक पंक्तिमें वैठे हुए व्यक्तियोंमेंसे किसीको कम और किसीको वेशी देनेमें प्राजापत्य । नदीका पुछ काट देनेमें वा कन्याको कप्ट देनेमें चान्द्रायण । पतित म्लेच्छादिके साथ वा ध्यानस्थ ब्राह्मणके साथ कथा कह्नेमें, भार्या अन्न वा धनलाभमें वाधा देनेसे संवत्सर व्रत ; द्विजने विना यशोपवीतके भोजन और जलपान करनेमें नक्तवत, केवल जलपानमें ति-प्राणायाम । इच्छापूर्वक एकार्य

करनेमें उपवास । उच्छिए जान कर भी उसे भोजन करने-में उपवास । द्विजके यहोपवीतके विना ह्वान पूर्वक मूल-त्याग वा आहारादि करनेमें 'मिय तेज' इत्यादि मन्तसे जप । निमन्तितके अन्यत भोजन करनेमें तिरात, अनिच्छासे होनेमें सद्य उपवास । निमन्तण करके निम-न्तितको नहीं खिलानेमें यतिचान्द्रायण । अद्रुखको द्रुख हें जेमें पुरोहितके कृच्छ्य और राजाको तिरात । विष्णु और गरड़के मध्य हो कर जानेमें द्विजके सान्तपन करना हाहिये।

क्षतियके रणमें पीड दिखानेसे संवत्सरवत, फलपद पृक्ष कारनेमें भी संदत्सरवत । नीलवस्त्र वा वनावरी दोशका व्यवहार करनेमें उपवास और पञ्चगव्य पान। गीळीके मध्य जानेमें तीन प्राणायाम ; नीळवृक्षके काष्ट्रसे दुन्तधावन करनेमें नीलवतधारणवत । नीलीवस्व पहनकर अन्तदान करनेमें दाता भीर भोक्ता दोनोंको सान्तपन। अपाङ्को यके साथ पङ्कि-भोजनमें उपवास और दूसरे दुसरे दिन पञ्चगन्य-पान। क्षतिय भीर वैश्यको प्रणाम करनेमें उपवास और यदि ब्राह्मण शूद्रको अभिन्नादम करे, तो उन्हें तिरात उपवास करना चाहिये। अनापद-कालमें सिद्धान्न मिक्षा करनेसे गृहस्थको दशरात वज्र-कुन्छ सम्बन्धि द्वापान, भापदुमें बिराब । मृण्मय प्रतिमा वा देवालयादि तोड्नेमें माज्याहुति भौर ब्राह्मण भोजन, पर प्रतिमाने तारतम्यमें द्राडशयश्चित्तका भेद है। दारिद्रा, कोध वा मात्सर्यादि प्रयुक्त भर्त्ताके अति-क्रममें अतिकृच्छ । पवंके दिन मैथुन करनेमें सवस्त्र-स्तान और वादणीमार्जान। श्राद्धके दिन मैथुन करनेमें उपवास । रजस्वला सपत्नीगमनमें तीन दिन उपवास और चौथे दिनमें घृतभोजन । कामतः होनेमें सप्तरात उपवास। अकाम अथच अम्यासमें कृच्छ और भभ्यासमें मासिकवत, दूसरेके मतसे होवार्षिक। कामतः अभ्यासमें प्रथम दिन पराक, द्वितीय दिन सान्तपन और तृतीय दिन प्राजापत्य । अकामतः रेतः सेक करनेमें महाव्यादृति होम, छः मासके वाद गर्भिणी-गमनमें भी उक्त होम । कामतः रेतः सेक करनेमें ३ प्राणायाम और सहस्र गायतीजप, वानप्रस्थ यतिके लिये चान्द्रायणं, गृहस्थके लिये वारुणी द्वारा मार्ज न। खटन-

में यदि रेतःसेक हो जाय, तो सूर्यको तीन वार प्रणाम और तीन अधमर्पण । ब्रह्मचारीके लिये रेतस्खलनमें स्नान करके सूर्यपूजा और 'तिः पुनर्मासेति' यह ऋक-मन्त्रजप । कामतः रेतःपातमें संवत्सरत्रत । दिवा-निद्ग, नम्नस्त्रीदर्शन, नम्ननिद्रा, श्मशानाक्रमण, ह्यारोहण और दुर्ज नस्पर्शमें नक्तभोजन । गर्भाधानादि चुड़ान्त संस्कारमेंसे किसी एकके छोपमें पादकुच्छू, अनापदमें डिगुण, प्रायश्चित्तके वाद संस्कार कर्राय है। संवत्सर नित्यिकवालोपमें पष्टि प्राजापत्य, अनिच्छा होनेमें तप्त-कुच्छ । निषिद्ध काष्ट्रसे दन्तधावन करनेमें गोदर्शन। व्रतब्रहणकारीका प्रमादवशतः व्रतभङ्ग होनेमें तीन उप-वास पीछे पुनुत्र तग्रहण । विप्रके छः मास क्षातवृत्ति द्वारा धनाज नमें चान्द्रायण, ६ मास वैश्यवृत्ति और सद्य शूद्रवृत्तिग्रहणमें पुनरूपनयन पूर्वेक कुच्छ । शूद्रके द्विजकमें करनेमें भी कुच्छू और तद्धनत्याग ही प्राय-श्चित्त है। स्त्रीधन द्वारा जीवनधारण करनेमें स्त्रीको धनदान करके चान्द्रायण । भार्याके मुखमैथुनमें कुच्छ, गोयानसे जाते समय मैथुन करनेमें इच्छाई, अनिच्छासे होनेमें स्नानमाल । वस्तिकम<sup>9</sup>में, प्रच्छद<sup>9</sup>न और विरेचन अभ्यासमें शिशुक्टच्छ, अनभ्यासमें स्नानमात । देवा-लयकी शिला ले कर अपना घर वनानेमें रुच्छ, और यति-सान्तपन। गुरुके समीप प्रतिश्रुत हो कर उसे पूरा नहीं करनेमें तप्तक्रच्छ के साथ चान्त्रायण । खाते समय कथा कहनेमें उस अन्नका त्याग । श्राद्योपवा-सादि निपिद्ध दिनोंमें दन्तधावन करनेसे सौ बार गायती जप और जल पी कर शुद्ध होवें।

विवाहके पहले यदि कन्याके रजीदर्शन हो, तो जव तक उसका विवाह नहीं होगा, ऋतु दिनसे गिन कर जितने दिन होंगे, उतने गोदान, असमर्थके लिये सुवण-शृङ्गादियुक्त एक गोदान करके तीन दिन उपवास, चतर्थ रातमें दुग्धमात आहार, पीछे निवृत्तरजस्का दान करे। उस कन्याके पाणिश्रहणकारी वरको भी कुस्माएडमन्त उद्यारण करके घृताहुति देनी चाहिये। विवाहहोमकाल-में वा विवाहके समय रजीदर्शन होनेसे पहले स्नान करावे, पीछे तां पूजानेति' इस तैत्तिरीय मन्त द्वारा होम करके विवाह करे। मद्य, विष्ठा, मृत वा पूतिगन्धके आञ्चाणमें तिप्राणा-याम, दर्शन और स्पर्शनमें स्नान तथा घृताशन, उिच्छष्ट सुरास्पर्शमें स्नान और पञ्चगव्यपान, तत्वाणमें ति-प्राणा-याम। मदिरा दान वा स्पर्शमें वा प्रतिग्रहणमें स्नान और तीन दिन कुशोदकपान। संन्धान्स्यादिमें विना स्नान किये भोजन करनेमें आठ हजार गायती-जप।

वाह्मणके शूद्धादि स्पर्शमं उपवास । चाएडालादि स्पर्शमं चान्द्रायण, उसके अभ्यासमें रजकादि स्पर्शसे उसका आधा ।

नैमित्तिक स्नान किये विना भोजन करनेमें एक सौ आठ वार गायलीजप। अमेध्यादि अस्पृश्यके स्पर्शमं यदि विना स्नान किये भोजन कर है, तो तीन रात उप-वास तथा जान वृम्स कर होनेमें छः राति। ज्ञानवशतः स्वपाकादिस्पर्शमें विना स्नान किये भोजन करनेसे विरात हस्तस्थित कवलादि भोजनमें, अब्राह्मणके समीप, दुष्टपंक्तिमें वैड कर, वालकोंको छोड़ कर भोजन करनेमें, तथा अञ्चानवरातः शुद्रके हाथका अञ्च खानेमें नक्तव्रत, ज्ञानवशतः खानेमें उपवास तथा पञ्चगव्य-पान । श्रद्र-की प'किमें वैठ कर खानेमें दो उपवास, ब्राह्मणके लिये विना आचमन किये सानेमें एक सौ आठ वार जप, अभ्यासमें सहस्र गायती जप । भोजनके समय मस्तक पर विष्ठादि गिरनेसे अन्नत्याग करके नदीमें स्तान और वि-भाणायाम । ऋतुकालमें पृथ्वी पर भोजन करनेमें अहोरात यानकाहार और पञ्चगन्यपान । भोजनके समय चार्डाळादि अन्त्यजने द्रशैनमें भोजनत्याग। आवमनपूर्वेक तीन वार प्राणायाम करके भोजनत्याग नहीं करनेमें उपनास और पञ्चगगवर्रपान । चएडालादिके उच्छिष्टस्पर्शमें पूर्णप्राजापत्य। चार्डालके उच्छिष्ट अन्नस्पर्शमें चान्त्रायण, रजकादिके उच्छिएस्परीमें तिरात घृतपान । दूसरेके उच्छिष्टस्पर्शमें विराव-स्नान । भोजन-के समय रजस्वलाका स्पर्श करनेमें शिशुकुच्छ और शतप्राणायाम । भोजनके समय मलनिर्गममें ग्रीच कर-के उपवास और पञ्चगव्यपान, जान वृक्त कर पीतावशिष्ट मुखनिर्गत जलपानका अभ्यास रहनेमें चान्द्रायण अथवा पराक । अञ्चानवरातः शूद्रोच्छिप्र भोजन करनेमें लिराल उपवास । अष्ठातभावमें किसीके भी घर चएडाल रहनेमें

तथा अञ्चानवग्रतः उसको अन्न-भोजन करनेमें प्राजापत्य ; जान वृक्त कर भोजन करनेमें पराक । रजस्वला, स्तिका, अभ्य, शूकर, पतित, कुणि, कुष्टी और कुनखीका स्पष्ट अन्न जान वृभ्द कर खानेमें काय, विना जाने खानेमें उसका आधा। वामहस्तमं अञ्चनोजन और एक पंक्तिमें खाते समय एकके उठ जानेमें उपवास, नक्तवत और पश्चगवा-पान, विड़ाल, काक, इन्दूर, नकुल और गवादिके उच्छिप्र अन्न खानेमें ब्राह्मोरस, अधिक भोजन करनेमें एक उप-वास, पूर्णाहारमें बिराब अपवास। स्वेच्छासे होनेमें पादकुच्छु । अभ्यासमें कृष्छ् । कुक्कुरका उच्छिप्ट खानेमें प्रमात यावकवत । विश्वके शुद्रगृह भोजन करनेमें मनस्तापसे शुद्धि ; इच्छापूर्वंक भोजन करनेमें शतजप ; किन्तु शूद्रपात भिन्न अपर पातमें भोजन करने-से उपवास और पञ्चगवापान । वट, आकन्द, अश्वत्य, कुम्भी, तिन्दुक, कोविदार, कदम्बवही, पलाश और ब्रह्मयृक्षपत्रमें भोजन करनेमें चान्द्रायण। यि के पद्मपत्रमें भोजन करनेमें चान्द्रायण। शृद्धकर्तृक ब्राह्मणके उपवीत छेदनमें मन्त्रपूत करेके अन्य उपवीत धारण, उपवास और सौ वार गायतीजप । यज्ञोपवीत छेदनमें दो महासान्तपन, गोविपचाएडाळादिहत, उद्धन्य, गरद, आत्मधाती, श्रङ्की, दंन्द्रो, विपवहि-जल-विद्युत्-सरो स्प-हत, सङ्करजाति और पतितके शववहन, दहन और उदकवानादि क्रियाकरणमें तप्तकुच्छ्र । अनिच्छासे करतेने गोमूल और यावकाहार झारा छच्छ । शूद्रशयानुगमनमं द्विजका स्नान और एक सौ अग्ड वार गायलीजप, द्विज-ने तानुगमनमें एक सौ आठ, शूदके लिये स्थानमाल है। आत्महत्या आदि अशास्त्रीय मरणमें तत्पुत कर्नु क तप्त-छच्छ्रद्वयात्मक चान्द्रायण करके पीछे उसकी क्रिया होगी । परन्तु क्रोधवशतः आत्महत्या करनेमें लिराल उप-वास । पतिके अनुगमनकालमें यदि स्त्रो चितासे उठ पड़ें, तो उसे प्राजापत्य करना होगा। विप्रशूद्र रजस्त्रला-स्पर्शमें विप्राका कच्छ्र और शूदाका पादकच्छ्र, चाएडा-लादि अन्त्यज और पतित शन्दादि जान वृक्त कर स्पश करनेमें रजस्वलाका प्रथम दिन द्विरात, द्वितीय दिन पकाह, चतुर्थदिन नकत्रत, अज्ञानवशतः स्पर्श करनेमें उपवास मात्रसे शुद्धि होती है।

ये सव साधारण प्रायश्चित्त हैं। एतिद्वित्र गोवध, अस्थिमङ्ग, पालनिमित्त वध, बात्य, स्तेय, ऋण, अपा-करण, अनाहिताग्निता, अपण्यादि क्रय, परिवेदन, भृतका-ध्ययन, पारदार्थ, अपगम्या, स्त्री शूद्रचे श्यक्षत्ववध, द्वमा-दिच्छेदन। ब्रह्मचारीका बतलोप, अभिशेसि, पुत्रकन्या-विकय, अलाद्यखादन, अयाज्ययाजन, पितृमातृसुतत्याग, अन्त्यज-स्त्रीगमन-भोजन, गोमांसमक्षण, भार्याको मातृ-सम्वाधन, उपवीतच्छेदन प्रभृतिका विशेष विशेष प्राय-श्चित्त निर्दिष्ट हुआ है।

शूलपाणिके प्रायश्चित्तविवेक, रघुनन्दनके प्रायश्चित्त-त्त्व और काशीनाथके प्रायश्चित्तं न्दुशेखरमें निम्न लिखित प्रायश्चित्तोंका उल्लेख है—

१ प्राजापत्य वा छच्छ, २ पादोनछच्छ, ३ छच्छ्राई, ४ पादछच्छ, ५ अतिछच्छ, ६ छच्छ्रातिछच्छ, ७ तत्तक्ष्च्छ, ८ पणिछच्छ, ६ सौभ्यछच्छ, १० वारण-छच्छ, ११ प्राक्षच्छ, १३ जलच्छ्र, १४ प्राक्षक्च्य, १३ जलच्छ्र, १४ प्राक्षक्च्य, १३ जलच्छ्र, १४ प्राक्षक्च्य, १३ जलच्छ्र, १४ प्राक्षक्च्य, १६ प्राणिछका-मध्यचान्द्रायन, १८ यतचान्द्रायन, १६ प्रिणीछका-मध्यचान्द्रायन, २० यवमध्य चान्द्रायन, २१ शिशु-चान्द्रायन, २२ यतिचान्द्रायन, ३ ऋपिचान्द्रायन और २४ सोमायन। नाचे इन सव प्रायश्चित्तवर्तोको व्यवस्था संक्षेपमें छिखो जाती है—

प्राचिच त-गः। पृण-इ.वस्पा। अनमर्थके लिये।
प्राजापत्य। तीन दिन सवेरे, तीन दिन सायं- १ दुग्धकालमें, जो विना मांगे मिलेगा। इस वती
प्रकार तीन वा पांच दिन कुक्कुटाएड १ घेनुसदृश प्रास, फल, मूल और जल पी दानः।
कर उपवास। जपशीलके लिये वारह
हजार गायती जप, हजार तिलहोम,
घृताहुति और प्राणायाम दो दो सी,
१२ ब्राह्मणभोजन । तीथोहे शसे
योजन याता।

पार्दान दो दिन सचेरे, दो दिन सार्य-छच्छ्र कालमें और दो दिन अयाचितभावमें आहार, एक दिन दो दिन उपवास। श्रायश्चित्त-नाम । पूर्ण-व्यवस्था । अवमर्थके लिये । इच्छाद्ध<sup>े</sup> सवेरे, एक दिन, सायंकाल, दो दिन अयाचितभावमें आहार, दो दिन उप-वास ।

शिशुरुच्छ्र १ दिन- सवेरे १ दिन सार्य-काल, १ दिन अयाचितभावमें आहार और १ दिन उपवास !

अतिकृच्छ्र तीन प्राजापत्यके मतसे अर्थात् ३ धेनुदान, ६ दिन करके पाणि-पूरान्न भोजन मतान्तरसे और उपचासादि । २ धेनु ।

रुच्छ्राति- २१ दिन केवल जलपान। रुच्छ्र मतान्तरसे अतिरुच्छ का द्विगुण वा ६ प्राजापत्यके समान।

तप्तरुच्छ तीन दिन करके उष्ण जल, झीर और चृतपान। इसमें ६ पल जल, विपल झीर और १ पल चृत होगा।

शीतरूच्छ्र तप्तकुच्छ्र्यत्, केवल तप्तकी जगह शीतल व्यवस्था ।

वर्णग्रुच्छ्र ५ दिन साध्य, प्रतिदिन पळाश, अर्ड धेनु
उदुम्बर, पद्म, चिल्वपत और कुशोदक
पान । तिरात उपवासके वाद उक्त
पळाशादि पञ्चकाथोदक पान । गोमूत १ पळ, गोमय अर्द्धाङ्गुष्ट माता,
क्षीर ७ पळ, दिध ३ पळ, घृत १ पळ,
कुशोदक १ पळ । गायतीमन्त्रसे
शोधन करके यह पञ्चगव्य स्नान ।
'इदं विष्णुमानस्तोंके वशती' इत्यादि
मन्त्रसे होम ।

सान्तापन- ६ रात्र उपवास।

ক্তব্যু

पराक १२ रात उपवास ।
सौम्य १म दिन प्राणरक्षाके लिये तिलकुच्छ्र पिएड, २य दिन ओदनस्राय, ३य दिन
महा, ४थे दिन जल और ५म दिन
सत्त् खाय, ६से ८ दिन पर्यन्त उप-

<sup>#</sup> धेतुके अभावम असका मूल्य दान। धेतुमूल्यकी व्यवस्था पहुळे ही लिखी जा जुकी है |

असमर्थके लिये। असमर्थके लिये। प्रायश्चित्त-नाम । पूर्णव्यवस्था । प्रायश्चित्त-नाम । पूर्णव्यवस्था ।

मतान्तरसे तिलपिएडादि प्रत्येक ३ दिन करके १५ दिन और ६ दिन उपवास, इसके मध्य २ दिन वायु-भक्षण । इस प्रकार इक्कीस रात करे । वारणकुच्छ एक महीना तक सत्त् और जल-

गोमूल, गोमय और यावक तीन

श्रीक्षच्छ्र दिन करके पान। यावकः सप्तरात, पक्ष वा मास भर यवो-

ক্তব্য दक पान। রন্ত-কৃত্ত अनशनसे अहोरात जलमें वास । वज्रकुच्छ गोमय यावक पान।

सान्तपन पूर्वदिन पञ्चगव्यमात पान, दूसरे १ पुराण-दिन उपवास। दान ।

प्रतिसान्त- तीन दिन पञ्चगव्य पान, ४ थे दिन पन उपवास। होम भी करना होता है। मतान्तरसे ५वें और ६वें दिन उपवास ।

महासान्त-१ गोमूल, २ गोमय, ३ दुग्ध, ४ पन दघि, ५ घृत, और ६ कुशोदक, प्रत्येक एक एक दिन पान, ७वें दिन २ धेनु उपबास। मतान्तरसे गोमूलादि मतान्तरसे प्रति द्रव्य ३ दिन करके पान और डेढ़। शेय ३ दिन उपवास, यह इकीस रातसाध्य है।

अतिसान्त-पश्चगव्य प्रत्येक दो दिन करके पान, शेंव २ दिन उपवास, यही पन बादशरात।

चान्द्रायण । कृष्ण प्रतिपदसे आमलकी प्रमाण ८ धेनु । विपीलिका- १४ ग्रास आरम्भ करके पीछे प्रति- दक्षिणा दिन एक दिन घटाते जाय। इस मध्य प्रकार चतुर्देशी दिन एक ग्रासमात शुलपाणि-आहार करे, अमावस्याके दिन उप-के मतसे वास । पीछे शुक्क प्रतिपदमें १ प्रास, आ धेनु । श्या में २ ब्रास, इसी क्रमसे पूर्णि-दरिइके मान्त पयन्त वढाते जाय। लिये ३ भाजापत्य

यचमध्य-शुक्त प्रतिपदसे एक प्रास आरम्भ चान्द्रायण करके पूर्णिमान्त पर्यन्त बढ़ावे, फिर कृष्ण प्रतिपद्से घटाना शुरु करे। पकादशी व्रतभङ्गमें भी दोष नहीं होता।

यति-चान्द्रा-४ प्राजापत्यके समान । इस-में प्रति मध्याहको आठ आठ फरके यण पिएड भक्षण करे। हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहे ।

समाहित चित्तसे ४ पिएड शिशुचान्द्रा-सवेरे और ४ गामको खाय। यण ऋषि-चान्द्रा-एक मास हविष्याशी और ३ धेनु, नियमसे रह कर तीन तीन पिएड मतान्तर यण

गोके ४ स्तनसे सप्तरात, ३ स्तन-सोमायण-चान्द्रायण से सप्तरात, २ स्तनसे सप्तरात और १ स्तनसे सप्तरात तथा तिरात वागु-भक्षण ।

> प्रथम दो छोड़ कर शेष सभी चान्द्रायण प्रतिवद्द व्यतीत भार सभी दिनोंमें आरम्भ करे।

अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, मलावह । पाप और प्रकीर्णकके भेदसे प्रायश्चित्तका भी तारतम्य है। अतिपातकमें पूर्ण प्रायश्चित्त, महापातकमें उसका आधा, प्रकीर्णक पापमें अतिपातकका आठवां भाग करना होता है। नीचे कुछकी व्यवस्था दी नाती है :—

अतिपात् । प्राथिवच । असमर्थमें घेतुदान । ब्राह्मणका मातृ अज्ञानमें द्विगुण ३६० धेनु दुहित् ना स्नूपा-द्यादश वार्षिकव्रत, गमन । श्वानतः उसका द्विगुण।

तदशक्तमं चूर्णीदान। दक्षिणा । १०८० कार्पापण वा २०० गो, असमर्थमं उतने मूत्यका स्वर्णादि । २०० कार्पापण ।

Vol. XIV 184

## **गायश्चि**त्त

का मातृ-दुहित वा त स्नूषा गमन ।		समर्थमे घेत्रुदान । ३६० घेतु ।	तदशक्तमें चूणीदान । १०८० कार्यापणके २ उतने मूल्यका स्वर्णादि ।	दक्षिण । २०० गो, असमर्थमें २०० कार्यापण ।
महापातक । अकामतः ब्राह्मण	द्वादश वार्षिक वत । १८	o धीन ।	too services or one	
कत्तु क ब्रह्मवध ।	मरण, अशक्तमें द्विगुण	. ज्यु	५४० कार्यापण वा उतने मूल्यका स्वर्णादि ।	
6	द्वादश वार्षिक वत । ३६	,० धे <b>न</b> ।	१०८० कार्यापण ।	२०० सो ।
त्रह्मबध		·	•	• • • •
<b>ज्ञानतः</b> ब्राह्मण कर्तृक	व्रह्मवध प्रायश्चित्त ।			
ब्राह्मणीगर्भवध ।	अज्ञानमें उसका आधा।			
श्चानतः ब्राह्मण कतृ <sup>°</sup> क	द्वाद्श वार्षिक व्रत ।	१८० घेनु ।	५४० कार्यापण ।	
शत्रु ब्राह्मणवघ । अनिच्छासे क्षत्रिय	२४ वार्षिक व्रत।	200 13-1		कार्पापण।
कतृ क त्रह्मवध ।	रह पापक अत्।	३६० धेनु	१०८० कार्यापण ।	२०० गोवा २०० कार्षापण।
अनिच्छासे वैश्य-	३६ वार्षिक व्रत ।	५४० घेतु ।	१६२० कार्यापण ।	३०० गो वा ३००
कत् क ब्रह्मवध ।	स्वेच्छासे उसका दूना।			कार्यापण।
अनिच्छासे शूद्र-	४८ वार्षिक वत ।	७२० घेनु ।	२१६० कार्षापण ।	800 गी।
कत्र्वेक ब्राह्मण-वध ।	स्वेच्छासे इसका दूना।	_	•	
ब्राह्मणका सुरापान ।	जव तक मृत्यु न हो, तव तक अग्निवत् उष्ण सुरा, गोमूल, जल वा दुग्धपान । २४ वार्षिक वत, सञ्चानमें दसका भाषा ।	३६० घेतु ।	१०८० कार्घाएण ।	२०० गी।
क्षत्रियका पैटी	१८ वार्षिकव्रत ।	२०० घेनु	८१० कार्यापण ।	७५ गी।
सुरापान ।	अज्ञानमें उसका आधा ।			
वैश्यका पैष्टी	द्वादश वार्षिक वत,	१८० घेतु ।	५४० कार्यापण ।	१०० गो।
सुरापान ।	अज्ञानमें उसका आधा ।	_		-
श्वानतः ब्राह्मणका गुवङ्गणा-गमन ।	२४ वार्षित व्रत, गुर्व- ङ्गनाको भी यही कर्त्तव्य है।	३६० घेतु ।	१०८० कार्षापण ।	२०० गी।

### प्रा**यश्चित्**

अतिपातक ।	प्रायश्चित्त ।	असमर्थमें घेनुदान ।	तद्शक्तमें चूणींदान।	दक्षिणा ।
अनुवातक । छोटा हो कर वड़ेका ढोंग । जैसे, शूदका	द्वाद्श वार्षिक व्रत ।	१८० घेनु ।	५४० कार्यापण ।	१०० गी।
अपनेको ब्राह्मण दत- लाना । अधीत चेद्विस्मरण, चेद्निन्दा, कूटसाक्ष्य, सुद्दद्वध, गर्हितान्न-	द्वांदश वापिक वत ।	१८० घेतु ।	५४० कार्यांपण ।	१०० गो ।
भीजन । सिपिएडा स्त्री-गमन, ब्राह्मण-कुमारी-गमन, बएडालादि स्त्री- गमन ।	वार्षिक, ज्ञानमें	१८० घेनु ।	५४० कार्यायण ।	१०० गो ।
डपपात <b>र ।</b> त्राह्मण, श्लिय, चैश्य	तैमासिक वत ।	१२ धेनु । मतान्तरसे	२६ वा ५१	१० वृष, १० गो,
कत् क ज्ञानकृत ब्राह्मण- का गी-वध ।	अज्ञानकृत होने- में भाषा ।	१७ धेनु ।	कार्यापण ।	अशकमें १५ कार्यापण।
शूद्र कर्तुं क ब्राह्मण- स्वामिक गो-वध ।	तैमासिक वत । अज्ञानमें उसका आधा ।	६ घेनु ।	२५॥ कार्यायण ।	१ गो, अशकमें १ कार्पापण ।
ब्राह्मण-क्षतिय-वैश्य कर्तुं क क्षतियका गो- वध ।	वाण्मासिक वत । मज्ञानमें उसका भाषा ।	१२ धेनु ।	३६ कार्यापण ।	यथाशक्ति ।
शूद्र कर्तृ क क्षतियका गो-वध ।	त्रैमासिक वत । अज्ञानमें उसका माधा ।	६ धेनु ।	१८ कार्पापण ।	यथाशक्ति ।
द्विज कत्तृ <sup>६</sup> क वैश्यका गो	विध । द्वैमासिक व	त, अज्ञानमें उसका आध	।। १० धेनु। ३० क	ार्यापण । यधामाकः।
दिजकर्षुक शूदका गोव	थि। २ श्राजापत्य	।, अज्ञानमें उसका आधा	। २ धेनु। ६ व	तर्पापण । यधान्नक्ति ।
शूद्र कर्तुं क ब्राह्मणकी गर्भिणी कपिला वा धे यथ	तैमासिक वर मेतु-	त, अञ्चानमें उसका आधा	। १७ धेसु। ५१ क	ार्यापण । १० वृष, १० गो । अशक्तमें १५ कार्यापण ।
द्विज कर्तुं क क्षतियकी व कपिला वा दोग्धी हो। वध	गर्भिणी हिंगुण पाण ग्वेनु- उर	गसिक वत, अज्ञानमें तका आधा ।	२४ धेतु। ७२ क	तर्पापण। यथाशक्ति।

### प्रायदिच<del>त</del>

श्रतिवातक ।	प्रामिश्चरतः ।	असमर्थमें घेनुदान	। तदशक्तमें चुर्गादाः	। दक्षिणा।
शूद्र कर्तृ क क्षतियकी गर्भि कपिला वा दुग्धवती हो	णी पाण्मासिक व्रत, अज्ञानमें उसक म- आधा।	। १२ धेनु	। ३६ कार्पापण।	यथाशक्ति । ः
धेनुवध ।				
द्विज कर्तृक वैश्यकी गर्मि	णी चतुगु <sup>९</sup> णमासिक वत, अज्ञानमें उसव	ना २० धेनु	। ६० कार्यायण।	यथाशक्ति।
कपिला वा दोग्ध्री होमधेनु	<b>;-</b> आधा ।			
वध ।				
शूद्र कर्तृ क वैश्यकी गर्भिण	ि द्विगुण मासिक वत । अज्ञानमें उसक	ा १० धे <b>नु</b>	। ३० कार्पापण।	यथाशक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्रो होमधेनु	্- आधा।			
वध ।				
द्विज कर्तृ क शूद्रकी गर्भिण	ी ८ प्राजापत्य। अज्ञानमें तद्द	। ८ घेतु ।	२४ कार्यापण।	यथागृक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्री होम-				
धेनुवध ।				
6/ - = 4/	४ ग्राजापत्य । अज्ञानमे उसका	४ धेनु ।	१२ कार्पापण।	यथाशक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्रीहोमधेनु	आधा ।			
वध ।	, in the second			
हिज कर्तृ क अधम शूद्रका	२ प्राजापत्य । अज्ञानमें उसका आधा ।	२ घेतु ।	६ कार्यापण ।	यथाशक्ति ।
गोवध ।		•		
शूद्र कर्तृ क अधम शूद्रका	१ प्राजापत्य । अज्ञानमें इसका आधा ।	१ धेनु ।	३ कार्पापण।	यथाशक्ति ।
गीवध ।			•	_
द्विज कर्नु क शूद्र तरका		२ धेनु ।	६ कार्यापण।	•
अपालन निमित्त गो-	प्राजापत्य । प्राजा-			र्थिके लिये देढ़
वध ।	पत्यद्वय ।	_	कार्याप	
द्विज कर्तृक शूद्रका	प्राजापत्य ।	२ घेतु ।	६ कार्पापण ।	यथाशकि ।
अपालन-निमित्त गो-				•
वध ।	9		•	
गोका श्रङ्गभङ्ग, अस्थि-	दशरात वज्रवत । मासार्द्ध यव-	१ धेनु ।	३ कार्पापण ।	यथाशक्ति।
मङ्ग, चर्मनिर्मोचन और	पान । अथवा प्राजापत्य ।			
लांगूलछेदन ।		<b>5</b> .	_ <u> t</u> .	
ब्राह्मण कत्तृ क चृपका	प्राजापत्य <b>द्ध</b> य ।	२ धेनु ।	६ कार्यापण।	यथाशक्ति ।
शकटादिमें योजन ।				
डपपातक।	* ^ ~	<b>.</b>		०० मीच ।
ब्राह्मण-क्षतिय कत्तृ क	त्रैमासिक त्रत । अज्ञानमें	४५ धनु ।	१२५ कार्घापण ।	२५ गोल ।
ज्ञानकृत क्षतियवध।	उसका आधा ।	A		a भी अवस्त
•	षड्वार्षिक व्रत ।	२३ घनु । ६	आ कार्षापण ।   १	३ गा, अशसा- शा कार्वापण ।
वध ।			нх	ન્યા વાપાયળ !

### प्रायश्चित

भतिपातक। , शूद्ध कर्तृ क झतवध। द्विज कर्तृ क वैश्य- वध शूद्ध कर्तृ क वैश्य-	श्रावश्चित्तः ।  तबचार्षिकः वतः ।  साद्धं वार्षिकः वतः ।  तैवार्षिकः वतः ।	१३ घेतु ૨३ घेटु ४५ घेटु	ा १२५ कार्यापण <b>ा</b>	क्ष्य गा र १३ गो, अशक्तमें १२॥ कार्यापण । २५ गो ।
वध। द्विज कर्तृ क शूद्र-	नवमासिक व्रत ।	१२ घेतु	। ३३॥ कार्यापण।	७ गी, अशक्तमें ६। कार्यापण
वध । ब्राह्मण कर्तुं क ब्राह्मणी- वध ।	पड़् वार्षिक महात्रत । क्षत्रियके द्विगुण, वैश्यके द्विगुण और	६० धेनु	। २७० कार्यापण ।	५० गो ।
त्राह्मण-स्रतिय कर्तु <sup>°</sup> क		8५ घेड	। १२५ कार्णन।	२५ गो ।
क्षतिया-वघ । द्विजकर् <sup>8</sup> क वेश्या वघ ।	वैश्यके द्विगुण, शूद्के तिगुण। वार्षिक त्रत। शूद्रके लिये द्विगुण।	१५ धेनु	। ४५ कार्यापण।	८ गो, अशक्तमें ८।७६॥। कार्यापण ।
गूद्रावध ।	वार्षिक वते।	१५ घेनु	। ४५ कार्पापण । ८	६ गो, अशक्तमें  -६    कार्पापण ।
राजाका उत्तम गज-		Q	२५ कार्पापण ।	यथाशक्ति ।
	वासोयुग दान । अहोरात उपवास, भन्तमें घृतघट दार	₹1	८ पण ।	यथाशकि ।
	ताक्षीरपान वा पादकच्छ ।	•	१ कार्यापण ।	यथाशक्ति ।
	नकवत वा दो रत्ती रौप्य- दान।	q	») १३। पण ।	यथाशकि ।
ब्रात्ययाजन ।	प्राजागत्य	१ धेनु ।	३ कार्यांपण ।	यधाशक्ति ।
अमध्यमक्षण ।	चान्द्रायण (गुरुतर विषयमें)	८ घेतु ।	२२॥ कार्यापण ।	यथाशक्ति ।
	प्राजापत्प (ज्ञानतः) क्षतियका पादोन, वैश्यका अद्ध <sup>९</sup> और शूद्का पाद।	_	३ कार्यापण ।	यथाशकि ।
नवश्राद्धावभोजन ।	चान्द्रावण ।	८ धेनु ।	२२॥ कार्यापण ।	यधाशक्ति ।
यज्ञानतः होनेसे :	सभी प्रायश्चित्त अद <sup>्ध</sup> और वाल, स्त्री	तथा वृद्धके वि	ले <b>पे</b> भी अर्द्ध कहा गर	। है। जहां गोकर
निर्देश हैं, वहां उसके अभावमें । कार्याणा मेटेसे ने क्या कर करता है				

निर्देश है, वहां उसके अमावमें १ कार्यापण होनेसे ही काम चल सकता है ।

ऊपर जिन प्रायश्चित्तीका प्रयोग लिखा गया, वही प्राचीन मत है। आज कलके नन्य स्मात्तीने उसमें बहुत हेर फेर कर दिया है। पहलेको तरह अब कठोरता नहीं है। अध्यवहार्य और व्यवहार्य श्राब्द तथा शुल्पानिको प्रायिवत-विवेक, काशीनामके प्रायिवना न्दुशेखर मादि प्रण्योंने सपरापर प्रायिवनाविधि देखी।

Vol. XIV. 185

प्रायश्चित्ति (सं ० स्त्री०) प्रायः अध्ययं तपसश्चित्तिः चित-भावे-किन् । प्रायश्चित देखो ।

प्रायश्चित्तिक (सं । ति ।) प्रायश्चित्तः कर्त्तं व्यत्वेनास्त्य-स्य उन् । १ प्रायश्चित्तिहं, प्रायश्चित्तकं योग्य । २ प्राय-श्चित्त संस्वन्धी ।

प्रायश्चित्ती (सं० ति०) प्रायश्चित्तः कत्तं यत्वेनास्त्य-स्य इनि । १ प्रायश्चित्ताई, प्रायश्चित्तके योग्रः । "अज्ञात्वा भर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदेत्तु यः । प्रायश्चित्ती भवेत् पूतं तत्पापं तेषु गच्छति ॥" (प्रायश्चित्ततत्त्व)

यदि कोई अज्ञन्यक्ति अमेशास्त्र ज्ञाने विना प्रायश्चित्त-की व्यवस्था दे, तो प्रायश्चित्ती अर्थात् प्रायश्चित्त करने-बाले तो पापसे मुक्त होते हैं, पर उनका पाप व्यवस्थापक के ऊपर जाता है। इस कारण धर्मशास्त्रको अच्छी तरह ज्ञाने विना प्रायश्चित्तको व्यवस्था कभी नहीं देनी चाहिये। २ जो प्रायश्चित्त करे, प्रायश्चित्त करनेवाला। प्रायश्चित्तमत् ( सं ० दि० ) प्रायश्चित्त-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। प्रावश्चित्तयुक्त।

प्रायश्चित्तीय (सं० ति०) १ प्रायश्चित्तसम्बन्धी । २ प्रायश्चित्त होम सम्बन्धी ।

प्रायश्चित्तीयता (सं॰ स्त्री॰) प्रायश्चित्तीय ुभावे-तल्-टाप् । प्रायश्चित्तीयका भाव वा धर्मे ।

प्रायाणिक (सं ) ति ) प्रयाणाय हितं ठक्। १ यातिक द्रव्य, शिख, चंचर भादि मङ्गल द्रव्य जो याताके समय आवश्यक होते हैं। (ति ) २ प्रयाण सम्बन्धी, याता-सम्बन्धी।

प्रायातिक (सं० ति०) प्रयातये हितं उक्। याताकालमें हितकर द्रन्य।

प्रायास (सं ० पु०) देवविशेष।
प्रायिक (सं ० ति०) प्रायेण प्राये वा भविमिति प्रायं ठक्।
प्रायः होनेवाला, जो बहुधा या अधिकतासे होता है।
प्रायुद्ध पीन (सं ० पु०) प्रायुधि प्रकृष्टयुद्धाद्स्थिन हेपते
शब्दायते इति द्विप्-णिनि। भोटक, घोड़ा।
प्रायोग (सं ० पु०) प्रयुज्यते शकटादौ प्र-युज-कर्मणि-

घञ्, कुत्वं दीर्घ रंख । शकटादिमें नियोगाई वृष, गाड़ी आदिमें जोतने लायंक वैल ।
प्रायोगिक (सं० ति० ) प्रयोगं नित्यमईति छेदादित्वात् ठञ् । नित्यप्रयोगाई, जिसका प्रयोग नित्य होता हो । प्रयोज्य (सं० ति० ) प्र-भा-युज-णिच्-यत् । १ प्रयोज्ञाई, प्रयोगमें आनेवाला । (पु०) २ मिताक्षरा आदि धर्मशास्त्रोंके अनुसार वह वस्तु जिसका काम किसीको नित्य पड़ता हो । जैसे, पढ़नेवालेको पुस्तका-दिका, हपकको हल वैल आदिका और योद्धाको कमशाः सस्त्र शस्त्रादिका इत्यादि । ऐसी वस्तुओंको शास्त्रमें विभाजनीय नहीं माना है । विभागके समय वह वस्तु उसीको मिलती है जिसके कामको यह हो अथवा जो उसे अपने काममें लाता रहा हो या जिसकी उससे जीविका चलती हो ।

प्रायोदेवता ( सं॰ पु॰ ) सर्वमान्य देवता, वह देवता तिसे सव मानते हों।

प्रायोद्धीप ( सं ॰ पु॰ ) प्रायदीप देखी ।

प्रायोपगमन (सं ० पु०) अनज्ञन त्रत द्वारा प्राण परि-त्याग करनेका प्रयंत्त, भूकों मर कर ज्ञान देना । प्रायोपविष्ट (सं ० ति०) प्रायेण मरणार्थमनशनेन उप-विष्टः । प्रायोपवेशविशिष्ट, जिसने प्रायोवेश व्रत किया हो।

प्रायोवेश (सं ॰ पु॰) प्रायेण मृत्युनिमित्तकानशनेन उप-वेशः स्थितिः। सन्यासपूर्वं क अनशनस्थिति। संन्यास-का अवलम्बन करके जब तक मृत्यु न हो, तब तक उप-वासरूप वत।

प्रायोपवेशन (सं ॰ क्ली॰) प्रायेण मृत्युनिर्मित्तकानशैनेन उपवेशनं प्रायोपवेशवत ।

प्रायोपवेशनिका (सं० स्त्री०) प्रायोपवेशनवत । प्रायोपवेशिन् (सं० ति०) प्रायोपवेश अस्त्यर्थे इनि । प्रायोपविष्ठ, जिसने प्रायोपवेश वत किया हो ।

शायोपेत (सं • ति •) प्रायः प्रायोपवेशः तेन उपेतः । प्रायो-पवेशनयुत, प्रायोपवेशन व्रतका व्रती।

प्रारच्य (सं क्ही॰) प्रकृष्टमारच्यं खकार्यजननायेति।
१ शरीराम्मक अदृष्टविशेष, भागा, किसमत। तव तक
प्रारच्य शेष नहीं होता, तव तक खुख, दुःख, जन्म, मृत्यु
आदि अवश्यम्मावी है।

्र "अवस्यमेव भोक्तन्यं कतं कर्म शुभाग्रा । नाभुकं क्षियते कर्म कल्पकोटिशतैरिप ॥ ( मनु ) शतकोटि करूपमें भी कर्मका श्रय नहीं होता। इस 🖰 कारण प्रारव्य कर्मके भोग द्वारा ही क्षय हुआ करता है। 📒 परन्तु पदि विशुद्धकान उत्पन्न हो जाय, तो प्रारन्थ कर्म ं कुरतेऽ द्वीन!" (गीता) २ तीन प्रकारके कर्मीमेंसे कृतारम्भ, जो आरम्भ हो खुका हो। , प्रारिक्य (स<sup>°</sup>० स्त्री०) प्र-सा-रम्म-किन् । १ गजवन्धनरवज्ञ, <sub>।</sub> द्दाथोके वांघनेकी रस्ती । २ आरम्म, शुद्ध । ्रगारम्म ( सं ० पु० ) व-आ-रभ-भावे-चत्र् सुम्ब । १ प्रकर्ष-इपसे आरम्भ, शुद्ध। "प्रारम्भे कर्मणां विद्रः पुस्डरीकं ।समरेद्वरिम्।" (समृति) । कर्गके प्रारम्ममें पुण्डरीक हरिका स्मरण करना चाहिये। प्रारभ्यते इति प्र-आ-रम्-कर्मणि घज्, मुम्च। २ क्र्म । प्ररुष्ट आरम्भो योगो यस्य । ३ योगी । ४ सादि । प्रारम्भण ( सं ० क्वी० ) प्र-आ-रभ-स्युट्-मुम्**च ।** आरम्भण, शुक करना। २ आदिम। ३ प्राथमिक। त्रारोह ( सं॰ ति॰ ) प्ररोहशोलमस्य छतादित्वान् ण । 📇 था-**।**-२) प्ररोहणशील । प्राजीयिता ( सं ० ति० ) दान करनेवाला, दानी । प्रार्जु न ( सं o पुo) एक प्राचीन देशका नाम । : .पार्ण (सं.० क्वी॰) प्रकृष्टमुणं वृद्धिः । ्१ प्रकृष्ट ऋण, वहुत - कर्ज । (ति॰) प्रकृष्टं अपूर्ण यस्य प्राद्दि बहुन्नी॰ । २ प्रकृष्ट . म्र्णयुक्त, जिसे ज्यादा कर्ज हो । प्रार्थ ( सं॰ पु॰ ) सज्जा, असवाव । प्रार्थक ( सं ० ति० ) प्रार्थयतीति प्र-अर्थ-ण्डुल् । प्रार्थना-्कारी, प्रार्थना करनेवाला । प्रार्थन (स'० ही०) प्र-सर्थ खुट्। याचन, प्रार्थना करना, ्रमांगना । पर्याय अभिशस्ति, याचना, अर्थना, प्रार्थना । प्रार्थना (संः हो।) प्र-अर्थ-णिच्-युच् । १ याचन, चाहना,

् मांगना । २ हिंसा । ३ साहित्यदर्पजोक्त गर्भाङ्गभेद । ४ किसीसे नम्रतापूर्वक कुछ कहना, विनती । १ अभि-🗽 शुप्त वा अशुप्त जो सव कार्य किये जाते. हें उनका 🕒 यान, चढ़ाई। ६ अवरोध, घेरा डाळना । ७ तन्त्रसारके अवश्य मोग करना पड़ता है। कर्मका भोग हुए विना । अनुसार एक मुद्राका नाम। इस मुद्रामें दोनों हाथोंके पंजीकी उंगलियोंको फैला कर एक दूसरे पर इस प्रकार रखते हैं, कि दोनों हाथोंको उ'गलियां यथाक्रम एक दूसरे-के ऊपर रहती हैं। विशेष विश्रण मुदा सन्दर्भे देखी। नाश हो जाता है। "ज्ञानानिः सर्वं कर्माणि भस्मसात् ; प्रार्थनापतः सं ० पु०) वह पत जिसमें किसी प्रकार्की प्रार्थना लिखी हो, निवेदनपत, अर्जी। बद्दंजिसका फलमोग आरम्भ हो चुका हो। ु( ति॰ ) ३ ं प्रार्थनासमाज (सं॰ पु॰) एक नवीन समाज या सस्प्रदाय। इस मतके अनुयायी दक्षिणमें वस्वईकी और अधिक हैं। ्रस् मृतके ्सिदान्त ब्राह्मसमाजसे मिळते चुळते हैं। इसके अनुवायी जाति पांतिका भेद नहीं मानते और न मृत्तिपूजा आदि क्रते हैं। प्रार्थनीय (सं॰ क्ली॰) प्रार्थियते इति प्र-अर्थ णिच् अनीयर् । द्वापर युग। (ति०) २ प्रार्थना क्रुरने योग्य, निवेदन करने लायक । प्रार्थितव्य (सं • ति •) प्र-अधि-णिच्-तन्य । प्रार्थनीय, प्रार्थना करने योग्य। प्रार्थायता (सं ० ति ०) प्र-अर्थ-णिच्-तृच् । प्रार्थनाकारी, प्रार्थना करनेवाला । प्रारम्भिक ( सं ॰ ति ॰ ) १ प्रारम्भ सम्बन्धां, प्रारम्भका । । प्रार्थित (सं ॰ ति ॰) प्रार्थ्यते स्मेति प्र-अर्थ-क । १ याचित, जो मांगा गया हो। २ शतुसंबद्ध, दुश्मनसेंद्विरा हुआ। ३ अभिहिन, कहा हुआ । ४ हत, मारा हुआ । पार्थिन् (दुःसं ० ति० ) प्रार्थयते प्र-अर्थ-णिनि । १ प्रार्थना-शील, प्रार्थेना करनेवाला। २ निवेदक, निवेदन करने-:वाला । ३ इच्छुक । प्रार्थ्य (सं ० ति०) प्रार्थनाने योग्य । प्राथ्यंक (सं ० ति०) प्रार्थनाकारी। प्रालम्ब ( सं• ऋो॰) प्रालम्बते इति लवि अवसंशने अच्। १ करद्देशसे ऋञ्जलस्वमान माल्य, वह माला जो गदँनसे छाती तक लटकती हो । २ रस्सी आदिके ढंगकी यह वस्तु जो किसी ऊंची वस्तुमें टंगी और लटकती हो। प्रालम्बिका (सं॰,ल्ला॰) प्रालम्बते इति अच्, संशायां कन्, टापि अत इत्यं। स्वर्णादि रचित् लनिएडका, गर्टमें पहनने-का सोनेका,हार।

प्रालेपिक (सं० ति०) प्रलेपिकामा भर्मम्। प्रलेपकार्या सम्बन्धीय । प्रालेय (सं ० क्ली०) प्रकर्षेण लीयन्ते लीना भवन्ति पदार्था अह्नेति प्रलयो हिमालयस्तत आगतं प्रलय-अण् (केवंयः नित्रयुप्रकयाणां यादेतिषः। पा ७।३।२ ) इति यस्येयादेशः। १ हिम, बर्फ । २ भूगर्भशास्त्रानुसार वह समय जव अत्यन्त हिम पड़नेके कारण उत्तरीय ध्रुव पर सब पदार्थ नष्ट हो गये और वहां शीतकी इतनी वृद्धि हो गई, कि अब कोई जन्तु वा वनस्पति वहां नहीं रह सकती। प्रालेयरिम ( सं॰ पु॰ ) प्रालेयस्य रिमर्थस्य । चन्द्रमा । प्रालेयरौल ( सं॰ पु॰ ) प्रालेय नाम रौलः । हिमचान् । प्रालेयांशु ( सं॰ पु॰ ) प्रालेयानि हिमानि तद्वत् शीता वा अंश्वो यस्य । चन्दमा । प्रालेयादि ( सं ० पु० ) प्रालेय नाम अद्रिः । हिमालय । प्रावचन (सं । ति ।) प्रवंचन वा स्वरसम्पर्कीय। प्रावर (सं पु ) प्र-अव-अर्-अच्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। यव, जौ। प्रावण (सं० क्ली०) प्र-भा-वन-संभक्ती करणे-घ, 'प्रणि-रित्यादि णत्वं। खनित्न, गैनी। प्रावणि ( सं० स्त्री० ) प्र-अव-अनि । प्रकृष्ट भवनि । प्रावर (सं ॰ पु॰ ) प्रावृणोत्यनेनेति प्र भा-वृ-करणे अप्। प्राचीर, चहारदीवारी । प्रावरक ( सं० पु० ) १ जनपद्भेद । २ वहिर्वासः संयुक्त । प्रावरण (सं० क्ली०) प्रावृणोत्यनेन गात्रमिति प्र-आ-वृ-करणे ल्युट्। १ उत्तरीयवस्त्र, ओढ़नेका वस्त्र, चादर। २ प्रच्छाद्न, ढक्कन । प्रावरणीय (सं० क्ली०) १ आच्छादनवस्त्र, चाद्र । रिह्न०) २ जिससे आवरण किया जाय। प्रावार र सं ० पु॰ । प्रावियते गातमनेनेति प्र-आ-वृ-करणे-घञ्। १ उत्तरीयवस्त्र। २ एक प्रकारका कपड़ा जो प्राचीनकालमें वनता था और वहुमूल्य होता था। प्रावारक ( सं॰ पु॰ ) उत्तरीयवस्त्र, चादर । प्राचारकर्ण (सं० पु०) उल्लूकमेद, एक प्रकारका उल्लू। प्रावारकीट (सं० पु०) प्रावारस्य कीटः । कीटमेद्, कपड़े -में लगनेवाला एक प्रकारका कीड़ा। प्रावारिक ( सं० पु० ) वह जो उत्तरीयवस्त्र वनाता हो ।

प्रावास ( सं० ति० ) प्रवासे दीयते कार्यं वा व्युष्टादित्वा-दण्। १ प्रवासमें देने योग्य। २ प्रवासमें कार्य। प्रावासिक (सं० ति०) प्रावासाय प्रभवति सन्तापादि-त्वात् । ठञ् । १ प्रवाससाधन । प्रवासे साधुः गुड़ा-दित्वात् ठञ्। २ प्रवासमें साधु। प्रावाहणि (सं० पु० ) प्रवाहणका अपत्य । प्रावाहणेय (सं॰ पु॰) प्रवहणस्य अपत्यं ( शुभ्रादिभ्यश्च । पा ४।१।१२३) इति अपत्यार्थे ठक्। प्रवहण ऋषिका अपत्य, जैवल ऋषिका अपत्य । प्रावाहणेयक (सं० पु०) प्रावाहणेय-स्वार्थे क। प्रावाह-णेय, प्रावाहण ऋषिका अपत्य । प्रावाहणेयि (सं० पु० स्त्री० ) प्रवाहणस्य गोतापत्यं इज्, ततो वृद्धिः। प्रवाहण ऋषिका गोलापत्य। प्रावितः ( सं॰ ति॰ ) प्र-अव-तुण् । प्रकृष्टक्रवसे रक्षक, रक्षा करनेवाला। प्रावित ( सं ० क्षी० ) आश्रय, किसीके आश्रयमें रहना। प्राविष्ट्य ( सं॰ पु॰ ) क्रौञ्चद्वीपके एक खएडका नाम । प्राची (सं॰ ति॰ ) अवहित, सावधान। प्रावीण्य (सं० क्की०) प्रवीण-ध्यण्। प्रवीणता, कुश-लता । प्रावृट् (सं० पु०) १ वर्षाऋतु । २ पुनर्नवा । ३ अमृत-सारलौह । प्रावृद्कालवहा ( सं ० स्त्री० ) नदीभेद । प्रावृडत्यय (सं ० पु०) प्रावृषः अत्ययो नाशो यत । शरङ्-ऋतु । प्रावृत (सं ० ति०) प्रावियते-स्मेति प्र-क्षा-वृ-क । आच्छा-दन, ओढ़नेकाा कपड़। प्रावृति (सं ० स्त्री ० ) प्रावृणोति प्रकर्षेण आच्छादयति दृष्टिपथमनयेति प्र-भा-वृ-करणे-क्तिन् । १ प्राचीर, घेरा । २ मल जो आत्माकी दूक् और दूक्शिकको आच्छादन करता है। ३ आड़, रोक। प्रावृत्तिक (सं ० पु॰ ) प्रवृत्तौ हितः ठक्। प्रवृत्तिवाहक दूतभेद, वह दूत जो एक स्थानके समाचारको दूसरे स्थानमें पहुंचानेका काम करता है। प्रावृष् ( सं ० स्त्री० ) प्रकर्षेण आ-सम्यक् प्रकारेण च वर्ष-तीति प्र-आ-चृष्-िकप् प्रावर्णत्यत्नेति आधारे किप् वा,

वर्णणमिति वृद्, प्रकृष्टा वृङ्ख ( निह्चृतिवृपीति । पा ६।३।११६) इति पूर्वपदस्य दोर्घः। वर्षाकाल, श्रावण भौर भादमास ।

प्रावृपा (सं॰ स्रो॰) प्रायृप-हरून्तात् टाप् वा । वर्षाकार । प्रावृपायणी (सं • स्त्री•) प्रावृपायां भयनमुदुभवो यस्याः, गौरादित्वात् ङीप्। १ कपिकच्छु, मर्काटी, वानरी। २ विपखोपरा ।

प्रावृपिक (सं॰ पु॰) प्रावृपि वर्षाकाले कायति शब्दायते इति कै-क, अलुक्समासः। १ मथूर, मोर। (ति०) २ जो वर्षा ऋतुमें उत्पन्न हो। ३ वर्षाकाल सम्बन्धी। प्रावृषिज ( सं॰ पु॰ ) प्रावृषि जायते जन-ड, अञ्जक्स॰ । वह तीक्ष्ण वायु जो वर्षाकालमें चलती है, भंभावात। प्रावृषीण ( सं • ति • ) प्रावृषि भवः वाहुं ख । १ वर्षाकालः-भव, वर्षाकालमें उत्पन्न होनेवाला । २ वर्षाकाल-सम्बन्धो ।

प्रावृषेण्य ( सं॰ पु॰ ) प्रावृषि भवः, प्रावृट् देवतास्य वेति प्रावृष् ( काडेस्यो भववत् । पा ४|२।३४ ) इति एयय: । पा ४।३।।३) इति एण्यः । १ कवस्वयृक्ष । २ कुट ऱ-युक्ष, कुरैया । ३ घाराकदम्ब । ४ ईति । ५ वर्षाकालमें देय करादि, वह कर जो वर्षाकालमें दिया जाता हो। ६ प्रचुरता, अधिकता । 🧕 ( ति०) वर्षाकासमें उत्पन्न, वर्षाकालका ।

प्रावृषेण्या ( सं ० स्त्री० ) प्रावृषेण्य-टाप् । १ कपिकच्छु, केवाँच। २ रक्त पुनर्णवा।

प्रावृषेय ( सं० पु० ) १ देशभेद, एक देशका नाम। (ति०) २ वर्षाकालमें होनेवाला।

प्रायुष्य ( सं ० क्ली० ) प्रायृषि भवमिति यत् । १ वैदूर्थ । २ कुटज । ३ घाराकदस्य । ४ विकएटक । (ति०) ५ जो वर्षाकालमें हो।

प्रावेण्य ( सं० क्ली० एक प्रकारका ऊनी वस्त्र । प्राचेप ( सं ॰ ति ॰ ) प्रवेपी, कम्पनशील ।

प्रावेशन (सं क्ही ) प्रवेशने दीयते तत कार्यं व्युद्या-दित्वादण्। प्रवेशनमें कार्य।

मावेशिक (सं० ति०) प्रवेशाय साधुः ठञ्। प्रवेश-साधन, प्रवेश करनेमें सहायता देनेवाळा ।

प्रावाज्य ( सं॰ ति॰ ) प्रवज्या सम्बन्धी ।

Vol. XIV. 186

प्राश ( सं० पु० ) प्र-अश-भोजने-घञ् । प्ररूष्ट भोजन । प्राशन ( सं० क्की०) प्र-अश-भावे-स्युट् । १ भोजन, खाना । २ चखना ।

प्राशनीय (सं० ति०) प्र-अश-अनीयर्। प्रकृष्टरूपसे भोजनोय, खानेके योग्य ।

प्राशस्य सं । पु॰ ) प्राशसे हितः यत्। प्रकृष्ट भक्षणमें हित।

प्राशस्त्य ( सं॰ क्षी॰ ) प्रशस्त-ष्यण् । प्रशस्तत्।, प्रशस्त होनेका भाव।

प्राशास्ता ( सं॰ क्ली॰ ) प्रशास्तर्भावः कर्म वा उद्गादित्वात् अञ्। १ प्रशास्ता नामक ऋत्विजका काम । २ प्रशास्ता-का भाव।

प्राशित (सं क्की ) प्रकर्षेण अशितं यत । १ पितृयह तर्पण । २ भक्षण । ( त्नि० ) ३ मक्षित, खाया हुआ । प्राशितः (सं॰ ति॰) प्र-भश् तृच् । प्रकृष्टकपसे भक्षकः । प्राशित (सं॰ ही॰) यहोंमें पुरोडाश आदिमेंसे काट कर निकाला हुआ छोटा टुकड़ा जो ब्रह्मोद्देशसे अलग करके प्राशिताहरण नामक यञ्जपातमें रखा जाता है। यह भाग जौ वा पीपलके गोदेके वरावर निकाला जाता और प्रायः

नाक्की ओर काटा होता है। प्राशिताहरण (सं० ह्यों) प्राशितं हियतेऽनेन करणे ब्युट्। यज्ञके एक पातका नाम। यह गोकर्णके आकारका होता है और इसीमें प्राशित रखा जाता है। पुगिशितिय (सं॰ ति॰) प्राशित सम्बन्धी।

प्राशो (सं ० त्रि०) प्रकर्पेण अश्नाति-प्र-अश्-णिनि । प्रकृष्टकपसे भक्षक, खानेवाला ।

प्राशु (सं ० ति०) प्र-अश्-उन् । १ मक्षण, स्नाना। २ प्रकृष्ट, शोध ।

प्राश्टङ्ग ( सं ॰ ति ॰ ) प्रकृष्टं श्टङ्गमस्य वेदे दीर्घः । प्रकृष्ट-श्ङ्ग युक्त।

प्राश्निक (सं॰ पु॰) प्रश्नाय तदुत्तरप्रदानाय साधुरिति प्रश्न-ठक्। १ सम्य, सभाकी कार वाई करनेबाला। ( त्नि॰ ) २ प्रश्नकर्त्ता, पूछनेवाला ।

प्राश्नीपुत (सं॰ पु॰) यजुर्वेदीर्य धर्मप्रवत्त<sup>°</sup>क ऋपिमेद्। प्राश्य (सं॰ पु॰) अर्कप्रकाशके अनुसार वे पशु जो गांवमें रहते हैं। जैसे, गाय, भैंस, वकरी, भेड़ा, आदि।

प्राश्वमेघ (सं • पु॰ ) पूर्नेहत अध्वमेघ याग । प्राष्ट्रिष्ट ( सं ० ति० ) लघुवर्णद्वययुक्त : स्वरिद्देभेद । प्राष्ट्रमणे (सं ० पु॰ ) प्रकर्षेण प्रकृष्टः प्राप्ती वर्णः । श्नि-ं बर्णे, नाना वर्णे । 🕐 प्रास (सं• पु• ) प्रास्यते क्षिप्यते इति प्र-अस् ( इन्हरूच । ं पा ३।३।१२१ ) इति घञ् । कुन्तास्त्र, प्राचीनकालका एक प्रकारका भाला। इसमें सात हाथ लम्बी बांसकी छड लगतो है और दूसरो नोक पर लोहेका नुकीला फल रहता है। इसका फल वहुत तेज होता है जिस पर स्तवक चढ़ा रहता है, वरछी। श्रासकः (सं•पु•) प्रास-संज्ञायां खार्थे वा कन्। १ प्रासास्त्र, प्रास नामका अस्त्र । २ पाशक, पांसा । प्रासङ्ग ∙(सं• पु•) प्राज्यते इति प्र-सञ्ज-घञ्, उपसर्ग-स्येति दोर्घः। १ युग, हलका जुआ वा जुआठा जिसमें ं नये बैल निकाले जाते हैं। २ तराजूकी डंडी। ३ तुला, 'प्रासङ्किक ( स'० ति० ) १ प्रसङ्ग सम्बन्धी, प्रसङ्गका । २ ' प्रसङ्गागत, प्रसङ्ग द्वारा प्राप्त । 🐪 🗥 🖰 प्रासङ्ग्र ( सं ० पु० ) प्रसङ्घः वहतीति प्रासङ्घ-( तद्वहति रथप्रासं । पा ४।४।७६) इति यत्। युग-वहनकारो वृष, वह वैल जो जुआमें लगाया गया हो। प्रासच (सं • पु • ) १ आकृस्मिक प्रभूत वृष्टि, काफी वर्षा । "२ वन्या, वाढ् । प्रासन (सं ० क्ली०) विश्लेपण, फेंकना। ेत्रासह (:सं ॰ पु॰ ) शतुओंका प्रकर्ष रूपमें अभिभविता । प्रासाद (सं पु ) प्रसीदन्त्यस्मित्रिति प्र-सद ( इल । पा ें ३|१|१ २१) इत्याधारे घञ्। (उपसग<sup>8</sup>स्य यञ्च्यमनुष्ये बहुलं। पा ६। : । १२१ ) - इति उपसर्गस्य दीर्घः । ११ देवता : और - राजाओंका यह, पुराणोंमें केवल राजाओं और देव-ताओंके गृहको प्रासाद कहा है। 🏧 😅 "प्रासादानां लक्षणन्तु वक्ष्ये शौणक ! तच्छु णु । 🖰 🏥 🐃 चतुःपष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्ष्पलक्षितम्॥ 🦥 ः 🙃 🏸 ः (ःगर्हडुपु० ४७ अ० ) देवप्रासादका विषय-गरुडपुराण, अग्निपुराण और · विश्वकर्म आदि प्रन्थोंमें सविस्तार लिखाःहै । 🗇 🕬 । अति अञ्चल हेन्या र अर्थेष्ट अवार संध्**दे वयह दिखी ।** 

२ बहुत वेड़ा मकान, महल 🕛 ३ - महलकी निही, ं कोंठेके ऊगरकी छत । 8 बौद्धोंके सं घाराममें बहु बड़ी शाला जिसमें साधुलोग एकत होते हैं।.. . . . . . प्रासादकुम्कुट ( सं ० पु॰ ) प्रासादस्य देवभूभुजो गृहस्य कुक्कुटइच, सर्वदा प्रासादविचारित्वाद्स्य तथात्वं । पाराचत, कवृतर। प्रासादपरामन्त ( सं ० पु० ) मन्त्रभेद् । प्रासाद्प्रस्तर ( सं ॰ पु॰ ) प्रासाद्तल, घर (थादिकी स्म-प्रासादमण्डना (स'० स्त्री०) १ प्राचीन कालका एक प्रकार-का रंग । इस रंगसे प्रासादके ऊपर रँगाई होती थी। यह पीला या लाल होता था और इसकी रंगाई बहुत दिनों तक टिकती थी। २ हरिताछ । 👉 प्रासादश्रङ्गः ( सं ० क्षी०) प्रासादका चूड़ादेशः राजभवन-का शिखर। प्रासादारोहण (.सं॰ ऋी॰ा) प्रासाद वाः अट्टालिका्में प्रवेश। 🦠 25. James . .. प्रासादिक (सं ० ति०) १ दयाञ्ज, ऋपाञ्जा २ ह्यान्तर, अञ्छा । ३ जो प्रासादमें दिया जाय । ४ प्रासाद-सम्बन्धी । प्रासादीय (सं ० ति०) प्रासाद सम्पर्कीय । प्रासाह ( सं ० स्त्री० ) प्रबल, वलवान्। 🖖 🚉 🙌 प्रासिक (सं • पु• ) प्रासः प्रहरणमस्येति प्रास-(प्रहर्-णम् । पा ४।४।५७) इति ठक्। प्रासास्त्रधारी, बह जिसके टपास प्रासःया भाला हो ।ः इसका पर्यायःकौल्तिकः**है**, k प्रासेनजिती (सं ० स्त्री०) प्रसेनजितका कन्यापत्य । प्रासेव ( सं ० पु० ), अध्वसजाका अङ्गमेद, वह रस्सी जी ्योड्ने साजमें समिलित हो।.. 🕬 👉 🗁 🕃 प्रास्कण्व ( सं ० स्त्री० ) १ प्रस्कण्व सम्बन्धीय । (क्ली० ) २,सामभेद् 🗀 🕫 👵 🗀 प्रास्तारिक (सं ० ति०) प्रस्तारे ब्यवहरति-डक्। 📲 जिसकाः व्यवहार प्रस्तारमें हो। २ प्रस्तारसम्बन्धीं वि प्रारुथानिक ( सं ० ति० ) प्रस्थाने साधुः ठञ् । वह प्रार्थे . जी प्रस्थानके सुमय मङ्गलकारक माना जाता हो । जैसे, शङ्क्षकी ध्वनि, देहीं; मछली आदि । 😘 🧐 🔠 प्रास्थिक ( सं ातिका) प्रस्थ-( सम्भग्यवहरंति प्रवतिनाम his 1115, 186

शशास्त्र ) इति ठण् । १ प्रस्थ सम्बन्धीः। २ जो प्रस्थके हिसाबसे खरीदा गया हो। 📑 अवहारक। 🔞 पाचक। ( क्ली॰ ) ५ प्रस्थमित धान्यवपनाधारक्षेत्र, भूमि । प्रस्थपरिमित धान्यादि समावेशक । ७ प्रस्थके निमित्त । ८ प्रस्थका संयोग। 🕫 प्रस्थका उत्पात । त्रास्पेन्टस् ( अ ॰ पु॰) वह छपा हुआ पत जिसमें आरम्भ होनेवाले किसी बड़े कार्यका विस्तृत विवरण और उसकी कार्यप्रणाली आदि दी हो। प्राप्नवण (सं॰ ति॰ः)१ प्रस्रवणमें उत्पन्न। (पु॰)२ प्रसम्णका अपत्य, सरस्तती ,नदीका उत्पत्तिस्थान। प्राह् (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण आहेति शब्दोऽत्र । नृत्योप-देश 🏋 🔭 🥕 प्राहारिक (सं ॰ पु॰) नगररक्षक कर्मचारिविशेष, पहरुआ, चौकीदार। प्राहुण ( स**ं० पु∙** स्त्री० ) अतिथि, मेहमान, पाहुना । ∙ प्राहृतायन ( सं ० पु० ) प्रहृतस्य गोतापत्यं अभ्वादिभ्यः क्ष्म । ( पर प्राराहर ) प्रदतका गोलापत्य । प्राह्व (सं• पु॰)-पृथमञ्च तद्दृह्चेति ( राजाहःसिक्षम्यस्य च्। पा पाधारः) इति टच् । महोही पर्तेभ्या । पा धाधा०० अतः अहोदेशः । ( भद्गोऽदन्तात् । पा ८।४।० ) इति णत्यं । , १ पूर्वोहः । २:तद्भिमानिनी देवता । (ति०) ३ प्रकृष्ट-द्नियुक्त। शाहः (सं व अन्य ) पूर्वाहमें। प्राह्मेतन ( सं ॰ ति ॰ ) प्राह्मे भवः (सायं चितं प्राह्मः प्रगेऽ-्ष्युपेभ्यप्दुदुव्ली तुट्च । ्पा शश्चिश्च) इति-टयु, तुट्य । पूर्वाहसम्बन्धी । प्राह्ने तरां (सं॰ भन्य॰) द्वयोरतिशयेन प्राह्ने 'किमेव्याच्च्या-द्रयं चतरा चतमां इति मुग्धवोधस्त्रात् चतरां। अति-शिय पूर्वाह प्राह्मद ( सं • पु • ) प्रदृाद अर्थात् विरोचनकी सन्तान । प्राह्मदि (स'• पु•') प्रह्मदिका अपत्य । पिटर ( अ'० पु० ) १ वह जो किसी छापेखानेमें रह कर ैंछापनेका काम करता हो, छापनेवाला । २ वह जो किसी छापेखानेमें छपनेवाली चीजोंकी छपाईका जिम्मेदार हो / 'प्रिटिंग ( अ़∙.स्त्री० ) छापनेका काम, छुपाई । विटिग़इ क ( अ र्व , छो(०, ) टाइप्के छापनेको स्यादी । ,,

प्रिटिंगप्रेस ( अं ० स्त्री० ) सीसेके अक्षर या टाइप छापने-की वह कल जो केवल हाथसे चलाई जाती है। मुद्रायन्त्र देखी । प्रिटिंगमशीन (अं ० स्त्रो॰) सीसेके अक्षर या टाइप छापने-की कल। यह साधारण हाथकी कलकी- अपेक्षा बहुत अधिक काम करतो है और जो हाथ तथा इंजिन दोनोंसे चलाई जा सकती है। मुदायन्त्र देखो। प्रिस ( अ ॰ पु॰ ) राजकुमार, शाहजादा । प्रिस आव वेव्स (अं० पु०) इङ्गलैएडके राजाके बड् लड़केकी उपाधि, इङ्गल एडके युवराज । प्रिंसिपल (अं॰ पु॰) १ किसी वड़े विद्यालय या कालिज आदिके प्रधान अधिकारी। २ वह मूलधन जो किसीकी उधार दिया गया हो और जिसके लिये व्याज मिलता हो। प्रिय (सं ॰ पु॰) प्रीणातीति त्री (इग्रवधझाप्रीकृत: कः। पा है।१।१३५) १ भर्ता, खामी। २ जामाता, दामाद। ३ कार्त्तिकेय, खामिकर्तिक। 8 मृग्विशेष, एक प्रकारकाः हिरन। - ५ ऋदिनामौपध, ऋदि नामकी ओपधि। ६ जीवक नामकी ओपिथ । ७ धर्मातमा और मुमुक्षुओंको प्रसन्न करनेवाला और सवकी कामना पूरी करनेवाला ईश्वर । ८ हित, भलाई । ६ वेतसलता, वे त । १० हरिताल । ११ प्रियङ्ग, कँगनी । १२ धाराकदम्व । (ति०) १३ जिससे प्रेम हो, प्यारा। १४ मनोहर, जो भला जान पड़ें। प्रियंवद (सं ० पु०) प्रियं वदतीति वद (प्रियनशे बदः स्वन् । पा ३।२।३८) इति खच् मुम् । १ खेचर, आकाशचारी । .२ गन्धर्वेभेद् । (ब्रि॰)३ प्रियभाषी, मधुर ब्रन्नन बोळनेवाळा । दानसागरमें ळिखा है, कि जो सहस्र गो अथवा भूमि या सुवर्ण दान करते हैं, परजन्ममें वे ही प्रियवादी होते हैं। प्रियंवदा (सं.० स्त्री०) १ प्रियवादिनी । २ द्वादश अक्षर-पादक छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें वारह अक्षर रहते हैं। ३ शकुन्तलाकी एक सखीका नाम। ४ जाति-पुष्पवृक्ष । प्रियक (सं० पु॰) प्रिय स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १

पीतशालक वृक्ष, पियासाल नामका पेड़ । २ केलिकदम्ब,

कदमका पेड़ । ३ घाराकदम्व । ४ महाकदम्व । ५ विलेश्य मृगविशेष, चितकवरा हिरन जिसके रोएँ रंग विरंगे, मुलायम, वड़े और चिकने होते हैं। ६ पक्षिविशेष । ७ अलि, भौरा । ८ प्रियंगु, कँगनी । ६ छुङ्कुम, केसर । १० असन वृक्ष । ११ तिन्दुकवृक्ष । १२ स्कन्दानुचर-विशेष ।

प्रियकर ( सं ० ति ० ) प्रिययोग्य।

वियकर्मन् (सं० क्ली०) प्रियं कर्म कर्मधा०। हितकार्यं, हितकर्म।

प्रियकाङ्क्षी (सं ० ति०) शुभाभिलापी, भला चाहनेवाला, हितकारी।

प्रियकाम ( सं ॰ लि॰ ) प्रियः कामी यस्य । हिताभिलापी, भला चाहनेवाला ।

प्रियकाम्य (सं॰ पु॰) १ उद्धिहमेद । (Terminalia Tomentosa) २ पीतशालवृक्ष ।

प्रियकार (सं॰ ति॰) हितकारी, शुभचिन्तक।

प्रियकारक (सं० ति०) हितकारक ।

प्रियकारिन् (सं० ति०) प्रियं करोति प्रिय-क्र-णिनि । हितकारोमात ।

प्रियकृत् (सं ० ति ०) प्रियं करोति कृ-किप्-तुक्च। १ प्रियकारी। (पु०) २ विष्णुका एक नाम।

प्रियकोशल (सं० पु०) १ पियालवृक्ष । २ अक्किका वृक्ष । प्रियक्षत (सं० ति०) प्रीणयित्वल, जो प्रणयके साथ शासन करें।

प्रियङ्कर (सं० ति०) प्रियं करोतीति प्रिय-क्-(धेमिष्रयम्थे-ऽण्च। पा ।।२।४४) इति चकारात् त्वच् मुम्। १ प्रियकारक। (पु०) २ दानविवशेष, एक दानवका नाम। ३ वृहजीवन्ती, वड़ी जीवंती। ४ खेतकएडकारी, सफेद मस्कटैया। ५ अध्वगन्धा, असगन्य।

प्रियङ्करी ( सं ० स्त्री० ) प्रियः हुर हेखो ।

प्रियङ्करण (स'० क्ली०) अप्रियं प्रियं करोत्यनेन क्र-करणे च्युन्, मुम्च्। अप्रियको प्रियता करण, नाखुराको खुरा करना।

प्रियङ्गं (सं क्षी ) प्रियं गच्छतीति प्रिय-गम-मृगय्वादि-त्वात् कुप्रत्ययेण साधुः । १ खनामख्यात गन्व तृण-विशेष (Aglaia Roxburghiana) संस्कृत पर्याय— श्यामा, महिळाह्या, ळता, गोवन्दनी, गुन्दा, फिलनी, फली, विष्वक्सेना, गन्धफली, कारम्मा, विवक, व्रिय-चल्ली, फलप्रिया, गौरी, बृत्ता, कङ्गु, कङ्गु, नी, भंगुरा, गौर-वही, सुमगा, पर्णभेदिनी, शुभा, पीता, मङ्गल्या, श्रेयसी । भारतवर्षकं पश्चिमोपक्रूळवर्त्तीं देशोंमें, कोङ्कणसे मेदिनीपुर पर्यन्त विस्तृत स्थानीमें, सिहलके ६ हजार ऊ चे स्थानी-में, सिङ्गापुर, यवद्वीप, सुमाता, मलयद्वीपपुञ्जमें यह वृक्ष पाये जाते हैं। इसका फल मोठा होता है। अनिद्ग्ध, गातक्षतमें यह शीतल, ज्वाला उपशमकारी और क्षत-नाशक माना गया है। फलका गुण—धारक और **बिदोपनाशक, इसका गुण—शीतल,** पित्त, अस्तदोष, भ्रम, वमन, ज्वर और वक्त जाड्यनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण-तुवर और अनिल-नाशक, रक्तातियोग, दौर्गन्ध, स्वेद, गुढ़म, तृष्णा, विपदीप और मोहनाशक । २ राजिका । ३ पिप्पली · ४ कङ्गु । ५ कटुको । ६ घातकी ।

प्रियङ्ग्वम्बप्रादिवर्गं (सं॰ पु॰) प्रियंगु और अम्बप्रादिगण। प्रियजन (सं॰ पु॰) प्रियो जनः। १ हद्यलोक, प्रियन्यकि। २ पौढ़भावश्च।

प्रियजात त्सं ० लि०) १ जातमात ही प्रिय, जी जन्ममात-से ही सर्वोका प्रियकर हो । (पु०) २ अग्निका नामान्तर, अग्निका एक नाम ।

प्रियजीव (सं॰ पु॰) प्रियजीवो यस्य यस्मिन् वा । ेश्योनाक वृक्ष, सोनापाठा ।

प्रियतन्तु (सं ० त्रि०) प्रिया तनुर्थस्य। जिसका शरीर अत्यन्त प्रिय हो।

प्रियतम ( सं ॰ पु॰ ) १ मयूरिशखा वृक्ष, मोरिशखा नामका पेड़ । २ खामी, पति । (ति ॰) ३ प्राणोंसे भी बढ़ कर प्रिय, सबसे अधिक प्यारा ।

प्रियतर (सं ० ति ०) अयमनयोरतिश्येन प्रियः प्रिय-तरप्। दो में जो अधिक प्रिय हो।

प्रियता (सं ० स्त्री०) प्रियस्य भावः तल्-टाप् । प्रिय होने-का भाव ।

प्रियतोपण (सं॰ पु॰) प्रियस्य तोषणं यस्मात्, वा प्रियं तोषयतीति तुष-णिच् त्यु । १ सोलह प्रकारके रतिवंधींके

् अतिरिक्त रतिवंधविशेष ( (ति १) २ प्रियष्यक्तिको प्रसन्न . करनेवाळी ।

प्रियत्व ( सं ० क्वी० ) प्रियस्य भावः प्रिय-त्व । प्रियता । पर्याय-प्रोम, प्रोमा, स्नेह, प्रणय, हार्द, प्रियता, स्निग्धता। प्रियद (सं ० ति०) प्रियं ददाति दान्त । प्रियवस्तुदानकारी, .जो प्रियवस्तु दे ।

प्रियदत्ता (सं० स्त्री०) पृथिवी ।

"नामास्याः त्रियद्त्तेति गुद्यं देख्याः सनातनम् । दाने वाऽव्यथवादाने नामास्याः प्रथमं प्रियम्॥ य पतां विदुवे द्यात् पृथिवी पृथिवीपतिः। पृथिन्यामेतदिष्टं स राजा राज्यमितो व्रजेत्॥"

(भारत ६२ अ०)

सबेरे विछावनसे उठ कर 'भियद्क्ताचे भुवे नमः' यह वाक्य उद्यारण करनेके वाद पहले दाहिने पैरको जमीन पर रखना चाहिये।

प्रियदर्शन ( सं ० त्रि० ) प्रियं वर्शनं यस्य । १ सुद्रुश्य, जो देखनेमें व्यारा लगे, सुन्दर। (पु॰) २ शुक पक्षी, तोता। ् ३ क्षीरिका बृक्ष, खिरनीका पेड़। ४ गन्धर्यविशेष, एक गन्धर्वका नाम ।

प्रियद्र्शिन् ( सं ० ति० ) प्रिय-द्र्श-णिनि । प्रियद्शैनकारी, सवको प्रिय देखते या सममानेबाला।

प्रियदर्शी (अशोक)—भारतके एक विख्यात सम्राट्। थे 'अशोक' नामसे ही संर्वत परिचित हैं। किन्तु यह 'भशोक' नाम उनके किसी अनुशासनपत्नमें अथवा साम-यिक प्रन्थमें नहीं मिलता। यही कारण है, कि एक दिन अध्यापक विलसन साहवने प्रियद्शीं और अशोक दोनोंकी अभिन्नताके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट किया था। किन्तु सिहलके दीपबंश नामक प्राचीन पालि अन्यमें अशोकके 'पियदस्सि' और 'पियदस्सन' ये दोनों ही नामान्तर छिन्ने मिछते हैं। पर सर्वेजनपरिचित 'अशोक' नाम उनके वहुसंख्यक शिलानुशासनमेंसे किसी में जो नहीं है, इसीसे लोगोंको सन्देह अवश्य होता है।

दो विभिन्न ओरसे हम लोग अशोक वा त्रियव्शीकी संक्षिप्त जीवनी पाते हैं। एक उनके राजत्वकालमें . उन्हीं के आदेशसे उत्कीणे वहुसंस्थक शिलालिपिसे और बुसरे वीद तथा जैन धर्मप्रनथसे । किन्तु दुःसका विषय

Vol. XIV. 187

है, कि प्रन्थगत विवरणके साय उनके अनुशासन लिपियोंको एकता नहीं है। इसीसे मालम होता है, प्रियदर्शी और अशोकके अभिन्नत्व-सम्बन्धमें किसी किसीने संदेह प्रकट किया है।

वौद्धयन्यमें अशोकः। परिचर ।

अशोकावदान और दिज्यावदानके मतसे शाष्यवुद्धके राजा विग्विसार, उनके छड़के अजातशृह्य, अजातके छड़के उदायी वा उदयीश, उदयीशके लड़के मुएड, मुएडके लड्के काकवर्णीं, काकवर्णींके सहली, सहलीके तुलक्कचि, तुलकुचिके महामण्डल, महामण्डलके लड्के प्रसेनजित्, प्रसेनजित्के लड्के चन्द और चन्दके लड्के विन्दुसार थे। इन्हीं त्रिन्दुसारके पुतका नाम अशोक था। वड़े हो आक्वर्यका विषय है, कि अवदानप्रस्थाने अशोकके पिता-मह चन्द्रगुप्तका नाम तक भी नहीं आया है। चन्द्रगुप्त का नाम नहीं रहनेके कारण कोई कोई फिर अनुमान करते हैं, कि बन्द्रगुप्तके साथ मीर्थवंशका आविर्माव और तिरोभाव होता है। अशोकके साथ चन्द्रगुप्तका कोई सम्बन्ध न था । इधर हिन्दू, जैन और वौद्धप्रन्थमें चन्द्र-गुप्तको अशोकके पितामह वतलाया तो है, पर प्रियव्शी-के निज अनुशासनोंमें उनके पिता वा पितामहका कहों भी नामोल्लेख नहीं है ।

#### जन्मक्या ।

पूर्वोक्त दोनीं भवदानोंमें लिखा है—चम्पा नगरीमें किसी ब्राह्मणके घर एक परमासुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। एक देवज्ञने कन्याको देख कर कहा था, 'यह कुमारी राज-रानी और राजमाता होगी ।' धनका छोम सबसे वड़ा लोभ है। ब्राह्मण लोभमें पड़ गये। जब कत्या ब्याहने योग्य हुई ; तब वे उसे हो कर पाटळीपुत आये और राजा बिन्दुसारको प्रदान किया । विन्दुसारने ब्राह्मण-कन्याको राजान्तः पुरमें भेज दिया। उसका रूप देख कर राजमहिषियोंकी आँखें स्थिर रह न सकी। उन्होंने सोचा कि यह रूप पानेसे कभी भी सम्मव नहीं, कि राजा हम छो नेंको चाहै ने। सर्वोने सलाह करके उस ब्राह्मण-वालिकाको नाइन बना कर रखा और उसे झीरकमँकी शिक्षा देने लगीं। कुछ दिन इसी प्रकार गुजर गये। वह त्राह्मणकन्या राजा विन्तुसारको हजामत करके अपना

गुजारा चलाने लगी। एक दिन राजाने वड़े प्रसन्न हों कर उससे कहा, में तुभ पर वड़ा प्रसन्न हुआ हूं, क्या चाहती हो ? वोलो । में तुम्हारा अभिलाप पूरा कर दूंगा। इस पर ब्राह्मण-वाला सिर भुका कर धीरे घीरे वोली, में सिर्फ आपको चाहती हूं और किसीको नहीं।' इस पर राजाने कहा, 'सो क्यों ! में क्षत्रिय मूर्डामिपिक हूं और तुम एक नाइन, में तुभे किस प्रकार व्याह सकता ? ब्राह्मण कुमारीने उत्तर दिया, 'में नाइन नहीं, ब्राह्मणकन्या हूं। आपकी पत्नी होनेके लिये हो पिता मुक्ते यहां दे गये हैं।" पुरमहिलाओंने ह्रे पवशतः मुक्ते नाइनका कार्य सिखाया है। इसके वाद राजाने ब्राह्मणकन्याको कामना पूरी की। अव वह दरिद्र ब्राह्मणकन्या हो पटरानी हुई। यथासमय उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, अशोक और विगतशोक वा वीतशोक।

भशोकके पहले पटरानीके गर्भसे विन्दुसारके सुसीम नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया था।

जव तक्षणिला नगरवासियोंने विन्दुसारके विषद अल्लाधारण किया, तब विन्दुसार वहीं पर अशोकको छोड़ भागे। अब अशोक राहमें दलवल संग्रह कर तक्षशिला-में जा धमके। नगरवासियोंने विना युद्धके हो उन्हें तक्ष-शिला नगर समर्थण किया और उनकी खूब खातिर की।

इभर विन्दुसारके प्रधान मन्त्री खल्लाटकने ज्येष्ठ राज-कुमार सुसीमके आचरणसे विरक्त हो उन्होंको तक्षशिला मेज दिया और अशोकको राजा बनानेके अभिप्रायसे राजधानीमें बुला मंगाया।

अभी चिन्दुसारकी आयु शेष हो चली थी। अमात्योंने अच्छी तरह सजधज कर अशोकको उनके सामने ला खड़ा किया और जब तक सुसीम लीट न आये, तब तक उन्हींको राजपद प्रदान करनेका अनुरोध किया। जब अशोकने पिताको बेचल देखा तब उन्होंने जोर शब्दोंमें कहा, 'यदि धर्म है, तो मैं ही राजा होऊँ गा' आलिर हुआ भी वही। देखते देखते राजाके मुखसे रक्तकी धाग बहने लगी जिससे वे पश्चत्वको प्राप्त हुए।

अव अशोक सम्राट् के क्यमें पाटिलपुतके सिंहासन पर वैढे। राधगुप्त उनके मन्त्री हुए। तक्षशिलामें सम्बाद भेजा गया। जब सुसीमने सुना, कि पिता इस लोकसे चल वसे और अशोकने पितृसिंहासन पर अधिकार कर लिया है, तब वे फौरन दलवलके साथ पाटलि-पुतके लिये रवाना हुए। इधर अशोक भी डटे हुए थे। नगरके प्रथम द्वार पर एक नग्न, तृतीय द्वार पर राधगुप्त, चतुर्थ द्वार पर स्वयं अशोक उपस्थित रहे। द्वारके सामने एक गद्द्वा सोद्याया गया और खद्दिर तथा अंगार-से भर कर उस पर अशोक-मूर्त्ति रखी गई।

सुसीमने समभा था, कि अशोकको मार सकने पर ही वे राजा होंगे, अन्यथा नहीं। इस ख्यालसे वे अशोकके साथ युद्ध करनेके लिये पूर्वद्वारमें घुसे। घुसते ही वे अङ्गारपूर्ण गष्ट्देमें गिर पड़े और पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

अशोक राजप्रतिष्ठित हुए तो सही, पर वे अमात्योंके प्रति विशेष अवझा दिखलाने लगे। एक दिन राजाने अमात्योंसे कहा, 'तुम लोग फलफूलका पेड़ काद कर ऊपरसे जल देते हो।' अमात्योंने राजाके प्रतिकृत उत्तर दिया। इस पर अशोक बड़े विगड़े और पांचों मंतियोंने जो वहां खड़े थे सिर कटवा डाले।

भशोककी कठोरता दिनों दिन वढती गई। उन्होंने एक रमणीय वधागार वनवाया । ऋएडगिरिक नामक एक तांतीका लड़का उस वधागारका रक्षक नियुक्त हुआ। मानवका जीवन छेना ही उसका श्रीतजनक कार्य था। सैकड़ों व्यक्तिके उस बचागारमें प्राण गये। कुछ दिन वाद समुद्र नामक एक साधु भिक्षाकी आशासे नरकालय-में घुसा। जो उस्र[घरमें]जाता था, वह प्राण खो वैडता था, दूसरे दिन लौटने नहीं पाता । परन्तु इस वार कई दिन वीत गये, पर साधुका जीवन नष्ट नहीं हुआ। हुवुँ त चएडगिरिक भौचक-सा रह गया, उसने साधुके प्राण हेनेके लिये यथेए चेएा की, पर साधुके प्राण न निकले। चएडगिरिकने राजासे इसकी खबर दी। राजा स्वयं साधुको देखने आये। वे क्या देखते हैं, कि उस साधुके आधे शरीरसे जल गिरता है और आधेमें आग धधकती है। इस पर राजा बड़े विस्मित हुए और कौतूहलप्रयुक भिक्षका परिचय पूछा। भिक्ष्ते उत्तर दिया, "मैं उन परम कारुणिक धर्मान्वम बुद्धका पुत हूं, संसारके महा-भय भववन्धनसे मुक्त हुआ हूं । महाराज्ञ ! सुनिये ! भग-वान कह गये हैं, 'मेरे परिनिर्वाणके सौ वर्ष वाद पाटिल-

पुतनगरमें अशोक नामक एक राजा होगा। वहीं वितुर्भाग चक्रवर्ती धर्मराज मेरे शरीरधातुका विस्तार करेगा, ८४०० धर्मराजिकाकी प्रतिष्ठा करेगा। अतएव हे नरेन्द्र! इन सव दुवृं तियोंका परित्याग कर उसी नाथकी पूजा करो और धर्म फैलाओ।"

राजा वड़े विचलित हो गंधे। बुद्धके नामसे उनके हृद्यमें चित्तप्रसाद उपस्थित हुआ, उन्होंने हाथ जोड़ कर भिक्षू कसे कहा, 'दशवलस्तृत! मुक्ते क्षमा कीजिये! मैंने आजसे बुद्धगण और धर्मकी शरण ली।' अनन्तर राजाने सम्मानपूर्वक भिक्षु को विदा किया। अव अशोककी विधरिपपासा जाती रही, उस नरिपशाच चएडिगिरिकका और उस रमणीय बधागारका अस्तित्व लुप्त हो गया। अव चएडिग्शोक धर्माशोक नामसे पुकार जाने लगे।

अज्ञातशतुने जो द्रोणस्तूप वनवाया था, उसे इन्होंने तोड़वा डाला और उसमेंसे शरीरघातु निकाल कर नागोंकी सहायतासे रामग्राममें एक सुबृहत् स्तूप बनवाया। इसके बाद नाना स्थानोंमें नाना-घातुगर्भ सुवर्ण, रजत, स्फटिक और वैदुर्यरचित चौरासी हजार करएडकी स्थापना की गई।

अशोक धर्मोन्मत्त हो उठे। एक दिन इन्होंने स्थविर-यशासे कहा, 'में एक दिनमें चौरासी हजार धर्मराजिका स्थापन करना चाहता हूं सो मेरी इच्छा पूरी करी।' स्थविरयशाने भी अपनी बुजुगी दिखला दी। अशोक-राजका मनोरथ पूरा हुआ। इस समयसे वे धर्माशोकके नामसे प्रसिद्ध हुए।

पक दिन अशोकने सुना, कि मधुरामें उपगुप्त नामक पक स्थिवर रहते हैं, उनके समान न्यायशास्त्रक दूसरा कोई नहीं है और न उनके समान कोई वुद्धभक्त हो है। राजाने उनके दर्शनकी इच्छा प्रकट की। अमात्यवर्गने उपगुप्तको चुला, लानेके लिये दूत भेजना चाहा; परन्तु राजाने इसे अच्छा नहीं समना। ये स्थयं उनसे मिलने जायेंगे, इस प्रकार उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया। उपगुप्तने भी जब सुना, कि मौर्थसम्राट् उनसे मिलने आ रहे हैं, तब वे उनके धर्मानुराग पर बड़े सन्तुष्ट हुए और नाव पर चढ़ कर मधुरासे पाटलियुत पहुंच गये। राजपुष्ठपने उपगुप्तने भे पदार्पणका सम्बाद राजासे कहा। मौर्थराजने अप-

गुप्तके आगमन-सम्बादको घोपणा करनेके लिये घंटा वजानेका हुकुम दिया। राजाके आदेशसे पाटलियुल-नगरी विशिष्टशोमासे सुशोमित हुई। सम्राट् खर्य शेषरातिको उठ कर एक योजनपथसे उन्हें अपने साथ लिया लाये। उपगुक्तके दर्शनसे ही अशोकने अपनेको कृतार्थ समन्ता। उपगुक्तने अशोकको अपने साथ ले कपिलवहतु, भागवाश्रम, बाराणसी, आदि बुद्धके समस्त लीलाक्षेत दिखला दिये थे। उन सब पवित बौद्धक्षेत्रों-में सम्राट्ने बुद्धकी अर्थना और उनके स्मरणार्थ स्तूपादि बनवा दिये।

अशोकने जिस समय ८४००० धर्मरजिकाकी प्रतिष्ठा की, उस समय देवी पद्मावतीके गर्भसे धर्मवर्द्ध न नामक उनके परम क्रपवान् एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्रकी आँखे कुणाल पक्षीकी सी थीं, इस कारण अशोकने उसका 'कुणाल' नाम रक्षा था। आगे चल कर वहीं आँखें उनके दुश्मन हो गईं। कुणालने युवावक्थामें कदम बढ़ाया। अशोककी प्रधान महिषी तिष्यरक्षिता उन नेतोंको देख कर कुणाल पर अनुरक्त हो गई। एक दिन रानीने कुणालको अकेलेमें पा कर उनके निकट अपनी असिवच्छा प्रकट की। कुणालने अपने दोनों हाथोंसे दोनों कान मूंद कर कहा, 'माताजी! ऐसी धर्मविचद्ध वातें फिर मुक्ते सुनतेका अवसर न दें। धर्मलीपकी अपेक्षा मेरा मरण हो मङ्गल है।' तिष्यरिक्षताकी मनस्कामना पूर्ण न हुई। तभीसे वे सन्तु वांध कर मुणालके पीछे पह गईं।

इधर तक्षणिलामें विद्रोहानल धधक उठा। उसे शान्त करनेके लिपे अशोक विलक्कल तैयार हो गये, पर मन्त्रिवर्गके कहनेसे उन्होंने कुणालको ही महासमारोहसे तक्षणिला भेज दिया।

कुछ दिन वाद अशोक कठिन रोगसे आकान्त हुए। उनके मुखसे विद्या निकलने लगी, कोई भी इस रोगका चिकित्सा न कर सके। अव राजाने कुणालको राज-सिंहासन पर अभिषिक्त करनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुन कर तिष्यरिक्षता बोली, 'यह ऐसा होगा, तो में अवश्य प्राण दे दूंगी।' उन्होंने राजासे कहा, 'मैं आप-का रोग दूर कर दूंगी, पर याद रहे अभी यहां कोई भी

वैद्य आने न पावे।' राजा इस पर राजी हो गये। इधर रानीने वैद्यको बुला कर कहा, वैद्यराज ! अभी आप एक ऐसा आभीर खांज लावें जिसकी भी अवस्था राजा-सी हो। वैद्यने तुरत हुकुम तामिल कर दिया। रानीने उस आभीरको एक गुप्त स्थानमें ला कर उसका पेट फाड डाला और पाकाशयकी परीक्षा की । उन्होंने देखा, कि उसकी आंतमें असंख्य कीड़े किलविल कर हैं। मिर्च, पीपर, श्रुक्षवेर आदिसे भी वे कीड़े नष्ट नहीं हुए। आखिर पलाण्डुका (याज) रस देते ही सब कीड़े मर मर मलद्वारसे निकलने लगे। रानीने अशोकराज-से कहा, 'आपको अब चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं, उप-युक्त औपध मिल गई है। पलाण्डू ही आपका जीर्वनरक्षक है, आपको वही खाना पड़ेगा।' राजाने कहा, 'मैं क्षतिय हु, किस प्रकार पलाण्डु खा सकता।' तिष्यरक्षा वोली, 'जीवनरक्षार्थ औपधस्तरूप पलाण्डु सानेमें कोई दोप न होगा।' पीछे पलाण्डुके सेवनसे राजाने आरोग्य-लाभ किया। इस प्रकार रानीके हाथसे प्राणदान पा कर अशोकने उन्हें सात दिनके लिये राज्यभार प्रदान किया।

दुएमित तिष्यरिक्षताको अव वदला चुकानेका अच्छा मौका हाथ लगा। उन्होंने अशोकके नामसे तक्षशिला-वासी जनसाधारणको हुकुम दिया, 'मौर्यकुलकलङ्ग कुणालकी दोनों आँखे निकाल लो।'

ऐसा निदारण आदेश पा कर सभी तक्षशिलावासी नितान्त दुःखित हुए। कुणालका चरिल अति विशुद्ध, और शान्त था, वे सवोंके प्रिय थे। उनके अनिष्टसाधनमें सभी विमुख हो गये और राजाकी घोर निन्दा करने लगे। कुणालने वह पल पढ़ा और अपने हाथोंसे दोनों नेल उखाड़ कर पिताका आदेश पालन किया। यह देख कर सभी हाहाकार कर उठे। परन्तु उस शान्तमूर्ति द्रहवेता कुणालका मन जरा भी विचलित न हुआ।

तक्षशिला आनेके पहले ही काञ्चनमालाके साथ कुणालका विवाह हुआ था। प्राणिपयतम कुणालके चित्तविमोहन दोनों नयन अपहत हुए देख वे अचेत हो हो पड़ी। भार्याको शान्त करके भिखारीके वेशमें कुणालने पत्नीका हाथ पकड़ तक्षशिलाका परित्याग किया, अव कुणाल रास्ते रास्ते चीणा वजाये जाते थे, साधमें एकमाल काञ्चनमालाके सिवा और कोई न था। भिक्षा ही दोनोंको उपजीविका थी। अव कोई भी उन्हें पह-चान न सकने थे। यहां तक, कि द्वारपालने भो उन्हें राजप्रासादमें घुसने न दिया। एक दिन वहुत तहके के राजप्रासादके पास ही वैठ कर वीणा वजा कर गाने लगे, 'यदि इस भवसागरसे पार होना चाहो, यदि इस मिध्या संसारके दोपोंसे वचना चाहो, यदि देश व सुल पानेकी इच्छा रहे, तो शीव्रही इस आयतनका तथाग करो —त्याग करो ।'

यह मीटा स्वर अशोकके कानों तक पहुंचा! उन्होंने उसी समय स्थिर कर लिया, कि यह स्वर उनके प्रिय पुत कुणालके सिवा और किसीका नहीं हो सकता! उन्होंने फौरन कुणालको लानेके लिये आदमी भेजा! कुणाल स्त्रीके साथ राजाके समोप उपस्थित हुए। अशोक नयनरञ्जन पुत्रको नयनहीन देख मूर्च्छित हो पड़े। कुछ समय वाद राजा जव होशमें लाये, तव कुणालको अपनी गोदमें ले कर कहने लगे, 'प्रिय पुत! कहो तुम्हारे वे चार नयन किस प्रकार नष्ट हुए!'

कुणालने बिनीत स्वरमें कहा, 'राजन ! जो वीत गया, उसके लिये वृथा शोक न करें। सभी अपना अपना कर्मफल भुगते हैं, सो मैं भी भुगता हूं! तब फिर दूसरे-को दोषी वनाने क्यों चलूं?'

पीछे जय राजाको मालूम हुआ, कि तिष्यरिक्षताका हो यह काम है, तव उन्होंने क्रोधमरो आँखोंसे तिष्य-रिक्षताको बुला कर कहा, 'केवल तुम्हारे नेत हो नहीं, नाक, मुंह, आदि प्रत्येक अङ्ग !कटवा बालूंगा। दुए-मित ! नरिपशाची! तव ही तुम समकेगी, मेरे इदय पर तुने कैसी गहरी चोट दो है।'

कुणालने हाथ जोड़ कर पितासे निवेदन किया, राजन् ! तिष्यरिक्षता अनार्यकर्मा है, आप आर्थ कर्मा हो कर स्त्री-वध न करें। मैती और तितिक्षाकी अपेक्षा दूसरा और कोई धर्म नहीं है। यदि माता मेरे दो नेत निकाल कर सचमुच प्रसन्न हैं, तो उसी प्रसन्नतासे मेरे वे चक्ष पुनः निकल आयंगे। कहते हैं, कि धूब-विश्वासके प्रमावसे तत्क्षणात् कुणालके पूर्ववत् दोनें चक्षु निकल आये। किन्तु अशोकने तिष्यरिक्षताको क्षमा

.न किया । उस पापिष्ठाकी देहं जन्तुगृहमें जला डाली गई ।

जिस समय राजा अशोकने ८४००० धर्मराजिकाकी
प्रतिष्ठा और पश्चवार्षिक व्रतका अनुष्ठान किया, उस
समय उनके भाई वीतशोक तीर्थिकोंके प्रति वड़े अनुरक्त
हो गये। तीर्थिक लोग उन्हें समक्ताते थे, कि श्रमण
शाक्यपुतोंके मोक्ष नहीं है। वीतशोक भी उसे जानते थे,
वरन् श्रमणोंके प्रति उनका कभी कभो विवाद भी हो
जाया करता था। परन्तु अशोकको यह अखरता था।

उन्होंने वीतशोकको बुद्धमतमें लानेकी एक अपूर्व तर-कीव दूढ़ निकाली। उन्होंने अपने मंत्री उपयक्षको वुला कर कहा, कि जिस तरहसे हो वीतशोकको सिंहासन पर बिटाओ। एक दिन अमात्योंने अशोककी पौद्धमौलि ले कर स्नानशालामें वीतशोकसे कहा, "राजाके मरने पर आप ही राजा होंगे। अभी आप सजधज कर सिंहा-सन पर वैठिये, वेखें, यह आपको कैसी शोभा देता है।" बीतशोक अमात्योंकी वातमें भूल कर अशोककी राज-भूषा पहन सिंहासन पर वैठे। ठीक इसो समय अशोक वहां आ पहुंचे। 'कौन है?' अशोकके इतना कहते ही वारों ओरसे सशस्त्र धातकोंने आ कर वीतशोकको घेर लिया। अशोकने गम्मीर खरसे कहा, 'देखो वीतशोक! जुम मुक्ते धकेल कर सिंहासन पर वैठ गये हो। अच्छा बैठो, मैंने सात दिनके लिये तुम्हें राज्य छोड़ दिया। इसके वाद धातकके हाथसे मारे जाओगे।"

वीतशोकने सात दिनके लिये राज्य पाया। कितने ही नाच गान और आमोदके स्रोत वहने लगे। सातबें दिन घातकने आ कर अन्तिम दिनको याद दिला दी। राजवेशमें चीतशोक अशोकके समीप आये। अशोकने पूछा, भाई! इन सात दिनींमें कैसा चैन करा, नाच गानमें कैसा आमोद पाया !' वीतशोकने उत्तर दिया सुख कहां! नाच गान देखा नहीं, सुना भी नहीं, गन्ध न ली और न इसमें आखाद ही पाया! केयल यही देखा, कि नीलवल्लधारी धातकगण मानों द्रवाजे पर खड़े हैं।'

अशोकने कहा, 'भाई ! यदि मरनेका इतना डर है, तो किसी वातकी चिन्ता मत कर, तुम्हें प्राणदान दिया।' वीतशोक विनीत भावमें बोले, 'यदि आपको ऐसी कृपा हुई, तो मैं उन सम्यक सम्बुद्धकी शरण लो । धर्म और Vol. XIV 188 मिक्षुसङ्घकी शरण ली।' उसी समय वीतशोकने प्रवश्या प्रहण किया। पांशुक्त, चीवर और वृक्षमूल ही वीतशोकना आश्रयस्थान हुआ। मिक्षा करके वे जो कुछ लाते उसीसे अपने शरीरकी रक्षा करने लगे। नाना देश, नाना जनपद होते हुए वे प्रत्यन्तदेशमें उपस्थित हुए। यहां महाव्याधिने उन पर आक्रमण किया। यह खबर राजा अशोकने पाते ही उनकी चिकित्सार्थ भैपज्यादि मेज दिये।

इस समय पुण्ड्रवर्द्ध न-नगरवासी निर्ध नथ उपासकों-ने अपने उपास्य जिनदेवके पादमूलमें बुद्धदेवकी मूर्त्ति अङ्कित की थी। वौद्धेंने जा कर अशोकको इसको स्वर दी। इस पर अशोक वड़े विगड़े और पुण्ड्रवद्ध नकासी समस्त आजीवकोंको मार डालनेका हुकुम दिया। एक दिनमें अटारह हजार आजीवक निहत हुए थे।

इसके बाद फिर पाटिल पुतके निर्म न्थोंने भी जिन-देवके पादमूलमें बुद्धमितमाका चित्र अङ्कित किया था। उन्हें भी अशोकने पूर्ववत् सजा दी थी। यहां तक, कि आखिरमें उन्होंने घोषणा कर दी थी, 'जो निर्म न्थका सिर काट लायेगा, उसे दीनार मिलेगा।'

इस समय बीतशाक महाव्याधिप्रस्त हो एक आभीरके घर अपना दिन निताते थे। आमीरपत्नीने उनके वड़े वड़े नाखून और दाढ़ी देख कर उन्हें निर्प्रन्थ समका और अपने खामीको इसकी खनर दी। आभीर बीतशोकका शिर काट कर दीनार पानेकी आशासे अशोकको पास आया। अशोक उसे देखते ही मूर्च्छित हो पड़े। जब वे होशमें आये, तव अमात्योंने उनसे कहा, 'बीतरागको ज्यर्थ कष्ट दिया जा रहा है, सबको अभय दान देना ही हम छोगोंका विचार है।' उसी दिन राजाने अपने राज्यमें ढिढोरा पिट्या दिया, 'अब मेरे राज्यमें कहीं भी हिंसा न होने पाये।' इसके वाद अशोकने अपना सर्यस्थ वीदसङ्घमें न्योछावर कर दिया।

## महाव प्रवर्णित अशाह ।

सिंहलके पालि महावंशमें दो अशोकका परिचय मिलता है। १म अशोक 'कालाशोक' नामसे ही प्रसिद्ध है। बुद्धनिर्वाणके १०० वर्ष वाद पुलपुरमें कालाशोक राज्य करते थे। इन्हीं प्रथम अशोकके समय सद्धर्म स्क्षीतिमें बुद्धके उपदेशमूलक शास्त्र संगृहीत हुए।

कालाशोकके १० पुर्लीने पहले २२ वर्ष, पीछे ६ पुर्लीने भी २२ वर्ष राज्य किया । उनके शेप पुतका नाम धननन्द था। चाणभ्यके कौशलसे धननन्दको राज्य न मिल कर मोरियवंशसम्भृत चन्द्रगुप्तके राज्य मिला । चन्द्रगुप्तने ३४ वर्षे राज्यशासन किया । षीछे उनके पुत्र विन्दुसारने २८ वर्षे राज्य भीग किया था। उनकी १६ महिपियोंके गर्भसे १०१ पुतं उत्पन्न हुए थे। इन सव पुतोंमेंसे अशोक ही पुण्यतेजा और महासमृद्धिसम्पन्न थे। ने पिताके अधीन उज्जियिनीका शासन करते थे। जब उन्होंने सुना, कि उन-के पिता मृत्युशय्या पर पड़े हैं, तब वे फौरन पाटलिपुत आ कर सिंहासन पर अधिकार कर वैठे। पीछे वे अपने ६६ भाइयोंको मार कर जम्ब्रुद्वीपमें एकाधिपत्य करने लगे। बुद्धनिर्वाणके २१८ वर्ष वाद उनका अभिषेक हुआ। राज्यलाभके चौथे वर्ष वडी धूमधामसे उनका अभिषेक-कार्यं सम्पन्न हुआ था। इस अभिपेककालमें उनके छोटे भाई तिष्यने 'उपराज' को पदवी पाई थी।

भशोकके पिता ब्राह्मणमक्त थे। वे प्रतिदिन साठ इजार ब्राह्मणमोजन कैराते थे। अशोकने भी तीन वर्षे तक उनका अनुसरण किया था। अभिषेकके वाद उनकी बुद्धि बिलकुल पलट गई। वे अपनी सभामें समस्त सम्प्रदायभुक्त धर्मामात्योंको बुला कर शास्त्रचर्चा करने लगे और सर्वोंको उन्होंने समभागमें वृत्तिकी ब्यवस्था कर दी।

श्रमण-न्यप्रोधको देख कर वौद्धधर्मके प्रति उनका चित्त आरुष्ट हुआ। यह न्यप्रोध और कोई भी न था, उन्हींका भतीजा था। अशोकने जब विन्दुसारके वड़े छड़के सुमनकी हत्या की उस समय उनकी गर्भवती पत्नीने चएडालके घरमें आश्रय लिया था। न्यप्रोध उन्हीं-के गर्भसे उत्पन्न हुए और अपने पूर्व सुरुतिवलसे उन्होंने अईस्वलाम किया था।

अशोकके हृदयमें एक ओर ब्राह्मणधर्मके प्रति बीत-राग और दूसरी ओर बौद्धोंके प्रति अनुराग प्रवल होने लगा। अभी वे प्रतिदिन साठ हजार श्रमणोंकी सेवा करने लगे।

्र इसी वर्षमें उपराज तिष्य, अशोकके भांजे और सङ्घ-

मिलाके खामी अनिवर्माने भी प्रवज्याका अवलंबन किया। उनका अनुसरण करके हजारों मनुष्य बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए थे। अशोकको धर्मीन्मत्तता धीरे धीरे प्रवल होती गई।

उपराज तिष्यके प्रवज्याग्रहणके वाद् अशोकने अपने प्रिय पुत्र महेन्द्रको ही 'उपराज' बनानेका विचार किया था। किन्तु उन्होंने भी थोड़े ही दिनोंके अन्दर संन्यास ग्रहण किया। वे स्थविर महादेव द्वारा दीक्षित हुए। स्थविर मध्यान्तिकने उनके लिये कर्मवचनका अनुष्ठान किया। इस समय धर्मपति सङ्घमिताकी उपाध्यायां और आयुपाली उनकी आचार्यां हुई'। अशोकके देहें वर्षमें महेन्द्र और सङ्घमिता दोनोंने ही प्रवज्याको ग्रहण किया।

धीरे घीरे बौद्ध-भाचार्य और उपाध्यायकी संख्या इतनी वढ़ गई और इतना मतमेद होना आरम्भ हुआ, कि भाखिर छड़ाई भगड़ा करके भारतके सभी बौद्धा-रामोंमें उपोषध और प्रावरण वन्द हो गया। इस प्रकार सात वर्ष बीत जाने पर अशोकको इसका पता छगा। उन्होंने तमाम घोषणा कर दी, 'मेरे अशोकाराममें जितने भिक्षु रहते हैं, वे उपोषध्वतका अवश्य बाछन करें।' भिक्षसङ्घने जवाब दिया, 'तीर्थिकके साथ हम छोग उपोषध्वतका पाछन नहीं कर सकेंगे।' धमेपाछन नहीं करनेसे किसको अधमं हुआ? राजा असमझसमें पड़े। उन्होंने मौह्राछपुत तिष्यके निकट खयं जा कर अपनी मनोवेदना प्रकट की। तिष्यने 'तित्तिरजातक' सुना कर सम्राट्से कहा,','प्रतीच्छा नहीं रहनेसे पाप नहीं होता।' सम्राटने मोगाछि-पुत्रके उपदेशसे धमंग्रान छाभ किया।

अशोकके अधीनस्थ राजगण और वन्धुवर्ग मभी सम्राट्के परोमर्शसे स्तूपादि वनाने छगे । सम्राट्ने भी वौद्धधमंका प्रचार करनेके मिये महेम्द्रको सिंहल भेजा।

सिहलराज प्रियतिष्य महेन्द्रके निकट वौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। पोछे धर्मप्रचारके उद्देश्यसे सङ्घमिला भी सिहल आये थे और सिहलराज-महिलाओंने सङ्घमिलाके निकट दोक्षालाम किया था।

### अशोकके सम्बद्धमें जैन-मत्।

हेमचन्द्र-रचित विषष्टिशलाकापुरुषचरितके मतेसे— 'विन्दुसारसे अशोकश्रीने जन्मग्रहण किया। विन्दुसार-की मृत्युके बाद वे ही राजसिहासन पर वैठे। यथासमय अशोकके कुणाल नामक एक पुत हुआ। आगे जल कर अशोकने उन्हें उज्जियिनीपुरी दे दी। कुणाल वहीं जा कर रहने लगे। कितपय शरीररक्षक उनके रक्षाकार्यमें नियुक्त हुए। इस प्रकार कुछ वर्ष गुजर जाने पर राजा अशोकने किसी परिचारकके मुखसे सुना, कि कुणालकां अध्ययनकाल पहुंच गया है। यह वात सुन कर राजा वड़े ही सन्तुष्ट हुए और उसी समय स्वयं एक पत कुणालके निकट लिख मेजा। पत प्राह्त माधामें इस व्यालसे लिखा गया था, कि कुणाल उसे सहजमें समक्त सके। सुतरां एक जगह 'अध्ययन करो' ऐसा लिखनेमें 'अधीऊ' यह पद लिखा गया था।

राजा जन पत लिखर है थे, उस समय कुणालकी एक विमाता वहीं बैठी थो। वह धीरे भीरे राजाके हाथसे पत ले कर आधीपान्त पढ़ गई। पत पढ़ कर उसके मनमें हिंसाका सञ्चार हो आया। वह कुणालको विज्ञत कर अपने पुतको राज्यका भावो अधीश्वर वनानेके निमित्त मन हो मन कोई उपाय सोच रही थी। उस समय राजा कुछ अन्यमनस्क हो पढ़े। कुणालकी विमाताने इसी अवसरमें अपना मतलव गांठ लिया। पत्नमें जहां 'अधीउ' लिखा था, बहां उसने अपनी आंखों- के काजलसे पक ओर विन्तु बैठा कर 'अ'धीउ' अर्थात् अन्या होओ, ऐसा वना दिया। पीछे राजा अशोकने भी उसे दुइरा कर पढ़ा नहीं और स्वनामाङ्कित मोहर मार कर पत्न उज्जयिनी नगर भेज दिया।

इधर कुणालने पहले पितृनामाङ्कित पत्न पाते ही उसे
सहसा मस्तक पर धारण किया, पीछे किसी वाचक
द्वारा उसे पढ़वाया। पत्न पढ़ते ही पत्नपाठक एकदम
विपण्ण हो पड़ा। कुणाल उसे विषण्ण देख स्वयं पत्न
पढ़ने लगे। पत्नमें 'खंधीउ' ऐसा देख उन्होंने सोचा,
कि हमारे मीयवंशमें कोई भी गुरुका आदेश लङ्कन नहीं
करते। अंतएव यदि भाज में उसे लङ्कन कर्क, तो सभी
मेरे हुणान पर चलेंगे; खुतरां गुरुका आदेग कदापि
उल्लङ्कन नहीं कर सकता। इतना कह कर उन्होंने स्वयं
तमशलाका द्वारा अपने दोनों नेत निकाल लिये। इधर
भशोकको जब इसकी खबर लगी, तब वे अपने कुटलेख
पर आत्माको धिकारते हुए शोकसागरमें निमान हुए।

वे विलाप कर कहने लगे, 'हाय! मेरी आशा पर आज पानी फेर गया, में जिसे युवराज बनाना चाहता था वह आज स्रदास वन वैटा। मेरे मनकी आशालता मन-हीमें मुरका गई।' इस प्रकार चिन्ता करके अंशोकने कुणालको एक समृद्धिशाली प्राम दान किया। अब कुणाल वहीं रहने लगे।

कुछ दिन वाद उन्हें शरत्श्री नाम्नी स्त्रीसे एक पुल उत्पन्न हुआ। कुणाल विमाताका मनोरथ व्यथं करनेके लिये राज्यलाभार्थ पाटलीपुल गये। वहां जा कर उन्होंने अपने गीतवाद्यसे सवको मुश्च कर दिया। इस प्रकार सर्वोकी उन्होंने वाह्याही लूटो। राजाको भी इसका पता लग गया। उन्होंने अन्ध्रगायकको अपने प्रासादमें चुलवाया और पर्वेको आड़में बैठ कर वे उनका गान सुनने लगे। अन्धेने वड़े सुरीले स्वरसे गीत गाया। अन्तिम गीतमें उन्होंने कहा, 'हाय! चन्द्रगुप्तका प्रयौल, विन्दुसार का पौत अशोकश्रीका पुल यह अंधा आज दर दर भीख मांगता फिरता है।' राजाने गान सुन कर अधिसे कहा, 'तुम कौन हो १' अधिने जवाव दिया, 'महाराज! मैं आप-का पुल कुणाल हं। मैं आपके ही आदेशसे अधा हुआ हं।'

राजाने इतना सन कर पर्दा हटा दिया और अश्रुपूर्ण नयनोंसे उन्हें आलिङ्गन किया, वाद फिरसे पूछा, 'वत्स! तुम क्या चाहते हो?' कुणालने जवाब दिया, 'पितः! मेरे एक पुत उत्पन्न हुआ है, आप उसीको राजसिंहासन पर अभिविक्त करें, यहो मेरे एकान्त प्रार्थना है।' राजाने पुत्र कुणालकी वात पर सन्तुष्ट हो उसे स्वीकार कर लिया और महा समारोहसे पौतको अपने घर मंगवाया। इस पौतका उन्होंने 'सम्प्रति' नाम रखा।

इस समय यद्यपि 'सम्प्रति' की उपर कक्षी थी, तो भी राजाने अपनी वात पूरी करने तथा कुणालको प्रसन्न रखनेके लिये उस नन्हें वच्चेको राज्यमें अभिषिक किया। ज्यों ज्यों उसकी उपर बढ़ती गई, त्यों त्यों बुद्धि, विक्रम और विद्या आदि, राजोचित समस्त गुण भी बढ़ने लगे। उन्होंने जैनधर्म गृहण किया।

इस समय भमेविष्ठव उपस्थित हुआ । सुतरां सभी जैन पाटलियुद्धारें एकत हुए । उन्होंने मिल कर एक संघ बुलाया जिसका नाम श्रीसङ्घ रखा गया। इस संघमें जैनधर्मशास्त्र संग्रहीत हुए। (परिविष्टपर्व)

प्रियदशींक अनुशासनसे परिचय ।

बौद्ध और जैनग्रन्थसे अशोकका जो विवरण लिखा गया, उसमें प्रकृत वार्ते रहने पर भी उसमें अत्युक्ति और काल्पनिक वार्ते मिली हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस कारण उनका प्रकृत परिचय जाननेके लिये उनके राज्यकालमें उत्कीण अनुशासनका ही अवलम्बन करना चाहिये। इन सब अनुशासनोंसे प्रियद्शोंका जो अति संक्षिप्त परि-चय पाया गया है, वह नीचे लिखा जाता है।

अनुशासनसे प्रियदशीके वाल्यजीवनका हाल मालूम नहीं होता। उनकी गिरिलिपिमें लिखा है,कि वे पहले अति-शय मृगयाप्रिय और युद्धप्रिय थे। राजा होते ही वे वौद्ध-धर्मके अनुरागी नहीं हुए। पहले ये अतिशय निष्ठुर और मांसप्रिय थे। १म गिरिलिपिमें लिखा है, 'सुपथ्यके लिये उनकी पाकशालामें प्रति दिन अनेक प्राणिवध होते थे। अभिपेक्को ८ वर्ष वाद उन्होंने कलिङ्ग जीता। इस युद्धमें एक लाख पश्चास हजार आदमी वन्दी हुए और लाखसे ऊपर मारे गये।' इस संक्षिप्त विवरणसे मालम होता है, कि जब वे राजपद पर अधिष्ठित हुए थे, उस समय सारा भारतवर्ष उनके दखलमें न था अथवा वौद्ध और जैनोंके प्रति भी उनको विशेष आस्था न थी। २री, ५वीं और १३वीं गिरिलिपिसे जाना जाता है—उनके शासनकालके चौदह वर्षके मध्य भारतवर्षका तृतीयांश उनके साम्राज्य-भुक्त हुआ था। इस समय उत्तरमें हिमालयकी पाद-- देशस्थ तराई, दक्षिणमें महिसुर और गोदावरीके उत्त-रांश, पूर्वमें बङ्गोपसागर और ब्रह्मपुतनद तथा पश्चिममें भारतवर्षेकी वर्त्तमान पश्चिमसीमा, इन सव भूभागोंमें उनका शासनदण्ड परिचालित होता था। सोमान्तवर्ती प्रदेशोंमें जो सव राजा राज्य करते थे और जो सव जन-. पद अवस्थित थे, उनका विषय १३वीं लिपिमें इस प्रकार लिखा है--

"बिजवके मध्य ये देवताओं के प्रिय प्रियद्शीं मुख्य-विजय हैं। उनके अधिकारमें तथा सर्व अपरान्त देशों में छः सौ योजनकी दूरी पर अन्तिओक नामके राजा हैं। पीछे चार राजा तुरमय नामसे, अन्तिकिनि नामसे, राज्य करते हैं । दक्षिणमें चोड़, पाएड (पाएडा) ताम्वपनिय (ताम्रपणीं) और हिड़ राजाका भी राज्य है।"

यवन, काम्योज, पेतेनिक, गन्धार, रिष्टिक वा राष्टिक, विश और वृजि, नामक और नामस्पति, भोज, अन्ध्र और पुळिन्दोंने उनकी अधीनता खीकार की थी।

दक्षिणसीमान्तर्वत्तीं अविजित देशोंके मध्य उनके अनु-शासनमें चोड़, पाएडा, सत्यपुत, केरलपुत और ताम्र-पणींका उल्लेख हैं।

शासनकी सुन्यवस्था करनेके लिये उन्होंने कई एक नियम चळाये थे। प्रत्येक प्रधान प्रधान शहर 'महामात्य' नामक कमचारियोंके अधीन रहता था। सारा साम्राज्य कई एक प्रदेशोंमें विभक्त हुआ था। प्रत्येक प्रदेशका शासन करनेके लिये एक एक 'प्रादेशिक' नियुक्त थे। कितने प्रदेशोंको मिला कर एक राज्य गठित होता था। एक एक राज्य 'राजुक' नामक एक प्रधान कर्मचारीके भधीन था । राज्य कई एक प्रधान खएडोंमें विभक्त था जिनमेंसे पाटलिपुत, उज्जयिनी, तक्षशिला और तोसली नगर ही प्रधान थे। पाटलिपुत्रमें सम्राट्की निजकी राजधानी थी । उज्जयिनी, तक्षशिला और तोसलीका शासनभार एक एक राजकुमारके हाथ सुपुर् था। सम्राट्ने खराज्य तथा परराज्यका सम्बाद जानने-लिये 'प्रतिवेदक' नामक एक श्रेणीके कर्मचारी नियुक्त किये थे। उनका प्रधान काम था प्रजा और अमार्त्योंके गुप्त कार्यादि सम्राट्को जताना।

कलिङ्ग-विजयकालमें जो रक्तधारा वही थी, उससे अशोकके हृद्यका भाव विलक्कल वदल गया। इसी समयसे उनके हृद्यमें ममता और अहिंसावृत्तिने स्थान लिया।

वयोवृद्धि और ज्ञानवृद्धिके साथ प्रियद्शीं पहले वौद्धधर्मानुरागी और पीछे एक कट्टर वौद्ध हो गये थे। वौद्धधर्म प्रचारके लिये उन्होंने एक भी कसर उठा न रखी थी। वे असि द्वारा ना वल प्रयोग द्वारा अथवा प्रलोभन दिखा कर अपना महत् उद्देश्य साधन करनेमें अप्रसर नहीं हुए। सव जीवों पर द्या और दान, साधु-सेवा और धर्म उपदेश ही उनके धर्म प्रचारका प्रधान उद्देश्य था।

उन्होंने दशवें वर्षमें भोपणा कर दी थी, 'पहले सुख-सम्मोगके लिये जो विहारयाता होती थी, वह अवसे धर्मयालामें परिणत हुई।' ध्रमण, ब्राह्मण और वीहोंके साथ साक्षात्, दीन दरिदोंको दान, धर्मप्रचार और धर्म-जिहासाके लिये ही इस धर्म पालाकी सृष्टि हुई। वारहवें वर्षेमें सम्राट्ने धर्म प्रचारका यथोचित प्रवन्ध किया और उसी वर्ष उनका धर्मानुशासन लिपिवस हुआ। जीवोंके प्रति अहिंसा, ब्राह्मण, श्रमण और कुटुम्वोंके प्रति सद्भवहार, वितामाता, गुरुजन और वृद्धींकी शुश्र्षा आदि सद्धर्मपालनार्थ आज्ञा उनके राज्यमें प्रचारित हो गई। राजुक और प्रादेशिकोंको भी हुकुम दिया गया, कि राज-कार्य-निर्वाह और धर्मार्थप्रचारके लिये उन्हें प्रति पांचवें वर्षे अपने अपने इलाकेमें घूमना पड़ेगा। पिता, माता, वन्धुवान्धव, ज्ञाति, ब्राह्मण और अमणींकी शुश्रुवा, जीवीं पर द्वा और अपभएडोंके ऊपर निन्दाविमुखता भादि सदम राज्यमें जारी है वा नहीं, इसके प्रति लक्ष्य रखना होगा। प्रजाका अभिप्राय, अमात्य वा पञ्चायतका यिवाद, प्रवञ्चनाकी कथा सुनानेके लिये जब चाहें, तब प्रतिवेदकगण (उनके सम्राट्में)-के समीप जा सकते हैं। राजा, चाहे खानेको वैठे हों, चाहे अन्तःपुरमें हों, सुस्रोधान-में हों सभी समय प्रतिवेदकगण उनके समीप आ सकते हैं। सभी कार्य शोव्र सुसम्पन्न होनेके लिये ही सम्राट ने पेसा हुकुम जारी किया था।

उस समय भी यज्ञयूपमें यथेए पशुवध होते थे। यज्ञके लिये पशुवध ब्राह्मणधर्म निन्दित नहीं है, वरन् अनुष्ठेय, है। सम्राट्ने तमाम घोषणा कर ही, 'आहारके लिये जीववध करना अकर्त्तव्य है। यज्ञयूपमें जीवनाश करना भी उचित नहीं। रन्धनशालामें खानेके वास्ते कोई जीवहत्या नहीं होगी।

प्रियदर्शीन केवल अपने ही राज्यमें नहीं, दूरदेशीय विभिन्न खाधीन राज्योंमें भी मानव और साधारण पशुकी प्राणरक्षाके लिये दी प्रकारके चिकित्सालय खोले थे। जहां औषध नहीं मिलती थी, वहां उन्होंने नृतन बीज बुनवाया था। उनके आदेशसे जनसाधारणके हितार्थ नाना स्थानोंमें कृप प्रस्तुत हुए थे।

उनके धर्मानुशासनका प्रचार होता है वा नहीं और Vol. XIV. 189 जनसाधारण तद्युसार कार्य करते हैं वा नहीं, उसका परिदर्शन करनेके लिये प्रियद्शींने अभिषेकके तेरह वर्ष वाद 'धर्ममहामात्य' नामक कुछ अमात्य नियुक्त किये।

इस समय प्रियद्शींका चित्त जनसाधारणकी भलाई-के लिये आप ही आप आकृष्ट हुआ था। इस समय उन्होंने जो सद्धमें चलाये, उनकी मूल नीति इस प्रकार है—

१ जीवीं पर दया, २ पिता माताकी शुश्रूषा, ३ वन्यु और हातिवर्ग के प्रति सद्घावहार, ४ ब्राह्मण और श्रम-णोंको दान और शुश्रूषा, ५ दीन और नौकरोंके प्रति सद्घावहार, ६ विधर्मियोंके प्रति निन्दाविमुखता, ७ श्रम, भावशुद्धि, कृतहता और दृढ्भिक ।

गिरिलिपिकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वे चौदह वय तक एक कट्टर वौद्ध रहे थे। ब्राह्मण्य-धम में लालित पालित हो कर ब्राह्मणधम के प्रति भी उनके अनुरागमें कमी न थी। अधिक सम्भव है, कि आजी-वक जैनसंसग से उन्होंने पहले अहिंसाधम की शिक्षा की, परन्तु उनकी वयोवृद्धि और शानवृद्धिके साथ वौद्धाचार्यों प्रभावसे वे भी धीरे धीरे वौद्ध हो गये।

दाक्षिणात्यमें महिस्रको अन्तर्गत चित्तलदुगं के अधीन सिद्धापुर नामक एक स्थान है, वहांसे जो गिरि-लिपि आविष्कृत हुई है उसमें इस प्रकार लिखा है,—

देवताओं से प्रिय (प्रियद्शीं)-से कहा है, ढ़ाई वर्ष से ऊपर मैं उपासक था; किन्तु उस समय कोई भी खेषा न की। छः वर्ष क्यों, उससे भी अधिक समय तक मैं सङ्घों उपगत रहा। उस समय मैंने वृद्धिसाधनके लिये वेषा की है। जो सब मनुष्य (ब्राह्मण) जम्बूहीपमें सत्य समक्षे जाते थे, वे अभी देवताओं के साथ भूठे साचित हुए।

प्रियद्शींने टीक किस समय वौद्धधर्मप्रहण किया मालूम नहीं। उनकी १३वीं गिरिलिपिमें लिखा है, कि उन्होंने अभिषे कके आठ वर्ष वाद कलिङ्गको जीता। वहां बहुत प्राणीहत्या देख कर उन्हें भारी दुःख हुआ। उसी समयसे उनका ध्यान धर्म पथकी और आकृष्ट हुआ। इस हिसाबसे अनुमान किया जाता है, कि अभिषे कके दशवें वर्षमें वे उपासक हुए। पालि महावंशके मतसे राज्यलाभके चार वर्ष वाद अशोकका अभिषेककार्य सम्पन्न हुआ। यदि इसीकी सत्य मान लिया जाय, तो राज्यलाभके कमसे कम चौदह वर्ष वाद उन्होंने वौद्ध्यमें अवलम्बन किया था। निग्लीवके अनुशासनमें लिखा है, कि अभिषेकके चौदह वर्ष पीछे त्रियदर्शींने कोणोगमन नामक गतबुद्धके पूर्व-स्थित स्तूपको वर्द्धित किया। पड़े रियाकी गिरिलिपिसे भी जाना जाता है, कि अभिषेकके बीस वर्ष वाद उन्होंने बुद्धशाक्यके जन्मस्थान लुम्बिनी प्राममें आ कर बुद्धकी पूजा की और उस ग्रामको बुद्धके उद्देश्यसे निष्कर कर दिया।

प्रियदशी ने वौद्धशास्त्रका प्रचार करनेके लिये भी विशेष चेपा की थी, जयपुरके अन्तर्गत भावासे जो गिरि-लिपि आविष्टत हुई है उसमें साफ साफ लिखा है—

"राजा प्रियद्शीं मागधसङ्घका अभिवादन करते हुए कहते हैं, 'आप लोग निरापद समृद्धिकी इच्छा करते हैं। आप लोगोंको मालूम है, कि मैं युद्ध, अमें और सङ्घके प्रसाद और शुभकी कामना करता हूं। भगवान युद्धने जो कुछ कहा है, सवी का उसका पालन करना उचित है। जहां तक सक्नुंगा, वहां तक में इसका अवश्य प्रचार कर्ज गा। ऐसा होनेसे सद्धमें चिर्ध्यायी होगा। अमैपर्याय ये सव हैं—विनयसमुत्कर्य, आर्यवस, अनागतभय, मुनिगाथा, मौनेयसूल, उपतिष्य-प्रश्न और लाघुलोवादमें मृषावाद, भगवान बुद्ध कर्त्तृक परिभाषित। मेरी इच्छा है, कि बहु भिक्ष और भिक्षुणीगण इस अमै पर्यायका अविरत अवण और ध्यान करें। उपासक और उपासिका लोग भी ऐसा ही करें। मैंने अपना अभिप्राय यहां पर इस लिये प्रकट किया, कि जनसांश्रारण मेरे इच्छासे अवगत होर्वे।"

उक्त धर्मपर्याय वा धर्मशास्त्रोंमेंसे कुछका भाभास इस प्रकार पाया गया है,—चिनय-समुत्कर्ण धिनयपिटक-का सारांश प्रातिमोक्ष, अनागतभय—सूत्रपिटकका अंगु-त्तर निकायशाखाका, 'आरण्यकानागतभयसूत्त', उपतिष्य-प्रश्न—चिनय पिढकका महाचग्गस्थ 'शारिपुत्रप्रश्न' मुनि-गाथा—सूत्रपिटकके सुत्तनिपातके अन्तर्गत 'मुनिगाथा' नामक १२वां सूत्र; लाघुलोवादमें मृयावाद—मजिमम-निकायका अध्वलिका राहुलोबाद नामक १६ सूत्र। सिंहलके दीपवंश और महावंशमें भी लिखा है, कि भशोकके समय स्य धर्मसङ्गीति हुई थी और उसमें बुद्धके उपदेशमूलक सभी शास्त्र संगृहीत हुए थे।

केवल खराज्यमें ही नहां, विदेशमें धर्मप्रचार करने-के लिये भी प्रियद्शी ने विशेष यक्त किया था। अन्तिओक (Antiochus), तुरमय (Ptolemy), अलिकसुन्दर ( Alexander ) आदि यवनराज शासन करते थे, इजिप्त श्रीस आदि उस दूरवत्ती देशोंमें भी प्रिब-दर्शीने धर्मप्रचारक मेजा था। सासरेमकी गिरिछिपिमें २५६ विवुध वा धर्मेपचारकोंका उल्लेख है। सिहलके दीव-वंशमें १० प्रधान धर्मप्रचारकोंके नाम हैं तथा ने किस किस देशमें भेजे गये थे, उसका भी उहाँ व है। यथा-काश्मीर और गान्धारमें मल्फन्तिक (मध्यान्तिक ), महिपमें (महिसुरमें) महादेव, वनवासी (वा उत्तर कणाड़ामें)रक्षित, अपरान्तदेशमें वाहिकदेशीय धर्मरक्षित, महाराष्ट्रमें महाधर्मरक्षित, योनदेशमें (सिरीया और भन्यान्यं ग्रीकराज्यमें) महारक्षित, हिमवन्तमें मज्कम (मध्यम), खुवर्णभूममें (ब्रह्म मलय आदि स्थानों में) सेन और उत्तर तथा सिहलमें महेन्द्र ( महिन्दो )।

प्रियदर्शीकी वयोवृद्धि और राज्यवृद्धिके साथ उनकी दया भी विश्वन्यापिनी हो गई थी। उनकी ५वीं स्तस्म-लिपिमं इस प्रकार लिखा है,—"देवताओं के राजा प्रिव-दशीं कहते हैं, अभिषेक २६ वर्ष वाद निम्नलिखित जीवीं-का वध रोक दिया गया-शुक, सारिका, अलुन, जक-वाक, हंस, नान्दोमुखी, जतुका, अम्वाकपीलिका, ददी, अनठिका, मत्स्य, बेदवेयक, गङ्गापुतक, संयुद्धमत्स्य, कफटशल्यक, पन्नसस, स्रमर, पएडक, ओकपिएड, पल-सत, श्वेतकपीत, प्राम्यकपीत ; भजका ) छागी, पद्का ( भेड़ी ), शूकरी, शर्मिणी वः दुःधवती ये सभी अवश्य हैं। उनके छः महोनेसे कम उमरवाले शावक भी अवध्य हैं। बधि-कुक्कुट मत काटो, भूसीसे जीव मत दग्ध करो । अनिष्टार्थ या हिंसार्थ वनको भिनसे मत जलाभी । जीव द्वारा अन्य जीवका पोपण मत करो । तीन चात-र्मास्यमें, पौषपूर्णिमामें, चतुर्दशी, पञ्चदशी और प्रतिपदमें तथा प्रति उपवासके दिन मछली मत मारो, इन दिनों उसकी विको मत करो । अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा,

तिष्य और पुनर्नस्र नक्षत्रयुक्त दिनोंमें, तोन चातुर्मास्यमें, और पर्नके दिन वृष, अज, मेष, शूकर और अन्यान्य जीवोंको विधया मत करो। तिष्य और पुनर्नसुमें, चातुः मांस्य पूर्णिमामें और चातुर्मास्य पक्षमें अध्व वा गोको लाम्छित मत करो।"

वौद्ध धर्मावलम्बी और बौद्धोंके प्रति अनुरक्त होने पर भी वे ब्राह्मण और श्रमणके प्रति भक्ति दिखलाते थे। बौद्ध होनेके बाद उन्होंने यज्ञीय पशुवधको निन्दा की है। 'जो सव मनुष्य जम्बूद्धीपमें सत्य समभ्रे जाते थे, अभी वे सव देवताओंके साथ असत्य समभ्रे जाने लगे' इत्यादि उक्ति द्वारा ब्राह्मण्यधर्मके ऊपर कटाक्ष करने पर भी वे बिद्धान् ब्राह्मणों का यथेष्ट आदर करते थे।

बे अपने जीवनके शेष पर्यन्त वौद्ध थे बा नहीं, कह नहीं सकते । उनके अमिषेकके वीस वर्ष वाद आजीवक जैनें। के प्रति भी उनका अच्छा वर्त्ताव था, यह वरवारकी लिपि-से जाना जाता है। इस कारण कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अशोकने जीवनके शेपमें जैनधर्म अवलम्बन किया था। जैनप्रनथसे जाना जाता है, कि अशोकके जीते जी जब राज्यकाल रोप हो चला तथा उन्होंने अपने दुधमुंहे पौत सम्प्रतिको राजसिंहासन पर विठाया, उस समय पाटलिन पुतमें श्रोसङ्घ स्थापित हुआ था और पहले जिस प्रकार बौद्धशास्त्र संगृहीत हुए थे, इस सङ्घमें जैनाचार्यांने भी उसी प्रकार जैनशास्त्रका संप्रह किया था। पौत दशरथकी जो लिपि पाई गई है, उसमें भी आजीवक जैनव्यक्तियों-के ऊपर उनका अनुराग देखा जाता है। यह दशरथ और सम्प्रति दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं, यह आज तक रिथर न हो सका है। जो कुछ हो, प्रियदशीं अपनी शेषाबस्थामें अथंबा उनके समी वंशधर बौद्ध थे, ऐसा अनुमान नहीं किया जाता।

## प्रियदशीका कालनिक्सपण ।

प्रियद्शींका काल ले कर वहुत मतमेद चल रहा है। अबदानके मतसे बुद्धनिवांणके १०० एक सौ वर्ष बाद अशोकने राज्यलाभ किया। महावंशके मतसे इन अशोक को नाम कालाशोक था। कालाशोकके वाद उनके दश और नौ पुत्रोंने मिल कर ४४ वर्ष राज्य किया। इन नवींमें अन्तिम राजा घनमन्द थे। चाणक्यने उनकी हस्या

करके चन्द्रगुप्तको जम्बूद्दीपका सिहासँन प्रदान किया। चन्द्रगुप्तने ३४ वर्ष राज्य किया। पीछे उनके लड़के विन्दु-सार २८ वर्ष राजा रहे। अशोक उन्होंके पुत्र थे। युद्ध-निर्वाणके बाद और अशोकके अभिषेक पर्यन्त २१८ वर्ष बीत चुके थे।

महाव शके मतसे ५४३ ई०सन्के पहले बुद्धदेवने निर्वाणलाभ किया। अतएव महाव शके अनुसार ३२५ ई॰सन्के पहले अशोकका राज्याभिषेक हुआ । इस हिसावसे ३५३ ई०सन्के पहले विन्तुसारका और ३८७ ई॰सन्के पहले चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक काल माटे तौर पर स्थिर किया जा सकता है। किन्तु पाश्चात्य-पुराविदोंमेंसे किसीका भी महावंशके ऊपर विश्वास नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है, कि वुद्धनिर्वाणसे महा-वंशमें जो अन्द गिना गया है, वह विलकुल विश्वास-जनक नहीं है। कारण, बुद्धनिर्वाणकाल ले कर नाना देशीय बौद्धोंमें बहुत मतमेद हैं। वृद्ध देखो । इसीसे उन्हों-ने बुद्धनिर्वाणाब्द पर निर्भर न करके चन्द्रगुप्त पर लक्षा किया है। जिंछनस् आदि किसी किसी पाश्चात्य ऐति-हासिकने महावीर अलेकसन्दरके समसामयिक जिन Sandrocottusका उल्लेख किया है, पाश्चात्य पुराविदोंका विश्वास है कि वे ही मौर्यराज चन्द्रगुप्त हैं। ३२५ ई०सन्के पहले अलेकसन्दर पञ्चनद्में उपस्थित हुए थे। पाञ्चात्य पुराविदोंका विश्वास है, कि नोचवंशोद्भव चन्द्रगुप्त-ने उनसे मुलाकात की थी। अलेकसन्दरने कप्ट हो कर उन्हें प्राणद्एडका आदेश दिया। आबिर उन्होंने भाग कर अपनी प्राणरक्षा की। पीछे वे ३२० ई०सन्के पहले राजा हुए थे। चन्द्रगुप्त शब्दमे बिस्तृत विवरण देखी। इस प्रकार भारतके अङ्गरेज ऐतिहासिकोंने अलेकसन्दर और चन्द्रगुप्तको भित्ति करके भारतके कालक्रमिक इतिहास-का पत्तन किया है।

अशोक जब चन्द्रगुप्तके पौत हैं, तब उन्होंने अलेक-सन्दरके बहुत समय बाद सिहासन प्राप्त किया होगा, इसमें जरा भी सन्दे ह नहीं। विशेषतः प्रियद्शींके अनु-शासनमें अन्तिओक (Antiochns), तुरमय (Ptolemacu-), अन्तिकिनी (Antigonus) मक (Magas) और अलेकसन्दर (Alexander) इन देशनासी यवन ( Greek ) राजोंका नामोल्लेख है। उक्त पांच व्यक्तियोंके कालसम्बन्धमें अध्यापक लासेनने इस प्रकार लिखा है,— Antiochus of Syria—( राज्यकाल ) २६०-२४७ खु॰पू॰।

Ptolemy Philadelphus—্বেশ্-২৪৩ জু৹ত্বৃত।
Antigonus Gonatus of Macedonia—২৩८২৪২ জু৹ত্বৃত।

Magas of Cyrene—२५८ खृ०पूर्वाव्दमें मृत्यु ।
Alexander of Epirus—२६२-२५८ खृ०पू० ।
उक्त पांच राजा २६०-२५८ खृ०पू०के मध्य जीवित थे
इसीसे सेनार्टने कहा है, कि प्रियदशींके राजत्वके १३वें
वर्षमें जो लिपि उत्कीर्ण हुई, उसमें जब उक्त पांचोंके नाम
मिलते हें, तब निश्चय है, कि वह लिपि भी २६०-२५८
ई०सन्के मध्य प्रचारित हुई थी । इस हिसाबसे २६६ ई०
सन्के पहले उनका अभिषेक हुआ और उसके चार वर्ष
पहले अर्थात् २७३ खृ०पू०में उन्होंने राज्यलाम किया।

अशोकका चरित-समानीचना। वुद्धके आविर्भावकालसे ले कर आज तक भारतवर्ष-में जितने राजा राज्य कर गये हैं, प्रियदर्शीके साथ किसी-की तुलना नहीं की जा सकती। जीवनके प्रथमांशमें जिस उद्धतप्रकृति, नरशोणितलिप्सा और खगणविद्धे पने उसे समाजके मध्य घृण्य और निन्दास्पद कर डाला था, वह दुए प्रकृति सम्भोग और समृ दकी गोदमें लालित पालित हो किस प्रकार संशोधित और विशुद्ध हो कर अतुलनीय और आदर्शस्वरूप हो सकती है, अशोकका चरित उसका प्रशृष्ट परिचायक है। उन्होंने राजनीतिक कार्यकुरालता, युद्धनिपुणता और लोकचरित्न-शिक्षासे भारतविश्रुत अकवरको भी पराजय किया है। वीर्यवत्ता और राज्यवृद्धिके पक्षमें कोई भी मुगल सम्राट् उनके मुकावलेके नहीं थे। अकवर जिस प्रकार विद्वे पियोंके साथ संस्रव रखते थे, देशीय विदेशीय सभी परिडतोंका आदर सम्नान करते थे, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी प्रजाको जिस प्रकार समानभावमें देखते थे, अशोकने भी उसी प्रकार ब्रीस आदि दूरदेशोंके साथ सम्बन्ध रखा था। ब्राह्मण वा श्रमण सभी पण्डितीं-की यथेष्ट भक्तिश्रद्धा की थी ; हिन्दू, वौद्ध, जैन आदि

सर्वोका समान उपकार किया था। बुद्धदेवने जो धम चलाया, वह भारतके कुछ ही अंशोंमें आवद था; परन्तु अशोकके समय बुद्धका वह उपदेश केवल भारतवर्षमें ही नहीं, पशिया, यूरोप आदिमें भी फैल गया था। अशोकके के समय भी बौद्धधर्ममें कोई विशेष जटिलता न थी। उनके अनुशासनोंमें सब जीवों पर दया और जनसाधा-रणको प्रतिपाल्य साम्यनोति ही उपदिए हुई है।

यूरोपीय पुराविदोने अशोकके साथ कनप्रानटाइन, सलोमान, लुइ-दि-पायस आदि प्रातःस्मरणीय धार्मिक राजाओंकी तुलना की है।

प्रियदास एक प्रन्थकार । भक्तमोदतरङ्गिणी, भक्तिप्रभा और उसकी टीका, भागवतपुराणप्रकाश और श्रुतिस्त्र-तात्पर्यामृत नामक इनके वनाये हुए प्रन्थ आज भी मिळते हैं।

प्रियधाम ( सं० क्वी० ) त्रियं धाम यस्य । प्रियस्थान, प्यारा स्थान ।

प्रियपति (सं॰ पु॰) प्रियस्य पतिः पालकः। प्रियपालक। प्रियपाल (सं॰ ति॰) जिसके साथ प्रेम किया जाय, प्यारा।

प्रियप्राय ( सं ० क्ली० ) प्रियस्य प्रायो यत । प्रियवाश्य, मधुर वचन । पर्याय—चटु, चाटु ।

प्रियप्रे प्सु ( सं० ति० ) प्रियं प्रे प्सतीति प्रं-आप-सन-उ । इष्टार्थोद्दयुक्त, उन्मुख, उत्सुक ।

त्रियभाषण (सं० क्ली०) त्रियस्य त्रियवाषयस्य भाषणं कथनं। त्रियवाषयकथन, मधुर्,वचन वोलना।

प्रियभाषिन् (सं• ति•) मधुर वचन वोलनेवाला, मीडी वात कहनेवाला ।

प्रियमधु ( सं॰ पु॰ ) त्रियं मधु मद्यं यस्य । वल्लरामका एक नाम ।

प्रियमाल्यानुलेपन (सं० ति०) प्रियं माल्यकनुलेपनञ्च यस्य। १ माल्यानुलेपनिष्रय, जो माला और अनुलेपन-को वहुत पसन्द करते हों। (पु०) २ स्कन्दानुन्तरभेद। प्रियमेध (सं० पु०) १ अजनीदके एक पुत्रका नाम। २ २ यशोपेत ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

प्रियम्भविष्णु (सं० ति०) अप्रियः प्रियो भवति भू-कर्त्तीर-खिष्णुच् (कर्तीर भुवः खिष्णुच् खक्डची । पा ३।२।४०) अविय प्रियमविता, जो पहले प्रिय नहीं था, पीछे प्रिय हुआ।

प्रियरथ (सं॰ त्रि॰) प्रोयमाण रथयुक्त, जिसे विद्या रथ हो।

प्रियक्तप (सं ० ति० ) प्रियं रूपं यस्य । १ दृशक्तप, जिसका कृप अत्यन्त मनोहर हो । (क्की०) २ मनोहर रूप, सुन्दर चेहरा।

वियरोजशाह—दिल्लीश्वर सुळतान फिरोजशाहका संस्कृत नाम। गयाधाम और अळवारके निकटवर्ती मचाड़ीमें प्राप्त तथा उनके आदेशसे उत्कीर्ण और संस्कृत भाषामें ळिखित शिळाळिपिमें उनका यह नाम पाया जाता है। फिरोजशाह देखी।

प्रियवक्ता (सं॰ ति॰ ) प्रिय यचन बोलनैवाला, मधुर-भाषो ।

प्रियवचन (सं० ह्यी॰) प्रियं वचनं कर्मधा॰ । १ प्रिय वाषय, प्रमुर वर्चन । (ति॰) प्रियं वचनं यस्य । २ प्रियवादी, प्रिय वचन बोळनेवाळा । ३ भक्तिमान् रोगी ।

प्रियमत् ( सं० ति० ) प्रिययुक्त ।

शियवर ( सं॰ ति॰ ) अतिप्रिय, सवसे प्यारा ।

प्रियवणीं (सं ० ति ० ) प्रियः वर्णो यस्याः गौरादित्वात् डीष् । प्रियंगुः,कंगनो ।

प्रियवञ्जी संव स्त्रीव) प्रिया मनोज्ञा बल्ली लता। प्रियंगु,

प्रियवाच् (सं क्षी ) प्रियवाक् । प्रियवाक्य, प्रियवचन । प्रियवाद (सं पु ) प्रियः वादः । प्रिय वाक्य, मीडी बोली । प्रियवादिका (सं क्षी ) १ बाद्ययन्त्रभेद, एक प्रकारका वाजा । २ मधुरमाविणी, वह औरत जो मीडी मीडी वातों से दूसरों की मीह लेती है।

प्रियवादिन् ( सं॰ ति॰ ) प्रियं मनोज्ञं वदतीति बद-णिनि । मनोज्ञ वका, मीठा वोलनेवाला ।

प्रियवादिनी (सं० स्त्री०) शारिका, एक प्रकारकी मैना।
प्रियवत (सं० पु०) प्रियं वतं यस्य। १ स्वायम्भुव
मनुके एक पुतका नाम। इनके भाईका नाम उत्तानपाद था। भागवतमें इसका विषय यों लिखा है,—
ये प्रजापति थे। विश्वकर्माकी कन्या वहिष्मतीसे इनका
विवाह हुआ था। वहिष्मतीसे इनके आनीध्र सादि दश

पुत उत्पन्न हुए थे । परन्तु विष्णुपुराणसे जाना जाता है, कि नियनतने कर्दमकी कन्याको व्याहा था। गर्भसे सम्राट् और कुश्ली नामकी हो कन्याएं तथा दश पुत उत्पन्न हुए थे। इन दश पुत्नोंके अलावा इनके दूसरी स्त्रीसे उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुर्तीने जन्म त्रहण किया था। फिर भागवतमें दूसरी जगह लिखा है, कि वें ही पुत मन्वन्तरके अधिपति हुए । प्रियवतके प्रथमोक्त दश पुर्तोमेंसे तीन पुत्र संन्यासी और अन्य सात पुत राजा हुए थे। प्रियन्नत सारी पृथ्वीके अधीश्वर थे। उन्होंने पृथ्वीको सात भागोंमें विभक्त कर उन्हें अपने पुर्तीको दे दिया था। उन सात भागोंके नाम ये हैं.-जम्बूद्वीप, प्रश्नद्वीप, शावमलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपोंके चारीं और छवण-समुद्र, इक्षसमुद्र, सुरासमुद्र, धृतसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दश्चि-समुद्र और जलसमुद्र हैं। उन सात द्वीपेंमिंसे जम्बूद्वीप-के अधिपति प्रियवत थे। उन्होंने अपने ज्येष्ट पुत अनोधको अपना उत्तराधिकारी बनाया ओर इध्मजिह्नको प्रभद्रीप, यहवाहुको १ त्स्मलीद्रीप, हिरण्यरेताको कुश-द्वीप, घृतपृष्ठको कौञ्चद्वीप, मेधातिथिको शाकद्वीप और वीतिहोत्रको पुष्करद्वीप दिया था। प्रियवत सभी बार्तो-में पुरुपश्रेष्ठ थे। भागवतके मतानुसार इन्होंने ।यारह अवु<sup>र</sup>द वर्षों तक राज्यशासन किया था। आधी पृथ्वी पर प्रकाश होता है और आधी पर अन्धकार—इस प्रकारकी अपने साम्राज्यमें प्राकृतिक विपमता देख कर प्रियत्रतने अन्धकार दूर करनेकी प्रतिका की, 'में अपने तेजसे रातिको भी दिन कर दूंगा।' इसके वाद् द्रुत-गामी ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर इन्होंने द्वितीय सूर्यके समान सूर्यका पीछा किया। उस समय रथनकसे जो सात गड्ढे वने, वे ही सात समुद्र हुए और उन्हों सात समुद्रोंसे घिरे रहनेके कारण पृथ्वीके सात भाग हुए। पुराणोंमें जो इनके विषयमें लिखा है, उनका यही अभि-प्राय है, कि राजा प्रियवतने जो सब कार्य किये हैं, वे ईश्वरके विभा दूसरे किसीसे सिद्ध नहीं हो सकते। अन्तमें ये आत्मज्ञान प्राप्त कर मोक्षके अधिकारी हुए थे।

( ति • ) २ जतप्रिय, जिसे जत व्यारा हो ।

प्रियशालक ( सं ॰ पु॰ ) पियासाल ।

प्रियश्रवस् ( सं ॰ पु॰ ) प्रियं श्रवः श्रवणं यस्य । पर-मेश्वर ।

प्रियस ( सं • ति • ) १ भभिल्घित बस्तुप्रद्। २ प्रिय-तमाभारा।

प्रियसस (सं०पु०) प्रियः सखा च हितकारित्वात् टच् (राजाहः सिख्मिष्टच्) १ खदिर, खैरका पेड़। प्रिय-श्चासौ ससा चेति। २ प्रियवन्धु। ३ प्रियका सखा, प्रियका वन्धु।

त्रियसङ्गमन (सं० ह्वी • ) प्रिययोः सङ्गमनं यत । १ प्रिय भौर सङ्कोतस्थान, प्रियाका मिलनस्थान । २ कश्यप भौर अदितिके मिलनस्थान, वह स्थान जहां कश्यप और अदितिका मिलन हुआ था ।

त्रियंसत्य (सं• ह्यो०) त्रियं सत्यमिति कर्मधा०। १ सुनृतवाक्य। (ति०) प्रियं सत्यं यस्य। २ सत्यप्रिय। प्रियसन्देश (सं• पु०) प्रियं सन्दिशति प्रिय-सम्-दिश-अण्। १ चम्पकयृक्ष, चम्पाका पेड़। प्रियः सन्देशः कर्मधा०। २ प्रियसम्बाद, खुश खबरो।

प्रियसालक (सं०पु०) प्रियः सालः ततः सार्थे कन्। असनवृक्ष, पियासाल नामक पेड।

प्रियस्तोत (सं कि कि ) जिसके स्तोत अतिशय प्रिय हो। प्रियस्वामी—हारितस्मृतिके टोकाकार। विवादरताकरमें चण्डेश्वरने इनका नामोल्झेख किया है।

प्रिया (सं ॰ स्त्री • ) प्रिय-टाप् । १ नारी, स्त्री । २ भार्या, पत्नी । ३ पला, इलायची । ४ मल्लिका, चमेलो । ५ मिदरा, शराव । ६ वार्त्ता, संदेश । ७ पञ्चाक्षर-छन्दो- विशेष, एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें पांच अक्षर होते हैं । ८ प्रे मिका स्त्री, माश्रका ।

प्रिया—बाराणसीराज रामचन्द्रकी पत्नी। वौद्धग्रन्थादि-में जहां कपिलवस्तुनगर-प्रतिष्ठाका प्रसङ्ग आया है, वहां इनका विवरण मिलता है। बालिकाबस्थामें इन्हें सफेद कोढ़ हुआ था। इस पर इनके आत्मीयवर्गने इन्हें जङ्गल-में छोड़ दिया था। वहीं रामचन्दने उनका रोग शान्त कर उनसे विवाह कर लिया।

प्रियाल्य (सं ० ति०) प्रिया-आल्या यस्य । प्रिय, प्यारा । प्रियातिथि (सं ० ति०) आतिथेयी, अतिथिको सत्कार-करनेवाला । प्रियात्मञ्ज (सं• पु•) सनामस्यात प्रसहजातीय पक्षि-भेद, चरकके मतानुसार पसह जातिका एक पक्षी। प्रियात्मा (सं• पु०) उदारचेता, बद्द जिसका चित्त उदार और सरल हो।

प्रियादि (सं ॰ पु॰) प्रिया आदि करके पाणिन्युक्त शब्द् गण, यथा—प्रिया, मनोक्का, कल्याणी, सुमगा, दुर्भगा, भक्ति, सचिवा, खसा, कान्ता, समा, श्लान्ता, चपला, दुहिता, वासना, तनया।

प्रियाम्बु (सं•पु०) प्रियं अम्बु यस्य । १ आम्रबृक्ष, आमका पेड़। २ आम्रफल, आमका फल। ३ इच जल, बढ़िया पानी। (ति•) ४ जलप्रिय, जिसे जल बहुत प्रिय हो।

प्रियाल (सं० पु॰) वृक्षभेद, पियार (Buchanania Latifolia) इसके नीजको चिरौं जी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—चार, अखट, खर-कृत्य, ललन, चारक, बहुवल्क, सन्नद्र, तापसप्रिय, स्नेहवीज, उपवट, मक्षवीय, पिनाल, बहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सम्नकद्र, धनुःपट।

इसके पेड़ भारतवर्ष भरके विशेषतः दक्षिणके जंगलों-में होते हैं । हिमालयके नीचे भी थोड़ो ऊँचाई तक इसके पेड़ मिलते हैं, पर विशेषतः यह विन्थ्य पर्वतके जंगलोंमें पाया जाता है । इसके पेड़में चीरा लगानेसे एक प्रकारका विद्या गोंद निकलता है जी पानीमें बहुत कुछ घुल जाता है ।

वैदाकके मतसे इसका गुण—पित्त, कफ और अस-नाशक। फलका गुण—मधुर, गुरु, स्निग्ध, सारक, बायु, पित्त, दाहज्वर और तृष्णानाशक। मज्जाका गुण— मधुर, वृष्य, पित्त और वायुनाशक, हृदा, दुज र, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्द्ध क। ( मावप्रकाश) विशेष विष-रण पियार शब्दमें देखो।

पियाला (सं० स्त्री०) प्रियाल-टाप्। द्राक्षा, दास । प्रियावत् (सं० ति०) १ प्रियायुक्त, जोस्त्वाला । २ इत्यायुक्त ।

त्रियासाधु गोविन्द्कृत सिद्धान्तरत्नास्यभाष्यपीठ नामक त्रन्थके टीकाकार। त्रियास्यमती (सं० स्त्री०) काश्मीरराज चित्ररथकी

पत्नी ।

प्रियाह्म (सं ॰ स्त्री॰) कं गुनिका, कँगनी नामका अन्त । प्रियेषिन् (सं ॰ त्नि॰) प्रियाभिकापी, हिताभिकापी। त्रियोदित (सं ॰ क्ली॰) प्रियं इदितं कमैधा०। चाटुवाक्य, मीठी वचन।

प्रिवीकौंसिल ( अ ॰ पु॰ ) १ वें सब व्यक्ति जो किसी वड़ें शासकको शासनके काममें सहायता देते हैं। २ रङ्ग-हैएडमें वहांके राजाको परामर्श देनेवालोंका वर्ग । इसका सङ्गठन १५वीं शतान्दीमें हुआ था । इस वर्गमें कुछ पुराने पदाधिकारी और कुछ राजाके चुने हुए लोग रहते हैं। फिलहाल इसमें राजकुलसे सम्बन्ध रखनेवाले लोग, वहें वह सरकारी कर्मचारो, रईस और पादरी शादि सम्मिलित हैं। देसे छोगोंको संख्या २००से ऊपर है। इस वर्गके दो विभाग हैं। एक विभाग शासनकार्यमें राजाको सलाह देता है भौर दूसरे विभागमें न्याय-विभागके सर्वप्रधान कर्मचारी होते हैं। प्रधम विभाग-के परामशैदाताओंके नामके साथ राइट-आन्रेखुलकी उपाधि खती है। दूसरा विभाग भगीलके कामके लिये भक्तेजी राज्य भरमें भंतिम न्याबालय है, यहीं पर -भाक्तिरी फैसला सुनाया जाता है। शासनकार्यमें अव प्रिबी कौंसिलकी बिशेष शमता रह न गई और उसका स्थान प्रायः मन्त्रीमएडलने से लिया दै ।

शी (सं ० स्त्री०) १ मीति, भेमा २ कान्ति, जनका ३ इच्छा। ४ तृति। ५ तर्षण।

श्रीसक (हिं पु॰) कदस्य, कद्म।

श्रीण (सं • ति • ) प्र (नश्च पुराणे प्रात् । पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्तिकोक्त्या खा १ पुरातन, पुराना १३ प्रीति-युक्त, जो प्रसन्न हो । ३ प्रीणनकारक, प्रसन्न करनेवाला । ४ नमें।

प्रीणन (सं • क्वी • ) प्रो-स्वार्थे णिच्-त्युट्। (धूज्प्री-जोरिति लुक्) त्रिकारण । पर्याय—तर्पण, अवन । प्रीणस (सं • पु•) गएडक ।

त्रीत ( स'o तिङ) त्रीज् त्रीणने कः । प्रीतियुक्तः । पर्याय— इष्ट, मत्त, तृप्त, प्रहुत्र, प्रसुद्ति, तृपितः ।

शीतात्मा (सं o पु॰) शिवका एक नाम।

प्रीति (सं • स्त्री •) प्रीज्-भावे किन् । १ तृप्ति, वह सुख जो किसो १९ वहनुको देखने या पानेसे होता है । संस्कृत पर्याय मुद्द, प्रमद, हर्ष, प्रमोद, आमोद, सम्मद, आनन्द्रभु, आनन्द, शर्म, सात, सुख। २ कोमपत्नी, कामकी एक खी-का नाम जो रितकी सौत थी। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि किसी समय अनङ्गवती नामकी एक वेश्या थी। वह माघमें विभूति द्वादशीका विधिपूर्व क त्रत करनेके कारण दूसरे जन्ममें कामदेवकी पत्नी हो गई थी। ३ फलित ज्योतिपके २७ योगों मेंसे दूसरा योग। इस योगमें सब प्रकारके शुम कर्म विधेय हैं। जो मनुष्य इस योगमें जन्मग्रहण करता, वह नीरोग, सुखी, विद्वान, और धन-वान होता है। ४ प्रसन्नता, आनन्द, हर्ग। ५ प्रेम, स्नेह।

श्रीतिकर ( सं ० ति ०) करोतीति कृ-र-करः श्रीत्याः करः । श्रीतिजनक, शसन्नता उत्पन्न करनेवाला ।

प्रीतिकर—एक विख्यात शास्त्रवेत्ता और पण्डित । इन्हों -ने सामचेदप्रकाशन, ऊहगानदर्पण, ऊहागानदर्पण और चेयदर्पण नामक वैदिक प्रन्थों की रचना की है।

प्रीतिकर्भन् (सं ० हों ०) प्रीतिहेतु कर्म, वह कार्य जो किसीको सन्तुष्ट करनेके लिये किया जाय।

मोतिकारक ( सं ० वि० ) मी तेका देखो ।

प्रीतिकृट ( सं ० क्ली० ) प्राममेद् ।

प्रीतिज्या (सं ० स्त्री०) प्रीति-ज्यूपते सेवते इति जुष-सेब-ने क-टाप । अनिरुद्धकी पत्नी उपाका नाम।

प्रीतितृष् ( सं ॰ पु॰ ) प्रीत्यधिष्ठाता देवतामेद् ।

प्रीतिद (सं॰ पु॰) प्रीति द्दातीति दा-( भाती ध्रुपः सर्गे कः। पा ३।२।३) इति कः। १ भएड, भांडः। संस्कृत पर्याय—वासन्तिक, केलिकिल, वैहासिक, बिद्यक, प्रहासी। (ति॰) २ हर्ष, सुख और प्रेमदायक।

प्रीतिव्स (सं० ह्यों ०) प्रीत्या दत्तमिति । १ प्रीतिपूर्वक दत्त वस्तु, प्रेमपूर्वक दिया हुआ दान । २ वह पदार्थ को सास अथवा ससुर अपने पुत या पुतवधूको, या पति अपनी पत्नीको भोगके लिये दे।

भीतिदान (सं ॰ पु॰) भीतिहत देख । भीतिदाय (सं॰ पु॰) भीत्या दीयते दा कमेणि-घर्म्। भीतिपूर्वक दत्त, भेमपूर्वक दिया हुआ दान ।

प्रीतिधन (सं० ह्री०) प्रीत्या देय' धनं । प्रीतिपूर्वक देय

प्रीतिपात ( सं॰ पु॰ / जिसके साथ प्रीति की जाय, प्रेम-भाजन, प्रेमी ।

प्रीतिमोज ्सं॰ पु॰) वह भोज या खान-पान जिसमें मिल और वन्धु आदि संम्मिलित हों।

प्रीतिभोज्य (सं० ति०) प्रीत्या भोज्यम्। प्रीतिपूर्वक भक्षणीय।

प्रीतिमत् (सं ॰ ति ॰ ) प्रीतिः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । प्रीतियुक्त, प्रेम रखनेवाला ।

प्रीतिमय ( सं • बि • ) प्रीतिकर, सन्तोपमय।

प्रीतिमान ( हिं० वि० ) प्रीतिमत् देखो ।

प्रीतिय (सं० स्त्री० प्रेम।

प्रीतिवचस् (सं॰ क्ली॰) प्रीतियुक्तं वचः। प्रीतिपूर्वक बाक्य।

प्रीतिरीति (सं ॰ स्त्री॰) प्रे मपूर्ण व्यवहार, परस्परका प्रेम सम्बन्ध ।

प्रीतिवर्द्धं म : सं ० कि०) प्रीतिवर्द्धं यति-वृध-णिच्-ल्यु । १ सन्तोषवद्धं क । (पु०) २ विष्णुका एक नाम । प्रीतिसङ्गति (सं ० पु०) वान्धवसमिति ।

प्रीत्यर्थ (स'० अव्य०) १ प्रीतिके कारण, प्रसन्न करनेके वास्ते। २ लिये, वास्ते।

प्रुष्ट ( सं ॰ हि॰ ) प्रुप-क । दग्ध, जला हुआ । प्रुष्ठ ( सं ॰ पु॰ ) दुग्ध, दूध ।

प्रुप्त (सं ॰ पु॰) प्रुष्णाति स्निद्यति पिपर्त्ति वेति प्रुप (अग्रप्रुषि वटिकणि खटिषिशिभ्यः कन् । वण् १।१५१) इति कन् टाप् । १ ऋतु । प्रोपति दहतीति । २ दिवाकर, सूय । ३ जलविन्दु ।

प्रुष्वा (सं० स्त्री०) प्रुष्व-टाप्। जलविन्दु।
प्रुष्त (अं० पु०) १ किसी वातको ठीक ठहरानेके लिये
दिया जानेवाला प्रमाण, सबूत। २ किसी वस्तुका
असर होनेसे पूरा बचाव। इस अर्थमें यह शब्द यौगिक
शक्तें के उत्तर पदके रूपमें व्यवहृत हुआ करता है।
जैसे वाटर प्रूष, फायर प्रूष आदि। ३ किसी छपनेबाली चीजका वह नमूना जो उसके छपनेसे पहले
अशुद्धियां आदि दूर करनेके लिये तैयार किया जाता है।
प्रम (अं० पु०) लट्टूके आकारका एक प्रकारका यन्त्र
जो सीसे आदिका बना होता है। यह समुद्रकी गह-

राई नापनेके काममें आता है। इसे रस्सीके एक सिरेमें जहां नापके निशान छगे होते हैं, बांध कर समुद्रमें डाल देते हैं और इस प्रकार उसकी गहराई नापी जाती है। कभी कभी इसके नीचेका अंश इस तरह बना दिया जाता है, कि उससे समुद्रकी तहके कुछ कंकड़-पत्थर वालू या घों वे आदि भी उसके साथ छग कर ऊपर चले आते हैं।

प्रेक्षक (सं ० ति०) प्र-ईक्ष-ण्वुल्। दर्शक, देखनेवाला। प्रेक्षण (सं ० क्ली०) प्रेक्षते पश्यत्यनेनेति प्र ईक्ष-करणे-ल्युट्। १ चक्षु, आंख। भावे ल्युट्।२ दर्शन, देखने-की, किया।

प्रेक्षणीय (सं० ति०) देखनेके योग्य।

प्रेक्षा (सं ० स्त्री०) प्रकर्षण ईक्षते ययेति प्र-ईक्ष- (गुरो-रच हलः। पा ३।३।१०३) इति अ-टाप्।१ प्रज्ञा, बुद्धि। २ नृत्येक्षण, नाच तमाशा। प्र-ईक्ष-भावे अ, टाप्। ३ ईक्षण, देखना। ४ शाखा, डाली। ५ शोभा। ६ किसी विषयकी अच्छी और बुरो वातोंका विचार करना। ७ दृष्टि, निगाह।

प्रेक्षागार (सं० क्की०) प्रेक्षायाः आगारं ६-तत्। राजाओं-केमन्त्रणार्थं गृह, राजाओं आदिके मन्त्रण करनेका स्थान।

प्रेक्षागृह (सं० क्ली४) प्रेक्षागार, मन्त्रणागृह।

में क्षादि (सं० पु०) प्रेक्षा आदि करेके पाणित्युक्त शब्दगण, गण यथा—प्रेक्षा, हलका, वन्धुका, भ्रुवका, क्षिपंका, न्यग्रोध, इकट, कङ्कट, सङ्कट, कटक्ए, धृक, पूक, पुट, मह, परिवाप, यावास, भ्रुवका, गर्स, कूएक, हिरण्य। इन शब्दोंके उत्तर 'इनि' प्रत्यय लगता है।

प्रेक्षावत् ( सं ० त्नि ० ) प्रेक्षा विद्यतेऽस्य अस्त्यथे . मतुप . मस्य व । समीक्षाकारी, सुविवेचक .

प्रेक्षासंयम (सं० पु०) जैनोंके अनुसार सोनेसे पहले यह देख लेना कि इस स्थान पर जीव आदि तो नहीं है।

प्रे क्षित (सं ० ति०) प्र-ईक्ष-क। द्वष्ट, देखा हुआ। प्रे क्षित् (सं ० ति०) प्र-ईक्ष-तृच्। दर्शक, देखनेवाला।

प्रेक्षिन् (सं ० ति ०) प्रेक्षा अस्त्यस्य (प्रेक्षाद्दिभ्य इनि ।

पा शराट॰ ) इति इनि । प्रेक्षायुक्त । बुद्धिमान्, समन्त-दार । प्रेह्म (सं कि ) १ कम्पित, जो कांप उठा हो। २ - हिलता या भूळता हुआ। (पु०) ३ भूळना, पेंग छेना। ४ एक प्रकारका सामगान।

में द्वण (सं क्वीं ) प्र-इख-ल्युट् ततोणत्वं। १ अच्छी तरह हिलना या फूलना। २ अठारह प्रकारके रूपकोंमें-से एक प्रकारका रूपका। इसमें स्वधार विष्कुम्मक और प्रवेशक आदिकी, आवश्यकता नहीं होती और इसका नायक नीच जातिका हुआ करता है। इसमें प्ररोचना और नान्दी नेपथ्यमें होता है और यह एक अङ्कमें समाप्त होता है। इसमें धीररसकी प्रधानता रहती है।

त्रेङ्कृत् (संः तिः) प्र-इखि गती-शतः। १ चळनविशिष्ट । २ संसक्तिविशिष्ट।

प्रेङ्कृतीय (सं॰ ति॰) प्र-इख-अतीयर् । प्रकर्ष रूपसे कलनयोग्य, जो अच्छी तरह चलने लायक हो ।

प्रेङ्का (सं० स्त्री०) प्रेङ्खते गभ्यतेऽनयेति प्र-इखि गती करणे घञ् टाप्। १ दोला, भूलना। २ हिलना। इ.याला, भ्रमण। ४ नृत्य, नाच। ५ अश्वगति घोड़े-को चाल।

में ङ्कित (सं ० वि०) प्र-इखि-कत । कम्पित, जो कांप रहा हो ।

प्रद्वील (सं० पु०) दोलन, भूलना।

में द्वीलन (सं ० क्ली०) प्रे द्वीत्यते चल्यतेऽनेनेति प्रे द्वील करणे ल्युट्। १ दीलन, भूलना । भावे ल्युट् । २ कम्पन, हिलना, कांपना।

प्रेङ्कोलित (सं० ति०) प्रेङ्कोल-का । दोलित, कांपता हुआ, हिलता हुआ।

प्रेण (सं० पु०) १ गति, वाल । २ प्रेरणा करना। प्रेत (सं० पु०) प्र-इ-क । १ मृत क्यकि, मरा हुआ मनुष्य। २ नरकस्थ जीवभेद, नरकमें रहनेवाला प्राणी। ३ पिशाचोंकी तरह एक कल्पित देवयोनि जिसके शरीरका । रंग काला, शरीरके वाल खड़े और स्वकृत बहुत ही विकराल माना जाता है। ४ बहुत ही वालाक और कंजूस भादमी। ५ पुराणानुसार वह कल्पित शरीर जो मनुष्यक्रो मरनेके उपरान्त प्राप्त होता है।

विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि जब मनुष्य मर जाता है भौर उसका शरीर जला विद्या जाता है तब वह अति-Vol. XIV 191

वाहिक वा लिङ्गशरीर धारण करता है और जब उसके उद्देश्यसे पिएड आदि दिया जाता है, तब उसे प्रेतशरीर प्राप्त होता है। इसी प्रेत-शरीरको भोगशरीर भी कहते हैं। यह शरीर मरनेके उपरान्त सपिएडी होने तक रहता है और तव उसके वाद वह अपने कमेंके अनुसार स्वर्ग या नरकमें जाता है । जब तक सपिएडीकरण नहीं होता, तब तक में तशरीर रहता है। यही कारण है, कि उसके उद्देश्यसे श्राद्याविमें पितादिपदका उल्लेख न हो कर अविपदका उल्लेख हुआ करता है। आद्येको-हिए मर्फिक श्राद्ध वादि प्रेतश्राद्ध माना गया है। इन सव श्रादां में 'पितादि' पदका उल्लेख न हो कर 'प्रेत अमुक तदुई शसे श्राद करता हूं' पेसा उल्लेख होगा। मृत्युके वाद पूरकपिएड द्वारा प्रे तदेहके अङ्गयत्यङ्गादिका पूरण होता है। जिन लोगोंकी श्राद्ध वादि या औद्धर्य-देहिक क्रिया नहीं होती, वे प्रतावस्थामें ही रहते हैं। कुछ लोग अपने कर्मके अनुसार औदुर्ध्वदेहिक क्रिया हो जाने पर भी में तही वने रहते हैं।

प्रेतदेहावस्थामें शीत, बात और आतप जन्य भया-नक यातना होती है। प्रेतके उद्देश्यसे श्राद्धादि कार्य करने होते हैं, यह पहले ही कहा जा जुका है। इस प्रेत श्राद्धके अधिकारी कीन है, उसका विषय यथाक्रम नीचे लिखा जाता है। उन सब अधिकारियोंको छोड़ कर यदि कोई प्रेतके उद्देश्यसे श्राद्ध करे, तो श्राद्ध पतित तो नहीं होता, पर प्रत्यवाय होता है। यथार्थ प्रेताधि-कारी यदि श्राद्ध न कर सके, तो उसकी अनुमति ले कर दूसरा कर सकता है, इसमें कोई दोष नहीं।

प्रतिकाय के अधिकारिगोंका यथाक्रम । पुरुषके पश्चमें---

१ ज्येष्ठपुत्र ।	१० दौहिल।
२ कनिष्ठ पुत्र	११ कनिष्ठ सहोद्रः।
३ पौत्र।	१२ ज्येष्ठ सहोदर।
४ भपोत्र ।	१३ कनिष्ठ वैमालेय।
५ अपुतपती ।	१४ ज्येष्ठ वैमालेय।
६ कन्यासमर्थपुतयुक्तपती	१५ कनिष्ट सहोदर-पुत
७ क्स्या।	१६ ज्येष्ठ सहोदर पुता
•	१७ कनिष्ठ चैमालेय-पुत
६ दसाकता ।	

१६ पिता ।	३४ भागिनेय।
२० माता ।	३५ मातृपक्ष सपिएडज्ञाति ।
२१ पुत्रवधू ।	३६ मातृपक्ष समनोद्कज्ञाति।
२२ पौत्री।	३७ असवर्णा भार्या ।
२३ दत्तापौती ।	३८ अपरिणीता स्त्री।
२४ पौतवधू ।	३६ श्वशुर ।
२५ प्रपौतो ।	४० जामाता ।
२६ दत्ता प्रपौती ।	४१ पितामही भ्राता ।
२७ पितामह।	४२ शिष्य। .
२८ पितामही ।	४३ ऋत्विक्।
२६ सपिएड ज्ञांति।	८८ माचार्य ।
३० समानोदक ।	४५ मिल ।
३१ सगोत ।	४६ पितृमित ।
३२ मातामह ।	४७ एक ग्रामवासी सजातीय,
	गृहीतवेतन ।

३३<sup>.</sup>मातुल ।

१४ सगोत।

४८ सजातीय ।

## क्रीकं पक्षमे ।

१ ज्येष्ठ पुता।	१५ पिता ।
२ कनिष्ठ <sup>-</sup> पुत ।	'१६ भ्राता ।
३ पौत ।	१७ भगिनी-पुत्र ।
८ प्रपौतः।	१८ भर्त्तृ -भागिनेय ।
५ कस्या ।	१६ भातृपुत्न ।
६ वाग्दत्ता कन्या ।	२० जामाता ।
७ दत्ताकन्या ।	`२१ <sup>.</sup> भत्तृ <sup>°</sup> मातुल ।
८ दौहित ।	ं२२ भत्तृ <sup>९</sup> शिष्य ।
६ सपत्नी <b>पु</b> त ।	(२३ पितृसमानीद्क ।
<b>१० पति ।</b>	२४ पितृवंश ।
११ स्नूपा ( पुतवधू )।	२५ मातृसमानोद्क ।
१२ सपिएड ।	२६ मातृवंश ।
१३ समानीदकः।	२७ द्विजोत्तम ।
_	

पुरुष और स्त्री दिनका यधाकम प्रेत-श्राद्धांधिकारी-का विषय लिखा गया है। ये सब स्थक्ति पर पर अधि-कारी हैं अर्थात् यदि ज्येष्ठ पुत न रहे, तो किनष्ठ पुत अधिकारी हो सकता है, ऐसा जानना चाहिये। दिने अधिकारीके नाम जो दिये गये हैं उससे यही समकता चाहिये, कि प्रेतश्राद अवश्य कर्त्तच्य है।

किस किस कमेंसे प्रतियोंनि होती है तथा उनकी गित, आहार और कमीदि कैसे हैं, उसका विषय शासमें इस प्रकार लिखा है। पहले कहा जा चुका है, कि जिनकी औदध्वेदेहिक किया नहीं होती, वे प्रत हो कर रहते हैं। कमीविशेपसे किसी किसीकी औद्ध देहिक किया करने पर भी वे प्रत हो वने रहते हैं। इसे वोलचालमें भूत' होना कह सकते हैं। वेदिकविधानमें औदुध्वेदेहिक कियाका अभाव और विष्णुके प्रति हो प रहनेसे बहुत दिन नरक-भोग करनेके वाद प्रतशरीर होता है।

पद्मपुराणमें लिखा है—

"ततो वहुतिथे काले स राजा पश्चतां गतः ।
वैदिकेन विधानेन न लेमे सौद्धध्वदेहिकम् ॥
विष्णुप्रद्वेपमालेण युगानां सप्तविंशतिम् ।
भुषत्वा च यातनां यामीं निस्तीर्णनरको नृषः ॥
समया गिरिराजन्तुं पिशाचोऽभूत् तदा महान् ॥"
('पाद्योत्तरख॰ १६ भ॰)

वहुत दिनोंके वाद उस राजाकी मृत्यु हुई। उसकी वैदिकविधानसे औद्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई और वे विष्णुद्धे थी थे, इस कारण वहुत दिन तक नरकका भोग कर प्रेतदेहको प्राप्त हुए। मर कर भूत हुआ है, ऐसा जो लोग कहा करते हैं, वह और कुछ भी नहीं हैं, सिवा इसके, कि उसकी औद्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई, इस कारण वह प्रेतदेहको प्राप्त हुआ है। प्रेतका रूप—

"विकरालमुखं दीनं पिशङ्गनयनं भृशं। ऊद्धं मृद्धं जक्तव्याङ्गं यमदूर्तामवापरम्॥ ज्वलज्ञिह्मञ्च लम्बोष्ठं दीवेजङ्गशिराकुलम्। दीर्घाङ्चि शुक्ततुग्डञ्च गर्त्ताक्षं शुक्तपङ्कुजम्॥" (पाद्योत्तरख॰ १६-अ०)

'इनके विकराल वदन, अतिशय दीन, 'चक्षु पिङ्गलकर्ण और कोटरप्रविद्य, केश 'ऊद्धर्घ, अङ्ग कृष्णवर्ण, जिहा अत्यन्त चञ्चल, लम्बोछ, जङ्घा दीर्घ, अतिशय शिराल, अङ्घिदेश दीर्घ, शुष्क 'तुएड और यमदूतको 'तरह'शुष्क पञ्जर होते हैं।

त्र तत्वाद जनक वर्म।—जो अग्निमें घृताहुति नहीं देते भौर विष्णुकी अर्थना नहीं करते, जो कमी सुतिर्वर्म

नहीं जाते-भौर न भारमविद्यालाभ ही कर सकते हैं, वे हीं प्रे तदेहको प्राप्त होते हैं। जो कभी भी दुःखीको सुवण, बस्न, ताम्बूट, रत्न, फल, जल आदि नहीं देते ; जो लोभ-वशतः ब्रह्मस्व या स्त्री-धन हरण करते हैं तथा वश्चक, धूर्तं, नास्तिक, वक्षभार्मिक, मिथ्यावादी हैं; जो वाल, वृद्ध, भातुर भौर स्त्री-विषयमें निर्देय हैं, अग्नि भौर विप-दाता हैं ; जो मूठी गवाही देते हैं ; जो अगम्यागामी, प्राम्य-याजक, व्याधके आचरणयुक्त, वर्णाश्रमधर्मविहीन, सर्वदा भावकद्रव्य सेवनमें रत, विष्णुद्धे वी, श्राद्धान्नभोजी, असत्-कर्मरत, सव प्रकारके पातकयुक्त, पायएडधर्मचारी, पुरी-हितकी गृत्ति द्वारा जीविका निर्वाहकारी, पिता, माता, स्तुषा, अपत्य और स्वदारत्यागी, लुब्ध, नास्तिक तथा भम दूपक हैं; जी युद्धस्थलमें प्रभुका परित्याग कर भाग साते हैं; जो शरणागतींकी रक्षा नहीं करते; जो महाक्षेत-में दान लेते तथा जो परद्रोहरत, प्राणिहिंसक, दैवता, गुरुनिन्दक और कुप्रतिप्राही हैं, वही व्यक्ति प्रेतादि श्ररीर भारण करते हैं। इन सब कुकर्मशाली व्यक्तियोंको इह-लोक तथा परलोकमें कभी भी सुख नहीं मिलता।

प्रतिके भाहारके विषयमें लिखा है, कि वे श्लेप्मा, मूल, पुरीप और स्प्रियोंका मल भोजन करते हैं। अपितल गृह उनका वासस्थान है। जहां पविलता और शौच रहता है, यहां प्रतिगण नहीं रहते। पतित व्यक्तिसे सेवित वस्तु, विलमन्त्रविहीन वस्तु, नियम और व्रत-होन द्रव्य ये लोग मक्षण करते हैं। फलतः अपितल वस्तुमाल ही इनका भोज्य और अपितल गृहादि ही वास-स्थान है, ऐसा जानना चाहिये।

प्रतलकारण ।—जो ब्राह्मण श्रूद्रान्न खाते और वेद्विद-क्राह्मणकी अवहेला करते हैं तथा जो देव और
आहाणके वृत्तिहारी हैं, वे प्रत्योनिको प्राप्त होते हैं।
जो माता, पिता और साधुजनका परित्याग करते हैं,
उन्हें भी प्रतियोनि होती है। अयाज्य याजन, याज्यका
परिवर्जन, मद्यपान, स्त्री-सेवा, वृथामांसभोजन, द्विज और
देवता-निन्दा, शुक्तप्रहण कर कन्याविक्रय, गच्छित वस्तुका अपहरण, मृत झिक्ति शप्या आसनादि ग्रहण, कुठक्षेतमें दोनग्रहण, पितत और चर्डालसे दानग्रहण, मासिक
नवशाद्धमें पातीयानन भोजन आह्मणद्वन गोजन चर्नी

गुरुपता हरण, मूमि भीर कन्यापहरण, विष, शहु, तिल भीर लवणविक्रय, मद्य, तक, दुग्ध और दिधिविक्रय तथा नित्य और नैमित्तिक क्रियामें अदान आदि, जो इन सब कर्मीका अनुग्रान करते हैं, वे प्रेतयोनिको प्राप्त होते हैं। ( अग्निप्रगण )

प्रे तत्वाभावकरण अर्थात् जो सव कर्म करनेसे में तयोनि नहीं होती है वह यों है,—जिन्होंने एकराब, बिराब वा कच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतका अनुष्ठान किया है तथा जो व्रतपरायण हैं, उन्हें कभी भी प्रे तयोनि नहीं होती। मिष्ठ अब और पान-दान, देवद्विजमें भक्ति, प्जादि याग-यक्का अनुष्ठान, सव भूतों पर दया, मान और अपमानमें तुल्यता, शब्बु और मिलमें समझान, काञ्चन और लोपूमें तुल्यहान, देवता और अतिथि-पूजामें रत, अक्रोध, स्द, ऐश्वर्य, तृष्णा और आसङ्कता त्याग तथा तीर्थमें भ्रमण इत्यादि सत्कार्य करनेसे कभी भी प्रे तयोनि नहीं होती।

शास्त्रोक विधानानुसार जो व्यक्ति सत्कार्यका शनु-प्रान नहीं करते, वे ही प्रेत बनते हैं। सत्कर्मके अनु-प्रानसे इसकी निवृत्ति होती हैं। गयामें प्रेतिशला पर पिएडदान करनेसे इनका उद्धार होता है।

पद्मपुराणके उत्तरखएडमें जो पञ्चमे तोपाख्यान है उसमें में तका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रोतकर्म (सं० क्ली०) प्रोतस्य कर्म ६-तत्। प्रोतकार्य। हिन्दुओं में दाह आदिसे छे कर सपिएडी तक जो कर्म किये जातें हैं उन्हें प्रोतकर्म कहते हैं।

> "अकृत्वा प्रेतकार्याणि प्रेतस्य धनहारकः। वर्णानां मद्धे प्रोक्तं तद्दवतं नियतञ्चरेत्।"

(दायतत्त्व)

यथाविधान प्रेतके उद्देशसे श्राद्धादि कार्य करनेके वाद वह प्रेतका धनभागी हो सकता है। यदि कोई प्रेतकार्य किये विना प्रेतका धनग्रहण कर छे, तो उसे प्रायश्चित करना पड़ता है।

भेतकार्य (सं० ह्यी०) मेतस्य कार्यम्। प्रेतीद्देश्यक कार्यं, प्रेतकम

नवश्राद्धमें पात्रीयान्त-भोजन, ब्राह्मणहनन, गो-वध, चौर्य, प्रितकृत्य ( सं ॰ ति ॰ ) प्रेतस्य कृत्यं । प्रेतकार्य ।

श्रोतगर (सं विव ) श्रोतं गतः २-तत् । श्रोतयोनि-प्राप्त ।

ब्रे तगृह (सं ० क्ली०) प्रे तस्य गृहम् । १ श्मशान, मसान । २ वह स्थान जहां मृत शरीर रखे या गाडे जाते हैं। प्रेतचारी (सं०पुर) महादेव, शिव।

में ततर्पण (स'० हो०) में तस्य तर्पणं । में तके उद्देश्यसे तपण । मृत्युके वादसे छे कर सिपएडीकरण पर्यन्त प्रति-दिन प्रतके उद्देशसे तर्पण करना होता है। प्रेतके उद्देश-से सतिल जलदान और प्रतिदिन तपंण करना कर्त्तव्य है। किन्त प्रेततर्पणमें विशोषता है, कि महागुरुनिपातमें केवल प्रेतके उद्देशसे तर्पण करना होता है। जव तक सपिएडी-करण न हो, तव तक प्रेतके उद्देशसे तप्ण विधेय है। उस समय दूसरे किसीका भी तर्ण नहीं करना होता .है। प्रतिदिनके कर्त्तेव्य तर्पणमें शुक्र और रविवारकी तिळतपंण निपिद्ध हैं, किन्तु प्रेततपंणमें प्रतिदिन तिळ द्वारा तर्पण करना होता है, इसमें कोई भी निपेध नहीं है। तर्पणके समय पितादिका उल्लेख न कर प्रेतपदका ही उल्लेख करनेको लिखा है। सामवेदियोंके लिये प्रेत-दर्पणमें 'अमुक गोलं प्रेतं अमुकदेवशर्माणं तर्पयापि' यज्ञवैदियोंके लिये 'अमुक गोल प्रेत अमुक देवशर्मन् तव्यख' ऐसा कहना होता है। श्मशानमें जो जो व्यक्ति दाह करने जाचें, उन्हें प्रेतके उद्देशसे सतिल तिलतर्पण करना चाहिये, नहीं तो पापभागी होना पड़ता है।

( शुद्धितत्त्व )

प्रेतत्व (सं• क्वी॰) प्रेतस्य भावः त्व। प्रेतका भाव या अर्म।

प्रेतदाह (सं• पु॰) मृतकके जलाने आदिका कार्य। श्रेतदेह (सं १ पु० क्ली०) श्रेतस्य देहः । श्रेतशरीर किसी मृतकका वह किएत शरीर जो उसके मरनेके समयसे सपिएडी पर्यन्त उसकी आत्माको प्राप्त रहता है।

**"कृते सपिएडीकरणे नरः संवत्सरात् परम्।** में तदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रवद्यते॥"

(तिथितत्त्व)

मृत्युके एक वर्ष वाद सपिएडीकरण किया जाय, तो मृत न्यक्ति प्रेतदैहका परित्याग कर भोगदेहको प्राप्त होता है। मृत्युके वाद्से ले कर सपिएडीकरण तक प्रेत प्रेतनी (हिं० स्त्री०) भूतनी, चुड़ैल।

शरीर रहता है। दशपिएड द्वारा इस मेतदेहकी उत्पत्ति होती है, इसीसे दश पिएडका नाम पूरकपिएड पड़ा है।

मृत्युके वाद देह भप्मीभूत हो जाने पर पेतके उद्देशसे पहले जो पिएड दिया जाता है उससे बेनका शिर पूरा होता है। इसी प्रकार द्वितीय पिएडसे कर्ण, चक्षु और नासिका; तृतीय पिएडसे प्रीवा, स्कन्ध और वक्ष; चतुर्थ पिएडसे नाभि, लिङ्ग और गुद्द : पश्चम पिएडसे जानु, जङ्घा और पाद; पष्ट पिएडसे समस्त मर्मः सप्तम पिएडसे समस्त नाडियां.; अग्रम पिएडसे दन्त और लोम । नवमसे वीयँ और दशम पिएडसे सभी अङ्गोंकी पूर्णता होती 🕻 । इस प्रकार दश पिएड द्वारा प्रेतके शरीरका पूरण हुआ करता है। मृतव्यक्तिके मुंहमें जो आग देता है, उसीको यह पिएड देना पड़ता है। (शुद्धितत्व)

प्रेतधूम (सं**० पु०) प्रेतस्य** धूमः ६ तत्। चिताधूम, वह धूआं जो मृतको जलानेसे निकलता है। प्रेतनदी (सं क्यों ) प्रेततरणीया नदी । बैतरणी नदी। प्रेतों को यह वैतरणी नदी पार कर यमलोक जाना होता है।

"यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी। ताञ्च तत्तु ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीञ्च गाम्।।" ( श्राद्धपर्व )

जिससे प्रेत इस नदीको सुखसे पार कर सके, इसके लिये श्राद्धके पहले वैतरणी करनी होती है। वैतरणी देखी।

प्रेतनाह (सं ० पु०) यमराज । प्रेतनिर्यातक (सं • पु॰) धन ले कर प्रेतका दाह आदि करनेवाला, मुरदा-फरोश ।

प्रेतिनिर्हारक (सं • पु • ) प्रेतं निर्हरति गृहात् श्मशान-भूमि निर-ह-ण्बुल्। शवहारक, वह जो मृतकको उठा कर श्मशान तक ले जाय । जो रुपये ले कर शववहन करते हैं वे पतित हैं। उनके साथ एक पंक्तिमें वैठ कर नहों खाना चाहिये। धर्मार्थ शब-बहन करनेमें विशेष पुण्य लिखा है।

"प्रेतनिर्हारकाश्चैव वज्जनीया प्रयत्नतः ।" ( मनु ) 'प्रे तनिर्हारको धनप्रहणेन नुनु धर्मार्थ ।' ( कुल्लुक ) श्रेतपक्ष (सं० पु०) श्रेतिष्रयः पक्षः । गौण चान्द्र आश्रिवन कृष्णपक्ष, पितृपक्ष । यह पक्ष पितरों को अतिशय प्रिय है, इसीसे इसका प्रेतपक्ष नाम पड़ा है । इस पक्षमें मृत व्यक्तिका सांवरसरिक श्राद्ध पाव ण विधि द्वारा करना होता है । श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि मृतव्यक्तिके सिपएडीकरणके वाद प्रत्येक वर्ष उसके उद्देशसे पको-हिष्ट श्राद्ध करना विधेय है । किन्तु प्रेतपक्षमें मृत व्यक्तिका पकोहिए न करके पार्वणविधिके द्वारा वैपुष्ठिक श्राद्ध करना होता है । प्रेतपक्षमें प्रतिपद्से ले कर अमावस्या पर्यन्त, प्रतिदिन पितरों के उद्देशसे तिल तर्पण करना होता है और अमावस्था के दिन पार्वण-विधानानुसार श्राद्ध विधेय है। रिव शुक्त आदि वारको तिलतर्पण निषिद्ध नहीं है। प्रेतपक्षमें प्रतिदिन तिलत्तर्पण किया जाता है। इस प्रेतपक्षका दूसरा नाम अपरपक्ष है।

में तपटह (सं ॰ पु॰) में तस्य पटहः। मरणकालमें वादनीय वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा जो किसीके मरनेके समय बजाया जाता है।

श्रेतपति (सं॰ पु॰ ) श्रेतानां पतिः ६-तत् । यम । श्रेतपर्वत (सं॰ पु॰ ) श्रेतोद्धारणार्थः पर्वतः । गया तीर्थस्थ, स्वनामक्यात पर्वत ।

त्रे तषावक (सं० पु०) वह प्रकाश जो प्रायः दछद्छों, जंगलों या कब्रिस्तानोंमें रातके समय जलता हुआ दिखाई पड़ता है। इस घटनाको लोग भूतों और पिशाचोंकी लीला समकते हैं।

में तिपिएड (सं० पु०) में ताय देयः पिएडः । मरण सिपएडीकरण पर्यन्त में तसम्मदानक पिण्डाकार अझ, अन्न आदिका बना हुआ वह पिण्ड जो मृतकके उहे श-से उसके मरनेके दिनसे छे कर सिपण्डीके दिन तक नित्य दिया जाता है। प्रकिपएडको भी में तिपिएड कहते हैं। इस पिएडके द्वारों में तदेह बनती है, इसीसे इसका में त-पिएड नाम पड़ा है। दशाहिक में तिपएडमें स्वधा शब्दका भयोग नहीं करना चाहिये। दशिषां इसे सारी वेहें पूर्वी हैं जाती है। प्रतिदह-दे खो। यह प्रतिपिएड हर किसीको देना उचित है। जो यह प्रतिपिएडदान नहीं करते, वे नरकको प्राप्त होते हैं।

प्रेतिपिएडदानके बाद प्रेतके उद्देशसे स्नानके लिये जल और पीनेके लिये क्षीर देना चाहिये। 'प्रेताक स्नाहि पिय चेदं क्षीरं' यह कह कर प्रेतुके नाम गोतका उत्लेख करते हुए देना होता है। पीछे निम्नलिखित मन्त्र पढना होता है। मन्त्र यथा—

"श्मशानान्तलद्ग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि वान्धवैः। इवं नीरमिदं भीरं स्नात्वा पीत्वा सुखीमव ॥" (शुद्धितस्व)

प्रतपुर (सं • क्वी) प्रेतानां पुरम्। यमालय, यमपुर। प्रेतमाव (सं • पु •) प्रेतस्य भावः। प्रेतस्य, प्रेतत्य। प्रेतमेघ (सं • पु •) प्रेतस्य मेघः ६ तत्। प्रेतोद्देश्यक श्राह्मस्य पद्य, मृतकके उद्देशसे होनेवाला श्राह्म।

प्रतयह (सं• पु॰) एक प्रकारका यह जिसके करनेसे प्रतयोगि प्राप्त होती है।

त्र तराक्षसी (सं • स्त्री •) प्रेतानां पिशाचमेदानां राक्षसी व अपसपेणकारित्वात् । तुस्रसी कहते हैं, कि अहां तुस्रसी रहती है, वहां भूत प्रेत नहीं माते । इसीसे उसका यह नाम पड़ा है ।

प्रेतराज (सं• पु॰) प्रेतानां राजा, दन्न् समासान्तः । १ यमराज । ये प्रेतोंके शुभाशुभ-फलका विचार कर जिसकी जैसी गति होती हैं, तद्वुसार उसे वही गर्ति प्रदान करते हैं। २ महादेव, शिव।

मे तलक्षण (सं॰ क्ली॰) अरिष्ट लक्षण।

प्रे तलोक (सं० पु०) प्रे तानां लोकः ६-तत्। यमक्रीकः। प्रे तवन (सं० क्की०) प्रे तानां सृतानां वनमिवाधारत्वात्। समग्रान, मरघट।

प्रे तवाहित (सं० ति०) प्रे तेन चाहितः भूताविष्ट, जिसें भूत लगा हो।

प्रेतिविधि ( सं॰ स्त्री॰ ) मृतकका दाह आवि करना । प्रेतिविमाना (सं• स्त्री॰) पञ्च प्रेतिके विमानवाळी भगवती ।